महाकविकालिदासप्रणीत

रघुवंश-महाकाव्य

सम्पूर्ण

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास

कालिदास का 'रघुवंश' लोककल्याण का सन्देश देनेवाला एक ऐसा महाकाव्य है जो विश्वसाहित्य में अपना सानी नहीं रखता। इसमें उन्नीस सर्गों में 'सूर्य-प्रभव' वंश के अभ्युदय और क्षयोन्मुखता का वर्णन अत्यन्त सुन्दरता और विशदता से किया गया है। इसके प्रथम पन्द्रह सर्गों में कालिदास ने सम्पूर्ण भारत की धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक, राजनीतिक सभी प्रकार की संस्कृति का दिग्दर्शन कराते हुए रघुवंश-रूपी सूर्य को प्रखरता तक पहुंचाया है। इसके बाद रघुवंश का गौरव क्षीणता की ओर उन्मुख हुआ। राम के स्वर्गारोहण के बाद राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, राघवों की अयोध्या उजड़कर खंडहर हो गई। यद्यपि कुश ने पुनः अयोध्या को राजधानी बनाकर अपनी भूल सुधारी, किन्तु राजधानी उजड़ने से राष्ट्र को जो धक्का लगा उसे वह न संभाल सका। कुश के बाद जिन चौबीस उत्तराधिकारियों का वर्णन है उनमें से अन्तिम अग्निवर्ण तो विषय-वासना में लिप्त होकर राजयक्ष्मा का ग्रास बना और सिंहासन को सूना छोड़ कर चल बसा। दिलीप की तपस्या, रघु के पराक्रम और राम के अलौकिक व्यक्तित्व से जो यशस्वी वंश दोपहर के सूर्य की भांति दशों दिशाओं में प्रखरता से तप रहा था वही ध्रुवसन्धि-जैसे व्यसनी और अग्निवर्ण-जैसे लम्पट उत्तराधिकारियों द्वारा विलुप्त हो गया। इस प्रकार कालिदास ने इस महाकाव्य द्वारा यह सन्देश दिया है कि तपस्या, वीरता, सेवाभाव और त्याग की नींव पर ही राजाओं या राजवंशों के महल टिक सकते हैं; प्रमाद, कायरता और लम्पटता के थपेड़ों को वे नहीं सह सकते; जर्जर होकर धराशायी हो जाते हैं।

रघुवंश की लगभग चालीस टीकाओं में मल्लिनाथ की संजीवनी-टीका सर्वाधिक प्रचलित हुई। इस टीका के साथ इसी के आधार पर हिन्दी व संस्कृत में अपनी व्याख्या 'छात्रोपयोगिनी' लिखकर पण्डित धारादत्त शास्त्री ने यह संस्करण प्रस्तुत किया है। श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय-कृत उपोद्घात एवं सर्गों के कथासार से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है।

मूल्य : रु० १२०

रघुवंश-महाकाव्य
(सम्पूर्ण)

महाकविकालिदासप्रणीत

रघुवंश-महाकाव्य

(सम्पूर्ण)

मल्लिनाथ-कृत सञ्जीवनी-टीका, आचार्य धारादत्त मिश्र-कृत
संस्कृत-व्याख्या एवं हिन्दी अनुवाद, तथा श्री जनार्दन पाण्डेय-कृत
उपोद्घात सहित

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास

प्रथम संस्करण : १९७४
द्वितीय परिवर्धित संस्करण : १९८७

© मोतीलाल बनारसीदास

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११० ००७

शाखाएँ : चौक, वाराणसी २२१ ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
१२० रायपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४

मूल्य : रु० १३०

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ७
द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५,
फेज-१, नारायणा, नई दिल्ली २८ द्वारा मुद्रित।

विषय-सूची

उपोद्घात	vii-xxviii
रघुवंश की सूक्तियां	xxix-xxxiii
प्रथम सर्ग	
कथासार	१–२
मूल एवं अनुवाद	१–६२
द्वितीय सर्ग	
कथासार	१–४
मूल एवं अनुवाद	५–६०
तृतीय सर्ग	
कथासार	१–४
मूल एवं अनुवाद	१–५८
चतुर्थ सर्ग	
कथासार	१–२
मूल एवं अनुवाद	३–७६
पञ्चम सर्ग	
कथासार	१–८
मूल एवं अनुवाद	१–८४
षष्ठ से दशम सर्ग	
कथासार	१–१०
मूल एवं अनुवाद	१–३६७
एकादश से एकोनविंशति सर्ग	
कथासार	१–३८
मूल एवं अनुवाद	१–५०३
श्लोकानुक्रमणिका	१–२६

उपोद्घात

महाकवि कालिदास

लौकिक संस्कृत में कविता का प्रादुर्भाव महर्षि वाल्मीकि से हुआ। क्रौंचवध की एक साधारण-सी घटना से महर्षि के हृदय का शोक श्लोकरूप में परिणत हुआ और उन्होंने रामायण की रचना कर डाली। इसलिये वाल्मीकि हमारे आदिकवि हैं और उनका रामायण आदिकाव्य। आदिकवि की यह रचना संस्कृत वाङ्मय का अत्यन्त अभिराम निकेतन है। सहजता और सरसता इसका सर्वस्व है। विभिन्न अलंकारों द्वारा रसों की अभिव्यक्ति, प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण, वर्णन की यथार्थता और हृदयग्राहिता इसके अनुपम गुण हैं।

आदिकवि वाल्मीकि की इसी शैली का उदात्त उत्कर्ष हमें महाकवि कालिदास में प्राप्त होता है। निस्सन्देह अपनी काव्यकला को उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँचाने में वाल्मीकि ही कालिदास के प्रेरणास्रोत रहे हैं। रघुवंश में 'पूर्वसूरिभिः' कहकर उन्होंने वाल्मीकि की ओर ही संकेत किया है और रामायण को 'कविप्रथमपद्धति' कहा है। कालिदास को अपने काव्यों से जैसी अद्भुत ख्याति मिली वैसी उनके पूर्ववर्ती भास, सौमिल्ल आदि को, जिनका स्वयं कालिदास ने आदरपूर्वक स्मरण किया है, नहीं प्राप्त हो सकी और उनके परवर्ती अश्वघोष, हरिषेण, वत्सभट्टि आदि पर तो उनकी कविता का प्रभाव स्पष्ट ही दीखता है। भारत ही नहीं इससे बाहर भी उपलब्ध शिलालेखों तथा काव्यों में इनकी कविता का पर्याप्त अनुसरण पाया जाता है। इसका कारण है कालिदास के काव्यों की भाषा इतनी सरल और प्रवाहपूर्ण है कि उसे समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। न कहीं क्लिष्ट कल्पना है, न कृत्रिमता। अलङ्कारों को गढ़ने का प्रयत्न नहीं है। वे स्वाभाविक रूप से आ गये हैं। गागर में सागर भरने की अद्भुत क्षमता इस कवि में हैं। रघुवंश के केवल १९ सर्गों में, महाकाव्य

की परिभाषा में जितने विषय गिनाये गये हैं उन सबका वर्णन करते हुए कवि ने रघु की २४ पीढ़ियों का वृत्तान्त अत्यन्त सफलतापूर्वक कर दिया। राजा पुरूरवा और उर्वशी के दिव्य अलौकिक प्रेम के वर्णन में जिस रसानुभूति का आस्वादन उनकी रचना में होता है, यक्ष की विरहवेदना में उससे कम नहीं होता। लक्ष्मी के अतुल वैभव से मंडित राजभवनों का जिस ढंग से वे वर्णन करते हैं उससे कहीं अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से ऋषियों के अग्निहोत्र के धुंए से धूसर आश्रमों का। इस प्रकार हम कालिदास को भारतीय संस्कृति के एक ऐसे पर्याय के रूप में पाते हैं जिसकी रचना में हमें बृहत्तम भारत का सर्वाङ्गीण रूप दीखता है। यही कारण है कि २००० वर्षों के इस दीर्घकाल में भी इनकी रचनाओं की लोकप्रियता ज्यों-की-त्यों बनी हुई है।

जन्म-स्थान

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश के विद्वानों ने इस महाकवि की जन्मभूमि अपने प्रदेश में सिद्ध करने के लिये प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से पूर्ण अनेक लेख एवं पुस्तकें लिखी हैं। कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, मालवा, मगध, बंगाल अथवा दक्षिण भारत को ही कवि की जन्मस्थली माननेवालों ने यह तो सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक भारतवासी के हृदय में कालिदास के प्रति इतना अगाध प्रेम और श्रद्धा है कि वह उसे अपने ही प्रदेश की विभूति समझता है। क्योंकि कवि ने अपने किसी ग्रन्थ में अपने जन्मस्थान का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं किया है, अतः अन्वेषक उनकी रचनाओं से उनके प्रदेश-सम्बन्धी परिचय तथा प्रेम का अन्वेषण करते हैं। किन्तु कवि की अद्भुत प्रतिभा, सूक्ष्म निरीक्षिका शक्ति और भारत के कोने-कोने का व्यापक और गहरा परिचय इन अन्वेषकों को उनके अपने ही प्रदेश में ले आता है और वे कवि को अपने ही प्रदेश का समझ बैठते हैं। कुमारसंभव में हिमालय का वर्णन, रघुवंश में रघु की दिग्विजय-यात्रा तथा मेघदूत में मेघ के मार्ग का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण भारत के भिन्नभिन्न प्रदेशों, उनके क्रियाकलापों तथा उनकी भौगोलिक एवं मानवीय विशेषताओं का जितना गहरा अनुभव कालिदास को था उतना

संभवतः अन्य किसी कवि को नहीं, अतः प्रत्येक व्यक्ति उन्हें स्वक्षेत्री समझ ले तो आश्चर्य नहीं।

वस्तुस्थिति यह है कि कालिदास ने अपनी रचनाओं में सम्पूर्ण भारत-, बृहत्तर भारत के प्रति जो देशप्रेम और अपनत्व प्रकट किया है उससे उन्हें किसी संकीर्ण क्षेत्र का निवासी न मानकर संपूर्ण भारत को उनका जन्म-स्थान माना जाय। कालिदास भारत में जन्मे, भारत में रहे। तत्कालीन भारत का सर्वोत्कृष्ट चित्रण अपने काव्यों में जैसा कालिदास ने किया ऐसा अन्य किसी ने नहीं।

स्थितिकाल

यों तो कालिदास को ईसा से ५०० वर्ष पहिले मानें या ५०० वर्ष बाद, इससे उनकी महनीयता में कोई अन्तर नहीं आता। पाश्चात्य विद्वानों एवं उनके अनुयायी भारतीय कुछ विद्वानों ने भी काल-विषयक जो खींचतान की है, उसे सिवाय दुराग्रह के और कुछ नहीं कहा जा सकता। हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि पाश्चात्य विद्वान् भारतीय ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों की बहिर्मन से कितनी ही प्रशंसा करें पर उनका अन्तर्मन दूषित है। वे हमारी उत्कृष्ट संस्कृति की प्राचीनता को सहन नहीं कर सकते। उनकी चेष्टा रहती हैं कि वे किसी भी भारतीय ग्रन्थ या ग्रन्थकार की स्थिति की सीमा को ईसा के बाद जितना अधिक संभव हो बढ़ावें ताकि उनकी संस्कृति हमसे प्राचीन सिद्ध हो सके। भारत के विकास में सदा जीवन को ही महत्त्व मिला है जीवनी को नहीं, यही कारण है कि हमारे प्राचीन महापुरुषों, विद्वानों, कवियों और रचनाकारों का वाङमय-वैभव तो हमें उपलब्ध है पर उनकी जीवनी हमारे लिये वेदान्तियों के ब्रह्म की भांति रहस्य ही बनी हुई है। कालिदास भी इसके अपवाद नहीं।

जब तक ज्ञातकाल शिलालेखों और प्राचीन अलंकार-ग्रन्थों में निर्दिष्ट नियमों के साथ मिलाकर कालिदास की प्रत्येक रचना की भाषाशैली और साहित्यिक परिभाषाओं का गम्भीर अनुसन्धान न किया जाय तब तक कालविषयक प्रश्न का निश्चित हल संभव नहीं है। रघुवंश की अग्निवर्ण-वर्णन में समाप्ति देखकर उन्हें ई०पू० ३०० में मानना या किन्हीं अन्य

भ्रान्त धारणाओं के आधार पर ८०० ई० में उनकी स्थिति को सकारना पूर्णतया उपेक्ष्य है।

कालिदास की स्थिति के विषय में कई मत हैं जिनमें तीन मुख्य हैं— १. ईसा की छठी शताब्दी, २. ईसा की पंचम शताब्दी, ३. ई०पू० प्रथम शताब्दी

१. प्रथम मत का प्रवर्तक फर्गुसन था। उसकी कल्पना थी कि ५४४ ई० में विक्रमादित्य नाम के किसी राजा ने हूणों को परास्त किया और उसी विजयस्मृति में अपना सम्वत् चलाया जिसे प्राचीन सिद्ध करने के लिये उसे ६०० वर्ष पहिले से मान लिया। मैक्समूलर ने भी इसकी पुष्टि की तथा हार्नली ने इसका उपयोग कालिदास का कालनिर्धारण करने में किया। उसका कहना है कि छठी शताब्दी में राजा यशोधर्मा ने कारूर के युद्ध में हूणों के प्रतापी राजा मिहिरकुल को परास्त किया। अपनी इस महत्वपूर्ण विजय के उपलक्ष में उसने एक सम्वत् चलाया और उसे प्राचीनता का पुट देने के लिये ६०० वर्ष पूर्व से प्रचलित होना प्रचारित किया। यतः कालिदास द्वारा वर्णित रघु की दिग्विजय-यात्रा ठीक यशोधर्मा की राज्य-सीमा से मिलती है, अतः सिद्ध है कि कालिदास यशोधर्मा के आश्रित कवि थे।

यह कल्पना पूर्णतया भ्रान्ति की नींव पर स्थित है। ५४४ ई. में यदि कोई विक्रमादित्य रहा भी हो तो वह हूणारि होगा शकारि नहीं। संसार के इतिहास में किसी के द्वारा सम्वत् प्रचलित कर उसे प्राचीनता के लिये ६०० वर्ष पूर्व ढकेलने का कोई दृष्टान्त उपलब्ध नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मालव (विक्रम) संवत् ४९३ में कुमारगुप्त की प्रशस्ति में लिखे गये वत्सभट्टि के शिलालेख में कालिदास के मेघदूत और ऋतुसंहार के कितने ही श्लोकों की स्पष्ट छाप है। अतः इसके बाद कालिदास की स्थिति मानना इतिहास की स्पष्ट अवमानना है।

२. दूसरा मत है ईसा की पंचम शताब्दी अर्थात् गुप्तकाल में कालिदास को मानना। इस का समर्थन प्रो. के.बी. पाठक, रामावतार शर्मा, रामकृष्ण भाण्डारकर आदि विद्वानों ने किया है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने 'कालिदास' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के ही आश्रित कवि थे।

यह मत भी उपेक्षणीय है, क्योंकि इसके समर्थकों में स्वयं मतैक्य नहीं

है। कोई कालिदास को स्कन्दगुप्त के साथ जोड़ता है, कोई कुमारगुप्त के और कोई चन्द्रगुप्त द्वितीय के। गुप्तकाल भारतीय साहित्य का स्वर्णयुग था। अतः कालिदास-जैसे प्रतिनिधि कवि का वही काल होना चाहिये, यह कल्पना ही इस मत को माननेवालों का पाथेय है। रघु की दिग्विजय-यात्रा से समुद्रगुप्त की दिग्विजय का स्मरण, ग्रीक ज्योतिष और अश्वघोष की कविता का कालिदास पर प्रभाव आदि कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है जिनके आधार पर कालिदास को पांचवीं शताब्दी में माना जा सके। कालिदास का सीधा सम्बन्ध विक्रमादित्य से भारतीय जनश्रुति में माना गया है। गुप्तवंश में जो राजा विक्रमादित्य कहलाये वे नाम से नहीं उपाधि से विक्रमादित्य थे। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विक्रमादित्य नाम का कोई प्रतापी राजा पहिले हो चुका था जिसके सदृश पराक्रमी होने से इन्हें यह उपाधि प्राप्त हुई। उन्होंने कोई सम्वत् नहीं चलाया। ग्रीक ज्योतिष का कोई प्रभाव कालिदास पर नहीं पड़ा। ज्योतिष की उत्पत्ति ही भारत में हुई है, ग्रीस वालों ने उसे भारत से सीखा—यह एक स्वतन्त्र विचार का विषय है। कालिदास ने ज्योतिष-सम्बन्धी ऐसे विषयों का प्रयोग किया है जो ग्रीक या अन्य ज्योतिष में ढूंढे नहीं मिल सकते। अश्वघोष पर कालिदास का प्रभाव था, कालिदास पर अश्वघोष का नहीं, इसका हम आगे विवेचन करेंगे।

परम्परागत ढंग से भारतीय साहित्य का अध्ययन करनेवाले प्रायः सभी विद्वान् एकमत से स्वीकार करते हैं कि कालिदास उज्जयिनि-नरेश परमारवंशीय राजा महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में प्रमुख थे। ये ही विक्रमादित्य परम उदार, गुणग्राही और प्रतापी राजा थे जिन्होंने शकों को परास्त करके ई०पू० ५७ में विक्रमसंवत् चलाया था।[1] कालिदास और विक्रमादित्य का सम्बन्ध चिरकाल से भारतीय जनश्रुति का आधार बना हुआ है। अन्तःसाक्ष्यों से भी यही सिद्ध होता है कि कालिदास का वही स्थितिकाल है जो राजा विक्रमादित्य का था। इस सम्बन्ध में निम्नांकित साक्ष्य विशेष ज्ञातव्य हैं—

१. इस विषय में विस्तार के लिये देखें डॉ० राजबली पाण्डेय का 'विक्रमादित्य' नामक ग्रन्थ।

१. मालविकाग्निमित्र की कथा से सिद्ध है कि कवि को शुङ्गवंश के इतिहास का पूर्णतया ज्ञान था। २. शुङ्ग-सीमा के अन्तर्गत प्राप्त हुए भीटा के एक मुद्राचित्र में ठीक वही दृश्य अंकित है जिसका वर्णन अभिज्ञान-शाकुन्तल के प्रारम्भ में हुआ है। ३. कालिदास की शैली कृत्रिमता से सुतरां मुक्त है जो पतंजलि के महाभाष्य से मिलती है, और उन्होंने कुछ वैदिक शब्दों का प्रयोग भी किया है। यह प्रवृत्ति ई०पू० ३०० से ई० सन् के प्रारम्भिक काल तक पायी जाती है। ४. ई० प्रथम शताब्दी में रचित हाल की गाथा-सप्तशती में विक्रमादित्य को उद्धृत किया गया है।[१] ५. कथा-सरित्सागर में मालवगण के संस्थापक, काव्यकला के प्रेमी उज्जयिनी-नरेश विक्रमादित्य को परमशैव कहा गया है। कालिदास के ग्रन्थों से भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि वे शैव थे और उज्जयिनी के विषय में उनका पक्षपात देखते ही बनता है। अतः सुतरां सिद्ध है कि वे विक्रमादित्य की सभा के रत्न होंगे। ६. इन्दुमती-स्वयंवर के प्रसङ्ग में कालिदास ने पाण्ड्य-नरेश का वर्णन किया है और उनकी राजधानी उरगपुर बताई है। प्रथम शताब्दी में पाण्ड्यों का राज्य विद्यमान था और उरगपुर ही उसकी राजधानी थी। चतुर्थ शताब्दी में पाण्ड्यों की सत्ता समाप्त हो गई।

ऐसे ही अनेक प्रमाणों से यह मत प्रायः उचित लगता है कि कालिदास ई० पू० प्रथम शताब्दी में विद्यमान थे और विक्रमादित्य से उनका गहरा सम्बन्ध था।

कालिदासत्रयी

जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर के नाम से एक पद्य उद्धृत है—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ।।

इसके आधार पर लोगों ने कल्पना की है कि कालिदास नाम के तीन कवि हुए हैं। किन्तु आज तक यह कोई निश्चय नहीं कर सका कि ये तीन

१. संवाहण सुह रस तोसिएण देन्तेण तुअ करे लक्खम् ।
चलणेण विक्कमाइत्त चरिअं अणुसिक्खिअं तिस्सा ।। (गा०सप्त० ५.६४)

कालिदास कब-कब हुए और कौनसी रचना किस कालिदास की है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय का कहना है: "संस्कृत साहित्य में कवि को ही काव्य के नाम से कहने की परिपाटी रही है। जैसे, शिशुपालवध को माघकाव्य, रावणवध को भट्टिकाव्य और किरात को भारवि के नाम से कहा जाता है। ऐसे ही शृङ्गार के ललितोद्गार में एक ही कालिदास अर्थात् उनके एक ही ग्रन्थ की बराबरी कोई नहीं कर सकता, फिर कालिदासत्रयी अर्थात् उनके तीन ग्रन्थों की बराबरी कौन कर सकता है"[1]। हमें भी पाण्डेय जी का यह कथन उचित प्रतीत होता है क्योंकि यह पद्य कविकाव्य-प्रशंसा के प्रकरण में कहा गया है। इसमें कहे 'कालिदासत्रयी' शब्द से उनके तीन काव्यों (रघुवंश, कुमारसंभव और मेघदूत) तथा तीनों नाटकों (विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र और अभिज्ञानशाकुन्तल) की श्रेष्ठता प्रतीत होती है।

यद्यपि यह तथ्य है कि कालिदास के नाम से जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं वे सब एक ही व्यक्ति की कृतियां नहीं हैं, क्योंकि उनमें भाषा, शैली और निर्माणकला की दृष्टि से बहुत भिन्नता है; अतः यह हो सकता है कि कालिदास नाम के कई व्यक्ति हुए हों, अथवा कालिदास की अप्रतिम ख्याति से प्रभावित अवान्तरकालीन कवियों ने अपने व्यक्तित्व को छिपाकर उनके नाम से अपनी रचनाओं को विख्यात कराने की चेष्टा की हो। किन्तु कालिदास नाम से कितने कवि हुए और कब हुए इसका निर्णय करने के लिये कोई ठोस सामग्री हमें उपलब्ध नहीं।

कालिदास के नाम से उपलब्ध रचनाएँ

कालिदास के नाम से कही जानेवाली रचनाओं की संख्या ४० से ऊपर है जिनमें मुख्य हैं—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञान-शाकुन्तल, रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार, श्रुतबोध, कुन्तलेश्वर दौत्य, घटखर्पर, राक्षसकाव्य, नलोदय, दुर्घटकाव्य, वृन्दावनकाव्य, विद्वद्विनोद, पुष्पबाणविलास, नवरत्नमाला, ज्योतिर्विदाभरण, अम्बास्तव, कालीस्तोत्र, गङ्गाष्टक (दो), चण्डिकादण्डक, श्यामलादण्डक, मकरन्दस्तव, लक्ष्मीस्तव, कल्याणस्तव, लघुस्तव, शृङ्गारतिलक, शृङ्गारसार और सेतुबन्ध।

---

१. द्र० चन्द्रबली पाण्डेय, 'कालिदास' पृष्ठ २

इनमें प्रारम्भ के ६ ग्रन्थ (३ नाटक और ३ काव्य) तो अन्तःसाक्ष्य और बहिः साक्ष्यों के आधार पर निश्चित ही एक व्यक्ति की कृतियाँ हैं। ऋतुसंहार को भी इसी कालिदास का परम्परा से माना जाता है। कुन्तलेश्वर-दौत्य को क्षेमेन्द्र ने कालिदास के नाम से उद्धृत किया है। वह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। शेष ग्रन्थों की मीमांसा अपेक्षित है। कालिदास-जैसे सिद्धसरस्वतीक और प्रतिभाशाली कवि ने केवल ६ ग्रन्थों की ही रचना की हो, उसकी अन्य स्फुट रचनायें न हों, यह संभव नहीं। किन्तु इन ग्रन्थों की साहित्यिक परिभाषाओं तथा कालिदास की निर्मितिकला के आधार पर व्यापक विवेचना किये बिना इसका निर्णय नहीं हो सकता।

कालिदास के विचार और रचनानैपुण्य

कालिदास हिन्दूसंस्कृति के प्रतिनिधि-कवि हैं। चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) व्यवस्था, अवतारवाद, पुनर्जन्म की मान्यता, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सभी संस्कारों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हमें इनकी रचनाओं में प्राप्त होता है। 'त्यागाय संभृतार्थानां' से ये स्पष्ट करते हैं कि कमाई त्याग के लिये ही होनी चाहिये। 'इष्टप्राप्ति का एकमात्र साधन तपस्या ही है'—इस सिद्धान्त की जिस सार्वभौम रूप में स्थापना कालिदास ने की है ऐसी किसी अन्य कवि ने नहीं। इनका प्रत्येक पात्र तपस्या की कसौटी पर कसा गया है। और तो और, इन्होंने साक्षात् ईश्वर को भी तपस्या करने को बाध्य किया है—'स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार'। तपस्या द्वारा भगवान् को भी खरीदा हुआ दास बना डाला है—'अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिः'। प्रेम का भारतीय आदर्श क्या है—इसे इनकी रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है।

कालिदास भारत को एक अखण्ड राष्ट्र मानते हैं। उनके काव्यों में पूरे भारत की सभ्यता का दिग्दर्शन होता है और उनके नाटक विश्व के रंगमंच पर भारतीय संस्कृति का भव्य रूप दिखाते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के नान्दी-श्लोक तथा कुमारसंभव (६।२६) में उन्होंने अष्टमूर्ति (सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) महादेव (ईश) की

जो स्तुति की है और 'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः' कहकर इन मूर्तियों का प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होना तथा इनको धारण करनेवाली चेतन नियामक सत्ता की असन्दिग्धता सिद्ध करके एक ओर तो निरीश्वरवादी बौद्धों को वैदिक संस्कृति के पोषक बनकर कड़ी फटकार दी है, क्योंकि जो मूर्तियाँ प्रत्यक्ष हैं उन्हें आंख रहते नकारनेवाला अन्धा ही हो सकता है; दूसरी ओर, इन प्रत्यक्ष मूर्तियों के मन्दिर पश्चिम में काठियावाड़ (सोमनाथ), पूर्व में बंगाल (चन्द्रनाथ), उत्तर में नेपाल (पशुपति-यजमानमूर्ति) और सुदूर दक्षिण में अन्तिम आकाश (चिदम्बर) तक पूरे भारत राष्ट्र की अखण्डता का संकेत किया है कि समग्र भारत में फैली इन मूर्तियों की उपासना का अर्थ है देश की आध्यात्मिक एकता।

कालिदास के विचार से ब्राह्मण देश का मस्तिष्क है और क्षत्रिय उसकी विजयी भुजा। इन दोनों के परस्पर सहयोग से ही राष्ट्र प्रकाशमान हो सकता है

स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाथर्वविदा कृतक्रियः ।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा ॥ (रघु० ८।४)

अथर्ववेत्ता ब्राह्मण गुरु वसिष्ठ द्वारा किये गये संस्कारों-वाला क्षत्रिय आज शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष हो गया, क्योंकि अस्त्रतेज से युक्त ब्रह्मतेज ऐसे प्रदीप्त हो उठता है जैसे वायु के संयोग से अग्नि। इस प्रकार वे वर्ण-व्यवस्था का दृढ़ समर्थन करते हैं।

कालिदास वैदर्भी रीति के सर्वोत्तम आदर्श कवि हैं। इनकी रचनायें ललित, परिष्कृत, प्रसादपूर्ण एवं क्लिष्टता तथा कृत्रिमता से सर्वथा रहित हैं। साधारण-सी घटना को भी अपने रचना-कौशल से भव्य, मार्मिक और चमत्कारपूर्ण बना देना इनके लिये जैसे बाँये हाथ का खेल है। अस्थिपंजर कंकाल में भी प्राण फूंककर दिव्य सौन्दर्य प्रदान करने की कला में ये विश्वसाहित्य में अपना सानी नहीं रखते। व्यञ्जकता इनके काव्य की प्रथम विशेषता है। कथानक के विकास का असाधारण कौशल, सटीक चरित्रचित्रण की अद्भुत क्षमता, मानव-भावों को मूर्तरूप देकर व्यक्त करने की विलक्षण प्रतिभा और जड़ पदार्थ से भी चेतनवद् व्यवहार करा लेने का अनुपम नैपुण्य इस कवि में है। यही कारण है कि एक सामान्य ज्ञान

रखनेवाला व्यक्ति भी इनकी रचनाओं से उतना ही आनन्दित होता है जितना एक उद्‌भट विद्वान्। इनके प्रत्येक पात्र का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है तथा उसके भाव और भाषा ठीक उसीके अनुरूप हैं। शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों में सर्वत्र सन्तुलन रखा गया है। कहीं भी शब्द-सौन्दर्य के लिये अर्थ की बलि नहीं दी गई है और न कहीं ठोकपीटकर अलंकार गढ़ने की चेष्टा की गई है। कविता के प्रवाह में नैसर्गिकता है। किसी भी शब्द, अर्थ या भाव में औचित्य का रत्तीभर उल्लंघन इनकी कविता में ढूंढ़े नहीं मिल सकता।

'उपमा कालिदासस्य'

यद्यपि उक्त पद्यांश किसी माघकवि के प्रशंसक का है परन्तु इसके तथ्य को भी झुठलाया नहीं जा सकता। कालिदास की रचना में प्रायः सभी अलंकार अपने सटीक रूप में पाये जाते हैं। परन्तु उनकी उपमा केवल उपमान, उपमेय, साधारणधर्म और वाचक शब्द का समुदाय ही नहीं होती प्रत्युत एक पूरे दृश्य को व्यक्त कर देती है—

स सेनां महतीं कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः॥ (रघु० ४।३२)
सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
विवर्णभावं स स भूमिपालः नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे॥ (रघु० ६।६७)
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः।
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥ (कुमार०)
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः। (मेघ०)

ऐसी सैकड़ों उपमायें कालिदास की रचना में हैं जो एक पूरे दृश्य को पाठक के सामने व्यक्त कर देती हैं। कवि ने रघुवंश का आरम्भ ही उपमा से किया है–"वागर्थाविव सम्पृक्तौ"। केवल कालिदास की उपमाओं का सम्यक् अध्ययन ही भारतीय संस्कृति के अध्ययन की जिज्ञासा शान्त करने में समर्थ है।

कालिदास की उपमाओं में सबसे बड़ी विशेषता है देश, काल और पात्र के अनुसार औचित्य का प्रतिपादन। समाधि में निरत भगवान् शंकर की उपमा में वे कहते हैं—

अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहम् अपामिवाधारमनुत्तरङ्गम् ।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥

शरीर की समस्त वायुओं का निरोधकर पर्यङ्कबन्ध में स्थिर भगवान् शिव अचंचल होकर ऐसे बैठे हैं जैसे वर्षा के आडम्बर से हीन मेघ (जो कभी भी बरस सकता है) या तरंगों की चञ्चलता से रहित शान्त समुद्र अथवा वायुरहित स्थान में स्थिर दीपक की लौ हो। इन तीनों प्राकृतिक उपमानों द्वारा योगेश्वर की स्थिरता की अभिव्यक्ति शिव के गौरव के कितने अनुकूल है ! ऐसे ही तपस्या के लिये राजकीय आभूषणों को छोड़ वल्कल धारण की हुई पार्वती की उपमा चन्द्रताराओं से मण्डित अरुणोदय-युक्त रजनी से (कु० ५।४४) तथा राक्षस के चंगुल से मुक्त होकर बेहोशी के बाद होश में आती हुई उर्वशी की समता चन्द्रोदय के समय अन्धकार से मुक्त हुई रजनी, रात्रि में धूमराशि से रहित अग्निज्वाला, बरसात में तट-भ्रंश से हुए गदलेपन से मुक्त प्रसन्नसलिला गंगा से देकर (विक्रमो० १।९) कालिदास केवल अलंकार का निर्वाह मात्र नहीं करते प्रत्युत तीन-तीन दृश्यों को प्रत्यक्षरूप से पाठक के सम्मुख उपस्थित कर देते हैं।

इसी प्रकार रघु की दिग्विजय में हारे हुए वंगीय नरेशों की उपमा झुके हुए धान के पौधों से, कलिंग के राजाओं की 'गंभीरवेदी' हाथियों के अंकुश से, प्राग्ज्योतिष (आसाम) के नृपों की हाथियों द्वारा झुकाये गये कालागुरु वृक्षों से देकर उन-उन देशों की विशेषता को कालिदास ने उजागर किया है।

प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण

कालिदास प्रकृतिदेवी के अनुपम पुजारी हैं। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्यों को हृदयंगम करके वे इतने सजीव रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं कि वर्णित पदार्थ जैसे सामने मूर्तरूप में विद्यमान हो। कालिदास की दृष्टि में प्रकृति जड़ नहीं है, उसका प्रत्येक अंश पूर्णतः चेतन है। उसमें भी मानव की भांति सुख-दुःख, आशा-निराशा, हर्ष-शोक, ध्यान और चिन्ता की अनुभूति होती है। कालिदास "पटुकरणैः प्रापणीय" सन्देशार्थों को "धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपात" रूप मेघ द्वारा

भेजते हैं। इनकी रचनाओं में लताएँ आंसू गिराती हैं; पादप वस्त्राभूषण प्रदान करते हैं; नदियाँ विलासिनी नायिकाओं के हावभाव प्रदर्शित करती हैं; वायु के झोकों से फड़फड़ाते किसलय ताल देते हैं; भौंरे मधुर संगीत की तान छेड़ते हैं; चन्द्रमा किरणरूप अंगुलियों से रजनी-नायिका के बिखरे अन्धकाररूप केशों को हटाकर प्रदोषरूप मुख को चूमता है। हिमालय की गुफाओं में कामक्रीड़ा करते हुए किन्नरमिथुन के लिये बादल तिरस्करणी (परदे) का काम करते हैं; वर्षा से उद्वेलित ऋषिगण उन ऊपर की चोटियों में चले जाते हैं जहां से बरसनेवाले बादल बहुत नीचे दीखते हैं। इस प्रकार हिमालय के वर्णन, आश्रमों के वर्णन, ऋतुओं के वर्णन—यहाँ तक कि युद्ध या करुण विलाप के वर्णन में भी, ये प्रकृति का सजीव चित्रण करने में नहीं चूकते। पशुओं और पक्षियों के स्वभाव का यथार्थ चित्रण इनकी रचनाओं में सर्वत्र मिलता है। इतना सब होते हुए कालिदास ने प्रकृति के रमणीय, कोमल और मधुर पक्ष को ही ग्रहण किया है, भीषण या भद्दे पहलू को नहीं। इनके इस उत्कृष्ट गुण का अतिक्रमण तो क्या समता भी विश्व का कोई कवि आज तक नहीं कर सका।

हमारी समझ से कालिदास का प्रकृति में मानवता का यह आरोप ही आधुनिक छायावाद का बीज कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

प्रकृति की प्रत्येक अवस्था पर कवि की पैनी दृष्टि रहती है। वे बैठे हुए सारसों के लिये कहते हैं—

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्य पारिप्लवसारसानि।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः॥ (रघु० १३।३०)

तो उड़ते सारसों को भी नहीं छोड़ते—

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिंकिणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरी सारसपंक्तयस्त्वाम्॥ (रघु० १३।३३)

यथार्थता के साथ वर्ण्यमान विषय का एक मर्मस्पर्शी चित्र इनकी रचना में देखें—

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।

शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥

ऐसे सैकड़ों उदाहरण प्रकृति-निरीक्षण के कालिदास की रचनाओं में उपलब्ध हैं।

कालिदास के ज्ञान की व्यापकता

कालिदास ने अपनी रचनाओं द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि उनका शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान कितना व्यापक और सार्वभौम था। भूगोल, खगोल, धर्मशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि संस्कृत वाङमय की कोई शाखा ऐसी नहीं जिसकी पूर्णता की झलक उनके काव्यों में न मिलती हो। रामगिरि से अलकापुरी तक का मार्ग मेघ को दिखाते हुए तथा रघु की दिग्विजय यात्रा के बहाने तत्कालीन भारत का पूरा भूगोल उन्होंने वर्णन किया है। रघु ने किन-किन देशों के राजाओं को जीता, अज ने इन्दुमती के स्वयंवर के समय किन देशों के राजाओं को परास्त किया, उन देशों की क्या संस्कृति है, यह देखते ही बनता है। "धूमज्योतिःसलिल-मरुतां सन्निपातः क्व मेघः" कहकर वे बताते हैं बादल कैसे बनता है । आकाश-गङ्गा को वे छायापथ कहते हैं, वह क्या है? इन्द्रधनुष कैसे बनता है आदि का वैज्ञानिक वर्णन उन्होंने किया है। पौराणिक काल से प्रसिद्धि है कि राहु सूर्य और चन्द्रमा को ग्रस्त करता है तो ग्रहण लगता है। कालिदास पहले कवि हैं जिन्होंने काव्य में यह स्पष्ट घोषणा की कि सूर्य या चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने से ग्रहण लगता है। इस विषय को सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में ग्रहणवासना का भाष्य करते हुए विद्वान् टीका (मरीचि)-कार मुनीश्वर ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण तर्क देकर सिद्ध किया है। कालिदास ऐसे विमानों का वर्णन करते हैं जो जल, स्थल और आकाश में समान गति से चलते हैं। साथ ही वे उनमें यन्त्रों का नहीं, वसिष्ठ के मन्त्रों का प्रभाव बताकर शास्त्र की महत्ता सिद्ध करते हैं। विमानों में चन्द्रशाला दिखाकर वे बताते हैं कि उस समय बहुमंजिले विमान भी होते थे और ऐसे भी विमान थे जो चालक के मनोभावों को समझ जाते थे। ज्योतिष और आयुर्वेद के ऐसे सूक्ष्म सिद्धान्तों का उन्होंने प्रयोग किया है जिन्हें अनुभवी व्यक्ति ही प्रयोग

कर सकता है, केवल पुस्तकीय ज्ञानवाला व्यक्ति नहीं। उपमाओं में उन्होंने व्याकरण-जैसे नीरस विषय को भी नहीं छोड़ा है। तपस्या, त्याग, और तपोवन इन तीनों को कालिदास की रचनाओं में अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। उनका प्रत्येक पात्र तपस्या में तपकर खरा उतरने पर ही प्रयुक्त हुआ है। तपोवन का प्रत्येक प्राणी आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत है। राजा त्याग के लिये ही कर लेते हैं। कालिदास की रचनाओं में तत्कालीन भारत की जो झलक मिलती है उससे स्पष्ट हो जाता है उनका अथाह ज्ञान।

कालिदास की कृतियाँ : संक्षिप्त परिचय

यों तो कालिदास के नाम से उपलब्ध रचनाओं का उल्लेख किया जा चुका है, परन्तु अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्यों तथा परम्परागत जनश्रुति के आधार पर तीन नाटक, दो महाकाव्य और दो खण्डकाव्य इनकी रचनायें मानी जाती हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

नाटक

१. मालविकाग्निमित्र

इसमें शुङ्गवंश के राजा अग्निमित्र तथा मालविका के प्रेम का उत्कृष्ट चित्रण है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय लेकर कवि ने राजाओं के अन्तःपुर के अन्दर पनपते काम, रानियों की परस्पर ईर्ष्या, राजा की कामुकता तथा रानी धारिणी की धीरता और उदात्तता को सफल और सटीक दर्शाया है। संभवतः यह कवि की नाटकों में पहली रचना है।

२. विक्रमोर्वशीय

ऋग्वेद १०।९५ तथा शतपथब्राह्मण ११।५।१ में पुरूरवा एवं उर्वशी का प्रेमाख्यान आया है। इसीको कवि ने अपनी चमत्कारिक कल्पना से नाटक का रूप दिया है। पुरूरवा एक पराक्रमी और दयालु राजा है। उर्वशी देवलोक की अप्सरा है, जो शापभ्रष्ट होकर मर्त्यलोक में आई है। उसे एक राक्षस परेशान कर रहा है। राजा राक्षस से उर्वशी का उद्धार करता है। उर्वशी राजा के अलौकिक रूप को देखकर मुग्ध हो जाती है।

राजा भी उस पर निछावर हो जाता है। दोनों का प्रेम विवाह-रूप में परिणत हो जाता है, किन्तु उर्वशी दो उरणक राजा के पास धरोहर रखती है और कहती है जिस दिन तुम इनकी रक्षा करने में असमर्थ हो जाओगे मैं तुम्हें छोड़कर चली जाऊंगी। वर्षों तक प्रेमोन्माद में डूबे हुए भी वे तृप्त न हो पाये थे कि उरणक चोरी हो गये। उर्वशी देवलोक को चली गई। राजा पुरूरवा उसके वियोग में पागल होकर वनों में मारा-मारा फिरने लगा। इस नाटक में कवि ने प्रणय और प्रेमोन्माद की चरम सीमा का दिग्दर्शन कराया है।

३. अभिज्ञानशाकुन्तल

यह नाटक कालिदास की काव्यसरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसाद है। "काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला" यह जनश्रुति यथार्थ है। महाभारत में शुष्क और नीरस रूप में वर्णित एक साधारण-सी घटना को महाकवि की लेखनी ने वह चमत्कार दिया है जिसमें समग्र आर्यसंस्कृति का समावेश हो जाता है। सौन्दर्य की पवित्रता, प्रेम की निश्छलता, प्राकृतिक मुग्धता, ऋषिकुल की उदारता एवं दयालुता, कण्व का वात्सल्य, दुर्वासा का कोप, राजा की विस्मृति, शकुन्तला का आक्रोश, अन्त में दुष्यन्त का पश्चात्ताप—यह सब मिलाकर कवि ने एक ऐसा पदार्थ तैयार किया है जो जीवन के किसी भी पहलू में मूल्यवान् है। ग्रन्थ का प्रारम्भ दुष्यन्त की मृगया से हुआ है। प्रथम अंक में आश्रम-परिचय, शकुन्तला के सौन्दर्य पर दुष्यन्त की मुग्धता, अन्तःकरण की वृत्तियों का प्रामाण्य, दोनों का परस्पर आकर्षण और अन्त में शकुन्तला द्वारा अपनी भावना की अभिव्यक्ति है। दूसरे अंक में काम की प्रतिष्ठा और दुष्यन्त का अपनी भावना का स्पष्टीकरण है। तृतीय अंक में राजा की विरह-दशा का मार्मिक चित्रण और प्रणयपाश में बंधी शकुन्तला का आत्मसमर्पण है। चतुर्थ अंक इस नाटक की आत्मा ही है। इसमें कण्व द्वारा इस गान्धर्व-विवाह को स्वीकृति देना और गर्भिणी शकुन्तला का आश्रम से विदा होने का मर्मस्पर्शी वर्णन है। कवि की प्रकृति के विषय में कितनी सूक्ष्म निरीक्षिका दृष्टि—है यह इसमें स्पष्ट होता है। दुर्वासा का शाप, कण्व का वात्सल्य, प्रकृति के जड़पदार्थों में

चेतनता का व्यवहार जिस प्रकार कवि ने अंकित किया है उसमें भारतीय संस्कृति का सनातन सन्देश भरा पड़ा है। पञ्चम अंक में दुष्यन्त का प्रमाद अंकित है। यहां पहुंचने पर आश्रम का आदर्श संसार जैसे समाप्त हो जाता है और राजदरबार का मायावी संसार, जिसे कवि ने ऋषिपुत्रों के शब्दों में "आग की लपटों से घिरा भवन—हुतवहपरीतं गृहमिव" कहा है, दीख पड़ता है। शकुन्तला द्वारा राजा की भर्त्सना, राजा के मन की अनिश्चित स्थिति और अन्त में शकुन्तला का अदृश्य हो जाना, पूरे लोक-व्यवहार का दर्शन कराता है। छठे अंक में दुष्यन्त का मार्मिक पश्चात्ताप चित्रित किया गया है। दोनों जैसे तपस्या की अग्नि में तपाकर खरे उतारे जा रहे हों। अन्तिम अंक में दोनों का मिलन हो जाता है। कण्व के आश्रम में इन दोनों का प्रथम मिलन जितना मादक था यह मरीचि के आश्रम का मिलन उतना ही मर्मवेधी है। दुष्यन्त के अन्दर अपराध की स्वीकृति और परिमार्जन की बलवती प्रेरणा तथा शकुन्तला के अन्दर अपराध के विस्मरण एवं क्षमा की भावना का अद्भुत चित्रण कवि ने किया है।

भारतीय प्रेम के आदर्श का वास्तविक रूप इसमें उद्घाटित हुआ है और मानवतावादी जितने भी उद्देश्य हो सकते हैं सबका समावेश इसमें हुआ है। इस रचना को पढ़कर जर्मन विद्वान् गेटे का यह कथन कितना सार्थक है—

> "यदि तुम वसन्त के फूल, शीत ऋतु के फल, आत्मा को मोहित, प्रसन्न तथा पुष्ट करनेवाला रसायन चाहते हो और स्वर्ग एवं पृथ्वी का सम्मिलन, ये सब एक ही जगह देखना चाहते हो तो शाकुन्तलम् का अध्ययन करो; वहाँ तुम्हें यह सब मिल जायगा।"

गीतिकाव्य

१. ऋतुसंहार

६ सर्गों में विभक्त इस लघुकाव्य में ग्रीष्म से प्रारम्भ कर वसन्तपर्यन्त ६ ऋतुओं का वर्णन है जो अत्यन्त स्वाभाविक और सरल रूप में मिलता है। इसीलिये कुछ लोगों का कथन है यह कवि की प्रारम्भिक अपुष्ट रचना है और कुछ कालिदास-

जैसे रससिद्ध कवि की वाग्विदग्धता और कमनीयता के अभाव के कारण इसे किसी दूसरे कालिदास की रचना मानते हैं। अलङ्कार-शास्त्रों में इसके उद्धरणों का न मिलना भी यही सिद्ध करता है।

२. मेघदूत

यह कालिदास की अनुपम प्रतिभा का विलास है। वियोगविधुरा प्रियतमा के पास यक्ष का मेघ द्वारा सन्देश भेजना कवि की मौलिक कल्पना है। लगभग ५० से अधिक टीकाओं एवं तिब्बती, सिंहली आदि भाषाओं में अनुवाद इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का ज्वलन्त प्रमाण है। इसे आदर्श मानकर संस्कृत वाङ्मय में दूत-काव्यों या सन्देश-काव्यों की एक लम्बी शृंखला बनी है।

इसके दो भाग हैं पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में कवि ने रामगिरि से अलका तक के मार्ग का वर्णन करते हुए सम्पूर्ण भारत के भौगोलिक और प्राकृतिक सुषमा-संबंधी अपने ज्ञानभण्डार को उजागर किया है और उत्तरमेघ में यक्ष के सन्देश द्वारा मानव-हृदय की सौन्दर्य-भावना और उदात्त प्रेम का अभिव्यंजन किया है।

महाकाव्य

१. कुमारसंभव

यह कालिदास की अद्भुत रचना है। यद्यपि वर्तमान में यह १७ सर्गों में उपलब्ध है किन्तु कवि की विदग्ध वाणी के विवेचकों ने केवल आठ सर्गों को ही कालिदास की रचना माना है, क्योंकि आलंकारिकों और सूक्तिसंग्रहकारों ने आठ ही सर्गों से उद्धरण दिये हैं और कविता के प्रबल पारखी टीकाकार मल्लिनाथ ने भी इन्हीं पर संजीवनी-टीका लिखी है। ९ से १७ सर्ग तक की रचना कालिदास की भाषा और शैली से मेल नहीं खाती।

इस संबन्ध में हमारा विचार है कि उक्त प्रमाणों के आधार पर ही शेष सर्गों को कवि की रचना न मानना इतना महत्त्व नहीं रखता। कुछ अन्तःसाक्ष्य भी इसमें महत्त्वपूर्ण हैं। कालिदास नैसर्गिक कवि हैं। उनका एक-एक शब्द व्यञ्जना से पूर्ण रहता है। काव्य का 'कुमारसंभव' नाम ही बताता है कि कवि को इतनी ही रचना करनी है जिससे यह संभावना हो कि अब निश्चय ही भगवान् शंकर के अमोघ वीर्य

से कुमार (कार्तिकेय) की उत्पत्ति होगी, जो त्रिपुर का वध करेगा। अन्यथा शिशुपालवध, रावणवध की भांति वे त्रिपुरवध लिख सकते थे। इसीलिये उन्होंने प्रथम सर्ग में कह दिया—

कालक्रमेणाथ तयोः प्रवृत्ते स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसङ्गे।
मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या गर्भोऽभवत् भूधरराजपत्न्याः॥

विशेष ध्यान देने की बात है कि कवि ने रघुवंश की समाप्ति भी अग्निवर्ण की रानी के गर्भधारण करने पर ही की है। ऐतरेय ब्राह्मण का वाक्य है—

"पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतः तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यः तेजः सम्भूतमात्मानमात्मन्येव बिभर्ति"

गर्भ ही परमात्मा के जीवरूप में अवतीर्ण होने की प्रथम सूचना है, अतः गर्भ को प्रथम जन्म कहा जाता है। वैदिक संस्कृति के आदर्श कालिदास इसी को सबसे बड़ा मंगल समझकर अपने दोनों महाकाव्यों की समाप्ति गर्भ-धारण की सूचना से करते हैं।

इस काव्य के प्रथम सर्ग में उमा की उत्पत्ति (जिस प्रसङ्ग में हिमालय का सजीव वर्णन है), दूसरे में ब्रह्मसाक्षात्कार, तीसरे में कामदहन, चौथे में रति का विलाप, पांचवें में पार्वती की तपस्या का फलोदय, छठे में हिमालय द्वारा पार्वती का प्रदान, सातवें में शिवपार्वती परिणय और आठवें में सुरतवर्णन और गर्भधारण है।

इसमें तृतीय सर्ग में शिव की समाधि का वर्णन और पंचम सर्ग के पार्वती की तपस्या का वर्णन अत्यन्त ही उदात्त और संश्लिष्ट है। अष्टम सर्ग के सुरतवर्णन को लेकर तो कालिदास स्वयं ही आलोचना का विषय बन चुके हैं।

२. रघुवंश

आचार्य मम्मट ने काव्य का प्रयोजन बताते हुए कहा है—"काव्यं यशसेऽर्थकृते कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे—' अर्थात् काव्य की रचना यश के लिए, द्रव्यार्जन के लिए तथा मधुरतापूर्वक लोक-कल्याण का संदेश (उपदेश) देने के लिए होती है। केवल यश और धन के लिए रचे गए काव्य उस उच्च कोटि में नहीं पहुंच पाते जिसमें लोककल्याण का सन्देश देनेवाले काव्य। कालिदास का 'रघुवंश' भी इसी कोटि का महाकाव्य है जो केवल कालिदास की रचनाओं में ही नहीं, विश्व-साहित्य में अपना सानी नहीं रखता। कवि ने काव्य के प्रारम्भ में ही कहा

है–"क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः"। वे उस वंश का वर्णन करने जा रहे हैं जो सूर्य से उत्पन्न हुआ है, सूर्य उदय होकर जगत् को प्रकाश देता है, फिर तपता है और अन्त में अस्ताचल को चला जाता है। ठीक इसी प्रकार काव्य में भी उन्होंने रघुवंश का पूर्वार्ध में अभ्युदय और उत्तरार्ध में क्षयोन्मुखता का वर्णन अत्यन्त ही सुन्दरता और विशदता से किया है।

इस महाकाव्य में कुल १९ सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में राजा दिलीप को सुरभि का शाप, उसके परिहार के लिए वसिष्ठ के आश्रम में जाना, उनकी आज्ञा से नन्दिनी की सेवा का व्रत लेना, दूसरे सर्ग में राजा द्वारा २१ दिन तक नन्दिनी की सेवा, २२वें दिन सिंह-वेश में कुम्भोदर द्वारा राजा की परीक्षा, राजा का नन्दिनी की रक्षा के लिए आत्मसमर्पण तथा नन्दिनी द्वारा पुत्रप्राप्ति का वरदान।

ये दोनों सर्ग रघुवंश के प्रतिष्ठापक राजा रघु की उत्पत्ति की पूर्वपीठिका रूप हैं। तीसरे सर्ग में रघु का जन्म, अश्वमेध के घोड़े की रक्षा के लिए उसकी नियुक्ति, इन्द्र द्वारा अश्व का अपहरण, इन्द्र और रघु का युद्ध, पराजित इन्द्र का १०० अश्वमेध पूर्ण होने का वरदान। चतुर्थ सर्ग में रघु का राज्यारोहण, दिग्विजय-यात्रा, विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्वदान। पंचम सर्ग में अकिंचन राजा के पास १४ करोड़ स्वर्णमुद्रा के लिए कौत्स का आगमन, रघु का कुबेर पर चढ़ाई करने का विचार, रात में ही कोषागार में सुवर्ण की वर्षा, राजा का सम्पूर्ण सुवर्ण कौत्स को देना और प्रसन्न हुए कौत्स के राजा को तेजस्वी पुत्रप्राप्ति का आशीर्वाद एवं अज की उत्पत्ति।

छठे सर्ग में अज की विदर्भयात्रा, सम्मोहनास्त्र की प्राप्ति तथा इन्दुमती का स्वयंवर, सातवें में इन्दुमती का स्वयंवर, खिन्न राजाओं का अज पर आक्रमण, अज का सबको परास्त करना। आठवें में अज के सुशासन का वर्णन, दशरथ की उत्पत्ति, इन्दुमती की आकस्मिक मृत्यु, अज का विलाप तथा नवम सर्ग में दशरथ का राज्यारोहण और श्रवणकुमार की मृत्यु।

दसवें सर्ग से पन्द्रहवें तक ६ सर्गों में भगवान् राम का पूरा चरित्र वर्णित है। प्रतीत होता है कि यही भगवद्‌गुणानुवाद कालिदास को अभीष्ट था जिसके लिए उन्होंने रघुवंश-काव्य की रचना की।

सोलहवें सर्ग में राम के पुत्र कुश की और सत्रहवें में कुश के पुत्र अतिथि की कथा का वर्णन है। शेष दो (१८, १९) सर्गों में इस वंश के जिन बीस राजाओं की

परम्परा दी गई है, वे हैं– निषध, नल, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक, अहीनगु, पारियात्र, शील, उन्नाभ, शङ्खण, व्युषिताश्व, विश्वसह, हिरण्यनाभ, कौशल्य, पुत्र, पौष्य, ध्रुवसन्धि, सुदर्शन और अग्निवर्ण ।

अन्त में विलासिता के कारण क्षयरोग से अग्निवर्ण की मृत्यु हो जाती है और उसकी गर्भवती रानी मंत्रियों की सलाह से राज्य को संभालती है । संक्षेप में यही पूरे काव्य का कथानक है ।

कवि की लेखनी ने इस वंश का जिस रूप में चित्रण किया उसके अनुसार राजा दिलीप ने गुरु की आज्ञा से तप करके रघु-जैसा प्रतापी पुत्र पाया, १०० अश्वमेध किये, चिरकाल तक प्रजा का पालन किया, अन्त में रघु को राज्य देकर अरण्य में चला गया । रघु प्रताप और तेजस्विता में अपने पिता से बढ़कर हुआ । उसने दिग्विजय करके चक्रवर्ती सम्राट् पद प्राप्त किया । अन्त में विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान कर दिया । रघु का पुत्र अज भी अपने पिता की तरह प्रतापी राजा हुआ और अज का पुत्र दशरथ भी। इस प्रकार से सभी राजा विद्वान्, धार्मिक, प्रतापी, यशस्वी, प्रजावत्सल और दानी हुए, जिन्होंने इस वंश की कीर्तियों को दिगन्तव्यापी किया ।

दशरथ के पुत्र राम असाधारण महापुरुष हुए। उनका स्थान केवल रघुकुल या भारतवर्ष में ही नहीं विश्व में अद्वितीय रहा । उनके उज्ज्वल चरित्र ने उन्हें तो मर्यादापुरुषोत्तम कहलाया ही, भारत को आदर्शपुरुष की जन्मभूमि होने का विश्व में गौरव भी प्रदान किया ।

कालिदास ने भी अपने काव्य में इन १५ सर्गों में सम्पूर्ण भारत की धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक, राजनीतिक सभी प्रकार की संस्कृति का दिग्दर्शन कराते हुए रघुवंशरूपी सूर्य को प्रखरता तक पहुंचाया है । इसके बाद *रघुवंश का गौरव क्षीणता की ओर उन्मुख हुआ ।*

राम के स्वर्गारोहण के बाद राज्य छिन्न-भिन्न हो गया । जहां एक रघुवंशी प्रतापी राजा होता था वहां अनेक राजा हो गए; जहां एक राजधानी (अयोध्या) थी वहां अनेक राजधानियां हो गईं । कुश ने कुशावती को, लव ने शरावती को, भरत के पुत्र पुष्कल ने पुष्कलावती को और तक्ष ने तक्षशिला को, लक्ष्मण के पुत्रों–अङ्गद और चन्द्रकेतु ने कारापथ को, और शत्रुघ्न के पुत्रों ने मधुरा को अपनी-अपनी राजधानी बनाया । इस प्रकार रघु द्वारा प्रतिष्ठापित एक विशाल

साम्राज्य अनेक टुकड़ों में बिखर गया । फलतः राघवों की अयोध्या, जिसपर सम्पूर्ण राष्ट्र को गर्व था, उजड़कर खंडहर हो गई । यद्यपि कुश ने पुनः अयोध्या को राजधानी बनाकर अपनी भूल सुधारी, किन्तु राजधानी उजड़ने से राष्ट्र को जो धक्का लगा उसे वह न संभाल सका ।

कालिदास ने, जीर्णवस्त्रोंवाली धूलिधूसरित अयोध्या का स्वप्न में कुश को दर्शन कराकर अपनी व्यथा सुनाने में जो अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है वह कोई सिद्धसरस्वतीक कवि ही कर सकता है ।

कुश के बाद कवि ने जिन २४ उत्तराधिकारियों का वर्णन किया है उनमें केवल कुश के पुत्र अतिथि को छोड़कर किसी के लिये भी २१४ श्लोकों से अधिक नहीं कहा है । अन्तिम शासक अग्निवर्ण ने तो राज्यभार मंत्रियों पर छोड़कर केवल विषय-वासना और कामुकता को जीवन अर्पण कर दिया । फलतः उसे राजयक्ष्मा ने घेर लिया और वह सिंहासन को सूना छोड़ चल बसा ।

इस प्रकार दिलीप की तपस्या, रघु के पराक्रम और राम के अलौकिक व्यक्तित्व से जो यशस्वी वंश दोपहर के सूर्य की भांति दशों दिशाओं में प्रखरता से तप रहा था वही ध्रुवसन्धि जैसे व्यसनी और अग्निवर्ण जैसे लम्पट उत्तराधिकारियों द्वारा विलुप्त हो गया ।

कालिदास के इस महाकाव्य से बड़े-से-बड़ा शासक और प्रतापी विजेता भी शिक्षा ग्रहण कर सकता है । कवि ने इसके द्वारा यह अमर सन्देश दिया है कि तपस्या, वीरता, सेवाभाव और त्याग की नींव पर ही राजाओं या राजवंशों के महल टिक सकते हैं; प्रमाद, कायरता और लम्पटता के थपेड़ों को वे नहीं सह सकते; जर्जर होकर धराशायी हो जाते हैं ।

प्रस्तुत संस्करण

कालिदास के तीनों काव्य—कुमारसंभव, रघुवंश और मेघदूत—लघुत्रयी कहे जाते हैं । जब परीक्षाओं का प्रचलन नहीं था तब भी पूरे भारत में प्रत्येक संस्कृतभाषाध्यायी के लिये इन ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य समझा जाता था । परीक्षा-प्रणाली चालू होने के बाद कोई भी संस्था ऐसी न मिलेगी जिसने अपने पाठ्य ग्रन्थों में इन काव्यों को, विशेषकर रघुवंश को, न रखा हो । कालिदास के काव्यों पर टीका करना विद्वान् लोग अपनी विद्वत्ता की कसौटी समझते थे ।

फलतः प्राचीन काल से ही रघुवंश पर लगभग ४० टीकाएँ उपलब्ध हैं। इनमें सर्वाधिक प्रचलित मल्लिनाथ की संजीवनी-टीका रही है। मल्लिनाथ ने प्रायः सभी काव्यों पर टीकाएं की हैं। उनकी टीकाओं की यह विशेषता रही है कि वे उतना ही लिखते हैं जितने में कवि का भाव समझ में आ सके। व्यर्थ का वितण्डा या शास्त्रार्थ के चक्कर में वे नहीं पड़ते। इसीलिये उनकी टीकाओं का सबसे अधिक प्रचार हुआ। इसी संजीवनी-टीका के साथ इसी के आधार पर हिन्दी व संस्कृत में अपनी व्याख्या 'छात्रोपयोगिनी' लिखकर पण्डित श्री धारादत्त शास्त्री जी ने यह संस्करण प्रस्तुत किया है। इस समय केवल परीक्षा की दृष्टि से छिटपुट सर्गों पर कई विद्वानों ने टीकाएं की हैं। सम्पूर्ण रघुवंश पर इस प्रकार की टीका जो वास्तव में अपने नाम के अनुरूप छात्रों के लिये उपयोगिनी हो दूसरी नहीं है। हमें आशा है कि विद्वज्जन एवं छात्रगण इस व्याख्या से लाभान्वित होंगे।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

मकरसंक्रान्ति, २०४३ **जनार्दन शास्त्री पाण्डेय**

रघुवंश की सूक्तियाँ

प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥१।३॥
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा ॥१।१०॥
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥१।१८॥
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव ॥१।२०॥
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यङ्गुलीवोरगक्षता ॥१।२८॥
संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥१।६९॥
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ॥१।७९॥

स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ॥२।४॥
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि ॥२।२२॥
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥२।३४॥
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्ष्यं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥२।४०॥
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढ़ प्रतिभासि मे त्वम् ॥२।४७॥
क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ॥२।५३॥
स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ॥२।५६॥
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ॥२।५७॥
सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः ॥२।५८॥

त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम् ॥३।१३॥
क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ॥३।२९॥
पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् ॥३।४६॥
पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ॥३।६२॥

प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ॥४।६४॥
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥४।८६॥

सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥५।१३॥
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥५।१६॥
निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ॥५।१७॥
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य ॥५।५४॥

नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥६।२२॥
भिन्नरुचिर्हि लोकः ॥६।३०॥
सिद्धाश्रमं शान्तमिवैत्य सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः ॥६।४६॥
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली ॥६।६९॥
रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥६।७९॥
शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तम् ॥६।८५॥
जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा ॥६।८५॥

मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम् ॥७।१५॥
(तस्मादपावर्तत) पर्यात्यये सोम इवोष्णरश्मेः ॥७।३३॥
अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूमः ॥७।४३॥
धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः ॥७।५५॥
न हि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥७।७१॥

वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना ॥८।३१॥
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ॥८।३८॥
प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते ॥८।४०॥
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ॥८।४३॥
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥८।४६॥
धिगिमां देहभृतामसारताम् ॥८।५१॥
समदुःखसुखः सखीजनः ॥८।६५॥
विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता ॥८।८३॥
परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ॥८।८५॥
स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते ॥८।८६॥
मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ॥८।८७॥

क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥८।८७॥
अवगच्छति मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम् ॥८।८८॥
स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ ॥८।८९॥
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ॥८।९०॥

अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ॥९।७४॥
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति ॥९।८०॥

अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ॥१०।६॥
रसान्तराण्येकरसं दिव्यं पयोऽश्नुते ॥१०।१७॥

तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥११।१॥
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ॥११।२॥
किं महोरगविसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते ॥११।२७॥
सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् ॥११।५०॥
पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः ॥११।७५॥
खातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम् ॥११।७६॥
निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये ॥११।८९॥
तस्याभवत्क्षणशुचः परितोषलाभः कक्षाग्निलङ्घिततरोरिव वृष्टिपातः ॥११।९२॥

अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः ॥१२।३३॥
काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः ॥१२।६९॥

यशोधनानां हि यशो गरीयः ॥१४।३५॥
लोकापवादो बलवान् मतो मे ॥१४।४०॥
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥१४।४०॥
आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ॥१४।४६॥
नाबुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम् ॥१४।४८॥
मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः ॥१४।५६॥
श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥१४।६१॥

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ॥१४।६७॥
(तामर्पयामास) निविष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु ॥१४।८०॥

त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम् ॥१५।३॥
धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः ॥१५।४॥
कष्टात्कष्टतरं गता ॥१५।४३॥
आसन्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः ॥१५।६२॥

सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि ॥१६।१॥
रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ॥१६।८॥
स वाह्यते राजपथः शिवाभिः ॥१६।१२॥
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम् ॥१६।१४॥
पुरं नवीचक्रुरपां विसर्गान्मेघा निदाघग्लपितामिवोर्वीम् ॥१६।३८॥
विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम् ॥१६।४५॥
प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् ॥१६।६९॥
स तुल्यपुष्पाभरणो हि धीरः ॥१६।७४॥
प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः ॥१६।८०॥

धूमादग्नेः शिखा पश्चादुदयादंशवो रवेः ॥१७।३४॥
किं तत्साध्यं यत्साधयेयुर्न संगताः ॥१७।३८॥
वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम् ॥१७।४३॥
कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ॥१७।४७॥
न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद् गिरिगुहाशयः ॥१७।५२॥
वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानं लवणाम्भसः ॥१७।५४॥
कस्य कार्यः प्रतीकारः स तन्नैवोदपादयत् ॥१७।५५॥
हीनान्यनुपकर्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्वते ॥१७।५८॥
अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते ॥१७।६०॥
सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चेरुर्वेश्मस्विवाद्रिषु ॥ ॥ १७।६४॥
दिदेश वेतनं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः ॥१७।६६॥
प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः ॥१७।७१॥

उदधेरिव जीमूताः प्रापुर्दातृत्वमर्थिनः ॥१७।७२॥
यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च ॥१७।८०॥

ननन्द सुवृष्टियोगादिव जीवलोकः सस्येन सम्पत्तिफलोन्मुखेन ॥१८।१२॥
सुखोपरोधि वृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम् ॥१८।१८॥
दृष्टो हि वृण्वन्कलभप्रमाणोऽप्याशाः पुरोवातमवाप्य मेघः ॥१८।३८॥
मणौ महानील इति प्रभावादल्पप्रमाणेऽपि यथा न मिथ्या ॥१८।४२॥
वंश्याः गुणा खल्वपि लोककान्ताः प्रारम्भसूक्ष्माः प्रथिमानमापुः ॥१८।४९॥

ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तरः पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सवः ॥१९।५॥
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते ॥१९।४९॥

महाकविकालिदासप्रणीत

रघुवंश-महाकाव्य

प्रथमसर्ग

कथासार

कविकुलशिरोमणि महाकवि कालिदास सर्वप्रथम शिव-पार्वती को प्रणाम करके रघुकुल का वर्णन करते हैं।

भगवान् सूर्य के पुत्र मनु सूर्यवंश के प्रवर्तक हुए और उन्हीं के वंश में भव्यमूर्ति, बुद्धिमान्, प्रजावत्सल राजा दिलीप हुए। राजा दिलीप को सन्तान नहीं थी, अतः समस्त भूमण्डल के एकमात्र राजा होते हुए भी वे बड़े दुःखी रहा करते थे।

एक दिन राज्यभार अपने मन्त्रियों को सौंपकर महारानी सुदक्षिणा को साथ लेकर उन्होंने अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ के आश्रम को प्रस्थान किया। मार्ग में सुन्दर वन तथा कमलयुक्त तालाबों की शोभा देखते हुए, हरिणादि पशु-पक्षियों की मनोहर वाणी सुनते हुए और अपनी ग्रामीण प्रजा की भेंट को स्वीकार करते हुए सायंकाल में ऋषियों से पूर्ण गुरु के आश्रम में पहुँचे।

आश्रम में राजा के पहुँचते ही सभ्यों ने अपने रक्षक राजा का सत्कार किया और राजा ने अरुन्धती-सहित गुरुजी के दर्शन किये तथा चरणस्पर्श कर गुरु का आशीर्वाद प्राप्त किया। कुशलक्षेम पूछने के बाद राजा ने सन्तान न होने के कारण अपना कष्ट गुरुजी से कहा। गुरुजी ने समाधि के द्वारा कारण जानकर राजा से कहा कि एक समय स्वर्ग से लौटते हुए तुमने कल्पवृक्ष की छाया में बैठी हुई कामधेनु की प्रदक्षिणा, पूजा आदि नहीं की थी। उसीने तुम्हें शाप दे दिया और वह कामधेनु इस समय वरुण के एक बड़े यज्ञ के लिए पाताल गई है, अतः तुम कामधेनु की सन्तान नन्दिनी की, जो कि यहाँ है, सेवा करो। नन्दिनी भी कामधेनु के समान प्रसन्न होने पर मनोरथ को पूर्ण करनेवाली है। अतः हे राजन् ! तुम जंगली कन्द, मूल खाकर नन्दिनी के चलने पर चलना, बैठने पर बैठना और इसके जल पीने पर जल पीना और तुम्हारी धर्मपत्नी भी नियमपूर्वक प्रातः चन्दनपुष्पादि से इस नन्दिनी की पूजा करके तपोवन की सीमा तक इसका अनुगमन करे तथा सायंकाल वहीं तक लेने जावे। इस प्रकार सेवा में तत्पर रहो जब तक कि यह प्रसन्न न हो। यह कहकर वसिष्ठ जी ने गो-सेवारूप व्रत की विधि का उपदेश देकर राजा को विश्राम करने की आज्ञा दी और राजा ने गुरुजी की बताई हुई पर्णकुटी में रात बितायी।

श्रीरघुवंश-महाकाव्यम्

सञ्जीविनी-छात्रोपयोगिनी-हिन्दीटीकायुतम्,

प्रथमः सर्गः

मातापितृभ्यां जगतो नमो वामार्धजानये ।
सद्यो दक्षिणदृक्पातसंकुचद्वामदृष्टये ॥
अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम् ।
तं नरं वपुषि कुञ्जरं मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥
शरणं करवाणि शर्मदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥
वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासिकी-
मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत् ।
वाचामाकलयद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरां
लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः ॥
मल्लिनाथकविः सोऽयं मन्दात्मानुजिघृक्षया ।
व्याचष्टे कालिदासीयं काव्यत्रयमनाकुलम् ॥
कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती ।
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद्विदुर्नान्ये तु मादृशाः ॥
तथापि दक्षिणावर्तनाथाद्यैः क्षुण्णवर्त्मसु ।
वयं च कालिदासोक्तिष्ववकाशं लभेमहि ॥
भारती कालिदासस्य दुर्व्याख्याविषमूर्छिता ।
एषा सञ्जीविनी टीका तामद्योज्जीवयिष्यति ॥
इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥

सञ्जीविनी—इह खलु सकलकविशिरोमणिः कालिदासः 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासंमिततयोपदेशयुजे' इत्याद्यालंकारिकवचनप्रामाण्यात्काव्यस्यानेकश्रेयःसाधनताम्, 'काव्यालापांश्च वर्जयेत्' इत्यस्य निषेधशास्त्रस्यासत्काव्यविषयतां च पश्यन्, रघुवंशाख्यं महाकाव्यं चिकीर्षुः, चिकीर्षितार्थाविघ्नपरिसमाप्तिसंप्रदायाविच्छेदलक्षणफलसाधनभूतविशिष्टदेवतानमस्कारस्य शिष्टाचारपरिप्राप्तत्वात्, 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इत्याशीर्वादाद्यन्यतमस्य प्रबन्धमुखलक्षणत्वात्काव्यनिर्माणस्य विशिष्टशब्दार्थप्रतिपत्तिमूलकत्वेन विशिष्टशब्दार्थयोश्च 'शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा। अर्थरूपं यदखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः'॥ इति वायुपुराणसंहितावचनबलेन पार्वतीपरमेश्वरायत्तत्वदर्शनात्तत्प्रतिपित्सया तावेवाभिवादयते—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥१॥

सञ्जीविनी—वागर्थाविवेत्येकं पदम्। "इवेन सह नित्यसमासो विभक्त्यलोपश्च पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं चेति वक्तव्यम्"। एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम्। वागर्थाविव शब्दार्थाविव संपृक्तौ नित्यसंबद्धावित्यर्थः। नित्यसंबद्धयोरुपमानत्वेनोपादानात्। 'नित्यः शब्दार्थसंबन्धः' इति मीमांसकाः। जगतो लोकस्य पितरौ। माता च पिता च पितरौ। "पिता मात्रा" इति द्वन्द्वैकशेषः। 'मातापितरौ पितरौ मातरपितरौ प्रसूजनयितारौ' इत्यमरः। एतेन शर्वशिवयोः सर्वजगज्जनकतया वैशिष्ट्यमिष्टार्थप्रदानशक्तिः परमकारुणिकत्वं च सूच्यते। पर्वतस्यापत्यं स्त्री पार्वती "तस्यापत्यम्" इत्यण्। "टिड्ढाणञ् द्वयसज्दघ्नञ्०" इत्यादिना ङीप्। पार्वती च परमेश्वरश्च पार्वतीपरमेश्वरौ। परमशब्दः सर्वोत्तमत्वद्योतनार्थः। मातुरभ्यर्हितत्वादल्पाक्षरत्वाच्च पार्वतीशब्दस्य पूर्वनिपातः। वागर्थप्रतिपत्तये शब्दार्थयोः सम्यग्ज्ञानार्थं वन्देऽभिवादये। अत्रोपमालंकारः स्फुट एव। तथोक्तम्—'स्वतः सिद्धेन भिन्नेन संपन्नेन च धर्मतः। साम्यमन्येन वर्ण्यस्य वाच्यं चेदेकगोपमा॥' इति। प्रायिकश्चोपमालंकारः कालिदासोक्तकाव्यादौ। भूदेवताकस्य सर्वगुरोर्मगणस्य प्रयोगाच्छुभलाभः सूच्यते। तदुक्तम्—'शुभदो मो भूमिमयः' इति। वकारस्यामृतबीजत्वात्प्रचयगमनादिसिद्धिः॥१॥

नत्वा सरस्वतीं दिव्यां, ध्यात्वा साम्बञ्च शंकरम् ।
करोमि रघुवंशस्य, व्याख्यां छात्रोपयोगिनीम् ॥

अन्वयः— 'अहं कालिदासः' वागर्थाविव, सम्पृक्तौ, जगतः, पितरौ, पार्वतीपरमेश्वरौ, वागर्थप्रतिपत्तये, वन्दे ।

वाच्य०—"मया" पार्वतीपरमेश्वरौ, वागर्थप्रतिपत्तये वन्द्येते ।

व्याख्या—वाक्=वाणी, च अर्थः=अभिधेयश्चेति वागर्थौ, वागर्थौ इव=यथा, इति वागर्थाविव, सम्पृक्तौ=संमिलितौ=नित्यसंबद्धावित्यर्थः, गच्छतीति जगत्, तस्य जगतः=संसारस्य, माता=जननी, च, पिता=जनकश्चेति पितरौ (एकशेषः) पर्वतस्यापत्यं स्त्री पार्वती, ईशितुं शीलमस्येतीश्वरः, परमश्चासौ, ईश्वरः, परमेश्वरः, पार्वती=भवानी, च, परमेश्वरः=शिवश्चेति, पार्वतीपरमेश्वरौ, (पार्वतीं पातीति पार्वतीपः, रमाया ईश्वरः, रमेश्वरः, पार्वतीपः=शिवः, रमेश्वरः=विष्णुः तौ पार्वतीपरमेश्वरौ, पार्वतीं पिपर्तीति पार्वतीपरः=शिवः, मायाः ईश्वरः मेश्वरः=विष्णुरिति तौ पार्वतीपरमेश्वरौ) वाक्=वाणी च, अर्थोऽभिधेयश्चेति वागर्थौ, तयोः, प्रतिपत्तिः=ज्ञानमिति वागर्थप्रतिपत्तिस्तस्यै वागर्थप्रतिपत्तये, वन्दे=प्रणमामि ।

समा०—वाक् च अर्थः च वागर्थौ, वागर्थौ इव वागर्थाविव । माता च पिता च पितरौ तौ, पितरौ । पर्वतस्य अपत्यम् स्त्री पार्वती ईशितुम् शीलम् अस्य इति ईश्वरः, पार्वती च परमेश्वरः च पार्वतीपरमेश्वरौ तौ, तथोक्तौ । वाक् च अर्थः च वागर्थौ, वागर्थयोः प्रतिपत्तिः, वागर्थप्रतिप्रत्तिः, तस्यै वागर्थप्रतिपत्तये ।

अभि०—महाकविः कालिदासः, काव्यनिर्माणार्थमपेक्षितयोः शब्दार्थयोः सम्यग्ज्ञानाय, जगतः पितरौ, उमामहेश्वरौ मिलितौ शब्दार्थौ, इव प्रणमति ।

हिन्दी—शब्द और अर्थ के समान (नित्यसम्बद्ध) एकरूप, और संसार के माता-पिता पार्वतीजी और शिवजी को, शब्द और अर्थ का ठीक ठीक ज्ञान तथा व्यवहार करने के लिये, मैं (कालिदास) प्रणाम करता हूँ ॥१॥

संप्रति कविः स्वाहंकारं परिहरति 'क्व सूर्य–' इत्यादिश्लोकद्वयेन—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥ २ ॥

सञ्जीविनी—प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । "ऋदोरप्" "अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्" इति साधुः । सूर्यप्रभवो वंशः क्व । अल्पो विषयो ज्ञेयोऽर्थो यस्याः सा मे मतिः प्रज्ञा च क्व । द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः । सूर्यवंशमाकलयितुं न शक्नोमीत्यर्थः । तथा च तद्विषयप्रबन्धनिरूपणं तु दूरापास्तमिति भावः । तथाहि । दुस्तरं तरितुमशक्यम् "ईषद्दुःसुषु०" इत्यादिना खल्प्रत्ययः । सागरं मोहादज्ञानादुडुपेन प्लवेन । 'उडुपं तु प्लवः कोलः' इत्यमरः । अथवा चर्मावनद्धेन यानपात्रेण । 'चर्मावनद्धमुडुपं प्लवः काष्ठं करण्डवत्' इति सज्जनः । तितीर्षुस्तरीतुमिच्छुरस्मि भवामि । तरतेः सन्नन्तादुप्रत्ययः । अल्पसाधनैरधिकारम्भो न सुकर इति भावः । इदं च वंशोत्कर्षकथनं स्वप्रबन्धमहत्त्वार्थमेव । तदुक्तम्—'प्रतिपाद्यमहिम्ना च प्रबन्धो हि महत्तरः' इति ॥२॥

अन्वयः—सूर्यप्रभवः, वंशः, क्व, अल्पविषया, "मम" मतिश्च, क्व, "अहम्" मोहात्, दुस्तरं, सागरम्, उडुपेन, तितीर्षुः, अस्मि ।

वाच्य०—सूर्यप्रभवेण, वंशेन क्व "भूयते" अल्पविषयया "मम" मत्या च क्व "भूयते" "मया" मोहात्, उडुपेन दुस्तरं सागरं तितीर्षुणा भूयते ।

व्याख्या—प्रभवत्यस्मात् इति प्रभवः, सूर्यः = सविता, प्रभवः = कारणं, यस्य स सूर्यप्रभवः, वंशः = अन्वयः = कुलमित्यर्थः, क्व = कुत्र, अल्पः = स्वल्पः विषयः = ज्ञेयोऽर्थः, यस्याः सा, अल्पविषया "मम" मतिः = बुद्धिः, क्व = कुत्र, महदन्तरमस्तीत्यर्थः, तथाहि "अहम्" दुस्तरं = तरितुमशक्यम्, सागरं = समुद्रं, मोहात् = अज्ञानात्, उडुपेन = प्लवेन = चर्मावनद्धयानपात्रेण, तरीतुमिच्छति तितीर्षति, तितीर्षतीति, तितीर्षुः = तरीतुमिच्छुः, अस्मि = भवामि । स्वल्पसाधनैरधिकारम्भो न सम्यगस्तीति भावः ।

समा०—प्रभवति अस्मात् इति प्रभवः, सूर्यः प्रभवः यस्य सः सूर्यप्रभवः । अल्पः विषयः यस्याः सा अल्पविषया । तरीतुम् इच्छति इति तितीर्षति, तितीर्षति इति तितीर्षुः ।

अभि०—महतः सूर्यवंशस्य मन्दबुद्धेश्च मम महदन्तरे वर्तमानेऽपि सूर्यवंशवर्णने मम प्रवृत्तिस्तथैव हास्यास्पदं यथा कश्चिन्मूर्खः उडुपेन महासागरं तितीर्षतीति ।

हिन्दी—कहां तो सूर्य से उत्पन्न हुआ वह तेजस्वी वंश, और कहाँ मन्दबुद्धि मैं ? (अर्थात् इस बात को मैं जानता हूँ कि पराक्रमी प्रभावशाली रघु के वंश का वर्णन करने में मैं सर्वथा अयोग्य हूँ फिर भी मेरी मूर्खता है कि) मैं उसी तरह इसे पार करना चाहता हूँ जैसे कोई छोटी-सी डोंगी से अपार समुद्र को पार करने की इच्छा कर रहा हो ॥२॥

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥ ३ ॥

सञ्जीविनी—किं च मन्दो मूढः। 'मूढाल्पापटुनिर्भाग्या मन्दाः स्युः' इत्यमरः। तथापि कवियशःप्रार्थी। कवीनां यशः काव्यनिर्माणेन जातं तत्प्रार्थनाशीलोऽहं प्रांशुनोन्नतपुरुषेण लभ्ये प्राप्ये फले फलविषये लोभादुद्बाहुः फलग्रहणायोच्छ्रितहस्तो वामनः खर्व इव। 'खर्वो ह्रस्वश्च वामनः' इत्यमरः। उपहास्यतामुपहासविषयताम्। "ऋहलोर्ण्यत्" इति ण्यत्प्रत्ययः। गमिष्यामि प्राप्स्यामि ॥३॥

अन्वयः—मन्दः, "तथापि" कवियशःप्रार्थी, "अहं" प्रांशुलभ्ये, फले, लोभात्, उद्बाहुः, वामनः, इव, उपहास्यतां, गमिष्यामि।

वाच्य०—मन्देन कवियशःप्रार्थिना "मया" प्रांशुलभ्ये फले, लोभादुद्बाहुना वामनेनेव, उपहास्यता गंस्यते।

व्याख्या—"किञ्च" मन्दः = मूढः, मूर्ख इत्यर्थः, "तथापि" कवयन्तीति कवयः, कविताकर्तारस्तेषां, यशः = काव्यनिर्माणेन जातमिति कवियशः, तत् प्रार्थयितुं = काङ्क्षितुं शीलमस्येति कवियशःप्रार्थी, "अहम्" प्रांशुना = उन्नतपुरुषेण, लभ्यं = प्राप्यं, तस्मिन् प्रांशुलभ्ये, फले = आम्रादिफलविषये, लोभात् = फललिप्सया, उच्छ्रितौ = ऊर्ध्वंकृतौ, बाहू = भुजौ, यस्य स उद्बाहुः, वामनः = खर्वः, इव = यथा, 'खर्वो ह्रस्वश्च वामनः' इत्यमरः। उपहास्यस्य भाव उपहास्यता तामुपहास्यताम् = उपहासविषयतां, गमिष्यामि = प्राप्स्यामि।

समा०—कवयन्ति इति कवयः कवीनां यशः कवियशः, कवियशः प्रार्थयितुम् शीलम् अस्य इति कवियशःप्रार्थी। लब्धुम् योग्यम् लभ्यम्, प्रांशुना लभ्यम् प्रांशुलभ्यम्, तस्मिन् प्रांशुलभ्ये। उच्छ्रितौ बाहू यस्य स उद्बाहुः। उपहास्यस्य भावः उपहास्यता, ताम् उपहास्यताम्।

अभि०—मन्दोऽहं महनीयचरितस्य रघुवंशस्य वर्णने तथैवोपहास्यो भविष्यामि, यथा वामनः पुरुषः, उन्नतपुरुषेण प्राप्ये फले उच्छ्रितबाहुः सन् उपहास्यो भवति।

हिन्दी—बड़े बड़े कवियों के यश को चाहने वाला मन्दबुद्धि मैं उसी प्रकार हँसी को प्राप्त होऊँगा, जैसे कि लम्बे मनुष्य के पहुँचने योग्य फल की ओर 'फल तोड़ने के लिये' ऊपर हाथ फैलाए बौना ॥३॥

मन्दश्चेत्तर्हि त्यज्यतामयमुद्योग इत्यत आह—

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥४॥

सञ्जीविनी—अथवा पक्षान्तरे पूर्वैः सूरिभिः कविभिर्वाल्मीक्यादिभिः कृतवाग्द्वारे कृतं रामायणादिप्रबन्धरूपा या वाक्सैव द्वारं प्रवेशो यस्य तस्मिन्। अस्मिन्सूर्यप्रभवे वंशे कुले। जन्मनैकलक्षणः संतानो वंशः। वज्रेण मणिवेधकसूचीविशेषेण। 'वज्रं त्वस्त्री कुलिशशस्त्रयोः। मणिवेधे रत्नभेदे' इति केशवः। समुत्कीर्णे विद्धे मणौ रत्ने सूत्रस्येव मे मम गतिः संचारोऽस्ति। वर्णनीये रघुवंशे मम वाक्प्रसरोऽस्तीत्यर्थः ॥४॥

अन्वयः—अथवा, पूर्वसूरिभिः, कृतवाग्द्वारे, अस्मिन्, वंशे, वज्रसमुत्कीर्णे, मणौ, सूत्रस्य, इव, मे, गतिः, अस्ति।

वाच्य०—अथवा अस्मिन्, वंशे, मणौ सूत्रस्येव मे गत्या भूयते।

व्याख्या—अथवा = पक्षान्तरे, पूर्वे = प्रथमे च ते सूरयः = कविवाल्मीक्यादयः, तैः पूर्वसूरिभिः, वक्तीति वाक्, वागेव द्वारं, वाग्द्वारं, कृतं = विहितं, वाग्द्वारं यस्य स कृतवाग्द्वारस्तस्मिन् कृतवाग्द्वारे = रचितरामायणरूपप्रवेशे अस्मिन् = सूर्यप्रभवे वंशे, वज्रेण = मणिवेधकसूचीविशेषेण, समुत्कीर्णः = विद्धस्तस्मिन्, वज्रसमुत्कीर्णे, मणौ = रत्ने, सूत्रस्य = तन्तोः, इव = यथा, मे = मम, गतिः = सञ्चारः, अस्ति = वर्तते। वर्णनीयेऽस्मिन् सूर्यप्रभवे रघुवंशे मम वाणीप्रसरोऽस्ति।

समा०—पूर्वे च ते सूरयः पूर्वसूरयः तैः पूर्वसूरिभिः, वक्ति इति वाक्, वाक् एव द्वारम् वाग्द्वारम्, कृतम् वाग्द्वारम् यस्य सः कृतवाग्द्वारः, तस्मिन् कृतवाग्द्वारे, वज्रेण समुत्कीर्णः वज्रसमुत्कीर्णः तस्मिन् वज्रसमुत्कीर्णे।

अभि०—यथा मणिवेधकसूचीविद्धे रत्ने सूत्रस्य गतिः भवति तथैव महर्षि-वाल्मीकिरचितरामायणप्रबन्धद्वारेण, सूर्यवंशेऽस्मिन् मे सञ्चारो भविष्यति ।

हिन्दी—(किन्तु मुझे एक ही विश्वास है कि) वाल्मीकि आदि पूर्व कवियों ने सूर्यवंश पर रामायण आदि काव्य लिखकर, वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है । इस लिये उसमें प्रवेश कर जाना, तथा सूर्यवंश का पुनः वर्णन करना, मेरे लिये वैसे ही सरल है जिस प्रकार हीरे की कनी से बिंधे हुए मणि में डोरा पिरोना सरल है ॥४॥

एवं रघुवंशे लब्धप्रवेशस्तद्वर्णनां प्रतिजानानः 'सोऽहम्' इत्यादिभिः पञ्चभिः श्लोकैः कुलकेनाह—

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥ ५ ॥

सञ्जीविनी—सोऽहम् । 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' इत्युत्तरेण सम्बन्धः । किंविधानां रघूणामित्यत्रोत्तराणि विशेषणानि योज्यानि । आ जन्मनः जन्मारभ्येत्यर्थः 'आङ्मर्यादाभिविध्योः' इत्यव्ययीभावः । शुद्धानाम् । सुप्सुपेति समासः । एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् । आजन्मशुद्धानाम् । निषेकादिसर्वसंस्कारसंपन्नानामित्यर्थः । आ फलोदयमा फलसिद्धेः कर्म येषां ते तथोक्तास्तेषाम् । प्रारब्धान्तगामिनामित्यर्थः । आसमुद्रं क्षितेरीशानाम् । सार्वभौमाणामित्यर्थः । आनाकं रथवर्त्म येषां तेषाम् । इन्द्रसहचारिणामित्यर्थः । अत्र सर्वत्राङोऽभिविध्यर्थत्वं द्रष्टव्यम् । अन्यथा मर्यादार्थत्वे जन्मादिषु शुद्ध्यभावप्रसङ्गात् ॥५॥

अन्वयः—स, अहम्, आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम्, आसमुद्रक्षितीशानाम्, आनाकरथवर्त्मनां "रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये" ।

वाच्य०—तेन मया रघूणामन्वयो वक्ष्यते, 'इति नवमश्लोकस्थपदेन सम्बन्धः' ।

व्याख्या—सः = मन्दः, अहम् = कालिदासः, जन्मनः, आ, इति, आजन्म, = जन्मत आरभ्य शुद्धाः = निषेकादिसम्पूर्णसंस्कारसम्पन्नास्तेषाम्, आजन्मशुद्धानाम्, फलस्य = परिणामस्य, उदयः = सिद्धिः, इति फलोदयः फलोदयमभिव्याप्य, इत्याफलोदयम्, आफलोदयं, कर्म = क्रिया उद्योग इति यावत्, येषान्ते, तेषामाफलोदयकर्मणाम्, प्रारब्धान्तगामिनामित्यर्थः, क्षितेः = पृथिव्याः ईशाः = अधीश्वराः, इति क्षितीशाः समुद्रं = सागरमभिव्याप्य, इति आसमुद्रम्, आसमुद्रं

क्षितीशा इति आसमुद्रक्षितीशास्तेषामासमुद्रक्षितीशानाम्, रथस्य = स्यन्दनस्य, वर्त्म = मार्गम् इति रथवर्त्म, न = नास्ति, अकं = दुःखं यत्र स नाकः, नाकमभिव्याप्य, इति आनाकम्, आनाकं रथवर्त्म येषां तेषामानाकरथवर्त्मनाम्, रघूणामन्वयं वक्ष्ये, इत्युत्तरेण पद्येनान्वयः ।

समा०—जन्मनः आ इति आजन्म, आजन्म शुद्धाः आजन्मशुद्धाः तेषाम् आजन्मशुद्धानाम् । फलस्य उदयः फलोदयः, फलोदयम् अभिव्याप्य आफलोदयम्, आफलोदयम् कर्म येषां ते आफलोदयकर्माणः, तेषाम् आफलोदयकर्मणाम् । क्षितेः ईशाः क्षितीशाः, समुद्रम् अभिव्याप्य इति आसमुद्रम्, आसमुद्रम् क्षितीशाः इति आसमुद्रक्षितीशाः, तेषाम् आसमुद्रक्षितीशानाम् । रथस्य वर्त्म रथवर्त्म न विद्यते अकम् यत्र स नाकः नाकम् अभिव्याप्य इति आनाकम्, आनाकम् रथवर्त्म येषाम् ते आनाकरथवर्त्मानः, तेषाम् आनाकरथवर्त्मनाम् ।

अभि०—मन्दोऽहं कालिदासः वेदोक्तसर्वसंस्कारसम्पन्नानां प्रारब्धान्तगामिनां चक्रवर्त्तिनामिन्द्रसहचारिणां रघूणामन्वयं वक्ष्ये ।

हिन्दी—मन्दमति मैं कालिदास उन प्रतापी सूर्यवंशियों का वर्णन करूँगा, जिनके संस्कार तथा चरित्र जन्म से लेकर अन्ततक शुद्ध रहे, और जो किसी कार्य को आरम्भ कर, उसे पूरा करके ही छोड़ते थे । जिनका साम्राज्य समुद्र तक फैला था, और जिनके रथ का मार्ग स्वर्ग तक था, अर्थात् पृथिवी से स्वर्ग तक उनके रथ आते जाते थे ॥५॥

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ॥ ६ ॥

सञ्जीविनी—विधिमनतिक्रम्य यथाविधि । "यथाऽसादृश्ये" इत्यव्ययीभावः । तथा हुतशब्देन सुप्सुपेति समासः । एवं 'यथाकामार्चित–' इत्यादीनामपि द्रष्टव्यम् । यथाविधि हुता अग्नयो यैस्तेषाम् । यथाकाममभिलाषमनतिक्रम्यार्चितार्थिनाम् । यथापराधमपराधम् अनतिक्रम्य दण्डो येषां तेषाम् । यथाकालं कालमनतिक्रम्य प्रबोधिनां प्रबोधनशीलानाम् । चतुर्भिर्विशेषणैर्देवतायजनार्थिसत्कारदण्डधरत्वप्रजापालनसमयजागरूकत्वादीनि विवक्षितानि ॥६॥

अन्वयः—यथाविधि, हुताग्नीनां, यथाकामार्चितार्थिनाम्, यथापराधदण्डानां, यथाकालप्रबोधिनाम् "रघूणामन्वयं वक्ष्ये" ।

व्याख्या—विधिमनतिक्रम्येति यथाविधि, यथाविधि = यथाशास्त्रं, हुताः = तर्पिताः, अग्नयः, यैस्ते, तेषां यथाविधिहुताग्नीनाम्, काममनतिक्रम्येति यथाकामं, यथाकामं = यथाभिलाषम्, अर्चिताः = पूजिताः सत्कृताः, अर्थिनः = याचकाः यैस्ते, तेषां यथाकामार्चितार्थिनाम्, अपराधमनतिक्रम्येति यथापराधं, यथापराधम् = अपराधानुकूलं, दण्डः = दमः, येषां ते, तेषां यथापराधदण्डानाम् 'साहसं तु दमो दण्डः' इत्यमरः । कालमनतिक्रम्येति यथाकालम्, यथाकालं = यथासमयं, प्रबोधिनः = प्रबोधनशीलाः = जागरूकास्तेषां यथाकालप्रबोधिनां, "रघूणामन्वयं वक्ष्ये" इत्यग्रिमश्लोकेन संबन्धः ।

समा०—विधिम् अनतिक्रम्य यथाविधि, यथाविधि हुताः अग्नयः यैः ते यथाविधि हुताग्नयः तेषाम् यथाविधिहुताग्नीनाम्, कामम् अनतिक्रम्य यथाकामम्, यथाकामम् अर्चिताः अर्थिनः यैः ते यथाकामार्चितार्थिनः, तेषाम् यथाकामार्चितार्थिनाम्, अपराधम् अनतिक्रम्य यथापराधम्, यथापराधम् दण्डः येषाम् ते यथापराधदण्डाः तेषाम् यथापराधदण्डानाम्, कालम् अनतिक्रम्य यथाकालम्, यथाकालम् प्रबोधिनः यथाकालप्रबोधिनः तेषाम् यथाकालप्रबोधिनाम् ।

अभि०—शास्त्रोक्तविधिना यज्ञकर्तॄणामतिथिपूजकानां दुष्टजनशिक्षकाणां प्रजापालने तत्पराणां रघूणामिति संबन्धः ।

हिन्दी—जो शास्त्रविधि के अनुसार ही यज्ञ करते थे, जो मांगने वालों को भरपूर दान देते थे, जो दुष्टों को अपराध के अनुसार ही दण्ड देते थे, जो समय पर ही कार्य करते थे ॥६॥

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥ ७ ॥

सञ्जीविनी—त्यागाय सत्पात्रे विनियोगस्त्यागस्तस्मै । 'त्यागो विहापितं दानम्' इत्यमरः । संभृतार्थानां संचितधनानाम् । न तु दुर्व्यापाराय । सत्याय मितभाषिणां मितभाषणशीलानाम् । न तु पराभवाय । यशसे कीर्तये 'यशः कीर्तिः समज्ञा च' इत्यमरः । विजिगीषूणां विजेतुमिच्छूनाम् । न त्वर्थसंग्रहाय । प्रजायै संतानाय गृहमेधिनां दारपरिग्रहाणाम् । न तु कामोपभोगाय । अत्र 'त्यागाय' इत्यादिषु "चतुर्थी तदर्थार्थ०" इत्यादिना तादर्थ्ये चतुर्थीसमासविधानज्ञापकाच्चतुर्थी । गृहैर्दारैर्मेधन्ते संगच्छन्त इति गृहमेधिनः । 'दारेष्वपि गृहाः पुंसि' इत्यमरः ।

'जाया च गृहिणी गृहम्' इति हलायुधः। मेधृ संगमे' इति धातोर्णिनिः। एभिः विशेषणैः परोपकारित्वं यशःपरत्वं पितृणां शुद्धत्वं च विवक्षितानि।

अन्वयः—त्यागाय सम्भृतार्थानां, सत्याय मितभाषिणां, यशसे विजिगीषूणां, प्रजायै, गृहमेधिनाम्, "रघूणामन्वयं वक्ष्ये"।

व्याख्या—त्यागः = सत्पात्रे विनियोगस्तस्मै त्यागाय = दानाय, सम्भृतः = सञ्चितः अर्थः = धनं यैस्ते, तेषां सम्भृतार्थानां, सत्याय = तथ्याय, मितं = स्वल्पं, भाषन्ते तच्छीला इति मितभाषिणस्तेषां मितभाषिणां, यशसे = कीर्त्यै, विजेतुमिच्छन्ति, विजिगीषन्ति, विजिगीषन्तीति विजिगीषवस्तेषां विजिगीषूणां = विजेतुमिच्छूनां, प्रजायै = सन्तानाय, गृह्णन्ति धान्यादिकमिति गृहाः = दाराः, तैः, मेधितुं शीलं येषां ते, तेषां गृहमेधिनां = दारपरिग्रहाणां, नतु कामोपभोगायेत्यर्थः।

समा०—सम्भृतः अर्थः यैः ते सम्भृतार्थाः, तेषाम् सम्भृतार्थानाम्, मितम् भाषन्ते तच्छीलाः मितभाषिणः तेषाम् मितभाषिणाम्, विजेतुम् इच्छन्ति इति विजिगीषन्ति, विजिगीषन्ति इति विजिगीषवः तेषाम् विजिगीषूणाम्, गृह्णन्ति धान्यादिकम् इति गृहाः, गृहैः मेधितुम् शीलम् येषाम् ते गृहमेधिनः तेषाम् गृहमेधिनाम्।

अभि०—दानशीलानां सत्यभाषिणां यशसे विजेतुमिच्छुकानाम् सन्तानाय गृहस्थानां रघूणामन्वयमिति संबन्धः।

हिन्दी—जो कि सत्पात्र में दान देने के लिये ही धन बटोरते थे, सत्य बोलने के लिये ही कम बोलते थे, और जो अपनी कीर्ति फैलाने के लिये ही विजय करते थे, 'न कि अन्य का राज्य छीनने के लिये' जो सन्तान के लिये ही विवाह करते थे, 'न कि भोगविलास के लिये' ॥७॥

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥८॥

सञ्जीविनी—शिशोर्भावः शैशवं बाल्यम्। 'प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्र०' इत्यञ्प्रत्ययः। 'शिशुत्वं शैशवं बाल्यम्' इत्यमरः। तस्मिन्वयस्यभ्यस्तविद्यानाम्। एतेन ब्रह्मचर्याश्रमो विवक्षितः। यूनो भावो यौवनं तारुण्यम्। युवादित्वादण्प्रत्ययः। 'तारुण्यं यौवनं समम्' इत्यमरः। तस्मिन्वयसि विषयैषिणां। भोगाभिलाषिणाम्। एतेन गृहस्थाश्रमो विवक्षितः। वृद्धस्य भावो वार्द्धकं वृद्धत्वम्। "द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च" इति वुञ्प्रत्ययः। 'वार्द्धकं वृद्धसंघाते वृद्धत्वे वृद्धकर्मणि'

इति विश्वः। संघातार्थेऽत्र "वृद्धाच्च" इति वक्तव्यात्सामूहिको वुञ्। तस्मिन्वार्द्धके वयसि मुनीनां वृत्तिरिव वृत्तिर्येषां तेषाम् एतेन वानप्रस्थाश्रमो विवक्षितः। अन्ते शरीरत्यागकाले योगेन परमात्मध्यानेन। 'योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु'। इत्यमरः। तनुं देहं त्यजन्तीति तनुत्यजां देहत्यागिनाम्। 'कायो देहः क्लीबपुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' इत्यमरः। 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते" इति क्विप्। एतेन भिक्ष्वाश्रमो विवक्षितः ॥८॥

अन्वयः—शैशवे, अभ्यस्तविद्यानां, यौवने, विषयैषिणां, वार्धके, मुनिवृत्तीनाम्, अन्ते, योगेन, तनुत्यजां, 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये'।

व्याख्या—शिशोः भावः शैशवं,तस्मिन् शैशवे = बाल्ये, अभ्यस्ताः = पठिताः, विद्याः = शास्त्राणि, यैस्ते, तेषामभ्यस्तविद्यानाम्, यूनो भावः, यौवनं तस्मिन् यौवने = तारुण्ये, विषयं = भोगविलासम् इच्छन्ति = अभिलषन्ति, इति विषयैषिणस्तेषां विषयैषिणां तारुण्ये, गृहस्थाश्रमिण इत्यर्थः। वृद्धस्य भावो वार्धकं तस्मिन्, वार्धके = वृद्धत्वे, मन्तारः = वेदशास्त्रार्थतत्त्वावगन्तारः, मुनयस्तेषां वृत्तिरिव वृत्तिः = वर्तनम् = आचार इत्यर्थः, येषां ते तेषां मुनिवृत्तीनां वानप्रस्थाश्रमिणामित्यर्थः, अन्ते = शरीरत्यागसमये, मरणकाले इत्यर्थः, योगेन = चित्तवृत्तिनिरोधेन, भगवद्ध्यानेनेत्यर्थः, तनुं शरीरं त्यजन्ति = मुञ्चन्तीति तनुत्यजस्तेषां तनुत्यजाम्, रघूणामन्वयमिति संबन्धः।

समा०—शिशोः भावः शैशवम्, तस्मिन् शैशवे, अभ्यस्ताः विद्याः यैः ते अभ्यस्तविद्याः तेषाम् अभ्यस्तविद्यानाम्, यूनः भावः यौवनम्, तस्मिन् यौवने, विषयम् इच्छन्ति इति विषयैषिणः, तेषाम् विषयैषिणाम्, वृद्धस्य भावः वार्द्धकम्, तस्मिन् वार्द्धके, मन्तारः मुनयः, मुनीनाम् वृत्तिः इव वृत्तिः येषाम् ते मुनिवृत्तयः, तेषाम् मुनिवृत्तीनाम्, तनुम् त्यजन्ति इति तनुत्यजः, तेषाम् तनुत्यजाम्।

अभि०—प्रथमे वयसि पूर्णेन ब्रह्मचर्येण सर्वविषविद्याभ्यासं कुर्वन्तः, यौवने च शास्त्रानुमोदितं गृहस्थसुखमुपभुंजानाः, जरायां संप्राप्तायां स्वसुतेभ्यो राज्यं समर्प्य वने तपस्यन्तः, अन्ते च योगाभ्यासेन 'समाधिना' देहत्यागिनः ये रघव आसन् तेषामन्वयं वक्ष्ये।

हिन्दी—जो बचपन में ब्रह्मचारी रहकर विद्याभ्यास करते थे, जो जवानी में गृहस्थाश्रम में रह कर विषयों का उपभोग करते थे और बुढ़ापे में मुनियों

के समान वन में रह कर तपस्या करते थे, (अर्थात् वानप्रस्थाश्रम का पालन करते थे) जो अन्त समय परमात्मा का ध्यान करते हुए शरीर त्याग करते थे ॥८॥

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ॥ ९ ॥

सञ्जीविनी—सोऽहं लब्धप्रवेशः । तनुवाग्विभवोऽपि स्वल्पवाणीप्रसारोऽपि सन् । तेषां रघूणां गुणैस्तद्गुणैः । आजन्मशुद्ध्यादिभिः कर्तृभिः कर्णं मम श्रोत्रमागत्य चापलाय चापलं चपलकर्माविमृश्यकरणरूपं कर्तुम् । युवादित्वात्कर्मण्यण् । 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः'' इत्यनेन चतुर्थी । प्रचोदितः प्रेरितः सन् । रघूणामन्वयं तद्विषयप्रबन्धं वक्ष्ये ॥ ९ ॥ कुलकम् ॥

अन्वयः—"सः, अहम्" तनुवाग्विभवोऽपि, सन्, तद्गुणैः, कर्णमागत्य, चापलाय, प्रचोदितः, सन्, रघूणाम्, अन्वयं, वक्ष्ये । (इति पूर्वोक्तपञ्चश्लोकैः कुलकम्)

वाच्य०—तेन मया तनुवाग्विभवेनापि, तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितेन "सता" रघूणामन्वयो वक्ष्यते ।

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः, अहम् = कालिदासः = लब्धप्रवेश इत्यर्थः, तनुः = स्वल्पः, वाचः = वाण्याः, विभवः = प्रसारो यस्य सः, तनुवाग्विभवः अपि = सन्, तेषां = रघूणां, गुणैः = आजन्मशुद्ध्यादिभिः, "कर्तृभिः" कर्णं = श्रोत्रम्, आगत्य = प्राप्य, चपलस्य भावः कर्म वा चापलं = चाञ्चल्यम्, तस्मै = चापलाय, अविचार्य कार्यकरणायेत्यर्थः, प्रचोदितः = प्रेरितः, "सन्" रघूणां = रघुकुलोद्भवानाम्, अन्वयं = वंशं, वक्ष्ये = कथयिष्ये ।

समा०—वाचां विभवः वाग्विभवः, तनुः वाग्विभवः यस्य सः तनुवाग्विभवः । तेषाम् गुणाः इति तद्गुणाः तैः तद्गुणैः । चपलस्य भावः कर्म वा चापलम् तस्मै, चापलाय ।

अभि०—रघुकुलोत्पन्नानां राज्ञाम्, आजन्मशुद्ध्यादिगुणैः, मम कर्णमागत्य प्रेरितोऽहं रघुवंशवर्णनं करिष्यामि, नतु स्वबुद्धिप्रभावेण ।

हिन्दी—यद्यपि मेरी वाणी की सामर्थ्य अल्प है, फिर भी मैं पूर्वोक्त गुणों से

युक्त रघुवंशियों के कुल का वर्णन करूँगा, "इसलिये कि" उनके जन्म से पवित्र आदि गुणों ने मेरे कान में आकर प्रेरणा की है ॥९॥

संप्रति स्वप्रबन्धपरीक्षार्थं सतः प्रार्थयते—

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा ॥१०॥

सञ्जीविनी—तं रघुवंशाख्यं प्रबन्धं सदसतोर्गुणदोषयोर्व्यक्तेर्हेतवः कर्तारः सन्तः श्रोतुमर्हन्ति । तथाहि । हेम्नो विशुद्धिर्निर्दोषस्वरूपं श्यामिकापि लोहान्तरसंसर्गात्मको दोषोऽपि वाग्नौ संलक्ष्यते । नान्यत्र । तद्वदत्रापि सन्त एव गुणदोषविवेकाधिकारिणो नान्य इति भावः ॥१०॥

अन्वयः—सदसद्व्यक्तिहेतवः, सन्तः, तं, श्रोतुम्, अर्हन्ति, हि, हेम्नः, विशुद्धिः, श्यामिका, अपि वा, अग्नौ, संलक्ष्यते ।

वाच्य०—सदसद्व्यक्तिहेतुभिः, सद्भिः, स श्रोतुमर्ह्यते, हि हेम्नो विशुद्धि श्यामिकामपि वा, अग्नौ संलक्षयन्ति सन्तः ।

व्याख्या—सत् = गुणः, असत् = दोषश्चेति सदसती तयोर्व्यक्तिः = विवेकस्तस्या, हेतवः = कर्तारः, परीक्षका इत्यर्थः इति सदसद्व्यक्तिहेतवः, सन्तः = सज्जनाः, श्रोतुम् = आकर्णयितुम्, अर्हन्ति = योग्या भवन्ति, हि = तथाहि, हेम्नः = सुवर्णस्य, विशुद्धिः = निर्दोषस्वरूपं, श्यामिका = सदोषता, अपि वा = अथवा, अग्नौ = वह्नौ, संलक्ष्यते = ज्ञायते, प्रतीयत इत्यर्थः । नान्यत्रेति भावः ।

समा०—सत् च असत् च सदसती, सदसतोः व्यक्तिः सदसद्व्यक्तिः, सदसद्व्यक्तेः हेतवः सदसद्व्यक्तिहेतवः ।

अभि०—यथा सुवर्णस्य सदोषत्वं निर्दोषत्वं वा वह्नौ, एव ज्ञायते, एवमत्र काव्येऽपि गुणदोषविवेककरणाय सन्त एवाधिकारिणः, नत्वन्ये ।

हिन्दी—भले बुरे की पहचान करने वाले विद्वान् ही इस काव्य को सुनने के अधिकारी हैं, क्योंकि सोने का खोटापन अथवा खरापन अग्नि में डालने पर ही जाना जाता है ॥१०॥

वर्ण्यं वस्तूपक्षिपति—

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ॥ ११ ॥

सञ्जीविनी—मनस ईषिणो मनीषिणो धीराः। विद्वांस इति यावत्। पृषोदरादित्वात्साधुः। तेषां माननीयः पूज्यः। छन्दसां वेदानाम्। 'छन्दः पद्ये च वेदे च' इति विश्वः। प्रणव ओंकार इव। महीं क्षियन्तीशत इति महीक्षितः क्षितीश्वराः। क्षिधातोरैश्वर्यार्थात्क्विप् तुगागमश्च। तेषामाद्य आदिभूतः। विवस्वतः सूर्यस्यापत्यं पुमान्वैवस्वतो नाम वैवस्वत इति प्रसिद्धो मनुरासीत् ॥११॥

अन्वयः—**मनीषिणां, माननीयः, छन्दसां प्रणवः, इव, महीक्षिताम्, आद्यः, वैवस्वतः, नाम मनुः, आसीत्।**

वाच्य०—मनीषिणां माननीयेन छन्दसां प्रणवेनेव महीक्षितामाद्येन वैवस्वतेन नाम्ना मनुनाऽभूयत।

व्याख्या—मनसः, ईषिणः मनीषिणस्तेषां मनीषिणां = विदुषां, माननीयः = पूज्यः, छन्दन्तीति छन्दांसि तेषां छन्दसां = वेदानां, प्रणवः = ॐकारः, इव = यथा, महीं = पृथिवीं, क्षियन्ति = ईशते, इति महीक्षितस्तेषां महीक्षितां = क्षितीश्वराणाम्, आद्यः = प्रथमः, आदिभूत इत्यर्थः। विवस्वतः = सूर्यस्य, अपत्यं पुमान् वैवस्वतः, नाम = वैवस्वतनामा, मनुः = प्रथममनुः, आसीत् = बभूव।

समा०—मनसः ईषिणः मनीषिणः,तेषाम् मनीषिणाम्। छन्दन्ति इति छन्दांसि तेषाम् छन्दसाम्। महीम् क्षियन्ति इति महीक्षितः, तेषाम् महीक्षिताम्। विवस्वतः अपत्यम् पुमान् वैवस्वतः।

अभि०—सूर्यपुत्रः, वैवस्वतो मनुः, वेदानां प्रणव इव राज्ञामाद्यः, आसीत्।

हिन्दी—जिस प्रकार वेदों में सर्व प्रथम ॐकार है उसी प्रकार राजाओं में सर्वप्रथम विद्वानों के पूज्य, सूर्यपुत्र वैवस्वत नाम के मनु हुए ॥११॥

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव ॥१२॥

सञ्जीविनी—शुद्धिरस्यास्तीति शुद्धिमान्। तस्मिञ्शुद्धिमति। तदन्वये तस्य मनोरन्वये वंशे। 'अन्ववायोऽन्वयो वंशो गोत्रं चाभिजनं कुलम्' इति हलायुधः। अतिशयेन शुद्धिमाञ्शुद्धिमत्तरः। 'द्विवचनविभज्योप०' इत्यादिना समासः। क्षीरनिधाविन्दुरिव प्रसूतो जातः ॥१२॥

अन्वयः—**शुद्धिमति, तदन्वये, शुद्धिमत्तरः, दिलीपः, इति, राजेन्दुः, क्षीरनिधौ, इन्दुः, इव, प्रसूतः।**

वाच्य०—तदन्वये शुद्धिमत्तरेण दिलीपेनेति राजेन्दुना क्षीरनिधौ, इन्दुनेव प्रसूतेन अभावि ।

व्याख्या—शुद्धिरस्यास्तीति शुद्धिमान्, तस्मिन् शुद्धिमति = दोषरहिते, तस्य = मनोः, अन्वयः = वंशस्तस्मिन् तदन्वये, अतिशयेन शुद्धिमान्, इति शुद्धिमत्तरः = अतीव पवित्रः = निष्कलंक इत्यर्थः, दिलीपः = दिलीपनाम्ना प्रसिद्धः, राजा इन्दुरिव, इति राजेन्दुः नृपचन्द्रः = राजश्रेष्ठ इत्यर्थः, निधीयतेऽस्मिन्निति निधिः, क्षीरस्य = दुग्धस्य, निधिः = आकर इति क्षीरनिधिः, तस्मिन् क्षीरनिधौ, इन्दुः = चन्द्रः, इव = यथा, प्रसूतः = जातः ।

समा०—शुद्धिः अस्य अस्ति इति शुद्धिमान् तस्मिन् शुद्धिमति, तस्य अन्वयः तदन्वयः, तस्मिन् तदन्वये, अतिशयेन शुद्धिमान् इति शुद्धिमत्तरः, राजा इन्दुः इव इति राजेन्दुः, निधीयते अस्मिन् इति निधिः, क्षीरस्य निधिः क्षीरनिधिः, तस्मिन् क्षीरनिधौ ।

अभि०—यथा क्षीरसागरे चन्द्रो जातस्तथैव मनुवंशे दिलीपो जातः ।

हिन्दी—उन्हीं सूर्यपुत्र मनु के उज्वल वंश में अत्यन्त पवित्र चरित्र वाले, राजाओं में श्रेष्ठ, राजा दिलीप वैसे ही पैदा हुए, जैसे क्षीरसागर में चन्द्रमा॥ १२॥

'व्यूढ–' इत्यादित्रिभिः श्लोकैर्दिलीपं विशिनष्टि—

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः ।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः ॥ १३ ॥

सञ्जीविनी—व्यूढं विपुलमुरो यस्य स व्यूढोरस्कः। 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' इति कप्प्रत्ययः 'व्यूढं विपुलं भद्रं स्फारं समं वसिष्ठं च' इति यादवः। वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य स तथा। 'सप्तम्युपमान०' इत्यादिनोत्तरपदलोपी बहुव्रीहिः। शालो वृक्ष इव प्रांशुरुन्नतः शालप्रांशुः। 'प्राकारवृक्षयोः शालः शालः सर्जतरुः स्मृतः' इति यादवः। 'उच्चप्रांशून्नतोदग्रोच्छ्रितास्तुङ्ग' इत्यमरः। महाभुजो महाबाहुः। आत्मकर्मक्षमं स्वव्यापारानुरूपं देहमाश्रितः प्राप्तः क्षात्रः क्षत्रसंबन्धी धर्म इव स्थितः। मूर्तिमान्पराक्रम इव स्थित इत्युत्प्रेक्षा ॥१३॥

अन्वयः—व्यूढोरस्कः, वृषस्कन्धः, शालप्रांशुः, महाभुजः, आत्मकर्मक्षमं, देहम्, आश्रितः, क्षात्रः, धर्मः, इव,' स्थितः'।

वाच्य०—व्यूढोरस्केन वृषस्कन्धेन शालप्रांशुना महाभुजेन देहमाश्रितेन क्षात्रेण धर्मेणेव अस्थायि ।

व्याख्या—व्यूढं = विपुलम्, उरः = वक्षस्थलं यस्य स व्यूढोरस्कः, वृषस्य = बलीवर्दस्य स्कन्धः, इव, स्कन्धः = अंसः, यस्य स वृषस्कन्धः 'स्कन्धो भुजशिरोंऽसः' इत्यमरः, शालः = शालवृक्षः, इव, प्रांशुः = उन्नतः, इति शालप्रांशुः, महान्तौ = दीर्घौ, भुजौ = बाहू यस्य स महाभुजः, आत्मनः = स्वस्य, कर्म = व्यापारः, तत्र क्षमं = तदनुरूपमिति, आत्मकर्मक्षमं, देहं = शरीरम्, आश्रितः = प्राप्तः, क्षत्रस्यायं क्षात्रः = क्षत्रियसम्बन्धी,धर्मः = स्वभावः = पराक्रम इत्यर्थः, इव = यथा 'स्थितः'।

समा०—व्यूढम् उरः यस्य सः व्यूढोरस्कः, वृषस्य स्कन्धः इव स्कन्धः यस्य सः वृषस्कन्धः, शालः इव प्रांशुः शालप्रांशुः, महान्तौ भुजौ यस्य सः महाभुजः, आत्मनः कर्म इति आत्मकर्म, आत्मकर्मणि क्षमम् आत्मकर्मक्षमम्, तत् तथोक्तम्, क्षत्रस्य अयम् क्षात्रः ।

अभि०—मूर्तिमान् क्षत्रियधर्म इव विशालवक्षाः, दीर्घबाहुः, उन्नतो दिलीपः एवं भूतः 'स्थितः' ।

हिन्दी—चौड़ी छाती, बैल के समान ऊंचे भारी कन्धों वाले शालवृक्ष के समान उन्नत (ऊंचे) और दीर्घ भुजा वाले (फिर भी) अपने कार्य करने में समर्थ शरीर को धारण किए, राजा दिलीप ऐसे जान पड़ते थे, मानो शरीरधारी क्षत्रियों का वीरतारूपी धर्म हो ।। १३।।

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना ।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना ।।१४।।

सञ्जीविनी—सर्वातिरिक्तसारेण सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽधिकबलेन । 'सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमरः । सर्वाणि भूतानि तेजसाभिभवतीति सर्वतेजोभिभावी तेन । सर्वेभ्य उन्नतेनात्मना शरीरेण 'आत्मा देहे धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि' इति विश्वः । मेरुरिव । उर्वीं क्रान्त्वाक्रम्य स्थितः । मेरावपि विशेषणानि तुल्यानि 'अष्टाभिश्च सुरेन्द्राणां मात्राभिर्निर्मितो नृपः । तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ।।' इति मनुवचनाद्राज्ञः सर्वतेजोभिभावित्वं ज्ञेयम् ।।१४।।

अन्वयः—सर्वातिरिक्तसारेण, सर्वतेजोभिभाविना, सर्वोन्नतेन, मेरुः, इव, उर्वीं, क्रान्त्वा, "स्थितः" एवं भूतो दिलीपः ।

वाच्य०—सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना सर्वोन्नतेनात्मना मेरुणेव, तेन, उर्वीं क्रान्त्वा स्थितेनाभावि।

व्याख्या—सर्वेभ्यः = समस्तभतेभ्यः, अतिरिक्तः = विशिष्टः = अधिक इत्यर्थः, सारः = बलं यस्य स सर्वातिरिक्तसारः, तेन सर्वातिरिक्तसारेण सर्वान् = अखिलान् "जनान्" तेजसा = स्वप्रतापेन, अभिभवति = तिरस्करोतीति सर्वतेजोऽभिभावी, तेन सर्वतेजोऽभिभाविना, सर्वेभ्यः = सर्वभूतेभ्यः, उन्नतः = प्रांशुः, तेन सर्वोन्नतेन, आत्मना = शरीरेण, मेरुः = सुमेरुपर्वतः, इव = यथा, उर्वीं = पृथिवीं, क्रान्त्वा = व्याप्य, आक्रम्येत्यर्थः 'स्थितः, दिलीपः'। प्रथमान्तानि कृत्वा मेरुपर्वतेऽपि विशेषणानि योजनीयानि।

समा०—सर्वेभ्यः अतिरिक्तः सारः यस्य सः सर्वातिरिक्तसारः तेन, सर्वातिरिक्तसारेण। सर्वान् तेजसा अभिभवति इति सर्वतेजोऽभिभावी, तेन सर्वतेजोऽभिभाविना। सर्वेभ्यः उन्नतः सर्वोन्नतः, तेन सर्वोन्नतेन।

अभि०—राजा दिलीपः सुमेरुपर्वत इव शरीरेण बलेनौन्नत्येन तेजसा च 'सर्वातिशायी' सन् पृथिवीमधिष्ठाय स्थितः।

हिन्दी—जिस प्रकार सुमेरु पर्वत ने अपनी दृढ़ता से अपनी कान्ति से तथा ऊँचाई से सभी दृढ़, कान्ति वाले तथा ऊँचे पदार्थों को दबाकर अपने विस्तार से सारी पृथिवी को व्याप्त कर रखा है वैसे ही राजा दिलीप ने अपने पराक्रम, तेज और लम्बे चौड़े शरीर से सब को नीचा दिखाकर समस्त पृथिवी मण्डल को अपने अधीन कर लिया था ॥१४॥

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः ॥१५॥

सञ्जीविनी—आकारेण मूर्त्या सदृशी प्रज्ञा यस्य सः। प्रज्ञया सदृशागमः प्रज्ञानुरूपशास्त्रपरिश्रमः। आगमैः सदृश आरम्भः कर्म यस्य स तथोक्तः। आरभ्यत इत्यारम्भः कर्म। तत्सदृश उदयः फलसिद्धिर्यस्य स तथोक्तः ॥१५॥

अन्वयः—आकारसदृशप्रज्ञः, प्रज्ञया, सदृशागमः, आगमैः सदृशारम्भः, आरम्भसदृशोदयः, 'स दिलीप आसीत्'।

वाच्य०—आकारसदृशप्रज्ञेन, प्रज्ञया सदृशागमेन, आगमैः सदृशारम्भेण, आरम्भसदृशोदयेन, दिलीपेन अभावि।

व्याख्या—आकारेण = मूर्त्या = शरीराकारेणेत्यर्थः, सदृशी = तुल्या, प्रज्ञा = बुद्धिः, यस्य स आकारसदृशप्रज्ञः, प्रज्ञया = बुद्ध्या, सदृशः = अनुरूपः, आगमः = शास्त्रं यस्य स, सदृशागमः, आगमैः = शास्त्रैः, आरभ्यते इत्यारम्भः, सदृशः = तुल्यः आरम्भः = कर्म यस्य स, सदृशारम्भः, आरम्भेण = उपक्रमेण कर्मणा, सदृशः = समानः उदयः = परिणामः फलसिद्धिरित्यर्थः, यस्य स आरम्भसदृशोदयः, स दिलीपः, आसीत् ।

समा०—आकारेण सदृशी प्रज्ञा यस्य सः आकारसदृशप्रज्ञः । सदृशः आगमः यस्य सः सदृशागमः । आरभ्यते इति आरम्भः, आरम्भेण सदृशः उदयः यस्य सः आरम्भसदृशोदयः ।

अभि०—राजा दिलीपो यथा प्रशस्ताकारवान् तथैव तीक्ष्णबुद्धिरपि, एवं यादृशी तस्य बुद्धिः तादृश एव शास्त्रपरिश्रमः, तथा शास्त्रपरिश्रमानुसारी एव कार्यारम्भः, कार्यारम्भानुकूलमेव साफल्यमपि आसीत् ।

हिन्दी—राजा दिलीप जैसे सुन्दर विशालकाय थे वैसी ही, उनकी कुशाग्रबुद्धि थी। जैसी तीक्ष्ण बुद्धि थी वैसे ही वे शास्त्राभ्यासी थे, इस लिये शास्त्रानुकूल ही कार्य करते थे, और वैसी ही पूर्ण सफलता भी उनको मिलती थी॥१५॥

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम् ।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः ॥१६॥

सञ्जीविनी—भीमैश्च कान्तैश्च नृपगुणै राजगुणैस्तेजःप्रतापादिभिः कुलशीलदाक्षिण्यादिभिश्च स दिलीप उपजीविनामाश्रितानाम् यादोभिर्जलजीवैः । 'यादांसि जलजन्तवः' इत्यमरः । रत्नैश्चार्णव इव । अधृष्योऽनभिगम्य आश्रयणीयश्च बभूव ॥१६॥

अन्वयः—भीमकान्तैः, नृपगुणैः, सः, उपजीविनां, यादोरत्नैः, अर्णवः, इव, अधृष्यश्च, अभिगम्यश्च, बभूव ।

वाच्य०—तेन अधृष्येण च, अभिगम्येन च यादोरत्नैरर्णवेन, इव बभूवे ।

व्याख्या—भीमाः = भयंकराः, च, कान्ताः = मनोहराश्च, ते भीमकान्तास्तैः, भीमकान्तैः, नृपाणां = राज्ञां, गुणाः = तेजःप्रतापदयादाक्षिण्यादयस्तैः नृपगुणैः, सः = राजा दिलीपः, उपजीवन्ति ते उपजीविनस्तेषामुपजीविनाम् = आश्रितजनानाम्, यादांसि = जलजन्तवः च, रत्नानि = मण्यादयश्च तानि, तैः यादोरत्नैः,

अर्णवः = समुद्रः, इव = यथा, धर्षितुं योग्यो धृष्यः, न धृष्यः अधृष्यः = अनभिभव-
नीयः, अभिगन्तुं योग्योऽभिगम्यः = आश्रयणीयश्च, बभूव = जातः ।

समा०—भीमाः च कान्ताः च भीमकान्ताः तैः भीमकान्तैः, नृपाणाम् गुणाः नृपगुणाः तैः नृपगुणैः, उपजीवन्ति इति उपजीविनः तेषाम् उपजीविनाम्, यादांसि च रत्नानि च यादोरत्नानि तैः यादोरत्नैः, धर्षितुम् योग्यः धृष्यः न धृष्यः अधृष्यः, अभिगन्तुम् योग्यः अभिगम्यः ।

अभि०—जलजन्तुभिः, रत्नैश्च सागरो यथा, अनभिभवनीयः, आश्रयणीयश्च भवति तथैव आश्रितानाम् राजा दिलीपोऽपि तेजःप्रतापादिभिः, दयादाक्षिण्यादिभिश्च बभूव ।

हिन्दी—तेज प्रताप आदि डरावने तथा दया दाक्षिण्य आदि सुन्दर गुणों के कारण राजा दिलीप का उनके आश्रितजन वैसे ही तिरस्कार नहीं करते थे तथा सेवा भी करते थे, जैसे कि मगर-मच्छों तथा रत्नों के कारण समुद्र का। अर्थात् मकरादि से डरकर लोग समुद्र से दूर भी भागते हैं और रत्नों को लेने के लिये उसमें घुसते भी हैं ।।१६।।

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम् ।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः ।।१७।।

सञ्जीविनी—नियन्तुः शिक्षकस्य सारथेश्च तस्य दिलीपस्य संबन्धिन्यो नेमीनां चक्रधाराणां वृत्तिरिव वृत्तिर्व्यापारो यासां ताः, 'चक्रधारा प्रधिर्नेमिः' इति यादवः । 'चक्रं रथाङ्गं तस्यान्ते नेमिः स्त्री स्यात्प्रधिः पुमान्' इत्यमरः । प्रजाः आ मनोः मनुमारभ्येत्यभिविधिः । पदद्वयं चैतत् । समासस्य विभाषितत्वात् । क्षुण्णादभ्यस्तात्प्रहताच्च वर्त्मन आचारपद्धतेरध्वनश्च परमधिकम् । इतस्तत इत्यर्थः । रेखा प्रमाणमस्येति रेखामात्रं रेखाप्रमाणं । ईषदपीत्यर्थः । 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ् मात्रचः' इत्यनेन मात्रच्प्रत्ययः । परशब्दविशेषणं चैतत् । न व्यतीयुर्नातिक्रान्तवत्यः । कुशलसारथिप्रेषिता रथनेमय इव तस्य प्रजाः पूर्वक्षुण्णमार्गं न जहुरिति भावः ।।१७।।

अन्वयः—नियन्तुः, तस्य, नेमिवृत्तयः, प्रजाः, आ मनोः, क्षुण्णाद्, वर्त्मनः, परं, रेखामात्रमपि, न, व्यतीयुः ।

वाच्य०—नियन्तुस्तस्य नेमिवृत्तिभिः, प्रजाभिः आमनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः परं रेखामात्रमपि न व्यतीये ।

व्याख्या—नियन्तुः = नियामकस्य, शिक्षकस्येत्यर्थः, तस्य = दिलीपस्य, नेमीनां = चक्रधाराणां = चक्ररेखाणामित्यर्थः, वृत्तिः इव वृत्तिः = वर्तनं, व्यापारः यासां = ताः, नेमिवृत्तयः, इव = यथा, प्रजाः = लोकाः, आ मनोः = मनुमारभ्य, क्षुण्णात् = अभ्यस्तात्, नेमिपक्षे प्रहृतात्, वर्त्मनः = आचारपद्धतेः मार्गाच्च, परम् = अधिकं, रेखामात्रं = रेखाप्रमाणम्, ईषदपीत्यर्थः, न = नहि, व्यतीयुः = अतिक्रान्तवत्यः ।

समा०—नेमीनाम् वृत्तिः इव वृत्तिः यासाम् ताः नेमिवृत्तयः, मनुम् आरभ्य आमनोः, रेखा प्रमाणमस्येति रेखामात्रम् ।

अभि०—यथा कुशलसारथिप्रेरिता रथनेमयः पूर्णक्षुण्णमार्गं किंचिदपि न त्यजन्ति, तथैव कुशलशासकेन दिलीपेन रक्षिताः प्रजाः,आमनोः,अभ्यस्तामाचारपद्धतिमपि न परितत्यजुः ।

हिन्दी—जिस प्रकार चतुर सारथी से चलाए गए रथ के पहिये जरा भी लीक से इधर-उधर नहीं हो पाते, वैसे ही सुयोग्य शासक राजा दिलीप से शासित प्रजा किंचिन्मात्र भी भगवान् मनु के नियमों का उल्लंघन नहीं करती थी।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ १८ ॥

सञ्जीविनी—स राजा प्रजानां भूत्या अर्थाय भूत्यर्थं वृद्ध्यर्थमेव। 'अर्थेन सह नित्यसमासः सर्वलिङ्गता च वक्तव्या'। ग्रहणक्रियाविशेषणं चैतत्। ताभ्यः प्रजाभ्यो बलिं करम्, 'भागधेयः करो बलिः' इत्यमरः। तथाहि। रविः सहस्रं गुणा यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा सहस्रगुणं सहस्रधोत्स्रष्टुं दातुम्। उत्सर्जनक्रियाविशेषणं चैतत्। रसमम्बवादत्ते गृह्णाति। 'रसो गन्धे रसे स्वादे तिक्तादौ विषरोगयोः। शृंगारादौ द्रवे वीर्ये देहधात्वम्बुपारदे ॥' इति विश्वः ॥१८॥

अन्वयः—सः, प्रजानां, भूत्यर्थम्, एव, ताभ्यः, बलिम्, अग्रहीत्, हि, रविः, सहस्रगुणम्, उत्स्रष्टुं, रसम्, आदत्ते ।

वाच्य०—तेन प्रजानां भूत्यर्थमेव बलिरग्राहि, हि सहस्रगुणमुत्स्रष्टुं रविणा, रस आदीयते ।

व्याख्या—सः = राजा दिलीपः, प्रजानां = लोकानां, भूत्यै, इदं भूत्यर्थं = कल्याणार्थं, ताभ्यः = प्रजाभ्यः, बलिं = षष्ठांशरूपं करम्, अग्रहीत् = जग्राह हि = यतः, रविः = सूर्यः, सहस्रं गुणा यस्मिन् कर्मणि तत् सहस्रगुणं = सहस्रगुणाधिकम्, उत्स्रष्टुं = दातुं, रसं = जलम्, आदत्ते = गृह्णाति ।

समा०—भूत्यै इदम् भूत्यर्थम्, सहस्रम् गुणाः यस्मिन्कर्मणि तत् सहस्रगुणम् ।

अभि०—यथा सूर्यः पृथिवीतो जलं गृहीत्वा सहस्रगुणाधिकं वर्षति तथैव राजा दिलीपः प्रजाकल्याणार्थमेव करं गृहीत्वा सहस्रगुणं कृत्वा ददौ, न तु स्वकीयभोगविलासार्थं जग्राहेति भावः ।

हिन्दी०—जैसे सूर्य अपनी किरणों के द्वारा पृथिवी से जल सोखकर हजारगुना वर्षा करता है, वैसे ही राजा दिलीप भी अपनी प्रजा से जो आय का छठा भाग कर रूप में लेते थे उसे प्रजा के कल्याण में ही लगा देते थे ॥१८॥

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम् ।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता ॥ १९ ॥

सञ्जीविनी—तस्य राज्ञः सेना चतुरङ्गबलम् । परिच्छाद्यतेऽनेनेति परिच्छद उपकरणं बभूव । छत्रचामरादितुल्यमभूदित्यर्थः । 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' इति घप्रत्ययः । 'छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य' इत्युपधाह्रस्वः । अर्थस्य प्रयोजनस्य तु साधनं द्वयमेव । शास्त्रेष्वकुण्ठिताऽव्याहता बुद्धिः । 'व्यापृता' इत्यपि पाठः । धनुष्याततासऽरोपिता मौर्वी ज्या च । 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः । नीतिपुरःसरमेव तस्य शौर्यमभूदित्यर्थः ॥१९॥

अन्वयः—तस्य, सेना, परिच्छदः, 'बभूव' अर्थसाधनं, द्वयमेव, शास्त्रेषु, अकुण्ठिता, बुद्धिः, धनुषि, आतता, मौर्वी, च ।

वाच्य०—तस्य सेनया परिच्छदेनाभावि, शास्त्रेष्वकुण्ठितया बुद्धया, धनुषि, आततया मौर्व्या चेति द्वयेनैवार्थसाधनेनाभावि ।

व्याख्या—तस्य = राज्ञो दिलीपस्य, सेना = सैन्यं = चतुरङ्गबलमित्यर्थः, परिच्छाद्यते अनेनेति परिच्छदः = उपकरणं, 'बभूव' छत्रचामरादितुल्यमित्यर्थः, अर्थस्य = प्रयोजनस्य, साधनं = निर्वर्तकं, द्वयम् = द्वितयम्, एव शास्त्रेषु = आगमेषु = नीतिशास्त्रेष्वित्यर्थः, अकुण्ठिता = अव्याहता, बुद्धिः = मतिः, धनुषि =

चापे, आतता = आरोपिता, मौर्वी = ज्या च । नीतिपूर्वकमेव दिलीपस्य शौर्यमभूदित्यर्थः ।

समा०—परिच्छाद्यते अनेन इति परिच्छदः । अर्थस्य साधनम् अर्थसाधनम् । न कुण्ठिता अकुण्ठिता ।

अभि०—राज्ञो दिलीपस्य सैन्यं तु छत्रचामरादिवत् शोभार्थमेव, किन्तु नीतिशास्त्रानुसारिणी बुद्धिः सज्यं धनुश्चेति द्वयमेव, सम्पूर्णप्रयोजनसाधकमभूत् ।

हिन्दी—राजा दिलीप की विशाल सेना तो केवल उपकरण 'शोभा' मात्र थी, और उसके प्रयोजन इन दो बातों से ही सिद्ध हो जाते थे, एक तो सम्पूर्ण शास्त्रावगाहिनी बुद्धि और दूसरी धनुष पर चढ़ी डोरी ॥१९॥

राज्यमूलं मन्त्रसंरक्षणं तस्यासीदित्याह—

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च ।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव ॥ २० ॥

सञ्जीविनी—संवृतमन्त्रस्य गुप्तविचारस्य । 'वेदभेदे गुप्तवादे मन्त्रः' इत्यमरः । शोकहर्षादिसूचको भ्रुकुटीमुखरागादिराकारः इङ्गितं चेष्टितं हृदयगतविकारो वा । 'इङ्गितं हृद्गतो भावो बहिराकार आकृतिः' इति सज्जनः । गूढे आकारेङ्गिते यस्य । स्वभावचापलाद् भ्रमपरम्परया मुखरागादिलिङ्गैर्वा तृतीयगामिमन्त्रस्य तस्य । प्रारभ्यन्त इति प्रारम्भाः सामाद्युपायप्रयोगाः । प्रागित्यव्ययेन पूर्वजन्मोच्यते । तत्र भवाः प्राक्तनाः । 'सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' इत्यनेन ट्युल्प्रत्ययः । संस्काराः पूर्वकर्मवासना इव । फलेन कार्येणानुमेया अनुमातुं योग्या आसन् । अत्र याज्ञवल्क्यः—'मन्त्रमूलं यतो राज्यमतो मन्त्रं सुरक्षितम् । कुर्याद्यथा तन्न विदुः कर्मणामा फलोदयात् ॥' इति ॥२०॥

अन्वयः—**संवृतमन्त्रस्य, गूढाकारेङ्गितस्य, च, तस्य, प्रारम्भाः, प्राक्तनाः, संस्काराः, इव, फलानुमेयाः, 'आसन्' इति शेषः ।**

वाच्य०—तस्य प्रारम्भैः प्राक्तनैः संस्कारैः, इव फलानुमेयैः अभावि ।

व्याख्या—संवृतः = गुप्तः, मन्त्रः = विचारो यस्य स तस्य संवृतमन्त्रस्य, आकारः = आकृतिः = हर्षशोकादिसूचको भ्रुकुटिमुखरागादिरित्यर्थः, इङ्गितं = चेष्टितञ्चेति, आकारेङ्गिते, गूढे = अप्रकाशिते, आकारेङ्गिते यस्य स तस्य गूढाकारेङ्गितस्य, च तस्य = दिलीपस्य, प्रारभ्यन्त इति प्रारम्भाः = सामाद्युपायप्रयोगाः,

प्राक्तनाः = पूर्वजन्मभवाः, संस्काराः = पूर्वकर्मवासनाः, इव = यथा, फलेन = कार्येण, अनुमेयाः = ज्ञेयाः, इति फलानुमेयाः 'आसन्' ।

समा०—संवृतः मन्त्रः यस्य सः संवृतमन्त्रः तस्य संवृतमन्त्रस्य । आकारः च इङ्गितं च आकारेङ्गिते, गूढे आकारेङ्गिते यस्य सः गूढाकारेङ्गितः, तस्य गूढाकारेङ्गितस्य । प्रारभ्यन्ते इति प्रारम्भाः । अनुमातुम् योग्याः अनुमेयाः, फलेन अनुमेयाः फलानुमेयाः ।

अभि०—गुप्तमंत्राकारचेष्टितस्य राज्ञो दिलीपस्य कार्याणि तथैव फलानुमेयानि आसन् यथा पूर्वजन्मसंस्काराः फलानुमेया भवन्ति ।

हिन्दी—सर्व'प्रकार से मंत्रणा को गुप्त रखनेवाले तथा और बाहर-भीतर के सुख-दुःख के चिह्नों को भी छिपाने वाले राजा दिलीप के समस्त कार्य, पूर्वजन्म के संस्कारों के समान फल से ही जाने जाते थे ॥२०॥

संप्रति सामाद्युपायान्विनैवात्मरक्षादिकं कृतवानित्याह—

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः ।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत् ॥२१॥

सञ्जीविनी—अत्रस्तोऽभीतः सन् । 'त्रस्तो भीरुभीरुकभीलुकाः' इत्यमरः । त्रासोपाधिमन्तरेणैव त्रिवर्गसिद्धेः प्रथमसाधनत्वादेवात्मानं शरीरं जुगोप रक्षितवान् । अनातुरोऽरुग्ण एव धर्मं सुकृतं भेजे । अर्जितवानित्यर्थः । अगृध्नुरगर्धनशील एवार्थमाददे स्वीकृतवान् । 'गृध्नुस्तु गर्धनः । लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णक्समौ लोलुपलोलुभौ इत्यमरः, 'त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः' इति क्नुप्रत्ययः । असक्त आसक्तिरहित एव सुखमन्वभूत् ॥२१॥

अन्वयः—सः, अत्रस्तः, 'सन्' आत्मानं, जुगोप, अनातुरः, 'सन्' धर्मं, भेजे, अगृध्नुः, 'सन्' अर्थम्, आददे, असक्तः, 'सन्' सुखम्, अन्वभूत् ।

वाच्य०—तेनात्रस्तेन 'सता' आत्मा जुगुपे, अनातुरेण 'सता' धर्मो भेजे अगृध्नुना 'सता' अर्थः आददे, असक्तेन सुखमन्वभावि ।

व्याख्या—सः = राजा दिलीपः, न त्रस्तोऽत्रस्तः = अभीतः 'सन्' 'भयं विनैव त्रिवर्गसिद्धेः, प्रथमसाधनत्वादेव', आत्मानं = शरीरं, जुगोप = ररक्ष = रक्षितवानित्यर्थः । न, आतुरः, अनातुरः = अरुग्णः, 'सन्' धर्मं = सुकृतं = पुण्यमित्यर्थः, भेजे = सिषेवे, अर्जितवानित्यर्थः, न गृध्नुः अगृध्नुः = अलुब्धः, 'सन्' अर्थं =

धनं = वित्तमिति यावत्, आददे = स्वीचकार = स्वीकृतवानित्यर्थः, न सक्तः, असक्तः = आसक्तिरहितः, 'सन्' सुखम् = आनन्दम्, अन्वभूत् = अनुभूतवान् ।

समा०—न त्रस्तः अत्रस्तः, न आतुरः अनातुरः, न गृध्नुः अगृध्नुः, न सक्तः असक्तः ।

अभि०—राजा दिलीपो भीत्या शरीरं न रक्षितवान् किन्तु अभीत एव, रोगात् धर्मं न पालयामास, अपितु स्वस्थ एव, एवं लोभस्य कारणाद् धनं नाददे किन्तु अलुब्ध एव, एवं सुखानुभवमपि आसक्तिरहित एवान्वभूत् ।

हिन्दी—राजा दिलीप निडर होकर अपनी रक्षा करते थे, नीरोग होकर धर्म की सेवा करते थे एवं लोभ छोड़कर धन का संग्रह करते थे, तथा आसक्ति (मोह) को त्यागकर सांसारिक सुखों का अनुभव करते थे ॥२१॥

परस्परविरुद्धानामपि गुणानां तत्र साहचर्यमासीदित्याह—

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः ।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव ॥२२॥

सञ्जीविनी—ज्ञाने परवृत्तान्तज्ञाने सत्यपि मौनं वाङ्नियमनम् । यथाह कामन्दकः—'नास्योपतापि वचनं मौनं व्रतचरिष्णुता' इति । शक्तौ प्रतीकारसामर्थ्येऽपि क्षमापकारसहनम् । अत्र चाणक्यः—'शक्तानां भूषणं क्षमा' इति । त्यागे वितरणे सत्यपि श्लाघाया विकत्थनस्य विपर्ययोऽभावः । अत्राह मनुः—'न दत्त्वा परिकीर्तयेत्' इति । इत्थं तस्य गुणा ज्ञानादयो गुणैर्विरुद्धैर्मौनादिभिरनुबन्धित्वात्सहचारित्वात् । सह प्रसवो जन्म येषां ते सप्रसवाः सोदरा इवाभूवन् । विरुद्धा अपि गुणास्तस्मिन्नविरोधेनैव स्थिता इत्यर्थः ॥२२॥

अन्वयः—ज्ञाने, मौनं, शक्तौ, क्षमा, त्यागे, श्लाघाविपर्ययः 'इत्थं' तस्य, गुणाः गुणानुबन्धित्वात्, सप्रसवाः, इव, 'अभूवन्' ।

वाच्य०—ज्ञाने मौनेन, शक्तौ क्षमया, त्यागे श्लाघाविपर्ययेण, तस्य गुणैः गुणानुबन्धित्वात् सप्रसवैरिव अभावि ।

व्याख्या—ज्ञाने = परवृत्तान्तज्ञाने सत्यपि, मौनं = मौनावलम्बनम्, शक्तौ = प्रतीकारसामर्थ्येऽपि, क्षमा = क्षमाकरणम् = अपकारसहनमित्यर्थः, त्यागे = दाने सत्यपि, श्लाघायाः = विकत्थनस्य = आत्मप्रशंसाया इत्यर्थः, विपर्ययोऽभाव

इति, श्लाघाविपर्ययः, 'इत्थं' तस्य = राज्ञो दिलीपस्य गुणाः = ज्ञानादयः, गुणैः मौनादिभिः, विरुद्धैः, अनुबन्धित्वं = सहचारित्वमिति तस्मात् गुणानुबन्धित्वात्, सह प्रसवः = जन्म येषां ते सप्रसवाः = सहोदरा, इव = यथा, अभूवन् ।

समा० —श्लाघायाः विपर्ययः श्लाघाविपर्ययः। अनु बध्नन्ति इति अनुबन्धिनः, अनुबन्धिनां भावः अनुबन्धित्वम् गुणैः अनुबन्धित्वम् गुणानुबन्धित्वम् तस्मात् गुणानुबन्धित्वात् । सह प्रसवः येषाम् ते सप्रसवाः ।

अभि०——तस्मिन् दिलीपे, परस्परविरुद्धा अपि ज्ञानमौनादिगुणाः, सोदराः, इव, एकत्राभूवन् ।

हिन्दी——दूसरों की बात जानकर भी चुप रहना, शत्रु से बदला लेने की सामर्थ्य रहते भी क्षमा करना, तथा दान देकर आत्मप्रशंसा न करना, इस प्रकार दिलीप के ज्ञानादि गुण, मौनादि विरुद्ध गुणों के साथ रहने के कारण सगे भाई जैसे जान पड़ते थे । अर्थात् दिलीप में, परस्पर विरोधी गुण बिना विरोध के रहते थे ॥२२॥

द्विविधं वृद्धत्वम् ज्ञानेन वयसा च । तत्र तस्य ज्ञानेन वृद्धत्वमाह—

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः ।
तस्य धर्मरतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा विना ॥२३॥

सञ्जीविनी—विषयैः शब्दादिभिः 'रूपं शब्दो गन्धरसस्पर्शाश्च विषया अमी' इत्यमरः । अनाकृष्टस्यावशीकृतस्य विद्यानां वेदवेदाङ्गादीनां पारदृश्वनः पारमन्तं दृष्टवतः । दृशेः क्वनिप् । धर्मे रतिर्यस्य तस्य राज्ञो जरसा विना । 'विस्रसा जरा' इत्यमरः । 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' इत्यङ्प्रत्ययः, 'जराया जरसन्यतरस्याम्' इति जरसादेशः । वृद्धत्वं वार्द्धकमासीत् । तस्य यूनोऽपि विषयवैराग्यादिज्ञानगुणसंपत्त्या ज्ञानतो वृद्धत्वमासीदित्यर्थः । नाथस्तु चतुर्विधं वृद्धत्वमिति ज्ञात्वा 'अनाकृष्टस्य' इत्यादिना विशेषणत्रयेण वैराग्यज्ञानशीलवृद्धत्वान्युक्तानीत्यवोचत् ॥२३॥

अन्वयः——विषयैः अनाकृष्टस्य, विद्यानां, पारदृश्वनः, धर्मरतेः, तस्य, जरसा विना, वृद्धत्वम्, आसीत् ।

वाच्य०——धर्मरतेस्तस्य जरसा विना वृद्धत्वेनाभावि ।

व्याख्या—विषयैः = शब्दादिभिः, न, आकृष्टः अनाकृष्टस्तस्य, अनाकृष्टस्य, विद्यानां = वेदवेदांगादीनां, पारम् = अन्तं, दृष्टवान् = ज्ञातवान्, इति पारदृश्वा, तस्य पारदृश्वनः, धर्मे = सुकृते, रतिः = अनुरागो यस्य स, तस्य धर्मरतेः तस्य = राज्ञो दिलीपस्य, जरसा = जरया, वृद्धावस्थयेत्यर्थः, विना = अन्तरेण, वृद्धस्य भावः, कर्म वा, वृद्धत्वं = वार्धकम्, आसीत् ।

समा०—न आकृष्टः अनाकृष्टः तस्य अनाकृष्टस्य । पारम् दृष्टवान् इति पारदृश्वा तस्य पारदृश्वनः । धर्मे रतिः यस्य सः धर्मरतिः तस्य धर्मरतेः । वृद्धस्य भावः कर्म वा वृद्धत्वम् ।

अभि०—यौवनसम्पन्नस्यापि विषयवैराग्यादिज्ञानगुणसम्पत्तिशालिनो धर्मरतेः राज्ञो दिलीपस्य वृद्धावस्थामन्तरेणापि ज्ञानतो वृद्धत्वमासीत् ।

हिन्दी—सांसारिक भोगों से दूर रहनेवाले वेदवेदांगादि के पारंगत, धर्मानुरागी राजा दिलीप जवानी में ही इतने ज्ञानसम्पन्न हो गए कि वृद्धावस्था के बिना भी उनमें बुढ़ापा जान पड़ने लगा, अर्थात् ज्ञान से बड़े-बूढ़े जान पड़ते थे ॥ ३२ ॥

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ २४ ॥

सञ्जीविनी—प्रजायन्त इति प्रजा जनाः 'उपसर्गे च संज्ञायाम्' इति डप्रत्ययः । 'प्रजा स्यात्संततौ जने' इत्यमरः । तासां विनयस्य शिक्षाया आधानात्करणात् सन्मार्गप्रवर्तनादिति यावत् । रक्षणाद्भयहेतुभ्यस्त्राणात् आपन्निवारणादिति यावत् । भरणादन्नपानादिभिः पोषणादपि । अपिः समुच्चये । स राजा पिताऽभूत् । तासां पितरस्तु जन्महेतवो जन्ममात्रकर्तारः । केवलमुत्पादका एवाभूवन् । जननमात्र एव पितॄणां व्यापारः । सदा शिक्षारक्षणादिकं तु स एव करोतीति तस्मिन्पितृत्वव्यपदेशः । आहुश्च—'स पिता यस्तु पोषकः' इति ॥२४॥

अन्वयः—प्रजानां, विनयाधानात् रक्षणात्, भरणात्, अपि, सः पिता "अभूत्," तासां पितरः 'तु' केवलं जन्महेतवः "अभूवन्" ।

वाच्य०—प्रजानां विनयाधानात् भरणात् रक्षणादपि तेन पित्राऽभूयत, तासां पितृभिः, जन्महेतुभिरभूयत ।

व्याख्या—प्रजायन्ते इति = प्रजास्तासाम्प्रजानां = जनानां, विनयस्य = शिक्षणस्य, आधानं = करणं, तस्मात्, विनयाधानात्, सन्मार्गे प्रवर्तनादित्यर्थः, रक्षणात् = चौरादिभयहेतुभ्यस्त्राणात्, विपत्तिनिवारणादित्यर्थः, भरणात् = अन्नपानादिदानेन पोषणात्, अपि सः = राजा दिलीपः, पाति = रक्षतीति पिता = पालकः, 'अभूत्', तासां प्रजानां, पितरः = जनकाः, तु, जन्मतः = जन्ममात्रस्य, उत्पादनमात्रस्येति यावत्, हेतवः = कर्तारः, 'एव अभूवन्'।

समा॰—प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः तासाम् प्रजानाम्। विनयस्य आधानम् विनयाधानम् तस्मात् विनयाधानात्। पाति इति पिता। जन्मनः हेतवः जन्महेतवः।

अभि॰—राजा दिलीपो हि स्वप्रजानां शिक्षणभरणरक्षणं सर्वदैवाकरोदिति स एव पिता आसीत्, पितॄणां केवलं जननव्यापारो न तु शिक्षणादिषु।

हिन्दी—अपनी प्रजा को नम्रता, सदाचार की शिक्षा देने से, और उसकी आपत्तियों से रक्षा करने से, एवं अन्नजल की व्यवस्था करके पालन करने से राजा दिलीप ही वास्तव में प्रजा के पिता थे, पिता कहाने वाले और सब तो केवल जन्म देकर नाममात्र के ही पिता थे ॥२४॥

स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्परिणेतुः प्रसूतये।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः ॥२५॥

सञ्जीविनी—दण्डमर्हन्तीति दण्ड्याः 'दण्डादिभ्यो यः' इति यप्रत्ययः। 'अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥' इति शास्त्रवचनात्। तान् दण्ड्यानेव स्थित्यै लोकप्रतिष्ठायै दण्डयतः शिक्षयतः। प्रसूतये संतानायैव परिणेतुर्दारान्परिगृह्णतः। मनीषिणो विदुषः दोषज्ञस्येति यावत्। 'विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञः सन्सुधीः कोविदो बुधः। धीरो मनीषी' इत्यमरः। तस्य दिलीपस्यार्थकामावपि धर्म एवास्तां जातौ। अस्तेर्लङ्। अर्थकामसाधनयोर्दण्डविवाहयोर्लोकस्थापनप्रजोत्पादनरूपधर्मार्थत्वेनानुष्ठानादर्थ-कामावपि धर्मशेषतामापादयन्स राजा धर्मोत्तरोऽभूदित्यर्थः। आह च गौतमः—'न पूर्वाह्णमध्यदिनापराह्णानफलान्कुर्यात् यथाशक्ति धर्मार्थकामेभ्यस्तेषु धर्मोत्तरः स्यात्' इति ॥२५॥

अन्वयः—दण्ड्यान्, एव, स्थित्यै, दण्डयतः, प्रसूतये, परिणेतुः, मनीषिणः, तस्य, अर्थकामौ, अपि, धर्मः, एव, आस्ताम्।

वाच्य०——मनीषिणस्तस्य, अर्थकामाभ्यामपि धर्मेणेव अभूयत ।

व्याख्या—दण्डमर्हन्तीति दण्ड्यास्तान् दण्डयोग्यान्, अपराधिन इत्यर्थः, 'एव', स्थित्यै = लोकप्रतिष्ठायै, दण्डयतः = शिक्षयतः, प्रसूतये = सन्तानाय, 'एव' परिणेतुः = कृतविवाहस्य, मनस ईशा मनीषा, मनीषा अस्यास्ति, इति मनीषी तस्य मनीषिणः = पण्डितस्य, दोषज्ञस्येत्यर्थः । तस्य = राज्ञो दिलीपस्य, अर्थः = धनं, कामः विषयेच्छा चेति, अर्थकामौ = तदाख्यपुरुषार्थौ, इत्यर्थः, अपि धर्मः = सुकृतमेव, आस्तां = जातौ ।

समा०——दण्डम् अर्हन्ति इति दण्ड्याः तान् दण्ड्यान्, परिणयति इति परिणेता तस्य परिणेतुः, मनसः ईषा मनीषा, सा अस्य अस्ति इति मनीषी तस्य मनीषिणः, अर्थश्च कामश्च अर्थकामौ ।

अभि०——लोकमर्यादारक्षणाय, अपराधिनामपराधानुसारं दण्डदानात्, सन्तानेच्छयैव विवाहसंस्कारकरणात् तस्य दिलीपस्य, अर्थकामावपि धर्म एव, आस्ताम् ।

हिन्दी—लोक मर्यादा की रक्षा के लिये अपराधियों को अपराध के अनुकूल दण्ड देनेवाले, और केवल पुत्र के लिये विवाह करने वाले विद्वान् राजा दिलीप का अर्थ और काम भी धर्म ही था॥२५॥

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ॥२६॥

सञ्जीविनी——स राजा यज्ञाय यज्ञं कर्तुं गां भुवं दुदोह । करग्रहणेन रिक्तां चकारेत्यर्थः । मघवा देवेन्द्रः सस्याय सस्यं वर्षयितुं दिवं स्वर्गं दुदोह । द्युलोकान्महीलोके वृष्टिमुत्पादयामासेत्यर्थः । 'क्रियार्थोपपदस्य०' इत्यादिना यज्ञसस्याभ्यां चतुर्थी । एवमुभौ संपदो विनिमयेन परस्परं आदानप्रतिदानाभ्यां भुवनद्वयं दधतुः पुपुषतुः । राजा यज्ञैरिन्द्रलोकमिन्द्रश्चोदकेन भूलोकं पुपोषेत्यर्थः । उक्तं च दण्डनीतौ– राजा त्वर्थान्समाहृत्य कुर्यादिन्द्रमहोत्सवम् । प्रीणितो मेघवाहस्तु महतीं वृष्टिमावहेत् ॥' इति ॥२६॥

अन्वयः——सः, यज्ञाय, गां, दुदोह, मघवा, सस्याय, दिवं, "दुदोह" एवम्" उभौ, सम्पद्विनिमयेन, भुवनद्वयं, दधतुः ।

वाच्य० — तेन यज्ञाय गौर्दुदुहे, मघोना सस्याय द्यौः "दुदुहे" उभाभ्यां सम्पद्विनिमयेन भुवनद्वयं दधे ।

व्याख्या —सः = राजा दिलीपः, यज्ञाय = यज्ञं कर्तुं, गां = पृथिवीं, दुदोह = अदुहत्, करग्रहणात् पृथिवीं रिक्तां चकारेत्यर्थः, मघवा = इन्द्रः, 'इन्द्रो मरुत्वान्मघवा बिडौजाः पाकशासनः इत्यमरः । सस्याय = धान्याय, दिवं = स्वर्गं दुदोह, स्वर्गलोकात् मृत्युलोके वृष्टिमुत्पादयामासेत्यर्थः, 'एवम्' उभौ = इन्द्रदिलीपौ, सम्पदः = सस्यवृष्टिरूपस्य, विनिमयः = परस्परमादानप्रदानं, तेन सम्पद्विनिमयेन, भुवनयोः = स्वर्गभूलोकयोः, द्वयं = द्वितयमिति भुवनद्वयं, दधतुः = पुपुषतुः ।

समा०—सम्पदः विनिमयः सम्पद्विनिमयः तेन सम्पद्विनिमयेन । भुवनयोः द्वयम् भुवनद्वयं तत् ।

अभि०—राजा दिलीपः प्रजाभ्यः करं गृहीत्वा यज्ञैरिन्द्रलोकं पुपोष, इन्द्रश्च वर्षणद्वारा धान्यादि संवर्ध्य मर्त्यलोकं पुपोष ।

हिन्दी—राजा दिलीप, यज्ञ करने के लिये पृथिवी को दुहता था, 'अर्थात् प्रजा से कर लेकर यज्ञ करता था' और इन्द्र अन्न के लिये स्वर्ग को दुहता था, अर्थात् वर्षा करके अन्न को बढ़ाता था । इस प्रकार इन्द्र और दिलीप आपस में अपनी २ सम्पत्ति का आदान प्रदान करके दोनों भुवनों की रक्षा करते थे ।।२६।।

न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः ।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता ।।२७।।

सञ्जीविनी—राजानोऽन्ये नृपा रक्षितुर्भयेभ्यस्त्रातुस्तस्य राज्ञो यशो नानुययुः किल नानुचक्रुः खलु । कुतः । यद्यस्मात्कारणात्तस्करता चौर्यं परस्वेभ्यः परधनेभ्यः स्वविषयभूतेभ्यो व्यावृत्ता सती श्रुतौ वाचकशब्दे स्थिता प्रवृत्ता । अपहार्यान्तराभावात्तस्करशब्द एवापहृत इत्यर्थः । अथवा 'अत्यन्तासत्यपि ह्यर्थे ज्ञानं शब्दः करोति हि' इति न्यायेन शब्दे स्थिता स्फुरिता न तु स्वरूपतोऽस्तीत्यर्थः ।।२७।।

अन्वयः—राजानः, रक्षितुः, तस्य, यशः, न, अनुययुः किल, यत्, तस्करता, परस्वेभ्यः, व्यावृत्ता, 'सती' श्रुतौ, स्थिता ।

वाच्य०—राजभिः रक्षितुस्तस्य यशः, नानुययै किल, यत् तस्करतया परस्वेभ्यो व्यावृत्तया 'सत्या' श्रुतौ स्थितयाऽभावि ।

व्याख्या—राजानः = अन्ये भूपालाः, रक्षितुः = पालयितुः भयेभ्यस्त्रातुरित्यर्थः, तस्य = दिलीपस्य, यशः = कीर्तिं, न = नहि, अनुययुः = अनुचक्रुः, किल = खलु, 'कुतः' यत् = यस्मात्, तस्करस्य = चौरस्य, भावः कर्म वा, तस्करता = चौर्यं, परेषाम् = अन्येषां, स्वानि = धनानि, तेभ्यः परस्वेभ्यः, 'स्वोऽस्त्रियां धने' इत्यमरः। व्यावृत्ता = निवृत्ता, 'सती' श्रुतौ = कर्णे, स्थिता = अस्थात्।

समा०—तस्करस्य भावः तस्करता, परेषाम् स्वानि परस्वानि तेभ्यः परस्वेभ्यः।

अभि०—भयकारणेभ्यस्त्राणकर्तुर्दिलीपस्य कीर्तिम्, अन्ये भूपाला नानुकृतवन्तः यतोहि दिलीपराज्ये तस्करत्वं केवलं श्रुतिगोचरमेव नतु स्वरूपतोऽस्तीति।

हिन्दी—भय के कारणों से रक्षा करने वाले राजा दिलीप के यश को कोई भी राजा न पा सका। क्योंकि उनके राज्य में चोरी यह शब्द केवल सुनने में ही आता था, अर्थात् दिलीप के राज्य में कोई किसी के धन का अपहरण नहीं करता था, इसलिए उनके यश की भी चोरी न हुई ॥२७॥

द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता ॥२८॥

सञ्जीविनी—शिष्टो जनो द्वेष्यः शत्रुरपि। आर्तस्य रोगिण औषधं यथौषधमिव। तस्य संमतोऽनुमत आसीत्। दुष्टो जनः प्रियोऽपि प्रेमास्पदीभूतोऽपि। उरगक्षता सर्पदष्टांगुलीव। 'छिन्द्याद् बाहुमपि दुष्टमात्मनः' इति न्यायात् त्याज्य आसीत्। तस्य शिष्ट एव बन्धुर्दुष्ट एव शत्रुरित्यर्थः ॥२८॥

अन्वयः—**शिष्टः, द्वेष्यः, अपि, आर्त्तस्य, औषधं, यथा, तस्य, सम्मतः, 'आसीत्' दुष्टः, प्रियः, अपि, उरगक्षता, अङ्गुलीव, "तस्य", त्याज्य, "आसीत्"।**

वाच्य०—शिष्टेन द्वेष्येणापि, औषधेन यथा तस्य सम्मतेनाभूयत, दुष्टेन प्रियेणापि, उरगक्षतया, अंगुल्या, इव, त्याज्येन अभूयत।

व्याख्या—शिष्टः = सज्जनः, द्वेष्यः = शत्रुः, अपि, आर्त्तस्य = पीडितस्य = रोगिण इत्यर्थः। औषधं = भेषजं, 'भेषजौषधभैषज्यानि' इत्यमरः। यथा = इव, तस्य = राज्ञो दिलीपस्य, सम्मतः = अनुमतः = प्रिय इत्यर्थः, आसीत् इति शेषः, दुष्टः = दुर्जनः, प्रियः = प्रेमास्पदीभूतः, मित्रमिति यावत्, अपि, उरगेण = सर्पेण, क्षता

= दष्टा,इति, उरगक्षता, अंगुली = करशाखा, इव = यथा, "तस्य" त्याज्यः = त्यक्तुं योग्यः परिहार्यः "आसीत्" ।

समा०—द्वेष्टुम् योग्यः द्वेष्यः, प्रीणाति इति प्रियः, उरसा गच्छति इति उरगः, उरगेणक्षता उरग क्षता, त्यक्तुम् योग्यः त्याज्यः ।

अभि०— यथा रोगार्त्तस्य तिक्तौषधमपि प्रियं भवति तथैव दिलीपस्य शिष्टपुरुषः शत्रुरपि प्रियः, दुष्टः बन्धुरपि सर्पदष्टांगुलीव परिहरणीयोऽभूत् ।

हिन्दी—सज्जन पुरुष, शत्रु होते हुए भी दिलीप का वैसे ही प्रिय था जैसे रोगी को कड़वी औषधि । और दुष्ट मनुष्य प्रिय बन्धु होते हुए भी वैसे ही त्याज्य था, जैसे सांप से डसी अँगुली ॥२८॥

तस्य परोपकारित्वमाह—

तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना ।
तथा हि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफला गुणाः ॥२९॥

सञ्जीविनी—वेधाः स्रष्टा । 'स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा' इत्यमरः । तं दिलीपम् । समाधीयतेऽनेनेति समाधिः कारणसामग्री । महाभूतानां यः समाधिस्तेन महाभूतसमाधिना विदधे ससर्ज । नूनं ध्रुवम् । इत्युत्प्रेक्षा । तथाहि । तस्य राज्ञः सर्वे गुणा रूपरसादिमहाभूतगुणवदेव परार्थः परप्रयोजनमेवैकं मुख्यं फलं येषां ते तथोक्ता आसन् । महाभूतगुणोपमानेन कारणगुणाः कार्यं संक्रामन्तीति न्यायः सूचितः ॥२९॥

अन्वयः—वेधाः, तं, महाभूतसमाधिना, विदधे, नूनं, तथा हि, तस्य, सर्वे, गुणाः, परार्थैकफलाः, आसन् ।

वाच्य०—वेधसा, महाभूतसमाधिना स विदधे नूनं, तथाहि तस्य सर्वैः, गुणैः = परार्थैकफलैः, अभूयत ।

व्याख्या—वेधाः = प्रजापतिः 'स्रष्टा प्रजापतिर्वेधाः' इत्यमरः । तं = राजानं = दिलीपं, समाधीयतेऽनेन इति समाधिः, महाभूतानां = पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां, समाधिः = कारणसामग्री, इति महाभूतसमाधिस्तेन महाभूतसमाधिना, विदधे = ससर्ज = विरचितवानित्यर्थः,नूनं = ध्रुवमित्युत्प्रेक्षा,तथाहि = यतः तस्य = राज्ञो दिलीपस्य, सर्वे = सम्पूर्णाः, गुणाः = दयादाक्षिण्यादयः, रूपरसादि-

महाभूतगुणवदेवेति यावत्, परस्य = अन्यस्य, अर्थः = प्रयोजनमेव, एकं = मुख्यं, फलं = परिणामः, येषान्ते, परार्थैकफलाः, आसन् = अभूवन् ।

समा०—समाधीयते अनेन इति समाधिः, महाभूतानाम् समाधिः महाभूतसमाधिः, तेन महाभूतसमाधिना । परस्य अर्थः परार्थः, परार्थः एव एकम् फलम् येषाम् ते परार्थैकफलाः ।

अभि०—ब्रह्मा यया कारणसामग्र्या पृथिव्यादि महाभूतपञ्चकं निर्मितवान्, तयैव कारणसामग्र्या राजानं दिलीपमपि ससर्ज, इत्यहमुत्प्रेक्षे, अत एव दिलीपस्य सर्वे गुणाः, महाभूतानां गुणवदेव परार्थैकप्रयोजना अभूवन् ।

हिन्दी—ब्रह्माजी ने जिस कारण सामग्री से 'पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश' पंच महाभूतों को बनाया, उसी कारण सामग्री से महाराजा दिलीप को भी बनाया, यह निश्चित है, इसी लिये जैसे पंचभूतों के गुण दूसरों के लिये ही हैं वैसे ही राजा दिलीप के सभी गुण भी दूसरों के ही लिये थे ॥२९॥

स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम् ।
अनन्यशासनामुर्वीं शशासैकपुरीमिव ॥३०॥

सञ्जीविनी—स दिलीपः । वेलाः समुद्रकूलानि । 'वेला कूलेऽपि वारिधेः' इति विश्वः । ता एव वप्रवलयाः प्राकारवेष्टनानि यस्यास्ताम् । 'स्याच्चयो वप्रमस्त्रियाम् । प्राकारो वरणः सालः प्राचीनं प्रान्ततो वृतिः ।' इत्यमरः । परितः खातं परिखा दुर्गवेष्टनम् । 'खातं खेयं तु परिखा' इत्यमरः । 'अन्येष्वपि दृश्यते' इत्यत्रापि शब्दात्खनेर्डप्रत्ययः । अपरिखाः परिखाः संपद्यमानाः कृताः परिखीकृताः सागरा यस्यास्ताम् । अभूततद्भावे च्विः । अविद्यमानमन्यस्य राज्ञः शासनं यस्यास्तामनन्यशासनामुर्वीमेकपुरीमिव शशास । अनायासेन शासितवानित्यर्थः ॥ ३० ॥

अन्वयः—वेलावप्रवलयां, परिखीकृतसागराम्, अनन्यशासनाम्, उर्वीम्, एकपुरीम्, इव, शशास ।

वाच्य०—तेन वेलावप्रवलया, परिखीकृतसागरा, अनन्यशासना, उर्वी, एक पुरी, इव, शशासे ।

व्याख्या—सः = दिलीपः वप्रा = प्राकारा, एव वलयाः = वेष्टनानि, इति वप्रवलयाः वेलाः = समुद्रकूलानि = समुद्रतटानीत्यर्थः, एव वप्रवलयाः यस्याः सा

तां वेलावप्रवलयां, परितः खातानि परिखाः अपरिखाः परिखाः सम्पद्यमानाः कृताः, इति परिखीकृताः = दुर्गवेष्टनीकृताः, सागराः = समुद्राः यस्याः सा, तां तथोक्ताम्, अन्यस्य = अपरस्य = दिलीपभिन्नस्य, शासनं = शिक्षणं, रक्षणमिति, अन्यशासनं, न विद्यते अन्यशासनं यस्याः सा ताम्, अनन्यशासनाम्, उर्वीं = पृथिवीम्, एका चासौ पुरी चेति, एकपुरी तामेकपुरीम् = एकनगरीम्, इव = यथा, शशास = पालयामास, अप्रयासेन शासितवानित्यर्थः।

समा०—वप्राणि एव वलयाः वप्रवलयाः, वेलाः एव वप्रवलयाः यस्याः सा वेलावप्रवलया ताम् वेलावप्रवलयाम्। परितः खातानि परिखाः, अपरिखाः परिखाः सम्पद्यमानाः कृताः इति परिखीकृताः, परिखीकृताः सागराः यस्याः सा परिखीकृतसागरा ताम् परिखीकृतसागराम्। अन्यस्य शासनम् अन्यशासनम् न विद्यते अन्यशासनम् यस्याः सा अनन्यशासना ताम् अनन्यशासनाम्। एका च असौ पुरी एकपुरी ताम् एकपुरीम्।

अभि०—राज्ञा दिलीपेन समुद्रान्तायाः पृथिव्याः शासनम्, परिश्रमं विनैवैकनगर्या रक्षणमिव चक्रे।

हिन्दी—राजा दिलीप ने समुद्र के तटरूपी परकोटा वाली तथा सागररूपी 'चारों तरफ की खाई' वाली, दूसरे राजाके शासन रहित सारी पृथिवी का शासन बिना परिश्रम इस प्रकार किया, जैसे कोई एक नगरी का शासन करता है ॥३०॥

तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा ॥२१॥

सञ्जीविनी—तस्य राज्ञो मगधवंशे जाता मगधवंशजा। 'सप्तम्यां जनेर्डः' इति डप्रत्ययः। एतेनाभिजात्यमुक्तम्। दाक्षिण्यं परच्छन्दानुवर्तनम्। 'दक्षिणः सरलोदारपरच्छन्दानुवर्तिषु' इति शाश्वतः। तेन रूढं प्रसिद्धम्। तेन नाम्ना। अध्वरस्य यज्ञस्य दक्षिणा दक्षिणाख्या पत्नीव सुदक्षिणेति प्रसिद्धा पत्न्यासीत्। अत्र श्रुतिः—'यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाप्सरसः' इति। 'दक्षिणाया दाक्षिण्यं नामर्त्विजो दक्षिणत्वप्रापकत्वम्। ते दक्षन्ते दक्षिणां प्रतिगृह्य' इति च ॥२१॥

अन्वयः—तस्य, मगधवंशजा, दाक्षिण्यरूढेन, नाम्ना, अध्वरस्य, दक्षिणा, पत्नी, इव, सुदक्षिणा, इति, 'पत्नी' आसीत्।

वाच्य०—तस्य मगधवंशजया दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना अध्वरस्य दक्षिणया पत्न्या, इव सुदक्षिणया अभूयत ।

व्याख्या—तस्य = राज्ञो दिलीपस्य, मगधानां = मगधदेशाधिपानां = राज्ञां, वंशः = अन्वयस्तत्र जाता = उत्पन्ना, इति मगधवंशजा, दाक्षिण्येन = परच्छन्दानुवर्तनेन, रूढं = प्रसिद्धं तेन दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना = अभिधानेन, अध्वरस्य = यज्ञस्य, दक्षिणा = एतन्नाम्नी, पत्नी = भार्या, इव = यथा, सुदक्षिणा = सुदक्षिणेति-प्रसिद्धा, 'पत्नी' आसीत् = अभूत् ।

समा०—मगधानाम् वंशः मगधवंशः, मगधवंशे जाता मगधवंशजा, दक्षिणस्य भावः दाक्षिण्यम्, दाक्षिण्येन रूढं दाक्षिण्यरूढं तेन दाक्षिण्यरूढेन ।

अभि०—राज्ञो दिलीपस्य मगधकुलोत्पन्नान्वर्थनामवती, दिलीपस्य मनोनुकूला सुदक्षिणानाम्नी पत्नी, यज्ञस्य दक्षिणेवासीत् ।

हिन्दी—राजा दिलीप की, मगधकुल में उत्पन्न तथा राजा के चित्त का अनुसरण करने वाली सुदक्षिणा नाम से प्रसिद्ध पटरानी वैसी ही थी जैसी यज्ञ की पत्नी दक्षिणा ॥३१॥

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि ।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः ॥३२॥

सञ्जीविनी—वसुधाधिपः । अवरोधेऽन्तःपुरवर्गे महति सत्यपि मनस्विन्या दृढचित्तया । पतिचित्तानुवृत्त्यादिनिर्बन्धक्षमयेत्यर्थः । तया सुदक्षिणया लक्ष्म्या चात्मानं कलत्रवन्तं भार्यावन्तं मेने । 'कलत्रं श्रोणिभार्ययोः' इत्यमरः । वसुधाधिप इत्यनेन वसुधया चेति गम्यते ॥३२॥

अन्वयः—**वसुधाधिपः, अवरोधे, महति, अपि, मनस्विन्या, तया, लक्ष्म्या, च, आत्मानं कलत्रवन्तं, मेने ।**

वाच्य०—वसुधाधिपेन, अवरोधे महति, अपि, मनस्विन्या तया लक्ष्म्या च, आत्मा कलत्रवान् मेने ।

व्याख्या—वसूनि = धनानि, दधाति = धारयतीति वसुधा, वसुधाया अधिपः = स्वामी, इति वसुधाधिपः अवरोधे = अन्तःपुरवर्गे, महति = अधिके, 'सत्यपि' प्रशस्तं मन अस्या अस्तीति मनस्विनी तया मनस्विन्या = दृढचित्तया पतिचित्ता-

नुवृत्यादिगणवत्येत्यर्थः, तया = सुदक्षिणया, लक्ष्म्या = राज्यश्रिया, च, आत्मानं = स्वं, कलत्रमस्यास्तीति कलत्रवान् तं कलत्रवन्तं = भार्यावन्तं मेने = मन्यते स्म ।

समा०—वसूनि दधाति इति वसुधा, अधिकं पाति इति अधिपः, वसुधाया अधिपः वसुधाधिपः। प्रशस्तम् मनः अस्या अस्ति इति मनस्विनी, तया मनस्विन्या। कलत्रम् अस्य अस्ति इति कलत्रवान् तम् कलत्रवन्तम् ।

अभि०—राज्ञो दिलीपस्य, अनेकाः स्त्रियः आसन्, किन्तु स स्वचित्तानुवर्तिन्या सुदक्षिणया, राज्यश्रिया च स्वं भार्यावन्तं मेने ।

हिन्दी—चक्रवर्ती राजा दिलीप अनेक रानियों के होते हुए भी, पति की इच्छा का अनुसरण करनेवाली सुदक्षिणा और राज्यलक्ष्मी से ही अपने को स्त्री वाला मानते थे ॥३२॥

तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः ।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः ॥३३॥

सञ्जीविनी—स राजा । आत्मानुरूपायां तस्याम् । आत्मनो जन्म यस्यासावात्मजन्मा पुत्रः । तस्मिन्समुत्सुकः । यद्वा । आत्मनो जन्मनि पुत्ररूपेणोत्पत्तौ समुत्सुकः सन् 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेः । विलम्बितं फलं पुत्रप्राप्तिरूपं येषां तैर्मनोरथैः कदा मे पुत्रो भवेदित्याशाभिः कालं निनाय यापयामास ॥३३॥

अन्वयः—स, आत्मानुरूपायां, तस्याम्, आत्मजन्मसमुत्सुकः, 'सन्' विलम्बितफलैः, मनोरथैः, कालं, निनाय ।

वाच्य०—तेन, आत्मानुरूपायां तस्यामात्मजन्मसमुत्सुकेन, 'सता' विलम्बितफलैः, मनोरथैः कालो निन्ये ।

व्याख्या—सः = राजा दिलीपः, आत्मनः = स्वस्य, अनुरूपा = सदृशी तस्यामात्मानुरूपायां, तस्यां = सुदक्षिणायाम्, आत्मनः = स्वस्मात्, जन्म = उत्पत्तिः यस्यासौ, आत्मजन्मा = पुत्रः, तस्मिन् समुत्सुकः = उत्कण्ठितः, इति, आत्मजन्मसमुत्सुकः 'सन्' विलम्बितं = सञ्जातविलम्बं, फलं = पुत्रप्राप्तिरूपं येषान्ते तैः विलम्बितफलैः, मनोरथैः = आशाभिः = कदा मे पुत्रो भविष्यत्येवंरूपाभिरित्यर्थः। कालं = समयं, निनाय = यापयामास, नीतवानित्यर्थः ।

समा०—आत्मनः अनुरूपा आत्मानुरूपा तस्याम् आत्मानुरूपायाम् । आत्मनः

जन्म यस्य असौ आत्मजन्मा आत्मजन्मनि समुत्सुकः आत्मजन्मसमुत्सुकः । विलम्बितम् फलम् येषां ते विलम्बितफलाः, तैः विलम्बितफलैः ।

अभि०—सुदक्षिणायां स्वभार्यायां पुत्रोत्पत्तिमभिलषन्,दिलीपः बहूनि दिनानि यापयामास ।

हिन्दी—राजा दिलीप ने, अपने मनोनुकूल सुदक्षिणा में पुत्रोत्पत्ति की अभिलाषा से प्रतीक्षा करते हुए बहुत समय बिताया ।।३३।।

संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ।।३४।।

सञ्जीविनी—तेन दिलीपेन । संतानोऽर्थः प्रयोजनं यस्य तस्मै संतानार्थाय विधयेऽनुष्ठानाय । स्वभुजादवतारितावरोपिता जगतो लोकस्य गुर्वी धूर्भारः सचिवेषु निचिक्षिपे निहिता ।।३४।।

अन्वयः—**सन्तानार्थाय, विधये, स्वभुजादवतारिता, जगतः, गुर्वी, धूः, सचिवेषु, निचिक्षिपे ।**

वाच्य०—सः, सन्तानार्थाय, विधये, स्वभुजात्, अवतारितां, जगतः गुर्वीं, धुरं सचिवेषु, निचिक्षेप ।

व्याख्या—तेन = राज्ञा दिलीपेन, सन्तानः = पुत्रः, अर्थः = प्रयोजनं यस्यासौ सन्तानार्थस्तस्मै, सन्तानार्थाय, विधये = अनुष्ठानाय, स्वस्य भुजः, स्वभुजस्तस्मात् स्वभुजात् = निजबाह्वोः, अवतारिता = अवरोपिता, जगतः = संसारस्य, गुर्वी = दुर्भरा, 'गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे' । धूः = भारः, प्रजापालनरूपः कार्यभार इत्यर्थः, सचिवेषु = मन्त्रिषु, निचिक्षिपे = निहिता, स्थापितेत्यर्थः ।

समा०—सन्तानः अर्थः यस्य असौ सन्तानार्थः तस्मै सन्तानार्थाय । स्वस्य भुजः स्वभुजः तस्मात् स्वभुजात् ।

अभि०—पुत्रप्राप्त्यर्थमनुष्ठानं कर्तुं राज्ञा दिलीपेन राज्यभारोऽमात्येषु विहितः ।

हिन्दी—पुत्र की प्राप्ति के निमित्त अनुष्ठान करने के लिये राजा दिलीप ने, अपनी भुजाओं से उतारा हुआ प्रजापालनरूप राज्य भार मंत्रियों के ऊपर रख दिया, अर्थात् कार्यभार मंत्रियों को सौंप दिया ।।३४।।

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया ।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् ।।३५।।

सञ्जीविनी—अथ धुरोऽवतारानन्तरं पुत्रकाम्ययाऽऽत्मनः पुत्रेच्छया। 'काम्यच्च' इति पुत्रशब्दात्काम्यच्प्रत्ययः। 'अप्रत्ययात्' इति पुत्रकाम्यधातोरकारप्रत्ययः। ततष्टाप्, तया। तौ दंपती जायापती। राजदन्तादिषु जायाशब्दस्य दमिति निपातनात्साधुः। प्रयतौ पूतौ विधातारं ब्रह्माणमभ्यर्च्य। 'स खलु पुत्रार्थिभिरुपास्यते' इति मान्त्रिकाः। गुरोः कुलगुरोर्वसिष्ठस्याश्रमं जग्मतुः। पुत्रप्राप्त्युपायापेक्षयेति शेषः ॥३५॥

अन्वयः—अथ, पुत्रकाम्यया, प्रयतौ, तौ, दम्पती, विधातारम्, अभ्यर्च्य, गुरोः, वसिष्ठस्य, आश्रमं, जग्मतुः।

वाच्य०—पुत्रकाम्यया प्रयताभ्यां ताभ्याम्, विधातारमभ्यर्च्य, गुरोः वसिष्ठस्याश्रमो जग्मे।

व्याख्या—अथ = अनन्तरं = मंत्रिषु राज्यभारस्थापनानन्तरमित्यर्थः, आत्मनः पुत्रमिच्छतीति पुत्रकाम्यति, पुत्रकाम्यतीति पुत्रकाम्या, तया पुत्रकाम्यया = पुत्रेच्छया, प्रयतौ = पूतौ 'पवित्रः प्रयतः पूतः' इत्यमरः, स च सा चेति तौ = सुदक्षिणादिलीपौ, जाया च पतिश्चेति दम्पती = जायापती, विधातारं = ब्रह्माणम्, अभ्यर्च्य = सम्पूज्य, गुरोः = कुलगुरोः, वसिष्ठस्य = महर्षेः, आश्रमं = वासस्थानं, जग्मतुः = ययतुः। पुत्रप्राप्त्युपायज्ञानायेति भावः।

समा०—आत्मनः पुत्रम् इच्छति पुत्रकाम्यति, पुत्रकाम्यति इति पुत्रकाम्या तया पुत्रकाम्यया। स च सा च तौ। जाया च पतिश्च दम्पती। विदधाति इति विधाता तम् विधातारम्।

अभि०—पुत्रप्राप्त्युपायज्ञानाय ब्रह्माणं सम्पूज्य सुदक्षिणादिलीपौ स्वकुलगुरोः वसिष्ठस्याश्रमं जग्मतुः।

हिन्दी—मंत्रियों को राज्य का भार सौंपकर, राजा दिलीप तथा सुदक्षिणा ने पवित्र होकर पुत्र की कामना से ब्रह्माजी की पूजा करके अपने कुलगुरु वसिष्ठजी के आश्रम की ओर प्रस्थान किया ॥३५॥

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव ॥३६॥

सञ्जीविनी—स्निग्धो मधुरो गम्भीरो निर्घोषो यस्य तमेकं स्यन्दनं रथम्। प्रावृषि भवः प्रावृषेण्यः। 'प्रावृष एण्यः' इत्येण्यप्रत्ययः। तं प्रावृषेण्यं पयोवाहं

मेघं विद्युदैरावताविव । आस्थितावारूढौ । जग्मतुरिति पूर्वेण संबन्धः । इरा आपः । 'इरा भूवाक्सुराप्सु स्यात्' इत्यमरः । इरावान्समुद्रः तत्र भव ऐरावतोऽभ्रमातङ्गः । 'ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवल्लभाः' इत्यमरः । 'अभ्रमातङ्गत्वाच्चाभ्रस्थरूपत्वात्' इति क्षीरस्वामी । अत एव मेघारोहणं विद्युत्साहचर्यं च घटते । किंच विद्युत ऐरावतसाहचर्यादिवैरावती संज्ञा । ऐरावतस्य स्त्र्यैरावतीति क्षीरस्वामी । तस्मात्सुष्ठूक्तं विद्युदैरावताविवेति । एकरथारोहणोक्त्या कार्यसिद्धिबीजं दम्पत्योरत्यन्तसौमनस्यं सूचयति ।।३६।।

अन्वयः—स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम्, एकं, स्यन्दनं, प्रावृषेण्यं, पयोवाहं, विद्युदैरावतौ, इव, आस्थितौ, 'तौ जग्मतुरिति पूर्वेण संबन्धः' ।

वाच्य०—स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनं, प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताभ्याम् इव, आस्थिताभ्यां ताभ्यां जग्मे ।

व्याख्या—स्निग्धः = मधुरः, गम्भीरः = गभीरः, निर्घोषः = निर्ह्रादः ध्वनिरित्यर्थः, यस्य स तं स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं, 'स्वाननिर्घोषनिर्ह्रादनादनिस्वाननिस्वनाः' इत्यमरः । एकं = केवलम् 'एके मुख्यान्यकेवलाः' इत्यमरः । स्यन्दनं = रथं, प्रावृषि = वर्षाकाले भवः प्रावृषेण्यस्तं प्रावृषेण्यं, पयांसि वहतीति पयोवाहस्तं पयोवाहं = मेघं, विद्युत् = तडित् च 'तडित्सौदामिनीविद्युद्' इत्यमरः । इराः = आपः, सन्त्यस्मिन्निति इरावान् = समुद्रस्तत्र भव ऐरावतः = अभ्रमातङ्गश्चेति विद्युदैरावतौ, इव = यथा, आस्थितौ = आरूढौ, सुदक्षिणादिलीपौ जग्मतुः ।

समा०—स्निग्धश्च असौ गम्भीरश्च स्निग्धगम्भीरः, स्निग्धगम्भीरः निर्घोषः यस्य सः स्निग्धगम्भीरनिर्घोषः तम् स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम् । प्रावृषि भवः प्रावृषेण्यः तम् प्रावृषेण्यम् । पयांसि वहति इति पयोवाहः तम् पयोवाहम् । विशेषेण द्योतते इति विद्युत् । इराः 'जलानि' सन्ति अस्मिन् इति इरावान्, इरावतः अपत्यम् ऐरावतः, विद्युत् च ऐरावतश्च विद्युदैरावतौ ।

अभि०—एकं रथमारूढौ सुदक्षिणादिलीपौ, वर्षाकालिकमेघारूढौ विद्युदैरावतौ यथा, वसिष्ठाश्रमं जग्मतुः ।

हिन्दी—मधुर एवं गंभीर घरघराहट वाले एक ही रथ पर चढ़कर सुदक्षिणादिलीप इस प्रकार चले जा रहे थे, जैसे वर्षा के बादल पर बिजली और ऐरावत 'इन्द्र का हाथी' चले जारहे हों ।।३६।।

मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव ॥३७॥

सञ्जीविनी—पुनः किंभूतौ दम्पती । आश्रमपीडा मा भून्मास्त्विति हेतोः । 'माङि लुङ्' इत्याशीरर्थे लुङ् । 'न माङ्योगे' इत्यडागमनिषेधः । परिमेयपुरःसरौ परिमितपरिचरौ । अनुभावविशेषात्तु तेजोविशेषात्सेनापरिवृताविव स्थितौ ॥

अन्वयः—आश्रमपीडा, मा भूत्, इति, परिमेयपुरःसरौ, अनुभावविशेषात्, तु, सेनापरिवृतौ, इव, 'स्थितौ' अगमतुः' ।

वाच्य०—आश्रमपीडया मा भावीति परिमेयपुरःसराभ्याम्, अनुभावविशेषात्तु, सेनापरिवृताभ्यामिव ताभ्यां जग्मे ।

व्याख्या—आश्रमस्य = वसिष्ठाश्रमस्य, आश्रमवासिजनस्येत्यर्थः, पीडा = बाधा, कष्टं, मा भूत् = न भवतु, इति = हेतोः, पुरः = अग्रे, सरन्ति = गच्छन्तीति पुरःसराः, परिमातुं योग्याः परिमेयाः = परिमिताः, पुरःसराः = अनुचराः, ययोस्तौ परिमेयपुरःसरौ, अनुभावस्य = प्रभावस्य, तेजस इत्यर्थः, विशेषः = अतिशयस्तस्मात्, प्रभावविशेषात्, तु = किन्तु, सेनया = सैन्येन, परिवृतौ = अन्वितौ; इति सेनापरिवृतौ, 'ध्वजिनी वाहिनी सेना पृतनाऽनीकिनी चमूः । वरूथिनी बलं सैन्यम्' इत्यमरः । इव = यथा, 'स्थितौ जग्मतुरिति' पूर्वेणान्वयः ।

समा०—आश्रमस्य पीडा आश्रमपीडा । पुरः सरन्ति इति पुरःसराः, परिमातुम् योग्याः परिमेयाः, परिमेयाः पुरःसराः ययोः तौ परिमेयपुरःसरौ । अनुभावस्य विशेषः अनुभावविशेषः तस्मात् अनुभावविशेषात्, परितः वृतौ परिवृतौ सेनया-परिवृतौ सेनापरिवृतौ ।

अभि०—सेनया सह गमने वसिष्ठाश्रमस्य पीडा भविष्यतीतिहेतोः, त्रिचतुःसेवकान्वितावपि सुदक्षिणादिलीपौ प्रतापातिशयेन सेनाव्याप्तौ, इव ययतुः ।

हिन्दी—आश्रम के निवासी जनों के कार्य में बाधा न हो, इसलिये राजा दिलीप ने परिमित 'तीन चार' सेवकों को ही साथ में लिया, किन्तु अपने प्रताप व तेज से वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो बड़ी भारी सेना से घिरे हों ॥३७॥

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः ।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः ॥३८॥

सञ्जीविनी—पुनः कथंभूतौ । सुखः शीतलत्वात्प्रियः स्पर्शो येषां तैः । शाल-निर्यासगन्धिभिः सर्जतरुनिस्यन्दगन्धवद्भिः । 'शालः सर्जतरुः स्मृतः' इति शाश्वतः । उत्किरन्ति विक्षिपन्तीत्युत्किराः 'इगुपध०' इत्यादिना किरतेः कप्रत्ययः । पुष्परेणूनामुत्किरास्तैराधूता मान्द्यादीषत्कम्पिता वनराजयो यैस्तैर्वातैः सेव्यमानौ॥

अन्वयः—सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः, पुष्परेणूत्किरैः, आधूतवनराजिभिः, वातैः, सेव्यमानौ, 'तौ जग्मतुः' ।

वाच्य०—सुखस्पर्शैः......वातैः, सेव्यमानाभ्यां ताभ्यां जग्मे ।

व्याख्या—सुखः = सुखप्रदः, प्रिय इत्यर्थः, स्पर्शः = स्पर्शनमालिङ्गनं येषान्ते तैः सुखस्पर्शैः, शालेभ्यः = सर्जतरुभ्यः निर्यासाः = निस्यन्दाः, तेषां गन्धः = सुरभिः अस्ति, येषु ते तैः, शालनिर्यासगन्धिभिः, उत्किरन्ति = विक्षिपन्ति, इत्युत्किराः, पुष्पाणां = कुसुमानां रेणवः = धूलयः, इति पुष्परेणवस्तेषामुत्किरास्तैः पुष्परेणूत्किरैः, आङ् = ईषत्, धूताः = कम्पिताः, वनस्य = काननस्य, राजयः = पङ्क्तयो यैस्तैः, आधूतवनराजिभिः, वातैः = पवनैः सेव्यमानौ = परिचर्यमाणौ, तौ दम्पती जग्मतुरिति पूर्वेण संबन्धः ।

समा०—सुखः स्पर्शः येषाम् ते सुखस्पर्शाः, तैः सुखस्पर्शैः । शालेभ्यः निर्यासाः शालनिर्यासाः शालनिर्यासानाम् गन्धः शालनिर्यासगन्धः, शालनिर्यासगन्धः अस्ति येषु ते शालनिर्यासगन्धिनः, तैः शालनिर्यासगन्धिभिः । उत्किरन्ति इति उत्किराः, पुष्पाणाम् रेणवः पुष्परेणवः पुष्परेणूनाम् उत्किराः पुष्परेणूत्किराः, तैः पुष्परेणूत्किरैः। आ ईषत् धूताः इति आधूताः वनानां राजयः वनराजयः आधूताः वनराजयः यैः ते आधूतवनराजयः, तैः आधूतवनराजिभिः ।

अभि०—शीतलमन्दसुगन्धिभिः प्रियस्पर्शैः शुभसूचकैः पवनैः सेव्यमानौ सुदक्षिणादिलीपौ जग्मतुः ।

हिन्दी—प्रियस्पर्शवाले, शालके गोन्द की सुगन्धियुक्त फूलों के पराग को उड़ानेवाले और वनवृक्षों की पंक्ति को धीरे २ कँपानेवाले पवन से सेवा किये गये वे दोनों चले जा रहे थे ॥३८॥

मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः ।
षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः ॥३९॥

सञ्जीविनी—रथनेमिस्वनोन्मुखैः । मेघध्वनिशङ्कयोन्नमितमुखैरित्यर्थः । शिखण्डिभिर्मयूरैर्द्विधा भिन्ना । शुद्धविकृतभेदेनाविष्कृतावस्थायां च्युताच्युतभेदेन वा षड्जो द्विविधः । तत्सादृश्यात्केका अपि द्विधा भिन्ना इत्युच्यते । अत एवाह—षड्जसंवादिनीरिति । षड्भ्यः स्थानेभ्यो जातः षड्जः । तदुक्तम्—'नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संस्पृशन् । षड्भ्यः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्ज इति स्मृतः ॥' स च तन्त्रीकण्ठजन्मा स्वरविशेषः । 'निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः । पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥' इत्यमरः । षड्जेन संवादिनीः सदृशीः । तदुक्तं मातङ्गेन—'षड्जं मयूरी वदति' इति मनोभिरामा मनसः प्रियाः । के मूर्ध्नि कायन्ति ध्वनन्तीति केका मयूरवाण्यः । 'केका वाणी मयूरस्य' इत्यमरः । ताः केकाः शृण्वन्तौ । इति श्लोकार्थः ॥३९॥

अन्वयः—रथनेमिस्वनोन्मुखैः, शिखण्डिभिः, द्विधा, भिन्नाः, षड्जसंवादिनीः, मनोभिरामाः, केकाः, शृण्वन्तौ, 'तौ जग्मतुः' ।

वाच्य०—मनोभिरामाः केकाः शृण्वद्भ्यां ताभ्यां जग्मे ।

व्याख्या—रथस्य = स्यन्दनस्य, नेमी = चक्रप्रान्तौ 'नेमिश्चक्रप्रान्ते स्त्रियामपीति' कोषः, तयोः, स्वनः = निनादस्तेन, उन्मुखाः = ऊर्ध्वाननाः, तैस्तथोक्तैः, शिखण्डिभिः = मयूरैः, द्विधा = शुद्धविकृतभेदेन द्विप्रकाराः, भिन्नाः = भेदमापन्नाः, षड्भ्यः स्थानेभ्यः, जातः = उत्पन्नः इति षड्जः, षड्जेन संवादिनीः = सदृशीः, इति षड्जसंवादिनीः, मनसः = चित्तस्य, अभिरामाः प्रियाः, इति मनोभिरामाः, के = मूर्धनि, कायन्ति = ध्वनन्तीति केकाः = मयूरवाण्यस्ताः केकाः, शृण्वन्तौ = आकर्णयन्तौ, तौ दम्पती जग्मतुः ।

समा०—रथस्य नेमी रथनेमी रथनेम्योः स्वनः रथनेमिस्वनः, उद्गतम् मुखम् येषाम् ते उन्मुखाः, रथनेमिस्वनेन उन्मुखाः रथनेमिस्वनोन्मुखाः, तैः रथनेमिस्वनोन्मुखैः । षड्भ्यः जातः षड्जः षड्जेन संवादिन्यः इति षड्जसंवादिन्यः, ताः षड्जसंवादिनीः । के कायन्ति इति केकाः, ताः केकाः ।

अभि०—रथचक्रप्रान्तोत्थितं निस्वनं मेघगर्जनं मत्वा, ऊर्ध्वमुखानां मयूराणां कर्णप्रियां केकां शृण्वन्तौ जग्मतुः ।

हिन्दी—रथ के पहिये की गड़गड़ाहट सुनकर 'मेघों के गर्जन की भ्रान्ति से' ऊपर को मुख किये हुए मोरों की, शुद्ध और विकृत भेद से दो प्रकार की,

षड्ज स्वर जैसी, मधुर मनोहर वाणी को सुनते हुए राजा दिलीप और सुदक्षिणा चले ॥३९॥

परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु ॥४०॥

सञ्जीविनी—विश्रम्भाददूरं समीपं यथा भवति तथोज्झितं वर्त्म यैस्तेषु। स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु स्यन्दने रथ आबद्धा सञ्जिता दृष्टिर्नेत्रं येस्तेषु। 'दृग्दृष्टिनेत्रलोचनचक्षुर्नयनाम्बकेक्षणाक्षीणि' इति हलायुधः। कौतुकवशाद्रथासक्तदृष्टिष्वित्यर्थः। मृग्यश्च मृगाश्च मृगाः 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः। तेषां द्वन्द्वेषु मिथुनेषु। 'स्त्रीपुंसौ मिथुनं द्वन्द्वम्' इत्यमरः। परस्पराक्ष्णां सादृश्यं पश्यन्तौ। द्वन्द्वशब्दसामर्थ्यान्मृगीषु सुदक्षिणाक्षिसादृश्यं दिलीपो दिलीपाक्षिसादृश्यं च मृगेषु सुदक्षिणेत्येवं विवेक्तव्यम् ॥४०॥

अन्वय—अदूरोज्झितवर्त्मसु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु, मृगद्वन्द्वेषु, परस्पराक्षिसादृश्यं, पश्यन्तौ, 'तौ जग्मतुः'।

वाच्य०—अदूरोज्झितवर्त्मसु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु मृगद्वन्द्वेषु परस्पराक्षिसादृश्यं पश्यद्भ्यां, 'ताभ्यां जग्मे'।

व्याख्या—अदूरं = समीपं, यथा स्यात्तथा, उज्झितं = त्यक्तं, वर्त्म = मार्गो यैस्तानि, अदूरोज्झितवर्त्मानि तेषु तयोक्तेषु स्यन्दने = रथे, आसमन्तात्' बद्धाः = संलग्नाः, दृष्टयः = नेत्राणि यैस्तानि, स्यन्दनाबद्धदृष्टीनि तेषु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु, मृग्यः = हरिण्यश्च मृगाः = हरिणाश्चेति मृगाः, मृगाणां, द्वन्द्वानि = मिथुनानि, तेषु, मृगद्वन्द्वेषु, सदृशस्य भावः, सादृश्यम्, अक्ष्णां = नेत्राणां, सादृश्यं = सरूपता, इति, अक्षिसादृश्यं, परस्परस्य = अन्योन्यस्य, अक्षिसादृश्यं तत्, परस्पराक्षिसादृश्यं, 'दिलीपो मृगीषु सुदक्षिणाक्षिसादृश्यं, सुदक्षिणा च मृगेषु दिलीपाक्षिसादृश्यमित्यर्थः, पश्यन्तौ = अवलोकयन्तौ, तौ जग्मतुः।

समा०—अदूरम् उज्झितम् वर्त्म यैः तानि अदूरोज्झितवर्त्मानि, तेषु अदूरोज्झितवर्त्मसु। स्यन्दने आसमन्तात् बद्धा दृष्टिः यैः तानि स्यन्दनाबद्धदृष्टीनि तेषु स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु। मृग्यः च मृगाः च मृगाः, मृगाणाम् द्वन्द्वानि मृगद्वन्द्वानि, तेषु मृगद्वन्द्वेषु। सदृशस्य भावः सादृश्यम्, अक्ष्णाम् सादृश्यम् अक्षिसादृश्यम्, परस्परस्य अक्षिसादृश्यम् इति परस्पराक्षिसादृश्यम् तत् परस्पराक्षिसादृश्यम्।

अभि०—विश्वासात् रथमार्गसमीपे स्थितेषु कौतुकाद् रथासक्तलोचनेषु मृगमिथुनेषु, अन्योन्यस्य नेत्रसादृश्यं पश्यन्तौ सुदक्षिणादिलीपौ जग्मतुरिति ।

हिन्दी—रथ के मार्ग को छोड़कर पास से रथ को एक टक देखते हुए, मृगों के जोड़े में, सुदक्षिणा दिलीप, एक दूसरे के नेत्रों की समानता को देखते हुए, आश्रम को गये ॥४०॥

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम् ।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ ॥४१॥

सञ्जीविनी—श्रेणीबन्धात्पङ्क्तिबन्धनाद्धेतोरस्तम्भामाधारस्तम्भरहिताम् । तोरणं बहिर्द्वारम् । 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः । तत्र या स्रग्विरच्यते तां तोरणस्रजं वितन्वद्भिः । कुर्वद्भिरिवेत्यर्थः । उत्प्रेक्षाव्यञ्जकेवशब्दप्रयोगाभावेऽपि गम्योत्प्रेक्षेयम् । कलनिर्ह्रादैरव्यक्तमधुरध्वनिभिः सारसैः पक्षिविशेषैः करणैः । क्वचिदुन्नमिताननौ । 'सारसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्कराह्वयः इति यादवः ॥४१॥

अन्वयः—श्रेणीबन्धात्, अस्तम्भां, तोरणस्रजं, वितन्वद्भिः, कलनिर्ह्रादैः, सारसैः, क्वचित्, उन्नमिताननौ, 'तौ जग्मतुः' ।

वाच्य०—सारसैः क्वचिदुन्नमिताननाभ्यां ताभ्यां जग्मे ।

व्याख्या—श्रेण्याः = पङ्क्तेः, बन्धः = बन्धनं, तस्मात्, श्रेणीबन्धात् = हेतोः, न विद्यते स्तम्भो यस्याः सा, अस्तम्भा, ताम्, आस्तम्भाम् = अधारस्तम्भरहितां, तोरणस्य = बहिर्द्वारस्य, 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम् इत्यमरः' या स्रक् = माला, तां तोरणस्रजं वितन्वद्भिः = कुर्वद्भिः, 'इवेति शेषः' कलः = मधुरास्फुटः निर्ह्रादः = ध्वनिः, येषान्ते तैः, कलनिर्ह्रादैः सारसैः = पक्षिविशेषैः 'करणैः' क्वचित् = कुत्रचित् स्थाने, उन्नमिते = ऊर्ध्वंकृते, आनने = मुखे = याभ्यां तौ, उन्नमिताननौ 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' इत्यमरः तौ जग्मतुः ।

समा०—श्रेण्याः बन्धः श्रेणीबन्धः तस्मात् श्रेणीबन्धात् । न विद्यते स्तम्भः यस्याः सा अस्तम्भा ताम् अस्तम्भाम् । तोरणस्य स्रक् तोरणस्रक् ताम् तोरणस्रजम् । कलः निर्ह्रादः येषाम् ते कलनिर्ह्रादाः तैः कलनिर्ह्रादैः । उन्नमिते आनने याभ्याम् तौ उन्नमिताननौ ।

अभि०—क्वचित् प्रदेशे आकाशे पंक्ति बद्ध्वा गच्छतः, अतएव स्तम्भरहितबहिर्द्वारमालासदृशान्, मधुराव्यक्तशब्दान् सारसान् वीक्षितुमुपरिकृताननौ सुदक्षिणादिलीपौ जग्मतुः।

हिन्दी—किसी स्थान में आकाश में उड़ते हुए तथा प्रिय बोलने वाले हंसों को देखने के लिये ऊपर को मुख उठाए हुए वे चले जा रहे थे, एक पांत में उड़ते हुए हंस ऐसे जान पड़ते थे माने बिना खम्भे (चौखट) के ही बन्दनवार टँगी हो ॥४१॥

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ ॥४२॥

सञ्जीविनी—प्रार्थनासिद्धिशंसिनोऽनुकूलत्वादेव मनोर सिद्धिसूचकस्य पवनस्यानुकूलत्वाद् गन्तव्यदिगभिमुखत्वात्। तुरगोत्कीर्णैं रजोभिरस्पृष्टा अलका देव्या वेष्टनमुष्णीषं च राज्ञो ययोस्तौ तथोक्तौ। 'शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः' इति वक्ष्यति ॥४२॥

अन्वयः—प्रार्थनासिद्धिशंसिनः, पवनस्य, अनुकूलत्वात्, तुरगोत्कीर्णैः, रजोभिः अस्पृष्टालकवेष्टनौ, 'तौ जग्मतुः'।

वाच्य०—प्रार्थनासिद्धिशंसिनः पवनस्यानुकूलत्वात् तुरगोत्कीर्णैः रजोभिः अस्पृष्टालकवेष्टनाभ्यां ताभ्यां जग्मे।

व्याख्या—प्रार्थनायाः = मनोरथस्य, सिद्धिः = सफलता, इति प्रार्थनासिद्धिः, तां शंसितुं = सूचयितुं शीलं यस्य स तस्य प्रार्थनासिद्धिशंसिनः, पुनातीति पवनस्तस्य पवनस्य = वायोः, अनुकूलत्वात् = सम्मुखत्वात् गन्तव्यदिगभिमुखत्वादित्यर्थः, तुरगैः = अश्वैः, उत्कीर्णानि = उत्क्षिप्तानि तैः, तुरगोत्कीर्णैः, रजोभिः = धूलिभिः, अस्पृष्टाः = असंपृष्टाः, अलकाः = केशाः सुदक्षिणायाः, वेष्टनम् = उष्णीषं च दिलीपस्य, ययोस्तौ अस्पृष्टालकवेष्टनौ, तौ जग्मतुः।

समा०—प्रार्थनायाः सिद्धिः प्रार्थनासिद्धिः प्रार्थनासिद्धिं शंसितुम् शीलम् यस्य सः प्रार्थनासिद्धिशंसी, तस्य प्रार्थनासिद्धिशंसिनः। पुनाति इति पवनः तस्य पवनस्य, अनुकूलस्य भावः अनुकूलत्वम् तस्मात् अनुकूलत्वात्, तुरगैः उत्कीर्णानि तुरगोत्कीर्णानि तैः तुरगोत्कीर्णैः। न स्पृष्टाः अस्पृष्टाः, अस्पृष्टाः अलकाः वेष्टनम् च ययोः तौ अस्पृष्टालकवेष्टनौ।

अभि०—स्वाभिलषितसूचकस्य वायोः गन्तव्यदिगभिमुखत्वात्, अश्वखुरोत्थिता धूलयो दिलीपस्योष्णीषे सुदक्षिणायाश्च कुटिलकेशेषु, च न संलग्नाः।

हिन्दी—मनोरथ की सफलता को सूचित करनेवाले वायु के अनुकूल होने से 'सामने दिशा में चलने से' घोड़ों के खुरों से उठी धूली सुदक्षिणा के केशों और राजा दिलीप की पगड़ी को न छू सकी ।।४२।।

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम् ।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम् ।।४३।।

सञ्जीविनी—सरसीषु वीचिविक्षोभशीतलमूर्मिसंघट्टनेन शीतलं स्वनिःश्वासमनुकर्तुं शीलमस्येति स्वनिःश्वासानुकारिणम् । एतेन तयोरुत्कृष्टस्त्रीपुंसजातीयत्वमुक्तम् । अरविन्दानामामोदमुपजिघ्रन्तौ घ्राणेन गृह्णन्तौ ।।४३।।

अन्वयः-सरसीषु, वीचिविक्षोभशीतलं स्वनिःश्वासानुकारिणम्, अरविन्दानाम्, आमोदम्, उपजिघ्रन्तौ, 'तौ जग्मतुः' ।

वाच्य०—सरसीषु वीचिविक्षोभशीतलं स्वनिःश्वासानुकारिणमरविन्दानामामोदमुपजिघ्रद्भ्यां 'ताभ्यां जग्मे' ।

व्याख्या-सरसीषु = सरःसु तडागेष्वित्यर्थः। 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः। वीचीनां = तरङ्गाणां, विक्षोभः = संघट्टनं, तेन शीतलः = शीतः,'सुषीमः शिशिरो जडः । तुषारः शीतलः शीतो हिमः सप्तान्यलिंगकाः' इत्यमरः। तं वीचिविक्षोभशीतलम्, स्वस्य = निजस्य, निःश्वासः = श्वासः, तमनुकर्तुं शीलमस्य तं स्वनिःश्वासानुकारिणम्, अरविन्दानां = कमलानाम्, आमोदम् = अतिनिर्हारिणम्, सुगन्धिमित्यर्थः, । 'आमोदः सोऽतिनिर्हारी' इत्यमरः, उपजिघ्रन्तौ = घ्राणेन्द्रियेण गृह्णन्तौ तौ जग्मतुः ।

समा०—वीचीनाम् विक्षोभः वीचिविक्षोभः वीचिविक्षोभेण शीतलः वीचिविक्षोभशीतलः तम् वीचिविक्षोभशीतलम्, स्वस्य निःश्वासः स्वनिःश्वासः स्वनिश्वासम् अनुकर्तुं शीलम् अस्य इति स्वनिःश्वासानुकारी तम् स्वनिःश्वासानुकारिणम् ।

अभि०—सरःसम्पर्कात् शीतलमत एव स्वनिःश्वासगन्धानुकारिणं कमलगन्धं जिघ्रन्तौ तौ ययतुः ।

हिन्दी—तालाबों की तरंगों में टकराने से शीतल अतएव अपने श्वास वायु का अनुकरण करने वाली कमल की सुगन्धि को सूंघते हुए वे राजा-रानी जा रहे थे।

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम् ।
अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्घ्यानुपदमाशिषः ॥४४॥

सञ्जीविनी—आत्मविसृष्टेषु स्वदत्तेषु । यूपो नाम संस्कृतः पशुबन्धाय दारुविशेषः । यूपा एव चिह्नानि येषां तेषु ग्रामेष्वमोघाः सफला यज्वनां विधिनेष्टवताम् । 'यज्वा तु विधिनेष्टवान्' इत्यमरः । 'सुयजोर्ङ्वनिप्' इति ङ्वनिप्प्रत्ययः । आशिषः आशीर्वादान् । अर्घः पूजाविधिः । तदर्थं द्रव्यमर्घ्यम् । 'पादार्घाभ्यां च' इति यत्प्रत्ययः । 'षट् तु त्रिष्वर्घ्यमर्घार्थे पाद्यं पादाय वारिणि' इत्यमरः । अर्घ्यस्यानुपदमन्वक् । अर्घ्यस्वीकारानन्तरमित्यर्थः । प्रतिगृह्णन्तौ स्वीकुर्वन्तौ । पदस्य पश्चादनुपदम् । पश्चादर्थेऽव्ययीभावः । 'अन्वगन्वक्षमनुगेऽनुपदं क्लीबमव्ययम्' इत्यमरः ॥४४॥

अन्वयः—**आत्मविसृष्टेषु, यूपचिह्नेषु, ग्रामेषु, यज्वनाम्, अमोघाः, आशिषः, अर्घ्यानुपदं, प्रतिगृह्णन्तौ, 'तौ जग्मतुः'।**

वाच्य०—आत्मविसृष्टेषु, यूपचिह्नेषु, ग्रामेषु, यज्वनाममोघाः, आशिषः अर्घ्यानुपदं प्रतिगृह्णद्भ्यां, 'ताभ्यां जग्मे' ।

व्याख्या—आत्मना = स्वेन, दिलीपेनेत्यर्थः 'विसृष्टाः = दत्तास्तेषु आत्मविसृष्टेषु, यूपाः = स्तम्भाः, यज्ञार्थसंस्कृतदारुविशेषः पशुबन्धायेत्यर्थः, एव चिह्नानि = लक्षणानि, येषां ते तेषु यूपचिह्नेषु, 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः। ग्रामेषु = संवसथेषु, 'समौ संवसथग्रामौ' इत्यमरः। यज्वनां = विधिनेष्टवतां, याज्ञिकानामित्यर्थः, अमोघाः = सफलाः, आशिषः = आशीर्वादान्, पदस्य पश्चादनुपदम्, अर्घ्यस्य = पूजाविधेः, अनुपदं = पश्चात्, अनन्तरमित्यर्थः, प्रतिगृह्णन्तौ = स्वीकुर्वन्तौ, 'तौ जग्मतुः' ।

समा०—आत्मना विसृष्टाः आत्मविसृष्टाः तेषु आत्मविसृष्टेषु, यूपा एव चिह्नानि येषाम् ते यूपचिह्नाः, तेषु यूपचिह्नेषु, न मोघाः अमोघाः, पदस्य पश्चादनुपदम्, अर्घार्थं द्रव्यम् अर्घ्यम् अर्घ्यस्य अनुपदम् अर्घ्यानुपदम् ।

अभि०—आत्मना विविधेषु यज्ञेषु याज्ञिकविप्रेभ्यो दत्तेषु, यूपचिह्नितेषु ग्रामेषु तत्रस्थविप्राणां सफलाशीर्वादान् पूजाविधेरनन्तरं स्वीकुर्वन्तौ 'तौ दम्पती जग्मतुः'।

हिन्दी—राजा दिलीप से ब्राह्मणों को दान में दिये गए और जिनमें यज्ञ के स्तम्भ गड़े हुए थे, ऐसे गांवों में अर्घ्य भेंट करने के पश्चात् याज्ञिक ब्राह्मणों के सफल आशीर्वाद को लेते हुए, सुदक्षिणा दिलीप, चले जा रहे थे ॥४४॥

हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान् ।
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम् ॥४५॥

सञ्जीविनी—ह्यस्तनगोदोहोद्भवं घृतं हैयंगवीनम् । ह्यः पूर्वेद्युर्भवम् । 'तत्तु हैयंगवीनं यद्ध्योगोदोहोद्भवं घृतम्' इत्यमरः । 'हैयंगवीनं संज्ञायाम्' इति निपातः । तत्सद्योघृतमादायोपस्थितान्घोषवृद्धान् । 'घोष आभीरपल्ली स्यात्' इत्यमरः । वन्यानां मार्गशाखिनां नामधेयानि पृच्छन्तौ । 'दुह्याच्—'इत्यादिना पृच्छतेर्द्विकर्मकत्वम् । कुलकम् ॥४५॥

अन्वयः—हैयंगवीनम्, आदाय, उपस्थितान्, घोषवृद्धान्, वन्यानां, मार्गशाखिनां, नामधेयानि, पृच्छन्तौ, 'तौ जग्मतुः' ।

वाच्य०—हैयंगवीनमादाय, उपस्थितान् घोषवृद्धान्, वन्यानां, मार्गशाखिनां नामधेयानि पृच्छद्भ्यां 'ताभ्यां जग्मे' ।

व्याख्या—ह्यो गोदोहस्य विकारः, हैयंगवीनं, हैयंगवीनं = सद्योघृतं, नवनीतमित्यर्थः, आदाय = गृहीत्वा दिलीपाय निवेदयितुमिति भावः । उपस्थितान् = समागतान्, घोषेषु = आभीरपल्लीषु, ये वृद्धाः = स्थविराः, तान् घोषवृद्धान्, वने भवा वन्यास्तेषां वन्यानां = काननोद्भवानां, मार्गस्य = पथः, शाखिनः = वृक्षास्तेषां मार्गशाखिनां, 'वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः' इत्यमरः । नामधेयानि = नामानि, पृच्छन्तौ = जिज्ञासमानौ, 'तौ जग्मतुरिति, द्वादशश्लोकानां कुलकं समाप्तम्' ।

समा०—ह्यो गोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनम् । घोषेषु वृद्धाः घोषवृद्धाः तान् घोषवृद्धान् । वने भवाः वन्याः तेषाम् वन्यानाम् । मार्गस्य शाखिनः तेषाम् मार्गशाखिनाम् ।

अभि०—राज्ञे, उपहारार्थं नैवनीतमादाय समुपस्थितान्, आभीरवृद्धान् वनोत्पन्नमार्गवृक्षाणां नामानि पृच्छन्तौ सुदक्षिणादिलीपौ वसिष्ठाश्रमम्प्रति जग्मतुः ।

हिन्दी—भेंट देने को गौ का ताजा मक्खन लेकर आये हुए गांव के बूढे अहीरों से जंगली वृक्षों के नाम पूछते हुए, राजा तथा सुदक्षिणा जा रहे थे ॥४५॥

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥ ४६ ॥

सञ्जीविनी—व्रजतोर्गच्छतोः शुद्धवेषयोरुज्ज्वलनेपथ्ययोस्तयोः सुदक्षिणा-

दिलीपयोः। हिमनिर्मुक्तयोश्चित्राचन्द्रमसोरिव । योगे सति काप्यनिर्वाच्याभिख्या शोभासीत् । 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । 'आतश्चोपसर्गे' इत्यण्प्रत्ययः । चित्रा नक्षत्रविशेषः । शिशिरापगमे चैत्र्यां चित्रापूर्णचन्द्रमसोरिवेत्यर्थः ।।४६।।

अन्वयः—व्रजतोः शुद्धवेषयोः, तयोः, हिमनिर्मुक्तयोः, चित्राचन्द्रमसोः, इव, योगे 'सति' काऽपि, अभिख्या, आसीत् ।

वाच्य०—व्रजतोः शुद्धवेषयोस्तयोः, हिमनिर्मुक्तयोः, चित्राचन्द्रमसोरिव, योगे 'सति' कयाऽपि, अभिख्यया, अभूयत ।

व्याख्या—व्रजतोः = गच्छतोः, शुद्धः = उज्वलः शुभ्रः, वेषः = नेपथ्यं ययोस्तयोः, शुद्धवेषयोः, सा च स च तौ तयोः = सुदक्षिणादिलीपयोः, हिमेन = तुषारेण 'तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्यमरः । निर्मुक्तौ = त्यक्तौ तयोः हिमनिर्मुक्तयोः, चित्रा = नक्षत्रविशेषः, चन्द्रमाः = चन्द्रमाश्चेति चित्राचन्द्रमसौ तयोः चित्राचन्द्रमसोः, इव = यथा, योगे = संगतौ, 'सति' चैत्र्यां पूर्णिमायां चित्राचन्द्रमसोरिवेत्यर्थः, काऽपि = अनिर्वचनीया अभिख्या = शोभा, आसीत् = अभवत् ।

समा०—शुद्धः वेषः ययोः तौ शुद्धवेषौ तयोः शुद्धवेषयोः । सा च स च तौ तयोः तयोः । हिमेन निर्मुक्तौ हिमनिर्मुक्तौ तयोः हिमनिर्मुक्तयोः, चित्रा च चन्द्रमाः च चित्राचन्द्रमसौ तयोः चित्राचन्द्रमसोः ।

अभि०—यथा शिशिरावसाने चैत्रस्य पूर्णिमायां चित्रापूर्णचन्द्रयोः, योगे सति, अलौकिकी शोभा भवति, एवं शुभ्रवेषयोः सुदक्षिणादिलीपयोरतीव शोभाऽभूत् ।

हिन्दी—मार्ग में जाते समय सुदक्षिणा के साथ उज्वल वस्त्र पहने राजा दिलीप की वैसी ही अपूर्व शोभा हो रही थी जैसी शिशिर ऋतु के पश्चात् चैत्र की पूर्णिमा में चित्रा नक्षत्र के साथ निर्मल चन्द्र की होती है ।।४६।।

तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः ।
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः ।। ४७ ।।

सञ्जीविनी—प्रियं दर्शनं स्वकर्मकं यस्यासौ प्रियदर्शनः । योग्यदर्शनीय इत्यर्थः । भूमिपतिः पत्न्यै तत्तदद्भुतं वस्तु दर्शयल्लङ्घितमतिवाहितमप्यध्वानं न बुबुधे न ज्ञातवान् । बुधः सौम्य उपमोपमानं यस्येति विग्रहः । इदं विशेषणं तत्तद्दर्शयन्नित्युपयोगितयैवास्य ज्ञातृत्वसूचनार्थम् ।।४७।।

अन्वयः—प्रियदर्शनः, बुधोपमः, भूमिपतिः, तत्तत्, पत्न्यै, दर्शयन्, लङ्घितम् अपि, अध्वानं, न, बुबुधे ।

वाच्य०—प्रियदर्शनेन बुधोपमेन भूमिपतिना तत्तत् पत्न्यै दर्शयता लंघितोऽपि, अध्वा न बुबुधे ।

व्याख्या—प्रियं = हृद्यं, मनोहरमित्यर्थः, दर्शनम् = अवलोकनं यस्य स प्रियदर्शनः, बुधः = सौम्यः, चन्द्रपुत्र इत्यर्थः पण्डितश्च, उपमा = उपमानं यस्यासौ बुधोपमः 'उपमोपमानं स्याद्' इत्यमरः । पातीति पतिः, भूमेः = पृथिव्याः पतिः = स्वामीति भूमिपतिः, राजा दिलीप इत्यर्थः,तत्तत् = अद्भुतं दर्शनीयं वस्तु, पत्न्यै = भार्यायै, दर्शयन् = सन्दर्शयन्, लंघितम् = अतिवाहितम्, अतिक्रान्तमित्यर्थः, अपि, अध्वानं = मार्गं, न = नहि बुबुधे = अबोधिष्ट ज्ञातवानित्यर्थः ।

समा०—प्रियम् दर्शनम् यस्य सः प्रियदर्शनः । बुध उपमा यस्य सः बुधोपमः । पाति इति पतिः भूमेः पतिः भूमिपतिः ।

अभि०—मनोहरवपुर्दिलीपः स्वभार्यायै पथि दर्शनीयमद्भुतं वस्तु दर्शयन्, अतिक्रान्तमपि मार्गं कियद्दूरमागतोऽस्मीति न ज्ञातवान् ।

हिन्दी—पण्डितों के समान बुद्धिमान्, तथा मनोहर शरीर वाले राजा-दिलीप, अपनी स्त्री को मार्ग के सब दर्शनीय दृश्य दिखाते हुए, 'ऐसे रम गये कि' पीछे छूटे मार्ग को भी न जान सके ॥४७॥

स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः ।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः ॥ ४८ ॥

सञ्जीविनी—दुष्प्रापयशाः । दुष्प्रापमन्यदुर्लभं यशो यस्य स तथोक्तः । श्रान्तवाहनो दूरोपगमनात्क्लान्तयुग्यः । महिष्याः सखा महिषीसखः । 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति टच्प्रत्ययः । सहायान्तरनिरपेक्ष इति भावः । स राजा सायं सायंकाले संयमिनो नियमवतस्तस्य महर्षेर्वसिष्ठस्याश्रमं प्रापत्प्राप । पुषादित्वादङ ॥४८॥

अन्वयः—दुष्प्रापयशाः, श्रान्तवाहनः, महिषीसखः, सः, सायं, संयमिनः, तस्य महर्षेः, आश्रमम्, प्रापत् ।

वाच्य०—दुष्प्रापयशसा श्रान्तवाहनेन महिषीसखेन तेन सायं संयमिनस्तस्य महर्षेः, आश्रमः प्रापि ।

व्याख्या— दुःखेन प्राप्तुं शक्यं दुष्प्रापं, दुष्प्रापम् = अन्यदुर्लभम्, यशः = कीर्तिर्यस्य स दुष्प्रापयशाः, श्रान्तानि = क्लान्तानि, दूरोपगमत्वादित्यर्थः, वाहनानि = अश्वा इत्यर्थः, यस्यासौ श्रान्तवाहनः, 'सर्वं स्यात् वाहनं, यानं युग्यं पत्रं च' इत्यमरः। महिष्याः = कृताभिषेकायाः सुदक्षिणायाः, सखा = सहायः, इति महिषीसखः अन्यसहायानपेक्ष इत्यर्थः, सः = राजा दिलीपः, सायं = सायंकाले, संयमोऽस्यास्तीति संयमी तस्य संयमिनः = नियमवतः, तस्य = पूर्वोक्तस्य कुलगुरोः, महांश्चासौ ऋषिस्तस्य महर्षेः = वसिष्ठस्य, आश्रमम् = आवासं, प्रापत् = प्राप।

समा०—दुःखेन प्राप्तुम् शक्यम् दुष्प्रापम्, दुष्प्रापम् यशः यस्य सः दुष्प्रापयशाः। श्रान्तानि वाहनानि यस्य सः श्रान्तवाहनः। महिष्याः सखा महिषीसखः। संयमः अस्य अस्ति इति संयमी तस्य संयमिनः, महान् च असौ ऋषिः महर्षिः, तस्य महर्षेः।

अभि०—अन्यदुर्लभकीर्तिः सपत्नीको दिलीपः सायंकाले नियमवतः कुलगुरोर्वसिष्ठस्याश्रमं प्राप।

हिन्दी—अन्य मनुष्यों से दुर्लभ यशवाले और थके हुं घोड़े जिसके ऐसे राजा दिलीप अपनी पत्नी के साथ सायंकाल होते २ संयमी महर्षि वसिष्ठजी के आश्रम में पहुंच गए ॥४८॥

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः ॥ ४९ ॥

सञ्जीविनी—वनान्तरादन्यस्माद्वनादुपावृत्तैः प्रत्यावृत्तैः। समिधश्च कुशांश्च फलानि चाहर्तुं शीलं येषामिति समित्कुशफलाहरास्तैः। 'आङि ताच्छील्ये' इति हरतेराङ्पूर्वादच्प्रत्ययः। अदृश्यैर्दर्शनायोग्यैरग्निभिर्वैतानिकैः प्रत्युद्याताः प्रत्युद्गताः तैस्तपस्विभिः पूर्यमाणम्। 'प्रोष्यागच्छतामाहिताग्नीनामग्नयः प्रत्युद्यान्ति' इति श्रुतेः। यथाह—'कामं पितरं प्रोषितवन्तं पुत्राः प्रत्याधावन्ति। एवमेतमग्नयः प्रत्याधावन्ति सशकलान्दारूनिवाहरन्' इति ॥४९॥

अन्वयः—वनान्तरात्, उपावृत्तैः, समित्कुशफलाहरैः, अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः, तपस्विभिः, पूर्यमाणम्, 'आश्रमं प्रापत्'।

वाच्य०—वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः, अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः तपस्विभिः पूर्यमाण आश्रमः प्रापि।

व्याख्या—अन्यत् वनमिति वनान्तरं=विपिनान्तरं तस्मात् वनान्तरात्, उपावृत्तैः=प्रत्यागतैः समिधः=काष्ठानि च, कुशाः=दर्भाश्च, फलानि=आम्रादिफलानि चेति समित्कुशफलनि तान्याहर्तुं शीलं येषां ते तैः समित्कुशफलाहरैः, अदृश्याः=दर्शनायोग्याः=असंलक्ष्या इत्यर्थः, च ते, अग्नयः=वह्नयस्तैः प्रत्युद्याताः=प्रत्युद्गतास्तैः अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः, तपः=तपश्चरणमस्ति येषां ते तैस्तपस्विभिः=तापसैः, पूर्यमाणम्=व्याप्तम्, आश्रमं प्रापदित्यर्थः।

समा०—अन्यत् वनम् वनान्तरम् तस्मात् वनान्तरात्। समिधश्च कुशाश्च फलानि च समित्कुशफलानि, समित्कुशफलानि आहर्तुम् शीलम् येषाम् ते समित्कुशफलाहराः, तैः समित्कुशफलाहरैः। द्रष्टुम् योग्याः दृश्याः, न दृश्याः अदृश्याः अदृश्याश्च ते अग्नयः अदृश्याग्नयः, अदृश्याग्निभिः प्रत्युद्याताः इति अदृश्याग्निप्रत्युद्याताः, तैः अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः। तपः अस्ति येषाम् ते तपस्विनः तैः तपस्विभिः।

अभि०—वनान्तरात् समित्कुशफलान्यादाय परावृत्तैः, अदृश्यवैतानिकाग्निप्रत्युद्गतैस्तापसैर्व्याप्तमाश्रमं प्रापत्।

हिन्दी—दूसरे वन से समिधा कुशा तथा फलों को लेकर लौटे हुए, तपस्वियों से वसिष्ठाश्रम भरा हुआ था, और उन आने वाले तपस्वियों की अदृश्य होकर श्रौताग्नि अगवानी कर रहा था॥४९॥

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः॥ ५० ॥

सञ्जीविनी—नीवाराणां भाग एव भाग धेयोऽशः। 'भागरूपनामभ्यो धेयः' इति वक्तव्यसूत्रात्स्वाभिधेये धेयप्रत्ययः। तस्योचितैः। अत एवोटजानां पर्णशालानां द्वाररोधिभिर्द्वाररोधकैर्मृगैः ऋषिपत्नीनामपत्यैरिव आकीर्णं व्याप्तम्॥

अन्वयः—नीवारभागधेयोचितैः, उटजद्वाररोधिभिः, मृगैः, ऋषिपत्नीनाम्, अपत्यैः, इव आकीर्णम्, 'आश्रमं प्रापत्'।

वाच्य०—नीवारभागधेयोचितैरुटजद्वाररोधिभिः, मृगैः ऋषिपत्नीनामपत्यैरिवाकीर्ण आश्रमः प्रापि।

व्याख्या—भाग एवते भागधेयः, नीवाराणां=तृणधान्यानां, 'तृणधान्यानि नीवाराः' इत्यमरः, भागधेयः=अंशः, इति नीवारभागधेयः, तस्य नीवारभागधे-

यस्य, उचिताः = योग्याः, तैः, नीवारभागधेयोचितैः, 'अतएव' उटजानां = पर्णशालानां, द्वाराणि = प्रतीहारान्, 'द्वार्द्वारं प्रतीहार' इत्यमरः। रोद्धुम् शीलं येषां ते तैः, उटजद्वाररोधिभिः, 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। मृगैः = हरिणैः, ऋषीणां = मंत्रद्रष्टॄणां, पत्न्यः = भार्याः, तासा , ऋषिपत्नीनाम्, अपत्यैः = पुत्रैः, इव = यथा, आकीर्णं = व्याप्तम्, आश्रमं प्रापदिति पूर्वश्लोकेनान्वयः।

समा०—भाग एव भागधेयः, नीवाराणाम् भागधेय इति नीवारभागधेयः, नीवारभागधेयस्य उचिताः नीवारभागधेयोचिताः, तैः नीवारभागधेयोचितैः। उटजानाम् द्वाराणि उटजद्वाराणि, उटजद्वाराणि रोद्धुम् शीलम् येषाम् ते उटजद्वाररोधिनः, तैः उटजद्वाररोधिभिः। ऋषीणाम् पत्न्यः ऋषिपत्न्यः तासाम् ऋषिपत्नीनाम्।

अभि०—ऋषिपत्नीनां बालका यथोटजद्वारं रुद्ध्वा अतिष्ठन्, तथैव तृणधान्यांशाहरणार्थं मृगा उटजद्वारं व्याप्य स्थिता आसन्।

हिन्दी—ऋषिपत्नियों के बालकों के समान तिन्नी के चावल खाने के अभ्यासी, इसी लिये पर्णकुटियों के द्वारों को छेके खड़े हुए मृगों से वह आश्रम परिपूर्ण था ॥५०॥

सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम् ॥ ५१ ॥

सञ्जीविनी—सेकान्ते वृक्षमूलसेचनावसाने मुनिकन्याभिः। सेक्त्रीभिः। आलवालेषु जलावापप्रदेशेषु यदम्बु तत्पायिनां। 'स्यादालवालमावालमावापः' इत्यमरः। विहङ्गानां पक्षिणां विश्वासाय विश्रम्भाय 'समौ विश्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः, तत्क्षणे सेकक्षण उज्झिता वृक्षका ह्रस्ववृक्षा यस्मिंस्तम्। ह्रस्वार्थे कप्रत्ययः ॥५१॥

अन्वयः—सेकान्ते, मुनिकन्याभिः, आलवालाम्बुपायिनाम्, विहङ्गानाम्, विश्वासाय, तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्, 'आश्रमम्, प्रापत्'।

वाच्य०—आलवालाम्बुपायिनाम्, विहङ्गानाम्, विश्वासाय, मुनिकन्याभिः, *सेकान्ते, तत्क्षणोज्झितवृक्षकः आश्रमः, प्रापि।*

व्याख्या—सेकस्य = तरुमूलसेचनस्य, अन्तः = अवसानम्, इति सेकान्तः, तस्मिन् सेकान्ते, मुनीनां = ऋषीणां, कन्याः = सुताः, इति मुनिकन्याः, ताभिः,

मुनिकन्याभिः, आलवालेषु = आवालेषु, अम्बु = जलम्, इति, आलवालाम्बु, तत्पातुं = पानं कर्तुं शीलं येषां ते, आलवालाम्बुपायिनः, तेषाम्, आलवालाम्बुपायिनाम्, विहायसा गच्छन्तीति विहङ्गाः = पक्षिणः, तेषाम् विहङ्गानाम्, विश्वासाय = विस्रम्भाय, विश्वासं जनयितुमित्यर्थः, तत्क्षणे = तस्मिन्नेवावसरे, उज्झिता इति तत्क्षणोज्झिताः ह्रस्वा वृक्षा वृक्षकाः, तत्क्षणोज्झिता वृक्षका यस्मिन् सः, तादृशम्, 'आश्रमम्, प्रापत्'।

समा०—सेकस्य अन्तः सेकान्तः तस्मिन् सेकान्ते। आलवालेषु यदम्बु तत्पातुं शीलं येषां ते आलवालाम्बुपायिनः, तेषाम् आलवालाम्बुपायिनाम्। स चासौ क्षणश्च तत्क्षणः तत्क्षणे उज्झिता इति तत्क्षणोज्झिताः, ह्रस्वाः वृक्षाः वृक्षकाः, तत्क्षणोज्झिताः वृक्षका यत्र सः तत्क्षणोज्झितवृक्षकः तम् तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।

अभि०—पक्षिणो निर्भयाः सन्तः पानीयं पिबन्तु, इति मनसि विचार्य यत्र मुनिकुमारिका लघुवृक्षमूलसेचनं कृत्वा तत्क्षणादेवापयान्ति तमेवाश्रमं प्रापत्।

हिन्दी—राजा दिलीप, पक्षिगण निर्भय होकर पानी पियें इस दृष्टि से छोटे वृक्षों की जड़ों में पानी देकर मुनिबालिकायें जहाँ तुरत हट जाती हैं, उस आश्रम में पहुँचे ॥५१॥

> आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः।
> मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गनभूमिषु ॥ ५२ ॥

सञ्जीविनी—आतपस्यात्ययेऽपगमे सति संक्षिप्ता राशीकृता नीवारास्तृणधान्यानि यासु तासु। 'नीवारास्तृणधान्यानि' इत्यमरः। उटजानां पर्णशालानामङ्गनभूमिषु चत्वरभागेषु। 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इति। 'अङ्गनं चत्वराजिरे' इति चामरः। निषादिभिरुपविष्टैर्मृगैर्वर्तितो निष्पादितो रोमन्थश्चर्वितचर्वणं यस्मिन्नाश्रमे तम् ॥५२॥

अन्वयः—आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु, उटजाङ्गनभूमिषु, निषादिभिः, मृगैः, वर्तितरोमन्थम्, 'आश्रमम्, प्रापत्'।

वाच्य०—वर्तितरोमन्थः, आश्रमः, प्रापि।

व्याख्या—आ = समन्तात्, तापयति = संतापं जनयति, इति, आतपः, तस्य, अत्ययः = ध्वंसः, इति आतपात्ययः, आतपात्यये, संक्षिप्ताः = राशीकृताः, नीवाराः

=तृणधान्यानि यासु ताः, आतपात्ययसंक्षिप्तनीवाराः, तासु आतपात्ययसंक्षिप्त-नीवारासु, अङ्गनस्य अजिरस्य भूमयः = प्रदेशाः, इति, अङ्गनभूमयः,उटजानाम् = पर्णशालानाम् अङ्गनभूमयः, इति उटजाङ्गनभूमयः, तासु उटजाङ्गनभूमिषु, निषीदन्ति = तिष्ठन्ति, तच्छीलाः, निषादिनः, तैः, निषादिभिः, मृगैः = हरिणैः, वर्तितः = निष्पादितः, रोमन्थः = चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणम्, यस्मिन् तम्, 'आश्रमम्, प्रापत्' ।

समा०—आ समन्तात् तापयति इति आतपः, तस्य अत्ययः, आतपात्ययः, तस्मिन् संक्षिप्ताः नीवाराः यासु ताः, आतपात्ययसंक्षिप्तनीवाराः, तासु,आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु । उटजानाम् अङ्गनभूमयः इति, उटजाङ्गनभूमयः, तासु उटजाङ्गनभूमिषु । वर्तितः रोमन्थः यस्मिन् सः वर्तितरोमन्थः तम् वर्तितरोमन्थम्।

अभि०—राजा दिलीपः, यत्र सायंकाले पर्णशालानां चत्वरप्रदेशेषु राशीकृतेषु तृणधान्येषु सुखेनोपविष्टा मृगाश्चर्वितचर्वणं कुर्वन्ति, तं मुनेराश्रमं प्रापत् ।

हिन्दी—राजा दिलीप सायंकाल के समय मुनि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे जहाँ कि पर्णशालाओं के आंगनों में धूप के चले जाने से इकट्ठे किये नीवार नामक धान्य के ढेरों पर बैठे हुए हरिण रोमन्थ अर्थात् जुगाली कर रहे थे ॥५२॥

अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान् ।
पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः ॥ ५३ ॥

सञ्जीविनी—अभ्युत्थिताः प्रज्वलिताः । होमयोग्या इत्यर्थः । 'समिद्धेऽग्नावाहुतीर्जुहोति' इति वचनात् । तेषामग्नीनां पिशुनैः सूचकैः पवनोद्धूतैः । आहुतिगन्धो येषामस्तीत्याहुतिगन्धिनः तैर्धूमैराश्रमोन्मुखानतिथीन्पुनानं पवित्रीकुर्वाणम् ॥ कुलकम् ॥५३॥

अन्वयः—अभ्युत्थिताग्निपिशुनैः, पवनोद्धूतैः, आहुतिगन्धिभिः, धूमैः, आश्रमोन्मुखान्, अतिथीन्, पुनानम्, 'आश्रमम् प्रापत्' ।

वाच्य०—पुनानः, आश्रमः, प्रापि ।

व्याख्या—अभितः उत्थिताः = प्रज्वलिताः, इति, अभ्युत्थिताः, अभ्युत्थिताश्च, ते अग्नयः = वह्नयः, इति, अभ्युत्थिताग्नयः, अभ्युत्थिताग्नीनां पिशुनाः = सूचकाः, इति, अभ्युत्थिताग्निपिशुनाः तैः। अभ्युत्थिताग्निपिशुनैः,

पवनेन = वायुना, उद्धूताः = कम्पिताः इति पवनोद्धूताः, तैः पवनोद्धूतैः, आ = समन्तात्, हवनम् = मन्त्रपूर्वकमग्नौ हविष्यक्षेपः, आहुतिः, आहुतेः गन्धः = सुरभिः, एषामस्तीति, आहुतिगन्धिनः, तैः, आहुतिगन्धिभिः, धूमैः, उद्गतं मुखम् = आननं येषां ते, उन्मुखाः, आश्रमस्य = मुन्यावासस्य, उन्मुखाः, इति, आश्रमोन्मुखाः, तान्, आश्रमोन्मुखान्, वसिष्ठावासं प्रति गमनोत्सुकानित्यर्थः, अतिथीन् = अभ्यागतान्, पुनानम् = पवित्रीकुर्वाणम्, 'आश्रमं प्रापत्'।

समा०—अभितः उत्थिताः इति अभ्युत्थिताः, अभ्युत्थिताश्च ते अग्नयः इति अभ्युत्थिताग्नयः,तेषां,पिशुना इति अभ्युत्थाग्निपिशुनाः, तैः अभ्युत्थिताग्निपिशुनैः। पवनेन, उद्धूताः इति, पवनोद्धूताः, तैः, पवनोद्धूतैः। आहुतेः गन्धः आहुतिगन्धः, सः एषाम् अस्ति इति आहुतिगन्धिनः, तैः, आहुतिगन्धिभिः। उद्गतं मुखं येषां, ते उन्मुखाः, आश्रमस्य उन्मुखाः इति आश्रमोन्मुखाः, तान् आश्रमोन्मुखान्।

अभि०—राजा दिलीपः, मुनिजनविहितहवनस्य गन्धेन मिश्रितैः पवनवशादितस्ततः प्रसरद्भिर्धूमैरभ्यागतजनान्पवित्रीकुर्वाणमाश्रमं प्राप।

हिन्दी—राजा दिलीप मुनियों से किये गये हवन की गन्ध से मिश्रित धुएँ से, जो कि हवा से आश्रम के इधर-उधर फैला हुआ था, आने वाले अतिथियों को पवित्र करने वाले मुनि वसिष्ठजी के आश्रम में पहुँचे ॥५३॥

> अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः।
> तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च ॥ ५४ ॥

सञ्जीविनी—अथाश्रमप्राप्त्यनन्तरं स राजा यन्तारं सारथिं धुरं वहन्तीति धुर्या युग्याः। 'धुरो यड्ढकौ' इति यत्प्रत्ययः। 'धूर्वहे धुर्यधौरेयधुरीणाः सधुरंधराः' इत्यमरः। धुर्यान्रथाश्वान्विश्रामय विनीतश्रमान्कुर्वित्यादिश्याज्ञाप्य तां पत्नीं रथादवारोहयदवतारितवान्स्वयं चावततार। 'विश्रमय' इति ह्रस्वपाठे 'जनीजृष०' इति मित्त्वे 'मितां ह्रस्व' इति ह्रस्वः। दीर्घपाठे 'मितां ह्रस्वः' इति सूत्रे 'वा चित्तविरागे' इत्यतो 'वा' इत्यनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणत्वाद्ध्रस्वाभाव इति वृत्तिकारः॥५४॥

अन्वयः—अथ, सः, यन्तारम्, धुर्यान्, विश्रामय, इति, आदिश्य, ताम्, पत्नीम्, रथात्, अवारोहयत्, स्वयम्, च, अवततार।

वाच्य०—अथ, तेन, यन्तारम् 'त्वया', धुर्याः, विश्राम्यन्ताम्, इति, आदिश्य, सा, पत्नी, रथात्, अवारोह्यत, स्वयम्, च, अवतेरे ।

व्याख्या—अथ = आश्रमप्राप्त्यनन्तरम्, सः = दिलीपः, यच्छति इति यन्ता = सारथिः, तम्, यन्तारम्, धुरं वहन्तीति धुर्याः = अश्वाः, तान्, धुर्यान्, विश्रामय = विनीतश्रमान् कुरु,इति = इत्थम्,आदिश्य = आज्ञाप्य, ताम् = पूर्वोक्ताम्,पत्नीम् = भार्याम्, सुदक्षिणाम् रथात् = स्यन्दनात्, अवारोहयत् = अवतारितवान्, 'स्वयम्' च अवततार = अवारुरोह ।

समा०—धुरं वहन्ति, इति धुर्याः, तान् धुर्यान् ।

अभि०—आश्रमप्राप्त्यनन्तरं राजा, अश्वपरिश्रमदूरीकरणे सारथिमाज्ञाप्य सुदक्षिणासहितो रथादवततार ।

हिन्दी—आश्रम में पहुँच कर राजा सारथि को घोड़ों की थकान दूर करने का आदेश देते हुए सुदक्षिणा सहित रथ से उतरे ॥५४॥

तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः ।
अर्हणामर्हते चक्रुर्मुनयो नयचक्षुषे ॥ ५५ ॥

सञ्जीविनी—सभायां साधवः सभ्याः । 'सभायां यः' इति यप्रत्ययः । गुप्ततमेन्द्रिया अत्यन्तनियमितेन्द्रिया मुनयः सभार्याय गोप्त्रे रक्षकाय । नयः शास्त्रमेव चक्षुस्तत्त्वावेदकं प्रमाणं यस्य तस्मै नयचक्षुषे । अत एवार्हते प्रशस्ताय । पूज्यायेत्यर्थः । 'अर्हः प्रशंसायाम्' इति शतृप्रत्ययः । तस्मै राज्ञेऽर्हणां पूजां चक्रुः । 'पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः' इत्यमरः ॥५५॥

अन्वयः—**सभ्याः, गुप्ततमेन्द्रियाः, मुनयः, सभार्याय, गोप्त्रे, नयचक्षुषे, अर्हते, तस्मै, अर्हणाम् चक्रुः ।**

वाच्य०—सभ्यैः, गुप्ततमेन्द्रियैः, मुनिभिः, अर्हणा, चक्रे ।

व्याख्या—सभासु साधवः सभ्याः = सभासदः, अतिशयेन गुप्तानि गुप्ततमानि = दृढरक्षितानि, गुप्ततमानि इन्द्रियाणि = अक्षाणि, येषां ते गुप्ततमेन्द्रियाः, मुनयः = ऋषयः, भार्यया = पत्न्या सह वर्तमानः सभार्यः, तस्मै सभार्याय, सुदक्षिणासहिताय, गोप्त्रे = रक्षकाय, नयः = नीतिः एव चक्षुः = नेत्रं यस्य स नयचक्षुः तस्मै नयचक्षुषे, अर्हते = पूज्याय, तस्मै = दिलीपाय, अर्हणाम् = पूजाम्, चक्रुः = अकुर्वन् ।

समा०—सभासु साधवः, सभ्याः। अतिशयेन गुप्तानि गुप्ततमानि, गुप्ततमानि इन्द्रियाणि येषां ते गुप्ततमेन्द्रियाः। भार्यया सहितः सभार्यः, तस्मै सभार्याय। नयः एव चक्षुः, यस्य स नयचक्षुः, तस्मै नयचक्षुषे।

अभि०—वसिष्ठादेशेनाश्रमस्था मुनयो नीतिविदं, पूजार्हं रक्षकं च सुदक्षिणासहितं दिलीपमपूजयन्।

हिन्दी—वसिष्ठजी की आज्ञा से आश्रम में स्थित जितेन्द्रिय मुनियों ने नीतिशास्त्रज्ञ, पूजा के योग्य एवं रक्षक सुदक्षिणा सहित राजा दिलीप की पूजा की ॥५५॥

विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम् ॥५६॥

सञ्जीविनी—स राजा सायंतनस्य सायंभवस्य। 'सायंचिरम्०' इत्यादिना ट्युल्प्रत्ययः। विधेर्जपहोमाद्यनुष्ठानस्यान्तेऽवसानेऽरुन्धत्यान्वासितं पश्चादुपवेशनेनोपसेवितम्। कर्मणि क्तः। उपसर्गवशात्सकर्मकत्वम्। 'अन्वास्यैनाम्' इत्यादिवदुपपद्यते। तपोनिधिं वसिष्ठम्। स्वाहया स्वाहादेव्या। 'अथाग्नायी स्वाहा च हुतभुक्प्रिया' इत्यमरः। अन्वासितं हविर्भुजमिव। ददर्श। 'समित्पुष्पकुशाग्न्यम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकः। जपं होमं च कुर्वाणो नाभिवाद्यो द्विजो भवेत्॥' इत्यनुष्ठानस्य मध्येऽभिवादननिषेधाद्विधेरन्ते ददर्शेत्युक्तम्। अन्वासनं चात्र पतिव्रताधर्मत्वेनोक्तं न कर्माङ्गत्वेन। विधेरन्त इति कर्मणः समाप्त्यभिधानात्॥

अन्वयः—**सः, सायन्तनस्य, विधेः, अन्ते, अरुन्धत्या, अन्वासितम्, तपोनिधिम् स्वाहया, अन्वासितम्, हविर्भुजम्, इव, ददर्श।**

वाच्य०—तेन, अरुन्धत्या अन्वासितः, तपोनिधिः, स्वाहया अन्वासितः हविर्भुक्, इव, ददृशे।

व्याख्या—सः = दिलीपः, सायं भवः सायन्तनः = सायंकालिकः, तस्य, सायन्तनस्य, विधेः = अनुष्ठानस्य, अन्ते = अवसाने, अरुन्धत्या = तन्नाम्न्या स्वपत्न्या, अन्वासितम् = उपासितम्, तपसाम् = तपश्चर्याणाम्, निधिः = आकरः, इति, तपोनिधिः, तम्, तपोनिधिम्, स्वाहया = स्वाहादेव्या 'अन्वासितम्' हविः = हवनीयं द्रव्यं भुनक्ति = खादति, इति हविर्भुक्, तं हविर्भुजम्, इव = यथा, ददर्श = अपश्यत्।

समा०—सायं भवः सायंतनः तस्य सायन्तनस्य। तपसां निधिः तपोनिधिः तम् तपोनिधिम्। हविः भुनक्ति इति हविर्भुक्, तम् हविर्भुजम्।

अभि०—दिलीपः सायंकालिकविधेरनन्तरं स्वाहादेव्या समुपासितं वह्निमिव स्थितं स्वधर्मपत्न्योपसेवितं वसिष्ठं ददर्श।

हिन्दी—राजा दिलीप ने सायंकालिक संध्यावन्दनादि के अनन्तर अपनी पत्नी अरुन्धती से सेवित वसिष्ठजी को बैठे हुए इस प्रकार देखा मानो अपनी पत्नी स्वाहा देवी से सेवित साक्षात् अग्निदेव हों ॥५६॥

तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी।
तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः ॥ ५७ ॥

सञ्जीविनी—मागधी मगधराजपुत्री राज्ञी सुदक्षिणा राजा च तयोररुन्धतीवसिष्ठयोः पादाञ्जगृहतुः। 'पादः पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। पादग्रहणमभिवादनम्। गुरुपत्नी गुरुश्च कर्तारौ। सा च स च तौ सुदक्षिणादिलीपौ कर्मभूतौ। प्रीत्या हर्षेण प्रतिननन्दतुः। आशीर्वादादिभिः संभावयांचक्रतुरित्यर्थः ॥५७॥

अन्वयः—मागधी, राज्ञी, राजा, च, तयोः, पादान्, जगृहतुः, गुरुपत्नी, गुरुः, च, तौ, प्रीत्या, प्रतिननन्दतुः।

वाच्य०—मागध्या, राज्ञ्या, राज्ञा, च, तयोः, पादाः, जगृहिरे, गुरुणा, गुरुपत्न्या, च प्रीत्या, तौ, प्रतिनन्द्याते।

व्याख्या—मगधानाम् = देशविशेषाणाम्, राजा = नृपः, मागधः, मागधस्यापत्यं स्त्री मागधी, राज्ञी = महिषी सुदक्षिणा, राजा = नृपः, दिलीपश्च, सा = अरुन्धती, सः = वसिष्ठः, च, तौ, तयोः, पादान् = चरणान्, जगृहतुः = पस्पृशतुः, गुरोः = वसिष्ठस्य, पत्नी = भार्या, गुरुपत्नी अरुन्धती इत्यर्थः, गुरुः = वसिष्ठः, च, प्रीत्या = प्रेम्णा, सा = सुदक्षिणा च, सः = दिलीपश्च, तौ कर्मभूतौ, प्रतिननन्दतुः = आशीर्वचनादिभिः सम्भावयाञ्चक्रतुः।

समा०—मगधानां राजा मागधः, मागधस्यापत्यं स्त्री मागधी। गुरोः, पत्नी गुरुपत्नी।

अभि०—सुदक्षिणा दिलीपश्च गुरुं वसिष्ठं गुरुपत्नीमरुन्धतीं च नमश्चक्रतुः। ततः सपत्नीको गुरुरपि ताभ्यामाशिषं ददौ।

हिन्दी—सुदक्षिणा और दिलीप ने गुरु वसिष्ठ और गुरुपत्नी को नमस्कार किया। तब उन्होंने भी उन दोनों राजा-रानी को प्रेम-पूर्वक आशीर्वाद दिया॥५७॥

तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ॥ ५८ ॥

सञ्जीविनी—मुनिः। अतिथ्यर्थमातिथ्यम्। 'अतिथेर्ञ्यः' इति ञ्यप्रत्ययः। आतिथ्यस्य क्रिया तया शान्तो रथक्षोभेण यः परिश्रमः स यस्य स तं तथोक्तम्। राज्यमेवाश्रमस्तत्र मुनितुल्यमित्यर्थः। तं दिली राज्ये कुशलं पप्रच्छ। पृच्छतेस्तु द्विकर्मकत्वमित्युक्तम्। यद्यपि राज्यशब्दः पुरोहितादिष्वन्तर्गतत्वाद्राजकर्मवचनः, तथाप्यत्र सप्ताङ्गवचनः। 'उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु' इत्युत्तरविरोधात्, तथाह मनुः—'स्वाम्यमात्यपुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ तथा सुहृत्। सप्तैतानि समस्तानि लोकेऽस्मिन्राज्यमुच्यते'॥ इति। तत्र 'ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्। वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च॥' इति मनुवचने सत्यपि तस्य राज्ञो महानुभावत्वाद् ब्राह्मणोचितः कुशलप्रश्न एव कृत इत्यनुसंधेयम्। अत एवोक्तम्—राज्याश्रममुनिमिति॥५८॥

अन्वयः—**मुनिः, आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम्, राज्याश्रममुनिम्, तम्, राज्ये, कुशलम्, पप्रच्छ।**

वाच्य०—मुनिना, आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमः, राज्याश्रममुनिः, स पप्रच्छे।

व्याख्या—मन्ता = वेदशास्त्रार्थतत्त्वागन्ता, मुनिः, अभ्यागतः इत्यर्थः, न विद्यमाना तिथिर्यस्यागमने सः अतिथिः, अतिथये इदम् आतिथ्यम्, आतिथ्यस्य = अभ्यागतसत्कारस्य, क्रिया = कर्म इति आतिथ्यक्रिया, आतिथ्यक्रियया शान्तः = गतः इति आतिथ्यक्रियाशान्तः, रथस्य = स्यन्दनस्य, क्षोभः = संचलनम् इति रथक्षोभः, रथक्षोभेण परिश्रमः = खेदः इति रथक्षोभपरिश्रमः, आतिथ्यक्रियाशान्तः रथक्षोभपरिश्रमः यस्य सः, आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमः, तं तथोक्तम्, राज्ञः = नृपस्य भावः कर्म वा राज्यम् = राष्ट्रम्, राज्यमेवाश्रमः = मुन्यावासः, इति राज्याश्रमः, राज्याश्रमे मुनिः, इति राज्याश्रममुनिः, तम् राज्याश्रममुनिम्, तम् = राजानम् दिलीपम्, राज्ये = राष्ट्रमण्डले, कुशलम् = क्षेमम्, पप्रच्छ = अपृच्छत्।

समा०—अविद्यमाना तिथिः यस्य आगमने स अतिथिः, अतिथये इदम् आतिथ्यम्,आतिथ्यस्य क्रिया आतिथ्यक्रिया, तया शान्तः इति आतिथ्यक्रियाशान्तः, रथस्य क्षोभः इति रथक्षोभः, रथक्षोभेण परिश्रमः रथक्षोभपरिश्रमः, आतिथ्यक्रियाशान्तः रथक्षोभपरिश्रमः यस्य सः आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमः। राज्ञः भावः कर्म वा राज्यम्, राज्यम् एव आश्रम इति राज्याश्रमः, राज्याश्रमे मुनिः इति, राज्याश्रममुनिः, तम् राज्याश्रममुनिम् ।

अभि०—वसिष्ठो दिलीपस्य रथसंचलनखेदमातिथ्यक्रियया दूरीकृत्य तं राज्यं कुशलं पृष्टवान् ।

हिन्दी—वसिष्ठजी ने दिलीप के रथ के हिलने-डुलने से उत्पन्न खेद को आतिथ्य-सत्कार से दूर किया और राज्य-सम्बन्धी कुशल पूछा ॥५८॥

अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः ।
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वरः ॥ ५९ ॥

सञ्जीविनी—अथ प्रश्नानन्तरं विजितारिपुरो विजितशत्रुनगरो वदतां वक्तॄणां वरः श्रेष्ठः 'यतश्च निर्धारणम्' इति षष्ठी । अर्थपती राजाथर्ववेदस्य मुनेः पुरोऽग्रेऽर्थ्यामर्थादनपेताम् । 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत्प्रत्ययः । वाचमाददे । वक्तुमुपक्रान्तवानित्यर्थः। अथर्वनिधेरित्यनेन पुरोहितकृत्याभिज्ञत्वात्तत्कर्मनिर्वाहकत्वं मुनेरस्तीति सूच्यते । यथाह कामन्दकः—'त्रय्यां च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात्पुरोहितः । अथर्वविहितं कुर्यान्नित्यं शान्तिकपौष्टिकम् ॥' इति ॥

अन्वयः—**अथ, विजितारिपुरः, वदताम् वरः, अर्थपतिः, अथर्वनिधेः, तस्य, पुरः, अर्थ्याम्, वाचम्, आददे ।**

वाच्य०—विजितारिपुरेण, वदताम् वरेण, अर्थपतिना, अर्थ्या वाक्, आददे ।

व्याख्या—अथ = कुशलप्रश्नानन्तरम्, अरीणाम् = शत्रूणाम्, पुराणि = नगराणि इति अरिपुराणि, विजितानि = स्वायत्तीकृतानि अरिपुराणि येन सः विजितारिपुरः, वदताम् = वक्तॄणाम्, वरः = श्रेष्ठः अर्थस्य = विभवस्य, पतिः = स्वामी अर्थपतिः, अथर्वणः = अथर्ववेदस्य, निधिः = आकरः, इति अथर्वनिधिः तस्य अथर्वनिधेः, तस्य = वसिष्ठस्य, पुरः = अग्रे, अर्थादनपेता अर्थ्या = अर्थोपेता, ताम्, अर्थ्याम्, वाचम् = वाणीम्, आददे = जगृहे ।

समा०—अरीणाम् पुराणि इति अरिपुराणि, विजितानि अरिपुराणि येन सः, विजितारिपुरः। अर्थस्य पतिः अर्थपतिः। अथर्वणः निधिः अथर्वनिधिः तस्य, अथर्वनिधेः। अर्थादनपेता अर्घ्या, ताम् अर्घ्याम्।

अभि०—वसिष्ठकुशलप्रश्नानन्तरं चक्रवर्ती वाक्पटू राजा दिलीपः वसिष्ठं साभिप्रायमुवाच।

हिन्दी—वसिष्ठ जी के कुशल पूछने पर वाक्पटु चक्रवर्ती राजा दिलीप साभिप्राय वचन बोले ॥५९॥

उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम् ॥ ६० ॥

सञ्जीविनी—हे गुरो! सप्तस्वङ्गेषु स्वाम्यमात्यादिषु। 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च। सप्ताङ्गानि' इत्यमरः। शिवं कुशलमुपपन्नं ननु युक्तमेव। नन्ववधारणे। 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु' इत्यमरः। कथमित्यत्राह—यस्य मे दैवीनां देवेभ्य आगतानां दुर्भिक्षादीनाम्। मानुषीणां मनुष्येभ्य आगतानां चौरभयादीनाम्। उभयत्रापि 'तत आगतः' इत्यण्। 'टिड्ढाणञ्०' इत्यदिना ङीप्। आपदां व्यसनानां त्वं प्रतिहर्ता वारयितासि। अत्राह कामन्दकः—'हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरणं तथा। इति पञ्चविधं दैवं मानुषं व्यसनं ततः॥ आयुक्तकेभ्यश्चौरेभ्यः परेभ्यो राजवल्लभात्। पृथिवीपतिलोभाच्च नराणां पञ्चधा मतम्॥' इति ॥६०॥

अन्वयः—सप्तसु, अङ्गेषु, मे, शिवम्, उपपन्नम्, ननु, यस्य, मे, दैवीनाम् मानुषीणाञ्च, आपदाम्, त्वम्, प्रतिहर्ता, असि।

वाच्य०—त्वया, प्रतिहर्त्रा, भूयते।

व्याख्या—सप्तसु = सप्तसंख्यकेषु अङ्गेषु = स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलरूपेषु राज्याङ्गेषु, मे = मम, शिवम् = कल्याणम्, उपपन्नम् = युक्तम्, ननु = निश्चितम्, यस्य = मे, मम दिलीपस्येत्यर्थः, देवेभ्यः = सुरेभ्यः, आगताः प्राप्ताः दैव्यः, तासां दैवीनाम्, दुर्भिक्षादीनाम्, मनुष्येभ्यः = मानवेभ्यः आगताः मानुष्यः तासाम्, मानुषीणाम् = चौर्यादीनाम्, आपदाम् = आपत्तीनाम्, प्रतिहरति इति प्रतिहर्ता = निवारकः, त्वम् = वसिष्ठः, 'असि'।

समा०—देवेभ्यः आगताः दैव्यः, तासाम्, दैवीनाम्। मनुष्येभ्यः आगताः, मानुष्यः, तासाम् मानुषीणाम्। प्रतिहरति इति प्रतिहर्ता।

अभि०—स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलरूपेषु राज्याङ्गेषु मे कुशलमेव, यतः मे दैवीनां मानुषीणां च विपत्तीनां त्वं निवारको विद्यसे।

हिन्दी—मेरे, स्वामी अमात्य सुहृत् कोश राष्ट्र, दुर्ग तथा बल रूप राज्य के सातों अङ्गों में कुशल ही है, क्योंकि मेरी दैवी तथा मानुषी दोनों प्रकार की विपत्तियों के दूर करनेवाले आप स्वयं विद्यमान हैं।

तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः ॥ ६१ ॥

सञ्जीविनी—दूरात्परोक्ष एव प्रशमितारिभिः। मन्त्रान्कृतवान्मन्त्रकृत्। 'सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः' इति क्विप्। तस्य मन्त्रकृतो मन्त्राणां स्रष्टुः प्रयोक्तुर्वा तव मन्त्रैः कर्तृभिः दृष्टं प्रत्यक्षं यल्लक्ष्यं तन्मात्रं भिन्दन्तीति दृष्टलक्ष्यभिदो मे शराः प्रत्यादिश्यन्त इव। वयमेव समर्थाः किमेभिः पिष्टपेषकैरिति निराक्रियन्त इवेत्युत्प्रेक्षा। 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' इत्यमरः। त्वन्मन्त्रसामर्थ्यादेव नः पौरुषं फलतीति भावः।

अन्वयः—**दूरात्, प्रशमितारिभिः, मन्त्रकृतः, तव, मन्त्रैः, दृष्टलक्ष्यभिदः, मे, शराः, प्रत्यादिश्यन्ते, इव।**

वाच्य०—प्रशमितारयः, मन्त्राः, शरान्, प्रत्यादिशन्ति।

व्याख्या—दूरात् = विप्रकृष्टदेशात् परोक्ष इत्यर्थः, प्रकर्षेण शमिताः = शान्ताः इति प्रशमिताः, प्रशमिताः अरयः = शत्रवः, इति प्रशमितारयः तैः तथोक्तैः, मन्त्रान् = जप्यान्, कृतवान् = सृष्टवान्, प्रयुक्तवान्, वा मन्त्रकृत् तस्य मन्त्रकृतः, तव = वसिष्ठस्य, मन्त्रैः = जप्यैः, दृष्टम् = अवलोकितम्, च तत् लक्ष्यम् = शरव्यम् इति दृष्टलक्ष्यम्, दृष्टलक्ष्यं भिन्दति = विदारयन्ति, इति दृष्टलक्ष्यभिदः, मे = मम दिलीपस्य, शराः = बाणाः, प्रत्यादिश्यन्ते = निराक्रियन्ते, इव = यथेत्युत्प्रेक्षा।

समा०—प्रकर्षेण शमिताः इति प्रशमिताः, प्रशमिताः अरयः यैः ते शमितारयः, तैः प्रशमितारिभिः। मन्त्रान्, कृतवान्, इति मन्त्रकृत्, तस्य मन्त्रकृतः। दृष्टम् च तत् लक्ष्यम् इति दृष्टलक्ष्यम्, दृष्टलक्ष्यं भिन्दन्ति इति दृष्टलक्ष्यभिदः।

अभि०---हे गुरो, भवान् स्वमन्त्रप्रयोगैः परोक्ष एव मम शत्रून्विनाशयति। मम बाणास्तु तेषु पिष्टपेषणन्यायेन व्यर्था इव भवन्ति। यतस्ते प्रत्यक्षमेव शत्रून्विनाशयन्ति।

हिन्दी--हे गुरो, आप अपने मन्त्रों के सामर्थ्य से पहले ही परोक्ष में मेरे शत्रुओं का विनाश कर देते हैं, अतः मेरे बाण तो प्रत्यक्ष में ही शत्रुओं का विनाश करने के कारण व्यर्थ से प्रतीत होते हैं ॥६१॥

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम् ॥ ६२ ॥

सञ्जीविनी—हे होतः! त्वया विधिवदग्निष्वावर्जितं प्रक्षिप्तं हविराज्यादिकं कर्तृ। अवग्रहो वर्षप्रतिबन्धः। 'अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे' इत्यप्प्रत्ययः। 'वृष्टिर्वर्षं तद्विघातेऽवग्राहावग्रहौ समौ' इत्यमरः। तेन विशोषिणां विशुष्यतां सस्यानां वृष्टिर्भवति। वृष्टिरूपेण सस्यान्युपजीवयतीति भावः। अत्र मनुः 'अग्नौ दत्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥' इति ॥६२॥

अन्वयः—हे, होतः, त्वया, विधिवत्, अग्निषु, आवर्जितम्, हविः, अवग्रहविशोषिणाम्, सस्यानाम्, वृष्टिः, भवति।

वाच्य०---आवर्जितेन, हविषा, वृष्ट्या, भूयते।

व्याख्या—हे होतः = अग्निहोत्रिन्, त्वया = वसिष्ठेन, विधिवत् = यथाशास्त्रम्, अग्निषु = वह्निषु, आवर्जितम् = तर्पितम्, हविः = हवनीयं द्रव्यम्, अवग्रहणम् = वृष्टिविघातः, एव अवग्रहः, अवग्रहेण विशोषिणः इति अवग्रहविशोषिणः, तेषाम् अवग्रहविशोषिणाम्, सस्यानाम् = धान्यानाम्, वृष्टिः = वर्षणम् भवति = जायते।

समा०—अवग्रहेण विशोषिणः इति अवग्रहविशोषिणः, तेषाम् अवग्रहविशोषिणाम्।

अभि०—हे हवनकर्तः, यत्त्वमग्नौ विधिवज्जुहोषि तदेव वृष्टिप्रतिबन्धविनाशकं सस्यानां कृते वृष्टिरूपं जायते।

हिन्दी—हे हवन करने वाले, गुरो! आप जो विधिपूर्वक अग्नि में आहुति डालते हैं वह ही धानों के लिये अकाल को दूर करनेवाली वृष्टिरूप हो जाती है ॥

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः ।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम् ॥ ६३ ॥

सञ्जीविनी—आयुर्जीवितकालः। पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम् । वर्षशतमित्यर्थः। "शतायुर्वै पुरुषः' इति श्रुतेः । 'अचतुरविचतुरसुचतुर०' इत्यादिसूत्रेणाच्प्रत्ययान्तो निपातः । मदीयाः प्रजाः पुरुषायुषं जीवन्तीति पुरुषायुषजीविन्यः । निरातङ्का निर्भयाः। 'आतङ्को भयमाशङ्का' इति हलायुधः । निरीतयोऽतिवृष्ट्यादिरहिता इति यत्तस्य सर्वस्य त्वद्ब्रह्मवर्चसं तत्र व्रताध्ययनसंपत्तिरेव हेतुः । 'व्रताध्ययनसंपत्तिरित्येतद्ब्रह्मवर्चसम्' इति हलायुधः । ब्रह्मणो वर्चो ब्रह्मवर्चसम् । 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः' इत्यच्प्रत्ययः । 'अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषिकाः शलभाः शुकाः । अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥' इति कामन्दकः ॥६३॥

अन्वयः—मदीयाः, प्रजाः, पुरुषायुषजीविन्यः, निरातङ्काः, निरीतयः, यत् 'सन्ति' तस्य, त्वद्ब्रह्मवर्चसम्, 'एव', हेतुः ।

वाच्य०—मदीयाभिः, प्रजाभिः पुरुषायुषजीविनीभिः निरातङ्काभिः निरीतिभिः, 'यत् भूयते' तस्य, त्वद्ब्रह्मवर्चसेन, एव हेतुना, 'भूयते' ।

व्याख्या—मम = दिलीपस्य, इमाः = संबन्धिन्यः, इति, मदीयाः, प्रकर्षेण जायन्ते = भवन्ति, इति, प्रजाः = जनाः, पुरुषस्य = मनुष्यस्य, आयुः = वयः, इति पुरुषायुषम् पुरुषायुषं जीवितुं = प्राणान् धारयितुं शीलं यासां ताः, पुरुषायुषजीविन्यः, निर्गतः = विर्यातः, आतङ्कः = भयं याभ्यः, ताः, निर्गताः = निष्क्रान्ताः ईतिभ्यः = अतिवृष्ट्यादिषडुपद्रवेभ्यः, इति निरीतयः, 'यत् सन्ति', तस्य = सर्वस्य, ब्रह्मणः = व्रताध्ययनादेः, वर्चः = संपत्तिः, ब्रह्मवर्चसम्, तव = वशिष्ठस्य ब्रह्मवर्चसम् त्वद्ब्रह्मवर्चसम्, हेतुः = कारणम्, 'अस्ति' ।

समा०—मम इमाः मदीयाः । प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः । पुरुषस्य आयुः इति पुरुषायुषम् । पुरुषायुषं जीवितुं शीलं यासां ताः पुरुषायुषजीविन्यः । निर्गतः आतङ्कः याभ्यः ताः निरातङ्काः । निर्गताः ईतिभ्यः इति निरीतयः । ब्रह्मणः वर्चः इति ब्रह्मवर्चसम्, तव ब्रह्मवर्चसम् इति त्वद्ब्रह्मवर्चसम् ।

अभि०—हे गुरो ! यत् मदीयाः प्रजाः शतवर्षजीविन्यः, निर्भयाः अतिवृष्ट्याद्युपद्रव शून्याश्च सन्ति तत्र तवैव व्रताध्ययनसंपत्तिर्हेतुर्नान्यः ।

हिन्दी—हे गुरो ! मेरा प्रजावर्ग जो सौ वरस तक जीनेवाला, निर्भय एवं अतिवृष्टि आदि उपद्रवों से रहित है, उसमें आपका व्रत, वेदपाठ आदि ही कारण है ॥६३॥

त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना ।
सानुबन्धाः कथं न स्युः संपदो मे निरापदः ॥ ६४ ॥

सञ्जीविनी—ब्रह्मा योनिः कारणं यस्य तेन ब्रह्मपुत्रेण गुरुणा त्वयैवमुक्तप्रकारेण चिन्त्यमानस्यानुध्यायमानस्य । अतएव निरापदो व्यसनहीनस्य मे सम्पदः सानुबन्धाः सानुस्यूतयः । अविच्छिन्ना इति यावत् । कथं न स्युः । स्युरेवेत्यर्थः ॥

अन्वयः—ब्रह्मयोनिना, गुरुणा, त्वया, एवम्, चिन्त्यमानस्य, 'अत एव' निरापदः, मे, सम्पदः, सानुबन्धाः, कथम्, न, स्युः ।

वाच्य०—सम्पद्भिः, सानुबन्धाभिः कथम् न भूयेत ।

व्याख्या—ब्रह्मा = विधाता, योनिः = कारणम्, यस्य स ब्रह्मयोनिः, तेन ब्रह्मयोनिना, गुरुणा = आचार्येण, त्वया = वशिष्ठेन, एवम् = इत्थम्, चिन्त्यते = विचार्यते, इति चिन्त्यमानः, तस्य चिन्त्यमानस्य 'अत एव' निष्क्रान्तः = निर्गतः, आपद्भ्यः = विपत्तिभ्यः, इति निरापद् तस्य निरापदः, मे = मम, दिलीपस्य, सम्पदः = सम्पत्तयः, अनुबन्धैः = प्रकृतानुवर्तनैः, सह वर्तमानाः सानुबन्धाः, अविच्छिन्ना इत्यर्थः, कथम् = केन प्रकारेण, न = नैव, स्युः = भवेयुः, अपितु स्युरेव ।

समा०—ब्रह्मा योनिः यस्य सः ब्रह्मयोनिः, तेन, ब्रह्मयोनिना । चिन्त्यते इति चिन्त्यमानः तस्य चिन्त्यमानस्य । निर्गतः आपद्भ्यः इति निरापद् तस्य, निरापदः । अनुबन्धैः सह वर्तमानाः सानुबन्धाः ।

अभि०—हे गुरो ! ब्रह्मपुत्र ! यदा भवान् मामेवं स्मरति तदा मे संपत्तयोऽविच्छिन्नाः कथं न स्युः ?

हिन्दी—हे ब्रह्मपुत्र, जब कि इस प्रकार आप मेरा स्मरण करते हैं तो मेरी सम्पत्तियाँ सर्वदा स्थिर क्यों न रहेंगी ॥६४॥

किंतु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम् ।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी ॥ ६५ ॥

सञ्जीविनी—किंतु तवैतस्यां वध्वां स्नुषायाम् । 'वधूर्जाया स्नुषा चैव' इत्यमरः । अदृष्टा सदृश्यनुरूपा प्रजा येन तं मां सद्वीपापि । रत्नानि सूयत इति

रत्नसूरपि । 'सत्सूद्विष०' इत्यादिना क्विप् । मेदिनी नावति न प्रीणाति । अव-धातू रक्षणगतिप्रीत्याद्यर्थेषूपदेशादत्र प्रीणने । रत्नसूरपीत्यनेन सर्वरत्नेभ्यः पुत्र-रत्नमेव श्लाघ्यमिति सूचितम् ॥६५॥

अन्वयः—किंतु, तव, एतस्याम्, वध्वाम्, अदृष्टसदृशप्रजम्, माम्, सद्वीपा, रत्नसूः, अपि, मेदिनी, न, अवति ।

वाच्य०—अदृष्टसदृशप्रजः अहम् सद्वीपया रत्नसुवा अपि मेदिन्या, अव्ये ।

व्याख्या—किन्तु = तथात्वेऽपि, तव = वसिष्ठस्य, एतस्याम् = अमुष्याम्, वध्वाम् = स्नुषायाम्, प्रकर्षेण जायत इति प्रजा = संततिः, न दृष्टा = आलोकिता, इति अदृष्टा, अदृष्टा सदृशी = तुल्या,प्रजा येन स अदृष्टसदृशप्रजः,तम् अदृष्टसदृश-प्रजम्, माम् = दिलीपम्, द्वीपैः = भूखण्डविशेषैः सह वर्तमाना सद्वीपा, रत्नानि = हीरकादीनि, सूयते = उत्पादयति, इति रत्नसूः, अपि, मेदिनी = पृथ्वी, न = नैव, अवति = प्रीणाति ।

समा०—न दृष्टा अदृष्टा, अदृष्टा सदृशी प्रजा येन सः अदृष्टसदृशप्रजः, तम् अदृष्टसदृशप्रजम् । द्वीपैः सह, वर्तमाना सद्वीपा । रत्नानि सूयते, या सा रत्नसूः ।

अभि०—हे गुरो ! भवत्कृपयाऽविच्छिन्नसंपत्तिमत्त्वेऽपि मम सुदक्षिणायां पुत्राभावेन अखण्डमपि साम्राज्यं न संतोषाय भवति ।

हिन्दी—हे गुरो ! यद्यपि आप की कृपा से मेरी समस्त सम्पत्तियाँ अवि-च्छिन्न हैं तथापि आपकी इस शिष्य-वधू सुदक्षिणा से स्वसदृश पुत्र न पाकर समस्त रत्नों को उत्पन्न करने वाली भी यह पृथ्वी मुझे संतुष्ट नहीं करती है ॥

तदेव प्रतिपादयति—

नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः ।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः ॥ ६६ ॥

सञ्जीविनी—मत्तः परं मदनन्तरम् 'पञ्चम्यास्तसिल्' पिण्डविच्छेददर्शिनः पिण्डदानविच्छेदमुत्प्रेक्षमाणाः । वंशोद्भवा वंश्याः पितरः । स्वधेत्यव्ययं पितृभोज्ये वर्तते । तस्याः संग्रहे तत्परा आसक्ताः सन्तः श्राद्धे पितृकर्मणि । 'पितृदानं निवापः स्याच्छ्राद्धं तत्कर्म शास्त्रतः' इत्यमरः । प्रकामभुजः पर्याप्तभोजिनो न भवन्ति नूनं सत्यम् । 'कामं प्रकामं पर्याप्तम्' इत्यमरः । निर्धना ह्यापद्धनं कियदपि संगृह्णन्तीति भावः ॥६६॥

अन्वयः—मत्तः, परम्, पिण्डविच्छेददर्शिनः, वंश्याः, स्वधासंग्रहतत्पराः, 'सन्तः', श्राद्धे, प्रकामभुजः, नूनम्, न, 'भवन्ति'।

वाच्य०—पिण्डविच्छेददर्शिभिः वंश्यैः स्वधासंग्रहतत्परैः न प्रकामभुग्भिः भूयते।

व्याख्या—मत्तः = मत्सकाशात्, परम् = अनन्तरम्, पिण्डस्य, विच्छेदः = ध्वंसः इति पिण्डविच्छेदः, पिण्डविच्छेदं द्रष्टुम् = अवलोकितुं शीलं येषान्ते पिण्ड-विच्छेददर्शिनः, वंशे = कुले भवा वंश्याः, पितर इत्यर्थः। स्वधायाः = पितृभोज्यस्य, सङ्ग्रहः = आदानम्, इति स्वधासङ्ग्रहः स्वधासंग्रहे तत्पराः = लग्नाः इति स्व-धासंग्रहतत्पराः, 'सन्त' श्राद्धे = पितृकार्ये, प्रकामम् = अत्यन्तं पर्याप्तमित्यर्थः। भुंजन्ति = खादन्ति इति प्रकामभुजः, नूनम् = निश्चयेन, न 'भवन्ति'।

समा०—पिण्डस्य विच्छेदः पिण्डविच्छेदः, पिण्डविच्छेदं द्रष्टुं शीलं येषां ते पिण्डविच्छेददर्शिनः। वंशे भवाः वंश्याः। स्वधायाः संग्रहः इति स्वधासंग्रहः, तस्मिन् तत्पराः स्वधासंग्रहतत्पराः। प्रकामम् भुञ्जन्ति इति प्रकामभुजः।

अभि०—पुत्राभावान्मदनन्तरं पिण्डविच्छेदं विचारयन्तो मत्पितरः स्वधासंग्रह-संलग्नाः पर्याप्तं न खादन्ति।

हिन्दी—मेरे अनन्तर पुत्र के अभाव में पिण्ड के लोप का विचार करके मेरे पूर्वज श्राद्धके अवसर पर अवश्य ही तृप्त होकर भोजन नहीं करते होंगे।६६।

मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया।
पयः पूर्वैः स्वनिश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते ॥ ६७ ॥

सञ्जीविनी—मत्परं मदनन्तरम्। 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदा-जाहियुक्ते' इत्यनेन पञ्चमी। दुर्लभं दुर्लभ्यं मत्वा मयावर्जितं मद्दत्तं पयः पूर्वैः पितृभिः स्वनिःश्वासैर्दुःखजैः कवोष्णमीषदुष्णं यथा तथोपभुज्यते। नूनमिति तर्के। कवोष्णमिति कुशब्दस्य कवादेशः। 'कोष्णं कवोष्णं मंदोष्णं कदुष्णं त्रिषु तद्वति' इत्यमरः ॥६७॥

अन्वयः—मत्परम्, दुर्लभम्, मत्वा, 'इदानीम्' मया, आवर्जितम्, पयः, पूर्वैः स्वनिश्वासैः कवोष्णम्, 'यथा तथा', उपभुज्यते, नूनम्।

वाच्य०—पूर्वे, कवोष्णम्, उपभुञ्जते।

व्याख्या—मत्तः = मत्सकाशात्, परम् = अग्रे, दुर्लभम् = दुष्प्रापम्, मत्वा = ज्ञात्वा, 'इदानीम्', मया = दिलीपेन, आवर्जितम् = दत्तम्, पयः = जलम्, पूर्वैः = पूर्वजैः, स्वस्य = आत्मनः, निःश्वासाः = मुखमारुताः, इति स्वनिःश्वासाः तैः स्वनिश्वासैः, कवोष्णम् = ईषदुष्णम्, यथा तथा, उपभुज्यते = पीयते, नूनम् = निश्चयेन।

समा०—मत्तः परम् इति मत्परम्। स्वस्य निश्वासाः इति स्वनिश्वासाः, तैः स्वनिश्वासैः।

अभि०—मदनन्तरं पुत्राभावादिदानीं मद्दत्तं वारि पितृजनैर्निजदुःखनिश्वासैरीषदुष्णीकृतं पीयतेऽत्र न सन्देहः।

हिन्दी—मेरे पश्चात् पुत्र के न होने से आज-कल मेरे दिये जल को मेरे पितृजन अपने दुःख के श्वासों से कुछ गर्म करके पीते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ६७॥

सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः॥ ६८॥

सञ्जीविनी—इज्या यागः। 'व्रजयजोर्भावे क्यप्' इति क्यप्प्रत्ययः। तया विशुद्धात्मा विशुद्धचेतनः। प्रजालोपेन संतत्यभावेन निमीलितः कृतनिमीलनः सोऽहम्। लोक्यत इति लोकः। नलोक्यत इत्यलोकः लोकश्चालोकश्चासौ इति, लोकश्चासावलोकश्चेति वा 'लोकालोकश्चक्रवालः' इत्यमरः। प्रकाशत इति प्रकाशश्च देवर्णविमोचनात्। न प्रकाशत इत्यप्रकाशश्च पितृणामृणाविमोचनात्। पचाद्यच्। अस्मीति शेषः। लोकालोकोऽप्यन्तः सूर्यसंपर्काद्बहिस्तमोव्याप्त्या च प्रकाशश्चाप्रकाशश्चेति मन्तव्यम्॥६८॥

अन्वयः—इज्याविशुद्धात्मा, प्रजालोपनिमीलितः, अहम्, लोकालोकः, अचलः, इव, प्रकाशः, अप्रकाशः, च, अस्मि।

वाच्य०—इज्याविशुद्धात्मना, प्रजालोपनिमीलितेन, 'मया' लोकालोकेन, अचलेन, प्रकाशेन, अप्रकाशेन, च, भूयते।

व्याख्या—इज्या = यज्ञकरणम्, इज्यया विशुद्धः = पूतः, आत्मा = स्वम्, यस्य सः, इज्याविशुद्धात्मा, प्रकर्षेण जायते = भवति, इति प्रजा = संततिः, प्रजायाः लोपः = अभावः इति प्रजालोपः, प्रजालोपेन निमीलितः = कृतनिमीलनः, इति प्रजालोपनिमीलितः, अहम् = दिलीपः, लोक्यते = दृश्यते, इति लोकः, न लोक्यते

=दृश्यत इति, अलोकः, लोकश्चासावलोकश्च इति लोकालोकः, अचलः=पर्वतः, इव=यथा, प्रकाशते=द्योतते इति प्रकाशः देवर्णविमोचनात्, न प्रकाशते इत्यप्रकाशः पितृऋणविमोचनाभावात्, च=तथा, अस्मि=भवामि ।

समा०—इज्यया विशुद्धः आत्मा यस्य सः इज्याविशुद्धात्मा । प्रजायाः लोपः प्रजालोपः तेन निमीलितः इति प्रजालोपनिमीलितः । लोक्यते, इति लोकः, न लोक्यते इति अलोकः, लोकश्चासावलोकश्च इति लोकालोकः । प्रकाशते इति प्रकाशः । न प्रकाशते इति अप्रकाशः ।

अभि०—यज्ञादिना देवर्णविमोचनात्प्रसन्नचेतास्तथा पुत्राभावेन पितृऋणाविमोचनान्मलिनचेताश्चाहं लोकालोकपर्वत इव भवामि ।

हिन्दी—यज्ञ आदि से मैं देवऋण से मुक्त होने के कारण प्रसन्नचित्त, तथा पुत्र के अभाव से पितृऋण से मुक्त न होने के कारण मलिनचित्त हूँ, अतः मेरी स्थिति लोकालोक पर्वत के समान है, जिसके एक ओर प्रकाश तथा दूसरी ओर अँधेरा रहता है ॥६८॥

ननु तपोदानादिसंपन्नस्य किमपत्यैरित्याह—

> लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् ।
> संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥६९॥

सञ्जीविनी—समुद्भवत्यस्मादिति समुद्भवः कारणम् । तपोदाने समुद्भवो यस्य तत्तपोदानसमुद्भवं यत्पुण्यं तल्लोकान्तरे परलोके सुखं सुखकरम् । शुद्धवंशे भवा शुद्धवंश्या संततिर्हि परत्र परलोके, इह च लोके शर्मणे सुखाय । 'शर्मशातसुखानि च' इत्यमरः । भवतीति शेषः ॥६९॥

अन्वयः—तपोदानसमुद्भवम्, पुण्यम्, लोकान्तरसुखम्, 'भवति' । हि शुद्धवंश्या, सन्ततिः, इह, परत्र, च, शर्मणे, भवति ।

वाच्य०—तपोदानसमुद्भवेन, पुण्येन, लोकान्तरसुखेन, 'भूयते', शुद्धवंश्यया, सन्तत्या, शर्मणे, भूयते ।

व्याख्या—तपः=तपश्चर्या कृच्छ्रचान्द्रायणव्रतादीत्यर्थः,तच्च, दानम्=त्यागः च तपोदाने, समुद्भवति=उत्पद्यतेऽस्मादिति समुद्भवः, तपोदाने समुद्भवो यस्य तत् तपोदानसमुद्भवम्, पुण्यम्=सुकृतम्, अन्यः=अपरः, लोकः=भुवनम्, इति लोकान्तरम्, लोकान्तरे, सुखम्=सुखकरम् इति लोकान्तरसुखम्, 'भवति', हि=

यतः, शुद्धः = पवित्रः च असौ वंशः = कुलम् इति शुद्धवंशः, शुद्धवंशे भवा-शुद्धवंश्या सुवंशोत्पन्नेत्यर्थः, सन्ततिः = प्रजा, परत्र = परलोके, इह = अस्मिँल्लोके च शर्मणे = कल्याणाय, भवति।

समा०—तपश्च तत् दानञ्च इति तपोदाने, तपोदाने समुद्भवो यस्य तत् तपोदानसमुद्भवम्। अन्यः लोकः इति लोकान्तरम्, लोकान्तरे सुखम् इति लोकान्तरसुखम्। शुद्धश्चासौ वंशः इति शुद्धवंशः तस्मिन् भवा इति शुद्धवंश्या।

अभि०—यत्पुण्यं तपसा दानेन च सम्पद्यते तत्केवलं परलोकसुखावहमेव भवति किन्तु शुद्धवंशोत्पन्नः पुत्रस्तु परलोकेऽस्मिँल्लोके च सुखावहो भवति।

हिन्दी—जो पुण्य तप अथवा दान से उत्पन्न होता है वह केवल परलोक में ही सुख देता है, किन्तु शुद्ध वंश में उत्पन्न पुत्र तो इस लोक में तथा परलोक में भी सुख पहुँचाता है ॥६९॥

तया हीनं विधातर्मां कथं पश्यन्न दूयसे।
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्वन्ध्यमाश्रमवृक्षकम् ॥७०॥

सञ्जीविनी—हे विधातः! स्रष्टः! तया संतत्या हीनमनपत्यं माम्। स्नेहात्प्रेम्णा स्वयमेव सिक्तं जलसेकेन वर्धितं वन्ध्यमफलम्। 'वन्ध्योऽफलोऽवकेशी च' इत्यमरः। आश्रमस्य वृक्षकं वृक्षपोतमिव पश्यन्कथं न दूयसे न परितप्यसे। विधातरित्यनेन समर्थोऽप्युपेक्षस इति गम्यते ॥७०॥

अन्वयः—**हे विधातः, तया, हीनम्, माम्, स्नेहात्, स्वयम्, एव, सिक्तम्, वन्ध्यम्, आश्रमवृक्षकम्, इव, पश्यन्, कथम्, न, दूयसे।**

वाच्य०—पश्यता, त्वया, कथम्, न, दूयते।

व्याख्या—हे विधातः = स्रष्टः, तया = सन्तत्या, हीनम् = रहितम्, माम् = दिलीपम्, स्नेहात् = प्रेम्णा, स्वयम् = आत्मना, एव = निश्चयेन, सिक्तम् = जलसेकेन वर्धितम्, वन्ध्यम् = निष्फलम्, ह्रस्वः, वृक्षः, वृक्षकः = तरुपोतः, आश्रमस्य = मुन्यावासस्य वृक्षकः इति आश्रमवृक्षकः तम् आश्रमवृक्षकम्, इव = यथा, पश्यन् = अवलोकयन्, कथम् = केन प्रकारेण, न = नहि, दूयसे = परितप्यसे।

समा०—ह्रस्वः वृक्षः वृक्षकः, आश्रमस्य वृक्षकः इति आश्रमवृक्षकः तम् आश्रमवृक्षकम्।

अभि०—हे विधातः, यथा जलसेकेन संवर्धितो वृक्षः फलरहितश्चेत्स्यात्तर्हि शोचनीयो भवति तथैव स्वकृपासंवर्धितमपि मां पुत्रहीनं दृष्ट्वा भवान् कथं न दुःखी भवति ?

हिन्दी—हे गुरो—जिस प्रकार जल से सींचकर बढ़ाये हुए वृक्ष को फलशून्य देखकर दुःखी होना उचित है उसी प्रकार स्वयं स्नेह पूर्वक बढ़ाये हुए मुझको भी पुत्र रहित देखकर आप दुःखी क्यों नहीं होते ? ॥७०॥

असह्यपीडं भगवन्नृणमन्त्यमवेहि मे ।
अरुन्तुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः ॥७१॥

सञ्जीविनी—हे भगवन् ! ममान्त्यमृणं पैतृकमृणम् । अनिर्वाणस्य मज्जनरहितस्य । 'निर्वाणं निर्वृतौ मोक्षे विनाशे गजमज्जने' इति यादवः । दन्तिनो गजस्य । अरुर्मर्म तुदतीत्यरुंतुदं मर्मस्पृक् । 'व्रणोऽस्त्रियामीर्ममरुः' इति, 'अरुंतुदं तु मर्मस्पृक्' इति, चामरः । 'विध्वरुषोस्तुदः' इति खश्प्रत्ययः । 'अरुर्द्विषत्—' इत्यादिना मुमागमः । आलानं बन्धनस्तम्भमिव । 'आलानं बन्धनस्तम्भे' इत्यमरः । असह्या सोढुमशक्या पीडा दुःखं यस्मिंस्तदवेहि । दुःसहदुःखजनकं विद्धीत्यर्थः । 'निर्वाणोत्थानशयनानि त्रीणि गजकर्माणि' इति पालकाप्ये । 'ऋणं देवस्य यागेन ऋषीणां दानकर्मणा । संतत्या पितृलोकानां शोधयित्वा परिव्रजेत्' ॥७१॥

अन्वयः—हे भगवन्, मे, अन्त्यम्, ऋणम्, अनिर्वाणस्य, दन्तिनः, अरुन्तुदम्, आलानम्, इव, असह्यपीडम्, अवेहि ।

वाच्य०—त्वया, अवेयताम् ।

व्याख्या—हे भगवन् = षडैश्वर्यशालिन्, मे = मम दिलीपस्य, अन्ते = अवसाने भवम् अन्त्यम्, ऋणम् = पैतृकमृणम्, न विद्यते निर्वाणम् = गजमज्जनं यस्य सः, अनिर्वाणः, तस्य अनिर्वाणस्य, दन्तिनः = गजस्य, अरुः = मर्मस्थानम्, तुदति = पीडयति इति अरुन्तुदम्, तत् आलानम् = गजबन्धनस्तम्भम्, इव = यथा, सोढुम् = सहनं कर्तुं योग्या सह्या न सह्या असह्या असह्या, पीडा व्यथा यस्मिंस्तत् असह्यपीडम् तत्तथोक्तम् अवेहि = विद्धि ।

समा०—अन्ते भवम् अन्त्यम् । न विद्यते निर्वाणं यस्य सः अनिर्वाणः, तस्य अनिर्वाणस्य । अरुः तुदति इति अरुन्तुदम् । सोढुं योग्या सह्या न सह्या असह्या असह्या, पीडा यस्मिन् तद् असह्यपीडम् ।

अभि०—हे भगवन्, ममेदानीं पैतृकमृणं तथा सोढुमशक्यं वर्तते यथा स्नानक्रियाशून्यस्य गजस्य मर्मव्यथाजनको बन्धनस्तम्भः ।

हिन्दी—हे भगवन्, इस समय मुझे पैतृक ऋण इस प्रकार कष्ट पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि स्नान-क्रिया न होने से हाथी को उसके बन्धन का खूंटा ।।७१।।

तस्मान्मुच्ये यथा तात संविधातुं तथार्हसि ।
इक्ष्वाकूणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः ।।७२।।

सञ्जीविनी—हे तात ! तस्मात्पैतृकादृणाद्यथा मुच्ये मुक्तो भवामि । कर्मणि लट् । तथा संविधातुं कर्तुमर्हसि । हि यस्मात्कारणादिक्ष्वाकूणामिक्ष्वाकुवंश्यानाम् । तद्राजत्वाद्बहुष्वणो लुक् । दुरापे दुष्प्राप्येऽर्थे । सिद्धयस्त्वदधीनास्त्वदायत्ताः । इक्ष्वाकूणामिति शेषे षष्ठी । 'न लोक—' इत्यादिना कृद्योगे षष्ठीनिषेधात् ।।७२।।

अन्वयः—हे तात, तस्मात्, यथा, मुच्ये, तथा, संविधातुम्, 'त्वम्' अर्हसि, हि, इक्ष्वाकूणाम्, दुरापे, अर्थे, सिद्धयः, त्वदधीनाः ।

वाच्य०—मया मुच्यते, त्वया अर्ह्यते, सिद्धिभिः त्वदधीनाभिः भूयते ।

व्याख्या—हे तात=पितः, तस्मात्=पैतृकादृणात्, यथा=येन प्रकारेण, मुच्ये=मुक्तो भवामि, तथा=तेन प्रकारेण, संविधातुम्=कर्तुम्, अर्हसि=योग्यो भवसि, हि=यतः, इक्ष्वाकूणाम्=इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां नृपाणाम्, दुरापे=दुष्प्रापे, अर्थे=प्रयोजने, सिद्धयः=कार्यसाफल्यानि, तव=वसिष्ठस्य, अधीनाः=आयत्ताः, इति त्वदधीनाः ।

समा०—दुःखेन आप्यते यः सः दुरापः तस्मिन् दुरापे । तव अधीनाः इति त्वदधीनाः ।

अभि०—हे गुरो ! तस्माद्यथाहं पैतृकादृणान्मुक्तो भवामि तथोपायं कुरु, यतः इक्ष्वाकुवंशीयानां राज्ञां दुष्कराणामपि कार्याणां सिद्धयस्त्वदायत्ताः सन्ति ।

हिन्दी—हे गुरो, इसलिये जिससे कि मैं पितृऋण से उन्मुक्त हो सकूं ऐसा उपाय कीजिये, क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के कठिन कार्यों की सिद्धि आपके ही आधीन है ।।७२।।

इति विज्ञापितो राज्ञा ध्यानस्तिमितलोचनः ।
क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः ।। ७३ ।।

सञ्जीविनी—इति राज्ञा विज्ञापित ऋषिर्ध्यानेन स्तिमिते लोचने यस्य ध्यानस्तिमितलोचनो निश्चलाक्षः सन्क्षणमात्रं सुप्तमीनो ह्रद इव तस्थौ ॥७३॥

अन्वयः—इति, राज्ञा, विज्ञापितः, ऋषिः, ध्यानस्तिमितलोचनः, 'सन्' क्षणमात्रम्, सुप्तमीनः, ह्रदः, इव, तस्थौ ।

वाच्य०—विज्ञापितेन, ऋषिणा, ध्यानस्तिमितलोचनेन, सता, सुप्तमीनेन, ह्रदेन, इव तस्थे ।

व्याख्या—इति = एवम्, राज्ञा = नृपेण, दिलीपेन, विज्ञापितः = निवेदितः, ऋषिः = मुनिर्वसिष्ठः, ध्यानेन = चिन्तनेन, स्तिमिते = निश्चले, लोचने = नेत्रे यस्य सः, ध्यानस्तिमितलोचनः, सन् क्षणमेव क्षणमात्रं = क्षणरूपकालविशेषपर्यन्तम्, सुप्ताः = निद्रिताः, मीनाः = मत्स्याः यस्य सः सुप्तमीनः, ह्रदः = सरः, इव = यथा, तस्थौ = स्थितवान् ।

समा०—ध्यानेन स्तिमिते लोचने यस्य सः, ध्यानस्तिमितलोचनः । सुप्ताः मीनाः यस्य स सुप्तमीनः ।

अभि०—दिलीपप्रार्थनानन्तरं तत्कारणं ज्ञातुं वसिष्ठो नेत्रनिमीलनेन समाधौ तथा क्षणमात्रं निश्चलो बभूव यथा सुप्तमीनतया निस्तरङ्गः सरोवरः ।

हिन्दी—दिलीप की प्रार्थना के अनन्तर पुत्राभाव का कारण जानने के लिये महर्षि वसिष्ठ, मछलियों के सो जाने से तरङ्गरहित तालाब के समान क्षणमात्र निश्चल होकर समाधिस्थ हो गये ॥७३॥

सोऽपश्यत्प्रणिधानेन सन्ततेः स्तम्भकारणम् ।
भावितात्मा भुवो भर्तुरथैनं प्रत्यबोधयत् ॥ ७४ ॥

सञ्जीविनी—स मुनिः प्रणिधानेन चित्तैकाग्र्येण भावितात्मा शुद्धान्तःकरणो भुवो भर्तुर्यस्य संततेः स्तम्भकारणं संतानप्रतिबन्धकारणमपश्यत् । अथानन्तरमेनं नृपं प्रत्यबोधयत् । स्वदृष्टं ज्ञापितवानित्यर्थः । एनमिति 'गतिबुद्धि—' इत्यादिनाणि कर्तुः कर्मत्वम् ॥७४॥

अन्वयः—प्रणिधानेन, भावितात्मा, सः, भुवः, भर्तुः, सन्ततेः, स्तम्भकारणम्, अपश्यत्, अथ, एनम्, प्रत्यबोधयत् ।

वाच्य०—भावितात्मना अदृश्यत, एषः प्रत्यबोध्यत ।

व्याख्या—प्रणिधानेन = समाधिना, भावितः = शुद्धः, आत्मा = अन्तःकरणम्, यस्य सः, भावितात्मा, सः = महर्षिर्वसिष्ठः, भुवः = भूमेः, भर्तुः = स्वामिनः, दिलीपस्य सन्ततेः = सन्तानस्य, स्तम्भस्य = प्रतिबन्धस्य, कारणम् = हेतुः, इति स्तम्भकारणं तत्, अपश्यत् = अवालोकयत्, अथ = अनन्तरम् , एनम् = अमुम्, दिलीपम्, प्रत्यबोधयत् = ज्ञापितवान् ।

समा०—भावितः आत्मा यस्य सः भावितात्मा । स्तम्भस्य कारणम् इति स्तम्भकारणम् तत् ।

अभि०—वसिष्ठः समाधिना दिलीपस्य सन्तानाभावरूपं कारणं ज्ञात्वा दिलीपायावोचत् ।

हिन्दी—महर्षि वसिष्ठ समाधि के द्वारा दिलीप के सन्तान न होने के कारण को जान गये और दिलीप को भी बतला दिया ।

पुरा शक्रमुपस्थाय तवोर्वीं प्रति यास्यतः ।
आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि ॥ ७५ ॥

सञ्जीविनी—पुरा पूर्वं शक्रमिन्द्रमुपस्थाय संसेव्योर्वीं प्रति भुवमुद्दिश्य यास्यतो गमिष्यतस्तव पथि कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः कामधेनुरासीत् । तत्र स्थितेत्यर्थः ॥७५॥

अन्वयः—पुरा, शक्रम्, उपस्थाय, उर्वीम्, प्रति, यास्यतः, तव, पथि, कल्पतरुच्छायाम्, आश्रिता, सुरभिः, आसीत् ।

वाच्य०—आश्रितया, सुरभ्या, अभूयत ।

व्याख्या—पुरा = पूर्वम्, शक्रम् = इन्द्रम्, उपस्थाय = संसेव्य, उर्वीम् = पृथ्वीम्, प्रति = उद्दिश्य, यास्यति = गमिष्यति, इति यास्यन्, तस्य यास्यतः तव = दिलीपस्य, पथि = मार्गे, कल्पतरोः = कल्पवृक्षस्य, छाया = अनातपः, इति कल्पतरुच्छाया ताम् कल्पतरुच्छायाम्, आश्रिता = उपविष्टा, सुरभिः = कामधेनुः, आसीत् = अभूत् ।

समा०—यास्यति इति यास्यन् तस्य यास्यतः । कल्पतरोः छाया इति कल्पतरुच्छाया ताम् कल्पतरुच्छायाम् ।

अभि०—पुरा कदाचित्त्वं शक्रभवनान्मर्त्यलोकमागच्छन्नासीः, मार्गे च कल्पवृक्षस्याधः कामधेनुः स्थितासीत् ।

हिन्दी— हे राजन्, पहले एक समय तुम्हारे इन्द्र-भवन से भूलोक आते समय मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी ॥७५॥

धर्मलोपभयाद्राज्ञीमृतुस्नातामिमां स्मरन् ।
प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः ॥ ७६ ॥

सञ्जीविनी—ऋतुः पुष्पम् । रज इति यावत् । 'ऋतुः स्त्रीकुसुमेऽपि च' इत्यमरः । ऋतुना निमित्तेन स्नातामिमां राज्ञीं सुदक्षिणां धर्मस्यर्त्वभिगमनलक्षणस्य लोपाद् भ्रंशाद्यद् भयं तस्मात्स्मरन्ध्यायन् । 'मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् । प्रदक्षिणानि कुर्वीत विज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥' इतिशास्त्रात्प्रदक्षिणक्रियार्हायां प्रदक्षिणकरणयोग्यायां तस्यां धेन्वां त्वं साधु प्रदक्षिणादिसत्कारं नाचरो नाचरितवानसि । व्यासक्ता हि विस्मरन्तीति भावः । ऋतुकालाभिगमने मनुः—ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा' इति । अकरणे दोषमाह पराशरः—'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां स्वस्थः सन्नोपसर्पति । बालगोघ्नापराधेन विध्यते नात्र संशयः ॥' इति ॥७६॥

अन्वयः—ऋतुस्नाताम्, इमाम्, राज्ञीम्, धर्मलोपभयात्, स्मरन्, प्रदक्षिणक्रियार्हायाम्, तस्याम्, त्वम्, साधु, न, आचरः ।

वाच्य०—स्मरता, त्वया, न, आचर्यत ।

व्याख्या—ऋतुना = रजसा, निमित्तेन स्नाता = कृतस्नाना, इति ऋतुस्नाता, ताम् ऋतुस्नाताम्, इमाम् = पुरोवर्तिनीम्, राज्ञीम् = महिषीं सुदक्षिणाम्, धर्मस्य = सुकृतस्य, लोपः = भ्रंशः, इति धर्मलोपः, धर्मलोपात् भयम् = भीतिः, इति धर्मलोपभयम् तस्मात् धर्मलोपभयात्, स्मरन् = अनुध्यायन्, प्रदक्षिणस्य = परिक्रमायाः, क्रिया = कर्म, इति प्रदक्षिणक्रिया, अर्हति = योग्या भवति, इति अर्हा प्रदक्षिणक्रियायाम् अर्हा इति प्रदक्षिणक्रियार्हा तस्याम् प्रदक्षिणक्रियार्हायाम्, तस्याम् कामधेन्वाम्, त्वम् = दिलीपः, साधु = प्रदक्षिणादिसत्कारम्, न = नहि, आचरः = कृतवान् ।

समा०—ऋतुना स्नाता इति ऋतुस्नाता ताम् ऋतुस्नाताम् । धर्मस्य लोपः इति धर्मलोपः तस्मात् भयम् इति धर्मलोपभयम् तस्मात् धर्मलोपभयात् । प्रदक्षिणस्य क्रिया प्रदक्षिणक्रिया अर्हति इति अर्हा, प्रदक्षिणक्रियायाम् अर्हा इति प्रदक्षिणक्रियार्हा तस्यां प्रदक्षिणक्रियार्हायाम् ।

अभि०—ऋतुगमनाभावाद्धर्मनाशो मा भूदिति राज्ञीमेव चिन्तयन् पथि स्थितामपि कामधेनुं त्वं प्रदक्षिणादिकर्मणा साधु न सत्कृतवान् ।

हिन्दी—ऋतुकाल में अभिगमन न होने से कहीं धर्मलोप न हो जाय इस भय से केवल रानी का ही चिन्तन करने के कारण तुमने मार्ग में बैठी हुई कामधेनु का प्रदक्षिणादि से सत्कार नहीं किया ॥७६॥

अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति ।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा ॥७७॥

सञ्जीविनी—यस्मात्कारणान्मामवजानासि तिरस्करोषि अतः कारणान्मत्प्रसूतिं मम संततिमनाराध्यासेवयित्वा ते तव प्रजा न भविष्यतीति सा सुरभिस्त्वां शशाप 'शप आक्रोशे' ॥७७॥

अन्वयः—यस्मात्, 'त्वम्' माम्, अवजानासि, अतः, मत्प्रसूतिम्, अनाराध्य, ते, प्रजा, न, भविष्यति, इति, सा, त्वाम् शशाप ।

वाच्य०—यस्मात्, त्वया, अहम्, अवज्ञाये, प्रजया, न, भविष्यते, इति, तया, त्वम्, शेपिषे ।

व्याख्या—यस्मात् = यतः, कारणात्, 'त्वम्' माम् = कामधेनुम्, अवजानासि = तिरस्करोषि, अतः = अस्मात्कारणात्, मम = कामधेन्वाः, प्रसूतिः = सन्ततिः, मत्सन्ततिः, ताम्, मत्प्रसूतिम्, अनाराध्य = असेवयित्वा, ते = तव, दिलीपस्य, प्रजा = संततिः, न = नहि, भविष्यति = संपत्स्यते, इति = इत्थम् सा = कामधेनुः, त्वाम् = दिलीपम्, शशाप = शापं ददौ ।

समा०—मम प्रसूतिः इति मत्प्रसूतिः ताम् मत्प्रसूतिम् । न आराध्य अनाराध्य ।

अभि०—यतस्त्वं मां तिरस्करोष्यतस्तव सन्ततिर्मत्सन्ततेराराधनं विना न भविष्यति, इति सा तुभ्यं शापं ददौ ।

हिन्दी—क्योंकि तुम परिक्रमा आदि न करने से मेरा तिरस्कार कर रहे हो अतः मेरी सन्तान की आराधना किये बिना तुम्हें सन्तान न होगी, ऐसा उसने तुम्हें शाप दे दिया ॥७७॥

कथं तदस्माभिर्न श्रुतमित्याह—

स शापो न त्वया राजन्न च सारथिना श्रुतः ।
नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे ॥७८॥

सञ्जीविनी—हे राजन् ! स शापस्त्वया न श्रुतः। सारथिना च न श्रुतः। अश्रवणे हेतुमाह—क्रीडार्थमागता उद्दामानो दाम्न उद्गता दिग्गजा यस्मिंस्तथोक्त आकाशगङ्गाया मन्दाकिन्याः स्रोतसि प्रवाहे नदति सति ॥७८॥

अन्वयः—हे राजन्, सः, शापः, त्वया, न, श्रुतः, सारथिना, च, न, 'श्रुतः', उद्दामदिग्गजे, आकाशगङ्गायाः, स्रोतसि, नदति, 'सति'।

वाच्य०—हे राजन्, शापम्, त्वम्, न श्रुतवान्, सारथिः, च, न, 'श्रुतवान्'।

व्याख्या—हे राजन्, सः = असौ पूर्वोक्तः, शापः = आक्रोशः, त्वया = दिलीपेन, न = नहि, श्रुतः = आकर्णितः, सारथिना = सूतेन, च = तथा, न, 'श्रुतः' दाम्नः = शृङ्खलायाः उद्गताः उद्दामानः, दिशाम् = काष्ठानाम्, गजाः = हस्तिनः दिग्गजाः, उद्दामानः, दिग्गजाः यस्मिन् तत् उद्दामदिग्गजम् तस्मिन् उद्दामदिग्गजे, आकाशस्य = दिवः गङ्गा = सुरनदी आकाशगङ्गा तस्याः आकाशगङ्गायाः स्रोतसि = प्रवाहे, नदति = शब्दायमाने 'सति'।

समा०—दाम्नः उद्गताः उद्दामानः दिशां गजाः दिग्गजाः उद्दामानः दिग्गजाः यस्मिन् तत्, उद्दाम दिग्गजम् तस्मिन् उद्दामदिग्गजे। आकाशस्य गंगा आकाशगंगा, तस्याः आकाशगंगायाः।

अभि०—हे राजन् कामधेन्वा प्रदत्तः स शापस्त्वया तव सारथिना वा न श्रुतः, यतः सुरनद्या उत्कटे प्रवाहे मज्जतां दिङ्नागानां महान्कलकल आसीत्।

हिन्दी—हे राजन् कामधेनु का दिया हुआ वह शाप न तो तुमने सुना न तुम्हारे सारथि ने ही सुना, क्योंकि आकाशगङ्गा के प्रवाह में स्नान करते बन्धनमुक्त दिग्गजों का महान् कलकल शब्द हो रहा था ॥७८॥

अस्तु, प्रस्तुते किमायातमित्यत्राह—

> ईप्सितं तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः।
> प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ॥७९॥

सञ्जीविनी—तदवज्ञानात्तस्या धेनोरवज्ञानादपमानादात्मनः स्वस्याप्तुमिष्टमीप्सितं मनोरथम्। आप्नोतेः सन्नन्तात्क्तः। ईकारश्च। सार्गलं सप्रतिबन्धं विद्धि जानीहि। तथाहि पूज्यपूजाया व्यतिक्रमोऽतिक्रमणं श्रेयः प्रतिबध्नाति॥७९॥

अन्वयः—तदवज्ञानात्, आत्मनः ईप्सितम्, सार्गलम्, विद्धि, हि, पूज्यपूजाव्यतिक्रमः, श्रेयः, प्रतिबध्नाति।

वाच्य०—'त्वया' विद्यताम्, पूज्यपूजाव्यतिक्रमेण श्रेयः प्रतिबध्यते ।

व्याख्या—तस्याः = कामधेनोः, अवज्ञानम् = तिरस्कारः तदवज्ञानम् तस्मात् तदवज्ञानात्, आत्मनः = स्वस्य, ईप्सितम् = मनोरथम् अर्गलया शृङ्खलया सह वर्तमानम्, सार्गलम् प्रतिबन्धयुक्तमित्यर्थः, विद्धि = जानीहि, हि = यतः, पूजितुम् = अर्चितुं योग्याः पूज्याः, पूज्यानाम् पूजा = अर्चा, पूज्यपूजा, पूज्यपूजायाः व्यतिक्रमः = उल्लंघनम् इति पूज्यपूजाव्यतिक्रमः, श्रेयः = कल्याणम्, प्रतिबध्नाति = रुणद्धि ।

समा०—तस्याः अवज्ञानम् तदवज्ञानम् तस्मात् तदवज्ञानात् । अर्गलया सह वर्तमानम् इति सार्गलम् । पूजितुं योग्याः पूज्याः पूज्यानां पूजा इति पूज्यपूजा पूज्यपूजायाः व्यतिक्रमः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ।

अभि०—अतः कामधेनोरनादरात्तव सन्तानप्रतिबन्धो जातः, पूजार्हाणां पूजाभावः कल्याणस्य प्रतिबन्धको भवति ।

हिन्दी—इसलिये कामधेनु का अनादर करने से तुम्हारे सन्तान होने में बाधा पड़ गई है; क्योंकि पूज्य की पूजा के उल्लंघन से कल्याण में बाधा हो जाती है ॥७९॥

तर्हि गत्वा तामाराधयामि । स्वयं वा कथंचिदागमिष्यतीत्याशा न कर्तव्येत्याह—

हविषे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः ।
भुजङ्गपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति ॥ ८० ॥

सञ्जीविनी—सा च सुरभिरिदानीं दीर्घं सत्रं चिरकालसाध्यो यागविशेषो यस्य तस्य प्रचेतसो हविषे दध्याज्यादिहविरर्थं भुजंगपिहितद्वारं भुजंगावरुद्धद्वारं ततो दुष्प्रवेशं पातालमधितिष्ठति । पाताले तिष्ठतीत्यर्थः । 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम् ॥८०॥

अन्वयः—सा, च, इदानीम्, दीर्घसत्रस्य, प्रचेतसः, हविषे, भुजङ्गपिहितद्वारम्, पातालम्, अधितिष्ठति ।

वाच्य०—तया, अधिष्ठीयते ।

व्याख्या—सा = कामधेनुः, च = तथा, इदानीम् = अधुना, दीर्घम् = चिरकालसाध्यम्, सत्रम् = यागविशेषः, यस्य सः दीर्घसत्रः, तस्य दीर्घसत्रस्य, प्रचेतसः = वरुणस्य, हविषे = दध्यादिहविरर्थम्, भुजाभ्याम् = बाहुभ्याम्, गच्छन्ति

=यान्ति, इति भुजङ्गाः, सर्पाः, भुजङ्गैः, पिहितम् = अवरुद्धम्, द्वारम् = प्रवेश-मार्गः, यस्य तत् भुजङ्गपिहितद्वारम्, तत् पातालम् = रसातलम्, अधितिष्ठति = अध्यास्ते ।

समा०—दीर्घम् सत्रम् यस्य सः दीर्घसत्रः तस्य दीर्घसत्रस्य । भुजाभ्याम् गच्छन्ति इति भुजङ्गाः, भुजङ्गैः पिहितम् द्वारम् यस्य तत् भुजङ्गपिहितद्वारम् तत् भुजङ्गपिहितद्वारम् ।

अभि०—सा च कामधेनुरिदानीं चिरकालसाध्यं यागं कुर्वतो वरुणस्य भवने दध्याज्यादिहविःसंपादनाय पातालं गता आस्ते, यस्य मार्गः सर्पैरवरुद्धोऽस्ति ।

हिन्दी और वह कामधेनु इस समय चिरकाल साध्य वरुण के यज्ञ में दही, आदि हविष्य के लिये सर्पों से अवरुद्धमार्ग वाले पाताल में गई हुई है ॥८०॥

तर्हि का गतिरित्यत आह—

सुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः ।
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा ॥ ८१ ॥

सञ्जीविनी—तस्याः सुरभेरियं तदीया तां सुतां सुरभेः प्रतिनिधिं कृत्वा शुचिः शुद्धः । सह पत्न्या वर्तत इति सपत्नीकः सन् । 'नद्यृतश्च' इति कप्प्रत्ययः । आराधय । हि यस्मात्कारणात्सा प्रीता तुष्टा सती । कामान्दोग्धीति कामदुघा भवति । 'दुहः कब्घश्च' इति कप्प्रत्ययः, घादेशश्च ॥८१॥

अन्वयः—तदीयाम्, सुताम्, सुरभेः, प्रतिनिधिम्, कृत्वा, शुचिः, सपत्नीकः, 'सन्', आराधय, हि, सा, प्रीता, 'सती', कामदुघा, 'भवति' ।

वाच्य०—तदीया सुता सुरभेः प्रतिनिधिः शुचिना सपत्नीकेन 'त्वया' आराध्यताम्, तया प्रीतया कामदुघया 'भूयते' ।

व्याख्या—तस्याः = कमधेनोः इयम् तदीया ताम् तदीयाम्, सुताम् = दुहितरम्, सुरभेः = कामधेनोः, प्रतिनिधिम् = प्रतिच्छायाम्, कृत्वा = विधाय, शुचिः = शुद्धः, पत्न्या = भार्यया, सुदक्षिणया सह वर्तमानः सपत्नीकः, 'सन्' आराधय = सेवस्व, हि = यतः, सा = नन्दिनी, प्रीता = प्रसन्ना 'सती', कामान् मनोरथान्दोग्धि = प्रपूरयति, इति कामदुघा, 'भवति' ।

समा०—तस्याः इयम् तदीया ताम् तदीयाम्, पत्न्या सह वर्तमानः सपत्नीकः, कामान्दोग्धि इति कामदुघा ।

अभि०—इदानीं त्वं कामधेनुसुतां नन्दिनीं तत्प्रतिनिधिं कृत्वा शुद्धो भूत्वा सभार्यः सन् संसेवस्व, यतः सा प्रसन्ना भूत्वा मनोरथदात्री भवति।

हिन्दी—इस समय तुम कामधेनु की पुत्री नन्दिनी को ही उसकी प्रतिनिधि मानकर शुद्ध होकर भार्या सहित पूजा करो, क्योंकि प्रसन्न होने पर वह मनोरथ पूर्ण कर देती है ॥८१॥

इति वादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम् ।
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात् ॥ ८२ ॥

सञ्जीविनी—इति वादिनो वदत एव होतुर्हवनशीलस्य । 'तृन्' इति तृन्प्रत्ययः । अस्य मुनेराहुतीनां साधनं कारणम् । नन्दयतीति व्युत्पत्त्या नन्दिनी नामानिन्द्यागर्ह्या प्रशस्ता धेनुर्वनादाववृते प्रत्यागता । 'अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम्' इति भावः ॥८२॥

अन्वयः—इति, वादिनः, एव होतुः, अस्य, आहुतिसाधनम्, नन्दिनी, नाम, अनिन्द्या, धेनुः, वनात्, आववृते ।

वाच्य०—आहुतिसाधनेन, नन्दिन्या, अनिन्द्यया, धेन्वा, वनात्, आववृते ।

व्याख्या—इति = इत्थम्, वादिनः = कथयतः, एव, होतुः = हवनशीलस्य, अस्य = मुनेः आहुतीनाम् = हवनसामग्रीणाम्, साधनम् कारणम्, इति आहुतिसाधनम्, नन्दिनी = तन्नाम्नी कामधेनुसुता, नाम = इति प्रसिद्धौ, निन्दितुम् योग्या निन्द्या, न निन्द्या अनिन्द्या, प्रशंसनीयेत्यर्थः, धेनुः = नवप्रसूता गौः, वनात् = काननात्, आववृते = आजगाम ।

समा०—आहुतीनाम् साधनम् आहुतिसाधनम्, निन्दितुम् योग्या निन्द्या, न निन्द्या अनिन्द्या ।

अभि०—एवं कथयत एव वसिष्ठस्य यज्ञे दध्याज्यादिसाधनभूता कामधेनुसुता नन्दिनी वनात्प्रत्याजगाम ।

हिन्दी—वसिष्ठजी के ऐसा कहते हुए ही यज्ञ की आहुति दधि, घी आदि का साधन, कामधेनु की पुत्री नन्दिनी नाम की नई ब्याई गाय वन से लौट आई ॥

संप्रति धेनुं विशिनष्टि—

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला ।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं संध्येव शशिनं नवम् ॥८३॥

सञ्जीविनी—पल्लववत्स्निग्धा चासौ पाटला च। संध्यायामप्येतद्विशेषणं योज्यम्। ललाट उदयो यस्य स ललाटोदयः। तमाभुग्नमीषद्वक्रम्। 'आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि' इत्यमरः। 'ओदितश्च' इति निष्ठातस्य नत्वम्। श्वेतरोमाण्येवाङ्कस्तं बिभ्रती। नवं शशिनं बिभ्रती संध्येव स्थिता।

अन्वयः—पल्लवस्निग्धपाटला, ललाटोदयम्, आभुग्नम्, श्वेतरोमाङ्कम् बिभ्रती, नवम्, शशिनम्, "बिभ्रती" सन्ध्या, इव "स्थिता" "वनात् आववृते"।

वाच्य०—पल्लवस्निग्धपाटलया, बिभ्रत्या, सन्ध्यया, इव, "स्थितया," वनात्, "आववृते"।

व्याख्या—स्निग्धा = मसृणा च असौ पाटला = श्वेतरक्ता च ति स्निग्ध-पाटला, ललाटे = मस्तके, उदयः = उन्नतिः यस्य सः ललाटोदयः तम्, आ = ईषद्, भुग्नः = वक्र इति आभुग्नः तम्, श्वेतानि = धवलानि च तानि, रोमाणि = लोमानि, इति श्वेतरोमाणि, तान्येव अङ्कः, तम्, श्वेतरोमाङ्कम् बिभ्रती = धारयन्ती, नवम् = नूतनम्, शशिनम् = चन्द्रमसम् "बिभ्रती," सन्ध्या = सायंकालः, इव = यथा, "स्थिता वनात् आववृत्ते"।

समा०—स्निग्धा चासौ पाटला च स्निग्धपाटला, पल्लववत् स्निग्धपाटला इति पल्लवस्निग्धपाटला। ललाटे उदयः यस्य स ललाटोदयः तम् ललाटोदयम्। आ ईषद् भुग्नः आभुग्नः तम् आभुग्नम्, श्वेतानि च तानि रोमाणि श्वेतरोमाणि, श्वेतरोमाणि एव अङ्कः श्वेतरोमाङ्कः, तम् श्वेतरोमाङ्कम्।

अभि०—यथा नवपल्लवसदृशं चिक्कणं श्वेतरक्तं वक्रं च द्वितीयाचन्द्रं धारयन्ती सन्ध्या शोभते तथैव तादृशं ललाटस्थं श्वेतरोमाङ्कं धारयन्ती नन्दिनी वनात् प्रत्यायाता शुशुभे।

हिन्दी—जिस प्रकार कोमल किसलय के समान चिकने, सफेद लाल तथा कुछ टेढ़े द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करने वाली संध्या सुशोभित होती है, उसी प्रकार, ललाट में स्थित वैसे ही रोमचिह्न को धारण करने वाली वन से लौटी नन्दिनी सुशोभित हुई ॥८३॥

भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी मेध्येनावभृथादपि।
प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना ॥ ८४ ॥

सञ्जीविनी—कोष्णेन किंचिदुष्णेन । 'कवं चोष्णे' इति चकारात्कादेशः । अवभृथादप्यवभृथस्नानादपि मेध्येन पवित्रेण, 'पूतं पवित्रं मेध्यं च' इत्यमरः। वत्सस्यालोकेन प्रदर्शनेन प्रवर्तिना प्रवहता प्रस्नवेन क्षीराभिस्यन्दनेन भुवमभिवर्षन्ती सिञ्चन्ती । कुण्डमिवोध आपीनं यस्याः सा कुण्डोध्नी । 'ऊधस्तु क्लीबमापीनम्' इत्यमरः । 'उधसोऽनङ्' इत्यनङादेशः । 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' इति ङीष् ।

अन्वयः—**कोष्णेन, अवभृथात्, अपि, मेध्येन, वत्सालोकप्रवर्तिना, प्रस्नवेन, भुवम्, अभिवर्षन्ती, कुण्डोध्नी, वनात्, 'आववृते'** ।

वाच्य०—अभिवर्षन्त्या, कुण्डोध्न्या, वनात् आववृते ।

व्याख्या—कोष्णेन = किंचिदुष्णेन, अवभृथात् = यज्ञाङ्गभूतस्नानविशेषात्, अपि, मेध्येन = पवित्रेण, वत्सस्य = तर्णकस्य, आलोकः = दर्शनम्, वत्सालोकः, वत्सालोकेन, प्रवर्तते = प्रवहति, इति वत्सालोकप्रवर्ती, तेन वत्सालोकप्रवर्तिना, प्रस्नवेन = अभिष्यन्दनेन, भुवम् = भूमिम्, अभिवर्षन्ती = सिञ्चन्ती, कुण्डम् = उखा 'पिठरः स्थाल्युखा कुण्डम्' इत्यमरः, तत् इव ऊधः = आपीनम् यस्याः सा कुण्डोध्नी, 'वनात् आववृते' ।

समा०—ईषदुष्णं कोष्णम् तेन कोष्णेन, वत्सस्य आलोकः वत्सालोकः वत्सालोकेन प्रवर्तते इति वत्सालोकप्रवर्ती तेन वत्सालोकप्रवर्तिना, कुण्डम् इव ऊधः यस्याः सा कुण्डोध्नी ।

अभि०—किञ्चिदुष्णेनावभृथनामकस्य यज्ञान्तस्नानस्य जलादपि पवित्रेण, स्ववत्सं निरीक्ष्य स्वयमेव प्रच्यवता दुग्धेन भूमिं सिञ्चन्ती कुण्डतुल्यापीनधारिणी नन्दिनी वनादाववृते ।

हिन्दी—कुछ गरम तथा यज्ञान्तस्नानजल से भी पवित्र एवं बछड़े को देखकर स्वयं टपकनेवाले दूध से पृथ्वी को सींचती हुई स्थूल थन वाली नन्दिनी बन से लौटी ॥ ८४ ॥

रजःकणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात् ।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः ॥ ८५ ॥

सञ्जीविनी—खुरोद्धूतैरन्तिकात्समीपे गात्रं स्पृशद्भिः । 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इति चकारात्पञ्चमी । रजसां कणैः महीं क्षियत ईष्ट इति महीक्षित्तस्य । तीर्थाभिषेकेण जातां तीर्थाभिषेकजाम् । शुद्धिमादधाना कुर्वाणा ।

एतेन वायव्यं स्नानमुक्तम्। उक्तं च मनुना—'आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम्। आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥' इति ॥८५॥

अन्वयः—खुरोद्धूतैः, अन्तिकात्, गात्रम्, स्पृशद्भिः रजःकणैः, महीक्षितः, तीर्थाभिषेकजाम्, शुद्धिम्, आदधाना, 'वनात् आववृते'।

वाच्य०—आदधानया, 'नन्दिन्या' वनात्, आववृते।

व्याख्या—खुरैः = शफैः, उद्धूताः = उत्थापिताः, इति खुरोद्धूताः तैः खुरोद्धूतैः, अन्तिकात् = समीपात्, गात्रम् = शरीरम्, स्पृशद्भिः = स्पर्शं कुर्वद्भिः, रजसाम् = धूलीनाम्, कणाः = लवाः, 'लवलेशकणाणवः' इत्यमरः। रजःकणाः, तैः रजःकणैः, महीम् = भूमिम्, क्षियते = ईष्टे, इति महीक्षित् तस्य महीक्षितः, तीर्थस्य = यज्ञस्य जलावतारस्य वा, अभिषेकः = अभिषिञ्चनम्, तीर्थाभिषेकः, तीर्थाभिषेकेण, जाता = उत्पन्ना, तीर्थाभिषेकजा ताम् तीर्थाभिषेकजाम्, शुद्धिम् पवित्रताम्, आदधाना = कुर्वाणा, 'नन्दिनी वनात् आववृते'।

समा०—खुरैः उद्धूताः खुरोद्धूताः तैः खुरोद्धूतैः। रजसाम् कणाः रजःकणाः तैः रजःकणैः। महीम् क्षियते इति महीक्षित् तस्य महीक्षितः। तीर्थस्य अभिषेकः तीर्थाभिषेकः तीर्थाभिषेकात् जाता तीर्थाभिषेकजा ताम् तीर्थाभिषेकजाम्।

अभि०—खुरोत्थापितैर्धूलिकणैः समीपे वर्तमानस्य राज्ञो दिलीपस्य गात्रस्पर्शं कुर्वद्भिः यथा तीर्थाभिषेकेण शुद्धिर्भवति तथैव शुद्धिं कुर्वाणा नन्दिनी वनात्प्रतिनिवृत्ता।

हिन्दी—समीप में स्थित राजा दिलीप के शरीर को स्पर्श करनेवाली खुरों से उठाई धूलि से तीर्थ जल में स्नान करने से उत्पन्न शुद्धि को करती हुई नन्दिनी वन से लौटी ॥८५॥

तां पुण्यदर्शनां दृष्ट्वा निमित्तज्ञस्तपोनिधिः।
याज्यमाशंसितावन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत् ॥८६॥

सञ्जीविनी—निमित्तज्ञः शकुनज्ञस्तपोनिधिर्वसिष्ठः पुण्यं दर्शनं यस्यास्तां धेनुं दृष्ट्वा। आशंसितं मनोरथः। नपुंसके भावे क्तः। तत्रावन्ध्यं सफलं प्रार्थनं यस्य स तम्। अवन्ध्यमनोरथमित्यर्थः। याजयितुं योग्यं याज्यं पार्थिवं पुनरब्रवीत् ॥

अन्वयः—निमित्तज्ञः, तपोनिधिः, पुण्यदर्शनाम् ताम् दृष्ट्वा, आशंसितावन्ध्यप्रार्थनम्, याज्यम्, पुनः, अब्रवीत्।

वाच्य०—निमित्तज्ञेन, तपोनिधिना, आशंसितावन्ध्यप्रार्थनः, याज्यः, पुनः, अोच्यत ।

व्याख्या—निमित्तम् = शकुनम्, जानाति = वेत्ति इति निमित्तज्ञः, तपसाम् = तपश्चर्याणाम्, निधिः = आकरः इति तपोनिधिः पुण्यम् = पवित्रम्, दर्शनम् = साक्षात्कारः यस्याः सा पुण्यदर्शना ताम्, ताम् = नन्दिनीम्, दृष्ट्वा = अवलोक्य, न वन्ध्यम् विफलम् इत्यवन्ध्यम् अवन्ध्यं च तत्प्रार्थनम् = याच्ञा इति, अवन्ध्यप्रार्थनम्, आशंसिते = मनोरथे अवन्ध्यप्रार्थनम् यस्य सः आशंसितावन्ध्यप्रार्थनः तम् आशंसितावन्ध्यप्रार्थनम्, याजयितुम् = यज्ञं कारयितुम् योग्यः याज्यः तम् याज्यम् राजानं दिलीपमित्यर्थः, पुनः = भूयः, अब्रवीत् = उवाच ।

समा०—निमित्तम् जानाति इति निमित्तज्ञः। तपसाम् निधिः तपोनिधिः। पुण्यम् दर्शनम् यस्याः सा पुण्यदर्शना ताम् पुण्यदर्शनाम् । न वन्ध्यम् अवन्ध्यम्, अवन्ध्यम् च तत्प्रार्थनम्, अवन्ध्यप्रार्थनम्, आशंसिते अवन्ध्यप्रार्थनम् यस्य सः आशंसितावन्ध्यप्रार्थनः, तम् आशंसितावन्ध्यप्रार्थनम् । याजयितुम् योग्यः याज्यः, तम् याज्यम् ।

अभि०—शकुनमर्मविद्वसिष्ठो मुनिरागतां नन्दिनीं दृष्ट्वा सफलप्रार्थनावन्तं भूयोऽपि दिलीपमुवाच ।

हिन्दी—शकुनशास्त्र के विद्वान् वसिष्ठ मुनि आई हुई पवित्रदर्शना नन्दिनी को देखकर सफलमनोरथ होनेवाले राजा दिलीप से पुनः बोले ॥८६॥

अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः ।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् ॥८७॥

सञ्जीविनी—हे राजन् ! आत्मनः कार्यस्य सिद्धिमदूरवर्तिनीं शीघ्रभाविनीं विगणय विद्धि । यद्यस्मात्कारणात्कल्याणी मङ्गलमूर्तिः । 'बह्वादिभ्यश्च' इति ङीष् । इयं धेनुर्नाम्नि कीर्तिते कथिते सत्यवोपस्थिता ॥८७॥

अन्वयः—राजन्, आत्मनः, सिद्धिम्, अदूरवर्तिनीम्, विगणय, यत्, इयम्, कल्याणी, नाम्नि, कीर्तिते, एव उपस्थिता ।

वाच्य०—त्वया, आत्मनः, सिद्धिः, अदूरवर्तिनी, विगण्यताम्, यत्, अनया, कल्याण्या, उपस्थितया, अभूयत ।

व्याख्या—राजन् = नृप, आत्मनः = स्वस्य, सिद्धिम् = मनोरथनिष्पत्तिम्, न, दूरे = विप्रकृष्टदेशे, विलम्बे इत्यर्थः, वर्तते तच्छीला, अदूरवर्तिनी, ताम् अदूर-

वर्तिनीम्, विगणय = जानीहि, यत् = यस्मात्, इयम् = एषा, कल्याणी = मङ्गल-मूर्तिः, नाम्नि = अभिधाने, कीर्तिते = कथिते, एव, उपस्थिता = प्राप्ता ।

समा०—न दूरे वर्तते तच्छीला अदूरवर्तिनी ताम् अदूरवर्तिनीम् ।

अभि०—हे राजन्निदानीं ते मनोरथसिद्धिरविलम्बमेव भविष्यति यत एषा मङ्गलमयी नन्दिनी मया नाम्न्युच्चारिते सत्येव सम्मुखमागता ।

हिन्दी—हे राजन्, अब आप अपनी मनोरथ सिद्धि शीघ्र ही पूर्ण हुई समझो, क्योंकि यह मङ्गलमूर्ति नन्दिनी नाम लेते ही सामने आ गई ॥८७॥

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम् ।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि ॥८८॥

सञ्जीविनी—वने भवं वन्यं कन्दमूलादिकं वृत्तिराहारो यस्य तथाभूतः सन् । इमां गां शश्वत्सदा । आ प्रसादादविच्छेदेनेत्यर्थः । आत्मनस्तव कर्तुः अनुगमनेनानुसरणेन । अभ्यसनेनानुष्ठातुरभ्यासेन विद्यामिव । प्रसादयितुं प्रसन्नां कर्तुमर्हसि ॥

अन्वयः—**वन्यवृत्तिः, 'सन्', इमाम् गाम्, शश्वत्, आत्मानुगमनेन, अभ्यसनेन, विद्याम्, इव, प्रसादयितुम्**, अर्हसि ।

वाच्य०—वन्यवृत्तिना 'सता' इयम् गौः प्रसादयितुम् अर्ह्यते ।

व्याख्या—वने = अरण्ये, भवम्, वन्यम्, कन्दमूलादिकमित्यर्थः, वृत्तिः = भोजनम् यस्यासौ वन्यवृत्तिः, 'सन्' इमाम् = पुरोवर्तिनीम्, गाम् = धेनुम् नन्दिनीम्, शश्वत् = निरन्तरम्, आत्मनः = स्वस्य अनुगमनम् = पश्चाद्यानम्, इति आत्मानुगमनम् तेन आत्मानुगमनेन, अभ्यसनेन = अभ्यासेन, अनुष्ठातुरिति शेषः, विद्याम् = शास्त्रम्, इव = यथा, प्रसादयितुम् = प्रसन्नां कर्तुम्, अर्हसि = योग्यो भवसि ।

समा०—वने भवम् वन्यम्, वन्यम् वृत्तिः यस्यासौ वन्यवृत्तिः । आत्मनः अनुगमनम् आत्मानुगमनम् तेन आत्मानुगमनेन ।

अभि०—यथाऽभ्यासेन विद्या प्रसन्ना सती हृदयं गता भवति तथैव त्वमपि वनकन्दमूलादिभिरेव आहारं विधायास्या अनुसरणेनेमां यावन्मनोरथसिद्धिर्भवति तावत्प्रसादय ।

हिन्दी—जैसे कि अभ्यास के द्वारा विद्या प्रसन्न हो जाती है उसी प्रकार हे

राजन्, तुम भी निरन्तर इस गाय का अनुसरण कन्द, मूल, फल खाकर करते हुए इसे प्रसन्न करो ॥८८॥

गोरनुसरणप्रकारमाह—

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः ।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः ॥८९॥

सञ्जीविनी—अस्यां नन्दिन्यां प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः प्रयाहि । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम् । स्थितायां निवृत्तगतिकायां स्थितिमाचरेः स्थितिं कुरु । तिष्ठेरित्यर्थः । निषण्णायामुपविष्टायां निषीदोपविश । विध्यर्थे लोट् । पीताम्भसि सत्यामपः पिबेः पिब ॥८९॥

अन्वयः—अस्याम्, प्रस्थितायाम्, प्रतिष्ठेथाः स्थितायाम्, स्थितिम्, आचरेः, निषण्णायाम्, निषीद, पीताम्भसि, अपः, पिबेः ।

वाच्य—'त्वया' प्रतिष्ठीयेत, स्थितिः आचर्येत, निषद्यताम्, आपः पीयेरन् ।

व्याख्या—अस्याम् = एतस्यां नन्दिन्याम्, प्रस्थितायाम् = प्रचलितायाम्, 'सत्याम्' 'त्वम्' प्रतिष्ठेथाः = प्रस्थानं कुरु, स्थितायाम् = गमनान्निवृत्तायाम्, 'सत्याम्' स्थितिम् = गमनान्निवृत्तिम्, आचरेः = कुर्याः, तिष्ठेरित्यर्थः, निषण्णायाम् = उपविष्टायाम्, 'सत्याम्' निषीद = उपविश, पीतम् = पानविषयीकृतम्, अम्भः = जलम्, यया सा पीताम्भाः, तस्याम् पीताम्भसि 'सत्याम्', अपः = जलानि पिब = पानं कुरु ।

समा०—पीतम् अम्भः यया सा पीताम्भाः, तस्याम् पीताम्भसि ।

अभि०—यदेयं प्रचलति तदा त्वमपि प्रचल, यदा च तिष्ठति तदा तिष्ठ, एवं यदा निषीदति तदा निषीद तथा यदा जलं पिबति तदैव त्वमपि जलं पिबेति छायावदेनामनुसर ।

हिन्दी—हे राजन्, जब यह चले तब चलना, जब खड़ी हो तो खड़े होना, जब बैठे तो बैठना, जब जल पी चुके तब जल पीना, इस प्रकार छाया के अनुसार इसका अनुसरण करना ॥८९॥

वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामा तपोवनात् ।
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि ॥९०॥

सञ्जीविनी—वधूर्जाया च भक्तिमती प्रयता सती गन्धादिभिरर्चितामेनां गां प्रातरा तपोवनात्। आङ् मर्यादायाम्। पदद्वयं चैतत्। अन्वेत्वनुगच्छतु। सायमपि प्रत्युद्व्रजेत् प्रत्युद्गच्छेत्। विध्यर्थे लिङ्॥९०॥

अन्वयः—वधूः, भक्तिमती, प्रयता, च, 'सती' अर्चिताम्, एनाम्, प्रातः, आ, तपोवनात्, अन्वेतु, सायम्, अपि, प्रत्युद्व्रजेत्।

वाच्य०—वध्वा, भक्तिमत्या, प्रयतया, 'सत्या', अर्चिता, एषा, प्रात॰, अन्वीयताम्, प्रत्युद्व्रज्येत।

व्याख्या—वधूः = स्नुषा, भक्तिः = श्रद्धा अस्ति अस्याः इति भक्तिमती, प्रयता = पवित्रा, च = अपि अर्चिताम् = पूजिताम्, एनाम् = नन्दिनीम्, प्रातः = प्रातःकाले, आ तपोवनात् = तपोवनपर्यन्तम्, अन्वेतु = अनुगच्छतु, सायम् = सन्ध्यासमये, अपि = तथा, प्रत्युद्व्रजेत् = प्रत्युद्गच्छेत्।

समा०—भक्तिः अस्ति अस्याः इति भक्तिमती।

अभि०—स्नुषा सुदक्षिणाऽपि पवित्रा सती भक्त्यैनां संपूज्य प्रातस्तपोवनसीमापर्यन्तमनुगच्छतु, सायं चास्या आगमनसमये तपोवनसीमायां स्थिता स्वागतपूर्वकमेवामाश्रममानयतु।

हिन्दी—वधू सुदक्षिणा भी पवित्र होकर भक्तिपूर्वक इसकी पूजा करके प्रतिदिन प्रातःकाल तपोवन की सीमा तक इसे पहुँचाने जाये तथा सायंकाल के समय भी तपोवन की सीमापर पहुँचकर इसे स्वागत-पूर्वक आश्रम में लाये॥९०॥

इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव।
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम्॥९१॥

सञ्जीविनी—इत्यनेन प्रकारेण त्वमा प्रसादात्प्रसादपर्यन्तम्। 'आङ् मर्यादाभिविध्योः,' इत्यत्र वैभाषिकत्वादसमासत्वम्। अस्या धेनोः परिचर्यापरः शुश्रूषापरो भव। ते तवाविघ्नं विघ्नस्याभावोऽस्तु। 'अव्ययं विभक्ति—' इत्यादिनार्थाभावेऽव्ययीभावः। पितेव पुत्रिणां सत्पुत्रवताम्। प्रशंसायामिनिप्रत्ययः। धुर्यग्रे स्थेयास्तिष्ठेः। आशीरर्थे लिङ्। 'एर्लिङि' इत्याकारस्यैकारादेशः। त्वत्सदृशो भवत्पुत्रोऽस्त्विति भावः॥९१॥

अन्वयः—इति, त्वम्, आप्रसादात्, अस्याः, परिचर्यापरः, भव, ते, अविघ्नम् अस्तु, पिता, इव, पुत्रिणाम्, धुरि, स्थेयाः।

वाच्य०—त्वया, परिचर्यापरेण, भूयताम्, अविघ्नेन, भूयताम्, पिता, इव, स्थीयताम् ।

व्याख्या—इति = इत्थम्, त्वम् = दिलीपः, प्रसादम् = प्रसन्नताम्, अभिव्याप्य, इति आप्रसादम्, वरप्रदानपर्यन्तमित्यर्थः, अस्याः = एतस्याः, नन्दिन्याः, परिचर्यायाम् = शुश्रूषायाम्, परः = संलग्नः, इति परिचर्यापरः भवः = भवेः, ते = तव, दिलीपस्य, विघ्नानाम् = प्रतिबन्धानाम्, अभावः, अविघ्नम्, अस्तु = भवतु, पिता = जनकः, इव = यथा, पुत्राः = सुताः एषां सन्ति इति पुत्रिणः, तेषाम् पुत्रिणाम्, धुरि = अग्रे, स्थेयाः = तिष्ठेः ।

समा०—प्रसादम् अभिव्याप्य आप्रसादम् । परिचर्यायाम् परः परिचर्यापरः । विघ्नानाम्, अभावः अविघ्नम्, प्रशस्ताः पुत्राः सन्ति एषामिति पुत्रिणः, तेषाम् पुत्रिणाम् ।

अभि०—मयोक्तेन विधिना त्वमस्याः प्रसादपर्यन्तं सेवां कुरु । ते विघ्ना नश्यन्तु । तव पितेव शोभनपुत्रवतां त्वं श्रेष्ठो भवेः ।

हिन्दी—मेरी बतलाई विधि के अनुसार प्रसन्न होने तक तुम इसकी सेवा करो । तुम्हारे विघ्न नष्ट हों । अपने पिता के समान तुम भी पुत्रवालों में श्रेष्ठ होओ ॥९१॥

तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः ।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः ॥९२॥

सञ्जीविनी—देशकालज्ञः । देशोऽग्निसंनिधिः, कालोऽग्निहोत्रावसानसमयः । विशिष्टदेशकालोत्पन्नमार्षं ज्ञानमव्याहतमिति जानन् । अत एव प्रीतिमाञ्छिष्योऽन्तेवासी राजा सपरिग्रहः सपत्नीकः । 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः । आनतो विनयनम्रः-सन् । शासितुर्गुरोरादेशमाज्ञां तथेति प्रतिजग्राह स्वीचकार ॥९२॥

अन्वयः—देशकालज्ञः, प्रीतिमान्, शिष्यः, सपरिग्रहः, आनतः, 'सन्', शासितुः आदेशम्, तथा, इति, प्रतिजग्राह ।

वाच्य०—देशकालज्ञेन, प्रीतिमता, शिष्येण, सपरिग्रहेण, आनतेन, 'सता', आदेशः, प्रतिजगृहे ।

व्याख्या—देशः = अग्निसन्निधिश्च, कालः = अग्निहोत्रावसानसमयश्च, देश-

कालौ, तौ जानाति = वेत्ति इति देशकालज्ञः, 'अतएव' प्रीतिः = हर्षः अस्य अस्ति इति प्रीतिमान्, शासितुम् = अनुशासनं कर्तुम्, योग्यः शिष्यः अन्तेवासी, इत्यर्थः, परिग्रहेण = भार्यया सह वर्तते इति सपरिग्रहः । आनतः अतिनम्रः 'सन्' शासितुः = शासनकर्तुः गुरोर्वसिष्ठस्येत्यर्थः, आदेशम् = आज्ञाम्, तथा = तेनैव प्रकारेण, 'अस्तु' इति = इत्थम्, प्रतिजग्राह = स्वीचकार ।

समा०—देशश्च कालश्च देशकालौ, देशकालौ जानाति इति देशकालज्ञः, प्रीतिः अस्य अस्ति इति प्रीतिमान्, शासितुम् योग्यः शिष्यः, परिग्रहेण सह वर्तते इति सपरिग्रहः ।

अभि०—देशकालवित्सभार्यो दिलीपः प्रसन्नः सन्, गुरोर्वसिष्ठस्याज्ञां विनयावनतो भूत्वा जग्राह ।

हिन्दी—देश तथा काल के मर्मज्ञ राजा दिलीप ने प्रसन्न होकर सुदक्षिणा सहित बड़ी नम्रतापूर्वक गुरुवसिष्ठ के आदेश को स्वीकार किया ॥९२॥

अथ प्रदोषे दोषज्ञः संवेशाय विशांपतिम् ।
सूनुः सूनृतवाक्स्रष्टुर्विससर्जोर्जितश्रियम् ॥९३॥

सञ्जीविनी—अथ प्रदोषे रात्रौ दोषज्ञो विद्वान् । 'विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञः' इत्यमरः । सूनृतवाक्सत्यप्रियवाक् । 'प्रियं सत्यं च सूनृतम्' इति हलायुधः । स्रष्टुः सूनुर्ब्रह्मपुत्रो मुनिः । अनेन प्रकृतकार्यनिर्वाहकत्वं सूचयति । ऊर्जितश्रियं विशांपतिं मनुजेश्वरम् । 'द्वौ विशौ वैश्यमनुजौ' इत्यमरः । संवेशाय निद्रायै । 'स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि' इत्यमरः । विससर्जाज्ञापयामास ॥९३॥

अन्वयः—अथ, प्रदोषे, दोषज्ञः, सूनृतवाक्, स्रष्टुः, सूनुः, ऊर्जितश्रियम्, विशाम्, पतिम्, संवेशाय, विससर्ज ।

वाच्य०—दोषज्ञेन, सूनृतवाचा, स्रष्टुः सूनुना, ऊर्जितश्रीः, विशांपतिः, संवेशाय, विससृजे ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, प्रदोषे = रात्रौ, दोषान् = अवगुणान् जानाति वेत्ति इति दोषज्ञः, विद्वान्, इत्यर्थः, 'विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञः' इत्यमरः, सूनृता = प्रिया सत्या च, 'प्रियं सत्यं च सूनृतम्' इत्यमरः, वाक् = वाणी यस्य असौ, सूनृतवाक्, सृजति = सृष्टिं करोति, इति स्रष्टा = ब्रह्मा तस्य स्रष्टुः सूनुः = पुत्रः, वसिष्ठ इत्यर्थः, ऊर्जिता = अधिका श्रीः = शोभा, यस्य असौ ऊर्जितश्रीः, तम्,

ऊर्जितश्रियम्, विशाम् = मनुजानाम्, पतिम् = स्वामिनम्, राजानं दिलीपम्, संवेशाय = स्वापाय, विससर्ज = आज्ञापयामास ।

समा०—दोषान् जानाति इति दोषज्ञः सूनृता वाक् यस्य सः सूनृतवाक्, सृजति इति स्रष्टा तस्य स्रष्टुः । ऊर्जिता श्रीः यस्य सः ऊर्जितश्रीः, तम् ऊर्जितश्रियम् ।

अभि०—अनन्तरं च रात्रौ सत्यप्रियवचनो वसिष्ठः सम्पत्तिसम्पन्नं राजानं निद्रार्थमाज्ञापितवान् ।

हिन्दी—तब रात्रि के समय सत्यप्रियभाषी वसिष्ठने लक्ष्मीसंपन्न राजा दिलीप को सोने के लिये आज्ञा दी ॥९३॥

सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः ।
कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम् ॥९४॥

सञ्जीविनी—कल्पविद्व्रतप्रयोगाभिज्ञो मुनिः तपःसिद्धौ सत्यामपि । तपसैव राजयोग्याहारसंपादनसामर्थ्ये सत्यपीत्यर्थः । नियमापेक्षया तदाप्रभृत्येव व्रतचर्यापेक्षया । अस्य राज्ञो वन्यामेव । संविधीयतेऽनयेति संविधाम् कुशादिशयनसामग्रीम् । 'आतश्चोपसर्गे' इति कप्रत्ययः । 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' इति कर्मार्थत्वम् । कल्पयामास संपादयामास ॥९४॥

अन्वयः—कल्पवित्, मुनिः, तपःसिद्धौ, सत्याम्, अपि, नियमापेक्षया, अस्य, वन्याम्, एव, संविधाम्, कल्पयामास ।

वाच्य०— कल्पविदा, मुनिना, वन्या, एव, संविधा, चक्लृपे ।

व्याख्या— कल्पम् = व्रतप्रयोगम्, वेत्ति = जानाति इति कल्पवित्, मुनिः = वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित्, वसिष्ठः, तपसः = तपश्चर्यायाः, सिद्धिः = निष्पत्तिः इति तपःसिद्धिः तस्याम् तपःसिद्धौ, सत्याम् विद्यमानायाम् अपि नियमस्य = व्रताचरणस्य अपेक्षा = तद्दृष्ट्या विचारणम् इति नियमापेक्षा तया नियमापेक्षया अस्य = दिलीपस्य, वने = अरण्ये भवा वन्या ताम् वन्याम् एव, संविधाम् = कुशास्तरणसामग्रीम्, कल्पयामास = रचयामास ।

समा०—कल्पम् वेत्ति इति कल्पवित्, तपसः सिद्धिः तपःसिद्धिः, तस्याम् तपःसिद्धौ । नियमस्य अपेक्षा तया नियमापेक्षया । वने भवा वन्या ताम् वन्याम् ।

अभि०—व्रतप्रयोगविदा मुनिना वसिष्ठेन तपःसिद्ध्या राजोचितशय्यासं-

पादनस्य सामर्थ्ये सत्यपि नन्दिनीशुश्रूषारूपव्रतकारणेन कुशादिभिरेव दिलीपस्य शय्या संपादिता ।

हिन्दी—व्रत प्रयोग में कुशल मुनि वसिष्ठ ने तप की सिद्धि से राजाओं के योग्य शय्या तैयार कर देने की सामर्थ्य होने पर भी दिलीप के लिये नन्दिनी-सेवा रूप व्रत का ध्यान रखते हुए कुशाओं के बिछौने का ही प्रबन्ध किया ॥९४॥

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशाला-
मध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः ।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां
संविष्टः कुशशयने निशां निनाय ॥९५॥

सञ्जीविनी—स राजा कुलपतिना मुनिकुलेश्वरेण वसिष्ठेन निर्दिष्टां पर्णशालामध्यास्याधिष्ठाय तस्यामधिष्ठानं कृत्वेत्यर्थः । 'अधिशीङ्' इत्यादिनाधारस्य कर्मत्वम् । कर्मणि द्वितीया । प्रयतो नियतः परिग्रहः पत्नी द्वितीयो यस्येति स तथोक्तः । कुशानां शयने संविष्टः सुप्तः सन् । तस्य वशिष्ठस्य शिष्याणामध्ययनेनापररात्रे वेदपाठेन निवेदितमवसानं यस्यास्तां निशां निनाय गमयामास । अपररात्रेऽध्ययने मनुः—'निशान्ते न परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत्' इति गौतमश्च । प्रहर्षिणीवृत्तमेतत् । तदुक्तम्—म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् ॥

अन्वयः—प्रयतपरिग्रहद्वितीयः, सः, कुलपतिना, निर्दिष्टाम्, पर्णशालाम्, अध्यास्य, कुशशयने, संविष्टः, 'सन्' तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानाम् निशाम्, निनाय ।

वाच्य०—प्रयतपरिग्रहद्वितीयेन तेन संविष्टेन तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसाना निशा निन्ये ।

व्याख्या—प्रयतः = पवित्रः, परिग्रहः = भार्या एव द्वितीयः = अपरः, सहायक इत्यर्थः यस्य सः, प्रयतपरिग्रहद्वितीयः, सः = दिलीपः, कुलस्य = मुनिसमूहस्य पतिः = स्वामी, कुलपतिः, तेन कुलपतिना, मुनिकुलेश्वरेणेत्यर्थः, निर्दिष्टाम् = विज्ञापिताम्, पर्णानाम् = पत्राणाम् शाला = भवनम् पर्णशाला ताम् पर्णशालाम्, अध्यास्य = अधिष्ठाय, कुशानाम् = कुशानाम्, शयनम् = शय्या, कुशशयनम्, तस्मिन्, कुशशयने, संविष्टः = सुप्तः, 'सन्' तस्य = वशिष्ठस्य, शिष्याः = छात्राः

तच्छिष्याः,तच्छिष्याणाम्,अध्ययनम् = पठनम्, वेदपाठ इत्यर्थः, तच्छिष्याध्ययनम्, तच्छिष्याध्ययनेन, निवेदितम् = सूचितम्, अवसानम् = समाप्तिः यस्याः सा तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसाना, तां तथोक्ताम्, निशाम् = रात्रिम् विनाय = अनैषीत् ।

समा०—प्रयतः परिग्रहः यस्य सः प्रयतपरिग्रहः । कुलस्य पतिः कुलपतिः तेन कुलपतिना । पर्णानाम् शाला पर्णशाला, ताम् पर्णशालाम् । कुशानाम् शयनम् कुशशयनम् तस्मिन् कुशशयने । तस्य शिष्याः तच्छिष्याः, तच्छिष्याणाम् अध्ययनम् तच्छिष्याध्ययनम्, तच्छिष्याध्ययनेन निवेदितम् अवसानम् यस्याः सा तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसाना, ताम् तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानाम् ।

अभि०—राजा दिलीपः सुदक्षिणया सह कुलपतिना वसिष्ठेन सूचितां पर्णकुटीं प्रविश्य कुशास्तरणे सुप्तवान् । तच्छिष्यैः कृतेन वेदघोषेण च रात्रिर्गतेति विज्ञाय प्रबुद्धः ।

हिन्दी—राजा दिलीप सुदक्षिणा के साथ कुलपति वसिष्ठ जी से बताई हुई पर्णकुटी में कुशासन पर सोये तथा उनके शिष्यों द्वारा किये गये वेदघोष से यह जान कर कि रात बीत गई है, जाग गये ॥ ९५ ॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां 'छात्रोपयोगिनी' व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये वसिष्ठाश्रमाभिगमनोनाम प्रथमः सर्गः ।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

द्वितीय सर्ग

द्वितीय सर्ग का कथासार

प्रातःकाल उठकर सुदक्षिणा के नन्दिनी की पूजा करने और बछड़े के दूध पी लेने पर राजा दिलीप ने महर्षि वशिष्ठ जी की धेनु को वन में चराने के लिए छोड़ दिया।

अपनी पत्नी तथा सेवकों को लौटाकर छत्र चामरादि राज्य-चिह्नों को छोड़कर अकेले ही गौ की सेवा करने में तत्पर हो गये।

स्वादयुक्त हरे-हरे घासों का ग्रास देकर शीतल जल पिलाकर और नन्दिनी के पीछे-पीछे छाया की तरह रहकर सेवा करने लगे। सेवा में लीन राजा के वन में प्रवेश करते ही जंगल के सभी उपद्रव शान्त हो गये।

सुन्दर हरे-हरे वनों को देखते हुए अपनी मस्त चाल से नन्दिनी तथा राजा तपोवन के मार्ग को सुशोभित करते थे। शाम को गौ के पीछे-पीछे राजा चलते थे और सामने से सुदक्षिणा पूजा के लिए आती थी तो बीच में कपिला धेनु संध्या की तरह दीखती थी। शाम को गौ की पूजा करने के पश्चात् सपत्नीक गुरुजी की वन्दना कर संध्या वंदन से निवृत्त हो राजा पुनः रात्रि में धेनु के पास में ही शयन करते थे। इस प्रकार सेवा करते-करते २१ दिन बीतने पर २२ वें दिन राजा की परीक्षा लेने के लिए नन्दिनी हिमालय की गुफा में घुस गई।

इधर राजा पर्वत की छटा देखने में तल्लीन थे। इतने ही में गौ की चिल्लाहट सुनकर देखते हैं कि एक सिंह धेनु की पीठ पर बैठ उसे फाड़ने में लगा है। अति क्रुद्ध होकर राजा ने सिंह को मार डालने की इच्छा से एक बाण तरकश से निकालने के लिए हाथ को पीछे किया। किन्तु वह हाथ तरकश में ही चिपक गया और हाथ के बँध जाने से अपने व्यर्थ क्रोध में जलते हुए एवं आश्चर्य में पड़े हुए राजा से सिंह कहने लगा कि—

हे राजन्! तुम व्यर्थ परिश्रम मत करो, इस देवदारु की रक्षा करने के लिए शिव जी ने मुझे यहाँ रक्खा है और जो जीव यहाँ आता है वही मेरा भोजन है। अतः तुमने गुरुभक्ति दिखा दी है, तुम लज्जा को त्यागकर लौट जाओ।

यह सुनकर राजा ने सिंह से प्रार्थना की कि वह भगवान् शिव मेरे भी पूज्य हैं और गुरु के धन की भी रक्षा अवश्य करनी है। अतः इसके बदले में तुम मुझे खा लो और इस धेनु को छोड़ दो। इस प्रकार तुम्हारी भूख भी मिट जायगी और गुरु के धन की रक्षा भी हो जायगी। तुम मुझपर कृपा करो।

सिंह के बहुत समझाने पर भी जब राजा नहीं माने तो सिंह ने राजा को गौ के बदले खाना स्वीकार कर लिया। राजा ने सिंह के सामने अपने शरीर को मांसपिण्ड की तरह छोड़ दिया। इतने

ही में सिंह गायब हो गया और स्वर्ग से राजा के ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी। राजा ने देखा सामने नन्दिनी खड़ी है, सिंह नहीं है।

धेनु ने राजा से कहा, हे पुत्र ! मैंने माया का सिंह बनाकर तुम्हारी परीक्षा ली है। वर माँगो और मेरा दूध दोने में दुहकर पीओ।

तब राजा ने वंश को चलानेवाला एक यशस्वी पुत्र माँगा और कहा कि माता ! दूध को तो मैं बछड़े के पी लेने पर गुरुजी की आज्ञा प्राप्त करके ही पीना चाहता हूँ। यह सुन नन्दिनी और प्रसन्न हुई और दोनों आश्रम में लौट आये।

गुरु वशिष्ठ जी भी सब जानकर प्रसन्न हुए। राजा को दूध पीने की आज्ञा दी और प्रातःकाल स्वस्तिवाचनपूर्वक राजा को विदा किया। राजा और रानी रथ में बैठकर अयोध्या आये और रानी सुदक्षिणा ने आठों लोकपालों के अंशयुक्त गर्भ को धारण किया।

—:o:—

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

द्वितीय सर्ग

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥ १ ॥

सञ्जीविनी—अथ निशानयनानन्तरं यशोधनः प्रजानामधिपः प्रजेश्वरः प्रभाते प्रातःकाले जायया सुदक्षिणया प्रतिग्राहयित्वा प्रतिग्राहिते स्वीकारिते गन्धमाल्ये यया सा जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्या तां तथोक्ताम् । पीतं पानमस्यास्तीति पीतः पीतवानित्यर्थः । "अर्श आदिभ्योऽच्" इत्यच्प्रत्ययः । 'पीता गावो भुक्ता ब्राह्मणाः' इति महाभाष्ये दर्शनात् । पीतः प्रतिबद्धो वत्सो यस्यास्तामृषेर्वसिष्ठस्य धेनुं वनाय वनं प्रति गन्तुम् । "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" इत्यनेन चतुर्थी । मुमोच मुक्तवान् । जायापदसामर्थ्यात्सुदक्षिणायाः पुत्रजननयोग्यत्वमनुसंधेयम् । यथाह श्रुतिः—"पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरम् । तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते । तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः ॥" इति । यशोधन इत्यनेन पुत्रवत्ताकीर्तिलोभाद्राजानर्हे गोरक्षणे प्रवृत्त इति गम्यते । अस्मिन्सर्गे वृत्तमुपजातिः—"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः" इति ॥ १ ॥

विश्वेश्वरं समप्रणम्य, विद्याविद्योतकारणम् ।
धारादत्तेन क्रियते व्याख्यया छात्रोपयोगिनी ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ, यशोधनः, प्रजानाम्, अधिपः, प्रभाते, जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्, पीत-प्रतिबद्धवत्सां, ऋषेः, धेनुम्, वनाय, मुमोच ।

वाच्य०—प्रजानामधिपेन ऋषेर्धेनुर्मुमुचे ।

व्याख्या—अथ = रात्रिव्यत्ययानन्तरम्, यशः = कीर्तिरेव, धनं = वित्तं यस्य स यशोधनः, प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजास्तासाम् प्रजानां = जनानाम्, अधिपः = स्वामी, प्रकर्षेण भाति वस्तु यस्मिन्निति प्रभातस्तस्मिन्, प्रभाते = प्रातःकाले, गन्धश्च माल्यञ्च गन्धमाल्ये, जायया = सुदक्षिणया, प्रतिग्राहिते = स्वीकारिते गन्धमाल्ये स्रक्चन्दने यया सा तां तथोक्ताम्, आदौ पीतः = पीतवान्, पश्चात् प्रतिबद्धः = नियन्त्रितः, वत्सः = शकृत्करिर्यस्याः सा तां तथोक्ताम् 'शकृत्करिस्तु वत्सः स्याद्' इत्यमरः, ऋषेः = वशिष्ठस्य, धेनुं = नन्दिनीम्, वनाय = वनं गन्तुं, मुमोच = मुक्तवान् ।

समासः—यश एव धनं यस्य सः यशोधनः । प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः । अधि अधिकं पातीति अधिपः, गन्धश्च माल्यं च गन्धमाल्ये, जायया प्रतिग्राहिते गन्धमाल्ये यया सा जायाप्रतिग्राहितगन्ध-माल्याम् । (अत्र नन्दिन्याः प्रयोजककर्तृत्वं सुदक्षिणायाश्च प्रयोजककर्तृत्वं विवक्षितमिति 'प्रतिग्राहित' इत्यत्र णिच् कृतः, प्रकृते नन्दिन्यां प्रयोजककर्तृत्वं तूष्णीमवस्थाय गन्धमाल्यस्वीकरणमात्रेणापि निर्वहति इत्यवधातव्यम्) पीतं पानम् अस्यास्तीति पीतः, (दुग्धपानकर्तुर्वत्सस्य विशेषणम् ।) पीतः (पश्चात्) प्रतिबद्धः वत्सः यस्याः सा पीतप्रतिबद्धवत्सा, तां पीतप्रतिबद्धवत्साम् । धीयते (पीयते) वत्सैरिति धेनुः, तां धेनुम् ।

अभि०—प्रभाते राजा दिलीपः सुदक्षिणया कृतपूजां पीतवत्सां वशिष्ठस्य धेनुं वने विचरितुं मुक्तवान् ।

हिन्दी—रात बीत जाने पर प्रातःकाल, प्रजा का पालन करने वाले यश को ही धन माननेवाले राजा दिलीप ने, महारानी सुदक्षिणा ने चन्दन तथा पुष्पमाला से जिसकी अर्चना की है और दूध पी लेने के पश्चात् जिसका बछड़ा बाँध दिया गया है ऐसी ऋषि वशिष्ठ की धेनु को वन में चराने के लिए खोल दिया ॥ १ ॥

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया ।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ॥ २ ॥

सञ्जीविनी—पांसवो दोषा आसां सन्तीति पांसुलाः स्वैरिण्यः । 'स्वैरिणी पांसुला' इत्यमरः । "सिध्मादिभ्यश्च" इति लच्प्रत्ययः । अपांसुलानां पतिव्रतानां धुर्यग्रे कीर्तनीया परिगणनीया मनुष्येश्वरधर्मपत्नी । खुरन्यासैः पवित्राः पांसवो यस्य तम् । "रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना न द्वयो रजः" इत्यमरः । तस्या धेनोर्मार्गम् । स्मृतिर्मन्वादिवाक्यं श्रुतेर्वेदवाक्यस्यार्थमभिधेयमिव । अन्वगच्छदनुसृतवती च । यथा स्मृतिः श्रुतिक्षुण्णमेवार्थमनुसरति तथा सापि गोखुरक्षुण्णमेव मार्गमनुससारेत्यर्थः । धर्मपत्नीत्यत्राश्वघासादिवत्तादर्थ्ये षष्ठीसमासः प्रकृतिविकाराभावात् । पांसुलपदप्रवृत्तावप्यपांसुलानामिति विरोधालङ्कारो ध्वन्यते ॥ २ ॥

अन्वयः—अपांसुलानां, धुरि, कीर्तनीया, मनुष्येश्वरधर्मपत्नी, खुरन्यासपवित्रपांसुं, तस्याः, मार्गम्, श्रुतेः, अर्थम्, स्मृतिः, इव, अन्वगच्छत् ।

वाच्य०—मनुष्येश्वरधर्मपत्न्या तस्याः मार्गः श्रुतेरर्थः स्मृत्या इव अन्वगम्यत ।

व्याख्या—पांसवो = दोषाः आसां सन्तीति पांसुलाः = स्वैरिण्यः, 'स्वैरिणी पांसुला' इत्यमरः । न पांसुला इति अपांसुलास्तासामपांसुलानाम् = पतिव्रतानाम्, धुरि = अग्रे, कीर्त्तनीया = प्रशंसनीया, मनुष्याणाम् ईश्वरो मनुष्येश्वरस्तस्य धर्मार्थं पत्नी = इति मनुष्येश्वरधर्मपत्नी = सुदक्षिणा, खुराणां = शफानां न्यासाः = निक्षेपाः खुरन्यासाः तैः पवित्राः = पूताः पांसवः धूलयो यस्य स तं खुरन्यासपवित्रपांसुम् = शफनिःक्षेपपरिपूतरजःकणम्, तस्याः = नन्दिन्याः, मार्गम् = पन्थानम्, स्मृतिः = मन्वादिः, श्रुतेः = वेदस्य, अर्थम् = अभिधेयम्, इव = यथा, अन्वगच्छत् = अन्वव्रजत् ।

समा०—पांसवः (दोषाः) आसां सन्तीति पांसुलाः, न पांसुलाः अपांसुलाः, तासाम् अपांसुलानाम् । मनुष्याणाम् ईश्वरः, मनुष्येश्वरः, धर्मस्य पत्नी धर्मपत्नी, मनुष्येश्वरस्य धर्मपत्नी मनुष्येश्वरधर्मपत्नी । खुराणां न्यासाः खुरन्यासाः खुरन्यासैः पवित्राः पांसवः (धूलयः) यस्य सः खुरन्यासपवित्रपांसुः तं खुरन्यासपवित्रपांसुम् ।

अभि०—पतिव्रतानामग्रगण्या सुदक्षिणा यथा, स्मृतयः श्रुतिमनुसरन्ति तथैव नन्दिनीपादनिक्षेपेण पवित्रं मार्गमनुसृतवती ।

हिन्दी—पतिव्रताओं में प्रथम, राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा ने नन्दिनी के खुरों के रखने से पवित्र धूलि वाले मार्ग का उसी प्रकार अनुसरण किया, जिस प्रकार मन्वादि स्मृतियाँ वेदार्थ का अनुसरण करती हैं ॥ २ ॥

निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ॥ ३ ॥

सञ्जीविनी—दयालुः कारुणिकः 'स्याद्दयालुः कारुणिकः' इत्यमरः । "स्पृहिगृहि" इत्यादिना-लुप्रत्ययः । यशोभिः सुरभिर्मनोज्ञः । 'सुरभिः स्यान्मनोज्ञेऽपि' इति विश्वः । राजा तां दयितां निवर्त्य सौरभेयीं कामधेनुसुतां नन्दिनीम् । धरन्तीति धराः । पचाद्यच् । पयसां धराः पयोधराः स्तनाः । 'स्त्रीस्तनाब्दौ पयोधरौ' इत्यमरः । अपयोधराः पयोधराः संपद्यमानाः पयोधरीभूताः । अभूततद्भावे च्विः । "कुगतिप्रादयः" इति समासः । पयोधरीभूताश्चत्वारः समुद्रा यस्यास्ताम् । "अनेकमन्यपदार्थे" इत्यनेक-पदार्थग्रहणसामर्थ्यात् त्रिपदो बहुव्रीहिः । गोरूपधरामुर्वीमिव जुगोप ररक्ष । भूरक्षणप्रयत्नेनैव ररक्षेति भावः । धेनुपक्षे पयसा दुग्धेनाधरीभूताश्चत्वारः समुद्रा यस्याः सा तथोक्ताम् । दुग्धतिरस्कृतसागरा-मित्यर्थः ॥ ३ ॥

अन्वयः—दयालुः, यशोभिः सुरभिः, राजा, दयितां, तां, निवर्त्य, सौरभेयीम्, पयोधरीभूतचतुः-समुद्राम्, गोरूपधराम्, उर्वीम्, इव, जुगोप ।

वाच्य०—दयालुना राज्ञा सौरभेयी गोरूपधरा उर्वी इव जुगुपे ।

व्याख्या—दया अस्यास्तीति दयालुः=कारुणिकः, 'स्याद्दयालुः कारुणिकः' इत्यमरः । यशोभिः= कीर्तिभिः, सुरभिः=मनोज्ञः, 'सुरभिः स्यान्मनोज्ञेऽपीति विश्वः' राजा=दिलीपः, दयितां=प्रियां, तां=सुदक्षिणाम्, निवर्त्य=परावर्त्य, सुरभेरपत्यं स्त्री सौरभेयी ताम् सौरभेयीम्=नन्दिनीम् । धरन्तीति धराः पयसां धराः पयोधराः=स्तनाः, न पयोधरा अपयोधराः अपयोधराः पयोधराः सम्पद्य-मानाः इति पयोधरीभूताः—स्तनीभूताः, चत्वारः=चतुःसंख्यकाः, समुद्राः=सागराः, यस्याः सा तां तथोक्ताम् । धेनुपक्षे पयसा=दुग्धेन, अधरीभूताः=तिरस्कृताः, चत्वारः समुद्रा यया सा तां तथोक्ताम् । गोः रूपं गोरूपं गोरूपस्य धरा गोरूपधरा तां गोरूपधराम्=गोरूपिणीम्, उर्वीम्=पृथिवीम्, इव= यथा, जुगोप=ररक्ष ।

समा०—सुरभेः (गोः अर्थात् कामधेनोः) अपत्यं स्त्री सौरभेयी, तां सौरभेयीम् । धरन्तीति धराः, पयसां धराः पयोधराः, अपयोधराः पयोधराः सम्पद्यमानाः पयोधरीभूताः, पयोधरीभूताः चत्वारः समुद्राः यस्याः सा पयोधरीभूतचतुःसमुद्रा, तां पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम् (इति उर्वीपक्षे) । अनधराः (उच्चाः) अधराः सम्पद्यमानाः अधरीभूताः (नीचभूताः) पयसा (दुग्धेन) अधरीभूताः चत्वारः समुद्राः यस्याः सा पयोधरीभूतचतुःसमुद्रा, तां पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम् (इति तु गोपक्षे) । धरतीति धरा, गोः रूपं गोरूपम् गोरूपस्य धरा गोरूपधरा, तां गोरूपधराम् ।

अभि०—राजा दिलीपः सुदक्षिणां परावर्त्य पृथिवीमिव वशिष्ठधेनुं पालयाम्बभूव ।

हिन्दी—दयायुक्त सत्कीर्तियों से सुशोभित महाराजा दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा को लौटाकर, दूध से चारों समुद्रों को तिरस्कृत कर दिया है जिसने ऐसी उस धेनु को, चार समुद्रों को चार स्तनों के रूप में धारण की हुई गौ के रूप में उपस्थित पृथ्वी के समान रक्षा करने लगा ॥ ३ ॥

व्रताय तेनानुचरेण धेनोर्न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः ।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ॥ ४ ॥

सञ्जीविनी—व्रताय धेनोरनुचरेण । न तु जीवनायेति भावः । तेन दिलीपेन शेषोऽवशिष्टोऽप्यनुयायिवर्गोऽनुचरवर्गो न्यषेधि निवर्तितः । शेषत्वं सुदक्षिणापेक्षया । कथं तर्ह्यात्मरक्षणमत आह । न चेति । तस्य दिलीपस्य शरीररक्षा चान्यतः पुरुषान्तरान्न । कुतः ? हि यस्मात्कारणान्मनोः प्रसूयत इति प्रसूतिः संततिः स्ववीर्येणैव गुप्ता रक्षिता । नहि स्वनिर्वाहकस्य परापेक्षेति भावः ॥ ४ ॥

अन्वयः—व्रताय, धेनोः, अनुचरेण, तेन, शेषः, अपि, अनुयायिवर्गः, न्यषेधि, तस्य, शरीररक्षा, अन्यतः, न, हि, मनोः, प्रसूतिः, स्ववीर्यगुप्ता, (भवति) ।

वाच्य०—धेनोः अनुचरः, सः, शेषमपि, अनुयायिवर्गं न्यषेधीत् । तस्य शरीररक्षया अन्यतः न (भूयते) । मनोः प्रसूत्या स्ववीर्यगुप्तया भूयते ।

व्याख्या—व्रताय = नियमाय, व्रतं कर्तुमित्यर्थः, धेनोः = नन्दिन्याः, अनु = पश्चात् चरति = गच्छति इति अनुचरस्तेन, अनुचरेण = सेवकेन, तेन = राज्ञा दिलीपेन, शेषः = अवशिष्टः, अपि, अनु = पश्चात् यान्तीति अनुयायिनस्तेषां वर्गः = समूह इति अनुयायिवर्गः, न्यषेधि = निवर्तितः, तस्य = दिलीपस्य शरीरस्य = देहस्य, रक्षा = पालनम् , अन्यतः = पुरुषान्तरात् , न = नहि, भवति । हि = यस्मात्कारणात् , मनोः = वैवस्वतस्य, (प्रसूयते इति प्रसूतिः) प्रसूतिः = सन्ततिः, स्वस्य = निजस्य, वीर्यं = पराक्रमः, तेन स्ववीर्येण गुप्ता = रक्षिता भवन्तीति शेषः ।

समा०—अनु (पश्चात्) चरतीति अनुचरः, तेन अनुचरेण । अनुयातुं (गन्तुम्) शीलं येषां ते अनुयायिनः, अनुयायिनां वर्गः अनुयायिवर्गः । शीर्यते (स्वयं विदीर्यते) इति शरीरम् , शरीरस्य रक्षा शरीररक्षा । स्वस्य वीर्यं स्ववीर्यम् . स्ववीर्येण गुप्ता स्ववीर्यगुप्ता ।

अभि०—राज्ञा दिलीपेन सर्वोऽपि भृत्यवर्गः, परावर्तितः, इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नाः स्वशरीररक्षणे अन्यस्य साहाय्यं नाभिलषन्ति, ते स्वपराक्रमेणैव सुरक्षिता भवन्तीत्यर्थः ।

हिन्दी—गोसेवा रूपी व्रत का पालन करने के लिये नन्दिनी के सेवक राजा दिलीप ने सुदक्षिणा को लौटाने के बाद बचे हुए अनुचर समूह को भी पीछे आने से रोक दिया । राजा दिलीप की शरीररक्षा के लिये दूसरे मनुष्य की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मनु के कुल में उत्पन्न राजा अपने ही पराक्रम से अपनी रक्षा कर लेते थे ॥ ४ ॥

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥ ५ ॥

सञ्जीविनी—सम्राण्मण्डलेश्वरः । येनेष्टं राजसूयेन मण्डलस्येश्वरश्च यः । शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राट्' इत्यमरः । स राजा आस्वादवद्भी रसवद्भिः । स्वादयुक्तैरित्यर्थः । तृणानां कवलैर्ग्रासैः । 'ग्रासस्तु कवलः पुमान्' इत्यमरः । कण्डूयनैः खर्जनैः । दंशानां वनमक्षिकाणां निवारणैः । 'दंशस्तु वनमक्षिका' इत्यमरः । अव्याहतैरप्रतिहतैः स्वैरगतैः स्वच्छन्दगमनैश्च । तस्या धेन्वाः समाराधनतत्परः शुश्रूषासक्तोऽभूत् । तदेव परं प्रधानं यस्येति तत्परः । *'तत्परे प्रसितासक्तौ' इत्यमरः ॥ ५ ॥*

अन्वयः—सम्राट्, सः, आस्वादवद्भिः, तृणानां, कवलैः, कण्डूयनैः, दंशनिवारणैः, अव्याहतैः, स्वैरगतैः, च, तस्याः, समाराधनतत्परः, अभूत्।

वाच्य०—सम्राजा तेन तस्याः समाराधनतत्परेण अभावि।

व्याख्या—सम्यक् राजते = प्रकाशते, इति सम्राट् = मण्डलेश्वरः, सः = राजा दिलीपः, आस्वादो विद्यते येषु ते आस्वादवन्तस्तैः आस्वादवद्भिः = रसवद्भिः, तृणानां = घासानां, कवलैः = ग्रासैः, कण्डूयनैः = खर्जनैः, दंशानां = वनमक्षिकाणाम्, निवारणानि = दूरीकरणानि तैः, दंशनिवारणैः = वनमक्षिकानिराकरणैः, न व्याहतानि अव्याहतानि तैः, अव्याहतैः = अप्रतिहतैः, स्वैरं = स्वच्छन्दं, गतानि = गमनानि तैः स्वैरगतैः = स्वेच्छयाविचरणैः, च = अपि, तस्याः = धेनोः, सम्यगाराधनम् समाराधनम्, तदेव परं प्रधानं यस्य सः, तत्परः = नन्दिनीशुश्रूषासक्तः, अभूत् = आसीत्।

समा०—आस्वादः (अभिरुचिः) एषामस्तीति आस्वादवन्तः, तैः आस्वादवद्भिः। दंशानां निवारणानि, तैः दंशनिवारणैः। न व्याहतानि अव्याहतानि, तैः अव्याहतैः। स्वैराणि (स्वैरेण वा) च तानि गतानि च स्वैरगतानि। तदेव परं (प्रधानं) यस्य सः तत्परः, सम्यग् आराधने तत्परः समाराधनतत्परः।

अभि०—चक्रवर्ती राजा दिलीपः निजकरोपनीतानां रसवत्सुकोमलघासानां ग्रासप्रदानेन, गात्रखर्जनेन, वनमक्षिकापसारणेन स्वच्छन्दगमनानिरोधेन च तस्याः सेवासक्तोऽभूत्।

हिन्दी—चक्रवर्ती राजा दिलीप सरस कोमल-कोमल घास के ग्रासों से, शरीर के खुजलाने से, जंगली मच्छरों के उड़ाने से एवं बेरोक-टोक स्वच्छन्द विचरण से उस वशिष्ठ ऋषि की धेनु की सेवा में संलग्न हुए ॥ ५ ॥

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥ ६ ॥

सञ्जीविनी—भूपतिस्तां गां स्थितां सतीं स्थितः सन्। स्थितिरूर्ध्वावस्थानम्। प्रयातां प्रस्थितामुच्चलितः प्रस्थितः। निषेदुषीं निषण्णाम्। उपविष्टामित्यर्थः। "भाषायां सदवसश्रुवः" इति क्वसुप्रत्ययः। "उगितश्च" इति ङीप्। आसनबन्ध उपवेशने धीरः स्थितः। उपविष्टः सन्नित्यर्थः। जलमाददानां जलं पिबन्तीं जलाभिलाषी। जलं पिबन्नित्यर्थः। इत्थं छायेवान्वगच्छदनुसृतवान् ॥ ६ ॥

अन्वयः—भूपतिः तां, स्थितां (सतीम्) स्थितः (सन्) प्रयातां (सतीम्) उच्चलितः (सन्) निषेदुषीम् (सतीम्) आसनबन्धधीरः (सन्) जलम् आददानां (सतीम्) जलाभिलाषी (सन्) (इत्थम्) छाया इव अन्वगच्छत्।

वाच्य०—भूपतिना सा धेनुः छायया इव अन्वगम्यत।

व्याख्या—भुवः = पृथिव्याः, पतिः = स्वामी, इति भूपतिः, तां = धेनुम्, स्थिताम् = ऊर्ध्वमवस्थिताम्, सतीमिति शेषः सर्वत्र। स्थितः = ऊर्ध्वमवतिष्ठमानः सन्, प्रयातां = प्रस्थानं कुर्वतीम्, उच्चलितः = प्रस्थानं कुर्वन्, निषेदुषीम् = उपविष्टाम्, आसनस्य बन्धः, आसनबन्धस्तस्मिन् धीरः, आसनबन्धधीरः = उपविष्टः सन्, जलम् = सलिलम् आदत्त इति आददाना ताम् आददानां = पिब-

न्तीम् । जलमभिलषति इति जलाभिलाषी = जलं पिबन् (स्वयं) छाया = प्रतिबिम्बं येनोपरिति यावत्, इव = यथा, अन्वगच्छत् = अन्वव्रजत् ॥

समा०—भुवः पतिः भूपतिः । आसनस्य बन्धः आसनबन्धः आसनबन्धे धीरः आसनबन्धधीरः। जलम् अभिलषितुं शीलमस्यासौ जलाभिलाषी । आदत्ते इति आददाना, ताम् आददानाम् ।

अभि०—धेनुसेवायां संलग्नो राजा दिलीपः तच्छायासदृशः तदनुसरणमकरोत् ।

हिन्दी—पृथ्वी का स्वामी राजा दिलीप नन्दिनी के खड़े होने पर स्वयं भी खड़ा होता था और चलने पर चलता था, बैठने पर बैठता था एवं जल पीने पर प्यासे की तरह जल पीने लगता था इस प्रकार छाया की तरह उसने नन्दिनी का अनुसरण किया ॥ ६ ॥

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः ।
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः ॥ ७ ॥

सञ्जीविनी—न्यस्तानि परिहृतानि चिह्नानि छत्रचामरादीनि यस्यास्तां तथाभूतामपि तेजोविशेषेण प्रभावातिशयेनानुमिताम् । सर्वथा राजैवायं भवेदित्यूहितां राजलक्ष्मीं दधानः स राजा । अनाविष्कृतदानराजिर्बहिरप्रकटितमदरेखः । अन्तर्गता मदावस्था यस्य सोऽन्तर्मदावस्थः । तथाभूतो द्विपेन्द्र इव आसीत् ॥ ७ ॥

अन्वय—न्यस्तचिह्नाम्, अपि, तेजोविशेषानुमितां, राजलक्ष्मीम्, दधानः, सः, अनाविष्कृतदानराजिः, अन्तर्मदावस्थः, द्विपेन्द्रः, इव, आसीत् ।

वाच्य०—राजलक्ष्मीं दधानेन तेन, अन्तर्मदावस्थेन, द्विपेन्द्रेण, इव, अभूयत ।'

व्याख्या—न्यस्तानि = परित्यक्तानि, चिह्नानि = छत्रचामरादीनि यस्याः सा न्यस्तचिह्ना तां न्यस्तचिह्नाम् अपि, तेजसः = प्रतापस्य विशेषः = अतिशयः, तेन, अनुमिता = तर्किता तां तेजोविशेषानुमितां, राज्ञः = नृपस्य, लक्ष्मीः = श्रीः, तां राजलक्ष्मीम्, शोभातिशयमित्यर्थः, दधानः = बिभ्राणः, सः = राजा दिलीपः, न आविष्कृता = न प्रकटीकृता, दानस्य = मदस्य, राजिः = लेखा येन सः तथोक्तः। मदस्य = दानस्य, अवस्था = दशा मदावस्था = दशा मदावस्था, अन्तर्गता मदावस्था यस्य सः, अन्तर्मदावस्थः, द्वाभ्यां = मुखशुण्डाभ्यां पिबन्तीति द्विपास्तेषामिन्द्रः, द्विपेन्द्रः = गजेन्द्रः, इव = यथा, आसीत् = अभूत् ।

समा०—न्यस्तानि चिह्नानि यस्याः सा न्यस्तचिह्ना, तां न्यस्तचिह्नाम् । तेजसः विशेषः तेजोविशेषः, तेजोविशेषेण अनुमिता तेजोविशेषानुमिता, तां तेजोविशेषानुमिताम् । राज्ञः लक्ष्मीः राजलक्ष्मीः तां राजलक्ष्मीम् । न आविष्कृता अनाविष्कृता, दानस्य राजिः दानराजिः अनाविष्कृता दानराजिः येन सः अनाविष्कृतदानराजिः । मदस्य अवस्था मदावस्था, अन्तः (अभ्यन्तरे) मदावस्था यस्य सः अन्तर्मदावस्था । द्वाभ्यां (शुण्डतुण्डाभ्यां) पिबन्तीति द्विपाः, द्विपानाम् इन्द्रः द्विपेन्द्रः

अभि०—यथा द्विपेन्द्रः, अनाविष्कृतमदः सन्नपि निजाभ्यन्तरगतां मदावस्थां स्वतेजोविशेषेण बोधयति एवं राजा दिलीपोऽपि छत्रचामरादीनि राजलक्षणानि अधारयन्नपि स्वप्रभावातिशयेन स्वकीयं चक्रवर्तित्वमनुमापयति स्म ।

हिन्दी—यद्यपि उस समय राजा दिलीप छत्र-चामर आदि समस्त राजचिह्नों से शोभित नहीं थे, तथापि अपने प्रभावातिशय के कारण अनुभाव से ज्ञात राजलक्ष्मी को धारण करते हुए उस गजराज की तरह दीख पड़ते थे जिसका मद बाहर भले ही प्रकट न हो पर जिसकी भव्य आकृति से मद का भीतर रहना स्पष्ट झलकता है ॥ ७ ॥

लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम् ।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् ॥ ८ ॥

सञ्जीविनी—लतानां वल्लीनां प्रतानैः कुटिलतन्तुभिरुद्ग्रथिता उन्नमय्य ग्रथिता ये केशास्तैरुपलक्षितः । "इत्थंभूतलक्षणे" इति तृतीया । स राजा । अधिज्यमारोपितमौर्वीकं धनुर्यस्य सोऽधिज्यधन्वा सन् । "धनुषश्च" इत्यनङादेशः । मुनिहोमधेनो रक्षापदेशाद्रक्षणव्याजात् । वन्यान्वने भवान्दुष्टसत्त्वान्दुष्टजन्तून् । 'द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः । विनेष्यञ्छिक्षयिष्यन्निव दावं वनम् । 'वने च वनवह्नौ च दवो दाव इहेष्यते' इति यादवः । विचचार । वने चचारेत्यर्थः । 'देशकालाध्वगन्तव्यः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्' इति दावस्य कर्मत्वम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—लताप्रतानोद्ग्रथितैः, केशैः (उपलक्षितः), सः, अधिज्यधन्वा (सन्) मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात्, वन्यान्, दुष्टसत्त्वान्, विनेष्यन्, इव, दावं, विचचार ।

वाच्य०—तेन अधिज्यधन्वना सता दुष्ट-सत्त्वान् विनेष्यता इव दावः विचेरे ।

व्याख्या—लतानां = वल्लीनां, प्रतानैः = कुटिलतन्तुभिः, उद्ग्रथिताः = उन्नमय्य गुम्फिता ये केशाः, तैः लताप्रतानोद्ग्रथितैः, केशैः = कचैः (उपलक्षितः) । 'कचः केशः शिरोरुहः', इत्यमरः । सः = राजा दिलीपः, अधिज्यम् = आरोपितमौर्वीकं, धनुः = कोदण्डः यस्य सः, अधिज्यधन्वा (सन्) मुनेः = वशिष्ठस्य, होमधेनुः = होमार्थं पालिता गौः होमधेनुः, तस्याः, मुनिहोमधेनोः = नन्दिन्याः, रक्षायाः = पालनस्य अपदेशः = व्याजः तस्मात् रक्षापदेशात् । वने भवा वन्यास्तान् वन्यान् = जांगलिकान्, दुष्टाश्च ते सत्त्वास्तान् दुष्टसत्त्वान् = हिंसकजन्तून्, विनेष्यन् = शिक्षयिष्यन् इव = यथा, दावं = वनं, विचचार = विचरति स्म ।

समा०—लतानां प्रतानानि लताप्रतानानि, उन्नमय्य ग्रथिताः उद्ग्रथिताः, लताप्रतानैः उद्ग्रथिताः लताप्रतानोद्ग्रथिताः, तैः लताप्रतानोद्ग्रथितैः । अधि (आरोपिता) ज्या (मौर्वी) यस्य तत् अधिज्यम्, अधिज्यं धनुः यस्य सः अधिज्यधन्वा । होमस्य धेनुः होमधेनुः मुनेः होमधेनुः मुनिहोमधेनुः, तस्याः मुनिहोमधेनोः । रक्षायाः अपदेशः रक्षापदेशः, तस्मात् रक्षापदेशात् । वने भवाः वन्याः, तान् वन्यान् । दुष्टाश्च ते सत्त्वाश्च दुष्टसत्त्वाः, तान् दुष्टसत्त्वान् । विनेष्यतीति विनेष्यन् ।

अभि०—राजा दिलीपः कुटिलतन्तुगुम्फितकेशः धनुष्पाणिः सन् वने भ्रमणं कृतवान्, तत् वशिष्ठधेनुरक्षणव्याजेन दुष्टहिंसकव्याघ्रादीनां शिक्षणार्थमिवेति भाति स्म ।

हिन्दी—लताओं के टेढ़े-मेढ़े सूत के समान तृणों से बँधे हुए बालों से सुशोभित वह राजा दिलीप प्रत्यञ्चा चढ़े धनुष को लेकर वशिष्ठ के हवन की सामग्री (घृतादि) देनेवाली उस गौ की रक्षा के बहाने दुष्ट सिंहादि जन्तुओं का शासन करने के लिये मानों वन में विचरण कर रहा था ॥८॥

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य ।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः ॥ ९ ॥

सञ्जीविनी—विसृष्टाः पार्श्वानुचराः पार्श्ववर्तिनो जना येन तस्य। पाशभृता वरुणेन समस्य तुल्यस्य। 'प्रचेता वरुणः पाशी' इत्यमरः। अनेनास्य महानुभावः सूचितः। तस्य राज्ञः पार्श्वयोर्द्रुमाः। उन्मदानामुत्कटमदानां वयसां खगानाम्। 'खगबाल्यादिनोर्वयः' इत्यमरः। विरावैः शब्दैः। आलोकस्य शब्दं वाचकमालोकयेति शब्दम्। जयशब्दमित्यर्थः। 'आलोको जयशब्दः स्यात्' इति विश्वः। उदीरयामासुर्वावदन्निवेत्युत्प्रेक्षा ॥ ९ ॥

अन्वयः—विसृष्टपार्श्वानुचरस्य, पाशभृता समस्य, तस्य, पार्श्वद्रुमाः, उन्मदानां, वयसां, विरावैः आलोकशब्दम्, उदीरयामासुः, इव।

वाच्य०—तस्य पार्श्वद्रुमैः, आलोकशब्दः, उदीरयाञ्चक्रे।

व्याख्या—पार्श्वयोः अनुचराः पार्श्वानुचराः, विसृष्टाः = त्यक्ताः पार्श्वानुचराः = समीपवर्तिसेवकाः, येन सः, तस्य विसृष्टपार्श्वानुचरस्य, पाशं बिभर्तीति पाशभृत्तेन पाशभृता = वरुणेन "प्रचेता वरुणः पाशी" इत्यमरः। समस्य = तुल्यस्य, तस्य = राज्ञः, पार्श्वयोः = अन्तिकयोः, द्रुमाः = वृक्षा इति पार्श्वद्रुमाः। उद्गतः, मदो येषान्ते उन्मदास्तेषामुन्मदानाम् = उत्कटमदानां, वयसां = पक्षिणां, विरावैः = शब्दैः, आलोकस्य शब्दम् आलोकशब्दम् = जयशब्दम्, उदीरयामासुः = कथयामासुः, इव इत्युत्प्रेक्षा।

समा०—अनु चरन्तीति अनुचराः, पार्श्वयोः अनुचराः, पार्श्वानुचराः विसृष्टाः पार्श्वानुचराः येन सः विसृष्टपार्श्वानुचरः, तस्य विसृष्टपार्श्वानुचरस्य। पाशं बिभर्तीति पाशभृत्, तेन पाशभृता। पार्श्वयोः द्रुमाः पार्श्वद्रुमाः। उद् (उत्कृष्टः) मदः येषां तानि उन्मदानि, तेषाम् उन्मदानाम्। आलोकस्य शब्दः आलोकशब्दः, तम् आलोकशब्दम्।

अभि०—परित्यक्तसेवकवर्गस्यापि वरुणतुल्यप्रभावस्य तस्य राज्ञो दिलीपस्य, उभयपार्श्वस्थितेषु वृक्षेषु स्थितानां पक्षिणां कूजितं बन्दिजनभाषितजयशब्द इवाभवत्।

हिन्दी—समीपवर्ती सेवकों को छोड़ देने पर भी वरुण के समान प्रभावशाली राजा दिलीप के आस पास के वृक्षों ने मतवाले पक्षियों के शब्द द्वारा जय शब्द उच्चारण किया। अर्थात् 'महाराज की जय हो' कहा, ऐसा जान पड़ता था ॥ ९ ॥

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्तमानम् ।
अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः ॥ १० ॥

सञ्जीविनी—मरुत्प्रयुक्ता वायुना प्रेरिता बाललता आरात्समीपेऽभिवर्तमानम्। 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः। मरुतो वायोः सखा मरुत्सखोऽग्निः। स इवाभातीति मरुत्सखाभम्। 'आतश्चोपसर्गे' इति कप्रत्ययः। अर्च्यं पूज्यं तं दिलीपं प्रसूनैः पुष्पैः। पौरकन्याः पौराश्च ताः कन्या आचारार्थैर्लाजैराचारलाजैरिव अवाकिरन्। तस्योपरि निक्षिप्तवत्य इत्यर्थः। सखा हि सखायमागतमुपचरतीति भावः ॥ १० ॥

अन्वयः—मरुत्प्रयुक्ताः बाललताः आरात्, अभिवर्तमानम्, मरुत्सखाभम्, अर्च्यम्, तम्, प्रसूनैः, पौरकन्याः, आचारलाजैः, इव, अवाकिरन्।

वाच्य०—बाललताभिः, अर्च्यः, सः, प्रसूनैः, पौरकन्याभिरिव, अवाकीर्यत।

व्याख्या—मरुता = वायुना, प्रयुक्ताः = प्रेरिताः, इति मरुत्प्रयुक्ताः, बालाश्च ताः लताः बाललताः = बालवल्लर्यः, आरात् = समीपे, अभिवर्तते इति अभिवर्तमानस्तमभिवर्तमानम् = विद्यमानम्, मरुतः = वायोः, सखा = मित्रम्, इति मरुत्सखः अग्निरित्यर्थः, तस्य, आभा, इव, आभा = कान्तिः, यस्य सः, तम् मरुत्सखाभम्, अतएव, अर्च्यं = पूज्यं, तं = दिलीपम्, प्रसूनैः = पुष्पैः, पुरे भवाः पौरास्तेषां कन्याः पौरकन्याः = नागरिकबालिकाः, आचारार्थं = मंगलार्थं लाजाः तैः, आचारलाजैः, इव = यथा, अवाकिरन् = ववृषुः।

समा०—मरुता प्रयुक्ताः मरुत्प्रयुक्ताः। बालाश्च ताः लताश्च बाललताः। अभि (अभिमुखं) वर्तते इति अभिवर्तमानः, तम् अभिवर्तमानम्। मरुतः सखा मरुत्सखः, मरुत्सख इव आभाति इति मरुत्सखाभः, तं मरुत्सखाभम्। अर्चितुं योग्यः अर्च्यः, तम् अर्च्यम्। पुरे भवाः पौराः पौराश्च ताः पौराणां वा कन्याः पौरकन्याः। आचारार्थाः लाजाः आचारलाजाः (उत्तरपदलोपः), तैः आचारलाजैः।

अभि०—वह्नितुल्यदीप्तिमन्तं राजानं दिलीपमागतं दृष्ट्वा बाललताः समीपे वर्तमानस्य दिलीपस्योपरि पुष्पवृष्टिम् अकुर्वन्, यथा पौरकन्याः मंगलार्थं लाजवर्षणम् कुर्वन्ति।

हिन्दी—वायु से प्रेरित कोमल लताओं ने अग्नि के समान तेजस्वी एवं समीप में आये हुए पूजनीय राजा दिलीप के ऊपर उसी प्रकार फूलों की वर्षा की जिस प्रकार नगरवासियों की बालिकायें मंगलार्थ धान के लावों की वर्षा करती हैं ॥ १० ॥

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ॥ ११ ॥

सञ्जीविनी—धनुर्भृतोऽप्यस्य राज्ञः। एतेन भयसंभावना दर्शिता। तथापि विशङ्कैर्निर्भीकैरन्तःकरणैः कर्तृभिः। दयया कृपारसेनार्द्रो भावोऽभिप्रायो यस्य तद्दयार्द्रभावं तदाख्यातम्। दयार्द्रभावमेतदित्याख्यातमित्यर्थः। 'भावः सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु' इत्यमरः। तथाविधं वपुरालोकयन्त्यो हरिण्योऽक्ष्णां प्रकामविस्तारस्यात्यन्तविशालतायाः फलमापुः। "विमलं कलुषीभवच्च चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं च" इति न्यायेन स्वान्तःकरणवृत्तिप्रामाण्यादेव विश्रब्धं ददृशुरित्यर्थः ॥ ११ ॥

अन्वयः—धनुर्भृतः अपि, अस्य, विशङ्कैः, अन्तःकरणैः, दयार्द्रभावम्, आख्यातम्, वपुः, विलोकयन्त्यः, हरिण्यः, अक्ष्णाम्, प्रकामविस्तारफलम्, आपुः।

वाच्य—विलोकयन्तीभिः, हरिणीभिः, अक्ष्णां प्रकामविस्तारफलम्, आपे।

व्याख्या—धनुर्बिभर्ति इति धनुर्भृत् तस्य धनुर्भृतः = चापधारिणः, अपि = विरोधे, अस्य = राज्ञो दिलीपस्य, विगता = नष्टा, शंका = भीतिः, येषान्तैः, विशंकैः अन्तःकरणैः = मनोभिः (कर्तृभिः), दयया = करुणया, आर्द्रः = पूर्णः, भावः = अभिप्रायः, यस्य तत्तथोक्तम्, आख्यातम् = प्रकटितम्, कृपापरिपूर्णमेतद्वपुरिति कथितमित्यर्थः, वपुः = शरीरम्, विलोकयन्त्यः = पश्यन्त्यः, हरिण्यः = मृग्यः,

अक्ष्णाम् = नेत्राणाम् , प्रकामं = यथेष्टं विस्तारस्तस्य फलमिति प्रकामविस्तारफलम् = अत्यन्तविशालता-फलम् , आपुः = प्रापुः ।

समा०—धनुः बिभर्तीति धनुर्भृत् , तस्य धनुर्भृतः । विगता शंका येभ्यस्तानि विशंकानि, तैः विशंकैः । अन्तः (अन्तःस्थानि) करणानि अन्तःकरणानि, तैः अन्तःकरणैः । दयया आर्द्रः भावः यस्य तत् दयार्द्रभावम् , प्रकामं विस्तारः प्रकामविस्तारः, प्रकामविस्तारस्य फलं प्रकामविस्तारफलम् ।

अभि०—यद्यपि राजा दिलीपः धनुर्धारी सन् बाह्यतः भयप्रद आसीत् , किन्तु मृग्यः स्वचित्तैः राज्ञो दयार्द्रभावं विज्ञाय, भयरहिताः सत्यः निर्निमेषदृष्ट्या दिलीपशरीरं विलोकयन्त्यः निजनेत्रविस्तृतेः साफल्यं प्रापुः ।

हिन्दी—धनुष को धारण करने पर भी राजा दिलीप का शरीर दयापूर्ण है ऐसा भयरहित अपने अन्तःकरणों के द्वारा जानकर एकटक देखती हुई हरिणियों ने अपने नेत्रों के विशाल होने का फल प्राप्त किया अर्थात् अपने अन्तःकरण के विश्वास से निश्चित होकर राजा को देखा ॥ ११ ॥

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् ।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥ १२ ॥

सञ्जीविनी—स दिलीपो मारुतपूर्णरन्ध्रैः । अत एव कूजद्भिः स्वनद्भिः । कीचकैर्वेणुविशेषैः । 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः । वंशः सुषिरवाद्यविशेषः । 'वंशादिकं तु सुषिरम्' इत्यमरः । आपादितं संपादितं वंशस्य कृत्यं कार्यं यस्मिन्कर्मणि तत्तथा । कुञ्जेषु लतागृहेषु । 'निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे' इत्यमरः । वनदेवताभिरुद्गीयमानमुच्चैर्गीयमानं स्वं यशः शुश्राव श्रुतवान् ॥ १२ ॥

अन्वयः—सः, मारुतपूर्णरन्ध्रैः, कूजद्भिः, कीचकैः, आपादितवंशकृत्यम् , कुञ्जेषु, वनदेवताभिः, उच्चैः, उद्गीयमानं, स्वं, यशः, शुश्राव ।

वाच्य०—तेन स्वं यशः शुश्रुवे ।

व्याख्या—सः = राजा दिलीपः, मारुतेन = वायुना, पूर्णानि = पूरितानि, रन्ध्राणि = छिद्राणि येषान्ते मारुतपूर्णरन्ध्रास्तैः, तथोक्तैः, (अतएव) कूजद्भिः शब्दं कुर्वद्भिरित्यर्थः, कीचकैः = वेणु-विशेषैः 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः । आपादितं = सम्पादितं वंशस्य = वेणु-विशेषस्य कृत्यं = कार्यं यस्मिन् कर्मणि तत्तथा क्रियाविशेषणमेतत् , कुञ्जेषु = लतागृहेषु, वनस्य = अरण्यस्य, देवताः = अधिष्ठातृदेव्यः, ताभिः वनदेवताभिः, उच्चैः = तारस्वरेण, उद्गीयमानम् = स्तूय-मानम् , स्वं = स्वकीयं, यशः = कीर्तिम् , शुश्राव = आकर्णयामास, श्रुतवानित्यर्थः ।

समा०—मारुतेन पूर्णानि रन्ध्राणि येषां ते: मारुतपूर्णरन्ध्राः, तैः मारुतपूर्णरन्ध्रैः । कूजन्तीति कूजन्तः, तैः कूजद्भिः । वंशस्य कृत्यम् वंशकृत्यम् , आपादितं वंशकृत्यं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा भवति तथा आपादितवंशकृत्यम् । वनस्य देवताः वनदेवताः, ताभिः । उद् (उच्चैः) गायमानं उद्गीयमानम् ।

अभि०—प्रवहन्मरुदापूरणेन स्वतः शब्दायमानाः वंशाः वाद्यकृत्यं कुर्वन्ति, लतागृहेषु वनदेवता तारस्वरेण राज्ञः कीर्तिं गायन्ति, इदं राजा दिलीपः श्रुतवान् ।

हिन्दी—उस राजा दिलीप ने वायु से भरे छिद्रों से बजते हुए कीचक नामक बाँसों के द्वारा बाँसुरी का कार्य जिस गान में हो रहा है ऐसे वन की देवियों द्वारा जोर से गाये जानेवाले अपने उस यशगान को सुना ॥ १२ ॥

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे ॥ १३ ॥

सञ्जीविनी—गिरिषु निर्झराणां वारिप्रवाहाणाम् 'वारिप्रवाहो निर्झरो झरः' इत्यमरः । तुषारैः सीकरैः 'तुषारौ हिमसीकरौ' इति शाश्वतः । पृक्तः संपृक्तोऽनोकहानां वृक्षाणामाकम्पितानीषत्कम्पितानि पुष्पाणि तेषां यो गन्धः सोऽस्यास्तीत्याकम्पितपुष्पगन्धी । ईषत्कम्पितपुष्पगन्धवान् । एवं शीतो मन्दः सुरभिः पवनो वायुरनातपत्रं व्रतार्थं परिहृतच्छत्रम् । अत एवातपक्लान्तमाचारेण पूतं शुद्धं तं नृपं सिषेवे । आचारपूतत्वात्स राजा जगत्पावनस्यापि सेव्य आसीदिति भावः ॥ १३ ॥

अन्वयः—गिरिनिर्झराणाम् , तुषारैः, पृक्तः, अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी, पवनः, अनातपत्रम् , आतपक्लान्तम् , आचारपूतं तं सिषेवे ।

वाच्य०—पवनेन आचारपूतः सः सिषेवे ।

व्याख्या—गिरिषु=पर्वतेषु , निर्झराः=वारिप्रवाहाः, तेषां गिरिनिर्झराणाम् , "वारिप्रवाहो निर्झरो झरः" इत्यमरः । तुषारैः=सीकरैः जलबिन्दुभिरित्यर्थः, "तुषारौ हिमसीकरौ" इति शाश्वतः । पृक्तः=सम्पृक्तः, अनसः=शकटस्याकं गतिं घ्नन्तीति अनोकहास्तेषामनोकहानाम्=वृक्षाणाम् , आकम्पितानि=ईषत्कम्पितानि यानि पुष्पाणि=कुसुमानि, तेषां गन्धः=सौरभम् अस्यास्तीति अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी, पुनातीति पवनः=वायुः, आतपात्=घर्मात् त्रायते इति आतपत्रम् , न विद्यते-आतपत्रं यस्य सः, अनातपत्रस्तमनातपत्रम्=छत्ररहितम् , (अत एव) आतपेन=घर्मेण, औष्ण्येनेत्यर्थः, क्लान्तम्=म्लानम् , आचारेण=सदाचारेण पूतं=पवित्रं, तं=राजानं दिलीपं, सिषेवे=सेवितवान् ।

समा०—गिरेः निर्झराः गिरिनिर्झराः, तेषां गिरिनिर्झराणाम् । अनसः (शकटस्य) अकं (गतिम्) घ्नन्तीति अनोकहाः, आकम्पितानि च तानि पुष्पाणि च आकम्पितपुष्पाणि, अनोकहानाम् आकम्पितपुष्पाणि अनोकहाकम्पितपुष्पाणि, अनोकहाकम्पितपुष्पाणां गन्धः अस्यास्तीति अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी । आतपेन क्लान्तः आतपक्लान्तः तम् आतपक्लान्तम् । आतपात्त्रायत इति आतपत्रम् , न विद्यते आतपत्रं यस्य सः अनातपत्रः तम् अनातपत्रम् । आचारैः पूतः आचारपूतः तम् आचारपूतम् ।

अभि० —शीतलः, मन्दः, सुरभिश्च वायुः, छत्ररहितं घर्मपीडितं सदाचारेण शुद्धं तं दिलीपं सेवितवान् , आचारपूतत्वेन स राजा पवनस्यापि सेव्य इति भावः ।

हिन्दी—पर्वतीय झरनों के जलकणों से युक्त अत एव शीतल तथा वृक्षों के धीरे २ हिलते हुए फूलों की गन्धवाला अर्थात् शीतल, मन्द एवं सुगन्ध युक्त वायु छत्र रहित अतएव धूप से मुरझाये हुए एवं सदाचार से पवित्र राजा दिलीप की सेवा करने लगा ॥ १३ ॥

शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः ।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने ॥ १४ ॥

सञ्जीविनी—गोप्तरि तस्मिन्राज्ञि वनं गाहमाने प्रविशति सति वृष्ट्या विनापि दवाग्निर्वनाग्निः। 'दवदावौ वनानले' इति हैमः। 'दवदावौ वनारण्यवह्नी' इति चामरः। शशाम। फलानां पुष्पाणां च वृद्धिः। विशेष्यत इति विशेषा अतिशयिताऽसीत्। कर्मार्थे घञ्प्रत्ययः। सत्त्वेषु जन्तुषु मध्ये। 'यतश्च निर्धारणम्' इति सप्तमी। अधिकः प्रबलो व्याघ्रादिरूनं दुर्बलं हरिण्यादिकं न बबाधे न पिपीड ॥१४॥

अन्वयः—गोप्तरि, तस्मिन्, वनं, गाहमाने, सति, वृष्ट्या, विना, अपि दवाग्निः, शशाम, फलपुष्पवृद्धिः, विशेषा, आसीत्, सत्त्वेषु (मध्ये) अधिकः, ऊनं न बबाधे।

वाच्य—दवाग्निना शेमे, फलपुष्पवृद्धया विशेषया अभूयत, अधिकेन ऊनः न बबाधे।

व्याख्या—गोपायतीति गोप्ता तस्मिन् गोप्तरि = रक्षके, वनं = काननं, गाहते असौ गाहमानः तस्मिन् गाहमाने = प्रविशति (सति), वृष्ट्या = वर्षणेन, विना = अन्तरेण, अपि: = विरोधे, दवस्य = वनस्य, अग्निः = वह्निः, इति दवाग्निः "दवदावौ वनानले" इति हैम। शशाम = अशमत, फलानां = सस्यानां, पुष्पाणां = कुसुमानां, वृद्धिः = समृद्धिः, विशेषा = अधिका, आसीत् = अभवत्, सत्त्वेषु = जन्तुषु (मध्ये) अधिकः = प्रबलः व्याघ्रादिः, ऊनं = दुर्बलं हरिण्यादिकं, न बबाधे = न पीडयामास।

समा०—दवस्य अग्निः दवाग्निः। फलानि च पुष्पाणि च फलपुष्पाणि, फलपुष्पाणां वृद्धि फलपुष्पवृद्धिः। गाहते इति गाहमानः तस्मिन् गाहमाने।

अभि०—जगत्पालकस्य राज्ञो दिलीपस्य प्रभावातिशयेन वनप्रवेशक्षण एव वनाग्निः स्वयमेः शान्तोऽभूत्, फलपुष्पवृद्धिः विशिष्टा जाता, प्राणिषु च वैरत्यागः जातः।

हिन्दी—जगत की रक्षा करने वाले राजा दिलीप के वन में प्रवेश करते ही वर्षा के विना मे वन की अग्नि शान्त हो गई तथा फल-पुष्पों की खूब वृद्धि हुई और जंगली जन्तुओं के बीच मे प्रबल सिंहादि अपने से दुर्बल हरिणादि को नहीं सताने लगे। अर्थात् राजा के वन में प्रवेश करते ही सब उपद्रव शान्त हो गये ॥ १४ ॥

सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥ १५ ॥

सञ्जीविनी—पल्लवस्य रागो वर्णः पल्लवरागः। रागोऽनुरक्तौ मात्सर्ये क्लेशादौ लोहितादिषु इति शाश्वतः। स इव ताम्रा पल्लवरागताम्रा पतङ्गस्य सूर्यस्य प्रभा कान्तिः। 'पतङ्गः पक्षिसूर्ययोः' इति शाश्वतः। मुनेर्धेनुश्च। दिगन्तराणि दिशामवकाशान्। अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये इत्यमरः। संचारेण पूतानि शुद्धानि कृत्वा दिनान्ते सायंकाले निलयायास्तमयाय। धेनुपक्ष आलयाय च। गन्तुं प्रचक्रमे उपक्रान्तवती ॥ १५ ॥

अन्वयः—पल्लवरागताम्रा, पतङ्गस्य, प्रभा, मुनेः, धेनुः, च दिगन्तराणि सञ्चारपूतानि, कृत्वा दिनान्ते, निलयाय, गन्तुम् प्रचक्रमे।

वाच्य०—पल्लवरागताम्रया पतङ्गस्य प्रभया मुनेः धेन्वा च गन्तुं प्रचक्रमे।

व्याख्या—पल्लवस्य = किसलयस्य, नवपत्रस्येत्यर्थः, रागः = वर्णः, इति पल्लवरागः स इव ताम्रा = अरुणा इति पल्लवरागताम्रा, पतङ्गस्य = सूर्यस्य 'पतङ्गः पक्षिसूर्ययोः' इति शाश्वतः। प्रभा = कान्तिः, मुनेः = महर्षिवशिष्ठस्य, धेनुः = नन्दिनी, चः = समुच्चये, दिशां = काष्ठानाम्, अन्तराणि = मध्यमार्गान् इति दिगन्तराणि, सञ्चारेण = गमनेन, पूतानि = पवित्राणि, कृत्वा = विधाय, दिनस्य = दिवसस्य, अन्तः = अवसानम्, तस्मिन् दिनान्ते = सायंकाले, निलयाय = (प्रभापक्षे) अस्तमयाय (धेनुपक्षे), गृहाय, गन्तुं = यातुं, प्रचक्रमे = उपक्रमं चकार।

समा०—पल्लवस्य रागः पल्लवरागः, पल्लवराग इव ताम्रा पल्लवरागताम्रा। दिशाम्, अन्तराणि दिगन्तराणि तानि दिगन्तराणि। दिनस्य अन्तः दिनान्तः, तस्मिन् दिनान्ते।

अभि०—यथा सायंकाले सूर्यप्रभा अस्तमयाय उपक्रमं करोति तथैव वशिष्ठधेनुरपि सायं वशिष्ठाश्रमं गन्तुमुद्यता अभूत्।

हिन्दी—पल्लववर्ण के समान लाल वर्ण वाली सूर्य की प्रभा तथा वशिष्ठ जी की धेनु ये दोनों, दिशाओं के मध्यभाग को अपने-अपने गमन से पवित्र करके दिन के अन्त में, प्रभा अस्त होने के लिये और धेनु अपने आश्रम में पहुँचने के लिये तैयार हो गई॥ १५॥

तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः।
बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना॥ १६॥

सञ्जीविनी—मध्यमलोकपालो भूपालः। देवतापित्रतिथीनां क्रिया यागश्राद्धदानानि ता एवार्थः प्रयोजनं यस्यास्तां धेनुमन्वगनुपदं ययौ। 'अन्वगन्वक्षमनुगेऽनुपदं क्लीबमव्ययम्' इत्यमरः। सतां मतेन सद्भिर्मान्येन। "मतिबुद्धि" इत्यादिना वर्तमाने क्तः। "क्तस्य च वर्तमाने" इति षष्ठी। तेन राज्ञोपपन्ना युक्ता सा धेनुः। सतां मतेन विधिनानुष्ठानेनोपपन्ना युक्ता साक्षात्प्रत्यक्षा श्रद्धास्तिक्य-बुद्धिरिव बभौ च॥ १६॥

अन्वय—मध्यमलोकपालः, देवतापित्रतिथिक्रियार्थां, ताम्, अन्वक्, ययौ, सतां, मतेन, तेन, उपपन्ना, सा (सतां मतेन) विधिना (उपपन्ना) साक्षात्, श्रद्धा, इव, बभौ।

वाच्य०—मध्यमलोकपालेन, सा, अन्वग्, यये, उपपन्नया तया साक्षात्, श्रद्धया, इव बभे।

व्याख्या—मध्ये भवः मध्यमः, मध्यमश्चासौ लोक इति मध्यमलोकः, तम्पालयतीति मध्यमलोक-पालः = भूलोकरक्षकः। देवताः = देवाश्च, पितरः = परलोकगताश्च, अतिथयः = प्राघुणिकाश्च, इति देवतापित्रतिथयः, तेषां क्रिया = यज्ञश्राद्धदानानि ता एवार्थः प्रयोजनं यस्याः सा तां तथाभूताम्, तां = नन्दिनीम्, वनात्परावर्तमानामिति यावत्। अन्वग् = अनुपदम्, ययौ = जगाम। सतां = सज्जनानां, मतेन = पूजितेन, तेन = राज्ञा दिलीपेन, उपपन्ना = युक्ता, सा = धेनुः, सतां मतेन = साधुजनाचरितेन, विधिना = विधानेन, उपपन्ना = युक्ता, साक्षात् = प्रत्यक्षा, श्रद्धा = आस्तिक्यबुद्धिः, इव = यथा, बभौ = शुशुभे।

समा०—मध्ये भवः मध्यमः मध्यमश्चासौ लोकश्च मध्यमलोकः, मध्यमलोकं पालयतीति मध्यम-लोकपालः। देवताश्च पितरश्च अतिथयश्च देवतापित्रतिथयः, देवतापित्रतिथीनां क्रियैव अर्थः यस्याः सा देवतापित्रतिथिक्रियार्था, तां देवतापित्रतिथिक्रियार्थाम्।

अभि०—राजा दिलीपः यज्ञादिसाधिकां तां धेनुमनुगच्छन् सन् ययौ, साधुजनपूजितेन तेन युक्ता सती सा धेनुरपि साक्षात् विधिना युक्ता आस्तिक्यबुद्धिरिव शुशुभे।

हिन्दी—मृत्युलोक की रक्षा करने वाले राजा दिलीप, देव पितर एवं अतिथियों के कार्य यज्ञ श्राद्ध तथा भोजन को सिद्ध करनेवाली उस गौ के पीछे-पीछे चले, और सज्जनों से पूजित राजा से युक्त वह गौ भी सज्जनों द्वारा किये गये अनुष्ठान से युक्त श्रद्धा जैसी सुशोभित होती है उसी प्रकार सुशोभित होने लगी ॥ १६ ॥

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि ।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ॥ १७ ॥

सञ्जीविनी—स राजा। पल्वलेभ्योऽल्पजलाशयेभ्य उत्तीर्णानि निर्गतानि वराहाणां यूथानि कुलानि येषु तानि। बर्हाण्येषां सन्तीति बर्हिणा मयूराः। 'मयूरो बर्हिणो बर्ही' इत्यमरः। फलबर्हाभ्यामिनच्प्रत्ययो वक्तव्यः। आवासवृक्षाणामुन्मुखा बर्हिणा येषु तानि, श्यामायमानानि वराहबर्हिणादिमलिनिम्ना श्यामानि। श्यामानि भवन्तीति श्यामायमानानि। "लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्" इति क्यष्प्रत्ययः। "वा क्यषः" इत्यात्मनेपदे शानच्। मृगैरध्यासिता अधिष्ठिताः शाद्वला येषु तानि। शादाः शष्पाण्येषु देशेषु सन्तीति शाद्वलाः शष्पश्यामदेशाः। 'शाद्वलः शादहरिते', इत्यमरः। 'शादः कर्दमशष्पयोः' इति विश्वः। "नडशादाड्ड्वलच्" इति ड्वलच्प्रत्ययः। वनानि पश्यन्ययौ।

अन्वयः—सः, पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि, आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि, मृगाध्यासितशाद्वलानि, श्यामायमानानि वनानि, पश्यन् (सन्) ययौ।

वाच्य०—तेन वनानि पश्यता सता यये।

व्याख्या—सः = राजा दिलीपः, पल्वलेभ्यः = अल्पजलाशयेभ्यः, उत्तीर्णानि = निर्गतानि, वराहाणां = शूकराणां, यूथानि = समूहाः = कुलानि येषु तानि तथोक्तानि, आवासस्य = निवासस्य, वृक्षाः = पादपाः इति, आवास वृक्षास्तेषामुन्मुखाः = अभिमुखाः, आवासवृक्षोन्मुखाः, बर्हिणाः = मयूराः सन्ति येषु तानि तथोक्तानि, मृगैः = हरिणैः अध्यासिताः = अधिष्ठिताः, शाद्वलाः = शादहरिताः = हरिततृणप्रदेशाः, येषु तानि तथोक्तानि, न श्यामानि अश्यामानि अश्यामानि श्यामानि भवन्तीति श्यामायमानानि = कृष्णीभूतानि वनानि = काननानि, पश्यन् = अवलोकयन् (सन्) ययौ = जगाम।

समा०—वराहाणां यूथानि वराहयूथानि, पल्वलेभ्यः उत्तीर्णानि वराहयूथानि येषु तानि पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि तानि पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि। आवासस्य वृक्षाः आवासवृक्षाः, उद्गतं मुखं येषां ते उन्मुखाः, उन्मुखाश्च ते बर्हिणाश्च उन्मुखबर्हिणाः, आवासवृक्षाणां उन्मुखबर्हिणाः येषां तानि आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि तानि आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि। शादः घर्षा अस्तीति शाद्वलाः, मृगैः अध्यासिताः शाद्वलाः येषां तानि मृगाध्यासितशाद्वलानि तानि मृगाध्यासितशाद्वलानि। अश्यामानि श्यामानि भवन्तीति श्यामायमानानि, तानि श्यामायमानानि।

अभि०—स राजा दिलीपः, यत्र स्वल्पजलाशयेभ्यः शूकरकुलानि निःसरन्ति, येषु च निजनिवासवृक्षान् प्रति मयूरा उन्मुखाः सन्ति, येषु च मृगाः हरितघासेषु उपविशन्ति, तानि श्यामीभूतानि वनानि पश्यन् वशिष्ठाश्रमं प्रति जगाम।

हिन्दी—वह राजा दिलीप छोटे २ तालाबों से निकले जंगली सूअरों के झुण्डवाले, अपने निवास वृक्षों पर ऊपर की ओर देखते हुए मोरों वाले और मृग जिनपर बैठे हैं ऐसे हरी घासों से युक्त प्रदेश वाले, अतः सर्वत्र श्यामायमान वनों को देखता हुआ जाने लगा ॥ १७ ॥

आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद् गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः ।
उभावलञ्चक्रतुरञ्चिताभ्यां तपोवनावृत्तिपथं गताभ्याम् ॥ १८ ॥

सञ्जीविनी—गृष्टिः सकृत्प्रसूता गौः । 'गृष्टिः सकृत्प्रसूता गौः' इति हलायुधः । नरेन्द्रश्च उभौ यथाक्रमम् । आपीनमूधः । 'ऊधस्तु क्लीबमापीनम्' इत्यमरः । आपीनस्य भारोद्वहने प्रयत्नात्प्रयासात् । वपुषो देहस्य गुरुत्वादाधिक्याच्च । अञ्चिताभ्यां चारुभ्यां गताभ्यां गमनाभ्यां तपोवनादावृत्तेः पन्थास्तं तपोवनावृत्तिपथम् । "ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे" इत्यनेन समासान्तोऽच्प्रत्ययः । अलंचक्रतुर्भूषितवन्तौ ॥ १८ ॥

अन्वयः—गृष्टिः, नरेन्द्रः (च) उभौ, आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्, वपुषः, गुरुत्वात् अञ्चिताभ्यां, गताभ्यां, तपोवनावृत्तिपथम्, अलञ्चक्रतुः ॥

वाच्य०—गृष्ट्या, नरेन्द्रेण चोभाभ्यां तपोवनावृत्तिपथः, अलञ्चक्रे ।

व्याख्या—गृष्टिः = सकृत्प्रसूता गौः, नरेषु इन्द्रः इति नरेन्द्रः = दिलीपः (च) उभौ = यथाक्रमम्, नन्दिनीदिलीपौ, आपीनस्य = ऊधसः, भारः, तस्य उद्वहनं = धारणं, तत्र प्रयत्नः = प्रयासः, तस्मात्, आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात् वपुषः = शरीरस्य, गुरोर्भावः गुरुत्वं तस्मात् गुरुत्वात् = आधिक्यात्, अञ्चिताभ्यां = सुन्दराभ्यां, गताभ्यां = गमनाभ्यां, तपसः = तपस्यायाः, वनं = काननम्, इति तपोवनम्, तपोवनात्, आवृत्तेः = आगमनस्य, पन्थाः = मार्गः, तं तथोक्तम्, अलंचक्रतुः = शोभितवन्तौ ।

समा०—आपीनस्य भारः आपीनभारः, आपीनभारस्य उद्वहनम् आपीनभारोद्वहनम्, आपीनभारोद्वहने प्रयत्नः आपीनभारोद्वहनप्रयत्नः, तस्मात् आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात् । गुरुणः भावः गुरुत्वम्, तस्मात् गुरुत्वात् । नरेषु इन्द्रः नरेन्द्रः । तपसः वनं तपोवनम्, आवृत्तेः पन्थाः आवृत्तिपथः, तपोवनात् आवृत्तिपथः तपोवनावृत्तिपथः, तं तपोवनावृत्तिपथम् ।

अभि०—नन्दिनी, आपीनभारवहनप्रयासात् दिलीपश्च निजदेहस्य स्थौल्यात्, द्वावप्येतौ सुन्दरगमनाभ्यां तपोवनात् प्रत्यागमनमार्गं शोभितवन्तौ ।

हिन्दी—प्रथम बार ब्याई हुई नन्दिनी ने स्तनों के भार वहन करने में परिश्रम के कारण और राजा दिलीप ने शरीर की मोटाई के कारण, अपने २ सुन्दर मन्द गमन से तपोवन से लौटने के मार्ग को सुशोभित किया ॥ १८ ॥

वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्तमानं वनिता वनान्तात् ।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ॥ १९ ॥

सञ्जीविनी—वशिष्ठधेनोरनुयायिनमनुचरं वनान्तादावर्तमानं प्रत्यागतं तं दिलीपं वनिता सुदक्षिणा निमेषेष्वलसा मन्दा पक्ष्मणां पङ्क्तिर्यस्याः सा । निर्निमेषा सतीत्यर्थः । लोचनाभ्यां करणाभ्याम् । उपोषिताभ्यामिव उपवासो भोजननिवृत्तिः तद्वद्भ्यामिव । वसतेः कर्तरि क्तः । पपौ । यथोपोषितोऽतितृष्णया जलमधिकं पिबति तद्वदतितृष्णयाधिकं व्यलोकयदित्यर्थः ॥ १९ ॥

अन्वयः—वशिष्ठधेनोः, अनुयायिनम् , वनान्तात् , आवर्तमानम् , तम् , वनिता निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिः (सती) लोचनाभ्याम् , उपोषिताभ्याम् , इव, पपौ ।

वाच्य०—अनुयायी, वनान्तात् आवर्तमानः, सः, वनितया, पपे ।

व्याख्या—वशिष्ठस्य = महर्षेः, धेनुः = नन्दिनी, तस्याः वशिष्ठधेनोः । अनुयायिनम् = अनुचरं = सेवकमित्यर्थः । वनस्य = अरण्यस्य, अन्तः = प्रान्तः, तस्मात् वनान्तात् = वनैकदेशात् । आवर्तते असौ आवर्तमानस्तमावर्तमानम् = प्रत्यागतम् , तम् = राजानं दिलीपम् । वनिता = सुदक्षिणा निमेषेषु अलसा निमेषालसा । पक्ष्मणां पङ्क्तिः, इति पक्ष्मपङ्क्तिः, निमेषालसा पक्ष्मपङ्क्तिर्यस्याः सा तथोक्ता निर्निमेषा सती । लोच्यते आभ्यामिति लोचने ताभ्यां लोचनाभ्याम् = नेत्राभ्याम् , करणाभ्यामिति यावत् । उपोषिताभ्याम् = कृतोपवासाभ्याम् , इव = यथा, पपौ = पीतवती, अतितृष्णया ददर्शेत्यर्थः ।

समा०—वशिष्ठस्य धेनुः वसिष्ठधेनुः, तस्याः वसिष्ठधेनोः । अनुयातीति अनुयायी , तम् अनुयायिनम् । वनस्य अन्तः वनान्तः, तस्मात् वनान्तात् । आवर्तते इति आवर्तमानः, तम् आवर्तमानम् । पक्ष्मणां पङ्क्तिः पक्ष्मपङ्क्तिः, निमेषेषु अलसा पक्ष्मपङ्क्तिः यस्याः सा निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिः ।

अभि०—यथा कश्चिद् कृतोपवासः, अतितृष्णया मुहुः जलं पीत्वापि तृप्तिं नाधिगच्छति तथैव सुदक्षिणा वनात् प्रत्यागच्छन्तं राजानं दिलीपमतितृष्णया नेत्राभ्यां निर्निमेषाभ्यां ददर्श ।

हिन्दी—महर्षि वशिष्ठजी की धेनु के सेवक, वन से लौटते हुए राजा दिलीप को उनकी पत्नी सुदक्षिणा ने प्यासे की तरह एकटक नेत्रों से इस प्रकार देखा जिसमें पलकें भी न झपकने पायें ॥१९॥

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥ २० ॥

सञ्जीविनी—वर्त्मनि पार्थिवेन पृथिव्या ईश्वरेण । "तस्येश्वरः" इत्यण्प्रत्ययः । पुरस्कृताग्रतः कृता धर्मस्य पत्नी धर्मपत्नी । धर्मार्थं पत्नीत्यर्थः । अश्वघासादिवत्तादर्थ्ये षष्ठीसमासः । पार्थिवस्य धर्मपत्न्या प्रत्युद्गता सा धेनुस्तदन्तरे तयोर्दम्पत्योर्मध्ये । दिनक्षपयोर्दिनरात्र्योर्मध्यगता संध्येव रराज ॥ २० ॥

अन्वयः—वर्त्मनि, पार्थिवेन, पुरस्कृता, पार्थिवधर्मपत्न्या, प्रत्युद्गता, सा, धेनुः, तदन्तरे, दिनक्षपामध्यगता, सन्ध्या, इव विरराज ।

वाच्य०—पुरस्कृतया, प्रत्युद्गतया, तया, धेन्वा, सन्ध्यया, इव, विरेजे ।

व्याख्या—वर्त्मनि = मार्गे । पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवस्तेन, पार्थिवेन = राज्ञा दिलीपेन । पुरस्कृता = अग्रतः कृता । पार्थिवस्य = दिलीपस्य, धर्मपत्नी = सुदक्षिणा, इति, पार्थिवधर्मपत्नी, तया, प्रत्युद्गता = अभ्युद्गता (स्वागतार्थमिति भावः)सा धेनुः = नन्दिनी । तयोः = सुदक्षिणादिलीपयोः, अन्तरे = मध्ये, स्थिता, दिनं = दिवसश्च, क्षपा = रात्रिश्चेति दिनक्षपे, तयोर्मध्यमिति दिनक्षपामध्यम् , दिनक्षपामध्यं गता = प्राप्ता, तथोक्ता, सन्ध्या = सायंकालः, इव = यथा, विरराज = शुशुभे ।

समा०—पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः, तेन पार्थिवेन । धर्मस्य पत्नी धर्मपत्नी, पार्थिवस्य धर्मपत्नी, पार्थिवधर्मपत्नी, तया पार्थिवधर्मपत्न्या । तयोः अन्तरं तदन्तरम् , तस्मिन् तदन्तरे । दिनञ्च क्षपा च दिनक्षपे, तयोर्मध्यङ्गता दिनक्षपामध्यगता ।

अभि०—यदा नन्दिनीमग्रतः कृत्वा, दिलीपो वशिष्ठाश्रमं प्रापत्, तदा—दिलीपानुगम्यमानां तां धेनुमानेतुं सुदक्षिणा प्रत्युद्ययौ तस्मिन् काले च सुदक्षिणा दिलीपयोर्मध्यगता नन्दिनी,ईषद्रक्तवर्णतया, दिनक्षपामध्यगता सन्ध्या इव शुशुभे ।

हिन्दी—मार्ग में राजा दिलीप नन्दिनी को आगे करके स्वयं उसके पीछे-पीछे आ रहे थे तथा महारानी सुदक्षिणा अगवानी के लिये उसके आगे से गई, वह नन्दिनी सुदक्षिणा और दिलीप के बीच में खड़ी दिन और रात के बीच में स्थित सन्ध्या की तरह सुशोभित हुई ॥ २० ॥

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता ।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ॥ २१ ॥

सञ्जीविनी—अक्षतानां पात्रेण सह वर्तेते इति साक्षतपात्रौ हस्तौ यस्याः सा सुदक्षिणा पयस्विनीं प्रशस्तक्षीरां तां धेनुं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च तस्या धेन्वा विशालं शृङ्गान्तरं शृङ्गमध्यम् अर्थसिद्धेः कार्यसिद्धेर्द्वारं प्रवेशमार्गमिव । आनर्चार्चयामास । अर्चतेर्भौवादिकाल्लिट् ॥ २१ ॥

अन्वयः—साक्षतपात्रहस्ता, सुदक्षिणा, तां, पयस्विनीं, प्रदक्षिणीकृत्य, प्रणम्य, च अस्याः विशालं, शृङ्गान्तरम्, अर्थसिद्धेः, द्वारम्, इव आनर्च ।

वाच्य०—सुदक्षिणया शृङ्गान्तरम् आनर्चे ।

व्याख्या—अक्षतानां = तण्डुलानाम्, पात्रम् = भाजनम्, इति अक्षतपात्रम्, तेन सह वर्तेते, इति साक्षतपात्रौ, हस्तौ = करौ, यस्याः सा, साक्षतपात्रहस्ता, सुदक्षिणा = दिलीपभार्या, प्रशस्तं पयोऽस्या अस्तीति पयस्विनी, तां, पयस्विनीं = प्रशस्तक्षीराम्, ताम्, धेनुम्, प्रदक्षिणां कृत्वा, प्रदक्षिणीकृत्य = परिक्रम्य, प्रणम्य = नमस्कृत्य च, अस्याः नन्दिन्याः, विशालं = विस्तीर्णम्, शृङ्गयोः = विषाणयोः, अन्तरं = मध्यम्, अर्थस्य = कार्यस्य, सिद्धिः = सफलता, तस्याः । अर्थसिद्धेः = सन्तानरूपकार्यसिद्धेरिति भावः, द्वारं = प्रवेशमार्गम्, इव = यथा, आनर्च = पूजयामास ।

समा०—अक्षतानां पात्रम् अक्षतपात्रम्, अक्षतपात्रेण सह वर्तेते इति साक्षतपात्रौ, साक्षतपात्रौ हस्तौ यस्याः सा साक्षतपात्रहस्ता । प्रशस्तं पयः अस्त्यस्याः इति पयस्विनी, तां पयस्विनीम् । प्रगतो दक्षिणं प्रदक्षिणम्, अप्रदक्षिणं प्रदक्षिणं सम्पद्यमानं कृत्वेति प्रदक्षिणीकृत्य । शृङ्गयोः अन्तरं शृङ्गान्तरम्, तत् शृङ्गान्तरम् । अर्थस्य सिद्धिः अर्थसिद्धिः, तस्याः अर्थसिद्धेः ।

अभि०—सुदक्षिणा, वनादागतां वशिष्ठधेनुं सम्पूज्य परिक्रम्य, प्रणम्य च, पुष्पाक्षतैस्तस्याः शृङ्गान्तरं, पुत्रप्राप्तिरूपस्वाभीष्टसिद्धेः, द्वारमिव, पूजयामास ।

हिन्दी—अक्षतों के पात्र को हाथ में लिये रानी सुदक्षिणा ने प्रशस्त दूधवाली उस नन्दिनी की प्रदक्षिणा एवं प्रणाम करके, उसके विशाल सींगों के मध्य भाग का, सन्तानप्राप्ति रूप कार्य सिद्धि के द्वार की तरह पूजन किया ॥ २१ ॥

वत्सोत्सुकाऽपि स्तिमिता सपर्यां प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ ।
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि ॥ २२ ॥

सञ्जीविनी—सा धेनुर्वत्सोत्सुकापि वत्स उत्कण्ठितापि स्तिमिता निश्चला सती सपर्यां पूजां

प्रत्यग्रहीदिति हेतोरतौ दंपती ननन्दतुः। पूजास्वीकारस्यानन्दहेतुत्वमाह। भक्त्येति—पूज्येष्वनुरागो भक्तिः तयोपपन्नेषु विषये तद्विधानाम्। तस्याः धेन्वाः विधेव विधा प्रकारो येषां तेषाम्। महतामित्यर्थः। प्रसादस्य चिह्नानि लिङ्गानि पूजास्वीकारादीनि पुरःफलानि पुरोगतानि प्रत्यासन्नानि फलानि येषां तानि हि। अविलम्बितफलसूचकलिङ्गदर्शनादानन्दो युज्यत इत्यर्थः॥ २२॥

अन्वयः—सा, वत्सोत्सुका, अपि, स्तिमिता, "सती" सपर्याम्, प्रत्यग्रहीत्, इति, तौ, ननन्दतुः, भक्त्या, उपपन्नेषु, तद्विधानां, प्रसादचिह्नानि, पुरःफलानि हि।

वाच्य०—तया स्तिमितया, सत्या, सपर्या, प्रत्यग्राहि इति ताभ्यां ननन्दे, प्रसादचिह्नैः पुरःफलैः भूयते, इति शेषः।

व्याख्या—सा = धेनुः, वत्से = शिशौ, उत्सुका = उत्कण्ठिता, अपि, स्तिमिता = निश्चला, "सती" सपर्यां = पूजां, प्रत्यग्रहीत् = स्वीचकार, इति = हेतोः, तौ = सुदक्षिणादिलीपौ; ननन्दतुः = मुमुदाते, = आनन्दं प्रापतुरित्यर्थः। भक्त्या = श्रद्धया, उपपन्नेषु = युक्तेषु, पूज्यानुरागयुक्तेष्वित्यर्थः। तस्याः-धेन्वाः, विधा इव विधा = प्रकारः येषां ते, तेषां तद्विधानाम् = महताम् प्रसादस्य = प्रसन्नतायाः, चिह्नानि, लक्षणानि, इति, प्रसादचिह्नानि = पूजास्वीकारादीनि, पुरोगतानि = प्रत्यासन्नानि, फलानि = लाभाः, येषां तानि, पुरःफलानि, हि निश्चयः।

समा०—वत्से उत्सुका वत्सोत्सुका। सा च स च तौ। तस्याः विधेव विधा येषां ते तद्विधाः, तेषां तद्विधानाम्। प्रसादस्य चिह्नानि प्रसादचिह्नानि। पुरः फलं येषां तानि पुरःफलानि।

अभि०—वत्सोत्कण्ठितापि वशिष्ठधेनुः यत् निश्चला सती पूजां स्वीकृतवती, अतः सद्योभाविनीं स्वाभीष्टसिद्धिं मत्वा सुदक्षिणादिलीपौ, ननन्दतुः।

हिन्दी—अपने बछड़े को देखने के लिए उत्कण्ठित होते हुए भी निश्चल होकर जो नन्दिनी ने सुदक्षिणा के द्वारा की गई पूजा को स्वीकार किया, इससे राजा रानी प्रसन्न हुए। क्योंकि अपने अनुरागी जनों के विषय में, नन्दिनी सदृश महानुभावों की प्रसन्नता के लक्षण, शीघ्र मनोरथ पूर्ण होने का निश्चय प्रकट करते हैं॥ २२॥

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सान्ध्यं च विधिं दिलीपः।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम्॥ २३॥

सञ्जीविनी—भुजोच्छिन्नरिपुर्दिलीपः। सदारस्य दारैररुन्धत्या सह वर्तमानस्य गुरोः। उभयोरपीत्यर्थः। 'भार्या जायाथ पुंभूम्नि दाराः' इत्यमरः। पादौ निपीड्याभिवन्द्य। सान्ध्यं सन्ध्यायां विहितं विधिमनुष्ठानं च समाप्य। दोहावसाने निषण्णामासीनां दोग्ध्रीं दोहनशीलाम्। "तृन्" इति तृन्प्रत्ययः धेनुमेव पुनर्भेजे सेवितवान्। दोग्ध्रीमिति निरुपपदप्रयोगात्कामधेनुत्वं गम्यते॥ २३॥

अन्वयः—भुजोच्छिन्नरिपुः, दिलीपः, सदारस्य, गुरोः, पादौ, निपीड्य, सान्ध्यं, विधिं, च, समाप्य, दोहावसाने, निषण्णां, दोग्ध्रीम्, एव, पुनः, भेजे।

वाच्य०—भुजोच्छिन्नरिपुणा दिलीपेन, निषण्णा दोग्ध्री पुनः भेजे।

व्याख्या—भुजाभ्यां = बाहुभ्याम्, उच्छिन्नाः = विनाशिताः, रिपवः = शत्रवो येन सः, भुजो-

च्छिन्नरिपुः । दिलीपः=राजा, दारैः=अरुन्धत्या, सह वर्तमानः, तस्य सदारस्य, पादौ=चरणौ, निपीड्य=संवाह्य (अभिवन्द्येत्यर्थः), सन्ध्यायां भवं सान्ध्यं सन्ध्याकालिकं, विधिम्=अनुष्ठानं च, समाप्य=विधाय (कृत्वेत्यर्थः), दोहस्य=दोहनस्य, अवसानम्=अन्तस्तस्मिन्, दोहावसाने, निषण्णाम्=उपविष्टाम्, दोग्ध्रीं=दोहनशीलां धेनुम, एव (अवधारणे) पुनः=भूयोऽपि, भेजे=सेवितवान् । धेनुमेव सिषेवे, इति भावः ।

समा०—भुजाभ्याम् उच्छिन्नाः रिपवः येन सः भुजोच्छिन्नरिपुः । दारैः सह वर्तते इति सदारः, तस्य सदारस्य । गृणाति (तत्त्वं कथयति) इति गुरुः तस्य गुरोः । सन्ध्यायां भवः सान्ध्यः, तं सान्ध्यम् । दोहस्य अवसानं दोहावसानम्, तस्मिन् दोहावसाने ।

अभि०—सपत्नीको राजा दिलीपः, सदारस्य वशिष्ठस्य चरणसंवाहनं कृत्वा, सायन्तनीं विधिं च विधाय, पुनरपि नन्दिनीमेव सेवितवान् ।

हिन्दी—निज बाहुबल से शत्रुओं को नष्ट करने वाले राजा दिलीप ने अरुन्धती और वशिष्ठजी की चरण-सेवा करने के बाद और सायं सन्ध्या से निवृत्त होकर दूध दुहने के पश्चात् सानन्द बैठी हुई नन्दिनी की सेवा पुनः शुरू कर दी ॥ २३ ॥

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः ।
क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥ २४ ॥

सञ्जीविनी—गोप्ता रक्षको गृहिणीसहायः पत्नीद्वितीयः सन् । उभावित्यर्थः । अन्तिके न्यस्ता बलयः प्रदीपाश्च यस्यास्तां तथोक्तां तां पूर्वोक्तां निषण्णां धेनुमन्वास्यानूपविश्य क्रमेण सुप्तामन्वनन्तरं संविवेश सुष्वाप । प्रातः सुप्तोत्थितामनूदतिष्ठदुत्थितवान् । अत्रानुशब्देन धेनुराजव्यापारयोः पौर्वापर्यमुच्यते । क्रमशब्देन धेनुव्यापाराणामेव । इत्यपौनरुक्त्यम् । "कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया" इति द्वितीया ॥ २४ ॥

अन्वयः—गोप्ता, गृहिणीसहायः 'सन्' अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपां, ताम्, अन्वास्य, क्रमेण, सुप्ताम्, अनुसंविवेश, प्रातः, सुप्तोत्थिताम्, अनूदतिष्ठत् ।

वाच्य०—गोप्त्रा, गृहिणीसहायेन 'सता' सुप्ता, अनुसंविविशे, उदस्थीयत ।

व्याख्या—गोप्ता=रक्षकः दिलीपः, गृहिणी=भार्या, सहाया=द्वितीया यस्य सः, गृहिणीसहायः सन् (द्वावपीत्यर्थः), अन्तिके=समीपे, न्यस्ताः=स्थापिताः, बलयः=उपहाराः, प्रदीपाः=दीपाश्च,यस्याः सा तां तथोक्ताम्, तां=निषण्णां धेनुम्, अन्वास्य=अनूपविश्य, क्रमेण=क्रमशः सुप्तां=निद्रिताम्, अनु=पश्चात्, संविवेश=शिश्ये, प्रातः=प्रभाते, आदौ सुप्ता=शयिता, पश्चात्, उत्थिता=विनिद्रिता ताम्, सुप्तोत्थिताम्, अनु=पश्चात्, उदतिष्ठत्=उत्तस्थौ ।

समा०—गृहिणी सहाया यस्य सः गृहिणीसहायः । बलयश्च (बलेर्वा) प्रदीपाश्च बलिप्रदीपाः, अन्तिके न्यस्ताः बलिप्रदीपाः यस्याः सा अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपा, ताम् अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपाम् । सुप्ता चासौ (पश्चात्) उत्थिता च सुप्तोत्थिता, तां सुप्तोत्थिताम् ।

अभि०—सुदक्षिणासहितः राजा दिलीपः समीपस्थापितबलिप्रदीपायाः नन्दिन्याः पृष्ठभागे समुपविश्य, नन्दिन्यां सुप्तायां सत्यां पश्चात् स्वयं सपत्नीकः सुष्वाप, प्रभाते च उत्थितायां तस्यामनूदतिष्ठत् ।

हिन्दी—रक्षा करने वाले सपत्नीक राजा दिलीप, पास में रखा है उपहार दीपक जिसके ऐसी बैठी हुई उस धेनु के पीछे बैठकर क्रमसे नन्दिनी के सोने पर सोये, और प्रातःकाल जगने ही स्वयं भी जग गये ॥ २४ ॥

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं समं महिष्या महनीयकीर्तेः ।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥ २५ ॥

सञ्जीविनी—इत्थमनेन प्रकारेण प्रजार्थं संतानाय महिष्या समभर्माभिषिक्तपत्न्या सह । 'कृताभिषेका महिषी' इत्यमरः । व्रतं धारयतः महनीया पूज्या कीर्तिर्यस्य तस्य । दीनानामुद्धरणं दैन्यविमोचनं तत्रोचितस्य । नृपस्य । त्रयो गुणा आवृत्तयो येषां तानि त्रिगुणानि त्रिरावृत्तानि सप्त दिनान्येकविंशतिदिनानि व्यतीयुर्व्यतिक्रान्तानि ॥ २५ ॥

अन्वयः—इत्थम्, प्रजार्थं, महिष्या, समं, व्रतं, धारयतः, महनीयकीर्तेः, दीनोद्धरणोचितस्य, तस्य, त्रिगुणानि, सप्त दिनानि, व्यतीयुः ।

वाच्य०—इत्थं व्रतं धारयतः महनीयकीर्तेः त्रिगुणैः सप्तभिः दिनैः व्यतीये ।

व्याख्या—इत्थम् = अनेन प्रकारेण, प्रजा = सन्तानः, एव, अर्थः = प्रयोजनं यस्य तत्तथोक्तम् सन्तानार्थमित्यर्थः, महिष्या = कृताभिषेकया सुदक्षिणया, समं = सह, व्रतं = नियमम्, धारयतः = दधतः कुर्वत इति यावत् । महनीया = पूज्या, कीर्तिः = यशो यस्य, तस्य, महनीयकीर्तेः । दीनानां = दैन्ययुक्तानाम्, उद्धरणं = रक्षणम्, तत्र, उचितः = परिचितः, इति दीनोद्धरणोचितस्तस्य तथोक्तस्य, तस्य = दिलीपस्य, त्रयो गुणा आवृत्तयो येषां तानि, त्रिगुणानि = त्रिरावृत्तानि, सप्त = सप्तसंख्यकानि, दिनानि = दिवसाः, एकविंशतिदिनानीति भावः, व्यतीयुः = व्यतिचक्रमुः ।

समा०—प्रजा एव अर्थः यस्य तत् प्रजार्थम्—अथवा प्रजायै इति प्रजार्थम् (अस्वपदविग्रहः), तत् प्रजार्थम् । महनीया कीर्तिः यस्य सः महनीयकीर्तिः, तस्य महनीयकीर्तेः । दीनानाम् उद्धरणम् दीनोद्धरणम्, दीनोद्धरणे उचितः दीनोद्धरणोचितः, तस्य दीनोद्धरणोचितस्य । त्रयो गुणाः येषां तानि त्रिगुणानि ।

अभि०—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सुदक्षिणया सह नन्दिनीसेवारूपं व्रतं कुर्वतो उदारकीर्तेः, दीनोद्धरणपरस्य दिलीपस्य, एकविंशतिदिवसाः व्यतीताः ।

हिन्दी—इस प्रकार पुत्र के लिए महारानी सुदक्षिणा के साथ व्रत को धारण करते हुए, प्रशंसनीय कीर्तिवाले, दुःखियों के उद्धारक महाराज दिलीप के इक्कीस दिन बीत गये ॥ २५ ॥

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः ।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥ २६ ॥

सञ्जीविनी—अन्येद्युरन्यस्मिन्दिने द्वाविंशे दिने । "सद्यः परुत्परारि" इत्यादिना निपातनादव्ययत्वम् । "अद्यात्राह्नाथ पूर्वेऽह्नीत्यादौ पूर्वोत्तरापरात् । तथाधरान्यान्यतरेतरात्पूर्वेद्युरादयः ।" इत्यमरः । मुनिहोमधेनुः आत्मानुचरस्य भावमभिप्रायं दृढभक्तित्वम् । 'भावोऽभिप्राय आशयः' इति यादवः । जिज्ञासमाना ज्ञातुमिच्छन्ती । "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः" इत्यात्मनेपदे शानच् । मपतत्य स्पर्शनि प्रपातः

पतनप्रदेशः गङ्गायाः प्रपातस्तस्यान्ते समीपे विरूढानि जातानि शष्पाणि बालतृणानि यस्मिंस्तत्। 'शष्पं बालतृणं घासः' इत्यमरः। गौरीगुरोः पार्वतीपितुर्गह्वरं गुहामाविवेश ॥ २६ ॥

अन्वयः—अन्येद्युः मुनिहोमधेनुः, आत्मानुचरस्य, तस्य, भावं, जिज्ञासमाना, गङ्गाप्रपातान्तः विरूढशष्पं, गौरीगुरोः, गह्वरम्, आविवेश।

वाच्य०—मुनिहोमधेन्वा जिज्ञासमानया, गह्वरमाविविशे।

व्याख्या—अन्येद्युः = अन्यस्मिन् दिने = द्वाविंशे दिने, इत्यर्थः, होमस्य धेनुः, होमधेनुः, मुनेः = वशिष्ठस्य, होमधेनुः = यज्ञसाधनभूता नन्दिनी, आत्मनः = स्वस्य, अनुचरः = सेवकः, तस्यात्मानुचरस्य दिलीपस्येति यावत्, भावम् = अभिप्रायं = दृढभक्तिमित्यर्थः, जिज्ञासते इति जिज्ञासमाना = ज्ञातुमिच्छन्ती, प्रपतति अस्मिन्निति प्रपातः, गङ्गायाः = भागीरथ्याः प्रपातः = पतनप्रदेशः, तस्य अन्तः = समीपम्, तस्मिन् विरूढानि = उत्पन्नानि = जातानि शष्पाणि = बालतृणानि, यस्मिन् तत्तथोक्तम्, गौर्याः = पार्वत्याः, गुरुः = पिता = हिमाचलस्तस्य गौरीगुरोः, गह्वरं = गुहाम्, आविवेश = प्रविष्टवतीत्यर्थः।

समा०—होमस्य धेनुः होमधेनुः मुनेः होमधेनुः मुनिहोमधेनुः। आत्मनः अनुचरः आत्मानुचरः, तस्य आत्मानुचरस्य। ज्ञातुमिच्छति जिज्ञासते, जिज्ञासते इति जिज्ञासमाना। गङ्गायाः प्रपातः गङ्गाप्रपातः, गङ्गाप्रपातस्य अन्ते विरूढानि, शष्पाणि यस्य तत् गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पम्, तत् गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पम्। गौर्याः गुरुः गौरीगुरुः, तस्य गौरीगुरोः।

अभि०—द्वाविंशे दिने नन्दिनी दिलीपस्य भक्तिपरीक्षार्थं गङ्गाप्रपातसमीपवर्तित्वेन प्रचुरतृणरम्यां हिमालयस्य गुहायां प्रविष्टा।

हिन्दी—बाईसवें दिन नन्दिनी, अपने सेवक राजा दिलीप के 'मुझ में इसकी दृढ़ भक्ति है कि नहीं' इस भाव को जानने की अभिलाषा से गंगाजी के प्रपात के पास जमी हरी-हरी घास से युक्त हिमालय की गुफा में घुस गई ॥ २६ ॥

सा दुष्प्रधर्षा मनसाऽपि हिंस्रैरित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष ॥ २७ ॥

संजीविनी—सा धेनुर्हिंस्रैर्व्याघ्रादिभिर्मनसापि दुष्प्रधर्षा दुर्धर्षेति हेतोरद्रिशोभायां प्रहितेक्षणेन दत्तदृष्टिना नृपेणालक्षितमभ्युत्पतनमाभिमुख्येनोत्पतनं यस्य स सिंहस्तां धेनुं प्रसह्य हठात्। 'प्रसह्य तु हठार्थकम्' इत्यमरः। चकर्ष। किलेत्यलीकेऽव्ययम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—सा, हिंस्रैः, मनसा, अपि, दुष्प्रधर्षा, इति, अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन, नृपेण, अलक्षिताभ्युत्पतनः सिंहः, ताम्, प्रसह्य, चकर्ष, किल।

वाच्य०—तया दुष्प्रधर्षया, भूयते। सिंहेन सा चकृषे।

व्याख्या—सा = धेनुः, हिंस्रैः = व्याघ्रादिभिः, मनसा = चित्तेन, अपि का कथा शरीरेण दुष्प्रधर्षा = दुर्धर्षा, इति = हेतोः, अद्रेः = हिमालयस्य, शोभा = छविः, इति अद्रिशोभा, तस्यां, प्रहिते = दत्ते, ईक्षणे = नेत्रे, येन सः = तथोक्तस्तेन अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन, नॄन् = जनान् पाति = रक्षतीति

भूपस्तेन, नृपेण = राज्ञा = दिलीपेन, न लक्षितं = न ज्ञातम्, अभ्युत्पतनम् = आक्रमणं यस्य स तथोक्तः, सिंहः = केशरी, ताम् = गाम्, प्रसह्य = हठात्, चकर्ष = कृष्टवान्, किलेति = अलीके। तदुपरि, आक्रमणमकरोदिति भावः।

समा०—दुःखेन प्रधृष्यते असौ इति दुष्प्रधर्षा अद्रेः शोभा अद्रिशोभा, अद्रिशोभायां प्रहिते ईक्षणे येन सः अद्रिशोभाप्रहितेक्षणः, तेन अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन। न लक्षितम् अलक्षितम्, अलक्षितम् अभ्युत्पतनं यस्य सः अलक्षिताभ्युत्पतनः।

अभि०—व्याघ्रादयो हिंस्राः पशवः मनसापि नैनामभिभवितुं प्रभविष्यन्तीति निश्चयवति दिलीपे पर्वतरामणीयकासक्तनेत्रे अलक्षिताक्रमणः सिंहः ताम् अकाक्षीत्।

हिन्दी—हिंसक दुष्ट व्याघ्रादि जन्तु इसपर आक्रमण करने की बात भी नहीं सोच सकते, आक्रमण तो दूर रहा, इस कारण निश्चिन्त होकर हिमालय की शोभा देखने में आँखे लगाये हुए राजा दिलीप से जिसका झपटना नहीं देखा गया ऐसे सिंह ने, जबरदस्ती नन्दिनी को अपनी ओर खींचा ॥ २७ ॥

तदीयमाक्रन्दितमार्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम्।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्तयामास नृपस्य दृष्टिम् ॥ २८ ॥

सञ्जीविनी—गुहानिबद्धेन प्रतिबद्धेन प्रतिशब्देन प्रतिध्वनिना दीर्घम्। तस्या इदं तदीयम्। आक्रन्दितमार्तघोषणम्। आर्तेष्वापन्नेषु साधोर्हितकारिणो नृपस्य, नगेन्द्रसक्तां दृष्टिम्। रश्मिषु प्रग्रहेषु 'किरणप्रग्रहौ रश्मी' इत्यमरः। आदायेव गृहीत्वेव निवर्तयामास ॥२८॥

अन्वयः—गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम्, तदीयम्, आक्रन्दितम्, आर्तसाधोः नृपस्य, नगेन्द्रसक्तां दृष्टिं, रश्मिषु, आदाय, इव, निवर्तयामास।

वाच्य०—तदीयेन, आक्रन्दितेन नगेन्द्रसक्ता दृष्टिः निवर्तयाञ्चक्रे।

व्याख्या—गुहायां = गह्वरे, निबद्धः = प्रतिहतः, इति गुहानिबद्धः स चासौ प्रतिशब्दः = प्रतिध्वनिः, तेन दीर्घम् = आयतम्, तथोक्तम्, तस्याः = नन्दिन्याः इदं तदीयम्, आक्रन्दितम्, = उच्चैः रुदितम्, आर्तेषु = पीडितेषु, साधुः = हितकारी, तस्य, आर्तसाधोः नृपस्य = राज्ञो दिलीपस्य, नगेन्द्रे = हिमालये, सक्ता = संलग्ना, इति नगेन्द्रसक्ता तां तथोक्ताम्, दृष्टिं = नेत्रं, रश्मिषु = प्रग्रहेषु, आदाय = गृहीत्वा, इव = यथा, निवर्तयामास = न्यवर्तयत्।

समा०—गुहायां निबद्धः गुहानिबद्धः, गुहानिबद्धश्चासौ प्रतिशब्दश्च गुहानिबद्धप्रतिशब्दः, गुहानिबद्धप्रतिशब्देन दीर्घं गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम्। तस्याः इदं तदीयम्। आर्तेषु साधुः आर्तसाधुः, तस्य आर्तसाधोः। नॄन् पातीति नृपः, तस्य नृपस्य। नगेषु इन्द्रः नगेन्द्रः, नगेन्द्रे सक्ता नगेन्द्रसक्ता, तां नगेन्द्रसक्ताम्।

अभि०—सिंहाक्रान्ताया धेनोः, गुहायां प्रतिहतेन, प्रतिध्वनिना दीर्घमाक्रन्दनं हिमालयशोभादर्शने संलग्नां दिलीपदृष्टिं तथा निवर्तयामास यथा सारथिः रश्मिं गृहीत्वा हयादीन् निवर्तयति।

हिन्दी—गुफा में टकराए हुए प्रतिशब्द से दुगुने हुए नन्दिनी के आर्तनाद ने दुःखियों के रक्षक

राजा दिलीप की हिमालय की सुन्दरता देखने में लगी हुई दृष्टि को इस प्रकार अपनी ओर फेर लिया जिस प्रकार लगाम पकड़ कर सारथि घोड़े आदि को फेर लेते हैं ॥२८॥

स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श ।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥२९॥

संजीविनी—धनुर्धरः स नृपः पाटलायां, रक्तवर्णायां गवि तस्थिवांसं स्थितम्, "क्वसुश्च" इति क्वसुप्रत्ययः। केसरिणं सिंहम्। सानुमतोऽद्रेः। धातोर्गैरिकस्य विकारो धातुमयी। तस्यामधित्यकायामूर्ध्वभूमौ। 'उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका' इत्यमरः। 'उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः' इति त्यकन्प्रत्ययः। प्रफुल्लो विकसितस्तम्। "फुल्ल विकसने" इति धातोः पचाद्यच्। 'प्रफुल्तम्' इति तकारपाठे ञिफला विशरणे इति धातोः कर्तरि क्तः, "उत्परस्यातः" इत्युकारादेशः। लोध्राख्यं द्रुममिव ददर्श ॥२९॥

अन्वयः—धनुर्धरः, सः पाटलायां, गवि, तस्थिवांसं, केसरिणं, सानुमतः, धातुमय्यां, अधित्यकायां, प्रफुल्लम्, लोध्रद्रुमम्, इव, ददर्श।

वाच्य०—धनुर्धरेण, तेन, केसरी, लोध्रद्रुमः, इव, ददृशे।

व्याख्या—धनुषः धर इति धनुर्धरः = चापधरः, सः = राजा दिलीपः, पाटलायाम् = श्वेतरक्तवर्णायाम्, 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः।' इत्यमरः। गवि = धेनौ, तस्थिवांसं = स्थितम्, केसरिणम् = सिंहं, सानूनि, सन्ति, अस्यासौ सानुमान्, तस्य सानुमतः = अद्रेः पर्वतस्येत्यर्थः, धातोः = गैरिकस्य विकारः धातुमयी तस्यां, धातुमय्यां = गैरिकवत्याम्, अधित्यकायाम् = ऊर्ध्वभूमौ, प्रफुल्लं = विकसितं, लोध्रश्चासौ द्रुमश्च इति लोध्रद्रुमस्तं लोध्रद्रुमं लोध्रवृक्षम्, इव = यथा, ददर्श = अपश्यत्।

समा०—धरतीति धरः, धनुषः धरः धनुर्धरः। केसरः अस्यास्तीति केसरी, तं केसरिणम्। सानवः सन्तीति सानुमान्, तस्य सानुमतः। धातोः विकारः धातुमयी, तस्यां धातुमय्याम्। लोध्रस्य द्रुमः अस्य लोध्रद्रुमः तं लोध्रद्रुमम्।

अभि०—राजा दिलीपः श्वेतरक्तवर्णायां गवि, आक्रम्य स्थितं केसरिणम्, पर्वतस्य गैरिकधातुमय्यामूर्ध्वभूमौ विकसितं लोध्रद्रुममिवापश्यत्।

हिन्दी—धनुषधारी उस राजा दिलीप ने श्वेतयुक्तलालवर्णवाली नन्दिनी के ऊपर बैठे हुए सिंह को पर्वत की गेरूवाली अधित्यका (ऊपर की भूमि) में विकसित लोध नामक वृक्ष की भाँति देखा ॥ २९ ॥

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः ।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः ॥ ३० ॥

सञ्जीविनी—ततः सिंहदर्शनानन्तरं मृगेन्द्रगामी सिंहगामी। 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। 'शरणं रक्षणे गृहे' इति यादवः। शरणे साधुः शरण्यः। "तत्र साधुः" इति यत्प्रत्ययः। प्रसभेन बलात्कारेणोद्धृता अरयो येन स नृपती राजा जाताभिषङ्गो जातपराभवः सन्। अभिषङ्गः पराभवः"

इत्यमरः । वध्यस्य वधार्हस्य । "दण्डादिभ्यो यः" इति यप्रत्ययः । मृगेन्द्रस्य वधाय निषङ्गात्तूणीरात् । तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः' इत्यमरः । शरमुद्धर्तुमैच्छत् ॥ ३० ॥

अन्वयः—ततः, मृगेन्द्रगामी, शरण्यः, प्रसभोद्धृतारिः, नृपतिः, जाताभिषङ्गः, (सन्), वध्यस्य, मृगेन्द्रस्य, वधाय, निषङ्गात्, शरम् , उद्धर्तुम् , ऐच्छत् ।

वाच्य०—नृपतिना जाताभिषंगेण "सता" शरम् , उद्धर्तुमैष्यत ।

व्याख्या—ततः = सिंहदर्शनानन्तरम् , मृगेन्द्रः = सिंहः, स, इव, गच्छति = यातीति, मृगेन्द्रगामी = सिंहगामी, शरणे साधुः शरण्यः = शरणागतपालकः, प्रसभेन = बलात्कारेण उद्धृताः = विनाशिताः, अरयः = शत्रवो येन सः, तथोक्तः नृपतिः = राजा दिलीपः, जातः = उत्पन्नः, अभिषङ्गः = परामवः, यस्य सः जाताभिषङ्गः "सन्" वधमर्हतीति वध्यस्तस्य वध्यस्य = वधार्हस्य,मृगेन्द्रस्य = सिंहस्य, वधाय = नाशाय, निषंगात् = तूणीरात् , शरं = बाणम् , उद्धर्तुम् = उत्क्षेप्तुम्—निष्कासयितुमित्यर्थः, ऐच्छत् = इयेष ।

समा०—मृगेषु इन्द्रः मृगेन्द्रः, मृगेन्द्र इव गच्छतीति मृगेन्द्रगामी । शरणे साधुः शरण्यः । प्रसभेन उद्धृताः, प्रसभोद्धृताः, प्रसभोद्धृताः अरयो येन सः प्रसभोद्धृतारिः । नृणां पतिः नृपतिः । जातः अभिषङ्गः यस्य सः जाताभिषङ्गः । वधम् अर्हतीति वध्यः ।

अभि०—शत्रूणां समूलमुन्मूलयिता राजा दिलीपः सिंहाक्रान्तां नन्दिनीं विलोक्य तद्रक्षकस्यात्मनः परामवं च मत्वा तत्क्षण एव सिंहवधाय तूणीरात् शरं निष्कासितुमैच्छत् ।

हिन्दी—सिंह को देखने के पश्चात् मृगेन्द्र की तरह चलनेवाले एवं शरणागतों की रक्षा करने में निपुण, बलपूर्वक शत्रुओं को उच्छन्न करनेवाले, अपमान पाये हुए राजा दिलीप ने, दुष्ट सिंह को मारने के लिये तरकश से बाण को निकालने की इच्छा की ॥ ३० ॥

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे ।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ॥ ३१ ॥

सञ्जीविनी—प्रहर्तुस्तस्य वामेतरो दक्षिणः करः । नखप्रभाभिर्भूषितानि विच्छुरितानि कङ्कस्य पक्षिविशेषस्य पत्राणि यस्य तस्मिन् । 'कङ्कः पक्षिविशेषे स्याद् गुप्ताकारे युधिष्ठिरे' इति विश्वः । 'कङ्कस्तु कर्कटः' इति यादवः । सायकस्य पुङ्ख एव कर्तर्याख्ये मूलप्रदेशे । 'कर्तरी पुङ्खे' इति यादवः । सक्ताङ्गुलिः सन् । चित्रार्पितारम्भश्चित्रलिखितशरोद्धरणोद्योग इव अवतस्थे ॥ ३१ ॥

अन्वयः—प्रहर्तुः, तस्य, वामेतरः, करः, नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे, सायकपुंखे, एव सक्ताङ्गुलिः "सन्" चित्रार्पितारम्भः, इव, अवतस्थे ।

वाच्य०—वामेतरेण करेण सक्ताङ्गुलिना "सता" चित्रार्पितारम्भेण, इवावतस्थे ।

व्याख्या—प्रहर्तुः = ताडयितुः, तस्य = राज्ञो दिलीपस्य, वामात् , इतरः, वामेतरः = दक्षिणः, करः = हस्तः, नखानां = कररुहाणां, प्रभाः = कान्तयः, नखप्रभास्ताभिः, भूषितानि = विच्छुरितानि सुशोभितानि, कङ्कस्य = पक्षिविशेषस्य, पत्राणि = पक्षा यस्य सः, नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रः, तस्मिन् तथोक्ते, सायकस्य = बाणस्य, पुङ्खः = मूलम् , तस्मिन् सायकपुङ्खे एव, सक्ताः = संलग्नाः, अंगुलयः = करशाखाः

यस्य सः, तथोक्तः "सन्", चित्रे = आलेख्ये, अर्पितः = लिखितः, आरम्भः = बाणनिष्कासनोद्योगः, यस्य स तथोक्तः, इव = यथा, अवतस्थे = अवस्थितोभूत् ।

समा०—वामाद् इतरः वामेतरः, नखानां प्रभाः नखप्रभाः, नखप्रभाभिः भूषितानि नखप्रभाभूषितानि, कङ्कस्य पत्राणि कङ्कपत्राणि, नखप्रभाभूषितानि कङ्कपत्राणि यस्य सः नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रः, तस्मिन् नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे । सायकस्य पुङ्खः सायकपुङ्खः, तस्मिन् सायकपुङ्खे । सक्ताः अङ्गुलयो यस्य सः सक्ताङ्गुलिः । चित्रे अर्पितः चित्रार्पितः, चित्रार्पितः आरम्भो यस्य सः चित्रार्पितारम्भः ।

अभि०—प्रहर्तुमिच्छया निषङ्गात् शरोद्धर्तुकामस्य राज्ञो दक्षिणकरः बाणमूले एव सक्ताङ्गुलिः अभवत् , अतः चित्रपटे लिखितं वस्तु यथा निश्चेष्टं दृश्यते तथैवायमपि तदानीं स्थितोऽवलोक्यते स्म ।

हिन्दी—सिंह के ऊपर प्रहार करने की इच्छा रखनेवाले राजा दिलीप का दाहिना हाथ, अपने नख की कान्ति से भूषित, कंकपक्षी के पंख जिसमें लगे हुए हैं ऐसे बाण के मूल में ही अंगुलियाँ सट जाने से चित्र में लिखित बाण निकालने के उद्योग में लगे हुए के समान हो गया ॥ ३१ ॥

बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः ।
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः ॥ ३२ ॥

सञ्जीविनी—बाह्वोः प्रतिष्टम्भेन प्रतिबन्धेन । 'प्रतिबन्धः प्रतिष्टम्भः' इत्यमरः । विवृद्धमन्युः प्रवृद्धरोषो राजा । मन्त्रौषधिभ्यां रुद्धवीर्यः प्रतिबद्धशक्तिर्भोगी सर्प इव । 'भोगी राजभुजङ्गयोः' इति शाश्वतः । अभ्यर्णमन्तिकम् । 'उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्' इत्यमरः । आगस्कृतमपराधकारिणमस्पृशद्भिः स्वतेजोभिरन्तरदह्यत । 'अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि' इति यादवः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः, राजा, मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः, भोगी, इव, अभ्यर्णम् , आगस्कृतम् अस्पृशद्भिः, स्वतेजोभिः अन्तर् , अदह्यत ।

वाच्य०—राजानम् , मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यं भोगिनमिव अभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशन्ति स्वतेजांसि, अन्तरदहन् ।

व्याख्या—बाह्वोः = भुजयोः, प्रतिष्टम्भः = प्रतिबन्धः, तेन विवृद्धः = प्रवृद्धः, मन्युः = क्रोधो यस्यासौ, बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः, राजा = दिलीपः, मंत्रश्च = सर्पविषनिवारकमंत्रः, ओषधिः = भैषज्यं चेति मंत्रौषधी, ताभ्यां रुद्धं = प्रतिबद्धं, वीर्यं = बलं यस्यासौ मंत्रौषधिरुद्धवीर्यः, 'वीर्यं बले प्रभावे च' इत्यमरः । भोगः = फणा, अस्यास्तीति भोगी = सर्पः, इव = यथा, अभ्यर्णम् = उपकण्ठम् = समीपमित्यर्थः आगः = अपराधं करोतीति आगस्कृत् तम् आगस्कृतम् अस्पृशद्भिः = न स्पृशद्भिः, स्वस्य = आत्मनः, तेजांसि = प्रभावाः, तैः स्वतेजोभिः, अन्तर् = मध्ये, अदह्यत = अतप्यत ।

समा०—बाह्वोः प्रतिष्टम्भः बाहुप्रतिष्टम्भः, बाहुप्रतिष्टम्भेन विवृद्धः मन्युः यस्य सः बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः । मन्त्रश्च ओषधिश्च मन्त्रौषधी, मन्त्रौषधिभ्यां रुद्धं वीर्यं यस्य सः मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः । भोगः अस्यास्तीति भोगी । आगः करोतीति आगस्कृत् , तम् आगस्कृतम् । न स्पृशन्तीति अस्पृशन्ति, तैः अस्पृशद्भिः । स्वस्य तेजांसि स्वतेजांसि, तैः स्वतेजोभिः ।

अभि०—भुजस्तम्भेन प्रवृद्धमन्युः राजा दिलीपः समीपस्थमपि, अपराधकारिणं सिंहं हन्तुमसमर्थः सन्, मंत्रौषधिरुद्धप्रभावः सर्प इव स्वतेजसा, अतप्यत ।

हिन्दी—हाथ के रुक जाने से अत्यन्त क्रुद्ध राजा दिलीप, मंत्र तथा औषधि से बाँध दिया गया है प्रभाव जिसका ऐसे विषधर सांप की भाँति, पास में खड़े अपराधी सिंह को न छू सकने वाले अपने तेज से भीतर ही भीतर जलने लगा ॥ ३२ ॥

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम् ।
विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौ सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः ॥ ३३ ॥

संजीविनी—निगृहीता पीडिता धेनुर्येन स सिंहः । आर्याणां सतां गृह्यं पक्ष्यम् "पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च" इति क्यप् । मनुवंशस्य केतुं चिह्नं केतुवद्व्यावर्तकम् । सिंह इवोरुसत्त्वो महाबलस्तम् । आत्मनो वृत्तौ बाहुस्तम्भरूपे व्यापारेऽभूतपूर्वत्वाद्विस्मितम् । कर्तरि क्तः । तं दिलीपं मनुष्यवाचा करणेन पुनर्विस्माययन्विस्मयमाश्चर्यं प्रापयन्निजगाद । 'स्मिङ् ईषद्धसने' इति धातोर्णिचि वृद्धावायादेशे शतृप्रत्यये च सति विस्माययन्निति रूपं सिद्धम् । 'विस्मापयन्' इति पाठे पुगागममात्रं वक्तव्यम् । तच्च "नित्यं स्मयतेः" इति हेतुभयविवक्षायामेवेति "भीस्म्योर्हेतुभये" इत्यात्मनेपदे विस्मापयमान इति स्यात् । तस्मान्मनुष्यवाचा विस्माययन्निति रूपं सिद्धम् । करणविवक्षायां न कश्चिद्दोषः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—निगृहीतधेनुः, सिंहः, आर्यगृह्यं, मनुवंशकेतुं, सिंहोरुसत्त्वम्, आत्मवृत्तौ, विस्मितं, तं, मनुष्यवाचा, विस्माययन्, निजगाद ।

वाच्य०—निगृतधेनुना सिंहेन, आर्यगृह्यः, मनुवंशकेतुः, सिंहोरुसत्त्वः विस्मितः स विस्माययता, निजगदे ।

व्याख्या—निगृहीता = पीडिता, धेनुः = नन्दिनी येन स निगृहीतधेनुः, सिंहः = केसरी, आर्याणां = सज्जनानां, गृह्य = पक्ष्यं = पक्षपातयोग्यमित्यर्थः, मनुवंशस्य = मनुकुलस्य, केतुः = चिह्नमिति मनुवंशकेतुस्तं तथोक्तम्, सिंहस्य = केसरिण इव, उरु = विपुलं सत्त्वं = बलं यस्य स तं सिंहोरुसत्त्वम्, आत्मनः = स्वस्य, वृत्तिः = बाहुस्तम्भरूपा, तस्यामात्मवृत्तौ, विस्मितम् = आश्चर्यान्वितं तं दिलीपं, मनुष्यस्य = नरस्य, वाक् = वाणी, तया, मनुष्यवाचा, (करणेन) "भूयः" विस्माययन् = विस्मितं कुर्वन्, निजगाद = अवोचत् ।

समा०—निगृहीता धेनुः येन सः निगृहीतधेनुः । आर्याणां गृह्यः आर्यगृह्यः, तम् आर्यगृह्यम् । मनोः वंशः मनुवंशः, मनुवंशस्य केतुः मनुवंशकेतुः, तं मनुवंशकेतुम् । सिंहस्य इव उरु सत्त्वं यस्य सः सिंहोरुसत्त्वः, तं सिंहोरुसत्त्वम् । आत्मनः वृत्तिः आत्मवृत्तिः, तस्याम् आत्मवृत्तौ । मनुष्यस्य वाक् मनुष्यवाक्, तया मनुष्यवाचा ।

अभि०—सिंहः बाहुस्तम्भनरूपव्यापारे, अतीवाश्चर्ययुतं राजानं मनुष्यवाण्या भूयोऽपि, अधिकं विस्माययन्, उवाच ।

हिन्दी—धेनु को पीड़ित करने वाला सिंह सज्जनों के पक्ष में रहने वाले मनुवंश के शिरोमणि, सिंह के समान पराक्रमी, अपने बाहुस्तम्भन रूप व्यापार से आश्चर्ययुक्त उस राजा दिलीप को फिर चकित करता हुआ मनुष्यवाणी से बोला ॥ ३३ ॥

अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥ ३४ ॥

संजीविनी—हे महीपाल ! तव श्रमेणालम् । साध्याभावाच्छ्रमो न कर्तव्यः इत्यर्थः । अत्र गम्यमानसाधनक्रियापेक्षया श्रमस्य करणत्वात्तृतीया । उक्तं च न्यासोद्योते—"न केवलं श्रूयमाणैव क्रिया निमित्तं करणभावस्य । अपि तर्हि गम्यमानापि" इति । 'अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्' इत्यमरः इतोऽस्मिन्मयि । सार्वविभक्तिकस्तसिः । प्रयुक्तमप्यस्त्रं वृथा स्यात् । तथा हि । पादपोन्मूलने शक्तिर्यस्य तत्तथोक्तं मारुतस्य रंहो वेगः शिलोच्चये पर्वते न मूर्च्छति न प्रसरति ॥ ३४ ॥

अन्वयः—महीपाल, तव, श्रमेण, अलम्, इतः, मयि, प्रयुक्तम्, अपि, अस्त्रं, वृथा, स्यात्, पादपोन्मूलनशक्ति, मारुतस्य, रंहः, शिलोच्चये, न मूर्च्छति ।

वाच्य०—प्रयुक्तेनाप्यस्त्रेण वृथा भूयेत, मारुतस्य रंहसा, शिलोच्चये, न मूर्च्छ्यते ।

व्याख्या—महीं=पृथिवीं पालयतीति, तत्संबुद्धौ, हे महीपाल=पृथिवीपाल ! तव=भवतः, श्रमेण=प्रयासेन, अलम्=साध्यं नास्ति वृथेत्यर्थः, "कुतः" इतः=अस्मिन् मयि, प्रयुक्तम्=प्रेरितं=क्षिप्तम्, अपि अस्त्रम्=आयुधं, वृथा=व्यर्थं, स्यात्=भवेत्, "यतः" पादैः पिबन्तीति पादपास्तेषां पादपानां=वृक्षाणाम्, उन्मूलनम्=उत्पाटनं, तस्मिन् शक्तिः=सामर्थ्यं यस्य तत् पादपोन्मूलनशक्ति, मारुतस्य=वायोः, रंहः=वेगः, शिलानामुच्चयस्तस्मिन् शिलोच्चये=पर्वते, न=नहि, मूर्च्छति=प्रसरति ।

समा०—महीं पालयतीति महीपालः तत्सम्बुद्धौ महीपाल, पादैः (मूलैः) पिबन्तीति पादपाः, पादपानाम् उन्मूलने शक्तिः यस्य तत् पादपोन्मूलनशक्ति । शिलाभिरुच्चीयते इति शिलोच्चयः, तस्मिन् शिलोच्चये ।

अभि०—हे राजन् ! मयि बाणमोचनं तव श्रमेणापि साध्यं, नास्ति त्वया प्रयुक्तमपि आयुधं तथैव वृथा भविष्यति यथा वृक्षोत्पाटने समर्थोऽपि वायुवेगः पर्वते विफलो भवति ।

हिन्दी—हे पृथिवी के रक्षक दिलीप ! तुम मुझे मारने का प्रयत्न मत करो, क्योंकि मेरे ऊपर चलाया हुआ अस्त्र उसी प्रकार व्यर्थ होगा, जिस प्रकार कि वृक्षों को उखाड़ने की शक्ति रखनेवाला वायु का वेग पर्वत को उखाड़ने में विफल होता है ॥ ३४ ॥

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् ।
अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ॥ ३५ ॥

सञ्जीविनी—कैलास इव गौरः शुभ्रस्तम् । 'चामीकरं च शुभ्रं च गौरमाहुर्मनीषिणः' इति शाश्वतः । वृषं वृषभमारुरुक्षोरारोढुमिच्छोः । स्वस्योपरि पदं निक्षिप्य वृषमारोहतीत्यर्थः । अष्टौ मूर्तयो यस्य स तस्याष्टमूर्तेः शिवस्य पादार्पणं पादन्यासस्तदेवानुग्रहः प्रसादस्तेन पूतं पृष्ठं यस्य तं तथोक्तं निकुम्भमित्रं कुम्भोदरं नाम किंकरं मामवेहि विद्धि । "पृथिवी सलिलं तेजो वायुराकाशमेव च । सूर्याचन्द्रमसौ सोमयाजी चेत्यष्टमूर्तयः ॥" इति यादवः ॥३५॥

अन्वयः—कैलासगौरं, वृषम्, आरुरुक्षोः अष्टमूर्तेः, पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठं, निकुम्भमित्रं, कुम्भोदरं नाम, किंकरं, माम्, अवेहि ।

वाच्य०—"त्वया" अहम् , कुम्भोदरः किंकरः अवेये ।

व्याख्या—कैलासः = पर्वतविशेषः इव, गौरः = श्वेतः, निःतम् , कैलासगौरं, वृषं = वृषभम्, आरोढुमिच्छतीति आरुरुक्षुस्तस्यारुरुक्षोः, आरोहणं कर्तुमिच्छोः, अष्टौ = अष्टसंख्यकाः, मूर्तयः = पृथिवीसलिलादयः यस्यासौ, तस्याष्टमूर्तेः = शिवस्य, पादयोः = चरणयोः अर्पणं = न्यासः, = पादार्पणं, तदेव अनुग्रहः = प्रसादः, तेन पूतं = शुद्धं, पृष्ठं = पृष्ठभागो यस्य सः, तं तथोक्तम्, निकुम्भस्य = निकुम्भनामकगणस्य, मित्रं = सुहृत्, तं निकुम्भमित्रम् , कुम्भोदरं = कुम्भोदरनामकं, किंकरं = सेवकं गणमिति यावत्, माम् = सिंहम् , अवेहि = जानीहि ।

समा०—कैलास इव गौरः कैलासगौरः, तं कैलासगौरम् । आरोढुमिच्छतीति आरुरुक्षुः, तस्य आरुरुक्षोः । अष्टौ मूर्तयो यस्य सः अष्टमूर्तिः, तस्य अष्टमूर्तेः । पादयोः अर्पणं पादार्पणम् , पादार्पणम् एव अनुग्रहः पादार्पणानुग्रहः, पादार्पणानुग्रहेण पूतं पृष्ठं यस्य सः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठः, तं पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् । निकुम्भस्य मित्रं निकुम्भमित्रम् , तत् निकुम्भमित्रम् ।

अभि०—नन्दिनमारोढुमिच्छोः शिवस्य चरणदानेन शुद्धपृष्ठभागं निकुम्भमित्रं कुम्भोदरं नाम शिवसेवकं मां विद्धि ।

हिन्दी—कैलास पर्वत के समान सफेद बैल पर चढ़ने की इच्छा रखने वाले, आठ (भूमि-जल-तेज-पवन-आकाश-सूर्य-चन्द्र-सोमयाजी) हैं मूर्ति जिनकी ऐसे शिव भगवान् का मेरे ऊपर जो चरण रखना, तद्रूप अनुग्रह से पवित्र पीठ वाले, निकुम्भ के मित्र मुझको कुम्भोदर नाम से विख्यात शिव का गण समझो ॥ ३५ ॥

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन ।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥ ३६ ॥

सञ्जीविनी—पुरोऽग्रतोऽमुं देवदारुं पश्यसि । इति काकुः । असौ देवदारुः । वृषभो ध्वजे यस्य स तेन शिवेन पुत्रीकृतः पुत्रत्वेन स्वीकृतः । अभूततद्भावे च्विः । यो देवदारुः स्कन्दस्य मातुर्गौर्या हेम्नः कुम्भ एव स्तनः तस्मान्निःसृतानां पयसामम्बूनां रसज्ञः स्वादज्ञः, स्कन्दपक्षे हेमकुम्भ इव स्तन इति विग्रहः, पयसां क्षीराणाम् । 'पयः क्षीरं पयोऽम्बु च' इत्यमरः । स्कन्दसमानप्रेमास्पदमिति भावः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—पुरः, अमुम् , देवदारुं, पश्यसि, असौ, वृषभध्वजेन, पुत्रीकृतः, यः, स्कन्दस्य, मातुः, हेमकुम्भस्तननिःसृतानां पयसां, रसज्ञः अस्तीति शेषः ।

वाच्य०—त्वया, असौ देवदारुः दृश्यते, असुं, वृषभध्वजः पुत्रीकृतवान् , येन रसज्ञेन भूयते ।

व्याख्या—पुरः = अग्रे, अमुं = दृश्यमानं देवदारुं = देवदारुनामकं वृक्षं, पश्यसि = अवलोकयसि, असौ = देवदारुः वृषभो ध्वजे यस्य स तेन वृषभध्वजेन = शिवेन, अपुत्रः पुत्रः कृत इति पुत्रीकृतः = पुत्रत्वेन स्वीकृतः, यः = देवदारुः, स्कन्दस्य = कार्तिकेयस्य, मातुः = पार्वत्याः, हेम्नः = सुवर्णस्य कुम्भः = घटः, हेमकुम्भ एव स्तनः = कुचः, तस्मात् , निःसृतानि = निर्गतानि, तेषान्तथोक्तानाम् , पयसां = जलानां, स्कन्दपक्षे—हेमकुम्भ इव स्तनः तस्मात् निःसृतानाम् , पयसां = क्षीराणां = दुग्धानामित्यर्थः, रसं = स्वादं जानातीति रसज्ञः = स्वादज्ञः, अस्तीति शेषः ।

समा०—अपुत्रः पुत्रः सम्पद्यमानः कृतः पुत्रीकृतः वृषभो ध्वजे यस्य सः वृषभध्वजः, तेन वृषभध्वजेन। हेम्नः कुम्भः हेमकुम्भः, हेमकुम्भः एव स्तनौ हेमकुम्भस्तनौ (इति देवदारुवृक्षपक्षे), हेमकुम्भ इव स्तनौ हेमकुम्भस्तनौ (इति स्कन्दपक्षे), हेमकुम्भस्तनाभ्यां निस्सृतानि, तेषां हेमकुम्भस्तननिस्सृतानाम्। रसं जानातीति रसज्ञः।

अभि--हे राजन्, असौ पुरोवर्ती देवदारुवृक्षः पार्वत्या स्वहस्तेन सेचितः अतोऽयं पार्वतीपरमेश्वरयोः, स्कन्दतुल्यं प्रेमपात्रमस्तीति।

हिन्दी—हे राजन् तुम, सामने खड़े इस देवदारु को देख रहे हो। शिवजी ने इसे अपना पुत्र माना है। यह देवदारु कार्तिकेय को माता पार्वती जी के सोने के घटरूपी स्तनों से निकले हुये जल के स्वाद का जानने वाला है। स्कन्दपक्ष में सोने के घट के समान स्तनों से निकले हुए दूध के स्वाद का जानने वाला है॥ २६॥

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अथैदमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः॥ ३७॥

सञ्जीविनी—कदाचित्कटं कपोलं कण्डूयमानेन घर्षयता। 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' इति यक्। ततः शानच्। वन्यद्विपेनास्य देवदारोस्त्वगुन्मथिता। अथाद्रेस्तनया गौरी। असुरास्त्रैरालीढं क्षतम्। सेनां नयतीति सेनानीः स्कन्दः। 'पार्वतीनन्दनः स्कन्दः सेनानीः' इत्यमरः। "सत्सूद्विष" इत्यादिना क्विप्। तमिव एनं देवदारुं शुशोच॥ ३७॥

अन्वयः—कदाचित्, कटं कण्डूयमानेन, वन्यद्विपेन, अस्य, त्वग्, उन्मथिता, अथ अद्रेः, तनया, असुरास्त्रैः आलीढं, सेनान्यम्, इव, एनं, शुशोच।

वाच्य०—कण्डूयमानो वन्यद्विपः, अस्य, त्वचमुन्मथितवान्, अथ अद्रेः तनयया सेनानीरिव एषः शुशुचे।

व्याख्या—कदाचित् = जातु कस्मिंश्चित्समये, कटं = कपोलं, कण्डूयमानेन = घर्षयता, वन्यद्विपेन = वनगजेन, अस्य = देवदारोः, त्वग् = वल्कलम्, उन्मथिता = उत्पाटिता, अथ = पश्चात्, अद्रेः = हिमालयस्य, तनया = सुता-पार्वती, असुरास्त्रैः = दैत्यायुधैः, आलीढं = क्षतम्, सेनां नयतीति सेनानीः = स्कन्दः, तमिव, एनं = वृक्षम्, शुशोच = शोचितवती।

समा०—वने भवः वन्यः, वन्यश्चासौ द्विपश्च वन्यद्विपः तेन वन्यद्विपेन। असुराणाम् अस्त्राणि असुरास्त्राणि, तैः असुरास्त्रैः।

अभि०—एकदा केनापि वन्यगजेन स्वगात्रं कण्डूयता अस्य देवदारुवृक्षस्य वल्कलमुत्पाटितं, तद् दृष्ट्वा पार्वती दैत्यास्त्रैः क्षतं स्वपुत्रं स्कन्दं यथा शुशोच तथैव एनमपि शुशोच।

हिन्दी—किसी समय, कपोल को रगड़ते हुये किसी जंगली हाथी ने इस देवदारु की छाल को छील दिया तो पार्वतीजी ने अपने पुत्र कार्तिकेय के असुरास्त्रों से घायल होनेपर जैसा शोक किया था वैसा ही शोक इसके लिये भी किया॥ ३७॥

तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ ।
व्यापारितः शूलभृता विधाय सिंहत्वमङ्कागतसत्त्ववृत्ति ॥ ३८ ॥

सञ्जीविनी—तदा तत्कालतः प्रभृतिरादिर्यस्मिन्कर्मणि तत्तथा तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थं भयार्थं शूलभृता शिवेन अङ्कं समीपमागताः प्राप्ताः सत्त्वाः प्राणिनो वृत्तिर्यस्मिंस्तत् । 'अङ्कः समीप उत्सङ्गे चिन्हे स्थानापराधयोः' इति केशवः । सिंहत्वं विधाय अस्मिन्नद्रिकुक्षौ गुहायामहं व्यापारितो नियुक्तः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—तदाप्रभृति, एव, वनद्विपानां, त्रासार्थं, शूलभृता, अङ्कागतसत्त्ववृत्ति सिंहत्वं, विधाय, अस्मिन्, अद्रिकुक्षौ, अहं, व्यापारितः ।

वाच्य०—शूलभृत् मां व्यापारितवान् ।

व्याख्या—तदाप्रभृति तत्कालादारभ्य एव, वनद्विपानां = वनगजानां, त्रासार्थं = भयार्थम्, शूलभृता = शिवेन, अङ्कं = समीपम्, आगताः = प्राप्ताः, ये सत्त्वाः = प्राणिनः एव वृत्तिः = भोजनं यस्मिन् तत्, सिंहस्य भावः सिंहत्वं = केसरित्वं, विधाय = कृत्वा, अस्मिन् = पुरोवर्तिनि, अद्रेः = पर्वतस्य, कुक्षिः = गुहा, तस्मिन् अद्रिकुक्षौ, अहं = सिंहः, व्यापारितः = नियुक्तः ।

समा०—तदा प्रभृतिः (स काल आदिः) यस्मिन् कर्मणि तद् यथा भवति तथा तदाप्रभृति (क्रियाविशेषणम्) । वनस्य द्विपाः, वनद्विपाः, तेषां वनद्विपानाम् । त्रासाय इति त्रासार्थम् (अस्वपद-विग्रहः) । शूलं बिभर्ति इति शूलभृत् तेन शूलभृता । अङ्कम् आगताः सत्त्वा एव वृत्तिः यस्मिन् तद् अङ्कागतसत्त्ववृत्ति, तद् अङ्कागतसत्त्ववृत्ति । अद्रेः कुक्षिः अद्रिकुक्षिः, तस्मिन् अद्रिकुक्षौ ।

अभि०—देवदारुवल्कलोत्पाटनकालादारभ्यैव शिवः वन्यगजभयार्थम् अस्यां गुहायां मम समीपागतजन्तुर्भोजनमिति निर्धार्य मां सिंहरूपिणं कृत्वा नियुक्तवान् ।

हिन्दी—तभी से जंगली हाथियों को डराने के लिये त्रिशूलधारी शिवने, पास में आये हुए जीवों पर निर्वाह करनेवाली सिंह की आकृति देकर मुझे इस गुफा में नियुक्त कर दिया है ॥ ३८ ॥

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण ।
उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव ॥ ३९ ॥

सञ्जीविनी—परमेश्वरेण प्रदिष्टो निर्दिष्टः कालो भोजनवेला यस्याः सोपस्थिता प्राप्तैषा गोरूपा शोणितपारणा शोणितस्य रुधिरस्य पारणा व्रतान्तभोजनम् । सुरद्विषो राहोः चन्द्रमस इयं चान्द्रमसी सुधेव । क्षुधितस्य बुभुक्षितस्य तस्याङ्कागतसत्त्ववृत्तेर्मे मम सिंहस्य तृप्त्या अलं पर्याप्ता । "नमःस्वस्ति-स्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च" इत्यनेन चतुर्थी ॥ ३९ ॥

अन्वयः—परमेश्वरेण, प्रदिष्टकाला, उपस्थिता, एषा, शोणितपारणा, सुरद्विषः, चान्द्रमसी, सुधा, इव, क्षुधितस्य, तस्य, मे, तृप्त्यै, अलम् ।

वाच्य०—एतया, शोणितपारणया, सुरद्विषः, चान्द्रमस्या सुधया इव क्षुधितस्य मे तृप्त्यै अलं भूयते ।

व्याख्या—परमेश्वरेण = महादेवेन, प्रदिष्टः = निर्दिष्टः, कालः = समयो भोजनवेला यस्याः सा

प्रदिष्टकाला, उपस्थिता = प्राप्ता, एषा = गोरूपा, शोणितस्य = रुधिरस्य, पारणा = व्रतान्तभोजनम्, सुरान् = देवान्, द्वेष्टीति सुरद्विट्, तस्य, सुरद्विषः = राहोः, चन्द्रमसः इयं चान्द्रमसी = ऐन्दवी, चन्द्रसम्बन्धिनीत्यर्थः, सुधा = अमृतम्, इव = यथा, क्षुधितस्य = बुभुक्षितस्य, तस्य = समीपागतप्राणिवृत्तेः, मे = मम सिंहस्य, तृप्त्यै = उदरपूर्त्यै, अलं = पर्याप्तम्।

समा०—परा मा (शोभा) यस्य सः परमः, परमश्चासौ ईश्वरश्च परमेश्वरः, तेन परमेश्वरेण। प्रदिष्टः कालः यस्याः सा प्रदिष्टकाला। शोणितस्य पारणा-शोणितम् एव पारणा वा शोणितपारणा।

अभि०—उपोषितस्येव राहोः कालात् क्षुधितस्य मे क्षुधानिवृत्तये शिवेन निर्दिष्टसमया इव स्वयमेवागता धेनुरूपा पारणा, राहोश्चन्द्रसम्बन्धिपीयूषमिव तृप्त्यै पर्याप्तं भविष्यति।

हिन्दी—शिवजी के बताये हुए भोजन के समय स्वयं प्राप्त यह गोरूप रुधिर भोजन (व्रत की समाप्ति का) राहु के लिये चन्द्रमण्डल में स्थित अमृत की तरह भूखे मुझ सिंह की तृप्ति के लिये पर्याप्त है ॥ ३९ ॥

स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥ ४० ॥

सञ्जीविनी—स एवमुपायशून्यस्त्वं लज्जां विहाय निवर्तस्व। भवांस्त्वं गुरोर्दर्शिता प्रकाशिता शिष्यस्य कर्तव्या भक्तिर्येन स तथोक्तोऽस्ति। ननु गुरुधनं विनाश्य कथं तत्समीपं गच्छेयमत आह—शस्त्रेणेति। यद्रक्ष्यं धनं शस्त्रेणायुधेन। 'शस्त्रमायुधलोहयोः' इत्यमरः। अशक्या रक्षा यस्य तदशक्यरक्षम्। रक्षितुमशक्यमित्यर्थः। तद्रक्ष्यं नष्टमपि शस्त्रभृतां यशो न क्षिणोति न हिनस्ति। अशक्यार्थेऽप्रतिविधानं न दोषायेति भावः ॥ ४० ॥

अन्वयः—सः, त्वं, लज्जां, विहाय, निवर्तस्व, भवान्, गुरोः, दर्शितशिष्यभक्तिः "अस्ति" यद्, रक्ष्यं, शस्त्रेण, अशक्यरक्षं, तद्, शस्त्रभृतां, यशः, न क्षिणोति।

वाच्य०—तेन त्वया निवृत्यतां, भवता, गुरोर्दर्शितशिष्यभक्तिना "भूयते" येन रक्ष्येण शस्त्रेण अशक्यरक्षेण "भूयते" तेन शस्त्रभृतां यशो न क्षीयते।

व्याख्या—सः = एवमुपायशून्यः, बाहुस्तम्भेनेत्यर्थः, त्वं, दिलीपः, लज्जां = त्रपां, विहाय = त्यक्त्वा, निवर्तस्व = परावर्तस्व, निवृत्तो भव इति यावत्, भवान् = दिलीपः, गुरोः = वशिष्ठस्य दर्शिता = प्रकाशिता, शिष्यभक्तिः = छात्रानुरागो येन स तथोक्तः, अस्तीति शेषः, यत् = किंचित्, रक्ष्यं = रक्षणीयं = पालनीयं, धनादिकमित्यर्थः, शस्त्रेण = आयुधेन, अशक्यरक्षम् = अशक्यपालनम्, तद् = रक्ष्यं वस्तु, शस्त्रभृतां = चापधारिणां, यशः = कीर्तिं न = नहि, क्षिणोति = हिनस्ति।

समा०—शिष्यस्य भक्तिः शिष्यभक्तिः, दर्शिता शिष्यभक्तिः येन सः दर्शितशिष्यभक्तिः। रक्षितुं योग्यं रक्ष्यम्। न शक्या अशक्या, अशक्या रक्षा यस्य तद् अशक्यरक्षम्। शस्त्राणि बिभ्रतीति शस्त्रभृतः, तेषां शस्त्रभृताम्।

अभि०—हे राजन्, करावरोधेन मम मारणेऽसमर्थस्त्वं लज्जां विहाय स्वाश्रमं गच्छ, यतः यत् पालनीयं वस्तु शस्त्रेण रक्षणयोग्यं न भवति तद् रक्ष्यं वस्तु नष्टमपि शस्त्रभृतां यशः न नाशयति, अतस्तव परावर्तने न कोऽपि दोषः।

हिन्दी—उपायशून्य हुए तुम लज्जा को छोड़कर लौट जाओ, तुमने गुरु की शिष्यों के योग्य भक्ति दिखला दी, जो रक्षणीय वस्तु शस्त्र से रक्षा करने के योग्य हो नहीं होती वह वस्तु नष्ट होती हुई भी शस्त्रधारी की कीर्ति को नष्ट नहीं करती है ॥ ४० ॥

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य ।
प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार ॥ ४१ ॥

सञ्जीविनी—पुरुषाणामधिराजो नृप इति प्रगल्भं मृगाधिराजस्य वचो निशम्य श्रुत्वा गिरिशस्येश्वरस्य प्रभावात्प्रत्याहतास्त्रः कुण्ठितास्त्रः सन्नात्मनि विषयेऽवज्ञामपमानं शिथिलीचकार । तत्याजेत्यर्थः । मदशक्तोऽहमिति निर्वेदं न प्रापेत्यर्थः । समानेषु हि क्षत्रियाणामभिमानः । न सर्वेश्वरं प्रतीति भावः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—पुरुषाधिराजः, इति, प्रगल्भं, मृगाधिराजस्य, वचः, निशम्य, गिरिशप्रभावात्, प्रत्याहतास्त्रः, "सन्" आत्मनि, अवज्ञां, शिथिलीचकार ।

वाच्य०—पुरुषाधिराजेन, प्रत्याहतास्त्रेण "सता" आत्मन्यवज्ञा शिथिलीचक्रे ।

व्याख्या—पुरुषाधिराजः = नृपः, इति = पूर्वोक्तप्रकारकम्, प्रगल्भं = धृष्टं, मृगाधिराजस्य = मृगेन्द्रस्य सिंहस्य, वचः = वचनं, निशम्य = श्रुत्वा, गिरिशस्य = शिवस्य, प्रभावः = तेजस्तस्मात्, गिरिशप्रभावात्, प्रत्याहतं = कुण्ठितम्, अस्त्रम् = आयुधं यस्य सः, प्रत्याहतास्त्रः "सन्" आत्मनि = स्वस्मिन्, अवज्ञाम् = अवहेलनम्, शिथिलीचकार = तत्याज ।

समा०—अधि (अधिकः) राजा अधिराजः, पुरुषाणाम् अधिराजः पुरुषाधिराजः । मृगाणाम् अधिराजः मृगाधिराजः, तस्य मृगाधिराजस्य । गिरौ शेते इति गिरिशः, गिरिशस्य प्रभावः गिरिशप्रभावः, तस्माद् गिरिशप्रभावात् । प्रत्याहतम् अस्त्रं यस्य सः प्रत्याहतास्त्रः । अशिथिलां शिथिलां कृतवान् शिथिलीचकार ।

अभि०—सिंहवाक्यं श्रुत्वा राजा दिलीपः, भगवतः शिवस्य प्रतापात् स्वकीयास्त्रस्य कुण्ठितां ज्ञात्वा तज्जनितापमानं त्यक्तवान् ।

हिन्दी—राजा दिलीप ने इस प्रकार से ढीठ सिंह की बात सुनकर भगवान् शिवके प्रभाव से मेरे अस्त्र की गति रुकी है यह जानकर आत्मग्लानि को कम कर दिया । अपना अपमान नहीं समझा ॥ ४१ ॥

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभङ्गे वितथप्रयत्नः ।
जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः ॥ ४२ ॥

सञ्जीविनी—स एव पूर्वः प्रथमो भङ्गः प्रतिबन्धो यस्य तस्मिंस्तत्पूर्वभङ्गे इषुप्रयोगे वितथप्रयत्नो विफलप्रयासः । अत एव वज्रं कुलिशं मुमुक्षन्मोक्तुमिच्छन् । अम्बकं लोचनम् । 'दृग्दृष्टिनेत्रलोचनचक्षुर्नयनाम्बकेक्षणाक्षीणि' इति हलायुधः । त्रीण्यम्बकानि यस्य स त्र्यम्बको हरः । तस्य वीक्षणेन जडीकृतो निष्पन्दीकृतः । वज्रं पाणौ यस्य स वज्रपाणिरिन्द्रः । (प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम्) इति पाणेः सप्तम्यन्तस्योत्तरनिपातः । स इव स्थितो नृप एनं सिंहं प्रत्यब्रवीत् । "बाहुं सवज्रं शक्रस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत्प्रभुः" इति महाभारते ॥ ४२ ॥

अन्वयः—तत्पूर्वभङ्गे, इषुप्रयोगे, वितथप्रयत्नः, 'अतएव' वज्रं, मुमुक्षन्, त्र्यम्बकवीक्षणेन, जडीकृतः, वज्रपाणिः, इव, "स्थितो राजा" एनं, प्रत्यब्रवीत् च ।

वाच्य०—वितथप्रयत्नेन, वज्रं मुमुक्षता, जडीकृतेन, वज्रपाणिना, इव, एषः प्रत्यौच्यत ।

व्याख्या—स = बाहुस्तम्भरूपः, एव पूर्वः = प्रथमः, भङ्गः = प्रतिबन्धो यस्य स तस्मिन्, तत्पूर्वभङ्गे, इषोः = बाणस्य, प्रयोगः = प्रयुक्तिः, तस्मिन्, इषुप्रयोगे, वितथः = विफलः, प्रयत्नः = प्रयासः, उद्योगो यस्य सः, वितथप्रयत्नः, "अत एव" वज्रं = कुलिशं, मुमुक्षन् = मोक्तुं = त्यक्तुम् इच्छन्, त्र्यम्बकस्य = त्रिनयनस्य शिवस्य, वीक्षणेन = अवलोकनेन, जडीकृतः = निश्चेष्टीकृतः, वज्रं पाणौ यस्य सः, वज्रपाणि = इन्द्रः, इव "स्थितो राजा" इति शेषः, एनं = सिंहम्, प्रत्यब्रवीत् = प्रत्युक्तवान् ।

समा०—स एव पूर्वः भङ्गः यस्य सः तत्पूर्वभङ्गः, तस्मिन् तत्पूर्वभङ्गे । इषोः प्रयोगः इषुप्रयोगः तस्मिन् इषुप्रयोगे । वितथः प्रयत्नः यस्य सः वितथप्रयत्नः । न जडः अजडः, अजडः जडः सम्पद्यमानः कृतः जडीकृतः । त्रीणि अम्बकानि (नयनानि) यस्य सः त्र्यम्बकः, त्र्यम्बकस्य वीक्षणं त्र्यम्बकवीक्षणम्, तेन त्र्यम्बकवीक्षणेन । मोक्तुम् इच्छन् मुमुक्षन् । वज्रं पाणौ यस्य सः वज्रपाणिः ।

अभि०—बाणप्रयोगे व्यर्थप्रयासः, महेश्वरावलोकनेन जडीकृतः वज्रं प्रहर्तुमिच्छन् देवराज इव स्थितो राजा दिलीपः सिंहं प्रत्युवाच ।

हिन्दी—शंकर जी पर वज्र प्रहार करने के इच्छुक, किन्तु उनकी दृष्टि मात्र से स्तम्भित, वज्रपाणि इन्द्र की तरह निश्चेष्ट हुए राजा दिलीप बाणप्रयोग में अपनी पहले पहल उस विफलता को देखकर सिंह को उत्तर देने लगे ॥ ४२ ॥

> संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र ! कामं हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः ।
> अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान्भावमतोऽभिधास्ये ॥ ४३ ॥

सञ्जीविनी—हे मृगेन्द्र ! संरुद्धचेष्टस्य प्रतिबद्धव्यापारस्य मम तद्वचो वाक्यं कामं हास्यं परिहसनीयम्, यद्वचः 'स त्वं मदीयेन' इत्यादिकमहं विवक्षुर्वक्तुमिच्छुरस्मि । तर्हि तूष्णीं स्थीयतामित्याशङ्क्येश्वरकिंकरत्वात्सर्वज्ञं त्वां प्रति न हास्यमित्याह । अन्तरिति । हि यतो भवान्प्राणभृतामन्तर्गतं हृद्गतं वाग्वृत्त्या बहिरप्रकाशितमेव सर्वं भावं वेद वेत्ति "विदो लटो वा" इति णलादेशः । अतोऽहमभिधास्ये वक्ष्यामि । वच इति प्रकृतं कर्म संबध्यते । अन्ये त्वीदृग्वचनमाकर्ण्यासंभावितार्थमेतदित्युपहसन्ति । अतस्तु मौनमेव भूषणम् । त्वं तु वाङ्मनसयोरेकविधं व्यवायमिति जानासि । अतोऽभिधास्ये यद्वचोऽहं विवक्षुरित्यर्थः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—"हे !" मृगेन्द्र ! संरुद्धचेष्टस्य, "मम" तद् वचः, कामं, हास्यम्, "अस्ति" यद् "वचः" अहं, विवक्षुः "अस्मि" हि, भवान्, प्राणभृताम्, अन्तर्गतं, सर्वं, भावं, वेद, अतः अभिधास्ये ।

वाच्य०—तेन, वचसा, हास्येन, "भूयते" मया विवक्षुणा "भूयते" अन्तर्गतः, भावो भवता, विद्यते, अतः, अभिधास्यते ।

व्याख्या—मृगेन्द्र = हे सिंह ! संरुद्धा = प्रतिरुद्धा, चेष्टा = हस्तसंचालनादिव्यापारो यस्य तस्य संरुद्धचेष्टस्य, मम = दिलीपस्य, तद् = उच्यमानं वचः = वाक्यम्, कामं = यथेष्टम्, हसितुं योग्यं

हास्यं = परिहासयोग्यम् , अस्तीति शेषः, यद् = वचः, अहं = दिलीपः, विवक्षुः = कथयितुमिच्छुः, अस्मीति शेषः, हि = यतः, भवान् = दिलीपः, प्राणभृतां = जीवानाम् , अन्तर्गतं = हृद्गतं, भावम् = अभिप्रायं, वेद = जानाति, अतः = कारणात् , अभिधास्ये = कथयिष्यामि ॥ ४३ ॥

समा०—संरुद्धाः चेष्टाः यस्य सः संरुद्धचेष्टः, तस्य संरुद्धचेष्टस्य । मृगाणाम् इन्द्रः मृगेन्द्रः, तत्सम्बुद्धौ (हे) मृगेन्द्र ! हसितुं योग्यं हास्यम् । वक्तुमिच्छुः विवक्षुः । प्राणान् बिभ्रतीति प्राणभृतः, तेषां प्राणभृताम् ।

शब्दि०—हे मृगेन्द्र ! संरुद्धहस्तसंचालनव्यापारस्य मे वचनं यद्यपि परिहासयोग्यं वर्तते, तथापि भवान् सर्वजन्तूनां हृदि स्थितं सर्वमेव जानाति, अतोऽहं कथयिष्यामि ।

हिन्दी—हे सिंह ! हाथ के बँध जाने से मैं कुछ नहीं कर सकता, इसलिये वह वचन भले ही दिल्लगी करने के योग्य है जिसे मैं कहना चाहता हूँ, फिर भी आप प्राणियों के सभी मनोभावों को जानते हैं इससे कहता हूँ ॥ ४३ ॥

मान्यः स मे स्थावरजङ्गमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः ।
गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम् ॥ ४४ ॥

सञ्जीविनी—प्रत्यवहारः प्रलयः । स्थावराणां तरुशैलादीनां जंगमानां मनुष्यादीनां सर्गस्थितिप्रत्यवहारेषु हेतुः स ईश्वरो मे मम मान्यः पूज्यः । अलङ्घ्यशासन इत्यर्थः । शासनं च 'सिद्धस्वमङ्कागतसत्त्ववृत्ति' इति प्रागुक्तरूपम् । तर्हि विसृज्य गम्यताम् । नेत्याह गुरोरपीति । पुरस्तादग्रे नश्यदिदमाहिताग्नेर्गुरोर्धनमपि गोरूपमनुपेक्षणीयम् । आहिताग्नेरिति विशेषणेनानुपेक्षाकारणं हविःसाधनत्वं सूचयति ॥ ४४ ॥

अन्वयः—स्थावरजंगमानां, सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः, सः, मे, मान्यः, पुरस्तात् , नश्यत्, इदम् , आहिताग्नेः, गुरोः, धनम् , अपि, अनुपेक्षणीयम् ।

वाच्य०—सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुना तेन मे मान्येन "भूयते" पुरस्तात् नश्यताऽनेन धनेनापि, अनुपेक्षणीयेन "भूयते" ।

व्याख्या—तिष्ठन्तीति स्थावराः = तरुशैलादयः, गच्छन्तीति जंगमा = मनुष्यादयः, तेषां = स्थावरजंगमानाम् , सर्गः = उत्पत्तिः, स्थितिः = पालनम् , प्रत्यवहारः = विनाशः, तेषां त्रयोक्तानां हेतुः = कारणम्, सः = ईश्वरः, मे = मम दिलीपस्य, मान्यः = पूज्यः, अस्तीति शेषः, पुरस्तात् = अग्रे, नश्यत् = नाशं गच्छत् , इदम् = पुरतो दृश्यमानम् , आहितोऽग्निर्येन स तस्य, आहिताग्नेः = अग्निहोत्रिणः, गुरोः = वशिष्ठस्य, धनम् = गोरूपधनम् , अपि = न, उपेक्षणीयमनुपेक्षणीयम् = उपेक्षानर्हम् ।

समा०—तिष्ठन्तीति स्थावराः, गच्छन्तीति जङ्गमाः, स्थावराश्च जङ्गमाश्च स्थावरजङ्गमाः, तेषां स्थावरजङ्गमानाम् । सर्गश्च स्थितिश्च प्रत्यवहारश्च सर्गस्थितिप्रत्यवहाराः, सर्गस्थितिप्रत्यवहाराणां हेतुः सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः । मानितुं योग्यः मान्यः । आहितः अग्निः येन सः आहिताग्निः, तस्य आहिताग्नेः । नश्यतीति नश्यत् । उपेक्षितुं योग्यम् उपेक्षणीयम् , न उपेक्षणीयम् अनुपेक्षणीयम् ।

अभि०—सकलजगदुत्पत्तिस्थितिविनाशकारणं सः शिवः, मे पूज्यो वर्तते, तथापि गुरोरपि विनश्यदिदं गोरूपधनं सर्वथा पालनीयं वर्तते ।

हिन्दी—समस्त विश्व की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय के कारणभूत वह भगवान् शिव मेरे पूजनीय हैं । अर्थात् उनकी आज्ञा सर्वथा माननीय है । किन्तु सामने नष्ट होता हुआ अग्निहोत्री गुरु महाराज वशिष्ठ का यह नन्दिनी रूप धन भी उपेक्षा करने के योग्य नहीं है । इसकी रक्षा करना भी परमावश्यक है ॥ ४४ ॥

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद ।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः ॥ ४५ ॥

सञ्जीविनी—सोऽङ्कागतसत्त्ववृत्तिस्त्वं मदीयेन देहेन शरीरस्य वृत्तिं जीवनं निर्वर्तयितुं संपादयितुं प्रसीद । दिनावसान उत्सुको माता समागमिष्यतीत्युत्कण्ठितो बालश्चासौ वत्सो यस्याः सा महर्षेरियं धेनुर्विसृज्यताम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—स, त्वं, मदीयेन, देहेन, शरीरवृत्तिं, निर्वर्तयितुं प्रसीद, दिनावसानोत्सुकबालवत्सा, महर्षेः, इयं, धेनुः, विसृज्यताम् ।

वाच्य०—तेन त्वया मदीयेन देहेन शरीरवृत्तिं निर्वर्तयितुं प्रसद्यतां, महर्षेरिमां धेनुं विसृज ।

व्याख्या—सः = समीपागतप्राणिवृत्तिः, त्वं = सिंहः, मम अयं मदीयः, तेन, मदीयेन = मत्सम्बन्धिना, देहेन = शरीरेण, शरीरस्य = देहस्य वृत्तिः = जीवनं तां, निर्वर्तयितुं = सम्पादयितुं कर्तुमित्यर्थः, प्रसीद = प्रसन्नो भव । दिनस्य = दिवसस्य, अवसानम् = अन्तः, तस्मिन्, उत्सुकः = उत्कण्ठितः, बालश्चासौ वत्सः = शकृत्करिर्यस्याः सा तथोक्ता, महर्षेः = वशिष्ठस्य, इयम् = एषा, धेनुः = नन्दिनी, विसृज्यताम् = त्यज्यताम् ।

समा०—मम अयं मदीयः, तेन मदीयेन । शरीरस्य वृत्तिः शरीरवृत्तिः, तां शरीरवृत्तिम् । दिनस्य अवसानं दिनावसानम्, दिनावसाने उत्सुकः बालः वत्सः यस्याः सा दिनावसानोत्सुकबालवत्सा । महांश्चासौ ऋषिश्च महर्षिः, तस्य महर्षेः ।

अभि०—हे सिंह ! त्वं मम देहेन स्वबुभुक्षाशान्तिं कृत्वा मयि प्रसन्नो भव, इमां महर्षेः धेनुं मुञ्च, यतः, आश्रमे बद्धोऽस्याः बालवत्सः माता मे समागमिष्यतीत्युत्कण्ठितो बुभुक्षित आस्ते ।

हिन्दी—समीपागत प्राणियों पर जीवन यापन करनेवाले तुम मेरे शरीर से अपना भोजन करने की कृपा करो, (अर्थात् धेनु के बदले मुझे खा लो) और सायंकाल "मेरी माँ आती होगी" ऐसे उत्कण्ठित छोटे बच्चे वाली, महर्षि वशिष्ठ की इस गौ को छोड़ दो ॥ ४५ ॥

अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन् ।
भूयः स भूतेश्वरपार्श्ववर्ती किञ्चिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे ॥ ४६ ॥

सञ्जीविनी—अथ राजोक्त्यनन्तरम् । भूतेश्वरस्य पार्श्ववर्त्यनुचरः स सिंहो गिरेर्गह्वराणां गुहानाम् । 'देवखातबिले गुहा । गह्वरम्' इत्यमरः । अंधकारं ध्वान्तं दंष्ट्रामयूखैः शकलानि खण्डानि कुर्वन् । निरस्यन्नित्यर्थः । किंचिद्विहस्यार्थपतिं नृपं भूयो बभाषे । हासकारणम् 'अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्' इति वक्ष्यमाणं द्रष्टव्यम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—अथ, भूतेश्वरपार्श्ववर्ती, सः, गिरिगह्वराणाम्, अन्धकारं, दंष्ट्रामयूखैः, शकलानि, कुर्वन् किञ्चिद्, विहस्य, अर्थपतिं, भूयः, बभाषे।

वाच्य०—अथ, भूतेश्वरपार्श्ववर्तिना, तेन, अर्थपतिर्भूयः, बभाषे।

व्याख्या—अथ = अनन्तरं, भूतानां = प्राणिनाम्, ईश्वरः = स्वामी, भूतेश्वरः, तस्य पार्श्वयोः वर्तितुं शीलमस्येति पार्श्ववर्ती = अनुचरः, सः = सिंहः, गिरेः = पर्वतस्य, गह्वराणि = गुहास्तेषां गिरिगह्वराणाम्, अन्धकारं = ध्वान्तं तिमिरम् "अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तम्" इत्यमरः। दंष्ट्राणां = निशितदन्तानां, मयूखाः = किरणास्तैः, "किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः", इत्यमरः। दंष्ट्रामयूखैः, शकलानि = खण्डानि कुर्वन् = विदधत् दूरीकुर्वन्नित्यर्थः, किञ्चित् = स्वल्पमीषत्, विहस्य = स्मितं कृत्वा, अर्थस्य = धनस्य पतिं = स्वामिनं दिलीपं, भूयः = पुनः, बभाषे = उवाच।

समा०—भूतानाम् ईश्वरः भूतेश्वरः, पार्श्वयोः वर्तितुं शीलमस्येति पार्श्ववर्ती, भूतेश्वरस्य पार्श्ववर्ती भूतेश्वरपार्श्ववर्ती। गिरेः गह्वराणि गिरिगह्वराणि, तेषां गिरिगह्वराणाम्। दंष्ट्राणां मयूखाः दंष्ट्रामयूखाः, तैः दंष्ट्रामयूखैः। अर्थस्य पतिः अर्थपतिः, तम् अर्थपतिम्।

अभि०—नन्दिनीरक्षणाय स्वशरीरं त्यक्तुमुद्यतं राजानं दृष्ट्वा, सिंहः भूयोऽपि किंचित् स्मितं कृत्वा दिलीपं प्रत्युक्तवान्।

हिन्दी—दिलीप के इतना कहने के पश्चात् भगवान् शिव के पास रहने वाला वह सिंह, मुस्कराकर हिमालय की गुफाओं के अन्धकार को अपनी दन्तकिरणों से टुकड़े-टुकड़े करता हुआ, महाराज दिलीप से फिर बोला॥ ४६॥

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्॥ ४७॥

सञ्जीविनी—एकातपत्रमेकच्छत्रं जगतः प्रभुत्वं स्वामित्वम्। नवं वयो यौवनम्। इदं कान्तं रम्यं वपुश्च। इत्येवं बहु अल्पस्य हेतोरल्पेन कारणेन। अल्पफलायेत्यर्थः। "षष्ठी हेतुप्रयोगे" इति षष्ठी। हातुं त्यक्तुमिच्छंस्त्वं विचारे कार्याकार्यविमर्शे मूढो मूर्खो मे मम प्रतिभासि॥ ४७॥

अन्वयः—एकातपत्रं, जगतः प्रभुत्वं, नवं, वयः, इदं, कान्तं, वपुः, च, "एतत्सर्वं" बहु, अल्पस्य, हेतोः, हातुं इच्छन्, त्वं, विचारमूढः, मे, प्रतिभासि।

वाच्य०—हातुमिच्छता त्वया विचारमूढेन मे प्रतिभायते।

व्याख्या—एकातपत्रम् = एकच्छत्रम् गच्छतीति जगत् तस्य जगतः = संसारस्य, प्रभोर्भावः प्रभुत्वं = स्वामित्वं, नवं = नूतनं, वयः = अवस्था, इदं = दृश्यमानम्, कान्तं = मनोहरं, वपुः = शरीरञ्च "एतत्सर्वम्" बहु = बहुलमधिकमित्यर्थः, अल्पस्य = स्वल्पस्य, हेतोः = कारणात्, अल्पफलादेरित्यर्थः, हातुं = त्यक्तुमिच्छन्, त्वं = दिलीपः, विचारे = कार्याकार्यविवेके, मूढः = मूर्खः, इति विचारमूढः, मे = मम, प्रतिभासि = लक्ष्यसे।

समा०—एकञ्च तद् आतपत्रञ्च एकातपत्रम्। प्रभोर्भावः प्रभुत्वम्। विचारे मूढः विचारमूढः।

अभि०—हे राजन् यत्त्वम्, एकस्याः धेनोः रक्षायै चक्रवर्तित्वं नवयौवनसुखं देवतुल्यमिदं शरीरञ्च त्यक्तुमिच्छसि, तन्मे सर्वथा विवेकरहितः प्रतिभाससे।

हिन्दी—संसार का एकच्छत्र राज्य तथा नई जवानी एवं सुन्दर यह शरीर इन सब अमूल्य रत्नों को एक गौके पीछे नष्ट करना चाहते हो, इससे मैं समझता हूँ कि तुम कर्तव्याकर्तव्य के विचार में अकुशल ही हो ॥ ४७ ॥

भूतानुकम्पा तव चेदियं गौरेका भवेत्स्वस्तिमती त्वदन्ते ।
जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि ॥ ४८ ॥

सञ्जीविनी—तव भूतेष्वनुकम्पा 'कृपा दयानुकम्पा स्यात्' इत्यमरः । कृपैव वर्तते चेदित्यर्थः । तर्हि त्वदन्ते तव नाशे सतीयमेका गौः स्वस्ति क्षेममस्या अस्तीति स्वस्तिमती भवेत् । जीवेदित्यर्थः । 'स्वस्त्याशीः क्षेमपुण्यादौ' इत्यमरः । हे प्रजानाथ ! जीवन्पुनः पितेव प्रजा उपप्लवेभ्यो विघ्नेभ्यः शश्वत्सदा । 'पुनः सदार्थयोः शश्वत्' इत्यमरः । पासि रक्षसि । स्वप्राणव्ययेनैकधेनुरक्षणाद्वरं जीवितेनैव शश्वदखिलजगत्त्राणमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—तव, भूतानुकम्पा, चेत् "तर्हि" त्वदन्ते, "सति" इयम्, एका, गौः, स्वस्तिमती, भवेत्, प्रजानाथ, जीवन्, पुनः, पिता, इव, प्रजाः, उपप्लवेभ्यः, शश्वत्, पासि ।

वाच्य०—तव भूतानुकम्पया चेद् "भूयते" तर्हि अनया एकया गवा, स्वस्तिमत्या भूयते "त्वया" जीवता पुनः पित्रेव प्रजाः पाय्यन्ते ।

व्याख्या—तव = भवतः, भूतेषु = प्राणिषु, अनुकम्पा = दया, चेत् = यदि, अस्तीति, तर्हि इति शेषः, तव = भवतः, अन्तः = विनाशस्तस्मिन् त्वदन्ते, सतीति शेषः, इयम् = एषा, एका = केवला, गौः = धेनुः, नन्दिनी, एव स्वस्तिमती = कल्याणवती, रक्षितेति यावत्, भवेत् = स्यात्, हे प्रजानाथ = जनस्वामिन्, जीवन् = प्राणान् धारयन्, पुनः, पिता = जनकः, इव = यथा, प्रजाः = जनान्, उपप्लवेभ्यः = उपद्रवेभ्यः चौरादिभ्य इत्यर्थः, शश्वत् = निरन्तरं, पासि = त्रायसे ।

समा०—भूतेषु अनुकम्पा भूतानुकम्पा । गच्छतीति गौः । स्वस्ति अस्या अस्तीति स्वस्तिमती । तव अन्तः त्वदन्तः, तस्मिन् त्वदन्ते । प्रजानां नाथः प्रजानाथः, तत्सम्बुद्धौ हे प्रजानाथ !

अभि०—हे राजन् त्वयि जीवति सति लोकरक्षणं भविष्यति, त्वन्नाशे पुनः केवलनन्दिनीरक्षणं भविष्यति । तव शरीररक्षणमेव श्रेष्ठं नतु केवलैकधेनुरक्षणम् ।

हिन्दी—यदि तुम्हारी जीवों पर कृपा है तो तुम्हारे मर जाने पर केवल इस एक गौ का ही कल्याण होगा, हे प्रजानाथ दिलीप ! तुम्हारे जीवित रहने पर तो तुम पिता के समान प्रजा की कष्टों से सदा रक्षा करते रहोगे ॥ ४८ ॥

अथैकधेनोरपराधचण्डाद् गुरोः कृशानुप्रतिमाद् बिभेषि ।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोध्नीः ॥ ४९ ॥

सञ्जीविनी—अथेति पक्षान्तरे । अथवा । एकैव धेनुर्यस्य तस्मात् । अयं कोपकारणोपन्यास इति ज्ञेयम् । अत एवापराधे गवोपेक्षालक्षणे सति चण्डादतिकोपनात् । 'चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः' इत्यमरः । अत एव कृशानुः प्रतिमोपमा यस्य तस्मादग्निकल्पाद् गुरोर्बिभेषि । इति काकुः । "भीत्रार्थानां भयहेतुः" इत्यपादानात्पञ्चमी । अल्पवित्तस्य धनहानिरतिदुःसहेति भावः । अस्य गुरोर्मन्युः क्रोधः मन्युर्दैन्ये क्रतौ

कृधि' इत्यमरः। घटा इवोधांसि यासां ताः घटोघ्नीः "ऊधसोऽनङ्" इत्यनङादेशः । "बहुव्रीहेरूधसो ङीष्" इति ङीष् । कोटिशो गाः स्पर्शयता प्रतिपादयता । 'विश्राणनं वितरणं स्पर्शनं प्रतिपादनम्' इत्यमरः। भवता विनेतुमपनेतुं शक्यः ॥ ४९ ॥

अन्वयः—अथ, एकधेनोः, अपराधचण्डात् , कृशानुप्रतिमात् , गुरोः, बिभेषि, 'चेत्' अस्य, मन्युः घटोघ्नीः कोटिशः, गाः, स्पर्शयता, भवता, विनेतुं शक्यः ।

वाच्य०—"त्वया" भीयते, अस्य, मन्युं स्पर्शयन् भवान् विनेतुं शक्नुयात् ।

व्याख्या—अथ = अथवा, एका = केवला, एव, धेनुः गौः, यस्य स तस्मात् , एकधेनोः, अतएव अपराधे = आगसि गवोपेक्षालक्षणे, चण्डात् = अतिक्रूरात् , अतएव कृशानुप्रतिमात् = वह्निसदृशात् , गुरोः वसिष्ठात् , बिभेषि = त्रस्यसि, चेत्, अस्य = गुरोः, मन्युः = क्रोधः, घटाः इव ऊधांसि यासां ताः, कलशापीनस्तनीः, कोटिशः = कोटिसंख्यकाः, गाः = सौरभेयीः, स्पर्शयता = ददता, भवता = दिलीपेन, विनेतुं = दूरीकर्तुं, शक्यः = क्षमः ।

समा०—एकैव धेनुः यस्य सः एकधेनुः तस्मात् एकधेनोः । अपराधे चण्डः अपराधचण्डः, तस्मात् अपराधचण्डात् । कृशानुः प्रतिमा यस्य सः कृशानुप्रतिमः, तस्मात् कृशानुप्रतिमात् । घटा इव ऊधांसि यासां ताः घटोघ्न्यः, ताः घटोघ्नीः । स्पर्शयति इति स्पर्शयन् , तेन स्पर्शयता ।

अभि०—हे राजन् , यदि त्वं नन्दिनीविनाशरूपापराधेन अतिक्रुद्धात् गुरोः बिभेषि तर्हि कोटिशः गाः दत्त्वा तस्य क्रोधशान्तिं कर्तुं समर्थोऽसि, अतः धेनुरक्षाग्रहो वृथैव ।

हिन्दी—अथवा हे राजन् , एक ही गौ होने के कारण गोरक्षा न कर सकने से अत्यन्त क्रुद्ध तथा अग्नि के तुल्य अपने गुरुजी से यदि तुम डरते हो तो घड़े के समान स्तन (थॉन) वाली करोड़ों गायें देकर गुरु के क्रोध को दूर कर सकते हो ॥ ४९ ॥

तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम् ।
महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ॥ ५० ॥

सञ्जीविनी—तत्तस्मात्कारणात्कल्याणपरम्पराणां भोक्तारम् । कर्मणि षष्ठी । ऊर्जो बलमस्यास्तीत्यूर्जस्वलम् । "ज्योत्स्नातमिस्रा" इत्यादिना वलच्प्रत्ययान्तो निपातः । आत्मदेहं रक्ष । ननु गामुपेक्ष्यात्मदेहरक्षणे स्वर्गहानिः स्यात् । नेत्याह महीतलेति । ऋद्धं समृद्धं राज्यम् । महीतलस्पर्शनमात्रेण भूतलसम्बन्धमात्रेण भिन्नमैन्द्रमिन्द्रसम्बन्धि पदं स्थानमाहुः । स्वर्गान्न भिद्यत इत्यर्थः ॥ ५० ॥

अन्वयः—तत्, कल्याणपरम्पराणां, भोक्तारम् , ऊर्जस्वलम् , आत्मदेहं, रक्ष, हि, ऋद्धं, राज्यं, महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम् ऐन्द्रं, पदम् , आहुः ।

वाच्य०—भोक्ता, ऊर्जस्वलः, आत्मदेहः त्वया रक्ष्यतां, राज्यमैन्द्रं पदमुच्यते ।

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात् कल्याणानां = मंगलानां, परम्पराः = श्रेणयस्तासां कल्याणपरम्पराणां, भोक्तारम् = अनुभवितारम् , ऊर्जो बलमस्यास्तीति ऊर्जस्वलस्तमूर्जस्वलं = बलवन्तम् , आत्मनः = स्वस्य, देहं = शरीरं, रक्ष = पालय । हि = यतः, ऋद्धं = समृद्धं, राज्यं = राजकर्म, मह्याः तलं महीतलं, महीतलस्य = पृथिवीतलस्य केवलं स्पर्शनं, तेन भिन्नं = पृथक् कृतम् , तयोक्तं इन्द्रस्येदमैन्द्रम् इन्द्रसम्बन्धि, पदं = स्थानम् , आहुः = कथयन्ति ।

समा०—कल्याणानां परम्पराः कल्याणपरम्पराः, तासां कल्याणपरम्पराणाम् । ऊर्जः अस्यास्तीति ऊर्जस्वलः, तम् ऊर्जस्वलम् । आत्मनः देहः आत्मदेहः, तम् आत्मदेहम् । मह्याः तलं महीतलम्, महीतलस्य स्पर्शनं महीतलस्पर्शनं, केवलं महीतलस्पर्शनं महीतलस्पर्शनमात्रम्, महीतलस्पर्शनमात्रेण भिन्नं महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम्, तत् महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम् । राज्ञः कर्म भावो वा राज्यम्, तत् राज्यम् । इन्द्रस्य इदम् ऐन्द्रम्, तत् ऐन्द्रम् ।

अभि०—हे राजन् त्वमुत्तरोत्तरं शुभानां सुखानां भोक्तारं स्वदेहं पालय, यतः पृथिवीतलस्पर्शमात्रेण स्वर्गात् पृथग्भूतं समृद्धं राज्यमेव इन्द्रराज्यं कथयन्ति विद्वांसः ॥ ५० ॥

हिन्दी—हे राजन्, इसलिये तुम उत्तरोत्तर परम सुखों का भोग करने वाले अपने शरीर की रक्षा करो, क्योंकि विद्वान् लोग समृद्धिशाली (तुम्हारे जैसे) राज्य को ही इन्द्र का पद (स्वर्ग) कहते हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि इन्द्रपद में भूतल का स्पर्श नहीं होता ॥ ५० ॥

एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन ।
शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव ॥ ५१ ॥

सञ्जीविनी—मृगेन्द्रे एतावदुक्त्वा विरते सति गुहागतेनास्य सिंहस्य प्रतिस्वनेन शिलोच्चयः शैलोऽपि प्रीत्या तमेवार्थं क्षितिपालमुच्चैरभाषतेव । इत्युत्प्रेक्षा । भाषिरयं ब्रुविसमानार्थत्वाद् द्विकर्मकः ब्रुविस्तु द्विकर्मकेषु पठितः । तदुक्तम्—"दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिञामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ । ब्रुविशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्तितमाचरितं कविना ॥" इति ॥ ५१ ॥

अन्वयः—मृगेन्द्रे एतावत्, उक्त्वा, विरते, "सति" गुहागतेन, अस्य, प्रतिस्वनेन शिलोच्चयः अपि, प्रीत्या, तम्, एव, अर्थं, क्षितिपालम्, उच्चैः, अभाषत इव ।

वाच्य०—शिलोच्चयेनापि प्रीत्या स एवार्थः क्षितिपालमुच्चैरभाष्यत, इव ।

व्याख्या—मृगेन्द्रे = सिंहे, एतत्परिमाणमस्येति, एतावत् = इत्येतत्, उक्त्वा = कथयित्वा, विरते = तूष्णींभूते, "सति" गुहां = गह्वरं, गतः = प्राप्तस्तेन, गुहागतेन, अस्य = सिंहस्य, प्रतिस्वनेन = प्रतिशब्देन, शिलोच्चयः = हिमालयः, अपि प्रीत्या = हर्षेण, प्रेम्णा, तं = सिंहोक्तम्, एव, अर्थम् = अभिधेयम्, यस्मिन् सः क्षितिं पालयतीति क्षितिपालस्तं क्षितिपालं = भूपालम्, उच्चैः = तारस्वरेण, अभाषत = अकथयत्, इवेत्युत्प्रेक्षा ।

समा०—एतत् परिमाणमस्येति एतावत्, तत् एतावत् । मृगाणाम् इन्द्रः मृगेन्द्रः, तस्मिन् मृगेन्द्रे । गुहायां आगतः, गुहागतः, तेन गुहागतेन । शिलानाम् उच्चयः शिलोच्चयः । क्षितिं पालयतीति क्षितिपालः, तं क्षितिपालम् । अर्यते (ज्ञायते) इत्यर्थः, तम् अर्थम् ।

अभि०—सिंहे एतावदुक्त्वा तूष्णीम्भूते सति, स्वगुहागतप्रतिशब्देन हिमाचलोऽपि सहवासकृतप्रेम्णा तमेवार्थं राजानमुच्चैरभाषतेव ।

हिन्दी—इतना कहकर सिंह के मौन होने पर, गुहा में गये हुए इसके प्रतिशब्द के द्वारा हिमाचल भी प्रेम से मानो उसी बात को राजा से जोर से कहने लगा अर्थात् गुफा में गूंजे हुए शब्दों की प्रतिध्वनि से मालूम होता था पर्वत भी सिंह की बात का समर्थन कर रहा है ॥ ५१ ॥

निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच ।
धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः ॥ ५२ ॥

सञ्जीविनी—देवानुचरस्येश्वरकिंकरस्य सिंहस्य वाचं निशम्य मनुष्यदेवो राजा पुनरप्युवाच । किंभूतः सन् । तेन सिंहेन यदध्यासितं ध्याक्रमणम् । "नपुंसके भावे क्तः" तेन कातरे अक्षिणी यस्यास्तया । "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्" इति षच् । "षिद्गौरादिभ्यश्च" इति ङीप् । किं वा वक्ष्यतीति भीरयैवं स्थितयेत्यर्थः । धेन्वा निरीक्ष्यमाणः । अत एव सुतरां दयालुः सन् । सुतरामित्यत्र "द्विवचनविभज्य" इत्यादिना सुशब्दात्तरप् । "किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे" इत्यनेनाम्प्रत्ययः । "तद्धितश्चासर्वविभक्तिः" इत्यव्ययसंज्ञा ॥ ५२ ॥

अन्वयः—देवानुचरस्य, वाचं, निशम्य तदध्यासितकातराक्ष्या, धेन्वा, निरीक्ष्यमाणः, सुतरां दयालुः मनुष्यदेवः, पुनः, अपि, उवाच ।

वाच्य०—धेन्वा निरीक्ष्यमाणेन दयालुना मनुष्यदेवेन पुनरप्यूचे ।

व्याख्या—देवस्य = महादेवस्य, अनुचरः = किंकरस्तस्य देवानुचरस्य = सिंहस्य, वाचं = वाणीं, निशम्य = श्रुत्वा, मनुष्यदेवः = राजा दिलीपः, पुनः = भूयः, अपि उवाच = कथयामास; "किम्भूतः सन्" तेन = सिंहेन, यदध्यासितम् = आक्रमणं तेन, सिंहाक्रमणेनेत्यर्थः, कातरे = भीते, अक्षिणी = नेत्रे यस्याः सा तया तथोक्तया, धेन्वा = नन्दिन्या, निरीक्ष्यमाणः = अवलोक्यमानः, अत एवेति शेषः, सुतराम् = अत्यन्तं, दयालुः = कारुणिकः, सन् ।

समा०—देवानाम् अनुचरः, देवानुचरः, तस्य देवानुचरस्य । मनुष्याणां देवः मनुष्यदेवः । तेन अध्यासित तदध्यासितम् तदध्यासितेन कातरे अक्षिणी यस्याः सा तदध्यासितकातराक्षी, तया तदध्यासितकातराक्ष्या । निरीक्ष्यते इति निरीक्ष्यमाणः ।

अभि०—सिंहाक्रमणेन, अधीरलोचनया नन्दिन्या दृश्यमानो राजा दिलीपः पुनरपि सिंहम्प्रत्यवोचत् ।

हिन्दी—भगवान् महादेव के अनुचर सिंह की वाणी को सुनकर, मनुष्यों के राजा दिलीप सिंहाक्रान्त होने से व्याकुल नेत्र वाली नन्दिनी से देखे जाते हुए इसी से और भी दयापूर्ण होकर पुनः सिंह से बोले ॥ ५२ ॥

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा ॥ ५३ ॥

सञ्जीविनी—'क्षणु हिंसायाम्' इति धातोः संपदादित्वात्क्विप् । (गमादीनाम्) इति वक्तव्यादनुनासिकलोपे तुगागमे च क्षदिति रूपं सिद्धम् । क्षतो नाशात् त्रायत इति क्षत्रः । सुपीति योगविभागात्कः, तथोक्तां व्युत्पत्तिं कविरर्थतोऽनुक्रामति क्षतादित्यादिना । उदग्र उन्नतः क्षत्रस्य क्षत्रवर्णस्य शब्दो वाचकः । क्षत्रशब्द इत्यर्थः । क्षताद् त्रायत इति व्युत्पत्त्या भुवनेषु रूढः किल प्रसिद्धः खलु । नाश्वकर्णादिवत्केवलरूढः । किन्तु पङ्कजादिवद्योगरूढ इत्यर्थः । ततः किमित्यत आह—तस्य क्षत्रशब्दस्य विपरीतवृत्तेर्विरुद्धव्यापारस्य क्षताद् त्राणमकुर्वतः पुंसो राज्येन किम् । उपक्रोशमलीमसैर्निन्दामलिनैः ।

"'उपक्रोशो जुगुप्सा च कुत्सा निन्दा च गर्हणे' इत्यमरः। 'ज्योत्स्नातमिस्रा" इत्यादिना मलीमसशब्दो निपातितः। 'मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम्' इत्यमरः। तैः प्राणैर्वा किम्। निन्दितस्य सर्वं व्यर्थमित्यर्थः। एतेन 'एकातपत्रम्' इत्यादिनोक्तेन श्लोकद्वयेनोक्तं प्रत्युक्तमिति वेदितव्यम्॥ ५३॥

अन्वयः—उदग्रः, क्षत्रस्य, शब्दः, क्षतात्, त्रायते, इति, "व्युत्पत्त्या" भुवनेषु, रूढः, किल तद्विपरीतवृत्तः, राज्येन किम्, उपक्रोशमलीमसैः, प्राणैः, वा, किम्।

वाच्य०—उदग्रेण क्षत्रस्य शब्देन "भूयते"।

व्याख्या—उदग्रः = उन्नतः, क्षत्रस्य = क्षत्त्रवर्णस्य, शब्दः = वाचकः, क्षतात् = नाशात्, त्रायते = रक्षति, इति व्युत्पत्त्या, भुवनेषु = लोकेषु, रूढः = प्रसिद्धः, किलेति निश्चये। तस्य = क्षत्त्रशब्दस्य, विपरीता = विरुद्धा, वृत्तिः = व्यापारो यस्य तस्य तद्विपरीतवृत्तेः, राज्येन = राजभावेन, किम् = किम्प्रयोजनम्, न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः, उपक्रोशेन = निन्दया, मलीमसा = मलिनास्तैः, उपक्रोशमलीमसैः प्राणैः = असुभिः, वा = अथवा, किम्प्रयोजनम्, न किमपीति भावः। निन्दितस्य सर्वं व्यर्थमेवेति भावः।

समा०—क्षतात् त्रायते इति क्षत्त्रः तस्य क्षत्त्रस्य। राज्ञः भावः कर्म वा राज्यम्, तेन राज्येन। तस्य विपरीता वृत्तिः यस्य सः तद्विपरीतवृत्तिः, तस्य तद्विपरीतवृत्तेः। उपक्रोशेन मलीमसाः उपक्रोशमलीमसाः, तैः उपक्रोशमलीमसैः।

अभि०—संसारे विपद्ग्रस्तस्य रक्षक एव वस्तुतः क्षत्रियः, अतः स्वधर्माचरणरहितस्य क्षत्रियस्य राज्यं जीवनञ्च निन्दिततया व्यर्थमेव।

हिन्दी—उन्नत क्षत्रियजाति वाचक क्षत्त्र शब्द, 'विपत्ति से रक्षा करनेवाला' इस व्युत्पत्ति से संसार में प्रसिद्ध है, अतः इस शब्दार्थ के अनुसार आचरण न करनेवाले पुरुष के राज्य से या दुष्कीर्ति से मलिन हुये उसके प्राणों से क्या लाभ, अर्थात् वे दोनों ही व्यर्थ हैं॥ ५३॥

'अथैकधेनोः' इत्यत्रोत्तरमाह—

कथं नु शक्योऽनुनयो महर्षेर्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम्।
इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयाऽस्याम्॥ ५४॥

सञ्जीविनी—अनुनयः क्रोधापनयः, चकारो वाकारार्थः, महर्षेरनुनयो वान्यासां पयस्विनीनां दोग्ध्रीणां गवां विश्राणनाद्दानात्। 'त्यागो विहापितं दानमुत्सर्जनविसर्जने। विश्राणनं वितरणम्' इत्यमरः। कथं नु शक्यः? न शक्य इत्यर्थः। अत्र हेतुमाह—इमां गां सुरभेः कामधेनोः 'पञ्चमी विभक्ते:" इति पञ्चमी। अनूनामन्यूनामवेहि जानीहि। तर्हि कथमस्याः परिभवोऽभूदित्याह। रुद्रौजसेति। अस्यां गवि त्वया कर्त्रा प्रहृतं तु प्रहारस्तु। नपुंसके भावे क्तः। रुद्रौजसेश्वरसामर्थ्येन। न तु स्वयमित्यर्थः। "सप्तम्यधिकरणे च" इति सप्तमी॥ ५४॥

अन्वयः—महर्षेः, अनुनयः, च, अन्यपयस्विनीनां, विश्राणनात्, कथं, नु, शक्यः, इमां, सुरभेः, अनूनाम्, अवेहि, अस्यां, त्वया, प्रहृतं, तु, रुद्रौजसा।

वाच्य०—अनुनयेन, शक्येन "भूयते", इयम्, अनूना, "त्वया" अवेयतां त्वं रुद्रौजसा प्रहृतवान्।

व्याख्या—महर्षेः = वशिष्ठस्य, अनुनयः = सान्त्वनं, च = वा, अन्यपयस्विनीनां = प्रशस्तक्षीरवतीनाम् इतरधेनूनाम् । विश्राणनात् = दानात् , कथं नु = केन प्रकारेण, शक्यः = योग्यः, न शक्य इत्यर्थः इमां = धेनुं, सुरभेः = कामधेनोः, अनूनाम् = अन्यूनाम् , तत्तुल्यामित्यर्थः अवेहि = जानीहि त्वमिति शेषः, अस्याम् = एतस्यां गवि, त्वया = सिंहेन, प्रहृतं = आक्रमणं तु प्रहारस्त्वित्यर्थः, रुद्रस्य = महादेवस्य, ओजः = बलम् , तेन रुद्रौजसा = ईश्वरसामर्थ्येन कृतम् , नतु स्वसामर्थ्येन ।

समा०—पयः आसामस्तीति पयस्विन्यः, अन्याश्च ताः पयस्विन्यश्च अन्यपयस्विन्यः, तासाम् अन्यपयस्विनीनाम् । महान् चासौ ऋषिश्च महर्षिः, तस्य महर्षेः । न ऊना अनूना, ताम् अनूनाम् । रुद्रस्य ओजः रुद्रौजः, तेन रुद्रौजसा ।

अभि०—अन्यप्रशस्तगोप्रदानेन वशिष्ठस्य क्रोधशान्तिर्न भवितुमर्हति, यतो हि इयं नन्दिनी कामधेनुतुल्या वर्तते, अस्यां यदाक्रमणं त्वया कृतं तत्तु शिवप्रभावेण नतु स्वप्रभावेण ।

हिन्दी—महर्षि वशिष्ठ के कोप की शान्ति दूसरी दूध देने वाली गौओं के देने से नहीं की जा सकती, क्योंकि यह गौ साधारण नहीं, इसे कामधेनु के बराबर ही समझो, इसके ऊपर जो तुमने आक्रमण किया है वह तो भगवान् शिव के प्रभाव से किया, न कि स्वसामर्थ्य से ॥ ५४ ॥

तर्हि किं चिकीर्षितमित्यत्राह—

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः ।
न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः ॥ ५५ ॥

सञ्जीविनी—सेयं गौर्मया । निष्क्रीयते प्रत्याह्रियतेऽनेन परगृहीतमिति निष्क्रयः प्रतिशीर्षकम् । "एरच्" इत्यच्प्रत्ययः । स्वदेहार्पणमेव निष्क्रयस्तेन भवत्तस्त्वत्तः । पञ्चम्यास्तसिल् । मोचयितुं न्याय्या न्यायादनपेता । युक्तेत्यर्थः । 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत्प्रत्ययः । एवं सति तव पारणा भोजनं विहता न स्यात् । मुनेः क्रिया होमादिः स एवार्थः प्रयोजनम् । स चालुप्तो भवेत् । स्वप्राणव्ययेनापि स्वामिगुरुधनं संरक्ष्यमिति भावः ॥ ५५ ॥

अन्वयः—सा, इयं, मया, स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण, भवत्तः, मोचयितुं, न्याय्या, "एवं सति" तव, पारणा, विहता, न, स्यात् मुनेः, क्रियार्थः च अलुप्तः, भवेत् ।

वाच्य०—तयाऽनया न्याय्यया "भूयते", पारणया विहतया न "भूयेत" क्रियार्थेनालुप्तेन भूयेत ।

व्याख्या—सा = पूर्वोक्ता, इयम् = एषा गौः, मया = दिलीपेन, स्वस्य देहः स्वदेहस्तस्य स्वदेहस्य = निजशरीरस्य अर्पणं = दानं, तदेव निष्क्रयः, मूल्यं तेन तदर्पणेन, भवतः = त्वत्तः = सिंहात् , मोचयितुं = त्याजयितुं, न्याय्या = युक्ता, "एवं सति" तव = भवतः = सिंहस्य, पारणा = व्रतान्तभोजनं विहता = नष्टा, न = नहि, स्यात् = भवेत् , मुनेः = महर्षेः वशिष्ठस्य, क्रिया = होमादिः एव अर्थः = प्रयोजनमिति क्रियार्थः, अलुप्तः = अनष्टः, भवेत् = स्यात् ।

समा०—स्वस्य देह स्वदेहः, स्वदेहस्य अर्पणं स्वदेहार्पणम् , स्वदेहार्पणमेव निष्क्रयः स्वदेहार्पणनिष्क्रयः, तेन स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण । न्यायाद् अनपेता न्याय्या । न लुप्तः अलुप्तः । क्रियैव अर्थः क्रियार्थः ।

अभि०—सेयं नन्दिनी मया स्वशरीरप्रदानविनिमयेन, त्वत्तः मोचयितुं युक्ता, एवं सति बुभुक्षितस्य तव पारणा नष्टा न भवेत् , मम गुरोः वशिष्ठस्य होमादेरपि विधी रक्षितो भवेत् ।

हिन्दी—कामधेनु के तुल्य इस नन्दिनी को, मैं अपना शरीर तुम्हें देकर छुड़ाना न्यायसंगत समझता हूँ। इस प्रकार तुम्हारा भोजन भी हो जायगा और महाराज वशिष्ठजी की होमादि क्रिया भी नष्ट न होगी, जो कि इस नन्दिनी के न रहने पर बन्द हो जायगी ॥ ५५ ॥

अत्र भवानेव प्रमाणमित्याह—

भवानपीदं परवानवैति महान् हि यत्नस्तव देवदारौ।
स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन ॥ ५६ ॥

सञ्जीविनी—परवान्स्वामिपरतन्त्रो भवानपि। 'परतन्त्रः पराधीनः परवान्नाथवानपि' इत्यमरः। इदं वक्ष्यमाणमवैति। भवतानुभूयत एवेत्यर्थः। "शेषे प्रथमः" इति प्रथमपुरुषः। किमित्यत आह—हि यस्माद्धेतोः। 'हि हेताववधारणे' इत्यमरः। तव देवदारौ विषये महान्यत्नः। महता यत्नेन रक्ष्यत इत्यर्थः। इदंशब्दोक्तमर्थं दर्शयति। स्थातुमिति। रक्ष्यं वस्तु विनाश्य विनाशं गमयित्वा स्वयमक्षतेनाव्रणेन। नियुक्तेनेति शेषः। नियोक्तुः स्वामिनोऽग्रे स्थातुं शक्यं नहि ॥ ५६ ॥

अन्वयः—परवान्, भवान्, अपि, इदम्, अवैति, हि, तव, देवदारौ, महान्, यत्नः, रक्ष्यं, विनाश्य, स्वयम्, अक्षतेन, नियोक्तुः, अग्रे, स्थातुं शक्यं, नहि।

वाच्य०—परवता भवता अवेयते, महता यत्नेन "भूयते" नहि स्वयमक्षतः शक्नुयात्।

व्याख्या—परः=स्वाम्यादिः, अस्यास्तीति परवान्=पराधीनः, भवान्=सिंहोऽपि, इदं=वक्ष्यमाणम्, अवैति=जानाति, हि=यतः, तव=भवतः, देवदारौ=देवदारुवृक्षविषये, महान्=अतिशयितः, यत्नः=प्रयासः, 'अस्तीति' शेषः, महता प्रयत्नेन रक्ष्यत इत्यर्थः, रक्ष्यं=पालनीयं, वस्तु विनाश्य=विनाशं गमयित्वा, स्वयम्=आत्मना, अक्षतेन=व्रणरहितेन, नियोक्तुः=स्वामिनः, अग्रे=पुरतः, स्थातुं=स्थितिं कर्तुं, शक्यं नहि।

समा०—परः अस्यास्तीति परवान्। रक्षितुं योग्यं रक्ष्यम्, तत् रक्ष्यम्। न क्षतः अक्षतः, तेन अक्षतेन।

अभि०—किञ्च, स्वाम्यधीनो भवानपि इदं जानाति, यत् तवापि, अस्य देवदारुवृक्षस्य रक्षणे कियान् प्रयासो विद्यते, यतः रक्षणयोग्यं वस्तु विनाश्य स्वयमक्षतेन सता स्वमिनोऽग्रे कथं स्थातुं शक्यम्।

हिन्दी—अपने स्वामी के अधीन आप भी इस बात को जानते हैं, क्योंकि आपका इस देवदारु वृक्ष की रक्षा करने में कितना प्रयत्न है। इसलिये रक्षणीय वस्तु का नाश करके स्वयं बिना नष्ट हुए अर्थात् हृष्ट पुष्ट सेवक अपने स्वामी के आगे किसी प्रकार उपस्थित नहीं हो सकता है ॥ ५६ ॥

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु ॥ ५७ ॥

सञ्जीविनी—किमपि किं वाऽहं तवाहिंस्योऽवध्यो मतश्चेत्तर्हि मे यश एव शरीरं तस्मिन्दयालुः कारुणिको भव। 'स्याद्दयालुः कारुणिकः' इत्यमरः। ननु मुख्यमुपेक्ष्यामुख्यशरीरे कोऽभिनिवेशः अत आह—एकान्तेति। मद्विधानां मादृशानां विवेकिनामेकान्तविध्वंसिष्ववश्यविनाशिषु भौतिकेषु पृथिव्या-

दिभूतविकारेषु पिण्डेषु शरीरेष्वनास्था खल्वनपेक्षैव । 'आस्था त्वालम्बनास्थानयत्नापेक्षासु कथ्यते' इति विश्वः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—किमपि, अहं तव, अहिंस्यः, मतः, चेत्, "तर्हि" मे, यशःशरीरे, दयालुः, भव, मद्विधानाम्, एकान्तविध्वंसिषु भौतिकेषु पिण्डेषु, अनास्था, खलु ।

वाच्य०—मया तवाहिंस्येन मतेन "भूयते", अनास्थया "भूयते" "त्वया" दयालुना भूयताम् ।

व्याख्या—किमपि = किंवा, अहं = दिलीपः, तव = भवतः सिंहस्य, अहिंस्यः = अवध्यः, मतः = अभीष्टः, चेद् = यदि, "तर्हि", मे = मम दिलीपस्य, यशः = कीर्तिरेव, शरीरं तस्मिन् यशःशरीरे, दयालुः = कारुणिकः, भव त्वमिति शेषः, मम विधा इव विधा येषान्ते, तेषां मद्विधानाम् = मादृशानां = राज्ञां विवेकिनामित्यर्थः, एकान्तं = नियमेनावश्यं, विध्वंसिनः = नाशशीलाः, तेषु तथोक्तेषु भूतानां = पृथिव्यादीनां, विकाराः = परिणामास्तेषु भौतिकेषु पिण्डेषु = शरीरेषु, अनास्था = अनपेक्षा, खलु = निश्चयेनेत्यर्थः ।

समा०—हिंसितुं योग्यः हिंस्यः, न हिंस्यः अहिंस्यः यश एव शरीरं यशःशरीरम्, तस्मिन् यशःशरीरे । एकान्तं विध्वंसिनः एकान्तविध्वंसिनः, तेषु एकान्तविध्वंसिषु । मम विधा इव विधा येषां ते मद्विधाः, तेषां मद्विधानाम् । भूतानां विकाराः भौतिकाः, तेषु भौतिकेषु । न आस्था अनास्था ।

अभि०—किम्वा यदि केनापि कारणेन, अहं तवावध्यः, स्यां, तर्हि भवान् मे यशोरूपशरीरेऽनुग्रहं विधाय, नश्वरशरीरभक्षणेन मम विशुद्धां कीर्तिं रक्षतु ।

हिन्दी—और यदि तुम मुझे अवध्य समझते हो तो मेरे यशरूप शरीर पर दया करो, क्योंकि मेरे जैसे विवेकशील पुरुष अवश्य नष्ट होने वाले इस भौतिक शरीर पर किञ्चित् भी मोह नहीं रखते ॥ ५७ ॥

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते ।
तद् भूतनाथानुग ! नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम् ॥ ५८ ॥

सञ्जीविनी—सम्बन्धं सख्यम् । आभाषणमालापः पूर्वं कारणं यस्य तमाहुः । 'स्यादाभाषणमालापः' इत्यमरः । स तादृक्संबन्धो वनान्ते संगतयोर्नावावयोर्वृत्तो जातः । तत्तस्माद्धेतोर्हे भूतनाथानुग शिवानुचर ! एतेन तस्य महत्त्वं सूचयति । अत एव संबन्धिनो मित्रस्य मे प्रणयं याच्ञाम् 'प्रणयास्त्वमी । विश्रम्भयाच्ञाप्रेमाणः' इत्यमरः । विहन्तुं नार्हसि ॥ ५८ ॥

अन्वयः—सम्बन्धम्, आभाषणपूर्वम्, आहुः, सः, वनान्ते, संगतयोः नौ, वृत्तं, तद्, भूतनाथानुग ! त्वं सम्बन्धिनः, मे प्रणयं, विहन्तुं न, अर्हसि ।

वाच्य०—सम्बन्धः, आभाषणपूर्वः, उच्यते, तेन वृत्तेन "अभूयत" त्वया प्रणयो नार्हयते ।

व्याख्या—सम्बन्धं = सख्यं = मित्रता, आभाषणम् = आलापः, पूर्वं = कारणं यस्य स तम् आभाषणपूर्वम्, आहुः = कथयन्ति, विद्वांसः, सः = सम्बन्धः, वनस्य = काननस्य अन्तः = प्रान्तः, प्रदेशस्तस्मिन् वनान्ते, संगतयोः = मिलितयोः, नौ = आवयोः, वृत्तः = जातः, तद् = तस्मात् कारणात्, हे भूतनाथानुग ! = शिवानुचर ! "अतएव" सम्बन्धिनः = मित्रस्य, मे = दिलीपस्य, प्रणयं = याच्ञां, विहन्तुं = नाशयितुं न = नहि, अर्हसि = योग्योऽसि ।

समा०—आभाषणं पूर्वं यस्य सः आभाषणपूर्वः, तम् आभाषणपूर्वम्। वनस्य अन्तः वनान्तः, तस्मिन् वनान्ते। भूतानां नाथः भूतनाथः, अनुगच्छतीति अनुगः, भूतनाथस्य अनुगः भूतनाथानुगः, तत्संबुद्धौ भूतनाथानुग! सम्बन्धः अस्यास्तीति सम्बन्धी, तस्य सम्बन्धिनः।

अभि०—परस्परालापजनितं हि सख्यं भवति। तत्सख्यं वनमध्ये मिलितयोः आवयोर्जातम्, अतएव हे शिवानुचर! मित्रस्य मे प्रार्थनां विफलीकर्तुं भवान् न योग्योऽस्तीति।

हिन्दी—आपस में वार्तालाप से मित्रता होती है ऐसा कहते हैं। वह मैत्री वन में बातचीत से हम दोनों की हो गई, इसलिये, शिवानुचर! मित्र होकर मेरी प्रार्थना को ठुकराना तुम्हें उचित नहीं।॥५८॥

तथेति गामुक्तवते दिलीपः सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः।
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य ॥ ५९ ॥

सञ्जीविनी—तथेति एवमस्त्विति गां वाचमुक्तवते हरये सिंहाय। 'कपौ सिंहे सुवर्णे च वर्णे विष्णौ हरिं विदुः' इति शाश्वतः। सद्यस्तत्क्षणे प्रतिष्टम्भात्प्रतिबन्धाद्विमुक्तौ बाहुर्यस्य स दिलीपः। न्यस्तशस्त्रस्त्यक्तायुधः सन्। स्वदेहम्। आमिषस्य मांसस्य। 'पललं क्रव्यमामिषम्' इत्यमरः। पिण्डं कवलमिव। उपानयत्समर्पितवान्। एतेन निर्ममत्वमुक्तम्॥ ५९॥

अन्वयः—तथा, इति, गाम्, उक्तवते, हरये, सद्यः, प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुः, सः, न्यस्तशस्त्रः, "सन्" स्वदेहम्, आमिषस्य, पिण्डम्, इव, उपानयत्।

वाच्य०—प्रतिष्टम्भविमुक्तबाहुना तेन न्यस्तशस्त्रेण स्वदेहः पिण्ड इव, उपानीयत।

व्याख्या—तथा = तेन प्रकारेण, यथा भवान् कथयति तथैव करिष्यामीति भावः। इति = एवंरूपां, गां = गिरम्, उक्तवते = कथितवते, हरये = सिंहाय, सद्यः = तत्क्षण, प्रतिष्टम्भात् = प्रतिबन्धात् विमुक्तः = त्यक्तः, बाहुः = भुजो यस्य स तथोक्तः, सः = राजा दिलीपः, न्यस्तं = त्यक्तं, शस्त्रम् = आयुधं येन, स न्यस्तशस्त्रः, "सन्" स्वदेहं = स्वशरीरम्, आमिषस्य = मांसस्य, पिण्डं = ग्रासम्, इव = यथा, उपानयत = उपाहरत् समर्पितवान्।

अभि०—यथा भवान् कथयति तथैव भवतु, इति कथयित्वा दिलीपस्य प्रार्थनां स्वीकुर्वते सिंहाय, प्रतिबन्धात् मुक्तबाहुः त्यक्तायुधो दिलीपः स्वशरीरं मांसपिण्डमिव समर्पितवान्।

हिन्दी—'तथास्तु' ऐसा कहनेवाले सिंह के लिये, तुरन्त बन्धन से मुक्त हो गई है बाहु जिसकी और गिरा दिया है अस्त्र जिसने, ऐसे राजा दिलीप ने अपना शरीर, मांस के टुकड़े के समान समर्पण कर दिया॥ ५९॥

तस्मिन्क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम्।
अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता॥ ६०॥

सञ्जीविनी—तस्मिन् क्षण उग्रं सिंहनिपातमुत्पश्यत उत्प्रेक्षमाणस्य तर्कयतोऽवाङ्मुखस्याधोमुखस्य। 'स्यादवाङप्यधोमुखः' इत्यमरः। प्रजानां पालयितू राज्ञ उपर्युपरिष्टात्। "उपर्युपरिष्टात्" इति निपातः। विद्याधराणां देवयोनिविशेषाणां हस्तैर्मुक्ता पुष्पवृष्टिः पपात॥ ६०॥

अन्वयः—तस्मिन्, क्षणे, उग्रं, सिंहनिपातम्, उत्पश्यतः, अवाङ्मुखस्य, प्रजानां, पालयितुः, उपरि, विद्याधरहस्तमुक्ता, पुष्पवृष्टिः, पपात।

वाच्य०—विद्याधरहस्तमुक्तया पुष्पवृष्ट्या पेते।

व्याख्या—तस्मिन् = पूर्वोक्ते, क्षणे = मुहूर्ते, हरये स्वदेहार्पणकाले इत्यर्थः, उग्रं = उत्कटं, भयंकरं, सिंहस्य = केसरिणः, निपातः = निपतनम् तं सिंहनिपातम्, उत्पश्यतः = उत्प्रेक्षमाणस्य, तर्कयतः, अवाक् = अधः, मुखम् = आननं यस्य स तस्यावाङ्मुखस्य, प्रजानां = जनानां, पालयितुः = रक्षितुर्दिलीपस्य, उपरि = उपरिष्टात्, विद्याधराणां = देवयोनिविशेषाणां, हस्ताः = कराः, तैर्मुक्ता = पतिता, पुष्पाणां = कुसुमानां, वृष्टिः = वर्षणं, पपात = अपतत्।

समा०—सिंहस्य निपातः सिंहनिपातः, तं सिंहनिपातम्। अवाक् मुखं यस्य सः अवाङ्मुखः, तस्य अवाङ्मुखस्य। पुष्पाणां वृष्टिः पुष्पवृष्टिः। विद्याधराणां हस्ताः विद्याधरहस्ताः, विद्याधरहस्तैः मुक्ता विद्याधरहस्तमुक्ता।

अभि०—तस्मिन् क्षणे भयंकरं सिंहपतनं तर्कयतोऽधोमुखस्य राज्ञ उपरि विद्याधराणां हस्तैः मुक्ता पुष्पवृष्टिः पतिता।

हिन्दी—उस समय नीचा मुख करके राजा दिलीप यह सोच ही रहे थे कि सिंह मेरे ऊपर झपटने ही वाला है इतने में ही उनपर आकाश से विद्याधरों ने पुष्पवृष्टि की झड़ी लगा दी॥ ६०॥

उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन्।
ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रस्रविणीं न सिंहम्॥ ६१॥

सञ्जीविनी—राजा अमृतमिवाचरतीत्यमृतायमानं तत्। "उपमानादाचारे" इति क्यच्। ततः शानच्। उत्थितमुत्पन्नम्। हे वत्स! उत्तिष्ठ इति वचो निशम्य श्रुत्वा। उत्थितः सन्। अस्तेः शतृप्रत्ययः। अग्रतोऽग्रे प्रस्रवः क्षीरस्रावोऽस्ति यस्याः सा प्रस्रविणी तां प्रस्रविणीं गां स्वां जननीमिव ददर्श। सिंहं न ददर्श॥ ६१॥

अन्वयः—राजा, अमृतायमानम्, उत्थितं, हे वत्स! उत्तिष्ठ, इति वचः, निशम्य उत्थितः, सन्, अग्रतः प्रस्रविणीं, गां, स्वां, जननीम्, इव, ददर्श, सिंहं, न, ददर्श।

वाच्य०—राज्ञा, उत्थितेन सता प्रस्रविणी गौः स्वा जननी इव ददृशे, सिंहो न ददृशे।

व्याख्या—राजा = दिलीपः, अमृतमिवाचरतीत्यमृतायमानं तत्, अमृतायमानम् = पीयूषायमाणम्, 'पीयूषममृतं सुधा' इत्यमरः। उत्थितम् = उत्पन्नम्, हे वत्स = हे पुत्र!, उत्तिष्ठ = उत्थितो भव, इति = इत्येवं, वचः = वचनं, निशम्य = श्रुत्वा, उत्थितः = ऊर्ध्वमवस्थानं कृतवान् सन्, अग्रतः = अग्रे, प्रस्रवः = क्षीरस्रावः, अस्ति, अस्याः सा तां प्रस्रविणीं, गां = नन्दिनीं, स्वाम् = आत्मीयां, जननीं = मातरम्, इव = यथा, ददर्श = अपश्यत्, सिंहं = केसरिणं, न = नहि "ददर्श"।

समा०—अमृतमिव आचरतीत्यमृतायमानं, तत् अमृतायमानम्। प्रस्रवः अस्या अस्तीति प्रस्रविणी तां प्रस्रविणीम्। जनयतीति जननी, तां जननीम्।

अभि०—हे पुत्र! उत्तिष्ठ इत्यमृतसमानं धेनुवाक्यं श्रुत्वा, यावद्दिलीप उत्थितः सन् पश्यति, तावदग्रे वर्तमानां क्षीरस्राववतीं स्वकीयां मातरमिव नन्दिनीमेवावलोकितवान् न तु केसरिणमिति।

हिन्दी—राजा दिलीप अमृत के तुल्य, नन्दिनी के मुख से निकले 'हे पुत्र उठो' यह सुनकर ज्यों ही उठा तो सामने स्तनों से दूध बहाती हुई माता के समान नन्दिनी ही दिखाई दी, सिंह नहीं॥ ६१॥

तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो मायां मयोद्भाव्य परीक्षितोऽसि ।
ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः ॥ ६२ ॥

सञ्जीविनी—विस्मितमाश्चर्यं गतम्। कर्तरि क्तः। तं दिलीपं धेनुरुवाच। किमित्यत्राह। हे साधो ! मया मायामुद्भाव्य कल्पयित्वा परीक्षितोऽसि । ऋषिप्रभावान्मय्यन्तको यमोऽपि प्रहर्तुं न प्रभुर्न समर्थः। अन्ये हिंस्रा घातुकाः। 'शरारुर्घातुको हिंस्रः' इत्यमरः। "नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपोरः" इत्यादिना रप्रत्ययः। किमुत सुष्ठु न प्रभव इति योज्यम्। 'बलवत्सुष्ठु किमुत स्वत्यतीव च निर्भरे' इत्यमरः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—विस्मितं, तं, धेनुः, उवाच, साधो, मया, मायाम्, उद्भाव्य, "त्वं" परीक्षितः, असि ऋषिप्रभावात्, मयि, अन्तकः, अपि, प्रहर्तुं, न, प्रभुः, अन्यहिंस्राः, किमुत ।

वाच्य०—विस्मितः स धेन्वा ऊचे, अहं त्वां परीक्षितवती, अस्मि, अन्तकेनापि प्रभुणा न "भूयते" अन्यहिंस्रैः किमुत ।

व्याख्या—विस्मितं=साश्चर्यं, तं=दिलीपं, धेनुः=नन्दिनी, उवाच=जगाद, हे साधो ! हे सज्जन ! मया=नन्दिन्या, मायां=शाम्बरीं सिंहरूपाम्, उद्भाव्य=कल्पयित्वा, त्वमिति शेषः, परीक्षितः=कृतपरीक्षः असि=भवसि। ऋषेः=वशिष्ठस्य, प्रभावात्=प्रतापात्, मयि=धेनौ, अन्तकः=यमः, अपि, प्रहर्तुं=हन्तुं, न=नहि, प्रभुः=समर्थः, अन्ये=अपरे च ते हिंस्राः=घातुका इति अन्यहिंस्राः, किमुत न प्रभवः, न समर्था इत्यर्थः।

अभि०—हे साधो ! सिंहरूपां मायां विधाय मया तव परीक्षा कृता। मयि ऋषिप्रभावात् यमराजोऽपि आक्रमणं कर्तुं न समर्थः, सिंहादयस्तु सुतरामसमर्था वर्तन्ते इति दिलीपं धेनुः कथयामास।

हिन्दी—आश्चर्य में पड़े राजा दिलीप से मनुष्य की बोली में धेनु बोली हे साधो ! मैंने माया रचकर तुम्हारी परीक्षा की थी, वशिष्ठ ऋषि के प्रभाव से यमराज भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता, दूसरे हिंसक जन्तुओं की तो सामर्थ्य ही क्या ॥ ६२ ॥

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते पुत्र ! वरं वृणीष्व ।
न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम् ॥ ६३ ॥

सञ्जीविनी—हे पुत्र ! गुरौ भक्त्या। मय्यनुकम्पया च। ते तुभ्यं प्रीतास्मि (क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम्) इति चतुर्थी। वरं देवेभ्यो वरणीयमर्थम्। 'देवाद् वृते श्रेष्ठे वरः त्रिषु क्लीबं मनाक् प्रिये' इत्यमरः। वृणीष्व स्वीकुरु। तथाहि। मां केवलानां पयसां प्रसूतिं कारणं नावेहि न विद्धि। किन्तु प्रसन्नां मां। कामान्दोग्धीति कामदुघा तामवेहि। "दुहः कब्घश्च" इति कप्प्रत्ययः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—"हे" पुत्र, गुरौ भक्त्या, मयि, अनुकम्पया, च, ते, प्रीता, अस्मि, वरं, वृणीष्व, मां, केवलानां, पयसां, प्रसूतिं, न, अवेहि, प्रसन्नां, मां, कामदुघां, अवेहि।

वाच्य०—प्रीतया मया भूयते, त्वया वरः व्रियताम्, त्वयाहं प्रसूतिः न अवेये, प्रसन्ना अहं कामदुघा अवेये।

व्याख्या—"हे" पुत्र ! =वत्स ! गुरौ=महर्षिवशिष्ठे, भक्त्या=अनुरागेण, मयि=धेनौ, अनुकम्पया=दयया, च ते तुभ्यं प्रीता=प्रसन्ना, अस्मि=भवामि, वरं=वरणीयं, देवेभ्यो वरणीयमित्यर्थः

वृणीष्व = प्रार्थयस्व, तथाहि मां = गाम्, केवलानाम् = एकेषाम् 'एके मुख्यान्यकेवलाः' इत्यमरः, पयसां = दुग्धानां, प्रसूतिं = कारणं, न = नहि, अवेहि = विद्धि, किन्तु प्रसन्नां = प्रीतां, मामिति शेषः, कामान् = मनोरथान्, दोग्धि = पूरयतीति कामदुघा, तां कामदुघाम् अवेहि।

अभि०—हे पुत्र! अहं ते प्रसन्नास्मि, अभीष्टं वरं प्रार्थय। अहं केवलानां दुग्धानामेव दात्री न, किन्तु प्रसन्ना सती सर्वमनोरथानां पूरयित्री इति जानीहि।

हिन्दी—हे पुत्र! गुरुजी में भक्ति और मुझपर अनुकम्पा रखने से मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वर मांगो, मुझे सिर्फ दूध ही देनेवाली गौ मत समझो, किन्तु प्रसन्न होने पर मैं सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करनेवाली हूँ ॥ ६३ ॥

ततः समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।
वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणायां तनयं ययाचे ॥ ६४ ॥

सञ्जीविनी—ततो मानितार्थी। स्वहस्तार्जितो वीर इति शब्दो येन सः। एतेनास्य दातृत्वं दैन्यराहित्यं चोक्तम्। स राजा हस्तौ समानीय सन्धाय। अञ्जलिं बद्ध्वेत्यर्थः। वंशस्य कर्तारं प्रवर्तयितारम्। अत एव रघुकुलमिति प्रसिद्धिः। अनन्तकीर्तिं स्थिरयशसं तनयं पुत्रं सुदक्षिणायां ययाचे ॥६४॥

अन्वयः—ततः मानितार्थी स्वहस्तार्जितवीरशब्दः, सः, हस्तौ, समानीय, वंशस्य, कर्तारम्, अनन्तकीर्तिं, तनयं, सुदक्षिणायां, ययाचे।

वाच्य०—मानितार्थिना स्वहस्तार्जितवीरशब्देन तेन वंशस्य कर्ताऽनन्तकीर्तिः तनयो ययाचे।

व्याख्या—ततः = अनन्तरं, मानिताः = सत्कृताः, अर्थिनः = याचकाः येन सः, मानितार्थी, स्वस्य = निजस्य, हस्तौ = करौ, ताभ्याम्, अर्जितः = प्राप्तः, लब्धः, वीरः = पराक्रमी, इति शब्दः = पदवी येन सः स्वहस्तार्जितवीरशब्दः, सः = राजा, दिलीपः, हस्तौ = करौ, समानीय = सम्पुटीकृत्य = अञ्जलिं बद्ध्वेत्यर्थः, वंशस्य = कुलस्य, कर्तारं = प्रवर्तयितारं, अनन्ता = स्थिरा, कीर्तिः = यशो यस्य सः अनन्तकीर्तिः, तं तथोक्तम्, तनयं = पुत्रं, सुदक्षिणायां—स्वभार्यायां, ययाचे = याचितवान्।

समा०—अर्थन्त इत्यर्थिनः, मानिताः अर्थिनः येन सः मानितार्थी। स्वस्य हस्तः स्वहस्तः, वीर इति शब्दः वीरशब्दः, स्वहस्तेन अर्जितः वीरशब्दः येन सः स्वहस्तार्जितवीरशब्दः। न विद्यते अन्तः यस्याः सा अनन्ता, अनन्ता कीर्तिः यस्य सः अनन्तकीर्तिः, तम् अनन्तकीर्तिम्।

अभि०—ततः पराक्रमी सत्कृतार्थी दिलीपोऽञ्जलिं बद्ध्वा, कुलप्रवर्तकं यशस्विनं पुत्रं याचितवान्।

हिन्दी—इसके पश्चात् याचकवर्ग को संतुष्ट करने वाले, अपने बाहुबल से वीर उपाधि को प्राप्त करनेवाले राजा ने हाथ जोड़कर वंश चलानेवाला यशस्वी पुत्र सुदक्षिणा से होने की प्रार्थना की ॥६४॥

सन्तानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश ॥ ६५ ॥

सञ्जीविनी—सा पयस्विनी गौः। संतानं कामयत इति संतानकामः। 'कमु कान्तौ' "कर्मण्यण्" तस्मै राज्ञे तथेति तथास्त्विति। काम्यत इति कामो वरः। कामार्थे घञ्प्रत्ययः। तं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञाय। हे पुत्र! मदीयं पयः पत्रपुटे पत्रनिर्मिते पात्रे दुग्ध्वोपभुङ्क्ष्व। 'उपयुङ्क्ष्व' इति वा पाठः। 'पिब' इति तमादिदेशाज्ञापितवती ॥ ६५ ॥

अन्वयः—सा, पयस्विनी, सन्तानकामाय, राज्ञे, तथा, इति, कामं, प्रतिश्रुत्य, पुत्र ! मदीयं, पयः, पत्रपुटे, दुग्ध्वा, उपभुङ्क्ष्व, इति, तम्, आदिदेश ।

वाच्य०—तया पयस्विन्या "त्वया" पय उपभुज्यतामिति स आदिदिशे ।

व्याख्या—सा = पूर्वोक्ता, प्रशस्तं पयः = क्षीरमस्या अस्तीति पयस्विनी = प्रशस्तक्षीरवती गौः, सन्तानं कामयत इति सन्तानकामस्तस्मै सन्तानकामाय = पुत्रार्थिने, तस्मै = राज्ञे दिलीपाय, तथा = तेन प्रकारेण, यथेच्छसि तथैव भवत्विति, काम्यते, इति कामः = वरस्तं कामं, प्रतिश्रुत्य = प्रतिज्ञाय, हे पुत्र ! वत्स ! ममेदं मदीयं = मदीयस्तननिःसृतं, पयः = दुग्धं पत्राणां = पर्णानां, पुटेः = पात्रे दुग्ध्वा = दोहनं कृत्वा, उपभुङ्क्ष्व = पिब, इति तम् = दिलीपम्, आदिदेश = आदिष्टवती ।

अभि०—सा धेनुः पुत्रार्थिने दिलीपाय तथास्तु, इति वरं दत्त्वा हे पुत्र ! मदीयं दुग्धं पर्णनिर्मितपात्रे दुग्ध्वा त्वं पिबेति, आज्ञापयामास ।

हिन्दी—उस प्रशस्त दूधवाली धेनु ने पुत्रार्थी राजा दिलीप को "तुम्हें पुत्रलाभ हो।" यह वर देकर, हे पुत्र ! मेरा दूध दोने में दुहकर पी लो—ऐसी आज्ञा दी ।। ६५ ।।

वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः ।
औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः ।। ६६ ।।

सञ्जीविनी—हे मातः ! वत्सस्य वत्सपीतस्य शेषम् । वत्सपीतावशिष्टमित्यर्थः । होम एवार्थः । तस्य विधिरनुष्ठानम् । तस्य च शेषम् । होमावशिष्टमित्यर्थः । तव ऊधसि भवमौधस्यं क्षीरम् "शरीरावयवाच्च" इति यत्प्रत्ययः । रक्षिताया उर्व्याः षष्ठांशं षष्ठभागमिव । ऋषेरनुज्ञामधिगम्य उपभोक्तुं पातुमिच्छामि ।। ६६ ।।

अन्वयः—मातः ! वत्सस्य, होमार्थविधेः, च, शेषं, तव, औधस्यं, रक्षितायाः उर्व्याः, षष्ठांशम्, इव, ऋषेः, अनुज्ञाम्, अधिगम्य, उपभोक्तुम्, इच्छामि ।

वाच्य०—हे मातः ! उर्व्याः षष्ठांश इव औधस्यं भोक्तुं मयेष्यते ।

व्याख्या—हे मातः ! = जननि, वत्सस्य = शकृत्करेः, शेषं = वत्सपीतावशेषं, होमः = हवनम्, एव अर्थः = प्रयोजनं तस्य विधिः = अनुष्ठानं तस्य होमार्थविधेश्च शेषं, तव = भवत्याः, ऊधसि भवम् ऊधस्यं तदेवौधस्यं = दुग्धं, रक्षितायाः = पालितायाः, उर्व्याः = पृथिव्याः, षष्ठांशं = षष्ठभागमिव, ऋषेः = वशिष्ठस्य, अनुज्ञाम् = आज्ञाम् अधिगम्य = प्राप्य, उपभोक्तुं = पातुम् इच्छामि = अभिलषामि ।

समा०—होम एव अर्थः होमार्थः, होमार्थस्य विधिः होमार्थः विधिः, तस्य होमार्थविधेः । ऊधसि भवम् ऊधस्यम्, ऊधस्यमेव औधस्यम्, तत् औधस्यम् । षण्णां पूरणः षष्ठः, षष्ठश्चासावंशश्च षष्ठांशः, तम् ।

अभि०—हे मातः ! वत्सपानावशिष्टं हवनावशिष्टञ्च तव दुग्धं रक्षिताया भूमेः षष्ठांशमिव गुरोरनुज्ञां प्राप्य, पातुमिच्छामि ।

हिन्दी—हे माँ, बछड़े के पीने से तथा अग्निहोत्र कर्म से बचने पर गुरु की आज्ञा लेकर मैं तुम्हारा दूध उसी प्रकार ग्रहण करना चाहता हूँ, जिस प्रकार पृथ्वी की रक्षा करके उसमें उत्पन्न अन्नादि का छठा भाग ग्रहण करता हूँ ।। ६६ ।।

इत्थं क्षितीशेन वसिष्ठधेनुर्विज्ञापिता प्रीततरा बभूव ।
तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः प्रत्याययावाश्रममश्रमेण ॥ ६७ ॥

सञ्जीविनी—इत्थमनेन प्रकारेण क्षितीशेन दिलीपेन विज्ञापिता वसिष्ठस्य धेनुः प्रीततरा । पूर्वं शुश्रूषया प्रीता संप्रत्यनया विज्ञापनया प्रीततरातिसंतुष्टा बभूव । तदन्विता तेन दिलीपेनान्विता हैमवताद्धिमवत्संबन्धिनः कुक्षेर्गुहायाः सकाशादश्रमेणानायासेनाश्रमं प्रत्याययावागता च ॥ ६७ ॥

अन्वयः—इत्थं, क्षितीशेन, विज्ञापिता, वसिष्ठधेनुः, प्रीततरा, बभूव, तदन्विता, हैमवतात् कुक्षेः, अश्रमेण, आश्रमं प्रत्याययौ च ।

वाच्य०—विज्ञापितया वशिष्ठधेन्वा प्रीततरया बभूवे, तदन्वितयाऽश्रमः प्रत्याययै ।

व्याख्या—इत्थम् = अनेन प्रकारेण, क्षितीशेन = राज्ञा दिलीपेन, विज्ञापिता = निवेदिता, वशिष्ठधेनुः, = नन्दिनी, अतिशयेन प्रीता, प्रीततरा = अतिसंतुष्टा, पूर्वं तु प्रीता, इदानीं प्रीततरा, इति भावः । बभूव = जाता, तेन = दिलीपेन, अन्विता = युक्ता सहिता, हैमवतात् = हिमालयसम्बन्धिनः, कुक्षेः = गुहायाः सकाशात्, अश्रमेण = अप्रयासेन, आश्रमं = निजवासस्थानं, प्रत्याययौ = प्रत्याजगाम ।

समा०—क्षितेः ईशः क्षितीशः, तेन क्षितीशेन । वसिष्ठस्य धेनुः वसिष्ठधेनुः । अत्यन्तं प्रीता प्रीततरा । हिमवतः अयं हैमवतः, तस्मात् हैमवतात् । न श्रमः अश्रमः, तेन अश्रमेण ।

अभि०—इत्थं दिलीपेन निवेदिता नन्दिनी, पूर्वं केवलं प्रीता, संप्रति तु अधिकतरं प्रसन्ना सती वशिष्ठाश्रमं प्रत्याजगाम ।

हिन्दी—इस प्रकार राजा के प्रार्थना करने पर वशिष्ठजी की धेनु नन्दिनी अत्यन्त प्रसन्न होकर दिलीप सहित, हिमालय की गुफा से बिना थकावट के आश्रम को लौट आई ॥ ६७ ॥

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥ ६८ ॥

सञ्जीविनी—प्रसन्नेन्दुरिव मुखं यस्य स नृपाणां गुरुर्दिलीपः प्रहर्षचिह्नैर्मुखरागादिभिरनुमितमूहितं तस्या धेनोः प्रसादमनुग्रहं प्रहर्षचिह्नैरेव ज्ञातत्वात्पुनरुक्तयेव वाचा गुरवे निवेद्य विज्ञाप्य पश्चात्प्रियायै शशंस । कथितस्यैव कथनं पुनरुक्तिः । न चेह तदस्ति किंतु चिह्नैः कथितप्रायत्वात्पुनरुक्तयेवाश्यितयेत्युत्प्रेक्षा ॥

अन्वयः—प्रसन्नेन्दुमुखः, नृपाणां गुरुः, प्रहर्षचिह्नानुमितं, तस्याः प्रसादं, पुनरुक्तया, इव, वाचा, गुरवे, निवेद्य, पश्चात् प्रियायै, शशंस ।

वाच्य०—प्रसन्नेन्दुमुखेन गुरुणा प्रहर्षचिह्नानुमितः प्रसादः शशंसे ।

व्याख्या—प्रसन्नः = निर्मलश्चासौ, इन्दुः = चन्द्र इति प्रसन्नेन्दुः, प्रसन्नेन्दुरिव, मुखम् = आननं यस्य सः, प्रसन्नेन्दुमुखः, नृपाणां = भूपालानां, गुरुः = श्रेष्ठः, दिलीपः, प्रहर्षस्य = आनन्दस्य, चिह्नानि = लक्षणानि तैरनुमितः = ज्ञातस्तं प्रहर्षचिह्नानुमितं, तस्याः = धेनोः, प्रसादम् = अनुग्रहम्, पुनरुक्तया = भूयः कथितया, गुरुणा प्रहर्षचिह्नैरेव ज्ञातत्वात्, वाचा = वचनेन, गुरवे = वशिष्ठाय, निवेद्य = विज्ञाप्य, "पश्चात्" प्रियायै = सुदक्षिणायै, शशंस = कथयामास ।

समा०—प्रसन्नश्चासौ इन्दुश्च प्रसन्नेन्दुः, प्रसन्नेन्दुरिव मुखं यस्य सः प्रसन्नेन्दुमुखः। प्रकृष्टाश्च ते हर्षाश्च प्रहर्षाः, प्रहर्षाणां चिह्नानि प्रहर्षचिह्नानि, प्रहर्षचिह्नैः अनुमितः प्रहर्षचिह्नानुमितः, तम्।

अभि०—प्रसन्नवदनो राजा दिलीपः, प्रसन्नतानुमापकैः मुखरागादिचिह्नैः कथितप्रायं नन्दिनीवरप्रदानानुग्रहं पूर्वं गुरवे निवेद्य, पश्चात् सुदक्षिणायै निवेदितवान्।

हिन्दी—निर्मल चन्द्रमा के समान मुखवाले राजाधिराज दिलीप, जब वशिष्ठजी के पास पहुँचे, तब राजा की प्रसन्नता को देखकर, वशिष्ठजी पहले ही सब बातें समझ गये, इसलिये राजा ने जो समाचार सुनाया, वह उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो दुबारा कहा जा रहा हो, वशिष्ठजी से कह चुकने पर, पीछे वह समाचार सुदक्षिणा को भी कहा ॥ ६८ ॥

स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम्।
पपौ वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः ॥ ६९ ॥

सञ्जीविनी—अनिन्दितात्मा अगर्हितस्वभावः। सत्सु वत्सलः प्रेमवान्सद्वत्सलः "वत्सांसाभ्यां कामबले" इति लच्प्रत्ययः। वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः कृतानुमतिः स राजा वत्सस्य हुतस्य चावशेषं पीतहुतावशिष्टं नन्दिन्याः स्तन्यं क्षीरम्। शुभ्रं मूर्तं परिच्छिन्नं यश इव। अतितृष्णः सन्पपौ ॥ ६९ ॥

अन्वयः—अनिन्दितात्मा, सद्वत्सलः, वशिष्ठेन, कृताभ्यनुज्ञः, स, वत्सहुतावशेषं, नन्दिनीस्तन्यं, शुभ्रं, मूर्तं, यशः, इव, अतितृष्णः, सन्, पपौ।

वाच्य०—अनिन्दितात्मना सद्वत्सलेन कृताभ्यनुज्ञेन तेन अतितृष्णेन पपे।

व्याख्या—अनिन्दितः = अगर्हितः आत्मा = स्वभावो यस्य सोऽनिन्दितात्मा, सत्सु = सज्जनेषु, वत्सलः = प्रेमवान्, वशिष्ठेन = महर्षिणा, कृता = विहिता, अनुज्ञा = आज्ञा, यस्य सः = कृताभ्यनुज्ञः, सः = राजा, वत्सस्य = शकृत्करेः, हुतस्य = हवनस्य च, अवशेषम् = अवशिष्टम्, वत्सहुतावशेषं, नन्दिनीस्तन्यं = धेनुक्षीरं, शुभ्रं = श्वेतं, मूर्तं = मूर्तिमत्, यशः = कीर्तिम्, इव = यथा, अतिशयिता तृष्णा यस्य सः, तथोक्तः सन् पपौ = पीतवान्।

समा०—निन्दा अस्य संजाता इति निन्दितः, न निन्दितः अनिन्दितः अनिन्दितः आत्मा यस्य सः अनिन्दितात्मा। सत्सु वत्सलः सद्वत्सलः। कृता अभ्यनुज्ञा यस्य सः कृताभ्यनुज्ञः। वत्सश्च हुतञ्च वत्सहुते, वत्सहुतयोः अवशेषं वत्सहुतावशेषम्, तत् वत्सहुतावशेषम्। स्तने भवं स्तन्यम्, नन्दिन्याः स्तन्यं नन्दिनीस्तन्यम्, तत् नन्दिनीस्तन्यम्। अति (अत्यन्तं) तृष्णा यस्य सः अतितृष्णः।

अभि०—राजा दिलीपः गुरोः वसिष्ठस्याज्ञया वत्सहवनावशिष्टं नन्दिनीदुग्धं मूर्तिमत् धवलं यश इवातितृष्णः सन् पपौ।

हिन्दी—जब बछड़ा दूध पी चुका और हवन भी हो चुका, तब सज्जनों के प्रेमी प्रशंसनीय राजा ने वसिष्ठ की आज्ञा से दूध को, शरीरधारी यश के समान अत्यन्त प्यासा होकर पिया ॥ ६९ ॥

प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य।
तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः ॥ ७० ॥

सञ्जीविनी—वशी वशिष्ठः प्रातः। यथोक्तस्य पूर्वोक्तस्य व्रतस्य गोसेवारूपस्यामुना या पारणा

तस्या अन्ते प्रास्थानिकं प्रस्थानकाले भवम्। तत्कालोचितमित्यर्थः। "कालाट्ठञ्" इति ठञ्प्रत्ययः (यथाकथंचिद् गुणवृत्त्यापि काले वर्तमानत्वात्प्रत्यय इष्यते) इति वृत्तिकारः। ईयते प्राप्यतेऽनेनेत्ययनं स्वस्ति शुभस्यायनं स्वस्त्ययनं शुभावहमाशीर्वादं प्रयुज्य। तौ दम्पती। कर्मभूतौ। स्वां राजधानी पुरीं प्रति प्रस्थापयामास ॥ ७० ॥

अन्वयः—वशी, वसिष्ठः, प्रातः, यथोक्तव्रतपारणान्ते, प्रास्थानिकं, स्वस्त्ययनं, प्रयुज्य, तौ, दम्पती स्वां, राजधानीं, प्रति, प्रस्थापयामास।

वाच्य०—वशिना वशिष्ठेन तौ प्रस्थापयांचक्राते।

व्याख्या—वशः इन्द्रियोपरि प्रभुत्वमस्यास्तीति वशी = जितेन्द्रियः, वसिष्ठः = ऋषिः, प्रातः = प्रातःकाले, यथोक्तव्रतस्य = पूर्वोक्तस्य, गोसेवारूपस्य, अंगभूता या पारणा = व्रतान्तभोजनम्, तस्या अन्तः = अवसानं तस्मिन्, यथोक्तव्रतपारणान्ते, प्रस्थाने भवं प्रास्थानिकं = प्रस्थानकालिकं, स्वस्त्ययनं = शुभावहमाशीर्वादं, प्रयुज्य = दत्त्वा, तौ = पूर्वोक्तौ, जाया च पतिश्च दम्पती = सुदक्षिणा-दिलीपौ, स्वां = स्वकीयां, राजधानीम् = अयोध्यां प्रति = उद्दिश्य, प्रस्थापयामास = प्रेषयामास।

समा०—वशः (स्वाधीनता इन्द्रियाणां) अस्यास्तीति वशी। उक्तम् अनतिक्रम्य यथोक्तम् यथोक्तञ्च तद् व्रतञ्च यथोक्तव्रतम्, यथोक्तव्रतस्य पारणा यथोक्तव्रतपारणा, यथोक्तव्रतपारणायाः अन्तः यथोक्तव्रतपारणान्तः, तस्मिन् यथोक्तव्रतपारणान्ते। प्रस्थाने भवं प्रास्थानिकं, तत् प्रास्थानिकम्। स्वस्ति (अव्ययम्) अयनम् स्वस्त्ययनम्, तत् स्वस्त्ययनम्। धीयन्तेऽस्यामिति धानी, राज्ञां धानी राजधानी, तां राजधानीम्। सा च स च तौ, तौ (द्वितीया)। जाया च पतिश्च दम्पती, तौ दम्पती।

अभि०—महर्षिवसिष्ठः प्रातःकाले यात्राकालिकं शुभाशीर्वादं दत्त्वा, सुदक्षिणादिलीपौ, अयोध्याम्प्रति प्रस्थापयामास।

हिन्दी—प्रातःकाल जितेन्द्रिय वशिष्ठजी ने गोसेवारूप व्रत के सांगोपांग पूर्ण होने पर सुदक्षिणा एवं दिलीप को यात्रा के समय शुभाशीर्वाद देकर अयोध्या की ओर विदा किया ॥ ७० ॥

> प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च।
> धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः ॥ ७१ ॥

सञ्जीविनी—नृपो हुतं तर्पितम्। हुतमश्नातीति हुताशोऽग्निः। "कर्मण्यण्" तं भर्तुर्मुनेरनन्तरमित्यर्थः। प्रदक्षिणानन्तरमित्यर्थः। अरुन्धतीं च सवत्सां धेनुं च प्रदक्षिणीकृत्य। प्रगतो दक्षिणं प्रदक्षिणम्। "तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च" इत्यव्ययीभावः। ततश्च्विः। अप्रदक्षिणं प्रदक्षिणं संपद्यमानं कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य। सद्भिर्मङ्गलैः प्रदक्षिणादिभिर्मङ्गलाचारैरुदग्रतरप्रभावः सन् प्रतस्थे ॥ ७१ ॥

अन्वयः—नृपः, हुतं, हुताशं, भर्तुः, अनन्तरम्, अरुन्धतीं, च, सवत्सां धेनुं च, प्रदक्षिणीकृत्य, सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः "सन्" प्रतस्थे।

वाच्य०—नृपेण सन्मंगलोदग्रतरप्रभावेण "सता" प्रतस्थे।

व्याख्या—नृपः = राजा, दिलीपः, हुतं = तर्पितं दत्तहविषमित्यर्थः, हुतमश्नातीति हुताशस्तं हुताशं = वह्निं, भर्तुः = स्वामिनो वशिष्ठस्य, अनन्तरं = पश्चात्, अरुन्धतीं = वशिष्ठपत्नीं, च, सवत्सां =

शङ्करीसहितां, धेनुं = गाम्, प्रदक्षिणीकृत्य = परिक्रम्य, सन्मंगलैः = शुभाचारैः, उदग्रतरः = उन्नततरः, प्रभावः = प्रतापो यस्य स तथोक्तः सन्, प्रतस्थे = प्रचचाल ।

समा०—हुतम् अश्नातीति हुताशः, तं हुताशम् । न विद्यते अन्तरं यस्य तद् अनन्तरम्, तद् अनन्तरम् । वत्सेन सह वर्तते इति सवत्सा, तां सवत्साम् । प्रगतो दक्षिणं प्रदक्षिणम्, अप्रदक्षिणं प्रदक्षिणं सम्पद्यमानं कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य । सन्ति च तानि मङ्गलानि च सन्मङ्गलानि, अतिशयेन उदग्रः उदग्रतरः, सन्मङ्गलैरुदग्रतरः प्रभावः यस्य सः सन्मङ्गलोदग्रतरप्रभावः ।

अभि०—राजा दिलीपः, हुताग्निं सपत्नीकं वशिष्ठं तथा सवत्सां गाम् प्रदक्षिणीकृत्य, सद्भिः मंगलाचारैः त्रिवृद्धतेजाः सन्, अयोध्यायै प्रतस्थे ।

हिन्दी—राजा हवनकुण्ड को इसके बाद वशिष्ठ एवं अरुन्धती और बछड़े सहित बैठी हुई धेनु की परिक्रमा करके, वशिष्ठ के शुभाशीर्वादों से अधिक तेजस्वी होकर राजधानी की ओर चल पड़े ॥७१॥

श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः ।
ययावनुद्घातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन ॥ ७२ ॥

सञ्जीविनी—धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुर्व्रतादिदुःखसहनशीलः स नृपः श्रोत्राभिरामध्वनिना कर्णाह्लादकरस्वनेनानुद्घातः पाषाणादिप्रतिघातरहितः अतएव सुखयतीति सुखः । तेन रथेन । स्वेन पूर्णेन सफलेन मनोरथेनेव । मार्गमध्वानं ययौ । मनोरथपक्षे ध्वनिः श्रुतिः । अनुद्घातः प्रतिबन्धनिवृत्तिः ॥ ७२ ॥

अन्वयः—धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः, सः, श्रोत्राभिरामध्वनिना, अनुद्घातसुखेन, रथेन, स्वेन, पूर्णेन, मनोरथेन, इव, मार्गं, ययौ ।

वाच्य०—धर्मपत्नीसहितेन सहिष्णुना तेन मार्गो यये ।

व्याख्या—धर्मपत्नीसहितः = सुदक्षिणासहितः, सहिष्णुः = सहनशीलः, सः = राजा दिलीपः, श्रोत्रयोः = कर्णयोः, अभिरामः = सुखप्रदः, ध्वनिः = शब्दः, यस्य स तेन श्रोत्राभिरामध्वनिना । न, उद्घातोऽनुद्घातस्तेन, अनुद्घातेन = पाषाणादिरहितेन, सुखः = सुखकरस्तेनानुद्घातसुखेन, रथेन = स्यन्दनेन, स्वेन = आत्मीयेन, पूर्णेन = सफलेन, मनोरथेन = अभिलाषेण, इव = यथा, ययौ = जगाम । मनोरथपक्षे ध्वनिः = श्रुतिः, मनोरथसिद्धिश्रवणमित्यर्थः, अनुद्घातः = प्रतिबन्धाभावः, विघ्नराहित्यम् ।

समा०—धर्मपत्न्या सहितः धर्मपत्नीसहितः । श्रोत्रयोः अभिरामः ध्वनिः यस्य स श्रोत्राभिरामध्वनिः, तेन श्रोत्राभिरामध्वनिना । न उद्घातः अनुद्घातः, अनुद्घातेन सुखयतीति अनुद्घातसुखः, तेन अनुद्घातसुखेन । मनः रथः इव मनोरथः, तेन मनोरथेन ।

अभि०—सुदक्षिणासहितो दिलीपः सुखप्रदेन रथेन स्वकीयसफलमनोरथेनेव ययौ ।

हिन्दी—सहनशील राजा दिलीप अपनी पत्नी के साथ जिस रथ में बैठ कर अयोध्या को चले, उसकी ध्वनि कानों को बड़ी ही मीठी लग रही थी, उसमें जरा भी हिचक नहीं लगती थी, अतः उसपर सुख से चढ़कर जाते समय, ऐसा लग रहा था, मानो वे अपने सफल सुखद मनोरथ पर बैठकर जा रहे हों। रथपर बैठकर नहीं ॥ ७२ ॥

तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम् ।
नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम् ॥ ७३ ॥

सञ्जीविनी—अदर्शनेन प्रवासनिमित्तेनाहितौत्सुक्यं जनितदर्शनोत्कण्ठम् । प्रजार्थेन संतानार्थेन व्रतेन नियमेन कर्शितं कृशीकृतमङ्गं यस्य तम् । नवोदयं नवाभ्युदयं प्रजास्तृप्तिमनाप्नुवद्भिरतितृष्णुभिर्नेत्रैः । ओषधीनां नाथं सोममिव । तं राजानं पपुः । अत्यास्थया ददृशुरित्यर्थः । चन्द्रपक्षे अदर्शनं कलाक्षयनिमित्तम् । प्रजार्थं लोकहितार्थम् । व्रतं देवताभ्यः कलादाननियमः । "तं च सोमं पपुर्देवाः पर्यायेणानुपूर्वशः" इति व्यासः । उदय आविर्भावः । अन्यत्समानम् ।

अन्वयः—अदर्शनेन, आहितौत्सुक्यं, प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गं, नवोदयं, प्रजाः तृप्तिम्, अनाप्नुवद्भिः, नेत्रैः, ओषधीनां, नाथं, सोमम्, इव, तं, पपुः ।

वाच्य०—आहितौत्सुक्यः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गः नवोदयः, प्रजाभिः, ओषधीनां नाथः इव पपे ।

व्याख्या—न दर्शनमदर्शनं तेन, अदर्शनेन=अनवलोकनेन, उत्सुकस्य भावः औत्सुक्यम्, आहितं=जनितम्, औत्सुक्यम्=उत्कण्ठा "प्रजासु" येन स तम्, प्रजा=सन्तानः, स एव अर्थः=प्रयोजनं यस्य तत् प्रजार्थं च तद् व्रतं=गोसेवारूपं तेन कर्शितं=कृशीभूतम्, अङ्ग=शरीरं यस्य सः प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गस्तं तथोक्तम् । नव उदयो यस्य स नवोदयस्तं नवोदय=नूतनाभ्युदयं, प्रजाः=लोकाः, तृप्तिं=संतोषम्, अनाप्नुवद्भिः=अलभमानैः, नेत्रैः=नयनैः, ओषधीनां=वनस्पतीनां, नाथं=स्वामिनं, सोमं=चन्द्रम्, इव=यथा, तं=राजानं, पपुः=सतृष्णमवलोकयामासुः । "चन्द्रपक्षे" अदर्शनेन=कलाक्षयनिमित्तादर्शनेन, प्रजार्थव्रतकर्शितांगं=लोकहितार्थं व्रतं देवेभ्यः कलादाननियमः, तेन कृशीभूतगात्रं नवोदय=नवीनाविर्भावम्, सोममिति, शेषं तुल्यम् ॥ ७३ ॥

समा०—न दर्शनम् अदर्शनम्, तेन अदर्शनेन । उत्सुकस्य भावः औत्सुक्यम्, आहितम् औत्सुक्यं येन स आहितौत्सुक्यः, तम् आहितौत्सुक्यम् । प्रजैव अर्थः यस्य तत् प्रजार्थम्, प्रजार्थञ्च तद् व्रतञ्च प्रजार्थव्रतम्, प्रजार्थव्रतेन कर्शितानि अङ्गानि यस्य सः तं प्रजार्थव्रतकर्शिताङ्गम् । नवः उदयो यस्य सः तं नवोदयम् । न आप्नुवन्ति अनाप्नुवन्ति (शत्रन्तम्) तैः अनाप्नुवद्भिः ।

अभि०—जनाः, गोसेवारूपव्रतेन कृशीभूतगात्रं दिलीपं सतृष्णैः नेत्रैः द्वितीयाचन्द्रमिवावलोकयामासुः ।

हिन्दी—इतने दिनों से राजा को न देखने के कारण अतीव उत्सुक प्रजा ने, पुत्र के लिये गोसेवारूपव्रत से दुर्बल और वरप्राप्तिरूप नूतन अभ्युदयवाले राजा को अतृप्त सतृष्ण नेत्रों से ऐसा देखा, जैसे कलाक्षय के बाद नवोदित द्वितीया के चन्द्रमा को देखते हैं ॥ ७३ ॥

पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः ।
भुजे भुजङ्गेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज ॥ ७४ ॥

सञ्जीविनी—पुरः पुरीरसुराणां दारयतीति पुरंदरः शक्रः । "पूःसर्वयोर्दारिसहोः" इति खच्प्रत्ययः । "वाचंयमपुरंदरौ च" इति मुमागमो निपातितः, तस्य श्रीरिव श्रीर्यस्य स नृपः पौरैरभिनन्द्यमानः । उत्पताकमुच्छ्रितध्वजम् 'पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम्' इत्यमरः । पुरं प्रविश्य

भुजङ्गेन्द्रेण समानसारे तुल्यबले। 'सारो बले स्थिरांशे च न्याय्ये क्लीबं वरे त्रिषु' इत्यमरः। भुजे भूयो भूमेर्धुरमाससञ्ज स्थापितवान्॥ ७४॥

अन्वयः—पुरन्दरश्रीः, सः, पौरैः, अभिनन्द्यमानः, उत्पताकं, पुरं, प्रविश्य, भुजङ्गेन्द्रसमानसारे, भुजे, भूयः, भूमेः, धुरम्, आससञ्ज।

वाच्य०—पुरन्दरश्रिया तेन पौरैः अभिनन्द्यमानेन धूः आससञ्जे।

व्याख्या—पुरन्दरस्य = इन्द्रस्य, श्रीः = शोभा, इव, श्रीर्यस्य सः पुरन्दरश्रीः, सः = राजा दिलीपः, पौरैः = नागरिकैः, अभिनन्द्यमानः = अभितुष्यमाणः, उच्छ्रिताः = ऊर्ध्वं गताः, पताकाः = ध्वजाः यस्मिन् तत्, उत्पताकं, पुरं = नगरं, प्रविश्य, भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजंगाः = सर्पास्तेषु, इन्द्रः = स्वामी, भुजंगेन्द्रस्तेन समानः = तुल्यः, सारो बलं यस्मिन् तस्मिन् तथोक्ते, भुजे = बाहौ, भूयः = पुनः, भूमेः = पृथिव्याः, धुरं = भारम्, आससञ्ज = स्थापितवान्।

समा०—पुरन्दरस्य श्रीरिव श्रीः यस्य सः पुरन्दरश्रीः। पुरे भवाः पौराः, तैः पौरैः। उद् पताकाः यस्य तत् उत्पताकम् तत् उत्पताकम्। भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजङ्गाः, भुजङ्गेषु इन्द्रः भुजङ्गेन्द्रः, भुजङ्गेन्द्रेण समानः सारो यस्य सः भुजङ्गेन्द्रसमानसारः, तस्मिन् भुजङ्गेन्द्रसमानसारे।

अभि०—अयोध्यावासिजनैः स्तूयमानः सन् राजा दिलीपः नगरं प्रविश्य पुनरपि पृथिव्याः परिरक्षणरूपभारं स्वभुजे धृतवान्।

हिन्दी—देवेन्द्र के समान सम्पत्तिशाली राजा दिलीप ने प्रजा का समादर पाकर अयोध्या नगरी में प्रवेश किया, जिसमें उनके स्वागत के लिये झण्डे, ऊँचे कर दिये गए थे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने शेषनाग के समान बलवती अपनी भुजा से राजकार्य का भार सम्भाल लिया॥ ७४॥

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः॥ ७५॥

सञ्जीविनी—अथ द्यौः सुरवर्त्म। 'द्यौः स्वर्गसुरवर्त्मनोः' इति विश्वः। अत्रेर्महर्षेर्नयनयोः समुत्थमुत्पन्नं नयनसमुत्थम्। "आतश्चोपसर्गे" इति कप्रत्ययः। ज्योतिरिव। चन्द्रमित्यर्थः। 'अत्रिनेत्रप्रसूतः' इति हलायुधः। चन्द्रस्यात्रिनेत्रोद्भूतत्वमुक्तं हरिवंशे—"नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद् दिशः। तद्गर्भविधिना हृष्टा दिशो देव्यो दधुस्तदा॥ समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन्। स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः॥ पपात भासयंल्लोकाञ्छीतांशुः सर्वभावनः॥" इति। सुरसरिद्गङ्गा वह्निना निष्ठ्यूतं निक्षिप्तम्। "च्छ्वोः शूडनुनासिके च" इत्यनेन निपूर्वात्ष्ठीवतेर्वकारस्य ऊठ् 'नुत्तनुन्नास्तनिष्ठ्यूताविद्धक्षिप्तेरिताः समाः' इत्यमरः। ऐशं तेजः स्कन्दमिव। अत्र रामायणम्—"ते गत्वा पर्वतं राम कैलासं धातुमण्डितम्। अग्निं नियोजयामासुः पुत्रार्थं सर्वदेवताः॥ देवकार्यमिदं देव समाधत्स्व हुताशन। शैलपुत्र्यां महातेजो गङ्गायां तेज उत्सृज॥ देवतानां प्रतिज्ञाय गङ्गामभ्येत्य पावकः। गर्भं धारय वै देवि देवतानामिदं प्रियम्॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा दिव्यं रूप-

मधारयत् । स तस्या महिमानं दृष्ट्वा समन्तादवकीर्य च ॥ समन्ततस्तु तां देवीमभ्यषिञ्चत पावकः सर्वस्रोतांसि पूर्णानि गङ्गाया रघुनन्दन ॥" इति । राज्ञी सुदक्षिणा नरपतेर्दिलीपस्य कुलभूसंततिलक्षणायै गुरुभिर्महद्भिर्लोकपालानामनुभावैस्तेजोभिरभिनिविष्टमनुप्रविष्टं गर्भमाधत्त । दधाविस्यर्थः अत्रमनुः–'अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः' इति अत्र आधत्त इत्यनेन लौकतृकधारणमात्र मुच्यते । तथा च मन्त्रे दृश्यते–"यथेयं पृथ्वी मह्युत्ताना गर्भमादधे । एवं त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतवे ।।" इत्याश्वलायनानां सीमन्तमन्त्रे स्त्रीव्यापारधारण आधानशब्दप्रयोगदर्शनादिति । मालिनी वृत्तमेतत् । तदुक्तम्–"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" इति लक्षणात् ।। ७५ ।।

अन्वयः—अथ, द्यौः, अत्रेः नयनसमुत्थं, ज्योतिः, इव, सुरसरित्, वह्निनिष्ठ्यूतम्, ऐशं तेजः इव, राज्ञी, नरपतिकुलभूत्यै, गुरुभिः, लोकपालानुभावैः अभिनिविष्टं गर्भम्, आधत्त ।

वाच्य०—दिवा ज्योतिरिव, सुरसरिता तेज इव, राज्ञ्या अभिनिविष्टो गर्भ आधीयत ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरं, द्यौः = सुरवर्त्म, अत्रेः = महर्षेः, नयनयोः = नेत्रयोः, समुत्थम् = उत्पन्नं, ज्योतिः = चन्द्रम्, इव = यथा, सुरसरित् = गङ्गा, वह्निना = अग्निना निष्ठ्यूतं = क्षिप्तम्, ईशस्येदं तत्, ऐशं = ईशसम्बन्धि, शैवमित्यर्थः, तेजः = रेतः (स्कन्दम्) इव, राज्ञी = सुदक्षिणा, नरपतिकुलभूत्यै = राजवंशाभिवृद्धये, गुरुभिः = श्रेष्ठैः, लोकपालानाम् = अष्टदिगीशानाम्, अनुभावाः = अंशास्तैः लोकपालानुभावैः, अभिनिविष्टम् = अनुप्रविष्टम्, गर्भं = भ्रूणम्, आधत्त = दधार ॥

समा०—समुत्तिष्ठतीति समुत्थम्, नयनयोः समुत्थं नयनसमुत्थम्, तत् नयनसमुत्थम् । सुराणां सरित् सुरसरित् । वह्निना निष्ठ्यूतं वह्निनिष्ठ्यूतम्, तत् वह्निनिष्ठ्यूतम् । ईशस्येदमैशम्, तत् ऐशम् । नराणां पतिः नरपतिः नरपतेः कुलं नरपतिकुलम् नरपतिकुलस्य भूतिः नरपतिकुलभूतिः, तस्यै नरपतिकुलभूत्यै । लोकं पालयन्तीति लोकपालाः, लोकपालानाम् अनुभावाः तैः लोकपालानुभावैः ।

भावा०—यथा द्यौः चन्द्रम्, गङ्गा च शवं तेजः दधार, तथैव दिलीपभार्या सुदक्षिणापि दिलीपस्य वंशरक्षायै गर्भं धृतवती ।।

हिन्दी—जिस प्रकार अत्रि महर्षि के नेत्रों से निकली हुई चन्द्ररूपी ज्योति को आकाश ने धारण किया, और अग्नि से उगले हुए शिव के तेज को गंगा जी ने धारण किया, वैसे ही महारानी सुदक्षिणा ने भी राजा दिलीप का वंश चलाने के लिए आठों दिशाओं के लोकपालों के प्रभावों से सम्मिलित गर्भ को धारण किया ।। ७५ ।।

इति श्रीशाङ्करिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां 'छात्रोपयोगिनी' व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये नन्दिनीवरप्रदानो नाम द्वितीयः सर्गः सम्पूर्णः ।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

तृतीय सर्ग

तृतीय सर्ग का कथासार

गर्भधारण के पश्चात् महारानी सुदक्षिणा के शरीर में गर्भलक्षण प्रकट होने लगे। इससे राजा दिलीप तथा सुदक्षिणा की सखियाँ बहुत प्रसन्न हुईं।

इस अवसर पर राजा दिलीप सुदक्षिणा की प्रत्येक इच्छा पूर्ण करते थे और इस बात की पूर्ण चेष्टा करते थे कि सुदक्षिणा का कोई भी इच्छा अपूर्ण न रहे। दूसरे मास में पुंसवन नामक संस्कार किया और चतुर वैद्यों के द्वारा गर्भ का पोषण किये जाने पर, दशवें मास में शुभ मुहूर्त में सुदक्षिणा ने पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उदारता पूर्वक खूब दान दिया।

महर्षि वशिष्ठ के तपोवन से आकर जातकर्म नामक संस्कार करने पर बालक अधिक सुन्दर एवं तेजस्वी हो गया। महाराज दिलीप ने यह जानकर कि शास्त्र तथा युद्ध में सर्वत्र यह पारंगत होगा बालक का 'रघु' नाम रक्खा।

धीरे-धीरे बालक बड़ा होने के साथ ही समस्त शास्त्र तथा शस्त्र-विद्या में सुशिक्षित हो गया। दिलीप ने उसका यज्ञोपवीत संस्कार तथा विवाह करने के पश्चात् उसे युवराज बना दिया। रघु के युवराज होते ही राजा शत्रुओं के लिये दुःसह हो गये और रघु को यज्ञ के घोड़े की रक्षा में नियुक्त करके राजा दिलीप ने ९९ अश्वमेध पूरे कर लिये। इसके बाद सौवाँ यज्ञ करने के लिये राजा ने घोड़ा छोड़ दिया।

इस सौवें यज्ञ को सहन न करनेवाले इन्द्र ने सबके सामने से घोड़े को चुरा लिया। घोड़े को न देख सेना सहित रघु किंकर्तव्यविमूढ से खड़े ही थे कि स्वतः आई हुई नन्दिनी को सामने खड़ी देखा और उसके मूत्र से अपनी आँखें धो डाली, तब उसी क्षण घोड़े को चुराकर ले जाते हुए इन्द्र को देखकर रघु ने ललकारा। इन्द्र रुक गये। रघु ने प्रार्थना की कि आप यज्ञों के रक्षक होकर इस प्रकार करेंगे तो यज्ञादि कैसे होंगे। तब इन्द्र ने कहा कि मैं ही शतक्रतु हूँ दूसरा नहीं हो सकता। तुम्हारे पिता सौवाँ यज्ञ करके यह मेरा यश छीनना चाहते हैं। अतः मैंने घोड़े का हरण किया है, तुम लौट जाओ, नहीं तो सगर राजा के पुत्रों की जैसी दशा तुम्हारी भी होगी।

रघु ने कहा हे! भगवन्! यदि तुम्हारी यही निश्चय है तो शस्त्र उठाओ। मुझे जीते बिना घोड़ा लेकर नहीं जा सकते हो। यह कहकर रघु ने एक बाण इन्द्र की छाती में मारा।

इन्द्र ने भी अत्यन्त क्रोधित होकर एक अमोघ बाण रघु की छाती में मारा। पुनः रघु ने एक बाण से इन्द्र की वज्रचिह्नित ध्वजा को काट डाला। इससे इन्द्र ने क्रोध में आकर रघु को मारने के लिये वज्र से प्रहार किया। किन्तु जरा सी मूर्छा का अनुभव कर रघु पुनः खड़ा हो

गया। इस प्रकार घोर युद्ध में भी रघु को अचल देखकर इन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा कि हे युवराज ! तुम घोड़े को छोड़ कर जो चाहो सो वर माँग लो। यह सुन रघु ने कहा कि हे इन्द्र ! यदि तुम घोड़े को नहीं देना चाहते हो तो मेरे पिता इस सौवें अश्वमेध यज्ञ के पूर्ण फल को प्राप्त करें और इस पूरे समाचार को सभा में बैठे मेरे पिता तुम्हारे ही दूत के मुख से सुनें, ऐसा प्रबन्ध करो।

इन्द्र ने इस बात को स्वीकार किया, और अपने स्थान चला गया। रघु भी अधिक प्रसन्न न होकर (घोड़ा न मिलने से) अपने घर लौट आये।

महाराज दिलीप इन्द्र के भेजे दूत से पहले ही सब सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और रघु के शरीर पर हाथ फेर कर उसका अभिनन्दन किया। इस प्रकार मरने पर स्वर्ग में जाने के लिये ९९ सीढ़ियों की तरह ९९ यज्ञों की परम्परा बनाकर राजा दिलीप रघु को राज्य देकर वानप्रस्थाश्रम में रहने के लिये तपोवन चले गये।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

तृतीय सर्ग

अथेप्सितं भर्तुरुपस्थितोदयं सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम् ।
निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्ततेः सुदक्षिणा दौर्हृदलक्षणं दधौ ॥ १ ॥

सञ्जीविनी—अथ गर्भधारणानन्तरं सुदक्षिणा। उपस्थितोदयं प्राप्तकालं भर्तुर्दिलीपस्येप्सितं मनोरथम्। नपुंसके भावे क्तः। पुनः सखीजनस्योद्वीक्षणानां दृष्टीनां कौमुदीमुखं चन्द्रिकाप्रादुर्भावम्, यद्वा कौमुदी नाम दीपोत्सवतिथिः। तदुक्तं भविष्योत्तरे—'कौ मोदन्ते जना यस्यां तेनासौ कौमुदी मता' इति। तस्या मुखं प्रारम्भम्। सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमहम् इति पाठं केचित्पठन्ति। इक्ष्वाकुकुलस्य संततेरविच्छेदस्य निदानं मूलकारणम्। 'निदानं त्वादिकारणम्' इत्यमरः। एवंविधं दौर्हृदलक्षणं गर्भचिह्नं वक्ष्यमाणं दधौ। स्वहृदयेन गर्भहृदयेन च द्विहृदया गर्भिणी। यथाह वाग्भटः "मातृजन्यस्य हृदयं मातुश्च हृदयं च तत्। संबद्धं तेन गर्भिण्याः श्रेष्ठं श्रद्धाभिमाननम् ॥" इति। तत्संबन्धित्वाद् गर्भो दौर्हृदमित्युच्यते। सा च तद्योगाद्दौर्हृदिनीति। तदुक्तं संग्रहे "द्विहृदयां नारीं दौर्हृदिनीमाचक्षते" इति। अत्र दौर्हृदलक्षणस्येप्सितत्वेन कौमुदीमुखत्वेन च निरूपणाद्रूपकालंकारः। अस्मिन्सर्गे वंशस्थं वृत्तं—"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" इति तल्लक्षणात् ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ, सुदक्षिणा, उपस्थितोदयम्, भर्तुः, ईप्सितम्, सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम्, इक्ष्वाकुकुलस्य, सन्ततेः, निदानं, दौर्हृदलक्षणं, दधौ ।

वाच्य०—सुदक्षिणया दौर्हृदलक्षणं दधे ।

व्याख्या—अथ = गर्भधारणानन्तरम्। सुदक्षिणा = दिलीपभार्या। उपस्थितः = प्राप्तः, उदयः = समयः यस्य तत्, उपस्थितोदयम्। भर्तुः = स्वामिनो दिलीपस्य, ईप्सितं = मनोरथम्। सखीजनानां = सहचरीणां, उद्वीक्षणानि—नेत्राणि, इति सखीजनोद्वीक्षणानि, कौ = पृथिव्यां मोदन्ते जना अनेनेति कुमुदश्चन्द्रस्तस्येयं कौमुदी, सखीजनोद्वीक्षणानां कौमुदी = चन्द्रिका। "चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना" इत्यमरः। तस्याः मुखं = प्रादुर्भावं, यथोक्तम् इक्ष्वाकोः कुलं = वंशस्तस्य इक्ष्वाकुकुलस्य। सन्ततेः = परम्परायाः, अविच्छेदस्येत्यर्थः, निदानम् = आदिकारणम्। नानाविधाभिलाषेण दुष्टं हृद् यस्याः सा दुर्हृत्, तस्या भावः कर्म वा दौर्हृदं, तस्य दौर्हृदस्य = गर्भस्य, लक्षणं = चिह्नमिति तत् दौर्हृदलक्षणं, दधौ = धृतवती।

समा०—उपस्थितः उदयः यस्य तत् उपस्थितोदयम्, तत् उपस्थितोदयम्। सखीति जनाः सखीजनाः, सखीजनानाम् उद्वीक्षणानि सखीजनोद्वीक्षणानि, सखीजनोद्वीक्षणानां कौमुदी सखीजनोद्वीक्षणकौमुदी, सखीजनोद्वीक्षणकौमुद्या मुखं सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखं, तत् सखी-

जनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम् । इक्ष्वाकोः कुलं इक्ष्वाकुकुलम् , तस्य इक्ष्वाकुकुलस्य । दुर्हृदः भावः दौर्हृदम् , दौर्हृदस्य लक्षणं दौर्हृदलक्षणम् , तत् दौर्हृदलक्षणम् ।

अभि०—गर्भधारणानन्तरं सुदक्षिणा दिलीपस्याभिलषितं प्राप्तकालं तथा सहचरीवर्गस्य नेत्रोत्सवमिक्ष्वाकुवंशाविच्छेदकारणं गर्भलक्षणं धारयामास ।

हिन्दी—गर्भधारण के पश्चात् सुदक्षिणा ने कृशतादि गर्भ के लक्षणों को धारण किया, जो कि महाराज का सामयिक मनोरथ है और सुदक्षिणा की सखियों के नेत्रों के लिये आनन्दप्रद चन्द्रिका का आविर्भाव है (अथवा सुदक्षिणा की सखियों के नेत्रों के लिये कौमुदी महोत्सव नामक दीपावली है) और इक्ष्वाकु के वंश को चलानेवाला है ॥ १ ॥

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥ २ ॥

सञ्जीविनी—शरीरस्य सादात्कार्श्यादसमग्रभूषणा परिमिताभरणा लोध्रपुष्पेणेव पाण्डुना मुखेनोपलक्षिता सा सुदक्षिणा । विचेया मृग्यास्तारका यस्यां सा तथोक्ता । विरलनक्षत्रेत्यर्थः । तनुप्रकाशेनाल्पकान्तिना शशिनोपलक्षितेषदसमाप्तप्रभाता प्रभातकल्पा । प्रभातादीषदूनेत्यर्थः । "तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ।" इति प्रभातशब्दस्य पुंवद्भावः । शर्वरी रात्रिरिव । अलक्ष्यादृश्यत । शरीरसादादिगर्भलक्षणमाह वाग्भटः—'क्षामता गरिमा कुक्षेर्मूर्छा छर्दिररोचकम् । जृम्भा प्रसेकः सदनं रोमराज्याः प्रकाशनम्" ॥ २ ॥

अन्वयः—शरीरसादात् , असमग्रभूषणा, लोध्रपाण्डुना, मुखेन, "उपलक्षिता" सा विचेयतारका, तनुप्रकाशेन, शशिना, "उपलक्षिता" प्रभातकल्पा, शर्वरी, इव, अलक्ष्यत ।

वाच्य०—असमग्रभूषणां, तां, विचेयतारकां, प्रभातकल्पां शर्वरीमिवालक्षयन् ।

व्याख्या—शरीरस्य=देहस्य सादः=कार्श्यं, तस्मात् शरीरसादात् । असमग्राणि= असम्पूर्णानि, परिमितानि, भूषणानि=आभरणानि, यस्याः सा असमग्रभूषणा । लोध्रवत्= लोध्रपुष्पवत् , पाण्डु=पाण्डुरमिति, तेन लोध्रपाण्डुना "हरिणः पाण्डुरः पाण्डुरि"त्यमरः । मुखेन=आननेन, "उपलक्षिता=युक्ता" सा=सुदक्षिणा । विचेयाः=मृग्याः, परिगणनीयाः, तारकाः=नक्षत्राणि, यस्यां सा विचेयतारका, तनुः=स्वल्पः, प्रकाशः=कान्तिः, यस्य सः तेन तनुप्रकाशेन, शशिना=चन्द्रेण, "उपलक्षिता" शर्वरी=रात्रिः, इव=यथा, अलक्ष्यत= अदृश्यत, जनैरिति शेषः ।

समा०—शरीरस्य सादः शरीरसादः, तस्मात् शरीरसादात् । न समग्राणि असमग्राणि, असमग्राणि भूषणानि यस्याः सा असमग्रभूषणा । लोध्रवत् पाण्डु लोध्रपाण्डु तेन लोध्रपाण्डुना । तनुः प्रकाशः यस्य सः तनुप्रकाशः, तेन तनुप्रकाशेन । विचेतुं योग्याः विचेयाः, विचेयाः तारकाः यस्याः सा विचेयतारका । प्रभातादीषदूना प्रभातकल्पा । शशः अस्यास्तीति शशी, तेन शशिना ।

अभि०—यथा प्रातःकाले क्षीणप्रकाशेन चन्द्रेण युक्ता विरलनक्षत्रा रात्रिः भाति, तथैव पाण्डुवर्णमुखेनोपलक्षिता कृशशरीरतया परिमितभूषणा सुदक्षिणाऽपि शोभते स्म।

हिन्दी—कृश दुर्बल शरीर के कारण दो एक आभूषण पहनी हुई, तथा पीले मुख से सुशोभित सुदक्षिणा, उस रात्रि के समान दीख पड़ती थी, जिसमें भोर में थोड़े से तारे बचे रहते हैं और चन्द्रमा भी फीका पड़ जाता है ॥२॥

तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम् ॥ ३ ॥

सञ्जीविनी—क्षितीश्वरो दिलीपः रहसि मृत्सुरभि मृदा सुगन्धि तस्या आननं तदाननं सुदक्षिणामुखमुपाघ्राय तृप्तिं नाययौ। कः कमिव। शुचिव्यपाये ग्रीष्मावसाने। "शुचिः शुद्धेऽनुपहते शृङ्गाराषाढयोः सिते। ग्रीष्मे हुतवहेऽपि स्यादुपधाशुद्धमन्त्रिणि" इति विश्वः। पयोमुचां मेघानां पृषतैर्बिन्दुभिः। 'पृषन्ति बिन्दुपृषताः' इत्यमरः। सिक्तमुक्षितं वनराज्याः पल्वलमुपाघ्राय करी गज इव। अत्र करिवनराजिपल्वलानां कान्तकामिनीवदनसमाधिरनुसंधेयः। गर्भिणीनां मृद्भक्षणं लोकप्रसिद्धमेव। एतेन दोहदाख्यं गर्भलक्षणमुच्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः—क्षितीश्वरः, रहसि, मृत्सुरभि, तदाननम्, उपाघ्राय, तृप्तिं, न, आययौ, शुचिव्यपाये, पयोमुचां, पृषतैः, सिक्तं, वनराजिपल्वलम्, "उपाघ्राय" करी, इव।

वाच्य०—क्षितीश्वरेण तृप्तिः नायये, करिणा इव।

व्याख्या—क्षितेः = पृथिव्याः, ईश्वरः = स्वामी, इति क्षितीश्वरः = दिलीपः। रहसि = एकान्ते, मृदा = मृत्तिकया, सुरभि = सुगन्धि, तत् मृत्सुरभि। तस्याः = सुदक्षिणायाः, आननं = मुखमिति तदाननम्, "आननं मुखमि"त्यमरः। उपाघ्राय = घ्रात्वा, तृप्तिं = सन्तोषं, न आययौ = नहि प्राप। "कः कमिव" शुचेः = ग्रीष्मस्य, व्यपायः = नाशस्तस्मिन्, शुचिव्यपाये। पयांसि मुञ्चन्तीति पयोमुचस्तेषां पयोमुचां = मेघानां, पृषतैः = बिन्दुभिः, सिक्तं = वृष्टम्, आर्द्रीकृतमित्यर्थः। वनानाम् = अरण्यानां, राजिः = पङ्क्तिः, तस्याः पल्वलम् = अल्पजलाशयम् वनराजिपल्वलम् "पल्वलं चाल्पसरः" इत्यमरः। उपाघ्राय = घ्रात्वा, करी = वनगज इव = यथा।

समा०—क्षितेः ईश्वरः क्षितीश्वरः। मृदा सुरभि, तत् मृत्सुरभि। तस्या आननं तदाननम्, तत् तदाननम्। शुचेः व्यपायः शुचिव्यपायः, तस्मिन् शुचिव्यपाये। पयांसि मुञ्चन्तीति पयोमुचः; तेषां पयोमुचाम्। वनानां राजयः वनराजयः, वनराजीनां पल्वलं वनराजिपल्वलम्, तत् वनराजिपल्वलम्। करः (शुण्डा) अस्यास्तीति करी।

अभि०—यथा वनगजः, ग्रीष्मावसाने मेघाम्बुकणैः क्लिन्नमल्पजलाशयं घ्रात्वा तृप्तिं न प्राप्नोति एवं दिलीपोऽपि एकान्ते मृत्सुरभि सुदक्षिणामुखमाघ्राय सन्तोषं न लेभे।

हिन्दी—राजा दिलीप, मिट्टी खाने से महारानी सुदक्षिणा का मुख जो सोन्धा हो गया था उसे एकान्त में बार-बार सूँघकर वैसे ही तृप्त नहीं होते थे जैसे गर्मी के अन्त में प्रथम

वर्षा होने से जंगल के छोटे छोटे तालों की मिट्टी सोंधी हो जाती है और उसे सूंघकर वनगज तृप्त नहीं होता ॥ ३ ॥

दिवं मरुत्वानिव भोक्ष्यते भुवं दिगन्तविश्रान्तरथो हि तत्सुतः ।
अतोऽभिलाषे प्रथमं तथाविधे मनो बबन्धान्यरसान्विलङ्घ्य सा ॥ ४ ॥

सञ्जीविनी—हि यस्माद्दिगन्तविश्रान्तरथश्चक्रवर्ती तस्याः सुतस्तत्सुतः । मरुत्वानिन्द्रः । 'इन्द्रो मरुत्वान्मघवा' इत्यमरः । दिवं स्वर्गमिव भुवं भोक्ष्यते । "भुजोऽनवने" इत्यात्मनेपदम् । अतः प्रथमं सा सुदक्षिणा तथाविधे भूविकारे मृद्रूपे अभिलष्यत इत्यभिलाषो भोग्यवस्तु तस्मिन् । कर्मणि घञ्प्रत्ययः । रस्यन्ते स्वाद्यन्त इति रसा भोग्यार्थाः । अन्ये च ते रसाश्च तान्विलङ्घ्य विहाय मनो बबन्ध । विदधावित्यर्थः । दोहदहेतुकस्य मृद्भक्षणस्य पुत्रभोगसूचनार्थत्वमुत्प्रेक्षितम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हि दिगन्तविश्रान्तरथः, तत्सुतः, मरुत्वान्, दिवम्, इव, भुवं, भोक्ष्यते, अतः प्रथमं, सा तथाविधे, अभिलाषे, अन्यरसान्, विलङ्घ्य, मनः, बबन्ध ।

वाच्य०—हि, दिगन्तविश्रान्तरथेन तत्सुतेन मरुत्वता द्यौरिव भूः भोक्ष्यतेऽतः प्रथमं तया तथाविधेऽभिलाषेऽन्यरसान् विलंघ्य मनः बबन्धे ।

व्याख्या—हि = यतः । दिशाम् = काष्ठानाम् , अन्ताः = प्रान्ताः । तेषु विश्रान्तः = कृतविश्रामः, गतः, इति दिगन्तविश्रान्तः । दिगन्तविश्रान्तः रथः = स्यन्दनं यस्य स दिगन्तविश्रान्तरथः चक्रवर्ती इत्यर्थः । तस्याः = सुदक्षिणायाः । सुतः = पुत्रः, इति तत्सुतः मरुत्वान् = इन्द्रः, दिवं = स्वर्गम् , इव = यथा, भुवं = पृथिवीं, भोक्ष्यते = उपभोक्ष्यते, अतः = अस्मात् कारणात् , प्रथमं पूर्वम् , सा सुदक्षिणा तथा विधा इव विधा = प्रकारो यस्य सः तस्मिन् तथाविधे = मृद्रूपे, अभिलष्यते इत्यभिलाषस्तस्मिन् अभिलाषे = मनोरथे, अन्ये च ते रसा अन्यरसास्तान् अन्यरसान् = अपरान्स्वादान् विलंघ्य = तिरस्कृत्य परित्यज्येत्यर्थः, मनः = चित्तं, बबन्ध = नियोजयामास = निदधावित्यर्थः ।

समा०—मरुतः सन्त्यस्येति मरुत्वान् । दिशामन्ताः दिगन्ताः, दिगन्तेषु विश्रान्तः रथः यस्य सः दिगन्तविश्रान्तरथः । तस्याः सुतः तत्सुतः । तथा विधेव विधा यस्य सः तथाविधः, तस्मिन् तथाविधे । अन्ये च ते रसाश्च अन्यरसाः, तान् अन्यरसान् ।

अभि०—देवेन्द्रः स्वर्गमिव सुदक्षिणातनयोऽपि चक्रवर्ती भूत्वा सम्पूर्णां ससागरां महीं महीं भोक्ष्यते, इति हेतोः सुदक्षिणा, सर्वान् पदार्थान् परित्यज्य केवलं प्रथमं मृद्भक्षणरूपेऽभिलाषे मनः बबन्ध ।

हिन्दी—चारों दिशाओं के अन्त तक गया है रथ जिसका, ऐसा सुदक्षिणा का पुत्र भविष्य में सम्पूर्ण पृथिवी पर उसी प्रकार राज्य करेगा जिस प्रकार इन्द्र स्वर्ग पर राज्य करता है। इसीलिये मानो रानी होकर भी सुदक्षिणा ने सब पदार्थ छोड़कर पहले ही से मिट्टी खाना आरम्भ कर दिया ॥ ४ ॥

न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी ।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः प्रियासखीरुत्तरकोसलेश्वरः ॥ ५ ॥

सञ्जीविनी—मगधस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री मागधी सुदक्षिणा । "द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्" इत्यण्प्रत्ययः । ह्रिया किञ्चित्किमपीप्सितमिष्टं मे मह्यं न शंसति नाचष्टे । केषु वस्तुषु स्पृहावतीत्यनुवेलमनुक्षणमादृत आदृतवान् । कर्तरि क्तः । 'आदृतौ सादरार्चितौ' इत्यमरः । प्रियायाः सखीः सहचरीरुत्तरकोसलेश्वरो दिलीपः पृच्छति स्म पप्रच्छ । "लट् स्मे" इत्यनेन भूतार्थे लट् । सखीनां विश्रम्भभूमित्वादिति भावः ॥५॥

अन्वयः—मागधी, ह्रिया, किंचित्, ईप्सितं, मे, न शंसति, केषु, वस्तुषु, स्पृहावती, इति, अनुवेलम्, आदृतः, प्रियासखीः उत्तरकोसलेश्वरः, पृच्छति, स्म ।

वाच्य०—मागध्या शंस्यते, स्पृहावत्या "भूयते" आदृतेन, प्रियासख्यः, उत्तरकोसलेश्वरेण, पृच्छयन्ते स्म ।

व्याख्या—मगधस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री मागधी = मगधराजसुता सुदक्षिणा । ह्रिया = लज्जया । किञ्चित् = किमपि, वस्तु, ईप्सितं = वाञ्छितं, मे = मह्यम्, न = नहि, शंसति = कथयति । केषु वस्तुषु = केषु पदार्थेषु, स्पृहावती = इच्छावती । इति = एवं प्रकारेण, वेलायामित्यनुवेलम् वारं वारम्, आदृतः = आदृतवान्, सादरमित्यर्थः, "सन्" । प्रियायाः = सुदक्षिणायाः सख्यः = सहचर्यस्ताः, प्रियासखीः सुदक्षिणायाः वयस्याः । उत्तरे च ते कोसलाः उत्तरकोसलाः, तेषामीश्वरः उत्तरकोसलेश्वरः = राजा दिलीपः । पृच्छति स्म = पृष्टवान् ।

समा०—मगधस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री मागधी । ईप्सा अस्य संजाता इति ईप्सितम्, तत् ईप्सितम् । स्पृहा अस्या अस्तीति स्पृहावती । वेलायां वेलायामित्यनुवेलम् । प्रियायाः सख्यः प्रियासख्यः, ताः प्रियासखीः । उत्तरे च ते कोसलाश्च उत्तरकोसलाः उत्तरकोसलानाम् ईश्वरः उत्तरकोसलेश्वरः ।

अभि०—सुदक्षिणा लज्जया मे किमपि स्वाभीष्टं न कथयति, अतः न जाने केषु केषु तस्या अभिलाष इति प्रतिक्षणं सुदक्षिणायाः सखीः सादरं राजा दिलीपः पृच्छति स्म ।

हिन्दी०—सुदक्षिणा लज्जा से अपनी इच्छा मुझ से नहीं कहती है, अतः किन-किन वस्तुओं को वह चाहती है इस बात को बार-बार सुदक्षिणा की सखियों से आदर पूर्वक कोसलाधिपति दिलीप पूछते थे ॥ ५ ॥

उपेत्य सा दोहददुःखशीलतां यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम् ।
न हीष्टमस्य त्रिदिवेऽपि भूपतेरभूदनासाद्यमधिज्यधन्वनः ॥ ६ ॥

सञ्जीविनी—दोहदं गर्भिणीमनोरथः । 'दोहदं दौर्हृदं श्रद्धालालसं च समं स्मृतम्' इति हलायुधः । सा सुदक्षिणा दोहदेन गर्भिणीमनोरथेन दुःखशीलतां दुःखस्वभावतामुपेत्य प्राप्य यद्वस्तु वव्रे आचकाङ्क्षे तदाहृतमानीतम् । भर्त्रेति शेषः । अपश्यदेव अलभतेत्यर्थः । कुतः ? हि यस्मादस्य भूपतेस्त्रिदिवेऽपि स्वर्गेऽपीष्टं वस्त्वनासाद्यमनवाप्यं नाभूत् । किं यान्यथा नेत्याह—

अधिज्यधन्वन इति । नहि वीरपत्नीनामलभ्यं नाम किंचिदस्तीति भावः । अत्र वाग्भटः—"पादशोफो विदाहोऽन्ते श्रद्धा च विविधात्मिका" इति । एतच्च पत्नीमनोरथपूरणाकरणे दृष्टदोषसंभवात् । न तु राज्ञः प्रीतिलौल्यात् । तदुक्तम्—"देयमप्यहितं तस्यै हिताय हितमल्पकम् । श्रद्धाविघाते गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा ॥" अन्यत्र च—'दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात्' इति ॥ ६ ॥

अन्वयः—सा, दोहददुःखशीलताम्, उपेत्य, यद्, ऐच्छत्, तद्, आहृतम् अपश्यत्, एव, हि, अधिज्यधन्वनः, अस्य, भूपतेः, त्रिदिवे, अपि इष्टम्, अनासाद्यं, न, अभूत् ।

वाच्य०—तया अदृश्यत, इष्टेन अनासाद्येन नाभावि ।

व्याख्या०—सा = सुदक्षिणा । दुःखशीलाया भावो दुःखशीलता, दोहमाकर्षं ददाति तद् दोहदं, तेन दोहदेन = गर्भिणीमनोरथेन दुःखशीलता = दुःखस्वभावता, तां दोहददुःखशीलताम् । उपेत्य = प्राप्य । यद् = किमपि वस्तु, वव्रे = आचकांक्षे, तद् = आकांक्षितं वस्तु, आहृतम् = आनीतम्, अपश्यत् = अवलोकितवती, एव इत्यवधारणे । अलभतेत्यर्थः । "कुतः" हि = यस्मात् । अधिज्यम् = आरोपितमौर्वीकं, धनुः = चापं यस्य सः, तस्य अधिज्यधन्वनः, अस्य = एतस्य, भूपतेः = राज्ञो दिलीपस्य । त्रिदिवे = स्वर्गे, अपि इष्टम् = अभिलषितं, वस्तु, न आसाद्यम् अनासाद्यम् = अप्राप्यं, न = नहि, अभूत् = आसीत् ।

समा०—दुःखं शीलं यस्याः सा दुःखशीला, दोहदेन दुःखशीला, दोहददुःखशीला, दोहददुःखशीलायाः भावः दोहददुःखशीलता, तां दोहददुःखशीलताम् । अधि ज्या यस्य तद् अधिज्यम्, अधिज्यं धनुः यस्य सः अधिज्यधन्वा, तस्य अधिज्यधन्वनः । भुवः पतिः भूपतिः, तस्य भूपतेः । आसादयितुं योग्यं आसाद्यम्, न आसाद्यम् अनासाद्यम् ।

अभि०—गर्भावस्थायां सुदक्षिणा यत् किमपि वस्तु, अभिलषति स्म तत् सर्वं सुदक्षिणायाः सखीमुखात् ज्ञात्वा स्वर्गस्थमपि वस्तु राजा दिलीपः स्वप्रतापादानीय तत्पुरः स्थापितवान् ।

हिन्दी—वह सुदक्षिणा गर्भावस्था के कष्टों को सहती हुई जो जो वस्तु चाहती थी, वह वस्तु उसी समय रानी को मिल जाती थी, क्योंकि धनुषधारी राजा दिलीप अपने पराक्रम से स्वर्ग की वस्तु भी ला सकते थे, फिर इस लोक की तो बात ही क्या ॥ ६ ॥

क्रमेण निस्तीर्य च दोहदव्यथां प्रचीयमानावयवा रराज सा ।
पुराणपत्रापगमादनन्तरं लतेव सन्नद्धमनोज्ञपल्लवा ॥ ७ ॥

सञ्जीविनी—सा सुदक्षिणा क्रमेण दोहदव्यथां च निस्तीर्य प्रचीयमानावयवा पुष्यमाणावयवा सती । पुराणपत्राणामपगमान्नाशादनन्तरं सन्नद्धाः संजाताः प्रत्यग्रत्वान्मनोज्ञाः पल्लवा यस्याः सा लतेव रराज ॥ ७ ॥

अन्वयः—सा, सुदक्षिणा, क्रमेण, दोहदव्यथां, निस्तीर्य, प्रचीयमानावयवा, "सती" पुराणपत्रापगमात्, अनन्तरं, सन्नद्धमनोज्ञपल्लवा, लता इव, रराज ।

वाच्य०— या प्रचीयमानावयवया, सन्नद्धमनोज्ञपल्लवया, लतया इव रेजे।

व्याख्या—सा=सुदक्षिणा। क्रमेण=क्रमशः। दोहदेन=गर्भिणीमनोरथेन, व्यथा=दुःखं तां दोहदव्यथां, निस्तीर्य=अतिक्रम्य। प्रचीयन्त इति प्रचीयमानाः, प्रचीयमानाः=पुष्यमाणाः, अवयवाः=हस्तपादादयो यस्याः सा प्रचीयमानावयवा "सती"। पुराणानि=प्राचीनानि, च तानि पत्राणि=पर्णानि, तेषाम्, अपगमः नाशस्तस्मात्, पुराणपत्रापगमात् 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णम्' इत्यमरः। सन्नद्धाः=सञ्जाताः मनोज्ञाः=मनोहराः, पल्लवाः=किसलयाः यस्याः सा सन्नद्धमनोज्ञपल्लवा, "पल्लवोऽस्त्री किसलयम्" इत्यमरः। लता=वल्ली, "वल्ली तु व्रततिर्लता" इत्यमरः। इव=यथा, रराज=शुशुभे।

समा०—दोहदस्य व्यथा दोहदव्यथा, तां दोहदव्यथाम्। प्रचीयमानाः अवयवाः यस्याः सा प्रचीयमानावयवा। पुराणानि च तानि पत्राणि च पुराणपत्राणि, पुराणपत्राणाम् अपगमः पुराणपत्रापगमः, तस्मात् पुराणपत्रापगमात्। न विद्यते अन्तरं यस्य तत् अनन्तरम्, सन्नद्धाः मनोज्ञाः पल्लवाः यस्याः सा सन्नद्धमनोज्ञपल्लवा।

अभि०—सा सुदक्षिणा क्रमशः गर्भिणीमनोरथदुःखभावतामतिक्रम्य पुरातनपत्रविनाशानन्तरं संजातनूतनपल्लवा लतेव पूर्णमनोरथतया पुष्यमाणावयवा सती शुशुभे।

हिन्दी—धीरे धीरे गर्भ का प्रारम्भिक कष्ट बीत जाने पर रानी सुदक्षिणा वैसे ही हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर लगने लगी जैसे वसन्त ऋतु में लता पुराने पत्ते गिरा कर नये कोमल पत्तों से लदकर सुशोभित होती है ॥७॥

दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम्।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः पङ्कजकोशयोः श्रियम् ॥८॥

सञ्जीविनी—दिनेषु दोहददिवसेषु गच्छत्सु सत्सु नितान्तपीवरमतिस्थूलम्। आ समन्तान्नीले मुखे चूचुके यस्य तत्। तदीयं स्तनद्वयम्। भ्रमरैरभिलीनयोरभिव्याप्तयोः सुजातयोः सुन्दरयोः पङ्कजकोशयोः पद्ममुकुलयोः श्रियं तिरश्चकार। अत्र वाग्भटः—'अश्लिष्टौ स्तनौ पीनौ श्वेतान्तौ कृष्णचूचुकौ" इति ॥ ८ ॥

अन्वयः—दिनेषु गच्छत्सु "सत्सु" नितान्तपीवरम्, आनीलमुखं तदीयं स्तनद्वयम्, भ्रमराभिलीनयोः, सुजातयोः पङ्कजकोशयोः श्रियं तिरश्चकार।

वाच्य०—नितान्तपीवरेणानीलमुखेन तदीयेन स्तनद्वयेन श्रीः तिरश्चक्रे।

व्याख्या—दिनेषु=दिवसेषु दोहददिवसेष्वित्यर्थः। गच्छत्सु=व्रजत्सु, सत्सु। नितान्तम्=अत्यन्तं पीवरं=स्थूलमिति नितान्तपीवरम्। आसमन्तात् नीले=कृष्णे, मुखे=चूचुके यस्य तत आनीलमुखं। तस्याः=सुदक्षिणाया इदं तदीयं। स्तनयोः=कुचयोः, द्वयं=द्वितयमिति स्तनद्वयम्। भ्रमरैः=द्विरेफैः, अभिलीनौ=व्याप्तौ, तयोः, भ्रमराभिलीनयोः, सुष्ठु जातौ सुजातौ तयोः सुजातयोः=सुन्दरयोः। पङ्के जाते पङ्कजे, पङ्कजयोः=कमलयोः कोशौ=मुकुलौ, तयोः पङ्कजकोशयोः। श्रियं=शोभां। तिरश्चकार=अधरीचकार।

समा०—नितान्तं पीवरं नितान्तपीवरम्। तस्या इदं तदीयम्। आनीलं मुखं यस्य तत् आनीलमुखम्। स्तनयोर्द्वयम्। भ्रमरैः अभिलीनौ भ्रमराभिलीनौ, तयोः भ्रमराभिलीनयोः। पङ्के जाते पङ्कजे, पंकजयोः कोशौ पंकजकोशौ, तयोः पंकजकोशयोः।

अभि०—भ्रमरसंयोगात् कमलमुकुलयोः यादृशी शोभा भवति अस्याः सुदक्षिणाया अत्यन्तस्थूलयोः स्तनयोरपि कृष्णवर्णचूचुकतया तादृश्येव शोभाऽऽसीत्।

हिन्दी—थोड़े दिनों में सुदक्षिणा के बड़े बड़े स्तनों की ढुण्टियाँ काली पड़ गईं, इससे रानी के स्तन ऐसे सुन्दर लगने लगे जिनकी शोभा के सामने वे कमल की कलियाँ भी फीकी पड़ जाती थीं जिनपर भौंरे बैठे हों॥८॥

निधानगर्भामिव सागराम्बरां शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्।
नदीमिवान्तःसलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्त्वां महिषीममन्यत॥९॥

सञ्जीविनी—नृपः ससत्त्वामापन्नसत्त्वाम्। गर्भिणीमित्यर्थः। 'आपन्नसत्त्वा स्याद्गुर्विण्यन्तर्वत्नी च गर्भिणी' इत्यमरः। महिषीं सुदक्षिणाम्। निधानं निधिर्गर्भे यस्यास्तां सागराम्बरां समुद्रवसनाम्। भूमिमिवेत्यर्थः। 'भूतधात्री रत्नगर्भा जगती सागराम्बरा' इति कोशः। अभ्यन्तरे लीनः पावको यस्यास्तां शमीमिव। शमीतरौ वह्निरस्तीत्यत्र लिङ्गं शमीगर्भादग्निं जनयतीति याज्ञिकाः। अन्तःसलिलामन्तर्गतजलां सरस्वतीं नदीमिव। अमन्यत। एतेन गर्भस्य भाग्यवत्त्वतेजस्वित्वपावनत्वानि विवक्षितानि॥ ९॥

अन्वयः—**नृपः ससत्त्वां, महिषीं, निधानगर्भां, सागराम्बरामिव, अभ्यन्तरलीनपावकां, शमीम् इव, अन्तःसलिलां सरस्वतीम्, नदीम् इव, अमन्यत।**

वाच्य०—नृपेण, ससत्त्वा, महिषी, निधानगर्भा सागराम्बरा इव, अभ्यन्तरलीनपावका शमी इव, अन्तःसलिला सरस्वती नदी इव अमन्यत।

व्याख्या—नृपः=राजा दिलीपः। सत्त्वेन=प्राणिना, सहिता ससत्त्वा, तां ससत्त्वां=गर्भिणीमित्यर्थः। महिषी=कृताभिषेकां, सुदक्षिणामित्यर्थः। निधानं=निधिः, गर्भे=अभ्यन्तरे यस्याः सा, तां निधानगर्भाम्। सागरः=समुद्रः, एव, अम्बरम्=वस्त्रं यस्याः सा, तां सागराम्बराम्, इव=यथा, भूमिमिवेत्यर्थः। अभ्यन्तरे=मध्ये, लीनः=निगूढः, पावकः=वह्निः यस्याः सा ताम्, अभ्यन्तरलीनपावकां। शमीं=शिवां=वृक्षविशेषमित्यर्थः, इव=यथा अन्तः मध्ये, सलिलं=जलं यस्याः सा तामन्तःसलिलां। सरोऽस्याः अस्तीति सरस्वती तां सरस्वतीं =नदीम्, इव=यथा, अमन्यत=अमंस्त=मेने इत्यर्थः।

समा०—नृन् पातीति नृपः। सत्त्वेन सह वर्तते इति ससत्त्वा, तां ससत्त्वाम्। निधानं गर्भे यस्याः सा निधानगर्भा; तां निधानगर्भाम्। सागर एव अम्बरं यस्याः सा सागराम्बरा, तां सागराम्बराम्। अभ्यन्तरे लीनः पावकः यस्याः सा अभ्यन्तरलीनपावका, ताम् अभ्यन्तरलीनपावकाम्। अन्तः सलिलं यस्याः सा अन्तःसलिला, ताम् अन्तःसलिलाम्। सरांसि सन्त्यस्याम् इति सरस्वती, तां सरस्वतीम्।

अभि०—राजा दिलीपः रत्नगर्भां पृथ्वीमिव, स्वमध्यस्थितवह्नियुतां शमीमिव, गुप्तजलां सरस्वतीनदीमिव सगर्भां सुदक्षिणां मेने।

हिन्दी—राजा दिलीप, गर्भवती सुदक्षिणा को रत्नगर्भा पृथिवी के समान, अपने भीतर अग्नि को रखनेवाले शमी वृक्ष के समान तथा भीतर ही भीतर जल बहानेवाली सरस्वती नदी के समान समझते थे ॥ ९ ॥

प्रियानुरागस्य मनःसमुन्नतेर्भुजार्जितानां च दिगन्तसम्पदाम्।
यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रिया धृतेश्च धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः ॥१०॥

सञ्जीविनी—धीरः स राजा प्रियायामनुरागस्य स्नेहस्य। मनसः समुन्नतेरौदार्यस्य। भुजेन भुजबलेन करेणैवार्जितानाम्। न तु वाणिज्यादिना। दिगन्तेषु संपदाम्। धृतेः पुत्रो मे भविष्यतीति संतोषस्य च। 'धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु' इति विश्वः। सदृशीरनुरूपाः। पुमान्सूयतेऽनेनेति पुंसवनम्। तदादिर्यासान्ताः क्रिया यथाक्रमं क्रममनतिक्रम्य व्यधत्त कृतवान्। आदिशब्देनानवलोभनसीमन्तोन्नयने गृह्येते। अत्र मासि द्वितीये तृतीये वा पुंसवनम्। यदाह पारस्करः—'पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्' इति। 'चतुर्थेऽनवलोभनम्' इत्याश्वलायनः। 'षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तोन्नयनम्' इति याज्ञवल्क्यः ॥१०॥

अन्वयः—धीरः, सः, प्रियानुरागस्य, मनःसमुन्नतेः, भुजार्जितानां दिगन्तसम्पदां, च, धृतेः, च, सदृशीः, पुंसवनादिकाः, क्रियाः यथाक्रमं, व्यधत्त।

वाच्य०—धीरेण, तेन, सदृश्यः, क्रिया व्यधीयन्त।

व्याख्या—धीरः=प्राज्ञः "धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः" इत्यमरः। पण्डित इत्यर्थः, सः=राजा दिलीपः, प्रियायां=सुदक्षिणायाम्, अनुरागः=स्नेहः, तस्य प्रियानुरागस्य, मनसः=चित्तस्य, समुन्नतिः=औदार्यम्, इति॰तस्याः मनःसमुन्नतेः, भुजाभ्यां=स्वबाहुभ्याम्, अर्जिताः=प्राप्ताः, तासां भुजार्जितानाम्। दिशामन्ता दिगन्तास्तेषु दिगन्तेषु=काष्ठावसानेषु। सम्पदः=सम्पत्तयः तासां, दिगन्तसम्पदाञ्च। धृतेः=सन्तोषस्य, पुत्रो मे भविष्यतीत्येवंरूपस्येत्यर्थः। सदृशीः=अनुरूपाः। पुमान्=नरः, सूयतेऽनेन तत् पुंसवनम्, पुंसवनम् आदिः, यासां ताः पुंसवनादिकाः, क्रियाः=संस्कारान्। क्रममनतिक्रम्येति यथाक्रमं=क्रमशः; व्यधत्त=कृतवान्।

समा०—प्रियायाम् अनुरागः प्रियानुरागः, तस्य प्रियानुरागस्य। मनसः समुन्नतिः मनःसमुन्नतिः, तस्याः मनःसमुन्नतेः। भुजेन अर्जिताः भुजार्जिताः, तासां भुजार्जितानाम्। दिशामन्ताः दिगन्ताः, दिगन्तानां सम्पदः दिगन्तसम्पदः, तासां दिगन्तसम्पदाम्। क्रममनतिक्रम्य वर्तते इति यथाक्रमम्। पुमान् सूयते अनेनेति पुंसवनम्, पुंसवनम् आदिः (क्रिया) यासां ताः पुंसवनादिकाः, ताः पुंसवनादिकाः।

अभि०—राजा दिलीपः, स्ववैभवानुसारं स्व प्रियास्नेहानुकूलं स्वकीयालौकिकसन्तोषानुरूपं च पुंसवनादिगर्भसंस्कारान् कृतवान्।

हिन्दी—बुद्धिमान् राजा दिलीप, जितना रानी सुदक्षिणा को प्यार करते थे, और जितनी उन्हें प्रसन्नता थी तथा जैसा वैभवशाली उनका राज्य था तदनुरूप ठाट-बाट से ही उन्होंने पुंसवन आदि संस्कार भी किये ॥१०॥

सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् प्रयत्नमुक्तासनया गृहागतः ।
तयोपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया ननन्द पारिप्लवनेत्रया नृपः ॥११॥

सञ्जीविनी—गृहागतो नृपः सुरेन्द्राणां लोकपालानां मात्राभिरंशैराश्रितस्यानुप्रविष्टस्य गर्भस्य गौरवाद् भारात् प्रयत्नेन मुक्तासनया आसनादुत्थितयेत्यर्थः । उपचारस्याञ्जलावञ्जलीकरणे खिन्नहस्तया पारिप्लवनेत्रया तरलाक्ष्या "चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे" इत्यमरः । तया सुदक्षिणया ननन्द । "सुरेन्द्रमात्राश्रित—" इत्यत्र मनुः—'अष्टाभिश्च सुरेन्द्राणां मात्राभिर्निर्मितो नृपः' इति ।

अन्वयः—गृहागतः नृपः, सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् प्रयत्नमुक्तासनया, उपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया, पारिप्लवनेत्रया, तया, ननन्द ।

वाच्य०—गृहागतेन तेन ननन्दे ।

व्याख्या—गृहमागत इति गृहागतः = भवनप्राप्तः, नृपः = राजा दिलीपः । सुरेन्द्राणां = लोकपालानां, मात्राः = अंशास्ताभिः, आश्रितः = अनुप्रविष्टः गर्भः = भ्रूणः, तस्य गौरवं = भारः, तस्मात्, सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् । प्रयत्नेन = महता प्रयासेन, मुक्तं = त्यक्तम्, आसनं = पीठं यया सा, तया प्रयत्नमुक्तासनया । उपचाराय = अभिवादनरूपाय, यः अञ्जलिः = करसम्पुटस्तेन, खिन्नौ दुःखितौ, हस्तौ करौ यस्याः सा, तया उपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया । पारिप्लवे = चञ्चले, नेत्रे = नयने यस्याः सा, तया पारिप्लवनेत्रया । तया = सुदक्षिणया । ननन्द = आनन्दं प्राप्तवान् ।

समा०—गृहम् आगतः गृहागतः । नॄन् पातीति नृपः सुराणाम् इन्द्राः सुरेन्द्राः, सुरेन्द्राणां मात्राः सुरेन्द्रमात्राः सुरेन्द्रमात्राभिः आश्रितः सुरेन्द्रमात्राश्रितः सुरेन्द्रमात्राश्रितश्चासौ गर्भश्च सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भः, गुरोर्भावः गौरवम्, सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भस्य गौरवं सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवम्, तस्मात् सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भगौरवात् । प्रयत्नेन मुक्तम् आसनं यया सा प्रयत्नमुक्तासना, तया प्रयत्नमुक्तासनया । उपचाराय अञ्जलिः उपचाराञ्जलिः, उपचाराञ्जलौ खिन्नौ हस्तौ यस्याः सा उपचाराञ्जलिखिन्नहस्ता, तया उपचाराञ्जलिखिन्नहस्तया । पारिप्लवे नेत्रे यस्याः सा पारिप्लवनेत्रा, तया पारिप्लवनेत्रया ।

अभि०—सुदक्षिणाभवनं प्राप्तो राजा दिलीपः, गर्भभारालसशरीरां स्वागतार्थं कष्टेनोत्थितां प्रणामाञ्जलिकरणेऽपि खिन्नहस्तां चपलाक्षीं सुदक्षिणां दृष्ट्वा, आसन्नप्रसवेयमिति ज्ञात्वा ननन्द ।

हिन्दी—राजा दिलीप जब रनिवास में आते, तब सुदक्षिणा, लोकपालों के अंश से भरे हुए गर्भ के भार से उनके स्वागत के लिये बड़ी कठिनाई से उठ पाती, और उनको प्रणाम

करने के लिये जब हाथ जोड़ती तो हाथ ढीले पड़ जाते थे एवं परिश्रम से चञ्चल आँखों में आँसू आ जाते थे, यह सब देखकर राजा बड़े आनन्दित हो जाते थे, क्योंकि राजा इन सब चिह्नों से जान गये थे कि अब पुत्रोत्पत्ति में विलम्ब नहीं है ॥ ११ ॥

कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथ गर्भभर्मणि ।
पतिः प्रतीतः प्रसवोन्मुखीं प्रियां ददर्श काले दिवमभ्रितामिव ॥ १२ ॥

सञ्जीविनी—अथ । कुमारभृत्या बालचिकित्सा । "संज्ञायां समजनिषद" इत्यादिना क्यप् । तस्यां कुशलैः कृतिभिः । 'कृती कुशल इत्यपि' इत्यमरः । 'भिषग्वैद्यौ चिकित्सके' इत्यमरः । गर्भस्य । भर्मणि 'भरणे पोषणे भर्म' इति हैमः । 'भूतिर्भर्म' इति शाश्वतः । भृञो मनिन्प्रत्ययः । 'गर्भकर्मणि' इति पाठे गर्भाधानप्रतीतावौचित्यभङ्गः । अनुष्ठिते कृते सति । काले दशमे मासि । अन्यत्र ग्रीष्मावसाने । प्रसवस्य गर्भमोचनस्योन्मुखीम् । आसन्नप्रसवामित्यर्थः 'स्यादुत्पादे फले पुष्पे प्रसवो गर्भमोचने' इत्यमरः । प्रियां भार्याम् । अभ्राण्यस्याः संजातान्यभ्रिता ताम् । "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इतीतच्प्रत्ययः । दिवमिव । पतिर्भर्ता प्रतीतो हृष्टः सन् । "ख्याते हृष्टे प्रतीतः" इत्यमरः । ददर्श दृष्टवान् ॥ १२ ॥

अन्वयः—अथ, कुमारभृत्याकुशलैः, आप्तैः, भिषग्भिः, गर्भभर्मणि अनुष्ठिते "सति" काले, प्रसवोन्मुखीं, प्रियाम्, अभ्रितां, दिवम् इव, पतिः, प्रतीतः "सन्" ददर्श ।

वाच्य०—प्रसवोन्मुखी प्रिया, अभ्रिता द्यौरिव पत्या प्रतीतेन ददृशे ।

व्याख्या०—अथ = अनन्तरम् । कुमाराणां = बालकानां, भृत्या = चिकित्सा, तस्यां, कुशलाः = निपुणाः, तैः, कुमारभृत्याकुशलैः । आप्तैः = हितैषिभिः, भिषग्भिः = वैद्यैः = चिकित्सकैरित्यर्थः । गर्भस्य = भ्रूणस्य, भर्म = भरणं, पोषणमिति यावत्, तस्मिन्, गर्भभर्मणि, अनुष्ठिते = विहिते = कृते, "सति" । काले = दशमे मासि, अन्यत्र ग्रीष्मावसाने वर्षारम्भकाले, इत्यर्थः । प्रसवस्य = गर्भविमोचनस्य, उन्मुखी = उद्युक्ता तां प्रसवोन्मुखीम् = आसन्नप्रसवामित्यर्थः, प्रियां = भार्याम्, अभ्राणि मेघाः अस्याः संजातानि इति अभ्रिता, तामभ्रितां = संजातमेघां, दिवम् = आकाशम्, इव = यथा, पतिः = भर्ता, प्रतीतः = प्रसन्नः, "सन्" ददर्श = अवलोकयामास ।

समा०—कुमाराणां भृत्या (चिकित्सा) कुमारभृत्या, कुमारभृत्यायां कुशलाः कुमारभृत्याकुशलाः, तैः कुमारभृत्याकुशलैः । गर्भस्य भर्म गर्भभर्म, तस्मिन् गर्भभर्मणि । प्रसवस्य उन्मुखी प्रसवोन्मुखी, तां प्रसवोन्मुखीम् । अभ्राणि अस्याः सञ्जातानि इति अभ्रिता, ताम् अभ्रिताम् ।

अभि०—अनन्तरं बालकचिकित्सानिपुणैः, आप्तैः वैद्यैः, गर्भस्य पोषणे कृते सति राजा दिलीपः प्रसन्नः सन्, आसन्नप्रसवां सुदक्षिणां वर्षारम्भकाले वर्षणोन्मुखीं मेघच्छन्नां दिवमिव ददर्श ।

हिन्दी—इसके बाद बच्चों की चिकित्सा करनेवाले बहुत से चतुर वैद्यों के द्वारा गर्भ की पुष्टि कर लेने पर, दसवें महीने में राजा दिलीप ने देखा कि शीघ्र पुत्र को जन्म देनेवाली सुदक्षिणा ऐसी लगती है जैसा कि वर्षा काल के आरम्भ में तुरन्त बरसने वाले मेघों से व्याप्त आकाश हो ॥ १२ ॥

ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैरसूर्यगैः सूचितभाग्यसम्पदम् ।
असूत पुत्रं समये शचीसमा त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम् ॥ १३ ॥

सञ्जीविनी—ततः शच्येन्द्राण्या समा । 'पुलोमजा शचीन्द्राणी' इत्यमरः । सुदक्षिणा समये प्रसूतिकाले सति । दशमे मासीत्यर्थः । 'दशमे मासि जायते' इति श्रुतेः । उच्चसंश्रयैरुच्चसंस्थैरुच्चस्थानगैरसूर्यगैरनस्तमितैः कैश्चिद्यथासंभवं पञ्चभिर्ग्रहैः सूचिता भाग्यसम्पद्यस्य तं पुत्रम् । त्रीणि प्रभावमन्त्रोत्साहात्मकानि साधनान्युत्पादकानि यस्याः सा त्रिसाधना शक्तिः । 'शक्तयस्तिस्रः प्रभावोत्साहमन्त्रजाः' इत्यमरः । अक्षयमर्थमिव । असूत । 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' इति धातुरात्मनेपदिषु पठ्यते । तस्माद्धातोः कर्तरि लङ् । अत्रेदमनुसंधेयम्—"अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः । दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः ॥" इति सूर्यादीनां सप्तानां ग्रहाणां मेषवृषभादयो राशयः श्लोकोक्तक्रमविशिष्टा उच्चस्थानानि, स्वस्वतुङ्गापेक्षया सप्तमस्थानानि च नीचानि । तत्रोच्चेष्वपि दशमादयो राशित्रिंशांशा यथाक्रममुच्चेषु परमोच्चा नीचेषु परमनीचा इति जातकश्लोकार्थः । अत्रांशस्त्रिंशो भागः । यथाह नारदः—'त्रिंशद्भागात्मकं लग्नम्' इति । सूर्यप्रत्यासत्तिर्ग्रहाणामस्तमयो नाम । तदुक्तं लघुजातके—'रविणास्तमयो योगो वियोगस्तूदयो भवेत्' इति । ते स्वोच्चस्थाः फलन्ति नास्तगा नापि नीचगाः, तदुक्तं राजमृगाङ्के—'स्वोच्चे पूर्णं स्वर्क्षेऽर्धं सुहृद्भे पादं द्विड्भेऽल्पं शुभं खेचरेन्द्रः । नीचस्थायी नास्तगो वा न किंचित्पादं नूनं स्वत्रिकोणे ददाति ।।" इति । तदिदमाह कविरुच्चसंश्रयैरसूर्यगैरिति च । एवं सति यस्य जन्मकाले पञ्चप्रभृतयो ग्रहाः स्वोच्चस्थाः स एव तुङ्गो भवति । तदुक्तं कूटस्थीये—"सुखिनः प्रकृष्टकार्या राजप्रतिरूपकाश्च राजानः । एकद्वित्रिचतुर्भिर्जायन्तेऽतः परं दिव्याः ।।" इति तदिदमाह पञ्चभिरिति ।। १३ ।।

अन्वयः—ततः, शचीसमा, समये "सति" उच्चसंश्रयैः, असूर्यगैः पञ्चभिः ग्रहैः, सूचितभाग्यसम्पदं, पुत्रं त्रिसाधना, शक्तिः, अक्षयम्, अर्थम्, इव असूत।

वाच्य०—शचीसमया सूचितभाग्यसम्पत् पुत्रः त्रिसाधनया शक्त्याक्षयोऽर्थ इव असूयत ।

व्याख्या—ततः = तदनन्तरं, शच्या = इन्द्राण्या, समा = तुल्या, इति शचीसमा सुदक्षिणेति यावत्, समये = प्रसूतिकाले "सति" दशमे मासीत्यर्थः, उच्चः संश्रयः येषां ते, तैः उच्चसंश्रयैः, उच्चस्थानस्थितैः, सूर्यं गच्छन्तीति सूर्यगास्तैः सूर्यगैः, न सूर्यगैः, असूर्यगैः = अनस्तमितैः, पञ्चभिः = पञ्चसंख्यकैः, ग्रहैः = "कैश्चित्" खेटैः, सूचिता = प्रकटिता, भाग्यस्य = भागधेयस्य "दैवं दिष्टं भागधेयम्" इत्यमरः । सम्पत् = सम्पत्तिः, यस्य सः, तम् सूचितभाग्यसम्पदं, पुत्रं = सुतम्, त्रीणि = प्रभावमंत्रोत्साहात्मकानि, साधनानि = उपायाः = उत्पादकानि यस्याः सा त्रिसाधना, शक्तिः = प्रभावजादयः, अक्षयं = नाशरहितम्, अर्थं = धनम्, इव = यथा, असूत = सुषुवे ।

समा०—शच्या समा शचीसमा । उच्चः संश्रयः येषां ते उच्चसंश्रयाः, तैः उच्चसंश्रयैः । सूर्यं गच्छन्तीति सूर्यगाः, न सूर्यगाः असूर्यगाः, तैः असूर्यगैः । भाग्यस्य सम्पत् भाग्यसम्पत्, सूचिता भाग्यसम्पत् यस्य सः सूचितभाग्यसम्पद्, तं सूचितभाग्यसम्पदम् । त्रीणि साधनानि यस्याः सा त्रिसाधना । न विद्यते क्षयः यस्य सः अक्षयः, तम् अक्षयम् ।

अभि०—यथा प्रभावमंत्रोत्साहजा शक्तिः राज्ञोऽक्षयं धनमुत्पादयति, एवमेव दिलीपभार्यापि पंचभिरुच्चकैः, अनस्तमितैर्ग्रहैः प्रथममेव सूचित भागधेयं पुत्रं जनयामास ।

हिन्दी—इसके पश्चात् इन्द्राणी के समान तेजवाली महारानी सुदक्षिणाने प्रसव का समय अर्थात् दसवां महीना आने पर, उसी प्रकार वह पुत्र उत्पन्न किया जिसके भाग्यशाली होने की सूचना, उच्चस्थान में बैठे तथा साथ में सूर्य के न होने से फल देने में समर्थ, पाँच ग्रह दे रहे थे, जिस प्रकार राजा तेज, उत्साह और ठीक मन्त्रणारूपी शक्ति से अचल सम्पत्ति पैदा कर लेता है ॥ १३ ॥

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥ १४ ॥

सञ्जीविनी—तत्क्षणं तस्मिन्क्षणे । "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति द्वितीया । दिशः प्रसेदुः प्रसन्ना बभूवुः । मरुतो वाताः सुखा मनोहरा ववुः । अग्निः प्रदक्षिणार्चिः सन्हविराददे स्वीचकार । इत्थं सर्वं शुभसूचकं बभूव । तथाहि तादृशां रघुप्रकाराणां भवो जन्म लोकाभ्युदयाय । भवतीति शेषः । ततो देवा अपि संतुष्टा इत्यर्थः ॥ १४ ॥

अन्वयः—तत्क्षणं, दिशः, प्रसेदुः, मरुतः, सुखाः, ववुः, अग्निः, प्रदक्षिणार्चिः "सन्" हविः, आददे, 'इत्थं' सर्वं, शुभशंसि, बभूव, हि, तादृशां, भवः, लोकाभ्युदयाय "भवति" ।

वाच्य०—दिग्भिः प्रसेदे, मरुद्भिः सुखैः ववे, अग्निना हविराददे, सर्वेण शुभशंसिना बभूवे, हि तादृशां भवेन लोकाभ्युदयाय भूयते ।

व्याख्या०—तत्क्षणं=तस्मिन् क्षणे, दिशः=काष्ठाः । 'दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः । प्रसेदुः=प्रसन्ना बभूवुः । मरुतः=वायवः, सुखाः=मनोहराः सुखकरा इत्यर्थः, ववुः=वान्ति स्म । अग्निः=वह्निः, दक्षिणं प्रगता इति प्रदक्षिणा, प्रदक्षिणा अर्चिः=ज्वाला यस्य सः प्रदक्षिणार्चिः, "सन्" हविः=हवनीयद्रव्यम्, आददे=स्वीचकार, इत्थमिति शेषः, सर्वम्=अखिलं, शुभं शंसति तच्छीलमिति शुभशंसि=शुभसूचकं, बभूव=आसीत्, हि=यतः, तादृशां=रघुसदृशजनानामित्यर्थः, भवः=उत्पत्तिः जन्म, लोकानां=जनानाम्, अभ्युदयाय=कल्याणाय, भवतीति शेषः ।

समा०—स चासौ क्षणश्च तत्क्षणः तं तत्क्षणम् ("कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति द्वितीया) । दक्षिणं प्रगता प्रदक्षिणा, प्रदक्षिणा अर्चिर्यस्य सः प्रदक्षिणार्चिः । शुभानि शंसितुं शीलमस्येति शुभशंसि । लोकस्य अभ्युदयः लोकाभ्युदयः, तस्मै लोकाभ्युदयाय ।

अभि०—दिलीपपुत्रोत्पत्तिसमये दिशः प्रसन्ना जाताः, वायुः शीतलः सुखकरो जातः, अग्निरपि प्रदक्षिणार्चिः सन् हविरादद। इत्थं सर्वं मंगलकरं जातं, यतः तादृशां महापुरुषाणां जन्म लोकहिताय भवति।

हिन्दी—बालक के जन्मसमय में चारों दिशाएँ निर्मल हो गईं। शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलने लगा। अग्नि दक्षिण दिशा की ओर घूमकर हवन की सामग्री ग्रहण करने लगा। इस प्रकार से सभी शकुन अच्छे-अच्छे हो रहे थे। यह उचित भी है, क्योंकि ऐसे महापुरुषों का जन्म संसार के हित के लिये ही होता है ॥ १४ ॥

अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव ॥ १५ ॥

सञ्जीविनी—'अरिष्टं सूतिकागृहम्' इत्यमरः। सूतिकागृहे शय्यां तल्पं परितोऽभितः। 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया। विसारिणा प्रसृतेन। सुजन्मनः शोभनोत्पत्तेः। 'जनुर्जननजन्मानि जनिरुत्पत्तिरुद्भवः' इत्यमरः। तस्य शिशोर्निजेन नैसर्गिकेण तेजसा सहसा हतत्विषः क्षीणकान्तयो निशीथदीपाः अर्धरात्रप्रदीपाः। 'अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ' इत्यमरः। आलेख्यसमर्पिताश्चित्रार्पिता इव बभूवुः। निशीथशब्दो दीपानां प्रभाधिक्यसंभावनार्थः ॥ १५ ॥

अन्वयः—अरिष्टशय्यां, परितः, विसारिणा, सुजन्मनः, तस्य, निजेन, तेजसा, सहसा, हतत्विषः, निशीथदीपाः, आलेख्यसमर्पिताः इव, बभूवुः।

वाच्य०—हतत्विड्भिः, निशीथदीपैः, आलेख्यसमर्पितैरिव बभूवे।

व्याख्या०—अरिष्टे = सूतिकागृहे शय्या = खट्वा इति ताम्, अरिष्टशय्यां। परितः = सर्वतः। विसारिणा = प्रसारिणा। सुष्ठु = शोभनं, जन्म = उत्पत्तिर्यस्य स सुजन्मा, तस्य सुजन्मनः, तस्य = सुदक्षिणाबालकस्य, निजेन = स्वकीयेन, तेजसा = भासा, कान्त्येत्यर्थः। सहसा = झटिति। हता = नष्टा, क्षीणा, त्विड् = कान्तिर्येषान्ते हतत्विषः। निशीथे = ऽर्धरात्रे, दीपाः = प्रदीपाः, इति निशीथदीपाः। आलेख्ये = चित्रे समर्पिताः = लिखिताः, आलेख्यसमर्पिताः, इव = यथा, बभूवुः = जाताः।

समा०—अरिष्टे शय्या अरिष्टशय्या, ताम् अरिष्टशय्याम्। वि (विशेषेण) सरतीति विसारि, तेन विसारिणा। सु (शोभनं) जन्म यस्य सः सुजन्मा, तस्य सुजन्मनः। निशीथे दीपाः निशीथदीपाः। हता त्विट् येषां ते हतत्विषः। आलेख्ये समर्पिताः आलेख्यसमर्पिताः।

अभि०—तत्क्षणोत्पन्नबालकस्य नैसर्गिकेण तेजसा क्षीणकान्तयः सन्तः सूतिकागृहे स्थापिताः दीपा अर्धरात्रेऽपि चित्रलिखिता इव बभूवुः।

हिन्दी—उस भाग्यवान् बालक का स्वाभाविक तेज सौरीगृह में चारों तरफ इतना फैल गया था कि आधी रात के समय में भी घर में रखे दीपों का प्रकाश एकदम क्षीण (मन्द) हो गया और वे ऐसे जान पड़ने लगे मानों चित्र में बने हों ॥१५॥

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम् ।
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥ १६ ॥

सञ्जीविनी—भूपतेर्दिलीपस्यामृतसंमिताक्षरममृतसमानाक्षरम् । 'सरूपसमसंमितः' इत्याह दण्डी । कुमारजन्म पुत्रोत्पत्तिं शंसते कथयते शुद्धान्तचरायान्तःपुरचारिणे जनाय त्रयमेवादेयमासीत् । किं तत् । शशिप्रभमुज्ज्वलं छत्रम् । उभे चामरे च, छत्रादीनां राज्ञः प्रधानाङ्गत्वाददेयत्वमिति भावः ॥ १६ ॥

अन्वयः—भूपतेः, अमृतसमिताक्षरं, कुमारजन्म, शंसते, शुद्धान्तचराय, जनाय, त्रयम्, एव, अदेयम्, आसीत्, "तत्किं" शशिप्रभं, छत्रम्, उभे, चामरे च।

वाच्य०—त्रयेण एव अदेयेन अभूयत शशिप्रभेण छत्रेण, उभाभ्यां चामराभ्याञ्च ।

व्याख्या—भुवः = पृथिव्याः, पतिः = स्वामी, तस्य भूपतेः = दिलीपस्य । अमृतेन = पीयूषेण, सम्मितानि = तुल्यानि, अक्षराणि = वर्णा यस्मिन् तत्; अमृतसंमिताक्षरं । कुमारस्य = शिशोः, जन्म = उत्पत्तिः, तत् कुमारजन्म । शंसते = कथयते । शुद्धान्ते = अन्तःपुरे, चरति = गच्छतीति शुद्धान्तचरस्तस्मै शुद्धान्तचराय, जनाय = लोकाय, सेवकायेत्यर्थः । त्रयं = त्रितयम्, एव न देयमिति अदेयं = दानायोग्यम्, आसीत् = बभूव । "तत् किम्" शशिनः = चन्द्रस्य, प्रभा इव प्रभा = कान्तिर्यस्य तत् शशिप्रभम्, छादयन्त्यनेनेति छत्रं = श्वेतातपत्रम् । उभे = द्वे, "शशिप्रभे" चामरे = बालव्यजने, च ।

समा०—शुद्धान्ते चरतीति शुद्धान्तचरः, तस्मै शुद्धान्तचराय । अमृतेन सम्मितानि अक्षराणि यस्मिन् तत् अमृतसम्मिताक्षरम्, तत् अमृतसम्मिताक्षरम् । कुमारस्य जन्म कुमारजन्म, तत् कुमारजन्म । शंसतीति शंसन्, तस्मै शंसते । दातुं योग्यं देयम्, न देयम् अदेयम् । शशः अस्यास्तीति शशी, शशिनः प्रभेव प्रभा यस्य तत् शशिप्रभम् ।

अभि०—राजा दिलीपः पुत्रजन्मसमाचारश्राविणेऽन्तःपुरसंचारिणे हर्षातिरेकेण राजचिह्नं छत्रं चामरे च परित्यज्यान्यत् सर्वं वस्तुजातं दातुं सन्नद्धोऽभूत् ।

हिन्दी—अमृत के समान अक्षरवाले, पुत्रजन्म के समाचार को सुनाने वाले अन्तःपुर के सेवक को राजा दिलीप ने राजचिन्ह छत्र चामर को छोड़कर शेष सभी आभूषण दे डाले, क्योंकि राजा इतने प्रसन्न हुए कि वे उस समय सब कुछ दे देने को तैयार थे ॥ १६ ॥

निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम् ।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद् गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि ॥ १७ ॥

सञ्जीविनी—निवातो निर्वातप्रदेशः 'निवातावाश्रयावातौ' इत्यमरः । तत्र यत्पद्मं तद्वत्स्तिमितेन निष्पन्देन चक्षुषा नेत्रेण कान्तं सुन्दरं सुताननं पुत्रमुखं पिबतस्तृष्णया पश्यतो नृपस्य गुरुरुत्कटः प्रहर्षः (कर्ता) इन्दुदर्शनाद् गुरुर्महोदधेः पूरो जलौघ इव । आत्मनि शरीरे न प्रबभूव स्थातुं न शशाक । अन्तर्न माति स्मेति यावत् । न ह्यल्पाधारेऽधिकं मीयत इति भावः । यद्वा हर्ष आत्मनि स्वस्मिन्विषये न प्रबभूव । आत्मानं नियन्तुं न शशाक । किन्तु बहिर्निर्जगामेत्यर्थः ॥ १७ ॥

अन्वयः—निवातपद्मस्तिमितेन, चक्षुषा, कान्तं, सुतानन्नं, पिबतः, नृपस्य, गुरुः, प्रहर्षः, इन्दुदर्शनात् "गुरुः" महोदधेः पूरः, इव, आत्मनि, न बभूव ।

वाच्य०—गुरुणा प्रहर्षेण गुरुणा महोदधेः पूरेण इव न बभूवे ।

व्याख्या—निवाते=वायुरहितप्रदेशे, पद्मं=कमलं, तद्वत् स्तिमितं=निश्चलं, तेन चक्षुषा=नेत्रेण, कान्तं=मनोहरं, सुन्दरं, सुतस्य=पुत्रस्य, आननं=मुखं, पिबतः=अतितृष्णया पश्यतः, नृपस्य=राज्ञो दिलीपस्य । गुरुः=महानित्यर्थः, प्रहर्षः=अतिशयितानन्दः (कर्ता)। इन्दोः=चन्द्रस्य दर्शनम्=अवलोकनं, तस्मात् इन्दुदर्शनात्, गुरुः=महान्, महांश्चासौ उदधिरिति महोदधिस्तस्य महोदधेः=समुद्रस्य, पूरः=जलौघः, इव=यथा । आत्मनि=शरीरे, न=नहि, बभूव=व्याप्तुं शशाक, अन्तर्न माति स्मेति यावत् ।

समा०—निवाते पद्मं निवातपद्मम्, निवातपद्ममिव स्तिमितं निवातपद्मस्तिमितम्, तेन निवातपद्मस्तिमितेन । सुतस्य आननं सुताननम्, तत् सुताननम् । इन्दोः दर्शनम्, इन्दुदर्शनम्, तस्मात् इन्दुदर्शनात् । महांश्चासौ उदधिश्च महोदधिः, तस्य महोदधेः ।

अभि०—राजा दिलीपः सुन्दरं स्वपुत्राननमतितृष्णया पश्यन् पूर्णिमायामिन्दुदर्शनात् जलधेः पूर इव अतीवानन्दपरिपूर्णः प्रसन्नचेता बभूव ।

हिन्दी—जैसे वायुरहित स्थान में कमल निश्चल हो जाता है वैसे ही एक टक होकर राजा अपने पुत्र का सुन्दर मुख देखने लगे। जैसे चन्द्रमा को देखकर महासागर में ज्वार आ जाता है, वैसे ही पुत्र को देखकर राजा को इतना आनन्द हुआ कि वह उनके हृदय में न समा सका ॥ १७ ॥

स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते ।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ ॥ १८ ॥

सञ्जीविनी—स दिलीपसूनुः । तपस्विना पुरोधसा पुरोहितेन । 'पुरोधास्तु पुरोहितः' इत्यमरः । वसिष्ठेन । तपस्वित्वात्तदनुष्ठितं कर्म सवीर्यं स्यादिति भावः । तपोवनादेत्यागत्य । अखिले समग्रे जातकर्मणि जातस्य कर्तव्यसंस्कार-विशेषे कृते सति । प्रयुक्तः संस्कारः शाणोल्लेखनादिर्यस्य स तथोक्तः । आकरोद्भवः खनिप्रभवः । "खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्" इत्यमरः । मणिरिव । अधिकं बभौ । वसिष्ठमन्त्रप्रभावात्तेजिष्ठोऽभूदित्यर्थः । अत्र मनुः—"प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते" इति ॥ १८ ॥

अन्वयः—सः, दिलीपसूनुः तपस्विना, पुरोधसा, तपोवनात्, एत्य, अखिले, जातकर्मणि, कृते, "सति" प्रयुक्तसंस्कारः, आकरोद्भवः मणिः इव, अधिकं बभौ ।

वाच्य०—तेन दिलीपसूनुना प्रयुक्तसंस्कारेण आकरोद्भवेन मणिनेव बभे ।

व्याख्या—सः=शिशुः, दिलीपस्य=राज्ञः, सूनुः=पुत्र इति दिलीपसूनुः । तपोऽस्यास्तीति तपस्वी, तेन तपस्विना=तपश्चरणवता, पुरः=अग्रे, धीयते, इति पुरोधाः, तेन पुरोधसा=पुरोहितेन वसिष्ठेन । तपसः=तपश्चर्यायाः, वनम्=अरण्यं, तस्मात् तपोवनात्,

पत्य = आगत्य । अखिले = सम्पूर्णे, जातस्य = उत्पन्नस्य, कर्म = संस्कारस्तस्मिन् जातकर्मणि, कृते = विहिते, "सति" प्रयुक्तः = कृतः, संस्कारः = शाणोल्लेखादिर्यस्य स प्रयुक्तसंस्कारः आकरः = खनिः तस्माद् उद्भवः उत्पत्तिर्यस्य सः, मणिः = रत्नम्, इव = यथा, अधिकम् = अत्यन्तं, बभौ = शुशुभे ।

समा०—दिलीपस्य सूनुः दिलीपसूनुः । प्रशस्तं तपः अस्यास्तीति तपस्वी, तेन तपस्विना । तपसः वनं तपोवनम्, तस्मात् तपोवनात् । जातस्य कर्म जातकर्म, तस्मिन् जातकर्मणि । प्रयुक्तः संस्कारः यस्य सः प्रयुक्तसंस्कारः । आकरादुद्भवो यस्य स आकरोद्भवः ।

अभि०—शाणोल्लेखादिना सुसंस्कृतो हीरकादिमणिर्यथा शोभते, तथैव, दिलीपस्य पुत्रोऽपि स्वतस्तेजस्वी सन्नपि महर्षिणा वशिष्ठेन जातकर्मसंस्कारे विहिते सति, अतीव शोभामाप ।

हिन्दी—परम तपस्वी पुरोहित वशिष्ठजी भी शुभ समाचार पाकर तपोवन से आए और स्वभाव से तेजस्वी उस बालक के जातकर्म आदि संस्कार किये, संस्कार हो जाने पर वह बालक वैसे ही सुशोभित हुआ, जैसे खान से निकालकर खरादा हुआ हीरा हो ॥ १८ ॥

सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥ १९ ॥

सञ्जीविनी—सुखः सुखकरः श्रवः श्रवणं येषां ते सुखश्रवाः । अतिसुखा इत्यर्थः । मङ्गलतूर्यनिस्वना मङ्गलवाद्यध्वनयो वारयोषितां वेश्यानाम् । 'वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवा' इत्यमरः । प्रमोदनृत्यैर्हर्षनर्तनैः सह मागधीपतेर्दिलीपस्य सद्मनि केवलं गृह एव न व्यजृम्भन्त । किन्तु द्यौरोको येषां ते दिवौकसो देवाः । पृषोदरादित्वात्साधुः । तेषां पथ्याकाशेऽपि व्यजृम्भन्त । तस्य देवांशत्वाद्देवोपकारित्वाच्च देवदुन्दुभयोऽपि नेदुरिति भावः ॥ १९ ॥

अन्वयः— सुखश्रवाः, मङ्गलतूर्यनिस्वनाः, वारयोषितां प्रमोदनृत्यैः, सह, मागधीपतेः, सद्मनि, केवलं, न, व्यजृम्भन्त, "किन्तु" दिवौकसां, पथि, अपि, व्यजृम्भन्त ।

वाच्य०—सुखश्रवैः, मंगलतूर्यनिस्वनैः, व्यजृम्भ्यत ।

व्याख्या—सुखः = सुखकरः, श्रवः = श्रवणं, येषान्ते सुखश्रवाः । मंगलार्थानि तूर्याणि मंगलतूर्याणि, मंगलतूर्याणां = मांगलिकवाद्यानां, निस्वनाः = ध्वनयः इति मंगलतूर्यनिस्वनाः । वारस्य = समूहस्य, योषितः स्त्रियस्तासां वारयोषितां = वेश्यानां । प्रमोदस्य = हर्षस्य, नृत्यानि = नर्तनानि, तैः प्रमोदनृत्यैः, सह = साकम् । मागध्याः = सुदक्षिणायाः, पतिः = स्वामी दिलीपस्तस्य मागधीपतेः, सद्मनि = गृहे । केवलम् = एकम्, न = नहि, व्यजृम्भन्त । "किन्तु" द्यौरोको येषान्ते दिवौकसः = देवास्तेषां, पथि = मार्गे, आकाशे, अपि व्यजृम्भन्त = वव्रृधिरे ।

समा०—सुखः श्रवः येषां ते सुखश्रवाः । मङ्गलानि च तानि तूर्याणि च मङ्गलतूर्याणि, मङ्गलतूर्याणां निस्वनाः मङ्गलतूर्यनिस्वनाः । प्रमोदस्य नृत्यानि, प्रमोदनृत्यानि, तैः प्रमोदनृत्यैः । मगधस्य राज्ञो अपत्यं स्त्री मागधी, मागध्याः पतिः मागधीपतिः, तस्य मागधीपतेः । द्यौः ओकः येषां ते दिवौकसः, तेषां दिवौकसाम् ।

अभि०—राज्ञो दिलीपस्य पुत्रोत्पत्तिमहोत्सवे केवलं राजभवने एव गीतवाद्यादिकं न जातम्, किन्तु तद्बालकस्य देवांशत्वात्, आकाशेऽपि गन्धर्वाः वादित्राणि वादयाञ्चक्रुः, नर्तक्यश्चानन्दातिरेकात् ननृतुः।

हिन्दी—राजा दिलीप का वह बालक तो संसार का कल्याण करनेवाला था, इस लिये उसके जन्म लेने पर केवल मागधी के पति राजा दिलीप के ही राजमहल में मनोहर बाजे तथा वेश्याओं के नाच-गाने आदि उत्सव नहीं हो रहे थे, किन्तु आकाश में देवताओं के यहाँ भी नाच-गाना हो रहा था ॥ १९ ॥

न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुर्विसर्जयेद्यं सुतजन्महर्षितः।
ऋणाभिधानात्स्वयमेव केवलं तदा पितॄणां मुमुचे स बन्धनात् ॥ २० ॥

संजीविनी—रक्षितुः सम्यक्पालनशीलस्य तस्य दिलीपस्य तस्य दिलीपस्य। अत एव चौराद्यभावात्। संयतो बद्धो न बभूव नाभूत्। किं तेनात आह विसर्जयेदिति। सुतजन्मना हर्षितस्तोषितः सन्। यं बद्धं विसर्जयेद्विमोचयेत्। किं तु स राजा तदा पितॄणामृणाभिधानाद् बन्धनात्केवलमेकं यथा तथा। स्वयमेव। एक एवेत्यर्थः। 'केवलः कृत्स्न एकश्च केवलश्चाव-धोरिता' इति शाश्वतः। मुमुचे। कर्मकर्तरि लिट्। स्वयमेव मुक्त इत्यर्थः। अस्मिन्नर्थे—'एष वा अनृणो यः पुत्री' इति श्रुतिः प्रमाणम् ॥ २० ॥

अन्वयः—रक्षितुः तस्य, संयतः न बभूव, यं, सुतजन्महर्षितः, 'सन्' विसर्जयेत्, सः, पितॄणां ऋणाभिधानात्, बन्धनात्, केवलं, स्वयं, मुमुचे।

वाच्य०—संयतेन न बभूवे, सुतजन्महर्षितेन यो विसृज्येत, किन्तु तेन तदा स्वयं मुमुचे।

व्याख्या—रक्षितुः = पालकस्य, तस्य = दिलीपस्य। संयतः = बद्धः कश्चित्, कारागारे इति शेषः। न = नहिं, बभूव = आसीत्। सुतस्य = पुत्रस्य, जन्म = उत्पत्तिः, तेन हर्षितः = प्रसन्नस्तुष्टः, "सन्" यं बद्धं, विसर्जयेत् = विमोचयेत। "किन्तु" सः = राजा दिलीपः। तदा = तस्मिन्नुत्सवे, पितॄणां = परलोकगतानाम्, ऋणम् = पर्युदञ्चनं, अभिधानं = नाम यस्य तत्, ऋणाभिधानं, तस्मात्, ऋणाभिधानात् = बन्धनात् = संयमनात्। केवलम् = एकं, स्वयं = आत्मा, एव मुमुचे = मुक्तः।

समा०—सुतस्य जन्म सुतजन्म, सुतजन्मना हर्षितः सुतजन्महर्षितः। ऋणमित्यभिधानं यस्य तद् ऋणाभिधानम्, तस्मात् ऋणाभिधानात्।

अभि०—सम्यक् पालयितुस्तस्य दिलीपस्य राज्ये चौराद्यभावात् कश्चिदपि कारागारे बद्धो नासीत् यं बद्धमस्मिन् काले हर्षेण मोचयेत्, किन्तु तदा पितॄणामृणात् स्वयमेव मुमुचे।

हिन्दी—राजकुमार का जन्म होने पर बन्दीघरों से कैदी छोड़े जाते हैं, किन्तु राजा दिलीप के राज्य में सुव्यवस्था होने से कोई भी अपराध नहीं करता था, अतः राज्य में कोई कैदी भी नहीं था, जिसे वे पुत्रजन्म की प्रसन्नता में छोड़ते। इसलिये राजा ही पुत्र न होने से पितरोंके ऋण से बँधा था उस बन्धन से मुक्त हो गया ॥ २० ॥

श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः ।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम् ॥ २१ ॥

संजीविनी—बालकः श्रुतस्य शास्त्रस्यान्तं पारं यायात् । तथा युधि परेषां शत्रूणामन्तं पारं च यायात् । यातुं शक्नुयादित्यर्थः । "शकि लिङ् च" इति शक्यार्थे लिङ् । इति हेतोर्धातोः 'अघिवघिलघि गत्यर्थाः" इति लघिधातोर्गमनाख्यमर्थमर्थवित्त्वादवेक्ष्यालोच्य । आत्मसंभवं पुत्रं नाम्ना रघुं चकार । "लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च" इत्युप्रत्यये "बालमूललघ्वलमङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यते" इति वैकल्पिके रेफादेशे रघुरिति रूपं सिद्धम् । अत्र शङ्खः—'अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ।' इति ॥ २१ ॥

अन्वयः—**अर्थवित्, पार्थिवः, अयम्, अर्भकः, श्रुतस्य अन्तं, यायात्, तथा युधि, परेषाम् "अन्तं" च यायात्, इति, धातोः, गमनार्थम्, अवेक्ष्य, आत्मसंभवं, नाम्ना, रघुं, चकार ।**

वाच्य०—अर्थविदा पार्थिवेन, अर्भकेण श्रुतस्यान्तो यायेत, आत्मसंभवो नाम्ना रघुः चक्रे ।

व्याख्या—अर्थम् = अभिधेयं, वेत्ति जानातीति, अर्थवित् । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः = दिलीपः । अयम् = एषः, अर्भकः = बालकः "पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः" इत्यमरः, श्रुतस्य = शास्त्रस्य, अन्तं = पारं, यायात् = गच्छेत्, तथा = तेन प्रकारेण, युधि = संग्रामे । परेषां = शत्रूणाम् , अन्तं = नाशं च यायात् = गच्छेत् , इति = हेतोः । धातोः = लघिधातोः गमनमेवार्थः गमनार्थस्तं गमनार्थं = यानाभिधेयम् , अवेक्ष्य = विचार्य । आत्मनः = स्वस्मात् , सम्भवः = उत्पत्तिर्यस्य सः तमात्मसंभवं, तनयं = पुत्रं, "आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः" इत्यमरः । नाम्ना = अभिधानेन, रघुं = रघुनामानं, चकार = कृतवान् ।

समा०—अर्थं वेत्तीति अर्थवित् । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः । गमनस्य अर्थः गमनार्थः तं गमनार्थम् । लङ्घते इति रघुः । आत्मनः सम्भवो यस्य स आत्मसम्भवः, तमात्मसम्भवम् ।

अभि०—अर्थज्ञो राजा दिलीपः अयं बालकः श्रुतस्य पारं गमिष्यति तथा शत्रूणां विनाशको भविष्यतीति विचार्य लंघते इति रघुरिति अन्वर्थं नाम चकार ।

हिन्दी—शब्दार्थ को जाननेवाले राजा दिलीप ने यह बालक सम्पूर्ण शास्त्रों में पारंगत होगा तथा शत्रुओं का युद्ध में नाश करेगा, अत एव 'लघि' धातु का गति अर्थ समझकर रघु नाम रक्खा ॥ २१ ॥

पितुः प्रयत्नात्स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने ।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ॥ २२ ॥

सञ्जीविनी—स रघुः समग्रसंपदः पूर्णलक्ष्मीकस्य पितुर्दिलीपस्य प्रयत्नाच्छुभैर्मनोहरैः शरीरावयवैः । हरिदश्वदीधितेः सूर्यस्य रश्मेः । "भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः" इत्यमरः । अनुप्रवेशाद् बालचन्द्रमा इव । दिने दिने प्रतिदिनम् । "नित्यवीप्सयोः" इति द्विर्-

चनम् । वृद्धिं पुपोष । अत्र वराहसंहितावचनम् "सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम् । क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः" ॥ २२ ॥

अन्वयः—सः, समग्रसम्पदः, पितुः प्रयत्नात्, शुभैः, शारीरावयवैः, हरिदश्वदीधितेः, अनुप्रवेशात्, बालचन्द्रमा, इव, दिने, दिने वृद्धिं पुपोष ।

वाच्य—तेन बालचन्द्रमसेव दिने दिने वृद्धिः पुपुषे ।

व्याख्या—सः = रघुः । समग्रा = सम्पूर्णा सम्पद् = समृद्धिः यस्य सः, तस्य समग्रसम्पदः पितुः = जनकस्य, प्रयत्नात् = प्रयासात् । शुभैः = मनोहरैः, शरीरस्य = देहस्य, अवयवाः = हस्तपादादयः, तैः शरीरावयवैः । हरितः = हरिद्वर्णाः, अश्वाः = तुरंगाः यस्य सः, तस्य दीधितिः = किरणस्तस्याः हरिदश्वदीधितेः = सूर्यकिरणस्येत्यर्थः । अनुप्रवेशात् = अन्तःप्रवेशात्, बालश्चासौ चन्द्रमा बालचन्द्रमाः प्रतिपच्चन्द्रः, इव = यथा, दिने दिने = प्रतिदिनं, वृद्धिं = वर्धनं, पुपोष = पोषमकरोत् ।

समा०—समग्रा सम्पद् यस्य सः समग्रसम्पद्, तस्य समग्रसम्पदः । शरीरस्य अवयवाः शारीरावयवाः, तैः शारीरावयवैः । हरितः अश्वाः यस्य सः हरिदश्वः, हरिदश्वस्य दीधितिः हरिदश्वदीधितिः, तस्याः हरिदश्वदीधितेः । बालश्चासौ चन्द्रमाश्च बालचन्द्रमाः ।

अभि०—यथा सूर्यकिरणस्यानुप्रवेशात् प्रतिपच्चन्द्रः एकैकया कलया प्रतिदिनं प्रवृद्धो भवति तथैव स्वपितुः प्रयत्नेन कुमारो रघुरपि प्रतिदिनं पुष्टिं प्राप्तवान् ।

हिन्दी—जैसे शुक्लपक्ष में प्रतिपद् का चन्द्रमा सूर्य की किरणें पाकर प्रतिदिन बढ़ने लगता है वैसे ही सम्पत्तिशाली पिता के प्रयत्न से कुमार रघु के अंग-प्रत्यंग भी प्रतिदिन बढ़ने लगे ॥ २२ ॥

उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥ २३ ॥

सञ्जीविनी—उमावृषाङ्कौ पार्वतीवृषभध्वजौ शरजन्मना कार्तिकेयेन । 'कार्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः' इत्यमरः । यथा ननन्दतुः । शचीपुरंदरौ जयन्तेन जयन्ताख्येन सुतेन । 'जयन्तः पाकशासनिः' इत्यमरः । यथा ननन्दतुः तथा तत्समौ ताभ्यामुमावृषाङ्काभ्यां शचीपुरंदराभ्यां च समौ समानौ सा मागधी नृपश्च तत्सदृशेन ताभ्यां कुमारजयन्ताभ्यां सदृशेन सुतेन ननन्दतुः । मागधी प्रागव्याख्याता ॥ २३ ॥

अन्वयः—उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा 'ननन्दतुः' शचीपुरन्दरौ जयन्तेन यथा "ननन्दतुः" तथा तत्समौ, सा मागधी, नृपः, च तत्सदृशेन, सुतेन ननन्दतुः ।

वाच्य०—उमावृषाङ्काभ्यां शचीपुरन्दराभ्यां ननन्दे, तत्समानाभ्यां तया मागध्या नृपेण च ननन्दे ।

व्याख्या—उमा = पार्वती च, वृषः अङ्को यस्यासौ वृषाङ्कः = शिवश्चेति, उमावृषाङ्कौ । शरेषु जन्म यस्यासौ शरजन्मा, तेन शरजन्मना = कार्तिकेयेन । यथा = येन प्रकारेण ननन्दतुः ।

शची = इन्द्राणी च, पुरन्दरः = शक्रश्चेति शचीपुरन्दरौ, जयन्तेन = तदाख्येन पुत्रेण, "यथा ननन्दतुः" तथा = तेन प्रकारेण तौ = उमावृषाङ्कौ च, तौ = शचीपुरन्दरौ चेति ते, तैः समौ = तुल्यौ, इति तत्समौ। सा = पूर्वोक्ता, मागधी = सुदक्षिणा, नृपः = राजा दिलीपः च। ताभ्यां = कुमारजयन्ताभ्यां, सदृशः = तुल्यस्तेन, सुतेन = पुत्रेण, ननन्दतुः = अनन्दताम्।

समा०—वृषः अङ्के यस्य सः वृषाङ्कः, उमा च वृषाङ्कश्च उमावृषाङ्कौ। शरेभ्यो जन्म यस्य सः शरजन्मा तेन शरजन्मना। पुरः दारयतीति पुरन्दरः, शची च पुरन्दरश्च शचीपुरन्दरौ। तैः (उमावृषाङ्काभ्यां शचीपुरन्दराभ्यां च) समौ तत्समौ। ताभ्यां (शरजन्मजयन्ताभ्यां) सदृशः तत्सदृशः, तेन तत्सदृशेन। मगधस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री मागधी।

अभि०—यथा कार्तिकेयं पुत्रं प्राप्य पार्वतीपरमेश्वरौ, यथा च जयन्तं लब्ध्वा शचीपुरन्दरौ आनन्दं प्रापतुः तथैव षडाननजयन्त तुल्येन स्वपुत्रेण रघुणा सुदक्षिणादिलीपावपि परमानन्दं प्रापतुः।

हिन्दी—जिस प्रकार कार्तिकेय जैसे प्रतापी पुत्र पाकर भगवान शंकर व पार्वती को प्रसन्नता हुई थी और जयन्त जैसे प्रभावशाली पुत्र को प्राप्त कर इन्द्र और इन्द्राणी को प्रसन्नता हुई थी, वैसे ही पार्वती-महेश्वर तथा शची-इन्द्र के समान सुदक्षिणा-दिलीप भी कार्तिकेय जयन्त के समान तेजस्वी पुत्र को पाकर अतीव प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥

रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम्।
विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि पर्यचीयत ॥ २४ ॥

संजीविनी—रथाङ्गनाम्नी च रथाङ्गनामा च रथाङ्गनामानौ चक्रवाकौ। "पुमान्स्त्रिया" इत्येकशेषः। तयोरिव तयोर्दम्पत्योर्भावबन्धनं हृदयाकर्षकं परस्पराश्रयमन्योन्यविषयं यत्प्रेम बभूव तदेकेन केवलेन ताभ्यामन्येन वा। 'एके मुख्यान्यकेवलाः' इत्यमरः। सुतेन विभक्तमपि कृतविभागमपि परस्परस्योपरि पर्यचीयत ववृधे। कर्मकर्तरि लिट्। अकृत्रिमत्वात्स्वयमेवोपचित-मित्यर्थः। यदेकाधारं वस्तु तदाधारद्वये विभज्यमानं हीयते। अत्र तु तयोः प्रागेकैककर्तृक-मेकैकविषयं प्रेम संप्रति द्वितीयविषयलाभेऽपि नाहीयत। प्रत्युतोपचितमेवाभूदिति भावः ॥२४॥

अन्वयः—**रथाङ्गनाम्नोः, इव, तयोः भावबन्धनम्, परस्पराश्रयं, यत्, प्रेम बभूव, तद्, एकसुतेन विभक्तमपि, परस्परस्य, उपरि पर्यचीयत।**

वाच्य०—भावबन्धनेन परस्पराश्रयेण येन प्रेम्णा बभूवे तेन ववृधे।

व्याख्या—रथस्याङ्गं रथाङ्गं = चक्रं नाम यस्य स रथाङ्गनामा, रथाङ्गनाम्नी च रथाङ्गनामा चेति रथाङ्गनामानौ, तयोः रथाङ्गनाम्नोः = चक्रवाकयोः। इव = यथा। तयोः = सुदक्षिणादिलीपयोः। भावस्य = हृदयस्य बन्धनम् = आकर्षकमिति भावबन्धनं, परस्परम् = अन्योन्यम्, आश्रयः = विषयः, यस्य तत् = पूर्वोक्तं प्रेम एकश्चासौ सुतस्तेन एकसुतेन = केवलपुत्रेण विभक्तम् = कृतविभागम्, अपि परस्परस्य = अन्योन्यस्य, उपरि = विषये, पर्यचीयत = ववृधे, वृद्धिं प्रापेत्यर्थः।

समा०—रथस्य अङ्गं (चक्रं) रथाङ्गम् , रथाङ्गस्य नाम यस्य स रथाङ्गनामा (स्त्री च रथाङ्गनाम्नी) । रथाङ्गनाम्नी च रथाङ्गनामा च रथाङ्गनामानौ, तयोः रथाङ्गनाम्नोः । सा च स च तौ, तयोः—तयोः । भावस्य बन्धनं भावबन्धनम् , परस्परमाश्रयः यस्य तत् परस्पराश्रयम् । एकश्चासौ सुतश्च एकसुतः तेन एकसुतेन ।

अभि०—चक्रवाकयोरिव सुदक्षिणादिलीपयोः यल्लोकोत्तरं प्रेम आसीत् तत् एकसुतेन रघुणा विभक्तमपि परस्परं वृद्धिमेव गतम् ।

हिन्दी—सुदक्षिणा और दिलीप में चकवा और चकवी के समान गाढ़ा प्रेम था वह प्रेम एकमात्र पुत्र रघु पर बँट जाने पर भी परस्पर के प्रेम में कमी न ला सका प्रत्युत और बढ़ता ही गया ॥२४॥

उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम् ।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः ॥ २५ ॥

सञ्जीविनी—सोऽर्भकः शिशुः । 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । धात्र्योपमात्रा । 'धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु' इति विश्वः । प्रथममुदितमुपदिष्टं वच उवाच । तदीयामङ्गुलिमवलम्ब्य ययौ च । प्रणिपातस्य शिक्षयोपदेशेन नम्रोऽभूच्च इति यत्तेन पितुर्मुदं ततान ॥२५॥

अन्वयः—सः, अर्भकः, धात्र्या, प्रथमोदितं, वचः, उवाच, तदीयाम् अंगुलिम् , अवलम्ब्य, ययौ, च, प्रणिपातशिक्षया, नम्रः, अभूत् , च, तेन पितुः, मुदं ततान ।

वाच्य०—तेनार्भकेण ऊचे, यये च । नम्रेण अभावि, मुत् तेने ।

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः, अर्भकः=शिशुः । धात्र्या=उपमात्रा, प्रथमं=पूर्वम् , उदितं=तत् प्रथमोदितं वचः=वाक्यम् , उवाच=उक्तवान् । तस्याः=धात्र्याः, इयमिति तदीया, तां तदीयाम् , अङ्गुलिं=करशाखाम् , अवलम्ब्य=गृहीत्वा, ययौ=जगाम, च । प्रणिपातस्य=नमस्कारस्य, शिक्षा=उपदेशस्तया प्रणिपातशिक्षया, नम्रः=विनीतः, अभूत्= बभूव, च । "इति यत्" तेन, पितुः=जनकस्य, मुदं=हर्षं, ततान=अतनोत् , विस्तारितवानित्यर्थः ।

समा०—प्रथमम् उदितं प्रथमोदितम् , तत् प्रथमोदितम् । तस्या इयं तदीया, तां तदीयाम् । प्रणिपातस्य शिक्षा प्रणिपातशिक्षा, तया प्रणिपातशिक्षया ।

अभि०—सः कुमारः, धात्र्या प्रथमं कथितं वचनं कथयामास तस्या अंगुलिं गृहीत्वा चचाल प्रणिपातोपदेशेन नम्रोऽभूत् , तेन दिलीपोऽतीव प्रसन्नो बभूव ।

हिन्दी—कुमार रघु धाय की सिखाई बातों को अपनी तोतली बोली में बोलने लगा, और उसकी अँगुली पकड़कर चलने लगा और सिर झुकाकर बड़ों को प्रणाम करना भी सीख गया, इन सब बातों को देखकर राजा दिलीप बड़े प्रसन्न होते थे ॥ २५ ॥

तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि ।
उपान्तसम्मीलितलोचनो नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ ॥ २६ ॥

संजीविनी—शरीरयोगजैः सुखैस्त्वचि त्वगिन्द्रियेऽमृतं निषिञ्चन्तं वर्षन्तमिव तं पुत्रमङ्कमारोप्य मुदातिभारादुपान्तयोः प्रान्तयोः संमीलितलोचनः सन् नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ । रसः स्वादः ॥ २६ ॥

अन्वयः—**शरीरयोगजैः, सुखैः, त्वचि, अमृतम् निषिञ्चन्तम्, इव, तम् अङ्कम् आरोप्य, उपान्तसंमीलितलोचनः, "सन्" नृपः, चिरात् सुतस्पर्शरसज्ञतां, ययौ ।**

वाच्य०—उपान्तसंमीलितलोचनेन "सता" नृपेण चिरात् सुतस्पर्शरसज्ञता यये ।

व्याख्या—शरीरस्य = देहस्य, योगः = सम्बन्धः स्पर्श इत्यर्थः, इति शरीरयोगस्तस्मात्, जातानि = उत्पन्नानि तैः शरीरयोगजैः, सुखैः = आनन्दैः । त्वचि = त्वगिन्द्रिये, अमृतं = सुधां, निषिञ्चन्तं = वर्षन्तम् । इव = यथा । तं = पुत्रम्, अङ्कं = क्रोडम्, उत्सङ्गमित्यर्थः । आरोप्य = संस्थाप्य । उपान्तयोः = प्रान्तभागयोः, सम्मीलिते = निमीलिते, लोचने = नयने येन स उपान्तसम्मीलितलोचनः, 'सन्' नृपः = राजा दिलीपः । चिरात् = बहुकालात् सुतस्य = पुत्रस्य स्पर्शः = आलिंगनमिति सुतस्पर्शः, तस्य रसः = स्वादस्तं जानाति = वेत्तीति सुतस्पर्शरसज्ञः, तस्य भावस्तत्ता, तां सुतस्पर्शरसज्ञतां, ययौ = प्राप्तः ।

समा०—शरीरस्य योगः शरीरयोगः, शरीरयोगाज्जातानि शरीरयोगजानि, तैः शरीरयोगजैः । उपान्तयोः सम्मीलिते लोचने यस्य स उपान्तसम्मीलितलोचनः । नॄन् पातीति नृपः । सुतस्य स्पर्शः सुतस्पर्शः, सुतस्पर्शस्य रसः सुतस्पर्शरसः, सुतस्पर्शरसं जानातीति सुतस्पर्शरसज्ञः, सुतस्पर्शरसज्ञस्य भावः सुतस्पर्शरसज्ञता, तां सुतस्पर्शरसज्ञताम् ।

अभि०—पुत्रस्य रघोः शरीरस्पर्शजन्यैः सुखैः निमीलितनेत्रः सन् राजा दिलीपः पुत्रस्पर्शरसज्ञतामाश्चिरादनुभवं चकार ।

हिन्दी—शरीरस्पर्श से उत्पन्न सुखों के द्वारा मानो अमृत की वर्षा करने वाले रघु को गोद में बैठाकर आँखें बन्द किये हुए राजा दिलीप बहुत देर से पुत्रस्पर्श का आनन्द लेते थे । अर्थात् पुत्रस्पर्शानन्द से जड़ से हो जाते थे ॥ २६ ॥

अमंस्त चानेन परार्ध्यजन्मना स्थितेरभेत्ता स्थितिमन्तमन्वयम् ।
स्वमूर्तिभेदेन गुणाग्र्यवर्तिना पतिः प्रजानामिव सर्गमात्मनः ॥ २७ ॥

संजीविनी—स्थितेरभेत्ता मर्यादापालकः स नृपः परार्ध्यजन्मनोत्कृष्टजन्मनाऽनेन रघुणाऽन्वयं वंशम् । प्रजानां पतिर्ब्रह्मा । गुणाः सत्त्वादयः तेष्वग्र्येण मुख्येन सत्त्वेन वर्तते व्याप्रियत इति गुणाग्र्यवर्ती तेन स्वस्य मूर्तिभेदेनावतारविशेषेण विष्णुनात्मनः सर्गं सृष्टिमिव स्थितिमन्तं प्रतिष्ठावन्तममंस्त मन्यतेस्म । मन्यतेरनुदात्तत्वादिट्प्रतिषेधः । अत्रोपमानोपमेययोरितरेतरविशेषणानीतरेतत्र योज्यानि । तत्र रघुपक्षे गुणा विद्याविनयादयः । "गुणोऽप्रधाने रूपादौ

मौर्व्यां सूदे वृकोदरे । स्तम्बे सत्त्वादिसन्ध्यर्थविधादिहरिताधिषु ॥" इति विश्वः । शेषं सुगमम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—स्थितेः, अभेत्रा, परार्ध्यजन्मना, अनेन, अन्वयं, प्रजानां, पतिः, गुणाग्र्यवर्तिना, स्वमूर्तिभेदेन, आत्मनः, सर्गम्, इव, स्थितिमन्तम्, अमंस्त ।

वाच्य०—स्थितेरभेत्रा, अनेनान्वयः, प्रजानां पत्या आत्मनः सर्ग इव, स्थितिमान् अमानि ।

व्याख्या—स्थितेः = मर्यादायाः, अभेत्रा = पालकः, दिलीपः । परार्ध्यम् = उत्कृष्टं, जन्म = जननं यस्य स तेन परार्ध्यजन्मना, अनेन = रघुणा । अन्वयं = कुलं, प्रजानां = जनानां, पतिः = प्रभुः = विधाता । गुणेषु = सत्त्वादिषु, अग्र्येण = मुख्येन = सत्त्वगुणेन वर्तते = व्याप्रियत इति गुणाग्र्यवर्ती, तेन गुणाग्र्यवर्तिना । स्वस्य = ब्रह्मणः, मूर्तिः = स्वरूपं तस्या भेदः = अवतारविशेषस्तेन स्वमूर्तिभेदेन विष्णुनेत्यर्थः । आत्मनः = स्वस्य सर्गं = सृष्टिम् । इव = यथा, स्थितिमन्तं = प्रतिष्ठावन्तम् , अमंस्त = मेने ।

समा०—न भेत्ता अभेत्ता । परार्ध्यं जन्म यस्य सः परार्ध्यजन्मा, तेन परार्ध्यजन्मना । गुणेषु अग्र्यं गुणाग्र्यं, गुणाग्र्येण वर्तते इति गुणाग्र्यवर्ती, तेन गुणाग्र्यवर्तिना । स्थितिः अस्यास्तीति स्थितिमान् , तं स्थितिमन्तम् ।

अभि०—यथा ब्रह्मा स्वस्यावतारभेदेन सत्त्ववता विष्णुरूपेण सृष्टिं स्थितिमतीं मन्यते स्म तथैव राजा दिलीपोऽपि स्वराज्यं स्थितिमदभिलषन् सन् स्वरूपभेदेन रघुणा निजवंशं प्रतिष्ठावन्तं मेने ।

हिन्दी—जिस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा ने अपने सत्त्वगुण वाले अंश से विष्णु का अवतार होने पर अपनी सृष्टि को स्थितिवाली (अमर) समझ लिया वैसे ही मर्यादा पालक राजा दिलीप ने भी जान लिया कि उत्कृष्ट जन्म वाले रघु से सूर्यवंश सदा व्यवस्थित चलता रहेगा ॥ २७ ॥

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः ।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत् ॥ २८ ॥

संजीविनी—'चूडा कार्या द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्या श्रुतिचोदनात् ॥' इति मनुस्मरणात्तृतीये वर्षे वृत्तचूलो निष्पन्नचूडाकर्मा सन् वक्ष्योरभेदः । स रघुः । 'प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे विद्यारम्भं च कारयेत्' इति वचनात्पञ्चमे वर्षे चलकाकपक्षैश्चलशिखण्डकैः । "बालानां तु शिखा प्रोक्ता काकपक्षः शिखण्डकः" इति हलायुधः । सवयोभिः स्निग्धैः 'वयस्यः स्निग्धः' इत्यमरः । अमात्यपुत्रैरन्वितः सन् । लिपेः पञ्चाशद्वर्णात्मिकाया मातृकाया यथावद्ग्रहणेन सम्यग्बोधेनोपायभूतेन वाङ्मयं शब्दजातम् । नद्याः मुखं द्वारम् । 'मुखं तु वदने मुख्यारम्भे द्वाराभ्युपाययोः' इति यादवः । तेन कश्चिन्मकरादिः समुद्रमिव । आविशत्प्रविष्टः । ज्ञातवानित्यर्थः ॥ २८ ॥

अन्वयः—वृत्तचूलः, "सन्" सः, चलकाकपक्षकैः, सवयोभिः, अमात्यपुत्रैः, अन्वितः, "सन्" लिपेः, यथावद्, ग्रहणेन, वाङ्मयं, नदीमुखेन, समुद्रम्, इव, आविशत्।

वाच्य०—वृत्तचूलेन तेनान्वितेन सता समुद्र इव वाङ्मयम्, आविश्यत।

व्याख्या—वृत्ता = निष्पन्ना, चूला = चूडाकर्म यस्य स वृत्तचूलः "सन्" सः = रघुः, चलाः = चञ्चलाः, काकपक्षकाः = शिखण्डका येषान्ते, तैः चलकाकपक्षकैः, समानं = तुल्यं, वयः = अवस्था येषान्ते, तैः सवयोभिः, स्निग्धैरित्यर्थः। अमात्यानां = मन्त्रिणां, पुत्राः = सुता इति, अमात्यपुत्रास्तैः अमात्यपुत्रैः, अन्वितः = सहितः, "सन्"। लिपेः = वर्णमालायाः यथावद् = सम्यक्तया। ग्रहणेन = बोधेन ज्ञानेनेत्यर्थः। वाङ्मयं = शब्दजातं शास्त्रमित्यर्थः, नद्याः = सरितः, मुखं = द्वारं, तेन नदीमुखेन "मकरादिरिति शेषः" समुद्रं = सागरम्, इव = यथा, आविशत् = प्रविवेश, मकरादिः समुद्रं प्रविष्टः, रघुः शास्त्रं ज्ञातवानित्यर्थः।

समा०—वृत्ता चूला यस्य सः वृत्तचूलः। चलाः काकपक्षाः येषां ते चलकाकपक्षकाः, तैः चलकाकपक्षकैः। समानं वयः येषां ते सवयसः, तैः सवयोभिः। अमा 'सह समीपे वा' भवन्तीति अमात्याः, अमात्यानां पुत्राः अमात्यपुत्राः, तैः अमात्यपुत्रैः। प्रचुरा वाक् वाङ्मयं, तद् वाङ्मयम्। नद्याः मुखं नदीमुखम्, तेन नदीमुखेन।

अभि०—यथा मकरादिः नदीद्वारेण महासागरं प्रविशति एवं निष्पन्नचूडाकर्मा रघुरपि स्निग्धैर्मन्त्रिपुत्रैः सह लिपिशिक्षणेन समस्तवाङ्मयं ज्ञातवानिति भावः।

हिन्दी—मुण्डन संस्कार हो जाने पर रघु ने चञ्चल शिखावाले समान अवस्थावाले मन्त्रिपुत्रों के साथ अच्छी प्रकार से वर्णमाला सीख ली, फिर उसी प्रकार समस्त साहित्य में प्रवेश कर लिया जिस प्रकार मकर नदी के द्वारा महासागर में घुस जाता है ॥ २८ ॥

अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।
अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ॥ २९ ॥

सञ्जीविनी—"गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥" इति मनुस्मरणादथ गर्भैकादशेऽब्दे विधिवदुपनीतं गुरुप्रियमेनं रघुं विपश्चितं विद्वांसो गुरवो विनिन्युः शिक्षितवन्तः। ते गुरवोऽत्रास्मिन् रघाववन्ध्ययत्नाश्च बभूवुः। तथा हि क्रिया शिक्षा 'क्रिया तु निष्कृतौ शिक्षाचिकित्सोपायकर्मसु' इति यादवः। वस्तुनि पात्रभूते उपहिता प्रयुक्ता सती प्रसीदति फलति। 'क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्' इति कौटिल्यः॥२९॥

अन्वयः—अथ, विधिवत्, उपनीतं, गुरुप्रियम्, एनं, विपश्चितः, गुरवः विनिन्युः, ते, अत्र, अवन्ध्ययत्नाः, च, बभूवुः, हि, क्रिया, वस्तूपहिता प्रसीदति

वाच्य०—उपनीतः गुरुप्रियः एष विपश्चिद्भिर्गुरुभिर्विनिन्ये, तैरवन्ध्ययत्नैश्च बभूवे, हि क्रियया वस्तूपहितया प्रसद्यते।

व्याख्या—अथ = अनन्तरं। विधिमर्हतीति विधिवद् = विधिपूर्वकम्, उपनीतं = कृतयज्ञ

पवीतसंस्कारम् । गुरूणां = शिक्षकाणां प्रियः = प्रीतिकरस्तं गुरुप्रियं, एनं = रघुं । विपश्चितः = विद्वांसः, गुरवः शिक्षकाः । विनिन्युः = शिक्षितवन्तः । ते = गुरवः । अत्र = रघुविषये । अवन्ध्यः = सफलः, यत्नः = प्रयासः, येषां ते अवन्ध्ययत्नाः । बभूवुः = जाताः । हि = यतः, क्रिया = शिक्षा, वस्तुनि = सत्पात्रे, उपहिता = प्रयुक्ता, प्रसीदति = फलति ।

समा०—गुरूणां प्रियः गुरुप्रियः, तं गुरुप्रियम् । न वन्ध्यः अवन्ध्यः, अवन्ध्यः यत्नः येषां ते अवन्ध्ययत्नाः । वस्तुनि उपहिता वस्तूपहिता ।

अभि०—कृतयज्ञोपवीतसंस्कारं रघुं विद्वांसो गुरवः शिक्षितवन्तः, ते च गुरवः सत्पात्रं रघुमध्याप्य सफलप्रयत्नाः सञ्जाताः ।

हिन्दी—विधिपूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने पर विद्वान् गुरुओं ने रघु को पढ़ाया, और वे गुरुजन रघु के विषय में सर्वथा सफल प्रयत्नवाले हुए, उचित ही है कि सत्पात्र को प्रदान की गई शिक्षा विशेष फलवती होती है ।२९॥

धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमाः ।
ततार विद्याः पवनातिपातिभिर्दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः ॥ ३० ॥

सञ्जीविनी—अत्र कामन्दकः—'शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा । ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः' इति । 'आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती । एता विद्याश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः' इति च । उदारधीरुत्कृष्टबुद्धिः स रघुः समग्रैर्धियो गुणैः । चत्वारोऽर्णवा उपमा यासां ताश्चतुरर्णवोपमाः 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इत्युत्तरपदसमासः । चतस्रो विद्याः । हरितां दिशामीश्वरः सूर्यः । पवनातिपातिभिर्हरिद्भिर्निजाश्वैः । 'हरित्ककुभि वर्णे च तृणवाजिविशेषयोः' इति विश्वः । चतस्रो दिश इव क्रमात्ततार । चतुरर्णवोपमेयत्वं दिशामपि द्रष्टव्यम् ॥

अन्वयः—उदारधीः, सः, समग्रैः, धियः, गुणैः, चतुरर्णवोपमाः, चतस्रः, विद्याः, हरिताम्, ईश्वरः, पवनातिपातिभिः, हरिद्भिः, 'चतस्रः' दिशः इव क्रमात् ततार ।

वाच्य०—उदारधिया तेनेश्वरेणेव क्रमात् तेरिरे ।

व्याख्या—उदारा = उत्कृष्टा, धीः = बुद्धिर्यस्यासौ उदारधीः, सः = रघुः । समग्रैः = सम्पूर्णैः, धियः = बुद्धेः, गुणैः = शुश्रूषाश्रवणादिभिः । चत्वारः = चतुःसंख्यकाः अर्णवाः = समुद्राः, उपमा = तुलना यासां ताश्चतुरर्णवोपमास्तास्तथोक्ताः । चतस्रः = चतुःसंख्यकाः, विद्याः = आन्वीक्षिक्यादीः । हरितां = काष्ठानां दिशामित्यर्थः, ईश्वरः = प्रभुः सूर्यः । पवनमतिक्रम्य पतितुं शीलं येषान्ते पवनातिपातिनस्तैः पवनातिपातिभिः = अनिलाधिकवेगशीलैः, हरिद्भिः = निजाश्वैः । 'चतस्रः' दिशः = आशाः, इव = यथा, क्रमात् = क्रमेण, ततार = उत्तीर्णः । चतस्रो विद्या अध्यधीतवान् ।

समा०—उदारा धीर्यस्य स उदारधीः । चत्वारः अर्णवाः उपमा यासां ताः चतुरर्णवोपमाः, ताः चतुरर्णवोपमाः । पवनमतिक्रम्य पतितुं शीलं येषां ते पवनातिपातिनः, तैः पवनातिपातिभिः ।

अभि०—कुशाग्रबुद्धिः शुश्रूषादिबुद्धिगुणैः क्रमेण आन्वीक्षिक्यादीः सर्वा अपि विद्या अधीतवान् ।

हिन्दी—कुशाग्रबुद्धि रघु ने सम्पूर्ण सेवा आदि बुद्धि के गुणों से चार समुद्रों के समान (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति) इन चारों विद्याओं को वैसे ही पार कर लिया अर्थात् पढ़ लिया जैसे सूर्य भगवान् अपने सरपट दौड़नेवाले घोड़ों से चारों दिशाओं को थोड़े समय में पार कर लेते हैं ।।३०।।

त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवीमशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत् ।

न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः ॥ ३१ ॥

सञ्जीविनी—स रघुः । 'कार्ष्णरौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः । वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमादिकानि च ।।' इति मनुस्मरणान्मेध्यां शुद्धां रौरवीं रुरुसंबन्धिनीम् । 'रुरुर्महाकृष्णसारः' इति यादवः । त्वचं चर्म परिधाय वसित्वा मन्त्रवत्समन्त्रकमस्त्रमाग्नेयादिकं पितुरेवोपाध्यायादशिक्षताभ्यस्तवान् । 'आख्यातोपयोगे' इत्यपादानसंज्ञा । पितुरेवेत्यवधारणमुपपादयति—नेति । तद्गुरुर्दिलीप एकोऽद्वितीयः पार्थिवः केवलं पृथ्वीश्वर एव नाभूत् किंतु क्षितौ स दिलीप एको धनुर्धरोऽप्यभूत् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—सः मेध्यां, रौरवीं, त्वच, परिधाय मन्त्रवत्, अस्त्रं, पितुः एव, अशिक्षत, तद्गुरुः, एकपार्थिवः केवलं, न अभूत् 'किन्तु' क्षितौ सः, एकधनुर्धरः, अपि, 'अभूत्' ।

वाच्य०—तेनाशिक्ष्यत, तदगुरुणैकपार्थिवेन न अभावि, किन्तु एकधनुर्धरेणाप्यभावि ।

व्याख्या—सः = रघुः । मेध्यां = पवित्रां = शुद्धां । रुरोरियं रौरवी, तां रौरवीं = रुरुमृगसम्बन्धिनीं, त्वचं = चर्म, परिधाय = वसित्वा, परिधानं कृत्वेत्यर्थः । मंत्रोऽस्यास्तीति मंत्रवत् = समंत्रकम्, अस्त्रम् = आग्नेयादिकं । पितुः = जनकात् दिलीपात् एव, अशिक्षत = शिक्षितवान् । अस्त्रविद्यां गृहीतवानित्यर्थः । तस्य = रघुः, गुरुः = पिता । एकः = अद्वितीयश्चासौ पार्थिवः = पृथिवीश्वरः इति एकपार्थिवः, एव = केवलम् एकमात्रमित्यर्थः, न = नहि अभूत् = आसीत् । 'किन्तु' क्षितौ = पृथिव्याम् एकश्चासौ धनुर्धरः इति एकधनुर्धरः = अद्वितीयचापधरोऽपि, अभूत् = बभूव ।

समा०—रुरोः इयं रौरवी, तां रौरवीम् । मन्त्रः अस्यास्तीति मन्त्रवत्, तत् मन्त्रवत् (अस्त्रविशेषणं द्वि०) । तस्य गुरुः तद्गुरुः । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः, एकश्चासौ पार्थिवश्च एकपार्थिवः । धरतीति धरः, धनुषः धरः धनुर्धरः, एकश्चासौ धनुर्धरश्च एकधनुर्धरः ।

अभि०—रघुः स्वजनकादेव सम्पूर्णां समंत्रकामाग्नेयाद्यस्त्रविद्यां शिक्षितवान् । यतस्तत्पिता दिलीपः च केवलं सम्राडेव न पृथिव्यामद्वितीयधनुर्वेदपण्डितोऽप्यासीत् ।

हिन्दी—उस रघु ने शुद्ध रुरु नामक काले मृग की छाल को पहनकर अपने पिता से ही मन्त्र सहित अस्त्रविद्या को सीख लिया, क्योंकि दिलीप केवल चक्रवर्ती राजा ही नहीं था, किन्तु वह संसार में धनुर्विद्या का अद्वितीय पण्डित भी था ।। ३१ ।।

महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव ।
रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः पुपोष गाम्भीर्यमनोहरं वपुः ॥ ३२ ॥

संजीविनी—रघुः क्रमाद्यौवनेन भिन्नशैशवो निरस्तशिशुभावः सन् । महानुक्षा महोक्षा महर्षभः । 'अचतुरविचतुर' इत्यादिसूत्रेण निपातनादकारान्तत्वम् । तस्य भावस्तत्ता । स्पृशन्नाच्छन्वत्सतरो दम्य इव । 'दम्यवत्सतरौ समौ' इत्यमरः । द्विपेन्द्रभावं महागजत्वं श्रयन्भजन्कलभः करिपोत इव । गाम्भीर्येणाचापलेन मनोहरं वपुः पुपोष ॥ ३२ ॥

अन्वयः—रघुः, क्रमात्, यौवनभिन्नशैशवः 'सन्' महोक्षतां स्पृशन् वत्सतरः, इव, द्विपेन्द्रभावं, श्रयन्, कलभः इव, गाम्भीर्यमनोहरं, वपुः, पुपोष ।

वाच्य०—रघुणा, यौवनभिन्नशैशवेन 'सता' स्पृशता वत्सतरेणेव, श्रयता कलभेनेव वपुः पुपुषे ।

व्याख्या—रघुः = दिलीपसूनुः क्रमात् = क्रमेण । यूनोर्भावः यौवनं, यौवनेन = तारुण्येन, भिन्नं = निवारितं, शैशवं = शिशोर्भावः बाल्यं यस्य स यौवनभिन्नशैशवः 'सन्' । महांश्चासौ उक्षा चेति महोक्षस्तस्य भावः महोक्षता, तां महोक्षतां = महावृषभतां, स्पृशन् = गच्छन् । अतिशयेन वत्सः इति वत्सतरः = दम्यः, इव = यथा । द्विपानां = गजानामिन्द्रः = स्वामी इति द्विपेन्द्रः, द्विपेन्द्रस्य भावस्तं द्विपेन्द्रभावं = महागजत्वं । श्रयन् = भजन् । कलभः = करिपोतः । इव = यथा । गम्भीरस्य भावः गाम्भीर्यं, गाम्भीर्येण = गभीरत्वेन, मनोहरं = सुन्दरमिति गाम्भीर्यमनोहरं । वपुः = शरीरं पुपोष = पुष्णाति स्म ।

समा०—यूनः भावः यौवनं, शिशोर्भावः शैशवं, यौवनेन भिन्नं शैशवं यस्य सः यौवनभिन्नशैशवः । महांश्चासौ उक्षा च महोक्षः, महोक्षस्य भावः महोक्षता, तां महोक्षताम् । द्विपानामिन्द्रः द्विपेन्द्रः, द्विपेन्द्रस्य भावः द्विपेन्द्रभावः, तं द्विपेन्द्रभावम् । गम्भीरस्य भावः गाम्भीर्यम्, गाम्भीर्येण मनोहरं गाम्भीर्यमनोहरम् , तद् गाम्भीर्यं मनोहरम् ।

अभि०—यथा वत्सतरो महावृषभो भवति यथा कलभः गजत्वं प्राप्नोति एवं क्रमशः प्राप्तयौवनः स रघुरपि गम्भीर्येण सुन्दरं वपुः पुष्णाति स्म ।

हिन्दी—जिस प्रकार गौ का बच्चा बड़ा होकर साँड हो जाता है और हाथी का बच्चा बढ़कर गजराज हो जाता है उसी प्रकार जब रघु ने भी बचपन बिताकर युवावस्था में प्रवेश किया तब उसका शरीर गम्भीरता से और भी सुन्दर तथा परिपुष्ट होकर खिल उठा ॥ ३२ ॥

अथास्य गोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुरुः ।
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य सत्पतिं तमोनुदं दक्षसुता इवाबभुः ॥ ३३ ॥

संजीविनी—'गौर्नादित्ये बलीवर्दे क्रतुभेदर्षिभेदयोः । स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि ॥ पुंस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु ।' इति केशवः । गावो लोमानि केशा दीयन्ते खण्ड्यन्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या गोदानं नाम ब्राह्मणादीनां षोडशादिषु वर्षेषु कर्तव्यं केशान्ताख्यं

कर्मोच्यते। तदुक्तं मनुना—'केशान्तःषोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते। राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वश्यस्य द्व्यधिके ततः॥' इति। अथ गुरुः पिता। 'गुरुर्गीष्पतिपित्रादौ' इत्यमरः। अस्य गोदान-विधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयत्। कृतवानित्यर्थः। अथ नरेन्द्रकन्यास्तं रघुम्। दक्षस्य सुता रोहिण्यादयस्तमोनुदं चन्द्रमिव। 'तमोनुदोऽग्निचन्द्रार्काः' इति विश्वः। सत्पतिमवाप्याबभुः। रघुरपि तमोनुत्। अत्र मनुः—'वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्। अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्' इति॥ ३३॥

अन्वयः—अथ, गुरुः अस्य, गोदानविधेः, अनन्तरं, विवाहदीक्षां, निरवर्तयत्, नरेन्द्रकन्याः, तं, दक्षसुताः तमोनुदम् इव, सत्पतिम्, अवाप्य, आबभुः।

वाच्य०—अथ गुरुणा विवाहदीक्षा निरवर्त्यत, नरेन्द्रकन्याभिः दक्षसुताभिरिव आबभे।

व्याख्या—अथ = यौवनप्रवेशानन्तरं गुरुः = पिता दिलीपः। अस्य = रघोः। गावः = केशाः, दीयन्ते = खण्ड्यन्तेऽस्मिन् कर्मणि तत् गोदानं, गोदानस्य = केशान्तकर्मणः, विधिः = अनुष्ठानं, तस्य गोदानविधेः, अनन्तरं = पश्चात्। विवाहस्य = पाणिग्रहणस्य, दीक्षा = क्रिया, तां विवाहदीक्षां निरवर्तयत् = कृतवान्। नरेन्द्राणां = मनुष्येश्वराणां, कन्याः = कुमार्यः इति नरेन्द्रकन्याः। तं = रघुं, दक्षस्य = प्रजापतेः, कन्याः = रोहिण्यादयः, इति दक्षकन्याः, इति दक्षकन्याः,। तमः = अन्धकारं, नुदति = नाशयतीति तमोनुत्, तं तमोनुदं = चन्द्रम्। इव = यथा। संश्चासौ पतिश्चेति सत्पतिस्तं सत्पतिम्, सज्जनपतिम्, अवाप्य = प्राप्य, आबभुः = शुशुभिरे।

समा०—गावः—(केशाः) दीयन्ते (खण्ड्यन्ते) अस्मिन्निति गोदानम्, गोदानस्य विधिः गोदानविधिः, तस्य गोदानविधेः। विवाहस्य दीक्षा विवाहदीक्षा, तां विवाहदीक्षाम्। नराणामिन्द्राः नरेन्द्राः, नरेन्द्राणां कन्याः नरेन्द्रकन्याः। दक्षस्य सुताः दक्षसुताः। तमः नुदतीति तमोनुद्, तं तमोनुदम्। सन् चासौ पतिश्च सत्पतिः, तं सत्पतिम्।

अभि०—राजा दिलीपः, द्वाविंशे वर्षे केशान्तनामकं संस्कारं विधाय पश्चात् नरेन्द्रकन्याभिः सह रघोर्विवाहमपि कारितवान्।

हिन्दी—जवान होते ही, राजा दिलीप ने रघु का बाईसवें वर्ष में केशान्त संस्कार करके राजकुमारियों के साथ विवाह भी कर दिया। वे राजकुमारियाँ भी सज्जन रघु जैसे प्रतापी पति को प्राप्त करके वैसे ही सुशोभित हुई जैसे रोहिणी आदि दक्ष प्रजापति की कन्याएँ अन्धकार को भगानेवाले चन्द्रमा को प्राप्त कर सुशोभित हुई थीं॥ ३३॥

युवा युगव्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः।
वपुःप्रकर्षादजयद् गुरुं रघुस्तथाऽपि नीचैर्विनयाददृश्यत॥ ३४॥

संजीविनी—युवा। युगो नाम धुर्यस्कन्धगः सच्छिद्रप्रान्तो यानाङ्गभूतो दारुविशेषः। 'यानाङ्गे युगः पुंसि युगं युग्मे कृतादिषु' इत्यमरः। युगवद्व्यायतौ दीर्घौ बाहू यस्य सः। अंसावस्य स्त इत्यंसलो बलवान्। मांसलश्चेति' वृत्तिकारः। 'बलवान्मांसलोंऽसलः' इत्यमरः। 'वत्सांसाभ्यां कामबले' इति लच्प्रत्ययः। कपाटवक्षाः परिणद्धकंधरो विशालग्रीवः। 'परिणाहो

विशालता' इत्यमरः। रघुर्वपुषः प्रकर्षादाधिक्याद्यौवनकृताद् गुरुं पितरमजयत्। तथापि विनयान्नम्रत्वेन नीचैरल्पकोऽदृश्यत। अनेनास्यानौद्धत्यं च विवक्षितम्॥ ३४॥

अन्वयः—युवा युगव्यायतबाहुः अंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः, रघुः वपुःप्रकर्षात् गुरुम् अजयत्, तथापि, विनयाद्, नीचैः अदृश्यत।

वाच्य०—यूना रघुणा गुरुः अजीयत तथापि विनयात् 'जनास्तं' नीचैः अपश्यन्।

व्याख्या—युवा = तरुणः, यौवनसम्पन्न इत्यर्थः। युगवत् = यानाङ्गदारुविशेषवत्, व्यायतौ = दीर्घौ, बाहू = भुजौ यस्य स युगव्यायतबाहुः। अंसौ स्तः अस्य सोऽसलः = मांसलः। कपाटवत् = कपाटतुल्यं वक्षः उरःस्थलं यस्यासौ कपाटवक्षाः 'कपाटमररं तुल्ये' इत्यमरः। परिणद्धा = विशाला, कन्धरा ग्रीवा यस्य स परिणद्धकन्धरः, रघुः = दिलीपपुत्रः। वपुषः = शरीरस्य, प्रकर्षः = आधिक्यं, तस्मात्। वपुःप्रकर्षात्। गुरुं = पितरं दिलीपम्, अजयत् = जितवान्। तथापि विनयात् = नम्रतया, नीचैः = अल्पकः, जनकापेक्षया न्यून इत्यर्थः, अदृश्यत = ददृशे जनैरिति शेषः।

समा०—युगवद् व्यायतौ बाहू यस्य सः युगव्यायतबाहुः। अंसौ अस्य स्तः इति अंसलः। कपाटमिव वक्षः यस्य सः कपाटवक्षाः। परिणद्धा कन्धरा यस्य सः परिणद्धकन्धरः। वपुषः प्रकर्षः वपुःप्रकर्षः, तस्मात् वपुःप्रकर्षात्।

अभि०—यद्यपि रघुः दीर्घबाहुः कपाटवत् विस्तृतोरस्थलो मांसलो बलवांश्च जातः, तथापि विनम्रतया स्वजनकापेक्षया स्वल्पकः बालक इव दृश्यते स्म।

हिन्दी—जवानी के कारण रघु की भुजाएँ बैल के जुए के समान दृढ़ और लम्बी हो गईं, वक्षस्थल किवाड़ की तरह चौड़ा हो गया। कन्धे भारी तथा गरदन विशाल हो गई, इस तरह डीलडौल बढ़ जाने पर रघु अपने वृद्ध पिता से लम्बे तथा बलिष्ठ लगते थे, फिर भी नम्रता के कारण पिता के सामने छोटे ही दीख पड़ते थे॥ ३४॥

ततः प्रजानां चिरमात्मना धृतां नितान्तगुर्वीं लघयिष्यता धुरम्।
निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक्॥ ३५॥

संजीविनी—तत आत्मना चिरं धृतां नितान्तगुर्वीम् 'वोतो गुणवचनात्' इति ङीष्। प्रजानां धुरं पालनप्रयासं लघयिष्यता लघु करिष्यता। 'तत्करोति तदाचष्टे' इति लघुशब्दाण्णिच्। ततो 'लृटः सद्वा' इति शतृप्रत्ययः। नृपेण दिलीपेनासौ रघुर्निसर्गेण स्वभावेन संस्कारेण शास्त्राभ्यासजनितवासनया च विनीतो नम्र इति हेतोः। युवराज इति शब्दं भजतीति तथोक्तः। 'भजो ण्विः' इति ण्विप्रत्ययः। चक्रे कृतः। 'द्विविधो विनयः स्वभाविकः कृत्रिमश्च' इति कौटिल्यः। तदुभयसंपन्नत्वात्पुत्रं युवराजं चकारेत्यर्थः। कामन्दकः—'विनयोपग्रहान्भूत्यै कुर्वीत नृपतिः सुतान्। अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते। विनीतमौरसं पुत्रं यौवराज्येऽभिषेचयेत्॥' इति॥ ३५॥

अन्वयः—ततः आत्मना, चिरं धृतां, नितान्तगुर्वीम्, प्रजानां, धुरं, लघयिष्यता, नृपेण, असौ, निसर्गसंस्कारः, इति युवराजशब्दभाक् चक्रे।

वाच्य०—धुरं लघयिष्यन् नृपोऽमुं निसर्गसंस्कारविनीतमिति युवराजशब्दभाजं चकार।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम्। आत्मना = स्वेन, चिरं = बहुकालपर्यन्तं, धृतां = धारितां। नितान्तम् = अत्यन्तं, गुर्वी = दुर्भरां, तां नितान्तगुर्वीम्। प्रजानां = लोकानां, धुरं = भारं = पालनरूपं। लघुं करिष्यन्निति लघयिष्यन्, तेन लघयिष्यता, लघुं करिष्यता, नृपेण = दिलीपेन। असौ = रघुः। निसर्गेण = स्वभावेन संस्कारेण = शास्त्राभ्यासजनितवासनया च, विनीतः = विनम्रः इति निसर्गसंस्कारविनीतः। इति = हेतोः युवा चासौ राजा च इति युवराजः, तस्य शब्दं भजतो युवराजशब्दभाक् = युवराजनामा, चक्र = कृतः।

समा०—नितान्तं गुर्वी नितान्तगुर्वी, तां नितान्तगुर्वीम्। लघुं करिष्यतीति लघयिष्यति, लघयिष्यतीति लघयिष्यन्, तेन लघयिष्यता। निसर्गश्च संस्कारश्च निसर्गसंस्कारौ, निसर्गसंस्काराभ्यां विनीतः निसर्गसंस्कारविनीतः। युवा चासौ राजा च युवराजः, युवराजस्य शब्दः युवराजशब्दः, युवराजशब्दं भजति इति युवराजशब्दभाक्।

अभि०—राजा दिलीपः, स्वभावेन शास्त्राभ्यासेन चातीव नम्रं राजकार्ये च दक्षम्, कुमारं रघुं युवराजं कृतवान्।

हिन्दी—इसके अनन्तर बहुत दिनों से धारण किये हुए, प्रजा के पालन रूपी भार को हल्का करने की इच्छा से राजा दिलीप ने 'स्वभाव तथा शास्त्रों के अभ्यास से रघु नम्र हो गए हैं और भलीभाँति राज्य सम्भाल सकते हैं' यह जानकर रघु को युवराज बना दिया॥ ३५॥

नरेन्द्रमूलायतनादनन्तरं तदास्पदं श्रीर्युवराजसंज्ञितम्।
अगच्छदंशेन गुणाभिलाषिणी नवावतारं कमलादिवोत्पलम्॥ ३६॥

संजीविनी—गुणान्विनयादीन्सौरभ्यादींश्चाभिलषतीति गुणाभिलाषिणी श्रीः राज्यलक्ष्मीः पद्माश्रया च। नरेन्द्रो दिलीप एव मूलायतनं प्रधानस्थानं तस्मात्। अपादानात्। अनन्तरं संनिहितम्। युवराज इति संज्ञाऽस्य संजाता युवराजसंज्ञितम्। तारकादित्वादितच्प्रत्ययः। आत्मनः पदं स्थानमास्पदम्। 'आस्पदं प्रतिष्ठायाम्' इति निपातः। स रघुरित्यास्पदं तदास्पदम्। कमलाच्चिरोत्पन्नान्नवावतारमचिरोत्पन्नमुत्पलमिव। अंशेनागच्छत्। स्त्रियो हि यूनि रज्यन्त इति भावः॥३६॥

अन्वयः—गुणाभिलाषिणी, श्रीः नरेन्द्रमूलायतनाद्, अनन्तरं, युवराजसंज्ञित, तदास्पदं, कमलात्, नवावतारम् उत्पलम्, इव, अंशेन, अगच्छत्।

वाच्य०—गुणाभिलाषिण्या श्रिया अंशेनागम्यत।

व्याख्या—गुणान् = विनयादीन् सौरभ्यादींश्च, अभिलषति = अभिकाङ्क्षतीति गुणाभिलाषिणी। श्रीः = राज्यलक्ष्मीः; 'पद्मालया च'। नरेन्द्रः = दिलीपः, एव मूलं = प्रधानम्, आयतनं = स्थानं, तस्मात् नरेन्द्रमूलायतनाद्। अनन्तरम् = संनिहितम्। युवराज इति संज्ञा संजाताऽस्येति तत् युवराजसंज्ञितम् = युवराजनामधेयम्। आत्मनः पदं स्थानमिति आस्पदं। सः = रघुः एव आस्पदं = प्रतिष्ठा यस्य तत् तदास्पदं। कमलात् = चिरोत्पन्नात् पद्मात्। नवः =

नूतनः, अवतारः = अवतरणं यस्य तत् नवावतारम् । उत्पलं = कुवलयम् कमलविशेषमित्यर्थः । इव = यथा । अंशेन = भागेन । अगच्छत् = अव्रजत् ।

समा०—गुणान् अभिलषतीति गुणाभिलाषिणी । मूलञ्च तद् आयतनञ्च मूलायतनम्, नरेन्द्र एव मूलायतनं नरेन्द्रमूलायतनम्, तस्मात् नरेन्द्रमूलायतनात् । न विद्यते अन्तरं यस्य तत् अनन्तरं, तत् अनन्तरम् । युवराज इति संज्ञा अस्य संजाता इति युवराजसंज्ञितं, तत् युवराजसंज्ञितम् । आत्मनः पदम् आस्पदं (निपातितः) स इत्यास्पदं तदास्पदम्, तत् तदास्पदम् । नवः अवतारः यस्य तद् नवावतारम्, तत् नवावतारम् ।

अभि०—विनयादिगुणैराकृष्टा राज्यलक्ष्मीः पुरातनं वृद्धं दिलीपं विहाय नूतनं युवराजं रघुमंशेन तथैवागच्छत्, यथा सौरभ्यादिगुणाकृष्टा पद्माश्रया लक्ष्मीः चिरोत्पन्नं पुराणं कमलं परित्यज्य नवीनं कमलं गच्छति ।

हिन्दी—जिस प्रकार सौरभ्यादिगुणों से आकृष्ट राजयलक्ष्मी तथा कमलनिवासिनी लक्ष्मी, जैसे पुराने मुरझाए कमल को छोड़कर नये कमल पर चली जाती है उसी प्रकार रघु के विनयादि गुणों से आकृष्ट राजयलक्ष्मी, पुराने वृद्ध राजा दिलीप को छोड़कर नवीन युवराज के पास १ अंश से चली गई ॥ ३६ ॥

विभावसुः सारथिनेव वायुना घनव्यपायेन गभस्तिमानिव ।
बभूव तेनातितरां सुदुःसहः कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः ॥ ३७ ॥

संजीविनी—सारथिना सहायभूतेन । एतद्विशेषणमुत्तरवाक्येष्वप्यनुषञ्जनीयम् । वायुना विभावसुर्वह्निरिव । 'सूर्यवह्नी विभावसू' इत्यमरः । घनव्यपायेन शरत्समयेन सारथिना गभस्तिमान्सूर्य इव । कटो गण्डः । 'गण्डः कटो मदो दानम्' इत्यमरः, तस्य प्रभेदः स्फुटनम् । मदोदय इत्यर्थः, तेन करीव । पार्थिवो दिलीपस्तेन रघुणातितरामत्यन्तं सुदुःसहः सुष्ठ्वसह्यो बभूव ॥३७॥

अन्वयः—सारथिना, वायुना, विभावसुः इव, घनव्यपायेन, गभस्तिमान्, इव, कटप्रभेदेन करी इव, पार्थिवः, तेन अतितराम्, सुदुःसहः, बभूव ।

वाच्य०—विभावसुना इव, गभस्तिमता इव, करिणा इव, पार्थिवेन, सुदुःसहेन बभूवे ।

व्याख्या—सारथिना = सहायभूतेन, वायुना = पवनेन, विभावसुः = अग्निः इव = यथा । घनानां = मेघानां व्यपायः = नाशः यत्र, तेन घनव्यपायेन = शरत्कालेनेत्यर्थः । गभस्तयोऽस्य सन्तीति गभस्तिमान् = सूर्यः इव । कटस्य = गण्डस्य, प्रभेदः = प्रस्फुटनं, तेन कटप्रभेदेन गण्डस्थलस्फुटनेनेत्यर्थः । करी = गजः इव । पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः = दिलीपः । सारथिना = सहायभूतेन, तेन = रघुणा । अतितराम् = अत्यन्तं । सुतरां दुःखेन सह्यत इति सुदुःसहः = सोढुमशक्यः । बभूव = जातः ।

समा०—घनानां व्यपायः यस्मिन् सः घनव्यपायः, तेन घनव्यपायेन । गभस्तयः अस्य सन्तीति गभस्तिमान् । कटस्य प्रभेदः कटप्रभेदः तेन कटप्रभेदेन । करः 'शुण्डा' अस्यास्तीति करी । पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः ।

अभि०—पवनसाहाय्येन वह्निः, शरत्कालसाहाय्येन सूर्यः, मदस्रावेण गजश्च यथा दुःसहा भवन्ति एवं बलवता युवराजेन रघुणापि दिलीपः सुदुःसहो जातः।

हिन्दी—वायु की सहायता से अग्नि तथा शरदऋतु में खुले आकाश को पाकर सूर्य और जवानी का मद बहने से हाथी जिस प्रकार प्रबल प्रचण्ड हो जाता है उसी प्रकार प्रतापी रघु की सहायता से राजा दिलीप भी शत्रुओं के लिये प्रभावशाली एवं प्रचण्ड हो गये ॥ ३७ ॥

नियुज्य तं होमतुरङ्गरक्षणे धनुर्धरं राजसुतैरनुद्रुतम् ।
अपूर्णमेकेन शतक्रतूपमः शतं क्रतूनामपविघ्नमाप सः ॥ ३८ ॥

सञ्जीविनी—शतक्रतुरिन्द्रः उपमा यस्य स शतक्रतूपमः स दिलीपः। "शतं वै तुल्या राजपुत्रा देवा आशापालाः" इत्यादिश्रुत्या। राजसुतैरनुद्रुतमनुगतं धनुर्धरं तं रघुं होमतुरंगाणां रक्षणे नियुज्य। एकेन क्रतुनाऽपूर्णमेकोनं क्रतूनामश्वमेधानां शतमपविघ्नमपगतविघ्नं यथा तथाऽऽप प्राप ॥ ३८ ॥

अन्वयः—शतक्रतूपमः, सः, राजसुतैः, अनुद्रुतं, धनुर्धरं, तं, होमतुरंगरक्षणे, नियुज्य, एकेन, अपूर्णं, क्रतूनां शतम्, अपविघ्नं, 'यथा स्यात्तथा' आप।

वाच्य०—शतक्रतूपमेन तेन क्रतूनां शतम् आपे।

व्याख्या—शतं = शतसंख्यकाः क्रतवः = अश्वमेधाः यस्य सः शतक्रतुः इन्द्रः, उपमा = उपमानं यस्य सः शतक्रतूपमः। सः = राजा दिलीपः। राज्ञां = राजन्यानां, सुताः = पुत्रास्तैः राजसुतैः। अनुद्रुतम् = अनुगतं। धरतीति धरः, धनुषः धरः धनुर्धरस्तं धनुर्धरं = चापधरं तं = रघुं। होमार्थाः = यज्ञार्थास्तुरंगाः = घोटकाः, तेषां रक्षणं = रक्षा, तस्मिन् होमतुरंगरक्षणे। नियुज्य = व्यापार्य। एकेन = एकसंख्यकेन, क्रतुना अपूर्णं = न्यूनं क्रतूनाम् = अश्वमेधानां, शतं = शतसंख्यापरिमितम्। अपगताः = नष्टाः, विघ्नाः = अन्तरायाः यत्र तत् अपविघ्नं 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' इत्यमरः। 'यथा स्यात्तथा' आप = प्राप्तवान्।

समा०—शतं क्रतवो यस्य सः शतक्रतुः, शतक्रतुः उपमा यस्य सः शतक्रतूपमः। राज्ञां सुताः राजसुताः, तैः राजसुतैः। धरतीति धरः, धनुषः धरः धनुर्धरः, तं धनुर्धरम्। होमस्य तुरंगः होमतुरंगः, होमतुरंगस्य रक्षणं होमतुरंगरक्षणम्, तस्मिन् होमतुरंगरक्षणे। न पूर्णमपूर्णम्, तत् अपूर्णम्। अपगतः विघ्नः यस्मात् तत् अपविघ्नम्, तत्। यद्वा अपगता विघ्ना यस्मिन् कर्मणि तद् यथा भवति तथेति क्रियाविशेषणम्।

अभि०—इन्द्रतुल्यो राजा दिलीपोऽश्वमेधयज्ञीयतुरंगरक्षणे रघुं नियुज्य, एकोनशतमश्वमेधान् निर्विघ्नं कृतवान्।

हिन्दी—इन्द्र के समान प्रतापी दिलीप ने अश्वमेधयज्ञ के घोड़ों की रक्षा का भार राजकुमारों के साथ धनुर्धारी रघु को सौंपकर बिना विघ्न के एक कम सौ (निन्यानबे) यज्ञ पूर्ण कर लिये ॥ ३८ ॥

ततः परं तेन मखाय यज्वना तुरङ्गमुत्सृष्टमनर्गलं पुनः ।
धनुर्भृतामग्रत एव रक्षिणां जहार शक्रः किल गूढविग्रहः ॥ ३९ ॥

संजीविनी—ततः परमेकोनशतक्रतुमाप्त्यनन्तरं यज्वना विधिनेष्टवता तेन दिलीपेन पुनः पुनरपि मखाय मखं कर्तुम् । 'क्रियार्थोपपदस्य च स्थानिनः' इत्यादिना चतुर्थी । उत्सृष्टं मुक्तमनर्गलमप्रतिबन्धम् । अव्याहतस्वैरगतिमित्यर्थः । 'अपर्यावर्तयन्तोऽश्वमनुचरन्ति' इत्यापस्तम्बस्मरणात् तुरङ्गं धनुर्भृतां रक्षिणां रक्षकाणामग्रत एव शक्रो गूढविग्रहः सन् । जहार किल । किलेत्यैतिह्ये ॥ ३९ ॥

अन्वयः—ततः परं, यज्वना, तेन, पुनः मखाय, उत्सृष्टम्, अनर्गलं, तुरंगं, धनुर्भृतां रक्षिणां, अग्रतः, एव, शक्रः गूढविग्रहः, 'सन्' जहार किल ।

वाच्य०—उत्सृष्टः अनर्गलः तुरंगः शक्रेण गूढविग्रहेण 'सता' जह्रे ।

व्याख्या—ततः = तस्मात्, परम् = एकोनशतयज्ञप्राप्त्यनन्तरं । यज्वना = विधिनेष्टवता, तेन = राज्ञा दिलीपेन । पुनः = भूयोऽपि मखाय = यज्ञाय मखं कर्तुमित्यर्थः । उत्सृष्टं = मुक्तं त्यक्तम् ; न विद्यते अर्गला = शृंखला यस्यासौ, तमनर्गलं, तुरङ्गं = घोटकं । धनुर्बिभ्रतीति धनुर्भृतस्तेषां धनुर्भृतां = धानुष्काणां रक्षिणां = तुरंगरक्षकाणाम्, अग्रतः = पुरतः एव । शक्रः = इन्द्रः, गूढः = गुप्तः, विग्रहः = शरीरं यस्य स गूढविग्रहः 'सन्' । जहार = हरणं कृतवान् । किलेत्यैतिह्ये ।

समा०—न विद्यते अर्गलं यस्य सः अनर्गलम् । धनुः बिभ्रतीति धनुर्भृतः, तेषां धनुर्भृताम् । रक्षन्तीति रक्षिणः, तेषां रक्षिणाम् । गूढः विग्रहः यस्य सः गूढविग्रहः ।

अभि०—शततममश्वमेधयज्ञं कर्तुं राजा दिलीपः पुनरपि अश्वरत्नं मुक्तवान् । तमश्वं गूढविग्रह इन्द्रः रक्षकाणां रघोश्च पुरत एव अपहृतवान् ।

हिन्दी—इसके बाद विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाले महाराज दिलीप ने सौवाँ अश्वमेधयज्ञ करने के लिये फिर खुला घोड़ा छोड़ा (इन्द्र यह न सहन कर सका) और उसने अपने को छिपाकर धनुर्धारी रक्षकों के सामने ही उस घोड़े को चुरा लिया ॥ ३९ ॥

विषादलुप्तप्रतिपत्ति विस्मितं कुमारसैन्यं सपदि स्थितं च तत् ।
वसिष्ठधेनुश्च यदृच्छयागता श्रुतप्रभावा ददृशेऽथ नन्दिनी ॥ ४० ॥

सञ्जीविनी—तत्कुमारस्य सैन्यं सेना सपदि विषाद इष्टनाशकृतो मनोभङ्गः यदुक्तम्—'विषादश्चेतसो भङ्ग उपायाभावनाशयोः' इति । तेन लुप्ता प्रतिपत्तिः कर्तव्यज्ञानं यस्य तत्तथोक्तम् । विस्मितमश्वनाशस्याकस्मिकत्वादाश्चर्याविष्टं सत् । स्थितं तस्थौ । अथ श्रुतप्रभावा यदृच्छया स्वेच्छयाऽऽगता । रघोः स्वप्रसादलब्धत्वादनुजिघृक्षयेति भावः । नन्दिनी नाम वसिष्ठधेनुश्च ददृशे । द्वौ चकारावविलम्बद्योतकौ ॥ ४० ॥

अन्वयः—तत् कुमारसैन्यं, सपदि, विषादलुप्तप्रतिपत्ति, विस्मितं, 'सत्' स्थितं च, अथ, श्रुतप्रभावा, यदृच्छया, आगता, नन्दिनी 'नाम' वसिष्ठधेनुः, च ददृशे ।

वाच्य०—तेन कुमारसैन्येन सपदि विस्मितेन 'स्ता' स्थितम्। अथ यदृच्छयागता नन्दिनी वशिष्ठधेनुं च ददर्श।

व्याख्या—तत् = पूर्वोक्तं। कुमारस्य = रघोः, सैन्यं = सेना इति कुमारसैन्यं। सपदि = सद्यः, विषादेन = इष्टनाशकृतेन मनोभंगेन, लुप्ता = नष्टा, प्रतिपत्तिः = कर्तव्यज्ञानं यस्य तत् विषादलुप्तप्रतिपत्ति। विस्मितं = यज्ञीयतुरंगादर्शनस्याकस्मिकत्वेनाश्चर्ययुक्तं सत्, स्थितं = तस्थौ। अथ = पश्चात्, श्रुतः = प्रसिद्धः, प्रभावः = वरप्रदानरूपः यस्याः सा श्रुतप्रभावा। यदृच्छया = स्वेच्छया, आगता = सम्प्राप्ता, नन्दिनी = नन्दिनीनाम्नी, वसिष्ठस्य = महर्षेः, धेनुः = गौः इति वसिष्ठधेनुः च अविलम्बेनेत्यर्थः। ददृशे = अदृश्यत 'सर्वैः सैनिकैः' इति शेषः।

समा०—कुमारस्य सैन्यं कुमारसैन्यम्। विषादेन लुप्ता प्रतिपत्तिः यस्य तत् विषादलुप्तप्रतिपत्ति। श्रुतः प्रभावः यस्याः सा श्रुतप्रभावा। वसिष्ठस्य धेनुः वसिष्ठधेनुः।

अभि०—सहसा घोटकस्य तिरोधानेन चकिते कर्तव्यज्ञानशून्ये ससैन्ये रघौ नन्दिनीनाम्नी वसिष्ठधेनुः स्वेच्छया तत्रागता।

हिन्दी—घोड़े के सहसा गायब हो जाने से कर्तव्यज्ञान से शून्य आश्चर्य में डूबी रघु की सेना तुरन्त रुक गई और उसी क्षण प्रभावशाली वसिष्ठ ऋषि की नन्दिनी दिखाई दी जो कि स्वेच्छा से घूमती फिरती आ गई थी ॥ ४० ॥

तदंगनिस्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम्।
अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः ॥ ४१ ॥

संजीविनी—सतां पुरस्कृतः पूजितो दिलीपनन्दनो रघुः पुण्येन तस्या नन्दिन्या यदङ्गं तस्य निस्यन्दो द्रवः स एव जलम्। मूत्रमित्यर्थः। तेन लोचने प्रमृज्य शोधयित्वा। अतीन्द्रियेष्विन्द्रियाण्यतिक्रान्तेषु। 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीया' इति वक्तव्यात् समासः। द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु परवल्लिङ्गताप्रतिषेधाद्विशेष्यनिघ्नत्वम्। भावेष्वपि वस्तुषूपपन्नदर्शनः संपन्नसाक्षात्कारशक्तिर्बभूव ॥४१॥

अन्वयः—सतां, पुरस्कृतः, दिलीपनन्दनः पुण्येन, तदङ्गनिस्यन्दजलेन, लोचने, प्रमृज्य, अतीन्द्रियेषु, भावेषु, अपि उपपन्नदर्शनः, बभूव।

वाच्य०—पुरस्कृतेन दिलीपनन्दनेन उपपन्नदर्शनेन बभूवे।

व्याख्या—सतां = सज्जनानां, पुरस्कृतः = पूजितः। नन्दयतीति नन्दनः, दिलीपस्य = राज्ञः, नन्दनः = पुत्रः इति दिलीपनन्दनः रघुरित्यर्थः। पुण्येन = पवित्रेण तस्याः = नन्दिन्याः, अंगं = शरीरमिति तदंगं तस्य निस्यन्दः = द्रव एव जलं = सलिलमिति तेन तदंगनिस्यन्दजलेन मूत्रेणेत्यर्थः। लोचने = नेत्रे, प्रमृज्य = शोधयित्वा प्रक्षाल्येति यावत्। इन्द्रियाणि = अक्षाणि, अतिक्रान्ताः = अतीताः इति अतीन्द्रियास्तेषु अतीन्द्रियेषु। भावेषु = पदार्थेषु। अपिः = समुच्चये। उपपन्नं = सम्पन्नम्, दर्शनं = साक्षात्कारशक्तिर्यस्य स उपपन्नदर्शनः, बभूव = जातः।

समा०—दिलीपस्य नन्दनः दिलीपनन्दनः। तस्या अङ्गं तदङ्गम्, तदङ्गस्य निस्यन्दः

तदङ्गनिस्यन्दः, तदङ्गनिस्यन्द एव जलं तदङ्गनिस्यन्दजलम्, तेन तदङ्गनिस्यन्दजलेन । इन्द्रियाण्यतीता अतीन्द्रियाः, तेषु अतीन्द्रियेषु । उपपन्नं दर्शनं यस्य सः उपपन्नदर्शनः ।

अभि०—दिलीपपुत्रो रघुः नन्दिनीमूत्रेण लोचने संशोध्य दिव्यदृष्टिर्जातः ।

हिन्दी—सज्जनों के सम्मानित रघु ने तुरन्त नन्दिनी के मूत्र से आँखें धो डालीं, इससे उन्हें इन्द्रियों से न दीखनेवाले पदार्थों को भी देखने की शक्ति मिल गई ॥ ४१ ॥

स पूर्वतः पर्वतपक्षशातनं ददर्श देवं नरदेवसंभवः ।
पुनः पुनः सूतनिषिद्धचापलं हरन्तमश्वं रथरश्मिसंयतम् ॥ ४२ ॥

संजीविनी—नरदेवसंभवः स रघुः पुनः पुनः सूतेन निषिद्धचापलं निवारितौद्धत्यं रथस्य रश्मिभिः प्रग्रहैः । 'किरणप्रग्रहौ रश्मी' इत्यमरः । संयतं बद्धमश्वं हरन्तं पर्वतपक्षाणां शातनं छेदकं देवमिन्द्रं पूर्वतः पूर्वस्यां दिशि ददर्श ॥ ४२ ॥

अन्वयः—**नरदेवसम्भवः, सः, पुनः पुनः, सूतनिषिद्धचापलं, रथरश्मिसंयतम्, अश्वं, हरन्तं, पर्वतपक्षशातनं, देवं पूर्वतः, ददर्श ।**

वाच्य०—नरदेवसम्भवेन तेन अश्वं हरन् पर्वतपक्षशातनो देवः पूर्वतो ददृशे ।

व्याख्या—नराणां = मनुष्याणां, देवः = ईश्वरः, इति नरदेवस्तस्मात् सम्भवः = उत्पत्तिः यस्य स नरदेवसम्भवः । सः = रघुः । पुनः पुनः = भूयो भूयः, सूतेन = सारथिना, निषिद्धं = निवारितं, चापलं = चाञ्चल्यं यस्य सः, तं सूतनिषिद्धचापलम् । रथस्य = स्यन्दनस्य, रश्मयः = प्रग्रहाः, तैः संयतः = बद्धस्तं तथोक्तम् । अश्वं = तुरगं, हरन्तं = चोरयन्तं, पर्वतानां = गिरीणां, पक्षाः = गरुतः इति पर्वतपक्षास्तेषां शातनः = छेदकस्तं पर्वतपक्षशातनं । देवम् = इन्द्रं, पूर्वतः = पूर्वस्यां दिशि ददर्श = अपश्यत् ।

समा०—नरदेवात् संभवो यस्य सः नरदेवसम्भवः । चपलस्य भावः चापलम्, सूतेन निषिद्धं चापलं यस्य सः सूतनिषिद्धचापलः, तं सूतनिषिद्धचापलम् । रथस्य रश्मयः रथरश्मयः, रथरश्मिभिः संयतः रथरश्मिसंयतः, तं रथरश्मिसंयतम् । पर्वतानां पक्षाः पर्वतपक्षाः, पर्वतपक्षाणां शातनः पर्वतपक्षशातनः, तं पर्वतपक्षशातनम् ।

अभि०—प्राप्तदिव्यदृष्टिः, दिलीपसूनुः रथरश्मिबद्धमश्वं हरन्तमिन्द्रं पूर्वस्यां दिशि दृष्टवान् ।

हिन्दी—इस प्रकार दिव्य दृष्टि प्राप्त करके रघु ने, उस घोड़े को चुराकर ले जाते हुए, पर्वतों के पंख काटनेवाले इन्द्र को पूर्व दिशा में देखा और रथ की डोरी से बँधे चपल घोड़े को इन्द्र का सारथि बराबर रोक रहा था ॥ ४२ ॥

शतैस्तमक्ष्णामनिमेषवृत्तिभिर्हरिं विदित्वा हरिभिश्च वाजिभिः ।
अवोचदेनं गगनस्पृशा रघुः स्वरेण धीरेण निवर्तयन्निव ॥ ४३ ॥

संजीविनी—रघुस्तमश्वहर्तारमनिमेषवृत्तिभिर्निमेषव्यापारशून्यैरक्ष्णां शतैर्हरिभिर्हरिद्वर्णैः । 'हरिर्वाच्यवदादित्यातो हरित्कपिलवर्णयोः' इति विश्वः । वाजिभिरश्वैश्च हरिमिन्द्रं विदित्वा ।

'हरिर्वाताकंचन्द्रेन्द्रयमोपेन्द्रमरीचिषु' इति विश्वः। एनमिन्द्रं गगनस्पृशा व्योमव्यापिना धीरेण गंभीरेण स्वरेण ध्वनिनैव निवर्तयन्निवावोचत् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—रघुः, तम्, अनिमेषवृत्तिभिः, अक्ष्णां शतैः, हरिभिः, वाजिभिः, च, हरिं, विदित्वा, एनं, गगनस्पृशा, धीरेण, स्वरेण, निवर्त्तयन्, इव, अवोचत्।

वाच्य०—रघुणा निवर्त्तयता इव अवोचि।

व्याख्या—रघुः = दिलीपात्मजः। तम् = अश्वहर्त्तारम् = अश्वचौरमित्यर्थः निमेषस्य वृत्तिः, निमेषवृत्तिः, अविद्यमाना निमेषवृत्तिर्येषां तानि अनिमेषवृत्तीनि, तैः अनिमेषवृत्तिभिः = निमेषव्यापारशून्यैः। अक्ष्णां = नेत्राणां, शतैः = शतसंख्याकैः, हरिभिः = हरिद्वर्णैः। हरिम् = इन्द्रं, विदित्वा = ज्ञात्वा। एनम् = इन्द्रं, गगनम् = आकाशं, स्पृशति = व्याप्नोति इति गगनस्पृक्, तेन गगनस्पृशा। धीरेण = गम्भीरेण, स्वरेण = ध्वनिना। निवर्त्तयन् = परावर्तयन् इव = यथा अवोचत् = उक्तवान्।

समा०—निमेषस्य वृत्तिः निमेषवृत्तिः, न, विद्यते निमेषवृत्तिः येषां तानि अनिमेषवृत्तीनि, तैः अनिमेषवृत्तिभिः। गगनं स्पृशतीति गगनस्पृक्, तेन गगनस्पृशा।

अभि०—रघुः सहस्राक्षतया घोटकानां हरिद्वर्णतया निमेषव्यापारशून्यदृष्टिमत्त्वेन चाश्वचौरमिन्द्रं ज्ञात्वा गम्भीरस्वरेण तं निवर्तयन्निव जगाद।

हिन्दी०—रघु ने उस घोड़े को चुराकर के जानेवाले को पलकें न गिराने वाली हजार आँखों से और हरे रंग के घोड़े से इन्द्र करके पहचान लिया। और आकाशव्यापी गम्भीर स्वर से इन्द्र को मानो लौटाते हुए, ललकारा ॥ ४३ ॥

मखांशभाजां प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र ! सदा निगद्यसे।
अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय कथं प्रवर्तसे ॥ ४४ ॥

संजीविनी—हे देवेन्द्र ! मनीषिभिस्त्वमेव मखांशभाजां यज्ञभागभुजां प्रथमः सदा निगद्यसे कथ्यसे। तथाऽप्यजस्रदीक्षायां नित्यदीक्षायां प्रयतस्य मद्गुरोः क्रियाविघाताय क्रतुविघाताय। क्रियां विहन्तुमित्यर्थः। 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' इति चतुर्थी। कथं प्रवर्तसे ॥ ४४ ॥

अन्वयः—"हे" देवेन्द्र ! मनीषिभिः, त्वम् एव, मखांशभाजां प्रथमः, सदा, निगद्यसे, "तथापि" अजस्रदीक्षाप्रयतस्य, मद्गुरोः, क्रियाविघाताय, कथं प्रवर्त्तसे।

वाच्य०—"हे" देवेन्द्र ! मनीषिणस्त्वामेव प्रथमं निगदन्ति, त्वया कथं प्रवर्त्यते।

व्याख्या—देवानामिन्द्र इति देवेन्द्रस्तत्संबुद्धौ "हे" देवेन्द्र ! मनीषिभिः = विद्वद्भिः। त्वम् = इन्द्र एव। मखस्य = यज्ञस्य, अंशाः = भागास्तान् भजन्ति भुञ्जते इति मखांशभाजस्तेषां मखांशभाजां देवानां। प्रथमः = आदिः। सदा = सर्वदा, निगद्यसे = कथ्यसे। "तथापि" अजस्रं = निरन्तरं दीक्षा इति अजस्रदीक्षा तस्यां प्रयतः = संलग्नस्तस्य अजस्रदीक्षाप्रयतस्य मम = रघोः, गुरुः = पिता तस्य मद्गुरोः। क्रियायाः = अनुष्ठानस्य, विघातः = नाशस्तस्मै क्रियाविघाताय। कथं = कस्मात्, प्रवर्त्तसे = प्रवृत्तो भवसि।

समा०—देवानामिन्द्रः देवेन्द्रः, तत्सम्बुद्धौ देवेन्द्र ! मनीषा एषामस्तीति मनीषिणः, तैः मनीषिभिः । मखस्य अंशाः मखांशाः, मखांशान् भजन्तीति मखांशभाजः, तेषां मखांशभाजाम् । अजस्रं दीक्षा अजस्रदीक्षा, अजस्रदीक्षायां प्रयतः अजस्रदीक्षाप्रयतः, तस्य अजस्रदीक्षाप्रयतस्य । मम: गुरुः मद्गुरुः, तस्य मद्गुरोः । क्रियायाः विघातः क्रियाविघातः, तस्मै क्रियाविघाताय ।

अभि०—यज्ञभागभुजां मध्ये त्वमेव प्रथमः भूत्वा निजतृप्तिकारणं यज्ञं विहन्तुं अश्वापहरणरूपकर्मणि कथं प्रवृत्तोऽसि ।

हिन्दी—हे इन्द्र ! यज्ञ का भाग सबसे पहले तुमको ही मिलता है, ऐसा मनीषियों का कहना है, फिर भी निरन्तर यज्ञ करने में प्रयत्नशील मेरे पिता के यज्ञ में न जाने तुम क्यों विघ्न डाल रहे हो ॥ ४४ ॥

त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा ।
स चेत्स्वयं कर्मसु धर्मचारिणां त्वमन्तरायो भवसि च्युतो विधिः ॥४५॥

सञ्जीविनी—त्रयाणां लोकानां नाथस्त्रिलोकनाथः । 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इत्यनेनोत्तरपदसमासः । तेन त्रैलोक्यनियामकेन दिव्यचक्षुषाऽतीन्द्रियार्थदर्शिना त्वया मखद्विषः क्रतुविघातकाः सदा नियम्या ननु शिक्ष्याः खलु । स त्वं धर्मचारिणां कर्मसु क्रतुषु स्वयमन्तरायो भवसि चेत् विधिरनुष्ठानं च्युतः क्षतः । लोके सत्कर्मकथैवास्तमियादित्यर्थः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—त्रिलोकनाथेन, दिव्यचक्षुषा, त्वया, मखद्विषः, सदा, नियम्याः, ननु, सः त्वं, धर्मचारिणां, कर्मसु, स्वयम्, अन्तरायः, भवसि, चेत्, "तर्हि" विधिः च्युतः ।

वाच्य०—त्रिलोकनाथो दिव्यचक्षुस्त्वं मखद्विषः सदा नियमयसि ननु, तेन त्वया धर्मचारिणां कर्मसु अन्तरायेण भूयते चेत्, "तर्हि" विधिना च्युतेन भूयेत ।

व्याख्या—त्रयाणां लोकानां नाथस्त्रिलोकनाथस्तेन त्रिलोकनाथेन = त्रैलोक्यस्वामिना । दिव्यानि = अलौकिकानि, चक्षूंषि = नेत्राणि यस्य स दिव्यचक्षुस्तेन दिव्यचक्षुषा = अतीन्द्रियार्थदर्शिना । त्वया = इन्द्रेण । मखान् = यज्ञान् द्विषन्ति, इति मखद्विषः = यज्ञविघातकाः । सदा = सर्वदा । नियम्याः = शिक्ष्याः । ननु = निश्चयेन । सः यज्ञद्विषां नियन्ता त्वं धर्मं चरितुं शीलं येषान्ते धर्मचारिणस्तेषां धर्मचारिणां = सुकृतकारिणां । कर्मसु = क्रियासु । स्वयम् = आत्मना । अन्तरायः = विघ्नः । भवसि = वर्तसे । चेत् = यदि, "तर्हि" विधिः = धर्मानुष्ठानं च्युतः = नष्टः । 'भवेदि'ति शेषः ।

समा०—त्रयाणां लोकानां नाथः त्रिलोकनाथः, तेन त्रिलोकनाथेन । दिव्यं चक्षुः यस्य सः दिव्यचक्षुः, तेन दिव्यचक्षुषा । मखान् द्विषन्तीति मखद्विषः । धर्मं चरन्तीति धर्मचारिणः, तेषां धर्मचारिणाम् ।

अभि०—त्रिलोकनियामकेन त्वया यज्ञादिसत्कार्यविघातका दण्डनीयाः, एवं स्थिते यदि भवान् मे पितुर्यज्ञविनाशं करिष्यति तर्हि धर्मकथैव नष्टा भवेल्लोके ।

हिन्दी—तीनों लोकों के स्वामी दिव्यदृष्टिवाले आपको चाहिये कि जो संसार में यज्ञादि सत्कर्म के विघातक हैं, उन्हें दण्ड दें। फिर धर्म रक्षक होकर यदि स्वयं आप ही यज्ञ में विघ्न डालेंगे तो यज्ञादि अनुष्ठान लुप्त हो जायगा ॥ ४५ ॥

तदङ्गमग्र्यं मघवन्महाक्रतोरमुं तुरङ्गं प्रतिमोक्तुमर्हसि ।
पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् ॥४६॥

सञ्जीविनी—हे मघवन् ! तत्तस्मात्कारणान्महाक्रतोरश्वमेधस्याग्र्यं श्रेष्ठमङ्गं साधनममुं तुरङ्गं प्रतिमोक्तुं प्रतिदातुमर्हसि। तथाहि श्रुतेर्वेदस्य पथो दर्शयितारः सन्मार्गप्रदर्शका ईश्वरा महान्तो मलीमसां पद्धतिं मार्गं नाददते न स्वीकुर्वते। असन्मार्गं नावलम्बन्त इत्यर्थः। 'मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम्' इत्यमरः ॥

अन्वयः—"हे" मघवन् ! तद्, महाक्रतोः, अग्र्यम्, अङ्गम्, अमुं, तुरंगं, प्रतिमोक्तुम्, अर्हसि "तथाहि" श्रुतेः पथः, दर्शयितारः ईश्वराः, मलीमसां, पद्धतिं, न, आददते।

वाच्य०—त्वया अर्ह्यते, पथो दर्शयितृभिः ईश्वरैः मलीमसा पद्धतिर्नादीयते।

व्याख्या—"हे" मघवन् ! = हे इन्द्र ! तद् = तस्मात् कारणात्। महांश्चासौ क्रतुः महाक्रतुस्तस्य महाक्रतोः = अश्वमेधस्य। अग्रे भवम् अग्र्यं = प्रधानं श्रेष्ठम्, अङ्गम् = अवयवम्, अमुम् = एतं, तुरङ्गं = घोटकं। प्रतिमोक्तुं = प्रतिदातुम्। अर्हसि = योग्योऽसि। "तथाहि" श्रुतेः = वेदस्य, पथः = मार्गस्य। दर्शयितारः = प्रदर्शकाः। ईशितुं शीलं येषान्ते ईश्वराः = महान्तो जनाः। मलीमसां = मलिनां, पद्धतिं = मार्गं। न = नहि, आददते = स्वीकुर्वते।

समा०—महांश्चासौ क्रतुश्च महाक्रतुः, तस्य महाक्रतोः। अग्रे भवम् अग्र्यम्, तत्।

अभि०—अतो हे इन्द्र ! अश्वमेधयज्ञीयममुं तुरङ्गं मह्यं दत्वा धर्मचारिणो मे पितुः यज्ञरक्षां तु करोतु भवान्, भवादृशा ईदृशीं पद्धतिं न स्वीकुर्वते।

हिन्दी—इसीलिये हे इन्द्र ! आप मेरे पिता के महाक्रतु अश्वमेध यज्ञ के प्रधान अंग इस घोड़े को छोड़ दीजिये, क्योंकि वेद का मार्ग दिखानेवाले महापुरुष ऐसा निन्दनीय कार्य कभी नहीं करते ॥ ४६ ॥

इति प्रगल्भं रघुणा समीरितं वचो निशम्याधिपतिर्दिवौकसाम् ।
निवर्तयामास रथं सविस्मयः प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमुत्तरम् ॥ ४७ ॥

संजीविनी—इति रघुणा समीरितं प्रगल्भं वचो निशम्याकर्ण्य दिवौकसः स्वर्गौकसः 'दिवं स्वर्गेऽन्तरिक्षे च' इति विश्वः। तेषामधिपतिर्देवेन्द्रो रघुप्रभावात्सविस्मयः सन् रथं निवर्तयामास, उत्तरं प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे च ॥ ४७ ॥

अन्वयः—इति, रघुणा, समीरितं, प्रगल्भं, वचः, निशम्य, दिवौकसाम् अधिपतिः, सविस्मयः, "सन्" रथं, निवर्तयामास, उत्तरं प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे च।

वाच्य०—दिवौकसामधिपतिना सविस्मयेन "सता" रथो निवर्तयाञ्चक्रे।

व्याख्या—इति = पूर्वोक्तप्रकारेण। रघुणा = दिलीपपुत्रेण। समीरितं = कथितं। प्रगल्भं = धृष्टं। वचः = वचनं। निशम्य = श्रुत्वा। दिवौकसां = देवानाम्, अधिपतिः = स्वामी, इन्द्रः। विस्मयेन = आश्चर्येण, सहितः = युक्तः इति सविस्मयः "सन्"। रथं = स्यन्दनं। निवर्त्तयामास = न्यवर्त्तयत्। उत्तरं = प्रतिवचनं। प्रतिवक्तुं = प्रति कथयितुं प्रचक्रमे = प्रारम्भं कृतवान्।

समा०—दिवम् ओकः येषां ते दिवौकसः। विस्मयेन सह वर्तते इति सविस्मयः।

अभि०—रघोः पूर्वोक्तं प्रगल्भं वाक्यं श्रुत्वा देवेन्द्रः आश्चर्यचकितः सन् रथं परावर्तयन् प्रत्युत्तरं दातुं प्रचक्रमे।

हिन्दी—इस प्रकार रघु के निर्भय वचन को सुनकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ, और अपने रथ को लौटाकर जवाब देने लगा ॥ ४७ ॥

यदात्थ राजन्यकुमार तत्तथा यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः।
जगत्प्रकाश तदशेषमिज्यया भवद्गुरुर्लङ्घयितुं ममोद्यतः ॥ ४८ ॥

संजीविनी—हे राजन्यकुमार! क्षत्रियकुमार! 'मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्' इत्यमरः। यद्वाक्यमात्थ ब्रवीषि 'ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः' इत्यनेनाहादेशः। तत्तथा सत्यम्। किंतु यशोधनैरस्मादृशैः परतः शत्रुतो यशो रक्ष्यम्। ततः किमत आह— भवद्गुरुस्त्वत्पिता जगत्प्रकाशं लोकप्रसिद्धमशेषं सर्वं मम तद्यशः शतक्रतुत्वरूपं इज्यया यागेन लङ्घयितुं तिरस्कर्तुमुद्यत उद्युक्तः ॥ ४८ ॥

अन्वय—'हे' राजन्यकुमार, यद् आत्थ, तत्, तथा, तु, यशोधनैः परतः, यशः रक्ष्यं, भवद्गुरुः, जगत्प्रकाशम्, अशेषं, मम, तद्, इज्यया, लंघयितुम् उद्यतः।

वाच्य०—यद् वाक्यं त्वयोच्यते तेन "भूयते" तु यशोधनाः परतो यशो रक्षन्ति, भवद्गुरुणा तद् यशः इज्यया लंघयितुमुद्यतेन "भूयते"

व्याख्या—राजन्यस्य = क्षत्रियस्य, कुमारः = युवराजस्तत्संबुद्धौ "हे" राजन्यकुमार! यत् = पूर्वोक्तं, वचः = वचनम्, आत्थ = कथयसि, "त्वमिति शेषः"। तद् = वचः। तथा = सत्यम्। तु = किन्तु, यशः = कीर्तिः, एव धनं = वित्तं येषां ते, तैः यशोधनैः। परतः = शत्रुतः। यशः = कीर्तिः, रक्षितुं योग्यं रक्ष्यं = रक्षणीयं, पालनीयं। भवतः = तव, गुरुः = पिता इति भवद्गुरुः दिलीपः। जगति = संसारे, प्रकाशं = प्रसिद्धम्। अशेषं = सम्पूर्णं। मम = इन्द्रस्य। तत् = जगत्प्रसिद्धं, यशः = कीर्तिम्। इज्यया = अश्वमेधयज्ञेन, लंघयितुं = लंघनं कर्तुम्। उद्यतः = उद्युक्तः।

समा०—राजन्यस्य कुमारः राजन्यकुमारः तत्सम्बुद्धौ हे राजन्यकुमार! यश एव धनं येषां ते यशोधनाः, तैः यशोधनैः। रक्षितुं योग्यं रक्ष्यम्। भवतः गुरुः भवद्गुरुः। जगति प्रकाशं जगत्प्रकाशम्, तद् जगत्प्रकाशम्। न विद्यते शेषो यस्य तद् अशेषम्, तत्।

अभि०—हे क्षत्रियबालक ! यत् भवता कथितं तत्सर्वं सत्यं वर्तते, किन्तु शतक्रतुरिन्द्र एव मान्य इति स्वयशो रक्षितुं तव पितुरश्वमेधीयोऽश्वो हृत इति न दोषाय।

हिन्दी—हे क्षत्रियकुमार ! जो तुमने कहा है, वह सब सत्य है, किन्तु यशस्वियों को अपने यश की रक्षा अवश्य करनी चाहिये। मैंने संसार में प्रसिद्ध सौ अश्वमेध यज्ञ करने का जो यश पाया है, उसे सौवां अश्वमेध करके तुम्हारे पिता छीनना चाहते हैं ॥ ४८ ॥

हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं द्वितीयगामी नहि शब्द एष नः ॥ ४९ ॥

सञ्जीविनी—पुरुषेषूत्तम इति सप्तमीसमासः। 'न निर्धारणे' इति षष्ठीसमासनिषेधात्। कर्मधारये तु 'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः' इत्युत्तमपुरुष इति स्यात्। यथा हरिर्विष्णुरेक एव पुरुषोत्तमः स्मृतः। यथा च त्र्यम्बकः शिवः महेश्वरः स्मृतः। नापरोऽपरः पुमान्। तथा मां मुनयः। शतक्रतुं विदुर्विदन्ति। 'विदो लटो वा' इति झेर्जुसादेशः। नोऽस्माकम्। हरिहरयोर्मम चेत्यर्थः। एष त्रितयोऽपि शब्दो द्वितीयगामी एकं विहायान्यगामी नहि। द्वितीयातत्पुरुषप्रकरणे 'गम्यादीनामुपसंख्यानम्' इति समासः ॥ ४९ ॥

अन्वयः—**यथा, हरिः, एकः, पुरुषोत्तमः, स्मृतः, 'यथा च', त्र्यम्बकः, एव, महेश्वरः, स्मृतः, न, अपरः तथा मां, मुनयः, शतक्रतुं, विदुः, नः एषः, शब्दः द्वितीयगामी नहि।**

वाच्य०—हरिणैकेनैव पुरुषोत्तमेन स्मृतेन 'भूयते' त्र्यम्बकेनैकेनैव महेश्वरेण 'भूयते' नापरेण तथाहं मुनिभिः शतक्रतुर्विद्ये, एतेन शब्देन द्वितीयगामिना नहि भूयते।

व्याख्या—यथा=येन प्रकारेण। हरति पापानीति हरिः विष्णुः। एकः=केवलः एव। पुरुषेषु=नरेषु, उत्तमः=श्रेष्ठः इति पुरुषोत्तमः। स्मृतः=कथितः। 'यथा च' त्रीणि अम्बकानि=नेत्राणि यस्य स त्र्यम्बकः=शिवः 'एक एव' इति निश्चये। महांश्चासौ ईश्वर इति महेश्वरः=महादेवः 'स्मृतः'। न=नहि। अपरः=अन्यः कश्चिज्जन इत्यर्थः। तथा=तेन प्रकारेण। माम्=इन्द्रं। मन्तार इति मुनयः=वेदशास्त्रतत्त्वावगन्तारः। शतक्रतुं=शताश्वमेधयज्ञकर्तारं। विदुः=विदन्ति। नः=अस्माकं त्रयाणाम्, हरिहरेन्द्राणाम्। एषः=त्रितयोऽपि। शब्दः=पुरुषोत्तममहेश्वरशतक्रतुरूपः। द्वितीयम्=अपरं, गन्तुं=यातुं शीलमस्यासौ द्वितीयगामी=अन्यवाचक इत्यर्थः। नहि=न, भवतीति शेषः।

समा०—पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः। महांश्चासावीश्वरश्च महेश्वरः। त्रीणि अम्बकानि यस्य सः त्र्यम्बकः। शतं क्रतवो यस्य सः शतक्रतुः, तं शतक्रतुम्। द्वितीयं गन्तुं शीलमस्येति द्वितीयगामी।

अभि०—लोके पुरुषोत्तममहेश्वरशतक्रतुशब्दाः हरिहरेन्द्रानेवाभिदधति, नान्यान् पुरुषान्।

हिन्दी—जैसे भगवान् विष्णु को ही पुरुषोत्तम कहा जाता है। और त्र्यम्बक अर्थात् शिव को ही महेश्वर कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार मुनि लोग मुझ इन्द्र को ही शतक्रतु 'सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला' कहते हैं। ये तीनों नाम दूसरे व्यक्ति के नहीं हो सकते ॥४९॥

अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा पितुस्त्वदीयस्य मयापहारितः ।
अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः पदं पदव्यां सगरस्य सन्ततेः ॥ ५० ॥

सञ्जीविनी—यतोऽहमेव शतक्रतुरतस्त्वदीयस्य पितुरयं शततमोऽश्वः कपिलानुकारिणा कपिलमुनितुल्येन मयापहारितोऽपहृतः। अपहारित इति स्वार्थे णिच्। तवात्राश्वे प्रयत्नेनालम्। प्रयत्नं मा कार्षीरित्यर्थः। निषेध्यस्य निषेधं प्रति करणत्वात्तृतीया। सगरस्य राज्ञः संततेः संतानस्य पदव्यां पदं मा निधाः न निधेहि। निपूर्वाद्दधातोर्लुङ्। 'न माङ्योगे' इत्यडागमप्रतिषेधः। महदास्कन्दनं ते विनाशमूलं भवेदिति भावः ॥ ५० ॥

अन्वयः—अतः त्वदीयस्य, पितुः, अयम्, अश्वः, कपिलानुकारिणा मया अपहारितः, तव अत्र, प्रयत्नेन, अलं, सगरस्य सन्ततेः, पदव्यां, पदं मा निधाः।

वाच्य०—अमुमश्वं कपिलानुकार्यहमपहृतवान् पदं त्वया मा निधायि।

व्याख्या—अतः—एतस्मात् कारणात्। तवायं त्वदीयस्तस्य=भवदीयस्य, पितुः=जनकस्य, दिलीपस्येत्यर्थः। अयम्=एष शततमः, अश्वः=घोटकः। कपिलमनुकर्तुं शीलमस्येति कपिलानुकारी, तेन कपिलानुकारिणा=कपिलमुनितुल्येन, मया=इन्द्रेण। अपहारितः=चोरितः। तव=रघोः। अत्र=अस्मिन्नश्वे। प्रयत्नेन=प्रयासेन। अलं=साध्यं नास्ति। सगरस्य=सगरनाम्नो नृपस्य। सन्ततेः=सन्तानस्य, पदव्यां=मार्गे। पदं=चरणं, मा=नहि, निधाः=निधेहि।

समा०—कपिलमनुकर्तुं शीलमस्येति कपिलानुकारी, तेन कपिलानुकारिणा। तव अयं त्वदीयः, तस्य त्वदीयस्य।

अभि०—निजनामरक्षणार्थं तव पितुरयमश्वः कपिलतुल्येन मयापहृतः, अतः तवाश्वग्रहणप्रयासो व्यर्थः, अन्यथा सगरपुत्राणामिव त्वमपि विनंक्ष्यसि।

हिन्दी—इसलिये तुम्हारे पिता के इस घोड़े को कपिल मुनि की तरह मैंने हर लिया है, तुम्हारा इसे छुड़ाने का प्रयत्न व्यर्थ है। अतः तुम सगरपुत्रों के मार्ग का अनुसरण मत करो, नहीं तो उनके समान तुम भी नष्ट हो जाओगे ॥ ५० ॥

ततः प्रहस्यापभयः पुरन्दरं पुनर्बभाषे तुरगस्य रक्षिता ।
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान् ॥५१॥

सञ्जीविनी—ततस्तुरगस्य रक्षिता रघुः प्रहस्य प्रहासं कृत्वा। अपभयो निर्भीकः सन्। पुनः पुरंदरं बभाषे। किमिति—हे देवेन्द्र! यद्येषोऽश्वमोचनरूपस्ते तव सर्गो निश्चयः। 'सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु' इत्यमरः। तर्हि शस्त्रं गृहाण। भवान्रघुं मामनिर्जित्य। कृतकृत्यो न खलु। "इष्टादिभ्यश्च" इतीनिप्रत्ययः। रघुमित्यनेनात्मनो दुर्जयत्वं सूचितम् ॥५१॥

अन्वयः—अतः तुरगस्य, रक्षिता, प्रहस्य, अपभयः, "सन्", पुनः पुरन्दरम्, बभाषे, यदि एष, ते सर्गः, "तर्हि" शस्त्रम्, गृहाण, भवान्, रघुम्, अनिर्जित्य, कृती, न, खलु।

वाच्य०—रक्षित्रा अपभयेन "सता" पुरन्दरः बभाषे। यदि, एतेन, ते, सर्गेण "भूयते" 'तर्हि' त्वया शस्त्रम् गृह्यताम्। भवता कृतिना न भूयते खलु।

व्याख्या०—ततः = तदनन्तरम्, तुरगस्य = अश्वस्य, रक्षतीति रक्षिता = पालकः, रघुः। प्रहस्य = प्रहासं कृत्वा। अपगतं भयं यस्मादित्यपभयः = निर्भयः 'सन्'। पुनः = भूयः। पुरं दारयतीति पुरन्दरः = इन्द्र, तं पुरन्दरं। बभाषे = ऊचे। यदि = चेत्, एषः = अयम् अश्व-मोचनरूप इत्यर्थः। ते = तव, सर्गः = निश्चयः। 'तर्हि' शस्त्रम् = आयुधम्, गृहाण = स्वीकुरु। भवान् = त्वम्, इन्द्र इत्यर्थः। रघुम् = दिलीपपुत्रम् मामित्यर्थः। अनिर्जित्य = अजित्वा। कृतमनेनेति कृती = कृतकृत्यः, न = नहि खलु इति निश्चये।

समा०—अपगतं भयं यस्मात्सः अपभयः। कृतमस्यास्तीति कृती।

अभि०—ततः रघुः प्रहस्याकथयत्, यत् हे इन्द्र! यदि तेऽश्वमोचनाभावे निश्चयः तर्हि मया सह संग्रामं कुरुष्व, यतो यावत्त्वं मां न जेष्यसि तावदश्वनयने कुतस्ते शक्तिः।

हिन्दी—तब घोड़े के रक्षक रघु ने हँसकर कहा कि हे इन्द्र! यदि तुम्हारा घोड़े को न छोड़ने का ही निश्चय है तो शस्त्र हाथ में उठाओ, क्योंकि जब तक तुम मुझे नहीं जीत लेते तब तक घोड़ा कैसे ले जा सकते हो? ॥ ५१ ॥

स एवमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम्।
अतिष्ठदालीढविशेषशोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः ॥ ५२ ॥

संजीविनी—स रघुरुन्मुखः सन्। मघवन्तमिन्द्रमेवमुक्त्वा शरासनं चापं सशरं करिष्यमाणः। आलीढेनालीढाख्येन स्थानभेदेन विशेषशोभिनातिशयशोभिना वपुःप्रकर्षेण देहौन्नत्येन विडम्बितेश्वरोऽनुसृतपिनाकी सन् अतिष्ठत् स्थितवान्। आलीढलक्षणमाह यादवः— "स्थानानि धन्विनां पञ्च तत्र वैशाखमस्त्रियाम्। त्रिवितस्त्यन्तरौ पादौ मण्डलं तोरणाकृति॥ अन्वर्थं स्यात्समपदमालीढं तु ततोऽग्रतः। दक्षिणे वाममाकुञ्च्य प्रत्यालीढविपर्ययः॥" इति ॥ ५२ ॥

अन्वयः—सः, उन्मुखः 'सन्' मघवन्तम्, एवम्, उक्त्वा, शरासनम्, सशरम्, करिष्यमाणः, आलीढविशेषशोभिना, वपुःप्रकर्षेण, विडम्बितेश्वरः 'सन्', अतिष्ठत्।

वाच्य०—तेन उन्मुखेन 'सता', करिष्यमाणेन विडम्बितेश्वरेण 'सता' अस्थीयत।

व्याख्या—सः = रघुः। उद्गतं मुखं यस्य स उन्मुखः = ऊर्ध्वीकृताननः, 'सन्'। मघवान् = इन्द्रः, तं मघवन्तम्। एवम् = इत्थम्, पूर्वोक्तप्रकारेण। उक्त्वा = कथयित्वा। शरोऽस्यते क्षिप्यतेऽनेनेति शरासनः = धनुः, तम्। शरेण = बाणेन सहित इति सशरः, तम् सशरम् = बाणयुक्तमित्यर्थः। करिष्यतीति करिष्यमाणः = विधास्यमानः। विशेषेण शोभितुं शीलमस्येति विशेषशोभी, आलीढेन = तदाख्यस्थानभेदेन, विशेषशोभी = शोभातिशयशाली इति आलीढविशेषशोभी, तेन तथोक्तेन। वपुषः = देहस्य, प्रकर्षः = औन्नत्यम् इति वपुः-प्रकर्षः, तेन। विडम्बितः = अनुकृतः, ईश्वरः = पिनाकी येन स विडम्बितेश्वरः, 'सन्' अतिष्ठत् = तस्थौ।

समा०—उद्गतं मुखं यस्य सः उन्मुखः। शरस्य आसनं शरासनम्, तत् शरासनम्। शरेण सह वर्तते इति सशरम्, तत् सशरम्। आलीढेन विशेषं शोभितुं शीलमस्येति आलीढविशेषशोभी, तेन आलीढविशेषशोभिना। वपुषः प्रकर्षः वपुःप्रकर्षः, तेन वपुःप्रकर्षेण। विडम्बितः ईश्वरः येन सः विडम्बितेश्वरः।

अभि०—रघुरेवमिन्द्रमुक्त्वा बाणं धनुषा संयोज्य दक्षिणं चरणमग्रत आकुञ्च्य वामं च पश्चाद्विस्तार्य युद्धोन्मुखस्तथा स्थितो यथा त्रिपुरदाहोद्यतः शम्भुरासीत्।

हिन्दी—इन्द्र से इस प्रकार कहकर रघु धनुष पर बाण चढ़ाते हुए आलीढ नामक स्थानभेद से खड़े हुए अर्थात् दायाँ पैर आगे को झुकाकर तथा बायाँ पैर पीछे की ओर तानकर ऐसे सुशोभित हुए जैसे त्रिपुरदाह के समय भगवान् शङ्कर ॥ ५२ ॥

रघोरवष्टम्भमयेन पत्रिणा हृदि क्षतो गोत्रभिदप्यमर्षणः ।
नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने धनुष्यमोघं समधत्त सायकम् ॥ ५३ ॥

सञ्जीविनी—रघोरवष्टम्भमयेन स्तम्भरूपेण। 'अवष्टम्भे सुवर्णे च स्तम्भप्रारम्भयोरपि' इति विश्वः। पत्रिणा बाणेन हृदि हृदये क्षतो विद्धः। अत एवामर्षणोऽसहनः क्रुद्धः इत्यर्थः, गोत्रभिदिन्द्रोऽपि। 'संभाव्यनीये चौरेऽपि गोत्रः क्षोणीधरे मतः' इति विश्वः। नवाम्बुदानामनीकस्य वृन्दस्य मुहूर्तं क्षणमात्रं लाञ्छने चिह्नभूते धनुषि, दिव्ये धनुषीत्यर्थः। अमोघमवन्ध्यं सायकं बाणं समधत्त संहितवान्।

अन्वयः—रघोः, अवष्टम्भमयेन, पत्रिणा, हृदि, क्षतः, 'अतएव', गोत्रभित्, अपि, नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने, धनुषि, अमोघम्, सायकम्, समधत्त।

वाच्य०—क्षतेन, 'अत एव' अमर्षणेन, गोत्रभिदा, अपि, अमोघः सायकः समधीयत।

व्याख्या—रघोः = दिलीपपुत्रस्य। प्राचुर्येणावष्टम्भो यत्रत्यवष्टम्भमयः = स्तम्भरूपः तेन तथोक्तेन, पत्रिणा = बाणेन। हृदि = हृदये। क्षतः = विद्धः। अतएव, न मर्षितुं शीलमस्य इति अमर्षणः = क्रोधवान्। गां पृथ्वी त्रायन्ते रक्षन्ति इति गोत्राः = पर्वताः, तान् भिनत्तीति गोत्रभित् = इन्द्रः। अपि। अम्बूनि = जलानि, ददति = यच्छन्तीति अम्बुदाः = मेघाः, नवा नूतनाश्च ते अम्बुदा इति नवाम्बुदाः, तेषाम् अनीकं = सैन्यम्, इति नवाम्बुदानीकं, तस्य मुहूर्तं = क्षणमात्रम्, यत् लांछनम् = चिह्नम् इति मुहूर्त्तलांछनम्, तस्मिन्। धनुषि = शरासने, अमोघम् सफलम्। सायकम् = शरम्। समधत्त = सन्दधे।

समा०—प्रचुरः अवष्टम्भः यस्मिन् सः अवष्टम्भमयः, तेन अवष्टम्भमयेन। अम्बु ददतीति अम्बुदाः, नवाश्च ते अम्बुदाश्च नवाम्बुदाः, नवाम्बुदानामनीकं नवाम्बुदानीकम्, नवाम्बुदानीकस्य मुहूर्तं लांच्छनं नवाम्बुदानीकमुहूर्तलांछनम्, तस्मिन् नवाम्बुदानीकमुहूर्तलांछने। न मोघः अमोघः, तं अमोघम्।

अभि०—रघोः स्तम्भरूपेण बाणेन हृदये विद्धः शक्रोऽतिक्रुद्धो भूत्वा नवजलधरक्षणमात्रशोभिते स्वधनुषि सफलं बाणं संयोजितवान्।

हिन्दी—रघु के स्तम्भ सदृश दृढ़ बाण के द्वारा हृदय बिंध जाने के कारण इन्द्र को बहुत क्रोध हुआ और उसने भी नवीन मेघ समूह में क्षणमात्र के लिये शोभित होनेवाले अपने धनुष पर कभी व्यर्थ न जानेवाला बाण रक्खा ॥ ५३ ॥

दिलीपसूनोः स बृहद्भुजान्तरं प्रविश्य भीमासुरशोणितोचितः ।
पपावनास्वादितपूर्वमाशुगः कुतूहलेनेव मनुष्यशोणितम् ॥ ५४ ॥

संजीविनी—भीमानां भयंकराणामसुराणां शोणिते रुधिरे उचितः परिचितः स इन्द्रमुक्त आशुगः सायको दिलीपसूनोः रघोर्बृहद्विशालं भुजान्तरं वक्षः प्रविश्य । अनास्वादितपूर्वं पूर्वमनास्वादितम्, सुप्सुपेति समासः, मनुष्यशोणितं कुतूहलेनेव पपौ ॥ ५४ ॥

वाच्य०—भीमासुरशोणितोचितेन तेन आशुगेन कुतूहलेन इव पपे ।

व्याख्या—भीमाः = भयङ्कराश्च ते असुराः = दैत्याः इति भीमासुराः, तेषां शोणितम् = रुधिरम् इति भीमासुरशोणितम्, भीमासुरशोणिते उचितः = योग्यः, इति भीमासुरशोणितोचितः। सः = इन्द्रधनुर्मुक्तः । आशु = शीघ्रं गच्छतीति आशुगः = बाणः । दिलीपस्य = तदाख्यनृपस्य, सूनुः = पुत्र इति दिलीपसूनुः तस्य दिलीपसूनोः । बृहद् = विशालम्, भुजयोः = बाह्वोः "भुजबाहू प्रवेष्टो दोः" इत्यमरः । अन्तरं = मध्यभागम् इति भुजान्तरम्, तत् वक्षः इत्यर्थः, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा न आस्वादितम् इति अनास्वादितम्, पूर्वम् अनास्वादितम् इति अनास्वादितपूर्वम् = पूर्वमनास्वादितम् । मनुष्यस्य = मनुजस्य, शोणितम् = रुधिरम् इति मनुष्यशोणितं तत् । कुतूहलेन = कौतुकेन । इव = यथा । पपौ = अपिबत् ।

समा०—भीमाश्च ते असुराश्च भीमासुराः, भीमासुराणां शोणितं भीमासुरशोणितम्, भीमासुरशोणिते उचितः भीमासुरशोणितोचितः । आशु गच्छतीत्याशुगः । दिलीपस्य सूनुः दिलीपसूनुः तस्य दिलीपसूनोः । भुजयोरन्तरं भुजान्तरम्, तत् भुजान्तरम् । पूर्वम् न आस्वादितं अनास्वादितपूर्वम्, तत् । मनुष्यस्य शोणितम् मनुष्यशोणितम्, तत् मनुष्यशोणितम् ।

अभि०—इन्द्रमुक्तो बाणः यः केवलं भयंकरदैत्यरुधिरपानयोग्य आसीत् रघोः हृदयं प्रविष्टः सन् मनुष्यरुधिरपानासक्त इव जातः ।

हिन्दी—इन्द्र के धनुष से छूटा हुआ बाण जो कि केवल दैत्यरक्तपान का ही अभ्यासी था, रघु के हृदय में घुसकर पहले कभी न चखे हुए मनुष्य के रक्तों का पान बड़े चाव से करने लगा ॥ ५४ ॥

हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ ।
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनामचिह्नं निचखान सायकम् ॥५५॥

संजीविनी—कुमारस्य स्कन्दस्य विक्रम इव विक्रमो यस्य स तथोक्तः । 'सप्तम्युपमान' इत्यादिना समासः । कुमारोऽपि रघुरपि सुरद्विपस्यैरावतस्यास्फालनेन कर्कशा अंगुलयो यस्य स तस्मिन् शच्याः पत्रविशेषकैरङ्किते शचीपत्रविशेषकाङ्किते हरेरिन्द्रस्य भुजे स्वनामचिह्नं स्वनामाङ्कितं सायकं निचखान निखातवान् । निष्कण्टकराज्यमासस्यायं महानभिभव इति भावः ॥५५॥

अन्वयः—कुमारविक्रमः, कुमारः, अपि, सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ, शचीपत्रविशेषकाङ्किते, हरेः, भुजे, स्वनामचिह्नं, सायकम्, निचखान ।

वाच्य०—कुमारविक्रमेण कुमारेण अपि स्वनामचिह्नं सायकः, निचख्ने ।

व्याख्या—कुमारस्य = कार्तिकेयस्य, विक्रमः इव विक्रमः = पराक्रमः यस्य स तथोक्तः, कुमारः = दिलीपपुत्रः रघुरित्यर्थः । अपि । द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः = गजः, सुराणाम् = देवानाम् द्विपः इति सुरद्विपः, तस्य आस्फालनम् = ताडनम् इति सुरद्विपास्फालनम्, तेन कर्कशाः = कठिनाः, अङ्गुलयः = करशाखाः यस्य स सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलिः, तस्मिन् तथोक्ते । शच्याः = इन्द्राण्याः, पत्रविशेषकाणि = पर्णतिलकानि इति शचीपत्रविशेषकाणि, तैः । अङ्कितः = चिह्नितः इति शचीपत्रविशेषकाङ्कितः, तस्मिन् । हरेः = इन्द्रस्य । भुजे = बाहौ । स्वस्य = निजस्य, नाम = अभिधेयम् इति स्वनाम । तत् चिह्नं = लक्षणं यस्य स स्वनामचिह्नस्तं तथोक्तम् सायकम् = बाणम् । निचखान = निखातवान् ।

समा०—कुमारस्य विक्रम इव विक्रमो यस्य सः कुमारविक्रमः । सुराणां द्विपः सुरद्विपः, सुरद्विपस्य आस्फालनं सुरद्विपास्फालनम्, सुरद्विपास्फालनेन कर्कशा अङ्गुलयो यस्य सः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलिः, तस्मिन् सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ । पत्रस्य विशेषकाणि पत्रविशेषकाणि, शच्याः पत्रविशेषकाणि शचीपत्रविशेषकाणि, शचीपत्रविशेषकैः अंकितः शचीपत्रविशेषकाङ्कितः, तस्मिन् शचीपत्रविशेषकाङ्किते । स्वस्य नाम स्वनाम, स्वनाम्नः चिह्नं यस्य सः स्वनामचिह्नः, तं स्वनामचिह्नम् ।

अभि०—कार्तिकेयसमपराक्रमेण रघुणापि इन्द्रबाहुमध्ये स्वनामाङ्कितः बाणः निचख्ने ।

हिन्दी—कार्तिकेय के समान पराक्रमी रघु ने, ऐरावत हाथी के निरन्तर ताडन करते रहने से कठिन तथा इन्द्राणी की पत्र-रचना से अङ्कित इन्द्र की भुजा में अपने नाम से अङ्कित बाण को गाड़ दिया ॥ ५५ ॥

जहार चान्येन मयूरपत्रिणा शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम् ।
चुकोप तस्मै स भृशं सुरश्रियः प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव ॥५६॥

संजीविनी—अन्येन मयूरपत्रिणा मयूरपत्रवता शरेण शक्रस्येन्द्रस्य महाशनिध्वजं महान्तमशनिरूपं ध्वजं जहार चिच्छेद च । स शक्रः । सुरश्रियः प्रसह्य बलात्कृत्य केशानां व्यपरोपणादवतारणाच्छेदनादिव । तस्मै रघवे भृशमत्यर्थं चुकोप । तं हन्तुमियेषेत्यर्थः । 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम्' इत्यनेन संप्रदानाच्चतुर्थी ।

अन्वयः—अन्येन, मयूरपत्रिणा, शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम्, जहार, च, सः, सुरश्रियः प्रसह्य, केशव्यपरोपणात्, इव, तस्मै, भृशम्, चुकोप ।

वाच्य०—महाशनिध्वजः, जह्रे, तेन तस्मै, भृशम्, चुकुपे ।

व्याख्या—अन्येन = अपरेण, शरेण = बाणेन । शक्रस्य = इन्द्रस्य । महान् चासौ अशनिः वज्रम्, इति महाशनिः, महाशनिरूपं ध्वजम् = वैजयन्ती, इति महाशनिध्वजम्, तत् । जहार = अहरत् । च = तथा । सः = इन्द्रः । सुराणाम् = देवानां, श्रीः = लक्ष्मीः, इति सुरश्रीः, तस्याः

सुरश्रियः । प्रसह्य = हठात् । केशानां = बालानाम् व्यपरोपणम् = छेदनम् इति केशव्यपरोपणं, तस्मात् । 'कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः । इव = यथा । तस्मै = रघवे । भृशम् = अत्यन्तम् । चुकोप = कोपं कृतवान् ।

समा०—मयूरस्य पत्रं मयूरपत्रम् मयूरपत्रमस्यास्तीति मयूरपत्री, तेन मयूरपत्रिणा । महांश्चासौ अशनिश्च महाशनिः, महाशनिरेव ध्वजम् महाशनिध्वजम्, तत् महाशनिध्वजम् सुराणां श्रीः सुरश्रीः, तस्याः सुरश्रियः । केशानां व्यपरोपणं केशव्यपरोपणम्, तस्मात् केशव्यपरोपणात् ।

अभि०—रघुः अपरेण बाणेन, इन्द्रस्य ध्वजं चिच्छेद । तेन चेन्द्रः तस्मै एवं चुकोप यथा तस्य देवलक्ष्म्याः केशावतारणं केनचित् कृतं भवेत् ।

हिन्दी—रघु ने दूसरे बाण से इन्द्र की ध्वजा काट डाली, जिससे इन्द्र को इतना क्रोध हुआ कि मानो उसकी राज्यलक्ष्मी के सिर के बाल कोई जबर्दस्ती उतार लिया हो ॥५६॥

तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिकं गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः ।
बभूव युद्धं तुमुलं जयैषिणोरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्रिभिः ॥५७॥

संजीविनी—जयैषिणोरन्योन्यजयाकाङ्क्षिणोस्तयोरिन्द्ररघ्वोः । गरुत्मन्तः पक्षवन्तः । 'गरुत्पक्षच्छदाः पत्रम्' इत्यमरः । आशीविषा दंष्ट्रायां विषं येषां ते आशीविषाः सर्पाः । पृषोदरादित्वात्साधुः । 'स्त्री त्वाशीर्हिताशंसाऽहिदंष्ट्रयोः' इत्यमरः । त इव भीमदर्शनाः । सपक्षाः सर्पा इव द्रष्टॄणां भयावहा इत्यर्थः । तैरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च । धन्विनोरुपर्यधोदेशावस्थितत्वादिति भावः, पत्रिभिर्बाणैरुपान्तस्थितास्तटस्थाः सिद्धा देवा इन्द्रस्य सैनिकाश्च रघोर्यस्मिंस्तत्तथोक्तं तुमुलं संकुलं युद्धं बभूव ।

अन्वयः—जयैषिणोः, तयोः, गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः, अधोमुखैः ऊर्ध्वमुखैः च पत्रिभिः, उपान्तस्थितसिद्धसैनिकम्, तुमुलम्, युद्धम्, बभूव ।

वाच्य०—उपान्तस्थितसिद्धसैनिकेन, तुमुलेन, युद्धेन, बभूवे ।

व्याख्या—जयं = विजयम्, इच्छतः = अभिलषतः इति जयैषिणौ, तयोः जयैषिणोः । तयोः = रघ्विन्द्रयोः । गरुतः = पक्षाः सन्ति येषां ते गरुत्मन्तः, आशिषि = दंष्ट्रायां विषम् = गरलम्, येषां ते आशीविषाः सर्पा इत्यर्थः, गरुत्मन्तश्च ते आशीविषाः इति गरुत्मदाशीविषाः । भीमम् = भयङ्करम्, दर्शनम् = अवलोकनम् येषां ते भीमदर्शनाः, गरुत्मदाशीविषा इव भीमदर्शना इति तैस्तथोक्तैः । अधः = नीचैः मुखम् = आननम् येषां ते अधोमुखाः, तैः अधोमुखैः । ऊर्ध्वम् = उपरि, मुखम् = आननम् येषां ते ऊर्ध्वमुखाः, तैः ऊर्ध्वमुखैः । च = तथा । पत्रिभिः = बाणैः । अन्तस्य = अवसानस्य समीपम् = पार्श्वम् इति उपान्तम्, उपान्ते स्थिताः = वर्तमानाः इति उपान्तस्थिताः । तादृशाः सिद्धाः = देवयोनिविशेषाः, सैनिकाः = सेनापुरुषाः यस्मिंस्तत्तथोक्तम् उपान्तस्थितसिद्धसैनिकम् । तुमुलम् = भयङ्करम् । युद्धम् = जन्यम् । बभूव = अभूत् ।

समा०—जयमेषितुं शीलमनयोरिति जयैषिणौ, तयोः जयैषिणोः । गरुतः एषां सन्तीति गरुत्मन्तः, गरुत्मन्तश्च ते आशीविषाश्च गरुत्मदाशीविषाः, गरुत्मदाशीविषा इव भीमं दर्शनं येषां

ते गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनाः, तैः गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनैः। अधः मुखं येषां ते अधोमुखाः, तैः अधोमुखैः। ऊर्ध्वं मुखं येषां ते ऊर्ध्वमुखाः, तैः ऊर्ध्वमुखैः। पत्रमेषामस्तीति पत्रिणः, तैः पत्रिभिः। सिद्धाः सैनिकाश्च सिद्धसैनिकाः, अन्तस्य समीपम् उपान्तम्, उपान्ते स्थिताः उपान्तस्थिताः, उपान्तस्थिताः सिद्धसैनिकाः यस्मिन् तत् उपान्तस्थितसिद्धसैनिकम्।

अभि०—एवं रघोरिन्द्रस्य च परस्परं सैनिकेषु सिद्धेषु च पश्यत्सु घोरं युद्धं बभूव। इन्द्रस्य बाणाः अधोमुखाः रघोश्च ऊर्ध्वमुखा आसन्।

हिन्दी—इस प्रकार रघु और इन्द्र का, परस्पर जय की अभिलाषा से सिद्धों तथा सैनिकों के देखते हुए भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों के बाण ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर की ओर इस प्रकार चल रहे थे मानों उड़नेवाले साँप हों॥ ५७॥

अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिस्तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः।
शशाक निर्वापयितुं न वासवः स्वतश्च्युतं वह्निमिवाद्भिरम्बुदः॥ ५८॥

सञ्जीविनी—वासवोऽतिप्रबन्धेनातिसातत्येन प्रहिताभिः प्रयुक्ताभिरस्त्रवृष्टिभिर्दुष्प्रसहस्य दुःखेन प्रसह्यत इति दुष्प्रसहं तस्य। दुःखेनाप्यसह्यस्येत्यर्थः। तेजसः प्रतापस्याश्रयं तं रघुम्। अम्बुदोऽद्भिः स्वतश्च्युतं निर्गतं वह्निमिव। निर्वापयितुं न शशाक। रघोरपि लोकपालात्मकस्येन्द्रांशसम्भवत्वादिति भावः॥ ५८॥

अन्वयः—वासवः, अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः, दुष्प्रसहस्य, तेजसः, आश्रयम् तम्, अम्बुदः, अद्भिः, स्वतः, च्युतम् वह्निम्, इव, निर्वापयितुम्, न शशाक।

वाच्य०—वासवेन, अम्बुदेन, अद्भिः, स्वतः च्युतम्, वह्निम्, इव, निर्वापयितुम्, न, शेके।

व्याख्या—वासवः = इन्द्रः। अस्त्राणाम् = आयुधानाम्, वृष्टयः = वर्षणानि, इति अस्त्रवृष्टयः, अतिशयितः प्रबन्धः अतिप्रबन्धः = अतिसातत्यम्, तेन प्रहिताः = प्रयुक्ताः इति अतिप्रबन्धप्रहिताः, ताश्चताः अस्त्रवृष्टयः इति अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टयः, ताभिः अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः। दुःखेन = कष्टेन, प्रसह्यते = सोढुं शक्यते, इति दुष्प्रसहम्, तस्य दुष्प्रसहस्य। तेजसः = प्रतापस्य। आश्रयम् = स्थानम्। तम् = रघुम्। अम्बूनि = जलानि, ददाति = प्रयच्छतीति, अम्बुदः = मेघ इत्यर्थः। अद्भिः = जलैः,। स्वतः = स्वस्मात्, च्युतम् = निर्गतम्, वह्निम् = अग्निम्, विद्युतमित्यर्थः। इव = यथा निर्वापयितुम् = शान्तं कर्तुम्, न = नैव, शशाक = समर्थोऽभूत्।

समा०—अतिप्रबन्धेन प्रहिताः अतिप्रबन्धप्रहिताः, अस्त्राणां वृष्टयः अस्त्रवृष्टयः, अतिप्रबन्धप्रहिताश्च ता अस्त्रवृष्टयश्च अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टयः, ताभिः अतिप्रबन्धप्रहितास्त्रवृष्टिभिः। दुःखेन प्रसह्यत इति दुष्प्रसहम् तस्य दुष्प्रसहस्य। अम्बूनि ददाति अम्बुदः।

अभि०—स्वस्मादुत्पन्नां विद्युतं यथा मेघः शान्तां कर्तुं न समर्थः तथैव स्वांशादुत्पन्नमपि (राज्ञो लोकपालांशत्वात्) बाणवर्षैः रघुं शक्रः स्वयं जेतुं न समर्थोऽभूत्।

हिन्दी—जैसे कि मेघ अपने से ही उत्पन्न बिजली के तेज को वृष्टि द्वारा शान्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार अपने ही अंश (राजा लोकपालों का अंश होता है) से उत्पन्न रघु को इन्द्र अस्त्रों की वृष्टि से न जीत सका ॥ ५८ ॥

ततः प्रकोष्ठे हरिचन्दनाङ्किते प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम् ।
रघुः शशाङ्कार्धमुखेन पत्रिणा शरासनज्यामलुनाद् बिडौजसः ॥ ५९ ॥

सञ्जीविनी—ततो रघुर्हरिचन्दनाङ्किते प्रकोष्ठे मणिबन्धे प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीं प्रमथ्यमानार्णव इव धीरं गम्भीरं नदतीति तां तथोक्ताम् । वेवेष्टि व्याप्नोतीति विट् व्यापकमोजो यस्य स तस्य बिडौजस इन्द्रस्य । पृषोदरादित्वात्साधुः । शरासनज्यां धनुर्मौर्वीं शशाङ्कस्यार्धः खण्ड इव मुखं फलं यस्य तेन पत्रिणालुनाच्छिन्नत् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—ततः, रघुः, हरिचन्दनाङ्किते, प्रकोष्ठे, प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम्, बिडौजसः, शरासनज्याम्, शशाङ्कार्धमुखेन, पत्रिणा, अलुनात् ।

वाच्य०—ततः रघुणा हरिचन्दनाङ्किते, प्रकोष्ठे, प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनी, बिडौजसः शरासनज्या, अलूयत ।

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम् । रघुः = दिलीपसूनुः । हरिचन्दनेन = कल्पवृक्षेण, अङ्कितः = चिह्नितः इति हरिचन्दनाङ्कितः तस्मिन् हरिचन्दनाङ्किते । प्रकोष्ठे = मणिबन्धस्थाने । प्रमथ्यते = आलोड्यते, इति प्रमथ्यमानः, स चासौ अर्णवः = समुद्रः इति प्रमथ्यमानार्णवः, धीरम् = गंभीरम् नदितुं ध्वनितुं शीलमस्या इति धीरनादिनी, प्रमथ्यमानार्णव इव धीरनादिनी इति तथोक्ता, ताम् । विट् = व्यापकम्, ओजः = तेजः यस्यासौ बिडौजाः = इन्द्रः, तस्य बिडौजसः । शरः = बाणः, अस्यते = क्षिप्यते अनेन इति शरासनम् धनुरित्यर्थः, तस्य ज्या = मौर्वी इति शरासनज्या, तां शरासनज्याम् । शशः = मृगविशेषः, अङ्के = क्रोडे, यस्यासौ शशाङ्कः, तस्यार्धः = खण्डः इति शशाङ्कार्धः, स इव मुखम् = आननम्, अग्रभाग इत्यर्थः यस्यासौ शशाङ्कार्धमुखः, तेन तथोक्तेन । पत्रम् = दलम् अस्यास्तीति पत्री = बाणः, तेन पत्रिणा अलुनात् = चिच्छेद ।

समा०—हरिचन्दनेन अङ्कितः हरिचन्दनाङ्कितः, तस्मिन् हरिचन्दनाङ्किते । प्रमथ्यते इति प्रमथ्यमानः, प्रमथ्यमानश्चासौ अर्णवश्च प्रमथ्यमानार्णवः, धीरं नदितुं शीलमस्या इति धीरनादिनी, प्रमथ्यमानार्णववत् धीरनादिनी प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनी, तां प्रमथ्यमानार्णवधीरनादिनीम् । विट् व्यापकं ओजो यस्य सः बिडौजाः, तस्य बिडौजसः । शरासनस्य ज्या शरासनज्या, तां शरासनज्याम् । शशस्य अङ्को यस्य सः शशाङ्कः, शशाङ्कस्य अर्द्धः शशाङ्कार्द्धः, शशाङ्कार्द्ध इव मुखं यस्य सः शशाङ्कार्द्धमुखः, तेन शशाङ्कार्द्धमुखेन ।

अभि०—ततः रघुणा, इन्द्रस्य गम्भीरशब्दवती [illegible] अर्द्धचन्द्राकृतिना बाणेन छिन्ना ।

हिन्दी—तब रघु ने इन्द्र की कलाई पर, जो कि हरिचन्दन से चिह्नित थी, स्थित धनुष की डोरी को, जो कि मथे जाते हुए समुद्र के समान गम्भीर शब्द कर रही थी—अर्धचन्द्राकार फलवाले बाण से काट डाला ॥ ५९ ॥

स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः ।
महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे ॥ ६० ॥

सञ्जीविनी—विवृद्धमत्सरः प्रवृद्धवैरः स इन्द्रश्चापमुत्सृज्य प्रबलस्य विद्विषः शत्रोः प्रणाशनाय वधाय महीं धारयन्तीति महीध्राः पर्वताः मूलविभुजादित्वात्कप्रत्ययः । तेषां पक्षव्यपरोपणे पक्षच्छेद उचितं स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रं वज्रमायुधमाददे जग्राह ॥ ६० ॥

अन्वयः—विवृद्धमत्सरः सः, चापम्, उत्सृज्य, प्रबलस्य, विद्विषः, प्रणशनाय, महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितम् स्फुरत्प्रभामण्डलम्, अस्त्रम्, आददे ।

वाच्य०— विवृद्धमत्सरेण, तेन स्फुरत्प्रभामण्डलम्, अस्त्रम्, आददे ।

व्याख्या—विवृद्धः=वृद्धिं गतः, मत्सरः=क्रोधः यस्यासौ विवृद्धमत्सरः । सः=इन्द्रः । चापम्=धनुः । उत्सृज्य=परित्यज्य । प्रकृष्टं बलम्=शक्तिः यस्यासौ प्रबलः, तस्य प्रबलस्य । विशेषेण द्वेष्टि=द्वेषं करोति इति विद्विट्, तस्य विद्विट्, शत्रोरित्यर्थः । प्रणाशनाय=मारणाय । महीम्=पृथ्वीं धारयन्ति=धारणं कुर्वन्ति इति महीध्राः पर्वताः इत्यर्थः, तेषां पक्षाः=गरुतः इति महीध्रपक्षाः, तेषां व्यपरोपणम्=कर्तनम् इति महीध्रपक्षव्यपरोपणम्, तत्र उचितम्=अभ्यस्तम् इति महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितम्, तत्तथोक्तम् । अस्त्रम्=आयुधम्, वज्रमित्यर्थः । आददे=जग्राह ।

समा०—विवृद्धः मत्सरः यस्य सः विवृद्धमत्सरः । महीं धारयन्तीति महीध्राः, महीध्राणां पक्षाः महीध्रपक्षाः, महीध्रपक्षाणां व्यपरोपणं महीध्रपक्षव्यपरोपणम्, महीध्रपक्षव्यपरोपणे उचितं महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितम्, तत् महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितम् । प्रभायाः मण्डलं प्रभामण्डलम्, स्फुरत् प्रभामण्डलं यस्य तत् स्फुरत्प्रभामण्डलम्, तत् स्फुरत्प्रभामण्डलम् ।

अभि०—ततः इन्द्रः रघोर्वधाय खण्डितं धनुः परित्यज्य गिरिपक्षकर्तनप्रसिद्धं स्ववज्रं गृहीतवान् ।

हिन्दी—तब इन्द्र ने रघु का वध करने के लिये टूटा हुआ धनुष छोड़ कर पर्वतों के पर काटने में प्रसिद्ध अपना अस्त्र वज्र उठाया ॥ ६० ॥

रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडितः पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः ।
निमेषमात्रादवधूय तद्व्यथां सहोत्थितः सैनिकहर्षनिःस्वनैः ॥ ६१ ॥

संजीविनी—रघुस्तेन वज्रेण भृशमत्यर्थं वक्षसि ताडितो हतः सन् । सैनिकानामश्रुभिः सह भूमौ पपात । यस्मिन्पतिते ते रुरुदुरित्यर्थः । निमेषमात्रात्तद्व्यथां दुःखमवधूय तिरस्कृत्य सैनिकानां हर्षेण ये निःस्वनाः क्ष्वेडास्तैः सहोत्थितश्च । तस्मिन्नुत्थिते हर्षात्सिंहनादांश्चक्रुरित्यर्थः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—रघुः तेन, भृशम्, वक्षसि ताडितः 'सन्' सैनिकाश्रुभिः सह, भूमौ, पपात, निमेषमात्रात्, तद्व्यथाम्, अवधूय, सैनिकहर्षनिःस्वनैः, सह, उत्थितः ।

वाच्य०—रघुणा, तेन, भृशम्, ताडितेन 'सता' पेते, उत्थितम्।

व्याख्या—रघुः=दिलीपसुतः। तेन=वज्रेण। भृशम्=अत्यर्थम्। वक्षसि=उरसि, ताडितः=विद्धः 'सन्'। सेनायां समवेताः सैनिकाः=सेनापुरुषाः, तेषाम्। अश्रूणि=नेत्रजलानि, इति सैनिकाश्रूणि, तैः सैनिकाश्रुभिः। सह=सार्धम्। भूमौ=पृथिव्याम्। पपात=अपतत्। निमेष एव निमेषमात्रम्=क्षणमात्रम्, तस्मान्निमेषमात्रात्। तस्य=वज्रस्य, व्यथा=पीडा इति तद्व्यथा, ताम् तद्व्यथाम्। अवधूय=निरस्य। सेनायां समवेताः। सैनिकाः=सेना पुरुषाः तेषां हर्षेण=आमोदेन, निःस्वनाः=शब्दाः इति सैनिकहर्षनिःस्वनाः, तैः सैनिकहर्षनिःस्वनैः। सह=सार्धम्, उत्थितः=उत्तस्थौ।

समा०—सैनिकानामश्रूणि सैनिकाश्रूणि, तैः सैनिकाश्रुभिः। केवलं निमेषः निमेषमात्रम्, तस्मात् निमेषमात्रात्। तस्य व्यथा तद्व्यथा, तां तद्व्यथाम्। हर्षेण निःस्वनाः हर्षनिःस्वनाः, सैनिकानां हर्षनिःस्वनाः सैनिकहर्षनिःस्वनाः, तैः सैनिकहर्षनिःस्वनैः।

अभि०—यथैव वज्रेण ताडितो रघुः पृथिव्यां पपात तथैव सैनिकानामपि दुःखेनाश्रूणि भूमौ पतितानि। क्षणमात्रेणैव च यथा तत्पीडां तिरस्कृत्य रघुरुत्थितस्तथैव सैनिकानामपि हर्षेण जयशब्दा बभूवुः।

हिन्दी—जैसे ही रघु वज्र की चोट से पृथिवी पर गिरा, सैनिकों के भी आँसू गिरे, एवं ज्योंही क्षणमात्र में वज्र की पीडा भूल कर रघु पृथ्वी से उठा, सैनिकों में हर्ष से जयध्वनि (सिंहनाद) गूँज उठी ॥ ६१ ॥

तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः।
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ॥ ६२ ॥

सञ्जीविनी—तथापि वज्रपातेऽपि शस्त्राणामायुधानां व्यवहारेण व्यापारेण निष्ठुरे क्रूरे विपक्षभावे शात्रवे चिरं तस्थुषः स्थितवतोऽस्य रघोर्वीर्यातिशयेन। वृत्रं हतवानिति वृत्रहा। 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्'। तुतोष। स्वयं वीर एव वीरं जानातीति भावः। कथं शत्रोः संतोषोऽत आह-गुणैः सर्वत्र शत्रुमित्रोदासीनेषु पदमङ्घ्रिर्निधीयते। गुणैः सर्वत्र संक्रम्यत इत्यर्थः। गुणाः शत्रूनप्यावर्जयन्तीति भावः ॥६२॥

अन्वयः—तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे, विपक्षभावे, चिरम्, तस्थुषः अस्य, वीर्यातिशयेन वृत्रहा, तुतोष, हि, सर्वत्र, गुणैः, पदम्, निधीयते।

वाच्य०—वृत्रघ्ना तुतुषे, हि गुणाः सर्वत्र पदम् निदधति।

व्याख्या—तथापि=वज्रप्रहारेऽपि। शस्यन्ते=हन्यन्ते शत्रवः एभिः इति शस्त्राणि, तेषां व्यवहारः=प्रयोगः इति शस्त्रव्यवहारः, तेन निष्ठुरः=क्रूर इति शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरः, तस्मिंस्तथोक्ते। विरुद्धः पक्षो यस्यासौ विपक्षः, तस्य भावः विपक्षभावः=शत्रुता, तस्मिन् विपक्षभावे। चिरम्=बहुकालम्। तस्थुषः=स्थितवतः, अस्य=एतस्य, रघोः। वीर्यस्य=तेजसः, अतिशयः=आधिक्यम् इति वीर्यातिशयः, तेन वीर्यातिशयेन। वृत्रं=तन्नामानमसुरम्,

हतवान् = व्यापादितवान्, स वृत्रहा = इन्द्रः इत्यर्थः। तुतोष = तुष्टिं लेभे। हि = यतः। सर्वत्र = शत्रुमित्रोदासीनेषु। गुणैः = शौर्यादिभिः। पदम् = चरणः। निधीयते = स्थाप्यते।

समा०—शस्त्राणां व्यवहारः शस्त्रव्यवहारः, शस्त्रव्यवहारेण निष्ठुरः शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरः, तस्मिन् शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे। विपक्षस्य भावः विपक्षभावः, तस्मिन् विपक्षभावे। तस्थौ इति तस्थिवान्, तस्य तस्थुषः। शौर्यस्य अतिशयः शौर्यातिशयः, तेन शौर्यातिशयेन।

अभि०—शस्त्रव्यवहारेण शत्रुत्वं प्रकाशयतोऽपि रघोः पराक्रमेणेन्द्रः प्रसन्नो बभूव। यतः शौर्यादयो गुणाः शत्रूनपि प्रसन्नान् कुर्वन्ति।

हिन्दी—शस्त्र प्रयोग के कारण शत्रुता में देर तक टिकनेवाले रघु के अतिशय पराक्रम से इन्द्र प्रसन्न हुए; क्योंकि गुणों का आदर शत्रु भी करते हैं ॥६२॥

असङ्गमद्रिष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्।
अवेहि मां प्रीतमृते तुरङ्गमात्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः ॥६३॥

संजीविनी—सारवत्तयाद्रिष्वप्यसङ्गमप्रतिबन्धं मे आयुधं वज्रं त्वदन्येन न विसोढम् नासह्यत। अतो मां प्रीतं सन्तुष्टमवेहि। तुरंगमादृते तुरंगं वर्जयित्वा। "अन्यारादितरर्ते" इति पञ्चमी। किमिच्छसीति स्फुटं वासव आह। तवैयता पराक्रमेण प्रसन्नस्य मे तुरंगमादन्यददेयं नास्तीति भावः ॥ ६३ ॥

अन्वयः—सारवत्तया, अद्रिषु, अपि, असङ्गम्, मे, आयुधम्, त्वदन्येन, न, विसोढम्, अतः, माम्, प्रीतम्, अवेहि, तुरङ्गमात्, ऋते, किम्, इच्छसि इति, स्फुटम्, वासवः आह।

वाच्य०—त्वदन्यः न विसोढवान्। अहम् प्रीतः अवेयै। किम् इष्यते इति वासवेन औच्यत।

व्याख्या—सारः = बलम् अस्त्यस्मिन्निति सारवत्, तस्य भावः सारवत्ता; तया सारवत्तया। अद्रिषु = पर्वतेषु। अपि असङ्गम् = प्रतिबन्धरहितम्। मे = मम, इन्द्रस्य। आयुधम् = शस्त्रम् वज्ररूपम्। त्वत्तः = त्वत्सकाशात्, अन्यः = अपरः, इति त्वदन्यः, तेन त्वदन्येन। न = नहि। विसोढम् = सहनं कृतम्। अतः, माम् = इन्द्रम्। प्रसन्नम् = हृष्टम्। अवेहि = जानीहि। तुरङ्गमात् = अश्वात्। ऋते = विना। किम् = वस्तु। इच्छसि = अभिलषसि। इति एवम्। स्फुटम् = स्पष्टम्। वासवः = इन्द्रः। आह = अकथयत्।

समा०—सारः अस्यास्तीति सारवत्, सारवतः भावः सारवत्ता, तया सारवत्तया। न विद्यते सङ्गो यस्य तत् असङ्गम्। त्वत् (पं० ए०) अन्यः त्वदन्यः, तेन त्वदन्येन।

अभि०—अतीव बलवन्ममेदं वज्रं त्वां विहाय न केनचित्सोढम्, अतोऽहं त्वयि प्रसन्नः, तुरङ्गं विहाय यद्वाञ्छसि तद्ददामीति रघुमिन्द्र उवाच।

हिन्दी—पर्वतों के छेदन में भी जिसकी गति कुण्ठित न हो सकी वैसे इस मेरे वज्र को तुम्हें छोड़कर आज तक कोई भी सहन नहीं कर सका है। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। घोड़े को छोड़कर चाहे कुछ भी माँग लो, इस प्रकार इन्द्र ने रघु से स्पष्ट शब्दों में कहा ॥ ६३ ॥

ततो निषङ्गादसमग्रमुद्धृतं सुवर्णपुंखद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम् ।
नरेन्द्रसूनुः प्रतिसंहरन्निषुं प्रियंवदः प्रत्यवदत्सुरेश्वरम् ॥६४॥

सञ्जीविनी—तत इन्द्रवचनोत्तरं निषङ्गात्तूणीरादसमग्रं यथा तथोद्धृतं सुवर्णपुंखद्युतिभी रञ्जिता अंगुलयो येन तमिषुं प्रतिसंहरन्निवर्तयन् । न प्रहरन्तं प्रहरेदिति निषेधादिति भावः । प्रियं वदतीति प्रियंवदः । "प्रियवशे वदः खच्" इति खच्प्रत्ययः । "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इत्यनेन मुमागमः । नरेन्द्रसूनू रघुः सुरेश्वरमिन्द्रं प्रत्यवदत् प्रत्युक्तवान् । न तु प्राहरदिति भावः ॥ ६४ ॥

अन्वयः—ततः, निषङ्गात्, असमग्रम्, 'यथा स्यात्तथा' उद्धृतम्, सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम्, इषुम्, प्रतिसंहरन्, प्रियंवदः, नरेन्द्रसूनुः, सुरेश्वरम्, प्रति, अवदत् ।

वाच्य०—प्रतिसंहरता प्रियंवदेन नरेन्द्रसूनुना सुरेश्वरः प्रत्यौच्यत ।

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम् । निषङ्गात् = तूणीरात् । न समग्रमित्यसमग्रम् = असम्पूर्णम्, यथा स्यात्तथा, उद्धृतम् = निष्कासितम् । सुवर्णस्य = कनकस्य, पुंखः = बाणमूलभागः इति सुवर्णपुङ्खः तस्य द्युतयः = कान्तयः इति सुवर्णपुङ्खद्युतयः, ताभिः रञ्जिताः = रञ्जनत्वमापादिताः, अङ्गुलयः = करशाखाः येन सः सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिः, तं तथोक्तम् । इषुम् = बाणम् । प्रतिसंहरन् = निवर्त्तयन् । प्रियम् = इष्टम् वदति = कथयति, इति प्रियंवदः । नराणां = मनुष्याणामिन्द्रः = स्वामी, इति नरेन्द्रः = राजा दिलीप इत्यर्थः । तस्य सूनुः = पुत्रः रघुः । सुराणाम् = देवानाम्, ईश्वरः = स्वामी, सुरेश्वरः = इन्द्रः, तं सुरेश्वरम् । प्रत्यवदत् = जगाद ।

समा०—न समग्रम् असमग्रम् 'क्रियाविशेषणम्' । सुवर्णस्य पुङ्खः सुवर्णपुङ्खः, सुवर्णपुङ्खस्य द्युतयः सुवर्णपुङ्खद्युतयः, सुवर्णपुङ्खद्युतिभिः रञ्जिता अङ्गुलयो येन सः सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिः, तं सुवर्णपुङ्खद्युतिरञ्जिताङ्गुलिम् । नराणामिन्द्रः नरेन्द्रः, नरेन्द्रस्य सूनुः नरेन्द्रसूनुः । सुराणामीश्वरः, तं सुरेश्वरम् ।

अभि०—स्वतूणीरादर्धनिष्कासितं बाणं पुनस्तूणीरे एव कुर्वन् रघुः मधुरेण स्वरेण इन्द्रं प्रत्युवाच ।

हिन्दी—अपने तरकस से आधे निकाले बाण को फिर वापस तरकस में करते हुये रघु ने मधुर स्वर से कहा ॥ ६४ ॥

अमोच्यमश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधिनैव कर्मणि ।
अजस्रदीक्षाप्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम् ॥ ६५ ॥

सञ्जीविनी—हे प्रभो इन्द्र ! अश्वममोच्यं मन्यसे यदि ततस्तर्ह्यजस्रदीक्षायां प्रयतः स मद्गुरुर्मम पिता विधिनैव कर्मणि समाप्ते सति क्रतोर्यत्फलं तेन फलेनाशेषेण कृत्स्नेन युज्यतां युक्तोऽस्तु । अश्वमेधफललाभे किमश्वेनेति भावः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—हे प्रभो, यदि, अश्वं, अमोच्यं, मन्यसे, ततः अजस्रदीक्षाप्रयतः, सः मद्गुरुः, विधिना, एव, कर्मणि, समाप्ते, 'सति', क्रतोः, अशेषेण फलेन युज्यताम् ।

वाच्य०—यदि, त्वया, अश्वः, अमोच्यः, मन्यते, ततः अजस्रदीक्षाप्रयतेन, तेन, मद्गुरुणा क्रतोः, अशेषेण, फलेन, युज्यताम् ।

व्याख्या—प्रभवति = समर्थो भवति, इति प्रभुः, संबुद्धौ हे प्रभो । यदि = चेत्, अश्वम् = तुरङ्गमम । मोक्तुं = परित्यक्तुं योग्यः मोच्यः, न मोच्यः अमोच्यः, तम् अमोच्यम् । मन्यसे = जानासि । ततः = तदा । अजस्रं = निरन्तरं, दीक्षा = यज्ञदीक्षा, तत्र प्रयतः तत्परः इति अजस्रदीक्षाप्रयतः । सः = प्रसिद्धः । मम = रघोः गुरुः = पिता इति मद्गुरुः, 'गुरू गीष्पतिपित्रादौ' इत्यमरः । विधिना = शास्त्रानुकूलविधानेन एव कर्मणि = कार्ये । समाप्ते = अवसिते । 'सति', क्रतोः = यज्ञस्य । अशेषेण = सम्पूर्णेन । फलेन = लाभेन । युज्यताम् = युक्तो भवतु ।

समा०—मोक्तुं योग्यः मोच्यः, न अमोच्यः, तम् अमोच्यम् । अजस्रं दीक्षा अजस्रदीक्षा अजस्रदीक्षायां प्रयतः अजस्रदीक्षाप्रयतः । मम गुरुः मद्गुरुः । न विद्यते शेषो यस्य तत् अशेषम् तेन अशेषेण ।

अभि०—हे इन्द्र, यदि त्वमश्वस्य मोचनं न कर्तुमिच्छसि तर्हि मम पिता अश्वं विनैव अश्वमेधयज्ञस्य सकलं फलं यथा प्राप्नोति तथा कुरु ।

हिन्दी—रघु ने कहा कि हे इन्द्र, यदि आप घोड़े को छोड़ना उचित नहीं समझते तो मेरे पिता, आरम्भ किये हुए, अश्वमेध यज्ञ के विधिवत् समाप्त होने पर जो फल प्राप्त होता है, उस सम्पूर्ण फल को प्राप्त करें ॥ ६५ ॥

यथा च वृत्तान्तमिमं सदोगतस्त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः ।
तवैव सन्देशहराद्विशांपतिः शृणोति लोकेश ! तथा विधीयताम् ॥६६॥

संजीविनी—सदोगतः सदोगृहं गतस्त्रिलोचनस्येश्वरस्यैकांशतयाष्टानामन्यतममूर्तित्वात् । दुरासदोऽस्मादृशैर्दुष्प्राप्यो विशांपतिर्यथेमं वृत्तान्तं तव संदेशहराद्वार्ताहरादेव शृणोति च । हे लोकेशेन्द्र तथा विधीयताम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—सदोगतः, त्रिलोचनैकांशतया, दुरासदः, विशांपतिः यथा, इमम्, वृत्तान्तम्, तव, सन्देशहरात्, एव, शृणोति, च, हे, लोकेश, तथा, विधीयताम् ।

वाच्य०—सदोगतेन, दुरासदेन, विशांपतिना, यथा, अयं वृत्तान्तः, श्रूयते तथा, त्वं, विधेहि ।

व्याख्या—सदः = सभाम् । गतः = प्राप्तः इति सदोगतः । त्रीणि = त्रिसंख्यकानि, लोचनानि नेत्राणि यस्य सः त्रिलोचनः शिवः इत्यर्थः । एकः = केवलः चासौ, अंशः = भागः इति एकांशः, त्रिलोचनस्यैकांशः इति त्रिलोचनैकांशः, तस्य भावः त्रिलोचनैकांशता, तया तथोक्तया । दुःखेन = कष्टेन, आसादयितुम् = लब्धुं योग्यः इति दुरासदः । विशांपतिः = नरेन्द्रः ।

यथा=येन प्रकारेण। *इमम्*=एतम्। *वृत्तान्तम्*=वार्ताम्। *तव*=भवतः, *सन्देशम्*=वाचिकं सन्देशवचनमिति यावत्, हरति=नयति इति सन्देशहरः 'सन्देशवाग्वाचिकं स्याद्' इत्यमरः, तस्मात् सन्देशहरात्। एव इति अवधारणेऽर्थेऽव्ययम्। लोकानां=जनानाम्, ईशः=स्वामी तत्सम्बुद्धौ। तथा=तेनैव प्रकारेण, विधीयताम्=क्रियताम्।

समा०—सदः (द्वितीया) गतः सदोगतः। त्रीणि लोचनानि यस्य सः त्रिलोचनः, एकश्चासौ अंशश्च एकांशः, त्रिलोचनस्यैकांशः त्रिलोचनैकांशः, त्रिलोचनैकांशस्य भावः त्रिलोचनैकांशता, तया त्रिलोचनैकांशतया। दुःखेनासाद्यत इति दुरासदः। हरतीति हरः, सन्देशस्य हरः सन्देशहरः, तस्मात् सन्देशहरात्। लोकानामीशः लोकेशः, तत्सम्बुद्धौ हे लोकेश।

अभि०—किञ्च, हे इन्द्र! मम पिता यज्ञमण्डपे स्थित आस्ते, स चावयोर्वृत्तं यथा तव सन्देशहरादेव शृणुयात् तथा त्वया विधेयम्।

हिन्दी—और हे इन्द्र! शिवांश होने के कारण दुरासद मेरे पिता इस समय यज्ञ मण्डप में स्थित हैं। वे हमारे इस वृत्तान्त को आपके दूत के द्वारा ही जिस प्रकार सुन सकें, ऐसा प्रबन्ध करें॥ ६६॥

तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान् रघोर्यथागतं मातलिसारथिर्ययौ।
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्तत॥ ६७॥

संजीविनी—मातलिसारथिरिन्द्रो रघोः सम्बन्धिनं कामं मनोरथं तथेति तथास्त्विति प्रतिशुश्रुवान् 'भाषायां सदवसश्रुवः' इति क्वसुप्रत्ययः। यथागतं ययौ। सुदक्षिणासूनू रघुरपि नातिप्रमना विजयलाभेऽप्यश्वनाशान्नातीव तुष्टः सन्। नञर्थस्य नशब्दस्य सुप्सुपेति समासः। नृपस्य सदोगृहं प्रति न्यवर्तत॥ ६७॥

अन्वयः—मातलिसारथिः, रघोः, कामम्, तथा इति, प्रतिशुश्रुवान् यथाऽऽगतम्, ययौ, सुदक्षिणसूनः अपि, नातिप्रमनाः 'सन्' नृपस्य, सदोगृहम्, न्यवर्तत।

वाच्य०—मातलिसारथिना, रघोः, कामः, तथा इति, प्रतिश्रुतम्, यथाऽऽगतम् यये, सुदक्षिणासूनुना, अपि नातिप्रमनसा नृपस्य सदोगृहम् न्यवर्त्यत।

व्याख्या—मातलिः=तन्नामकः सारथिः=सूतः यस्यासौ मातलिसारथिः, इन्द्रः इत्यर्थः। रघोः=दिलीपसूनोः। कामम्=मनोरथम्। तथा=तथास्तु, इति=एवम्। प्रतिशुश्रुवान्=प्रतिज्ञातवान्। येनायातस्तेनैव मार्गेण, ययौ=जगाम। सुदक्षिणायाः=दिलीपपत्न्याः, सूनुः=पुत्रः इति सुदक्षिणासूनुः, अपि, प्रहृष्टम्=अतिप्रसन्नम्, मनः=चित्तम् यस्यासौ प्रमनाः, अत्यन्तम्=अधिकम् प्रमनाः इति अतिप्रमनाः, न अतिप्रमनाः इति नातिप्रमनाः सन्। नॄन्=मनुष्यान् पाति=रक्षति इति नृपः राजा, तस्य दिलीपस्येत्यर्थः। सदसः=सभायाः, गृहम्=भवनम्। न्यवर्तत=निवृत्तोऽभूत्।

समा०—मातलिः सारथिर्यस्य सः मातलिसारथिः। प्रतिशुश्राव इति प्रतिशुश्रुवान्। आगतमनतिक्रम्य यथागतम्। सुदक्षिणायाः सूनुः सुदक्षिणासूनुः। प्रहृष्टं मनः यस्य सः

प्रमनाः, न अत्यन्तं प्रमनाः नातिप्रमनाः। सदसो गृहं सदोगृहम्, तत् सदोगृहम्।

अभि०—इन्द्रः रघोः प्रस्तावं तथैवास्तु, इति स्वीकृत्य स्वीयसारथिना मातलिना सह येन मार्गेणायात आसीत्तेनैव स्वपुरीं प्रति निवृत्तः। रघुरपि विजयलाभेऽप्यश्वालाभान्नातिप्रहृष्टो दिलीपसभाभवनं प्रत्याजगाम।

हिन्दी—इन्द्र ने रघु की प्रार्थना स्वीकार की और अपने सारथि मातलि के साथ जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से अपनी नगरी की ओर प्रस्थान किया। इधर रघु भी विजयी होने पर भी वाञ्छा प्राप्त न होने के कारण विशेष प्रसन्न न होते हुए दिलीप के सभा-भवन की ओर लौटे॥ ६७॥

तमभ्यनन्दत्प्रथमं प्रबोधितः प्रजेश्वरः शासनहारिणा हरेः।
परामृशन्हर्षजडेन पाणिना तदीयमङ्गं कुलिशव्रणाङ्कितम्॥ ६८॥

संजीविनी—हरेरिन्द्रस्य शासनहारिणा पुरुषेण प्रथमं प्रबोधितो ज्ञापितः। वृत्तान्तमिति शेषः। प्रजेश्वरो दिलीपो हर्षजडेन हर्षशिशिरेण पाणिना कुलिशव्रणाङ्कितम्। तस्य रघोरिदं तदीयम्। अङ्गं शरीरं परामृशंस्तं रघुमभ्यनन्दत्॥ ६८॥

अन्वयः—हरेः शासनहारिणा, प्रथमम्, प्रबोधितः, प्रजेश्वरः, हर्षजडेन, पाणिना, कुलिशव्रणाङ्कितम्, तदीयम्, अङ्गम् परामृशन्, तम्, अभ्यनन्दत्।

वाच्य०—प्रबोधितेन, प्रजेश्वरेण, परामृशता, सः, अभ्यनन्द्यत।

व्याख्या—हरेः=इन्द्रस्य। शासनम्=आज्ञाम्, हरति=नयति तच्छीलः शासनहारी, दूत इत्यर्थः, तेन शासनहारिणा। प्रथमम्=पूर्वमेव। प्रबोधितः=वृत्तान्तं विज्ञापितः। प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजाः=लोकाः, तासाम् ईश्वरः=स्वामी इति प्रजेश्वरः, राजा दिलीप इत्यर्थः। हर्षेण=आनन्देन, जडः=शिथिलः इति हर्षजडः तेन हर्षजडेन। पाणिना=करेण। कुलिशस्य=वज्रस्य। 'ह्रादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः' इत्यमरः। व्रणाः=ईर्माणि, 'व्रणोऽस्त्रियामीर्ममरुः' इत्यमरः। इति कुलिशव्रणाः, तैः अङ्कितम्=चिह्नितम् इति कुलिशव्रणाङ्कितम् तत्तथोक्तम्। तस्य=रघोः, इदम्=सम्बन्धि इति तदीयम् तत्। अङ्गम्=शरीरम्, परामृशन्=स्पृशन्। तम्=रघुम्। अभ्यनन्दत्=अभिनन्दितवान्।

समा०—शासनं हरतीति शासनहारी, तेन शासनहारिणा। प्रजानामीश्वरः प्रजेश्वरः। हर्षेण जडः हर्षजडः, तेन हर्षजडेन। कुलिशस्य व्रणः कुलिशव्रणः कुलिशव्रणेन अङ्कितं कुलिशव्रणाङ्कितम्, तत् कुलिशव्रणाङ्कितम्।

अभि०—रघुशक्रवृत्तान्तो दिलीपेन दूतमुखात्पूर्वमेव ज्ञातः, अतः गृहागतं रघुं हर्षशिथिलेन पाणिना परामृशता तेन तुष्टिर्लब्धा।

हिन्दी—रघु और इन्द्र के वृत्तान्त को राजा दिलीप इन्द्रदूत के मुख से पहले ही सुन चुके थे, अतः रघु के आने पर उसके वज्र के घाव से चिह्नित शरीर पर हर्ष से शिथिल हाथ फेरते हुए उन्होंने उसका अभिनन्दन किया॥ ६८॥

इति क्षितीशो नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां महनीयशासनः ।
समारुरुक्षुर्दिवमायुषः क्षये ततान सोपानपरम्परामिव ॥ ६९ ॥

सञ्जीविनी—महनीयशासनः पूजनीयाज्ञः क्षितीश इत्यनेन प्रकारेण । 'इति हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिषु' इत्यमरः । महाक्रतूनामश्वमेधानां नवभिरधिकां नवतिमेकोनशतमायुषः क्षये सति दिवं स्वर्गं समारुरुक्षुरारोढुमिच्छुः सोपानानां परम्परां पङ्क्तिमिव ततान ॥ ६९ ॥

अन्वयः—महनीयशासनः क्षितीशः, इति, महाक्रतूनाम्, नवाधिकाम्, नवतिम्, आयुषः, क्षये, 'सति' दिवम्, समारुरुक्षुः, सोपानपरम्पराम्, इव ततान ।

वाच्य०—महनीयशासनेन, क्षितीशेन, इति महाक्रतूनाम् नवाधिका नवतिः आयुषः क्षये समारुरुक्षुणा सोपानपरम्परेव तेने ।

व्याख्या—महनीयम् = पूजनीयम्, शासनम् = आज्ञा यस्य सः महनीयशासनः । क्षितेः = भूमेः ईशः = स्वामी इति क्षितीशः, राजा दिलीप इत्यर्थः । इति = इत्थम् । महान्तः = विपुलाश्च ते क्रतवः = यज्ञाः इति महाक्रतवः, तेषाम् महाक्रतूनाम् अश्वमेधयज्ञानामित्यर्थः । नवभिः = नवसंख्याभिः अधिका = विशेषा इति नवाधिका नवोत्तरा इत्यर्थः, ताम् नवाधिकाम् नवतिम् = नवतिसंख्याम्, एकोनशतसंख्यामिति यावत् । आयुषः = जीवितकालस्य, क्षये = नाशे, 'सति' । दिवम् = स्वर्गम्, सम्यगारोढुम् = आरोहणं कर्तुम् इच्छति इति समारुरुक्षति, समारुरुक्षतीति समारुरुक्षुः = समारोढुमिच्छुरित्यर्थः । सोपानानाम् = आरोहणानाम्, परम्परा = श्रेणी इति सोपानपरम्परा, ताम् इव ततान = अतनोत् ।

समा०—महनीयं शासनं यस्य सः महनीयशासनः । क्षितेः ईशः क्षितीशः । महान्तश्च ते क्रतवश्च महाक्रतवः, तेषां महाक्रतूनाम् । नवभिरधिका नवाधिका, तां नवाधिकाम् । सोपानानां परम्परा सोपानपरम्परा, तां सोपानपरम्पराम् ।

अभि०—एवं नृपो दिलीपः एकोनशतसंख्यकानश्वमेधयज्ञाञ्जीवनकालान्ते स्वर्गं समारोढुमिच्छुः सोपानश्रेणितुल्यामिव सम्पादितवान् ।

हिन्दी—इस प्रकार दिलीप ने निन्यानबे अश्वमेधयज्ञ, स्वजीवनकाल के पश्चात् स्वर्ग में जाने के लिये सीढ़ियों की पंक्ति के समान यथाविधि पूर्ण किये ॥ ६९ ॥

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥ ७० ॥

संजीविनी—अथ विषयेभ्यो व्यावृत्तात्मा निवृत्तचित्तः स दिलीपो यथाविधि यथाशास्त्रं यूने तरुणाय यौवराज्ये स्थिताय सूनवे रघवे नृपतिककुदं राजचिह्नम् 'ककुद्मत्ककुदं श्रेष्ठे वृषाङ्के राजलक्ष्मणि' इति विश्वः । सितातपवारणं श्वेतच्छत्रं दत्त्वा तया देव्या सुदक्षिणया सह मुनिवनतरोश्छायां शिश्रिये श्रितवान् । वानप्रस्थाश्रमं स्वीकृतवानित्यर्थः । तथाहि । गलितवयसां

वृद्धानामिक्ष्वाकूणामिक्ष्वाकोर्गोत्रापत्यानाम्। तद्राजसंज्ञकत्वादणो लुक्। वनगमनं कुलव्रतम्। देव्या सहेत्यनेन सपत्नीकवानप्रस्थाश्रमपक्ष उक्तः। तथा च याज्ञवल्क्यः—'सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वानुगतो वनम्। वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः सोपासनो व्रजेत्॥' इति। हरिणीवृत्तमेतत्। तदुक्तम्—"रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा" इति॥ ७०॥

अन्वयः—अथ, विषयव्यावृत्तात्मा, सः, यथाविधि, यूने, सूनवे, नृपतिककुदम्, सितातपवारणम्, दत्त्वा, तया, देव्या, सह, मुनिवनतरुच्छायाम्, शिश्रिये हि गलितवयसाम्, इक्ष्वाकूणाम्, इदम्, कुलव्रतम् 'अस्ति'।

वाच्य०—विषयव्यावृत्तात्मना तेन मुनिवनतरुच्छाया शिश्रिये। अनेन कुलव्रतेन भूयते।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्। विषयेभ्यः = इन्द्रियग्राह्यपदार्थेभ्यः, व्यावृत्तः = निवृत्तः, आत्मा = चित्तम् यस्य सः विषयव्यावृत्तात्मा। सः = राजा दिलीपः। विधिम् = विधानम् अनतिक्रम्य यथाविधि, यथाशास्त्रमित्यर्थः। यूने = युवकाय। सूनवे = पुत्राय। नृपतेः = राज्ञः, ककुदम् = चिह्नम्। आतपस्य = घर्मस्य, वारणम् = निवारकम्, इति आतपवारणम् सितं = धवलम्, यत् आतपवारणम् छत्रं सितातपवारणम्, तत्। दत्त्वा = वितीर्य। तया = प्रसिद्धया, देव्या = राजमहिष्या सुदक्षिणया, सह = सार्धम्। मुनीनाम् = ऋषीणाम्, वनम् = काननम् इति मुनिवनम्, मुनिवनस्य तरवः = वृक्षाः इति मुनिवनतरवः, तेषां छाया इति मुनिवनतरुच्छाया, तां तथोक्ताम्। शिश्रिये = सिषेवे। हि = यतः। गलितम् = नष्टम्, वयः = अवस्था येषां ते गलितवयसः, तेषाम् गलितवयसाम् = जीर्णावस्थानाम्। इक्ष्वाकूणाम् = इक्ष्वाकुवंशोद्भवानां राज्ञाम्। इदम् = एतत्। कुलस्य = वंशस्य। व्रतम् = नियमः, अस्तीति शेषः।

समा०—विषयेभ्यो व्यावृत्त आत्मा यस्य सः विषयव्यावृत्तात्मा। विधिमनतिक्रम्येति यथाविधि। नृणां पतिः नृपतिः, नृपतेः ककुदं नृपतिककुदम्, तत् नृपतिककुदम्। आतपस्य वारणम् आतपवारणम्, सितञ्च तत् आतपवारणञ्च सितातपवारणम्, तत् सितातपवारणम्। मुनीनां वनं मुनिवनं, मुनिवनस्य तरुः मुनिवनतरुः, मुनिवनतरोः छाया मुनिवनतरुच्छाया, तां मुनिवनतरुच्छायाम्। गलितं वयः येषां ते गलितवयसः, तेषां गलितवयसाम्। इक्ष्वाकोः गोत्रापत्यानि इक्ष्वाकवः तेषामिक्ष्वाकूणाम्। कुलस्य व्रतं कुलव्रतम्।

अभि०—यदा राजा दिलीपो वृद्धो जातस्तदा तरुणाय स्वपुत्राय रघवे राज्यं दत्त्वा स्वमहिष्या सुदक्षिणया सह वानप्रस्थाश्रमधर्मेण तपसे वनगमनमकरोत्। यत इदं कुलव्रतमिक्ष्वाकूणामासीत्।

हिन्दी—जब कि राजा दिलीप बूढ़े हुए तो अपने तरुण पुत्र रघु को राज्य देकर अपनी रानी सुदक्षिणा के साथ वानप्रस्थ धर्म के द्वारा तपस्या के लिये वन में चले गये, क्योंकि इक्ष्वाकुकुल के राजाओं का यही कुलनियम था॥ ७०॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितया छात्रोपयोगिनी-
व्याख्यया समलङ्कृते रघुवंशे महाकाव्ये रघुराज्याभि-
षेको नाम तृतीयः सर्गः॥ ३॥

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

चतुर्थ सर्ग

चर्तुथ सर्ग का कथासार

अपने पिता के दिये हुए राज्य को प्राप्त करके, महाराज रघु बड़े ही तेजस्वी हो गये। इससे जो राजा रघु के पराक्रम को देखकर ईर्ष्या करते थे, अब तो उनके हृदय में आग धधक उठी। समस्त प्रजा ने रघु का अभिनन्दन किया। इस समय नीति विशारद अमात्यों ने रघु के सामने धर्मपक्ष तथा अधर्मपक्ष दोनों ही रखे, किन्तु रघु ने सधर्म पक्ष को ही स्वीकार किया। अतः रघु ने न्याय से प्रजा, तथा पराक्रम से शत्रुओं को वश में कर लिया। इधर शरद् ऋतु भी मानो रघु को विजय यात्रा के लिए प्रेरित करती हुई आ गई और रघु ने विधिपूर्वक नीराजना नामक शांति कर्म करके तथा राजधानी की रक्षा का प्रबंध करके, दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर दिया।

इन्द्र के तुल्य पराक्रमी रघु पहले पूर्व दिशा की ओर चले। रघु की सेना रथ तथा घोड़ों की टापों से उड़ी धूल से तथा मेघों के समान हाथियों से आकाश को पृथिवी तल और पृथिवी को आकाश-सा बनाती हुई चल रही थी। आगे आगे रघु का प्रताप और प्रताप के पीछे शब्द (होहल्ला), इसके पीछे धूली, और सबसे पीछे सेना, इस प्रकार मानों चतुर्व्यूह बनाकर सेना जा रही थी। रघुने अपनी शक्ति से मरुस्थल को जलवाला प्रदेश और नदियों को पुल बनाकर सुगम्य तथा घने जंगलों को काट कर साफ कर दिया था। रघु जिस राजा को जीत लेते थे, उसे पुनः वहीं का राजा बना देते थे। इस प्रकार उनका मार्ग निष्कण्टक हो रहा था।

इस प्रकार पूर्वी राजाओं को जीतते-जीतते रघु समुद्रतीर पर पहुँचे। वहाँ सुह्म देश के राजा बिना लड़ाई के ही रघु के अधीन हो

गये। वहाँ से आगे चलकर रघु ने बंगाली राजाओं को जीत कर गंगासागर के द्वीपों में अपने जयस्तम्भ गाड़ दिये।

फिर वहाँ से हाथियों का पुल बनाकर कपिशा नदी को पार कर, उत्कल प्रदेश में पहुँचे और उत्कलों के बताये मार्ग से कलिंग देश में पहुँचे। कलिंग के राजा को पराजित करके महेन्द्र पर्वत पर अपना दुःसह प्रताप स्थापित करके, वहाँ नारियल का आसव पीकर सैनिकों ने विश्राम किया। पश्चात वहाँ से समुद्र के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर चले। कावेरी को पार कर मलयागिरि की तराई में हो कर ताम्रपर्णी नदी तथा सागर के संगम पर पाण्ड्यवंश के राजा को पराश्त किया; और पाण्ड्य राजा ने प्रणाम करके रघु को मोतियों का हार भेंट में दिया। वहाँ से चल कर केरल को जीतकर पश्चिम के राजाओं को जीता, फिर स्थल मार्ग से पारस में गये और पाश्चात्य यवनों से खूब लड़ाई हुई। जब यवनों को परास्त कर चुके तो वहाँ से उत्तर में गये।

हूण तथा कम्बोजों को जीतते हुए, हिमालय में पहुँचे। वहाँ पहाड़ी गणों से घोर युद्ध करके परास्त किया। फिर कामरूप देश में आकर वहाँ के राजा से हाथियों को भेंट में लेकर अयोध्या में लौट आये और सर्वस्व दक्षिणा जिसमें दे दी जाय ऐसा विश्वजित् नामक यज्ञ किया। यज्ञ के अन्त में प्रचुर भेंट पूजा देकर सब राजाओं को अपनी राजधानियों में जाने की आज्ञा दे दी।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

चतुर्थ सर्ग

स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः॥ १॥

सञ्जीविनी—स रघुर्गुरुणा पित्रा दत्तं राज्यं राज्ञः कर्म प्रजापरिपालनात्मकम् पुरोहितादित्वाद्यक्। प्रतिपद्य प्राप्य। दिनान्ते सायंकाले सवित्रा सूर्येण निहितं तेजः प्रतिपद्य हुताशनोऽग्निरिव। अधिकं बभौ। 'सौरं तेजः सायमग्निं संक्रमते। आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निमनुप्रविशति। 'अग्निं वा आदित्यः सायं प्रविशति' इत्यादिश्रुतिः प्रमाणम्॥ १॥

अन्वयः—सः, गुरुणा, दत्तम्, राज्यम्, प्रतिपद्य, दिनान्ते, सवित्रा, निहितम्, तेजः, 'प्रतिपद्य' हुताशनः, इव, अधिकम्, बभौ।

वाच्य—तेन हुताशनेव इव अधिकं बभे।

व्याख्या—सः=रघुः। गुरुणा=पित्रा दिलीपेन, दत्तम्=विसृष्टम्, राज्यम्=राष्ट्रमण्डलम्, प्रतिपद्य=प्राप्य। दिनस्य=दिवसस्यान्तस्तस्मिन्, दिनान्ते=सायंकाले। सवित्रा=सूर्येण, निहितं=स्थापितं, तेजः=दीप्तिं, 'प्रतिपद्य' हुताशनः=हुतं दत्तमश्नातीति सः, वह्निः, इव=यथा, अधिकम्=अत्यन्तम्, बभौ=शुशुभे।

समा०—राज्ञः कर्म भावो वा राज्यम्, तत् राज्यम्। दिनस्य अन्तः दिनान्तः; तस्मिन् दिनान्ते। हुतमशनं यस्य सः हुताशनः।

अभि०—स्वजनकेन दिलीपेन दत्तं राष्ट्रमण्डलं प्राप्य रघुस्तथा शोभामाप यथा सायङ्काले सूर्येऽस्तंगते वह्निरतिशयं प्रकाशते।

हिन्दी०—रघु अपने पिता द्वारा दिये गये राज्य को पाकर इस प्रकार अधिक सुशोभित हुए जिस प्रकार सायङ्काल के समय सूर्य द्वारा निहित तेज को पाकर अग्नि की शोभा अधिक हो जाती है॥ १॥

दिलीपानन्तरं राज्ये तं निशम्य प्रतिष्ठितम्।
पूर्वं प्रधूमितो राज्ञां हृदयेऽग्निरिवोत्थितः॥ २॥

सञ्जीविनी-- दिलीपानन्तरं राज्ये प्रतिष्ठितमवस्थितं तं रघुं निशम्याकर्ण्य पूर्वं दिलीपकाले राज्ञां हृदये प्रकर्षेण धूमोऽस्य संजातः प्रधूमितोऽग्निरुत्थित इव प्रज्वलित इव। पूर्वेभ्योऽधिकसंतापोऽभूदित्यर्थः। राजकर्तृकस्यापि निशमनस्याग्नावुपचारान्न समानकर्तृकत्वविरोधः॥ २॥

अन्वयः— दिलीपानन्तरम्, राज्ये, तं प्रतिष्ठितम्, निशम्य, पूर्वम्, राज्ञाम् हृदये, प्रधूमितः, अग्निः, उत्थितः, इव 'अभूत्'।

वाच्य०— प्रधूमितेनाग्निना उत्थितेन इव अभावि।

व्याख्या— दिलीपानन्तरम् = दिलीपस्यानन्तरं, दिलीपे वनं गते सतीत्यर्थः। राज्ये = राज्ञो भावः कर्म वा तस्मिन्, राष्ट्रमण्डले, प्रतिष्ठितम् = कृताधिष्ठानम्, 'रघुम्' निशम्य = श्रुत्वा। पूर्वम् = दिलीपराज्यसमये। राज्ञाम् = महीपालानाम्, हृदये = मनसि। प्रधूमितः = प्रकर्षेण धूमोऽस्य संजातः, धूमयुक्तः, अग्निः = सन्तापवह्निः। उत्थितः = प्रज्वलितः, इव, अभूत्।

समा०— दिलीपस्य अनन्तरं दिलीपानन्तरम्, तत् दिलीपानन्तरम्। प्रतिष्ठा अस्य संजाता इति प्रतिष्ठितः, तं प्रतिष्ठितम्। प्रकृष्टो धूमः प्रधूमः, प्रधूमः अस्य संजातः प्रधूमितः।

अभि०— दिलीपराज्यकाले यः नृपाणां हृदि धूमयुक्तः सन्तापाग्निः आसीत् स रघुं राज्ये प्रतिष्ठितं श्रुत्वा प्रज्वलित इव बभूव। राजानोऽधिकं सन्तेपुः।

हिन्दी— राजा दिलीप के राज्यकाल में जिन राजाओं के हृदय में धूमिल संतापाग्नि स्थित थी वह रघु के राजपदारूढ़ होते ही धधक उठी॥ २॥

पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्नयनपङ्क्तयः।
नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः॥ ३॥

सञ्जीविनी— पुरुहूतध्वजः इन्द्रध्वजः किल राजभिर्वृष्ट्यर्थं पूज्यत इत्युक्तं भविष्योत्तरे— 'एवं यः कुरुते यात्रामिन्द्रकेतोर्युधिष्ठिर। पर्जन्यः कामवर्षी स्यात्तस्य राज्ये न संशयः॥" इति। "चतुरस्रं ध्वजाकारं राजद्वारे प्रतिष्ठितम्। आहुः शक्रध्वजं नाम पौरलोकसुखावहम्॥" पुरुहूतध्वजस्येव तस्य रघोर्नवमभ्युत्थानमभ्युन्नतिमभ्युदयं च पश्यन्तीति नवाभ्युत्थानदर्शिन्यः।

उदूर्ध्वं प्रस्थिता उल्लसिताश्च नयनपंक्तयो यासां ताः सप्रजाः ससंतानाः प्रजाः जनाः 'प्रजा स्यात्संततौ जने' इत्युभयत्राप्यमरः । ननन्दुः ॥ ३ ॥

अन्वयः—पुरुहूतध्वजस्य, इव, तस्य नवाभ्युत्थानदर्शिन्यः, उन्नयनपङ्क्तयः, सप्रजाः, प्रजाः, ननन्दुः ।

वाच्य०—नवाभ्युत्थानदर्शिनीभिः उन्नयनपंक्तिभिः सप्रजाभिः प्रजाभिः सः ननन्दे ।

व्याख्या—पुरुहूतस्य=इन्द्रस्य ध्वजस्य=पताकायाः इव=यथा, तस्य=रघोः । नवं=नूतनं यदभ्युत्थानमभ्युदयस्तत् पश्यन्तीति तादृश्यः, ऊर्ध्वं प्रस्थिताः नयनानां=नेत्राणां पङ्क्तयो यासां ताः उन्नयनपङ्क्तयः=ऊर्ध्वदर्शनोन्मुखाः । प्रजाभिः=सन्तानैः सह वर्तमानाः सप्रजाः, प्रजाः=जनाः "प्रजा स्यात्सन्ततौ जने" इत्यमरः । ननन्दुः=अनन्दन् ।

समा०—पुरुहूतस्य ध्वजः पुरुहूतध्वजः तस्य पुरुहूतध्वजस्य । नवञ्च तदभ्युत्थानञ्च नवाभ्युत्थान नवाभ्युत्थान पश्यन्तीति नवाभ्युत्थानदर्शिन्यः । नयनानां पङ्क्तयः नयनपङ्क्तयः, उद्गताः नयनपङ्क्तयो यासां ता उन्नयन-पङ्क्तयः । प्रजाभिः सह वर्तन्त इति सप्रजाः ।

अभि०—यथा सन्तानसहिताः प्रजा इन्द्रध्वजाभ्युत्थानं दृष्ट्वा प्रसन्नाः भवन्ति तथैव रघोरपि नवाभ्युदयमवलोक्य बभूवुः ।

हिन्दी०—जिस प्रकार इन्द्रध्वजोत्थान से सन्तान सहित प्रजा ऊपर को दृष्टि किये प्रसन्न होती है उसी प्रकार रघु के अभ्युदय से भी समस्त प्रजा प्रसन्न हुई ॥

सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना ।
तेन सिंहासनं पित्र्यमखिलं चारिमण्डलम् ॥ ४ ॥

सञ्जीविनी—द्विरद इव गच्छतीति तेन द्विरदैश्च गच्छतीति वा द्विरदगामिना । 'कर्तर्युपमाने' इति 'सुप्यजातौ' इति च णिनिः । तेन रघुणा समं युगपदेव द्वयं समाक्रान्तमधिष्ठितम् । किं तद्द्वयम् । पितुरागतं पित्र्यम् । 'पितुर्यत्' इति यत्प्रत्ययः । सिंहासनम् । अखिलमरीणां मण्डलं राष्ट्रं च ॥ ४ ॥

अन्वयः—द्विरदगामिना, तेन, समम्, एव, द्वयम् समाक्रान्तम्, पित्र्यम्, सिंहासनम्, अखिलम्, अरिमण्डलम्, च ।

वाच्य०—द्विरदगामी, सः, समम्, एव द्वयम्, समाक्रान्तवान् ।

व्याख्या—द्वौ रदौ यस्य स द्विरदो=गजः, स इव गच्छतीति, तेन

द्विरदगामिना = गजगामिनेत्यर्थः, तेन=रघुणा । समम् = युगपत्, एव, द्वयम् = द्वितयम्, समाक्रान्तम् = समधिष्ठितम् । किन्तत् ? पितुरागतं पित्र्यं=स्वजनकादधिगतं सिंहासनं = राजासनम् । अखिलम्=सम्पूर्णं, अरीणां = शत्रूणां मण्डलं = राष्ट्रमण्डलं च ।

समा०—द्वौ रदौ यस्य सः द्विरदः, द्विरद इव गच्छतीति द्वि-रदेन गच्छतीति वा द्विरदगामी, तेन द्विरदगामिना । अरीणां मण्डलम् अरिमण्डलम् ।

अभि०—यदैव गजगमनशीलेन रघुणा सिंहासनं प्राप्तं तदैव सकलशत्रुसमूहोऽपि तेन पदाक्रान्तः कृतः ।

हिन्दी—हाथी की तरह मस्त चलनेवाले रघुने पिता से प्राप्त सिंहासन को तथा सम्पूर्ण शत्रुमण्डल को एक साथ ही पदाक्रान्त किया ॥ ४ ॥

छायामण्डललक्ष्येण तमदृश्या किल स्वयम् ।
पद्मा पद्मातपत्रेण भेजे साम्राज्यदीक्षितम् ॥ ५ ॥

सञ्जीविनी—अत्र रघोस्तेजोविशेषेण स्वयं संनिहितया लक्ष्म्या छत्रधारणं कृतमित्युत्प्रेक्षते । पद्मा लक्ष्मीः । 'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया' इत्यमरः । सा स्वयमदृश्या किल । किलेति संभावनायाम् । सती छायामण्डललक्ष्येण कान्तिपुञ्जानुमेयेन । न तु स्वरूपतो दृश्येन । छायामण्डलमित्यनेनानातपज्ञानं लक्ष्यते । 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्युभयत्राप्यमरः । पद्मातपत्रेण पद्ममेवातपत्रं तेन करणभूतेन साम्राज्यदीक्षितं साम्राज्यकर्मणि मण्डलाधिपत्ये दीक्षितमभिषिक्तं तं भेजे सिषेवे । अन्यथा कथमेतादृशी कान्तिसंपत्तिरिति भावः ॥ ५ ॥

अन्वयः—पद्मा, स्वयम् अदृश्या, किल, छायामंडललक्ष्येण, पद्मातपत्रेण, साम्राज्यदीक्षितम्, तं, भेजे ।

वाच्य०—पद्मया, स्वयम् अदृश्यया, किल, साम्राज्यदीक्षितः, सः भेजे ।

व्याख्या—पद्मा=लक्ष्मीः । स्वयम्=आत्मना, अदृश्या=अलक्ष्या, किलेति-सम्भावनायाम् । छायायाः=अनातपस्य यन्मण्डलं = चक्रं, तेन लक्ष्येणानुमेयेन । पद्मं=कमलमेवातपत्रं=छत्रं तेन छायामण्डललक्ष्येण करणेन । साम्राज्ये=सम्राट्कर्मणि, दीक्षितम् = अभिषिक्तम्, तम् = रघुम् । भेजे = सिषेवे ।

समा०—न दृश्या अदृश्या। छायाया मण्डलं छायामण्डलं, तेन लक्ष्यं छायामण्डललक्ष्यम्, तेन छायामण्डललक्ष्येण। पद्ममेव आतपत्रं, तेन पद्मातपत्रेण। सम्राजः कर्म साम्राज्यं,साम्राज्ये दीक्षितः साम्राज्यदीक्षितः,तं साम्राज्यदीक्षितम्।

अभि०—सिंहासनारूढं रघुमवलोक्य तत्तेजोविशेषेणाकृष्टा लक्ष्मीः स्वयम् अदृश्या सती प्रभापुञ्जानुमेयकमलच्छत्रेण तं सेवितवती।

हिन्दी०—सिंहासन पर विराजमान रघु को देख कर लक्ष्मी स्वयम् अदृश्य रूप से कान्तिमण्डल से अनुमान करने योग्य कमलरूप छत्र से उनकी सेवा करने में तत्पर हुई ॥ ५ ॥

परिकल्पितसान्निध्या काले काले च वन्दिषु।
स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती ॥ ६ ॥

सञ्जीविनी—सरस्वती च काले काले सर्वेष्वपि योग्यकालेषु।'नित्यवीप्सयोः' इति वीप्सायां द्विर्वचनम्। वन्दिषु परिकल्पितसान्निध्या कृतसन्निधाना सती स्तुत्यं स्तोत्रार्हं तं रघुम्। अर्थ्याभिरर्थादनपेताभिः। 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत्प्रत्ययः। स्तुतिभिः स्तोत्रैरुपतस्थे। देवबुद्ध्या पूजितवतीत्यर्थः। देवतात्वं च 'नाविष्णुः पृथिवीपतिः' इति वा, लोकपालात्मकत्वाद्वेत्यनुसन्धेयम्। एवं च सति 'उपाद्देवपूजासंगतिकरण' इति वक्तव्यादात्मनेपदं सिद्ध्यति ॥ ६ ॥

अन्वयः—सरस्वती, च काले काले, वन्दिषु, परिकल्पितसान्निध्या, 'सती' स्तुत्यं तम्, अर्थ्याभिः, स्तुतिभिः, उपतस्थे।

वाच्य०—सरस्वत्या, परिकल्पितसान्निध्यया, सत्या स्तुत्यः सः उपतस्थे।

व्याख्या—सरस्वती = वाग्देवता च = अपि, काले = समये-समये, योग्यसमयेष्वित्यर्थः, वन्दिषु=स्तुतिपाठकेषु, परिकल्पितं = परिनिष्ठितं, सान्निध्यं = सामीप्यं यया सा कृतसंनिधानेत्यर्थः, स्तोतुं योग्यः स्तुत्यस्तं=स्तवार्हं, तम् = रघुम्, अर्थादनपेताः = अर्थ्यास्ताभिः = अर्थादनपेताभिः = शोभनार्थाभिरित्यर्थः, स्तुतिभिः = स्तुतिवचनैः, उपतस्थे = उपस्थानं चकार।

समा०—परिकल्पितं सान्निध्यं यया सा परिकल्पितसान्निध्या।

अभि०—वाचामधिष्ठात्री देवी सरस्वत्यपि योग्यप्रसङ्गेषु वन्दिजनमुखवर्तिनी भूत्वा, स्तवनार्हं रघुं, शोभनार्थैः स्तोत्रैः सेवितवती।

हिन्दी—सरस्वती देवी भी उचित अवसरों पर वन्दिजनों में स्थित होकर

स्तुति करने योग्य रघु की अच्छे अर्थवाले स्तोत्रों से स्तुति करने लगी ॥ ६ ॥

मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्भुक्ता यद्यपि राजभिः ।
तथाप्यनन्यपूर्वेव तस्मिन्नासीद्वसुन्धरा ॥ ७ ॥

सञ्जीविनी—वसुन्धरा मनुप्रभृतिभिर्मान्यैः पूज्यैः राजभिर्भुक्ता यद्यपि । भुक्तैवेत्यर्थः । यद्यपीत्यवधारणे । 'अप्यर्थे यदिवार्थे स्यात्' इति केशवः । तथापि तस्मिन्राज्ञि । अन्यः पूर्वो यस्याः सान्यपूर्वा अन्यपूर्वा न भवतीत्यनन्यपूर्वा अनन्योपभुक्तेवासीत् । तत्प्रथमपतिकेवानुरक्तवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥

अन्वयः—वसुन्धरा, मनुप्रभृतिभिः, मान्यैः, राजभिः, यद्यपि भुक्ता, तथापि तस्मिन्, अनन्यपूर्वा, इव, आसीत् ।

वाच्य०—वसुन्धरां, मनुप्रभृतयः मान्याः राजानः यद्यपि, भुक्तवन्तः, तथापि तया तस्मिन्, अनन्यपूर्वया इव अभूयत ।

व्याख्या—वसूनि धरतीति वसुन्धरा = पृथिवी, मनुः प्रभृतिरादिर्येषां तादृशैः = वैवस्वतमन्वादिभिः, मान्यैः = प्रतिष्ठितैः, राजभिः = नृपैः, यद्यपि, भुक्ता = उपभुक्ता, तथापि तस्मिन् = रघौ, न अन्यः पूर्वो यस्यास्तादृशी अनन्योपभुक्ता इव = यथा, आसीत् = अभूत् ।

समा०—मनुः प्रभृतिः येषां ते मनुप्रभृतयः, तैः मनुप्रभृतिभिः । मानितुं योग्याः मान्याः, तैः मान्यैः । अन्यः पूर्वो यस्याः सा अन्यपूर्वा, अन्यपूर्वा न भवतीति अनन्यपूर्वा ।

अभि०—यद्यपि रघोः पूर्वमन्येऽपि मनुप्रभृतयो राजानः पृथिव्या उपभोगं चक्रुः, तथापि रघौ राज्ये प्रशासति सा अभुक्तपूर्वाऽतिनवा प्रतिभाति स्म ।

हिन्दी—यद्यपि पृथ्वी का पहले भी मनु आदि मान्य राजाओं ने भली-भाँति उपभोग किया था, तथापि रघु को पाकर वह उसमें इस प्रकार अनुरक्त हुई कि जैसे वह अन्य से न भोगी गई हो ॥ ७ ॥

स हि सर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः ।
आददे नातिशीतोष्णो नभस्वानिव दक्षिणः ॥ ८ ॥

सञ्जीविनी—हि यस्मात्कारणात्स रघुर्युक्तदण्डतया यथापराधदण्डतया सर्वस्य लोकस्य मन आददे जहार । क इव । अतिशीतोऽत्युष्णो वा न भवतीति नातिशीतोष्णः । नञर्थस्य नशब्दस्य सुप्सुपेति समासः । दक्षिणो दक्षिणदिग्भवो

नभस्वान्वायुरिव । मलयानिल इवेत्यर्थः । युक्तदण्डतयेत्यत्र कामन्दकः—'उद्वेजयति तीक्ष्णेन मृदुना परिभूयते । दण्डेन नृपतिस्तस्माद्युक्तदण्डः प्रशस्यते' इति ॥ ८ ॥

अन्वयः—हि, सा, युक्तदण्डतया, सर्वस्य, लोकस्य, मनः, नातिशीतोष्णः, दक्षिणः, नभस्वान्, इव, आददे ।

वाच्य०—तेन नातिशीतोष्णेन, दक्षिणेन, नभस्वता, इव मनः आददे ।

व्याख्या—हि=यतः । सः=रघुः । युक्तो दण्डो यस्य सः, तस्य भावस्तत्ता तया=यथापराधदण्डदत्वेन । सर्वस्य=निखिलस्य, लोकस्य=प्रजावर्गस्य । मनः=चित्तम्, न अतिशीतः उष्णश्च भवतीति नातिशीतोष्णः=समशीतोष्णः, दक्षिणः=दक्षिणदिग्भवः, नभस्वान्=वायुरिव, आददे=वशीचकार ।

समा०—युक्तः दण्डः यस्य सः युक्तदण्डः, युक्तदण्डस्य भावः युक्तदण्डता, तया युक्तदण्डतया । शीतश्चासौ उष्णश्च शीतोष्णः, अत्यन्तं शीतोष्णः अतिशीतोष्णः, न अतिशीतोष्णः नातिशीतोष्णः ।

अभि०—यथा दक्षिणदिग्भवो वायुः समशीतोष्णः सन् सर्वेषां मनो वशीकरोति तथैव नातिमृदुना नातिकठिनेन दण्डेन रघुरपि सर्वेषां मनो वशीचकार ।

हिन्दी—जैसे कि दक्षिण दिशा का वायु न अधिक ठंढा न अधिक गर्म होने के कारण मनुष्यों का मन हरण करता है उसी प्रकार राजा रघु ने भी अपराधानुसार दण्ड देकर सब मनुष्यों का मन हरण किया ॥ ८ ॥

मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ ।
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः ॥ ९ ॥

सञ्जीविनी—तेन रघुणा प्रजा गुरौ दिलीपविषये । सहकारोऽतिसौरभश्चूतः । 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः । तस्य फलेन पुष्पोद्गमे पुष्पोदय इव ततोऽपि गुणाधिकतया हेतुना मन्दोत्कण्ठा अल्पोत्सुक्याः कृताः । गुणोत्तरश्चोत्तरो विषयः पूर्वं विषयं विस्मारयतीति भावः ॥ ९ ॥

अन्वयः—तेन, प्रजाः, गुरौ, सहकारस्य, फलेन, पुष्पोद्गमे, इव, गुणाधिकतया, मन्दोत्कण्ठाः, कृताः ।

वाच्य०—सः, प्रजाः, गुरौ, ततोऽपि गुणाधिकतया, मन्दोत्कण्ठाः कृतवान् ।

व्याख्या—तेन=राज्ञा रघुणा । प्रजाः प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजाः=जनाः ।

गुरौ=दिलीपविषये । सहकारस्य=आम्रस्य, फलेन=प्रसवेन, पुष्पाणां कुसुमानामुद्गमे = प्रसूनोदये, इव=यथा । गुणैः=औदार्यादिभिः । अधिकतया=अधिकत्वेन, मन्दा उत्कण्ठा यासां ताः मन्दोत्कण्ठाः=स्वल्पौत्सुक्याः, कृताः=विहिताः ।

समा०—पुष्पस्य उद्गमः पुष्पोद्गमः, तस्मिन् पुष्पोद्गमे । गुणैरधिकः गुणाधिकः, गुणाधिकस्य भावः गुणाधिकता, तया गुणाधिकतया । मन्दा उत्कण्ठा यासां ताः मन्दोत्कण्ठाः ।

अभि०—यथा जना आम्रस्य फलं प्राप्य तत्कलिकायां न्यूनादरा भवन्ति तथैव रघोर्दयादाक्षिण्यादिगुणानवलोक्य दिलीपं प्रति मन्दोत्कण्ठा बभूवुः ।

हिन्दी—जिस प्रकार मनुष्य आम के फल को प्राप्त करके आम के बौर के प्रति कम आदर करनेवाले हो जाते हैं उसी प्रकार रघुके गुणों से सन्तुष्ट प्रजा दिलीप के गुणों को भूल गई ॥ ९ ॥

नयविद्भिर्नवे राज्ञि सदसच्चोपदर्शितम् ।
पूर्व एवाभवत् पक्षस्तस्मिन्नाभवदुत्तरः ॥ १० ॥

सञ्जीविनी—नयविद्भिर्नीतिशास्त्रज्ञैर्नवे तस्मिन्राज्ञि विषये । तमधिकृत्येत्यर्थः । सद्धर्मयुद्धादिकमसत्कूटयुद्धादिकं चोपदर्शितम् । तस्मिन्राज्ञि पूर्वः पक्ष एवाभवत् । संक्रान्त इत्यर्थः । उत्तरः पक्षो नाभवत् । न संक्रान्त इत्यर्थः । तत्र सदसतोर्मध्ये सदेवाभिमतं नासत् । तदुद्भावनं तु ज्ञानार्थमेवेत्यर्थः । पक्षः साधनयोग्यार्थः । 'पक्षः पार्श्वगरुत्साध्यसहायबलभित्तिषु' इति केशवः ॥ १० ॥

अन्वयः—नयविद्भिः, नवे, राज्ञि, सद्, असद्, च, उपदर्शितम्, तस्मिन्, पूर्वः, पक्षः, एव, अभवत्, उत्तरः, न, अभवत् ।

वाच्य०—नयविदः, सद्, असद्, च, उपदर्शितवन्तः, पूर्वेण, एव, पक्षेण, अभूयत, उत्तरेण, न ।

व्याख्या—नयं नीतिशास्त्रं विदन्तीति, तैः नयविद्भिः=नीतिशास्त्रमर्मज्ञैः । सत्=सत्पक्षः धर्मयुद्धादिकम् । असत् = असत्पक्षः कूटयुद्धादिकं च । उपदर्शितम् = विवेदितम् । तस्मिन्=राज्ञि रघौ । पूर्वः पक्षः=धर्मयुद्धपक्षः, एव, अभवत्=अभूत् । उत्तरः=कूटयुद्धपक्षः । न अभवत् = नाभूत् ।

समा०—नयं विदन्तीति नयविदः, तैः नयविद्भिः ।

अभि०—नीतिशास्त्ररहस्यवेत्तारो मन्त्रिप्रभृतयः रघोरग्रे धर्मयुद्धं कूटयुद्धं च प्रदर्शितवन्तः । परं रघुणा केवलं धर्मयुद्धपक्ष एवाश्रितो नतु कूटयुद्धपक्षः ।

हिन्दी—राजनीति शास्त्र के पारंगत विद्वानों ने रघु के आगे धर्मयुद्ध तथा छलयुद्ध दोनों ही पक्ष प्रस्तुत किये, परन्तु रघु ने केवल धर्मयुद्ध को ही अपनाया, कूटयुद्ध को नहीं ॥ १० ॥

पञ्चानामपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः ।
नवे तस्मिन्महीपाले सर्वं नवमिवाभवत् ॥ ११ ॥

सञ्जीविनी—पृथिव्यादीनां पञ्चानां भूतानामपि गुणा गन्धादय उत्कर्षमतिशयं पुपुषुः । अत्रोत्प्रेक्षते । तस्मिन्रघौ नाम नवे महीपाले सति सर्वं वस्तुजातं नवमिवाभवत्: तदेव भूतजातमिदानीमपूर्वगुणयोगादपूर्वमिवाभवदिति भावः॥११॥

अन्वयः—पञ्चानाम्, अपि, भूतानाम्, गुणाः, उत्कर्षम्, पुपुषुः, तस्मिन्, नवे महीपाले, सति, सर्वम्, नवम्, इव, अभवत् ।

वाच्य०—गुणैः उत्कर्षः पुपुषे । सर्वेण नवेन इव अभूयत ।

व्याख्या—पञ्चानाम्=पञ्चसंख्यकानाम् अपि, भूतानाम्=पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानाम्, गुणाः=गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्दाः, उत्कर्षम्=अतिशयम्, पुपुषुः= अपुष्णन्, तस्मिन्=रघौ, नवे=नूतने, महीं पालयतीति तस्मिन् महीपाले=राज्ञि, सर्वम्=निखिलम्, वस्तु, नवम्=नूतनम्, इव=यथा, अभवत्=अभूत् ।

समा०—महीं पालयतीति महीपालः तस्मिन् महीपाले ।

अभि०—यदैव रघुः राजा अभवत् तदैव पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां पञ्चमहाभूतानामपि गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्दाख्या गुणा उत्कर्षमापुः । नवीने राज्ञि सर्वमपि वस्तु नवीनमिवाभवत् ।

हिन्दी—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच महाभूतों के गन्ध, रस रूप, स्पर्श तथा शब्द नामक गुण पहले की अपेक्षा अधिक पुष्टि को प्राप्त हो गये । रघु के नवीन राजा होने पर सारी वस्तुएँ नवीन-सी दिखलाई देने लगीं ॥

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥१२॥

सञ्जीविनी—यथा चन्दयत्याह्लादयतीति चन्द्र इन्दुः । चदिधातोरौणादिको रप्रत्ययः । प्रह्लादनादाह्लादकरणादन्वर्थोऽनुगतार्थनामकोऽभूत् । यथा च

तपतीति तपनः सूर्यः। 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इत्यनेन ल्युट्प्रत्ययः। प्रतापात्संतापजननादन्वर्थः। तथैव स राजा प्रकृतिरञ्जनादन्वर्थः सार्थकराजशब्दोऽभूत्। यद्यपि राजशब्दो राजतेर्दीप्त्यर्थात्कनिन्प्रत्ययान्तो न तु रञ्जेस्तथापि धातूनामनेकार्थत्वाद्रञ्जनाद्राजेत्युक्तं कविना ॥ १२ ॥

अन्वयः—यथा, चन्द्रः, प्रह्लादनात्, अन्वर्थः, अभूत, यथा, तपनः, प्रतापाद् 'अन्वर्थः' तथा, एव, सः राजा, प्रकृतिरञ्जनात्, अन्वर्थः अभूत्।

वाच्य०—यथा, चन्द्रेण, अन्वर्थेन, अभावि, यथा च तपनेन, अभावि, तथा, एव, तेन, राज्ञा, अन्वर्थेन, अभावि।

व्याख्या—यथा=येन प्रकारेण। चन्द्रः=विधुः। प्रह्लादनात्=चन्दयत्याह्लादयतीति व्युत्पत्त्या आह्लादजनकत्वात्। अन्वर्थः=अनुगतार्थनामा, अभूत्=बभूव। यथा च तपनः=सूर्यः। प्रतापात्=तपतीति तपनः, इति व्युत्पत्त्या संतापजननात्, अन्वर्थः, अभूत्। तथैव सः=राजा रघुः। प्रकृतेः=प्रजायाः। यद्रञ्जनं=रागजननं तस्मात्, अन्वर्थः अभूत्।

समा०—प्रकृतीनां रञ्जनं प्रकृतिरञ्जनम्, तस्मात् प्रकृतिरञ्जनात्।

अभि०—यथा लोकानामाह्लादकारकत्वात् चन्द्रः चन्द्रपदवाच्यः, यथा सन्तापजननात् तपनः तपनशब्दवाच्यः, तथैव प्रजायाः स्वस्मिन्ननुरागजननात् रघुरपि राजेतिशब्दवाच्योऽनुगतार्थ एवाभूत्।

हिन्दी—जैसे लोगों को आह्लाद पहुंचाने के कारण चन्द्र का नाम सार्थक हुआ तथा सन्ताप पहुँचाने के कारण सूर्य का नाम तपन सार्थक हुआ, इसी प्रकार प्रजावर्ग में अनुराग उत्पन्न करने के कारण रघु को राजा (रंजन करनेवाला) कहना भी सार्थक ही हुआ ॥ १२ ॥

कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने।
चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना ॥१३॥

सञ्जीविनी—विशाले तस्य रघोर्लोचने कामं कर्णान्तयोर्विश्रान्ते कर्णप्रान्तगते। चक्षुष्मत्ता तु। चक्षुःफलं त्वित्यर्थः। सूक्ष्मान्कार्यार्थान्कर्तव्यार्थान्दर्शयति प्रकाशयतीति तेन सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना शास्त्रेणैव। शास्त्रं दृष्टिर्विवेकिनामिति भावः ॥ १३ ॥

अन्वयः—विशाले, तस्य, लोचने, कामम्, कर्णान्तविश्रान्ते, 'आस्ताम्' तु चक्षुष्मत्ता, सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना, शास्त्रेण, एव, 'आसीत्'।

वाच्य०—विशालाभ्याम् लोचनाभ्याम् कर्णान्तविश्रान्ताभ्याम् अभावि, चक्षुष्मत्तया अभावि ।

व्याख्या—विशाले=विस्तृते, तस्य=रघोः, लोचने=नेत्रे । कामम्=अत्यन्तम् । कर्णयोः=श्रोत्रयोः, अन्तौ=प्रान्तौ, इति कर्णान्तौ, तयोः विश्रान्ते=गते, कर्णप्रान्तावलम्बिते इत्यर्थः । आस्ताम्,तु = किन्तु, चक्षुः नेत्रमस्यास्तीति चक्षुष्मान्, तस्य भावस्तत्ता । नेत्रवत्ता=सूक्ष्मान्, लघून् विचारयोग्यानां कार्याणामर्थान् द्रष्टुं शीलमस्य तादृशेन, शास्त्रेण = आगमेन एव आसीत् ।

समा०—कर्णयोः अन्तौ कर्णान्तौ, कर्णान्तयोः विश्रान्ते कर्णान्तविश्रान्ते । चक्षुः अस्यास्तीति चक्षुष्मान्, चक्षुष्मतः भावः चक्षुष्मत्ता । कर्तुं योग्यः कार्यः, कार्यश्चासौ अर्थश्च कार्यार्थः, कार्यार्थं दर्शयतीति कार्यार्थदर्शी तेन कार्यार्थदर्शिना ।

अभि०— यद्यपि रघोर्नेत्रे कर्णान्तविस्तृतत्वादतिसुन्दरे आस्ताम्, तथापि स केवलं ताभ्यामेव नेत्रवान् न अभूत्, अपितु अप्रत्यक्षान् पदार्थान् शास्त्ररूपलोचनेनैवावलोकयन् लोचनशोभाशाली आसीत् ।

हिन्दी—यद्यपि रघु के नेत्र कानों तक फैले हुए होने के कारण अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ते थे, परन्तु वह उनसे आँखों वाला नहीं था, अपितु अत्यन्त गूढ़पदार्थों को भी जाननेवाली शास्त्ररूपी आँख से ही नेत्रवाला था॥१३॥

लब्धप्रशमनस्वस्थमथैनं समुपस्थिता ।
पार्थिवश्रीर्द्वितीयेव शरत्पङ्कजलक्षणा ॥ १४ ॥

सञ्जीविनी—अथ लब्धस्य राज्यस्य प्रशमनेन परिपन्थिनामनुरञ्जनप्रतीकाराभ्यां स्थिरीकरणेन स्वस्थं समाहितचित्तमेनं रघुं पङ्कजलक्षणा पद्मचिह्ना । श्रियोऽपि विशेषणमेतत् । शरत् द्वितीया पार्थिवश्री राजलक्ष्मीरिव समुपस्थिता प्राप्ता । 'रक्षा पौरजनस्य देशनगरग्रामेषु गुप्तिस्तथा योधानामपि संग्रहोऽपि तुलया मानव्यवस्थापनम् । साम्यं लिङ्गिषु दानवृत्तिकरण त्यागः समानेऽर्चनं कार्याण्येव महीभुजां प्रशमनान्येतानि राज्ये नवे ॥' ॥ १४ ॥

अन्वयः—अथ, लब्धप्रशमनस्वस्थम्, एनम्, पङ्कजलक्षणा, शरद्, द्वितीया, पार्थिवश्रीः, इव, समुपस्थिता ।

वाच्य०—अथ लब्धप्रशमनस्वस्थः अयम् पंकजलक्षणया शरदा द्वितीयया पार्थिवश्रिया इव समुपतस्थे ।

व्याख्या—अथ=सिंहासनारोहणानन्तरम् । लब्धस्य=प्राप्तस्य यत् प्रशमनम्=स्थिरीकरणम्, तेन स्वस्थं=समाहितचित्तम्, एनम् राजानम्=रघुम् । पङ्कजानि कमलान्येव लक्षणानि चिह्नानि यस्यास्तादृशी कमलचिह्नवतीत्यर्थः । शरद्=शरत्कालः । द्वितीया=अपरा । पार्थिवस्य राज्ञः या श्रीः शोभा, सैव समुपस्थिता=प्राप्ता ।

समा०—लब्धस्य प्रशमनं लब्धप्रशमनम्, लब्धप्रशमनेन स्वस्थः लब्धप्रशमनस्वस्थः, तं लब्धप्रशमनस्वस्थम् । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः, पार्थिवस्य श्रीः पार्थिवश्रीः । पङ्कजं लक्षणं यस्याः सा, अथवा पङ्कजस्य लक्षणं यस्याः सा प जलक्षणा ।

अभि०—स रघुर्यदा राज्यं प्राप्तवान् तदैव सर्वत्र शान्ति विधाय स्वस्थोऽभवत् । एवं च शरदृतुः विकसितकमलव्याजेन अपरा राजलक्ष्मीरिव तं सिषेवे ।

हिन्दी—राज्यासन पाने के उपरान्त रघु ने उपलब्ध राज्य में शान्ति स्थापित की । तभी शरद् ऋतु का आगमन इस प्रकार हुआ मानो कमलधारिणी साक्षात् लक्ष्मी ही आ गई हो ॥ १४ ॥

निर्वृष्टलघुभिर्मेघैर्मुक्तवर्त्मा सुदुःसहः ।
प्रतापस्तस्य भानोश्च युगपद्व्यानशे दिशः ॥ १५ ॥

सञ्जीविनी—निःशेषं वृष्टा निर्वृष्टाः । कर्तरि क्तः । अत एव लघवः । तैर्मेघैर्मुक्तवर्त्मा त्यक्तमार्गः । अत एव सुदुःसहः । तस्य रघोर्भानोश्च प्रतापः पौरुषमातपश्च । 'प्रतापौ पौरुषातपौ' इति यादवः । युगपदेककालं दिशो व्यानशे व्याप ॥ १५ ॥

अन्वयः—निर्वृष्टलघुभिः, मेघैः, मुक्तवर्त्मा, अत एव, सुदुःसहः, तस्य, भानोः, च, प्रतापः, युगपत्, दिशः, व्यानशे ।

वाच्य०—मुक्तवर्त्मना सुदुःसहेन प्रतापेन दिशः व्यानशिरे ।

व्याख्या—निःशेषं वृष्टाः=मुक्तजला इति निर्वृष्टाः, अत एव लघवः तैः तथोक्तैः, मेघैः=घनैः । मुक्तं=परित्यक्तं, वर्त्म=मार्गः यस्य तादृशः । अत एव सुष्ठु दुःसहः=अतिदुःसहः सोढुमशक्य इत्यर्थः । तस्य=राज्ञः, भानोः=सूर्यस्य, च=तथा । प्रतापः=पुरुषशक्तिः प्रतापश्च । युगपद्=एककालम्, दिशः=काष्ठाः, व्यानशे=व्याप ।

समा०--निःशेषं वृष्टाः निर्वृष्टाः, निर्वृष्टाश्च ते लघवश्च निर्वृष्टलघवः, तैः निर्वृष्टलघुभिः। मुक्तं वर्त्म यस्य सः मुक्तवर्त्मा। दुःखेन सह्यते इति दुःसहः, सुष्ठु दुःसहः सुदुःसहः।

अभि०—यथा वर्षणानन्तरं धवलजलदैः परित्यक्तमार्गो रविः स्वतीव्रकिरणैर्लोकं सन्तप्तं करोति तथैव तस्य रघोरपि राज्ञः प्रतापः सर्वासु दिक्षु प्रसृतः।

हिन्दी--पानी बरसने के पश्चात् हलके हुए मेघों ने जिसका मार्ग छोड़ दिया है ऐसे सूर्य और राजा रघु का प्रताप सब दिशाओं में फैल गया ॥१५॥

वार्षिकं सञ्जहारेन्द्रो धनुर्जैत्रं रघुर्दधौ।
प्रजार्थसाधने तौ हि पर्यायोद्यतकार्मुकौ॥ १६॥

सञ्जीविनी—वर्षासु भवं वार्षिकम्। वर्षानिमित्तमित्यर्थः। 'वर्षाभ्यष्ठक्' इति ठक्प्रत्ययः। धनुः संजहार। रघुर्जैत्रं जयशीलम्। जेतृशब्दात्तृन्नन्तात् 'प्रज्ञादिभ्यश्च' इति स्वार्थेऽण्प्रत्ययः। धनुर्दधौ। हि यस्मात्ताविन्द्ररघू प्रजानामर्थस्य वृष्टिविजयलक्षणस्य साधनविषये पर्यायेणोद्यते कार्मुके याभ्यां तौ पर्यायोद्यतकार्मुकौ। 'पर्यायोद्यमविश्रमौ' इति पाठान्तरे पर्यायेणोद्यमो विश्रमश्च ययोस्तौ पर्यायोद्यमविश्रमौ। द्वयोः पर्यायकरणादक्लेश इति भावः॥ १६॥

अन्वयः---इन्द्रः, वार्षिकं, धनुः, सञ्जहार, रघुः, जैत्रं, धनुः, दधौ, हि, तौ, प्रजार्थसाधने, पर्यायोद्यतकार्मुकौ, आस्ताम्।

वाच्य०—इन्द्रेण वार्षिकं धनुः संजह्रे,रघुणा दधे, हि ताभ्यां पर्यायोद्यतकार्मुकाभ्याम्, अभावि।

व्याख्या---इन्द्रः। वर्षासु भवं वार्षिकं=वर्षाकालिकं धनुः=शरासनं,सञ्जहार =संहृतवान्। रघुः=राजा। जैत्रं जयशीलं, धनुः=स्वचापं, दधौ = गृहीतवान्। हि=यतः, तौ=इन्द्ररघू। प्रजायाः=लोकस्य योऽर्थः प्रयोजनं तस्य साधने = विषये। पर्यायेण=क्रमशः, उद्यते=उद्युक्ते, कार्मुके=धनुषी ययोस्तादृशौ आस्ताम्।

समा०--प्रजानाम् अर्थः, प्रजार्थः प्रजार्थस्य साधनं प्रजार्थसाधनम्, तस्मिन् प्रजार्थसाधने। पर्यायेण उद्यते कार्मुके याभ्यां तौ पर्यायोद्यतकार्मुकौ।

अभि०---इन्द्रः शरद्दतौ वर्षाकालिकं धनुः सञ्जहार, रघुस्तु लोकविजयाय धनुर्गृहीतवान्। यतस्तौ पर्यायेण स्वं स्वं धनुः गृहीत्वा प्रजाया अर्थसाधने वृष्टिरूपेण दिग्विजयेन च सर्वदा तत्परौ आस्ताम्।

हिन्दी०—इन्द्र ने वर्षा सम्बन्धी धनुष उठाकर रख दिया। इधर रघु ने दिग्विजयार्थ अपना धनुष धारण किया। क्योंकि वे दोनों बारी-बारी से प्रजा का कार्य सिद्ध करने के लिये धनुर्धारण में तत्पर रहते थे ॥१६॥

पुण्डरीकातपत्रस्तं विकसत्काशचामरः।
ऋतुर्विडम्बयामास न पुनः प्राप तच्छ्रियम् ॥१७॥

सञ्जीविनी—पुण्डरीकं सिताम्भोजमेवातपत्रं यस्य स तथोक्तः। विकसन्ति काशानि काशाख्यतृणकुसुमान्येव चामराणि यस्य स तथोक्तः। ऋतुः शरदृतुः पुण्डरीकनिभातपत्रम् काशनिभचामरं तं रघुं विडम्बयामासानुचकार। तस्य रघोः श्रियं पुनः शोभां तु न प्राप। 'शोभासंपत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिव दृश्यते' इति शाश्वतः॥

अन्वयः—पुण्डरीकातपत्रः, विकसत्काशचामरः, ऋतुः, तम्, विडम्बयामास, पुनः, तच्छ्रियम्, न, प्राप।

वाच्य०—पुण्डरीकातपत्रेण, विकसत्काशचामरेण, ऋतुना, सः विडम्बयाञ्चक्रे, पुनः तच्छ्रीः, न प्रापे।

व्याख्या—पुण्डरीकं = धवलकमलमेवातपत्रं = छत्रं यस्य तादृशः। विकसन्ति प्रस्फुरन्ति काशानि = तन्नामकतृणानि एव, चामराणि = बालव्यजनानि यस्य तादृशः। ऋतुः = शरदृतुः, तम् = रघुम्, विडम्बयामास = अनुचकार। पुनः = किन्तु, तस्य = रघोः या श्रीः = शोभा ताम्, न = नैव, प्राप = प्राप्नोत्।

समा०—पुण्डरीकमेव आतपत्रं यस्य सः पुण्डरीकातपत्रः। विकसन्ति च तानि काशानि च विकसत्काशानि, विकसत्काशान्येव चामराणि यस्य स विकसत्काशचामरः। तस्य श्रीः तच्छ्रीः, तां तच्छ्रियम्।

अभि०—शरदृतुना सिताम्भोजरूपेण छत्रेण प्रस्फुरितकाशतृणरूपेण चामरसहितेन च रघोरनुकरणं कृतं किन्तु तस्य या शोभासीत् सा कथमपि न प्रापे।

हिन्दी—शरद् ने श्वेत कमलों के बाहुल्य से तथा खिले हुए काश कुसुमों से श्वेतच्छत्र एवं चामरवाले राजा रघु का अनुकरण किया परन्तु उसकी शोभा न पा सका ॥१७॥

प्रसादसुमुखे तस्मिंश्चन्द्रे च विशदप्रभे।
तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयोः ॥१८॥

सञ्जीविनी—प्रसादेन सुमुखे तस्मिन्रघौ विशदप्रभे निर्मलकान्तौ चन्द्रे च द्वयोर्विषये तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरनुरागः समरसा समस्वादा। तुल्यभोगेति यावत् "रसो गन्धे रसः स्वादे" इति विश्वः। आसीत् ॥१८॥

अन्वयः—प्रसादसुमुखे, तस्मिन्, विशदप्रभे, चन्द्रे च द्वयोः, तदा, चक्षुष्मताम् प्रीतिः, समरसा, आसीत्।

वाच्य०—चक्षुष्मताम् प्रीत्या समरसया, अभूयत।

व्याख्या - प्रसादेन = प्रसन्नतया, सुमुखे = शोभनानने, तस्मिन् = रघौ। विशदा = स्वच्छा, प्रभा = कान्तिर्यस्य तादृशे चन्द्रे = चन्द्रमसि च। द्वयोः = रघुचन्द्रयोः, तदा = तस्मिन्काले। चक्षुरस्ति येषां तेषां चक्षुष्मतां = नेत्रवताम्, प्रीतिः = अनुरक्तिः, समः = तुल्यो रसो= रुचिः, यस्याः तादृशी। आसीत्।

समा० - सुष्ठु मुखं यस्य सः सुमुखः, प्रसादेन सुमुखः प्रसादसुमुखः, तस्मिन् प्रसादसुमुखे। विशदा प्रभा यस्य सः विशदप्रभः, तस्मिन् विशदप्रभे। चक्षुः एषामस्तीति चक्षुष्मन्तः, तेषां चक्षुष्मताम्। समः रसः यस्या सा समरसा।

अभि०—यथा जनाः शरदि निर्मलं चन्द्रमसं दृष्ट्वा हृष्टा अभूवुः, तथैव चारुकान्तिमन्तं रघुं दृष्ट्वाऽपि ते प्रसन्ना जाताः।

हिन्दी—जिस प्रकार मनुष्य शरद् में निर्मल चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होते थे उसी प्रकार रघु के सुन्दर मुख को देखकर भी आह्लादयुक्त होते थे ॥१८॥

हंसश्रेणीषु तारासु कुमुद्वत्सु च वारिषु।
विभूतयस्तदीयानां पर्यस्ता यशसामिव ॥१९॥

सञ्जीवनी—हंसानां श्रेणीषु पंक्तिषु। तारासु नक्षत्रेषु। कुमुदानि येषु सन्तीति कुमुद्वन्ति। 'कुमुद्वान्कुमुदप्रायः' इत्यमरः। "कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्"। तेषु। कुमुदप्रायेष्वित्यर्थः। वारिषु च तदीयानां रघुसंबन्धिनां यशसां विभूतयः संपदः पर्यस्ता इव प्रसारिताः किम्। इत्युत्प्रेक्षा अन्यथा कथमेषां धवलतेति भावः ॥ १९ ॥

अन्वयः—हंसश्रेणीषु, तारासु, कुमुद्वत्सु, वारिषु, च तदीयानाम् यशसाम्, विभूतयः, पर्यस्ताः, इव।

वाच्य०—विभूतिभिः, पर्यस्ताभिः, इव, अभूयत।

व्याख्या—हंसानाम् = मरालानाम्, श्रेणीषु = पंक्तिषु इति हंसश्रेणीषु। तारासु=नक्षत्रेषु। कुमुदाः सन्ति येषां तादृशेषु, वारिषु=जलेषु च। तस्येमानि तदीयानि, तेषां तदीयानाम्=रघुसंबन्धिनाम्। यशसाम्=कीर्तीनाम्। विभूतयः = सम्पत्तयः, धवलिमा इत्यर्थः, पर्यस्ताः = प्रसारिताः किमु इत्युत्प्रेक्षा।

समा०—हंसानां श्रेण्यः हंसश्रेण्यः, तासु हंसश्रेणीषु। कुमुदानि एषु सन्तीति कुमुद्वन्ति, तेषु कुमुद्वत्सु। तस्य इमाः तदीयाः।

अभि०—शरदि हंसपंक्तिषु कुमुदयुक्तेषु सरोवरादिषु च रघुयशस एव धवलिमसमृद्धिः प्रसृतेवासीत्।

हिन्दी—शरत्ऋतु में हंस की पंक्तियों में कुमुदनामक श्वेत कमलों से युक्त सरोवरों में ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो रघु के यश की समृद्धि फैली हुई है॥ १९॥

इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः॥२०॥

सञ्जीविनी—इक्षूणां छायेक्षुच्छायम्। 'छाया बाहुल्ये' इति नपुंसकत्वम्। तत्र निषण्णा इक्षुच्छायनिषादिन्यः। 'इक्षुच्छायानिषादिन्यः' इति स्त्रीलिङ्गपाठे इक्षोश्छायेति विग्रहः। अन्यथा बहुत्वे नपुंसकत्वप्रसङ्गात्। शालीन्गोपायन्ति रक्षन्तीति शालिगोप्यः सस्यपालिकाः स्त्रियः। 'कर्मण्यण्' इत्यण्। 'टिड्ढाणञ्' इत्यादिना ङीप्। गोप्तू रक्षकस्य तस्य रघोः। गुणेभ्य उदयो यस्य तद् गुणोदयं गुणोत्पन्नमाकुमारं कुमारादारभ्य कथोद्घातः कथारम्भो यस्य तत्। कुमारैरपि स्तूयमानमित्यर्थः, यशो जगुर्गायन्तिस्म। अथवा कुमारस्य सतो रघोर्याः कथा इन्द्रविजयादयस्तत आरभ्याकुमारकथम्। तत्राप्यभिविधावव्ययीभावः। आकुमारकथमुद्घातो यस्मिन्कर्मणि। गानक्रियाविशेषणमेतत्। 'स्यादभ्यादानमुद्घात आरम्भः' इत्यमरः। 'आकुमारकथोद्भुतम्' इति पाठे कुमारस्य कथाभिश्चरितैरद्भुतं यद्यशस्तद्यश आरभ्य यशो जगुरिति व्याख्येयम्॥२०॥

अन्वयः—इक्षुच्छायनिषादिन्यः, शालिगोप्यः, गोप्तुः, तस्य, गुणोदयम्, आकुमारकथोद्घातम्, यशः, जगुः।

वाच्य०—इक्षुच्छायनिषादिनीभिः, शालिगोपीभिः, यशः, जगे।

व्याख्या—इक्षूणां=पौण्ड्रकाणां, छाया=अनातप इति इक्षुच्छायं, तस्मिन् निषीदन्ति उपविशन्ति तच्छीलाः तथोक्ताः। शालीन् गोपायन्तीति, ताः= शस्यपालिकाः स्त्रियः। गोपायतीति गोप्ता, तस्य गोप्तुः=रक्षकस्य, तस्य= रघोः। गुणेभ्य उदयो यस्य तत् गुणोदयं=गुणोत्पन्नम्। कुमारादारभ्य इत्याकुमारम्, आकुमारं कथायाः=चरित्रस्य, उद्घातः=आरम्भः यस्य तत् तथोक्तम्। यशः=कीर्तिम्, जगुः=गायन्ति स्म।

सम०—इक्षूणां छाया इक्षुच्छायम्, इक्षुच्छाये निषीदन्तीति इक्षुच्छायनिषादिन्यः। शालीन् गोपायन्तीति शालिगोप्यः। गुणेभ्यः उदयः यस्य तत् गुणोदयम्, तत् गुणोदयम्। कथायाः उद्घातः तत् कथोद्घातम्. कुमारादारभ्य कथोद्घातं यस्य तत् आकुमारकथोद्घातम्, तत् आकुमारकथोद्घातम्। कुमारस्य कथाः कुमारकथाः, कुमारकथा आरभ्य आकुमारकथम्, आकुमारकथम् उद्घातः यस्मिन् कर्मणि यथा भवति तथेति क्रियाविशेषणं वा।

अभि०—इक्षूणां छायासु समुपविष्टाः शस्यपालिकाः रघोः कौमार्यादारभ्य शौर्यादिगुणयुक्तं यशः गायन्ति स्म।

हिन्दी—ईख की छायाओं में बैठी हुई कृषकों की स्त्रियाँ प्रजावर्ग की रक्षा करनेवाले रघु की शूरता को, जो कि बाल्यकाल से ही प्रसिद्ध थी, गाती थीं॥

प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः।
रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मनः॥२१॥

सञ्जीविनी—महौजसः कुम्भयोनेरगस्त्यस्य। 'अगस्त्यः कुम्भसम्भवः' इत्यमरः। उदयादम्भः प्रससाद प्रसन्नं बभूव। महौजसो रघोरुदयादभिभवाशङ्कि द्विषतां मनश्चुक्षुभे कालुष्यं प्राप। 'अगस्त्योदये जलानि प्रसीदन्ति' इत्यागमः॥

अन्वयः—महौजसः, कुम्भयोनेः, उदयात्, अम्भः, प्रससाद, 'महौजसः' रघोः, उदयात्, अभिभवाशङ्कि, द्विषताम्, मनः, चुक्षुभे।

वाच्य०—अम्भसा, प्रसेदे, अभिभवाशङ्किना, द्विषतां, मनसा, चुक्षुभे।

व्याख्या—महत्, ओजो=बलं, यस्य सः, तस्य महौजसः। कुम्भयोनेः= अगस्त्यस्य। उदयात्=प्रादुर्भावात्। अम्भः=जलम्, प्रससाद=निर्मलं बभूव। महौजसः=बलशालिनः, रघोः=दिलीपकुमारस्य, उदयात्=अभ्युत्थानात्।

अभिभवं = पराभवम् आशङ्कत इत्यभिभवाशङ्कि=पराभवशङ्कायुक्तम्, द्विषताम्= शत्रूणाम् । मनः = चित्तम् । चुक्षुभे = कालुष्यं प्राप ।

समा०--महत् ओजः यस्य सः महौजाः तस्य महौजसः । आशङ्कितुं शील-मस्येत्याशङ्कि, अभिभवस्य आशङ्कि अभिभवाशङ्कि ।

अभि०--अगस्त्यनक्षत्रोदयात् कर्दमयुक्तं जलं विमलं बभूव । रघोः विजय-प्रस्थानमाकर्ण्य शत्रूणां चित्तं पराभवशङ्कया क्षोभयुक्तं बभूव ।

हिन्दी—एक ओर अगस्त्य नक्षत्र के उदय से जल में निर्मलता आ गई। दूसरी ओर रघु की दिग्विजय यात्रा का समाचार सुनकर शत्रुओं का मन पराजय के भय से अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥

मदोदग्राः ककुद्मन्तः सरितां कूलमुद्रुजाः ।
लीलाखेलमनुप्रापुर्महोक्षास्तस्य विक्रमम् ॥ २२ ॥

सञ्जीविनी--मदोदग्रा मदोद्धताः । ककुदेषामस्तीति ककुद्मन्तः । महा-ककुद इत्यर्थः । यवादित्वान्मकारस्य वत्वाभावः । सरितां कूलान्युद्रुजन्तीति कूल-मुद्रुजाः । "उदि कूले रुजिवहोः" इति खश्प्रत्ययः । "अरुर्द्विषत्" इत्यनेन मुमा-गमः । महान्त उक्षाणो महोक्षाः । "अचतुरविचतुर" इत्यादिना निपातनादद-कारान्तः । लीलाखेलं विलाससुभगं तस्य रघोरुत्साहवतो वपुष्मतः परभञ्जकस्य विक्रमं शौर्यमनुप्रापुरनुचक्रुः ॥ २२ ॥

अन्वयः—मदोदग्राः, ककुद्मन्तः, सरिताम्, कूलमुद्रुजाः, महोक्षाः, लीला-खेलम्, तस्य, विक्रमम्, अनुप्रापुः ।

वाच्य०—मदोदग्रैः ककुद्मद्भिः सरिताम् कूलमुद्रुजैः महोक्षैः लीलाखेलः तस्य विक्रमः अनुप्रापे ।

व्याख्या—मदेन=गर्वेण, उदग्राः=उन्मत्ताः इति मदोदग्राः । ककुद् एषाम-स्तीति ककुद्मन्तः=महाककुदः । सरिताम्=नदीनाम्, कूलान्युद्रुजन्तीति कूलमुद्रुजाः तटविदारकाः । महान्तः उक्षाणो महोक्षाः=महाबलीवर्दाः । लीलाखेलम्=विलास-क्रीडायुक्तं, तस्य = रघोः, विक्रमम् = शौर्यम् । अनुप्रापुः=अनुचक्रुः ।

समा०--मदेन उदग्राः मदोदग्राः । ककुदेषामस्तीति ककुद्मन्तः । कूलान्यु-

द्रुजन्तीति कूलमुद्रुजाः। महान्तश्च ते उक्षाणश्च महोक्षाः। लीलया खेला यस्य सः लीलाखेलः तं लीलाखेलम्।

अभि०—उत्साहसमृद्धियुक्तस्य वपुष्मतः परदमनशीलस्य रघोः शौर्यस्य स्थूलदेहा मत्ता वृषभा नदीतटमुत्पाट्य स्वशृङ्गैरनुकरण विदधुः।

हिन्दी—बहुत स्थूलकाय मतवाले वृषभों ने उत्साहसम्पन्न डीलडौल वाले रघु का अनुकरण अपने सींगों से नदी तट को उखाड़ते हुये किया ॥ २२ ॥

प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः।
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसुस्रुवुः॥ २३ ॥

सञ्जीविनी—मदस्येव गन्धो येषां तैर्मदगन्धिभिः। "उपमानाच्च" इतीकार. समासान्तः। सप्तपर्णानां वृक्षविशेषाणाम्। 'सप्तपर्णो विशालत्वक्शारदो विषमच्छदः' इत्यमरः। प्रसवैः पुष्पैराहतास्तस्य रघोर्नागा गजाः। 'गजेऽपि नागमातङ्गौ' इत्यमरः। असूययेवाहतिनिमित्तया स्पर्धयेव सप्तधैव प्रसुस्रुवुर्मदं ववृषुः प्रतिगजगन्धाभिमानादिति भावः। 'करोत्कटाभ्यां मेढ्राच्च नेत्राभ्यां च मदस्रुतिः' इति पालकाप्ये। करान्नासारन्ध्राभ्यामित्यर्थः ॥२३॥

अन्वयः—मदगन्धिभिः, सप्तपर्णानाम्, प्रसवैः, आहताः तन्नागाः, असूयया, इव, सप्तधा, एव प्रसुस्रुवुः।

वाच्य०—मदगन्धिभिः सप्तपर्णानाम् प्रसवैः आहतैः तन्नागैः असूयया इव सप्तधा एव प्रसुस्रुवे।

व्याख्या—मदस्य=दानस्य, गन्ध इव गन्धः=सौरभं येषां तैस्तथोक्तैः। तैः=मदसुरभिभिः। सप्तपर्णानाम्=विषमच्छदानाम्। प्रसवैः=पुष्पैः। आहताः=ताडिताः। तस्य=रघोः, नागाः=गजाः। असूयया=स्पर्धया। इव=नूनम्। सप्तधा=सप्तस्थानेभ्यः, एव प्रसुस्रुवुः=मदं ववृषुः।

समा०—मदस्येव गन्धो येषां ते मदगन्धिनः, तैः मदगन्धिभिः। तस्य नागाः तन्नागाः।

अभि०—रघोः सेनायां वर्तमाना गजाः सप्तपर्णकुसुमानां गन्धं घ्रात्वा अयं वन्यगजमदगन्ध इति स्पर्धयेव करकटादिभ्यः स्वयमपि सप्तस्थानेभ्यः मदं ववृषुः।

हिन्दी—मद के समान गन्धवाले सप्तपर्ण के कुसुमों की गन्ध सूंघकर रघु की सेना के हाथी 'यह बनैले गजों के मद का गन्ध है' मानो इसी स्पर्धा से सातों अंगों से मद की वर्षा करने लगे ॥२३ ॥

सरितः कुर्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान् ।
यात्रायै चोदयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत् ॥२४॥

सञ्जीविनी—सरितो गाधाः सुप्रतराः कुर्वती । पथो मार्गांश्चाश्यानकर्दमाञ्शुष्कपङ्कान्कुर्वती । 'संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः'' इति श्यतेर्निष्ठातस्य नत्वम् । शरच्छरदृतुस्तं रघुं शक्तेरुत्साहशक्तेः प्रथमं प्राग्यात्रायै दण्डयात्रायै चोदयामास प्रेरयामास । प्रभावमन्त्रशक्तिसंपन्नस्य शरत्स्वयमुत्साहमुत्पादयामासेत्यर्थः ॥२४॥

अन्वयः—सरितः, गाधाः कुर्वती, पथः, च आश्यानकर्दमान्, "कुर्वती" शरद्, तम्, शक्तेः प्रथमम्, यात्रायै, चोदयामास ।

वाच्य०—सरितः गाधाः कुर्वत्या शरदा सः शक्तेः प्रथमम् यात्रायै चोदयाञ्चक्रे ।

व्याख्या—सरितः=नदीः । गाधाः=सुप्रतराः । कुर्वती=विदधती । पथः=मार्गांश्च । आश्यानः=शुष्कः, कर्दमः=पङ्कः येषां ते आश्यानकर्दमास्तान्, तथोक्तान्, कुर्वती । शरद्=शरदृतुः । तम्=रघुम् । शक्तेः=उत्साहशक्तेः । प्रथमम्=प्राक् । यात्रायै=विजययात्रायै, चोदयामास=प्रेरयामास ।

समा०—आसमन्तात् श्यानः कर्दमः येषां ते आश्यानकर्दमाः, तान् आश्यानकर्दमान् ।

अभि०—शरत्काले नद्यः सुप्रतराः सम्पन्नाः, मार्गाश्च कर्दमरहिता जाताः । एवं शरदा शक्तियुक्तस्य रघोर्मनसि महोत्साहः समजनि ।

हिन्दी—शरद आ जाने पर नदियाँ सुगमतापूर्वक पार करने योग्य हो गईं तथा मार्गों के कीचड़ सूख गये । इस प्रकार शरद् ऋतु ने प्रभावशक्तिसम्पन्न रघु के हृदय में विजय यात्रा के लिये उत्साह भर दिया ॥२४॥

तस्मै सम्यग्घुतो वह्निर्वाजिनीराजनाविधौ ।
प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन हस्तेनेव जयं ददौ ॥२५॥

सञ्जीविनी—वाजिनामश्वानां नीराजनाविधौ नीराजनाख्ये शांतिकर्मणि सम्यग्विधिवद्धुतो होमसमिद्धो वह्निः। प्रगता दक्षिणं प्रदक्षिणम्। तिष्ठद्गुप्रभृतित्वादव्ययीभावः। प्रदक्षिणा यार्चिर्ज्वाला तस्या व्याजेन हस्तेनेव तस्मै जयं ददौ। उक्तञ्चाहवयात्रायाम् 'इद्धः प्रदक्षिणगतो हुतभुङ्नृपस्य धात्रीं समुद्ररशनां वशगां करोति' इति। वाजिग्रहणं गजादीनामप्युपलक्षणम्, तेषामपि नीराजनाविधानात्॥

अन्वयः—वाजिनीराजनाविधौ, सम्यग् हुतः, वह्निः प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन, हस्तेन, इव, तस्मै, जयम् ददौ।

वाच्य०—हुतेन, वह्निना, प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन, हस्तेन, इव, जयः ददे।

व्याख्या—वाजिनां=घोटकानां यो नीराजनाविधिः=नीराजनाख्यशान्तिकर्म, तस्मिन् वाजिनीराजनाविधौ। सम्यक्=यथाशास्त्रम्, हुतः=तर्पितः। वह्निः=अग्निः। प्रगता दक्षिणं प्रदक्षिणम्, प्रदक्षिणम् यार्चिः=ज्वाला तस्या व्याजः=मिषः, तेन प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन। हस्तेन=स्वकरेण। इव=यथा। तस्मै=रघवे। जयं=विजयं। ददौ=दत्तवान्।

समा०—नीराजनाया विधिः नीराजनाविधिः, वाजिनां नीराजनाविधिः वाजिनीराजनाविधिः, तस्मिन् वाजिनीराजनाविधौ। प्रगता दक्षिणं प्रदक्षिणम्, प्रदक्षिणम् अर्चिः प्रदक्षिणार्चिः, प्रदक्षिणार्चिषः व्याजः प्रदक्षिणार्चिर्व्याजः, तेन प्रदक्षिणार्चिर्व्याजेन।

अभि०—यदा रघुः वाजिनीराजनाख्यं शान्तिकर्म कुर्वन् वह्नौ हवनीयं द्रव्यं चिक्षेप तदैव वह्निः प्रदक्षिणज्वालया तस्मै स्वकरेणेव विजयं प्रदत्तवान्।

हिन्दी—जब कि रघु ने नीराजनाख्य शान्ति कर्म करते हुए अग्नि में हवन किया तभी अग्नि की ज्वाला दाईं ओर को निकली, मानो उसने रघु को अपने हाथ से ही विजय प्रदान किया॥ २५॥

स गुप्त-मूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया॥२६॥

सञ्जीविनी—गुप्तौ मूलं स्वनिवासस्थानं प्रत्यन्तौ प्रान्तदुर्गं च येन स गुप्तमूलप्रत्यन्तः। शुद्धपार्ष्णिरुद्धतपृष्ठशत्रुः सेनया रक्षितपृष्ठदेशो वा। अयान्वितः

शुभदैवान्वितः । 'अयः शुभावहो विधिः' इत्यमरः । स रघुः षड्विधं मौलभृत्यादिरूपं बलं सैन्यम् । 'मौलं भृत्यः सुहृच्छ्रेणी द्विषदाटविकं बलम्' इति कोशः । आदाय दिशां जिगीषया जेतुमिच्छया प्रतस्थे चचाल ॥ २६ ॥

अन्वयः—गुप्तमूलप्रत्यन्तः, शुद्धपार्ष्णिः, अयान्वितः, सः, षड्विधं, बलम्, आदाय, दिग्जिगीषया, प्रतस्थे ।

वाच्य०—गुप्तमूलप्रत्यन्तेन, शुद्धपार्ष्णिना, अयान्वितेन, तेन, षड्विधम्, बलम्, आदाय, दिग्जिगीषया, प्रतस्थे ।

व्याख्या—गुप्तौ = रक्षितौ, मूलं = स्वनिवासस्थानं, प्रत्यन्तः = प्रान्तदुर्गं च येन सः गुप्तमूलप्रत्यन्तः । शुद्धः = उद्धृतः, पार्ष्णिः = पृष्ठशत्रुः येन तादृशः । अयेन = शुभावहविधिना, अन्वितः = युक्तः । सः = रघुः । षड्विधम् = मौलभृत्यादिषट्प्रकारकम्, बलम् = सेनाम् । आदाय = गृहीत्वा । दिशां = काष्ठानां जेतुमिच्छा, जयकरणाभिलाषः, तया दिग्जिगीषया । प्रतस्थे = प्रचचाल ।

समा०—मूलञ्च प्रत्यन्तश्च मूलप्रत्यन्तौ, गुप्तौ मूलप्रत्यन्तौ यस्य सः गुप्तमूलप्रत्यन्तः । शुद्धः पार्ष्णिः यस्य सः शुद्धपार्ष्णिः । अयेन अन्वितः अयान्वितः । षड् विधाः यस्य तत् षड्विधम्, तत् षड्विधम् । जेतुमिच्छा जिगीषा, दिशां जिगीषा दिग्जिगीषा, तया दिग्जिगीषया ।

अभि०—स्वराष्ट्रप्रबन्धं सम्पाद्य पृष्ठशत्रुं च व्यापाद्य शुभावहविधियुक्तः रघुः दिग्जयं कर्तुं प्रचचाल ।

हिन्दी—अपने राज्य का प्रबन्ध करके पृष्ठ शत्रुओं को मारकर मंगलाचार पूर्वक छः प्रकार की सेना साथ लेकर राजा रघु विजय-यात्रा के लिये चल पड़े ॥

अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः ।
पृषतैर्मन्दरोद्धूतैः क्षीरोर्मय इवाच्युतम् ॥२७॥

सञ्जीविनी—पौरयोषितस्तं प्रयान्तं रघुं लाजैराचारलाजैः । मन्दरोद्धूतैः पृषतैर्बिन्दुभिः । क्षीरोर्मयः क्षीरसमुद्रोर्मयोऽच्युतं विष्णुमिव । अवाकिरन्पर्यक्षिपन्॥

अन्वयः—वयोवृद्धाः, पौरयोषितः, तम्, लाजैः, मन्दरोद्धूतैः, पृषतैः क्षीरोर्मयः, अच्युतम्, इव, अवाकिरन् ।

वाच्य०—वयोवृद्धाभिः, पौरयोषिद्भिः, सः क्षीरोर्मिभिः, अच्युतः, इव अवाकीर्यत ।

व्याख्या—वयसा = अवस्थया, वृद्धाः = जीर्णाः इति वयोवृद्धाः । पुरे भवाः पौराः, तेषां योषितः=स्त्रियः । तम्=रघुम् । लाजैः=भृष्टधान्यविशेषैः । मन्दरादुद्धूतैः=मन्दराचलादुत्क्षिप्तैः, पृषतैः=बिन्दुभिः । क्षीरोर्मयः = क्षीरसागर-वीचयः । अच्युतम्=भगवन्तं विष्णुमिव । अवाकिरन् = ववृषुः ।

समा०—वयसा वृद्धाः वयोवृद्धाः । पुरे भवाः पौराः, पौराणां योषितः पौरयोषितः । मन्दरेण उद्धूताः मन्दरोद्धूताः, तैः मन्दरोद्धूतैः । क्षीरस्य ऊर्मयः क्षीरोर्मयः । न च्युतः अच्युतः, तम् अच्युतम् ।

अभि०—दिग्विजयार्थं गच्छतो रघोरुपरि पौरवृद्धा योषितस्तथा लाजान्ववृषुर्यथा समुद्रमन्थनसमयेऽच्युतस्योपरि क्षीरसागरवीचयः मन्दराचलोत्थापितान् जलबिन्दून्ववृषुः ।

हिन्दी—दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते समय राजा रघु के ऊपर नागरिकों की वृद्धाओं ने इस प्रकार खीलों की वर्षा की जिस प्रकार समुद्र मन्थन के समय समुद्र की तरङ्गों ने मन्दराचल से उडाये जल के बिन्दुओं को भगवान् अच्युत के ऊपर वर्षा की थी ॥२७॥

स ययौ प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा ।
अहिताननिलोद्धूतैस्तर्जयन्निव केतुभिः ॥२८॥

सञ्जीविनी—प्राचीनबर्हिर्नाम कश्चिन्महाराज इति केचित् । प्राचीनबर्हिरिन्द्रः 'पर्जन्यो मघवा वृषा हरिहयः प्राचीनबर्हिः स्मृतः' इतीन्द्रपर्यायेषु हलायुधाभिधानात् । तेन तुल्यः स रघुः । अनिलेनानुकूलवातेनोद्धूतैः केतुभिर्ध्वजैरहितान् रिपून्तर्जयन्निव भर्त्सयन्निव तर्जिभर्त्स्योरनुदात्तेत्त्वेऽपि चक्षिङो ङित्करणेनानुदात्तेत्त्वनिमित्तस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वज्ञापनात्परस्मैपदमिति वामनः । प्रथमं प्राचीं दिशं ययौ ॥२८॥

अन्वयः—प्राचीनबर्हिषा, तुल्यः, सः, अनिलोद्धूतैः, केतुभिः, अहितान्, तर्जयन्, इव, प्रथमम्, प्राचीम्, ययौ ।

वाच्य०—प्राचीनबर्हिषा,तुल्येन, तेन, तर्जयता, इव, प्रथमं, प्राची, यये ।

व्याख्या—प्राचीनबर्हिषा = इन्द्रेण, तुल्य =समः । सः=रघुः अनिलेन = पवनेन, उद्धूतैः=उत्क्षिप्तैः । केतुभिः = ध्वजैः । अहितान् = शत्रून् । तर्जयन् = भर्त्सयन् । इव = यथा । प्रथमम् = प्राक् । प्राचीम् = पूर्वाम्, य यौ = चचाल ।

समा०—अनिलेन उद्धूताः अनिलोद्धूताः, तैः अनिलोद्धूतैः । न हिताः अहिताः, तान् अहितान् ।

अभि०—इन्द्रतुल्यपराक्रमः स रघुः स्वकीयैः सेनाध्वजैः शत्रून् भर्त्संयन् इव प्रथमं पूर्वां दिशं प्रतस्थे ।

हिन्दी०—इन्द्र के समान पराक्रमी रघु अपनी सेना की ध्वजाओं से शत्रुओं को डराता हुआसा प्रथम पूर्व दिशा की ओर चला ॥२८॥

रजोभिः स्यन्दनोद्धूतैर्गजैश्च घनसन्निभैः ।
भुवस्तलमिव व्योम कुर्वन् व्योमेव भूतलम् ॥२९॥

सञ्जीविनी—किं कुर्वन् । स्यन्दनोद्धूतै रजोभिः घनसंन्निभैर्वर्णतः क्रियातः परिमाणतश्च मेघतुल्यैर्गजैश्च यथाक्रमं व्योमाकाशं भुवस्तलमिव भूतलं च व्योमेव कुर्वन् । ययाविति पूर्वेण सम्बन्धः । २९॥

अन्वयः—स्यन्दनोद्धूतैः रजोभिः, घनसंनिभैः, गजैः, च, व्योम, भुवस्तलम्, इव, भूतलम्, व्योम, इव, कुर्वन्, ययौ ।

वाच्य०—कुर्वता, तेन, यये ।

व्याख्या—स्यन्दनैः = रथैः, उद्धूतानि = उत्थापितानि, तैः । रजोभिः = धूलिभिः । घनेन=पयोदेन, सन्निभैः=तुल्यैः । गजैः=सेनाहस्तिभिश्च । व्योम = आकाशम् । भुवः = पृथिव्याः, तलम् = पृष्ठभागम् । भूतलम्=पृथिवीतलम् च, व्योमेव = आकाशमिव, कुर्वन् = सपादयन्, ययौ=जगाम ।

समा०—स्यन्दनेन उद्धूतानि स्यन्दनोद्धतानि, तैः स्यन्दनोद्धूतैः । घनेन सन्निभाः घनसन्निभाः, तैः घनसन्निभैः । भुवः तलं भूतलम्, तत् भूतलम् ।

अभि०—राजा रघुः स्वकीयैः सैन्यगजैर्भूतलं घनयुक्तं व्योमेव तथा स्यन्दनोत्थापितधूलिभिः व्योम धूलियुक्तं भूतलमिव कुर्वन् ययौ ।

हिन्दी—राजा रघु अपनी सेना के गजों द्वारा भूतल को बादलों से घिरे

आकाश के समान तथा रथों के पहियों से उठाई हुई धूल से आकाश को भूतल के समान बनाता हुआ पूर्व दिशा की ओर चल पड़ा ॥२९॥

प्रतापोऽग्रे ततः शब्दः परागस्तदनन्तरम् ।
ययौ पश्चाद्रथादीति चतुःस्कन्धेव सा चमूः ॥३०॥

सञ्जीविनी—अग्रे प्रतापस्तेजोविशेषः। 'स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' इत्यमरः। ततः शब्दः सेनाकलकलः तदनन्तरं परागो धूलिः। 'परागः पुष्परजसि धूलिस्नानीययोरपि' इति विश्वः। पश्चाद्रथादि रथाश्वादिकं चतुरंगबलम्। 'रथानीकम्' इति पाठे इतिशब्दाध्याहारेण योज्यम्। इतीत्थं चतुःस्कन्धेव चतुर्व्यूहेव। 'स्कन्धः प्रकाण्डे कायांशे विज्ञानादिषु पञ्चसु। नृपे समूहे व्यूहे च' इति हैमः। सा चमूर्ययौ।

अन्वय—अग्रे, प्रतापः ततः शब्दः, तदनन्तम्, परागः, पश्चाद्, रथादि इति, चतुःस्कन्धा, इव, सा, चमूः, ययौ।

वाच्य०—अग्रे, प्रतापेन ततः, शब्देन, तदनन्तरम् परागेण, पश्चाद्, रथादिना इति तया चम्वा चतुःस्कन्धया इव यये।

व्याख्या—अग्रे=सर्वतोऽग्रे, प्रतापः=तेजः। ततः=पश्चात्। शब्दः=सेना ध्वनिः। तस्यानन्तरं=पश्चात्। परागः=धूलिः। पश्चात्=तदग्रे। रथादि=स्यन्दनादि इति=इत्थम्। चत्वारः चतुःसंख्यकाः, स्कन्धाः=व्यूहा यस्यास्तादृशी। इव=यथा। सा चमूः=सेना। ययौ=जगाम।

समा०—तस्य अनन्तरः तदनन्तरः, तं तदनन्तरम्। रथ आदिर्यस्य तत् रथादि। चत्वारः स्कन्धाः यस्याः सा चतुःस्कन्धा।

अभि०—प्रथमं तेजस्ततः सेनाकोलाहलस्ततो रथधूलिस्ततः स्यन्दनादयः एवं व्यूहचतुष्टयवती रघोः सेना दिग्विजयार्थं पूर्वं प्राचीमुद्दिश्य प्रस्थिता।

हिन्दी—पहले तेज, तब सेना का कोलाहल, उसके पीछे रथों की धूलि, तब रथ, इस प्रकार रघु की सेना चार विभागों में विभक्त होकर चल पड़ी ॥३०॥

मरुपृष्ठान्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः ।
विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः ॥३१॥

सञ्जीविनी—स रघुः शक्तिमत्त्वात्समर्थत्वान्मरुपृष्ठानि निर्जलस्थानानि। 'समानौ मरुधन्वानौ' इत्यमरः। उदम्भांस्युद्भूतजलानि चकार। नाव्या नौभिस्तार्या नदीः। 'नाव्यं त्रिलिङ्गं नौतार्ये' इत्यमरः। 'नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यः' इत्यादिना यत्प्रत्ययः। सुप्रतराः सुखेन तार्याश्चकार। विपिनान्यरण्यानि। 'अटव्यरण्य विपिनम्' इत्यमरः। प्रकाशानि निर्वृक्षाणि चकार। शक्त्युत्कर्षात्तस्यागम्यं किमपि नासीदिति भावः ॥३१॥

अन्वयः—सः, शक्तिमत्त्वात्, मरुपृष्ठानि, उदम्भांसि, चकार, नाव्याः, नदीः, सुप्रतराः, चकार, विपिनानि, प्रकाशानि चकार।

वाच्य०—तेन, शक्तिमत्त्वात्, मरुपृष्ठानि, उदम्भांसि, नाव्याः, नद्यः, सुप्रतराः, विपिनानि, प्रकाशानि, च, चक्रिरे।

व्याख्या—सः=रघुः। शक्तिः=सामर्थ्यमस्यास्तीति, तस्य भावस्तत्त्वं, तस्मात् शक्तिमत्त्वात्=सामर्थ्यशालित्वात्। मरुपृष्ठानि=धन्वप्रदेशान्। उद्गतानि=उत्पन्नानि, अम्भांसि=जलानि, येषु तानि। चकार=अकरोत्। नावा तार्या नाव्याः नौकाद्वारा तरणयोग्याः नदीः=सरितः। सुप्रतराः=सुखेन तर्तुं शक्याः, चकार। तथा विपिनानि=वनानि। प्रकाशानि=प्रकाशयुक्तानि। चकार=अकरोत्।

समा०—शक्तिः अस्यास्तीति शक्तिमान्, शक्तिमतः भावः शक्तिमत्त्वम्। तस्मात् शक्तिमत्त्वात्। मरोः पृष्ठानि मरुपृष्ठानि, तानि मरुपृष्ठानि। उद्भूतं अम्भः येषु तानि उदम्भांसि, तानि उदम्भांसि। सुखेन प्रतर्तुं, शक्याः सुप्रतराः, ताः सुप्रतराः। प्रकाश एषामस्तीति प्रकाशानि 'अर्शआद्यजन्तम्'।

अभि०—सर्वसामर्थ्यशालिना रघुणा स्वविजययात्रासमये मरुप्रदेशाः जलयुक्ताः कृताः, तथा नावा तरणयोग्या नद्यः सुखतरणयोग्याः कृताः। वनानि च वृक्षच्छेदादिना प्रकाशयुक्तानि कृतानि।

हिन्दी—सामर्थ्य शाली रघुने विजय यात्रा के समय मरुप्रदेश जलयुक्त बना दिये, नाव से पार उतरने योग्य नदियाँ पुल आदि बँधवा कर सुखसे पार उतरने योग्य बना दी तथा घने वनों को उनके वृक्ष कटवा कर प्रकाशयुक्त बनवा दिया ॥ ३१ ॥

स सेनां महतीं कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः ॥३२॥

सञ्जीविनी—महतीं सेनां पूर्वसागरगामिनीं कर्षन्स रघुः। हरस्य जटाभ्यो भ्रष्टां गङ्गां कर्षन्। सापि पूर्वसागरगामिनी। भगीरथो नाम कश्चित्कपिल-तेजोदग्धानां सगराणां नप्ता तत्पावनाय हरकिरीटाद् गङ्गां प्रवर्तयिता राजा। यत्संबन्धाद् गङ्गा च भागीरथीति गीयते ॥३२॥

अन्वयः—पूर्वसागरगामिनीम्, महतीम्, सेनाम्, कर्षन्, सः, हरजटाभ्रष्टाम् 'पूर्वसागरगामिनीम्' गङ्गां कर्षन् भगीरथः, इव, बभौ।

वाच्य०—कर्षता तेन भगीरथेन, इव, बभे।

व्याख्या—पूर्वः=पूर्वस्यां दिशि वर्तमानः, सागरः=समुद्रः। तं गच्छति = याति तच्छीलाम् पूर्वसागरगामिनीम्। महतीम्=बृहतीम्। सेनाम्=चमूम्। कर्षन् = नयन्। सः = रघुः। हरस्य = शिवस्य, जटाभ्यः = सटाभ्यः कपर्दादित्यर्थः, भ्रष्टाम् = निर्गलिताम्। 'पूर्वसागरगामिनीम्' गङ्गाम् = भागीरथीम्। कर्षन्=नयन्। भगीरथः=सूर्यवंशीयराजविशेषः। इव=यथा। बभौ = शुशुभे।

समा०—पूर्वश्चासौ सागरश्च पूर्वसागरः, पूर्वसागरं गन्तुं शीलमस्या इति पूर्वसागरगामिनी, तां पूर्वसागरगामिनीम्। हरस्य जटा हरजटा, हरजटाभ्यः भ्रष्टा हरजटाभ्रष्टा, तां हरजटाभ्रष्टाम्।

अभि०—दिग्विजयार्थं प्राचीं प्रस्थितो रघुः स्वसेनां पूर्वसागरपर्यन्तं नयन् शिवकपर्दगलितां गङ्गां पूर्वसागरं नयन् भगीरथ इव शोभामुवाह।

हिन्दी—दिग्विजय के लिये प्रस्थान किये हुये रघुने अपनी सेना को पूर्व सागर की ओर ले जाते हुए, शिव के जटाजूट से निकली हुई गङ्गा को पूर्व सागर की ओर ले जाते हुए भगीरथ राजा के समान शोभा पाई ॥३२॥

त्याजितैः फलमुत्खातैर्भग्नैश्च बहुधा नृपैः।
तस्यासीदुल्बणो मार्गः पादपैरिव दन्तिनः ॥३३॥

सञ्जीविनी—'फलं फले धने बीजे निष्पत्तौ भोगलाभयोः' इति केशवः। फलं लाभम्। वृक्षपक्षे प्रसवं च। त्याजितैः त्यजेर्ण्यन्ताद्द्विकर्मकादप्रधाने कर्मणि

क्तः। उत्खातैः स्वपदाच्च्यावितैः अन्यत्रोत्पाटितैः। बहुधा भग्नैः रणे जितैः। अन्यत्र छिन्नैः। नृपैः। पादपैर्दन्तिनो गजस्येव। तस्य रघोर्मार्ग उल्बणः प्रकाश आसीत्। 'प्रकाशः प्रकट स्पष्टमुल्बणं विशदं स्फुटम्' इति यादवः ॥३३॥

अन्वयः— फलम्, त्याजितैः, उत्खातैः, बहुधा, भग्नैश्च, नृपैः, पादपैः, दन्तिनः, इव, तस्य, मार्गः, उल्बणः, आसीत्।

वाच्य०—मार्गेण उल्बणेन इव अभूयत।

व्याख्या—फलम् = लाभं प्रसवं च। त्याजितैः = विसर्जितैः। उत्खातैः = उत्पाटितैः, स्वस्थानाच्च्यावितैश्च। बहुधा = बहुप्रकारेण, भग्नैः = छिन्नैः पक्षे रणे जितैः च नृपैः = राजभिः। पादैः पिबन्तीति पादपास्तैः पादपैः = वृक्षैः। दन्तिनः = गजस्य, इव = यथा। तस्य = रघोः। मार्गः = पन्थाः। उल्बणः = स्पष्टः, आसीत् = अभूत्।

समा०—पादैः 'मूलैः' पिबन्तीति पादपाः, तैः पादपैः। नॄन् पान्तीति नृपाः, तैः नृपैः। दन्ताः अस्यास्तीति दन्ती, तस्य दन्तिनः। बहुभिः प्रकारैः बहुधा।

अभि०—यथा कश्चिद् बलिष्ठो गजो मार्गे वर्तमानान् वृक्षान् फलरहितान् विधाय कांश्चिच्चोन्मूलितान्कृत्वा अपरांस्तु चूर्णीकृत्य स्वपथं निष्प्रतिबन्धं करोति तथैव रघुणापि, कांश्चिद्राज्ञो लाभरहितान् कृत्वा कांश्चिच्च पदभ्रष्टान्विधाय कांश्चिच्च युद्धे हत्वा, स्वमार्गः कण्टकशून्यः कृतः।

हिन्दी—जैसे कि कोई बलवान् गजेन्द्र किन्हीं वृक्षों को फलरहित करके किन्हीं को उखाड़ कर तथा किन्हीं को चूर्णित करके अपना मार्ग साफ कर लेता है उसी प्रकार रघु ने भी अपना मार्ग, कुछ राजाओं का लाभ छीनकर, कुछ को पदच्युत करके तथा कुछ को युद्ध में जीतकर कण्टक रहित बनाया ॥३३॥

पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी ।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः ॥३४॥

सञ्जीविनी—जयी जयनशीलः "जिदृक्षिविश्रि" इत्यादिनेनिप्रत्ययः। स रघुरेवम्। पुरोभवान्पौरस्त्यान्प्राच्यान्। "दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्" इति

स्यप्रत्ययः । तांस्तान् सर्वानित्यर्थः । वीप्सायां द्विरुक्तिः । जनपदान्देशाना-क्रामंस्तालीवनैः श्यामं महोदधेरुपकण्ठमन्तिकं प्राप ।

अन्वयः—जयी, एवम्, पौरस्त्यान्, तान्, तान्, जनपदान्, आक्रामन्, तालीवनश्यामम्, महोदधेः, उपकण्ठम्, प्राप ।

वाच्य०—जयिना आक्रामता तालीवनश्यामः प्रापे ।

व्याख्या—जयी=जयनशीलः, रघुः । एवम्=इत्थम् । पुरोभवाः पौरस्त्याः, तान् पौरस्त्यान्=पूर्वदिग्भवान् । जनपदान्=देशान् । आक्रामन्=स्वायत्तीकुर्वन् । तालीनां=तालवृक्षाणां, वनानि=काननानि, तैः श्यामं=कृष्णम् । महांश्चासा-वुदधिस्तस्य महोदधेः=सागरस्य । उपकण्ठम्=समीपम् । प्राप=प्राप्नोत् ।

समा०—जेतुं शीलमस्येति जयी । तालीनां वनानि तालीवनानि, तालीवनैः श्यामः तालीवनश्यामः, तं तालीवनश्यामम् । उपगतः कंठमित्युपकण्ठः, तमुपकण्ठम् । महांश्चासौ उदधिश्च महोदधिः, तस्य महोदधेः ।

अभि०—एव रघुः सर्वत्र विजयं कुर्वन् तालीवनेन कृष्णं समुद्रस्य तटसमीपं जगाम ।

हिन्दी—इस प्रकार रघु पूर्व दिशा में सर्वत्र विजयी होते हुए तालीवन से कृष्णवर्णवाले समुद्र तट पर पहुँचे ॥३४॥

अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव ।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ॥३५॥

सञ्जीविनी—अनम्राणाम् । कर्मणि षष्ठी । समुद्धर्तुरुन्मूलयितुस्तस्माद्रघोः सकाशात् । 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इत्यपादानत्वात्पञ्चमी । सिन्धुरयान्नदीवेगा-दिव सुह्मैः सुह्मदेशीयैः सुह्मादयः शब्दा जनपदवचनाः क्षत्रियमाचक्षते । वैतसीं वेतसः सम्बन्धिनीं वृत्तिम् । प्रणतिमित्यर्थः । आश्रित्य । आत्मा संरक्षितः । अत्र कौटिल्यः 'बलीयसाभियुक्तो दुर्बलः सर्वत्रानुप्रणतो वेतसधर्ममातिष्ठेत्' इति ॥३५॥

अन्वयः—अनम्राणाम्, समुद्धर्तुः, तस्मात् सिन्धुरयात्, इव, सुह्मैः, वैत-सीम्, वृत्तिम्, आश्रित्य, आत्मा, संरक्षितः ।

वाच्य०—सुह्माः, आत्मानं संरक्षितवन्तः ।

व्याख्या--न नम्रा अनम्रास्तेषाम् अनम्राणाम्=उद्धतानाम् । समुद्धर्तुः =समुत्पाटयितुः । तस्मात्=रघोः । सिन्धोः = समुद्रस्य यो रयो वेगस्तस्मात् सिन्धुरयात् । इव = यथा । सुह्मैः = सुह्मदेशीयैः । क्षत्रियैः । वेतस इयं वैतसी,ताम् = वेतससम्बन्धिनीम् प्रणतिमित्यर्थः । वृत्तिम्=व्यवहारम् । आश्रित्य =अवलम्ब्य, आत्मा=देहः । संरक्षितः = परिपालितः ।

समा०--न नम्राः अनम्राः तेषाम् अनम्राणाम् । सिन्धोः रयः सिन्धुरयः, तस्मात् सिन्धुरयात् । अततीत्यात्मा ।

अभि०--यथा सिन्धुवेगे आगते वेतसा नम्रीभूय स्वरक्षा क्रियते, उद्धता वृक्षास्तु भग्ना भवन्ति तथैव सुह्मदेशीयैः क्षत्रियैः रघुपादयोः प्रणतिं कृत्वा स्व-रक्षा कृता ।

हिन्दी--जैसे कि समुद्र के वेग के आने पर वेतस वृक्ष झुककर अपनी रक्षा कर लेते हैं वैसे ही सुह्मदेशीय क्षत्रियों ने रघु के आगे प्रणिपात के द्वारा अपनी रक्षा की ॥ ३५ ॥

वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान् ।
निचखान जयस्तम्भान् गङ्गास्रोतोऽन्तरेषु सः ॥३६॥

सञ्जीविनी--नेता नायकः स रघुर्नौभिः साधनैरुद्यतान्सन्नद्धान्वङ्गान्राज्ञ-स्तरसा बलेन । 'तरसी बलरंहसी' इति यादवः । उत्खायोन्मूल्य गंगायाः स्रोतसां प्रवाहाणामन्तरेषु द्वीपेषु जयस्तम्भान्निचखान । स्थापितवानित्यर्थः ॥३६॥

अन्वयः--नेता, सः, नौसाधनोद्यतान्, वङ्गान्, तरसा, उत्खाय, गङ्गा-स्रोतोऽन्तरेषु, जयस्तम्भान् निचखान ।

वाच्य०--नेत्रा तेन जयस्तम्भाः निचख्निरे ।

व्याख्या--नेता=नायकः, सः=रघुः । नावः=नौका एव साधनानि उपाया-स्तैरुद्यतान्=सन्नद्धान्, वङ्गान्=वङ्गदेशीयान् राज्ञः । तरसा=बलेन । उत्खाय =उत्पाट्य उन्मूलनं कृत्वेत्यर्थः । गङ्गायाः=भागीरथ्याः स्रोतांसि = प्रवाहाः, तेषामन्तरेषु मध्यद्वीपेषु । जयस्तम्भान्=विजययूपान् । निचखान=निखातवान् ।

समा०--नाव एव साधनानि नौसाधनानि, नौसाधनैः उद्यताः नौसाधनो-द्यताः, तान् नौसाधनोद्यतान् । वङ्गानां राजानः वङ्गाः, तान् वङ्गान् । गङ्गायाः

स्रोतांसि गङ्गास्रोतसामन्तराणि गङ्गास्रोतोन्तराणि, तेषु गङ्गास्रोतोन्तरेषु। जयस्य स्तम्भाः जयस्तम्भाः, तान् जयस्तम्भान्।

अभि०—नौकारूपयुद्धसाधनसन्नद्धान्, बङ्गान् बलेन विजित्य रघुः गङ्गाप्रवाहमध्यस्थेषु द्वीपेषु स्वविजयस्मारकान् स्तम्भान् निखातवान्।

हिन्दी—नौका रूपी युद्धसाधन से सम्पन्न बङ्गीय राजाओं को रघु ने बलपूर्वक जीतकर गङ्गाप्रवाहमध्यस्थ द्वीपों में अपनी विजय के स्मारक स्तम्भ गड़वाये ॥३६॥

आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।
फलैः संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः ॥३७॥

सञ्जीविनी—आपादपद्ममङ्घ्रिपद्मपर्यन्तं प्रणताः अत एवोत्खाताः पूर्वमुद्धृता अपि प्रतिरोपिताः पश्चात्स्थापितास्ते वंगाः। कलमा इव शालिविशेषा इव। 'शालयः कलमाद्याश्च षष्टिकाद्याश्च पुंस्यमी' इत्यमरः। तेऽप्यापादपद्मं पादपद्ममूलपर्यन्तं प्रणताः। 'पादो बुध्ने तुरीयांशशैलप्रत्यन्तपर्वताः' इति विश्वः। उत्खातप्रतिरोपिताश्च। रघुं फलैः धनैः। अन्यत्र सस्यैः। संवर्धयामासुः। 'फलं फले धने बीजे निष्पत्तौ भोगलाभयोः। सस्ये' इति केशवः ॥३७।

अन्वयः—आपादपद्मप्रणताः, 'अत एव' उत्खातप्रतिरोपिताः, ते, कलमाः, इव रघुम्, फलैः संवर्धयामासुः।

वाच्य०—आपादपद्मप्रणतैः, उत्खातप्रतिरोपितैः, कलमैः, इव तैः, रघुः फलैः संवर्धयामासे।

व्याख्या—पाद एव पद्मं पादपद्मं, तन्मर्यादीकृत्य प्रणताः आपादपद्मप्रणताः=चरणकमलपर्यन्तनम्राः। पूर्वमुत्खाताः पश्चात्प्रतिरोपिता इति ते उत्खातप्रतिरोपिताः=उन्मूलितस्थापिताः। कलमाः=शालिविशेषाः। इव = यथा। ते=वङ्गीयाः। रघुम्, फलैः=धनैः सस्यैश्च। संवर्धयामासुः=समवर्धयन्।

समा०—पादः पद्ममिव पादपद्मम्, पादपद्मं मर्यादीकृत्य आपादपद्मम्, आपादपद्मं प्रणताः आपादपद्मप्रणताः। उत्खाताश्च पश्चात् प्रतिरोपिताश्च उत्खातप्रतिरोपिताः।

अभि०— यथा कलमाख्याः शालिविशेषाः पूर्वमुत्पाट्य पश्चात्प्रतिरोपिताः सस्यसमृद्धिं वर्धयन्ति तथैव पूर्वं स्वस्थानाच्च्याविताः पश्चात्प्रतिष्ठापिता वङ्गीया रघुं धनादिभिः संवर्धयामासुः ।

हिन्दी—जैसे कि कलम नामक शालिविशेष पहले उखाड़कर पुनः प्रतिरोपित किये हुए अधिक फलते हैं उसी प्रकार पदभ्रष्ट किये जाकर पुनः प्रतिष्ठापित किये हुए वङ्गीय राजाओं ने रघु को धन से पूर्ण किया ।। ३७ ।।

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः ।
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ ।। ३८ ।।

सञ्जीविनी—स रघुर्बद्धा द्विरदा एव सेतवो यैस्तैः सैन्यैः कपिशां नाम नदीं तीर्त्वा । 'करभाम्' इति केचित्पठन्ति । उत्कलै राजभिरादर्शितपथः संदर्शितमार्गः सन् । कलिंगाभिमुखो ययौ ।। ३८ ।।

अन्वयः—सः, बद्धद्विरदसेतुभिः, सैन्यैः, कपिशाम् , तीर्त्वा, उत्कलादर्शितपथः सन्, कलिङ्गाभिमुखः, ययौ ।

वाच्य०—तेन, उत्कलादर्शितपथेन, कलिङ्गाभिमुखेन, ययौ ।

व्याख्या—सः = रघुः । बद्धाः=पंक्तिरूपेणावस्थिताः, द्विरदाः = गजा एव सेतवः = आलयः यैस्तादृशैः । सैन्यैः = सेनापुरुषैः । कपिशाम्=तन्नाम्नीम् नदीम् । तीर्त्वा = समुत्तीर्य । उत्कलैः = उत्कलदेशीयैरासमन्तात् दर्शितः = निवेदितः, पन्थाः = मार्गो यस्य तादृशः सन् । कलिङ्गस्याभिमुखः कलिंगाभिमुखः = कलिङ्गदेशं लक्ष्यीकृत्य । ययौ = जगाम ।

समा०—द्वौ रदौ येषां ते द्विरदाः; द्विरदा एव सेतवः द्विरदसेतवः, बद्धाः द्विरदसेतवः यैस्तानि बद्धद्विरदसेतूनि, तैः बद्धद्विरदसेतुभिः । उत्कलानां राजानः उत्कलाः, उत्कलैः आदर्शितः पन्थाः यस्य सः उत्कलादर्शितपथः । कलिङ्गानाम् अभि (समक्षं) मुखं यस्य सः कलिङ्गाभिमुखः ।

अभि०—स रघुः स्वसेनागजैरेव सेतुं निर्माय कपिशां तीर्त्वा उत्कलदेशीयै राजभिः प्रदर्शितमार्गः सन् कलिङ्गदेशं लक्ष्यीकृत्य जगाम ।

हिन्दी—राजा रघु ने अपनी सेना के गजों द्वारा पुल का निर्माण करके कपिशा नदी को पार किया । उत्कल देशवासियों से आगे का मार्ग ज्ञात करके फिर कलिंग की ओर प्रस्थान किया ।। ३८ ।।

स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्।
अंकुशं द्विरदस्येव यन्ता गम्भीरवेदिनः ॥ ३९ ॥

सञ्जीविनी—स रघुर्महेन्द्रस्य कुलपर्वतविशेषस्य 'महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥' इति विष्णुपुराणात्। मूर्ध्नि तीक्ष्णं दुःसहं प्रतापम्। यन्ता सारथिर्गम्भीरवेदिनो द्विरदस्य गजविशेषस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं निशितमंकुशमिव। न्यवेशयन्निक्षिप्तवान्। 'त्वग्भेदाच्छोणितस्रावान्मांसस्य क्रथनादपि। आत्मानं यो न जानाति सा स्याद्गम्भीरवेदिता ॥' इति राजपुत्रीये। 'चिरकालेन यो वेत्ति शिक्षां परिचितामपि। गम्भीरवेदी विज्ञेयः स गजो गजवेदिभिः ॥' इति मृगचर्मीये ॥ ३९ ॥

अन्वयः—स, महेन्द्रस्य, मूर्ध्नि, तीक्ष्णम्, प्रतापम्, यन्ता, गम्भीरवेदिनः, द्विरदस्य, मूर्ध्नि, तीक्ष्णम्, अङ्कुशम्, इव, न्यवेशयत्।

वाच्य०—तेन, तीक्ष्णः, प्रतापः, यन्त्रा, तीक्ष्णः, अङ्कुशः, इव, न्यवेश्यत।

व्याख्या—सः=रघुः। महेन्द्रस्य = कुलपर्वतविशेषस्य। मूर्ध्नि = मस्तके शिखरे च। तीक्ष्णम् = तीव्रम्। प्रतापम् = तेजः। यन्ता = हस्तिपकः। गम्भीरं वेत्ति, तादृशस्य गम्भीरवेदिनः = गजविशेषस्य। द्विरदस्य=गजस्य। मूर्ध्नि = शिरसि, तीक्ष्णं = तीव्रं। अङ्कुशम् = सृणिमिव। न्यवेशयत् = निवेशयामास।

समा०—गम्भीरं वेत्तीति गम्भीरवेदी, तस्य गम्भीरवेदिनः। द्वौ रदौ यस्य सः द्विरदः, तस्य द्विरदस्य।

अभि०—यथा हस्तिपको गम्भीरवेदिनो द्विपस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णसृणिं निवेशयति तथैव रघुणापि महेन्द्राचलस्य शिखरे स्वतेजो न्यवेशि।

हिन्दी—जैसे हाथीवान् गम्भीरवेदी हाथी के मस्तक में अङ्कुश घुसेड़ देता है इसी प्रकार राजा रघु ने भी अपना तेज महेन्द्राचाल पर्वत के शिखर पर प्रतिष्ठापित किया ॥ ३९ ॥

प्रतिजग्राह कालिंगस्तमस्त्रैर्गजसाधनः।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः ॥ ४० ॥

सञ्जीविनी-गजसाधनः पुष्कलगजसामग्रीवान् कालिङ्गः कलिङ्गानां राजा। 'द्व्यञ्मगधकलिङ्ग' इत्यनेनाण्प्रत्ययः। अस्त्रैरायुधैस्तं रघुम्। पक्षाणां छेदे भेदे

उद्यतमुद्युक्तं शक्रं शिलावर्षी पर्वत इव । प्रतिजग्राह प्रत्यभियुक्तवान् । अभिजगामेत्यर्थः ॥४०॥

अन्वयः—गजसाधनः, कालिङ्गः, अस्त्रैः, तम्, पक्षच्छेदोद्यतम्, शक्रम् शिलावर्षी, पर्वतः, इव, प्रतिजग्राह ।

वाच्य०—गजसाधनेन, कालिंगेन, सः पक्षच्छेदोद्यतः, शक्रः, शिलावर्षिणा, पर्वतेन, इव, प्रतिजगृहे ।

व्याख्या—गजाः = हस्तिन एव साधनानि=युद्धोपकरणानि यस्य सः, गजसाधनः । कालिङ्गः=कालिङ्गस्थो राजा । अस्त्रैः=आयुधैः । तम्=रघुम् । पक्षाणां=मरुतां, छेदे = कर्तने उद्यतः=उद्युक्तः इति पक्षच्छेदोद्यतः, तम् । शक्रम्=इन्द्रम् । शिलाः=दृषदः वर्षति तच्छीलः प्रस्तरवर्षणकारी । पर्वतः = गिरिः । इव । प्रतिजग्राह = प्रत्यभियुक्तवान् ।

समा०—गजा एव साधनं यस्य सः गजसाधनः । कलिङ्गानां राजा कालिङ्गः । पक्षाणां छेदः पक्षच्छेदः, पक्षच्छेदे उद्यतः पक्षच्छेदोद्यतः, तं पक्षच्छेदोद्यतम् । शिलां वर्षतीति शिलावर्षी ।

अभि०—यथा कश्चित् पर्वतः स्वपक्षच्छेदायोद्यतं शक्रं प्रस्तरैः प्रतिरुरोध तथैव गजसाधनवान् कलिङ्गदेशीयो राजा आयुधैः रघुं प्रत्यभियुक्तवान् ।

हिन्दी—जैसे कोई पर्वत अपने पक्ष काटने को सामने आये इन्द्र के ऊपर पत्थरों की वर्षा करता हो उसी प्रकार कलिंग देश के राजा ने रघु के ऊपर शस्त्रों की वर्षा की ॥४०॥

द्विषां विषह्य काकुत्स्थस्तत्र नाराचदुर्दिनम् ।
सन्मङ्गलस्नात इव प्रतिपेदे जयश्रियम् ॥ ४१ ॥

सञ्जीविनी—काकुत्स्थो रघुस्तत्र महेन्द्राद्रौ द्विषां नाराचदुर्दिनं नाराचानां बाणविशेषाणां दुर्दिनम् । लक्षणया वर्षमुच्यते । विषह्य सहित्वा । सद्यथाशास्त्रम् मङ्गलस्नात इव विजयमङ्गलार्थमभिषिक्तः । जयश्रियम् प्रतिपेदे प्राप । 'यत्तु सर्वौषधिस्नानं तन्माङ्गल्यमुदीरितम्' इति यादवः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—काकुत्स्थः, तत्र, द्विषाम्, नाराचदुर्दिनम्, विषह्य, सन्मङ्गलस्नातः, इव, जयश्रियम्, प्रतिपेदे ।

वाच्य०—काकुत्स्थेन सन्मङ्गलस्नातेन इव जयश्रीः प्रतिपेदे ।

व्याख्या—ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थः=रघुः । तत्र=महेन्द्राद्रौ । द्विषाम् = शत्रूणाम् । नाराचानां = बाणानाम्, दुर्दिनम् नाराचदुर्दिनम् = वर्षण-दिवसम् । विषह्य=क्षान्त्वा । सच्च तन्मङ्गलं, तदर्थं स्नातः=सन्मङ्गलाभिषिक्तः इव । जयस्य श्रीस्ताम् जयश्रियम्=विजयलक्ष्मीम् प्रतिपेदे= प्राप ।

समा०—नाराचानां दुर्दिनं नाराचदुर्दिनम्, तत् नाराचदुर्दिनम् । सच्च तत् मङ्गलञ्च सन्मङ्गलम्, सन्मङ्गलाय स्नातः सन्मङ्गलस्नातः । जयस्य श्रीः जयश्रीः, तां जयश्रियम् ।

अभि०—रघुः महेन्द्राद्रौ शरवर्षणं सहित्वा माङ्गलिकसर्वौषध्यादिभिः कृता-भिषेक इव विजयं प्राप ।

हिन्दी—राजा रघुने महेन्द्राचल पर्वत पर कलिंग देशीय राजाओं के बाणों की वर्षा को सहन करते हुए, मानो माङ्गलिक सर्वौषधि आदि से स्नान कर जयलक्ष्मी प्राप्त की ॥४१॥

ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताऽऽपानभूमयः ।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ॥ ४२ ॥

सञ्जीविनी—तत्र महेन्द्राद्रौ युध्यन्त इति योधाः । पचाद्यच् । रचिताः कल्पिता आपानभूमयः पानयोग्यप्रदेशा यैस्ते तथोक्ताः संतो नारिकेलासवं नारि-केलमद्यं ताम्बूलीनां नागवल्लीनां दलैः सम्पुटकाकारैः पपुः । तत्र विजह्रुरि-त्यर्थः । शात्रवं यशश्च पपुः । जह्रुरित्यर्थः ॥४२॥

अन्वयः—तत्र, योधाः, रचितापानभूमयः, नारिकेलासवम्, ताम्बूलीनां, दलैः, पपुः, शात्रवम्, यशः, च, पपुः ।

वाच्य०—योधैः रचितापानभूमिभिः, नारिकेलासवः पपे शात्रवं यशश्च पपे ।

व्याख्या—तत्र=महेन्द्राद्रौ । योधाः=भटाः । रचिता=संपादिता आपानभूमिः सुरापानभूमिर्यैस्तादृशाः रचितापानभूमयः । नारिकेलस्यासवः=मद्यं नारिकेलासवः, तम् । ताम्बूलीनाम्=नागवल्लीनाम् । दलैः = पत्रैः । पपुः = अपिबन् । शात्रवम्= शत्रोरिदं शात्रवम् = शत्रुसंबन्धि, यशः = कीर्तिम् 'यशः कीर्तिः' इत्यमरः । पपुः ।

समा०—आपानस्य भूमिः आपानभूमिः, रचिता आपानभूमिः यैस्ते रचिता-पानभूमयः । नारिकेलानामासवः नारिकेलासवः, तं नारिकेलासवम् ।

अभि०—तस्मिन्महेन्द्रपर्वते रघुभटा आपानभूमिं विरचय्य ताम्बूलीपत्रैः नारिकेलमद्यमपिबन् शत्रुयशश्च तैः पराभूतम् ।

हिन्दी०—उस महेन्द्राचल पर्वत पर रघु के सैनिकों ने मद्यपान योग्य स्थान बनाकर नारियल का आसव ताम्बूल के पत्तों के दोनों में पिया तथा शत्रुओं का यश भी पी लिया अर्थात् हर लिया ॥ ४२ ॥

गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः ।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥ ४३ ॥

सञ्जीविनी—धर्मविजयी धर्मार्थं विजयशीलः स नृपो रघुः । गृहीतश्चासौ प्रतिमुक्तश्च गृहीतप्रतिमुक्तः । "पूर्वकालैक" इत्यादिना समासः । तस्य महेन्द्र-नाथस्य कालिंगस्य श्रियं जहार । धर्मार्थं नतु स्वोपभोगार्थमिति भावः । मेदिनीं तु न जहार । शरणागतवात्सल्यादिति भावः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—धर्मविजयी, सः, नृपः, गृहीतप्रतिमुक्तस्य, महेन्द्रनाथस्य, श्रियम्, जहार, मेदिनीम्, तु, न, जहार ।

वाच्य०—धर्मविजयिना, तेन नृपेण श्रीः जह्रे मेदिनी तु न जह्रे ।

व्याख्या—धर्मार्थं विजयी धर्मविजयी = पुण्यजयनशीलः, सः, नृपः = राजा रघुः । पूर्वं गृहीतः प्रतिबद्धः पश्चात् प्रतिमुक्तः परित्यक्तः तस्य गृहीतप्रतिमुक्तस्य, महेन्द्रनाथस्य = महेन्द्राधिपस्य । श्रियम् = राज्यलक्ष्मीम् । जहार = अहरत् । मेदिनीम्— पृथिवीम् 'गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्मावनिर्मेदिनी मही' इत्यमरः । तु, न = नैव जहार ।

समा०— गृहीतश्चासौ प्रतिमुक्तश्च गृहीतप्रतिमुक्तः,तस्य गृहीतप्रतिमुक्त-स्य । विजयोऽस्यास्तीति विजयी, धर्मार्थं विजयी धर्मविजयी ।

अभि०—धर्मविजयशीलेन रघुणा पूर्वं विजित्य प्रतिबद्धस्य पश्चात् कृपया परित्यक्तस्य महेन्द्राधिपस्य राज्यलक्ष्मीरेवापहृता न तु पृथिवी ।

हिन्दी–धर्मविजयशील राजा रघुने प्रथम जीतकर पकड़ लिये गये पश्चात् छोड़ दिये गये महेन्द्राधिप की राज्यलक्ष्मी का ही केवल हरण किया, पृथिवी का नहीं ॥ ४३ ॥

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना ।
अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ ॥४४॥

सञ्जीविनी—ततः प्राचीविजयानन्तरं फलवत्पूगमालिना फलितक्रमुकश्रेणी-मता। व्रीह्यादित्वादिनिप्रत्ययः, वेलायाः समुद्रकूलस्य तटेनोपान्तेनैवागस्त्येनाचरि-तामाशां दक्षिणां दिशमनाशास्यजयः अयत्नसिद्धत्वादप्रार्थनीयजयः सन्। ययौ। "अगस्त्यो दक्षिणामाशामाश्रित्य नभसि स्थितः। वरुणस्यात्मजो योगी विन्ध्य-वातापिमर्दनः॥" इति ब्रह्मपुराणे॥ ४४॥

अन्वयः—ततः, फलवत्पूगमालिना, वेलातटेन, एव, अगस्त्याचरिताम्, आशाम्, अनाशास्यजयः, 'सन्' ययौ।

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्। फलवतां = फलितानां, पूगानां = क्रमुकाणां, माला = श्रेणी विद्यते यस्य तादृशेन फलवत्पूगमालिना। वेलायास्तटेन=समुद्रकूल-भागेन। एव। अगस्त्येन=कुम्भसम्भवेन, आचरिता=अधिष्ठिता इति अगस्त्याच-रिता, ताम् अगस्त्याचरिताम्। आशाम् = दिशम्, दक्षिणां दिशमित्यर्थः। न आशास्यः = प्रार्थनीयः, जयः यस्य सः अनाशास्यजयः, सन्। ययौ=जगाम।

समा०—फलान्येषां सन्तीति फलवन्तः, फलवन्तश्च ते पूगाश्च फलवत्पूगाः, फलवत्पूगानां मालाऽस्यास्तीति फलवत्पूगमालि, तेन फलवत्पूगमालिना। वेला-यास्तटं वेलातटम्, तेन वेलातटेन। अगस्त्येन आसमन्तात् चरिता अगस्त्याचरिता, ताम् अगस्त्याचरिताम्। अनाशास्यः जयः यस्य सः अनाशास्यजयः।

अभि०—पूर्वां दिशं विजित्य रघुः फलयुक्तक्रमुकश्रेणीसुशोभिनेन समुद्रतट-मार्गेणैव दक्षिणां दिशं प्रतस्थे।

हिन्दी—रघु पूर्व दिशा की विजय के पश्चात् फलित सुपारी के वृक्षों के समूह से सुशोभित समुद्रतट के द्वारा ही दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े॥४४॥

स सैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना।
कावेरीं सरितां पत्युः शङ्कनीयामिवाकरोत्॥४५॥

सञ्जीविनी—स रघुः। गजानां दानेन मदेन सुगन्धिना सुरभिगन्धिना। 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः' इत्येनेकारादेशः समासान्तः। यद्यपि गन्धस्येत्वे तदेकान्तग्रहणं कर्तव्यमिति नैसर्गिकगन्धविवक्षायामेवेकारादेशः, तथापि निरंकुशाः कवयः। तथा च माघकाव्ये—'ववुरयुक्छदगुच्छसगन्धयः सततगास्ततगानगिरोऽ-लिभिः' इति। नैषधे च 'अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते

तुषारा' । इति 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयं' इति निषेधादिनिप्रत्ययपक्षोऽपि जघन्य एव । सेनायां समवेताः सैन्याः । 'सेनायां समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च ते' इत्यमरः । 'सेनायां वा' इति ण्यप्रत्ययः । तेषां परिभोगेण कावेरीं नाम सरितं सरितां पत्युः समुद्रस्य शङ्कनीयां न विश्वसनीयामिवाकरोत् । पत्न्यां संभोगलिङ्गदर्शनाद्भर्तुरविश्वासो भवतीति भावः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—सः, गजदानसुगन्धिना, सैन्यपरिभोगेण, कावेरीम्, सरिताम्, पत्युः, शङ्कनीयाम्, इव, अकरोत् ।

वाच्य०—तेन कावेरी शङ्कनीया इव अक्रियत ।

व्याख्या—सः =रघुः । गजानां=हस्तिनां यद्दानं मदः इति गजदानं, तेन सुगन्धिः=सुरभितः इति गजदानसुगन्धिः, तेन । सेनायां समवेताः सैन्याः=सैनिकाः तेषां परिभोगः=उपभोगः इति सैन्यपरिभोगः, तेन । कावेरीम्=तदाख्यां नदीम् । सरिताम्=नदीनाम्, पत्युः = स्वामिनः, समुद्रस्येत्यर्थः । शङ्कनीयाम् = अविश्वसनीयाम् । इव = यथा । अकरोत् = चकार ।

समा०—सुष्ठु गन्धोऽस्यास्तीति सुगन्धिः, गजानां दानं गजदानम्, गजदानेन सुगन्धिः गजदानसुगन्धिः, तेन गजदानसुगन्धिना । सेनायां समवेताः सैन्याः, सैन्यानां परिभोगः सैन्यपरिभोगः, तेन सैन्यपरिभोगेण । शङ्कितुं योग्या शङ्कनीया, तां शङ्कनीयाम् ।

अभि०—गजानां मदेन शोभनगन्धवती कावेरी तथा जाता यथा समुद्रस्य परपुरुषोपभुक्तेवाविश्वसनीयाऽभूत् ।

हिन्दी—रघु के सेनागजों के मद की सुगन्धि तथा सैनिकों के स्नान आदि से कलुषित कावेरी समुद्र के लिए परपुरुषोपभुक्त स्त्री के समान अविश्वसनीय-सी हो गई ॥ ४५ ॥

बलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः ।
मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः ॥ ४६ ॥

सञ्जीवनी—विजिगीषोर्विजेतुमिच्छोर्गताध्वनस्तस्य रघोर्बलैः सैन्यैः । 'बलं शक्तिर्बलं सैन्यम्' इति यादवः । मारीचेषु मरीचवनेषूद्भ्रान्ताः परिभ्रान्ता हारीताः पक्षिविशेषा यासु ताः । 'तेषां विशेषा हारीतो मद्गुः कारण्डवः प्लवः' इत्यमरः । मलयाद्रेरुपत्यका आसन्नभूमयः । 'उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका' इत्यमरः ।

'उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः' इत्यनेन त्यकन्प्रत्ययः। अध्युषिताः। उपत्यका-सूषितमित्यर्थः। उपान्वध्याङ्‌ वसः' इति कर्मत्वम्॥ ४६॥

अन्वयः—विजिगीषोः, गताध्वनः, तस्य, बलैः, मारीचोद्भ्रान्तहारीताः, मलयाद्रेः, उपत्यकाः, अध्युषिताः।

वाच्य०—बलानि अध्युषितवन्ति।

व्याख्या—विजेतुमिच्छति तस्य विजिगीषोः = विजेतुमिच्छोः। गतः=यातः, अध्वा=मार्गः येन गताध्वा, तस्य गताध्वनः=रघोः। कियद्दूरं गतस्येत्यर्थः। बलैः =सेनापुरुषैः। मरीचानां वनानि, तेषूद्भ्रान्ता=उड्डीयमानाः हारीताः=पक्षि-विशेषा यासु ताः मारीचोद्भ्रान्तहारीताः। मलयाद्रेः = मलयपर्वतस्य। उपत्यकाः =अद्रेरासन्नभूमयः, 'उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका' इत्यमरः। अध्युषिताः = अधिष्ठिताः।

समा०—विजेतुमिच्छुः विजिगीषुः तस्य विजिगीषोः। गतः अध्वा यस्य सः गताध्वा तस्य गताध्वनः। मरीचानां इमानि मारीचानि, मारीचेषु उत्प्लुत्य भ्रान्ताः हारीताः यासु ताः मारीचोद्भ्रान्तहारीताः, ताः मारीचो०।

अभि०—विजयैषिणो रघोः कियद्दूरं गतस्य सेना हारीताख्यपक्षिबाहुल्य-वतीषु मलयाद्रेरासन्नभूमिषु वासमकल्पयत्।

हिन्दी०—कुछ दूर जाने पर रघु की सेना ने मलय पर्वत के पास की भूमियों में डेरा डाला, जहाँ मरिचों के वनों में हारीत (हरियल) नामक पक्षी उड़ रहे थे॥

ससञ्जुरश्वक्षुण्णानामेलानामुत्पतिष्णवः।
तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु फलरेणवः॥४७॥

सञ्जीविनी-अश्वैः क्षुण्णानामेलालतानामुत्पतिष्णव उत्पतनशीलाः। 'अलं-कृञ् निराकृञ्' इत्यादिनेष्णुच्प्रत्ययः। फलरेणवः फलरजांसि तुल्यगन्धिषु समान-गन्धिषु। सर्वधनीतिवदिन्नन्तो बहुव्रीहिः। मत्तेभानां कटेषु ससञ्जुः सक्ताः। 'गजगण्डे कटौकटौ' इति कोषः॥ ४७॥

अन्वयः—अश्वक्षुण्णानाम्, एलानाम्, उत्पतिष्णवः फलरेणवः तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु, ससञ्जुः।

वाच्य०—उत्पतिष्णुभिः, फलरेणुभिः, तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु ससञ्जे।

व्याख्या—अश्वैः=घोटकैः, क्षुण्णानाम् =चूर्णितानाम् । एलानाम् = एलालतानाम् । उत्पतितुं शीलं येषां तादृशाः उत्पतिष्णवः=ऊर्ध्वगमनशीलाः । फलानां=प्रसवानां, रेणवः=धूलिकणाः इति फलरेणवः । तुल्यः = समः, गन्धः=सुरभिर्येषु तादृशेषु, तुल्यगन्धिषु । मत्ताः=प्रमत्ताः, ये इभाः=गजाः, तेषां कटाः = गण्डस्थलानि इति मत्तेभकटाः, तेषु । ससञ्जुः = संसक्ताः ।

समा०—अश्वैः क्षुण्णाः अश्वक्षुण्णाः, तासाम् अश्वक्षुण्णानाम् । तुल्यः गन्धः येषामस्तीति तुल्यगन्धिनः, तेषु तुल्यगन्धिषु । मत्ताश्च ते इभाश्च मत्तेभाः, मत्तेभानां कटाः मत्तेभकटाः तेषु मत्तेभकटेषु । फलानां रेणवः फलरेणवः ।

अभि०— तुरङ्गमखुरैश्चूर्णितानामेलानां रजःकणाः स्वसमानगन्धयुक्तेषु सेनागजगण्डस्थलेषु पवनवशात्संसक्ताः ।

हिन्दी—घोड़ों के खुरों से चूर्णित एलाफलों (इलायचों) के रजःकण अपनी गन्ध के समान गन्धवाले सेना के हाथियों के गण्डस्थलों में वायु के वश से संसक्त हो गये ।। ४७ ।।

भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम् ।
नास्रसत्करिणां ग्रैवं त्रिपदीछेदिनामपि ।।४८।।

सञ्जीविनी – चन्दनानां चन्दनद्रुमाणां भोगिवेष्टनमार्गेषु सर्पवेष्टनात्निम्नेषु समर्पितं सञ्जितं त्रिपदीछेदिनां पादशृंखलच्छेदकानामपि । 'त्रिपदी पादबन्धनम्' इति यादवः । करिणाम् । ग्रीवासु भवं ग्रैवं कण्ठबन्धनम् । 'ग्रीवाभ्योऽण्च' इत्यण्प्रत्ययः । नास्रसन्न स्रस्तमभूत् । 'द्युद्भ्यो लुङि' इति परस्मैपदे पुषादित्वादङ् । 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' इति नकारलोपः ।।४८।।

अन्वयः—चन्दनानाम्, भोगिवेष्टनमार्गेषु समर्पितम्, त्रिपदीछेदिनाम्, अपि करिणाम्, ग्रैवम्, न, अस्रसत् ।

वाच्य०—समर्पितेन, करिणाम्, ग्रैवेण, न, अस्रंसि ।

व्याख्या—चन्दनानाम्=मलयजानाम्, भोगः अस्ति येषां ते भोगिनः 'अहेः शरीरं भोगः स्यात्' इत्यमरः । तेषां यानि वेष्टनानि, तेषां मार्गाः=स्थानानि, तेषु भोगिवेष्टनमार्गेषु । समर्पितम्=दत्तम् । त्रिपदीं छेत्तुं शीलं येषां ते त्रिपदीछेदिनः, तेषां त्रिपदीछेदिनाम्=पादबन्धनच्छेदकानामपि । करिणाम्=गजानाम् । ग्रीवासु भवं ग्रैवम्=कण्ठबन्धनम् । न=नैव । अस्रसत् = शिथिलं बभूव ।

समा०—भोग. एषामस्तीति भोगिनः, भोगिनां वेष्टनानि भोगिवेष्टनानि, भोगिवेष्टनानां मार्गाः भोगिवेष्टनमार्गाः, तेषु भोगिवेष्टनमार्गेषु। त्रिपदीं छेत्तुं शीलं येषां ते त्रिपदीछेदिनः, तेषां त्रिपदीछेदिनाम्। कर एषामस्तीति करिणः, तेषां करिणाम्।

अभि०—मलयजवृक्षेषु सर्पवेष्टनेन संजातरेखासु आधोरणैर्निबद्धानां पाद-बन्धनच्छेदकारिणामपि करिणां कण्ठबन्धनानि शिथिलानि न बभूवुः।

हिन्दी--चन्दन के वृक्षों में साँपों के लिपटे रहने के कारण जो रेखायें पड़ी हुई थीं उनमें बाँधे हुए पादबन्धन को तोड़ देने वाले हाथियों तक के कण्ठबन्धन ढीले न हुये ॥ ४८ ॥

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ॥ ४९ ॥

सञ्जीविनी—दक्षिणस्यां दिशि रवेरपि तेजो मन्दायते मन्दं भवति। लोहितादित्वात्क्यष्प्रत्ययः। 'वा क्यषः' इत्यात्मनेपदम्। दक्षिणायने तेजोमान्द्यादिति भावः। तस्यामेव पाण्ड्याः। पाण्डूनां जनपदानां राजानः पाण्ड्याः। 'पाण्डोर्ड्यण्वक्तव्यः' रघोः प्रतापं न विषेहिरे न सोढवन्तः। सूर्यविजयिनोऽपि विजितवानिति नायकस्य महानुत्कर्षो गम्यते ॥ ४९ ॥

अन्वयः— दक्षिणस्याम्, दिशि, रवेः, अपि, तेजः, मन्दायते, तस्याम् एव, पाण्ड्याः, रघोः प्रतापम्, न, विषेहिरे।

वाच्य०— रवेः, अपि, तेजसा, मन्दायते, तस्याम्, एव, पाण्ड्यैः, रघोः प्रतापः, न, विषेहे।

व्याख्या— दक्षिणस्याम्=अवाच्याम्। दिशि = काष्ठायाम्। 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः। रवेः = सूर्यस्य अपि। तेजः=प्रतापः। मन्दायते = मन्दं भवति। तस्यामेव = दक्षिणस्याम् दिशि। पाण्डूनां जनपदानां राजानः पाण्ड्याः = पाण्डुदेशाधीशाः। रघोः = दिलीपपुत्रस्य। प्रतापं=तेजः। न = नैव। विषेहिरे=सोढवन्तः।

समा०—पाण्डूनां (देशविशेषाणां) राजानः पाण्ड्याः।

अभि०—यस्यामुग्रप्रतापस्य रवेरपि तेजः मन्दं भवति तस्यामेव दक्षिणस्यां दिशि पाण्ड्यैः रघोः प्रतापः न सोढः।

हिन्दी—दक्षिण दिशा में सूर्य का तेज भी मन्द पड़ जाता है, किन्तु उसी दिशा में रघु के तेज को पाण्डु देश के राजा न सह सके ॥ ४९ ॥

ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः ।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम् ॥ ५० ॥

सञ्जीविनी—ते पाण्ड्यास्ताम्रपर्ण्या नद्या समेतस्य संगतस्य महोदधेः संबन्धि संचितं मुक्तासारं मौक्तिकवरम् । 'सारो बले स्थिरांशे च न्याय्ये क्लीबं वरे त्रिषु' इत्यमरः । स्वं स्वकीयं यश इव । तस्मै रघवे निपत्य प्रणिपत्य ददुः । यशसः शुभ्रत्वादौपम्यम् । ताम्रपर्णीसंगमे मौक्तिकोत्पत्तिरिति प्रसिद्धम् ॥

अन्वयः—ते, ताम्रपर्णीसमेतस्य, महोदधेः, सञ्चितम्, मुक्तासारम्, स्वम्, सञ्चितम्, यशः, इव, तस्मै, प्रणिपत्य, ददुः ।

वाच्य०—तैः प्रणिपत्य, ददे ।

व्याख्या—ते = पाण्ड्याः । ताम्रपर्ण्या = नद्या, समेतस्य=संगतस्य । महोदधेः =महासागरस्य सम्बन्धि । सञ्चितम्=सङ्कलितम् । मुक्तासारम्=मौक्तिकवरम् । स्वम् = स्वकीयम् । सञ्चितम् । यशः = कीर्तिम् । इव । तस्मै = रघवे प्रणिपत्य= नमस्कृत्य । ददुः = समर्पितवन्तः ।

समा०—ताम्रपर्ण्या समेतः ताम्रपर्णीसमेतः, तस्य ताम्रपर्णीसमेतस्य । महांश्चासौ उदधिश्च महोदधिः तस्य महोदधेः । मुक्तानां सारः मुक्तासारः, तं मुक्तासारम् ।

अभि०—पराजिताः पाण्ड्यास्ताम्रपर्णीनामकनद्या संगतस्य सागरस्य सम्बन्धि सञ्चितं मुक्तासारं स्वकीयं सञ्चितं यश इव रघवे प्रणिपत्य समर्पयामासुः ।

हिन्दी—पराजित पाण्ड्यदेश के राजाओं ने ताम्रपर्णी नदी से मिले हुए दक्षिण समुद्र के उत्तम मुक्तासार, रघु को, सञ्चित किये अपने यश के समान भेंट में समर्पित किये ॥ ५० ॥

स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ ॥ ५१ ॥
असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता ।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत् ॥ ५२ ॥

सञ्जीविनी—असह्यविक्रमः स रघुस्तटेषु सानुष्वालीनचन्दनौ व्याप्तचन्दनौ ।

'गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रियम्' इत्यमरः। स्तनपक्षे प्रान्तेषु व्याप्तचन्दनानुलेपौ। तस्या दक्षिणस्या दिशः स्तनाविव स्थितौ मलयदर्दुरौ नाम शैलौ यथाकामं यथेच्छं निर्विश्योपभुज्य। 'निर्वेशो भृतिभोगयोः' इत्यमरः। उदकान्यस्य सन्तीत्युदन्वानुदधिः। 'उदन्वदनुधौ च' इति निपातः। उदन्वता दूरान्मुक्तं दूरतस्त्यक्तम्। 'स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन' इति समासः। 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः' इत्यलुक्। स्रस्तांशुकं मेदिन्या नितम्बमिव स्थितं सह्यं सह्याद्रिमलङ्घयत्प्राप्तोऽतिक्रान्तो वा ॥ ५१-५२ ॥ इति युग्मम्।

अन्वयः—असह्यविक्रमः, सः, तटेषु, आलीनचन्दनौ, तस्याः दिशः, स्तनौ, इव, 'स्थितौ' मलयदर्दुरौ, शैलौ, यथाकामम्, निर्विश्य, उदन्वता, दूरात्, मुक्तम् स्रस्तांशुकम्, मेदिन्याः, नितम्बम्, इव, स्थितम्, सह्यम्, अलङ्घयत्।

वाच्य०—असह्यविक्रमेण, तेन, दूरात्, मुक्तः स्रस्तांशुकः, मेदिन्याः नितम्बः, इव, 'स्थितः', सह्यः अलङ्घयत।

व्याख्या—न सह्यः=सहनार्हः, विक्रमः=पराक्रमः यस्य तादृशः असह्यविक्रमः। सः=रघुः। तटेषु=तीरेषु 'सानुषु', स्तनपक्षे प्रान्तभागेषु। आसमन्ताल्लीनाः =व्याप्ताः, चन्दनाः=चन्दनवृक्षा ययोस्तादृशौ, आलीनचन्दनौ। स्तनपक्षे तु आलीनं चन्दनं ययोस्तौ व्याप्तचन्दनानुलेपौ। तस्याः=दक्षिणस्याः। दिशः=काष्ठायाः। स्तनौ=कुचौ, इव=यथा, 'स्थितौ'। मलयश्च दर्दुरश्च तौ, तन्नामकौ, शैलौ= पर्वतौ। काममनतिक्रम्य यथाकामम्=यथेच्छम्। निर्विश्य=उपभुज्य। उदकानि सन्त्यस्योदन्वान्, तेन उदन्वता=समुद्रेण। दूरात्=दूरप्रदेशात्। मुक्तम्=परित्यक्तम्, स्रस्तं च तदंशुकं स्रस्तांशुकम्। तत्–विगलितवस्त्रम्। मेदिन्याः= पृथिव्याः, नितम्बम्=कटिपश्चाद्भागमिव स्थितम्। सह्यम्=सह्यनामकमद्रिम्। अलङ्घयत्=लङ्घितवान्।

समा०—सोढुं शक्यः सह्यः, न सह्यः असह्यः, असह्यः विक्रमः यस्य सः असह्यविक्रमः। आलीनाः चन्दनाः ययोस्तौ आलीनचन्दनौ, तौ आलीनचन्दनौ। आलीनं चन्दनं ययोस्तौ आलीनचन्दनौ। मलयश्च दर्दुरश्च मलयदर्दुरौ, तौ मलयदर्दुरौ। काममनतिक्रम्य यथाकामम्। स्रस्तमंशुकं यस्मात् सः स्रस्तांशुकः, तं स्रस्तांशुकम्।

अभि०—स रघुर्दक्षिणस्या दिशः स्तनयोरिव स्थितयोः मलयदर्दुरपर्वतयोर्यथेच्छं विहृत्य पृथिव्या दूरात्समुद्रजलपरित्यक्तमत एव विलासवत्याः स्रस्तांशुकं नित-

म्बभागमिव स्थितं सह्याद्रिं यथेच्छमुपभुज्य तथैव प्रस्थितः यथा कश्चित् कामी कामुक्याः पीवरकुचयोः सम्मर्दनं कृत्वा निर्वस्त्रं नितम्बमुपभुज्यान्यतो याति ।

हिन्दी–रघु दक्षिण दिशा के स्तनों के समान स्थित मलय और दर्दुरनामक पर्वतों में इच्छानुसार विहार करके समुद्र के जल से दूर ही मुक्त, किसी विलासवती के वस्त्ररहित नितम्बभाग के समान स्थित सह्याद्रि का यथेच्छ उपभोग करके उसी प्रकार आगे बढे जैसे कि कोई कामी किसी कामुकी का चन्दनलिप्त कुच मर्दन कर पश्चात् वस्त्ररहित नितम्बभाग का भी उपभोग करके कहीं दूसरी जगह जाता हो ।।५१-५२।।

तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः ।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णवः ।।५३।।

सञ्जीविनी—अपरान्तानां पाश्चात्यानां जय उद्यतैरुद्युक्तैः । 'अपरान्तास्तु पाश्चात्यास्ते च सूर्यरिकादयः' इति यादवः । विसर्पद्भिर्गच्छद्भिस्तस्य रघोरनीकैः सैन्यैः । 'अनीकं तु रणे सैन्ये' इति विश्वः । अर्णवो रामस्य जामदग्न्यस्यास्त्रैरुत्सारितः परिसारितोऽपि सह्यलग्न इवासीत् । सैन्यं द्वितीयोऽर्णव इवादृश्यतेति भावः ।।५३।।

अन्वयः—अपरान्तजयोद्यतैः, विसर्पद्भिः, तस्य, अनीकैः, अर्णवः, रामास्त्रोत्सारितः, अपि, सह्यलग्नः, इव आसीत् ।

वाच्य०—रामस्त्रोत्सारितेन, अपि, सह्यलग्नेन, इव, अर्णवेन, अभूयत ।

व्याख्या—अपरान्तानां = पाश्चात्यानां, यो जयः = विजयः, अपरान्तजयः, तस्मिन्नुद्यतैः=उद्युक्तैः । विसर्पद्भिः=गच्छद्भिः । तस्य = रघोः । अनीकैः = सैन्यैः । अर्णवः = सागरः, "सरस्वान्सागरोऽर्णवः" इत्यमरः । रामस्य = जामदग्न्यस्य, अस्त्रैः = आयुधैः, उत्सारितः=परिसारितः । अपि, सह्ये = सह्याद्रौ, लग्नः = संसक्तः । इव = यथा । आसीत् ।

समा०—अपरस्या अन्ताः अपरान्ताः, अपरान्तानां जयः, अपरान्तजयः, अपरान्तजये उद्यताः अपरान्तजयोद्यताः, तैः अपरान्तजयोद्यतैः । रामस्य अस्त्रम् रामास्त्रम्, रामास्त्रेण उत्सारितः रामास्त्रोत्सारितः । सह्ये लग्नः सह्यलग्नः ।

अभि०—सह्याद्रेः पश्चिमदेशं गच्छन्त्या विपुलया रघुसेनया, परशुरामास्त्रेण दूरीकृतोऽपि समुद्रः पुनः सह्यपर्वतसक्त इव लक्ष्यते स्म । आ पर्वतात् समुद्रं यावत् सेनाविस्तार आसीदिति भावः ।

हिन्दी—पश्चिम समुद्र तट तक फैली हुई रघु की सेना से समुद्र, परशुराम के अस्त्रों से दूर किये जाने पर भी ऐसा मालूम पड़ता था जैसे कि सह्य पर्वत से मिला हुआ ही हो ।।५३।।

भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम् ।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः ।। ५४ ।।

सञ्जीविनी—तेन रघुणा भयेनोत्सृष्टविभूषाणां परिहृतभूषणानां केरलयोषितां केरलांगनानामलकेषु केशेषु चमूरेणुः सेनारजश्चूर्णस्य कुंकुमादिरजसः प्रतिनिधीकृतः प्रत्यादेशीकृतः । तदभावे तत्सदृशः प्रतिनिधिः । एतेन योषितां पलायनं चमूनां च तदनुधावनं ध्वन्यते ।।५४।।

अन्वयः—तेन, भयोत्सृष्टविभूषाणाम् केरलयोषिताम्, अलकेषु, चमूरेणुः, चूर्णप्रतिनिधीकृतः ।

वाच्य :—सः चमूरेणुं चूर्णप्रतिनिधीकृतवान् ।

व्याख्या – तेन = रघुणा । भयेन=भीत्या, उत्सृष्टा=परित्यक्ता, विभूषा = अलङ्करणस्वीकारो याभिस्तासां भयोत्सृष्टविभूषाणम् । केरलस्य = केरलदेशस्य संबन्धिन्यः, योषितः = स्त्रियः इति केरलयोषितः, तासाम् । अलकेषु = चूर्णकुन्तलेषु, 'अलकाश्चूर्णकुन्तलाः' इत्यमरः । चम्वाः = सेनायाः रेणुः = धूलिः । चूर्णस्य = कुंकुमादिरजसः । प्रतिनिधीकृतः = स्थानापन्नीकृतः ।

समा० – भयेन उत्सृष्टाः विभूषाः याभिस्ताः भयोत्सृष्टविभूषाः, तासां भयोत्सृष्टविभूषाणाम् । केरलानां योषितः केरलयोषितः, तासां केरलयोषिताम् । चम्वाः रेणुः चमूरेणुः । अप्रतिनिधिः प्रतिनिधिः सम्पद्यमानः कृतः प्रतिनिधीकृतः, चूर्णस्य प्रतिनिधीकृतः चूर्णप्रतिनिधीकृतः ।

अभि०—रघोः सकाशादुत्पन्नेन भयेन यदा केरलप्रान्तस्त्रियः आभूषणादिकं परित्यज्य पलायितास्तदा तासामलकेषु कुंकुमचूर्णलेपः सेनारेणुना संपादितः ।

हिन्दी—रघु के भय से केरल प्रान्त की स्त्रियाँ आभूषणादि का परित्याग करके भाग खड़ी हुईं । उस समय उनके केशों में कुंकुम चूर्ण का काम रघु की सेना की धूलि ने किया ।।५४।।

मुरलामारुतोद्धूतमगमत् कैतकं रजः ।
तद्योधवारबाणानामयत्नपटवासताम् ।।५५।।

सञ्जीवनी—मुरला नाम केरलदेशेषु काचिन्नदी । 'मुरलीमारुतोद्धूतम्' केचित्पठन्ति । तस्या मारुतेनोद्धूतमुत्थापितं केतकं केतकीसंबन्धि रजस्तद्योधवारबाणानां रघुभटकञ्चुकानाम् । 'कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री' इत्यमरः । अयत्नपटवासतामयत्नसिद्धवस्त्रवासनाद्रव्यत्वमगमत् । 'पिष्टातः पटवासकः' इत्यमरः ॥५५॥

अन्वयः—मुरलामारुतोद्धूतं, कैतकं, रजः, तद्योधवारबाणानाम् , अयत्नपटवासताम्, अगमत् ।

वाच्य०—मुरलामारुतोद्धूतेन कैतकेन रजसा अयत्नपटवासता अगामि ।

व्याख्या—मुरला = तन्नाम्नी काचित्केरलीया नदी, तस्याः = पवनः मुरलामारुतः, तेन उद्धूतम् = समुत्थापितम् । केतक्या इदं कैतकम्=केतकीपुष्पसम्बन्धि, रजः =धूलिः । तस्य=रघोः, ये योधाः=भटाः, तेषां ये वारबाणाः= कञ्चुकाः तद्योधबाणाः, तेषां । पटान् वासयतीति पटवासः=वस्त्रवासकः, अविद्यमानो यत्नो यस्यासावयत्नः, स चासौ पटवासः, तस्य भावस्तत्ता, ताम् अयत्नपटवासताम् । अगमत्=प्राप ।

समा०—मुरलाया मारुतः मुरलामारुतः, मुरलामारुतेन उद्धूतं मुरलामारुतोद्धूतम् । केतकस्य इदं कैतकम् । तस्य योधाः तद्योधाः, तद्योधानां वारबाणाः तद्योधवारबाणाः, तेषां तद्योधवारबाणानाम् । पटं वासयतीति पटवासः, न विद्यते यत्नो यस्य स अयत्नः, अयत्नश्चासौ पटवासश्च अयत्नपटवासः, अयत्नपटवासस्य भावः अयत्नपटवासता, ताम् अयत्नपटवासताम् ।

अभि०—मुरलानदीपवनवशादुत्थितेन केतकीरजसा रघुसेनाकञ्चुकेषु निपत्य प्रयासं विनैव वस्त्रसुरभीकरणकार्यमकारि ।

हिन्दी—मुरला नामक नदी के वायु से उड़े हुए केतकीपुष्प के पराग ने रघु के सैनिकों के कञ्चुकों के ऊपर गिरते हुए बिना प्रयास के सुगन्धित चूर्ण का कार्य किया ॥५५॥

अभ्यभूयत वाहानां चरतां गात्रशिञ्जितैः ।
वर्मभिः पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः ॥ ५६ ॥

सञ्जीविनी—चरतां गच्छतां वाहानां वाजिनां 'वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः' इत्यमरः । गात्रशिञ्जितैर्गात्रेषु शब्दायमानैः । कर्तरि क्तः । वर्मभिः कवचैः । पवनेनोद्धूतानां कम्पितानां राजतालीवनानां ध्वनिरभ्यभूयत तिरस्कृतः ॥

अन्वयः—चरताम्, वाहानाम्, गात्रशिञ्जितैः, वर्मभिः, पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः, अभ्यभूयत।

वाच्य०—गात्रशिञ्जितानि वर्माणि पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिम् अभ्यभवन्।

व्याख्या—चरताम्=चलताम्। वाहानाम्=घोटकानाम्। गात्रेषु = शरीरेषु शिञ्जितैः = शब्दायमानैः। वर्मभिः = कवचैः। पवनेन = वायुना, उद्धूतानि = कम्पितानि इति पवनोद्धूतानि, तानि। राजतालीनां = तालीनां। वनानि = अरण्यानि, तेषाम् ध्वनिः=शब्दः। अभ्यभूयत = तिरस्कृतः।

समा०—गात्रेषु शिञ्जितानि गात्रशिञ्जितानि, तैः गात्रशिञ्जितैः। राजतालीनां वनानि राजतालीवनानि, पवनेन उद्धूतानि पवनोद्धूतानि, पवनोद्धूतानि च तानि राजतालीवनानि च पवनोद्धूतराजतालीवनानि, पवनोद्धूतराजतालीवनानां ध्वनिः पवनोद्धूतराजतालीवनध्वनिः।

अभि०—रघुसेनावाजिनां गात्रेषु कवचेभ्यः समुत्पन्नः ध्वनिः वायुकम्पिततालपत्रध्वनिं न्यक्कृतवान्।

हिन्दी—रघु के घोड़ों पर स्थित कवचों से जो ध्वनि निकल रही थी उससे तालवृक्ष के वनों की ध्वनि फीकी पड़ गई॥ ५६॥

खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु।
कटेषु करिणां पेतुः पुन्नागेभ्यः शिलीमुखाः॥ ५७॥

सञ्जीविनी—खर्जूरीणां तृणद्रुमविशेषाणाम्। 'खर्जूरः केतकी ताली खर्जूरी च तृणद्रुमाः' इत्यमरः। स्कन्धेषु प्रकाण्डेषु। 'अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरोः' इत्यमरः। नद्धानां बद्धानां करिणां मदोद्गारेण मदस्रावेण सुगन्धिषु। "गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः" इत्यनेनेकारः। कटेषु गण्डेषु पुन्नागेभ्यो नागकेशरेभ्यः पुन्नागपुष्पाणि विहाय। ल्यब्लोपे पञ्चमी। शिलीमुखा अलयः पेतुः। 'अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमरः। ततोऽपि सौगन्ध्यातिशयादिति भावः॥५७॥

अन्वयः—खर्जूरीस्कन्धनद्धानाम्, करिणाम्, मदोद्गारसुगन्धिषु, कटेषु, पुन्नागेभ्यः, शिलीमुखाः पेतुः।

वाच्य०—शिलीमुखैः पेते।

व्याख्या—खर्जूरीणां स्कन्धाः=स्कन्धप्रदेशाः खर्जूरीस्कन्धाः, तेषुनद्धाः =बद्धा इति खर्जूरीस्कन्धनद्धाः, तेषाम् करिणाम्=गजानाम् । मदस्य=दानस्य, य उद्गारः=स्रावः इति मदोद्गारः, तेन सुगन्धयः=सुरभिता इति मदोद्गार-सुगन्धयस्तेषु । कटेषु=गण्डस्थलेषु । पुन्नागेभ्यः=नागकेशरेभ्यः, पुन्नागान्वि-हायेत्यर्थः । शिलीमुखाः=भ्रमराः । पेतुः=न्यपतन् ।

समा०—खर्जूरीणां स्कन्धेषु नद्धाः खर्जूरीस्कन्धनद्धाः, तेषां खर्जूरीस्कन्ध-नद्धानाम् । मदस्य उद्गारः, मदोद्गारः, मदोद्गारेण सुगन्धयः मदोद्गारसु-गन्धयः, तेषु मदोद्गारसुगन्धिषु ।

अभि०—भ्रमराः नागकेशरपुष्पाणि विहाय खर्जूरीस्कन्धेषु निबद्धानां सैन्यगजानां मदजलमुक्षु गण्डस्थलेषु न्यपतन् ।

हिन्दी—भौंरे नागकेशर के पुष्पों से उड़-उड़ कर खजूर के तनों में बँधे हुए सेना के हाथियों के मद बरसानेवाले गण्डस्थलोंपर बैठने के लिए टूट पड़े ॥ ५८ ॥

अवकाशं किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥५८॥

सञ्जीविनी—उदन्वानुदधी रामाय जामदग्न्याय । अभ्यर्थितो याचितः सन् । अवकाशं स्थानं ददौ किल । किलेति प्रसिद्धौ । रघवे त्वपरान्तमहीपाल-व्याजेन करं बलिं ददौ । 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः । अपरान्तानां समुद्र-मध्यदेशवर्तित्वात्तद्दत्ते करे समुद्रदत्तत्वोपचारः । करदानं च भीत्या न तु याच्ञयेति रामाद्रघोरुत्कर्षः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—उदन्वान्, रामाय, अभ्यर्थितः, अवकाशं, ददौ, किल, रघवे, अपरान्तमहीपालव्याजेन, करम्, ददौ ।

वाच्य०—उदन्वता अभ्यर्थितेन सता अवकाशः ददे, रघवे करः ददे ।

व्याख्या—उदन्वान्=उदधिः । रामाय=परशुरामाय । अभ्यर्थितः=प्रार्थितः सन् । अवकाशम्=मार्गम् । ददौ=अदात् । किलेति प्रसिद्धौ । रघवे=दिलीप-पुत्राय तु । अपरान्ताः=पाश्चात्याः, ये महीपालाः=राजानः इत्यपरान्तमहीपा-लास्तेषां व्याजः=मिषः इत्यपरान्तमहीपालव्याजस्तेन । करम्=बलिम् । ददौ ।

समा०—अपरस्या अन्ताः अपरान्ताः, अपरान्तानां महीपालाः अपरान्तमहीपालाः, अपरान्तमहीपालानां व्याजः, तेन अपरान्तमहीपालव्याजेन ।

अभि०—परशुरामोऽपि यस्मात् सम्प्रार्थ्य स्थानं प्राप्तवान् तस्मादेव समुद्रात् रघुः पश्चिमदेशीयनृपतिमिषेण प्रार्थनां विनैव करं लेभे ।

हिन्दी—जिस समुद्र से परशुराम जी ने भी प्रार्थना करने पर स्थान प्राप्त किया उसी समुद्रसे रघुने बिना प्रार्थना किये पश्चिम देशीय राजाओं के बहाने कर प्राप्त किया ॥ ५८ ॥

मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम् ।
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार सः ॥५९॥

सञ्जीविनी—तत्र स रघुर्मत्तानामिभानां रदनोत्कीर्णानि दन्तक्षतान्येव । भावे क्तः । व्यक्तानि स्फुटानि विक्रमलक्षणानि पराक्रमचिह्नानि विजयवर्णावलिस्थानानि यस्मिंस्तं तथोक्तं त्रिकूटमेवोच्चैर्जयस्तम्भं चकार । गाढप्रकाशस्त्रिकूटोऽद्रिरेवोत्कीर्णवर्णस्तम्भ इव रघोर्जयस्तम्भोऽभूदित्यर्थः ॥५९॥

अन्वयः—तत्र सः मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम्, त्रिकूटम्, एव उच्चैः जयस्तम्भम् चकार ।

वाच्य०—तेन, मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणः, त्रिकूटः, एव, जयस्तम्भः, चक्रे ।

व्याख्या—तत्र = पश्चिमदिशि । सः = रघुः । मत्ताः = प्रमत्ता ये इभाः = गजाः इति मत्तेभाः, तेषां रदनाः = दन्ता इति मत्तेभरदनाः, तैः उत्कीर्णानि = क्षतानि, एव, व्यक्तानि = स्फुटानि, विक्रमस्य = पराक्रमस्य, लक्षणानि = चिह्नानि यस्य सः मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणः, तम् । त्रयः कूटाः शिखरप्रदेशाः यस्य स त्रिकूटः, तम् तन्नामकं पर्वतम् एव । उच्चैः = अत्युच्चम् । जयस्य = विजयस्य, स्तम्भः इति जयस्तम्भः, तम् चकार = अकरोत् ।

समा०—विक्रमस्य लक्षणानि विक्रमलक्षणानि, व्यक्तानि च तानि विक्रमलक्षणानि च व्यक्तविक्रमलक्षणानि, मत्ताश्च ते इभाश्च मत्तेभाः, मत्तेभानां रदनाः मत्तेभरदनाः, मत्तेभरदनानामुत्कीर्णानि मत्तेभरदनोत्कीर्णानि, मत्तेभरदनोत्कीर्णैः व्यक्तं विक्रमस्य लक्षणं यस्मिन्सः मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रम-

लक्षणः, तं मरो० । त्रयः कूटाः यस्य सः त्रिकूटः, तं त्रिकूटम् । जयस्य स्तम्भः जयस्तम्भः, तं जयस्तम्भम् ।

अभि०—रघुः केरलदेशे स्वसेनागजरदनक्षतचिह्नयुक्तं त्रिकूटनामकं पर्वतमेव, उन्नतं जयस्तम्भमकरोत् ।

हिन्दी—रघु ने केरल देश में अपनी सेना के हाथियों के दन्तप्रहारों के चिह्नों से युक्त त्रिकूट पर्वत को ही ऊँचा विजय स्तम्भ बनाया ॥५९॥

पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥६०॥

सञ्जीविनी—ततः स रघुः संयमी योगी तत्त्वज्ञानेनेन्द्रियनामकरिपूनिव । पारसीकान्राज्ञो जेतुं स्थलवर्त्मना प्रतस्थे । न तु निर्दिष्टेनापि जलपथेन, समुद्रयानस्य निषिद्धत्वादिति भावः ॥६०॥

अन्वयः—ततः, 'सः, रघुः' संयमी, तत्त्वज्ञानेन, इन्द्रियाख्यान्, रिपून्, इव, पारसीकान्, जेतुम्, स्थलवर्त्मना, प्रतस्थे ।

वाच्य०—संयमिना, स्थलवर्त्मना, जेतुम्, प्रतस्थे ।

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम् । 'सः रघुः' । संयमोऽस्यास्तीति संयमी= संयमवान् योगी । तत्त्वस्य=परमात्मनः, ज्ञानम्=अवबोधः, इति तत्त्वज्ञानं तेन इन्द्रियमित्याख्या येषां ते इन्द्रियाख्याः, तान्=इन्द्रियनामकान्, रिपून्=शत्रून् । इव । पारसीकान्=पारसदेशीयान् म्लेच्छभूपतीन् । जेतुम्=विजेतुम् । स्थलस्य वर्त्म=मार्गः इति स्थलवर्त्म, तेन स्थलमार्गेण । प्रतस्थे=प्रचचाल ।

समा०—संयमोऽस्यास्तीति संयमी । इन्द्रियमित्याख्या येषां ते इन्द्रियाख्याः, तान् इन्द्रियाख्यान् । तत्त्वस्य ज्ञानं तत्त्वज्ञानम्, तेन तत्त्वज्ञानेन । स्थलस्य वर्त्म स्थलवर्त्म, तेन स्थलवर्त्मना ।

अभि०—यथा कश्चित्संयमी इन्द्रियरूपिणः शत्रून् तत्त्वावबोधेन जेतुं प्रयतते तथैव रघुरपि पारसदेशीयान् भूपतीन् जेतुं स्थलमार्गेण प्रवृत्तः ।

हिन्दी—जैसे कोई संयमी इन्द्रियरूपी शत्रुओं को जीतने के लिए तत्त्वज्ञान का सहारा लेता है वैसे ही रघु भी पारस देशीय राजाओं को जीतने के लिये स्थल के मार्ग से चल पड़ा ॥६०॥

यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः ॥६१॥

सञ्जीविनी—ततः सः रघुर्यवनीनां यवनस्त्रीणाम्। "जातेरस्त्रीविषया-दयोपधात्" इति ङीष्। मुखानि पद्मानीव मुखपद्मानि। उपमितसमासः। तेषां मधुना मद्येन यो मदो मदरागः। कार्यकारणभावयोरभेदेन निर्देशः। तं न सेहे। कमिव। अकाले प्रावृड्व्यतिरिक्ते काले जलदोदयः प्रायेण प्रावृषि पद्मविकासस्याप्रसक्तत्वादब्जानां संबन्धिनं बालातपमिव। अब्जहितत्वादब्ज-संबन्धित्वं सौरातपस्य ॥६१॥

अन्वयः—सः, यवनीमुखपद्मानाम्, मधुमदम्, अकालजलदोदयः, अब्जा-नाम्, बालातपम्, इव, न, सेहे।

वाच्य०—तेन, मधुमदः, अकाजलदोदयेन, बालातपः, इव, न, सेहे।

व्याख्या—सः = रघुः। यवनीनाम् = यवनाङ्गनानाम्, मुखान्याननानि पद्मानि=कमलानि इव यवनीमुखपद्मानि, तेषाम्। मधुना = मद्येन 'जनितः' मदः = रागः, मधुमदः, तम्। अकाले = अनवसरे, यः जलदस्य=मेघस्य, उदयः = प्रादुर्भावः, इति जलदोदयः। अब्जानाम् = कमलानाम्। बालातपम्= प्रातःकालीनातपमिव। न = नैव। सेहे=सोढवान्।

समा०—मुखानि पद्मानीव मुखपद्मानि, यवनानां स्त्रियः यवन्यः, यव-नीनां मुखपद्मानि यवनीमुखपद्मानि, तेषां यवनीमुखपद्मानाम्। मधुनः मदः मधुमदः, तम् मधुमदम्, मधुना मदम् इति वा। जलं ददातीति जलदः, जलदस्य उदयः जलदोदयः, न कालः अकालः, अकाले जलदोदयः अकालजलदोदयः। बालश्चासौ आतपश्च बालातपः, तं बालातपम्। अप्सु जातानि अब्जानि, तेषामब्जानाम्।

अभि०—यथा वर्षातिरिक्तसमये मेघप्रादुर्भावः कमलविकासकारिबाला-तपं न सहते तथैव रघुरपि पारसीकयवनाङ्गनाननकमलानां मदिरापानजनित-रागं न सोढवान्। ताः पतिवियुक्ताश्चक्रे।

हिन्दी—जैसे कि वर्षाकाल के अतिरिक्त अन्य समय में मेघ का उदय कमलों को विकसित करनेवाली सूर्य की बालकिरणों को नहीं सहन कर सकता

है उसी प्रकार पारसीक यवन स्त्रियों के मदिरापानजनित मुखराग को रघुने सहन नहीं किया ॥६१॥

सङ्ग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्त्यैरश्वसाधनैः ।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत् ॥६२॥

सञ्जीविनी—तस्य रघोरश्वसाधनैर्वाजिसैन्यैः । 'साधनं सिद्धिसैन्ययोः' इति हैमः । पश्चाद्भवैः पाश्चात्त्यैर्यवनैः सह । 'दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्' सहार्थे तृतीया। शृङ्गाणां विकाराः शार्ङ्गाणि धनूंषि तेषां कूजितैः शब्दैः । 'शार्ङ्गं पुनर्धनुषि शार्ङ्गिणः । जये च शृंगविहिते चापेऽप्याह विशेषतः' इति केशवः । अथवा शार्ङ्गैः शृंगसंबन्धिभिः कूजितैर्विज्ञेया अनुमेयाः प्रतियोधाः प्रतिभटा यस्मिंस्तस्मिन्रजसि तुमुलः संग्रामः संकुलं युद्धमभूत् । 'तुमुलं रणसंकुले' इत्यमरः । रजोव्याप्त्याभयदलयोर्न स्वपरविज्ञानं शृङ्गनादादितरदासीदिति घोरसंग्रामसम्पत्तिः ॥६२॥

अन्वयः—तस्य, अश्वसाधनैः, पाश्चात्त्यैः, 'सह' शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे, रजसि, तुमुलः, संग्रामः, अभूत् ।

वाच्य०—तुमुलेन, संग्रामेण अभावि ।

व्याख्या—तस्य=रघोः । अश्वाः=घोटकाः एव साधनानि=युद्धोपायभूतानि येषां ते अश्वसाधनाः, तैः । पाश्चात्त्यैः=पश्चिमदिग्भवैः, राजभिः, सह । शृङ्गाणां विकाराः शार्ङ्गाणि=धनूंषि, तेषां कूजितानि=शब्दाः इति शार्ङ्गकूजितानि, तैः विज्ञेयाः=विज्ञातुं योग्याः, प्रतियोधाः=प्रतिभटाः यस्मिंस्तस्मिन् शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे । रजसि=रेणुसमूहे । तुमुलः=घोरः । संग्रामः=युद्धम् । अभूत्=बभूव ।

समा०—अश्वाः साधनं येषां ते अश्वसाधनाः, तैः अश्वसाधनैः । पश्चात् भवाः पाश्चात्त्याः, तैः पाश्चात्त्यैः । शृंगाणां विकाराः शार्ङ्गाणि, शार्ङ्गाणां कूजितानि शार्ङ्गकूजितानि, शार्ङ्गकूजितैः विज्ञेयाः प्रतियोधाः यस्मिन् तत् शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधम्, तस्मिन् शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे ।

भावा०—रघोः पाश्चात्त्ययवनैः घोटकसेनाबाहुल्यवद्भिः सह धनुष्टंकारजनितशब्दानुमेयप्रतिभटे रजसि घोरः संग्रामः समजनि ।

हिन्दी—राजा रघु का बहुत सी घुड़सवार सेनावाले पाश्चात्य यवनों के साथ केवल धनुष की टंकार से ही जिसमें शत्रुओं का ज्ञान हो सकता था, ऐसी अन्धकार-सी धूलि में भयंकर युद्ध हुआ ॥ ६२ ॥

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम् ।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव ॥६३॥

सञ्जीविनी—स रघुर्भल्लापवर्जितैर्बाणविशेषकृत्तैः । 'स्नुहीदलफलो भल्लः' इति यादवः । श्मश्रुलैः प्रवृद्धमुखरोमवद्भिः । 'सिध्मादिभ्यश्च' इति लच्प्रत्ययः । तेषां पाश्चात्यानां शिरोभिः । सरघाभिर्मधुमक्षिकाभिर्व्याप्तैः 'सरघा मधुमक्षिका' इत्यमरः । क्षुद्राः सरघाः । 'क्षुद्रा व्यंगा नटी वेश्या सरघा कण्टकारिका' इत्यमरः । 'क्षुद्रा भ्रमरवटरपादपादञ्' इति संज्ञायामण्प्रत्ययः । तेषां पटलैः संचयैरिव । 'पटलं तिलके नेत्ररोगे छन्दसि संचये । पिटके परिवारे च' इति हैमः । महीं तस्ताराच्छादयामास ॥६३॥

अन्वयः—सः, भल्लापवर्जितैः, श्मश्रुलैः, तेषाम्, शिरोभिः, सरघाव्याप्तैः, क्षौद्रपटलैः, इव, महीम्, तस्तार ।

वाच्य०—तेन मही तस्तरे ।

व्याख्या—सः = रघुः । भल्लैः=बाणविशेषैः, अपवर्जिताः=कृत्ताः, इति भल्लापवर्जितास्तैः । श्मश्रूणि = मुखरोमाणि सन्ति येषां तैः श्मश्रुलैः । तेषाम् =पारसीकानाम् । शिरोभिः = मस्तकैः । सरघाः=मधुमक्षिकास्ताभिर्व्याप्ताः = आच्छन्नाः सरघाव्याप्तास्तैः । क्षुद्राः = सरघास्ताभिः कृतानि क्षौद्राणि = मधूनि, तेषां पटलानि=समूहाः इति क्षौद्रपटलानि, तैः । इव = यथा । महीम्= पृथ्वीम् । तस्तार=आच्छादितवान् ।

समा०—भल्लैः अपवर्जितानि भल्लापवर्जितानि, तैः भल्लापवर्जितैः । श्मश्रु एषामस्तीति श्मश्रुलानि, तैः श्मश्रुलैः । सरघाभिर्व्याप्तानि, सरघाव्याप्तानि, तैः सरघाव्याप्तैः । क्षुद्राभिः कृतानि क्षौद्राणि, क्षौद्राणां पटलानि क्षौद्रपटलानि, तैः क्षौद्रपटलैः ।

अभि०—स रघुः प्रवृद्धमुखरोमवद्भिः पारसीकानां भल्लनामकबाणविशेषैः कर्तितैः शिरोभिः मधुमक्षिकायुक्तैः क्षौद्रसञ्चयैः इव पृथ्वीं छादयामास ।

हिन्दी—रघु ने भल्ल नामक बाणों से पारसी राजाओं के दाढ़ीवाले

शिरों को काट-काट कर पृथ्वी को ऐसा ढँक दिया जैसे कि वह मधुमक्खियों के छत्तों से ढकी हो ॥६३॥

अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः ।
प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ॥६४॥

सञ्जीविनी—शेषा हतावशिष्टा अपनीतशिरस्त्राणाः अपसरितशीर्षण्याः । सन्तः । 'शीर्षकम् । शीर्षण्यं च शिरस्त्रे' इत्यमरः । शरणागतलक्षणमेतत् । तं रघुं शरणं ययुः । तथाहि महात्मनां संरम्भः कोपः "संरम्भः संभ्रमे कोपे" इति विश्वः । प्रणिपातः प्रणतिरेव प्रतीकारो यस्य सः । हि महतां परकीयमौद्धत्य-मेवासह्यं न तु जीवितमिति भावः ॥६४॥

अन्वयः—शेषाः, अपनीतशिरस्त्राणाः, तम्, शरणम्, ययुः हि, महात्म-नाम्, संरम्भः, प्रणिपातप्रतीकारः, भवति ।

वाच्य०—शेषैः, अपनीतशिरस्त्राणैः, सः, शरणम्, यये, महात्मनाम्, संरम्भेण, प्रणिपातप्रतीकारेण, भूयते ।

व्याख्या—शेषाः = हतावशिष्टाः । अपनीतः = अपसारितः, शिरस्त्राणः = शिरःकवचः यैस्तेऽपनीतशिरस्त्राणाः सन्तः । तम् = रघुम् । शरणम् = रक्षकम् 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः । ययुः = प्रापुः । हि = यतः । महान् आत्मा येषां ते महात्मानः, तेषाम् महात्मनाम् । संरम्भः = कोपः । प्रणिपातः = प्रणिपतनमेव प्रतीकारः = प्रत्युपायो यस्य सः प्रणिपातप्रतीकारः, भवति ।

समा०—अपनीतं शिरस्त्राणं यैस्ते अपनीतशिरस्त्राणाः । महान् आत्मा येषां ते महात्मानः, तेषां महात्मनाम् । प्रणिपातः प्रतीकारः यस्य सः प्रणि-पातप्रतीकारः ।

अभि०—ये तु मृतेभ्योऽवशिष्टा आसन् ते स्वशिरस्त्राणमुत्तार्य रघुं शरणं गता बभूवुः । तेनापि ते मुक्ताः । यतः महात्मनां क्रोधः प्रणिपातावधिर्भवति ।

हिन्दी—जो पारसी राजाओं के मरने से बच गये वे अपने-अपने टोपों को उतार कर रघु की शरण में आकर बच गये, क्योंकि महात्माओं का क्रोध प्रणाम करने से शान्त हो जाता है ॥६४॥

विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥६५॥

सञ्जीविनी—तस्य रघोर्योधा भटा आस्तीर्णान्यजिनरत्नानि चर्मश्रेष्ठानि यासु तासु द्राक्षावलयानां भूमिषु । 'मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा स्वाद्वी मधुरसेति च' इत्यमरः । मधुभिर्द्राक्षाफलप्रकृतिकैर्मद्यैर्विजयश्रमं युद्धखेदं विनयन्ते स्मापनीतवन्तः । 'कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि' इत्यात्मनेपदम् । 'लट् स्मे' इति भूतार्थे लट् ॥६५॥

अन्वयः—तद्योधाः, आस्तीर्णाजिनरत्नासु, द्राक्षावलयभूमिषु, मधुभिः, विजयश्रमम्, विनयन्ते स्म ।

वाच्य०—तद्योधैः द्राक्षावलयभूमिषु मधुभिः विजयश्रमः विनीयते स्म ।

व्याख्या—तस्य = रघोः, योधाः=भटाः तद्योधाः । आस्तीर्णानि = विस्तीर्णानि, अजिनरत्नानि=चर्मश्रेष्ठानि यासु ताः आस्तीर्णाजिनरत्नाः, तासु आस्तीर्णाजिनरत्नासु । द्राक्षाणां मृद्वीकानां यानि वलयानि समूहाः इति द्राक्षावलयानि, तेषां भूमयः=प्रदेशाः द्राक्षावलयभूमयः, तासु । मधुभिः = द्राक्षानिर्मितमद्यैः, विजयस्य = जयस्य यः श्रम इति विजयश्रमस्तं विनयन्ते स्म = दूरीकुर्वन्ति स्म ।

समा०—तस्य योधाः तद्योधाः । अजिनानां रत्नानि अजिनरत्नानि, आस्तीर्णानि, अजिनरत्नानि यासु ताः आस्तीर्णाजिनरत्नाः, तासु आस्तीर्णाजिनरत्नासु । द्राक्षाणां वलयाः द्राक्षावलयाः, द्राक्षावलयानां भूमयः द्राक्षावलयभूमयः, तासु द्राक्षावलयभूमिषु ।

अभि०—रघुसैनिकाः द्राक्षालताभिरावृतभूमिषु चर्मश्रेष्ठानि आस्तीर्य द्राक्षानिर्मितमद्यं पीत्वा युद्धश्रमं दूरीकृतवन्तः ।

हिन्दी—रघु के सैनिकों ने अंगूर की लताओं से आच्छन्न भूमियों पर श्रेष्ठ मृगचर्म बिछाकर अंगूर के फलों से तैयार की हुई मदिरा का पान कर युद्ध के श्रम को दूर किया ॥६५॥

ततः प्रतस्थे कौवेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥६६॥

सञ्जीविनी—ततो रघुर्भास्वान्सूर्य इव शरैर्बाणैरुस्रैः किरणैरिव । 'किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः' इत्यमरः । उदीच्यानुदग्भवान्नृपान्रसानुदका-

नीदोद्धरिष्यन्कौबेरीं कुबेरसंबन्धिनीं दिशमुदीचीं प्रतस्थे। अनेकेनेवशब्देनेदं वाक्यार्थोपमा। यथाह दण्डी—'एकानेकेवशब्दत्वात्सा वाक्यार्थोपमा द्विधा' इति।

अन्वयः—ततः, रघुः, भास्वान्, इव, शरैः, उस्रैः, इव, उदीच्यान्, रसान्, इव उद्धरिष्यन्, कौबेरीम्, दिशम्, प्रतस्थे।

वाच्य०—रघुणा भास्वता उद्धरिष्यता कौबेरी दिक् प्रतस्थे।

व्याख्या—ततः=पारसविजयानन्तरम्। रघुः=दिलीपपुत्रः। भास्वान्=सूर्यः, इव। शरैः=बाणैः। उस्रैः=किरणैः। इव। उदीच्यान्=उदग्भवान् राज्ञः। रसान्=जलानि इव उद्धरिष्यन्=उन्मूलयिष्यन्। कुबेरस्येयं दिक् कौबेरी, तां कुबेरसंबन्धिनीम्। दिशम्=काष्ठाम्, उदीचीम्। प्रतस्थे=प्रचचाल।

समा०—उदीच्यां भवाः उदीच्याः, तान् उदीच्यान्।

अभि०—पारसविजयोत्तरं यथा सूर्यः स्वतीक्ष्णकिरणैः जलानि शोषयितुम् उत्तरस्यां दिशि प्रसरति, (उत्तरायणकाल इत्यर्थः) तथैव रघुरपि उत्तरदेशस्थान् राज्ञः विजेतुं उदीचीम् काष्ठां प्रति प्रतस्थे।

हिन्दी—पारस देशके राजाओं को जीतकर रघु उत्तर देश के राजाओं को जीतने के लिए इस प्रकार आगे बढ़े जैसे कि सूर्य किरणों से जलों को शोषित करने के लिए उत्तरायण काल में उत्तर दिशा की ओर बढ़ता है॥६६॥

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धांल्लग्नकुंकुमकेसरान्॥६७॥

सञ्जीविनी—सिन्धुर्नाम काश्मीरदेशेषु कश्चिन्नदविशेषः। 'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्' इत्यमरः। सिन्धोस्तीरे विचेष्टनैरंगपरिवर्तनैर्विनीताध्वश्रमास्तस्य रघोर्वाजिनोऽश्वा लग्नाः कुंकुमकेसराः कुंकुमकुसुमकिञ्जल्का येषां तान्। यद्वा लग्नकुंकुमाः केसराः सटा येषां तान्। 'अथ कुंकुमम्। काश्मीरजन्म' इत्यमरः। 'केसरो नागकेसरे। तुरंगसिंहयोः स्कन्धकेशेषु बकुलद्रुमे। पुंनागवृक्षे किञ्जल्के स्यात्' इति हैमः। स्कन्धान्कायान्। 'स्कन्धः प्रकाण्डे कायेंऽसे विज्ञानादिषु पञ्चसु। नृपे समूहे व्यूहे च' इति हैमः। दुधुवुः कम्पयन्ति स्म। धूञ् कम्पने॥६७॥

अन्वयः — सिन्धुतीरविचेष्टनैः, विनीताध्वश्रमाः, तस्य, वाजिनः, लग्न-कुंकुमकेसरान्, स्कन्धान्, दुधुवुः ।

वाच्य०—विनीताध्वश्रमैः, तस्य, वाजिभिः, लग्नकुंकुमकेसराः, स्कन्धाः दुधुविरे ।

व्याख्या — सिन्धोः=नदविशेषस्य, तीरे=तटे, विचेष्टनानि=अङ्गपरिवर्तनानि इति सिन्धुतीरविचेष्टनानि तैः। विनीतः=दूरीकृतः, अध्वनः=मार्गस्य श्रमः=खेदः, यैस्ते विनीताध्वश्रमाः । तस्य=रघोः । वाजिनः=अश्वाः । लग्नं=संसक्तं, कुंकुमं = काश्मीरजन्म येषां ते तादृशाः केसराः = किञ्जल्काः येषां ते लग्नकुंकुमकेसराः, तान् । स्कन्धान्=स्कन्धप्रदेशान् । दुधुवुः = कम्पयामासुः ।

समा० — सिन्धोः तीरं सिन्धुतीरम्, सिन्धुतीरे विचेष्टनानि सिन्धुतीरविचेष्टनानि तैः सिन्धुतीरविचेष्टनैः । अध्वनः श्रमः अध्वश्रमः, विनीतः अध्वश्रमः यैस्ते विनीताध्वश्रमाः । लग्नं कुंकुमं येषु ते लग्नकुंकुमाः, लग्नकुंकुमाः केसराः येषां ते लग्नकुंकुमकेसराः, तान् लग्नकुंकुमकेसरान् ।

अभि० — सिन्धुनदस्य तीरे अङ्गपरिवर्तनेन खेदं दूरीकृत्य रघोः सेनाश्वाः कुंकुमकेसरसंसक्तिमतः स्कन्धान् कम्पयामासुः ।

हिन्दी – सिन्धु नामक नद के तट पर लोटकर मार्ग की थकावट को दूर करते हुए रघु की सेना के घोड़ों ने अपने कन्धों के बालों में लगे हुए केसर के कणों को हिलाकर दूर किया ॥६७॥

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥ ६८ ॥

सञ्जीविनी—तत्रोदीच्यां दिशि भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् । भर्तृवधेन स्फुटपराक्रममित्यर्थः, रघुचेष्टितं रघुव्यापारः हूणा जनपदाख्याः क्षत्रियाः । तेषामवरोधा अन्तःपुरस्त्रियः । तासां कपोलेषु पाटलस्य पाटलिम्नस्ताडनादिकृतास्यादेश्युपदेशकं बभूव । अथवा पाटल आदेश्यादेष्टा तस्य तद्बभूव । स्वयं लेख्यायत इत्यर्थः ॥ ६८ ॥

अन्वयः—तत्र, भर्तृषु, व्यक्तविक्रमम्, रघुचेष्टितम्, हूणावरोधानाम्, कपोलपाटलादेशि, बभूव ।

वाच्य०—व्यक्तविक्रमेण रघुचेष्टितेन हूणावरोधानां कपोलपाटलादेशिना बभूवे ।

व्याख्या—तत्र = उदीच्यां दिशि । भर्तृषु = स्वामिषु, हतेष्वित्यर्थः । व्यक्तः = स्पष्टः, विक्रमः = पराक्रमः, यस्य तत् व्यक्तविक्रमम् । रघोः चेष्टितम् रघुचेष्टितम् = रघुव्यापारः । हूणानां पश्चिमक्षत्रियविशेषाणाम्, अवरोधाः = अन्तःपुराणि, हूणावरोधाः, तेषाम् हूणावरोधानाम्, कपोलयोः = गण्डस्थलयोः, पाटलः = श्वेतरक्तः, इति कपोलपाटलः तमादेष्टुं शीलमस्य कपोलपाटलादेशि : बभूव = अभूत् ।

समा०—व्यक्तः विक्रमः येन तत् व्यक्तविक्रमम् । रघोः चेष्टितं रघुचेष्टितम् । हूणानां अवरोधाः हूणावरोधाः तेषां हूणावरोधानाम् । पाटलस्य आदेशि पाटलादेशि, कपोलेषु पाटलादेशि कपोलपाटलादेशि ।

अभि०—रघुः उदीच्यां दिशि हूणान्तःपुरांगनानां स्वामिनो हत्वा स्वपराक्रमं विस्तारयन् तासां कपोलप्रदेशान् ताडनादिकृतारुण्यांश्चकार । शोकविलापे वक्षः कपोलौ च ताडयन्ति तत्रत्याः स्त्रियः ।

हिन्दी – उत्तर दिशा में हूणाङ्गनाओं के लाल कपोलों की अरुणिमा ही, उनके पतियों पर प्रकट हुए रघु के पराक्रम रूप व्यापार की सूचना दे रही थी ॥६८॥

काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः ।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः ॥६९॥

सञ्जीविनी—काम्बोजा राजानः समरे तस्य रघोर्वीर्यं प्रभावम् । 'वीर्यं तेजःप्रभावयोः' इति हैमः । सोढुमनीश्वरा अशक्ताः सन्तः । गजानां रघुदन्तिनामालानं बन्धनम् । भावे ल्युटि 'विभाषा लीयतेः' इत्यात्वम् । तेन परिक्लिष्टैः परिक्षतैरक्षोटैर्वृक्षविशेषैः सार्धमानताः ॥ ६९ ॥

अन्वयः—काम्बोजाः, समरे, तस्य, वीर्यम् सोढुम्, अनीश्वराः, गजालानपरिक्लिष्टैः, अक्षोटैः, सार्धम्, आनताः ।

वाच्य०—काम्बोजैः सोढुम् अनीश्वरैः आनतैः बभूवे ।

व्याख्या—कम्बोजस्येमे काम्बोजाः=कम्बोजदेशवासिनः। समरे=युद्धे। तस्य=रघोः। वीर्यम् = प्रभावम्। सोढुम् = सहनं कर्तुम्। न ईश्वराः अनीश्वराः = असमर्थाः सन्तः। आलीयतेऽस्मिन्नित्यालानम्, गजानाम्=हस्तिनामालानं = बन्धनं गजालानं तेन परिक्लिष्टाः=परिक्षताः गजालानपरिक्लिष्टाः, तैः। अक्षोटैः=वृक्षविशेषैः। सार्धम्=सह। आनताः=नम्रीभूताः।

समा०—कम्बोजानां राजानः काम्बोजाः। न ईश्वराः अनीश्वराः। गजानामालानं गजालानम्, गजालानेन परिक्लिष्टाः गजालानपरिक्लिष्टाः, तैः गजालानपरिक्लिष्टैः।

अभि०—कम्बोजदेशनिवासिनो राजानो युद्धे रघुप्रभावं सोढुमसमर्थाः सेनाहस्तिबन्धनीभूताक्षोटवृक्षैः सहैव नम्रा बभूवुः।

हिन्दी—कम्बोज देशवासी राजा युद्ध में रघु का तेज सहन न कर सके तथा हाथियों के बांधने से झुके हुए अखरोट के पेड़ों के साथ आप भी रघु के आगे झुक गये ॥६९॥

तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः।
उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोसलेश्वरम् ॥७०॥

सञ्जीविनी—तेषां काम्बोजानां सद्भिरश्वैर्भूयिष्ठा बहुलास्तुङ्गा द्रविणानां हिरण्यानाम् 'हिरण्यं द्रविणं द्युम्नम्' इत्यमरः। राशय एवोपदा उपायनानि। 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः। कोसलेश्वरं कोसलदेशाधिपतिं तं रघुं शश्वदसकृद्विविशुः। 'मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः' इत्यमरः। तथाप्युत्सेका गर्वास्तु न विविशुः। सत्यपि गर्वकारणे न जगर्वेत्यर्थः ॥७०॥

अन्वयः—तेषाम्, सदश्वभूयिष्ठाः, तुङ्गाः, द्रविणराशयः, उपदाः, कोसलेश्वरम्, शश्वत्, विविशुः, उत्सेकाः, न, विविशुः।

वाच्य०—सदश्वभूयिष्ठैः, तुङ्गैः, द्रविणराशिभिः, उपदाभिः, कोसलेश्वरः शश्वत्, विविशे, उत्सेकैः, न।

व्याख्या—सन्तश्च तेऽश्वाः सदश्वाः शोभनघोटकाः, तैर्भूयिष्ठाः = बहुलाः। तुङ्गाः = उन्नताः। द्रविणानाम् = हिरण्यानाम्, राशयः=समूहाः।

ता एव उपदाः = उपायनानि । कोसलानामीश्वरस्तम् = कोसलाधिपतिं रघुम् । विविशुः = प्राविशन्, उत्सेकाः = गर्वाः, तु न विविशुः ।

समा०—सन्तश्च ते अश्वाश्च सदश्वाः, सदश्वैर्भूयिष्ठाः सदश्वभूयिष्ठाः । द्रविणानां राशयः द्रविणराशयः । कोसलानामीश्वरः, कोसलेश्वरः, तं कोसलेश्वरम् ।

अभि०—रघुपराजिताः काम्बोजाः रघवे स्वदेशोत्पन्नाश्वबहुलान् हिरण्योच्चराशीनुपहाररूपेण ददुः, किन्तु तानाप्यापि रघुः गर्वं न कृतवान् ।

हिन्दी—रघु से हारे हुए कम्बोज देश के राजाओं ने रघु के आगे अपने देश में उत्पन्न घोड़े जिसमें बहुत थे ऐसी द्रविणराशियाँ उपहार रूप से भेंट कीं, परन्तु राजा रघु को तनिक भी गर्व न हुआ ॥७०॥

ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः ।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः ॥७१॥

सञ्जीविनी—ततोऽनन्तरमश्वसाधनः सन् गौर्या गुरुं पितरं च शैलं हिमवन्तम् । उद्धूतैरश्वखुरोद्धूतैर्धातूनां गैरिकादीनां रेणुभिस्तत्कूटास्तस्य शृंगाणि । 'कूटोऽस्त्री शिखरं शृंगम्' इत्यमरः । वर्धयन्निव आरुरोह । उत्पतद्धूलिदर्शनाद् गिरिशिखरवृद्धिभ्रमो जायत इति भावः ॥७१॥

अन्वयः—ततः, अश्वसाधनः, गौरीगुरुम्, शैलम्, उद्धूतैः, धातुरेणुभिः, तत्कूटान्, वर्धयन्, इव, आरुरोह ।

वाच्य०—अश्वसाधनेन, गौरीगुरुः शैलः, तत्कूटान्, वर्धयता, इव आरुरुहे ।

व्याख्या-ततः=तदनन्तरम् । अश्वाः=घोटकाः, एव साधनानि समरसहायभूतानि यस्य स अश्वसाधनः । रघुः । गौर्याः=पार्वत्याः, गुरुः=पिता इति गौरीगुरुः = हिमालयः, तम् । शैलम्=पर्वतम् । उद्धूतैः = उत्थापितैः । धातूनां= गैरिकादीनां, रेणवः = धूलयः धातुरेणवः, तैः । तस्य हिमालयस्य कूटाः शिखरप्रदेशाः, तत्कूटास्तान् । वर्धयन् = वृद्धिंगत्वमापादयन् । इव । आरुरोह= आरोहत् ।

समा०—अश्वा एव साधनं यस्य सः अश्वसाधनः । गौर्या गुरुः गौरीगुरुः, तं गौरीगुरुम् । धातूनां रेणवः, धातुरेणवः, तैः धातुरेणुभिः । तस्य कूटाः तत्कूटाः, तान् तत्कूटान् ।

अभि०---काम्बोजविजयानन्तरं रघुः वाजिसैन्यसहायवान् सन् उत्तरदिशि वर्तमानान्नृपतीन्विजेतुकामः हयखुरोत्थापितगैरिकादिधातुरेणुभिः हिमालयशैलशिखराणि वर्धयन् इव हिमाचलमारुरोह ।

हिन्दी---काम्बोज विजय के पश्चात् घोड़ों की सेना लेकर राजा रघु घोड़ों के खुरों से उठाई हुई गेरू, मनःशिला आदि धातुओं की धूलि से उसके शिखरों की ऊँचाई को और भी बढ़ाते हुए हिमालय पर्वत पर चढ़े ॥७१॥

शशंस तुल्यसत्त्वानां सैन्यघोषेऽप्यसंभ्रमम् ।
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्यावलोकितम् ॥७२॥

सञ्जीविनी---तुल्यसत्त्वानां सैन्यैः समानबलानाम् । गुहासु शेरत इति गुहाशयास्तेषाम् । "अधिकरणे शेतेः" इत्यच्प्रत्ययः । 'दरी तु कन्दरो वा स्त्री देवखातबिले गुहा' इत्यमरः । सिंहानां हरीणाम् 'सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः' इत्यमरः । संबन्धि परिवृत्यावलोकितं शयित्वैव ग्रीवाभङ्गेनावलोकनं कर्तृ सैन्यघोषे सेनाकलकले संभ्रमकारणे सत्यप्यसंभ्रममन्तःक्षोभविरहित्वम् । नञः प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि समास इष्यते । शशंस कथयामास । सैन्येभ्य इत्यर्थाल्लभ्यते । बाह्यचेष्टितमेव मनोवृत्तेरनुमापकमिति भावः । असंभ्रान्तत्वे हेतुस्तुल्यसत्त्वानामिति । नहि समबलः समबलाद् बिभेतीति भावः ॥७२॥

अन्वयः---तुल्यसत्त्वानाम्, गुहाशयानाम्, सिंहानाम्, परिवृत्य, अवलोकितम्, सैन्यघोषे, अपि, असम्भ्रमम्, शशंस ।

वाच्य०---सिंहानाम् परिवृत्य अवलोकितेन, सैन्यघोषे, अपि, असम्भ्रमः शशंसे ।

व्याख्या---तुल्यं=समानं, सत्त्वं=बलं येषां ते तुल्यसत्त्वास्तेषाम् । गुहासु कन्दरासु शेरत इति गुहाशयास्तेषाम्, सिंहानाम्=मृगेन्द्राणाम्, "सिंहो, मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः" इत्यमरः । परिवृत्य=परावृत्य । अवलोकितम्=अवलोकनं 'कर्तृ' । सेनायां समवेताः सैन्याः=सेनापुरुषाः, तेषां घोषे=कलकलेऽपि । न सम्भ्रमोऽसम्भ्रमः=क्षोभाभावस्तम् । शशंस=कथयामास ।

समा०—तुल्यं सत्त्वं येषां ते तुल्यसत्त्वाः, तेषां तुल्यसत्त्वानाम्। गुहासु शेरते इति गुहाशयाः, तेषां गुहाशयानाम्। सैन्यस्य घोषः सैन्यघोषः तस्मिन् सैन्यघोषे। न सम्भ्रमः असम्भ्रमः, तम् असंभ्रमम्।

अभि०—सैन्यसमानबलशालिनो हिमालयगुहासु शयानाः सिंहाः सेनाकलकले सत्यपि केवलं ग्रीवभङ्गेनैवावलोकयन्तः स्वभयराहित्यं सूचयन्ति स्म।

हिन्दी—सेना के समान बलशाली, हिमालय की गुफाओं में लेटे हुए सिंह सेनाशब्द के होने पर भी केवल गर्दन घुमाकर ही देखते हुए अपनी निर्भयता प्रकट कर रहे थे ॥७२॥

भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गङ्गाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ॥७३॥

सञ्जीविनी—भूर्जपत्रेषु। 'भूर्जपत्रो भुजो भूर्जो मृदुत्वक्चर्मिका मता' इति यादवः। मर्मरः शुष्कपर्णध्वनिः। 'मर्मरः शुष्कपर्णानाम्'। इति यादवः। अयं च शुक्लादिशब्दवद् गुणिन्यपि वर्तते प्रयोज्यते च। 'मर्मरैरगुरुधूपगन्धिभिः' इति। अतो मर्मरीभूतः मर्मरशब्दवन्तो भूता इत्यर्थः। कीचकानां वेणुविशेषाणां ध्वनिहेतवः। श्रोत्रसुखाश्चेति भावः। गङ्गाशीकरिणः। शीतला इत्यर्थः। मरुतो वाता मार्गे तं रघुम् सिषेविरे ॥७३॥

अन्वयः—भूर्जेषु, मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः, गङ्गाशीकरिणः, मरुतः, मार्गे, तम्, सिषेविरे।

वाच्य०—मर्मरीभूतैः कीचकध्वनिहेतुभिः गंगाशीकरिभिः मरुद्भिः मार्गे सः सिषेवे।

व्याख्या—भूर्जेषु = भूर्जपत्रेषु। अमर्मरा मर्मराः सम्पद्यमाना इति मर्मरीभूताः = मर्मरशब्दवन्तः। ध्वनेः = शब्दस्य, हेतवः कारणानि इति ध्वनिहेतवः। कीचकानां = वेणुविशेषाणां, ध्वनिहेतवः कीचकध्वनिहेतवः, तैः। "कीचका वेणवस्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः" इत्यमरः। गंगायाः=भागीरथ्याः, शीकराः= कणाः सन्त्येष्विति गङ्गाशीकरिणः मरुतः=वायवः। तम् = रघुम्। सिषेविरे= सेवितवन्तः।

समा०—अमर्मराः मर्मराः सम्पद्यमानाः मर्मरीभूताः। कीचकानां ध्वनिः

कीचकध्वनिः, कीचकध्वनेः हेतवः कीचकध्वनिहेतवः । गङ्गायाः शीकराः गङ्गाशीकराः गङ्गाशीकरा एषां सन्तीति गङ्गाशीकरिणः ।

अभि०—पर्वतारोहणसमये रघोः श्रमं, शुष्कभूर्जपत्रेषु मर्मरध्वनिमन्तः, कीचकाख्यवेणुषु कर्णाभिरामं ध्वनिं जनयन्तो गङ्गाम्भःशीतला वायवः अपनीतवन्तः ।

हिन्दी—हिमालय पर्वत पर चढ़ते समय रघु के परिश्रम को, सूखे भूर्जपत्रों में मर्मरध्वनि करनेवाले तथा कीचक नाम के बांसों में मनोहर शब्द उत्पन्न करते हुए गंगा के शीतल वायु ने, दूर किया ॥७३॥

विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः ।
दृषदो वासितोत्सङ्गा निषण्णमृगनाभिभिः ॥७४॥

सञ्जीविनी—सैनिकाः सेनायां समवेताः प्राग्वहतीयष्ठक्प्रत्ययः । नमेरूणां सुरपुंनागानां छायासु निषण्णानां दृषदुपविष्टानां मृगाणां कस्तूरीमृगाणां नाभिभिर्वासितोत्सङ्गाः सुरभिततला दृषदः शिला अध्यास्याधिष्ठाय । 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्म । दृषत्स्वधिरुह्येत्यर्थः । विशश्रमुर्विश्रान्ताः ॥७४॥

अन्वयः—सैनिकाः, नमेरूणाम्, छायासु निषण्णमृगनाभिभिः वासितोत्सङ्गाः, दृषदः, अध्यास्य, विशश्रमुः ।

वाच्य०—सैनिकैः दृषदः, अध्यास्य विशश्रमे ।

व्याख्या—सैनिकाः = सेनापुरुषाः । नमेरूणाम्=सुरपुन्नागनामकवृक्षविशेषाणाम् । छायासु = अनातपेषु । निषण्णाः=स्थिता ये मृगाः=हरिणाः कस्तूरीमृगा इत्यर्थः । इति निषण्णमृगाः, तेषां नाभयः=नाभिप्रदेशाः, तैः । वासिताः = सुरभिताः, उत्सङ्गाः = मध्यभागा यासां तादृशीः । दृषदः = शिलाप्रदेशान् । अध्यास्य = अधिष्ठाय । विशश्रमुः = श्रममपनीतवन्तः ।

समा०—निषण्णाश्च ते मृगाश्च निषण्णमृगाः, निषण्णमृगाणां नाभयः निषण्णमृगनाभयः, तैः निषण्णमृगनाभिभिः । वासिताः उत्सङ्गाः यासां ता वासितोत्संगाः, ताः वासितोत्संगाः ।

अभि०—रघुसैनिकैर्नमेरुवृक्षतलेषु कस्तूरीमृगनाभिस्थकस्तूरीगन्धवासिततलभागेषु प्रस्तरेषु अधिष्ठाय पर्वतारोहणजनितः श्रमः दूरीकृतः ।

हिन्दी—रघु के सैनिकों ने नमेरु (दिव्य सुपारी के) वृक्षों के नीचे स्थित कस्तूरी मृग की नाभियों से जिनमें कस्तूरी की गन्ध बस गई है ऐसी शिलाओं के ऊपर बैठकर, पर्वत पर चढ़ने के परिश्रम को दूर किया ॥७४॥

सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः ।
आसन्नोषधयो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिकाः ॥७५॥

सञ्जीविनी—सरलेषु देवदारुविशेषेष्वासक्तानि यानि मातंगानां गजानाम् । ग्रीवासु भवानि ग्रैवेयाणि कण्ठशृङ्खलानि । 'ग्रीवाभ्योऽण्च' इति चकाराड्ढञ्प्रत्ययः । तेषु स्फुरितत्विषः प्रतिफलितभास ओषधयो ज्वलन्तो ज्योतिर्लताविशेषा नक्तं रात्रौ नेतुर्नायकस्य रघोरस्नेहदीपिकास्तैलनिरपेक्षाः प्रदीपा आसन् ॥७५॥

अन्वयः—सरलासक्तमातङ्गग्रैवेयस्फुरितत्विषः, ओषधयः, नक्तम्, नेतुः, अस्नेहदीपिकाः, आसन् ।

वाच्य०—सरलासक्तमातंगग्रैवेयस्फुरितत्विड्भिः ओषधिभिः नेतुः नक्तम् अस्नेहदीपिकाभिः अभूयत ।

व्याख्या—सरलेषु = सरलाख्यवृक्षेषु, आसक्ताः = बद्धा इति सरलासक्ताः, तादृशाः ये मातङ्गाः = गजाः इति सरलासक्तमातंगाः, तेषां ग्रैवेयैः = कण्ठशृंखलाभिः, स्फुरिता = प्रतिफलिता, त्विट् = कान्तिर्यासां ताः सरलासक्तमातंगग्रैवेयस्फुरितत्विषः । ओषधयः = ज्योतिर्लताविशेषाः । नक्तम् = रात्रौ । नेतुः = नायकस्य रघोः । न विद्यते स्नेहो यासु ता अस्नेहास्तैलरहितास्तादृश्यो या दीपिकाः = प्रकाशपात्राणीति अस्नेहदीपिकाः = विना तैलं ज्वलन्तो दीपाः इत्यर्थः । आसन् = अभूवन् ।

समा०—ग्रीवासु भवानि ग्रैवेयाणि, मातङ्गानां ग्रैवेयाणि मातङ्गग्रैवेयाणि, सरलेषु आसक्तानि सरलासक्तानि, सरलासक्तानि च तानि मातङ्गग्रैवेयाणि च सरलासक्तमातंगग्रैवेयाणि । सरलासक्तमातंगग्रैवेयेषु स्फुरिताः त्विषः यासां ताः सरलासक्तमातंगग्रैवेयस्फुरितत्विषः । स्नेहस्य दीपिकाः स्नेहदीपिकाः, न स्नेहदीपिका अस्नेहदीपिकाः ।

अभि०—हिमालयशिखरस्थस्य सैन्यसहितस्य रघोः रात्रिसमये ज्योति-

लताविशेषा एव तैलानपेक्षप्रदीपकार्यमकुर्वन् । येषां प्रभा सरलाख्यवृक्षेषु निबद्धानां गजानां कण्ठशृङ्खलासु प्रतिफलितासीत् ।

हिन्दी—हिमालय पर्वत पर स्थित सेना सहित रघु के लिये रात्रि के समय बिना तेल के जलने वाले दीपकों का कार्य रात में चमकनेवाली ओषधि-लताओं ने किया, जिनका प्रकाश चीड़ के वृक्षों में बँधे हुए हाथियों के गले की जंजीरों में प्रतिफलित होता था ॥ ७५ ॥

तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः ।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ॥ ७६ ॥

सञ्जीविनी—तस्य रघोरुत्सृष्टेषूज्झितेषु निवासेषु सेनाविशेषेषु कण्ठरज्जुभिर्गजग्रैवेयैः क्षता निष्पिष्टास्त्वचो येषां ते देवदारवः किरातेभ्यो वनचरेभ्यो गजानां वर्ष्म प्रमाणम् । 'वर्ष्म देहप्रमाणयोः' इत्यमरः । शशंसुः कथितवन्तः । देवदारुस्कन्धत्वक्क्षतैर्गजानामौन्नत्यमनुमीयत इत्यर्थः ॥ ७६ ॥

अन्वयः—तस्य, उत्सृष्टनिवासेषु, कण्ठरज्जुक्षतत्वचः, देवदारवः, किरातेभ्यः, गजवर्ष्म, शशंसुः ।

वाच्य०—कण्ठरज्जुक्षतत्वग्भिः, देवदारुभिः, गजवर्ष्म शशंसे ।

व्याख्या—तस्य = रघोः । उत्सृष्टाः=परित्यक्ताः ये निवासाः = वासभूमिप्रदेशाः इत्युत्सृष्टनिवासास्तेषु । कण्ठस्य =गलप्रदेशस्य रज्जवः इति कण्ठरज्जवः, ताभिः क्षता = खण्डिता, त्वक् = वल्कलम् येषां ते कण्ठरज्जुक्षतत्वचः । देवदारवः = देवदारुवृक्षाः । किरातेभ्यः = वनचरम्लेच्छजातिभ्यः । गजानां = सेनाकरिणाम्, वर्ष्म=प्रमाणम् इति गजवर्ष्म देहौन्नत्यमिति यावत् । शशंसुः= कथयामासुः ।

समा०—उत्सृष्टाश्च ते निवासाश्च उत्सृष्टनिवासाः, तेषु उत्सृष्टनिवासेषु । कण्ठानां रज्जवः कण्ठरज्जवः, कण्ठरज्जुभिः क्षता त्वक् येषां ते कण्ठरज्जुक्षतत्वचः । गजानां वर्ष्म गजवर्ष्म, तत् गजवर्ष्म ।

अभि०—रघुणा परित्यक्तेषु सेनानिवेशेषु किराताः देवदारुवृक्षेषु विबद्धगजकण्ठबन्धनीभूतशृङ्खलाकर्षणकारणेन भिन्नत्वक्षु तदीयगजशरीरौन्नत्यमजानन् ।

हिन्दी—हिमालय पर्वत पर रघु के द्वारा छोड़े गये सेना के पड़ावों में किरात लोगों ने देवदारु वृक्षों में बँधे, सेना के हाथियों की कण्ठरज्जुओं से उखाड़ी हुई छालों से रघु के हाथियों की ऊँचाई जानी ॥ ७६ ॥

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ॥ ७७ ॥

सञ्जीविनी—तत्र हिमाद्रौ रघोः पर्वते भवैः पर्वतीयैः । 'पर्वताच्च' इति छप्रत्ययः । गणैरुत्सवसंकेताख्यैः सप्तभिः सह । 'गणानुत्सवसंकेतानजयत्सप्त पाण्डवः' इति महाभारते । नाराचानां बाणविशेषाणां क्षेपणीयानां भिन्दिपालानामश्मनां च निष्पेषेण संघर्षेणोत्पतिता अनला यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । 'क्षेपणीयो भिन्दिपालः खड्गो दीर्घो महाफलः' यादवः । घोरं भीमं जन्यं युद्धमभूत् । 'युद्धमायोधनं जन्यम्' इत्यमरः ॥ ७७ ॥

अन्वयः—तत्र, रघो, पर्वती यैः, गणैः, नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम्, घोरम्, जन्यम्, अभूत् ।

वाच्य०—नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलेन घोरेण जन्येन अभावि ।

व्याख्या—तत्र = हिमालयपर्वते, रघोः = दिलीपपुत्रस्य, पर्वते भवाः पर्वतीयाः पर्वतनिवासिनः, तैः पर्वतीयैः । गणैः = उत्सवसंकेताख्यैः । नाराचाः = बाणविशेषाः, क्षेपणीयाः = भिन्दिपालाः, अश्मानः = प्रस्तराः एषामितरेतरयोगः नाराचक्षेपणीयाश्मानः तेषां निष्पेषेण = संघर्षेण, उत्पतितः = उत्पन्नः, अनलः = वह्निर्यस्मिंस्तत्तथोक्तम् । घोरं = भयानकम् । जन्यम् = युद्धम् । अभूत् = बभूव ।

समा०—नाराचाश्च क्षेपणीयाश्च अश्मानश्च नाराचक्षेपणीयाश्मानः, नाराचक्षेपणीयाश्मनां निष्पेषः नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषः, नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषेण उत्पतितः अनलः यस्मिन् तत् नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ।

अभि०—हिमालये रघोः उत्सवसंकेताख्यगणैः सह भयंकरं युद्धमभूत् । यत्र प्रयुक्तैः नाराचैः, भिन्दिपालैः, प्रस्तरैश्च अन्योन्यसंघर्षेण वह्निरुत्पन्नोऽभूत् ।

हिन्दी—हिमालय पर्वत पर रघु का उत्सवसङ्केत नामक गणों से घोर युद्ध हुआ, जिसमें प्रयोग किये गये बाणों, भिन्दिपालों तथा पत्थरों के पारस्परिक संघर्ष से अग्नि उत्पन्न हो जाती थी ॥ ७७ ॥

शरैरुत्सवसङ्केतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ ७८ ॥

सञ्जीविनी—स रघुः शरैर्बाणैरुत्सवसंकेतान्नाम गणान्विरतोत्सवान्कृत्वा । जित्वेत्यर्थः । किन्नरान् बाह्वोः स्वभुजयोर्जयोदाहरणं जयख्यापकं प्रबन्धविशेषं गापयामास । 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ' इत्यनेन किनराणामपि कर्तृत्वात्कर्मत्वम् । ७८॥

अन्वयः—सः शरैः, उत्सवसंकेतान्, विरतोत्सवान्, कृत्वा, बाह्वोः, जयोदाहरणम्, किन्नरान्, गापयामास ।

वाच्य०—तेन, शरैः किन्नराः बाह्वोः, जयोदाहरणम्, गापयाञ्चक्रिरे ।

व्याख्या—सः = रघुः । शरैः = बाणैः । उत्सवाश्च संकेताश्च उत्सवसंकेताः तान्=तन्नामकान् गणान् । विरतः = शान्तः, उत्सवः=हर्षः, येषां ते विरतोत्सवाः, तान् । कृत्वा=विधाय । बाह्वोः=भुजयोः । जयस्योदाहरणम्=जयोदाहरणम् = तत् विजयख्यापकप्रबन्धम् । किन्नरान्=गन्धर्वान् । गापयामास =गानं कारयामास ।

समा०—विरत उत्सवो येषां ते विरतोत्सवाः, तान् विरतोत्सवान् । उदाह्रियते अनेनेत्युदाहरणम्, जयस्योदाहरणं जयोदाहरणम्, तत् जयोदाहरणम् ।

अभि० - रघुः उत्सवसंकेताख्यान्गणान् विजित्य हृतहर्षांश्च तान् कृत्वा स्वविजयख्यापकं प्रबन्धं गन्धर्वान् गापयामास ।

हिन्दी—रघु ने हिमालय पर्वत पर उत्सवसंकेत नामक गणों को जीत कर उनके हर्षोत्सवों को फीका बनाकर अपने पराक्रम का गुणगान गन्धर्वों से कराया ॥७८॥

परस्परेण विज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु ।
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा ॥७९॥

सञ्जीविनी—तेषु गणेषूपायनयुक्ता पाणयो येषां तेषु सत्सु परस्परेणान्योन्यं राज्ञा हिमवतः सारो धनरूपो विज्ञातः । हिमाद्रिणापि राज्ञः सारो बलरूपो विज्ञातः । एतेन तत्रत्यवस्तूनामनर्घ्यत्वं गणानामभूतपूर्वश्च पराजय इति ध्वन्यते ॥७९॥

अन्वयः—तेषु उपायनपाणिषु, परस्परेण, राज्ञा, हिमवतः, सारः हिमाद्रिणा, च, राज्ञः सारः, विज्ञातः ।

वाच्य०—परस्परम् राजा हिमवतः सारम्, हिमवांश्च राज्ञः सारम् विज्ञातवान् ।

व्याख्या—तेषु=उत्सवसंकेताख्येषु गणेषु । उपायनानि=उपहाराः पाणिषु =हस्तेषु येषां त उपायनपाणयः, तेषु उपायनपाणिषु सत्सु । परस्परेण=अन्योन्यम् । राज्ञा = रघुणा । हिमोस्यास्तीति हिमवान् तस्य = हिमालयस्य, सारः =धनरूपः, हिमवता = हिमालयेन च । राज्ञः=रघोः, सारः = बलरूपः । विज्ञातः = बुद्धः ।

समा०—उपायनानि पाण्योर्येषां ते उपायनपाणयः, तेषु उपायनपाणिषु ।

अभि०—यदा पराभूता उत्सवसंकेताख्यगणाः हस्तेषूपायनानि आदाय रघुसंमुखमागतास्तदा रघुणा हिमालयस्य धनरूपा समृद्धिर्विज्ञाता । हिमवतापि युद्धक्रियया रघोर्बलं विज्ञातम् ।

हिन्दी—जब कि हारे हुए उत्सवसंकेतगण राजा रघु के सामने हाथों में उपहार लेकर प्रस्तुत हुए तब राजा ने हिमालय का समृद्धिरूप सार जाना तथा हिमालय ने भी राजा का बलरूप सार जाना ॥७९ ।

तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः ।
पौलस्त्यतुलितस्याद्रेरादधान इव ह्रियम् ॥८०॥

सञ्जीविनी—स रघुस्तत्र हिमाद्रावक्षोभ्यमधृष्यं यशोराशिं निवेश्य निधाय । पौलस्त्येन रावणेन तुलितस्य चालितस्याद्रेः कैलासस्य ह्रियमादधानो जनयन्निव । अवरुरोहावततार । कैलासमगत्वैव प्रतिनिवृत्त इत्यर्थः । नहि शूराः परेण पराजितमभियुज्यन्त इति भावः ॥८०॥

अन्वयः—सः, तत्र, अक्षोभ्यम्, यशोराशिम्, निवेश्य, पौलस्त्यतुलितस्य अद्रेः, ह्रियम्, आदधानः, इव अवरुरोह ।

वाच्य०—तेन आदधानेन इव अवरुरुहे ।

व्याख्या—सः=रघुः । तत्र=हिमालये । क्षोभितुं योग्यं क्षोभ्यं, न क्षोभ्यम्

अक्षोभ्यम् = अधृष्यम्, स्थिरमित्यर्थः। यशसां राशिर्यशोराशिस्तम् = कीर्ति-समूहम्। निवेश्य = निधाय। पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् पौलस्त्यः = रावणः, तेन तुलितः = चालितः इति पौलस्त्यतुलितः, तस्य। अद्रेः = पर्वतस्य कैला-सस्य। ह्रियम् = लज्जाम्। आदधानः = जनयन्निव। अवरुरोह = अवततार।

समा०—क्षोभितुं योग्यः क्षोभ्यः, न क्षोभ्यः अक्षोभ्यः, तम् अक्षोभ्यम्। यशसां राशिः यशोराशिः, तं यशोराशिम्। पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् पौल-स्त्यः, पौलस्त्येन तुलितः पौलस्त्यतुलितः, तस्य पौलस्त्यतुलितस्य।

अभि०—स रघुः तत्र हिमाद्रौ स्थिरं यशोराशिं संस्थाप्य रावणोत्थापितः पराजितोऽयम् इति निन्दाविचारेण कैलाससमीपमगत्वैव प्रतिनिवृत्तः। तेन च ह्रीरिवोत्पादिता कैलासस्य।

हिन्दी—रघु हिमालय पर्वत पर अपने स्थिर यश को स्थापित करके 'रावण से उठाया हुआ यह पर्वत तो पराजित है' इस निन्दा के विचार से कैलास पर न जाकर उसे लज्जित करते हुए वहां से नीचे उतर पड़े ॥८०॥

चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ॥८१॥

सञ्जीविनी—तस्मिन्रघौ तीर्णा लौहित्या नाम नदी येन तस्मिंस्तीर्ण-लौहित्ये सति। प्राग्ज्योतिषाणां कामरूपाणां जनपदानामीश्वरस्तस्य रघो-र्गजानामालानतां गजबन्धनस्तम्भतां प्राप्तैः कालागुरुद्रुमैः कृष्णागुरुवृक्षैः सह चकम्पे कम्पितवान् ॥८१॥

अन्वयः—तस्मिन्, तीर्णलौहित्ये, सति, प्राग्ज्योतिषेश्वरः, तद्गजालानतां प्राप्तैः, कालागुरुद्रुमैः सह चकम्पे।

वाच्य०—प्राग्ज्योतिषेश्वरेण चकम्पे।

व्याख्या—तस्मिन् = रघौ। तीर्णा लौहित्या=तन्नामकनदीविशेषः येन सः तीर्णलौहित्यः, तस्मिन् सति। प्राग्ज्योतिषाणाम् ईश्वरः प्राग्ज्योतिषेश्वरः= कामरूपदेशाधिपतिः। तस्य = रघोर्गजाः = हस्तिनः, तद्गजाः, आलानस्य= द्विपबन्धनस्तम्भस्य भावः आलानता, तद्गजानामालानता ताम् सेनागजबन्धन-

स्तम्भत्वं, प्राप्तैः=गतैः। कालागुरूणां द्रुमाः कालगुरुद्रुमाः, तैः = कालागुरु-वृक्षैः। सह = सार्धम्। चकम्पे = कम्पितवान्।

समा०—तीर्णा लौहित्या येन सः तीर्णलौहित्यः, तस्मिन् तीर्णलौहित्ये। प्राग्ज्योतिषाणामीश्वरः प्राग्ज्योतिषेश्वरः। तस्य गजाः तद्गजाः, तद्गजानामालानानि तद्गजालानानि, तद्गजालानानां भावः तद्गजालानता, तां तद्गजालानताम्। कालाश्च ते अगुरुद्रुमाश्च कालागुरुद्रुमाः, तैः कालागुरुद्रुमैः।

अभि०—हिमाद्रिविजयानन्तरं लौहित्याख्यानदीमुत्तीर्णेन रघुणा कामरूपाधिपतिहृदये तथैव कम्पः कृतः यथा तद्गजैः स्वबन्धनस्तम्भतां नीतेषु कालागुरुद्रुमेषु।

हिन्दी–हिमालयविजय के पश्चात्, लौहित्य नामक नदी को पार करके रघुने कामरूपाधिपति के हृदय में वैसा ही कम्प उत्पन्न किया जैसा कि उसके गजों ने अपने बन्धन स्तम्भभूत कालागुरु वृक्षों में ॥८१॥

न प्रसेहे स रुद्धार्कमधारावर्षदुर्दिनम्।
रथवर्त्मरजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनीम् ॥८२॥

सञ्जीविनी—स प्राग्ज्योतिषेश्वरो रुद्धार्कमावृतसूर्यम्। अधारावर्षं च तद् दुर्दिनं च धारावृष्टिं विना दुर्दिनीभूतम्। अस्य रघो रथवर्त्मरजोऽपि न प्रसेहे। पताकिनीं सेनां तु कुत एव प्रसेहे। न कुतोऽपीत्यर्थः ॥८२॥

अन्वय—सः, रुद्धार्कम्, अधारावर्षदुर्दिनम्, अस्य, रथवर्त्मरजः अपि, न, प्रसेहे, पताकिनीम्, तु, कुतः, एव।

वाच्य०—तेन अस्य रथवर्त्मरजः अपि न प्रसेहे, पताकिनी तु कुतः।

व्याख्या—सः=कामरूपदेशाधिपतिः। रुद्धः = प्रतिरुद्धः आवृत इति यावत्, अर्कः = सूर्यः येन तत् रुद्धार्कम्। न विद्यते धारावर्षं=धारावृष्टिः यस्मिन् तत् अधारावर्षं, तादृशं यत् दुर्दिनम्=मेघाच्छन्नदिवसम् इति अधारावर्षदुर्दिनम्, 'मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्' इत्यमरः। अस्य = रघोः। रथानां = स्यन्दनानां, वर्त्म=मार्गः रथवर्त्म, तत्र विद्यमानं रजः, तत्। न नैव, प्रसेहे = सोढवान्। पताका विद्यतेऽस्याः पताकिनी=सेना, ताम् तु कुत एव प्रसेहे, न कुतोऽपीत्यर्थः।

समा०—रुद्धः अर्कः येन तत् रुद्धार्कम्, तत् रुद्धार्कम् । धाराणां वर्षो धारावर्षम्, न विद्यते धारावर्षं यस्मिन् तत् अधारावर्षम्, अधारावर्षञ्च तद् दुर्दिनञ्च अधारावर्षदुर्दिनम्, तत् अधारावर्षदुर्दिनम् । रथानां वर्त्म रथवर्त्म, रथवर्त्मनः रजः रथवर्त्मरजः, तत् रथवर्त्मरजः । पताका अस्या अस्तीति पताकिनी, तां पताकिनीम् ।

अभि०—कामरूपदेशाधिपतिः सूर्यमण्डलावरणकारिणीं वृष्टिं विना दुर्दिवसं कुर्वतीं रघुसेनाधूलिमपि दूरतो दृष्ट्वा न सहनं चकार । भीत इत्यर्थः । सेनां तु कुत एव ।

हिन्दी—कामरूपदेश का स्वामी सूर्य को भी ढक देने वाली बिना वर्षा के दुर्दिन कर देनेवाली सेना की धूलि को भी सहन न कर सका अत्यन्त भीत हो गया, फिर सेना को तो कैसे सहन करता ॥८२॥

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम् ।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः ॥८३॥

सञ्जीविनी—कामरूपाणां नाम देशानामीशोऽत्याखण्डलविक्रममतीन्द्रपराक्रमं तं रघुम् भिन्नाः स्रवन्मदाः कटा गण्डा येषां तैर्नागैर्गजैः साधनैर्भेजे । नागान्दत्वा शरणं गत इत्यर्थः । कीदृशैर्नागैः । यैरन्यान्रघुव्यतिरिक्तान्नृपानुपरुरोध । शूराणामपि शूरो रघुरिति भावः ॥८३॥

अन्वयः—कामरूपाणाम्, ईशः, अत्याखण्डलविक्रमम्, तम्, भिन्नकटैः, नागैः, भेजे, यैः, अन्यान्, उपरुरोध ।

वाच्य०—कामरूपाणाम् ईशेन अत्याखण्डलविक्रमः स भेजे । यैः अन्ये उपरुरुधिरे ।

व्याख्या—कामरूपाणाम् = तन्नामकदेशविशेषाणाम्, ईशः=स्वामी । आखण्डलस्य=इन्द्रस्य, विक्रमः=पराक्रमः, इत्याखण्डलविक्रमः सोऽतिक्रान्तो येन अत्याखण्डलविक्रमः, तम् = रघुम् । भिन्नाः=पृथग्भूताः, कटाः=गण्डप्रदेशाः येषां ते भिन्नकटाः, तैः नागैः=गजैः । भेजे = सिषेवे । गजानुपायनीकृत्य शरणागत इत्यर्थः । यैः = नागैः । अन्यान् शत्रून् । उपरुरोध = निराकरोत् ।

समा०—आखण्डलस्य विक्रमः आखण्डलविक्रमः, आखण्डलविक्रमम् अति-

क्रान्तः अत्याखण्डलविक्रमः, तम् अत्याखण्डलविक्रमम् । भिन्नाः कटाः येषां ते भिन्नकटाः, तैः भिन्नकटैः ।

अभि०—कामरूपदेशाधिपतिः इन्द्राधिकपराक्रमम् रघुम् तान् गजानुपायनीकृत्य शरणं गतः यैः पूर्वम् अन्यशत्रून् जितवान् ।

हिन्दी—कामरूपदेश का राजा इन्द्र से भी अधिक पराक्रम वाले रघु के आगे उन हाथियों को भेंट में लेकर उपस्थित हुआ जिनसे शत्रुओं को जीता करता था ॥८३॥

कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयोः ॥८४॥

सञ्जीविनी—कामरूपेश्वरो हेमपीठस्याधिदेवतां तस्य रघोः पादयोश्छायां कनकमयपादपीठव्यापिनीं कान्तिं रत्नान्येव पुष्पाणि तेषामुपहारेण समर्पणेनानर्चार्चयामास ॥८४॥

अन्वयः—कामरूपेश्वरः, हेमपीठाधिदेवताम्, तस्य, पादयोः, छायाम्, रत्नपुष्पोपहारेण, आनर्च ।

वाच्य०—कामरूपेश्वरेण,हेमपीठाधिदेवता, तस्य, पादयोः, छाया, रत्नपुष्पोपहारेण, आनर्चे ।

व्याख्या—कामरूपाणाम्=तन्नामकदेशविशेषाणाम्, ईश्वरः=राजा । हेम्नः =सुवर्णस्य, पीठमासनमिति हेमपीठम्, तस्याधिदेवता=अधिष्ठात्री देवी हेमपीठाधिदेवता, ताम् । तस्य=रघोः । पादयोः=चरणयोः । छायाम्=कांतिम् । रत्नान्येव हीरकादीन्येव पुष्पाणि रत्नपुष्पाणि, तेषामुपहारः=उपायनम् । रत्नपुष्पोपहारस्तेन । आनर्च=पूजयामास ।

समा०—कामरूपाणामीश्वरः कामरूपेश्वरः । हेम्नः पीठं हेमपीठम्, हेमपीठस्य अधिदेवता हेमपीठाधिदेवता, तां हेमपीठाधिदेवताम् । रत्नान्येव पुष्पाणि रत्नपुष्पाणि, रत्नपुष्पाणामुपहारः रत्नपुष्पोपहारः, तेन रत्नपुष्पोपहारेण ।

अभि०—कामरूपाधिपतिः सुवर्णसिंहासनाधिष्ठात्रीं रघुपादच्छायां रत्नरूपैः पुष्पैः पूजयामास ।

हिन्दी—कामरूप देश के राजा ने स्वर्णसिंहासन की अधिष्ठात्री रघु की पादकान्ति को रत्नरूपी पुष्पों से पूजा ॥८४॥

इति जित्वा दिशो जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम् ।
रजो विश्रामयन्राज्ञां छत्रशून्येषु मौलिषु ॥८५॥

सञ्जीविनी—जिष्णुर्जयशीलः । "ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः" इति ग्स्नुप्रत्ययः । स रघुरितीत्थं दिशो जित्वा रथैरुद्धतं रजश्छत्रशून्येषु । रघोरेकच्छत्रकत्वादिति भावः । राज्ञां मौलिषु किरीटेषु । 'मौलिः किरीटे धम्मिल्ले चूडाकङ्केलिमूर्धजे' इति हैमः । विश्रामयन् संक्रामयन्नित्यर्थः । न्यवर्तत निवृत्तः ॥८५॥

अन्वयः—जिष्णुः, इति, दिशः, जित्वा, रथोद्धतम्, रजः छत्रशून्येषु, राज्ञाम्, मौलिषु, विश्रामयन्, न्यवर्तत ।

वाच्य०—जिष्णुना, तेन, इति, दिशः, जित्वा, रथोद्धतम्, रजः, मौलिषु, विश्रामयता, न्यवृत्यत ।

व्याख्या—जिष्णुः=जयनशीलः । इति=एवम् । दिशः=काष्ठाः । जित्वा =विजयीकृत्य । रथेभ्य उद्धतम् रथोद्धतं, तत्=स्यन्दनोत्थापितम्, रजः=धूलिम् । छत्रैः=आतपत्रैः, शून्यानि=रहितानि छत्रशून्यानि, तेषु । राज्ञाम्=नृपाणाम् । मौलिषु=मस्तकेषु, विश्रामयन्=संक्रामयन्, न्यवर्तत =निववृते ।

समा०—रथेन उद्धतं रथोद्धतम्, तत् रथोद्धतम् । छत्रेण शून्याः छत्रशून्याः, तेषु छत्रशून्येषु ।

अभि०—एवं रघुः सर्वा अपि दिशो विजित्य पराजितेषु छत्ररहितराजशिरःसु निजसेनोत्थापितां धूलिं विश्रामयन् दिग्विजयान्निवृत्तः ।

हिन्दी—इस प्रकार सम्पूर्ण दिशाओं को जीत कर रघु पराजित राजाओं के छत्ररहित सिरों पर अपनी सेना की धूलि गिराते हुए दिग्विजय से लौटे ॥८५॥

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणाम् ।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥८६॥

सञ्जीविनी—सः रघुः सर्वस्वं दक्षिणा यस्य यस्मिन्वा तं सर्वस्वदक्षिणम् । 'विश्वजित्सर्वस्वदक्षिणः' इति श्रुतेः । विश्वजितं नाम यज्ञमाजह्रे । कृतवानित्यर्थः । युक्तं चैतदित्याह—सतां साधूनाम । वारिमुचां मेघानामिव । आदानमर्जनं विसर्गाय त्यागाय हि । पात्रविनियोगायेत्यर्थः ॥ ८६ ॥

अन्वयः—सः सर्वस्वदक्षिणम्, विश्वजितम्, यज्ञम्, आजह्रे, हि, सताम्, वारिमुचाम्, इव, आदानम्, विसर्गाय भवतीति शेषः।

वाच्य०—तेन, सर्वस्वदक्षिणः विश्वजित्, यज्ञः, आजह्रे, आदानेन, भूयते।

व्याख्या—सः = रघुः। सर्वं स्वं = सकलं दक्षिणा यस्य तादृशम्। विश्वजितम् = विश्वजिन्नामकम्, यज्ञम् = मखम्। आजह्रे = कृतवान्। हि = यतः। सताम् = सज्जनानाम्। वारि = जलं मुञ्चन्तीति वारिमुचो मेघास्तेषाम्। इव = यथा। आदानम् = ग्रहणम्। विसर्गाय = त्यागाय। भवतीति शेषः।

समा०—सर्वञ्च तत् स्वञ्च सर्वस्वम्, सर्वस्वं दक्षिणा यस्य सः सर्वस्वदक्षिणः, तं सर्वस्वदक्षिणम्। वारि मुञ्चन्तीति वारिमुचः, तेषां वारिमुचाम्।

अभि०—दिग्विजयानन्तरं रघुः विश्वजिन्नामकं यज्ञं कर्तुमारेभे। यतः यथा मेघाः समुद्राज्जलमादाय तद्वर्षणेन विश्वहितं कुर्वन्ति तथैव सज्जनानामपि द्रव्यसञ्चयः परहितार्थं भवति।

हिन्दी—दिग्विजय के पश्चात् रघु ने विश्वजित् नामक यज्ञ आरम्भ किया जिसमें सम्पूर्ण धन ही दक्षिणा के रूप में दिया जाता था। जैसे मेघ समुद्र से जल ग्रहण करके वृष्टि द्वारा जनता का लाभ करते हैं उसी प्रकार सज्जनों का द्रव्यसञ्चय भी परोपकार के लिये ही होता है॥ ८६॥

सत्रान्ते सचिवसखः पुरस्क्रियाभि-
गुर्वीभिः शमितपराजयव्यलीकान्।
काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान्
राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने॥ ८७॥

सञ्जीविनी—काकुत्स्थो रघुः सत्रान्ते यज्ञान्ते। 'सत्रमाच्छादने यज्ञे सदादाने धनेऽपि च' इत्यमरः। सचिवानामभात्यानां सखेति सचिवसखः तम्। 'सचिवो भृतकेऽमात्ये' इति हैमः। तेषामत्यन्तानुसरणद्योतनार्थं राज्ञः सखित्वव्यपदेशः। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्'। गुर्वीभिर्महतीभिः। 'गुरुर्महत्याङ्गिरसे पित्रादौ धर्मदेशके' इति हैमः। पुरस्क्रियाभिः पूजाभिः शमितं पराजयेन व्यलीकं दुःखं वैलक्ष्यं वा येषां तान्। 'दुःखे वैलक्ष्ये व्यलीकम्' इति यादवः। चिरविरहेण-

त्सुका उत्कण्ठिता अवरोधा अन्तःपुराङ्गना येषां तान् । राज्ञोऽपत्यानि राजन्याः क्षत्रियास्तान् 'राजश्वशुराद्यत्' इत्यपत्यार्थे यत्प्रत्ययः । 'मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्' इत्यमरः । स्वपुरं प्रति निवृत्तये प्रतिगमनायानुमेनेऽनुज्ञातवान् । प्रहर्षिणीवृत्तमेतत् । तदुक्तम्—'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति ॥ ८७ ॥

अन्वयः—काकुत्स्थः, सत्रान्ते, सचिवसखः, सन्, गुर्वीभिः, पुरस्क्रियाभिः, शमितपराजयव्यलीकान्, चिरविरहोत्सुकावरोधान्, राजन्यान्, स्वपुरनिवृत्तये, अनुमेने ।

वाच्य०—काकुत्स्थेन, सचिवसखेन, सता, शमितपराजयव्यलीकाः, चिरविरहोत्सुकावरोधाः, राजन्याः, अनुमेनिरे ।

व्याख्या—ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थः=ककुत्स्थवंश्यो रघुः । सत्रस्य = मखस्यान्तस्तस्मिन् = यज्ञान्ते । सचिवानाममात्यानां सखा मित्रं सचिवसखः=अमात्यसहायः सन् । गुर्वीभिः=महतीभिः, पुरस्क्रियाभिः=पूजाभिः । शमितं दूरीकृतं, पराजयेन = पराभवेन, व्यलीकं=दुःखं येषां ते शमितपराजयव्यलीकास्तान् । चिरं विरहश्चिरविरहः=चिरकालवियोगः, तेन उत्सुकः=उत्कण्ठितः, अवरोधः=अन्तःपुरवर्गः येषां ते चिरविरहोत्सुकावरोधास्तान्, राजन्यान्=राज्ञोऽपत्यानि राजन्याः क्षत्रियास्तान् 'राजश्वशुराद्यत्' इति यत् । स्वस्य पुराणि स्वपुराणि, तानि प्रति निवृत्तिः स्वपुरनिवृत्तिः, तस्यै=स्वनगरगमनाय, अनुमेने = अनुज्ञातवान् ।

समा०—सत्रस्य अन्तः सत्रान्तः, तस्मिन् सत्रान्ते । सचिवानां सखा सचिवसखः । पराजयेन व्यलीकं येषां ते पराजयव्यलीकाः, तान् पराजयव्यलीकान् । चिरं विरहः चिरविरहः, चिरविरहेण उत्सुकः अवरोधः येषां ते चिरविरहोत्सुकावरोधाः, तान् चिरविरहोत्सुकावरोधान् । स्वस्य पुरं स्वपुरं, स्वपुरं प्रति निवृत्तिः स्वपुरनिवृत्तिः, तस्यै स्वपुरनिवृत्तये ।

अभि०—रघुः विश्वजिन्नामकयज्ञानन्तरम्, अमात्यानुमत्या पराजयखिन्नान् विरहितान्तःपुरान् राज्ञः पुरस्कारादिना विशेषसंमानितान् कृत्वा स्वनगरगमनं प्रति अनुमतिं ददौ ।

हिन्दी—रघु ने विश्वजित् नामक यज्ञ करने के अनन्तर अमात्यों की अनु-

मति से, विशेष आदर सत्कार द्वारा, यज्ञ में आए हुए पराजित राजाओं का दुःख शमन किया तथा, उनके अन्तःपुर चिरकाल से विरहित हैं इस दृष्टि से उन्हें स्वनगरगमन की अनुमति प्रदान की ॥८७॥

ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं,
सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम् ।
प्रस्थानप्रणतिभिरङ्गुलीषु चक्रु-
र्मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम् ॥८८॥

सञ्जीविनी—ते राजानः रेखा एव ध्वजाश्च कुलिशानि चातपत्राणि च । ध्वजाद्याकाररेखा इत्यर्थः, तानि चिह्नानि यस्य तत्तथोक्तम् । प्रसादेनैव लभ्यं प्रसादलभ्यम् । सम्राजः सार्वभौमस्य रघोश्चरणयुगं प्रस्थाने प्रयाणसमये याः प्रणतयो नमस्कारास्ताभिः करणैः अंगुलीषु मौलिषु केशबन्धेषु याः स्रजो माल्यानि ताभ्यः च्युतैः मकरन्दैः पुष्परसैः 'मकरन्दः पुष्परसः' इत्यमरः । रेणुभिः परागैः 'परागः सुमनोरजः' इत्यमरः । गौरं गौरवर्णं चक्रुः ॥८८॥

अन्वयः—ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नम्, प्रसादलभ्यम्, सम्राजः, चरणयुगम्, प्रस्थानप्रणतिभिः, अंगुलीषु, मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम्, चक्रुः ।

वाच्य०—तैः सम्राजः चरणयुगम् मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम् चक्रे ।

व्याख्या—ते = राजानः, ध्वजश्च = पताका च, कुलिशञ्च = वज्रञ्च "वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः" इत्यमरः । आतपात्त्रायत इत्यातपत्रम् = छत्रम् च ध्वजकुलिशातपत्राणि, रेखाः = लेखा एव ध्वजकुलिशातपत्राणि इति रेखाध्वजकुलिशातपत्राणि, तानि चिह्नानि लक्षणानि यस्य तत्तथोक्तम् । प्रसादेन = प्रसन्नतयैव "प्रसादस्तु प्रसन्नता" इत्यमरः । लभ्यम्=प्राप्यम् इति प्रसादलभ्यम् । सम्यग् राजतेऽसौ सम्राट्, तस्य सम्राजः = सार्वभौमस्य रघोः । चरणयोः =पादयोर्युगं=युगलम् । प्रस्थाने =प्रस्थानकाले, याः प्रणतयो नमस्काराः प्रस्थानप्रणतयः, ताभिः । अङ्गुलीषु = पादाङ्गुलीषु । मकरन्दश्च= पुष्परसश्च रेणवश्च = परागाश्च मकरन्दरेणवः, मौलिषु = मस्तकेषु, स्रजः = माला इति मौलिस्रजः, ताभ्यश्च्युताः =पृथग्भूता-इति मौलिस्रक्च्युताः, मौलिस्रक्च्युता मकरन्दरेणवः इति मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणवः, तैः गौरं=गौरवर्णम्, चक्रुः = कृतवन्तः ।

समा०—ध्वजाश्च कुलिशानि च आतपत्राणि च ध्वजकुलिशातपत्राणि, रेखा एव ध्वजकुलिशातपत्राणि रेखाध्वजकुलिशातपत्राणि, तानि चिह्नानि यस्य तत् रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नम्, तत् रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नम् । प्रसादेन लभ्यं प्रसादलभ्यम्, तत् प्रसादलभ्यम् । चरणयोर्युगं चरणयुगम्, तत् चरणयुगम् । प्रस्थाने प्रणतयः प्रस्थानप्रणतयः, ताभिः प्रस्थानप्रणतिभिः । मौलिषु स्रजः मौलिस्रजः, मौलिस्रग्भ्यश्च्युताः मौलिस्रक्च्युताः, मकरन्दाश्च रेणवश्च मकरन्दरेणवः, मौलिस्रक्च्युताश्च ते मकरन्दरेणवश्च मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणवः, मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुभिः गौरं मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम्, तत् मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम् ।

अभि०—यज्ञावसाने लब्धगृहगमनानुमतयो राजानः प्रस्थानकालिकप्रणतिभिः, रघोश्चरणयुगलं शिरोभिः पस्पृशुः, तदा च तेषां मुकुटस्थमालाभ्यो निपतितैः पुष्परसैः परागैश्च रघुपादाङ्गुलयो गौरवर्णाः सञ्जाताः ।

हिन्दी—यज्ञ की समाप्ति पर अपने अपने नगरों में जाने की अनुमति प्राप्त करके राजा लोग प्रस्थानकालिक नमस्कारों के द्वारा रघु के चरणकमलों को अपने मस्तकों से स्पर्श करने लगे, जिससे उनके मुकुटों की मालाओं से गिरने वाले पुष्परस तथा पराग ने रघु की पादाङ्गुलियों को गौर बना दिया ॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां
छात्रोपयोगिनीव्याख्यायां रघुवंशे महा-
काव्ये रघुदिग्विजयो नाम
चतुर्थः सर्गः ।

महाकविकालिदासप्रणीत

रघुवंश-महाकाव्य

पंचमसर्ग

पंचमसर्ग का कथासार

महर्षि वरतन्तु का शिष्य कौत्स सम्पूर्ण विद्या प्राप्तकर गुरुदक्षिणा देने के लिये धन चाहता हुआ राजा रघु के पास तब पहुँचा जब विश्वजित् यज्ञ में राजा अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दे चुका था। सोने-चांदी के पात्र रह नहीं गये थे। अत: मिट्टी के बर्तनों में स्वागत की सामग्री लेकर यशस्वीराजा ने विद्वान् अतिथि का स्वागत किया और विधिवत् पूजा करके आसन पर बैठाकर विनम्रतापूर्वक मुनि से कहा—

हे तीक्ष्णबुद्धि मुने! जैसे संसार सूर्य से जीवन प्राप्त करता है ऐसे ही आपने जिनसे समस्त विद्याएँ पाई हैं वे मंत्रद्रष्टा ऋषियों के अग्रणी आपके गुरु कुशलपूर्वक हैं? देवराज इन्द्र के आसन को भी हिला देनेवाली उनकी शारीरिक, वाचिक और मानसिक तपस्या में कोई बाधा तो नहीं आ रही ?

शीतल छाया द्वारा थकान मिटानेवाले और आलवाल आदि विविध उपायों से सन्तान की तरह पालेपोसे आपके आश्रम के वृक्षों को वायु आदि द्वारा कोई क्षति तो नहीं पहुँचती ? यज्ञादि के निमित्त लाये हुए कुशों को खाने पर भी स्नेह के कारण जिन्हें रोका नहीं जाता और मुनियों की गोद में ही जिनका प्रसव हो जाता है वे मृगियों के बच्चे तो स्वस्थ हैं ?

जिनसे आप नित्य स्नानादि और पितरों का तर्पण करते हैं तथा जिनके किनारों पर बीन-बीन कर इकट्ठे किये अन्न का छठा भाग राजकर के लिये रखा रहता है, वे जलों के घाट तो सुरक्षित हैं ? जिससे आप लोग अपना जीवन निर्वाह करते हुए समय-समय पर आये हुए अतिथियों का भी सत्कार करते हैं उस नीवारादि अन्न को जंगली पशु नष्ट तो नहीं कर रहे हैं ? क्या आपको महर्षि ने प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थाश्रम में प्रवेश की अनुमति दे दी है ? क्योंकि अब आपकी आयु सबका भरणपोषण करनेवाले इस आश्रम में जाने योग्य हो चुकी है।

आपके आगमन से मेरी आत्मा तब तक तृप्त नहीं होगी जब तक आपके आदेश की प्रतीक्षा करता हुआ मैं यह न जान लूं कि आपने गुरु जी के आदेश से या स्वयं अपनी इच्छा से मुझे किसलिये कृतार्थ किया।

स्वागत के लिये लाये हुए मिट्टी के पात्रों से ही दक्षिणा-प्राप्ति के विषय में निराश हुआ कौत्स राजा रघु की उदार वाणी सुनकर बोला——

हे राजन् हम लोग सब तरह से कुशल हैं। सूर्य के रहते जैसे अन्धकार की कल्पना ही नहीं की जा सकती ऐसे ही तुम जैसे प्रजावत्सल शासक के रहते किसीका कोई अनिष्ट कैसे हो सकता है ? पूजनीय जनों के प्रति भक्ति की भावना रखना आपके वंशजों की परम्परा रही है। आपकी श्रद्धा उनसे भी आगे बढ़ी है। मुझे दुःख है कि मैं समय बीत जाने पर याचना हेतु यहाँ आया हूं। वनवासियों द्वारा दाने निकाल लेने पर जैसे अन्न का ठूंठ रह जाता है ऐसे ही सत्पात्रों को सर्वस्व देकर आप भी अकिंचन रह गये हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी के एकछत्र राजा होकर भी यज्ञ करके आपका अकिंचन होना उचित ही है क्योंकि देवताओं द्वारा क्रमसे सारा अमृत पी लेने के बाद ही तो चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ने लगती हैं।

हे राजन् ! मुझे गुरुदक्षिणा निमित्त धन अर्जित करने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है। अतः मैं इसके लिये अन्यत्र प्रयत्न करूंगा। आपका कल्याण हो। बरस कर रिक्त हुए बादल से चातक भी पानी नहीं मांगता।

इतना कहकर चलने को उद्यत हुए कौत्स से राजा ने कहा—हे विद्वन् ! आपने गुरुदक्षिणा में क्या देना है और कितना देना है ?

विश्वजित्-जैसे विशिष्ट यज्ञ करने पर भी अभिमान जिसे छू तक नहीं गया है ऐसे वर्णाश्रमों के रक्षक उस राजा के वचन सुनकर ब्रह्मचारी रुक गया और बोला—विद्याध्ययन समाप्त कर मैंने गुरु से दक्षिणा देने की आज्ञा चाही, किन्तु उन्होंने चिरकाल तक की मेरी भक्ति को ही पर्याप्त समझा। किन्तु मुझे सन्तोष न हुआ, मैं पुनः गुरुदक्षिणा का आग्रह करने लगा। इसपर रुष्ट होकर गुरुजी ने मेरी धनहीनता का विचार न करते हुए कह दिया——मैंने तुम्हें १४ विद्याएं पढ़ाई हैं। अतः १४ करोड़ स्वर्णमुद्रा दे दो। हे राजन् ! तुम्हारे पूजा के पात्रों से ही मैं समझ गया हूं कि तुम केवल नाम के ही प्रभु रह गये हो। मेरी मांग बहुत बड़ी है, अतः मैं तुमसे आग्रह नहीं कर सकता।

विद्वान् ब्राह्मण के वचन सुनकर तेजस्वी सम्राट् रघु ने फिर कहा—हे मुने ! एक शास्त्रज्ञ विद्वान् गुरुदक्षिणा के लिये द्रव्य की याचना करने राजा रघु के पास आया। वहां उसकी कामना पूरी नहीं हो सकी और वह दूसरे दाता के पास चला गया। यह अपयश मेरे लिये नया होगा जिसे मैं सहन न कर सकूंगा। अतः आप कृपाकर दो तीन दिन मेरी अतिथिशाला में रुकें। मैं आपके लिये द्रव्य का प्रयत्न करता

हूं। सत्यवक्ता रघु के कथन पर विश्वास करके कौत्स रुक गया और रघु ने सोचा पृथ्वी का सारा सर्वस्व लेकर तो मैंने दान कर दिया; अब इतनी बड़ी धनराशि के लिये कुबेर पर चढ़ाई की जाय। क्योंकि जैसे वायु बादलों को जहां चाहे वहाँ ले जाता है वैसे ही वसिष्ठ जी के मंत्रों के अभिषेक के प्रभाव से राजा रघु का रथ भी जल, स्थल और आकाश में बेरोकटोक जा सकता था।

उस रात शस्त्रों से सुसज्जित होकर रघु रथ पर ही सोया जैसे प्रातः किसी साधारण सामन्त को जीतने जाना हो। जब वह सोकर उठा तो कोश-रक्षकों ने सूचना दी कि रात में आकाश से हुई सुवर्ण की वर्षा से खजाना भर गया है। राजा ने वह सारी सुवर्ण-राशि कौत्स को दे दी। परन्तु कौत्स अपनी गुरुदक्षिणा से कुछ भी अधिक लेने को तैयार न था। अयोध्यावासी उन दोनों के चरित्र को श्रद्धा से देख रहे थे। एक याचक की चाह से कई गुना अधिक देनेवाला दाता और दूसरा अपनी आवश्यकता से रत्तीभर भी अधिक न लेनेवाला याचक।

इसके बाद ऊंटों और खच्चरों पर सुवर्णराशि लादकर चलते हुए कौत्स ने राजा को आशीर्वाद दिया—हे राजन् यह पृथ्वी तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूरी करती है। इसमें क्या आश्चर्य है ? तुम तो अपने प्रभाव से स्वर्ग को भी दुह लेते हो। ऐसे सामर्थ्यशाली व्यक्ति को कुछ भी आशीर्वाद देना केवल पुनरुक्ति ही होगी। अतः जैसे आपके पिता ने आप-जैसा प्रशंसनीय पुत्र प्राप्त किया ऐसे ही आप भी अपने-जैसा गुणवान् पुत्ररत्न प्राप्त करें। यह आशीर्वाद देकर ब्राह्मण अपने गुरु के पास चल दिया और जैसे संसार सूर्य से प्रकाश पाता है ऐसे ही राजा को पुत्र की प्राप्ति हुई।

ब्राह्म मुहूर्त में रानी ने कार्तिकेय-जैसे तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। अतः ब्रह्म के नाम पर उसका 'अज' नाम रखा गया। जैसे एक दीपक से वैसा ही दूसरा दीपक जलकर प्रकाश करता है उसी प्रकार रूप, गुण, तेजस्विता, पराक्रम और डीलडौल में भी वह ठीक रघु-जैसा ही था। गुरुओं से विधिवत् विद्या प्राप्त कर वह जवान हो गया तो राज्यलक्ष्मी उसे ऐसे चाहने लगी जैसे कोई गम्भीर कन्या पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही हो।

उसी समय विदर्भदेश के राजा भोज ने अपनी बहिन इन्दुमती के स्वयंवर में अज को बुलाने के लिये रघु के पास दूत भेजा। रघु ने भी विदर्भनरेश को अपना कृतसम्बन्धी समझकर और पुत्र को विवाह योग्य जानकर सेना सहित अज को विदर्भ की राजधानी के लिये भेज दिया।

मार्ग में जहाँ-जहाँ युवराज अज का डेरा पड़ता था वहाँ आसपास के लोगों द्वारा लाई गई भेंट से तम्बू भर जाते थे। उद्यानों और क्रीड़ास्थलों की सारी सुविधाएँ वहाँ उपलब्ध हो जाती थीं। ऐसा ही एक पड़ाव नर्मदा के किनारे पड़ा जहाँ मार्ग की धूल से लथपथ सेना को नदी-जल से आर्द्र और नक्तमाल वृक्षों की शीतल वायु से बड़ी शान्ति मिली।

इसी समय एक जंगली हाथी, जिसके गण्डस्थल जल से धुल जाने से अब स्वच्छ हो गये थे किन्तु पानी के ऊपर मद की सुगन्ध से मंडराते भौंरे यह बता रहे थे कि प्रचुर मद बहाता हुआ यह इस जल के अन्दर घुसा है, जल से बाहर निकला। यद्यपि उसके शरीर की धूल साफ हो गई थी, फिर भी पत्थरों से टकराने के कारण पड़ी हुई नीली रेखाओं वाले उसके दांत बता रहे थे कि ऋक्षवान् के तटों में यह दांतों से वप्रक्रीड़ा (मिट्टी खोदना) करता रहा है। अपनी सूंड को फैलाता-सिकोड़ता और चिंघाड़ते हुए पानी को चीरता हुआ वह पहाड़-जैसा हाथी सेवार के समूह को बखेरता हुआ ज्योंही बाहर आने को हुआ उससे पूर्व उसके वेग से नदी का जल किनारे पर आ लगा।

जल से बाहर निकलते ही सेना के पालतू हाथियों को देखकर उसके कपोलों से फिर मदवारि चूने लगा और सप्तपर्ण की-सी उसकी तीव्र गन्ध से सेना के हाथी महावतों के नियन्त्रण से बाहर हो गये। रथों में जुते घोड़े अपने बन्धन तोड़कर इधर-उधर भागने लगे। चारों ओर कोलाहल मच गया। सैनिक महिलाओं को बचाने में जुट गये। अज जानता था कि वन्य हाथी को मारना शास्त्रों में निषिद्ध है, अतः उसे केवल रोकने के लिये उसने एक हलका-सा बाण उसके कपोल पर फेंका। ज्योंही वह बाण उसे लगा त्योंही वह हाथी की देह त्याग कर चमकती कान्तिवाला दिव्य शरीरधारी देवता-सा हो गया। सारी सेना आश्चर्य से उसे देखने लगी।

उसने पहले तो अज पर फूल बरसाये, फिर बोला—मैं प्रियदर्शन नाम के गन्धर्व का पुत्र प्रियंवद हूं। मतङ्ग ऋषि के शाप से हाथी हो गया था। जब मैंने अपने अपराध के लिये क्षमा मांगी तो ऋषि ने कहा था—इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न अज जब अपने बाण से तुम्हारे गण्डस्थल का भेदन करेगा तब तुम शाप से मुक्त होकर अपने दिव्य रूप को प्राप्त करोगे। मैं बहुत काल से आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। आज आपने मुझे शाप से मुक्त कर अनुगृहीत कर दिया। अब यदि इस उपकार के बदले मैंने आपका कोई भला न किया तो मैं कृतघ्न हो जाऊंगा औरमेरा यह दिव्य रूप व्यर्थ होगा। मैं

तुम्हें यह संमोहन नाम का गन्धर्वास्त्र दे रहा हूं जिसके प्रयोग से शत्रु मोहित हो जाते हैं, हिंसा भी नहीं होती और विजय भी हाथ आ जाती है। अतः बिना किसी प्रकार की लज्जा के इसके प्रयोग और संहार की मंत्र-विधि मुझसे सीख लो। तब अज ने नर्मदा का जल हाथ में लेकर उत्तर की ओर मुख करके सब अस्त्रविद्याओं को जानते हुए भी उस संमोहन अस्त्र की प्रक्रिया को ग्रहण किया। इस प्रकार उन दोनों में मित्रता हो गई और दोनों अपने अभीष्ट स्थलों को—एक चैत्ररथ को दूसरा विदर्भ को—चल दिये।

जब अज विदर्भ की राजधानी के पास पहुँचा तो जैसे समुद्र अपनी तरंगरूप भुजाओं से चन्द्रमा का स्वागत करता है ऐसे ही राजा भोज ने प्रसन्न हृदय से उसका स्वागत किया। राजा भोज के व्यवहार से स्वयंवर में आये लोग अज को घर का स्वामी और भोज को अतिथि समझ रहे थे। विदर्भ-नरेश के अधिकारियों ने अज को सुन्दर नये सजाये हुए महल में ठहराया जिसके पूर्व द्वार पर जलकलश रखे गये थे। उस दिव्य भवन में वह ऐसा लग रहा था जैसे कामदेव युवावस्था में वास कर रहा हो। जिसके स्वयंवर में तमाम राजा एकत्रित हुए हैं ऐसी कन्यारत्न को प्राप्त करने की लिप्सा से अज को रात्रि में बड़ी देर में नींद आ पाई और प्रातः काल होते ही वैतालिकों ने उसे जगाने के लिये स्तुतियाँ गानी शुरू कर दीं—

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! उठिये, रात बीत चुकी। विधाता ने इस पृथ्वी के भार को दो भागों में बांटा है जिसके एक भाग को वहन करने के लिये आपके पिता जाग गये हैं; दूसरा आपको संभालना है। रात में जब आप सो जाते हैं तब आपके मुख की शोभा को धारण करनेवाला चन्द्रमा अब फीका पड़ने लगा है। भौंरे कमलों पर मंडराने लगे हैं क्योंकि शीघ्र ही कमल खिल जायेंगे। अतः आप भी आंख खोलें तो आंखों से कमलों का और तारिकाओं से भौंरों का सादृश्य स्पष्ट हो जायगा। प्रातः-कालीन यह सुन्दर वायु खिले हुए कमलों की सुगन्ध लेकर अब तुम्हारे मुख से निकली श्वासों की सुगन्ध लेना चाहता है। जब तक सूर्य उदय नहीं हो पाये उससे पहले ही अरुण ने अन्धकार को नष्ट कर दिया है। हे वीर! तुम-जैसे श्रेष्ठ धनुर्धर के रहते तुम्हारे पिता शत्रुओं का उन्मूलन स्वयं करेंगे क्या? गजशालाओं में हाथियों की सांकलें खनकने लगी हैं, घोड़ों के नथुनों की श्वास से सैन्धव शिलाएँ पसीजने लगी हैं, अर्थात् उनकी भी नींद खुल गई है। हे राजकुमार! सायंकाल तैयार किये फूलों के हार बिखर गये हैं, दीपक की लौ मन्द पड़ने लगी है और तुम्हारा

यह मीठी वाणी-वाला पिंजरे का तोता भी हमारी इन स्तुतियों को दुहराने लगा है।

वैतालिकों की इन स्तुतियों को सुनकर अज शीघ्र ही शय्या छोड़कर ऐसे उठ बैठा जैसे राजहंसों की कलध्वनि से जागा हुआ ऐरावत गङ्गातट को छोड़ देता है। उठकर उसने शास्त्रोक्त विधि से नित्यकर्मों कोसमाप्त किया और कुशल परिचारकों द्वारा उचित वेशभूषा से सजाया गया वह स्वयंवर में स्थित राजसमूह में सम्मिलित हुआ।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

पंचम सर्ग

**तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोशजातम् ।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ॥१॥**

सञ्जीविनी—विश्वजिति विश्वजिन्नाम्न्यध्वरे यज्ञे 'यज्ञः सवोऽध्वरो यागः' इत्यमरः । निःशेषं विश्राणितं दत्तम् 'श्रणु दाने' चुरादिः । कोशानामर्थराशीनां जातं समूहो येन तं तथोक्तम्, 'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' इत्यमरः । 'जातं जनिसमूहयोः' इति शाश्वतः । एतेन कौत्सस्यानवसरप्राप्तिं सूचयति । तं क्षितीशं रघुमुपात्तविद्यो लब्धविद्यो वरतन्तोः शिष्य कौत्सः । 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' इत्यण्, इञोऽपवादः । गुरुदक्षिणार्थी 'पुष्करादिभ्यो देशे' इत्यत्र 'अर्थाच्चासंनिहिते' 'तदन्ताच्च' इतीनिः । अप्रत्याख्येय इति भावः । प्रपेदे प्राप । अस्मिन्सर्गे वृत्तमुपजातिः । तल्लक्षणं तु—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति ॥१॥

अन्वयः—विश्वजिति, अध्वरे, निःशेषविश्राणितकोशजातम् तम्, क्षितीशम्, उपात्तविद्यः, वरतन्तुशिष्यः, कौत्सः, गुरुदक्षिणार्थी, 'सन्' प्रपेदे ।

वाच्य०—निःशेषविश्राणितकोशजातः, सः, क्षितीशः, उपात्तविद्येन, वरतन्तुशिष्येण, कौत्सेन, गुरुदक्षिणार्थिना, प्रपेदे ।

व्याख्या—विश्वम्=जगत्, जयति=अभिभवति इति विश्वजित्, तस्मिन् विश्वजिति, अध्वरे=यज्ञे, विश्वजिन्नामके यज्ञे इत्यर्थः । कोशानाम्=निधीनाम् जातम्=समूहः इति कोशजातम्, निःशेषम्=समग्रम्, विश्राणितं=अर्पितं कोशजातम्=येन सः निःशेषविश्राणितकोशजातः, तं तथोक्तम् । तम्=पूर्वोक्तम् क्षितेः=पृथिव्याः, ईशः=स्वामी क्षितीशः, तं क्षितीशम् राजानं रघुम् इत्यर्थः

उपात्ताः=गृहीताः, विद्याः=चतुर्दशविद्याः येन सः उपात्तविद्यः। वरतन्तोः= तन्नामकगुरोः, शिष्यः=छात्रः वरतन्तुशिष्यः। कौत्सः=कौत्सनामा। अर्थः= प्रयोजनम् अस्य अस्ति इति अर्थी, गुरोः=उपाध्यायस्य, दक्षिणा=अध्ययनान्ते देयं द्रव्यं गुरुदक्षिणा, गुरुदक्षिणायाः अर्थी गुरुदक्षिणार्थी 'सन्' प्रपेदे=प्राप।

समा०—विश्वं जयति इति विश्वजित्, तस्मिन् विश्वजिति। कोशानाम् जातम् कोशजातम्, निःशेषम् विश्राणितम् कोशजातम् येन सः निःशेषविश्राणितकोशजातः, तम् निःशेषविश्राणितकोशजातम्। क्षितेः ईशः क्षितीशः, तम् क्षितीशम्। उपात्ताः विद्याः येन सः उपात्तविद्यः। वरतन्तोः शिष्यः वरतन्तुशिष्यः। अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थी; गुरोः दक्षिणा गुरुदक्षिणा, गुरुदक्षिणायाः अर्थी गुरुदक्षिणार्थी।

अभि०—यदा रघुर्विश्वजिन्नामके यज्ञे समस्तमपि कोशमर्थिभ्यो ददौ तदा वरतन्तूपाध्यायात्सकला अपि विद्याः अधीत्य तदर्थं दक्षिणाया याचको भूत्वा कौत्सस्तं रघुमुपागमत्।

हिन्दी—जब कि राजा रघुने विश्वजित् नामक यज्ञ में अपना सारा खजाना दक्षिणा के रूप में दे डाला तब वरतन्तु महर्षि का शिष्य कौत्स सम्पूर्ण विद्यायें पढ़कर गुरुदक्षिणा देने के लिये द्रव्य प्राप्त करने की इच्छा से रघुके पास याचक बनकर आया ॥१॥

स मृन्मये वीतहिरण्मयत्वात्पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः ॥२॥

सञ्जीविनी—अनर्घशीलोऽमूल्यस्वभावः असाधारणस्वभाव इत्यर्थः। 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इति 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इति चामरशाश्वतौ। यशसा कीर्त्या प्रकाशत इति प्रकाशः, पचाद्यच्। अतिथिषु साधुरातिथेयः 'पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्' इति ढञ्। स रघुः हिरण्यस्य विकारो हिरण्मयम् 'दाण्डिनायन०' इत्यादिसूत्रेण निपातः। वीतहिरण्मयत्वादपगतसुवर्णपात्रत्वात् यज्ञस्य सर्वस्वदक्षिणाकत्वादिति भावः। मृन्मये मृद्विकारे पात्रे अर्घार्थमिदमर्घ्यम् 'पादार्घाभ्यां च' इति यत्। पूजार्थं द्रव्यं निधाय श्रुतेन शास्त्रेण प्रकाशं प्रसिद्धम्। श्रूयत इति श्रुतं वेदशास्त्रम् 'श्रुतं शास्त्रावधृतयोः' इत्यमरः। अतिथिमभ्यागतम् कौत्सम् 'अतिथिर्ना गृहागते' इत्यमरः। प्रत्युज्जगाम ॥२॥

अन्वयः—अनर्घशीलः, यशसा, प्रकाशः, आतिथेयः, सः, वीतहिरण्मयत्वात् मृन्मये, पात्रे, अर्घ्यम्, निधाय, श्रुतप्रकाशम्, अतिथिम्, प्रत्युज्जगाम।

वाच्य०—अनर्घशीलेन, प्रकाशेन, आतिथेयेन, तेन, श्रुतप्रकाशः, अतिथिः, प्रत्युज्जग्मे।

व्याख्या—न विद्यते अर्घम्=मूल्यम् यस्य तत् अनर्घम्, अनर्घं शीलम्=स्वभावः, यस्य असौ अनर्घशीलः। यशसा=कीर्त्या, प्रकाशः=प्रसिद्धः। अतिथिषु=अभ्यागतेषु, साधुः आतिथेयः। सः=रघुः। हिरण्यस्य=सुवर्णस्य विकारः हिरण्मयम्, वीतम्=गतम् हिरण्मयम् यस्मात् सः वीतहिरण्मयः, वीतहिरण्मयस्य भावः वीतहिरण्मयत्वम्, तस्मात् वीतहिरण्मयत्वात्। मृदः=मृत्तिकायाः, विकारः मृन्मयम्, तस्मिन् मृन्मये। पात्रे=भाजने। अर्घाय=पूजार्थं इदं अर्घ्यम्। निधाय=संस्थाप्य। श्रुतेन=शास्त्रेण, प्रकाशः=प्रसिद्धः, इति श्रुतप्रकाशः, तं श्रुतप्रकाशं। अतिथिं=अभ्यागतं। प्रत्युज्जगाम=प्रत्युद्ययौ।

समा०—न विद्यते अर्घः यस्य तत् अनर्घं, अनर्घम् शीलं यस्य सः अनर्घशीलः। अतिथिषु साधुः आतिथेयः। हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयम्, वीतम् हिरण्मयम् यस्मात् सः वीतहिरण्मयः, वीतहिरण्मयस्य भावः वीतहिरण्मयत्वम्, तस्मात् वीतहिरण्मयत्वात्। मृदः विकारः मृन्मयम्, तस्मिन् मृन्मये। अर्घाय इदम् अर्घ्यम्। श्रुतेन प्रकाशः श्रुतप्रकाशः, तं श्रुतप्रकाशम्।

अभि०—असाधारणस्वभावो यशस्वी तथाऽतिथिसेवाऽभिज्ञो रघुः सुवर्णपात्राभावेन मृत्पात्र एवोपहारसामग्रीं निधाय प्रसिद्धशास्त्रज्ञस्य कौत्सस्य सम्मुखमुपस्थितोऽभवत्।

हिन्दी—असाधारण स्वभाववाले, यशस्वी तथा अतिथि सेवा में निपुण राजा रघु सोने के पात्रों के न रहने से मिट्टी के पात्र में ही अर्घ्य द्रव्य लेकर कौत्स के सम्मुख उपस्थित हुए॥ २॥

तमर्चयित्वा विधिवद्विधिज्ञस्तपोधनं मानधनाग्रयायी।
विशांपतिर्विष्टरभाजमारात्कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच॥३॥

सञ्जीविनी—विधिज्ञः शास्त्रज्ञः अकरणे प्रत्यवायभीरुरित्यर्थः। मानधनानामग्रयाय्यग्रेसरः। अपयशोभीरुरित्यर्थः। कृत्यवित्कार्यज्ञः आगमनप्रयोजनमवश्यं प्रष्टव्यमिति कृत्यवित्। विशांपतिर्मनुजेश्वरः 'द्वौ विशौ वैश्यमनुजौ' इत्य-

मरः। विष्टरभाजमासनगतम् उपविष्टमित्यर्थः। 'विष्टरो विटपी दर्भमुष्टिः पीठाद्यमासनम्' इत्यमरः। 'वृक्षासनयोर्विष्टरः' इति निपातः। तं तपोधनं विधिवद्विध्यर्हम् यथाशास्त्रमित्यर्थः। 'तदर्हम्' इति वतिप्रत्ययः। अर्चयित्वाऽऽरात्समीपे 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः। कृताञ्जलिः सन्निति वक्ष्यमाणप्रकारेणोवाच ॥३॥

अन्वयः—विधिज्ञः, मानधनाग्रयायी, कृत्यवित्, विशां, पतिः, विष्टरभाजं, तं, तपोधनं, विधिवत्, अर्चयित्वा, आरात्, कृताञ्जलिः 'सन्' इति, उवाच।

वाच्य०—विधिज्ञेन, मानधनाग्रयायिना, कृत्यविदा, विशाम्, पत्या, कृताञ्जलिना, 'सता' ऊचे।

व्याख्या—विधिम्=शास्त्रम्, जानाति=वेत्ति, इति विधिज्ञः। मानः=चित्तसमुन्नतिः एव धनम्=वित्तम् येषां ते मानधनाः, अग्रे=पुरः, याति=गच्छति इति अग्रयायी, मानधनानाम् अग्रयायी इति मानधनाग्रयायी। कृत्यम्=कार्यम् वेत्ति=जानाति, इति कृत्यवित्। विशाम्=मनुजानाम् पतिः=स्वामी। विष्टरम्=आसनम्, भजति=सेवते, इति विष्टरभाक्, तं विष्टरभाजम्, उपविष्टम् इत्यर्थः। तम्=पूर्वोक्तं। तपः=तपश्चर्या, एव, धनम्=वित्तम्, यस्य सः तपोधनः, तं तपोधनम्, कौत्सम्। विधिवत्=यथाशास्त्रम्। अर्चयित्वा=सम्पूज्य। आरात्=समीपे। कृतः=विहितः, बद्ध इति यावत्, अञ्जलिः=हस्तसंपुटः, येन सः कृताञ्जलिः, 'सन्'। इति=इत्थम्, वक्ष्यमाणप्रकारेण। उवाच=कथयामास ॥

समा०—विधम् जानातीति विधिज्ञः। मानः एव धनं येषां ते मानधनाः, अग्रे याति इति अग्रयायी, मानधनानाम् अग्रयायी मानधनाग्रयायी। कृत्यं वेत्ति इति कृत्यवित्। विष्टरं भजति इति विष्टरभाक्, तं विष्टरभाजम्। तपः एव धनम् यस्य सः तपोधनः, तं तपोधनम्। कृतः अञ्जलिः येन सः कृताञ्जलिः।

अभि०—शास्त्रविधिज्ञो रघुस्तं तपस्विनं कौत्सं शास्त्रोक्तविधिना संपूज्यासन उपवेश्य स्वयं संयोजितकरयुगलः सन्नुवाच।

हिन्दी—शास्त्रविधि को जाननेवाले मनस्वी रघुने तपस्वी कौत्स की शास्त्रोक्त-विधि से पूजा की, और आसन पर बैठाकर उनके सम्मुख हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले ॥३॥

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते।
यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः॥ ४॥

सञ्जीविनी—हे कुशाग्रबुद्धे सूक्ष्मबुद्धे 'कुशाग्रीयमतिः प्रोक्तः सूक्ष्मदर्शी च यः पुमान्' इति हलायुधः। मन्त्रकृतां मन्त्रद्रष्टॄणाम् 'सुकर्मपापमन्त्र०' इत्यादिना क्विप्। ऋषीणामग्रणीः श्रेष्ठस्ते तव गुरुः कुशल्यपि क्षेमवान्किम्। अपिः प्रश्ने। 'गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासंभावनास्वपि' इत्यमरः। यतो यस्माद् गुरोः सकाशात्त्वयाऽशेषं ज्ञानं लोकेनोष्णरश्मेः सूर्याच्चैतन्यं प्रबोध इव आप्तं स्वीकृतम्॥ ४॥

अन्वयः—कुशाग्रबुद्धे! मन्त्रकृतां, ऋषीणां, अग्रणीः, ते, गुरुः, कुशली, अपि, यतः, त्वया, अशेषम्, ज्ञानम्, लोकेन उष्णरश्मेः, चैतन्यम् इव, आप्तम्।

वाच्य०—ऋषीणां अग्रण्या, ते गुरुणा, कुशलिना अपि, 'भूयते'। यतः त्वं ज्ञानं लोकः चैतन्यं, इव आप्तवान्।

व्याख्या—कुशस्य=दर्भस्य, अग्रम्=अग्रभागः इति कुशाग्रम्, कुशाग्रम् इव=यथा (तीक्ष्णा) बुद्धिः=मतिः यस्य सः कुशाग्रबुद्धिः, तत्सम्बुद्धौ हे कुशाग्रबुद्धे! मन्त्रान्कृतवन्तः इति मन्त्रकृतः, तेषाम् मन्त्रकृताम्। ऋषीणाम्=मुनीनाम्। अग्रम्=पुरः, नयति=प्रापयति, इति अग्रणीः। ते=तव कौत्सस्य। गुरुः=उपाध्यायः वरतन्तुः। कुशलम्=क्षेमम् अस्य अस्ति इति कुशली। अपिरिति प्रश्नेऽव्ययम्। यतः=यस्मात् गुरोः सकाशादित्यर्थः। त्वया=कौत्सेन अशेषम्=समग्रम्। ज्ञानम्=अवबोधः, लोकेन=जनेन। उष्णाः=तप्ताः, रश्मयः=किरणाः यस्य सः उष्णरश्मिः, सूर्य इत्यर्थः, तस्म त् उष्णरश्मेः। चैतन्यम्=प्रबोधः। इव=यथा। आप्तं=गृहीतम्।

समा०—कुशस्य अग्रं कुशाग्रम्, कुशाग्रम् इव बुद्धिः यस्य सः कुशाग्रबुद्धिः, तत्सम्बुद्धौ हे कुशाग्रबुद्धे! मन्त्रान्कृतवन्त इति मन्त्रकृतः, तेषाम् मन्त्रकृताम्। अग्रम् नयति इति अग्रणीः। कुशलम् अस्य अस्ति इति कुशली। उष्णाः रश्मयः यस्य स उष्णरश्मिः, तस्मात् उष्णरश्मेः।

अभि०—हे तीक्ष्णमते! कौत्स! महर्षिवर्यस्ते गुरुर्वरतन्तुः कुशलेन सह वर्तते किमु? यस्मात्त्वया सकलं ज्ञानं तथैव लब्धं यथा लोको रवेरालोकेन चैतन्यं गृह्णाति।

हिन्दी—हे तीक्ष्णबुद्धे ! कौत्स, तुम्हारे गुरु ऋषिश्रेष्ठ वरतन्तुजी कुशलपूर्वक तो हैं ? जिनसे तुमने सम्पूर्ण ज्ञान इस प्रकार प्राप्त किया है जिस प्रकार सूर्य से मनुष्य प्रबोध (जागरण) प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

कायेन वाचा मनसाऽपि शश्वद्यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि।
आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ॥५॥

सञ्जीविनी—कायेनोपवासादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिना वाचा वेदपाठेन मनसा गायत्रीजपादिना कायेन वाचा मनसापि करणेन वासवस्येन्द्रस्य धैर्यं लुम्पतीति वासवधैर्यलोपि स्वपदापहारशङ्काजनकमित्यर्थः । यत्तपः शश्वदसकृत् 'मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत्समाः' इत्यमरः । संभृतं संचितं महर्षेर्वरतन्तोस्त्रिविधं वाङ्मनःकायजं तत्तपोऽन्तरायैर्विघ्नैरिन्द्रप्रेरिताप्सरःशापैर्व्ययं नाशं नापाद्यते कच्चित् न नीयते किम् ? 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमरः ॥ ५ ॥

अन्वयः—कायेन, वाचा, मनसा, अपि वासवधैर्यलोपि, यत्, शश्वत् सम्भृतम्, महर्षेः, त्रिविधम्, तत् तपः, अन्तरायैः, व्ययम्, न आपाद्यते कच्चित् ?

वाच्य०—वासवधैर्यलोपिना येन सम्भृतेन, 'भूयते' अन्तरायाः व्ययं न आपादयन्ति कच्चित् ?

व्याख्या—कायेन = शरीरेण, चान्द्रायणादिव्रतेनेत्यर्थः । वाचा = वाण्या, वेदपाठेनेत्यर्थः । मनसा = हृदयेन, ध्यानादिनेत्यर्थः । अपिरिति समुच्चयेऽव्ययम् । वासवस्य=इन्द्रस्य, धैर्यं=धृतिः इति वासवधैर्यं, वासवधैर्यं लुम्पति=विनाशयति इति वासवधैर्यलोपि । यत्=तपः । शश्वत्=सर्वदा । सम्भृतम्=सञ्चितम् । महान्=श्रेष्ठश्चासौ, ऋषिः=मुनिः इति महर्षिः, तस्य महर्षेः । तिस्रो विधाः=प्रकाराः यस्य तत् त्रिविधम्, मनोवाक्कायजमित्यर्थः । तत् तपः = तपश्चरणं । अन्तरायैः = विघ्नैः । व्ययम्=नाशम् । न = नैव । आपाद्यते = प्राप्यते । कच्चित्=किम् ?

समा०—वासवस्य धैर्यं वासवधैर्यं, वासवधैर्यं लुम्पति इति वासवधैर्यलोपि । महान् च असौ ऋषिः महर्षिः, तस्य महर्षेः । तिस्रो विधाः यस्य तत् त्रिविधम् ।

अभि०—यत्ते गुरुर्मनसा, वाण्या तथा शरीरेणेन्द्रस्य धैर्यापहारकं तपोऽर्जयति तद्विघ्नैः क्षीयते न किम् ?

हिन्दी—तुम्हारे गुरुजी ने मन, वाणी तथा शरीर से इन्द्र के धैर्य को भग्न करनेवाला जो तप का सञ्चय किया है, कहीं उसका इन्द्र द्वारा भेजी अप्सराओं से किये विघ्नों से क्षय तो नहीं होता है ? ॥५॥

आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम् ।
कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम् ॥६॥

सञ्जीविनी—आधारबन्धप्रमुखैरालवालनिर्माणादिभिः प्रयत्नैरुपायैः 'आधार आलवालेऽम्बुबन्धेऽधिकरणेऽपि च' इति विश्वः । सुतेभ्यो निर्गतो विशेषोऽतिशयो यस्मिन्कर्मणि तत्तथा संवर्धितानां श्रमच्छिदां वः आश्रमपादपानां वाय्वादिः आदिशब्दाद्दावानलादिः उपप्लवो बाधको न कच्चिन्नास्ति किम् ॥६॥

अन्वयः—आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः, सुतनिर्विशेषम् संवर्धितानां, श्रमच्छिदाम्, वः, आश्रमपादपानाम्, वाय्वादिः, उपप्लवः, न, कच्चित् ?

वाच्य०—वाय्वादिना, उपप्लवेन, न, 'भूयते' कच्चित् ?

व्याख्या—आधारस्य = आलवालस्य = बन्धः = बन्धनम्, आधारबन्धः, आधारबन्ध एव प्रमुखः=प्रधानं येषां ते आधारबन्धप्रमुखाः, तैः आधारबन्धप्रमुखैः । प्रयत्नैः=उपायैः । सुतात्=पुत्रात्, निर्विशेषम्=वैशिष्ट्यरहितम्, समानमित्यर्थः । संवर्धितानाम्=परिवर्धितानां श्रमं=खेदं, छिन्दन्ति=नाशयन्ति, इति श्रमच्छिदः, तेषां श्रमच्छिदाम् । आश्रमस्य=मुन्यावासस्य, पादपाः=वृक्षाः, इति आश्रमपादपाः, तेषां आश्रमपादपानां वायुः=पवनः, आदिः=प्रथमः यस्य सः वाय्वादिः । उपप्लवः=उत्पातः । न=नहि कच्चित्=किम् ?

समा०—आधारस्य बन्धः आधारबन्धः, आधारबन्धः एव प्रमुखः येषाम् ते आधारबन्धप्रमुखाः, तैः आधारबन्धप्रमुखैः । निर्गतः विशेषः यस्मिन्कर्मणि तत् निर्विशेषम्, सुतात् निर्विशेषं सुतनिर्विशेषम् । श्रमं छिन्दन्ति इति श्रमच्छिदः, तेषाम् श्रमच्छिदाम् । आश्रमस्य पादपाः इति आश्रमपादपाः, तेषाम् आश्रमपादपानाम् । वायुः आदिः यस्य सः वाय्वादिः ।

अभि०—युष्माभिराश्रमवृक्षाणामालवालनिर्माणादिरूपेण पुत्रवत्पालनं क्रियते । कच्चित्तेषामेवाश्रमतरूणां कृते वाय्वादिप्रकोपस्तु न जायते ?

हिन्दी—जिन आश्रम के वृक्षों का आलवाल अर्थात् थावला (क्यारी)

बनाने आदि से पुत्र की तरह पालन किया जाता है और जिनसे छाया मिलती है उनके ऊपर आँधी आदि उपद्रवों का प्रकोप तो नहीं होता ? ॥ ६ ॥

क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वादभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु ।
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः ॥७॥

सञ्जीविनी—क्रियानिमित्तेष्वप्यनुष्ठानसाधनेष्वपि कुशेषु मुनिभिर्वत्सलत्वान्मृगस्नेहादभग्नकामाऽप्रतिहतेच्छा तेषां मुनीनामङ्का एव शय्यास्तासु च्युतानि नाभिनालानि यस्याः सा तथोक्ता मृगीणां प्रसूतिः संततिरनघाऽव्यसना कच्चित् अनपायिनी किमित्यर्थः । 'दुःखैनोव्यसनेष्वघम्' इति यादवः । ते हि व्यालभयाद्दशरात्रमङ्क एव धारयन्ति ॥ ७ ॥

अन्वयः—क्रियानिमित्तेषु, अपि, कुशेषु, मुनिभिः, वत्सलत्वात्, अभग्नकामा, तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला, मृगीणाम्, प्रसूतिः, अनघा, कच्चित् ?

वाच्य०—अभग्नकामया, तदङ्कशय्याच्युतनाभिनालया, प्रसूत्या, अनघया, 'भूयते' कच्चित् ?

व्याख्या—क्रियायाः = अनुष्ठानस्य, निमित्तानि = साधनानि इति क्रियानिमित्तानि, तेषु क्रियानिमित्तेषु । अपि, कुशेषु=दर्भेषु । मुनिभिः=ऋषिभिः । वत्सलस्य भावः वत्सलत्वम्, तस्मात् वत्सलत्वात्=मृगस्नेहात् । न=नहि, भग्नः= नष्टः, कामः=अभिलाषः, यस्याः सा अभग्नकामा । तेषाम्=मुनीनाम्, अङ्काः= क्रोडस्थानानि इति तदङ्काः, तदङ्काः एव शय्याः=शयनस्थल्यः, इति तदङ्कशय्याः, तदङ्कशय्यासु च्युतानि नाभिनालानि=तुन्दिकानालानि यस्याः सा, तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला । मृगीणाम् = हरिणीनाम्, प्रसूतिः = सन्ततिः, न= नहि विद्यन्ते अघानि=व्यसनानि यस्याः सा अनघा, दुःखरहितेत्यर्थः । कच्चित्-इति कामप्रवेदनेऽव्ययम् ।

समा०—क्रियायाः निमित्तानि क्रियानिमित्तानि, तेषु क्रियानिमित्तेषु । वत्सलस्य भावः वत्सलत्वम्, तस्मात् वत्सलत्वात् । भग्नः कामः यस्याः सा भग्नकामा, न भग्नकामा अभग्नकामा । तेषाम् अङ्काः तदङ्काः, तदङ्काः एव शय्याः तदङ्कशय्याः, तदङ्कशय्यासु च्युतानि तदङ्कशय्याच्युतानि, नाभेः नालानि नाभिनालानि,

तदङ्कशय्याच्युतानि नाभिनालानि यस्याः सा तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला। न विद्यन्ते अघानि यस्याः सा अनघा।

अभि०—येषां मृगपोतानां नाभिनालानि मुन्यङ्केषु एव पतन्ति तथाऽनुष्ठानसाधनानपि कुशाङ्कुरान् दूषितुं प्रवृत्तानां वत्सलतया येषां वारणं मुनिभिः न क्रियते ते मृगपोताः कुशलवन्तः किमु?

हिन्दी—और वे हरिणों के बच्चे तो कुशल से हैं, जिन्हें ऋषि लोग गोद में बैठाकर प्रेम से खिलाते हैं, जिनके नाभिनाल मुनियोंकी गोद में गिरते हैं और जिनको ऋषिगण पुत्रस्नेह से यज्ञक्रिया के लिए एकत्र किये कुशा पर भी बैठने आदि से नहीं रोकते हैं ॥ ७ ॥

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितृणाम्।

तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् ॥ ८ ॥

सञ्जीविनी—यैस्तीर्थजलैर्नियमाभिषेको नित्यस्नानादिर्निवर्त्यते निष्पाद्यते येभ्यो जलेभ्यः उद्धृत्येति शेषः, पितृणामग्निष्वात्तादीनां निवापाञ्जलयस्तर्पणाञ्जलयः 'पितृदानं निवापः स्यात्' इत्यमरः। निर्वर्त्यन्ते। उञ्छानां प्रकीर्णोद्धृतधान्यानां षष्ठैः षष्ठभागैः पालकत्वाद्राजग्राह्यैरङ्कितानि सैकतानि पुलिनानि येषां तानि तथोक्तानि वो युष्माकं तानि तीर्थजलानि शिवानि भद्राणि कच्चित् अनुपप्लवानि किमित्यर्थः। 'उञ्छो धान्यांशकादानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्', इति यादवः। 'षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च' इति षष्ठशब्दाद्भागार्थेऽन्प्रत्ययः। अत एवापूरणार्थत्वात् 'पूरणगुण०' इत्यादिना न षष्ठीसमासप्रतिषेधः। सिकता येषु सन्ति सैकतानि 'सिकताशर्कराभ्यां च' इत्यण्प्रत्ययः ॥ ८ ॥

अन्वयः—यैः, नियमाभिषेकः, निर्वर्त्यते, येभ्यः, पितृणाम्, निवापाञ्जलयः उञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि, वः, तानि, तीर्थजलानि, शिवानि, कच्चित्?

वाच्य०—यानि, नियमाभिषेकम्, निर्वर्तयन्ति, निवापाञ्जलीन्, 'निर्वर्तयन्ति' उञ्छषष्ठाङ्कितसैकतैः, वः, तैः, तीर्थजलैः, शिवैः, 'भूयते' कच्चित्?

व्याख्या—यैः=जलैः। नियमेन=नियमपूर्वकं प्रत्यहमित्यर्थः, अभिषेकः=स्नानम्, इति नियमाभिषेकः। निर्वर्त्यते=संपाद्यते। येभ्यः=जलेभ्यः। पितृणाम्=अग्निष्वात्तादीनाम्। निवापाञ्जलयः=पितृतर्पणानि निर्वर्त्यन्ते। उञ्छानाम्=कणशो गृहीतानाम् धान्यानाम, षष्ठः=षष्ठांशः इति उञ्छषष्ठाः, उञ्छषष्ठैः

अङ्कितानि=चिह्नितानि, सैकतानि=वालुकातटानि येषु तानि उञ्छषष्ठाङ्कित-सैकतानि। वः=युष्माकम्। तानि=प्रसिद्धानि। तीर्थस्य=जलावतारस्य' जलानि=सलिलानि। शिवानि=भद्राणि कच्चित्=किम्?

समा०—नियमेन अभिषेकः नियमाभिषेकः। निवापे अञ्जलयः इति निवापाञ्जलयः। उञ्छानाम् षष्ठाः उञ्छषष्ठाः, उञ्छषष्ठैः अङ्कितानि सैकतानि येषु तानि, उञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि। तीर्थस्य जलानि तीर्थजलानि।

अभि०—यानि युष्माकं व्रतस्नानादिकं सम्पन्नं कुर्वन्ति, येभ्यश्च यूयं पितृतर्पणक्रियां कुरुथ, येषां च वालुकावन्ति तटानि युष्माकं कणशो गृहीतानां धान्यानां राजग्राह्यैः षष्ठांशैश्चिह्नितानि, तानि तीर्थजलानि भद्राणि किम्?

हिन्दी—जिनसे आप स्नान सन्ध्यावन्दन तथा तर्पण करते हैं एवं जिनके रेतीले किनारे पर एक-एक कण उठाकर चुने हुए अन्न का राज-भाग रूपी षष्ठांश जानकर छोड़ते हैं, वे आपके तीर्थजल तो उपद्रवों से रहित हैं? ॥ ८ ॥

नीवारपाकादि कडङ्गरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित्।
कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः ॥ ९ ॥

सञ्जीविनी—कालेषु योग्यकालेषूपपन्नानामागतानामतिथीनां कल्प्या भागा यस्य तत्तथोक्तम्, वने भवं वन्यम् शरीरस्थितेर्जीवितस्य साधनं वो युष्माकम् पच्यत इति पाकः फलम् धान्यमिति यावत्, नीवारपाकादि आदिशब्दाच्छ्यामाकादिधान्यसंग्रहः, जनपदेभ्य आगतैर्जानपदैः 'तत आगतः' इत्यण्। कडङ्गरीयैः कडङ्गरं बुसमर्हन्तीति कडङ्गरीयाः 'कडङ्गरो बुसं क्लीबे धान्यत्वचि तुषः पुमान्' इत्यमरः। 'कडङ्गरदक्षिणाच्छ च' इति छप्रत्ययः। तैर्गोमहिषादिभिर्नामृश्यते कच्चित् न भक्ष्यते किमित्यर्थः ॥ ९ ॥

अन्वयः—कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागम्, वन्यम्, शरीरस्थितिसाधनम्, वः, नीवारपाकादि, जानपदैः, कडङ्गरीयैः न, आमृश्यते, कच्चित्?

वाच्य०—जानपदाः, कडङ्गरीयाः, न, आमृशन्ति, कच्चित्?

व्याख्या—कालेषु=योग्यसमयेषु, उपपन्नाः=प्राप्ताः इति कालोपपन्नाः, कालोपपन्नाः च ते अतिथयः=अभ्यागताः इति कालोपपन्नातिथयः, कालोपपन्नातिथीनाम् कल्प्याः=कल्पनीयाः इति कालोपपन्नातिथिकल्प्याः, कालोपपन्नातिथिकल्प्याः भागाः=अंशाः यस्य तत् कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागम्, वने=अरण्ये,

भवं वन्यम्। शरीरस्य=देहस्य, स्थितिः=धारणम्, इति शरीरस्थितिः, शरीरस्थितेः साधनम् = उपायभूतम् इति शरीरस्थितिसाधनम्। वः=युष्माकम्। पच्यते = पक्कं भवति, इति पाकः फलमित्यर्थः, नीवाराणाम् = धान्यविशेषाणाम्, पाकः इति नीवारपाकः, नीवारपाकः आदिः यस्य तत् नीवारपाकादि जनपदस्येमे जानपदाः=नागराः, तैः जानपदैः। कडङ्गरं = बुसम् अर्हन्ति इति कडङ्गरीयाः=गोमहिषादय इत्यर्थः, तैः कडङ्गरीयैः न=नहि। आमृश्यते=भक्ष्यते, कच्चित्=किम्?

समासः—कालेषु उपपन्नाः कालोपपन्नाः, कालोपपन्नाः च ते अतिथयः इति कालोपपन्नातिथयः, कालोपपन्नातिथीनां कल्प्या भागाः यस्य तत् कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागम्। वने भवं वन्यम्। शरीरस्य स्थितिः शरीरस्थितिः, शरीरस्थितेः साधनं शरीरस्थितिसाधनम्। नीवाराणां पाकः नीवारपाकः, नीवारपाकः आदिः यस्य तत् नीवारपाकादि। जनपदस्येमे जानपदाः, तैः जानपदैः। कडङ्गरम् अर्हन्ति इति कडङ्गरीयाः, तैः कडङ्गरीयैः।

भि०—बलिवैश्वदेवकर्मान्ते योग्यसमये समागतानामतिथीनामपि जीवनोपायभूतं यद्वनोद्भव नीवारश्यामाकादिधान्यं युष्माकं भक्ष्य तन्नगरादागतगोमहिषादिभिस्तु न भक्ष्यते किम्?

हिन्दी—बलिवैश्वदेव कर्म के अनन्तर उचित समय पर आनेवाले, अतिथियों के भाग भी जिनसे निकाले जाते हैं, ऐसे आप लोगों के जीवन के आधार, वन के नीवार आदि धान्य को नगर से आये गाय, भैंस आदि पशु तो नहीं खा जाते हैं? ॥ ९ ॥

अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय।
कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ॥१०॥

सञ्जीविनी—किञ्च त्वं प्रसन्नेन सता महर्षिणा सम्यग्विनीय शिक्षयित्वा विद्यामुपदिश्येत्यर्थः। गृहाय गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुं 'क्रियार्थोपपद०' इत्यादिना चतुर्थी। अनुमतोऽप्यनुज्ञातः किम्, हि यस्मात्ते तव सर्वेषामाश्रमाणां ब्रह्मचर्यवानप्रस्थयतीनामुपकारे क्षमं शक्तम् 'क्षमं शक्ते हिते त्रिषु' इत्यमरः। द्वितीयमाश्रमं गार्हस्थ्यं संक्रमितुं प्राप्तुमयं कालः, विद्याग्रहणानन्तर्यात्तस्येति भावः। 'कालसमयवेलासु तमुन्' इति तुमुन्। सर्वोपकारक्षममित्यत्र मनुः—"य

मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। वर्तन्ते गृहिणस्तद्वदाश्रित्येतर आश्रमाः" इति ॥१०॥

अन्वयः—त्वम्, प्रसन्नेन, 'सता' महर्षिणा, सम्यग्, विनीय, गृहाय, अनुमतः, अपि ? हि, ते, सर्वोपकारक्षमं, द्वितीयम्, आश्रमम्, संक्रमितुम्, अयम्, कालः 'अस्ति'।

वाच्य०—त्वाम् प्रसन्नः 'सन्' महर्षिः गृहाय, अनुमतवान्, अनेन, कालेन, भूयते।

व्याख्या—त्वम्=कौत्सः। प्रसन्नेन=तुष्टेन, 'सता'। महर्षिणा=महामुनिना। सम्यक्=यथावत्। विनीय=शिक्षयित्वा। गृहाय=गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुम्। अनुमतः= संमतः, अपि=किम् ? हि=यतः ते=तत्र, कौत्सस्य। सर्वेषाम्=सकलानाम्, आश्रमाणामित्यर्थः, उपकारः=उपकृतिः, इति सर्वोपकारः, सर्वोपकारे क्षमः=समर्थः इति सर्वोपकारक्षमः। तं सर्वोपकारक्षमम्। द्वितीयम्=प्रथमाश्रमादग्रे वर्तमानम्। आश्रमम्=गृहस्थाश्रमम्। संक्रमितुम्=प्रवेष्टुम्। अयम्=एषः, कालः=समयः, 'अस्ति'।

समा०—सर्वेषामुपकारः सर्वोपकारः, सर्वोपकारे क्षमः सर्वोपकारक्षमः, तम् सर्वोपकारक्षमम्। महांश्चासौ ऋषिश्च महर्षिः, तेन।

अभि०—त्वद्गुरुणा महर्षिणा वरतन्तुना त्वं यथाविधि शिक्षयित्वा किं गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुमादिष्टः ? यत इदानीं ते वयः सर्वेषामप्याश्रमाणामुपकारकं गृहस्थाश्रमं प्रवेष्टुं योग्यमस्ति।

हिन्दी—क्या तुम्हारे गुरु महर्षि वरतन्तुजी ने तुम्हें विधिपूर्वक शिक्षा में निष्णात करके, घर जाने की आज्ञा दे दी है ? क्योंकि यह तुम्हारी अवस्था, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास इन चारों आश्रमों के उपकारक गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने के योग्य है ॥१०॥

कुशलप्रश्नं विधायागमनप्रयोजनप्रश्नं चिकीर्षुराह—

तवार्हतो नाभिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे।
अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा प्राप्तोऽसि संभावयितुं वनान्माम् ॥११॥

सञ्जीविनी—अर्हतः पूज्यस्य प्रशस्यस्य 'अर्हः प्रशंसायाम्' इति शतृप्रत्ययः। तवाभिगमेनागमनमात्रेण मे मनो न तृप्तं न तुष्टम्। किंतु नियोगक्रियया ऽऽज्ञाकरणेनोत्सुकं सोत्कण्ठम् 'इष्टार्थोद्युक्त उत्सुकः' इत्यमरः। 'प्रसितोत्सुकाभ्यां

तृतीया च' इति सप्तम्यर्थे तृतीया। शासितुर्गुरोराज्ञयाऽप्यात्मना स्वतो वा 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्', इति तृतीया। मां संभावयितुं वनात्प्राप्तोऽसि, गुर्वर्थे स्वार्थे वाऽऽगमनमित्यर्थः ॥११॥

अन्वयः—अर्हतः, तव, अभिगमेन, मे, मनः, न, तृप्तम्, किन्तु, नियोगक्रियया, उत्सुकम्, शासितुः, आज्ञया, अपि आत्मना, वा, माम्, सम्भावयितुम्, वनात्, प्राप्तः, असि ?

वाच्य०—मनसा, न, तृप्तेन 'भूयते' उत्सुकेन, वनात्, प्राप्तेन, 'भूयते'।

व्याख्या—अर्हतः=पूज्यस्य। तव=कौत्सस्य। अभिगमेन=आगमनेन। मे=मम रघोः। मनः=चित्तम्। न=नैव। तृप्तम्=सन्तुष्टम्। 'किन्तु' नियोगस्य=आज्ञायाः, क्रिया=करणम् नियोगक्रिया, तया नियोगक्रियया। उत्सुकम्=उत्कण्ठितम्। शासितुः=शिक्षकस्य। आज्ञया=आदेशेन। अपि=किमु। आत्मना=स्वतः। वा=अथवा। माम्=रघुम्। सम्भावयितुम्=सत्कर्तुम्। वनात्=अरण्यात्। प्राप्तः=आगतः, असि=भवसि ?

समा०—नियोगस्य क्रिया नियोगक्रिया, तया नियोगक्रियया।

अभि०—हे कौत्स! यदेतत्तव शुभागमनमिह जातमेतेन न मे मनसि तृप्तिः, अपि तु तवाज्ञाश्रवणविषये महत्युत्कण्ठा वर्तते, तस्माद् ब्रूहि किं त्वमिह गुरोरादेशात्प्राप्तोऽथवा स्वतः ?

हिन्दी—हे कौत्स! पूज्य तुम्हारे आने मात्र से मेरा मन तृप्त नहीं हो सका है, किन्तु तुम्हारी आज्ञा सुनने की बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। अतः कहो, तुम्हारा आना गुरुजी के कार्य से हुआ, अथवा अपने ही कार्य से ? ॥११॥

इत्यर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य रघोरुदारामपि गां निशम्य।
स्वार्थोपपत्तिं प्रति दुर्बलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः ॥१२॥

सञ्जीविनी—अर्घ्यपात्रेण मृन्मयेनानुमितो व्ययः सर्वस्वत्यागो यस्य तस्य रघोरित्युक्तप्रकारामुदारामौदार्ययुक्तामपि गां वाचम् 'मनो नियोगक्रिययोत्सुकं मे' इत्येवंरूपाम्। 'स्वर्गेषुपशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले। लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौः' इत्यमरः। निशम्य श्रुत्वा वरतन्तुशिष्यः कौत्सः स्वार्थोपपत्तिं स्वकार्यसिद्धिं प्रति दुर्बलाशः सन्मृन्मयपात्रदर्शनाच्छिथिलमनोरथः संस्तं रघुमिति वक्ष्यमाणप्रकारेणावोचत् ॥१२॥

अन्वयः—अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य, रघोः, इति, उदाराम्, अपि, गाम्, निशम्य, वरतन्तुशिष्यः, स्वार्थोपपत्तिम्, प्रति, दुर्बलाशः, 'सन्' तम्, इति, अवोचत्।

वाच्य०—वरतन्तुशिष्येण, दुर्बलाशेन, सता, सः, इति औच्यत।

व्याख्या—अर्घार्थं द्रव्यम् अर्घ्यम्=अर्घ्याय दीयमानं जलादिकम्, अर्घ्यस्य पात्रम्=भाजनम् इति अर्घ्यपात्रम्, अर्घ्यपात्रेण अनुमितः=निश्चितः इति अर्घ्यपात्रानुमितः, अर्घ्यपात्रानुमितः व्ययः=धनापगमः यस्य सः अर्घ्यपात्रानुमितव्ययः, तस्य अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य। मृन्मयार्घ्यपात्रदर्शनेन निर्णीतसकलकोषदानस्य। रघोः=दिलीपसूनोः। इति=एवंभूताम्, उदाराम्=औदार्यगुणयुक्ताम् अपि। गाम्=वाणीम्। निशम्य=श्रुत्वा। वरतन्तोः=तन्नामकमहर्षेः शिष्यः=अन्तेवासी इति वरतन्तुशिष्यः। स्वस्य=निजस्य, अर्थः=प्रयोजनम् स्वार्थः, स्वार्थस्य उपपत्तिः=सिद्धिः इति स्वार्थोपपत्तिः, ताम् स्वार्थोपपत्तिम्। प्रति=लक्ष्यीकृत्य। दुर्बला=क्षीणा, आशा=मनोरथः यस्य सः दुर्बलाशः 'सन्'। तम्=रघुम्। इति=वक्ष्यमाणप्रकारेण। अवोचत्=उवाच।

समा०—अर्घार्थम् अर्घ्यम्, अर्घ्यस्य पात्रम् अर्घ्यपात्रम्; अर्घ्यपात्रेण अनुमितः अर्घ्यपात्रानुमितः, अर्घ्यपात्रानुमितः व्ययः यस्य सः अर्घ्यपात्रानुमितव्ययः, तस्य अर्घ्यपात्रानुमितव्ययस्य। वरतन्तोः शिष्यः वरतन्तुशिष्यः। स्वस्य अर्थः स्वार्थः स्वार्थस्य उपपत्तिः स्वार्थोपपत्तिः। तां स्वार्थोपपत्तिम्। दुर्बला आशा यस्य सः दुर्बलाशः।

अभि०—वरतन्तुशिष्येण कौत्सेन मृन्मयमर्घ्यपात्रमवलोक्य निर्णीतं यद्रघुणा विश्वजिद्यज्ञे सकलोऽपि राजकोषोऽर्थिसात्कृत इति स्वकार्यसिद्धिं प्रति शिथिलाशो भूत्वा स रघुमुवाच।

हिन्दी—वरतन्तु ऋषि के शिष्य कौत्स ने मिट्टी का अर्घ्य-पात्र देखकर अनुमान लगा लिया कि राजा ने सम्पूर्ण कोष विश्वजित् यज्ञ में दान कर दिया है; इस कारण उसकी अपनी कार्यसिद्धि के विषय में आशा शिथिल पड़ गयी, और उसने रघु से इस प्रकार कहा ॥१२॥

> सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्।
> सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥१३॥

सञ्जीविनी—हे राजन्! त्वं सर्वत्र नोऽस्माकं वार्तं स्वास्थ्यमवेहि जानीहि 'वार्तं फल्गुन्यरोगे च' इत्यमरः। 'वार्तं पाटवमारोग्यं भव्यं स्वास्थ्यमनामयम्'

इति यादवः। न चैतदाश्चर्यमित्याह—नाथ इति। त्वयि नाथ ईश्वरे सति प्रजानामशुभं दुःखं कुतः। तथाहि अर्थान्तरम् न्यस्यति—सूर्ये इत्यादिना। सूर्ये तपति प्रकाशमाने सति तमिस्रा तमस्ततिः। 'तमिस्रं तिमिरे रोगे तमिस्रा तु तमस्ततौ। कृष्णपक्षनिशायां च' इति विश्वः। 'तमिस्रम्' इति पाठे तमिस्रं तिमिरम् 'तमिस्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः। लोकस्य जनस्य 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः। दृष्टेरावरणाय कथं कल्पेत दृष्टिमावरितुं नालमित्यर्थः। कृपेरलमर्थत्वात्तद्योगे 'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च' इत्यनेन चतुर्थी। 'अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्' इति भगवान्भाष्यकारः। कल्पेत संपद्येतेत्यर्थः। क्लृपि संपद्यमाने चतुर्थीति वक्तव्यात् ॥१३॥

अन्वयः—राजन्, 'त्वम्' सर्वत्र, नः वार्तम्, अवेहि, त्वयि, नाथे, 'सति' प्रजानाम्, अशुभम्, कुतः, सूर्ये, तपति, 'सति', तमिस्रा, लोकस्य, दृष्टेः, आवरणाय, कथम्, कल्पेत ?

वाच्य०—'त्वया' वार्तम् अवेयताम्, अशुभेन, 'भूयते' तमिस्रया कल्प्येत ?

व्याख्या—हे राजन् = नृप। हे 'त्वम्' सर्वत्र=सर्वस्मिन्प्रष्टव्यविषये। नः= अस्माकम्। वार्तम्=कुशलम्, अवेहि=जानीहि। त्वयि=रघौ, नाथे=स्वामिनि, 'सति'। प्रजानाम्=जनानाम्। न शुभम्=कल्याणम् इति अशुभम्। कुतः= कथं स्यात्। 'यतः' सूर्ये=सवितरि, तपति=तापं जनयति इति तपन्, तस्मिन् तपति=प्रकाशमाने 'सति'। तमिस्रा=कृष्णपक्षीया रात्रिः 'तमिस्रा तामसी रात्रिः' इत्यमरः। लोकस्य=जनस्य। दृष्टेः=नेत्रव्यापारस्य, आवरणाय=अवरोधाय। कथम्=केन प्रकारेण। कल्पेत=सम्पद्येत।

समा०—प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः, तासाम् प्रजानाम्। न शुभम् अशुभम्। सरति आकाशे इति सूर्यः, तस्मिन् सूर्ये। आ समन्ताद् वरणं, तस्मै आवरणाय।

अभि०—हे राजँस्त्वमस्माकं सर्वथा कुशलं विद्धि, त्वादृशे प्रजापालके कुतो नु लोकस्याकुशलं, यतो दिननाथे प्रकाशमानेऽन्धकारपरम्परायाश्चर्चाऽपि किं भूयते ?

हिन्दी—हे राजन्! आप हमारा सब प्रकार से कुशल समझें। आप सरीखे राजा के होने पर प्रजा का अकुशल कैसे हो सकता है? भला, कहीं सूर्य के

प्रकाशमान रहते अन्धकार-समूह लोगों की दृष्टि को ढाँकने में समर्थ हो सकता है ?॥ १३ ॥

'तवार्हतः'—इत्यादिनोक्तं यत्तन्न चित्रमित्याह—

भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलोचिता ते पूर्वान्महाभाग तयातिशेषे ।
व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः ॥१४॥

सञ्जीविनी—प्रतीक्ष्येषु पूज्येषु 'पूज्यः प्रतीक्ष्यः' इत्यमरः। भक्तिरनुरागविशेषस्ते तव कुलोचिता कुलाभ्यस्ता 'अभ्यस्तेऽप्युचितं न्याय्यम्' इति यादवः। हे महाभाग सार्वभौम ! तया भक्त्या पूर्वानतिशेषेऽतिवर्तसे। किन्तु सर्वत्र वार्तं चेत्तर्हि कथं खेदखिन्न इव दृश्यसेऽत आह-व्यतीतेति। अहं व्यतीतकालोऽतिक्रान्तकालः सन्नर्थिभावात्त्वामभ्युपेत इति मे मम विषादः ॥१४॥

अन्वयः—प्रतीक्ष्येषु, भक्तिः, ते, कुलोचिता, महाभाग, तया पूर्वान् अतिशेषे, तु, अहम् व्यतीतकालः 'सन्' अर्थिभावात् त्वाम् , अभ्युपेतः, इति, मे विषादः, 'अस्ति'।

वाच्य०—भक्त्या, कुलोचितया, 'भूयते' पूर्वे, त्वया, अतिशय्यन्ते, मया, व्यतीतकालेन, 'सता', अभ्युपेतेन 'भूयते' इति विषादेन 'भूयते'।

व्याख्या—प्रतीक्ष्येषु = पूज्येषु । भक्तिः = अनुरागः। ते=तव रघोः। कुलस्य = वंशस्य , उचिता = योग्या, इति कुलोचिता। हे महाभाग = सार्वभौम। तया = भक्त्या। पूर्वान् = पूर्वजान्। अतिशेषे = अतिक्रम्य वर्तसे। तु = किन्तु। अहम्=कौत्सः। व्यतीतः = अतिक्रान्तः, कालः = समयः यस्य सः व्यतीतकालः, 'सन्'। अर्थः = प्रयोजनम् अस्य अस्ति इति अर्थी, अर्थिनः भावः = इच्छा इति अर्थिभावः, तस्मात् अर्थिभावात् , याचकरूपेणेत्यर्थः। त्वाम् = रघुम्। अभ्युपेतः = प्राप्तः। इति = हेतोः। मे = मम कौत्सस्य। विषादः=खेदः 'अस्ति'।

समा०—कुलस्य उचिता कुलोचिता। व्यतीतः कालः यस्य सः व्यतीतकालः। अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थी, अर्थिनः भावः अर्थिभावः, तस्मात् अर्थिभावात्।

अभि०—हे भाग्यशालिन्, पूज्येषु श्रद्धावतां स्वकुलपूर्वजानां मध्ये त्वमेव स्वश्रद्धया सर्वश्रेष्ठः। स्वकार्यपूरणार्थमहमेव सर्वस्वं दत्तवतस्तव सन्निधौ विलम्बेन समागत इति तु मे शोकः।

हिन्दी—हे परमसौभाग्यशालिन् ! पूज्यों के प्रति श्रद्धा से आपने अपने पूर्वजों का भी अतिक्रमण कर दिया है। परन्तु क्या किया जाय, मैं ही समय बिताकर आपके पास कुछ माँगने की इच्छा से विलम्ब से आया हूँ, इसका मुझे अत्यन्त खेद है ॥ १४ ॥

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ॥१५॥

सञ्जीविनी—हे नरेन्द्र ! तीर्थे सत्पात्रे प्रतिपादिता दत्तर्द्धिर्येन स तथोक्तः 'योनौ जलावतारे च मन्त्र्याद्यष्टादशस्वपि। पुण्यक्षेत्रे तथा पात्रे तीर्थं स्याद्दर्शनेष्वपि' इति हलायुधः। शरीरमात्रेण तिष्ठन् आरण्यका अरण्ये भवा मनुष्या मुनिप्रमुखाः 'अरण्यान्मनुष्ये' इति वुञ्प्रत्ययः। तैरुपात्ता फलमेव प्रसूतिर्यस्य सः स्तम्बेन काण्डेनावशिष्टः। प्रकृत्यादित्वात्तृतीया। नीवार इव आभासि शोभसे।

अन्वयः—नरेन्द्र ! तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः, 'त्वम्' शरीरमात्रेण, तिष्ठन्, आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः, स्तम्बेन, अवशिष्टः नीवारः इव आभासि।

वाच्य०—तीर्थप्रतिपादितर्द्धिना, 'त्वया' तिष्ठता, आरण्यकोपात्तिफलप्रसतिना अवशिष्टेन, नीवारेण, इव आभायते।

व्याख्या—नराणाम्=मनुष्याणाम्; इन्द्रः=स्वामी इति नरेन्द्रः, सम्बुद्धौ हे नरेन्द्र ! तीर्थेषु = सत्पात्रेषु, प्रतिपादिता = दत्ता, ऋद्धिः = संपत्, येन सः तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः, 'त्वम्'। शरीरम्=वपुः एव शरीरमात्रम्, तेन शरीरमात्रेण। तिष्ठन् = वर्तमानः। अरण्ये = वने भवाः आरण्यकाः वन्यमनुष्या इत्यर्थः, आरण्यकैः उपात्ता = गृहीता इति आरण्यकोपात्ता, फलम् = वृक्षप्रसवः एव प्रसूतिः = प्रसवः यस्य सः आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः। स्तम्बेन = काण्डेन। अवशिष्टः = शेषः। नीवारः = धान्यविशेषः इव = यथा। आभासि=शोभसे।

समा०—नराणाम् इन्द्रः=नरेन्द्रः, तत्सम्बुद्धौ हे नरेन्द्र ! तीर्थेषु प्रतिपादिता इति तीर्थप्रतिपादिता, तीर्थप्रतिपादिता ऋद्धिः येन सः तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः। शरीरम् एव शरीरमात्रम्, तेन शरीरमात्रेण। अरण्ये भवाः, आरण्यकाः, आरण्यकैः उपात्ता आरण्यकोपात्ता, फलम् एव प्रसूतिः फलप्रसूतिः। आरण्यकोपात्ता फलप्रसूतिः यस्य सः आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः।

अभि०—हे राजन् ! विश्वजिति यज्ञे सत्पात्रेषु स्वीयां सर्वामपि समृद्धिं प्रदाय केवलेन स्वशरीरेणैव स्थितस्त्वं तथैव शोभां वहसि यथा स काण्डमात्रावशिष्टो नीवारो यस्य फलप्रसूतिर्वन्यजनैर्निःशेषं गृहीता भवेत् ।

हिन्दी—हे राजन् ! विश्वजित यज्ञमें अपनी सम्पूर्ण समृद्धि सत्पात्रों को दान कर केवल, अपने शरीर से स्थित आप ठीक उसी प्रकार से शोभित हो रहे हैं, जैसे कि वह ठंठ रूपमें स्थित नीवार, जिसके फल वनवासियों ने तोड़ लिये हों ॥१५॥

स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं व्यनक्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥१६॥

सञ्जीविनी—भवानेकनराधिपः सार्वभौमः सन् मखजं मखजन्यम् न विद्यते किंचन यस्येत्यकिञ्चनः । मयूरव्यंसकादित्वात्तत्पुरुषः । तस्य भावस्तत्त्वं निर्धनत्वं व्यनक्ति प्रकटयति स्थाने युक्तम् 'युक्ते द्वे सांप्रतं स्थाने' इत्यमरः । तथाहि सुरैर्देवैः पर्यायेण क्रमेण पीतस्य हिमांशोः कलाक्षयो वृद्धेरुपचयाच्छ्लाघ्यतरो हि वरः खलु । 'मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः । कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपाः' इति भावः । अत्र कामन्दकः—'धर्मार्थं क्षीणकोषस्य क्षीणत्वमपि शोभते । सुरैः पीतावशेषस्य कृष्णपक्षे विधोरिव' इति ॥१६॥

अन्वयः—भवान्, एकनराधिपः, सन्, मखजम्, अकिञ्चनत्वम्, यत् व्यनक्ति, 'तत्' स्थाने, हि सुरैः पर्यायपीतस्य, हिमांशोः कलाक्षयः, वृद्धेः, श्लाघ्यतरः 'भवति' ।

वाच्य०—भवता, एकनराधिपेन अकिंचनत्वं व्यज्यते, कलाक्षयेण, श्लाघ्यतरेण 'भूयते' ।

व्याख्या—भवान्=रघुः । नराणाम्=मनुष्याणाम् अधिपः=स्वामी, नराधिपः । एकः=केवलश्चासौ नराधिपः इति एकनराधिपः । 'सन्' । मखात्=यज्ञाद् जातम् =उत्पन्नम्, मखजम् । न=नहि, विद्यते किञ्चन=किमपि यस्य सः अकिञ्चनः= धनशून्यः, अकिञ्चनस्य भावः अकिञ्चनत्वम् धनराहित्यमित्यर्थः । 'यत्', व्यनक्ति=प्रकटयति । 'तत्' स्थाने=युक्तम् । हि=यतः । सुरैः=देवैः । पर्यायेण= क्रमशः पीतः=पानविषयीकृतः इति पर्यायपीतः, तस्य पर्यायपीतस्य । हिमाः= शीतलाः, अंशवः=किरणाः यस्य सः हिमांशुः चन्द्र इत्यर्थः, तस्य हिमांशोः ।

कलानाम्=षोडशांशानाम्, क्षयः=नाशः इति कलाक्षयः। वृद्धेः=उपचयात्। अतिशयेन श्लाघ्यः=प्रशंसनीयः इति श्लाघ्यतरः, 'अस्ति'।

समा०—नराणाम् अधिपः नराधिपः, एकः च असौ नराधिपश्च एकनराधिपः। मखात् जातम् मखजम्, तत्। न विद्यते किञ्चन यस्य सः अकिञ्चनः, अकिञ्चनस्य भावः अकिञ्चनत्वम्। पर्यायेण पीतः पर्यायपीतः, तस्य पर्यायपीतस्य। हिमाः अंशवः यस्य सः हिमांशुः, यस्य हिमांशोः। कलानाम् क्षयः कलाक्षयः। अतिशयेन श्लाघ्यः श्लाघ्यतरः।

अभि०—हे राजन्, विश्वजिद्यज्ञे सर्वस्वं याजकेभ्यो दत्वा चक्रवर्त्यपि धनहीनस्त्वं सुतरां शोभसे। यथा शुक्लपक्षीयवृद्ध्यपेक्षया क्रमशो देवैः पीतामृतस्य चन्द्रमसः कृष्णपक्षीयः कलाक्षयः शोभनतरो भवति।

हिन्दी—हे राजन्! चक्रवर्ती होते हुए भी विश्वजित् यज्ञ में सम्पूर्ण धन याजकों को दान में देकर धनरहित होकर आप अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। ठीक है, देवताओं द्वारा पारी-पारी से प्रतिदिन अमृत पिये जाने के कारण क्षीण होनेवाले चन्द्रमा का दुबलापन शुक्ल पक्ष की वृद्धि की अपेक्षा श्लाघ्य होता है ॥१६॥

तदन्यतस्तावदनन्यकार्यो गुर्वर्थमाहर्तुमहं यतिष्ये।
स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ॥१७॥

सञ्जीविनी—तत्तस्मात्तावदनन्यकार्यः 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे' इति विश्वः। प्रयोजनान्तररहितोऽहमन्यतो वदान्यान्तराद् गुर्वर्थं गुरुधनमाहर्तुमर्जयितुं यतिष्य उद्योक्ष्ये। ते तुभ्यं स्वस्ति शुभमस्तु। 'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च' इत्यनेन चतुर्थी। तथाहि चातकोऽपि 'धरणीपतितं तोयं चातकानां रुजाकरम्' इति हेतोरनन्यगतिकोऽपीत्यर्थः। निर्गलितोऽम्ब्वेव गर्भो यस्य तं शरद्घनं नार्दति याचते। 'अर्द गतौ याचने च' इति धातुः। 'याचनार्थे रणेऽर्दनम्' इति यादवः ॥१७॥

अन्वयः—तत्, यावत्, अनन्यकार्यः, अहम्, अन्यतः, गुर्वर्थम्, आहर्तुम्, यतिष्ये, ते, स्वस्ति, अस्तु, चातकः, अपि, निर्गलताम्बुगर्भम्, शरद्घनम्, न, अर्दति।

वाच्य०—अनन्यकार्येण, मया, यतिष्यते। चातकेन, अपि, निर्गलिताम्बुगर्भः, शरद्घनः, न अर्द्यते।

व्याख्या—तत्=तस्मात्। तावत्=अभीष्टसिद्धिपर्यन्तम्। न=नहि, विद्यते, अन्यत्=अपरम्, कार्यम्=कर्म यस्य सः अनन्यकार्यः। अहम्=कौत्सः। अन्यतः=अन्स्मात्, दात्रन्तरसकाशादित्यर्थः। गुरोः=उपाध्यायस्य, अर्थः=धनम् इति गुर्वर्थः, तम्, गुर्वर्थम्। आहर्तुम्=आदातुम्। यतिष्ये=प्रयत्नं करिष्यामि। ते=तुभ्यम् रघवे। स्वस्ति=कल्याणम्। अस्तु=भवतु। 'यतः' चातकः=पक्षिविशेषः अपि। निर्गलितं=च्युतम्, अम्बु=जलम् एव गर्भः=मध्यभागः यस्य सः निर्गलिताम्बुगर्भः, तं, तथोक्तम्। शरदः=शरदतोः, घनः=पयोदः इति शरद्घनः, तम् शरद्घनम्। न=नहि। अर्दति=याचते।

समा०—न विद्यते अन्यत् कार्यम् यस्य सः अनन्यकार्यः। गुरोः अर्थः गुर्वर्थः, तम् गुर्वर्थम्। निर्गलितः अम्बु एव गर्भः यस्य सः निर्गलिताम्बुगर्भः, तम् निर्गलिताम्बुगर्भम्। शरदः घनः शरद्घनः, तम् शरद्घनम्।

अभि०—हे राजन्! अतोऽहं गुरवे देयं धनमन्यस्माद्दातुः सकाशादाहर्तुमितो यामि। तव कल्याणमस्तु, यथा चातकोऽपि निर्गतजलं शारत्कालिकं मेघं न याचते तथैवाहमपि सत्पात्रप्रतिपादितसकलसमृद्धेस्त्वत्तः सकाशात्, याचनां कर्तुं नोत्सहे।

हिन्दी—इसलिए हे राजन्, गुरुदक्षिणा के लिए मैं अन्य दाता के समीप जाता हूँ, आपका कल्याण हो, क्योंकि चातक भी उस शरत्काल के बादल से जो कि सम्पूर्ण जल बरसा चुका है, जल की प्रार्थना नहीं करता है ॥१७॥

एतावदुक्त्वा प्रतियातुकामं शिष्यं महर्षेर्नृपतिर्निषिध्य।
किं वस्तु विद्वन्गुरवे प्रदेयं त्वया कियद्वेति तमन्वयुङ्क्त ॥१८॥

सञ्जीविनी—एतावद्वाक्यमुक्त्वा प्रतियातुं कामो यस्य तं प्रतियातुकामं गंतुकामम्। 'तुंकाममनसोरपि' इति मकारलोपः। महर्षेर्वरतन्तोः शिष्यं कौत्सं नृपती रघुर्निषिध्य निवार्य। हे विद्वन्! त्वया गुरवे प्रदेयं वस्तु किं किमात्मकं कियत्किंपरिमाणं वा। इत्येवं तं कौत्समन्वयुङ्क्तापृच्छत्। 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः ॥१८॥

अन्वयः—एतावत्, उक्त्वा, प्रतियातुकामम्, महर्षेः, शिष्यम्, नृपतिः, निषिध्य, हे विद्वन्, त्वया, गुरवे, प्रदेयम्, वस्तु, किम्, वा, कियत्, इति, तम्, अन्वयुङ्क्त।

वाच्य०—प्रतियातुकामः, महर्षेः शिष्यः, नृपतिना, प्रदेयेन, वस्तुना, केन, वा, कियता, 'भूयते' इति, सः अन्वयुज्यत।

व्याख्या—एतावत्=इयत् , उक्त्वा=कथयित्वा । प्रतियातुम्=प्रतिगन्तुम् , कामः=अभिलाषः यस्य सः प्रतियातुकामः, तम् प्रतियातुकामम् । महर्षेः=वरतन्तोः शिष्यम्=अन्तेवासिनम् । नृणाम्=मनुष्याणाम् , पतिः=स्वामी, इति नृपतिः, राजा रघुः । निषिध्य=निवार्य । हे विद्वन्=हे बुध ! त्वया=कौत्सेन । गुरवे= उपाध्यायाय । प्रदेयम्=प्रदातुं योग्यम् । वस्तु=पदार्थः । किम्=किमात्मकम् । कियत्=कियत्परिमाणम् । वा=इति विकल्पेऽव्ययम् । इति तं=कौत्सम् । अन्वयुङ्क्त=अपृच्छत् ।

समा०—प्रतियातुम् कामः यस्य सः प्रतियातुकामः, तम् प्रतियातुकामम् । नृणाम् पतिः नृपतिः । वेत्ति इति विद्वान् , तत्सम्बुद्धौ हे विद्वन् ! प्रदातुम् योग्यम् प्रदेयम् । किम् परिमाणमस्य कियत् ।

अभि०—एवमुक्त्वा यदा कौत्सः प्रस्थातुमियेष तदा स रघुणा निवारितः पृष्टश्च यत् , हे विद्वन् ! त्वया गुरवे देयं वस्तु किमस्ति कियत्परिमाणं चेति ।

हिन्दी—ऐसा कहकर कौत्स चलने को तैयार हुए तो उन्हें राजा रघु ने रोका और कहा कि हे विद्वन् ! आपको गुरुदक्षिणा में क्या वस्तु देनी है और कितनी देनी है ? ॥ १८ ॥

ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ॥ १९ ॥

सञ्जीविनी—ततो यथावद्यथार्हम् । अर्हार्थे वतिः । विहिताध्वराय विधिवदनुष्ठितयज्ञाय सदाचारायेत्यर्थः । स्मयावेशविवर्जिताय गर्वाभिनिवेशशून्याय अनुद्धतायेत्यर्थः । वर्णानां ब्राह्मणादीनामाश्रमाणां ब्रह्मचर्यादीनां च गुरवे नियामकाय 'वर्णाः स्युर्ब्राह्मणादयः' इति । 'ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्चतुष्टये । आश्रमोऽस्त्री' इति चामरः । सर्वकार्यनिर्वाहकायेत्यर्थः । तस्मै रघवे विचक्षणो विद्वान्वर्णी ब्रह्मचारी 'वर्णिनो ब्रह्मचारिणः' इत्यमरः । 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' इतीनिप्रत्ययः । स कौत्सः प्रस्तुतं प्रकृतमाचचक्षे ॥ १९ ॥

अन्वयः—ततः यथावत् , विहिताध्वराय, स्मयावेशविवर्जिताय, वर्णाश्रमाणाम् । गुरवे, तस्मै, विचक्षणः, वर्णी, सः, प्रस्तुतम् , आचचक्षे ।

वाच्य०—विचक्षणेन, वर्णिना, तेन, प्रस्तुतं, आचचक्षे ।

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम् । यथावत्=शास्त्रानुकूलम् , विहितः=कृतः,

अध्वरः=यज्ञः येन सः विहिताध्वरः, तस्मै विहिताध्वराय। स्मयस्य=गर्वस्य, आवेशः=अभिनिवेशः इति स्मयावेशः, स्मयावेशेन विवर्जितः=रहितः इति स्मयावेशविवर्जितः, तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय। वर्णाः=ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राश्च, आश्रमाः=ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्च वर्णाश्रमाः, तेषां वर्णाश्रमाणाम्। गुरवे=नियन्त्रे। तस्मै=रघवे। विचक्षणः=विद्वान्। वर्णी=ब्रह्मचारी, सः=कौत्सः। प्रस्तुतम्=प्रकृतवृत्तम्। आचचक्षे=कथयामास।

समा०—विहितः अध्वरः येन सः विहिताध्वरः, तस्मै विहिताध्वराय। स्मयस्य आवेशः स्मयावेशः, स्मयावेशेन विवर्जितः स्मयावेशविवर्जितः, तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय। वर्णाश्च आश्रमाश्च वर्णाश्रमाः, तेषां वर्णाश्रमाणाम्।

अभि०—ततः स ब्रह्मचारी विद्वान्कौत्सः शास्त्रविधिना संपादितविश्वजिद्यज्ञं तथापि गर्वरहितं चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां च नियामकं रघुं प्रति प्रस्तुतवृत्तान्तमाख्यातवान्।

हिन्दी—तब उस ब्रह्मचारी विद्वान् कौत्स ने शास्त्रविधि से विश्वजित् नामक यज्ञ को पूर्ण करने पर भी गर्वरहित तथा चारों वर्णों एवं आश्रमों के नियामक राजा रघु से प्रस्तुत वृत्तान्त कह सुनाया॥ १९॥

समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद् गुरुदक्षिणायै।
स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत्पुरस्तात्॥ २०॥

सञ्जीविनी—समाप्तविद्येन मया महर्षिर्गुरुर्दक्षिणायै गुरुदक्षिणास्वीकारार्थं विज्ञापितोऽभूत्। स च गुरुश्चिरायास्खलितोपचारां तां दुष्करां मे भक्तिमेव पुरस्तात्प्रथममगणयत्संख्यातवान्। भक्त्यैव संतुष्टः किं दक्षिणयेत्युक्तवानित्यर्थः। अथवा भक्तिमेव तां दक्षिणामगणयदिति योज्यम्॥ २०॥

अन्वयः—समाप्तविद्येन मया, महर्षिः, गुरुदक्षिणायै, विज्ञापितः, अभूत्, सः, 'च', चिराय, अस्खलितोपचाराम्, ताम्, मे भक्तिम्, एव, पुरस्तात्, अगणयत्।

वाच्य०—समाप्तविद्यः, अहम्, महर्षिम्, गुरुदक्षिणायै विज्ञापितवान्, अभूवम्। तेन अस्खलितोपचारा, सा, मे, भक्तिः एव, अगण्यत।

व्याख्या—समाप्ताः=अधीताः, विद्याः=शास्त्राणि येन सः समाप्तविद्यः, तेन समाप्तविद्येन। मया=कौत्सेन। महर्षिः=वरतन्तुः। गुरोः=उपाध्यायस्य, दक्षिणा=सत्कृत्य देयं द्रव्यम् इति गुरुदक्षिणा, तस्यै गुरुदक्षिणायै। विज्ञापितः=

प्रार्थितः । अभूत्=अभवत् । सः=गुरुश्च । चिराय=चिरकालपर्यन्तम् । न=नहि, स्खलितः = त्रुटितः, उपचारः = शुश्रूषा यस्याः सा अस्खलितोपचारा, ताम् अस्खलितोपचाराम् । ताम्=दुष्कराम् । मे=मम, कौत्सस्य . भक्तिम्=शुश्रूषाम् एव, पुरस्तात्=अग्रे । अगणयत्=गणयामास ।

समा०—समाप्ताः विद्याः येन सः समाप्तविद्यः, तेन समाप्तविद्येन । गुरोः दक्षिणा गुरुदक्षिणा, तस्यै गुरुदक्षिणायै । न स्खलितः, अस्खलितः अस्खलितः उपचारः यस्याः सा अस्खलितोपचारा, ताम् अस्खलितोपचाराम् ।

अभि०—यदा मया गुरोः सकाशात्सर्वा अपि विद्या अधीताः, तदाहं गुरवे गुरुदक्षिणां दातुमकथयम्, तेन च मत्कृता निरन्तरं गुरुशुश्रूषैव श्रेष्ठदक्षिणेति कथितम् ।

हिन्दी—जब कि मैंने गुरुजी से समस्त विद्यायें पढ़ लीं तो उनसे गुरुदक्षिणा माँगने का अनुरोध किया, किन्तु उन्होंने मेरे द्वारा निरन्तर की गयी शुश्रूषाको ही श्रेष्ठ दक्षिणा समझा ॥ २० ॥

निर्बन्धसंजातरुषार्थकार्श्यमचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्तः ।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति ॥२१॥

सञ्जीविनी—निर्बन्धेन प्रार्थनातिशयेन संजातरुषा संजातकोपेन गुरुणा अर्थकार्श्यं दारिद्र्यमचिन्तयित्वाऽविचार्याहं वित्तस्य धनस्य चतस्रो दश च कोटीश्चतुर्दशकोटीर्मे मह्यमाहरानयेति विद्यापरिसंख्यया विद्यापरिसंख्यानुसारेणैवोक्तः । अत्र मनुः—'अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश' इति ॥ २१ ॥

अन्वयः—निर्बन्धसंजातरुषा, गुरुणा अर्थकार्श्यम्, अचिन्तयित्वा, अहम्, वित्तस्य, चतस्रः, दश, च, कोटीः, मे, आहर, इति, विद्यापरिसंख्यया, उक्तः ।

वाच्य०—निर्बन्धसंजातरुट्, गुरुः, माम्, चतस्रः, दश, च, कोट्यः, 'त्वया' मे, आह्रियन्ताम् इति उक्तवान् ।

व्याख्या—निर्बन्धेन = अत्याग्रहेण, सञ्जाता = उत्पन्ना, रुट् = क्रोधः यस्य सः निर्बन्धसञ्जातरुट्, तेन निर्बन्धसञ्जातरुषा । गुरुणा=आचार्येण, वरतन्तुना । अर्थस्य = धनस्य, कार्श्यम् = अल्पत्वम्, मे, दारिद्र्यमित्यर्थः । अचिन्तयित्वा = अविचार्य । अहम् = कौत्सः । वित्तस्य=धनस्य । चतस्रः = चतुःसंख्यकाः, दश=

दशसंख्यकाः च कोटीः = लक्षशतकानि, चतुर्दश कोटीः इत्यर्थः। मे = मह्यम् परतन्त्रवे। आहर=आनय। इति=इत्थम्। विद्यानाम्=चतुर्दशविद्यानाम्, परिसंख्या=परिगणनम् इति विद्यापरिसंख्या, तया विद्यापरिसंख्यया। उक्तः=कथितः।

समा०—निर्बन्धेन संजाता रुट् यस्य सः निर्बन्धसंजातरुट्, तेन निर्बन्धसंजातरुषा। कृशस्य भावः कार्श्यम्, अर्थस्य कार्श्यम् अर्थकार्श्यम्। तत् अर्थकार्श्यम्। विद्यानाम् परिसंख्या विद्यापरिसंख्या। तया विद्यापरिसंख्यया।

अभि०—ममाग्रहातिशयेन गुरोः क्रोध उत्पन्नोऽतस्तेन मम दारिद्र्यमनालोच्य, त्वया मत्सकाशाच्चतुर्दश विद्या अधीताः, अतस्तदपेक्षया चतुर्दशैव कोटीर्मह्यं धनस्य देहीत्यहं कथितः।

हिन्दी—मेरे अधिक आग्रह करने पर गुरुजी क्रुद्ध हो गये, और मेरी दरिद्रता का विचार किये बिना ही बोले, कि तुमने प्राप्त चौदह विद्याओं की गणनाके अनुसार चौदह करोड़ मुद्रा मुझे दे दो ॥२१॥

सोऽहं सपर्याविधिभाजनेन मत्वा भवन्तं प्रभुशब्दशेषम्।
अभ्युत्सहे संप्रति नोपरोद्धुमल्पेतरत्वाच्छ्रुतनिष्क्रयस्य ॥२२॥

सञ्जीविनी—सोऽहं सपर्याविधिभाजनेनार्घ्यपात्रेण भवन्तं प्रभुशब्द एव शेषो यस्य तं मत्वा निःस्वं निश्चित्येत्यर्थः। श्रुतनिष्क्रयस्य विद्यामूल्यस्याल्पेतरत्वादतिमहत्त्वात्संप्रत्युपरोद्धुं निर्बन्धुं नाभ्युत्सहे ॥ २२ ॥

अन्वयः—सः, अहम्, सपर्याविधिभाजनेन, भवन्तम्, प्रभुशब्दशेषम्, मत्वा, श्रुतनिष्क्रयस्य, अल्पेतरत्वात्, सम्प्रति, उपरोद्धुम्, न अभ्युत्सहे।

वाच्य०—तेन, मया, भवान्, प्रभुशब्दशेषः, 'इति' उपरोद्धुम्, न, अभ्युत्सह्यते।

व्याख्या—सः=गुरुणा तथाऽऽदिष्टः, अहम्=कौत्सः। सपर्यायाः=पूजायाः विधिः = विधानम् इति सपर्याविधिः, सपर्याविधेः भाजनम् = पात्रम्, इति सपर्याविधिभाजनम्, तेन मृत्पात्रेण। भवन्तम्=रघुम्। प्रभवति=समर्थो भवति इति प्रभुः = ईश्वरः, प्रभुः इति शब्दः = पदम् इति प्रभुशब्दः, प्रभुशब्दः एव शेषः = अवशिष्टः, नतु धनमपि यस्य सः प्रभुशब्दशेषः, तम् प्रभुशब्दशेषम्। मत्वा = ज्ञात्वा। श्रुतस्य = शास्त्रस्य, निष्क्रयः = मूल्यम् इति श्रुतनिष्क्रयः, तस्य श्रुतनिष्क्रयस्य। अल्पात् = सूक्ष्मात्, इतरः = अन्यः इति अल्पेतरः,

महान् इत्यर्थः, अल्पेतरस्य भावः अल्पेतरत्वम्, तस्मात् अल्पेतरत्वात्, अत्याधिक्यात्। सम्प्रति=इदानीम्। उपरोद्धुम्=आग्रहं कर्तुम्। न=नहि, अभ्युत्सहे उत्साहं करोमि।

समा०—सपर्यायाः विधिः सपर्याविधिः, सपर्याविधेः भाजनम् सपर्याविधिभाजनम्, तेन सपर्याविधिभाजनेन। प्रभुः इति शब्दः प्रभुशब्दः, प्रभुशब्दः एव शेषः यस्य सः प्रभुशब्दशेषः, तम् प्रभुशब्दशेषम्। श्रुतस्य निष्क्रयः श्रुतनिष्क्रयः, तस्य श्रुतनिष्क्रयस्य। अल्पात् इतरः अल्पेतरः, अल्पेतरस्य भावः अल्पेतरत्वम्, तस्मात् अल्पेतरत्वात्।

अभि०—किन्तु मया मृद्पात्र्यपात्रेणैव भवतो धनशून्यं प्रभुत्वं ज्ञातं तेन महति देये शास्त्रनिष्क्रयद्रव्ये, भवतोऽनुरोधं कर्तुमिदानीं नोत्साहं करोमि।

हिन्दी—मैंने मिट्टी के अर्घ्यपात्र से ही, आपके पास प्रभु-शब्द ही शेष है अर्थात् धन नहीं, यह जान लिया है, अतः ऐसी परिस्थिति में मैं आपसे महती गुरुदक्षिणा के सम्बन्ध में अनुरोध करने का उत्साह नहीं कर रहा हूँ ॥२२॥

इत्थं द्विजेन द्विजराजकान्तिरावेदितो वेदविदां वरेण।
एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिरेनं जगाद भूयो जगदेकनाथः ॥२३॥

सञ्जीविनी—द्विजराजकान्तिश्चन्द्रकान्तिः 'द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकरः' इत्यमरः। 'तस्मात्सोमो राजा नो ब्राह्मणानाम्' इति श्रुतेः। द्विजराजकान्तित्वेनार्थावाप्तिवैराग्यं वारयति। एनसः पापान्निवृत्तेन्द्रियवृत्तिर्यस्य स जगदेकनाथो रघुर्वेदविदां वरेण श्रेष्ठेन द्विजेन कौत्सेनेत्थमावेदितो निवेदितः सन् एनं कौत्सं भूयः पुनर्जगाद ॥२३॥

अन्वयः—द्विजराजकान्तिः, एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः जगदेकनाथः, वेदविदाम्, वरेण, द्विजेन, इत्थम्, आवेदितः, 'सन्' एनम्, भूयः, जगाद।

वाच्य०—द्विजराजकान्तिना, एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिना, जगदेकनाथेन, आवेदितेन, 'सता', एषः, भूयः, जगदे।

व्याख्या—द्विजानाम्=ब्राह्मणानाम्, राजा=नृपः, इति द्विजराजः चन्द्रः, इत्यर्थः, द्विजराजस्य कान्तिः=शोभा, इव शोभा यस्य सः द्विजराजकान्तिः। इन्द्रियाणाम् = हृषीकाणाम्, वृत्तिः=व्यापारः इति इन्द्रियवृत्तिः, एनसः = पापात् निवृत्ता=दूरीभूता, इन्द्रियवृत्तिः यस्य सः एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः। जगतः=

विश्वस्य, एकः = केवलश्चासौ नाथः=स्वामी इति जगदेकनाथः । वेदान् = श्रुतीः विदन्ति जानन्ति इति वेदविदः तेषाम्=वेदविदाम् वरेण=श्रेष्ठेन । द्विजेन= ब्राह्मणेन । इत्थम्=एवम् । आवेदितः=निवेदितः 'सन्' एनम्=कौत्सम् । भूयः= पुनः । जगाद=उवाच ।

समा०—द्विजानाम् राजा द्विजराजः, द्विजराजस्य कान्तिः इव कान्तिः यस्य सः द्विजराजकान्तिः । इन्द्रियाणां वृत्तिः इन्द्रियवृत्तिः, एनसः निवृत्ता इति एनोनिवृत्ता, एनोनिवृत्ता इन्द्रियवृत्तिः यस्य सः एनोनिवृत्तेन्द्रियवृत्तिः । एकश्चासौ नाथः इति एकनाथः, जगतः एकनाथः इति जगदेकनाथः । वेदान् विदन्ति इति वेदविदः, तेषाम् वेदविदाम् ।

अभि०—चन्द्रतुल्यमनोहरो निष्पापो महीपो रघुर्वेदज्ञानां वरेण्येन कौत्सेनैवं विज्ञापितः पुनरुवाच ।

हिन्दी—चन्द्रमा के समान कान्तिवाले तथा किसी भी इन्द्रिय से पाप न न करनेवाले, जगत् के एक मात्र स्वामी रघु वेद को जाननेवालों में श्रेष्ठ कौत्स के इस प्रकार कहने पर फिर बोले ॥२३॥

गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम् ।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे मा भूत्परीवादनवावतारः ॥२४॥

सञ्जीविनी—श्रुतस्य पारं दृष्टवान् श्रुतपारदृश्वा 'दृशेः क्वनिप्' इति क्वनिप् । गुर्वर्थं गुरुदक्षिणार्थं यथा तथार्थी याचकः । विशेषणद्वयेनाप्यस्याप्रत्याख्येयत्वमाह । रघोः सकाशात्कामं मनोरथमनवाप्याप्राप्य वदान्यान्तरं दात्रन्तरं गतः । 'स्युर्वदान्यस्थूललक्ष्यदानशौण्डा बहुप्रदे' इत्यमरः । इत्येवंरूपोऽयं परीवादस्यापवादस्य नवो नूतनः प्रथमोऽवतार आविर्भावो मे मा भून्मास्तु । रघोरिति स्वनामग्रहणं संभावितत्वद्योतनार्थम् । तथा च 'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते' इति भावः ॥२४॥

अन्वयः—श्रुतपारदृश्वा, गुर्वर्थम्, अर्थी, रघोः, सकाशात्, कामम्, अनवाप्य, वदान्यान्तरम्, गतः, इति, अयम्, मे परीवादनवावतारः, मा, भूत् ।

वाच्य०—श्रुतपारदृश्वना, अर्थिना, वदान्यान्तरम् गतम् इति, अनेन, परीवादनवावतारेण, मा भावि ।

व्याख्या—श्रुतस्य=शास्त्रस्य, पारम्=अन्तः इति श्रुतपारम्, श्रुतपारम् दृष्टवान्=अवलोकितवान् इति श्रुतपारदृश्वा शास्त्रमर्मज्ञः इत्यर्थः। गुरवे=आचार्याय इदम् इति गुर्वर्थम्, गुरुनिमित्तमित्यर्थः। अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्, इति समासः। अर्थः=प्रयोजनम् अस्य अस्तीति अर्थी याचक इत्यर्थः। रघोः—दिलीपसूनोः। सकाशात्=समीपात्। कामम्=अभिलाषम्। अनवाप्य=अप्राप्य। अन्यः=अपरः वदान्यः=दाता इति वदान्यान्तरम् तद् वदान्यान्तरम्। गतः=यातः। इति=एवम्। अयम्=एषः मे=मम रघोः। नवः=नूतनश्चासौ अवतारः=उत्पत्तिः इति नवावतारः, परीवादस्य=निन्दायाः नवावतारः इति परिवादनवावतारः मा भूत्=नभवेत्।

समा०—श्रुतस्य पारम् श्रुतपारम्, श्रुतपारम् दृष्टवान् इति श्रुतपारदृश्वा। गुरवे इदम् इति गुर्वर्थम्। अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थी। अन्यः वदान्यो वदान्यान्तरम्, तत् वदान्यान्तरम्। नवश्चासौ अवतारः नवावतारः, परीवादस्य नवावतारः परीवादनवावतारः।

अभि०—अखिलशास्त्रपारंगतो गुरुमुद्दिश्य याचको रघोः समीपाद्धताशो भूत्वा दात्रन्तरसमीपे गत इति जगति मे निन्दायाः प्रथमावतारो न स्यात्।

हिन्दी—सम्पूर्ण शास्त्रों के पारगामी, गुरु के लिए याचना करनेवाले कौत्स की इच्छा रघु के समीप जाने पर पूर्ण न हुई, अतः वह दूसरे दानी के पास गया, यह मेरी प्रथम निन्दा न हो ॥ २४ ॥

स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे।
द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम् ॥२५॥

सञ्जीविनी—स त्वं महिते पूजिते प्रशस्ते प्रसिद्धे मदीयेऽग्न्यगारे त्रेताग्निशालायां चतुर्थोऽग्निरिव वसन्द्वित्राणि द्वे त्रीणि वाऽहानि दिनानि। 'संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये' इति बहुव्रीहिः। 'बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्' इति डच्प्रत्ययः समासान्तः। सोढुमर्हसि। हे अर्हन्मान्य! त्वदर्थं तव प्रयोजनं साधयितुं यावद्यते यतिष्ये। 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति भविष्यदर्थे लट् ॥२५॥

अन्वयः—सः त्वम्, महिते, प्रशस्ते, मदीये, अग्न्यगारे, चतुर्थः, अग्निः इव, वसन् द्वित्राणि अह्नानि, सोढुम्, अर्हसि, अर्हन्, यावत्, त्वदर्थम्, साधयितुम्, यते।

वाच्य०—तेन, त्वया, चतुर्थेन, अग्निना इव, वसता, अर्ह्यते, मया, यत्यते।

व्याख्या—सः=गुरुदक्षिणार्थी । त्वम्=कौत्सः । महिते=पूजिते । प्रशस्ते=प्रसिद्धे । मम=रघोः इदम् मदीयम्, तस्मिन् मदीये । अग्नेः अगारम्=गृहम् अग्न्यगारम्, तस्मिन् अग्न्यगारे । चतुर्थः=चतुर्थसंख्यकः, अग्निः=वह्निः, इव=यथा । वसन्=निवासं कुर्वन् । द्वे=द्विसंख्यके वा, त्रीणि=त्रिसंख्यकानि वा, द्वित्राणि, तानि तथोक्तानि । अहानि=दिनानि । सोढुम्=सहनं कर्तुम् । अर्हसि=योग्यो भवसि । हे अर्हन्=पूज्य ! यावत्=यावत्कालम् । तव=कौत्सस्य, अर्थः=प्रयोजनम्, इति त्वदर्थः, तम् इति त्वदर्थम्, तवाभिलषितमित्यर्थः । साधयितुम्=सम्पादयितुम् । यते=प्रयत्नं करोमि ।

समा०—मम इदम् मदीयम्, तस्मिन् मदीये । अग्नेः अगारम् अग्न्यगारम्, तस्मिन् अग्न्यगारे । द्वे वा त्रीणि वा द्वित्राणि । तव अर्थः त्वदर्थः, तम् त्वदर्थम् ।

अभि०—भवान् मदीयायामग्नित्रययुक्तायामग्निशालायां चतुर्थोऽग्निरिव दिनद्वयं दिनत्रयं वा तावद्वस, यावदहं तेऽर्थान् साधयितुमुपायं करोमि ।

हिन्दी—इसलिये आप मेरी पवित्र 'दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि' इन तीन अग्निवाली अग्निहोत्रशाला में चौथी अग्नि की भाँति दो या तीन दिन तक निवास करें, जब तक कि मैं आपकी कार्यसिद्धि के लिये कोई उपाय करता हूँ ॥२५॥

> तथेति तस्यावितथं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्संगरमग्रजन्मा ।
> गामात्तसारां रघुरप्यवेक्ष्य निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात् ॥२६॥

सञ्जीविनी—अग्रजन्मा ब्राह्मणः प्रतीतः प्रीतः सन्तस्य रघोरवितथममोघं संगरं प्रतिज्ञाम् 'अथ प्रतिज्ञाजिसंविदापत्सु संगरः' इत्यमरः । 'तां गिरम्' इति केचित्पठन्ति । तथेति प्रत्यग्रहीत् । रघुरपि गां भूमिमात्तसारां गृहीतधनामवेक्ष्य कुबेरादर्थं निष्क्रष्टुमाहर्तुं चकम इयेष ॥२६॥

अन्वयः—अग्रजन्मा, प्रतीतः, 'सन्' तस्य, अवितथम् संगरम्, तथा इति प्रत्यग्रहीत्, रघुः, अपि, गाम्, आत्तसाराम् अवेक्ष्य, कुबेरात्, अर्थम्, निष्क्रष्टुम् चकमे ।

वाच्य०—अग्रजन्मना, प्रतीतेन, 'सता', तस्य, अवितथः, संगरः प्रत्यग्राहि ।

व्याख्या—अग्रे=प्रथमम्, जन्म=उत्पत्तिः यस्य सः अग्रजन्मा । प्रतीतः=प्रसन्नः, 'सन्' । तस्य=रघोः । अवितथम्=अमोघम् । संगरम्=प्रतिज्ञां । तथा=तेनैव प्रकारेण अस्तु । इति=इत्थम् । प्रत्यग्रहीत्=स्वीचकार । रघुः=दिलीपसूनुः ।

अपि। आत्तः=गृहीतः, सारः अंशः यस्याः सा आत्तसारा, ताम् आत्तसाराम्। गाम्=पृथिवीम्। अवेक्ष्य=आलोच्य। कुबेरात्=धनाधिपात्। अर्थम्=धनम्। निष्क्रष्टुम्=आहर्तुम्। चकमे=इयेष।

समा०—अग्रे जन्म यस्य सः अग्रजन्मा। आत्तः सारः यस्याः सा आत्तसारा, ताम् आत्तसाराम्।

अभि०—ब्राह्मणेन कौत्सेनापि रघोः प्रतिज्ञा न मिथ्या भविष्यतीति तदुक्तं स्वीकृतम्। रघुणाऽपि मया महीतलादर्थं यशात्पूर्वमेव गृहीतमिति विचार्य कुबेराद्धनमानयामीति वाञ्छा कृता।

हिन्दी—ब्राह्मण कौत्स ने प्रसन्न होकर रघु के अभ्यर्थ निश्चय को स्वीकार किया। इधर रघुने भी पृथ्वी को सारहीन जानकर कुबेर से धन लाने की इच्छा की ॥ २६ ॥

वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने न हि तद्रथस्य ॥ २७ ॥

सञ्जीविनी—वसिष्ठस्य यन्मन्त्रेणोक्षणमभिमन्त्र्य प्रोक्षणं तज्जात्प्रभावात्सामर्थ्याद्धेतोः उदन्वदाकाशमहीधरेषूदन्वत्युदधावाकाशे महीधरेषु वा मरुत्सखस्य मरुतः सखेति तत्पुरुषः, बहुव्रीहौ समासान्ताभावात्। ततो वायुसहायस्येति लभ्यते। वारिणां वाहको बलाहकः पृषोदरादित्वात्साधुः, तस्येव मेघस्येव तद्रथस्य गतिः संचारो न विजघ्ने न विहता हि ॥ २७ ॥

अन्वयः—वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्, प्रभावात्, उदन्वदाकाशमहीधरेषु, मरुत्सखस्य, बलाहकस्य, इव, तद्रथस्य, गतिः न, हि विजघ्ने.।

वाच्य०—गत्या न विजघ्ने।

व्याख्या—मन्त्रेण=मन्त्रवचनेन, उक्षणम्=प्रोक्षणम्=मार्जनमित्यर्थः इति मन्त्रोक्षणम्, वसिष्ठस्य=तन्नामकमहर्षेः मन्त्रोक्षणम् इति वसिष्ठमन्त्रोक्षणम्, वसिष्ठमन्त्रोक्षणात् जातः=उत्पन्नः इति वसिष्ठमन्त्रोक्षणजः, तस्मात् वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात्। प्रभावात्=सामर्थ्यात्। उदकानि=जलानि सन्ति अस्मिन् इति उदन्वान्=समुद्रश्च, आकाशः=गगनञ्च, महीधरः=पर्वतश्चेति, उदन्वदाकाशमहीधराः, तेषु उदन्वदाकाशमहीधरेषु। मरुतः=वायोः, सखा=मित्रम् मरुत्सखः पवनसहाय इत्यर्थः, तस्य मरुत्सखस्य। वारीणाम्=जलानाम् वाहकः=

प्रापयिता इति वलाहकः । पृषोदरादित्वात्साधुः मेघ इत्यर्थः । तस्य बलाहकस्य । इव=यथा । तस्य=रघोः । रथः=स्यन्दनः इति तद्रथः, तस्य तद्रथस्य । गतिः= सञ्चारः । नहि=नैव, विजघ्ने=प्रतिरुद्धा ।

समा०—मन्त्रेण उक्षणम् मन्त्रोक्षणम्, वसिष्ठस्य मन्त्रोक्षणम् वसिष्ठमन्त्रोक्षणम्, वसिष्ठमन्त्रोक्षणात् जातः वसिष्ठमन्त्रोक्षणजः, तस्मात् वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात् । उदकानि सन्ति अस्मिन् इति उदन्वान्, आ समन्तात् काशते इति आकाशः, धरन्ति इति धराः, मह्याः धराः महीधराः उदन्वांश्च आकाशश्च महीधरश्चेति, उदन्वदाकाशमहीधराः, तेषु उदन्वदाकाशमहीधरेषु । मरुतः सखा मरुत्सखः, तस्य मरुत्सखस्य । वहति इति वाहकः, वारीणाम् वाहकः बलाहकः, तस्य बलाहकस्य । तस्य रथः तद्रथः, तस्य तद्रथस्य ।

अभि०—यथा पवनसहायवतो मेघस्य गतिः सर्वत्र निर्बाधा, तथैव वसिष्ठमन्त्राणां प्रोक्षणसामर्थ्याद्रघोः रथस्यापि सागरे, नभसि, पर्वते च प्रतिबन्धरहिता गतिरासीत् ।

हिन्दी—जैसे वायु की सहायता से मेघ की गति सर्वत्र हो जाती है, उसी प्रकार वसिष्ठजी के मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल के प्रोक्षण की सामर्थ्य से रघु के रथ की गति भी समुद्र, आकाश तथा पर्वत कहीं पर भी नहीं रुकती थी ।' २७ ॥

अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् ।
सामन्तसंभावनयैव धीरः कैलासनाथं तरसा जिगीषुः ॥ २८ ॥

सञ्जीविनी—अथ प्रदोषे रजनीमुखे तत्काले यानाधिरोहणविधानात् प्रयतो धीरो रघुः समन्ताद्भवः सामन्तः राजमात्रमिति संभावनयैव कैलासनाथं कुबेरं तरसा बलेन जिगीषुर्जेतुमिच्छुः सन् कल्पितं सज्जितं शस्त्रं गर्भे यस्य तं रथमधिशिश्ये रथे शयितवानित्यर्थः । 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—अथ, प्रदोषे, प्रयतः, धीरः, रघुः, सामन्तसम्भावनया, एव कैलासनाथम्, तरसा, जिगीषुः, 'सन्' कल्पितशस्त्रगर्भम्, रथम् अधिशिश्ये ।

वाच्य०—प्रयतेन, रघुणा, जिगीषुणा 'सता' रथः, अधिशिश्ये ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् । प्रदोषे=रजनीमुखे, प्रयतः=शुद्धः । धीरः= धैर्यशाली । रघुः=दिलीपसूनुः । समन्तात्=परितो भवः सामन्तः=राजमात्रम् न तु लोकपाल इति भावः, सामन्तस्य सम्भावना=कल्पना, इति सामन्तसम्भावना,

तया सामन्तसम्भावनया। एव। कैलासस्य=प्रसिद्धपर्वतविशेषस्य, नाथः= स्वामी, कैलासनाथः=कुबेरः, तम् कैलासनाथम्। तरसा=बलेन। जिगीषुः =जेतुमिच्छुः। 'सन्'। कल्पितम्=रचितम्, च तत् शस्त्रम्=आयुधम्, इति कल्पितशस्त्रम्, कल्पितशस्त्रम् गर्भे=मध्ये, यस्य सः कल्पितशस्त्रगर्भः, तम् कल्पितशस्त्रगर्भम्। रथम्=स्यन्दनम्। अधिशिश्ये=शयितवान्।

समा०—समन्तात् भवः सामन्तः, सामन्तस्य सम्भावना सामन्तसम्भावना, तया सामन्तसम्भावनया। कैलासस्य नाथः कैलासनाथः, तम् कैलासनाथम्। जेतुम् इच्छति जिगीषति, जिगीषति इति जिगीषुः। कल्पितम् च तत् शस्त्रम् कल्पितशस्त्रम्, कल्पितशस्त्रं गर्भे यस्य सः कल्पितशस्त्रगर्भः, तम् कल्पितशस्त्रगर्भम्।

अभि०—ततो धीरो रघुः स्वबलेन सामान्यराजवत्कुबेरं जेतुमिच्छया निशामुखे रथे शस्त्राणि संस्थाप्य स्वयमपि तत्रैव सुप्तः।

हिन्दी—तब धीरे रघु बलपूर्वक कुबेर को साधारण राजा की भाँति जीतने की इच्छा से सायङ्काल में ही रथ में शस्त्र रखकर स्वयं भी उसमें सो गये ॥२८॥

प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै सविस्मयाः कोशगृहे नियुक्ताः।
हिरण्मयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शशंसुः पतितां नभस्तः॥ २९॥

सञ्जीविनी—प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै रघवे कोषगृहे नियुक्ता अधिकृता भाण्डागारिकाः सविस्मयाः सन्तः कोषगृहस्य मध्ये नभस्तो नभसः, पञ्चम्यास्तसिल्प्रयः। पतितां हिरण्मयीं सुवर्णमयीम् 'दाण्डिनायन०' इत्यादिना निपातनात्साधुः। वृष्टिं शशंसुः कथयामासुः॥ २९॥

अन्वयः—प्रातः, प्रयाणाभिमुखाय, तस्मै, कोशगृहे, नियुक्ताः 'जनाः' सविस्मयाः, 'सन्तः', कोशगृहस्य, मध्ये, नभस्तः, पतिताम्, हिरण्मयीम्, वृष्टिम् शशंसुः।

वाच्य०—नियुक्तैः, सविस्मयैः 'सद्भिः' पतिता, हिरण्मयी, वृष्टिः, शशंसे।

व्याख्या—प्रातः = प्रभातसमये। प्रयाणस्य = प्रस्थानस्य, अभिमुखः = तत्परः इति प्रयाणाभिमुखः, तस्मै प्रयाणाभिमुखाय, तस्मै = रघवे, कोशस्य = निधेः, गृहम् = भवनम् इतिं कोशगृहम्, तस्मिन् कोशगृहे। नियुक्ताः = अधिकृताः, 'जनाः' विस्मयेन = आश्चर्येण सह वर्तमानाः सविस्मयाः, 'सन्तः'। कोशगृहस्य = निधिभवनस्य। मध्ये = अन्तः। नभस्तः = आकाशात्। पतिताम् = च्युताम्। हिरण्मयीम् = सुवर्णमयीम्। वृष्टिम् = वर्षणम्। शशंसुः = कथयामासुः।

समा०—प्रयाणस्य अभिमुखः प्रयाणाभिमुखः, तस्मै प्रयाणाभिमुखाय । कोश-स्य गृहम् कोशगृहम्, तस्मिन् कोशगृहे । विस्मयेन सह वर्तमानाः साविस्मयाः ।

अभि०—प्रातःकाले यदैव रघुः प्रस्थानं कर्तुमुद्यतस्तदैव विस्मितैर्भाण्डा-गारिकैः कोशभवनमध्ये गगनात्सुवर्णवृष्टिर्जातेति कथितम् ।

हिन्दी—प्रातःकाल ज्योंही रघु प्रस्थान करने को उद्यत हुए, त्योंही आश्चर्य में भरे हुए राजकोष के रक्षकों ने आकर सूचना दी कि कोशभवन में आकाश से सोने की वर्षा हुई है ॥ २९ ॥

तं भूपतिर्भासुरहेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात् ।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम् ॥३०॥

सञ्जीविनी—भूपती रघुः अभियास्यमानादभिगमिष्यमाणात्कुबेराल्लब्धम् वज्रेण कुलिशेन भिन्नं सुमेरोः पादं प्रत्यन्तपर्वतमिव स्थितम् 'पादाः प्रत्यन्त-पर्वताः' इत्यमरः । 'शृङ्गम्' इति क्वचित्पाठः । तं भासुरं भास्वरम् 'भञ्जभा-समिदो घुरच्' इति घुरच् । हेमराशिं समस्तं कृत्स्नमेव कौत्साय दिदेश ददौ । न तु चतुर्दशकोटिमात्रमित्येवकारार्थः ॥३०॥

अन्वयः—भूपतिः, अभियास्यमानात्, कुबेरात्, लब्धम् वज्रभिन्नम्, सुमेरोः, पादम्, इव, 'स्थितम्', तम् भासुरहेमराशिम्, समस्तम्, एव, कौत्साय, दिदेश ।

वाच्य०—भूपतिना, लब्धः, वज्रभिन्नः, सुमेरोः, पादः, इव, 'स्थितः', सः, भासुरहेमराशिः, समस्तः दिदिशे ।

व्याख्या—भुवः=भूमेः, पतिः=स्वामी, राजा रघुः । अभियास्यते असौ अभियास्यमानस्तस्मात् अभियास्यमानात्=अभिगमिष्यमाणात् । कुबेरात्= धनाधिपात् । लब्धम्=प्राप्तम् । वज्रेण=कुलिशेन । भिन्नः=विदारितः इति वज्रभिन्नः, तम् वज्रभिन्नम् । सुमेरोः=हेमाद्रेः, पादम्=प्रत्यन्तपर्वतम् । इव= यथा 'स्थितम्' । तम्=पूर्वकथितम् । भासुराणि=प्रकाशमानानि, च तानि हेमानि= सुवर्णानि इति भासुरहेमानि, भासुरहेम्नाम् राशिः=समूह इति भासुरहेमराशिः, तं भासुरहेमराशिम् । समस्तम्=सकलम्, एव । कौत्साय=वरतन्तुशिष्याय । दिदेश=ददौ ।

समा०—भुवः पतिः भूपतिः । अभियास्यति इति अभियास्यमानः, तस्मात् अभियास्यमानात् । वज्रेण भिन्नः वज्रभिन्नः, तम् वज्रभिन्नम् । भासुराणि च तानि

हेमानि भासुरहेमानि, भासुरहेम्नाम् राशिः भासुरहेमराशिः, तम् भासुरहेमराशिम् ।

अभि०—वज्रभिन्नः मेरुखण्ड इव स्थितः यावान्सुवर्णराशिः कुबेराद्वृष्टिरूपेण रघुणा लब्धस्तावन्तं सकलमेव स कौत्साय दातुमियेष ।

हिन्दी—जिसपर चढ़ाई की जानेवाली थी उस कुबेर से वृष्टि के द्वारा प्राप्त, वह चमचमाता हुआ सोने का ढेर सारा ही, महाराज रघु ने कौत्स को दे दिया जो कि वज्र से काटकर गिराया हुआ सुमेरु का टुकड़ा-सा दीखता था ॥ ३० ॥

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥३१॥

सञ्जीविनी—तावर्थिदातारौ द्वावपि साकेतनिवासिनोऽयोध्यावासिनः, 'साकेतः स्यादयोध्यायां कोसला नन्दिनी च सा' इति यादवः । जनस्याभिनन्द्यसत्त्वौ स्तुत्यव्यवसायावभूताम् । 'द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः । कौ द्वौ गुरुप्रदेयादधिकेऽतिरिक्तद्रव्ये निःस्पृहोऽर्थी अर्थिकामादर्थिमनोरथादधिकं प्रददातीति तथोक्तः 'प्रे दाशः' इति कप्रत्ययः, नृपश्च ॥३१॥

अन्वयः—तौ, द्वौ, अपि साकेतनिवासिनः, जनस्य, अभिनन्द्यसत्त्वौ, अभूतां 'कौ द्वौ' गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः, अर्थी, अर्थिकामात् अधिकप्रदः, नृपः, च ।

वाच्य०—ताभ्यां, द्वाभ्यां, अभिनन्द्यसत्त्वाभ्यां, अभावि, गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहेन, अर्थिना, अधिकप्रदेन, नृपेण, च ।

व्याख्या—तौ = याचकवदान्यौ कौत्सरघू । द्वौ = द्विसंख्यकौ । अपि । निवसति = निवासं करोति इति निवासी, साकेतस्य = अयोध्यायाः निवासी इति साकेतनिवासी, तस्य साकेतनिवासिनः । जनस्य = लोकस्य । अभिनन्दितुं योग्यं अभिनन्द्यं = प्रशंसनीयं, सत्त्वं = व्यवसायः, ययोस्तौ अभिनन्द्यसत्त्वौ । अभूतां = आस्ताम् । 'कौ द्वौ' प्रदातुं योग्यं प्रदेयं =दानार्हम् , गुरवे = उपाध्याय प्रदेय गुरुप्रदेय, गुरुप्रदेयात् अधिकं = अतिरिक्तम् इति गुरुप्रदेयाधिकं, गुरुप्रदेयाधिके निःस्पृहः = इच्छारहितः इति गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः । अर्थः = प्रयोजनम् अस्य अस्ति इति अर्थी = याचकः, कौत्सः । अर्थिनः = याचकस्य, कामः = अभिलाषः इति अर्थिकामः, तस्मात् अर्थिकामात् । अधिकं = विशेषं प्रददाति = वितरति इति अधिकप्रदः । नॄन् = मनुष्यान् , पाति=रक्षति इति नृपः—राजा रघुरित्यर्थः, च ।

समा०—निवसति इति निवासी, साकेतस्य निवासी साकेतनिवासी, तस्य साकेतनिवासिनः । अभिनन्दितुं योग्यं अभिनन्द्यं, अभिनन्द्यं सत्त्वं ययोः तौ अभिनन्द्यसत्त्वौ । प्रदातुं योग्यं प्रदेयं, गुरवे प्रदेयं गुरुप्रदेयं, गुरुप्रदेयात् अधिकं गुरुप्रदेयाधिकं, गुरुप्रदेयाधिके निःस्पृहः इति गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहः । अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थी, अर्थिनः कामः अर्थिकामः, तस्मात् अर्थिकामात् । अधिकं प्रददाति इति अधिकप्रदः । नॄन् पाति इति नृपः ।

भावा०—तदा रघुकौत्सयोर्द्वयोरपि दात्रर्थिनोरयोध्यावासिनः प्रशंसां चक्रुः, यतो महाराजो याचकाभिलाषादधिकं दातुमिच्छति स्म, कौत्सश्च गुरवे प्रदेयाद्धनादधिकं नादातुं वाञ्छति स्म ।

हिन्दी—उस समय अयोध्यावासी जन याचक और दाता दोनों ही के व्यवहार की सराहना करने लगे । इधर तो कौत्स गुरुदक्षिणा से अधिक एक कौड़ी भी नहीं लेना चाहते थे और उधर रघु याचककी अभिलाषा से अधिक देने को इच्छुक हो रहे थे ॥३१॥

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं प्रजेश्वरं प्रीतमना महर्षिः ।
स्पृशन्करेणानतपूर्वकायं संप्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः ॥३२॥

सञ्जीविनी—अथ प्रीतमना महर्षिः कौत्सः संप्रस्थितः प्रस्थास्यमानः सन् "आशंसायां भूतवच्च" इति भविष्यदर्थे क्तः । उष्ट्राणां क्रमेलकानां वामीनां वडवानां च शतेन वाहितार्थं प्रापितधनमानतपूर्वकायं विनयनम्रमित्यर्थः । प्रजेश्वरं रघुं करेण स्पृशन्वाचमुवाच ॥३२॥

अन्वयः—अथ, प्रीतमनाः, महर्षिः, कौत्सः, संप्रस्थितः, उष्ट्रवामीशतवाहितार्थं, आनतपूर्वकायं, प्रजेश्वरं, करेण, स्पृशन्, वाचं, उवाच ।

वाच्य०—अथ, प्रीतमनसा, महर्षिणा, कौत्सेन, संप्रस्थितेन, [illegible] करेण, स्पृशता, वाक्, नृपः, ऊचे ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् । प्रीतं = प्रसन्नं, मनः = चित्तं यस्य सः प्रीतमनाः । महर्षिः = ऋषिश्रेष्ठः । कौत्सः = वरतन्तुशिष्यः । संप्रस्थितः = प्रस्थितः [illegible] । उष्ट्राः = क्रमेलकाः च वाम्यः = वडवाश्च उष्ट्रवाम्यः, उष्ट्रवामीनां शतं इति उष्ट्रवामीशतं, उष्ट्रवामीशतेन वाहितः = प्रापितः, अर्थः = धनं येन सः, तम् उष्ट्रवामीशतवाहितार्थम् । आनतः = नम्रः, पूर्वकायः = देहोर्ध्वभागः

यस्य सः आनतपूर्वकायः, तम् आनतपूर्वकायम्। प्रजानाम्=लोकानाम्, ईश्वरः=स्वामी प्रजेश्वरः, तम् प्रजेश्वरम्=राजानं रघुम्। करेण=हस्तेन स्पृशन्=स्पर्शं कुर्वन्। वाचम्=वचनम्। उवाच=जगाद।

समा०—प्रीतम् मनः यस्य सः प्रीतमनाः। महान् चासौ ऋषिः महर्षिः। उष्ट्राश्च वाम्यश्च उष्ट्रवाम्यः, उष्ट्रवामीनाम् शतम् उष्ट्रवामीशतम्, उष्ट्रवामीशतेन वाहितः अर्थः येन सः उष्ट्रवामीशतवाहितार्थः, तम् उष्ट्रवामीशतवाहितार्थम्। पूर्वं कायस्य इति पूर्वकायः, आसमन्तात् नतः आनतः, आनतः पूर्वकायः यस्य सः आनतपूर्वकायः, तं आनतपूर्वकायम्। प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः, ईष्टे इति ईश्वरः, प्रजानाम् ईश्वरः, तं प्रजेश्वरम्।

अभि०—ततः प्रसन्नः कौत्सो रघुप्रदत्तेन क्रमेलकाश्वेषु संस्थापितेन धनराशिना सह प्रस्थातुमिच्छन्, शिरसा नम्रीभूतं राजानं रघुं करेण स्पृशन् एवमुवाच।

हिन्दी—तब रघु की दी हुई, ऊँटों और खच्चरों पर लादी, धनराशि के साथ चलने को तैयार एवं प्रसन्न हुए कौत्स, नम्रता से मस्तक अत्यन्त झुकाये हुए रघु के शिर पर हाथ फेरते हुए इस प्रकार बोले ॥३२॥

किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम्।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा ॥३३॥

संजीविनी—वृत्ते स्थितस्य। 'न्यायेनार्जनमर्थस्य वर्धनं पालनं तथा। सत्पात्रे प्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधम्' इति कामन्दकः। तस्मिन्वृत्ते स्थितस्य प्रजानामधिपतेर्नृपस्य भूः कामान्सूत इति कामसूर्यदि 'सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्' इति क्विप्। अत्र कामप्रसवने किं चित्रम्। न चित्रमित्यर्थः। किंतु तव प्रभावो महिमा त्वचिन्तनीयः। येन त्वया द्यौरपि मनीषितमभिलषितं दुग्धा। दुहेर्द्विकर्मकत्वादप्रधाने कर्मणि क्तः। 'प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम्। अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्तुश्च कर्मणः' इति स्मरणात् ॥३३॥

अन्वयः—वृत्ते, स्थितस्य, प्रजानां, अधिपतेः, भूः, कामसूः, यदि अत्र, किम्, चित्रं, तु, तव, प्रभावः, अचिन्तीयः, येन, द्यौः, अपि, मनीषितं दुग्धा।

वाच्य०—भुवा, कामसुवा, यदि, 'भूयते' अत्र, केन, चित्रेण भूयते' तु, तव, प्रभावेण, अचिन्तनीयेन भूयते। येन त्वम्, द्याम् अपि मनीषितं दुग्धवान्।

व्याख्या—वृत्ते=राजवृत्ते। स्थितस्य=वर्तमानस्य। प्रजानां=लोकानां, अधिपतेः=स्वामिनः। भूः=पृथ्वी। कामान्=मनोरथान्। सूते=उत्पादयति, इति कामसूः। यदि=चेत्। तर्हि। अत्र=अस्मिन् विषये। किम्=किमात्मकं चित्रं=आश्चर्यम्। तु=किन्तु। तव=रघोः। प्रभावः=सामर्थ्यम्। चिन्तयितुं=विचारयितुं योग्यः चिन्तनीयः, न चिन्तनीयः इति अचिन्तनीयः। येन=त्वया। द्यौः=स्वर्गः। अपि। मनीषितं=अभिलषितम्। दुग्धा=अदुह्यत।

समा०—प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः, तासाम्। कामान् सूते, इति कामसूः। चिन्तयितुं योग्यः चिन्तनीयः, न चिन्तनीयः अचिन्तनीयः।

अभि०—हे प्रजाधिप! त्वं राजवृत्ते जागरूकोऽसि, तत्प्रभावाद् पृथ्वी स्वच्छन्दतेऽभिलषितमुत्पादयति, नात्राश्चर्यं, स्वमहिमविशेषस्य अनेन प्रकटितो भवति यत्त्वया स्वर्गस्यापि स्वमनोऽनुकूलं दोहनं कृतम्।

हिन्दी—राजवृत्त में तत्पर प्रजा के स्वामी आपके लिये यदि पृथ्वी मनोऽनुकूल वस्तु का उत्पादन करती है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, आश्चर्य तो इससे प्रकट होता है कि आपने अपनी इच्छानुसार स्वर्ग का भी दोहन कर लिया ॥३३॥

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते।
पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव ॥३४॥

सञ्जीविनी—सर्वाणि श्रेयांसि शुभान्यधिजग्मुषः प्राप्तवतस्ते तवान्यत्पुत्रातिरिक्तमाशास्यमाशीःसाध्यमाशंसनीयं वा पुनरुक्तभूतम्। सर्वं सिद्धमित्यर्थः। किं त्वीड्यं स्तुत्यं भवन्तं भवतः पितेवात्मगुणानुरूपं, त्वया तुल्यगुणमित्यर्थः। पुत्रं लभस्व प्राप्नुहि ॥३४॥

अन्वयः—सर्वाणि, श्रेयांसि, अधिजग्मुषः, ते, अन्यत्, आशास्यं, पुनरुक्तभूतं, 'अस्ति' 'किन्तु' ईड्यं, भवन्तं, भवतः पिता, इव, त्वं, अपि, आत्मगुणानुरूपं, पुत्रं, लभस्व।

वाच्य०—ते अन्येन आशास्येन पुनरुक्तभूतेन 'भूयते'। ईड्यः भवान् भवतः पित्रा इव त्वया अपि आत्मगुणानुरूपः पुत्रः लभ्यताम्।

व्याख्या—सर्वाणि=सकलानि। श्रेयांसि=भद्राणि। अधिजग्मुषः=प्राप्तवतः, ते=तव रघोः। अन्यत्=अपरम्। आशास्यं=आशीःप्राप्यम्। पुनः=भूयः। उक्तभूतं=

कथनवत्, द्विरुक्तमिवास्तीत्यर्थः। 'किन्तु' ईडितुं = प्रशंसितुं योग्यं ईड्यम्। भवन्तं=रघुम्। भवतः=रघोः। पिता=जनकः। इव=यथा। त्वम्=रघुः अपि। आत्मनः=स्वस्य, गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः, तेषां अनुगुणः इति आत्मगुणानुरूपः, तम् आत्मगुणानुरूपम्। पुत्रं=सुतं, लभस्व=प्राप्नुहि।

समा०—ईडितुं योग्यः ईड्यः, तम् ईड्यम्। आत्मनः गुणाः आत्मगुणाः, आत्मगुणानाम् अनुरूपः आत्मगुणानुरूपः, तम् आत्मगुणानुरूपम्।

अभि०—सर्वेऽपि कल्याणमयाः पदार्थास्त्वत्सन्निधौ प्रथमत एव वर्तन्तेऽतस्तेषामाशीर्द्विरुक्तभूतेवास्ति। तथापि श्रुतः पित्रा सकलगुणाकरो यथा भवानधिगतस्तथैव त्वमपि स्वसदृशं पुत्रं प्राप्नुहि।

हिन्दी—सांसारिक समस्त सुख आपको पहले से ही उपलब्ध हैं; अतः उनके विषय में दिया गया आशीर्वाद पुनरुक्त ही होगा, तथापि जिस प्रकार प्रशंसा के योग्य आपको आपके पिता ने प्राप्त किया था उसी प्रकार आप भी अपने गुणों के अनुरूप पुत्र प्राप्त करें ॥ ३४ ॥

इत्थं प्रयुज्याशिषमग्रजन्मा राज्ञे प्रतीयाय गुरोः सकाशम्।
राजाऽपि लेभे सुतमाशु तस्मादालोकमर्कादिव जीवलोकः ॥ ३५ ॥

सञ्जीविनी—अग्रजन्मा ब्राह्मणः 'अग्रजन्मा द्विजे श्रेष्ठे भ्रातरि ब्रह्मणि स्मृतः' इति विश्वः। इत्थं राज्ञ आशिषं प्रयुज्य दत्त्वा गुरोः सकाशं समीपं प्रतीयाय प्राप। राजाऽपि जीवलोको जीवसमूहः 'जीवः प्राणिनि गीष्पतौ' इति विश्वः। अर्कादालोकं प्रकाशमिव चैतन्यं इति पाठे ज्ञानम्। तस्माद्दपेराशु सुतं लेभे प्राप ॥ ३५ ॥

अन्वयः—अग्रजन्मा, इत्थम्, राज्ञे, आशिषं, प्रयुज्य, गुरोः सकाशं, प्रतीयाय। राजा, अपि, जीवलोकः, अर्कात्, आलोकं, इव, तस्मात्, आशु, सुतं, लेभे।

वाच्य०—अग्रजन्मना प्रतीये, राज्ञा अपि जीवलोकेन आलोकः इव सुतः लेभे।

व्याख्या—अग्रे = प्रथमं, जन्म = उत्पत्तिः, यस्य सः अग्रजन्मा = ब्राह्मणः कौत्सः। इत्थम् = एवम्। राज्ञे = नृपाय, रघवे। आशिषं = आशीर्वादम्। प्रयुज्य = दत्त्वा। गुरोः = उपाध्यायस्य वरतन्तोः। सकाशं = समीपम्। प्रतीयाय = प्रापत्। राजा = नृपः, रघुः, अपि। जीवानां = प्राणिनां, लोकः = समूहः, इति जीवलोकः। अर्कात् = सूर्यात्। आलोकं = प्रकाशम् इव = यथा। तस्मात् = कौत्सर्षेः, आशु = शीघ्रम्। सुतं = पुत्रम्। लेभे = प्राप्तवान्।

समा०—अग्रे जन्म यस्य सः अग्रजन्मा । जीवानां लोकः जीवलोकः ।

अभि०—एवं कौत्सो रघवे शुभाशिषं प्रदाय गुरोः समीपं ययौ । रघुरपि तत्प्रभावादल्पीयसैव कालेन यथा लोकः सूर्यात्प्रकाशमाप्नोति तथैव सुतः प्राप्तः ।

हिन्दी—इस प्रकार कौत्स रघु को आशीर्वाद देकर गुरु के पास चले गये ; इधर रघु ने भी थोड़े ही समय में उस आशीर्वाद के प्रभाव से इस प्रकार पुत्र प्राप्त किया जैसे कि संसार सूर्य से प्रकाश प्राप्त करता है ॥ ३५ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार ॥ ३६ ॥

सञ्जीविनी—तस्य रघोर्देवी महिषी ब्राह्मे 'तस्येदम्' इत्यण् । ब्रह्मदेवताकेऽभिजिन्नामके मुहूर्ते किलेषदसमाप्तं कुमारं कुमारकल्पं स्कन्दसदृशं 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' इत्यनेन कल्पप्प्रत्ययः । कुमारं पुत्रं सुषुवे 'कुमारो बालके स्कन्दे' इति विश्वः । अतो ब्राह्ममुहूर्तोत्पन्नत्वात्पिता रघुर्ब्रह्मणो विधेरेव नाम्ना तमात्मजन्मानं पुत्रमजमजनामकं चकार । 'अजा हरौ हरे कामे विधौ छागे रघोः सुते' इति विश्वः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—तस्य, देवी, ब्राह्मे, मुहूर्ते, किल, कुमारकल्पं, कुमारं, सुषुवे, अतः, पिता, ब्रह्मणः, एव, नाम्ना, तम् , आत्मजन्मानं, अजं चकार ।

वाच्य०—देव्या कुमारकल्पः कुमारः सुषुवे । पित्रा सः आत्मजन्मा अजः चक्रे ।

व्याख्या—तस्य रघोः । देवी=महिषी । ब्रह्मणः=स्वयम्भुवः इदम् ब्राह्मम् , तस्मिन् ब्रह्मदेवताकेऽभिजिन्नामके इत्यर्थः । मुहूर्ते=घटिकाद्वयात्मके काले । किल इति प्रसिद्धौ । ईषदसमाप्तः कुमारः=कार्तिकेयः इति कुमारकल्पः, तम् कुमारकल्पं कार्तिकेयसदृशमित्यर्थः । कुमारं=बालम् । सुषुवे=प्रासोष्ट । अतः =अस्मादेव कारणात् , ब्राह्मे मुहूर्ते जातत्वादित्यर्थः । पिता=जनकः रघुः । ब्रह्मणः=स्वयम्भुवः एव नाम्ना=अभिधानेन । तम्=बालम् । आत्मनः= स्वस्मात् , जन्म=उत्पत्तिः यस्य सः आत्मजन्मा, तम् आत्मजन्मानं, पुत्रमित्यर्थः । न जायते=उत्पन्नो भवति इत्यजः=ब्रह्मा, तम् अजं, अजाख्यं चक्रे=अकरोत् ।

समा०—ईषदसमाप्तः कुमारः कुमारकल्पः, तं कुमारकल्पम् । आत्मनः जन्म यस्य सः आत्मजन्मा, तम् आत्मजन्मानम् । न जायते इति अजः, तम् अजम् ।

अभि०—रघोर्महिषी ब्राह्मे मुहूर्ते कार्तिकेयसदृशं पुत्रं जनयामास। रघुरपि तं ब्रह्मदेवताकमुहूर्तजन्मसंबन्धेनाजनामानं चकार।

हिन्दी—राजा रघु की रानी ने ब्राह्ममुहूर्त में कार्तिकेय के सदृश पुत्र उत्पन्न किया। अतः रघु ने उसका नाम ब्रह्मा के ही नाम से 'अज' रक्खा॥३६॥

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात्स्वाद्बिभिदे कुमारः प्रवर्तिता दीप इव प्रदीपात्॥३७॥

सञ्जीविनी—ओजस्वि तेजस्वि बलिष्ठं वा 'ओजस्तेजसि धातूनामवष्टम्भप्रकाशयोः। ओजो बले च दीप्तौ च' इति विश्वः। रूपं वपुः। 'अथ रूपं नपुंसकम् स्वभावाकृतिसौन्दर्यवपुषि श्लोकशब्दयोः।' इति विश्वः। तदेव पैतृकमेव वीर्यं शौर्यं तदेव नैसर्गिकं स्वाभाविकमुन्नतत्वं तदेव तादृशमेवेत्यर्थः। कुमारो बालकः प्रवर्तितः उत्पादितो दीपः प्रदीपात्स्वोत्पादकदीपादिव स्वात्स्वकीयात् 'पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा' इति स्माद्भावो वैकल्पिकः। कारणाज्जनकान्न बिभिदे भिन्नो नाभूत्, सर्वात्मना तादृश एवाभूदित्यर्थः॥३७॥

अन्वयः—ओजस्वि, रूपम्, तत्, एव, वीर्यम्, तत्, एव, नैसर्गिकम्, उन्नतत्वम्, 'तत् एव' 'आसीत्' कुमारः, प्रदीपात्, प्रवर्तितः दीपः, इव, स्वात्, कारणात् न बिभिदे।

वाच्य०—ओजस्विना रूपेण तेन एव, वीर्येण तेन एव, नैसर्गिकेण उन्नतत्वेन 'तेन एव, अभूयत' कुमारेण प्रदीपात् प्रवर्तितेन दीपेन इव स्वात् कारणात् न बिभिदे।

व्याख्या—ओजः=तेजः, अस्यास्तीति ओजस्वि। रूपम्=आकृतिः। तत्=पैतृकम् एव। वीर्यम्=शौर्यम् 'तत् एव' निसर्गात्=स्वभावात्, जातम्=उत्पन्नम्, नैसर्गिकम्। उन्नतस्य=प्रांशुत्वस्य भावः उन्नतत्वम्। 'तत् एव' 'आसीत्'। कुमारः = बालः अजः। प्रदीपात् = दीपकात्। प्रवर्तितः = उत्पादितः, दीपः = दीपकः। इव = यथा। स्वात् = स्वकीयात्। कारणात् = जनकात्। न = नहि। बिभिदे=भिन्नोऽभूत्।

समा०—ओजोऽस्त्यस्येत्योजस्वि। निसर्गाज्जातं नैसर्गिकम्। उन्नतस्य भाव उन्नतत्वम्।

अभि०—कुमारोऽजः स्वतेजसा, वीर्येण, स्वाभाविकौन्नत्येन च स्वजनकं रघुं तथैवानुचकार यथा दीपः परस्माद्दीपात्प्रज्वलितस्तं प्रकाशादिना पूर्णतोऽनुकरोति।

हिन्दी—कुमार अज का वही तेजोयुक्त रूप, वही शौर्य तथा वही स्वाभाविक ऊँचाई थी अर्थात् सभी गुण रघु से इस प्रकार मिल रहे थे जैसे कि एक दीपक से, दूसरे दीपक जलाये जाने पर, प्रकाश आदि गुण भिन्न नहीं होते ॥३७॥

उपात्तविद्यं विधिवद् गुरुभ्यस्तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् ।
श्रीः साभिलाषाऽपि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष ॥३८॥

सञ्जीविनी—गुरुभ्यो विधिवद्यथाशास्त्रमुपात्तविद्यं लब्धविद्यम् यौवनस्योद्भेदादाविर्भावाद्धेतोर्विशेषेण कान्तं सौम्यं तमजं प्रति साभिलाषापि श्रीः धीरा स्थिरोन्नतचित्ता 'स्थिरा चित्तोन्नतिर्या तु तद्धैर्यमिति संज्ञितम्' इति भूपालः । कन्या पितुरिव गुरोरनुज्ञामाचकाङ्क्षैव । यौवराज्यार्होऽभूदित्यर्थः । अनुज्ञाशब्दात्पितृपारतन्त्र्यमुपमासामर्थ्यात्पाणिग्रहणयोग्यता च ध्वन्यते ॥३८॥

अन्वयः—गुरुभ्यः, विधिवत्, उपात्तविद्यम्, यौवनोद्भेदविशेषकान्तम्, तम्, 'प्रति' साभिलाषा, अपि, श्रीः, धीरा, कन्या, पितुः, इव, गुरोः अनुज्ञाम् आचकाङ्क्ष ।

वाच्य०—तम् 'प्रति' साभिलाषया अपि श्रिया धीरया कन्ययेव अनुज्ञा आचकाङ्क्षे ।

व्याख्या—गुरुभ्यः=आचार्येभ्यः । विधिना=शास्त्रोक्तरीत्या, तुल्यम्=समम् विधिवत्, शास्त्रानुकूलमित्यर्थः । उपात्ताः=गृहीताः, विद्याः=चतुर्दशविद्याः येन सः उपात्तविद्यः, तम् उपात्तविद्यम् । विशेषेण=आधिक्येन, कान्तः=मनोहरः, इति विशेषकान्तः । यूनः=तरुणस्य, भावः यौवनम्, यौवनस्य उद्भेदः=प्रादुर्भावः, इति यौवनोद्भेदः, यौवनोद्भेदेन विशेषकान्तः, इति यौवनोद्भेदविशेषकान्तः, तम्, यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् । तम् अजम् 'प्रति' । अभिलाषेण=मनोरथेन सह वर्तमाना साभिलाषा=सोत्कण्ठा । अपि श्रीः=राज्यलक्ष्मीः । धीरा=धैर्यशालिनी । कन्या=कुमारी । पितुः=जनकस्य । इव=यथा । गुरोः=पितुः, रघोः । अनुज्ञाम्=अनुमतिम् । आचकाङ्क्ष=इयेष । स अजः युवराजपदारोहणयोग्योऽभूदित्यर्थः ।

समा०—विधिमर्हतीति विधिवत् । उपात्ता विद्या येन सः उपात्तविद्यः, तम् उपात्तविद्यम् । विशेषेण कान्तः विशेषकान्तः, तम् । यूनः भावः यौवनम्, यौवनस्य उद्भेदः यौवनोद्भेदः, यौवनोद्भेदेन विशेषकान्तः इति यौवनोद्भेदविशेषकान्तः, तं यौवनोद्भेदविशेषकान्तम् । अभिलाषेण सह वर्तमाना साभिलाषा ।

अभि०—यथा काऽपि धीरा कन्या नूतनतारुण्येन मनोहरं कान्तं प्रति स्पृहावत्यपि पितुराज्ञामपेक्षते तथैव तादृशमनोहरमजं प्रत्यभिलाषयुक्ताऽपि राज्यलक्ष्मीस्तत्पितुर्नृपस्य रघोराज्ञामपेक्षते स्म।

हिन्दी—विधिवत् गुरुजनों से सम्पूर्ण विद्यायें प्राप्त कर चुकने पर युवावस्था आ जाने से विशेष मनोहर अज के प्रति उत्कण्ठित होती हुई भी राज्यलक्ष्मी उसके वरण में रघु की आज्ञा की इस प्रकार प्रतीक्षा कर रही थी जैसे कि कोई धीर कन्या अभीप्सित वर के प्रति पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा करती हो ॥३८॥

अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः।
आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः ॥३९॥

सञ्जीविनी—अथ स्वसुर्भगिन्या इन्दुमत्याः स्वयंवरार्थे कुमारस्याजस्यानयने उत्सुकेन क्रथकैशिकानां विदर्भदेशानामीश्वरेण स्वामिना भोजेन राज्ञाप्तो हितो दूतो रघवे विसृष्टः प्रेषितः। क्रियामात्रयोगेऽपि चतुर्थी ॥३९॥

अन्वयः—अथ, स्वसुः, इन्दुमत्याः, स्वयंवरार्थम्, कुमारानयनोत्सुकेन, क्रथकैशिकानाम्, ईश्वरेण, भोजेन, आप्तः, दूतः, रघवे, विसृष्टः।

वाच्य०—कुमारानयनोत्सुकः क्रथकैशिकानाम् ईश्वरः भोजः आप्तं दूतं विसृष्टवान्।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्। स्वसुः=भगिन्याः। इन्दुमत्याः=तन्नाम्न्याः। स्वयंवरायेति स्वयंवरार्थम्=स्वयंवरणार्थम्। कुमारस्य=राजकुमारस्याजस्य, आनयनम्=आकारणम् इति कुमारनयनम्, कुमारानयने उत्सुकः=उत्कण्ठितः, इति कुमारानयनोत्सुकः, तेन कुमारानयनोत्सुकेन। क्रथकैशिकानाम्=विदर्भदेशानाम्। ईश्वरेण=स्वामिना। भोजेन=तन्नाम्ना। आप्तः=विश्वस्तः। दूतः=चरः। रघवे=दिलीपसूनवे। विसृष्टः=प्रहितः।

समा०—स्वयंवरायेति स्वयंवरार्थम्। कुमारस्यानयनं कुमारानयनं कुमारानयन उत्सुक इति कुमारानयनोत्सुकः, तेन कुमारानयनोत्सुकेन।

अभि०—अथ विदर्भदेशाधिपतिर्भोजः स्वस्वसुरिन्दुमत्याः स्वयंवरेऽजानयनाकाङ्क्षयैकं विश्वस्तं सन्देशहरं रघुसमीपे प्रेषितवान्।

हिन्दी०—इसी समय विदर्भदेश के राजा भोज ने अपनी बहिन इन्दुमती के स्वयवर में कुमार अज को बुलाने की इच्छा से एक विश्वस्त दूत राजा रघु के समीप भेजा ॥ ३९ ॥

तं श्लाघ्यसंबन्धमसौ विचिन्त्य दारक्रियायोग्यदशं च पुत्रम्।
प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम् ॥४०॥

सञ्जीविनी—असौ रघुस्तं भोजं श्लाघ्यसंबन्धमनूचानत्वादिगुणयोगात्स्पृहणीयसंबन्धं विचिन्त्य विचार्य पुत्रं च दारक्रियायोग्यदशं विवाहयोग्यवयसं विचिन्त्य ससैन्यमेनं पुत्रमृद्धां समृद्धां विदर्भाधिपस्य भोजस्य राजधानीं पुरीं प्रति प्रस्थापयामास। धीयतेऽस्यामिति धानी। 'करणाधिकरणयोश्च' इत्यधिकरणे ल्युट्-प्रत्ययः, राज्ञां धानीति विग्रहः ॥४०॥

अन्वयः—असौ, तम्, श्लाघ्यसम्बन्धम्, विचिन्त्य, पुत्रम्, च दारक्रियायोग्यदशम् 'विचिन्त्य' ससैन्यम्, एनम्, ऋद्धाम्, विदर्भाधिपराजधानीम्, प्रति, प्रस्थापयामास।

वाच्य०—अनेन, एषः, ससैन्यः, प्रस्थापयाञ्चक्रे।

व्याख्या—असौ = रघुः। तम् = भोजम्। श्लाघितुम् = प्रशंसितुम् योग्यः श्लाघ्यः, श्लाघ्यः संबन्धः=सम्मेलनम् येन सः श्लाघ्यसम्बन्धः तं श्लाघ्यसम्बन्धम्। विचिन्त्य = विचार्य। पुत्रम् = सुतम्, अजम्। च = तथा। दाराणाम् = भार्यायाः, क्रिया=कर्म इति दारक्रिया, दारक्रियायाः योग्या=अनुकूला, दशा= अवस्था, यस्य सः दारक्रियायोग्यदशः, तं दारक्रियायोग्यदशम्। 'विचिन्त्य', सेना = चमूः, एव सैन्यम्, सैन्येन सह वर्तते इति ससैन्यः, तं ससैन्यम्। एनम् = अजम्। ऋद्धाम् = समृद्धाम्। विदर्भाणाम् = क्रथकैशिकानाम्, अधिपः=स्वामी, इति विदर्भाधिपः, विदर्भाधिपस्य राजधानी = राजनगरी इति विदर्भाधिपराजधानी, तां विदर्भाधिपराजधानीम्, 'प्रति'। प्रस्थापयामास=प्रेषयामास।

समा०—श्लाघितुं योग्यः श्लाघ्यः, श्लाघ्यः सम्बन्धः यस्य स श्लाघ्यसंबंधः, तं श्लाघ्यसम्बन्धम्। दाराणां क्रिया दारक्रिया, दारक्रियायाः योग्या दशा यस्यासौ दारक्रियायोग्यदशः, तं दारक्रियायोग्यदशम्। विदर्भाणामधिपो विदर्भाधिपः, विदर्भाधिपस्य राजधानी विदर्भाधिपराजधानी, तां विदर्भाधिपराजधानीम्।

अभि०—रघुणा विदर्भाधिपतिना सह सम्बन्धं प्रशस्यं विचार्य तथा कुमारमजमपि विवाहयोग्यं दृष्ट्वा सेनया सह सोऽजो भोजपुरीं प्रति प्रस्थापितः।

हिन्दी—रघु ने विदर्भदेश के राजा भोज से सम्बन्ध करना उचित समझा

और अज की अवस्था को भी विवाह के उपयुक्त जानकर उसे सेना सहित विदर्भ देश की राजधानी की ओर भेज दिया ॥ ४० ॥

तस्योपकार्यारचितोपचारा वन्येतरा जानपदोपदाभिः ।
मार्गे निवासा मनुजेन्द्रसूनोर्बभूवुरुद्यानविहारकल्पाः ॥ ४१ ॥

सञ्जीविनी—उपकार्यासु राजयोग्येषु पटभवनादिषु 'सौधोऽस्त्री राजसदनमुपकार्योपकारिका' इत्यमरवचनव्याख्याने क्षीरस्वामी । उपक्रियत उपकरोति वा पटमण्डपादि राजसदनमिति । रचिता उपचाराः शयनादयो येषु ते तथोक्ता जानपदानां जनपदेभ्य आगतानामुपदाभिरुपायनैः वन्या वने भवा इतरे येषां ते *वन्येतराः अवन्या इत्यर्थः ।* 'न बहुव्रीहौ' इति सर्वनामसंज्ञानिषेधः । तत्पुरुषे सर्वनामसंज्ञा दुर्वारैव । तस्य मनुजेन्द्रसूनोरजस्य मार्गे निवासा वासनिका उद्यानान्याक्रीडाः 'पुमानाक्रीड उद्यानम्' इत्यमरः । तान्येव विहारा विहारस्थानानि तत्कल्पाः तत्सदृशाः 'ईषदसमाप्तौ०' इति कल्पप्प्रत्ययः । बभूवुः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—उपकार्यारचितोपचाराः, जानपदोपदाभिः वन्येतराः, तस्य, मनुजेन्द्रसूनोः, मार्गे, निवासाः, उद्यानविहारकल्पाः बभूवुः ।

वाच्य०—उपकार्यारचितोपचारैः वन्यैः निवासैः उद्यानविहारकल्पैः, बभूवे।

व्याख्या—उपक्रियन्त इत्युपकार्याः=पटभवनानि, उपकार्यासु रचिताः= सम्पादिताः, उपचाराः=शयनादयः येषु ते उपकार्यारचितोपचाराः । जनपदेभ्यः= प्रान्तेभ्यः, आगताः जानपदाः, जानपदानाम् उपदाः=उपायनानि इति जानपदोपदाः, ताभिः जानपदोपदाभिः । वने=अरण्ये भवा वन्याः, इतरे= अन्ये, येषान्ते वन्येतराः अवन्या इत्यर्थः । तस्य=अजस्य । मनुजानाम्= मनुष्याणाम् , इन्द्रः=स्वामी मनुजेन्द्रः राजा रघुरित्यर्थः, मनुजेन्द्रस्य सूनुः= पुत्रः इति मनुजेन्द्रसूनुः, तस्य मनुजेन्द्रसूनोः । मार्गे=पथि । निवासाः= वासस्थलानि । उद्यानानि = आक्रीडाः, एव विहाराः=विहरणस्थानानि इति उद्यानविहाराः, ईषदूनाः उद्यानविहाराः इति उद्यानविहारकल्पाः । बभूवुः= आसन् ।

समा०—उपक्रियन्ते इति उपकार्याः, उपकार्यासु रचिताः उपचाराः येषु ते उपकार्यारचितोपचाराः । जनपदेभ्यः आगताः जानपदाः, जानपदानामुपदाः जानपदोपदाः, ताभिः । वने भवा वन्याः इतरे येषान्ते वन्येतराः । मनुजानामिन्द्रः

मनुजेन्द्रः, मनुजेन्द्रस्य सूनुः मनुजेन्द्रसूनुः, तस्य मनुजेन्द्रसूनोः। उद्यानानि एव विहाराः उद्यानविहाराः, ईषदूना उद्यानविहाराः इति उद्यानविहारकल्पाः।

अभि०—भोजनगरीं प्रति गच्छतोऽजस्य मार्गे पटमण्डपेषु रचितैः शयनादिभिर्जनपदनिवासिभिर्दत्तैरुपायनैश्च मार्गनिवासा उद्यानविहारसदृशा बभूवुः।

हिन्दी—विदर्भ देशकी राजधानी जाते हुए मार्ग में बनाये अज के पड़ाव, सुन्दर शय्यादि से राजकी उद्यान-विहारों के समान ही हो गये थे ॥४१॥

स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।
निवेशयामास विलङ्घिताध्वा क्लान्तं रजोधूसरकेतु सैन्यम् ॥ ४२ ॥

सञ्जीविनी—विलङ्घिताध्वातिक्रान्तमार्गः सोऽजः सीकरार्द्रैः शीतलैरित्यर्थः, मरुद्भिर्वातैरानर्तिताः कम्पिता नक्तमालाश्चिरबिल्वाख्यवृक्षभेदाः 'चिरबिल्वो नक्तमालः करजश्च करञ्जके' इत्यमरः। यस्मिंस्तस्मिन् निवेशार्ह इत्यर्थः। नर्मदाया रोधसि रेवायास्तीरे क्लान्तं श्रान्तं रजोभिर्धूसराः केतवो ध्वजा यस्य तत्सैन्यं निवेशयामास ॥ ४२ ॥

अन्वयः—विलङ्घिताध्वा, सः, सीकरार्द्रैः, मरुद्भिः, आनर्तितनक्तमाले, नर्मदारोधसि, क्लान्तम्, रजोधूसरकेतु, सैन्यम्, निवेशयामास।

वाच्य०—विलङ्घिताध्वना, तेन, सैन्यं, निवेशयाञ्चक्रे।

व्याख्या—विलङ्घितः=अतिक्रान्तः, अध्वा=मार्गः येन सः विलङ्घिताध्वा, सः=अजः। सीकरैः=अम्बुकणैः, आर्द्राः=क्लिन्नाः इति सीकरार्द्राः, तैः सीकरार्द्रैः। मरुद्भिः=वायुभिः। आनर्तिताः=कम्पिताः, नक्तमालाः=चिरबिल्ववृक्षाः यस्मिंस्तत् आनर्तितनक्तमालम्, तस्मिन् आनर्तितनक्तमाले। नर्मदायाः=रेवायाः, रोधः=कूलम्, इति नर्मदारोधः, तस्मिन् नर्मदारोधसि। क्लान्तम्=परिश्रान्तम्, रजोभिः=धूलिभिः, धूसराः=ईषत्पाण्डुराः, केतवः=ध्वजाः, यस्य तत्, रजोधूसरकेतु। सेनैव सैन्यम्, तत्=चमूम्। निवेशयामास=निवासं कारयामास।

समा०—विलङ्घितः अध्वा येन सः विलङ्घिताध्वा। सीकरैः आर्द्राः इति सीकरार्द्राः, तैः सीकरार्द्रैः। आनर्तिता नक्तमाला यस्मिंस्तत् आनर्तितनक्तमालम्, तस्मिन्आनर्तितनक्तमाले। नर्मदायाः रोधः रोधः नर्मदारोधः, तस्मिन् नर्मदारोधसि। रजोभिर्धूसराः केतवो यस्य तत्, रजोधूसरकेतु। सेना एव सैन्यम्, तत्।

अभि०—मार्गे गच्छता अजेन नर्मदातटे धूसरपताकावती श्रान्ता सेना न्यवेशि, यत्र, जलकणशीतलैः पवनैः करञ्जकवृक्षाः कम्पन्ते स्म ।

हिन्दी—मार्ग में चलते हुए कुमार अज ने नर्मदा के उस तट पर धूल से धूसर पताकावाली तथा थकी हुई अपनी सेना का पड़ाव किया, जहाँ कि करञ्ज के वृक्ष, जल की बूँदों से युक्त ठंढी वायु से हिल रहे थे ॥४२॥

अथोपरिष्टाद् भ्रमरैर्भ्रमद्भिः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः ।
निर्धौतदानामलगण्डभित्तिर्वन्यः सरित्तो गज उन्ममज्ज ॥४३॥

सञ्जीविनी—अथोपरिष्टादूर्ध्वम् । 'उपर्युपरिष्टात्' इति निपातः । भ्रमद्भिः मदलोभादिति भावः, भ्रमरैः प्रागुन्मज्जनात्पूर्वं सूचितो ज्ञापितोऽन्तःसलिले प्रवेशो यस्य स तथोक्तः । निर्धौतदाने क्षालितमदे अत एवामले गण्डभित्ती यस्य स तथोक्तः 'दानं गजमदे त्यागे' इति शाश्वतः । प्रशस्तौ गण्डौ गण्ड-भित्ती 'प्रशंसावचनैश्च' इति समासः । भित्तिशब्दः प्रशस्तार्थः । तथा च गणरत्नमहोदधौ—'मतल्लिकोद्घमिश्राः स्युः प्रकाण्डस्थलभित्तयः' इति । प्रदेशौ वा 'भित्तिः प्रदेशे कुड्येऽपि' इति विश्वः । निर्धौतदानेनामला गण्डभित्ति-र्यस्येति वा । वन्यो गजः सरित्तो नर्मदायाः सकाशात् पञ्चम्यास्तसिलप्रत्ययः, उन्ममज्जोत्थितः ॥४२॥

अन्वयः—अथ, उपरिष्टात्, भ्रमद्भिः, भ्रमरैः, प्राक्सूचितान्तःसलिल-प्रवेशः, निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः, वन्यः, गजः, सरित्तः उन्ममज्ज ।

वाच्य०—प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशेन निर्धौतदानामलगण्डभित्तिना वन्येन, गजेन उन्ममज्जे ।

व्याख्या—अथ=सेनानिवेशानन्तरम् । उपरिष्टात्=उपरि, जलोर्ध्वप्रदेश इत्यर्थः । भ्रमद्भिः=प्रसरद्भिः मदलोभादिति भावः । भ्रमरैः=द्विरेफैः । सलिलस्य=जलस्य, अन्तः=अभ्यन्तरे अन्तःसलिलम् । अन्तःसलिले प्रवेशः= गमनम्, इति अन्तःसलिलप्रवेशः । प्राक्=पूर्वम्, सूचितः=विज्ञापितः, अन्तःसलिलप्रवेशः यस्य सः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः । निःशेषेण=आधि-क्येन, धौतम्=प्रक्षालितम् इति निर्धौतम्, दानम्=मदः ययोः ते निर्धौतदाने, अत एव अमले=स्वच्छे इति निर्धौतदानामले, गण्डौ=कपोलौ एव भित्ती =प्रदेशौ इति गण्डभित्ती, निर्धौतदानामले गण्डभित्ती यस्य सः निर्धौत-

निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः । वने=अरण्ये भवः वन्यः, गजः=हस्ती । सरितः=नर्मदानदीसकाशात् । उन्ममज्ज=उत्तस्थौ ।

समासः—सलिलस्य अन्तः अन्तःसलिलम्, अन्तःसलिले प्रवेशः अन्तःसलिलप्रवेशः, प्राक् सूचितः अन्तःसलिलप्रवेशः यस्य सः प्राक्सूचितान्तःसलिलप्रवेशः । निःशेषेण धौतम् निर्धौतम्, निर्धौतं दानं ययोः ते निर्धौतदाने, न विद्यते मलम् ययोः ते अमले, गण्डौ एव भित्ती गण्डभित्ती, निर्धौतदाने (अत एव) अमले गण्डभित्ती यस्य सः निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः, (प्रशस्तौ गण्डौ गण्डभित्ती । निर्धौतदाने अत एव अमले गण्डभित्ती यस्येति वा) गण्डयोः भित्तिः (प्रदेशः) गण्डभित्तिः निर्धौतदानेन अमला गण्डभित्तिः यस्य सः निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः-इति वा समासः ।

अभि०—सेनानिवेशानन्तरमेव नर्मदाया जलादेको गज उत्थितो बभूव, स च वन्य आसीत् । एवं च तस्य जलस्पर्शलोभेनाकृष्टा भ्रमरा भ्रमन्ति स्म, येन तस्य जलाभ्यन्तरप्रवेशः सूच्यते स्म । अपि च जलक्षालनेन तस्य कपोलप्रदेशौ मलरहितावभूताम् ।

हिन्दी—सेना का पड़ाव डाल देने पर नर्मदा के जल से एक जंगली हाथी निकला । पानी के ऊपर मँडरानेवाले भौंरों से उसके डुबकी लगाये हुए का अनुमान हो रहा था, और उसके कपोल पानी से धुलकर निर्मल हो गये थे ॥४३॥

निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु ।
नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शंसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ॥४४॥

सञ्जीविनी—कथंभूतो गजः । निःशेषविक्षालितधातुनाऽपि नीलाभिरूर्ध्वाभी रेखाभिः शिलाभिघातजनिताभिः शबलेन कर्बुरेण 'चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' इत्यमरः । अश्मभिः उपलैर्विकुण्ठितेन कुण्ठीकृतेन दन्तद्वयेन ऋक्षवान्नाम कश्चित्पर्वतः, तस्य तटेषु वप्रक्रियां वप्रक्रीडाम् । उत्खातकेलिमित्यर्थः । 'उत्खातकेलिः शृङ्गाद्यैर्वप्रक्रीडा निगद्यते' इति शब्दार्णवः । शंसन्कथयन् । सूचयन्नित्यर्थः । उन्ममज्ज ॥४४॥

अन्वयः—निःशेषविक्षालितधातुना, अपि नीलोर्ध्वरेखाशबलेन, अश्मविकुण्ठितेन, दन्तद्वयेन, ऋक्षवतः, तटेषु, वप्रक्रियाम्, शंसन् 'स गजः' ।

वाच्य०—तटेषु वप्रक्रिया शंसता तेन अभे ।

व्याख्या—निःशेषम् = पूर्णतः यथा स्यात्तथा विक्षालितः = धौतः, इति निःशेषविक्षालितः, निःशेषविक्षालितः धातुः = गैरिकादिः येन तत् निःशेषविक्षालितधातु, तेन निःशेषविक्षालितधातुना अपि । ऊर्ध्वाः = उन्नताश्च ताः रेखाः-लेखाः इति ऊर्ध्वरेखाः, नीलाः = श्यामाश्च ताः ऊर्ध्वरेखाः इति नीलोर्ध्वरेखाः, नीलोर्ध्वरेखाभिः शबलम् = कर्बुरम् इति नीलोर्ध्वरेखाशबलम् , तेन नीलोर्ध्वरेखाशबलेन । अश्मभिः = पाषाणैः, विकुण्ठितम् = विकुण्ठीकृतम् इति अश्मविकुण्ठितम् , तेन अश्मविकुण्ठितेन । दन्तयोः = रदयोः द्वयम्=द्वितयं इति दन्तद्वयम्, तेन दन्तद्वयेन । ऋक्षाः = भल्लूकाः सन्ति अस्मिन् इति ऋक्षवान् तदाख्यः पर्वतविशेषः, तस्य ऋक्षवतः । तटेषु = तीरप्रदेशेषु, वप्रस्य क्रिया वप्रक्रिया = उत्खातकेलिः, ताम् = वप्रक्रीडाम् । शंसन् = सूचयन् । सः=गजः । बभौ = शुशुभे ।

समा०—निःशेषम् विक्षालितः निःशेषविक्षालितः, निःशेषविक्षालितः धातुः येन तत् निःशेषविक्षालितधातु, तेन निःशेषविक्षालितधातुना । ऊर्ध्वाश्च ताः रेखा ऊर्ध्वरेखाः । नीलाश्च ताः ऊर्ध्वरेखाः नीलोर्ध्वरेखाः, नीलोर्ध्वरेखाभिः शबलम् इति नीलोर्ध्वरेखाशबलम् , तेन नीलोर्ध्वरेखाशबलेन । अश्मभिः विकुण्ठितम् इति अश्मविकुण्ठितम् , तेन अश्मविकुण्ठितेन । दन्तयोः द्वयं दन्तद्वयम्, तेन दन्तद्वयेन । ऋक्षाः सन्ति अस्मिन् इति ऋक्षवान् , तस्य ऋक्षवतः ।

अभि०—तस्य गजस्य दन्तद्वयं, सलिलान्तर्निमज्जनेन गैरिकादिधातुप्रक्षालनेऽपि, ऋक्षवतो गिरेस्तटप्रदेशेषु कृतायां वप्रक्रीडायाम् 'उत्खातकेलिक्रीडायाम्' विलग्नाभिर्नीलोन्नतरेखाभिः, पाषाणेषु प्रासेन कुण्ठीभावेन च, वप्रक्रीडां सूचयच्छोभितमासीत् ।

हिन्दी०—यद्यपि दाँतों का ऋक्षवान् गिरिके तट को उखाड़ने की क्रीडामें लगा गैरिकादि धातु नर्मदा के जल से अच्छी प्रकार धुल चुका था तथापि पाषाणों के प्रहार से पड़ जानेवाली गहरी नीली रेखाओं एवं टूटे हुए अग्रभागों से ही वह की गई वप्रक्रीडा को सूचित कर रहा था ॥४४॥

संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम्
बभौ स भिन्दन्बृहतस्तरंगान्वार्यर्गलाभङ्ग इव प्रवृत्तः ॥४५॥

सञ्जीविनी—संहारविक्षेपयोः संकोचनप्रसारणयोर्लघुक्रियेण क्षिप्रव्यापारेण लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्' इत्यमरः । हस्तेन शुण्डादण्डेन 'हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात्करे-

भकरयोरपि' इति विश्वः । सशब्दं सघोषं बृहतस्तरङ्गान्भिन्दन्विदारयंस्तीराभिमुखः स गजः, वारी गजबन्धनस्थानम् 'वारी तु गजबन्धनी' इति यादवः । वार्या अर्गलाया विष्कम्भस्य भङ्गे भञ्जने प्रवृत्त इव बभौ ॥४५॥

अन्वयः—संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन, सशब्दम्, बृहतः, तरङ्गान्, भिन्दन्, तीराभिमुखः, सः वार्यर्गलाभङ्गे, प्रवृत्तः, इव, बभौ ।

वाच्य०—भिन्दता तीराभिमुखेन तेन वार्यर्गलाभङ्गे प्रवृत्तेन इव बभे ।

व्याख्या—संहारः = सङ्कोचः, च विक्षेपः = प्रसारणम्, च, संहारविक्षेपौ लघ्वी = अल्पीयसी, क्रिया = व्यापारः, यस्य सः लघुक्रियः । संहारविक्षेपयोः लघुक्रियः इति संहारविक्षेपलघुक्रियः, तेन संहारविक्षेपलघुक्रियेण । हस्तेन = शुण्डादण्डेन । सशब्दम् = ध्वनिसहितं यथा स्यात्तथा । बृहतः = विपुलान् । तरङ्गान्= वीचीः । भिन्दन् = विदारयन् । तीरस्य = तटस्य, अभिमुखः=संमुखः इति, तीराभिमुखः । स = गजः, वार्याः=गजबन्धन्याः, "वारी तु गजबन्धनी" इति यादवः ; अर्गला = प्रतिबन्धः, इति वार्यर्गला, वार्यर्गलायाः भङ्गः = भञ्जनम्, इति वार्यर्गलाभङ्गः, तस्मिन् वार्यर्गलाभङ्गे । प्रवृत्तः = लग्नः । इव=यथा । बभौ=शुशुभे ।

समा०—संहारश्च विक्षेपश्च संहारविक्षेपौ संहारविक्षेपयोः लघ्वी क्रिया यस्य सः संहारविक्षेपलघुक्रियः । तेन संहारविक्षेपलघुक्रियेण । तीरस्य अभिमुखः तीराभिमुखः । वार्या अर्गला वार्यर्गला । वार्यर्गलायाः भङ्ग इति वार्यर्गलाभङ्गः । तस्मिन् वार्यर्गलाभङ्गे ।

अभि०—तीराभिगमनेच्छुः स गजः स्वीयशुण्डादण्डस्य संकोचेन प्रसारणेन च शब्दपूर्वकं तरङ्गान्विदारयन् गजबन्धनशृङ्खलायाः भञ्जने लग्न इवाशोभत ।

हिन्दी—तट की ओर आता हुआ वह हाथी, अपनी सूँड़ को सिकोड़ते तथा फैलाते हुए शब्द के साथ तरङ्गों को छिन्न-भिन्न करता हुआ, बाँधने की शृङ्खला को तोड़ने में लगा हुआ सा जान पड़ता था ॥४५॥

शैलोपमः शैवलमञ्जरीणां जालानि कर्षन्नुरसा स पश्चात् ।
पूर्वं तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प ॥४६॥

सञ्जीविनी—शैलोपमः सः गजः शैवलमञ्जरीणां जालानि वृन्दान्युरसा कर्षन्पश्चात्तटमुत्ससर्प । पूर्वं तेन गजेनोत्पीडितो नुन्नो वारिराशिर्यस्य स सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प ॥४६॥

अन्वयः—शैलोपमः, सः, शैवलमञ्जरीणाम्, जालानि, उरसा, कर्षन्, पश्चात्, तटम्, उत्ससर्प, पूर्वम् तदुत्पीडितवारिराशिः सरित्प्रवाहः, 'तटम्, उत्ससर्प' ।

वाच्य०—शैलोपमेन तेन कर्षता तटः पश्चात् उत्ससृपे, तदुत्पीडितवारिराशिना, सरित्प्रवाहेण, 'तटः पूर्वम् उत्ससृपे' ।

व्याख्या—शैलः=पर्वतः, उपमा=सादृश्यं यस्य सः शैलोपमः सः=गजः। शैवलानां=जलनीलीनां 'जलनीली तु शैवालं शैवलः' इत्यमरः। मञ्जर्यः= वल्लर्यः इति शैवलमञ्जर्यः, तासां शैवलमञ्जरीणाम्। जालानि=समूहान्। उरसा=वक्षःस्थलेन। कर्षन्=दूरे नयन्। पश्चात्=अनन्तरं। तटं=तीरं। उत्ससर्प=प्राप्तः। पूर्वं=प्राक्। तेन=गजेन, उत्पीडितः=नुन्नः इति तदुत्पीडितः, वारीणां=जलानां राशिः=समूहः इति वारिराशिः, तदुत्पीडितः वारिराशिः यस्य सः तदुत्पीडितवारिराशिः। सरितः=नद्याः, प्रवाहः=जलाविच्छिन्नगतिः। तटं= तीरं, उत्ससर्प=प्राप्तः।

समा०—शैलः उपमा यस्य सः शैलोपमः। शैवलानां मञ्जर्यः शैवलमञ्जर्यः, तासां शैवलमञ्जरीणाम्। तेन उत्पीडितः तदुत्पीडितः, वारीणाम् राशिः वारिराशिः, तदुत्पीडितः वारिराशिः यस्य सः तदुत्पीडितवारिराशिः। सरितः प्रवाहः सरित्प्रवाहः।

अभि०—पर्वताकारेण तेन गजेन शैवलमञ्जरीणां समूहान् स्ववक्षःस्थलेनाकर्षता पश्चात्तट आप्तः। तत्क्षुभिततरङ्गो जलप्रवाहस्तु पूर्वमेव तटमाप्तवान्।

हिन्दी—पर्वताकार वह हाथी सेवार की लताओं को अपने वक्षःस्थल से खींचता हुआ करता हुआ, पीछे तटपर पहुँचा और उससे पूर्व ही उसके चलने से क्षुभित तरङ्गवाला नर्मदा का प्रवाह तटपर पहुँच गया ॥ ४६ ॥

तस्यैकनागस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहक्षणमात्रशान्ता।
वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनर्दिदीपे मददुर्दिनश्रीः ॥ ४७ ॥

सञ्जीविनी—तस्यैकनागस्यैकाकिनो गजस्य कपोलभित्त्योर्जलावगाहेन क्षणमात्रं शान्ता निवृत्ता मददुर्दिनश्रीर्मदवर्षलक्ष्मीर्वन्येतरेषां ग्राम्याणामनेकपानां द्विपानां दर्शनेन पुनर्दिदीपे ववृधे ॥ ४७ ॥

अन्वयः—तस्य, एकनागस्य, कपोलभित्त्योः जलावगाहक्षणमात्रशान्ता मददुर्दिनश्रीः वन्येतरानेकपदर्शनेन, पुनः दिदीपे।

वाच्य०—जलावगाहक्षणमात्रशान्तया मददुर्दिनश्रिया पुनः दिदीपे ।

व्याख्या—तस्य=पूर्वोक्तस्य । एकः=मुख्यश्चासौ नागः गजः इति एकनागः, तस्य एकनागस्य । कपोलौ=गण्डस्थलौ एव भित्ती=प्रदेशौ इति कपोलभित्ती, तयोः कपोलभित्त्योः । जले=सलिले, अवगाहः=मज्जनम् जलावगाहः, क्षणः= मुहूर्तम् एव क्षणमात्रम्, क्षणमात्रं शान्ता=निवृत्ता इति क्षणमात्रशान्ता, जलावगाहेन क्षणमात्रशान्ता इति जलावगाहक्षणमात्रशान्ता । मदस्य=दानस्य, दुर्दिनम्=वर्षणम् इति मददुर्दिनम्, मददुर्दिनस्य श्रीः=शोभा इति मददुर्दिनश्रीः । वने=विपिने भवा वन्याः, वन्या इतरे=अन्ये येषां ते वन्येतराः, अनेकाभ्याम्= मुखशुण्डाभ्याम् पिबन्ति=पानं कुर्वन्ति इति अनेकपाः गजाः इत्यर्थः, वन्येतराश्च ते अनेकपाः इति वन्येतरानेकपाः, वन्येतरानेकपानाम् दर्शनम्=अवलोकनम् इति वन्येतरानेकपदर्शनम्, तेन वन्येतरानेकपदर्शनेन पुनः=भूयः दिदीपे=ववृधे ।

समा०—एकश्चासौ नागः इति एकनागः, तस्य एकनागस्य । कपोलौ एव भित्ती इति कपोलभित्ती, तयोः कपोलभित्त्योः । जले अवगाहः जलावगाहः, क्षण एव क्षणमात्रम्, क्षणमात्रं शान्ता इति क्षणमात्रशान्ता, जलावगाहेन क्षणमात्रशान्ता इति जलावगाहक्षणमात्रशान्ता । दुष्टं दिनम् दुर्दिनम्, मदस्य दुर्दिनम् मददुर्दिनम्, मददुर्दिनस्य श्रीः इति मददुर्दिनश्रीः । वने भवाः वन्याः, वन्याः इतरे येषां ते वन्येतराः, अनेकाभ्यां पिबन्ति इति अनेकपाः, वन्येतराश्च ते अनेकपाः इति वन्येतरानेकपाः, वन्येतरानेकपानाम् दर्शनम् इति वन्येतरानेकपदर्शनम्, तेन वन्येतरानेकपदर्शनेन ।

अभि०—यन्मदजलवर्षणम् नर्मदा सलिलमज्जनेन तस्य गजस्य मुहूर्तमात्रं शान्तमभूत् तदेवाजसेनागजावलोकनेन पुनरुत्पन्नं बभूव ।

हिन्दी—उस हाथी के गण्डस्थलों से जो मद टपक रहा था वह नर्मदा के जल में डुबकी लगाने से एक क्षण के लिये बन्द हो गया था, किन्तु अज की सेना के हाथियों को देखते ही पुनः बरसने लगा ॥ ४७ ॥

सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाघ्राय मदं तदीयम् ।
विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः सेनागजेन्द्रा विमुखा बभूवुः ॥ ४८ ॥

सञ्जीविनी—सप्तच्छदस्य वृक्षविशेषस्य क्षीरवत्कटुः सुरभिः प्रवाहः प्रसारो यस्य तम् । कटुतिक्तकषायास्तु सौरभ्येऽपि प्रकीर्तिताः' इति यादवः । असह्यं

तदीयं मदमाघ्राय सेनागजेन्द्राः विलङ्घितः तिरस्कृत आधोरणानां हस्तिपकानां तीव्रो महान्यत्नो यैस्ते तथोक्ताः सन्तः, 'आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः' इत्यमरः । विमुखाः पराङ्मुखाः बभूवुः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहम्, 'अत एव' असह्यम्, तदीयम्, मदम्, आघ्राय, सेनागजेन्द्राः, विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः, 'सन्तः' विमुखाः, बभूवुः ।

वाच्य०—सेनागजेन्द्रैः विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नैः 'सद्भिः' विमुखैः बभूवे ।

व्याख्या—सप्त=सप्तसंख्यकाः छदाः=पत्राणि यस्य सः सप्तच्छदः, सप्तपर्णवृक्षः इत्यर्थः, सप्तच्छदस्य क्षीरम्=दुग्धम् सप्तच्छदक्षीरम्, सप्तच्छदक्षीरवत् कटुः= सुरभिः, प्रवाहः=प्रसारः यस्य सः सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहः, तम् सप्तच्छदक्षीरकटु-प्रवाहम् । 'अत एव' सोढुम्=सहनं कर्तुम् शक्यः सह्यः, न सह्यः असह्यः, तम् । तस्य=गजस्य अयम् तदीयः, तम् तदीयम् । मदम्=दानम् । आघ्राय=घ्रात्वा । गजानाम्=हस्तिनाम्, इन्द्राः=स्वामिनः गजेन्द्राः, सेनायाः=चम्वाः गजेन्द्राः सेना-गजेन्द्राः । तीव्रः=अधिकश्चासौ, यत्नः=उपायः इति तीव्रयत्नः, आधोरणानाम्= हस्तिपकानाम् तीव्रयत्नः इति आधोरणतीव्रयत्नः, विलङ्घितः=तिरस्कृतः आधोरण-तीव्रयत्नः यैस्ते विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्नाः, 'सन्तः' । विपरीतम्=विरुद्धम् मुखम् येषां ते विमुखाः पराङ्मुखा इत्यर्थः । बभूवुः=आसन् ।

समा०—सप्त छदा यस्य सः सप्तच्छदः, सप्तच्छदस्य क्षीरं सप्तच्छदक्षीरम्, सप्तच्छदक्षीरवत्कटुः प्रवाहः यस्य सः सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहः, तं सप्तच्छदक्षीरकटु-प्रवाहम् । सोढुं शक्यः सह्यः, न सह्यः असह्यः तम् । गजानाम् इन्द्राः गजेन्द्राः सेनायाः गजेन्द्राः सेनागजेन्द्राः । तीव्रश्चासौ यत्नः तीव्रयत्नः, आधोरणानां तीव्र-यत्नः इति आधोरणतीव्रयत्नः, विलङ्घितः आधोरणतीव्रयत्नः यैस्ते विलङ्घिता-धोरणतीव्रयत्नाः ।

अभि०—अजसेनागजेन्द्रैर्यदा सप्तपर्णदुग्धसमस्तस्य गजस्य मदगन्ध आघ्रायि तदैव तमसहमानास्ते तथा दुद्रुवुर्यथा तदाधोरणानामुपाया अपि तान्नि-रोद्धुं न शेकुः ।

हिन्दी—अज की सेना के बड़े-बड़े हाथी भी सप्तपर्ण के समान गन्धवाले उस हाथी के मद को सूँघकर उसे सहन न करते हुए भागने लगे, यहाँ तक कि हाथीवानों के उग्र उपाय भी उन्हें न रोक सके ॥४८॥

स च्छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन।
रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार ॥४९॥

सञ्जीविनी—स गजः छिन्ना बन्धा यैस्ते छिन्नबन्धाः द्रुताः पलायिताः युगं वहन्तीति युग्या वाहाः यस्मिन्स तथोक्तः स चासौ शून्यश्च तम्। भग्ना अक्षा रथावयवदारुविशेषाः 'अक्षो रथस्यावयवे पाशकेऽप्यक्षमिन्द्रियम्' इति शाश्वतः येषां ते भग्नाक्षा अत एव पर्यस्ताः पतिता रथा यस्मिंस्तम्। रामाणां स्त्रीणां परित्राणे संरक्षणे विहस्ता व्याकुलाः 'विहस्तव्याकुलौ समौ' इत्यमरः। योधा यस्मिंस्तं सेनानिवेशं शिबिरं क्षणेन तुमुलं चकार ॥४९॥

अन्वयः—सः, छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यम्, भग्नाक्षपर्यस्तरथम्, रामापरित्राणविहस्तयोधम्, सेनानिवेशम्, क्षणेन, तुमुलम्, चकार।

वाच्य०—तेन छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यः भग्नाक्षपर्यस्तरथः रामापरित्राणविहस्तयोधः सेनानिवेशः क्षणेन तुमुलः चक्रे।

व्याख्या—सः=नर्मदाजलोत्पन्नः गजः। युगम्=धुरम् वहन्ति इति युग्याः, छिन्नाः=त्रुटिताः बन्धाः=बन्धनानि यैस्ते छिन्नबन्धाः, छिन्नबन्धाश्च ते द्रुताः=पलायिताः युग्याः यस्मिन् सः छिन्नबन्धद्रुतयुग्यः, स चासौ शून्यश्च इति छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यः, तम्। भग्नाः=त्रुटिताः, अक्षाः=कीलकानि येषां ते भग्नाक्षाः, अत एव पर्यस्ताः=पतिताः, रथाः=स्यन्दनाः यस्मिन् सः भग्नाक्षपर्यस्तरथः, तम् भग्नाक्षपर्यस्तरथम्। रामाणाम्=स्त्रीणाम् परित्राणं=संरक्षणम् इति रामापरित्राणं, रामापरित्राणे विहस्ताः=व्याकुलाः, योधाः=भटाः यस्मिन् सः रामापरित्राणविहस्तयोधः, तम् परित्राणविहस्तयोधम्। सेनायाः=चम्वाः निवेशः=शिबिरः इति सेनानिवेशः, तं सेनानिवेशम्। क्षणेन=क्षणमात्रेणैव। तुमुलम् = व्याकुलम्, चकार=अकरोत्।

समा०—युगं वहन्तीति युग्याः, छिन्नाः बन्धाः यैस्ते छिन्नबन्धाः, छिन्नबन्धाश्च ते द्रुताः इति छिन्नबन्धद्रुताः, छिन्नबन्धद्रुताः युग्याः यस्मिन् सः छिन्नबन्धद्रुतयुग्यः, छिन्नबन्धद्रुतयुग्यश्चासौ शून्यः इति छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यः, तम् छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्यम्। भग्नाः अक्षाः येषां ते भग्नाक्षाः, भग्नाक्षाश्च पर्यस्ताश्च रथाः यस्मिन् सः भग्नाक्षपर्यस्तरथः, तं भग्नाक्षपर्यस्तरथम्। रामाणां परित्राणं इति रामापरित्राणम्। रामापरित्राणे विहस्ताः योधाः यस्मिन सः रामापरित्राण-

विहस्तयोधः, तं रामापरित्राणविहस्तयोधम्। सेनायाः निवेशः इति सेनानिवेशः, तम् सेनानिवेशम्।

अभि०—स सेनानिवेशस्तस्मिन्गजे आगतमात्र एव व्याकुलो जातः। तथाहि बन्धनानि भङ्क्त्वा वाहना द्रुद्रुवुः, भग्नाक्षा रथाः पेतुः, योधाश्च स्त्रीणां संरक्षणे व्याकुला बभूवुः।

हिन्दी—अज की सेना का वह समस्त शिविर उस हाथी के आते ही व्याकुल हो गया, क्योंकि हाथी घोड़े आदि बन्धन तोड़कर भागने लगे, धुरा टूटने से रथ गिरने लगे तथा योधा लोग स्त्रियों की रक्षा में तत्पर हो गये ॥४९॥

तमापतन्तं नृपतेरवध्यो वन्यः करीति श्रुतवान्कुमारः।
निवर्तयिष्यन्विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः ॥५०॥

सञ्जीविनी—नृपते राज्ञो वन्यः करी अवध्य इति श्रुतवाञ्छास्त्राज्ज्ञातवान्कुमार आपतन्तमभिधावन्तं तं गजं निवर्तयिष्यन्न तु प्रहरिष्यन् अत एव नात्यायतमनतिदीर्घं यथा स्यात्, नञर्थस्य नशब्दस्य सुप्सुपेति समासः, कृष्टशार्ङ्गः ईषदाकृष्टचापः सन्विशिखेन बाणेन कुम्भे जघान। अत्र चाक्षुषः—'लक्ष्मीकामो युद्धादन्यत्र करिवधं न कुर्यात्। इयं हि श्रीर्यत् करिणः' इति। अत एव 'युद्धादन्यत्र' इति द्योतनार्थमेव वन्यग्रहणं कृतम् ॥५०॥

अन्वयः—नृपतेः, वन्यः, करी, अवध्यः, इति, श्रुतवान्, कुमारः, आपतन्तं, तम्, निवर्तयिष्यन्, 'अत एव' नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः, 'सन्' विशिखेन, कुम्भे जघान।

वाच्य०—इति श्रुतवता तं निवर्तयिष्यता नात्यायतकृष्टशार्ङ्गेण 'सता' जघ्ने।

व्याख्या—नृणां=मनुष्याणां पतिः=स्वामी नृपतिः=राजा, तस्य नृपतेः। वने= अरण्ये भवः वन्यः। करः=शुण्डादण्डः अस्य अस्ति इति करी=गजः। हन्तुम्= मारयितुम् योग्यः वध्यः, न=नहि वध्यः अवध्यः। इति=इत्थम्। श्रुतवान्=ज्ञातवान्। कुमारः=युवराजः अजः। आ=समन्तात्, पतति=गच्छति इति आपतन्, तम् आपन्तम् आयान्तमित्यर्थः। तम् गजम्। निवर्तयिष्यति=निराकरिष्यति इति निवर्तयिष्यन्। 'अत एव' शृङ्गस्य=विषाणस्य, विकारः शार्ङ्गम्=धनुः। न=नहि, अत्यायतम्=अतिदीर्घम् इतिं नात्यायतम्, नात्यायतं च तत् कृष्टम्=आकृष्टम् इति नात्यायतकृष्टम् तत च शार्ङ्गम्=येन सः, नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः 'सन्' विशिखेन= बाणेन। कुम्भे=गण्डस्थले। जघान=हतवान्।

समा०—नृणां पतिः नृपतिः, तस्य नृपतेः । हन्तुं योग्यः वध्यः, न वध्यः अवध्यः । न आयायतं नात्यायतं, नात्यायतं कृष्टं शार्ङ्गं येन सः नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः ।

अभि०—राज्ञः वन्यो गजो न हन्तव्य इति जानता युवराजेनाजेन केवलं तस्य पराङ्मुखीकरणेच्छया धनुर्नातिदूरमाकृष्य गण्डस्थलोपरि बाणो मुक्तः ।

हिन्दी—राजा को जंगली हाथी नहीं मारना चाहिये यह जाननेवाले कुमार अज ने केवल उसको दूर भगाने की इच्छा से धनुष को थोड़ा खींचकर गण्डस्थल के ऊपर एक बाण छोड़ा ॥ ५० ॥

स विद्धमात्रः किल नागरूपमुत्सृज्य तद्विस्मितसैन्यदृष्टः ।
स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति कान्तं वपुर्व्योमचरं प्रपेदे ॥ ५१ ॥

सञ्जीविनी—स गजो विद्धमात्रस्ताडितमात्रः किल न तु प्रहृतस्तथापि नागरूपं गजशरीरमुत्सृज्य तेन कुमारेण विस्मितैस्तद्विस्मितैः सैन्यैर्दृष्टः सन् स्फुरतः प्रभामण्डलस्य मध्यवर्ति कान्तं मनोहरं व्योमचरं वपुः प्रपेदे प्राप ॥ ५१ ॥

अन्वयः—सः विद्धमात्रः किल नागरूपं, उत्सृज्य, तद्विस्मितसैन्यदृष्टः, सन् स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति, कान्तम्, वपुः प्रपेदे ।

वाच्य०—तेन विद्धमात्रेण तद्विस्मितसैन्यदृष्टेन, 'सता' वपुः, प्रपेदे ।

व्याख्या—सः = गजः, विद्धः = ताडितः एव विद्धमात्रः किल = इति वार्त्तायाम् । नागस्य = गजस्य रूपम् आकृतिः इति नागरूपम्, तत् उत्सृज्य = परित्यज्य सेना = चमूः एव सैन्यं विस्मितं = चकितं च तत् सैन्यम् विस्मितसैन्यम्, तस्य = अजस्य विस्मितसैन्यम् तद्विस्मितसैन्यम्, तद्विस्मितसैन्येन दृष्टः = अवलोकितः इति तद्विस्मितसैन्यदृष्टः सन् । प्रभायाः = दीप्तेः, मण्डलम् = चक्रम् इति प्रभामण्डलं, स्फुरत् = प्रकाशमानं च तत् प्रभामण्डलं इति स्फुरत्प्रभामण्डलम्, तस्य मध्यम् = मध्यभागः इति स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यम्, तस्मिन् वर्तते = तिष्ठति इति स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति । कान्तम् = मनोहरम् । व्योम्नि = आकाशे चरति = गच्छति इति व्योमचरम्, तत् । वपुः = शरीरम्, प्रपेदे = प्राप ।

समा०—विद्धः एव विद्धमात्रः । नागस्य रूपं इति नागरूपं, तत् नागरूपम् । सेना एव सैन्यम्, विस्मितं च तत् सैन्यं इति विस्मितसैन्यम्, तस्य विस्मितसैन्यम् इति तद्विस्मितसैन्यम्, तद्विस्मितसैन्येन दृष्टः इति तद्विस्मितसैन्यदृष्टः । प्रभायाः मण्डलं प्रभामण्डलम्, स्फुरत् च तत् प्रभामण्डलम् इति स्फुरत्प्रभामण्ड-

लम्, स्फुरत्प्रभामण्डलस्य मध्यम् इति स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यम्, स्फुरत्प्रभामण्ड-लमध्ये वर्तते इति स्फुरत्प्रभामण्डलमध्यवर्ति। व्योम्नि चरति इति व्योमचरम्, तत् व्योमचरम्।

अभि०—यथैवाजबाणेन स विद्धस्तथैव तेन गजरूपं परित्यक्तम्, प्रकाश-मानदीप्तिचक्रान्तराले वर्तमाना गगनविहारिणी चेतोहराऽऽकृतिश्च प्राप्ता। विस्मयवन्तस्तत्सैनिकास्तं ददृशुः।

हिन्दी—अज के बाण से विद्ध होते ही उसने हाथी का शरीर छोड़ दिया, और प्रकाशमान दीप्तिपुञ्ज में स्थित आकाशचारिणी मनोहर आकृति प्राप्त की। अज के सैनिक उसे आश्चर्ययुक्त होकर देखने लगे ॥५१॥

अथ प्रभावोपनतैः कुमारं कल्पद्रुमोत्थैरवकीर्य पुष्पैः।
उवाच वाग्मी दशनप्रभाभिः संवर्धितोरःस्थलतारहारः ॥५२॥

सञ्जीविनी—अथ प्रभावेनोपनतैः प्राप्तैः कल्पद्रुमोत्थैः कल्पवृक्षोत्पन्नैः पुष्पैः कुमारमजमवकीर्याभिवृष्य दशनप्रभाभिर्दन्तकान्तिभिः संवर्धिता उरः-स्थले ये तारहाराः स्थूला मुक्ताहारास्ते येन स तथोक्तः। वाचोऽस्य सन्तीति वाग्मी वक्ता। 'वाचो ग्मिनिः' इति ग्मिनिप्रत्ययः। पुरुष उवाच ॥५२॥

अन्वयः—अथ, प्रभावोपनतैः, कल्पद्रुमोत्थैः पुष्पैः, कुमारम्, अवकीर्य, दशनप्रभाभिः, संवर्धितोरःस्थलतारहारः, 'सः पुरुषः' उवाच।

वाच्य०—कुमारः संवर्धितोरःस्थलताहारेण वाग्मिना 'तेन पुरुषेण' ऊचे।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्। प्रभावेन = सामर्थ्येन, उपनतानि = प्राप्तानि इति प्रभावोपनतानि, तैः प्रभावोपनतैः। कल्पद्रुमात् = कल्पवृक्षात्, उत्थानि उत्पन्नानि इति कल्पद्रुमोत्थानि, तैः कल्पद्रुमोत्थैः। पुष्पैः = कुसुमैः। कुमारम्= युवराजम् अजम्। अवकीर्य = अभिवृष्य। दशनानाम् = दन्तानाम्, प्रभाः= कान्तयः इति दशनप्रभाः, ताभिः दशनप्रभाभिः। ताराणाम् = मुक्तानां हाराः इति तारहाराः, उरसः = हृदयस्य, स्थलम् = प्रदेशः इति उरःस्थलम्, उरःस्थले तारहाराः इति उरःस्थलतारहाराः, संवर्धिताः = समेधिताः उरःस्थलतारहाराः येन सः संवर्धितोरःस्थलतारहारः। प्रशस्ता वाक् = वाणी अस्य अस्ति इति वाग्मी = वाक्चातुरीकुशलः, 'सः पुरुषः' उवाच = जगाद।

समा०—प्रभावेनोपनतानि इति प्रभावोपनतानि, तैः प्रभावोपनतैः। कल्प-

द्रुमात् उत्थानि इति कल्पद्रुमोत्थानि, तैः कल्पद्रुमोत्थैः दशनानाम् प्रभाः इति दशनप्रभाः, ताभिः दशनप्रभाभिः। ताराणां हाराः इति तारहाराः, उरसः स्थलम् इति उरःस्थलम्, उरःस्थले तारहाराः इति उरःस्थलतारहाराः, संवर्धिताः उरःस्थलतारहाराः येन सः संवर्धितोरःस्थलतारहारः। प्रशस्ता वाक् अस्य अस्ति इति वाग्मी।

अभि०—अनन्तरं च तेन वाक्पटुना स्वप्रभावात्कल्पवृक्षकुसुमान्यानीयाजोपरि तानि वर्षता वक्षःस्थले स्थितं हारं स्वकीयदन्तकान्तिभिर्वर्धयता कथितम्।

हिन्दी—तब उसने अपने प्रभाव से प्राप्त किये कल्पवृक्ष के पुष्पों की, अज के ऊपर वर्षा करते हुए दन्तकान्ति से हृदय पर लटकते हुए हार को और भी चमक सा बनाकर इस प्रकार कहा ॥५२॥

मतङ्गशापादवलेपमूलादवाप्तवानस्मि मतङ्गजत्वम्।
अवेहि गन्धर्वपतेस्तनूजं प्रियंवदं मां प्रियदर्शनस्य ॥५३॥

सञ्जीविनी—अवलेपमूलात् गर्वहेतुकात् 'अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपने दूषणेऽपि च' इति विश्वः। मतङ्गस्य मुनेः शापान्मतङ्गजत्वमवाप्तवानस्मि। मां प्रियदर्शनस्य प्रियदर्शनाख्यस्य गन्धर्वपतेर्गन्धर्वराजस्य तनूजं पुत्रम्। 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' इत्यमरः। 'तन्वादेर्वा' इत्यूङिति केचित्। प्रियंवदं प्रियंवदाख्यमवेहि जानीहि। प्रियं वदतीति प्रियंवदः 'प्रियवशे वदः खच्' इति खच्प्रत्ययः ॥५३॥

अन्वय०—अवलेपमूलात्, मतङ्गशापात्, मतंगजत्वम्, अवाप्तवान्, अस्मि। मां, प्रियदर्शनस्य, गन्धर्वपतेः, तनूजं, प्रियंवदम्, अवेहि।

वाच्य—मतंगजत्वमवाप्तवता मया भूयते, अहं गन्धर्वपतेस्तनूजः प्रियंवदः "त्वया" अवेयः।

व्याख्या—अवलेपः=गर्वः, एव मूलं = कारणं यस्य सः अवलेपमूलस्तस्मात् अवलेपमूलात् अहंकारादित्यर्थः। मतंगस्य=मतंगनामकर्षेः, शापः=आक्रोशः इति मतंगशापस्तस्मात् मतंगशापात् 'शप आक्रोशे'। मतंगात् जातः मतंगजः, मतंगजस्य भावः मतंगजत्वं = हस्तित्वं = हस्तिशरीरम्। अवाप्तवान् = प्राप्तवान् अस्मि= अहम्। मां = पुरःस्थितम्। प्रियं = मनोहरं दर्शनम् = अवलोकनं यस्य, तस्य प्रियदर्शनस्य = एतन्नामकस्य। गन्धर्वाणां = देवगायकानां = विश्वावसुप्रभृतीनामित्यर्थः पतिः = स्वामी, तस्य गन्धर्वपतेः = गन्धर्वराजस्येत्यर्थः। तनोः

=शरीरात्, जातम्=उत्पन्नमिति तनूजं=पुत्रम्। प्रियंवदतीति प्रियंवदस्तं प्रियंवदं=प्रियंवदनामानम्। अवेहि=जानीहि, विद्धि।

समा०—अवलेपः मूलं यस्य सः, तस्मात् अवलेपमूलात्। मतंगस्य शापस्तस्मात् मतंगशापात्। मतङ्गाज्जातः मतंगजः, मतंगजस्य भावः मतंगजत्वम्, तत्। प्रियं दर्शनं यस्य स प्रियदर्शनस्तस्य प्रियदर्शनस्य। गन्धर्वाणां पतिः गन्धर्वपतिस्तस्य गन्धर्वपतेः। तनोः जातः तनूजस्तं तनूजम्। प्रियंवदतीति प्रियंवदस्तं प्रियंवदम्।

अभि०—मदहंकारेण प्राप्तात् मतंगमहर्षिशापात् गजभावं गतं प्रियदर्शननामकगन्धर्वराजस्य पुत्रं प्रियंवदनामकं मां विद्धि।

हिन्दी—एक बार मेरे अहंकार के कारण महर्षि मतङ्ग ने मुझे शाप दे दिया था, मैं हाथी हो गया, "वस्तुतः" मैं गन्धर्वों के राजा प्रियदर्शन का लड़का प्रियंवद हूँ, ऐसा जानो ॥५३॥

स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत्।
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य ॥५४॥

सञ्जीविनी—स महर्षिश्च प्रणतेन मयाऽनुनीतः सन्पश्चान्मृदुतां शान्तिमगच्छत्। तथाहि। जलस्योष्णत्वमग्नेरातपस्य वा संप्रयोगात्संपर्कात् न तु प्रकृत्योष्णत्वम्। यच्छैत्यं सा प्रकृतिः स्वभावः। विधेयप्राधान्यात्सेति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः। महर्षीणां शान्तिरेव स्वभावो न कोप इत्यर्थः ॥५४॥

अन्वयः—सः महर्षिः, च, प्रणतेन, मया, अनुनीतः, "सन्" पश्चात्, मृदुताम् अगच्छत्, हि, जलस्य, उष्णत्वम्, अग्न्यातपसंप्रयोगात्, यत्, शैत्यं, सा, प्रकृतिः।

वाच्य०—तेन महर्षिणा च मयाऽनुनीतेन "सता" पश्चात् मृदुताऽगम्यत, हि जलस्य उष्णत्वेन अग्न्यातपसम्प्रयोगात् "भूयते" येन शैत्येन "भूयते" तया प्रकृत्या "भूयते"।

व्याख्या—सः पूर्वोक्तः महांश्चासौ ऋषिः महर्षिः=मतंगमुनिः। चः=समुच्चये, प्रणतेन=चरणयोर्निपत्य प्रणमता, मया=प्रियंवदेन। अनुनीतः=प्रार्थितः "सन्" पश्चात्=प्रार्थनानन्तरं मृदोर्भावः मृदुता, तां मृदुतां=कोमलतां=शान्तिमित्यर्थः, अगच्छत्=अव्रजत्। हि=यतः, जलस्य=सलिलस्य 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्' इत्यमरः। उष्णस्य भाव उष्णत्वं=तप्तत्वम् 'उष्ण ऊष्मागमस्तपः' इत्यमरः। अशीतलत्वमित्यर्थः। अग्निः=वह्निश्च

आतपः=घर्मश्चेति अग्न्यातपौ, तयोः सम्प्रयोगः=संयोगः इति अग्न्यातप॰सम्प्रयोगस्तस्मात् तथोक्तम् 'जायते' इति शेषः। ननु स्वभावेन जलस्योष्णतेति भावः। यत्=प्रसिद्धं। शीतस्य भावः शैत्यं=शीतलत्वम्। सा प्रसिद्धा शैत्यरूपा। प्रकृतिः=स्वभावः, अस्तीति शेषः।

समा॰—महांश्चासौ ऋषिरिति महर्षिः। मृदोर्भावः मृदुता, तां मृदुताम्। उष्णस्य भाव उष्णत्वम्, अग्निश्चातपश्चेति अग्न्यातपौ, तयोः संप्रयोग इति अग्न्यातपसंप्रयोगस्तस्मात् अग्न्यातपसम्प्रयोगात्। शीतस्य भावः शैत्यम्।

अभि॰—मदहंकरात् कुपितः स महर्षिः बहुविधप्रार्थनया प्रणामाञ्जलिना च पश्चात् शान्ति गतः मयि कृपामकरोत्। यतो हि अग्निसूर्यसंयोगादेव जलस्योष्णता भवति शीतलत्वं तु तस्य स्वभावः यथा, तथैव महर्षीणां शान्तिरेव स्वभावः, क्रोधस्तु कारणवशादेव।

हिन्दी—मेरे बहुत अनुनय-विनय करने पर (हाथ पाँव जोड़ने पर) वह महर्षि शान्त हो गए, क्योंकि जल तो अग्नि या सूर्य की गर्मी पाकर गर्म होता है और उसका अपना स्वभाव तो शीतल होता है, ऐसे ही महर्षियों का स्वभाव तो शान्त ही होता है, क्रोध तो किसी बाहरी कारण से होता है ॥५४॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो यदा ते भेत्स्यत्यजः कुम्भमयोमुखेन।
संयोक्ष्यसे स्वेन वपुर्महिम्ना तदेत्यवोचत्स तपोनिधिर्माम् ॥५५॥

सञ्जीविनी—इक्ष्वाकुवंशः प्रभवो यस्य सोऽजो यदा ते कुम्भमयोमुखेन लोहाग्रेण शरेण भेत्स्यति विदारयिष्यति तदा स्वेन वपुषो महिम्ना पुनः संयोक्ष्यसे संगंस्यस इति स तपोनिधिर्मामवोचत् ॥५५॥

अन्वयः—इक्ष्वाकुवंशप्रभवः अजः, यदा, ते, कुम्भम्, अयोमुखेन, शरेण, भेत्स्यति, तदा, स्वेन, वपुर्महिम्ना, पुनः, संयोक्ष्यसे, इति, सः, तपोनिधिः, माम्, अवोचत्।

वाच्य॰—इक्ष्वाकुवंशप्रभवेणाजेन कुम्भो भेत्स्यते तदा स्वेन वपुर्महिम्ना पुनस्त्वया संयोक्ष्यते इति तेन तपोनिधिनाऽहमवोचिषि।

व्याख्या—इक्ष्वाकोः=इक्ष्वाकुराजर्षेः, वंशः=कुलम् इति इक्ष्वाकुवंशः, इक्ष्वाकुवंशः प्रभवः=कारणं यस्येति, इक्ष्वाकुवंशप्रभवः। अजः अजानामा रघुपुत्रः, यदा=यस्मिन् काले। ते तव=हस्तिशरीरस्य प्रियंवदस्येत्यर्थः। कुम्भं=मस्त-

कम्, अयः=लोहः, मुखे–'लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी' इत्यमरः, फलके यस्य सः तेन अयोमुखेन शरेण=बाणेन, भेत्स्यति=विदारयिष्यति । तदा=तस्मिन् काले । स्वेन=आत्मीयेन । वपुषः=शरीरस्य, महिमा=महत्त्वम् । सामर्थ्यमित्यर्थः । तेन वपुर्महिम्ना । पुनः भूयः । संयोक्ष्यसे संगंस्यसे, शरीरं प्राप्स्यसीत्यर्थः । त्वमिति शेषः, इति=इत्थं, सः=पूर्वोक्तः, तपसां निधिः=निधानमिति तपोनिधिः, माम् = प्रियंवदम्, अवोचत्=उक्तवान् ।

समा०—इक्ष्वाकोः वंश इति इक्ष्वाकुवंशः, इक्ष्वाकुवंशः प्रभवो यस्य स इक्ष्वाकुवंशप्रभवः । अयो मुखे यस्य सः, तेन अयोमुखेन । वपुषो महिमा तेन वपुर्महिम्ना । तपसां निधिरिति तपोनिधिः ।

अभि०—विनम्रस्य मे प्रार्थनया प्रसन्नो मतंगमुनिः सूर्यवंश्यो रघुपुत्रोऽजो यदा लोहशरेण तव मस्तकं भेत्स्यति तदा त्वं पुनः गन्धर्वरूपं प्राप्स्यसीति मामकथयत् ।

हिन्दी—मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर उस तपस्वी मतंग ऋषि ने मुझसे कहा कि इक्ष्वाकुराजर्षि के कुल में उत्पन्न अज जब तुम्हारे मस्तक को लोहे के फलवाले बाण से भेदन करेगा, तब तुम फिर से अपना असली शरीर प्राप्त करोगे ॥५५॥

संमोचितः सत्त्ववता त्वयाऽहं शापाच्चिरप्रार्थितदर्शनेन ।
प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः ॥ ५६ ॥

सञ्जीविनी—चिरं प्रार्थितं दर्शनं यस्य तेन सत्त्ववता बलवता त्वयाऽहं शापात्संमोचितः मोक्षं प्रापितः । भवतः प्रतिप्रियं प्रत्युपकारं न कुर्यां चेन्मे स्वपदोपलब्धिः स्वस्थानप्राप्तिः 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः । वृथा स्याद्धि । तदुक्तम्—'प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम्' इति ॥ ५६ ॥

अन्वयः—चिरप्रार्थितदर्शनेन, सत्त्ववता, त्वया, अहं, शापात् सम्मोचितः भवतः प्रतिप्रियं, न, कुर्यां, चेत्, मे स्वपदोपलब्धिः वृथा स्यात् ।

वाच्य०—चिरप्रार्थितदर्शनः सत्त्ववांस्त्वं मां शापात् संमोचितवान् । भवतः प्रतिप्रियं न मया क्रियेत चेन्मे स्वपदोपलब्ध्या वृथा भूयेत हि ।

व्याख्या—चिरं=बहुकालात् प्रार्थितं=वाञ्छितमभिलषितमित्यर्थः । दर्शनम् =अवलोकनं यस्य सः, तेन चिरप्रार्थितदर्शनेन, सत्त्वं=बलमस्ति अस्यासौ सत्त्ववान्, तेन सत्त्ववता । त्वया=भवता अजेनेत्यर्थः । अहं=प्रियंवदः शापात्=

आक्रोशात्, सम्मोचितः=मुक्तिं प्रापितः। भवतः=अजस्य। प्रतिप्रियं=प्रत्युपकारं न=नहि कुर्यां=सम्पादयेयं चेत्=यदि 'तर्हि' मे=मम प्रियंवदस्येत्यर्थः। स्वस्य=निजस्य, पदं=स्थानं, तस्य उपलब्धिः=प्राप्तिः इति स्वपदोपलब्धिः। वृथा=व्यर्था स्यात्=भवेद्। हि = निश्चये।

समा०—चिरं प्रार्थितं दर्शनं यस्य सः, तेन चिरप्रार्थितदर्शनेन। सत्त्वमस्यास्तीति सः वान्, तेन सत्त्ववता। सम्यङ् मोचितः सम्मोचितः। स्वस्य पदं स्वपदं, स्वपदस्य उपलब्धिः स्वपदोपलब्धिः।

अभि०—बहोः कालात् प्रार्थितदर्शनेन बलवता भवता मे गजशरीरतो मोक्षः कारितः। अतो यद्यहं ते प्रत्युपकारं न कुर्यां तर्हि मे गन्धर्वलोकप्राप्तिः गजयोनितो मोक्षश्च व्यर्थः भवेदिति प्रत्युपकारं चिकीर्षुरस्मि।

हिन्दी—मतंग ऋषि के शाप से गजयोनि को प्राप्त होकर मैं बहुत दिनों से आपके दर्शन की प्रतीक्षा कर रहा था, सौभाग्य से आपने मुझे शाप से छुड़ा दिया, अब यदि इस उपकार के बदले में मैंने आपका कोई प्रत्युपकार न किया तो मेरा यह शरीर पाना तथा गन्धर्वलोक में जाना व्यर्थ ही होगा ॥ ५६ ॥

संमोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम्।
गान्धर्वमादत्स्व यतः प्रयोक्तुर्न चारिहिंसा विजयश्च हस्ते ॥ ५७ ॥

सञ्जीविनी—हे सखे! सखिशब्देन समप्राणतोक्ता। यथोक्तम्—'अत्यागसहनो बन्धुः सदैवानुमतः सुहृत्। एकक्रियं भवेन्मित्रं समप्राणः सखा मतः' इति। प्रयोगसंहारयोर्विभक्तमन्त्रं गान्धर्वं गन्धर्वदेवताकम्। संमोह्यतेऽनेनेति संमोहनं नाम ममास्त्रमादत्स्व गृहाण। यतोऽस्त्रात्प्रयोक्तुरस्त्रप्रयोगिणोऽरिहिंसा न च, विजयश्च हस्ते। हस्तगतो विजयो भवतीत्यर्थः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—सखे प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रं, गान्धर्वं, सम्मोहनं, नाम, मम, अस्त्रम् आदत्स्व, यतः प्रयोक्तुः अरिहिंसा, न च, विजयः च, हस्ते, 'भवतीति शेषः'।

वाच्य०—सखे मम मम अस्त्रम् आदीयतां, यतः अरिहिंसया न च 'भूयते' विजयेन च हस्ते 'भूयते'।

व्याख्या—हे सखे=सुहृत् 'अथ मित्रं सखा सुहृत्' इत्यमरः। प्रयोगः=अस्त्रप्रक्षेपश्च, संहारः=संहरणञ्चेति प्रयोगसंहारौ, तयोः प्रयोगसंहारयोः, विभक्तः=विभिन्नः, मंत्रः = देवादिसाधनात्मकः यस्य तत् प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम्,

'मन्त्रो देवादिभावने । वेदांशे गुप्तवादे च, इति हैमः । गन्धर्वो देवताऽस्येति गान्धर्वम्=गन्धर्वदेवताकम् । संमोह्यतेऽनेनेति तत् संमोहनं=संमोहननामकम् । मम=प्रियंवदस्य । अस्त्रम्=आयुधम् । आदत्स्व=स्वीकुरु । मद्दत्तं गृहाणेत्यर्थः । यतः=अस्मात्, प्रयोक्तुः=प्रयोगकर्तुः । अरीणां=शत्रूणां, हिंसा =प्राणवियोगः मरणमित्यर्थ इति अरिहिंसा, न=नहि, विजयः=जयः, च हस्ते=करे 'भवति' विजयलाभो हस्ततलगतो भवतीत्यर्थः ।

समा०—प्रयोगश्च संहारश्चेति प्रयोगसंहारौ, तयोः विभक्तः मंत्रो यस्य तत् प्रयोगसंहारविभक्तमन्त्रम् । सम्यक् मोह्यतेऽनेनेति संमोहनम् । अरीणां हिंसा इति अरिहिंसा । समानं ख्यायते जनैरिति सखा, तत्सम्बुद्धौ हे सखे ।

अभि० हे मित्र अज ! संमोहननामकं गन्धर्वदेवताकं ममायुधं त्वं स्वीकुरु इदं च प्रयोगसंहारयोर्विभिन्नमंत्रकमस्ति, अनेन चास्त्रेण शत्रुमरणं विनैव केवलं संमोहनात् युद्धे विजयः हस्तगतो भवतीति विशेषः ।

हिन्दी— हे अज ! आप चलाने तथा रोकने के पृथक् २ मन्त्रवाले संमोहन नाम के मेरे इस गन्धर्वास्त्र को ले लीजिये । इसमें यह विशेषता है कि इससे आप के शत्रु का प्राण भी नहीं निकलेगा और शत्रु के मूर्च्छित होने से विजय लाभ भी अनायास हो जायगा ॥ ५७ ॥

अलं ह्रिया मां प्रति यन्मुहूर्तं दयापरोऽभूः प्रहरन्नपि त्वम् ।
तस्मादुपच्छन्दयति प्रयोज्यं मयि त्वया न प्रतिषेधरौक्ष्यम् ॥ ५८ ॥

सञ्जीविनी—किं च मां प्रति ह्रिया प्रहारनिमित्तयाऽलम् । कुतः । यद्यतो हेतोस्त्वं मां प्रहरन्नपि मुहूर्तं दयापरः कृपालुरभूः तस्मादुपच्छन्दयति प्रार्थयमाने मयि त्वया प्रतिषेधः परिहारः स एव रौक्ष्यं पारुष्यम् तन्न प्रयोज्यं न कर्तव्यम् ॥

अन्वयः—मां, प्रति, ह्रिया, अलं, 'कुतः' यत्, त्वं प्रहरन्, अपि मुहूर्तं, दयापरः, अभूः, तस्मात्, उपच्छन्दयति, मयि, त्वया, प्रतिषेधरौक्ष्यं, न प्रयोज्यम् ।

वाच्य०—यत् त्वया प्रहरता अपि दयापरेण अभावि तस्मात् मयि त्वं प्रतिषेधरौक्ष्यं न प्रयुङ्क्ष्व ।

व्याख्या—मां=प्रियंवदं । प्रति=उद्दिश्य । ह्रिया=लज्जया 'मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा साऽपत्रपा' इत्यमरः । प्रहारजनितयेत्यर्थः । अलं=निरर्थकं व्यर्थमिति यावत् 'कुत इत्यत आह' यत् = यस्मात् कारणात् । त्वं = अजः । मां=प्रियंवदं

हस्तिशरीरिणमित्यर्थः। प्रहरन्=प्रहारं कुर्वन्। अपि। मुहूर्तं=क्षणमात्रं दयायां=कृपायां परः=लग्नः इति दयापरः 'कृपा दयाऽनुकम्पा स्यात्' इत्यमरः। अनुकम्पान्वित इत्यर्थः। अभूः=आसीः। तस्मात्=कारणात्। उपच्छन्दयति = प्रार्थयमाने मयि=प्रियंवदे। त्वया=अजेन। रूक्षस्य भावः रौक्ष्यम्। प्रतिषेधः = अस्वीकार एव रौक्ष्यं=पारुष्यमिति प्रतिषेधरौक्ष्यम्। न = नहि प्रयोज्यं=कर्तव्यम्। त्वयाऽस्त्रमिदमवश्यं स्वीकर्तव्यमिति भावः।

समा०—दयायां पर इति दयापरः। रूक्षस्य भावः कर्म वा रौक्ष्यं, प्रतिषेध एव रौक्ष्यमिति प्रतिषेधरौक्ष्यम्। उपच्छन्दयतीति उपच्छन्दयन्, तस्मिन् उपच्छन्दयति।

अभि०—भवता मे मस्तकभेदनं बाणेन कृतमिति हेतोः किंचिन्मात्रमपि लज्जा न कार्या, यतो हि त्वया बाणप्रहारं कुर्वतापि मयि दया कृता। अतः प्रार्थयमाने मयि गन्धर्वास्त्रास्वीकरणरूपा रूक्षता न कर्तव्या।

हिन्दी—आप प्रहार करने के कारण लज्जित होकर मुझसे संकोच न करें। क्योंकि प्रहार करते हुए भी क्षणभर के लिये आप दयालु ही रहे, अतः मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप इस अस्त्र को अस्वीकार करके रुखेपन का व्यवहार न करें ॥५८॥

तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः।
उदङ्मुखः सोऽस्त्रविदस्त्रमन्त्रं जग्राह तस्मान्निगृहीतशापात् ॥ ५९ ॥

सञ्जीविनी—ना सोमश्चन्द्र इव नृसोमः उपमितसमासः। 'सोम ओषधिचन्द्रयोः।' इति शाश्वतः। पुरुषश्रेष्ठ इत्यर्थः अस्त्रविदस्त्रज्ञः सोऽजस्तथेति सोम उद्भवो यस्याः सा तस्याः सोमोद्भवायाः सरितो नर्मदायाः 'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका' इत्यमरः। पवित्रं पयः उपस्पृश्य पीत्वा आचम्येत्यर्थः। उदङ्मुखः सन्निगृहीतशापान्निवर्तितशापात् उपकृतादित्यर्थः। तस्मात्प्रियंवदादस्त्रमन्त्रं जग्राह ॥ ५९ ॥

अन्वयः—नृसोमः, अस्त्रवित्, सः तथा, इति सोमोद्भवायाः, पवित्रं पयः, उपस्पृश्य, उदङ्मुखः 'सन्' निगृहीतशापात्, अस्त्रमंत्रं, जग्राह।

वाच्य०—नृसोमेनास्त्रविदा तेन उदङ्मुखेन 'सता' अस्त्रमंत्रो जगृहे।

व्याख्या—ना = नरः, सोमः = चन्द्र इव इति नृसोमः = नरश्रेष्ठ इत्यर्थः। अस्त्रम्=आयुधं वेत्ति=जानातीति अस्त्रवित् सः = पूर्वोक्तः, अजः, तथा=

तेन प्रकारेण यथा भवता कथ्येत तथैव मया करिष्यते इत्यर्थः। इति = इत्थम् 'कथयित्वा'। सोमः = सोमवंशः उद्भवः = उत्पत्तिकारणं यस्याः सा सोमोद्भवा, तस्याः सोमोद्भवायाः = नर्मदाय' इत्यर्थः। पवित्रं = शुद्धं पयः = जलम्, उपस्पृश्य = आचम्य। उदङ् = उदीचीं, प्रति मुखम् = आननं यस्य स उदङ्मुखः 'सन्' निगृहीतः निवर्तितः, शापः = आक्रोशः यस्यासौ निगृहीत-शापः तस्मात् निगृह तशापात्। तस्मात् = प्रियंवदात्। अस्त्रस्य = आयुधस्य, मंत्रः = प्रयोगसंहाररहस्यमिति तमस्त्रमन्त्रम्। जग्राह = गृहीतवान्।

समा०—ना सोमः इव इति नृसोमः। सोम उद्भवः यस्याः सा सोमोद्भवा तस्याः सोमोद्भवायाः। उदङ् मुखं यस्य स उदङ्मुखः। निगृहीतः शापो यस्यासौ तस्मात् निगृहीतशापात्। अस्त्रस्य मंत्रस्तमस्त्रमंत्रम्।

अभि०—नरश्रेष्ठोऽजः प्रियंवदस्य प्रार्थनां स्वीकृत्य, नर्मदाजलमाचम्य उत्तरा-भिमुखो भूत्वा निवारितशापात् प्रियंवदात् समंत्रं सरहस्यमस्त्रं गृहीतवान्।

हिन्दी—चन्द्रमा के समान सुन्दर और अस्त्रविद्या के पण्डित अज ने प्रियंवद की बात को स्वीकार कर लिया और चन्द्रमा से उत्पन्न हुई नर्मदा के पवित्र जल का आचमन करके तथा उत्तराभिमुख होकर शाप से मुक्त हुए उस गन्धर्व से मन्त्र सहित अस्त्र को ले लिया, अर्थात् सीख लिया ॥ ५९ ॥

एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुषोः सख्यमचिन्त्यहेतु।
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् ॥६०॥

सञ्जीविनी—एवमध्वनि मार्गे दैवयोगाद्दैववशादचिन्त्यहेत्वनिर्धार्यहेतुकं सख्यं सखित्वम् 'सख्युर्यः' इति यप्रत्ययः। आसेदुषोः प्राप्तवतोस्तयोर्मध्य एको गन्धर्वश्चैत्ररथस्य प्रदेशान् 'अस्योद्यानं चैत्ररथम्' इत्यमरः। अपरोऽजः सौराज्येन राजन्वत्तया रम्यान्विदर्भदेशान्ययौ ॥६०॥

अन्वयः—एवम्, अध्वनि, दैवयोगात्, अचिन्त्यहेतु, सख्यम्, आसेदुषोः, तयोः, एकः, चैत्ररथप्रदेशान्, अपरः, सौराज्यरम्यान्, विदर्भान् ययौ।

वाच्य०—तयोरेकेन चैत्ररथप्रदेशाः अपरेण सौराज्यरम्या विदर्भा ययिरे।

व्याख्या—एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण अध्वनि=मार्गे दैवस्य=विधेः योगः संबंधः वशः इति दैवयोगस्तस्मात् दैवयोगात्। अचिन्त्यः=अतर्क्यः, हेतुः=कारणं यस्य तत् अचिन्त्यहेतु। सख्युर्भावः सख्यं=मित्रताम्। आसेदुषोः=प्राप्तवतोः। तयोः=

अजप्रियंवदयोः 'मध्ये' एकः=प्रियंवदः, चैत्ररथस्य=कुबेरोद्यानस्य। प्रदेशाः= भागाः, तान् चैत्ररथप्रदेशान्। ययौ=जगाम। अपरः=रघुपुत्रोऽजः। सुराज्ञो भावः कर्म वा सौराज्यं तेन सौराज्येन=सुनृपतित्वेन रम्याः=मनोहराः तान् सौराज्यरम्यान् विदर्भान्=क्रथकैशिकान्। ययौ=जगाम।

समा०—दैवस्य योगः दैवयोगस्तस्मात् दैवयोगात्। अचिन्त्यो हेतुर्यस्य तत् अचिन्त्यहेतु। चैत्ररथस्य प्रदेशास्तान् चैत्ररथप्रदेशान्। सुराज्ञो भावः कर्म वा सौराज्यं, सौराज्येन रम्यास्तान् सौराज्यरम्यान्।

अभि०—पूर्वोक्तप्रकारेण विधिवशात् मित्रत्वं प्राप्तयोः, अजप्रियंवदयोर्मध्ये प्रियंवदः कुबेरोद्यानं प्रति अजश्च विदर्भदेशम्प्रति गतः।

हिन्दी—इस प्रकार दैवसंयोग से अकल्पनीय मित्रता को प्राप्त हुए, उन दोनों में से प्रियंवद तो चैत्ररथ नामक कुबेर के बगीचे की ओर और कुमार अज अच्छे शासन के कारण रमणीय विदर्भ देश की ओर चला गया ॥६०॥

तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥६१॥

*सञ्जीविनी—नगरस्योपकण्ठे समीपे तस्थिवांसं स्थितं तमजं तस्याजस्याग*मेनागमनेनारूढ उत्पन्नो गुरुः प्रहर्षो यस्य स क्रथकैशिकेन्द्रो विदर्भराजः प्रवृद्धोर्मिरूर्मिमाली समुद्रश्चन्द्रमिव प्रत्युज्जगाम ॥६१॥

अन्वयः—नगरोपकण्ठे, तस्थिवांसं, तं, तदागमारूढगुरुप्रहर्षः, क्रथकैशिकेन्द्रः प्रवृद्धोर्मिः, ऊर्मिमाली, चन्द्रम्, इव, प्रत्युज्जगाम।

वाच्य०—तस्थिवान् स तदागमारूढगुरुप्रहर्षेण क्रथकैशिकेन्द्रेण, प्रवृद्धोर्मिणा, ऊर्मिमालिना चन्द्र इव प्रत्युज्जग्मे।

व्याख्या—नगरस्य=भोजस्य राजधान्याः, उपकण्ठं=समीपमिति नगरोपकण्ठम्, तस्मिन् नगरोपकण्ठे। तस्थिवांसं=स्थितं वर्तमानमित्यर्थः तम्= अजम् तस्य=अजस्य, आगमः=आगमनं, तेन आरूढः=उत्पन्नः, गुरुः महान्, प्रहर्षः=आनन्दः यस्य स तदागमारूढगुरुप्रहर्षः। क्रथकैशिकानां=विदर्भाणाम्, इन्द्रः=स्वामी इति क्रथकैशिकेन्द्रः भोजराज इत्यर्थः। प्रकर्षेण वृद्धाः इति प्रवृद्धाः=सम्वर्धिताः, ऊर्मयः=तरङ्गाः यस्मिन् स प्रवृद्धोर्मिः। ऊर्मीणां=तरङ्गाणां माला=पंक्तिरस्यास्तीति ऊर्मिमाली=समुद्र इत्यर्थः 'भंगस्तरंग ऊर्मिर्वा स्त्रियां

वीचिः' इत्यमरः । चन्द्रं=हिमांशुम् । 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः' इत्यमरः । प्रत्युज्जगाम=प्रत्युद्गतवान् ।

समा०—नगरस्य उपकण्ठं, तस्मिन् नगरोपकण्ठे । तस्यागमस्तदागमः, तेन आरूढः गुरुः प्रहर्षो यस्य स तदागमारूढगुरुप्रहर्षः । क्रथकैशिकानामिन्द्र इति क्रथकैशिकेन्द्रः । प्रवृद्धाः ऊर्मयः यस्मिन् स प्रवृद्धोर्मिः । ऊर्मीणां माला अस्यास्तीति ऊर्मिमाली ।

अभि०—निजनगरसमीपे वर्तमानमजं श्रुत्वा विदर्भाधिपतिः, कुमारागमनाद् हृष्यन् सन् तद्दर्शनौत्सुक्येन तथैव स्वागतार्थं तं प्रत्युज्जगाम, यथा पूर्णचन्द्रोदयं वीक्ष्य तदालिङ्गनार्थप्रवृद्धोर्मिः सन् समुद्रः प्रत्युद्गच्छति ।

हिन्दी—नगर के समीप में ठहरे हुए अज का समाचार सुनकर और अज के आगमन से अतीव आनन्दित महाराज विदर्भनरेश ने वहाँ जाकर वैसे ही अज का स्वागत किया, जैसे समुद्र, अपनी उन्नत तरङ्गों से पूर्णचन्द्र का स्वागत करता है ॥६१॥

प्रवेश्य चैनं पुरमग्रयायी नीचैस्तथोपाचरदर्पितश्रीः ।
मेने यथा तत्र जनः समेतो वैदर्भमागन्तुमजं गृहेशम् ॥६२॥

सञ्जीविनी—एनमजमग्रयायी सेवाधर्मेण पुरो गच्छन्नित्यर्थः, नीचैर्नम्रः पुरं प्रवेश्य प्रवेशं कारयित्वा प्रीत्याऽर्पितश्रीस्तथा तेन प्रकारेणोपाचरदुपचरितवान् यथा येन प्रकारेण तत्र पुरे समेतो मिलितो जनो वैदर्भं भोजमागन्तुं प्राघुणिकं मेने, अजं गृहेशं गृहपतिं मेने ॥ ६२ ॥

अन्वयः—एनम्, अग्रयायी, नीचैः, पुरं, प्रवेश्य, 'प्रीत्या' अर्पितश्रीः तथा उपाचरत्, यथा, तत्र, समेतः, जनः वैदर्भम्, आगन्तुम्, अजं, गृहेशं मेने ।

वाच्य०—एष अर्पितश्रियोपाचर्यत । जनेन वैदर्भः आगन्तुः मेने ।

व्याख्या—एनम् = अजम् । अग्रे = पुरः, याति = गच्छति तच्छील इति अग्रयायी=सेवाधर्मेण मार्गं प्रदर्शयन् पुरो गच्छन्, विदर्भनरेश इत्यर्थः । नीचैः= विनीतः "सन्" पुरं=नगरं प्रवेश्य=प्रवेशं कारयित्वा । "प्रीत्या" अर्पिता= समर्पिता, श्रीः=लक्ष्मीः, येन सः अर्पितश्रीः । तथा=तेन प्रकारेण । उपाचरत् उपचरितवान् सेवां चकारेत्यर्थः । यथा=येन प्रकारेण । तत्र=तस्मिन् नगरे । समेतः=मिलितः । जनः=लोकः 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः, वैदर्भं=विदर्भ-

नरेशम्। आगन्तुम्=अभ्यागतं प्राघुणिकमित्यर्थः 'आवेशिक आगन्तुरतिथिर्ना गृहागते। प्राघूर्णिकः, प्राघुणकः' इत्यमरः। अजं = रघुपुत्रम्। गृहस्य=गेहस्य। ईशः=स्वामी, तं गृहेशं 'गृहं गेहोदवसित वेश्म सद्म निकेतनम्' इत्यमरः। मेने=ज्ञातवान्।

अभि०—विदर्भनरेशो भोजः सेवकवत्, अग्रे गच्छन् नम्रः सन् अजं पुराभ्यन्तरे आनीय, अजाय समर्पितसर्वसम्पत्कः तथा तत्सेवां चकार यथा तत्रस्थः जनः प्राघुणिकमजं गृहपतिं विदर्भराजञ्चाभ्यागतममंस्त।

हिन्दी—सेवा भाव से आगे २ मार्ग बतलाते, विनीत, राजा भोज, अज को नगर में ले गये और प्रेम से अपना सब कुछ अज को भेंट करके, नम्र भाव से अज की ऐसी सेवा की, कि स्वयंवर में एकत्रित जन समुदाय यही समझने लगा कि अज ही इस घर के स्वामी हैं, और राजा भोज अतिथि हैं ॥६२॥

तस्याधिकारपुरुषैः प्रणतैः प्रदिष्टां
प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्।
रम्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्यां
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास ॥६३॥

संजीविनी—रघुप्रतिनिधी रघुकल्पः रघुतुल्य इत्यर्थः। उक्तं च दण्डिना सादृश्यवाचकप्रस्तावे 'कल्पदेशीयदेश्यादिप्रख्यप्रतिनिधी अपि' इति। सोऽजः प्रणतैर्नमस्कृतवद्भिः, कर्तरि क्तः। तस्य भोजस्याधिकारो नियोगस्तस्य पुरुषैः अधिकृतैरित्यर्थः। प्रदिष्टां निर्दिष्टां प्राग्द्वारस्य वेद्यां विनिवेशितः प्रतिष्ठापितः पूर्णकुम्भो यस्यास्ताम्, स्थापितमङ्गलकलशामित्यर्थः। रम्यां रमणीयां नवोपकार्यां नूतनं राजभवनम्। 'उपकार्या राजसद्मन्युपचारोचितेऽन्यवत्' इति विश्वः। मदनो बाल्यात्परां शैशवादनन्तरां दशामिव यौवनमिवेत्यर्थः। अध्युवासाधिष्ठितवान् तत्रोषितवानित्यर्थः। 'उपान्वध्याङ् वसः' इति कर्मत्वम् ॥६३॥

अन्वयः—रघुप्रतिनिधिः, सः, प्रणतैः, तस्य, अधिकारपुरुषैः, प्रदिष्टां, प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भां, रम्यां, नवोपकार्यां, मदनः बाल्यात्, परां, दशाम्, इव, अध्युवास।

वाच्य०—रघुप्रतिनिधिना तेन तस्याधिकारपुरुषैः प्रदिष्टा, प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भा रम्या नवोपकार्या, मदनेन बाल्यात् परा दशा इव अध्यूषे।

व्याख्या—रघोः=दिलीपसूनोः, प्रतिनिधिः=सदृशः, इति रघुप्रतिनिधिः रघुतुल्य इत्यर्थः। सः=अजः। प्रणतैः=प्रणमद्भिः। तस्य=भोजस्य। अधिकारे= नियोगे नियुक्ताः, पुरुषाः=सेवकजनाः, तैः अधिकारपुरुषैः। प्रदिष्टां=निर्दिष्टाम्। प्राग्द्वारस्य, वेदिः=परिष्कृता भूमिः, तत्र विनिवेशितः=स्थापितः, पूर्णकुम्भः= मांगलिककलशः यस्यां सा, तां प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्। रम्यां=रमणीयां मनोहरामित्यर्थः। नवा=नूतना चासौ उपकार्या=राजभवनमिति नवोपकार्या तां नवोपकार्याम्, मदनः=कामः बालस्य भावो बाल्यं तस्मात् बाल्यात्= शैशवात्, पराम्=अनन्तरां, दशां=यौवनम्, इव=यथा, अध्युवास=अधिष्ठितवान्। तत्र निवासं कृतवानित्यर्थः।

समा०—रघोः प्रतिनिधिरिति रघुप्रतिनिधिः। अधिकारस्य पुरुषा इति अधिकारपुरुषास्तैरधिकारपुरुषैः। प्राग्द्वारस्य वेदिरिति प्राग्द्वारवेदिस्तत्र विनिवेशितः पूर्णः कुम्भः यस्यां सा प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भा, ताम्। नवा चासौ उपकार्या नवोपकार्या, तां नवोपकार्याम्।

अभि०—रघुतुल्योऽजः, विदर्भनरेशनियुक्तैरागन्तुकजनसेवाधिकृतैः पुरुषैः, निर्दिष्टे, प्रथमद्वारवेद्यां स्थापितमांगलिकघटैः सुशोभिते रम्ये राजभवने तथोषितवान् यथा स्मरः शैशवात्परे यौवने निवसति।

हिन्दी—रघु का प्रतिनिधि अज, भोजराज के सेवकों से बतलाये हुए उस मनोहर राजभवन में गया जिसके द्वार की चौकियों पर जल से पूर्ण मांगलिक कलश रखे हुए थे। उस राजभवन में अज इस प्रकार रहने लगा मानो कामदेव बाल्यावस्था को बिताकर जवानी में रहने लगा हो ॥६३॥

तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं
कन्याललाम कमनीयमजस्य लिप्सोः।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ
निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥६४॥

सञ्जीविनी—तत्रोपकार्यायां स्वयंवरनिमित्तं समाहृतः समेलितो राजलोको येन तत्कमनीयं स्पृहणीयं कन्याललाम कन्यासु श्रेष्ठम् 'ललामोऽस्त्री ललामापि प्रभावे पुरुषे ध्वजे। श्रेष्ठभूषाशुण्डशृङ्गपुण्ड्रचिह्नाश्वलिङ्गिषु' इति यादवः। लिप्सोर्लब्धुमिच्छोः। लभेः सन्नन्तादुप्रत्ययः। अजस्य भावावबोधे पुरुषस्याभिप्रायपरिज्ञाने कलुषाऽसमर्था दयितेव रात्रौ निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव।

'राजानं कामिनं चौरं प्रविशन्ति प्रजागराः' इति भावः। अभिमुखीशब्दो ङीषन्तश्च्व्यन्तो वा।

अन्वयः—तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं, कमनीयं, कन्याललाम, लिप्सोः, अजस्य, भावावबोधकलुषा, दयिता, इव, रात्रौ, निद्रा, चिरेण, नयनाभिमुखी, बभूव।

वाच्य०—भावावबोधकलुषया दयितयेव निद्रया चिरेण नयनाभिमुखया बभूवे।

व्याख्या—तत्र=उपकार्यायां, नवीनराजभवने इत्यर्थः। राज्ञां लोकः राजलोकः। स्वयंवरार्थं=स्वयंवरणार्थं, समाहृतः=संगमितः, राजलोकः=नृपसमूहः येन तत् स्वयंवरसमाहृतराजलोकम्। कमनीयं=स्पृहणीयं कन्यासु=कुमारीषु, ललाम=श्रेष्ठमिति तत् कन्याललाम। लब्धुमिच्छति लिप्सति, लिप्सतीति लिप्सुस्तस्य लिप्सोः=लब्धुमिच्छोः। अजस्य=रघुपुत्रस्य। भावस्य=अभिप्रायस्य अवबोधः परिज्ञानमिति भावावबोधः, भावावबोधे कलुषा=असमर्था इति भावावबोधकलुषा, पुरुषाभिप्रायपरिज्ञानेऽसमर्था इत्यर्थः। दयिता=प्रिया। इव=यथा रात्रौ=निशायां रजन्यामित्यर्थः। 'निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः। निद्रा=शयनं 'स्यान्निद्रा शयनं स्वापः' इत्यमरः। चिरेण=अतिविलम्बेन नयनयोः=नेत्रयोः। अभिमुखी=सम्मुखी। बभूव=जाता।

समा०—स्वयंवरार्थं समाहृतः राज्ञां लोको येन तत् स्वयंवरसमाहृतराजलोकम्, तत्। कन्यासु ललाम कन्याललाम, तत्। लब्धुमिच्छति लिप्सति। लिप्सतीति लिप्सुस्तस्य लिप्सोः। भावस्य अवबोधः, इति भावावबोधः, भावावबोधे कलुषा इति भावावबोधकलुषा। नयनयोः अभिमुखी इति नयनाभिमुखी।

अभि०—यस्य कन्यारत्नस्य प्राप्त्यर्थं देशान्तरेभ्यः स्वयंवरेऽनेके राजानः आमन्त्रिताः सन्तः समवेताः, तत्कन्यारत्नं मया कथं नु लभ्यमिति चिन्ताग्रस्तस्तथा अजः, रात्रौ तथैव चिरेण निद्रां लब्धवान् यथा पुरुषाभिप्रायपरिज्ञानेऽसमर्था काचित् रमणी चिरेण समागच्छति पुरुषपार्श्वे।

हिन्दी—उस नए राजभवन में, जिस कमनीय कन्यारत्न की प्राप्ति के लिये सैकड़ों राजा आये थे, उसे कैसे प्राप्त करें, इस चिन्ता के कारण अज की आँखों में रात को निद्रा उसी प्रकार देर से आयी जैसे कोई प्रेयसी प्रियहृदय का अभिप्राय न जानने से अपने प्रिय के पास विलम्ब से जाती है ॥६४॥

तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं
शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशाङ्गरागम् ।
सूतात्मजाः सवयसः प्रथितप्रबोधं
प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाचः ॥६५॥

सञ्जीविनी—कर्णभूषणाभ्यां निपीडितौ पीवरौ पीनावंसौ यस्य तम् शय्याया उत्तरच्छदस्योपर्यास्तरणवस्त्रस्य विमर्देन घर्षणेन कृशो विगतोऽङ्गरागो यस्य तं न त्वङ्गनासङ्गादिति भावः । प्रथितप्रबोधं प्रकृष्टज्ञानं तमेनमजं सवयसः समानवयस्का उदारवाचः प्रगल्भगिरः सूतात्मजाः वन्दिपुत्राः 'वैतालिका' इति वा पाठः 'वैतालिका बोधकराः' इत्यमरः वाग्भिः स्तुतिपाठैरुषसि प्राबोधयन्प्रबोधयामासुः ।

अन्वयः—कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं, शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागं, प्रथितप्रबोधं, तं, सवयसः उदारवाचः, सूतात्मजाः, वाग्भिः उषसि, प्राबोधयन् ।

वाच्य०—कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसः शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागः प्रथितप्रबोधः सः सवयोभिः उदारवाग्भिः सूतात्मजैः वाग्भिः उषसि, प्राबोध्यत ।

व्याख्या—कर्णयोः = श्रोत्रयोः । भूषणे = आभूषणे अलंकारौ इत्यर्थः इति कर्णभूषणे, कर्णभूषणाभ्यां निपीडितौ = विमर्दितौ, पीवरौ = स्थूलौ, अंसौ = स्कन्धौ यस्य स कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसः, तम् । शय्यायाः = खट्वायाः 'शयनं मंचपर्यंकपल्यंकाः खट्वया समाः' इत्यमरः । उत्तरच्छदः = उपर्यास्तरणवस्त्रमिति शय्योत्तरच्छदः तस्य विमर्दः = संघर्षणं तेन शय्योत्तरच्छदविमर्देन कृशः = विरलः, निर्मृष्ट इत्यर्थः, अंगरागः=कस्तूरिकाचन्दनादिलेपः यस्य सः शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागस्तम् । प्रथितः=प्रकृष्टः प्रबोधः=ज्ञानं यस्य स तं प्रथितप्रबोधं प्रकृष्टज्ञानवन्तमित्यर्थः । तम्=अजं । समानं=तुल्यं । वयः= अवस्था येषां ते सवयसः । उदाराः = उत्कृष्टाः प्रगल्भाः, वाचः = गिरः येषान्ते उदारवाचः । सूतानां = वन्दिनां स्तुतिपाठकानामित्यर्थः, आत्मजाः = पुत्रा इति सूतात्मजाः । वाग्भिः=स्तुतिपाठैः । उषसि=प्रत्यूषे । प्राबोधयन्= प्रबोधयामासुः ।

समा०—कर्णयोः भूषणे, ताभ्यां निपीडितौ पीवरौ अंसौ यस्य सः, तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसम् । शय्यायाः उत्तरच्छदः इति शय्योत्तरच्छदः, शय्योत्तरच्छदस्य विमर्दः इति शय्योत्तरच्छदविमर्दः, तेन कृशः अंगरागः यस्य सः,

तं शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागम् । प्रथितः प्रबोधो यस्य स तं प्रथितप्रबोधम् । समानं वयः येषां ते सवयसः । उदाराः वाचः येषान्ते उदारवाचः । सूतानाम् आत्मजाः इति सूतात्मजाः ।

अभि०—कर्णकुण्डलद्वयेन पीडितस्कन्धद्वयं खट्वास्तरणवस्त्रेण निर्मृष्टकस्तूरिकादिलेपनं प्रथितज्ञानमजं प्रगल्भा वन्दिपुत्राः प्रातःकाले मंगलगीतैः प्रबोधितवन्तः ।

हिन्दी—कुण्डलों के दबाव से जिसके कन्धों पर चिह्न पड़ गया और पलंग के बिछौने की रगड़ से जिसके शरीर पर लगा हुआ, कस्तूरी चन्दन आदि का अंगराग भी मिट गया, और जो बुद्धिमान् है ऐसे अज को समान अवस्थावाले और मधुर बोलनेवाले बन्दिपुत्रों ने दिन निकलते ही मंगलगीत गाकर जगाया ॥६५॥

रात्रिर्गता मतिमतां वर मुञ्च शय्यां
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता ।
तामेकतस्तव बिभर्ति गुरुर्विनिद्र-
स्तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥६६॥

सञ्जीविनी—हे मतिमतां वर ! निर्धारणे षष्ठी । रात्रिर्गता शय्यां मुञ्च विनिद्रो भवेत्यर्थः । विनिद्रत्वे फलमाह—धात्रेति । धात्रा ब्रह्मणा जगतो धूर्भारः 'धूः स्याद्यानमुखे भारे' इति यादवः । द्विधैव द्वयोरेवेत्यर्थः, एवकारस्तृतीयनिषेधार्थः । विभक्ता ननु विभज्य स्थापिता खलु । ततः किमत आह तां धुरमेकत एककोटौ तव गुरुः पिता विनिद्रः सन्बिभर्ति तस्या धुरो भवान् धुरं वहतीति धुर्यो भारवाही तस्य पदं वहनस्थानम् अपरं यद्धुर्यपदं तदवलम्बी ततो विनिद्रो भवेत्यर्थः । न ह्युभयवाह्यमेको वहतीति भावः ॥६६॥

अन्वयः—मतिमतां वर, रात्रिः गता, शय्यां मुञ्च, धात्रा, जगतः, धूः, द्विधा, एव विभक्ता, ननु । ताम्, एकतः, तव, गुरुः, विनिद्रः, 'सन्' बिभर्ति तस्याः भवान्, अपरधुर्यपदावलम्बी ।

वाच्य०—मतिमतां वर रात्र्या गतया 'भूयते' 'त्वया' शय्या मुच्यतां, धाता जगतः धुरं द्विधैव विभक्तवान्, ननु ताम् एकतः तव गुरुणा विनिद्रेण 'सता' भ्रियते तस्य भवता अपरधुर्यपदावलम्बिना 'भूयताम्' ।

व्याख्या—मतिः=बुद्धिः अस्ति येषान्ते मतिमन्तस्तेषां मतिमतां, वरः=श्रेष्ठः तत्संबुद्धौ हे मतिमतां वर ! हे अज ! रात्रिः=रजनी । गता=व्यतीता । शय्यां=

खट्वां मुञ्च=त्यज । विनिद्रो भवेत्यर्थः । धात्रा=ब्रह्मणा । गच्छतीति जगत्, तस्य जगतः=संसारस्य । धूः=भारः जगत्पालनरूपो भार इत्यर्थः । द्विधा= द्विप्रकारेण एव । विभक्ता=विभज्य स्थापिता । ननु=खलु । तां=धुरम् । एकतः=एककोटौ । तव=अजस्य । गुरुः=जनकः । रघुरित्यर्थः । विगता नष्टा त्यक्ता इत्यर्थः, निद्रा=स्वापः येन स विनिद्रः, 'सन्' । बिभर्ति= धारयति । तस्याः=धुरः । भवान्=अजः । धुरं वहतीति धुर्यः, धुर्यस्य= भारवाहिनः पदं=वहनस्थानमिति धुर्यपदम् । अपरम्=अन्यत् च धुर्यपद- मिति अपरधुर्यपदम्, अपरधुर्यपदमवलम्बते तच्छील इति अपरधुर्यपदावलम्बी, अस्तीति शेषः, द्वाभ्यां वाह्यमेको न वोढुं समर्थ इति भवान् विनिद्रो भवत्वित्यर्थः ।

समा०—धुरं वहतीति धुर्यः, धुर्यस्य पदमिति धुर्यपदम्, अपरञ्च तत् धुर्यपद- मिति अपरधुर्यपदम् , अपरधुर्यपदमवलम्बते तच्छील इति अपरधुर्यपदावलम्बी ।

अभि०—हे बुद्धिमत्सु श्रेष्ठ ! रात्रिरतिक्रान्ता त्वमपि खट्वां परित्यज्य विनिद्रो भव । ब्रह्मणा जगद्रक्षणभारो द्विधा विभज्य तव पितरि त्वयि च स्थापितः । तव पिता निद्रां त्यक्त्वा सावधानः सन् प्रजापालनभारमेकतः बिभ्रत् पृथिवीं रक्षति । अतस्त्वमपि निद्रां विहाय अपरधुर्यपदावलम्बी भूत्वा पृथिवीं पालय, नहि द्वाभ्यां वहनयोग्यमेकः वोढुं शक्नोतीत्यर्थः ।

हिन्दी— हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अज ! रात बीत गयी है । इसलिये पलङ्ग को छोड़िये, ब्रह्मा ने पृथ्वी के पालन का भार दो भागों में बाँटा है, जिसे एक ओर तो तुम्हारे पिता रघु सावधान होकर सम्भालते हैं और दूसरी ओर का भार तुम्हें ही सावधान होकर सम्भालना है ॥६६॥

निद्रावशेन भवताऽप्यनवेक्षमाणा,
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी,
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः ॥६७॥

सञ्जीविनी—चन्द्रारविन्दराजवदनादयो लक्ष्मीनिवासस्थानानीति प्रसिद्धि- माश्रित्योच्यते । निद्रावशेन निद्राधीनेन स्त्र्यन्तरासङ्गोऽत्र ध्वन्यते । भवता पर्यु- त्सुकत्वमपि त्वय्यनुरक्तत्वमपीत्यर्थः । 'प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च' इति सप्त- म्यर्थे तृतीया । अपिशब्दस्तद्विषयानुरागस्यानपेक्ष्यत्वद्योतनार्थः । निशि खण्डिता

भर्तुरन्यासङ्गज्ञानकलुषिताऽबलेव नायिकेव 'ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्या-कषायिता' इति दशरूपके । अनवेक्षमाणाऽविचारयन्ती सती उपेक्षमाणेत्यर्थः। 'ह्यनवेक्ष्यमाणा' इति पाठे निद्रावशेन भवताऽनवेक्ष्यमाणाऽनिरीक्ष्यमाणा कर्मणि शानच् । लक्ष्मीः प्रयोजककर्त्री येन प्रयोज्येन चन्द्रेण पर्युत्सुकत्वं त्वद्वि-रहवेदनाम् 'कालाक्षमत्वमौत्सुक्यं मनस्तापज्वरादिकृत्' इत्यलंकारे । विनोद-यति निरासयतीति योजना । शेषं पूर्ववत् । नायस्त्वर्थोपपत्तिमपश्यन्निमं पक्ष-मुपैक्षिष्ट । लक्ष्मीर्येन चन्द्रेण सह त्वदाननसदृशत्वादिति भावः । विनोदयति विनोदं करोति । विनोदशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्प्रत्ययः। सादृश्यदर्शनादयो हि विरहिणां विनोदस्थानानीति भावः । स चन्द्रोऽपि दिगन्त-लम्बी पश्चिमाशां गतः सन् अस्तं गच्छन्नित्यर्थः । अत एव त्वदाननरुचिं विज-हाति त्वन्मुखसादृश्यं त्यजतीत्यर्थः । अतो निद्रां विहाय, तां लक्ष्मीमनन्यशरणां परिगृहाणेति भावः ॥६७॥

अन्वयः—निद्रावशेन, भवता, पर्युत्सुकत्वम्, अपि, निशि, खण्डिता, अबला, इव, अनवेक्षमाणा, 'सती' लक्ष्मीः, येन, पर्युत्सुकत्वं विनोदयति, सः, चन्द्रः, अपि, दिगन्तलम्बी, 'सन्' त्वदाननरुचिं, विजहाति ।

वाच्य०—निद्रावशेन भवता पर्युत्सुकत्वमपि निशि खण्डितया अबलया इव अनवेक्षमाणया 'सत्या' लक्ष्म्या येन पर्युत्सुकत्वं विनोद्यते तेन चन्द्रेणापि दिगन्तलम्बिना 'सता' त्वदाननरुचिः विहीयते ।

व्याख्या—निद्रायाः=स्वापस्य, वशः=अधीनः इति निद्रावशस्तेन निद्रा-वशेन निद्रावशीभूतेनेत्यर्थः । भवता=अजेन । परित उत्सुका इति पर्युत्सुका, पर्युत्सुकाया भावः पर्युत्सुकत्वम्=अत्यौत्कण्ठ्यम् । त्वय्यनुरक्तत्वमपीत्यर्थः, अपि निशि=रात्रौ । खण्डिता=पत्युरन्यासंगज्ञानकलुषिता । अबला=नायिका । इव यथा । अवेक्षत इति अवेक्षमाणा, न अवेक्षमाणा इत्यनवेक्षमाणा= उपेक्षमाणा । 'सती' लक्ष्मीः श्रीः, (प्रयोजककर्त्री) येन चन्द्रेण सह विनोदयति =विनोदं करोति । सः=पूर्वोक्तः । चन्द्रः=इन्दुरपि दिशामन्तः दिगन्तः दिगन्तं=पश्चिमाशां लम्बते तच्छीलः इति दिगन्तलम्बी अस्तं गत इत्यर्थः, सन् । तव=भवतोऽजस्य । आननं=मुखं तस्य रुचिं=कान्तिं शोभासा-दृश्यमित्यर्थः इति त्वदाननरुचिं 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' इत्यमरः । विजहाति=त्यजति ।

समा०—निद्रायाः वशः निद्रावशस्तेन निद्रावशेन। अवेक्षते इति अवेक्षमाणा न अवेक्षमाणा इति अनवेक्षमाणा। दिशामन्तः दिगन्तः, दिगन्तं लम्बते तच्छील इति दिगन्तलम्बी। तव आननं त्वदाननं, त्वदाननस्य रुचिः इति त्वदाननरुचिस्तां त्वदाननरुचिम्।

अभि०—*निद्रारूपान्यस्त्रियामनुरक्तं त्वां ज्ञात्वा रात्रौ खण्डिता अबलेव* खिन्ना सती तव सौन्दर्यलक्ष्मीः, त्वामभिलषन्त्यपि तवाननसदृशं चन्द्रं स्वमनोविनोदार्थमाश्रितवती, इदानीं स चन्द्रोऽप्यस्तंगत इति सा निराश्रया जाता अतस्त्वं निद्रां विहाय अनन्यशरणां तां लक्ष्मीमाश्वासय।

हिन्दी—निद्रारूपी दूसरी स्त्री के वश में हुए तुम्हें जानकर तुमको चाहती हुई भी तुम्हारी सौन्दर्य-लक्ष्मी, तुमसे खिन्न होकर तुम्हारे ही मुख के सदृश सुन्दर चन्द्रमा के पास अपनी विरह वेदना मिटाने के लिये, रात में खण्डिता नायिका की तरह चली गयी थी, किन्तु वह चन्द्रमा भी इस समय क्षीण कान्ति (अस्त) हो रहा है, और वह सौन्दयलक्ष्मी निराश्रित हो गयी है। अतः निद्रा का परित्याग करके तुम उसे स्वीकार कर लो ॥६७॥

तद्वल्गुना युगपदुन्मिषितेन तावत्सद्यः परस्परतुलामधिरोहतां द्वे।
प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारमन्तश्चक्षुस्तव प्रचलितभ्रमरं च पद्मम् ॥६८॥

सञ्जीविनी—तत्तस्माल्लक्ष्मीपरिग्रहणाद्वल्गुना मनोज्ञेन च 'वल्गु स्थाने मनोज्ञे च वल्गु भाषितमन्यवत्' इति विश्वः। युगपत्तावदुन्मिषितेन युगपदेवोन्मीलितेन सद्यो द्वे अपि परस्परतुलामन्योन्यसादृश्यमधिरोहतां प्राप्नुताम्। प्रार्थनायां लोट्। के द्वे अन्तःप्रस्पन्दमाना चलन्ती परुषेतरा स्निग्धा तारा कनीनिका यस्य तत्तथोक्तम्। 'तारकाक्ष्णः कनीनिका' इत्यमरः। तव चक्षुः अन्तःप्रचलितभ्रमरं चलद्भृङ्गं पद्मं च। युगपदुन्मेषे सति संपूर्णसादृश्यलाभ इति भावः ॥६८॥

अन्वयः—तत्, वल्गुना, युगपत्, तावत्, उन्मिषितेन, सद्यः, द्वे, परस्परतुलाम्, अधिरोहतां, 'के द्वे' अन्तः प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारं, तव, चक्षुः, "अन्तः" प्रचलितभ्रमरं, पद्मं, च।

वाच्य०—द्वाभ्यामपि परस्परतुला अधिरुह्यताम्, अन्तः प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारेण तव चक्षुषा, अन्तःप्रचलितभ्रमरेणपद्मेन च।

व्याख्या—तत्=तस्मात् हेतोः लक्ष्मीपरिग्रहणादित्यर्थः, वल्गुना=मनोज्ञेन युगपद्=एकवारम्। तावद्=एव उन्मिषितेन=उन्मीलितेन पद्मपक्षे विकसितेन। सद्यः=सपदि द्वे=उभे नेत्रपद्मे इत्यर्थः। परस्परयोः=अन्योन्ययोः। तुला=सादृश्यं इति परस्परतुला तां परस्परतुलाम्। अधिरोहतां=प्राप्नुताम्, 'के द्वे इत्याह' अन्तः=मध्ये परुषात् इतरा परुषेतरा। प्रस्पन्दमाना=प्रकर्षेण चलन्ती, परुषेतरा=स्निग्धा, तारा=कनीनिका यस्य तत्, प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारम्। तव=अजस्य, चक्षुः=नेत्रम् अन्तः=मध्ये। प्रचलिताः=भ्रमन्तः। भ्रमराः==द्विरेफाः यस्मिन् तत् प्रचलितभ्रमरं पद्म=कमलं च।

समा०—परस्परयोः तुला इति परस्परतुला, तां परस्परतुलाम्। परुषात् इतरा इति परुषेतरा, प्रस्पन्दमाना परुषेतरा तारा यस्य तत् प्रस्पन्दमानपरुषेतरतारम्। प्रचलिताः भ्रमराः यस्मिन् तत् प्रचलितभ्रमरम्।

अभि०—प्रभातसमयः सजातः, कमलानि विकसितानि, अतस्तव नेत्रकमलयोरुन्मीलनमपि समुचितम्, एवं च स्वस्वसौन्दर्यलक्ष्मीपरिग्रहणात् मध्ये प्रचलस्निग्धनीलकनीनिकं तव नेत्रं मध्ये भ्रमद्भ्रमरं कमलं च एकदेवोन्मीलितं विकसितं च सत् मनोज्ञेतेद्वे अपि सद्यः परस्परपूर्णसादृश्यमधिगच्छताम्।

हिन्दी—इस समय, तुम्हारे बन्द नेत्रों में चिकनी तथा काली पुतलियाँ घूम रही हैं और कमलों के भीतर भ्रमर घूम रहे हैं, अतः यदि इस समय उठो तो अरुणोदय होने पर सौन्दर्यलक्ष्मी के ग्रहण से सुन्दर तथा एक ही समय खिले हुए तुम्हारे नेत्र और कमल दोनों परस्पर के सादृश्य को प्राप्त कर लें ॥६८॥

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां
संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य ॥६९॥

सञ्जीविनी—विभातवायुः प्रभातवायुः स्वाभाविकं नैसर्गिकं ते तव मुखमारुतस्य निःश्वासपवनस्य सौरभ्यं तादृक्सौगन्ध्यमित्यर्थः। परगुणेनान्यदीयगुणेन सांक्रामिकगन्धेनेत्यर्थः। ईप्सुराप्तुमिच्छुरिव 'आप्ज्ञप्यृधामीत्' इतीकारादेशः। अनोकहानां वृक्षाणां श्लथं शिथिलं पुष्पं वृन्तात्पुष्पबन्धनात् 'वृन्तं प्रसवबन्धनम्' इत्यमरः। हरत्यादत्ते। अरुणांशुभिन्नैस्तरणिकिरणोद्बोधितैः सरसिजातैः सर-

सिजैः कमलैः सह 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति सप्तम्या अलुक् । संसृज्यते संगच्छते । सृजेर्दैवादिकात्कर्तरि लट् ॥६९॥

अन्वयः–विभातवायुः,स्वाभाविकं, ते,मुखमारुतस्य,सौरभ्यं,परगुणेन, ईप्सुः,इव अनोकहानां, श्लथं, पुष्पं, वृन्तात्, हरति, अरुणांशुभिन्नैः, सरसिजैः, सह, संसृज्यते।

वाच्य०—विभातवायुना सौरभ्यमीप्सुना इव वृन्तात् पुष्पं ह्रियते ।

व्याख्या—विशेषेण भाति वस्तु यस्मिन् तत् विभातं विभातस्य=प्रभातस्य वायुः=पवनः इति विभातवायुः । स्वाभाविकं=नैसर्गिकम् । ते=तवाजस्य । मुखस्य=आननस्य, मारुतः=वायुः आश्वासपवन इत्यर्थः । तस्य मुखमारुतस्य । सुरभेर्भावः सौरभ्यं=सौगन्ध्यम् । परस्य=अन्यस्य, गुणः=गन्धः इति परगुणस्तेन परगुणेन । ईप्सुः=प्राप्तुमिच्छुः । इव=यथा अनोकहानां=वृक्षाणाम् । श्लथं शिथिल पुष्पं=कुसुमम् । वृन्तात्=पुष्पबन्धनात् 'वृन्तं प्रसवबन्धनम्' इत्यमरः । हरति=आदत्ते गृह्णातीत्यर्थः । अरुणस्य=सूर्यस्य । अंशवः=किरणाः इति अरुणांशवस्तैः अरुणांशुभिः, भिन्नानि=विकसितानि, तैः अरुणांशुभिन्नैः । सरसि जातानि, तैः सरसिजैः कमलैः, सह=साकम् । संसृज्यते=संगच्छते ।

समा०–विभातस्य वायुरिति विभातवायुः। मुखस्य मारुतः मुखमारुतस्तस्य मुखमारुतस्य । परस्य गुणः परगुणस्तेन परगुणेन । अरुणस्य अंशवः अरुणांशवः, तैः भिन्नानि इति अरुणांशुभिन्नानि, तैः अरुणांशुभिन्नैः। सरसि जातानि, तैः सरसिजः ।

अभि०–प्रातःकालीनः पवनः स्वाभाविकं ते निश्वासवायोः सौगन्ध्यं परकीयगन्धेन प्राप्तुमिच्छुरिव वृक्षाणां शिथिलपुष्पाणि वृन्तात् गृह्णन् सूर्यकिरणसंपर्कात् विकसितकमलैश्च सह संमिलितो भवति, अतस्त्वं निद्रां त्यजेत्यभिप्रायः ।

हिन्दी—प्रातः काल का पवन वृक्षों के ढीले पुष्पों को गिरा रहा है और सूर्य की किरणों से खिले हुये कमलों को छूता हुआ चल रहा है, मानों तुम्हें सोया हुआ देखकर वह तुम्हारे मुख की स्वाभाविक सुगन्धि को दूसरों से प्राप्त करने की इच्छा कर रहा है ॥६९॥

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु
निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः ।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे
लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम् ॥७०॥

सञ्जीविनी—ताम्रोदरेष्वरुणाभ्यन्तरेषु तरुपल्लवेषु पतितं निर्धौता या हारगुलिका मुक्तामणयस्तद्वद्विशदं हिमाम्भो लब्धपरभागतया लब्धोत्कर्षतया 'परभागो गुणोत्कर्षे' इति यादवः । अधरोष्ठे त्वदीयं सदशनार्चिर्दन्तकान्तिसहितं लीलास्मितमिवाभाति शोभते ॥७०॥

अन्वयः—ताम्रोदरेषु, तरुपल्लवेषु, पतितं निर्धौतहारगुलिकाविशदं, हिमाम्भः, लब्धपरभागतया, अधरोष्ठे त्वदीयं, सदशनार्चिः, लीलास्मितम्, इव, आभाति ।

वाच्य०—ताम्रोदरेषु तरुपल्लवेषु पतितेन निर्धौतहारगुलिकाविशदेन हिमाम्भसा लब्धपरभागतयाऽधरोष्ठे त्वदीयेन सदशनार्चिषा लीलास्मितेनेव आभायते ।

व्याख्या—ताम्रवत्=शुल्बवत् 'अथ ताम्रकम् । शुल्बं म्लेच्छमुखम्' इत्यमरः । उदरम्=आभ्यन्तरं येषां तानि, तेषु ताम्रोदरेषु अरुणाभ्यन्तरेष्वित्यर्थः । तरूणां=पादपानाम् । पल्लवानि=किसलयानि तेषु, तरुपल्लवेषु । पतितं=च्युतम् हारस्य गुलिकाः इति हारगुलिकाः, निर्धौताः=प्रक्षालिताश्च ताः हारगुलिकाः=मुक्तामणयः इति निर्धौतहारगुलिकाः, तद्वत् विशदं=स्वच्छमिति निर्धौतहारगुलिकाविशदम् । हिमस्य=तुषारस्य, अम्भः=जलमिति हिमाम्भः । लब्धः=प्राप्तः, परभागः= गुणोत्कर्षः, येन स लब्धपरभागः, तस्य भावः लब्धपरभागता, तया लब्धपरभागतया । अधरश्चासौ ओष्ठश्चेति अधरोष्ठस्तस्मिन् अधरोष्ठे=अधरस्तनदन्तच्छदे । तवेदं त्वदीयं=भवदीयम् । दशनानां=दन्तानाम् अर्चिः किरणः इति दशनार्चिः दशनार्चिषा सह वर्तते इति सदशनार्चिः । लीलया=विलासेन, स्मितम्=ईषद्धसनमिति लीलास्मितम् । इव यथा । आभाति=शोभते ।

समा०—ताम्रवत् उदरं येषां तानि ताम्रोदराणि, तेषु ताम्रोदरेषु । तरूणां पल्लवानि, तेषु तरुपल्लवेषु । हारस्य गुलिकाः हारगुलिकाः, निर्धौताश्च ताः हारगुलिकाः इति निर्धौतहारगुलिकाः, निर्धौतहारगुलिका इव विशदमिति निर्धौतहारगुलिकाविशदम् । हिमस्य अम्भः हिमाम्भः । लब्धः परभागो येन स लब्धपरभागस्तस्य भावस्तत्ता, तया लब्धपरभागतया । अधरश्चासौ ओष्ठश्चेति अधरोष्ठस्तस्मिन् अधरोष्ठे । तवेदं त्वदीयम् । दशनानाम् अर्चिरिति दशनार्चिः । दशनार्चिषा सह वर्तते इति सदशनार्चिः । लीलया स्मितमिति लीलास्मितम् ।

अभि०—अरुणाभ्यन्तरतरुपल्लवेषु रात्रौ पतितं स्वच्छमुक्ताफलसदृशं तुषारजलं प्राप्तोत्कर्षतया तवाधरोष्ठे वर्तमानं दन्तद्युतियुतं लीलाहास्यमिव शोभते ।

हिन्दी—लालवर्ण के वृक्षों के पत्तों पर पड़ी हुई, हार के स्वच्छ मोतियों के समान निर्मल ओस की बूँदें, लाल-लाल ओठों पर वर्तमान, दाँतों की चमक सहित तुम्हारे मुसकराने की तरह सुन्दर लग रही है ॥७०॥

यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर याते
किं वा रिपूंस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति ॥७१॥

सञ्जीविनी—प्रतापनिधिस्तेजोनिधिर्भानुर्यावन्नाक्रमते नोद्गच्छति 'आङ् उद्गमने' इत्यात्मनेपदम्। तावत् भानावनुदित एवेत्यर्थः। अह्नाय झटिति 'द्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय' इत्यमरः। अरुणेनानूरुणा 'सूरसूतोऽरुणोऽनूरुः'। इत्यमरः तमो निरस्तम्। तथाहि हे वीर! त्वय्यायोधनेषु युद्धेषु 'युद्धमायोधनं जन्यम्' इत्यमरः। अग्रसरतां पुरःसरतां याते सति तव गुरुः पिता रिपून्स्वयमुच्छिनत्ति किं वा नोच्छिनत्त्येवेत्यर्थः। न खलु योग्यपुत्रन्यस्तभाराणां स्वामिनां स्वयं व्यापारखेद इति भावः ॥७१॥

अन्वयः—प्रतापनिधिः, भानुः, यावत्, न आक्रमते, तावत्, अह्नाय, अरुणेन, तमः, निरस्तं "तथाहि" वीर, त्वयि, आयोधनाग्रसरतां, याते, "सति" तव, गुरुः, रिपून्, स्वयम्, उच्छिनत्ति, किं वा।

वाच्य०—प्रतापनिधिना भानुना यावत् न आक्रम्यते तावत्, अरुणः तमः निरस्तवान्, गुरुणा रिपवः स्वयमुच्छिद्यन्ते किं वा।

व्याख्या—प्रतापस्य=तेजसः, निधिः=शेवधिः इति प्रतापनिधिः। भातीति भानुः=सूर्यः यावत्=यावत्कालमित्यर्थः। न=नहि। आक्रमते=उद्गच्छति, तावत्=अनुदिते, एव भानावित्यर्थः। अह्नाय=झटिति। अरुणेन=सूर्यसारथिना, तमः=अन्धकारः। निरस्तं=दूरीकृतम् अपसारितमित्यर्थः। 'तथाहि' हे वीर=हे शूर। त्वयि=अजे, आयोधनेषु=युद्धेषु, अग्रसरताम्=पुरोगामितां याते=प्राप्ते सति। तव=अजस्य गुरुः=पिता रघुरित्यर्थः। रिपून्=शत्रून् स्वयम्=आत्मना उच्छिनत्ति=विनाशयति। किं=प्रश्ने वा इति नोच्छिनत्त्येवेत्यर्थः।

समा०—प्रतापस्य निधिरिति प्रतापनिधिः। अग्रे सरन्तीति अग्रसराः, तेषां भावः अग्रसरता, आयोधनेषु अग्रसरता, ताम् आयोधनाग्रसरताम्।

भावार्थ—यथा सूर्योदयात्पूर्वमेवारुणः झटिति तमो निवारयति, एवं हे वीर! संग्रामेषु योधाग्रगण्ये त्वयि वर्तमाने सति तव पिता शत्रूणामुन्मूलनं स्वयमेव करिष्यति किं वा। अतस्त्वयापि पितुः पूर्वमेवोत्थाय स्वकर्तव्यं पालनीयम्।

हिन्दी—सूर्योदय से पहले ही अरुण, संसार से अन्धकारको भगा देता है यह उचित ही है, योग्य सेवक के रहते स्वामी को स्वयं कार्य करने का कष्ट नहीं होना चाहिये, अतः संग्राम में सबसे आगे लड़नेवाले तुम्हारे समान योग्य पुत्र के रहते हुए, क्या तुम्हारे पिता जी को शत्रुओं का विनाश स्वयं करना पड़ेगा? अर्थात् कभी नहीं ॥७१॥

शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः
स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते।
येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगा-
द्भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः ॥७२॥

सञ्जीविनी—उभाभ्यां पक्षाभ्यां पार्श्वाभ्यां विनीता अपगता निद्रा येषां ते उभयपक्षविनीतनिद्राः, अत्र समासविषय उभशब्दस्थाने उभयशब्दप्रयोग एव साधुरित्यनुसंधेयम्। यथाह कैयटः—'उभादुदात्तो नित्यमि'ति नित्यग्रहणस्येदं प्रयोजनं वृत्तिविषय उभशब्दस्य प्रयोगो मा भूत् उभयशब्दस्यैव यथा स्यात् 'उभयपुत्र इत्यादि भवति' इति। मुखराण्युत्थानचलनाच्छब्दायमानानि शृङ्खलानि निगडानि कर्षन्तीति तथोक्तास्ते एव तव स्तम्बे रमन्त इति स्तम्बेरमा हस्तिनः 'स्तम्बकर्णयोरमिजपोः' इत्यच्प्रत्ययः 'हस्तिसूचकयोः' इति वक्तव्यात्। 'इभः स्तम्बेरमः पद्मी' इत्यमरः। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति सप्तम्या अलुक्। शय्यां जहति त्यजन्ति। येषां स्तम्बेरमाणां दन्ताः कोशा इव दन्तकोशाः दन्तकुड्मलास्तरुणारुणरागयोगाद्बालार्कारुणसंपर्काद्धेतोर्भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव विभान्ति धातुरक्ता इव भान्तीत्यर्थः ॥७२॥

अन्वयः—उभयपक्षविनीतनिद्राः, मुखरशृङ्खलकर्षिणः, ते, स्तम्बेरमाः, शय्यां जहति, *दन्तकोशाः, तरुणारुणरागयोगात्, भिन्नाद्रिगैरिकतटाः, इव विभान्ति।*

वाच्य०—उभयपक्षविनीतनिद्रैः मुखरशृंखलकर्षिभिः स्तम्बेरमैः, शय्या हीयते, येषां दन्तकोशैः तरुणारुणरागयोगात् भिन्नाद्रिगैरिकतटैः इव भायते।

व्याख्या—उभौ=द्वौ, च तौ पक्षौ=पार्श्वौ इति उभयपक्षौ, विनीता=त्यक्ता निद्रा=स्वापः येषां ते उभयपक्षविनीतनिद्राः। मुखराणि=शब्दायमानानि

शृंखलानि=निगडानि, कर्षन्ति=आकर्षणं कुर्वन्तीति मुखरशृंखलकर्षिणः। ते=पूर्वोक्ताः "तव" स्तम्बे=दर्भादितृणसमूहे रमन्ते=क्रीडन्तीति स्तम्बेरमाः=गजाः, शय्यां=शयनस्थानम्। जहति=त्यजन्ति। येषां=स्तम्बेरमाणाम्। दन्ता रदाः, कोशाः=कुड्मलाः इव इति दन्तकोशाः 'रदना दशना दन्ता रदाः, कोशोऽस्त्री कुड्मले' इति चामरः। तरुणः=बालश्चासौ अरुणः= अर्कश्चेति तरुणारुणः=बालसूर्यः, तस्य रागः=रक्तिमा, इति तरुणारुणरागः, तस्य योगः=सम्पर्कस्तस्मात् तरुणारुणरागयोगात्। अद्रेः=पर्वतस्य गरिकतटाः= गैरिकशिखराः इति अद्रिगैरिकतटाः। भिन्नाः=छिन्नाः अद्रिगैरिकतटा यैस्ते, भिन्नाद्रिगैरिकतटाः। इव=यथा विभान्ति=शोभन्ते।

समा०—उभौ च तौ पक्षौ उभयपक्षौ, उभयपक्षाभ्यां विनीता निद्रा येषां ते उभयपक्षविनीतनिद्राः। मुखराणि शृंखलानि कर्षन्तीति मुखरशृंखलकर्षिणः। दन्ताः कोशाः इवेति दन्तकोशाः। तरुणश्चासौ अरुण इति तरुणारुणः, तरुणारुणस्य रागः, तस्य योगः तस्मात् तरुणारुणरागयोगात्। गैरिकाश्च ते तटा इति गैरिकतटाः, अद्रेः गैरिकतटा इति अद्रिगैरिकतटाः, भिन्नाः अद्रि- गैरिकतटाः यैस्ते भिन्नाद्रिगैरिकतटाः।

अभि०—पार्श्वद्वयपरिवर्तनपूर्वकं त्यक्तनिद्राः उत्थानचलनेन झणझणेति शब्दायमानलोहशृंखलककर्षिणस्ते सेनागजेन्द्राः शयनस्थानात् उत्तिष्ठन्ति, येषां च गजेन्द्राणां दन्ताः प्रातःकालिकसूर्यसम्पर्कात्, गैरिकधातुरक्ता इव भान्ति।

हिन्दी—दोनों करवट बदलकर निद्रा को छोड़नेवाले और खनखनाती हुई सांकलों को खींचते हुए तुम्हारी सेना के हाथी उठ गये हैं। बाल सूर्य की लाल किरणों के सम्पर्क से उनके दाँत ऐसे शोभित हैं मानों उन्होंने पर्वत के गैरिक शिखर तोड़े हों॥ ७२॥

दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु
निद्रां विहाय वनजाक्ष वनायुदेश्याः।
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि
लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः॥७३॥

सञ्जीविनी—हे वनजाक्ष नीरजाक्ष! 'वनं नीरं वनं सत्त्वम्' इति शाश्वतः। दीर्घेषु पटमण्डपेषु नियमिता बद्धा वनायुदेश्या वनायुदेशे भवाः 'पारसीका

वनायुजाः' इति हलायुधः। अमी वाहा अश्वा निद्रां विहाय पुरोगतानि लेह्यान्यास्वाद्यानि सैन्धवशिलाशकलानि 'सैन्धवोऽस्त्री शीतशिवं माणिमन्थं च सिन्धुजे' इत्यमरः। वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति मलिनानि कुर्वन्ति। उक्तं च सिद्धयोगसंग्रहे–'पूर्वाह्नकाले चाश्वानां प्रायशो लवणं हितम्। शूलमोहविबन्धघ्नं लवणं सैन्धवं वरम्' इत्यादि।

अन्वयः—वनजाक्ष! दीर्घेषु, पटमंडपेषु नियमिताः, वनायुदेश्याः अमी, वाहाः निद्रां विहाय पुरोगतानि, लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति।

वाच्य०—पटमण्डपेषु नियमितैः वनायुदेश्यैः, अमीभिः वाहैः सैन्धवशिलाशकलानि मलिन्यन्ते।

व्याख्या—वने=जले, जातम्=उत्पन्नं, वनजं=कमलमिव अक्षिणी=नेत्रे यस्य स तत्संबुद्धौ हे वनजाक्ष! अज! 'पयःकीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्' इत्यमरः। दीर्घेषु=आयतेषु। पटनिर्मिताः मण्डपाः पटमण्डपास्तेषु पटमण्डपेषु=उपकार्यासु। नियमिताः=संयताः बद्धा इत्यर्थः। वनायुदेशे भवाः वनायुदेश्याः=पारसीकाः। अमी=पुरःस्थिताः, वाहाः=घोटकाः, सेनातुरंगा इत्यर्थः। निद्रां=स्वापं विहाय=परित्यज्य। पुरोगतानि=सम्मुखस्थानि। लेढुं योग्यानि लेह्यानि=आस्वाद्यानि। सिन्धुदेशे भवः सैन्धवः, तस्य सैन्धवस्य=लवणस्य, शिलाः=दृषदः इति सैन्धवशिलाः, सैन्धवशिलानां शकलानि=खण्डान् इति सैन्धवशिलाशकलानि। वक्त्रस्य=मुखस्य। ऊष्मा=उष्णता तेन वक्त्रोष्मणा। मलिनयन्ति=मलिनानि कुर्वन्ति।

समा०—वने जाते वनजे इव अक्षिणी यस्य सः, तत्संबुद्धौ हे वनजाक्ष! पटनिर्मिताः मण्डपा इति पटमण्डपास्तेषु पटमण्डपेषु। वनायुदेशे भवा वनायुदेश्याः। सिन्धौ (देशे) भवं सैन्धवम्, सैन्धवस्य शिलाः सैन्धवशिलाः, तासां शकलानि इति सैन्धवशिलाशकलानि। वक्त्रस्य ऊष्मा वक्त्रोष्मा तेन वक्त्रोष्मणा।

अभि०—हे कमललोचन अज! पटनिर्मिताश्वशालासु संयताः पारसीका एते तव सेनाघोटकाः निद्रां त्यक्त्वा, लेह्यलवणशिलाखण्डान् निजमुखश्वासौष्ण्येन मलिनीकुर्वन्ति।

हिन्दी—हे कमल के समान नेत्रवाले अज! बड़े-बड़े, पटनिर्मित मण्डपों में बँधे हुए, काबुलदेश के ये घोड़े, नींद को त्यागकर चाटने योग्य सैन्धा नमक की शिलाओं के टुकड़ों को अपने मुख की गरमी से मलिन कर रहे हैं॥७३॥

भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः ।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक्पञ्जरस्थः ॥ ७४ ॥

सञ्जीविनी—म्लानः पुष्पोपहारः पुष्पपूजा म्लानत्वादेव विरलभक्तिर्विरलरचनो भवति । प्रदीपाश्च स्वकिरणानां परिवेषस्य मण्डलस्योद्भेदेन स्फुरणेन शून्या भवन्ति निस्तेजस्का भवन्तीत्यर्थः । अपि चायं मञ्जुवाङ् मधुरवचनः पञ्जरस्थस्ते तव शुकस्त्वत्प्रबोधनिमित्तं प्रयुक्तामुच्चारितां नोऽस्माकं गिरं वाणीमनुवदति अनुकृत्य वदतीत्यर्थः । इत्थं प्रभातलिङ्गानि वर्तन्ते अतः प्रबोद्धव्यमिति भावः।

अन्वयः—म्लानपुष्पोहारः, विरलभक्तिः, भवति, प्रदीपाः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः, भवन्ति, अपि च अयं, मञ्जुवाक्, पञ्जरस्थः, ते शुकः, त्वत्प्रबोधप्रयुक्तां, नः गिरम्, अनुवदति ।

वाच्य०—म्लानपुष्पोपहारेण विरलभक्तिना भूयते। प्रदीपैः स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्यैः भूयते । अपि चानेन मञ्जुवाचा पञ्जरस्थेन ते शुकेन त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता नः गीरनूद्यते ।

व्याख्या—म्लानः=निःश्वासेन म्लानतां गतः, यः पुष्पोपहारः=कुसुमोपायनमिति म्लानपुष्पोपहारः। विरला=शिथिला, भक्तिः=रचना यस्य सः विरलभक्तिः । भवति=जायते । जात इत्यर्थः । प्रदीपाः=दीपकाः । स्वस्य किरणाः स्वकिरणास्तेषां स्वकिरणानां=निजरश्मीनां, परिवेषः=मण्डलं तस्य उद्भेदः = स्फुरणमिति स्वकिरणपरिवेषोद्भेदः तेन शून्याः=रहिता इति स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः भवन्ति । नष्टप्रभाः जाता इत्यर्थः । अपि च अयम्=एषः, मञ्जुः = मनोहरा वाक्=वाणी यस्य स मञ्जुवाक् । पञ्जरे तिष्ठतीति पञ्जरस्थः पञ्जरमध्यवर्ती । ते=तव । शुकः=कीरः । तव=अजस्य, प्रबोधः=उत्थानम्, तत्र प्रयुक्ता = कथिता इति त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता, ताम् । नः = अस्माकं गिरं = वाणीं=वचः । अनुवदति=अनुब्रवीति अस्मदुक्तस्तुतिपाठं तथैव कथयति इत्यर्थः ।

समा०—पुष्पाणामुपहारः पुष्पोपहारः, म्लानश्चासौ पुष्पोपहारः इति म्लानपुष्पोपहारः । विरला भक्तिर्यस्य स विरलभक्तिः । स्वस्य किरणानां परिवेषः,

तस्य उद्भेदेन शून्याः इति स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः। तव प्रबोधाय प्रयुक्ता, तां त्वत्प्रबोधप्रयुक्ताम् । मञ्जुर्वाक् यस्यासौ मञ्जुवाक् ।

अभि०—रात्रौ शयने उपहारार्थमानीतः पुष्पहारः ते मुखनिश्वासेनेदानीम् म्लानः संजातः। तस्य च गुम्फनमपि विरलं जातं, दीपाश्च हतप्रभाः संजाताः, पञ्जरे स्थितोऽय कीरोऽपि तव प्रबोधायोदीरितं नः स्तुतिपाठमनुवदति। इत्थं प्रभातचिह्नानि वर्तन्ते अतस्त्वयापि प्रबोद्धव्यमिति ।

हिन्दी—रात्रिकी सजावटके लिए भेट में आए हुए पुष्प मुरझाकर गिर रहे हैं और दिन का प्रकाश हो जानेके कारण, दीपक भी अपने प्रकाश पुञ्ज से हीन हो गये हैं। अर्थात् फीके पड़ गये हैं और पिञ्जरे में बैठा हुआ मधुर बोलने वाला यह तुम्हारा सुग्गा भी तुम्हें जगानेके लिए हम लोगोंसे प्रयोग किये गये गीतोंको दुहरा रहा है। अतः तुम भी अब उठ जाओ ॥ ७४ ॥

इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः
सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार ।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः
सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः ॥ ७५ ॥

सञ्जीविनी—इतीत्थं विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैर्वैतालिकैः पुत्रग्रहणं समानवयस्कत्वद्योतनार्थम् । सपदि विगतनिद्रः कुमारः तल्पं शय्याम् 'तल्पं शय्याट्टदारेषु' इत्यमरः। उज्झाञ्चकार विससर्ज। 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' इत्याम्प्रत्ययः। कथमिव मदेन पटु मधुरं निनदद्भिः राजहंसैर्बोधितः सुप्रतीकाख्यः सुरगज ईशानदिग्गजः गङ्गाया इदं गाङ्गं सैकतं पुलिनमिव। 'तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयम्' इत्यमरः। 'सिकताशर्कराभ्यां च' इत्यण्प्रत्ययः। सुप्रतीकग्रहणं प्रायशः कैलासवासिनस्तस्य नित्य गङ्गातटविहारसंभवादित्यनुसंधेयम् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—इति, विरचितवाग्भिः वन्दिपुत्रैः, सपदि, विगतनिद्रः, कुमारः, तल्पम्, उज्झांचकार, 'कथमिव' मदपटु, निनदद्भिः, राजहंसैः, बोधितः, सुप्रतीकः सुरगजः, गाङ्गं, सैकतम्, इव ।

वाच्य०—विगतनिद्रेण कुमारेण तल्पमुज्झाञ्चक्रे, बोधितेन सुप्रतीकेन सुरगजेन गाङ्गं सैकतमिव ।

व्याख्या—इति=इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण, विरचिता=प्रणीता, वाक्=स्तुतिवचनं यैस्ते, तैः विरचितवाग्भिः। वन्दिनां=स्तुतिपाठकानां, पुत्राः=सुतास्तैः वन्दिपुत्रैः वैतालिकैरित्यर्थः। सपदि=तत्क्षणमेव। विगता=नष्टा, त्यक्तेत्यर्थः, निद्रा=स्वापो यस्य स विगतनिद्रः। कुमारः=युवराजोऽजः तल्प=शय्याम् । उज्झाञ्चकार=तत्याज विससर्ज त्यक्तवानित्यर्थः। "कथमिव" मदेन=हर्षेण, पटु=मधुरमिति मदपटु 'हर्षेऽप्यामोदवन्मदः' इत्यमरः। यथा स्यात्तथा निनदद्भिः=कूजद्भिः हंसानां राजानः इति राजहंसास्तैः राजहंसैः=कलहंसैः। बोधितः=उत्थापितः शयनादित्यर्थः। सुप्रतीकः=सुप्रतीकनामा। सुराणां=देवानां, गजः=हस्ती इति सुरगजः ईशानदिग्गज इत्यर्थः। गंगाया इदं=गांगं=गङ्गासंबन्धि, सिकताप्रचुरं सैकत=पुलिनम्, इव=यथा।

समा०—विरचिता वाक् यैस्ते विरचितवाचस्तैः विरचितवाग्भिः। वन्दिनां पुत्राः वन्दिपुत्रास्तैः वन्दिपुत्रैः। विगता निद्रा यस्य स विगतनिद्रः। हंसानां राजानः राजहंसास्तैः राजहंसैः। सुराणां गजः सुरगजः।

अभि०—मधुरं कूजद्भिः कलहंसैः, बोधितः ईशानदिग्गजः सुप्रतीकः यथा गङ्गायाः सैकतं त्यजति, तथैव पूर्वोक्तं स्तुतिपाठं पठद्भिः वैतालिकैः प्रबोधितोऽजस्तत्क्षणमेव तल्पं त्यक्तवान्।

हिन्दी—इस प्रकार सुन्दर वचनों की रचना करनेवाले चारणों की वाणी से जगे हुए कुमार अज ने, तत्काल ही पलंग को वैसे ही छोड़ दिया, जैसे मधुर शब्द करनेवाले हंसों के निनाद से जगा ईशानकोण का पहरेदार देवगज सुप्रतीक आकाशगङ्गा के रेतीले तट को छोड़ देता है॥ ७५॥

अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितमञ्चिताक्षिपक्ष्मा।
कुशलविरचितानुकूलवेषः क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम्॥ ७६॥

सञ्जीविनी—अथोत्थानानन्तरमञ्चितानि चारूण्यक्षिपक्ष्माणि यस्य सोऽजः शास्त्रे दृष्टमवगतं दिवसमुखोचितं प्रातःकालोचितं विधिमनुष्ठानमवसाय्य समाप्य स्यतेर्ण्यन्ताल्ल्यप्। कुशलैः प्रसाधनदक्षैर्विरचितोऽनुकूलः स्वयंवरोचितो वेषो नेपथ्यं यस्य स तथोक्तः सन्स्वयंवरस्थं क्षितिपसमाजं राजसमूहमगादगमत् 'इणो गा लुङि' इति गादेशः। पुष्पिताग्रावृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्-'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति॥ ७६॥

अन्वयः—अथ, अञ्चिताक्षिपक्ष्मा, शास्त्रदृष्टं, दिवसमुखोचितं, विधिम्, अवसाय्य, कुशलविरचितानुकूलवेषः "सन्" स्वयंवरस्थं, क्षितिपसमाजम्, अगात्।

वाच्य०—अञ्चिताक्षिपक्ष्मणा कुशलविरचितानुकूलवेषेण 'सता' स्वयंवरस्थः क्षितिपसमाजः अगामि।

व्याख्या—अथ=उत्थानानन्तरम्। अञ्चितानि=चारूणि=सुन्दराणीत्यर्थः, अक्ष्णां=नेत्राणां, पक्ष्माणि=लोमानि यस्य सः अञ्चिताक्षिपक्ष्मा। शास्त्रे =आगमे दृष्टं ज्ञातमिति शास्त्रदृष्टम्। दिवसस्य=दिनस्य, मुखम्=आननम्, आरम्भ इत्यर्थः, इति दिवसमुखम्, दिवसमुखे उचितं=योग्यं कर्तव्यमिति दिवसमुखोचितम्। विधिम् अनुष्ठानम्, अवसाय्य=निर्वर्त्य कुशलैः=प्रसाधनदक्षैः, विरचितः=सम्पादितः, अनुकूलः=स्वयंवरयोग्यः वेषः=नेपथ्य यस्य सः कुशलविरचितानुकूलवेषः "सन्"। स्वयंवरे=स्वतः पाणिग्रहणे तिष्ठतीति स्वयंवरस्थस्तं स्वयंवरस्थम्। क्षितिं=पृथिवीं, पान्ति=रक्षन्तीति क्षितिपास्तेषां समाजः=समूह इतिक्षितिपसमाजस्तं क्षितिपसमाजम्। अगात्=अव्रजत्।

समा०— अञ्चितानि अक्ष्णां पक्ष्माणि यस्य सः अञ्चिताक्षिपक्ष्मा। शास्त्रे दृष्टः शास्त्रदृष्टः, तं शास्त्रदृष्टम्। दिवसस्य मुखं दिवसमुखं तत्र उचितः, तं दिवसमुखोचितम्। कुशलैः विरचितः अनुकूलः वेषो यस्य सः कुशलविरचितानुकूलवेषः स्वयंवरे तिष्ठतीति स्वयंवरस्थस्तं स्वयंवरस्थम्। क्षितिं पान्तीति क्षितिपास्तेषां समाजः तं क्षितिपसमाजम्।

अभि०—तल्पत्यागानन्तरं सुन्दरनेत्रलोमवान्, अजः शास्त्रोदितं प्रातः कृत्यं सन्ध्यावन्दनादिकं विधाय, प्रसाधनकुशलैः सम्पादितसुवेषः सन् स्वयंवरस्थराजसमूहमगमत्।

हिन्दी—इस प्रकार शय्या छोड़ने के पश्चात् सुन्दर पलकोंवाले अज प्रातः काल की सम्पूर्ण सन्ध्यावन्दनादि क्रियाएं समाप्त करके, नेपथ्य रचना के विशेषज्ञों के द्वारा विरचित स्वयंवर के योग्य वेषभूषा से सजधजकर स्वयंवर में बैठे राजाओं के समाज में चले गये॥ ७६॥

इति श्रीशंकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्येऽजस्वयंवराभिगमनो नाम पञ्चमः सर्गः सम्पूर्णः॥

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

षष्ठ से दशम सर्ग

कथासार

षष्ठ सर्ग

कविकुल भूषण, सरस्वती देवी के वरद पुत्र, महाकवि कालिदास ने षष्ठ सर्ग में चमत्कारपूर्ण अतीव रमणीयता तथा स्वाभाविकरूप से इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन इस प्रकार किया है।

रघुपुत्र अज ने स्वयंवर स्थान में जाकर राजा महाराजाओं के बैठने योग्य सजाये गये सिंहासनों पर बैठे अतएव देवताओं के समान प्रतीत हो रहे राजाओं को देखा। वे राजा भी कामदेव के समान सुन्दर अज को देखकर इन्दुमती के विषय में निराश हो गये। अज महाराज भोज से दिखाये गये विविध रत्न जटिल ऊँचे सिंहासन पर बैठ गये। वे उस रंगविरंगे सिंहासन पर मोर की पीठ पर बैठे कार्तिकेय के समान शोभित हुए।

दर्शकजनों की आँखें सम्पूर्ण राजमण्डल को छोड़कर अज के ऊपर ही आ टिकी। अज के वहाँ बैठते ही वन्दीजन सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन करने लगे तथा सुगन्धित अगर की धूपबत्ती का धुआँ आकाश में फैल गया और मांगलिक बाजे बजने लगे। इसी बीच मञ्चों के बीच बने राजमार्ग से इन्दुमती पालकी में बैठकर सुनन्दा नाम की अपनी सखी के साथ स्वयंवर-स्थल पर आ पहुंची।

विधाता की अद्वितीय सौन्दर्य सृष्टि उस कन्या के रूप को देखकर सभी राजा अपने मन के भावों को इन्दुमती के प्रति प्रकट करने के लिये अनेक प्रकार की शृंगार चेष्टायें करने लगे। नाटकीय ढंग से कमल को घुमाना तिरछी माला को ठीक करना, पैर के पंजे से पावदान को कुरेदना, जरा एक तरफ झुककर बगल में बैठे मित्र राजा से बातें करना, अपने नखों से केवड़े के पत्ते को फाड़ना, अपने करकमल से पासे उछालना, तथा ठीक पहने हुए भी मुकुट को ठीक करने के बहाने उसमें हाथ फेरना आदि, महाकवि ने सात पद्यों द्वारा इन शृंगार चेष्टाओं का बहुत ही सुन्दर एवं चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है। इनका अभिप्राय भी राजाओं ने अपने मनोनुकूल कुछ और लगाया, और इन्दुमती

ने इसके विपरीत इन सबको कुलक्षण समझा। महाकवि का यही इन पद्यों में चातुर्य है।

तदनन्तर महाकवि ने स्वयंवर में बैठे राजाओं का वर्णन करना आरम्भ किया वह नैसर्गिक होता हुआ बड़ा ही रोचक एवं सुन्दरतम है। सर्वप्रथम मगधदेश के राजा परंतप का वर्णन है। भूमण्डल पर अनेक राजाओं के रहते हुए भी पृथिवी इन्हीं राजा से राजन्वती है और निरन्तर यज्ञ कर रहे इन्होंने देवराज इन्द्र को अपने यहाँ बुलाकर इन्द्राणी को चिर वियोगिनी बना दिया। यदि इनको वरना चाहो तो अपने-अपने महलों में बैठी पुष्पपुर की महिलाओं के नेत्रों को आनन्दित करो।

परन्तप इन्दुमती को भाया नहीं। उसने सुनन्दा को आगे बढ़ने का इशारा किया। सुनन्दा अंगदेश के राजा को दिखाकर कहती है ये भूलोक में भी स्वर्ग का सुख भोगते हैं। अतीव सुन्दर हैं। तथा इनके पास सरस्वती और लक्ष्मी एक साथ रहती हैं। अतः कान्ति तथा सुन्दर वाणी वाली तुम ही इनकी तीसरी हो जाओ।

किन्तु इन्दुमती रुचिकर न होने से इसे छोड़कर आगे बैठे उज्जयिनी के राजा के सामने जाती है। पतली गोलमटोल कमर वाला यह राजा महाप्रतापी है। यह महाकाल के समीप रहता है अतः अन्धेरे पक्ष में भी चान्दनी रातों का सदा उपयोग करता है। यदि तुम सिप्रा नदी के वायु से कँपाई गई बाग बगीचों की परम्पराओं में विहार करना चाहो तो इस तरुण राजा से विवाह कर लो।

इसके पश्चात् सुनन्दा जल से व्याप्त अनूप देश के राजा के समीप ले जाकर कहने लगी, यह राजा बड़ा गुणी तथा उस कार्तवीर्य सहस्रार्जुन के वंश में उत्पन्न हुआ है। जो कि किसी भी मनुष्य के अपराध करने का मन में विचार करने पर भी उस मनुष्य के सामने धनुष बाण लेकर खड़ा हो जाता था। इस प्रकार उसने मनुष्यों के मन से भी अपराध का विचार हटा दिया था, और प्रतापी रावण को भी अपने कारागार में चिरकाल तक रखा था। उसी के वंश में यह प्रतीप नाम का राजा उत्पन्न है। इस राजा की माहिष्मती राजधानी की करधनीभूत नर्मदा नदी को महल में बैठकर देखने की यदि तुम्हारी अभिलाषा है तो इसकी अंक लक्ष्मी हो जाओ।

अत्यन्त सुन्दर होते हुए भी यह राजा इन्दुमती के मनपसन्द न हुआ। तब सुनन्दा के मुख से कवि मथुरा के राजा सुषेण का वर्णन करते हैं कि इसकी कीर्ति दूसरे लोकों में भी गायी जाती है यह नीपवंश में उत्पन्न हुआ है और इसके पास आकर विरोधी प्राणियों ने भी परस्पर का स्वाभाविक बैर त्याग दिया है, और इसके अन्तःपुर की स्त्रियों के स्तनों के चन्दन से स्नान करते समय मथुरा में भी जमुना गंगाजी की तरंगों से मिली हुई सी जान पड़ती है। अतः कुबेर के बगीचे के समान सुन्दर वृन्दावन में विहार करने की इच्छा हो, तो इस युवक राजा से विवाह कर वर्षा ऋतु में सुन्दर गोवर्धन की कन्दराओं में शिलाजीत की भीनी सुगन्ध वाली फुहारों से शीतल चट्टानों पर बैठकर मोरों का नाच देखो।

इसको छोड़कर कुमारी आगे बढ़ी और सुनन्दा पुनः कलिङ्ग देश के राजा हेमांगद का वर्णन करती है। इसके बाद नागपुर के राजा का वर्णन सुनन्दा करती है कि यह पाण्डु प्रान्त का राजा देवताओं के तुल्य है महर्षि अगस्त्य जी इनसे अश्वमेध के अन्त में अवभृथ स्नान की निर्विघ्न सम्पन्नता पूछते हैं। और इसके बल से भयभीत होकर रावण भी इससे मित्रता रखता है। यह नीलकमल के समान श्याम शरीर है और तुम गोरोचना के समान गौरी हो अतः मेघ और बिजली के समान तुम्हारा संबन्ध हो जाये। यह भी इन्दुमती को न जँचा। जिस प्रकार चलती दीप शिखा (बत्ती) रात में जिस जिस मकान को छोड़कर आगे बढ़ जाती है तो वह स्थान अन्धकार से विवर्ण हो जाता है उसी प्रकार इन्दुमती भी जिस २ राजा को छोड़कर आगे बढ़ी वह वह राजा भी उदास हो गया। महाकवि की यह उक्ति अतीव प्रसिद्ध, चमत्कारपूर्ण स्वाभाविक और अनूठी है इससे विद्वान् लोग कवि को दीपशिखा कवि भी कहने लगे हैं।

इन सबके पश्चात् रघुपुत्र अज का वर्णन सर्वाधिक मनोरम एवं सर्वातिशायी है। इन्दुमती जब अज के सामने पहुंचती है, तो अज का दक्षिण बाहु फरकता है और अज को विश्वास हो जाता है कि मेरा ही वरण करेगी। इधर इन्दुमती भी सर्वांग सुन्दर सुललित दोष रहित अज को प्राप्तकर अन्यत्र जाने से उसी प्रकार रुक गई, जिस प्रकार वसन्त में बौर आये आम के वृक्ष को छोड़कर

भ्रमर पंक्ति दूसरे वृक्षों पर नहीं जाती है। सुनन्दा उनका वर्णन यों करती है यह इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न महाराज दिलीप के पुत्र रघु का सुपुत्र है। जिस रघु ने चारों दिशाओं की सम्पत्ति बटोर कर और विश्वजित् यज्ञ में सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर मिट्टी के बरतन ही अपने निकट रखे थे। यह कुमार उसी रघु का वैसा ही पुत्र है जैसा इन्द्र का जयन्त है। इसलिये कुल से, कान्ति से, नूतन अवस्था से और विनयप्रधान उन उन गुणों से तुम्हारे ही अनुरूप इस कुमार को तुम वरण कर लो तो रत्न और सोने का समागम हो जाय।

इस प्रकार कुमारी इन्दुमती ने सुनन्दा के हाथों से उस वरमाला को अज के गले में पहना दिया। और उधर वरपक्ष के लोग प्रातःकाल में प्रफुल्ल कमल सरोवर के समान प्रसन्न हो गये, तथा दूसरे राजा लोग कुमुदवन के समान मुरझा गये।

सप्तम सर्ग

स्वयंवर का कार्य सम्पन्न होनेपर अपने समान योग्य वर के साथ अपनी बहन को लेकर महाराज भोज ने नगर में प्रवेश किया। मुरझाये हुए चेहरे वाले दूसरे राजा लोग भी इन्दुमती के प्रति निराश होकर अपने रूप एवं वेषभूषा की निन्दा करते हुए अपने २ शिविरों में चले गये।

और अज वधू के साथ, अच्छी प्रकार फूलमाला तथा ध्वजाओं से सजाये गये राजमार्ग में आ गये।

तब वर-वधू को देखने की उत्कण्ठा वाली नगर की सुन्दरियों की इस प्रकार की चेष्टाएँ अपने २ घरों में होने लगी। कोई स्त्री अपने केश पाशमें माला का बान्धना भूलकर जूड़े को हाथ थामे ही खिड़की में जा पहुंची। तो दूसरी सुन्दरी महावर लगा रही दासी से अपना पैर छुड़ाकर झरोखे तक महावर लगे पैर के निशान बनाती गई। और तीसरी एक नेत्र में काजल कर तथा दूसरे में बिना काजल लगाये सलाई को हाथ में लिये ही खिड़की में जा पहुंची।

तथा चौथी नारी साड़ी की नीवी को बिना बाँधे योंही हाथ से पकड़े हुए, खिड़की में दृष्टि लगाये खड़ी रही। एवं पाँचवीं मोतियों की माला गूँथ रही थी कि जल्दी में छोड़कर ऐसी दौड़ पड़ी कि खिड़की तक सब मोती तो बिखर गये, केवल धागा ही अँगूठे में लिपटा रह गया। इन सुन्दरियों के मुखों से भरे झरोखे ऐसे लग रहे थे कि मानों चंचल नेत्ररूपी भौरों से व्याप्त कमलों से भरे हैं।

इस प्रकार सब भूलकर सर्वात्मना अज को देखकर वे नगर वधुयें अपने २ मन की प्रसन्नता व्यक्त करने लगीं, स्वयंवर करना अच्छा हुआ, अन्यथा इन्दुमती अपने समान मनोहर पति को कैसे प्राप्त करती, और यदि ब्रह्मा इन दोनों को न मिलाता तो ब्रह्मा का इन दोनों का सौन्दर्य विधान व्यर्थ हो जाता।

ये दोनों पूर्वजन्म में अवश्य ही रति और कामदेव रहे होंगे, अन्यथा इस बाला ने हजारों राजाओं में अपने तुल्य इसको कैसे प्राप्त कर लिया, मन तो जन्मान्तर की संगति जानने वाला होता है। इस प्रकार की कथाएँ नगर की वधुओं के मुख से सुनता हुआ कुमार अज, मांगलिक संविधाओं से सजाये गये संबन्धी के घर में पहुंच गये। और कामरूप के राजा का हाथ पकड़कर हथिनी से उतरकर भीतर चौक में चले गये।

तब भोज राजा ने मधुपर्क तथा वस्त्र युगल दिया, और उस रेशमी वस्त्र को पहने हुए अज को अन्तःपुर के रक्षकगण वधू के पास ले गये। वहाँ पर हवन करके अग्नि को साक्षी कर पुरोहित ने वरवधू को मिला दिया। इस सर्ग में महाकवि ने ८९ श्लोकों से विवाह एवं तत्संबन्धी कार्यों का बड़ा ही सुन्दर स्वाभाविक तथा सामाजिक नियमोपनियमों का वर्णन किया है। इस प्रकार से विवाह के उपरान्त भोज ने दूसरे राजाओं का भी अलग से सत्कार कर सबको विदा कर दिया।

ये राजा लोग अज से इन्दुमती को छीन लेने की इच्छा से आगे बढ़कर मार्ग रोककर बैठ जाते हैं। इधर बहन को अपने सामर्थ्यानुसार अनेक वस्तु देकर भोज ने विदा किया, और तीन रात तक इनके साथ मार्ग में रहकर फिर वे अपनी राजधानी में लौट जाते हैं, और उधर मार्ग रोक कर बैठे पराजित राजाओं ने मिलकर इन्दुमती को ले जाते हुए अज को रोका। यहाँ पर घमासान युद्ध

होता है। जिसका वर्णन महाकवि ने पचीस श्लोकों में बड़े ही रोचक ढंग से किया है। अन्त में अज प्रियंवद नाम के गन्धर्व से प्राप्त किये गन्धर्व देवता वाले निद्राकारक अस्त्र को छोड़ता है, जिसके प्रभाव से सबके सब राजा एवं सैनिक जैसे के तैसे चेष्टाशून्य हो जाते हैं। और अज को विजय लक्ष्मी प्राप्त होती है। अज विजय शंख बजाते हैं। उस शंखध्वनि को सुनकर उनके सैनिक लौट आते हैं, और अज भी इन्दुमती के पास आकर कहते हैं कि हे इन्दुमती, देखो इन राजाओं को, ये मुझसे युद्ध करके तुमको छीनना चाहते हैं। इस समय छोटे २ बच्चे भी इनके शस्त्र छीन सकते हैं इसी वीरता पर ये तुमको छीनने आये थे देखो। पतिशौर्य से इन्दुमती भी बड़ी प्रसन्न हुई किन्तु लज्जावश स्वयं न कहकर अपनी दासी के द्वारा प्रिय का अभिनन्दन किया। इस प्रकार सबको पराजित कर मूर्तिमती युद्ध की विजयलक्ष्मी के समान इन्दुमती को लेकर अज स्वराजधानी में लौट आये, यह सब वृत्तान्त रघु ने पहले ही सुन लिया था। अतः विजयी और प्रशंसनीय भार्या से युक्त अज को राज्यभार देकर स्वयं शान्तिमार्ग में उत्सुक हो गये।

अष्टम सर्ग

इसके पश्चात् वैवाहिक मंगल सूत्र को धारण किये हुए ही अज के हाथों में महाराज रघु ने वसुधा भी सौंप दी।

जिस राज्य को प्राप्त करने के लिये राजाओं के लड़के बड़े २ अपराध भी कर डालते हैं। उसी राज्य को अज ने पिता की आज्ञा से स्वीकार किया न कि भोगतृष्णा से।

अथर्व वेद के ज्ञाता गुरुवसिष्ठ जी से अभिषेक संस्कार होने पर अज शत्रुओं के दुर्धर्ष हो गये। और प्रजाने तो पुन: जवान होकर लौट आये रघु ही समझ लिया, क्योंकि अज ने अपने पिता की राज्यलक्ष्मी ही नहीं प्राप्त की थी किन्तु रघु के सभी गुणों को भी प्राप्त कर लिया था।

सभी प्रजाजन यही समझते थे कि प्रजा में सबसे अधिक महाराज अज मुझे ही मानते हैं। और अज ने भी न तो कठोरता ही अपनाई और न अधिक सरलता, किन्तु मध्यम व्यवहार का आश्रय लेकर सभी राजाओं का विनाश न करके अपने अधीन कर लिया।

यह सब देखकर रघु ने आश्रम में जाने का विचार किया। इस विचार को सुनकर अज ने अश्रुपूर्ण नेत्र होकर प्रार्थना की कि मुझे छोड़कर अरण्य में आप न जावें। रघु ने भी आंसू बहाने वाले पुत्र की इच्छा पूर्ण की, किन्तु त्यागी हुई लक्ष्मी को उसी प्रकार स्वीकार नहीं जैसे साँप छोड़ी हुई अपनी केंचुल को फिर नहीं धारण करता।

इसके अनन्तर रघु की योग समाधि तथा अज के राज्य पालन और वर्धन का वर्णन महाकवि ने ११ श्लोकों में बड़ा सुन्दर तथा विवेचनात्मक रूप से किया है।

इसके बाद रघु का योगसमाधि से शरीर त्याग तथा अज के द्वारा उसका संस्कार आदि का वर्णन है।

अतः परं सुन्दर बे रोक टोक शासन करते हुए अज को पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है, उसका नाम दशरथ रखा जाता है। इस प्रकार देव, ऋषि तथा पितृ ऋण से अनृण होकर एक दिन महारानी इन्दुमती के साथ नगर के उपवन में विहार कर रहे थे कि उसी समय दक्षिणसागर के तट पर स्थित गोकर्ण तीर्थ में शिवजी की सेवा करने आकाश मार्ग से नारद जी जा रहे थे। स्वर्गीय पुष्पों से बनी माला को उनकी वीणा के ऊपर से वायु ने गिरा दिया, और वह माला इन्दुमती के वक्षस्थल पर आकर गिरी। उसके गिरते ही इन्दुमती के साथ २ ही राजा भी बेहोश होकर गिर पड़ते हैं। सेवकों की चेष्टा से राजा की मूर्च्छा तो जाती रहती है। किन्तु इन्दुमती न जी सकी। निष्प्राण इन्दुमती को अपनी गोद में रखकर राजा अज, अपनी स्वाभाविक धीरता को त्यागकर विलाप करते रहे। महाकवि ने अज के विलाप का २८ श्लोकों में बड़ा ही मार्मिक करुणापूर्ण चमत्कारिक सुललित सरल वर्णन किया है। जो कि लोकोत्तर एवं सर्वातिशायी है।

इसके बाद किसी प्रकार सचिव वर्ग इन्दुमती के शव को लेकर अग्नि-

संस्कार करते हैं, और उपवन में ही सवकृत्य समाप्त कर अज शून्य हृदय से शोकमग्न हो अयोध्या नगरी में प्रवेश करते हैं।

उधर यज्ञदीक्षा में बैठे वसिष्ठजी ने समाधि के द्वारा अज को शोकमग्न जानकर अपने शिष्य को उनके पास भेजकर उपदेश दिया कि हे अज यह इन्दुमती हरिणी नाम की अप्सरा थी, एक समय तृणविन्दु नाम के महर्षि की तपस्या को भंग करने के लिये इन्द्र की आज्ञा से उनके आश्रम में गई थी, और तभी महर्षि ने शाप दिया कि मानुषी हो जाओ, पुनः अप्सरा की प्रार्थना से ऋषि ने कहा कि देवलोक के पुष्पदर्शन से तुम फिर अपने रूप में आ जाओगी। सो वह शाप देवपुष्पों की माला के दर्शन से समाप्त हो गया है, अतः वह स्वर्ग में चली गई। दूसरे मरना तो स्वाभाविक प्रकृति ध्रुव है और जीना विकार है सो वह विकार से छूटकर स्वभाव में आ गई है। इस प्रकार के मार्मिक एवं समयोचित उपदेश देकर वसिष्ठ शिष्य के लौट जाने पर किसी प्रकार आठ वर्ष रहकर कुमार दशरथ को राज्यपालन का आदेश देकर अज, गंगासरजू नदी के संगम में शरीर त्यागकर स्वर्ग में इन्दुमती के साथ विहार करने लगे।

नवम सर्ग

अपने पिता के पश्चात् उत्तर कोसल प्रान्तों को प्राप्त करके जितेन्द्रिय दशरथ ने अच्छी प्रकार से शासन किया। उस समय मनीषियों ने देवराज इन्द्र तथा राजा दशरथ इन दोनों को ही जलवर्षा धनवर्षा कर परिश्रमियों की थकावट दूर करने वाला कहा है।

महाराज दशरथ के राज्य में न रोग था, न शत्रु से किसी के अभिभव की कल्पना थी। इस प्रकार १२ पद्यों में राज्य का तथा दिग्विजय का बड़ा ही रोचक तथा सत्य वर्णन किया गया है। इसके बाद मगध, कोसल, कैकय की राजकुमारियों से राजा का विवाह होता है। मानों प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति, उत्साह-शक्ति के साथ पृथिवी में अवतीर्ण इन्द्र के समान सुशोभित हुए, राजा ने अनेक यज्ञ किये। इन सबका भी कवि ने बड़ा प्रभावकारी वर्णन किया।

इसके पश्चात् वसन्त ऋतु का आगमन होता है। महाकवि ने वसन्त वर्णन

तथा वसन्तोत्सव का वर्णन प्राय: २३ श्लोकों में बहुत मार्मिक, मनोरम ढंग से किया है। वसन्तोत्सव के उपरान्त राजा मृगया (शिकार) खेलने के लिए सदल बल जाते हैं। २६ पद्यों में शिकार खेलने का वर्णन कवि ने स्वभाविक रूप से किया है। इस अवसर पर श्रवणकुमार अपने अन्धे माता पिता के लिये जल लेने तमसा नदी के तीर पर आता है। घड़ा भरने के शब्द को सुनकर हाथी की कल्पना कर भ्रमवश राजा शब्दवेधी बाण चला देते हैं, वह बाण श्रवणकुमार को लग जाता है। "हा पिताजी" यह श्रवणकुमार का रोना सुनकर राजा उसके पास जाकर ब्रह्महत्या की आशंका से उसका कुल पूछते हैं। श्रवणकुमारके वैश्यसे शूद्रा में उत्पन्न अपने को करण जाति का बताने पर राजा भी बहुत दु:खी होते हैं।

श्रवणकुमार के कहने पर राजा, उसे उसके अन्धे माता पिता के पास ले जाकर अज्ञानवश अपना अपराध स्वीकार करते हैं। अन्धमुनि के कहने पर राजा चिता तैयार करते हैं तथा श्रवणकुमार के हृदय से बाण निकालते ही वह मर जाता है, तब अन्धे मुनि राजा को यह शाप देकर कि "आप भी मेरी तरह वृद्धावस्था में पुत्रशोक से मरोगे"। पुत्र के साथ माता पिता भी मर जाते हैं। पुत्रहीन होने के कारण राजा इस शाप को भी अनुग्रह मानकर दु:खित हृदय से घर लौट जाते हैं।

दशम सर्ग

इस प्रकार इन्द्र के समान तेजस्वी राजा दशरथ को शासन करते हुए मुनि के शाप से लेकर दस हजार वर्ष बीत गये, किन्तु पुत्रोत्पत्ति नहीं हुई।

तब ऋष्यशृंगादि ऋत्विजो ने पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करना आरम्भ किया और उधर रावण से पीड़ित होकर देवगण क्षीरसागर में विष्णु भगवान् की शरण में गये, और उन्हे विष्णु भगवान् के दर्शन हुए।

यहाँ पर महाकवि ने ७ से १४ श्लोकों तक विष्णु का वर्णन किया है।

तब देवताओं ने प्रणाम करके विष्णु भगवान् की स्तुति (१६ से ३३ वें श्लोक तक) की है, जो कि पाण्डित्यपूर्ण गम्भीर वेदवेदान्त का सार होते हुए भी कवि के चमत्कार से बड़ी सरल है।

क्षेम प्रश्नान्तर विष्णु कहते हैं कि हे देवताओं मैं जानता हूं कि रावण ने आपके महिमा और पराक्रम को किस प्रकार आक्रान्त कर रखा है। और वह तीनों लोक को पीड़ित कर रहा है यह भी मैं जानता हूं। अतः मेरा तथा तुम सब लोगों का रावण को समाप्त करना एक ही कार्य है।

किन्तु उसने तपस्या करके वर प्राप्त किया है कि 'मनुष्य को छोड़कर आठ प्रकार की दैव सृष्टि से मैं न मारा जाऊं'। अतः मैं दशरथ का पुत्र होकर रणभूमि में उस का शिर काटूंगा। अतः हे देवताओं आपलोग शीघ्र ही राक्षसों से अनास्वादित अपने यज्ञ भाग को ग्रहण करेंगे, अब आप रावण के भय को छोड़कर निःशंक आकाश मार्ग में विमान से विचरण करेंगे।

ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं। और इन्द्रादि देवता भी सुग्रीवादि रूप से वानर योनि में जन्म लेकर भूमण्डल में विचरण करते हैं। उधर राजा के पुत्रेष्टि यज्ञ की पूर्णाहुति में अग्नि से एक दिव्य पुरुष स्वर्णपात्र में पायस चरु लेकर आता है। राजा दशरथ ने प्रजापत्य पुरुष से वह चरु ले लिया और कौसल्या एवं कैकेयी को वह चरु दे दिया, राजा सुमित्रा को भी चरु भाग देना चाहते थे। राजा के मन को जानते हुए उन दोनों रानियों ने अपने भाग का आधा २ सुमित्रा, को दे दिया। तब इन सब ने विष्णु के अंश से गर्भ धारण किया। गर्भ धारणानन्तर इन सब रानियों को अनेक शुभ स्वप्न दीखने लगे। तब कौसल्या से राम और कैकेयी से भरत तथा सुमित्रा से लक्ष्मण शत्रुघ्न जन्म लेते हैं।

उधर रावण के मुकुट से मणियों के बहाने मानों राक्षस की राज्यलक्ष्मी के आँसू गिर पड़े। संस्कार करने पर बालक धात्री का दूध पीकर पिता के आनन्द के साथ बढ़ने लगे। चारों में भ्रातृस्नेह समान था फिर भी रामलक्ष्मण भरतशत्रुघ्न की जोड़ी प्रेमपूर्वक प्रसिद्ध हुई।

इस प्रकार इन चारों पुत्रों से दैत्यों की तलवार की धार तोडने वाले देवगज की तरह, सामादि चार उपायों से नीति की तरह लम्बी २ अपनी भुजाओं से हरि की तरह राजा दशरथ देदीप्यमान हो गये।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

षष्ठ सर्ग

स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेषान्सिंहासनस्थानुपचारवत्सु ।
वैमानिकानां मरुतामपश्यदाकृष्टलीलान्नरलोकपालान् ॥ १ ॥

जाह्नवी मूर्ध्नि पादे वा कालः कण्ठे वपुष्यथ ।
कामारिं कामतातं वा कञ्चिद्देवं भजामहे ॥

सञ्जीविनी—स इति । सोऽजस्तत्र स्थाने उपचारवत्सु राजोपचारवत्सु मञ्चेषु पर्यङ्केषु सिंहासनस्थान्मनोज्ञवेषान्मनोहरनेपथ्यान्वैमानिकानां विमानैश्चरताम् । 'चरति' इति ठक्प्रत्ययः । मरुताममराणाम् । 'मरुतौ पवनामरौ' इत्यमरः । आकृष्टलीलान्गृहीतसौभाग्यान्, आकृष्टमरुल्लीलानित्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । नरलोकं पालयन्तीति नरलोकपालाः । कर्मण्यण्प्रत्ययः । तान्भूपालानपश्यत् । सर्गेऽस्मिन्नुपजातिश्छन्दः ॥ १ ॥

शंकरं पितरम् वन्दे मातरं गिरिजानुगाम् ।
यत्स्नेरपुण्योपचयैः परां प्रौढिमुपागतः ॥ १ ॥
निध्याय शंकरं साम्बं नत्वा च गुरुपादुकाम् ।
व्याख्यानं रघुवंशस्य धारावत्तः करोम्यहम् ॥ २ ॥

अन्वयः—स तत्र उपचारवत्सु मञ्चेषु सिंहासनस्थान् मनोज्ञवेषान्, वैमानिकानां मरुताम् आकृष्टलीलाम् नरलोकपालान्, अपश्यत् ।

व्याख्या—सोऽजः तत्र=स्वयंवरस्थाने उपचाराः सन्ति येषु ते, तेषु उपचारवत्सु = उपकरणयुक्तेषु मञ्चेषु = पर्यङ्केषु सिंहस्य = सिंहप्रतिकृतेः, आसनम् =

पीठम् तस्मिन् तिष्ठन्ति = उपविशन्तीति सिंहासनस्थास्तान् सिंहासनस्थान्। मनोज्ञः = मनोहरः वेषः = नेपथ्यम् येषां ते तान् मनोज्ञवेषान्, विमानैः चरन्ति = गच्छन्तीति वैमानिकास्तेषां वैमानिकानां = देवानाम्, आकृष्टा = गृहीता लीला = सौभाग्यं यैस्ते तान् आकृष्टलीलान्, नराणां=मनुष्याणाम्, लोकं = भुवनं, पालयन्ति= रक्षन्तीति नरलोकपालास्तान् नरलोकपालान्, अपश्यत् = ददर्श ।

समास:—सिंहस्य आसनम् तस्मिन् तिष्ठन्तीति सिंहासनस्थास्तान् । मनोज्ञः वेषः येषान्ते तान् मनोज्ञवेषान् । आकृष्टा लीला यैस्ते तान् आकृष्टलीलान् । नराणां लोकं पालयन्तीति ते तान् नरलोकपालान् ।

हिन्दी—कुमार अज ने स्वयंवर स्थान में, सजे हुए मञ्चों पर लगे सिंहासनों पर बैठे हुए सुन्दर वेष वाले राजाओं को देखा, जो कि विमानों में बैठे हुए देवताओं के समान लग रहे थे ॥ १ ॥

रतेर्गृहीतानुनयेन कामं प्रत्यर्पितस्वाङ्गमिवेश्वरेण ।
काकुत्स्थमालोकयतां नृपाणां मनो बभूवेन्दुमतीनिराशम् ॥ २ ॥

सञ्जी०—रतेरिति । 'रतिः स्मरप्रियायां च रागे च सुरते स्मृता' इति विश्वः । रतेः कामप्रियाया गृहीतानुनयेन स्वीकृतप्रार्थनेन, गृहीतरत्यनुनयेनेत्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । ईश्वरेण हरेण प्रत्यर्पितस्वाङ्गं काममिव स्थितं काकुत्स्थमजमालोकयतां नृपाणां मन इन्दुमतीनिराशं वैदर्भीनिःस्पृहं बभूव । इन्दुमती सत्पतिमेनं विहाय नास्मान्वरिष्यतीति निश्चिक्युरित्यर्थः । सर्वातिशय-सौन्दर्यमस्येति भावः ॥ २ ॥

अन्वय :—**रतेः गृहीतानुनयेन ईश्वरेण प्रत्यर्पितस्वाङ्गम् कामम् इव स्थितम् काकुत्स्थम् आलोकयताम् नृपाणाम् मनः इन्दुमतीनिराशम् बभूव ॥**

व्याख्या—रतेः = कामपत्न्याः, गृहीतः=स्वीकृतः, अनुनयः=प्रार्थना, येन सः, तेन गृहीतानुनयेन, ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरस्तेन ईश्वरेण = शिवेन, स्वस्य = निजस्य=कामस्य अंगं = शरीरमिति स्वांगम्, प्रत्यर्पितं=प्रतिदत्तं, स्वांगं=स्वशरीरं यस्य स तं प्रत्यर्पितस्वांगम् कामम्=मन्मथम् इव=यथा स्थितं ककुत्स्थस्य-गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थस्तं काकुत्स्थम्=अजम् आ = समन्तात् लोकयतां=पश्यताम्, नृपाणां= राज्ञां मनः=चित्तम्, इन्दुमत्यां=वैदर्भ्याम् निराशं = निरभिलाषं बभूव=जातम् ।

समास :—गृहीतः अनुनयो येन स गृहीतानुनयः। प्रत्यर्पितं स्वांगं यस्य स तं प्रत्यर्पितस्वांगम्। निर्गता आशा यस्मात् तत् निराशम् इन्दुमत्यां निराशमिति इन्दुमतीनिराशम्।

हिन्दी—रति की प्रार्थना स्वीकार कर शिवजी ने मानो फिर से जिसे जीवित कर दिया हो, ऐसे साक्षात् कामदेव के समान स्थित अज को देखनेवाले राजाओं का मन इन्दुमती को पाने में निराश हो गया ॥ २ ॥

वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम्।
शिलाविभङ्गैर्मृगराजशावस्तुङ्गं नगोत्सङ्गमिवारुरोह ॥३॥

मञ्जी०—वैदर्भेति। असौ कुमारो वैदर्भेण भोजेन निर्दिष्टं प्रदर्शितं मञ्चं पर्यङ्कं क्लृप्तेन सुविहितेन सोपानपथेन। मृगराजशावः सिंहपोतः। 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः। शिलानां विभङ्गैर्भङ्गीभिस्तुङ्गमुन्नतं नगोत्सङ्गं शैलाग्रमिव आरुरोह ॥ ३ ॥

अन्वय:—असौ कुमारः वैदर्भनिर्दिष्टम् मञ्चम्, क्लृप्तेन सोपानपथेन मृगराजशावः, शिलाविभंगैः, तुङ्गम् नगोत्संगम्, इव, आरुरोह।

व्याख्या—असौ=अजः, कुमारः=रघुपुत्रः, वैदर्भेण = विदर्भराजेन, निर्दिष्टम्= दर्शितम्, मञ्चम् = पर्यङ्कम्, क्लृप्तेन = निर्मितेन, सोपानानाम् = आरोहणानाम्, पन्थाः = मार्गः, तेन सोपानपथेन मृगाणां = हरिणानां, राजा=स्वामी, तस्य शावः= शिशुः, इति मृगराजशावः, शिलानाम् = पाषाणानां, विभंगा = भंग्यः, तैः शिलाविभंगैः=शिलामार्गेणेत्यर्थः, नगस्य=पर्वतस्य, उत्संगम् = अग्रभागमिव, आरुरोह= आरूढवान्।

समास :—वैदर्भेण निर्दिष्टः तं वैदर्भनिर्दिष्टम्। सोपानस्य पन्थास्तेन सोपानपथेन। शिलानां विभङ्गाः तैः शिलाविभङ्गैः। मृगाणां राजा मृगराजः तस्य शावः मृगराजशावः। नगस्य उत्सङ्गः तं नगोत्सङ्गम्।

हिन्दी—राजकुमार अज, भोजराज से बताए हुए, मञ्च पर, सुन्दर बनी सीढ़ियों के मार्ग से वैसे ही चढ़ गए, जिस प्रकार सिंह का बच्चा चट्टान पर पैर रखता हुआ ऊँचे पर्वत शिखर पर चढ़ जाता है ॥ ३ ॥

परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवान्रत्नवदासनं सः।
भूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन ॥ ४ ॥

संजी०—परार्ध्येति । परार्ध्याः श्रेष्ठा वर्णा नीलपीतादयो यस्य तेनास्तरणेन कम्बलादिनोपपन्नं सङ्गतं रत्नवद्रत्नखचितमासनं सिंहासनमासेदिवानधिष्ठितवान्सोऽजः मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन सेनान्या सह । 'सेनानीरग्निभूर्गुहः' इत्यमरः । भूयिष्ठमत्यर्थमुपमेयकान्तिरासीत् । मयूरस्य विचित्ररूपवत्वात्तत्साम्यं रत्नासनस्य । तद्द्वारा च तदारूढयोरपीति भावः ॥ ४ ॥

अन्वयः—परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नम्, रत्नवदासनम् आसेदिवान् सः, मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन भूयिष्ठम् उपमेयकान्तिः आसीत् ।

व्याख्या—परार्ध्याः = उत्कृष्टाः, वर्णाः = नीलपीतादयः यस्य त परार्ध्यवर्णम् । परार्ध्यवर्णं च तत् आस्तरणं=कम्बलादि, तेन उपपन्नम्=युक्तम्, आच्छादितमित्यर्थः, रत्नानि=हीरकपद्मरागादीनि सन्ति अस्य तत् रत्नवत्=हीरकादिमणिखचितमित्यर्थः, आसनम् = सिंहासनम्, आसेदिवान् = अधिष्ठितवान्, सः = अजः, मयूरस्य = बर्हिणस्य, पृष्ठं = पश्चाद्भागम्, आश्रयते=अधितिष्ठति, इति मयूरपृष्ठाश्रयी तेन मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन=कार्तिकेयेन भूयिष्ठं=अत्यधिकम्, उपमेया= उपमातुं योग्या कान्तिः=शोभा यस्य स उपमेयकान्तिः, आसीत् = अभूत् ।

समासः—परार्ध्याः वर्णाः यस्य तत् परार्ध्यवर्णञ्च तत् आस्तरणञ्च तेन उपपन्नम् तत् परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नम् । रत्नानि सन्त्यस्येति तत् रत्नवत् । उपमेया कान्तिर्यस्य स उपमेयकान्तिः । मयूरस्य पृष्ठम् आश्रयतीति तेन मयूरपृष्ठाश्रयिणा ।

हिन्दी—सुन्दर रंग-विरंगे वस्त्र जिसपर बिछे हुए हैं, ऐसे रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठा हुआ अज ऐसा लग रहा था मानो मोर की (अनेक रंगवाली) पीठ पर बैठे हुए कार्तिकेय हों ॥ ४ ॥

तासु श्रिया राजपरम्परासु प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः ।
सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्तः पयोमुचां पङ्क्तिषु विद्युतेव ॥ ५ ॥

संजी०—तास्विति । तासु राजपरम्परासु श्रिया लक्ष्म्या कर्त्र्या पयोमुचां मेघाना पंक्तिषु विद्युतेव सहस्रधा विभक्तः तरंगेषु तरणिरिव स्वयमेक एव प्रत्येकं सङ्क्रामित इत्यर्थः । प्रभाविशेषस्योदयेनाविर्भावेन दुर्निरीक्ष्यो दुर्दर्शन आत्मा श्रियः स्वरूपं व्यरुचद्व्यद्योतिष्ट । 'द्युद्भ्यो लुङि' इति परस्मैपदम् । द्युतादित्वा-

दकप्रत्ययः। तस्मिन् समये प्रत्येकं सङ्क्रान्तलक्ष्मीकतया तेषां किमपि दुरासदं तेजः प्रादुरासीदित्यर्थः ॥ ५ ॥

अन्वयः—तासु राजपरम्परासु श्रिया (कर्त्र्या) पयोमुचाम् पंक्तिषु विद्युता इव सहस्रधा विभक्तः प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः आत्मा व्यरचत् ।

व्याख्या—तासु = पूर्वोक्तासु राज्ञां=भूपालानाम् परम्पराः=पंक्तयः, तासु राजपरम्परासु श्रिया=लक्ष्म्या (कर्त्र्या) पयांसि = जलानि, मुञ्चन्ति=वर्षन्तीति पयोमुचस्तेषां पयोमुचाम् = मेघानाम् पंक्तिषु = श्रेणिषु विद्युता=चपलया इव = यथा सहस्रधा = सहस्रप्रकारेण विभक्तः = प्रत्येकं व्यक्तिषु संक्रामित इत्यर्थः। प्रभायाः = कान्तेः विशेषः= आधिक्यं तस्य उदयः = आविर्भावः तेन दुर्निरीक्ष्यः = दुःखेन द्रष्टुं शक्यः, आत्मा श्रियः स्वरूपम् व्यरचत् = व्यद्योतिष्ट। स्वयंवरसमये प्रत्येकं राजसु प्रतिबिम्बितलक्ष्मीकत्वेन भूपालानामत्यधिकं दुर्धर्षं तेजः प्रादुर्बभूवेत्यर्थः।

समासः—राज्ञां परम्पराः तासु राजपरम्परासु। प्रभायाः विशेषस्य उदयेन दुर्निरीक्ष्यः प्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः पयः मुञ्चन्तीति पयोमुचः, तेषां पयोमुचाम्।

हिन्दी—स्वयंवर में बैठे प्रत्येक राजा में जैसे बिजली अपनी चमक बादलों में बाँट देती है, उसी प्रकार मानो लक्ष्मी ने आँखों को चकाचौंध कर देने वाली अपनी शोभा बाँट दी है, अतः वे अत्यन्त देदीप्यमान हो गये ॥ ५ ॥

तेषां महार्हासनसंस्थितानामुदारनेपथ्यभृतां स मध्ये।
रराज धाम्ना रघुसूनुरेव कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः ॥ ६ ॥

संजी०—तेषामिति। महार्हासनसंस्थितानां श्रेष्ठसिंहासनस्थानाम्। उदारनेपथ्यभृता मुज्ज्वलवेषधारिणां तेषां राज्ञां मध्ये। कल्पद्रुमाणां मध्ये पारिजात इव सुरद्रुमविशेष इव। 'पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। संतानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्' इत्यमरः। स रघुसूनुरेव धाम्ना तेजसा। 'भूम्ना' इति पाठेऽतिशयेनेत्यर्थः। रराज। अत्र कल्पद्रुमशब्दः पञ्चान्यतमविशेषवचनः, उपकल्पयन्ति मनोरथानिति व्युत्पत्त्या सुरद्रुममात्रोपलक्षकतया प्रयुक्त इत्यनुसन्धेयम्। कल्पा इति द्रुमाः कल्पद्रुमा इति विग्रहः ॥ ६ ॥

अन्वयः—महार्हासनसंस्थितानाम् उदारनेपथ्यभृताम् तेषाम् मध्ये कल्पद्रुमाणाम् मध्ये पारिजातः इव, सः रघुसूनुरेव, धाम्ना रराज ।

व्याख्या—महच्च तत् अर्हञ्चेति महार्हम्, महार्हम्=बहुमूल्यं श्रेष्ठम् च तदासनम्=सिंहासनम् इति महार्हासनम् तस्मिन् संस्थितानाम्=उपविष्टानाम् इति महार्हासनसंस्थितानाम्, उदारम्=उज्ज्वलम् नेपथ्यम्=वेषभूषाम् बिभ्रति=धारयन्तीति उदारनेपथ्यभृतस्तेषामुदारनेपथ्यभृताम्, तेषाम्=भूपालानाम् मध्ये=अन्तराले, कल्पद्रुमाणाम्=कल्पवृक्षाणाम मध्ये पारिजातः=देवद्रुमविशेषः, इव=यथा सः पूर्वोक्तः रघोः=दिलीपसूनोः सूनुः=पुत्रः इति रघुसूनुः=अज एव धाम्ना=तेजसा, रराज=शुशुभे ।

समासः—महच्च तदर्हञ्चेति महार्हम्, महार्हञ्च तदासनम् महार्हासनम् तस्मिन् संस्थितास्तेषाम् महार्हासनसंस्थितानाम् । उदारञ्च तत् नेपथ्यम् इति उदारनेपथ्यम्, तद् बिभ्रतीति उदारनेपथ्यभृतः तेषाम् उदारनेपथ्यभृताम् कल्पा इति द्रुमाः कल्पद्रुमास्तेषाम् कल्पद्रुमाणाम् । रघोः सूनुरिति रघुसूनुः ।

हिन्दी—जिस प्रकार कल्पवृक्षों में पारिजात नामक वृक्ष ही सबसे अधिक सुन्दर होता है उसी प्रकार बहुमूल्य सिंहासनों पर बैठे हुए और सुन्दर उज्ज्वल वेष धारण किए हुए उन राजाओं के बीच में वह रघु का पुत्र, अज ही तेज से खिल रहा था ॥ ६ ॥

नेत्रव्रजाः पौरजनस्य तस्मिन्विहाय सर्वान्नृपतीन्निपेतुः ।
मदोत्कटे रेचितपुष्पवृक्षा गन्धद्विपे वन्य इव द्विरेफाः ॥ ७ ॥

संजी०—नेत्रेति । पौरजनस्य नेत्रव्रजाः सर्वान्नृपतीन्विहाय तस्मिन्नजे निपेतुः । स एव सर्वोत्कर्षेण ददृश इत्यर्थः । कथमिव-मदोत्कटे मदेनोद्भिन्नगण्डे निर्भरमदे वा न्ये गन्धप्रधाने द्विपे गजे । रेचिता रिक्तीकृताः पुष्पाणां वृक्षा यैस्ते, त्यक्तपुष्पवृक्षा इत्यर्थः । द्विरेफा भृङ्गा इव । द्विपस्य वन्यविशेषणं द्विरेफाणां पुष्पवृक्षत्यागसम्भवार्थं कृतम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—पौरजनस्य नेत्रव्रजाः सर्वान् नृपतीन् विहाय, मदोत्कटे वन्ये गन्धद्विपे, रेचितपुष्पवृक्षाः द्विरेफाः इव तस्मिन् निपेतुः ॥ ७ ॥

व्याख्या—पुरे भवाः पौराः, पौराणां = नागरिकाणाम्, जनः = समूहः तस्य पौरजनस्य, नेत्राणां = चक्षुषां, व्रजाः = समूहाः, इति नेत्रव्रजाः, सर्वान्=अखिलान्, नृपतीन् = भूपालान्, विहाय = परित्यज्य, मदेन = मदजलेन, उत्कटः=उद्भिन्नगण्डः तस्मिन् मदोत्कटे, वने भवः वन्यस्तस्मिम् वन्ये = जांगलिके, गन्धप्रधानः द्विपः गन्धद्विपस्तस्मिन्, गन्धद्विपे = गजे, रेचिताः=परित्याजिताः, पुष्पाणाम्=कुसुमानाम् वृक्षाः = द्रुमा यैस्ते रेचितपुष्पवृक्षाः, द्वौ रेफौ येषान्ते द्विरेफाः=भ्रमराः इव=यथा, तस्मिन् = अजे रघुपुत्रे निपेतुः = पतिताः ।

समासः—पुरे भवाः पौरास्तेषां जनस्तस्य पौरजनस्य । नेत्राणां व्रजाः नेत्रव्रजाः । मदेन उत्कटः इति मदोत्कटस्तस्मिन् मदोत्कटे । वने भवः वन्यस्तस्मिन् वन्ये । गन्धप्रधानः द्विपः गन्धद्विपः तस्मिन् गन्धद्विपे । पुष्पाणां वृक्षा इति पुष्पवृक्षाः, रेचिताः पुष्पवृक्षा यैस्ते रेचितपुष्पवृक्षाः । द्वौ रेफौ येषान्ते द्विरेफाः ।

हिन्दी—जिस प्रकार फूलवाले वृक्षों को छोड़कर मद बहाने वाले जंगली हाथी के ऊपर भ्रमर झुक पड़ते हैं; अर्थात् उस हाथी पर चिपट जाते हैं, उसी प्रकार नागरिकों के नेत्र सब राजाओं को छोड़कर अज पर ही जा लगे ॥ ७ ॥

अथ स्तुते बन्दिभिरन्वयज्ञैः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके ।
सञ्चारिते चागुरुसारयोनौ धूपे समुत्सर्पति वैजयन्तीः ॥ ८ ॥

संजी०—अथेति । अथान्वयज्ञै राजवंशाभिज्ञैर्बन्दिभिः स्तुतिपाठकैः । 'बन्दिनः स्तुतिपाठकाः' इत्यमरः । सोमार्कवंश्ये सोमसूर्यवंशभवे नरदेवलोके राजसमूहे स्तुते सति । विवेशेत्युत्तरेण सम्बन्धः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् । सञ्चारिते समन्तात्प्रचारिते । अगुरुसारो योनिः कारणं यस्य तस्मिन्धूपे च वैजयन्तीः पताकाः समुत्सर्पति सति अतिक्रम्य गच्छति सति ॥ ८ ॥

अन्वयः—अथ अन्वयज्ञैः बन्दिभिः सोमार्कवंश्ये नरदेवलोके, स्तुते सति, संचारिते अगुरुसारयोनौ धूपे वैजयन्तीः समुत्सर्पति च सति (कन्या मञ्चान्तरराजमार्गं विवेशेति दशमश्लोकेनान्वयः) ॥ ८ ॥

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्, अन्वयम्=कुलम्, जानन्ति=विदन्तीति अन्वयज्ञास्तैः अन्वयज्ञैः, बन्दिभिः = स्तुतिपाठकैः, सोमः = चन्द्रः, अर्कः सूर्यस्तयोः, वंशः=कुलम् तस्मिन् सोमार्कवंशे भवः=उत्पन्नः इति सोमार्कवंश्यः, तस्मिन् सोमार्कवंश्ये, नराणां=

मनुष्याणां, देवाः=स्वामिनस्तेषां, लोकः=समूहः तस्मिन् नरदेवलोके स्तुते=प्रशंसिते सति, संचारिते=समन्तात् प्रचारिते अगुरोः=सुरभिद्रव्यस्य सारः = सारभागस्तत्त्व-मित्यर्थः, योनिः = कारणं यस्य सः अगुरुसारयोनिः, तस्मिन् अगुरुसारयोनौ धूपे= सुरभिद्रव्यमिश्रितधूपे च वैजयन्तीः=पताकाः समुत्सर्पति=अतिक्रम्य गच्छति सति। (कन्या मञ्चान्तरराजमार्गं विवेशेति सम्बन्धः)।

समासः—अन्वयं जानन्ति ते अन्वयज्ञास्तैरन्वयज्ञैः, सोमश्च अर्कश्चेति तौ सोमार्कौ तयोः वंश इति सोमार्कवंशस्तस्मिन् भवः, तस्मिन् सोमार्कवंश्ये। नराणां देवास्तेषां लोकः इति नरदेवलोकस्तस्मिन् नरदेवलोके, अगुरोः सारः योनिः यस्य सः, तस्मिन् अगुरुसारयोनौ।

हिन्दी—इसके पश्चात् राजाओं के वंश को जाननेवाले भाँटों ने चन्द्रवंश और सूर्यवंश में उत्पन्न उन सब राजाओं की प्रशंसा की। (अर्थात् उनका गुणगान किया) और इधर अगर के सारभाग से बनाई धूपबत्तियों का धूआँ फहराती हुई झण्डियों के ऊपर चढ़ गया ॥ ८ ॥

पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धतनृत्यहेतौ।
प्रध्मातशङ्खे परितो दिगन्तांस्तूर्यस्वने मूर्च्छति मङ्गलार्थे॥९॥

संजी०—पुर इति। किं च पुरस्योपकण्ठे समीप उपवनान्याश्रयो येषां तेषां कलापिनां बर्हिणामुद्धतनृत्यहेतौ मेघध्वनिसादृश्यात्ताण्डवकारणे प्रध्माताः पूरिताः शङ्खा यत्र तस्मिन् मङ्गलार्थे मङ्गलप्रयोजनके तूर्यस्वने वाद्यघोषे परितः सर्वतो दिगन्तान्मूर्च्छति व्याप्नुवति सति ॥ ९ ॥

अन्वयः—पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणाम् कलापिनाम् उद्धतनृत्यहेतौ प्रध्मातशंखे मङ्गलार्थे तूर्यस्वने परितः दिगन्तान् मूर्च्छति सति ॥ ९ ॥

व्याख्या—पुरस्य = नगरस्य, उपकण्ठम् = समीपम् इति पुरोपकण्ठम्, तत्र उपवनानि = आरामाः, इति पुरोपकण्ठोपवनानि, तान्येव आश्रयः=स्थानम् येषान्ते ते तेषाम्—पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणाम्, कलापाः=बर्हाः सन्ति येषान्ते कलापिनस्तेषां कलापिनाम्=मयूराणाम्, उद्धतम्=ताण्डवञ्च तत् नृत्यम्=नर्तनमिति, उद्धतनृत्यम् यस्य हेतुः=कारणम् तस्मिन्, उद्धतनृत्यहेतौ, प्रध्माताः=पूरिताः वादिताः, शंखाः=

कम्बवः, यत्र तस्मिन् प्रध्मातशंखे, मंगलमेवार्थः प्रयोजनं यस्य स तस्मिन् मंगलार्थे= मंगलप्रयोजनके, तूर्याणां=वाद्यानाम्—स्वनः=घोषः तस्मिन् तूर्यस्वने, परितः = सर्वतः, दिशाम्=काष्ठानाम्, अन्ताः=अवसानास्तान् दिगन्तान् मूर्च्छति=व्याप्नुवति सति। (कन्या मञ्चान्तरराजमार्गं विवेश)।

समास :—पुरस्य उपकण्ठमिति पुरोपकण्ठम्, तस्मिन् यानि उपवनानि, तानि आश्रयः येषां ते तेषाम् पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणाम् उद्धतञ्च तन्नृत्यम् तस्य हेतुः इति उद्धतनृत्यहेतुः तस्मिन् उद्धतनृत्यहेतौ, प्रध्माताः शंखा यस्मिन्-तस्मिन् प्रध्मातशंखे, तूर्याणां स्वनः तस्मिन्—तूर्यस्वने, मंगलमेव अर्थः यस्य सः तस्मिन् मंगलार्थे, दिशाम् अन्तास्तान् दिगन्तान्।

हिन्दी—नगर के आस-पास के उपवनों (बगीचों) में रहने वाले मयूरों के ताण्डव नृत्य (उछल कूद कर नाचना) का कारण अर्थात् मेघ की गर्जना समझकर मोर खूब नाचने लगते हैं और जिसमें शंख बजाये गये हैं ऐसे मांगलिक बाजों की ध्वनि से दसों दिशाओं के व्याप्त होने पर (अर्थात् गूँज उठने पर) ॥९॥

मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा॥ १०॥

संजी०—मनुष्यवाह्यमिति। पतिं वृणोतीति पतिंवरा स्वयंवरा। 'अथ स्वयंवरा। पतिंवरा च वर्याऽथ' इत्यमरः। 'संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः' इत्यनेन खच्प्रत्ययः। क्लृप्तविवाहवेषा कन्येन्दुमती मनुष्यैर्वाह्यं परिवारेण परिजनेन शोभि चतुरस्रयानं चतुरस्रवाहनं शिबिकामध्यास्यारुह्य मञ्चान्तरे मञ्चमध्ये यो राजमार्गस्तं विवेश॥ १०॥

अन्वयः—पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा कन्या, मनुष्यवाह्यम् परिवारशोभि चतुरस्रयानम् अध्यास्य, मञ्चान्तरराजमार्गम् विवेश॥ १०॥

व्याख्या—पतिम्=स्वामिनम्, वृणोति=स्वीकरोतीति, पतिंवरा = स्वयंवरा, क्लृप्तः = विहितः विवाहस्य=परिणयस्य, वेषः=नेपथ्यं यया सा क्लृप्तविवाहवेषा, कन्या=कुमारी इन्दुमतीत्यर्थः, मनुष्यैः=नरैः वाह्यम्=वोढुं योग्यम् मनुष्यवाह्यम् परिवारेण = परिजनेन (सखीजनेनेत्यर्थः) शोभते = शालते यत् तत् परिवारशोभि,

चत्वारः = चतुःसंख्यकाः अस्राः = कोणाः यस्मिन् तत् चतुरस्रम् चतुरस्रञ्च तत् यानम् = वाहनम्, इति चतुरस्रयानम्=शिबिकाम्, अध्यास्य=आरुह्य, मञ्चानाम्= पर्यङ्कानाम्, अन्तरम् = मध्यम्, इति मंचान्तरम्, राज्ञां मार्ग इति राजमार्गः, मंचान्तरे यो राजमार्ग इति मञ्चान्तरराजमार्गस्तम् मञ्चान्तरराजमार्गम् विवेश, प्रविष्टा।

समास:—पतिं वृणोति या सा पतिंवरा, क्लृप्तः विवाहस्य वेषो यया सा क्लृप्तविवाहवेषा, मनुष्यैः वाह्यमिति तत् मनुष्यवाह्यम्, परिवारेण शोभते यत् तत् परिवारशोभि, चत्वारः अस्रा यस्मिन् तत् चतुरस्रम्, चतुरस्रञ्च तत् यानमिति तत् चतुरस्रयानम्, मञ्चानामन्तरमिति मञ्चान्तरम् तत्र यो राज्ञां मार्गस्तम् मञ्चान्तरराजमार्गम्।

हिन्दी—पति को चुनने के लिए विवाह के समय की वेषभूषा धारण किए हुए कुमारी इन्दुमती, पालकी में चढ़कर मञ्चों के बीच वाली सड़क में आयी, उस पालकी को मनुष्य ढो रहे थे और वह चारों तरफ पैदल चलते हुए दास-दासियों से सुशोभित थी ॥१०॥

तस्मिन्विधानातिशये विधातुः कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये।
निपेतुरन्तःकरणैर्नरेन्द्रा देहैः स्थिताः केवलमासनेषु ॥ ११ ॥

संजी०—तस्मिन्निति। नेत्रशतानामेकलक्ष्ये एकदृश्ये कन्यामये कन्यारूपे तस्मिन्विधातुर्विधानातिशये सृष्टिविशेषे नरेन्द्रा अन्तःकरणैर्निपेतुः। आसनेषु देहैः केवलं देहैरेव स्थिताः। देहानपि विस्मृत्य तत्रैव दत्तचित्ता बभूवुरित्यर्थः। अन्तःकरण-कर्तृके निपतने नरेन्द्राणां कर्तृत्वव्यपदेश आदरातिशयार्थः ॥ ११ ॥

अन्वयः—**नेत्रशतैकलक्ष्ये कन्यामये तस्मिन् विधातुः विधानातिशये, नरेन्द्राः अन्तःकरणैः निपेतुः, आसनेषु देहैः केवलम् स्थिताः।**

व्याख्या—नेत्राणाम् = चक्षुषाम्, शतानि इति नेत्रशतानि, एकश्चासौ लक्ष्यः, इति एकलक्ष्यः, नेत्रशतानाम् एकलक्ष्यः=एकदृश्यः, तस्मिन् नेत्रशतैकलक्ष्ये, कन्या एव इति कन्यामयस्तस्मिन् कन्यामये = कन्यारूपे, तस्मिन्=पूर्वोक्ते विदधाति लोक-मिति विधाता तस्य विधातुः=ब्रह्मणः, विधानस्य=सृष्टेः, अतिशयः=विशेषः, तस्मिन् विधानातिशये, नराणाम्=मनुष्याणाम्, इन्द्राः=स्वामिनः इति नरेन्द्राः अन्तःकरणैः=

चित्तैः निपेतुः = पतिताः संजाताः, आसनेषु = सिंहासनेषु देहैः = शरीरैः केवलम् = एव स्थिताः = उपविष्टाः, स्वयंवरस्थितो राजलोकः स्वशरीरमपि विस्मृत्य इन्दुमत्यामेव संलग्नचित्तः संजात इत्यर्थः।

समास:—एकश्चासौ लक्ष्यः इति एकलक्ष्यः, नेत्राणाम् शतानीति नेत्रशतानि, नेत्रशतानाम् एकलक्ष्यस्तस्मिन् नेत्रशतैकलक्ष्ये, कन्या एवेति कन्यामयः तस्मिन् कन्यामये। विदधातीति विधाता तस्य विधातुः विधानस्य अतिशयः इति विधानातिशयस्तस्मिन् विधानातिशये, नराणामिन्द्राः इति नरेन्द्राः।

हिन्दी—सैकड़ों नेत्रों का एक ही दर्शनीय उस कन्यास्वरूप में राजा लोग अपने अन्तःकरण से गिर पड़े (अर्थात् एकटक होकर देखने लगे) वह कन्या ब्रह्मा की रचना की एक अतीव सुन्दर कला थी। और सिंहासनों पर तो उन राजाओं का केवल शरीरमात्र था। अर्थात् उनका देह तो मंचों पर अवश्य पड़ा था किन्तु वे अपने को भूलकर एकमात्र इन्दुमती को तन्मय होकर देखते ही रहे॥ ११॥

तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः।
प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः॥ १२॥

संजी०—तामिति। तामिन्दुमतीं प्रति अभिव्यक्तमनोरथानां प्ररूढाभिलाषाणां महीपतीनां राज्ञां प्रणयाग्रदूत्यः प्रणयः प्रार्थना प्रेम वा। 'प्रणयास्त्वमी। विस्रम्भयाच्ञाप्रेमाणः' इत्यमरः। प्रणयेष्वग्रदूत्यः प्रथमदूतिकाः। प्रणयप्रकाशकत्वसाम्याद् दूतीत्वव्यपदेशः। विविधाः शृंगारचेष्टाः शृंगारविकाराः पादपानां प्रवालशोभाः पल्लवसम्पद इव बभूवुरुत्पन्नाः। अत्र शृंगारलक्षणं रससुधाकरे-विभावैरनुभावैश्च स्वोचितैर्व्यभिचारिभिः। नीता सदस्यरस्यत्वं रतिः शृंगार उच्यते॥' रतिरिच्छाविशेषः। तच्चोक्तं तत्रैव-'यूनोरन्योन्यविशेषस्थायिनीच्छा रतिः स्मृता' इति। चेष्टाशब्देन तदनुभावविशेषा उच्यन्ते। तेऽपि तत्रैवोक्ताः-'भावं मनोगतं साक्षात्स्वहेतुं व्यञ्जयन्ति ये। तेऽनुभावा इति ख्याता भ्रूविक्षेपस्मितादयः॥ ते चेतुर्वा चित्तगात्रवाग्बुद्ध्यारम्भसम्भवाः' इति। तत्र गात्रारम्भसम्भवांश्चेष्टाशब्दोक्तानानुभावान् 'कश्चित्'—इत्यादिभिः श्लोकैर्वक्ष्यति। शृंगाराभासश्चायम्। एकत्रैव प्रतिपादनात्।

तदुक्तम्—'एकत्रैवानुरागश्चेत्तिर्यक्शब्दगतोऽपि वा । योषितां बहुसक्तिश्चेद्रसाभासस्त्रिधा मतः' इति ।। १२ ।।

अन्वयः—ताम् प्रति अभिव्यक्तमनोरथानाम्, महीपतीनाम् प्रणयाग्रदूत्यः विविधाः शृंगारचेष्टाः, पादपानाम् प्रवालशोभा इव बभूवुः ।। १२ ।।

व्याख्या—ताम् = इन्दुमतीम्, प्रति = उद्दिश्येत्यर्थः, अभिव्यक्तः=प्ररूढः मनोरथः = अभिलाषः, येषां ते, तेषाम् अभिव्यक्तमनोरथानाम्, मह्या =पृथिव्याः पतय =स्वामिनस्तेषाम्, महीपतीनाम्=राज्ञाम्, प्रणयेषु=प्रार्थनासु,प्रेमसु वा अग्रदूत्यः = प्रथमदूतिकाः, विविधाः = अनेकप्रकाराः, शृंगारस्य = रतेः इच्छाविशेषस्येत्यर्थः चेष्टाः = भ्रूविक्षेपस्मितादयो विकाराः, पादैः पिबन्तीति पादपाः तेषाम् पादपानाम् = वृक्षाणाम्, प्रवालानाम् = पल्लवानाम्, शोभाः = सम्पदः, इति प्रवालशोभाः इव = यथा बभूवुः = उत्पन्नाः ।

समासः—अभिव्यक्तः मनोरथः येषान्ते तेषाम् अभिव्यक्तमनोरथानाम्, मह्याः पतयः इति महीपतयस्तेषाम् महीपतीनाम्, प्रणयेषु अग्रदूत्यः इति प्रणयाग्रदूत्यः, शृंगारस्य चेष्टाः शृंगारचेष्टाः, पादैः पिबन्तीति पादपाः तेषां पादपानाम्, प्रवालानाम् शोभाः प्रवालशोभाः ।

हिन्दी—इन्दुमति के प्रति, अपना प्रेम प्रकट करने वाले राजाओं की, वृक्षों के पत्तों के समान, अनेक प्रकार की (भ्रू चलाना मुसकराना आदि) चेष्टाएँ होने लगी। मानो वे चेष्टाएँ इन्दुमती के पास उनके प्रेम को पहुँचाने वाली सर्वप्रथम दूतियाँ थीं ।। १२ ।।

कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम् ।
रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार ।।१३।।

मंजी०—कश्चिदिति । कश्चिद्राजा कराभ्यां पाणिभ्यामुपगूढनालं गृहीतनालम् । आलोलैश्चञ्चलैः पत्रैरभिहतास्ताडिता द्विरेफा भ्रमरा येन तत्तथोक्तम् । रजोभिः परागैरन्तःपरिवेषं मण्डलं बध्नातीत्यन्तःपरिवेषबन्धि । लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार । करस्य लीलारविन्दवत्त्वयाहं भ्रमयितव्य इति नृपाभिप्रायः । हस्तघूर्णकोऽयमपलक्षणक इतीन्दुमत्यभिप्रायः ।। १३ ।।

अन्वयः—कश्चित् कराभ्याम् उपगूढनालम्, आलोलपत्राभिहतद्विरेफम्, रजोभिः अन्तः परिवेषबन्धि लीलारविन्दम् भ्रमयांचकार ॥

व्याख्या—कश्चित्=राजा, कराभ्याम्=हस्ताभ्याम्, उपगूढम्=गृहीतम्, नालम् =कमलदण्डः यस्य तत् उपगूढनालम्, आलोलानि=चञ्चलानि, पत्राणि = दलानि, इति आलोलपत्राणि, तैः अभिहताः=ताडिताः, द्विरेफाः=भ्रमराः येन तत् आलोलपत्राभिहतद्विरेफम्, रजोभिः=परागैः पुष्परेणुभिरित्यर्थः, अन्तः=मध्ये, परिवेषम्= मण्डलम्, बध्नाति=विदधातीति परिवेषबन्धि, लीलायाः=क्रीडायाः, अरविन्दम्= कमलम्, इति लीलारविन्दम् भ्रमयांचकार = भ्रामयामास।

समासः—उपगूढम् नालम् यस्य तत् उपगूढनालम्, आलोलानि च तानि पत्राणि, तैः अभिहताः द्विरेफाः येन तत् आलोलपत्राभिहतद्विरेफम्, अन्तः परिवेषं बध्नातीति तत् अन्तःपरिवेषबन्धि, लीलायाः अरविन्दमिति तत् लीलारविन्दम् ।

हिन्दी—उन राजाओं की विविध चेष्टाओं को दिखाते हैं—कोई राजा दोनों हाथों से पकड़ा है डंठल जिसका और जिसने चंचल पत्तों से भौरों को मार भगाया है तथा जिसमें परागों से मण्डल बन्ध गया है ऐसे सुन्दर कमल को घुमाने लगा। हाथ के लीला कमल की तरह, मेरे साथ विवाह हो जाने पर मैं भी तुम्हारे इशारे पर नाचूँगा ऐसा अभिप्राय राजा का है। यह राजा हाथ हिलाने वाला कुलक्षण है, ऐसा इन्दुमती का अभिप्राय है ॥ १३ ॥

विस्रस्तमंसादपरो विलासी रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम् ।
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाशं निनाय साचीकृतचारुवक्त्रः ॥१४॥

संजी०—विस्रस्तमिति। विलसनशीलो विलासी। 'वौ कषलसकत्थस्रम्भः' इति घिनुण्प्रत्ययः। अपरो राजांसाद्विस्रस्तं रत्नानुविद्धं रत्नखचितं यदङ्गदं केयूरं तस्य कोटिलग्नं प्रालम्बमृजुलम्बिनीं स्रजम्। 'प्रालम्बमृजुलम्बि स्यात्कण्ठात्' इत्यमरः। 'प्रावारम्' इति-पाठे तूत्तरीयं वस्त्रम्। उत्कृष्योद्धृत्य साचीकृतं तिर्यक्कृतं चारु वक्त्रं यस्य स तथोक्तः सन् यथावकाशं स्वस्थानं निनाय। प्रावारोत्क्षेपणच्छलेनाहं त्वामेवं परिरप्स्य इति नृपाभिप्रायः। गोपनीयं किञ्चिदंगेऽस्ति ततोऽयं प्रावृणुत इतीन्दुमत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥

अन्वयः—अपरः विलासी अंसात् विस्रस्तम् रत्नानुविद्धांगदकोटिलग्नम् प्रालम्बम् उत्कृष्य साचीकृतचारुवक्त्रः सन् यथावकाशम् निनाय ॥ १४ ॥

व्याख्या—विलसति तच्छीलः इति विलासी = विलसनशीलः, अपरः=अन्यः राजा अंसात्=स्कन्धात्, विस्रस्तम्=गलितम्, रत्नैः=हीरकादिभिः, अनुविद्धम्=खचितम् यत् अंगदम्=केयूरम् इति रत्नानुविद्धांगदम् तस्य कोटौ = कोणे, लग्नम्=संश्लिष्टम्, इति रत्नानुविद्धांगदकोटिलग्नम् प्रालम्बम्=ऋजुलम्बिनीम् मालाम्, (क्वचित् पुस्तके प्रावारमिति पाठे तु प्रावारम् = उत्तरीयवस्त्रम्) उत्कृष्य = उद्धृत्य न साचि, इति असाचि, असाचि साचि कृतमिति साचीकृतम्=तिर्यक्कृतम्, चारु=सुन्दरम्, वक्त्रम्=मुखम् येन सः साचीकृतचारुवक्त्रः सन् यथावकाशम् = यथास्थानम् निनाय = नीतवान् ।

समासः—विलसति तच्छीलः इति विलासी, रत्नैः अनुविद्धम् यत् अंगदमिति रत्नानुविद्धांगदम्, रत्नानुविद्धांगदस्य कोटिः, तत्र लग्नमिति तत् रत्नानुविद्धांगदकोटि-लग्नम्, अवकाशमनतिक्रम्य इति यथावकाशम् । न सचि इति असाचि, असाचि साचि संपद्यमानमिति साचीकृतम्, साचीकृतं चारु वक्त्रं येन सः साचीकृतचारुवक्त्रः ।

हिन्दी—दूसरे विलासी (शौकीन) राजा ने कन्धे से सरकी हुई और रत्नों से जड़ित भुजबन्ध के कोने में उलझी हुई, रत्नों की लम्बी माला को उठाकर कुछ तिरछा मुख करके फिर से कण्ठ में ठीक स्थान में रख दिया । ऐसा करके राजा ने यह संकेत किया कि मैं हमेशा तुमको गले का हार बनाए रहूँगा । इसके विपरीत इन्दुमती ने यह समझा कि इसके कन्धे में कुछ रोग कुबड़ आदि हैं, अतः उसे यह छिपा रहा है ॥ १४ ॥

> **आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततोऽन्यः किञ्चित्समावर्जितनेत्रशोभः ।**
> **तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं विलिलेख पीठम् ॥ १५ ॥**

संजी०—आकुञ्चितेति । ततः पूर्वोक्तादन्योऽपरो राजा किञ्चित्समावर्जित-नेत्रशोभः ईषदवाक्पातितनेत्रशोभः सन् । आकुञ्चिता आभुग्ना अग्राङ्गुलयो यस्य तेन तिर्यग्विसंसर्पिण्यो नखप्रभा यस्य तेन च पादेन हैमं हिरण्मयं पीठं पादपीठं विलिलेख लिखितवान् । पादाङ्गुलीनामाकुञ्चनेन त्वं मत्समीपमागच्छेति नृपाभिप्रायः । भूमिविलेखकोऽयमपलक्षणक इतीन्दुमत्याशयः । भूमिविलेखनं तु लक्ष्मीविनाशहेतुः ॥ १५ ॥

अन्वयः—ततः अन्यः किंचित्समावर्जितनेत्रशोभः सन् आकुञ्चिताग्रांगुलिना तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं पीठम् विलिलेख ॥ १५ ॥

व्याख्या——ततः = तस्मात् = पूर्वोक्तात् अन्यः = अपरः राजा, किंचित् = ईषत् समावर्जिता=अर्वाक्पातिता नेत्रयोः = चक्षुषोः शोभा = कान्तिः येन सः किंचित्समावर्जितनेत्रशोभः सन्, आकुञ्चिता = ईषद्भुग्नाः अग्रांगुलयः = अंगुल्यग्रभागाः यस्य स तेन, आकुञ्चिताग्रांगुलिना, तिर्यक्विसंसर्पिण्यः = साचिविसंसर्पणशीलाः नखानां = पुनर्भवानाम्, शोभाः = कान्तयः यस्य सः तेन तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण, पादेन = चरणेन हेम्नो विकारः इति हैमं = सुवर्णनिर्मितम्, पीठम् = पादासनम्, विलिलेख = लिखितवान् ।

समासः——किंचित् समावर्जिता नेत्राणां शोभा येन सः, किंचित्समावर्जितनेत्रशोभः, आकुञ्चिताः अग्रांगुलयो यस्य स तेन आकुञ्चिताग्रांगुलिना, तिर्यक् विसंसर्पिण्यः नखानां प्रभाः यस्य स तेन, तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण । हेम्नो विकारः इति हैमम् तत् ।

हिन्दी—पहले से अतिरिक्त तीसरा राजा आँखे मटकाकर जिसकी अँगुलियाँ कुछ सिकोड़ ली गई हैं और जिसके नखों की किरणें तिरछी फैल रही हैं ऐसे पैर से सोने के पादपीठ को लिखने लगा, अर्थात् पीढ़े को कुरेदने लगा । इस संकेत से राजा इन्दुमती को अपने पास बुलाना चाहता है । और इसके विपरीत इन्दुमती का आशय यह है कि यह राजा तो जमीन खोदने वाला कुलक्षणी है, क्योंकि जमीन खोदना लक्ष्मी का विनाशकारक है ॥ १५ ॥

निवेश्य वामं भुजमासनार्धे तत्सन्निवेशादधिकोन्नतांसः ।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत् ॥१६॥

संजी०—निवेश्येति । कश्चिद्राजा वामं भुजमासनार्धे सिंहासनैकदेशे निवेश्य संस्थाप्य तत्सन्निवेशात्तस्य वामभुजस्य सन्निवेशात्संस्थापनादधिकोन्नतोऽसो वामांस एव यस्य स तथोक्तः सन् । विवृत्ते परावृत्ते त्रिके त्रिकप्रदेशे भिन्नहारो लुण्ठितहारः सन् । 'पृष्ठवंशाधरे त्रिकम्' इत्यमरः । सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत् । वामपार्श्ववर्तिनैव मित्रेण सम्भाषितुं प्रवृत्त इत्यर्थः । अत एव विवृत्तत्रिकत्वं घटते । त्वया वामाङ्गे निवेशितया सहैवं वार्तां करिष्य इति नृपाभिप्रायः । परं दृष्ट्वा पराङ्मुखोऽयं न कार्यकर्तेतीन्दुमत्यभिप्रायः ॥ १६ ॥

अन्वयः—कश्चित् (राजा) वामम् भुजम् आसनार्धे निवेश्य तत्सन्निवेशात् अधिकोन्नतांसः सन् विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सन्, सुहृत्समाभाषणतत्परः अभूत् ।

व्याख्या—कश्चित् = राजा, वामम् = दक्षिणेतरम्, भुजम् = बाहुम्, आसनस्य = सिंहासनस्य, अर्धम् = एकदेशस्तस्मिन् आसनार्धे निवेश्य = संस्थाप्य, तस्य = वामभुजस्य, संनिवेशः = स्थापनम् तस्मात् तत्संनिवेशात्, अधिकः = विशेषः, उन्नतः = उच्चः उत्थितः, अंसः = वामांसः यस्य सः, अधिकोन्नतांसः सन् विवृतम् = परावृत्तम्, त्रिकम् = पृष्ठवंशाधरम्, इति विवृत्तत्रिकम् तत्र भिन्नः = लुठितः, हारः = मणिमाला यस्य सः, विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सन्, सुहृदा = मित्रेण (सह) समाभाषणम् = आलापः, तत्र तत्परः = संलग्नः = प्रवृत्त इत्यर्थः, इति सुहृत्समाभाषणतत्परः, अभूत् = अभवत् जात इति यावत् ।

हिन्दी—कोई राजा अपने बाएँ हाथ को सिंहासन के आधे भाग में रखकर बाईं ओर बैठे मित्र से वार्तालाप करने लगा । और बाएँ हाथ के वहाँ रखने से बायाँ कन्धा ऊँचा उठ गया, अतएव गले का हार घूमी हुई पीठ पर लटक गया । वामांग में बैठाकर तुम्हारे साथ इसी प्रकार प्रेमालाप किया करूँगा यह राजा का अभिप्राय था, किन्तु इन्दुमती ने जान लिया कि दूसरे को देखकर मुंह फेरने वाला यह तो कर्तव्यपराङ्मुख है ॥१६॥

विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः ।
प्रियानितम्बोचितसन्निवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रैः ॥ १७ ॥

संजी०—विलासिनीति । अन्यो युवा विलासिन्याः प्रियाया विभ्रमार्थं दन्तपत्रं दन्तपत्रभूतमापाण्डुरं केतकबर्हं केतकदलम् । 'दलेऽपि बर्हम्' इत्यमरः । प्रियानितम्ब उचितसन्निवेशैरभ्यस्तनिक्षेपणैर्नखाग्रैर्विपाटयामास विदारयामास । अहं तव नितम्ब एवं नखव्रणादीन्दास्यामीति नृपाशयः । तृणच्छेदकवत्पत्रपाटकोऽयमपलक्षणक इतीन्दुमत्याशयः ॥१७॥

अन्वयः—**अन्यः युवा विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रम् आपाण्डुरम्, केतकबर्हम्, प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैः नखाग्रैः, विपाटयामास ॥१७॥**

व्याख्या—अन्यः = अपरः, युवा = तरुणः, विलासिन्याः = प्रियायाः, विभ्रमार्थम् = विलासप्रयोजनकं, दन्तपत्रम् = दन्तपत्रभूतम्, कर्णभूषणभूतमित्यन्ये, इति विलासिनी-

विभ्रमदन्तपत्रम्, आपाण्डुरम् = किञ्चिद्धवलम्, केतकस्य = केतक्याः, बर्हम् = दलम्, प्रियायाः = स्वभार्यायाः, नितम्बः = कटिपश्चाद्भागः, इति प्रियानितम्बस्तस्मिन् उचितः = अभ्यस्तः, संनिवेशः = निक्षेपणम् येषान्तानि प्रियानितम्बोचितसंनिवेशानि तैस्तथोक्तैः, नखानाम् = कररुहाणाम्, अग्राणि = अग्रभागाः, तैः, नखाग्रैः, विपाटयामास = विदारयामास ।

समासः——विलासिन्याः विभ्रमार्थं दन्तपत्रमिति विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रं तत् । आसमन्तात् पाण्डुरमिति तत् आपाण्डुरम्, केतकस्य बर्हमिति केतकबर्हम् तत्, नितरां तम्यते इति नितम्बः, प्रियायाः नितम्बः प्रियानितम्बस्तत्र उचितः संनिवेशः येषान्तानि तैः प्रियानितम्बोचितसंनिवेशैः नखानाम् अग्राणि तैः नखाग्रैः ।

हिन्दी——एक दूसरा जवान राजा, प्रिया के नितम्बों पर चिह्न बनाने में अभ्यस्त नखों से केवड़े के उन सुफेद पत्तों को नोचने लगा जो कि किसी विलासी स्त्री के श्रृंगार के लिए कान के आभूषण के समान कटे थे । मैं तुम्हारे नितम्ब पर इसी प्रकार नखचिह्न लगाऊँगा, यह अभिप्राय राजा का था । और इन्दुमती ने सोचा कि यह तो तिनके तोड़ने की तरह पत्ते को छेदने वाला कुलक्षणी है ।।१७।।

कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित्करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन ।
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षान् ।। १८ ।।

संजी०——कुशेशयेति । कश्चिद्राजा कुशेशयं शतपत्रमिवाताम्रं तलं यस्य तेन । 'शतपत्रं कुशेशयम्' इत्यमरः । रेखारूपो ध्वजो लाञ्छनं यस्य तेन करेण । अङ्गुलीषु भवान्यङ्गुलीयान्यूर्मिकाः । 'अङ्गुलीयकमूर्मिका' इत्यमरः । 'जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः' इति छप्रत्ययः । रत्नानामङ्गुलीयानि तेषां प्रभयानुविद्धान्व्याप्तानक्षान्पाशान् । 'अक्षास्तु देवनाः पाशकाश्च ते' इत्यमरः । सलीलमुदीरयामासोच्चिक्षेप । अहं त्वया सहैवं रंस्य इति नृपाभिप्रायः । अक्षचातुर्येण कापुरुषोऽयमितीन्दुमत्यभिप्रायः । 'अक्षैर्मा दीव्येत्, इति श्रुतिनिषेधात् ।। १८ ।।

अन्वयः—कश्चिद् कुशेशयाताम्रतलेन, रेखाध्वजलाञ्छनेन, करेण रत्नांगुलीयप्रभयानुविद्धान् अक्षान् सलीलम् उदीरयामास ।

व्याख्या—कश्चित्=अन्यो राजा, कुशेशयं=रक्तोत्पलमिव, आताम्रम्=आरक्तम्, तलम्=पाणितलम् यस्य स तेन कुशेशयाताम्रतलेन, रेखारूपो ध्वज इति रेखाध्वजः,

रेखाध्वजः = लेखापताका, भाग्यसूचकपाणिरेखारूपध्वज इत्यर्थः, लाञ्छनम्=चिह्नं यस्य स तेन रेखाध्वजलाञ्छनेन करेण =पाणिना, अंगुलिषु भवन्ति, अंगुलीयानि, रत्नानाम्=हीरकादिमणीनाम् अंगुलीयानि = मुद्रिकाः, तेषां प्रभा = कान्तिः तया, रत्नांगुलीयप्रभया, अनुविद्धान् = व्याप्तान् , अक्षान् = पाशान् लीलया सहितमिति, सलीलम् = सक्रीडम्, उदीरयामास = उच्चिक्षेप ।

समासः—कुशेशयमिव आताम्रं तलं यस्य स तेन तथोक्तेन, रेखारूपो ध्वजः लाञ्छनं यस्य स तेन रेखाध्वजलाञ्छनेन, अंगुलीषु भवानि अंगुलीयानि, रत्नानाम् अंगुलीयानीति रत्नांगुलीयानि तेषां प्रभा तया रत्नांगुलीयप्रभया, लीलया सहितमिति सलीलम् ।

हिन्दी—कोई दूसरा राजा, जिसकी हथेली कमल के समान लाल थी, एवं जिस हथेली पर रेखारूपी ध्वजा का चिह्न बना था, ऐसे अपने हाथ में उन पाशों को उछाल रहा था, जिस पर रत्नजटित अंगूठी की कान्ति झलक रही थी । मैं तुम्हारे साथ विवाह हो जाने पर सदा इस प्रकार पासा खेला करूँगा यह राजा का अभिप्राय था, किन्तु जुआ खेलने में चतुर यह कापुरुष है यह इन्दुमती का अभिप्राय था ॥ १८ ॥

कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसन्निवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव ।
वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे ॥१९॥

संजी०—कश्चिदिति । कश्चिद्यथाभागं यथास्थानमवस्थितेऽपि स्वसन्निवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव स्वस्थानाच्चलित इव किरीटे वज्राणां किरीटगतानामंशवो गर्भे येषां तान्यङ्गुलिरन्ध्राणि यस्य तमेकं करं व्यापारयामास । किरीटवत्मम शिरसि स्थितामपि त्वां भारं न मन्य इति नृपाभिप्रायः । शिरसि न्यस्तहस्तोऽयमपलक्षण इतीन्दुमत्यभिप्रायः ॥ १९ ॥

अन्वयः—कश्चित् यथाभागम् अवस्थिते अपि स्वसंनिवेशात् व्यतिलंघनि इव किरीटे वज्रांशुगर्भांगुलिरन्ध्रम् एकम् करम् व्यापारयामास ।

व्याख्या—कश्चित्=राजा, भागम्=स्थानमनतिक्रम्येति, यथाभागम्=यथास्थानम्,अवस्थिते=वर्तमानेऽपि, स्वस्य=निजस्य, संनिवेशः=स्थानम्,तस्मात् स्वसंनिवेशात् व्यतिलंघिनि = चलिते, इव = यथा, किरीटे = मुकुटे, अंगुलीनाम् = करशाखानाम्,

रन्ध्राणि छिद्राणीति अंगुलिरन्ध्राणि, वज्राणाम्=मुकुटजड़ितहीरकादीनाम् अंशवः= किरणाः गर्भे—मध्ये येषां तानि, इति वज्रांशुगर्भाणि, वज्रांशुगर्भाणि अंगुलिरन्ध्राणि यस्य स तम् तथोक्तम्, एकम्=द्वयोरन्यतरम्, करम्=हस्तम् व्यापारयामास प्रयोजयामास ।

समासः—भागमनतिक्रम्य यथाभागम्, स्वस्य संनिवेशः स्वसंनिवेशस्तस्मात् स्वसंनिवेशात्, अंगुलीनाम् रन्ध्राणि इति अंगुलिरन्ध्राणि, वज्राणाम् अंशवः गर्भे येषां तानि वज्रांशुगर्भाणि, वज्रांशुगर्भाणि अंगुलिरन्ध्राणि यस्य स तम् वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रम् ।

हिन्दी—कोई दूसरा राजा, ठीक अपनी जगह रखे रहने पर भी मानो अपने स्थान से सरक गया हो, ऐसे मुकुट पर एक हाथ को बार-बार फेरने लगा। जिस हाथ की अंगुलियों के बीच का भाग रत्नों की किरणों से चमक उठता था ।

इस मुकुट की तरह मेरे सिर आँखों पर चढ़ी हुई तुमको मैं भार स्वरूप नहीं मानूँगा । अर्थात् सदा सिर आँखों पर तुमको रखूँगा, यह राजा का अभिप्राय था । किन्तु इन्दुमती ने समझा कि यह तो मस्तक पर हाथ रखने वाला कुलक्षणी है ॥ १९ ॥

ततो नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा पुंवत्प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी ।
प्राक्सन्निकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा ॥२०॥

सं०जी०—तत इति । ततोऽनन्तरं नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा श्रुतनृपवृत्तवंशेत्यर्थः । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । प्रगल्भा वाग्मिनी सुनन्दा सुनन्दाख्या प्रतिहारं रक्षतीति प्रतिहाररक्षी द्वारपालिका । कर्मण्यण्प्रत्ययः । 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' इत्यनेन ङीप् । प्राक्प्रथमं कुमारीमिन्दुमतीम् । मगधेश्वरस्य सन्निकर्षं समीपं नीत्वा पुंवत्पुंसा तुल्यम् । 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इति वतिप्रत्ययः । अवदत् ॥ २० ॥

अन्वयः—**ततः नृपाणाम् श्रुतवृत्तवंशा पुंवत्प्रगल्भा, सुनन्दा प्रतिहाररक्षी, प्राक् कुमारीम् मगधेश्वरस्य संनिकर्षम् नीत्वा अवदत् ।**

व्याख्या—ततः = अनन्तरम्, नृपाणाम् = राज्ञाम्, वृत्तानि = चरितानि, वंशाः = कुलानीति, वृत्तवंशाः, श्रुताः = आकर्णिताः वृत्तवंशा यया सा श्रुतवृत्तवंशा, पुंसा तुल्यमिति पुंवत् पुरुषवत् प्रगल्भा = वाग्मिनी, सुनन्दा=एतन्नाम्नी प्रतिहारम्

रक्षतीति प्रतिहाररक्षी = द्वारपालिका, प्राक् = प्रथमम्, कुमारीम् = इन्दुमतीम्, मगधानामीश्वर इति मगधेश्वरः तस्य मगधेश्वरस्य सन्निकर्षं = समीपम्, नीत्वा = प्रापय्य, अवदत् = उक्तवती ।

समासः—नॄन् = जनान् पान्ति = रक्षन्तीति नृपास्तेषाम् नृपाणाम् वृत्तानि च वंशाश्चेति वृत्तवंशाः, श्रुताः वृत्तवंशा यया सा श्रुतवृत्तवंशा, पुंसा तुल्यमिति पुंवत्, प्रकर्षेण गल्भते इति प्रगल्भा, प्रतिहारं रक्षतीति प्रतिहाररक्षी, मगधानामीश्वर इति मगधेश्वरस्तस्य मगधेश्वरस्य ।

हिन्दी—इसके पश्चात् राजाओं के चरित्र एवं वंशावली को जाननेवाली पुरुषों के समान बड़ी ही ढीठ बोलने वाली सुनन्दा नाम की प्रतिहारी (रनिवास की द्वारपालिका) सर्वप्रथम इन्दुमती को मगध नरेश के पास ले जाकर कहने लगी ॥ २० ॥

असौ शरण्यः शरणोन्मुखानामगाधसत्त्वो मगधप्रतिष्ठः ।
राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परन्तपो नाम यथार्थनामा ॥२१॥

संजी०—असाविति । असौ राजा । असाविति पुरोवर्तिनो निर्देशः । एवमुत्तरत्रापिद्रष्टव्यम् । शरणोन्मुखानां शरणार्थिनां शरण्यः शरणे रक्षणे साधुः, 'तत्र साधुः' इति यत्प्रत्ययः । शरणं भवितुमर्हः शरण्य इति नाथनिरुक्तिर्निर्मूलैव । अगाधसत्त्वो गम्भीरस्वभावः । 'सत्त्वं गुणे पिशाचादौ बले द्रव्यस्वभावयोः' इति विश्वः । मगधा जनपदाः तेषु प्रतिष्ठास्पदं यस्य स मगधप्रतिष्ठः, 'प्रतिष्ठा कृत्यमास्पदम्' इत्यमरः । प्रजारञ्जने लब्धवर्णो विचक्षणः । यद्वा प्रजारञ्जनेन लब्धोत्कर्षः । पराञ्छत्रूंस्तापयतीति परन्तपः परन्तपाख्यः । 'द्विषत्परयोस्तापेः' इति खच्प्रत्ययः । 'खचि ह्रस्वः' इति ह्रस्वः । 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः । नामेति प्रसिद्धौ, यथार्थनामा, शत्रुसन्तापनादिति भावः ॥ २१ ॥

अन्वयः—असौ राजा शरणोन्मुखानाम् शरण्यः अगाधसत्त्वः मगधप्रतिष्ठः प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परन्तपः नाम यथार्थनामा, अस्तीति शेषः ।

व्याख्या—असौ=पुरोवर्ती राजा = भूपालः, शरणार्थम् उन्मुखा इति शरणोन्मुखास्तेषां शरणोन्मुखानाम् = शरणागतानाम्, शरणे साधुरिति शरण्यः-रक्षकः, अगाधं=गम्भीरम् सत्त्वं स्वभावो बलञ्च यस्य सः अगाधसत्त्वः, मगधेषु=मगधजनपदेषु प्रतिष्ठा=आस्पदम् यस्य स मगधप्रतिष्ठः, प्रजानाम्= जनानाम्, रञ्जने=

अनुरञ्जने प्रसादने लब्धवर्णः=विचक्षणः इति प्रजारञ्जनलब्धवर्णः, अथवा प्रजारंजनेन लब्धवर्णः=प्राप्तोत्कर्षः । परान्=शत्रून् तापयति=खेदयतीति परन्तपः=परन्तपाख्यः नाम=प्रसिद्धम्, यथार्थम्=अन्वर्थम्, नाम=अभिधेयं यस्य स यथार्थनामा शत्रूणां संतापदानादित्यर्थः ।

समासः—शरणार्थम् उन्मुखास्तेषां शरणोन्मुखानाम् । शरणे साधुरिति शरण्यः । अगाधं सत्त्वं यस्य सः अगाधसत्त्वः, मगधेषु प्रतिष्ठा यस्य स मगधप्रतिष्ठाः, प्रजानां रञ्जने लब्धवर्णः प्रजारंजनलब्धवर्णः, यद्वा प्रजारञ्जनेन लब्धवर्णः, परान् तापयतीति परन्तपः, यथार्थं नाम यस्य सः, यथार्थनामा ।

हिन्दी—ये सामने बैठा हुआ राजा, शरण में आये हुओं की रक्षा करनेवाला, और बड़ा पराक्रमी मगध में प्रतिष्ठित परंतप नाम वाला है । अपनी प्रजा को सुख शान्ति देकर बड़ा नाम कमाया है । शत्रुओं को सन्ताप देने के कारण वास्तव में इनका परन्तप नाम सार्थक है ॥ २१ ॥

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसङ्कुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥२२॥

सञ्जी०—काममिति । अन्ये नृपाः कामं सहस्रशः सन्तु । भूमिमनेन राजन्वतीं शोभनराजवतीमाहुः, नैतादृक्कश्चिदस्तीत्यर्थः । 'सुराज्ञि देशे राजन्वान्स्यात्ततोऽन्यत्र राजवान्' इत्यमरः । 'राजन्वान्सौराज्ये' इति निपातनात्साधुः। तथा हि—नक्षत्रैरश्विन्यादिभिस्ताराभिः साधारणैर्ज्योतिर्भिर्ग्रहैर्भौमादिभिश्च सङ्कुलापि रात्रिश्चन्द्रमसैव ज्योतिरस्या अस्तीति ज्योतिष्मती, नान्येन ज्योतिषेत्यर्थः ॥ २२ ॥

अन्वयः—अन्ये नृपाः कामम् सहस्रशः सन्तु, भूमिम् अनेन राजन्वतीम् आहुः नक्षत्रताराग्रहसंकुला अपि रात्रिः चन्द्रमसा एव ज्योतिष्मती ।

व्याख्या—अन्ये=अपरे, नृपाः=भूपालाः, सहस्रशः=अनेकशः असंख्याः, सन्तु=भवन्तु, (किन्तु) भूमिम्=पृथिवीम्, अनेन=परन्तपेन, राजा अस्ति अस्याः सा राजन्वती तां राजन्वतीम्=राजवतीम् आहुः=कथयन्ति, जनाः, एतादृशः कोऽपि नास्तीत्यर्थः, नक्षत्राणि=अश्विन्यादीनि ताराः=साधारणतारकाः ग्रहाः=भौमादयः, एतेषामितरेतरयोगः, इति नक्षत्रताराग्रहाः तैः संकुला=व्याप्ता

इति नक्षत्रताराग्रहसंकुला अपि रात्रिः रजनी, चन्द्रमसा=चन्द्रेण एव=निश्चितम् ज्योतिः=नक्षत्रं प्रकाशश्च अस्या अस्तीति ज्योतिष्मती नान्येन केनापि।

समासः—सुराजः अस्याः अस्तीति राजन्वती ताम् राजन्वतीम्, नक्षत्राणि ताराः ग्रहाश्चेति नक्षत्रताराग्रहास्तैः संकुला इति नक्षत्रताराग्रहसंकुला, ज्योतिः अस्ति अस्या इति ज्योतिष्मती ।

हिन्दी—यद्यपि संसार में दूसरे हजारों राजा हैं, किन्तु पृथिवी इन्हीं के रहने से अच्छे राजावाली कहलाती है। जैसे—नक्षत्रों तारों और ग्रहों से भरी रहने पर भी रात्रि, चन्द्रमा से ही चाँदनीवाली कहलाती है ।। २२ ।।

क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः ।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकांश्चकार ।।२३।।

संजी०—अयं परन्तपोऽध्वराणां क्रतूनां क्रियाप्रबन्धानुष्ठानसातत्यात् अविच्छिन्नादनुष्ठानादित्यर्थः । अजस्रं नित्यमाहूतसहस्रनेत्रः संश्चिरं शच्या अलकान्पाण्डुकपोलयोर्लम्बान्स्रस्तान् । पचाद्यच् । मन्दारैः कल्पद्रुमकुसुमैः शून्यांश्चकार । प्रोषितभर्तृका हि केशसंस्कारं न कुर्वन्ति । 'प्रोषिते मलिना कृशा' इति । 'क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ।।' इति च स्मरणात् ।। २३ ।।

अन्वयः—अयम्, अध्वराणाम्, क्रियाप्रबन्धात्, अजस्रम्, आहूतसहस्रनेत्रः सन् शच्याः, अलकान् पाण्डुकपोललम्बान् मन्दारशून्यान् चकार ।

व्याख्या—अयम् = परन्तपः अध्वराणाम्=यज्ञानाम् कियायाः=अनुष्ठानस्य प्रबन्धः = नैरन्तर्यम् तस्मात् क्रियाप्रबन्धात् अजस्रम्=नित्यम्, आहूतः=आकारितः, सहस्रनेत्रः=इन्द्रः येन स आहूतसहस्रनेत्रः सन्, चिरम् = चिरकालम्, शच्याः = इन्द्राण्याः अलकान् = केशान्, पाण्डू पीतवर्णौ च तौ कपोलौ = गण्डस्थलौ इति पाण्डुकपोलौ तयोः पाण्डुकपोलयोः लम्बाः = स्रस्तास्तान् पाण्डुकपोललम्बान्, मन्दारैः = कल्पवृक्षपुष्पैः शून्याः = रहितास्तान् मन्दारशून्यान्, चकार=कृतवान् । इन्द्रस्य सर्वदा परन्तपयज्ञे सन्निधानात् इन्द्राणी प्रोषितभर्तृका जाता, प्रोषितभर्तृका साध्वी च केशादिसंस्कारं न करोति, स्मृतिषु निषेधादित्यर्थः ।

समासः—क्रियायाः प्रबन्धस्तस्मात् क्रियाप्रबन्धात् सहस्रं नेत्राणि यस्य सः सहस्रनेत्रः आहूतः सहस्रनेत्रः येन स आहूतसहस्रनेत्रः, पाण्डू च तौ कपोलौ इति पाण्डुकपोलौ, तयोः लम्बास्तान् पाण्डुकपोललम्बान्, मन्दारैः शून्यास्तान् मन्दारशून्यान्।

हिन्दी—इस परन्तप राजा ने यज्ञों के निरन्तर अनुष्ठान करके बार-बार अपने यज्ञ में इन्द्र को बुलाकर इन्द्राणी के केशों को जो कि पीले कपोलों पर लटक रहे हैं, कल्पवृक्ष के फूलों से शून्य कर दिया। अर्थात् इन्द्र के यज्ञ में चले जाने से इन्द्राणी प्रोषितभर्तृका हो जाती थी और इस कारण वह केशों को फूलों से नहीं सजाती थी ॥ २३ ॥

अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरु प्रवेशे ।
प्रासादवातायनसंश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम् ॥२४॥

संजी०—अनेनेति । वरेण्येन वरणीयेन । वृणोतेरौणादिक एण्यप्रत्ययः । अनेन राज्ञा गृह्यमाणं पाणिमिच्छसि चेत्, पाणिग्रहणमिच्छसि चेदित्यर्थः। प्रवेशे प्रवेशकाले प्रासादवातायनसंश्रितानां राजभवनगवाक्षस्थितानां पुष्पपुराङ्गनानां पाटलिपुराङ्गनानां नेत्रोत्सवं कुरु। सर्वोत्तमानां तासामपि दर्शनीया भविष्यसीति भावः ॥ २४ ॥

अन्वयः—**वरेण्येन अनेन गृह्यमाणं पाणिम्, इच्छसि चेत्, प्रवेशे प्रासादवातायनसंश्रितानाम् पुष्पपुरांगनानाम् नेत्रोत्सवं कुरु।**

व्याख्या—वरेण्येन वरणीये = विवाहयोग्येनेत्यर्थः अनेन = राज्ञा परन्तपेन गृह्यते असौ गृह्यमाणस्तं गृह्यमाणम् = ध्रियमाणम्, पाणिम् = करम्, इच्छसि = वांछसि, चेत् = विवाहं कर्तुमिच्छसि यदीत्यर्थः, प्रवेशे = पुरप्रवेशसमये, प्रासादानाम् = राजभवनानाम्, वातायनानि = गवाक्षास्तत्र संश्रिताः = उपविष्टाः स्थिता इत्यर्थः, तासाम् प्रासादवातायनसंश्रितानाम्, पुष्पपुरस्य, पाटलिपुत्रस्य, अंगनाः = स्त्रियस्तासाम् पुष्पपुराङ्गनानाम्, नेत्राणाम् = चक्षुषाम्, उत्सवः = आनन्दः सुखमित्यर्थः तम् नेत्रोत्सवम् कुरु = कुर्याः।

समासः—वरितुं योग्यः वरेण्यस्तेन वरेण्येन, गृह्यते असौ गृह्यमाणस्तं गृह्यमाणम्, प्रासादानाम् वातायनानि तेषु संश्रितास्तासाम् प्रासादवातायनसंश्रितानाम्, पुष्पपुरस्य अङ्गनास्तासाम् पुष्पपुराङ्गनानाम्, नेत्राणाम् उत्सवस्तम् नेत्रोत्सवम्।

हिन्दी—विवाह के योग्य इस राजा के साथ यदि तुम विवाह करना चाहती हो, तो इनकी राजधानी में प्रवेश के समय महलों के झरोखों में बैठी हुई पाटलिपुत्र नगर की स्त्रियों के नेत्रों को आनन्दित करो, अर्थात् वहाँ की सर्वोत्तम स्त्रियाँ भी तुम्हारी सुन्दरता को देखकर प्रसन्न होंगी ॥ २४ ॥

एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य किञ्चिद्विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला ।
ऋजुप्रणामक्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैनमभाषमाणा ॥ २५ ॥

संजी०—एवमिति । एवं तया सुनन्दयोक्ते सति तं परन्तपमवेक्ष्य किञ्चिद्विस्रंसिनी दूर्वाङ्का दूर्वाचिह्ना मधूकमाला गुडपुष्पमाला यस्याः सा 'मधूके तु गुडपुष्पमधुद्रुमौ' इत्यमरः । वरणे शिथिलप्रयत्नेति भावः । तन्वीन्दुमत्येनं नृपमभाषमाणञ्चा भावशून्यया प्रणामक्रिययैव प्रत्यादिदेश परिजहार ॥ २५ ॥

अन्वयः—एवम् तया उक्ते सति, तम् अवेक्ष्य किञ्चित् विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला तन्वी एनम् अभाषमाणा ऋजुप्रणामक्रियया एव प्रत्यादिदेश ।

व्याख्या—एवम् = पूर्वोक्तप्रकारेण, तया = सुनन्दया, उक्ते = कथिते सति, तम् = परन्तपम्, अवेक्ष्य = अवलोक्य, किञ्चित् = ईषत्, विस्रंसिनी = स्रस्ता, दूर्वाङ्का = शतपर्विकाङ्का मधूकानाम् = गुडपुष्पाणाम् माला = स्रक् यस्याः सा किंचिद्विस्रंसिदुर्वाङ्कमधूकमाला, तन्वी = कृशा = इन्दुमतीत्यर्थः एनम् = राजानम् भाषते इति भाषमाणा न भाषमाणेति अभाषमाणा = अब्रुवाणा, ऋजुः = भावशून्या सामान्येत्यर्थः प्रणामस्य = नमस्कारस्य क्रिया = करणम् तयैव ऋजुप्रणामक्रियामात्रेण प्रत्यादिदिदेश = प्रत्याख्यातवती । एतस्य वरणे शिथिलप्रयत्ना सती अन्यत्र जगामेति भावः ।

समासः—दूर्वाणाम् अङ्कः यस्यां सा दूर्वाङ्का, किंचिद्विस्रंसिनी दूर्वाङ्का मधूकानां माला यस्याः सा तथोक्ता । प्रणामस्य क्रिया इति प्रणामक्रिया, ऋजुः प्रणामक्रिया, इति ऋजुप्रणामक्रिया तया तथोक्तया । भाषते इति भाषमाणा न भाषमाणा इति अभाषमाणा ।

हिन्दी—इस प्रकार सुनन्दा के कहने पर और इस परन्तप राजा को देखकर जिसके हाथ की दूब में गुथी हुई महुवे की माला कुछ सरक गई ऐसी इन्दुमती बिना कुछ कहे सुने ही, सीधा सा प्रणाम करके उस राजा को अस्वीकार कर दिया । अर्थात् परन्तप राजा को छोड़कर आगे बढ़ गई ॥ २५ ॥

तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय।
समीरणोत्थेव तरङ्गलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीम्॥ २६ ॥

संजी०—तामिति। सैव नान्या, चितज्ञत्वादिति भावः। वेत्रग्रहणे नियुक्ता दौवारिकी सुनन्दा तां राजसुतां राजान्तरमन्यराजं निनाय। नयतिर्द्विकर्मकः। कथमिव ? समीरणोत्था वातोत्पन्ना तरङ्गलेखोर्मिपङ्क्तिर्मानसे सरसि या राजहंसी तां पद्मान्तरमिव ॥ २६ ॥

अन्वयः—**सा एव वेत्रग्रहणे, नियुक्ता, ताम् राजसुताम् समीरणोत्था तरंगलेखा मानसराजहंसीम् पद्मान्तरम् इव निनाय।**

व्याख्या—सा = पूर्वोक्ता एव = चित्तज्ञत्वात् नान्येत्यर्थः, वेत्रस्य ग्रहणम् = स्वीकारस्तस्मिन् वेत्रग्रहणे नियुक्ता = नियोजिता द्वारपालिका, सुनन्दा ताम् = पूर्वोक्ताम् राज्ञः = नृपस्य सुता = पुत्री इति राजसुता = इन्दुमती ताम् राजसुताम्, समीरणेन = वायुना उत्था = उत्पन्ना इति समीरणोत्था, तरंगाणाम् = ऊर्मीणाम् लेखा = पंक्तिरिति तरंगलेखा मानसे=मानससरोवरे या राजहंसी सिता हंसी, ताम् अन्यत् पद्मिति पद्मान्तरम् = कमलान्तरम्, तद् इव यथा निनाय निन्ये।

समासः—वेत्रस्य ग्रहणमिति वेत्रग्रहणं तस्मिन् वेत्रग्रहणे। राज्ञः सुता, इति राजसुता ताम्, राजसुताम् समीरेण उत्था इति समीरणोत्था, तरंगाणाम् लेखा तरंगलेखा, हंसीनां राज्ञी इति राजहंसी मानसे राजहंसी ताम् मानसराजहंसीम्, अन्यत् पद्मिति पद्मान्तरम् तत्।

हिन्दी—जिस प्रकार वायु से उठी तरंगों की परम्परा मानससरोवर की राजहंसिनी को एक कमल से दूसरे कमल के पास पहुँचा देती है, उसी प्रकार उसी द्वारपालिका सुनन्दा ने राजपुत्री इन्दुमती को भी दूसरे राजा के पास पहुँचा दिया। अर्थात् मगधेश्वर को छोड़कर दूसरे राजा के पास ले जाकर खड़ी कर दी ॥ २६ ॥

जगाद चैनामयमङ्गनाथः सुरङ्गनाप्रार्थितयौवनश्रीः।
विनीतनागः किल सूत्रकारैरैन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुङ्क्ते॥२७॥

संजी०—जगादेति। एनामिन्दुमतीं जगाद। किमिति, अयमङ्गनाथोऽङ्गदेशाधीश्वरः सुराङ्गनाभिः प्रार्थिता कामिता यौवनश्रीर्यस्य स तथोक्तः, पुरा

किलैनमिन्द्रसाहाय्यार्थमिन्द्रपुरगामिनमकामयन्ताप्सरस इति प्रसिद्धिः। किञ्च सूत्रकारैर्गजशास्त्रकृद्भिः पालकादिभिर्महर्षिभिर्विनीतनागः शिक्षितगजः। किलेत्यैतिह्ये। अत एव भूमिगतोऽप्यैन्द्रं पदमैश्वर्यं भुङ्क्ते, भूलोक एव स्वर्गसुखमनुभवतीत्यर्थः। गजाप्सरोदेवर्षिसेव्यत्वमैन्द्रपदशब्दार्थः। पुरा किल कुतश्चिच्छापकारणाद् भुवमवतीर्णं दिग्गजवर्गमालोक्य स्वयमशक्तेरिन्द्राभ्यनुज्ञयाऽऽनीतैर्देवर्षिभिः प्रणीतेन शास्त्रेण गजान्वशीकृत्य भुवि सम्प्रदायं प्रावर्तयदिति कथा गीयते ॥ २७ ॥

अन्वयः—**एनाम् जगाद च अयम् अंगनाथः सुरांगनाप्रार्थितयौवनश्रीः सूत्रकारैः विनीतनागः किल, अतः एव भूमिगतः अपि ऐन्द्रम् पदम् भुङ्क्ते।**

व्याख्या—सुनन्दा एनाम् = इन्दुमतीम्, जगाद = उवाच, अयम् = पुरोवर्ती राजा अंगानाम् = अंगजनपदानाम् नाथः = स्वामी, यौवनस्य श्रीरिति यौवनश्रीः सुराणाम् = देवानाम् अंगनाः = अप्सरसः, ताभिः प्रार्थिता = याचिता कामिता यौवनश्रीः = तारुण्यसौन्दर्यं यस्य सः सुरांगनाप्रार्थितयौवनश्रीः, सूत्राणि कृतवन्तस्ते सूत्रकारास्तैः सूत्रकारैः = गजशास्त्रकारैः, विनीताः शिक्षिताः, नागाः = गजाः यस्य स विनीतनागः, किल इति ऐतिह्ये, अत एव, भूमौ = पृथिव्याम्, गतः = प्राप्तः, इति भूमिगतः अपि इन्द्रस्य इदमिति ऐन्द्रम् = इन्द्रसम्बन्धि पदम् = ऐश्वर्यम् भुङ्क्ते = अनुभवति।

समासः—अंगानाम् नाथः अंगनाथः, सुराणाम् अंगनाः सुरांगनाः ताभिः प्रार्थिता यौवनस्य श्रीः यस्य सः सुरांगनाप्रार्थितयौवनश्रीः, विनीताः नागाः यस्य सः विनीतनागः, सूत्राणि कुर्वन्तीति सूत्रकारास्तैः सूत्रकारैः, इन्द्रस्येदमिति ऐन्द्रम्, तत्, भूमौ गतः भूमिगतः।

हिन्दी—और सुनन्दा इस इन्दुमती से बोली कि यह अंगदेश का राजा है। देवताओं की स्त्रियाँ भी इनकी जवानी के सौन्दर्य की कामना करती हैं और गजशास्त्र के निर्माता विद्वान् इनके हाथियों को शिक्षा देते हैं ऐसा इतिहास है। इसीलिए पृथ्वी में रहकर भी ये इन्द्र के स्वर्गीय ऐश्वर्य का भोग करते हैं ॥ २७ ॥

अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून्मुक्ताफलस्थूलतमान्स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः ॥२८॥

संजी०—अनेनेति। शत्रुविलासिनीनां स्तनेषु मुक्ताफलस्थूलतमानश्रुबिन्दून्। 'अस्रमश्रुणि शोणिते' इति विश्वः। पर्यासयता प्रस्तारयता। भर्तृवधादिति भावः। अनेनाङ्गनाथेनोन्मुच्याक्षिप्य सूत्रेण विना हारा एव प्रत्यर्पिताः। अविच्छिन्नाश्रुबिन्दुप्रवर्तनादुत्सूत्रहारार्पणमेव कृतमिवेत्युत्प्रेक्षा गम्यते॥ २८॥

अन्वयः—**शत्रुविलासिनीनाम् स्तनेषु मुक्ताफलस्थूलतमान् अश्रुबिन्दून् पर्यासयता अनेन उन्मुच्य सूत्रेण विना हाराः एव प्रत्यर्पिताः।**

व्याख्या—शत्रूणाम् = अरीणाम् विलासिन्यः = कामिन्यः तासाम् शत्रुविलासिनीनाम्, स्तनेषु = कुचेषु अतिशयेन स्थूलाः इति स्थूलतमाः, मुक्ताफलमिव = मौक्तिकमिव स्थूलतमाः = अतिपीवराः तान् मुक्ताफलस्थूलतमान्, अश्रूणाम् = नेत्रजलानाम्, बिन्दवः = कणाः तान् अश्रुबिन्दून् पर्यासयता = प्रस्तारयता (तासां पतिवधादिति भावः) अनेन=अङ्गनाथेन, उन्मुच्य = आक्षिप्य, सूत्रेण = आधारसूत्रेण विना = रहितम् हाराः = मुक्तावल्यः एव प्रत्यर्पिताः=प्रतिदत्ताः। भर्तृवधात् निरन्तरमश्रुबिन्दुपातनात् सूत्ररहितहारार्पणमेव कृतमिति भावः।

समासः—शत्रूणाम् विलासिन्यस्तासाम् शत्रुविलासिनीनाम् मुक्ताफलमिव स्थूलतमास्तान् मुक्ताफलस्थूलतमान्, अश्रूणां बिन्दवस्तान् अश्रुबिन्दून्।

हिन्दी—शत्रुओं की स्त्रियों के कुचों पर मोटे-मोटे मोतियों के समान आँसुओं की बूंदों को फैलाने वाले, इस अंगदेश के राजा ने, मानों मोतियों के हार हटाकर बिना धागे के हार ही पहना दिये हैं। अर्थात् इसने जिन राजाओं को युद्ध में मार दिया था, उन राजाओं की स्त्रियों ने पतिवियोग में मोतियों के हार उतार दिये थे, किन्तु उनके निरन्तर रोने से उन स्तनों पर गिरती हुई आँसुओं की बूँदे बड़े-बड़े मोतियों की तरह लगती थीं। उन्हें देखकर जान पड़ता था कि मानों इसने शत्रुओं की स्त्रियों के गले से मोती के हार उतार कर बिना डोरे के (आँसुओं के) हार ही पहना दिये हों॥ २८॥

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च।
कान्त्या गिरा सूनृतया च योग्या त्वमेव कल्याणि तयोस्तृतीया॥२९॥

संजी०—निसर्गेति। निसर्गतः स्वभावतो भिन्नास्पदं भिन्नाश्रयम्, सहावस्थानविरोधीत्यर्थः। श्रीश्च सरस्वती चेति द्वयमस्मिन्नङ्गनाथ एकत्र संस्था स्थितिर्यस्य

तदेकसंस्थम् उभयमिह संगतमित्यर्थः। हे कल्याणि ! 'बह्वादिभ्यश्च' इति ङीप्। कान्त्या सूनृतया सत्यप्रियया गिरा च योग्या संसर्गार्हा त्वमेव तयोः श्रीसरस्वत्योस्तृतीया। समानगुणयोर्युवयोर्दाम्पत्यं युज्यत एवेति भावः। दक्षिणनायकत्वं चास्य ध्वन्यते। तदुक्तम्—'तुल्योऽनेकत्र दक्षिणः' इति ॥ २९ ॥

अन्वयः—निसर्गभिन्नास्पदम् श्रीश्च सरस्वती च इति द्वयम् अस्मिन् एकसंस्थम्, हे कल्याणि, कान्त्या सूनृतया गिरा च योग्या त्वमेव तयोः तृतीया।

व्याख्या—निसर्गात् = स्वभावात्, भिन्नम् = अन्यत् आस्पदम् = आश्रयः यस्य तत् निसर्गभिन्नास्पदम्, श्रीश्च = लक्ष्मीश्च, सरस्वती = वाग्देवी च इति द्वयम् = द्वितयम् अस्मिन् = अंगनाथे, एकस्मिन् = एकत्र, संस्था = स्थितिः यस्य तत् एकसंस्थम्, अंगनाथे द्वयमपि संमिलितं वर्तते इति भावः। हे कल्याणि ! = हे भद्रे !, कान्त्या = शोभया, सूनृतया = सत्यप्रियया, गिरा = वाण्या, योग्या = अनुरूपा संबन्धार्हा, त्वमेव = इन्दुमती एव, तयोः = श्रीसरस्वत्योः, तृतीया = त्रित्वसंख्यापूरिका तयोः सदृशी।

समासः—निसर्गात् भिन्नम् आस्पदं यस्य तत् निसर्गभिन्नास्पदम्, एकस्मिन् संस्था यस्य तत् एकसंस्थम्।

हिन्दी—स्वभाव से ही भिन्न-भिन्न आश्रय में रहने वाली लक्ष्मी और सरस्वती, इस अंगदेश के राजा के पास एक साथ मिलकर रहती हैं। अर्थात् ये विद्वान् भी हैं और लक्ष्मीवान् भी हैं। अतः हे कल्याणि ! सौन्दर्य से तथा मधुरभाषिणी होने से तुम ही इन दोनों के साथ तीसरी बन जाओ। अर्थात् समान गुणवाले तुम दोनों का विवाह ठीक सुखदायक रहेगा ॥ २९ ॥

अथाङ्गराजादवतार्य चक्षुर्याहीति जन्यामवदत्कुमारी।
नासौ न काम्यो न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा भिन्नरुचिर्हि लोकः ॥३०॥

सं॰ टी॰—अथेति। अथ कुमार्यङ्गराजाच्चक्षुरवतार्य, अपनीयेत्यर्थः। जन्या मातृसखीम्। 'जन्या मातृसखीमुदोः' इति विश्वः। सुनन्दां याहि गच्छेत्यवदत्। 'यातेति जन्यामवदत्' इति पाठे जनीं वधूं वहन्तीति जन्या वधूबन्धवः। तान् यात गच्छतेत्यवदत्। 'जन्यो वरवधूज्ञातिप्रियतुल्यहितेऽपि च' इति विश्वः। अथवा जन्या वधूभृत्याः 'भृत्यश्चापि नवोढायाः' इति केशवः। 'संज्ञायां जन्या—' इति यत्प्रत्ययान्तो

निपातः । यदत्राह वृत्तिकारः—'जनीं वधूं वहन्तीति जन्या जामातुर्वयस्याः' इति । यच्चामरः 'जन्याः स्निग्धा वरस्य ये' इति तत्सर्वमुपलक्षणार्थमित्यविरोधः । न चायमङ्गराजनिषेधो दृश्यदोषान्नापि द्रष्टृदोषादित्याह—नेत्यादिना । असावङ्गराजः काम्यः कमनीयो नेति न, किन्तु काम्य एवेत्यर्थः । सा कुमारी च सम्यग्द्रष्टुं विवेक्तुं न वेदेति न, वेदेत्यर्थः । किन्तु लोको जनो भिन्नरुचिर्हि रुचिरमपि किञ्चित्कस्मैचिन्न रोचते । किं कुर्मो न हीच्छा नियन्तुं शक्यत इति भावः ॥३०॥

अन्वयः—अथ कुमारी अंगराजात् चक्षुः अवतार्य, जन्याम् याहि इति अवदत्, असौ काम्यः न (इति) न सा च सम्यक् द्रष्टुं न वेद (इति) न (किन्तु) हि लोकः भिन्नरुचिः, भवतीति शेषः ।

व्याख्या—अथ = सुनन्दावाक्यश्रवणानन्तरम्, कुमारी = इन्दुमती अंगानां = राजा—स्वामी इति अङ्गराजस्तस्मात् अंगराजात्, चक्षुः = दृष्टिम्, अवतार्य = अपनीय, जन्याम् = मातृसखीं सुनन्दाम्, याहि = गच्छ त्वमेनं परित्यज्य अग्रे गच्छेति, अवदत् = अब्रवीत् । असौ = अंगराजः, काम्यः = कमनीयः मनोहरः, न = नहि, इति न, किन्तु सुन्दर एव, सा = इन्दुमती च, सम्यक् = सुष्ठु प्रकारेण, द्रष्टुम् = अवलोकयितुं विवेक्तुमित्यर्थः, न वेद = न जानाति इति न जानात्येव, किन्तु हि = यतः लोकः जनः भिन्ना = पृथक् रुचिः = अभिलाषः यस्य स भिन्नरुचिः भवति, सर्वेषां जनानां भिन्ना-भिन्ना रुचिः जायते । यद्वस्तु एकस्मै जनाय रोचते, तद्वस्तु अन्यस्मै न रोचते इति किं कुर्मः कस्यापि जनस्य रुचिः नियन्तुं न शक्येति ।

समासः—अंगानाम् राजेति अंगराजस्तस्मात्, भिन्ना रुचिर्यस्य सः भिन्नरुचिः । लोक्यते असौ लोकः ।

हिन्दी—इस प्रकार सुनन्दा के वचन सुनने के पश्चात् इन्दुमती ने अंगदेश के राजा पर से आँखें हटाकर सुनन्दा से कहा कि चलो, आगे बढ़ो । क्या वह राजा सुन्दर नहीं था, अथवा इन्दुमती ने ही उसे ठीक से नहीं देखा यह बात नहीं है । अर्थात् वह सुन्दर भी है और इन्दुमती ने भी ठीक से देखा है । किन्तु मनुष्य की अपनी-अपनी रुचि भिन्न होती है । किसी को कोई सुन्दर प्रतीत होता है और किसी को कोई ॥ ३० ॥

ततः परं दुष्प्रसहं द्विषद्भिर्नृपं नियुक्ता प्रतिहारभूमौ ।
निदर्शयामास विशेषदृश्यमिन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै ॥ ३१ ॥

संजी०—तत इति । ततोऽन्तरं प्रतिहारभूमौ द्वारदेशे नियुक्ता दौवारिकी । स्त्री द्वाद्वारं प्रतीहारः' इत्यमरः द्विषद्भिः शत्रुभिर्दुष्प्रसहं दुःसहम्, शूरमित्यर्थः । विशेषेण दृश्यं दर्शनीयं, रूपवन्तमित्यर्थः । परमन्यं नृपम् । नवोत्थानं नवोदयमिन्दुमिव । इन्दुमत्यै निदर्शयामास ॥ ३१ ॥

अन्वयः—ततः प्रतिहारभूमौ नियुक्ता द्विषद्भिः दुष्प्रसहं विशेषदृश्यं परम् नृपम् नवोत्थानम इन्दुम् इव इन्दुमत्यै निदर्शयामास ।

व्याख्या—ततः=अनन्तरम् प्रतिहारस्य भूमिरिति प्रतिहारभूमिः तस्याम् प्रतीहारभूमौ=द्वारप्रदेशे नियुक्ता=निरूपिता द्वारपालिका, द्विषद्भिः । दुःखेन प्रसह्यते इति दुष्प्रसहस्तम् दुष्प्रसहम्=दुःसहम् शूरम्, विशेषेण=अतिशयेन, दृश्यम्=दर्शनीयम्, सुन्दरमित्यर्थः, परम्=अपरम्, नृपम्=राजानाम्, नवं= नूतनम्, उत्थानम्=आविर्भावो यस्य सः तं नवोत्थानम्, इन्दुम्=चन्द्रम्, इव= यथा, इन्दुमत्यै=कुमार्यै, निदर्शयामास=प्रादर्शयत् ।

समासः—दुःखेन प्रसह्यते इति दुष्प्रसहस्तं दुष्प्रसहम्, प्रतिहारस्य भूमिस्तस्यां प्रतिहारभूमौ, विशेषेण दृश्यस्तं विशेषदृश्यम्, नवम् उत्थानम् यस्य स तं नवोत्थानम् ।

हिन्दी—इसके पश्चात् द्वार की रक्षा में नियुक्त की हुई सुनन्दा ने शत्रुओं के लिए असह्य अर्थात् शूरवीर और अत्यन्त सुन्दर एक दूसरा राजा, इन्दुमती को दिखाया जो कि नवोदित पूर्णचन्द्र के समान था ॥ ३१ ॥

अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः ।
आरोप्य चक्रभ्रमनुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यत्नोल्लिखितो विभाति ॥३२॥

संजी०—अवन्तीति । उदग्रबाहुर्दीर्घबाहुर्विशालवक्षास्तनुवृत्तमध्यः कृशवर्तुलमध्योऽयं राजाऽवन्तिनाथोऽवन्तिदेशाधीश्वरः । त्वष्ट्रा विश्वकर्मणा । भर्तुस्तेजोवेगमसहमानया दुहित्रा संज्ञादेव्या प्रार्थितेनेति शेषः । चक्रभ्रमं चक्राकारं शस्त्रोत्तेजनयन्त्रम् । 'भ्रमोऽम्बुनिर्गमे भ्रान्तौ कुण्डाख्ये शिल्पियन्त्रके' इति विश्वः । आरोप्य यत्ने-

नोल्लिखित उष्णतेजाः सूर्य इव विभाति। अत्र मार्कण्डेयः—'विश्वकर्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वता। भ्रममारोप्य तत्तजःशातनायोपचक्रमे॥' इति॥ ३२॥

अन्वयः—**उदग्रबाहुः, विशालवक्षाः, तनुवृत्तमध्यः, अयम् अवन्तिनाथः, त्वष्ट्रा चक्रभ्रमम् आरोप्य, यत्नोल्लिखितः उष्णतेजाः इव विभाति।**

व्याख्या—उदग्रौ दीर्घौ, बाहू=भुजौ यस्य स उदग्रबाहुः, विशालम्=विपुलम् विस्तीर्णमित्यर्थः, वक्षः=उरस्थलं यस्य स विशालवक्षाः, तनुः=कृशः, वृत्तः=वर्तुलः, मध्यः मध्यमः यस्य सः तनुवृत्तमध्यः, अयम्=पुरोवर्ती राजा, अवन्त्याः=उज्जयिन्याः नाथः=स्वामी अवन्तिनाथः अस्तीति शेषः, त्वष्ट्रा—विश्वकर्मणा चक्रः=चक्राकारश्चासौ भ्रमः=शिल्पियंत्रम्, इति चक्रभ्रमस्तम् चक्रभ्रमम् आरोप्य=आरोह्य, यत्नेन=प्रयत्नेन उल्लिखितः=शातनितः=घर्षितः इत्यर्थः, इति यत्नोल्लिखितः उष्णम्=तिग्मम् तेजः=प्रतापो यस्य स उष्णतेजाः=सूर्यः इव=यथा आभाति=दीप्यते।

समासः—उदग्रौ बाहू यस्य स उदग्रबाहुः। विशालं वक्षः यस्य सः विशालवक्षाः, तनुः वृत्तश्च मध्यः यस्य स तनुवृत्तमध्यः, अवन्त्याः नाथः इति अवन्तिनाथः, चक्रश्चासौ भ्रमस्तं चक्रभ्रमम् उष्णं तेजो यस्य स उष्णतेजाः, यत्नेन उल्लिखितः इति यत्नोल्लिखितः।

हिन्दी—लम्बी भुजा और चौड़ी छाती तथा पतली गोल कमर वाला यह उज्जयनी का राजा है। जो कि सूर्य के समान ऐसा चमक रहा है मानो विश्वकर्मा ने अपने शान चढ़ाने वाले चक्र पर रखकर बड़े ही प्रत्यन से खराद किया हो। एक बार विश्वकर्मा की कन्या और सूर्यदेव की पत्नी संज्ञादेवी ने भगवान् सूर्य के तेज को न सह कर अपने पिता से प्रार्थना की, तब विश्वकर्मा ने सूर्य की अनुमति से सूर्य को अपने चक्र पर चढ़ाकर खराद दिया तब वे अधिक सुन्दर गोल-मटोल हो गए, और तेज भी सहने योग्य हो गया, ऐसी पौराणिक कथा है॥ ३२॥

अस्य प्रयाणेषु समग्रशक्तेरग्रेसरैर्वाजिभिरुत्थितानि।
कुर्वन्ति सामन्तशिखामणीनां प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि॥ ३३॥

संजी०—अस्येति। समग्रशक्तेः शक्तित्रयसम्पन्नस्यास्यावन्तिनाथस्य प्रयाणेषु जैत्रयात्रास्वग्रेसरैर्वाजिभिरश्वैरुत्थितानि रजांसि सामन्तानां समन्ताद्भवानां राज्ञां

ये शिखामणयश्चूडामणयस्तेषां प्रभाप्ररोहास्तमयं तेजोङ्कुरनाशं कुर्वन्ति । नासीरैरेवास्य शत्रवः पराजीयन्त इति भावः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—**समग्रशक्तेः अस्य प्रयाणेषु अग्रेसरैः वाजिभिः उत्थितानि रजांसि सामन्तशिखामणीनाम् प्रभाप्ररोहास्तमयम् कुर्वन्ति ।**

व्याख्या—समग्राः = सम्पूर्णाः शक्तयः = प्रभावोत्साहमंत्रजाः, यस्य सः समग्रशक्तिस्तस्य समग्रशक्तेः, अस्य = अवन्तिनाथस्य, प्रयाणेषु = विजययात्रासु, अग्रे सरन्ति ते अग्रेसरास्तैः अग्रेसरैः = अग्रगामिभिः वाजिभिः = तुरंगमैः, उत्थितानि = उद्धृतानि रजांसि = रेणवः सामन्तानाम् = समन्ताद्भवानाम् राज्ञां शिखाः = चूड़ास्तासु मणयः = रत्नानि, इति ते तेषाम् सामन्तशिखामणीनाम्, प्रभा=कान्तिः, तस्याः प्ररोहाः = अंकुराः तेषाम्, अस्तमयं = नाशं कुर्वन्ति = विदधति।

समासः—समग्राः शक्तयो यस्य स तस्य समग्रशक्तेः, अग्रे सरन्ति ते अग्रेसरास्तैः अग्रेसरैः, सामन्तानाम् शिखासु मणयस्तेषाम् सामन्तशिखामणीनाम् प्रभायाः प्ररोहास्तेषाम् अस्तमयः, तं प्रभाप्ररोहास्तमयम् ।

हिन्दी—त्रिविध शक्तिशाली यह राजा जब अपने शत्रुओं पर चढ़ाई करते हैं, तब सेना के आगे चलने वाले घोड़ों की टापों से उठी हुई धूली से शत्रु सामन्त राजाओं के मुकुट की मणियों की चमक नष्ट हो जाती है। अर्थात् इस राजा के घोड़े ही शत्रुओं को पराजित कर देते हैं ॥ ३३ ॥

असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः ।
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान् ॥३४॥

संजी०—असाविति । असाववन्तिनाथः महाकालं नाम स्थानविशेषः । तदेव निकेतनं मुकुटस्थानं यस्य तस्य चन्द्रमौलेरीश्वरस्यादूरे समीपे वसन् । अत एव हेतोस्तमिस्रपक्षे कृष्णपक्षेऽपि प्रियाभिः सह ज्योत्स्नावतः प्रदोषान् रात्रीर्निर्विशत्यनुभवति किल । नित्यज्योत्स्नाविहारत्वमेतस्यैव नान्यस्येति भावः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—**असौ महाकालनिकेतनस्य चन्द्रमौलेः अदूरे वसन् (अत एव) तमिस्रपक्षे अपि प्रियाभिः सह ज्योत्स्नावतः प्रदोषान् निर्विशति किल ।**

व्याख्या—असौ=अवन्तिनाथः, महाकालम्=एतन्नामकं स्थानम् एव निकेतनम्=स्थानम् यस्य सः, तस्य महाकालनिकेतनस्य चन्द्रः=इन्दुः मौलौ=मस्तके यस्य सः,

तस्य चन्द्रमौलेः = ईश्वरस्य, अनतिदूरे=समीपे, वसन् = निवसन्, तमिस्रस्य= तिमिरस्य, अन्धकारस्येत्यर्थः, पक्षः = कृष्णपक्षः, तस्मिन् तमिस्रपक्षेऽपि प्रियाभिः = स्वपत्नीभिः, सह = सार्धम्, ज्योत्स्ना=कौमुदी विद्यते येषु ते तान् ज्योत्स्नावतः, प्रदोषान् = रात्रीः, निर्विशति = अनुभवति किल ।

समासः—महाकालमेव निकेतनं यस्य सः, तस्य महाकालनिकेतनस्य, चन्द्रः मौलौ यस्य तस्य चन्द्रमौलेः, तमिस्रस्य पक्षस्तस्मिन् तमिस्रपक्षे, ज्योत्स्ना विद्यते येषु ते ज्योत्स्नावन्तः, तान् ज्योत्स्नावतः ।

हिन्दी—यह उज्जयनी का राजा महाकालमन्दिर में रहने वाले और मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाले शिवजी के समीप ही रहता है। (अर्थात् इसका महल महाकाल के पास में है) इसीलिए कृष्ण पक्ष में भी यह अपनी रानियों के साथ चाँदनी रातों का आनन्द भोगता है। अर्थात् शिवजी के मस्तक पर लगे चाँद की चाँदनी से इसका महल सदा जगमगाता रहता है ॥३४॥

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते ।
सिप्रातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु ॥३५॥

संजी०—अनेनेति । रम्भे कदलीस्तम्भाविवोरू यस्याः सा रम्भोरूस्तस्याः सम्बोधनम् । हे रम्भोरु ! 'ऊरूत्तरपदादौपम्ये' इत्यूङ्प्रत्ययः । नदीत्वाद्ध्रस्वः । यूनानेन पार्थिवेन सह । सिप्रा नाम तत्रत्या नदी, तस्यास्तरङ्गाणामनिलेन कम्पिता-सूद्यानानां परम्परासु पङ्क्तिषु विहर्तुं ते तव मनसो रुचिः कच्चित् । स्पृहास्ति किमित्यर्थः । 'अभिष्वङ्गे स्पृहायां च गभस्तौ च रुचिः स्त्रियाम्' इत्यमरः ॥३५॥

अन्वयः—**हे रम्भोरु यूना अनेन पार्थिवेन सह, सिप्रातरंगानिलकम्पितासु उद्यानपरम्परासु विहर्तुम् ते मनसः रुचिः कच्चित् ?**

व्याख्या—रम्भे = कदलीस्तम्भौ इव ऊरू = जङ्घे यस्याः सा, तस्याः संबोधने हे रम्भोरु । यूना = तरुणेन, अनेन = पुरोवर्तिना पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः, तेन पार्थिवेन = राज्ञा, सह = सार्धम्, सिप्रायाः=नद्याः, तरंगाः = ऊर्मयः तेषाम् अनिलः = पवनस्तेन, कम्पिताः=चालितास्तासु इति सिप्रातरंगानिलकम्पितासु, उद्यानानाम्= उपवनानाम्, परम्पराः = पङ्क्तयस्तासु उद्यानपरम्परासु, विहर्तुम्= विहारं कर्तुम्, ते =तव, मनसः = चित्तस्य, रुचिः = अभिलाषः, कच्चित् = किम् अभिलाषोस्ति किमित्यर्थः ।

समास:—रम्भे इव ऊरू यस्याः सा तस्याः संबुद्धौ हे रम्भोरु ! पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवस्तेन पार्थिवेन । सिप्रायाः तरंगाः सिप्रातरंगाः तेषामनिलस्तेन कम्पितास्तासु सिप्रातरंगानिलकम्पितासु, उद्यानानाम् परम्परास्तासु उद्यान-परम्परासु ।

हिन्दी—केले के खम्बे के समान जाँघवाली (चिकनी तथा ढँलवाँ जाँघ) इन्दुमती ! इस जवान राजा के साथ अवन्ति के उन उद्यानों में विहार करने की तुम्हारे मन की अभिलाषा है क्या ? जिन्हें सिप्रा नदी की तरंगों के शीतल वायु ने सदा कम्पित किया है । अर्थात् जिन बगीचों में सिप्रा नदी का शीतल मन्द और सुरभित पवन सदा हरहराता रहता है ॥३५॥

तस्मिन्नभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के ।
बबन्ध सा नोत्तमसौकुमार्या कुमुद्वती भानुमतीव भावम् ॥३६॥

संजी—तस्मिन्निति । उत्तमसौकुमार्योत्कृष्टाङ्गमार्दवा सेन्दुमती । अभिद्योतितान्युल्लसितानि बन्धव एव पद्मानि येन तस्मिन् । तस्मिन्नवन्तिनाथे कुमुद्वती । 'कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्' इति ड्मतुप्प्रत्ययः । भानुमत्यंशुमतीव भावं चित्तं न बबन्ध, न तत्रानुरागमकरोदित्यर्थः । बन्धूनां पद्मत्वेन च निरूपणं राज्ञः सूर्य-साम्यार्थम् ॥३६॥

अन्वय:—**उत्तमसौकुमार्या सा अभिद्योतितबन्धुपद्मे प्रतापसंशोषितशत्रु-पङ्के तस्मिन् कुमुद्वती भानुमती इव भावं न बबन्ध ।**

व्याख्या—सुकुमारस्य भावः कर्म वा सौकुमार्यम् उत्तमम्=उत्कृष्टम् सौकुमार्यम् शरीरमार्दवं यस्याः सा उत्तमसौकुमार्या, सा=इन्दुमती, बन्धवः= बान्धवजनाः, एव पद्मानि=कमलानि इति बन्धुपद्मानि, अभिद्योतितानि= विकचितानि, उल्लसितानि बन्धुपद्मानि येन सः, तस्मिन् अभिद्योतितबन्धुपद्मे, प्रतापेन=तेजसा, संशोषिताः=शुष्कतांनीताः, शत्रवः=अरयः एव पङ्काः=कर्दमाः येन तस्मिन् प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के, तस्मिन्=अवन्तिनाथे, कुमुदानि सन्ति अस्याः सा कुमुद्वती=कुमुदिनी भानवः सन्त्यस्येति भानुमान् तस्मिन् भानुमति=अंशुमति सूर्ये इत्यर्थः, इव=यथा, भावं=चित्तं न बबन्ध=नहि तस्मिन्ननुरागं कृतवती ।

समासः—उत्तमं सौकुमार्यं यस्याः सा उत्तमसौकुमार्या, बन्धव एव पद्मानीति बन्धुपद्मानि, अभिद्योतितानि बन्धुपद्मानि येन सः, तस्मिन् अभिद्योतितबन्धुपद्मे, प्रतापेन संशोषिताः शत्रव एव पङ्का येन स तस्मिन् प्रतापसंशोषितशत्रुपङ्के ।

हिन्दी—अत्यन्त सुकुमार शरीरवाली उस इन्दुमती को, बन्धुजनों को प्रसन्न करने वाला तथा अपने तेज से शत्रुओं को नष्ट करने वाला वह उज्जयिनी का राजा उसी प्रकार पसन्द नहीं आया, जिस प्रकार रात में खिलनेवाला कुमुदिनी को कमल को खिलाने वाला और कीचड़ को सुखा देने वाला सूर्य नहीं भाता ॥ ३६ ॥

तामग्रतस्तामरसान्तराभामनूपराजस्य गुणैरनूनाम् ।
विधाय सृष्टिं ललितां विधातुर्जगाद भूयः सुदतीं सुनन्दा ॥३७॥

संजी०—तामिति । सुनन्दा तामरसान्तराभां पद्मोदरतुल्यकान्तिं, कनकगौरीमित्यर्थः । गुणैरनूनाम्, अधिकामित्यर्थः । शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती, 'वयसि दन्तस्य दतृ' इति दत्रादेशः 'उगितश्च' इति ङीप् । तां प्रकृतां प्रसिद्धां वा विधातुर्ललितां सृष्टिं मधुरनिर्माणं स्त्रियमित्यर्थः । अनुगता आपो येषु तेऽनूपा नाम देशाः । 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इत्यप्रत्ययः समासान्तः, 'ऊदनोर्देशे' इत्यूदादेशः । तेषां राज्ञोऽनूपराजस्याग्रतो विधाय व्यवस्थाप्य भूयः पुनर्जगाद ॥३७॥

अन्वयः—**सुनन्दा तामरसान्तराभाम् गुणैः अनूनाम् सुदतीं ताम् विधातुः ललितां सृष्टिम् अनूपराजस्य अग्रतः विधाय भूयः जगाद ।**

व्याख्या—सुनन्दा = दौवारिकी, तामरसानां=कमलानां, अन्तरं=मध्यभागः उदरमित्यर्थः तद्वत् आभा=कान्तिः यस्याः सा ताम् तामरसान्तराभाम्=पद्मकान्ति कनकगौरीमित्यर्थः, गुणैः सौन्दर्यादिभिः, दयादाक्षिण्यादिभिश्च न नूना इति अनूना ताम् अनूनाम् = अधिकाम्, शोभनाः दन्ताः = दशनाः यस्याः, सा, ताम् सुदतीम् ताम्=प्रसिद्धाम्, इन्दुमतीम्, विदधति लोकमिति विधाता तस्य विधातुः = ब्रह्मणः, ललिताम् = मधुराम्, सृष्टिम् = सर्जनम् स्त्रीरूपाम्, अनुगताः आपः येषु ते अनूपाः = देशविशेषास्तेषां राजा = स्वामी तस्य अनूपराजस्य, अग्रतः विधाय = अग्रे कृत्वा, भूयः = पुनः जगाद = उवाच ।

समास:—तामरसानाम् अन्तरमिति तामरसान्तरम्, तद्वत् आभा यस्याः सा ताम्, तामरसान्तराभाम्, शोभनाः दन्ताः यस्या सा तां सुदतीम्। अनुगताः आपः येषु ते अनूपास्तेषां राजा तस्य अनूपराजस्य।

हिन्दी—कमल के मध्य के समान कान्तिवाली, बड़ी गुणवती, सुन्दर दाँतों वाली, और ब्रह्मा की उस सुन्दर मधुर रचना इन्दुमती को अनूपदेश के राजा के सामने खड़ी करके फिर सुनन्दा कहने लगी॥ ३७॥

सङ्ग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः॥ ३८॥

संजी०—संग्रामेति। संग्रामेषु युद्धेषु निर्विष्टा अनुभूताः सहस्रं बाहवो यस्य स तथोक्तः। युद्धादन्यत्र द्विभुज एव दृश्यत इत्यर्थः। अष्टादशसु द्वीपेषु निखाताः स्थापिता यूपा येन स तथोक्तः। सर्वक्रतुयाजी सार्वभौमश्चेति भावः। जरायुजादिसर्वभूतरञ्जनादनन्यसाधारणो राजशब्दो यस्य स तथोक्तः। योगी ब्रह्मविद्विद्वानित्यर्थः। स किल भागवतो दत्तात्रेयाल्लब्धयोग इति प्रसिद्धः। कृतवीर्यस्यापत्यं पुमान्कार्तवीर्यो नाम राजा बभूव किलेति। अयं चास्य महिमा सर्वोऽपि दत्तात्रेयवरप्रसादलब्ध इति भारते दृश्यते॥ ३८॥

अन्वय:—संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुः, अष्टादशद्वीपनिखातयूपः, अनन्यसाधारणराजशब्दः योगी कार्तवीर्यः बभूव किल।

व्याख्या—संग्रामेषु=युद्धेषु, निर्विष्टाः=प्रविष्टाः अनुभूता इत्यर्थः सहस्रम्=सहस्रसंख्याकाः, बाहवः=भुजाः यस्य सः संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुः अष्टादशसु द्वीपेषु=अन्तरीपेषु, निखाताः=स्थापिताः, यूपाः=विजयस्तम्भाः येन सः, अष्टादशद्वीपनिखातयूपः। अन्येषां साधारण इति, अन्यसाधारणः, अन्यसाधारणो न भवति सोऽनन्यसाधारणः, अनन्यसाधारणः=विशिष्टः=अद्वितीयः राजेति शब्दो यस्य सः अनन्यसाधारणराजशब्दः सर्वप्राणिरञ्जानादित्यर्थः, योगी=योगयुक्तः ब्रह्मज्ञ इत्यर्थः। कृतवीर्यस्य अपत्यं पुमानिति कार्तवीर्यः=कार्तवीर्यनामा राजा बभूव=जातः, किलेति प्रसिद्धौ।

समास:—संग्रामे निर्विष्टाः सहस्रं बाहवो यस्य स तथोक्तः। अष्टौ च दश इति अष्टादश अष्टादश च ते द्वीपाः इत्यष्टादशद्वीपाः, तेषु निखाताः यूपाः येन सः अष्टादशद्वीपनिखातयूपः। अन्येषां साधारणः अन्यसाधारणः अन्यसाधारणः न

भवति यः सोऽनन्यसाधारणः अनन्यसाधारणः राजेतिशब्दो यस्य सोऽनन्यसाधारण-राजशब्दः । योगोऽस्यास्तीति योगी । कृतवीर्यस्यापत्यं पुमान् कार्तवीर्यः ।

हिन्दी—युद्धस्थल में हजार भुजाओं का अनुभव करने वाले (अर्थात् लड़ने के समय हजार बाहु निकल आते थे) और अठारह द्वीपों में जिसने अपनी विजय के खम्भे गाड़ दिये थे और जिसके सामने कोई दूसरा राजा ही (सर्व-प्राणियों को रंजन न करने में) नहीं कहलाता था, ऐसा प्रतापी कार्तवीर्य नाम का योगी राजा हुआ ॥३८॥

अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवंश्चापधरः पुरस्तात् ।
अन्तःशरीरेष्वपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता ॥३९॥

संजी०—अकार्येति । विनेता शिक्षको यः कार्तवीर्यः । अकार्यस्यासत्कार्यस्य चिन्तया, अहं चौर्यादिकं करिष्यामीति बुद्ध्या । समकालमेककालमेव यथा तथा पुरस्तादग्रे चापधरः प्रादुर्भवन्सन्, प्रजानां जनानाम्, 'प्रजा स्यात्सन्ततौ जने' इत्यमरः । अन्तःशरीरेष्वन्तःकरणेषु शरीरशब्देनेन्द्रियं लक्ष्यते । अविनयमपि प्रत्यादिदेश मानसापराधमपि निवारयामासेत्यर्थः । अन्ये तु वाक्कायापराधमात्र-प्रतिकर्तार इति भावः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—**विनेता यः अकार्यचिन्तासमकालम् एव (यथा स्यात् तथा) पुरस्तात् चापधरः प्रादुर्भवन् सन्, प्रजानाम् अन्तःशरीरेषु अपि अविनयम् प्रत्यादिदेश ।**

व्याख्या—विशेषेण नयति जनान् इति विनेता=शिक्षकः, यः = कार्तवीर्यः, अकार्यस्य=असत्कार्यस्य चौर्यादेरित्यर्थः, चिन्ता = विचारः, इति अकार्यचिन्ता तया समकालम् = एककालम् इति अकार्यचिन्तासमकालम् एव यथा स्यात् तथा पुरस्तात्=अग्रे चौरादीनामग्रे इत्यर्थः, धरतीति धरः, चापस्य धरः चापधरः= धनुर्धरः प्रादुर्भवन् = स्वात्मानं प्रकटयन् सन् प्रजानाम्=लोकानाम् अन्तः-शरीरेषु = अन्तःकरणेषु, अपि: = समुच्चये न विनयः अविनयस्तम् असत्कार्य-विचारमित्यर्थः, प्रत्यादिदेश = निराचकार । अन्ये राजानो हस्तपादादिकृतमेवा-पराधं निवारयन्ति, कार्तवीर्यस्तु मनसा चिन्तितमपि अपराधं निवारयतीत्यर्थः ।

समास:—न कार्यमिति अकार्यं तस्य चिन्ता तया समकालमिति अकार्य-चिन्तासमकालम्, धरतीति धर: चापस्य धर: चापधर: ।

हिन्दी—विनय की शिक्षा देने वाला कार्तवीर्य, उस मनुष्य के सामने धनुष-बाण लेकर खड़ा हो जाता था, जो कि मन में भी चोरी आदि कुकार्य करने का विचार करता था। इस प्रकार उसने लोगों के मन से भी पाप को निकाल दिया था ॥ ३९ ॥

ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य विनि:श्वसद्वक्त्रपरम्परेण ।
कारागृहे निर्जितवासवेन लङ्केश्वरेणोषितमाप्रसादात् ॥४०॥

संजी०—ज्याबन्धेति । ज्याया मौर्व्या बन्धेन बन्धनेन निष्पन्दा निश्चेष्टा भुजा यस्य तेन, विनि:श्वसन्ती ज्याबन्धोपरोधाद्दीर्घं नि:श्वसन्ती वक्त्रपरम्परा दशमुखी यस्य तेन निर्जितवासवेनेन्द्रविजयिना। अत्रेन्द्रादयोऽप्यनेन जितप्राया एवेति भाव:। लङ्केश्वरेण दशास्येन यस्य कार्तवीर्यस्य कारागृहे बन्धनागारे, 'कारा स्याद्बन्धनालये' इत्यमर:। आप्रसादादनुग्रहपर्यन्तमुषितं स्थितम्। 'नपुंसके भावे क्त:'। एतत्प्रसाद एव तस्य मोक्षोपायो न तु क्षात्रमिति भाव: ॥४०॥

अन्वय:—**ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन विनि:श्वसद्वक्त्रपरम्परेण निर्जितवासवेन लङ्केश्वरेण, यस्य कारागृहे आप्रसादात् उषितम् ।**

व्याख्या—ज्याया = धनुर्गुणेन, बन्ध: = बन्धनम् तेन निष्पन्दा: = निश्चेष्टा: भुजा: = बाहवो यस्य स: ज्याबन्धनिष्पन्दभुजस्तेन तथोक्तेन, विनि:श्वसती = दीर्घं नि:श्वसन्ती वक्त्राणाम् = मुखानाम् परम्परा = पङ्क्तिर्यस्य स:, विनि:श्व-सद्वक्त्रपरम्परस्तेन विनि:श्वसद्वक्त्रपरम्परेण निर्जित: विजित: वासव: = इन्द्र: येन स निर्जितवासवस्तेन निर्जितवासवेन, लंकाया: ईश्वरस्तेन लङ्केश्वरेण = रावणेन यस्य = कार्तवीर्यस्य, कारायाः = बन्धनस्य गृहम् तस्मिन् कारागृहे आप्रसादात् = अनुग्रहपर्यन्तम्, उषितम् = स्थितम् ।

समास:—ज्याया: बन्धस्तेन निष्पन्दा: भुजा: यस्य स तेन ज्याबन्धनिष्पन्द-भुजेन, विनि:श्वसन्ती वक्त्राणाम् परम्परा यस्य स: तेन विनि:श्वसद्वक्त्रपरम्परेण, निर्जित: वासवो येन स: तेन निर्जितवासवेन, लंकाया ईश्वरस्तेन लंकेश्वरेण, काराया: गृहम् कारागृहम् तस्मिन् कारागृहे ।

हिन्दी—धनुष की डोरी से कसकर बाँधने के कारण व्यर्थ चेष्टा शून्य भुजा वाले और जिसके दशोंमुख उसांसे (दीर्घश्वास) भरते थे। ऐसे इन्द्र को भी जीतने वाले लंकेश्वर रावण ने जिस कार्तवीर्य के जेलखाने में तब तक निवास किया था जब तक कार्तवीर्य प्रसन्न नहीं हुआ था ॥ ४० ॥

तस्यान्वये भूपतिरेष जातः प्रतीप इत्यागमवृद्धसेवी ।
येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम् ॥४१॥

संजी०—तस्येति । आगमवृद्धसेवी प्रतीप इति । ख्यात इति शेषः । एष भूपतिस्तस्य कार्तवीर्यस्यान्वये वंशे जातः । येन प्रतीपेन संश्रयस्याश्रयस्य पुंसो दोषैर्व्यसनादिभी रूढमुत्पन्नं श्रियः सम्बन्धि स्वभावलोला प्रकृतिचञ्चलेत्येवंरूपमयशो दुष्कीर्तिः प्रमृष्टं निरस्तम् । दुष्टाश्रयत्यागशीलायाः श्रियः प्रकृतिचापलप्रवादो मूढजन-परिकल्पित इत्यर्थः । अयं तु दोषराहित्यान्न कदाचिदपि श्रिया त्यज्यत इति भावः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—आगमवृद्धसेवी प्रतीप इति (प्रसिद्ध इति शेषः) एषः भूपतिः तस्य अन्वये जातः, येन संश्रयदोषरूढम् श्रियः स्वभावलोला इति अयशः प्रमृष्टम् ।

व्याख्या—आगमान् = शास्त्राणि, वृद्धान् = जरठांश्च सेवते इति आगमवृद्ध-सेवी, आगमेषु वृद्धाः, इति आगमवृद्धाः=श्रुतवृद्धास्तान् सेवते इति वा आगमवृद्धसेवी, प्रतीपः = प्रतीपनाम्ना प्रसिद्धः, एषः=पुरोवर्ती, भूपतिः=राजा, तस्य = कार्तवीर्यस्य, अन्वये = वंशे, जातः = उत्पन्नः, येन=प्रतीपेन राज्ञा संश्रयस्य = आश्रयभूतपुरुषस्य दोषाः = दुर्व्यसनादयः इति आश्रयदोषास्तैः रूढम् = ख्यात, इति आश्रयदोषरूढम्, श्रियः = लक्ष्म्याः संबन्धि, स्वभावेन = प्रकृत्या लोला = चञ्चला इति स्वभावलोला, इति = इत्येवंरूपम्, अयशः = दुष्कीर्तिः प्रमृष्टम् = निरस्तम् क्षालितमित्यर्थः । सर्वगुणसम्पन्नत्वात् सर्वदोषराहित्याच्च अयन्न श्रिया कदापि परिह्रियत इत्यर्थः ।

समासः—आगमेषु वृद्धास्तान् सेवते, इति आगमवृद्धसेवी, यद्वा आगमान् वृद्धांश्च सेवते इति आगमवृद्धसेवी । संश्रयस्य दोषास्तैः रूढमिति संश्रयदोषरूढम्, स्वभावेन लोलेति स्वभावलोला, न यशः इति अयशः, भुवः पतिरिति भूपतिः ।

हिन्दी—शास्त्र और वृद्धों की सेवा करनेवाला (अथवा शास्त्र में पारंगत अर्थात् ज्ञान वृद्धों की सेवा करने वाला) प्रतीप नाम से प्रसिद्ध यह राजा उन्हीं प्रतापी कार्तवीर्य के वंश में उत्पन्न हुआ है। इस राजा ने आश्रय के दुर्व्यसनादि दोष से उत्पन्न हुई 'लक्ष्मी स्वभाव से चञ्चला है' इस दुष्कीर्ति को धो दिया है, क्योंकि लक्ष्मी उसी पुरुष को छोड़कर चली जाती है जो कि दुर्व्यसनी व प्रमादी होते हैं। राजा प्रतीप में कोई दोष नहीं है। अतः इसके पास लक्ष्मी सदा निवास करती है मूर्ख लोग व्यर्थ में ही लक्ष्मी को चंचला कहते हैं। यही भाव है ॥४१॥

आयोधने कृष्णगतिं सहायमवाप्य यः क्षत्रियकालरात्रिम् ।
धारां शितां रामपरश्वधस्य सम्भावयत्युत्पलपत्रसाराम् ॥ ४२ ॥

संजी०—आयोधन इति । यः प्रतीप आयोधने युद्धे कृष्णगतिं कृष्णवर्त्मानिमग्नि सहायमवाप्य क्षत्रियाणां कालरात्रिं, संहाररात्रिमित्यर्थः । रामपरश्वधस्य जामदग्न्यपरशोः । 'द्वयोः कुठारः स्वधितिः परशुश्च परश्वधः' इत्यमरः । शितां तीक्ष्णां धारां मुखम् । 'खड्गादीनां च निशितमुखे धारा प्रकीर्तिता' इति विश्वः । उत्पलपत्रस्य सार इव सारो यस्यास्तां तथाभूतां सम्भावयति मन्यते । एतन्नगरजिगीषयागतान्रिपून्स्वयमेव धक्ष्यामीति भगवता वैश्वानरेण दत्तवरोऽयं राजा । 'दह्यन्ते च तथागताः शत्रवः' इति भारते कथानुसन्धेया ॥ ४२ ॥

अन्वयः—यः आयोधने कृष्णगतिं सहायम् अवाप्य, क्षत्रियकालरात्रिम् रामपरश्वधस्य शितां धाराम् उत्पलपत्रसारां संभावयति ।

व्याख्या—यः प्रतीपः आयोधने = संग्रामे, कृष्णः = धूमः गतिः = गमनं यस्य स तम् कृष्णगतिम् = अग्निम् 'रोचिः शुष्मा कृष्णवर्त्मा' इत्यमरः, सहायं = सहायकम् अवाप्य = प्राप्य, क्षतात् = नाशात् त्रायते इति क्षत्रियास्तेषां क्षत्रियाणां = राजन्यानाम् कालरात्रिः = संहाररात्रिस्ताम् क्षत्रियकालरात्रिम् रामस्य = जामदग्न्यस्य परश्वधः = परशुः कुठार इत्यर्थः, तस्य रामपरश्वधस्य शिताम् = तीक्ष्णाम् धाराम् = मुखम्, उत्पलस्य = कमलस्य पत्रम् = दलम् तस्य सारः इव सारः = बलं यस्याः सा, ताम् उत्पलपत्रसाराम् सम्भावयति = मन्यते ।

समासः—आसमन्तात् युध्यन्ते (भटाः) यस्मिन् तस्मिन् आयोधने क्षतात् त्रायन्ते इति क्षत्रियास्तेषां कालरात्रिस्ताम् क्षत्रियकालरात्रिम्, रामस्य परश्वध इति राम-

परश्वधस्तस्य रामपरश्वधस्य, उत्पलस्य पत्रमिति उत्पलपत्रं तस्य सार इव सारो यस्याः सा ताम् उत्पलपत्रसाराम्।

हिन्दी—यह राजा इतना बलवान् है कि युद्ध में अग्नि की सहायता को पाकर परशुरामजी के उस फरसे की तेज (पैनी) धारा को भी कमल के पत्ते की तरह कोमल समझता है। जो कि क्षत्रियों के लिए कालरात्रि अर्थात् जिसने क्षत्रियों का २१ बार संहार कर डाला था। इसे अग्नि ने वरदान दिया था कि मैं स्वयं तेरे शत्रुओं को जला दूँगा ॥४२॥

अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम्।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः ॥४३॥

संजी०—अस्येति। दीर्घबाहोरस्य प्रतीपस्याङ्कलक्ष्मीर्भव, एनं वृणीष्वेत्यर्थः। अनेनायं विष्णुतुल्य इति ध्वन्यते माहिष्मती नामास्य नगरी। तस्या वप्रः प्राकार एव नितम्बः तस्य काञ्चीं रशनाभूताम् जलानां वेण्या प्रवाहेण रम्याम्। 'ओघः प्रवाहो वेणी च' इति हलायुधः। रेवां नर्मदां प्रासादजालैर्गवाक्षैः। 'जालं समूह आनायो गवाक्षक्षारकावपि' इत्यमरः। प्रेक्षितुं काम इच्छाऽस्ति यदि ॥४३॥

अन्वयः—**दीर्घबाहोः अस्य अंकलक्ष्मीः भव, यदि माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् जलवेणिरम्याम् रेवां प्रासादजालैः प्रेक्षितुं कामः अस्ति।**

व्याख्या—दीर्घौ = उदग्रौ बाहू = भुजौ यस्य स दीर्घबाहुस्तस्य दीर्घबाहोः अस्य = प्रतीपस्य अंकस्य = क्रोडस्य लक्ष्मीः = श्रीः इति अंकलक्ष्मीः भव = भूयाः त्वमिति शेषः, प्रतीपं वृणीष्वेत्यर्थः, यदि = चेत् माहिष्मत्याः = एतन्नामनगर्याः वप्रः = प्राकारः एव नितंबः मध्यभागः तस्य काञ्ची = रशना ताम् माहिष्मतीवप्रनितंबकाञ्चीं जलानाम् = अम्भसाम् वेणी = प्रवाहः, तया रम्या = मनोहरा ताम् जलवेणिरम्याम् रेवाम् = नर्मदाम्, प्रासादानाम् = राजभवनानाम् जालानि = गवाक्षास्तैः प्रासादजालैः प्रेक्षितुम् = अवलोकयितुम् कामः = इच्छा अस्तीति शेषः।

समासः—अङ्कस्य लक्ष्मीरिति, अंकलक्ष्मीः माहिष्मत्याः वप्रः एव नितम्बस्तस्य काञ्ची ताम् माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम्, प्रासादस्य जालानि तैः प्रासादजालैः, जलस्य वेणिः तया रम्या ताम् जलवेणिरम्याम्।

हिन्दी—लम्बी भुजा वाले इस प्रतीप राजा की तुम अंकलक्ष्मी हो जाओ (इससे विवाह कर लो) अगर जलप्रवाह से मनोहर उस नर्मदा नदी को राजभवन के झरोखों से देखने की इच्छा करती हो, जो कि माहिष्मती नगरी के परकोटा रूपी नितम्ब की तगड़ी के समान लग रही है। अर्थात् नर्मदा माहिष्मती नगर के चारों ओर तगड़ी की तरह घूमी हुई है ॥४३॥

तस्याः प्रकामं प्रियदर्शनोऽपि न स क्षितीशो रुचये बभूव ।
शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः शशीव पर्याप्तकलो नलिन्याः ॥४४॥

संजी०—तस्या इति । प्रकामं प्रियं प्रीतिकरं दर्शनं यस्य सोऽपि, दर्शनीयोऽपीत्यर्थः । स क्षितीशः । शरदा प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधो निरस्तमेघावरणः पर्याप्तकलः पूर्णकलः शशी नलिन्या इव । तस्या इन्दुमत्या रुचये न बभूव, रुचिं नाजीजनदित्यर्थः । लोको भिन्नरुचिरिति भावः ॥४४॥

अन्वयः—प्रकामम् प्रियदर्शनः अपि स क्षितीशः शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः पर्याप्तकलः शशी नलिन्याः इव तस्याः रुचये न बभूव ।

व्याख्या—प्रकामम् = यथेष्टम्, प्रियं = मनोहरं दर्शनम् अवलोकनं यस्य स प्रियदर्शनः, अपि सः = प्रतीपः क्षितेः = पृथिव्याः ईशः = नाथः, इति क्षितीशः, शरदा = शरदृतुना प्रमृष्टः = निरस्तः अम्बुधराणाम् = मेघानाम् उपरोधः = आवरणम् यस्य सः शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः, पर्याप्ताः = पूर्णाः कलाः = अंशाः यस्य स पर्याप्तकलः, शशी = चन्द्रः, नलिन्याः = कमलिन्याः, इव = यथा, तस्याः = इन्दुमत्याः रुच्यै = सन्तोषाय, न बभूव = नहि जातः, तस्मिन् प्रतीपे राज्ञि रुचिं न कृतवती ।

समासः—प्रियं दर्शनं यस्य स प्रियदर्शनः । क्षितेः ईशः क्षितीशः । शरदा प्रमृष्टः (अम्बूनि धराणि तेषां) अम्बुधराणामुपरोधो यस्य स शरत्प्रमृष्टाम्बुधरोपरोधः । पर्याप्ताः कलाः यस्य स पर्याप्तकलः ।

हिन्दी—अतीव सुन्दर होते हुए भी वह राजा इन्दुमती को वैसे ही रुचिकर नहीं हुआ जैसे शरद् ऋतु के आगमन से हट गया है मेघरूपी आवरण जिसका ऐसा मनोहर शरत्पूर्णिमा चन्द्र नलिनी को नहीं भाता ॥४४॥

सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम् ।
आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी ॥ ४५ ॥

संजी०—सेति । लोकान्तरे स्वर्गादावपि गीतकीर्तिमाचारेण शुद्धयोरुभयोर्वंशयोर्मातापितृकुलयोर्दीपं प्रकाशकम् । उभयवंशेऽत्रोभयपक्षवन्निर्वाहः । शूरसेनानां देशानामधिपतिं सुषेणं नाम नृपतिमुद्दिश्याभिसन्धाय शुद्धान्तरक्ष्यान्तःपुरपालिकया । 'कर्मण्यण्' 'टिड्ढाणञ्—' इति ङीप् । सा कुमारी जगदे ।। ४५ ।।

अन्वयः—**लोकान्तरगीतकीर्तिम्, आचारशुद्धोभयवंशदीपम्, शूरसेनाधिपतिम्, सुषेणम् उद्दिश्य शुद्धान्तरक्ष्या सा कुमारी जगदे ।**

व्याख्या—अन्यो लोकः लोकान्तरम्, लोकान्तरे=भुवनान्तरे स्वर्गादौ इत्यर्थः गीता—कीर्तिता कीर्तिः—यशो यस्य स तम्, लोकान्तरगीतकीर्तिम्, आचारेण=सदाचारेण शुद्धौ=निर्मलौ उभयौ=द्वौ वंशौ=मातापितृकुले, इति आचारशुद्धौभयवंशौ, तयोः दीपः=प्रकाशकस्तम्, आचारशुद्धौभयवंशदीपम् शूरसेनानाम्=जनपदानाम्, अधिपतिः=स्वामी, तम् शूरसेनाधिपतिम्=मथुराधिपतिमित्यर्थः, सुषेणम्=सुषेणनामानम् उद्दिश्य—अभिसंधाय, शुद्धान्तम्=अन्तःपुरम् रक्षति=पालयतीति शुद्धान्तरक्षी तया शुद्धान्तरक्ष्या=सुनन्दया सा—पूर्वोक्ता कुमारी=इन्दुमती जगदे=कथिता ।

समासः—अन्यो लोकः लोकान्तरं, लोकान्तरे गीता कीर्तिर्यस्य स तम् लोकान्तरगीतकीर्तिम् । आचारेण शुद्धौ उभयौ वंशौ, इति आचारशुद्धौभयवंशौ तयोर्दीपस्तम् आचारशुद्धोभयवंशदीपम् । शूरसेनानाम् अधिपतिस्तम् शूरसेनाधिपतिम्, शुद्धान्तं रक्षति इति शुद्धान्तरक्षी तया शुद्धान्तरक्ष्या ।

हिन्दी—स्वर्ग में जिसकी कीर्ति का गान होता था और अपने पवित्र आचरण से मातृकुल एवं पितृकुल को जिसने उज्ज्वल कर दिया था, ऐसे मथुरा के राजा सुषेण के पास ले जाकर रनिवास की सेविका सुनन्दा कुमारी इन्दुमती से बोली ।। ४५ ।।

नीपान्वयः पार्थिव एष यज्वा गुणैर्यमाश्रित्य परस्परेण ।
सिद्धाश्रमं शान्तमिवैत्य सत्त्वैर्नैसर्गिकोऽप्युत्ससृजे विरोधः ।।४६।।

संजी०—नीपान्वय इति । यज्वा विधिवदिष्टवान् । 'सुयजोर्ङ्वनिप्' इति ङ्वनिप्प्रत्ययः । एष पार्थिवो नीपो नामान्वयोऽस्येति नीपान्वयो नीपवंशजः । यं सुषेणमाश्रित्य गुणैर्ज्ञानमौनादिभिः शान्तं प्रसन्नं सिद्धाश्रममृष्याश्रममेत्य प्राप्य सत्त्वैर्गजसिंहादिभिः प्राणिभिरिव नैसर्गिकः स्वाभाविकोऽपि परस्परेण विरोध उत्ससृजे त्यक्तः ।

अन्वयः—यज्वा एषः पार्थिवः नीपान्वयः (अस्ति) यम् आश्रित्य गुणैः शान्तम् सिद्धाश्रमम् एत्य सत्त्वैः इव नैसर्गिकः अपि परस्परेण विरोधः उत्ससृजे।

व्याख्या—यजते स्म यज्वा याजकः=विधिनेष्टवान्, इत्यर्थः एषः=पुरोवर्ती पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः = भूपालः, नीपः अन्वयोऽस्येति नीपान्वयः = नीपकुलोत्पन्नः अस्तीति शेषः यम्=सुषेणम् आश्रित्य = आलम्ब्य गुणैः= ज्ञानमौनादिभिः शान्तम्= प्रसन्नम् सिद्धानाम् = तपस्विनाम् ऋषीणाम् आश्रमः = आवसथः तम् सिद्धाश्रमम्= मुक्तिस्थानमित्यर्थः, एत्य = प्राप्य सत्त्वैः = सिंहादिप्राणिभिः इव = यथा निसर्गात् जातः नैसर्गिकः = स्वाभाविकः अपिः = समुच्चये परस्परेण = अन्योन्येन विरोधः = वैरम् = विद्वेषः इत्यर्थः, उत्ससृजे = परित्यक्तः ।

समास—यजतेस्म् यज्वा, पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः नीपः अन्वयो यस्य स नीपान्वयः, सिद्धानाम् आश्रमस्तम् सिद्धाश्रमम् । निसर्गात् जातः, नैसर्गिकः ।

हिन्दी—विधिपूर्वक यज्ञ किये हुए यह राजा नीप के वंश में उत्पन्न हुआ है । इस राजा के पास आकर ज्ञान मौन आदि विरोधी गुणों ने भी आपस का स्वाभाविक विरोध उसी प्रकार त्याग दिया है जिस प्रकार ऋषि मुनियों के शान्त आश्रम में आकर हिंसक जन्तु परस्पर का स्वाभाविक विरोध त्याग देते हैं ।। ४६ ।।

यस्यात्मगेहे नयनाभिरामा कान्तिर्हिमांशोरिव संनिविष्टा ।
हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु तेजोऽविषह्यं रिपुमन्दिरेषु ।। ४७ ।।

संजी०—यस्येति । हिमांशोः कान्तिश्चन्द्रकिरणा इव नयनयोरभिरामा यस्य सुषेणस्य कान्तिः शोभात्मगेहे स्वभवने सन्निविष्टा सङ्क्रान्ता । अविषह्यं विसोढुमशक्यं तेजः प्रतापस्तु । हर्म्याग्रेषु धनिकमन्दिरप्रान्तेषु । 'हर्म्यादि धनिनां वासः' इत्यमरः । संरूढास्तृणाङ्कुरा येषां तेषु, शून्येष्वित्यर्थः । रिपुमन्दिरेषु शत्रुनगरेषु । 'मन्दिरं नगरे गृहे' इति विश्वः । सन्निविष्टम् । स्वजनाह्लादको द्विषन्तपश्चोत भावः ।। ४७ ।।

अन्वयः—हिमांशोः कान्तिः इव नयनाभिरामा यस्य कान्तिः आत्मगेहे संनिविष्टा अविह्यं तेजः (तु) हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु रिपुमन्दिरेषु संनिविष्टम् ।

व्याख्या—हिमाः=शीतलाः अंशवः=किरणाः यस्य स तस्य हिमांशोः=चन्द्रस्य कान्तिः=द्युतिः इव =यथा नयनयोः =नेत्रयोः अभिरामा =मनोहरा, इति नयनाभिरामा

यस्य = सुषेणस्य कान्तिः = शोभा आत्मनः = स्वस्य, गेहम् = गृहम् इति तस्मिन् आत्मगेहे संनिविष्टा = संक्रान्ता। न विषह्यमिति अविषह्यम् = प्रचण्डम् सोढुमशक्यमित्यर्थः तेजः = प्रतापः (तु) हर्म्याणाम् = धनिकभवनानाम् अग्राणि = प्रान्तभागा स्तेषु संरूढाः = उत्पन्नाः, तृणानाम् = घासानाम्, अङ्कुराः = अंकूराः = नूतनप्ररोहा इत्यर्थः, येषान्ते तेषु हर्म्याग्रसंरूढतृणाङ्कुरेषु ('अंकुरश्चाङ्कूरः प्रोक्त' इति हलायुधः) रिपूणाम् = शत्रूणाम् मन्दिराणि = नगराणि तेषु रिपुमन्दिरेषु संनिविष्टम् = व्याप्तम्। अयं खलु स्वसुहृद्वर्गाह्लादकः शत्रुवर्गतापकश्चेत्यर्थः।

समास:—हिमाः अंशवो यस्य स तस्य हिमांशोः। नयनयोः अभिरामा नयनाभिरामा। आत्मनः गेहमिति तस्मिन् आत्मगेहे। हर्म्याणाम् अग्राणि तेषु संरूढाः तृणानाम् अङ्कुराः येषान्ते तेषु हर्म्याग्रसंरूढतृणांकुरेषु। रिपूणाम् मन्दिराणि तेषु रिपुमन्दिरेषु।

हिन्दी—चन्द्रमा की चाँदनी के समान आँखों को आनन्द देने वाला सुषेण राजा का प्रकाश तो अपने घर में रहता है। और सूर्य के समान इनका प्रचण्ड तेज शत्रुओं के उन नगरों में छाया रहता है जिनके उजड़ जाने से धनिकों के भवनों के अग्रभाग में घास के अंकुर निकल आए हैं॥ ४७॥

यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले।
कलिन्दकन्या मथुरां गतापि गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति॥ ४८॥

संजी०—यस्येति। यस्य सुषेणस्य वारिविहारकाले जलक्रीडासमयेऽवरोधानामन्तःपुराङ्गनानां स्तनेषु चन्दनानां मलयजानां प्रक्षालनाद्धेतोः कलिन्दो नाम शैलस्तत्कन्या यमुना। कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा' इत्यमरः। मथुरा नामास्य राज्ञो नगरी। तां गतापि। गङ्गाया विप्रकृष्टापीत्यर्थः, मथुरायां गङ्गाभावं सूचयति 'अपि' शब्दः। कालिन्दीतीरे मथुरा लवणासुरवधकाले शत्रुघ्नेन निर्मास्यतेति वक्ष्यति। तत्कथमधुना मथुरासंभव इति चिन्त्यम्। मथुरा मथुरापुरीति शब्दभेदः। यद्वा—सान्येति। गङ्गाया भागीरथ्या ऊर्मिभिः संसक्तजलेव भाति। धवलचन्दनसंसर्गात्प्रयागादन्यत्राप्यत्र गङ्गासंगतेव भातीत्यर्थः। 'सितासिते हि गङ्गायमुने' इति घण्टापथः॥ ४८॥

अन्वय:—**यस्य वारिविहारकाले, अवरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनात् (हेतोः) कलिन्दकन्या मथुरां गता अपि, गङ्गोर्मिसंसक्तजला इव भाति।**

व्याख्या—यस्य=सुषेणस्य वारिषु=जलेषु, विहार:=क्रीड़ा, इति वारिविहारस्तस्य काल: = समयस्तस्मिन् वारिविहारकाले, अवरोधानाम् = अन्तःपुरस्त्रीणाम् स्तनाः=कुचास्तेषु चन्दनानि=मलयजानि तेषाम् अवरोधस्तनचन्दनानाम् प्रक्षालनात् = क्षालनात्, हेतोः कलिन्दस्य = पर्वतविशेषस्य, कन्या = तनया, इति कलिन्दकन्या=यमुनेत्यर्थः, मथुरां = मथुरापुरीम् सुषेणराजधानीमित्यर्थः। गता= प्राप्ता अपि (मथुरायां गंगा नास्तीति गंगाया अभावं सूचयत्यपिशब्द:) गङ्गाया:= भागीरथ्या: ऊर्मय: = तरंगास्तै: संसक्तम् = मिलितम् संभिन्नम् जलम्=पय: यस्याः सा गंगोर्मिसंसक्तजला इव = यथा भाति=शोभते। मथुरायां गंगाभावेऽपि सुषेणस्य अन्तःपुरांगनाकुचसंलग्नधवलचन्दनसंसर्गेण अत्रापि गंगासंगतेव यमुना शोभते इत्यर्थः।

समास:—वारिषु विहारस्तस्य कालस्तस्मिन् वारिविहारकाले, अवरोधानाम् स्तनास्तेषु चन्दनानि, इति अवरोधचन्दनानि तेषान्तथोक्तानाम्। कलिन्दस्य कन्येति कलिन्दकन्या, गङ्गायाः ऊर्मयस्तै: संसक्तं जलं यस्याः सा गंगोर्मिसंसक्तजला।

हिन्दी—सुषेण राजा के जल क्रीड़ा करने के समय इनकी रानियों के स्तनों पर लगे सुफेद चन्दन के घुलकर जल में मिल जाने से मथुरा में भी यमुना ऐसी प्रतीत होती है मानो गंगाजी की लहरों से यमुना का जल मिला हुआ है। अर्थात् धवल चन्दन के यमुना जल में मिल जाने के कारण प्रतीत होता है कि प्रयाग के अलावा यहाँ भी गंगा यमुना संगम हो गया है।।४८।।

त्रस्तेन तार्क्ष्यात्किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः।
वक्षःस्थलव्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम् ।।४९।।

संजी—त्रस्तेनेति। तार्क्ष्याद् गरुडात्त्रस्तेन। यमुनौकः स्थानं यस्य तेन। कालियेन नाम नागेन विसृष्टं किलाभयदाननिष्क्रयत्वेन दत्तम्। 'किल' इत्यैतिह्ये। वक्षःस्थलव्यापिरुचं मणिं दधानो यः सुषेणः सकौस्तुभं कृष्णं विष्णुं ह्रेपयतीव त्रपयतीव। 'अर्तिह्री—' (पा० ७।३।३६) इत्यादिना पुगागमः कौस्तुभमणेरप्युत्कृष्टोऽस्य मणिरिति भावः।।४९।।

अन्वयः—ताक्ष्यात् त्रस्तेन यमुनौकसा कालियेन विसृष्टम् किल वक्षस्थल-व्यापिरुचं मणि दधानः यः सकौस्तुभं कृष्णम् ह्रेपयति इव ॥ ४९ ॥

व्याख्या—ताक्ष्यात्=गरुडात्, त्रस्तेन=भीतेन, यमुना = कालिन्दी, ओकः= स्थानम् यस्य स तेन यमुनौकसा = यमुनानिवासिना कालियेन = नागेन, विसृष्टम् दत्तम् किलेतित्यैह्यो, वक्षःस्थलम्=उरःस्थलं व्याप्नोतीति सावक्षःस्थलव्यापिनी, रुक् मा यस्य स तम् वक्षःस्थलव्यापिरुचं मणिम् = रत्नम्, दधानम्= धारयन् यः = सुषेणः कौस्तुभेन सह वर्तते इति स कौस्तुभस्तं सकौस्तुभम् = कौस्तुभधारिणं कृष्णं = देवकीनन्दनम् विष्णुमित्यर्थः, ह्रेपयति=व्रीडयति इव ।

समासः—यमुना ओकः यस्य स तेन यमुनौकसा, वक्षःस्थलं व्याप्नोति या सा वक्षःस्थलव्यापिनी, वक्षःस्थलव्यापिनी रुक् यस्य स तम् वक्षःस्थलव्यापिरुचम्। कौस्तुभेन सहितः सकौस्तुभस्तम् सकौस्तुभम् ।

हिन्दी—गरुड़ के डर से यमुना के जल में रहनेवाले कालियनाग ने प्रसन्न होकर एक मणि इस राजा को दी थी । ऐसा इतिहास प्रसिद्ध है । पूरे वक्षःस्थल में फैल जाती है, कान्ति जिसकी, ऐसी उस मणि को पहनकर यह राजा कौस्तुभ मणि को पहने हुए भगवान् कृष्ण को लज्जित सा कर देता है। अर्थात् इसकी मणि के सामने कौस्तुभमणि की शोभा फीकी पड़ जाती है ॥ ४९ ॥

संभाव्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये ।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि ! यौवनश्रीः ॥ ५० ॥

संजी०—संभाव्येति । युवानममुं सुषेणं भर्तारं संभाव्य मत्वा । पतित्वे-नाङ्गीकृत्येत्यर्थः । मृदुप्रवालोत्तरोपरिप्रस्तारितकोमलपल्लवा पुष्पशय्या यस्मि-स्तत्तस्मिश्चैत्ररथात्कुबेरोद्यानादनूने वृन्दावने वृन्दावननामक उद्याने हे सुन्दरि ! यौवनश्रीर्यौवनफलं निर्विश्यतां भुज्यताम् ॥ ५० ॥

अन्वयः—**युवानम् अमुम् भर्तारम् संभाव्य, मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये चैत्र-रथादनूने वृन्दावने हे सुन्दरि यौवनश्रीः निर्विश्यताम्** ।

व्याख्या—युवानम् = तरुणम्, अमुम् = सुषेणम्, भर्तारम्=पतिम्, संभाव्य= मत्वा पतित्वेन स्वीकृत्येत्यर्थः, पुष्पाणाम्=कुसुमानाम्, शय्या = पर्यंकः इतिपुष्पशय्या,

मृदूनि = सुकोमलानि, पल्लवानि = पत्राणि, उत्तराणि = प्रस्तारितानि = उत्तरच्छदानीत्यर्थः, यस्यां सा मृदुप्रवालोत्तरा, मृदुप्रवालोत्तरा पुष्पशय्या यस्मिन् तत्, तस्मिन् मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये, चित्ररथस्य इदं चैत्ररथम् तस्मात् चैत्ररथात् = कुबेरोद्यानात्, अनूने = समाने, वृन्दावने = वृन्दावननामकोद्याने, हे सुन्दरि = हे शोभने ! यूनो भावः, यौवनम्, यौवनस्य = तारुण्यस्य, श्रीः = सौभाग्यं फलमिति यावत् सा यौवनश्रीः निर्विश्यताम् भुज्यताम् ।

समासः—मृदूनि प्रवालानि उत्तराणि यस्यां सा मृदुप्रवालोत्तरा, पुष्पाणाम् शय्या पुष्पशय्या, मृदुप्रवालोत्तरा पुष्पशय्या यस्मिन् तत्, तस्मिन् मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये । चित्ररथस्येदं चैत्ररथम् तस्मात् चैत्ररथात् न नूनम् अनूनम् तस्मिन् अनूने, वृन्दानां वनमिति वृन्दावनम् तस्मिन् वृन्दावने, यूनो भावः यौवनम् तस्य श्रीः यौवनश्रीः ।

हिन्दी—हे सुन्दरी ! इस जवान सुषेण राजा को पति बनाकर (अर्थात् इसके साथ विवाह करके) कोमल पत्तों तथा फूलों की शय्या जिसमें बनी हुई है और कुबेर के चैत्ररथ नाम के उद्यान से भी अधिक सुन्दर ऐसे वृन्दावन में अपनी जवानी की शोभा का उपभोग करो ।। ५० ।।

अध्यास्य चाम्भःपृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि ।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु ।। ५१ ।।

संजी०—अध्यास्येति । किंच, प्रावृषि वर्षासु कान्तासु गोवर्धनस्याद्रेः कन्दरासु दरीषु । 'दरी तु कन्दरो वा स्त्री' इत्यमरः । अम्भसः पृषतैर्बिन्दुभिरुक्षितानि सिक्तानि । शिलायां भवं शैलेयम् । 'शिलाजतु च शैलेयम्' इति यादवः । यद्वा—शिलापुष्पाख्य ओषधिविशेषः । 'कालानुसार्यवृद्धाश्मपुष्पशीतशिवानि तु । शैलेयम्' इत्यमरः । 'शिलाया ढः' (पा. ५।३।१०२) इत्यत्र शिलाया इति योगविभागादिवार्थे ढप्रत्ययः । तद्गन्धवन्ति शैलेयगन्धीनि शिलातलान्यध्यास्याधिष्ठाय कलापिनां बर्हिणां नृत्यं पश्य ।। ५१ ।।

अन्वयः—किंच प्रावृषि कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु, अम्भःपृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि अध्यास्य कलापिनां नृत्यं पश्य ।

व्याख्या—किंच प्रकृष्टा वृट् यत्र सा प्रावृट् तस्याम् प्रावृषि = वर्षासु, कान्तासु = मनोहरासु, गोवर्धनस्य = पर्वतस्य, कन्दराः = दर्यस्तासु, गोवर्धन-कन्दरासु, अम्भसः = जलस्य पृषताः = बिन्दवस्तैः उक्षितानि = सिक्तानि, इति अम्भःपृषतोक्षितानि, शिलासु भवं शैलेयम् = शिलाजतुनः, गन्धः = सौरभम्, अस्ति येषु तानि शलेयगन्धीनि शिलानां तलानीतितानि शिलातलानि = प्रस्तरतलानि, अध्यास्य = अधिष्ठाय, कलापाः = बर्हाः सन्ति येषु ते कलापिनस्तेषां कलापि-नाम्, = मयूराणाम्, नृत्यम् = नर्तनं पश्य = अवलोकय त्वमिति शेषः ।

समासः—प्रकृष्टा वृट् यस्यां सा प्रावृट् तस्यां प्रावृषि गोवर्धनस्य कन्दरा-स्तासु गोवर्धनकन्दरासु, अम्भसः पृषतास्तैः उक्षितानि अम्भःपृषतोक्षितानि, तानि शिलायां भवं शलेयं तस्य गन्धः अस्ति येषु तानि शैलेयगन्धीनि तानि, शिलानाम् तलानि शिलातलानि तानि, कलापाः सन्ति येषां ते तेषां कलापिनाम् ।

हिन्दी—और वर्षाऋतु में गोवर्धन पर्वत की सुहावनी गुफाओं में जल की फुहारों से भींगी हुई शिलाजीत की गन्धवाली पत्थर की चट्टानों पर बैठकर मोरों के नाच को तुम देखो ॥ ५१ ॥

नृपं तमावर्तमनोज्ञनाभिः सा व्यत्यगादन्यवधूर्भवित्री ।
महीधरं मार्गवशादुपेतं स्रोतोवहा सागरगामिनीव ॥ ५२ ॥

संजी०—नृपमिति । 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः । आवर्तमनोज्ञा नाभिर्यस्याः सा । इदं च नदीसाम्यार्थमुक्तम् । अन्यवधूरन्यपत्नी भवित्री भाविनी सा कुमारी महीधरं तं नृपम् । सागरगामिनी सागरं गन्त्री स्रोतोवहा नदी मार्ग-वशादुपेतं प्राप्तं महीधरं पर्वतमिव । व्यत्यगादतीत्य गता ॥ ५२ ॥

अन्वयः—आवर्तमनोज्ञनाभिः अन्यवधूः भवित्री सा तं नृपम् सागरगामिनी स्रोतोवहा मार्गवशात् उपेतं महीधरम् इव व्यत्यगात् ।

व्याख्या—आवर्तः = जलभ्रमः इव मनोज्ञा = मनोहरा नाभिः यस्याः सा आवर्तमनोज्ञनाभिः, अन्यस्य = अपरस्य, वधूः = पत्नी, अन्यवधूः, भवित्री = भाविनी सा = इन्दुमती तम् = सुषेणं नृपम् सागरम् = समुद्रम् गच्छति = यातीति सा समुद्रगामिनी स्रोतोभिः वहति या सा स्रोतोवहा = नदी, मार्गस्य = पथः, वशं =

कारणं तस्मात् मार्गवशात् उपेतम् = प्राप्तम् महीं धरतीति महीधरस्तं महीधरम् = पर्वतम् इव = यथा व्यत्यगात् = अतीत्य गता ।

समास:—आवर्तः इव मनोज्ञा नाभिर्यस्याः सा आवर्तमनोज्ञनाभिः । मार्गस्य वशः तस्मात् मार्गवशात् । अन्यस्य वधूः, अन्यवधूः । महीं धरतीति महीधरस्तं महीधरम् । स्रोतोभिः वहति या सा स्रोतोवहा । सागरं गच्छति या सा सागरगामिनी ।

हिन्दी—जल के भंवर के समान गहरी सुन्दर नाभिवाली और दूसरे की पत्नी होनेवाली वह इन्दुमती, राजा सुषेण को छोड़कर वैसे ही आगे बढ़ चली, जैसे समुद्र को ओर जाती हुई नदी मार्ग में पड़े हुए पहाड़ को छोड़कर चली जाती है ॥ ५२ ॥

अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथम् ।
आसेदुषीं सादितशत्रुपक्षं बालामबालेन्दुमुखीं बभाषे ॥ ५३ ॥

संजी०—अथेति । अथ भुजिष्या किंकरी सुनन्दा । 'भुजिष्या किंकरी मता' इति हलायुधः । अङ्गदाश्लिष्टभुजं केयूरनद्धबाहुं सादितशत्रुपक्षं विनाशितशत्रुवर्गं हेमाङ्गदं नाम कलिङ्गनाथमासेदुषीमासन्नामबालेन्दुमुखीं पूर्णेन्दुमुखीं बालामिन्दुमतीं बभाषे ॥ ५३ ॥

अन्वयः—**अथ भुजिष्या अंगदाश्लिष्टभुजं सादितशत्रुपक्षम् हेमांगदं नाम कलिंगनाथम् आसेदुषीम् अबालेन्दुमुखीं बालाम् बभाषे ।**

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, भुजिष्या = किंकरी दासीत्यर्थः अंगदेन = केयूरेण आश्लिष्टः = बद्धः, भुजः = बाहुः यस्य स तम् अंगदाश्लिष्टभुजम् । सादितः = नाशितः शत्रूणाम् = अरीणाम् पक्षः = वर्गः, येन स तम्, सादितशत्रुपक्षम् । हेमाङ्गदम् = हेमांगदनामानम् कलिंगानाम् = जनपदानाम् नाथः = स्वामी, तम्, कलिंगनाथम् । आसेदुषीम् = प्राप्तवतीम्, अबालः = पूर्णश्चासौ, इन्दुः = चन्द्रः, इति अबालेन्दुः, तद्वत् मुखम् = आननम् यस्याः सा ताम् अबालेन्दुमुखीम्, बालाम् = कुमारीम् = इन्दुमतीमित्यर्थः, बभाषे = उवाच कथितवतीत्यर्थः ।

समासः—अंगदेन आश्लिष्टः भुजः यस्य सः, तम् अंगदाश्लिष्टभुजम् । सादितः शत्रूणां पक्षः येन सः, तम् सादितशत्रुपक्षम् । कलिंगानाम् नाथस्तम् कलिंगनाथम् ।

न बालः, अबालः, अबालश्चासौ, इन्दुरिति अबालेन्दुः तद्वन्मुखम् यस्याः सा ताम् अबालेन्दुमुखीम् ।

हिन्दी—इसके पश्चात् दासी सुनन्दा, जिस राजा की भुजा में बाजूबन्द बंधा हुआ है और शत्रुपक्ष का नाश करने वाले ऐसे कलिंग देश के राजा हेमांगद के समीप खड़ी हुई पूर्णेन्दु के समान सुन्दर मुखवाली कुमारी इन्दुमती से बोली ।५३।

असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च ।
यस्य क्षरत्सैन्यगजच्छलेन यात्रासु यातीव पुरो महेन्द्रः ॥ ५४ ॥

संजी०—असाविति । महेन्द्राद्रेः समानसारस्तुल्यसत्त्वोऽसौ हेमाङ्गदो महेन्द्रस्य नाम कुलपर्वतस्य महोदधेश्च पतिः स्वामी । महेन्द्रमहोदधी एवास्य गिरिजलदुर्गे इति भावः । यस्य यात्रासु क्षरतां मदस्राविणां सैन्यगजानां छलेन महेन्द्रो महेन्द्राद्रिः पुरोऽग्रे यातीव । अद्रिकल्पा अस्य गजा इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

अन्वयः—महेन्द्राद्रिसमानसारः असौ महेन्द्रस्य महोदधेश्च पतिः (अस्ति) यस्य यात्रासु क्षरत्सैन्यगजच्छलेन महेन्द्रः पुरः याति इव ।

व्याख्या—महेन्द्रश्चासौ अद्रिश्चेति महेन्द्रादिः, महेन्द्राद्रेः = कुलपर्वतस्य समानः = तुल्यः सारः = सत्त्वं बलमित्यर्थः यस्य स महेन्द्राद्रिसमानसारः, असौ = पुरोवर्ती हेमांगदः, महेन्द्रस्य = कुलपर्वतस्य महांश्चासौ उदधिरिति महोदधिस्तस्य महोदधेः = समुद्रस्य, चः = समुच्चये, पतिः = स्वामी अस्तीति शेषः । यस्य = हेमांगदस्य, यात्रासु = प्रयाणेषु गमनेष्वित्यर्थः, सेनायाम् समवेताः सैन्यास्तेषां सैन्यानाम् = सैनिकानाम् गजाः = हस्तिनः इति सैन्यगजाः, क्षरन्तः = मदवर्षिणश्च ते सैन्यगजाः इति क्षरत्सैन्यगजास्तेषां छलम् = व्याजस्तेन क्षरत्सैन्यगजच्छलेन महेन्द्रः = महेन्द्रपर्वतः पुरः = अग्रे याति = गच्छति इव = पर्वतसदृशा अस्य गजा इति भावः ।

समासः—महेन्द्रश्चासौ अद्रिरिति महेन्द्राद्रिस्तस्य महेन्द्राद्रेः समानः सारो यस्य स महेन्द्राद्रिसमानसारः । महांश्चासौ उदधिरिति महोदधिस्तस्य महोदधेः । सेनायां समवेताः सैन्याः तेषां गजाः, सैन्यगजाः, क्षरन्तश्च ते सैन्यगजाः क्षरत्सैन्यगजाः तेषां छलम् तेन क्षरत्सैन्यगजच्छलेन ।

हिन्दी—महेन्द्रपर्वत के समान शक्तिवाला यह हेमांगद, महेन्द्रपर्वत तथा समुद्र का स्वामी है । अर्थात् इन दोनों पर इसका अधिकार है । और जब यह युद्ध

के लिए यात्रा करता है उस समय इसके आगे-आगे चलने वाले मतवाले सेना के हाथी ऐसे प्रतीत होते हैं मानो हाथियों के बहाने महेन्द्र पर्वत चल रहा हो। अर्थात् पर्वत के समान इस राजा के हाथी हैं ।। ५४ ।।

ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां बिभर्ति यश्चापभृतां पुरोगः ।
रिपुश्रियां साञ्जनबाष्पसेके बन्दीकृतानामिव पद्धती द्वे ।।५५।।

संजी०—ज्याघातेति । सुभुजश्चापभृतां पुरोगो धनुर्धराग्रेसरो यः । बन्दीकृतानां प्रगृहीतानाम् । 'प्रग्रहोपग्रहौ बन्धाम्' इत्यमरः । रिपुश्रियां साञ्जनो बाष्पसेको ययोस्ते । कज्जलमिश्राश्रुसिक्ते इत्यर्थः । पद्धती इव । द्वे ज्याघातानां-मौर्वीकिणानां रेखे राजी भुजाभ्यां बिभर्ति । द्विवचनात्सव्यसाचित्वं गम्यते । रिपुश्रियां भुजाभ्यामेवाहरणात्तद्गतरेखयोस्तत्पद्धतित्वेनोत्प्रेक्षा । तयोः श्याम-त्वात्साञ्जनाश्रुसेकोक्तिः ।। ५५ ।।

अन्वयः—सुभुजः चापभृताम् पुरोगः यः बन्दीकृतानाम् रिपुश्रियाम् साञ्जनबाष्पसेके पद्धती इव, द्वे ज्याघातरेखे भुजाभ्याम् बिभर्ति ।

व्याख्या—सुष्ठु भुजौ = बाहू यस्य स सुभुजः चापम् = धनुः बिभ्रतीति चापभृतस्तेषाम् चापभृताम् = धनुर्धारिणाम् पुरः = अग्रे गच्छति = यातीति पुरोगः यः = हेमांगदः न बन्द्यः 'इति' अबन्द्यः बन्द्यः संपद्यमानाः कृता इति बन्दीकृतास्ता-साम् बन्दीकृतानाम् = उपगृहीतानाम्, रिपूणाम् = शत्रूणाम् श्रियः = लक्ष्म्यः, तासाम् रिपुश्रियाम् अञ्जनेन सह वर्तते इति साञ्जनः, साञ्जनः = सकज्जलः बाष्पाणाम् = अश्रूणाम् सेचनम् ययोस्ते साञ्जनबाष्पसेके पद्भ्यां हन्येते ये ते पद्धती = मार्गौ इव = यथा द्वे ज्यायाः मौर्व्याः घाताः = किणाः, इति ज्याघा-तास्तेषां रेखे = राजी, इति ज्याघातरेखे भुजाभ्यां = बाहुभ्याम् बिभर्ति = धारयति ।

समासः—सुष्ठु भुजौ यस्य स सुभुजः, चापं बिभ्रतीति चापभृतः तेषां चाप-भृताम्, पुरो गच्छतीति पुरोगः । न बन्द्यः, अबन्द्यः बन्द्यः संपद्यमानाः कृताः बन्दीकृतास्तासां बन्दीकृतानाम् । रिपूणां श्रियस्तासां रिपुश्रियाम् । अञ्जनेन सहितः साञ्जनः साञ्जनः बाष्पाणां सेकः ययोस्ते साञ्जनबाष्पसेके । ज्यायाः घातास्तेषां रेखे इति ज्याघातरेखे, ते ।

हिन्दी—सुन्दर भुजावाला और धनुर्धारियों में अग्रगण्य हेमांगद राजा, अपनी दोनों भुजाओं में धनुष की डोरी की रगड़ से बनी दो काली-काली रेखाओं को धारण किए हुए हैं। वे रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं, मानों बन्दी बनाई गई (अर्थात् गिरफ्तार की गई) शत्रुओं की राजलक्ष्मी की कजरारी आँखों से बहे हुए आँसुओं के कारण काली दो पगडंडियाँ हों ॥ ५५ ॥

यमात्मनः सद्मनि संनिकृष्टो मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः ।
प्रासादवातायनदृश्यवीचिः प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम् ॥ ५६ ॥

संजी०—यमिति। आत्मनः सद्मनि सुप्तं यं हेमाङ्गदं संनिकृष्टः समीपस्थोऽत एव प्रासादवातायनैर्दृश्यवीचिर्मन्द्रेण गम्भीरेण। 'मन्द्रस्तु गम्भीरे' इत्यमरः। ध्वनिना त्याजितं विवर्जितं यामस्य तूर्यं प्रहरावसानसूचकं वाद्यं येन स तथोक्तः। 'द्वौ यामप्रहरौ समौ' इत्यमरः। अर्णव एव प्रबोधयति, अर्णवस्यैव तूर्यकार्यकारित्वात्तद्वैयर्थ्यमित्यर्थः। समुद्रस्यापि सेव्यः किमन्येषामिति भावः ॥५६॥

अन्वय—**आत्मनः सद्मनि सुप्तम् यम् संनिकृष्टः (अत एव) प्रासादवातायनदृश्यवीचिः मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः, अर्णवः एव प्रबोधयति ।**

व्याख्या—आत्मनः = स्वस्य सद्मनि = वेश्मनि = गृहे सुप्तम् = शयितम् यं = हेमांगदम् संनिकृष्टः = समीपस्थः (अत एव) प्रासादानाम् = राजभवनानाम् वातायनानि = गवाक्षाः, तैः दृश्याः = अवलोकनीयाः, वीचयः = तरंगाः यस्य स प्रासादवातायनदृश्यवीचिः, मन्द्रः = गम्भीरश्चासौ ध्वनिः = शब्दः इति मन्द्रध्वनिस्तेन त्याजितं = विवर्जितम् यामस्य = प्रहरस्य तूर्यं = वाद्यं येन स मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः, अस्य नगरे सर्वदा समुद्रस्य गम्भीरो ध्वनिः भवतीति प्रहरावसानसूचकं वाद्यं परित्यक्तमिति भावः, अर्णवः = समुद्रः, एव = केवलम् प्रबोधयति = जागरयति ।

समासः—प्रासादानाम् वातायनानि तैः दृश्याः वीचयः यस्य स प्रासादवातायनदृश्यवीचिः । मन्द्रश्चासौ ध्वनिरिति मन्द्रध्वनिस्तेन त्याजितं यामस्य तूर्यं येन स मन्द्रध्वनित्याजितयामतूर्यः ।

हिन्दी—अपने घर में सोते हुए हेमांगद को, पास में ही रहने वाला, इसीलिए राजभवन की खिड़कियों से दिखाई दे रही हैं, तरंगे जिसकी और अपनी

गम्भीर गर्जना से पहरसमाप्ति की सूचना देने वाले बाजे को बन्द करा देने वाला समुद्र ही प्रातःकाल जगाता है। समुद्र ही बाजे का काम करता है। अर्थात् सागर भी हेमांगद की सेवा करता है और लोगों की बात ही क्या यह भाव है ॥ ५६ ॥

अनेन सार्धं विरहाम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः ॥ ५७ ॥

संजी०—अनेनेति। अनेन राज्ञा सार्धं तालीवनैर्मर्मरेषु मर्मरेति ध्वनत्सु। 'अथ मर्मरः। स्वनिते वस्त्रपर्णानाम्' इत्यमरवचनाद् गुणपरस्यापि 'मर्मर' शब्दस्य गुणिपरत्वं प्रयोगादवसेयम्। अम्बुराशेः समुद्रस्य तीरेषु द्वीपान्तरेभ्य आनीतानि लवङ्गपुष्पाणि देवकुसुमानि यैस्तैः। 'लवङ्गं देवकुसुमम्' इत्यमरः। मरुद्भिर्वातैरपाकृताः प्रशमिताः स्वेदस्य लवा बिन्दवो यस्याः सा तथाभूता सती त्वं विहर क्रीड ॥ ५७ ॥

अन्वयः—अनेन सार्धम् तालीवनमर्मरेषु अम्बुराशेः तीरेषु द्विपान्तरानीत लवंगपुष्पैः मरुद्भिः अपाकृतस्वेदलवा सती (त्वम्) विहर।

व्याख्या—अनेन=हेमांगदेन राज्ञा सार्धं=सह तालीनां=ताडवृक्षाणां वनानि=काननानि तैः, तालीवनैः मर्मराणि=मर्मरध्वनिमन्ति तेषु तालीवनमर्मरेषु अम्बूनां=जलानां राशिः=समूहः यत्र स अम्बुराशिस्तस्य अम्बुराशेः= समुद्रस्य तीरेषु तटेषु, अन्ये द्वीपाः द्वीपान्तराणि स्तेभ्यः=द्वीपान्तरेभ्यः=अन्तरीपान्तरेभ्यः आनीतानि=आहृतानि लवंगस्य=लवंगलतायाः देवकुसुमस्येत्यर्थः, पुष्पाणि=कुसुमानि यैस्ते, तैः द्वीपान्तरानीतलवंगपुष्पैः मरुद्भिः=पवनैः, अपाकृताः=अपनीताः स्वेदस्य=घर्मस्य लवाः=बिन्दवः यस्याः सा, अपाकृतस्वेदलवा सती त्वम् विहर=क्रीड विहारं कुरु।

समासः—तालीनां वनानि तेषां मर्मराः येषु तानि, तेषु। अन्ये द्वीपाः द्वीपान्तराणि स्तेभ्यः आनीतानि लवंगपुष्पाणि यैस्ते तैः द्वीपान्तरानीतलवंगपुष्पैः। अम्बूनां राशिः यस्मिन् स तस्य अम्बुराशेः। अपाकृताः स्वेदस्य लवाः यस्याः सा अपाकृतस्वेदलवा।

हिन्दी—(यदि इच्छा हो तो इसके साथ विवाह करके) इस हेमांगद के साथ ताड़ के जंगलों की मर्मर ध्वनि वाले, समुद्र के तटों पर तुम विहार करो।

(क्योंकि वहाँ पर) दूसरे द्वीपों से लवंग के फूलों की सुगन्ध ले आने वाले वायु, तुम्हारे पसीने को शान्त करेंगे। अर्थात् शीतल मन्द सुगन्ध वायु तुम्हारे पसीने को पोंछा करेगा ॥ ५७ ॥

प्रलोभिताप्याकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तयैवम् ।
तस्मादपावर्तत दूरकृष्टा नीत्येव लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात् ॥५८॥

संजी०—प्रलोभितेति। आकृत्या रूपेण लोभनीयाऽऽकर्षणीया। न तु वर्णनमात्रेणेत्यर्थः। विदर्भराजावरजा भोजानुजेन्दुमती तया सुनन्दयैवं प्रलोभितापि प्रचोदितापि। नीत्या पुरुषकारेण दूरकृष्टा दूरमानीता लक्ष्मीः प्रतिकूलं दैवं यस्य तस्मात् पुंस इव। तस्माद्धेमाङ्गदादपावर्तत प्रतिनिवृत्ता ॥ ५८ ॥

अन्वयः—आकृतिलोभनीया विदर्भराजावरजा तया एवं प्रलोभितापि, नीत्या दूरकृष्टा लक्ष्मीः प्रतिकूलदैवात् (पुंसः) इव तस्मात् अपावर्तत ।

व्याख्या—आकृत्या = सुरूपेण, लोभनीया = आकर्षणीया विदर्भाणां राजा विदर्भराजः, विदर्भराजस्य = भोजस्य, अवरजा = अनुजा = इन्दुमतीत्यर्थः तया = सुनन्दया एवं पूर्वोक्तप्रकारेण प्रलोभिता = प्रेरिता अपि नीत्या = नयेन पुरुषकारेणेत्यर्थः दूरं = विप्रकृष्टम् कृष्टा = आनीता, इति दूरकृष्टा लक्ष्मीः = श्रीः संपत् प्रतिकूलम् = विरुद्धं दैवं = भाग्यं यस्य स तस्मात् प्रतिकूलदैवात्, पुंसः इति शेषः, इवं = यथा तस्मात् = हेमांगदात् अपावर्तत = अपासरत् ।

समासः—विदर्भाणां राजा विदर्भराजः, तस्य अवरजा विदर्भराजावरजा। आकृत्या लोभनीया आकृतिलोभनीया। दूरं कृष्टेति दूरकृष्टा। प्रतिकूलं दैवं यस्य सः, तस्मात् प्रतिकूलदैवात् ।

हिन्दी—केवल वर्णन से नहीं किन्तु चेहरे से आकर्षणीय (लुभायमान होनेवाली) भोज राजा की छोटी बहन इन्दुमती, अपनी उस दासी से इस प्रकार प्रेरित हो जाने पर भी, हेमांगद राजा को छोड़कर उसी प्रकार आगे बढ़ गई जैसे कि पुरुषार्थ से लाई हुई सम्पत्ति भाग्य के फेर से पुरुष को छोड़कर चली जाती है ॥५८॥

अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूपमेत्य ।
इतश्चकोराक्षि ! विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम् ॥५९॥

संजी०—अथेति । अथ द्वारे नियुक्ता दौवारिकी सुनन्दा । 'तत्र नियुक्तः' (पा. ४।४।६९) इति ठक्प्रत्ययः । 'द्वारादीनां च' (पा. ७।३।४) इत्यौआगमः । आकारेण देवसरूप देवतुल्यम् । उरगाख्यस्य पुरस्य पाण्डचदेशे कान्यकुब्जतीरवर्ति-नागपुरस्य नाथमेत्य प्राप्य । हे चकोराक्षि ! इतो विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां पूर्वमुक्तां भोजस्य राज्ञो गोत्रापत्यं स्त्रियं भोज्यामिन्दुमतीम् । 'क्रौडयादिभ्यश्च' (पा. ४।१।८०) इत्यत्र 'भोजात्क्षत्रियात्' इत्युपसंख्यानात्ष्यङ्प्रत्ययः । 'यङश्चाप्' (पा. ४।१।७४) इति चाप् । निजगाद । 'इतो विलोकय' इति पूर्वमुक्त्वा पश्चाद्वक्तव्यं निजगादेत्यर्थः ॥ ५९ ॥

अन्वयः—अथ दौवारिकी देवसरूपम् उरगाख्यस्य पुरस्य नाथम् एत्य हे चकोराक्षि इतः विलोकय इति पूर्वानुशिष्टां भोज्याम् निजगाद ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्, द्वारे नियुक्ता दौवारिकी=द्वारपालिका, सुनन्दा देवानां=देवतानाम्, समानं=तुल्यं, रूपं=आकृतिः स्वरूपं यस्य स तम्, देवसरूपम्, उरग इति आख्या यस्य तत् तस्य उरगाख्यस्य पुरस्य नगरस्य, उरगपुरस्य नाग-पुरस्येत्यर्थः, नाथम्=स्वामिनम्, एत्य = प्राप्य, चकोरस्य=जीवञ्जीवस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा तस्याः संबुद्धौ हे चकोराक्षि = हे चकोरनेत्रे । 'जीवञ्जीवः खगान्तरे । द्रुमभेदे चकोरे च' इति हैमः । इतः विलोकय=एनम् अवलोकय इति = इत्थम्, पूर्वम् = प्रथमम्, अनुशिष्टा=कथिता ताम् पूर्वानुशिष्टाम् भोजस्य गोत्रापत्यं स्त्री भोज्या तां भोज्याम्=इन्दुमतीम् निजगाद=उवाच । इतो विलोकयेति कथयित्वा पश्चात् यत् वक्तव्यं तत् कथयामासेत्यर्थः ।

समासः—द्वारे नियुक्ता दौवारिकी । देवानां समानं रूपं यस्य सः, तम् देवसरूपम् । उरग इति आख्या यस्य तत्, तस्य उरगाख्यस्य । चकोरस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा, तस्याः संबुद्धौ हे चकोराक्षि ।

हिन्दी—इसके पश्चात् द्वारपालिका सुनन्दा, देवता के समान मनोहर नागपुर के राजा के पास जाकर हे चकोर के जैसे नेत्रवाली इधर देखो, (ऐसा वचन) भोज राजा के वंश में उत्पन्न और पूर्वकथित इन्दुमती से बोली । अर्थात् इधर देखो ऐसा कहकर फिर कार्य की बात कहने लगी ॥ ५९ ॥

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन ।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ॥ ६० ॥

सं०जी०—पाण्ड्य इति । अंसयोरर्पिता लम्बन्त इति लम्बा हारा यस्य सः । हरिचन्दनेन गोशीर्षाख्येन चन्दनेन । 'तैलपर्णिकगोशीर्षे हरिचन्दनमस्त्रियाम्' इत्यमरः । क्लृप्ताङ्गरागः सिद्धानुलेपनोऽयं पाण्डूनां जनपदानां राजा पाण्ड्यः । 'पाण्डोर्जनपदशब्दात्क्षत्रियाड्ड्यण्वक्तव्यः' (वा. २६७१) इति ड्यण्प्रत्ययः । 'तस्य राजन्यपत्यवत्' इति वचनात् । बालातपेन रक्ता अरुणाः सानवो यस्य स सनिर्झरोद्गारः प्रवाहस्यन्दनसहितः । वारिप्रवाहो निर्झरो झरः' इत्यमरः । अद्रिराज इवाभाति ॥ ६० ॥

अन्वयः—अंसार्पितलम्बहारः हरिचन्दनेन क्लृप्ताङ्गरागः अयं पाण्ड्यः बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गारः अद्रिराजः इव आभाति ।

व्याख्या—लम्बन्ते 'इति लम्बाः' अंसयोः = स्कन्धयोः अर्पिताः=स्थापिताः दत्ता इत्यर्थः, लम्बाः=लम्बमानाः हाराः = मुक्तावल्यः यस्य स अंसार्पितलम्बहारः, हरिचन्दनेन = कपिलवर्णचन्दनेन क्लृप्तः = कृतः विहितः, अंगराग = अनुलेपनं येन स क्लृप्तांगरागः अयम् =पुरोवर्ती राजा पाण्डूनां = जनपदानां राजा पाण्ड्यः बालश्चासौ आतपः इति बालातपः बालातपेन = प्रातःकालिकसूर्यालोकेन रक्ताः = अरुणाः सानवः = प्रस्थाः यस्य स बालातपरक्तसानुः, निर्झरेण सहितः सनिर्झरः सनिर्झरः=सवारिप्रवाहः उद्गारः = स्यन्दनं यस्य स सनिर्झरोद्गारः, अद्रीणां = पर्वतानां राजा, अद्रिराजः = हिमालयः, इव = यथा, आभाति=शोभते ।

समासः—अंसयोः, अर्पिताः, लम्बा, हाराः, यस्य स अंसार्पितलम्बहारः । क्लृप्तः अंगस्य रागः येन स क्लृप्तांगरागः । पाण्डूनां राजा पाण्ड्यः । सनोति ददाति सुखमिति सानुः 'बालश्चासौ आतपः' इति बालातपः, बालातपेन रक्ताः सानवो यस्य स बालातपरक्तसानुः । निर्झरेण सहितः उद्गारः यस्य स सनिर्झरोद्गारः । अद्रीणां राजा अद्रिराजः ।

हिन्दी—जिनके कन्धों पर बड़ा सा हार लटक रहा है और जिसने शरीर में हरिचन्दन का लेप कर रखा है अर्थात् कपिलवर्ण (कुछ-कुछ लाल) का चन्दन लगा रखा है। ऐसा यह पाण्डु देश का राजा है। जो कि उस हिमालय पर्वत के

समान सुशोभित हो रहा है जो प्रातःकालीन धूप से लाल चौरस भूमि वाला हो गया है और जिससे अनेक पानी के झरने गिर रहे हैं ॥ ६० ॥

विन्ध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रेर्निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः ।
प्रीत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्यः ॥६१॥

संजी०—विन्ध्यस्येति । विन्ध्यस्य नाम्नो महाद्रेः तपनमार्गनिरोधाय वर्धमानस्येति शेषः । संस्तम्भयिता । निवारयिता । निःशेषं पीत उज्झितः पुनस्त्यक्तः सिन्धुराजः समुद्रो येन सोऽगस्त्योऽश्वमेधस्यावभृथे दीक्षान्ते कर्मणि । 'दीक्षान्तोऽवभृथो यज्ञे' इत्यमरः । आर्द्रमूर्तेः । स्नातस्येत्यर्थः । यस्य पाण्ड्यस्य प्रीत्या स्नेहेन । न तु दाक्षिण्येन सुस्नातं पृच्छतीति सौस्नातिकः । भवति । 'पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः' (वा. २९५३) इत्युपसंख्यानाट्ठक् ॥ ६१ ॥

अन्वयः—विन्ध्यस्य महाद्रेः संस्तम्भयिता निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः अगस्त्यः अश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः यस्य प्रीत्या सौस्नातिकः भवति ।

व्याख्या—विन्ध्याचलस्य महांश्चासौ अद्रिरिति तस्य महाद्रेः सूर्यस्य मार्गवरोद्धुं प्रवर्धमानस्येत्यर्थः संस्तम्भयिता = निरोद्धा नियन्ता इत्यर्थः, निःशेषं = सम्पूर्णं पीतः = आचामितः पश्चात् उज्झितः = त्यक्तः सिन्धूनां राजा = समुद्रः येन स निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः, अगस्त्यः = एतन्नामा मुनिः कुम्भयोनिरित्यर्थः। अश्वमेधस्य = अश्वमेधयज्ञस्य अवभृथे = दीक्षान्तकर्मणि = यज्ञान्तस्नाने इत्यर्थः आर्द्रा = क्लिन्ना = स्नाता मूर्तिः = शरीरं यस्य स तस्य अश्वमेधवभृथार्द्रमूर्तेः यस्य = पाण्ड्यस्य प्रीत्या = प्रेम्णा सुस्नातं पृच्छतीति सौस्नातिकः = सुस्नातं भवतेति प्रष्टा भवति ।

समासः—सिन्धूनां राजा सिन्धुराजः निःशेषं पीतः पश्चात् उज्झितः सिन्धुराजः येन स निःशेषपीतोज्झितसिन्धुराजः । *महांश्चासौ अद्रिरिति महाद्रिस्तस्य* महाद्रेः । अश्वमेधस्य अवभृथे आर्द्रा मूर्तिः यस्य स तस्य अश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः । सुस्नातं पृच्छतीति सौस्नातिकः ।

हिन्दी—विन्ध्य नामक महापर्वत को (ऊपर बढ़ने से) रोकने वाले और जिन्होने सम्पूर्ण समुद्र को पीकर पीछे मुख से निकाल दिया था, ऐसे अगस्त्य ऋषि, अश्वमेध यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान से भीगे शरीर वाले इस पाण्डु देश के राजा को प्रेम से 'आपने अच्छी तरह स्नान कर लिया' ऐसा पूछते हैं ॥६१॥

अस्त्रं हरादाप्तवता दुरापं येनेन्द्रलोकावजयाय दृप्तः ।
पुरा जनस्थानविमर्दशङ्की संधाय लङ्काधिपतिः प्रतस्थे ॥ ६२ ॥

संजी०—अस्त्रमिति । पुरा पूर्वं जनस्थानस्य खरालयस्य विमर्दशङ्की दृप्त उद्धतो लङ्काधिपति रावणो दुरापं दुर्लभमस्त्रं ब्रह्मशिरोनामकं हरादाप्तवता येन पाण्ड्येन संधाय इन्द्रलोकावजयायेन्द्रलोकं जेतुं प्रतस्थे । इन्द्रविजयिनो रावणस्यापि विजेतेत्यर्थः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—पुरा जनस्थानविमर्दशंकी लंकाधिपतिः दुरापम् अस्त्रं हरात् आप्तवता येन संधाय, इन्द्रलोकावजयाय प्रतस्थे ।

व्याख्या—पुरा=पूर्वम्, जनस्थानस्य=खरालयस्य दण्डकारण्यस्येत्यर्थः विमर्द= विनाशं शंकते=आशंकते यः स जनस्थानविमर्दशंकी दृप्तः=उद्धतः=उद्दण्डः लंकायाः=राक्षसराजधान्याः, अधिपतिः=स्वामीति लंकाधिपतिः रावण इत्यर्थः, दुःखेन आप्यते यत् तत् दुरापम्=दुर्लभम्, अस्त्रम्=ब्रह्मशिरोनामकम् हरात्= महादेवात् आप्तवता=प्राप्तवता येन=पाण्ड्येन, संधाय=सन्धि कृत्वा, इन्द्रस्य लोकः=अमरावती, इति इन्द्रलोकः तस्य अवजयः=पराजयः तस्मै इन्द्रलोकवजयाय स्वर्गलोकं विजेतुमित्यर्थः । प्रतस्थे=प्रययौ । रावणोऽपि अस्माद् बिभेति स्मेति भावः ।

समासः—जनस्थानस्य विमर्दं शंकते, इति जनस्थानविमर्दशंकी । लंकाया अधिपतिरिति लंकाधिपतिः । दुःखेन आप्यते यत् तत् दुरापम् । इन्द्रस्य लोकस्तस्य अवजयस्तस्मै इन्द्रलोकावजयाय ।

हिन्दी—पहले (जब रावण इन्द्रलोक की विजय करने चला तब) खर-दूषण के निवास स्थान दण्डकारण्य के विनाश की आशंका करने वाला, घमण्डी लंका का राजा रावण, इस पाण्ड्य राजा से सन्धि करके ही इन्द्रलोक को जीतने के लिए गया था । क्योंकि इस राजा ने बड़ा प्रचंड दुर्लभ अस्त्र शिवजी से प्राप्त किया था । अर्थात् इस राजा ने भी शिवजी से बड़ा प्रतापी अस्त्र पाया है कहीं मेरे पीछे से जनस्थान को नष्ट भ्रष्ट करके मेरा राज्य न छीन ले इस डर से इससे सन्धि करके रावण ने स्वर्गयात्रा की थी ॥ ६२ ॥

अनेन पाणौ विधिवद्गृहीते महाकुलीनेन महीव गुर्वी ।
रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः ॥६३॥

संजी०—अनेनेति। महाकुलीनेन महाकुले जातेन। 'महाकुलादञ्खञौ' (पा. ४।१।१४१) इति खञ्प्रत्ययः अनेन पाण्ड्येन पाणौ त्वदीये विधिवद्यथाशास्त्रं गृहीते सति गुर्वी गुरुः। 'वोतो गुणवचनात्' (पा. ४।१।४४) इति ङीष्। महीव रत्नैरनुविद्धो व्याप्तोऽर्णव एव मेखला यस्यास्तस्याः। इदं विशेषणं मह्यामिन्दुमत्यां च योज्यम्। दक्षिणस्या दिशः सपत्नी भव। अनेन सपत्न्यन्तराभावो ध्वन्यते॥ ६३॥

अन्वयः—महाकुलीनेन अनेन पाणौ विधिवत् गृहीते, सति, गुर्वी मही इव रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः दक्षिणस्याः दिशः सपत्नी भव।

व्याख्या—महत् कुलमस्य स महाकुलः, महाकुले जातः महाकुलीनस्तेन महाकुलीनेन = आर्यवंशोत्पन्नेन अनेन = पाण्ड्येन पाणौ = त्वदीयकरे विधिना = तुल्यं विधिवत् = यथाशास्त्रम् गृहीते = स्वीकृते सति विवाहे कृते सतीत्यर्थः गुर्वी = महती, मही = पृथिवी, इव = यथा, रत्नैः = मण्यादिभिः, अनुविद्धः = व्याप्तः, अर्णवः = सागरः एव मेखला = कांची यस्याः सा तस्याः रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः दक्षिणस्याः = याम्याः दिशः = काष्ठायाः समानः पतिर्यस्या सा सपत्नी = द्वितीया भार्या, भव = भूयास्त्वसमानः मिति शेषः।

समासः—महत् कुलं यस्य स महाकुलः महाकुले जातः तेन महाकुलीनेन। विधिना तुल्यं विधिवत्। रत्नैः विद्धः इति रत्नानुविद्धः, अर्णवः एव मेखला यस्याः सा, तस्याः रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः, अर्णव इव मेखला यस्याः—इतीन्दुमतीपक्षे। पतिः यस्याः सा सपत्नी।

हिन्दी—उच्चकुल में उत्पन्न इस पाण्ड्य राजा के साथ विधिपूर्वक पाणिग्रहण करके तुम बड़ी भारी (लम्बी चौड़ी) पृथिवी के समान रत्नों से पूर्ण उस दक्षिण दिशा की सौत बन जाओ, जिसकी तगड़ी रत्नों से भरा समुद्र ही है। विशेष—पृथिवी भी रत्नों से परिपूर्ण है और इन्दुमती की तगड़ी भी रत्नों से जड़ित है। पृथिवी भी महान् है और इन्दुमती भी महान् है। इसमें एक यह भी है कि तुम ही सपत्नी बनोगी दक्षिण दिशा की अर्थात् तुम्हारी कोई सौत नहीं रहेगी।६३।

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु॥६४॥

संजी०—ताम्बूलेति । ताम्बूलवल्लीभिर्नागवल्लीभिः परिणद्धाः परिरब्धाः पूगाः क्रमुका यासु तासु 'ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ल्यपि' इति, 'घोण्टा तु पूगः क्रमुकः' इति चामरः, एलालताभिरालिङ्गिताश्चन्दना मलयजा यासु तासु । 'गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । तमालस्य तापिच्छस्य पत्राण्येवास्तरणानि यासु तासु । 'कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छोऽपि' इत्यमरः । मलयस्थलीषु शश्वन्मुहुः सदा वा रन्तुं प्रसीदानुकूला भव ॥ ६४ ॥

अन्वयः—ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगासु एलालतालिङ्गितचन्दनासु तमालपत्रास्तरणासु मलयस्थलीषु, शश्वत रन्तुं प्रसीद।

व्याख्या—ताम्बूलस्य वल्ल्यः = लताः, इति ताम्बूलवल्ल्यस्ताभिः परिणद्धाः= परिवेष्टिताः पूगाः=क्रमुकवृक्षाः यासु ताः, तासु ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगासु, एलानां = पृथ्वीकानां लताः = व्रततयः, ताभिः आलिंगिताः = वेष्टिताः चन्दनाः = मलयजाः यासु ताः, तासु एलालतालिंगितचन्दनासु, तमालस्य=तापिच्छस्य पत्राणि = पर्णानि, एव आस्तरणानि=प्रच्छदपटाः, यासु ताः, तासु तमालपत्रास्तरणासु, मलयस्य = दक्षिणदेशस्य पर्वतविशेषस्य स्थल्यः = भूमयस्तासु मलयस्थलीषु शश्वत् = सर्वदा रन्तुं = क्रीडितुं प्रसीद = प्रसन्ना भव, त्वमिन्दुमतीति शेषः ।

समासः—ताम्बूलस्य वल्ल्यस्ताभिः परिणद्धाः पूगाः, यासु तास्तासु ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगासु । एलानां लतास्ताभिः आलिंगिताः चन्दनाः यासु ताः, तासु एलालतालिंगितचन्दनासु । तमालस्य पत्राणि एव आस्तरणानि यासु ताः, तासु तमालपत्रास्तरणासु । मलयस्य स्थल्यस्तासु मलयस्थलीषु ।

हिन्दी—पान की बेलों से ढके हुए हैं सुपारी के वृक्ष, जिनमें और जहाँ इलायची की लताओं से चन्दन के पेड़ लिपटे हुए हैं तथा जिनमें ताड़ के पत्ते ही चाँदनी के रूप में बिछे हैं ऐसी मलयगिरि की घाटियों में सर्वदा विहार करने के लिए तुम प्रसन्न हो जाओ अर्थात् यदि ऐसी मलयभूमि में सदा विहार करने की इच्छा हो तो इनसे विवाह कर लो ॥ ६४ ॥

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः ।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु ॥६५॥

संजी०—इन्दीवरेति । असौ नृप इन्दीवरश्यामतनुः, त्वं रोचना गोरोचनेव गौरी शरीरयष्टिर्यस्याः सा । ततस्तडित्तोयदयोर्विद्युन्मेघयोरिव वां युवयोर्योगः समागमोऽन्योन्यशोभायाः परिवृद्धयेऽस्तु ॥ ६५ ॥

अन्वयः—असौ नृपः इन्दीवरश्यामतनुः, त्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः, तडित्तोयदयोः इव वां योगः अन्योन्यशोभापरिवृद्धये अस्तु ।

व्याख्या—असौ=पुरोवर्ती नॄन् = जनान् पाति=रक्षतीति नृपः = राजा, इन्दीवरं = नीलाम्बुजमिव श्यामा = कृष्णा तनुः = शरीरं यस्य स इन्दीवरश्यामतनुः, त्वम् = इन्दुमती रोचना=गोरोचना इव गौरी = धवला, श्वेता, शरीरमेव यष्टिः = देहयष्टिः यस्याः सा रोचनागौरशरीरयष्टिः (तस्मात्) तडित = विद्युत् तोयदः = मेघश्चेति तडित्तोयदौ तयोस्तडित्तोयदयोः इव = यथा वाम् = युवयोः, योगः = संबन्धः समागम इत्यर्थः, अन्योन्यस्य = परस्परस्य शोभा = कान्तिः तस्याः परिवृद्धिः = प्रवर्द्धनम् इति अन्योन्यशोभापरिवृद्धिः, तस्यै अन्योन्यशोभापरिवृद्धये अस्तु = भवतु ।

समासः—इन्दीवरमिव श्यामा तनुर्यस्य स इन्दीवरश्यामतनुः । शरीरमेव यष्टिरिति शरीरयष्टिः रोचना इव गौरी शरीरयष्टिः यस्याः सा रोचनागौरशरीरयष्टिः । तडिच्च तोयदश्चेति तडित्तोयदौ तयो तडित्तोयदयोः । अन्योन्यस्य शोभा, अन्योन्यशोभा तस्याः परिवृद्धिः, तस्यै अन्योन्यशोभापरिवृद्धये ।

हिन्दी—यह सामने बैठा हुआ राजा नीलकमल के समान सांवले शरीर वाला है और तुम गोरोचन की तरह गोरे शरीर वाली हो । इसलिए बिजली और मेघ की तरह तुम दोनों का समागम एक दूसरे की शोभा को बढ़ाने के लिए हो अर्थात् मेघ के समान यह राजा हैं और बिजली के समान तुम हो, अतः मेघ बिजली की तरह तुम्हारा समागम स्थायी एवं परस्पर की शोभावृद्धि करने वाला हो ॥ ६५ ॥

स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्तदीयो लेभेऽन्तरं चेतसि नोपदेशः ।
दिवाकरादर्शनबद्धकोशे नक्षत्रनाथांशुरिवारविन्दे ॥६६॥

संजी०—स्वसुरिति । विदर्भाधिपतेर्भोजस्य स्वसुरिन्दुमत्याश्चेतसि तदीयः सुनन्दासंबन्ध्युपदेशो वाक्यम् । दिवाकरस्यादर्शनेन बद्धकोशे मुकुलितेऽरविन्दे नक्षत्रनाथांशुश्चन्द्रकिरण इव अन्तरमवकाशं न लेभे ॥ ६६ ॥

अन्वयः—**विदर्भाधिपतेः स्वसुः चेतसि तदीयः उपदेशः, दिवाकरादर्शनबद्धकोशे अरविन्दे नक्षत्रनाथांशुः इव अन्तरम् न लेभे ।**

व्याख्या—विदर्भस्य = देशविशेषस्य अधिपतिः = स्वामी = राजा तस्य विदर्भाधिपतेः = भोजस्य स्वसुः = भगिन्या इन्दुमत्या इत्यर्थः चेतसि = चित्ते तस्याः सुनन्दायाः अयं तदीयः उपदेशः कथनं वाक्यम्, दिवाकरस्य = सूर्यस्य अदर्शनम् = अप्रकाशः तेन बद्धः = अविकसितः कोशः यस्य तस्मिन् अरविन्दे = कमले नक्षत्राणां = ताराणां नाथः = स्वामी = चन्द्रस्तस्य अंशुः = किरणः इव = यथा अन्तरम् = अवकाशं = स्थानमित्यर्थः न = नहि लेभे प्राप्तवान् ।

समासः—विदर्भस्य अधिपतेः, तस्य विदर्भाधिपतेः । तस्या अयं तदीयः । न दर्शनमिति अदर्शनम् दिवाकरस्य अदर्शनं तेन बद्धः कोशः यस्य तत्तस्मिन् दिवाकरादर्शनबद्धकोशे । नक्षत्राणां नाथस्तस्य अंशुः नक्षत्रनाथांशुः ।

हिन्दी—हिन्दी विदर्भ (बरार) के राजा भोज की बहन के मन में सुनन्दा का उपदेश उसी प्रकार स्थान न प्राप्त कर सका, जिस प्रकार सूर्य के न दीखने से बन्द हुए कमल में नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा की किरणें स्थान नहीं प्राप्त कर सकती हैं ।। ६६ ।।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।। ६७ ।।

संजी०—संचारिणीति । पतिंवरा सेन्दुमती रात्रौ संचारिणी दीपशिखेव यं यं भूमिपालं व्यतीत्यायातीत्य गता स स भूमिपालः । स सर्व इत्यर्थः । 'नित्यवीप्सयोः' (पा. ८।१।४) इति वीप्सायां द्विर्वचनम् । नरेन्द्रमार्गे राजपथेऽट्टाख्यो गृहभेद इव 'स्यादट्टः क्षौममस्त्रियाम्' इत्यमरः । विवर्णभावं विच्छायत्वम् । प्रपेदे ।। ६७ ।।

अन्वयः—**पतिंवरा सा रात्रौ संचारिणी दीपशिखा इव यं यं व्यतीयाय, स स भूमिपालः नरेन्द्रमार्गाट्ट इव विवर्णभावं प्रपेदे ।**

व्याख्या—पतिं वृणोति या सा । पतिंवरा = स्वयंवरा, सा = इन्दुमती, रात्रौ = निशायां संचरितुं शीलं यस्याः सा संचारिणी = गमनशीला दीपस्य = प्रदीपस्य शिखा = अर्चिः = ज्वाला दीपशिखा इव = यथा यं यं = भूमिपालं व्यती-

याय = अतिक्रम्य गता स स=भूमिपाल: नराणामिन्द्रस्तस्य नरेन्द्रस्य = राज्ञ: मार्ग:=पन्था:, तस्मिन् नरेन्द्रमार्गे=राजमार्गे, अट्ट: = क्षौम:, गृहविशेष: इति नरेन्द्रमार्गाट्ट:, इव=यथा विवर्णस्य भाव:, तं विवर्णभावं = प्रभाहीनत्वं मलिनता-मिति यावत् अट्टस्तु अन्धकारावृतत्वम् प्रपेदे = प्राप।

समास:—संचरितुं शीलं यस्या: सा संचारिणी। दीपस्य शिखा दीपशिखा। नराणामिन्द्र: नरेन्द्रस्तस्य मार्ग: नरेन्द्रमार्ग: तस्मिन् अट्ट:, इति नरेन्द्रमार्गाट्ट:। भूमिं पालयतीति भूमिपाल:, विवर्णस्य भाव: विवर्णभाव:, तं विवर्णभावम्।

हिन्दी—रात में चलती-फिरती दीपक की शिखा (ज्योति) राजमार्ग में स्थित जिस-जिस मकान को छोड़कर आगे बढ़ जाती है तो वह-वह मकान जैसे अन्धकार से घिर जाता है, उसी प्रकार पति को वरण करने वाली वह इन्दुमती जिस-जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ गई वह-वह राजा मलिनता को प्राप्त हो गया। अर्थात् निराश से उन सबका मुख काला पड़ गया॥ ६७॥

तस्यां रघोः सूनुरुपस्थितायां वृणीत मां नेति समाकुलोऽभूत्।
वामेतरः संशयमस्य बाहुः केयूरबन्धोच्छ्वसितैर्नुनोद॥ ६८॥

संजी०--तस्यामिति। तस्यामिन्दुमत्यामुपस्थितायामासन्नायां सत्यां रघोः सूनूरजो मां वृणीत न वेति समाकुल: संशयितोऽभूत्। अथास्याजस्य वामेतरो वामादितरो दक्षिणो बाहु: केयूरं बध्यतेऽत्रेति केयूरबन्धोऽङ्गदस्थानम्। तस्योच्छ्-वसितै: स्फुरणै: संशयं नुनोद॥ ६८॥

अन्वय:—**तस्याम् उपस्थितायां (सत्यां) रघो: सूनु: मां वृणीत न वा इति समाकुल: अभूत्। (अथ) अस्य वामेतर: बाहु: केयूरबन्धोच्छ्वसितै: संशयं नुनोद।**

व्याख्या:—तस्याम् = इन्दुमत्याम् उपस्थितायाम् = समीपमागतायां रघो: = सत्यामदिलीपसूनो: सूनु:=पुत्र:=अज:, माम्=अजं वृणीत=वरयेत् नवा इति सम्यग् अकुल:=संशयाक्रान्त:, अभूत्=जात:। अथ=संशयानन्तरम् अस्य=अजस्य वामात्= सव्यात् इतर:=अन्य:, इति वामेतर: = दक्षिण: बाहु: = भुज:,केयूरस्य = अंगदस्य बन्ध: = बन्धनस्थानम् तस्य उच्छ्वसितानि = स्फुरणानि केयूरबन्धोच्छ्वसितानि तै: केयूरबन्धोच्छ्वसितै: संशयं = मां वृणीतनवेति सन्देहं नुनोद = निवारयामास।

समासः—सम्यगाकुलः इति समाकुलः। वामात् इतर इति वामेतरः। केयूरस्य बन्धः केयूरबन्धः केयूरबन्धस्य उच्छ्वसितानि तैः केयूरबन्धोच्छ्वसितैः।

हिन्दी—जब वह इन्दुमती समीप में आकर खड़ी हो गई तो रघु का पुत्र अज 'मुझे यह वरण करेगी या नहीं' इस संशय में पड़ गया। किन्तु उसी समय अज के दाहिने हाथ ने भुजबन्ध के स्थान में फरकने से संशय को दूर कर दिया॥ ६८॥

तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यावर्ततान्योपगमात्कुमारी।
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली॥६९॥

संजी०—तमिति। कुमारी। सर्वेष्ववयवेष्वनवद्यमदोषं तमजं प्राप्य। अन्योपगमाद्राजान्तरोपगमाद्व्यावर्तत निवृत्ता, तथाहि-षट्पदाली भृङ्गावलिः। प्रफुल्लतीति प्रफुल्लं विकसितम्। पुष्पितमित्यर्थः। प्रपूर्वात्फुल्लतेः पचाद्यच्। फलतेस्तु प्रफुल्लमिति पठितव्यम्। 'अनुपसर्गात्–'(पा.८।२।५५) इति निषेधात्। इत्युभयथापि न कदाचिदनुपपत्तिरित्युक्तं प्राक्। सहकारं चूतविशेषमेत्य। 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः। वृक्षान्तरं न काङ्क्षति। न हि सर्वोत्कृष्टवस्तुलाभेऽपि वस्त्वन्तरस्याभिलाषः स्यादित्यर्थः॥ ६९॥

अन्वयः—**कुमारी सर्वावयवानवद्यं तं प्राप्य अन्योपगमात् व्यावर्तत हि षट्पदाली प्रफुल्लं सहकारम् एत्य वृक्षान्तरं न कांक्षति।**

व्याख्या—कुमारी = कन्या, इन्दुमतीत्यर्थः सर्वे च ते अवयवाः सर्वावयवाः सर्वावयवेषु = सम्पूर्णाङ्गेषु अनवद्यः = दोषरहितः, तं सर्वावयवानवद्यं तम् = अजं प्राप्य = अवाप्य, अन्यस्य = अपरस्य, उपगमः = समीपगमनं तस्मात् अन्योपगमात् राजान्तरसमीपगमनादित्यर्थः, व्यावर्तत = निवृत्ता, हि = तथाहि षट् = षट्संख्यकाः पदानि = चरणाः येषान्ते षट्पदास्तेषाम् आली = पङ्क्तिः, षट्पदाली = भ्रमरावलिः, प्रफुल्लतीति प्रफुल्लं = विकसितं सहकारम् = आम्रवृक्षम् एत्य = प्राप्य अन्यो वृक्षः वृक्षान्तरं तत् वृक्षान्तरम् = पादपान्तरं न = नैव कांक्षति = अभिलषति।

समासः—न अवद्यः अनवद्यः सर्वे च ते अवयवाश्च सर्वावयवाः, सर्वावयवेषु अनवद्यस्तं सर्वावयवानवद्यम्। अन्यस्य उपगमस्तस्मात् अन्योपगमात्। अन्यः वृक्षः

वृक्षान्तरं तद् वृक्षान्तरम्। षट् पदानि येषां ते तथोक्ताः षट्पदानाम् आली षट्पदाली। प्रकर्षेण फुल्लतीति प्रफुल्लस्तं प्रफुल्लम्।

हिन्दी—कुमारी इन्दुमती, सर्वांगसुन्दर उस अज को पाकर दूसरे राजा के पास जाने से रुक गई। ठीक ही है भौरों का झुण्ड खिले हुए आम के वृक्ष को पाकर दूसरे किसी वृक्ष को नहीं चाहता। अर्थात् सर्वोत्कृष्ट वस्तु के मिल जाने पर कोई दूसरी वस्तु को नहीं चाहता॥ ६९॥

तस्मिन्समावेशितचित्तवृत्तिमिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य।
प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा सविस्तरं वाक्यमिदं सुनन्दा॥ ७०॥

संजी०—तस्मिन्निति। तस्मिन्नजे समावेशिता संक्रामिता चित्तवृत्तिर्यया ताम्। इन्दोः प्रभेव प्रभा यस्यास्ताम्। आह्लादकत्वादिन्दुसाम्यम्। इन्दुमतीमवेक्ष्यानुक्रमज्ञा वाक्यपौर्वापर्याभिज्ञा सुनन्देदं वक्ष्यमाणं सविस्तरं सप्रपञ्चम्। 'प्रथने वावशब्दे' (पा. ३।३।३३) इति घञो निषेधात्, ऋदोरप्' (पा. ३।३।५७) इत्यप्प्रत्ययः। 'विस्तारो विग्रहो व्यासः स च शब्दस्य विस्तरः' इत्यमरः। वाक्यं वक्तुं प्रचक्रमे॥ ७०॥

अन्वयः—तस्मिन् समावेशितचित्तवृत्तिम् इन्दुप्रभाम् इन्दुमतीम् अवेक्ष्य अनुक्रमज्ञा सुनन्दा इदं सविस्तरं वाक्यं वक्तुं प्रचक्रमे।

व्याख्या—तस्मिन् = अजे सम्यगावेशिता = संक्रामिता चित्तस्य = मनसः वृत्तिः = व्यापारः यया सा, ताम् समावेशितचित्तवृत्तिम्, इन्दोः = चन्द्रस्य प्रभा = कान्तिः इव प्रभा यस्याः सा ताम् इन्दुप्रभाम्, इन्दुमतीम् = भोज्याम् अवेक्ष्य = अवलोक्य, अनुक्रमम् = पौर्वापर्यम् जानाति = वेत्तीति अनुक्रमज्ञा सुनन्दा = दौवारिकी इदं = वक्ष्यमाणं विस्तरेण सहितं सविस्तरं = सप्रपञ्चं विस्तारपूर्वमित्यर्थः, वाक्यं = वचनं वक्तुं = कथयितुं प्रचक्रमे = आरेभे।

समासः—*सम्यग् आवेशिता चित्तस्य वृत्तिर्यया सा तां समावेशितचित्तवृत्तिम्।* इन्दोः प्रभा इव प्रभा यस्याः सा ताम् इन्दुप्रभाम्। अनुक्रमं जानातीति अनुक्रमज्ञा। विस्तरेण सहितं यथा भवति तथा सविस्तरम्।

हिन्दी—उस अज में लगी है चित्तवृत्ति जिसकी (अर्थात् अज में अनुरक्त) और चन्द्रमा के समान सुन्दर कान्तिवाली इन्दुमती को जानकर राजवंशावली को

जानने वाली सुनन्दा, आगे कहे जाने वाले वचन को विस्तारपूर्वक कहने लगी ॥ ७० ॥

इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत् ।
काकुत्स्थशब्दं यत उन्नतेच्छाः श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोसलेन्द्राः ।७१।

संजी०——इक्ष्वाक्विति । इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य वंश्यो वंशे भवः । नृपाणां ककुदं श्रेष्ठः । 'ककुच्च ककुदं श्रेष्ठे वृषांसे राजलक्ष्मणि' इति विश्वः, आहितलक्षणः प्रख्यातगुणः। 'गुणैः प्रतीते तु कृतलक्षणाहितलक्षणौ' इत्यमरः । ककुदि वृषांसे तिष्ठतीति ककुत्स्थ इति प्रसिद्धः कश्चिद्राजाभूत् । यतः ककुत्स्थादारभ्योन्नतेच्छा महाशयाः । 'महेच्छस्तु महाशयः' इत्यमरः । उत्तरकोसलेन्द्रा राजानो दिलीपादयः श्लाघ्यं प्रशस्तम् । ककुत्स्थस्यापत्यं पुमान् काकुत्स्थ इति शब्दं संज्ञां दधति बिभ्रति । तन्नामसंस्पर्शोऽपि वंशस्य कीर्तिकर इति भावः । पुरा किल पुरंजयो नाम साक्षाद्भगवतो विष्णोरंशावतारः कश्चिदैक्ष्वाको राजा देवैः सह समयबन्धेन देवासुरयुद्धे महोक्षरूपधारिणो महेन्द्रस्य ककुदि स्थित्वा पिनाकिलीलया निखिलमसुरकुलं निहत्य ककुत्स्थसंज्ञां लेभ इति पौराणिकी कथाऽत्रानुसंधेया । वक्ष्यते चायमेवार्थ उत्तरश्लोके ॥ ७१ ॥

अन्वयः—इक्ष्वाकुवंश्यः नृपाणां ककुदम् आहितलक्षणः ककुत्स्थः इति कश्चित् अभूत् । यतः उन्नतेच्छाः उत्तरकोसलेन्द्राः श्लाघ्यं काकुत्स्थशब्दं दधति ।

व्याख्या—इक्ष्वाकोः=मनुपुत्रस्य वंशः=कुलं तत्र भवः इक्ष्वाकुवंश्यः नृपाणां भूपालानां ककुदं=श्रेष्ठः (अजहल्लिङ्गमिदम्) । आहितानि=प्रख्यातानि लक्षणानि=गुणाः यस्य स आहितलक्षणः ककुदि=वृषस्कन्धे तिष्ठतीति ककुत्स्थः, इति प्रसिद्धः कश्चित् राजा अभूत्=जातः, यतः=यस्मात् ककुत्स्थात् आरभ्य उन्नता=महती इच्छा=आशयः येषां ते उन्नतेच्छाः=महाशयाः, उत्तराः=उत्तरदिग्भवाश्च ते कोसलाः=देशाः, इति उत्तरकोसलास्तेषाम् इन्द्राः=राजानः उत्तरकोसलेन्द्राः=दिलीपादयः श्लाघ्यं=प्रशंसनीयम् ककुत्स्थस्य अपत्यं पुमान् काकुत्स्थः, काकुत्स्थ इति शब्दः=संज्ञा इति तं काकुत्स्थशब्दं दधति=बिभ्रति ।

समासः—इक्ष्वाकोः वंशस्तत्र भवः इक्ष्वाकुवंश्यः। ककुदि तिष्ठतीति ककुत्स्थः। आहितं लक्षणं यस्य स आहितलक्षणः। ककुत्स्थस्यापत्यं पुमान् काकुत्स्थः, काकुत्स्थ इति शब्दः काकुत्स्थशब्दः तं काकुत्स्थशब्दम्। उन्नता इच्छा येषां ते उन्नतेच्छाः। उत्तरश्चासौ कोसलः उत्तरकोसलस्तस्य इन्द्राः उत्तरकोसलेन्द्राः।

हिन्दी—मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न राजाओं में श्रेष्ठ और प्रख्यातगुणशाली ककुत्स्थ नाम का एक प्रसिद्ध राजा हुआ था, उस ककुत्स्थ से लेकर अब तक महान आशय वाले उत्तर कोसल के राजा दिलीप आदि, प्रशंसनीय 'काकुत्स्थ' संज्ञा को धारण करते हैं। पूर्वकाल में कभी साक्षात् विष्णु का अंशावतार पुरंजय नाम का कोई राजा इक्ष्वाकु के वंश में हुआ था जिसने कि देवताओं के साथ सन्धि करके देवासुर संग्राम में बैलरूपधारी इन्द्र के कन्धे पर बैठकर शिवजी की लीला करके संपूर्ण असुरों का विनाश किया था, उसी समय से इनको बैल के ककुद पर बैठने के कारण 'ककुत्स्थ' कहते हैं। ऐसी पुराण की कथा है। इसी बात को ७२ वें श्लोक में कहते हैं॥ ७१॥

महेन्द्रमास्थाय महोक्षरूपं यः संयति प्राप्तपिनाकिलीलः।
चकार बाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः॥७२॥

संजी०—महेन्द्रमिति। यः ककुत्स्थः संयति युद्धे। महानुक्षा महोक्षः। 'अचतुर–' (पा. ५।४।७७) इत्यादिना निपातः। तस्य रूपमिव रूपं यस्य तं महेन्द्रमास्थायारुह्य। अत एव प्राप्ता पिनाकिन ईश्वरस्य लीला येन स तथोक्तः सन् बाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखा निवृत्तपत्ररचनाश्चकार। तद्भर्तॄनसुरानवधीदित्यर्थः। न हि विधवाः प्रसाध्यन्त इति भावः॥ ७२॥

अन्वयः—**यः संयति महोक्षरूपं महेन्द्रम् आस्थाय (अत एव) प्राप्तपिनाकिलीलः सन् बाणैः असुरांगनानां गण्डस्थलीः प्रोषितपत्रलेखाः चकार।**

व्याख्या—यः=ककुत्स्थः संयति=संग्रामे महान् उक्षा महोक्षः महोक्षस्य=महावृषस्य रूपमिव रूपम्=स्वरूपमाकृतिः यस्य स तं महोक्षरूपं महेन्द्रं=मघवानम्=इन्द्रम् आस्थाय=आरुह्य अत एव प्राप्ता=अवाप्ता पिनाकिनः=शिवस्य लीला=क्रीडा येन स प्राप्तपिनाकिलीलः सन् बाणैः शरैः असुराणां=दैत्यानाम् अंगनाः=स्त्रियः, तासाम् असुरांगनानाम् गण्डयोः=कपोलयोः स्थल्यः=स्थलानि गण्डस्थल्यस्ताः गण्डस्थलीः

प्रोषिताः=निवृत्ताः पत्राणां = चित्रविशेषाणां लेखाः=रचनाः यासु ताः प्रोषितपत्र-लेखास्ताः चकार=कृतवान् । असुराणां वधादित्यर्थः, नहि खलु विधवाः स्त्रियः प्रसाधनं कुर्वन्तीति भावः ।

समासः—महांश्चासौ उक्षा च महोक्षः महोक्षस्य रूपमिव रूपं यस्य स तं महोक्षरूपम् । प्राप्ता पिनाकिनः लीला येन स प्राप्तपिनाकिलीलः । असुराणाम् अंगनास्तासाम् असुरांगनानाम् गण्डयोः स्थल्यस्ताः गण्डस्थलीः । प्रोषिताः पत्राणां लेखाः यासु ताः प्रोषितपत्रलेखाः ।

हिन्दी—जिस ककुत्स्थ राजा ने देवासुर संग्राम में महावृषभ (साँड़) का रूप धारण किये हुए इन्द्र के ऊपर चढ़कर इसी से शिवजी की लीला को प्राप्त होकर अपने बाणों से (दैत्यों को मारने के कारण) असुरों की स्त्रियों के कपोल स्थलों को पत्ररचना (श्रृंगार विशेष) से शून्य कर दिया । अर्थात् पतियों के मर जाने पर असुर स्त्रियों ने विधवा होने से श्रृंगार करना छोड़ दिया ॥७२॥

ऐरावतास्फालनविश्लथं यः संघट्टयन्नङ्गदमङ्गदेन ।
उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्यामर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ ॥७३॥

संजी०—ऐरावतेति । यः ककुत्स्थ ऐरावतस्य स्वर्गजस्यास्फालनेन ताडनेन विश्लथं शिथिलमङ्गदमैन्द्रमङ्गदेन स्वकीयेन संघट्टयन् संघर्षयन् स्वामग्र्यां श्रेष्ठां मूर्तिमुपेयुषोऽपि प्राप्तस्यापि गोत्रभिद इन्द्रस्यार्धमासनस्यार्धासनम् । 'अर्धं नपुंसकम्' (पा. २।२।२) इति समासः । अधितष्ठावधिष्ठितवान् । 'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य (पा. ८।३।६४) इत्यभ्यासेन व्यवायेऽपि षत्वम् । न केवलं महोक्ष-रूपधारिण एव तस्य ककुदमारुरुक्षत् । किन्तु निजरूपधारिणोऽपीन्द्रस्यार्धासन-मित्यपिशब्दार्थः । अथवा—अर्धासनमपीत्यपेरन्वयः ॥७३॥

अन्वयः—**यः ऐरावतस्फालनविश्लथम् अंगदम् अंगदेन संघट्टयन् स्वाम् अग्र्यां मूर्तिम् उपेयुषः अपि गोत्रभिदः अर्धासनम् अधितष्ठौ ।**

व्याख्या—यः=ककुत्स्थः ऐरावतस्य=इन्द्रगजस्य स्फालनं=ताडनं तेन विश्लथं= शिथिलम्, इति ऐरावतस्फालनविश्लथम्, अंगदम्=इन्द्रस्य केयूरम्, अंगदेन=स्वकीय-केयूरेण, संघट्टयन्=संघर्षयन्, स्वाम्=स्वकीयाम्, अग्र्याम्=श्रेष्ठाम् मूर्तिम्=देहं, शरीरम् उपेयुषः=प्राप्तस्य, अपि गोत्रान्=पर्वतान् भिनत्तीति=विदारयतीति गोत्रभित्

तस्य गोत्रभिदः=इन्द्रस्य, आसनस्य=पीठस्य अर्धम्=अर्धभागम्, अर्धासनम् अधितष्ठौ=अधिष्ठितवान् । न केवलं महावृषभरूपिणः इन्द्रस्य ककुदमारुरुक्षत् किन्तु तस्यार्धासनमपि अधिष्ठितवानित्यर्थः ।

समासः—ऐरावतस्य स्फालनं तेन विश्लथमिति ऐरावतस्फालनविश्लथम् तत् आसनस्यार्धम् अर्धासनम् तत् । गोत्रान् भिनत्तीति गोत्रभित्, तस्य गोत्रभिदः । अग्रे भवा अग्र्या, ताम् अग्र्याम् ।

हिन्दी—जो ककुत्स्थ राजा (युद्ध समाप्त होने पर) ऐरावत हाथी की पीठ ठोकने से ढीले पड़े हुए इन्द्र के बाजूबन्द को अपने बाजूबन्द से रगड़ते हुए, उस इन्द्र के आधे सिंहासन पर बैठे थे। जो इन्द्र अपने श्रेष्ठ देह को धारण किये हुए थे। अर्थात् सांड़ का रूप छोड़कर अपने स्वरूप में सिंहासन पर बैठे थे तब ककुत्स्थ भी इन्द्र से सट कर आधे आसन पर बैठे थे ॥ ७३ ॥

जातः कुले तस्य किलोरुकीर्तिः कुलप्रदीपो नृपतिर्दिलीपः ।
अतिष्ठदेकोनशतक्रतुत्वे शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये यः ॥७४॥

संजी०—जात इति । उरुकीर्तिर्महायशाः कुलप्रदीपो वंशप्रदीपको दिलीपो नृपतिस्तस्य ककुत्स्थस्य कुले जातः किल । यो दिलीपः शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये । न त्वशक्त्येति भावः । एकेनोनाः शतं क्रतवो यस्य स एकोनशतक्रतुस्तस्य भावे तत्त्वेऽतिष्ठत् । इन्द्रप्रीतये शततमं क्रतुमवशेषितवानित्यर्थः ॥ ७४ ॥

अन्वयः—उरुकीर्तिः **कुलप्रदीपः दिलीपः नृपतिः तस्य कुले जातः, यः शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये एकोनशतक्रतुत्वे अतिष्ठत् ।**

व्याख्या—उरुः=विस्तीर्णा कीर्तिः=यशः यस्य स उरुकीर्तिः कुलस्य=वंशस्य, प्रदीपः=दीपः, प्रकाशक इत्यर्थः, कुलप्रदीपः दिलीपः एतन्नामा नृणां पतिः नृपतिः= राजा, तस्य=ककुत्स्थस्य कुले=वंशे, जातः=अभूत्, यः=दिलीपः किल=प्रसिद्धम्, शक्रस्य=इन्द्रस्य, अभ्यसूया=गुणेषु दोषाविष्करणं तस्याः विनिवृत्तिः=निवारणं तस्यै, शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये न तु असामर्थ्यात् एकेन=क्रतुना एकसंख्यकेन ऊनाः=हीनाः शतं क्रतवः=शतं यज्ञाः यस्य स एकोनशतक्रतुः, तस्य भावः तत्त्वम् एकोनशतक्रतुत्वं तस्मिन् एकोनशतक्रतुत्वे, अतिष्ठत् तस्थौ । इन्द्रस्य प्रसन्नतार्थं शततमं यज्ञं न कृतवानित्यर्थः ।

समासः—ऊरुः कीर्तिः यस्य स उरुकीर्तिः। कुलस्य प्रदीपः कुलप्रदीपः। शक्रस्य अभ्यसूया, शक्राभ्यसूया तस्याः विनिवृत्तिः, तस्यै शक्राभ्यसूयाविनिवृत्तये। एकेन ऊनाः शतं क्रतवः यस्य स एकोनशतक्रतुः, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मिन् एकोनशतक्रतुत्वे।

हिन्दी—महायशस्वी कुलदीपक (कुल को चमका देनेवाला) दिलीप नाम का राजा उस ककुत्स्थ राजा के वंश में उत्पन्न हुआ था। जो राजा दिलीप, इन्द्र की ईर्ष्या (डाह) को दूर करने के लिए ही केवल निन्यानबे यज्ञ करके रह गये। अर्थात् इन्द्र को डाह न हो इसलिए सौवाँ यज्ञ नहीं किया। क्योंकि सौवाँ यज्ञ कर लेने से तो दिलीप भी शतक्रतु इन्द्र बन जाते॥ ७४॥

यस्मिन्महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथे गतानाम्।
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्॥७५॥

संजी०—यस्मिन्निति। यस्मिन् दिलीपे महीं शासति सति। विहरत्यत्रेति विहारः क्रीडास्थानम्। तस्यार्धपथे निद्रां गतानां वाणिनीनां मत्ताङ्गनानाम्। 'वाणिनी नर्तकीमत्ताविदग्धवनितासु च' इति विश्वः। 'वाणिन्यौ नर्तकीमत्ते' इत्यमरश्च। अंशुकानि वस्त्राणि वातोऽपि नास्रंसयन्नाकम्पयत्। आहरणायापहर्तुं को हस्तं लम्बयेत्? यस्याज्ञासिद्धत्वादकुतोभयसंचाराः प्रजा इत्यर्थः। अर्धश्चासौ पन्थाश्चेति विग्रहः। समप्रविभागे प्रमाणाभावान्नैकदेशिसमासः॥ ७५॥

अन्वयः—**यस्मिन् महीं शासति सति, विहारार्धपथे निद्रां गतानां वाणिनीनाम्, अंशुकानि वातः अपि न अस्रंसयत्, आहरणाय कः हस्तं लम्बयेत्।**

व्याख्या—यस्मिन् दिलीपे मह्यते=पूज्यते इति मही ताम् महीं=पृथिवीं शासति=पालयति सति, विहरति अत्र स विहारः अर्धश्चासौ पन्थाश्चेति अर्धपथः, विहारस्य=क्रीडास्थानस्य अर्धपथः=अर्धमार्गः, विहारार्धपथस्तस्मिन् विहारार्धपथे निद्रां=शयनम् गतानाम्=प्राप्तानाम् वाणिनीनां=मत्तांगनानां नर्तकीनाम् अंशुकानि=वस्त्राणि वातः=पवनः अपि न अस्रंसयत्=अकम्पयत्, आहरणाय=अपहरणाय, कः=जनः, हस्तं=करं लम्बयेत्=प्रसारयेत्? न कोऽपीत्यर्थः।

समासः—मह्यते इति मही तां महीम्। विहरति यत्रेति विहारः अर्धश्चासौ पन्थाश्चेति अर्धपथः, विहारस्यार्धपथः तस्मिन् विहारार्धपथे।

हिन्दी—महाप्रतापी जिस राजा दिलीप के शासनकाल में क्रीडास्थल (उपवनों)के बीच मार्ग में (मद्य पीकर) सोई हुई स्त्रियों के वस्त्रों को वायु भी नहीं हिलाता था। तो फिर उनको अपहरण करने के लिये कौन हाथ लगा सकता था। अर्थात् कोई भी नहीं। याने राजा दिलीप का प्रभाव इतना सुन्दर था कि प्रजा निर्भय होकर विचरण करती थी ॥७५॥

पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता।
चतुर्दिगावर्जितसंभृतां या मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम् ॥७६॥

संजी०—पुत्र इति। विश्वजितो नाम महाक्रतोः प्रयोक्ताऽनुष्ठाता तस्य दिलीपस्य पुत्रो रघुः पदं पैत्र्यमेव। प्रशास्ति पालयति। यो रघुश्चतसृभ्यो दिग्भ्य आवर्जिताहृता संभृता सम्यग्वर्धिता च या तां चतुर्दिगावर्जितसंभृतां विभूतिं संपदं मृत्पात्रमेव शेषो यस्यास्तामकरोत्। विश्वजिद्यागस्य सर्वस्वदक्षिणाकत्वा-दित्यर्थः ॥७६॥

अन्वयः—**विश्वजितः महाक्रतोः प्रयोक्ता, तस्य पुत्रः रघुः पदं प्रशास्ति, यः चतुर्दिगावर्जितसंभृताम् विभूतिं मृत्पात्रशेषाम् अकरोत्।**

व्याख्या—विश्वं=जगत् जयति=अभिभवति इति विश्वजित् तस्य विश्व-जितः महांश्चासौ क्रतुश्चेति महाक्रतुस्तस्य महाक्रतोः=महायज्ञस्य प्रयोक्ता= अनुष्ठाता कर्ता, तस्य=दिलीपस्य पुत्रः=आत्मजः=रघुरित्यर्थः पदं=पैत्र्यं= राज्यं प्रशास्ति=पालयति। यः= रघुः, चतसृभ्यः=चतुःसंख्यकाभ्यः दिग्भ्यः= काष्ठाभ्यः आवर्जिता=आनीता संभृता=सम्यग्वर्धिता या सा ताम् चतुर्दिगावर्जित-संभृताम् विभूतिम्=ऐश्वर्यम् संपदम्, मृदः=मृत्तिकायाः पात्रं=भाजनमेव शेषः=अवशिष्टः भागः यस्याः सा, ताम् मृत्पात्रशेषाम् अकरोत्=कृतवान्। विश्वजिद्यज्ञे सर्वस्वदानादित्यर्थः।

समासः—विश्वं जयतीति विश्वजित् तस्य विश्वजितः। महांश्चासौ क्रतु-श्चेति महाक्रतुस्तस्य महाक्रतोः। चतस्रश्च ता दिशः चतुर्दिशः ताभ्यः आवर्जिता संभृता च या सा तां चतुर्दिगावर्जितसंभृताम्। मृदः पात्रमेव शेषः यस्याः सा तां मृत्पात्रशेषाम्।

हिन्दी—विश्वजित् नाम के महायज्ञ को करने वाला रघु नामक दिलीप का पुत्र, पिता के राज्य का ही पालन कर रहा है। जिसने चारों

दिशाओं को जीतकर लाई हुई तथा खूब बढ़ायी गई—अपार संपत्ति को, मिट्टी का पात्र ही रह गया है शेष जिसमें ऐसी कर दिया। अर्थात् विश्वजिद् यज्ञ में सर्वस्व दान देकर अपने पास रघु ने केवल मिट्टी के बर्तन ही रखे थे। क्योंकि इस यज्ञ में सर्वस्व दान दिया जाता है ॥ ७६ ॥

आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णं भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम्।
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम् ॥७७॥

संजी०—आरूढमिति। किंच, अद्रीनारूढम्। उदधीन्वितीर्णमवगाढम्। सकलभूगोलव्यापकमित्यर्थः। भुजंगमानां वसतिं पातालं प्रविष्टम्। ऊर्ध्वं स्वर्गादिकं गतं व्याप्तम्। इत्थं सर्वदिग्व्यापीत्यर्थः। अनुबध्नातीत्यनुबन्धि चाविच्छेदि। कालत्रयव्यापकं चेत्यर्थः, अत एवैवंभूतं यस्य यश इयत्तया देशतः कालतो वा केनचिन्मानेन परिच्छेत्तुं परिमातुं नालं न शक्यम् ॥ ७७ ॥

अन्वयः—अद्रीन् आरूढम्, उदधीन् वितीर्णम्, भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम् ऊर्ध्वं गतम् अनुबन्धि च (अत एव, एवं भूतम्) यस्य यशः इयत्तया परिच्छेत्तुं न अलम्।

व्याख्या—अद्रीन्=पर्वतान् आरूढम्=अधिष्ठाय स्थितम् उदधीन्=समुद्रान् वितीर्णम्=अवलंघितम् सम्पूर्णमृत्युलोके व्याप्तमित्यर्थः, भुजैः गच्छन्ति ते भुजंगमास्तेषां भुजंगमानां=सर्पाणां वसतिं=निवासस्थानं=पाताललोकं प्रविष्टम्=गतम्, ऊर्ध्वं=स्वर्गलोकं गतम्=व्याप्तम् सर्वदिग्व्याप्तमित्यर्थः, अनुबध्नातीति अनुबन्धि=अविच्छेदि च=समुच्चये, कालत्रयव्यापकमिति यावत्। अत एव, इत्थं भूतं यस्य=दिलीपपुत्रस्य रघोः यशः=कीर्तिः इयत्तया=देशतः कालतो वा केनापि मानेन परिच्छेत्तुं=परिमातुं न=नहि, अलम्=शक्यम्। रघुयशसः देशकालाभ्यां परिमाणं नास्तीत्यर्थः।

समासः—उदकानि धीयन्ते येषु ते उदधयः तान् उदधीन्। भुजैः गच्छन्ति ते भुजंगमास्तेषां भुजंगमानाम्। अनुबध्नातीति, अनुबन्धि। इयतः भावः इयत्ता, तया इयत्तया।

हिन्दी—और जो पर्वतों के ऊपर तथा समुद्रों के पार तक गया हुआ (अर्थात् सारे भूलोक में फैला हुआ) और पाताल में स्वर्गलोक में व्याप्त है

तथा भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों में भी व्याप्त है ऐसे सर्वत्र फैले हुए जिस रघु के यश को इतना है यह कहना सामर्थ्य के बाहर है ॥ ७७ ॥

असौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः।
गुर्वीं धुरं यो भुवनस्य पित्रा धुर्येण दम्यः सदृशं बिभर्ति ॥७८॥

संजी०—असाविति। असावजाख्यः कुमारः। त्रिविष्टपस्य स्वर्गस्य पतिमिन्द्रं जयन्त इव। 'जयन्तः पाकशासनिः' इत्यमरः। तं रघुमनुजातः। तस्माज्जात इत्यर्थः। तज्जातोऽपि तदनुजातो भवति, जन्यजनकयोरानन्तर्यात्। 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' (पा. ३।४।७२) इति क्तः। सोपसृष्टत्वात्सकर्मकत्वम्। आह चात्रैव सूत्रे वृत्तिकारः—'श्लिषादयः सोपसृष्टाः सकर्मका भवन्ति' इति। दम्यः शिक्षणीयावस्थः। योऽजो गुर्वीं भुवनस्य धुरं धुर्येण धुरंधरेण चिरनिरूढेन पित्रा सदृशं तुल्यं यथा तथा बिभर्ति। यथा कश्चिद्वत्सतरोऽपि धुर्येण महोक्षेण समं वहतीत्युपमालंकारो ध्वन्यते। 'दम्यवत्सतरौ समौ' इत्यमरः ॥७८॥

अन्वयः—असौ **कुमारः त्रिविष्टपस्य पतिं जयन्त इव तम्** अनुजातः। **दम्यः यः गुर्वीं भुवनस्य धुरं धुर्येण पित्रा सदृशं बिभर्ति।**

व्याख्या—असौ=अजनामा कुमारः=युवराजः त्रयाणां विष्टपानां समाहारस्त्रिविष्टपम्, त्रिविष्टपस्य=स्वर्गस्य, पतिं=स्वामिनमिन्द्रं, जयन्तः=पाकशासनिः, इव=यथा, तं=रघुम्, अनुजातः=उत्पन्नः, तस्मात् रघोः जात इत्यर्थः। दम्यः=वत्सतरः=शिक्षणीयावस्थ इति यावत्। यः=अजः, गुर्वीं=गुरुतरां, भुवनस्य=लोकस्य, धुरं=भारं धुर्येण=धुरन्धरेण चिररूढेन, पित्रा=जनकेन, सदृशं=तुल्यं यथा तथा बिभर्ति=धारयति। यथा कश्चित् अल्पवयस्को वत्सः महोक्षेण बलीवर्देन समं धुरं वहति, तथाजोऽपि कुमार एव पित्रा समं प्रजापालनरूपं भूभारं वहतीत्यर्थः।

समासः—त्रयाणां विष्टपानां समाहारस्त्रिविष्टपं तस्य त्रिविष्टपस्य।

हिन्दी—यह अज नाम का युवराज, स्वर्गलोक के स्वामी इन्द्र के पुत्र जयन्त के समान, रघु से उत्पन्न हुआ है। जो अज कुमारावस्था में ही गुरुतर राज्य भार को प्रतापी बलवान् पिता के बराबर वैसे ही वहन करता है जैसे बछड़ा बड़े बैल के बराबर धुरे को वहन करता हो ॥७८॥

कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥७९॥

संजी०—कुलेनेति । कुलेन कान्त्या लावण्येन नवेन वयसा यौवनेन विनयः प्रधानं येषां तैस्तैर्गुणैः श्रुतशीलादिभिश्चात्मनस्तुल्यं स्वानुरूपममुमजं त्वं वृणीष्व । किं बहुना, रत्नं काञ्चनेन समागच्छतु संगच्छताम् । प्रार्थनायां लोट् । रत्न-काञ्चनयोरिवात्यन्तानुरूपत्वाद्युवयोः समागमः प्रार्थ्यत इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

अन्वय:—कुलेन कान्त्या नवेन वयसा, विनयप्रधानैः तैः तैः गुणैः आत्मनः तुल्यम् अमुम् त्वं वृणीष्व, रत्नं कांचनेन समागच्छतु ।

व्याख्या—कुलेन = वंशेन, कान्त्या=लावण्येन, नवेन = नूतनेन, वयसा = यौवनेन, विनयः = नम्रता, प्रधानं = मुख्यं, येषां ते तैः विनयप्रधानैः तैस्तैः=प्रसिद्धैः, गुणैः = श्रुतशीलादिभिः, आत्मनः = स्वस्य इन्दुमत्याः, तुल्यम्=अनुरूपम्, अमुम् = अजम्, त्वम् = इन्दुमती, वृणीष्व=स्वीकुरु, किं बहूक्तेन । रत्नं = हीरकादि, काञ्चनेन=सुवर्णेन, समागच्छतु = संगच्छताम् ।

समासः—विनयः प्रधानं येषां ते तैः विनयप्रधानैः ।

हिन्दी—कुल से सौन्दर्य से नई जवानी से तथा नम्रता है प्रधान जिन्हों में ऐसे उन उन प्रसिद्ध श्रुतशील दया चतुरता आदि गुणों से यह कुमार तुम्हारे अनुरूप है । अतः तुम इनका वरण कर लो । अधिक क्या कहूँ, रत्न सुवर्ण का समागम हो जाये । अर्थात् जैसे रत्न की शोभा सुवर्ण के साथ से अधिक होती है वैसे ही तुम्हारा और अज का मेल अत्यन्त अनुरूप होगा ॥ ७९ ॥

ततः सुनन्दावचनावसाने लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या ।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव ॥८०॥

संजी०—तत इति । ततः सुनन्दावचनस्यावसानेऽन्ते नरेन्द्रकन्येन्दुमती लज्जां तनूकृत्य संकोच्य प्रसादेन मनःप्रसादेनामलया प्रसन्नया दृष्ट्या संवरणस्य स्रजा स्वयंवरणार्थं स्रजेव कुमारमजं प्रत्यग्रहीत् स्वीचकार । सम्यक्सानुरागमपश्यदित्यर्थः ॥८०॥

अन्वय:—ततः सुनन्दावचनावसाने नरेन्द्रकन्या लज्जां तनूकृत्य, प्रसादामलया दृष्ट्या संवरणस्रजा इव कुमारं प्रत्यग्रहीत् ।

व्याख्या—ततः=अनन्तरम्, सुनन्दायाः=द्वारपालिकायाः, वचनं=वाक्यम्, तस्य अवसानम्=समाप्तिः, तस्मिन् सुनन्दावचनावसाने नरेन्द्रस्य = राज्ञः कन्या = कुमारी, नरेन्द्रकन्या=इन्दुमती, लज्जां = ह्रियं, तनूकृत्य = संकोच्य, प्रसादेन = प्रसन्नतया, अमला=प्रसन्ना, तया प्रसादामलया दृष्ट्या=दर्शनेन सम्यक् वरणस्य= स्वयंवरणार्थं या स्रक्=मधूकमाला तया संवरणस्रजा इव=यथा, कुमारम्= अजम्, प्रत्यग्रहीत् = वव्रे ।

समासः—सुनन्दायाः वचनं तस्य अवसानम् तस्मिन् सुनन्दावचनावसाने । न तनूः अतनूः, अतनूं तनूं कृत्वा, इति तनूकृत्य । नरेन्द्रस्य कन्या नरेन्द्रकन्या । प्रसादेन अमला तया प्रसादामलया सम्यक् वरणमिति संवरणं संवरणस्य स्रक् तया संवरणस्रजा ।

हिन्दी—तब सुनन्दा के वचन समाप्त होने पर राजकुमारी इन्दुमती ने लज्जा को कम करके (संकोच त्यागकर) प्रसन्नता से खिली आँखों से उस अज को ऐसे स्वीकार किया मानो वह प्रेमपूर्ण दृष्टि, स्वयं वरण की माला हो। अर्थात् इन्दुमती ने आँखों ही आँखों में अज को स्वीकार कर लिया ।। ८० ।।

सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम् ।
रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामदरालकेश्याः ।।८१।।

संजी०—सेति । सा कुमारी यूनि तस्मिन्नजेऽभिलाषबन्धमनुरागग्रन्थिं शालीनतयाऽधृष्टतया । 'स्यादधृष्टे तु शालीनः' इत्यमरः । 'शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः' (पा. ५।२।२०) इति निपातः । वक्तुं न शशाक । तथाप्यरालकेश्याः सोऽभिलाषबन्धो रोमाञ्चलक्ष्येण पुलकव्याजेन । 'व्याजोऽपदेशो लक्ष्यं च' इत्यमरः । गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामत् सात्त्विकाविर्भावलिङ्गेन प्रकाशित इत्यर्थः ।।८१।।

अन्वयः—**सा यूनि तस्मिन् अभिलाषबन्धं शालीनतया वक्तुं न शशाक । (तथापि) अरालकेश्याः स रोमाञ्चलक्ष्येण गात्रयष्टिं भित्त्वा निराक्रामत् ।**

व्याख्या—सा=कुमारी यूनि=तरुणे तस्मिन्=अजे, अभिलाषस्य=अनुरागस्य बन्धं=ग्रन्थिं शालीनस्य भावः शालीनता तया शालीनतया=अधृष्टतया वक्तुं= कथयितुं न=नहि शशाक=समर्था, तथापि, तम्, अभिलाषबन्धम् अरालाः=कुटिलाः

केशाः=शिरोरुहाः यस्याः, अरालकेशी तस्याः अरालकेश्याः=इन्दुमत्याः सः=अभिलाषबन्धः रोमाञ्चानां=पुलकानां लक्ष्यं=व्याजस्तेन रोमाञ्चलक्ष्येण गात्रं=शरीरमेव यष्टिः=लगुडः, तां गात्रयष्टिं भित्त्वा=निर्भिद्य निराक्रामत्=प्रास्फुटत् ।

समासः——अभिलाषस्य बन्धः, अभिलाषबन्धस्तम् अभिलाषबन्धम् । शालीनस्य भावः शालीनता तया शालिनतया । अरालाः केशाः यस्याः सा तस्याः अरालकेश्याः । रोमाञ्चानां लक्ष्यं तेन रोमाञ्चलक्ष्येण । गात्रमेव यष्टिस्तां गात्रयष्टिम् ।

हिन्दी—वह इन्दुमती उस जवान अज विषयक अपनी प्रेमग्रन्थि को लज्जा के कारण वाणी से तो न कह सकी । फिर भी घुंघराले बालो वाली इन्दुमती का वह स्नेहबन्धन रोमाञ्च के बहाने शरीररूपी यष्टि को फोड़ कर बाहर निकल आया । अर्थात् सात्विकभाव (रोमाञ्च) हो जाने से इन्दुमती का अनुराग प्रगट हो गया ॥ ८१ ॥

तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदाबभाषे ।
आर्ये ! व्रजामोऽन्य इत्यथैनां वधूरसूयाकुटिलं ददर्श ॥८२॥

संजी०—तथेति । सख्यामिन्दुमत्यां तथागतायां तथाभूतायाम् । दृष्टानुरागायां सत्यामित्यर्थः । सखी सहचरी । 'सख्यशिश्वीति भाषायाम्' (पा. ४।१।६२) इति निपातनान्ङीष् । वेत्रभृत् । सुनन्दा । हे आर्ये पूज्ये ! अन्यतोऽन्यं प्रति व्रजाम इति परिहासपूर्वमाबभाषे । अथ वधूरिन्दुमत्येनां सुनन्दामसूयया रोषेण कुटिलं ददर्श । अन्यत्र गमनस्यासह्यत्वादित्यर्थः ॥ ८२ ॥

अन्वयः—सख्यां तथागतायां सत्याम्, सखी वेत्रभृत् हे आर्ये **अन्यतः व्रजामः इति परिहासपूर्वम् आबभाषे । अथ वधूः एनाम् असूयाकुटिलं ददर्श ।**

व्याख्या—सख्याम्=इन्दुमत्यां तथा=तेन प्रकारेण गता=भूता तस्यां तथागतायां सत्याम् प्रकटानुरागायामित्यर्थः, सखी=सहचरी वेत्रं बिभर्तीति वेत्रभृत्=दौवारिकी सुनन्दा, हे आर्ये=पूज्ये अन्यतः=अपरं प्रति व्रजामः=गच्छामः, इति=इत्थं परिहासः=हास्यं पूर्वः=प्रथमः यस्मिन् तत् परिहासपूर्वम्, आबभाषे=जगाद । अथ=अनन्तरं वधूः=इन्दुमती एनां=सुनन्दाम् असूयया=रोषेण कुटिलं=वक्रं तिर्यक् असूया कुटिलं यथा तथा ददर्श=अवलोकयामास ।

समासः—वेत्रं बिभर्तीति या सा वेत्रभृत्। परिहासः पूर्वः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा भवति तथा परिहासपूर्वम्। असूयया कुटिलं यथा तथा असूयाकुटिलम्।

हिन्दी—इन्दुमती के इस प्रकार हो जाने पर अर्थात् अजविषयक अनुराग प्रकट हो जाने पर सखी द्वारपालिका सुनन्दा ने परिहासपूर्वक (दिल्लगी करते हुए) इन्दुमती से कहा कि हे आर्ये ! दूसरे राजा के पास चलो, यह सुनकर इन्दुमती ने सुनन्दा को रोषपूर्वक तिरछी नजर से देखा। क्योंकि अब अन्यत्र जाना इन्दुमती को सह्य नहीं है ॥ ८२ ॥

सा चूर्णगौरं रघुनन्दनस्य धात्रीकराभ्यां करभोपमोरूः।
आसञ्जयामास यथाप्रदेशं कण्ठे गुणं मूर्तमिवानुरागम् ॥ ८३ ॥

संजी०—सेति। करभः करप्रदेशविशेषः। 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः। करभ उपमा ययोस्तावूरू यस्याः सा करभोपमोरूः। 'ऊरूत्तरपदादौपम्ये' (पा. ४।१।६९) इत्यूङ्प्रत्ययः। सा कुमारी चूर्णेन मङ्गलचूर्णेन गौरं लोहितं गुणं स्रजम्। मूर्तं मूर्तिमन्तमनुरागमिव। धात्र्या उपमातुः सुनन्दायाः कराभ्यां रघुनन्दनस्याजस्य कण्ठे यथाप्रदेशं यथास्थानमासञ्जयामासासक्तं कारयामास। न तु स्वयमाससञ्ज, अनौचित्यात् ॥ ८३ ॥

अन्वयः—**करभोपमोरूः सा चूर्णगौरं गुणम् अनुरागम् इव धात्रीकराभ्यां रघुनन्दनस्य कण्ठे यथाप्रदेशम् आसञ्जयामास।**

व्याख्या—करभः=करबहिर्भागः उपमा=उपमानं ययोस्तौ करभोपमौ, करभोपमौ ऊरू=जंघे यस्याः सा करभोपमोरूः सा कुमारी=इन्दुमती चूर्णेन=मांगलिकचूर्णेन गौरं=लोहितमिति चूर्णगौरम्, गुणं=मालां मूर्तं=मूर्तिमन्तम् अनुरागम्=अभिलाषम् इव=यथा धात्र्याः=उपमातुः=सुनन्दायाः करौ=हस्तौ ताभ्यां धात्रीकराभ्याम् रघोः नन्दनः रघुनन्दनस्तस्य रघुनन्दनस्य अजस्येत्यर्थः, कण्ठे=गले प्रदेशं=स्थानमनतिक्रम्येति यथाप्रदेशं=यथास्थानम् आसञ्जयामास।

समासः—करभः उपमा ययोस्तौ करभोपमौ ऊरू यस्याः सा करभोपमोरूः, इति बहुव्रीहिगर्भबहुव्रीहिः। चूर्णेन गौरस्तं, चूर्णगौरम्। धात्र्याः करौ धात्रीकरौ ताभ्यां धात्रीकराभ्याम्। रघोः नन्दनस्तस्य रघुनन्दनस्य। प्रदेशमनतिक्रम्येति यथाप्रदेशम्।

हिन्दी—करभ के समान (हाथ के बगलभाग के सदृश) जंघाओं वाली कुमारी इन्दुमती ने कुंकुम के चूर्ण से लाल धागे वाली माला को सुनन्दा के हाथों से रघुपुत्र अज के गले में ठीक यथास्थान पहनवा दिया। वह माला क्या थी मानो माला का रूप धारण किये हुए इन्दुमती का अनुराग था ॥ ८३ ॥

तया स्रजा मङ्गलपुष्पमय्या विशालवक्षःस्थललम्बया सः।
अमंस्त कण्ठार्पितबाहुपाशां विदर्भराजावरजां वरेण्यः ॥८४॥

संजी०—तयेति। वरेण्यो वरणीय उत्कृष्टः। वृज एण्यः। सोऽजो मङ्गलपुष्पमय्या मधूकादिकुसुमय्या विशालवक्षःस्थले लम्बया लम्बमानया तया प्रकृतया स्रजा विदर्भराजावरजामिन्दुमतीं कण्ठार्पितौ बाहू एव पाशौ यया तामसंस्त। मन्यतेर्लुङ्। बाहुपाशकल्पसुखमन्वभूदित्यर्थः ॥ ८४ ॥

अन्वयः—वरेण्यः स मंगलपुष्पमय्या विशालवक्षःस्थललम्बया तया स्रजा विदर्भराजावरजां कण्ठार्पितबाहुपाशाम् अमंस्त।

व्याख्या—वरितुं योग्यः वरेण्यः=वरणीयः इत्यर्थः स=अजः मंगलानि=मांगलिकानि (मंगलार्थानीत्यर्थः) च तानि पुष्पाणि=कुसुमानि, इति मंगलपुष्पाणि तान्येव मंगलपुष्पमयी तया मंगलपुष्पमय्या, विशालं=महत् च तत् वक्षःस्थलम्=उरःस्थलमिति विशालवक्षःस्थलं तस्मिन् लम्बा=लम्बमाना या सा तथोक्ता, तया विशालवक्षःस्थललम्बया, तया=पूर्वोक्तया स्रजा=मालया विदर्भाणां राजा तस्य विदर्भराजस्य=भोजस्य अवरजा=भगिनी तां विदर्भराजावरजाम्=इन्दुमतीम्, कण्ठे=गले अर्पितौ=दत्तौ बाहू=करौ एव पाशौ यया सा तां कण्ठार्पितबाहुपाशाम्, अमंस्त=अमन्यत। कण्ठार्पितबाहुपाशतुल्यं सुखमन्वभवदित्यर्थः।

समासः—वरितुं योग्यः वरेण्यः। मंगलानि च तानि पुष्पाणि मंगलपुष्पाणि प्रकृतानि उच्यन्ते यस्यां सा मंगलपुष्पमयी तया मंगलपुष्पमय्या। विशालं च तत् वक्षःस्थलमिति विशालवक्षःस्थलं तत्र लम्बा तया विशालवक्षःस्थललम्बया। कण्ठे अर्पितौ बाहू एव पाशौ यया सा तां कण्ठार्पितबाहुपाशाम्। विदर्भाणां राजा तस्य अवरजा तां विदर्भराजावरजाम्।

हिन्दी—वरण करने योग्य (श्रेष्ठवर) वह अज ने, मांगलिक महुवे के फूलों से बनी हुई, तथा अज की चौड़ी छाती पर लटकती हुई उस माला से (पहनाने

से) अपने को ऐसा मान लिया, मानो विदर्भ देश के राजा की छोटी बहन इन्दुमती ने कण्ठ में बाहुपाश ही डाल दिया हो। अर्थात्—माला क्या पहना दी है, मानो गले में भुजाएँ डालकर आलिंगन ही इन्दुमती कर रही है॥ ८४॥

शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं
जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा।
इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौरा
श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्यं विवव्रुः॥८५॥

संजी०—शशिनमिति। स्वयंवरे समगुणयोस्तुल्यगुणयोरिन्दुमती-रघुनन्दनयोर्योगेन प्रीतिर्येषां ते समगुणयोगप्रीतयः पौराः पुरे भवा जनाः इयमजसंगतेन्दुमती मेघैर्मुक्तं शशिनं शरच्चन्द्रमुपगता कौमुदी। अनुरूपं सदृशं जलनिधिमवतीर्णा प्रविष्टा जह्नुकन्या भागीरथी। तत्सदृशीत्यर्थः। इत्येवं नृपाणां श्रवणयोः कटु परुषमेकमविसंवादि वाक्यमेकवाक्यं विवव्रुः। मालिनीवृत्तम्॥८५॥

अन्वयः—तत्र **समगुणयोगप्रीतयः पौराः इयं मेघमुक्तं शशिनम् उपगता कौमुदी अनुरूपं जलनिधिम् अवतीर्णा जह्नुकन्या इति नृपाणां श्रवणकटु एकवाक्यं विवव्रुः।**

व्याख्या—तत्र=स्वयंवरे तुल्याः गुणाः=शीलसौन्दर्यादयः ययोस्तौ समगुणौ तयोः समगुणयोः=इन्दुमतीरघुपुत्रयोः योगः=सम्बन्धः, तेन प्रीतिः=प्रसन्नता येषान्ते समगुणयोगप्रीतयः,पुरे भवाः पौराः=नागरिकजनाः,इयम्=अजसंगता इन्दुमती मेघैः=घनैः मुक्तः=त्यक्तस्तं मेघमुक्तम् शशिनं=शरच्चन्द्रम् उपगता=संगता कौ पृथिव्यां मोदते इति कुमुदः कुमुदस्य इयं कौमुदी=ज्योत्स्ना। अनुरूपम्=स्वसदृशं जलानाम्=अपां निधिः=आकरः तं जलनिधिं=समुद्रम् अवतीर्णा=प्रविष्टा मिलिता, जह्नोः कन्या जह्नुकन्या=भागीरथी गङ्गा। कौमुदीसदृशी, गंगासदृशी चेन्दुमतीत्यर्थः। इति=इत्थम् नृपाणां=भूपालानाम्=इन्दुमतीस्वयंवरे समागतानां राज्ञामित्यर्थः श्रवणयोः=कर्णयोः कटु=परुषम्, श्रवणकटु एकं च तत् वाक्यमिति, एकवाक्यम्=अविरोधिवचनम् विवव्रुः=कथितवन्तः। सर्वैः पौरजनैः एकस्वरेण प्रशंसितोऽयं संबन्ध इत्यर्थः।

समासः— स्वयं (कन्या) वृणोति (पतिं) यस्मिन् स स्वयंवरस्तस्मिन् स्वयंवरे। समाः गुणाः ययोस्तौ समगुणौ, समगुणयोः योगः, तेन प्रीतिः येषान्ते समगुणयोगप्रीतयः। पुरे भवाः पौराः। मेघैः मुक्तः मेघमुक्तस्तं मेघमुक्तम्। कौ मोदते इति कुमुदः कुमुदस्येयं कौमुदी। जलानां निधिस्तं जलनिधिम्। जह्नोः कन्या जह्नुकन्या। श्रवणयोः कटु, श्रवणकटु तत्। एकं च तत् वाक्यमिति, तत् एकवाक्यम्।

हिन्दी—उस स्वयंवर में एक समान शील स्वभाव सौन्दर्य गुणवाले अज और इन्दुमती के सम्बन्ध से प्रसन्न हुए नगरनिवासी जन राजाओं के कानों को कठोर लगने वाला एक ही वाक्य कहने लगे कि यह इन्दुमती अज से वैसे ही मिल गई जैसे बादलों से रहित चन्द्र की चाँदनी और अपने अनुरूप सागर से गंगा मिलती हैं ॥८५॥

प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम्।
उषसि सर इव प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत् ॥८६॥

संजी०—प्रमुदितेति। एकत एकत्र प्रमुदितो हृष्टो वरस्य जामातुः पक्षो वर्गो यस्य तत्तथोक्तम्। अन्यतोऽन्यत्र वितानं शून्यम्। भग्नाशत्वादप्रहृष्ट-मित्यर्थः। तत्क्षितिपतिमण्डलम्। उषसि प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनेन प्रतिपन्ननिद्रं प्राप्तनिमीलनं सर इव सरस्तुल्यम् आसीत्। पुष्पिताग्रावृत्तमेतत् ॥ ८६॥

अन्वयः—**एकतः प्रमुदितवरपक्षम् अन्यतः वितानं तत्क्षितिपतिमण्डलम्, उषसि प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रं सरः** इव आसीत्।

व्याख्या—एकस्मिन्निति। एकतः = एकत्र प्रकर्षेण मुदितः = हृष्टः वरस्य = जामातुः = अजस्य पक्षः = समूहः यस्य तत् प्रमुदितवरपक्षम्, अन्यस्मिन्निति अन्यतः = अन्यत्र वितानं = शून्यम् = अप्रसन्नम् भग्नमनोरथत्वादित्यर्थः, तेषां = भग्नमनोरथानां क्षितिपतीनां = भूपालानां मण्डलम् = समूहः तत् क्षितिपति-मण्डलम्, उषसि = प्रभाते प्रफुल्लं = विकसितं पद्मं = कमलं यस्य तत् प्रफुल्लपद्मं कुमुदानां = श्वेतकमलानां रात्रिविकासिनां वनं = समूहः कुमुदवनं, तेन प्रतिपन्ना = प्राप्ता निद्रा = निमीलनं यस्य तत् कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रम् सरः = तडागः इव = यथा आसीत् अभूत्।

समासः—एकस्मिन्निति एकतः। प्रकर्षेण मुदितः वरस्य पक्षः यस्य

तत् प्रमुदितवरपक्षम् । ते च ते क्षितिपतयश्च क्षितिपतयः, क्षितिपतीनां मण्डलं तत्क्षितिपतिमण्डलम् । अन्यस्मिन्निति अन्यतः । प्रफुल्लानि पद्मानि यस्य तत् प्रफुल्लपद्मम् । कुमुदानां वनम् कुमुदवनं तेन प्रतिपन्ना निद्रा यस्य तत् कुमुदवन-प्रतिपन्ननिद्रम् ।

हिन्दी—स्वयंवर मण्डप में, एक ओर प्रसन्नता से खिले हुए वर पक्षवाले थे और दूसरी ओर इन्दुमती के न मिलने से मुरझाया हुआ वह राजाओं का झुण्ड था। अतः उस समय वह मण्डप ऐसा लग रहा था जैसा प्रातःकाल में वह सरोवर प्रतीत होता है जिसमें एक तरफ तो खिले हुए कमल हैं और दूसरी ओर मुँदा हुआ (बिना खिला) कुमुदों (सफेद कमल रात में खिलनेवाले) का झुण्ड खड़ा हो ।।८६।।

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां 'छात्रोपयोगिनी' व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये स्वयंवरवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

सप्तम सर्ग

अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम् ।
स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ॥१॥

संजी०—अथेति। अथ विदर्भनाथो भोजः सदृशेनोपयन्त्रा वरेण युक्ताम् । अत एव साक्षात् प्रत्यक्षम् 'प्रत्यक्षतुल्ययोः' इत्यमरः । स्कन्देन युक्तां देवसेनामिव । देवसेना नाम देवपुत्री स्कन्दपत्नी तामिव स्थितां स्वसारं भगिनीमिन्दुमतीमादाय गृहीत्वा पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव । उपजातिवृत्तं सर्गेऽस्मिन् ॥१॥

अन्वयः—अथ विदर्भनाथः सदृशेन उपयन्त्रा युक्ताम् अत एव साक्षात् स्कन्देन युक्ताम् देवसेनाम् इव स्वसारम् आदाय पुरप्रवेशाभिमुखः बभूव ।

व्याख्या—अथ = मालाप्रदानानन्तरम् (स्वयंवरानन्तरमित्यर्थः) विदर्भाणां = देशविशेषाणां नाथः = स्वामी, इति विदर्भनाथः = भोजः । सदृशेन = वयसा कान्त्या कुलेन च समानेन, उप समीपं गच्छति = पाणिग्रहणं करोतीति उपयन्ता तेन उपयन्त्रा = वरेण, युक्तां = सहिताम् अत एव साक्षात् = प्रत्यक्षम्, स्कन्देन = कुमारेण, कार्तिकेयेनेत्यर्थः, युक्तां देवस्य सेना देवसेना = देवपुत्री = स्कन्दपत्नी तां देवसेनामिव स्थितां स्वसारं = भगिनीम् = इन्दुमतीम् आदाय = गृहीत्वा पुरे = नगरे प्रवेशः = गमनम् तस्य अभिमुखः = संमुखः इति पुरप्रवेशाभिमुखः बभूव = जातः ।

समासः—समानं दृश्यते यः स सदृशस्तेन सदृशेन, देवस्य सेना देवसेना तां देवसेनाम्, विदर्भाणां नाथः विदर्भनाथः, पुरे प्रवेशः पुरप्रवेशस्तस्य अभिमुख इति पुरप्रवेशाभिमुखः ।

हिन्दी—स्वयंवर हो चुकने पर योग्य वर से व्याही हुई अपनी बहन इन्दुमती को साथ लेकर विदर्भ देश (अब बरार प्रदेश) के राजा भोज नगर की ओर चले। इन्दुमती के साथ चलते हुए अज ऐसे लग रहे थे, मानो साक्षात् देवसेना (अपनी पत्नी) के साथ स्कन्द चल रहे हों ॥१॥

सेनानिवेशान्पृथिवीक्षितोऽपि जग्मुर्विभातग्रहमन्दभासः ।
भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वाद्रूपेषु वेशेषु च साभ्यसूयाः ॥२॥

संजी०—सेनेति । भोजस्य राज्ञो गोत्रापत्यं स्त्री भोज्या तामिन्दुमतीं प्रति व्यर्थमनोरथत्वाद्रूपेष्वाकृतिषु वेशेषु नेपथ्येषु च साभ्यसूया वृथेति निन्दन्तः । किंच विभाते प्रातःकाले ये ग्रहाश्चन्द्रादयस्त इव मन्दभासः क्षीणकान्तयः पृथिवीक्षितो नृपा अपि सेनानिवेशान् शिबिराणि जग्मुः ॥२॥

अन्वयः—भोज्यां प्रति व्यर्थमनोरथत्वात् रूपेषु वेशेषु च साभ्यसूयाः विभातग्रहमन्दभासः पृथिवीक्षितः अपि सेनानिवेशान् जग्मुः ।

व्याख्या—भोजस्य=राज्ञः गोत्रापत्यं स्त्री भोज्या तां भोज्याम्=इन्दुमतीं प्रति व्यर्थः = नष्टः मनोरथः=अभिलाषो येषां ते व्यर्थमनोरथास्तेषां भावस्तत्त्वं तस्मात् व्यर्थमनोरथत्वात् रूपेषु=आकृतिषु=स्वसौन्दर्येषु इत्यर्थः वेशेषु=नेपथ्येषु स्वकीयप्रसाधनादिष्वित्यर्थः, अभ्यसूयया=गुणेषु दोषारोपेण सह वर्तन्ते इति साभ्यसूयाः=स्वगुणेषु दोषारोपवन्तः अर्थात् अस्माकं रूपाणि=नेपथ्यानि च वृथेति निन्दन्तः, किञ्च विभाते=प्रातःकाले ये ग्रहाः=चन्द्रतारकादयः इति विभातग्रहाः, विभातग्रहा इव मन्दा=नष्टा=क्षीणा भाः=कान्तिः येषां ते विभातग्रहमन्दभासः । पृथिवीं क्षियन्ति इति पृथिवीक्षितः=पृथिवीसंचालकाः राजानः अपि=च सेनायाः=सैन्यस्य निवेशाः=शिबिराणि तान् जग्मुः=गतवन्तः ।

समासः—व्यर्थः मनोरथः येषां तेषां भावः व्यर्थमनोरथत्वम् तस्मात् । अभ्यसूयया सह वर्तन्ते इति साभ्यसूयाः । विभातस्य ग्रहाः विभातग्रहाः तद्वत् मन्दा भाः येषां ते तथोक्ताः । पृथिवीं क्षियन्ति इति पृथिवीक्षितः । सेनाया निवेशाः, तान् ।

हिन्दी—इन्दुमती के मिलने की आशा के नष्ट होने से अपने-अपने सौन्दर्य तथा सजावट (वस्त्रालंकार आदि) की निन्दा करते हुए और प्रातःकाल के

चन्द्र तारों के समान मलिन कान्तिवाले दूसरे राजा लोग भी अपने-अपने शिबिर (तम्बू) में चले गये ॥२॥

सांनिध्ययोगात्किल तत्र शच्याः स्वयंवरक्षोभकृतामभावः ।
काकुत्स्थमुद्दिश्य समत्सरोऽपि शशाम तेन क्षितिपाललोकः ॥३॥

संजी०—सांनिध्येति । तत्र स्वयंवरक्षेत्रे शच्याः इन्द्राण्याः । संनिधिरेव सांनिध्यम् । तस्य योगात्सद्भावाद्धेतोः स्वयंवरस्य क्षोभकृतां विघ्नकारिणामभावः किल । 'किल' इति स्वयंवरविघातकाः शच्या विनाश्यन्त इत्यागमसूचनार्थम् । तेन हेतुना काकुत्स्थमजमुद्दिश्य समत्सरोऽपि सवैरोऽपि क्षितिपाललोकः शशाम नाक्षुभ्यत् ॥३॥

अन्वयः—**तत्र शच्याः सांनिध्ययोगात् स्वयंवरक्षोभकृताम् अभावः किल तेन काकुत्स्थम् उद्दिश्य समत्सरः अपि क्षितिपाललोकः शशाम ।**

व्याख्या—तत्र=स्वयंवरस्थले शच्याः = इन्द्राण्याः सन्निधिरेव सान्निध्यम्, सान्निध्यस्य = सामीप्यस्य योगः = सद्भावः, तस्मात् सान्निध्ययोगात् कारणात् स्वयंवरस्य = स्वयंवरणस्य क्षोभं = विघ्नं कुर्वन्ति = विदधति इति स्वयंवरक्षोभकृतः तेषां स्वयंवरक्षोभकृताम् स्वयंवरविघातकानामित्यर्थः, अभावः = असत्त्वम् किल, किलशब्देन स्वयंवरविघ्नकारिण इन्द्राण्या विनाश्यन्त इति सूच्यते । तेन=कारणेन ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थस्तं काकुत्स्थम्=अजम् उद्दिश्य= तं प्रति मत्सरेण सहितः समत्सरः = सवैरः अपि क्षितिं=पृथिवीं पालयन्ति=रक्षन्ति इति क्षितिपालास्तेषां लोकः=समूहः शशाम = न क्षुभितः, शान्त आसीदित्यर्थः ।

समासः—सन्निधिरेव सान्निध्यं तस्य योगस्तस्मात् सांनिध्ययोगात् । स्वयं वृणुते (कन्या पतिं) यस्मिन् सः स्वयंवरः । क्षोभं कुर्वन्ति ते क्षोभकृतः, स्वयंवरस्य क्षोभकृतः स्वयंवरक्षोभकृतस्तेषां स्वयंवरक्षोभकृताम् । क्षितिं पालयन्तीति क्षितिपालास्तेषां लोकः क्षितिपाललोकः । मत्सरेण सह वर्तमानः समत्सरः ।

हिन्दी—उस स्वयंवर में इन्द्राणी के उपस्थित होने के कारण स्वयंवर में विघ्न करने वालों का अभाव ही रहा, (अर्थात् इन्दुमती से निराश हुए तथा अज से कुढ़ने वाले राजा किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं कर सके क्योंकि वहाँ स्वयंवर की देवता इन्द्राणी विघ्न दूर करने के लिए विद्यमान थी) इसलिए अज से चिढ़ने वाले सभी राजा लोग ठण्डे पड़ गये ॥३॥

तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारमिन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम् ।
वरः स वध्वा सह राजमार्गं प्राप ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् ॥४॥

संजी०—तावदिति । 'यावत्तावच्च साकल्ये' इत्यमरः । तावत्प्रकीर्णाः साकल्येन प्रसारिता अभिनवा नूतना उपचाराः पुष्पप्रकरादयो यस्य तं तथोक्तम् । इन्द्रायुधानीव द्योतितानि प्रकाशितानि तोरणान्यङ्काश्चिह्नानि यस्य तम् । ध्वजानां छाया ध्वजच्छायम् 'छाया बाहुल्ये' (पा.२।४।२२) इति नपुंसकत्वम् । तेन निवारित उष्ण आतपो यत्र तं तथा राजमार्गं स वरो वोढा वध्वा सह प्राप विवेश ॥४॥

अन्वयः—**सः वरः वध्वा सह तावत् प्रकीर्णाभिनवोपचारम्, इन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम् ध्वजच्छायनिवारितोष्णम् राजमार्गम् प्राप ।**

व्याख्या—सः पूर्वोक्तः वरः=वोढा, अज इत्यर्थः । वध्वा=इन्दुमत्या सह=साकम्, तावत्=साकल्येन, सम्यक्तया बाहुल्येनेत्यर्थः प्रकीर्णाः=प्रसारिताः प्रक्षिप्ताः अभिनवाः=नूतनाः उपचाराः=पुष्पप्रकरादयः पुष्पविशेषा इत्यर्थः,यस्य स तं तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारम्, इन्द्रस्य=देवराजस्य आयुधानि=प्रहरणानि इव द्योतितानि प्रकाशितानि तोरणानि=बहिर्द्वाराणि अङ्काः= चिह्नानि यस्य सः, तम् इन्द्रायुधद्योतिततोरणाङ्कम् ध्वजानाम्=पताकानाम् छाया=अनातपः, इति ध्वजच्छायम् तेन निवारितः = दूरीकृतः उष्णः=आतपः यत्र तं ध्वजच्छायनिवारितोष्णम्, राज्ञां मार्गस्तं राजमार्गं = प्रधानमार्गम् प्राप = आजगाम ।

समासः—तावन्तः प्रकीर्णाः अभिनवाः उपचारा यस्य स तं तावत्प्रकीर्णाभिनवोपचारम्, इन्द्रस्य आयुधानि इव द्योतितानि तोरणानि अङ्काः यस्य स तम् इन्द्रायुधद्योतिततोरणांकम् । ध्वजानां छाया ध्वजच्छायम्, तेन निवारितः उष्णः यस्य स तं ध्वजच्छायनिवारितोष्णम्, राज्ञां मार्गस्तं राजमार्गम् ।

हिन्दी—नवविवाहित वह अज अपनी पत्नी के साथ उस राजपथ में प्रविष्ट हुए, जिसमें कि खूब अच्छी प्रकार से नए-नए पुष्पों की वर्षा हो रही थी तथा इन्द्रधनुष के समान रंगबिरंगे तोरण प्रकाशमान हो रहे थे और पताकाओं की *छाया से धूप भाग गई थी । अर्थात् उस समय वह सड़क खूब रंगबिरंगी झण्डियों*

से सजाई गई थी तथा पुष्पवर्षा से मार्ग पट गया था और इतनी पताकाएं लगी थीं कि धूप का नाम ही न था ॥ ४ ॥

ततस्तदालोकनतत्पराणां सौधेषु चामीकरजालवत्सु ।
बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणां त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥५॥

संजी०—तत इति । ततस्तदनन्तरं चामीकरजालवत्सु सौवर्णगवाक्षयुक्तेषु सौधेषु तस्याजस्यालोकने तत्पराणामासक्तानां पुरसुन्दरीणामित्थं वक्ष्यमाणप्रकाराणि त्यक्तान्यन्यकार्याणि केशबन्धनादीनि येषु तानि विचेष्टितानि व्यापाराः । नपुंसके भावे क्तः । बभूवुः ॥५॥

अन्वयः—ततः चामीकरजालवत्सु सौधेषु तदालोकनतत्पराणां पुरसुन्दरीणाम् इत्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि बभूवुः ।

व्याख्या—ततः=राजमार्गप्रवेशानन्तरम् चामीकरस्य=सुवर्णस्य जालानि=गवाक्षाः सन्ति येषु ते तेषु चामीकरजालवत्सु=सुवर्णनिर्मितवातायनवत्सु इत्यर्थः, सौधेषु=भवनेषु तस्य=अजस्य आलोकनं=दर्शनं तस्मिन् तत्पराः=आसक्ताः इति तदालोकनतत्परास्तासां तदालोकनतत्पराणाम् पुरस्य=नगरस्य सुन्दर्यः=रमण्यस्तासां पुरसुन्दरीणाम् इत्थम्=वक्ष्यमाणप्रकाराणि त्यक्तानि=परित्यक्तानि अन्यानि=अपराणि कार्याणि=केशबन्धनादीनि येषु तानि त्यक्तान्यकार्याणि, विशेषाणि च तानि चेष्टितानि=व्यापाराः बभूवुः=जातानि ।

समासः—चामीकरस्य जालानि सन्ति येषु ते तेषु चामीकरजालवत्सु । सुधया लिप्ताः सौधास्तेषु सौधेषु । तस्य आलोकनं तदालोकनं तदालोकने तत्परास्तासां तदालोकनतत्पराणाम् । पुरस्य सुन्दर्यस्तासां पुरसुन्दरीणाम् । त्यक्तानि अन्यानि कार्याणि येषु तानि त्यक्तान्यकार्याणि । विशेषाणि च तानि चेष्टितानि विचेष्टितानि ।

हिन्दी—राजमार्ग में चलते समय, सुवर्णनिर्मित झरोखों (खिड़की) वाले अपने-अपने भवनों से अज को देखने में लगीं, भोज के नगर की सुन्दरियां अन्य सब कार्य छोड़कर अग्रिम श्लोकों में वर्णित चेष्टाएं करने लगीं ॥५॥

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः ।
बन्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः ॥६॥

संजी०—आलोकेति । सहसाऽऽलोकमार्गं गवाक्षपथं व्रजन्त्या कयाचित्का-मिन्योद्वेष्टनवान्तमाल्यः । उद्वेष्टनो द्रुतगतिवशादुन्मुक्तबन्धनः । अत एव वान्तमाल्यो बन्धविश्लेषेणोद्गीर्णमाल्यः । करेण रुद्धो गृहीतोऽपि च केशपाशः केशकलापः । 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः । तावदालोक-मार्गप्राप्तिपर्यन्तं बन्धुं बन्धनार्थं न संभावितो न चिन्तित एव ।

अन्वयः—सहसा आलोकमार्गं व्रजन्त्या कयाचित् उद्वेष्टनवान्तमाल्यः करेण रुद्धः अपि च केशपाशः तावत् बन्धुं न सम्भावितः एव ।

व्याख्या—सहसा=झटिति अजावलोकनत्वरयेत्यर्थः, आलोकस्य=गवाक्षस्य मार्गः=पन्थाः, तम् आलोकमार्गं व्रजन्त्या=गच्छन्त्या कयाचिद्=कामिन्या=स्त्रिया उद्गतम्=उन्मुक्तं शीघ्रगतिवशादित्यर्थः, वेष्टनं=बन्धनं यस्य स उद्वेष्टनः वान्तं=पतितम् (अर्थात् बन्धविश्लेषेणोद्गीर्णमिति यावत्) माल्यं=पुष्पमाला यस्य स वान्तमाल्यः उद्वेष्टनः अत एव वान्तमाल्यः इति उद्वेष्टनवान्त-माल्यः, करेण=हस्तेन रुद्धः=गृहीतः=अवलम्बितः अपि च केशानां=कचानां पाशः=समूहः केशपाशः तावत्=गवाक्षमार्गपर्यन्तं बन्धुं=बन्धनार्थं न=नहि सम्भावितः=विचारितः एव ।

समासः—आलोकस्य मार्गस्तम् आलोकमार्गम्, उद्गतं वेष्टनं यस्य स उद्वेष्टनः, वान्तं माल्यं यस्य स वान्तमाल्यः उद्वेष्टनश्चासौ वान्तमाल्यश्च उद्वेष्टनवान्तमाल्यः । केशानां पाशः केशपाशः ।

हिन्दी—झटपट झरोखे की तरफ जाती हुई एक सुन्दरी (दौड़ कर जाने के कारण) जूड़े के ढीले पड़ जाने से जिसके पुष्प गिर गये और हाथ से पकड़े हुए भी तब तक अपने केश समूह (चोटी) को बाँधना ही भूल गई, जब तक अज को न देख लिया अर्थात् (एक सुन्दरी को) दौड़ने से जिसकी माला गिर गई ऐसे खुले केशों को हाथ में पकड़े ही पकड़े झरोखे में जाकर अज को देखकर ही जूड़ा बाँधने का ध्यान आया ॥६॥

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ॥७॥

संजी०—प्रसाधिकेति । काचित् । प्रसाधिकयाऽलंकर्त्र्या लम्बितं रञ्जनार्थं धृतं द्रवरागमेवार्द्रालक्तकमेव । अग्रश्चासौ पादश्चेत्यग्रपाद इति कर्मधारयसमासः ।

'हस्ताग्राग्रहस्तादयो गुणगुणिनोर्भेदाभेदाभ्याम्' (का. सू.) इति वामनः। तमाक्षिप्याकृष्य। उत्सृष्टलीलागतिस्त्यक्तमन्दगमना सती। आ गवाक्षाद् गवाक्षपर्यन्तं पदवीं पन्थानमलक्तकाङ्कां लाक्षारागचिह्नां ततान विस्तारयामास ॥७॥

अन्वयः— **काचित् प्रसाधिकालम्बितम् द्रवरागम् एव अग्रपादम् आक्षिप्य उत्सृष्टलीलागतिः सती आगवाक्षात् पदवीम् अलक्तकाङ्कां ततान।**

व्याख्या—काचित्=वनिता=सुन्दरीत्यर्थः, प्रकर्षेण साध्नोति या सा प्रसाधिका तया प्रसाधिकया अलंकर्त्र्या दास्या, आलम्बितं=रञ्जनार्थधृतम्, द्रवः= आर्द्रः रागः=रंजनद्रव्यं यस्य स तं द्रवरागम् एव=हि अग्रश्चासौ पादस्तमग्रपादं =चरणाग्रभागम्, आक्षिप्य=आकृष्य उत्सृष्टा=परित्यक्ता लीलया मन्दा गतिः =गमनं यया सा उत्सृष्टलीलागतिः सती गवाक्षं=वातायनं मर्यादीकृत्येति आगवाक्षम्=गवाक्षपर्यन्तमित्यर्थः, पद्यते=गम्यते यया सा तां पदवीं=मार्गम् अलक्तकस्य=लाक्षारागस्य अङ्कः=चिह्नं यस्यां सा ताम् अलक्तकाङ्कां ततान= विस्तारयामास।

समासः—अग्रश्चासौ पादस्तमग्रपादम्, द्रवः रागः यस्य सः, तं द्रवरागम्, उत्सृष्टा लीलया गतिः यया सा उत्सृष्टलीलागतिः, अलक्तकस्य अङ्कः यस्यां सा ताम् अलक्तकाङ्काम्, गवाक्षं मर्यादीकृत्येति आगवाक्षम्, तस्मात् आगवाक्षात्।

हिन्दी—पैर में महावर लगवाती हुई स्त्री की चेष्टा। एक दूसरी स्त्री शृंगार करनेवाली दासी से पकड़ा हुआ, तथा गीले महावर लगे पैर को छुड़ाकर अपनी स्वाभाविक मन्दगति को त्यागकर ऐसी दौड़ी कि खिड़की तक लाल पैरों की पंक्ति बनती चली गई ॥७॥

विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसंनिकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती ॥८॥

संजी०—विलोचनमिति। अपरा स्त्री दक्षिणं विलोचनमञ्जनेन संभाव्यालंकृत्य। संभ्रमादिति भावः। तद्वञ्चितं तेनांजनेन वामनेत्रं यस्याः सा सती तथैव शलाकामञ्जनतूलिकां वहन्ती सती वातायनसंनिकर्षं गवाक्षसमीपं ययौ। 'दक्षिण' ग्रहणं संभ्रमाद्व्युत्क्रमकरणद्योतनार्थम् 'सव्यं हि पूर्वं मनुष्या अञ्जते' इति श्रुतेः ॥८॥

अन्वयः—**अपरा दक्षिणं विलोचनम् अञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवाम-लोचना** सती **तथा एव शलाकां वहन्ती सती वातायनसन्निकर्षं ययौ।**

व्याख्या—अपरा = अन्या काचित् स्त्री दक्षिणम् = अपसव्यम् विलोचनं = नेत्रम् अञ्जनेन = कज्जलेन संभाव्य = अलंकृत्य, स्त्रिया प्रथमं वामनेत्रे अञ्जनं कर्तव्यम्, अत्र तु त्वरया संभ्रमात् व्युत्क्रमणं जातमिति द्योतनार्थं दक्षिणमिति कथितम्। तेन = अञ्जनेन वञ्चितं = वर्जितं = रहितमित्यर्थः वामं = सव्यं नेत्रं = चक्षुः यस्याः सा तद्वञ्चितवामनेत्रा सती तथैव तेनैव प्रकारेण शलाकाम् = अञ्जन-तूलिकां वहन्ती = धारयन्ती सती वातायनस्य = गवाक्षस्य संनिकर्षं = समीपं ययौ = गता।

समासः—तेन वञ्चितं वामं नेत्रं यस्याः सा तद्वञ्चितवामनेत्रा, वातायनस्य सन्निकर्षस्तं वातायनसन्निकर्षम्, विशिष्टञ्च तत् लोचनमिति विलोचनम्, तत्।

हिन्दी—नेत्र में अंजन करती हुई की चेष्टा का वर्णन। कोई और स्त्री दाहिने नेत्र में अञ्जन लगाकर और बांए नेत्र में बिना अञ्जन किये ही सलाई को हाथ में लिये हुए झरोखे के पास चली गई। भाव यह है कि—पहले बायें नेत्र में अञ्जन लगाना चाहिये, ऐसी वेद की आज्ञा है। किन्तु यहाँ जल्दी के मारे इस स्त्री ने घबराहट में उल्टा किया है—वही दक्षिण-पद देने का भाव है ॥८॥

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध नीवीम्।
नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वासः॥९॥

संजी०—जालेति। अन्या-स्त्री जालान्तरप्रेषितदृष्टिर्गवाक्षमध्यप्रेरितदृष्टिः सती प्रस्थानेन गमनेन भिन्नां त्रुटितां 'नीवीं वसनग्रन्थिम्। 'नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससि' इति विश्वः। न बबन्ध। किन्तु नाभिप्रविष्टाभरणानां कङ्कणादीनां प्रभा यस्य तेन, प्रभैव नाभेराभरणमभूदिति भावः, हस्तेन वासोऽव-लम्ब्य गृहीत्वा तस्थौ ॥९॥

अन्वयः—**अन्या जालान्तरप्रेषितदृष्टिः सती प्रस्थानभिन्नां नीवीं न बबन्ध, किन्तु, नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण** हस्तेन **वासः अवलम्ब्य तस्थौ।**

व्याख्या—अन्या अपरा काचित् स्त्री जालान्तरे = वातायनमध्ये प्रेषिता = प्रेरिता = दत्ता दृष्टिः = लोचनं यया सा जालान्तरप्रेषितदृष्टिः सती प्रस्थानेन = गमनेन

भिन्ना = मुक्ता तां प्रस्थानभिन्नां नीवीं = शाटिकाग्रंथिं न = नैव बबन्ध = बन्धयामास, न यन्त्रितवतीत्यर्थः, किन्तु आभरणानाम् = कङ्कणाद्यलंकाराणां प्रभा = कान्तिरिति, आभरणप्रभा, नाभौ = उदरविवरे प्रविष्टा = गता आभरणप्रभा यस्य तेन नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण हस्तेन = करेण वासः वस्त्रं=शाटिकामित्यर्थः, अवलम्ब्य = गृहीत्वा तस्थौ = स्थिता।

समासः—जालस्य अन्तरे प्रेषिता दृष्टिः यया सा जालान्तरप्रेषितदृष्टिः, प्रस्थानेन भिन्ना तां प्रस्थानभिन्नाम्, नाभौ प्रविष्टानामाभरणानां प्रभा यस्य सः तेन नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण।

हिन्दी—साड़ी पहनती हुई की दशा का वर्णन। एक और तरुणी झरोखे में आंख लगाये खड़ी थी, वह दौड़कर चलने से खुली हुई नीवी (साड़ी की गाँठ को बाँध न सकी— किन्तु उस हाथ से साड़ी को पकड़कर खड़ी हो गई, जिसके आभूषणों की कान्ति उसकी नाभि में पड़ रही थी। अर्थात् वस्त्र के खिसकने पर भी आभूषणों की प्रभा ही नाभि का आभूषण हो गई ॥९॥

अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थितायाः पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती।
कस्याश्चिदासीद्रशना तदानीमङ्गुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा ॥१०॥

संजी०—अर्धेति। सत्वरमुत्थितायाः कस्याश्चिदर्धाञ्चिता मणिभिरर्धगुम्फिता दुर्निमिते संभ्रमादुत्क्षिप्ते। 'डुमिञ्प्रक्षेपणे' इति धातोः कर्मणि क्तः। पदे पदे प्रतिपदम्। वीप्सायां द्विर्भावः। गलन्ती गलद्रत्ना सती रशना मेखला तदानीं गमनसमयेऽङ्गुष्ठमूलेऽर्पितं सूत्रमेव शेषो यस्याः सा। आसीत् ॥१०॥

अन्वयः—**सत्वरम् उत्थितायाः कस्याश्चित् अर्धाञ्चिता दुर्निमिते पदे पदे गलन्ती (सती) रशना तदानीम् अंगुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा आसीत्।**

व्याख्या—सत्वरम् = शीघ्रम्, उत्थितायाः=उच्चलितायाः कस्याश्चित् = वनितायाः अर्धम् =अर्धभागम् अञ्चितं =मणिभिः गुम्फितं यस्याः सा अर्धाञ्चिता दुर्निमिते=सम्भ्रमादुत्क्षिप्तेपदे पदे = प्रतिपदम् गलन्ती = पतद्रत्ना सती रशना = मेखला तदानीं=गमनसमये अंगुष्ठस्य मूलम्, अंगुष्ठमूलम् अंगुष्ठमूले = पादांगुष्ठमूले अर्पितं = बद्धं सूत्रमेव = तन्तुरेव शेषं = अवशिष्टं यस्याः सा अंगुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा आसीत् = अभूत्।

समास:—अर्धम् अञ्चितं यस्याः सा अर्धम् अञ्चिता वा अर्धाञ्चिता, अंगुष्ठस्य मूलं तस्मिन् अर्पितं सूत्रमेव शेषं यस्याः सा तथोक्ता।

हिन्दी—एक स्त्री बैठकर अपनी मणियों की तगड़ी गूंथ रही थी, उसका एक किनारा अपने पैर के अंगूठे में बाँध रखा था, अभी आधी ही पिरो पाई थी कि सहसा उठकर अज को देखने दौड़ पड़ी—उसी का वर्णन है। झटपट उठ खड़ी हुई एक स्त्री की आधी गूंथी हुई अत एव शीघ्रतापूर्वक रखे पद पद पर जिसके मोती गिर गए, ऐसी मेखला झरोखे तक पहुँचते-पहुँचते पैर के अँगूठे में केवल डोरा ही रह गया। अर्थात् मणि सब इधर उधर बिखर गए॥१०॥

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन्॥११॥

संजी०—तासामिति। तदानीं सान्द्रकुतूहलानां तासां स्त्रीणामासवगन्धो गर्भे येषां तैः। विलोलानि नेत्राण्येव भ्रमरा येषां तैः मुखैर्व्याप्तान्तराश्छन्नावकाशा गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इव कमलालंकृता इव 'सहस्रपत्रं कमलम्' इत्यमरः। आसन्॥११॥

अन्वय:—**तदानीम् सान्द्रकुतूहलानाम् तासाम् आसवगन्धगर्भैः विलोलनेत्रभ्रमरैः मुखैः व्याप्तान्तराः गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणाः इव आसन्।**

व्याख्या—तदानीम्=अजस्यावलोकनावसरे सान्द्रं=घनमत्यधिकम् कुतूहलं= कौतुकं यासां ताः, तासां सान्द्रकुतूहलानाम्, तासां=स्त्रीणाम् आसवस्य = मद्यस्य गन्धः=सौरभम् गर्भे=मध्ये=अभ्यन्तरे येषां तानि तैः आसवगन्धगर्भैः, विलोलानि= चञ्चलानि नेत्राणि = चक्षूंषि एव भ्रमराः = मधुकराः येषां तानि तैः विलोलनेत्रभ्रमरैः, मुखैः = आननैः व्याप्तम्=छन्नम् अन्तरं = मध्यं येषां ते व्याप्तान्तराः गवां किरणानामक्षीणीवेति गवाक्षाः = वातायनानि सहस्रं पत्राणि येषां तानि सहस्रपत्राणि, सहस्रपत्राणि = कमलानि आभरणं = अलंकारः येषां ते सहस्रपत्राभरणा इव=यथा आसन् = अभूवन् गवाक्षाः स्त्रीणां मुखैः कमलालंकृता इव जाता इति भावः।

समास:—सान्द्रं कुतूहलं यासां ताः सान्द्रकुतूहलास्तासां सान्द्रकुतूहलानाम्, आसवस्य गन्धः गर्भे येषां तानि आसवगन्धगर्भाणि तैः आसवगन्धगर्भैः, विलोलानि नेत्राणि एव भ्रमराः येषां तानि विलोलनेत्रभ्रमराणि, तैः विलोलनेत्रभ्रमरैः, सहस्रं

पत्राणि येषां तानि सहस्रपत्राणि, सहस्रपत्राणि आभरणं येषान्ते सहस्रपत्राभरणाः। गवाम् अक्षीणीव अक्षीणि येषां ते गवाक्षाः।

हिन्दी—(अज को देखने के लिये) अत्यन्त उत्सुक उन स्त्रियों के मदिरा-गन्ध से सुवासित तथा चंचल नेत्र रूपी भौंरे वाले मुखों से भरे वे झरोखे, ऐसे जान पड़ रहे थे, मानो कमलों से सजाए गए हों। अर्थात् चंचल नेत्ररूपी भौंरे वाले कमलरूपी मुखों से वे झरोखे कमलों से सजाए गये जैसे लग रहे थे ॥११॥

ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ॥१२॥

संजी०—ता इति । ता नार्यो रघोरपत्यं राघवमजम् । 'तस्यापत्यम्' (पा० ४।१।९२) इत्यण्प्रत्ययः । दृष्टिभिरापिबन्त्योऽतितृष्णया पश्यन्त्यो विषयान्तराण्यन्यान्विषयान्न जग्मुः । न विविदुरित्यर्थः । तथा हि-आसां नारीणां शेषेन्द्रियवृत्तिश्चक्षुर्व्यतिरिक्तश्रोत्रादीन्द्रियव्यापारः सर्वात्मना स्वरूपकार्त्स्न्येन चक्षुः प्रविष्टेव । श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि स्वातन्त्र्येण ग्रहणाशक्तेश्चक्षुरेव प्रविश्य कौतुकात्स्वयमप्येनमुपलभन्ते किमु । अन्यथा स्वस्वविषयाधिगमः किं न स्यादिति भावः ॥१२॥

अन्वयः—ताः नार्यः राघवं दृष्टिभिः आपिबन्त्यः विषयान्तराणि न जग्मुः, तथाहि आसां शेषेन्द्रियवृत्तिः सर्वात्मना चक्षुः प्रविष्टा इव ।

व्याख्या—ताः = पूर्वोक्ताः नार्यः = स्त्रियः रघोरपत्यं पुमान् राघवस्तं राघवम् दृष्टिभिः = नेत्रैः आपिबन्त्यः = अतितृष्णया पश्यन्त्यः विषयान्तराणि=अन्यान् विषयान् न=नैव जग्मुः=गताः, न जानन्ति स्मेत्यर्थः, तथाहि=उक्तमुपपादयति, आसाम्=स्त्रीणाम् शेषाणि = अवशिष्टानि = चक्षर्व्यतिरिक्तानीत्यर्थः, च तानि इन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि, शेषेन्द्रियाणि तेषां वृत्तिः = व्यापारः, इति शेषेन्द्रियवृत्तिः, सर्वः=सम्पूर्णश्चासौ आत्मा = स्वरूपम् तेन सर्वात्मना = पूर्णरूपेण चक्षुः = नेत्रं प्रविष्टा = गता इव = यथा नेत्रातिरिक्तानि श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि स्वतंत्रतया स्वस्वविषयग्रहणे अशक्तानीति चक्षुरेव प्रविश्य कुतूहलात् स्वयमपि एनमुपलभन्ते किम्, अन्यथा स्वस्वविषयप्राप्तिः किं न स्यादिति ।

समासः—अन्ये विषयाः विषयान्तराणि, शेषाणि च तानीन्द्रियाणि शेषेन्द्रि-

याणि तेषां वृत्तिरिति शेषेन्द्रियवृत्तिः, सर्वश्चासौ आत्मा सर्वात्मा, तेन सर्वात्मना।

हिन्दी— वे स्त्रियाँ रघुपुत्र अज को अपने नेत्रों से पीती हुई (अर्थात् एकटक होकर देखती हुई) दूसरे किसी काम को न जान सकीं। अर्थात् उनका ध्यान अन्य किसी ओर गया ही नहीं। मानों उनकी सब इन्द्रियों (आँख को छोड़कर) का व्यापार (सामर्थ्य) नेत्रों में ही समा गया। अभिप्राय यह है कि क्या कान नाक आदि इन्द्रियाँ अपने अपने विषय को स्वतंत्र रूप से ग्रहण करने में असमर्थ होने के कारण नेत्र में बैठकर कौतुक से स्वयं भी अज को प्राप्त कर रही हैं? नहीं तो अपने अपने विषय को क्यों नहीं ग्रहण करती हैं ॥१२॥

स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुममंस्त भोज्या।
पद्मेव नारायणमन्यथासौ लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम्? ॥१३॥

संजी०—स्थान इति। भोज्येन्दुमती परोक्षैरदृष्टैर्भूपतिभिर्वृता 'ममैवेयम्' इति प्रार्थितापि स्वयंवरमेव साधु स्वहितममंस्त मेने। न तु परोक्षमेव कंचित्प्रार्थकं वव्रे। स्थाने युक्तमेतत्। 'युक्ते द्वे सांप्रतं स्थाने' इत्यमरः। कुतः? अन्यथा स्वयंवराभावे। असाविन्दुमती। पद्ममस्या अस्तीति पद्मा लक्ष्मीः। 'अर्शआदिभ्योऽच्' (पा. ५।१।१२७) इत्यच्प्रत्ययः। नारायणमिव। आत्मतुल्यं स्वानुरूपं कान्तं पतिं कथं लभेत? न लभेतैव। सदसद्विवेकासौकर्यादिति भावः ॥१३॥

अन्वयः—**भोज्या परोक्षैः भूपतिभिः वृता (अपि) स्वयंवरमेव साधुम् अमंस्त (इति) स्थाने, (कुतः) अन्यथा असौ पद्मा नारायणम् इव आत्मतुल्यं कान्तं कथं लभेत।**

व्याख्या—भोजस्य राज्ञः गोत्रापत्यं स्त्री भोज्या=इन्दुमती अक्ष्णः परे परोक्षास्तैः परोक्षैः=अदृष्टैः भूपतिभिः=राजभिः वृता=प्रर्थितापि स्वयंवरं= स्वेनैव वरणं साधुं=हितम् अमंस्त=मेने नतु अदृष्टं कमपि पार्थकं वव्रे, इति स्थाने=साम्प्रतम्=युक्तमेतत्। अन्यथा=स्वयंवराभावे असौ=इन्दुमती पद्ममस्या अस्तीति पद्मा=लक्ष्मीः नारायणं=विष्णुम् इव=यथा आत्मना=स्वेन तुल्यः=समानस्तम्, आत्मतुल्यं=स्वानुरूपम् कान्तं=पतिं कथं=केन प्रकारेण लभेत=विन्देत्? न लभेतैव। स्वानुरूपत्वेन विवेक्तुमशक्यत्वात्।

समासः—भुवः पतयस्तैः भूपतिभिः, अक्ष्णः परे तैः परोक्षैः, भोजस्यापत्यं स्त्री भोज्या, पद्ममस्या अस्तीति पद्मा, स्वयं वृणुते (कन्या) यस्मिन् स तं स्वयंवरम्, आत्मना तुल्यस्तम् आत्मतुल्यम्। नाराणाम् अयनः नारायणस्तं नारायणम्।

हिन्दी—स्त्रियां परस्पर कहती हैं इन्दुमती ने बिना देखे राजाओं से माँग की जाने पर भी (अर्थात् विवाह के लिए राजाओं द्वारा प्रार्थना करने पर भी) स्वयंवर करना ही अच्छा माना, यह उचित ही हुआ। यदि स्वयंवर न करती तो जिस प्रकार लक्ष्मी ने विष्णु को पतिरूप से प्राप्त किया वैसे ही इन्दुमती अपने समान सुन्दर पति को कैसे प्राप्त करती। नहीं ही प्राप्त कर पाती ॥१३॥

परस्परेण स्पृहणीयशोभं न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्।
अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ॥१४॥

संजी०—परस्परेणेति। स्पृहणीयशोभं सर्वाशास्यसौन्दर्यमिदं द्वन्द्वं मिथुनम्। 'द्वन्द्वं रहस्य–' (पा. ८।१।१५) इत्यादिना निपातः। परस्परेण नायोजयिष्यच्चेत्। न योजयेद्यदि तर्हि प्रजानां पत्युर्विधातुरस्मिन्द्वये द्वन्द्वे रूपविधानयत्नः सौन्दर्यनिर्माणप्रयासो वितथो विफलोऽभविष्यत्। एतादृशानुरूपस्त्रीपुंसान्तराभावादिति भावः। 'लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियातिपत्तौ' (पा. ३।३।१३९) इति लृङ्। 'कुतश्चित्कारणवैगुण्यात्क्रियाया अनभिनिष्पत्तिः क्रियातिपत्तिः' इति वृत्तिकारः ॥१४॥

अन्वयः—स्पृहणीयशोभम् इदं द्वन्द्वं परस्परेण न अयोजयिष्यत् चेत् (तर्हि) प्रजानां पत्युः अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः वितथः अभविष्यत्।

व्याख्या—स्पृहणीया = अभिलाषयोग्या, सर्वैर्वाञ्छनीयेत्यर्थः, शोभा = सौन्दर्यं यस्य तत् स्पृहणीयशोभम्, इदं = परिदृश्यमानम् द्वन्द्वं = मिथुनम् कन्यावरयोः युगलम्, परस्परेण = अन्योन्येन न अयोजयिष्यत् = नामेलयिष्यत् चेत् = यदि (तर्हि) प्रजानां = लोकानां पत्युः = ब्रह्मणः = विधातुः, अस्मिन् द्वये = अस्मिन् युगले रूपस्य = सौन्दर्यस्य विधानं = निर्माणमिति रूपविधानं तस्मिन् यत्नः = प्रयासः रूपविधानयत्नः, वितथः = विफलः = व्यर्थः अभविष्यत् = समपत्स्यत।

समासः—स्पृहणीया शोभा यस्य तत् स्पृहणीयशोभम्, प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजास्तासां प्रजानाम्, रूपस्य विधानमिति रूपविधानं तत्र यत्नः रूपविधानयत्नः।

हिन्दी—अभिलाषा के योग्य शोभा वाले अर्थात् अतीव सुन्दर इस (अज इन्दुमती) जोड़े को आपस में यदि न मिलाता तो ब्रह्मा का इन दोनों को इतना सुन्दर बनाने का परिश्रम ही व्यर्थ जाता। अर्थात् इनको मिलाकर ब्रह्मा जी से बहुत ही उचित किया गया ॥१४॥

रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथा हि बाला।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् ॥१५॥

संजी०—रतीति। रतिस्मरौ यौ नित्यसहचरावित्यभिप्रायः। नूनं तावेवेयं चायं चेमौ दंपती। अभूताम्। एतद्रूपेणोत्पन्नौ। कुतः? तथा हि—इयं बाला राज्ञां सहस्रेषु राजसहस्रमध्ये। सत्यपि व्यत्यासकरण इति भावः। आत्मप्रतिरूपं स्वतुल्यमेव। 'तुल्यसंकाशनीकाशप्रकाशप्रतिरूपकाः' इति दण्डी। गता प्राप्ता। तदपि कथं जातमत आह—हि यस्मान्मनो जन्मान्तरसंगतिज्ञं भवति। 'तदेवेदम्' इति प्रत्यभिज्ञाभावेऽपि वासनाविशेषवशादनुभूतार्थेषु मनःप्रवृत्तिरस्तीत्युक्तम्। जन्मान्तरसाहचर्यमेवात्र प्रवर्तकमिति भावः ॥१५॥

अन्वयः—**रतिस्मरौ नूनम् इमौ अभूताम्, तथाहि इयम् बाला राज्ञां सहस्रेषु आत्मप्रतिरूपमेव गता, हि मनः जन्मान्तरसंगतिज्ञम् भवति।**

व्याख्या—रतिः=कामपत्नी च स्मरः=कन्दर्पश्चेति रतिस्मरौ नूनम्=अवश्यम् तावेवेत्यर्थः इयञ्च अयञ्च, इमौ दम्पती=इन्दुमत्यजावित्यर्थः अभूताम्= आस्ताम्, तथाहि=उक्तं प्रतिपादयति इयं=पुरो दृश्यमाना बाला=इन्दुमती राज्ञां=भूपालानां सहस्रेषु=सहस्रसंख्येषु अर्थात् सहस्रभूपालमध्ये, आत्मनः=स्वस्य प्रतिरूपम्= तुल्यं समानमित्यर्थः, इति आत्मप्रतिरूपमेव गता=प्राप्ता, तदपि कथं जातमित्यत आह हि=यस्मात् मनः=चित्तम् अन्यत् जन्म जन्मान्तरम्, जन्मान्तरे=पूर्वस्मिन् जन्मनि या संगतिः=संगमः, इति जन्मान्तरसंगतिः तां जानाति=वेत्ति, इति जन्मान्तरसंगतिज्ञम् भवति=अस्ति, अर्थात् तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञाया अभावेऽपि संस्कारविशेषवशेन जन्मान्तरानुभूतेषु अर्थेषु मनःप्रवृत्तिर्भवतीति। जन्मान्तरसहचारित्वमेवास्मिन्नपि जन्मनि संगमकमिति भावः। संस्कारविशेषवशात् अनुभूतेषु अर्थेषु मनःप्रवृत्तिर्भवति इत्यर्थः।

समासः—रतिश्च स्मरश्चेति रतिस्मरौ। इयं च अयञ्च, इमौ। आत्मनः प्रतिरूप आत्मप्रतिरूपः तम्। अन्यत् जन्म जन्मान्तरम्, जन्मान्तरे संगतिः जन्मान्तरसंगतिस्तां जानातीति जन्मान्तरसंगतिज्ञम्।

हिन्दी—रति और कामदेव ही ये दोनों (अज इन्दुमती) पतिपत्नी रूप से उत्पन्न हुए हैं इसलिए कि इस बाला ने हजारों राजाओं के बीच में भी अपने समान अज को ही प्राप्त किया है। क्योंकि मन तो पूर्व जन्म के सम्बन्ध को जानता है॥१५॥

इत्युद्गताः पौरवधूमुखेभ्यः शृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखाः कुमारः।
उद्भासितं मङ्गलसंविधाभिः संबन्धिनः सद्म समाससाद॥१६॥

संजी०—इतीति। इति 'स्थाने वृत्तता' (७।१३) इत्याद्युक्तप्रकारेण **पौरवधूमुखेभ्य** उद्गता उत्पन्नाः श्रोत्रयोः सुखा मधुराः। 'सुख' शब्दो विशेष्यनिघ्नः। 'पापपुण्यसुखादि च' इत्यमरः। कथा गिरः शृण्वन् कुमारोऽजो **मङ्गलसंविधाभि**र्मङ्गलरचनाभिरुद्भासितं शोभितं **संबन्धिनः** कन्यादायिनः सद्म गृहं **समाससाद** प्राप॥१६॥

अन्वयः—**इति पौरवधूमुखेभ्यः उद्गताः श्रोत्रसुखाः कथाः शृण्वन् कुमारः मंगलसंविधाभिः उद्भासितम् संबन्धिनः सद्म समाससाद।**

व्याख्या—इति = स्थाने वृतेत्यादिश्लोकत्रयोक्तप्रकारेण पुरे भवाः पौराः, पौराणां = नागरिकाणां वध्वः = स्त्रियस्तासां मुखानि = आननानि तेभ्यः, पौरवधूमुखेभ्यः उद्गताः = निर्गताः = उत्पन्नाः श्रोत्रयोः = कर्णयोः सुखं कुर्वन्तीत्यर्थे, सुखयन्तीति सुखास्ताः सुखाः = मधुराः कथाः = गिरः आलापानित्यर्थः **शृण्वन्** = आकर्णयन् कुमारयति = क्रीडति इति कुमारः, कौ = पृथिव्यां मारयति दुष्टानीति वा कुमारः = रघुपुत्रोऽजः मंगति = गच्छति दुरदृष्टमनेन अस्माद्वा इति मंगलम्। मंगलस्य = कल्याणस्य शुभस्येत्यर्थः संविधाः = रचनाः, ताभिः मंगलसंविधाभिः, उद्भासितम् = प्रकाशितं = सुशोभितम्, संबन्धिनः = कन्याप्रदातुः भोजस्येत्यर्थः सद्म = गृहं समाससाद = प्राप। भोजप्रासादं प्राप्तवानित्यर्थः।

समासः—पुरे भवाः पौरास्तेषां वध्वस्तासां मुखानि पौरवधूमुखानि, तेभ्यः पौरवधूमुखेभ्यः। श्रोत्रयोः सुखाः श्रोत्रसुखाः ताः श्रोत्रसुखाः। मंगलस्य संविधास्ताभिः मंगलसंविधाभिः।

हिन्दी—नगर की स्त्रियों के मुख से इस प्रकार की कानों को प्रिय लगने वाली कथाओं को सुनते हुए कुमार अज मंगल की सामग्रियों की सजावट से जगमगाते अपने संबन्धी भोज के राजभवन पहुँच गये ॥१६॥

ततोऽवतीर्याशु करेणुकायाः स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः ।
वैदर्भनिर्दिष्टमथो विवेश नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः ॥१७॥

संजी०—तत इति । ततोऽनन्तरं करेणुकाया हस्तिन्याः सकाशादाशु शीघ्रमवतीर्य । कामरूपेश्वरे दत्तो हस्तो येन सोऽजः । अथो अनन्तरं वैदर्भेण निर्दिष्टं प्रदर्शितमन्तश्चतुष्कं चत्वरम् । नारीणां मनांसीव विवेश ॥१७॥

अन्वयः—ततः करेणुकायाः आशु अवतीर्य कामरूपेश्वरदत्तहस्तः सः अथ वैदर्भनिर्दिष्टम् अन्तः चतुष्कम् नारीणां मनांसि इव विवेश ।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम् करेणुकायाः = हस्तिन्याः आशु = शीघ्रम् अवतीर्य = पृथिव्यामागत्य कामरूपस्य = देशविशेषस्य कामाख्यास्थानस्येत्यर्थः, ईश्वरः = स्वामी, तस्मिन् दत्तः = प्रदत्तः अवलम्बित इत्यर्थः, हस्तः = करः येन स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः सः = अजः अथ = पश्चात् विदर्भाणां राजा वैदर्भस्तेन वैदर्भेण भोजेन निर्दिष्टम् = दर्शितम् अन्तश्चतुष्कम् = आभ्यन्तरचत्वरम् नारीणां = वनितानाम् मनांसि = चित्तानि इव = यथा विवेश = प्रविष्टवान् ।

समासः—कामरूपस्य ईश्वरः कामरूपेश्वरस्तस्मिन् दत्तः हस्तः येन स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः । विदर्भाणां राजा वैदर्भः तेन निर्दिष्टम्, तत् वैदर्भनिर्दिष्टम् ।

हिन्दी—भोज के घर पहुँच कर हथिनी से झटपट नीचे उतरकर तथा कामरूप (आसाम) के राजा के हाथ में हाथ देकर, वह अज भोज राजा के बताए हुए भीतरी चौक में ऐसा प्रविष्ट हुआ, मानो वहाँ की स्त्रियों के मन में भी बस गया हो ॥१७॥

महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ सरत्नमर्घ्यं मधुपर्कमिश्रम् ।
भोजोपनीतं च दुकूलयुग्मं जग्राह सार्धं वनिताकटाक्षैः ॥१८॥

संजी०—महार्हेति । महार्हसिंहासने संस्थितोऽसावजः । भोजेनोपनीतम् । रत्नैः सहितं सरत्नम् । मधुपर्कमिश्रमर्घ्यं पूजासाधनद्रव्यं दुकूलयोः क्षौमयोर्युग्मं च वनिताकटाक्षैरन्यस्त्रीणामपाङ्गदर्शनैः सार्धम् । जग्राह गृहीतवान् ॥१८॥

अन्वयः—महार्हसिंहासनसंस्थितः असौ भोजोपनीतम् सरत्नम्, मधुपर्कमिश्रम् अर्घ्यं दुकूलयुग्मं च वनिताकटाक्षैः सार्धं जग्राह ।

व्याख्या—महदर्हं च महार्हं महार्हञ्च तत्सिंहासनमिति-महार्हसिंहासनम्, तस्मिन् महार्हसिंहासने = बहुमूल्यसिंहपीठे संस्थितः = उपविष्टः असौ = अजः भोजेन = राज्ञा उपनीतम् = आनीतम् रत्नैः = हीरकादिभिः सहितम् = युक्तम् सरत्नं मधुपर्केण = घृतमधुदधिजलशर्करात्मकेन द्रव्येण मिश्रम् = संमिलितम् अर्घ्यम् = पूजासाधनद्रव्यम् दुकूलयोः = क्षौमयोः युग्मं = द्वयमिति दुकूलयुग्मञ्च वनितानां = स्त्रीणां कटाक्षाः = अपांगदर्शनानि तैः वनिताकटाक्षैः सार्धं = सहितं यस्मिन् कर्मणीति जग्राह = गृहीतवान् ।

समासः—महच्च तदर्हञ्चेति महार्हं महार्हञ्च तत्सिंहासनं तस्मिन् संस्थितः इति महार्हसिंहासनसंस्थितः । भोजेन उपनीतमिति भोजोपनीतं तत् भोजोपनीतम् । रत्नैः सह वर्तते इति सरत्नम्, तत् । मधुपर्केण मिश्रमिति मधुपर्कमिश्रम्, तत् । दुकूलयोः युग्ममिति दुकूलयुग्मम्, तत् । वनितानां कटाक्षास्तैः वनिताकटाक्षैः ।

हिन्दी—बहुमूल्य सिंहासन पर बैठे हुए अज ने राजा भोज से भेंट किया हुआ रत्नों से युक्त तथा मधुपर्क से मिला, अर्घ्य (पूजन सामग्री) और रेशमी वस्त्र के जोड़े को स्त्रियों की बांकी चितवन के साथ स्वीकार किया । घी मधु दही जल शर्करा मिले द्रव्य को 'मधुपर्क' कहते हैं ॥१८॥

दुकूलवासाः स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधरक्षैः ।
वेलासकाशं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ॥१९॥

संजी०—दुकूलेति । दुकूलवासाः सोऽजः विनीतैर्नम्रैरवरोधरक्षैरन्तःपुराधिकृतैर्वधूसमीपं निन्ये । तत्र दृष्टान्तः—स्फुटफेनराजिरुदन्वान् समुद्रो नवैर्नूतनैश्चन्द्रपादैश्चन्द्रकिरणैर्वेलायाः सकाशं समीपमिव । पूर्णदृष्टान्तोऽयम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—दुकूलवासाः सः विनीतैः अवरोधरक्षैः स्फुटफेनराजिः उदन्वान् नवैः चन्द्रपादैः वेलासकाशम् इव वधूसमीपम् निन्ये ।

व्याख्या—दुकूलं = क्षौमं वासः = वस्त्रं यस्य स दुकूलवासाः सः = अजः विनीतैः = शिक्षितैः शिष्टैरित्यर्थः, अवरोधम् = अन्तःपुरं रक्षन्ति = पालयन्ति ते अवरोधरक्षास्तैः अवरोधरक्षैः, स्फुटा = स्पष्टा फेनस्य = अब्धिकफस्य राजिः = पंक्तिः यस्य सः स्फुटफेनराजिः, उदकानि = जलानि सन्ति अस्य स उदन्वान् =

समुद्र: नवै: = नूतनै: चन्द्रस्य = इन्दो: पादा: = किरणास्तै: चन्द्रपादै:, वेलाया:= तटस्य समीपं = सकाशमिति वेलासमीपम् इव = यथा वध्वा: = इन्दुमत्या: समीपं= पार्श्वम् निन्ये = नीत: ।

समास:—दुकूलं वासो यस्य स:, दुकूलवासा: । वध्वा: समीपमिति वधूसमीपम्, तत् । अवरोधं रक्षन्ति ते तै: अवरोधरक्षै: । वेलाया: सकाशमिति वेलासकाशम् तत्, स्फुटा फेनस्य राजि: यस्य स: स्फुटफेनराजि: । चन्द्रस्य पादास्तै: चन्द्रपादै: ।

हिन्दी—पट्ट वस्त्र को धारण किये हुए अज को रनिवास के नम्र सेवक वैसे ही वधू के पास ले गए, जैसे उजली (स्पष्ट) झागवाले समुद्र को नई-नई चन्द्र की किरणें तट के पास ले जाती हैं ।। १९ ।।

तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः ।
तमेव चाधाय विवाहसाक्ष्ये वधूवरौ संगमयांचकार ।।२०।।

संजी०——तत्रेति । तत्र सद्मन्यर्चित: पूजितोऽग्निकल्पोऽग्नितुल्यो भोजपतेर्भोजदेशाधीश्वरस्य पुरोधा: पुरोहित: । 'पुरोधास्तु पुरोहित:' इत्यमर: । आज्यादिभिर्द्रव्यैरग्नि हुत्वा तमेव चाग्निं विवाहसाक्ष्य आधाय । साक्षिणं च कृत्वेत्यर्थ: । वधूवरौ संगमयांचकार योजयामास ।।२०।।

अन्वय:—तत्र अर्चित: अग्निकल्प: भोजपते: पुरोधा: आज्यादिभि: अग्निं हुत्वा तमेव च विवाहसाक्ष्ये आधाय वधूवरौ संगमयाञ्चकार ।

व्याख्या—तत्र = भोजसद्मनि अर्चित: पूजित: अग्ने:=वह्ने: कल्प: = ईषदसदृश:, इति अग्निकल्प: भोजानां पति: भोजपति:=भोजदेशेश्वर: तस्य भोजपते: पुर:=अग्रे धीयते सर्वकार्येष्विति पुरोधा:=पुरोहित:, आज्यादिभि:=हवनीयद्रव्यै: अग्निं=वह्निं, हुत्वा=संभोज्य, सन्तर्प्येत्यर्थ:, तमेव = अग्निमेव विवाहस्य = पाणिग्रहणस्य साक्ष्यं = साक्षाद् द्रष्टृत्वं तस्मिन् विवाहसाक्ष्ये, आधाय = निधाय वधू: नवोढा च वर: = जामाता चेति तौ वधूवरौ संगमयाञ्चकार = संयोजयामास विवाहविधिं कारयामासेत्यर्थ: । पतिपत्नीत्वेन संगमयामासेति यावत् ।

समास:—भोजानां पति: भोजपतिस्तस्य भोजपते: । ईषदून: अग्नि: अग्निकल्प: । विवाहस्य साक्ष्यं तस्मिन् विवाहसाक्ष्ये । पुरो धीयते इति पुरोधा: । वधूश्च वरश्चेति वधूवरौ, तौ ।

हिन्दी—वहाँ पूजा किये गये और अग्नि के समान तेजस्वी, भोजराज के पुरोहित ने घृतादि सामग्री से हवन करके तथा उसी अग्नि को साक्षी (गवाह) बनाकर वधू और वर को मिला दिया अर्थात् गठबन्धन कर दिया ॥२०॥

हस्तेन हस्तं परिगृह्य वध्वाः स राजसूनुः सुतरां चकासे ।
अनन्तराशोकलताप्रवालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन ॥२१॥

संजी० = हस्तेनेति । स राजसूनुर्हस्तेन स्वकीयेन वध्वा हस्तं परिगृह्य । अनन्तरायाः संनिहितायाः अशोकलतायाः प्रवालं पल्लवं प्रतिपल्लवेन स्वकीयेन प्राप्य चूत आम्र इव सुतरां चकासे ॥ २१ ॥

अन्वयः—सः राजसूनुः हस्तेन वध्वाः हस्तं परिगृह्य अनन्तराशोकलताप्रवालं प्रतिपल्लवेन प्राप्य चूतः इव सुतरां चकासे ।

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः राज्ञः = रघोः सूनुः = पुत्रः राजसूनुः हस्तेन=स्वकरेण वध्वाः=नवोढायाः=इन्दुमत्याः हस्तं=करं परिगृह्य=गृहीत्वा, अनन्तरायाः=समीपस्थायाः अशोकलतायाः=वञ्जुललतायाः प्रवालं=पल्लवं प्रतिपल्लवेन=स्वकीयप्रवालेन प्राप्य=अवाप्य चूतः=आम्रः इव=यथा सुतराम्=अत्यन्तं चकासे=शुशुभे ।

समासः—राज्ञः सूनुरिति राजसूनुः । अशोकस्य लता अशोकलता, न विद्यते अन्तरं यस्याः सा अनन्तरा च सा अशोकलता च अनन्तराशोकलता तस्याः प्रवालमिति अनन्तराशोकलताप्रवालम्, तत् । प्रतिकूलञ्च तत्पल्लवमिति प्रतिपल्लवं तेन प्रतिपल्लवेन ।

हिन्दी—वह रघु का पुत्र अपने हाथ से वधू इन्दुमती के हाथ को पकड़कर वैसे ही अतीव शोभा को प्राप्त हुआ जैसे कि संनिहित अशोक लता के (लाल) पल्लव को प्राप्त कर आम का पेड़ सुशोभित होता है। अर्थात् अशोकलता की लाल पत्ती से मिलकर आम की तरह इन्दुमती के हाथ को अपने हाथ में लेकर अज भी खूब मनोहर लगने लगा ॥ २१ ॥

आसीद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः स्विन्नाङ्गुलिः संववृते कुमारी ।
तस्मिन्द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिः समं विभक्तेव मनोभवेन ॥२२॥

संजी०—आसीदिति । वरः कण्टकितः पुलकितः प्रकोष्ठो यस्य स आसीत् । 'सूच्यग्रे क्षुद्रशत्रौ च रोमहर्षे च कण्टकः' इत्यमरः । कुमारी स्विन्नाङ्गुलिः संववृते

बभूव। अत्रोत्प्रेक्षते—तस्मिन्द्वये मिथुने तत्क्षणमात्मवृत्तिः सात्त्विकोदयरूपा वृत्तिर्मनोभवेन कामेन समं विभक्तेव पृथक्कृतेव। प्राक्सिद्धस्याप्यनुरागसाम्यस्य संप्रति तत्कार्यदर्शनात्पाणिस्पर्शकृतत्वमुत्प्रेक्षते। अत्र वात्स्यायनः—'कन्या तु प्रथमसमागमे स्विन्नाङ्गुलिः स्विन्नमुखी च भवति। पुरुषस्तु रोमाञ्चितो भवति एभिरनयोर्भावं परीक्षेत।' इति। स्त्री-पुरुषयोः स्वेदरोमाञ्चाभिधानं सात्त्विकमात्रोपलक्षणम्। न तु प्रतिनियमो विवक्षितः; 'एभिः' इति बहुवचनसामर्थ्यात्। एवं सति कुमारसंभवे (७।७७)—'रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नाङ्गुलिः पुंगवकेतुरासीत्' इति व्युत्क्रमवचनं न दोषायेति। 'वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन समं विभक्तेव मनोभवस्य' इत्यपरार्धस्य पाठान्तरे व्याख्यानान्तरम्—पाणिसमागमेन पाण्योः संस्पर्शेन कर्त्रा तयोर्वधूवरयोर्मनोभवस्य वृत्तिः स्थितिः समं विभक्तेव। समीकृतेवेत्यर्थः॥२२॥

अन्वयः—वरः कण्टकितप्रकोष्ठः आसीत्, कुमारी स्विन्नांगुलिः संववृते, तस्मिन् द्वये तत्क्षणम् आत्मवृत्तिः मनोभवेन समं विभक्तेव।

व्याख्या—वरः=जामाता अज इत्यर्थः, कण्टकाः संजाता अस्यासौ कण्टकितः, कण्टकितः=पुलकितः प्रकोष्ठः = मणिबन्धः यस्य सः, कण्टकितप्रकोष्ठः आसीत्= अभूत्, कुमारी=इन्दुमती स्विन्नाः=संजातस्वेदाः अंगुलयः=करशाखाः यस्याः सा स्विन्नांगुलिः संबवृते = जाता, तस्मिन् = पूर्वोक्ते द्वये=मिथुने तत्क्षणं = पाणिग्रहणसमये आत्मनः = स्वस्य वृत्तिः=सात्त्विकोदयरूप आत्मव्यापारः मनोभवेन= कामदेवेन समं = समानम् विभक्ता=पृथक्कृता इवेत्युत्प्रेक्षायाम्।

समासः—कण्टकाः संजाता अस्यासौ कण्टकितः प्रकोष्ठो यस्य सः कण्टकितप्रकोष्ठः। स्विन्नाः अंगुलयो यस्याः सा स्विन्नांगुलिः। आत्मनः वृत्तिरिति आत्मवृत्तिः। मनसि भवतीति मनोभवस्तेन मनोभवेन।

हिन्दी—(इन्दुमती का हाथ पकड़ने के समय) अज के मणिबन्ध (गट्टे) के पास रोमांच हो गया और इन्दुमती की अंगुलियाँ पसीने से भर गईं, उस समय मानो कामदेव ने अपनी वृत्ति अपना व्यापार अर्थात् (प्रेम भाव) उस जोड़े में पृथक् २ बराबर बाँट दिया है। इन दोनों का अनुराग पहले ही से हो गया था, किन्तु अब उसका कार्य देखने से यह पाणिस्पर्श से हुआ है ऐसी उत्प्रेक्षा की गई है॥ २२॥

तयोरपाङ्गप्रतिसारितानि क्रियासमापत्तिनिवर्तितानि ।
ह्रीयन्त्रणामानशिरे मनोज्ञामन्योन्यलोलानि विलोचनानि ॥२३॥

संजी०—तयोरिति । अपाङ्गेषु नेत्रप्रान्तेषु प्रतिसारितानि प्रवर्तितानि क्रिययोर्निरीक्षणलक्षणयोः समापत्त्या यदृच्छासंगत्या निवर्तितानि प्रत्याकृष्टान्यन्योन्यस्मिल्लोलानि सतृष्णानि । 'लोलश्चलसतृष्णयोः' इत्यमरः । तयोर्दंपत्योर्विलोचनानि दृष्टयो मनोज्ञां रम्यां ह्रिया निमित्तेन यन्त्रणां संकोचमानशिरे प्रापुः ॥२३॥

अन्वयः—**अपाङ्गप्रतिसारितानि, क्रियासमापत्तिनिवर्तितानि, अन्योन्यलोलानि तयोः विलोचनानि, मनोज्ञां ह्रीयन्त्रणाम् आनशिरे ।**

व्याख्या—अपाङ्गेषु = नेत्रप्रान्तेषु प्रतिसारितानि = प्रवर्तितानि, इति अपांगप्रतिसारितानि । क्रिययोः = अवलोकनरूपयोः समापत्तिः = यदृच्छया संगतिः, तया निवर्तितानि = प्रत्यावर्तितानि, इति क्रियासमापत्तिनिवर्तितानि । अन्योन्यस्मिन् = परस्परस्मिन् लोलानि = सतृष्णानि, अन्योन्यलोलानि । तयोः = दम्पत्योः = अजेन्दुमत्योरित्यर्थः, विलोचनानि = नयनानि मनोज्ञां = रम्यां ह्रिया = लज्जया कारणेन, यन्त्रणा = संकोचस्तां ह्रीयन्त्रणाम् । आनशिरे = प्राप्तानि ।

समासः—अपाङ्गन्तीति अपांगास्तेषु प्रतिसारितानीति, अपांगप्रतिसारितानि । क्रियायाः समापत्तिरिति क्रियासमापत्तिस्तया निवर्तितानि तथोक्तानि । अन्योन्यस्मिन् लोलानीति अन्योऽन्यलोलानि । मनो जानातीति मनोज्ञा तां मनोज्ञाम् । ह्रिया (हेतुना) यन्त्रणाम् तां ह्रीयन्त्रणाम् ।

हिन्दी—जो कनखियों तक फैलाये गये और नजर टकराने पर लौटा लिये, तथा परस्पर देखने के लिये अतीव उत्सुक (ऐसे) अज इन्दुमती के नेत्र, लाज के कारण संकोच को प्राप्त हो गये, उनका यह नेत्रसंकोच अतीव मनोहर था । अर्थात् दोनों की नजर मिलते ही शरम से झुक जाती थी ॥२३॥

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे ।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् ॥२४॥

संजी०—प्रदक्षिणेति । तन्मिथुनमुदर्चिष उन्नतज्वालस्य कृशानोर्वह्नेः प्रदक्षिणप्रक्रमणात् प्रदक्षिणीकरणात् मेरोरुपान्तेषु समीपेषु वर्तमानमावर्तमानम् । मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वदित्यर्थः । अन्योन्यसंसक्तं परस्परसंगतम् । मिथुनस्याप्येतद्विशेष-

णम् । अहश्च त्रियामा चाहस्त्रियामं रात्रिदिवमिव । समाहारे द्वंद्वैकवद्भावः । चकासे दिदीपे ॥२४॥

अन्वयः—तन्मिथुनम् उदर्चिषः कृशानोः प्रदक्षिणप्रक्रमणात्, मेरोः उपान्तेषु वर्तमानम्, अन्योऽन्यसंसक्तम् अहस्त्रियामम् इव चकासे ।

व्याख्या—मेथतीति (संगच्छत इति) मिथुनम् तयोः अजेन्दुमत्योः मिथुनम्=द्वन्द्वम्, उत् = उन्नतम् अर्चिः = ज्वाला यस्य स उदर्चिस्तस्य उदर्चिषः, कृश्यतीति कृशानुस्तस्य कृशानोः=वह्नेः, प्रगतम् दक्षिणमिति प्रदक्षिणं यत् प्रक्रमणं=गमनमिति प्रदक्षिणप्रक्रमणं तस्मात् प्रदक्षिणप्रक्रमणात्=प्रदक्षिणाकरणात् मेरोः = सुमेरुपर्वतस्य, उपान्तेषु=समीपेषु वर्तमानम् = आवर्तमानम सुमेरुपर्वतस्य प्रदक्षिणां कुर्वदित्यर्थः । अन्योऽन्यस्मिन् = परस्परस्मिन् संसक्तम् = संगतम् अहः=दिनञ्च त्रियामा=रात्रिश्चेति अहस्त्रियामम् इव= यथा चकासे=बभासे ।

समासः—तयोः मिथुनमिति तन्मिथुनम्, प्रदक्षिणं यत् प्रक्रमणं तस्मात् प्रदक्षिणप्रक्रमणात् । उद् अर्चिर्यस्य सः तस्य उदर्चिषः । अन्योन्यस्मिन् संसक्तमिति, अन्योन्यसंसक्तम् । अहश्च त्रियामा च अनयोः समाहारः अहस्त्रियामम् ।

हिन्दी—अज और इन्दुमती का जोड़ा, प्रज्वलित हवन की अग्नि की परिक्रमा करते हुये ऐसा लग रहा था मानो सुमेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुये परस्पर मिले दिन और रात्रि हों ॥२४॥

नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन ।
चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ ॥२५॥

संजी०—नितम्बेति । नितम्बेन गुर्व्यलघ्वी । 'दुर्धरालघुनोर्गुर्वी' इति शाश्वतः । विधातृप्रतिमेन ब्रह्मतुल्येन तेन गुरुणा याजकेन प्रयुक्ता 'जुहुधि' इति नियुक्ता मत्तचकोरस्येव नेत्रे यस्याः सा वधूः । अग्नौ लाजविसर्गं चकार ॥२५॥

अन्वयः—नितम्बगुर्वी विधातृप्रतिमेन तेन गुरुणा प्रयुक्ता मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती सा वधूः अग्नौ लाजविसर्गं चकार ।

व्याख्या—निभृतं तम्यते = अभिलष्यते कामुकैरिति नितम्बः, नितम्बेन = कटिपश्चाद्भागेन गुर्वी = अलघ्वी स्थूलेत्यर्थः, नितम्बगुर्वी विधात्रा = ब्रह्मणा प्रतिमः=तुल्यस्तेन विधातृप्रतिमेन तेन=प्रसिद्धेन गुरुणा=पुरोहितेनेत्यर्थः, प्रयुक्ता=

प्रेरिता='होमं कुरु' इति, आहुतिदानाय नियुक्तेति भावः। माद्यतीति मत्तः, चकतीति चकोरः मत्तः=प्रसन्नश्चकोरः=चक्रवाकस्तस्येव नेत्रे=नयने यस्याः सा मत्तचकोरनेत्रा। लज्जास्ति यस्याः सा, लज्जावती=ह्रीमती सा पूर्वोक्ता=उह्यते सा वधूः नारी इन्दुमतीत्यर्थः अग्नौ=वह्नौ लाजानां=मृष्टधान्यानां विसर्गं=त्यागं चकार=कृतवती।

समासः—नितम्बेन गुर्वी नितम्बगुर्वी, विशेषेण धारयतीति विधाता तेन प्रतिमस्तेन विधातृप्रतिमेन। मत्तश्चासौ चकोरः, मत्तचकोरस्तस्य नेत्रे इव नेत्रे यस्याः सा मत्तचकोरनेत्रा। लाजानां विसर्गस्तं लाजविसर्गम्।

हिन्दी—बड़े-बड़े नितम्बों वाली प्रसन्न चकोर के समान आँखों वाली शरमीली उस इन्दुमती ने ब्रह्मा के समान पूज्य पुरोहितजी की प्रेरणा से अग्नि में धान का लावा छोड़ा। अर्थात् धान के लावे का हवन किया ॥२५॥

हविःशमीपल्लवलाजगन्धी पुण्यः कृशानोरुदियाय धूमः।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे ॥२६॥

संजी०—हविरिति। हविष आज्यादेः शमीपल्लवानां लाजानां च गन्धोऽस्यास्तीति हविःशमीपल्लवलाजगन्धी। 'शमीपल्लवमिश्राँल्लाजानञ्जलिना वपति' इति कात्यायनः। पुण्यो धूमः कृशानोः पावकादुदियायोद्भूतः। कपोलयोः संसर्पिणी प्रसरणशीला शिखा यस्य स तथोक्तः स धूमस्तस्या वध्वा मुहूर्तं कर्णोत्पलतां कर्णाभरणतां प्रपेदे ॥२६॥

अन्वयः—**हविःशमीपल्लवलाजगन्धी पुण्यः धूमः कृशानोः उदियाय, कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे।**

व्याख्या—शमयति रोगानिति शमी तस्याः पल्लवाः हविः=आज्यादि शमीपल्लवा=शिवाकिसलयानि लाजाः=मृष्टधानाः, एतेषामितरेतरयोगः, हविःशमीपल्लवलाजाः,तेषां गन्धः=सौरभमस्यास्तीति हविःशमीपल्लवलाजगन्धी,पुण्यः=पवित्रः धूमः कृशानोः=वह्नेः=पावकादित्यर्थः, उदियाय=उत्थितः संसर्पितुं शीलं यस्याः सा संसर्पिणी, कम्पते चलति इति कपोलः अथवा कं सुखं पोलतीति कपोलः कपोलयोः=गण्डस्थलयोः संसर्पिणी=प्रसरणशीला शिखा=चूडा यस्य स तथोक्तः सः=धूमः तस्याः=इन्दुमत्याः मुहूर्तं=क्षणम् उत्पलस्य भावः कर्म वा उत्पलता कर्णयोः=श्रोत्रयोः उत्पलता=कमलता तां कर्णोत्पलतां=कर्णभूषणतामित्यर्थः प्रपेदे=प्राप।

समासः—शम्याः पल्लवाः शमीपल्लवाः, हविश्च शमीपल्लवाश्च लाजाश्च (एतेषामितरेतरयोगः) हविःशमीपल्लवलाजास्तेषां गन्धोऽस्यास्तीति हविःशमीपल्लवलाजगन्धी । कपोलयोः संसर्पिणी शिखा यस्य स तथोक्तः । उत्पलस्य भावः उत्पलता कर्णयोः उत्पलता मुहूर्तं कर्णोत्पलता तां मुहूर्तकर्णोत्पलताम् ।

हिन्दी—घी तथा शमी के पत्तों और धान की खील की सुगन्ध वाला पवित्र धूवां अग्नि से निकला । (और) वह धूवां इन्दुमती के कपोलों के पास पहुँचकर क्षणभर के लिये उसके कानों का आभूषण बन गया । अर्थात् कपोलों के पास जब धूवाँ पहुँचा तो ऐसा जान पड़ा कि मानो इन्दुमती ने नील कमल के कर्णफूल पहने हों ॥२६॥

तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षं प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम् ।
वधूमुखं पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्बभूव ॥ २७ ॥

संजी०—तदिति । तद्वधूमुखमाचारेण प्राप्ताद्धूमग्रहणात् । अञ्जनस्य क्लेदोऽञ्जनक्लेदः । अञ्जनमिश्रबाष्पोदकमित्यर्थः । तेन समाकुलाक्षम् । प्रम्लानो बीजाङ्कुरो यवाङ्कुर एव कर्णपूरोऽवतंसो यस्य तत् पाटलगण्डलेखमरुणगण्डस्थलं च बभूव ॥ २७ ॥

अन्वयः—तद् वधूमुखम् आचारधूमग्रहणात्, अञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षम् प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम्, पाटलगण्डलेखं च बभूव ।

व्याख्या—तत् पूर्वोक्तम् वध्वाः=इन्दुमत्याः मुखम्—आननम् आचारेण प्राप्तः आचारप्राप्तः, आचारप्राप्तश्चासौ धूमश्च आचारधूमः, आचारधूमस्य = मांगलिकधूमस्य ग्रहणं=स्वीकरणं तस्मात् तथोक्तात् । अञ्जनस्य क्लेदः अञ्जनक्लेदः, अञ्जनक्लेदेन = कज्जलमिश्राश्रुजलेन समाकुले = व्याप्ते अक्षिणी = नेत्रे यस्मिन् तत् अञ्जनक्लेदसमाकुलाक्षम् । प्रम्लानः = प्रग्लानः बीजाङ्कुरो यवाङ्कुर एव कर्णपूरः = कर्णभूषणं यस्य तत् प्रम्लानबीजाङ्कुरकर्णपूरम् । पाटला = ईषद्रक्ता गण्डलेखा=गण्डस्थलं यस्मिन् तत् पाटलगण्डलेखं च=अपि बभूव=जातम् ।

समासः—वध्वाः मुखम् वधूमुखम् । आचारेण प्राप्तः आचारप्राप्तः आचारप्राप्तश्चासौ धूमस्तस्य ग्रहणं तस्मात् आचारधूमग्रहणात् । अञ्जनस्य क्लेदः अञ्जन-

क्लेदस्तेन समाकुले अक्षिणी यस्मिन् तत् तथोक्तम् । प्रकर्षेण म्लानः बीजाङ्कुर एव कर्णपूरो यस्मिन् तत् तथोक्तम् । पाटला गण्डलेखा यस्मिन् तत् तथोक्तम् ।

हिन्दी—उस समय, वह इन्दुमती का मुख मांगलिक धूएँ के लगने से आँजन मिले आँसुओं से भर गया और बीजांकुर का कर्णभूषण मुरझा गया, तथा गाल लाल हो गए ॥२७॥

तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा पुरंध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम् ।
कन्याकुमारौ कनकासनस्थावार्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम् ॥२८॥

संजी०—ताविति । कनकासनस्थौ तौ कन्याकुमारौ स्नातकैर्गृहस्थविशेषैः । 'स्नातकस्त्वाप्लुतो व्रती' इत्यमरः । बन्धुमता । बन्धुपुरःसरेणेत्यर्थः । राज्ञा च पुरंध्रिभिः पतिपुत्रवतीभिर्नारीभिश्च क्रमशः प्रयुक्तं स्नातकादीनां पूर्वपूर्ववैशिष्ट्या-त्क्रमेण कृतमार्द्राक्षतानामारोपणमन्वभूतामनुभूतवन्तौ ॥२८॥

अन्वयः—**कनकासनस्थौ तौ कन्याकुमारौ स्नातकैः बन्धुमता राज्ञा च पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम्, आर्द्राक्षतरोपणम् अन्वभूताम् ।**

व्याख्या—कनकस्य=सुवर्णस्य आसनम् = पीठमिति कनकासनं तत्र तिष्ठतः इति कनकासनस्थौ, सुवर्णनिर्मितसिंहासनोपविष्टावित्यर्थः, सा च स च तौ कन्या = इन्दुमती कुमारः = अजश्चेति कन्याकुमारौ स्नान्ति स्म स्नातकाः = गृहस्थविशेषास्तैः स्नातकैः बन्धवः सन्त्यस्येति बन्धुमान् तेन बन्धुमता = स्वजन-पुरःसरेण राज्ञा = भोजेन च = अपि पुरं = गेहं 'पुरे नपुंसकं गेहं', मेदिनी, धरन्तीति पुरन्ध्रयः ताभिः पुरन्ध्रिभिः = पतिपुत्रवतीभिश्च क्रमशः = क्रमेण प्रयुक्तम् = कृतम् आर्द्राः = कुंकुमाक्ताः अक्षताः = अखण्डतण्डुलाः इति आर्द्राक्ष-तास्तेषाम् आरोपणम् = प्रक्षेपणम् = आशीर्वादपूर्वकदानमित्यर्थः, अन्वभूताम् = अनुभूतवन्तौ, साशीर्वचनमक्षतान् गृहीतवन्तावित्यर्थः ।

समासः—कनकस्यासनमिति कनकासनं तत्र तिष्ठत इति कनकासनस्थौ, स च सा च तौ, कन्या च कुमारश्चेति कन्याकुमारौ । स्नान्ति स्म इति स्नातकास्तैः स्नातकैः, बन्धवोऽस्य सन्तीति बन्धुमता, पुरं धरन्तीति पुरन्ध्रयस्ताभिः पुरन्ध्रिभिः, (अचः इ इति इप्रत्ययान्तो ह्रस्वोऽपि पुरंध्रिशब्दः पृषोदरादित्वात्

धात्वकारलोपमुमागमौ चेति) आर्द्राश्च ते अक्षताः आर्द्राक्षतास्तेषामारोपणम् तत् आर्द्राक्षतारोपणम् ।

हिन्दी—(फेरे हो चुकने पर) सुवर्ण के सिंहासन पर बैठे उन वर वधू ने स्नातकों कुटुम्बीजनों तथा राजा भोज से और पतिपुत्र वाली नारियों से बारी बारी से दिए गए (छोड़े गए) गीले अक्षतों को अनुभव किया। अर्थात् उक्त स्वजनों के आशीर्वादपूर्वक छोड़े गए कुंकुमाक्षत को वर वधू ने स्वीकार किया ॥२८॥

इति स्वसुर्भोजकुलप्रदीपः संपाद्य पाणिग्रहणं स राजा ।
महीपतीनां पृथगर्हणार्थं समादिदेशाधिकृतानधिश्रीः ॥२९॥

संजी०—इतीति। अधिश्रीरधिकसंपन्नो भोजकुलप्रदीपः स राजा। इति स्वसुरिन्दुमत्याः पाणिग्रहणं विवाहं संपाद्य कारयित्वा। महीपतीनां राज्ञां पृथगेकैकशोऽर्हणार्थं पूजार्थमधिकृतानधिकारिणः समादिदेशाज्ञापयामास ॥२९॥

अन्वयः—**अधिश्रीः भोजकुलप्रदीपः सः राजा इति स्वसुः पाणिग्रहणं सम्पाद्य, महीपतीनां पृथगर्हणार्थम् अधिकृतान् समादिदेश ।**

व्याख्या—अधिगता = प्राप्ता श्रीः = लक्ष्मीः येन सः अधिश्रीः = लक्ष्मीवान् भोजानां = वैदर्भाणां कुलम् = वंशस्तस्य प्रदीपः = प्रकाशकः, इति भोजकुलप्रदीपः सः = प्रसिद्धः राजा = भूपालः इति = पूर्वोक्तप्रकारेण स्वसुः = भगिन्याः इन्दुमत्याः पणायन्त्यनेनेति (व्यवहरन्ति) पाणिः = हस्तस्तस्य ग्रहणं = स्वीकरणमिति तत् पाणिग्रहणं = विवाहं सम्पाद्य = कारयित्वा मह्याः = पृथिव्याः पतयः = राजानस्तेषां महीपतीनाम् = अन्यसमागतनृपाणामित्यर्थः पृथग् = एकैकश इत्यर्थः अर्हणा = पूजा तस्यै अर्हणार्थं = यथोचितसत्कारार्थमित्यर्थः अधिकृतान् = अधिकारिणः सत्कारार्थं नियुक्तान् पुरुषानित्यर्थः आदिदेश = आदिष्टवान् ।

समासः—अधिगता श्रीर्येन सः, अधिका श्रीर्यस्य वा अधिश्रीः। भोजानां कुलं तस्य प्रदीपः इति भोजकुलप्रदीपः। पाणेः ग्रहणमिति पाणिग्रहणं तत्। मह्यते इति मही तस्याः पतयस्तेषां महीपतीनाम्। अधिकमुपरि वा क्रियन्ते स्म इति अधिकृतास्तान् अधिकृतान् ।

हिन्दी—लक्ष्मीवान् भोजकुल के दीपक (कुल को प्रकाशित करने वाला) उस राजा भोज ने इस प्रकार अपनी बहन के विवाह संस्कार को सम्पन्न करके (दूसरे) राजाओं की अलग अलग पूजा सत्कार करने के लिये अधिकारियों को आज्ञा दी ॥२९॥

लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रियास्ते ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः ।
वैदर्भमामन्त्र्य ययुस्तदीयां प्रत्यर्प्य पूजामुपदाछलेन ॥३०॥

संजी०—लिङ्गैरिति । मुदः संतोषस्य लिङ्गैश्चिह्नैः कपटहासादिभिः संवृतविक्रिया निगूहितमत्सराः । अत एव प्रसन्ना बहिर्निर्मला गूढनक्रा अन्तर्लीनग्राहा ह्रदा इव स्थितास्ते नृपा वैदर्भं भोजमामन्त्र्यापृच्छ्य तदीयां वैदर्भीयां पूजामुपदाछलेनोपायनमिषेण प्रत्यर्प्य ययुर्गतवन्तः ॥३०॥

अन्वयः—**मुदः लिङ्गैः संवृतविक्रियाः (अत एव) प्रसन्नाः गूढनक्राः ह्रदाः इव (स्थिताः) ते वैदर्भम् आमन्त्र्य तदीयां पूजाम् उपदाछलेन प्रत्यर्प्य ययुः ।**

व्याख्या—मुदः=हर्षस्य सन्तोषस्येत्यर्थः, लिङ्गैः = चिह्नैः कपटहासादिभिरितियावत् । संवृता = निगूहिता विक्रिया = विकृतिः = मत्सरो यैस्ते संवृतविक्रियाः निगूहितान्यशुभद्वेषा इत्यर्थः, अत एव प्रसन्नाः = सन्तुष्टाः = उपरि हर्षप्रदर्शका इत्यर्थः। गूढाः=अन्तर्लीनाः नक्राः = ग्राहाः येषु ते गूढनक्राः ह्रदा = तडागा इव= यथा (स्थिताः) ते = पूर्वोक्ताः स्वयंवरे समागताः नृपाः = राजानः विदर्भाणां राजा वैदर्भस्तं वैदर्भं = भोजम् आमन्त्र्य = आपृच्छ्य तस्य = भोजस्य इयं तदीया तां तदीयां = भोजसंबन्धिनीं पूजां = सत्कारं उपदीयते इति उपदा उपदायाः= उपायनस्य छलं = मिषं तेन उपदाछलेन = उपायनव्याजेनेत्यर्थः प्रत्यर्प्य = परावर्तनं कृत्वा ययुः = गतवन्तः स्वकीयां राजधानीं प्रतिनिवृत्ताः ।

समासः—संवृता विक्रिया यैस्ते संवृतविक्रियाः, गूढाः नक्राः येषु ते गूढनक्राः । उपदायाः छलं तेन उपदाछलेन ।

हिन्दी—प्रसन्नता के चिह्नों (ऊपरी हंसी आदि) से कुटिलता को छिपानेवाले (अत एव) बाहर प्रसन्न दीखते हुए जल में छिपे मगरमच्छवाले ताल के समान वे दूसरे राजा, भोजराज से बिदा लेकर और भोजराज की दी हुई सत्कार सामग्री को भेंट के बहाने लौटाकर, अपने-अपने देश को लौट गए ॥३०॥

स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारम्भसिद्धौ समयोपलभ्यम् ।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ ॥३१॥

संजी०—स इति । आरम्भसिद्धौ कार्यसिद्धौ विषये । पूर्वं कृता कृतपूर्वा । सुप्सुपेति समासः । कृतपूर्वा संवित् संकेतो मार्गावरोधरूप उपायो येन स तथोक्तः । 'संविद्युद्धे प्रतिज्ञायां संकेताचारनामसु' इति केशवः । स राजलोकः समरोपलभ्य-मजप्रस्थानकाले लभ्यम् । सदा तस्यैकाकित्वादिति भावः । 'समरोपलभ्यम्' इति पाठे युद्धसाध्यमित्यर्थः। तत्प्रमदैवामिषं भोग्यवस्तु । 'आमिषं त्वस्त्रियां मांसे तथा स्याद्भोग्यवस्तुनि' इति केशवः । आदास्यमानो ग्रहीष्यमाणः सन्, अस्य पन्थान-मावृत्यावरुध्य तस्थौ ॥३१॥

अन्वयः—आरम्भसिद्धौ कृतपूर्वसंवित् स राजलोकः समयोपलभ्यम् तत् प्रमदामिषम् आदास्यमानः सन् अजस्य पन्थानम् आवृत्य तस्थौ ।

व्याख्या—आरम्भस्य=कार्यस्य सिद्धिः=सफलता तस्याम् आरम्भसिद्धौ विषये पूर्वं=प्रथमं कृता=निश्चिता, इति कृतपूर्वा संवित्=संकेतः मार्गेऽजस्याव-रोधरूपोपायः येन स कृतपूर्वसंवित् सः=पूर्वोक्तः राज्ञां=भूपालानां लोकः= जनः समूह इति राजलोकः समये=अजयात्रासमये लभ्यं=प्राप्यम्, (तदा अजस्यैकाकित्वात्, अन्येषां बहुत्वात्) इति समयोपलभ्यम् तत्=प्रसिद्धम् प्रकृष्टो मदोऽस्ति अस्याः सा प्रमदा, प्रमदा=कामिनी एव आमिषं=भोग्यवस्तु तत् प्रमदामिषम् आदास्यते इति आदास्यमानः=ग्रहीष्यमाणः, अग्रे आदातुमिच्छ-न्नित्यर्थः सन् अजस्य=रघुपुत्रस्य पन्थानं=मार्गम् आवृत्य=प्रतिरुध्य मार्गावरोधं कृत्वेत्यर्थः तस्थौ=स्थितः। मार्गे एकाकिनं यान्तमजं युद्धेन विजित्य स्त्रीरत्नं हरिष्यामः इति पूर्वमेव संकेतं कृत्वा सर्वे नृपाः मार्गे स्थिताः ।

समासः—आरम्भस्य सिद्धिस्तस्यामारम्भसिद्धौ । पूर्वं कृता कृतपूर्वा, कृत-पूर्वा संवित् येन स तथोक्तः । राज्ञां लोकः राजलोकः । समये उपलभ्यं समयोपलभ्यम् तत् । प्रमदा एव आमिषमिति प्रमदामिषम् तत् ।

हिन्दी—कार्य की सिद्धि के विषय में पहले ही निश्चय कर लेनेवाले राजा लोग (जब अज अकेला इन्दुमती को लेकर जावे तभी रास्ते में रोक कर छीन लेंगे) चलने के समय मिलने वाली स्त्री रूपी भोग्य वस्तु को छीनने की इच्छा करके, अज के मार्ग को रोककर (छेककर) खड़े हो गए ॥३१॥

भर्तापि तावत्क्रथकैशिकानामनुष्ठितानन्तरजाविवाहः।
सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः प्रास्थापयद्राघवमन्वगाच्च ॥३२॥

संजी०—तथोक्तः क्रथकैशिकानां देशानां भर्ता स्वामी भोजोऽपि तावत् तदा सत्त्वानुरूपमुत्साहानुरूपं यथा तथा । आ समन्तात् अनेनानियतवस्तुदानमित्यर्थः । हरणं कन्यायै देयं धनम् । 'यौतुकादि तु यद्देयं सुदायो हरणं च तत्' इत्यमरः । आहरणीकृता श्रीर्येन तथोक्तः सन्, राघवमजं प्रास्थापयत् प्रस्थापितवान् । स्वयमन्वगादनुजगाम च ॥३२॥

अन्वयः—अनुष्ठितानन्तरजाविवाहः क्रथकैशिकानां भर्ता अपि तावत् सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः सन् राघवं प्रास्थापयत् स्वयं च अन्वगात् ।

व्याख्या—अनन्तरं=पश्चात् जाता अनन्तरजा, अनुष्ठितः = कृतः अनन्तरजायाः = अनुजायाः विवाहः = पाणिग्रहणसंस्कारः येन सः अनुष्ठितानन्तरजाविवाहः, क्रथकैशिकानां = विदर्भदेशानां भर्ता = नाथः भोजः अपि तावत् = तदा = विवाहकाले सतो भावः सत्त्वं, सीदन्ति अस्मिन् गुणादयः सत्त्वं, सत्त्वस्य = द्रव्यस्य, (उत्साहस्य च) अनुरूपं = सदृशं तत् सत्त्वानुरूपं यथा तथा (आसमन्तात् हरणं=सुदायः= कन्यायै देयं धनमित्यर्थः) आहरणीकृता = सुदायीकृता (कन्यायै देयेत्यर्थः) श्रीः = लक्ष्मीः येन स तथोक्तः सन् राघवं = रघुपुत्रमजं प्रास्थापयत् = प्रस्थापितवान् स्वयं = भोजः अन्वगात् = अन्वव्रजत्। किंचिद् दूरं तेन सह गतवान् ।

समासः—अनुष्ठितः अनन्तरजायाः विवाहो येन स तथोक्तः। सत्त्वस्य अनुरूपमिति सत्त्वानुरूपम् । आसमन्तात् हरणमाहरणं, न आहरणमिति अनाहरणम्, अनाहरणमाहरणं संपद्यमाना कृता इति आहरणीकृता, सत्त्वानुरूपं यथा तथा आहरणीकृता श्रीः येन सः सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः ।

हिन्दी—छोटी बहन के विवाह को संपन्न करने वाले विदर्भदेश के राजा भोज ने, अपनी सम्पत्ति व सामर्थ्य के अनुसार खूब दहेज देकर रघु के पुत्र अज को बिदा कर दिया और उनके साथ कुछ दूर तक स्वयं भोज भी पहुँचाने गये ॥३२॥

तिस्रस्त्रिलोकप्रथितेन सार्धमजेन मार्गे वसतीरुषित्वा ।
तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः पर्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः ॥३३॥

संजी०—तिस्र इति। कुण्डिनं विदर्भनगरं तस्येशो भोजस्त्रिषु लोकेषु प्रथितेनाजेन सार्धं मार्गे पथि तिस्रो वसती रात्रीरुषित्वा स्थित्वा। 'वसती रात्रिवेश्मनोः' इत्यमरः। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (पा. २।३।५) इति द्वितीया। पर्वात्यये दर्शान्ते उष्णरश्मेः सूर्यात् सोमश्चन्द्र इव। तस्मादजादपावर्तत। तं विसृज्य निवृत्त इत्यर्थः॥३३॥

अन्वयः—**कुण्डिनेशः त्रिलोकप्रथितेन अजेन सार्धं मार्गे तिस्रः वसतीः उषित्वा, पर्वात्यये उष्णरश्मेः सोमः इव तस्मात् अपावर्तत।**

व्याख्या—कुण्डिनस्य=विदर्भनगरस्य ईशः=स्वामी=भोजः त्रिषु=त्रिसंख्यकेषु लोकेषु=भुवनेषु प्रथितः=प्रसिद्धस्तेन त्रिलोकप्रथितेन अजेन=रघुपुत्रेण सार्धं=सह मार्गे=अध्वनि तिस्रः=त्रिसंख्यकाः वसतीः=रात्रीः उषित्वा=स्थित्वा, रात्रित्रयं यावत् तेन सह निवासं कृत्वेत्यर्थः, पर्वणः=दर्शस्य=अमावस्यायाः इत्यर्थः अत्ययः=अन्तस्तस्मिन् पर्वात्यये उष्णाः=घर्माः रश्मयः=कराः यस्य स तस्मात् उष्णरश्मेः=सूर्यात् सोमः=चन्द्रः इव=यथा तस्मात्=अजात् अपावर्तत=प्रतिनिवृत्तः।

समासः—त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकं तत्र प्रथितस्तेन त्रिलोकप्रथितेन, कुण्डिनस्येशः कुण्डिनेशः, पर्वणः अत्ययस्तस्मिन् पर्वात्यये, उष्णा रश्मयो यस्य तस्मात् उष्णरश्मेः।

हिन्दी—कुण्डिन नगर के राजा भोज, तीनों लोकों में विख्यात उस अज के साथ मार्ग में तीन रात तक निवास करके वैसे ही लौट आए जैसे अमावास्या की समाप्ति होने पर सूर्य के पास से चन्द्रमा लौट आता है॥३३॥

प्रमन्यवः प्रागपि कोसलेन्द्रे प्रत्येकमात्तस्वतया बभूवुः।
अतो नृपाश्चक्षमिरे समेताः स्त्रीरत्नलाभं न तदात्मजस्य॥३४॥

संजी०—प्रमन्यव इति। नृपा राजानः प्रागपि प्रत्येकमात्तस्वतया दिग्विजये गृहीतधनत्वेन कोसलेन्द्रे रघौ प्रमन्यवो रूढवैरा बभूवुः। अतो हेतोः समेताः संगताः सन्तस्तदात्मजस्य रघुसूनोः स्त्रीरत्नलाभं न चक्षमिरे न सेहिरे॥३४॥

अन्वयः—**नृपाः प्राग् अपि प्रत्येकम् आत्तस्वतया कौसलेन्द्रे प्रमन्यवः बभूवुः, अतः समेताः सन्तः तदात्मजस्य स्त्रीरत्नलाभं न चक्षमिरे।**

व्याख्या—नॄन्=जनान् पान्ति=रक्षन्तीति नृपाः=भूपालाः प्रागपि=स्वयंवरात् पूर्वमपि प्रत्येकं=पृथक् पृथक्=एकैकमित्यर्थः आत्तं=गृहीतं स्वं=धनं येषां ते

आत्तस्वास्तेषां भावः आत्तस्वता तया आत्तस्वतया दिग्विजयकाले रघुणा गृहीत-धनत्वेनेत्यर्थः, कोसलानामिन्द्रस्तस्मिन् कोसलेन्द्रे = रघौ प्ररूढः = प्रवृद्धः मन्युः = वैरं येषान्ते प्रमन्यवः बभूवुः = जाताः, अतः कारणात् समेताः = संगताः = संघी-भूता इत्यर्थः सन्तः, तस्य = रघोः आत्मजः = पुत्रः तस्य तदात्मजस्य = अजस्य स्त्री एव रत्नमिति = स्त्रीरत्नम् = इन्दुमतीरूपं तस्य लाभः = स्वयंवरे प्राप्तिः, तम् स्त्रीरत्नलाभं न = नहि चक्षमिरे = सेहिरे सोढवन्त इत्यर्थः ।

समासः—कोसलानामिन्द्रस्तस्मिन् कोसलेन्द्रे । आत्तं स्वं येषान्ते आत्तस्वाः-स्तेषां भावस्तत्ता तया आत्तस्वतया । स्त्री एव रत्नमिति स्त्रीरत्नं तस्य लाभस्तं स्त्रीरत्नलाभम् स्त्रीषु रत्नं तस्य लाभस्तमिति वा । तस्यात्मजस्तस्य तदात्मजस्य । प्ररूढः मन्युर्येषां ते प्रमन्यवः ।

हिन्दी—जो रास्ता रोककर खड़े थे वे राजा पहले से ही, दिग्विजय के समय प्रत्येक का धन छीन लेने के कारण कोसलपति रघु से वैर बाँधे हुए थे । इसीलिए अब वे सब मिलकर रघुपुत्र अज के स्त्रियों में रत्न इन्दुमती की प्राप्ति को सहन न कर सकें । अर्थात् पहले अलग-अलग बैर बाँधे हुए थे ही, और अब मिलकर अज को इन्दुमती को ले जाते कैसे सह सकते थे ? ॥३४॥

तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्यां रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः ।
बलिप्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रम पादमिवेन्द्रशत्रुः ॥३५॥

संजी०—तमिति । दृप्त उद्धतः स राजन्यगणो राजसंघातः । भोजकन्या-मुद्वहन्तं नयन्तं तमजम् । बलिना वैरोचनिना प्रदिष्टां दत्तां श्रियमाददानं स्वीकुर्वा-णम् । त्रिविक्रमस्येमं त्रैविक्रमम् । पादमिन्द्रशत्रुः प्रह्लाद इव । पथि रुरोध । तथा च ब्रह्माण्डपुराणे—'विरोचनविरोधेऽपि प्रह्लादः प्राक्तनं स्मरन् । विष्णोस्तु क्रममाणस्य पादाम्भोजं रुरोध ह ।।' इति ॥३५॥

अन्वयः—**दृप्तः स राजन्यगणः भोजकन्याम् उद्वहन्तं तम् बलिप्रदिष्टां श्रियम् आददानं त्रैविक्रमं पादम् इन्द्रशत्रुः इव पथि रुरोध ।**

व्याख्या—दृप्तः = गर्वितः = उद्दण्डः सः = पूर्वोक्तः राज्ञोऽपत्यानि राजन्याः = राजपुत्रास्तेषां गणः = समूहः राजन्यगणः भोजस्य कन्या तां भोजकन्याम् उद्वहन्तं =

नयन्तं तम्=अजम्, बलिना=विरोचनपुत्रेण दैत्यराजेनेत्यर्थः प्रदिष्टा=दत्ता तां बलिप्रदिष्टां श्रीयते सर्वैरिति श्रीः तां श्रियं=लक्ष्मीं दैत्यराजलक्ष्मीमित्यर्थः आददानं= स्वीकुर्वाणं (बलिना दत्तां देवराजलक्ष्मीं, स्वीकुर्वन्तमित्यर्थः) त्रिविक्रमस्यायं त्रैविक्रमस्तं त्रैविक्रमं-त्रिविक्रमसंबन्धिनं पादं=वामनरूपविष्णुचरणम् इन्द्रस्य=देवराजस्य शत्रुः=प्रह्लादः ब्रह्माण्डपुराणानुसारमेवेदं कथनमित्यनुसंधेयम् । इव= यथा पथि=मार्गे रुरोध=रुद्धवान् ।

समासः—भोजस्य कन्या तां भोजकन्याम् । राजन्यानां गणः इति राजन्यगणः । बलिना प्रदिष्टा तां बलिप्रदिष्टाम् । इन्द्रस्य शत्रुरिति इन्द्रशत्रुः ।

हिन्दी—अभिमानी उद्दण्ड उस राजसमूह ने भोज की कन्या को ले जाते हुए अज को मार्ग में वैसे ही रोक लिया, जैसे कि राजा बलि से दी हुई राजलक्ष्मी को स्वीकार करनेवाले वामन भगवान् के चरण को प्रह्लाद ने रोका था । यह कथा ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार है कि प्रह्लाद ने वामन के चरण को रोका था ॥३५॥

तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः ।
प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः ॥३६॥

संजी०—तस्या इति । स कुमारोऽजस्तस्या इन्दुमत्या रक्षार्थमनल्पयोधं बहुभटम् । पितुरागतं पित्र्यम् । आप्तमित्यर्थः, सचिवमादिश्याज्ञाप्य तां पार्थिववाहिनीं राजसेनाम् । 'ध्वजिनी वाहिनी सेना' इत्यमरः । भागीरथीमुत्तरंगः शोण शोणाख्यो नद इव । प्रत्यग्रहीदभियुक्तवान् ॥३६॥

अन्वयः—**सः कुमारः तस्याः रक्षार्थम् अनल्पयोधं पित्र्यं सचिवम् आदिश्य, तां पार्थिववाहिनीं भागीरथीम् उत्तरंगः शोणः इव प्रत्यग्रहीत् ।**

व्याख्या—सः=प्रसिद्धः कुमारयति खेलतीति कुमारः, कुमारः=अजः तस्याः=इन्दुमत्याः रक्षायै इति रक्षार्थं=रक्षणार्थं अनल्पाः=अधिकाः योधाः= भटाः यस्य स तं तथोक्तं पितुरागतं पित्र्यं=पितृपरम्परागतम्=विश्वस्तं सचि= जनसमवायं वातीति सचिवः तं सचिवं=मन्त्रिणम् आदिश्य=आज्ञाप्य तां=मार्गे स्थितां वाहाः सन्त्यस्यां सा वाहिनी, पृथिव्याः ईश्वराः पार्थिवास्तेषां पार्थिवानां=

भूपालानां वाहिनी = सेना तां पार्थिववाहिनीम् भगीरथस्येयं भागीरथी तां भागीरथीं = गङ्गाम् उद्गच्छन्तस्तरंगाः यस्मिन् स उत्तरंगः शोणः = शोणनामा नदः इव = यथा प्रत्यग्रहीत् = अभियुक्तवान् । तैः सर्वैः सह युद्धं चकारेत्यर्थः ।

समास :—न अल्पाः अनल्पाः, अनल्पाः योधा यस्य स तथोक्तस्तमनल्पयोधम् । पितुरागतः पित्र्यस्तम् । पृथिव्याः ईश्वरास्तेषां वाहिनी तां पार्थिववाहिनीम् । उद्गच्छन्तस्तरंगा यस्मिन् स उत्तरंगः । रक्षायै इति रक्षार्थम् ।

हिन्दी—उस अज ने इन्दुमती की रक्षा के लिये बहुत से योधाओं के साथ अपने पुराने हितैषी मंत्री को आदेश देकर, उस मार्ग रोकने वाली राजसेना को वैसे ही रोक लिया जैसे कि गंगा को बड़ी-बड़ी तरंगवाला शोण नद (सोनभद्र) रोक लेता है ॥३६॥

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरंगसादी तुरगाधिरूढम् ।

यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम् ॥३७॥

संजी०——पत्तिरिति । पत्तिः पादचारो योद्धा पदातिं पादचारमभ्यपतत् । पदा पादाभ्यामततीति पदातिः । 'पादस्य पद्—' (पा. ६।३।५२) इत्यादिना पदादेशः । 'पदातिपत्तिपदगपादातिकपदाजयः' इत्यमरः । रथेशो रथिको रथिनं रथारोहमभ्यपतत् । तुरंगसाद्यश्वारोहस्तुरगाधिरूढमश्वारोहमभ्यपतत् । 'रथिनः स्यन्दनारोहा अश्वारोहास्तु सादिनः' इत्यमरः । गजस्य यन्ता हस्त्यारोहो गजस्थं पुरुषमभ्यपतत् । इत्थमनेन प्रकारेण तुल्यप्रतिद्वन्द्वि एकजातीयप्रतिभटं युद्धं बभूव । अन्योन्यं द्वन्द्वं कलहोऽस्त्येषामिति प्रतिद्वन्द्विनो योधाः । 'द्वन्द्वं कलहयुग्मयोः' इत्यमरः ॥३७॥

अन्वयः—पत्तिः पदातिं रथेशः रथिनं तुरंगसादी तुरगाधिरूढम् गजस्य यन्ता गजस्थम् अभ्यपतत् 'प्रत्येकं संबन्धः' । इत्थम् तुल्यप्रतिद्वन्द्वि युद्धं बभूव ।

व्याख्या—पद्यते = पादाभ्यां गच्छतीति पत्तिः = पदातिः, पादाभ्यामततीति गच्छतीति पदातिस्तं पदातिं = पादचारिणमभ्यपतत् = युयोध रथस्य = स्यन्दनस्य ईशः = स्वामी रथेशः = रथिकः रथोऽस्त्यस्येति रथी तं रथिनं = रथस्थितमभ्यपतत् तुरंगैः = अश्वैः सीदति = गच्छतीति तुरंगसादी = अश्वारूढः तुरंगं = तुरगमधिरूढस्तं तुरगाधिरूढम् = अश्वसादिनमभ्यपतत् गजस्य = हस्तिनः यन्ता = हस्ति-

पक: गजे तिष्ठतीति गजस्थस्तं गजस्थं=हस्त्यारूढं पुरुषमभ्यपतत् इत्थम्। अन्योन्यं द्वन्द्वं कलहोऽस्त्येषान्ते प्रतिद्वन्द्विन: तुल्या:=समाना:=एकजातीया: प्रतिद्वन्द्विन: योधा: यस्मिन् तत् तुल्यप्रतिद्वन्द्वि युद्धं=रणं बभूव=जातम्।

समास:—रथस्येश: रथेश:, तुरगमधिरूढ: तुरगाधिरूढस्तं तुरगाधिरूढम्। तुल्या: प्रतिद्वन्द्विन: यस्मिन् तत् तुल्यप्रतिद्वन्द्वि।

हिन्दी—(युद्ध आरम्भ हो गया) पैदल पैदलों से लड़े, रथ वाले रथ में बैठों से और घुड़सवार घुड़सवारों से भिड़ गये, हाथी के सवार हाथीसवारों पर टूट पड़े, इस प्रकार बराबर के योद्धाओं का युद्ध हुआ। अर्थात् बराबर की लड़ाई हुई ॥३७॥

नदत्सु तूर्येष्वविभाव्यवाचो नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान्।
बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्जितं चापभृत: शशंसु: ॥३८॥

संजी०—नदत्स्विति। तूर्येषु नदत्सु सत्सु, अविभाव्यवाचोऽनवधार्यगिरश्चापभृतो धानुष्का: कुलमुपदिश्यते यैस्ते कुलोपदेशास्तान्कुलनामानि नोदीरयन्ति स्म नोच्चारयामासु:। श्रोतुमशक्यत्वाद्वाचो नाब्रुवन्नित्यर्थ:। किंतु बाणाक्षरैर्बाणेषु लिखिताक्षरैरेव परस्परस्यान्योन्यस्योर्जितं प्रख्यातं नाम शशंसुरूचु: ॥३८॥

अन्वय:—तूर्येषु नदत्सु सत्सु अविभाव्यवाच: चापभृत: कुलोपदेशान् नोदीरयन्ति स्म, 'किन्तु' बाणाक्षरै: एव परस्परस्य ऊर्जितं नाम शशंसु:।

व्याख्या—तूर्येषु=रणवाद्येषु नदत्सु=अव्यक्तं ध्वनत्सु सत्सु न विभाव्या: अविभाव्या:, अविभाव्या:=अनवधार्या: (स्वस्य परस्य वेति भेदेन ज्ञातुमशक्या इत्यर्थ: श्रोतुमशक्यत्वात्) वाच:=गिर:=वचनानि येषान्ते अविभाव्यवाच: चापान्–धनूंषि बिभ्रति=धारयन्ति ते चापभृत:=योधा:, कुलं=वंश: उपदिश्यते=प्रख्यायते=कथ्यते यैस्ते तान् कुलोपदेशान्=कुलनामानि न उदीरयन्ति=नहि कथयन्ति स्म किन्तु बाणेषु लिखितानि बाणलिखितानि, बाणलिखितानि अक्षराणि बाणाक्षराणि, बाणाक्षरै:=शरलिखिताक्षरै: एव परस्परस्य=अन्योन्यस्य ऊर्जितं=विख्यातं=प्रसिद्धं नाम=अभिधेयं शशंसु:=कथयामासु:।

समासः—न विभाव्याः अविभाव्याः अविभाव्याः वाचः येषान्ते अविभाव्यवाचः। कुलमुपदिश्यते यैस्ते तान् कुलोपदेशान्। बाणेषु लिखितानि अक्षराणि, इति बाणाक्षराणि तैः बाणाक्षरैः। चापं बिभ्रतीति चापभृतः।

हिन्दी—(युद्धस्थल में) बहुत से बाजे बज रहे थे, इस कारण मित्र शत्रु की वाणी को न पहचानने वाले धनुर्धारी योधा अपने कुल गोत्र का उच्चारण नहीं करते थे। किन्तु चलाये गये बाणों में खुदे हुए अक्षरों से ही एक दूसरे के प्रसिद्ध नाम को कहते थे। अर्थात् बाणों पर खुदे हुये नाम से ही एक दूसरे के भेद का ज्ञान होता था, क्योंकि बाजों का कोलाहल बहुत हो रहा था ॥३८॥

उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः।
विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैर्नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम् ॥३९॥

संजी०—उत्थापित इति। संयति संग्रामेऽश्वैरुत्थापितः। स्यन्दनवंशानां रथसमूहानां चक्रै रथाङ्गैः सान्द्रीकृतो घनीकृतः। 'वंशः पृष्ठास्थ्नि गेहोर्ध्वकाष्ठे वेणौ गणे कुले' इति केशवः। कुञ्जरकर्णानां तालैस्ताडनैर्विस्तारितः प्रसारितो रेणुर्नेत्रक्रमेणांशुकपरिपाट्यां। अंशुकमिवेत्यर्थः। 'स्याज्जटांशुकयोर्नेत्रम्' इति, 'क्रमोऽङ्घ्रौ परिपाट्यां च' इति च केशवः। सूर्यमुपरुरोधाच्छादयामास ॥३९॥

अन्वयः—संयति अश्वैः उत्थापितः, स्यन्दनवंशचक्रैः सान्द्रीकृतः, कुञ्जरकर्णतालैः विस्तारितः, रेणुः नेत्रक्रमेण सूर्यम् उपरुरोध।

व्याख्याः—संयति=युद्धे अश्वैः=तुरगैः उत्थापितः=ऊर्ध्वं नीतः स्यन्दनानां=रथानां वंशाः=समूहास्तेषां चक्राणि=रथाङ्गानि तैः स्यन्दनवंशचक्रैः, न सान्द्रः असान्द्रः, असान्द्रः सान्द्रः संपद्यमानः कृत इति सान्द्रीकृतः=घनीकृतः, अतिशयितः कुञ्जः=हनुरस्य स कुञ्जरः, कुञ्जराणां=गजानां, कीर्यन्ते शब्दाः येषु ते कर्णाः, कर्णयन्तीति वा, कर्णाः=श्रोत्राणि तेषां तालाः=ताडनानि तैः कुञ्जरकर्णतालैः विस्तारितः=प्रसारितः रेणुः=धूलिः नेत्रस्य=अंशुकस्य=वस्त्रस्य क्रमः=परिपाटी, इति नेत्रक्रमस्तेन नेत्रक्रमेण वस्त्रेणेत्यर्थः सूर्यं=भास्करम् उपरुरोध=आच्छादयामास रेणुना सूर्यस्योपरोधेनान्धकारोऽभूदित्यर्थः।

समासः—स्यन्दनानां वंशास्तेषां चक्राणि तैः स्यन्दनवंशचक्रैः। न सान्द्रः असान्द्रः, असान्द्रः सान्द्रः संपद्यमानः कृत इति—सान्द्रीकृतः। कुञ्जराणां कर्णाः कुञ्जरकर्णास्तेषां तालानि तैः कुञ्जरकर्णतालैः।

हिन्दी—घोड़ों की टापों से उठी हुई और रथों के पहियों से घनी की (खूब बढ़ाई) गई, तथा हाथियों के कानों के हिलाने (फड़फड़ाने) से फैलाई गई धूलों ने अंशुक की परिपाटी से सूर्य को ढँक लिया। अर्थात् वहाँ धूल इस प्रकार फैल गई मानो (नेत्रभ्रम) कपड़े से सूर्य को ढँक लिया हो॥ ३९॥

मत्स्यध्वजा वायुवशाद्विदीर्णैर्मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि।
बभुः पिबन्तः परमार्थमत्स्याः पर्याविलानीव नवोदकानि॥४०॥

संजी०—मत्स्येति। वायुवशाद्विदीर्णैर्विवृतैर्मुखैः प्रवृद्धानि ध्वजिनीरजांसि सैन्यरेणून् पिबन्तो गृह्णन्तो मत्स्यध्वजा मत्स्याकारा ध्वजाः पर्याविलानि परितः कलुषानि नवोदकानि पिबन्तः परमार्थमत्स्याः सत्यमत्स्या इव। बभुर्भान्ति स्म॥४०॥

अन्वयः—वायुवशात् विदीर्णैः मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि पिबन्तः मत्स्यध्वजाः पर्याविलानि नवोदकानि पिबन्तः परमार्थमत्स्या इव बभुः।

व्याख्या—वायोः = पवनस्य वशात् = कारणात् विदीर्णैः = विवृतैः = व्यात्तैरित्यर्थः मुखैः = आननैः, ध्वजोऽस्त्यस्याः सा ध्वजिनी ध्वजिन्याः = सेनायाः रजांसि = धूलयः इति ध्वजिनीरजांसि प्रकर्षेण वृद्धानि = वृद्धिं गतानि यानि ध्वजिनीरजांसि तानि प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि पिबन्तः = गृह्णन्तः मत्स्याकाराः = मीनाकाराः ध्वजाः = पताकाः इति मत्स्यध्वजाः, पर्याविलानि = परितः = सर्वतः आविलानि = कलुषाणि, इति पर्याविलानि, नवानि = नूतनानि उदकानि = जलानीति नवोदकानि पिबन्तः परमार्थाः = सत्याश्च ते मत्स्याः = मीनाः इति परमार्थमत्स्याः इव = यथा बभुः = भान्ति स्म ज्ञायन्ते स्मेत्यर्थः॥

समासः—वायोः वशस्तस्मात्। ध्वजिन्याः रजांसि, ध्वजिनीरजांसि, प्रवृद्धानि च तानि ध्वजिनीरजांसि प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि तानि। मत्स्याकाराः ध्वजाः इति मत्स्यध्वजाः, परितः आविलानीति पर्याविलानि। नवानि च तानि उदकानीति नवोदकानि, तानि। परमार्थाश्च ते मत्स्या इति परमार्थमत्स्याः, परमश्चासौ अर्थः, तेन परमार्थेन मत्स्या वा।

हिन्दी—वायु के कारण, खुले हुए मुखों से, खूब बढ़ी हुई सेना की धूल को पीते हुए मछली के आकार वाले झण्डे ऐसे दीख रहे थे मानों वर्षा के गदले नये जल को पीते हुए असली मत्स्य हों। अर्थात् धूली उड़कर जब मीनाकार पताका के वायु से खुले मुख में गई तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सच्ची मछलियाँ वर्षा के गदले जल को पी रही हैं ॥४०॥

रथो रथाङ्गध्वनिना विजज्ञे विलोलघण्टाक्वणितेन नागः।
स्वभर्तृनामग्रहणाद् बभूव सान्द्रे रजस्यात्मपरावबोधः ॥४१॥

संजी०—रथ इति। सान्द्रे प्रवृद्धे रजसि रथो रथाङ्गध्वनिना चक्रस्वनेन विजज्ञे ज्ञातः। नागो हस्ती विलोलानां घण्टानां क्वणितेन नादेन विजज्ञे। आत्मपरावबोधः स्वपरविवेकः। योधानामिति शेषः, स्वभर्तॄणां स्वस्वामिनां नामग्रहणान्नामोच्चारणाद् बभूव। रजोऽन्धतया सर्वे स्वं परं च शब्दादेवानुमाय प्रजह्रुरित्यर्थः ॥४१॥

अन्वयः—सान्द्रे **रजसि रथः रथांगध्वनिना विजज्ञे, नागः विलोलघण्टाक्वणितेन विजज्ञे, आत्मपरावबोधः स्वभर्तृनामग्रहणात् बभूव।**

व्याख्या—सान्द्रे=प्रवृद्धे=घनीभूते इत्यर्थः रजसि=धूलौ रमन्ते जनाः अनेन स रथः=स्यन्दः रथाङ्गानां=चक्राणां ध्वनिः=शब्दस्तेन रथांगध्वनिना विजज्ञे=विज्ञातः। न अगः नागः, नगे भवो वा नागः=हस्ती, विलोलानां=चञ्चलानां घण्टानां क्वणितं नादस्तेन विलोलघण्टाक्वणितेन विजज्ञे=ज्ञातः। आत्मानः=स्वाः परे=शत्रवः, इति आत्मपरास्तेषाम् अवबोधः=विवेकः, भेदज्ञानमित्यर्थः, इति आत्मपरावबोधः, स्वस्य=भर्ता स्वभर्ता स्वभर्तुः=स्वस्वामिनः नाम्नः=वाचकशब्दस्य ग्रहणम्=उच्चारणं तस्मात् स्वभर्तृनामग्रहणात् बभूव=जातः। रजोन्धकारे दृष्टेः प्रसाराभावात् सर्वे भटाः स्वं परं च शब्दादेव निश्चित्य घ्नन्तिस्म इति भावः।

समासः—रथस्याङ्गानि रथांगानि, रथांगानां ध्वनिः, तेन रथांगध्वनिना। विलोलाश्च ता घण्टास्तासां क्वणितं तेन विलोलघण्टाक्वणितेन, आत्मानः परे च ते आत्मपरास्तेषाम् अवबोधः, इति आत्मपरावबोधः। स्वस्य भर्ता तस्य नामग्रहणं तस्मात् स्वभर्तृनामग्रहणात्।

हिन्दी——गहरी धूल छा जाने पर (युद्धस्थल में) रथ के पहिये की आवाज से रथ का ज्ञान हुआ, और लटकते हुए घण्टे के शब्द से हाथी का ज्ञान हुआ, तथा अपने पराये का ज्ञान, अपने २ राजाओं के नाम लेने पर होता था। अर्थात् उस घोर अन्धकार में योद्धा लोग अपने २ स्वामियों के नामोच्चारण से ही अपने पराये का अनुमान करके प्रहार करते थे ॥४१॥

आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ रजोन्धकारस्य विजृम्भितस्य ।
शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः ॥४२॥

संजी०—आवृण्वत इति। लोचनमार्गमावृण्वतो दृष्टिपथमुपरुन्धतः। आजौ युद्धे विजृम्भितस्य व्याप्तस्य। रज एवान्धकारं तस्य। शस्त्रक्षतेभ्योऽश्वद्विपवीरेभ्यो जन्म यस्य स तथोक्तो रुधिरप्रवाहो बालारुणो बालार्कोऽभूत्। 'अरुणो भास्करेऽपि स्यात्' इत्यमरः। बालविशेषणं रुधिरसावर्ण्यार्थम् ॥४२॥

अन्वयः——**लोचनमार्गम् आवृण्वतः आजौ विजृम्भितस्य रजोन्धकारस्य, शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा रुधिरप्रवाहः बालारुणः अभूत्।**

व्याख्या:—लोच्यन्ते पदार्थाः यैस्तानि लोचनानि, लोचनानां=नेत्राणां मार्गः=पन्थास्तं लोचनमार्गम् आवृण्वतः=उपरुन्धतः=आच्छादयत इत्यर्थः, आजौ=युद्धे विजृम्भितस्य=व्यापृतस्य रज एव=धूलिरेव अन्धकारः=तमस्तस्य रजोन्धकारस्य, अश्वाः=तुरगाः द्विपाः=गजाः वीराः=भटाश्चेति अश्वद्विपवीराः, शस्त्रैः=आयुधैः क्षताः=नष्टाः ये अश्वद्विपवीराः, ते शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरास्तेभ्यः जन्म=उत्पत्तिः यस्य स तथोक्तः, रुधिरस्य=प्रवाहः=प्रवृत्तिः इति रुधिरप्रवाहः, बालश्चासौ अरुणः बालारुणः=बालसूर्यः=प्रातःकालिकः सूर्य इत्यर्थः। अभूत्=जातः।

समासः——लोचनानां मार्ग इति लोचनमार्गस्तं लोचनमार्गम्। रज एव अन्धकारस्तस्य रजोन्धकारस्य। शस्त्रैः क्षताः ये अश्वाः द्विपाः वीराश्च ते शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरास्तेभ्यः जन्म यस्य स शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा। बालश्चासावरुणः बालारुणः। रुधिरस्य प्रवाहः रुधिरप्रवाहः।

हिन्दी——आँखों के मार्ग को रोकने वाला तथा युद्धस्थल में फैला हुआ, धूली रूपी अन्धकार के सम्पर्क से शस्त्रों से घायल मरे घोड़े हाथी तथा वीरों के

शरीर से निकाला खून का प्रवाह (खून की धारा) प्रातःकाल के सूर्य की लाली जैसा हो गया ।।४२।।

स च्छिन्नमूलः क्षतजेन रेणुस्तस्योपरिष्टात्पवनावधूतः ।
अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूम इवावभासे ।।४३।।

संजी०—स इति । क्षतजेन रुधिरेण छिन्नमूलः त्याजितभूतलसंबन्ध इत्यर्थः। तस्य क्षतजस्योपरिष्टात् पवनावधूतो वाताहतः स रेणुः । अङ्गारशेषस्य हुताशनस्याग्नेः पूर्वोत्थितो धूम इव । आवभासे दिदीपे ।।४३।।

अन्वयः—**क्षतजेन छिन्नमूलः तस्य उपरिष्टात् पवनावधूतः स रेणुः, अङ्गारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितः धूमः इव आवभासे ।**

व्याख्या—क्षतात् जातम् क्षतजम्, क्षतजेन=रुधिरेण छिन्नं=कृत्तम्, वियोजितम् मूलं=पृथिवीतलसम्बन्धो यस्य स छिन्नमूलः, तस्य=रुधिरस्य उपरिष्टात्=ऊर्ध्वभागे पुनातीति पवनस्तेन पवनेन=वायुना अवधूतः कम्पितः=आहतः इत्यर्थः पवनावधूतः सः=रेणुः=धूलिः, अंगार एव शेषः यस्य सोंगारशेषः तस्य अंगारशेषस्य=उल्कावशिष्टस्य हुतमश्नातीति हुताशनस्तस्य हुताशनस्य=वह्नेः पूर्वं=प्रथमम् उत्थितः=उद्गतः इति पूर्वोत्थितः धूमः इव=यथा आवभासे=दिदीपे । रेणुः धूमवत् जातः ।

समासः—क्षतात् जातं तेन क्षतजेन । छिन्नं मूलं यस्य स छिन्नमूलः । पवनेन अवधूत इति पवनावधूतः । हुतमश्नातीति हुताशनस्तस्य हुताशनस्य । अंगार एव शेषः यस्य सोऽङ्गारशेषस्तस्य अङ्गारशेषस्य । पूर्वमुत्थितः पूर्वोत्थितः ।

हिन्दी—खून से पृथिवी में दबी हुई, और ऊपर में वायु से उड़ाई गई धूली उस धूयें के जैसी लग रही थी, जो धूवाँ तो पहले उठकर आकाश में हो, नीचे अंगार ही बचे हैं। अर्थात् जमीन खून से लाल अंगारे के समान और आकाश में धूल धूवें के समान प्रतीत हो रही थी ।।४३।।

प्रहारमूर्च्छापगमे रथस्था यन्तॄनुपालभ्य निवर्तिताश्वान् ।
यैः सादिता लक्षितपूर्वकेतूंस्तानेव सामर्षतया निजघ्नुः ।।४४।।

संजी०—प्रहारेति । रथस्था रथिनः प्रहारेण या मूर्च्छा तस्या अपगमे सति । मूर्च्छितानामन्यत्र नीत्वा संरक्षणं सारथिधर्म इति कृत्वा । निवर्तिताश्वान्यन्तॄन्

सारथीनुपालम्य 'असाधु कृतम्' इत्यधिक्षिप्य। पूर्वं यैः स्वयं सादिता हताः। लक्षितपूर्वकेतून्। पूर्वदृष्टैः केतुभिः प्रत्यभिज्ञातानित्यर्थः। तानेव सामर्षतया सकोपत्वेन हेतुना निजघ्नुः प्रजह्रुः ॥४४॥

अन्वयः—**रथस्थाः प्रहारमूर्च्छापगमे सति निवर्तिताश्वान् यन्तॄन् उपालभ्य, यैः (पूर्वं) सादिताः लक्षितपूर्वकेतून् तानेव सामर्षतया निजघ्नुः।**

व्याख्या:—रथे=स्यन्दने तिष्ठन्तीति रथस्थाः रथिनः प्रहारेण मारणेन मूर्च्छा=मोहः इति प्रहारमूर्च्छा तस्याः अपगमः विनाशस्तस्मिन् प्रहारमूर्च्छापगमे सति=चैतन्ये आगते सतीत्यर्थः, निवर्तिताः=युद्धस्थलादन्यत्र नीताः अश्वाः=तुरगाः यैस्ते तान् निवर्तिताश्वान्, यच्छन्ति=गमयन्ति अश्वानिति यन्तारस्तान् यन्तॄन्=सारथीन् उपालभ्य=अधिक्षिप्य न त्वया सम्यक्कृतमिति रूपेणेत्यर्थः, पूर्वं यैः=भटैः सादिताः=हताः, चाय्यन्ते=परिज्ञायन्ते लक्ष्यन्ते, एभिरिति केतवः। पूर्वं दृष्टाः पूर्वदृष्टाः पूर्वदृष्टाश्च ते केतवः इति पूर्वकेतवः लक्षिताः ज्ञाताः पूर्वकेतवः=पूर्वध्वजाः येषान्ते तान् लक्षितपूर्वकेतून् तानेव=भटान् अमर्षेण सहिताः सामर्षाः, तेषां भावः सामर्षता तया सामर्षतया=सकोपतया निजघ्नुः=निघ्नन्ति स्म।

समासः—प्रहारेण या मूर्च्छा प्रहारमूर्च्छा तस्याः अपगमस्तस्मिन् प्रहारमूर्च्छापगमे, रथे तिष्ठन्ति ते रथस्थाः, निवर्तिताः अश्वाः यैस्ते तान् निवर्तिताश्वान्, पूर्वं लक्षिताः लक्षितपूर्वाः केतवः येषां ते तान् लक्षितपूर्वकेतून्, अमर्षेण सह वर्तमानाः सामर्षास्तेषां भावस्तत्ता तया सामर्षतया।

हिन्दी—मूर्च्छा के दूर होने पर (छूटने पर) चोट लगने से मूर्छित हुए योद्धाओं को सुरक्षित स्थान में ले जाने वाले सारथियों को 'तुमने ठीक नहीं किया' ऐसे फटकार कर रथ में बैठने वाले योद्धाओं ने, पहले देखी ध्वजा से पहचान कर उन्हीं के ऊपर क्रुद्ध होकर प्रहार किया, जिन्होंने उनको मूर्छित किया था ॥४४॥

अप्यर्धमार्गे परबाणलूना धनुर्भृतां हस्तवतां पृषत्काः।
संप्रापुरेवात्मजवानुवृत्त्या पूर्वार्धभागैः फलिभिः शरव्यम् ॥४५॥

संजी०—अपीति। अर्धश्चासौ मार्गश्च तस्मिन्नर्धमार्गे परेषां बाणैर्लूनाश्छिन्ना अपि हस्तवतां कृतहस्तानां धनुर्भृतां पृषत्काः शराः आत्मजवानुवृत्त्या स्ववेगानु-

बन्धेन हेतुना फलिभिर्लोहाग्रवद्भिः । 'सस्यत्राणाग्रयोः फलम्' इति विश्वः । पूर्वार्धभागैः । शृणातीति शरुः । तस्मै हितं शरव्यं लक्ष्यम् । 'उगवादिभ्यो यत्' (पा. ५।१।२) इति यत्प्रत्ययः । 'लक्षं लक्ष्यं शरव्यं च' इत्यमरः । संप्रापुरेव, न तु मध्ये पतिता इत्यर्थः ।।४५।।

अन्वयः—अर्धमार्गे परबाणलूना अपि हस्तवतां धनुर्भृतां पृषत्काः आत्मजवानुवृत्त्या फलिभिः पूर्वार्धभागैः शरव्यं सम्प्रापुः एव ।

व्याख्या—अर्धश्चासौ मार्गः अर्धमार्गस्तस्मिन् अर्धमार्गे=मार्गमध्ये परेषां=शत्रूणां बाणाः=शरास्तैः लूनाः=छिन्नाः=कृत्ताः इति परबाणलूनाः अपि हस्ताः सन्ति येषान्ते हस्तवन्तस्तेषां हस्तवताम् = कृतहस्तानां प्रशस्तहस्तानामित्यर्थः धनूंषि चापान् बिभ्रति=धारयन्तीति धनुर्भृतस्तेषां धनुर्भृताम् पर्षतीति पृषत् पृषदेव पृषत्कः, अथवा पृषन्=असृजा सिञ्चन् कषति=हिनस्तीति पृषत्कः तस्य बहुवचने, पृषत्काः=बाणाः, आत्मनः=स्वस्य जवः=वेगः, इति आत्मजवस्तस्य अनुवृत्तिः= अनुबन्धः, तया आत्मजवानुवृत्त्या=प्रबलस्ववेगानुबन्धेन कारणेन फलानि=बाणाग्राणि सन्ति येषु तानि तैः फलिभिः=लोहाग्रवद्भिः पूर्वे च ते अर्धभागास्तैः पूर्वार्धभागैः=अग्रस्थांशैः शृणातीति शरुः शरवे=हिंस्राय हितमिति शरव्यम्=लक्ष्यं संप्रापुः=प्राप्ताः एव, न तु छिन्नत्वात् मध्ये पतिता इत्यर्थः ।

समासः—अर्धश्चासौ मार्गस्तस्मिन्, अर्धमार्गे । परेषां बाणास्तैः लूनाः परबाणलूनाः । आत्मनः जवस्तस्य अनुवृत्तिस्तया आत्मजवानुवृत्त्या । पूर्वे च ते अर्धभागास्तैः पूर्वार्धभागैः ।

हिन्दी—सिद्धहस्त (सधा हुआ हाथ) धनुषधारियों के बाण बीच में ही शत्रु के बाण से कट जाने पर भी, अपने प्रबल वेग के कारण लोहे के फल वाले आगे के भाग से लक्ष्य में पहुँच ही जाते थे, अर्थात् योद्धाओं का इतना सफल निशाना एवं वेग था, कि शत्रु के बाण से बीच में कट जाने पर भी बाण का फाल शत्रु को मार गिराता था ।। ४५ ।।

आधोरणानां गजसंनिपाते शिरांसि चक्रैर्निशितैः क्षुराग्रैः ।
हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः ।।४६।।

संजी०—आधोरणानामिति । गजसंनिपाते गजयुद्धे निशितैरत एव क्षुराग्रैः क्षुरस्याग्रमिवाग्रं येषां तैश्चक्रैरायुधविशेषैर्हृतानि छिन्नान्यपि । श्येनानां पक्षिविशेषाणाम् । 'पक्षी श्येनः' इत्यमरः । नखाग्रकोटिषु व्यासक्ताः केशा येषां तानि । आधोरणानां हस्त्यारोहाणाम् । 'आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः' इत्यमरः । शिरांसि चिरेण पेतुः पतितानि । शिरःपातान्प्रागेवालक्ष्य पश्चादुत्पततां पक्षिणां नखेषु केशासङ्गश्चिरपातहेतुरिति भावः ॥४६॥

अन्वयः—**गजसन्निपाते निशितैः क्षुराग्रैः चक्रैः हृतानि अपि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि आधोरणानां शिरांसि चिरेण पेतुः ।**

व्याख्या—गजन्तीति शब्दायन्ते इति गजाः, गजानां = हस्तिनां सन्निपातः = युद्धं तस्मिन् गजसन्निपाते, निशितैः = तीक्ष्णैः अत एव क्षुरस्य=विलेखनद्रव्यस्य नापितास्त्रविशेषस्येत्यर्थः, अग्रमिव अग्रं येषान्ते तैः क्षुराग्रैः = आयुधैः हृतानि = छिन्नानि कृत्तानि अपि श्येनानां = पक्षिविशेषाणां नखाः = कररुहाः तेषामग्राणि = अग्रभागाः तेषां कोट्यः = उन्नतभागाः इति श्येननखाग्रकोट्यः, तासु व्यासक्ताः = संलग्नाः केशाः = कचाः येषां तानि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि, आधोरयन्तीति आधोरणास्तेषामाधोरणानां=हस्तिपकानाम् शिरांसि = मस्तकाः चिरेण=विलम्बेन पेतुः = पतितानि । पतनात्पूर्वमेव उत्पततां पक्षिणां नखेषु तेषां केशानां संलग्नत्वादिति ।

समासः—गजानां सन्निपातस्तस्मिन् गजसन्निपाते । क्षुरस्याग्रमिव अग्रं येषां ते तैः क्षुराग्रैः । श्येनानां नखास्तेषामग्राणि तेषां कोट्यस्तासु व्यासक्ताः केशाः येषान्तानि श्येननखाग्रकोटिव्यासक्तकेशानि ।

हिन्दी—हाथियों के युद्ध में तेज तथा छुरे की धार के समान चक्रों (शस्त्रों) से कटे हुए भी महावतों के वे शिर देर से पृथिवी में गिरते थे, जिनके केश बाज पक्षियों के नखों की कोटियों में फँस गये थे । अर्थात् वहाँ पर ऊपर उड़ते हुये पक्षियों के पंजों में बाल फँस जाने से कटे हुये शिर देर में नीचे गिरते थे ॥४६॥

पूर्वं प्रहर्ता न जघान भूयः प्रतिप्रहाराक्षममश्वसादी ।
तुरंगमस्कन्धनिषण्णदेहं प्रत्याश्वसन्तं रिपुमाचकाङ्क्ष ॥४७॥

संजी०—पूर्वमिति । पूर्वं प्रथमं प्रहर्ताऽश्वसादी तौरंगिकः प्रतिहारेऽक्षमम-शक्त तुरगमस्कन्धे निषण्णदेहम्। मूर्च्छितमित्यर्थः। रिपुं भूयो न जघान पुनर्न प्रजहार। किंतु प्रत्याश्वसन्तं पुनरुज्जीवन्तमाचकाङ्क्ष। 'नायुधव्यसनं प्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम्' (मनु. ६।९३) इति निषेधादिति भावः ॥४७॥

अन्वयः--पूर्वं प्रहर्ता अश्वसादी प्रतिप्रहाराक्षम तुरंगमस्कन्धनिषण्णदेहम् रिपुं भूयः न जघान, (किन्तु), प्रत्याश्वसन्तम् आचकाङ्क्ष ।

व्याख्या—पूर्वं = प्रथमं प्रहरतीति प्रहर्ता = प्रहारकः सीदत्यवश्यमिति सादी अश्वस्य सादी इति अश्वसादी = तुरगारूढः, क्षमत इति क्षमः न क्षमः अक्षमः प्रतिप्रहारे = प्रतिमारणे अक्षमः = अशक्तः तं प्रतिप्रहाराक्षमम्, तुरङ्गमस्य = अश्वस्य स्कन्धः = अंसः इति तुरंगमस्कन्धस्तस्मिन् निषण्णः = पतितः (मूर्छितत्वादित्यर्थः) देहः = शरीरं यस्य स तं तुरंगमस्कन्धनिषण्णदेहम् रिपुं = शत्रुं भूयः= पुनः न प्रजहार = नहि जघान मूर्छितस्योपरि प्रहारं न कृतवान् शास्त्रविरुद्धत्वादिति भावः, किन्तु प्रत्याश्वसतीति प्रत्याश्वसन् तं प्रत्याश्वसन्तं = प्रत्यागतप्राणं= जीवन्तमित्यर्थः आचकाङ्क्ष = इच्छितवान् ।

समासः—सीदत्यवश्यमिति सादी, अश्वस्य सादी इति अश्वसादी । न क्षमः अक्षमः प्रतिप्रहारे अक्षमः इति प्रतिप्रहाराक्षमस्तं प्रतिहाराक्षमम् । स्कद्यते इति स्कन्धः, तुरंगमस्य स्कन्धः तुरंगमस्कन्धस्तस्मिन् निषण्णः देहो यस्य स तं तुरंगमस्कन्धनिषण्णदेहम् ।

हिन्दी—पहले प्रहार करने वाले एक घुड़सवार ने चोट खाने वाले शत्रु को जो कि प्रहार करने में असमर्थ था और मूछित होकर घोड़े के कन्धे पर जिसका शरीर झुक गया था, उस शत्रु पर दुबारा प्रहार नहीं किया, किन्तु उसके जी जाने की इच्छा की। अर्थात् यह फिर जी उठे ऐसी इच्छा करने लगा। क्योंकि मूछित शत्रु पर वार न करे यह नीतिशास्त्र की मर्यादा है।॥४७॥

तनुत्यजां वर्मभृतां विकोशैर्बृहत्सु दन्तेष्वसिभिः पतद्भिः ।
उद्यन्तमग्निं शमयांबभूवुर्गजा विविग्नाः करशीकरेण ॥४८॥

संजी०—तनुत्यजामिति । तनुत्यजाम् । तनुषु निःस्पृहाणामित्यर्थः । वर्मभृतां कवचिनां संबन्धिभिर्बृहत्सु दन्तेषु पतद्भिरत एव विकोशैः पिधानादुद्धृतैः । 'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' इत्यमरः । असिभिः खड्गैरुद्यन्तमुत्थितमग्निं विविग्ना भीता गजाः करशीकरेण शुण्डादण्डजलकणेन शमयांबभूवुः शान्तं चक्रुः ॥४८॥

अन्वयः—तनुत्यजां वर्मभृतां "संबन्धिभिः" बृहत्सु दन्तेषु पतद्भिः विकोशैः असिभिः उद्यन्तम् अग्निम् विविग्नाः गजाः करशीकरेण शमयांबभूवुः ।

व्याख्या—तनुं=शरीरं त्यजन्ति ते तनुत्यजस्तेषां तनुत्यजां=शरीरेषु निस्पृहाणां वर्माणि=कवचानि बिभ्रति=धारयन्ति ये ते वर्मभृतस्तेषां वर्मभृताम् भटानां संबन्धिभिः, बृहत्सु=विशालेषु दाम्यंति इति दन्तास्तेषु दन्तेषु=दशनेषु पतद्भिः=संलग्नैः विगताः कोशाः येषान्ते विकोशास्तैः विकोशैः=पिधानात् बहिर्निर्गतैः अस्यन्ते इति असयः तैः असिभिः=खड्गैः उद्यन्तम्=उत्थितम्=उत्पन्नमित्यर्थः अग्निं=वह्निं विविग्नाः=त्रस्ताः=भीताः गजाः=हस्तिनः करस्य=शुण्डादण्डस्य शीकरः=अम्बुकणः तेन करशीकरेण शमयांबभूवुः=शमयाञ्चक्रुः ।

समासः—तनुं त्यजन्ति इति तनुत्यजस्तेषां तनुत्यजाम् । वर्माणि बिभ्रतीति वर्मभृतस्तेषां वर्मभृताम् । विगताः कोशा येषां ते तैः विकोशैः । करस्य शीकरस्तेन करशीकरेण ।

हिन्दी—अपने शरीर की परवाह न करने वाले कवचधारी, वीरों की बड़े बड़े दाँतों पर नंगी तलवारों के लगने से उठी हुई आग को उस अग्नि से डरे हुए हाथियों ने अपने सूंड के जल से शान्त किया ॥४८॥

शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैश्चषकोत्तरेव ।
रणक्षितिः शोणितमद्यकुल्या रराज मृत्योरिव पानभूमिः ॥४९॥

संजी०—शिलीमुखेति । शिलीमुखैर्बाणैरुत्कृत्तानि शिरांस्येव फलानि तैराढ्या संपन्ना । च्युतैर्भ्रष्टैः शिरांसि त्रायन्त इति शिरस्त्राणि शीर्षण्यानि । 'शीर्षण्यं च शिरस्त्रे च' इत्यमरः । तैश्चषकोत्तरा चषकः पानपात्रमुत्तरं यस्याः सेव । 'चषकोऽस्त्री पानपात्रम्' इत्यमरः । शोणितान्येव मद्यं तस्य कुल्याः प्रवाहा यस्यां सा ।

'कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित्' इत्यमरः । रणक्षितिर्युद्धभूमिर्मृत्योः पानभूमिरिव रराज ॥४९॥

अन्वयः—**शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या च्युतैः शिरस्त्रैः चषकोत्तरा इव शोणितमद्यकुल्या रणक्षितिः मृत्योः पानभूमिः इव रराज ।**

व्याख्या—शिली=शल्यं मुखे येषान्ते शिलीमुखास्तैः=बाणैः उत्कृत्तानि=छिन्नानि शिरांसि=मस्तकानि एव फलानि=आम्रादीनि इति शिलीमुखोत्कृत्त-शिरःफलानि, तैः आढ्या=सम्पन्ना=परिपूर्णा तथोक्ता, च्युतैः=पतितैः शिरांसि त्रायन्ते इति शिरस्त्राणि तैः शिरस्त्रैः शीर्षण्यैः शीर्षकैरित्यर्थः, चषकः=पान-पात्रम् उत्तरं यस्यां सा चषकोत्तरा इव=यथा शोणितानि=रुधिराणि एव मद्यं=मदिरा इति शोणितमद्यं तस्य कुल्याः=प्रवाहाः यस्यां सा शोणितमद्यकुल्या, रणस्य=युद्धस्य क्षितिः=भूमिरिति रणक्षितिः=युद्धस्थलमित्यर्थः । मरणं मृत्यु-स्तस्य मृत्योः=मरणस्य यमस्येत्यर्थः, पानस्य=मदिरापानस्य भूमिः=स्थानमिव=यथा रराज=शुशुभे ।

समासः—शिलीमुखैः उत्कृत्तानि शिरांसि एव फलानि तैः आढ्या, इति शिलीमुखोत्कृत्तशिरःफलाढ्या । शिरः त्रायन्त इति शिरस्त्राणि तैः शिरस्त्रैः । चषकः उत्तरं यस्यां सा चषकोत्तरा । रणस्य क्षितिः रणक्षितिः । शोणितमेव मद्यं तस्य कुल्या यस्यां सा शोणितमद्यकुल्या । पानस्य भूमिः पानभूमिः ।

हिन्दी—वह युद्धस्थल मृत्यु के मदिरालय की तरह सुशोभित हो रहा था । जो युद्धस्थल बाणों से कटे हुए शिर रूपी फलों से पूर्ण हैं (भरा पड़ा है) तथा जिसमें गिरे हुए लोह टोप रूपी प्याले हैं और जिसमें रक्त (खून) रूपी मदिरा की नदी बह रही है ॥४९॥

उपान्तयोर्निष्कुषितं विहंगैराक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि ।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार ॥५०॥

संजी०—उपान्तयोरिति । उपान्तयोः प्रान्तयोर्विहंगैः पक्षिभिर्निष्कुषितं खण्डितम् । 'इणिनष्ठायाम्' (पा. ७।२।४७) इतीडागमः । भुजच्छेदं भुजखण्डं तेभ्यो विहंगेभ्यः आक्षिप्याच्छिद्य पिशितप्रिया मांसप्रियाऽपि शिवा क्रोष्ट्री । 'शिवः कीलः शिवा क्रोष्ट्री' इति विश्वः । केयूरकोट्याऽङ्गदाग्रेण क्षतस्तालुदेशो यस्याः सा सती । अपाचकारापसारयामास । किरतेः करोतेर्वा लिट् ॥५०॥

अन्वयः— उपान्तयोः विहंगैः निष्कुषितम् भुजच्छेदं तेभ्यः आक्षिप्य पिशित-प्रिया अपि शिवा केयूरकोटिक्षततालुदेशा सती अपाचकार ।

व्याख्या—उपान्तयोः = प्रान्तयोः विहायसि = आकाशे गच्छन्ति ते विहंगास्तैः विहंगैः पक्षिभिः निष्कुषितं = खण्डितम् भक्षणाय खण्ड्यमानमित्यर्थः भुजस्य = बाहोः छेदः=खण्डमिति तम् भुजच्छेदम् तेभ्यः = पक्षिभ्यः आक्षिप्य = आच्छिद्य पिश्यते स्म इति पिशितं = मांसं प्रियम् = इष्टं यस्याः सा पिशितप्रिया अपि शिवः शिवा वा देवतास्ति यस्याः सा शिवा = शृगाली, केयूरस्य = अंगदस्य कोटिः = अग्रमिति केयूरकोटिस्तया क्षतः = विद्धः तालुदेशः = ककुदप्रदेशः यस्याः सा केयूरकोटिक्षततालुदेशा सती अपाचकार = अपसारयामास । भुजखण्डं परित्यज्या-न्यत्र गतवतीत्यर्थः ।

समासः—अन्तयोः समीपे, उपान्ते तयोः उपान्तयोः । भुजस्य छेदस्तं भुज-च्छेदम् । पिशितं प्रियं यस्याः सा पिशितप्रिया । केयूरस्य कोटिः केयूरकोटिः, तया क्षतः तालुदेशः यस्याः सा केयूरकोटिक्षततालुदेशा ।

हिन्दी—दोनों किनारों पर पक्षियों से नोचे (खाए) हुए भुजा के टुकड़े को पक्षियों से छीनकर मांस की लोभी सियारन, बाजूबन्द की नोक से तालु में कट जाने के कारण उसे छोड़कर भाग गई । अर्थात् ज्योंही सियारन ने पक्षियों से छीन कर खाने को मुँह मारा त्योंही बाजूबन्द की नोक से उसका तालु कट गया और मांसप्रिय होते हुए भी छोड़ कर चली गई ॥५०॥

कश्चिद्द्विषत्खड्गहृतोत्तमाङ्गः सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य ।
वामाङ्गसंसक्तसुराङ्गनः स्वं नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श ॥५१॥

संजी०—कश्चिदिति । द्विषतः खड्गेन हृतोत्तमाङ्गश्छिन्नशिराः कश्चिद्वीरः सद्यो विमानप्रभुतां विमानाधिपत्यम् । देवत्वमित्यर्थः । उपेत्य प्राप्य वामाङ्ग-संसक्ता सव्योत्सङ्गसङ्गिनी सुराङ्गना यस्य स तथोक्तः सन्, समरे नृत्यत्स्वं निजं कबन्धं अशिरस्कं कलेवरं ददर्श । 'कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम्' इत्यमरः ॥५१॥

अन्वयः—द्विषत्खड्गहृतोत्तमांगः कश्चित् वीरः सद्यः विमानप्रभुताम् उपेत्य वामांगसंसक्तसुरांगनः सन् , समरे नृत्यत् स्वं कबन्धं ददर्श ।

व्याख्या—द्वेष्टीति द्विषन् द्विषतः = द्वेषशीलस्य = शत्रोः खड्गेन = असिना हृतम् = छिन्नम् उत्तमञ्च तदंगम् = शिरः यस्य स द्विषत्खड्गहृतोत्तमागः कश्चित्= वीरः समानेऽहनि सद्यः = सपदि, विशेषेण मान्ति अस्मिन्निति, विगतं मानम् उपमा यस्य स इति वा विमानः, विमानस्य= व्योमयानस्य प्रभुः = स्वामी, तस्य भावस्तत्ता, इति विमानप्रभुता तां विमानप्रभुताम् = देवत्वमित्यर्थः उपेत्य = प्राप्य वामं=सव्यञ्च तदंगमिति वामांगं वामांगे = वामभागे संसक्ता = संगिनी सुरांगना = देवांगना = अप्सरा इत्यर्थः यस्य स वामांगसंसक्तसुरांगनः सन् समरे = युद्धे समरांगणे इत्यर्थः नृत्यत् = नृत्यं कुर्वत् स्व = स्वकीयं कं बध्यते = छिद्यते अस्मात् तत् कबन्धं = छिन्नशिरस्कं देहं ददर्श = दृष्टवान्।

समासः—द्वेष्टीति द्विषन्, खण्ड्यतेऽनेनेति खड्गः द्विषतः खड्गः द्विषत्खड्गः, तेन हृतम् उत्तमांगं यस्य स द्विषत्खड्गहृतोत्तमांगः। विमानस्य प्रभुः विमानप्रभुस्तस्य भावस्तत्ता तां विमानप्रभुताम्। वामञ्च तदंगमिति वामांगम्, वामांगे संसक्ता सुराणाम् अङ्गना यस्य स वामांगसंसक्तसुरांगनः।

हिन्दी—शत्रु की तलवार से जिसका शिर कट गया ऐसा एक योद्धा, उसी क्षण (युद्ध में मरने के कारण) विमान की प्रभुता को प्राप्त कर (अर्थात् देवत्व को प्राप्त कर विमान में बैठकर) युद्धस्थल में नाचते हुए अपने बिना शिर के देह को देखने लगा और उस वीर के वामांग में एक अप्सरा बैठी थी ॥५१॥

अन्योन्यसूतोन्मथनादभूतां तावेव सूतौ रथिनौ च कौचित्।
व्यश्वौ गदाव्यायतसंप्रहारौ भग्नायुधौ बाहुविमर्दनिष्ठौ ॥५२॥

संजी०—अन्योन्येति। कौचिद्वीरावन्योन्यस्य सूतयोः सारथ्योरुन्मथनान्निधनात्तावेव सूतौ रथिनौ योद्धारौ चाभूताम्। तावेव व्यश्वौ नष्टाश्वौ सन्तौ गदाभ्यां व्यायतो दीर्घः संप्रहारो युद्धं ययोस्तावभूताम्। ततो भग्नायुधौ सन्तौ बाहुविमर्दे निष्ठा नाशो ययोस्तौ बाहुयुद्धसक्तावभूताम्। 'निष्ठा निष्पत्तिनाशान्ताः' इत्यमरः ॥५२॥

अन्वयः—**कौचित् (वीरौ) अन्योन्यसूतोन्मथनात् तौ एव सूतौ रथिनौ च अभूताम्, तौ एव व्यश्वौ सन्तौ गदाव्यायतसंप्रहारौ अभूताम्, भग्नायुधौ सन्तौ बाहुविमर्दनिष्ठौ च अभूताम्।**

व्याख्या—कौचित् = योद्धारौ अन्योन्यस्य = परस्परस्य सूतौ = सारथी तयोः उन्मथनं मरणं तस्मात्, अन्योन्यसूतोन्मथनात् तौ = योद्धारौ एव सूतौ = सारथी रथौ = स्यन्दने स्तः ययोस्तौ रथिनौ योद्धारौ च अभूताम् = आस्ताम्। तौ एव विगतौ = नष्टौ अश्वौ = घोटकौ ययोस्तौ व्यश्वौ सन्तौ गदाभ्यां = आयुधविशेषाभ्यां व्यायतः = दीर्घः संप्रहारः = युद्धं ययोस्तौ गदाव्यायतसंप्रहारौ च अभूताम्, ततः आयुध्यन्तेऽनेनेति आयुधम्। भग्ने = खण्डिते आयुधे = गदे ययोस्तौ भग्नायुधौ सन्तौ बाह्वोः विमर्दः यस्मिन् सः बाहुविमर्दः तस्मिन् बाहुविमर्दे = बाहुयुद्धे निष्ठा = नाशः ययोस्तौ बाहुविमर्दनिष्ठौ = बाहुयुद्धसंलग्नौ इत्यर्थः, अभूताम् = आस्ताम्।

समासः—अन्योन्यस्य सूतौ अन्योन्यसूतौ तयोः उन्मथनमिति अन्योन्यसूतोन्मथनं तस्मात् अन्योन्यसूतोन्मथनात्। विगतौ अश्वौ ययोस्तौ व्यश्वौ। गदाभ्यां व्यायतः संप्रहारः ययोस्तौ गदाव्यायतसंप्रहारौ। भग्ने आयुधे ययोस्तौ भग्नायुधौ। बाह्वोः विमर्दे निष्ठा ययोस्तौ बाहुविमर्दनिष्ठौ।

हिन्दी—और कोई दो योद्धा अपने-अपने सारथियों के मर जाने से वे ही दोनों सारथी और योद्धा भी हो गए, (अर्थात् स्वयं रथ भी चला रहे थे और लड़ भी रहे थे) और जब घोड़े भी मर गये तब गदाओं से देर तक युद्ध करने में प्रवृत्त हो गए और गदाओं के टूट जाने पर बाहु-युद्ध से नाश को प्राप्त होने लगे, अर्थात् बाहुयुद्ध में आसक्त हो गये ॥५२॥

परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रोरुत्क्रान्तवाय्वोः समकालमेव।
अमर्त्यभावेऽपि कयोश्चिदासीदेकाप्सरःप्रार्थितयोर्विवादः ॥५३॥

संजी०—परस्परेणेति। परस्परेणान्योन्यं क्षतयोः क्षततन्वोः समकालमेककालं यथा तथोत्क्रान्तवाय्वोर्युगपदुद्गतप्राणयोः एकैवाप्सराः प्रार्थिता याभ्यां तयोरेकाप्सरःप्रार्थितयोः। प्रार्थितैकाप्सरसोरित्यर्थः। 'वाहिताग्न्यादिषु' (पा०२।२।३७, इति परनिपातः। अथवा—एकस्यामप्सरसि प्रार्थितं प्रार्थना ययोरिति विग्रहः। 'स्त्रियां बहुष्वप्सरसः' इति बहुत्वाभिधानं प्रायिकम्। कयोश्चित्प्रहर्त्रोर्योधयोरमर्त्यभावेऽपि देवत्वेऽपि विवादः कलह आसीत्। एकामिषाभिलाषो हि महद्वैरबीजमिति भावः ॥५३॥

अन्वयः—परस्परेण क्षतयोः समकालमेव, यथा स्यात्तथा, उत्क्रान्तवाय्वोः एकाप्सरःप्रार्थितयोः कयोश्चित् प्रहर्त्रोः अमर्त्यभावेऽपि विवादः आसीत् ।

व्याख्या—परस्परेण = अन्योन्यम् क्षतयोः = नष्टशरीरयोः समः = एकः कालः = समयः यस्मिन् कर्मणि तत् समकालम् एव यथा स्यात्तथा क्रियाविशेषणम्, युगपदेवेत्यर्थः उत्क्रान्तः = उद्गतः निष्क्रान्त इत्यर्थः वायुः = प्राणः ययोस्तौ तयोः उत्क्रान्तवाय्वोः, एकैव अप्सराः = स्वर्वेश्या प्रार्थिता = याचिता याभ्यां तौ तयोः एकाप्सरःप्रार्थितयोः, अथवा एकस्यामप्सरसि प्रार्थितं = प्रार्थना ययोस्तयोः तथोक्तयोः एकामेवाप्सरसमभिलषतोरित्यर्थः कयोश्चित् = द्वयोः प्रहर्त्रोः = वीरयोः अमर्त्यस्य भावः अमर्त्यभावस्तस्मिन् अमर्त्यभावेऽपि = देवत्वेऽपि विवादः = विरोधः आसीत् = अभूत् । एकसुन्दर्यभिलाषः महाविरोधकारणं भवतीति भावः ।

समासः—उत्क्रान्तः वायुः ययोस्तौ तयोः उत्क्रान्तवाय्वोः । समः कालः यस्मिन् कर्मणि तत् समकालम् । म्रियन्तेऽस्मिन् मर्तः (भूलोकः) मर्त एव मर्त्यः न मर्त्यः अमर्त्यः, अमर्त्यस्य भावः अमर्त्यभावस्तस्मिन् अमर्त्यभावे । एका एव अप्सराः प्रार्थिता याभ्यां तौ तयोः एकाप्सरःप्रार्थितयोः, एकाप्सरसि प्रार्थितं ययोस्तयोर्वा ।

हिन्दी—आपस में एक दूसरे के शरीर को काटने वाले और एक साथ ही जिनका प्राणवायु निकल गया था ऐसे किन्ही दो योद्धाओं का (युद्ध में मरने के कारण) देवता बनने पर भी एक ही अप्सरा को चाहने के कारण (मरने के पश्चात् स्वर्ग में भी) झगड़ा होता रहा ॥५३॥

व्यूहावुभौ तावितरेतरस्माद् भङ्गं जयं चापतुरव्यवस्थम् ।
पश्चात्पुरो मारुतयोः प्रवृद्धौ पर्यायवृत्त्येव महार्णवोर्मी ॥५४॥

संजी०—व्यूहाविति । तावुभौ व्यूहौ सेनासंघातौ । 'व्यूहस्तु बलविन्यासः' इत्यमरः । पश्चात्पुरश्च यौ मारुतौ तयोः पर्यायवृत्त्या क्रमवृत्त्या प्रवृद्धौ महान्तावर्णवोर्मी महार्णवोर्मी इव । इतरेतरस्मादन्योन्यस्मादव्यवस्थं व्यवस्थारहितमनियतं जयं भङ्गं पराजयं चापतुः प्राप्तवन्तौ ॥५४॥

अन्वयः—तौ उभौ व्यूहौ पश्चात्पुरो मारुतयोः पर्यायवृत्त्या प्रवृद्धौ महार्णवोर्मी इव इतरेतरस्मात् अव्यवस्थं जयं भङ्गञ्च आपतुः ।

व्याख्या—तौ = पूर्वोक्तौ उभौ = द्वौ व्यूहौ = सेनासमूहौ विभज्य संस्थापितौ इत्यर्थः, पश्चात् = पृष्ठभागे पुरः = अग्रभागे यौ मारुतौ = वायू तयोः पश्चात्पुरो मारुतयोः, पर्यायस्य = क्रमस्य वृत्तिः = वर्तनं तया पर्यायवृत्त्या प्रकर्षण वृद्धौ = वृद्धिं गतौ, प्रवृद्धौ = महान्तौ, ऋच्छतीति ऊर्मिः, महांश्चासौ अर्णवः महार्णवः तस्य ऊर्मी = तरंगौ इति महार्णवोर्मी इव = यथा इतरेतरस्मात् = अन्योन्यस्मात् नास्ति व्यवस्था = नियमः यस्मिन् सः अव्यवस्थस्तम् अव्यवस्थं जयं = विजयं भङ्गं = पराजयं च आपतुः = प्रापतुः प्राप्तवन्तौ इत्यर्थः, समबलयोः सेनयोः कयोश्चित् कदाचित् जयः कदाचिच्च पराजयः क्रमेण भवति स्म इति भावः।

समासः—पर्यायस्य वृत्तिः तया पर्यायवृत्त्या। अर्णांसि सन्ति यत्र सोऽर्णवः, महांश्चासौ अर्णवः महार्णवस्तस्य ऊर्मी तौ महार्णवोर्मी। नास्ति व्यवस्था यस्मिन् स तम् अव्यवस्थम्।

हिन्दी—कोई दोनों सेनाएँ एक दूसरे से अनिश्चित हार जीत को उसी प्रकार प्राप्त कर रही थीं, जैसे कि आगे पीछे झोंका देने वाले वायु के क्रम से समुद्र की दो लहरें हटती बढ़ती रहती हैं ॥५४॥

परेण भग्नेऽपि बले महौजा ययावजः प्रत्यरिसैन्यमेव।
धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः ॥५५॥

संजी०—परेणेति। बले स्वसैन्ये परेण परबलेन भग्नेऽपि महौजा महाबलोऽजोऽरिसैन्यं प्रत्येव ययौ। तथा हि—समीरणेन वायुना धूमो निवर्त्येत कक्षादपसार्येत। वर्ततेर्ण्यन्तात्कर्मणि संभावनायां लिङ्। वह्निस्तु यतो यत्र कक्षस्तृणम्। 'कक्षौ तु तृणवीरुधौ' इत्यमरः। तत एव तत्रैव। प्रवर्तत इति शेषः। सार्वविभक्तिकस्तसिः ॥५५॥

अन्वयः—**बले परेण भग्ने अपि महौजाः अजः अरिसैन्यं प्रत्येव ययौ, हि समीरणेन धूमः निवर्त्येत वह्निस्तु यतः कक्षः ततः एव (प्रवर्तते इति शेषः)।**

व्याख्या—बले = स्वकीयसैन्ये परेण = शत्रुबलेन भग्ने = मर्दिते = विनाशितेऽपीत्यर्थः महत् प्रभूतम् ओजः = बलं यस्य स महौजाः महाबल इत्यर्थः अजः = रघुपुत्रः अरीणां = शत्रूणां सैन्यं = सेना तत् अरिसैन्यं प्रति = सम्मुखमेव ययौ = जगाम। तथा हि सम्यग् ईर्ते = गच्छतीति समीरणः, ईरयति = प्रेरयतीति वा

समीरणः तेन समीरणेन = वायुना धूमः = अग्निशिखा निवर्त्येत = अपसार्येत तु= किन्तु वह्निः=अग्निः यतः=यत्र कक्षः=तृणम् तत एव = तत्रैव प्रवर्तते गच्छतीति ।

समासः—महत् ओजः यस्य स महौजाः । अरीणां सैन्यमिति तत् अरिसैन्यम् । वहति हव्यमिति वह्निः ।

हिन्दी—अज की सेना को शत्रु सेना के द्वारा मार भगाने पर भी महाबलशाली अज शत्रुसेना में ही बढ़ते चले गये, क्योंकि वायु धूवें को भले ही उड़ा दे, लेकिन अग्नि तो (वायु के सहारे) जहाँ घास फूँस होगा वहाँ ही बढ़ता चला जायगा । अर्थात् जैसे पवन धूवें को उड़ा सकता है अग्नि को नहीं, वैसे ही शत्रुसेना अज की सेना को भले ही भगा दे, किन्तु अज को नहीं रोक सकती ।।५५।।

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान्दृप्तः स राजन्यकमेकवीरः ।
निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः ।।५६।।

संजी:—रथीति । रथी रथारूढो निषङ्गी तूणीरवान् । 'तूणोपासंगतूणीरनिषंगा इषुधिर्द्वयोः' इत्यमरः । कवची वर्मधरो धनुष्मान् धनुर्धरो दृप्तो रणदृप्त एकवीरोऽसहायशूरः सोऽजो राजन्यकं राजसमूहम् । 'गोत्रोक्षो—(पा. ४।२।३९) इत्यादिना वुञ्प्रत्ययः । महावराहो वराहावतारो विष्णुः कल्पक्षये कल्पान्तकाल उद्वृत्तमुद्वेलमर्णवाम्भ इव । निवारयामास ।।५६।।

अन्वयः—रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान् दृप्तः एकवीरः सः राजन्यकम् महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तम् अर्णवाम्भः इव निवारयामास ।

व्याख्या—रथः = स्यन्दनमस्यास्तीति रथी = रथारूढः, निषङ्गः=तूणीरः अस्यास्तीति निषंगी = तूणीरवान् कञ्वातं वञ्चति, इति सः, कवचः = वर्म अस्यास्तीति कवची = वर्मधरः, धनुरस्यास्तीति धनुष्मान् = चापधारी, दृप्तः = रणगर्वितः, एकः=अद्वितीयश्चासौ वीरः=शूरः इति एकवीरः सः=अजः राजन्यानां समूहः राजन्यकम् = राजसमूहम्, वरं = श्रेष्ठम् आहन्तीति वराहः, महांश्चासौ वराहः महावराहः = शूकरावतारो भगवान् विष्णुः, कल्प्यन्ते विरुद्धलक्षणया क्षीयन्ते प्राणिनः यत्र स कल्पः, कल्पस्य = प्रलयस्य क्षयः अन्तकालः तस्मिन् कल्पक्षये उद्वृत्तम् = उद्वेलम् तत् अर्णवस्य = समुद्रस्य अम्भः = जलं तत् अर्णवाम्भः इव = यथा निवारयामास = निवारितवान् ।

समासः—एकश्चासौ वीरः एकवीरः। महांश्चासौ वराहः महावराहः। कल्पस्य क्षयस्तत्र उद्वृत्तमिति तत् कल्पक्षयोद्वृत्तम्। अर्णवस्य अम्भः अर्णवाम्भः तत् अर्णवाम्भः।

हिन्दी—रथ में बैठे तरकश बाँधे कवच धारण किये धनुष्धारी स्वाभिमानी अद्वितीय वीर उस अज ने अकेले ही शत्रुसेना को वैसे ही रोक दिया जैसे वराह रूपधारी विष्णु ने प्रलयकाल में बढ़े हुए समुद्र के जल को रोक दिया था, अर्थात् वराह भगवान समुद्रजल को चीरते हुए उसमें से पृथिवी को निकाल लाए थे।।५६।।

स दक्षिणं तूणमुखेन वामं व्यापारयन्हस्तमलक्ष्यताजौ।
आकर्णकृष्टा सकृदस्य योद्धुर्मौर्वीव बाणान्सुषुवे रिपुघ्नान् ।।५७।।

संजी०—स इति। सोऽजः। आजौ संग्रामे दक्षिणं हस्तं तूणमुखेन निषङ्गविवरेण वाममतिसुन्दरम्। 'वामं सव्ये प्रतीते च द्रविणे चातिसुन्दरे' इति विश्वः। व्यापारयन्नलक्ष्यत, शरसंधानादयस्तु दुर्लक्ष्या इत्यर्थः। सकृदाकर्णकृष्टा। योद्धुरस्याजस्य मौर्वी ज्या रिपून्घ्नन्तीति रिपुघ्नाः। तान्। 'अमनुष्यकर्तृके च' (पा. ३।२।५३) इति टक्प्रत्ययः। बाणान्सुषुव इव सुषुवे किमु। इत्युत्प्रेक्षा।।५७।।

अन्वयः—सः आजौ दक्षिणं हस्तं तूणमुखेन वामं व्यापारयन् अलक्ष्यत आकर्णकृष्टा योद्धः अस्य मौर्वी रिपुघ्नान् बाणान् सुषुवे इव।

व्याख्या—सः=अजः आजौ=युद्धे दक्षिणं=अपसव्यं हस्तं=करं तूणस्य= निषंगस्य मुखं=विवरं तेन तूणमुखेन वामम्=अतिसुन्दरम् व्यापारयन्=प्रेरयन् अलक्ष्यत=अदृश्यत, बाणस्य धनुषि संधानं मोक्षणादिकन्तु नादृश्यतेत्यर्थः। सकृत्= एकवारम् आकर्णं=कर्णपर्यन्तम् कृष्टा=आवर्जिता आकर्णकृष्टा, युध्यतेऽसौ योद्धा तस्य योद्धुः=सांग्रामिकस्य अस्य=अजस्य मौर्वी=ज्या रिपून्=शत्रून् घ्नन्ति= नाशयन्तीति रिपुघ्नास्तान् रिपुघ्नान्=शत्रुविनाशकान् बाणान्=शरान् सुषुवे इव=सुषुवे किमु=जनयामास किमु।

समासः—तूणस्य मुखं तूणमुखं तेन तूणमुखेन। कर्णयतीति कर्णः, कर्णमभिव्याप्य इति आकर्णम्, आकर्णमाकृष्टा आकर्णकृष्टा। रिपून् घ्नन्तीति रिपुघ्नास्तान् रिपुघ्नान्।

हिन्दी—वह अज युद्ध में दाहिने हाथ को तरकश के ऊपर अतीव सुन्दरता से (अथात् बहुत ही फुर्ती से) फेरता हुआ दीखता था, (अर्थात् बाण निकालना,

चढ़ाना और चलाना तो सर्वथा अदृश्य ही था)। ऐसा लगता था मानो एक बार कान तक खींची गई अज के धनुष की डोरी ही शत्रुओं को नाश करने वाले बाणों को पैदा कर रही थी ॥५७॥

स रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैर्व्यक्तोर्ध्वरेखा भ्रुकुटीर्वहद्भिः ।
तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठैर्हुंकारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः ॥५८॥

संजी०——स इति । सोऽजः रोषेण दष्टा अत एवाधिकलोहिता ओष्ठा येषां तानि तैः। व्यक्ता ऊर्ध्वा रेखा यासां ता भ्रुकुटीर्भ्रूभंगान्वहद्भिः। भल्लनिकृत्ता बाणविशेषच्छिन्नाः कण्ठा येषां तैः। हुंकारगर्भैः सहुंकारैः हुंकुर्वद्भिरित्यर्थः। द्विषतां शिरोभिर्गां भूमिं तस्तार छादयामास ॥५८॥

अन्वयः——सः रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः व्यक्तोर्ध्वरेखाः भ्रुकुटीः वहद्भिः भल्लनिकृत्तकण्ठैः हुंकारगर्भैः द्विषतां शिरोभिः गां तस्तार।

व्याख्या——सः=अजः रोषेण = क्रोधेन दष्टाः = दंशिताः अत एव अधिकाः लोहिताः = रक्ताः ओष्ठाः=दन्तच्छदाः येषां तानि तैः रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः व्यक्ता = स्पष्टा ऊर्ध्वा = उपरि भागे स्थिता रेखा = लेखा पंक्तिर्यासां ताः व्यक्तोर्ध्वरेखाः = भ्रुवोः कुटयः भ्रुकुटयः ताः भ्रुकुटीः = भ्रूभंगान् वहद्भिः= धारयद्भिः, क्रोधेन मस्तकसंकोचं कुर्वद्भिरित्यर्थः। भल्लैः = बाणविशेषैः निकृत्ताः= छिन्नाः कण्ठाः = गलाः येषां तानि तैः भल्लनिकृत्तकण्ठैः, हुंकारः हुंकृतिः गर्भे= अभ्यन्तरे येषां तानि तैः हुंकारगर्भैः हुंकुर्वद्भिरित्यर्थः द्विषन्तीति द्विषन्तः तेषां द्विषतां = शत्रूणां शिरोभिः = मस्तकैः गां=पृथिवीं तस्तार = आच्छादयामास, 'हूंकार'—इति दीर्घपाठोऽपि क्वचित् ।

समासः—रोषेण दष्टाः रोषदष्टाः (अत एव) अधिकाः लोहिताः ओष्ठाः येषान्तानि तैः रोषदष्टाधिकलोहितोष्ठैः। भल्लेन निकृत्ताः कण्ठाः येषां तानि तैः भल्लनिकृत्तकण्ठैः। हुंकारः गर्भे येषां तानि तैः हुंकारगर्भैः। व्यक्ता ऊर्ध्वा रेखा यासां ताः व्यक्तोर्ध्वरेखाः ताः व्यक्तोर्ध्वरेखाः।

हिन्दी——अज ने शत्रुओं के उन सिरों से पृथिवी को पाट दिया, जिनके ओठ क्रोध से काटने के कारण खूब लाल थे और जिनके मस्तक पर

तनी हुई भ्रुकुटी रेखा साफ दीख रही थी तथा जिनके गले भालों से कटे थे और हुंकार या हूंकार करके आगे बढ़े थे ॥५८॥

सर्वैर्बलाङ्गैर्द्विरदप्रधानैः सर्वायुधैः कङ्कटभेदिभिश्च ।
सर्वप्रयत्नेन च भूमिपालास्तस्मिन्प्रजह्रुर्युधि सर्व एव ॥५९॥

संजी०—सर्वैरिति। द्विरदप्रधानैर्गजमुख्यैः सर्वैर्बलांगैः सेनांगैः। 'हस्त्यश्वरथपादातं सेनांगं स्याच्चतुष्टयम्' इत्यमरः। कङ्कटभेदिभिः कवचभेदिभिः 'उरश्छदः कङ्कटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। सर्वायुधैश्च बाह्यबलमुक्त्वान्तरमाह—सर्वप्रयत्नेन च सर्व एव भूमिपाला युधि तस्मिन्नजे प्रजह्रुः। तं प्रजह्रुरित्यर्थः। सर्वत्र सर्वकारकशक्तिसंभवात्कर्मणोऽप्यधिकरणविवक्षायां सप्तमी। तदुक्तम्—'अनेकशक्तियुक्तस्य विश्वस्यानेककर्मणः। सर्वदा सर्वथाभावात्क्वचित्किंचिद्विवक्ष्यते' ॥५९॥

अन्वयः—द्विरदप्रधानैः सर्वैः बलाङ्गैः कङ्कटभेदिभिः सर्वायुधैः च सर्वप्रयत्नेन च सर्वे एव भूमिपालाः युधि तस्मिन् प्रजह्रुः।

व्याख्या—द्वौ रदौ यस्य स द्विरदः, द्विरदाः=गजाः प्रधानं=मुख्यं येषु तानि तैः द्विरदप्रधानैः सर्वैः=सम्पूर्णैः बलस्य=सेनायाः अङ्गानि=हस्त्यश्वादीनि तैः बलांगैः कं=सुखं कटति=वर्षतीति कंकटः तं कङ्कटं=कवचं भेत्तुं शीलं येषां तानि तैः कंकटभेदिभिः, सर्वाणि तानि आयुधानि तैः सर्वायुधैः च=अपि सर्वश्चासौ प्रयत्नः सर्वप्रयत्नस्तेन सर्वप्रयत्नेन=सम्पूर्णप्रयासेन च सर्वे=समस्ताः संमिलिता इत्यर्थः भूमिं=पृथिवीं पालयन्ति=रक्षन्ति ते भूमिपालाः युधि=संग्रामे तस्मिन् अजे प्रजह्रुः=प्रहारं कृतवन्तः, अजं प्राहरन्नित्यर्थः।

समासः—द्वौ रदौ यस्य स द्विरदः। द्विरदाः प्रधानानि येषु तानि द्विरदप्रधानानि तैः द्विरदप्रधानैः। बलस्य अंगानि तैः बलांगैः। कंकटं भेत्तुं शीलं येषां तानि तैः कंकटभेदिभिः। सर्वाणि च तानि आयुधानि तैः सर्वायुधैः। सर्वश्चासौ प्रयत्नः सर्वप्रयत्नस्तेन सर्वप्रयत्नेन। भूमेः पालाः भूमिपालाः।

हिन्दी—हाथी घोड़े पैदल आदि सब सेना के अंगों से कवच को काटने वाले सारे शस्त्रों से तथा पूरा बल लगाकर एक साथ सारे राजा युद्ध में अज पर प्रहार करने लगे ॥५९॥

सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथः परेषां ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्यः ।
नीहारमग्नो दिनपूर्वभागः किंचित्प्रकाशेन विवस्वतेव ॥६०॥

संजी०—स इति । परेषां द्विषामस्त्रव्रजैश्छन्नरथः सोऽजः । नीहारैर्हिमैर्मग्नो दिनपूर्वभागः प्रातःकालः किंचित्प्रकाशेनेषल्लक्ष्येण विवस्वतेव । ध्वजाग्रमात्रेण लक्ष्यो बभूव । ध्वजाग्रादन्यन्न किंचिल्लक्ष्यते स्मेत्यर्थः ॥६०॥

अन्वयः—**परेषाम् अस्त्रव्रजैः छन्नरथः सः नीहारमग्नः दिनपूर्वभागः किंचित्प्रकाशेन विवस्वता इव ध्वजाग्रमात्रेण लक्ष्यः बभूव ।**

व्याख्या—परेषां = शत्रूणाम् अस्यन्ते, असन्ति वा अस्त्राणि, अस्त्राणां = शस्त्राणां व्रजाः = समूहास्तैः अस्त्रव्रजैः, छन्नः = व्याप्तः रथः = स्यन्दनं यस्य स छन्नरथः सः = अजः निर्ह्रियन्ते इति नीहारास्तैः नीहारैः = हिमैः मग्नः = व्याप्तः नीहारमग्नः दिनस्य = दिवसस्य पूर्वभागः = प्रातःकालः दिनपूर्वभागः किंचित् = ईषत् प्रकाशः = आतपः यस्य सः, तेन किंचित्प्रकाशेन विविधं वस्ते = आच्छादयतीति विवस्वान्, विवः = रश्मिरस्यास्तीति वा विवस्वान् तेन विवस्वता = सूर्येण इव = यथा ध्वजस्य = पताकायाः अग्रम् = अग्रभागः इति ध्वजाग्रम् ध्वजाग्रमेव ध्वजाग्रमात्रं तेन ध्वजाग्रमात्रेण लक्षितुं योग्यः लक्ष्यः = दृश्यः बभूव = आसीत् ।

समासः—अस्त्राणां व्रजास्तैः अस्त्रव्रजैः । छन्नः रथो यस्य सः, छन्नरथः । ध्वजस्य अग्रम् ध्वजाग्रम्, ध्वजाग्रमेव ध्वजाग्रमात्रं तेन ध्वजाग्रमात्रेण । नीहारैः मग्नः नीहारमग्नः । पूर्वश्चासौ भागः पूर्वभागः, दिनस्य पूर्वभागः दिनपूर्वभागः । किंचित् प्रकाशो यस्य सः किंचित्प्रकाशस्तेन किंचित्प्रकाशेन ।

हिन्दी—शत्रुओं के अस्त्रों के समूह से (बाण वर्षा से) अज का रथ ढँक गया और अज केवल पताका के सिरे के दीखने से वैसे ही दीखता था, जैसे कोहरे से ढँका हुआ प्रातःकाल, धुँधले प्रकाश वाले सूर्य से दीखता है । अर्थात् ध्वजा के सिरे के अतिरिक्त कुछ भी वहाँ नहीं देख पड़ता था, घोर शस्त्रवर्षा के कारण॥६०॥

प्रियंवदात्प्राप्तमसौ कुमारः प्रायुङ्क्त राजस्वधिराजसूनुः ।
गान्धर्वमस्त्रं कुसुमास्त्रकान्तः प्रस्वापनं स्वप्ननिवृत्तलौल्यः ॥६१॥

संजी०—प्रियंवदादिति। अधिराजसूनुर्महाराजपुत्रः कुसुमास्त्रकान्तो मदनसुन्दरः। स्वप्ननिवृत्तलौल्यः स्वप्नवितृष्णः। जागरूक इत्यर्थः। असौ कुमारोऽजः प्रियंवदात्पूर्वोक्ताद्गन्धर्वात्प्राप्तं गान्धर्वं गन्धर्वदेवताकम्। 'सास्य देवता' (पा. ४।२।२४) इत्यण्। प्रस्वापयतीति प्रस्वापनं निद्राजनकमस्त्रं राजसु प्रायुंक्त प्रयुक्तवान् ॥६१॥

अन्वयः—**अधिराजसूनुः कुसुमास्त्रकान्तः स्वप्ननिवृत्तलौल्यः असौ कुमारः प्रियंवदात् प्राप्तम् गान्धर्वं प्रस्वापनम् अस्त्रम् राजसु प्रायुङ्क्त।**

व्याख्या—राजभ्यः अधिकः अधिराजः अधिराजस्य = महाराजस्य सूनुः पुत्रः, इति अधिराजसूनुः = महाराजसुतः कुसुमानि = पुष्पाणि एव अस्त्रम् = आयुधं यस्य सः कुसुमास्त्रः = मदनः स इव कान्तः = सुन्दरः, इति कुसुमास्त्रकान्तः स्वप्नात् = तन्द्रायाः निवृत्तं=परावृत्तं लौल्यं=तृष्णा यस्य सः स्वप्ननिवृत्तलौल्यः = अप्रमत्तः = जागरूक इत्यर्थः, असौ कुमारयति = क्रीडतीति कुमारः = युवराजोऽजः, प्रियं वदतीति प्रियंवदस्तस्मात् प्रियंवदात् = एतन्नामकात् गन्धं = सौरभम् अर्वतीति गन्धर्वस्तस्मात् गन्धर्वात् = यक्षात् प्राप्तम् = लब्धम् गन्धर्वो देवतास्य तद् गान्धर्वम् = गन्धर्वदेवताकम्, प्रकर्षेण स्वापयति तत् प्रस्वापनं = निद्राकारकमस्त्रं = संमोहननामकम् राजसु = विरोधिभूपालेषु प्रायुङ्क्त = प्रयुक्तवान्। तत्प्रयोगेण च सर्वे राजानः मृतवत् सुप्ताः इत्यर्थः।

समासः—प्रियं वदतीति प्रियंवदस्तस्मात् प्रियंवदात्। राजभ्योऽधिकः अधिराजः अधिराजस्य सूनुः, अधिराजसूनुः। कुसुमान्येव अस्त्राणि यस्य स कुसुमास्त्रः स इव कान्तः, इति कुसुमास्त्रकान्तः। स्वप्नात् निवृत्तं लौल्यं यस्य स स्वप्ननिवृत्तलौल्यः।

हिन्दी—महाराज रघु के पुत्र कामदेव के समान सुन्दर जागरूक सावधान अज ने प्रियंवद नामक गन्धर्व से प्राप्त संमोहन नाम के अस्त्र को राजाओं पर छोड़ा जिससे वे सब सो गए ॥६१॥

ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तमेकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम्।
तस्थौ ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं निद्राविधेयं नरदेवसैन्यम् ॥६२॥

संजी०—तत इति। ततो धनुष्कर्षणे चापकर्षणे मूढहस्तमव्यापृतहस्तम्। एकस्मिन्नंसे पर्यस्तं स्रस्तं शिरस्त्राणां शीर्षण्यानां जालं समूहो यस्य तत्। ध्वजस्त-

म्भेषु निषण्णा अवष्टब्धा देहा यस्य तत्। नरदेवानां राज्ञां सेनैव सैन्यम्। चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्प्रत्ययः। निद्राविधेयं निद्रापरतन्त्रं तस्थौ ॥६२॥

अन्वयः—ततः **धनुष्कर्षणमूढहस्तम्, एकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम्, ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहम्, नरदेवसैन्यं निद्राविधेयं तस्थौ।**

व्याख्या—ततः = गान्धर्वास्त्रप्रयोगानन्तरम् धनुषः=चापस्य कर्षणं=संधानं तस्मिन् धनुष्कर्षणे मूढः=चेष्टाशून्य इत्यर्थः हस्तः=करः यस्य तत् धनुष्कर्षणमूढहस्तम्, एकश्चासौ अंसः एकांसः एकांसे=एकस्कन्धे पर्यस्तं=व्यस्तं = पतितं शिरस्त्राणां=शीर्षकाणां जालं=समूहः यस्य तत् एकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम्। ध्वजानां= पताकानां स्तम्भाः = स्थूणाः = यूपाः इति ध्वजस्तम्भाः तेषु निषण्णाः=पतिताः देहाः = शरीराणि यस्य तत् ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहम्, दीव्यन्तीति देवाः नराणां देवाः नरदेवाः, सेना एव सैन्यं नरदेवानां = भूपालानां सैन्यं = सेना इति नरदेवसैन्यम्, निद्रायाः = स्वापस्य विधेयं = परतन्त्रमधीनमित्यर्थः, इति निद्राविधेयं तस्थौ = अतिष्ठत्।

समासः—धनुषः कर्षणं तस्मिन् मूढः हस्तः यस्य तत् धनुष्कर्षणमूढहस्तम्। शिरांसि त्रायन्ते यैस्तानि शिरस्त्राणि, शिरस्त्राणां जालमिति शिरस्त्रजालम्, एकश्चासौ अंसः एकांसः, एकांसे पर्यस्तं शिरस्त्रजालं यस्य तत् एकांसपर्यस्तशिरस्त्रजालम्। स्तभ्नातीति स्तम्भः, ध्वजानां स्तम्भाः ध्वजस्तम्भास्तेषु निषण्णाः देहाः यस्य तत्, ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहम्। नराणां देवाः नरदेवास्तेषां सैन्यमिति नरदेवसैन्यम्। विधातुं शक्यं विधेयम्, निद्रायाः विधेयम् निद्राविधेयम्।

हिन्दी—गान्धर्व अस्त्र के छोड़ने पर उन राजाओं की सेना नींद (निद्रा) के वशीभूत हो गई, और धनुष के खींचने में उनके हाथ रुक गए, तथा उनके टोप एक कन्धे पर झुक गए, तथा झंडों के दण्डों पर उनके शरीर लटक गए, अर्थात् उनका सहारा लेकर सो गए ॥६२॥

ततः प्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठे निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः।
तेन स्वहस्तार्जितमेकवीरः पिबन्यशो मूर्तमिवावभासे ॥६३॥

संजी०—तत इति। ततः कुमारोऽजः प्रिययेन्दुमत्योपात्तरस आस्वादितमाधुर्ये। अतिश्लाघ्य इति भावः। अधरोष्ठे जलजं शङ्खं निवेश्य। 'जलजं शङ्खपद्मयोः' इति विश्वः। दध्मौ मुखमारुतेन पूरयामास। तेनौष्ठनिविष्टेन शङ्खेनैक-

वीरः सः स्वहस्तार्जितं मूर्तं मूर्तिमद्यशः पिबन्निवाबभासे। यशसः शुभ्रत्वादिति भावः ॥६३॥

अन्वयः—ततः कुमारः प्रियोपात्तरसे अधरोष्ठे जलजं निवेश्य दध्मौ तेन एकवीरः सः स्वहस्तार्जितं मूर्तं यशः पिबन् इव आबभासे।

व्याख्या—ततः = शत्रुसेनास्वापानन्तरम् कुमारः = युवराजोऽजः प्रियया = इन्दुमत्या उपात्तः = गृहीतः आस्वादितः रसः = माधुर्यं यस्य स तस्मिन् प्रियोपात्तरसे न ध्रियते इति अधरः उष्यते उष्णाहारेण सः ओष्ठः अधरश्चासौ ओष्ठः अधरोष्ठः तस्मिन् अधरोष्ठे जलात् जातं जलजं = शङ्खम् निवेश्य = संस्थाप्य दध्मौ = ध्मातवान्, मुखानिलेन पूरितवानित्यर्थः। तेन = ओष्ठनिविष्टेन जलजेन एकः = अद्वितीयश्चासौ वीरः = शूरः इति एकवीरः सः = अजः स्वस्य = निजस्य हस्तौ = करौ स्वहस्तौ, स्वहस्ताभ्याम् अर्जितम् = प्राप्तम् मूर्तम् = मूर्तिमत् यशः = कीर्तिम् पिबन् = पानं कुर्वन् इव = यथा आबभासे = शुशुभे।

समास—प्रियया उपात्तः रसः यस्य स तस्मिन् प्रियोपात्तरसे। अधरश्चासौ ओष्ठस्तस्मिन् अधरोष्ठे। स्वस्य हस्ताभ्याम् अर्जितं स्वहस्तार्जितम् तत्। एकश्चासौ वीरः एकवीरः।

हिन्दी—इसके पश्चात् अज ने अपने उस ओठ पर रखकर शंख को बजाया, जिसका रसास्वाद इन्दुमती ने चखा है। ओठ पर रखे उस शंख से पराक्रमी कुमार ऐसा लग रहा था कि मानो अपने बाहुबल से प्राप्त किये मूर्तिमान यश को पी रहा हो ॥६३॥

शङ्खस्वनाभिज्ञतया निवृत्तास्तं सन्नशत्रुं ददृशुः स्वयोधाः।
निमीलितानामिव पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशाङ्कम् ॥६४॥

संजी०—शङ्खेति। शङ्खस्वनस्याजशङ्खध्वनेरभिज्ञतया प्रत्यभिज्ञातत्वान्निवृत्ताः प्राक्पलाय्य संप्रति प्रत्यागताः स्वयोधाः सन्नशत्रुं निद्राणशत्रुं तमजम्। निमीलितानां मुकुलितानां पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमा चासौ शशाङ्कश्च तं प्रतिमाशशाङ्कं प्रतिबिम्बचन्द्रमिव ददृशुः ॥६४॥

अन्वयः—शंखस्वनाभिज्ञतया निवृत्ताः स्वयोधाः सन्नशत्रुं तम् निमीलितानां पङ्कजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशांकम् इव ददृशुः।

व्याख्या—शं खनतीति शंखः, शं=खम्-अस्येति वा शाम्यति-अलक्ष्मीमिति वा शंखः, शंखस्य=जलजस्य स्वनः=रवः शब्द इत्यर्थः इति शंखस्वनस्तमभिजानन्तीति शंखस्वनाभिज्ञास्तेषां भावस्तत्ता तया शंखस्वनाभिज्ञतया निवृत्ताः=प्रत्यागताः पूर्वपलायिताः संप्रति प्रतिनिवृत्ता इति भावः स्वस्य=अजस्य योधाः=भटाः स्वयोधाः सन्नाः=लीनाः (निद्रालीना इत्यर्थः) शत्रवः=अरयः यस्य स तं सन्नशत्रुम् तम्=अजम् निमीलितानां=मुकुलितानां पंकात् जातानि पंकजानि तेषां पंकजानां=कमलानां मध्ये=गर्भे स्फुरन्तं=संचलन्तं प्रतिमीयतेऽनया सा प्रतिमा शशति=उत्प्लुत्य गच्छतीति शशः, शशः अंके यस्य स शशांकः। प्रतिमा=प्रतिबिम्बश्चासौ शशांकः=चन्द्रस्तं प्रतिमाशशांकम् इव=यथा ददृशुः=अवलोकयामासुः, दृष्टवन्त इत्यर्थः।

समास:—शंखस्य स्वनः शंखस्वनस्तमभिजानन्तीति शंखस्वनाभिज्ञाः तेषां भावस्तत्ता तया शंखस्वनाभिज्ञतया। सन्नाः शत्रवो यस्य स तं सन्नशत्रुम्। स्वस्य योधाः स्वयोधाः। प्रतिमा चासौ शशांकस्तं प्रतिमाशशांकम्।

हिन्दी—शंख की ध्वनि को पहचानकर लौटे हुए अज के योधाओं ने सोये हुए शत्रुओं के बीच में अज को मुँदे हुए कमलों के बीच में चमकते हुए प्रतिबिम्ब-रूपी चन्द्रमा की तरह देखा ॥६४॥

सशोणितैस्तेन शिलीमुखाग्रैर्निक्षेपिताः केतुषु पार्थिवानाम्।
यशो हृतं संप्रति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः ॥६५॥

संजी०—सशोणितैरिति। संप्रति राघवेण रघुपुत्रेण। पूर्वं रघुणेति भावः। हे राजानः! वो युष्माकं यशो हृतं, जीवितं तु कृपया न हृतम्। न त्वशक्त्येति भावः। इत्येवंरूपा वर्णाः। एतदर्थप्रतिपादकं वाक्यमित्यर्थः। सशोणितैः शोणितदिग्धैः शिलीमुखाग्रैर्बाणाग्रैः साधनैस्तेनाजेन प्रयोजनकर्त्रा। पार्थिवानां राज्ञां केतुषु ध्वजस्तम्भेषु निक्षेपिताः प्रयोज्यैरन्यैर्निवेशिताः लेखिता इत्यर्थः। क्षिपतेर्ण्यन्तात्कर्मणि क्तः ॥६५॥

अन्वयः—सम्प्रति राघवेण 'हे राजानः' वः यशः हृतम् जीवितं तु कृपया न हृतम्, इति वर्णाः सशोणितैः शिलीमुखाग्रैः तेन पार्थिवानां केतुषु निक्षेपिताः।

व्याख्या—सम्प्रति=इदानीं रघोरपत्यं पुमान् राघवस्तेन राघवेण=अजेन पूर्वं रघुणा इदानीमजेनेत्यर्थः 'हे राजानः' वः=युष्माकं यशः=कीर्तिः हृतम्=जितम्

जीवत्यनेन तत् जीवितं = जीवनं = प्राणा इत्यर्थः तु कृपया = दयया नतु असामर्थ्येनेति भावः, न = नहि हृतम् इति वर्णयन्तीति वर्णाः = अक्षराणि कादीनि = शोणितेन = रुधिरेण सहितानि तैः सशोणितैः = रुधिरोक्षितैः शिली = शल्यं मुखे येषां ते शिलीमुखास्तेषामग्राणि तैः शिलीमुखाग्रैः शिलीमुखाग्ररूपलेखनसाधनैरित्यर्थः तेन = कुमारेण प्रयोजककर्त्रा पृथिव्या ईश्वराः पार्थिवाः तेषां पार्थिवानां = राज्ञां केतुषु = ध्वजेषु पताकास्तम्भेषु इत्यर्थः निक्षेपिताः = निवेशिताः अजेन प्रेरितैरन्यैः स्वसैनिकैः लिखिता इत्यर्थः।

समासः—शोणितेन सहितानि तैः सशोणितैः। शिली मुखे येषान्ते शिलीमुखास्तेषामग्राणि तैः शिलीमुखाग्रैः।

हिन्दी—हे राजाओ ! इस समय रघुपुत्र ने (इसके पूर्व रघु ने) तुम्हारा यश तो ले लिया और दया करके तुम्हारे प्राण नहीं लिये, यह वर्ण (अर्थात् वाक्य) खून में भींगे बाणों की नोक से सैनिकों ने शत्रु की ध्वजाओं पर लिख दिये।६५॥

स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः।
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुर्भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे ॥६६॥

संजी०—स इति। चापकोट्यां निहित एकबाहुर्येन सः। शिरस्त्रस्य निष्कर्षणेनापनयनेन भिन्नमौलिः श्लथकेशबन्धः। 'चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः।' इत्यमरः। ललाटे बद्धाः श्रमवारिबिन्दवो यस्य सः सोऽजो भीतां प्रियामिन्दुमतीमेत्यासाद्य वचो बभाषे॥६६॥

अन्वयः—चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुः सः भीतां प्रियाम् एत्य वचः बभाषे।

व्याख्या—कोट्यतेऽनया सा कोटी चापस्य = धनुषः कोटी = आटनी अग्रभागः इत्यर्थः चापकोटी तस्यां निहितः = स्थापितः एकः बाहुः = हस्तः येन स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरः त्रायते = पालयतीति शिरस्त्रम्-शिरस्त्रस्य = शीर्षकस्य निष्कर्षणम् = अपनयनं तेन भिन्ना = श्लथा मौलिः = चूडा यस्य स शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः, श्लथकेशः इत्यर्थः श्रमस्य = घर्मस्य वारि = जलं तस्य बिन्दवः = पृषतः इति श्रमवारिबिन्दवः, ललाटे = भाले = मस्तके बद्धाः = जाताः

श्रमवारिबिन्दवो यस्य स ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुः सः=अजः भीतां=भयमापन्नाम् उद्विग्नामित्यर्थः प्रियाम् = दयितामिन्दुमतीम्, एत्य = प्राप्य वचः=वचनम् बभाषे= उक्तवान् ।

समासः—चापस्य कोटी चापकोटी, चापकोट्यां निहितः एकः बाहुः येन स चापकोटीनिहितैकबाहुः। शिरस्त्रस्य निष्कर्षणं शिरस्त्रनिष्कर्षणं तेन भिन्ना मौलिः यस्य स शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः । श्रमस्य वारि श्रमवारि तस्य बिन्दवः श्रमवारिबिन्दवः, ललाटे बद्धाः श्रमवारिबिन्दवः यस्य स ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुः ।

हिन्दी:—धनुष की कोटी (अग्रभाग) में एक हात रखे हुए और टोप के हटा देने से बाल बिखरे हुए तथा जिसके मस्तक पर पसीने की बून्दे झलक रही हैं ऐसा अज डरी हुई इन्दुमती के पास आकर बोला ।।६६।।

इतः परानर्भकहार्यशस्त्रान्वैदर्भि ! पश्यानुमता मयासि ।
एवंविधेनाहवचेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगता ममैभिः ।।६७।।

संजी०—स इति । हे वैदर्भि इन्दुमति ! इत इदानीमर्भकहार्यशस्त्रान् बालकापहार्यायुधान् पराञ्शत्रून्पश्य । मयाऽनुमतासि । द्रष्टुमिति शेषः। एभिर्नृपैरेवंविधेन निद्रारूपेणाहवचेष्टितेन रणकर्मणा मम हस्तगता। हस्तगतवद्दुर्ग्रहेत्यर्थः। त्वं प्रार्थ्यसे । अपजिहीर्ष्यस इत्यर्थः। 'एवंविधेन' इत्यत्र स्वहस्तनिर्देशेन सोपहासमुवाचेति द्रष्टव्यम् ।।६७।।

अन्वयः—**हे वैदर्भि** इतः **अर्भकहार्यशस्त्रान्** परान् **पश्य, मया अनुमतासि** **"द्रष्टुमिति शेषः" एभिः एवंविधेन आहवचेष्टितेन मम हस्तगता त्वं प्रार्थ्यसे ।**

व्याख्या—विदर्भस्य गोत्रापत्यं स्त्री वैदर्भी तस्याः संबुद्धौ हे वैदर्भि = हे विदर्भराजपुत्रि ! इतः = इदानीम् अर्भकाः = बालकास्तैः हार्याणि = अपहार्याणि शस्त्राणि आयुधानि येषान्ते तान् अर्भकहार्यशस्त्रान् परान् = शत्रुन् "त्वं" पश्य = अवलोकय मया = अजेन अनुमतासि = द्रष्टुमनुमोदिता, एभिः = राजभिः एवम् = इत्थं विधा = प्रकारो यस्य तत् तेन एवंविधेन = निद्रारूपेण आहवस्य = युद्धस्य चेष्टितं = कर्म तेन आहवचेष्टितेन मम = अजस्य हस्तयोः = करयोः गता = प्राप्ता हस्तगता त्वं प्रार्थ्यसे = अपजिहीर्ष्यसे = एवंविधरणकर्मणा बलान्नेतुमभिलष्यसे इत्यर्थः ।

समासः—अर्भकैः हार्याणि शस्त्राणि येषान्ते तान् अर्भकहार्यशस्त्रान् । एवं विधा यस्य तत् तेन एवंविधेन । आहवस्य चेष्टितं तेन आहवचेष्टितेन ।

हिन्दी—हे विदर्भराजपुत्री, इस समय छोटे २ बच्चे भी जिनके शस्त्रों को छीन सकते हैं ऐसे शत्रुओं को देखो, मैंने तुम्हें देखने की अनुमति दे दी है। ये राजा, इसी बल पर (निद्रारूप) युद्ध करके मेरे हाथ से तुमको छीनना चाहते हैं। (अज नेत्र व हाथ के इशारे से सोये पड़े राजाओं को दिखाकर परिहासपूर्वक कह रहा है यही 'एवंविधेन' का भाव है) ॥६७॥

तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे।
निःश्वासबाष्पापगमात्प्रसन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः ॥६८॥

संजी०—तस्या इति। प्रतिद्वन्द्विभवाद्रिपूत्थाद्विषादाद्दैन्यात् सद्यः विमुक्तं तस्या मुखम्। निःश्वासस्य यो बाष्प ऊष्मा। 'बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः' इति विश्वः। तस्यापगमाद्धेतोरात्मीयं प्रसादं नैर्मल्यं प्रपन्नः प्राप्तः। आत्मा स्वरूपं दृश्यतेऽनेनेत्यात्मदर्शो दर्पण इव। आबभासे ॥६८॥

अन्वयः—प्रतिद्वन्द्विभवात् विषादात् सद्यः विमुक्तं तस्याः मुखम् निःश्वासबाष्पापगमात् आत्मीयं प्रसादं प्रपन्नः आत्मदर्शः इव आबभासे।

व्याख्या—द्वन्द्वं प्रति, प्रतिद्वन्द्वं प्रतिद्वन्द्वमस्ति येषान्ते प्रतिद्वन्द्विनस्तेभ्यो भवतीति प्रतिद्वन्द्विभवस्तस्मात् प्रतिद्वन्द्विभवात् = शत्रुजन्यात् विषीदन्ति जना अनेन स विषादः = दैन्यं तस्मात् विषादात् सद्यः = सपदि विमुक्तं = त्यक्तं = रहितमित्यर्थः तस्याः = इन्दुमत्या मुखम् = आननम् (अवदारणार्थखनधातोः डित् खनेर्मुट् चेति सूत्रेण अच्प्रत्ययो मुडागमश्चेति)। निःश्वासस्य = श्वासप्रश्वासस्य बाष्पः = ऊष्मा, इति निःश्वासबाष्पस्तस्य अपगमः = नाशस्तस्मात् निःश्वासबाष्पापगमात् कारणात् आत्मनः अयमात्मीयस्तमात्मीयं = स्वकीयं प्रसादं = प्रसन्नतां नैर्मल्यमित्यर्थः प्रपन्नः = प्राप्तः आत्मा = स्वरूपं दृश्यतेऽत्रेति स आत्मदर्शः = दर्पणः = मुकुरः इव = यथा आबभासे = दिदीपे।

समासः—प्रतिद्वन्द्विभ्यो भवतीति प्रतिद्वन्द्विभवस्तस्मात् प्रतिद्वन्द्विभवात्। निःश्वासस्य बाष्पः निःश्वासबाष्पस्तस्यापगमस्तस्मात् निःश्वासबाष्पापगमात्। आत्मा दृश्यतेऽत्र स आत्मदर्शः।

हिन्दी—शत्रुओं के भय से उत्पन्न दीनता से रहित इन्दुमती का मुख उस शीशे की तरह चमक उठा (सुन्दर लगने लगा) जो कि सांस की भांप के पोंछने से स्वच्छ साफ हो गया है ॥६८॥

हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षाद्वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत् ।
स्थली नवाम्भःपृषताभिवृष्टा मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम् ॥६९॥

संजी०—हृष्टेति। सेन्दुमती हृष्टापि पत्युः पौरुषेण प्रमुदितापि ह्रिया विजिता यतोऽतः प्रियमजं साक्षात् स्वयं नाभ्यनन्दन्न प्रशशंस। किंतु नवैरम्भःपृषतैः पयोबिन्दुभिरभिवृष्टाऽभिषिक्ता स्थल्यकृत्रिमा भूमिः। 'जानपदकुण्डगोणस्थल—' (पा. ४।१।४२) इत्यादिनाऽकृत्रिमार्थे ङीष्। अभ्रवृन्दं मेघसंघं मयूरकेकाभिरिव सखीनां वाग्भिरभ्यनन्दत् ॥६९॥

अन्वयः—सा हृष्टा अपि ह्रीविजिता "यतः अतः" प्रियं साक्षात् न अभ्यनन्दत् "किन्तु" नवाम्भःपृषताभिवृष्टा स्थली अभ्रवृन्दं मयूरकेकाभिः इव सखीनां वाग्भिः अभ्यनन्दत् ।

व्याख्या—सा = इन्दुमती हृष्टा अपि प्रसन्नापि पत्युः पराक्रमेण प्रमुदितापीत्यर्थः, ह्रिया = लज्जया विजिता = तदधीना यस्मात् तस्मात् कारणात् प्रियं = दयितमजं साक्षात् = स्वयं न = नहि अभ्यनन्दत् = प्रशशंस स्वमुखेन प्रशंसां न कृतवतीत्यर्थः, किन्तु पर्षन्तीति पृषताः अम्भसः = जलस्य पृषताः = बिन्दवः अम्भःपृषताः नवाः = नूतनाः येऽम्भःपृषतास्तैः अभिवृष्टा अभिषिक्ता इति नवाम्भःपृषताभिवृष्टा स्थली = अकृत्रिमा भूमिः अभ्राणां = मेघानां वृन्दम् = समूहस्तद् अभ्रवृन्दम् मह्यां रौतीति मयूरः के मूर्धनि कायतीति केका। मयूरस्य = बर्हिणः नीलकण्ठस्य केकाः = स्ववाण्यस्ताभिः मयूरकेकाभिः इव = यथा सखीनां = आलीनां वाग्भिः = वचनैः अभ्यनन्दत् = अभिनन्दितवती।

समासः—ह्रिया विजिता ह्रीविजिता। नवैः अम्भसः पृषतैः अभिवृष्टा नवाम्भःपृषताभिवृष्टा। मयूरस्य केकास्ताभिः मयूरकेकाभिः। अभ्राणां वृन्दं तत् अभ्रवृन्दम्।

हिन्दी—अपने पति के पराक्रम से इन्दुमती प्रसन्न तो हुई पर लज्जा के कारण स्वयं पति का अभिनन्दन (प्रशंसा) न कर सकी। किन्तु नए जल की बूँदों से भींगी पृथिवी, जैसे मोर की वाणी से मेघों का स्वागत करती है वैसे ही सखियों की वाणी से इन्दुमती ने अपने पति की प्रशंसा की ॥ ६९ ॥

इति शिरसि स वामं पादमाधाय राज्ञा-
मुदवहदनवद्यां तामवद्यादपेतः ।
रथतुरगरजोभिस्तस्य रूक्षालकाग्रा
समरविजयलक्ष्मीः सैव मूर्ता बभूव ॥७०॥

संजी०--इतीति। नोद्यते नोच्यत इत्यवद्यं गर्ह्यम्। 'अवद्यपण्य--' (पा. ३।१।१०१) इत्यादिना निपातः। 'कुपूयकुत्सितावद्यखेटगर्ह्याणकाः समाः' इत्यमरः। तस्मादपेतः। निर्दोष इत्यर्थः। सोऽज इति राज्ञां शिरसि वामं पादमाधायानवद्यामदोषां तामिन्दुमतीमुदवहदुपानयत्। आत्मसाच्चकारेत्यर्थः। अयमर्थः 'तमुद्वहन्तं पथि भोजकन्याम्' (७।३५) इत्यत्र न श्लिष्टः। तस्याजस्य रथतुरगाणां रजोभी रूक्षाणि परुषाण्यलकाग्राणि यस्याः सा, सेन्दुमत्येव मूर्ता मूर्तिमती समरविजयलक्ष्मीर्बभूव। एतल्लाभादन्यः को विजयलक्ष्मीलाभ इत्यर्थः ॥७०॥

अन्वयः--**अवद्यात् अपेतः स इति राज्ञां शिरसि वामं पादम् आधाय अनवद्यां ताम् उदवहत्, तस्य रथतुरगरजोभिः रूक्षालकाग्रा सा एव मूर्ता समरविजयलक्ष्मीः बभूव।**

व्याख्या--न उद्यते = न उच्यते इत्यवद्यं तस्मात् अवद्यात् = गर्ह्यात् निन्दनीयादित्यर्थः अपेतः = शून्यः दोषरहित इत्यर्थः सः = अजः इति = इत्थम् राज्ञां = भूपालानां शिरसि = मस्तके वामस्तं वामं = सव्यं पादं = चरणम् आधाय = कृत्वा, अनवद्यां = दोषरहितां सर्वांगसुन्दरीं पतिव्रताञ्चेत्यर्थः ताम् = इन्दुमतीम् उदवहत् = उपानयत् स्वकीयां कृतवानित्यर्थः, तस्य = अजस्य रमन्तेऽत्र, अनेन वा रथः = स्पन्दनं तस्य तुरगाः = अश्वाः रथतुरगास्तेषां रजांसि = धूलयस्तैः रथतुरगरजोभिः रूक्षयन्तीति रूक्षाणि = परुषाणि = अचिक्कणानीत्यर्थः, अलकानां = केशानाम् अग्राणि = अग्रभागाः यस्याः सा रूक्षालकाग्रा सा = इन्दुमती एव = निश्चये मूर्ता = मूर्तिमती विजयस्य लक्ष्मीः विजयलक्ष्मीः समरे = युद्धे विजयलक्ष्मीः, समरविजयलक्ष्मीः बभूव = जाता।

समासः--तुरेण = त्वरया गच्छन्तीति तुरगाः। रमन्तेऽत्रासौ रथः। रजतीति रजः। रथस्य तुरगास्तेषां रजांसि तैः रथतुरगरजोभिः। रूक्षाणि अलकानाम् अग्राणि यस्याः सा रूक्षालकाग्रा। समरे या विजयलक्ष्मीरिति समरविजयलक्ष्मीः। मूर्छति स्म मूर्ता।

हिन्दी—प्रशंसनीय निर्दोष वह अज इस प्रकार राजाओं के मस्तकों पर बायाँ पैर रखकर सर्वांगसुन्दरी पतिव्रता इन्दुमती को प्राप्त किया। और अज के रथ के घोड़ों की टापों से उठी धूली से रूखे बालों वाली वह इन्दुमती ही मूर्तिमती युद्धस्थल की विजयलक्ष्मी हो गई अर्थात् इस लाभ के अतिरिक्त और विजयलक्ष्मी का लाभ क्या होगा ॥७०॥

प्रथमपरिगतार्थस्तं रघुः संनिवृत्तं
विजयिनमभिनन्द्य श्लाघ्यजायासमेतम् ।
तदुपहितकुटुम्बः शान्तिमार्गोत्सुकोऽभू-
न्न हि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ॥७१॥

संजी०—प्रथमेति। प्रथममजागमनात्प्रागेव परिगतो ज्ञातोऽर्थो विवाहविजयरूपो येन प्रथमपरिगतार्थो रघुविजयिनं विजययुक्तं श्लाघ्यजायासमेतं संनिवृत्तं प्रत्यागतं तमजमभिनन्द्य। तस्मिन्नज उपहितकुटुम्बः सन्। 'सुतविन्यस्तपत्नीकः' इति याज्ञवल्क्यस्मरणादिति भावः। शान्तिमार्गे मोक्षमार्ग उत्सुकोऽभूत्। तथा हि—कुलधुर्ये कुलधुरंधरे सति सूर्यवंश्या गृहाय गृहस्थाश्रमाय न भवन्ति॥७१॥

अन्वयः—**प्रथमपरिगतार्थः रघुः विजयिनं श्लाघ्यजायासमेतं संनिवृत्तम् तम् अभिनन्द्य, तदुपहितकुटुम्बः सन् शान्तिमार्गोत्सुकः अभूत्।**

व्याख्या—प्रथमं = पूर्वम् अजागमनादित्यर्थः एव परिगतः अवबुद्धः ज्ञातः अर्थः = विवाहविजयरूपः येन स परिगतार्थः रघुः = दिलीपपुत्रः विजयोऽस्ति अस्यासौ विजयी तं विजयिनं = विजेतारम् जायतेऽस्यां सा जाया, श्लाघयितुं योग्या श्लाघ्या, श्लाघ्या चासौ जाया चेति श्लाघ्यजाया, तया समेतः = युक्तः सहितस्तं श्लाघ्यजायासमेतम् संनिवृत्तं = प्रत्यागतम् तम् = अजम् अभिनन्द्य = प्रशस्य कुटुम्ब्यते = पाल्यते संबध्यते वा कुटुम्बः तस्मिन् = अजे उपहितः = विन्यस्तः कुटुम्बः = परिवारो जायादिकं येन सः तदुहितकुटुम्बः सन् शान्तेः = मोक्षस्य मार्गः = पन्थाः तस्मिन् उत्सुकः = उत्कण्ठितः अभूत् = आसीत्। आश्रमं गत्वा श्रवणमननादिपरो जात इत्यर्थः। धुरं वहतीति धुर्यः कुलस्य = वंशस्य धुर्यः = धुरंधरस्तस्मिन् कुलधुर्ये सति सूर्यस्य वंशः सूर्यवंशस्तस्मिन् भवाः सूर्यवंश्याः = सूर्यकुलोत्पन्नाः

राजानः गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहं तस्मै गृहाय = गृहस्थाश्रमाय न हि भवन्ति = न कल्पन्ते अर्थात् चतुर्थाश्रमं सेवितुं वनं प्रव्रजन्ति इति भावः।

समासः—प्रथमं परिगतः अर्थो येन स प्रथमपरिगतार्थः। श्लाघ्या चासौ जाया श्लाघ्यजाया तया समेतस्तं श्लाघ्यजायासमेतम्। तस्मिन् उपहितः कुटुम्बः येन स तदुपहितकुटुम्बः। शान्तेः मार्गस्तस्मिन् उत्सुकः इति शान्तिमार्गोत्सुकः। कुलस्य धुर्यस्तस्मिन् कुलधुर्यः।

हिन्दी—अज के आगमन के पहले ही, अज के विवाह एवं विजय को जानने वाले महाराज रघु ने, सुन्दरी पत्नी के साथ लौटे हुए विजयी अज का स्वागत करके अज को कुटुम्ब पालन का भार सौंप दिया, और स्वयं मोक्षमार्ग का उत्सुक हो गया। अर्थात् योगसाधना, आत्मश्रवणादि में लग गया। ठीक ही है क्योंकि सूर्यवंशी राजा, पुत्र के कुल का भार संभालने में समर्थ हो जाने पर गृहस्थाश्रम में नहीं रहते हैं। किन्तु चतुर्थाश्रमी हो जाते हैं॥ ७१॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां 'छात्रोपयोगिनी' व्याख्यायां
रघुवंशे महाकाव्ये स्वयंवरवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

अष्टम सर्ग

अथ तस्य विवाहकौतुकं ललितं बिभ्रत एव पार्थिवः ।

वसुधामपि हस्तगामिनीमकरोदिन्दुमतीमिवापराम् ॥१॥

संजी०---अथेति । अथ पार्थिवो रघुर्ललितं सुभगं विवाहकौतुकं विवाहमङ्गल विवाहहस्तसूत्रं वा बिभ्रत एव । 'कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' इति शाश्वतः । तस्याजस्य । अपरामिन्दुमतीमिव । वसुधामपि हस्तगामिनीमकरोत् । अस्मिन्सर्गे वैतालीयं छन्दः ॥१॥

वन्देऽहमञ्जनानन्दं वायुपुत्रं महाबलम् ।

यदनुग्रहलेशेन मूको भवति वाक्पटुः ॥

अन्वयः—अथ पार्थिवः ललितं विवाहकौतुकं बिभ्रतः एव तस्य अपराम् इन्दुमतीम् इव वसुधाम् अपि हस्तगामिनीम् अकरोत् ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः=राजा=रघुः ललितं=सुभगं विवाहस्य=पाणिग्रहणस्य कौतुकं मंगलं=हस्तसूत्रं वा विवाह-कौतुकम्=विवाहकालिकमंगलसूत्रमित्यर्थः, बिभर्ति इति बिभ्रत् तस्य बिभ्रतः=धार-यतः एव तस्य=अजस्य अपरां=द्वितीयामन्यामित्यर्थः इन्दुमतीं=भोज्यामिव वसूनि धारयतीति वसुधा तां वसुधां=पृथिवीमपि हस्तं गच्छतीति हस्तगामिनी तां हस्त-गामिनीं=करगताम्=स्वपुत्राधीनामित्यर्थः अकरोत् कृतवान् ।

समासः—कुतुं कायति कुत्वां भवं वा कौतुकम्, विवाहस्य कौतुकं विवाहकौतुकम् तत् । हस्तं गच्छतीति हस्तगामिनी तां तथोक्ताम् ।

हिन्दी—इसके पश्चात् रघु ने सुन्दर तथा विवाह के समय के मंगलसूत्र को धारण किये हुए ही (अर्थात् कंगना अभी उतारा भी न था) अज के हाथ में पृथ्वी इस प्रकार सौंप दी मानों दूसरी इन्दुमती हो ॥१॥

दुरितैरपि कर्तुमात्मसात्प्रयतन्ते नृपसूनवो हि यत् ।

तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया ॥२॥

संजी०—दुरितैरिति । नृपसूनवो राजपुत्रा यद्राज्यं दुरितैरपि विषप्रयोगादिनिषिद्धोपायैरपि आत्मसात् स्वाधीनम् । 'तदधीनवचने' (पा. ५।४।५४) इति सातिप्रत्ययः । कर्तुं प्रयतन्ते हि । प्रवर्तन्त एवेत्यर्थः । 'हि' शब्दोऽवधारणे । 'हि हेतावधारणे' इत्यमरः । उपस्थितं स्वतः प्राप्तं तद्राज्यम् । अजः पितुराज्ञेति हेतोरग्रहीत् स्वीचकार । भोगतृष्णया तु नाग्रहीत् ॥२॥

अन्वयः—नृपसूनवः यत् दुरितैः अपि आत्मसात् कर्तुं प्रयतन्ते हि उपस्थितं तद् अजः पितुः आज्ञा इति अग्रहीत्, भोगतृष्णया न अग्रहीत् ।

व्याख्या—सून्यंते इति सूनवः नृपाणां=राज्ञां सूनवः=पुत्राः इति नृपसूनवः यत्=राज्यं दुष्टमितं गमनमेभिः, दुष्टं कृतं करणमेभिर्वा दुरितानि तैः दुरितैः=मारणादिपापकर्मभिः अपि आत्मनः अधीनमिति आत्मसात्=स्वाधीनं कर्तुं=सम्पादयितुं प्रयतन्ते हि=प्रयत्नं कुर्वते=प्रवर्तन्त एवेत्यर्थः उपस्थितं=स्वयमागतं स्वतः लब्धमित्यर्थः तत्=राज्यम् अजः=रघुपुत्रः पितुः=जनकस्य आज्ञा=आदेशः इति=हेतोः अग्रहीत्=स्वीचकार तर्पणं तृष्णा भोगस्य=सुखादेः तृष्णा=स्पृहा, भोगतृष्णा तया भोगतृष्णया न=नहि अग्रहीत् ।

समासः—नृपाणां सूनवः नृपसूनवः । भोगस्य तृष्णा भोगतृष्णा तया भोगतृष्णया ।

हिन्दी—राजाओं के पुत्र, जिस राज्य को बड़े-बड़े पाप करके भी अपने अधीन करना चाहते हैं । स्वतः प्राप्त उसी राज्य को अज ने अपने पिता की आज्ञा है इस कारण स्वीकार कर लिया, भोग की इच्छा से नहीं ॥२॥

अनुभूय वसिष्ठसंभृतैः सलिलैस्तेन सहाभिषेचनम् ।
विशदोच्छ्वसितेन मेदिनी कथयामास कृतार्थतामिव ॥३॥

संजी०—अनुभूयेति । मेदिनी भूमिर्महिषी च ध्वन्यते । वसिष्ठेन संभृतैः सलिलैस्तेनाजेन सहाभिषेचनमनुभूय विशदोच्छ्वसितेन स्फुटमुद्बृंहणेन । आनन्द-निर्मलोच्छ्वसितेन चेति ध्वन्यते । कृतार्थतां गुणवद्भर्तृलाभकृतं साफल्यं कथयामासेव । न चैतावता पूर्वेषामपकर्षः; प्रशंसापरत्वात् । 'सर्वत्र जयमन्विच्छेत् पुत्रादिच्छेत्पराजयम्' इत्यङ्गीकृतत्वाच्च ॥३॥

अन्वयः—मेदिनी वसिष्ठसंभृतैः सलिलैः तेन सह अभिषेचनम् अनुभूय, विशदोच्छ्वसितेन कृतार्थतां कथयामास इव ।

व्याख्या—मेदमस्त्यस्यामिति मेदिनी मेद्यति वा मेदिनी=पृथिवी महिषी च वसिष्ठेन महर्षिणा संभृतानि=अभिमंत्र्य प्रोक्षितानि तैः वसिष्ठसंभृतैः सलिलैः=जलैः तेन=अजेन सह=साकम् अभिषेचनं = प्रोक्षणम्=पट्टाभिषेकम् अनुभूय=प्राप्य विशदं= निर्मलं यत् उच्छ्वसितम्=उद्बृंहणं तेन विशदोच्छ्वसितेन आनन्दोच्छ्वसितेन चेति ध्वन्यते कृतः=सम्पादितः अर्थः=प्रयोजनं यया सा तस्या भावस्तत्ता तां कृतार्थतां स्वेच्छानुरूपपतिलाभरूपं साफल्यं कथयामास इव=जगाद इवेति उत्प्रेक्षायाम् ।

समासः—वसिष्ठेन संभृतानि तैः वसिष्ठसंभृतैः । विशदं यत् उच्छ्वसितं तेन विशदोच्छ्वसितेन । कृतः अर्थः यया सा तस्या भावस्तत्ता तां कृतार्थताम् ।

हिन्दी—अज के राज्याभिषेक के समय, वसिष्ठ जी के द्वारा अभिमंत्रित जल से (मंत्र पढ़कर छोड़े जल से) अज के साथ अभिषेक का अनुभव करके (वह जल जमीन पर भी पड़ा) पृथिवी ने साफ भाँप से तथा महिषी इन्दुमती ने आनन्द से निर्मल साँस लेकर अपनी सफलता को मानो कह दिया ॥३॥

स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाऽथर्वविदा कृतक्रियः ।
पवनाग्निसमागमो ह्ययं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा ॥४॥

संजी०—स इति अथर्वविदाऽथर्ववेदाभिज्ञेन गुरुणा वसिष्ठेन कृतक्रियः । अथर्वोक्तविधिना कृताभिषेकसंस्कार इत्यर्थः । सोऽजः परैः शत्रुभिर्दुरासदो दुर्धर्षो

बभूव । तथा हि-अस्त्रतेजसा क्षत्रतेजसा सहितं युक्तं यद्ब्रह्म ब्रह्मतेजोऽयं पवनाग्निसमागमो हि तत्कल्प इत्यर्थः । 'पवनाग्नि' इत्यत्र पूर्वनिपातशास्त्रस्यानित्यत्वात् 'द्वन्द्वे घि' (पा. २।२३२) इति माग्निशब्दस्य पूर्वनिपातः । तथा च काशिकायाम्- 'अयमेकस्तु लक्षणहेत्वोरिति निर्देशः पूर्वनिपातव्यभिचारचिह्नम्' इति । क्षात्रेणैवायं दुर्धर्षः किमयं पुनर्वसिष्ठमन्त्रप्रभावे सतीत्यर्थः । अत्र मनुः—'नाक्षत्रं ब्रह्म भवति क्षत्रं नाब्रह्म वर्धते । ब्रह्मक्षत्रे तु संयुक्ते इहामुत्र च वर्धते ॥' इति ॥४॥

अन्वयः—अथर्वविदा कृतक्रियः सः परैः दुरासदः बभूव, हि अस्त्रतेजसा सहितं यत् ब्रह्म अयं पवनाग्निसमागमः ।

व्याख्या—अथ=लोकमंगलाय अर्व्वते=प्रस्तूयते यत् तत् अथर्व अथर्व्व=वेदविशेषं वेत्ति=जानातीति अथर्ववित् तेन अथर्वविदा गिरति अज्ञानमिति गुरुस्तेन गुरुणा=वसिष्ठेन कृता='अथर्वोक्तविधिना'विहिता क्रिया=अभिषेकसंस्कारो यस्य स कृतक्रियः सः=अजः परैः=शत्रुभिः दुःखेन आसाद्यते यः स दुरासदः=दुर्धर्षः बभूव=जातः । तथाहि अस्त्रस्य=शस्त्रस्य लक्षणया क्षत्रस्येत्यर्थः तेजः=प्रतापस्तेन अस्त्रतेजसा सहितं=युक्तं यत् ब्रह्म=ब्रह्मतेजः, अजं पुनातीति पवनः=वायुः अग्निः=वह्निस्तयोः समागमः=सम्मिलनम् इति पवनाग्निसमागमः, पवनाग्निसमागमतुल्य इत्यर्थः ।

समासः—अथर्व वेत्तीति अथर्ववित् तेन अथर्वविदा । दुःखेन आसाद्यते यः स दुरासदः । पवनश्च अग्निश्च पवनाग्नी तयोः समागमः पवनाग्निसमागमः । अस्त्रस्य तेजस्तेन अस्त्रतेजसा ।

हिन्दी—अथर्व वेद के जानने वाले गुरु वसिष्ठ जी के द्वारा राज्याभिषेक संस्कार किए जाने पर वह तेजस्वी अज शत्रु के लिए दुराधर्ष हो गया । ठीक ही है । यह क्षात्र तेज के साथ ब्राह्म तेज का मिलना, वायु अग्नि संयोग के समान होता है । जैसे वायु के संयोग से अग्नि भयंकर हो जाता है वैसे ही क्षात्र तेज ब्राह्म तेज मिलने पर असह्य होता है ॥४॥

रघुमेव निवृत्तयौवनं तममन्यन्त नवेश्वरं प्रजाः ।
स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥५॥

संजी०—रघुमिति । प्रजा नवेश्वरं तमजं निवृत्तयौवनं प्रत्यावृत्तयौवनं रघुमेवामन्यन्त । न किञ्चिद्भेदकमस्तीत्यर्थः । कुतः ? हि यस्मात् सोऽजस्तस्य रघो

केवलामेकां श्रियं न प्रतिपेदे। किंतु सकलान्गुणान् शौर्यदाक्षिण्यादीनपि प्रतिपेदे। अतस्तद्गुणयोगात्तद्बुद्धिर्युक्तेत्यर्थः ॥५॥

अन्वयः—प्रजाः नवेश्वरं तम् निवृत्तयौवनं रघुम् एव अमन्यन्त हि सः तस्य केवलां श्रियं न प्रतिपेदे 'किन्तु' सकलान् गुणानपि प्रतिपेदे।

व्याख्या—प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः=जनाः, ईशितुं शीलमस्यासौ ईश्वरः नवः=नूतनश्चासौ ईश्वरः=स्वामी तं नवेश्वरं तम्=अजम् यूनो भावः यौवनं, निवृत्तं=प्रत्यागतं यौवनं=तारुण्यं यस्य स निवृत्तयौवनस्तं निवृत्तयौवनं रघुम्–दिलीपसूनुमेव अमन्यन्त–मन्यन्ते स्म=अवगच्छन्ति स्मेत्यर्थः। तयोर्भेदकं किंचिदपि नासीदिति भावः। कस्मात्। हि=यतः सः=अजः तस्य=रघोः केवलाम्=एकाम् श्रियं=शोभां लक्ष्मीञ्च न प्रतिपेदे=न प्राप, किन्तु सकलान्=सम्पूर्णान् गुण्यन्ते इति गुणास्तान्–शौर्यादीन् दयादाक्षिण्यादींश्चापि प्रतिपेदे=प्राप, अतः रघुगुणसम्बन्धात् रघुबुद्धिरिति युक्तमेव।

समासः—निवृत्तं यौवनं यस्य स तं निवृत्तयौवनम्। नवश्चासौ ईश्वरस्तं नवेश्वरम्।

हिन्दी—प्रजा ने नए राजा अज को, जिसकी जवानी लौट आई है ऐसा रघु ही समझा। अर्थात् पिता पुत्र की भिन्नता का कुछ कारण न था। ठीक ही है, इसीलिए कि उस अज ने महाराज रघु की राजलक्ष्मी को ही नहीं पाया किन्तु पिता के सारे गुण भी पाए थे ॥५॥

अधिकं शुशुभे शुभंयुना द्वितयेन द्वयमेव संगतम्।
पदमृद्धमजेन पैतृकं विनयेनास्य नवं च यौवनम् ॥६॥

संजी०—अधिकमिति द्वयमेव शुभंयुना शुभवता। 'शुभंयुस्तु शुभान्वितः' इत्यमरः। 'अहंशुभमोर्युस्' (पा. ५।२।१४०) इति युस्प्रत्ययः। द्वितयेन संगतं युतं सदधिकं शुशुभे। किं केनेत्याह—पदमिति। पैतृकं पितुरागतम्। 'ऋतष्ठञ्' (पा. ४।३।७८) इति ठञ्प्रत्ययः। ऋद्धं समृद्धं पदं राज्यमजेन, अस्याजस्य नवं यौवनं विनयेनेन्द्रियजयेन च। 'विजयो हीन्द्रियजयस्तद्युक्तः शास्त्रमर्हति' इति कामन्दकः। राज्यस्थोऽपि प्राकृतवन्न दृप्तोऽभूदित्यर्थः ॥६॥

अन्वयः – द्वयम् एव शुभंयुना द्वितयेन संगतं सत् अधिकं शुशुभे, (किं केनेत्याह) पैतृकं ऋद्धं पदम् अजेन अस्य नवं यौवनं विनयेन संगतं सत शुशुभे।

व्याख्या—द्वौ अवयवौ, अस्य तत् द्वयमेव सु=पूजितं भातीति शुभम् शुभमस्ति यस्य स शुभंयुः=शुभान्वितः तेन शुभंयुना=शुभवता द्वितयेन = द्वयेन संगतं=संयुतं सत् अधिकं=विशिष्टं शुशुभे=अशोभिष्ट। किं केनेत्याकांक्षायामाह पितुरागतं पैतृकं= पितुः सकाशात् प्राप्तं ऋद्धं=समृद्धं पदं=राज्यम् अजेन=युवराजेन संगतम्, अस्य= अजस्य नवं=नूतनं यौवनं=तारुण्यं विनयेन=प्रश्रयेण=नम्रत्वेन च संगतं सत् शुशुभे। राज्ये स्थितोऽपि अजः कदाचित् किंचिदपि गर्वितो नाभूदित्यर्थः।

हिन्दी—उस समय दो ही वस्तु, कल्याणवाले दोनों से मिलकर अधिक शोभा को प्राप्त हुई। एक तो अपने पिता से प्राप्त समृद्धिशाली राज्य अज से, और दूसरा अज का नव यौवन विनय से युक्त होकर ॥६॥

सदयं बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति।
अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूमिव ॥७॥

सञ्जी०—सदयमिति। महाभुजः सोऽजोऽचिरोपनतां नवोपगतां मेदिनीं भुवम्। नवं पाणिग्रहणं विवाहो यस्यास्तां नवोढां वधूमिव। सहसा बलात्कारेण चेत्। 'सहो बलं सहा मार्गः' इत्यमरः। इयं मेदिनी वा। उद्वेगं भयं व्रजेदिति हेतोः। सदयं सकृपं बुभुजे भुक्तवान्। 'भुजोऽनवने' (पा. १।३।६६) इत्यात्मनेपदम् ॥७॥

अन्वयः—महाभुजः सः अचिरोपनतां मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूम् इव सहसा इयम् उद्वेगं व्रजेत् इति सदयं बुभुजे।

व्याख्या—महान्तौ = दीर्घौ भुजौ=बाहू यस्य स महाभुजः सः=अजः अचिरं= नवा उपनता=उपगता ताम् अचिरोपनताम् मेदमस्ति अस्यां सा मेदिनी मेद्यति वा मेदिनी तां मेदिनीं = पृथिवीं पाणिः गृह्यतेऽस्मिन् कर्मणि तत् पाणिग्रहणं नवं=नूतनं सद्य इत्यर्थः पाणिग्रहणं=विवाहः यस्याः सा तां नवपाणिग्रहणां वहति उह्यते वा वधूस्तां वधूम्=नवोढाम् इव=यथा सहसा=बलात्कारेण=अविचारितेन इयं=मेदिनी वधूर्वा उद्वेगं=भयं व्रजेत् = गच्छेत् इति = हेतोः दयया सहितं सदयं=सानुकम्पं बुभुजे=भुक्तवान्।

समासः—महान्तौ भुजौ यस्य स महाभुजः । अचिरमुपनता ताम् अचिरोपनताम् । नवं पाणेः ग्रहणं यस्याः सा तां नवपाणिग्रहणाम् ।

हिन्दी—महाबाहु अज ने नई प्राप्त हुई पृथिवी का भोग यह समझ कर दयापूर्वक सरलता से करना आरम्भ किया कि कठोरता बलात्कार का व्यवहार करने से यह नई विवाहिता बधू के समान पृथिवी घबरा न जाय भयभीत न हो जाय ॥७॥

अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत् ।
उदधेरिव निम्नगाशतेष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित् ॥८॥

संजी०—अहमिति । प्रकृतिषु प्रजासु मध्ये सर्वोऽपि जनः । अथवा—प्रकृतिष्वित्यस्याहमित्यनेनान्वयः । व्यवधानं तु सह्यम् । सर्वोऽपि जनः प्रकृतिष्वहमेव महीपतेर्मतो महीपतिना मन्यमानः । 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' (पा. ३।२।१८८) इति वर्तमाने क्तः, 'क्तस्य च वर्तमाने' (पा. २।३।६७) इति षष्ठी । इत्यचिन्तयदमन्यत । उदधेर्निम्नगाशतेष्विवास्य नृपस्य कर्तुः । 'कर्तृकर्मणोः कृति' (पा. २।३।६५) इति कर्तरि षष्ठी । क्वचिदपि जनविषये विमाननाऽवगणना तिरस्कारो नाभवत्, यतो न कंचिदवमन्यतेऽतः सर्वोऽप्यहमेवास्य मत इत्यमन्यतेत्यर्थः ॥८॥

अन्वयः—सर्वः अपि जनः प्रकृतिषु अहम् एव महीपतेः मतः इति अचिन्तयत्, उदधेः निम्नगाशतेषु इव अस्य क्वचित् विमानना न अभवत् ।

व्याख्या—सर्वः=अखिलोऽपि जनः लोकः प्रकुर्वन्तीति प्रकृतयस्तासु प्रकृतिसु=प्रजासु अहमेव=मल्लक्षणव्यक्तिरेव मह्यते=पूज्यते इति मही तां पातीति महीपतिस्तस्य महीपतेः=राज्ञोऽजस्य मतः=मान्यः प्रिय इति=इत्थमचिन्तयत्-व्यचारयत् उदकानि=जलानि धीयन्तेऽत्र स उदधिस्तस्य उदधेः समुद्रस्य निम्नं गच्छन्तीति निम्नगाः=नद्यस्तासां शतानि तेषु निम्नगाशतेषु इव=यथा क्वचित्=कुत्रापि लोकविषये विमानना=तिरस्कारः न=नहि अभवत्=अभूत् । यस्मात् कोऽपि जनः न तिरस्क्रियते अतः सर्वोऽपि अहमेव राज्ञो मतः इति अमन्यत ।

समासः—मह्याः पतिः महीपतिस्तस्य महीपतेः । निम्नं गच्छन्तीति निम्नगास्तासां शतानि तेषु निम्नगाशतेषु ।

हिन्दी—'अज के राज्य में' सब लोग यही विचारते थे कि सारी प्रजा में एक मैं ही महाराज अज से सम्मानित हूं। अर्थात् वे सबसे अधिक मुझे मानते हैं। 'क्योंकि' हजारों नदियों में एक सा व्यवहार करने वाले समुद्र की तरह अज का किसी भी जन के प्रति तिरस्कार का व्यवहार नहीं होता था ॥८॥

न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहानिव ।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन् ॥९॥

संजी०—नेति। स नृपो भूयसा बाहुल्येन खरस्तीक्ष्णो न। भूयसा मृदुरतिमृदुरपि न। किंतु पुरस्कृतमध्यमक्रमः सन्, मध्यमपरिपाटीमवलम्ब्येत्यर्थः। पवमानो वायुः पृथिवीरुहांस्तरूनिव नृपाननुद्धरन्ननुत्पाटयन्नेव नमयामास। अत्र कामन्दकः—'मृदुश्चेदवमन्येत तीक्ष्णादुद्विजते जनः। तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव प्रजानां स च संमतः ॥' इति ॥९॥

अन्वयः—सः भूयसा खरः न, भूयसा मृदुः 'अपि' न किन्तु पुरस्कृतमध्यमक्रमः सन् पवमानः महीरुहान् इव नृपान् अनुद्धरन् नमयामास।

व्याख्या—सः=नृपोऽजः अतिशयेन बहु भवतीति भूयस्तेन भूयसा=बाहुल्येन खमिन्द्रियं राति=अभिभवतीति खरः=तीक्ष्णः न=नहि भूयसा मृद्यते इति मृदुः=कोमलः न किन्तु पुरस्कृतः=स्वीकृतः=अवलम्बितः मध्यमः = मध्ये भवः क्रमः=परिपाटी येन स पुरस्कृतमध्यमक्रमः सन् पवतेऽसौ पवमानः = वायुः, प्रथते इति पृथिवी=भूमिस्तस्यां रोहन्तीति पृथिवीरुहास्तान् पृथिवीरुहान् = वृक्षान् इव=यथा नृपान् = भूपालान् उद्धरति=उत्पाटयतीति उद्धरन् न उद्धरन् अनुद्धरन्=अनुत्पाटयन् एव नमयामास = विनम्रान् कृतवान्।

समासः—मध्ये भवः मध्यमः मध्यमश्चासौ क्रमः मध्यमक्रमः पुरस्कृतः मध्यमक्रमो येन स पुरस्कृतमध्यमक्रमः। मह्यां रोहन्तीति महीरुहास्तान् महीरुहान्। न उद्धरन् अनुद्धरन्।

हिन्दी—राजा अज न तो अधिक कठोर थे और बहुत कोमल ही थे, किन्तु बीच के मार्ग को स्वीकार कर अपने शत्रु राजाओं को गद्दी से उतारे बिना ही

उस प्रकार नम्र कर दिया, जैसे कि मध्यम वेग से बहने वाला वायु वृक्षों को उखाड़े बिना झुका देता है ॥९॥

अथ वीक्ष्य रघुः प्रतिष्ठितं प्रकृतिष्वात्मजमात्मवत्तया।
विषयेषु विनाशधर्मसु त्रिदिवस्थेष्वपि निःस्पृहोऽभवत् ॥१०॥

संजी०—अथेति। अथ रघुरात्मजं पुत्रमात्मवत्तया निर्विकारमनस्कतयेत्यर्थः। 'उदयादिष्वविकृतिर्मनसः सत्त्वमुच्यते। आत्मवान्सत्त्ववानुक्तः' इत्युत्पलमालायाम्। प्रकृतिष्वमात्यादिषु प्रतिष्ठितं रूढमूलं वीक्ष्य ज्ञात्वा विनाशो धर्मो येषां तेषु विनाशधर्मसु। अनित्येष्वित्यर्थः। 'धर्मादनिच्केवलात्' (पा. ५।४।१२४) इत्यनिच्प्रत्ययः समासान्तः। त्रिदिवस्थेष्वपि विषयेषु शब्दादिषु निःस्पृहो निर्गतेच्छोऽभवत् ॥१०॥

अन्वयः—अथ रघुः आत्मजम् आत्मवत्तया प्रकृतिषु प्रतिष्ठितं वीक्ष्य, विनाशधर्मसु त्रिदिवस्थेषु अपि विषयेषु निःस्पृहः अभवत्।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् रघुः=राजा आत्मनः=स्वस्मात् जातः=उत्पन्नस्तमात्मजम्=पुत्रमित्यर्थः आत्माऽस्यास्ति इति आत्मवान्=सत्त्ववान् आत्मवतो भावः आत्मवत्ता तया आत्मवत्तया विकारहीनचित्ततया इत्यर्थः, प्रकृतिषु=अमात्यादिषु प्रतिष्ठितं=प्ररूढमूलतया स्थितम् वीक्ष्य=अवलोक्य=ज्ञात्वेत्यर्थः धरति ध्रियते वा धर्मः विनाशः=अनित्यः धर्मः=स्वभावो येषान्ते विनाशधर्माणस्तेषु विनाशधर्मसु=नाशवत्सु, इत्यर्थः तिसृष्वपि अवस्थासु दीव्यन्ति=क्रीडन्ति यत्र स त्रिदिवस्तस्मिन् तिष्ठन्ति ते त्रिदिवस्थास्तेषु त्रिदिवस्थेषु अपि विषयेषु=भोग्येषु शब्दादिषु निर्गता स्पृहा यस्य स निस्पृहः=निरीहः अभवत्=जातः।

समासः—विनाशः धर्मः येषान्ते विनाशधर्माणस्तेषु विनाशधर्मसु। त्रिदिवे तिष्ठन्तीति त्रिदिवस्थास्तेषु त्रिदिवस्थेषु। विसिन्वन्ति=निबध्नन्ति इन्द्रियाणीति विषयास्तेषु विषयेषु।

हिन्दी—इसके पश्चात् महाराज रघु यह जानकर कि मेरा पुत्र अज विकारहीन भाव से, मंत्री प्रजाओं में स्थिर (बद्धमूल) हो गया है अतः नाश को प्राप्त होने वाले स्वर्गीय भोगों में भी निस्पृह हो गया। अर्थात् सब सुखों के भोगों को त्याग दिया ॥१०॥

कुलधर्मश्चायमेवेत्याह—

गुणवत्सुतरोपितश्रियः परिणामे हि दिलीपवंशजाः ।
पदवीं तरुवल्कवाससां प्रयताः संयमिनां प्रपेदिरे ॥११॥

संजी०—गुणवदिति । दिलीपवंशजाः परिणामे वार्धके गुणवत्सुतेषु रोपितश्रियः स्थापितलक्ष्मीकाः प्रयताश्च सन्तः तरुवल्कान्येव वासांसि तेषां संयमिनां यतीनां पदवीं प्रपेदिरे । यस्मात्तस्मादस्यापीदमुचितमित्यर्थः ॥११॥

अन्वयः—दिलीपवंशजाः परिणामे गुणवत्सुतरोपितश्रियः प्रयताः सन्तः तरुवल्कवाससां संयमिनां पदवीं प्रपेदिरे ।

व्याख्या—दिलीपस्य=एतन्नामकमहाराजस्य वंशः=अन्वयस्तस्मिन् जाताः=उत्पन्नाः, इति दिलीपवंशजाः । परिणमनं परिणामस्तस्मिन् परिणामे=वार्धके गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः शौर्यादयश्च सन्ति येषु ते गुणवन्तः, गुणवन्तश्च ते सुताः=पुत्राः, गुणवत्सुतास्तेषु रोपिता=स्थापिता श्रीः=राज्यलक्ष्मीः यैस्ते गुणवत्सुतरोपितश्रियः । प्रयतन्ते इति प्रयताः=पवित्राः सन्तः वलति इति वल्कयति वा वल्कं तरन्तीति तरवः तरूणां=वृक्षाणां वल्कानि=त्वचः, तान्येव वासांसि=वस्त्राणि येषां ते तेषां तरुवल्कवाससां संयमः=नियमः अस्ति येषान्तेषां संयमिनां=यतिब्रह्मचारिणां पद्यते अनया सा पदवी तां पदवीं=मार्गं प्रपेदिरे=जग्मुः । अतः रघोरपि तन्मार्गानुसरणं सर्वथा उचितमेवेति भावः ।

समासः—दिलीपस्य वंशस्तस्मिन् जाताः दिलीपवंशजाः । गुणवन्तश्च ते सुताः गुणवत्सुतास्तेषु रोपिता श्रीः यैस्ते गुणवत्सुतरोपितश्रियः । तरूणां वल्कानि एव वासांसि येषां ते तरुवल्कवाससस्तेषां तरुवल्कवाससाम् ।

हिन्दी—दिलीप के वंश में उत्पन्न हुए राजा बुढ़ौती में अपने गुणवान् पुत्रों को राजलक्ष्मी (राजकाज) सौंपकर और पवित्र होकर वृक्ष की छाल का वस्त्र पहनने वाले यतियों के (संन्यासियों के) मार्ग का अनुसरण करते थे । अर्थात् वन में चले जाते थे ॥११॥

तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः ।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ॥१२॥

संजी०—तमिति । अरण्यसमाश्रयोन्मुखं वनवासोद्युक्तं पितरं तं रघुं सुतोऽजः । वेष्टनशोभिनोष्णीषमनोहरेण शिरसा पादयोः प्रणिपत्य । आत्मनोऽपरित्यागमयाचत । मां परित्यज्य न गन्तव्यमिति प्रार्थितवानित्यर्थः ॥१२॥

अन्वयः—अरण्यसमाश्रयोन्मुखं पितरं तम् सुतः वेष्टनशोभिना शिरसा पादयोः प्रणिपत्य आत्मनः अपरित्यागम्, अयाचत ।

व्याख्या—अर्यतेऽत्रेति अरण्यम् अरण्ये=वने सम्यग् आश्रयः वासस्तस्मिन् उन्मुखः=उत्सुकः=उद्युक्तः, इति अरण्यसमाश्रयोन्मुखस्तम्, अरण्यसमाश्रयोन्मुखम् पातीति पिता तं पितरम्=जनकं तं=रघुम्, सूयते स्मेति सुतः=पुत्रः=अजः वेष्ट्यते यत् तत् वेष्टनम् वेष्टनेन=उष्णीषेण वस्त्ररूपेणेत्यर्थः शोभते तच्छीलमिति वेष्टनशोभि, तेन वेष्टनशोभिना किरीटशोभिना वा शिरसा=मस्तकेन पादयोः=चरणयोः प्रणिपत्य=प्रकर्षेण निपत्य=प्रणम्येत्यर्थः आत्मनः=स्वस्य परितस्त्यागः परित्यागः न परित्यागः, अपरित्यागस्तमपरित्यागम्=अवियोगम् अयाचत=याचितवान् । मां त्यक्त्वा भवता वनं न गन्तव्यमिति प्रार्थितवानित्यर्थः ।

समासः—अरण्ये समाश्रयस्तत्र उन्मुखः इति अरण्यसमाश्रयोन्मुखः तम् अरण्यसमाश्रयोन्मुखम् । वेष्टनेन शोभते तच्छीलं तेन वेष्टनशोभिना । न परित्यागः अपरित्यागस्तम् अपरित्यागम् ।

हिन्दी—वनवास को उद्यत पिता रघु से अज ने पगड़ी से मनोहर शिर से चरणों में प्रणाम करके अपने को न छोड़ने की याचना की । अर्थात् मुझे छोड़कर आप वन में न जावें ऐसी प्रार्थना अज ने रघु से की ॥१२॥

रघुरश्रुमुखस्य तस्य तत्कृतवानीप्सितमात्मजप्रियः ।
न तु सर्प इव त्वचं पुनः प्रतिपेदे व्यपवर्जितां श्रियम् ॥१३॥

संजी०—रघुरिति । आत्मजप्रियः पुत्रवत्सलो रघुः । अश्रूणि मुखे यस्य तस्याश्रुमुखस्याजस्य तदपरित्यागरूपमीप्सितमभिलषितं कृतवान् । किंतु सर्पस्त्वचमिव व्यपवर्जितां त्यक्तां श्रियं पुनर्न प्रतिपेदे न प्राप ॥१३॥

अन्वयः—आत्मजप्रियः रघुः अश्रुमुखस्य तस्य तत् ईप्सितम् कृतवान्, किन्तु सर्पः त्वचम् इव व्यपवर्जितां श्रियं पुनः न प्रतिपेदे ।

व्याख्या—आत्मनः जातः इति आत्मजः प्रीणातीति प्रियः आत्मजः=पुत्रः-प्रियः=अभीष्टः यस्य स आत्मजप्रियः=सुतवत्सल इत्यर्थः रघुः=महाराजः, अश्रूणि=नेत्रजलानि मुखे=आनने नेत्रयोरित्यर्थः, यस्य स तस्य अश्रुमुखस्य तस्य=अजस्य तत्=अपरित्यागरूपम् यत् ईप्सितम्=अभिलषितं मनोरथमित्यर्थः कृतवान्=अकरोत् तु=किन्तु सर्पणं सर्पः, सोऽस्यास्तीति सर्पः=भुजंगमः त्वम्=निर्मोकम् इव=यथा व्यपवर्जितां=परित्यक्तां पुत्राय दत्तामित्यर्थः श्रियं=राज्यलक्ष्मीं पुनः=भूयः न प्रतिपेदे=न प्राप ।

समासः—आत्मजः प्रियो यस्य स आत्मजप्रियः । अश्रूणि मुखे यस्य स तस्य, अश्रुमुखस्य ।

हिन्दी—अपने पुत्र को प्यार करनेवाले महाराज रघु ने आँसुओं से भरे मुखवाले अज की उस (न छोड़ना) इच्छा को कर दिया । अर्थात् वन में नहीं गये । किन्तु जैसे साँप अपनी केंचुल को छोड़कर पुनः ग्रहण नहीं करता, वैसे ही रघु ने त्यागी हुई राज्यलक्ष्मी को पुनः स्वीकार नहीं किया ॥१३॥

स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः ।
समुपास्यत पुत्रभोग्यया स्नुषयेवाविकृतेन्द्रियः श्रिया ॥१४॥

संजी०—स इति । स रघुः किलान्त्यमाश्रमं प्रव्रज्यामाश्रितः पुरान्नगराद्बहिरावसथे स्थाने निवसन्नविकृतेन्द्रियः । जितेन्द्रियः सन्नित्यर्थः । अत एव स्नुषयेव वध्वेव पुत्रभोग्यया न स्वभोग्यया । श्रिया समुपास्यत शुश्रूषितः । जितेन्द्रियस्य तस्य स्नुषयेव श्रियापि पुष्पफलोदकाहरणादिशुश्रूषाव्यतिरेकेण न किंचिदपेक्षितमासीदित्यर्थः । अत्र यद्यपि 'ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति' इति श्रुतेः । 'आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्' (६।३८) इति मनुस्मरणात् । 'मुखजानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम् । बाहुजातोरुजातानामयं धर्मो न विद्यते ।' इति निषेधाच्च ब्राह्मणस्यैव प्रव्रज्या न क्षत्रियादेरित्याहुः । तथापि 'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इत्यादिश्रुतेस्त्रैवर्णिकसाधारण्यात् । 'त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः' इति सूत्रकारवचनात् । 'ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो वा प्रव्रजेद्गृहात्' (मनु. १०।११७) इति स्मरणात् । 'मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं लिङ्गधारणम् । बाहु-

जातोऽजातानां त्रिदण्डं न विधीयते ।' इति निषेधस्य त्रिदण्डविषयत्वदर्शनाच्च । कुत्रचिद्ब्राह्मणपदस्योपलक्षणमाचक्षाणाः केचित्त्रैवर्णिकाधिकारं प्रतिपेदिरे । तथा सति 'स किलाश्रममन्त्यमाश्रितः' (८।१४) इत्यत्रापि कविनाप्ययमेव पक्षो विवक्षित इति प्रतीमः । अन्यथा वानप्रस्थाश्रमतया व्याख्याते 'विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं यतिभिः सार्धमनग्निमग्निचित्' (८।२५) इति वक्ष्यमाणेनानग्निसंस्कारेण विरोधः स्यात्; अग्निसंस्काररहितस्य वानप्रस्थस्यैवाभावात् इत्यलं प्रासङ्गिकेन ॥१४॥

अन्वयः—सः किल अन्त्यम् आश्रमम् आश्रितः पुरात् बहिः आवसथे निवसन् अविकृतेन्द्रियः सन् स्नुषया इव पुत्रभोग्यया श्रिया समुपास्यत ।

व्याख्या—सः=रघुः किल=प्रसिद्धम् अन्ते भवोऽन्त्यश्चासौ आश्रमः अन्त्याश्रमस्तम्, अन्त्याश्रमं=संन्यासाश्रम् आश्रितः=गतः पुरात्=नगरात् बहिः=**बाह्ये** आवसन्ति=आगत्य वसन्ति अस्मिन् तत् आवसथं तस्मिन् आवसथे=आश्रमे **वसन्**= निवसन् इन्द्रस्यात्मनः लिङ्गानि इन्द्रियाणि, न विकृतानि अविकृतानि, अविकृतानि= विकारमप्राप्तानि=जितानीत्यर्थः इन्द्रियाणि=हृषीकाणि=चक्षुरादीनीत्यर्थः, यस्य सः अविकृतेन्द्रियः अत एव स्नौतीति स्नुषा तया स्नुषया=वध्वा इव=यथा भोक्तुं योग्या भोग्या, पुत्रेण=सुतेन भोग्या=अभ्यवहार्या पालनीया चेति तया पुत्रभोग्यया न तु स्वभोग्ययेत्यर्थः श्रिया=लक्ष्म्या समुपास्यत=सेवितः शुश्रूषितः । वशीकृतेन्द्रियस्य रघोः पुत्रवध्वा इव राजलक्ष्म्यापि पुष्पफलजलाहरणादिसेवातिरिक्तं न **किमपि** अपेक्षितमासीदित्यर्थः ।

समासः—पुत्रेण भोग्या पुत्रभोग्या तया पुत्रभोग्यया । अविकृतानि इन्द्रियाणि यस्य सः अविकृतेन्द्रियः ।

हिन्दी—वह रघु संन्यास लेकर नगर के बाहरी स्थान में रहते हुए, जितेन्द्रिय होकर, पुत्रवधू के समान पुत्र के भोगने योग्य राजलक्ष्मी से सेवित होते रहे । अर्थात् जिस पृथिवी पर अज राज करता था, वह जितेन्द्रिय रघु की पुष्पफल जल देकर पतोहू की तरह सेवा करती थी ॥१४॥

प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवं कुलमभ्युद्यतनूतनेश्वरम् ।
नभसा निभृतेन्दुना तुलामुदितार्केण समारुरोह तत् ॥१५॥

सञ्जी०—प्रशमेति । प्रशमे स्थितः पूर्वपार्थिवो रघुर्यस्य तत् । अभ्युद्यतोऽभ्युदितो नूतनेश्वरोऽजो यस्य तत् । प्रसिद्धं कुलं निभृतेन्दुनाऽस्तमयासन्नचन्द्रेणोदितार्केण प्रकटितसूर्येण च नभसा तुलां सादृश्यं समारुरोह प्राप । न च 'नभसा तुलाम्' इत्यत्र 'तुल्यार्थैः—' (पा. २।३।७२) इत्यादिना प्रतिषेधस्तृतीयायाः । तस्य सदृशवाचि-'तुला' शब्दविषयत्वात् । 'कृष्णस्य तुला नास्ति' इति प्रयोगात्, अस्य च सादृश्य-वाचित्वात् ॥१५॥

अन्वयः—प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवम्, अभ्युद्यतनूतनेश्वरं तत् कुलं निभृतेन्दुना उदितार्केण च नभसा तुलां समारुरोह ।

व्याख्या—प्रकर्षेण शमः प्रशमस्तस्मिन् प्रशमे—शान्तिमार्गे स्थितः=वर्तमानः पूर्वः—प्रथमः पार्थिवः=राजा रघुः यस्य तत् प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवम् । अभ्युद्यतः= अभ्युदितः नूतनः=तरुणः ईश्वरः=प्रभुः=अज इत्यर्थः यस्य तत् अभ्युद्यतनूतनेश्वरम् तत्=प्रसिद्धं कोलतीति कुलम् कुं=भूमिं लातीति कौ लीयते इति वा कुलम्=वंशः सूर्यकुलमित्यर्थः । निभृतः=अस्तंगतप्रायः इन्दुः=चन्द्रः यस्य तत्तेन निभृतेन्दुना उदितः=प्रकटितः अर्च्यते=पूज्यते इति अर्कः, अवर्यते = स्तूयते इति वा अर्कः=सूर्यः यस्य तत्तेन उदितार्केण नह्यते मेघैरिति नभः न बभस्ति, नभते, इति वा नभस्तेन नभसा = आकाशेन तोल्यतेऽनया सा तुला तां तुलां—सादृश्यम्, समारुरोह= अवाप ।

समासः—पूर्वश्चासौ पार्थिवः पूर्वपार्थिवः, प्रशमे स्थितः पूर्वपार्थिवो यस्य तत् प्रशमस्थितपूर्वपार्थिवम् । अभ्युद्यतः नूतनः ईश्वरः यस्य तत् अभ्युद्यतनूतनेश्वरम् । निभृतः इन्दुर्यस्य तत्तेन निभृतेन्दुना । उदितः अर्कः यस्य तत्तेन उदितार्केण ।

हिन्दी—जिसका पहला राजा रघु संन्यास मार्ग में स्थित है और नया ऐश्वर्यशाली राजा अज राज्यासन पर विराजमान है वह सूर्यवंश, उस आकाश की समानता को प्राप्त कर रहा था जिसका चन्द्रमा तो अस्त हो रहा है और सूर्य उदित हो रहा है ॥१५॥

यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ ददृशाते रघुराघवौ जनैः ।
अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमंशाविव धर्मयोर्गतौ ॥१६॥

मंजी०—यतीति । यतिर्भिक्षुः । पार्थिवो राजा । तयोर्लिङ्गधारिणौ रघुराघवौ रघुतत्सुतौ । अपवर्गमहोदयार्थयोर्मोक्षाभ्युदयफलयोः । धर्मयोः निवर्तकप्रवर्तकरूपयोरित्यर्थः । भुवं गतौ भूलोकमवतीर्णावंशाविव । जनैर्ददृशाते दृष्टौ ।।१६।।

अन्वयः—यतिपार्थिवलिंगधारिणौ रघुराघवौ अपवर्गमहोदयार्थयोः धर्मयोः भुवं गतौ अंशौ इव जनैः ददृशाते ।

व्याख्या—यतते इति यतिः=भिक्षुः निर्जितसर्वेन्द्रियसमूहः इत्यर्थः । पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः=राजा चेति यतिपार्थिवौ, तयोः लिङ्गं=चिह्नं धारयतः तौ यतिपार्थिवलिंगधारिणौ । रघुः=दिलीपसूनुः राघवः अजश्चेति रघुराघवौ । अपवर्जनमिति अपवर्गः=मुक्तिः महोदयः=अभ्युदयः=अर्थः प्रयोजनं फलं ययोस्तयोः, अपवर्गमहोदयार्थयोः । धरतः निवर्तकप्रवर्तकरूपेण यौ तौ धर्मौ तयोः धर्मयोः निवर्तकप्रवर्तकरूपयोः, भवतीति भूः, तां भुवं=भूमिं गतौ=अवतीर्णौ, अंशौ=भागौ इव=यथा जनैः लोकैः ददृशाते=अवलोकितौ=दृष्टावित्यर्थः ।

समासः—यतिश्च पार्थिवश्चेति यतिपार्थिवौ तयोः लिगं धारयतः यौ तौ यतिपार्थिवलिंगधारिणौ । रघुश्च राघवश्चेति रघुराघवौ । अपवर्गश्च महोदयश्च इति अपवर्गमहोदयौ तौ एवार्थः ययोस्तौ, तयोः अपवर्गमहोदयार्थयोः ।

हिन्दी—संन्यासी तथा राजा के चिह्न को धारण किये हुए रघु और उसके पुत्र अज को लोगों ने ऐसे देखा कि मानो मोक्ष और ऐश्वर्य देने वाले, दो धर्मों के भूलोक में आये हुए अंश हो । अर्थात् रघु को अपवर्ग का अंश, तथा अज को ऐहिक ऐश्वर्य के अंश के रूप में देखा ।।१६।।

अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युयुजे नीतिविशारदैरजः ।
अनपायिपदोपलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभिः ॥१७॥

संजी०—अजितेति । अजोऽजिताधिगमायाजितपदलाभाय नीतिविशारदैर्नीतिज्ञैर्मन्त्रिभिर्युयुजे संगतः । रघुरप्यनपायिपदस्योपलब्धये मोक्षस्य प्राप्तये यथार्थदर्शिनो यथार्थवादिनश्चाप्ताः तैर्योगिभिः समियाय संगतः । उभयत्राप्युपायचिन्तार्थमिति शेषः ।।१७।।

अन्वयः—अजः अजिताधिगमाय नीतिविशारदैः मंत्रिभिः युयुजे, रघुः अनपायिपदोपलब्धये आप्तैः योगिभिः समियाय ।

व्याख्या—अजः=राजा, न जितमिति अजितम्, अजितस्य = अप्राप्तस्य अधिगमः=प्राप्तिस्तस्मै अजिताधिगमाय अप्राप्तपदलाभायेत्यर्थः शरदि भवः शारदः विशिष्टः, विपरीतो वा शारदः इति विशारदः। नीतौ=नये विशारदाः=पण्डितास्तैः नीतिविशारदैः=नीतिशास्त्रपण्डितैरित्यर्थः। मंत्रः=गुप्तभाषणमस्ति येषान्ते मंत्रिणः अवश्यं मंत्रयन्ते इति वा मंत्रिणस्तैः मंत्रिभिः=अमात्यैः युयुजे=संगतः, रघुः= पूर्वराजः अपि अपायोऽस्ति अस्य तत् अपायि न अपायि, इति अनपायि अनपायि च तत् पदमिति अनपायिपदम्, अनपायिपदस्य = अविनाशिस्थानस्य मोक्षस्येत्यर्थः, उपलब्धिः=प्राप्तिस्तस्यै अनपायिपदोपलब्धये, मोक्षप्राप्तये, आप्यन्ते स्म इति आप्ताः=यथार्थदर्शिनः यथार्थवादिनश्च तैः आप्तैः योजनं योगः, योगः= चित्तवृत्तिनिरोधः अस्ति येषान्ते योगिनस्तैः योगिभिः सह समियाय=संगतः तत्तदुपायविचारणायेति शेषः।

समासः—न जितमिति, अजितं तस्य अधिगमस्तस्मै अजिताधिगमाय। नीतौ विशारदास्तैः नीतिविशारदैः। न अपायि, अनपायि, अनपायि च तत् पदमिति, अनपायिपदं तस्य उपलब्धिस्तस्यै अनपायिपदोपलब्धये।

हिन्दी—एक ओर अज नीति शास्त्र के विद्वान मन्त्रियों के साथ न जीते हुए प्रदेशों की प्राप्ति के लिए मिले, अर्थात् दिग्विजय का विचार करने लगे। तथा दूसरी ओर रघु भी अविनाशी मोक्ष पद को पाने के लिए यथार्थवादी तत्त्वदर्शी योगियों से मिले, अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के उपाय सोचने के लिए योगियों से मिले ॥१७॥

नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा।
परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ॥१८॥

संजी०—नृपतिरिति। युवा नृपतिरजः प्रकृतीः प्रजाः कार्यार्थिनीरवेक्षितुम्। दुष्टादुष्टपरिज्ञानार्थमित्यर्थः। व्यवहारासनं धर्मासनम्। आददे स्वीचकार। प्रवयाः स्थविरो नृपतौ रघुस्तु। 'प्रवयाः स्थविरो वृद्धः' इत्यमरः। धारणां चित्तस्यैकाग्रतां परिचेतुमभ्यसितुम्। उपांशु विजने। 'उपांशु विजने प्रोक्तम्' इति हलायुधः। कुशैः पूतं विष्टरमासनमाददे। 'यमादिगुणसंयुक्ते मनसः स्थितिरात्मनि। धारणा प्रोच्यते सद्भिर्योगशास्त्रविशारदैः॥' इति वशिष्ठः ॥१८॥

अन्वयः—युवा नृपतिः प्रकृतीः अवेक्षितुं व्यवहारासनम् आददे, प्रवयाः नृपतिस्तु धारणां परिचेतुम् उपांशु कुशपूतं विष्टरम् आददे ।

व्याख्या—यौतीति युवा=तरुणः नॄन्=जनान् पाति=रक्षतीति नृपतिः=राजा अजः प्रकुर्वन्तीति प्रकृतयस्ताः प्रकृतीः=प्रजाः कार्यार्थिनीरित्यर्थः अवेक्षितुम् अवलोकयितुम्=अयं सज्जनः अयं दुष्टो दण्डनीयः इति परिज्ञानायेत्यर्थः । वि=नाना सन्देहहरणं व्यवहारः, व्यवहारस्य=न्यायस्य धर्मस्येत्यर्थः आसनं=पीठमिति व्यवहारासनम् आददे=स्वीचकार । प्रगतं वयः यस्यासौ प्रवयाः=स्थविरः=वृद्धः नृपतिस्तु धारयति चित्तं सा धारणा तां धारणां=चित्तैकाग्रतां परिचेतुम्=अभ्यसितुम् उपगताः अंशवः=किरणाः यत्र तत् उपांशु=विजने कुशैः=दर्भैः पूतः=पवित्र इति तम् कुशपूतं विस्तीर्यतेऽसौ विष्टरस्तं विष्टरम्=आसनम् आददे=समाधितत्परोऽभूदित्यर्थः ।

समासः—व्यवहारस्यासनमिति व्यवहारासनम् तत् । कुशैः पूतस्तं कुशपूतम् ।

हिन्दी—जवान राजा अज, जनता के कार्यों का न्याय करने के लिए धर्मासन पर बैठते थे और बूढ़े राजा रघु अपने मन की एकाग्रता का अभ्यास करने के लिए एकान्त में कुशा के पवित्र आसन पर बैठते थे ।।१८।।

अनयत्प्रभुशक्तिसंपदा वशमेको नृपतीननन्तरान् ।
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पञ्च शरीरगोचरान् ।।१९।।

संजी०—अनयदिति । एकोऽन्यतमः । अज इत्यर्थः । अनन्तरानव्यवहिताननन्तरान्नृपतीन्यातव्यपार्ष्णिग्राहादीन् प्रभुशक्तिसंपदा कोशदण्डमहिम्ना वशं स्वायत्ततामनयत् । 'कोशो दण्डो बलं चैव प्रभुशक्तिः प्रकीर्तिता' इति मिताक्षरायाम् । अपरो रघुः प्रणिधानयोग्यया समाध्यभ्यासेन । 'योगाभ्यासार्कयोषितोः' इति विश्वः, शरीरगोचरान्देहाश्रयान्पञ्च मरुतः प्राणादीन्वशमनयत् । 'प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः । शरीरस्थाः' इत्यमरः ।।१९।।

अन्वयः—एकः अनन्तरान् नृपतीन् प्रभुशक्तिसंपदा वशम् अनयत्, अपरः प्रणिधानयोग्यया शरीरगोचरान् पञ्च मरुतः वशमनयत् ।

व्याख्या—एकः=अजः अन्तं रातीति अन्तरं न अन्तरे=स्वराज्यमध्ये ये ते अनन्तरास्तान् अनन्तरान्=विषयानन्तरान्=शत्रूनित्यर्थः । प्रभवतीति प्रभुः=

स्वामी, शक्यतेऽनया इति शक्तिः=कोशदण्डबलानि, प्रभोः=स्वामिनः शक्तिः= कोशादिरूपा तस्याः सम्पत्=महिमा तया प्रभुशक्तिसम्पदा वशं=स्वायत्तताम् अनयत्=नीतवान् । अपरः=रघुः प्रणिधीयते इति प्रणिधानम्=अवधानम् समाधिरित्यर्थः प्रणिधानस्य=समाधेः योगाय प्रभवतीति योग्या=अभ्यासस्तया प्रणिधानयोग्यया शरीरं=देहः गोचरः=विषयः येषान्ते तान् शरीरगोचरान् पञ्च=पञ्चसंख्यकान् म्रियन्ते एभिर्विना वा ते मरुतः=वायवः=प्राणापानसमानोदानव्याना इत्यर्थः, तान् वशं=स्वाधीनतामनयत् प्राणापानादीनजयदित्यर्थः ।

समासः—प्रभोः शक्तिस्तस्याः संपत् तया प्रभुशक्तिसंपदा । प्रणिधानस्य योग्या तया प्रणिधानयोग्यया । शृणाति शीर्यते वा शरीरं गोचरः येषान्ते तान् शरीरगोचरान् । न अन्तरं येषां ते तान् अनन्तरान् ।

हिन्दी—अज ने प्रभुशक्ति (कोशदण्ड सेना की सामर्थ्य) से अपनी सीमा के समीप में रहने वाले शत्रुओं को अपने वश में कर लिया । और रघु ने समाधि के अभ्यास से (योगबल से) शरीर के भीतर रहने वाले पाँचों प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान नामक वायुओं को अपने वश में कर लिया अर्थात् जीत लिया ॥१९॥

अकरोदचिरेश्वरः क्षितौ द्विषदारम्भफलानि भस्मसात् ।
इतरो दहने स्वकर्मणां ववृते ज्ञानमयेन वह्निना ॥२०॥

संजी०—अकरोदिति । अचिरेश्वरोऽजः क्षितौ द्विषतामारम्भाः कर्माणि तेषां फलानि भस्मसादकरोत् कार्त्स्न्येन भस्मीकृतवान् । 'विभाषा साति कार्त्स्न्ये' (पा. ५।४।५२) इति सातिप्रत्ययः । इतरो रघुर्ज्ञानमयेन आत्मज्ञानप्रचुरेण वह्निना पावकेन करणेन स्वकर्मणां भवबीजभूतानां दहने भस्मीकरणे ववृते । स्वकर्माणि दग्धुं प्रवृत्त इत्यर्थः । 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन' इति गीतावचनात् ॥२०॥

अन्वयः—अचिरेश्वरः क्षितौ द्विषदारम्भफलानि भस्मसात् अकरोत् । इतरः ज्ञानमयेन वह्निना स्वकर्मणां दहने ववृते ।

व्याख्या—न चिरमचिरं=नूतनः ईश्वरः=स्वामी, इति अचिरेश्वरः=अजः क्षियतीति क्षितिस्तस्यां क्षितौ=पृथिव्यां द्विषन्तीति द्विषतस्तेषां द्विषतां=शत्रूणाम्

आरभ्यन्ते इत्यारम्भाः = कर्माणि तेषां फलानि=परिणामाः तानि द्विषदारम्भफलानि कृत्स्नं फलं भस्म संपद्यते इति भस्मसात्=अकरोत्=संपूर्णतया भस्मीकृतवान्। इतरः=रघुः ज्ञानं प्रचुरमिति ज्ञानमयम् तेन ज्ञानमयेन=तत्त्वज्ञानप्रचुरेण वहति हव्यमिति वह्निस्तेन वह्निना=अग्निना स्वस्य कर्माणि स्वकर्माणि तेषां स्वकर्मणां= संसारबीजभूतानां दहने=भस्मसात्करणे ववृते = प्रवर्तते स्म जन्मान्तरे कृतानि स्वकर्माणि दग्धुं प्रवृत्त इत्यर्थः।

समासः—द्विषताम् आरम्भास्तेषां फलानि तानि द्विषदारम्भफलानि। स्वस्य कर्माणि तेषां स्वकर्मणाम्, ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरः, अचिरमीश्वर इति अचिरेश्वरः।

हिन्दी—नये राजा अज ने पृथिवी पर अपने सब शत्रुओं की कुचालों को नष्ट कर दिया, तथा रघु ने अपने तत्त्वज्ञान रूपी अग्नि से संसार में आने के कारण बीजभूत स्वकर्मों को भस्म कर दिया ॥२०॥

पणबन्धमुखान्गुणानजः षडुपायुङ्क्त समीक्ष्य तत्फलम्।
रघुरप्यजयद् गुणत्रयं प्रकृतिस्थं समलोष्टकाञ्चनः ॥२१॥

संजी०—पणबन्धेति। 'पणबन्धः संधिः' इति कौटिल्यः। अजः पणबन्धमुखान्। संध्यादीन्षड्गुणान्। 'संधिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः। षड्गुणाः' इत्यमरः। तत्फलं तेषां गुणानां फलं समीक्ष्यालोच्य। उपायुङ्क्त। फलिष्यन्तमेव गुणं प्रायुङ्क्तेत्यर्थः। 'प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु' (पा. १।३।६४) इत्यात्मनेपदम्। समस्तुल्यतया भावितो लोष्टो मृत्पिण्डः काञ्चनं सुवर्णं च यस्य स समलोष्टकाञ्चनः निःस्पृह इत्यर्थः। 'लोष्टानि लेष्टवः पुंसि' इत्यमरः। रघुरपि गुणत्रयं सत्त्वादिकम्। 'गुणाः सत्त्वं रजस्तमः' इत्यमरः। प्रकृतौ साम्यावस्थायामेव तिष्ठतीति प्रकृतिस्थं पुनर्विकारशून्यं यथा तथाऽजयत् ॥२१॥

अन्वयः—अजः पणबन्धमुखान् षड् गुणान् तत्फलञ्च समीक्ष्य उपायुंक्त, समलोष्टकाञ्चनः रघुः अपि प्रकृतिस्थं गुणत्रयम् अजयत्।

व्याख्या—अजः=राजा पणनं पणः, खन्यते इति मुखम् बन्धनं बन्धः पणस्य बन्धः पणबन्धः। पणबन्धः=सन्धिः मुखम्=आदि येषान्ते पणबन्धमुखास्तान् पण-

बन्धमुखान्=षड्=षट्संख्यकान् गुण्यन्ते इति गुणास्तान् गुणान्=संधिविग्रहादीन् तेषां=गुणानां फलं=परिणाममिति तत्फलं समीक्ष्य = विचार्य उपायुंक्त=प्रायुंक्त, लोष्टतीति लोष्टः, काञ्चते=दीप्यते इति काञ्चनं, समः=तुल्यः, तुल्यत्वेन भावित इत्यर्थः, लोष्टः=मृत्पिण्डः काञ्चनं=सुवर्णञ्च यस्य स समलोष्टकाञ्चनः रघुः=संन्यासि-नृपः अपि गुणानां=सत्त्वरजस्तमसां त्रयमिति गुणत्रयं प्रकृष्टा कृतिः=कार्यं यस्याः सा प्रकृतिः प्रकरोतीति प्रकृतिः=गुणानां साम्यावस्था तस्यां तिष्ठतीति तत् प्रकृति-स्थं=विकारशून्यं यथा स्यात्तथा अजयत्=अजैषीत् जितवानित्यर्थः ।

समासः—पणस्य बन्धः पणबन्धः, स मुखं येषां ते तान् पणबन्धमुखान् । तेषां फलं तत्फलम् तत् । प्रकृतौ तिष्ठतीति तत् प्रकृतिस्थम् । समः लोष्टः काञ्चनं च यस्य स समलोष्टकाञ्चनः ।

हिन्दी—नृपति अज, संधि, विग्रह, यान, आसन, तथा आश्रय द्वैधीभाव इन छः गुणों का परिणाम सम्यक् प्रकार से विचार कर इनका प्रयोग करता था और मिट्टी तथा सोने को समान समझने वाले रघु ने भी प्रकृति में रहने वाले (सत्व, रज, तमः) तीनों गुणों को जीत लिया ।।२१।।

न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरा परमात्मदर्शनात् ।।२२।।

संजी०—नेति । स्थिरकर्मा फलोदयकर्मकारी नवः प्रभुरज आ फलोदयात् फलसिद्धिपर्यन्तं कर्मण आरम्भान्न निवृत्तः । 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' (वा. १०७९) इत्यपादानात्पञ्चमी 'व्याङ्परिभ्यो रमः' (पा. १।३।८३) इति परस्मैपदम् । स्थिरधीर्निश्चलचित्तो नवेतरो रघुश्चापरमात्मदर्शनात् परमात्मसाक्षा-त्कारपर्यन्तं योगविधेरैक्यानुसंधानान्न विरराम ।।२२।।

अन्वयः—स्थिरकर्मा नवः प्रभुः आफलोदयात् कर्मणः न विरराम, स्थिर-धीः नवेतरः च आपरमात्मदर्शनात् योगविधेः न विरराम ।

व्याख्या—तिष्ठतीति स्थिरं स्थिरं=दृढं फलपर्यन्तमित्यर्थः कर्म=क्रिया यस्य स स्थिरकर्मा नवः=नूतनः प्रभुः=स्वामी, अजः फलस्य=परिणामस्य उदयः=सिद्धिरिति फलोदयः, फलोदयमभिव्याप्य आफलोदयं तस्मात् आफलोदयात् कर्मणः=आरम्भात् न=नहि विरराम=निवृत्तः, स्थिरा=निश्चला धीः=बुद्धिः यस्य स स्थिरधीः नवात्=

नूतनात्=अजात् इतरः=भिन्नः इति नवेतरः=रघुश्च अततिः=नैरन्तर्येण गच्छतीति आत्मा परमश्चासौ आत्मा परमात्मा तस्य दर्शनं=साक्षात्कारः इति परमात्मदर्शनम्, परमात्मदर्शनमभिव्याप्येति आपरमात्मदर्शनम् तस्मात् आपरमात्मदर्शनात्=ब्रह्म-साक्षात्कारपर्यन्तमित्यर्थः, योजनं योगः, विधानं विधिः योगस्य=ध्यानस्य विधिः=अनुसंधानमिति योगविधिस्तस्मात् योगविधेः न विरराम=ऐक्यानुसन्धानरूप-समाधेः न निवृत्तः।

समासः—फलस्य उदयः फलोदयः फलोदयमभिव्याप्य, आफलोदयं तस्मात् आफलोदयात्। स्थिरं कर्म यस्य स स्थिरकर्मा। योगस्य विधिरिति योगविधिस्तस्मात् योगविधेः। नवात् इतरः नवेतरः। परमश्चासौ आत्मा परमात्मा तस्य दर्शनं, परमात्मदर्शनम् अभिव्याप्येति आपरमात्मदर्शनं तस्मात् आपरमात्मदर्शनात्। स्थिरा धीः यस्य स स्थिरधीः।

दृढ़ प्रतिज्ञा वाला नया राजा अज, जब तक फल की सिद्धि नहीं होती थी तब तक कर्म करने से विरक्त नहीं होता था, अर्थात् किसी काम को पूरा किए बिना नहीं छोड़ता था। और स्थिर चित्त वाले रघु ने भी परमात्मा का साक्षात्कार किए बिना योग की साधना को नहीं छोड़ा था ॥२२॥

इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिषिद्धप्रसरेषु जाग्रतौ।

प्रसितावुदयापवर्गयोरुभयीं सिद्धिमुभाववापतुः ॥२३॥

संजी०—इतीति। इत्येवं प्रतिषिद्धः प्रसरः स्वार्थप्रवृत्तिर्येषां तेषु शत्रुषु चेन्द्रियेषु च जाग्रतावप्रमत्तावुदयापवर्गयोरभ्युदयमोक्षयोः प्रसितावासक्तौ। 'तत्परे प्रसितासक्तौ' इत्यमरः, उभावजरघू उभयीं द्विविधामभ्युदयमोक्षरूपाम्। 'उभादुदात्तो नित्यम्' (पा. ५।२।४४) इति तयप्प्रत्ययस्यायजादेशः। 'टिड्ढा—' (पा. ४।१।१५) इति ङीप्। सिद्धिं फलमवापतुः। उभावुभे सिद्धी यथासंख्यमवापतुरित्यर्थः ॥२३॥

अन्वयः—इति प्रतिषिद्धप्रसरेषु शत्रुषु इन्द्रियेषु च जाग्रतौ उदयापवर्गयोः प्रसितौ उभौ उभयीम् सिद्धिम् अवापतुः।

व्याख्या— इति=एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण प्रतिषिद्धः=निवारितः निरुद्ध इत्यर्थः प्रसरः=स्वार्थेषु प्रवृत्तिः येषां ते तेषु प्रतिषिद्धप्रसरेषु शातयन्तीति शत्रवस्तेषु शत्रुषु=अरिषु, इन्द्रस्य=आत्मनः लिंगानि इति इन्द्रियाणि तेषु इन्द्रियेषु=चक्षुरादिषु च

जाग्रतौ=सावधानौ प्रमादशून्यावित्यर्थः उदयः=अभ्युदयश्च अपवर्गः=मोक्षश्चेति उदयापवर्गौ तयोः उदयापवर्गयोः प्रसितौ=तत्परौ=आसक्तौ इत्यर्थः उभौ-द्वौ= अजरघू अपिः समुच्चये उभौ अवयवौ अस्याः सा उभयी ताम् उभयीम्=द्विविधाम् अभ्युदयमोक्षरूपामित्यर्थः सिध्यति इति सिद्धिस्तां सिद्धिम्=सफलताम् अवापतुः- प्रापतुः, अजेन अभ्युदयरूपा रघुणा च मोक्षरूपा सिद्धिः प्राप्ता इति यावत्।

समासः—प्रतिषिद्धः प्रसरः येषां ते तेषु प्रतिषिद्धप्रसरेषु। उदयश्च अपवर्गश्चेति उदयापवर्गौ तयोः उदयापवर्गयोः।

हिन्दी—इस प्रकार रोक दी गई है स्वार्थ में प्रवृत्ति जिनकी ऐसे शत्रुओं तथा इन्द्रियों के विषय में जागरूक, अज उन्नति में और रघु मोक्ष में लगे दोनों ने दो प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कीं। अर्थात् अज ने शत्रुओं का बढ़ना रोककर और रघु ने अपनी इन्द्रियों को वश में करके अपनी-अपनी सिद्धियों को प्राप्त कर लिया ॥२३॥

अथ काश्चिदजव्यपेक्षया गमयित्वा समदर्शनः समाः।
तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः ॥२४॥

सञ्जी०—अथेति। अथ रघुः समदर्शनः सर्वभूतेषु समदृष्टिः सन्नजव्यपेक्षयाऽजाकाङ्क्षानुरोधेन काश्चित्समाः कतिचिद्वर्षाणि। 'समा वर्षं समं तुल्यम्' इति विश्वः। गमयित्वा नीत्वा योगसमाधिनैक्यानुसंधानेन। 'संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः' इति वसिष्ठः, अव्ययमविनाशिनं तमसः परमविद्यायाः परम्। मायातीतमित्यर्थः। पुरुषं परमात्मानम्। आपत् प्राप। सायुज्यं प्राप्त इत्यर्थः ॥२४॥

अन्वयः—अथ रघुः समदर्शनः सन् अजव्यपेक्षया काश्चित् समाः गमयित्वा योगसमाधिना अव्ययं तमसः परं पुरुषम् आपत्।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् रघुः समं=समानं=तुल्यं दर्शनम्=अवलोकनं-दृष्टिः यस्य स समदर्शनः सन् समदृष्टिः सन्नित्यर्थः। अजस्य=स्वपुत्रस्य विशिष्टा या अपेक्षा=अनुरोधः तया अजव्यपेक्षया=अजेच्छानुरोधेनेत्यर्थः काश्चित् समाः= कतिचित् वर्षाणि गमयित्वा=नीत्वा=व्यतीत्येत्यर्थः सम्यक् आधानं समाधिः। योगस्य समाधिः योगसमाधिस्तेन योगसमाधिना=ऐक्यानुसंधानेन=जीवात्मपरमात्मनोः संयोगरूपैक्यस्यानुसन्धानेनेत्यर्थः। न व्येति=नाशं न प्राप्नोतीति अव्ययस्तम्

अव्ययम्=अविनाशिनं तमसः=अविद्यायाः परं मायातीतम् पुरति=अग्रे गच्छतीति पुरुषस्तं पुरुषं परमात्मनम् आपत्=प्रापत् सायुज्यं प्राप इत्यर्थः ।

समासः—समं दर्शनं यस्य स समदर्शनः । अजस्य व्यपेक्षा, तया । योगस्य समाधिः तेन योगसमाधिना ।

हिन्दी—इसके अनन्तर, सब प्राणियों में समान दृष्टि रखने वाले रघु अपने पुत्र अज के अनुरोध से कुछ वर्ष बिताकर (अर्थात् संसार में रहकर) योग बल से, अविनाशी तथा अविद्या से परे (मायातीत) परमात्मा में मिल गया । मुक्त हो गया ॥२४॥

श्रुतदेहविसर्जनः पितुश्चिरमश्रूणि विमुच्य राघवः ।
विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं यतिभिः सार्धमनग्निमग्निचित् ॥२५॥

संजी०—श्रुतेति । अग्निचिदग्निं चितवानाहितवान् । 'अग्नौ चेः' (पा. ३।२।९१) इति क्विप्प्रत्ययः । राघवोऽजः पितुः श्रुतदेहविसर्जन आकर्णितपितृतनुत्यागः संश्चिरमश्रूणि बाष्पान्विमुच्य विसृज्यास्य पितुरनग्निम् । अग्निसंस्काररहितमित्यर्थः । नैष्ठिकं निष्ठायामन्ते भवं विधिमाचारमन्त्येष्टिं यतिभिः संन्यासिभिः सार्धं सह विदधे चक्रे । 'अनग्निं विधिम्' इत्यत्र शौनकः—'सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्य च । न तस्य दहनं कार्यं नैव पिण्डोदकक्रिया । निदध्यात्प्रणवेनैव बिले भिक्षोः कलेवरम् । प्रोक्षणं खननं चैव सर्वं तेनैव कारयेत् ॥' इति ॥२५॥

अन्वयः—अग्निचित् राघवः पितुः श्रुतदेहविसर्जनः सन् चिरम् अश्रूणि विमुच्य अस्य अनग्निम्, नैष्ठिकं विधिं, यतिभिः सार्धं विदधे ।

व्याख्या—अग्निम् अचैषीत्, अग्निचित्-आहिताग्निः=अग्न्युपासकः रघोः अपत्यं पुमान् राघवः=अजः, दिह्यते=उपचीयते इति देहः=शरीरम् विसृज्यते यत्तत् विसर्जनम्, श्रुतम् = आकर्णितं देहस्य-पितृशरीरस्य विसर्जनं=त्यागः येन स श्रुतदेहविसर्जनः सन् चिरं=बहुकालम् अश्नुवते कण्ठं तानि अश्रूणि=नेत्रजलानि विमुच्य=विसृज्य रुदित्वेत्यर्थः अस्य=सायुज्यं गतस्य पितुः=जनकस्य न विद्यते अग्निः यस्मिन् अनग्निः तम् अनग्निम्=अग्निसंस्काररहितं निष्ठायाम्=अन्ते भवं नैष्ठिकं=अन्त्येष्टिविधिं=संस्कारं=यतिभिः=संन्यासिभिः सार्धं=साकम् विदधे=कृतवान् । धर्मशास्त्रा-

नुसार संन्यासिनः ध्यानयोगरतस्याग्निसंस्कारो न भवति किन्तु तस्य बिले जले वा निक्षेपणमिति भावः।

समासः—देहस्य विसर्जनमिति देहविसर्जनं, श्रुतं देहविसर्जनं येन स श्रुतदेहविसर्जनः। निष्ठायां भवः नैष्ठिकस्तं नैष्ठिकम्।

हिन्दी—अपने पिता का देह त्याग सुनकर अग्निहोत्र करने वाले अज ने, बहुत देर तक आँसू बहा कर (रोकर) पिता का अग्नि संस्कार न कर संन्यासियों के साथ अन्त्येष्टि संस्कार किया। अर्थात् भूमि में समाधि दे दी। क्योंकि योगी संन्यासी का अग्निसंस्कार नहीं होता है भूमि में समाधि या जल प्रवाह करते हैं ॥२५॥

अकरोत्स तदौर्ध्वदैहिकं पितृभक्त्या पितृकार्यकल्पवित्।

न हि तेन पथा तनुत्यजस्तनयावर्जितपिण्डकाङ्क्षिणः ॥२६॥

संजी०—अकरोदिति। पितृकार्यस्य तातश्राद्धस्य कल्पविद्विधानज्ञः सोऽजः पितृभक्त्या पितरि प्रेम्णा कारणेन न पितुः परलोकसुखापेक्षया। मुक्तत्वादिति भावः। तस्य रघोरौर्ध्वदैहिकम्। देहादूर्ध्वं भवतीति तत्तिलोदकपिण्डदानादिकमकरोत्। 'ऊर्ध्वं देहाच्च' इति वक्तव्याट्ठक्प्रत्ययः अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः। ननु कथं भक्तिरेव श्राद्धादिफलप्रेप्सापि कस्मान्नाभूदित्याशङ्क्याह—न हीति। तेन यथा योगरूपेण मार्गेण तनुत्यजः शरीरत्यागिनः पुरुषास्तनयेनावर्जितं दत्त पिण्डं काङ्क्षन्तीति तथोक्ता न हि भवन्ति ॥२६॥

अन्वयः—पितृकार्यकल्पवित् सः पितृभक्त्या तदौर्ध्वदैहिकम् अकरोत्, तेन पथा तनुत्यजः तनयावर्जितपिण्डकाङ्क्षिणः नहि 'भवन्तीति शेषः'।

व्याख्या—कल्पते इति कल्पः=विधिः, पितुः=जनकस्य कार्यं=श्राद्धं तस्य कल्पः=विधिः, तं वेत्ति=जानातीति पितृकार्यकल्पवित् सः=अजः, भजनं भक्तिः, पितरि=जनके या भक्तिः=प्रेम तया पितृभक्त्या=पितरि प्रेम्णा न तु तस्य परलोकसुखापेक्षया तस्य मुक्तत्वादित्यर्थः, देहात् ऊर्ध्वम्, ऊर्ध्वदेहः, ऊर्ध्वदेहे=भवम् औध्र्वदैहिकं, तस्य=रघोः औध्र्वदैहिकं=मृतमुद्दिश्य मरणदिनमारभ्य सपिण्डीकरणपर्यन्तं प्रतिदिनं दीयमानं जलपिण्डादिकम्, इति तदौर्ध्वदैहिकम् अकरोत्=कृतवान्, तेन

पथा-समाधिमार्गेण, योगमार्गेणेत्यर्थः तन्यते इति तनुः, तनुं=शरीरं त्यजन्ति ते तनुत्यजः=कलेवरत्यागिनः 'पुरुषाः' तनोति—कुलं विस्तारयतीति तनयस्तेन तनयेन= पुत्रेण आवर्जितं=दत्तं पिण्डं=निवापं कांक्षन्ति=इच्छन्तीति तनयावर्जितपिण्ड-कांक्षिणः नहि भवन्तीति शेषः, योगमार्गेण ये देहं त्यजन्ति ते तु मुक्ता भवन्तीति भावः।

समासः—पितुः कार्यं,पितृकार्यं, पितृकार्यस्य कल्पं वेत्तीति पितृकार्यकल्पवित्। पितरि भक्तिस्तया पितृभक्त्या। देहात् ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वदेहः, ऊर्ध्वदेहे भवः और्ध्वदैहिकः तमौर्ध्वदैहिकम्। तनुं त्यजन्तीति तनुत्यजः। तनयेन आवर्जितं पिण्डं कांक्षन्तीति तनयावर्जितपिण्डकांक्षिणः।

हिन्दी—पिता के श्राद्ध के विधान (विधि) को जानने वाले अज ने पिता में भक्ति होने के कारण से, पिण्डदानादिश्राद्ध कर्म किया, न कि श्राद्ध के फल की इच्छा से, क्योंकि योगमार्ग से शरीर त्यागने वाले पुरुष, पुत्र से दिये गये पिण्ड तिलोदक की इच्छा नहीं रखते हैं। वे तो मुक्त हो जाते ॥२६॥

स परार्ध्यगतेरशोच्यतां पितुरुद्दिश्य सदर्थवेदिभिः।

शमिताधिरधिज्यकार्मुकः कृतवानप्रतिशासनं जगत् ॥२७॥

संजी०—स इति। परार्ध्यगतेः प्रशस्तगतेः प्राप्तमोक्षस्य पितुरशोच्यतामशोचनीयत्वमुद्दिश्याभिसंधाय। शोको न कर्तव्य इत्युपदिश्येत्यर्थः। सदर्थवेदिभिः परमार्थज्ञैर्विद्वद्भिः शमिताधिर्निवारितमनोव्यथः। 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः। सोऽजोऽधिज्यकार्मुकः अधिज्यमारोपितमौर्वीकं कार्मुकं यस्य स तथोक्तः सन्। जगत् कर्मभूतमप्रतिशासनं द्वितीयाज्ञारहितम्। आत्माज्ञाविधेयमित्यर्थः। कृतवांश्चकार ॥ २७ ॥

अन्वयः—परार्ध्यगतेः, पितुः, अशोच्यताम्, उद्दिश्य, सदर्थवेदिभिः, शमिताधिः, सः, अधिज्यकार्मुकः सन् जगत् अप्रतिशासनं कृतवान्।

व्याख्या—परस्मिन् अर्धे भवा परार्ध्या, परार्ध्या=प्रशस्ता=श्रेष्ठा गतिः=गमनं यस्य स परार्ध्यगतिस्तस्य परार्ध्यगतेः=प्राप्तमोक्षस्य पितुः=जनकस्य रघोः न शोच्यः अशोच्यस्तस्य भावस्तत्ता ताम् अशोच्यताम्=अशोचनीयत्वम् उद्दिश्य=संलक्ष्य शोको न

कर्तव्य इत्युपदिश्य, सन् चासौ अर्थः सदर्थः, सदर्थं=परमार्थं=तत्त्वज्ञानं विदन्ति=जानन्तीति सदर्थवेदिनस्तैः सदर्थवेदिभिः=तत्त्वज्ञैः विद्वद्भिः शमितः=निवारितः=दूरीकृतः आधिः=मनोव्यथा यस्य स शमिताधिः सः=अजः, जिनातीति ज्या, ज्यायामिति, अधिज्यम्-आरोपितमौर्वीकं कार्मुकं=धनुः यस्य सः अधिज्यकार्मुकः सन् गच्छतीति जगत् तत् जगत्-संसारम्, न विद्यते प्रतिशासनं-द्वितीयस्य आज्ञा यस्मिन् तत् अप्रतिशासनम्-अन्याज्ञारहितम् स्वाज्ञाविधेयम् कृतवान्-चकार ।

समासः--परस्मिन् अर्थे भवा परार्ध्या गतिः यस्य स तस्य परार्ध्यगतेः । संश्चासौ अर्थः सदर्थस्तं विदन्तीति सदर्थवेदिनः तैः सदर्थवेदिभिः । शमितः आधिः यस्य सः, शमिताधिः । अधिज्यं कार्मुकं यस्य सः अधिज्यकार्मुकः । नास्ति प्रतिशासनं यस्मिन् तत् अप्रतिशासनम् तत् ।

हिन्दी—परमपद (मोक्ष) को प्राप्त करने वाले अपने पिता रघु का शोक नहीं करना चाहिये, यह उपदेश देकर तत्वज्ञानी विद्वानों के द्वारा अज की मनोव्यथा शान्त की गई, तब अज ने धनुष चढ़ाकर सारे जगत् पर एकछत्र राज्य किया । अर्थात् एकमात्र अज का शासन हो गया ॥२७॥

क्षितिरिन्दुमती च भामिनी पतिमासाद्य तमग्र्यपौरुषम् ।
प्रथमा बहुरत्नसूरभूदपरा वीरमजीजनत्सुतम् ॥२८॥

संजी०—क्षितिरिति । क्षितिर्मही भामिनी कामिनीन्दुमती च । 'भामिनी कामिनी च' इति हलायुधः । अग्र्यपौरुषं महापराक्रममुत्कृष्टभोगशक्तिं च तमजं पतिमासाद्य प्राप्य । तत्र प्रथमा क्षितिः । बहूनि रत्नानि श्रेष्ठवस्तूनि सूत इति बहुरत्नसूरभूत् । 'रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि' इत्यमरः । अपरेन्दुमती वीरं सुतमजीजनजनयति स्म । जायतेर्णौ लुङि रूपम् । सहोक्त्या सादृश्यमुच्यते ॥ २८ ॥

अन्वयः—क्षितिः, भामिनी, इन्दुमती, च अग्र्यपौरुषं, तं, पतिम्, आसाद्य प्रथमा बहुरत्नसूः अभूत् अपरा वीरं सुतम् अजीजनत् ।

व्याख्या—क्षियतीति क्षितिः=वसुन्धरा अवश्यं भामते इति भामिनी=कामिनी इन्दुमती च अग्र्यं=श्रेष्ठम्, उत्कृष्टश्च पौरुषं-पराक्रमः भोगशक्तिश्च यस्य स तम् *अग्र्यपौरुषं तम्=अजं पतिं=भर्तारम् आसाद्य=प्राप्य तत्र प्रथमा=मेदिनी बहूनि=*

अधिकानि रत्नानि=श्रेष्ठवस्तूनि सूते=जनयतीति बहुरत्नसूः अभूत्=जाता अपरा=भामिनी=इन्दुमती च वीरयतीति वीरः यद्वा विशेषेण ईर्ते, ईरयति=कम्पयति शत्रूनिति वीरस्तं वीरं=शूरं सूयते स्म इति सुतस्तं सुतं=पुत्रम् अजीजनत्=असूत ।

समासः—अग्र्यं पौरुषं यस्य स तम्, अग्र्यपौरुषम् । बहूनि रत्नानि सूते इति बहुरत्नसूः ।

हिन्दी—पृथिवी और इन्दुमती ने महान् पराक्रमी तथा उत्कृष्ट भोगशक्ति वाले अज को पति रूप में पाकर पहली पृथिवी ने बहुत से रत्नों को पैदा किया और इन्दुमती ने शूरवीर पुत्र को पैदा किया ॥२८॥

किंनामकोऽसावत आह—

दशरश्मिशतोपमद्युतिं यशसा दिक्षु दशस्वपि श्रुतम् ।

दशपूर्वरथं यमाख्यया दशकण्ठारिगुरुं विदुर्बुधाः ॥२९॥

संजी०—दशेति । दश रश्मिशतानि यस्य स दशरश्मिशतः सूर्यः स उपमा यस्याः सा दशरश्मिशतोपमा द्युतिर्यस्य तम् । यशसा करणेन दशस्वपि दिक्ष्वाशासु श्रुतं प्रसिद्धम् । दशकण्ठारे रावणारे रामस्य गुरुं पितरं यं सुतम् । आख्यया नाम्ना दशपूर्वो 'दश'शब्दपूर्वो रथो रथशब्दस्तम् । दशरथमित्यर्थः । बुधा विद्वांसो विदुर्वदन्ति । 'विदो लटो वा' (पा. ३।४।८३) इति झेर्जुसादेशः ॥ २९ ॥

अन्वयः—दशरश्मिशतोपमद्युतिम् यशसा, दशस्वपि, दिक्षु, श्रुतम्, दशकण्ठारिगुरुं, यं, सुतम् आख्यया, दशपूर्वरथं, बुधाः विदुः ।

व्याख्या—रश्मीनां–किरणानां शतानि, रश्मिशतानि दशरश्मिशतानि यस्य स दशरश्मिशतः-सूर्यः उपमा=उपमानं यस्याः सा दशरश्मिशतोपमा, द्योततेऽनया सा द्युतिः, दशरश्मिशतोपमा द्युतिः=कान्तिः यस्य स तं दशरश्मिशतोपमद्युतिम्, अश्नुते=व्याप्नोतीति यशस्तेन यशसा=कीर्त्या दशसु=सर्वासु इत्यर्थः अपि–दिशन्त्यवकाशमिति दिशः तासु दिक्षु=आशासु श्रुतं=प्रसिद्धम्, दश कण्ठाः=मूर्धानः यस्य स दशकण्ठः=रावणः तस्य अरिः=शत्रुः, दशकण्ठारिः, दशकण्ठारेः=रावणारेः = रामस्येत्यर्थः गुरुः=पिता इति दशकण्ठारिगुरुस्तं दशकण्ठारिगुरुम्, यं=प्रसिद्धं सुतं=पुत्रम् आख्यया=नाम्ना दश शब्दः पूर्वः यस्य दशपूर्वः, दशपूर्वः रथः तं दशपूर्वरथं=बुध्यन्ते इति बुधाः=पण्डिताः विदुः=जानन्ति ।

समासः—रश्मीनां शतानि रश्मिशतानि दश रश्मिशतानि यस्य दशरश्मिशतः, दशरश्मिशतः उपमा यस्याः सा दशरश्मिशतोपमा, दशरश्मिशतोपमा द्युतिः यस्य स तं दशरश्मिशतोपमद्युतिम्। दश कण्ठाः यस्य स दशकण्ठः, दशकण्ठस्य अरिः, दशकण्ठारिः, तस्य गुरुः तं दशकण्ठारिगुरुम्। दशशब्दः पूर्वः यस्य स दशपूर्वः, दश पूर्वो रथस्तं दशपूर्वरथम्।

हिन्दी—दश सौ (हजार) किरण वाले सूर्य के समान कान्ती वाला, दशों दिशाओं में प्रसिद्ध, दश मुख वाले रावण के शत्रु राम का पिता, अज का पुत्र था, पण्डितों ने जिसे नाम से दशरथ जाना है ॥२९॥

ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिवः।
अनृणत्वमुपेयिवान्बभौ परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितिः ॥३०॥

संजी०—ऋषीति। श्रुतयागप्रसवैरध्ययनयज्ञसंतानैः करणैः यथासंख्यमृषीणां देवगणानामिन्द्रादीनां स्वधाभुजां पितॄणामनृणत्वमृणविमुक्तत्वम् उपेयिवान् प्राप्तवान्। 'एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारी वा' इति श्रुतेः। स पार्थिवोऽजः परिधेः परिवेषात्। 'परिवेषस्तु परिधिः' इत्यमरः। मुक्तो निर्गतः। कर्मकर्ता। उष्णदीधितिः सूर्य इव। बभौ दिदीपे। इत्युपमा ॥३०॥

अन्वयः—श्रुतयागप्रसवैः ऋषिदेवगणस्वधाभुजाम् अनृणत्वम् उपेयिवान् सः पार्थिवः परिधेः मुक्तः उष्णदीधितिः इव बभौ।

व्याख्या—श्रूयते स्म श्रुत=शास्त्राध्ययनम्। इज्यतेऽनेनेति यागः=यज्ञः। प्रसवनं प्रसवः=प्रसूतिः। श्रुतं यागः प्रसवश्चेत्येषां इतरेतर द्वन्द्वः श्रुतयागप्रसवास्तैः श्रुतयागप्रसवैः=अध्ययनयज्ञपुत्रैः करणैः, यथासंख्यम् ऋषन्तीति ऋषयः=सत्यवचसः दीव्यन्तीति देवाः=इन्द्रादयोऽमराः। स्वधाम् पितृहविः भुञ्जते, ये ते स्वधाभुजः=पितरः। ऋषयः देवगणाः स्वधाभुजश्च, एतेषां द्वन्द्वः ऋषिदेवगणस्वधाभुजस्तेषां ऋषिदेवगणस्वधाभुजाम्, अर्यते इति ऋणं=देयं, न ऋणम् अनृणं तस्य भावः, अनृणत्वं=ऋणरहितत्वम् उपेयिवान्=प्राप्तवान् सः=पूर्वोक्तः प्रसिद्धः पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः भूपालः = अजः, परितः=सर्वतः धीयते=व्याप्यतेऽनेनेति परिधिः=परिवेषस्तस्मात् परिधेः=मण्डलादित्यर्थः मुक्तः = निर्गतः, मण्डलरहित इत्यर्थः, दीव्यन्ते=

दीप्यन्ते याः ता दीधितयः, उष्णाः=घर्माः दीधितयः किरणाः यस्य सः उष्ण-दीधितिः=सूर्यः इव बभौ=शुशुभे=दिदीपे ।

समासः—श्रुतञ्च यागश्च प्रसवश्चेति श्रुतयागप्रसवाः, तैः श्रुतयागप्रसवैः । ऋषयश्च देवगणाश्च स्वधाभुजश्चेति ऋषिदेवगणस्वधाभुजस्तेषाम् ऋषिदेवगणस्वधा-भुजाम् । न ऋणं यस्य सः अनृणः, तस्य भावः अनृणत्वम् । उष्णाः दीधितयः यस्य स उष्णदीधितिः ।

हिन्दी—इस प्रकार वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करके ऋषियों के ऋण से और यज्ञ करके देवताओं के ऋण से तथा पुत्रोत्पन्न करके पितरों के ऋण से मुक्त हुआ वह राजा अज, मण्डल से छूटे हुए सूर्य के समान सुशोभित हुआ ॥२०॥

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहु श्रुतम् ।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना ॥२१॥

संजी०—बलमिति । तस्य विभोरजस्य केवलं वसु धनमेव परप्रयोजनं परोप-कारकं नाभूत् । किंतु गुणवत्तापि गुणवत्त्वमपि परप्रयोजना परेषामन्येषां प्रयोजनं यस्यां सा । विधेयांशत्वेन प्राधान्याद् गुणवत्ताया विशेषणं वस्त्वित्यत्र तूहनीयम् । तथा हि—बलं पौरुषमार्तानामापन्नानां भयस्योपशान्तये निषेधाय । न तु स्वार्थं परपीडनाय वा । बहु भूरि श्रुतं विद्या विदुषां सत्कृतये सत्काराय, न तूत्सेकाय बभूव । तस्य धनं परोपयोगीति किं वक्तव्यम् । बलश्रुतादयोऽपि गुणाः परोपयोगिन इत्यर्थः ॥२१॥

अन्वयः—तस्य विभोः केवलं वसु परप्रयोजनं न अभूत् 'किन्तु' गुणवत्ता अपि परप्रयोजना, 'तथाहि' बलम् आर्तभयोपशान्तये, बहु श्रुतं विदुषां सत्कृतये ।

व्याख्या—विशिष्टं भवतीति विभुस्तस्य विभोः=प्रभोः, अजस्य, केवलम् वसतीति वसु, उष्यतेऽस्मिन् गुणैरिति वा वसु=धनमेव प्रकर्षेण युज्यते इति प्रयो-जनं परेषाम्=अन्येषां प्रयोजनम्=उपकारकमिति परप्रयोजनं न अभूत्=नासीत् 'किन्तु' गुणाः सन्ति यस्मिन् स गुणवान् तस्य भावः गुणवत्ता=गुणवत्त्वमपि परेषाम्= अन्येषां प्रयोजनम्=उपकारः, यस्यां सा परप्रयोजना । अभूत् । 'तथाहि' बल्यतेऽने-नेति बलं=सामर्थ्यं पौरुषमिति यावत् आर्तानां=विपन्नानां=पीडितानां भयस्य=भीतेः उपशान्तिः=शमनं त्राणञ्चेति, आर्तभयोपशन्तिस्तस्यै आर्तभयोपशान्तये, नतु स्वार्थं

परपीडनाय वेति भावः। बहु=अधिकं=प्रभूतं श्रुतं=शास्त्रं=विद्या विशेषेण विदन्तीति विद्वांसस्तेषां विदुषां=पण्डितानां सत्कृतये=सत्काराय नंतु गर्वायासीत्। यस्य बहुश्रुतमपि परोपयोगि तस्य धनं परोपयोगीति किं वक्तव्यमिति भावः।

समासः—परेषां प्रयोजनं परप्रयोजनम्। गुणाः सन्ति यस्मिन् स गुणवान् तस्य भावः गुणवत्ता। परेषां प्रयोजनं यस्यां सा परप्रयोजना। आर्तानां भयस्य उपशान्तिस्तस्यै आर्तभयोपशान्तये।

हिन्दी—महाराज अज का केवल धन ही परोपकार के लिए न था, किन्तु उसके गुण भी दूसरों के उपकार के लिए थे। क्योंकि अज का पराक्रम दीन दुर्बलों के भय को दूर करने के लिए तथा शास्त्रों का अध्ययन विद्वानों के सत्कार के लिए था अर्थात् जिसके शास्त्र पठनादि गुण भी दूसरों के उपयोग के लिए थे, तो फिर उसके धन के परोपकार की क्या बात है ॥३१॥

स कदाचिदवेक्षितप्रजः सह देव्या विजहार सुप्रजाः।
नगरोपवने शचीसखो मरुतां पालयितेव नन्दने ॥३२॥

मंजी०—स इति। अवेक्षितप्रजोऽकुतोभयत्वेनानुसंहितप्रजः। 'नित्यमसिच्प्रजामेधयोः' इत्यसिच्प्रत्ययः। न केवलं स्त्रैण इति भावः। शोभना प्रजा यस्यासौ सुप्रजाः सुपुत्रवान्। पुत्रन्यस्तभार इति भावः। सोऽजः कदाचिद्देव्या महिष्येन्दुमत्या सह नगरोपवने। नन्दने नन्दनाख्येऽमरावत्युपकण्ठवने शचीसखः। शच्या सहेत्यर्थः। मरुतां देवानां पालयितेन्द्र इव विजहार चिक्रीड ॥३२॥

अन्वयः—अवेक्षितप्रजः सुप्रजाः सः, कदाचित् देव्या सह नगरोपवने, नन्दने शचीसखः मरुतां पालयिता इव विजहार।

व्याख्या—अवेक्षिताः=अवलोकिताः=अनुपद्रवत्वेनानुसंहिता इत्यर्थः प्रजाः=जनाः येन सः अवेक्षितप्रजः, न केवलं स्त्रीपरायण इत्यर्थः शोभना प्रजा=सन्ततिः=पुत्रः यस्य सः सुप्रजाः सुयोग्यपुत्रवान्, सः=अजः कदाचित्=कस्मिंश्चित्काले देव्या=महिष्या=इन्दुमत्येत्यर्थः सह=साकम् उपगतं वनमिति उपवनं न गच्छन्तीति नगाः, नगाः सन्त्यत्र तन्नगरं नगरस्य=पत्तनस्य उपवनमिति नगरोपवनं तस्मिन् नगरोपवने *पुरस्य कृत्रिमवने इत्यर्थः नन्दयतीति नन्दनं तस्मिन्=नन्दने=इन्द्रवने=अमरावत्यु-*

पवने, शचते इति शची=पुलोमजा तस्याः सखा=मित्रम् स शचीसखः शच्या सहेत्यर्थः, म्रियन्ते एभिः प्रवृद्धैः, विना वा मरुतस्तेषां मरुतां = देवानां पालयतीति पालयिता=इन्द्रः इव–यथा विजहार=चिक्रीड । वने विहारं कुर्वन्नासीदित्यर्थः ।

समासः—अवेक्षिताः प्रजाः येन सोऽवेक्षित प्रजः । शोभना प्रजा यस्य सः सुप्रजाः । उपगतं वनमिति उपवनं नगरस्य उपवनमिति नगरोपवनं तस्मिन् नगरोपवने । शच्याः सखा शचीसखः ।

हिन्दी—किसी समय, प्रजापालक, उत्तमसन्तानवाला, राजा अज महारानी इन्दुमती के साथ अयोध्या के उपवन में उसी प्रकार बिहार कर रहे थे जिस प्रकार कि देवताओं का पालन करने वाला इन्द्र अमरावती के नन्दन वन में इन्द्राणी के साथ विहार करता है ॥३२॥

अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम् ।
उपवीणयितुं ययौ रवेरुदयावृत्तिपथेन नारदः ॥३३॥

संजी०—अथेति । अथ दक्षिणस्योदधेः समुद्रस्य रोधसि तीरे श्रितगोकर्णनिकेतमधिष्ठितगोकर्णाख्यस्थानमीश्वरं शिवमुपवीणयितुं वीणयोप समीपे गातुम् । 'सत्यापपाश—' (पा. ३।१।२५) इत्यादिना 'वीणा' शब्दादुपगानार्थे णिच्प्रत्ययः । ततस्तुमुन् । नारदो देवर्षी रवेः सूर्यस्य संबन्धिना उदयावृत्तिपथेनाकाशमार्गेण ययौ जगाम । सूर्योपमानेनास्यातितेजस्त्वमुच्यते ॥३३॥

अन्वयः—अथ दक्षिणोदधेः रोधसि श्रितगोकर्णनिकेतम् ईश्वरम् उपवीणयितुं नारदः रवेः उदयावृत्तिपथेन ययौ ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरं दक्षते इति दक्षिणः, उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्निति उदधिः, दक्षिणस्य=दक्षिणदिग्भवस्य उदधेः=समुद्रस्य रुणद्धि जलादिकमिति रोधः तस्मिन् रोधसि = कूले=तीरे गोः कर्ण इवेति गोकर्णः, श्रितम्=अधिष्ठितं गोकर्णः= एतन्नामकं निकेतं=स्थानं येन स तं श्रितगोकर्णनिकेतम्, ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरस्तमीश्वरं=शंकरम् वीणया=महत्या, 'महतीनाम्नी नारदस्य वीणा' उप=समीपे-गातुमिति उपवीणयितुम् नरस्य इदं नारं, ज्ञानं ददातीति नारदः । नारं=पानीयं पितृभ्यः सदा ददातीति वा नारदः । नारं=जनसमूहं द्यति=खण्डयति कलहेनेति वा

नारदः । नुः इदं नारम्=अज्ञानं द्यति=खण्डयति ज्ञानोपदेशेनेति वा नारदः=देवर्षिः, रूयते=स्तूयते रविः, रवते वा रविस्तस्य रवेः=सूर्यस्य, उद्यन्ति ग्रहाः अस्मात् उ उदयः=पूर्वपर्वतः तस्य या आवृत्तिः=आवर्तनं तस्याः पन्थाः, इति उदयावृत्तिपथस्तेन उदयावृत्तिपथेन=तत्संबन्धिना आकाशमार्गेण ययौ=जगाम ।

समासः—दक्षिणस्य उदधिरिति दक्षिणोदधिस्तस्य, दक्षिणोदधेः श्रितं गोकर्णं इति निकेतं येन स तं श्रितगोकर्णनिकेतम् । उदयस्य आवृत्तिरिति उदयावृत्तिस्तस्याः पन्थाः, तेन उदयावृत्तिपथेन ।

हिन्दी—जब अज वनविहार कर रहे थे उसी समय दक्षिण समुद्र के तीर पर गोकर्ण नाम के स्थान में बसे हुए शिवजी को वीणा बजाकर गाना सुनाने के लिए देवर्षि नारद आकाश-मार्ग से जा रहे थे ॥३३॥

कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम् ।
अहरत्किल तस्य वेगवानधिवासस्पृहयेव मारुतः ॥३४॥

संजी०—कुसुमैरिति । अपार्थिवैरभौमैः । दिव्यैरित्यर्थः । कुसुमैर्ग्रथितां रचिताम् । तस्य नारदस्यातोद्यस्य वाद्यस्य वीणायाः शिरस्यग्रे निवेशिताम् । 'चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम्' इत्यमरः । स्रजं मालां वेगवान्मारुतः । अधिवासे वासनायां स्पृहयेव । स्रजा स्वाङ्गं संस्कर्तुमित्यर्थः । 'संस्कारो गन्धमाल्याद्यैर्यः स्यात्तदधिवासनम्' इत्यमरः । अहरत्किल । 'किल' इत्यैतिह्ये ॥३४॥

अन्वयः—अपार्थिवैः कुसुमैः ग्रथितां, तस्य आतोद्यशिरोनिवेशिताम् स्रजं वेगवान् मारुतः अधिवासस्पृहया इव अहरत् किल ।

व्याख्या—पृथिव्याः विकाराः पार्थिवानि न पार्थिवानि, अपार्थिवानि तैः अपार्थिवैः=दिव्यैः=कल्पवृक्षोत्पन्नैरित्यर्थः, कुस्यन्तीति कुसुमानि तैः कुसुमैः=पुष्पैः ग्रथिता तां ग्रथितां=गुम्फितां रचितामित्यर्थः तस्य=नारदस्य आ समन्तात् तुद्यते=ताड्यते इति आतोद्यम्, आतोद्यस्य=वाद्यस्य शिरसि=मस्तके=अग्रे निवेशिता=स्थापिता ताम् आतोद्यशिरोनिवेशिताम् सृजति सुखमिति स्रक् तां स्रजम्=मालाम् वेगोऽस्ति अस्यासौ वेगवान्=जववान् मरुत एव मारुतः=वायुः अधिकं वासयते इति अधिवासः, अधिवासे=वासनायां गन्धमाल्याद्यैरित्यर्थः, या स्पृहा=इच्छा तया, अधिवासस्पृहया इव=यथा अहरत्=जहार किल इति ऐतिह्ये ।

समासः—न पार्थिवानि अपार्थिवानि तैः अपार्थिवैः । आतोद्यस्य शिरस्तस्मिन् निवेशिता ताम् आतोद्यशिरोनिवेशिताम् । अधिवासस्य स्पृहा, अधिवासस्पृहा तया अधिवासस्पृहया ।

हिन्दी—स्वर्ग के पुष्पों से बनी हुई और वीणा के सिरे पर रखी हुई माला को वेगवाले पवन ने मानों गन्ध से अपने को सुवासित करने के लोभ से उड़ा लिया । अर्थात् प्रबलवायु के कारण वह नीचे गिर पड़ी ॥३४॥

भ्रमरैः कुसुमानुसारिभिः परिकीर्णा परिवादिनी मुनेः ।

ददृशे पवनावलेपजं सृजती बाष्पमिवाञ्जनाविलम् ॥३५॥

संजी०—भ्रमरैरिति । कुसुमानुसारिभिः पुष्पानुयायिभिर्भ्रमरैरलिभिः परिकीर्णा व्याप्ता मुनेर्नारदस्य परिवादिनी वीणा 'वीणा तु वल्लकी । विपञ्ची सा तु तन्त्रीभिः सप्तभिः परिवादिनी ।' इत्यमरः । पवनस्य वायोरवलेपोऽधिक्षेपस्तज्जमञ्जनेन कज्जलेनाविलं कलुषं बाष्पमश्रु सृजतीव मुञ्चतीव । ददृशे दृष्टा । भ्रमराणां साञ्जनबाष्पबिन्दुसादृश्यं विवक्षितम् । 'वा नपुंसकस्य' (पा. ७।१।७९) इति वर्तमाने 'आच्छीनद्योर्नुम्' (पा. ७।१।८०) इति नुम्विकल्पः ॥३५॥

अन्वयः—कुसुमानुसारिभिः भ्रमरैः परिकीर्णा मुनेः परिवादिनी पवनावलेपजम् अञ्जनाविलं बाष्पं सृजती इव ददृशे ।

व्याख्या—कुसुमानि=पुष्पाणि अनुसर्तुम्=अनुगन्तुं शीलं येषान्ते कुसुमानुसारिणस्तैः कुसुमानुसारिभिः, भ्रमन्ति इति भ्रमरास्तैः भ्रमरैः=द्विरेफैः परिकीर्णा= व्याप्ता मुनेः=नारदस्य सप्तभिः तंत्रीभिः उपलक्षिता परिवदति स्वरान् इति परिवादिनी=वीणा पुनातीति पवनस्तस्य पवनस्य=वायोः अवलेपः=अधिक्षेपः, इति पवनावलेपस्तस्मात् जातम्=उत्पन्नम् इति पवनावलेपजम् अञ्जनेन=कज्जलेन कलुषम् अञ्जनाविलम्, बाष्पम्=अश्रु सृजती=मुञ्चती=त्यजती इव=यथा ददृशे= दृष्टा जनैरिति शेषः ।

समासः—कुसुमानि अनुसर्तुं शीलं येषां ते तैः कुसुमानुसारिभिः । पवनस्य अवलेपस्तस्मात् जातं पवनावलेपजम्, तत् । अञ्जनेन आविलम्, तत् ।

हिन्दी—"वह माला तो गिर गई किन्तु" पुष्पों का अनुसरण करने वाले भौंरों से घिरी हुई नारद मुनि की वीणा ऐसी देखी गई मानो वायु के तिरस्कार से उत्पन्न और कज्जल मिले आंसु बहा रही हो ॥३५॥

अभिभूय विभूतिमार्तवीं मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम् ।
नृपतेरमरस्रगाप सा दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम् ॥३६॥

संजी०—अभिभूयेति । साऽमरस्रग्दिव्यमाला । मधुगन्धयोर्मकरन्दसौरभयोरतिशयेनाधिक्येन । वीरुधां लतानाम् । 'लता प्रतानिनी वीरुत्' इत्यमरः । ऋतोः प्राप्तामार्तवीमृतुसंबन्धिनीं विभूतिं समृद्धिमभिभूय तिरस्कृत्य नृपतेरजस्य दयिताया इन्दुमत्या उर्वोर्विशालयोः स्तनयोर्यं कोटी चूचुकौ तयोः सुस्थितिं गोप्यस्थाने पतितत्वात्प्रशस्तं स्थानम् । आप प्राप्ता ॥३६॥

अन्वयः—सा अमरस्रक् मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम् आर्तवीम् विभूतिम् अभिभूय नृपतेः दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम् आप ।

व्याख्या—सा=पूर्वोक्ता न म्रियन्ते इति अमराः=देवाः सृजति सुखमिति स्रक् (अमराणां स्रगिति अमरस्रग्=दिव्यमाला इत्यर्थः, विरुन्धन्ति = आवृण्वन्ति वृक्षानितो वीरुधस्तासां वीरुधां=लतानां) (मन्यते इति मधुः, गन्धयतीति गन्धः, मधु=पुष्परसः गन्धः=सुरभिस्तयोः अतिशयः=आधिक्यं तेन मधुगन्धातिशयेन) ऋच्छतीति ऋतुस्तस्य इमाम् आर्तवीम्=ऋतुसंबन्धिनीम्, विशेषेण भवनं विभूतिस्तां विभूतिम्=ऐश्वर्यम् अभिभूय=तिरस्कृत्य नृपतेः=अजस्य, दयिता=प्रिया=इन्दुमती तस्याः उरू=विशालौ स्तनौ=कुचौ तयोः कोटी अग्रभागौ चूचुकौ तयोः सुस्थितिः=सम्यगवस्थानमिति दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिस्तां दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम्, आप=प्राप = प्राप्ता । गोपनीयसुन्दरस्थाने पतनात् प्रशस्तां स्थितिं प्राप्तवती सा दिव्यमाला ।

समासः—मधु च गन्धश्चेति मधुगन्धौ तयोः अतिशयस्तेन मधुगन्धातिशयेन । दयितायाः उरू च तौ स्तनौ दयितोरुस्तनौ तयोः कोटी, दयितोरुस्तनकोटी:, दयितोरुस्तनकोट्योः सुस्थितिस्तां दयितोरुस्तनकोटिसुस्थितिम् ।

हिन्दी—वह स्वर्गीय पुष्पों की माला, पुष्परस तथा सुगन्धि की अधिकता से वसन्तऋतु की दूसरी लताओं की समृद्धि (मकरन्द और गन्ध) का

तिरस्कार करके राजा अज की प्रिया इन्दुमती के बड़े-बड़े स्तनों के बीच में आकर गिरी ॥३६॥

क्षणमात्रसखीं सुजातयोः स्तनयोस्तामवलोक्य विह्वला ।
निमिमील नरोत्तमप्रिया हृतचन्द्रा तमसेव कौमुदी ॥३७॥

संजी०—क्षणमिति । सुजातयोः सुजन्मनोः । सुन्दरयोरित्यर्थः । स्तनयोः क्षणमात्रं सखीं सखीमिव स्थिताम् । सुजातत्वसाधर्म्यात्स्रजः स्तनसखीत्वमिति भावः । तां स्रजमवलोक्येषद् दृष्ट्वा विह्वला परवशा नरोत्तमप्रियेन्दुमती । तमसा राहुणा । 'तमस्तु राहुः स्वर्भानुः' इत्यमरः, हृतचन्द्रा कौमुदी चन्द्रिकेव । निमिमील मुमोह, ममारेत्यर्थः । 'निमीलो दीर्घनिद्रा च' इति हलायुधः, कौमुद्या निमीलनं प्रतिसंहारः ॥३७॥

अन्वयः—सुजातयोः स्तनयोः क्षणमात्रसखीं ताम् अवलोक्य, विह्वला नरोत्तमप्रिया तमसा हृतचन्द्रा कौमुदी इव निमिमील ।

व्याख्या—सुष्ठु जातौ सुजातौ तयोः सुजातयोः=सुन्दरयोः स्तनः शब्दयतः यौवनोदयमिति स्तनौ स्तन्येते कामुकैरिति वा स्तनौ तयोः स्तनयोः=कुचयोः क्षणमेव इति क्षणमात्रम् समानं ख्यायते जनैरिति सखी क्षणमात्रं=क्षणमेव सखी=वयस्या तां क्षणमात्रसखीम्=सखीमिव स्थिताम् सुन्दरत्वसादृश्यात् दिव्यमालाया स्तनसखीत्वमित्यर्थः । तां=दिव्यमालाम् अवलोक्य=दृष्ट्वा विह्वलतीति विह्वला= विक्लवा=परवशा, नरेषु उत्तमः नरोत्तमस्तस्य नृपतेरजस्य प्रिया=दयिता, इन्दुमती ताम्यतेऽनेनेति तमस्तेन तमसा=राहुणा हृतः = आच्छादितः चन्द्रः = इन्दुः यस्याः सा हृतचन्द्रा, कौ=पृथिव्यां मोदत इति कुमुदः कुमुदस्येयं कौमुदी=चन्द्रिका इव= यथा निमिमील=मुमोह, मृता इत्यर्थः ।

समासः—सुष्ठु जातौ सुजातौ तयोः सुजातयोः । क्षण एवेति क्षणमात्रं सखी, इति क्षणमात्रसखी तां क्षणमात्रसखीम् । नराणां नरेषु वा उत्तमः नरोत्तमः, नरोत्तमस्य प्रिया इति नरोत्तमप्रिया । हृतः चन्द्रः यस्याः सा हृतचन्द्रा ।

हिन्दी—सुन्दर स्तनों की क्षणभर के लिये सखी हुई (अपने स्तनों पर पड़ी) उस माला को जरासी देखकर, व्याकुल (बेहोश हो गई) राजा की प्रियतमा

इन्दुमती, राहु से ग्रस्त चन्द्रमा की चान्दनी की तरह नष्ट हो गई अर्थात् इन्दुमती माला को देखते ही शान्त हो गई ।।३७।।

वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ।।३८।।

संजी०—वपुषेति । करणैरिन्द्रियैरुज्झितेन मुक्तेन । 'करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि' इत्यमरः । वपुषा निपतन्ती सेन्दुमती पतिमजमप्यपातयत् पातयति स्म । तथा हि—निषिच्यत इति निषेकः । तैलस्य निषेकस्तैलनिषेकः । क्षरत्तैलमित्यर्थः । तस्य बिन्दुना सह दीपार्चिर्दीपज्वाला मेदिनीं भुवमुपैति ननूपैत्येव । 'ननु' अत्रावधारणे । 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु' इत्यमरः । इन्दुमत्या दीपार्चिरुपमानम् । अजस्य तैलबिन्दुः । तत एव तस्या जीवितसमाप्तिस्तस्य जीवितशेषश्च सूच्यते ।।३८।।

अन्वयः—करणोज्झितेन वपुषा निपतन्ती सा पतिम् अपि अपातयत्, ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिः मेदिनीम् उपैति ।

व्याख्या—क्रियते यैस्तानि करणानि तैः करणैः=इन्द्रियैः उज्झितं=त्यक्तमिति करणोज्झितं तेन करणोज्झितेन, वपति, उप्यते वा वपुस्तेन वपुषा=शरीरेण निपतन्ती सा=इन्दुमती पतिम्=अजमपि, अपातयत्=पातयामास । दीप्यतेऽनेनेति दीपः दीपयतीति वा दीपः, अर्च्यते इति अर्चिः । दीपस्य=दीपकस्य अर्चिः=ज्वाला, इति दीपार्चिः, निषिच्यते इति निषेकः तिलेषु भवं तैलं, तैलस्य=तिलस्नेहस्य निषेकः=क्षरणमिति तैलनिषेकस्तस्य बिन्दतीति बिन्दुः=विप्रुट् जलकण इत्यर्थः, तेन तैलनिषेकबिन्दुना सह=साकम् मेदमस्यामस्तीति मेदिनी तां मेदिनीम् = पृथिवीम् उपैति प्राप्नोति ननु=एव ।

समासः—करणैः उज्झितमिति करणोज्झितं तेन करणोज्झितेन । तैलस्य निषेकः, तैलनिषेकस्तस्य बिन्दुः तैलनिषेकबिन्दुस्तेन तैलनिषेकबिन्दुना । दीपस्य अर्चिरिति दीपार्चिः ।

हिन्दी—इन्द्रियों से छोड़े हुए शरीर से (मरी हुई) उस इन्दुमती ने अपने पति अज को भी गिरा दिया । ठीक ही है—गिरते हुए तेल की बून्दों के

साथ दीप की ज्वाला (लौ) भूमि में गिरती ही है। अर्थात् इन्दुमती के गिरते ही अज भी मूर्छित होकर जमीन में गिर गया ॥३८॥

उभयोरपि पार्श्ववर्तिनां तुमुलेनार्तरवेण वेजिताः ।

विहगाः कमलाकरालयाः समदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः ॥३९॥

संजी०—उभयोरिति । उभयोर्दम्पत्योः पार्श्ववर्तिनां परिजनानां तुमुलेन संकुलेनार्तरवेण करुणस्वनेन वेजिता भीताः कमलाकरालयाः सरःस्थिता विहगा हंसादयोऽपि तत्रोपवने समदुःखा इव तत्पार्श्ववर्तिनां समानशोका इव चक्रुशुः क्रोशन्ति स्म ॥३९॥

अन्वयः—उभयोः पार्श्ववर्तिनां तुमुलेन आर्तरवेण वेजिताः कमला-करालयाः विहगाः अपि समदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः ।

व्याख्या—उभयोः=द्वयोः=अजेन्दुमत्योः स्पृश्यते इति पार्श्वम् पार्श्वे=अन्तिके वर्तन्ते इति पार्श्ववर्तिनस्तेषां पार्श्ववर्तिनाम्=परिजनानाम्, तुमुलं तेन तुमुलेन= व्याकुलेन आर्तः=करुणश्चासौ रवः=स्वनः शब्द इति आर्तरवस्तेन आर्तरवेण वेजिताः=कम्पिताः भीता इत्यर्थः, कम्यन्ते इति कमलानि कमलानां=पद्मानाम्, (आकीर्यन्ते धातवो अत्रासौ) आकरः=उत्पत्तिस्थानमिति कमलाकरः=सरः आलयः=गृहं=वासस्थानं येषां ते कमलाकरालयाः विहायसि गच्छन्तीति विहगाः= हंसादयः पक्षिणः अपि, तत्र=उपवने समं समानं=तुल्यं दुःखं=शोकः येषां ते समदुःखाः इव=यथा चुक्रुशुः=क्रोशन्ति स्म ।

समासः—पार्श्वे वर्तन्ते इति पार्श्ववर्तिनस्तेषां पार्श्ववर्तिनाम् । आर्तश्चासौ रवः आर्तरवस्तेन आर्तरवेण । कमलानामाकरः कमलाकरः कमलाकरः आलयः येषां ते कमलाकरालयाः । समं दुःखं येषां ते समदुःखाः ।

हिन्दी—अज और इन्दुमती के पास में वर्तमान, सेवकों के व्याकुल (घबराये) करुणापूर्ण स्वर से डरे हुए, तालाबों में रहने वाले पक्षी भी, ऐसे चिल्लाने लगे, मानो वे भी उनके दुःख में दुःखी हों ॥३९॥

नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमो नुनुदे सा तु तथैव संस्थिता ।

प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते ॥४०॥

संजी०—नृपतेरिति । नृपतेरजस्य तमोऽज्ञानं व्यजनादिभिः साधनैर्नुनुदेऽपसारितम् । 'आदि' शब्देन जलसेककर्पूरक्षोदादयो गृह्यन्ते । सा त्विन्दुमती तथैव संस्थिता मृता । तथा हि—प्रतिकारविधानं चिकित्सायुषो जीवितकालस्य शेषे सति विद्यमाने । 'आयुर्जीवितकालो ना' इत्यमरः । फलाय सिद्धये कल्पत आरोग्याय भवति, नान्यथा । नृपतेरायुःशेषसद्भावात्प्रतीकारस्य साफल्यम् । तस्यास्तु तदभावाद्वैफल्यमित्यर्थः ॥४०॥

अन्वयः—नृपतेः तमः व्यजनादिभिः नुनुदे, सा तु तथैव संस्थिता, हि प्रतिकारविधानम् आयुषः शेषे सति फलाय कल्पते ।

व्याख्या—नॄन्=जनान् पाति=रक्षतीति नृपतिस्तस्य नृपतेः=अजस्य तमः=अज्ञानम्=मूर्च्छा व्यजन्ति अनेनेति व्यजनं, व्यजनं=तालवृन्तकमादि येषां ते व्यजनादयस्तैः व्यजनादिभिः=तालवृन्तकजलसेककर्पूरक्षोदैरित्यर्थः नुनुदे=निवारितम्=दूरीकृतम् तु = किन्तु सा=इन्दुमती तथैव=तेनैव प्रकारेण संस्थिता=मृता 'संस्थाऽऽधारे स्थितौ मृतौ' इति कोशः । हि=यतः प्रतिकारस्य=चिकित्सायाः विधानं=करणमिति प्रतिकारविधानम्=व्यजनाद्युपायकरणमित्यर्थः, एति इति आयुस्तस्य आयुषः=जीवितकालस्य शेषे=वर्तमानत्वे, सति फलाय=परिणामाय=सिद्धये कल्पते=भवति । अजस्य आयुःशेषत्वात् प्रतिकारस्य साफल्यं जातम् । इन्दुमत्याः आयुषः समाप्तत्वात् प्रतिकारो व्यर्थो जात इति भावः ।

समासः—व्यजनम् आदिर्येषान्ते व्यजनादयस्तैः व्यजनादिभिः । प्रतिकारस्य विधानमिति प्रतिकारविधानम् ।

हिन्दी—राजा अज की मूर्छा तो पंखा करना, जल छिड़कना, कपूरचन्दन लगाना आदि उपायों से दूर हो गई । (अर्थात् अज की चेतना लौट आई) किन्तु वह इन्दुमती तो ज्यों की त्यों ही पड़ी रही । क्योंकि प्रतिकार का विधान "दवा आदि करना" आयु के रहने पर ही सफल होता है । अर्थात् आयु रहने से राजा जी गया और आयु के न रहने से इन्दुमती न जी सकी, उपायों के करने पर भी मर गई ॥४०॥

प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थामथ सत्त्वविप्लवात् ।
स निनाय नितान्तवत्सलः परिगृह्योचितमङ्कमङ्गनाम् ॥४१॥

संजी०—प्रतीति । अथ सत्त्वस्य चैतन्यस्य विप्लवाद्विनाशाद्धेतोः । 'द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वम्' इत्यमरः । प्रतियोजयितव्या तन्त्रीभिर्योजनीया । न तु योजिततन्त्रीत्यर्थः । या वल्लकी वीणा तस्याः समाऽवस्था दशा यस्यास्तामङ्गनां वनितां नितान्तवत्सलोऽतिप्रेमवान् सोऽजः परिगृह्य हस्ताभ्यां गृहीत्वोचितं परिचितमङ्कमुत्सङ्गं निनाय नीतवान् । वल्लकीपक्षे तु—सत्त्वं तन्त्रीणामवष्टम्भकः शलाकाविशेषः ॥४१॥

अन्वयः—अथ नितान्तवत्सलः सः सत्त्वविप्लवात्, प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थाम् अङ्गनाम् परिगृह्य, उचितम् अङ्कम् निनाय ।

व्याख्या—अनन्तरम् वत्से=स्त्रीपुत्रादौ अभिलाषोऽस्यास्तीति वत्सलः, नितान्तं=दृढं वत्सलः=स्निग्धः इति नितान्तवत्सलः सः=अजः सीदन्ति गुणादयोऽस्मिन्निति सत्त्वं, सत्त्वस्य=प्राणस्य वीणापक्षे सत्त्वस्य=तन्त्र्यवष्टम्भकस्य विप्लवः=विनाशः इति सत्त्वविप्लवस्तस्मात् सत्त्वविप्लवात् "हेतोः" प्रतियोजयितुं योग्या प्रतियोजयितव्या=तन्त्रीभिः=वीणागुणैः योजनीया या वल्लते इति वल्लकी=वीणा, इति प्रतियोजयितव्यवल्लकी तस्याः समा=सदृशी अवस्था=दशा यस्याः सा ताम् प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थाम्, प्रशस्तानि, अंगानि यस्याः सा ताम् अंगनाम्, स्वभार्यामित्यर्थः । परिगृह्य=हस्ताभ्यामुत्थाप्य, उचितम्=अभ्यस्तम् अङ्क्यतेऽनेनेति अङ्कस्तम्=उत्संगं=क्रोडं निनाय=नीतवान् ।

समासः—नितान्तं वत्सल इति नितान्तवत्सलः । सत्त्वस्य विप्लवः सत्त्वविप्लवस्तस्मात् सत्त्वविप्लवात् । प्रतियोजयितव्या या वल्लकी, इति प्रतियोजयितव्यवल्लकी तस्याः समा अवस्था यस्याः सा तां प्रतियोजयितव्यवल्लकीसमवस्थाम् ।

हिन्दी—तब अत्यन्तप्रेमी अजने प्राणशून्य (मृत)पत्नी को उठाकर परिचित गोद में उसी प्रकार रख लिया जैसे कि वादक तार मिलाने के लिये वीणा को अपनी गोद में रखता है । वीणा के तार तथा इन्दुमती के प्राण निकलने से दोनों की दशा समान है ॥४१॥

पतिरङ्कनिषण्णया तया करणापायविभिन्नवर्णया ।

समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां मृगलेखामुषसीव चन्द्रमाः ॥४२॥

संजी०—पतिरिति । पतिरङ्कनिषण्णयोत्सङ्गस्थितया करणानामिन्द्रियाणामपायेनापगमेन हेतुना विभिन्नवर्णया विच्छाययया तया । उषसि प्रातःकाल आविलां

मलिनां मृगलेखां मृगरेखारूपं लाञ्छनं बिभ्रद्धारयंश्चन्द्रमा इव । समलक्ष्यतादृश्यत । इत्युपमा ॥४२॥

अन्वयः—पतिः अंकनिषण्णया करणापायविभिन्नवर्णया तथा उषसि आविलां मृगलेखां बिभ्रत् चन्द्रमा इव समलक्ष्यत ।

व्याख्या—पाति=रक्षतीति पतिः=स्वामी अजः अंके=उत्संगे निषण्णा= स्थिता=शायितेत्यर्थः तथा अङ्कनिषण्णया करणानाम्=इन्द्रियाणाम् अपायः=विनाशः इति करणापायः इन्द्रियोपलक्षितचैतन्यस्य वा विनाशः तेन विभिन्नः=विरुद्ध इत्यर्थः, वर्णः=कान्तिः यस्याः सा विभिन्नवर्णा=विच्छाया तया विभिन्नवर्णया तया=मृतया, इन्दुमत्या ओषति=दहति अन्धकारमिति उषस्तस्मिन् उषसि प्रातः-काले आविलतीति आविला ताम् आविलाम्=मलिनां मृग्यते व्याधैरिति मृगः शशस्तस्य लेखा=रेखा इति मृगलेखा तां मृगलेखां=मृगलेखारूपं लाञ्छनं बिभ्रत्= धारयन् चन्द्रं=कर्पूरं सादृश्येन माति=तुलयतीति चन्द्रमाः । चन्द्रमाह्लादं मिमीते इति वा चन्द्रमाः । कालं मिमीते इति माः=मासः, माश्चासौ चन्द्रश्चेति चन्द्रमाः= चन्द्रः इव=यथा समलक्ष्यत=अदृश्यत ।

समासः—अंके निषण्णा तया अंकनिषण्णया । करणानाम् अपायस्तेन विभिन्नः वर्णः यस्याः सा तया करणापायविभिन्नवर्णया । मृगस्य लेखा मृगलेखा तां मृगलेखाम् ।

हिन्दी—गोद में पड़ी हुई तथा प्राण निकल जाने से विकृत वर्ण वाली (कान्तिहीन) उस इन्दुमती से राजा अज ऐसा दीख रहा था, जैसे प्रातःकाल, गोद में मैली मृग की छाया को धारण किये चन्द्रमा हो ॥ ४२ ॥

विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ॥४३॥

संजी०—विललापेति । सोऽजः सहजां स्वाभाविकीमपि धीरतां धैर्यमपहाय विप्रकीर्य बाष्पेण कण्ठगतेन गद्गदं विशीर्णाक्षरं यथा तथा ध्वनिमात्रानुकारिगद्गद-शब्दैर्विललाप परिदेवितवान् । 'विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः । अभितप्तमग्निना संतप्तमयो लोहमचेतनमपि मार्दवं मृदुत्वमवैरत्वं च भजते प्राप्नोति । शरीरिषु देहिषु । अभिसंतप्तेष्विति शेषः । विषये कैव कथा वार्ता ? अनुक्तसिद्धमित्यर्थः ॥४३॥

अन्वयः—सः सहजाम् अपि धीरताम् अपहाय बाष्पगद्गदं विललाप अभितप्तम् अयः अपि मार्दवं भजते शरीरिषु का एव कथा ।

व्याख्या—सः=अजः सह जन्मना जाता इति सहजा ता सहजां=स्वाभाविकीम् अपि धियं रातीति धीरः धियमीरयतीति वा धीरः तस्य भावः धीरता तां धीरताम्=धैर्यम् अपहाय=परित्यज्य वातीति बाष्पम् बाष्पेण=अश्रुणा गद्गदमिति बाष्पगद्गदम् कण्ठगताश्रुजलेन विशीर्णाक्षरं यथा स्यात्तथा विललाप=विलापं कृतवान् । ननु धैर्यवतः कस्मात् शोक इति चेत् तत्राह— अभितः तप्तम्, अभितप्तम्=अग्निना संतप्तम् अयः=लोहम्—अचेतनमपीत्यर्थः मृदोर्भावः मार्दवम्=मृदुताम्=अवैरत्वञ्च भजते=प्राप्नोति, शरीरमस्ति येषां ते शरीरिणस्तेषु शरीरिषु=देहिषु=अभिसंतप्तेषु इत्यर्थः विषये का एव कथा=वार्ता । अचेतनमपि यदा मृदु भवति चेतनस्य शरीरधारिणः किं वक्तव्यमिति भावः ।

समासः—बाष्पेण गद्गदमिति बाष्पगद्गदम् । सह जाता इति सहजा तां सहजाम् । अभितः तप्तमिति अभितप्तम् ।

हिन्दी—वह अज अपनी सहज धीरता को छोड़कर आँसुओं से गला भर जाने से गद्गद अस्पष्टाक्षर से विलाप करने लगा । ठीक ही है अग्नि से तपा हुआ लोहा, अचेतन भी पिघल जाता है तब शरीरधारियों की तो बात ही क्या ।।४३।।

कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ।।४४।।

संजी०—कुसुमानीति । कुसुमानि पुष्पाण्यपि । 'अपि' शब्दो नितान्तमार्दवद्योतनार्थः । गात्रसंगमाद्देहसंसर्गादायुरपोहितुमपहर्तुं प्रभवन्ति यदि । हन्त विषादे । 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः' इत्यमरः । प्रहरिष्यतो हन्तुमिच्छतो विधेर्दैवस्यान्यत् कुसुमातिरिक्तं किमिव वस्तु । 'इव' शब्दो वाक्यालंकारे । कीदृशमित्यर्थः । साधनं प्रहरणं न भविष्यति न भवेत् ? सर्वमपि साधनं भविष्यत्येवेत्यर्थः ।।४४।।

अन्वयः—कुसुमानि अपि गात्रसंगमात् आयुः अपोहितुं प्रभवन्ति यदि हन्त प्रहरिष्यतः विधेः अन्यत् किमिव साधनं न भविष्यति ।

व्याख्या—विललापेत्युक्तं तदेवाह कुसुमानि=पुष्पाणि अपि: अतीव मृदुत्वद्योतनार्थः गात्रस्य-शरीरस्य संगमः=संसर्गः स्पर्श इत्यर्थः इति गात्रसंगमस्तस्मात् गात्रसंगमात्, एति इति आयुः तत् आयुः=जीवितकालम् अपोहितुम्=अपहर्तुम् विनाशयितुमित्यर्थः प्रभवन्ति=समर्थानि यदि-चेत् हन्त इति खेदे, प्रहरिष्यतीति प्रहरिष्यन् तस्य प्रहरिष्यतः=मारयिष्यतः विधीयतेऽनेन वा विधिस्तस्य विधेः=दैवस्य अन्यत्=पुष्पातिरिक्तं किमिव=कीदृशं वस्तु साध्यतेऽनेनेति साधनं-प्रहरणं न भविष्यति=न भवेत्, अपि तु सर्वमेव साधनं भविष्यत्येवेति भावः।

समासः—गात्रस्य संगमः गात्रसंगमस्तस्मात् गात्रसंगमात्।

हिन्दी—अज का विलाप इस प्रकार है--नितान्त कोमल फूल भी यदि शरीर का स्पर्श हो जाने से जीवन लेने में समर्थ हो सकते हैं तो खेद है कि मारने वाले दैव का पुष्पातिरिक्त कौन सी वस्तु साधन नहीं हो सकती है। अपितु सभी वस्तु प्राण लेने की साधन हो सकती है ॥४४॥

अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ॥४५॥

संजी०—अथवेति। अथवा पक्षान्तरे, प्रजान्तकः कालो मृत्युः मृदु कोमलं वस्तु मृदुनैव वस्तुना हिंसितुं हन्तुमारभत उपक्रमते। अत्रार्थे हिमसेकेन तुषारनिष्यन्देन विपत्तिर्मृत्युर्यस्याः सा तथा नलिनी पद्मिनी मे पूर्वं प्रथमं निदर्शनमुदाहरणं मता, द्वितीयं निदर्शनं पुष्पमृत्युरिन्दुमतीति भावः ॥४५॥

अन्वयः—अथवा प्रजान्तकः मृदु वस्तु मृदुनैव हिंसितुम् आरभते अत्र हिमसेकविपत्तिः नलिनी मे पूर्वनिदर्शनं मता 'वर्तते'।

व्याख्या—अथवा=पक्षान्तरे अन्तं करोति=अन्तयतीति अन्तकः प्रजानां=जनानाम् अन्तकः=यमः इति प्रजान्तकः मृदु=कोमलं वस्तु=द्रव्यं मृदुना=कोमलेन एव हिंसितुं हन्तुं मारयितुमित्यर्थः आरभते=उपक्रमते अत्र=विषये हन्तीति हिमम्, हिमस्य=तुषारस्य सेकः=निष्यन्दः इति हिमसेकः हिमसेकेन विपत्तिः=मरणं=मृत्युर्यस्याः सा हिमसेकविपत्तिः नलानि सन्त्यत्रेति नलिनी=पद्मिनी मे=मम नितरां दृश्यते इति निदर्शनं, पूर्वं=प्रथमं निदर्शनम्=उदाहरणमिति पूर्वनिदर्शनं मता=अभिमता। *द्वितीयमुदाहरणन्तु पुष्पमालास्पर्शेन मृता इन्दुमतीति भावः।*

समासः—अन्तयतीति अन्तकः प्रजानामन्तकः प्रजान्तकः। हिमस्य सेकः हिमसेकस्तेन विपत्तिः यस्याः सा हिमसेकविपत्तिः। पूर्वञ्च तन्निदर्शनमिति पूर्वनिदर्शनम्।

हिन्दी—अथवा यमराज, कोमल वस्तु को कोमल पदार्थ से ही मारने के लिए उपक्रम करता है। अर्थात् नाजुक को नाजुक से ही मारता है। इस विषय में पाला (ओस) गिरने से नष्ट होने वाली नलिनी ही पहला उदाहरण थी। तथा दूसरा उदाहरण अब पुष्प के लगने से मरी इन्दुमती है ॥४५॥

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।

विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥४६॥

संजी०—स्रगिति। इयं स्रक् जीवितमपहन्तीति जीवितापहा यदि। हृदये वक्षसि। 'हृदयं वक्षसि स्वान्ते' इत्यमरः। निहिता सती मां किं न हन्ति? ईश्वरेच्छया क्वचित् प्रदेशे विषमप्यमृतं भवेत् क्वचिदमृतं वा विषं भवेत्। दैवमेवात्र कारणमित्यर्थः ॥४६॥

अन्वयः—**इयम् स्रक् यदि जीवितापहा 'अस्ति' हृदये निहिता 'सती' मां किं न हन्ति ईश्वरेच्छया क्वचित् विषम् अपि अमृतं भवेत्, अमृतं वा विषं भवेत्।**

व्याख्या—इयं=पुरोवर्तिनी सृजति सुखं या सा स्रक्=माला यदि=चेत् जीवितं=जीवनम् अपहन्ति=विनाशयतीति जीवितापहा 'तदा' हरति ह्रियते वा हृदयं तस्मिन् हृदये-वक्षसि निहिता=स्थापिता सती माम्=अजं किं न हन्ति=मारयति। ईश्वरस्य इच्छा ईश्वरेच्छा तया ईश्वरेच्छया=भगवदिच्छया क्वचित्=स्थाने वेवेष्टि=व्याप्नोति कायमिति तत् विषं=गरलम् अपि न मृतं=मरणमस्ति अस्मिन्निति, अमृतं=पीयूषं भवेत्=जायेत क्वचित्-प्रदेशे अमृतं=पीयूषं वा विषं=गरलं भवेत्। यथा इन्दुमती-विषये पुष्पमाला प्राणहारिणी जाता, इति भाग्यमेवात्र कारणमित्यर्थः।

समासः—जीवितस्य अपहा इति जीवितापहा। ईश्वरस्य इच्छा ईश्वरेच्छा तया ईश्वरेच्छया।

हिन्दी—यदि यह माला जीवन का नाश करने वाली है तो हृदय पर रखी हुई मुझे क्यों नहीं मारती है। (ठीक ही है) ईश्वर की इच्छा से कहीं विष भी अमृत हो जाता है और कहीं अमृत भी विष हो जाता है ॥४६॥

अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एव वेधसा ।

यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥४७॥

संजी०--अथवेति । अथवा मम भाग्यस्य विप्लवाद्विपर्ययात् एषः । स्रगित्यर्थः । विधेयप्राधान्यात्पुंलिङ्गनिर्देशः । वेधसा विधात्राऽशनिर्वैद्युतोऽग्निः कल्पितः । 'दम्भोलिरशनिर्द्वयोः' इत्यमरः । अपूर्वत्वमेव स्पष्टयति--यद्यस्मात्कारणात् । अनेनाप्यशनिना प्रसिद्धाशनिना तरुस्तरुस्थानीयः स्वयमेव न पातितः । किंतु तस्य तरोर्विटपाश्रिता लता वल्ली क्षपिता नाशिता ॥४७॥

अन्वयः--अथवा मम भाग्यविप्लवात् एषः वेधसा अशनिः कल्पितः यत् अनेन तरुः न पातितः 'किन्तु' तद्विटपाश्रिता लता क्षपिता ।

व्याख्या--अथवा=पक्षान्तरे मम=अजस्य भज्यतेऽनेन तत् भाग्यम् भाग्यस्य=दैवस्य=शुभाशुभकर्मणः इत्यर्थः विप्लवः=विपर्ययस्तस्मात् भाग्यविप्लवात् दौर्भाग्यादित्यर्थः एषः=स्रग्रूपः विदधाति सर्वमिति वेधाः तेन वेधसा=विधात्रा अश्नाति अश्यते वा अनेनेति अशनिः=दम्भोलिः वज्रमित्यर्थः कल्पितः=निर्मितः, यत्=यस्मात्कारणात् अनेनापि=अशनिना प्रसिद्धेन अशनिना इव इत्यर्थः तरुः=तरुस्थानीयोऽजः न=नहि पातितः=विनाशितः किन्तु विटान् पाति=रक्षतीति विटपः तस्य=तरोः विटपः=शाखा इति तद्विटपस्तम् आश्रिता=आश्रयं गता लतति=वेष्टयतीति लता=वल्ली क्षपिता=नाशिता ।

समासः--भाग्यस्य विप्लवस्तस्मात् भाग्यविप्लवात् । तस्य विटपस्तद्विटपः तद्विटपम् आश्रिता इति तद्विटपाश्रिता ।

हिन्दी--अथवा मेरे दुर्भाग्य से विधाता ने यह मालारूपी वज्र बना दिया । जो कि इसने वृक्षरूपी मुझे तो नहीं गिराया किन्तु मेरे आश्रित इन्दुमती को नष्ट कर दिया । अर्थात् जैसे आकाश से गिरने वाली बिजली वृक्ष को नहीं गिराती है किन्तु उस वृक्ष की शाखा में लिपटी हुई लता को नष्ट कर देती है, वैसे ही इस मालारूपी बिजली ने किया है ॥४७॥

कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ।

कथमेकपदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ? ॥४८॥

संजी०—कृतवतीति । मयि चिरं भूरिशोऽप्यपराद्धं कृतवत्यपि । राधेः कर्तरि क्तः । यदा यस्माद्धेतोः । यदेति हेत्वर्थः । 'स्वरादौ पठ्यते यदेति हेतौ' इति गणव्याख्यानात् । अवधीरणामवज्ञां न कृतवत्यसि नाकार्षीः । तत्कथमेकपदे तत्क्षणे । 'स्यात्तत्क्षण एकपदम्' इति विश्वः । निरागसं नितरामनपराधमिमं जनम् । 'इमम्' इति स्वात्मनिर्देशः । मामित्यर्थः । आभाष्यं संभाष्यं न मन्यसे न चिन्तयसि ? ॥४८॥

अन्वयः—मयि चिरम् अपराद्धे अपि यदा त्वम् अवधीरणां न कृतवती असि, तत् कथम् एकपदे निरागसम् इमं जनम् आभाष्यं न मन्यसे ।

व्याख्या—मयि अजे चिरम्=चिराय=दीर्घकालमित्यर्थः अपराध्यति स्म इति अपराद्धस्तस्मिन् अपराद्धे=अपराधं कृतवति अपि, अपराद्ध इत्यत्र कर्तरि क्तः प्रत्ययः । यदा=यस्मात् हेतोः अवधीरणां=अवज्ञां न कृतवती असि=नाकार्षीः तत्=तस्मात् कथं=केन प्रकारेण एकपदे=तत्क्षणे निर्गतः आगसस्तं निरागसं निरपराधम् इमम्=मल्लक्षणम् जनम्=मामजमित्यर्थः आभाषितुं योग्यः आभाष्यस्तम् आभाष्यं=सम्भाष्यम् न=नहि मन्यसे=अवबुध्यसे । माम् संभाषितुं योग्यमपि न विचारयसीत्यर्थः । समासो व्याख्ययैव गतार्थः ।

हिन्दी—हे इन्दुमती, मेरे बहुत बार अपराध करने पर भी जब मेरा तिरस्कार तुमने कभी नहीं किया था तो अब एकाएक निरपराध मुझको सम्भाषण के योग्य भी क्यों नहीं समझ रही हो ॥४८॥

ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते ! विदितः कैतववत्सलस्तव ।
परलोकमसंनिवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ॥४९॥

संजी०—ध्रुवमिति । हे शुचिस्मिते धवलहसिते । शठो गूढविप्रियकारी कैतवेन कपटेन वत्सलः कैतवस्निग्ध इति ध्रुवं सत्यं तव विदितस्त्वया विज्ञातोऽस्मि । 'मतिबुद्धि—' (पा. ३।२।१८८) इत्यादिना कर्तरि क्तः । 'क्तस्य च वर्तमाने' (पा. २।३।६७) इति कर्तरि षष्ठी । कुतः ? यद्यस्मात्, मामनापृच्छ्यानामन्त्र्य । इतोऽस्माल्लोकात् । परलोकमसंनिवृत्तयेऽपुनरावृत्तये गतासि ॥४९॥

अन्वयः—हे शुचिस्मिते । शठः कैतववत्सल इति ध्रुवं तव विदितः अस्मि, यत् माम अनापृच्छ्य इतः परलोकम असंनिवृत्तये गता असि।

व्याख्या—शोचत्यनेनेति शुचिः=धवलं शुद्धं स्मितम्=ईषद्धास्यं यस्याः सा शुचिस्मिता तस्याः संबुद्धौ हे शुचिस्मिते ! हे इन्दुमति शठतीति शठः=अनृजुः कपटाशयः कितं वायति, कितवे वाति वा कितवः कितवस्य कर्म कैतवं, वत्से= पुत्रादिस्नेहपात्रेऽभिलाषोऽस्यास्तीति वत्सलः, कैतवेन=कपटेन वत्सलः-स्निग्धः, इति कैतववत्सलः इति=एतत् ध्रुवं=सत्यं तव=इन्दुमत्याः विदितः-विज्ञातः अस्मि त्वया ज्ञातोऽस्मि, इत्यर्थः। यत्=यस्मात् माम्=अजम् अनापृच्छ्य=अनामन्त्र्य न पृष्टवा इत्यर्थः, इतः=मृत्युलोकात् परेषां लोकः परलोकस्तं परलोकं=देवलोकं स्वर्गम् संनिवर्तनं संनिवृत्तिः न संनिवृत्तिः असंनिवृत्तिस्तस्यै असंनिवृत्तये=अपुनरागमनाय गतासि=चलितासीत्यर्थः।

समासः—शुचि स्मितं यस्याः सा शुचिस्मिता तस्याः संबुद्धौ शुचिस्मिते। कितवस्य कर्म कैतवं कैतवेन वत्सलः कैतववत्सलः। न संनिवृत्तिः असंनिवृत्तिस्तस्यै असंनिवृत्तये। परेषां लोकस्तं परलोकम्।

हिन्दी—हे पवित्र हँसी हंसने वाली इन्दुमती, मैं धूर्त और कपट पूर्वक प्रेम करने वाला हूं यह निश्चित सत्य तुमने जान लिया है। यह इसलिए कि मुझसे बिना पूछे तुम इस लोक से परलोक में फिर न लोटने के लिए चली गयी हो। अर्थात् सर्वदा के लिए चल बसी हो ॥४९॥

दयितां यदि तावदन्वगाद्विनिवृत्तं किमिदं तया विना।
सहतां हतजीवितं मम प्रबलामात्मकृतेन वेदनाम् ॥५०॥

संजी०—दयितामिति। इदं मम हतजीवितं कुत्सितं जीवितं तावदादौ दयितामिन्दुमतीमन्वगादन्वगच्छद्यदि अन्वगादेव। 'यदि' अत्रावधारणे। पूर्वं मूर्च्छितत्वादिति भावः। तर्हि तया दयितया विना किं किमर्थं विनिवृत्तं प्रत्यागतम्? प्रत्यागमनं न युक्तमित्यर्थः। अत एवात्मकृतेन स्वदुश्चेष्टितेन निवृत्तिरूपेण प्रबलामधिक वेदनां दुःखं सहतां क्षमताम्। स्वयंकृतापराधेषु सहिष्णुतैव शरणमिति भावः ॥५०॥

अन्वयः—इदं मम हतजीवितं तावत् दयिताम् अन्वगात् यदि, 'तर्हि' तया विना किं विनिवृत्तम् 'अत एव' आत्मकृतेन प्रबलां वेदनां सहताम्।

व्याख्या—इदम्=स्वात्मनः अंगुल्या निर्देशः मम=अजस्य हन्यते स्म इति हतम् हतञ्च तत् जीवितमिति हतजीवितम्=गर्हितजीवितम् तावत्=प्रथमं दय्यते स्म

इति दयिता तां दयितां=प्रियाम्=इन्दुमतीम् अन्वगात्=अन्वगच्छत् यदि=एव अत्र यदिः अवधारणे वर्तते, तर्हि तया=दयितया विना=ऋते किं=किमर्थं विनिवृत्तं= प्रत्यागतम् अत एव आत्मना=स्वेन कृतम्=चेष्टितमिति आत्मकृतं तेन आत्मकृतेन= स्वदुश्चेष्टितेन प्रत्यागमनरूपेण प्रबलाम्=अधिकां वेदनां=दुःखं सहताम्=क्षमताम्, स्वयंकृतेषु अपराधेषु तत्सहनमेव शरणमिति भावः।

समासः—हतश्च तत् जीवितमिति हतजीवितम्। आत्मना कृतम् तेन आत्मकृतेन।

हिन्दी—मेरे ये नीच प्राण, पहले प्यारी इन्दुमती के पीछे चले ही गए थे, तो फिर प्यारी इन्दुमती के बिना क्यों लौट आए? इसीलिए अपनी नीच करनी से खूब दुःख भोगें। अर्थात् अपने किये पापों को सहन करना ही शरण है ॥५०॥

सुरतश्रमसभृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते।

अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहभृतामसारताम् ॥५१॥

संजी०—सुरतेति। सुरतश्रमेण संभृतो जनितः स्वेदलवोद्गमोऽपि ते तव मुखे ध्रियते वर्तते। अथ च त्वमात्मना स्वरूपेणास्तं प्राप्ता। अतः कारणाद् देहभृतां प्राणिनामिमां प्रत्यक्षामसारतामस्थिरतां धिक् ॥५१॥

अन्वयः—सुरतश्रमसंभृतः स्वेदलवोद्गमः अपि ते मुखे ध्रियते अथ च त्वम् आत्मना अस्तमिता 'अतः' देहभृताम् इमाम् असारतां धिक्।

व्याख्या—सु=सम्यक् सुष्ठु वा रमणं सुरतं, सुरते=सम्भोगे यः श्रमः=खेद-स्तस्मिन् संभृतः=उत्पन्नः, इति सुरतश्रमसंभृतः स्विद्यतेऽनेन शरीरमिति स्वेदः स्वेदस्य=घर्मस्य लूयते इति लवः=बिन्दुस्तस्य उद्गमः=आविर्भावः, इति स्वेदलवोद्गमः अपि ते=तव मुखे=आनने (खन्धातोरच्प्रत्ययः मुडागमः सच डित्) ध्रियते=अस्ति वर्तते अथ च=एवमपि त्वम्=इन्दुमती आत्मना=स्वरूपेण अस्तं=नाशम् इता=गता, अतः कारणात् दिह्यते=उपचीयते इति देहः देहं=शरीरं बिभ्रति=धारयन्तीति ते, तेषां देहभृतां=प्राणिनाम् इमाम्=प्रत्यक्षाम् सरति कालान्तरमिति सारः न सारोऽत्र असारस्तस्य भावस्तत्ता ताम् असारताम्= अस्थिरतां=धक्कयतीति धिक्=भर्त्सनम् धिक्कार इत्यर्थः।

समासः—सुरते श्रमः सुरतश्रमस्तेन संभृतः इति सुरतश्रमसंभृतः। स्वेदस्य लवः स्वेदलवस्तस्य उद्गमः इति स्वेदलवोद्गमः। देहं बिभ्रतीति देहभृतस्तेषां देहभृताम्। न सारोऽत्र असारस्तस्य भावस्तत्ता ताम् असारताम्।

हिन्दी—सम्भोग की थकावट से उत्पन्न हुई पसीने की बूँदें भी तुम्हारे मुख पर 'अभी' तक वर्तमान (मौजूद) हैं पर तुम नाश को प्राप्त हो गई हो। अर्थात् मर गई हो। इसलिए देहधारियों की इस प्रत्यक्ष नश्वरता को धिक्कार है ॥५१॥

मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम्?।

ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ॥५२॥

संजी०—मनसेति। मया मनसापि तव विप्रियं न कृतपूर्वम् पूर्वं न कृतमित्यर्थः। सुप्सुपेति समासः। किं केन निमित्तेन मां जहासि त्यजसि? नन्वहं क्षितेः शब्दपतिः शब्दत एव पतिः। न त्वर्थत इत्यर्थः। भावनिबन्धनाऽभिप्रायनिबन्धना स्वभावहेतुका मे रतिः प्रेम तु त्वय्येव, अस्तीति शेषः ॥५२॥

अन्वयः—मया मनसा अपि तव विप्रियं न कृतपूर्वं किं मां जहासि ननु अहं क्षितेः शब्दपतिः, भावनिबन्धना मे रतिः त्वयि 'एवास्तीति शेषः'।

व्याख्या—मया=राज्ञा अजेन मन्यतेऽनेन तन्मनस्तेन मनसा=मानसेन अपिः= समुच्चये येन चित्तेनापि न कृतं, तदा कर्मणा किमु वक्तव्यमित्यर्थः। तव=इन्दुमत्याः प्रीणातीति प्रियं प्रियस्य विरुद्धं विप्रियं=विरुद्धम्=अनिष्टमित्यर्थः न=नहि पूर्वं कृतमिति कृतपूर्वं=पूर्वं न कृतमित्यर्थः किं=केन कारणेन माम्=अजम् जहासि=त्यजसि, ननु=निश्चितम् अहम्=अजः क्षितेः=पृथिव्याः पातीति पतिः=स्वामी शब्दपतिः=न त्वर्थतः पतिः भावयति=परिभावयतीति भावः निबध्यतेऽनया सा निबन्धना भावस्य= प्रणयस्य निबन्धना इति भावनिबन्धना=प्रेमहेतुका मे=मम रतिः=अनुरागः त्वयि = इन्दुमत्यामेवास्तीति शेषः।

समासः—पूर्वं कृतमिति कृतपूर्वम्। शब्देन पतिः शब्दपतिः। भावस्य निबन्धना, इति भावनिबन्धना, भावं निबध्नातीति वा भावनिबन्धना।

हिन्दी—मैंने मन से भी तुम्हारा अप्रिय (बुरा) कभी पहले नहीं किया है। 'फिर' किस कारण से तुम मुझे छोड़ रही हो। सत्य यह है कि मैं पृथिवी का नाममात्र का पति हूँ। मेरा स्वाभाविक प्रेम तो तुम्हीं पर है ॥५२॥

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान् ।
करभोरु ! करोति मारुतस्त्वदुपावर्तनशङ्कि मे मनः ॥५३॥

संजी०—कुसुमेति । कुसुमैरुत्खचितानुत्कर्षेण रचितान् वलीभृतो भङ्गीयुक्तान् । कुटिलानित्यर्थः । भृङ्गरुचो नीलांस्तवालकांश्चलयन्कम्पयन् मारुतः हे करभोरु करभ-दृसशोरु ! 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः । मे मनस्त्वदुपावर्तन-शङ्कि तव पुनरागमने शङ्कावत्करोति । त्वदुज्जीवने शङ्कां कारयतीत्यर्थः ॥५३॥

अन्वयः—कुसुमोत्खचितान् वलीभृतः भृङ्गरुचः तव अलकान् चलयन् मारुतः हे करभोरु ! मे मनः त्वदुपावर्तनशङ्कि करोति ।

व्याख्या—कुसुमैः=पुष्पैः उत्कर्षेण खचिताः=रचिताः ग्रथितास्तान् कुसुमोत्खचितान्, वलीः=भङ्गीः बिभ्रति=धारयन्तीति वलीभृतस्तान् वलीभृतः= कुटिलानित्यर्थः बिभ्रतीति भृङ्गास्तेषां रुक्=कान्तिरिव रुक् येषां ते तान् भृङ्ग-रुचः कृष्णानित्यर्थः तव=भवत्याः इन्दुमत्या इत्यर्थः अलन्तीति अलकास्तान् अलकान्=कुटिलकेशान् चलयन्=कम्पयन् म्रियन्तेऽनेन विना, वृद्धेन वा इति मारुतः=वायुः, ऊर्णूयते इति ऊरुः करे भातीति करभः, करभः=मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य बहिर्भागः इव=यथा ऊरुः=जानूपरिभागः यस्याः सा, तस्याः सम्बुद्धौ हे करभोरु हे सुजघने ! मे=मम मनः=चित्तम्, तव=भवत्याः उपावर्तनम्=पुनरागमन-मिति त्वदुपावर्तनम् त्वदुपावर्तनं शंकते इति त्वदुपावर्तनशंकि करोति । तवोज्जीवने शङ्कां कारयति ।

समासः—कुसुमैः खचितास्तान्, कुसुमखचितान् तव उपावर्तनमिति त्वदुपावर्त-नम्, तस्य शंकि तत् त्वदुपावर्तन शंकि भृंगाणां रुक् इव रुक् येषां ते तान् ।

हिन्दी—हे सुन्दर जांघवाली इन्दुमती ! फूलों से गुथे हुए और घुंघराले, तथा भौंरों के समान काले, तुम्हारे केशों को कँपाता हुआ वायु मेरे मन में तुम्हारे फिर से लौट आने की शंका कर रहा है । अर्थात् तुम जी उठी हो ऐसी शंका उत्पन्न कर रहा है ॥५३॥

तदपोहितुमर्हसि प्रिये ! प्रतिबोधेन विषादमाशु मे ।
ज्वलितेन गुहागतं तमस्तुहिनाद्रेरिव नक्तमोषधिः ॥५४॥

संजी०—तदिति । हे प्रिये ! तत्तस्मात्कारणादाशु मे विषादं दुःखम् । नक्तं रात्रावोषधिस्तृणज्योतिराख्या लता ज्वलितेन प्रकाशेन तुहिनाद्रेर्हिमाचलस्य गुहा-गतं तमोऽन्धकारमिव । प्रतिबोधेन ज्ञानेनापोहितुं निरसितुमर्हसि ॥ ५४ ॥

अन्वयः—हे प्रिये तत् आशु मे विषादं नक्तम् ओषधिः ज्वलितेन तुहिनाद्रेः गुहागतम् तमः इव प्रतिबोधेन अपोहितुम् अर्हसि ।

व्याख्या—प्रीणातीति प्रिया तस्याः संबुद्धौ हे प्रिये=दयिते, तत्=तस्मात् कारणात् अश्नुते इति आशु=शीघ्रं मे=अजस्य वेवेष्टि व्याप्नोतीति विषा तां ददाति तं विषादं=दुःखं नक्तं=रात्रौ ओषः=प्लोषः दीप्तिर्वा धीयतेऽत्र सा ओषधिः=लता, ज्वलितेन=प्रकाशेन, तोहति=अर्दयतीति तुहिनं तस्य अद्रिः=पर्वतस्तस्य तुहिनाद्रेः=हिमालयस्य गूहति=संवृणोतीति गुहा तस्यां गतं लीनमिति गुहागतम्=कन्दराप्रविष्टम्, तमः=अन्धकारम् इव=यथा प्रतिबोधेन = ज्ञानेन अपोहितुं = दूरीकर्तुम् अर्हसि = योग्यासि ।

समासः—गुहायां गतं तत् गुहागतम् । तुहिनस्य अद्रिस्तुहिनाद्रिस्तस्य तुहिनाद्रेः ।

हिन्दी—हे प्रिये ! इसलिये तुम शीघ्र ही मेरे दुःख को फिर से जागकर वैसे ही दूर करो अर्थात् मेरे दुःख को मिटाओ, जैसे कि रात में चमकने वाली ओषधि (बूटी) अपने प्रकाश से हिमालय पर्वत की गुफा में गये (छिपे हुए) अन्धकार को दूर कर देती है ॥५४॥

इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्तकथं दुनोति माम् ।

निशि सुप्तमिवैकपङ्कजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम् ॥५५॥

संजी०—इदमिति । इदमुच्छ्वसितालकं चलितचूर्णकुन्तलं विश्रान्तकथं निवृत्तसंलापं तव मुखम् । निशि रात्रौ सुप्तं निमीलितं विरतोऽभ्यन्तराणामन्तर्वर्तिनां षट्पदानां स्वनो यत्र तत् । निःशब्दभृङ्गमित्यर्थः । एकपङ्कजमद्वितीयं पद्ममिव । मां दुनोति परितापयति ॥ ५५ ॥

अन्वयः—इदम् उच्छ्वसितालकं विश्रान्तकथं तव मुखं, निशि सुप्तं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम् एकपङ्कजम् इव मां दुनोति ।

व्याख्या—इदम्=पुरो दृश्यमानं उच्छ्वसिताः=चलिताः (कम्पमाना इत्यर्थः) अलकाः=चूर्णकुन्तलाः (कुटिलकेशा इत्यर्थः) यस्मिन् तत् उच्छ्वसितालकं विश्रान्ता=निवृत्ता कथा=संलापः यस्मिन् तत् विश्रान्तकथम्, तव=इन्दुमत्याः,

मुखम्=आननम् नितरां श्यति=तनूकरोति व्यापारान् सा निशा, निट (इति पृषोदरादित्वात् शकारान्तोपि) तस्यां निशि–रात्रौ सुप्तम्=निमीलितम्= संकुचितमित्यर्थः । षट् पदानि येषां ते षट्पदाः, अभ्यन्तरे=मध्ये स्थिताः इति अभ्यन्तरस्थिताः, अभ्यन्तरस्थिताश्च ते षट्पदाः इति अभ्यन्तरषट्पदाः (शाकपार्थिवादित्वात् लोपः) तेषां स्वनः=शब्दः, इति अभ्यन्तरषट्पदस्वनः, विरतः=विश्रान्तः अभ्यन्तरषट्पदस्वनः यत्र तत् विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम् । भ्रमरशब्दरहितमित्यर्थः पङ्काज्जातं पङ्कजम् एकम्=अद्वितीयञ्च तत् पङ्कजं=पद्ममिति एकपङ्कजम्, इव=यथा माम् अजम् दुनोति = परितापयति ।

समासः—उच्छ्वसिताः अलकाः यत्र तत् उच्छ्वसितालकम् । विश्रान्ता कथा यत्र तत् विश्रान्तकथम् । अभ्यन्तरे स्थिताः, अभ्यन्तरस्थिताः ते च ते षट्पदाः इति अभ्यन्तरषट्पदास्तेषां स्वनः इति अभ्यन्तरषट्पदस्वनः, विरतः अभ्यन्तरषट्पदस्वनः यत्र तत् विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम् । एकञ्च तत् पङ्कजमिति एकपङ्कजम् ।

हिन्दी—यह तुम्हारा मौनधारि मुख, जिसमें कि घुंघराले बाल हिल रहे हैं मुझे अतीव दुःख दे रहा है । 'और' यह उस अद्वितीय सुन्दर कमल के जैसा लग रहा है, जो कि रात्रि में कमल के भीतर बैठे भौरों के शब्द से शून्य है ॥५५॥

शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम् ।

इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः ॥५६॥

संजी०—शशिनमिति । शर्वरी रात्रिः शशिनं चन्द्रं पुनरेति प्राप्नोति । द्वन्द्वीभूय चरतीति द्वन्द्वचरः तं पतत्रिणं चक्रवाकं दयिता चक्रवाकी पुनरेति । इति हेतोस्तौ चन्द्रचक्रवाकौ विरहान्तरक्षमौ विरहावधिसहौ । 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्द्धिभेदतादर्थ्ये' इत्यमरः । अत्यन्तगता पुनरावृत्तिरहिता त्वं कथं न मां दहेर्न संतापयेः ? अपि तु दहेरेवेत्यर्थः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—शर्वरी शशिनं पुनः एति, द्वन्द्वचरं पतत्रिणं दयिता पुनः एति, इति तौ विरहान्तरक्षमौ, अत्यन्तगता त्वं तु कथं न माम् दहेः ।

व्याख्या—शृणाति–हिनस्ति चेष्टा इति शर्वरी=रात्रिः शशति=उत्प्लुत्य गच्छतीति शशः, शशः अस्ति अस्यासौ शशी तं शशिनं=चन्द्रं पुनः=भूयः एति= प्राप्नोति । द्वौ द्वौ द्वन्द्वं चरति=द्वन्द्वीभूय चरतीति द्वन्द्वचरस्तं द्वन्द्वचरं पतत्रमस्या-

स्तीति पतत्री तं पतत्रिणं=चक्रवाकं दयिता = प्रिया चक्रवाकी, पुनरेति इति=हेतोः तौ=चन्द्रचक्रवाकौ विरहस्य=वियोगस्य अन्तरम्=अवधिं क्षमेते, इति तौ विरहान्तरक्षमौ अत्यन्तम्=अपुनरावृत्तये गता=मृता त्वं तु=इन्दुमती तु कथं न=केन प्रकारेण न माम्=अजम् दहेः=सन्तापयेः, अपि तु सन्तापयेरेवेत्यर्थः ।

समासः—द्वन्द्वं चरतीति द्वन्द्वचरस्तं द्वन्द्वचरम् । विरहस्य अन्तरं क्षमेते यौ तौविरहान्तरक्षमौ । अत्यन्तं गता, अत्यन्तगता ।

हिन्दी—चन्द्रमा को रात्रि फिर (दिन के बाद) मिल जाती है । और साथ-साथ रहनेवाले चकवे को प्यारी चकवी भी 'प्रातः' मिल जाती है । इसलिए वे दोनों (चन्द्र चकवा) विरह की अवधि को सहन कर लेते हैं । किन्तु सदा के लिए गई (मरी) तुम मुझे क्यों न सन्ताप दोगी । अर्थात् तुम्हारे वियोग में मैं क्यों न भस्म हो जाऊँ ॥५६॥

नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम् ।
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु ! चिताधिरोहणम् ॥५७॥

मं०—नवेति । नवपल्लवसंस्तरे नूतनप्रवालास्तरणेऽप्यर्पितं स्थापितं मृदु ते तव यदङ्गं शरीरं दूयेत परितप्तं भवेत् । वामौ सुन्दरौ ऊरू यस्याः सा हे वामोरु । 'वामं स्यात्सुन्दरे सव्ये' इति केशवः । 'संहितशफलक्षण-' इत्यादिनोङ्प्रत्ययः । तदिदमङ्गं चितायाः काष्ठसंचयस्याधिरोहणं कथं विषहिष्यते वद ॥५७॥

अन्वयः—नवपल्लवसंस्तरे अपि अर्पितं मृदु ते यत् अङ्गं दूयेत, हे वामोरु ! तत् इदम् चिताधिरोहणं कथं विषहिष्यते वद ।

व्याख्या—पल्यते इति पल्लवः, पल् चासौ लवः पल्लवः । नवाः=नूतनाश्च ते पल्लवाः=किसलयानि, इति नवपल्लवास्तेषां संस्तरः=आस्तरणं तस्मिन् नवपल्लवसंस्तरे अपिः=समुच्चये अर्पितं=संस्थापितं मृद्यते इति मृदु=कोमलं ते=तव यत् अङ्गम् = शरीरं दूयेत=सन्तप्तं भवेत्, वमति वम्यते वा वामः, अर्यतेऽनेनेति ऊरुः । वामौ सुन्दरौ ऊरू=जंघे यस्याः सा वामोरुस्तस्याः संबुद्धौ हे वामोरु ! तत्=मृदुत्वेन प्रसिद्धम् इदं=पुरोवर्ति शरीरं चीयते इति चिता, चितायाः=चितेः काष्ठसंचयस्येत्यर्थः अधिरोहणम्=आरोहणं कथं=केन प्रकारेण विषहिष्यते=सहिष्यते त्वया इति त्वं वद=कथय ।

समासः—नवाश्च ते पल्लवास्तेषां संस्तरस्तस्मिन् नवपल्लवसंस्तरे। चितायाः अधिरोहणमिति चिताधिरोहणम् तत्।

हिन्दी—कोमल पल्लवों के बिछौने पर भी रखा हुआ यह तुम्हारा कोमल शरीर जब पीड़ा पाता है तो हे सुन्दर जांघवाली, बोलो, वह तुम्हारा शरीर चिता पर बैठने को कैसे सहन करेगा। क्योंकि चिता तो कठोर होती है ॥५७॥

इयमप्रतिबोधशायिनीं रशना त्वां प्रथमा रहःसखी।
गतिविभ्रमसादनीरवा न शुचा नानु मृतेव लक्ष्यते ॥५८॥

संजी०—इयमिति। इयं प्रथमाऽऽद्या रहःसखी। सुरतसमयेऽप्यनुयानादिति भावः। गतिविभ्रमसादेन नीरवा विलासोपरमेण निःशब्दा रशना मेखलाऽप्रतिबोधमपुनरुद्बोधं यथा तथा शायिनीम्। मृतामित्यर्थः। त्वामनु त्वया सह। 'तृतीयार्थे' (पा. १।४।८५) इत्यनुशब्दस्य कर्मप्रवचनीयत्वात् द्वितीया। शुचा शोकेन मृतेव न लक्ष्यत इति न। लक्ष्यत एवेत्यर्थः। संभाव्यनिषेधनिवर्तनाय द्वौ प्रतिषेधौ ॥५८॥

अन्वयः—इयं प्रथमा रहःसखी गतिविभ्रमसादनीरवा रशना अप्रतिबोधशायिनीं त्वाम् अनु शुचा मृता इव न लक्ष्यते इति न।

व्याख्या—इयम्=पुरो दृश्यमाना प्रथमा=आद्या रह्यते इति रहः रमन्ते यत्रेति वा रहः। समानं ख्यायते जनैरिति सखी, रहसि=एकान्ते सखी=आली, इति रहःसखी सुरतकालेऽपि सहावस्थानादित्यर्थः। विभ्रमणं विभ्रमः गतेः=गमनस्य विभ्रमः विलासस्तस्य सादः=विनाशस्तेन नीरवा=निःशब्दा, इति गतिविभ्रमसादनीरवा, रशति=शब्दं करोतीति रशना=मेखला, नास्ति प्रतिबोधः=प्रतिज्ञानं यस्मिन् तत् अप्रतिबोधम्। अप्रतिबोधं=पुनरुद्बोधरहितं यथा स्यात्तथा शायिनी=सुप्ता मृतेत्यर्थः, इति अप्रतिबोधशायिनी ताम् तथोक्ताम्। त्वां=भवतीम्=इन्दुमतीमित्यर्थः, अनु=सह त्वया सहेति यावत् शुचा=शोकेन मृता=पञ्चत्वं गता इव=यथा न लक्ष्यते=न दृश्यते इति न, किन्तु लक्ष्यते एवेति।

समासः—रहसि सखी रहःसखी। न प्रतिबोधः यस्मिन् कर्मणि तत् अप्रतिबोधम्, अप्रतिबोधं यथा स्यात्तथा शायिनी तामप्रतिबोधशायिनीम्। गतेः विभ्रमः गतिविभ्रमस्तस्य सादः तेन नीरवा गतिविभ्रमसादनीरवा।

हिन्दी—'और' यह तुम्हारी, सर्वप्रथम एकान्त की सखी, 'एवं' तुम्हारी विलासपूर्ण गमन के बन्द होने से शब्दशून्य मेखला (तगड़ी) सदा के लिए सोती हुई तुमको देखकर तुम्हारे शोक में मरी सी नहीं दिखाई देती है क्या ? अर्थात् मरी ही दीख रही है ॥५८॥

कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम् ।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ॥५९॥

त्रिदिवोत्सुकयाऽप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया ।
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमाः ॥६०॥

संजी०—कलमिति । त्रिदिवेति । युग्मम् । उभयोरेकान्वयः । अन्यभृतासु कोकिलासु कलं मधुरं भाषितं भाषणम् । कलहंसीषु विशिष्टहंसीषु मदालसं मन्थरं गतं गमनम् । पृषतीषु हरिणीषु विलोलमीक्षितं चञ्चला दृष्टिः । पवनेन वायुना धूतलतास्वीषत्कम्पितलतासु विभ्रमा विलासाः । इत्यमी पूर्वोक्ताः कलभाषणादयो गुणाः । एषु कोकिलादिस्थानेष्विति शेषः । त्रिदिवोत्सुकयापीह जीवन्त्येव स्वर्गं प्रति प्रस्थितयापि त्वया मामवेक्ष्य विरहासहं विचार्य सत्यं निहिताः । मत्प्राणधारणोपायतया स्थापिता इत्यर्थः । तव विरहे गुरुव्यथमतिदुःखं मे हृदयं मनोऽवलम्बितुं स्थापयितुं न क्षमा न शक्ताः । ते तु त्वत्संगम एव सुखकारिणः, नान्यथा । प्रत्युत प्राणानपहरन्तीति भावः ॥५९-६०॥

अन्वयः—अन्यभृतासु कलं भाषितम्, कलहंसीषु मदालसं गतम्, पृषतीषु विलोलम् ईक्षितं, पवनाधूतलतासु विभ्रमाः, इति अमी गुणाः 'एषु' त्रिदिवोत्सुकया अपि त्वया माम् अवेक्ष्य सत्यं निहिताः तु तव विरहे गुरुव्यथं मे हृदयम् अवलम्बितुं न क्षमाः । (इति द्वयोरेकत्रान्वयादिदं युग्मम्)।

व्याख्या—अन्यैः=काकैः भृताः=पालिताः इति अन्यभृतास्तासु अन्यभृतासु=कोकिलासु कलते इति कलः, कलं=मधुरं भाषितं=भाषणं वचनमित्यर्थः । कलाः=मधुरवाचः हंस्यः, इति तासु कलहंसीषु=राजहंसीषु न लसतीति अलसः मदेनालसस्तं मदालसम्=मन्थरगमनम्, पृषताः सन्ति यासु ताः पृषत्यः पर्षन्ति वा पृषत्यस्तासु पृषतीषु=हरिणीषु विलोलं=

चञ्चलम् ईक्षितम्=ईक्षणमवलोकनम् । पुनातीति पवनः पवनेन=वायुना आधूताः= ईषत् कम्पिताः लताः=व्रतत्यस्तासु पवनाधूतलतासु विभ्रमाः=विलासाः, अमी= पूर्वोक्ताः मधुरभाषणादयः गुणाः, एषु कोकिलादिषु इति शेषः, तिसृषु अवस्थासु, त्रयो ब्रह्मविष्णुरुद्राः वा दीव्यन्त्यत्र स त्रिदिवः त्रिविधो दीव्यति व्यवहरति प्रकाशते वा त्रिदिवः । त्रिदिवे=स्वर्गे उत्सुका=उत्कण्ठिता तया त्रिदिवोत्सुकया तत्र गन्तु-मुत्सुकया इत्यर्थः, अपि त्वया = इन्दुमत्या माम्=अजम् वियोगासहम् अवेक्ष्य=विचार्य सत्यं=निश्चितं निहिताः=मज्जीवनाय स्थापिताः, तु=किन्तु तव=भवत्याः विरहे= वियोगे गुर्वी-महती व्यथा=पीडा यस्य तद् गुरुव्यथम् मे=मम हरति ह्रियते वा हृदयं=मनः अवलम्बितुम् = संस्थापयितुं न क्षमाः=नहि समर्थाः । ते गुणास्तु तव संगमे एवानन्ददायकास्त्वद्विरहे तु प्राणहारका एवेत्यर्थः ।

समासः—अन्यैः भृतास्तासु अन्यभृतासु । कलाः हंस्यस्तासु कलहंसीषु । मदेनालसं मदालसम् । पवनेन आधूताः इति पवनाधूताः, पवनाधूताश्च ताः लतास्तासु पवनाधूतलतासु । त्रिदिवे उत्सुका तया त्रिदिवोत्सुकया । गुर्वी व्यथा यस्य तत् गुरुव्यथम् ।

हिन्दी—कोयलों में अपना मधुर वचन राजहंसियों में अपना मन्द-मन्द गमन, तथा हरणियों में अपनी चञ्चल चितवन और वायु से जरा हिलती हुई लताओं में चुलबुलापन, ये सब अपने गुण, स्वर्ग जाने की उत्कण्ठावाली तुमने, मुझे अपने वियोग की व्यथा को सहन करने में असमर्थ जानकर ही कोयल आदि में रख दिये हैं । किन्तु तुम्हारे विरह में अत्यन्त दुःखी मेरे हृदय को बहलाने में ये सब समर्थ नहीं हो सकते हैं । अर्थात् वे सब गुण तो तुम्हारे साथ ही सुख देने वाले थे और अब वियोग में तो मेरे प्राणों को ही ले रहे हैं ॥५९-६०॥

मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ ।
अविधाय विवाहसत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसांप्रतम् ॥६१॥

संजी०—मिथुनमिति । ननु हे प्रिये ! सहकारस्तरुविशेषः फलिनी प्रियंगुलता चेमौ त्वया मिथुनं परिकल्पितं मिथुनत्वेनाभ्यमानि । अनयोः फलिनीसहकारयो-र्विवाहसत्क्रियां विवाहमङ्गलमविधायाकृत्वा गम्यत इत्यसांप्रतमयुक्तम् । मातृहीनानां न किंचित्सुखमस्तीति भावः ॥६१॥

अन्वयः—ननुः सहकारः फलिनी च इमौ त्वया मिथुनं परिकल्पितम्, अनयोः विवाहसत्क्रियाम् अविधाय गम्यते इति असाम्प्रतम।

व्याख्या—ननु=हे प्रिये ! सह कारयति द्वन्द्वं मेलयतीति सहकारः=अति-सौरभः आम्रः, फलानि सन्ति अस्याः सा फलिनी=प्रियंगुलता च अयञ्च इयञ्चेति इमौ=द्वौ त्वया=इन्दुमत्या मेथति इति मिथुनं=द्वन्द्वं परिकल्पितम्=मिथुनत्वेन स्वीकृतम्, अनयोः=फलिनीसहकारयोः विशिष्टं वहनं विवाहः सती चासौ क्रिया, सत्क्रिया, विवाहस्य=पाणिग्रहणस्य सत्क्रिया = संस्कारविशेषः, इति विवाह-सत्क्रिया तां विवाहसत्क्रियाम् अविधाय=असंपाद्य = अकृत्वेत्यर्थः गम्यते = प्रस्थीयते इति = एतत् गमनम्, असाम्प्रतम्=अयुक्तम् । मातृविहीनानां संसारे न किमपि सुखमस्तीति भावः ।

समासः—सती चासौ क्रिया सत्क्रिया, विवाहस्य सत्क्रिया तां विवाह-सत्क्रियाम् । न साम्प्रतमिति, असाम्प्रतम् ।

हिन्दी—हे प्रिये ! उस आम के वृक्ष और प्रियंगुलता का तुमने जोड़ ठीक किया था। इन दोनों का विवाह संस्कार किये बिना तुम जा रही हो, यह तो सर्वथा अनुचित है। क्योंकि बिना माँ के संसार में कुछ भी सुखकर नहीं होता है ॥६१॥

कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।

अलकाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम् ? ॥६२॥

संजी०—कुसुममिति । वृक्षादिपोषकं दोहदम् । त्वया कृतं दोहदं पादता-डनरूपं यस्य सोऽयमशोको यत्कुसुममुदीरयिष्यति प्रसविष्यते । तवालकानामा-भरणमाभरणभूतं तत्कुसुमं कथं नु केन प्रकारेण निवापमाल्यतां दाहाञ्जले-रर्ध्यतां नेष्यामि ? 'निवापः पितृदानं स्यात्' इत्यमरः ॥३२॥

अन्वयः—त्वया कृतदोहदः अशोकः यत् कुसुमम् उदीरयिष्यति, तत्र अलकाभरणं तत् कथं नु निवापमाल्यताम् नेष्यामि ।

व्याख्या—त्वया=भवत्या=इन्दुमत्या दोहम्=आकर्षं ददातीति दोहदं कृतं= विहितं दोहदं=चरणताडनरूपं यस्य स कृतदोहदः अयम्=दृश्यमानः न शोकोऽस्मात् अशोकः=वञ्जुलः, वृक्षविशेष इत्यर्थः, यत् कुसुमं=प्रसूनम् उदीरयिष्यति=प्रसविष्यते,

तव=भवत्या अलन्तीति अलकाः=कुटिलकेशास्तेषामाभरणम्=अलंकारभूतं तत्=कुसुमम् नु=भो कथं=केन प्रकारेण न्युप्यते निवापः मां लातीति माला, मल्यते धार्यते वा माला, माला एव माल्यम् 'माल्यं कुसुमतत्स्रजो-रि'ति मेदिनी। निवापस्य=पितृदानस्य माल्यं=पुष्पम् तस्य भावस्तत्ता तां निवाप-माल्यतां दाहादूर्ध्वं दीयमानाञ्जलेरर्ध्यतां नेष्यामि = प्रापयिष्यामीत्यर्थः।

समासः—कृतं दोहदं यस्य स कृतदोहदः। न शोकोऽस्मादिति अशोकः। अलकानामाभरणमिति, अलकाभरणम्। निवापस्य माल्यं निवापमाल्यं तस्य भाव-स्तत्ता तां निवापमाल्यताम्।

हिन्दी—हे प्रिये! तुमने जिस अशोक वृक्ष को अपने चरण से ताडन किया (स्पर्श किया) है। वह अशोक वृक्ष भविष्य में फूल देगा। तब तुम्हारे घुंघराले केशों को सजाने के योग्य उन पुष्पों को मैं किस प्रकार दाह संस्कार के पश्चात् पितरों को दी जाने वाली तिलाञ्जलि में दूँगा। सुन्दरी के पादताडन से अशोक फूल देने लगता है—यह कवि-समयसिद्ध है इस पादताडन को 'दोहद' कहते हैं ॥६२॥

स्मरतेव सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम्।
अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमशोकेन सुगात्रि! शोच्यसे ॥६३॥

सं०—स्मरतेति। अन्यदुर्लभम्। किंतु स्मर्तव्यमेवेत्यर्थः। सशब्दं ध्वनियुक्तं नूपुरं मञ्जीरं यस्य तं चरणेनानुग्रहं पादेन ताडनरूपं स्मरतेव चिन्तयतेव कुसुमान्येवाश्रूणि तद्वर्षिणाऽमुना पुरोवर्तिनाऽशोकेन। हे सुगात्रि! 'अङ्गगात्रकण्ठे-भ्यश्च' इति वक्तव्यान्ङीप्। त्वं शोच्यसे ॥६३॥

अन्वयः—अन्यदुर्लभम् सशब्दनूपुरम् चरणानुग्रहम् स्मरता इव कुसुमाश्रुवर्षिणा अमुना अशोकेन हे सुगात्रि! त्वं शोच्यसे।

व्याख्या—दुःखेन लभ्यते इति दुर्लभम्, अन्यैः=अपरैः दुर्लभम्=दुष्प्राप्यम्, इति अन्यदुर्लभम्, किन्तु स्मरणीयमेवेत्यर्थः, शब्देन सहितं सशब्दं, नवनं नूयते वा नूः नुवि पुरति=अग्रे गच्छतीति नूपुरम्, सशब्दं=सध्वनि नूपुरं=मञ्जीरं यस्य स तं सशब्दनूपुरम्, चरन्ति=गच्छन्ति जना येन स चरणः। चरणेन=पादेन अनुग्रहः=ताडनरूपः इति चरणानुग्रहस्तं चरणानुग्रहम् स्मरता=चिन्तयता

इव = यथा अश्नुते कण्ठमिति अश्रु क्षरयन्तीति कुसुमानि एव अश्रूणि = नेत्रजलानि, तानि वर्षति तच्छील: कुसुमाश्रुवर्षी तेन कुसुमाश्रुवर्षिणा अमुना= पुरोवर्तिना अशोकेन = वञ्जुलेन सुष्ठु गात्रं यस्याः सा तस्याः संबुद्धौ हे सुगात्रि != शोभनाङ्गि ! त्वम्=इन्दुमती शोच्यसे=परितप्यसे ।

समासः—अन्यैः दुर्लभमिति अन्यदुर्लभम्, तम् । शब्देन सहितमिति सशब्दम्, सशब्दं नूपुरं यस्य स तं सशब्दनूपुरम् । चरणेन अनुग्रहस्तं चरणानुग्रहम् । कुसुमानि एव अश्रूणि कुसुमाश्रूणि कुसुमाश्रूणि वर्षति तच्छीलस्तेन ।

हिन्दी—हे सुन्दर शरीरवाली प्रिये ! दूसरों के लिये सदा दुर्लभ, तुम्हारे झनझनाते बिछुओं वाले चरणों के स्पर्शरूपी कृपा को मानों स्मरण करता हुआ, अत: एव पुष्परूपी आँसुओं की वर्षा करने वाला यह अशोकवृक्ष, तुम्हारे शोक में रो रहा है ॥६३॥

तव निःश्वसितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समं मया ।
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरकण्ठि ! सुप्यते ? ॥६४॥

संजी०—तवेति । तव निःश्वसितानुकारिभिर्बकुलैर्बकुलकुसुमैर्मया समं सार्ध-मर्धचितामर्धं यथा रचितां विलासमेखलामसमाप्यापूरयित्वा । किंनरस्य देवयोनि-विशेषस्य कण्ठ इव कण्ठो यस्यास्तत्संबुद्धिर्हे किन्नरकण्ठि ! 'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यश्च' इति ङीप् । किमिदं सुप्यते निद्रा क्रियते ? 'वचिस्वपि–' (पा. ६।१।१५) इत्यादिना संप्रसारणम् । अनुचितमिदं स्वपनमित्यर्थः ॥६४॥

अन्वयः—तव निःश्वसितानुकारिभिः वकुलैः मया समम् अर्धचितां विलासमेखलाम् असमाप्य हे किन्नरकण्ठि ! किमिदं सुप्यते ।

व्याख्या—तव भवत्याः निःश्वसितं=श्वसनं, श्वासनिश्वासमित्यर्थः, अनु-कुर्वन्ति=विडम्बयन्ति तच्छीलानि निश्वसितानुकारीणि तैः निःश्वसितानुकारिभिः, उच्यन्ते=वर्ण्यन्ते कविभिस्ते वकुलास्तेषां पुष्पाणि वकुलानि तैः वकुलैः=केसरैः वकुलकुसुमैरित्यर्थः । मया=अजेन समं=साकम्, अर्धं यथा स्यात्तथा चिता= गुम्फिता=रचिता ताम् अर्धचिताम् । न तु समग्रगुम्फिता इत्यर्थः । मखं=गतिं लातीति मेखला, विलसनं विलासः, विलासस्य=ललितस्य (शृंगारक्रियाविशेषस्ये-

त्यर्थः) मेखला=रशना=काञ्ची तां विलासमेखलाम् असमाप्य=अपूरयित्वा, किंचित्, कुत्सितो वा नरः किन्नरः। किन्नरस्य=किंपुरुषस्य कण्ठः=गलः=ध्वनिश्च इव कण्ठः यस्याः सा तत्संबुद्धौ हे किन्नरकण्ठि! किमिदं सुप्यते=शयनं क्रियते, इदानीं शयनं सर्वथानुचितमित्यर्थः।

समास—निःश्वसितम् अनुकुर्वन्ति तैः निःश्वसितानुकारिभिः। अर्धं यथा स्यात्तथा चिता, अर्धचिता तामर्धचिताम्। विलासस्य मेखलां तां विलासमेखलाम्। किन्नरस्य कण्ठ इव कण्ठो यस्याः सा तत्संबुद्धौ हे किन्नरकण्ठि।

हिन्दी—हे किन्नर के समान कण्ठ वाली (मधुरभाषिणी)। तुम्हारे श्वाँस का अनुकरण करने वाले (तुम्हारे श्वास के समान सुगन्ध वाले) मौलसिरी के फूलों की उस सुन्दर माला को पूरी गूँथे बिना तुम क्यों सो रही है, जो माला मेरे साथ आधी ही गुँथी पड़ी है। अर्थात् माला को पूरी गुँथे बिना तुम्हारा सोना अनुचित है ॥६४॥

समदुःखसुखः सखीजनः प्रतिपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः।

अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः ॥६५॥

संजी०—समेति। सखीजनः समदुःखसुखः, त्वद्दुःखेन दुःखी, त्वत्सुखेन सुखीत्यर्थः। अयमात्मजो बालः, प्रतिपच्चन्द्रनिभः। दर्शनीयो वर्धिष्णुश्चेत्यर्थः। 'प्रतिपत्' शब्देन द्वितीया लक्ष्यते; प्रतिपदि चन्द्रस्यादर्शनात्। अहमेकरसोऽभिन्नरागः। 'शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः' इत्यमरः। तथापि जीवितसामग्रीसत्त्वेऽपीत्यर्थः। ते तव व्यवसायोऽस्मत्परित्यागरूपो व्यापारः प्रतिपत्त्या निश्चयेन निष्ठुरः क्रूरः। 'प्रतिपत्तिः पदप्राप्तौ प्रवृत्तौ गौरवेऽपि च। प्रागल्भ्ये च प्रबोधे च' इति विश्वः। स्मर्तुं न शक्यः किमुत कर्तुमिति भावः ॥६५॥

अन्वयः—सखीजनः समदुःखसुखः, अयम् आत्मजः प्रतिपच्चन्द्रनिभः, अहम् एकरसः "तथापि" ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः 'एवास्तीति शेषः'।

व्याख्या—सखीनां=सहचरीणां जनः=समुदायः सखीजनः समानि=तुल्यानि दुःखानि=कष्टानि सुखानि=आनन्दाः यस्य स समदुःखसुखः। अयम्=पुरोवर्ती आत्मनः=देहात् जातः=उत्पन्नः आत्मजः=बालः प्रतिपद्यते=उपक्रम्यतेऽनया मासादिः, सा प्रतिपद्। चन्दतीति चन्द्रः। प्रतिपदः=पक्षमूलस्य यः चन्द्रः=चन्द्रमाः तेन

निभः=तुल्यः इति प्रतिपच्चन्द्रनिभः, दर्शनीयः वर्धिष्णुश्चेति । अहम्=अजः रस्यते=आस्वाद्यते इति रसः एकः=अभिन्नः रसः=रागः यस्य स एकरसः। तथापि=एतावज्जीवनसामग्रीसत्त्वेऽपीत्यर्थः । ते=तव व्यवसायः=निश्चयः पूर्वोक्त-सामग्रीत्यागरूपो व्यापार इत्यर्थः । प्रतिपत्त्या=निश्चयेन निष्ठुरः=क्रूरः दारुण-इत्यर्थः, इति प्रतिपत्तिनिष्ठुर एवास्तीति स्मरणं कर्तुमपि न शक्यते करणस्य तु का कथेति भावः ।

समासः—सखीनां जन इति सखीजनः, समानि दुःखानि सुखानि च यस्य स समदुःखसुखः । प्रतिपदः चन्द्रस्तेन निभः इति प्रतिपच्चन्द्रनिभः । एकः रसो यस्य स एकरसः । प्रतिपत्त्या निष्ठुर इति प्रतिपत्तिनिष्ठुरः ।

हिन्दी—तुम्हारे दुःख-सुख में समान दुःखी-सुखी ये सखियाँ हैं। प्रतिपदा के चन्द्र के समान (शुक्लद्वितीया चन्द्र के समान) सुन्दर और होनहार यह पुत्र है। एवं तुम्हारा अनन्य प्रेमी मैं हूं। फिर भी हम सबको छोड़कर चल देने का तुम्हारा निश्चय, अतीव कठोर है। अर्थात् इतने सब जीवन सुखों के त्याग का स्मरण भी कोई न करेगा, त्याग की बात ही दूर है ।।६५।।

धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः ।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे ।।६६।।

मल्लि०—धृतिरिति । अद्य मे धृतिर्धैर्यं प्रतीतिर्वाऽस्तं नाशमिता । रतिः क्रीडा च्युता गता । गेयं गानं विरतम् । ऋतुर्वसन्तादिर्निरुत्सवः । आभरणानां प्रयोजनं गतमपगतम् । शेतेऽस्मिन्निति शयनीयं तल्पम् । 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (पा. ३।३।११३) इत्यधिकरणार्थेऽनीयर्प्रत्ययः । परिशून्यम् । त्वां विना सर्वमपि निष्फल-मिति भावः ।। ६६ ।।

अन्वयः—अद्य मे धृतिः अस्तमिता रतिः च्युता गेयं विरतम् ऋतुः निरुत्सवः आभरणप्रयोजनं गतम्, शयनीयं परिशून्यम् , 'वर्तते शेषः' ।

व्याख्या—अद्य=अस्मिन् , अहनि मे=अजस्य धारणं धृतिः=धैर्यम् असनम् इति अस्तम्=अदर्शनम् इता=गता नष्टेत्यर्थः, रमणं रतिः=क्रीड़ा च्युता=गता नष्टा, गेयं= गानं विरतं=समाप्तम्, इयर्ति ऋच्छति वा ऋतुः=वसन्तादिः निर्गतः उत्सवः यस्य स निरुत्सवः=उत्सवशून्यः, आ भ्रियतेऽनेनेति आभरणम् । आभरणस्य=अलंकारस्य

योजनम्=अर्थः गतम् = अपगतम्=समाप्तमित्यर्थः, शेतेऽस्मिन्निति शयनीयं=तल्पम् खट्वा इति यावत्। परितः शून्यमिति परिशून्यं=रिक्तम् वर्तते। त्वां विना मे सर्वं व्यर्थं जातमित्यर्थः।

समासः—आभरणानां प्रयोजनमिति आभरणप्रयोजनम्। परितः शून्यमिति परिशून्यम्। निर्गतः उत्सवः यस्मात् स निरुत्सवः।

हिन्दी—हे प्रिये ! आज मेरा धैर्य टूट गया है। आनन्द जाता रहा। गाना बजाना छूट गया, वसन्तादि ऋतुएँ उत्सवहीन हो गईं। अर्थात् फीकी पड़ गईं। और मेरा भूषण वस्त्र पहनना व्यर्थ है। और मेरा पलंग आज शून्य है। खाली पड़ा है। अर्थात् तुम्हारे बिना ये सब व्यर्थ ही हैं ॥६६॥

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ॥६७॥

संजी०—गृहिणीति। त्वमेव गृहिणी दाराः। अनेन सर्वं कुटुम्बं त्वदाश्रयमिति भावः। सचिवो बुद्धिसहायो मन्त्री। सर्वो हितोपदेशस्त्वदायत्त इत्यनेनोच्यते। मिथो रहसि सखी नर्मसचिवः। सर्वोपभोगस्त्वदाश्रय इत्यमुना प्रकटितम्। ललिते मनोहरे कलाविधौ वादित्रादिचतुःषष्टिकलाप्रयोगे प्रियशिष्या। प्रियत्वं प्राज्ञत्वादित्यभिसंधिः। सर्वानन्दोऽनेन त्वन्निबन्धन इत्युद्घाटितम्। अतस्त्वां समष्टिरूपां हरताऽत एव करुणाविमुखेन कृपाशून्येन मृत्युना मे मत्संबन्धि किं वस्तु न हृतं वद। सर्वमपि हृतमित्यर्थः ॥६७॥

अन्वयः—"त्वमेव" गृहिणी सचिवः मिथः सखी, ललिते कलाविधौ प्रियशिष्या "आसीः" "अतः" त्वां हरता "अत एव" करुणाविमुखेन मृत्युना मे किं न हृतम्।

व्याख्या—त्वमेव=इन्दुमती एव गृह्णाति सर्वं धान्यादिकमिति गृहिणी= दाराः कुटुम्बरक्षणात्। सहनं सचिः, सचिं वातीति सचिवः=मन्त्री हितोपदेशकर्तृत्वात्। मेथतीति मिथः=रहसि सखी=नर्मसचिवः सर्वानन्ददातृत्वात् ललनं ललितं तस्मिन् ललिते=मनोहरे कल्पते कलयतीति कला। कं लातीति कला, विधानं विधिः, कलायाः विधिस्तस्मिन् कलाविधौ=गीतावादित्रादिचतुष्षष्टिकला-

प्रयोगे शिष्यते या सा शिष्या प्रिया चासौ शिष्या च प्रियशिष्या=प्रियच्छात्रा आसीः, एतेन सर्वानन्दस्त्वदधीन इति प्रकटितम् । अतस्त्वाम्=इन्दुमतीं मे समष्टि-रूपाम् हरता=विनाशयता अत एव करुणायाः=कृपायाः विमुखः=रहितस्तेन करुणाविमुखेन=दयाशून्येनेत्यर्थः मरणं मृत्युस्तेन मृत्युना=यमेन मे=ममाजस्य किं=वस्तु न हृतं=न विनाशितम् वद=कथय, अर्थात् मम तु सर्वस्वमेव हृतमित्यर्थः ।

समासः—प्रिया चासौ शिष्या प्रियशिष्या । कलायाः विधिस्तस्मिन् कला-विधौ । करुणायाः विमुखस्तेन करुणविमुखेन ।

हिन्दी—तुम्ही मेरी स्त्री थी, संमति देनेवाली मंत्री थी, और एकान्त की सखी थी, तथा गाना बजाना आदि चौंसठ कलाओं के मनोहर कार्यों में प्रिय शिष्या थी "इस प्रकार मेरा सब कुछ तुम्हारे ही अधीन था", अतः तुमको छीनकर निर्दयी यमराज ने मेरा क्या नहीं छीना है तुमही बताओ ? अर्थात् मेरा तो सर्वस्व ही छीन लिया ॥६७॥

मदिराक्षि ! मदाननार्पितं मधु पीत्वा रसवत्कथं नु मे ।
अनुपास्यसि बाष्पदूषितं परलोकोपनतं जलाञ्जलिम् ॥६८॥

संजी०—मदिरेति । माद्यत्यनयेति मदिरा लोकप्रसिद्धा । तथापि 'नार्यो मदिरलोचनाः' इत्यादिप्रयोगदर्शनान्माद्यत्याभ्यामिति मदिरे अक्षिणी यस्यास्त-त्संबुद्धिर्हे मदिराक्षि ! मदाननेनार्पितं रसवत् स्वादुतरं मधु मद्यं पीत्वा बाष्प-दूषितमश्रुतप्तं परलोकोपनतं परलोकप्राप्तं मे जलाञ्जलिं तिलोदकाञ्जलिं कथं न्वनन्तरं पास्यसि ? तदनन्तरमिदमनर्हमित्यर्थः । यथाह भट्टमल्लः—'अनुपानं हिमजलं यवगोधूमनिर्मिते । दधिन मद्ये विषे द्राक्षे पिष्टे पिष्टमयेऽपि च ॥' इति । तच्चेहैव युज्यते । इदं तूष्णं लोकान्तरोपयोगि चेत्यायुर्वेदविरोधात्कथमनुपास्यसीति भावः ॥ ६८ ॥

अन्वयः—हे मदिराक्षि मदाननार्पितं रसवत् मधु पीत्वा बाष्पदूषितं परलोकोपनतं जलाञ्जलिं कथं नु अनुपास्यसि ।

व्याख्या—माद्यति इति मदिरा=सुरा, इति लोकप्रसिद्धं तथापि नार्यो मदिरलोचनाः इति कविसम्प्रदायप्रसिद्धेर्दर्शनात् माद्यति आभ्यामिति मदिरे-हर्षोन्मत्ते

अक्षिणी=नेत्रे यस्याः सा तत्संबुद्धौ हे मदिराक्षि ! मम=अजस्य आननं=मुखं तेन= अर्पितं=दत्तमिति मदाननार्पितम् रस्यते इति रसः रसः=आस्वादः अस्यास्तीति रसवत्=अतीव स्वादु मन्यते इति मधु=मद्यं पीत्वा निपीय पानं कृत्वेत्यर्थः । वायति वाति वा बाष्पम्=ऊष्माश्रु तेन दूषितं=मलिनम् अश्रुभिस्तप्तमित्यर्थः पिपर्ति पूर्यते वा अनेनेति परः=अन्यश्चासौ लोकः (लोक्यते इति लोकः) भुवनमिति परलोक-स्तस्मिन् परलोके=पितृलोके उपनतः=प्राप्तः इति परलोकोपनतः । जलस्य=उदकस्य अञ्जलिः, (अज्यतेऽनेनेति अञ्जलिः) तं जलाञ्जलिम्=तिलोदकमित्यर्थः कथं= केन प्रकारेण अनु=अन्तरं पास्यसि=पानं करिष्यसि । अर्थात् मधुररसपानानन्तरमिदं पानं सर्वथानुचितम् ।

समासः—मदिरे अक्षिणी यस्याः सा तत्संबुद्धौ हे मदिराक्षि ! मम आननमिति मदाननं तेन अर्पितं तत् मदाननार्पितम् । रसोऽस्यास्तीति रसवत् । बाष्पैः दूषितः बाष्पदूषितस्तं बाष्पदूषितम् । परलोके उपनतः परलोकोपनतस्तम् । जलस्याञ्जलिरिति जलाञ्जलिस्तं जलाञ्जलिम् ।

हिन्दी—हे मदभरे नयनों वाली प्रिये ! मेरे मुख से दिये हुए सुस्वादु आसव (शराब) को पीकर "अब" आँसुओं के जल से गन्दली (मलिन) परलोक में प्राप्त हुई तिलांजलि को तुम कैसे पी सकोगी । अर्थात् न पी सकोगी ॥६८॥

विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम् ।
अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः ॥६९॥

मं०—विभव ऐश्वर्ये सत्यपि त्वया विनाऽजस्यैतावदेव सुखं गण्यताम् । यावत्त्वया सह भुक्तं ततोऽन्यन्न किंचिद्भविष्यतीत्यर्थः । कुतः ? विलोभ-नान्तरैर्विषयान्तरैरहृतस्यानाकृष्टस्य मम सर्वे विषया भोगादयस्त्वदधीनाः । त्वां विना मे न किंचि द्रोचत इत्यर्थः ॥६९॥

अन्वयः—विभवे सति अपि त्वया विना अजस्य एतावदेव सुखं गण्यताम्, 'कुतः' विलोभनान्तरैः अहृतस्य मम सर्वे विषयाः त्वदाश्रयाः 'सन्तीति शेषः' ।

व्याख्या—विशेषेण भवतीति विभवस्तस्मिन् विभवे=ऐश्वर्ये सुखे च सति= विद्यमानेऽपि त्वया = इन्दुमत्या विना=त्वदभावे इत्यर्थः अजस्य=मम एतत् परिमाण-

मस्येति एतावत्=इयदेव सुखयतीति सुखम्, शोभनानि खानि=इन्द्रियाणि अनेन तत् सुखम्=आनन्दः गण्यतां=त्वया सह यत्सुखं भुक्तं तदतिरिक्तं न किमपि विचार्यतामित्यर्थः । "कुतः यतो हि" विलोभनानि = विषयाः, अन्यानि विलोभनानि विलोभनान्तराणि, तैः विलोभनान्तरैः न हृतः=न आकृष्टः, इति अहृतस्तस्य अहृतस्य = अनाकृष्टस्य मम=अजस्य सर्वे=सम्पूर्णाः विसिन्वन्ति=निबध्नन्ति इन्द्रियाणि ये ते विषयाः=रूपरसादयः भोगाः त्वम्=इन्दुमती आश्रयः अवलम्बः येषां ते त्वदाश्रयाः । तव वियोगे न मे किंचिदपि रोचते इति ।

समासः—न हृतः अहृतस्तस्य अहृतस्य । अन्यानि विलोभनानि विलोभनान्तराणि तैः विलोभनान्तरैः । त्वम् आश्रयो येषां ते त्वदाश्रयाः ।

हिन्दी—"हे इन्दुमति" इतने ऐश्वर्य के होते हुए भी, तुम्हारे बिना अज का केवल इतना ही सुख समझो ! (अर्थात् तेरे साथ जो सुख भोगा है उसके अतिरिक्त अब कुछ भी न होगा) क्योंकि दूसरे किसी विषय में प्रेम न रखने वाले मेरे, सब सुख भोग तुम्हारे ही अधीन हैं । तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है ॥६९॥

विलपन्निति कोसलाधिपः करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति ।
अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान् ॥७०॥

संजी०—विलपन्निति । कोसलानामधिपोऽज इति करुणः शोकरसः स एवार्थस्तेन ग्रथितं संबद्धं यथा तथा प्रियां प्रतीन्दुमतीमुद्दिश्य विलपन्, पृथिवीरुहान् वृक्षानपि स्रुताः शाखारसा मकरन्दा एव बाष्पास्तैर्दूषितानकरोत् । अचेतनानप्यरोदयदित्यर्थः ॥७०॥

अन्वयः—कोसलाधिपः इति करुणार्थग्रथितं यथा स्यात्तथा प्रियां प्रति विलपन् पृथिवीरुहान् अपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान् अकरोत् ।

व्याख्या—कौ=पृथिव्यां सलति=गच्छतीति शोभते वा कोसलः । अधिकं पातीति अधिपः, कोसलस्य=देशविशेषस्य अधिपः=स्वामी, इति कोसलाधिपः=अजः इति=पूर्वोक्तप्रकारेण ऋच्छति अर्यते वा अर्थः । करुणः=दया शोकरस इत्यर्थः स चासौ अर्थः=प्रयोजनं तेन ग्रथितं=संबद्धमिति करुणार्थग्रथितं यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात्तथा प्रियां=भार्यां प्रति, इन्दुमतीमुद्दिश्येत्यर्थः विलपन् = परि-

देवयन् विलापं कुर्वन् । प्रथते इति पृथिवी, पृथिव्यां रोहन्तीति पृथिवीरुहास्तान् पृथिवीरुहान्=वृक्षान् अपिः=समुच्चये, स्रुताः=क्षरन्तः शाखानां (शाखन्तीति शाखाः) लतानां रसाः=मकरन्दाः एव बाष्पाः=अश्रूणि तैः दूषिताः=मलिनास्तान् स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान् । अकरोत्=कृतवान् । अचेतनवृक्षानपि अरोदयदित्यर्थः ।

समासः—कोसलानाम् अधिपः कोसलाधिपः । करुणश्चासौ अर्थः करुणार्थः तेन ग्रथितं यथा स्यात्तथा करुणार्थग्रथितम् । पृथिव्यां रोहन्तीति पृथिवीरुहास्तान् पृथिवीरुहान् । शाखानां रसाः शाखारसाः, स्रुताः शाखारसाः एव बाष्पं तेन दूषितास्तान् स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान् ।

हिन्दी—कोसल नरेश अज ने इस प्रकार करुणापूर्ण (शोक व्याप्त) होकर अपनी प्रिया इन्दुमती के लिए रोते हुए वृक्षों को भी बहते हुए शाखा के रसरूपी आँसुओं से मलिन कर दिया । अर्थात् अज के विलाप को देख सुन कर वृक्ष भी रो पड़े ॥७०॥

अथ तस्य कथंचिदङ्कतः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम् ।
विससर्ज तदन्त्यमण्डनामनलायागुरुचन्दनैधसे ॥७१॥

संजी०—अथेति । अथ स्वजनो बन्धुवर्गः । तस्याजस्याङ्कत उत्सङ्गात् कथंचिदपनीय । तद्दिव्यकुसुममेवान्त्यं मण्डनमलंकारो यस्यास्ताम् । तां सुन्दरीमगुरूणि चन्दनान्येधांसीन्धनानि यस्य तस्मा अनलायाग्नये विससर्ज विसृष्टवान् । 'क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम्' इति क्रियामात्रप्रयोगे संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ॥७१॥

अन्वयः—अथ स्वजनः तस्य अङ्कतः कथंचित् अपनीय तदन्त्यमण्डनां तां सुन्दरीम् अगुरुचन्दनैधसे अनलाय विससर्ज ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् स्वश्चासौ जनः स्वजनः=बन्धुवर्गः तस्य=अजस्य अङ्क्यतेऽनेनेति अङ्कः । अंकादिति अंकतः=क्रोडात् उत्सङ्गादित्यर्थः, कथंचित्=महता कष्टेन अपनीय=नीत्वा=आदायेत्यर्थः, अन्ते भवमन्त्यम् तत्=दिव्यपुष्पमेव अन्त्यम्=अन्तिमम् मण्डनम्=आभरणं यस्याः सा तां तद्दिव्यमण्डनाम् तां=प्रसिद्धां सु उनत्ति=चित्तं द्रवीकरोति, या सा सुन्दरी तां सुन्दरीं=रमणीम् । न गुरुः येभ्यस्तानि अगुरूणि, चन्दयन्तीति चन्दनानि, एधते एभिस्तानि एधांसि ।

अगुरूणि=राजार्हाणि चन्दनानि=गन्धसाराः एधांसि=इन्धनानि यस्य स तस्मै, अगुरुचन्दनैधसे, अनिति अनेनेति अनलस्तस्मै अनलाय = अग्नये विससर्ज= विसृष्टवान्=अग्निसंस्कारं कृतवानित्यर्थः ।

समासः—स्वश्चासौ जनः स्वजनः । तत् अन्त्यं मण्डनं यस्याः सा तां तदन्त्यमण्डनाम् । अगुरूणि चन्दनानि एधांसि यस्य स तस्मै अगुरुचन्दनैधसे ।

हिन्दी—इसके पश्चात् कुटुम्बी जनों ने अज की गोद से किसी प्रकार (ज्यों त्यों छीनकर) हटाकर और वह स्वर्गीय माला ही है अन्तिम अलंकार जिसका ऐसी उस सुन्दरी को अगर चन्दन की लकड़ियों की अग्नि में छोड़ दिया । अर्थात् अगरचन्दन की चिता में दाहसंस्कार कर दिया ॥७१॥

प्रमदामनुसंस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् ।

न चकार शरीरमग्निसात्सह देव्या न तु जीविताशया ॥७२॥

मं०—प्रमदामिति । नृपतिरजः सन्नपि विद्वानपि शुचा शोकेन प्रमदामनु प्रमदया सह संस्थितो मृत इति वाच्यदर्शनान्निन्दादर्शनाद्देव्येन्दुमत्या सह शरीरमग्निसादग्न्यधीनं न चकार । 'तदधीनवचने' (पा. ५।४।५४) इति सातिप्रत्ययः । जीविताशया प्राणेच्छया तु नेति ॥७२॥

अन्वयः—नृपतिः सन्निति शुचा प्रमदाम् अनुसंस्थितः इति वाच्यदर्शनात् देव्या सह शरीरम् अग्निसात् न चकार जीविताशया तु न ।

व्याख्या—नृणां पतिः नृपतिः=राजा अजः सन्नपि=विद्वानपि शुचा= शोकेन प्रकृष्टः मदः=हर्षः यस्याः सा प्रमदा तां प्रमदाम् अनु=पश्चात् स्त्रिया सह संस्थितः=मृतः इति वाच्यस्य=निन्दायाः दर्शनम्=अवलोकनमिति वाच्यदर्शनं तस्मात् वाच्यदर्शनात्, दीव्यतीति देवी तया देव्या=इन्दुमत्या सह=साकम् शृणाति शीर्यते वा शरीरं=देहम् कृत्स्नम् अग्न्यधीनं कृतमिति अग्निसात्= अग्न्यधीनं न चकार = न कृतवान् जीवितस्य=प्राणस्य आशा=इच्छा तया जीविताशया तु न=प्राणधारणेच्छया नहि ।

समासः—वाच्यस्य दर्शनं तस्मात् वाच्यदर्शनात् । अग्नेः अधीनम् कृतमिति अग्निसात् । आ समन्तात् अश्नुते इति आशा जीवितस्य आशा जीविताशा, तया जीविताशया ।

हिन्दी—राजा अज विद्वान् होकर भी शोक-दुःख के कारण अपनी पत्नी के साथ चितापर (मर गया) ऐसी निन्दा को देख समझकर देवी इन्दुमती के साथ अपने शरीर को अग्नि में नहीं जलाया, न कि जीने की इच्छा से। अर्थात् प्राण का मोह नहीं था अज को किन्तु निन्दा का डर था। अतः मरे नहीं ॥७२॥

अथ तेन दशाहतः परे गुणशेषामपदिश्य भामिनीम् ।
विदुषा विधयो महर्द्धयः पुर एवोपवने समापिताः ॥७३॥

संजी०—अथेति। अथ विदुषा शास्त्रज्ञेन तेनाजेन। गुणा एव शेषा रूपादयो यस्यास्तां गुणशेषां भामिनीमिन्दुमतीमपदिश्योद्दिश्य। दशानामह्नां समाहारो दशाहः। 'तद्धितार्थ—' (पा. २।१।५१) इत्यादिना समासः समाहारस्यैकत्वादेकवचनम्। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' (पा. ५।४।९१) इति टच्। 'रात्राह्नाहाः पुंसि' (पा. २।४।२९) इति पुंवत्। ततस्तसिल्। तस्माद्दशाहतः पर ऊर्ध्वं कर्तव्या महर्द्धयो महासमृद्धयो विधयः क्रियाः पुरः पुर्या उपवन उद्यान एव समापिताः संपूर्णमनुष्ठिताः। 'दशाहतः' इत्यत्र 'विप्रः शुद्ध्येद्दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः' (५।८३) इति मनुवचनविरोधो नाशङ्कनीयः; तस्य निर्गुणक्षत्रियविषयत्वात्। गुणवत्क्षत्रियस्य तु दशाहेन शुद्धिमाह पराशरः—'क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वधर्मनिरतः शुचिः' इति। सूच्यतेऽस्यापि गुणवत्त्वं 'विदुषा' इत्यनेन ॥७३॥

अन्वयः—अथ विदुषा तेन गुणशेषां भामिनीम् उद्दिश्य दशाहतः परे महर्द्धयः विधयः पुरः उपवने एव समापिताः।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् वेत्तीति विद्वान्=पण्डितस्तेन विदुषा=शास्त्रज्ञेन तेन=अजेन, गुण्यन्ते इति गुणाः, शिष्यन्ते शेषाः, गुणाः=रूपादयः एव शेषाः=अवशिष्टाः यस्याः सा तां गुणशेषाम्, अवश्यं भामते इति भामिनी तां भामिनीम्=इन्दुमतीम् उद्दिश्य=तदुद्देशेनेत्यर्थः दशानाम् अह्नां समाहारः दशाहस्तस्मात् दशाहतः=दशदिनात् परे=ऊर्ध्वं कर्तव्याः विधीयन्ते इति विधयः ऋध्नोतीति ऋद्धिः महती=अधिका ऋद्धिः=समृद्धिः येषु ते महर्द्धयः विधयः=क्रियाः पुरः=नगरस्य उपगतं वनमिति उपवनं तस्मिन् उपवने=आरामे एव समापिताः=अनुष्ठिताः।

समासः—गुणाः एव शेषाः यस्याः सा तां गुणशेषाम् । दशानाम् अह्नां समाहारो दशाहस्तस्मात् दशाहतः । महती ऋद्धिः येषु ते महर्द्धयः । वनम् उपगतमिति उपवनं तस्मिन् उपवने ।

हिन्दी—इसके बाद शास्त्र को जानने वाले उस अज ने, केवल गुण ही जिसके बचे हैं (मरी हुई) ऐसी इन्दुमती के उद्देश्य (उसके नाम) से दश दिन के बाद (शुद्ध होने पर) सम्पूर्ण क्रियाओं को उदारतापूर्वक अयोध्या के उपवन में ही समाप्त किया । अर्थात् उपवन में ही सारा श्राद्ध किया ॥७३॥

स विवेश पुरीं तया विना क्षणदापायशशाङ्कदर्शनः ।
परिवाहमिवावलोकयन्स्वशुचः पौरवधूमुखाश्रुषु ॥७४॥

संजी०—स इति । तयेन्दुमत्या विना । क्षणदाया रात्रेरपायेऽपगमे यः शशाङ्कश्चन्द्रः स इव दृश्यत इति क्षणदापायशशाङ्कदर्शनः । प्रातःकालिकचन्द्र इव दृश्यमान इत्यर्थः । दृश्यत इति कर्मार्थे ल्युट् । सोऽजः पौरवधूमुखाश्रुषु स्वशुचः स्वशोकस्य परिवाहं जलोच्छ्वासमिवावलोकयन् । 'जलोच्छ्वासाः परीवाहाः' इत्यमरः । स्वदुःखपूरातिशयमिव पश्यन् पुरीं विवेश । 'वधू' ग्रहणात्तस्यामिन्दुमत्यां सख्यभिमानादजसमानदुःखसूचकपरीवाहोक्तिर्निर्वहति ॥७४॥

अन्वयः—तया विना क्षणदापायशशांकदर्शनः सः पौरवधूमुखाश्रुषु स्वशुचः परिवाहम् इव अवलोकयन् पुरीं विवेश ।

व्याख्या—तया=इन्दुमत्या विना=रहितम् क्षणम् उत्सवं निर्व्यापारस्थितिं वा ददातीति क्षणदा=रात्रिः । शशतीति शशः । शशः=मृगः अंके=क्रोडे यस्य स शशांकः । क्षणदायाः=रात्रेः अपायः=विनाशः=समाप्तिरित्यर्थः तस्मिन् शशांकः= चन्द्रः इव दृश्यते=अवलोक्यते इति क्षणदापायशशांकदर्शनः प्रभातकालिकप्रक्षीणचन्द्र इव दृश्यमान इत्यर्थः । सः=अजः पुरे भवाः पौराः वहति उह्यते वा वधूः । पौराणां=नागरिकाणां वध्वः=स्त्रियस्तासां मुखानि=आननानि इति पौरवधूमुखानि, तेषु अश्रूणि=अस्राणि=नेत्रजलानीत्यर्थः, इति पौरवधूमुखाश्रूणि तेषु पौरवधूमुखाश्रुषु स्वस्य=अजस्य शुक्=शोकः तस्याः स्वशुचः परितः=सर्वतः वहति= प्रसरति इति परिवाहस्तं परिवाहं=जलोच्छ्वासम् इव=यथा अवलोकयन्=पश्यन् पुरीम्=नगरीम् अयोध्यामित्यर्थः विवेश=प्रविष्टः ।

समासः—क्षणदाया: अपाय: क्षणदापायस्तस्मिन् यः शशांकः इति क्षणदापायशशांकः, स इव दृश्यते यः स क्षणदापायशशांकदर्शनः । पौराणां वध्वस्तासां मुखानि तेषु अश्रूणि तेषु पौरवधूमुखाश्रुषु । स्वस्य शुक् स्वशुक् तस्याः स्वशुचः ।

हिन्दी—उस इन्दुमती के बिना, रात्रि के बीत जाने पर चन्द्रमा के समान दीखने वाले (कान्तिहीन) अज ने नगर की स्त्रियों के मुख के आँसुओं में मानो अपने शोक के प्रवाह को देखते हुए नगर में प्रवेश किया । अर्थात् उस समय स्त्रियाँ केवल अज को देखकर रो रही थीं । तो मानों उनके आँसुओं से अज का शोक बह रहा था ॥७४॥

अथ तं सवनाय दीक्षितः प्रणिधानाद्गुरुराश्रमस्थितः ।
अभिषङ्गजडं विजज्ञिवानिति शिष्येण किलान्वबोधयत् ॥७५॥

संजी०—अथेति । अथ सवनाय यागाय दीक्षितो गुरुर्वसिष्ठ आश्रमे स्वकीयाश्रमे स्थितः सन् । तमजमभिषङ्गजडं दुःखमोहितं प्रणिधानाच्चित्तैकाग्र्याद्विजज्ञिवाञ्ज्ञातवान् । 'क्वसुश्च' (पा. ३।२।१०७) इति क्वसुप्रत्ययः । इति वक्ष्यमाणप्रकारेण शिष्येणान्वबोधयत्किल । बुधेर्ण्यन्ताण्णिचि लङ् ॥७५॥

अन्वयः—**अथ सवनाय दीक्षितः गुरुः आश्रमस्थितः सन् तम् अभिषंगजडं प्रणिधानात् विजज्ञिवान्, इति शिष्येण अन्वबोधयत् किल ।**

व्याख्या—सूयतेऽनेन अत्र वा तत् सवनं तस्मै सवनाय=यज्ञाय दीक्षते स्म दीक्षितः दीक्षा संजातास्यासौ वा दीक्षितः=दीक्षावान् गृणाति धर्मादि, गिरति अज्ञानं वा स गुरुः=वसिष्ठः, आश्रमन्ति अत्र अनेन वा आश्रमः, आसमन्तात् श्रमः=स्वधर्मसाधनरूपक्लेशः अत्र वा आश्रमः तस्मिन् आश्रमे=वने मठे वा स्थितः=वर्तमानः इति आश्रमस्थितः सन् तम्=अजम् अभिषञ्जनमभिषङ्गस्तेन अभिषंगेन=दुःखेन जडः=मोहितस्तम् अभिषङ्गजडं प्रणिधीयतेऽत्र प्रणिधानं तस्मात् प्रणिधानात्=चित्तैकाग्र्यात् समाधिनेत्यर्थः विजज्ञिवान्=ज्ञातवान् इति=वक्ष्यमाणप्रकारेण शिष्यते इति शिष्यस्तेन शिष्येण=छात्रेण अन्वबोधयत्=बोधितवान् शिष्यद्वारा स्वोपदेशेनेत्यर्थः ।

समासः—आश्रमे स्थितः आश्रमस्थितः । अभिषंगेन जडः अभिषंगजडस्तम् अभिषङ्गजडम् ।

हिन्दी—इसके बाद यज्ञ के अनुष्ठान में लगे हुए गुरु वसिष्ठ जी ने आश्रम में बैठे-बैठे ही (पत्नी वियोग) के दुःख से अतीव पीड़ित अज को समाधि से जान लिया। 'अतः स्वयं न आकर' अपने शिष्य द्वारा अग्रिम उपदेश से अज को ज्ञान दिया ॥७५॥

वसिष्ठशिष्य आह—

असमाप्तविधिर्यतो मुनिस्तव विद्वानपि तापकारणम् ।

न भवन्तमुपस्थितः स्वयं प्रकृतौ स्थापयितुं पथश्च्युतम् ॥७६॥

संजी०—असमाप्तेति। यतो हेतोर्मुनिरसमाप्तविधिरसमाप्तक्रतुस्ततस्तव तापकारणं दुःखहेतुं कलत्रनाशरूपं विद्वाञ्जानन्नपि। 'विदेः शतुर्वसुः' (पा. ७।१।३६) इति वस्वादेशः। 'न लोक–' (पा. २।३।६९) इत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधः। पथश्च्युतं स्वभावाद्भ्रष्टं भवन्तं प्रकृतौ स्वभावे स्थापयितुम्। समाश्वासयितुमित्यर्थः। स्वयं नोपस्थितो नागतः ॥७६॥

अन्वयः—यतः मुनिः असमाप्तविधिः 'ततः' तव तापकारणं विद्वान् अपि पथः च्युतं भवन्तं प्रकृतौ स्थापयितुं स्वयं न उपस्थितः।

व्याख्या—यस्मादिति यतः=यस्मात् हेतोः मन्ता वेदशास्त्रार्थतत्त्वावगन्ता मुनिः-मंत्रद्रष्टा=वसिष्ठः विधानं विधिः न समाप्तः इति असमाप्तः-असम्पूर्णः विधिः=यागः यस्य स तथोक्तः। ततः=तस्मात् कारणात् तव=अजस्येत्यर्थः तापयतीति तापः। तापस्य=दुःखस्य कारणं=हेतुः तत् तापकारणम्। इन्दुमतीमरणरूपमित्यर्थः वेत्तीति विद्वान्=जानन्नपि पथन्ते अनेन, पतन्ति अनेन वा पन्थाः तस्मात् पथः=मार्गात् स्वभावादित्यर्थः च्युतं=भ्रष्टं भवन्तम्=अजं प्रकुरुते इति प्रकृतिस्तस्यां प्रकृतौ=स्वभावे स्थापयितुं-संस्थापयितुम् = आश्वासयितुमित्यर्थः स्वयम्=आत्मना नोपस्थितः–न प्राप्तः। भवन्तमाश्वासयितुमत्र नागतो गुरुरिति।

समासः—न समाप्तः विधिः येन सोऽसमाप्तविधिः। तापस्य कारणमिति तत् तापकारणम्।

हिन्दी—वसिष्ठ मुनि यज्ञ की पूर्णाहुति नहीं कर पाये हैं। इसलिए तुम्हारे स्त्रीविनाश रूप दुःख को जानते हुए भी स्वभाव से गिरे हुए आपको धीरता बन्धाने के लिए स्वयं नहीं आए हैं ॥७६॥

मयि तस्य सुवृत्त ! वर्तते लघुसंदेशपदा सरस्वती ।

शृणु विश्रुतसत्त्वसार ! तां हृदि चैनामुपधातुमर्हसि ॥७७॥

संजी०—मयीति । हे सुवृत्त सदाचार ! संदिश्यत इति संदेशः संदेष्टव्यार्थः । तस्य पदानि वाचकानि लघूनि संक्षिप्तानि संदेशपदानि यस्यां सा लघुसंदेशपदा तस्य मुनेः सरस्वती वाक् मयि वर्तते । हे विश्रुतसत्त्वसार प्रख्यातधैर्यातिशय ! तां सरस्वतीं शृणु । एनां वाचं हृद्युपधातुं धर्तुं चार्हसि ॥७७॥

अन्वयः—हे सुवृत्त ! लघुसन्देशपदा तस्य सरस्वती मयि वर्तते, हे श्रुत-विश्रुतसत्त्वसार ! तां शृणु एनां हृदि उपधातुम् अर्हसि ।

व्याख्या—वर्तते स्म इति वृत्तं सु=शोभनं वृत्तं=स्वभावः=आचारः यस्य स सुवृत्तस्तत्संबुद्धौ हे सुवृत्त = हे शोभनाचार ! संदिश्यते इति सन्देशः, सन्देशस्य= सन्देष्टव्यार्थस्य पदानि=वाचकानि इति सन्देशपदानि लघूनि=संक्षिप्तानि सन्देश-पदानि यस्यां सा लघुसन्देशपदा, सरतीति सरः=ज्ञानमस्याः अस्तीति सरस्वती=वाक् मयि=वसिष्ठशिष्ये वर्तते=अस्ति सतो भावः सत्त्वं सरतीति सारः सत्त्वस्य सारः सत्त्वसारः विश्रुतः प्रसिद्धः सत्त्वसारः=धैर्यातिशयः यस्य स तत्संबुद्धौ हे विश्रुत-सत्त्वसार ! तां=सरस्वतीं शृणु=आकर्णय एनां=सरस्वतीं=गुरुवाणीमित्यर्थः हृदि= चित्ते उपधातुं=धर्तुं च अर्हसि=योग्योऽसि ।

समासः—सु वृत्तं यस्य स तत्संबुद्धौ हे सुवृत्त ! लघूनि सन्देशस्य पदानि यस्यां सा लघुसन्देशपदा । विश्रुतः सत्त्वस्य सारो यस्य स तत्संबुद्धौ हे विश्रुतसत्त्वसार ! ।

हिन्दी—हे सच्चरित्र राजन् ! संक्षिप्तार्थक पदों के सन्देशयुक्त मुनि की वाणी मेरे पास है और हे प्रसिद्ध धैर्यशाली राजन् उस वाणी को सुनो और सुनकर अपने हृदय में धारण करो ॥७७॥

वक्ष्यमाणार्थानुगुणं मुनेः सर्वज्ञत्वं तावदाह—

पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च ।

स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति ॥७८॥

संजी०—पुरुषस्येति । अजन्मनः पुराणपुरुषस्य भगवतस्त्रिविक्रमस्य पदेषु विक्रमेषु । त्रिभुवनेष्वपीत्यर्थः । समतीतं भूतं च भवद्वर्तमानं च भावि भविष्यच्चेति त्रितयं स मुनिर्निष्प्रतिघेनाप्रतिबन्धेन ज्ञानमयेन चक्षुषा ज्ञानदृष्ट्या पश्यति हि। अतस्तदुक्तिषु न संशयितव्यमित्यर्थः ॥७८॥

अन्वयः—अजन्मनः पुरुषस्य पदेषु समतीतं च भवत् च भावि च 'इति' त्रितयं स निष्प्रतिघेन ज्ञानमयेन चक्षुषा पश्यति हि ।

व्याख्या—जननं जन्म न जन्म यस्य सोऽजन्मा तस्य अजन्मनः=अजस्य जन्मरहितस्येत्यर्थः पुरति, पूरयतीति वा पुरुषस्तस्य पुरुषस्य=त्रिविक्रमस्य=वामनावतारस्येत्यर्थः । पदन्ति, पद्यन्तीति पदास्तेषु पदेषु=विक्रमेषु=त्रिभुवनेष्वपीत्यर्थः । सम्यगतीतं समतीतं=भूतकालिकं भवतीति भवत्=वर्तमानं भावि=भविष्यच्चेति त्रितयं=त्रैकालिकं सर्वमिति यावत् स=मुनिर्वसिष्ठः प्रतिहननं प्रतिघः, प्रतिघात् निष्क्रान्तमिति निष्प्रतिघं तेन निष्प्रतिघेन=प्रतिबन्धरहितेन ज्ञानप्रचुरं ज्ञानमयं तेन ज्ञानमयेन=अलौकिकज्ञानेनेत्यर्थः । चष्टे इति चक्षुः, चक्ष्यतेऽनेन वा चक्षुस्तेन चक्षुषा=ज्ञानदृष्ट्या पश्यति हि=अवलोकयति हि । अतः वसिष्ठोक्तिषु सन्देहो न कर्तव्य इति भावः ।

समासः—न जन्म यस्य सोऽजन्मा तस्य अजन्मनः । प्रतिघात् निष्क्रान्तं निष्प्रतिघं तेन निष्प्रतिघेन ।

हिन्दी—अजन्मा पुराण पुरुष वामन भगवान् के तीन पदों में अर्थात् त्रिभुवन में, भूत, भविष्य तथा वर्तमान की सम्पूर्ण वस्तुओं को वे मुनि, कभी न रुकने वाले अपने ज्ञान नेत्रों से देखते हैं । अर्थात् वे सर्वज्ञ हैं । अतः उनकी बातों में सन्देह न करना ॥७८॥

चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणबिन्दोः परिशङ्कितः पुरा ।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुराङ्गनाम् ॥७९॥

संजी०—चरत इति । पुरा किल दुश्चरं तीव्रं तपश्चरतस्तृणबिन्दोस्तृणबिन्दुनामकात्कस्माचिदृषेः परिशङ्कितो भीतः । कर्तरि क्तः । 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' (पा. १।४।२५) इत्यपादानात्पञ्चमी । हरिरिन्द्रः समाधिभेदिनीं तपोविघातिनीं हरिणीं नाम सुराङ्गनामस्मै तृणबिन्दवे प्रजिघाय प्रेरितवान् ॥७९॥

अन्वयः—पुरा किल दुश्चरं तपः चरतः तृणबिन्दोः परिशंकितः हरिः समाधिभेदिनीं हरिणीं सुराङ्गनाम् अस्मै प्रजिघाय ।

व्याख्या—पुरति इति पुरा=चिरातीते काले किल=ऐतिह्ये दुःखेन चर्यते यत् तत् दुश्चरं=तीव्रं घोरमित्यर्थः । तपः तप्यतेऽनेन वा तपः=कृच्छ्रादिकर्म चरतः=कुर्वतः तपश्चर्या कुर्वत इत्यर्थः तृणं वेत्ति तच्छीलः तृणबिन्दुः बिदन्तीति वा=संसारं तृणं मन्यमानस्तस्मात् तृणबिन्दोः=एतन्नामकान्महर्षेः परितः शंका संजातास्येति परिशंकितः=भीतः हरतीति हरिः=इन्द्रः सम्यक् आसमन्तात् धीयतेऽनेनेति समाधिः । समाधिं भेत्तुं शीलमस्याः सा समाधिभेदिनी तां समाधिभेदिनीं=तपोविघ्नकारिणीं हरितवर्णविशिष्टा हरिणी तां हरिणीं=नाम सुरन्तीति सुराः । समुद्रोत्था सुरा=मदिरा अस्ति येषान्ते सुराः प्रशस्तानि अङ्गानि सन्ति यस्याः सा अंगना । सुराणां=देवानाम् अंगना=स्त्री, इति तां सुराङ्गनाम्=अप्सरसम् अस्मै=तृणबिन्दवे प्रजिघाय=प्रेरितवान् ।

समासः—परितः शंका संजातास्यासौ परिशंकितः । समाधेः भेदिनी समाधिभेदिनी तां समाधिभेदिनीम् । सुराणाम् अंगना तां सुराङ्गनाम् ।

हिन्दी—बहुत प्राचीन काल की बात है कि घोर तपस्या करने वाले तृणबिन्दु नाम के महर्षि से भयभीत हुए इन्द्र ने उनकी समाधि को नष्ट करने वाली हरिणी नामक अप्सरा को इनके पास भेजा ॥७९॥

स तपः प्रतिबन्धमन्युना प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम् ।
अशपद्भव मानुषीति तां शमवेलाप्रलयोर्मिणा भुवि ॥८०॥

संजी०—स इति । स मुनिः । शमः शान्तिरेव वेला मर्यादा तस्याः प्रलयोर्मिणा प्रलयकालतरङ्गेण । शमविघातकेनेत्यर्थः । 'अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला कालमर्यादयोरपि' इत्यमरः । तपसः प्रतिबन्धेन विघ्नेन यो मन्युः क्रोधस्तेन हेतुना । प्रमुखेऽग्रे आविष्कृतचारुविभ्रमां प्रकाशितमनोहरविलासां तां हरिणीं भुवि भूलोके मानुषी मनुष्यस्त्री भवेत्यशपच्छशाप ॥८०॥

अन्वयः—सः शमवेलाप्रलयोर्मिणा तपःप्रतिबन्धमन्युना प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम् तां भुवि मानुषी भव इति अशपत् ।

व्याख्या—सः = मुनिः शमनं शमः । वेलति, वेल्यतेऽनयेति वेला । प्रलयनं प्रलयः, प्रलयस्य=प्रलयकालस्य ऊर्मिः=तरंगः इति प्रलयोर्मिः । शमः=शान्तिरेव वेला=मर्यादा, इति शमवेला, शमवेलायाः प्रलयोर्मिः, तेन शमवेलाप्रलयोर्मिणा । तपसः=तपश्चर्यायाः प्रतिबन्धः=विघ्नस्तेन यः मन्युः=क्रोधस्तेन तपःप्रतिबन्धमन्युना, कारणेन । प्रकृष्टं मुखमस्येति प्रमुखम् प्रमुखे=अग्रे=तृणबिन्दुसमक्षमित्यर्थः आविष्कृताः=प्रकटीकृताः चारवः=मनोहराः विभ्रमाः विलासाः=हावभावविशेषा इत्यर्थः यया सा ताम् प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमाम्, तां=पूर्वोक्तां हरिणीम्, भुवि = मर्त्यलोके मनुष्यस्य मानुषी=नारी भव=भूयाः इति अशपत्=शापं दत्तवान् ।

समासः—प्रलयस्य ऊर्मिः प्रलयोर्मिः, शमः एव वेला शमवेला तस्याः प्रलयोर्मिः शमवेलाप्रलयोर्मिः तेन शमवेलाप्रलयोर्मिणा । तपसः प्रतिबन्धस्तेन मन्युरिति तपःप्रतिबन्धमन्युस्तेन तपःप्रतिबन्धमन्युना । प्रमुखे आविष्कृताः चारवः विभ्रमाः यया सा प्रमुखाविष्कृतचारुविभ्रमा ताम् ।

हिन्दी—उस मुनि ने, शान्तिरूपी मर्यादा की प्रलयकालीन लहर (शान्ति को नष्ट करने वाली तरंग) एवं तपस्या के विघ्न से उत्पन्न क्रोध से, सामने ही शृङ्गार चेष्टाओं को करने वाली उस हरिणी नाम की अप्सरा को, तू संसार में जाकर मनुष्य की स्त्री हो जा, यह शाप दे दिया ॥८०॥

भगवन् ! परवानयं जनः प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व मे ।
इति चोपनतां क्षितिस्पृशं कृतवाना सुरपुष्पदर्शनात् ॥८१॥

संजी०—भगवन्निति । हे भगवन्महर्षे ! अयं जनः । परोऽस्यास्तीति स्वामित्वेन परवान् पराधीनः । 'अयम्' इत्यात्मनिर्देशः । अहं पराधीनेत्यर्थः । मे मम प्रतिकूलाचरितमपराधं क्षमस्वेत्यनेन प्रकारेणोपनतां शरणागतां च हरिणीमा सुरपुष्पदर्शनात् पुष्पदर्शनपर्यन्तम् । क्षितिं स्पृशतीति क्षितिस्पृक्, तां क्षितिस्पृशं मानुषीं कृतवानकरोत् । दिव्यपुष्पदर्शनं शापावधिरित्यनुगृहीतवानित्यर्थः ॥८१॥

अन्वयः—हे भगवन् ! अयं जनः परवान् मे प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व इति उपनतां च आसुरपुष्पदर्शनात् क्षितिस्पृशं कृतवान् ।

व्याख्या—भगं = माहात्म्यम् = परमैश्वर्यं वा अस्यास्तीति भगवान् तत्संबुद्धौ हे भगवन्=हे महर्षे ! अयं=मल्लक्षणः जनः=व्यक्तिः=अहमित्यर्थः परः=स्वामी

अस्यास्तीति परवान्=नाथवान् पराधीन इत्यर्थः । 'अतः' मे=मम प्रतिकूलं=विरुद्धं च तदाचरितम्=आचरणमिति प्रतिकूलाचरितम्=अपराधं क्षमस्व=मर्षय, इति= अनेन प्रकारेण उप=समीपे नयति स्म या सा उपनता=शरणागता ताम् उपनतां च हरिणीम् । सुराणां पुष्पं सुरपुष्पं, सुरपुष्पस्य दर्शनमिति सुरपुष्पदर्शनम् । सुरपुष्प-दर्शनपर्यन्तम् इति आसुरपुष्पदर्शनं तस्मात् आसुरपुष्पदर्शनात्=स्वर्गीयकुसुमदर्शन-पर्यन्तम् । क्षितिं=पृथिवीं स्पृशति=स्पर्शं करोतीति क्षितिस्पृक्, तां क्षितिस्पृशं= पृथिवीनिवासिनीं मानुषीं कृतवान्=अकरोत् । यदा दिव्यमालादर्शनं भविष्यति तदा ते शापात् विमुक्तिरिति अनुगृहीतवान् ।

समासः—प्रतिकूलञ्च तदाचरितमिति प्रतिकूलाचरितम् तत् । सुराणां पुष्पमिति सुरपुष्पम् तस्य दर्शनमिति सुरपुष्पदर्शनम् सुरपुष्पदर्शनाभिविधि इति आसुरपुष्पदर्शनात् ।

हिन्दी—हे भगवन् ! मैं पराधीन हूं अतः मेरे इस प्रतिकूल आचरण (अपराध) को क्षमा करो । इस प्रकार शरण में आई उस हरिणी नामक अप्सरा को, 'स्वर्गीय फूलों के देखने तक तुम पृथिवी में रहो', कहा । अर्थात् देव पुष्प देखने पर तुम्हारे शाप की समाप्ति होगी ॥८१॥

क्रथकैशिकवंशसंभवा तव भूत्वा महिषी चिराय सा ।

उपलब्धवती दिवश्च्युतं विवशा शापनिवृत्तिकारणम् ॥८२॥

संजी०—क्रथेति । क्रथकैशिकानां राज्ञां वंशे संभवो यस्याः सा हरिणी तव महिष्यभिषिक्ता स्त्री । 'कृताभिषेका महिषी' इत्यमरः । भूत्वा चिराय दिवः स्वर्गाच्च्युतं पतितं शापनिवृत्तिकारणं सुरपुष्पमुपलब्धवती विवशा । अभूदिति शेषः । मृतेत्यर्थः ॥८२॥

अन्वयः—क्रथकैशिकवंशसंभवा सा तव महिषी भूत्वा, चिराय दिवः च्युतं शापनिवृत्तिकारणम् उपलब्धवती विवशा 'अभूदिति शेषः' ।

व्याख्या—क्रथकैशिकानां=विदर्भाणाम् विदर्भदेशीयराजानामित्यर्थः वंशे= अन्वये संभवः=उत्पत्तिर्यस्याः सा क्रथकैशिकवंशसंभवा सा=हरिणी तव=भवतोऽ-जस्य मह्यते=पूज्यते इति सा महिषी=कृताभिषेका=राजपत्नीत्यर्थः भूत्वा चिरमयते इति चिराय=दीर्घकालपर्यन्तं दिवः=स्वर्गात् च्युतं=भ्रष्टं पतितमित्यर्थः, शापस्य=

आक्रोशस्य निवृत्तिः = निवारणं समाप्तिरित्यर्थः, इति शापनिवृत्तिस्तस्याः कारणं = हेतुमिति शापनिवृत्तिकारणम् = स्वर्गीयकुसुमरूपम् उपलब्धवती = प्राप्तवती 'अतः' सा विवशा = आसन्नमरणा मृता इत्यर्थः । अभूदिति शेषः ।

समासः—क्रथकैशिकानां वंशः इति क्रथकैशिकवंशस्तस्मिन् संभवो यस्याः सा क्रथकैशिकवंशसंभवा । शापस्य निवृत्तिरिति शापनिवृत्तिस्तस्याः कारणं तत् शापनिवृत्तिकारणम् ।

हिन्दी—भोजराज के वंश में उत्पन्न हुई वह हरिणी अप्सरा तुम्हारी रानी होकर (यहाँ रही) और बहुत समय बीतने पर स्वर्ग से गिरे हुए शाप की समाप्ति के कारण को प्राप्त की, अतः विवश हुई । अर्थात् स्वर्ग से गिरे पुष्पों के दर्शन से शाप छूट गया, तब तुरन्त ही मर गई ॥८२॥

तदलं तदपायचिन्तया विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता ।

वसुधेयमवेक्ष्यतां त्वया वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः ॥८३॥

संजी०—तदिति । तत्तस्मात्तस्या अपायचिन्तयाऽलम् । तस्या मरणं न चिन्त्यमित्यर्थः । निषेधक्रियां प्रति करणत्वाच्चिन्तयेति तृतीया । कुतो न चिन्त्यमत आह—उत्पत्तिमतां जन्मवतां विपद्विपत्तिरुपस्थिता सिद्धा । जातस्य हि ध्रुवो मृत्युरित्यर्थः । तथापि कलत्ररहितस्य किं जीवितेन तत्राह—त्वयेयं वसुधा भूमिरवेक्ष्यतां पाल्यताम् । हि यस्मान्नृपा वसुमत्या पृथिव्या कलत्रिणः कलत्रवन्तः । अतो न शोचितव्यमित्यर्थः ॥८३॥

अन्वयः—तत् तदपायचिन्तया अलम्, उत्पत्तिमतां विपत् उपस्थिता, इयं वसुधा अवेक्ष्यतां, हि नृपाः वसुमत्या कलत्रिणः ।

व्याख्या—तत्=तस्मात्कारणात् चिन्तनं चिन्ता, तस्याः=इन्दुमत्याः अपायस्य = नाशस्य चिन्ता=स्मरणमिति तदपायचिन्ता तया तदपायचिन्तया अलम्= न कर्तव्यम्, इन्दुमतीमरणं न स्मरणीयमित्यर्थः । कस्मान्न चिन्तनीयमित्याह— उत्पत्तिरस्ति येषान्ते उत्पत्तिमन्तस्तेषाम् उत्पत्तिमतां=जन्मवतां विपदनं विपद् विपद्यतेऽनया वा इति विपत्=विपत्तिः=मरणमित्यर्थः उपस्थिता= सिद्धा अवश्यंभाविनी । ननु तथापि प्रियारहितस्य जीवितेन किमित्याह त्वया=

अजेन इयमिति अंगुल्या निर्देशः । वसूनि=रत्नानि धारयतीति वसुधा=पृथिवी अवेक्ष्यताम्=दृश्यतां=पाल्यतामित्यर्थः । हि=यस्मात् नृपाः=राजानः वसूनि सन्ति अस्यां सा वसुमती तया वसुमत्या=पृथिव्या कलत्राणि सन्ति येषां ते कलत्रिणः= कलत्रवन्तः=स्त्रीमन्त इत्यर्थः । अतः न शोचनीयम् ।

समासः— तस्याः अपायस्तस्य चिन्ता, तया तदपायचिन्तया ।

हिन्दी—इसलिये इन्दुमती के मरण की चिन्ता करना व्यर्थ है "क्योंकि" जन्म लेने वाले का मरना निश्चित है "अवश्यंभावी है" । अब तुम इस पृथिवी का पालन करो, क्योंकि राजा तो पृथिवी से ही स्त्री वाला होता है । अर्थात राजाओं की वास्तविक स्त्री तो पृथिवी ही है । अतः शोक न करो ॥८३॥

उदये मदवाच्यमुज्झता श्रुतमाविष्कृतमात्मवत्त्वया ।
मनसस्तदुपस्थिते ज्वरे पुनरक्लीबतया प्रकाश्यताम् ॥८४॥

संजी०—उदय इति । उदयेऽभ्युदये सति मदेन यद्वाच्यं निन्दादुःखं तदुज्झता परिहरता सत्यपि मदहेतावमाद्यता त्वया यदात्मवदध्यात्मप्रचुरं श्रुतं शास्त्रम् तज्जनितं ज्ञानमिति यावत् । आविष्कृतं प्रकाशितम् । तच्छ्रुतं मनसो ज्वरे संताप उपस्थिते प्राप्तेऽक्लीबतया धैर्येण लिङ्गेन पुनः प्रकाश्यताम् । विदुषा सर्वास्ववस्था- स्वपि धीरेण भवितव्यमित्यर्थः ॥८४॥

अन्वयः—उदये सति मदवाच्यम् उज्झता त्वया यत् आत्मवत् श्रुतम् आविष्कृतम् , तत् मनसः ज्वरे उपस्थिते अक्लीबतया पुनः प्रकाश्यताम् ।

व्याख्या—उदयते इति उदयस्तस्मिन् उदये=अभ्युदये सति मदेन=हर्षेण यत् वाच्यं=निन्दादुःखमिति मदवाच्यम् उज्झता=त्यजता त्वया=भवता यत् आत्म अस्ति यस्मिन् शास्त्रे तत् आत्मवत्=अध्यात्मप्रचुरम्=आत्मप्रतिपादकमित्यर्थः श्रुत शास्त्रं तदुत्पन्नं ज्ञानमित्यर्थः । आविष्कृतं=प्रकटीकृतम् तत्=श्रुतं मनसः=चित्तस्य ज्वरे=सन्तापे उपस्थिते=प्राप्ते अक्लीबस्य भावः अक्लीबता तया अक्लीबतया=शौर्येण धैर्येण पुनः=भूयः प्रकाश्यतां=प्रकटीक्रियताम् । पण्डितेन सर्वावस्थासु धीरतय स्थातव्यम् ।

समासः—मदेन वाच्यं मदवाच्यम् तत् । आत्मा अस्यास्तीति आत्मवत् ।

हिन्दी—ऐश्वर्य पाने पर, घमंड से होने वाली, लोकनिन्दा से बचने वाले तुमने जो आत्मज्ञान को प्रकट किया था, अर्थात् आत्मज्ञान का परिचय दिया था, सो अब मानसिक सन्ताप के होने पर भी धीरतापूर्वक फिर उसी आत्मज्ञान का प्रकाश किया जाय। अर्थात् विद्वान् को सभी अवस्थाओं में धैर्य से एक सा रहना चाहिए ॥८४॥

रुदता कुत एव सा पुनर्भवता नानुमृतापि लभ्यते।
परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् ॥८५॥

संजी०—रुदतेति। रुदता भवता सा कुत एव लभ्यते? न लभ्यत एव। अनुम्रियत इत्यनुमृत्। क्विप्। तेनानुमृतानुमृतवताऽपि भवता पुनर्न लभ्यते। कथं न लभ्यत इत्याह—परलोकजुषां लोकान्तरभाजां देहिनाम्। गम्यन्त इति गतयो गम्यस्थानानि स्वकर्मभिः पूर्वाचरितपुण्यपापैर्भिन्नपथाः पृथक्कृतमार्गा हि। परत्रापि स्वस्वधर्मानुरूपफलभोगाय भिन्नदेहगमनान्न मृतेनापि लभ्यत इत्यर्थः ॥८५॥

अन्वयः—रुदता भवता सा कुतः एव लभ्यते, अनुमृता अपि भवता पुनः न लभ्यते, हि परलोकजुषां देहिनां गतयः स्वकर्मभिः भिन्नपथाः।

व्याख्या—रोदति इति रुदन् तेन रुदता—रोदनं कुर्वता भवता=त्वया सा=इन्दुमती कुत एव=कस्मात् लभ्यते=प्राप्यते न लभ्यते एवेत्यर्थः। अनु=पश्चात् म्रियते इत्यनुमृत्—तेन अनुमृता=पश्चान्मरणेनापि भवता पुनः=भूयः न लभ्यते=प्राप्तुं शक्यते, हि=यतः लोक्यते इति लोकः परः=अन्यश्चासौ लोकः=भुवन मितिपरलोकः परलोकं जुषन्ते=सेवन्ते, ते परलोकजुषस्तेषां परलोकजुषां, देहोऽस्ति येषां ते देहिनस्तेषां देहिनां=प्राणिनां गम्यन्ते=प्राप्यन्ते इति गतयः=प्राप्तव्यस्थानानि स्वस्य=निजस्य कर्माणि=पूर्वाचरितानि=पुण्यपापादीनि, इति स्वकर्माणि तैः स्वकर्मभिः। भिन्नः=पृथक् पन्थाः=मार्गः यासां ताः भवन्तीति शेषः। परलोकेऽपि स्वस्वपुण्यपापानुरूपफलभोगाय भिन्ने-भिन्ने शरीरे गमनात् अनुमृतापि त्वया सा न प्राप्यते इति भावः।

समासः—परश्चासौ लोकः परलोकः, तं जुषन्ते इति परलोकजुषस्तेषां परलोकजुषाम्। स्वस्य कर्माणि तैः स्वकर्मभिः। भिन्नः पन्थाः यासां ताः भिन्नपथाः।

हिन्दी — रोते हुए भी तुम इन्दुमती को कहाँ से पाओगे। नहीं ही पाओगे। और उसके पीछे मरने पर भी तुम अब नहीं पा सकते हो। इसलिये कि— परलोक में जाकर रहने वाले, प्राणियों के गन्तव्य स्थान भिन्न-भिन्न मार्ग वाले होते हैं। अर्थात् अपने अपने कर्म के अनुसार उसका फल भोगने के लिए भिन्न भिन्न स्थान हैं। अतः मरकर भी उसे कैसे पा सकोगे ॥८५॥

अपशोकमनाः कुटुम्बिनीमनुगृह्णीष्व निवापदत्तिभिः।

स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते ॥८६॥

संजी०—अपेति। किंतु, अपशोकमना निर्दुःखचित्तः सन् कुटुम्बिनीं पत्नीं निवापदत्तिभिः पिण्डोदकादिदानैरनुगृह्णीष्व तर्पयेत्यर्थः। अन्यथा दोषमाह— अतिसंततमविच्छिन्नं स्वजनानां बन्धूनाम्। 'बन्धुस्वस्वजनाः समाः' इत्यमरः। अश्रु कर्तृ प्रेतं मृतं दहतीति प्रचक्षते मन्वादयः किल। अत्र याज्ञवल्क्यः (याज्ञ. प्राय. ।११)—'श्लेष्माश्रु बन्धुभिर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः। अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः ॥' इति ॥८६॥

अन्वयः—'किन्तु' अपशोकमनाः सन् कुटुम्बिनीम् निवापदत्तिभिः अनुगृह्णीष्व, अतिसंततं स्वजनाश्रु प्रेतं दहति इति प्रचक्षते किल।

व्याख्या— अपगतः शोकः यस्य तत् अपशोकं=दुःखरहितं मनः-चित्तं यस्य सः, अपशोकमनाः सन् कुटुम्ब्यते=पाल्यते, संबध्यते वा सः कुटुम्बः। कुटुम्बः= पोष्यवर्गः अस्याः अस्तीति कुटुम्बिनी तां कुटुम्बिनीं = पत्नीं न्युप्यते निवपनं वा निवापः निवापस्य-पिण्डोदकादेः दत्तयः=दानानि ताभिः निवापदत्तिभिः अनुगृह्णीष्व= तर्पय, श्राद्धादिना तां तर्पयेत्यर्थः। अतिसंततं-निरन्तरं स्वजनानां=बान्धवानाम् अश्रु-नेत्रजलं रोदनमिति स्वजनाश्रु "कर्तृपदमिदम्" प्रकर्षेण इतः-गतः प्रेतस्तं प्रेतं= मृतं दहति=सन्तपति, इति प्रचक्षते-कथयन्ति मन्वादयो धर्मशास्त्रकारा इति शेषः।

समासः—अपगतः शोकः यस्य तत् अपशोकम्, अपशोकं मनः यस्य सः, अपशोकमनाः। निवापस्य दत्तयस्ताभिः निवापदत्तिभिः। स्वे च ते जनाः स्वजनाः स्वजनानाम् अश्रु इति स्वजनाश्रु।

हिन्दी—'किन्तु' तुम शोकरहित मनवाले होकर (मन से दुःख दूर कर) अपनी पत्नी को पिण्डदान तर्पणादि से तृप्त करो। 'ऐसा न करने पर' निरन्तर

अपने बन्धुओं के आँसु (रोना) परलोक में गए (मरे) हुवे को सन्ताप देते हैं ऐसा मन्वादि धर्मशास्त्रकार कहते हैं ॥८६॥

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥८७॥

संजी०—मरणमिति । शरीरिणां मरणं प्रकृतिः स्वभावः । ध्रुवमित्यर्थः । जीवितं विकृतिर्यादृच्छिकं बुधैरुच्यते । एवं स्थिते जन्तुः प्राणी क्षणमपि । अत्यन्त-संयोगे द्वितीया । श्वसञ्जीवन्नवतिष्ठते । यद्यसौ क्षणजीवी लाभवान्ननु । जीवने यथालाभं संतोष्टव्यम् ; अलभ्यलाभात्, मरणे तु न शोचितव्यम् ; अस्य स्वाभाव्यादिति भावः ॥८७॥

अन्वयः—शरीरिणां मरणं प्रकृतिः जीवितं विकृतिः बुधैः उच्यते । 'एवं स्थिते' जन्तुः क्षणमपि श्वसन् अवतिष्ठते यदि, असौ लाभवान् ननु ।

व्याख्या—शृणाति, शीर्यते वा शरीरं, शरीरमस्ति येषां ते शरीरिणस्तेषां शरीरिणां=देहिनां मरणं=मृत्युः प्रकृतिः=स्वभावः निश्चितमित्यर्थः । जीवितं=जीवनं विकरणं विकृतिः=विकारः यादृच्छिकं बुध्यन्ते इति बुधास्तैः बुधैः=विद्वद्भिः उच्यते= कथ्यते, 'एवं स्थिते सति' जायते इति जन्तुः=प्राणी क्षणं=निमेषं= त्रिंशत्कलात्मकमित्यर्थः श्वसन्=जीवन् अवतिष्ठते=स्थितो भवति यदि चेत् असौ=क्षण-जीवी लभ्यते इति लाभः लाभोऽस्यास्तीति लाभवान्=फलवान् ननु=निश्चये । जीवनस्य विकाररूपत्वात्, जीवने न्यूनेऽपि सन्तोष्टव्यम्, अलभ्यलाभात् । मरणस्य स्वाभाविकत्वात् मरणे तु न शोचितव्यमित्यर्थः ।

हिन्दी—प्राणियों का मरना स्वभाव है (ध्रुव सत्य है) एवं जीना विकार अस्वाभाविक है ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं । ऐसी दशा में यदि प्राणी क्षण भर भी जीता है तो यह लाभवाला ही है ॥८७॥

अवगच्छति मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम् ।
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुद्धृतम् ॥८८॥

संजी०—अवेति । मूढचेतनो भ्रान्तबुद्धिः प्रियनाशमिष्टनाशं हृद्यर्पितं निखातं शल्यं शङ्कुमवगच्छति मन्यते । स्थिरधीर्विद्वांस्तु तदेव शल्यं समुद्धृतमुत्खातं

मन्यते । प्रियनाशे सतीति शेषः । कुतः ? कुशलद्वारतया । प्रियनाशस्य मोक्षोपायतयेत्यर्थः । विषयलाभविनाशयोर्यथाक्रमं हिताहितसाधनत्वाभिमानः पामराणाम् । विपरीतं तु विपश्चितामिति भावः ॥८८॥

अन्वयः—मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि अर्पितं शल्यम् अवगच्छति, तु स्थिरधीः तदेव कुशलद्वारतया समुद्धृतं मन्यते ।

व्याख्या—मूढा=भ्रान्ता चेतना=बुद्धिर्यस्य स मूढचेतनः प्रियस्य=इष्टजनस्य नाशः=विनाशः मरणमित्यर्थः इति प्रियनाशस्तं प्रियनाशं हृदि=हृदये अर्पितं=निखातं शलतीति शल्यं तत् शल्यं=शंकुम् अवगच्छति=जानाति । तु=किन्तु स्थिरा=दृढा धीः=बुद्धिः यस्य स स्थिरधीः=पण्डितः तदेव=शल्यं कुत्सितं शलते=संवृणोतीति कुशलं=शिवं कल्याणं तस्य द्वारं कुशलद्वारं तस्य भावस्तत्ता तया कुशलद्वारतया= मोक्षोपायतया सम्यक् उद्धृतमिति समुद्धृतम्=उत्खातं मन्यते । पामरजनाः प्रियनाशम् अहितकरं विषयलाभं च हितकरं मन्यन्ते पण्डितास्तु तदेव विपरीतं मन्यन्ते इति भावः ।

समासः—मूढा चेतना यस्य स मूढचेतनः । प्रियस्य नाशस्तं प्रियनाशम् । स्थिरा धीः यस्य स स्थिरधीः कुशलस्य द्वारं कुशलद्वारं तस्य भावस्तत्ता तया कुशलद्वारतया ।

हिन्दी—भ्रान्तबुद्धिवाले मूर्ख, अपने प्रिय जन की मृत्यु को हृदय में गड़ी हुई कील समझते हैं, किन्तु विद्वान्, उसी प्रिय जन की मृत्यु को मोक्ष का उपाय (वैराग्य का कारण) होने के कारण हृदय से निकाल दिया मानते हैं अर्थात् प्रियनाश से मूर्खों को छाती में गड़ी कील के जैसा दुःख होता है और ज्ञानी को उसी से कील निकालने के जैसा आराम मिलता है, क्योंकि इससे संसार का मोह छूटता है ॥८८॥

स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा ।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ॥८९॥

संजी०—स्वेति । स्वस्य शरीरशरीरिणौ देहात्मानावपि यदा यतः श्रुतौ श्रुत्यवगतौ संयोगविपर्ययौ संयोगवियोगौ ययोस्तौ तथोक्तौ । तदा बाह्यैर्विषयैः

पुत्रमित्रकलत्रादिभिर्विरहो विपश्चितं विद्वांसं किमिवानुतापयेत्त्वं वद । न किंचिदित्यर्थः । अथवा–'स्व'शब्दस्य शरीरेणैव संबन्धः ॥८९॥

अन्वयः—स्वशरीरशरीरिणौ अपि यदा श्रुतसंयोगविपर्ययौ तदा बाह्यैः विषयैः विरहः विपश्चितं किमिव अनुतापयेत्, त्वं वद ।

व्याख्या—शृणाति शीर्यते वा शरीरं स्वस्य=निजस्य शरीरं=देहः स्वशरीरं, शरीरमस्यास्तीति शरीरी=आत्मा, स्वशरीरं शरीरी चेति स्वशरीरशरीरिणौ यदा=यतः विपर्यसनं विपर्ययः । संयोगः=सम्बन्धः विपर्ययः=वियोगः, इति संयोगविपर्ययौ, श्रुतौ=आकर्णितौ (श्रुत्यावगतौ इत्यर्थः) संयोगविपर्ययौ ययोस्तौ श्रुतसंयोगविपर्ययौ तदा बहिर्भवाः बाह्यास्तैः बाह्यैः विसिन्वन्ति=निबध्नन्ति, इन्द्रियाणि, इति विषयास्तैः विषयैः पुत्रकलत्रादिभिः विरहः=वियोगः प्रकृष्टं निश्चिनोति चेतति, चिन्तयति वा विपश्चित् तं विपश्चितं=पण्डितं किमिव=कथमिव अनुतापयेत्=सन्तापयेत् इति त्वम्=अजः वद=कथय । न किंचिदप्यस्ति कथनीयमित्यर्थः ।

समासः—संयोगश्च विपर्ययश्चेति संयोगविपर्ययौ, श्रुतौ संयोगविपर्ययौ ययोस्तौ श्रुतसंयोगविपर्ययौ । स्वस्य शरीरमिति स्वशरीरं स्वशरीरं च शरीरी चेति स्वशरीरशरीरिणौ । अथवा शरीरं च शरीरी चेति शरीरशरीरिणौ, स्वस्य शरीरशरीरिणौ इति स्वशरीरशरीरिणौ ।

हिन्दी—जब कि अपने शरीर और आत्मा का भी संयोग तथा वियोग श्रुति से सुना गया है । अर्थात् अपने शरीर तथा आत्मा भी बिछुड़ने वाले माने हैं । तब बाहरी पुत्र स्त्री आदि का वियोग विद्वान् को कैसे सन्तप्त (दुःखित) कर सकता है यह तुम्हीं कहो । अर्थात् वियोग कुछ भी नहीं कर सकता है ॥८९॥

न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तम ! गन्तुमर्हसि ।
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ॥९०॥

स०—नेति । वशिनामुत्तम जितेन्द्रियवर्य ! पृथग्जनवत् पामरजनवत् शुचः शोकस्य वशं गन्तुं नार्हसि । तथा हि द्रुमसानुमतां तरुशिखरिणां किमन्तरं को विशेषः ? वायौ सति द्वितयेऽपि द्विप्रकारा अपि । 'प्रथमचरम–' (पा. १।१।३३) इत्यादिना जसि विभाषया सर्वनामसंज्ञा । ते द्रुमसानुमन्तश्चलाश्चञ्चला यदि । सानुमतामपि चलने द्रुमवत्तेषामप्यचलसंज्ञा न स्यादित्यर्थः ॥९०॥

अन्वयः—हे वशिनाम् उत्तम ! त्वम् पृथग् जनवत् शुचः वशं गन्तुं न अर्हसि 'तथाहि' द्रुमसानुमतां किम् अन्तरं यदि वायौ सति द्वितये अपि ते चलाः 'स्युरिति शेषः ।'

व्याख्या—उत्ताम्यतीति उत्तमः, तस्य संबुद्धौ उत्तम ! वशिनां=जितेन्द्रियाणाम् उत्तम=सर्वश्रेष्ठ ! त्वं सज्जनेभ्यः पृथग्भूतो जनः पृथग्जनः पृथग्जनेन तुल्यं पृथग्जनवत्=पामरवत् शुचः=शोकस्य वशम्=अधीनतां गन्तुं=यातुं न अर्हसि=न योग्योऽसि । तथाहि द्रवति ऊर्ध्वमिति द्रुः । द्रुः=शाखा एषामस्तीति द्रुमाः=वृक्षाः समुदाये प्रवृत्ताः शब्दाः अवयवेष्वपि वर्तन्ते इति न्यायात् द्रुः शाखा । सानूनि सन्ति एषामिति सानुमन्तः पर्वताः । द्रुमाश्च सानुमन्तश्चेति द्रुमसानुमन्तस्तेषां द्रुमसानुमतां किमन्तरं=को भेदः यदि—चेत् वातीति वायुस्तस्मिन् वायौ—पवने सति द्वितये=द्विप्रकाराः अपि ते=तरुशिखरिणः=वृक्षपर्वताः इत्यर्थः । चलाः=चञ्चलाः स्युः । वृक्षाः इव यदि पर्वता अपि चञ्चलाः स्युः तदा पर्वतानामपि अचलसंज्ञा न स्यादित्यर्थः ।

समासः—पृथक् कार्यः जनः पृथग्जनः पृथग्जनेन तुल्यमिति पृथग्जनवत् । द्रुमाश्च सानुमन्तश्चेति द्रुमसानुमन्तस्तेषां द्रुमसानुमताम् ।

हिन्दी—हे जितेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ अज ! साधारण मनुष्य के समान तुम शोक के अधीन होने के योग्य नहीं हो, क्योंकि वायु के चलने पर यदि वे दोनों वृक्ष और पर्वत भी हिलने लगे तो फिर वृक्ष और पर्वत में भेद ही क्या रहेगा । अर्थात् तुम पर्वत के समान धीर हो, तुम्हें शोक न करना चाहिये ।।९०।।

स तथेति विनेतुरुदारमतेः प्रतिगृह्य वचो विससर्ज मुनिम् ।
तदलब्धपदं हृदि शोकघने प्रतियातमिवान्तिकमस्य गुरोः ।।९१।।

संजी०—स इति । सोऽज उदारमतेर्विनेतुर्गुरोर्वसिष्ठस्य वचस्तच्छिष्यमुखेरितं तथेति प्रतिगृह्याङ्गीकृत्य मुनिं वसिष्ठशिष्यं विससर्ज प्रेषयामास । किंतु तद्वचः शोकघने दुःखसान्द्रेऽस्याजस्य हृद्यलब्धपदमप्राप्तावकाशं सद्गुरोर्वसिष्ठस्यान्तिकं प्रतियातमिव प्रतिनिवृत्तं किमु—इत्युत्प्रेक्षा । तोटकवृत्तमेतत्—'इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्' इति तल्लक्षणात् ।।९१।।

अन्वयः—सः उदारमतेः विनेतुः वचः तथा इति प्रतिगृह्य मुनिं विससर्ज 'किन्तु' तत् शोकघने हृदि अलब्धपदं सत् अस्य गुरोः अन्तिकं प्रतियातम् इव ।

व्याख्या—सः=अजः उच्चैः आरामन्तात् ऋच्छतीति उदारा, उदीयते इति वा उदारा । उदारा=सरला मतिः=बुद्धिर्यस्य सः तस्य उदारमतेः विशिष्टं नयतीति विनेता तस्य विनेतुः=गुरोः वसिष्ठस्य वचः=वचनं वसिष्ठशिष्येण कथितमित्यर्थः तथा=तेन प्रकारेण इति प्रतिगृह्य=स्वीकृत्य मुनिं=वसिष्ठशिष्यं विससर्ज=विसर्जितवान् किन्तु तत्=वचः शोकेन=दुःखेन घनं=सान्द्रं=निरन्तरमित्यर्थः इति शोकघनं तस्मिन् शोकघने अस्य=अजस्य हृदि=हृदये, न लब्धपदं सत् गुरोः=वसिष्ठस्य अन्तिकं=समीपं प्रतियातं=प्रतिनिवृत्तं=परावृत्तमिव=किमु इति उत्प्रेक्षालंकारः ।

समासः—उदारा मतिर्यस्य स उदारमतिस्तस्य उदारमतेः । शोकेन घनं तस्मिन् शोकघने । न लब्धं पदं येन तत् अलब्धपदम् ।

हिन्दी—उस अज ने सरल बुद्धिवाले शिक्षक गुरुजी के वचन को (उनके शिष्य के मुख से कहा गया) 'अच्छा ठीक है' इस प्रकार स्वीकार करके मुनि वसिष्ठ शिष्य को लौटा दिया । किन्तु वह वचन (उपदेश) शोक से भरे हुवे अज के हृदय में स्थान न प्राप्त करके मानो लौट गया । अर्थात् शोकातुर अज के हृदय में जगह न मिलने से मानो गुरुजी के पास ही चला गया ॥९१॥

तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथंचिद्बालत्वादवितथसूनृतेन सूनोः ।
सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च ॥९२॥

संजी०—तेनेति । अवितथं यथार्थं सूनृतं प्रियवचनं यस्य तेनाजेन । सूनोः पुत्रस्य बालत्वात् । राज्याक्षमत्वादित्यर्थः । प्रियाया इन्दुमत्याः सादृश्यं वस्त्वन्तरगतमाकारसाम्यं प्रतिकृतिश्चित्रं तयोर्दर्शनैः । स्वप्नेषु क्षणिकाः क्षणभङ्गुरा ये समागमोत्सवास्तैश्च । कथंचित् कृच्छ्रेण । अष्टौ समा वत्सराः । 'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः । परिगमिता अतिवाहिताः । उक्तं च—'वियोगावस्थासु प्रियजनसदृक्षानुभवनं ततश्चित्रं कर्म स्वपनसमये दर्शनमपि । तदङ्गस्पृष्टानामुपगतवतां स्पर्शनमपि प्रतीकारः कामव्यथितमनसां कोऽपि कथितः ॥' इति । प्रकृते सादृश्यादित्रितयाभिधानं तदङ्गस्पृष्टपदार्थस्पृष्टैरप्युपलक्षणम् । प्रहर्षिणी वृत्तमेतत् ॥९२॥

अन्वयः—अवितथसूनृतेन तेन सूनोः बालत्वात्, प्रियायाः सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च कथंचित् अष्टौ समाः परिगणिताः ।

व्याख्या—विगतं सत्यं यस्मात् तत् वितथं न वितथमिति अवितथम् । सुष्ठु नृत्यन्ति अनेनेति सूनृतम् । अवितथं=सत्यं सूनृतं=प्रियवचनं यस्य स तेन अवितथसूनृतेन तेन=अजेन सूयते इति सूनुस्तस्य सूनोः=पुत्रस्य, बालस्य भावः बालत्वं तस्मात् बालत्वात्=माणवकत्वात् राज्यभारवहनं कर्तुमशक्यत्वादित्यर्थः । प्रियायाः=इन्दुमत्याः, समान इव पश्यतीति सदृशस्तस्य भावः सादृश्यं, प्रकृष्टा कृतिः, प्रतिनिधेः कृतिर्वा प्रतिकृतिः । सादृश्यं=साम्यं प्रतिकृतिः= प्रतिच्छाया-चित्रमित्यर्थः । इति सादृश्यप्रतिकृती तयोः दर्शनानि=अवलोकनानि तैः सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः स्वप्नेषु स्वापेषु क्षणिकाः-क्षणभंगुराः ये समागमाः= संयोगाः ते एव उत्सवाः-महांसि तैः क्षणिकसमागमोत्सवैः स्वप्नसंमिलनानन्ददमांगलिकैरित्यर्थः कथंचित् कष्टेन अष्टौ अष्टसंख्यकाः समाः=संवत्सराः परिगमिताः=अतिवाहिताः=व्यतीता इत्यर्थः ।

समासः—अवितथं सूनृतं यस्य स तेन अवितथसूनृतेन । सादृश्यं च प्रतिकृतिश्चेति सादृश्यप्रतिकृती तयोः दर्शनानि तैः सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः । क्षणिकाः ये समागमाः त एव उत्सवाश्चेति क्षणिकसमागमोत्सवास्तैः क्षणिकसमागमोत्सवैः ।

हिन्दी—सत्य एवं प्रिय बोलने वाले अज ने, पुत्र दशरथ के बालक होने के कारण (राजकार्य सम्भालने के अयोग्य होने से) प्यारी इन्दुमती के समान आकार वाली वस्तुओं, तथा उसके चित्रों को देखकर और स्वप्न में क्षणभर के संयोग तथा आनन्दों से किसी प्रकार आठ वर्ष बिता दिये ॥९२॥

तस्य प्रसह्य हृदयं किल शोकशङ्कुः
प्लक्षप्ररोह इव सौधतलं बिभेद ।
प्राणान्तहेतुमपि तं भिषजामसाध्यं
लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने ॥९३॥

सं०जी०—तस्येति । शोक एव शङ्कुः कीलः । 'शङ्कुः कीले शिवेऽस्त्रे च' इति विश्वः । तस्याजस्य हृदयम् । प्लक्षप्ररोहः सौधतलमिव । प्रसह्य बलात्किल

बिभेद। सोऽजः प्राणान्तहेतुं मरणकारणमपि भिषजामसाध्यमप्रतिसमाधेयं तं शोकशङ्कुं रोगपर्यवसितं प्रियाया अनुगमने त्वरयोत्कण्ठया लाभं मेने। तद्विरहस्यातिदुःसहत्वात्तत्प्राप्तिकारणं मरणमेव वरमित्यमन्यतेत्यर्थः ॥९३॥

अन्वयः—शोकशंकुः तस्य हृदयं प्लक्षप्ररोहः सौधतलम् इव प्रसह्य बिभेद किल, सः प्राणान्तहेतुम् अपि भिषजाम् असाध्यं तं प्रियानुगमने त्वरया लाभं मेने।

व्याख्या—शंकते अस्मादिति शंकुः। शोकः=प्रियामरणदुःखम् एव शंकुः= कीलः इति शोकशंकुः, तस्य=अजस्य ह्रियते विषयैरिति हृदय हरति=आहरति विषयान् इति वा हृदयं=चित्तं प्रक्षरतीति प्लक्षः। प्लक्षति=अधो गच्छतीति प्लक्षः। प्लक्षस्य=बटवृक्षस्य प्ररोहः=अंकुरः इति प्लक्षप्ररोहः सुधा लेपोऽस्यास्तीति सौधं, सौधस्य=राजभवनस्य तलम्=अधः=अधोभागः तत् सौधतलम् इव=यथा प्रसह्य= बलात् बिभेद=विदीर्णवान् किल=प्रसिद्धम्। सः=अजः प्राणन्ति एभिरिति प्राणाः। प्राणानाम्=असूनामन्तः=मरणमिति प्राणान्तस्तस्य हेतुः=कारणं तं प्राणान्तहेतुम् अपि=भिषजां=वैद्यानां न साध्यमसाध्यम्=अचिकित्स्यम्=अप्रतिसमाधेयं तं=शोकशंकुं रोगपर्यवसितमित्यर्थः। प्रियायाः=इन्दुमत्याः अनुगमने=मरणे त्वरया=उत्कण्ठया लाभं=फलं मेने=मन्यते स्म। इन्दुमतीविरहदुःखस्य सोढुमशक्यत्वात् परलोके तत्प्राप्तिकारणं लघु मरणमेव श्रेष्ठममन्यत इत्यर्थः।

समासः—शोकः एव शंकुरिति शोकशंकुः। प्लक्षस्य प्ररोहः प्लक्षप्ररोहः। सौधस्य तलं तत् सौधतलम्। प्राणानाम् अन्तः प्राणान्तस्य हेतुस्तं प्राणान्तहेतुम्। न साध्यः असाध्यस्तमसाध्यम्। प्रियायाः अनुगमनमिति प्रियानुगमनं तस्मिन् प्रियानुगमने।

हिन्दी—शोकरूपी काण्टे ने, अज के हृदय को बलपूर्वक उसी प्रकार बेध दिया, जैसे कि बड़ की जटा भवन के तल को छेद देती है। परन्तु उस अज ने प्राण लेनेवाले तथा वैद्यों से अच्छा न होनेवाले उस शोकरूपी काँटे को, प्रिया के पीछे मरने में जल्दी से लाभ ही माना। अर्थात् अज ने प्रिया के वियोग में दुःख भोगने की अपेक्षा मरना ही अच्छा समझा ॥९३॥

सम्यग्विनीतमथ वर्महरं कुमार-
मादिश्य रक्षणविधौ विधिवत्प्रजानाम् ।
रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः
प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव ॥९४॥

संजी०—सम्यगिति । अथ नृपतिरजः सम्यग्विनीतं निसर्गसंस्काराभ्यां विनयवन्तं वर्म हरतीति वर्महरः कवचधारणार्हवयस्कः । 'वयसि च' (पा.- ३।२।१०) इत्यच्प्रत्ययः । तं कुमारं दशरथं प्रजानां रक्षणविधौ राज्ये विधिवद्विध्यर्हम् । यथाशास्त्रमित्यर्थः । 'तदर्हम्' (पा. ५।१।११७) इति वतिप्रत्ययः । आदिश्य नियुज्य रोगेणोपसृष्टाया व्याप्तायास्तनोः शरीरस्य दुर्वसतिं दुःखावस्थितिं मुमुक्षुर्जिहासुः सन् । प्रायोपवेशनेऽनशनावस्थाने मतिर्यस्य स बभूव । 'प्रायश्चानशने मृत्यौ तुल्यबाहुल्ययोरपि' इति विश्वः । अत्र पुराणवचनम्—'समासक्तो भवेद्यस्तु पातकैर्महदादिभिः । दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितो वा भवेत्तु यः ॥ स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः । आब्रह्माणं वा स्वर्गादिमहाफलजिगीषया । प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं कुर्यादनशनं तथा ॥ एतेषामधिकारोऽस्ति नान्येषां सर्वजन्तुषु । नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा ॥' इति । अनयोर्वसन्ततिलकाच्छन्दः । तल्लक्षणम्—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति ॥९४॥

अन्वयः—अथ नृपतिः सम्यग्विनीतं वर्महरं कुमारं प्रजानां रक्षणविधौ विधिवत् आदिश्य, रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिं मुमुक्षुः सन् प्रायोपवेशनमतिः बभूव ।

व्याख्या-अथ=अनन्तरं नॄन्=जनान् पाति=रक्षतीति नृपतिः=अजः सम्यग्विनीतं स्वाभाविकसंस्काराभ्यां नम्रं वर्म=कवचं हरति=धारयतीति वर्महरस्तं वर्महरं कुमारयति=क्रीडतीति कुमारस्तं कुमारं=दशरथं प्रजानां=लोकानां विधानं विधिः रक्षणस्य= पालनस्य विधिः=प्रकारस्तस्मिन् रक्षणविधौ विधिवत् यथाशास्त्रमित्यर्थः आदिश्य= नियुज्य, रोगेण=व्याधिना उपसृष्टा=व्याप्ता या तनुः=शरीरमिति रोगोपसृष्टतनुः तस्याः दुर्वसतिः=दुःखावस्थितिस्तां रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिम् । मुमुक्षुः=त्यक्तुमिच्छुः सन् प्रकृष्टमयनं प्रायः । प्रायेण उपवेशनमिति प्रायोपवेशनम् तस्मिन् प्रायोपवेशने= अनशनावस्थाने मतिः=बुद्धिर्यस्य स प्रायोपवेशनमतिः बभूव=जातः । अनशनपरायणो जातः ।

समासः—सम्यक् विनीतस्तं सम्यग्विनीतम् । रक्षणस्य विधिः रक्षणविधिस्तस्मिन् रक्षणविधौ । रोगेण उपसृष्टा तनुः रोगोपसृष्टतनुः, रोगोपसृष्टतनोः दुर्वसतिस्तां रोगोपसृष्टतनुदुर्वसतिम् । प्रायेण उपवेशने मतिर्यस्य स तथोक्तः । विध्यर्हमिति विधिवत् ।

हिन्दी—इसके अनन्तर राजा अज, स्वभाव एवं संस्कार से विनीत, कवचधारी कुमार दशरथ को शास्त्रानुसार प्रजा के पालन करने का आदेश देकर, (अर्थात् राजकार्य में नियुक्त करके) रोग से व्याप्त अपने शरीर की दुरवस्था को त्यागने की इच्छा की ॥९४॥

तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वो-
देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः ।
पूर्वाकाराधिकतररुचा संगतः कान्तयासौ
लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु ॥९५॥

संजी०—तीर्थ इति । असावजो जह्नुकन्यासरय्वोस्तोयानां जलानां व्यतिकरेण संभेदेन भवे तीर्थे गङ्गासरयूसंगमे देहत्यागात्सद्य एवामरगणनायां लेख्यं लेखनम् । 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (पा. ३।४।७०) इति भावार्थे ण्यत्प्रत्ययः । आसाद्य प्राप्य । पूर्वस्मादाकारादधिकतरा रुग्यस्यास्तया कान्तया रमण्या संगतः सन् । नन्दनस्येन्द्रोद्यानस्याभ्यन्तरेष्वन्तर्वर्तिषु लीलागारेषु क्रीडाभवनेषु पुनररमत । 'यथाकथंचित्तीर्थेऽस्मिन्देहत्यागं करोति यः । तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥' इति स्कान्दे । मन्दाक्रान्ताच्छन्दः । तल्लक्षणम्—'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्' इति ॥९५॥

अन्वयः— असौ जह्नुकन्यासरय्वोः तोयव्यतिकरभवे तीर्थे देहत्यागात् सद्यः "एव" अमरगणनालेख्यम् आसाद्य, पूर्वाकाराधिकतररुचा कान्तया संगतः सन् नन्दनाभ्यन्तरेषु लीलागारेषु पुनः अरमत ।

व्याख्या—असौ=अजः जह्नोः=राजर्षेः कन्या=तनया इति जह्नुकन्या च सरयूः चेति जह्नुकन्यासरय्वौ, तयोः जह्नुकन्यासरय्वोः तोयानां=जलानां व्यतिकरः=

संभेदः=मिलनम्, इति तोयव्यतिकरस्तेन भवति=उत्पद्यते इति तोयव्यतिकरभवस्तस्मिन् तोयव्यतिकरभवे तीर्यतेऽनेनेति तीर्थस्तस्मिन् तीर्थे=क्षेत्रे=गंगासरयूसंगमक्षेत्रे इति यावत् देहस्य = शरीरस्य त्यागः=पातनं तस्मात् देहत्यागात् मरणादित्यर्थः समाने अहनि सद्यः=तत्क्षणे एव न म्रियन्ते इति अमराः। अमराणां=देवानां गणना=सङ्ख्यानमिति अमरगणना, तस्यां लेख्यं=लेखनमिति अमरगणनालेख्यम् देवत्वमित्यर्थः आसाद्य=प्राप्य, आकरणम् आकारः पूर्वः=प्रथमः=इन्दुमतीरूपः आकारः=आकृतिः, इति पूर्वाकारः, अतिशयेन अधिका इति अधिकतरा। पूर्वाकारात् अधिकतरा = विशिष्टा रुक्=कान्तिर्यस्याः सा तया पूर्वाकाराधिकतररुचा काम्यते या सा कान्ता तया कान्तया=रमण्या संगतः=मिलितः सन् नन्दयतीति नन्दनं=नन्दनस्य=इन्द्रवनस्य अभ्यन्तराणि=अन्तर्वर्तीनि तेषु नन्दनाभ्यन्तरेषु लीलार्थम्=क्रीडार्थमागाराणि=भवनानि तेषु लीलागारेषु पुनः=भूयः अरमत=रेमे।

समासः—जह्नोः कन्या, जह्नुकन्या। जह्नुकन्या च सरयूश्चेति जह्नुकन्यासरय्वौ तयोः जह्नुकन्यासरय्वोः। तोयानां व्यतिकरः, तोयव्यतिकरस्तेन भवतीति तोयव्यतिकरभवस्तस्मिन् तोयव्यतिकरभवे। देहस्य त्यागः देहत्यागस्तस्मात् देहत्यागात्। अमराणां गणना, अमरगणना तस्यां लेख्यमिति अमरगणनालेख्यम्। पूर्वश्चासौ आकारः पूर्वाकारः, पूर्वाकारात् अधिकतरा रुक् यस्याः सा तया पूर्वाकाराधिकतररुचा। लीलार्थम् आगाराणि तेषु लीलागारेषु नन्दनस्य अभ्यन्तराणि तेषु नन्दनाभ्यन्तरेषु।

हिन्दी—और उस अज ने, गंगा सरजू के जलों के मिलने से बने तीर्थ (दोनों के संगम) में शरीर छोड़ने (मरने) के कारण तुरन्त ही देवों में गणना (देवत्व) को प्राप्त कर लिया। तब देवता होकर, पहले शरीर से भी अधिक सुन्दर शरीरवाली भार्या से मिलकर नन्दन वन के विलास भवनों में विहार किया ॥९५॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये अजविलापो नाम अष्टमः सर्गः।

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

नवम सर्ग

पितुरनन्तरमुत्तरकोसलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रियः ।
दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवतां च धुरि स्थितः ॥१॥

मंजी०—पितुरिति । समाधिना संयमेन जितेन्द्रियः । 'समाधिर्नियमे ध्याने' इति कोशः । यमवतां संयमिनामवतां रक्षतां राज्ञां च धुर्यग्रे स्थितो महारथः । 'एको दश सहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते ॥' इति । दशरथः पितुरनन्तरमुत्तरकोसलाञ्जनपदान्समधिगम्य प्रशशास । अत्र मनुः (७।१४४)—'क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम्' इति । द्रुतविलम्बितमेतद्वृत्तम् । तल्लक्षणम्—'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति ॥१॥

अन्वयः—समाधिजितेन्द्रियः यमवताम् अवतां च धुरि स्थितः महारथः दशरथः पितुः अनन्तरम् उत्तरकोसलान् समधिगम्य प्रशशास ।

व्याख्या—सम्यग् आसमन्तात् धीयतेऽनेनेति समाधिः । समाधिना=संयमेन जितानि=वशीकृतानि इन्द्रियाणि=मनआदीनि खानि येन स समाधिजितेन्द्रियः, यमनं यमः । यमः=संयमः अस्ति येषां ते यमवन्तस्तेषां यमवतां=संयमिनाम् योगिनामित्यर्थः अवताम्=रक्षकाणां राज्ञां च धुरि=अग्रे स्थितः=वर्तमानः सर्वश्रेष्ठ इत्यर्थः, रम्यतेऽत्र अनेन वासौ रथः । महान् रथो यस्य स महारथः=धन्विविशेषः दशपूर्वो रथः दशरथः=दशरथनामा राजा पातीति पिता तस्य पितुः=जनकस्य अनन्तरं=पश्चात् कौ=पृथिव्यां सलन्ति ते कोसलाः उत्तरे च ते कोसलाः उत्तरकोसलास्तान् उत्तरकोसलान्=जनपदविशेषान् समधिगम्य=प्राप्य प्रशशास=प्रकर्षेण शासितवान् ।

समासः—समाधिना जितानि इन्द्रियाणि येन स समाधिजितेन्द्रियः। उत्तरे च ते कोसलाः उत्तरकोसलस्तान् उत्तरकोसलान्। महान् रथो यस्य स महारथः। दशसु दिक्षु रथो यस्य सः दशरथः।

हिन्दी— संयम से अपनी इन्द्रियों को जीतने वाले, तथा योगियों में और पालन करने वाले राजाओं में सर्वश्रेष्ठ महारथी दशरथ ने अपने पिता के पीछे उत्तरकोसल नामक प्रान्त का अच्छी प्रकार से शासन किया। अकेला दश हजार धनुर्धारियों के साथ युद्ध करने वाला और शस्त्रविद्या तथा शास्त्र में प्रवीण महारथ कहा जाता है।

अधिगतं विधिवद्यदपालयत्प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम्।
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः॥२॥

संजी०—अधिगतमिति। अधिगतं प्राप्तमात्मकुलोचितं स्वकुलागत सनगरं नगरजनसहितं प्रकृतिमण्डलं जानपदमण्डलम्। अत्र 'प्रकृति' शब्देन प्रजामात्रवाचिना नगरशब्दयोगाद्गोबलीवर्दन्यायेन जनपदमात्रमुच्यते। यद्यस्माद्विधिवद्यथाशास्त्रमपालयत्। ततो हेतोः। रन्ध्रं करोतीति रन्ध्रहेतुरित्यर्थः। 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' (पा. ३।२।२०) इति टप्रत्ययः। नगस्य रन्ध्रकरो नगरन्ध्रकरः कुमारः 'कुमारः क्रौञ्चदारणः' इत्यमरः। तदोजसस्तत्तुल्यबलस्यास्य दशरथस्य गुणवत्तरमभवत्। तत्पौरजानपदमण्डलं तस्मिन्नतीवासक्तमभूदित्यर्थः॥२॥

अन्वयः—अधिगतम् आत्मकुलोचितं सनगरं प्रकृतिमण्डलं यत् विधिवत् अपालयत् ततः नगरन्ध्रकरौजसः अस्य गुणवत्तरम् अभवत्।

व्याख्या—अधिगम्यते यत् तत् अधिगतम्=प्राप्तम् आत्मनः=स्वस्य कुलं=वंशः, इति आत्मकुलं तत्र उचितम् अभ्यस्तमिति आत्मकुलोचितम् स्वकुलक्रमादागतमित्यर्थः, नगरेण=तत्रस्थजनेन सहितं सनगरं प्रकृतीनां=पौराणां राज्यांगानाञ्च मण्डलं=समूहः, इति प्रकृतिमण्डलम्। यत्=यस्मात् विधिना तुल्यं विधिवत्=यथाशास्त्रम् अपालयत्=जुगोप रक्षितवानित्यर्थः ततः=तस्मात् हेतोः रन्ध्रं=छिद्रं करोतीति रन्ध्रकरः। नगस्य=पर्वतस्य=क्रौञ्चस्येत्यर्थः रन्ध्रकरः इति नगरन्ध्रकरः। नगरन्ध्रकरस्य=कार्तिकेयस्य ओज इव ओजो बलं यस्य स तस्य नगरन्ध्रकरौजसः

अस्य=दशरथस्य गुणाः=शौर्यादयः सन्ति अस्य तत् गुणवत् । अतिशयेन गुणवदिति गुणवत्तरम् अभवत्=जातम् । तत्पौरजनपदसमूहो दशरथे राज्ञि अतीवासक्तो जात इत्यर्थः ।

समासः—आत्मनः कुलमिति आत्मकुलं तत्र उचितमिति, आत्मकुलोचितम् । प्रकृतीनां मण्डलमिति प्रकृतिमण्डलम् । नगस्य रन्ध्रकर इति नगरन्ध्रकरः । नगरन्ध्रकरस्य ओज इव ओजः यस्य स तस्य नगरन्ध्रकरौजसः । नगरेण सहितं सनगरम् ।

हिन्दी—दशरथ ने अपने पूर्वजों से प्राप्त हुआ और अपने कुलोचित नागरिक जनों के सहित पूरे देश का इतना सुचारु रूप से पालन किया कि कार्तिकेय के समान बल वाले इस दशरथ की गुणवत्ता सबसे अधिक हो गई । अर्थात् सब नागरिक एवं प्रान्त मण्डल की प्रजा, दशरथ में अतीव श्रद्धा भक्ति करने लगी ॥२॥

उभयमेव वदन्ति मनीषिणः समयवर्षितया कृतकर्मणाम् ।
बलनिषूदनमर्थपतिं च तं श्रमनुदं मनुदण्डधरान्वयम् ॥३॥

मल्लि०—उभयमिति । मनस ईषिणो मनीषिणो विद्वांसः । पृषोदरादित्वात्साधुः । बलनिषूदनमिन्द्रम् । दण्डस्य धरो राजा मनुरिति यो दण्डधरः स एवान्वयः कूटस्थो यस्य तमर्थपतिं दशरथं चेत्युभयमेव । समयेऽवसरे जलं धनं च वर्षतीति समयवर्षी । तस्य भावः समयवर्षिता तया हेतुना कृतकर्मणां स्वकर्मकारिणाम् । नुदतीति नुत् । 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' (पा. ३।१।१३५) इति कप्रत्ययः श्रमस्य नुदं श्रमनुदम् । क्विबन्तत्वे नपुंसकलिङ्गेनोभयशब्देन सामानाधिकरण्यं न स्यादिति वदन्ति ॥३॥

अन्वयः—मनीषिणः बलनिषूदनं, मनुदण्डधरान्वयम् अर्थपतिम् इति उभयम् एव समयवर्षितया कृतकर्मणां श्रमनुदं वदन्ति ।

व्याख्या—मनस ईषा मनीषा । मनीषा=बुद्धिरस्ति येषां ते मनीषिणः=विद्वांसः बलस्य=असुरस्य निषूदनः=नाशकस्तं बलनिषूदनम्=इन्द्रम् । धरतीति धरः । दण्डस्य धरः दण्डधरः=राजा । मन्यत इति मनुः । मनुरिति यो दण्डधरः इति मनुदण्डधरः । मनुदण्डधरः एव अन्वयः=वंशः (कूटस्थः=आदिपुरुषः) यस्य स तं मनुदण्डधरान्वयम्, अर्थ्यते इति अर्थः । अर्थस्य=विषयस्य=देशस्येत्यर्थः पतिः पालकः इति अर्थपतिस्तम् अर्थपतिं=राजानं दशरथं च इति उभयं=द्वयमेव समये=काले जलं धनं च

वर्षति ददाति चेति समयवर्षी समयवर्षिणः भावः समयवर्षिता, तया समयवर्षितया= इन्द्रं काले वर्षाकर्तृत्वेन हेतुना, दशरथं च अवसरे प्राप्ते धनप्रदातृत्वेन हेतुना इति भावः। कृतं=अनुष्ठितं स्वं स्वं कर्म=कर्तव्यं यैस्ते कृतकर्माणस्तेषां कृतकर्मणाम् नुदतीति नुदं श्रमस्य=परिश्रमस्य=उद्यमस्येत्यर्थः नुदं=फलदायकमित्यर्थः। इति श्रमनुदं वदन्ति=कथयन्ति।

समासः—कृतं कर्म यैस्ते कृतकर्माणस्तेषां कृतकर्मणाम्। बलस्य निषूदनस्तम्। अर्थस्य पतिस्तम् अर्थपतिम्। दण्डस्य धरः दण्डधरः मनुरिति यः दण्डधर मनुदण्डधरः मनुदण्डधर एव अन्वयो यस्य स तं मनुदण्डधरान्वयम्। समये वर्षति तच्छीलः समयवर्षी तस्य भावस्तत्ता तया समयवर्षितया।

हिन्दी—विद्वान् लोग बलासुर को मारनेवाले इन्द्र और मनुवंशी धन के स्वामी दशरथ, इन दोनों को ही, समय पर वर्षा तथा धन दान देने के कारण, अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने वालों के परिश्रम का फल देने वाले कहते हैं। अर्थात् इन्द्र समय पर वर्षा कर किसानों के तथा दशरथ सुकर्मियों को धन देकर उनके परिश्रम का फल देते हैं॥३॥

जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुत एव सपत्नजः।
क्षितिरभूत्फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे॥ ४॥

संजी०—जनपद इति। शमरते शान्तिपरेऽमरतेजस्यजनन्दने दशरथे पार्थिवे पृथिव्या ईश्वरे सति। 'तस्येश्वरः' (पा. ५।१।४२) इत्यण्प्रत्ययः। जनपदे देशे गदो व्याधिः। 'उपतापरोगव्याधिगदामयाः' इत्यमरः। पदं नादधौ। नाचक्रामेत्यर्थः। सपत्नजः शत्रुजन्योऽभिभवः कुत एव? असंभावित एवेत्यर्थः। क्षितिः फलवत्यभूच्च॥ ४॥

अन्वयः—शमरते अमरतेजसि अजनन्दने पार्थिवे सति जनपदे गदः पदं न आदधौ सपत्नजः अभिभवः कुत एव क्षितिः फलवती अभूत्।

व्याख्या—शमे=शान्तौ रतः=लग्नः तत्पर इत्यर्थः इति शमरतः तस्मिन् शमरते=शान्तिपरायणे। अमराणां=देवानां तेजः=धाम इव तेजः यस्य स अमरतेजास्तस्मिन् अमरतेजसि। नन्दयतीति नन्दनः, अजस्य नन्दनः अजनन्दनस्तस्मिन् अजनन्दने, पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवस्तस्मिन् पार्थिवे राजनि सति

जनः=लोकः पदं=वस्तु यत्र स जनपदस्तस्मिन् जनपदे=देशे गदतीति गदः=रोगः पदं=चरणं न आदधौ=न स्थापितवान् न आचक्रामेत्यर्थः । सपत्नेभ्यः= शत्रुभ्यः=जातः=उत्पन्नः इति सपत्नजः अभिभवतीति अभिभवः=तिरस्कारः कुतः=कस्मादेव सर्वथासंभावित एवेत्यर्थः, यत्र व्याधिरपि नागच्छति तत्र शत्रूपद्रवः सर्वथासंभव इति भावः । क्षितिः पृथिवी च फलवती अभूत्=आसीत् ।

समासः—शमे रतः शमरतस्तस्मिन् शमरते । अमराणां तेज इव तेजो यस्य स तस्मिन् अमरतेजसि । अजस्य नन्दनस्तस्मिन् अजनन्दने । सपत्नेभ्यः जातः सपत्नजः । जनः पदं यत्र असौ जनपदस्तस्मिन् जनपदे ।

हिन्दी—शान्तिपरायण देवताओं के समान तेजस्वी और पराक्रमी अजपुत्र के राजा होने पर, देशमें रोग ने पैर नहीं रखा, तो फिर शत्रुओं के आक्रमण कहाँ से हों । अर्थात् असंभव है । और पृथिवी धनधान्य से पूर्ण हो गई ॥४॥

दशदिगन्तजिता रघुणा यथा श्रियमपुष्यदजेन ततः परम् ।
तमधिगम्य तथैव पुनर्बभौ न न महीनमहीनपराक्रमम् ॥ ५ ॥

संजी०—दशेति । मही । दशदिगन्ताञ्जितवानिति दशदिगन्तजित् । तेन रघुणा यथा श्रियं कान्तिमपुष्यत् । ततः परं रघोरनन्तरमजेन च यथा श्रियमपुष्यत् । तथैवाहीनपराक्रमं न हीनः पराक्रमो यस्य तमन्यूनपराक्रमं तं दशरथमिनं स्वामिनमधिगम्य पुनर्न बभाविति न । बभावेवेत्यर्थः । द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं सातिशयं गमयतः ॥ ५ ॥

अन्वयः—मही दशदिगन्तजिता रघुणा यथा श्रियम् अपुष्यत् ततः परम् अजेन च यथा श्रियम् अपुष्यत्, तथा एव अहीनपराक्रमं तम इनम् अधिगम्य न बभौ इति न "किन्तु बभौ एवेति" ।

व्याख्या—मही=क्षितिः=पृथिवी दश च ताः दिशः दिशदिशस्तासाम् दशदिशां=दशककुभाम् अन्ताः=अवसानानि, इति दशदिगन्तास्तान् जयति=स्वाधीनीकरोतीति दशदिगन्तजित् तेन दशदिगन्तजिता रघुणा=दिलीपसूनुना यथा=येन प्रकारेण श्रियं=कान्तिम् अपुष्यत्=पुपोष, ततः=तस्मात् रघोः परम्=अनन्तरम् अजेन= रघुपुत्रेण च यथा श्रियमपुष्यत्, तथैव=तेन प्रकारेणैव न हीनः=न न्यूनः पराक्रमः=

प्रभावः शौर्यञ्च यस्य सः अहीनपराक्रमस्तम् अहीनपराक्रमम् तं = प्रसिद्धं दशरथं दशरथनामानम्। एति, ईयते वा इनः=प्रभुः = स्वामी तम् इनम् अधिगम्य=प्राप्य पुनः भूयः न बभौ = न शुशुभे, इति न किन्तु बभौ एव, अर्थात् दशरथं स्वामिनं प्राप्य पृथिवी पुनरपि बभौ।

समासः—दश च ताः दिशः दशदिशस्तासाम् अन्ताः इति दशदिगन्तास्तान् जयतीति दशदिगन्तजित् तेन दशदिगन्तजिता। न हीनः पराक्रमो यस्य सः अहीनपराक्रमस्तम् अहीनपराक्रमम्।

हिन्दी—दसों दिशाओं को जीतने वाले रघु से जिस प्रकार पृथिवी ने अपनी श्री शोभा पुष्ट की थी, तथा रघु के पीछे अज से शोभा बढ़ी थी, उसी प्रकार रघु तथा अज के समान पराक्रमी शक्तिशाली दशरथ राजा को प्राप्त करके शोभा नहीं बढ़ी ? किन्तु पृथिवी पूर्ववत् अवश्य ही सुशोभित हुई ॥५॥

समतया वसुवृष्टिविसर्जनैर्नियमनादसतां च नराधिपः।
अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ सवरुणावरुणाग्रसरं रुचा ॥ ६ ॥

संजी०—समतयेति। नराधिपो दशरथः समतया समवर्तित्वेन। मध्यस्थत्वेनेत्यर्थः। वसुवृष्टेर्विसर्जनैः। असतां दुष्टानां नियमनान्निग्रहाच्च। सवरुणौ वरुणसहितौ यमपुण्यजनेश्वरौ यमकुबेरौ यमकुबेरवरुणान्। यथासंख्यमनुययावनुचकार। रुचा तेजसाऽरुणाग्रसरमरुणसारथिं सूर्यमनुययौ ॥ ६ ॥

अन्वयः—नराधिपः समतया वसुवृष्टिविसर्जनैः असतां नियमनात् च सवरुणौ यमपुण्यजनेश्वरौ अनुययौ रुचा अरुणाग्रसरम् अनुययौ।

व्याख्या—अधिकं पाति=रक्षतीति अधिपः। नराणां=मनुष्याणाम् अधिपः=स्वामी इति नराधिपः = दशरथः। समस्य=तुल्यस्य भावः समता, तया समतया सर्वजनेषु समवर्तितया। उष्यतेऽस्मिन् गुणैरिति वसु। वस्यते=आच्छाद्यते वा वसु। वसोः=धनस्य वृष्टिः=वर्षणमिति वसुवृष्टिः वसुवृष्टेः विसर्जनानि=वितरणानि=दानानीत्यर्थः तैः वसुवृष्टिविसर्जनैः। न सन्तः असन्तस्तेषां असतां=दुर्जनानां नियमनं=निग्रहस्तस्मात् नियमनात् च, व्रियते णवृोति

वा वरुणः=प्रचेताः । वरुणेन सहितौ सवरुणौ=वरुणसहितौ यमयति जनान् इति यमः पुण्याश्च ते जनाः पुण्यजनाः । पुण्यजनानाम् ईश्वरः पुण्यजनेश्वरः । यमः= धर्मराजश्च पुण्यजनेश्वरः कुबेरश्चेति यमपुण्यजनेश्वरौ अनुययौ=अनुचकार । रोचते इति रुक् तया रुचा=कान्त्या=तेजसा अरुणः=अनूरुः अग्रसरः=सारथिः यस्य स तम् अरुणाग्रसरं=सूर्यम् च अनुययौ ।

समासः—वसोः वृष्टिरिति वसुवृष्टिस्तस्याः विसर्जनानि तैः वसुवृष्टि-विसर्जनैः । नराणामधिपः नराधिपः । न सन्तः असन्तस्तेषाम् असताम् । पुण्यजनानामीश्वरः पुण्यजनेश्वरः यमश्च पुण्यजनेश्वरश्चेति यमपुण्यजनेश्वरौ तौ । वरुणेन सहितौ सवरुणौ तौ । अरुणः अग्रसरो यस्य स तम् अरुणाग्रसरम् ।

हिन्दी—राजा दशरथ ने समानव्यवहार से यमराज का, और धन की वर्षा से (धन देकर) कुबेर का, तथा दुष्टों का दमन करने से वरुण का अनुकरण किया और तेज से सूर्य का अनुकरण किया । अर्थात् राजा प्रजापालन में यम के समान समदर्शी, धन देने में कुबेर के, दण्ड देने में वरुण के समान थे, और तेजस्विता में सूर्य के समान थे ॥६॥

तस्य व्यसनासक्तिर्नासीदित्याह—

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु ।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत् ॥ ७ ॥

संजी०—नेति-उदयाय यतमानमभ्युदयार्थं व्यप्रियमाणं तं दशरथं मृगयाभिर-तिराखेटव्यसनं नापाहरन्नाचकर्ष । 'आक्षोटनं मृगव्यं स्यादाखेटो मृगया स्त्रियाम्' इत्यमरः । दुष्टमासमन्तादुदरमस्येति दुरोदरं द्यूतं च नापाहरत् । 'दुरोदरो द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम्' इत्यमरः । शशिनः प्रतिमा प्रतिबिम्बमा-भरणं यस्य तन्मधु नापाहरत् । न वेति पदच्छेदः । 'वा'शब्दः समुच्चये । नवयौ-वना नवं नूतनं यौवनं तारुण्यं यस्यास्तादृशी प्रियतमा वा स्त्री नापाहरत् । जातावेकवचनम् । अत्र मनुः (७।५०) 'पानमक्षाः स्त्रियश्चेति मृगया च यथा-क्रमम् । एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥' इति ॥७॥

अन्वयः—उदयाय यतमानम् तम् मृगयाभिरतिः न अपाहरत्, दुरोदरं

च न अपाहरत्, शशिप्रतिमाभरणं मधु च न अपाहरत् नवयौवना प्रियतमा वा न अपाहरत् ।

व्याख्या—उदयाय=उन्नत्यै=अभ्युदयार्थमित्यर्थः यततेऽसौ यतमानस्तं यतमानं=व्याप्रियमाणं तं=दशरथं मृग्यन्तेऽत्र मृगया मृगयायाम्=आखेटे अभिरतिः= व्यसनं न=नहि अपाहरत्=आचकर्ष । दुष्टमासमन्तात् उदरं यस्य तत् दुरोदरं= द्यूतं च नापाहरत् । शशिनः=चन्द्रस्य प्रतिमा=प्रतिबिम्बम् आभरणं=भूषणं यस्य तत् शशिप्रतिमाभरणम् मधु=मद्यञ्च न अपाहरत् । यूनो भावः यौवनम् नवं= नूतनं यौवनं=तारुण्यं यस्याः सा नवयौवना, अतिशयेन प्रिया इति प्रियतमा= भार्या वा नापाहरत् । अभ्युदये संलग्नः सर्वथा जितेन्द्रियः प्रजापालकः स दशरथ आसीदित्यर्थः ।

समासः—मृगयायाम् अभिरतिः मृगयाभिरतिः, शशिनः प्रतिमा आभरणं यस्य तत् शशिप्रतिमाभरणम् । नवं यौवनं यस्याः सा नवयौवना ।

हिन्दी—सर्वप्रकार की उन्नति में लगे हुए राजा दशरथ को शिकार खेलने का व्यसन या जूआ खेलना अथवा चन्द्रमा की परछाईं पड़ी मदिरा और नव यौवना षोडशी स्त्री, न खींच सकी । अर्थात् ये सब राजा को अपनी ओर आकर्षित न कर सके ॥७॥

न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे न वितथा परिहासकथास्वपि ।

न च सपत्नजनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता ॥८॥

मल्लि०—नेति । तेन राज्ञा प्रभवति प्रभौ सति वासवेऽपि कृपणा दीना वाङ् नेरिता नोक्ता । परिहासकथास्वपि वितथाऽनृता वाङ् नेरिता । किंचापरुषा रोषशून्येन तेन सपत्नजनेष्वपि शत्रुजनेष्वपि परुषाक्षरं निष्ठुराक्षरं यथा तथा वाङ् नेरिता । किमुतान्यत्रेति सर्वत्र 'अपि'शब्दार्थः । किं त्वदीना सत्या मधुरैव वागुक्तेति फलितार्थः ॥८॥

अन्वयः—तेन प्रभवति सति वासवे अपि कृपणा वाक् न ईरिता, परिहासकथासु अपि वितथा वाक् न ईरिता । "किंच" अपरुषा तेन सपत्नजनेषु अपि परुषाक्षरं यथा स्यात्तथा वाक् न ईरिता ।

व्याख्या—तेन=राज्ञा दशरथेन प्रकर्षेण भवति इति प्रभवन् तस्मिन् प्रभवति=प्रभौ सति वसवो देवाः, वसूनि=रत्नानि वा सन्ति अस्यासौ वासवः। तस्मिन् वासवे=इन्द्रे अपि कृप्यते=कृपाविषयीक्रियते सा कृपणा= क्षुद्रा=दीनेत्यर्थः वाक्=वाणी नेरिता=न कथिता परिहासस्य=क्रीडायाः कथाः=गाथास्तासु परिहासकथासु=परिहासजल्पनेषु अपि वितथा=मिथ्या वाक् नेरिता, किंच अपगता रुट्=क्रोधो यस्य सः अपरुट् तेन अपरुषा=क्रोधरहितेन तेन सपत्नानां जनास्तेषु सपत्नजनेषु शत्रुजनेषु अपि पिपर्ति=पूरयति=अलंबुद्धिं करोतीति परुषम्। परुषाणि कठोराणि अक्षराणि=वर्णाः यस्मिन् कर्मणि तत् परुषाक्षरं यथा स्यात्तथा वाक्=वचनं नेरिता किमुतान्यत्रेत्यपिशब्दार्थः। अर्थात् दशरथेन सर्वदा अदीना, सत्या, मधुरा एव वाणी कथिता इति भावः।

समासः—परिहासस्य कथाः परिहासकथास्तासु परिहासकथासु। सपत्नानां जनाः सपत्नजनास्तेषु सपत्नजनेषु। परुषाणि अक्षराणि यस्मिन् कर्मणि तत् परुषाक्षरम्। अपगता रुट् यस्य तेन अपरुषा।

हिन्दी—उस राजा दशरथ ने प्रभु इन्द्र के सामने भी दीनतायुक्त वचन नहीं कहा और हँसी के प्रसंग में भी झूठ नहीं बोला। तथा क्रोध से शून्य दशरथ ने शत्रुओं से भी कठोर वचन नहीं कहा, तब फिर अन्य के प्रति तो कहना ही क्या? अर्थात् दशरथ ने सदा अदीन दीनता से रहित सत्य, मधुर वाणी ही कही थी ॥८॥

उदयमस्तमयं च रघूद्वहादुभयमानशिरे वसुधाधिपाः।
स हि निदेशमलङ्घयतामभूत्सुहृदयोहृदयः प्रतिगर्जताम् ॥९॥

संजी०—उदयमिति। वसुधाधिपा राजानः। उद्वहतीत्युद्वहो नायकः। पचाद्यच्। रघूणामुद्वहो रघुनायकः। तस्माद्रघुनायकादुदयं वृद्धिम्। अस्तमयं नाशं च। इत्युभयमानशिरे लेभिरे। कुतः? हि यस्मात्, स दशरथो निदेशमाज्ञा-मलङ्घयताम्। शोभनं हृदयमस्येति सुहृन्मित्रमभूत् 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' (पा. ५।४।१५०) इति निपातः। प्रतिगर्जतां प्रतिस्पर्धिनाम्। अय इव हृदयं यस्येति अयोहृदयः कठिनचित्तोऽभूत्। आज्ञाकारिणो रक्षति, अन्यान्मारयतीत्यर्थः ॥९॥

अन्वयः—वसुधाधिपाः रघूद्वहात् उदयम् अस्तमयं चेति उभयम्

आनशिरे, हि सः निदेशम् अलंघयतां सुहृत् अभूत्, प्रतिगर्जताम् अयोहृदयः अभूत् ।

व्याख्या—वसूनि धारयति इति वसुधा । अधिकं पान्तीति अधिपाः । वसुधायाः=पृथिव्याः अधिपाः=भूपालाः इति वसुधाधिपाः=राजानः उद्वहतीति उद्वहः रघूणाम् रघुकुलानाम् उद्वहः=नायकः इति रघूद्वहस्तस्मात् रघूद्वहात्, दशरथादित्यर्थः उदयं=वृद्धिम् अस्तमयम्=विनाशञ्चेति उभयं=द्वयम् आनशिरे= लेभिरे । हि=यतः सः=दशरथः निदेशं=शासनम् न लंघयन्तीति अलंघयन्तस्तेषाम् अलंघयताम्=पालयताम् शोभनं हृदयं यस्य स सुहृत्=मित्रम् अभूत्=आसीत् । प्रतिगर्जन्ति प्रतिस्पर्धन्ते प्रतिगर्जन्तस्तेषां प्रतिगर्जताम्=प्रतिस्पर्धिनाम् अयः=लोहः इव हृदयं=चित्तं यस्य सः अयोहृदयः=कठोर इत्यर्थः अभूत् । स्वशासने स्थितान् स रक्षति आज्ञोल्लंघनकारिणः मारयतीत्यर्थः ।

समासः—वसुधायाः अधिपाः इति वसुधाधिपाः । रघूणाम् उद्वह इति रघुद्वहस्तस्मात् रघुद्वहात् । शोभनं हृदयं यस्य स सुहृत् । अय इव हृदयं यस्य सः अयोहृदयः ।

हिन्दी—राजाओं ने रघुकुल नायक दशरथ से ऐश्वर्य और विनाश इन दोनों को प्राप्त किया । इसलिये कि वह राजा दशरथ अपनी आज्ञा के मानने वालों का मित्र था, और टक्कर लेने आने वालों के लिए लोहे के समान कठोर हृदय था, अर्थात् आज्ञाकारियों की रक्षा करता और घमण्डियों का विनाश कर देता था ॥९॥

अजयदेकरथेन स मेदिनीमुदधिनेमिमधिज्यशरासनः ।
जयमघोषयदस्य तु केवलं गजवती जवतीव्रहया चमूः ॥१०॥

संजी०—अजयदिति । अधिज्यशरासनः स दशरथ उदधिनेमिं समुद्रवेष्टनां मेदिनीमेकरथेनाजयत् । स्वयमेकरथेनाजैषीदित्यर्थः । गजवती गजयुक्ता । जवेन तीव्रा जवाधिका हया यस्यां सा चमूस्त्वस्य नृपस्य केवलं जयमघोषयदप्रथयत् । स्वयमेकवीरस्य चमूरुपकरणमात्रमिति भावः ॥१०॥

अन्वयः—अधिज्यशरासनः सः उदधिनेमिम् मेदिनीम् एकरथेन अजयत्, गजवती जवतीव्रहया चमूः तु अस्य केवलं जयम् अघोषयत् ।

व्याख्या—शराः=बाणाः अस्यन्ते क्षिप्यन्ते अनेन तत् शरासनम् । अधिगता=आरोपिता ज्या=मौर्वी यस्मिन् तत् अधिज्यम् अधिज्यम्=आरोपितमौर्वीकं शरासनं=धनुः यस्य सः अधिज्यशरासनः सः=दशरथः, उदकानि जलानि धीयन्तेऽत्र उदधिः=समुद्रः नेमिः=वेष्टनं यस्याः सा ताम् उदधिनेमिम् मेदिनीम्=पृथिवीम् एकः=अद्वितीयश्चासौ रथः=स्यन्दनस्तेन एकरथेन अजयत्=जितवान् स्वयमेकरथेनाजैषीदित्यर्थः । गजाः=हस्तिनः सन्ति यस्यां सा गजवती=हस्तिमती जवेन=वेगेन तीव्राः=वेगातिशयाः हयाः=वाजिनः यस्यां सा जवतीव्रहया चमूः=सेना तु अस्य=दशरथस्य केवलं=मात्रम् जयं=विजयम् अघोषयत्=अप्रथयत् । स्वयम् एकवीरस्य दशरथस्य सेना केवलं जयघोषकारिणी एवेति ।

समासः—अधिज्यं शरासनं यस्य सः अधिज्यशरासनः । एकश्चासौ रथः एकरथस्तेन एकरथेन । उदधिः नेमिः यस्याः सा ताम् उदधिनेमिम् । जवेन तीव्राः हयाः यस्या सा जवतीव्रहया ।

हिन्दी—धनुष को चढ़ाये हुए उस दशरथ ने समुद्र से घिरी हुई पृथिवी को एक रथ पर चढ़कर स्वयं जीत लिया । हाथी वाली, और तीव्र वेगवाले घोड़ों की सेना तो केवल जयजयकार करती थी ॥१०॥

अवनिमेकरथेन वरूथिना जितवतः किल तस्य धनुर्भृतः ।
विजयदुन्दुभितां ययुरर्णवा घनरवा नरवाहनसंपदः ॥११॥

संजी०—अवनिमिति । वरूथिना गुप्तिमता । 'वरूथो रथगुप्तिर्या तिरोधत्ते रथस्थितिम्' इति सज्जनः । एकरथेनाद्वितीयरथेन । अवनिं जितवतो धनुर्भृतो नरवाहनसंपदः कुबेरतुल्यश्रीकस्य तस्य दशरथस्य घनरवा मेघसमघोषा अर्णवा विजयदुन्दुभितां किल ययुः । अर्णवान्तविजयीत्यर्थः ॥११॥

अन्वयः—**वरूथिना एकरथेन अवनिं जितवतः धनुर्भृतः नरवाहनसम्पदः तस्य घनरवाः अर्णवाः विजयदुन्दुभितां किल ययुः ।**

व्याख्या—व्रियते रथोऽनेनेति वरूथः । वरूथोऽस्ति अस्यासौ वरूथी तेन वरूथिना=सुरक्षितेन एकश्चासौ रथः एकरथस्तेन एकरथेन=अद्वितीयस्यन्दनेन अवनिम्=पृथिवीम्, जितवतः विजयिनः धनुः बिभर्ति इति धनुर्भृत् तस्य धनुर्भृतः=चापधारिणः नरः वाहनमस्यासौ नरवाहनः । नरवाहनस्य=कुबेरस्य संपद् इव

सम्पद्-श्रीः यस्य स तस्य नरवाहनसम्पदः तस्य दशरथस्य हन्यते वायुना घनः, घनस्य रव इव रवो येषां ते घनरवाः अर्णांसि सन्ति यत्र ते अर्णवाः=समुद्राः विजयस्य=जयस्य दुन्दुभिता=पटहता तां विजयदुन्दुभितां ययुः=जग्मुः किल।

समासः—एकश्चासौ रथः एकरथस्तेन । धनुषः भृत् तस्य धनुर्भृतः। विजयस्य दुन्दुभिः विजयदुन्दुभिः तस्य भावः विजयदुन्दुभिता तां विजयदुन्दुभिताम्। घनस्य रव इव रवो येषां ते घनरवाः। नरः वाहनं यस्य स नरवाहनः, नरवाहनस्य संपद् इव सम्पद् यस्य स तस्य नरावहनसम्पदः।

हिन्दी—सुरक्षित केवल एक रथ से (रथमें बैठकर) पृथिवी को जीतने वाले, कुबेर के समान सम्पत्तिशाली धनुषधारी राजा दशरथ की, मेघ की तरह गर्जने वाला समुद्र विजय की दुन्दुभि बन गया। अर्थात् दशरथ ने समुद्रपर्यन्त पृथिवी को जीत लिया था ॥११॥

शमितपक्षबलः शतकोटिना शिखरिणां कुलिशेन पुरंदरः।
स शरवृष्टिमुचा धनुषा द्विषां स्वनवता नवतामरसाननः ॥१२॥

संजी०—शमितेति । पुरंदर इन्द्रः शतकोटिना शतास्त्रिणा कुलिशेन वज्रेण शिखरिणां पर्वतानां शमितपक्षबलो विनाशितपक्षसारः। नवतामरसाननो नवपङ्कजाननः। 'पङ्केरुहं तामरसम्' इत्यमरः। स दशरथः शरवृष्टिमुचा स्वनवता धनुषा द्विषां शमितो नाशितः पक्षः सहायो बलं च येन स तथोक्तः। 'पक्षः सहायेऽपि' इत्यमरः ॥१२॥

अन्वयः—पुरन्दरः शतकोटिना कुलिशेन शिखरिणां शमितपक्षबलः नवतामरसाननः सः शरवृष्टिमुचा स्वनवता धनुषा द्विषां शमितपक्षबलः।

व्याख्या—पुराणि दारयतीति पुरन्दरः-इन्द्रः शतं=शतसंख्याकाः कोटयः=अटन्यः=धनुरन्तभागाः यस्य तत् तेन शतकोटिना कुलिनः=पर्वतान् श्यति=तनूकरोतीति कुलिशम् कुलिशेन=वज्रेण शिखराणि सन्ति येषु ते शिखरिणस्तेषां शिखरिणां=पर्वतानाम् पक्षाः गरुतः बलं=सारः इति पक्षबलम् शमितम्=विनाशितम् पक्षबलं येन स शमितपक्षबलः। नवं=नूतनं च तत्तामरसं=पङ्कजमिति नवतामरसं तद्वत् आननं=मुखं यस्य स नवतामरसाननः सः=दशरथः शराणां=बाणानां वृष्टिं=वर्षं मुञ्चतीति शरवृष्टिमुक् तेन शरवृष्टिमुचा स्वनोऽस्यास्तीति स्वनवत् तेन

स्वनवता=शब्दवता धनुषा=चापेन द्विषन्तीति द्विषः तेषां द्विषां=शत्रूणां शमितः=नाशितः पक्षः=सहायः बलं=सेना च येन स शमितपक्षबलः ।

समासः—शतं कोटयः यस्य तत्, तेन शतकोटिना । शमितः पक्षाणां बलं येन स शमितपक्षबलः (इन्द्रः) । शमितः पक्षः बलं च येन स शमितपक्षबलः (दशरथः) । नवं च तत्तामरसं नवतामरसं तद्वत् आननं यस्य स नवतामरसाननः ।

हिन्दी—इन्द्र ने अपने सौ नोकों वाले वज्र से पर्वतों के पंखरूपी बल (सार) को "जैसे" नष्ट कर दिया था । "उसी प्रकार" नए कमल के समान सुन्दर मुख वाले दशरथ ने बाणों की वृष्टि को छोड़ने वाले एवं टंकार युक्त धनुष से शत्रुओं के सहायकों व सेना को नष्ट कर दिया ॥१२॥

चरणयोर्नखरागसमृद्धिभिर्मुकुटरत्नमरीचिभिरस्पृशन् ।

नृपतयः शतशो मरुतो यथा शतमखं तमखण्डितपौरुषम् ॥१३॥

संजी०—चरणयोरिति । शतशो नृपतयोऽखण्डितपौरुषं तं दशरथम् । मरुतो देवाः शतमखं यथा शतक्रतुमिव । नखरागेण चरणनखकान्त्या समृद्धिभिः संपादितर्द्धिभिर्मुकुटरत्नमरीचिभिश्चरणयोरस्पृशन् । तं प्रणेमुरित्यर्थः ॥१३॥

अन्वयः—शतशः नृपतयः अखण्डितपौरुषं तम्, मरुतः शतमखं यथा नखरागसमृद्धिभिः मुकुटरत्नमरीचिभिः चरणयोः अस्पृशन् ।

व्याख्या—शतं शतमिति शतशः=अनेके नॄन्=जनान् पान्ति=रक्षन्तीति नृपतयः=राजानः पुरुषस्य भावः कर्म वा पौरुषम् । न खण्डितमिति अखण्डितम् । अखण्डितं=पूर्णमित्यर्थः पौरुषं=पराक्रमो यस्य स तम् अखण्डितपौरुषम् तं=दशरथम् मरुतः=देवाः शतं=शतसंख्याकाः मखाः=यागाः यस्य स शतमखस्तं शतमखम्=इन्द्रं यथा=इव नखस्य=कररुहस्य रागः=कान्तिरिति नखरागस्तेन नखरागेण=चरणनखरागेण सम्यग्ऋद्धिः सम्पादितवृद्धिः येषां ते तैः नखरागसमृद्धिभिः मुकुटे=किरीटे यानि रत्नानि=हीरकादीनि इति मुकुटरत्नानि । मुकुटरत्नानां मरीचयः=किरणाः तैः मुकुटरत्नमरीचिभिः चरणयोः=पादयोः अस्पृशन्=चरणस्पर्शमकुर्वन् प्रणेमुरित्यर्थः ।

समासः—अखण्डितं पौरुषं यस्य स तम् अखण्डितपौरुषम् । शतं मखाः

यस्य स तं शतमखम् । नखानां रागः नखरागस्तेन समृद्धिः येषां ते तैः नखरागसमृद्धिभिः । मुकुटेषु रत्नानि मुकुटरत्नानि तेषां मरीचयस्तैः मुकुटमरीचिभिः ।

हिन्दी—सैकड़ों राजा महापराक्रमी उस दशरथ के, पैर के नखों की लालिमा से समृद्धि (सौन्दर्य) को प्राप्त हुई मुकुट में जड़े रत्नों की किरणों से चरणों में उसी प्रकार स्पर्श करते थे, जैसे कि देवता लोग सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र के चरणों में स्पर्श करते अर्थात् प्रणाम करते थे ॥१३॥

निववृते स महार्णवरोधसा सचिवकारितबालसुताञ्जलीन् ।
समनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहाननलकानलकानवमां पुरीम् ॥१४॥

संजी०—निववृत इति । स दशरथः सचिवैः संप्रयोजितैः कारिता बालसुतानामञ्जलयो यैस्तान् । स्वयमसंमुखागतानित्यर्थः । अनलकान्हृतभर्तृकतयालकसंस्कारशून्यान् । सपत्नपरिग्रहाञ्छत्रुपत्नीः । 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः । समनुकम्प्यानुगृह्य । अलकानवमामलकानगरादन्यूनां पुरीमयोध्यां प्रति महार्णवानां रोधसः पर्यन्तान्निववृते । शरणागतवत्सल इति भावः ॥१४॥

अन्वयः—सः सचिवकारितबालसुताञ्जलीन् अनलकान् सपत्नपरिग्रहान् समनुकम्प्य अलकानवमाम् पुरीं "प्रति" महार्णवरोधसः निववृते ।

व्याख्या—सः=दशरथः बालाश्च ते सुताः बालसुताः । सचिवैः=मन्त्रिभिः (सम्प्रयोजितैः) कारिताः बालसुतानां=शिशुपुत्राणाम् अञ्जलयः=हस्तसम्पुटाः यैस्ते तान् सचिवकारितबालसुताञ्जलीन् न अलकाः=केशाः येषां ते तान् अनलकान्=हृतभर्तृकत्वेन केशसंस्कारशून्यान्, सपत्नानां=शत्रूणां परिग्रहाः=स्त्रियः इति सपत्नपरिग्रहास्तान् सपत्नपरिग्रहान् समनुकम्प्य=अनुगृह्य तदुपरिकृपां कृत्वेत्यर्थः । अवमा=अधमा, न अवमा अनवमा । अलकायाः=कुबेरनगरात् अनवमा=अन्यूना ताम् अलकानवमाम्-अलकानगरीसदृशीमित्यर्थः पुरीम्=अयोध्यां प्रति अर्णांसि सन्त्यत्र ते अर्णवाः, महान्तश्च ते अर्णवाः महार्णवाः । महार्णवानां= महासागराणां रोधः=तटम् तस्मात् महार्णवरोधसः निववृते=निवृत्तः । राजा दशरथः शरणागतवत्सल आसीदित्यर्थः ।

समासः—बालाश्च ते सुताः बालसुताः । सचिवैः कारिताः बालसुतानाम् अञ्जलयः यैस्ते तान् सचिवकारितबालसुताञ्जलीन् । न सन्ति अलकाः येषां तान्

अनलकान् । सपत्नानां परिग्रहाः सपत्नपरिग्रहास्तान् सपत्नपरिग्रहान् । अलकाया न अवमा अलकानवमा ताम् । महान्तश्च ते अर्णवाः महार्णवास्तेषां रोधस्तस्मात् महार्णवरोधसः ।

हिन्दी—वह राजा दशरथ, मंत्रियों के द्वारा छोटे बच्चों से करवाया है प्रणाम जिन्होंने, तथा पतियों के मारे जाने से खुले केश वाली, शत्रुओं की स्त्रियों के ऊपर अनुकम्पा (दया) करके अलका (कुबेर की नगरी) के समान अयोध्यापुरी को महासमुद्रतट से लौट पड़े, अर्थात् स्वयं सामने न जाकर मंत्रियों के साथ अपने पुत्रों से रानियों ने क्षमा माँगी ॥१४॥

उपगतोऽपि च मण्डलनाभितामनुदितान्यसितातपवारणः ।

श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलामभूदनलसोऽनलसोमसमद्युतिः ॥१५॥

संजी०—उपगत इति । अनुदितमनुच्छ्रितमन्यत्स्वच्छत्रातिरिक्तं सितातपवारणं श्वेतच्छत्रं यस्य सः । अनलसोमयोरग्निचन्द्रयोः समे द्युती तेजःकान्ती यस्य स तथोक्तः । श्रियं लक्ष्मीं रन्ध्रेऽन्यायालस्यादिरूपे छले चलां चञ्चलामवेक्ष्यावलोक्य । श्रीर्हि केनचिन्मिषेण पुमांसं परिहरति । स दशरथो मण्डलस्य नाभितां द्वादशराजमण्डलस्य प्रधानमहीपतित्वमुपगतोऽपि । चक्रवर्ती सन्नपीत्यर्थः । 'अथ नाभिस्तु जन्त्वङ्गे यस्य संज्ञा प्रतारिका । रथचक्रस्य मध्यस्थपिण्डिकायां च ना पुनः ॥ आद्यक्षत्रियभेदे तु मतो मुख्यमहीपतौ ।' इति केशवः । अनलसोऽप्रमत्तोऽभूत् । 'अजितमस्ति नृपास्पदम्' इति पाठान्तरेऽजितं नृपास्पदमस्तीति बुद्ध्यानलसोऽप्रमत्तोऽभूत् । विजितनिखिलजेतव्योऽपि पुनर्जेतव्यान्तरवानिव जागरूक एवावातिष्ठतेत्यर्थः । द्वादशराजमण्डलं तु कामन्दकेनोक्तम्—'अरेर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमतः परम् । तथारिमित्रमित्रं च विजिगीषोः पुरःसराः ॥ पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरम् । आसारावनयोश्चैव विजिगीषोस्तु पृष्ठतः' ॥ 'अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः । अनुग्रहे संहतयोः समर्थो व्यस्तयोर्वधे ॥ मण्डलाद्बहिरेतेषामुदासीनो बलाधिकः । अनुग्रहे संहतानां व्यस्तानां च वधे प्रभुः ॥' इति । 'अरिमित्रादयः पञ्च विजिगीषोः पुरःसराः । पार्ष्णिग्राहाक्रन्दपार्ष्णिग्राहासाराश्च पृष्ठतः ॥' इति पृष्ठतश्चत्वारः । मध्यमोदासीनौ द्वौ विजिगीषुरेक इत्येवं द्वादश राजमण्डलम् । तत्रोदासीनमध्यमोत्तरश्चक्रवर्ती । दशरथश्चैतादृगिति तात्पर्यार्थः ॥१५॥

अन्वयः—अनुदितान्यसितातपत्रारणः अनलसोमद्युतिः श्रियं रन्ध्रचलाम् अवेक्ष्य सः मण्डलनाभिताम् उपगतः अपि अनलसः अभूत् ।

व्याख्या—आतपस्य वारणं येन तत् आतपवारणम् । न उदितमिति अनुदितम् । अनुदितम्=अनुच्छ्रितम् अन्यत्=अपरं=स्वच्छत्रातिरिक्तमित्यर्थः सितं=श्वेतम् आतपवारणं=छत्रं यस्य सः अनुदितान्यसितातपवारणः । अनिति अनेनेति अनलः = वह्निः सोमः = चन्द्रः अनयोः द्वन्द्वः अनलसोमौ तयोः अनलसोमयोः= वह्निचन्द्रमसोः समे = तुल्ये द्युती=तेजःकान्ती यस्य सः अनलसोमद्युतिः श्रियं= राज्यलक्ष्मीम् रन्ध्रे=छिद्रे अन्यायालस्यादिरूपे छले चला=चञ्चला तां रन्ध्रचलाम् अवेक्ष्य=ज्ञात्वा । लक्ष्मीः प्रमादादि विलोक्य केनापि छलेन परित्यजतीति ज्ञात्वेत्यर्थः । सः=राजा दशरथः मण्डलस्य=द्वादशराजकस्य नाभिः=मुख्यमहीपतिरिति मण्डलनाभिः । तस्य भावस्तत्ता तां मण्डलनाभिताम् उपगतः=प्राप्तः, अपि सम्राट् सन्नपीत्यर्थः न लसतीति अलसः न अलसः अनलसः=अप्रमत्तः सर्वथा जागरूक इत्यर्थः अभूत्=आसीत् ।

समासः—न उदितम् अन्यत् सितम् आतपवारणं यस्य सः अनुदितान्यसितातपवारणः । अनलश्च सोमश्चेति अनलसोमौ अनलसोमयोः समे द्युती यस्य सोऽनलसोमद्युतिः । मण्डलस्य नाभिरिति मण्डलनाभिः, तस्य भावस्तत्ता तां मण्डलनाभिताम् । रन्ध्रे चला, तां रन्ध्रचलाम् ।

हिन्दी—जिसके आगे दूसरे राजाओं का श्वेतच्छत्र न उठ सकता (नहीं लाया जा सकता) ऐसे अग्नि व चन्द्र के समान तेजस्वी तथा सौम्यकान्ति वाले राजा ने, यह जानकर कि लक्ष्मी तो किसी भी बहाने से मनुष्य को छोड़ देती है । अतः बारह राजाओं के प्रधान राजा (चक्रवर्ती) होकर भी दशरथ सावधान हो रहे । अर्थात् आलस्य प्रमाद को छोड़कर जागरूक रहे ॥१५॥

तमपहाय ककुत्स्थकुलोद्भवं पुरुषमात्मभवं च पतिव्रता ।
नृपतिमन्यमसेवत देवता सकमला कमलाघवमर्थिषु ॥१६॥

संजी०—तमिति । पत्यौ व्रतं नियमो यस्याः सा पतिव्रता सकमला कमलहस्ता देवता लक्ष्मीरर्थिषु विषयेऽलाघवं लघुत्वरहितम् । अपराङ्मुखमित्यर्थः । ककुत्स्थकुलोद्भवं तं दशरथमात्मभवं पुरुषं विष्णुं चापहाय त्यक्त्वा । अन्यं कं

नृपतिमसेवत ? कमपि नासेवतेत्यर्थः । विष्णाविव विष्णुतुल्ये तस्मिन्नपि श्रीः स्थिराभूदित्यर्थः ॥१६॥

अन्वयः—पतिव्रता सकमला देवता अर्थिषु अलाघवं ककुत्स्थकुलोद्भवं तम्, आत्मभवं पुरुषं च अपहाय अन्यं कं नृपतिं असेवत ?

व्याख्या—पातीति पतिः । पत्यौ = स्वामिनि व्रतं=नियमो यस्याः सा पतिव्रता, कमलेन=पद्मेन सहिता सकमला=पद्महस्ता देवता=लक्ष्मीः अर्थः असंनिहितः येषां ते अर्थिनः=याचकास्तेषु अर्थिषु=याचकेषु विषये लघोर्भावः लाघवं न विद्यते लाघवं यस्य तमलाघवम्, याचकविषये उदारमित्यर्थः । ककुदि= वृषांसे तिष्ठतीति ककुत्स्थः । ककुत्स्थस्यए तन्नामकराजस्य कुलं=वंशस्तस्मिन् भवतीति ककुत्स्थकुलोद्भवस्तं ककुत्स्थकुलोद्भवं तं–दशरथम् आत्मनः भवतीति आत्मभवस्तम् आत्मभवम् । आत्मना वा भवतीति आत्मभवस्तमात्मभवम् । पुरुषं = विष्णुं च अपहाय=परित्यज्य अन्यम्=अपरं कम्=नृपतिं=नराधिपम् असेवत=अभजत सेवितवतीत्यर्थः । न कमपि असेवतेत्यर्थः ।

समासः—पत्यौ व्रतं यस्याः सा पतिव्रता । ककुत्स्थस्य कुलमिति ककुत्स्थकुलं तत्र भवः, इति ककुत्स्थकुलोद्भवस्तं ककुत्स्थकुलोद्भवम् । कमलैः सहिता सकमला । आत्मना भवतीति आत्मभवस्तमात्मभवम् ।

हिन्दी—कमल हाथ में लिये पतिव्रता लक्ष्मी ने याचकों के लिये उदार एवं ककुत्स्थ के कुल में पैदा होने वाले महाराज दशरथ तथा आत्मयोनि भगवान् विष्णु को छोड़कर "भला" किस दूसरे राजा की सेवा की है ? अर्थात् किसी की भी नहीं । विष्णु की तरह विष्णु के समान दशरथ के पास भी लक्ष्मी स्थिर होकर रही थी ॥१६॥

तमलभन्त पतिं पतिदेवताः शिखरिणामिव सागरमापगाः ।
मगधकोसलकेकयशासिनां दुहितरोऽहितरोपितमार्गणम् ॥१७॥

मंजी०—तमिति । पतिरेव देवता यासां ताः पतिदेवताः पतिव्रताः । मगधाश्च कोसलाश्च केकयाश्च ताञ्जनपदाञ्छासतीति तच्छासिनः । तेषां राज्ञां दुहितरः पुत्र्यः । सुमित्रा-कौसल्या-कैकेय्य इत्यर्थः । अत्र क्रमो न विवक्षितः । अहितरोपितमार्गणं शत्रुनिखातशरम् । 'कदम्बमार्गणशराः' इत्यमरः । तं दशरथं

शिखरिणां क्ष्माभृतां दुहितरः । आ समन्तादपगच्छन्तीति अथवा—'आपेनाप्संबन्धिना वेगेन गच्छन्तीत्यापगाः' इति क्षीरस्वामी । नद्यः सागरमिव । पतिं भर्तारमलभन्त प्रापुः ॥१७॥

अन्वयः—पतिदेवताः मगधकोसलकेकयशासिनां दुहितरः अहितरोपितमार्गणम् तं शिखरिणां दुहितरः आपगाः सागरम् इव पतिम् अलभन्त ।

व्याख्या—पतिः = भर्ता एव देवता=ईश्वरः यासां ताः पतिदेवताः=पतिव्रताः मगधाश्च कोसलाश्च केकयाश्चेति मगधकोसलकेकयाः । मगधकोसलकेकयान् एतन्नामकान् जनपदान् शासति = पालयन्तीति मगधकोसलकेकयशासिनस्तेषां मगधकोसलकेकयशासिनां=तत्तज्जनपदराजानां दुहितरः = सुताः कौसल्या, सुमित्रा, केकयी इत्यर्थः, मार्गयति, मार्गणः । अहिते=शत्रौ रोपितः=निखातः मार्गणः बाणः येन स तम् अहितरोपितमार्गणम् तं=दशरथम् शिखराणि सन्ति येषान्ते शिखरिणस्तेषां शिखरिणां = पर्वतानां दुहितरः = पुत्र्यः आसमन्तात् अपगच्छन्ति, आपेन = जलसंबन्धिवेगेन वा गच्छन्तीति आपगाः=नद्यः सागरं=समुद्रमिव= यथा पतिं=स्वामिनम् अलभन्त=प्रापुः ।

समासः—पतिरेव देवता यासां ताः पतिदेवताः । मगधश्च कोसलश्च केकयश्चेति मगधकोसलकेकयास्तान् शासति ते मगधकोसलकेकयशासिनस्तेषां मगधकोसलकेकयशासिनाम् । अहिते रोपितः मार्गणः येन स तम् अहितरोपितमार्गणम् ।

हिन्दी—पति को ही देवता माननेवाली "पतिव्रता" मगध तथा कोसल और केकय देश के राजाओं की सुमित्रा, कौसल्या, केकयी नाम की कन्याओं ने, शत्रुओं के ऊपर बाण बर्साने वाले दशरथ को उसी प्रकार पति रूप में प्राप्त किया जैसे कि पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ समुद्र को प्राप्त करती हैं ॥१७॥

प्रियतमाभिरसौ तिसृभिर्बभौ तिसृभिरेव भुवं सह शक्तिभिः ।
उपगतो विनिनीषुरिव प्रजा हरिहयोऽरिहयोगविचक्षणः ॥१८॥

संजी०—प्रियतमाभिरिति । अरीन्घ्नन्तीत्यरिहणो रिपुघ्नाः । हन्तेः क्विप् । 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' इति नियमस्य प्रायिकत्वात् । यथाह न्यासकारः—'प्रायिकश्चायं नियमः क्वचिदन्यस्मिन्नप्युपपदे दृश्यते मधुहा । प्रायिकत्वं च वक्ष्यमाणस्य बहुलग्रहणस्य पुरस्तादपकर्षाल्लभ्यते' इति । तेषु योगेषूपायेषु विचक्षणो दक्षः ।

'योगः संनहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु' इत्यमरः । इन्द्रेऽपि योज्यमेतत् । असौ दशरथस्तिसृभिः । प्रियतमाभिः सह । प्रजा विनिनीषुर्विनेतुमिच्छुस्तिसृभिः शक्तिभिः प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तिभिरेव सह भुवमुपगतो हरिहय इन्द्र इव । बभौ ॥१८॥

अन्वयः—अरिहयोगविचक्षणः असौ तिसृभिः प्रियतमाभिः सह प्रजाः विनिनीषुः तिसृभिः शक्तिभिः सह भुवम् उपगतः हरिहयः इव बभौ ।

व्याख्या—अरीन्=शत्रून् घ्नन्ति=नाशयन्ति ते अरिहणः । अरिहणः=शत्रुघ्नाः ये योगाः=उपायास्तेषु विचक्षणः=कुशलः=चतुर इत्यर्थः इति अरिहयोगविचक्षणः असौ=दशरथः तिसृभिः=त्रिसंख्यकाभिः अतिशयेन प्रियाः इति प्रियतमास्ताभिः प्रियतमाभिः=कौशल्याकैकेयीसुमित्राभिः सह=साकम् प्रजाः=लोकान् विशेषेण नेतुमिच्छतीति विनिनीषति । विनिनीषतीति विनिनीषुः=शासितुमिच्छुः तिसृभिः शक्तिभिः शक्यते जेतुं याभिस्ताः शक्तयः ताभिः=प्रभुमंत्रोत्साहात्मकाभिः एव सह भुवं=पृथिवीम् उपगतः=प्राप्तः हरिः=पीतवर्णः हयः=अश्वो यस्य स हरिहयः = इन्द्रः इव=यथा बभौ=शुशुभे । हरिः कथितः शालिहोत्रे, 'त्वक्केशवालरोमाणि सुवर्णाभानि यस्य तु । हरिः सवर्णतोऽश्वस्तु पीतकौशेयप्रभः ।' इत्येवंरूपोऽश्वः इन्द्रस्य भवतीतिभावः ।

समासः—अरिहणश्च ते योगाः अरिहयोगास्तेषु विचक्षणः इति अरिहयोगविचक्षणः । हरिः हयः यस्य स हरिहयः ।

हिन्दी—शत्रुओं का नाश करनेवाले उपायों में चतुर वह दशरथ अपनी तीनों प्रियरानियों के साथ ऐसे लग रहे थे । मानों प्रजा का शासन करने की इच्छा से तीनों शक्तियों (प्रभुशक्ति मंत्रशक्ति तथा उत्साहशक्ति) के साथ पृथिवी में आये हुवे इन्द्र हों ॥१८॥

स किल संयुगमूर्ध्नि सहायतां मघवतः प्रतिपद्य महारथः ।
स्वभुजवीर्यमगापयदुच्छ्रितं सुरवधूरवधूतभयाः शरैः ॥१९॥

संजी०—स इति । महारथः स दशरथः संयुगमूर्ध्नि रणाङ्गणे मघवत इन्द्रस्य सहायतां प्रतिपद्य प्राप्य शरैरवधूतभया निवर्तितत्रासाः सुरवधूरुच्छ्रितं स्वभुजवीर्यमगापयत्किल खलु । गायतेः शब्दकर्मत्वात् 'गतिबुद्धि–' (पा. १।४।५२) इत्यादिना सुरवधूनामपि कर्मत्वम् ॥१९॥

अन्वयः—महारथः सः संयुगमूर्ध्नि मघवतः सहायतां प्रतिपद्य शरैः अवधूतभयाः सुरवधूः उच्छ्रितं स्वभुजवीर्यम् अगापयत् ।

व्याख्या—रमन्ते लोकाः यस्मिन् स रथः महान् रथो यस्येति महारथः=अयुत-धन्विभिः सहास्त्रशस्त्रैर्निपुणयोद्धा तदुक्तं । महाभारते—"एको दशसहस्राणि योधयेत् यस्तु धन्विनाम् । अस्त्रशस्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः" इति । सः=दशरथः । संयुगस्य=रणस्य मूर्धा=अङ्गणं तस्मिन् संयुगमूर्ध्नि मघवतः=इन्द्रस्य सहायानां समूहः सहायता तां सहायतां=सहायकत्वं प्रतिपद्य=प्राप्य, शरैः=बाणैः अवधूतं=निवर्तितं दूरीकृतमित्यर्थः, भयं=भीतिः यासां ताः अवधूतभयाः, ताः तथोक्ताः । सुराणां=देवानां वध्वः=स्त्रियस्ताः सुरवधूः उच्छ्रितम्=उन्नतं स्वस्य भुजौ स्वभुजौ स्वभुजयोः= निजबाह्वोः वीर्यं=पराक्रमः तत् स्वभुजवीर्यम् अगापयत्=अकीर्तयत् गानं कारितवा-नित्यर्थः । किल=खलु इति प्रसिद्धौ ।

समासः—महान् रथो यस्य स महारथः । संयुगस्य मूर्धा तस्मिन् संयुगमूर्ध्नि । अवधूतं भयं यासां ताः अवधूतभयास्ताः तथोक्ताः । सुराणां वध्वस्ताः सुरवधूः । स्वस्य भुजौ स्वभुजौ तयोः वीर्यं तत् स्वभुजवीर्यम् ।

हिन्दी—महारथी दशरथ ने युद्धस्थल में इन्द्र की सहायता करके अपने बाणों से (इन्द्र के शत्रु को मारकर) जिनके भय को दूर कर दिया ऐसी देवताओं की स्त्रियों से अपनी भुजाओं के उस पराक्रम का गान करा दिया था, जो पराक्रम उन्नत था अर्थात् सर्वत्र फैला था ॥१९॥

क्रतुषु तेन विसर्जितमौलिना भुजसमाहृतदिग्वसुना कृताः ।
कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनो वितमसा तमसासरयूतटाः ॥२०॥

संजी०—क्रतुष्विति । क्रतुष्वश्वमेधेषु विसर्जितमौलिनाऽवरोपितकिरीटेन । 'यावद्यज्ञमध्वर्युरेव राजा भवति' इति राजश्चिह्नत्यागविधानादित्यभिप्रायः । 'मौलिः किरीटे धम्मिल्ले' इति विश्वः । भुजसमाहृतदिग्वसुना भुजार्जितदिगन्तसंपदा । अनेन क्षत्रियस्य विजितत्वमुक्तम् । नियमार्जितधनत्वं सद्विनियोगकारित्वं च सूच्यते । वितमसा तमोगुणरहितेन तेन दशरथेन । तमसा च सरयूश्च नद्यौ । तयोस्तटाः कनकयूपानां समुच्छ्रयेण समुन्नमनेन शोभिनः कृताः । कनकमयत्वं च यूपानां शोभार्थं विध्यभावात् । 'हेमयूपस्तु शोभिकः' इति यादवः ॥२०॥

अन्वयः—क्रतुषु विसर्जितमौलिना भुजसमाहृतदिग्वसुना वितमसा तेन तमसासरयूतटाः कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनः कृताः ।

व्याख्या—क्रियन्ते इति क्रतवस्तेषु क्रतुषु=यज्ञेषु=अश्वमेधेष्वित्यर्थः विसर्जितः=अवरोपितः, त्यक्त इत्यर्थः, मौलिः=किरीटः=मुकुटः येन स विसर्जितमौलिः तेन विसर्जितमौलिना, भुजाभ्यां=बाहुभ्याम् समाहृतम्-आनीतमर्जितं दिशां=काष्ठानां दिगन्तानामित्यर्थः वसु=धनं येन स भुजसमाहृतदिग्वसुस्तेन भुजसमाहृतदिग्वसुना, विगतं=नष्टं तमः=तमोगुणः यस्य स तेन वितमसा तेन= दशरथेन, तम इवास्ति जलं यस्याः सा तमसा=नदी सरतीति सरयूः=नदी । तमसा च सरयूश्च तमसासरय्वौ तयोः=नद्योस्तटाः=तीराणि इति तमसासरयूतटाः, कनकस्य=सुवर्णस्य यूपाः=स्तम्भाः इति कनकयूपाः कनकयूपानां, समुच्छ्रयः= समुन्नमनमिति कनकयूपसमुच्छ्रयस्तेन शोभन्ते = दीप्यन्ते इति कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनः कृताः=विहिताः ।

समासः—विसर्जितः मौलिः येन स तेन विसर्जितमौलिना । भुजाभ्यां समाहृतं दिशां वसु येन स तेन भुजसमाहृतदिग्वसुना । तमसा च सरयूश्च तौ, तयोस्तटाः, तमसासरयूतटाः । कनकस्य यूपाः कनकयूपास्तेषां समुच्छ्रयः इति कनकयूपसमुच्छ्रयस्तेन शोभन्ते तच्छीलाः, कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनः । विगतं तमः यस्य सः तेन वितमसा ।

हिन्दी—अश्वमेध यज्ञों में (यज्ञ करते समय) मुकुट का त्याग करनेवाले, अपनी भुजाओं से चारों दिशाओं का धन ले आने वाले, तमोगुण से शून्य राजा दशरथ ने तमसा और सरयू नदी के किनारों को सुवर्ण के यज्ञस्तंभों से सुशोभित कर दिया था । मुकुट राजा का चिह्न है वह उतारा नहीं जाता किन्तु यज्ञ करते समय राजचिह्न के त्याग का भी विधान है, अतः उतार कर रख दिया था यह तात्पर्य है ॥२०॥

अजिनदण्डभृतं कुशमेखलां यतगिरं मृगशृङ्गपरिग्रहाम् ।

अधिवसंस्तनुमध्वरदीक्षितामसमभासमभासयदीश्वरः ॥२१॥

संजी०—अजिनेति । ईश्वरो भगवानष्टमूर्तिरजिनं कृष्णाजिनं दण्डमौदुम्बरं बिभर्तीति तमजिनदण्डभृतम् । 'कृष्णाजिनं दीक्षयति । औदुम्बरं दीक्षितदण्डं

यजमानाय प्रयच्छति' इति वचनात्। कुशमयी मेखला यस्यास्तां कुशमेखलाम्। 'शरमयी मौञ्जी वा मेखला। तया यजमानं दीक्षयतीति विधानात्। प्रकृते कुशग्रहणं क्वचित्प्रतिनिधिदर्शनात्कृतम्। यतगिरं वाचंयमम्। 'वाचं यच्छति' इति श्रुतेः। मृगशृङ्गं परिग्रहः कण्डूयनसाधनं यस्यास्ताम् 'कृष्णविषाणया। कण्डूयते' इति श्रुतेः। अध्वरदीक्षितां संस्कारविशेषयुक्तां तनुं दाशरथीमधिवसन्नधितिष्ठन्सन्। असमा भासो दीप्तयो यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा अभासयद्भासयति स्म ॥२१॥

अन्वयः—ईश्वरः अजिनदण्डभृतं कुशमेखलां यतगिरं मृगशृंगपरिग्रहाम् अध्वरदीक्षितां तनुम् अधिवसन् असमभासं यथा स्यात्तथा अभासयत्।

व्याख्या—ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरः=भगवान् अष्टमूर्तिः शिवः अजिनं= कृष्णाजिनं, मृगचर्म इत्यर्थः, दण्डम्=औदुम्बरं च बिभर्ति इति अजिनदण्डभृत् ताम् अजिनदण्डभृतम्। कौ=पृथिव्यां शेते=तिष्ठतीति कुशः। । कुं=पापं श्यति=तनूकरोतीति वा कुशः, कुशमयी मेखला=काञ्ची यस्याः सा तां कुशमेखलाम्। यता गीर्यस्याः सा तां यतगिरम्=वाचंयमाम्, मौनव्रतीत्यर्थः मृगस्य= हरिणस्य कृष्णमृगस्येत्यर्थः शृङ्गं=विषाणमिति मृगशृंगम्। मृगशृंगं परिग्रहः= कण्डूयनसाधनं यस्याः सा तां मृगशृंगपरिग्रहाम्। अध्वानं रातीति अध्वरः। दीक्षा संजाता यस्याः सा दीक्षिता। अध्वरे=यज्ञे दीक्षिता= संस्कारयुक्ता इति अध्वरदीक्षिता ताम् अध्वरदीक्षितां तनुं=शरीरं दाशरथीमित्यर्थः, अधिवसन्=अधितिष्ठन् सन् न समा असमा असमा=असदृशी भाः=कान्तिः यस्मिन् कर्मणि तत् असमभासं यथा स्यात्तथा अभासयत्=भासयति स्म।

समासः—अजिनं च दण्डश्चेति अजिनदण्डौ, अजिनदण्डौ बिभर्ति इति अजिनदण्डभृत् ताम् अजिनदण्डभृतम्। कुशानां मेखला यस्याः सा तां कुशमेखलाम्। यता गीर्यस्याः सा तां यतगिरम्। मृगस्य शृंगं, मृगशृंगं परिग्रहो यस्याः सा तां मृगशृंगपरिग्रहाम्। अध्वरे दीक्षिता ताम् अध्वरदीक्षिताम्। असमा भाः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा भवति तथा असमाभासम्।

हिन्दी—मृगछाला और दण्ड को धारण किये, कुश की मेखला (करधनी) पहने मौन तथा मृग के सींग को लिये हुए यज्ञ की दीक्षा में बैठे महाराज-दशरथ के शरीर में निवास करते हुए "भगवान् अष्टमूर्ति" शिव ने उनको ऐसा

दीप्तिमान कर दिया कि राजा की कान्ति अद्वितीय हो गई। यज्ञ में काले मृग के सींग से ही खुजाते हैं ऐसा वेद का आदेश है ॥२१॥

अवभृथप्रयतो नियतेन्द्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितः ।
नमयति स्म स केवलमुन्नतं वनमुचे नमुचेररये शिरः ॥२२॥

संजी०—अवभृथेति। अवभृथेन प्रयतो नियतेन्द्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितो देवसभाधिष्ठानार्हः स दशरथ उन्नतं शिरो वनमुचे जलवर्षिणे। 'जलं नीरं वनं सत्त्वम्' इति शाश्वतः। नमुचेररये केवलमिन्द्रायैव नमयति स्म। न कस्मैचिदन्यस्मै मानुषायेत्यर्थः ॥२२॥

अन्वयः—अवभृथप्रयतः नियतेन्द्रियः सुरसमाजसमाक्रमणोचितः सः उन्नतं शिरः वनमुचे नमुचेः अरये केवलं नमयति स्म।

व्याख्या—अवभ्रियतेऽनेनेति अवभृथः। अवभृथेन = दीक्षान्तकृत्यविशेषेण यज्ञान्तस्नानेनेत्यर्थः प्रयतः=पवित्रः, इति अवभृथप्रयतः नियतानि=वशीकृतानि इन्द्रियाणि=चक्षुरादीनि येन नियतेन्द्रियः सुरा = समुद्रोत्थास्ति येषां ते सुराः। यद्वा शोभनं राजन्ते इति सुराः सुराणां=देवानां समाजः = संघस्तस्मिन् यत् समाक्रमणम्=समधिष्ठानं गमनमुपवेशनमित्यर्थः इति सुरसमाजसमाक्रमणं तस्मिन् उचितः=योग्यः इति सुरसमाजसमाक्रमणोचितः सः=दशरथः उन्नमति स्म इति उन्नतं=प्रांशु श्रीयते उष्णीषादिना इति शिरः= उत्तमांगं=मस्तकमित्यर्थः वनं = जलं मुञ्चति=वर्षति इति वनमुक् तस्मै वनमुचे नमुचेः=तन्नामकदैत्यस्य अरये=शत्रवे=इन्द्रायेत्यर्थः केवलम्=एव नमति स्म=प्रणमति स्म, इन्द्राय एव दशरथः प्राणमत् न तु अन्यस्मै कस्मैचित् मनुष्यायेत्यर्थः।

समासः—अवभृथेन प्रयतः अवभृथप्रयतः। नियतानि इन्द्रियाणि यस्य स नियतेन्द्रियः। सुराणां समाजः सुरसमाजस्तस्मिन् समाक्रमणं तत्र उचितः इति सुरसमाजसमाक्रमणोचितः।

हिन्दी—"यज्ञ के अन्त में" अवभृथ स्नान से पवित्र जितेन्द्रिय तथा देवताओं के समाज में बैठने के योग्य राजा दशरथ ने अपना उन्नत मस्तक, जल बरसानेवाले, नमुचिदैत्य के शत्रु इन्द्र के लिये ही झुकाया था। अर्थात् राजा दशरथ केवल इन्द्र को नमस्कार करते थे अन्य किसी को नहीं ॥२२॥

असकृदेकरथेन तरस्विना हरिहयाग्रसरेण धनुर्भृता ।

दिनकराभिमुखा रणरेणवो रुरुधिरे रुधिरेण सुरद्विषाम् ॥२३॥

संजी०—असकृदिति । एकरथेनाद्वितीयरथेन तरस्विना बलवता हरिहयस्येन्द्रस्याग्रसरेण धनुर्भृता दशरथेनासकृद् बहुशो दिनकरस्याभिमुखाः । अभिमुखस्थिता इत्यर्थः । रणरेणवः सुरद्विषां दैत्यानां रुधिरेण रुरुधिरे निवारिताः ॥२३॥

अन्वयः—एकरथेन तरस्विना हरिहयाग्रसरेण धनुर्भृता असकृत् दिनकराभिमुखाः रणरेणवः सुरद्विषां रुधिरेण रुरुधिरे ।

व्याख्या—एकः = अद्वितीयः रथः=स्यन्दनं यस्य स तेन एकरथेन तरः= बलमस्यास्तीति तरस्वी तेन तरस्विना=बलवता हरिः=पीतवर्णः हयः । अश्वो यस्य स हरिहयः, तस्य हरिहयस्य=इन्द्रस्य अग्रे सरतीति तेन हरियाग्रसरेण धनुः=चापं बिभर्ति=धारयतीति धनुर्भृत् तेन धनुर्भृता=दशरथेन न सकृत् असकृत्= बहुवारम् । दिनं करोतीति दिनकरः । दिनकरस्य=सूर्यस्य अभिमुखाः=संमुखाः इति दिनकराभिमुखाः रणस्य=युद्धस्य रेणवः=धूलयः इति रणरेणवः सुरान्= देवान् द्विषन्तीति सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषां=दैत्यानां रुणद्धि, रुध्यते वा रुधिरं तेन रुधिरेण=रक्तेन रुरुधिरे=रुद्धाः=निवारिताः ।

समासः—एकः रथो यस्य स एकरथस्तेन एकरथेन । हरिः हयो यस्य स हरिहयः । हरिहयस्य अग्रसरः हरिहयाग्रसरस्तेन हरिहयाग्रसरेण । धनुषः भृत् धनुर्भृत् तेन धनुर्भृता । दिनकरस्य अभिमुखाः दिनकराभिमुखाः । रणस्य रेणवः रणरेणवः सुराणां द्विषः सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषाम् ।

हिन्दी—अकेले रथपर चढ़कर युद्ध करनेवाले बलवान् तथा युद्ध में इन्द्र के आगे चलनेवाले धनुर्धारी दशरथ ने अनेकबार सूर्य के सामने छाई हुई युद्ध की धूलि को दैत्यों के खून से रोक दिया था । अर्थात् राक्षसों के खून से भींग जाने से धूल को दबा दिया था ॥२३॥

अथ समावबृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम् ।

यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम् ॥२४॥

संजी०—अथेति । अथ यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां धर्मराजधनदवरुणामरेन्द्राणां समा धूर्भारो यस्य स समधुरः । माध्यस्थवितरणसंनियमनैश्वर्यैस्तुल्यकक्ष

इत्यर्थः। 'ऋक्पूरब्धूः–' (पा. ५।४।७४) इत्यादिना समासान्तोऽच्प्रत्ययः। तं समधुरम्। अञ्चितविक्रमं पूजितपराक्रममेकनराधिपं तं दशरथं सेवितुमिव। मधुर्वसन्तः। 'अथ पुष्परसे मधुः। दैत्ये चैत्रे वसन्ते च मधुः' इति विश्वः। नवैः कुसुमैरुपलक्षितः सन्, समाववृते समागतः। 'रिक्तहस्तेन नोपेयाद्राजानं देवतां गुरुम्' इति वचनात्पुष्पसमेतो राजानं सेवितुमागत इत्यर्थः ॥२४॥

अन्वयः—अथ यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरम् अञ्चितविक्रमम् एकनराधिपं तं सेवितुम् इव मधुः नवैः कुसुमैः उपलक्षितः सन् समाववृते।

व्याख्या—अथ=दैत्यविजयानन्तरम् यमयति लोकानिति यमः। कुत्सितं बेरं=शरीरं यस्य स कुबेरः कुष्ठित्वादित्यर्थः। कुम्बति धनमाच्छादयतीति वा कुबेरः। जलस्य ईश्वरः इति जलेश्वरः। वज्रोऽस्यास्तीति वज्री। यमः=धर्मराजः कुबेरः=धनदः जलेश्वरः=वरुणः वज्री=इन्द्रः, एषामितरेतरयोगः यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणस्तेषां यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समा=तुल्या धूः=भारो यस्य स तं समधुरम्। अञ्च्यते स्म इति अञ्चितः=पूजितः विक्रमः=पराक्रमो यस्य स तम् अञ्चितविक्रमम् नराणामधिपः नराधिपः। एकः=अद्वितीयश्चासौ नराधिपः=नृपतिरिति एकनराधिपस्तम् एकनराधिपं तं=दशरथं सेवितुं=परिचरितुम् श्रयितुम्, इव=यथा मधुः=वसन्तः=ऋतुराज इत्यर्थः नवैः=नूतनैः कुस्यन्ति=संश्लिष्यन्तीति कुसुमानि तैः कुसुमैः=पुष्पैः उपलक्षितः सन् समाववृते=समाजगाम। राज्ञः पार्श्वे रिक्तपाणिः न गच्छेदिति हेतोः पुष्पसमेतो वसन्तः राजानं सेवितुमागत इत्यर्थः।

समासः—यमश्च कुबेरश्च जलेश्वरश्च वज्री च यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणस्तेषां यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणाम्। समा धूः यस्य स तं समधुरम्। अञ्चितः विक्रमो यस्य सः, तम् अञ्चितविक्रमम्। एकश्चासौ नराधिपस्तम् एकनराधिपम्।

हिन्दी—इन्द्र की सहायता करने के पश्चात्, यम कुबेर वरुण और इन्द्र के बराबर भार वाला (अर्थात् समदर्शी तथा दान देने से और नियमन तथा ऐश्वर्य से उक्त देवताओं के तुल्य) प्रशंसनीय पराक्रमी उन एकच्छत्र, राजा दशरथ की सेवा करने के लिये नये नये पुष्पों से युक्त होकर वसन्त ऋतु आ गया। अर्थात् जब वसन्त आया, मानों राजा की सेवा करने के लिये पुष्प लेकर आया ॥२४॥

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः ।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैर्विमलयन्मलयं नगमत्यजत् ॥२५॥

संजी०—जिगमिषुरिति । धनदाध्युषितां कुबेराधिष्ठितां दिशं जिगमिषुर्गन्तुमिच्छुः । रथयुजा सारथिनारुणेन परिवर्तितवाहनो निवर्तिताश्वो रविः । हिमस्य निग्रहैर्निराकरणैर्दिनमुखानि प्रभातानि विमलयन्विशदयन् मलयं नगं मलयाचलमत्यजत् । दक्षिणां दिशमत्याक्षीदित्यर्थः ॥२५॥

अन्वयः—धनदाध्युषितां दिशं जिगमिषुः रथयुजा परिवर्तितवाहनः रविः हिमनिग्रहैः दिनमुखानि विमलयन् मलयं नगम् अत्यजत् ।

व्याख्या—धनं=वित्तं दयते–पालयतीति धनदः । धनदेन=कुबेरेण अध्युषिता= अधिष्ठिता=सेविता तां धनदाध्युषिताम् दिशति अवकाशमिति दिक् तां दिशं= *काष्ठाम्=उत्तरां दिशमित्यर्थः गन्तुमिच्छति जिगमिषति, जिगमिषतीति जिगमिषुः=* गन्तुमिच्छुः रथं युनक्ति इति रथयुक् तेन रथयुजा=सारथिना अरुणेनेत्यर्थः वहन्ति एभिस्तानि वाहनानि । परिवर्तितानि=निवर्तितानि वाहनानि=अश्वाः यस्य स परिवर्तितवाहनः रूयते=स्तूयते रविः=सूर्यः हिमस्य=तुषारस्य निग्रहाः=निराकरणानि तैः हिमनिग्रहैः दिनस्य मुखानि दिनमुखानि=प्रभातानि विमलयन्=विशदीकुर्वन्= प्रकाशयन्नित्यर्थः । मलते–धरति चन्दनादिकमिति मलयस्तं मलयं, न गच्छतीति नगस्तं नगम्=मलया-चलम् अत्यजत्=अत्याक्षीत् । दक्षिणदिशं परित्यज्य उत्तराशां गत इत्यर्थः ।

समासः—धनदेन अध्युषिता तां धनदाध्युषिताम् । परिवर्तितानि वाहनानि यस्य स परिवर्तितवाहनः । दिनानां मुखानि दिनमुखानि । हिमस्य निग्रहास्तैः हिमनिग्रहैः ।

हिन्दी—कुबेर से पालित उत्तर दिशा में जाने की इच्छा वाले, तथा रथचालक अरुण ने जिनके घोड़ों को घुमा दिया ऐसे सूर्य ने पाला हटाकर प्रातःकाल को स्वच्छ प्रकाशमान करते हुए मलय पर्वत को छोड़ दिया । अर्थात् सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण हो गये ॥२५॥

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥२६॥

संजी०—कुसुमेति । आदौ कुसुमजन्म । ततो नवपल्लवाः । तदनु । 'अनुर्लक्षणे' (पा. १।४।८४) इति कर्मप्रवचनीयत्वाद् द्वितीया, यथासंख्यं तदुभयानन्तरं षट्पदानां कोकिलानां च कूजितम् । इत्येवंप्रकारेण यथाक्रमं क्रममनतिक्रम्य द्रुमवतीं द्रुमभूयिष्ठां वनस्थलीमवतीर्य मधुर्वसन्त आविरभूत् । केषांचिद् द्रुमाणां पल्लवप्राथम्यात्केषांचित्कुसुमप्राथम्यान्नोक्तक्रमस्य दृष्टविरोधः ॥२६॥

अन्वयः—"आदौ" कुसुमजन्म ततः नवपल्लवाः तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् इति यथाक्रमं द्रुमवतीं वनस्थलीम् अवतीर्य मधुः आविरभूत् ।

व्याख्या—वसन्तागमनप्रकारं कथयति कविः । आदौ कुस्यन्ति संश्लिष्यन्तीति कुसुमानि=पुष्पाणि तेषां जन्म=आविर्भावः इति कुसुमजन्म ततः=अनन्तरम् पल्यन्ते पलः लूयन्ते इति लवाः पलश्च ते लवाः पल्लवाः नवाः=नूतनाश्च ते पल्लवाः=किसलयानि इति नवपल्लवाः आविर्भूताः । तदनु=उभयानन्तरम् षट् पदानि येषां षट्पदाः भ्रमराः कोकिलाः=पिकाः षट्पदाश्च कोकिलाश्चेति षट्पदकोकिलास्तेषां एवं प्रकारेण क्रममनतिक्रम्येति यथाक्रमम्, द्रवति ऊर्ध्वमिति द्रुः । द्रुः=शाखा अस्यास्तीति द्रुमः=वृक्षः । द्रुमः अस्याः अस्तीति द्रुमवती तां द्रुमवतीं वनस्य=अरण्यस्य स्थली=अकृत्रिमा भूमिस्तां वनस्थलीम् अवतीर्य=आगत्य मधुः=वसन्तः आविरभूत्=प्रकटो जातः ।

समासः—कुसुमानां जन्म कुसुमजन्म । नवाश्च ते पल्लवाः नवपल्लवाः । षट्पदाश्च कोकिलाश्चेति षट्पदकोकिलास्तेषां कूजितमिति षट्पदकोकिलकूजितम् । द्रुमाः सन्ति यस्याः सा द्रुमवती तां द्रुमवतीम् । वनस्य स्थली तां वनस्थलीम् ।

हिन्दी—पहले फूलों का जन्म हुआ (फूल खिले) अनन्तर नई नई कोपलें निकलीं, इन दोनों के पश्चात् भौंरे और कोयलों का शब्द होने लगा, इस प्रकार क्रम से वृक्षों वाली वनस्थली में उतरकर वसन्त प्रकट हुआ । किसी वृक्ष में प्रथम पत्ते आते हैं और किसी में पुष्प आते हैं, अतः क्रम में कोई दोष नहीं है ॥२६॥

नयगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः ।
अभिययुः सरसो मधुसंभृतां कमलिनीमलिनीरपतत्त्रिणः ॥२७॥

संजी०—नयेति । नयो नीतिरेव गुणः । तेन । अथवा,—नयेन गुणैः

शौर्यादिभिश्चोपचिताम् । सतामुपकारः फलं यस्यास्तां सदुपकारफलां भूपतेर्दशरथस्य श्रियमर्थिन इव । मधुना संभृतां सम्यक्पुष्टां सरसः संबन्धिनीं कमलिनीं पद्मिनीमलिनीरपतत्रिणः । अलयो भृङ्गाः । नीरपतत्रिणो जलपतत्रिणो हंसादयश्च अभिययुः ॥२७॥

अन्वयः—नयगुणोचितां सदुपकारफलां भूपतेः श्रियम् अर्थिनः इव मधुसंभृतां सरसः कमलिनीम् अलिनीरपतत्रिणः अभिययुः ।

व्याख्या—नयनं नयः गुण्यते=मंत्र्यते इति गुणः । नयः=नीतिः एव गुणः=शौर्यादिः तेन उपचिता=वर्धिता तां नयगुणोपचिताम् । नयेन=नीत्या गुणैः=शौर्यादिभिश्च उपचिता=वर्धिता तामिति वा नयगुणोपचिता तां तथोक्ताम् । सतां=सज्जनानाम् उपकारः=उपकृतिः फलं=प्रयोजनं यस्याः सा तां सदुपकारफलां भुवः पतिः भूपतिस्तस्य भूपतेः=दशरथस्य श्रियं=लक्ष्मीम् अर्थिनः=याचकाः इव=यथा मधुना=वसन्तेन संभृता=सम्यक् पुष्टा तां मधुसंभृताम् सरसः=तडागस्य सरःसंबन्धिनीमित्यर्थः कमलमस्यास्तीति सा, तां कमलिनीं=पद्मिनीम् अलयः=भ्रमराः नीरस्य=जलस्य पक्षिणः=हंसादयः इति अलिनीरपतत्रिणः अभिययुः=सम्मुखं जग्मुः ।

समासः—नयः एव गुणस्तेन उपचिता तां नयोपचिताम् । नयेन गुणैश्च उपचिता तां नयोपचिताम् । सताम् उपकारः फलं यस्याः सा तां सदुपकारफलाम् । भुवः पतिः तस्य भूपतेः । मधुना संभृता मधुसंभृता तां मधुसंभृताम् । नीरस्य पतत्रिणः नीरपतत्रिणः, अलयश्च नीरपतत्रिणश्च अलिनीरपतत्रिणः ।

हिन्दी—नीति रूपी गुणों से या नीति और पराक्रमादि गुणों से बटोरी हुई तथा सज्जनों का उपकार करना जिसका प्रयोजन है ऐसे राजा दशरथ की लक्ष्मी को जैसे माँगने वाले घेरे रहते थे, उसी प्रकार, वसन्त ऋतु से खूब बढ़ी हुई तालाब की कमलिनी के भौंरे और हंस चारों तरफ से मण्डराने लगे॥२७॥

कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् ।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः ॥२८॥

संजी०—कुसुममिति । ऋतुरस्य प्राप्त आर्तवम् । 'ऋतोरण्' (पा. ५।१।१०५) इत्यण् । नवं प्रत्यग्रमशोकतरोः केवलं कुसुममेव स्मरदीपनमुद्दीपनं न ।

किंतु विलासिनां मदयिता मदजनको दयिताश्रवणार्पितः किसलयप्रसवोऽपि पल्लवसंतानोऽपि स्मरदीपनोऽभवत् ॥२८॥

अन्वयः—आर्तवं नवम् अशोकतरोः केवलं कुसुमम् एव स्मरदीपनं न किन्तु विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः किसलयप्रसवः अपि स्मरदीपनः अभवत् ।

व्याख्या—ऋच्छति इति ऋतुः । ऋतुः प्राप्तः अस्य तत् आर्तवम्=ऋतुभवं नवं=प्रत्यग्रं नूतनमिति यावत् न शोकोऽस्मादिति अशोकः=वञ्जुलः, तरन्ति अनेनेति तरुः=वृक्षः । अशोकस्य तरुस्तस्य अशोकतरोः केवलम्=एकम् कुसुमं=पुष्पम् एव=निश्चयेन, स्मरति=उत्कण्ठयतीति स्मरः । स्मरस्य=कामस्य दीपनं=वर्धनम् उद्दीपनं न किन्तु विलसनं विलासः=शृंगारचेष्टा । विलासोऽस्ति येषां ते विलासिनस्तेषां विलासिनां=विलसनशीलानां मदयिता=मदजनकः कामविकारकारकः दयितायाः=प्रियायाः श्रवणयोः=कर्णयोः अर्पितः=दत्तः भूषणत्वेन स्थापितः इत्यर्थः । किंचित् लसन्तीति किसलयानि । किसलयानां=पल्लवानां प्रसवः=प्रसूतिः=सन्तानः अपि=समुच्चये स्मरदीपनः अभवत्=जातः ।

समासः—अशोकस्य तरुः अशोकतरुस्तस्य अशोकतरोः । स्मरस्य दीपनं स्मरदीपनम् । किसलयानां प्रसवः किसलयप्रसवः । दयितायाः श्रवणयोः अर्पितः दयिताश्रवणार्पितः ।

हिन्दी—वसन्त ऋतु में खिले नए, अशोकवृक्ष के फूल ही कामोद्दीपक नहीं थे, किन्तु प्रियाओं के कानों में पहने हुवे कोमल कोपलों के गुच्छे भी विलासिओं के काम को उद्दीप्त करनेवाले थे ॥२८॥

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः ।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरवका रवकारणतां ययुः ॥२९॥

सञ्जी०—विरचिता इति । मधुना वसन्तेन विरचिता उपवनश्रियामभिनवाः पत्रविशेषकाः पत्ररचना इव स्थिता मधूनां मकरन्दानां दाने विशारदाश्चतुराः कुरबकास्तरवो मधुलिहां मधुपानां रवकारणतां ययुः । भृङ्गाः कुरबकाणां मधूनि पीत्वा जगुरित्यर्थः । दानशौण्डानर्थिजनाः स्तुवन्तीति भावः ॥२९॥

अन्वयः—मधुना विरचिताः उपवनश्रियाम् अभिनवाः पत्रविशेषकाः इव "स्थिताः" मधुदानविशारदाः कुरबकाः मधुलिहां रवकारणतां ययुः।

व्याख्या—मधुना=वसन्तेन विरचिताः=कृताः उपगतानि वनानि उपवनानि। उपवनानाम्=आरामाणां श्रियः=शोभाः इति उपवनश्रियः तासाम् उपवनश्रियाम् अभिनवाः नूतनाः विशेषाः एव विशेषकाः पत्राणां—लिखितपत्राकृतीनां विशेषकाः ललाटकृततिलकाः, इति पत्रविशेषकाः=पत्ररचनाः इत्यर्थः इव—यथा स्थिताः मधूनां=पुष्परसानां दाने=त्यागे विशारदाः=कुशलाः इति मधुदानविशारदाः= मकरन्ददाने निपुणाः इत्यर्थः। कु ईषत् रौतीति कुरबकः। बहुवचने कुरबकाः= तरवः मधु लिहन्ति, मधुलिहस्तेषां मधुलिहां = भ्रमराणां रवणं रवः। रवस्य= शब्दस्य कारणं=हेतुः तस्य भावस्तत्ता तां रवकारणतां ययुः=प्रापुः। दातारं यथा याचकाः स्तुवन्ति, एवं भ्रमराः कुरबककुसुमानां मधूनि पीत्वा जगुरिति भावः।

समासः—उपवनानां श्रियस्तासाम् उपवनश्रियाम्। विशेषाः एव विशेषकाः पत्राणां विशेषकाः पत्रविशेषकाः। मधूनां दानं, मधुदानं मधुदाने विशारदा इति मधुदानविशारदाः। रवस्य कारणता रवकारणता तां रवकारणताम्।

हिन्दी—वसन्त ऋतु से बनाई गई, वनलक्ष्मी की नई पत्ररचना (बेलबूटे बनाकर शरीर का श्रृंगार कर सजाना) की तरह खड़े हुवे तथा मधु देने में चतुर (पुष्परस की वर्षा करनेवाले) कुरबक के वृक्ष भौंरों के शब्द करने में कारण बन गये। अर्थात् वसन्त में कुरबक का मधु पीकर भौंरे वैसे ही गुनगुना रहे थे जैसे दानी से दान पाकर याचक उसका गुणगान करते हैं ॥२९॥

सुवदनावदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः।
मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैर्बकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभिः ॥३०॥

संजी०—सुवदनेति। सुवदनावदनासवेन कान्तामुखमद्येन संभृतो जनितः। तत्तस्य दोहदमिति प्रसिद्धिः। तस्यासवस्यानुवादी सदृशो गुणो यस्य तदनुवादि-गुणः कुसुमोद्गमः कर्ता मधुलोलुपैरायतपङ्क्तिभिर्दीर्घपङ्क्तिभिर्मधुकरैर्मधुपैः करणैः बकुलं बकुलवृक्षमाकुलमकरोत् ॥३०॥

अन्वयः—सुवदनावदनासवसंभृतः तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः मधु-लोलुपैः आयतपंक्तिभिः मधुकरैः बकुलम् आकुलम् अकरोत्।

व्याख्या—वदन्ति अनेनेति वदनम् । सुष्ठु वदनमस्याः सा सुवदना=सुमुखी तस्याः वदनं=मुखमिति सुवदनावदनम् । आसूयते इति आसवः=मद्यम् । सुवदनावदनस्य आसवः तेन संभृतः=जनितः इति सुवदनावदनासवसंभृतः । तम्= आसवम् अनुवदति तच्छीलः तदनुवादी । तदनुवादी=आसवसदृशः गुणः=सौरभादिः, इति तदनुवादिगुणः कुसुमानां=पुष्पाणाम् उद्गमः=आविर्भावः, इति कुसुमोद्गमः । गर्हितं लुभ्यन्तीति लोलुपाः मधुषु=आसवेषु लोलुपाः लुब्धास्तैः मधुलोलुपैः आयता=दीर्घा पंक्तिः=श्रेणी येषां ते आयतपंक्तयस्तैः आयतपंक्तिभिः मधु कुर्वन्ति तच्छीलाः मधुकरास्तैः मधुकरैः=मधुपैः करणैः । बकुलम्= केसरवृक्षम् आकोलतीति आकुलम्=व्यस्तम् अकरोत्=कृतवान् ।

समासः—सुवदनायाः वदनं, सुवदनावदनं तस्य आसवः इति सुवदनावदनासवस्तेन संभृतः इति सुवदनावदनासवसंभृतः । तस्य अनुवादी तदनुवादी, तदनुवादी गुणो यस्य स तदनुवादिगुणः । कुसुमानाम् उद्गमः । आयता पंक्तिर्येषां ते तैः आयतपंक्तिभिः । मधुषु लोलुपास्तैः मधुलोलुपैः ।

हिन्दी—स्त्रियाँ मुख में मधु लेकर मौलसरी के वृक्षपर कुल्ला कर देती हैं तब उसमें फूल आते हैं । प्रसिद्ध 'दोहद' यह कवियों का समय है । सुन्दर मुखवाली स्त्रियों के मुख की शराब से उत्पन्न हुए तथा उसी के समान गुण (गन्ध) वाले मौलसरी के पुष्पगुच्छों ने मधु के लोभी, लम्बी पंक्तिवाले भौंरों से मौलसरी के वृक्ष को व्याकुल कर दिया । अर्थात् चारों तरफ से व्याप्त करा दिया ॥३०॥

उपहितं शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किंशुके ।

प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं प्रमदया मदयापितलज्जया ॥३१॥

संजी०—उपहितमिति । शिशिरापगमश्रिया वसन्तलक्ष्म्या किंशुके पलाशवृक्षे । 'पलाशः किंशुकः पर्णः' इत्यमरः । उपहितं दत्तं मुकुलजालं कुड्मलसंहतिः । मदेन यापितलज्जयाऽपसारितत्रपया प्रमदया प्रणयिनि प्रियतम उपहितं नखक्षतमेव मण्डनं तदिव । अशोभत ॥३१॥

अन्वयः—शिशिरापगमश्रिया किंशुके उपहितं मुकुलजालम् मदयापितलज्जया प्रमदया प्रणयिनि उपहितं नखक्षतम् इव अशोभत ।

व्याख्या—शशन्ति=धावन्ति पथिकाः यस्मिन् शिशिरः=माघफाल्गुनमासीयः ऋतुः। शिशिरस्य अपगमः=विनाशः इति शिशिरापगमस्तस्मिन् श्रीः=शोभा तया शिशिरापगमश्रिया=वसन्तलक्ष्म्या किंचित् शुकः इव इति किंशुकस्तस्मिन् किंशुके=पलाशे उपहितं=दत्तं मुञ्चन्तीति मुकुलाः, मुकुलानां=कुड्मलानां जालं=समूहः इति मुकुलजालम्। मदेन=मद्यपानेनेत्यर्थः यापिता=अपसारिता=दूरीकृतेत्यर्थः लज्जा=ह्रीः यस्याः सा तया मदयापितलज्जया प्रकृष्टः मदः=हर्षः अस्याः अस्तीति प्रमदा तया प्रमदया—कान्तया प्रणयोऽस्यास्तीति प्रणयी तस्मिन् प्रणयिनि=प्रियतमे उपहितं नखानां=कररुहाणां क्षतानि=व्रणानि एव मण्डनं=भूषणमिति नखक्षतमण्डनम् इव=यथा अशोभत=अराजत।

समासः—शिशिरस्य अपगमः शिशिरापगमस्तस्मिन् या श्रीः, शिशिरापगमश्रीः, तया शिशिरापगमश्रिया। मुकुलानां जालमिति मुकुलजालम्। नखानां क्षतानि एव मण्डनमिति नखक्षतमण्डनम्। मदेन यापिता लज्जा यया तया मदयापितलज्जया।

हिन्दी—शिशिर ऋतु के बीत जानेपर वसन्त की लक्ष्मी से पलाश में रखा हुआ कलियों का समूह ऐसा सुशोभित हुआ जैसे कि मद्य पीने से लज्जा को त्याग करने वाली कामिनी से अपने प्रियतम में दिया हुआ नखक्षतरूपी भूषण हो। अर्थात् वसन्त के आनेपर पलाश में कलियाँ खूब आ गईं और वे कलियाँ कामिनी के नखक्षत सी (प्रिय के शरीर पर) लग रही थीं ॥३१॥

व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहं जघननिर्विषयीकृतमेखलम्।
न खलु तावदशेषमपोहितुं रविरलं विरलं कृतवान्हिमम् ॥३२॥

संजी०—व्रणेति। व्रणैर्दन्तक्षतैर्गुरुभिर्दुर्धरैः प्रमदानामधरैरधरोष्ठैर्दुःसहं हिमस्य व्यथाकरत्वादसह्यम्। जघनेषु निर्विषयीकृता निरवकाशीकृता मेखला येन तत्। शैत्यात्त्याजितमेखलमित्यर्थः। एवंभूतं हिमं रविस्तावदा वसन्तादशेषं निःशेषं यथा तथाऽपोहितुं निरसितुं नालं खलु न शक्तो हि। किंतु विरलं कृतवांस्तनूचकार ॥३२॥

अन्वयः—व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहं जघननिर्विषयीकृतमेखलं हिमं रविः तावत् अशेषं यथा स्यात्तथा अपोहितुं नालं खलु किन्तु विरलं कृतवान्।

व्याख्या—प्रमदः=हर्षोऽस्याः अस्तीति प्रमदा। ध्रियते इति अधरः। प्रमदानां=कामिनीनाम् अधराः=दन्तच्छदाः इति प्रमदाधराः। व्रणैः=दन्तक्षतैः गुरवः=दुर्धराश्च ते प्रमदाधरास्तैः व्रणगुरुप्रमदाधरैः दुःसहं=सोढुमशक्यम् इति व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहम्। हिमस्य व्रणे पीडाकरत्वादसह्यम् इत्यर्थः, हन्यते इति जघनम् मेखला। विषयात् निर्गता निर्विषया न निर्विषया अनिर्विषया, अनिर्विषया निर्विषया संपद्यमाना इति निर्विषयीकृता। जघनेषु=स्त्रीकट्यग्रभागेषु निर्विषयीकृता निरवकाशीकृता मेखला=काञ्ची येन तत् जघननिर्विषयीकृतमेखलम्। अतीव शैत्यात् मेखला त्यक्ता स्त्रीभिरित्यर्थः। हिमम्=तुहिनं=तुषारमित्यर्थः स्तूयते=स्तूयते रविः=सूर्यः तावत्=आवसन्तात् अशेषं=संपूर्णं यथा स्यात्तथा अपोहितुं=दूरीकर्तुं नालं खलु=न समर्थः हि, किन्तु विरलम्=अल्पं कृतवान्=चकार।

समासः—प्रमदानाम् अधराः प्रमदाधराः, व्रणैः गुरवः व्रणगुरवः, व्रणगुरवश्च ते प्रमदाधराः, व्रणगुरुप्रमदाधरास्तैः दुःसहमिति व्रणगुरुप्रमदाधरदुःसहम् तत्। जघनेषु निर्विषयीकृता मेखला येन तत् जघननिर्विषयीकृतमेखलम् तत्। न शेषमिति अशेषम् तत्।

हिन्दी—पतियों के दन्तक्षतों से घायल हुए स्त्रियों के अधरों से सहन न होने वाले, (ठण्डक से घाव में पीड़ा होती है) तथा जाँघों से तगड़ी को हटा देने वाले (शीतलता के कारण) हिम (ठण्ड) को सूर्य भगवान् वसन्त के आनेतक बिलकुल तो दूर न कर सका, किन्तु कम जरूर कर दिया ॥३२॥

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा।

अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि ॥३३॥

मंजी०—अभिनयानिति। अत्र चूतलतायां नर्तकीसमाधिरभिधीयते। अभिनयानर्थव्यञ्जकान्व्यापारान्। 'व्यञ्जकाभिनयौ समौ' इत्यमरः। परिचेतुमभ्यसितुमुद्यतेव स्थिता। कुतः? मलयमारुतेन कम्पितपल्लवा। 'पल्लव'शब्देन हस्तो गम्यते। सकलिका सकोरका। 'कलिका कोरकः पुमान्' इत्यमरः। सहकारलता। कलिः कलहो द्वेष उच्यते। 'कलिः स्यात्कलहे शूरे कलिरन्त्ययुगे युधि' इति विश्वः। कामो रागः। तज्जितामपि। जितरागद्वेषाणामपीत्यर्थः। मनोऽमदयत् ॥३३॥

अन्वयः—अभिनयान् परिचेतुम् उद्यता इव स्थिता मलयमारुत-कम्पितपल्लवा सकलिका सहकारलता कलिकामजिताम् अपि मनः अमदयत् ।

व्याख्या—अभिनयन्ति=व्यञ्जयन्ति अर्थानिति अभिनयास्तान् अभिनयान्=अर्थव्यंजकव्यापारान् परिचेतुम्=अभ्यसितुम् उद्यता=सन्नद्धा इव=यथा स्थिता, मलयस्य म्रियन्तेऽनेन वृद्धेन विना वा मरुत्, मरुत् एव मारुतः। मलयाचलस्य मारुतः=पवनस्तेन कम्पितानि=चलितानि पल्लवानि=किसलयानि यस्याः सा मलयमारुतकम्पितपल्लवा, कलिकया=कुड्मलेन सह वर्तते सा सकलिका=सकोरका सह कारयति=मेलयति द्वन्द्वमिति सहकारः। सहकारस्य=अतिसौरभरसालस्य लता=वल्ली इति सहकारलता कर्त्री, कलिं=द्वेषं कामं=रागञ्च जयन्ति ते कलिकामजितस्तेषां कलिकामजिताम् अपिः=समुच्चये मन्यतेऽनेनेति तत् मनः=चित्तम् अमदयत्=मदयति स्म।

समासः—मलयस्य मारुतः मलयमारुतस्तेन कम्पितानि पल्लवानि यस्याः सा मलयमारुतकम्पितपल्लवा। सहकारस्य लता सहकारलता। कलिश्च कामश्च तयोर्जितस्तेषां कलिकामजिताम्।

हिन्दी—मानों अभिनय का अभ्यास करने के लिये तैयार खड़ी हुई, अतएव मलय के वायु से जिसके पत्ते झूम रहे हैं ऐसी बौर से भरी आम के वृक्षों की लता (डाली) ने राग द्वेष को जीतने वालों (योगियों) के भी मन को मोह लिया अर्थात् जैसे नर्तकी अपने नृत्य से दर्शकों को मुग्ध कर लेती है उसी प्रकार हिलती हुई एवं मंजरी से लदी आम की डालियों ने योगियों के मन को भी मदयुक्त कर दिया ॥३३॥

प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः ।
सुरभिगन्धिषु शुश्रुविरे गिरः कुसुमितासु मिता वनराजिषु ॥३४॥

संजी०—प्रथममिति। सुरभिर्गन्धो यासां तासु सुरभिगन्धिषु। 'गन्धस्य—' (पा. ५।४।१३५) इत्यादिनेकारः। कुसुमान्यासां संजातानि कुसुमिताः। तासु वनराजिषु वनपङ्क्तिषु। अन्यभृताभिः कोकिलाभिः प्रथमं प्रारम्भेषूदीरिता उक्ता अत एव मिताः परिमिता गिर आलापाः प्रविरला मौग्ध्यात्स्तोकोक्ता मुग्धवधूनां कथा वाच इव। शुश्रुविरे श्रुताः ॥३४॥

अन्वयः—सुरभिगन्धिषु कुसुमितासु वनराजिषु अन्यभृताभिः प्रथमम् उदीरिताः अत एव मिताः गिरः प्रविरलाः मुग्धवधूकथाः इव शुश्रुविरे ।

व्याख्या—सुष्ठु रभन्ते यत्र स सुरभिः=सुगन्धिः गन्धः=आमोदः यासां ताः तासु सुरभिगन्धिषु कुसुमानि संजातानि यासां ताः तासु कुसुमितासु=पुष्पितासु वनानाम्=अरण्यानां राजयः=पंक्तयस्तासु वनराजिषु, अन्यैः=काकैः भृताः=पोषिताः इति अन्यभृतास्ताभिः अन्यभृताभिः=कोकिलाभिरित्यर्थः प्रथमम्=आदौ प्रारम्भे, इत्यर्थः उदीरिताः=उक्ताः अतः एव मिताः=परिमिताः=स्वल्पा इत्यर्थः गिरः= वाण्यः=आलापाः इत्यर्थः, प्रकृष्टं वि रान्तीति प्रविरलाः=स्वल्पाः मुग्धाश्च ताः वध्व, मुग्धवध्वस्तासां मुग्धवधूनां=मुग्धनायिकानां नवविवाहितसुन्दरीणामित्यर्थः कथाः = वाचः इति मुग्धवधूकथाः इव=यथा शुश्रुविरे=श्रुताः जनैरिति शेषः ।

समासः—सुरभिः गन्धः यासां ताः, तासु सुरभिगन्धिषु । कुसुमानि संजातानि यासु तासु कुसुमितासु । वनानां राजयस्तासु वनराजिषु । अन्यैः भृताः ताभिः अन्यभृताभिः । मुग्धाश्च ताः वध्वस्तासां कथाः मुग्धवधूकथाः ।

हिन्दी—मनोहर गन्धवाली एवं पुष्पों से लदी हुई वनों की पंक्तियों में (बैठकर कुहकने वाली) कोकिलों से आरम्भ में उच्चारण की गई परिमित (थोड़ी सी) वाणी ऐसी सुनाई पड़ने लगी मानों नवविवाहित मुग्धा नायिकाओं का आलाप हो । शुरू में कोयल भी कम बोलती है और नववधू भी रतिकाल में पहले कम बोलती हैं ।।३४।।

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः ।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ।।३५।।

संजी०—कुसुमान्येव कोमला दन्तरुचो दन्तकान्तयो यासां ताः । अनेन सस्मितत्वं विवक्षितम् । उपवनान्तलताः पवनेनाहतैः कम्पितैः किसलयैः सलयैः साभिनयैः । 'लय'शब्देन लयानुगतोऽभिनयो लक्ष्यते । उपवनान्ते पवनाहतैरिति सक्रियत्वाभिधानात् । पाणिभिरिव बभुः । अनेन लतानां नर्तकीसाम्यं गम्यते ।।३५।।

अन्वयः—श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचः उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैः पाणिभिः इव बभुः ।

व्याख्या—श्रूयन्ते शब्दाः याभिस्ताः श्रुतयः। शोभनानि खानि अनेन तत् सुखम्। श्रुतीनां=कर्णानां सुखम्=आनन्दः यैस्ते श्रुतिसुखाः, भ्रमन्तीति भ्रमराः भ्रमराणां=मधुलिहां स्वनाः=शब्दा इति भ्रमरस्वनाः। श्रुतिसुखाश्च ते भ्रमरस्वनाः इति श्रुतिसुखभ्रमरस्वनाः ते एव गीतयः=गानानि यासां ताः श्रुतिसुखभ्रमरस्वन-गीतयः। दन्तानां रुचः दन्तरुचः कुसुमानि-पुष्पाणि एव कोमलाः=सुकुमाराः दन्तरुचः=दशनकान्तयः यासां ताः कुसुमकोमलदन्तरुचः। उपगतं वनमिति उपवनम्। उपवनस्य=आरामस्य-कृत्रिमवनस्येत्यर्थः अन्ते=निकटे प्रान्ते वा याः लताः=वल्लर्यः इति उपवनान्तलताः पवनेन=वायुना आहतानि-कम्पितानि तैः किञ्चित् लसन्तीति किसलयानि तैः किसलयैः=पल्लवैः लयनं लयः=गीतवाद्यपादादि-न्यासानां क्रियाकालयोः साम्यम् लयेन=अभिनयेन सह वर्तन्ते सलयास्तैः सलयैः अत्र लयानुगतः अभिनयोऽर्थः लयस्य लक्षणयेति भावः। पाणिभिः=हस्तैः इव-यथा बभुः-भान्ति स्म। लतानां नर्तकीनां च साम्यं प्रकटीकृतम्।

समासः—श्रुतीनां सुखं यैस्ते श्रुतिसुखाः, श्रुतिसुखाः भ्रमराणां स्वनाः एव गीतयः यासां ताः श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः। दन्तानां रुचः दन्तरुचः कुसुमानि एव कोमलाः दन्तरुचः यासां ताः कुसुमकोमलदन्तरुचः, उपवनस्यान्ते लताः उपव-नान्तलताः। पवनेन आहतास्तैः पवनाहतैः। लयेन सह सन्तीति सलयास्तैः सलयैः।

हिन्दी—कानों को मधुर लगनेवाले भौंरों के गुञ्जाररूपी गीतवाली, तथा पुष्परूपी कोमल दाँतों की कान्ति वाली (खिले फूलों से मानों मुसकुरा रही हैं) वनप्रान्त की खिली लताएँ, वायु से हिलाये गये नव पल्लवों से ऐसी सुशोभित हो रही थीं जैसे कि अभिनय प्रदर्शन करते हुए हाथों से नर्तकी सुन्दर लगती हैं ॥३५॥

ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम्।
पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम् ॥३६॥

संजी०—ललितेति। अङ्गना ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं मधुरविलासघटना-पटुतरम्। सुरभिणा मनोहरेण गन्धेन पराजितकेसरं निर्जितबकुलपुष्पम्। 'अथ केसरे। बकुलः' इत्यमरः। स्मरस्य सखायं स्मरसखम्। स्मरोद्दीपकमित्यर्थः। मधु मद्यम्। 'अर्धर्चाः पुंसि च' (पा. २।४।३१) इति पुंलिङ्गता। उक्तं

च—'मकरन्दस्य मद्यस्य माक्षिकस्यापि वाचकः । अर्धर्चादिगणे पाठात्पुंनपुंसकयोर्मधुः ॥' इति । पतिषु विषये रसखण्डनवर्जितमनुरागभङ्गरहितं यथा तथा निर्विविशुः । परस्परानुरागपूर्वकं पतिभिः सह पपुरित्यर्थः ॥३६॥

अन्वयः—अंगनाः ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरं स्मरसखं मधुं, पतिषु रसखण्डनवर्जितं यथा स्यात् तथा निर्विविशुः ।

व्याख्या—प्रशस्तानि अंगानि यासां साः अंगनाः-कामिन्यः ललिताः=मधुराश्च ते विभ्रमाः=विलासाः=हावभावादिस्त्रीचेष्टाः इत्यर्थः, इति ललितविभ्रमास्तेषां बन्धः=घटना तत्र विचक्षणः=चतुरस्तं ललितविभ्रमबन्धविचक्षणम्=स्त्रीणां मधुरहावभावादिशृंगारचेष्टाजनने उपदेशने च पण्डितमित्यर्थः, मधुविशेषणमिदम् । सुरभिणा=मनोहरेण गन्धेन=मद्यपरिमलेन पराजितः=निर्जितः केसरः=बकुलपुष्पम् येन तम् सुरभिगन्धपराजितकेसरम् (केसराः सन्ति अस्य, के=जले सरतीति वा केसरः बकुलवृक्षः) स्मरस्य=कामस्य सखा-मित्रमिति तम् स्मरसखम् मन्मथवर्धकमित्यर्थः मधुं=मद्यं पतिषु=प्रियेषु विषये रस्यते=आस्वाद्यते इति रसः । रसस्य=अनुरागस्य खण्डनं=भंगः तत् वर्जितम्=रहितं यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात्तथा निर्विविशुः=पपुः । वसन्ते कामिन्यः पतिभिः सह परस्परमतीवानुरागपूर्वं मधुं पपुरिति भावः ।

समासः—ललिताश्च ते विभ्रमाः, ललितविभ्रमास्तेषां बन्धस्तस्मिन् विचक्षणस्तम् ललितविभ्रमबन्धविचक्षणम् । सुरभिश्चासौ गन्धः सुरभिगन्धस्तेन पराजितः केसरः येन तम् सुरभिगन्धपराजितकेसरम् । स्मरस्य सखा तम् स्मरसखम् । रसस्य खण्डनं रसखण्डनं तत् वर्जितं यस्मिन् कर्मणि तत् रसखण्डनवर्जितम् ।

हिन्दी—तिरछी नजर आदि मधुर हाव भाव के कराने में परम चतुर, तथा मनोहर सुगन्धि से मौलसरी को भी हराने वाले एवं कामदेव के मित्र (कामोद्दीपक) मद्य को स्त्रियों ने अपने पतियों के साथ परस्पर प्रेमपूर्वक पीया ॥३६॥

शुशुभिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखलाः ।
विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोदकलोलविहंगमाः ॥३७॥

संजी०—शुशुभिर इति । विकचतामरसा विकसितकमलाः । मदेन कला

अव्यक्तमधुरं ध्वनन्त उदकलोलविहंगमा जलप्रियपक्षिणो हंसादयो यासु ता *मदकलोदकलोलविहंगमा गृहेषु दीर्घिका वाप्यः । स्मितेन चारुतराण्याननानि यासां* ताः श्लथाः शिञ्जिता मुखरा मेखला यासां ताः । शिञ्जितेति कर्तरि क्तः । स्त्रिय इव शुशुभिरे ॥३७॥

अन्वयः — विकचतामरसाः मदकलोदकलोलविहंगमाः गृहदीर्घिकाः स्मित-चारुतराननाः श्लथशिञ्जितमेखलाः स्त्रियः इव शुशुभिरे ।

व्याख्या—तामरे=जले सस्ति=स्वपिति तत् तामरसम् । (षस स्वप्ने) तम्यते इति तामं रस्यते इति रसं तामञ्च तद्रसमिति तामरसमिति वा । विकचानि=प्रफुल्लानि तामरसानि=कमलानि यासु ताः विकचतामरसाः । मदनं मदः । कड़ति=माद्यति अनेनेति कलः । मदेन=हर्षेण कला=मधुरास्फुटं ध्वनन्तः इति मदकलाः । उदकेषु-जलेषु लोलाः=चञ्चलाः क्रीडन्त इत्यर्थः इति उदकलोलाः । विहायसि गच्छन्तीति विहंगमाः । मदकलाः उदके लोलाः=जलप्रियाश्च विहंगमाः=पक्षिणः यासु ताः मदकलोदकलोलविहंगमाः । दृणातीति दीर्घा दीर्घा एव दीर्घिकाः । गृहेषु=भवनेषु दीर्घिकाः=वाप्यः इति गृहदीर्घिकाः (कर्तृपदम्) अतिशयेन चारूणि चारुतराणि स्मितेन=ईषद्धास्येन चारुतराणि—अतिसुन्दराणि आननानि=मुखानि यासां ता स्मितचारुतराननाः । मखं=गतिं लातीति मेखला । श्लथाः=अदृढाः=स्रस्ता इत्यर्थः शिञ्जिताः=मुखराः=ध्वनन्त्यः मेखलाः=रशनाः यासां ताः श्लथशिञ्जितमेखलाः, स्त्रियः=कामिन्यः इव=यथा शुशुभिरे=शोभन्ते स्म ।

समासः—विकचानि तामरसानि यासु ताः विकचतामरसाः । स्मितेन चारुतराणि आननानि यासां ताः स्मितचारुतराननाः । श्लथाः शिञ्जिताः मेखलाः यासां ताः श्लथशिञ्जितमेखलाः । मदेन कलाः उदके लोलाः विहंगमाः यासु ताः मदकलोदकलोलविहंगमाः । गृहेषु दीर्घिका इति गृहदीर्घिकाः ।

हिन्दी—(लोगों के घरों की बावलियों में) कमल खिले हुए थे, तथा जल में रहनेवाले पक्षी (हंस) आनन्द से मधुर ध्वनि उनमें कर रहे थे। (ऐसी) घरों की बावलियाँ उन स्त्रियों के समान लग रही थीं जो कि मुस्कुराने से अधिक सुन्दर मुखवाली थी तथा जिनकी तगड़ी ढीली होने के कारण बज रही थी । अर्थात् कमलों व हंसों से भरी वे वापियाँ, हँसती हुई और ढीली होने से बजती हुई तगड़ी वाली स्त्रियों के समान प्रतीत हो रही थीं ॥३७॥

उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः।

सदृशमिष्टसमागमनिर्वृतिं वनितयानितया रजनीवधूः ॥३८॥

सं०—उपययाविति। मधुना मधुसमयेन खण्डिता ह्रासं गमिता। क्षीयन्ते खलूत्तरायणे रात्रयः; खण्डिताख्या च नायिका ध्वन्यते। हिमकरोदयेन चन्द्रोदयेन पाण्डुर्मुखस्य प्रदोषस्य वक्त्रस्य च छविर्यस्याः सा रजन्येव वधूः। इष्टसमागमनिर्वृतिं प्रियसंगमसुखम्। अनितयाऽप्राप्तया। 'इण् गतौ' इति धातोः कर्तरि क्तः। वनितया सदृशं तुल्यं तनुतां न्यूनतां कार्श्यं चोपययौ ॥३८॥

अन्वयः—मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः रजनीवधूः इष्टसमागमनिर्वृतिम् अनितया वनितया सदृशं तनुताम् उपययौ।

व्याख्या—मधुना=वसन्तर्तुना खण्डिता=ह्रासं प्रापिता इति मधुखण्डिता न्यूनीकृतेत्यर्थः, खण्डिताशब्देन खण्डिता नायिकापि ध्वन्यते। उत्तरायणे रात्रयः ह्रस्वाः भवन्ति, इति भावः। हिमाः कराः यस्य स हिमकरः। हिमकरस्य= चन्द्रस्य उदयः=आविर्भावस्तेन पाण्डुः पाण्डरा मुखस्य=प्रदोषस्य आननस्य च छविः=कान्तिः यस्याः सा हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः। रजन्ति=अनुरक्ताः भवन्ति रागिणो यस्यां सा रजिनी=रात्रिरेव वधूः=वनिता, इति रजनीवधूः। इष्टस्य= वाञ्छितस्य प्रियस्येत्यर्थः समागमः=संगमः प्राप्तिः, इष्टसमागमस्तेन या निर्वृतिः= सुखं ताम् इष्टसमागमनिर्वृतिम्। न इता अनिता, तया अनितया=अप्राप्तया वमति स्नेहमिति वनिता, वामः=कामोऽस्ति यस्याः सा वा वनिता तया वनितया= स्त्रिया सदृशं=तुल्यं तनोर्भावः तनुता तां तनुतां=न्यूनतां कृशतां च उपययौ=जगाम।

समासः—मधुना खण्डिता, मधुखण्डिता। मुखस्य छविरिति मुखच्छविः। हिमकरस्य उदयः हिमकरोदयेन पाण्डुः मुखच्छविर्यस्याः सा हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः। रजनी एव वधूरिति रजनीवधूः। इष्टस्य समागमः इष्टसमागस्तेन निर्वृतिस्ताम् इष्टसमागमनिर्वृतिम्। न इता अनिता तया अनितया।

हिन्दी—वसन्त ऋतु के आगमन से ह्रास होती हुई तथा चन्द्रोदय से पीले मुख (सायंकाल प्रदोष) वाली रात्रि रूपी स्त्री उसी प्रकार छोटी हो गई जैसे कि अपने प्रिय के समागम से प्राप्त होने वाले सुख को न पानेवाली वनिता

कृशता को प्राप्त हो जाती है। अर्थात् वसन्त के आगमन से रात छोटी उसी प्रकार होने लगी, जैसे कि खण्डिता नायिका प्रियसमागम न होने से सूख जाती है ॥३८॥

अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः ।

कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोर्जितकेतनम् ॥३९॥

मल्ली०—अपेति । हिमकरश्चन्द्रः । अपतुषारतयाऽपगतनीहारतया विशदप्रभैर्निर्मलकान्तिभिः सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः सुरतसङ्गखेदहारिभिरंशुभिः किरणैः । मकरोर्जितकेतनम् । मकरेणोर्जितं केतनं ध्वजो यस्य तम् । लब्धावकाशत्वादुच्छ्रितध्वजमित्यर्थः । कुसुमचापं काममतेजयदशातयत् । 'तिज निशाने' इति धातोर्ण्यन्ताल्लङ् । सहकारिलाभात्कामोऽपि तीक्ष्णोऽभूदित्यर्थः ॥३९॥

अन्वयः—हिमकरः अपतुषारतया विशदप्रभैः सुरतसंगपरिश्रमनोदिभिः अंशुभिः मकरोर्जितकेतनं कुसुमचापम् अतेजयत् ।

व्याख्या—हन्तीति हिमम्, हिनोति = वर्धते इति वा हिमम् । हिमाः= शीतलाः कराः = किरणाः यस्य स हिमकरः=चन्द्रः, तोषयतीति तुषारः । अपगतः तुषारोऽपतुषारस्तस्य भावस्तत्ता तया अपतुषारतया=अपगतहिमतया प्रकर्षेण भातीति प्रभा विशदा = निर्मला=धवला प्रभा=कान्तिः येषां ते तैः विशदप्रभैः सु= सम्यग् सुष्ठु वा रमणं सुरतं सुरते=संभोगे यः संगः-संमेलनमिति सुरतसंगस्तस्मिन् परिश्रमः=खेदस्तं नोदितुं = हर्तुं शीलं येषां ते तैः सुरतसंगपरिश्रमनोदिभिः अंशुभिः= किरणैः, कृणातीति करः मनुष्याणां करः=हिंसकः इति मकरः । मंकते इति मकः । मकं रातीति वा मकरः । मकरेण = मीनेन ऊर्जितम्-उच्छ्रितं केतनं=ध्वजं यस्य स तं मकरोर्जितकेतनम् चपस्य = वंशविशेषस्य विकारश्चापः । कुसुमानि=पुष्पाणि चापः=धनुः यस्य स तं कुसुमचापं—मन्मथम् अतेजयत्=अशातयत् । वसन्तेन सहकारिणा कामोऽपि तीक्ष्णः प्रबलो जातः इत्यर्थः ।

समासः—हिमाः कराः यस्य स हिमकरः । विशदा प्रभा येषां ते तैः विशदप्रभैः । सुरते संगः सुरतसंगः, सुरतसंगे परिश्रमः इति सुरतसंगपरिश्रमस्तस्य नोदिनस्तैः सुरतसंगपरिश्रमनोदिभिः । मकरेण ऊर्जितं केतनं यस्य स तं मकरोर्जितकेतनम् । कुसुमानि चापः यस्य स तं कुसुमचापम् ।

हिन्दी—शीतल किरण वाले चन्द्रमा ने पाला के हट जाने से निर्मल कान्ति

वाली तथा सम्भोग की थकावट को दूर करने वाली अपनी किरणों से मीन की ऊँची ध्वजा वाले तथा पुष्पों के धनुष वाले कामदेव को तेज कर दिया। अर्थात् वसन्त का साथ होने से काम भी खूब प्रबल हो गया ॥३९॥

हुतहुताशनदीप्ति वनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत्।
युवतयः कुसुमं दधुराहितं तदलके दलकेसरपेशलम् ॥४०॥

संजी०—हुतेति। हुतहुताशनदीप्त्याऽऽज्यादिप्रज्वलिताग्निप्रभं यत्कुसुमम्। कर्णिकारमित्यर्थः। वनश्रिय उपवनलक्ष्म्याः कनकाभरणस्य प्रतिनिधिः। अभूदिति शेषः। दलेषु केसरेषु च पेशलम्, सुकुमारपत्रकिञ्जल्कमित्यर्थः। आहितम्। प्रियैरिति शेषः। तत्कुसुमं युवतयोऽलके कुन्तले दधुः ॥४०॥

अन्वयः—हुतहुताशनदीप्ति यत् कुसुमम् वनश्रियः कनकाभरणस्य प्रतिनिधिः (अभूत्) दलकेसरपेशलम् आहितं (प्रियैरिति शेषः) तत् कुसुमम् युवतयः अलके दधुः।

व्याख्या—हुतम् अश्नातीति हुताशनः। हुतस्य = आज्यादिभिः प्रज्वलितस्य हुताशनस्य दीप्तिरिव दीप्तिः=प्रभा यस्य तत् हुतहुताशनदीप्ति यत्=कुसुमम् कर्णिकारमित्यर्थः वनस्य=अरण्यस्य श्रीः=लक्ष्मीरिति=वनश्रीः तस्या वनश्रियः कनति = दीप्यति इति कनकम्, आश्रियतेऽनेनेति आभरणम्। कनकस्य आभरणं=भूषणमिति कनकाभरणं तस्य कनकाभरणस्य प्रतिनिधीयते=सदृशी-क्रियतेऽनेनेति प्रतिनिधिः=प्रतिमानम् अभूदिति शेषः। दलेषु=पत्रेषु=पल्लवेषु केसरेषु=किञ्जल्केषु च पेशलं=कोमलमिति दलकेसरपेशलम्=सुकोमलपत्रकिञ्जल्क-मित्यर्थः आहितं=प्रियैः दत्तं तत् कुसुमं=कर्णिकारपुष्पम् युवन्तीति युवतयः=तरुण्यः अलतीति अलकस्तस्मिन् अलके=कुन्तले दधुः=धारयामासुः।

समासः—हुतश्चासौ हुताशनः इति हुतहुताशनः, हुतहुताशनस्य दीप्तिरिव दीप्तिः यस्य तत् हुतहुताशनदीप्ति। वनस्य श्रीरिति वनश्रीस्तस्याः वनश्रियः। कनकस्य आभरणमिति कनकाभरणं तस्य कनकाभरणस्य। दलानि च केसराणि च तेषु दलकेसरेषु पेशलमिति दलकेसरपेशलम्, तत्।

हिन्दी—"हवन के समय" घी आदि से प्रज्वलित अग्नि के समान चमकते *हुए जो कनैर के फूल वनकी लक्ष्मी के सोने के आभूषणों के समान हो गये थे,*

सुकुमार एवं सुन्दर पंखड़ी व पराग वाले तथा अपने प्रेमी से दिये गये उस फूल को युवती स्त्रियों ने घुंघराले बालों में धारण किया ॥४०॥

अलिभिरञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपङ्क्तिनिपातिभिरङ्कितः ।
न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव ॥४१॥

सं॰ टी॰—अलिभिरिति । अञ्जनबिन्दुमनोहरैः कज्जलकणसुन्दरैः कुसुमपङ्क्तिषु निपतन्ति ये तैः । अलिभिरङ्कितश्चिह्नितस्तिलकः श्रीमान्नाम वृक्षः । 'तिलकः क्षुरकः श्रीमान्' इत्यमरः । वनस्थलीम् । तिलको विशेषकः । 'तमालपत्रतिलकचित्रकाणि विशेषकम् । द्वितीयं च तुरीयं च न स्त्रियाम्' इत्यमरः । प्रमदामिव । न शोभयति स्मेति न खलु । अपि त्वशोभयदेवेत्यर्थः । 'लट् स्मे' (पा. ३।२।११८) इति 'स्म'शब्दयोगाद्भूतार्थे ॥४१॥

अन्वयः—अञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपंक्तिनिपातिभिः अलिभिः अंकितः तिलकः वनस्थलीम्, तिलकः प्रमदाम् इव न शोभयति स्म इति न खलु (अपि तु शोभयति स्म एव) ।

व्याख्या—बिन्दन्ति, इति बिन्दवः । अनक्ति, इति अञ्जनम् । अञ्जनस्य=कज्जलस्य बिन्दवः=कणाः, इति अञ्जनबिन्दवः अञ्जनबिन्दवः इव मनोहराः=सुन्दरास्तैः अञ्जनबिन्दुमनोहरैः । कुसुमानां=पुष्पाणां पंक्तयः=श्रेणयः इति कुसुमपंक्तयस्तासु निपतितुं=पतितुं शीलं येषां ते तैः कुसुमपङ्क्तिनिपातिभिः । अलन्ति=भूषयन्तीति अलयस्तैः अलिभिः=भ्रमरैः अंकितः=चिह्नितः=सुशोभित इत्यर्थः । तिलतीति तिलकः तिलः इव इति वा तिलकः=श्रीमान्=एतन्नामकवृक्ष इत्यर्थः । वनस्य=अरण्यस्य स्थली=अकृत्रिमा भूः तां वनस्थलीं तिलकः=विशेषकः प्रमदां=रमणीम् इव=यथा न शोभयति स्म=न शोभयामास इति न खलु किन्तु शोभयामास एवेति ।

समासः—अंजनस्य बिन्दव इति अंजनबिन्दवस्तद्वत् मनोहरास्तैः अंजनबिन्दुमनोहरैः । कुसुमानां पंक्तयः कुसुमपंक्तयस्तासु निपतन्ति तच्छीलास्तैः कुसुमपंक्तिनिपातिभिः । वनस्य स्थली वनस्थली तां वनस्थलीम् ।

हिन्दी—कज्जल की बिन्दुओं के समान सुन्दर, तथा फूलों के समूह पर बैठे हुए भौंरों से सुशोभित तिलक श्रीमान् नामक वृक्ष ने, वन की भूमि को,

निश्चित रूप से उसी प्रकार सुशोभित नहीं किया, ऐसा नहीं किन्तु सुशोभित ही किया, जैसे कि "शृंगार के लिये मस्तकपर लगाया हुआ" तिलक स्त्री को सुशोभित करता है। अर्थात् तिलक से जैसे स्त्री सुन्दर लगती है वैसे ही तिलक फूल पर बैठे भौरों से वनस्थली सुन्दर लग रही थी ॥४१॥

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसंगतया मनः।

कुसुमसंभृतया नवमल्लिका स्मितरुचा तरुचारुविलासिनी ॥४२॥

संजी०—अमदयदिति। तरुचारुविलासिनी तरोः पुंसश्च चारुविलासिनी नवमल्लिका सप्तलाख्या लता। 'सप्तला नवमल्लिका' इत्यमरः। मधुनो मकरन्दस्य मद्यस्य च गन्धेन सनाथया। गन्धप्रधानयेत्यर्थः। किसलयमेवाधरस्तत्र संगतया। प्रसृतरागयेत्यर्थः। कुसुमैः संभृतया संपादितया। कुसुमरूपयेत्यर्थः। स्मितरुचा हासकान्त्या मनः। पश्यतामिति शेषः। अमदयत् ॥४२॥

अन्वयः—तरुचारुविलासिनी नवमल्लिका मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसंगतया कुसुमसंभृतया स्मितरुचा मनः अमदयत्।

व्याख्या—विलासोऽस्ति यस्याः सा विलासिनी। चरति चित्ते यत् तत् चारु। चार्वी चासौ विलासिनी, चारुविलासिनी। तरोः=वृक्षस्य (पुंसश्च) चारुविलासिनी=सुन्दरस्त्री (मनोहरा नायिका इत्यर्थः) इति तरुचारुविलासिनी, नवा मल्लिका नवमल्लिका=(मल्लते = धारयति गन्धमिति मल्ली। मल्ली एव मल्लिका)। सप्तला लता, नायिका च, मधुनः=पुष्परसस्य, मद्यस्य च गन्धः=आमोदः इति मधुगन्धस्तेन सनाथा=युक्ता तया मधुगन्धसनाथया सौरभप्रधानयेत्यर्थः किंचित् लसति इति किसलयम्। किसलयं=पल्लवमेव अधरः=ओष्ठ इति किसलयाधरस्तत्र संगता=मिलिता = प्रसृतरागा, तया किसलयाधरसंगतया कुसुमैः=पुष्पैः संभृता=संपादिता तया कुसुमसंभृतया पुष्परूपयेत्यर्थः स्मितस्य रुक्=कान्तिः इति स्मितरुक् तया स्मितरुचा मनः=चित्तं पश्यतां जनानामित्यर्थः अमदयत्=मदयाञ्चकार। मदयुक्तं चञ्चलं कृतवतीत्यर्थः।

समासः—तरोः चारुविलासिनी इति तरुचारुविलासिनी। नवा चासौ मल्लिका। मधुनः गन्धः, मधुगन्धस्तेन सनाथा इति मधुगन्धसनाथा तया मधुगन्ध-

सनाथया। किसलयमेव अधरस्तत्र संगता, तया किसलयाधरसंगतया। कुसुमैः संभृता तया कुसुमसंभृतया।

हिन्दी—वृक्ष की सुन्दरी नायिका नव मल्लिका लता ने, मकरन्द की गन्ध से पूर्ण (भरी) तथा लाल २ पल्लव रूपी ओठों पर फैली हुई फूलों से बनाई गई (पुष्परूपी) मुस्कान की कान्ति से देखनेवालों के मन को मतवाला बना दिया। यहाँ पर तरु से पुरुष तथा मल्लिका से कोई नायिका भी प्रतीत हो रही है। अतः सुन्दरी स्त्री ने, मद्य की गन्धयुक्त अपने लाल-लाल अधर पर फैली हुई पुष्प के समान अपनी मुस्कान से देखने वाले के मन को पागल बना दिया। यह अर्थ भी निकलता है ॥४२॥

अरुणरागनिषेधिभिरंशुकैः श्रवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः।
परभृताविरुतैश्च विलासिनः स्मरबलैरबलैकरसाः कृताः ॥४३॥

मल्लि०—अरुणेति। विलासिनो विलसनशीलाः पुरुषाः। 'वौ कषलस—' (पा. ३।२।१४३) इत्यादिना घिनुण्प्रत्ययः। अरुणस्यानूरो रागमारुण्यं निषेधन्ति तिरस्कुर्वन्तीत्यरुणरागनिषेधिनः। तैः। कुसुम्भादिरञ्जनात्तत्सदृशैरित्यर्थः। 'तमन्वेत्यनुबध्नाति तच्छीलं तन्निषेधति। तस्यैवानुकरोतीति शब्दाः सादृश्यवाचकाः ॥' इति दण्डी। अंशुकैरम्बरैः। श्रवणेषु कर्णेषु लब्धपदैः। निवेशितैरित्यर्थः। यवाङ्कुरैश्च परभृताविरुतैः कोकिलाकूजितैश्च। इत्येतैः स्मरबलैः। कामसैन्यैः। अबलास्वेक एव रसो रागो येषां तेऽबलैकरसाः स्त्रीपरतन्त्राः कृताः ॥४३॥

अन्वयः—विलासिनः "पुरुषाः" अरुणरागनिषेधिभिः अंशुकैः श्रवणलब्धपदैः यवाङ्कुरैश्च परभृतारुतैः च स्मरबलैः अबलैकरसाः कृताः।

व्याख्या—विलसितुं शीलं येषां ते विलासिनः। विलासोऽस्ति येषां ते विलासिनः- भोगिनः विलसनशीलाः पुरुषाः इत्यर्थः, अरुणः वर्णः अस्यास्तीति अरुणः। अरुणस्य=गरुडाग्रजस्य=सूर्यसारथेरित्यर्थः रागम्=वर्णम्=आरुण्यं निषेधन्ति=तिरस्कुर्वन्ति, इति अरुणरागनिषेधिनः, तैः अरुणरागनिषेधिभिः। अंशुभिः काशन्ते अंशुकानि तैः अंशुकैः=अम्बरैः=वस्त्रैः, श्रूयते यैस्तानि श्रवणानि। श्रवणेषु=कर्णेषु लब्धानि=प्राप्तानि पदानि=स्थानानि यैस्तैः श्रवणलब्धपदैः श्रवणार्पितैरि-

त्यर्थः । यवानां=धान्यानाम् अंकुराः नवोद्भिदः तैः यवांकुरैश्च, परैः=काकैः भृताः=पुष्टाः इति परभृताः । परभृतानां=कोकिलानां आ समन्तात् विरुतानि=आकूजितानि तैः परभृतविरुतैश्च, इत्येतैः स्मरस्य=कामस्य बलानि=सैन्यानि तैः स्मरबलैः अबलासु=स्त्रीषु एकः=अद्वितीयः एव रसः=रागः येषां ते अबलैकरसाः स्त्रीपरायणा इत्यर्थः । कृताः=विहिताः सर्वे विलासिनः स्त्रीषु एवासक्ता इत्यर्थः ।

समासः—अरुणस्य रागं निषेधन्ति तच्छीलाः तैः अरुणरागनिषेधिभिः। श्रवणेषु लब्धानि पदानि यैस्तैः श्रवणलब्धपदैः । यवानाम् अंकुरास्तैः यवांकुरैः । परैः भृताः परभृतास्तेषां आरुतानि तैः परभृतारुतैः । स्मरस्य बलानि तैः स्मरबलैः । अबलासु एक एव रसः येषां ते, अबलैकरसाः ।

हिन्दी—अरुण के रंग को मात करने वाले (प्रातःकाल के अरुण के समान लाल रंगवाले) वस्त्र, तथा कान में रखे हुए जौ के अंकुर एवं कोयल की कूक रूपी कामदेव की सेना ने सभी विलासियों को स्त्रियों में ही एकमात्र अनुराग वाले बना दिया । अर्थात् उक्त सभी सेना ने विलासियों को स्त्रियों के के अधीन कर दिया । उनके प्रेम में डूब गये ॥४३॥

उपचितावयवा शुचिभिः कणैरलिकदम्बकयोगमुपेयुषी ।

सदृशकान्तिरलक्ष्यत मञ्जरी तिलकजालकजालकमौक्तिकैः ॥४४॥

मल्लि०—उपचितेति । शुचिभिः शुभ्रैः कणैः रजोभिरुपचितावयवा पुष्टावयवा । अलिकदम्बकयोगमुपेयुषी प्राप्ता । तिलकजा तिलकवृक्षोत्था मञ्जरी । अलकेषु यज्जालकमाभरणविशेषस्तस्मिन्मौक्तिकैः सदृशकान्तिः । अलक्ष्यत । भृङ्गसङ्गिनी शुभ्रा तिलकमञ्जरी नीलालकसक्तमुक्ताजालमिवालक्ष्यतेति वाक्यार्थः ॥४४॥

अन्वयः—शुचिभिः कणैः उपचितावयवा अलिकदम्बकयोगम् उपेयुषी तिलकजा मञ्जरी अलकजालकमौक्तिकैः सदृशकान्तिः अलक्ष्यत ।

व्याख्या—शुचिभिः=शुभ्रैः कणैः=लवैः=रजोभिरित्यर्थः उपचिताः पुष्टाः अवयवाः=अंगानि यस्याः सा उपचितावयवा अलीनां=भ्रमराणां कदम्बकं=समूहः इति अलिकदम्बकं तस्य योगः=सम्बन्धस्तम् अलिकदम्बकयोगम् उपेयुषी=प्राप्ता तिलकात्=तिलकवृक्षात् जाता=उत्पन्ना इति तिलकजा=मृजुत्वमृच्छतीति मञ्जरी वल्लरिः अलकेषु=केशेषु यज्जालकम्=भूषणविशेषः तस्मिन् मौक्तिकाः=

मुक्ताः तैः अलिजालकमौक्तिकैः सदृशी=समाना कान्तिः=शोभा यस्याः सा सदृशकान्तिः अलक्ष्यत=अदृश्यत भ्रमरयुक्ता श्वेता तिलकमंजरी नीलकेशेषु संलग्नमुक्ताजालमिव अदृश्यत इत्यर्थः ।

समासः—उपचिताः अवयवाः यस्याः सा उपचितावयवा । अलीनां कदम्बकम्, अलिकदम्बकं तस्य योगस्तम् अलिकदम्बकयोगम् । तिलकात् जाता तिलकजा । सदृशी कान्तिः यस्याः सा सदृशकान्तिः । जाल एव जालकम् अलकेषु यज्जालकमिति अलकजालकं तस्मिन् मौक्तिकाः तैः अलकजालकमौक्तिकैः ।

हिन्दी—श्वेत पराग (पुष्पधूलीके कण) से बढ़ी हुई तथा भौरों के समूह के योग को प्राप्त हुई (मण्डराते भौरों से व्याप्त) तिलक की मंजरी (गुच्छे) स्त्री के जूड़े में लगी मोतियों की जाली के समान कान्ति वाली दीख पड़ रही थी । अर्थात् भौरों के साथ श्वेत तिलक के गुच्छे काले काले केशों में लगे मोतियों के समान सुन्दर दीख रहे थे ॥४४॥

ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भृतश्छविकरं मुखचूर्णमृतुश्रियः ।
कुसुमकेसररेणुमलिव्रजाः सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः ॥४५॥

संजी०—ध्वजेति । अलिव्रजाः षट्पदनिवहा धनुर्भृतो धानुष्कस्य मदनस्य कामस्य ध्वजपटं पताकाभूतम् । ऋतुश्रियो वसन्तलक्ष्याश्छविकरं शोभाकरं मुखचूर्णं मुखालंकारचूर्णभूतं सपवनोपवनोत्थितं सपवनं पवनेन सहितं यदुपवनं तस्मिन्नुत्थितम् । कुसुमानां केसरेषु किञ्जल्केषु यो रेणुस्तम् । अन्वयुरन्वगच्छन् । यातेर्लङ् ॥४५॥

अन्वयः—अलिव्रजाः धनुर्भृतः मदनस्य ध्वजपटं ऋतुश्रियः छविकरं मुखचूर्णं सपवनोपवनोत्थितं कुसुमकेसररेणुम अन्वयुः ।

व्याख्या—व्रजन्तीति व्रजाः । अलीनां=भ्रमराणां व्रजाः=समूहाः इति अलिव्रजाः, धनुः=चापं बिभर्ति=धारयतीति धनुर्भृत् तस्य धनुर्भृतः मदयतीति मदनस्तस्य मदनस्य=कामदेवस्य ध्वजति=गच्छतीति ध्वजः तस्य ध्वजस्य=पताकायाः=पटः=वस्त्रमिति तं ध्वजपटम् पताकाभूतम् ऋतोः=वसन्तस्य श्रीः=लक्ष्मीस्तस्याः ऋतुश्रियः छयति छिनत्ति वा प्रसारमिति छविः । छविं=कान्तिं करोति=विदधातीति छविकरस्तं छविकरम्=शोभाकरम् । मुखार्थम्=आननालंकारभूतं चूर्णं=क्षोदस्तं मुखचूर्णम्=

सुगन्धि क्षोदमित्यर्थः पुनातीति पवनः पवनेन=वायुना सहितं यत् उपवनम्=आरामः कृत्रिमवनमित्यर्थः, इति सपवनोपवनं तस्मिन् उत्थितः=उत्पन्नः=प्रोद्यतः तं सपवनोपवनोत्थितं कुसुमानां=पुष्पाणां केसराः=किंजल्कास्तेषु रेणुः=परागस्तं कुसुमकेसररेणुम् अन्वयुः=पश्चादगच्छन् ।

समासः—अलीनां व्रजाः अलिव्रजाः । धनुषः भृत् तस्य धनुर्भृतः । ऋतोः श्रीः तस्याः ऋतुश्रियः । मुखार्थं चूर्णमिति मुखचूर्णम् । पवनेन सहितमिति सपवनं यदुपवनमिति सपवनोपवनं तत्र उत्थितः तं सपवनोपवनोत्थितम् । कुसुमानां केसरः कुसुमकेसरस्तस्य रेणुस्तं कुसुमकेसररेणुम् ।

हिन्दी—भौरों के झुण्ड वायुके साथ उपवन से उडे हुए, फूलों के केसर की धूली (पुष्पपराग) के पीछे २ उड़ चले । उड़ता हुआ वह पराग ऐसा जान पड़ता था" मानो धनुषधारी कामदेव की पताका और वसन्त की लक्ष्मी की शोभा करने वाला मुख का अलंकार भूत सुगन्धित चूर्ण (पाउडर) हो ॥४५॥

अनुभवन्नवदोलमृतूत्सवं पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया ।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जलतामबलाजनः ॥४६॥

संजी०—अनुभवन्निति । नवा दोला प्रेङ्खा यस्मिंस्तं नवदोलमृतूत्सवं वसन्तोत्सवमनुभवन्नबलाजनः पटुरपि निपुणोऽपि प्रियकण्ठस्य जिघृक्षया ग्रहीतुमालिङ्गितुमिच्छया आसनरज्जुपरिग्रहे पीठरज्जुग्रहणे भुजलतां बाहुलतां जलतां शैथिल्यम् । डलयोरभेदः । अनयत् दोलाक्रीडासु पतनभयनाटितकेन प्रियकण्ठमाश्लिष्यदित्यर्थः ॥४६॥

अन्वयः—नवदोलम् ऋतूत्सवम् अनुभवन् अबलाजनः पटुः अपि प्रियकण्ठजिघृक्षया आसनरज्जुपरिग्रहे भुजलतां जलताम् अनयत ।

व्याख्या—दोलयति, दोल्यते वा दोला । नवा=नूतना दोला=प्रेङ्खा यस्मिन् स तं नवदोलम्, ऋतोः=वसन्तस्य उत्सवः=क्षणः इति तं ऋतूत्सवम्, उत्सुवति प्रेरयतीति उत्सवः क्षणः । अनुभवन्=उपलभमानः 'उपलम्भस्त्वनुभवः' इत्यमरः । अबलानां=स्त्रीणां जनः=समुदायः इति अबलाजनः पटुरपि=चतुरोऽपि । ग्रहीतुमिच्छा जिघृक्षा । प्रियस्य = वल्लभस्य कण्ठः=गलः, तस्य जिघृक्षा=आलिङ्गितुमिच्छा तया प्रियकण्ठजिघृक्षया, आस्यते=उपविश्यतेऽत्रेति आसनम् । आसनस्य=

पीठस्य रज्जुः=गुणः तस्याः परिग्रहः=ग्रहणं तस्मिन् आसनरज्जुपरिग्रहे भुजः=बाहुः लता=प्रततिः इवेति भुजलता तां भुजलतां जलस्य भावः जलता तां जलतां डलयोरभेदात् जड़तां=शैथिल्यम् अनयत्=प्रापत् । दोलाक्रीडावसरे पतनभय-व्याजेन प्रियस्य कण्ठालिंगनमकरोदित्यर्थः ।

हिन्दी—नए झूले वाले वसन्तोत्सव को अनुभव करता हुआ (झूले पर-झूलता हुआ) स्त्रीसमुदाय झूलने में चतुर होते हुवे (अर्थात् झूले की रस्सी को मजबूती से पकड़े हुवे) भी अपने प्रेमी का आलिंगन करने की इच्छा से झूले की डोरी को पकड़ने में अपनी भुजलता को ढीला कर दिया। अर्थात् गिरने के डर का बहाना करके प्रियके गले से लिपट गई ॥४६॥

त्यजत मानमलं बत विग्रहैर्न पुनरेति गतं चतुरं वयः ।
परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः ॥४७॥

संजी०—त्यजतेति । 'बत'इत्यामन्त्रणे । 'खेदानुकम्पासंतोषविस्मयामन्त्रणे बत' इत्यमरः । बत अङ्गना मानं कोपं त्यजत । तदुक्तम्—'स्त्रीणामीर्ष्याकृतः कोपो मानोऽन्यासङ्गिनि प्रिये' इति । विग्रहैर्विरोधैरलम् । न विग्रहो कार्य इत्यर्थः । गतमतीतं चतुरमुपभोगक्षमं वयो यौवनं पुनर्नैति नागच्छति । इत्येवंरूपे स्मरमते स्मराभिप्राये । नपुंसके भावे क्तः । परभृताभिः कोकिलाभिर्निवेदिते सतीव वधूजनो रमते स्म रेमे । कोकिलाकूजितोद्दीपितस्मरः स्त्रीजनः कामशासन-भयादिवोच्छृङ्खलमखेलदित्यर्थः ॥४७॥

अन्वयः—बत (अंगनाः) मानं त्यजत विग्रहैः अलम् गतं चतुरं वयः पुनः न एति, इति स्मरमते परभृताभिः निवेदिते सति इव वधूजनः रमते स्म ।

व्याख्या—बत=आमन्त्रणे, अर्थात् भो अंगनाः ! मानं=कोपं त्यजत=उज्झत, विरुद्धं विविधं वा ग्रहणमिति विग्रहः । विग्रहैः=विरोधैः अलम्=व्यर्थं विरोधो न कर्तव्य इत्यर्थः । गतं=व्यतीतं चतुरं=दक्षम्=उपभोगसमर्थमित्यर्थः । नयते, भजति वा वयः=यौवनं पुनः=भूयो नैति=नागच्छति इति=एवं रूपे स्मरयति=उत्कण्ठतीति स्मरः, स्मरस्य=कामस्य मतम्=अभिप्रायस्तस्मिन् स्मरमते, परैः=

काकैः भृताः=पुष्टास्ताभिः परभृताभिः=कोकिलाभिः निवेदिते=कथिते सति इव=यथा वधूनां=स्त्रीणां जनः=समूह इति वधूजनः रमते स्म रेमे । कोकिलकूजितश्रवणानन्तरं उद्दीपितस्मरः स्त्रीजनः स्मराज्ञाभयादिवाखेलदित्यर्थः ।

समासः—परैः भृतास्ताभिः परभृताभिः । वधूनां जनः वधूजनः ।

हिन्दी—हे स्त्रियों ! अभिमान को छोड़ दो और लड़ाई झगड़ा न करो बीता हुआ मौजबहार के योग्य यौवन फिर लौटकर नहीं आयेगा । मानो इस प्रकार से कामदेव की आज्ञा कोयलों के बता देने पर सभी स्त्रियां अपने पतियों के साथ रमण करने लगीं । अर्थात् कामोद्दीपक कोकिलाओं का शब्द सुनकर स्त्रियां मानो कामदेव की आज्ञा के भय से उच्छृङ्खलता पूर्वक खेलने लगीं ।।४७।।

अथ यथासुखमार्तवमुत्सवं समनुभूय विलासवतीसखः ।
नरपतिश्चकमे मृगयारतिं स मधुमन्मधुमन्मथसंनिभः ।।४८।।

संजी०—अथेति । अथानन्तरं मधुं मथ्नातीति मधुमद्विष्णुः । संपदादित्वात्क्विप् । मधुर्वसन्तः । मथ्नातीति मथः । पचाद्यच् । मनसो मथो मन्मथः कामः । तेषां संनिभः । सदृशो मधुमन्मधुमन्मथसंनिभः स नरपतिर्दशरथो विलासवतीसखः स्त्रीसहचरः सन् । ऋतुः प्राप्तोऽस्यार्तवः । तमुत्सवं वसन्तोत्सवं यथासुखं समनुभूय मृगयारतिं मृगयाविहारं चकम आचकाङ्क्ष ।।४८।।

अन्वयः—अथ मधुमन्मधुमन्मथसन्निभः स नरपतिः विलासवतीसखः सन् आर्तवम् उत्सवं समनुभूय मृगयारतिं चकमे ।

व्याख्या—मधुं-दैत्यं मथ्नातीति मधुमत् । मनसो मथः मन्मथः । मधुमत्=विष्णुः मधुः=वसन्तः मन्मथः=कामः एतेषामितरेतरयोगः मधुमन्मधुमन्मथास्तेषां सन्निभः=सदृशः इति मधुमन्मधुमन्मथसन्निभः सः=पूर्वोक्तः नराणां=मनुष्याणां पतिः=स्वामी नरपतिः=राजा दशरथः । विलासाः=विभ्रमाः=हावभावादिचेष्टा; सन्ति यासु ताः विलासवत्यः=स्त्रियः सखायः=सहचराः यस्य स विलासवतीसखः सन् ऋतुः प्राप्तोऽस्य स आर्तवस्तम् आर्तवम्=ऋतुसंबन्धिनम् उत्सवं=वसन्तोत्सवं समनुभूय=सम्यक् प्रकारेण अनुभवं कृत्वा, मृग्यन्ते=अन्विष्यन्ते यत्र सा मृगया=आखेटकं तत्र रतिं=विहारं चकमे=आचकाङ्क्ष ।

समासः—मधु मथ्नातीति मधुमद्। मननं मत्=चेतना। मथतीति मथः। मतः मथः मन्मथः। मधुमत् च मधुश्च मन्मथश्चेति द्वन्द्वः। तेषां सन्निभः इति मधुमन्मधुमन्मथसन्निभः। नराणां पतिः नरपतिः। विलासवत्यः सखायो यस्य स विलासवतीसखः। मृगयायां रतिस्तां मृगयारतिम्।

हिन्दी—इस के पश्चात्, विष्णु के समान पराक्रमी और वसन्त के समान प्रसन्न तथा कामदेव के समान सुन्दर राजा दशरथ ने सुन्दर स्त्रियों के साथ वसन्तोत्सव का खूब आनन्द लेकर (वसन्तोत्सव मनाकर) शिकार खेलने की इच्छा की ॥४८॥

व्यसनासङ्गदोषं परिहरन्नाह—

परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम्।

श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ ॥४९॥

सं॰जी॰—परिचयमिति। असौ मृगया। चललक्ष्याणि मृगगवयादीनि। तेषां निपातने परिचयमभ्यासं करोति। भयरुषोर्भयक्रोधयोस्तदिङ्गितबोधनं तेषां चललक्ष्याणामिङ्गितस्य चेष्टितस्य भयादिलिङ्गभूतस्य बोधनं ज्ञानं च करोति। तनुं शरीरं श्रमस्य जयान्निरासात्प्रगुणां प्रकृष्टलाघवादिगुणवतीं च करोति। अतो हेतोः सचिवैरनुमतोऽनुमोदितः सन्। ययौ। सर्वं चैतद्युद्धोपयोगीत्यतस्तदपेक्षया मृगयाप्रवृत्तिः। न तु व्यसनितयेति भावः ॥४९॥

अन्वयः—असौ चललक्ष्यनिपातने परिचयं करोति भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनं करोति, तनुं च श्रमजयात् प्रगुणां करोति अतः सचिवैः अनुमतः सन् ययौ।

व्याख्या—असौ=मृगया, लक्ष्यन्ते इति लक्ष्याणि=शरव्यानि चलानि=चञ्चलानि (चलन्ति वा) च यानि लक्ष्याणि=लक्षाणि तेषां निपातनं=अवनयनम्=अधोनयनं मारणमित्यर्थः। तस्मिन् चललक्ष्यनिपातने। परिचयम्=अभ्यासं करोति=विदधाति। भयं=भीतिः रुट्=क्रोधश्च तयोः भयरुषोः चः=समुच्चये। इंगनम् इंगितम्। तेषां=चललक्ष्याणाम् इंगितं=चेष्टा, इति तदिङ्गितं तस्यबोधनं=ज्ञानमिति तदिङ्गितबोधनं करोति। भयक्रोधादिचेष्टायाः ज्ञानं करोतीत्यर्थः। तन्यते, तनोति वा तनुस्तां तनुं=शरीरं च श्रमस्य=खेदस्य जयः=निरासनं तस्मात्

श्रमजयात् प्रकृष्टः गुणः=लाघवादिः यस्यां सा तां प्रगुणां करोति । मृगया शरीरस्य लाघवं स्फूर्तिमत्त्वं च करोतीत्यर्थः । अतः=अस्माद्धेतोः सचनं सचिः, सचिं=समवायं वान्तीति सचिवास्तैः सचिवैः=मंत्रिभिः अनुमतः=संमतः=अनुमोदितः सन् ययौ= जगाम । आखेटे बहवः गुणाः सन्तीति तत्र दशरथस्य प्रवृत्तिर्जाता न तु व्यसनित्वादित्यर्थ ।

समासः—चलानि तानि लक्ष्याणि, इति चललक्ष्याणि तेषां निपातनं तस्मिन् चललक्ष्यनिपातने । भयं च रुट् च भयरुषौ तयोः भयरुषोः । तेषाम् इंगितस्य बोधनमिति तदिंगितबोधनम् तत् । श्रमस्य जयस्तस्मात् श्रमजयात् ।

हिन्दी—शिकार खेलने से चलते हुवे लक्ष्य को बेधने मारने का अभ्यास होता है । और जीवों के भय तथा क्रोध आदि चेष्टाओं का ज्ञान होता है । तथा श्रम (थकावट) को जीतने से शरीर फुर्तिला एवं दृढ़ होता है । इसलिये मंत्रियों से सम्मति लेकर राजा शिकार के लिये चले गये ॥४९॥

मृगवनोपगमक्षमवेषभृद्विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः ।

गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृसविता स वितानमिवाकरोत् ॥५०॥

मं०—मृगेति । मृगाणां वनं तस्योपगमः प्राप्तिः तस्य क्षममर्हं वेषं बिभर्तीति स तथोक्तः । मृगयाविहारानुगुणवेषधारीत्यर्थः । विपुलकण्ठे निषक्तशरासनो लग्नधन्वा । ना सवितेव नृसविता पुरुषश्रेष्ठः । उपमितसमासः । स राजाऽश्वखुरोद्धतरेणुभिर्गगनं वितानं तुच्छमसदिवाकरोत् । गगनं नालक्ष्यतेत्यर्थः । 'वितानं तुच्छमन्दयोः' इति विश्वः । अथवा—'सवितानम्' इत्येकं पदम् । सवितानमुल्लोचसहितमिवाकरोत् । 'अस्त्री वितानमुल्लोचः' इत्यमरः ॥५०॥

अन्वयः—मृगवनोपगमक्षमवेषभृत् विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः नृसविता स अश्वखुरोद्धतरेणुभिः गगनं वितानम् इव अकरोत् ।

व्याख्या—मृग्यन्ते व्याधैरिति मृगाः । मृगाणां=हरिणानां वनं=काननमिति मृगवनं तस्य उपगमः=प्राप्तिरिति मृगवनोपगमः । तस्य क्षमं=योग्यं वेषं=नेपथ्यं= परिधानमित्यर्थः बिभर्ति=धारयतीति मृगवनोपगमक्षमवेषभृत् । शृणाति=हिंसां करोति यैस्ते शराः । शराः=बाणा अस्यन्ते=क्षिप्यन्ते येन तत् शरासनम् । कणति=

शब्दं करोति, कण्ठते, इति वा कण्ठः। विपुलः = विशालः कण्ठः=गलः, विपुलकण्ठः। विपुलकण्ठे निषक्तं=संलग्नं=स्थापितमित्यर्थः शरासनं=धनुर्येन स विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः। ना=पुरुषः सविता=सूर्य इवेति नृसविता सः=राजा दशरथः अश्वानां=तुरंगमाणां खुराः=शफानि तैः उद्धृताः=उत्थिताः रेणवः=धूलयस्तैः अश्वखुरोद्धतरेणुभिः, गच्छन्त्यस्मिन्निति गगनम्=आकाशं वितानं=तुच्छम्=असदित्यर्थः इव=यथा अकरोत्=कृतवान्। अथवा सवितानमिति समस्तं पदम् तथा च वितानेन=उल्लोचेन सहितं सवितानम्=उल्लोचसहितमिवाकरोत्। 'वितानं तुच्छमन्दयोरि'ति विश्वकोषात्। 'अस्त्री वितानमुल्लोचः' इत्यमराच्च।

समासः—मृगाणां वनं मृगवनं तस्य उपगमः इति मृगवनोपगमस्तस्य क्षमं वेषं बिभर्तीति मृगवनोपगमक्षमवेषभृत्। विपुले कण्ठे निषक्तं शरासनं येन स विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः। ना सविता इव इति नृसविता। अश्वानां खुरैः उद्धताः रेणवस्तैः अश्वखुरोद्धतरेणुभिः।

हिन्दी—शिकार को जाते समय मृगों के वन में जाने योग्य वेषभूषा को धारण किये हुए, और अपने विशाल कन्धे पर धनुष को रखे हुए, मनुष्यों में सूर्य के समान राजा दशरथ ने, अपने घोड़ों के खुरों से उठी धूली से आकाश को तुच्छ-नहीं के समान बना दिया। उस समय गगन में धूली भर जाने से आकाश दीख नहीं पड़ रहा था। अथवा आकाश में धूली से शामयाना (तम्बू) सा बना दिया ॥५०॥

ग्रथितमौलिरसौ वनमालया तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः।
तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलो विरुरुचे रुरुचेष्टितभूमिषु ॥५१॥

संजी०—ग्रथितेति। वनमालया वनपुष्पस्रजा ग्रथितमौलिर्बद्धधम्मिल्लः। तरूणां पलाशैः पत्रैः सवर्णः समानस्तनुच्छदो वर्म यस्य स तथोक्तः। इदं च वर्मणः पलाशसावर्ण्याभिधानं मृगादीनां विश्वासार्थम्। तुरगस्य वल्गनेन गतिविशेषेण चञ्चलकुण्डलोऽसौ दशरथो रुरुभिर्मृगविशेषैश्चेष्टिताश्चरिता या भूमयस्तासु विरुरुचे विदिद्युते ॥५१॥

अन्वयः—वनमालया ग्रथितमौलिः तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलः असौ रुरुचेष्टितभूमिषु विरुरुचे।

व्याख्या—मल्यते=धार्यते या सा माला, मां=लक्ष्मीं श्रियं लाति इति वा माला। वनस्य=वनपुष्पस्य माला=स्रक् वनमाला तया वनमालया। ग्रथितः=बद्धः मौलिः=शीर्षं यस्य स ग्रथितमौलिः। तनुः छाद्यतेऽनेनेति तनुच्छदः। तरूणां=वृक्षाणां पलाशानि-पत्राणि, तैः सवर्णः=समानः तनुच्छदः=कवचं यस्य स तरुपलाशसवर्णतनुच्छदः। तुरगस्य=अश्वस्य वल्गनम्=वल्गितम्, तेन चञ्चले=तरले कुण्डले=कर्णभूषणे यस्य स तुरगवल्गनचञ्चलकुण्डलः। असौ=राजा दशरथः। रुरुभिः=मृगविशेषैः चेष्टिताः=सेविताः, चरिताः भूमयः=मह्यः वनस्थानानीत्यर्थः, इति रुरुचेष्टितभूमयस्तासु विरुरुचे=विशेषेण दिद्युते, शुशुभे इत्यर्थः।

समासः—वनस्य माला, वनमाला तया वनमालया। ग्रथितः मौलिः यस्य स ग्रथितमौलिः। तरूणां पलाशैः सवर्णः तनुच्छदो यस्य स तरुपलाशवर्णतनुच्छदः। तुरगस्य वल्गनेन चञ्चले कुण्डले यस्य स तथोक्तः। रुरुभिः चेष्टिताः भूमयस्तासु रुरुचेष्टितभूमिषु।

हिन्दी—वन के फूलों की माला से अपने केशों को बांधे हुए, तथा वृक्षों के पत्तों के समान (हरे) रंग का कवच पहने हुए, और घोड़े की चाल (गति) के कारण जिसके कुण्डल हिल रहे हैं ऐसे राजा दशरथ रुरुजाति के मृगों के घुमने की भूमि में शोभा देने लगे, जहाँ हिरन-मृग बहुत रहते थे ॥५१॥

तनुलताविनिवेशितविग्रहा भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः।

ददृशुरध्वनि तं वनदेवताः सुनयनं नयनन्दितकोसलम् ॥५२॥

संजी०—तन्विति। तनुषु लतासु विनिवेशितविग्रहाः संक्रमितदेहाः। भ्रमरेषु संक्रमिता ईक्षणवृत्तयो दृग्व्यापारा यासां ता वनदेवताः सुनयनं सुलोचनं नयेन नीत्या नन्दितास्तोषिताः कोसला येन तं दशरथमध्वनि ददृशुः। प्रसन्नपावनतया तं देवता अपि गूढवृत्त्या ददृशुरित्यर्थः ॥५२॥

अन्वयः—तनुलताविनिवेशितविग्रहाः भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः वनदेवताः नयनन्दितकोसलम् सुनयनं तम् अध्वनि ददृशुः।

व्याख्या—तन्व्यश्च ताः लताः तनुलताः। तनुलतासु=कोमलवल्लरीषु सूक्ष्मवल्लरीषु वा *विनिवेशितः=संक्रमितः देहः=शरीरं यासां ताः तनुलताविनिवेशितविग्रहाः*। भ्रमन्तीति भ्रमराः। भ्रमरेषु=द्विरेफेषु संक्रमिताः=संगमिताः

ईक्षणानां=नेत्राणां वृत्तयः, यासां ताः, दीव्यन्तीति देवाः, देवा एव देवताः। वनस्य=अरण्यस्य देवताः=सुराः=अधिष्ठातृदेवता इत्यर्थः, इति वनदेवताः नयेन=नीत्या नीतिमार्गेणेत्यर्थः नन्दिताः=तोषिताः=पालिताः कोसलाः=तन्नामकजनपदाः येन स तं नयनन्दितकोसलम्, सुन्दरे नयने=नेत्रे यस्य स तं सुनयनं तं=राजानं दशरथम् अध्वनि= मार्गे ददृशुः दृष्टवत्यः । प्रसन्नतया पवित्रतया च राजानं देवता अपि लतारूपशरीरेण भ्रमरेक्षणेन गूढवृत्त्या दृष्टवत्य इत्यर्थः।

समासः—तन्व्यश्च ताः लताः तनुलताः, तनुलतासु विनिवेशिताः विग्रहाः याभिस्ताः तनुलताविनिवेशितविग्रहाः। भ्रमरेषु संक्रमिताः ईक्षणानां वृत्तयः यासां ताः भ्रमरसंक्रमितेक्षणवृत्तयः । वनस्य देवताः वनदेवताः । नयेन नन्दिताः कोसलाः येन स नयनन्दितकोसलस्तं नयनन्दितकोसलम् । सुष्ठु नयने यस्य स तं सुनयनम् ।

हिन्दी—कोमल सूक्ष्मलताओं में अपने शरीर को रखनेवाले तथा भौरों में नेत्र के व्यापार को संक्रमित करनेवाले, (अर्थात् लतारूपी शरीरवाले और भौरों के नेत्र से देखने वाले), वन के देवताओं ने सुन्दर नेत्र वाले और नीति धर्म से प्रजा को आनन्दित या समृद्धिशाली बनाने वाले राजा दशरथ को मार्ग चलते हुए देखा। अर्थात् अच्छे राजा को वन देवताओं ने भी छिपकर देखा ॥५२॥

श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं व्यपगतानलदस्यु विवेश सः ।

स्थिरतुरंगमभूमि निपानवन्मृगवयोगवयोपचितं वनम् ॥५३॥

संजी०—श्वगणीति । स दशरथः । शुनां गणः स एषामस्तीति श्वगणिनः श्वग्राहिणः । तैः । वागुरा मृगबन्धनरज्जुः । 'वागुरा मृगबन्धनी' इत्यमरः । तया चरन्तीति वागुरिका जालिकाः । 'चरति' (पा. ४।४।८) इति ठक्प्रत्ययः । 'द्वौ वागुरिकजालिकौ' इत्यमरः । तैश्च प्रथममास्थितमधिष्ठितम् । व्यपगता अनला दावाग्नयो दस्यवस्तस्कराश्च यस्मात्तथोक्तम् । 'दस्युतस्करमोषकाः' इत्यमरः । 'कारयेद्वनविशोधनमादौ मातुरन्तिकमपि प्रविविक्षुः । आप्तशस्त्र्यनुगतः प्रविशेद्वा संकटे च गहने च न तिष्ठेत् ॥' इति कामन्दकः । स्थिरा दृढा पङ्कादिरहिता तुरंगमयोग्या भूमिर्यस्य तत् । निपानवदाहावयुक्तम् । 'आहावस्तु निपानं स्यादुप-

कूपजलाशये' इत्यमरः । मृगैर्हरिणादिभिर्वयोभिः पक्षिभिर्गवयैर्गोसदृशैररण्यपशुविशेषैश्चोपचितं समृद्धं वनं विवेश प्रविष्टवान् ॥५३॥

अन्वयः—सः श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितम् व्यपगतानलदस्यु स्थिरतुरंगमभूमि निपानवन्मृगवयोगवयोपचितं वनं विवेश ।

व्याख्या—सः=राजा दशरथः शुनां=कुक्कुराणां गणः = समूहः एषामस्तीति श्वगणिनः । अवागुरते इति वागुरा (भागुरिमते अकारलोपः) वागुरया=मृगबन्धन्या चरन्तीति वागुरिकाः । श्वगणिनश्च वागुरिकाश्च श्वगणिवागुरिकास्तैः श्वगणिवागुरिकैः प्रथमं=पूर्वम् आस्थितम्=अधिष्ठितमाक्रान्तमित्यर्थः, इति प्रथमास्थितम् । विशेषेण अपगताः=नष्टाः=अपसारिताः अनलाः=दावाग्नयः दस्यवः=चौराश्च यस्मात् तत् व्यपगतानलदस्यु, स्थिरा=दृढा=कर्दमादिरहिता तुरंगमस्य=अश्वस्य योग्या=भूमिः=स्थानं यत्र तत् स्थिरतुरंगमभूमि=अश्वगमनयोग्यस्थानमित्यर्थः । नियतं पिबन्ति जलं मृगादयो यत्र तत् निपानं, निपानमस्ति यत्र तत् निपानवत्=आवाहयुक्तम्=कूपसमीपे जलाशयवदित्यर्थः । मृगाः=हरिणाः वयांसि=पक्षिणः गवयाः=गोसदृशाः आरण्यपशवश्चैतेषां द्वन्द्वः मृगवयोगवयाः । मृगवयोगवयैः उपचितं = समृद्धं=पूर्णम् इति मृगवयोगवयोपचितम्, वनम्=अरण्यं विवेश=प्रविष्टवान् ।

समासः—शुनां गणः श्वगणः श्वगणः अस्ति येषां ते श्वगणिनः श्वगणिनश्च वागुरिकाश्च श्वगणिवागुरिकास्तैः श्वगणिवागुरिकैः । व्यपगताः अनलाः दस्यवश्च यस्मात् तत् व्यपगतानलदस्यु तत् । तुरंगमानां योग्या तुरंगमयोग्या चासौ भूमिः, तुरंगमभूमिः (शाकपार्थिवादित्वात् योग्यपदस्य लोपः) स्थिरा तुरंगमभूमिः यस्य तत् स्थिरतुरंगमभूमि । मृगाश्च वयांसि च गवयाश्चेत्येषां द्वन्द्वः मृगवयोगवयास्तैः उपचितमिति मृगवयोगवयोपचितम्, तत् ।

हिन्दी—राजा दशरथ, मृगों, पक्षियों तथा जंगली गायों से परिपूर्ण उस वन में प्रविष्ट हो गये, जिसमें शिकारी कुत्ते और जाल को लेकर चलने वाले सेवक पहले ही पहुँच गये थे, और उस वन से अग्नि तथा चोरों का भय दूर कर दिया गया था, तथा वहाँ की भूमि पक्की अत एव घोड़ों के चलने योग्य एवं पीने के जल से भरे ताल वाली थी ॥५३॥

अथ नभस्य इव त्रिदशायुधं कनकपिङ्गतडिद्गुणसंयुतम् ।

धनुरधिज्यमनाधिरुपाददे नरवरो रवरोषितकेसरी ॥५४॥

संजी०—अथेति । अथानाधिर्मनोव्यथारहितो नरवरो नरश्रेष्ठः । रवेण धनुष्टङ्कारेण रोषिताः केसरिणः सिंहा येन स राजा । कनकमिव पिङ्गः पिशङ्गो यस्तडिदेव गुणो मौर्वी तेन संयुतं त्रिदशायुधमिन्द्रचापं नभस्यो भाद्रपदमास इव । 'स्युर्नभस्यप्रौष्ठपदभाद्रभाद्रपदाः समाः' इत्यमरः । अधिज्यमधिगतमौर्वीकं धनुरुपाददे जग्राह ॥५४॥

अन्वयः—अथ अनाधिः नरवरः रवरोषितकेसरी कनकपिङ्गतडिद्गुणसंयुतम् त्रिदशायुधम् नभस्य इव अधिज्यं धनुः उपाददे ।

व्याख्या—आधीयते दुःखमनेनेति आधिः । नास्ति आधिः=मनोव्यथा यस्य सः अनाधिः । नरेषु=पुरुषेषु वरः=श्रेष्ठः इति नरवरः । केसराः=स्कन्धबालाः सन्त्यस्यासौ केसरी, रवेण=धनुष्टंकारेण रोषिताः=कोपिताः केसरिणः=सिंहाः येन स रवरोषितकेसरी, राजा दशरथः कनकम्=सुवर्णमिव पिंगः=पिशंगः=पिंगलवर्णः यस्तडित्=विद्युदेव गुणः=मौर्वी इति कनकपिंगतडिद्गुणः, तेन संयुतं=संयुक्तं बद्धमित्यर्थः । त्रीन् तापान् दिशतीति त्रिदशः । त्रिदशस्य=इन्द्रस्य आयुधं= धनुरिति तत् त्रिदशायुधम् नभाः=अभ्रमस्यास्तीति नभस्यः=भाद्रपदमास इव=यथा ज्याम्=मौर्वीम् अधिगतम्=आरोपितमिति अधिज्यम्=आरोपितमौर्वीकम् धनुः= चापम् उपाददे=जग्राह=स्वीचकारेत्यर्थः ।

समासः—न विद्यते आधिर्यस्य सोऽनाधिः । नरेषु वरः नरवरः । रवेण रोषिताः केसरिणः येन स रवरोषितकेसरी । कनकमिव पिङ्गः यस्तडिदेव गुणस्तेन संयुतमिति कनकपिंगतडिद्गुणसंयुतम्, तत् । तिस्रः दशाः यस्य स त्रिदशः, त्रिदशस्य आयुधं त्रिदशायुधम्, तत् ।

हिन्दी—मानसिक पीड़ा से रहित पुरुषों में श्रेष्ठ, तथा अपने धनुष की टंकार से सिंहों को क्रोधित करने वाले, दशरथ ने डोरी चढ़े धनुष को सम्भाल लिया, उस समय राजा ऐसे लग रहे थे, मानो सोने के रंग की पीली बिजली-रूपी डोरी से युक्त इन्द्र धनुष को धारण किये भाद्रपद मास हो ॥५४॥

तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणशावै-
र्व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात् ।
आविर्बभूव कुशगर्भमुखं मृगाणां
यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम् ॥५५॥

संजी०—तस्येति । स्तनप्रणयिभिः स्तनपायिभिरेणशावैर्हरिणशिशुभिः । 'पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । व्याहन्यमानं तद्वत्सलतया तद्गमनानुसारेण मुहुर्मुहुः प्रतिविध्यमानं हरिणीनां गमनं गतिर्यस्य तत् । कुशा गर्भे येषां तानि मुखानि यस्य तत् कुशगर्भमुखम् । तस्य यूथस्याग्रसरः पुरःसरो गर्वितो दृप्तश्च कृष्णसारो यस्य तत् । मृगाणां यूथं कुलम् । 'सजातीयैः कुलं यूथं तिरश्चां पुंनपुंसकम्' इत्यमरः, तस्य दशरथस्य पुरस्तादग्र आविर्बभूव । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥५५॥

अन्वयः—स्तनप्रणयिभिः एणशावैः व्याहन्यमानहरिणीगमनं कुशगर्भमुखं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम् मृगाणां यूथं तस्य पुरस्तात् आविर्बभूव ।

व्याख्या—स्तनेषु प्रणयः स्तनप्रणयः स्तनानां प्रणयः स्तनप्रणय इति वा । स्तनप्रणयोऽस्ति येषां ते स्तनप्रणयिनस्तैः स्तनप्रणयिभिः=स्तनन्धयैः एणानां=हरिणानां शावकाः=शिशवस्तैः एणशावकैः, विशेषेण आसमन्तात् हन्यते । यत् तत् व्याहन्यमानं=भूयो भूयः प्रतिषिध्यमानं हरिणीनां=मृगीणां गमनं=गतिर्यस्य तत् व्याहन्यमानहरिणीगमनम् । कुशाः=दर्भाः गर्भे=मध्ये येषां तानि कुशगर्भाणि, कुशगर्भाणि मुखानि=आननानि यस्य तत् कुशगर्भमुखम् । कृष्णेन सारः शबलः इति कृष्णसारः । अग्रे सरतीति अग्रसरः गर्वः संजातोऽस्य-गर्वितः । तस्य=यूथस्य अग्रसरः=पुरःसरः इति तदग्रसरः, तदग्रसरश्चासौ गर्वितः=दृप्तश्च कृष्णसारः=मृगविशेषो यस्य तत् तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम्, मृगाणां=हरिणानां यूथं=कुलम् तस्य दशरथस्य राज्ञः पुरस्तात्=अग्रे आविर्बभूव=प्रादुर्बभूव ।

समासः—स्तनानां प्रणयः स्तनप्रणयः, स्तनप्रणयोऽस्ति येषां ते स्तनप्रणयिनस्तैः स्तनप्रणयिभिः । एणानां शावास्तैः एणशावैः । व्याहन्यमानं हरिणीनां गमनं यस्य तत् व्याहन्यमानहरिणीगमनम् । कुशाः गर्भे येषां तानि, कुशगर्भाणि कुशगर्भाणि मुखानि यस्य तत् कुशगर्भमुखम् । तस्य अग्रसरः गर्वितश्च कृष्णसारो यस्य तत् तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम् ।

हिन्दी—स्तनों का पान करने वाले (दूधमुँहे) मृगों के बच्चों के द्वारा बार-बार हरिणियों का गमन रोक दिया गया है जिसमें, और जिसके मुखों में कुश भरी है, तथा जिस झुण्ड के आगे-आगे गर्वीला काला मृग चल रहा है, ऐसा मृगों का झुण्ड राजा दशरथ के सामने प्रगट हुआ। बच्चों के प्रेम के कारण बीच-बीच में हरिणी रुककर दूध पिलाने के कारण रुक जाती हैं अतः मृगसमूह भी प्रेमवश रुक जाता है ॥५५॥

तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा
तूणीमुखोद्धृतशरेण विशीर्णपङ्क्ति ।
श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातै-
र्वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः ॥५६॥

संजी०—तदिति । जवनो जवशीलः 'जुचंक्रम्य'–(पा. ३।२।१५०) इत्यादिना युच्प्रत्ययः । 'तरस्वी त्वरितो वेगी प्रजवी जवनो जवः' इत्यमरः । तं वाजिनमश्वं गतेनारूढेन । तूणीषुधिः । 'बह्वादिभ्यश्च' (पा. ४।१।४५) इति स्त्रियां ङीष् । तस्या मुखाद्विवरादुद्धृतशरेण राज्ञा प्रार्थितमभियातम् । 'याच्ञा-यामभियाने च प्रार्थना कथ्यते बुधैः' इति केशवः । अत एव विशीर्णा पङ्क्तिः संघीभावो यस्य तत् । मृगयूथं कर्तृ आर्द्रैर्भयादश्रुसिक्तैराकुला भयचकिता ये दृष्टिपातास्तैः । वातेरितोत्पलदलप्रकरैः पवनकम्पितेन्दीवरदलवृन्दैरिव । वनं श्यामीचकार ॥५६॥

अन्वयः—जवनवाजिगतेन तूणीमुखोद्धृतशरेण राज्ञा प्रार्थितम्, "अत एव" विशीर्णपङ्क्ति तत् आर्द्रैः आकुलदृष्टिपातैः वातेरितोत्पलदलप्रकरैः इव वनं श्यामीचकार ।

व्याख्या—अवश्यं वजति = गच्छतीति वाजी, यद्वा वाजाः-पक्षाः अभूवन् अस्यासौ वाजी । जवनं-वेगवन्तं वाजिनं-घोटकम् अश्वं गतः = आरूढः इति जवनवाजिगतस्तेन जवनवाजिगतेन, तूण्याः-तूणीरस्य-शराधारस्येत्यर्थः मुखं= विवरमिति तूणीमुखं तस्मात् उद्धृताः=निष्कासिताः शराः- बाणाः येन सः तेन तूणीमुखोद्धृतशरेण राज्ञा-दशरथेन प्रार्थितम्=अभियातम् "याच्ञायामभियाने च

प्रार्थना कथ्यते बुधैरि''ति विश्वकोषः। अत एव विशीर्णा=विछिन्ना=इतस्ततः-परिगतेत्यर्थः पंक्तिः=संघीभावः=समूहीभवनं यस्य तत् विशीर्णपंक्ति तत्=मृगयूथम् कर्तृपदमिदम्। आर्द्रैः=क्लिन्नैः भयादित्यर्थः। दृष्टीनां=नेत्राणां पाताः=पतनानि=प्रक्षेपा इत्यर्थः। इति दृष्टिपाताः, आकुलाः=चकिताः ये दृष्टिपातास्तैः आकुल-दृष्टिपातैः=भयेन चकितैरित्यर्थः उत्पलानाम्=इन्दीवराणां=नीलकमलानामित्यर्थः दलानि=पत्राणि इति उत्पलदलानि तेषां प्रकराः=समूहाः, इति उत्पलदलप्रकराः वातेन=पवनेन ईरिताः=कम्पिताः ये उत्पलदलप्रकरास्तैः वातेरितोत्पलदलप्रकरैः, इव=यथा वनम्=अरण्यं श्यामीचकार=कृष्णीकृतवत्।

समासः—जवनश्चासौ वाजी जवनवाजी, जवनवाजिनं गतस्तेन जवनवाजि-गतेन। तूण्याः मुखं तूणीमुखं, तूणीमुखात् उद्धृतः शरो येन स तेन तूणीमुखो-द्धृतशरेण। विशीर्णा पंक्तिः यस्य तत् विशीर्णपंक्ति। आकुलाः ये दृष्टिपातास्तैः आकुलदृष्टिपातैः। उत्पलानां दलानि, उत्पलदलानि तेषां प्रकराः, इति उत्पलदल-प्रकराः, वातेन ईरिताः ये उत्पलदलप्रकरास्तैः वातेरितोत्पलदलप्रकरैः।

हिन्दी—अपने तीव्रगामी घोड़े पर चढ़े हुए, तथा तरकश से बाण को निकालकर राजा ने ज्योंही उस झुण्ड का पीछा किया, तो तितर-बितर हुए उस मृगझुण्ड ने भय के कारण आँसुओं से भीगी तथा घबराई हुई अपनी चंचल आँखों से उस वन को ऐसा श्याम (काला) कर दिया, मानों वायु के झोकों से कम्पाये नीले कमलों की पंखुड़ियों से भरा हो ॥५६॥

लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः
प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्।
आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी
बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार ॥५७॥

संजी०—लक्ष्यीकृतेति। हरिरिन्द्रो विष्णुर्वा तस्येव प्रभावः सामर्थ्यं यस्य स तथोक्तः। धन्वी धनुष्मान् स नृपः। लक्ष्यीकृतस्य वेद्धुमिष्टस्य हरिणस्य स्वप्रेयसो देहं व्यवधायानुरागादन्तर्धाय स्थिताम्। सह चरतीति सहचरी। पचादिषु चरते-ष्टित्करणान्ङीप्। यथाह वामनः—'अनुचरीति चरेष्टित्वात्' इति। तां सहचरीं

हरिणीं प्रेक्ष्य कामितया स्वयं कामुकत्वात्। कृपामृदुमनाः करुणार्द्रचित्तः सन्। आकर्णकृष्टमपि। दुष्प्रतिसंहरमपीत्यर्थः। बाणं प्रतिसंजहार। नैपुण्यादित्यर्थः। नैपुण्यं तु 'धन्वी' इत्यनेन गम्यते ॥५७॥

अन्वयः—हरिप्रभावः धन्वी सः लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य देहं व्यवधाय स्थितां सहचरीं प्रेक्ष्य कामितया कृपामृदुमनाः सन् आकर्णकृष्टम् अपि बाणं प्रतिसंजहार।

व्याख्या—हरेः इन्द्रस्य विष्णोर्वा इव=यथा प्रभावः=सामर्थ्यं यस्य स हरिप्रभावः धन्वी=धनुर्धरः सः=राजा दशरथः न लक्ष्यः अलक्ष्यः अलक्ष्यः लक्ष्यः संपद्यमानः कृतः लक्ष्यीकृतः तस्य लक्ष्यीकृतस्य=वेद्धुमिष्टस्य हरिणस्य=मृगस्य स्वप्रियस्य देहं=शरीरं व्यवधाय=अन्तर्धाय स्थितां=वर्तमानाम् सह चरतीति सहचरी तां सहचरीं=हरिणीं प्रेक्ष्य=अवलोक्य भूयान् कामोऽस्यास्तीति कामी, तस्य भावस्तत्ता कामिता तया कामितया=स्वयं कामुकत्वात्, कृपया=करुणया मृदु=कोमलं मनः चित्तं यस्य स कृपामृदुमनाः सन् कर्णमभिव्याप्येति आकर्णम्, आकर्णम्=आश्रोत्रं कृष्टं=संधानितमिति आकर्णकृष्टम् अपि=दुष्प्रतिसंहरमपीत्यर्थः बाणं=शरं प्रतिसंजहार=प्रतिसंहृतवान्, नैपुण्यादित्यर्थः।

समासः—हरेः इव प्रभावो यस्य स हरिप्रभावः। आकर्णं कृष्ट आकर्णकृष्टः, तम्। कृपया मृदु मनः यस्य सः कृपामृदुमनाः।

हिन्दी—इन्द्र अथवा विष्णु के समान शक्तिशाली धनुर्धर राजा दशरथ ने अपने मारने के लिये लक्ष्य बनाये गये मृग के शरीर को आड़ में करके खड़ी हुई, उस मृग की प्रिया मृगी को देखकर, स्वयं भी प्रेमी होने के कारण, दया से आर्द्र मन होकर, (कृपा से भरकर) कान तक खींचे हुए भी अपने बाण को उतार लिया। अर्थात् प्रेमिका के द्वारा प्रेमी की रक्षा करना देखकर स्वतः प्रेमी होने से राजा ने उस मृग के मारने का विचार छोड़ दिया ॥५७॥

तस्यापरेष्वपि मृगेषु शरान्मुमुक्षोः
कर्णान्तमेत्य बिभिदे निबिडोऽपि मुष्टिः।
त्रासातिमात्रचटुलैः स्मरतः सुनेत्रैः
प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि ॥५८॥

संजी०—तस्येति । त्रासाद्भयादतिमात्रचटुलैरत्यन्तचञ्चलैः सुनेत्रैः प्रौढप्रिया-नयनविभ्रमचेष्टितानि प्रगल्भकान्ताविलोचनविलासव्यापारान्सादृश्यात्स्मरतः । अपरे-ष्वपि मृगेषु शरान्मुमुक्षोर्मोक्तुमिच्छोस्तस्य नृपस्य निबिडो दृढोऽपि मुष्टिः कर्णान्तमेत्य प्राप्य बिभिदे । स्वयमेव भिद्यते स्म । भिदेः कर्मकर्तरि लिट् । कामिनस्तस्य प्रियाविभ्रमस्मृतिजनितकृपातिरेकान्मुष्टिभेदः, न त्वनैपुण्यादिति तात्पर्यार्थः ॥५८॥

अन्वयः—त्रासातिमात्रचटुलैः सुनेत्रैः प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि स्मरतः अपरेषु मृगेषु शरान् मुमुक्षोः तस्य निबिडः अपि मुष्टिः कर्णान्तम् एत्य बिभिदे ।

व्याख्या—त्रासात्=भयात् अतिमात्रम्=अत्यन्तं चटुलानि=चञ्चलानि तैः त्रासातिमात्रचटुलैः, सु=शोभनानि च तानि नेत्राणि=नयनानि तैः सुनेत्रैः । प्रौढाः=प्रगल्भाश्च ताः प्रियाः=कान्ताः, स्वस्त्रिय इत्यर्थः, इति प्रौढप्रियाः । प्रौढप्रियाणां नयनानि=नेत्राणि, तेषां विभ्रमाः=विलासाः, प्रौढप्रियानयन-विभ्रमास्तेषां चेष्टितानि=व्यापारान्, इति प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि । स्मरतः=स्मरणं कुर्वतः हरिणीनां नेत्रविलासानां व्यापारान् विलोक्य राज्ञः स्वप्रियाणां नयनविभ्रमचेष्टानां स्मरणं जातमित्यर्थः । अपरेषु=अन्येषु मृगेषु= हरिणेषु शरान्=बाणान् मोक्तुमिच्छति इति मुमुक्षुस्तस्य मुमुक्षोः=मोक्तुमिच्छोः तस्य=राज्ञो दशरथस्य निबिडः=दृढः अपि मुष्टिः=मुष्टिबन्धः । अतति अन्तति वा अन्तः कर्णस्य=श्रोत्रस्य अन्तः=निकटमिति कर्णान्तस्तं कर्णान्तम्=श्रोत्रप्रान्तम् एत्य=प्राप्य बिभिदे=भिद्यते स्म । स्वप्रियाविभ्रमस्य स्मरणेन दशरथस्य हृदयं करुणार्द्रं संजातं तेन मुष्टिबन्धस्य स्वयं भेद इत्यर्थः ।

समासः—त्रासात् अतिमात्रं चटुलानीति त्रासातिमात्रचटुलानि तैः त्रासाति-मात्रचटुलैः । शोभानि नेत्राणि सुनयनानि तैः सुनेत्रैः । प्रौढाश्च ताः प्रियाः प्रौढप्रियास्तासां नयनानि तेषां विभ्रमास्तेषां चेष्टितानि, तानि प्रौढप्रियानयन-विभ्रमचेष्टितानि । कर्णस्यान्तस्तं कर्णान्तम् ।

हिन्दी—भय से व्याकुल (चंचल) हरिणियों की सुन्दर आँखों से (अर्थात् उन्हें देखकर) अपनी प्रगल्भ प्रियतमाओं को स्मरण करने वाले, तथा दूसरे मृगों पर भी बाण छोड़ने की इच्छा करने वाले राजा की मजबूत बँधी हुई मुट्ठी (चुटकी) कान तक आकर स्वयं खुल गई । अर्थात् मृगों की चंचल डरे हुए

नेत्रों को देखकर राजा को अपनी प्रियतमाओं की तिरछी चितवन का स्मरण हो आया, इससे दयार्द्र होकर उन्होंने मृग मारना छोड़ दिया ॥५८॥

उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपङ्कमध्या-
न्मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् ।
जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गं
सुव्यक्तमार्द्रपदपङ्क्तिभिरायताभिः ॥ ॥५९॥

संजी०—उत्तस्थुष इति । स नृपः मुस्ताप्ररोहाणां मुस्ताङ्कुराणां कवला ग्रासाः तेषामवयवैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः शकलैरनुकीर्णं व्याप्तम् । आयताभिर्दीर्घाभिरार्द्रपदपङ्क्तिभिः सुव्यक्तम् । सपदि पल्वलपङ्कमध्यादुत्तस्थुष उत्थितस्य द्रुतवराहकुलस्य पलायितवराहयूथस्य मार्गं जग्राहानुससार ॥५९॥

अन्वयः—सः मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् आयताभिः आर्द्रपदपंक्तिभिः सुव्यक्तम् सपदि पल्वलपंकमध्यात् उत्तस्थुषः द्रुतवराहकुलस्य मार्गं जग्राह ।

व्याख्या—सः=राजा दशरथः, मुस्तयतीति मुस्ता, मुस्तायाः=कुरुविन्दस्य प्ररोहाः=अंकुरा इति मुस्ताप्ररोहास्तेषां कवलाः=ग्रासाः, तेषाम् अवयवाः=शकलानि =खण्डानि इति मुस्ताप्ररोहकवलावयवास्तैः अनुकीर्णः=व्याप्तस्तं मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् । आयताभिः=दीर्घाभिः, पदानां=चरणानां पंक्तयः=श्रेण्यः, इति पदपंक्तयः । आर्द्राः=क्लिन्नाश्च ताः पदपंक्तयस्ताभिः आर्द्रपदपंक्तिभिः सुव्यक्तं= सुस्पष्टं सपदि=तत्क्षणे पल्वलस्य=अल्पजलाशयस्य पंकः=कर्दमस्तस्य मध्यः= अभ्यन्तरं तस्मात् पल्वलपंकमध्यात् । उत्तस्थुषः=उत्थितस्य=निर्गतस्येत्यर्थः वरं= श्रेष्ठम् आघ्नन्तीति वराहाः । वराहाणां=सूकराणां कुलं=समूहः इति वराहकुलम्, द्रुतं=पलायितञ्च तत् वराहकुलमिति द्रुतवराहकुलं तस्य द्रुतवराहकुलस्य मार्गं= पन्थानं जग्राह=अनुजगाम ।

समासः—पल्वलस्य पंकः पल्वलपंकस्तस्य मध्यस्तस्मात् पल्वलपंकमध्यात् । मुस्तानां प्ररोहास्तेषां कवलास्तेषामवयवास्तैः अनुकीर्णस्तम् मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् । वराहाणां कुलमिति वराहकुलम् द्रुतं च तत् वराहकुलमिति द्रुतवराहकुलम्, तस्य द्रुतवराहकुलस्य । पदानां पंक्तयः पदपंक्तयः आर्द्राश्च ताः पदपंक्तयस्ताभिः आर्द्रपदपंक्तिभिः ।

हिन्दी—राजा दशरथ ने छोटे छोटे तलाबों से निकलकर भागते हुए सुअरों के झुण्ड के उस मार्ग का अनुसरण किया, जो कि ताजे हरे मोथे के ग्रासों के मुट्टों से भरा था (अर्थात् भागने के कारण थकावट से सुअरों के मुख खुल गये, और उन से आधा खाया मोथा निकलकर रास्ते में गिरा था) और लम्बी तथा कीचड़ में सने पैरों की पाँत से (पदचिह्न से) साफ जान पड़ रहा था ॥५९॥

तं वाहनादवनतोत्तरकायमीष-
 द्विध्यन्तमुद्धृतसटाः प्रतिहन्तुमीषुः ।
नात्मानमस्य विविदुः सहसा वराहा
 वृक्षेषु विद्धमिषुभिर्जघनाश्रयेषु ॥६०॥

सं०—तमिति । वराहाः । वाहनादश्वादीषदवनतोत्तरकायं किंचिदानतपूर्वकायं विध्यन्तं तं नृपम् । उद्धृतसटा ऊर्ध्वकेसराः सन्तः । 'सटा जटाकेसरयोः' इति केशवः । प्रतिहन्तुमीषुः प्रतिहर्तुमैच्छन् । अस्य नृपस्येषुभिः सहसा जघनानामाश्रयेष्ववष्टम्भेषु वृक्षेषु विद्धमात्मानं न विविदुः । एतेन वराहाणां मनस्वित्वं नृपस्य हस्तलाघवं चोक्तम् ॥६०॥

अन्वयः—वराहाः वाहनात् ईषत् अवनतोत्तरकायम् विध्यन्तं तम्, उद्धृतसटाः सन्तः प्रतिहन्तुम् ईषुः, अस्य इषुभिः सहसा जघनाश्रयेषु वृक्षेषु विद्धम् आत्मानं न विविदुः ।

व्याख्या—वराहाः=वनसूकराः वाहनात्=अश्वात् ईषत्=किंचित् चीयतेऽस्थ्यादिभिः इति कायः । उत्तरश्चासौ कायः उत्तरकायः । अवनतः=आनतः उत्तरकायः=पूर्वदेहो यस्य स तम् अवनतोत्तरकायम् विध्यन्तं=प्रहरन्तं तं=दशरथं उद्धृताः=ऊर्ध्वं नीताः सटाः=जटाः यैस्ते उद्धृतजटाः सन्तः प्रतिहन्तुं=प्रतिप्रहारं कर्तुम् ईषुः=ऐच्छन् , अस्य=राज्ञः इषुभिः=बाणैः सहसा=झटिति, जघनानां=कायाग्रभागानाम् आश्रयाः=अवष्टम्भास्तेषु जघनाश्रयेषु वृक्षेषु=पादपेषु विध्यते स्म विद्धम् । विद्धं=वेधितं=छिद्रितम् आत्मानं=स्वं न=नहि विविदुः=जानन्ति स्म । एतेन सूकराणां धैर्यं दशरथस्य च हस्तकौशलं च दर्शितमिति ।

समासः—उत्तरश्च तत् कायमिति उत्तरकायम्, अवनतम् उत्तरकायं यस्य स तम् अवनतोत्तरकायम्। उद्धृताः सटाः यैस्ते उद्धृतसटाः। जघनानाम् आश्रयास्तेषु जघनाश्रयेषु।

हिन्दी—घोड़े पर से (घोड़े पर बैठे हुए ही) जरा गरदन को झुकाए हुवे तथा मारने वाले राजा को अपनी गरदन के बालों को जैसे ही प्रतिघात (उल्टा मारने) करने की इच्छा की तभी राजा के बाणों से वे सहसा पेड़ के अवलम्बन भूत वृक्षों में बीन्धे गये, अपने को न जान सके ॥६०॥

तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री

वन्यस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः।

निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुङ्ख-

स्तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात् ॥६१॥

संजी०—तेनेति। अभिघाते रभस औत्सुक्यं यस्य तस्य। अभिहन्तुमुद्यतस्येत्यर्थः। वन्यस्य वने भवस्य महिषस्य नेत्रविवरे नेत्रमध्ये तेन नृपेण विकृष्याकृष्य मुक्तः पत्री शरो विग्रहं महिषदेहं निर्भिद्य विदार्य। शोणितलिप्तो न भवतीत्यशोणितलिप्तः पुङ्खो यस्य स तथोक्तः सन्। तं महिषं प्रथमं पातयामास। स्वयं पश्चात्पपात। 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' (पा. ३।१।४०) इत्यत्रानुशब्दस्य व्यवहितविपर्यस्तप्रयोगनिवृत्त्यर्थत्वात् 'पातयां प्रथममास' इत्यपप्रयोग इति पाणिनीयाः। यथाह वार्तिककारः—'विपर्यासनिवृत्त्यर्थं व्यवहितनिवृत्त्यर्थं च' इति ॥ ६१ ॥

अन्वयः—अभिघातरभसस्य वन्यस्य महिषस्य नेत्रविवरे तेन विकृष्य मुक्तः पत्री विग्रहं निर्भिद्य अशोणितलिप्तपुंखः सन् तं प्रथमं पातयामास स्वयं पश्चात् पपात।

व्याख्या—अभिघाते=प्रतिघाते रभसः=उत्सुकता यस्य स तस्य अभिघातरभसस्य अभिहन्तुं तत्परस्येत्यर्थः। वने भवः वन्यस्तस्य वन्यस्य=आरण्यकस्य मंहते=वर्धते इति महिषस्तस्य महिषस्य=सैरिभस्य नेत्रस्य=चक्षुषः विवरं=छिद्रं तस्मिन् नेत्रविवरे तेन=राज्ञा दशरथेन विकृष्य=आकृष्य

मुक्तः=त्यक्तः पत्राणि=पक्षाः सन्त्यस्यासौ पत्री=बाणः विविधं सुखादि गृह्णातीति विविधैर्व्याधिभिर्वा गृह्यते विग्रहस्तं विग्रहं=महिषस्य शरीरं निर्भिद्य=विदार्य शोणितेन=रुधिरेण लिप्तः शोणितलिप्तः, शोणितलिप्तो न भवतीति अशोणितलिप्तः। अशोणितलिप्तः=रुधिरेणासंस्पृष्टः पुंखः=मूलप्रदेशः, यस्य सः अशोणितलिप्तपुंखः सन् तं=महिषं प्रथमं=पूर्वं पातयामास=पातितवान् स्वयं=शरः पश्चात् भूमौ पतितः।

समासः—अभिघाते रभसो यस्य स तस्य अभिघातरभसस्य। नेत्रस्य विवरं तस्मिन् नेत्रविवरे। शोणितेन लिप्तः शोणितलिप्तः, न शोणितलिप्तः अशोणितलिप्तः अशोणितलिप्तः पुङ्खो यस्य सः अशोणितलिप्तपुंखः।

हिन्दी—सामने से मारने को तैयार (राजा पर झपटने को) जंगली भैंसे की आंख में उस राजा ने ऐसा बाण मारा कि वह बाण भैंसे के शरीर को बीन्धकर स्वयं जरा भी खून से सने बिना पहले भैंसे को जमीन में गिरा दिया और पीछे वह बाण भी जमीन में गिरा। इससे बाण चलाने में राजा की चतुरता शीघ्रता ज्ञात होती है ॥६१॥

प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमाङ्गा-
न्खड्गांश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः।
शृङ्गं स दृप्तविनयाधिकृतः परेषा-
मत्युच्छ्रितं न ममृषे न तु दीर्घमायुः ॥६२॥

संजी०—प्राय इति। नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः शरविशेषैः खड्गान् खड्गाख्यान्मृगान्। 'गण्डके खड्गखड्गिनौ' इत्यमरः। प्रायो बाहुल्येन विषाणपरिमोक्षेण शृङ्गभङ्गेन लघून्यगुरूण्युत्तमाङ्गानि शिरांसि येषां तांश्चकार। न त्ववधीदित्यर्थः। कुतः ? दृप्तविनयाधिकृतो दुष्टनिग्रहनियुक्तः स राजा परेषां प्रतिकूलानामत्युच्छ्रितमुन्नतं शृङ्गं विषाणं प्राधान्यं च। 'शृङ्गं प्राधान्यसान्वोश्च' इत्यमरः। न ममृषे न सेहे। दीर्घमायुर्जीवितकालम्। 'आयुर्जीवितकालो ना' इत्यमरः। न ममृषे इति न। किंतु ममृष एवेत्यर्थः ॥६२॥

अन्वयः—नृपतिः निशितैः क्षुरप्रैः खड्गान् प्रायः विषाणपरिमोचलघूत्तमा-

ङ्गान् चकार, "यतः" दृप्तविनयाधिकृतः सः परेषाम् अत्युच्छ्रितं शृंगं न ममृषे, दीर्घम् आयुः न ममृषे इति न।

व्याख्या—नृन्=जनान् पाति=रक्षतीति नृपतिः=राजा निशितैः=तेजितैः, तीक्ष्णीकृतैः इत्यर्थः, क्षुराणि प्रान्तीति क्षुरप्रास्तैः क्षुरप्रैः बाणविशेषैः खड्गान्=खड्गाख्यमृगविशेषान् प्रायः=बाहुल्येन विषाणानां=शृंगाणां परिमोक्षः=भंगः कर्तनमित्यर्थः इति विषाणपरिमोक्षस्तेन लघूनि=अगुरूणि उत्तमांगानि=शिरांसि येषां ते तान् विषाणपरिमोक्षलघूत्तमांगान् चकार=कृतवान् नतु जघानेत्यर्थः। यतः दृप्तानां=गर्वितानाम् उद्दण्डानामित्यर्थः विनयः=शिक्षणं तस्मिन् अधिकृतः नियुक्तः इति दृप्तविनयाधिकृतः सः=राजा दशरथः परेषां=प्रतिकूलानां शत्रूणामित्यर्थः अत्युच्छ्रितम्=उन्नतं शृणातीति शृंगम्=विषाणं=प्रभुत्वञ्च न ममृषे=न सेहे तु=किन्तु दीर्घम्=आयतम् आयुः=जीवितकालं न ममृषे इति न, किन्तु ममृषे एवेति।

समासः—विषाणानां परिमोक्षस्तेन लघूनि उत्तमांगानि येषां ते तान् विषाणपरिमोक्षलघूत्तमांगान्। दृप्तानां विनयः दृप्तविनयस्तत्र अधिकृत इति दृप्तविनयाधिकृतः।

हिन्दी—राजा ने पैने (धारदार) अर्धचन्द्राकार बाणों से गैण्डों को (या बारहसींगों को) सींगों के काटने से हलके शिरवाले कर दिया। अर्थात् सींग काटकर शिर का भार दूर कर दिया। क्योंकि दुष्टों को दण्ड देने में लगाया हुआ वह राजा, शत्रुओं के उन्नत शिर और प्रभुत्व को ही सहन नहीं कर सका, न कि उनके जीवन को, उसे तो वह अवश्य ही सह लेता था ॥६२॥

व्याघ्रानभीरभिमुखोत्पतितान्गुहाभ्यः
फुल्लासनाग्रविटपानिव वायुरुग्णान्।
शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषा-
त्तूणीचकार शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान् ॥६३॥

मंजी०—व्याघ्रानिति। अभीर्निर्भीकः स धन्वी गुहाभ्योऽभिमुखमुत्पतितान्। वायुना रुग्णान्भग्नान्। फुल्ला विकसिताः। 'अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः'

(पा. ३।२।५५) इति निष्ठातकारस्य लत्वनिपातः । येऽसनस्य सर्जवृक्षस्य । 'सर्जकासनबन्धूकपुष्पप्रियकजीवकाः' इत्यमरः । अग्रविटपास्तानिव स्थितान् । इषुधिभूतानित्यर्थः । व्याघ्राणां चित्ररूपत्वादुपमाने 'फुल्ल'विशेषणम् । शरैः पूरितानि वक्त्ररन्ध्राणि येषां तान्व्याघ्रान् । शिक्षाविशेषेणाभ्यासातिशयेन लघुहस्ततया क्षिप्रहस्ततया निमेषात्तूणीचकार । तूणं शरैः पूरितवानित्यर्थः ।।६३।।

अन्वयः—अभीः सः गुहाभ्यः अभिमुखोत्पतितान् वायुरुग्णान् फुल्लासनाग्रविटपान् इव "स्थितान्" शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान् व्याघ्रान् शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषात् तूणीचकार ।

व्याख्या—नास्ति भीः यस्य सः अभीः=निर्भीकः सः = राजा गूहन्तीति गुहाः=कन्दरास्ताभ्यः गुहाभ्यः अभिमुखं=सम्मुखम् उत्पतिताः=आगतास्तान् वायुना=पवनेन रुग्णाः=भग्नास्तान् वायुरुग्णान् । अस्यति रुजमिति सः असनः= बन्धूकपुष्पः=सर्जकवृक्ष इत्यर्थः । असनस्य अग्रविटपाः=तरुशाखाः, इति असनाग्रविटपाः । फुल्लाः=विकसिताः ये असनाग्रविटपाः इति फुल्लासनाग्रविटपास्तान् फुल्लासनाग्रविटपान् इव=यथा स्थितान् । वक्त्राणां रन्ध्राणि वक्त्ररन्ध्राणि शरैः= बाणैः पूरितानि=भरितानि वक्त्ररन्ध्राणि येषां ते तान् शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान् विशेषेण आसमन्तात् जिघ्रन्तीति व्याघ्रास्तान् व्याघ्रान्=शार्दूलान् शिक्ष्यते विद्यानया सा शिक्षा । शिक्षायाः=शिक्षणस्य विशेषः=अभ्यासातिशयः इति शिक्षाविशेषस्तेन लघुः = क्षिप्रतरः=चपलः हस्तः = करो यस्य सः शिक्षाविशेषलघुहस्तस्तस्य भावस्तत्ता तया शिक्षाविशेषलघुहस्ततया निमेषात्=क्षणात् न तूणी अतूणी, अतूणीं तूणीं कृतवान् तूणीचकार, व्याघ्राणां मुखानि शरैः पूरितवानित्यर्थः ।

व्याख्या—न भीर्यस्य सोऽभीः । अभिमुखमुत्पतिताः अभिमुखोत्पतितास्तान् अभिमुखोत्पतितान् । वायुना रुग्णास्तान् वायुरुग्णान् । असनस्य अग्रविटपाः असनाग्रविटपाः फुल्लाश्च ते असनाग्रविटपाः इति फुल्लासनाग्रविटपास्तान् फुल्लासनाग्रविटपान् । शरैः पूरितानि वक्त्राणां रन्ध्राणि येषां ते तान् शरपूरितवक्त्ररन्ध्रान् । शिक्षायाः विशेषः शिक्षाविशेषस्तेन लघुः हस्तः यस्य सः शिक्षाविशेषलघुहस्तः, तस्य भावस्तत्ता तया शिक्षाविशेषलघुहस्ततया ।

हिन्दी—निर्भीक राजा दशरथ ने, बाण चलाने में सिद्धहस्त होने के कारण

अपनी मांद से निकलकर सामने से झपटने वाले सिंहों को-उनके मुख के छिद्रों को बाणों से भरकर क्षणभर में ही तरकश बना दिया "और वे सिंह ऐसे लग रहे थे" मानो वायु के चलने से टूटे हुए तथा खिले सर्जक वृक्ष की शाखाओं की फुनगियां हैं ॥६३॥

निर्घातोग्रैः कुञ्जलीनाञ्जिघांसुर्ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास सिंहान् ।

नूनं तेषामभ्यसूयापरोऽभूद्वीर्योदग्रे राजशब्दो मृगेषु ॥६४॥

मंजी०—निर्घातेति । कुञ्जेषु लीनान् । 'निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे' इत्यमरः । सिंहाञ्जिघांसुर्हन्तुमिच्छुः । निर्घातो व्योमोत्थित औत्पातिकः शब्दविशेषः । तद्वदुग्रै रौद्रैर्ज्यानिर्घोषैर्मौर्वीशब्दैः क्षोभयामास । अत्रोत्प्रेक्षते—तेषां सिंहानां संबन्धिनि वीर्येणोदग्र उन्नते मृगेषु विषये यो राजशब्दस्तस्मिन्नभ्यसूयापरोऽभून्नूनम् । अन्यथा कथमेतानन्विष्य हन्यादित्यर्थः । 'मृगाणाम्' इति पाठे समासेगुणे भूतत्वात् 'राज'शब्देन संबन्धो दुर्घटः । शालिनीवृत्तम्—'शालिन्युक्ता मतौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इति लक्षणात् ॥६४॥

अन्वयः—कुञ्जलीनान् सिंहान् जिघांसुः निर्घातोदग्रैः ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास तेषां वीर्योदग्रे मृगेषु राजशब्दे अभ्यसूयापरः अभूत् नूनम् ।

व्याख्या—कौ=पृथिव्याम् अजनि, कुञ्जः । कुञ्जेषु=निकुञ्जेषु लीनाः=निभृतं स्थितास्तान् कुञ्जलीनान् सिञ्चन्तीति हिंसन्तीति वा सिंहास्तान् सिंहान्=मृगेन्द्रान् हन्तुमिच्छतीति जिघांसति, जिघांसतीति जिघांसुः=हन्तुमिच्छुः "स राजा दशरथः" निर्घातवत्=आकाशोत्थितौत्पातिकशब्दविशेषवत् उदग्राः=रौद्राः तैः निर्घातोदग्रैः ज्यायाः=मौर्व्याः=धनुर्गुणस्य निर्घोषाः=शब्दास्तैः ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास=पर्याकुलीकृतवान् । अत्रोत्प्रेक्षते तेषां सिंहानां वीर्येण=पराक्रमेण उदग्रः=उन्नतस्तस्मिन् वीर्योदग्रे मृगेषु=हरिणेषु विषये यः राजशब्दस्तस्मिन् राजशब्दे=मृगराज इति शब्दे, अभ्यसूयायाम् परगुणेषु दोषारोपणे परः=संलग्नः इत्यभ्यसूयापरः अभूत्=जात इति नूनमिति उत्प्रेक्षयाम् । अन्यथा चेत् कथं सिंहान् अन्विष्य हन्यादिति ।

समासः—कुञ्जेषु लीनाः कुञ्जलीनास्तान् कुञ्जलीनान् । निर्घातवत् उदग्रास्तैः निर्घातोदग्रैः । ज्यायाः निर्घोषास्तैः ज्यानिर्घोषैः । अभ्यसूयायां परः अभ्यसूया-

परः । वीर्येण उदग्रस्तस्मिन् वीर्योदग्रे । राजा इति शब्दः राजशब्दस्तस्मिन् राजशब्दे ।

हिन्दी—झाड़ियों में छिपकर बैठे हुए सिंहों को मारने के इच्छुक राजा ने बिजली की कड़क के समान भयंकर अपने धनुष की टंकार से उनको भड़का दिया। मानो सिंहों के पराक्रम से उन्नत (ऊंचा) मृगराज-शब्द में राजा को ईर्ष्या हो गई थी ॥६४॥

तान्हत्वा गजकुलबद्धतीव्रवैरान्काकुत्स्थः कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान् ।
आत्मानं रणकृतकर्मणां गजानामानृण्यं गतमिव मार्गणैरमंस्त ॥६५॥

संजी०—तानिति। काकुत्स्थो दशरथः। गजकुलेषु बद्धं तीव्रं वैरं यैस्तान्। कुटिलेषु नखाग्रेषु लग्ना मुक्ता गजकुम्भमौक्तिकानि येषां तान्सिंहान्हत्वा आत्मानं रणेषु कृतकर्मणां कृतोपकाराणां गजानामानृण्यमनृणत्वं मार्गणैः शरैः। 'मार्गणो याचके शरे' इति विश्वः। गतं प्राप्तवन्तमिवामंस्त मेने ॥६५॥

अन्वयः—काकुत्स्थः गजकुलबद्धतीव्रवैरान् कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान् तान् हत्वा, आत्मानं रणकृतकर्मणां गजानाम् आनृण्यं मार्गणैः गतम् इव अमंस्त।

व्याख्या—ककुत्=वृषांगः। ककुदि (श्रेष्ठे) तिष्ठतीति ककुत्स्थः=कश्चित् राजा। ककुत्स्थस्यापत्यं पुमान् काकुत्स्थः=राजा दशरथः, गजानां=हस्तिनां कुलानि=समूहास्तेषु बद्धं=कीलितं तीव्रं=गाढम्=अतिशयितमित्यर्थः वैरं=विद्वेषः यैस्ते तान् गजकुलबद्धतीव्रवैरान्, नखानां=कररुहाणाम् अग्राणि नखाग्राणि, कुटिलानि=आभुग्नानि च तानि नखाग्राणि इति कुटिलनखाग्राणि तेषु लग्नाः=सक्ताः मुक्ताः=गजकुम्भमौक्तिकानि येषां ते तान्=कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान् तान्=सिंहान् हत्वा=निहत्य आत्मानं=स्वं रणेषु=युद्धेषु कृतानि=विहितानि कर्माणि=उपकाराः यैस्ते तेषां रणकृतकर्मणां गजानां=हस्तिनां न ऋणं यस्यासौ अनृणः। अनृणस्य भावः कर्म वा आनृण्यं=अनृणत्वं=ऋणराहित्यं मार्गणैः=शरैः=बाणैः गतं=प्राप्तम् इव=यथा अमंस्त=मेने।

समासः—गजानां कुलानि गजकुलानि तेषु बद्धं तीव्रं वैरंयैस्ते तान् गजकुलबद्धतीव्रवैरान्। कुटिलानि च तानि नखानामग्राणि इति कुटिलनखाग्राणि तेषु लग्नाः मुक्ता यैस्ते तान् कुटिलनखाग्रलग्नमुक्तान्। रणेषु कृतानि कर्माणि यैस्ते तेषां रणकृतकर्मणाम्।

हिन्दी—ककुत्स्थवंशी दशरथने, हाथियों के कुलसे जबरदस्त वैर रखने वाले, तथा जिनके नोकीले नखों के अग्रभाग में गजकुम्भ के मोती लगे हैं ऐसे सिंहों को मारकर मानो अपने बाणों से उन हाथियों के ऋण से अपने को मुक्त समझ लिया जिन हाथियों ने युद्धस्थल में राजा का उपकार किया था ॥६५॥

चमरान्परितः प्रवर्तिताश्वः क्वचिदाकर्णविकृष्टभल्लवर्षी ।
नृपतीनिव तान्वियोज्य सद्यः सितबालव्यजनैर्जगाम शान्तिम् ॥६६॥

संजी०—चमरानिति । क्वचिच्चमरान्परितः । 'अभितःपरितःसमया–' (वा. १४४२) इत्यादिना द्वितीया । प्रवर्तिताश्वः प्रधाविताश्वः । आकर्णविकृष्ट-भल्लानिषुविशेषान्वर्षतीति तथोक्तः स नृपः । नृपतीनिव तांश्चमरान्सितबालव्यजनैः शुभ्रचामरैर्वियोज्य विरह्य्य सद्यः शान्तिं जगाम । शूराणां परकीयमैश्वर्यमेवासह्यम्, न तु जीवितमिति भावः । औपच्छन्दसिकं वृत्तम् ॥६६॥

अन्वयः—क्वचित् चमरान् परितः प्रवर्तिताश्वः आकर्णविकृष्टभल्लवर्षी सः नृपतीन् इव तान् सितबालव्यजनैः वियोज्य सद्यः शान्तिं जगाम ।

व्याख्या—क्वचित्–प्रदेशे चमरान्=मृगविशेषान् परितः = सर्वतः प्रवर्तिताः= प्रधाविताः अश्वाः=तुरंगाः येन स प्रवर्तिताश्वः, आकर्णं = कर्णमभिव्याप्य विकृष्टाः= संधानिता इत्यर्थः, च ते भल्लाः=बाणविशेषा इति आकर्णविकृष्टभल्लास्तान् वर्षति= प्रक्षिपतीति आकर्णविकृष्टभल्लवर्षी स नृपः, नृपतीन्=भूपालान् इव = यथा तान्= चमरान् बालस्य = चमरीपुच्छस्य व्यजनानि=चामराणि इति बालव्यजनानि, सितानि=श्वेतानि च तानि बालव्यजनानि च तैः सितबालव्यजनैः=प्रकीर्णकैः वियोज्य=विरह्य्य सद्यः = सपदि तत्क्षणं शान्तिं=सन्तोषं जगाम = गतः । शूराः परकीयमैश्वर्यं न सहन्ते जीवितं तु सह्यमेव ।

समासः—प्रवर्तिताः अश्वाः येन स प्रवर्तिताश्वः । आकर्णं विकृष्टाश्च ते भल्लाः आकर्णविकृष्टभल्लास्तान् वर्षतीति आकर्णविकृष्टभल्लवर्षी । बालस्य व्यजनानि बालव्यजनानि । बालैर्वा निर्मितानि व्यजनानि बालव्यजनानि सितानि च तानि बालव्यजनानि च सितबालव्यजनानि, तैः सितबालव्यजनैः ।

हिन्दी—किसी स्थान में चमरियों (चमरीगायों) के चारों ओर घोड़े को दौड़ानेवाले और कान तक खींचकर भाले की नोक वाले बाणों की वर्षा करने

वाले राजा दशरथ ने उन चमर-मृगों के श्वेत चामरों को काटकर उसी प्रकार शान्ति को प्राप्त किया जैसे कि राजाओं को चँवरों से रहित करके सुख प्राप्त किया है। अर्थात् शूरवीर राजा दूसरे के छत्र-चामर को ही सहन नहीं कर सकता है, जीवित रहने को सहन कर सकता है ॥६६॥

अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तं मयूरं
न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार ।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः ॥६७॥

संजी०--अपीति । स नृपस्तुरगसमीपादुत्पतन्तमपि । सुप्रहारमपीत्यर्थः । रुचिरकलापं भासुरबर्हम् । मह्यामतिशयेन रौतीति मयूरो बर्ही । पृषोदरादित्वात्साधुः । तं चित्रेण माल्येनानुकीर्णे रतौ विगलितबन्धे प्रियायाः केशपाशे सपदि गतमनस्कः प्रवृत्तचित्तः । 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' (पा. ११४।६५१) इति कप्प्रत्ययः । न बाणलक्ष्यीकार । न प्रजहारेत्यर्थः ॥६७॥

अन्वयः—सः तुरगसमीपाद् उत्पतन्तम् अपि रुचिरकलापम् मयूरं चित्रमाल्यानुकीर्णे रतिविगलितबन्धे प्रियायाः केशपाशे सपदि गतमनस्कः न बाणलक्ष्यीचकार ।

व्याख्या—सः=राजा तुरेण=त्वरया गच्छतीति तुरगः, तुरगस्य अश्वस्य समीपं=सन्निकटम्=अन्तिकमिति तुरगसमीपं तस्मात् तुरगसमीपात् उत्पतन्तम्=उद्गच्छन्तम् अपि रुचिरः=भासुरः कलापः=बर्हः यस्य स तं रुचिरकलापम् मयूरम्=बर्हिणम् चित्रम्=अनेकविधञ्च तन्माल्यं=माला, इति चित्रमाल्यं तेन अनुकीर्णः=व्याप्तस्तस्मिन् चित्रमाल्यानुकीर्णे रतौ=सुरते विगलितः=त्रुटितः बन्धः=ग्रथनं यस्य स तस्मिन् रतिविगलितबन्धे प्रियायाः स्वभार्यायाः केशानां पाशः केशपाशस्तस्मिन् केशपाशे=कचबन्धे=शिखायामित्यर्थः सपदि=तत्क्षणे मयूरावलोकनसमये इत्यर्थः गतं=प्रवृत्तं मनः=चित्तं यस्य स गतमनस्कः न=नहि बाणानां लक्ष्यं बाणलक्ष्यं, न बाणलक्ष्यमिति अबाणलक्ष्यम्, अबाणलक्ष्यं बाणलक्ष्यं कृतवान् इति बाणलक्ष्यीचकार=प्रहारं कृतवान् ।

समासः—तुरगस्य समीपं तस्मात् तुरगसमीपात्। रुचिरः कलापो यस्य स रुचिरकलापस्तं रुचिरकलापम्। चित्रैः माल्यैः अनुकीर्णः चित्रमाल्यानुकीर्णस्तस्मिन् चित्रमाल्यानुकीर्णे। रतौ विगलितः बन्धो यस्य स तस्मिन् रतिविगलितबन्धे। केशानां पाशः तस्मिन् केशपाशे। गतं मनः यस्य स गतमनस्कः।

हिन्दी—उस राजा दशरथ ने, घोड़े के पास से फड़फड़ाकर उड़ते हुए भी, तथा चमकीले सुन्दर पंखवाले मोर को अपने बाण का लक्ष्य नहीं किया "क्योंकि" नाना रंग बिरंगे पुष्पों की मालाओं से गुथे हुए अपनी प्रियाओं के जूड़े में उनका मन तुरन्त चला गया था। अर्थात् प्रिया के जूड़े का स्मरण हो जाने से उस जूड़े के समान सुन्दर पंख वाले मोरों को नहीं मारा ॥६७॥

तस्य कर्कशविहारसंभवं स्वेदमाननविलग्नजालकम्।

आचचाम सतुषारशीकरो भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः ॥६८॥

तस्येति। कर्कशविहारादतिव्यायामात्संभवो यस्य तम्। आनने विलग्नजालकं बद्धकदम्बकं तस्य नृपस्य स्वेदम्। सतुषारशीकरः शिशिराम्बुकणसहितः। भिन्ना निर्दलिताः पल्लवानां पुटाः कोशा येन सः। वनानिल आचचाम। जहारेत्यर्थः। रथोद्धतावृत्तमेतत् ॥६८॥

अन्वयः—कर्कशविहारसम्भवम् आननविलग्नजालकम् तस्य स्वेदम् सतुषारशीकरः भिन्नपल्लवपुटः वनानिल आचचाम।

व्याख्या—कर्कशः=कठोरः चासौ विहारः=व्यायामः इति कर्कशविहारः कर्कशविहारात् सम्भवः=उत्पत्तिर्यस्य स तं कर्कशविहारसम्भवम्, आनने=मुखे विलग्नं=बद्धं जालकं कदम्बकं यस्य स तम् आननविलग्नजालकम् तस्य=राज्ञः दशरथस्य स्विद्यतेऽनेन अङ्गमिति स्वेदस्तं=धर्मम् तुषाराणां-हिमानां शीकराः= अम्बुकणाः इति तुषारशीकरास्तैः सहितः सतुषारशीकरः पल्लवानां=पत्राणां पुटाः=कोशाः इति पल्लवपुटाः। भिन्नाः=निर्दलिताः पल्लवपुटाः येन स भिन्नपल्लवपुटः वनस्य=अरण्यस्य अनिलः वायुः वनानिलः आचचाम अपिबत्।

समासः—कर्कशश्चासौ विहारश्चेति कर्कशविहारस्तस्मात् कर्कशविहारात् सम्भवो यस्य स तं कर्कशविहारसंभवम्। आनने विलग्नं जालकं यस्य स तम्

आननविलग्नजालकम् । तुषाराणां शीकरैः सह वर्तमानः सतुषारशीकरः । भिन्नाः पल्लवानां पुटाः येन स भिन्नपल्लवपुटः । वनस्य अनिलः वनानिलः ।

हिन्दी—कठोर परिश्रम से निकले हुए, और राजा के मुख में छाये हुए पसीने को शीतल जल की बून्दों वाले तथा पत्तों के पुटों को विकसित करने वाले वन के पवन ने चाट लिया। अर्थात् राजा के मुख के पसीने को शीतल मन्द सुगन्ध पवन ने सुखा दिया ॥६८॥

इति विस्मृतान्यकरणीयमात्मनः सचिवावलम्बिधुरं धराधिपम् ।
परिवृद्धरागमनुबन्धसेवया मृगया जहार चतुरेव कामिनी ॥६९॥

संजी०—इतीति । इति पूर्वोक्तप्रकारेण । आत्मनो विस्मृतमन्यत्करणीयं कार्यं येन तम् । विस्मृतात्मकार्यान्तरमित्यर्थः । सचिवैरवलम्बिता धृता धूर्यस्य तम् । 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' (पा. ५।४।७४) इति समासान्तोऽप्रत्ययः । अनुबन्धसेवया संततसेवया परिवृद्धो रागो यस्य तं धराधिपम् । मृग्यन्ते यस्यां मृगा इति मृगया । 'परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाट्यादीनामुपसंख्यानम्' (वा. २२१५) इति शप्रत्ययान्तो निपातः । चतुरा विदग्धा कामिनीव । जहाराचकर्ष । 'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥' इति भावः ॥६९॥

अन्वयः—इति आत्मनः विस्मृतान्यकरणीयं सचिवावलम्बितधुरं अनुबन्धसेवया परिवृद्धरागं नराधिपं मृगया चतुरा कामिनी इव जहार ।

व्याख्या—इति=पूर्वोक्तप्रकारेण आत्मनः=स्वस्य विस्मृतानि=अन्तर्गतानि=अचिन्तितानीत्यर्थः अन्यानि=अपराणि करणीयानि=कार्याणि येन स तं विस्मृतान्यकरणीयम् सचिवैः=मन्त्रिभिः अवलम्बिता=धृता धूः=राज्यभारो यस्य स तं सचिवावलम्बितधुरं, अनुबन्धं=सततं सेवा=सेवनं भजनमिति अनुबन्धसेवा तया अनुबन्धसेवया निरन्तरमृगयाखेलनेनेत्यर्थः, परिवृद्धः=वृद्धि गतः रागः=अनुरागः=तृष्णेत्यर्थः यस्य स तं परिवृद्धरागम् धरायाः=पृथिव्याः अधिपः=स्वामी तं धराधिपम्=दशरथम् चतुरा=विदग्धा कामिनी=सुन्दरी इव=यथा जहार=आचकर्ष।

समासः—विस्मृतम् अन्यत् करणीयं येन स विस्मृतान्यकरणीयः, तं

विस्मृतान्यकरणीयम् । सचिवैः अवलम्बिता धूः यस्य स तं सचिवावलम्बितधुरम् । परिवृद्धः रागः यस्य स परिवृद्धरागस्तं परिवृद्धरागम् । धरायाः अधिपः धराधिपस्तं धराधिपम् । अनुबन्धं सेवा तया अनुबन्धसेवया ।

हिन्दी—इस प्रकार अपने दूसरे काम को भूले हुए, और मन्त्रियों पर राज्यभार छोड़े हुए, तथा निरन्तर सेवन करने से (शिकार पर) अधिक आसक्तिवाले, पृथिवीपति दशरथ को आखेट (शिकार) ने चतुर स्त्री की तरह अपने वश में कर लिया । अर्थात् सब भूलकर शिकार खेलने में ही लगे रहे ॥६९

स ललितकुसुमप्रवालशय्यां ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथाम् ।
नरपतिरतिवाहयांबभूव क्वचिदसमेतपरिच्छदस्त्रियामाम् ॥७०॥

सं०—स इति । स नरपतिः ललितानि कुसुमानि प्रवालानि पल्लवानि। शय्या यस्यां ताम् । ज्वलिताभिर्महौषधिभिरेव दीपिकाभिः सनाथम् । तत्प्रधानामित्यर्थः । त्रियामां रात्रिं क्वचिदसमेतपरिच्छदः । परिहृतपरिजनः सन्नित्यर्थः । अतिवाहयांबभूव गमयामास । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥७०॥

अन्वयः—स नरपतिः ललितकुसुमप्रवालशय्याम्, ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथाम् त्रियामाम् क्वचित् असमेतपरिच्छदः सन् अतिवाहयांबभूव ।

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः नराणां=मनुष्याणां पतिः=स्वामी इति नरपतिः= दशरथः ललितानि = मनोहराणि=कोमलानीत्यर्थः कुसुमानि=पुष्पाणि प्रवालानि= पल्लवानि एव शय्या=शयनीयं यस्यां सा तां ललितकुसुमप्रवालशय्याम्, ज्वलिताः=दीप्ताश्च ताः महौषधयः=संजीविनीप्रभृतय एव दीपिकाः=दीपाः इति ज्वलितमहौषधिदीपिकाः, ताभिः सनाथा=युक्ता तां ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथां, त्रयो यामा यस्यां सा त्रियामा, त्रीन्=धर्मादीन् यापयति=निरवकाशीकरोतीति वा त्रियामा तां त्रियामां=रात्रिं क्वचित्=प्रदेशे काले च समेताः=संगताः परिच्छदाः= परिजनाः यस्य स समेतपरिच्छदः न समेतपरिच्छद इति असमेतपरिच्छदः=त्यक्तपरिजनः सन् अतिवाहयांबभूव=गमयामास ।

समासः—नराणां पतिः नरपतिः । ललितानि कुसुमानि प्रवालानि एव शय्या यस्यां सा तां ललितकुसुमप्रवालशय्याम् । ज्वलिताः महौषधय एव दीपिकाः; इति ज्वलितमहौषधिदीपिकास्ताभिः सनाथा, तां ज्वलितमहौषधिदीपिकासनाथाम् ।

त्रयः यामाः यस्याः सा तां त्रियामाम् । समेताः परिच्छदाः यस्य स समेतपरिच्छदः, न समेतपरिच्छद इति असमेतपरिच्छदः ।

हिन्दी—आखेट के प्रेमी नरेन्द्र दशरथ ने अपने सेवकों को छोड़ अकेले ही कभी-कभी कहीं पर तीन पहर वाली उस रात्रि को बिताया, जिसमें कि कोमल फूलपत्ते ही शय्या थी और जलती हुई संजीवनी आदि जड़ी बूटी छोटे-छोटे दीपक थे। अर्थात् राजा को फूल-पत्ते बिछाकर संजीविनी के प्रकाश में अकेले ही रात बितानी पड़ी ॥७०॥

उषसि स गजयूथकर्णतालैः पटुपटहध्वनिभिर्विनीतनिद्रः ।
अरमत मधुराणि तत्र शृण्वन्विहगविकूजितबन्दिमङ्गलानि ॥७१॥

उषसीति । उषसि प्रातः पटूनां पटहानामिव ध्वनिर्येषां तैर्गजयूथानां कर्णैरेव तालैर्वाद्यप्रभेदैर्विनीतनिद्रः स नृपस्तत्र वने मधुराणि विहगानां विहंगानां विकूजितान्येव बन्दिनां मङ्गलानि मङ्गलगीतानि शृण्वन्नरमत ॥७१॥

अन्वयः—उषसि पटुपटहध्वनिभिः विनीतनिद्रः सः, तत्र मधुराणि विहगविकूजितबन्दिमंगलानि शृण्वन् अरमत ।

व्याख्या—पट इति शब्दं जहतीति पटहाः, पटूनां=दक्षाणां=प्रशस्तध्वनिमतामित्यर्थः पटहानां=दुन्दुभीनामिव ध्वनिः शब्दो येषां ते तैः पटुपटहध्वनिभिः । गजानां=हस्तिनां यूथानि=समूहास्तेषां कर्णाः=श्रोत्राणि एव तालाः=वाद्यप्रभेदाः इति गजयूथकर्णतालास्तैः गजयूथकर्णतालैः । विनीता=अपगतः विनष्टा निद्रा=स्वापः यस्य स विनीतनिद्रः सः=राजा दशरथः तत्र=अरण्ये मधुराणि=मनोहराणि, बन्दिनां=स्तुतिपाठकानां मंगलानि=मंगलगीतानि इति बन्दिमंगलानि । विहगानां=पक्षिणां विकूजितानि=विरुतानि एव बन्दिमंगलानि, इति विहगविकूजितमंगलानि शृण्वन्=आकर्णयन् अरमत=रेमे ।

समासः—पटूनां पटहानां ध्वनिरिव ध्वनिः येषां ते तैः पटुपटहध्वनिभिः । गजानां यूथानि तेषां कर्णाः इति गजयूथकर्णास्ते एव तालास्तैः गजयूथकर्णतालैः । विनीता निद्रा यस्य स विनीतनिद्रः । बन्दिनां मंगलानि, बन्दिमंगलानि । विहगानां विकूजितानि एव बन्दिमंगलानीति विहगविकूजितबन्दिमंगलानि, तानि ।

हिन्दी—प्रातःकाल, तेज नगाड़ों के समान शब्द करने वाले, हाथियों के

झुण्डों के कानरूपी बाजों (फटफट) से जागे हुए राजा दशरथ वन में भी मनोहर पक्षियों के मधुर शब्दरूपी चारण लोगों के मांगलिक गीतों को सुनकर आनन्दित (प्रसन्न) होते थे ॥७१॥

अथ जातु रुरोर्गृहीतवर्त्मा विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः ।
श्रमफेनमुचा तपस्विगाढां तमसां प्राप नदीं तुरंगमेण ॥७२॥

संजी०—अथेति । अथ जातु कदाचिद्रुरोर्मृगस्य गृहीतवर्त्मा स्वीकृतरुरुमार्गो विपिने वने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः । तुरगवेगादित्यर्थः । श्रमेण फेनमुचा । सफेनं स्विद्यतेत्यर्थः । तुरंगमेण तपस्विभिर्गाढामवगाढां सेवितां तमसां नाम नदीं सरितं प्राप ॥७२॥

अन्वयः—अथ जातु रुरोः गृहीतवर्त्मा विपिने पार्श्वचरैः अलक्ष्यमाणः श्रमफेनमुचा तुरंगमेण तपस्विगाढां तमसां नदीं प्राप ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् जातु=कदाचित् काले रौतीति रुरुस्तस्य रुरोः= मृगस्य गृहीतं=स्वीकृतं वर्त्म=मार्गो येन स गृहीतवर्त्मा विपिने=वने पार्श्वे=भागद्वये चरन्तीति पार्श्वचरास्तैः पार्श्वचरैः=सेवकैः लक्ष्यतेऽसौ लक्ष्यमाणः, न लक्ष्यमाणः अलक्ष्यमाणः=अश्ववेगात् अदृश्यमानः स राजा फेनं=डिण्डीरं लालाम् मुञ्चतीति फेनमुक् श्रमेण=आयासेन फेनमुक् इति श्रमफेनमुक् तेन फेनमुचा = सफेनं स्विद्यता तुरेण गच्छतीति तुरंगमस्तेन तुरंगमेण=अश्वेन तपोऽस्ति येषु ते तपस्विनः तैः तपस्विभिः=तापसैः गाढा=अवगाढा=सेविता तां तपस्विगाढां तमसां=तमसानाम्नीं नदीं=सरितं प्राप=अगमत् ।

समासः—गृहीतं वर्त्म येन स गृहीतवर्त्मा । पार्श्वयोः चराः पार्श्वचरास्तैः पार्श्वचरैः । न लक्ष्यमाण इति अलक्ष्यमाणः । श्रमेण फेनं मुञ्चतीति श्रमफेनमुक् तेन श्रमफेनमुचा । तपस्विभिः गाढा तां तपस्विगाढाम् ।

हिन्दी—इसके बाद किसी दिन रुरुनामक मृग का पीछा करते हुए, और वन में अपने सेवकों से अलक्ष्य (अदृश्य) हुए (अर्थात् बिछुड़े हुए) राजा दशरथ, थकावट से झाग, पसीना बहानेवाले घोड़े पर चढ़कर, उस तमसा नामकी नदी के तीर पर पहुंच गये, जिसमें तपस्विजन स्नान करते थे, वहाँ रहते थे ॥७२॥

कुम्भपूरणभवः पटुरुच्चैरुच्चचार निनदोऽम्भसि तस्याः ।
तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की शब्दपातिनमिषुं विससर्ज ॥७३॥

संजी०—कुम्भेति । तस्यास्तमसाया अम्भसि कुम्भपूरणेन भव उत्पन्नः । पचाद्यच् । पटुर्मधुरः । उच्चैर्गम्भीरो निनदो ध्वनिरुच्चचारोदियाय । तत्र निनदे स नृपः । द्विरदबृंहितं शङ्कत इति द्विरदबृंहितशङ्की सन्, शब्देन शब्दानुसारेण पततीति शब्दपातिनमिषुं विससर्ज । स्वागतावृत्तम् ॥७३॥

अन्वयः—तस्याः अम्भसि कुम्भपूरणसम्भवः पटुः उच्चैः निनदः उच्चचार, तत्र सः द्विरदबृंहितशंकी सन् शब्दपातिनम् इषुं विससर्ज ।

व्याख्या—तस्याः=तमसायाः अम्भसि=जले, कं=जलम् उम्भतीति कुम्भः । कुं=भुवं, कुत्सितं वा उम्भतीति कुम्भः कुम्भस्य पूरणं कुम्भपूरणं तेन कुम्भपूरणेन= कलशपूरणेन संभवः=उत्पन्नः, इति कुम्भपूरणसंभवः पटुः=मधुरः उच्चैः=गभीरः निनदः=शब्दः उच्चचार=उदियाय, उत्पन्न इत्यर्थः । तत्र=तस्मिन् निनदे सः=राजा दशरथः द्वौ रदौ यस्य स द्विरदः । द्विरदस्य=गजस्य बृंहितं=गर्जितं शंकते=आशंकते यः स द्विरदबृंहितशंकी सन् शब्देन=शब्दानुसारेण पतति=गच्छतीति शब्दपाती तं शब्दपातिनम् = शब्दवेधिनम् इषुं=बाणं विससर्ज=तत्याज । हस्तिगर्जनभ्रमेण कलशपूरणध्वनिं लक्ष्यीकृत्य शब्दवेधिबाणं प्रक्षिप्तवानित्यर्थः ।

समासः—कुम्भस्य पूरणं कुम्भपूरणं तेन संभवः कुम्भपूरणसंभवः । द्विरदस्य बृंहितमिति द्विरदबृंहितं शंकते, इति द्विरदबृंहितशंकी । शब्देन पतति तच्छीलः शब्दपाती तं शब्दपातिनम् ।

हिन्दी—उस तमसा नदी के जल में घड़े के भरने से उत्पन्न हुआ मधुर एवं गम्भीर शब्द (आवाज) उच्चरित हुआ, और उस शब्द में राजा दशरथ ने हाथी की गर्जना की आशंका करके शब्दवेधी बाण छोड़ दिया । भाव यह है कि श्रवणकुमार अपने अन्धे माता-पिता के लिये जल भर रहा था, और राजा ने हाथी की गर्जना के भ्रम में उसे लक्ष्य करके शब्दवेधी बाण चला दिया ॥७३॥

नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पङ्क्तिरथो विलङ्घ्य यत् ।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ॥७४॥

संजी०—नृपतेरिति । तत्कर्म नृपतेः क्षत्रियस्य प्रतिषिद्धमेव निषिद्धमेव यदेतत्कर्म गजवधरूपं पङ्क्तिरथो दशरथो विलङ्घ्य 'लक्ष्मीकामो युद्धादन्यत्र करिवधं न कुर्यात्' इति शास्त्रमुल्लङ्घ्य कृतवान् । ननु विदुषस्तस्य कथमीदृग्विचेष्टितमत आह—अपथ इति । श्रुतवन्तोऽपि विद्वांसोऽपि रजोनिमीलिता रजोगुणावृताः सन्तः । न पन्था इत्यपथम् । 'पथो विभाषा' (पा. ५।४।७२) इति वा समासान्तः । 'अपथं नपुंसकम्' (पा. ।२।४३०) इति नपुंसकम् । 'अपन्थास्त्वपथं तुल्ये' इत्यमरः । तस्मिन्नपथेऽमार्गे पदमर्पयन्ति हि निक्षिपन्ति हि । प्रवर्तन्त इत्यर्थः । वैतालीयं वृत्तम् ॥७४॥

अन्वयः—यत् नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत् पंक्तिरथः विलङ्घ्य कृतवान् हि श्रुतवन्तः अपि रजोनिमीलिताः सन्तः अपथे पदम् अर्पयन्ति ।

व्याख्या—यत्=कर्म नृपतेः=राज्ञः क्षत्रियस्येत्यर्थः प्रतिषिद्धं=निषिद्धं धर्मशास्त्रविरुद्धत्वादित्यर्थः, एवेति निश्चये तत्=कर्म हस्तिवधरूपमित्यर्थः पञ्चद्वयं प्रमाणमस्येति पङ्क्तिः=दशसंख्या । पंक्तिषु=दशसु दिक्षु रथो यस्य स पंक्तिरथः=राजा दशरथः विलंघ्य=उल्लंघ्य 'लक्ष्मीकामो युद्धादन्यत्र करिवधं न कुर्यादि'ति शास्त्रमिति शेषः, कृतवान्=विहितवान् । हि=यतः श्रुतं=शास्त्रमस्ति येषां ते श्रुतवन्तः =विद्वांसः अपि रजसा=रजोगुणेन निमीलिताः=व्याप्ताः इति रजोनिमीलिताः सन्तः न पन्था इति अपथम् तस्मिन् अपथे=अमार्गे पदं=चरणम् अर्पयन्ति निक्षिपन्ति । अमार्गे प्रवृत्ता भवन्तीत्यर्थः ।

समासः—पंक्तिषु गतः रथः यस्य स पंक्तिरथः । रजसा निमीलिताः रजोनिमीलिताः । न पन्थाः इत्यपथम्, तस्मिन् अपथे । नॄन् पातीति नृपतिस्तस्य नृपतेः ।

हिन्दी—जो कार्य राजा के लिये निषिद्ध (वर्जित) है, वही कार्य (राजा को युद्ध से अन्यत्र हाथी मारना शास्त्र से वर्जित है) । राजा दशरथ ने शास्त्र का उल्लंघन करके किया । "इसलिये कि" विद्वान् लोग भी रजोगुण से आच्छादित होकर कुमार्ग में प्रवृत्त हो ही जाते हैं ॥७४॥

हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्ण-

स्तस्यान्विष्यन्वेतसगूढं प्रभवं सः ।

शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं

तापादन्तःशल्य इवासीत्क्षितिपोऽपि ॥७५॥

संजी०—हा तातेति । हेत्यार्तौ । तातो जनकः । 'हा विषादशुगर्तिषु' इति, 'तातस्तु जनकः पिता' इति चामरः, हा तातेति क्रन्दितं क्रोशनमाकर्ण्य । विषण्णो भग्नोत्साहः सन् । तस्य क्रन्दितस्य वेतसैर्गूढं छन्नम् । प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । तमन्विष्यञ्छल्येन शरेण प्रोतं स्यूतम् । 'शल्यं शङ्कौ शरे वंशे' इति विश्वः । सकुम्भं मुनिपुत्रं प्रेक्ष्य स क्षितिपोऽपि तापाद्दुखादन्तः शल्यं यस्य सोऽन्तः-शल्य इवासीत् । मत्तमयूरं वृत्तम् ॥७५॥

अन्वयः—हा तात ! इति क्रन्दितम् आकर्ण्य विषण्णः सन्, तस्य वेतसगूढं प्रभवम् अन्विष्यन् शल्यप्रोतं सकुम्भं मुनिपुत्रं प्रेक्ष्य सः क्षितिपः अपि तापात् अन्तःशल्य इव आसीत् ।

व्याख्या— हा=दुःखे, तात=जनक ! इति=इत्थं क्रन्दितं=रुदितम् आकर्ण्य=श्रुत्वा विषण्णः=हतोत्साहः खिन्नः सन् तस्य=क्रन्दनस्य, वेतसैः=वानीरैः गूढः=छन्नस्तं वेतसगूढम् प्रभवत्यस्मादिति प्रभवस्तं प्रभवं=कारणम् अन्विष्यन्=अनुसंदधानः शल्येन=बाणेन प्रोतः=विद्धस्तं शल्यप्रोतं कुम्भेन=कलशेन सहितः सकुम्भस्तं सकुम्भं=गृहीतकलशं मुनेः पुत्रस्तं मुनिपुत्रं=श्रवणकुमारं प्रेक्ष्य=विलोक्य सः=प्रसिद्धः क्षितिं=भुवं पाति रक्षतीति क्षितिपः=दशरथः तापात्=सन्तापात्=दुःखादित्यर्थः अन्तः हृदये शल्यं=शंकुः यस्य सः अन्तःशल्य इव=यथा आसीत्=जातः ।

समासः—वेतसैः गूढस्तं वेतसगूढम् । शल्येन प्रोतः शल्यप्रोतस्तं शल्यप्रोतम् । कुम्भेन सहितः सकुंभस्तं सकुम्भम् । मुनेः पुत्रस्तं मुनिपुत्रम् । अन्तः शल्यं यस्यासौ अन्तःशल्यः ।

हिन्दी—"हाय पिताजी !" इस प्रकार के करुण क्रन्दन (रोने) को सुनकर दुःखित होकर, बेंत के झाड़ों से छिपे हुए, उस चिल्लाने के कारण को खोजते हुए (राजा ने) बाण से बिंधा हुआ तथा घड़ा लिये मुनिपुत्र श्रवणकुमार को देखकर वह भूपाल दुःख के कारण ऐसा हो गया मानो इनको ही हृदय में बाण लगा हो ॥७५॥

तेनावतीर्य तुरगात्प्रथितान्वयेन
पृष्टान्वयः स जलकुम्भनिषण्णदेहः ।
तस्मै द्विजेतरतपस्विसुतं स्खलद्भि-
रात्मानमक्षरपदैः कथयांबभूव ॥७६॥

संजी०—तेनेति । प्रथितान्वयेन प्रख्यातवंशेन । एतेन पापभीरुत्वं सूचितम् । तेन राज्ञा तुरगादवतीर्य पृष्टान्वयो ब्रह्महत्याशङ्कया पृष्टकुलः । जलकुम्भनिषण्णदेहः स मुनिपुत्रस्तस्मै राज्ञे स्खलद्भिः । अशक्तिवशादर्धोच्चारितैरित्यर्थः । अक्षरप्रायैः पदैरक्षरपदैरात्मानं द्विजेतरश्चासौ तपस्विसुतश्च तं द्विजेतरतपस्विसुतं कथयांबभूव । न तावत् त्रैवर्णिक एवाहमस्मि, किंतु करणः । 'वैश्यात्तु करणः शूद्रयां' (आचार.-४।९२) इति याज्ञवल्क्यः । कुतो ब्रह्महत्येत्यर्थः । तथा च रामायणे—(अयोध्या.-६३।५०) 'ब्रह्महत्याकृतं पापं हृदयादपनीयताम् । न द्विजातिरहं राजन्! मा भूत्ते मनसो व्यथा ॥ शूद्रयामस्मि वैश्येन जातो जनपदाधिप! ।' इति ॥७६॥

अन्वयः—प्रथितान्वयेन तेन तुरगात् अवतीर्य पृष्टान्वयः जलकुम्भनिषण्णदेहः सः तस्मै स्खलद्भिः अक्षरपदैः आत्मानं द्विजेतरतपस्विसुतं कथयांबभूव ।

व्याख्या—प्रथितः=प्रसिद्धः अन्वयः=वंशः यस्य स प्रथितान्वयः, तेन प्रथितान्वयेन तेन=राज्ञा दशरथेन, तुरेण=त्वरया गच्छतीति तुरगस्तस्मात् तुरगात्=अश्वात् अवतीर्य=भूमिमागत्य पृष्टः=अनुयुक्तः अन्वयः=वंशः यस्य स पृष्टान्वयः ब्राह्मणहननशंकया पृष्टकुल इत्यर्थः, जलेन पूर्णः जलपूर्णः, जलपूर्णः कुम्भः जलकुम्भः (शाकपार्थिवादित्वात् पूर्णपदस्य लोपः) जलकुम्भे=जलभरितकलशे निषण्णः=पतितः देहः=शरीरं यस्य स जलकुम्भनिषण्णदेहः सः=मुनिपुत्रः तस्मै=राज्ञे दशरथाय स्खलद्भिः=शिथिलैः असामर्थ्यात् अर्धोच्चारितैरित्यर्थः । अक्षरप्रायाणि पदानीति अक्षरपदानि तैः अक्षरपदैः=न तु, समग्रपदैः, आत्मानं=स्वं द्वाभ्यां=जन्मसंस्काराभ्यां जायन्ते इति द्विजाः द्विजेभ्यः=ब्राह्मणक्षत्रियवणिग्भ्यः इतरस्य=भिन्नस्य तपस्विनः=मुनेः सुतः=पुत्रः इति तं कथयांबभूव=उक्तवान् । अहं त्रैवर्णिको नास्मि, किन्तु वैश्यात् शूद्रायां समुत्पन्नः करणोऽस्मीति मयि हते ब्रह्महत्याकृतं पापं भवता नाशंकनीयमिति ।

समासः—प्रथितः अन्वयो यस्य स प्रथितान्वयः तेन तथोक्तेन । पृष्टः अन्वयो यस्य स पृष्टान्वयः । जलस्य कुम्भः जलकुम्भः, जलकुम्भे निषण्णः देहो यस्य स जलकुम्भनिषण्णदेहः । द्विजेभ्यः इतरः द्विजेतरः, द्विजेतरश्चासौ तपस्वीति द्विजेतरतपस्वी तस्य सुतस्तं द्विजेतरतपस्विसुतम् । अक्षरप्रायाणि पदानीति अक्षरपदानि तैः अक्षरपदैः ।

हिन्दी—प्रसिद्ध वंश वाले राजा दशरथ ने घोड़े पर से उतर कर "मुनिपुत्र का" कुल (जाति) पूछा, (ब्रह्महत्या के डर से) और जल के घड़े के ऊपर पड़े शरीरवाले उस मुनिकुमार ने राजा से लड़खड़ाती टूटे-फूटे अक्षर वाली वाणी से अपने को ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य से भिन्न तपस्वी का लड़का बताया । अर्थात् हे राजन् ! मैं बनिया पिता तथा शूद्रा माता से उत्पन्न करण जाति का हूं । अतः ब्रह्महत्या की आशंका न कीजिये ।।७६।।

तच्चोदितः स तमनुद्धृतशल्यमेव
पित्रोः सकाशमवसन्नदृशोर्निनाय ।
ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्र-
मज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस ।।७७।।

संजी०—तदिति । तच्चोदितस्तेन पुत्रेण चोदितः 'पितृसमीपं प्रापय' इत्युक्तः स नृपतिरनुद्धृतशल्यमनुत्पाटितशरमेव तं मुनिपुत्रम् । अवसन्नदृशोर्नष्टचक्षुषोः । अन्धयोरित्यर्थः । पित्रोर्मातापित्रोः । 'पिता मात्रा' (पा. १।२।७०) इत्येकशेषः । सकाशं समीपं निनाय । इदं च रामायणविरुद्धम् । तत्र—'अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ । अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया ।।' (अयोध्या. ६४।२८) इति नदीतीर एव मृतं पुत्रं प्रति पित्रोरानयनाभिधानात् । तथागतं वेतसगूढम् । एकश्चासौ पुत्रश्च तमेकपुत्रम् । 'एक'ग्रहणं पित्रोरनन्यगतिकत्वसूचनार्थम् । तं मुनिपुत्रमुपेत्य संनिकृष्टं गत्वाऽज्ञानतः करिभ्रान्त्या स्वचरितं स्वकृतं ताभ्यां मातापितृभ्याम् । क्रियाग्रहणाच्चतुर्थी । शशंस कथितवान् ।।७७।।

अन्वयः—तच्चोदितः नृपतिः अनुद्धृतशल्यम् एव तम् अवसन्नदृशोः पित्रोः सकाशं निनाय, "च" तथागतम् एकपुत्रं तम् उपेत्य अज्ञानतः स्वचरितं ताभ्यां शशंस ।

व्याख्या—तेन=मुनिपुत्रेण चोदितः=प्रेरितः इति तच्चोदितः 'माम् पितृसमीपं प्रापय' इत्युक्त इत्यर्थः स नृपतिः=राजा दशरथः न उद्धृतम् अनुद्धृतम् अनुत्पाटितं शल्यं=शरो यस्य स तम् अनुद्धृतशल्यम् एव तं=मुनिपुत्रम्, अवसन्ना=नष्टा दृग्=चक्षुः ययोस्तौ तयोः अवसन्नदृशोः अन्धयोरित्यर्थः, माता च पिता च पितरौ तयोः पित्रोः=मातापित्रोः सकाशं=समीपं निनाय=निन्ये, तथा=तं प्रकारं गतं=प्राप्तमिति तथागतं=वेतसैः गूढम्, एकः=केवलश्चासौ पुत्रः=सुतः इति एकपुत्रस्तम् एकपुत्रम् तं=श्रवणकुमारम् उपेत्य=समीपं गत्वा अज्ञानादिति अज्ञानतः=गजभ्रान्त्या स्वेन=दशरथेन चरितं=कृतमिति सुतवधरूपं स्वचरितं ताभ्यां=मातापितृभ्यां शशंस=कथयामास । वाल्मीकिरामायणे तु मृतपुत्रस्य समीपमेव तत्पित्रोः समानयनमिति ज्ञेयम् ।

समासः—तेन चोदितस्तच्चोदितः । न उद्धृतं शल्यं यस्य सः तम् अनुद्धृतशल्यम् । अवसन्ना दृग् ययोस्तौ तयोः अवसन्नदृशोः । तथा गतस्तं तथागतम् । एकश्चासौ पुत्रस्तम् एकपुत्रम् । स्वेन चरितं स्वचरितम्, तत् ।

हिन्दी—मुनिपुत्र से प्रेरित (कहने पर) राजा दशरथ ने, (उसके शरीर से) बाण को निकाले बिना ही श्रवणकुमार को, अन्धे मातापिता के पास पहुँचा दिया, "और" बेंत की झाड़ी से छिपे हुए, इकलौते पुत्र को अज्ञानवश हाथी की भ्रान्ति से मैंने मार दिया है यह बात पास जाकर उसके मातापिता से कह दी । वस्तुतः यह रामायण से विरुद्ध है । क्योंकि अन्धे माता-पिता को ही तमसा नदी के तीर पर ले जाकर दिखाया ऐसा वहाँ वर्णन है ॥७७॥

तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः ।
सोऽभूत्परासुरथ भूमिपतिं शशाप
हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव वृद्धः ॥७८॥

संजी०—ताविति । तौ जाया च पतिश्च दंपती । राजदन्तादिषु 'जाया'शब्दस्य दम्भावो जम्भावश्च विकल्पेन निपातितः । 'दंपती जंपती जायापती भार्यापती च तौ' इत्यमरः । बहु विलप्य भूयिष्ठं परिदेव्य । 'विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः । शिशोरुरस्तो वक्षसः । 'पञ्चम्यास्तसिल्' (पा. ५।३।७) । निखातं शल्यं शरं प्रहर्त्रा

राज्ञोदहारयतामुद्धारयामासतुः । स शिशुः परासुर्गतप्राणोऽभूत् । अथ वृद्धो हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव शापदानस्य जलपूर्वकत्वात्तैरेव भूमिपतिं शशाप ॥७८॥

अन्वयः—तौ दम्पती बहु विलप्य शिशोः उरस्तः निखातं शल्यं प्रहर्त्रा उदहारयताम्, सः परासुः अभूत्, अथ वृद्धः हस्तार्पितैः नयनवारिभिः एव भूमिपतिं शशाप ।

व्याख्या—तौ=पूर्वोक्तौ, अन्धौ जाया च पतिश्चेति दम्पती=जम्पती, भार्यापती बहु भूरि=अत्यधिकमित्यर्थः विलप्य=परिदेव्य, विलापं कृत्वेत्यर्थः। शिशोः=श्रवणकुमारस्य उरसः इति उरस्तः=वक्षसः निखातं=खुप्तम् शल्यं=बाणं प्रहरतीति प्रहर्ता तेन प्रहर्त्रा=राज्ञा दशरथेन उदहारयताम्=उद्धारयामासतुः=निष्कासयामासतुरित्यर्थः। सः=शिशुः परागताः=नष्टाः असवः=प्राणाः यस्मात् स परासुः=मृतः अभूत्=अभवत् अथ=शिशोः मरणानन्तरम् वृद्धः=स्थविरहस्ताभ्यां=कराभ्याम् अर्पितानि=दत्तानि तैः हस्तार्पितैः नयनयोः=नेत्रयोः वारीणि=जलानि तैः नयनवारिभिः एवान्ययोगव्यावर्तने भूमेः=पृथिव्याः पतिः=स्वामी, भूमिपतिस्तं भूमिपतिं=राजानं शशाप=अशपत् वक्ष्यमाणं शापं दत्तवानित्यर्थः ।

समासः—परागताः असवो यस्मात् स परासुः । जाया च पतिश्च दम्पती । हस्ताभ्याम् अर्पितानि तैः हस्तार्पितैः । नयनयोः वारीणि तैः नयनवारिभिः । भूमेः पतिस्तं भूमिपतिम् ।

हिन्दी—उन दोनों अन्धे पति पत्नी ने बहुत विलाप कर के (रो पीटकर) बच्चे की छाती से गड़े हुए बाण को मारनेवाले राजा से निकलवा दिया और (बाण के निकलते ही) वह बालक मर गया । बच्चे के मर जाने पर वृद्धतपस्वी ने अपने हाथ में लिये हुवे आँसुओं के जल से ही राजा को शाप दे दिया ॥७८॥

दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोका-
 दन्त्ये वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम् ।
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविषं भुजंगं
 प्रोवाच कोसलपतिः प्रथमापराद्धः ॥७९॥

संजी०—दिष्टान्तमिति । हे राजन् ! भवानप्यन्त्ये वयस्यहमिव पुत्रशोकाद्दिष्टान्तं कालावसानम् । मरणमित्यर्थः । 'दिष्टः काले च दैवे स्याद्दिष्टम्' इति विश्वः ।

आप्स्यति प्राप्स्यति । इत्युक्तवन्तम् । आक्रान्तः पादाहतः पूर्वमाक्रान्तपूर्वः । सुप्सुपेति समासः । तम् । प्रथममपकृतमित्यर्थः । मुक्तविषमपकारात्पश्चादुत्सृष्टविषं भुजंगमिव स्थितं तं वृद्धं प्रति प्रथमापराद्धः प्रथमापराधी । कर्तरि क्तः । इदं च सहने कारणमुक्तम् । शापदानात्पश्चादपराधी कोसलपतिर्दशरथः प्रोवाच ॥७९॥

अन्वयः—"हे राजन्" भवान् अपि अन्त्ये वयसि अहम् इव पुत्रशोकात् दिष्टान्तम् आप्स्यति इति उक्तवन्तम् आक्रान्तपूर्वं मुक्तविषं भुजंगम् इव तं "प्रति" प्रथमापराद्धः कोसलपतिः प्रोवाच ।

व्याख्या—हे राजन् ! भवान्=दशरथः अपिः समुच्चये, अन्ते भवम् अन्त्यं तस्मिन् अन्त्ये=चतुर्थे वयसि = वार्धक्ये अहम्=मल्लक्षणजन इव=यथा पुत्रस्य=सुतस्य शोकः सन्तापस्तस्मात् पुत्रशोकात् दिष्टस्य=कालस्य अन्तः=अवसानमिति दिष्टान्तस्तं दिष्टान्तम् मृत्युमित्यर्थः आप्स्यति=प्राप्स्यति, यथाहं पुत्रशोकात् म्रिये, तथा त्वमपि मरिष्यसे इत्यर्थः, इति=एवम् उक्तवन्तं=कथितवन्तम् आक्रान्तः=पादाहतः पूर्वं=प्रथममिति आक्रान्तपूर्वस्तम् आक्रान्तपूर्वं=प्रथमं कृतापराधमित्यर्थः मुक्तं=त्यक्तं विषं=गरलं येन स तं मुक्तविषम् उत्सृष्टगरलं भुजेन=कौटिल्येन गच्छतीति भुजंगस्तं भुजंगम् सर्पम् इव=यथा स्थितं तं=वृद्धं मुनिं प्रति प्रथमं=पूर्वम् अपराद्धः=अपराधी इति प्रथमापराद्धः कोसलानां पतिः कोसलपतिः=दशरथः शापदानानन्तरं मुनिं प्रोवाच=प्रोक्तवान् ।

समासः—दिष्टस्य अन्तस्तं दिष्टान्तम् । पुत्रस्य शोकस्तस्मात् पुत्रशोकात् । आक्रान्तः पूर्वं यः सः आक्रान्तपूर्वस्तम् आक्रान्तपूर्वम् । मुक्तं विषं येन स तं मुक्तविषम् । कोसलानां पतिः कोसलपतिः । प्रथमम् अपराद्धः प्रथमापराद्धः ।

हिन्दी—हे राजन् आप भी वृद्धावस्था (बुढ़ापे) में मेरी तरह ही पुत्र के शोक सन्ताप से मृत्यु को प्राप्त करोगे (मरोगे) इस प्रकार कहने वाले तथा पहले पैर से दबे हुवे फिर जहर को उगलनेवाले सांप के समान "स्थिर खड़े" उस वृद्ध मुनि से पहले पहल अपराध करने वाले राजा बोले ॥७९॥

शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोभे
सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम् ।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति ॥८०॥

संजी०—शाप इति । अदृष्टा तनयाननपद्मशोभा येन तस्मिन्नपुत्रके मयि भगवता पातितः वज्रप्रायत्वात् 'पातित' इत्युक्तम् । अयं 'पुत्रशोकान्म्रियस्व' इत्येवंरूपः शापोऽपि सानुग्रहः वृद्धकुमारीवरन्यायेनेष्टावाप्तेरन्तरीयकत्वात्सोपकार एव । निग्राहकस्याप्यनुग्राहकत्वमर्थान्तरन्यासेनाह—कृष्यामिति । इन्धनैः काष्ठैरिद्धः प्रज्वलितो ज्वलनोऽग्निः कृष्यां कर्षणार्हाम् । 'ऋदुपधाच्चाक्लृपि चृतेः' (पा. ३।१।११०) इति क्यप् । क्षितिं दहन्नपि बीजप्ररोहाणां बीजाङ्कुराणां जननीमुत्पादनक्षमां करोति ॥८०॥

अन्वयः—अदृष्टतनयाननपद्मशोभे मयि भगवता पातितः अयं शापः अपि सानुग्रहः "एव" "इन्धनेद्धः ज्वलनः कृष्यां क्षितिं दहन् अपि खलु बीजप्ररोहजननीं करोति ।

व्याख्या—न दृष्टा अदृष्टा, तनोति कुलमिति तनयः, तनयस्य=पुत्रस्य आननं=मुखम् एव पद्मं=कमलमिति तनयाननपद्मं तस्य शोभा=कान्तिः श्रीः, इति तनयाननपद्मशोभा, अदृष्टा तनयाननपद्मशोभा येन सः अदृष्टतनयाननपद्मशोभस्तस्मिन् अदृष्टतनयाननपद्मशोभे मयि—दशरथे भगवता=त्वया तापसेन पातितः-दत्तः वज्रसमानत्वात् पातित इत्युक्तम् । अयं=पुत्रशोकात् मरिष्यसे—इत्येवंरूपः शापः=अपकारणीः, अपि अनुग्रहेण सहितः सानुग्रहः=सोपकार एव, सोपकारत्वमेवार्थान्तरन्यासेनाह=इन्धे अग्निः एभिरिति इन्धनानि । इन्धनैः=काष्ठैः इद्धः=प्रदीप्तः इति इन्धनेद्धः ज्वलनः=अग्निः कृष्यां=कर्षणयोग्यां क्षितिं=पृथिवीं दहन्=ज्वलन् अपि बीजस्य=अंकुरकारणस्य प्ररोहाः=अंकुरास्तेषां जननी=उत्पादनकर्त्री तां बीजप्ररोहजननीम् करोति=विदधाति ।

समासः—न दृष्टा अदृष्टा, तनयस्य आननम् इव पद्ममिति तनयाननपद्मं तस्य शोभा इति तनयाननपद्मशोभा, अदृष्टा तनयाननपद्मशोभा येन सः अदृष्टतनयाननपद्मशोभस्तस्मिन् अदृष्टतनयाननपद्मशोभे । अनुग्रहेण सहितः सानुग्रहः । इन्धनैः इद्धः इन्धनेद्धः । बीजस्य प्ररोहाः बीजप्ररोहाः बीजप्ररोहाणां जननी तां बीजप्ररोहजननीम् ।

हिन्दी—पुत्र के मुख कमल की शोभा को न देखनेवाले (निःसंतान) मेरे ऊपर आपके द्वारा गिराया गया (दिया गया) यह (कि पुत्रशोक में मरोगे)

शाप भी अनुग्रह पूर्ण ही है। "क्योंकि" लकड़ी आदि इन्धन से प्रज्वलित अग्नि, जोतने के योग्य भूमि को जलाकर भी निश्चितरूप से बीजों के अंकुरों को पैदा करनेवाली बना देता है। अतः शाप से भी मेरा उपकार ही आपने किया है ॥८०॥

इत्थं गते गतघृणः किमयं विधत्तां वध्यस्तवेत्यभिहितो वसुधाधिपेन ।
एधान्हुताशनवतः स मुनिर्ययाचे पुत्रं परासुमनुगन्तुमनाः सदारः ॥८१॥

संजी०—इत्थमिति। इत्थं गते प्रवृत्ते सति। वसुधाधिपेन राज्ञा। गतघृणो निष्करुणः, हन्तृत्वान्निष्कृप इत्यर्थः। अत एव तव वध्यो वधार्होऽयं जनः। 'अयम्' इति राज्ञो निर्वेदादनादरेण स्वात्मनिर्देशः। किं विधत्तामित्यभिहित उक्तः, 'मया किं विधेयम् ?' इति विज्ञापित इत्यर्थः। स मुनिः सदारः सभार्यः परासुं गतासुं पुत्रमनुगन्तुं मनो यस्य सोऽनुगन्तुमनाः सन्। 'तुं काममनसोरपि' इति मकारलोपः। हुताशनवतः साग्नीनेधान् काष्ठानि ययाचे। न चात्रात्मघातदोषः—'अनुष्ठानास-मर्थस्य वानप्रस्थस्य जीर्यतः। भृग्वग्निजलसंपातैर्मरणं प्रविधीयते ॥' इत्युक्तेः ॥८१॥

अन्वयः—इत्थं गते सति वसुधाधिपेन गतघृणः "अत एव" वध्यः अयं जनः किं विधत्ताम् इति अभिहितः सः मुनिः सदारः परासुं पुत्रम् अनुगन्तुमनाः सन् हुताशनवतः एधान् ययाचे।

व्याख्या—इत्थं-पूर्वोक्तप्रकारेण गते=प्रवृत्ते=जाते सति वसूनि दधातीति वसुधा, वसुधायाः अधिपस्तेन वसुधाधिपेन=राज्ञा दशरथेन गता=नष्टा घृणा=करुणा यस्य स गतघृणः हन्तृत्वात् कृपारहित इत्यर्थः, अत एव वधमर्हतीति वध्यः हन्तु योग्यः वध्य इति वा वध्यः=शीर्षच्छेद्यः अयं पुरतः स्थितः जनः=मल्लक्षणः किं विधत्तां=किं कुरुताम् इति=एवमभिहितः=कथितः। मया दशरथेन किं कर्तव्यमिति विज्ञापित इत्यर्थः, सः=मुनिः दारयन्ति भ्रातृबन्धूनिति दाराः, दारैः सहितः सदारः=सभार्यः परागताः=नष्टाः असवः=प्राणाः यस्य स तं परासुं=मृतं पुत्रम्, अनु=पश्चात् गन्तुं=यातुं=मर्तुमित्यर्थः मनः=चित्तं यस्य सोऽनुगन्तुमनाः सन् हुत-मश्नातीति हुताशनः=वह्निः अस्ति येषान्ते हुताशनवन्तस्तान् हुताशनवतः= अग्निसहितान् एधान्=काष्ठानि ययाचे=याचितवान् प्रार्थयामासेत्यर्थः।

समासः—वसुधायाः अधिपः, वसुधाधिपस्तेन वसुधाधिपेन । गता घृणा यस्य स गतघृणः । दारैः सहितः सदारः । परागताः असवो यस्य स तं परासुम् । अनुगन्तुं मनः यस्य सोऽनुगन्तुमनाः ।

हिन्दी—यह सब हो जाने पर पृथिवी के स्वामी दशरथ ने "कहा कि" दया से हीन, निर्दयी, इसीलिये शिर काट देने योग्य यह व्यक्ति (अर्थात् मैं दशरथ) क्या करे, इस प्रकार कहे गये उस मुनि ने अपनी स्त्री सहित परलोकगत पुत्र के पीछे जाने की इच्छा से अग्नि वाले इन्धन की याचना की। अर्थात् अग्नि व जलती लकड़ी माँगी ॥८१॥

प्राप्तानुगः सपदि शासनमस्य राजा
संपाद्य पातकविलुप्तधृतिर्निवृत्तः ।
अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं
शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशिः ॥८२॥

सं०—प्राप्तेति । प्राप्तानुगः प्राप्तानुचरो राजा सपद्यस्य मुनेः शासनं काष्ठसंभारणरूपं प्रगेकोऽपि संप्रति प्राप्तानुचरत्वात्संपाद्य पातकेन मुनिवधरूपेण विलुप्तधृतिर्नष्टोत्साहः सन् । अन्तर्निविष्टपदमन्तर्लब्धस्थानमात्मविनाशहेतुं शापम् । अम्बुराशिरौर्वं ज्वलनं वडवानलमिव । 'और्वस्तु वाडवो वडवानलः' इत्यमरः । दधद् धृतवान्सन् निवृत्तः । वनादिति शेषः ॥८२॥

अन्वयः—प्राप्तानुगः राजा सपदि अस्य शासनं संपाद्य, पातकविलुप्त धृतिः सन् अन्तर्निविष्टपदम् आत्मविनाशहेतुं शापम् अम्बुराशिः और्वम् इव दधत् निवृत्तः ।

व्याख्या—अनु=पश्चात् गच्छन्तीति अनुगाः । प्राप्ताः=आगताः अनुगाः= अनुचराः सेवकाः यस्य स प्राप्तानुगः राजा=दशरथः सपदि=तत्क्षणमेव अस्य=मुनेः शासनम्=आज्ञां अग्निकाष्ठानयनरूपमित्यर्थः सम्पाद्य=कृत्वा पातयतीति पातकं पातकेन=पापेन मुनिकुमारवधरूपेणेत्यर्थः । विलुप्ता=नष्टा धृतिः=धैर्यमुत्साहः यस्य स पातकविलुप्तधृतिः सन् अन्तः=हृदये निविष्टं=स्थितं लब्धं पदं=स्थानं येन स तम् अन्तर्निविष्टपदम्, आत्मनः=स्वस्य विनाशः=मरणं तस्य हेतुः=कारणमिति

आत्मविनाशहेतुस्तम् आत्मविनाशहेतुम् शापम्=अनिष्टवचनम् अम्बूनां=जलानां राशिः=समूहः अम्बुराशिः=समुद्रः उर्वस्य=महर्षेः अपत्यं पुमान् औवस्तम् और्वं= वड़वानलम् इव=यथा दधत्=धृतवान् सन् वनात् निवृत्तः=परावृत्तः ।

समासः—प्राप्ताः अनुगाः यं स प्राप्तानुगः । पातकेन विलुप्ता धृतिः यस्य स पातकविलुप्तधृतिः । अन्तः निविष्टं पदं येन सोऽन्तर्निविष्टपदः तमन्तर्निविष्ट-पदम् । आत्मनः विनाशः तस्य हेतुस्तमात्मविनाशहेतुम् । अम्बूनां राशिः, अम्बुराशिः ।

हिन्दी—पहुंच गये हैं सेवक जिसके, ऐसे राजा ने तुरन्त इस मुनि की आज्ञा को पूर्ण कर (अर्थात् चिता बनाकर) एवं मुनि के वधरूप पातक से हतोत्साह होकर राजा, हृदय में बैठे हुए अपने नाश के कारण मुनिशाप को उसी प्रकार लिये हुए वन से लौट पड़े, जैसे कि समुद्र वड़वाग्नि को धारण किये रहता है ॥८२॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये मृगयावर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥

महाकविकालिदास कृत

श्री रघुवंश महाकाव्य

दशम सर्ग

पृथिवीं शासतस्तस्य पाकशासनतेजसः ।

किंचिदूनमनूनर्द्धेः शरदामयुतं ययौ ॥१॥

संजी०— पृथिवीमिति । पृथिवीं शासतः पालयतः पाकशासनतेजस इन्द्रवर्चसः । अनूनर्द्धेर्महासमृद्धेस्तस्य दशरथस्य किंचिदूनमीषन्न्यूनं शरदां वत्सराणाम् । 'स्याद्दतौ वत्सरे शरत्' इत्यमरः । अयुतं दशसहस्रं ययौ । 'एकदशशतसहस्राण्ययुतं लक्षं तथा प्रयुतम् । कोट्यर्बुदं च पद्मं स्थानात्स्थानं दशगुणं स्यात् ॥' इत्यार्यभट्टः । इदं च मुनिशापात्परं वेदितव्यं, न तु जननात् । 'षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ! । दुःखेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि ॥' (बाल. २०।१०) इति रामायणविरोधात् । नाप्यभिषेकात्परम्, तस्यापि 'सम्यग्विनीतमथ वर्महरं कुमारमादिश्य रक्षणविधौ विधिवत्प्रजानाम्' (८।९४) इति कौमारानुष्ठितत्वाभिधानात्स एव विरोध इति ॥१॥

अन्वयः—पृथिवीं शासतः पाकशासनतेजसः अनूनर्द्धेः तस्य किंचित् ऊनम शरदाम् अयुतं ययौ ।

व्याख्या—प्रथते इति पृथिवी तां पृथिवीं=मेदिनीं शासतः=पालयतः=राज्यं कुर्वतः । पाकस्य=दैत्यविशेषस्य=वृत्रभ्रातुरित्यर्थः शासनः, पाकशासनः । पाकशासनवत् तेजः=बलं यस्य स तस्य पाकशासनतेजसः, न नूना अनूना, अनूना=महती ऋद्धिः=समृद्धिः यस्य स तस्य अनूनर्द्धेः तस्य=दशरथस्य किंचित्=ईषत् ऊनम्=न्यूनं शरदां=संवत्सराणाम् अयुतं=दशसहस्रं ययौ=जगाम व्यतीतम् इत्यर्थः । *मुनिशापादनन्तरं दशसहस्रवर्षाणि व्यतीतानि, नतु जन्मारभ्य 'षष्टिवर्षसहस्राणि*

जातस्य मम कौशिक' इति रामायणविरोधात्, नापि राज्याभिषेकात् रामायण-विरोधादेवेति ज्ञेयम् ।

समासः—पाकस्य शासनः पाकशासनस्तस्य तेजः इव तेजो यस्य सः तस्य पाकशासनतेजसः । अनूना ऋद्धिः यस्य स तस्य अनूनर्द्धेः ।'

हिन्दी -- पृथिवी का पालन करते हुए इन्द्र के समान तेजस्वी अपार सम्पत्ति वाले राजा दशरथ के कुछ कम दस हजार वर्ष बीत गये ॥१॥

न चोपलेभे पूर्वेषामृणनिर्मोक्षसाधनम् ।
सुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोकतमोपहम् ॥२॥

सं०—न चेति । स दशरथः पूर्वेषां पितॄणामृणनिर्मोक्षसाधनम् । 'एष वा अनृणो यः पुत्री' इति श्रुतेः । पितॄणामृणनिर्मुक्तिकारणम् । सद्यः शोक एव तमस्त-दपहन्तीति शोकतमोपहम् । अत्र 'अभयंकर' इतिवदुपपदेऽपि तदन्तविधिमाश्रित्य 'अपे क्लेशतमसोः' (पा. ३।२।५०) इति डप्रत्ययः । सुताभिधानं सुताख्यं ज्योतिर्नोपलेभे न प्राप च ॥२॥

अन्वयः—सः पूर्वेषाम् ऋणनिर्मोक्षसाधनम् सद्यः शोकतमोपहम् सुताभि-धानम् ज्योतिः न च उपलेभे ।

व्याख्या—सः=दशरथः, पूर्वेषां=पूर्वपुरुषाणां=पितॄणामित्यर्थः अर्यते स्म इति ऋणम्, ऋणात्=देयात्–पितृऋणादित्यर्थः निर्मोक्षः=मुक्तिस्तस्य साधनं=कारणमिति ऋणनिर्मोक्षसाधनं सद्यः=सपदि शोकः=सन्तापः एव तमः=अन्धकारस्तद् अपहन्ति= नाशयतीति शोकतमोपहम् सुतः=पुत्रः इति अभिधानम्=नाम यस्य तत् सुताभिधानं ज्योतिः=प्रकाशम् न=नहि उपलेभे=प्राप । प्रायः षष्टिवर्षसहस्रपर्यन्तं राज्ञो दशरथस्य गृहे पुत्रो न जात इत्यर्थः ।

समासः—ऋणात् निर्मोक्षः, तस्य साधनमिति ऋणनिर्मोक्षसाधनम्, तत् । सुतः अभिधानं यस्य तत् सुताभिधानम्, तत् । शोक एव तमः शोकतमः तत् अपहन्ति, तत् शोकतमोपहम् ।

हिन्दी—"परन्तु" उस राजा ने अपने पूर्वज पितरों के ऋण से मुक्त कराने वाले तथा तुरन्त शोकरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले, पुत्र नामके

प्रकाश को अभी तक प्राप्त नहीं किया। अर्थात् राजा को अभी तक पुत्ररत्न की प्राप्ति नहीं हुई ॥२॥

अतिष्ठत्प्रत्ययापेक्षसंततिः स चिरं नृपः।
प्राङ्मन्थादनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिवार्णवः ॥३॥

संजी०—अतिष्ठदिति। प्रत्ययं हेतुमपेक्षत इति प्रत्ययापेक्षा संततिर्यस्य स तथोक्तः। 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः, स नृपः। मन्थात्प्राङ्मन्थनात्पूर्वमनभिव्यक्ताऽदृष्टा रत्नोत्पत्तिर्यस्य सोऽर्णव इव। चिरमतिष्ठत्। सामग्र्यभावाद्विलम्बो न तु वन्ध्यत्वादिति भावः ॥३॥

अन्वयः—प्रत्ययापेक्षसन्ततिः सः नृपः मन्थात् प्राक् अनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिः अर्णवः इव चिरम् अतिष्ठत्।

व्याख्या—प्रतीयतेऽनेनेति प्रत्ययः। अपेक्षते इति अपेक्षा। प्रत्ययस्य=हेतोः पुत्रेष्टिरूपस्येत्यर्थः अपेक्षा=आकांक्षिणी, इति प्रत्ययापेक्षा। प्रत्ययापेक्षा सन्ततिः=सन्तानः यस्य स प्रत्ययापेक्षसन्ततिः सः=प्रसिद्धः नृपः=नरेन्द्रः, मन्थात्=मन्थनात् प्राक्=पूर्वम्, न अभिव्यक्ता अनभिव्यक्ता, अनभिव्यक्ता=अदृष्टा रत्नानां=हीरकादीनाम् उत्पत्तिः=उद्भवः यस्य सः अनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिः, अर्णांसि सन्ति अस्य सोऽर्णवः=समुद्रः इव=यथा चिरं=बहुकालम् अतिष्ठत्=अवसत्, प्रतीक्षितवानिति।

समासः—प्रत्ययम् अपेक्षते इति। प्रत्ययापेक्षा, प्रत्ययापेक्षा सन्ततिः यस्य स प्रत्ययापेक्षसंततिः। रत्नानामुत्पत्तिः रत्नोत्पत्तिः। अनभिव्यक्ता रत्नोत्पत्तिर्यस्य सोऽनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिः।

हिन्दी—"पुत्रेष्टिरूप" सामग्री की अपेक्षा करने वाली है सन्तति जिसकी ऐसे राजा दशरथ उस समुद्र के समान चिरकाल तक, (पुत्रोत्पत्ति की आशा में) बैठे रहे, जिसके मन्थन से पहले रत्नों की उत्पत्ति नहीं देखी गयी थी ॥३॥

ऋष्यशृङ्गादयस्तस्य सन्तः सन्तानकाङ्क्षिणः।
आरेभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः ॥४॥

संजी०—ऋष्यशृङ्गेति। ऋष्यशृङ्गादयः। ऋष्यशृङ्गो नाम कश्चिदृषिः। तदादयः। ऋतुमृतौ वा यजन्तीत्यृत्विजो याज्ञिकाः। 'ऋत्विग्दधृक्—' (पा.

३।२।५९) इत्यादिना क्विबन्तो निपातः। जितात्मानो जितान्तःकरणाः सन्तः संतानकाङ्क्षिणः पुत्रार्थिनस्तस्य दशरथस्य पुत्रीयां पुत्रनिमित्ताम्। 'पुत्राच्छ च' (पा. ५।१।४०) इति छप्रत्ययः। इष्टिं यागमारेभिरे प्रचक्रमिरे ॥४॥

अन्वयः—ऋष्यशृंगादयः ऋत्विजः जितात्मानः सन्तः, सन्तानकांक्षिणः तस्य पुत्रीयाम् इष्टिम् आरेभिरे।

व्याख्या—ऋष्यस्य-मृगविशेषस्य शृंगमिव शृंगं यस्य स ऋष्यशृंगः= विभाण्डकसुतः आदिः=प्रथमः येषां ते ऋष्यशृंगादयः ऋतुं ऋतौ वा यजन्ति इति ऋत्विजः=याज्ञिकाः जितः-वशीकृतः आत्मा-अन्तःकरणं यैस्ते जितात्मानः सन्तः= सज्जनाः सन्तानं-पुत्रं कांक्षते=अर्थते इति सन्तानकांक्षी तस्य सन्तानकांक्षिणः= सुतार्थिनः तस्य-राज्ञः दशरथस्य पुत्रार्थं पुत्रीयां-पुत्रनिमित्ताम् इष्टिं-यज्ञम् आरेभिरे=प्रचक्रमुः।

समासः—ऋष्यशृंगः आदिर्येषान्ते ऋष्यशृंगादयः। जितः आत्मा यैस्ते जितात्मानः। सन्तानस्य कांक्षी तस्य संतानकांक्षिणः।

हिन्दी—"तब" ऋष्यशृंग आदि जितेन्द्रिय तथा सज्जन याज्ञिकों ने सन्तान की इच्छा करने वाले दशरथ के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करना आरम्भ कर दिया ॥४॥

तस्मिन्नवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुता हरिम्।
अभिजग्मुर्निदाघार्ताश्छायावृक्षमिवाध्वगाः ॥५॥

संजी०—तस्मिन्निति। तस्मिन्नवसरे पुत्रकामेष्टिप्रवृत्तिसमये देवाः। पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् पौलस्त्यो रावणः। तेनोपप्लुताः पीडिताः सन्तः निदाघार्ता घर्मातुराः। अध्वानं गच्छन्तीत्यध्वगाः पान्थाः। 'अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः' (पा. ३।२।४८) इति डप्रत्ययः। छायाप्रधानं वृक्षं छायावृक्षमिव। शाकपार्थिवादित्वात्समासः। हरिं विष्णुमभिजग्मुः ॥५॥

अन्वयः—तस्मिन् अवसरे देवाः पौलस्त्योपप्लुताः सन्तः निदाघार्ताः अध्वगाः छायावृक्षम् इव हरिम् अभिजग्मुः।

व्याख्या—तस्मिन् पूर्वोक्ते अवसरे-प्रसङ्गे-पुत्रेष्टिप्रारम्भसमये इत्यर्थः दीव्यन्तीति देवाः=अमराः, पुलं=महत्त्वम् अस्तते=गच्छतीति पुलस्त्यः=ऋषिविशेषः। पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् पौलस्त्यः। पौलस्त्येन=रावणेन उपप्लुताः=पीडिताः

इति पौलस्त्योपप्लुताः सन्तः नितरां दह्यतेऽत्र निदाघः। निदाघेन=तपेन= उष्णेनेत्यर्थः आर्ताः=आतुराः सन्तप्ता इति निदाघार्ताः, अध्वानं=पन्थानं गच्छन्तीति अध्वगाः=पथिकाः छायाप्रधानो वृक्षः, छायावृक्षस्तं छायावृक्षं=नमेरुवृक्षम् इव=यथा हरिं=विष्णुम् अभिजग्मुः=गतवन्तः। आतपेन सन्तप्ताः पथिकाः यथा वृक्षच्छायां गच्छन्ति, एवं रावणेन पीडिता देवा अपि विष्णुं शरणं गता इत्यर्थः।

समासः—पौलस्त्येन उपप्लुताः पौलस्त्योपप्लुताः। निदाघेन आर्ताः निदाघार्ताः। छायाप्रधानः वृक्षः छायावृक्षस्तं छायावृक्षम्।

हिन्दी—"जब कि पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ हुआ" उसी अवसर पर रावण से सताये गये देवता, उसी प्रकार भगवान् विष्णु की शरण में गये जैसे कि धूप से व्याकुल राहगीर छायावाले वृक्ष के पास जाते हैं ॥५॥

ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपुरुषः।
अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ॥६॥

संजी०—त इति। ते देवाश्चोदन्वन्तं समुद्रम्। 'उदन्वानुदधौ च' (पा. ८।२।१३) इति निपातः। प्रापुः। आदिपूरुषो विष्णुश्च बुबुधे। योगनिद्रां जहावित्यर्थः। गमनप्रतिबोधयोरविलम्बार्थौ चकारौ। तथा हि—अव्याक्षेपो गम्यस्याव्यासङ्गः। अविलम्ब इति यावत्। भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्लक्षणं लिङ्गं हि। उक्तं च—'अनन्यपरता चास्य कार्यसिद्धेस्तु लक्षणम्' इति ॥६॥

अन्वयः—ते च उदन्वन्तं प्रापुः आदिपुरुषः च बुबुधे, हि अव्याक्षेपः भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेः लक्षणम।

व्याख्या—ते च=पूर्वोक्ता देवाः च उदकानि सन्ति अस्यासौ उदन्वान् तम् उदन्वन्तं=समुद्रं प्रापुः=जग्मुः, आदिः=प्रथमश्चासौ पुरुषः=नरः इति आदिपुरुषः= विष्णुश्च बुबुधे=प्रबुद्धः योगनिद्रां त्यक्तवानित्यर्थः। द्वौ चकारौ गमनजागरणयोरविलम्बार्थौ। तथा हि विशेषेण आक्षेपः=आसंगः=विलम्बः इति व्याक्षेपः न व्याक्षेपः अव्याक्षेपः=अविलम्बः भविष्यति या सा भविष्यन्तीति तस्याः भविष्यन्त्याः कार्यस्य=स्वाभीष्टस्य सिद्धेः=सफलतायाः लक्षणम्=चिह्नं भवतीति शेषः।

समासः—आदिश्चासौ पुरुषः आदिपुरुषः। विशेषेण आक्षेपः व्याक्षेपः न व्याक्षेपः अव्याक्षेपः। कार्यस्य सिद्धिः कार्यसिद्धिः, तस्याः कार्यसिद्धेः।

हिन्दी—वे देवता समुद्र के तीर पहुँच गये, और तभी तुरन्त भगवान् वष्णु जाग उठे। (अर्थात् योगनिद्रा को त्याग दिया) ! "ठीक ही है" किसी कार्य में देर न होना भावी कार्य की सिद्धि का चिह्न है। होनेवाले कार्य की सफलता का सूचक है ॥६॥

भोगिभोगासनासीनं ददृशुस्तं दिवौकसः।
तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् ॥७॥

मंजी०—भोगीति। द्यौरोको येषां ते दिवौकसो देवाः। पृषोदरादित्वात्साधुः। यद्वा,—'दिव'शब्दोऽदन्तोऽप्यस्ति। तथा च बुद्धचरिते—'न शोभते तेन हि नो विना पुरं मरुत्वता वृत्रवधे यथा दिवम्' इति। तत्र 'दिवु क्रीडादौ' इति धातोः 'इगुपध—'(पा. ३।१।१३५) इति कः। दिवमोक एषामिति विग्रहः। भोगिनः शेषस्य भोगः शरीरम्। 'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः।' इत्यमरः। स एवासनं सिंहासनम्। तत्रासीनमुपविष्टम्। आसेः शानच्। 'ईदासः' (पा. ७।२।८३) इतीकारादेशः। तस्य भोगिनः फणामण्डले य उदर्चिष उद्रश्मयो मणयस्तैर्द्योतितविग्रहं तं विष्णुं ददृशुः ॥७॥

अन्वयः—दिवौकसः भोगिभोगासनासीनं तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् तं ददृशुः।

व्याख्या—द्यौः=स्वर्गः ओकः=स्थानं येषां ते दिवौकसः। दिवशब्दः अदन्तोऽपि, तेन दिवम् ओकः येषां ते दिवौकसः=देवाः, भोगाः=फणाः सन्ति अस्यासौ भोगी तस्य भोगिनः=शेषस्य भोगः=शरीरम् एव आसनं=पीठमिति भोगिभोगासनं, भोगिभोगासने आसीनः=उपविष्टस्तं भोगिभोगासनासीनम्, फणानां = भोगानां मण्डलं=समूहः इति फणामण्डलम्। उद्गता=प्रकटिता अर्चिः = भा येषां ते उदर्चिषः, तस्य=भोगिनः फणामण्डलं तत्फणामण्डलं तस्मिन् उदर्चिषः ये मणयः= रत्नानि तैः द्योतितः=प्रकाशितः, विग्रहः=शरीरं यस्य स तं तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम्। तं=भगवन्तं विष्णुं ददृशुः = दृष्टवन्तः।

समासः—द्यौः ओकः येषान्ते दिवौकसः। भोगिनः भोग एव आसनं

तस्मिन् आसीनस्तं भोगिभोगासनासीनम् । तस्य फणानां मण्डलं तत्फणामण्डलं, तस्मिन् उदर्चिषः मणयस्तैः द्योतितः विग्रहः यस्य स तं तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहम् ।

हिन्दी—स्वर्ग के देवताओं ने शेषनाग के शरीर रूपी आसन पर बैठे उस विष्णु को देखा । शेषनाग के फणों के समूह में चमकती हुई मणियों से जिस का शरीर देदीप्यमान हो रहा है ॥७॥

श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरितमेखले ।
अङ्के निक्षिप्तचरणमास्तीर्णकरपल्लवे ॥८॥

संजी०—श्रिय इति । कीदृशं विष्णुम् ? पद्मे निषण्णाया उपविष्टायाः श्रियः क्षौमान्तरिता दुकूलव्यवहिता मेखला यस्य तस्मिन् । आस्तीर्णौ करपल्लवौ पाणिपल्लवौ यस्मिन् । विशेषणद्वयेनापि चरणयोः सौकुमार्यात्कटिमेखलास्पर्शासहत्वं सूच्यते । तस्मिन्नङ्के निक्षिप्तौ चरणौ येन तम् ॥८॥

अन्वयः— पद्मनिषण्णायाः श्रियः क्षौमान्तरितमेखले, आस्तीर्णकरपल्लवे, अङ्के निक्षिप्तचरणम् विष्णुं ददृशुरिति पूर्वेणान्वयः ।

व्याख्या—पद्मे = कमले निषण्णा–समुपविष्टा इति पद्मनिषण्णा तस्याः पद्मनिषण्णायाः श्रयति हरिमिति श्रीस्तस्याः श्रियः–लक्ष्म्याः क्षुमायाः विकारः क्षौमम्=अतसीवल्कलवस्त्रम् । क्षौमेण–वाल्कलेन कौशेयवस्त्रेणेत्यर्थः, अन्तरिता-आच्छादिता मेखला=काञ्ची यस्य सः क्षौमान्तरितमेखलः तस्मिन् क्षौमान्तरितमेखले । आस्तीर्णौ-आच्छादितौ करौ=हस्तौ पल्लवौ=किसलये इव यस्मिन्, स आस्तीर्णकरपल्लवः अङ्के–क्रोडे निक्षिप्तौ=स्थापितौ चरणौ=पादौ येन स तं निक्षिप्तचरणम् । विष्णुं ददृशुरिति पूर्वेणान्वयः ।

समासः—पद्मे निषण्णा पद्मनिषण्णा, तस्याः पद्मनिषण्णायाः । क्षौमेण अन्तरिता मेखला यस्य सः, तस्मिन् क्षौमान्तरितमेखले । करौ पल्लवौ इवेति करपल्लवौ, आस्तीर्णौ करपल्लवौ यस्मिन् सः, तस्मिन् आस्तीर्णकरपल्लवे । निक्षिप्तौ चरणौ येन स तं निक्षिप्तचरणम् ।

हिन्दी—कमल के ऊपर बैठी हुई लक्ष्मी की उस गोद में चरण रखे हुवे विष्णु को देखा, जिसकी मेखला (करधनी) साड़ी से दबी हुई है । "और

उस गोद पर" लक्ष्मी के कररूपी पल्लव रखे हैं। इन दोनों विशेषणों से भगवान् के चरण अतीव कोमल है वे मेखला के कठोर स्पर्श को सहन नहीं कर सकते हैं, यही सूचित किया है ॥८॥

प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं बालातपनिभांशुकम्।
दिवसं शारदमिव प्रारम्भसुखदर्शनम् ॥९॥

संजी०—प्रबुद्धेति। पुनः कीदृशम्? प्रबुद्धे विकसिते पुण्डरीके इवाक्षिणी यस्य तम्। दिवसे तु पुण्डरीकमेवाक्षि यस्येति विग्रहः। बालातपनिभमंशुकं यस्य तम्। पीताम्बरधरमित्यर्थः। अन्यत्र,—बालातपव्याजांशुकमित्यर्थः। 'निभो व्याज-सदृक्षयोः' इति विश्वः। प्रकृष्ट आरम्भो योगो येषां ते प्रारम्भा प्रकृष्टोद्योगा योगिनः। तेषां सुखदर्शनम्। अन्यत्र,—प्रारम्भ आदौ सुखदर्शनं शारदं शरत्संबन्धिनं दिवसमिव स्थितम् ॥९॥

अन्वयः—प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षम् बालातपनिभांशुकम् प्रारम्भसुखदर्शनम्, शारदम्, दिवसम्, इव स्थितम्।

व्याख्या—प्रबुद्धं=विकसितं पुण्डरीकं=श्वेतकमलम् इव=यथा अक्षिणी=नेत्रे यस्य स तं प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षम्। यद्वा पुण्डरीकं=लोकात्मकम् अक्षति= व्याप्नोतीति पुण्डरीकाक्षः, तं पुण्डरीकाक्षम्। दिवसपक्षे तु पुण्डरीकमेव अक्षि यस्य तं तथोक्तम्। बालः=प्रातःकालिकश्चासौ आतपः=प्रकाशः, इति बालातप-स्तेन निभं=तुल्यं=सदृशम् अंशुकं=वस्त्रं यस्य स तं बालातपनिभांशुकम् पीताम्बर-मित्यर्थः। दिवसपक्षे—बालातपव्याजांशुकमिति। आरम्भणाम् आरम्भः, प्रकृष्टः आरम्भः योगः येषां ते प्रारम्भाः=योगिनस्तेषां सुखं=सुखकरं दर्शनम्=अवलोकनं यस्य स तं प्रारम्भसुखदर्शनम्, दिवसपक्षे तु प्रारम्भे=आदौ सुखं दर्शनं यस्य स तं तथोक्तम्। शरदि=शरदृतौ भवः शारदस्तं शारदं=शरत्संबन्धिनं दिवसम् इव=यथा स्थितं विष्णुं ददृशुरिति पूर्वेणान्वयः।

समासः—प्रबुद्धे पुण्डरीके इव अक्षिणी यस्य स तं प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षम्। बालश्चासौ आतपस्तेन निभम् अंशुकं यस्य स तं बालातपनिभांशुकम्। प्रारम्भाणां सुखं दर्शनं यस्य तं प्रारम्भसुखदर्शनम्।

हिन्दी—खिले श्वेत कमल के समान नेत्र वाले, तथा प्रातःकालीन पीलो-

धूप के समान वस्त्र पहने (पीतांबर धारण किये) और योगियों के लिये सुख-कर दर्शन वाले विष्णु भगवान् को शरदृतु के उस दिन की तरह देवताओं ने देखा। जो सुफेदकमल रूपी नेत्रवाला तथा प्रातःकाल का लालपीत वस्त्र वाला और शुरू में सुखदायी दीखने वाला शरदृतु का दिन ॥९॥

प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् ।

कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा ॥१०॥

संजी०—प्रभेति। पुनः किंविधम्? प्रभयाऽनुलिप्तमनुरञ्जितं श्रीवत्सं नाम लाञ्छनं येन तम्। लक्ष्म्या विभ्रमदर्पणं कौस्तुभ इत्याख्या यस्य तम्। अपां समुद्राणां सारं स्थिरांशम्। अम्मयमणिमित्यर्थः। बृहतोरसा बिभ्राणम् ॥१०॥

अन्वयः—प्रभानुलिप्तश्रीवत्सम्, लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम्, कौस्तुभाख्यम्, अपां सारं बृहता उरसा बिभ्राणं विष्णुं ददृशुः।

व्याख्या—श्रिया युक्तो वत्सः श्रीवत्सः=श्वेतरोमावर्तविशेषो लाञ्छनम्। कुपितस्य दुर्वाससः पादाघातरूपो रेखाविशेषो वा। प्रभया=कान्त्या अनुलिप्तः= अनुरञ्जितः श्रीवत्सः=लाञ्छनं येन स तं प्रभानुलिप्तश्रीवत्सम्। लक्षयति=पश्यति नीतिज्ञं या सा लक्ष्मीः। लक्ष्म्याः=श्रियः विभ्रमाः=विलासाः=हावभावादयः तेषां दर्पणः=आदर्शस्तं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम्, कुं=भुवं स्तुभ्नाति=व्याप्नोतीति कुस्तुभः= समुद्रस्तत्र भवः कौस्तुभः, कौस्तुभ इति आख्या नाम यस्य स तं कौस्तुभाख्यम्, अपां=सागराणां सारम्=स्थिरांशम् जलीयमणिम् बृहता=विशालेन उरसा=वक्षसा बिभ्राणं=धारयन्तं विष्णुं ददृशुरिति पूर्वेणैवान्वयः।

समासः—प्रभया अनुलिप्तः श्रीवत्सो येन स तं प्रभानुलिप्तश्रीवत्सम्। कौस्तुभः आख्या यस्य स तं कौस्तुभाख्यम्।

हिन्दी—"अपने" विशाल वक्षस्थल पर उस कौस्तुभ नाम के मणि को धारण किये हुए विष्णु को देखा, जिसकी कान्ति से श्रीवत्स चमक रहा है। और वह लक्ष्मी की श्रृंगार चेष्टाओं को देखने का शीशा (आयना) है। जो सारे समुद्रों का सार रत्न है। यहाँ पर श्रीवत्स, क्रोधी दुर्वासा के चरण चिह्न का नाम है। तथा सफेद रोम वाली भौंरी का नाम भी है जो विष्णु के वक्ष पर

श्वेत रोम का आवर्त बना हुआ है। वह चिह्न कौस्तुभमणि की कान्ति से चमक रहा है ॥१०॥

बाहुभिर्विटपाकारैर्दिव्याभरणभूषितैः ।
आविर्भूतमपां मध्ये पारिजातमिवापरम् ॥११॥

संजी०—बाहुभिरिति । विटपाकारैः शाखाकारैर्दिव्याभरणभूषितैर्बाहुभिरुपलक्षितम् । अत एव अपां सैन्धवानां मध्य आविर्भूतमपरं द्वितीयं पारिजातमिव स्थितम् ॥११॥

अन्वयः—विटपाकारैः दिव्याभरणभूषितैः बाहुभिः 'उपलक्षितम् अत एव' अपां मध्ये आविर्भूतम्, अपरं पारिजातम् इव स्थितम् ।

व्याख्या—विटपस्य=शाखाया इव आकारः=आकृतिः येषां ते तैः विटपाकारैः =शाखावद्दीर्घपीवरैरित्यर्थः, दिवि भवानि दिव्यानि, दिव्यानि=मनोहराणि= आभूषणानि इति दिव्याभरणानि, दिव्याभरणैः भूषिताः शोभितास्तैः दिव्याभरणभूषितैः बाहुभिः–भुजैः उपलक्षितम्, अत एव अपां–जलानां मध्ये=अन्तरे आविर्भूतं–प्रकटितम् अपरं=द्वितीयं पारिणः–समुद्रात् जातः=उत्पन्नः पारिजातः =देववृक्षस्तं परिजातम् इव=यथा स्थितं विष्णुं ददृशुरिति ।

समासः—विटपस्य इव आकारः येषां ते विटपाकारास्तैः विटपाकारैः । दिव्यानि च तानि भूषितास्तैः दिव्याभरणभूषितैः । पारिणो जातः पारिजातः तम् । आभरणानि च दिव्याभरणानि तैः ।

हिन्दी—वृक्ष की शाखा के समान लम्बी मोटी, और सुन्दर आभूषणों से सुशोभित भुजाओं वाले भगवान् को देखा । वे ऐसे लग रहे थे मानों समुद्र के बीच में प्रकट हुआ दूसरा पारिजात कल्पवृक्ष हो ॥११॥

दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः ।
हेतिभिश्चेतनावद्भिरुदीरितजयस्वनम् ॥१२॥

संजी०—दैत्येति । दैत्यस्त्रीगण्डलेखानामसुराङ्गनागण्डस्थलीनां यो मदरागस्तं विलुम्पन्ति हरन्तीति मदरागविलोपिनः । तैश्चेतनावद्भिः सजीवैर्हेतिभिः सुदर्शनादिभिः शस्त्रैः । 'रवेरर्चिश्च शस्त्रं च वह्निज्वाला च हेतयः ।' इत्यमरः ।

उदीरितजयस्वनम् । जयशब्दमुद्घोषयन्तीभिर्मूर्तिमतीभिरस्त्रदेवताभिरुपास्यमान-मित्यर्थः ॥१२॥

अन्वयः— दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां मदरागविलोपिभिः चेतनावद्भिः हेतिभिः उदीरितजयस्वनं विष्णुं ददृशुः ।

व्याख्या—दितेः अपत्यानि दैत्याः । दैत्यानाम्=असुराणां स्त्रियः=अंगनाः तासां गण्डलेखाः=कपोलस्थल्यस्तासां दैत्यस्त्रीगण्डलेखानाम्, मदस्य=मद्यस्य रागः= रक्तिमा, इति मदरागः मदरागं विलुम्पन्ति=विनाशयन्तीति तैः मदरागविलो-पिभिः, चेतना अस्ति येषु ते तैः चेतनावद्भिः=सजीवैः हन्यते याभिस्ताः हेतय-स्ताभिः हेतिभिः=सुदर्शनादिशस्त्रैः, उदीरितः उद्घोषितः जयस्वनः=जयशब्दः यस्य स तम् उदीरितजयस्वनं विष्णुं ददृशुः । सशरीराभिः सुदर्शनादिशस्त्रदेवताभिः जयजयेति शब्दम् उच्चार्य स्तूयमानमित्यर्थः । अत्र हेतिशब्दस्य "स्त्रियां क्तिन्" इति क्तिन्नन्तत्वेन स्त्रीत्वात् मदरागविलोपिभिः चेतनावद्भिरिति विशेषणयोः पुंस्त्वं चिन्त्यमिति ।

समासः—गण्डानां लेखाः गण्डलेखाः, दैत्यानां स्त्रियस्तासां गण्डलेखा-स्तासां दैत्यस्त्रीगण्डलेखानाम् । मदस्य रागस्तं विलुम्पन्तीति ताभिः मदरागविलो-पिभिः । उदीरितः जयस्वनः यस्य स तम् उदीरितजयस्वनम् ।

हिन्दी—दैत्यों की स्त्रियों के गालों की मदलालिमा को मिटाने वाले, सजीव सुदर्शनचक्र आदि शस्त्र जिन के जय जय कार शब्द को उद्घोषित कर रहे हैं, ऐसे विष्णु को देखा ॥१२॥

मुक्तशेषविरोधेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा ।
उपस्थितं प्राञ्जलिना विनीतेन गरुत्मता ॥१३॥

संजी०—मुक्तेति । मुक्तो भगवत्संनिधानात्त्यक्तः शेषेणाहीश्वरेण सहजमपि वैरं येन तेन । कुलिशव्रणा अमृताहरणकाल इन्द्रयुद्धे ये वज्रप्रहारास्त एव लक्ष्माणि यस्य स तेन । प्रबद्धोऽञ्जलिर्येन तेन प्राञ्जलिना । कृताञ्जलिनेत्यर्थः । विनीतेनानुद्धतेन गरुत्मतोपस्थितमुपासितम् । पुरा किल मातलिप्रार्थितेन भगवता तद्दुहितुर्गुणकेश्याः पत्युः कस्यचित्सर्पस्य गरुडादभयदाने कृते स्वविपक्षरक्षणक्षुभितं

पक्षिराजं 'त्वद्वोढाऽहं त्वत्तो बलाढ्यः' इति गर्वितं स्ववामतर्जनीभारेणैव भङ्क्त्वा भगवान्विनिनायेति महाभारतीयां कथां सूचयति 'विनीतेन' इत्यनेन ॥१३॥

अन्वयः—मुक्तशेषविरोधेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा प्राञ्जलि विनीतेन गरुत्मता उपस्थितम् ।

व्याख्या—शेषेण=सर्पराजेन सह विरोधः = वैरमिति शेषविरोधः, मुक्तः= परित्यक्तः=शेषविरोधः येन स तेन मुक्तशेषविरोधेन विष्णुसामीप्यादित्यर्थः । कुलौ=हस्ततले शेते इति कुलिशः । कुलिनः=पर्वतान् श्यति, इति वा कुलिशः, कुलिशस्य=वज्रस्य व्रणाः=क्षताः एव लक्ष्माणि=चिह्नानि यस्य स तेन कुलिशव्रण-लक्ष्मणा प्रबद्धः=विहितः अञ्जलिः=करसंपुटं येन स तेन प्राञ्जलिना, विनीतेन= विनम्रेण, गरुतः=पक्षाः सन्त्यस्य गरुत्मान् तेन गरुत्मता=गरुडेन उपस्थितम्= उपासितं, पक्षिराजेन सेवितमित्यर्थः ।

समासः—मुक्तः शेषेण सह विरोधो येन स तेन मुक्तशेषविरोधेन । कुलिशस्य व्रणा एव लक्ष्माणि यस्य स तेन कुलिशव्रणलक्ष्मणा । प्रबद्धः अञ्जलिः येन स तेन प्राञ्जलिना ।

हिन्दी—सर्पराज के साथ वैर का त्याग किये हुए, और वज्र की चोट के चिह्न वाले, हाथ जोड़े, अत्यन्त नम्र (सीधे-सादे) गरुड से सेवित विष्णु को देवों ने देखा । अर्थात् हाथ जोड़कर गरुड़ विष्णु के सामने नम्र भाव से खड़े थे ॥१३॥

योगनिद्रान्तविशदैः पावनैरवलोकनैः ।
भृग्वादीननुगृह्णन्तं सौखशायनिकानृषीन् ॥१४॥

संजी०—योगेति । योगो मनसो विषयान्तरव्यावृत्तिः, तद्रूपा या निद्रा तस्या अन्तेऽवसाने विशदैः प्रसन्नैः पावनैः शोधनैरवलोकनैः । सुखशयनं पृच्छन्तीति सौखशायनिकास्तान् । 'पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः' (वा. २९५३) इत्युपसंख्याना-ट्ठक्प्रत्ययः । भृग्वादीनृषीननुगृह्णन्तम् ॥१४॥

अन्वयः—योगनिद्रान्तविशदैः पावनैः अवलोकनैः सौखशायनिकान् भृग्वादीन् ऋषीन् अनुगृह्णन्तम् ।

व्याख्या—योगः=चित्तस्य विषयान्तरव्यावृत्तिः एव निद्रा=शयनमिति योगनिद्रा । योगनिद्रायाः अन्तः=अवसानं तस्मिन् विशदानि=प्रसन्नानि तैः योगनि-

द्रान्तविशदैः पावयन्तीति पावनानि तैः पावनैः-शोधनैः, अवलोक्यन्ते यैस्तानि तैः अवलोकनैः=दृष्टिभिः, सुखं यथा स्यात्तथा शयनमिति सुखशयनं तत् पृच्छन्तीति सौखशायनिकाः=सुखेन भवता शयितमिति पृच्छकास्तान् सौखशायनिकान् भृगुः= जमदग्निः आदिः = येषां ते भृग्वादयस्तान् भृग्वादीन्=जमदग्निप्रभृतीन् ऋषन्ति-प्राप्नुवन्ति मंत्रान् इति ऋषयः। ऋषन्ति = ज्ञानेन पश्यन्ति संसारपारं वेति ऋषयस्तान् ऋषीन्=ज्ञानसंसारयोः पारगन्तॄन् अनुगृह्णातीति अनुगृह्णन् तम् अनुगृह्णन्तं विष्णुमिति ।

समासः—योग एव निद्रा योगनिद्रा, योगनिद्रायाः अन्तः योगनिद्रान्तः तस्मिन् विशदानि, तैः योगनिद्रान्तविशदैः। भृगुः आदिः येषां ते तान् भृग्वादीन्।

हिन्दी—योगनिद्रा की समाप्तिपर (योगनिद्रा से उठने पर) निर्मल एवं पवित्र करने वाली अपनी दृष्टि (चितवन) से, 'भगवन् आप सुखपूर्वक सोये' ऐसा पूछने वाले भृगु आदि ऋषियों को अनुगृहीत (कृतार्थ) करने वाले विष्णु को देखा ॥१४॥

प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम् ।
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम् ॥१५॥

सं०—प्रणिपत्येति। अथ दर्शनानन्तरं सुराः सुरद्विषामसुराणां शमयित्रे विनाशकाय तस्मै विष्णवे प्रणिपत्य स्तुत्यं स्तोत्रार्हम्। 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' (पा. ३।१।१०९) इति क्यप्प्रत्ययः। वाक्च मनश्च वाङ्मनसे। 'अचतुर—' (पा. ५।४।७७) इत्यच्प्रत्ययान्तो निपातः। तयोर्गोचरो विषयो न भवतीत्यवाङ्मनसगोचरः। तमेनं विष्णुं तुष्टुवुरस्तुवन् ॥१५॥

अन्वयः—अथ सुराः सुरद्विषां शमयित्रे तस्मै प्रणिपत्य स्तुत्यम् अवाङ्मनसगोचरम् एनं तुष्टुवुः।

व्याख्या—अथ-विष्णुदर्शनानन्तरम् सुरा-समुद्रोत्था अस्ति येषां ते, सुष्ठु राजन्ते इति वा सुराः = देवाः। सुरान्=देवान् द्विषन्तीति सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषां= दैत्यानां शमयतीति शमयिता तस्मै शमयित्रे=विनाशकाय तस्मै = विष्णवे प्रणिपत्य-नमस्कृत्य-प्रणिपातं कृत्वेत्यर्थः, स्तोतुं योग्यं स्तुत्यं-स्तवनीयं स्तोत्रार्हमित्यर्थः, *उच्यते इति वाक्। मन्यतेऽनेनेति मनः। वाक्-वाणी च मनः=मानसञ्चेति वाङ्-*

मनसे, तयोः गोचरः=विषयः, इति वाङ्मनसगोचरः, न वाङ्मनसगोचरः अवाङ्मनसगोचरस्तम् अवाङ्मनसगोचरम् एनं=विष्णुं तुष्टुवुः=प्रस्तुवन्, स्तुतिं कृतवन्त इत्यर्थः ।

समासः—सुराणां द्विषः सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषाम् । वाक् च मनश्चेति वाङ्मनसे तयोः गोचरः, न वाङ्मनसगोचरस्तमवाङ्मनसगोचरम् ।

हिन्दी—विष्णु के दर्शन करने के पश्चात् देवताओं ने देवद्रोही असुरों का नाश करने वाले उस विष्णु भगवान् को प्रणाम करके स्तुति के योग्य तथा वाणी और मन का जो विषय नहीं है ऐसे इस विष्णु की स्तुति करने लगे ।।१५।।

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते ।

अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ।।१६।।

संजी०—नम इति । पूर्वमादौ विश्वसृजे विश्वस्रष्ट्रे तदनु सर्गानन्तरं विश्वं बिभ्रते पुष्णते । अथ विश्वस्य संहर्त्रे । एवं त्रेधा सृष्टि–स्थिति–संहारकर्तृत्वेन स्थित आत्मा स्वरूपं यस्य तस्मै ब्रह्म–विष्णु–हरात्मने तुभ्यं नमः ।।१६।।

अन्वयः—पूर्वं विश्वसृजे, तदनु विश्वं बिभ्रते, अथ विश्वस्य संहर्त्रे, एवं त्रेधास्थितात्मने तुभ्यं नमः ।

व्याख्या—पूर्वं=प्रथमम् विश्वं=भुवनं सृजति=उत्पादयतीति विश्वसृट् तस्मै विश्वसृजे तदनु=सृष्टेः पश्चात् विश्वं=भुवनं बिभर्तीति बिभ्रत् तस्मै बिभ्रते= पोषकाय धारकाय अथ=रक्षणानन्तरं विश्वस्य=लोकस्य संहरतीति संहर्ता तस्मै संहर्त्रे=संहारकाय=प्रलयकर्त्रे इत्यर्थः, एवं प्रकारेण त्रेधा=त्रिप्रकारेण सृष्टिस्थितिप्रलयकर्तृत्वेनेत्यर्थः स्थितः=वर्तमानः आत्मा=स्वरूपं यस्य स त्रेधास्थितात्मा तस्मै त्रेधास्थितात्मने=ब्रह्मविष्णुमहेश्वररूपायेत्यर्थः तुभ्यं=परमात्मने नमः=प्रणतिः क्रियतेऽस्माभिर्देवैरिति शेषः ।

समासः—विश्वं सृजतीति विश्वसृट्, तस्मै । त्रेधा स्थितः आत्मा यस्य स त्रेधास्थितात्मा तस्मै त्रेधास्थितात्मने ।

हिन्दी—पहले त्रिभुवन को पैदा करनेवाले, पैदा करने के बाद विश्वपालन करनेवाले, और फिर संसार का विनाश करनेवाले इस प्रकार तीनरूप (ब्रह्मा विष्णु महेश्वर) से वर्तमान तुमको "हम" प्रणाम करते हैं ।।१६।।

ननु कूटस्थस्य कथं त्रैरूप्यमित्याशङ्क्यौपाधिकमित्याह—

रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽश्नुते।
देशे देशे गुणेष्वेवमवस्थास्त्वमविक्रियः॥१७॥

संजी०—रसान्तराणीति। एकरसं मधुरैकरसं दिवि भवं दिव्यं पयो वर्षोदकं देशे देशे ऊषरादिदेशेऽन्यान्रसान्रसान्तराणि लवणादीनि यथाऽश्नुते प्राप्नोति। एवमविक्रियो निर्विकारः। एकरूप इत्यर्थः। त्वं गुणेषु सत्वादिष्ववस्थाः स्रष्टृत्वादिरूपा अश्नुषे॥१७॥

अन्वयः—यथा एकरसं दिव्यं पयः देशे देशे रसान्तराणि अश्नुते, एवम् अविक्रियः त्वं गुणेषु अवस्थाः "अश्नुषे"।

व्याख्या—यथा=येन प्रकारेण रस्यते=आस्वाद्यते इति रसः, एकः रसः यस्मिन् तत् एकरसं=मधुरैकरसं दिवि भवं दिव्यं=पयः वर्षाजलमित्यर्थः देशे देशे=सर्वजनपदे=ऊषरादिप्रदेशे अन्यान् रसान् रसान्तराणि=कटुलवणादीनि अश्नुते=प्राप्नोति एवम् नास्ति विक्रिया=विकृतिः यस्मिन् सः अविक्रियः=निर्विकारः एकरस इत्यर्थः त्वं=विष्णुः गुणेषु=सत्त्वरजस्तमस्सु अवस्थाः=सृष्टिपालनप्रलयकर्तृत्वरूपाः अश्नुषे=आप्नोषि। अतः कूटस्थोऽपि सन् त्वम् औपाधिकं त्रिरूपं प्राप्नोषि इति भावः।

समासः—अन्ये रसाः रसान्तराणि तानि। एकः रसः यस्मिन् तत् एकरसम्। न विक्रिया यस्य सः अविक्रियः।

हिन्दी—जिस प्रकार एक मधुर रस वाला वृष्टि का जल, पृथक् पृथक् स्थानों में (गिरकर) दूसरे २ (खारा, कड़ुवा आदि) रसवाला हो जाता है, उसी प्रकार विकारों से रहित तुम भी सत्त्व रज तमोगुणों के संबन्ध से सृष्टि-पालन, संहार कर्तृत्वरूप अवस्थाओं को प्राप्त होते हो। अर्थात् आप औपाधिकभेद से भिन्न भिन्न रूप वाले हैं तथा स्वतः कूटस्थ ही हैं॥१७॥

अमेयो मितलोकस्त्वमनर्थी प्रार्थनावहः।
अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तकारणम्॥१८॥

संजी०—अमेय इति। हे देव! त्वममेयो लोकैरियत्तया न परिच्छेद्यः। मितलोकः परिच्छिन्नलोकः। अनर्थी निःस्पृहः। आवहतीत्यावहः पचाद्यच्।

प्रार्थनानामावहः कामदः अजितोऽन्यैर्न जितः। जिष्णुर्जयशीलः। अत्यन्तमव्यक्तोऽतिसूक्ष्मरूपः। व्यक्तस्य स्थूलरूपस्य कारणम् ॥१८॥

अन्वयः—हे देव! त्वम् अमेयः सन् मितलोकः अनर्थी सन् प्रार्थनावहः अजितः सन् जिष्णुः अत्यन्तम् अव्यक्तः सन् व्यक्तकारणम् 'असीति शेषः'।

व्याख्या—हे देव! त्वं=सर्वव्यापकः विष्णुः मातुं योग्यः मेयः, न मेयः अमेयः=इयत्तया परिच्छेद्यो न, मितः=परिच्छिन्नः लोकः=भुवनं येन स मितलोकः, अर्थोऽस्यास्तीति अर्थी, न अर्थी अनर्थी निस्पृहः सन्, आवहतीति आवहः। प्रार्थनायाः=याचनायाः आवहः=प्रदाता इति प्रार्थनावहः=मनोरथप्रद इत्यर्थः। न जितः अजितः=अपरैर्न विजितः सन् जयति तच्छीलः जिष्णुः=विजयशीलः, अन्तम् अतिक्रान्तम् अत्यन्तम्=सर्वथा न व्यक्तः अव्यक्तः=अप्रकटः सन्नित्यर्थः। व्यक्तस्य=स्थूलरूपस्य कारणं=निदानमिति व्यक्तकारणम् त्वमसीति शेषः।

समासः—न मेयः अमेयः। मितः लोकः येन स मितलोकः। न अर्थते इति अनर्थी। प्रार्थनायाः आवहः प्रार्थनावहः। न जितः अजितः। न व्यक्तोऽव्यक्तः। व्यक्तस्य कारणमिति व्यक्तकारणम्।

हिन्दी—हे देव! आप अपरिमेय (इतने हैं इस प्रकार से लोगों से नहीं नापे जा सकते हैं) होते हुए भी, भुवनों को मापने वाले हैं। आप निस्पृह होते हुए भी "सबकी" प्रार्थना को पूर्ण करने वाले, और अजेय होते हुए भी "सबको" जीतने वाले, तथा अप्रकटरूप होते हुए भी स्थूलरूप इस संसार के कारण हैं ॥१८॥

हृदयस्थमनासन्नमकामं त्वां तपस्विनम्।
दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदुः ॥१९॥

संजी०—हृदयेति। हे देव! त्वां हृदयस्थं सर्वान्तर्यामितया नित्यसंनिहितं तथाप्यनासन्नमगम्यरूपत्वाद्विप्रकृष्टं च विदुः। संनिकृष्टस्यापि विप्रकृष्टत्वमिति विरोधः। तथाऽकामम्। न कामोऽभिलाषोऽस्य तं परिपूर्णत्वान्निःस्पृहत्वाच्च निष्कामम्। तथापि तपस्विनं तापसं विदुः। यो निष्कामः स कथं तपः कुरुत इति विरोधः। परिहारस्तु—ऋषिरूपेण दुस्तरं तपस्तप्यते। दयालुं परदुःखप्रहाणपरं तथाप्यनघस्पृष्टं नित्यानन्दस्वरूपत्वाददुःखिनं विदुः। 'अघं दुरितदुःखयोः' इति विश्वः। दयालुरदुःखी चेति विरोधः। 'ईर्ष्यी घृणी त्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।

परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥' इति महाभारते। पुराणमनादिमजरं निर्विकारत्वादक्षरं विदुः। चिरंतनं न जीर्यति इति विरोधालंकारः। उक्तं च—'आभासत्वे विरोधस्य विरोधालंकृतिर्मता' इति। विरोधेन चालौकिकमहिमत्वं व्यज्यते ॥१९॥

अन्वयः—"हे देव !" त्वां हृदयस्थं "तथापि" अनासन्नम्, अकामं 'तथापि' तपस्विनम्, दयालुं 'तथापि' अनघस्पृष्टम् पुराणं 'तथापि' अजरम् विदुः (ऋषय इति शेषः)।

व्याख्या—हृदये=मानसे तिष्ठतीति हृदयस्थः तं हृदयस्थम् = अन्तर्यामित्वेन सर्वदा संनिहितम् तथापि न आसन्नमिति अनासन्नम्=अगम्यरूपतया असंनिकृष्टम् च त्वां विदुः, समीपस्थस्यापि विप्रकृष्टत्वमिति विरोधः। तथा न कामः=अभिलाषः अस्य स तम् अकामं=निष्कामम् परिपूर्णत्वात् निष्कामत्वादित्यर्थः तथापि तपोऽस्यास्तीति तपस्वी तं तपस्विनम्=तपस्यायुक्तम्, निस्पृहः तपः किमर्थं कुरुते इति विरोधः, तथापि ऋषिरूपेण तपस्तप्यते। दयास्यास्तीति दयालुस्तं दयालुं= परदुःखनाशनपरं तथापि अघं=दुःखं, अघेन स्पृष्टः अघस्पृष्टः, न अघस्पृष्टः इति अनघस्पृष्टः तम् अनघस्पृष्टम्=नित्यानन्दस्वरूपत्वेन दुःखरहितमित्यर्थः। दुःखरहितो दुःखवारणकामः इति विरोधः। पुरा=अतीतानागतौ अर्थौ अनति पुराणस्तं पुराणम्= अनादिम् तथापि अजरम्=अक्षरं निर्विकारत्वात् विदुः जानन्ति स्म, ऋषय इति शेषः।

समासः—अघेन स्पृष्टः अघस्पृष्टः, न अघस्पृष्टस्तं अनघस्पृष्टम्।

हिन्दी—हे देव ! तुमको हृदय में रहते हुए भी दूर, निष्काम होते हुए भी नर-नारायण रूप से तपस्या करने वाले, दयावान् होते हुए भी दुःख से दूर, पुरातनपुरुष होने पर भी जरा (बुढ़ापा) से रहित, ऋषि लोग जानते हैं। इस श्लोक में विरोधालंकार है अर्थात् ऊपर से विरोध सा है। और विरोध से भगवान् की अलौकिक महिमा व्यक्त होती है ॥१९॥

सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक् ॥२०॥

संजी०—सर्वज्ञ इति। त्वं सर्वं जानातीति सर्वज्ञः। 'इगुपध—' (पा. ३।१।१३५) इति कप्रत्ययः। अविज्ञातः। न केनापि विज्ञात इत्यर्थः। त्वं सर्वस्य

योनिः कारणम् । त्वमात्मन एव भवतीत्यात्मभूः । न ते किंचित्कारणमस्तीत्यर्थः । त्वं सर्वस्य प्रभुः । त्वमनीशः । त्वमेकः सर्वरूपभाक् । त्वमेक एव सर्वात्मना वर्तस इत्यर्थः ॥२०॥

अन्वयः—"हे देव !" त्वं सर्वज्ञः सन् अविज्ञातः त्वं सर्वयोनिः सन् आत्मभूः त्वं सर्वप्रभुः सन् अनीशः, त्वम् एकः सन् सर्वरूपभाक् (असीति शेषः)।

व्याख्या—हे देव ! त्वं=विष्णुः सर्वं=विश्वं जानाति=वेत्तीति सर्वज्ञः सन् न विज्ञातः अविज्ञातः=कैश्चिदपि न ज्ञातः । त्वम् सर्वस्य=सर्वलोकस्य योनिः=प्रभवः सर्वयोनिः सन् आत्मनः=स्वस्मात् भवति=जायते, इति आत्मभूः=न ते किमपि कारणान्तरं विद्यते स्वयम्भूरित्यर्थः । त्वं सर्वस्य=अखिलस्य प्रभुः=ईशः, सर्वप्रभुः सन् स्वयं=स्वात्मना न ईशः यस्य सः अनीशः=स्वामिरहितः त्वं=विष्णुः एकः= अद्वितीय एव सर्वाणि=अखिलानि रूपाणि=स्वरूपाणि भजतीति सर्वरूपभाक्= अखिलात्मा असि सर्वात्मना त्वमेवासि ।

समासः—सर्वं जानातीति सर्वज्ञः । न विज्ञातोऽविज्ञातः । सर्वस्य योनिः सर्वयोनिः । सर्वस्य प्रभुः सर्वप्रभुः । न विद्यते ईशः यस्य सः अनीशः । सर्वं रूपं भजते इति सर्वरूपभाक् ।

हिन्दी—हे देव ! तुम सबको जानते हो, किन्तु तुम किसी से नहीं जाने गये हो । तुम विश्व के कारण हो किन्तु तुम स्वयम् कारणरहित हो, और तुम सबके प्रभु स्वामी हो, किन्तु तुम्हारा कोई स्वामी नहीं है, तुम एक अद्वितीय होते हुए भी सब रूपों को धारण करते हो । अर्थात् आप विश्वात्मा सर्वात्मा हो ॥२०॥

सप्तसामोपगीतं त्वां सप्तार्णवजलेशयम् ।
सप्तार्चिर्मुखमाचख्युः सप्तलोकैकसंश्रयम् ॥२१॥

संजी०—सप्तेति । हे देव ! त्वां सप्तभिः सामभी रथंतरादिभिरुपगीतम् । 'तद्धितार्थ–' (पा. २।१।५१) इत्युत्तरपदसमासः । सप्तानामर्णवानां जलं सप्तार्णवजलम् । पूर्ववत्समासः । तत्र शेते यः स सप्तार्णवजलेशयः । तम् । 'शयवासवासिष्वकालात्' (पा. ६।३।१८) इत्यलुक् । सप्तार्चिर्मुखं यस्य तम् । 'अग्निमुखा वै देवाः' इति श्रुतेः, सप्तानां लोकानां भूर्भुवःस्वरादीनामेकसंश्रयम् । एवंभूतमाचख्युः ॥२१॥

अन्वयः—"हे देव !" त्वां सप्तसामोपगीतम्, सप्तार्णवजलेशयम्, सप्तार्चिर्मुखम्, सप्तलोकैकसंश्रयम्, आचख्युः ।

व्याख्या—सप्तभिः=सप्तसंख्यकैः सामभिः=रथन्तरादिभिः उपगीतः=शब्दितः स्तुत इति सप्तसामोपगीतस्तं सप्तसामोपगीतम्=रथान्तरादिसामभिः कृतस्तवमित्यर्थः । अर्णांसि सन्ति येषु ते अर्णवाः । सप्तानां=ऋषिसंख्यकानाम् अर्णवानां=समुद्राणां जलं=सलिलमिति सप्तार्णवजलं, तस्मिन् शेते=स्वपिति, इति सप्तार्णवजलेशयस्तं सप्तार्णवजलेशयं सप्तसागरजलमध्ये शायिनमित्यर्थः, सप्त = सप्तसंख्यकानि अर्चींषि यस्य स सप्तार्चिः=अग्निः मुखम्=आननं यस्य स सप्तार्चिर्मुखस्तं सप्तार्चिर्मुखम् लोक्यन्ते इति लोकाः, सप्तानां लोकानां=भुवनानाम् एकः=अद्वितीयः संश्रयः=आधार इति सप्तलोकैकसंश्रयस्तं सप्तलोकैकसंश्रयम् आचख्युः=कथयन्ति स्म, महर्षय इति शेषः ।

समासः—सप्त च तानि सामानि च तैः उपगीतः सप्तसामोपगीतस्तं सप्तसामोपगीतम् । सप्तानाम् अर्णवानां जलमिति सप्तार्णवजलं तस्मिन् शेते इति सप्तार्णवजलेशयस्तं सप्तार्णवजलेशयम् । सप्त अर्चींषि यस्य स सप्तार्चिः, सप्तार्चिः मुखं यस्य स सप्तार्चिर्मुखस्तं सप्तार्चिर्मुखम् । सप्तानां लोकानां समाहारः सप्तलोकं तस्य एकः संश्रयस्तं सप्तलोकैकसंश्रयम् ।

हिन्दी—हे भगवन् ! सातों साम रथन्तर, बृहद्रथन्तर आदि से गान किये गये, तथा सातों समुद्रों के जल में शयन करने वाले, सात—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वदासा नामक जिह्वा वाले अग्निरूपी मुखवाले तथा सातों लोकों के एकमात्र आधार आपको ही ऋषियों ने बतलाया है ॥२१॥

चतुर्वर्गफलं ज्ञानं कालावस्थाश्चतुर्युगाः ।
चतुर्वर्णमयो लोकस्त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात् ॥२२॥

संजी०—चतुरिति । चतुर्णां धर्मार्थकाममोक्षाणां वर्गश्चतुर्वर्गः । 'त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः' इत्यमरः । तत्फलकं यज्ज्ञानम् । चत्वारि युगानि कृतत्रेतादीनि यासु ताश्चतुर्युगाः कालावस्थाः कालपरिमाणम् । चत्वारो वर्णाः प्रकृता उच्यन्ते यस्मिन्निति चतुर्वर्णमयः । चातुर्वर्ण्यप्रचुर इत्यर्थः । 'तत्प्रकृतवचने

मयट्' (पा. ५।४।२१) 'तद्धितार्थ—' (पा. २।१।५१) इत्यादिना तद्धितार्थ विषये तत्पुरुषसमासः । स लोकः । इत्येवंरूपं सर्वं चतुर्मुखाच्चतुर्मुखरूपिणस्त्वत्तः । जातमिति शेषः । 'इदं सर्वमसृजत यदिदं किंच' (तैत्ति० २।६) इति श्रुतेः ॥२२॥

अन्वयः—चतुर्वर्गफलं ज्ञानं चतुर्युगाः कालावस्थाः चतुर्वर्णमयः लोकः "इति" सर्वं चतुर्मुखात् त्वत्तः, (जातमिति शेषः) ।

व्याख्या—चतुर्णां=धर्मार्थकाममोक्षाणां वर्गः=समूहः इति चतुर्वर्गः, चतुर्वर्गः फलं यस्य तत् चतुर्वर्गफलं धर्मार्थकाममोक्ष फलकमित्यर्थः ज्ञानम्=धीः । चत्वारि युगानि यासु ताः चतुर्युगाः=सत्यद्वापरत्रेताकलिरूपाः, कल्यते=संख्यायते इति कालः । कालस्य=समयस्य अवस्थाः=भेदाः इति कालावस्थाः । चत्वारः=चतुःसंख्यकाः वर्णाः=ब्राह्मणक्षत्रियादयः प्रकृताः उच्यन्ते यस्मिन् स चतुर्वर्णमयः । लोक्यतेऽसौ लोकः=जनः इत्येवंरूपमखिलं ब्रह्माण्डं चत्वारि=चतुःसंख्यकानि मुखानि=आननानि यस्य स चतुर्मुखः, तस्मात् चतुर्मुखात्=चतुराननात् चतुर्मुखस्वरूपिणः त्वत्तः=भवतः जातमिति शेषः ।

समासः—चतुर्णां वर्गः चतुर्वर्गः, चतुर्वर्गः फलं यस्य तत् चतुर्वर्गफलम् । कालस्य अवस्थाः कालावस्थाः । चत्वारि युगानि यासु ताः चतुर्युगाः । चत्वारः वर्णाः प्रकृता उच्यन्ते यस्मिन् सः चतुर्वर्णमयः । चत्वारि मुखानि यस्य स तस्मात् चतुर्मुखात् ।

हिन्दी—धर्म अर्थ काम मोक्ष रूप फल देने वाला ज्ञान, और सत्य त्रेता द्वापर कलि इन चार युग वाली समय की अवस्था (समय का विभाग) तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चार वर्ण का संसार, यह सब चार मुख वाले ब्रह्मारूपी तुमसे ही उत्पन्न हुआ है ॥२२॥

अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयम् ।
ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये ॥२३॥

संजी०—अभ्यासेति । अभ्यासेन निगृहीतं विषयान्तरेभ्यो निवर्तितम् । तेन मनसा योगिनो हृदयाश्रयं हृत्पद्मस्थं ज्योतिर्मयं त्वां विमुक्तये मोक्षार्थं विचिन्वन्त्यन्विष्यन्ति । ध्यायन्तीत्यर्थः ॥२३॥

अन्वयः—योगिनः अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयं ज्योतिर्मयम् त्वां विमुक्तये विचिन्वन्ति ।

व्याख्या—योगः अस्ति येषु ते योगिनः = ध्यानिनः = समाधिमन्तः, अभ्यासः=अभ्यसनम् = आवृत्तिः चित्तस्य एकस्मिन् आभ्यन्तरे आलम्बने पुनः पुनः स्थापनमिति यावत् । अभ्यासेन=अभ्यसनेन, निगृहीतं=वशीकृतं विषयान्तरेभ्यः निगृह्याभ्यन्तरे स्थापितमित्यर्थः, तेन अभ्यासनिगृहीतेन मन्यतेऽनेनेति मनस्तेन मनसा=चित्तेन हृदयं=हृत् आश्रयं=स्थानं यस्य तत् हृदयाश्रयं=हृत्कमलस्थं ज्योतते इति ज्योतिः=तेजः, ज्योतिः प्रकृतमुच्यते यस्मिन् तम् इति ज्योतिर्मयं= तेजःप्रचुरं त्वां=भगवन्तं विष्णुं विमुक्तये=अपवर्गाय विचिन्वन्ति=अन्विष्यन्ति योगसमाधिना ध्यायन्तीत्यर्थः ।

समासः—अभ्यासेन निगृहीतमिति अभ्यासनिगृहीतं तेन अभ्यासनिगृहीतेन । हृदयम् आश्रयं यस्य तत् हृदयाश्रयम् ।

हिन्दी—"ध्यान समाधिरूप" अभ्यास से वश में किये गये मन से हृदय कमल में बैठे हुए, ज्योतिःस्वरूप (प्रकाशरूप) आपका ही योगिजन मोक्ष के लिये अन्वेषण करते हैं । अर्थात् आपका हो ध्यान करते हैं ।।२३।।

अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।

स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ? ॥२४॥

संजी०—अजस्येति । न जायत इत्यजः । 'अन्येष्वपि दृश्यते' (पा. ३।२।१०१) इति डप्रत्ययः । तस्याजस्य जन्म गृह्णतः मत्स्यादिरूपेण जायमानस्य । निरीहस्य चेष्टारहितस्यापि हतद्विषः शत्रुघातिनो जागरूकस्य सर्वसाक्षितया नित्यप्रबुद्धस्यापि स्वपतो योगनिद्रामनुभवतः । इत्थं विरुद्धचेष्टस्य तव याथार्थ्यं को वेद वेत्ति ? 'विदो लटो वा' (पा. ३।४।८३) इति णलादेशः ।।२४।।

अन्वयः—अजस्य "अपि" जन्म गृह्णतः निरीहस्य "अपि" हतद्विषः जागरूकस्य "अपि" स्वपतः तव याथार्थ्यं कः वेद ।

व्याख्या—न जायते इति अजस्तस्य अजस्य=जन्मरहितस्यापि, जननं जन्म= उत्पत्तिं गृह्णातीति गृह्णन् तस्य गृह्णतः=स्वीकुर्वतः मत्स्यकच्छपादिरूपेण जायमानस्ये- त्यर्थः, निर्गता ईहा=चेष्टा यस्मात् तस्य निरीहस्य=इच्छारहितस्यापि, द्विषन्तीति

द्विषः हताः=नष्टाः द्विषः=शत्रवो येन स तस्य हतद्विषः शत्रुविनाशकस्येत्यर्थः। जागरणशीलः जागरूकस्तस्य जागरूकस्य-सर्वसाक्षित्वेन सर्वदा प्रबुद्धस्यापि स्वपितीति स्वपन् तस्य स्वपतः=योगनिद्रामनुभवतः इत्थं प्रकारेण विरुद्धचेष्टस्य तव=विष्णोः अर्थमनतिक्रम्य यथार्थं तस्य भावः याथार्थ्यम्= तात्त्विकं स्वरूपं कः-जनः वेद जानाति, न कोऽपीति भावः।

समासः—निर्गता ईहा यस्मात् स निरीहस्तस्य। हताः द्विषः येन स हतद्विट् तस्य हतद्विषः।

हिन्दी—अजन्मा होते हुए भी मत्स्य कच्छप आदि रूप से जन्म लेने वाले, और निरीह (इच्छारहित) होते हुए भी शत्रुओं का संहार करने वाले, तथा योगनिद्रा में सोते हुए भी सबके साक्षिरूप से जागरूक (जागने के स्वभाव वाले) आपके यथार्थ रूप को कौन जान सकता है। अर्थात् उक्त रूप विरोधि चेष्टावले आपको तत्त्वरूप से कोई भी नहीं जान पाता है ॥२४॥

शब्दादीन्विषयान्भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः।
पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम् ॥२५॥

मंजी०—शब्देति। किंच, कृष्णादिरूपेण शब्दादीन्विषयान्भोक्तुम्। नरनारायणादिरूपेण दुश्चरं तपश्चरितुम्। तथा दैत्यमर्दनेन प्रजाः पातुम्। औदासीन्येन ताटस्थ्येन वर्तितुं च पर्याप्तः समर्थोऽसि। भोग-तपसोः पालनौदासीन्ययोश्च परस्पर-विरुद्धयोराचरणे त्वदन्यः कः समर्थ इत्यर्थः ॥२५॥

अन्वयः—शब्दादीन् विषयान् भोक्तुम्, दुश्चरं तपः चरितुम्, प्रजाः पातुम्, औदासीन्येन वर्तितुं "त्वं" पर्याप्तः असि।

व्याख्या—शब्दः-ध्वनिः आदिः=प्रथमः येषां ते शब्दादयः, तान् शब्दादीन्, विसिन्वन्ति=निबध्नन्ति इन्द्रियाणि, इति विषयास्तान् विषयान् पदार्थान् भोक्तुम्=अनुभवितुं रामकृष्णादिरूपेण विषयान् भोक्तुम्, दुःखेन चर्यते यत् तत् दुश्चरं=कर्तुमशक्यं तपः=तपस्यां चरितुं कर्तुम् बदरिकाश्रमे नरनारायणरूपेण तपः कर्तुमित्यर्थः। प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजास्ताः प्रजाः-जनान् पातुं=रक्षितुं राक्षसानां वधेनेत्यर्थः। उदास्ते इति उदासीनः, उदासीनस्य भावः औदासीन्यं तेन औदासीन्येन=ताटस्थ्येन वर्तितुं=व्यवहर्तुं त्वं=विष्णुरेव पर्याप्तः=अलम् असि=भवसि।

समासः—शब्दः आदिः येषां ते शब्दादयस्तान् शब्दादीन् ।

हिन्दी—"और हे भगवन्" कृष्णादि रूप से शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध आदि विषयों को भोगने के लिये, "तथा नरनारायण रूप से" कठोर तपस्या करने के लिये, और राम रूप से प्रजा का पालन करने के लिये, बुद्ध रूप से तटस्थ रहने के लिये तुम ही समर्थ हो। भोग तप पालन और उदासीनता जैसा विरोधी व्यवहार करने में तुमसे अतिरिक्त कौन समर्थ है ? कोई नहीं ॥२५॥

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः ।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥२६॥

संजी०—बहुधेति । आगमैस्त्रयीसांख्यादिभिर्दर्शनैर्बहुधा भिन्ना अपि सिद्धिहेतवः पुरुषार्थसाधकाः पन्थान उपायाः । जाह्नव्या इमे जाह्नवीया गाङ्गाः । 'वृद्धाच्छः' (पा. ४।२।११४) इति छप्रत्ययः । ओघाः प्रवाहाः । तेऽप्यागमैरागतिभिर्बहुधा भिन्नाः सिद्धिहेतवश्च । अर्णव इव त्वय्येव निपतन्ति प्रविशन्ति । येन केनापि रूपेण त्वामेवोपयान्तीत्यर्थः । यथाहुराचार्याः—'किं बहुना कारवोऽपि विश्वकर्मेत्युपासते' इति ॥२६॥

अन्वयः—आगमैः बहुधा भिन्नाः अपि सिद्धिहेतवः पन्थानः, जाह्नवीयाः ओघाः "आगमैः भिन्नाः अपि" अर्णवे इव त्वयि एव निपतन्ति ।

व्याख्या—आगमैः=वेदादिशास्त्रैः बहुधा=बहुप्रकारैः भिन्नाः अपि सिद्धीनां=पुरुषार्थानां हेतवः=कारणानि, इति सिद्धिहेतवः मोक्षसाधकाः वा पन्थानः=मार्गाः=उपाया इत्यर्थः षड्दर्शनोक्ताः, उपायाः इति यावत् । जहातीति जह्नुः । जह्नोः=राजर्षिविशेषस्य अपत्यं स्त्री जाह्नवी । तस्याः इमे जाह्नवीयाः=गंगासंबन्धिनः, ओघाः=जलप्रवाहाः (आगमैः=गतिभिः भिन्नाः=पृथग्भूताः प्रवाहाः) अर्णवे=सागरे इव=यथा त्वयि=भगवति विष्णौ एव=निश्चये निपतन्ति=प्रविशन्ति । सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छतीति येन केनापि प्रकारेण विष्णुमेव दर्शनमार्गाः प्राप्नुवन्तीति भावः ।

समासः—सिद्धीनां हेतवः सिद्धिहेतवः ।

हिन्दी—"हे भगवन्" षड्दर्शनों से अनेक प्रकार के भिन्न-भिन्न बताये गये मोक्षरूपी परमपुरुषार्थ के उपाय उसी प्रकार केवल आप में ही प्रविष्ट होते हैं,

जैसे गंगाजी की सभी धारायें सागर में ही गिरती हैं। अर्थात् मार्ग भिन्न-भिन्न होते हुए भी प्राप्तव्य एक तुम ही हो ॥२६॥

त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम्।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयःसंनिवृत्तये ॥२७॥

संजी०—त्वयीति। त्वय्यावेशितं निवेशितं चित्तं यैस्तेषाम्। तुभ्यं समर्पितानि कर्माणि यैस्तेषाम्। 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि कौन्तेय! प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥' (गी. ९।३४) इति भगवद्वचनात्। वीतरागाणां विरक्तानामभूयःसंनिवृत्तयेऽपुनरावृत्तये। मोक्षायेत्यर्थः। त्वमेव गतिः साधनम्। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वेता. ६।१५) इति श्रुतेरित्यर्थः ॥२७॥

अन्वयः—त्वयि आवेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणां वीरागाणाम् अभूयः संनिवृत्तये त्वम् "एव" गतिः "असि इति शेषः"।

व्याख्या—त्वयि=भगवति परमेश्वरे आसमन्तात् वेशितं=संनिवेशितं चित्तं=मनः यैस्ते तेषाम् आवेशितचित्तानाम्, तुभ्यं=भगवते परमेश्वराय सम्यगर्पितानि=दत्तानि कर्माणि=क्रियाः यैस्ते तेषां त्वत्समर्पितकर्मणाम्, रञ्जनं रागः, वीतः=नष्टः रागः=मात्सर्यं विषयवासना येषां ते तेषां वीतरागाणाम्, न भूयः अभूयः=अपुनः संनिवर्तनं संनिवृत्तिः, तस्यै संनिवृत्तये=आगमनाय अभूयः संनिवृत्तये=अपुनरागमनाय मोक्षायेत्यर्थः। त्वं=विष्णुरेव गम्यते=प्राप्यतेऽनया गतिः=अभ्युपायः साधनमित्यर्थः असि। त्वदतिरिक्तो मोक्षोपायः नास्तीति भावः।

समासः—आवेशितं चित्तं यैस्ते तेषाम् आवेशितचित्तानाम्। त्वयि समर्पितानि कर्माणि यैस्ते तेषां त्वत्समर्पितकर्मणाम्। वीतः रागः येभ्यः ते तेषां वीतरागाणाम्। न भूयः अभूयः।

हिन्दी—तुम्हारे में चित्त को लगाने वाले (सदा भगवान का ध्यान करने वाले) और तुम्हारे लिये सब कर्मों को समर्पण करने वाले, तथा विषयवासना-राग द्वेष शून्य विरक्तों के फिर संसार में न लौटने के साधन उपाय तुम ही हो। अर्थात् विरक्त योगियों को मुक्ति देनेवाले तुम्हीं हो ॥२७॥

प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो मह्यादिर्महिमा तव ।
आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा ।।२८।।

संजी०—प्रत्यक्ष इति । प्रत्यक्षः प्रत्यक्षप्रमाणगम्योऽपि तव मह्यादिः पृथिव्यादिर्महिमैश्वर्यमपरिच्छेद्यः । इयत्तया नावधार्यः । आप्तवाग्वेदः । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (तैत्तरीय. ३।१) इत्यादिश्रुतेः । अनुमानं 'क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात्, घटवत्' इत्यादिकम् । ताभ्यां साध्यं गम्यं त्वां प्रति का कथा ? प्रत्यक्षमपि त्वत्कृतं जगदपरिच्छेद्यम्, तत्कारणमप्रत्यक्षस्त्वमपरिच्छेद्य इति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ।।२८।।

अन्वयः—प्रत्यक्षः अपि तव मह्यादिः महिमा अपरिच्छेद्यः आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा ।

व्याख्या—अक्षम्=इन्द्रियं प्रति गतः प्रत्यक्षः=इन्द्रियजन्यज्ञानगम्यः अपि तव= भगवतः विष्णोः मह्यते=पूज्यते इति मही=पृथिवी आदिः यस्य स मह्यादिः महतो भावः महिमा=ऐश्वर्यम् परिच्छेत्तुम्=इयत्तया ज्ञातुं योग्यः परिच्छेद्यः, न परिच्छेद्यः अपरिच्छेद्यः=इयत्तयानवधार्य, आप्ता=प्रत्ययिता=विश्वस्ता वाक्=वाणी यस्य सः आप्तवाक्=वेदः अनुमानम्=अनुमितिकरणञ्चेति आप्तवागनुमाने, ताभ्याम् आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं=गम्यम् 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,' इति वेदेन पृथिव्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वादित्यनुमानेन च ज्ञेयं त्वां=विष्णुं प्रति का कथा किं कथनीयम् । यदा भगवता त्वया निर्मितं प्रत्यक्षं जगदपि इयत्तया न ज्ञायते तदा तत्कारणस्याप्रत्यक्षस्यापरिच्छेद्यत्वे किमु वक्तव्यमित्यर्थः ।

समासः—न परिच्छेद्योऽपरिच्छेद्यः । मही आदिः यस्य स मह्यादिः । आप्ता च वाक् च सा आप्तवाग् । आप्तवाक् च अनुमानं चेति आप्तवागनुमाने ताभ्याम् आप्तवागनुमानाभ्याम् ।

हिन्दी—"जब कि" इन्द्रियों से देखा, जाना गया, तुम्हारा ऐश्वर्य ही परिच्छेद (इतने परिमाण वाला है) के योग्य नहीं है "तो फिर" वेद तथा अनुमान से जानने योग्य तुम्हारे प्रति क्या कहना है । अर्थात् तुम्हारे बनाये प्रत्यक्षसंसार का ही जब कोई पार न पा सका तो वेद तथा अनुमान के द्वारा परोक्ष तुमको कैसे कोई जान सकता है ।।२८।।

केवलं स्मरणेनैव पुनासि पुरुषं यतः ।
अनेन वृत्तयः शेषा निवेदितफलास्त्वयि ॥२९॥

सं०टी०—केवलमिति । स्मरणेन केवलं कृत्स्नम् । 'केवलः कृत्स्न एकश्च' इति शाश्वतः । पुरुषं स्मर्तारं जनं पुनासि । यतः यदित्यर्थः । अनेन स्मृतिकार्येणैव त्वयि त्वद्विषये याः शेषा अवशिष्टा वृत्तयो दर्शनस्पर्शनादयो व्यापारास्ता निवेदितफला विज्ञापितकार्याः । तव स्मरणस्यैवैतत्फलं, दर्शनादीनां तु कियदिति नावधारयाम इति भावः ॥२९॥

अन्वयः—यतः स्मरणेन केवलं पुरुषं पुनासि, अनेन एव त्वयि शेषाः वृत्तयः निवेदितफलाः ।

व्याख्या—यतः=यत् स्मरणेन=आध्यानेन=स्मृत्या केवलं=कृत्स्नं सर्वमिति यावत् , पुरुषं=नरं स्मरणकर्तारमित्यर्थः पुनासि=पवित्रयसि पवित्रं करोषि, अनेन= स्मरणरूपेण कार्येण एवो निश्चिते त्वयि=भगवद्विषये याः शेषाः=अवशिष्टाः वृत्तयः=वर्तनानि दर्शनस्पर्शनसेवनादिव्यापाराः, ताः निवेदितानि=ज्ञापितानि फलानि=कार्याणि यासां ताः निवेदितफलाः सन्तीति शेषः । भवत्स्मरणस्यैव यदा एतत् फल तदा दर्शनस्पर्शनादीनां कियत् फलमिति तु न ज्ञायते ।

समासः—निवेदितं फलं यासां ताः निवेदितफलाः ।

हिन्दी—"हे भगवन्" तुम स्मरण करने से स्मरण करने वाले सब पुरुषों को पवित्र कर देते हो, "तो फिर" इस स्मरणरूप कार्य से तुम्हारे विषय में जो शेष तुम्हारा दर्शन स्पर्शन सेवा आदि व्यापार है, उसका फल विज्ञापित हो जाता है । अर्थात् जब तुम्हारे स्मरण का ही इतना फल है तो दर्शन स्पर्शनादि का कितना फल होगा, यह नहीं कह सकते ॥२९॥

उदधेरिव रत्नानि तेजांसीव विवस्वतः ।
स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते ॥३०॥

सं०टी०—उदधेरिति । उदधे रत्नानीव । विवस्वतस्तेजांसीव । दूराण्यवाङ्मनसगोचराणि ते चरितानि स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते । निःशेषं स्तोतुं न शक्यन्त इत्यर्थः ॥३०॥

अन्वयः—उदधेः रत्नानि इव विवस्वतः तेजांसि इव, दूराणि ते चरितानि स्तुतिभ्यः व्यतिरिच्यन्ते ।

व्याख्या—उदकानि=जलानि धीयन्तेऽत्र, उदधिस्तस्य उदधेः=सागरस्य रत्नानि=मणयः इव=यथा, विवस्वतः=सूर्यस्य तेजांसि=दीप्तयः इव–यथा दूराणि= विप्रकृष्टानि वाङ्मनसयोरविषयाणि ते=तव विष्णोः चरितानि–चरित्राणि स्तुतिभ्यः=स्तवेभ्यः व्यतिरिच्यन्ते=अधिकानि सन्ति । कैरपि तव सर्वं चरितं स्तोतुं न पार्यते इत्यर्थः । अस्मिन् पद्ये समस्तपदाभावात् समासो न दर्श्यते ।

हिन्दी—समुद्र के रत्नों के समान और सूर्य की किरणों के समान, दूर (वाणी और मन के जो विषय नहीं हैं) तुम्हारे चरित्र स्तुतियों से (अतिरिक्त) परे हैं । अर्थात् सागर के रत्न तथा सूर्यकिरण जैसे असंख्य है वैसे आपके अद्‌भुत चरित्र भी असंख्य हैं अतः उनकी स्तुति कैसे हो सकती है ॥३०॥

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किंचन विद्यते ।
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥३१॥

संजी०—अनवाप्तमिति । अनवाप्तमप्राप्तम् । अवाप्तव्यं प्राप्तव्यं ते तव किंचन किंचिदपि न विद्यते । नित्यपरिपूर्णत्वादिति भावः, तर्हि किंनिबन्धने जन्मकर्मणी तत्राह—लोकेति । एको लोकानुग्रह एव ते तव जन्मकर्मणोर्हेतुः । परमकारुणिकस्य ते परार्थैव प्रवृत्तिः, न स्वार्थेत्यर्थः ॥३१॥

अन्वयः—अनवाप्तम् अवाप्तव्यं ते किंचन न विद्यते, एकः लोकानुग्रहः एव ते जन्मकर्मणोः हेतुः ।

व्याख्या—न अवाप्तमिति अनवाप्तम्=अप्राप्तम्, अवाप्तुं योग्यम् अवाप्तव्यं= प्राप्तव्यं ते=तव भगवतः किंचन=किंचिदपि न=नहि विद्यते=अस्ति परिपूर्णत्वा- दित्यर्थः । तर्हि किंनिमित्तं जन्म कर्म चेत्याह—लोक्यन्ते इति लोकाः । लोकेषु=जनेषु अनुग्रहः=अनुकम्पा इति लोकानुग्रहः एव ते=तव जन्म च कर्म चेति जन्मकर्मणी=उत्पत्तिक्रिये तयोः जन्मकर्मणोः हेतुः=कारणम्, लोकानुग्रहकां- क्षयैव भगवतः प्रवृत्तिः नतु स्वार्थेति भावः ।

समासः—न अवाप्तमिति अनवाप्तम् । लोकेषु अनुग्रह इति लोकानुग्रहः । जन्म च कर्म चेति जन्मकर्मणी तयोः जन्मकर्मणोः ।

हिन्दी—"हे देव !" अप्राप्त वस्तु तुम्हारे लिये प्राप्त करने को कुछ भी नहीं है (क्योंकि आप सदा परिपूर्ण है) "फिर भी" आपके जन्म लेने तथा कर्म

करने का कारण एकमात्र लोगों पर अनुग्रह (कृपा) करना ही है। अर्थात् परम-कारुणिक होने से भगवान् की प्रवृत्ति दूसरों के लिये है न कि अपने लिये ॥३१॥

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥३२॥

संजी०—महिमानमिति। तव महिमानमुत्कीर्त्य वचः संह्रियत इति यत् तद्वचःसंहरणं श्रमेण वाग्व्यापारश्रान्त्या। अशक्त्या कार्त्स्न्येन वक्तुमशक्यत्वाद्वा। गुणानामियत्तयैतावन्मात्रतया न। तेषामानन्त्यादिति भावः ॥३२॥

अन्वयः—तव महिमानम् उत्कीर्त्य वचः संह्रियते "इति" यत् तत् श्रमेण अशक्त्या वा गुणानाम् इयत्तया न।

व्याख्या—तव भवतः विष्णोः महतो भावः महिमा, महिमानं-सामर्थ्यम् ऐश्वर्यमित्यर्थः, उत्कीर्त्य वचः=वचनं संह्रियते=समाप्यते इति यत्, तत्= वचःसंहरणं श्रमेण=श्रान्त्या वाणीव्यापारसामर्थ्याभावेनेत्यर्थः वक्तुमशक्यत्वात् गुणानां=दयादाक्षिण्यशौर्यादीनाम्, इदं परिमाणम् अस्येति इयान्, इयतः भावः इयत्ता, तया इयत्तया=एतावन्मात्रत्वेन न=नहि संह्रियते, तव गुणानामपरिमितत्वादित्यर्थः।

समासः—न शक्तिः अशक्तिस्तया अशक्त्या। इयतो भावः इयत्ता, तया।

हिन्दी—"हे भगवन्" आपकी महिमा (ऐश्वर्य) को कीर्तन करके जो (हम) वचन को रोक रहे हैं (चुप हो रहे हैं) यह हमारा चुप होना "अपनी जिह्वा की" थकावट और असामर्थ्य से है। न कि इसलिये कि आपके गुण इतने ही हैं। क्योंकि आपके गुण अनन्त हैं और हम उनका वर्णन करने में असमर्थ हैं ॥३२॥

इति प्रसादयामासुस्ते सुरास्तमधोक्षजम्।
भूतार्थव्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः ॥३३॥

संजी०—इतीति। इति ते सुरास्तमधोभूतमक्षजमिन्द्रियजं ज्ञानं यस्मिस्तमधोक्षजं विष्णुम्। प्रसादयामासुः प्रसन्नं चक्रुः। हि यस्मात् परमेष्ठिनः सर्वोत्तमस्य तस्य देवस्य सा देवैः कृता भूतार्थव्याहृतिर्भूतस्य सत्यस्यार्थस्य व्याहृतिरुक्तिः।

'युक्ते क्ष्मादावृते भूतम्' इत्यमरः। न स्तुतिर्न प्रशंसामात्रम्। महान्तो हि यथा-कथंचिन्न सुलभा इति भावः। परमे स्थाने तिष्ठतीति परमेष्ठी। 'परमे कित्' (उणा. ४५०) इत्युणादिसूत्रेण तिष्ठतेरिनिः। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (पा. ६।२।२) इति सप्तम्या अलुक्। 'स्थास्थिन्स्थूणाम्' इति वक्तव्यात्पत्वम् ॥३३॥

अन्वयः—इति ते सुराः अधोक्षजं तं प्रसादयामासुः हि परमेष्ठिनः सा भूतार्थव्याहृतिः न स्तुतिः।

व्याख्या—इति=पूर्वोक्तेन प्रकारेण ते=पूर्वोक्ताः प्रसिद्धाः सुराः=देवाः अक्षात् जातम् अक्षजम्। अधः कृतम् अक्षजम्=इन्द्रियजन्यं ज्ञानं यस्मिन् सः अधोक्षजस्तम् अधोक्षजम्। यद्वा अधोक्षाणां=जितेन्द्रियाणां जायते प्रत्यक्षो भवति, अधोक्षजस्तम्। तं=विष्णुं प्रसादयामासुः=प्रसन्नं चक्रुः। हि=यस्मात् परमे=व्योम्नि, चिदाकाशे, ब्रह्मपदे, वा तिष्ठतीति परमेष्ठी, तस्य परमेष्ठिनः=सर्वोत्तमदेवस्य सा=सुरैः कृता भूतः=सत्यश्चासौ अर्थः=अभिधेयः=वाच्यश्चेति भूतार्थः भूतार्थस्य=सत्यार्थस्य व्याहृतिः =व्याहरणं=कथनमिति भूतार्थव्याहृतिः न स्तुतिः=न स्तवनं, प्रशंसा मात्रं नेत्यर्थः।

समासः—अधः अक्षजं यस्मिन् सः अधोक्षजस्तम् अधोक्षजम्। भूतश्चासौ अर्थः भूतार्थः, भूतार्थस्य व्याहृतिरिति भूतार्थ व्याहृतिः।

हिन्दी—इस प्रकार (स्तुति करके) उन देवताओं ने इन्द्रियजन्य ज्ञान को ज्ञात न होने वाले, "अथवा" जितेन्द्रियों को दर्शन देने वाले, विष्णु को प्रसन्न कर लिया, "इसलिये कि" देवों में श्रेष्ठ उस विष्णु की देवताओं से की गई वह स्तुति, प्रशंसामात्र नहीं थी, किन्तु सत्य अर्थ का कथन था ॥३३॥

तस्मै कुशलसंप्रश्नव्यञ्जितप्रीतये सुराः।
भयमप्रलयोद्वेलादाचख्युर्नैऋर्तोदधेः ॥३४॥

संजी०—तस्मा इति। सुरा देवाः कुशलस्य संप्रश्नेन व्यञ्जिता प्रकटीकृता प्रीतिर्यस्य तस्मै। लक्षितप्रसादायेत्यर्थः। अन्यथा अनवसरविज्ञप्तिर्मुखराणामिव निष्फला स्यादिति भावः। तस्मै विष्णवेऽप्रलये प्रलयाभावेऽप्युद्वेलादुन्मर्यादात्। नैऋर्तो राक्षसः स एवोदधिः। तस्माद्भयमाचख्युः कथितवन्तः ॥३४॥

अन्वयः—सुराः कुशलसंप्रश्नव्यञ्जितप्रीतये तस्मै अप्रलयोद्वेलात् नैऋर्तो-दधेः भयम् आचख्युः।

व्याख्या—सुराः = देवाः, कुशलस्य=क्षेमस्य संप्रश्नः = पृच्छा, तेन व्यंजिता= प्रकटिता प्रीतिः=प्रसन्नता येन स तस्मै कुशलसंप्रश्नव्यंजितप्रीतये तस्मै=विष्णवे प्रकर्षेण लीयन्ते भूतानि यस्मिन् स प्रलय, न प्रलयः अप्रलयः=अयुगान्तः अप्रलये= प्रलयाभावे "अपि" उद्गता वेला यस्य सः उद्वेलस्तस्मात् उद्वेलात्=उन्मर्यादात् त्यक्तमर्यादादित्यर्थः निर्ऋतेः अपत्यं नैर्ऋतः=राक्षस एव उदधिः=समुद्रः इति नैर्ऋतोदधिस्तस्मात् नैर्ऋतोदधेः=राक्षससमुद्रात् भयं=भीतिं=साध्वसम् आचख्युः= कथयामासुः ।

समासः—कुशलस्य संप्रश्नः कुशलसंप्रश्नस्तेन व्यंजिता प्रीतिः येन स तस्मै कुशलसंप्रश्नव्यञ्जितप्रीतये । न प्रलयः अप्रलयः, उद्गता वेला उद्वेला, अप्रलये उद्वेला यस्य स तस्मात् अप्रलयोद्वेलात् । नैर्ऋत एव उदधिः नैर्ऋतोदधिस्तस्मात् नैर्ऋतोदधेः ।

हिन्दी—कुशलमंगल पूछने के द्वारा (अपनी) प्रसन्नता प्रकट करने वाले उस विष्णु से देवताओं ने प्रलयकाल के आये बिना (संसार की) मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले राक्षसरूपी समुद्र से भय बताया । अर्थात् संसार की मर्यादा को नष्ट करने वाले रावण से हमें बहुत डर है यह विष्णु से कह दिया ॥३४॥

अथ वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना ।
स्वरेणोवाच भगवान् परिभूतार्णवध्वनिः ॥३५॥

संजी०—अथेति । अथ वेलायामब्धिकूले समासन्नानां संनिकृष्टानां शैलानां रन्ध्रेषु गह्वरेष्वनुनादिना प्रतिध्वनिमता स्वरेण परिभूतार्णवध्वनिस्तिरस्कृतसमुद्र-घोषो भगवानुवाच ॥३५॥

अन्वयः—अथ अनन्तरम् वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना स्वरेण परि-भूतार्णवध्वनिः भगवान् उवाच ।

व्याख्या—अनुनादः अस्यास्तीति अनुनादी । वेलायां=समुद्रकूले समासन्नाः= समीपस्थाश्च ते शैलाः=पर्वताः इति वेलासमासन्नशैलास्तेषां रन्ध्राणि=छिद्राणि गह्वराणि इति वेलासमासन्नशैलरन्ध्राणि तेषु अनुनादी=प्रतिध्वनिमान् इति वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादी, तेन वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना, स्वनः शब्दः इति स्वरस्तेन स्वरेण परिभूतः=तिरस्कृतः अर्णवस्य=सागरस्य ध्वनिः=निर्घोषः

येन स परिभूतार्णवध्वनिः (अर्णांसि=जलानि सन्ति अस्य सोऽर्णवः) भगम्=ऐश्वर्यमस्यास्तीति भगवान्=विष्णुः उवाच=उक्तवान् ।

समासः—वेलायां समासन्नाः ये शैलास्तेषां रन्ध्राणि, इति वेलासमासन्नशैलरन्ध्राणि, तेषु अनुनादी इति वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादी तेन वेलासमासन्नशैलरन्ध्रानुनादिना । परिभूतः अर्णवस्य ध्वनिः येन स परिभूतार्णवध्वनिः ।

हिन्दी—देवताओं की प्रार्थना सुनने के पश्चात् समुद्र के किनारे पर वर्तमान (खड़े) पर्वतों की गुफाओं में प्रतिध्वनित (टकराये) हुए स्वर से (अपनी आवाज से) समुद्र के निर्घोष को तिरस्कृत करने वाले विष्णु बोले ॥३५॥

पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरिता ।
बभूव कृतसंस्कारा चरितार्थैव भारती ॥३६॥

सञ्जी०—पुराणस्येति । पुराणस्य चिरंतनस्य कवेस्तस्य भगवतो वर्णस्थानेषूरःकण्ठादिषु समीरिता सम्यगुच्चारिता । अत एव कृतः संपादितः संस्कारः साधुत्वस्पष्टतादिप्रयत्नो यस्याः सा भारती वाणी चरितार्था कृतार्था बभूवैव । 'एव'-कारस्त्वसंभावनाविपरीतभावनाव्युदासार्थः ॥३६॥

अन्वयः—पुराणस्य कवेः तस्य वर्णस्थानसमीरिता "अत एव" कृतसंस्कारा भारती चरितार्था एव बभूव ।

व्याख्या—पुराणस्य=चिरंतनस्य कवते, कौति वा कविस्तस्य कवेः=मनीषिणः तस्य=विष्णोः वर्णानाम्=अकारादीनां स्थानानि=कण्ठताल्वादीनि तेषु सम्यक् ईरिता=उच्चारिता इति वर्णस्थानसमीरिता अत एव कृताः=सम्पादिताः संस्काराः=साधुत्वादयः यस्याः सा कृतसंस्कारा, भारती=वाणी चरितः=कृतः अर्थः=प्रयोजनं यस्याः सा चरितार्था सफला एव बभूव=जाता, सफलैव जाता नात्र कश्चन सन्देह इत्यर्थः ।

समासः—वर्णानां स्थानानि, तेषु वर्णस्थानेषु समीरिता, वर्णस्थानसमीरिता । कृतः संस्कारो यस्याः सा कृतसंस्कारा । चरितः अर्थो यस्याः सा चरितार्था ।

हिन्दी—सबसे पुराने कवि उस विष्णु भगवान् के कण्ठ तालु दन्त आदि वर्णों के स्थान से सम्यग् रूप से उच्चारण की गई, अत एव साधुत्व स्पष्टतादि प्रयत्न रूप संस्कार वाली वाणी कृतार्थ (सफल) ही हो गई ॥३६॥

बभौ सदशनज्योत्स्ना सा विभोर्वदनोद्गता ।
निर्यातशेषा चरणाद्गङ्गेवोर्ध्वप्रवर्तिनी ॥३७॥

मंजी०—बभाविति । विभोर्विष्णोर्वदनादुद्गता निःसृता । सदशनज्योत्स्ना दन्तकान्तिसहिता । इदं च विशेषणं धावल्यातिशयार्थम् । अत एव सा भारती । चरणादङ्घ्रेर्निर्याता चासौ शेषा च निर्यातशेषा । निःसृतावशिष्टेत्यर्थः 'स्त्रियाः पुंवत्—' (पा. ६।३।३४) इत्यनुवर्त्य 'पुंवत्कर्म—' (पा. ६।३।४२) इति पुंवद्भावः । 'निर्यात'शब्दस्य या निर्याता सावशेषा सा गङ्गेवेति सामानाधिकरण्यनिर्वाहः । निर्यातायाः शेषेति विग्रहे पुंवद्भावो दुर्घट एव । ऊर्ध्वप्रवर्तिन्यूर्ध्ववाहिनी गङ्गेव । बभौ । इत्युत्प्रेक्षा ॥३७॥

अन्वयः—विभोः वदनोद्गता सदशनज्योत्स्ना सा चरणात् निर्यातशेषा ऊर्ध्वप्रवर्तिनी गंगा इव बभौ ।

व्याख्या—विशेषेण भवतीति विभुस्तस्य विभोः=सर्वतत्त्वावधारणसमर्थस्य= ईश्वरस्य विष्णोः वदनात्=मुखात् उद्गता=निःसृता=प्रकटिता, इति वदनोद्गता, दश्यते, एभिरिति दशनाः=दन्ताः ज्योतिरस्ति अस्यां सा ज्योत्स्ना । दशनानां= ज्योत्स्ना=कान्तिः, इति दशनज्योत्स्ना, दशनज्योत्स्नया सह वर्तते सा सदशन-ज्योत्स्ना सा=भारती चरन्त्यनेनेति चरणस्तस्मात् चरणात्=विष्णुपादात् निर्याता= निःसृता चासौ शेषा=अवशिष्टा चेति निर्यातशेषा=निर्गतावशिष्टा = या निःसृता सावशिष्टा इति सामानाधिकरण्यम् । ऊर्ध्वम्=आकाशे प्रवर्तते=वहति तच्छीला ऊर्ध्वप्रवर्तिनी=ऊर्ध्ववाहिनी गच्छतीति गङ्गा=भागीरथी इव=यथा बभौ=शुशुभे, इत्युत्प्रेक्षालंकारः ।

समासः—वदनात् उद्गता वदनोद्गता । दशनानां ज्योत्स्ना दशनज्योत्स्ना, तया सह वर्तते इति सदशनज्योत्स्ना । निर्याता चासौ शेषा च निर्यातशेषा । ऊर्ध्वं प्रवर्तिनी ऊर्ध्वप्रवर्तिनी ।

हिन्दी—व्यापक भगवान् विष्णु के मुख से निकली (उच्चारण की गई) तथा भगवान् के दाँतों की कान्ति से चमकती हुई (अत्यन्त धवल) वह वाणी, ऐसी सुशोभित हुई कि मानों भगवान् के चरण से निकलने से बची ऊपर को बहने वाली गंगाजी हो ॥३७॥

यदाह भगवांस्तदाह—

जाने वो रक्षसाक्रान्तावनुभावपराक्रमौ ।

अङ्गिनां तमसेवोभौ गुणौ प्रथममध्यमौ ॥३८॥

संजी०—जान इति । हे देवाः ! वो युष्माकमनुभाव-पराक्रमौ महिम-पुरुषकारौ रक्षसा रावणेन । अङ्गिनां शरीरिणां प्रथम-मध्यमावुभौ गुणौ सत्त्व-रजसी तमसेव तमोगुणेनेव आक्रान्तौ जाने । वाक्यार्थः कर्म ॥३८॥

अन्वयः— हे देवाः ! वः अनुभावपराक्रमौ रक्षसा, अंगिनां प्रथममध्यमौ उभौ गुणौ तमसा इव आक्रान्तौ "अहं" जाने ।

व्याख्या—हे देवाः ! वः=युष्माकम् अनुभावनम् अनुभावः । पराक्रम्यतेऽनेनेति पराक्रमः । अनुभावः=प्रभावः पराक्रमः=सामर्थ्यम्=उद्योगश्चेति अनुभावपराक्रमौ, तौ, अनुभावपराक्रमौ रक्षसा=निशाचरेण रावणेनेत्यर्थः अंगानि=शरीराणि सन्ति येषां ते अंगिनस्तेषाम् अंगिनां=शरीरिणाम् प्रथमः=सत्त्वगुणः मध्यमः रजोगुणश्चेति प्रथममध्यमौ उभौ=द्वौ गुणौ=सत्त्वरजसी ताम्यति अनेनेति तमस्तेन तमसा= तमोगुणेन इव=यथा आक्रान्तौ=आच्छादितौ=पराभूताविरयर्थः अहं जाने= वेद्मि जानामीत्यर्थः ।

समासः—अनुभावश्च पराक्रमश्च अनुभावपराक्रमौ, तौ अनुभावपराक्रमौ । प्रथमश्च मध्यमश्चेति प्रथममध्यमौ, तौ ।

हिन्दी—भगवान् विष्णु कहते हैं कि हे देवो ! आपके प्रभाव और उद्योग-सामर्थ्य को राक्षस रावण ने उसी प्रकार दबा दिया है, जैसे कि शरीरधारियों (प्राणियों) के पहले व दूसरे सत्त्वगुण रजोगुण (दोनों गुणों) को तमोगुण दबा देता है । यह मैं जानता हूं ॥३८॥

विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् ।

अकामोपनतेनेव साधोर्हृदयमेनसा ॥३९॥

संजी०—विदितमिति । किञ्च, अकामेनानिच्छयोपनतेन प्रमादादागतेनैनसा पापेन साधोः सज्जनस्य हृदयमिव । तेन रक्षसा तप्यमानं संतप्यमानम् । तपेर्भौवा-दिकात्कर्मणि शानच् । भुवनत्रयं च मे विदितम् मया ज्ञायत इत्यर्थः । 'मतिबुद्धि—'

(पा. ३।२।१८८) इत्यादिना वर्तमाने क्तः । "क्तस्य च वर्तमाने' (पा. २।३।६७) इति षष्ठी ।।३९।।

अन्वयः—"किंच" अकामोपनतेन एनसा साधोः हृदयम् इव, तेन तप्यमानं भुवनत्रयं च मे विदितम्, (अस्तीति शेषः) ।

व्याख्या—अकामेन=अनिच्छया उपनतं=प्राप्तम्=आगतमिति अकामोपनतं अकामोपनतेन एति=गच्छति प्रायश्चित्तमनेनेति एनस्तेन एनसा-पापेन साध्नोति धर्ममिति साधुस्तस्य साधोः=सज्जनस्य हृदयं=चित्तम् इव=यथा तेन=रक्षसा रावणेन तप्यमानं=संतप्यमानं पीडितमित्यर्थः, भवन्ति येषु तानि भुवनानि । भुवनानां त्रयमिति भुवनत्रयं=लोकत्रयं च मे=मम विदितं=ज्ञातम् । मया सर्वमेतद् ज्ञायते इत्यर्थः ।

समासः—न कामः अकामः अकामेन उपनतमिति अकामोपनतं तेन *अकामोपनतेन । भुवनानां त्रयमिति भुवनत्रयम् ।*

हिन्दी—और अनिच्छापूर्वक (अनजाने) किये हुए पाप से सज्जन के मन की तरह उस राक्षस के द्वारा संतप्त पीड़ित तीनों भुवनों को मैं जानता हूं ।।३९।।

कार्येषु चैककार्यत्वादभ्यर्थ्योऽस्मि न वज्रिणा ।

स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते ।।४०।।

सं०—कार्येष्विति । किंच, एककार्यत्वादावयोरेककार्यत्वाद्धेतोः । कार्येषु कर्तव्येषु विषयेषु वज्रिणेन्द्रेण अभ्यर्थ्यः 'इदं कुरु'इति प्रार्थनीयो नास्मि । तथा हि— वातः स्वयमेवाग्नेः सारथ्यं साहाय्यं प्रतिपद्यते प्राप्नोति । न तु वह्नि-प्रार्थनया इत्येवकारार्थः । प्रेक्षावतां हि स्वार्थे स्वत एव प्रवृत्तिः, न तु परप्रार्थनया । स्वार्थश्चायं ममापीत्यर्थः ।।४०।।

अन्वयः—एककार्यत्वात् कार्येषु वज्रिणा अभ्यर्थ्यः न अस्मि, हि वातः स्वयम् एव अग्नेः सारथ्यम् प्रतिपद्यते ।

व्याख्या—"किञ्च" एकं=अभिन्नं कार्यं=कर्तव्यं ययोस्तौ एककार्यौ, तयोः भावः एककार्यत्वं तस्मात् एककार्यत्वात् हेतोः, कार्येषु=कर्तव्यार्थेषु वज्रः=कुलिशम् अस्यास्तीति वज्री तेन वज्रिणा=इन्द्रेण अभ्यर्थितुं योग्यः अभ्यर्थ्यः=प्रार्थनीयः नास्मि=न भवामि, मम देवराजस्य च लोकपालनरूपमेकमेव कर्तव्यं वर्तते

इति हेतोः अन्येन अमरेण न प्रार्थनीय इति । हि=तथाहि वातः=वायुः स्वयमेव= आत्मनैव अग्नेः=वह्नेः सारथ्यं=सहायतां प्रतिपद्यते=प्राप्नोति । पवनः प्रार्थनां विनैव अग्नेः साहाय्यं करोतीति अहमपि तथैवेत्यर्थः ।

समासः—एकं कार्यं ययोस्तौ एककार्यौ, एककार्ययोः भावः एककार्यत्वं तस्मात् एककार्यत्वात् ।

हिन्दी—और हे देवो ! "असुरों को मारकर लोक का पालन करना" मेरा तथा देवराज का एक कार्य होने के कारण, कर्तव्य के प्रति इन्द्र को मुझसे प्रार्थना नहीं करनी चाहिये, इसलिये कि पवन देव अग्नि की सहायता के लिये स्वयमेव आ जाता है । अर्थात् बिना ही प्रार्थना के अग्नि को पवन सहायता करता है ॥४०॥

पुरा किल त्रिपुरारिप्रीणनाथ स्वशिरांसि छिन्दता दशकंधरेण यद्दशमं शिरोऽवशेषितं तन्ममचक्रार्थमित्याह—

स्वासिधारापरिहृतः कामं चक्रस्य तेन मे ।
स्थापितो दशमो मूर्धा लभ्यांश इव रक्षसा ॥४१॥

संजी०—स्वेति । स्वासिधारया स्वखड्गधारया परिहृतः । अच्छिन्न इत्यर्थः । दशमो मूर्धा मे मम चक्रस्य कामं पर्याप्तो लभ्यांशः प्राप्तव्यभाग इव तेन रक्षसा स्थापितः । तत्सर्वथा तमहं हनिष्यामीत्यर्थः ॥४१॥

अन्वयः—स्वासिधारापरिहृतः दशमः मूर्धा मे चक्रस्य कामं लभ्यांशः इव तेन रक्षसा स्थापितः (अस्तीति शेषः) ।

व्याख्या—स्वस्य=रावणस्य असिः स्वासिः । स्वासेः=चन्द्रहासस्य=स्वखड्गस्य धारा=मुखम् स्वासिधारया=स्वखड्गतैक्ष्ण्येन परिहृतः=अच्छिन्नः इति स्वासिधारापरिहृतः=स्वखड्गेनाकर्तित इत्यर्थः, दशानां पूरणः दशमः दशसंख्यापूरकः मूर्धा= मस्तकः, मे=मम विष्णोः चक्रस्य=सुदर्शनस्य कामं=यथेष्टम् लभ्यः=प्राप्तव्यश्चासौ अंशः=भागः इति लभ्यांशः इव=यथा तेन=प्रसिद्धेन रक्षसा=रावणेन स्थापितः= सुरक्षितः, अस्तीति शेषः । तत्सर्वथा मया हन्तव्य एवेति भावः ।

समासः—स्वस्य असिः स्वासिः, तस्य धारा, तया परिहृतः इति स्वासिधारापरिहृतः । लभ्यश्चासौ अंशः, लभ्यांशः ।

हिन्दी—भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिये रावण ने, अपनी तलवार से नौ शिर काट कर चढ़ा दिये थे, एक रह गया था, इसमें उत्प्रेक्षा है रावण की तलवार की धार से काटने से छूटा हुआ रावण का दसवां शिर, मानों उस राक्षस ने मेरे सुदर्शन चक्र का पर्याप्त भाग छोड़ रखा है। अतः मैं अवश्य उसे काटूंगा ॥४१॥

तर्हि किं प्रागुपेक्षितमत आह—

स्रष्टुर्वरातिसर्गात्तु मया तस्य दुरात्मनः।

अत्यारूढं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः ॥४२॥

संजी०—स्रष्टुरिति। किंतु स्रष्टुर्ब्रह्मणो वरातिसर्गाद्वरदानाद्धेतोः। मया तस्य दुरात्मनो रिपो रावणस्यात्यारूढमत्यारोहणम्। अतिवृद्धिरित्यर्थः। नपुंसके भावे क्तः, भोगिनः सर्पस्यात्यारूढं चन्दनेनेव सोढम्। चन्दनद्रुमस्यापि तथा सहनं स्रष्टुर्नियतेरिति द्रष्टव्यम् ॥४२॥

अन्वयः—मया तु स्रष्टुः वरातिसर्गात् तस्य दुरात्मनः रिपोः अत्यारूढं भोगिनः 'अत्यारूढं' चन्दनेन इव सोढम्।

व्याख्या—तु=किन्तु मया=विष्णुना सृजतीति स्रष्टा, तस्य स्रष्टुः= ब्रह्मणः वरस्य=अभिलषितस्य अतिसर्गः=प्रदानमिति वरातिसर्गस्तस्मात् वरातिसर्गात् कारणात् तस्य=प्रसिद्धस्य दुष्टः आत्मा यस्य स दुरात्मा, तस्य दुरात्मनः=नीचस्य रिपोः=शत्रोः=रावणस्य अतिशयेन आरूढमिति, अत्यारूढम्=अतीवारोहणम्=अतिप्रवृद्धिरित्यर्थः भोगः अस्यास्तीति भोगी तस्य भोगिनः= सर्पस्य अत्यारूढम् चन्दयति=आह्लादयतीति चन्दनः=मलयजस्तेन चन्दनेन इव=यथा सोढं=मर्षितम्। चन्दनवृक्षस्यापि सर्पस्य तथा रोहणस्य सहनं ब्रह्मणो नियोगादेवेति।

समासः—वरस्य अतिसर्गः वरातिसर्गस्तस्मात् वरातिसर्गात्। दुष्टः आत्मा यस्य स तस्य दुरात्मनः। अतिशयेन आरूढमिति अत्यारूढम्।

हिन्दी—किन्तु मैंने ब्रह्माजी के (रावण को) वरदान देने के कारण उस दुष्टात्मा रावण के बढ़ने (अत्याचार) को वैसे ही सहन किया है, जैसे साँप के लिपटने को चन्दन का वृक्ष सहन करता है। क्योंकि चन्दन भी ब्रह्मा की आज्ञा से सहन करता है ॥४२॥

संप्रति वरस्वरूपमाह—

धातारं तपसा प्रीतं ययाचे स हि राक्षसः ।
दैवात्सर्गादवध्यत्वं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः ॥४३॥

संजी०—धातारमिति । स राक्षसस्तपसा प्रीतं संतुष्टं धातारं ब्रह्माणम् । मर्त्येषु विषय आस्थापराङ्मुखः आदरविमुखः सन् । मर्त्याननादृत्येत्यर्थः । दैवादष्टविधात् सर्गाद्दैवसृष्टेरवध्यत्वं ययाचे हि ॥४३॥

अन्वयः—सः राक्षसः तपसा प्रीतं धातारं मर्त्येषु आस्थापराङ्मुखः सन् दैवात् सर्गात् अवध्यत्वं ययाचे हि ।

व्याख्या—सः = प्रसिद्धः राक्षसः = रावणः तप्यते इति तपः तेन तपसा = तपस्यया प्रीतं = प्रसन्नं दधातीति धाता तं धातारं = ब्रह्माणं म्रियते इति मर्तः । मर्त एव मर्त्यः । मर्त्येषु = मनुष्येषु विषये आस्थायाः = आदरात् पराङ्मुखः = विमुखः इति आस्थापराङ्मुखः सन् मनुष्या मेऽकिंचित्करा इति विश्वस्तः सन्नित्यर्थः देवात् आगतं दैवं तस्मात् दैवात् = अष्टविधात् सर्गात् = भाग्यसृष्टेः हन्तुं योग्यः वध्यः, न वध्योऽवध्यस्तस्य भावः अवध्यत्वम् = अविनाश्यत्वं ययाचे = याचितवान् हि ।

समासः—आस्थायाः पराङ्मुख इति आस्थापराङ्मुखः । न वध्यत्वमिति अवध्यत्वम् । तत् ।

हिन्दी—उस राक्षस रावण ने अपनी तपस्या से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी से, मनुष्यों को तुच्छ जानकर आठ प्रकार की दैव सृष्टि (देवों से) से मैं न मारा जाऊँ यही वर माँगा ॥४३॥

तर्हि का गतिरित्याशङ्क्य मनुष्यावतारेण हनिष्यामीत्याह—

सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्बलिक्षमम् ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरःकमलोच्चयम् ॥४४॥

संजी०—सोऽहमिति । सोऽहम् । दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः । 'अत इञ्' (पा. ८।१।१५) इतीञ्प्रत्ययः । रामो भूत्वा तीक्ष्णैः शरैस्तस्य रावणस्य शिरांस्येव कमलानि तेषामुच्चयं राशिं रणभूमेर्बलिक्षमं पूजार्हं करिष्यामि । पुष्पविशदा हि पूजेति भावः ॥४४॥

अन्वयः—सः अहम् दाशरथिः भूत्वा तच्छिरःकमलोच्चयं तीक्ष्णैः शरैः रणभूमेः बलिक्षमं करिष्यामि।

व्याख्या—सः=असुरसंहारे प्रसिद्धः अहं=विष्णुः दशरथस्य राज्ञोऽपत्यं पुमान् दाशरथिः=दशरथपुत्रः रामः भूत्वा अवतीर्य तीक्ष्णैः=निशितैः शरैः=बाणैः श्रीयते उष्णीषादिना इति शिरः। तस्य=रावणस्य शिरांसि=मस्तकानि एव कमलानि=पद्मानि, इति तच्छिरःकमलानि, तेषाम् उच्चयः=राशिः तं तच्छिरःकमलोच्चयं रणस्य=युद्धस्य भूमिः=स्थलमिति रणभूमिस्तस्याः रणभूमेः बलेः=उपहारस्य क्षमः=योग्यः इति बलिक्षमस्तं बलिक्षमं करिष्यामि=विधास्यामि, युद्धस्थले रावणमस्तकानि कर्तयिष्यामीत्यर्थः।

समासः—तस्य शिरांसि, तच्छिरांसि तच्छिरांसि एव कमलानीति, तच्छिरःकमलानि, तेषाम् उच्चयस्तं तच्छिरःकमलोच्चयम्। रणस्य भूमिस्तस्याः रणभूमेः। बलेः क्षमस्तं बलिक्षमम्।

हिन्दी—असुरों का संहार करने में प्रसिद्ध मैं राजा दशरथ का पुत्र (राम) होकर (रामजन्म लेकर) रावण के शिररूपी कमलों के समूह को अपने तीखे बाणों से रणभूमि की भेंट पूजा के योग्य कर दूँगा, अर्थात् रावण के शिरों को काटकर रणभूमि को भेंट करूँगा ॥४४॥

अचिराद्यज्वभिर्भागं कल्पितं विधिवत्पुनः।

मायाविभिरनालीढमादास्यध्वे निशाचरैः ॥४५॥

संजी०—अचिरादिति। हे देवाः! यज्वभिर्याज्ञिकैर्विधिवत् कल्पितमुपहृतं भागं हविर्भागं मायाविभिर्मायावद्भिः। 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' (पा. ५।२।१२१) इति विनिप्रत्ययः। निशाचरै रक्षोभिरनालीढमनास्वादितं यथा तथाऽचिरात् पुनरादास्यध्वे ग्रहीष्यध्वे ॥४५॥

अन्वयः—"हे देवाः! यूयम्" यज्वभिः विधिवत् कल्पितं भागं मायाविभिः निशाचरैः अनालीढं "यथा स्यात्तथा" अचिरात् पुनः आदास्यध्वे।

व्याख्या—हे देवाः! यूयम् यज्वभिः=याज्ञिकैः विधानं विधिः, विधिना तुल्यं विधिवत्=यथाशास्त्रम् कल्पितं=दत्तम्=उपहृतं भागं=हविर्भागं माया अस्ति येषु ते मायाविनस्तैः मायाविभिः=मायावद्भिः निशायां चरन्तीति निशाचरास्तैः

निशाचरैः=राक्षसैः, न आलीढम्, अनालीढम्=अनास्वादितम् यथा स्यात्तथा, अचिरात्=शीघ्रं पुनः आदास्यध्वे=प्राप्स्यथ।

समासः—माया अस्ति येषु ते मायाविनस्तैः मायाविभिः। न आलीढं यस्मिन् कर्मणि तत् अनालीढम्।

हिन्दी—हे देवो! याज्ञिकों के द्वारा विधिपूर्वक दिये हुए, "आपके" हवि भाग को, मायावी राक्षसों से बिना चखे ही आपलोग फिर शीघ्र ही प्राप्त करेंगे। अर्थात् अब आपके यज्ञभाग को राक्षस नहीं छीन सकेंगे, आप लोग ही उसको ग्रहण करेंगे ॥४५॥

वैमानिकाः पुण्यकृतस्त्यजन्तु मरुतां पथि।

पुष्पकालोकसंक्षोभं मेघावरणतत्पराः ॥४६॥

संजी०—वैमानिका इति। मरुतां देवानां पथि व्योम्नि वैमानिका विमानैश्चरन्तः। 'चरति' (पा. ४।४।८) इति ठक्प्रत्ययः। मेघावरणतत्परा रावणभयान्मेघेष्वन्तर्धानतत्पराः। पुण्यकृतः सुकृतिनः पुष्पकालोकेन यदृच्छया रावणविमानदर्शनेन यः संक्षोभो भयचकितं तं त्यजन्तु। 'संक्षोभो भयचकितम्' इति शब्दार्णवः ॥४६॥

अन्वयः—मरुतां पथि वैमानिकाः मेघावरणतत्पराः पुण्यकृतः "भवन्तः" पुष्पकालोकसंक्षोभं त्यजन्तु।

व्याख्या—म्रियन्ते यैः प्रवृद्धैः, विना वा ते मरुतस्तेषां मरुतां=देवानां, वायूनां वा पथि=मार्गे=आकाशे विमानैः=व्योमयानैः चरन्तीति वैमानिकाः=देवाः मेघाः=घनाः एव आवरणानि=आच्छादनानि, इति मेघावरणानि, तेषु तत्पराः=सक्ताः लीना इत्यर्थः, इति मेघावरणतत्पराः रावणभयेन मेघेषु अन्तर्हिताः इत्यर्थः, पुण्यं कुर्वन्तीति पुण्यकृतः=सुकृतिनो भवन्तः पुष्पमिव पुष्पकम् पुष्पकस्य=पुष्पकविमानस्य आलोकः=दर्शनमिति पुष्पकालोकः, पुष्पकालोकेन=यदृच्छया रावणविमानदर्शनेनेत्यर्थः संक्षोभः=भयचकितमिति तं पुष्पकालोकसंक्षोभं त्यजन्तु=जहतु=मुञ्चन्त्वित्यर्थः।

समासः—पुण्यस्य कृतः पुण्यकृतः। पुष्पकस्य आलोकः पुष्पकालोकस्तेन

संक्षोभस्तं पुष्पकालोकसंक्षोभम् । मेघाः एव आवरणानि मेघावरणानि, तेषु तत्पराः इति मेघावरणतत्पराः ।

हिन्दी—आकाश में विमानों पर चढ़कर चलने वाले, तथा मेघों की आड़ में छिपने में लगे, पुण्यात्मा आपलोग, अब अचानक रावण के विमान के दीख जाने पर उत्पन्न भय को त्याग दें । अर्थात् आपलोग अब स्वच्छन्द आकाश में विचरण करें, रावण से डरने की ज़रूरत नहीं है ॥४६॥

मोक्ष्यध्वे स्वर्गबन्दीनां वेणीबन्धानदूषितान् ।
शापयन्त्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैः ॥४७॥

संजी०—मोक्ष्यध्व इति । हे देवाः ! यूयं शापेन नलकूबरशापेन यन्त्रिताः प्रतिबद्धाः पौलस्त्यस्य रावणस्य बलात्कारेण ये कचग्रहाः केशाकर्षास्तैरदूषितानतनुपहतान् स्वर्गबन्दीनां हृतस्वर्गाङ्गनानां वेणीबन्धान् मोक्ष्यध्वे । पुरा किल नलकूबरेणात्मानमभिसरन्त्या रम्भाया बलात्कारेण संभोगात्क्रुद्धेन दुरात्मा रावणः शप्तः- 'स्त्रीणां बलाद्ग्रहणे मूर्धा ते शतधा भविष्यति'—इति भारतीया कथानुसंधेया ॥४७॥

अन्वयः—हे देवाः ! यूयम् शापयन्त्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैः अदूषितान् स्वर्गबन्दीनां वेणीबन्धान् मोक्ष्यध्वे ।

व्याख्या—"भो देवाः ! यूयम्" पुलस्त्यस्यापत्यं पुमान् पौलस्त्यः, पौलस्त्यस्य = रावणस्य बलात्कारः=प्रसभमिति पौलस्त्यबलात्कारः । शापेन=नलकूबरस्याक्रोशेन यन्त्रिताः=प्रतिबद्धाः, पौलस्त्यबलात्कारेण=रावणबलात्कारेण ये कचग्रहाः= केशाकर्षाः, तैः शापयन्त्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैः न दूषिताः अदूषितास्तान्, अदूषितान्=अस्पृष्टान् (रम्भया सह प्रसह्य सम्भोगात् क्रुद्धेन कुबेरपुत्रेण, स्त्रीणां बलात्संभोगेन ते मस्तकं शतधा भिन्नं भविष्यतीति रावणः शप्तः, अतः बन्दीकृताः स्वर्गांगना अदूषिताः आसन्निति भावः) स्वर्गस्य वन्द्यः स्वर्गवन्द्यस्तासां स्वर्गवन्दीनाम्=स्वर्गस्त्रीणां, वेणीनां=प्रवेणीनां=कचबन्धानां बन्धाः=ग्रन्थयस्तान् वेणीबन्धान् मोक्ष्यध्वे=शिथिलयिष्यथ ।

समासः—पौलस्त्यस्य बलात्कारः पौलस्त्यबलात्कारः, पौलस्त्यबलात्कारेण ये कचानां ग्रहाः, इति पौलस्त्यबलात्कारकचग्रहाः, शापेन यन्त्रिताः च ते पौलस्त्यबलात्कारकचग्रहास्तैः शापयन्त्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैः । न दूषिताः अदूषिता-

स्तान् अदूषितान् । स्वर्गस्य बन्द्यः स्वर्गबन्द्यस्तासां स्वर्गबन्दीनाम् । वेणीनां बन्धास्तान् वेणीबन्धान् ।

हिन्दी—हे देवताओं ! "रावण द्वारा" स्वर्ग की बन्दी बनाई हुई स्त्रियों के जूड़ों की उन ग्रन्थियों को तुमलोग अपने हाथों से खोलोगे, जो कि नलकूबर के शाप के कारण, रावण के बलात्कार पूर्वक केशों के पकड़ने से दूषित नहीं हुई हैं।

विशेष:—रम्भा नाम की स्वर्गांगना अभिसार के लिये कुबेरपुत्र नलकूबर के पास जा रही थी, बीच ही में रावण ने पकड़कर बलात् सम्भोग किया, इससे नलकूबर ने रावण को शाप दिया कि यदि किसी भी स्त्री से इस प्रकार बलात्कार करोगे तो तुम्हारे शिर के सैंकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। इसी डर से रावण किसी स्त्री से बलात्कार नहीं करता था। ऐसी कथा महाभारत में है ॥४७॥

रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन सः ।
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे ॥४८॥

संजी०—रावणेति । स कृष्णो विष्णुः स एव मेघो नीलमेघश्च । विश्रवसोऽपत्यं पुमानिति विग्रहे रावणः 'विश्रवः'शब्दस्य वृत्तिविषये रवणादेशे रावण इति सिद्धम् । स एवावग्रहो वर्षप्रतिबन्धः, तेन क्लान्तं म्लानं मरुतो देवा एव सस्यं तत् । इत्येवंरूपेण वागमृतेन । 'अमृतं यज्ञशेषे स्यात्पीयूषे सलिलेऽमृतम्' इति विश्वः । अभिवृष्याभिषिच्य तिरोदधेऽन्तर्दधे ॥४८॥

अन्वयः—सः कृष्णमेघः रावणावग्रहक्लान्तम् मरुत्सस्यम्, इति वागमृतेन अभिवृष्य तिरोदधे ।

व्याख्या—सः=भगवान् कृष्णः=विष्णुरेव मेघः=नीलघनः इति कृष्णमेघः (विश्रवसः अपत्यं पुमान् इति विग्रहे 'शिवादिभ्योऽण्' इति अण्प्रत्यये विश्रवशब्दस्य रवणादेशे रावणः) रावयति=विभीषयति सर्वानिति रावणः=राक्षसः एव अवग्रहः=वर्षणप्रतिबन्धः, इति रावणावग्रहस्तेन क्लान्तं=म्लानमिति रावणावग्रहक्लान्तं मरुतः=देवाः एव सस्यं=धान्यं तत् मरुत्सस्यम्, इति=एवं रूपेण वाग्=वाणी एव अमृतं=जलमिति वागमृतं तेन वागमृतेन अभिवृष्य=अभिषिच्य तिरोदधे=अन्तर्दधे तिरोबभूव, अदृश्यो जात इत्यर्थः ।

समास:—कृष्ण एव मेघः इति कृष्णमेघः । रावण एव अवग्रहस्तेन क्लान्तं

सत् रावणावग्रहक्लान्तम् । वाक् एव अमृतमिति वागमृतं तेन वागमृतेन । मरुतः एव सस्यं तत् मरुत्सस्यम् ।

हिन्दी—वह भगवान् विष्णुरूपी मेघ (नीलमेघ) रावणरूपी वर्षा के प्रतिबन्धक से दुःखी देवतारूपी धान को, इस प्रकार वाणीरूपी जल से सींचकर अदृश्य हो गये । अर्थात् जैसे काला बादल सूखी खेती को सींचकर निकल जाता है वैसे ही रावण से पीड़ित देवों को अपनी वाणी से तृप्त कर विष्णु भगवान् अदृश्य हो गये ॥४८॥

पुरुहूतप्रभृतयः सुरकार्योद्यतं सुराः ।
अंशैरनुययुर्विष्णुं पुष्पैर्वायुमिव द्रुमाः ॥४९॥

संजी०—पुरुहूतेति । पुरुहूतप्रभृतय इन्द्राद्याः सुराः सुरकार्यं रावणवधरूप उद्यतं विष्णुमंशैर्मात्राभिः । द्रुमाः पुष्पैः स्वांशैर्वायुमिव । अनुययुः । सुग्रीवादिरूपेण वानरयोनिषु जाता इत्यभिप्रायः ॥४९॥

अन्वयः—पुरुहूतप्रभृतयः सुराः सुरकार्योद्यतं विष्णुम् अंशैः, द्रुमाः पुष्पैः वायुम् इव अनुययुः ।

व्याख्या—पुरु=प्रचुरम् हूतम्=आह्वानं यज्ञेषु अस्य स पुरुहूतः । पुरूणि हूतानि नामान्यस्य स पुरुहूतः । पुरुहूतः=इन्द्रः प्रभृतिः आदिः येषां ते पुरुहूतप्रभृतयः सुराः=देवाः सुराणां=देवानां कार्यं=रावणवधरूपमिति सुरकार्यं, सुरकार्ये उद्यतः= संनद्धः तं सुरकार्योद्यतं वेवेष्टि=व्याप्नोति सर्वमिति विष्णुस्तं विष्णुं=नारायणम्, अंशैः=मात्राभिः द्रवति ऊर्ध्वमिति द्रुः=शाखा अस्ति येषां ते द्रुमाः=वृक्षाः पुष्पैः= स्वांशकुसुमैः वायुम्=पवनम् इव=यथा अनुययुः=अनुजग्मुः । सुराः सुग्रीवादिरूपेण वानरयोनिषु जाताः ।

समासः—पुरु हूतं यज्ञेषु यस्य स पुरुहूतः, पुरुहूतः प्रभृतिर्येषां ते पुरुहूत-प्रभृतयः । सुराणां कार्यमिति सुरकार्यं सुरकार्ये उद्यतस्तं सुरकार्योद्यतम् ।

हिन्दी—इन्द्र आदि देवों ने, रावण का संहाररूप कार्य करने के लिये तैयार हुए, विष्णु भगवान् का, अपने-अपने अंशों से उसी प्रकार अनुगमन किया, जैसे कि वृक्ष अपने-अपने अंश पुष्पों से वायु का अनुगमन करते हैं । अर्थात् सभी देव सुग्रीव आदि रूप से वानरादि योनि में जन्म लिये ॥४९॥

अथ तस्य विशांपत्युरन्ते काम्यस्य कर्मणः ।
पुरुषः प्रबभूवाग्नेर्विस्मयेन सहर्त्विजाम् ॥५०॥

संजी०—अथेति । अथ तस्य विशांपत्युर्दशरथस्य संबन्धिनः काम्यस्य कर्मणः पुत्रकामेष्टेरन्तेऽवसानेऽग्नेः पावकात् पुरुषः कश्चिद्दिव्यः पुमान् । ऋत्विजां विस्मयेन सह प्रबभूव प्रादुर्बभूव । तदाविर्भावात्तेषामपि विस्मयोऽभूदित्यर्थः ॥५०॥

अन्वयः—अथ तस्य विशांपत्युः काम्यस्य कर्मणः अन्ते, अग्नेः पुरुषः ऋत्विजां विस्मयेन सह प्रबभूव ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरं देवानां विष्णोरनुगमनानन्तरमित्यर्थः तस्य=राज्ञो दशरथस्य विशां=मनुजानां पत्युः=स्वामिनः कामयितुं योग्यं काम्यं तस्य काम्यस्य= पुत्रार्थमभिलषितस्य कर्मणः=पुत्रकामेष्टेः, अन्ते=समाप्तौ, अग्नेः=वह्नेः सकाशात् पुरुषः=दिव्यः कश्चित्पुमान् ऋतौ यजन्तीति ऋत्विजस्तेषाम्, ऋत्विजां=याज्ञिकानां विस्मयेन=आश्चर्येण सह=साकं प्रबभूव=प्रादुरास, दिव्यपुरुषस्य आविर्भावात् याज्ञिकानामपि आश्चर्यं जातमित्यर्थः ।

हिन्दी—देवताओं के विष्णु का अनुगमन करने के पश्चात् उस मनुष्यों के स्वामी दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ की पूर्णाहुति (समाप्ति) होते ही अग्नि से एक दिव्यपुरुष याज्ञिक ऋषियों के आश्चर्य के साथ प्रकट हुआ । अर्थात् दिव्यपुरुष के उस क्षण प्रकट होने से ऋषियों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥५०॥

तमेव पुरुषं विशिनष्टि—

हेमपात्रगतं दोर्भ्यामादधानः पयश्चरुम् ।
अनुप्रवेशादाद्यस्य पुंसस्तेनापि दुर्वहम् ॥५१॥

संजी०—हेमपात्रेति । आद्यस्य पुंसो विष्णोरनुप्रवेशादधिष्ठानाद्धेतोस्तेन दिव्यपुरुषेणापि दुर्वहम् चतुर्दशभुवनोदरस्य भगवतो हरेरतिगरीयस्त्वाद्वोढुमशक्यम् । हेमपात्रगतं पयसि पक्वं चरुं पयश्चरुं पायसान्नं दोर्भ्यामादधानो वहन् । 'अनत्याग्निभिरूष्मपक्व ओदनश्चरुः' इति याज्ञिकाः ॥५१॥

अन्वयः—आद्यस्य पुंसः अनुप्रवेशात् "हेतोः" तेन अपि दुर्वहं हेमपात्रगतं पयश्चरुं दोर्भ्याम् आदधानः पुरुषः प्रबभूवेति पूर्वेणान्वयः ।

व्याख्या—आदौ भवः आद्यस्तस्य आद्यस्य=प्रथमस्य पुंसः=पुरुषस्य विष्णोः अनुप्रवेशात्=अधिष्ठानात् कारणात्, तेन=दिव्यपुरुषेण अपि दुःखेन वोढुं शक्यः दुर्वहस्तं दुर्वहम्=वोढुमशक्यं हेम्नः=सुवर्णस्य पात्रं=भाजनमिति हेमपात्रं तत्र गतं=स्थितं तं हेमपात्रगतम् । पयसि=दुग्धे पक्वः पयःपक्वः, पयःपक्वश्चासौ चरुः=हविष्यान्नमिति पयश्चरुस्तं पयश्चरुम्=(शकपार्थिवादित्वात्पक्वपदस्य लोपः) पायसान्नम् दोर्भ्यां=हस्ताभ्याम् आदधानः=बिभ्राणः धारयन्नित्यर्थः दिव्यः पुरुषः प्रबभूवेति पूर्वश्लोकेनान्वयः ।

समासः—पयसि पक्वः चरुः पयश्चरुस्तं पयश्चरुम् । हेम्नः पात्रं हेमपात्रं हेमपात्रे गतस्तं हेमपात्रगतम् ।

हिन्दी—प्रथम पुरुष भगवान् विष्णु के (उस चरु में) प्रविष्ट होने के कारण उस दिव्य पुरुष से भी दुःख से उठाये हुए (चौदह भुवनों के भार वाले भगवान् के प्रवेश से अत्यन्त भारी होने से) तथा सोने के पात्र (कटोरे) में रखे हुए, दूध में पके चरु को, दोनों हाथों से लिये हुए दिव्य पुरुष प्रकट हुआ ।।५१।।

प्राजापत्योपनीतं तदन्नं प्रत्यग्रहीन्नृपः ।
वृषेव पयसां सारमाविष्कृतमुदन्वता ।।५२।।

संजी०—प्राजापत्येति । नृपो दशरथः प्राजापत्येन प्रजापतिसंबन्धिना पुरुषेणोपनीतं, न तु वसिष्ठेन । 'प्राजपत्यं नरं विद्धि मामिहाभ्यागतं नृप !' (बाल. १६।१६) इति रामायणात् । तदन्नं पायसान्नम् । उदन्वतोदधिनाऽऽविष्कृतं प्रकाशितं पयसां सारममृतं वृषा वासव इव । 'वासवो वृत्रहा वृषा' इत्यमरः । प्रत्यग्रहीत् स्वीचकार ।।५२।।

अन्वयः—नृपः प्राजापत्योपनीतं तत् अन्नम्, उदन्वता आविष्कृतं पयसां सारं वृषा इव प्रत्यग्रहीत् ।

व्याख्या—नृपः=राजा दशरथः प्रजायन्ते इति प्रजाः । प्रजानां लोकानां पतिः=स्वामी प्रजापतिः = ब्रह्मा प्रजापतेः अयं प्राजापत्यस्तेन प्राजापत्येन=प्रजापतिपुरुषेण उपनीतम्=प्रापितं तत् प्राजापत्योपनीतं तत्=अन्नं तदन्नं=पयश्चरुम् उदकानि सन्ति अस्यासौ उदन्वान्, तेन उदन्वता=समुद्रेण आविष्कृतं=

प्रकाशितं=प्रकटीकृतमित्यर्थः पयसां=जलानां सारम्=अमृतं वर्षतीति वृषा=वासवः=इन्द्र इति यावत् । इव=यथा प्रत्यग्रहीत्=स्वीकृतवान् ।

समासः—प्रजानां पतिः प्रजापतिः, प्रजापतेरयं प्राजापत्यः, प्राजापत्येन उपनीतमिति प्राजापत्योपनीतम् तत् ।

हिन्दी—राजा दशरथ ने, प्रजापति (ब्रह्मा) के पुरुष द्वारा लाये गये उस अन्न (खीर) को, उसी प्रकार ग्रहण किया, जैसे कि समुद्र से प्राप्त हुए अमृत (पात्र) को इन्द्र ने लिया था ॥५२॥

अनेन कथिता राज्ञो गुणास्तस्यान्यदुर्लभाः ।

प्रसूतिं चकमे तस्मिंस्त्रैलोक्यप्रभवोऽपि यत् ॥५३॥

संजी०—अनेनेति । तस्य राज्ञो दशरथस्यान्यैर्दुर्लभा असाधारणा गुणा अनेन कथिता व्याख्याताः । यद्यस्मात् त्रयो लोकास्त्रैलोक्यम् । चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ् । तस्य प्रभवः कारणं विष्णुरपि तस्मिन् राज्ञि प्रसूतिमुत्पत्तिं चकमे कामितवान् । त्रिभुवनकारणस्यापि कारणमिति परमावधिर्गुणसमाश्रय इत्यर्थः॥५३॥

अन्वयः—तस्य अन्यदुर्लभाः गुणाः अनेन कथिताः, यत् त्रैलोक्यप्रभवः अपि तस्मिन् प्रसूतिं चकमे ।

व्याख्या—तस्य=दशरथस्य राज्ञः=भूपालस्य अन्येषु=इतरजनेषु दुर्लभाः=दुष्प्रापाः इति अन्यदुर्लभाः=असाधारणा इत्यर्थः गुण्यन्ते इति गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः शौर्यादयश्च अनेन=दृष्टान्तेन कथिताः=प्रकटिताः=व्याख्याताः । यत्=यस्मात् त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकं, त्रिलोकमेव त्रैलोक्यं, त्रैलोक्यस्य=भुवनत्रयस्य प्रभवः=कारणमिति त्रैलोक्यप्रभवः=विष्णुः अपिः समुच्चये, तस्मिन्=दशरथे प्रसवनं प्रसूतिस्तां प्रसूतिम्=उत्पत्तिं चकमे=अकामयत । त्रिलोकनाथोऽपि यस्य गृहे पुत्ररूपेण प्राकट्यमभ्यलषत् तस्य गुणकथने किमु वक्तव्यमिति भावः ।

समासः—अन्येषु दुर्लभाः अन्यदुर्लभाः । त्रैलोक्यस्य प्रभवः, इति त्रैलोक्यप्रभवः ।

हिन्दी—उस राजा दशरथ के दूसरों में दुर्लभ (असाधारण) गुण, इससे कह दिये हैं (प्रकट हो गये हैं) जो कि, त्रिलोकी का कारण होकर भी विष्णु उस

राजा का पुत्र होने की कामना करता था। अर्थात् जगत् का कारण विष्णु भी जिसका पुत्र होना चाहे वह राजा परमगुणों का आश्रय है ॥५३॥

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम्।

द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम् ॥५४॥

संजी०—स इति। नृपः चरुसंज्ञाऽस्य संजाता चरुसंज्ञितम्। वैष्णवं तेजः पत्न्योः कौसल्या-कैकेय्योः द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ। 'दिवसश्च पृथिव्याम्' इति चकारात् 'दिव्'शब्दस्य द्यावादेशः। तयोर्द्यावापृथिव्योः अह्नः पतिरहर्पतिः। 'अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः' (वा. ४८१५) इत्युपसंख्यानाद्वैकल्पिको रेफस्य रेफादेशो विसर्गापवादः। प्रत्यग्रमातपं बालातपमिव विभेजे। विभज्य ददावित्यर्थः ॥५४॥

अन्वयः—सः चरुसंज्ञितम् वैष्णवं तेजः पत्न्योः द्यावापृथिव्योः अहर्पतिः प्रत्यग्रं बालातपम् इव विभेजे।

व्याख्या—राजा दशरथः चरुः=हव्यान्नमिति संज्ञा संजाता, अस्य तत् चरुसंज्ञितम्=चरुनामकं विष्णोः इदं वैष्णवं=विष्णुसंबन्धि तेजः=धाम पत्युः यज्ञे संयोगो याभ्यामिति पत्न्यौ तयोः पत्न्योः=भार्ययोः कौसल्याकैकेय्योरित्यर्थः। द्यौः= आकाशं च पृथिवी=भूमिश्चेति द्यावापृथिव्यौ तयोः द्यावापृथिव्योः अह्नः पतिः, अहर्पतिः=सूर्यः प्रत्यग्रं=नूतनम् आतपं बालातपम् इव=यथा विभेजे= विभक्तवान्। द्वौ भागौ कृत्वा ददौ, इत्यर्थः।

समासः—द्यौश्च पृथिवी चेति द्यावापृथिव्यौ, तयोः द्यावापृथिव्योः। अह्नः पतिः अहर्पतिः।

हिन्दी—राजा दशरथ ने चरु नाम वाले, विष्णु के तेज (खीर) को अपनी कौसल्या, कैकेयी पत्नियों में वैसे ही विभाग कर दिया, जैसे कि आकाश और पृथिवी में सूर्य भगवान् नई धूप को बाँट देते हैं ॥५४॥

पत्नीत्रये सति द्वयोरेव विभागे कारणमाह—

अर्चिता तस्य कौसल्या प्रिया केकयवंशजा।

अतः संभावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः ॥५५॥

संजी०—अर्चितेति । तस्य राज्ञः । कौ पृथिव्यां सलति गच्छतीति कोसलः । 'सल गतौ' पचाद्यच् । कुशब्दस्य पृषोदरादित्वाद्गुणः । कोसलस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री कौसल्या । 'वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्' (पा. ४।१।१७१) इति ञ्यङ्, 'यङश्चाप्' (पा. ४।१।७४) इति चाप् । अत एव सूत्रे निर्देशात् 'कोसल'शब्दो दन्त्यसकार-मध्यमः । अर्चिता ज्येष्ठा मान्या । केकयवंशजा कैकेयी प्रियेष्टा । अतो हेतोः, ईश्वरो भर्ता नृपः सुमित्रां ताभ्यां कौसल्याकैकेयीभ्यां संभावितां भागदानेन मानितामैच्छदिच्छति स्म । एवं च सामान्यं तिसृणां च भागप्रापणमिति राज्ञ्युचित-ज्ञता कौशलं च लभ्यते ॥५५॥

अन्वयः—तस्य कौसल्या अर्चिता, "आसीत्" केकयवंशजा प्रिया "आसीत्" अतः ईश्वरः सुमित्रां ताभ्यां सम्भाविताम् ऐच्छत् ।

व्याख्या—तस्य राज्ञो दशरथस्य कौ=पृथिव्यां सलति=गच्छतीति कोसलः, कोसलस्य राज्ञः अपत्यं स्त्री कौसल्या । कौसल्या=एतन्नाम्नी राज्ञः प्रथमा पत्नी, अर्च्यते स्म इति अर्चिता=श्रेष्ठा=पूजिता ज्येष्ठेत्यर्थः आसीत् । केकयस्य=राज्ञः वंशे=कुले जायते इति केकयवंशजा केकयराजपुत्री प्रिया=इष्टा, आसीत्, अतः= हेतोः ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरः=स्वामी राजा सुमित्रां=सुमित्रानाम्नीं तृतीयपत्नीं ताभ्यां = कौसल्याकैकेयीभ्यां संभावितां = संमानितां = स्वकीयभागात् भागदानेन मानितामित्यर्थः ऐच्छत्=अभिलषितवान् ।

समासः—केकयस्य वंशे जाता, केकयवंशजा । सम्यक् भाविता सम्भाविता, ताम् ।

हिन्दी—राजा दशरथ की कौसल्या मान्य बड़ी रानी थी, और केकय राजा के कुल में पैदा हुई कैकेयी प्यारी थी, इसलिये सामर्थ्यवान् राजा ने सुमित्रा को उन दोनों रानियों से (अपने-अपने अंश में से उसे भाग देने से) संमानित कराने की इच्छा की थी, अर्थात् दोनों बड़ी रानियाँ अपने भाग में से इसको चरु दें । यह सम्मान कराकर राजा ने औचित्य एवं चातुर्य का परिचय दिया है ॥५५॥

ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः ।
चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे ॥५६॥

संजी०—ते इति । बहुज्ञस्य सर्वज्ञस्य । उचितज्ञस्येत्यर्थः । पत्युर्महीक्षितः

क्षितीश्वरस्य । विशेषणत्रयेण राज्ञोऽनुसरणीयतामाह—चित्तज्ञे अभिप्रायज्ञे ते उभे पत्न्यौ कौसल्या-कैकेय्यौ । चरोर्यावर्धभागौ समभागौ तयोर्यावर्धौ तौ च तौ भागौ चेत्यर्धभागावेकदेशौ । ताभ्यामर्धार्धभागाभ्याम् । 'पुंस्यर्धोऽर्धं समेंऽशके' इत्यमरः । तां सुमित्रामयोजयतां युक्तां चक्रतुः । अयं च विभागो न रामायणसंवादी; तत्र चरोरर्धं कौसल्याया अवशिष्टार्धं कैकेय्यै शिष्टं पुनः सुमित्राया इत्यभिधानात् । किंतु पुराणान्तरसंवादी द्रष्टव्यः । उक्तं च नारसिंहे—'ते पिण्डप्राशने काले सुमित्रायै महीपतेः । पिण्डाभ्यामल्पमल्पं तु स्वभगिन्यै प्रयच्छतः ॥' इति । एवमन्यत्रापि विरोधे पुराणान्तरात्समाधातव्यम् ॥५६॥

अन्वयः—**बहुज्ञस्य पत्युः महीक्षितः चित्तज्ञे ते उभे पत्न्यौ, चरोः अर्धार्धभागाभ्यां ताम् अयोजयताम् ।**

व्याख्या—बहु जानातीति बहुज्ञस्तस्य बहुज्ञस्य=अनल्पविदः, उचितज्ञस्येत्यर्थः, पाति=रक्षतीति पतिः, तस्य पत्युः=भर्तुः महीं मह्यां वा क्षियति इति महीक्षित् तस्य महीक्षितः पृथिवीश्वरस्य चित्तं=मानसं जानीतः=वित्तः इति ते चित्तज्ञे= अभिप्रायज्ञे ते=पूर्वोक्ते उभे=द्वे पत्न्यौ=कौसल्याकैकय्यौ चरोः=पायसस्य, अर्धौ च तौ भागौ अर्धभागौ=समभागौ, तयोः यौ अर्धौ तौ च तौ भागौ, इति अर्धार्धभागौ, ताभ्याम् अर्धार्धभागाभ्याम् तां=सुमित्राम् अयोजयताम् संयुक्तां चक्रतुः, सुमित्रायै स्वीकृतादर्धभागात् किंचित् किंचित् भागं ददतुरित्यर्थः ।

समासः—बहु जानातीति बहुज्ञस्तस्य, बहुज्ञस्य । चित्तं जानीतः इति चित्तज्ञे । अर्धौ च तौ भागौ, अर्धभागौ, तयोः यौ अर्धौ तौ भागौ इति अर्धार्धभागौ, ताभ्याम् अर्धार्धभागाभ्याम् ।

हिन्दी—बहुत सब जानने वाले स्वामी राजा दशरथ के चित्त (मनोभाव) को जानने वाली उन दोनों (कौसल्या कैकेयी) रानियों ने खीर के आधे आधे भाग से आधा आधा भाग उस सुमित्रा को दे दिया ।

विशेषः—यद्यपि इस प्रकार चरु का देना रामायण के विरुद्ध है, क्योंकि रामायण में राजा ने ही तीनों रानियों को बाँटा है । फिर भी नारसिंह पुराण के अनुसार महाकवि का यह वर्णन है ॥५६॥

सा हि प्रणयवत्यासीत्सपत्न्योरुभयोरपि ।

भ्रमरी वारणस्येव मदनिस्यन्दरेखयोः ॥५७॥

संजी०—सेति । सा सुमित्रा । उभयोरपि । समान एकः पतिर्ययोस्तयोः सपत्न्योः । 'नित्यं सपत्न्यादिषु' (पा. ४।१।३५) इति ङीप् । नकारादेशश्च । भ्रमरी भृङ्गाङ्गना वारणस्य गजस्य मदनिस्यन्दरेखयोरिव गण्डद्वयगतयोरिति भावः । प्रणयवती प्रेमवत्यासीत् । 'सपत्न्योः'इत्यत्र समासान्तर्गतस्य पत्युरुपमानं 'वारणस्य' इति ॥५७॥

अन्वयः—हि सा उभयोः अपि सपत्न्योः भ्रमरी वारणस्य मदनिस्यन्द-रेखयोः इव प्रणयवती आसीत् ।

व्याख्या—"एवं सत्यपि ईर्ष्या न" हि=यतः सा=सुमित्रा उभयोः द्वयोः अपि समानः=एकः पतिः=भर्ता ययोस्ते, तयोः सपत्न्योः=कौसल्याकैकय्योः भ्रमति=एकत्र न तिष्ठतीति भ्रमरी-भृङ्गी भ्रमरस्य स्त्री वारयति शत्रुबलं स वारणस्तस्य वारणस्य=मतङ्गजस्य मदस्य-मदजलस्य निस्यन्दः=निस्यन्दनं स्रवणमित्यर्थः, इति मदनिस्यन्दः, मदनिस्यन्दस्य रेखे-लेखे-पङ्क्ती तयोः मदनि-स्यन्दरेखयोः इव=यथा प्रणयः=स्नेहोऽस्याः अस्तीति प्रणयवती=प्रेमवती आसीत्= अभवत्, अतः सपत्नीत्वेऽपि ईर्ष्या नाभवदित्यर्थः ।

समासः—समानः पतिः ययोस्ते सपत्न्यौ, तयोः सपत्न्योः । निस्यन्दते इति निस्यन्दः, मदस्य निस्यन्दः मदनिस्यन्दः, मदनिस्यन्दस्य रेखे, इति मदनिस्यन्दरेखे, तयोः मदनिस्यन्दरेखयोः ।

हिन्दी—"तीनों पत्नियों में ईर्ष्या नहीं थी" इसलिये कि वह सुमित्रा दोनों सौतों में उसी प्रकार प्रेम रखती थी, जैसे कि भ्रमरी (भौंरी) हाथी के (गण्डस्थल से) बहते हुए मदजल की दोनों रेखाओं में प्रेम करती है । अर्थात् जैसे भौंरी हाथी के दोनों गालों में बहती मद की रेखा पर समान प्रेम करती है वैसे ही सुमित्रा दोनों रानियों में समान प्रेम करती थी ॥५७॥

ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै दध्रे देवांशसंभवः ।
सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मयः ॥५८॥

संजी०—ताभिरिति । ताभिः कौसल्यादिभिः प्रजानां भूत्या अभ्युदयाय । देवस्य विष्णोरंशः संभवः कारणं यस्य स गर्भः । सूर्यस्येमाः सौर्यः, ताभिः सौरीभिः । 'सूर्यतिष्य—' (६।४।१४९) इत्युपधायकारस्य लोपः । अमृता

इत्याख्या यासां ताभिः । जलवहनसाम्यान्नाडीभिरिव नाडीभिर्वृष्टिविसर्जनीभिर्दीधितिभिः । अपां विकारोऽम्मयो जलमयो गर्भ इव । दध्रे धृतः जातावेकवचनम् । गर्भा दधिर इत्यर्थः । अत्र यादवः—'तासां शतानि चत्वारि रश्मीनां वृष्टिसर्जने । शतत्रयं हिमोत्सर्गे तावद्गर्भस्य सर्जने ॥ आनन्दाश्च हि मेध्याश्च नूतनाः पूतना इति । चतुःशतं वृष्टिवाहास्ताः सर्वा अमृताः स्त्रियः ॥' इति ॥५८॥

अन्वयः—ताभिः प्रजाभूत्यै देवांशसम्भवः गर्भः, सौरीभिः अमृताख्याभिः नाडीभिः अम्मयः "गर्भः" इव दध्रे ।

व्याख्या—ताभिः=कौसल्याकैकयीसुमित्राभिः प्रजायन्ते इति प्रजास्तासां प्रजानां=लोकानां भूत्यै=कल्याणाय=अभ्युदयायेत्यर्थः, दीव्यतीति देवः । देवस्य=विष्णोः अंशः=मात्रा संभवः=कारणं यस्य स देवांशसम्भवः, गर्भः=भ्रूणः, सरति=सुवति लोकान् कर्मणि प्रेरयतीति सूर्यः, सूर्यस्य इमाः सौर्यस्ताभिः सौरीभिः=सूर्यसम्बन्धिनीभिः न म्रियन्तेऽनया अमृताः । अमृता आख्या=नाम यासां ताः अमृताख्याः ताभिः अमृताख्याभिः नाड्यन्ति, नाड्यन्ते वा नाड्यः । ताभिः नाडीभिः दीधितिभिः, जलधारणसाम्येन नाडीनाम । अपां=जलानां विकारः अम्मयः=जलमयः इव=यथा दध्रे=धृतः, सर्वा अपि ताः गर्भं धृतवत्यः इत्यर्थः ।

समासः—देवस्य अंशः, देवांशः । देवांशः सम्भवः यस्य स देवांशसम्भवः । प्रजानां भूतिः प्रजाभूतिस्तस्यै प्रजाभूत्यै । अमृता आख्या यासां ताः अमृताख्यास्ताभिः, अमृताख्याभिः ।

हिन्दी—कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा ने लोक कल्याण के लिये विष्णु के अंश वाले गर्भ को उसी प्रकार धारण किया, जिस प्रकार सूर्य की अमृत नाम की जल बरसाने वाली किरणें, लोक कल्याण के लिये जलरूप गर्भ को धारण करती हैं । अर्थात् सूर्य किरण ग्रीष्म ऋतु में जल को ले लेती हैं और वर्षा ऋतु में बरसती हैं ये किरणें अमृता कही जाती हैं ॥५८॥

सममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विषः ।
अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानामिव संपदः ॥५९॥

संजी०—सममिति । समं युगपदापन्ना गृहीताः सत्त्वाः प्राणिनो याभिस्ता आपन्नसत्त्वा गर्भिण्यः । 'आपन्नसत्त्वा स्याद्गुर्विण्यन्तर्वत्नी च गर्भिणी' इत्यमरः ।

अत एव, आपाण्डुरत्विष ईषत्पाण्डुरवर्णास्ताः राजपत्न्यः । अन्तर्गता गुप्ताः फलारम्भाः फलप्रादुर्भावा यासां ताः सस्यानां संपद इव । रेजुर्बभुः ॥५९॥

अन्वयः—समम् आपन्नसत्त्वाः "अत एव" आपाण्डुरत्विषः ताः अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानां सम्पदः इव रेजुः ।

व्याख्या—समम्=युगपत्=एककालमित्यर्थः आपन्नसत्त्वाः=गर्भिण्यः, अत एव आ=ईषत्=किंचित् पाण्डुरा=पीता त्विट्=कान्तिः यासां ताः आपाण्डुरत्विषः ताः=दशरथपत्न्यः, अन्तर्गताः=अन्तर्लीनाः फलानां=सस्यानाम् आरम्भाः=प्रादुर्भावाः यासां ताः अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानां=धान्यानां सम्पदः=सम्पत्तयः इव=यथा रेजुः=शुशुभिरे ।

समासः—आपन्नाः सत्त्वाः यासु ताः आपन्नसत्त्वाः । आ पाण्डुरा त्विट् यासां ताः आपाण्डुरत्विषः । फलानाम् आरम्भाः इति फलारम्भाः, अन्तर्गताः फलारम्भाः यासां ताः अन्तर्गतफलारम्भाः ।

हिन्दी—एक साथ ही जिन के (पेट) में प्राणी आ गये (गर्भिणी हुई) और इसी कारण कुछ कुछ पीली कान्ति वाली वे दशरथकी रानियां वैसी ही सुन्दर लगती थीं, जैसी कि, जिन के अन्दर दाने पड़ने लगे हों, ऐसी धान की पीली पीली बाले सुन्दर लगती हैं ॥५९॥

संप्रति तासां स्वप्नदर्शनान्याह—

गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः ।
जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः ॥६०॥

संजी०—गुप्तमिति । सर्वास्ताः स्वप्नेषु जलजः शङ्खः । जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रैर्लाञ्छिता मूर्तयो येषां तैर्वामनैर्ह्रस्वैः पुरुषैर्गुप्तं रक्षितमात्मानं स्वरूपं ददृशुः ॥६०॥

अन्वयः—सर्वाः "ताः" स्वप्नेषु जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः वामनैः गुप्तम् आत्मानं ददृशुः ।

व्याख्या—सर्वास्ताः कौसल्याकैकेयीसुमित्राः स्वप्नेषु=स्वापेषु, जले जातः=उत्पन्नः जलजः=शङ्खः । असति=द्योतते इति असिः=कौक्षेयकः । गदा=कौमोदकी । शृंगस्य विकारः शार्ङ्गं=धनुः । शंखश्च असिश्च गदा च शार्ङ्गं च

चक्रं-सुदर्शनश्चेत्येतेषाम् द्वन्द्वः जलजासिगदाशार्ङ्गचक्राणि, तैः लाञ्छिता=युक्ता शोभितेत्यर्थः मूर्तिः-आकृतिः स्वरूपं येषां ते जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तयस्तैः, जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः वामनैः ह्रस्वैः पुरुषैः गुप्तं=सुरक्षितम् आत्मानं-स्वं ददृशुः=अवलोकयाञ्चक्रुः, दृष्टवत्य इत्यर्थः ।

समासः--जलजश्च असिश्च गदा च शार्ङ्गश्च चक्रं च जलजासिगदाशार्ङ्गचक्राणि, तैः लाञ्छिता मूर्तिः येषां ते तैः जलजासिगदाशार्ङ्गचक्रलाञ्छितमूर्तिभिः।

हिन्दी—उन तीनों रानियों ने स्वप्न में, शंख तलवार गदा शार्ङ्ग धनु-सुदर्शनचक्र धारण किये हुए छोटे २ पुरुषों से अपने को सुरक्षित देखा ॥६०॥

हेमपक्षप्रभाजालं गगने च वितन्वता ।

उह्यन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकृष्टपयोमुचा ॥६१॥

संजी०—हेमेति । किञ्चेति चार्थः । हेम्नः सुवर्णस्य पक्षाणां प्रभाजालं कान्तिपुञ्जं वितन्वता विस्तारयता । वेगेनाकृष्टाः पयोमुचो मेघा येन तेन । सुपर्णेन गरुत्मता गरुडेन गगने ता उह्यन्ते स्मोढाः ॥६१॥

अन्वयः—च हेमपक्षप्रभाजालं वितन्वता वेगाकृष्टपयोमुचा सुपर्णेन गगने ताः उह्यन्ते स्म ।

व्याख्या—च किंच हेम्नः=सुवर्णस्य पक्षाः गरुतः इति हेमपक्षाः, हेमपक्षाणां प्रभा=कान्तिः, इति हेमपक्षप्रभा, तस्याः जालं=समूहः तत् हेमपक्षप्रभाजालं वितन्वता=विस्तारयता, वेगेन जवेन आकृष्टाः=आवर्जिताः पयोमुचः=मेघाः येन स तेन वेगाकृष्टपयोमुचा, (पयांसि=जलानि मुञ्चन्ति-त्यजन्तीति पयोमुचः) कनकमयत्वात् सुवर्णवर्णत्वाद्वा सु=शोभने पर्णे-पक्षौ यस्य स तेन सुपर्णेन=गरुडेन गच्छन्ति अनेन, अस्मिन् वा गगनं तस्मिन् गगने=आकाशे ताः=कौसल्याकैकेयीसुमित्राः उह्यन्ते स्म=प्राप्यन्ते स्म ।

समासः—हेम्नः पक्षाः, हेमपक्षाः हेमपक्षाणां प्रभा हेमपक्षप्रभा, तस्याः जालं तत् हेमपक्षप्रभाजालम् । सु पर्णे यस्य सः तेन सुपर्णेन । पयांसि मुञ्चन्तीति पयोमुचः । वेगेन आकृष्टाः पयोमुचः येन स तेन वेगाकृष्टपयोमुचा ।

हिन्दी—और "यह भी देखा कि" सोने के पंखों की कान्ति (प्रकाश) को बखेरने (फैलाने) वाला "और अपने" वेग से मेघों को "अपने साथ"

खींचने (उड़ाने) वाला सुन्दर पंख वाला गरुड़ उन रानियों को आकाश में उड़ाये ले जा रहा है। अर्थात् गरुड़ पर चढ़कर आकाश में अपने को उड़ते भी देखा ॥६१॥

बिभ्रत्या कौस्तुभन्यासं स्तनान्तरविलम्बिनम् ।
पर्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पद्मव्यजनहस्तया ॥६२॥

संजी०—बिभ्रत्येति । किच, स्तनयोरन्तरे मध्ये विलम्बिनं लम्बमानम्। न्यस्यत इति न्यासः। कौस्तुभ एव न्यासस्तम्। पत्या कौतुकान्न्यस्तम्। कौस्तुभमित्यर्थः। बिभ्रत्या पद्ममेव व्यजनं हस्ते यस्यास्तया लक्ष्म्या पर्युपास्यन्तोपासिताः ॥६२॥

अन्वयः— च स्तनान्तरविलम्बिनं कौस्तुभन्यासं बिभ्रत्या पद्मव्यजनहस्तया लक्ष्म्या पर्युपास्यन्त।

व्याख्या— च=किञ्च स्तनतः=कथयतः यौवनोदयमिति स्तनौ। स्तनयोः= कुचयोः अन्तरं=मध्यः इति स्तनान्तरं, स्तनान्तरे विलम्बी=लम्बमानस्तं स्तनान्तरविलम्बिनम्। न्यस्यते इति न्यासः। कुं=भुवं स्तुम्नाति=व्याप्नोति इति कुस्तुभः= विष्णुः, तस्यायं कौस्तुभः=मणिः। कौस्तुभः एव न्यासः=उपनिधिः, इति कौस्तुभन्यासस्तं कौस्तुभन्यासं बिभ्रत्या=धारयन्त्या, पद्मं=कमलम् एव व्यजनं=तालवृन्तकमिति पद्मव्यजनम् पद्मव्यजनं हस्ते=करे यस्याः सा तया पद्मव्यजनहस्तया लक्षयति= पश्यति भीतिज्ञमिति लक्ष्मीस्तया लक्ष्म्या=श्रिया ताः पर्युपास्यन्त=उपासिताः सेविता इत्यर्थः।

समासः—स्तनयोः अन्तरमिति स्तनान्तरम्, स्तनान्तरे विलम्बी स्तनान्तरविलम्बी, तं स्तनान्तरविलम्बिनम्। कौस्तुभः एव न्यासस्तं कौस्तुभन्यासम्। पद्मम् एव व्यजनमिति पद्मव्यजनं, पद्मव्यजनं हस्ते यस्याः सा तया पद्मव्यजनहस्तया।

हिन्दी—दोनों स्तनों के बीच में लटकने वाली कौस्तुभ मणि रूपी थाती (धरोहर) को धारण किये हुए, तथा कमल के पंखे को हाथ में लिये लक्ष्मीजी उनकी सेवा कर रही हैं। यह भी स्वप्न में देखा। अर्थात् विष्णु की धरोहर कौस्तुभ को पहने, और कमल के पंखे से तीनों रानियों की सेवा करती हुई लक्ष्मी को स्वप्न में सबने देखा ॥६२॥

कृताभिषेकैर्दिव्यायां त्रिस्रोतसि च सप्तभिः ।
ब्रह्मर्षिभिः परं ब्रह्म गृणद्भिरुपतस्थिरे ॥६३॥

संजी०—कृतेति । किंच, दिवि भवायां दिव्यायां त्रिस्रोतस्याकाशगङ्गायां कृताभिषेकैः कृतावगाहैः । परं ब्रह्म वेदरहस्यं गृणद्भिः सप्तभिर्ब्रह्मर्षिभिः कश्यपप्रभृतिभिरुपतस्थिर उपासांचक्रिरे ॥६३॥

अन्वयः—च दिव्यायां त्रिस्रोतसि कृताभिषेकैः परं ब्रह्म गृणद्भिः सप्तभिः ब्रह्मर्षिभिः "ताः" उपतस्थिरे ।

व्याख्या—च=किञ्च दिवि-स्वर्गे भवा दिव्या तस्यां दिव्यायां-स्वर्गीयायां त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा त्रिस्रोताः, तस्यां त्रिस्रोतसि=आकाशगंगायां कृतः= विहितः अभिषेकः=स्नानं यैस्ते तैः कृताभिषेकैः परम्=श्रेष्ठं बृंहति=वर्धते इति ब्रह्म=वेदं=वेदहरस्यमित्यर्थः गृह्णद्भिः=जपद्भिः=पठद्भिरिति यावत् सप्तभिः= सप्तसंख्याकैः ब्रह्म-वेदं, परब्रह्म वा ऋषन्ति=विदन्तीति ब्रह्मर्षयस्तैः ब्रह्मर्षिभिः= कश्यपवसिष्ठादिभिः "ताः" उपतस्थिरे=उपासाञ्चक्रिरे ।

समासः—कृतः अभिषेकः यैस्ते कृताभिषेकास्तैः कृताभिषेकैः । त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा त्रिस्रोताः तस्यां त्रिस्रोतसि ।

हिन्दी—स्वर्गीय, तीन स्रोत वाली गंगाजी में स्नान किये हुए सात कश्यपादि ब्रह्मर्षि, वेद का पाठ करते हुए उन रानियों की स्तुति कर रहे थे । यह भी स्वप्न में देखा ॥६३॥

ताभ्यस्तथाविधान्स्वप्नान् श्रुत्वा प्रीतो हि पार्थिवः ।
मेने परार्ध्यमात्मानं गुरुत्वेन जगद्गुरोः ॥६४॥

संजी०—ताभ्य इति । पार्थिवो दशरथस्ताभ्यः पत्नीभ्यः । 'आख्यातोपयोगे' (पा. १।४।२९) इत्यपादानत्वात्पञ्चमी । तथाविधानुक्तप्रकारान्स्वप्नाञ्छ्रुत्वा प्रीतः सन् । आत्मानं जगद्गुरोर्विष्णोरपि गुरुत्वेन हेतुना परार्ध्यं सर्वोत्कृष्टं मेने हि ॥६४॥

अन्वयः—पार्थिवः ताभ्यः तथाविधान् स्वप्नान् श्रुत्वा प्रीतः सन् जगद्गुरोः गुरुत्वेन आत्मानं परार्ध्यम् मेने ।

व्याख्या—पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः=राजा दशरथः ताभ्यः=कौसल्याकैकेयी-

सुमित्राभ्यः पत्नीभ्यः तथा=तेन प्रकारेण विधा=प्रकारः येषां ते तान् तथाविधान्= पूर्वोक्तप्रकारान् स्वप्नान् स्वापान् श्रुत्वा=आकर्ण्य प्रीतः=प्रसन्नः सन् आत्मानं= स्वं गच्छतीति जगत् तस्य जगतः=संसारस्य गुरुः, इति जगद्गुरुस्तस्य जगद्गुरोः= विष्णोः गृणाति धर्मादि, गिरति अज्ञानं वा गुरुः गुरोर्भावः गुरुत्वं तेन गुरुत्वेन= पितृत्वेन कारणेन परस्मिन्नर्धे भवः परार्ध्यस्तं परार्ध्यं=सर्वोत्तमं मेने=अमंस्त हि निश्चयेन ।

समासः—तथा विधा येषां ते तान्, तथाविधान् । जगतः गुरुः जगद्गुरुस्तस्य जगद्गुरोः । परस्मिन् अर्धे भवः परार्ध्यस्तं परार्ध्यम् ।

हिन्दी—राजा दशरथ जी, अपनी तीनों रानियों से, उस प्रकार के स्वप्नों को सुनकर तथा प्रसन्न होकर संसार के गुरु विष्णु भगवान् का भी गुरु (पिता) होने के कारण अपने को सबसे उत्कृष्ट माना । अर्थात् संसार में सबसे उत्तम और बड़ा अपने को मान लिया ॥६४॥

विभक्तात्मा विभुस्तासामेकः कुक्षिष्वनेकधा ।
उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव ॥६५॥

संजी०—विभक्तेति । एक एकरूपो विभुर्विष्णुस्तासां राजपत्नीनां कुक्षिषु गर्भेषु । प्रसन्नानां निर्मलानामपां कुक्षिषु प्रतिमाचन्द्रः प्रतिबिम्बचन्द्र इव । अनेकधा विभक्तात्मा सन् उवास ॥६५॥

अन्वयः— एकः विभुः तासां कुक्षिषु, प्रसन्नानाम् अपां "कुक्षिषु" प्रतिमा-चन्द्रः इव अनेकधा विभक्तात्मा सन् उवास ।

व्याख्या—एकः=एकरूपः=अद्वितीयः विभुः=व्यापकः प्रभुः विष्णुरित्यर्थः तासां कौसल्याकैकयीसुमित्राणां कुष्यते=निष्कास्यते=मलो येभ्यः ते कुक्षयस्तेषु कुक्षिषु=उदरेषु=गर्भेषु, इति यावत्, प्रसन्नानां=स्वच्छानां निर्मलाना-मित्यर्थः आप्नुवन्ति, आप्यन्ते वा आपः, तासाम् अपां=जलानां कुक्षिषु प्रतिमा= प्रतिबिम्बश्चासौ चन्द्रः=इन्दुरिति प्रतिमाचन्द्रः इव=यथा अनेकधा=अनेकप्रकारेण विभक्तः=विभिन्नः=प्राप्तविभागः आत्मा=स्वरूपं यस्य स विभक्तात्मा सन् उवास=वसति स्म ।

समासः—प्रतिमा चासौ चन्द्रः प्रतिमाचन्द्रः । विभक्तः आत्मा यस्य स विभक्तात्मा ।

हिन्दी—व्यापक विष्णु एक ही हैं। "फिर भी" उन तीनों रानियों के गर्भ में निर्मल जल में चन्द्रमा के प्रतिबिम्बों की तरह अनेक प्रकार से विभिन्न स्वरूप वाला होकर (पृथक् २) निवास करने लगा ॥६५॥

अथाग्र्यमहिषी राज्ञः प्रसूतिसमये सती।

पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवौषधिः ॥६६॥

संजी०—अथेति । अथ राज्ञो दशरथस्य सती पतिव्रता । अग्र्या चासौ महिषी चाग्र्यमहिषी कौसल्या । प्रसूतिसमये प्रसूतिकाले । ओषधिर्नक्तं रात्रिसमये तमोऽपहन्तीति तमोपहम् । 'अपे क्लेशतमसोः' (पा. ३।२।५०) इति डप्रत्ययः । ज्योतिरिव । तमोपहं तमोनाशकरं पुत्रं लेभे प्राप ॥६६॥

अन्वयः—अथ राज्ञः सती अग्र्यमहिषी प्रसूतिसमये ओषधिः नक्तं तमोपहं ज्योतिः इव तमोपहं पुत्रं लेभे ।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् राज्ञः=दशरथस्य सती=साध्वी=पतिव्रता अग्रे भवा अग्र्या । अग्र्या=प्रथमा चासौ महिषी=पट्टाभिषिक्ता इति अग्र्यमहिषी मह्यते=पूज्यते इति महिषी (कृताभिषेका) कौसल्या प्रसूतेः=प्रसवस्य समयः= कालः, तस्मिन् प्रसूतिसमये दशमे मासि ओषः=प्लोषः दीप्तिर्वा धीयते यस्यां सा ओषधिः=वनस्पतिः नक्तम्=रात्रौ तमः=अन्धकारम् अपहन्ति=नाशयतीति तत् तमोपहं ज्योतिः=प्रकाशम् इव=यथा तमोपहं=तमोविनाशकम्=अज्ञाननाशकरं पुनाति पूयते वा पुत्रः । पुन्नामनरकात् त्रायते इति पुत्रस्तं पुत्रं=सुतं लेभे=प्राप, पुत्रवती जाता, इत्यर्थः ।

समासः—अग्र्या चासौ महिषी अग्र्यमहिषी । प्रसूतेः समयः प्रसूतिसमयस्तस्मिन् प्रसूतिसमये । तमः अपहन्तीति तमोपहम् तत् । (पुत्रपक्षे) तमः अपहन्तीति तमोपहः, तम् ।

हिन्दी—इसके पश्चात्, राजा दशरथ की पतिव्रता पटरानी कौसल्या ने दसवें मास में अज्ञान का नाश करने वाले पुत्र को उसी प्रकार प्राप्त किया, जिस प्रकार रात्रि में "जलने वाली" वनस्पति अन्धकार को मिटाने वाले प्रकाश को प्राप्त कर लेती है ॥६६॥

राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः ।
नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममङ्गलम् ॥६७॥

संजी०—राम इति । अभिरमन्तेऽत्रेत्यभिरामं मनोहरम् । अधिकरणार्थे घञ्प्रत्ययः । तेन वपुषा चोदितः प्रेरितो गुरुः पिता दशरथस्तस्य पुत्रस्य जगतां प्रथमं मङ्गलं सुलक्षणं राम इति नामधेयं चक्रे । अभिरामत्वमेव रामशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमित्यर्थः ॥६७॥

अन्वयः—अभिरामेण वपुषा चोदितः गुरुः, तस्य जगत्प्रथममंगलं राम इति नामधेयं चक्रे ।

व्याख्या—अभिरमन्ते जनाः यस्मिन् तत् अभिरामं=मनोहरं सुन्दरं तेन अभिरामेण वपुषा=शरीरेण चोदितः=प्रेरितः गुरुः=पिता राजा दशरथः तस्य=नवजातशिशोः पुत्रस्येत्यर्थः जगतां=लोकानां प्रथमं=पूर्वं प्रधानं मंगलं=कल्याणं शुभमिति तत् जगत्प्रथममंगलं रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः इति नाम एवेति नामधेयं चक्रे=कृतवान् ।

समासः—प्रथमं च तन्मंगलमिति प्रथममंगलम्, जगतां प्रथममंगलमिति जगत्प्रथममंगलम्, तत् ।

हिन्दी—सुन्दर मनोहर शरीर से प्रेरित, पिता दशरथने, उस बालक का संसार में पहला एवं प्रधान रूप से मंगलकारी नाम राम किया । अर्थात् बालक के सुन्दर शरीर से प्रभावित होकर राम यह सुन्दर नाम रखा था । और राम नाम का अभिरामत्व (मनोहरत्व) ही प्रवृत्तिनिमित्त है । यह कवि का अभिप्राय है ॥६७॥

रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा ।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन् ॥६८॥

संजी०—रघ्विति । रघुवंशस्य प्रदीपेन प्रकाशकेन । अप्रतिमतेजसा तेन रामेण रक्षागृहगताः सूतिकागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टाः प्रतिबद्धा इवाभवन् । महादीपसमीपे नाल्पाः स्फुरन्तीति भावः ॥६८॥

अन्वयः—रघुवंशप्रदीपेन अप्रतिमतेजसा तेन रक्षागृहगताः दीपाः प्रत्यादिष्टाः इव अभवन् ।

व्याख्या—प्रकर्षेण दीप्यते, प्रदीपयति वा प्रदीपः, रघोः वंशः रघुवंशः, रघुवंशस्य=रघुकुलस्य प्रदीपः=दीपः=प्रकाशकः इति रघुवंशप्रदीपस्तेन रघुवंशप्रदीपेन न प्रतिमा=सादृश्यं यस्य तत् अप्रतिमम्। अप्रतिमं=सर्वाधिकं तेजः=प्रभावः यस्य स तेन अप्रतिमतेजसा तेन=रामेण रक्षायाः=सूतिकायाः गृहं=भवनमिति रक्षागृहं तत्र गताः=प्राप्ताः स्थिता इत्यर्थः, इति रक्षागृहगताः दीपाः=प्रदीपाः प्रत्यादिष्टाः=प्रतिषिद्धाः इव=यथा अभवन्=जाताः । रामस्य तेजसा ते दीपाः पराभूताः निस्तेजस इव जाता इत्यर्थः । महाप्रदीपस्य समीपे लघुदीपो न स्फुरतीत्यर्थः ।

समासः—रघोः वंशः रघुवंशः, तस्य प्रदीपस्तेन रघुवंशप्रदीपेन । अप्रतिमं तेजो यस्य सः अप्रतिमतेजाः, तेन अप्रतिमतेजसा । रक्षायाः गृहं रक्षागृहं, तत्र गताः इति रक्षागृहगताः ।

हिन्दी—रघु के कुल को प्रकाशित करने वाले, सबसे तेजस्वी राम से प्रसूति (सौंड़ी) घर में रखे हुए दीपक (दीये) मानो क्षीणकान्ति (फीके) हो गये । अर्थात् महादीप के सामने छोटा सा जुगनू क्या चमकेगा ॥६८॥

शय्यागतेन रामेण माता शातोदरी बभौ ।

सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शरत्कृशा ॥६९॥

सं०टी०—शय्येति । शातोदरी गर्भमोचनात्कृशोदरी माता शय्यागतेन रामेण । सैकते पुलिने योऽम्भोजबलिः पद्मोपहारस्तेन शरदि कृशा जाह्नवी गङ्गेव । बभौ ॥६९॥

अन्वयः—शातोदरी माता शय्यागतेन रामेण सैकताम्भोजबलिना शरत्कृशा जाह्नवी इव बभौ ।

व्याख्या—शातं=कृशं प्रसवादित्यर्थः, उदरं=जठरं यस्याः सा शातोदरी=कृशोदरी मान्यते=पूज्यते इति माता=कौसल्या शय्यायां=पर्यङ्के गतः=प्राप्तः, तेन शय्यागतेन रामेण=नवजातशिशुना सिकतानां विकारः सैकतं तस्मिन् सैकते=बालुकामये तटे यः अम्भोजानां=कमलानां बलिः=उपहारः तेन अम्भोजबलिना शीर्यन्ते पाकेनौषधयो यस्यां सा शरत् । शरदि=शरदृतौ कृशा=सूक्ष्मा तन्वी, इति शरत्कृशा जह्नोः कन्या जाह्नवी=भागीरथी=गङ्गा इव=यथा बभौ=शुशुभे ।

समासः—शय्यायां गतः शय्यागतस्तेन शय्यागतेन । शातमुदरं यस्याः सा शातोदरी । अम्भोजानां बलिः अम्भोजबलिः, सैकते यः अम्भोजबलिः सैकताम्भोजबलिस्तेन सैकताम्भोजबलिना । शरदि कृशा शरत्कृशा ।

हिन्दी—बच्चा पैदा होने के कारण कृशोदरी (पतले पेट वाली) माता कौसल्या पलंग पर लेटे हुवे राम से ऐसी सुशोभित हो रही थी (सुन्दर लग रही थी) जैसे बालु के तट पर "पूजा में" चढ़ाये गये नीलकमल से शरद् ऋतु में पतली धारा वाली गंगाजी सुन्दर लगती हैं ॥६९॥

कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान् ।

जनयित्रीमलं चक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम् ॥७०॥

संजी०—कैकेय्या इति । केकयस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री कैकेयी । 'तस्यापत्यम्' (पा. ४।१।९२) इत्यणि कृते 'केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः' (पा. ३।२।५०) इतीयादेशः । तस्या भरतो नाम शीलवांस्तनयो जज्ञे जातः । यस्तनयः प्रश्रयो विनयः श्रियमिव । जनयित्रीं मातरमलंचक्रे ॥७०॥

अन्वयः—कैकेय्याः भरतः नाम शीलवान् तनयः जज्ञे, यः प्रश्रयः श्रियम् इव जनयित्रीम् अलंचक्रे ।

व्याख्या—केकयस्य=राज्ञः अपत्यं स्त्री कैकेयी तस्याः कैकेय्याः सकाशात् बिभर्ति लोकानिति भरतः नाम शीलं=चरितमस्यास्तीति शीलवान्=चरित्रवान् तनयः=पुत्रः जज्ञे=जातः उत्पन्नः । यः=तनयः प्रश्रयः=विनयः श्रियं=लक्ष्मीम् इव=यथा जनयतीति जनयित्री तां जनयित्रीम्=जननीम्, अलंचक्रे=शोभितवान् ।

हिन्दी—कैकेयी से भरत नाम का सत्स्वभाव चरित्रवान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस पुत्र ने अपनी माता को उसी प्रकार सुशोभित किया, जिस प्रकार विनय (नम्रता) लक्ष्मी को सुशोभित करता है ॥७०॥

सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ ।

सम्यगाराधिता विद्या प्रबोधविनयाविव ॥७१॥

संजी०—सुताविति । सुमित्रा लक्ष्मणशत्रुघ्नौ नाम यमौ युग्मजातौ सुतौ पुत्रौ । सम्यगाराधिता स्वभ्यस्ता विद्या प्रबोध-विनयौ तत्त्वज्ञानेन्द्रियजयाविव । सुषुवे ॥७१॥

अन्वयः—सुमित्रा लक्ष्मणशत्रुघ्नौ यमौ सुतौ सम्यगाराधिता विद्या प्रबोधविनयौ इव सुषुवे ।

व्याख्या—सुमित्रा=दशरथराजस्य कनिष्ठा भार्या, लक्ष्मीरस्यास्तीति लक्ष्मणः शत्रून् हन्ति=नाशयतीति शत्रुघ्नः। लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्चेति लक्ष्मणशत्रुघ्नौ यमौ= युग्मजातौ सुतौ=पुत्रौ सम्यगाराधिता=सुष्ठु प्रकारेण, अभ्यस्ता विद्यतेऽसौ विद्या= ज्ञानं=शास्त्रं तत्त्वज्ञानरूपा च प्रबुध्यते इति प्रबोधः=तत्त्वज्ञानम् विनयः=इन्द्रि- यजयश्चेति प्रबोधनयौ इव=यथा सुषुवे=जज्ञे=जनयामास ।

समासः—लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्चेति लक्ष्मणशत्रुघ्नौ। सम्यक् आराधिता सम्यगाराधिता । प्रबोधश्च विनयश्चेति प्रबोधविनयौ, तौ ।

हिन्दी—सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम के दो पुत्रों को एक साथ, उसी प्रकार पैदा किया जैसे अच्छी प्रकार से अभ्यास की गई विद्या तत्त्व (सम्यक्ज्ञान) और विनय (नम्रता) को उत्पन्न करती है ॥७१॥

निर्दोषमभवत्सर्वमाविष्कृतगुणं जगत् ।
अन्वगादिव हि स्वर्गो गां गतं पुरुषोत्तमम् ॥८२॥

सं०टी०—निर्दोषमिति । सर्वं जगद्भूलोको निर्दोषं दुर्भिक्षादिदोषरहितम् । आविष्कृतगुणं प्रकटीकृतारोग्यादिगुणं चाभवत् । अत्रोत्प्रेक्षते—गां भुवं पुरुषोत्तमं विष्णुं स्वर्गोऽप्यन्वगादिव । स्वर्गो हि गुणवान्निर्दोषश्चेत्यागमः । स्वर्गतुल्यमभूदित्यर्थः ॥८२॥

अन्वयः—सर्वं जगत् निर्दोषम् आविष्कृतगुणं च अभवत्, हि गां गतं पुरुषोत्तमं स्वर्गः "अपि" अन्वगात् इव ।

व्याख्या—सर्वम्=समस्तं जगत्=लोकः=मृत्युलोक इत्यर्थः निर्गतः=निष्क्रान्तः दोषः=दूषणं यस्मात् तत् निर्दोषम्=रोगदुर्भिक्षादिदोषरहितम् आविष्कृताः= प्रकटिताः गुणाः सुभिक्षारोग्यादयो यस्मिन् तत् आविष्कृतगुणम्, चः समुच्चयार्थकः, अभवत्=अभूत् जातमित्यर्थः । अत्रोत्प्रेक्ष्यते—हि=यतः गच्छतीति गा तां गाम्= पृथिवीं गतम्=अवतीर्णं पुरुषेषु=नरेषु उत्तमः=श्रेष्ठस्तं पुरुषोत्तमं=विष्णुं सुष्ठु अर्ज्यते इति स्वर्गः=देवलोकः "अपि" अन्वगात्=अन्वव्रजत् इव इत्युत्प्रेक्षायाम्, रामे भुवमवतीर्णे सति सर्वं जगत् स्वर्गतुल्यं जातमित्यर्थः ।

समासः—निर्गतः दोषो यस्मात् तत् निर्दोषम् । आविष्कृताः गुणाः यस्मिन् तत् आविष्कृतगुणम् । पुरुषेषु उत्तमस्तं पुरुषोत्तमम् ।

हिन्दी—"चारों भाइयों के अवतार लेने पर" सारा संसार दुर्भिक्ष रोग आदि दोषों से शून्य, तथा आरोग्य सुभिक्ष आदि गुण वाला हो गया। "उस समय ऐसा लगता था कि" मानों पृथिवी पर आये पुरुषोत्तम विष्णु के पीछे पीछे स्वर्ग भी पृथिवी पर आ गया हो। अर्थात् जगत् भी स्वर्गसमान हो गया ॥७२॥

तस्योदये चतुर्मूर्तेः पौलस्त्यचकितेश्वराः ।
विरजस्कैर्नभस्वद्भिर्दिश उच्छ्वसिता इव ॥७३॥

संजी०—तस्येति चतुर्मूर्ते रामादिरूपेण चतूरूपस्य सतस्तस्य हरेरुदये सति। पौलस्त्याद्रावणाच्चकिता भीता ईश्वरा नाथा इन्द्रादयो यासां ता दिशश्चतस्रो विरजस्कैरपधूलिभिर्नभस्वद्भिर्वायुभिः । मिषेण । उच्छ्वसिता इव इत्युत्प्रेक्षा। श्वसेः कर्तरि क्तः । स्वनाथशरणलाभसंतुष्टानां दिशामुच्छ्वासवाता इव वाता ववुरित्यर्थः। चतुर्दिगीशरक्षणं मूर्तिचतुष्टयप्रयोजनमिति भावः ॥७३॥

अन्वयः—चतुर्मूर्तेः तस्य उदये सति पौलस्त्यचकितेश्वराः दिशः विरजस्कैः नभस्वद्भिः उच्छ्वसिताः इव (जाताः इति शेषः) ।

व्याख्या—चतस्रः मूर्तयः=स्वरूपाणि यस्य स तस्य चतुर्मूर्तेः=रामादिरूपेण चतुःस्वरूपस्य तस्य=विष्णोः उदये=आविर्भावे सति, पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् पौलस्त्यः। पौलस्त्यात्=रावणात् चकिताः=भीताः ईश्वराः=इन्द्रादयः रक्षकाः यासां ताः पौलस्त्यचकितेश्वराः दिशन्त्यवकाशमिति दिशः=चतस्रः काष्ठाः विगतानि रजांसि=धूलयः येषां ते तैः विरजस्कैः=शान्तधूलिभिः नभः अस्ति आश्रयत्वेन येषां ते नभस्वन्तस्तैः नभस्वद्भिः=पवनैः "व्याजेन" उच्छ्वसिताः=उद्गतप्राणाः इव=यथा जाता इति शेषः ।

समासः—चतस्रः मूर्तयो यस्य स तस्य चतुर्मूर्तेः। पौलस्त्यात् चकिताः ईश्वराः यासां ताः पौलस्त्यचकितेश्वराः। विगतानि रजांसि येषां ते तैः विरजस्कैः।

हिन्दी—राम भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न, इन चार स्वरूप वाले विष्णु भगवान् के अविर्भाव (अवतार) होने पर रावण से डरे हुए इन्द्रादि नाथ वाली चारों दिशाएँ मानों धूली से रहित निर्मल वायु के चलने के बहाने जी उठीं। स्वाँस

लेने लगीं। अर्थात् रामावतार होने से इन्द्रादि दिक्पाल निर्भय हो गये तथा दिशाओं ने सन्तोष की साँस ली ॥७३॥

कृशानुरपधूमत्वात्प्रसन्नत्वात्प्रभाकरः।
रक्षोविप्रकृतावास्तामपविद्धशुचाविव ॥७४॥

संजी०—कृशानुरिति। रक्षसा रावणेन विप्रकृतावपकृतौ। पीडितावित्यर्थः। कृशानुरग्निः प्रभाकरः सूर्यश्च यथासंख्यमपधूमत्वात्प्रसन्नत्वाच्चापविद्धशुचौ निरस्तदुःखाविव। आस्तामभवताम् ॥७४॥

अन्वयः—रक्षोविप्रकृतौ कृशानुः प्रभाकरश्च "यथासंख्यम्" अपधूमत्वात् प्रसन्नत्वात् "च" अपविद्धशुचौ इव आस्ताम्।

व्याख्या—रक्षसा=रावणेन विप्रकृतौ, इति रक्षोविप्रकृतौ=रावणेनापमानितौ पीडितावित्यर्थः। कृशानुः=अग्निः। प्रकर्षेण भातीति प्रभा, करोतीति करः, प्रभायाः करः प्रभाकरः=सूर्यश्च यथासंख्यम् अपगतः धूमः यस्य सः अपधूमस्तस्य भावः अपधूमत्वं तस्मात् अपधूमत्वात्=निर्धूमत्वात्, प्रसन्नस्य भावः प्रसन्नत्वं तस्मात् प्रसन्नत्वात्=स्वच्छत्वात् अपविद्धा=नष्टा निरस्ता शुक्=शोकः ययोस्तौ, अपविद्धशुचौ इव=यथा आस्ताम्=अभूताम्। नष्टदुःखाविव जातौ, इत्यर्थः।

समासः—रक्षसा विप्रकृताविति रक्षोविप्रकृतौ। प्रभायाः करः प्रभाकरः। अपगतः धूमः यस्य सः अपधूमस्तस्य भावः अपधूमत्वम् तस्मात्। अपविद्धा शुक् ययोस्तौ, अपविद्धशुचौ।

हिन्दी—रावण से अपमानित एवं पीडित, अग्नि और सूर्य, (क्रम से अग्नि ने निर्धूम होकर और सूर्य ने निर्मल प्रकाश होकर) धुआँ से रहित तथा प्रसन्न प्रकाश होकर मानों दुःखरहित हो गये। अर्थात् रावण से ये दोनों भी पीडित थे, अब रामजन्म होते ही ये भी शोकरहित प्रसन्न हो गये ॥७४॥

दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः।
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः ॥७५॥

संजी०—दशाननेति। तत्क्षणं तस्मिन्क्षणे रामोत्पत्तिसमये राक्षसश्रियोऽश्रुबिन्दवो दशाननकिरीटेभ्यो मणीनां व्याजेन मिषेण पृथिव्यां पर्यस्ताः

पतिताः । रामोदये सति तद्वध्यस्य रावणस्य किरीटमणिभ्रंशलक्षणं दुर्निमित्तमभूदित्यर्थः ॥७५॥

अन्वयः—तत्क्षणं राक्षसश्रियः अश्रुबिन्दवः दशाननकिरीटेभ्यः मणिव्याजेन पृथिव्यां पर्यस्ताः ।

व्याख्या—स चासौ क्षणश्च तत्क्षणः, तं तत्क्षणं-तस्मिन् क्षणे–रामजन्मकाले राक्षसस्य=रावणस्य श्रीः=लक्ष्मीस्तस्याः राक्षसश्रियः, अस्यति अश्नुते वा कण्ठमिति अश्रु-नेत्राम्बु तस्य बिन्दवः=कणाः इति अश्रुबिन्दवः, दश आननानि यस्य स दशाननः, तस्य दशाननस्य=दशग्रीवस्य=रावणस्येत्यर्थः किरीटानि=मुकुटानि, इति दशाननकिरीटानि, तेभ्यः दशाननकिरीटेभ्यः मणीनां=मुक्तामणीनां व्याजः=मिषः तेन मणिव्याजेन पृथिव्यां=भूमौ पर्यस्ताः=पतिताः । रामावतारे जाते सति रामेण वध्यस्य रावणस्य मुकुटरत्नभ्रंशलक्षणमशुभशकुनं जातमित्यर्थः ।

समासः—स चासौ क्षणस्तं तत्क्षणम् । राक्षसस्य श्रीः, तस्याः राक्षसश्रियः । अश्रुणः बिन्दवः, अश्रुबिन्दवः । दश आननानि यस्य स दशाननः, दशाननस्य किरीटास्तेभ्यः, दशाननकिरीटेभ्यः । मणीनां व्याजस्तेन मणिव्याजेन ।

हिन्दी—"अयोध्या में रामजन्म हुआ, और लंका में" उसी क्षण राक्षसराज रावण की राज्यलक्ष्मी के आँसू की बून्दें, दस मुख वाले रावण के मुकुटों से मणियों के बहाने पृथिवी में गिर पड़ीं । अर्थात् रामावतार होते ही रावण की मुकुटमणि गिर पड़ी मानों मणि के रूप में, ये रावण की लक्ष्मी के आँसू गिर पड़े ॥७५॥

पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणां तस्य पुत्रिणः ।
आरम्भं प्रथमं चक्रुर्देवदुन्दुभयो दिवि ॥७६॥

संजी०—पुत्रेति । पुत्रिणो जातपुत्रस्य तस्य दशरथस्य पुत्रजन्मनि प्रवेश्यानां प्रवेशयितव्यानाम् । वादनीयानामित्यर्थः । तूर्याणां वाद्यानामारम्भमुपक्रमं प्रथमं दिवि देवदुन्दुभयश्चक्रुः । साक्षात्पितुर्दशरथादपि देवा अधिकं प्रहृष्टा इत्यर्थः ॥७६॥

अन्वयः—पुत्रिणः तस्य पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणाम् आरम्भं प्रथमं दिवि देवदुन्दुभयः चक्रुः ।

व्याख्या—पुन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः । पुत्रो जातोऽस्येति पुत्री, तस्य पुत्रिणः=पुत्रवतः तस्य=राज्ञो दशरथस्य प्रवेष्टुं योग्याः प्रवेश्याः, पुत्रस्य जन्म पुत्रजन्म, पुत्रजन्मनि=सुतोत्पत्तिसमये प्रवेश्याः=प्रवेशयितव्याः=वादनीयाः इति पुत्रजन्मप्रवेश्यास्तेषां पुत्रजन्मप्रवेश्यानां, तूर्यन्ते=ताड्यन्ते इति तूर्यास्तेषां तूर्याणां=वाद्यानाम्, आरम्भम्=उपक्रमम्, प्रथमम्=आदौ दिवि=स्वर्गे दुन्दु इति शब्देन भान्तीति दुन्दुभयः, भेर्यः चक्रुः=कृतवन्तः । साक्षात्पित्रपेक्षया देवा एवाधिकं प्रसन्नाः सन्तुष्टाश्च जाता इत्यर्थः ।

समासः—पुत्रस्य जन्म पुत्रजन्म, पुत्रजन्मनि प्रवेश्याः इति पुत्रजन्मप्रवेश्याः स्तेषां पुत्रजन्मप्रवेश्यानाम् । देवानां दुन्दुभयः देवदुन्दुभयः । पुत्रा अस्य सन्तीति पुत्री, तस्य ।

हिन्दी—पुत्रवान् राजा दशरथ के, पुत्रजन्म के समय (पुत्र के जन्म के उपलक्ष में) में बजाने योग्य बाजों के बजने का आरम्भ पहले-पहल स्वर्गदुन्दुभि (नगाड़ा ढोल) ने किया । अर्थात् राजा के घर पीछे बाजे बजे, लेकिन स्वर्ग में पहले ही नगाड़े बज उठे । याने देवता सबसे अधिक प्रसन्न हुए रामजन्म होने पर ॥७६॥

संतानकमयी वृष्टिर्भवने चास्य पेतुषी ।
सन्मङ्गलोपचाराणां सैवादिरचनाऽभवत् ॥७७॥

संजी०—संतानकेति । अस्य राज्ञो भवने संतानकानां कल्पवृक्षकुसुमानां विकारः संतानकमयी वृष्टिश्च पेतुषी पपात । 'क्वसुश्च' (पा.३।२ १०७) इति क्वसुप्रत्ययः । 'उगितश्च' (पा.४।१६) इति ङीप् । सा वृष्टिरेव सन्तः पुत्रजन्मन्यावश्यका ये मङ्गलोपचारास्तेषामादिरचना प्रथमक्रियाऽभवत् ॥७७॥

अन्वयः—अस्य भवने सन्तानकमयी वृष्टिः पेतुषी, सा एव सन्मंगलोपचाराणाम् आदिरचना अभवत् ।

व्याख्या—अस्य राज्ञः दशरथस्य भवने=प्रासादे=गृहे सम्यक् तनोति=पुष्णातीति सन्तानः, सम्यक् तन्यन्ते पुष्पाणि यस्मिन् इति सन्तानः सन्तान एव संतानकः=कल्पवृक्षः । सन्तानकानां=कल्पवृक्षपुष्पाणां विकारः सन्तानकमयी=कल्पवृक्षपुष्पमयी वृष्टिः=वर्षणं पेतुषी=पपात, सा=वृष्टिः एव, मंगलाः मांगल्य-

प्रदाश्च ते उपचाराः=कृत्याः इति मंगलोपचाराः, सन्तः=पुत्रोत्पत्तौ, आवश्यकाः ये मंगलोपचाराः इति सन्मंगलोपचारास्तेषां सन्मंगलोपचाराणाम्, आदिः=प्रथमा चासौ रचना=क्रिया चेति आदिरचना अभूत्=आसीत् ।

समासः—मंगलाश्च ते उपचाराः मंगलोपचाराः, सन्तश्च ते मंगलोपचाराश्च सन्मंगलोपचारास्तेषां सन्मंगलोपचाराणाम् । आदिः चासौ रचना च आदिरचना ।

हिन्दी—राजा दशरथ के राजभवन में "आकाश से" कल्पवृक्ष के स्वर्गीय फूलों की "जो" वर्षा हुई वह वर्षा ही पुत्रजन्म के समय आवश्यक मांगलिक कार्यों का शुभारम्भ हुआ था ॥७७॥

कुमाराः कृतसंस्कारास्ते धात्रीस्तन्यपायिनः ।
आनन्देनाग्रजेनेव समं ववृधिरे पितुः ॥७८॥

संजी०—कुमारा इति । कृताः संस्कारा जातकर्मादयो येषां ते । धात्रीणामुपमातॄणां स्तन्यानि पयांसि पिबन्तीति तथोक्ताः । ते कुमारा अग्रे जातेनाग्रजेन ज्येष्ठेनेव स्थितेन पितुरानन्देन समं ववृधिरे । कुमारवृद्धया पिता महान्तमानन्दमवापेत्यर्थः । कुमारजन्मनः प्रागेव जातत्वादग्रजत्वोक्तिरानन्दस्य ॥७८॥

अन्वयः—कृतसंस्काराः धात्रीस्तन्यपायिनः ते कुमाराः अग्रजेन इव पितुः आनन्देन समं ववृधिरे ।

व्याख्या—कृताः-विहिताः संस्काराः संस्क्रियन्ते ये ते संस्काराः=जातकर्मादयः येषां ते कृतसंस्काराः, स्तने भवानि स्तन्यानि, धात्रीणाम्=उपमातॄणां स्तन्यानि=दुग्धानि पिबन्ति तच्छीलाः, इति धात्रीस्तन्यपायिनः, ते=पूर्वोक्ताः कौ=पृथिव्यां मारयन्ति दुष्टान् इति कुमाराः=शिशवः अग्रे=प्रथमं जातः अग्रजस्तेन=ज्येष्ठेन इव=यथा स्थितेन पितुः=जनकस्य=दशरथस्य आनन्दस्तेन आनन्देन=हर्षेण समं=साकं ववृधिरे=वर्धन्ते स्म ।

समासः—कृताः संस्काराः येषां ते कृतसंस्काराः । धात्रीणां स्तन्यानि धात्रीस्तन्यानि, तानि पिबन्तीति धात्रीस्तन्यपायिनः । अग्रे जातः, अग्रजस्तेन अग्रजेन ।

हिन्दी—जातसंस्कार आदि से संस्कृत तथा धाय का दूध पीने वाले, वे कुमार *बड़े भाई के समान वर्तमान, पिता के आनन्द के साथ २ बढ़ने लगे । कुमारों की*

उत्पत्ति से पहले ही राजा का आनन्द हो गया था, अतः कवि ने आनन्द को ज्येष्ठ कहा है ॥७८॥

स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनयकर्मणा ।
मुमूर्च्छ सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम् ॥७९॥

संजी०— स्वाभाविकमिति । तेषां कुमाराणां संबन्धि स्वाभाविकं सहजं विनीतत्वं विनयकर्मणा शिक्षया । हविर्भुजामग्नीनां सहजं तेजो हविषाऽऽज्यादिकेनेव । मुमूर्च्छ ववृधे । निसर्गसंस्काराभ्यां विनीता इत्यर्थः ॥७९॥

अन्वयः—तेषां स्वभाविकं विनीतत्वं विनयकर्मणा हविर्भुजां सहजं तेजः हविषा इव मुमूर्छ ।

व्याख्या—तेषां=रामादिकुमाराणां स्वो भावः, स्वभावेन जातं स्वाभाविकं=नैसर्गिकं सहजमित्यर्थः व्यनायि इति विनीतः, विनीतस्य=सुशिक्षितस्य भावः विनीतत्वं=सुशिक्षितत्वं विनयस्य कर्म विनयकर्म तेन विनयकर्मणा=शिक्षणेन हविः भुञ्जते इति हविर्भुजस्तेषां हविर्भुजाम्=अग्नीनां सह जातमिति सहजं=स्वाभाविकं तेजः दीप्तिः हूयते इति हविः, तेन हविषा=होतव्येन आज्यादिना इव=यथा मुमूर्छ=ववृधे प्रजज्वाल, इत्यर्थः । ते स्वाभाविकसंस्काराभ्यां विनीताः ।

समासः—विनयस्य कर्म विनयकर्म, तेन विनयकर्मणा ।

हिन्दी—उन चारों कुमारों की स्वाभाविक नम्रता, विनय आदि की अच्छी शिक्षा से उसी प्रकार "और अधिक" बढ़ गई, जिस प्रकार अग्नि का स्वाभाविक तेज घी की आहुति से बढ़ जाता है ॥७९॥

परस्पराविरुद्धास्ते तद्रघोरनघं कुलम् ।
अलमुद्द्योतयामासुर्देवारण्यमिवर्तवः ॥८०॥

संजी०—परस्परेति । परस्पराविरुद्धा अविद्विष्टाः । सौभ्रात्रगुणवन्त इत्यर्थः । कुमाराः । तत्प्रसिद्धमनघं निष्पापं रघोः कुलम् । ऋतवो वसन्तादयो देवारण्यं नन्दनमिव । सहजविरोधानामप्यृतूनां सहावस्थानसंभावनार्थं देवविशेषणम् । अलमत्यन्तम् । उद्द्योतयमासुः प्रकाशयामासुः । सौभ्रात्रवन्तः कुलभूषणायन्त इति भावः ॥८०॥

अन्वयः—परस्पराविरुद्धाः ते तत् अनघं रघोः कुलम्, ऋतवः देवारण्यम् इव अलम् उद्द्योतयामासुः।

व्याख्या—परस्परम्=अन्योन्यम् न विरुद्धाः, अविरुद्धाः=अविरोधिनः, ते=कुमाराः तत्=जगत्प्रसिद्धम् न अघं यस्मिन् तत् अनघं=निष्पापं रघोः=दिलीपसूनोः कुलम्=वंशम् ऋतवः—वसन्तादयः देवानाम्=सुराणाम् अरण्यं=वनमिति तत् देवारण्यं=नन्दनम् इव-यथा अलम्=अत्यर्थं=भृशम् उद्द्योतयामासुः=प्रकाशयाञ्चक्रुः, भ्रातृसौहार्दवन्तः कुलभूषणाः भवन्तीत्यर्थः।

समासः—परस्परं न विरुद्धाः, परस्पराविरुद्धाः। न अघं यस्मिन् तत् अनघम्, तत्। देवानाम् अरण्यमिति देवारण्यम् तत्।

हिन्दी—आपस में विरोध न रखने वाले (प्रेम से रहने वाले) उन चारों भाइयों ने लोकप्रसिद्ध पापरहित रघु के कुल को उसी प्रकार उज्वल कर दिया जिस प्रकार परस्पर सब ऋतुयें मिलकर नन्दन वन को शोभित करती हैं। जहाँ ऋतु मिलकर सदा सर्व ऋतु के पुष्पों से नन्दन वन को विकसित कर देती हैं॥८०॥

समानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ।

तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः॥८१॥

संजी०— समान इति। शोभनाः स्निग्धभ्रातरो येषां ते सुभ्रातरः। 'नद्यृतश्च' (पा. ५।४।१५३) इति कब्न भवति। 'वन्दिते भ्रातुः' इति निषेधात्। तेषां भावः सौभ्रात्रम्। युवादित्वादण्। तस्मिन्समाने चतुर्णां तुल्येऽपि यथोभौ राम-लक्ष्मणौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः। तथा भरतशघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं द्वौ द्वौ साहचर्येणाभिव्यक्तौ बभूवतुः। 'द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु' (पा.८।१।१५) इत्यभिव्यक्तार्थे निपातः। क्वचित्कस्यचित्स्नेहो नातिरिच्यत इति भावः॥८१॥

अन्वयः—सौभ्रात्रे समाने अपि हि यथा उभौ रामलक्ष्मणौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः।

व्याख्या—भ्राजन्ते इति भ्रातरः। सु=शोभनाः भ्रातरः=सहोदराः सुभ्रातरः, सुभ्रातृणां भावः सौभ्रात्रं तस्मिन् सौभ्रात्रे=सुभ्रातृत्वे समाने=चतुर्णां

तुल्ये, अपि हि=निश्चये यथा=येन प्रकारेण उभौ=द्वौ रामश्च लक्ष्मणश्चेति रामलक्ष्मणौ प्रीत्या=प्रेम्णा=स्नेहेन द्वौ द्वौ, इति द्वन्द्वं बभूवतुः=जातौ तथा=तेनैव प्रकारेण भरतश्च शत्रुघ्नश्च इति भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या=सौहार्देन द्वन्द्वं=द्वौ द्वौ साहचर्येण प्रकटितौ बभूवतुः=जातौ ।

समासः—रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणौ । भरतश्च शत्रुघ्नश्च भरतशत्रुघ्नौ ।

हिन्दी—चारों भाइयों का शोभन भाइपना बराबर होने पर भी (चारों का परस्पर समान प्रेम होने पर भी) जिस प्रकार राम लक्ष्मण का प्रेम से जोड़ा हुआ, उसी प्रकार भरत और शत्रुघ्न का भी प्रेम से जोड़ा हुआ । अर्थात् दो दो का जोड़ा प्रसिद्ध हुआ, किन्तु कहीं भी किसी का प्रेम कम न हुआ ॥८१॥

तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं बिभिदे न कदाचन ।
यथा वायुविभावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः ॥८२॥

संजी०—तेषामिति । तेषां चतुर्णां मध्ये द्वयोर्द्वयोः । रामलक्ष्मणयोर्भरतशत्रुघ्नयोश्चेत्यर्थः । यथा वायु-विभावस्वोर्वातवह्न्योरिव । चन्द्रसमुद्रयोरिव च । ऐक्यमैकमत्यं कदाचन न बिभिदे । एककार्यत्वं समानसुखदुःखत्वं च क्रमादुपमाद्वयाल्लभ्यते । सहजः सहकारी हि वह्नेर्वायुः । चन्द्रवृद्धौ हि वर्धते सिन्धुः तत्क्षये च क्षीयत इति ॥८२॥

अन्वयः—तेषां "मध्ये" द्वयोः द्वयोः वायुविभावस्वोः यथा, चन्द्रसमुद्रयोः यथा ऐक्यं कदाचन न बिभिदे ।

व्याख्या—तेषां=चतुर्णां मध्ये द्वयोः=रामलक्ष्मणयोः द्वयोः भरतशत्रुघ्नयोश्च वातीति वायुः=पवनः । विभा=प्रभा वसु=धनं यस्य स विभावसुः=वह्निः । वायुश्च विभावसुश्चेति वायुविभावसू तयोः वायुविभावस्वोः यथा=इव, चन्दति=आह्लादयतीति चन्द्रः । समीचीनाः उद्रा जलचरविशेषाः यस्मिन् स समुद्रः, सह मुद्रया=समर्यादया वर्तते इति वा समुद्रः । चन्द्रः=चन्द्रमाः समुद्रः=सागरश्चेति चन्द्रसमुद्रौ तयोः चन्द्रसमुद्रयोः यथा=इव एकस्य भावः कर्म वा ऐक्यम्=ऐकमत्यम् कस्मिन् काले कदा=अनिर्द्धारिते काले कदाचन, न बिभिदे=न भिद्यते स्म, कस्मिंश्चिदपि समये तेषामैकमत्यं भेदं न गतमित्यर्थः ।

समासः—विभा वसु यस्य स विभावसुः । वायुश्च विभावसुश्चेति वायुवि-भावसू, तयोः वायुविभावस्वोः । चन्द्रश्च समुद्रश्चेति चन्द्रसमुद्रौ, तयोः चन्द्रसमुद्रयोः ।

हिन्दी—उन चारों भाइयों के बीच दो दो का ऐकमत्य (एकबुद्धि से कार्य करना, समान सुखदुःख होकर रहना) वायु और अग्नि की तरह तथा चन्द्र और समुद्र की तरह कभी भी भिन्न न हुआ। अर्थात् स्वभाव से ही वायु अग्नि का साथी है और चन्द्र की वृद्धि से समुद्र की वृद्धि तथा चन्द्र के क्षय पर समुद्र का क्षय-शान्त होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार इन चारों में दो-दो का सब कार्यों में साथ था ।।८२।।

ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च ।
मनो जह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव ।।८३।।

संजी०— त इति । प्रजानाथास्ते कुमारास्तेजसा प्रभावेण प्रश्रयेण विनयेन च निदाघान्ते ग्रीष्मान्ते श्यामान्यभ्राणि मेघा येषां ते श्यामाभ्राः । 'नातिशी-तोष्णा इत्यर्थः । दिवसा इव प्रजानां मनो जह्रुः ।।८३।।

अन्वयः—प्रजानाथाः ते तेजसा प्रश्रयेण च निदाघान्ते श्यामाभ्राः दिवसाः इव प्रजानां मनः जह्रुः ।

व्याख्या—प्रजानां लोकानां नाथाः=स्वामिनः, इति प्रजानाथाः ते=चत्वारो भ्रातरः तेजसा=स्वप्रभावेण प्रश्रयणं प्रश्रयस्तेन प्रश्रयेण=विनयेन च नितरां दह्यन्ते जनाः अत्रेति निदाघः निदाघस्य=ग्रीष्मस्य अन्तः=अवसानमिति निदाघान्त-स्तस्मिन् निदाघान्ते श्यामाभ्राः श्यामानि=कृष्णानि अभ्राणि=मेघाः येषु ते दिवसाः=वासराः इव=यथा प्रजानां=जनानां मनः=मानसं=चित्तं जह्रुः=हरन्ति स्म ।

समासः—प्रजानां नाथाः, प्रजानाथाः । निदाघस्य अन्तः निदाघान्तस्तस्मिन् निदाघान्ते । श्यामानि अभ्राणि येषु ते श्यामाभ्राः ।

हिन्दी—प्रजा के स्वामी उन चारों राजकुमारों ने, अपने प्रभाव, एवं नम्र स्वभाव से प्रजाओं के मन को उसी प्रकार हर लिया, जिस प्रकार ग्रीष्म (गर्मी) की ऋतु के अन्त में काले २ मेघों वाले दिन लोगों के मन को हर लेते हैं ।।८३।।

स चतुर्धा बभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवीपतेः ।

धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवाङ्गवान् ॥८४॥

संजी०—स इति । स चतुर्धा । 'संख्याया विधार्थे धा' (पा. ५।३।४२) धाप्रत्ययः । व्यस्तो विभक्तः पृथिवीपतेर्दशरथस्य प्रसवः संतानः । चतुर्धाऽङ्गवान् मूर्तिमान् धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इव बभौ ॥८४॥

अन्वयः—सः चतुर्धा व्यस्तः पृथिवीपतेः प्रसवः "चतुर्धा" अङ्गवान् धर्मार्थकाममोक्षाणाम् अवतारः इव बभौ ।

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः चतुर्भिः प्रकारैः चतुर्धा व्यस्तः=कृतविभागः पृथिव्याः =भूमेः पतिः=स्वामी, इति पृथिवीपतिस्तस्य पृथिवीपतेः=दशरथस्य प्रसवः=प्रसूतिः, अंगानि अस्यास्तीति अंगवान्=चतुर्धा मूर्तिमान् धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्चेत्येतेषामितरेतरयोगः धर्मार्थकाममोक्षास्तेषां धर्मार्थकाममोक्षाणां=पुरुषार्थानाम् विष्णोः मूर्त्यन्तरेण पृथिव्यामवतरणम् अवतारः=आविर्भावः इव=यथा बभौ=शुशुभे ।

समासः—पृथिव्याः पतिः, पृथिवीपतिस्तस्य पृथिवीपतेः । धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च धर्मार्थकाममोक्षाः ।

हिन्दी—रामलक्ष्मण भरतशत्रुघ्न इन रूपों में बटी हुई राजा दशरथ की संतान ऐसी सुन्दर लग रही थी, मानो शरीर धारण किये (मूर्तिमत्) हुए धर्म अर्थ काम मोक्ष के अवतार हों । अर्थात् चारों पुरुषार्थ सशरीर अवतरित हो गये हैं, ऐसा प्रतीत हो रहा था ॥८४॥

गुणैराराधयामासुस्ते गुरुं गुरुवत्सलाः ।

तमेव चतुरन्तेशं रत्नैरिव महार्णवाः ॥८५॥

संजी०—गुणैरिति । गुरुवत्सलाः पितृभक्तास्ते कुमारा गुणैर्विनयादिभिर्गुरुं पितरम् । चतुर्णामन्तानां दिगन्तानामीशं चतुरन्तेशम् । 'तद्धितार्थ—' (पा. २।१।५१) इत्यादिनोत्तरपदसमासः । तं दशरथमेव महार्णवाश्चत्वारो रत्नैरिव । आराधयामासुरानन्दयामासुः ॥८५॥

अन्वयः—गुरुवत्सलाः ते गुणैः गुरुं चतुरन्तेशं तम् एव महार्णवाः रत्नैः इव आराधयामासुः ।

व्याख्या—वत्से=पुत्रादौ, अभिलाषः अस्यास्तीति वत्सलः। गुरौ=पितरि-वत्सलः=स्नेहः=प्रीतिः येषां ते गुरुवत्सलाः=पितृभक्ताः ते=कुमाराः गुणैः=नम्रत्वा-दिभिः गुरुं=पितरम् चतुर्णाम् अन्ताः चतुरन्ताः। चतुरन्तानां=दिगन्तानाम् ईशः= स्वामी तं चतुरन्तेशं तं=दशरथम् एव महान्ति=अधिकानि अर्णांसि=जलानि सन्ति येषु ते महार्णवाः=चत्वारः समुद्राः, रमन्ते येषु "जनाः" इति रत्नानि तैः रत्नैः= मण्यादिभिः इव=यथा आराधयामासुः=सेवितवन्तः, आनन्दितं चक्रुः।

समासः—गुरुषु वत्सलाः गुरुवत्सलाः। चतुर्णाम् अन्तानाम् ईशः, चतुरन्ते-शस्तं चतुरंतेशम्। महान्तश्च ते अर्णवाः महार्णवाः।

हिन्दी—पितृभक्त उन चारों राजकुमारों ने अपनी भक्ति विनय से अपने पिता की उसी प्रकार आराधना (सेवा) की, जिस प्रकार चारों दिशाओं के स्वामी उसी दशरथ को महासमुद्रों ने रत्नों से सेवा करके प्रसन्न किया है। अर्थात् पुत्रों ने अपनी नम्रता तथा सरलता से पिता को आनन्द दिया, और उसी दशरथ की समुद्रों ने खूब रत्न देकर सेवा की ॥८५॥

सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारै-
नय इव पणबन्धव्यक्तयोगैरुपायैः।
हरिरिव युगदीर्घैर्दोर्भिरंशैस्तदीयैः
पतिरवनिपतीनां तैश्चकाशे चतुर्भिः ॥८६॥

संजी—सुरगज इति। भग्ना दैत्यानामसिधारा यैस्तैश्चतुर्भिर्दन्तैः सुरगज ऐरावत इव। पणबन्धेन फलसिद्धया व्यक्तयोगैरनुमितप्रयोगैरुपायैश्चतुर्भिः सामादिभिर्नयो नीतिरिव। युगवद्दीर्घैश्चतुर्भिर्दोर्भिर्भुजैर्हरिर्विष्णुरिव। तदीयै-र्हरिसंबन्धिभिरंशभूतैश्चतुर्भिस्तैः पुत्रैरवनिपतीनां पती राजराजो दशरथः। चकाशे विदिद्युते ॥८६॥

अन्वयः—भग्नदैत्यासिधारैः दन्तैः सुरगज इव, पणबन्धव्यक्तयोगैः उपायैः नयः इव, युगदीर्घैः दोर्भिः हरिः इव, तदीयैः अंशैः चतुर्भिः तैः अवनिपतीनां पतिः चकाशे।

व्याख्या—असेः=खड्गस्य धारा=तीक्ष्णाग्रम्, इति असिधारा। भग्ना=

खण्डिता दैत्यानाम्=असुराणाम् असिधारा यैस्ते तैः भग्नदैत्यासिधारैः दन्तैः=दशनैः सुराणां=देवानां गजः=नागः इति सुरगजः=ऐरावतः इव=यथा पणस्य बन्धः, तेन पणबन्धेन-फलसिद्धया व्यक्तः = अनुमितः = ज्ञातः योगः = प्रयोगः येषां ते तैः पणबन्धव्यक्तयोगैः, उपायन्ते एभिस्ते उपायास्तैः उपायैः=सामदामादिभिः, चतुर्भिः नयः=नीतिः इव=यथा, युगः=यानाद्यंगः दारुविशेषः इव दीर्घाः=आयताः लम्बायमाना इत्यर्थः, इति युगदीर्घास्तैः युगदीर्घैः दोर्भिः=बाहुभिः=भुजैः हरिः विष्णुः इव=यथा तस्य इमे तदीयास्तैः तदीयैः=विष्णुसंबन्धिभिः अंशैः=अंशभूतैः, चतुर्भिः =चतुःसंख्याकैः रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नैरित्यर्थः तैः=पुत्रैः अवति=रक्षति, अव्यते वा अवनिः = पृथिवी तस्याः पतयः=स्वामिनः इति अवनिपतयस्तेषाम् अवनिपतीनां =भूपालानां पतिः=स्वामी राजराजः दशरथः चकाशे=दिदीपे ।

समासः—असेः धारा असिधारा, दैत्यानाम् असिधारा, दैत्यासिधारा, भग्ना दैत्यासिधारा यैस्ते तैः भग्नदैत्यासिधारैः । पणस्य बन्धः, पणबन्धः पणबन्धेन व्यक्तः योगः येषां ते, तैः पणबन्धव्यक्तयोगैः । युगवत् दीर्घाः, तैः युगदीर्घैः । अवनेः पतयः, अवनिपतयस्तेषाम् अवनिपतीनाम् ।

हिन्दी—दैत्यों की तलवार की धार को तोड़ने वाले चार दाँतों से जैसे ऐरावत सुशोभित होता है, और फल की प्राप्ति से जाना गया है प्रयोग जिनका ऐसे साम, दान, दण्ड, भेद, इन चार उपायों से जैसे राजनीति शोभा पाती है, एवं रथ के जूए के समान लम्बी लम्बी चार भुजाओं से जैसे विष्णु सुशोभित होता है, उसी प्रकार विष्णु के अंशभूत उन चार सुपुत्रों से राजाओं के राजा दशरथजी सुशोभित हुए ॥८६॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये रामावतारो नाम दशमः सर्गः ।

महाकविकालिदासप्रणीत

रघुवंश-महाकाव्य

एकादशसर्ग—एकोनविंशतिसर्ग

एकादशसर्ग का कथासार

ऋषि विश्वामित्र ने अपने यज्ञ में विघ्न करनेवाले राक्षसों का विनाश करने के लिये राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण को मांगा। यद्यपि राम अभी बच्चे ही थे पर तेजस्वियों की अवस्था नहीं देखी जाती। राजा ने बड़ी कठिनाई से प्राप्त पुत्र राम को ऋषि को, इच्छा न रहते भी, दे दिया क्योंकि रघुवंशी मांगनेवाले को अपने प्राण तक देने के लिए तैयार रहते थे। राजा जब तक दोनों की मांगलिक यात्रा का प्रबन्ध करते तब तक बादलों ने सुगन्धित जल बरसाकर रास्ते साफ कर दिये। दोनों राजकुमारों ने पिता को प्रणाम किया और राजा ने स्नेहाश्रु से सींचते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया। धनुषधारी उन दोनों को जाते देख सारी अयोध्या ऋषि के पीछे-पीछे जाने लगी, परन्तु ऋषि केवल राम-लक्ष्मण को ही ले जाना चाहते थे, सेना को नहीं, क्योंकि राजा का आशीर्वाद ही उन दोनों की रक्षा करने के लिये पर्याप्त था।

माताओं को प्रणाम कर वे दोनों (राम-लक्ष्मण) विश्वामित्र के साथ ऐसे चले जैसे सूर्य के साथ मधु और माधव (चैत्र-वैशाख) चलते हैं। मार्ग में ऋषि द्वारा दी हुई बला और अतिबला नामक विद्याओं के प्रभाव से मणिमय फर्शों पर चलनेवाले उन राजकुमारों को जंगल के कंटीले मार्ग भी सुगम लगने लगे। ऋषि से पुरानी कथाओं को सुनते हुए उन्हें थकान का कुछ भी अनुभव नहीं हुआ। आश्रम में पहुँचने पर उन्हें देखकर ऋषियों को इतना आनन्द हुआ जितना कि कमलों से सुशोभित सरोवरों या छायादार वृक्षों को देखकर किसी थके व्यक्ति को होता है। विश्वामित्र का वह आश्रम, जहाँ शिवजी ने कामदेव को दग्ध कर दिया था, कामदेव से भी सुन्दर शरीरवाले उन राजकुमारों से सुशोभित हो गया।

उस वन में अगस्त्य ऋषि के शाप से दारुण रूपवाली ताड़का ऋषियों को त्रास देती थी। अतः दोनों भाई वहाँ पहुँचकर चौकन्ने हो गये और उन्होंने अपने-अपने धनुषों पर प्रत्यञ्चा चढ़ा ली। प्रत्यञ्चा का शब्द सुनकर अन्धकार-जैसी काली, नरकपालों के कुण्डल पहिनी हुई, भयानक रूपवाली राक्षसी ताड़का प्रकट हो गई। उसके वेग से वृक्ष कांपने लगे। मुर्दों के क़फन के चिथड़े लटकाई हुई और चिघाड़ती हुई श्मशान से आती हुई दुर्गन्ध-युक्त आंधी की तरह उसे देखकर पहिले तो राम

घबरा-से गये, किन्तु जब उसने उन्हें मारने को हाथ उठाया और मनुष्यों की आंतों से बनी उसकी भीषण करधनी को राम ने देखा तो "स्त्री पर प्रहार करना उचित नहीं" यह घृणा की भावना उनकी जाती रही और उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाकर पूरे वेग से छोड़ दिया जो उसकी छाती में लगा। उस बाण से उसके वक्षस्थल पर जो छेद हो गया वह मानो राक्षसों के अभेद्य दुर्ग में प्रवेश करने का यमराज के लिये मार्ग बन गया। कामबाण से पीड़ित अभिसारिका जैसे अपने प्राणनाथ के पास पहुँचती है ऐसे ही रामबाण से पीड़ित ताड़का यमलोक में पहुँच गई। मरकर गिरती हुई ताड़का से केवल भूमि ही नहीं कांपने लगी बल्कि त्रिभुवन को जीतने से स्थिर हुई रावण की राजलक्ष्मी भी मानो हिल गई। ताड़का-वध से प्रसन्न हुए विश्वामित्र ने राम को मंत्र-युक्त अस्त्रों का ज्ञान कराया। विश्वामित्र के साथ वामनाश्रम में पहुँचने पर उन्हें अपने पूर्वजन्म (वामनावतार) के कृत्यों का स्मरण हो गया। विश्वामित्र के आश्रम में शिष्यों ने यज्ञ की सामग्री तैयार की थी। ऋषि ने दीक्षा ली और यज्ञ प्रारम्भ हुआ। राम-लक्ष्मण दोनों उस यज्ञ की इस प्रकार रक्षा करते थे जैसे सूर्य और चन्द्रमा संसार की अन्धकार से रक्षा करते हैं।

इसी समय यज्ञ की वेदी में आकाश से अड़हुर के फूल-सी लाल-लाल रक्त की बूंदें गिरने लगीं और यज्ञकर्ता ऋषियों में हड़बड़ी मच गई। लक्ष्मणाग्रज राम ने तत्काल तरकश से बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाया और देखा कि राक्षसों की सेना चढ़ी आ रही है। उन्होंने औरों को छोड़कर उस सेना के दो नायकों (मारीच और सुबाहु) को ही अपने बाणों का लक्ष्य बनाया, जैसे सफल पराक्रमवाला गरुड़ बड़े-बड़े विषधरों को ही अपना लक्ष्य बनाता है, निर्विष, पानी में रहनेवाले सांपों को नहीं। उन्होंने पर्वताकार मारीच को अपने वायव्यास्त्र से दूर फेंक दिया और सुबाहु को खुरपी जैसे बाण से टुकड़े-टुकड़े कर चील-कौओं के खाने को छोड़ दिया। शेष राक्षस भाग गये और विश्वामित्र की यज्ञप्रक्रिया निर्विघ्न सम्पन्न हुई। यज्ञ के अन्त में दोनों भाइयों ने ऋषि के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया और ऋषि ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

तभी मिथिला के राजा जनक ने अपनी पुत्री के स्वयंवर में आने के लिये विश्वामित्र को आमन्त्रित किया। शिवधनुष को देखने की उत्कण्ठा से दोनों राजकुमार भी उनके साथ हो लिए। मार्ग में अपने पति गौतम के शाप से पत्थर बनी हुई अहल्या को राम ने अपने चरणस्पर्श से दिव्य-रूप प्रदान किया।

दोनों राजकुमारों-सहित आये हुए विश्वामित्र का जनक ने स्वागत किया। मिथिला-वासी नर-नारी राम-लक्ष्मण के दिव्य रूप को एकटक देखते रह गए। धनुषयज्ञ की तैयारी पूरी होने पर ऋषि ने राम की धनुष देखने की इच्छा जनक से प्रकट की। विख्यात कुल में उत्पन्न राम के कोमल और दिव्य रूप को देखकर शिवजी के कठोर धनुष तोड़ने सम्बन्धी सीता-विवाह के अपने प्रण पर जनक को अत्यन्त क्षोभ हुआ और वे बोले–

रात-दिन धनुष की डोरी खींचते जिनके हाथों में गढ़े पड़ गए ऐसे बड़े-बड़े पराक्रमी राजा इसे न उठा सके और अपनी भुजाओं को धिक्कारते चले गये। उस कठोर धनुष को छूने की इन कोमल बच्चों को मैं कैसे अनुमति दूं? तब ऋषि ने कहा–वज्र में कितनी शक्ति है यह तो तभी ज्ञात होता है जब उससे पहाड़ टूट जाता है; ऐसे ही राम की शक्ति का भी धनुष को छूते ही आपको पता चल जायेगा। जुगनू-जैसी छोटी चिनगारी में भी भीषण दाह करने की शक्ति हो सकती है–यह सोचकर सत्यवक्ता ऋषि के वचन पर विश्वास करके जनक ने अपने योद्धाओं को धनुष लाने का आदेश दिया। सोये हुए अजगर-जैसे उस भीषण धनुष को, जिसपर बाण चढ़ाकर भगवान् शंकर ने मृगरूपी यज्ञ का पीछा किया था, दशरथनन्दन राम ने देखते ही उठा लिया और उसपर ऐसे प्रत्यन्चा चढ़ा दी जैसे कामदेव फूलों के धनुष को चढ़ा रहा हो। उसे खींचते ही भीषण ध्वनि करता हुआ धनुष टूट गया। उसके टूटने की ध्वनि इतनी तीव्र थी कि दूर कहीं तपस्या करते हुए क्रोधी मुनि परशुराम के कानों तक जा पहुंची, मानो यह समाचार देना चाहती हो कि क्षत्रियजाति फिर जी उठी है।

शंकर जी के धनुष को तोड़ने से राम के पराक्रम पर प्रसन्न हुए जनक ने अपनी अयोनिजा कन्या सीता को अग्नि-जैसे पवित्र ऋषि को साक्षी करके राम को अर्पण करने की इच्छा की और राजा दशरथ के पास अपने कुल-पुरोहित को भेजा कि वे सीता को अपनी पुत्रवधू-रूप में स्वीकार करें। वे राम के लिए उपयुक्त वधू की खोज में ही थे। इस समाचार से जैसे उन्हें अभीष्ट फल मिल गया, क्योंकि सज्जनों के संकल्प कल्पवृक्ष से प्राप्त फलों की तरह शीघ्र ही पूर्ण होते हैं। राजा दशरथ पुरोहित एवं चतुरंगिणी सेना के साथ मिथिला को चल पड़े। सेना के संमर्द से उठी धूल से आकाश भर गया। मिथिला पहुंचने पर इन्द्र और वरुण-जैसे दोनों राजा (दशरथ और जनक) परस्पर मिले और विवाह की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

राम का सीता से, लक्ष्मण का सीता की छोटी बहिन उर्मिला से तथा भरत और शत्रुघ्न का जनक के छोटे भाई कुशध्वज की कन्याओं (माण्डवी और श्रुत-कीर्ति) से धूमधाम के साथ विवाह हुआ। वे चारों भाई अनुरूप कन्याओं का पाणिग्रहण करके ऐसे लगते थे जैसे साम, दाम, दण्ड, भेद ये चारों उपाय अपनी सिद्धियों-सहित राजा की शोभा बढ़ा रहे हों। जैसे प्रकृति (धातु) और प्रत्यय के योग से पद सार्थक होता है, ऐसे ही चारों राजकुमारों से वे कन्याएं और उन कन्याओं से राजकुमार सार्थक हो गये।

चारों पुत्रों का विवाह करके राजा दशरथ अपनी सेना-सहित अयोध्या को चले। तीन पड़ाव तक उन्हें पहुंचाकर मिथिला-नरेश वापस हो गये। इसी समय सहसा अनेक अशुभ लक्षण प्रकट होने लगे। जैसे तीव्र बाढ़ किनारे के वृक्षों को ढहा देती है ऐसे ही भयंकर आंधी से सैनिकों के पांव उखड़ने लगे। सूर्यमंडल के चारों ओर धारियां दीखने लगीं, दिशाएं मलिन हो गईं। जिधर सूर्य दीखे उसी दिशा में सियार हुंआ-हुंआ करने लगे। इन अशुभों से घबराकर राजा ने गुरु वसिष्ठ से प्रश्न किया तो उन्होंने 'परिणाम अच्छा होगा' कहकर राजा की व्यथा को हल्का कर दिया। तभी सेना के सम्मुख एक तेजःपुञ्ज प्रकट हुआ जो थोड़ी देर में एक तेजस्वी पुरुष-मूर्ति-सा दीख पड़ा। वे मुनि परशुराम थे जो पिता के अंशरूप में जनेऊ और माता के अंशरूप में धनुष धारण किये ऐसे लग रहे थे मानो सौम्य चन्द्रमा के साथ तीव्र सूर्य हो या शीतल चन्दन वृक्ष से विषधर सर्प लिपटा हो। उन्होंने ऋषि-मर्यादा का उल्लंघन करके पिता की आज्ञा से माता का सिर काटकर पहिले करुणा को जीता फिर पृथ्वी को विजित किया। उनके दाहिने कान में कुण्डल-रूप में रुद्राक्ष के दाने ऐसे लग रहे थे मानो इक्कीस बार क्षत्रियों का अन्त करने की संख्या बता रहे हों। उस समय राजा की दृष्टि दो रामों—एक पिता की हत्या से रुष्ट होकर क्षत्रियजाति का संहार करने को दृढ़प्रतिज्ञ परशुराम और दूसरे अपने बालपुत्र राम—पर एकसाथ पड़ी तो वे घबरा गये। एक (राम) शत्रु था दूसरा (राम) पुत्र। एक सांप के फन पर की मणि-जैसा भयंकर था, दूसरा माला की मणि-जैसा शीतल। राजा के "पूजा की सामग्री ले आओ" इस वचन की उपेक्षा करते हुए वे जला देनेवाली-सी क्रूर दृष्टि से देखते हुए राम की ओर मुड़े और राम को निर्भीक देखकर एक हाथ में धनुष तथा दूसरे में बाण लिए उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा—

मेरे पिता की हत्या करने के कारण क्षत्रियों से मेरा बैर है। इक्कीस बार उनका नाश करके मैं शान्त हो गया था। आज इस धनुष को तोड़कर तुमने मुझे चुनौती दी है मानो सोये सांप को लाठी मारकर जगाया है। आजतक 'राम' इस शब्द से केवल लोग मुझे जानते थे अब इस घटना से 'राम' कहने से तुम्हें जानेंगे, जो मेरे लिए लज्जा की बात है। क्रौंचपर्वत पर प्रहार से भी कुंठित न होनेवाले परशु को धारण करते हुए मेरे लिए दो समान अपराधी हैं मेरे पिता की गाय को हरनेवाला हैहय (सहस्रार्जुन) और मेरी कीर्ति को हरनेवाले तुम। इक्कीस बार क्षत्रियों को जीतने का पराक्रम अब मुझे संतुष्ट नहीं कर सकता जब तक तुम्हें न जीत लूं, क्योंकि अग्नि की यही सार्थक तेजस्विता है कि वह जैसे जंगल को जलाती है वैसे ही समुद्र को भी। जीर्ण और पुराने शिव-धनुष को तोड़कर तू अपने को बलशाली मत समझ बैठना क्योंकि किनारे के खोखले वृक्ष को तो साधारण हवा भी गिरा देती है। मैं युद्ध नहीं चाहता। केवल मेरे इस धनुष को लेकर इसपर बाण चढ़ा दो तो मैं तुमसे हार जाऊंगा और यदि मेरे इस कठोर परशु की धार से डर गये हो तो हाथ जोड़कर अभयदान मांगो, मैं क्षमा कर दूंगा।

भयंकर परशुराम की उस वाणी का कुछ भी उत्तर दिये बिना राम ने मुस्कराकर उनके हाथ से धनुष ले लिया। अपने पूर्वजन्म (नारायणावतार) के उस धनुष को लेकर राम अत्यन्त सुन्दर लगने लगे। क्योंकि बादल वैसे ही सुन्दर होता है, उसपर जब इन्द्रधनुष दीखे तो उसकी शोभा का क्या कहना। राम ने धनुष का एक किनारा पृथ्वी पर टेककर उसकी ज्योंही प्रत्यञ्चा खींची और उसपर बाण चढ़ाया त्योंही परशुराम का तेज क्षीण हो गया, मानो अग्नि बुझ गयी हो और धुवां मात्र रह गया हो। उस समय जनता ने, एक-दूसरे के सम्मुख खड़े बढ़ते और क्षीण होते तेज-वाले राम और परशुराम को सायंकाल के उदय होते चन्द्रमा और क्षीण होते सूर्य-जैसा देखा। मुनि को उदास और निस्तेज देखकर राम को दया आ गई। वे बोले–

आप ब्राह्मण हैं। आपसे अपमानित होने पर भी मैं आप पर प्रहार नहीं कर सकता। परन्तु मेरा चढ़ाया हुआ बाण व्यर्थ नहीं जायेगा; बोलिये, इससे आपकी गति को नष्ट करूं या आपके द्वारा यज्ञादि से अर्जित पुण्यों के फल को? तब शान्त होकर ऋषि ने कहा–भगवन्, आप पुराणपुरुष हैं, यह मुझे विश्वास हो गया। आपके वैष्णव तेज को देखने के लिए ही मैंने आपको उत्तेजित किया। मैंने अपने पिता

के शत्रुओं को परास्त कर दिया; सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणों को दान में दे दी; अन्त में परमपुरुष आपसे हार जाना भी मेरे लिए कल्याणकारक ही है। मेरी गति को नष्ट न करें ताकि मैं पुण्यतीर्थों का भ्रमण कर सकूं; मेरे यज्ञादि से अर्जित पुण्य-फलों को ही नष्ट कर दें क्योंकि उनका फल स्वर्ग होगा जहां के सुख-भोगों की अब मुझे आकांक्षा नहीं रही।

राम ने मुनि की आज्ञानुसार बाण को पूर्व की ओर छोड़कर उनका स्वर्गद्वार बन्द कर दिया और धनुष को एक ओर रखकर 'क्षमा करें' कहते हुए मुनि के चरणों में गिर पड़े। शत्रु को जीतकर नम्र हो जाना ही वीरों का यश बढ़ाता है। तब परशुराम राम-लक्ष्मण से बोले—माता से प्राप्त राजसत्व की अवहेलना कर पिता से प्राप्त सात्त्विकता का मुझे बोध हो गया है; तुम्हारा यह दण्ड देना भी मेरेलिए अनुग्रह के समान है; तुम्हारा कल्याण हो; अब मैं जा रहा हूं; अतः तुम भी अपने देवकार्य (जिसके लिए अवतार लिये हो) में लगो। इतना कहकर मुनि अन्तर्धान हो गये।

उनके चले जाने पर विजयी राम को गले लगाते हुए दशरथ को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे राम का पुनर्जन्म हुआ हो। कुछ दिनों की सुखमय यात्रा के बाद वे सजी हुई अयोध्या में प्रविष्ट हुए।

द्वादशसर्ग का कथासार

प्रातःकाल तेल समाप्त हो जाने पर बुझते दीये की लौ की तरह राजा दशरथ भी जीवन की अन्तिम अवस्था को पहुंच चुके थे। वृद्धावस्था ने कैकेयी के डर से सफेद बालों के बहाने जैसे उनके कान में कह दिया था कि अब राज्य राम को दे डालो। राम के अभिषेक के समाचार से नागरिक हर्ष से खिल उठे। यौवराज्याभिषेक की सामग्री देखकर क्रुद्ध हुई कैकेयी ने राजा द्वारा प्रतिश्रुत दो वरदानों की बात ऐसे उगल दी जैसे बरसात में बिल से दो सांप निकले हों। उसने एक वरदान में राम को चौदह वर्ष का वनवास और दूसरे में भरत को राज्याभिषेक चाहा। राम को जब राज्याभिषेक का समाचार मिला, मुझे राज्य देकर पिता वन को चले जायेंगे, यह सोचकर वे रो दिये और जब वनवास का समाचार मिला तो, पिता की आज्ञा-पालन करने का अवसर मिला तो, यह जानकर प्रसन्न हुए। राज्याभिषेक के लिए रेशमी वस्त्र और वनवास के लिए वल्कल पहनते हुए उनकी मुखाकृति में कोई अन्तर नहीं आया। पिता के वचन की रक्षा के लिए वे सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर वन को चल दिये। राम के वियोग में राजा ने अपने शाप का (जो श्रवणकुमार के अन्धे माता-पिता ने दिया था) स्मरण करते हुए प्राण त्यागकर प्रायश्चित्त कर लिया।

राजा का देहावसान हो गया, दो राजकुमार वन को चले गये और दो ननिहाल में हैं; बिना राजा के राज्य को घात लगाये शत्रु चाट जायेंगे, यह सोचकर मन्त्रियों ने भरत को बुलाने के लिए दूत भेजे। अयोध्या में आकर जब भरत को सारी स्थिति का ज्ञान हुआ तो वे माता (कैकेयी) से ही नहीं राजलक्ष्मी से भी विमुख हो गये। सेना और नागरिकों को साथ लेकर भरत राम की खोज में निकले। जहाँ राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ डेरा डाला था उन स्थानों को देखकर आंसू बहाते हुए मुनियों से राम का मार्ग पूछ-पूछकर वे चित्रकूट पहुंचे। वहां उन्होंने राम को पिता की मृत्यु का समाचार सुनाया और अपनी राजलक्ष्मी को वापस लेने का आग्रह किया, क्योंकि ज्येष्ठ भ्राता राम के रहते हुए राज्य लेने से भरत अपने को दोषी समझ रहे थे। बहुत आग्रह करने पर भी जब राम ने पिता की आज्ञा का

उल्लंघन करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो भरत ने उनसे उनकी खड़ाऊँ मांगी। राम ने उसकी इच्छा पूरी कर दी। भरत खड़ाऊँ लेकर चला और अयोध्या से बाहर ही नन्दिग्राम में उन्हें सिंहासन पर रखकर राम की धरोहर की तरह राज्य का पालन करने लगा मानो वह बड़े भाई के प्रति अपनी दृढ़ भक्ति दर्शाता हुआ माता के पाप का प्रायश्चित्त कर रहा था।

उधर सीता और लक्ष्मण के साथ राम उस कठोर व्रत वानप्रस्थ का युवावस्था में ही पालन कर रहे थे, जिसका इक्ष्वाकुवंशी राजा वृद्धावस्था में किया करते थे। एक दिन थके हुए राम एक वृक्ष की छाया में सीता की गोद में सिर रखकर सोये थे; तभी इन्द्र के पुत्र जयन्त ने कौवा बनकर सीता के स्तनों में चोंच मार दी। राम के जग जाने के डर से सीता हिली नहीं। नींद खुलने पर राम ने एक सरकंडे से उस दुष्ट की आंख फोड़ दी।

चित्रकूट अयोध्या के समीप ही पड़ता था। राम को आशंका हुई कि भरत नागरिकों के साथ पुनः यहां न आ जाय, अतः जैसे वर्षाकाल में सूर्य दक्षिण दिशा की ओर चला जाता है, वैसे ही एक के बाद दूसरे ऋषि के आश्रम का आतिथ्य स्वीकार करते हुए वे दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। यद्यपि कैकेयी ने सीता का बनवास नहीं चाहा था, फिर भी राजलक्ष्मी की तरह वे उनके पीछे-पीछे चलीं। अत्रिऋषि के आश्रम में अनसूया ने सीता को दिव्य अङ्गराग प्रदान किया। सायंकालीन मेघ-जैसे भीषण राक्षस कबन्ध ने उनका मार्ग ऐसे रोक लिया जैसे राहु चन्द्रमा का मार्ग रोक लेता है। उसने सीता को हर लेने की चेष्टा की। राम-लक्ष्मण ने उसे मार डाला और उसकी दुर्गन्ध से आश्रम की वायु दूषित न हो—इसलिए उसे भूमि में गाड़ दिया। उसके बाद अगस्त्य की आज्ञा से वे पञ्चवटी में ऐसे बस गये जैसे विन्ध्यपर्वत प्रकृतिस्थ हो गया था। यहीं पर एक दिन रावण की बहिन शूर्पणखा कामातुर होकर राम के पास ऐसे पहुंची जैसे घाम से सताई नागिन चन्दन के पास पहुंचती है। वह सीता के सामने ही अपना परिचय देती हुई राम से बोली—मेरे साथ विवाह कर लो, मैं अति सुन्दरी हूं। कामी व्यक्ति अवसर-अनवसर नहीं देखता। संयमी राम ने उसे समझाया कि मैं तो विवाहित हूं, तुम मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के पास जाओ। लक्ष्मण ने उसे लौटाकर फिर राम के पास भेज दिया। उसे इस प्रकार छटपटाती देख सीता को हंसी आ गयी। जैसे चन्द्रोदय से समुद्र में ज्वार आ जाता है ऐसे ही सीता को हंसती देख वह भी बौखला गई और बोली—मृगी द्वारा

शरनी के अपमान का जो फल होता है वही मेरे इस अपमान से तुम भोगोगी। उसके इस कथन से डरती हुई सीता राम की गोद में छिप गई और राक्षसी ने अपना वास्तविक विकराल रूप धारण कर लिया। पहले कोयल-जैसी मधुरकंठी और बाद में भयानक रूपवाली उस राक्षसी को मायाविनी समझकर लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काटकर विरूप कर दिया। तब लम्बे नखों-वाली, बांस के पोर-जैसी गांठों-वाली अंकुशाकार अंगुली से राम-लक्ष्मण को धमकाती हुई वह आकाश में उड़ गई।

शीघ्र ही जनस्थान पहुंचकर उसने खरदूषणादि को राम द्वारा राक्षसों के पराभव की यह नई कहानी सुनाई। उस विरूपा को आगे करके राम पर चढ़ाई करना ही जैसे उन राक्षसों के लिए अमंगलसूचक हुआ। अस्त्र-शस्त्र लेकर आते राक्षसों को देख राम ने सीता की रक्षा का भार लक्ष्मण को सौंपा और अकेले ही धनुष लेकर उन हजारों राक्षसों से जूझ पड़े। राम यद्यपि अकेले थे और राक्षस हजारों की संख्या में थे, किन्तु राम की भीषण युद्धकला से डरा हुआ प्रत्येक राक्षस अपने सामने एक-एक राम को देख रहा था। राम ने पहले दूषण को मारा, फिर खर और त्रिशिरा को अपने बाण का लक्ष्य बनाया। राम के बाण राक्षसों के शरीर में इतने वेग और शीघ्रता से घुस रहे थे, लगता था अगले भाग से राक्षसों का प्राण लेकर पिछले भाग से उनका खून पी जा रहे हैं। राम के द्वारा सारे राक्षसों के मारे जाने पर वहां कबन्ध ही कबन्ध दीखने लगे और वह असुरों की सेना-जैसे सदा के लिए सो गई। उन राक्षसों का वह दुःखद समाचार रावण को सुनाने के लिए एक-मात्र शूर्पणखा ही बची रह गई।

बहिन की विरूपता और आत्मीयों के वध का समाचार सुनकर रावण को ऐसा लगा जैसे राम ने उसके दसों मस्तकों पर पैर रख दिया हो। मारीच राक्षस द्वारा सुनहरे मृग का रूप धरकर राम-लक्ष्मण को सीता से दूर करके उसने सीता का हरण कर लिया। जटायु द्वारा रोके जाने पर उसे घायल कर दिया। सीता को खोजते हुए राम-लक्ष्मण ने घायल जटायु को देखा और उसने सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाकर प्राण त्याग दिये। अपने पिता के मित्र जटायु की मृत्यु से उनका पितृशोक नया-सा हो आया और उन्होंने पिता की भांति ही उसकी दाहक्रिया की।

जब राम ने कबन्ध को मारकर शापमुक्त किया था तो उसने उन्हें सुग्रीव का परिचय दिया था कि वह भी स्त्री के विरह और भाई के पराक्रम से त्रस्त है। अतः समान दुःखवाले सुग्रीव से उन्हें सहानुभूति हो आई जो मित्रता में परिणत हो गई।

राम ने बाली को मारकर उसके स्थान पर सुग्रीव को ऐसे बैठा दिया जैसे धातु के स्थान में आदेश आ जाता है। सुग्रीव के भेजे हुए वानर-दूत पृथ्वी में चारों ओर सीता की खोज करने लगे। सम्पाति नामक गृध्र के यह बताने पर कि रावण सीता को समुद्र पार लंका में ले गया है, हनुमान् ने समुद्र को ऐसे लांघ दिया जैसे योगी संसार को पार कर जाता है। लंका पहुंचने पर उन्होंने सीता की खोज की तो विषलताओं से घिरी संजीवनी औषधि की तरह राक्षसियों से घिरी हुई उन्हें अशोक-वाटिका में देखा। सीता के सामने प्रकट होकर हनुमान् ने राम की दी हुई अंगूठी पहचान के रूप में सीता को दी जिसे देखकर सीता को अपार हर्ष हुआ। प्रियतम (राम) के सन्देशों से सीता को सान्त्वना देकर अक्षयकुमार (रावणपुत्र) का वध करके, कुछ क्षणों के लिए शत्रु (मेघनाद) के बन्धन को सहते हुए हनुमान् ने रावण की लंका को जला डाला। फिर सीता की दी हुई चूड़ामणि को लेकर राम के पास आ पहुंचे। सीता का समाचार पाकर और उनके भेजे परिचय-चिह्न को देखकर राम को ऐसा लगा जैसे सीता का हृदय ही उनके पास आ गया हो। प्रियामिलन के लिए अत्यन्त उत्सुक राम को समुद्र एक साधारण खाई-जैसा लगने लगा और सुग्रीव की विशाल वानरसेना लेकर वे समुद्र के किनारे आ गये। वहा उन्हें सुमति की प्रेरणा से आया हुआ रावण का भाई विभीषण ऐसे मिला मानो लङ्का ने अपनी रक्षा के लिए उसे राम की शरण में भेजा हो। राम ने रावण को मारकर लंका का राज्य उसे देने का आश्वासन दिया।

वानर-सेना ने उस क्षार-समुद्र में विशाल पुल बांध दिया जो ऐसा लगता था जैसे भगवान् के शयन के लिए शेषनाग समुद्र के ऊपर आ गया हो। उस पुल से समुद्र पारकर वह विशाल सेना लङ्का में पहुंची और वानरों एवं राक्षसों में भीषण युद्ध छिड़ गया। दोनों पक्षों के अपने-अपने स्वामी (राम और रावण) की जय-जयकार से दिशाएं गूंजने लगीं। राक्षसों द्वारा फेंके गये परिध अस्त्रों को वानरों ने पेड़ों द्वारा, मुद्गरों को पत्थरों की चट्टानों द्वारा चूर कर डाला और उनके अन्य अस्त्रधारियों को नाखूनों से ही नोच डाला। जब रावण ने अपनी हार होते देखी तो माया से राम का कटा हुआ सिर सीता के सामने रखकर उसे वश में करना चाहा। पहले तो सीता को राम की मृत्यु से अपना जीवन व्यर्थ प्रतीत हुआ पर जब त्रिजटा ने उसे वास्तविकता बताई तो वह राम की विजय की प्रतीक्षा करने लगी।

मेघनाद ने नागपाश से राम-लक्ष्मण को बांधना चाहा, पर राम ने गरुड़ास्त्र

के प्रयोग से उसे नष्ट कर दिया। फिर उसने लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार किया जिससे लक्ष्मण तो मूर्छित हुए ही, उनके शोक से राम भी व्याकुल हो गये। तब हनुमान् ने संजीवनी औषधि लाकर उनकी मूर्च्छा दूर की और वे पुनः राक्षसों का संहार करने लगे। जैसे शरद ऋतु इन्द्रधनुष को समाप्त कर देती है, ऐसे ही लक्ष्मण ने मेघनाथ को मारकर उसकी गर्जना और धनुष को समाप्त कर दिया। तब रावण का भाई कुम्भकर्ण लड़ने आया। सुग्रीव ने उसके कान और नाक काटकर सूर्पणखा की-सी गति कर दी तो वह राम पर टूट पड़ा और राम ने उसे सदा के लिए सुला दिया।

अपनी सारी सेना को इस प्रकार विलीन होते देख अब या तो राम ही रहेगा या रावण ही, यह सोचकर रावण स्वयं युद्ध के लिए आया। जब इन्द्र ने देखा कि महाबली रावण रथ पर बैठकर युद्धस्थल में आया है और राम पैदल हैं, तो उसने अपना कपिलवर्ण के घोड़ोंवाला रथ राम के लिए भेज दिया। इन्द्र के सारथि मातलि का सहारा लेकर राम रथपर आरूढ़ हुए और उसने उन्हें इन्द्र का कवच पहिना दिया। बहुत दिनों बाद अपने-अपने पराक्रम का प्रदर्शन करनेवाला राम-रावण का युद्ध मानो संसार में एक आदर्श स्थापित करनेवाला हुआ, क्योंकि दोनों की प्रतिस्पर्धा का आज निर्णय होनेवाला था।

यद्यपि राक्षसों के मारे जाने पर रावण अकेला था, फिर भी १० मुख, २० भुजा और २० पैरों से उसका राक्षसपना स्पष्ट हो रहा था। जिसने सब लोकपालों को जीत लिया था, जिसने अपने मस्तकों की बलि देकर शिवजी को प्रसन्न कर वर प्राप्त किये थे ऐसे रावण को सामने देखकर राम के हृदय में उसके प्रति आदर का भाव उदय हुआ। सीता-प्राप्ति की सूचना देती हुई राम की फड़कती दक्षिण भुजा में रावण ने बाण का प्रहार किया और राम ने भी रावण पर नागास्त्र का प्रहार किया। जैसे वादी-प्रतिवादी शास्त्रार्थ में एक-दूसरे के वाक्यों को काटते हैं ऐसे ही राम-रावण एक-दूसरे के शस्त्रों के प्रहार को रोकते थे। मत्त हाथियों की भांति अपनी-अपनी विजय चाहते हुए उन दोनों का जोर बारी-बारी से घटता-बढ़ता था और दोनों की विजयश्री डांवाडोल प्रतीत हो रही थी। अन्त में रावण ने राम पर शक्ति का प्रहार किया और राम ने उसे बीच में ही काट डाला तथा रावण पर ब्रह्मास्त्र का प्रहार किया। यह अमोघ अस्त्र था जो व्यर्थ नहीं जाता। मंत्र के प्रयोग से प्रहृत यह ब्रह्मास्त्र आकाश में हजारों फणोंवाले शेषनाग-

जैसा दीखा और उसने क्षणभर में रावण के मस्तकों को काट डाला। रावण के वे कटे हुए और रक्त में सने हुए शिर प्रातःकालीन सूर्य-जैसे चमक रहे थे जिन्हें देखकर देवताओं को यह विश्वास ही नहीं होता था कि रावण मर गया।

फिर देवताओं ने राम के ऊपर आकाश से फूलों की वर्षा की। इन्द्र का सारथि मातलि राम की आज्ञा से अपना रथ वापस ले गया। राम ने अग्नि-परीक्षा द्वारा सीता की विशुद्धि की घोषणा की और सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि के साथ पुष्पकविमान पर बैठकर अयोध्या को प्रस्थान किया। प्रस्थान करने से पूर्व लंका का राज्य विभीषण को सौंप दिया।

त्रयोदशसर्ग का कथासार

लङ्का से चलने के बाद भगवान् राम ने पुष्पकविमान से आकाश में जाते हुए नीचे समुद्र को देखकर एकान्त में सीता से कहा—हे वैदेहि ! देखो मेरे बनाये हुए पुल से यह समुद्र दो भागों में ऐसे विभक्त हो गया है जैसे आकाशगङ्गा से शरद्-कालीन स्वच्छ आकाश। अपने पिता सगर के अश्वमेधीयाश्व को खोजते हुए हमारे पूर्वजों ने खोदकर इसे बड़ा बनाया। इससे जल लेकर सूर्य-किरणें अपने में धारण करती हैं; इसमें रत्न बढ़ते हैं; जलभक्षी बड़वानल को यह धारण करता है। विष्णु की तरह इसके रूप को भी, ऐसा ही है या इतना ही है, नहीं कहा जा सकता। प्रलय-काल में सारे संसार को उदरस्थ करके आदिपुरुष इसी पर सोते हैं। इन्द्र द्वारा पंख काटे जाने के डर से पर्वत इसी की शरण आते हैं। आदिवाराह पृथ्वी को लेकर जब इससे बाहर निकले तो इसका उछलता जल पृथ्वी का घूंघट-सा दीखता था। चतुर नागरिक द्वारा पत्नी के अधरपान की भांति यह कितनी ही नदियों का जलपान करता है। बड़े-बड़े तिमिमत्स्य छोटी मछलियों-सहित इसके जल को मुख में भरकर जब मुख बन्द करते हैं तो उनके सिर-के छेद से फुहार सी निकलती है। जलगजों के कपोलों पर लगा फेन चँवर-सा दीखता है। हवा लेने के लिये किनारे पर आये हुए भीषण सर्प लहरों से भिन्न तब पहिचाने जाते हैं जब सूर्यकिरणों से उनकी मणियाँ अधिक चमकती हैं। विद्रुमों के ऊपर लहरों से फेंके हुए शंख पड़ जा रहे हैं जिससे वे तुम्हारे अधरों की बराबरी कर नहीं पा रहे हैं। जल लेने के लिए आया हुआ मेघ जब इसके भौंर में फँस जा रहा है तो प्रतीत होता है मंदराचल इसे पुनः मथ रहा है। दूर से तमाल और तालवृक्षों से नीली किनारे की भूमि घूमते हुए चक्र के बीच लगे धब्बे की रेखा-सी दिखाई दे रही है। यह केतकी-पराग से युक्त तट की वायु तुम्हारे मुख को सम्मानित करने लगी है। अब हम शीघ्र ही किनारे पर आ गए हैं जहाँ बालू पर सीपियों के फूटने से मोती बिखरे पड़े हैं और चारों ओर सुपारी के पेड़ फलों से लदे हैं। हे मृग-नयनी ! पीछे की ओर थोड़ा देखो। वेग से विमान ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहा है त्यों-त्यों पीछे की भूमि समुद्र से निकलती-सी प्रतीत हो रही है। मेरी इच्छा के अनुकूल हमारा विमान कभी स्वर्ग में, कभी अन्तरिक्ष में और कभी भू पर चल रहा है। यह

ऐरावत के मदगन्ध से युक्त और स्वर्गङ्गा की लहरों से शीतल वायु तुम्हारे मुख के पसीने को दूर कर रहा है। तुम्हारे खिड़की से बाहर किए हुए हाथ से छुआ गया बादल जैसे बिजलीरूप दूसरा कङ्कण पहिन रहा है।

मैंने राक्षसों को मार डाला। अतः ये तपस्वीजन जनस्थान के चिरकाल से छोड़े हुए आश्रमों को पुनः आबाद कर रहे हैं। यह वही स्थान है जहाँ तुम्हें खोजते हुए मैंने भूमि पर गिरा हुआ एक नूपुर पाया था जो कि तुम्हारे चरण का वियोग होने के दुःख से मौन पड़ा था। रावण तुम्हें जिस मार्ग से ले गया था उस ओर ये लताएँ शाखाओं को हिला-हिलाकर मुझे उस दिशा का निर्देश करती थीं। हरिणियाँ घास छोड़कर बार-बार दक्षिण की ओर देखती थीं। यह माल्यवान् का वह ऊँचा शिखर है जहाँ बरसात प्रारम्भ होते ही बादल ने पहला पानी और मैंने तुम्हारे वियोग में आँसू एकसाथ छोड़े थे। यहां पोखरों की सोंधी गन्ध, अधखिले कदम्ब के पुष्प तथा मोरों की ध्वनि तुम्हारे बिना मुझे असह्य होती थी। तुम्हारे आलिंगन का स्मरण करता हुआ मैं बादलों की गर्जना बड़ी कठिनता से सहता था। भाप के बीच लाल-लाल कन्दली के फूलों को देखकर विवाह के समय धुएँ से लाल-लाल तुम्हारी आँखों का स्मरण हो आता था। दूर से उतरने पर थके हुए की भाँति मेरी आँखें इस पम्पा सरोवर के जलों को पी जाना चाहती हैं। यहीं चक्रवाकों के जोड़ों को मैं बड़े चाव से देखा करता था। स्तनों-जैसे गुच्छों के भार से झुकी इस लता को सीता समझकर मैं आलिङ्गन करना ही चाहता था कि लक्ष्मण ने मुझे रोक दिया। ये विमान के बीच लटकाई हुई छोटी घंटियों के शब्द को सुनकर गोदावरी के सारसों की पंक्तियाँ आकाश को उड़ती हुई तुम्हारा स्वागत-सा कर रही हैं। तुमने दुर्बल होते हुए भी घड़ों से सींच-सींच कर जहाँ के छोटे-छोटे आम के पौधों को बड़ा किया वह पंचवटी मेरे मन को हर रही है। इस गोदावरी के किनारे शिकार से लौटा हुआ मैं बेंत की झाड़ियों में तुम्हारी गोद में सिर रखकर लेट जाता था। तब तुम्हारा 'सो गए क्या?' कहना याद आता है। यह उन्हीं अगस्त्यऋषि का भूलोकस्थ आश्रम आ गया जिनके भौंह टेढ़ी करते ही नहुष इन्द्रपद से भ्रष्ट हो गया था और जो *(अगस्त्यनक्षत्र)* बरसात के गन्दे जल को स्वच्छ कर देते हैं। इस आश्रम से निकले हुए होम के धुएँ को सूँघकर मेरा चित्त हलका हो रहा है। यह शातकर्णि मुनि का पञ्चाप्सरस् नामक क्रीड़ासरोवर, वनों से घिरा, मेघ से घिरे चन्द्रमण्डल-सा दीख रहा है। केवल दूब चरते मुनि को इन्द्र ने अप्सराओं के जाल में फँसा दिया। जल के भीतर बने महल से संगीत में बजते

मृदङ्ग की ध्वनि इस विमान के ऊपरी मंजिल के कमरों में गूंज रही है। ये पञ्चाग्नि तापते हुए मुनि नाम से सुतीक्ष्ण होने पर भी चरित्र से सौम्य हैं। इन्द्र द्वारा भेजी गई अप्सराओं की कामुक चेष्टाएँ इनको वश में न कर पाईं। इनका एक हाथ तो सदा ऊपर उठा रहता है, दूसरे को भी मेरे सम्मान के लिए ऊपर उठा रहे हैं। मौनी होने से मेरे प्रणाम को थोड़ा सिर हिलाकर स्वीकार कर ले रहे हैं और विमान के आगे बढ़ने पर पुनः सूर्य की ओर दृष्टि कर लिये हैं। यह शरभङ्ग मुनि का आश्रम है जिसने दीर्घकाल तक अग्निहोत्र करके अपनी देह को भी उसी में हवन कर दिया। यह उद्धत सांड़-जैसा चित्रकूट आ गया। यह दूर से पतली-सी दीखती हुई स्वच्छ जल-वाली मन्दाकिनी है। यह पहाड़ के पास का वह तमाल है जिसके पल्लव मैं तुम्हारे कानों में खोसा करता था। यह अत्रिमुनि का आश्रम आ गया जहाँ अनसूया ने अपने प्रभाव से ऋषियों के स्नान के निमित्त गंगा प्रवाहित कर दी थी। चबूतरों पर खड़े यहाँ के वृक्ष वीरासन में समाधिस्थ योगियों-जैसे दीख रहे हैं। यह वटवृक्ष आ गया जिससे तुमने अखण्ड सौभाग्य की याचना की थी।

हे सीते! देखो यमुना की नीली तरङ्गों से मिश्रित प्रवाहवाली यह गङ्गा कहीं पर नीलमों के साथ गुथे मोतियों के हार-सी, कहीं इन्दीवरों से गुथे श्वेत कमलों की माला-सी, कहीं नीले हँसों से युक्त सफेद हंसों की पंक्ति-सी, कहीं पर काले अगुरु से दिये अल्पनावाले भूमि के भाग-जैसी, कहीं छायारूप में लीन अन्धकार से मिश्रित चाँदनी-जैसी, और कहीं काले सर्प से लिपटी भस्मच्छुरित शिव की देह-जैसी लग रही है। गंगा-यमुना के इस संगम पर मरनेवालों की तत्त्वज्ञान के बिना भी मुक्ति हो जाती है। यह निषादराज का शृंगवेरपुर आ गया जहाँ मेरे राजसी वेश उतारकर जटा धारण करने पर सुमन्त रो पड़ा था। बुद्धि से अव्यक्त की तरह मानससरोवर से निकलती हुई जो अयोध्या के समीप बहती है, जिसके किनारे सैंकड़ों यज्ञ-स्तूप हमारे पूर्वजों ने गाड़े हैं, जिसने इक्ष्वाकुवंशी राजाओं को धाय की तरह पाला है वही सरयू नदी महाराज दशरथ से वियुक्त हुई मेरी माता की तरह तरङ्गरूप हाथों से मुझे बुला रही है। यह सायंकाल की लालिमा को धूसर करती हुई-सी पृथ्वी की धूल उड़ रही है। मालूम पड़ता है हनुमान् से सूचना पाकर सेना-सहित भरत मेरी अगवानी करने आ रहा है। निश्चय ही जैसे राक्षसों को मारकर लक्ष्मण ने तुमको मुझे सौंप दिया, ऐसे ही आज तक पालन की हुई राजलक्ष्मी को यह मुझे लौटा देगा। आगे-आगे गुरु को और पीछे सेना को करके वृद्ध मन्त्रियों के साथ वल्कल-वस्त्रधारी भरत पूजा-

सामग्री लेकर मेरे पास आ रहा है। पिता की दी हुई राजलक्ष्मी न स्वीकार कर इतने वर्षों तक यह कठोर व्रत का पालन करता रहा।

राम के इतना कहते ही इनकी इच्छा जानकर विमान आकाश से भूमि पर उतरा जिसे सारी प्रजा ने आश्चर्य से देखा। तब उस विमान से सुग्रीव का सहारा लेकर विभीषण के दिखाये मार्ग से स्फटिक-सीढ़ियों से राम भूमि पर आये। पहिले कुलगुरु वसिष्ठ को प्रणाम कर उन्होंने भरत की पूजा स्वीकार की और उसके माथे को सूँघा। इसके बाद प्रणाम करते हुए वृद्ध मन्त्रियों को कृपापूर्वक देखकर उनसे कुशल पूछी। फिर सुग्रीव और विभीषण का परिचय भरत को कराया और भरत ने उनको प्रणाम किया। इसके बाद भरत लक्ष्मण से मिले और उनको भुजाओं में कस लिया। राम की आज्ञा से सभी वानरों ने मनुष्यरूप धारण किया और हाथियों पर चढ़कर पहाड़ों पर चढ़ने का आनन्द लेने लगे। अनुचरों-सहित राक्षसराज भी राम की आज्ञा से रथ पर बैठ गये। राम भाइयों-सहित पुनः विमान पर चढ़ गये। भरत और लक्ष्मण से युक्त विमान पर वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे बुध और बृहस्पति से युक्त चन्द्रमा मेघ पर आरूढ़ हो। उस विमान में चढ़ने पर भरत ने सीता को प्रणाम किया। रावण की प्रार्थनाओं को ठुकराकर अखण्ड पातिव्रत को प्रकट करते हुए सीता के चरण और बड़े भाई का अनुसरण करने से जटाओं-वाला भरत का मस्तक, ये दोनों जैसे एक-दूसरे को पवित्र कर रहे थे। इसके बाद प्रजाएँ जिसके आगे चल रही हैं ऐसे विमान से धीरे-धीरे आधे कोस चलते हुए राम ने शत्रुघ्न द्वारा सजाए हुये साकेत के बगीचों में डेरा डाला।

चतुर्दशसर्ग का कथासार

राम का अयोध्या-आगमन

बगीचे में जाने पर राम-लक्ष्मण ने दशरथ के मरने से माताओं (कौशल्या-सुमित्रा) को, आश्रय-वृक्ष के कट जाने पर मुरझाई हुई लताओं-जैसी देखा। दोनों ने क्रम से माताओं को प्रणाम किया। पुत्रों को देखकर उनके भर्तृशोकजन्य गरम आँसू पुत्रदर्शनजन्य आनन्दाश्रुओं में बदल गये। उन्होंने पुत्रों के शरीर में राक्षसों के शस्त्रों द्वारा हुए घावों को छूते हुए सोचा कि वीरमाता होना बड़ा कष्टकर है। सीता ने भी उनको प्रणाम किया। "हे वत्से! उठो, तुम्हारे ही शुद्ध चरित्र के कारण तुम्हारे पति ने इतनी बड़ी विपत्ति को पार किया", यह कहकर माताओं ने उसे अपने चरणों पर से उठाया।

राज्याभिषेक

इसके बाद रामजी का अभिषेक हुआ जिसमें राक्षस और वानरों ने नदियों, समुद्रों और पवित्र सरोवरों का जल एकत्र किया था। जो राम तपस्वी-वेश में भी सुन्दर लगते थे राजवेश में तो उनका कहना ही क्या था? तब राम ने राक्षसों व वानरों-सहित अयोध्या में प्रवेश किया। नगर सजा हुआ था, विविध बाजे बज रहे थे, लोग फूलों और फलों की वर्षा कर रहे थे, लक्ष्मण और शत्रुघ्न चँवर डुला रहे थे, भरत ने छत्र पकड़ा था, धूप का धुंआँ सम्पूर्ण नगर की खिड़कियों से वेणी की तरह निकल रहा था। सासों द्वारा सजाई हुई, पालकी पर बैठी सीता को स्त्रियाँ खिड़कियों से हाथ जोड़ रही थीं। अनसूया के दिये अंगराग से सीता ऐसी चमक रही थी जैसे अपनी अग्निपरीक्षा का दृश्य अयोध्यावासियों को भी दिखा रही हों। सब लोगों को सुविधाजनक महलों में विश्राम कराकर राम पिता के उस भवन में गये जहाँ वे केवल चित्ररूप में शेष थे। वहाँ उन्होंने कैकेयी को प्रणाम किया। सुग्रीव आदि का ऐसा सत्कार हुआ जिसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। अभिनन्दन के लिए आये हुए देवर्षियों से रावण का चरित्र सुनकर राम को उसे मारने के गर्व का अनुभव होता था। देवर्षियों को विदा कर राम ने सुग्रीव, विभीषण आदि सभीको विदा किया। पुष्पकविमान को भी कुबेर के पास वापस भेज दिया।

राज्यचर्या

इस प्रकार पिता की आज्ञा से वनवास का कष्ट पारकर राम भाइयों में समान आस्था रखते थे और तीनों माताओं को समान आदरभाव से देखते थे। उनकी उदारतासे प्रजा धनी हो गई, उनकी रक्षकता में सब निःशंक होकर काम करने लगे, उनके नियन्त्रण में रहकर सब अपने को पितृमान् और शोकनिवारक राम से सब अपने को पुत्रवान् समझते थे। वे यथासमय नागरिक कार्यों को देखकर सीता के साथ विहार करते थे। इच्छानुकूल पदार्थों का भोग करते हुए दोनों वनवास के चित्रों को देखकर दुःख के दृश्यों से भी सुख का अनुभव करते थे। सीता के स्निग्ध नेत्रों-वाले पाण्डुवर्ण मुख को देखकर राम ने समझ लिया कि यह गर्भवती है। लजाती हुई सीता को गोद में लेकर उन्होंने उसका दोहद (गर्भाभिलाष) पूछा और उसने पुनः वन के आश्रमों को देखने की इच्छा प्रकट की। उस इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा कर राम अयोध्या का निरीक्षण करने के लिये ऊँचे महल पर चढ़े। सजी हुई दुकानों-वाले राजमार्ग, नावों से विलोडित सरयू तथा विलासी नागरिकों से अधिष्ठित बगीचों को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

सीतापरित्याग

तब उन्होंने अपने विषय की जनश्रुति को गुप्तचर से पूछा। बार-बार पूछने पर उसने कहा कि सीता के राक्षसगृहनिवास को छोड़कर शेष आपके सारे चरित्र की लोग प्रशंसा करते हैं। पत्नी के निन्दारूप इस अपयश से राम का हृदय अत्यन्त खिन्न हो गया। वे सन्देह में पड़ गए कि अपने इस अपवाद की उपेक्षा कर दूँ या सीता का परित्याग करूँ? बहुत सोचकर उन्होंने सीता-परित्याग का ही निश्चय किया। छोटे भाइयों को बुलाकर उन्होंने अपना वह अपवाद सुनाया और कहा——सूर्य से जो उत्पन्न हुआ और बड़े-बड़े राजर्षि जिसमें हो गए, उस पवित्र वंश में मुझसे कलङ्क लग गया। अब नागरिकों में फैलते हुए इस अपवाद को मैं नहीं सह सकता। इसके परिहार के लिये मैं सीता का त्याग कर दूँगा, जैसे कि मैंने पिता के आदेश से पृथ्वी को त्याग दिया। मैं जानता हूँ सीता निर्दोष है, फिर भी लोकापवाद बलवान् है। मैंने जो राक्षसों से युद्ध किया वह तो वैरशोधन के लिए हुआ। यदि आप लोग मुझे जीवित देखना चाहते हैं तो इस निश्चय से न रोकें। उनके इस रुख को देखकर न तो कोई उनको रोक पाया और न समर्थन कर पाया। तब उन्होंने लक्ष्मण को पृथक् आदेश दिया कि तुम्हारी

भाभी गर्भवती है और उसे आश्रमों को देखने की इच्छा है, इसी बहाने रथ में बैठाकर उसे वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ। लक्ष्मण ने राम की आज्ञा स्वीकार की और सुमन्त को सारथि बनाकर सुखद रथ में सीता को बैठाकर ले चले। रथ में बैठकर जाती हुई सीता सोचती थी कि मेरे पति मुझे कितना अच्छा मानते हैं, उन्होंने मेरी इच्छा पूरी कर दी। किन्तु वास्तविक रहस्य उसे ज्ञात न था। यद्यपि लक्ष्मण ने रास्ते भर बात छिपाई परन्तु फड़कती हुई दाहिनी आँख से सीता को अनिष्ट की आशंका हो गई औद वह हृदय से भाइयों-सहित राम के कल्याण की कामना करने लगी। रथ से गंगातट तक पहुँचकर लक्ष्मण ने नाव से उन्हें गंगा पार कराई। तब किसी प्रकार साहस करके रुँधे कण्ठ से राम की आज्ञा सीता को सुनाई। सुनते ही सीता मूर्छित हो गईं। लक्ष्मण द्वारा मूर्च्छा से जगाने की चेष्टा से होश में आना सीता के लिये और भी कष्टकर हो गया क्योंकि अचेतन अवस्था में तो उसे दुःख का कोई ज्ञान न था। इतना होने पर भी उसने राम को दोष नहीं दिया, प्रत्युत अपने ही भाग्य को कोसती रही। लक्ष्मण ने आश्वासन देकर वाल्मीकि के आश्रम का मार्ग बताया और कहा—स्वामी की आज्ञा से इस कठोर कर्म को करते हुए मुझे क्षमा करें!

सीता का सन्देश

सीता उसे उठाकर बोली—हे वत्स! तुम दीर्घायु हो। मैं तुमपर रुष्ट नहीं हूँ, क्योंकि तुम पराधीन हो। मेरी सभी सास लोगों को मेरा प्रणाम पहुँचा देना। और कहना कि मेरे गर्भ से होनेवाली सन्तान के लिये शुभ कामना करें। मेरी ओर से उस राजा से कहना कि अग्निपरीक्षा होने पर भी तुमने मेरे साथ यह जो व्यवहार किया वह क्या तुम्हारे विख्यात कुल के अनुरूप है? सबका कल्याण चाहनेवाले आप मनमानी कैसे करेंगे? मेरे ही पूर्वजन्मों के दुष्कृतों का यह परिणाम है। पहिले राज-लक्ष्मी को छोड़कर मेरे साथ वन को चल दिये थे—इसीलिये अब तुम्हारे भवन में मेरा रहना वह राजलक्ष्मी सह न सकी। तुम्हारी कृपा से मैं उन तपस्विनियों को शरण देती थी जिनके पति राक्षसों से सताये जाते थे। अब आपके रहते हुए मैं किसकी शरण जाऊँ। तुम्हारे वियोग में मैं आत्महत्या कर लेती यदि तुम्हारा तेज गर्भरूप मेरे उदर में न होता। प्रसव होने के बाद मैं सूर्य की ओर देखकर ऐसी तपस्या करूँगी जिसमें जन्मान्तर में भी तुम्हीं मेरे पति होओ किन्तु हमारा वियोग न हो। वर्णों और आश्रमों का पालन करना राजा का धर्म मनु ने बताया है। अतः निष्कासित करने पर

भी जङ्गल के साधारण तपस्वी की भाँति तो मेरी देखरेख अवश्य करना। 'अच्छा' कहकर लक्ष्मण के आँखों से ओझल हो जाने पर वह बिछुड़ी मृगी की तरह गला फाड़कर रोने लगी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसे देखकर जैसे सारा बन रो रहा हो।

वाल्मीकि के आश्रम में

कुश-समिधा लेने को निकले हुए वे आदिकवि वाल्मीकि रोने की ध्वनि सुनकर वहाँ पहुँचे, जिनका शोक निषाद द्वारा क्रौंच पक्षी का वध देखकर श्लोकरूप में परिणत हो गया था। उन्हें देख सीता ने प्रणाम किया। उन्होंने गर्भवती के लक्षण देखकर पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया और कहा—मैं समाधि से जान गया हूँ कि मिथ्या-अपवाद से क्षुब्ध राम ने तुम्हें त्याग दिया। परन्तु घबड़ाओ मत, समझो पिता के घर पहुँच गई हो। यद्यपि राम सत्यप्रतिज्ञ, विनम्र और त्रिलोक के कण्टक रावण को नष्ट करनेवाला है, फिर भी तुम्हारे प्रति ऐसे व्यवहार से मैं क्षुब्ध हूँ। तुम्हारे श्वसुर मेरे मित्र थे, तुम्हारे पिता ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, तुम पतिव्रताओं में अग्रणी हो, फिर क्यों न मैं तुमपर दया करूँ। अब निःशंक होकर इस तपोवन में रहो। यहीं तुम्हारी सन्तान के संस्कार सम्पन्न होंगे। आश्रमों से भरे इस तमसा-तीर में तुम्हारा चित्त प्रसन्न रहेगा। तुम्हारी अभीष्ट सामग्री देकर मुनिकन्याएँ तुम्हारा मन बहलायेंगी। सन्तान होने से पूर्व अपनी शक्तिभर इन आश्रम-वृक्षों को सींचकर बच्चों के स्नेह को अभिव्यक्त करोगी। इस प्रकार दयालु ऋषि वाल्मीकि उसे अपने आश्रम में ले गये और सुरक्षा के लिए तापसियों को सौंप दिया। तापसियों ने हिंगोट के तेल से जलते दीपक-वाली, मृगचर्म की शय्या-वाली कुटिया उसे रहने को दी। उसमें नित्य स्नान-पूजा, अतिथिसत्कार करती हुई वल्कलधारिणी सीता पति की वंश-वृद्धि के लिए अपने शरीर को धारण किये थी। "क्या सीता के इस सन्देश को सुनकर भी राम का हृदय पसीजेगा?" इस उत्सुकता से लक्ष्मण ने सारा सन्देश राम को सुनाया जिसे सुनकर आँसू बरसाते हुए राम जड़वत् हो गये। अपवाद के भय से उन्होंने सीता को घर से तो निकाला पर चित्त से नहीं। किसी प्रकार इस शोक को सहकर बुद्धिमान् राम राज्य का पालन करने लगे। "सीता को छोड़कर राम ने दूसरा विवाह नहीं किया और उसकी सुवर्ण-प्रतिमा के साथ बैठकर यज्ञादि करते रहे"—इस समाचार को सुनकर सीता किसी प्रकार पति-परित्याग के दुखः को सह रही थी।

पञ्चदशसर्ग का कथासार

सीता का परित्याग करने के बाद राजा राम ने केवल समुद्रमेखला पृथ्वी का ही उपभोग किया। एक बार लवणासुर से सताये हुए यमुनातटवासी तपस्वी मुनिगण रक्षा के लिए राम के पास आये। राम-जैसे रक्षक के रहते मुनियों ने असुर को शाप से नष्ट नहीं किया क्योंकि उससे उनका तपोबल क्षीण होता। राम ने उन्हें आश्वासन दिया। ऋषियों ने राम को बताया कि जब तक उसके हाथ में त्रिशूल रहेगा तब तक उसे कोई मार नहीं सकता, शूलरहित हुआ ही लवणासुर मारा जा सकेगा। राम ने शत्रुघ्न को लवणासुर का वध करने का आदेश दिया। बड़े भाई का आदेश पाकर वे सुगन्धित वनस्थलियों को देखते हुए रथारूढ़ होकर चल दिये और उनकी सहायता के लिए सेना भी चल पड़ी। जैसे रथ में आगे बैठे वालखिल्य ऋषि सूर्य को मार्ग दिखाते हैं ऐसे ही ये मुनिगण भी शत्रुघ्न को मार्ग दिखा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक रात्रि वाल्मीकि के आश्रम में विश्राम किया। मुनि ने अपने तपःप्रभाव से उनका पर्याप्त सत्कार किया। जिस रात शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में टिके थे उसी रात उस आश्रम में सीता जी ने दो यमल पुत्रों को जन्म दिया।

अग्रज राम की पुत्रोत्पत्ति के समाचार से शत्रुघ्न अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रातः-काल मुनि से आज्ञा लेकर उन्होंने आगे प्रस्थान किया। जिस समय वे रावण की बहिन कुम्भीनसी के गर्भ से उत्पन्न उस लवणासुर के मधुपघ्न नामक नगर में पहुँचे उसी समय वह जंगलों से अपने आहार के लिए प्राणियों का वध करके आ रहा था। धुंए-जैसे काले, चर्बी की गन्धवाली आग की लौ-जैसे भूरे बालों-वाले और कच्चा मांस चबाते हुए उसे त्रिशूल से रहित देखकर शत्रुघ्न की सेना ने घेर लिया, क्योंकि जो शत्रु के छिद्रों को देखकर समय पर प्रहार करते हैं उन्हें अवश्य विजय प्राप्त होती है। राक्षस ने शत्रुघ्न को देखा। "आज मेरे लिए पेटभर भोजन न देखकर विधाता ने तुम्हें मेरे पास भेज दिया"— यह कहते हुए एक विशाल वृक्ष को आसानी से उखाड़कर उन पर फेंका। शत्रुघ्न ने बाणों से उस वृक्ष को आकाश में ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब राक्षस ने भीषणाकार पत्थर फेंका। उन्होंने ऐन्द्र अस्त्र से उसे भी चूर-चूर कर दिया। तब वह अपना दाहिना हाथ उठाकर पहाड़ की तरह शत्रुघ्न पर टूट पड़ा

और शत्रुघ्न ने वैष्णव बाण उसकी छाती में मारा जिससे मरकर पृथ्वी को कंपाता हुआ वह गिर पड़ा। उस मरे हुए राक्षस पर गिद्ध-कौवे झपट पड़े और शत्रुघ्न पर फूलों की वर्षा होने लगी।

लवणासुर को मारकर शत्रुघ्न ने इन्द्रजित् को मारनेवाले लक्ष्मण का सहोदर भाई होना सिद्ध कर दिया। कृतार्थ हुए मुनियों ने उसकी प्रशंसा की। उसने यमुना के किनारे मथुरा नगरी का निर्माण कराया। सुखकारी राज्य के आकर्षण से खिंचे हुए नागरिकों के ऐश्वर्य से वह नगरी स्वर्ग-जैसी प्रतीत होती थी। महल की अट्टालिका पर चढ़े हुए शत्रुघ्न को चक्रवातों से युक्त यमुना पृथ्वी की वेणी-जैसी लगती थी।

राजा दशरथ और जनक दोनों के मित्र महर्षि वाल्मीकि ने मैथिली सीता के यमल पुत्रों का विधिवत् जातकर्मादि संस्कार किया। सीता की गर्भवेदना को दूर करने के लिए कुश और लव (चमरी गाय की पूँछ से बना चंवर) का प्रयोग हुआ था, अतः ऋषि ने उन दोनों का नाम कुश और लव रखा। जब वे कुछ बड़े हो गये तो उन्हें वेद-वेदाङ्ग का अध्ययन कराकर अपने बनाये हुए आदिकाव्य (रामायण) को गाना सिखाया। वे दोनों पुत्र राम के मधुर चरित्र को गाकर माता (सीता) के राम-वियोग की व्यथा को कुछ कम करते थे। राम के शेष तीनों भाइयों के भी दो-दो पुत्र हुए। शत्रुघ्न ने अपने पुत्र शत्रुघाती को मथुरा का और सुबाहु को विदिशा का शासक नियुक्त किया और अपने अग्रजों से मिलने अयोध्या चले आये। लौटते समय तपस्या में विघ्न न हो इसलिए वे वाल्मीकि के आश्रम में नहीं गये। अयोध्या आने पर उन्होंने अपनी विजय का सारा वृत्तान्त राम को सुनाया, किन्तु सीता के पुत्र-जन्म की बात नहीं कही, क्योंकि वाल्मीकि ने मना किया था और कहा था कि उचित समय पर मैं स्वयं राम को बताऊँगा।

इसके बाद एक दिन नगर में किसी ब्राह्मण के बालक की अकाल मृत्यु हो गई। वह पुत्र के शव को राम के द्वार पर रखकर विलाप करने लगा कि हे पृथ्वी! इक्ष्वाकु-वंशियों के राज्य में कभी किसी की अकाल मृत्यु नहीं हुई। दशरथ के हाथ से राम के हाथ में आने पर तुम इस दीन दशा को प्राप्त हो गई कि अब बालकों की भी मृत्यु हो रही है। उसके रुदन से चिन्तित हुए राम ने ब्राह्मण से कुछ देर रुकने को कहकर पुष्पक विमान का स्मरण किया और शस्त्र लेकर उसमें आरूढ़ हो गये जैसे मृत्यु (यमराज) को जीतने जा रहे हों। इसी समय आकाशवाणी हुई कि "हे राजन्! तुम्हारे राज्य में कोई अपचार (भ्रष्ट आचरण) कर रहा है, उसे दूर करो, तब कृतार्थ

हांओगे" । चारों ओर उस अपचारी को खोजते हुए राम ने किसी शम्बूक नाम के शूद्र को स्वर्ग-प्राप्ति के लिए घोर तप करते देखा । वे समझ गये कि इसकी अनधिकार चेष्टा से ही यह अनर्थ हुआ है । अतः उन्होंने बिना किसी संकोच के उसका सिर काट डाला । राम के हाथ से मृत्यु पाकर शूद्र शम्बूक सद्गति को प्राप्त हो गया और वे अयोध्या को लौटे । मार्ग में अगस्त्य ने राम का सत्कार किया और समुद्र से प्राप्त दिव्य आभूषण उन्हें दिया जिसे सीता-वियोग से दुःखी राम ने धारण तो नहीं किया पर मुनि का प्रसाद समझकर ग्रहण कर लिया । उनके अयोध्या पहुँचने से पूर्व ही ब्राह्मण का मरा हुआ बालक जीवित हो गया और वह ब्राह्मण, जो राम की निन्दा कर रहा था, पुत्र को रामकृपा से जीवित देखकर उनकी स्तुति करने लगा ।

अब राम ने अश्वमेध यज्ञ करने की सोची । घोड़ा छोड़ा गया । चारों ओर से राक्षसों,वानरों और राजाओं ने उपहारों की ऐसी वर्षा की जैसे बादल धान पर पानी बरसाते हैं । सभी दिशाओं से तेजस्वी ऋषिगण इकट्ठे हुए । अर्धाङ्गिनी के रूप में सुवर्ण की सीता बनाई गई । यज्ञ में बाधा पहुँचानेवाले राक्षस भी इस यज्ञ में रक्षक बने थे । उसी समय वाल्मीकि द्वारा प्रेरित सीतापुत्र लव-कुश जहाँ-तहाँ रामायण का गान करने लगे । राम का चरित्र , वाल्मीकि की रचना, किन्नरों-जैसा मधुर स्वर और गानेवाले बालकों का दिव्य रूप, इस सबसे श्रोता मोहित होने लगे । उनकी ख्याति फैलने लगी और सभा में उन्हें बुलाकर भाइयों-सहित राम ने भी उनका गाना सुना । उन बालकों के रूप की राम से समानता देखकर जनता स्तब्ध रह गई । उनकी कुशलता से भी अधिक आश्चर्य लोगों को तब हुआ जब प्रसन्नतापूर्वक दिया हुआ राम का पारितोषिक निःस्पृह बालकों ने लौटा दिया । राम ने पूछा यह रचना किसकी है ? और तुम्हें यह गाना किसने सिखाया ? तो उन्होंने वाल्मीकि का नाम बताया । राम महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में गये और अपना सारा राज्य उन्हें अर्पण कर दिया । प्रसन्न हुए ऋषि ने राम को बताया कि ये दोनों तुम्हारे पुत्र हैं और तुम पुत्रों-सहित सीता को ग्रहण करो ।

राम ने कहा—हे महर्षि ! यद्यपि सीता की अग्निपरीक्षा हो चुकी है, मैं जानता हूँ वह निर्दोष है, परन्तु राक्षस के घर में रहने के कारण जनता उसकी सच्चरित्रता पर विश्वास नहीं करती । यदि वह जनता को विश्वास दिला सके तो मैं उसे स्वीकार कर लूंगा । राम के इस कथन पर महर्षि ने सीता को बुलाया । गेरुवे वस्त्र धारण की हुई और दृष्टि झुकाकर सीता सबके समक्ष राम के सम्मुख उपस्थित हुई । मुनि

ने सीता को आज्ञा दी—वत्से ! अपने पति के सामने अपने आचरण के संबंध में लोगों का सन्देह दूर करो। तब सीता ने पवित्र जल का आचमन कर कहा—

"हे विश्व का भरण करनेवाली पृथ्वी ! यदि मन,वचन और कर्म से मैंने अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य से सम्पर्क न किया हो तो मुझे अपनी गोद में ले लो।"

सीता के इतना कहते ही पृथ्वी फटी, उससे एक तेज:पुञ्ज निकला जिसमें शेषनाग के फणों पर टिके सिंहासन पर समुद्र-मेखला पृथ्वी प्रकट हुई और राम के देखते-देखते उसने सीता को अपनी गोद में लिया और पाताल में प्रविष्ट हो गई। राम को पृथ्वी पर बड़ा क्रोध आया। वे उसे दण्ड देने के लिए धनुष उठाने लगे पर ऋषि ने उन्हें शान्त कर दिया।

राम ने अश्वमेध यज्ञ पूरा किया। ऋषियों को दक्षिणा से और राजाओं को उपहारों से सन्तुष्ट कर विदा किया। सीता पर उनका जो प्रेम था उसे उसके पुत्रों, कुश-लव पर उंडेल दिया।

युधाजित (भरत के मामा) के सन्देश पर राम ने सिन्धु देश का राज्य भरत को सौंप दिया। भरत ने वहाँ के गन्धर्वों को जीतकर उनके अस्त्र-शस्त्र रखवा लिए और उन्हें वीणा बजाकर गानेवाला बना दिया। अपने पुत्र तक्ष और पुष्कल को तक्षशिला एवं पुष्कलावती में अभिषिक्त कर भरत राम के पास लौट आये। राम के आदेशानुसार लक्ष्मण ने भी अपने पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु को कारापथ देश का स्वामी बना दिया। इसी बीच राम की माताओं का देहान्त हो गया और उन्होंने उनका क्रियाकर्म किया।

एक दिन मुनिवेशधारी यमराज ने राम से एकान्त में बात करनी चाही और शर्त यह रखी कि हम दोनों के बात करते समय जो भीतर आयेगा उसे आप सदा के लिए छोड़ देंगे। राम ने शर्त स्वीकार की और लक्ष्मण को द्वार पर नियुक्त कर दिया कि वे किसी को भीतर न आने दें। भीतर यमराज ने अपना वास्तविक रूप प्रकटकर राम को ब्रह्मा का सन्देश सुनाया कि आपने पृथ्वी का भार हलका कर दिया, अब आप स्वर्ग को लौट जांय। इसी समय द्वार पर दुर्वासा ऋषि आये और उन्होंने राम के दर्शन करने चाहे। सब कुछ जानते हुए भी लक्ष्मण दुर्वासा के क्रोधी स्वभाव के कारण डर गये और दोनों के बात करते समय भीतर चले गये। शर्त के अनुसार राम के लिए लक्ष्मण का परित्याग आवश्यक हो गया। भाई के इस संकट को देख लक्ष्मण ने स्वयं सरयू तट पर जाकर योगमार्ग द्वारा शरीर त्याग दिया। लक्ष्मण के

न रहने से अपने को अधूरा-सा समझकर राम ने कुश को कुशावती का और लव को शरावती का राज्य देकर भाइयों के साथ उत्तराभिमुख होकर अयोध्या से प्रस्थान किया। उन्हें जाते देख सारी प्रजा और वानर, राक्षस आदि उनके पीछे-पीछे चल पड़े। उन सबके साथ पुष्पक विमान से राम सरयू में पहुँचे। वह सारी भीड़ सरयू में ऐसे घुसी जैसे गायों का झुण्ड घुसता है। उस दिन से वह स्थान गोप्रतर तीर्थ हो गया। और उसमें स्नान करते हुए सब मनुष्य,राक्षस, वानर आदि देवत्व को प्राप्त हो गये।

इस प्रकार आततायी रावण का वध,तपस्वियों की रक्षा, धर्म और मर्यादा की स्थापना करके उत्तर में हनुमान् और दक्षिण में विभीषण को अपना कीर्तिस्तम्भ छोड़ राम स्वर्ग को सिधार गये।

षोडशसर्ग का कथासार

राम के स्वर्गारोहण के बाद उन सातों रघुवंशियों (लव, तक्ष, पुष्कल, अंगद, चित्रकेतु, सुबाहु, बहुश्रुत) ने कुश को अपनी परम्परानुसार बड़ा मानकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। वे प्रजा के कल्याण के लिए मिलकर सब कार्य करते हुए भी एक-दूसरे की सीमा का उल्लंघन नहीं करते थे। इस प्रकार आठ भाइयों द्वारा दशरथ की वंशबेल बढ़ रही थी।

एक दिन आधी रात को जबकि दीये बुझे थे और सब लोग घोर निद्रा में थे कुश ने अपने शयनागार में एक स्त्री को देखा जो विरहिणी-जैसी दीख रही थी। उस स्त्री ने पहले कुश की जय-जयकार की, फिर हाथ जोड़े। उसे देखकर कुश हड़बड़ाकर उठे और बिस्तर पर बैठकर उससे बोले—हे कल्याणि! जिस घर के द्वार बन्द हैं और चारों ओर पहरा है उसके तुम अन्दर कैसे आ गईं? कोई योगमाया जाननेवाली-सी तो नहीं लगती हो, मुरझाई कमलिनी-सी दुःखिनी प्रतीत होती हो, तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो और यहाँ किस उद्देश्य से आई हो? स्पष्ट उत्तर दो। हम रघुवंशियों का मन कभी परस्त्री की ओर नहीं झुकता।

उस स्त्री ने कहा—हे राजन्! मैं उस अयोध्यापुरी की अधिष्ठात्री देवता हूँ जिसके पुरवासियों को तुम्हारे पिता राम अपने साथ वैकुण्ठधाम को लेते गये। राम के राज्य में अपने ऐश्वर्य से मैं कुबेर की अलकापुरी को मात करती थी। आज तुम-जैसे सशक्त सूर्यवंशी राजा के होते हुए मेरी यह दुर्दशा है। स्वामी-विहीन होने से मेरी वह नगरी खंडहर हो रही है। आकाश को छूती हुई अट्टालिकाएं ध्वस्त हो रही हैं। संगीतशालाएँ टूट रही हैं। जिन राजमार्गों पर अभिसारिकाओं के नूपुर बजते थे वहाँ आज गीदड़ बोल रहे हैं। जिन बावड़ियों पर नागरिक स्त्रियों के पानी भरते समय मृदंग की-जैसी ध्वनि होती थी वहाँ जंगली भैंसों के सींग टूट रहे हैं। वे क्रीड़ा-मयूर जो मेरे उद्यानों की शोभा थे आज पेड़ों पर सो रहे हैं क्योंकि उनके लिए बने आवास नष्ट हो गये हैं। मृदंगों का शब्द न होने से वे नाच नहीं पाते। वनाग्नि से उनके पंख और कलगियाँ झुलस गई हैं। जिन सीढ़ियों पर सुन्दरी बहुओं के पैरों के महावर के चिह्न लग जाते थे, वहाँ आज हरिणों के रक्त से सने बाघों के पैर के चिह्न

बन रहे हैं। कमलवनों में बने चित्रमय हाथियों के मस्तक, वास्तविक हाथी समझकर शेरों ने फाड़ डाले हैं। लकड़ी के खम्भों पर बनी सुन्दरियों के चित्रों से रंग उड़ गये हैं। उन्हें चन्दनवृक्ष समझकर सांपों ने लपेट लिया है और उनपर अपनी कैंचुल छोड़ दी है, जो चिपककर ओढ़नी जैसी लगती है। महलों में चूने की पुताई काली पड़ गई है। उनपर घास उग आई है जिससे चांदनी महलों के अन्दर नहीं जा पाती। जिन उद्यान-लताओं के टूटने के डर से विलासिनियाँ धीरे-से झुकाकर फूल तोड़ा करती थीं उन्हें जंगली कोल, भील, किरातों और बन्दरों ने छिन्न-भिन्न कर डाला है। जिन झरोखों से रात में दीपक का प्रकाश और दिन में विलासिनियों की मुखकान्ति बाहर आती थी उनपर अब मकड़ी के जाले लगे हैं। सरयू नदी आज सन्तप्त हो रही है क्योंकि उसके किनारे कोई ध्यान-पूजा नहीं करता, जल में स्नान नहीं करता और विहार करने की बेत की झाड़ियाँ वहाँ नहीं रह गई हैं। अतः हे राजन्! जैसे तुम्हारे पिता (राम) कार्यवश धारण किये मानव-शरीर को छोड़ परमात्मा में अवस्थित हो गये ऐसे ही तुमभी इस कुशावती को छोड़कर अपने पूर्वजों की राजधानी अयोध्या में चले आओ।

कुश ने प्रसन्नतापूर्वक अयोध्या की अधिदेवता की प्रार्थना स्वीकार कर ली तो वह भी सन्तुष्ट हो अन्तर्धान हो गई। प्रातः राजा ने अपने सभासदों को रात की घटना सुनाई तो उन्होंने प्रशंसा करते हुए कहा––राजन्! आपको राजधानी ने स्वयं वरण कर लिया है, अतः अवश्य जाइये। तब राजा ने कुशावती श्रोत्रिय ब्राह्मणों को सौंप दी और अनुकूल समय में परिजनों-सहित अयोध्या को प्रस्थान किया।

जैसे बरसाती वायु के पीछे बादल उमड़ते हैं वैसे ही कुश के पीछे सेना भी उमड़ पड़ी। सेना के शिविर ही कुश की राजधानी-जैसे लगने लगे जिनमें ध्वजाओं की कतारें उपवन-जैसी, हाथियों के झुण्ड क्रीड़ा फूलों-जैसे, रथ भवनों-जैसे लग रहे थे। आगे-आगे चलती राजपताका के पीछे सेना का ऐसा कोलाहल हो रहा था जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर समुद्र में ज्वार-भाटा आ गया हो। चारों ओर सेना ही सेना दीख रही थी। मार्ग की जो धूलि उसके हाथियों के मदजल से कीचड़-जैसी हो गई थी वही उसके घोड़ों के खुरों से चूर चूर होकर पुनः आकाश में उड़ने लगी। विन्ध्य की घाटियों में रेवा नदी के समान उस सेना के कोलाहल की प्रतिध्वनि गुफाओं में गूंजने लगी। मार्ग के रंगीन पत्थरों से रगड़ खाकर रथों के पहिये रंगीन हो गये थे। सेना की कलकल ध्वनि में मिला हुआ प्रयाण-काल के बाजों का शब्द

आकाश को गुंजा रहा था। स्थान-स्थान पर वनवासी किरात आदि विविध उपहार लेकर उपस्थित हो रहे थे और राजा कुश आदरपूर्वक उसे ग्रहण करता था।

त्रिवेणी पर अन्तिम पड़ाव करने के बाद सेना-सहित कुश सरयूतट पर पहुंचा जहाँ उसे अपने पूर्वजों द्वारा किये गये यज्ञों के प्रतीक-रूप सैंकड़ों स्तम्भ दिखाई दिये। राजधानी अयोध्या में प्रविष्ट होते ही सरयू की शीतल, मन्द और पुष्पों की गन्ध से युक्त वायु जैसे उस पर पंखा झल रही थी। कुशल कारीगरों ने थोड़े ही समय में अयोध्या को नई नगरी का रूप दे दिया। कुश ने नगरी में प्रवेश करके पहिले देवालयों में देवताओं की पूजा की, फिर अमात्यों तथा अनुजीवियों के रहने की व्यवस्था की। घुड़सालों में घोड़े हिनहिनाने लगे, आलान स्तम्भों पर हाथी झूलने लगे, दुकानें बहुमूल्य सामग्री से भर गईं। वहाँ रहते हुए राजा कुश से स्वर्ग के राजा इन्द्र और अलकापति कुबेर भी स्पर्धा करने लगे।

एक बार जब सूर्य उत्तरायण में थे, प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु आई। तालाबों का पानी सेवारवाली सीढ़ियों को छोड़कर नीचे उतरने लगा। धनी लोग शीतल गृहों में चन्दनमिश्रित जलों के फुहारों का आनन्द लेने लगे। राजा कुश की भी इच्छा हुई कि परिवार-सहित तापहारिणी सरयू के जल में विहार करे। स्नान के उपयुक्त घाट तैयार किये गये। जाल डालकर तैराकों ने हिंसक मकर आदि को निकाल डाला। चिरकाल तक राजा ने नौका-विहार किया और फिर बहुमूल्य हारों से शोभित हुआ रानियों-सहित जल में प्रविष्ट हो गया। बहुत देर तक जल-विहार करने के बाद जब राजा बाहर आया तो उसके हाथ का वह सुवर्ण-कङ्कण जल में गिर गया था जिसे अगस्त्य-मुनि ने प्रसादरूप में राम को दिया था और जो उत्तराधिकार के रूप में कुश को मिला था। यद्यपि उसे कङ्कण का लोभ नहीं था किन्तु वह कङ्कण उसके पिता की विजय का प्रतीक था, इसलिए उसने गोताखोरों को आदेश दिया कि उसे खोजें। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया पर कङ्कण नहीं मिला तो गोताखोरों ने विश्वास-पूर्वक कहा कि बहुत ढूंढने पर भी कङ्कण नहीं मिला, लगता है उसे कोई नाग निगल गया है। यह सुनते ही राजा को क्रोध आया और उसने नागों का सर्वनाश करने के लिए गरुड़ास्त्र को हाथ में ले लिया। उसके हाथ में गरुड़ास्त्र देखते ही भयभीत हुआ नागराज अपनी कन्या-सहित जल से निकलकर ऊपर आ गया। उसके हाथ में कङ्कण और विनीत मुद्रा देखकर कुश को उसपर दया आ गई और उसने अस्त्र का प्रयोग नहीं किया।

नागराज कुमुद ने त्रिभुवनपति श्री राम के पुत्र कुश को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और कंकण उसे देते हुए कहा—क्षमा करें, गेंद खेलती हुई मेरी कन्या ने आपके हाथ से गिरे हुए इस कंकण को आकाश से गिरी हुई किसी ज्योति की तरह चमकता खिलौना समझकर ले लिया था; अब पुनः यह आपकी, घुटनों तक लम्बी, निरन्तर धनुष की प्रत्यञ्चा खींचनेवाली, भूमि के भार को सफलतापूर्वक धारण करनेवाली भुजा को शोभित करेगा और इस अपराध के प्रतीकारस्वरूप मैं अपनी इस कुमुद्वती नाम की कन्या को भी आपको अर्पण करता हूं, इसे स्वीकार करें। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और नागराज ने सबके समक्ष कुमुद्वती का उससे विवाह कर दिया। दिग्पालों ने दिव्य बाजे बजाए और आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। रघुवंश और नागवंश के इस दिव्य सम्बन्ध से सभी प्रसन्न हुए। नागराज विष्णु के वाहन गरुड़ के त्रास से निःशंक हो गया और कुश नागों के उत्पात की चिन्ता से मुक्त होकर सुखपूर्वक अयोध्या में राज्य करने लगा।

सप्तदशसर्ग का कथासार

राजा कुश को कुमुद्वती से अतिथि नाम का पुत्र हुआ। सूर्य जैसे उत्तरायण-दक्षिणायण द्वारा दोनों दिशाओं को पवित्र करता है ऐसे ही अतिथि ने मातृवंश और पितृवंश दोनों को कृतार्थ किया था। योग्य पिता कुश ने पुत्र को आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति में पारंगत कराकर उसका विवाह कर दिया। तभी अपने पूर्वजों की भांति कुश इन्द्र की सहायता के लिये गये जहाँ उन्होंने दुर्जय दैत्य को मारा और उसीके द्वारा स्वयं भी मारे गये। पति के वियोग में कुमुद्वती ने प्राण त्याग दिये। राजा की अन्तिम इच्छा के अनुसार मन्त्रियों ने अतिथि के अभिषेक की तैयारी की। ऊँची वेदीवाला चार खम्भों पर स्थित मण्डप बनाया गया। उसमें भद्रपीठ पर बैठाकर सोने के कलशों में अनेक तीर्थों से लाये जल से उसे स्नान कराया गया। बाजे बजने लगे। कुल के वृद्धजनों ने दूर्वा, यवांकुर आदि से उसकी मंगलकामना करते हुए आरती उतारी, परछन किया। पुरोहितों ने अथर्वमन्त्रों से उसपर अभिषेक किया। चारण लोग विरुदावली पढ़ने लगे। इस अभिषेक के अन्त में अतिथि ने विद्वानों को इतना धन दिया कि उनके अपने यज्ञादि सानन्द सम्पन्न हो सकें और विद्वानों ने उसे मुक्तकण्ठ से आशीर्वाद दिया।

अभिषेक की प्रसन्नता में राज्य में कैदियों को मुक्त कर दिया गया। मृत्युदण्ड पाये लोगों को क्षमादान मिल गया। भार ढोनेवाले पशुओं पर अधिक भार न लादने की घोषणा हो गई। गौओं का सारा दूध उनके बछड़ों को पीने देने का आदेश हो गया। पिंजरों में बन्द पक्षी मुक्त कर दिये गये।

तब अतिथि राजसी अलंकरण के लिये भवन के दूसरे भाग में गये जहाँ हाथी-दांत के बने सिंहासन पर भव्य चादर बिछी थी। उसपर उसके बैठने पर प्रसाधकों ने हाथ धोकर धूप से उसके केशों को सुगन्धित किया। मोतियों की लड़ों से, जिनपर पद्मरागमणि जड़ी थी उसे सजाया। कस्तूरीमिश्रित चन्दनलेप से अंगराग लगाया। उसपर गोरोचन से पत्ररचना की। हंस के चिह्नवाले रेशमी वस्त्र को धारण करके वह राज्यश्रीरूप बहू का सुन्दर वर प्रतीत होता था। इस प्रकार सुसज्जित होने पर छत्र, चामर आदि राजचिह्नों को लिये हुए जयजयकार करते सेवकों-सहित

वह उस राजसभा में प्रविष्ट हुआ जो इन्द्र की सुधर्मा नामक देवसभा को मात कर रही थी। देश-देश के नरेशों के राजमुकुट उसके चरणों पर झुक रहे थे। यद्यपि वह किशोर ही था किन्तु युवराज न होकर वह सीधे सम्राट्-पद को प्राप्त हो गया था। इस प्रकार वह अयोध्या के राजसिंहासन पर विराजमान हुआ।

राजा अतिथि सदा प्रसन्न रहता था। लगता था वह प्रजाओं के विश्वास की साक्षात् मूर्ति है। ऐरावत-जैसे भव्य हाथी पर चढ़कर उसने सारी अयोध्या का भ्रमण किया। रूप, गुण, वीरता और दूरदर्शिता में वह अपने पूर्वजों-जैसा ही था। थोड़े ही समय में उसका प्रताप समुद्रतट तक पहुँच गया। गुरु वसिष्ठ की मन्त्रशक्ति और राजा अतिथि की धनुःशक्ति, इन दोनों शक्तियों के सम्मिलन से उस समय अयोध्या में कुछ भी असाध्य नहीं था। वह दण्डनीति के विशेषज्ञों की सहायता से शत्रुओं के अभियोगों का निर्णय करता था। उत्तम कार्य करनेवाले भृत्यों को उचित पारितोषिक देता था। सम्पूर्ण प्रजा में उसकी वत्सलता की जैसे बाढ़ आ गई थी। वह झूठे आश्वासन नहीं देता था। जो कहता था उसे करता भी था। शत्रुओं को परास्त कर उन्हें पुनः उनके देशों में अपने अधीन बसा देता था।

रूप, यौवन और ऐश्वर्य इन तीनों में एक भी किसी को मिले तो वह मदमत्त हो जाता है, परन्तु उसके पास तीनों थे फिर भी उसे अभिमान छू तक नहीं गया था। बहिःशत्रुओं को जीतने से पूर्व उसने काम, क्रोधादि अन्तःशत्रुओं को जीत लिया था। सदा से चंचला कहलानेवाली लक्ष्मी उसके पास आकर स्थिर हो गई थी। उसका सिद्धान्त था कि केवल नीति के भरोसे रहना कायरता है और केवल शूरता पर निर्भर करना पशुता है। अतः वह कार्यसिद्धि के लिये दोनों का समुचित उपयोग करता था। जैसे स्वच्छ आकाश में सूर्यकिरणों से सब कुछ दिखाई देता है, ऐसे ही उसके गुप्तचरों से राज्य की कोई घटना छिपी नहीं रहती थी। वह शास्त्रों के आदेशानुसार रात और दिन के लिये अपने कार्यों को नियत कर लेता था। प्रतिदिन अपने मंत्रियों के साथ मन्त्रणा करता था। और उसका कोई भी भेद बाहर नहीं जाने पाता था। मित्रों और शत्रुओं के बीच उसके गुप्तचर ऐसे फैले रहते थे कि वे एक-दूसरे को भी नहीं पहचान पाते थे। वह शत्रुदेशों को आसानी से जीत लेता था किन्तु अपने दुर्गों को निर्बल नहीं होने देता था।

जैसे धान की बालों में रहकर ही दाने परिपक्व होते हैं ऐसे ही उसकी प्रजा के लिये कल्याणकर योजनाएँ तभी प्रकट होती थीं जब सफल हो जायं। समुद्र की

तरह वह कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता था। प्रजा के असन्तोष को दबाने की यद्यपि वह पर्याप्त शक्ति रखता था परन्तु फिर भी वह कोई ऐसा कार्य नहीं करता था जिससे प्रजा में असन्तोष व्याप्त हो। धर्म, अर्थ और काम का परस्पर सामंजस्य रखता हुआ वह निष्काम भाव से उनका प्रयोग करता था। वह मित्रों को मध्यम दशा में रखता था क्योंकि जानता था यदि मित्र निर्बल रहें तो कोई सहायता नहीं कर सकेंगे और यदि प्रबल हो जायेंगे तो विरोध करने लगेंगे। उसके राज्य में स्त्रियाँ और व्यापारीवर्ग सुरक्षित था। सभी लोग आततायियों से निश्चिन्त होकर सर्वत्र ऐसे विचरण करते थे जैसे घर में घूम रहे हों। वह पृथ्वी की हर प्रकार से रक्षा करता था जिसके बदले में पृथ्वी उसे प्रचुर मात्रा में खानों से रत्न, खेतों से अन्न और जंगलों से हाथी आदि देती थी।

चन्द्रमा भी पूर्ण होने के बाद क्षीण होने लगता है, समुद्र भी ज्वार आने के बाद उतरने लगता है, परन्तु राजा अतिथि की दिन-पर-दिन वृद्धि ही होती गई। जैसे समुद्र से पानी लेकर बादल पृथ्वी पर बरसा देते हैं, ऐसे ही उससे पाये हुए धन से दरिद्र भी दानी बन गये थे। उसने अपने अश्वमेधयज्ञ की पूर्ति के लिये दिग्विजय किया था। शास्त्रीय विधि से अश्वमेधयज्ञ करके वह देवराज इन्द्र की तरह राजाधिराज कहलाने लगा। पृथ्वी के समस्त राजाओं ने उसके आज्ञापत्रों को शिरोधार्य किया। राजा अतिथि ने इस यज्ञ में ब्राह्मणों को इतनी दक्षिणा दी कि लोग उसे कुबेर समझने लगे।

अष्टादशसर्ग का कथासार

अतिथि का निषधदेश के राजा की कन्या से विवाह हुआ। उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका भी **निषध** ही नाम रखा गया। जैसे वर्षा हो जाने पर अच्छी फसल की आशा से कृषक प्रसन्न हो जाते हैं, ऐसे ही बलिष्ठ उत्तराधिकारी से प्रजा के कल्याण की आशा होने पर राजा अतिप्रसन्न हो गया। चिरकाल तक राज्य का उपभोग करके युवा पुत्र निषध को राज्य सौंपकर वह स्वर्ग सिधार गया। कमल-जैसी आंखोंवाले वीर निषध ने भी बहुत काल तक समुद्रमेखला पृथ्वी पर सुन्दर शासन किया। इसके बाद उसका पुत्र **नल** राजा हुआ। उसने शत्रुओं को ऐसे मसल डाला जैसे हाथी झाड़ियों को मसल देता है। उसके बाद नीले आकाश के रंगवाला उसका पुत्र **नभ** राजा हुआ। उसे राज्य का भार सौंपकर नल ने तपस्या के लिये वन को प्रस्थान किया। नभ के अनन्तर उसका पुत्र **पुण्डरीक** राजा हुआ। पुण्डरीक का पुत्र **क्षेमधन्वा** था जिसने अपने शौर्य से देवताओं का भी सेनापति बनने की क्षमता अर्जित कर ली थी। क्षेमधन्वा का पुत्र **देवानीक** हुआ जो अपने पिता-जैसा ही वीर था। अपनी कुल-परम्परा के अनुसार पुत्र को राज्य देकर क्षेमधन्वा भी मुक्त हो गया। देवानीक का पुत्र **अहीनगु** हुआ जो पृथ्वी का एकच्छत्र राजा था। यह अत्यन्त कोमल प्रकृति का था। शत्रु भी उससे प्रेम करते थे। किसी प्रकार का व्यसन उसे छू तक नहीं गया था। अपने पूर्वज राम की तरह ही प्रजारञ्जक शासक बनकर उसने चिरकाल तक साम, दाम, दण्ड, भेद इन चारों उपायों के सफल प्रयोगों द्वारा पृथ्वी का शासन किया।

अहीनगु की मृत्यु के बाद उसका पुत्र **पारियात्र** राजा हुआ। उसके बाद उसका पुत्र **शिल**। शिल को राज्य सौंपकर पारियात्र सांसारिक विषयोपभोग में लिप्त हो गया, फलतः उसे शीघ्र ही बुढ़ापे ने आ घेरा। शिल का पुत्र **नाभि** हुआ। यह वास्तव में सम्पूर्ण पृथ्वी की नाभि (धुरी) की तरह था। नाभि का पुत्र **वज्रनाभ** हुआ जो इन्द्र के समान तेजस्वी था और संग्राम में वज्र के समान उसकी ललकार गूंजती थी। वज्रनाभ की मृत्यु के बाद उसका पुत्र **शंखण** राजा हुआ और उसके बाद उसका पुत्र **हरिदश्व**। हरिदश्व का पुत्र **विश्वसह** हुआ। विश्वसह ने वृद्धावस्था आने पर अपने पुत्र **हिरण्यनाभ** को राज्य दे दिया और स्वयं वन को चला गया।

हिरण्यनाभ से अत्यन्त शान्त प्रकृतिवाला **कौसल्य** उत्पन्न हुआ जिसका यश पूरे ब्रह्माण्ड में फैला था। कौसल्य से **ब्रह्मिष्ठ** नाम का पुत्र हुआ जिसके राज्य में प्रजा अत्यन्त आनन्दित हुई। इस ब्रह्मिष्ठ ने अपने आत्मज का नाम ही **पुत्र** रखा जो विष्णुसदृश तेजस्वी और गुरुजनों का अत्यन्त भक्त था। पुत्रनामक पुत्र को राज्य देकर राजा ब्रह्मिष्ठ स्वर्ग सिधार गया। पुत्र को पौष की पौर्णमासी को पुत्र उत्पन्न हुआ, अतः उसका नाम **पुष्य** रखा गया। पुष्य जब शासनयोग्य हो गया तो पुत्र जैमिनि से दीक्षा लेकर योगसाधना में लीन हो गया। पुष्य का पुत्र **ध्रुवसन्धि** हुआ। ध्रुवसन्धि का पुत्र **सुदर्शन** अभी बालक ही था कि ध्रुवसन्धि को शिकार खेलते समय शेर ने मार डाला।

प्रजा ने छः वर्ष के बालक सुदर्शन को ही राजगद्दी पर बैठा दिया और ध्रुवसन्धि के समान ही उसका आदर करने लगी। उसके तेजोमण्डल से सिंहासन भरा-सा लगता था। यद्यपि वह सिंहासन पर चढ़ नहीं पाता था किन्तु उसकी आज्ञा का पालन समुद्रपर्यन्त होता था और बड़े-बड़े नरेश रघुवंश के इस अंकुर के सामने नतमस्तक होते थे। वह यद्यपि अभी अच्छी प्रकार लिखना-पढ़ना भी नहीं सीख पाया था परन्तु विद्वान् गुरुओं की कृपा से समग्र दण्डनीति का प्रयोग जान गया था। पूर्वजों के प्रताप एवं अपनी विलक्षण तेजस्विता से वह सम्यक्तया पृथ्वी का शासन करने लगा था। धीरे-धीरे उसका शरीर ही नहीं रघुवंशियों के सारे गुण भी उसमें वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे। अपने पूर्व संस्कारों से उसने धर्म, अर्थ और काम के उपयुक्त आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर प्रजाओं को वश में कर लिया था। इस प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती और पृथ्वी तीनों सपत्नीभाव से उसकी भरपूर सेवा करने लगी थीं।

एकोनविंशसर्ग का कथासार

वृद्धावस्था आने पर राजा सुदर्शन अपने पुत्र अग्निवर्ण को राज्य सौंपकर तपस्या करने मैथिलारण्य चला गया, जहाँ तीर्थजलों में स्नान, कुटिया में कुश की शय्या पर विश्राम करते हुए उसने महलों के आराम को भुला दिया और निष्काम भाव से तप करने लगा। अग्निवर्ण को राज्य-संचालन में कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि उसके शत्रुञ्जयी पिता ने उसके भविष्य की दृष्टि से ही राज्य की ऐसी व्यवस्था बना दी थी। अतः राज्य की ओर से निश्चिन्त हुआ अग्निवर्ण भोगविलास में प्रवृत्त हो गया और सारा भार मंत्रियों पर छोड़ दिया।

कामिनियों के साथ महलों में अग्निवर्ण के एक-से-एक बढ़कर उत्सव होने लगे। प्रजाजन उसके दर्शनों के लिये तरसते थे और वह एक क्षण के लिये भी विषयोपभोगों को न छोड़ता हुआ रातदिन अन्तःपुर में ही बिताने लगा। कभी मन्त्रियों के कहने पर प्रजा के सामने गया भी तो केवल झरोखों से उसके चरण देखकर ही प्रजा को सन्तोष करना पड़ता। वह कामिनियों के साथ बावड़ियों में जलविहार करता हुआ उनकी विभिन्न कामक्रीड़ाओं में मग्न रहता। कभी उनके साथ मद्यपान करने लगता। मधुर झंकार करती वीणा और सुन्दरियों से उसकी गोद कभी खाली नहीं रहती। उनके साथ रहकर वह स्वयं भी कई वाद्यों में निपुण हो गया था जिससे वे और भी उसपर न्यौछावर होती थीं। वह बिना किसी लज्जा के उनका मुख चूमने लगता था। कामिनियाँ उसे अधिक लुभाने के लिये कभी-कभी आधे ही उपभोग में रूठने का अभिनय करतीं और वह उन्हें मनाने लगता। कभी उनकी अंगुलियों, भौंहों और मेखलाओं से उनकी फटकार सहता, फिर भी दूतियों द्वारा उनसे अपनी वासना-तृप्ति की याचना करता था। वह वेश्याओं और नर्तकियों के इतना वशीभूत हो गया था कि रानियों को किसी उत्सव के बहाने उसे अपने अन्तःपुर में प्रयत्न से बुलाना पड़ता था। रातभर अन्यत्र रहकर जब प्रातः रानियों के पास आता था तो वे खण्डिताएँ उससे अतृप्त हुई आंसू बहाती थीं। कभी-कभी तो रानियों के पास जाने में लज्जा करता हुआ परिजनों की अङ्गनाओं से एकान्त में अपनी प्यास बुझाता था और सुन्दरियों के व्यङ्गबाण सहता था। इस प्रकार कई ढंग से अनवरत काम-

वासनाओं में लीन हुए अग्निवर्ण ने इन्द्रियसुखों के पीछे राज्य को जैसे बिल्कुल ही विस्मृत कर दिया।

रघुवंशियों का इतना आतंक व्याप्त था कि अग्निवर्ण के इस प्रकार विषयभोगों में लिप्त रहकर राज्य की उपेक्षा करने पर भी किसी बाह्य शत्रु को अयोध्या की ओर आंख उठाने की हिम्मत नहीं हुई, किन्तु अन्दर ही अन्दर उसे क्षयरोग ने दबोच लिया। वैद्यों के मना करने पर भी वह सुरा और सुन्दरियों को छोड़ नहीं पाता था। धीरे-धीरे उसका मुख पीला पड़ने लगा, आभूषण भी भारी लगने लगे, चलने में किसी सहारे की आवश्यकता होने लगी, कण्ठस्वर क्षीण होने लगा। राजयक्ष्मा (क्षयरोग) से घिरे उस अग्निवर्ण के कारण रघु का तेजस्वी वंश डूबते चन्द्रमा वाले आकाश या गर्मी से सूखते तालाब अथवा बुझते हुए दीपक-जैसा हो गया था। कई दिनों तक राजा का दर्शन न होने से आशंकित प्रजा को मंत्रीगण यह कहकर आश्वासन देते रहे कि राजा पुत्रलाभ के लिये अनुष्ठान कर रहे हैं। एक ओर रोग का प्रकोप दूसरी ओर पुत्र न होने से वंशच्छेद की चिन्ता से घिरा अग्निवर्ण चिकित्सकों के अथक प्रयत्न करने पर भी बच न सका। देश में हाहाकार मच गया। पौरजनों ने मंत्रियों के परामर्श से गर्भ के शुभचिह्नों से युक्त रानी को राजगद्दी पर बिठा दिया और रानी ने पतिवियोग में गर्म-गर्म आसुओं से ही जैसे उस गर्भ का अभिषेक किया। जैसे बोये हुए बीजों को पृथ्वी तब तक सुरक्षित रखती है जब तक उससे अंकुर न निकल जांय, ऐसे ही उस स्वर्णसिंहासन पर विराजमान वह गर्भवती रानी भी राज्य के उत्तराधिकारी गर्भ की रक्षा करती हुई मंत्रियों के सहयोग से अच्छे प्रकार राज्य का संचालन करने लगी।

एकादशः सर्गः

रामचन्द्रचरणारविन्दयोरन्तरङ्ग चर भृङ्गलीलया ।
तत्र सन्ति हि रसाश्चतुर्विधास्तान्यथारुचि सदैव निर्विश ॥

कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥ १ ॥

कौशिकेन कुशिकापत्येन विश्वामित्रेणैत्याभ्यागत्य स क्षितीश्वरो दशरथः। अध्वरविघात-शान्तये यज्ञविघ्नविध्वंसाय। काकपक्षधरं बालकोचितशिखाधरम्। 'बालानां तु शिखा प्रोक्ता काकपक्षः शिखण्डकः' इति हलायुधः। रामं याचितः किल प्रार्थितः खलु। याचेर्द्विकर्मकाद-प्रधाने कर्मणि क्तः। 'अप्रधाने दुहादीनाम्' इति वचनात्। नायं बालाधिकार इत्याशङ्क्याह— तेजसां तेजस्विनां वयो बाल्यादि न समीक्ष्यते हि। अप्रयोजकमित्यर्थः। अत्र सर्गे रथोद्धता-वृत्तम्। उक्तं च—'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति ॥

प्रणम्य परमात्मानं श्रीधारादत्तशास्त्रिणा ।
क्रियते रुद्रसर्गस्य व्याख्या छात्रोपयोगिनी ॥

अन्वयः—कौशिकेन एत्य सः क्षितीश्वरः अध्वरविघातशान्तये काकपक्षधरं रामं याचितः किल। हि तेजसां वयः न समीक्ष्यते।

व्याख्या—कुशिकस्य ऋषेः अपत्यं पुमान् कौशिकस्तेन कौशिकेन = विश्वामित्रेण एत्य = दशरथसमीपमागत्य सः = प्रसिद्धः क्षितेः = पृथिव्याः ईश्वरः = स्वामी दशसु = दिक्षु गतो रथो यस्य स दशरथः = अयोध्याधिपतिः अध्वरस्य = यज्ञस्य विघातः = विघ्नस्तस्य शान्तिः = शमनं नाश इत्यर्थः तस्यै। काकानां पक्ष इवेति काकपक्षः = बालानां शिखा, काकपक्षस्य = शिखायाः धरस्तं काकपक्षधरं रामं याचितः = प्रार्थितः किल = खलु। यज्ञरक्षणे समर्थानां बलशालिनामेवाधिकारो न तु बालानामित्याशंक्याह–हि = यतः तेजसां = तेजस्विनां प्रभाव-शालिनामित्यर्थः वयः = अवस्था **न** = नहि समीक्ष्यते = दृश्यते, अप्रयोजकत्वात्। याचित इत्यत्र याच्–धातोर्द्विकर्मकत्वेन अप्रधाने कर्मणि क्षितीश्वरे क्तः प्रत्ययः।

समासः—क्षितेः ईश्वरः क्षितीश्वरः। अध्वरस्य विघातस्तस्य शान्तिः तस्यै। धरतीति धरः, काकानां पक्ष इवेति काकपक्षस्तस्य धरः।

हिन्दी—कुशिक ऋषि के पुत्र विश्वामित्र ने अयोध्या में आकर प्रसिद्ध राजा दशरथ से अपने यज्ञ के विघ्न की शान्ति के लिये, अर्थात् यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों का नाश करने के लिये काकपक्ष (कनपटियों में लम्बे-लम्बे बाल काकुल) को धारण करने वाले बालक राम को माँगा। इस लिये कि तेजस्वियों की अवस्था नहीं देखी-विचारी जाती है। अर्थात् उनका तो प्रभाव पराक्रम ही देखा जाता है ॥ १ ॥

कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक्तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ।
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ॥ २ ॥

लब्धा वर्णाः प्रसिद्धयो यैस्ते लब्धवर्णा विचक्षणाः । 'लब्धवर्णो विचक्षणः' इत्यमरः । तान्भजत इति लब्धवर्णभाक् । विद्वत्सेवीत्यर्थः । स राजा कृच्छ्रलब्धमपि सलक्ष्मणं तं रामं मुनये दिदेशातिसृष्टवान् । तथाहि । असुप्रणयिनां प्राणार्थिनामप्यर्थिता याच्ञा रघोः कुले कदाचिदपि न व्यहन्यत न विहता । न विफलीकृतेत्यर्थः । यैरर्थिभ्यः प्राणा अपि समर्प्यन्ते तेषां पुत्रादित्यागो न विस्मयावह इति भावः ॥

अन्वयः—लब्धवर्णभाक् "सः" कृच्छ्रलब्धम् अपि सलक्ष्मणं तं मुनये दिदेश । असुप्रणयिनाम् "अपि" अर्थिता रघोः कुले कदाचिदपि न व्यहन्यत ।

व्याख्या—लब्धाः = प्राप्ताः वर्णाः = ख्यातयः, कीर्तयः यैस्ते–लब्धवर्णाः = विद्वांसस्तान् भजते = सेवते, इति लब्धवर्णभाक् स राजा, कृन्ततीति कृच्छ्रं तेन = कष्टेन लब्धः = प्राप्तस्तं, वृद्धावस्थायां यागाद्यनुष्ठानेन प्राप्तमित्यर्थः । लक्ष्मणेन सहितमिति सलक्ष्मणं = सानुजं तं = रामं मुनये = विश्वामित्राय दिदेश = दत्तवान् । यज्ञरक्षार्थं समर्पितवानित्यर्थः । कष्टलब्धं सुकुमारं बालकं कथं दत्तवानित्याह—असून् = प्राणान् प्रणयन्ति = प्रार्थयन्तीति असुप्रणयिनस्तेषाम्—असुप्रणयिनां = प्राणार्थिनामपि जनानाम् अर्थिता = याच्ञा रघोः कुले = रघुवंशे कदाचिदपि = जातु, कस्मिंश्चिदपि काले इत्यर्थः न व्यहन्यत = न विफलीकृता । 'कदाचिज्जातु' इत्यमरः । यैः याचकेभ्यः प्राणाः अपि दातुं शक्यन्ते तेषां पुत्रादिदानं—न विस्मयकारकमिति भावः ।

समासः—लब्धाः वर्णाः यैस्ते लब्धवर्णास्तान् भजते—इति लब्धवर्णभाक् । कृच्छ्रेण लब्धस्तम् । लक्ष्मणेन-सहितस्तम् । असूनां प्रणयिनस्तेषाम् । कदा च चित् चेत्यनयोः समाहारः कदाचित् ।

हिन्दी—विद्वानों की सेवा करने वाले राजा दशरथ ने, बड़ी तपस्या से प्राप्त हुवे, राम और लक्ष्मण को, विश्वामित्र मुनि के लिये दे दिया । अर्थात् मुनि के साथ यज्ञरक्षार्थ भेज दिया । क्योंकि प्राणों के माँगने वालों की भी याचना रघुकुल में कभी भी व्यर्थ नहीं हुई थी ॥ २ ॥

यावदादिशति पार्थिवस्तयोर्निर्गमाय पुरमार्गसंस्क्रियाम् ।
तावदाशु विदधे मरुत्सखैः सा सपुष्पजलवर्षिभिर्घनैः ॥ ३ ॥

पार्थिवः पृथिवीश्वरस्तयो रामलक्ष्मणयोर्निर्गमाय निष्क्रमणाय पुरमार्गसंस्क्रियां धूलिसंमार्जनगन्धोदकसेचनपुष्पोपहाररूपसंस्कारं यावदादिशत्याज्ञापयति तावन्मरुत्सखैर्वायुसखैः । अनेन धूलिसंमार्जनं गम्यते । सपुष्पजलवर्षिभिः पुष्पसहितजलवर्षिभिर्घनैः सा मार्गसंस्क्रियाशु विदधे विहिता । एतेन देवकार्यप्रवृत्तयोर्देवानुकूल्यं सूचितम् ॥

अन्वयः—पार्थिवः तयोः निर्गमाय पुरमार्गसंस्क्रियां यावत् आदिशति, तावत् मरुत्सखैः सपुष्पजलवर्षिभिः घनैः सा आशु विदधे ।

व्याख्या—पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः = राजा दशरथः तयोः = रामलक्ष्मणयोः निर्गमाय = निष्क्रमणाय, अयोध्यातो बहिर्गमनायेत्यर्थः । पुरस्य = नगरस्य मार्गः = पन्थाः तस्य संस्क्रिया = संमार्जनादिका ताम् तथोक्ताम्, राजमार्गे धूलिसंकरसंमार्जनम् सुरभिजलसेचनं पुष्पमालादिभिरलंकरणमेवमादिसंस्करणमित्यर्थः । यावत् आदिशति = आज्ञापयति तावत् मरुत् = वायुः सखा = मित्रं येषां ते तैः । पुष्पैः सहितानि सपुष्पाणि = सकुसुमानि-जलानि वर्षन्ति तच्छीलास्तैः । घनैः = मेघैः सा = मार्गसंमार्जनादिसंस्क्रिया । आशु = शीघ्रं विदधे = कृता । पवनेन धूलिसंकरसंमार्जनं कृतम् । मेघैस्तु पुष्पसहितजलवर्षणं कृतमिति गम्यते । अनेन देवानां कार्यकरणे प्रवृत्तयोः देवनामानुकूल्यं दर्शितमिति भावः ।

समासः—पुरस्य मार्गस्तस्य संस्क्रिया ताम् । मरुत् सखा येषां ते तैः । पुष्पैः सहितानि, सपुष्पाणि । सपुष्पाणि जलानि वर्षन्ति तच्छीलास्तैः तथोक्तैः ।

हिन्दी—जब तक राजा दशरथ ने राम लक्ष्मण के बाहर जाने के लिये, नगर की सड़क की सफाई तथा पानी छिड़काव की आज्ञा दी, तब तक (इतने ही में) पवन के साथ मेघों ने जल तथा पुष्प वृष्टि कर दी । अर्थात् वायु ने धूल गरदा उड़ाकर फूल वर्षाये और मेघों ने पानी वर्षा कर छिड़काव कर दिया ॥ ३ ॥

तौ निदेशकरणोद्यतौ पितुर्धन्विनौ चरणयोर्निपेततुः ।
भूपतेरपि तयोः प्रवत्स्यतोर्नम्रयोरुपरि बाष्पबिन्दवः ॥ ४ ॥

निदेशकरणोद्यतौ पित्राज्ञाकरणोद्युक्तौ धन्विनौ धनुष्मन्तौ तौ कुमारौ पितुश्चरणयोर्निपेततुः । प्रणतावित्यर्थः । भूपतेरपि बाष्पबिन्दवः प्रवत्स्यतोः प्रवासं करिष्यतोः । अत एव नम्रयोः प्रणतयोः । 'नमिकम्पि–' इति रप्रत्ययः । तयोरुपरि निपेतुः पतिताः ॥

अन्वयः—निदेशकरणोद्यतौ धन्विनौ तौ पितुः चरणयोः निपेततुः, भूपतेः अपि बाष्पबिन्दवः प्रवत्स्यतोः "अत एव" नम्रयोः तयोः उपरि निपेतुः ।

व्याख्या—निदेशस्य = आज्ञायाः करणं = पालनं तत्र उद्यतौ = उद्युक्तौ तौ । धनुषि = चापे स्तः ययोस्तौ धन्विनौ = चापधारिणौ तौ रामलक्ष्मणौ पितुः = जनकस्य दशरथस्य चरणयोः = पादयोः निपेततुः = निपतितौ प्रणतावित्यर्थः । भूपतेः = राज्ञो दशरथस्यापि बाष्पाणाम् = अश्रूणां बिन्दवः = कणाः, इति बाष्पबिन्दवः प्रवत्स्यतोः = प्रवासं करिष्यतोः । प्रवत्स्यतः इति प्रवत्स्यन्तौ तयोः । अत एव नम्रयोः = विनीतयोः प्रणतयोरित्यर्थः । तयोः = कुमारयोः उपरि = ऊर्ध्वम् निपेतुः = पतिताः ।

समासः—निदेशस्य करणे उद्यतौ तौ । भुवः पतिस्तस्य भूपतेः । बाष्पाणां बिन्दवः, बाष्पबिन्दवः ।

हिन्दी—पिता की आज्ञा पालन करने को प्रस्तुत (तैयार) धनुर्धारी राम लक्ष्मण दोनों अपने पिता के चरणों में प्रणाम करने को झुके ही थे "कि" महाराज दशरथ की "आँखों से" भी यात्रा करने को तैयार अतएव नम्र हुए उन दोनों के ऊपर आँसू टपक पड़े ॥४॥

तौ पितुर्नयनजेन वारिणा किंचिदुक्षितशिखण्डकावुभौ ।
धन्विनौ तमृषिमन्वगच्छतां पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ ॥ ५ ॥

पितुर्नयनजेन वारिणा किंचिदुक्षितशिखण्डकावीषत्सिक्तचूडौ । 'शिखा चूडा शिखण्डः स्यात्' इत्यमरः । 'शेषाद्विभाषा' इति कप्रत्ययः । धन्विनौ तावुभौ । पौरदृष्टिभिः कृतानि मार्गतोरणानि संपाद्यानि कुवलयानि ययोस्तौ तथोक्तौ । सबशो निरीक्ष्यमाणावित्यर्थः । तमृषिमन्वगच्छताम् ॥

अन्वयः—पितुः नयनजेन वारिणा किंचित् उक्षितशिखण्डकौ धन्विनौ तौ उभौ पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ तम् ऋषिम् अन्वगच्छताम् ।

व्याख्या—पितुः = दशरथस्य नयनाभ्यां = नेत्राभ्यां जातमिति, तेन नयनजेन वारिणा = अश्रुजलेन किंचित् = ईषत् उक्षितः सिक्तः शिखण्डः = शिखा ययोस्तौ, तथोक्तौ । "शिखा चूडा शिखण्डः स्यादि"त्यमरः, धन्विनौ = धनुष्मन्तौ तौ = रामलक्ष्मणौ उभौ = द्वौ पौराणां = नागरिकाणां दृष्टयः = नेत्राणि, पौरदृष्टयस्ताभिः कृतानि मार्गस्य = पथः तोरणानि = शोभाद्वाराणि (सम्पाद्यानि नीलकमलानीत्यर्थः) ययोस्तौ पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ । तम् = कौशिकमृषिम् अन्वगच्छताम् = अन्वव्रजताम् । सर्वैः आदरेण निरीक्ष्यमाणौ कौशिकमनुजग्मतुरित्यर्थः ।

समासः—किञ्चित् उक्षितः शिखण्डः ययोस्तौ किञ्चिदुक्षितशिखण्डकौ "अत्र समासान्तः कप्रत्ययः" । पौराणां दृष्टयस्ताभिः कृतानि मार्गस्य तोरणानि ययोस्तौ तथोक्तौ ।

हिन्दी—पिता के नेत्रों से गिरे जल (आँसू) से कुछ भीगी शिखा वाले धनुषधारी वे दोनों राजकुमार विश्वामित्र ऋषि के पीछे चले जा रहे थे । उस समय ऐसा लग रहा था, मानो नागरिक जनों के नेत्र कमलों की वन्दनवारों से मार्ग सजाये गये हों । अर्थात् सब के सब साथ एकटक देखने से ऐसा लग रहा था मानो नील कमलों का वन्दनवार सजाया गया है ॥ ५ ॥

लक्ष्मणानुचरमेव राघवं नेतुमैच्छदृषिरित्यसौ नृपः ।
आशिषं प्रयुयुजे न वाहिनीं सा हि रक्षणविधौ तयोः क्षमा ॥ ६ ॥

ऋषिर्लक्ष्मणानुचरमेव लक्ष्मणमात्रानुचरं तं राघवं नेतुमैच्छदिति हेतोरसौ नृप आशिषं प्रयुयुजे प्रयुक्तवान् । वाहिनीं सेनां न प्रयुयुजे न प्रेषितवान् । हि यस्मात्साशीरेव तयोः कुमारयो रक्षणविधौ क्षमा शक्ता ॥

अन्वयः—ऋषिः लक्ष्मणानुचरम् एव राघवं नेतुम् ऐच्छत् , इति असौ नृपः आशिषं प्रयुयुजे, वाहिनीं न प्रयुयुजे, हि सा तयोः रक्षणविधौ क्षमा ।

व्याख्या—ऋषति = जानातीति ऋषिः = विश्वामित्रः अनुचरतीति अनुचरः, लक्ष्मीरस्यास्तीति लक्ष्मणः = सौमित्रिः अनुचरः = अनुगामी यस्य स तं राघवं = रामम् एव केवलं नेतुं = प्राप्तुम् ऐच्छत् = इच्छितवान् इति = हेतोः, असौ नृपः = राजा दशरथः आशिषं = शुभाशंसनं प्रयुयुजे = प्रयुक्तवान् । वाहाः = अश्वाः सन्ति, अस्यां सा वाहिनी तां वाहिनीं = सेनां न प्रयुयुजे = न प्रेषितवान् । रामलक्ष्मणाभ्यामाशीर्वचनमात्रं दत्तवान् राजा सेनान्तु न प्रेषितवान् तद्रक्षणाय, हि = यतः सा = आशीः तयोः = रामलक्ष्मणयोः रक्षणस्य = रक्षायाः विधिः = विधानं तस्मिन् रक्षणविधौ, तयोः रक्षाकरणे, इत्यर्थः । क्षमा = योग्या = समर्था ।

समासः—लक्ष्मणः अनुचरो यस्य स तं लक्ष्मणानुचरम् । रक्षणस्य विधिस्तस्मिन् रक्षणविधौ ।

हिन्दी—महर्षि विश्वामित्र ने केवल राम लक्ष्मण को ही ले जाने की इच्छा की थी, *अतः राजा दशरथ ने आशीर्वाद ही दिया (राम लक्ष्मण को) सेना "उनके साथ" नहीं भेजी । क्योंकि राजा का आशीर्वाद ही उन दोनों की रक्षा करने में समर्थ था ॥ ६ ॥*

मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः ।
रेजतुर्गतिवशात्प्रवर्तिनौ भास्करस्य मधुमाधवाविव ॥ ७ ॥

मातृवर्गस्य चरणान्स्पृशत इति मातृवर्गचरणस्पृशौ । कृतमातृवर्गनमस्काराविन्यर्थः । 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' इति क्विन्प्रत्ययः । तौ महौजसो मुनेः पदवीं प्रपद्य । महौजसो भास्करस्य गतिवशान्मेषादिराशिसंक्रान्त्यनुसारात्प्रवर्तिनौ । मधुमाधवाविव चैत्रवैशाखाविव रेजतुः । 'फणां च सप्तानाम्' इति वैकल्पिकावेत्त्वाभ्यासलोपौ । 'स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधुः' इति 'वैशाखे माधवो राधः' इति चामरः ॥

अन्वयः—मातृवर्गचरणस्पृशौ तौ महौजसः मुनेः पदवीं प्रपद्य, महौजसः भास्करस्य गतिवशात् प्रवर्तिनौ मधुमाधवौ इव रेजतुः ।

व्याख्या—मातॄणां = जननीनां वर्गः = समूहस्तस्य चरणाः = पादाः तान् स्पृशतः इति तौ मातृवर्गचरणस्पृशौ = कृतजननीसमूहप्रणामौ तौ = रामलक्ष्मणौ महत् = प्रभूतम् ओजः तेजो यस्य स तस्य महौजसः मुनेः = विश्वामित्रस्य पद्यते = गम्यते अनया सा पदवी तां पदवीं = मार्गं प्रपद्य = गत्वा प्राप्येत्यर्थः महौजसः = महाप्रकाशस्य भासं = प्रभां करोतीति भास्करस्तस्य भास्करस्य = सूर्यस्य गतीनां = मेषादिराशिसंक्रान्तीनां वशः = अनुसारस्तस्मात्, प्रवर्तिनौ = गतौ मधुः = चैत्रः च माधवः = वैशाखः, चेति तौ मधुमाधवौ, इव = यथा रेजतुः = शुशुभाते, शोभां प्रापतुरित्यर्थः । मधुः = मकरन्दः = पुष्परसोऽस्यास्तीति माधवः । "स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधुरिति, वैशाखे माधवो राधः" इति चामरः ।

समासः—मातॄणां वर्गस्तस्य चरणास्तान् स्पृशतः, इति तौ मातृवर्गचरणस्पृशौ । महत् ओजो यस्य स तस्य महौजसः । गतेः वशस्तस्मात् गतिवशात् । मधुश्च माधवश्चेति—मधुमाधवौ ।

हिन्दी—तीनों माताओं के चरण छूकर (चरणों में प्रणाम कर के) वे दोनों राम लक्ष्मण, महा तेजस्वी मुनि विश्वामित्र के रास्ते पर जाकर (उनके पीछे-पीछे चलते हुवे) ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों महाप्रकाश वाले सूर्य की गति (मेष वृष की संक्रान्ति के अनुसार) के कारण चैत्र तथा वैशाख चल रहे हों ॥ ७ ॥

वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं शैशवाच्चपलमप्यशोभत ।
तोयदागम इवोद्ध्यभिद्ययोर्नामधेयसदृशं विचेष्टितम् ॥ ८ ॥

वीचिलोलभुजयोस्तरङ्गचञ्चलबाह्वोः इदं विशेषणं नदोपमानसिद्ध्यर्थं वेदितव्यम् । तयोश्चपलं चञ्चलमपि गतं गतिः शैशवाद्धेतोरशोभत । किमिव । तोयदागमे वर्षासमये उज्झत्युदकमित्युद्ध्यः ।

भिनत्ति कूलमिति भिद्यः । 'भिद्योद्ध्यौ नदे' इति क्यबन्तौ निपातितौ । उद्ध्यभिद्ययोर्नदविशेषयो-र्नामधेयसदृशं नामानुरूपं विचेष्टितमिव । उदकोज्झनकूलभेदनरूपव्यापार इव । समयोचितं चाप-लमपि शोभत इति भावः ॥

अन्वयः—वीचिलोलभुजयोः तयोः, तोयदागमे उद्ध्यभिद्ययोः नामधेयसदृशं विचेष्टितम् इव चपलम् अपि गतं शैशवात् अशोभत ।

व्याख्या—वयति, ऊयते वा वीचिः । वीचिः = तरंग इव लोलाः = चंचलाः भुजाः = बाहवो ययोस्तौ, तयोः, वीचिलोलभुजयोः तरंगवच्चपलयोरित्यर्थः । तयोः = रामलक्ष्मणयोः चपलं = चञ्चलमपि गतं = गमनम् 'भंगस्तरंग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिरि'त्यमरः । शिशोर्भावः शैशवं तस्मात् शैशवात् = बाल्यात्, तोयदानां = मेघानाम् आगमः, तस्मिन् तोयदागमे = वर्षाकाले, उज्झति उदकमिति उद्ध्यः । भिनत्ति विदारयति कूलमिति भिद्यः । उद्ध्यश्च भिद्यश्चेति उद्ध्य-भिद्यौ = नदविशेषौ, तयोः । नामधेयस्य = नाम्नः सदृशं = तुल्यं, उद्ध्यभिद्येति नाम्नोऽनुरूप-मित्यर्थः । विचेष्टितं = जलोत्सर्गरूपं तटभेदनरूपं च, इव = यथा अशोभत = शुशुभे, रराज । बाल्यकालानुरूपं कुमारयोः चापलमपि शोभते, इति ।

समासः—वीचयः इव लोलाः भुजाः ययोस्तौ, तयोः । तोयदानाम्, आगमस्तस्मिन् तोयदागमे । उद्ध्यश्च भिद्यश्चेत्यनयोः द्वन्द्वस्तयोः उद्ध्यभिद्ययोः । नामधेयेन सदृशमिति तत् नाम-धेयसदृशम् ।

हिन्दी—लहरों के समान चञ्चल भुजाओं वाले उन दोनों राजकुमारों का फुर्तीला चपल (चुलबुला) गमन बचपन के कारण ऐसा मनोहर लग रहा था, मानो वर्षा ऋतु के आने पर (वर्षा के समय) उद्ध्य और भिद्य नाम के दो नद उछलते कूदते और किनारों को तोड़ते हुये जा रहे हों । अर्थात् समय तथा अवस्था के अनुसार चपलता एवं उछल कूद भी सुन्दर लगते हैं ॥ ८ ॥

तौ बलातिबलयोः प्रभावतो विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयोः ।
मम्लतुर्न मणिकुट्टिमोचितौ मातृपार्श्वपरिवर्तिनाविव ॥ ९ ॥

मणिकुट्टिमोचितौ मणिबद्धभूमिसंचारोचितौ तौ मुनिप्रदिष्टयोः कौशिकेनोपदिष्टयोर्बलाति-बलयोर्विद्ययोर्बलातिबलाख्ययोर्मन्त्रयोः प्रभावतः सामर्थ्यान्मातृपार्श्वपरिवर्तिनौ मातृसमीपवर्तिनाविव पथि न मम्लतुः । न म्लानावित्यर्थः । अत्र रामायणश्लोकः—'क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरो-त्तम । बलामतिबलां चैव पठतः पथि राघव' ॥

अन्वयः—मणिकुट्टिमोचितौ तौ मुनिप्रदिष्टयोः बलातिबलयोः विद्ययोः प्रभावतः मातृ-पार्श्वपरिवर्तिनौ इव पथि न मम्लतुः ।

व्याख्या—कुट्टनं कुट्टः । कुट्टेन निर्वृत्तं कुट्टिमम् । "कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः" इति कोषः । मणीनां = रत्नानां कुट्टिमाः = निबद्धभूमयस्तत्र उचितौ = अभ्यस्तौ, इति मणिकुट्टिमोचितौ, रत्नजडितभूमिप्रदेशे संचरितुं योग्यौ, इत्यर्थः तौ = रामलक्ष्मणौ मुनिना = कौशिकेन प्रदिष्टे = उपदिष्टे तयोः । विश्वामित्रदत्तयोरित्यर्थः । बला = एतन्नामकमन्त्रः, अतिबला = शक्ति-

शालिनी विद्या मंत्रो वा। बला च अतिबला चेति बलातिबले, तयोः, बलातिबलयोः विद्ययोः = मंत्रयोः, क्षुत्पिपादिविनाशकमंत्रयोरित्यर्थः प्रभावतः = सामर्थ्यात्, मातॄणां पार्श्वे = समीपे परिवर्तिनौ = सञ्चरणशीलौ, इव = यथा पथि = मार्गे न परिमम्लतुः = न परिजग्लतुः, क्षुत्पिपासादिना न म्लानौ, इत्यर्थः।

समास—मणीनां कुट्टिमास्तत्र उचितौ तौ। मुनिना प्रदिष्टे, मुनिप्रदिष्टे, तयोः। बला च अतिबला च ते बलातिबले, तयोः। मातॄणां पार्श्वं मातृपार्श्वं, तत्र प्रवर्तेते, तच्छीलौ, तौ मातृपार्श्वप्रवर्तिनौ।

हिन्दी—मणियों से जड़े हुवे फर्श पर चलने के अभ्यासी राम लक्ष्मण, विश्वामित्र *मुनि की सिखाई हुई बला और अतिबला नामक विद्या (मंत्र) के प्रभाव से (जंगल के रास्ते में)* मुरझाए नहीं। "वे ऐसे प्रसन्न थे" मानों अपनी माताओं के आसपास अपने भवन में घूम रहे हो। दोनों राजकुमार कभी घर से बाहर नहीं निकले थे, इसलिये मार्ग में ही मुनि ने बला और अतिबला का उपदेश कर दिया था। इसके प्रभाव से भूख, प्यास, थकावट कुछ भी नहीं होती है ॥ ९ ॥

पूर्ववृत्तकथितैः पुराविदः सानुजः पितृसखस्य राघवः।
उह्यमान इव वाहनोचितः पादचारमपि न व्यभावयत् ॥ १० ॥

वाहनोचितः सानुजो राघवः। पुराविदः पूर्ववृत्ताभिज्ञस्य पितृसखस्य मुनेः पूर्ववृत्तकथितैः पुरावृत्तकथाभिरुह्यमान इव वाहनेन प्राप्यमाण इव। वहेर्धातोः कर्मणि शानच्। 'उह्यमानः' इत्यत्र दीर्घादिरपपाठः। दीर्घप्राप्त्यभावात्। पादचारमपि न व्यभावयन्न ज्ञातवान् ॥

अन्वयः—वाहनोचितः सानुजः राघवः, पुराविदः पितृसखस्य "मुनेः" पूर्ववृत्तकथितैः उह्यमानः इव पादचारम् अपि न व्यभावयत्।

व्याख्या—वाहयन्तीति वाहनानि। वाहनैः = हस्तितुरंगमादिभिः उचितः = अभ्यस्तः, संचरितुमिति यावत्, स वाहनोचितः, अनुजेन सह सानुजः = लक्ष्मणसहितः, राघवः = रामचन्द्रः पुरा = पूर्वकालीनं वेत्ति = जानातीति पुराविद्, तस्य पुराविदः = पुराणेतिहासज्ञस्य पितुः = जनकस्य दशरथस्येत्यर्थः सखा = सुहृत्, तस्य पितृसखस्य मुनेः पूर्वं = पुरा वृत्तानि = जातानि तेषां कथितानि = कथाः तैः पूर्ववृत्तकथितैः प्राचीनकथाकथनेनेत्यर्थः। उह्यत इति उह्यमानः = प्राप्यमाणः इव = यथा, पादाभ्यां = चरणाभ्यां चारः = गमनं तं पादचारमपि न व्यभावयत् = न ज्ञातवान्। तेन पुराणेतिहासाख्यायिकादिश्रवणकौतूहलेन पादाभ्यां गमनमपि न ज्ञातमित्यर्थः।

समासः—वाहनैः 'संचरितुम्' उचितः, वाहनोचितः। अनुजेन सहितः सानुजः। पुरा वेत्तीति पुरावित् तस्य पुराविदः। पितुः सखा, तस्य पितृसखस्य। पूर्वं वृत्तानि तेषां कथितानि तैः पूर्ववृत्तकथितैः। पादाभ्यां चारस्तं पादचारम्।

हिन्दी—"दिव्य" रथों पर चलनेवाले राम लक्ष्मण, पुरानी कथाओं के ज्ञाता (जानकार) अपने पिता के मित्र विश्वामित्र की प्राचीन इतिहास की कथाओं से ले जाए जाते हुवे से, पैदल चलना भी नहीं जान पाए। अर्थात् मुनि के मुख से सुन्दर मनोहर कथा मुग्ध होकर सुनते हुवे चल रहे थे। अतः उन्हें पैदल चलना बिलकुल भी न खटक रहा था ॥१०॥

तौ सरांसि रसवद्भिरम्बुभिः कूजितैः श्रुतिसुखैः पतत्त्रिणः ।
वायवः सुरभिपुष्परेणुभिश्छायया च जलदाः सिषेविरे ॥ ११ ॥

तौ राघवौ कर्मभूतौ सरांसि कर्तृणि रसवद्भिर्मधुरैरम्बुभिः सिषेविरे । पतत्त्रिणः पक्षिणः । सुखयन्तीति सुखानि । पचाद्यच् । श्रुतीनां सुखानि । तैः कूजितैः । वायवः सुरभिपुष्परेणुभिः । जलदाश्छायया च सिषेविरे इति सर्वत्र संबध्यते ॥

अन्वयः—तौ सरांसि रसवद्भिः अम्बुभिः, पतत्त्रिणः श्रुतिसुखैः कूजितैः, वायवः सुरभिपुष्परेणुभिः, जलदाः छायया च सिषेविरे ।

व्याख्या—तौ = रामलक्ष्मणौ "कर्मभूतौ" स्त्रियन्ते, इति सरांसि = तडागाः "इदं कर्तृपदम्", रसः = स्वादः अस्ति येषु तानि रसवन्ति, तैः रसवद्भिः मधुरैः अम्बुभिः = जलैः सिषेविरे । पतत्राणि = पत्राणि सन्ति येषान्ते पतत्त्रिणः = पक्षिणः श्रुतीनां = कर्णानां सुखानि = सुखकराणि तैः, कूजितैः = अव्यक्तध्वनिभिः सिषेविरे । वायवः = मरुतः सुरभीणि = सुगन्धीनि यानि पुष्पाणि = कुसुमानि तेषां रेणवः = परागाः तैः । 'सुरभिर्घ्राणतर्पणः । इष्टगन्धः सुगन्धिः स्यादि'त्यमरः । 'रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः परागः सुमनोरजः' इत्यमरः । जलानि ददतीति जलदाः = मेघाश्च छायया = अनातपेन सिषेविरे = सेवितवन्तः । मार्गे गच्छतोः रामलक्ष्मणयोः सरोभिः, पक्षिभिः, पवनैः, मेघैश्च सेवा कृता इति भावः ।

समासः—श्रुतीनां सुखानि श्रुतिसुखानि तैः श्रुतिसुखैः । सुरभीणि यानि पुष्पाणि तेषां रेणवस्तैः सुरभिपुष्परेणुभिः ।

हिन्दी—सरोवरों ने मधुर स्वाद वाला जल पिलाकर और पक्षियों ने कानों को सुखकर कलरव से (मधुर अस्पष्ट ध्वनि से) तथा वायु ने सुगन्धित पराग से, और बादलों ने शीतल छाया से "मार्ग में" उन दोनों राजकुमारों की सेवा की ॥ ११ ॥

नाम्भसां कमलशोभिनां तथा शाखिनां च न परिश्रमच्छिदाम् ।
दर्शनेन लघुना यथा तयोः प्रीतिमापुरुभयोस्तपस्विनः ॥ १२ ॥

तप एषामस्तीति तपस्विनः । 'तपःसहस्राभ्यां विनीनी' इति विनिप्रत्ययः । लघुनेष्टेन । 'त्रिष्विष्टेऽल्पे लघुः' इत्यमरः । तयोरुभयोः कर्मभूतयोः । दर्शनेन यथा प्रीतिमापुः तथा कमलशोभिनामम्भसां दर्शनेन नापुः । परिश्रमच्छिदां शाखिनां दर्शनेन च नापुः ॥

अन्वयः—तपस्विनः लघुना तयोः दर्शनेन यथा प्रीतिम् आपुः तथा कमलशोभिनाम् अम्भसां, परिश्रमच्छिदां शाखिनां च, दर्शनेन प्रीतिं न आपुः ।

व्याख्या—तपः अस्ति येषां ते तपस्विनः = तापसाः "तपस्वी तापसः पारिकाङ्क्षी" इत्यमरः । लघुना = इष्टेन "त्रिष्विष्टेऽल्पे लघुः" इत्यमरः । तयोः = उभयोः = द्वयोः (रामलक्ष्मणयोः) दर्शनेन = अवलोकनेन यथा = यादृशीं प्रीतिं = प्रसन्नतां सन्तोषमित्यर्थः आपुः = प्राप्तवन्तः । तथा = तादृशीं कं = जलं, अलन्ति = भूषयन्तीति, तैः । कमलैः = पद्मैः वा शोभन्ते = शालन्ते, इति कमलशोभिन स्तेषां कमलशोभिनाम् , "तथा" अम्भसां = जलानां, सरोवराणामिति यावत् । दर्शनेन, "तथा" परिश्रमं = खेदं छिन्दन्ति = दूरीकुर्वन्तीति परिश्रमच्छिदस्तेषां

परिश्रमच्छिदाम् शाखाः = लताः सन्ति, एषान्ते शाखिनस्तेषां शाखिनां = वृक्षाणां च दर्शनेन प्रीतिं न आपुः, "समे शाखालते" इत्यमरः ।

समासः—कमलैः शोभिनस्तेषां कमलशोभिनाम् । परिश्रमस्य छिदस्तेषां परिश्रमच्छिदाम् ।

हिन्दी—कमलों से सुशोभित जलभरे सरोवरों के, तथा थकावट को हरनेवाले हरे-भरे वृक्षों के देखने से 'भी' तपस्विजनों ने वैसी प्रसन्नता नहीं प्राप्त की थी, जैसी कि उन दोनों राम लक्ष्मण के दर्शन से प्रसन्नता तथा सन्तुष्टि प्राप्त की थी ॥ १२ ॥

स्थाणुदग्धवपुषस्तपोवनं प्राप्य दाशरथिरात्तकार्मुकः ।
विग्रहेण मदनस्य चारुणा सोऽभवत्प्रतिनिधिर्न कर्मणा ॥ १३ ॥

स आत्तकार्मुकः । दशरथस्यापत्यं पुमान्दाशरथी रामः । 'अत इञ्' इतीञ्प्रत्ययः । स्थाणुर्हरः । 'स्थाणुः कीले हरे स्थिरे' इति विश्वः । तेन दग्धवपुषो मदनस्य तपोवनं प्राप्य चारुणा विग्रहेण कायेन । 'विग्रहः समरे काये' इति विश्वः । प्रतिनिधिः प्रतिकृतिः सदृशोऽभवत्कर्मणा न पुनः देहेन मदनसुन्दर इति भावः ॥

अन्वयः—सः आत्तकार्मुकः दाशरथिः स्थाणुदग्धवपुषः मदनस्य तपोवनं प्राप्य, चारुणा विग्रहेण प्रतिनिधिः अभवत् कर्मणा न अभवत् ।

व्याख्या—आत्तं = गृहीतं कार्मुकं = धनुर्येन सः, आत्तकार्मुकः सः = पूर्वोक्तः दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः = रामः । तिष्ठतीति स्थाणुः । स्थाणुना = शिवेन दग्धं = भस्मीकृतं वपुः = शरीरं यस्य स तस्य यथोक्तस्य "स्थाणुः कीले हरे पुमान् । अस्त्री ध्रुवे" इति विश्वकोषः । मदनस्य = कन्दर्पस्य तपसः वनं तपोवनं प्राप्य = गत्वा चरति चित्ते तत् चारु । तेन चारुणा = सुन्दरेण विग्रहेण = शरीरेण प्रतिनिधीयते = सदृशीक्रियते, प्रतिनिधिः = प्रतिकृतिः अभवत् = जातः किन्तु कर्मणा = कार्येण न सदृशः । शरीरेणैव मदनसुन्दरः । न तु तत्कार्यकारीति भावः ।

समासः—स्थाणुना दग्धं वपुर्यस्य स तस्य स्थाणुदग्धवपुषः । तपसः वनमिति तत् तपोवनम् । आत्तं कार्मुकं येन सः ।

हिन्दी—धनुष को लिये हुवे दशरथ के पुत्र राम तपोवन में पहुँचकर उस कामदेव के सुन्दर शरीर से तो प्रतिनिधि = सदृश हो गये, किन्तु उसके कार्य के प्रतिनिधि नहीं हुवे । जिसके शरीर को भगवान् शिव ने जला दिया (भस्म कर दिया) था । अर्थात् चापधारी श्रीराम सौन्दर्य में तो, कामदेव दीख रहे थे किन्तु मदन के कार्य से नहीं ॥ १३ ॥

तौ सुकेतुसुतया खिलीकृते कौशिकाद्विदितशापया पथि ।
निन्यतुः स्थलनिवेशिताटनी लीलयैव धनुषी अधिज्यताम् ॥ १४ ॥

अत्र रामायणवचनम्—'अगस्त्यः परमक्रुद्धस्ताडकामभिशप्तवान् । पुरुषादी महायक्षी विकृता विकृतानना । इदं रूपमपाहाय दारुणं रूपमस्तु ते ॥' इति । तदेतदाह—विदितशापयेति । कौ-

शिकादाख्यातुः । 'आख्यातोपयोगे' इत्यपादानात्पञ्चमी । विदितशापया सुकेतुसुतया ताडकया खिलीकृते पथि । 'खिलमप्रहतं स्थानम्' इति हलायुधः । तौ रामलक्ष्मणौ । स्थले निवेशिते अटनी धनुःकोटी याभ्यां तौ तथोक्तौ । 'कोटिरस्याटनी' इत्यमरः । लीलयैव धनुषी । अधिकृते ज्ये मौर्व्यौ ययोस्ते अधिज्ये । 'ज्या मौर्वीमातृभूमिषु' इति विश्वः । तयोर्भावस्तत्तामधिज्यतां निन्यतुर्नीतवन्तौ । नयतिर्द्विकर्मकः ॥

अन्वयः—कौशिकात् विदितशापया सुकेतुसुतया खिलीकृते पथि तौ स्थलनिवेशिताटनी लीलया एव धनुषी अधिज्यतां निन्यतुः ।

व्याख्या—कुशिकस्यापत्यं पुमान् कौशिकः कौशिकात् = विश्वामित्रात्, (परमक्रुद्धेन अगस्त्यमुनिना, त्वं पुरुषादी घोररूपा विकृतानना । विकृता सती दारुणं रूपं दारुणं कर्म चास्थायात्र वने विचर, इति ताडका अभिशप्ता) इति आख्यातुरित्यर्थः विदितः = ज्ञातः शापः = आक्रोशः यस्याः सा तया । सुकेतोः सुता = पुत्री तया सुकेतुसुतया = ताडकया, न खिलः अखिलः । अखिलः खिलः संपद्यमानः कृतः खिलीकृतस्तस्मिन् खिलीकृते = अवरुद्धे जनसंचारशून्ये कृते इत्यर्थः, पथि = मार्गे तौ = रामलक्ष्मणौ स्थले = भूमौ निवेशिते = स्थापिते अटनी = धनुःकोटी याभ्यां तौ स्थलनिवेशिताटनी रामलक्ष्मणयोः विशेषणमिदम् । "कोटिरस्याटनी" इत्यमरः । लीलयैव = अनायासेनैव धनुषी = चापे अधिकृते = आरोपिते ज्ये = "मौर्व्यौ धनुर्गुणौ", इत्यर्थः ययोस्ते अधिज्ये, अधिज्ययोर्भावः अधिज्यता । ताम् अधिज्यतां "मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः" इत्यमरः । निन्यतुः = नीतवन्तौ ।

समासः—विदितः शापो यस्याः सा, तया विदितशापया । सुकेतोः सुता तया, सुकेतुसुतया । स्थले निवेशिते अटनी याभ्यां तौ स्थलनिवेशिताटनी ।

हिन्दी—विश्वामित्रजी से जान लिया शाप जिसका, ऐसी सुकेतु की कन्या ताड़का से उजाड़े तथा रोके (अवरुद्ध) हुवे, मार्ग में जमीन में धनुष के मुड़े शिरों को रखकर उन दोनों राजकुमारों ने अनायास ही धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) को चढ़ा लिया था ।

विशेष—अगस्त्यमुनि ने सुकेतु की कन्या को शाप दे दिया था कि तुम अपने इस सुन्दर रूपको त्याग कर विकृत मुखवाली तथा मनुष्यों को खानेवाली घोररूपा राक्षसी हो जाओ । इस शाप को मुनि विश्वामित्र ने मार्ग में ही चलते-चलते श्रीरामलक्ष्मण को बता दिया था । इसलिये उसके स्थान पर पहुँचते ही उन्होंने एक ही हाथ से धनुष के किनारे को जमीन में टेक कर प्रत्यञ्चा डोरी को चढ़ा लिया था, और इससे बड़े जोर की टंकार हुई । इसे सुनकर ताड़का दौड़ कर आ गई थी ॥ १४ ॥

ज्यानिनादमथ गृह्णती तयोः प्रादुरास बहुलक्षपाछविः ।
ताडका चलकपालकुण्डला कालिकेव निबिडा बलाकिनी ॥ १५ ॥

अथ तयोर्ज्यानिनादं गृह्णती जानती । शृण्वतीत्यर्थः । बहुलक्षपाछविः कृष्णपक्षरात्रिवर्णा । 'बहुलः कृष्णपक्षे च' इति विश्वः । चले कपाले एव कुण्डले यस्याः सा तथोक्ता ताडका । निबिडा सान्द्रा बलाकिनी बलाकावती । 'व्रीह्यादिभ्यश्च' इतीनिः । कालिकेव घनावलीव । 'कालिका योगिनीभेदे कार्ष्ण्ये गौर्यां घनावलौ' इति विश्वः । प्रादुरास प्रादुर्बभूव ॥

अन्वयः—अथ तयोः ज्यानिनादं गृह्णती बहुलक्षपाछविः चलकपालकुण्डला ताडका निविडा बलाकिनी कालिका इव प्रादुरास ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् तयोः = कुमारयोः ज्यायाः = धनुर्गुणस्य निनादः = ध्वनिस्तं गृह्णती = जानती शृण्वती बहुलस्य = कृष्णपक्षस्य क्षपा = रात्रिः तस्याः छविः = कान्तिरिव छविः यस्या सा बहुलक्षपाछविः । बहून् लातीति "बहुलः कृष्णपक्षे चे"ति कोषः । कं पालयतीति कपालः = शिरोस्थिखण्डः । कुण्डं = कुण्डाकारं लातीति कुण्डलम् । चले = चञ्चले कपाले = कर्परे एव कुण्डले = कर्णभूषणे यस्याः सा चलकपालकुण्डला । "स्यात् कर्परः कपालोऽस्त्री" "कुण्डलं कर्णवेष्टनम्" इति चामरः । ताडका = एतन्नामराक्षसी निविडा = सान्द्रा घना, इत्यर्थः बलाका = बकपंक्तिः अस्त्यस्याः सा बलाकिनी = बलाकावती, कालो वर्णोऽस्त्यस्याः सा कालिका = मेघावलिः इव = यथा प्रादुरास = प्रादुर्बभूव । "मेघजाले च कालिका" इत्यमरः ।

समासः—ज्यायाः निनादस्तम् । बहुलस्य क्षपा, तस्याः छविरिव छविः यस्याः सा । चले कपाले, एव कुण्डले यस्याः सा ।

हिन्दी—इसके पश्चात् धनुष की डोरी की टंकार को सुनते ही, कृष्ण पक्ष की (अमावस्या) रात्रि के समान घोर काली, और हिलते हुवे नरमुण्ड के कुण्डल "कानों में" पहने हुई, ताड़का रामलक्ष्मण के सामने ऐसी प्रगट हुई मानों बगुलों, सारसों की पंक्तिवाली घनघोर काली घटा (मेघपंक्ति) हो ॥ १५ ॥

तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया ।
अभ्यभावि भरताग्रजस्तया वात्ययेव पितृकाननोत्थया ॥ १६ ॥

तीव्रवेगेन धुताः कम्पिता मार्गवृक्षा यया तथोक्तया । प्रेतचीवराणि वस्त इति प्रेतचीवरवाः । तया प्रेतचीवरवसा । वसतेराच्छादनार्थात्क्विप् । स्वनेन सिंहनादेनोग्रया तया ताडकया । पितृकानने स्मशान उत्थोत्पन्ना । 'आतश्चोपसर्गे' इत्युत्पूर्वात्तिष्ठतेः कर्तरि क्तप्रत्ययः । तया वात्ययेव वातसमूहेनेव । 'पाशादिभ्यो यः' इति यः । भरताग्रजो रामोऽभ्यभाव्यभिभूतः । कर्मणि लुङ् । तीव्रवेगेत्यादिविशेषणानि वात्यायामपि योज्यानि ॥

अन्वयः—तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया प्रेतचीवरवसा स्वनोग्रया तया पितृकाननोत्थया वात्यया इव भरताग्रजः अभ्यभावि ।

व्याख्या—तीव्रः = अतिशयः यः वेगः = जवः, तेन धुताः = कम्पिताः मार्गस्य = अध्वनः वृक्षाः = पादपाः यया सा तया, तथोक्तया, "वेगः प्रवाहजवयोरपि" इत्यमरः । प्रेतानां = मृतानां चीवराणि = जीर्णशीर्णवस्त्राणि वस्ते = आच्छादयति, (परिदधाति) इति प्रेतचीवरवाः, तया प्रेतचीवरवसा, स्वनेन = सिंहनादेन उग्रा = उत्कटा = रौद्रा, इति यावत् तया स्वनेनोग्रया, तया = ताडकया, पितॄणां काननं = वनमिति पितृकाननं = श्मशानं, शवदाहस्थानमित्यर्थः, तस्मिन् उत्था = उत्पन्ना, तया पितृकाननोत्थया, वातानां = वायूनां समूहः वात्या तया वात्यया इव = यथा भरतस्य अग्रे पूर्वं जातः = उत्पन्नः, भरताग्रजः = रामः अभ्यभावि =

अभिभूतः। अत्र वात्यापि तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षा, प्रेतचीवरवाः, स्वनोग्रा भवतीति बोध्यम्। शब्दार्थस्तु पक्षद्वयेऽपि समान एवेति ॥

समासः—तीव्रश्चासौ वेगस्तेन धुताः मार्गस्य वृक्षा यया सा, तया, तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया। प्रेतानां चीवराणि वस्ते या प्रेतचीवरवाः, तथा प्रेतचीवरवसा। स्वनेन उग्रा, तया। भरतस्य अग्रजः, भरताग्रजः। पितॄणां काननं तत्र उत्थितया पितृकाननोत्थया।

हिन्दी—प्रबल वेग से मार्ग के वृक्षों को कंपाती हुई, मुर्दों के फटे पुराने कफन को पहने हुई, "और अपनी" घोर सिंहगर्जना करती हुई ताड़का राक्षसी ने, श्मशान से उठे बवण्डर के समान भरतजी के बड़े भाई राम को अभिभूत कर दिया। अर्थात् मुर्दों के अरण्य (श्मशान) से उठी आँधी के भयंकर रूप वाली ताड़का ने श्रीराम को आकर घेर (लिया) ॥ १६ ॥

उद्यतैकभुजयष्टिमायतीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम्।
तां विलोक्य वनितावधे घृणां पत्रिणा सह मुमोच राघवः ॥ १७ ॥

उद्यतोन्नमितैको भुज एव यष्टिर्यस्यास्ताम्। आयतीमायान्तीम्। इणो धातोः शतरि 'उगितश्च' इति ङीप्। श्रोणिलम्बिनी पुरुषाणामन्त्राण्येव मेखला यस्यास्ताम्। इति विशेषणद्वयेनास्यातताथित्वं सूचितम्। अत एव तां विलोक्य राघवो वनितावधे स्त्रीवधनिमित्ते घृणां जुगुप्सां करुणां वा। 'जुगुप्साकरुणे घृणे' इत्यमरः। पत्रिणेषुणा सह। 'पत्री रोप इषुर्द्वयोः' इत्यमरः। मुमोच मुक्तवान्। आततायिवधे मनुः—'आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥' इति ॥

अन्वयः—उद्यतैकभुजयष्टिम् आयतीं श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम् तां विलोक्य राघवः वनितावधे घृणां पत्रिणा सह मुमोच।

व्याख्या—उद्यता = उन्नमिता, ऊर्ध्वं कृता, एकः भुजः = बाहुः एव यष्टिः यष्टिका = लगुडः यस्याः सा ताम्, उद्यतैकभुजयष्टिम्। आयतीम् = आगच्छन्तीम्। पुषाणां = मनुष्याणाम् अन्त्राणि = पुरीतन्ति, इति पुरुषान्त्राणि। "अन्त्रं पुरीतत्" इत्यमरः। श्रोणौ = कट्यां लम्बते, इति श्रोणिलम्बिनी। श्रोणिलम्बिनी = कटिप्रदेशावस्रंसनी पुरुषान्त्राणि एव मेखला = रशना यस्याः सा तां श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम्। "मेखला काञ्ची सप्तकी रशना" इत्यमरः। एतेन विशेषणद्वयेन ताड़कायाः आततायित्वं प्रकटितम्। अत एव तां = ताडकां विलोक्य = दृष्ट्वा राघवः = रामचन्द्रः वनितायाः = स्त्रियः वधः = मारणं, तस्मिन् वनितावधे घृणां जुगुप्सां = दयां वा पत्रमस्यास्तीति पत्री तेन पत्रिणा = बाणेन सह मुमोच = तत्याज। "जुगुप्सा करुणे घृणे", "पत्रिणौ शरपक्षिणौ" इति चामरः। ताडकायाः स्त्रीत्वेऽपि आततायित्वेन तस्याः वधे न दोषः, "नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन" मनुवचनादिति भावः ॥

समासः—उद्यता एकः भुजः एव यष्टिः यस्याः सा ताम् उद्यतैकभुजयष्टिम्। श्रोणौ लम्बिनी पुरुषाणाम् अंत्राणि एव मेखला यस्याः सा तां श्रोणिलम्बिपुरुषान्त्रमेखलाम्। वनितायाः वधः, तस्मिन् वनितावधे।

हिन्दी—अपनी एक बाँहरूपी लाठी को ऊपर उठाए हुई और कमर में मनुष्यों की अँतड़ियों (आँतों) की तगड़ी लटकाए हुई, "तथा अपनी ओर" आती हुई ताड़का को देख कर रामने, स्त्री के मारने में घृणा व दया को बाण के साथ ही छोड़ दिया। अर्थात् घृणा व दया को त्यागकर एक बाण ताड़का के ऊपर छोड़ दिया।

विशेष—स्त्री को मारना धर्मशास्त्र के विरुद्ध है। तथा मनुष्य स्त्री को मारने में घृणा स्त्री के प्रति दया भाव रखता है फिर भी श्रीराम ने ताड़का को मार दिया, घृणा दया नहीं की, क्योंकि ताड़का आततायी थी, और आततायी को मारना शास्त्र संमत है। मनु का वचन है कि आततायी को सामने आते ही मार डालना चाहिये, इसमें कोई दोष नहीं है। अतः रामने भी घृणा व दया छोड़ कर ताड़का को मारा था। 'आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्' इति स्मृतिः ॥ १७ ॥

यच्चकार विवरं शिलाघने ताडकोरसि स रामसायकः ।
अप्रविष्टविषयस्य रक्षसां द्वारतामगमदन्तकस्य तत् ॥ १८ ॥

स रामसायकः शिलावद्घने सान्द्रे ताडकोरसि यद्विवरं रन्ध्रं चकार तद्विवरं रक्षसामप्रविष्टविषयस्य। अप्रविष्टरक्षोदेशस्येत्यर्थः। सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः। 'विषयः स्यादिन्द्रियार्थे देशे जनपदेऽपि च' इति विश्वः। अन्तकस्य यमस्य द्वारतामगमत्। इयं प्रथमा रक्षोमृतिरिति भावः ॥

अन्वयः—सः रामसायकः शिलाघने ताडकोरसि यत् विवरं चकार, तत् रक्षसाम् अप्रविष्टविषयस्य अन्तकस्य द्वारताम् अगमत् ।

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः स्यति = अन्तं करोतीति सायकः। रामस्य सायकः = शरः, इति रामसायकः "शरे खड्गे च सायकः" इत्यमरः। शिलावत् = पाषाणवत् घनं = सान्द्रं, दृढमिति यावत्, इति शिलाघनं तस्मिन् शिलाघने। "घनः सान्द्रे दृढे" इति हैमः। ताडकाया उरः = वक्षस्थलं, तस्मिन् ताडकोरसि यत् विवरं = छिद्रं बिलमित्यर्थः चकार = कृतवान्। तद् = विवरं रक्षन्त्येभ्यो रक्षांसि तेषां रक्षसां = राक्षसानाम् न प्रविष्टः विषयः = देशः येन सोऽप्रविष्टविषयस्तस्य अप्रविष्टविषयस्य, राक्षसदेशेऽप्रविष्टस्येत्यर्थः, अन्तं करोति, अन्तयतीति अन्तकस्तस्य अन्तकस्य = यमराजस्य द्वारस्य भावः द्वारता तां द्वारतां = प्रतिहारताम् अगमत् = अव्रजत्। इदं प्रथमं राक्षसमरणमिति भावः।

समासः—रामस्य सायकः, रामसायकः। शिलावत् घनमिति शिलाघनं तस्मिन् शिलाघने। ताडकायाः उरः, तस्मिन् ताडकोरसि। न प्रविष्टः अप्रविष्टः, अप्रविष्टः विषयो येन स तस्य अप्रविष्टविषयस्य, अत्र सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः।

हिन्दी—राम के उस बाण ने पत्थर की चट्टान के सदृश कठोर ताड़का की छाती में जो बिल (छेद) किया, वही छेद, राक्षसों के देश में प्रवेश न पाने वाले यमराज के लिये द्वार बन गया। अर्थात् अभी तक यमराज राक्षसों को नहीं मार सकते थे, अब रामचन्द्रजी ने मार्ग खोल दिया। और यह प्रथम राक्षस मृत्यु है ॥ १८ ॥

बाणभिन्नहृदया निपेतुषी सा स्वकाननभुवं न केवलाम् ।
विष्टपत्रयपराजयस्थिरां रावणश्रियमपि व्यकम्पयत् ॥ १९ ॥

बाणभिन्नहृदया निपेतुषी निपतिता सती । 'क्वसुश्च' इति क्वसुप्रत्ययः । 'उगितश्च' इति ङीष् । सा केवलामेकाम् । 'निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्गं त्वेककृत्स्नयोः' इत्यमरः । स्वकाननभुवं न व्यकम्पयत् । किंतु विष्टपत्रयस्य लोकत्रयस्य पराजयेन स्थिरां रावणश्रियमपि व्यकम्पयत् । ताडकावधश्रवणेन रावणस्यापि भयमुत्पन्नमिति भावः ॥

अन्वयः—बाणभिन्नहृदया निपेतुषी सती सा, केवलां स्वकाननभुवं न व्यकम्पयत् । "किन्तु" विष्टपत्रयपराजयस्थिरां रावणश्रियम् अपि व्यकम्पयत् ।

व्याख्या—बाणेन = शरेण भिन्नं = विदीर्णं हृदयं = वक्षस्थलं यस्याः सा बाणभिन्नहृदया । निपेतुषी = निपतिता सती, मृत्वा निपतन्ती सतीत्यर्थः । सा = ताडका केवलाम् = एकाम् । कानयति = दीपयति स्मरादि तत् काननम् । स्वस्य = ताडकायाः काननं = वनं तस्य भूः = भूमिस्तां स्वकाननभुवं न व्यकम्पयत् = न कम्पयामास, चालयामासेत्यत्यर्थः । किन्तु विशन्त्यस्मिन् सुकृतिनः, तत् विष्टपं । विष्टपानां = लोकानां त्रयमिति विष्टपत्रयं, तस्य पराजयः = पराभवः, रणे भंग इत्यर्थः तेन स्थिरा = दृढा तां विष्टपत्रयपराजयस्थिराम् । "लोको विष्टपं भुवनं जगत्" "रणे भंगः पराजयः" इति चामरः । रावणस्य = दशाननस्य श्रीः = राज्यलक्ष्मीस्तां रावणश्रियमपि व्यकम्पयत् = कम्पितवती । ताडकावधं श्रुत्वा रावणोऽपि भयाक्रान्तो बभूवेति भावः ।

समासः—बाणेन भिन्नं हृदयं यस्याः सा बाणभिन्नहृदया । स्वस्य काननं तस्य भूस्तां स्वकाननभुवम् । विष्टपानां त्रयं विष्टपत्रयं, तस्य पराजयस्तेन स्थिरा, तां विष्टपत्रयपराजयस्थिराम् । रावणस्य श्रीस्तां रावणश्रियम् ।

हिन्दी—"राम के" बाण से टुकड़े-टुकड़े हुवे हृदय (छाती) वाली, "अतएव" गिरती हुई ताड़का ने, अपने जंगल (ताड़कावन) की जमीन को ही नहीं हिला दिया था, अपितु तीनों लोकों को जीतने से जमी हुई (अटल हुई) रावण की राज्यलक्ष्मी को भी हिला दिया । अर्थात् ताड़का के मरने से रावण भी भयभीत हो उठा था ॥ १९ ॥

अत्र ताडकाया अभिसारिकायाः समाधिरभिधीयते—

राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी ।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥ २० ॥

सा निशासु चरतीति निशाचरी राक्षसी । अभिसारिका च । दुःसहेन सोढुमशक्येन राम एव मन्मथः । अन्यत्र रामोऽभिरामो मन्मथः । तस्य शरेण हृदय उरसि मनसि च । 'हृदयं मनउरसोः' इति विश्वः । ताडिता विद्धाङ्गी गन्धवद्दुर्गन्धि यद्रुधिरमसृक्तदेव चन्दनं तेनोक्षिता लिप्ता । अपरत्र गन्धवती सुगन्धिनी ये रुधिरचन्दने कुङ्कुमचन्दने ताभ्यामुक्षिता । 'रुधिरं कुङ्कुमासृजोः' इत्युभयत्रापि विश्वः । जीवितेशस्यान्तकस्य प्राणेश्वरस्य च वसतिं जगाम ॥

अन्वयः—सा निशाचरी दुःसहेन राममन्मथशरेण हृदये ताडिता, गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम ।

व्याख्या—सा नितरां श्यन्ति = तनूकुर्वन्ति व्यापारान्, इति निशाः । निशासु = रात्रिषु चरति, इति निशाचरी = राक्षसी ताडका, अभिसारिका च, अभिसारिकापि रात्रौ अभिसाराय गच्छतीति प्रसिद्धमेव । दुःखेन सह्यते, इति दुःसहस्तेन दुःसहेन = सोढुमशक्येन रामः एव मन्मथः = कामः, सौन्दर्येणेत्यर्थः । राममन्मथस्य शरः = बाणस्तेन । अन्यत्र रामः = अभिरामः यो मन्मथस्तस्य शरेण = कुसुमबाणेन, हृदये, वक्षस्थले, अन्यत्र मनसि च ताडिता = विद्धा । गन्धोऽस्यास्तीति गन्धवत् = दुर्गन्धि यत् रुधिरं = रक्तम्, एव चन्दनं = रक्तचन्दनं तेन उक्षिता = लिप्ता । अभिसारिकापक्षे तु—रुधिरं = कुंकुमं च चन्दनं चेति रुधिरचन्दने । गन्धवती = सुगन्धिनी च ते रुधिरचन्दने इति, "रुधिरोऽङ्गारके पुंसि क्लीबं तु कुंकुमासृजोः" इति मेदिनी । जीवितानां जीवनानाम् ईशः = स्वामी तस्य = यमस्य वसतिः = स्थानं तां जीवितेशवसतिं = यमलोकम् । अभिसारिकापक्षे—जीवितेशस्य = प्राणेश्वरस्य वसतिं = गृहं जगाम = गता, ताडका मृत्वा यमलोकं गता । नायिका च प्राणेश्वरसमीपं प्राप्तेत्यर्थः ।

समासः—राम एव मन्मथः राममन्मथस्तस्य शरस्तेन राममन्मथशरेण । रामश्चासौ *मन्मथस्तस्य शरस्तेनेति द्वितीयपक्षे । गन्धवत् यत् रुधिरं, गन्धवद्रुधिरं, तदेव चन्दनं तेन* उक्षिता इति गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता । पक्षे-रुधिरञ्च चन्दनं चेति रुधिरचन्दने । गन्धवती ये रुधिरचन्दने, गन्धवद्रुधिरचन्दने, ताभ्यामुक्षिता, तथोक्ता । जीवितेशस्य वसतिस्तां जीवितेशवसतिम् ।

हिन्दी—असह्य कठोर राम के बाण से छाती में विन्धने से मरी हुई राक्षसी, दुर्गन्ध भरे खून से सनी (भींगी) हुई इस प्रकार यमलोक को चली गई, जैसे अभिराम काम के पुष्पबाण से घायल हुई अभिसारिका अपने प्राणप्रिय प्राणेश्वर के पास जा रही हो ॥ २० ॥

नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुनेः प्रापदस्त्रमवदानतोषितात् ।
ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात्सूर्यकान्त इव ताडकान्तकः ॥ २१ ॥

अथानन्तरं ताडकान्तको रामः । अवदानं पराक्रमः । 'पराक्रमोऽवदानं स्यात्' इति भागुरिः । तेन तोषितान्मुनेः नैर्ऋतान्राक्षसान्हन्तीति नैर्ऋतघ्नम् । 'अमनुष्यकर्तृके च' इति ठक् । मन्त्रवन्मन्त्रयुक्तमस्त्रम् । सूर्यकान्तो मणिविशेषो भास्करादिन्धनानि निपातयतीतीन्धननिपाति काष्ठदाहकं ज्योतिरिव । प्रापत्प्राप्तवान् ॥

अन्वयः—अथ ताडकान्तकः अवदानतोषितात् मुनेः नैर्ऋतघ्नं मंत्रवत् अस्त्रम् सूर्यकान्तः भास्करात् इन्धननिपाति ज्योतिः इव प्रापत् ।

व्याख्या—अथ = ताडकावधानन्तरम् ताडकायाः अन्तकः = विनाशकः इति ताडकान्तकः = रामः अवदानेन = पराक्रमेण, प्रशस्तकर्मणा = तोषितस्तस्मात् अवदानतोषितात् = प्रशस्तपराक्रमसंतुष्टात् । मुनेः = विश्वामित्रात् निर्गता ऋतेः = शुभात्, निर्ऋतिः । निर्ऋतेः

अपत्यानि नैर्ऋतास्तान् = राक्षसान् हन्तीति, तत् नैर्ऋतघ्नम् = राक्षसानां विनाशकमित्यर्थः। मंत्रवत् = समंत्रकम् अस्त्रम् = शस्त्रम् "आयुधं तु प्रहरणं शस्त्रमस्त्रमि"त्यमरः। सूर्यकान्तः = (स्फटिकः) मणिविशेषः भाः करोतीति भास्करस्तस्मात् भास्करात् = सूर्यात्, इन्धेऽग्निरेभिः, इन्धनानि = काष्ठानि निपातयतीति, इन्धननिपाति = काष्ठदाहकं ज्योतिः = अग्निम् इव = यथा प्रापत् = प्राप्तवान्।

समासः—ताडकायाः अन्तकः, ताडकान्तकः। अवदानेन तोषितस्तस्मात्, अवदानतोषितात्। इन्धनानां निपाति, इति इन्धननिपाति तत्।

हिन्दी—इसके पश्चात् ताड़का को मारने वाले राम ने "राम के" श्रेष्ठ पराक्रम से प्रसन्न हुये महर्षि विश्वामित्र से राक्षसों के संहारक अस्त्र को मंत्र सहित उसी प्रकार प्राप्त किया, जिस प्रकार सूर्यकान्तमणि (**स्फटिकमणि**), (आतशी शीशा) सूर्य से लकड़ियों को जलाने वाली आग को प्राप्त कर लेती है।

विशेष—सूर्यकान्तमणि, आतशी शीशा सूर्य की किरणों के स्पर्श से आग उगलने लगती है और पास में रखी घास फूँस जलाने लगती है॥ २१॥

वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान्।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः॥ २२॥

ततः परं राघवः। ऋषेः कौशिकादाख्यातुः श्रुतं पावनं शोधनं वामनस्य स्वपूर्वावतारविशेषस्याश्रमपदमुपेयिवानुपगतः सन्। 'उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च' इति निपातः। प्रथमजन्मचेष्टितानि रामवामनयोरैक्यात्स्मृतियोग्यान्यपि रामस्याज्ञानावतारत्वेन संस्कारदौर्बल्यादस्मरन्नपि उन्मना उत्सुको बभूव॥

अन्वयः—ततः परं राघवः ऋषेः श्रुतं पावनं वामनाश्रमपदम् उपेयिवान् सन् प्रथमजन्मचेष्टितानि अस्मरन् अपि उन्मनाः बभूव।

व्याख्या—ततः परं = विश्वामित्रात् शस्त्रप्राप्त्यनन्तरम् राघवः = रामचन्द्रः ऋषेः = विश्वामित्रसकाशात् श्रुतम् = आकर्णितं ज्ञातमित्यर्थः पावयतीति पावनं तत् = शुद्धिकरं पापनाशकमित्यर्थः। आश्राम्यन्ति अत्र, अनेन वा आश्रमः तस्य पदमिति आश्रमपदम्। वामनस्य = त्रिविक्रमस्य, भगवतोऽवतारविशेषस्य आश्रमपदं = वनस्थानम् "आश्रमो ब्रह्मचर्यादौ वानप्रस्थे वने मठे। अस्त्रियामि"ति मेदिनी। उपेयिवान् = उपगतः सन् प्रथमे = पूर्वस्मिन् जन्मनि = वामनावतारे यानि चेष्टितानि = कर्माणि तानि, लीलाः इत्यर्थः। अस्मरन् = अजानन् अपि, उद्गतं मनोऽस्य, इति उन्मनाः = उत्कण्ठितमनाः बभूव = जातः। यद्यपि रामवामनयोरैक्यात् तत्तत् जन्मचेष्टितं स्मर्तुं योग्यं तथापि श्रीरामस्याज्ञानावतारत्वात् पूर्वजन्मसंस्कारस्य दुर्बलत्वात् स्मृतिर्न जातेति अस्मरन्नपीत्युक्तमिति भावः॥

समासः—वामनस्य आश्रमः वामनाश्रमस्तस्य पदं, तत् वामनाश्रमपदम्। प्रथमे जन्मनि यानि चेष्टितानि, तानि प्रथमजन्मचेष्टितानि। उद्गतं मनोऽस्येति उन्मनाः।

हिन्दी—विश्वामित्र मुनि से अस्त्र प्राप्त कर लेने पर, मुनि के बताए हुवे तथा पवित्र, वामन भगवान् के आश्रम में पहुँचकर श्रीरामचन्द्र अपने पूर्वजन्म की लीलाओं का "ठीक-ठीक" स्मरण न होते हुवे भी उत्कण्ठित, उदास से हो गये।

विशेष—वामनावतार और रामवतार दोनों विष्णु के ही अवतार हैं। अतः दोनों के एक ही होने के कारण पूर्वजन्म की स्मृति होनी चाहिये थी, किन्तु श्रीराम को अपने पूर्वावतार का ज्ञान न होने से जन्मान्तर का संस्कार दुर्बल था, इसलिये पूर्व चेष्टाओं का अच्छी प्रकार स्मरण न होते हुवे भी कुछ आभास हो गया था, अतः मनमें उदासी सी छा गयी थी ॥ २२ ॥

आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम् ।
बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम् ॥ २३ ॥

ततो मुनिः। शिष्यवर्गेण परिकल्पिता सज्जितार्हणा पूजासामग्री यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। बद्धाः पल्लवपुटा एवाञ्जलयो यैस्ते तथाभूता द्रुमा यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। दर्शनेन मुनिदर्शनेनोन्मुखा मृगा यस्मिंस्तत्। आत्मनस्तपोवनमाससाद। एतेन विशेषणत्रयेणातिथिसत्कारताच्छील्यविनयशान्तयः सूचिताः ॥

अन्वयः—ततः मुनिः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम् बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगम् आत्मनः तपोवनम् आससाद।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम् मन्ता = वेदशास्त्रतत्त्वावगन्ता, इति मुनिः = कौशिकः शिष्यन्ते इति शिष्याः। शिष्याणां = छात्राणां वर्गः = समूहः तेन परिकल्पिता = सज्जीकृता अर्हणा = पूजासामग्री यस्मिन् तत् शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम्। "छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये" इत्यमरः। पल्लवानां = किसलयानां पुटाः = सम्पुटाः, इति पल्लवपुटाः। बद्धाः = संश्लिष्टाः पल्लवपुटाः एव अञ्जलयः = हस्तसंपुटाः यैस्ते बद्धपल्लवपुटाञ्जलयः। तथाभूताः द्रुमाः यस्मिन्-तत्तथोक्तम्। "अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे" इति मेदिनी। उत् = ऊर्ध्वं मुखं येषान्ते उन्मुखाः। दर्शनेन = अवलोकनेन, मुनिदर्शनार्थमित्यर्थः उन्मुखाः = ऊर्ध्वाननाः मृगाः = हरिणा यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। एवंभूतं आत्मनः = स्वस्य तपसः = तपस्यायाः वनमिति तत्। निजाश्रमम् आससाद = प्राप।

समासः—शिष्याणां वर्गस्तेन परिकल्पिता अर्हणा यस्मिंस्तत्, तथोक्तम् पल्लवानां पुटाः पल्लवपुटाः। बद्धाः पल्लवपुटा एव अञ्जलयः यैस्ते बद्धपल्लवपुटाञ्जलयः। बद्धपल्लवपुटाञ्जलयः द्रुमाः यत्र तत्तथोक्तम्। दर्शनेन उन्मुखाः मृगाः यत्र तत्तथोक्तम्। तपसः वनमिति तपोवनम्, तत्।

हिन्दी—वामनाश्रम से चलकर विश्वामित्रजी अपने उस तपोवन (आश्रम) में पहुँच गये। "जहाँ पर कि" शिष्यों ने पूजा की सामग्री तैयार कर रक्खी थी। और जहाँ पर वृक्ष, पत्तों के पुट (मिले हुवे पत्ते) रूपी अञ्जलि बान्धे "खड़े" थे। और जहाँ पर मुनि के दर्शन के लिये मृग भी ऊपर को मुँह किये हुवे थे।

विशेष—आश्रम के उक्त तीन विशेषणों से महाकवि ने यह दर्शाया है कि अतिथियों के सत्कार की भावना, और विनयशीलता तथा शान्ति, इस तपोवन में सर्वदा रहती थी ॥ २३ ॥

तत्र दीक्षितमृषिं ररक्षतुर्विघ्नतो दशरथात्मजौ शरैः ।
लोकमन्धतमसात्क्रमोदितौ रश्मिभिः शशिदिवाकराविव ॥ २४ ॥

तत्र तपोवने दशरथात्मजौ दीक्षितं दीक्षासंस्कृतमृषिं शरैर्विघ्नतो विघ्नेभ्यः । क्रमेण पर्यायेण रात्रिदिवसयोरुदितौ शशिदिवाकरौ रश्मिभिरन्धतमसाद्गाढध्वान्तात् । 'ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसम्' इत्यमरः । 'अवसमन्धेभ्यस्तमसः' इति समासान्तोऽच्प्रत्ययः । लोकमिव ररक्षतुः । रक्षणप्रवृत्तावभूतामित्यर्थः ॥

अन्वय:—तत्र दशरथात्मजौ दीक्षितं ऋषिं शरैः विघ्नतः, क्रमोदितौ शशिदिवाकरौ रश्मिभिः अन्धतमसात् लोकम् इव ररक्षतुः ।

व्याख्या—तत्र = आश्रमे आत्मनः = देहात् जातौ = उत्पन्नौ आत्मजौ । दशरथस्य आत्मजौ = पुत्रौ, इति दशरथात्मजौ = रामलक्ष्मणौ दीक्षा = प्रारम्भिकसंस्कारविशेषः, संजाता अस्यासौ दीक्षितस्तं दीक्षितं = यज्ञियसंस्कारसंस्कारितमित्यर्थः ऋषिं = विश्वामित्रं शरैः = बाणैः विघ्नेभ्यः, इति विघ्नतः = अन्तरायेभ्यः "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः" इत्यमरः । क्रमेण = पर्यायेण रात्रिदिवसयोः उदितौ = उदयं गतौ, इति क्रमोदितौ, दिवा = दिनं करोतीति दिवाकरः । शशी च दिवाकरश्चेति शशिदिवाकरौ = चन्द्रसूर्यौ रश्मिभिः = मयूखैः, किरणैरित्यर्थः । अन्धयतीति अन्धम् , अन्धं च तत्तमश्चेति, अन्धतमसं तस्मात् , अन्धतमसात् = घनान्धकारात् 'ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसमि'त्यमरः । लोकं = भुवनम् इव = यथा ररक्षतुः = रक्षतः स्म, लोकरक्षणे प्रवृत्तौ, अभूतामिति यावत् ।

समासः—दशरथस्य आत्मजौ, इति दशरथात्मजौ । अन्धं च तत्तमः, अन्धतमस्तस्मात् अन्धतमसात् । शशी च दिवाकरश्चेति शशिदिवाकरौ । क्रमेण उदितौ, क्रमोदितौ ।

हिन्दी—उस तपोवन में दशरथ जी के कुमार राम लक्ष्मण ने पारी-पारी से, यज्ञ की दीक्षा में बैठे ऋषि विश्वामित्र की अपने बाणों से उसी प्रकार विघ्नों से (राक्षसों के उपद्रवों से) रक्षा की, जैसे कि पारी-पारी से (रात में चन्द्र, दिन में सूर्य) उदित होकर चन्द्र सूर्य अपनी किरणों के द्वारा घोर अन्धकार से संसार की रक्षा करते हैं ॥ २४ ॥

वीक्ष्य वेदिमथ रक्तबिन्दुभिर्बन्धुजीवपृथुभिः प्रदूषिताम् ।
संभ्रमोऽभवदपोढकर्मणामृत्विजां च्युतविकङ्कतस्रुचाम् ॥ २५ ॥

अथ बन्धुजीवपृथुभिर्बन्धुजीवकुसुमस्थूलैः । 'रक्तकस्तु बन्धूको बन्धुजीवकः' इत्यमरः । रक्तबिन्दुभिः । प्रदूषितामुपहतां वेदिं वीक्ष्य । अपोढकर्मणां त्यक्तव्यापाराणाम् । च्युता विकङ्कतस्रुचो येभ्यस्तेषामृत्विजां याजकानां संभ्रमोऽभवत् । विकङ्कतग्रहणं खदिराद्युपलक्षणम् । स्रुगादीनां खदिरादिप्रकृतिकत्वात् । स्रुवादिपात्रस्यैव विकङ्कतप्रकृतिकत्वात् । 'विकङ्कतः स्रुवावृक्षः' इत्यमरः ।

यद्वा स्रुङ्मात्रस्य विकङ्कतप्रकृतिकत्वमस्तु। उभयत्रापि शास्त्रसंभवात्। यथाह भगवानापस्तम्बः—'खादिरः स्रुवः पर्णमयीर्जुहूर्वैकङ्कतीः स्रुचो वा' इति॥

अन्वयः—अथ बन्धुजीवपृथुभिः रक्तबिन्दुभिः प्रदूषितां वेदिं वीक्ष्य अपोढकर्मणां च्युतविकङ्कतस्रुचां ऋत्विजां संभ्रमः अभवत्।

व्याख्या—बन्धुरिव जीवं जलमस्य स बन्धुजीवः=बन्धूकपुष्पमिव पृथवः=स्थूलास्तैः बन्धुजीवपृथुभिः। रक्तस्य=रुधिरस्य बिन्दवः=पृषताः तैः रक्तबिन्दुभिः। "पृषन्ति बिन्दुपृषताः पुमांसः" इत्यमरः। प्रदूषिताम्=उपहताम्, अपवित्रितामित्यर्थः। विद्यते शोधनेन ज्ञायते, विचार्यते, प्राप्यते वा, वेदिः=परिष्कृतभूमिस्तां वेदिं=यज्ञार्थशोधितस्थानमित्यर्थः। "वेदिः परिष्कृता भूमिः" इत्यमरः। वीक्ष्य=दृष्ट्वा अपोढं=परित्यक्तं कर्म=यज्ञक्रिया यैस्ते तेषाम्-अपोढकर्मणां, विकङ्कतस्य=स्वादुकण्टकस्य स्रुचः=स्रुवाः, इति विकङ्कतस्रुचः। च्युताः=पतिताः परित्यक्ता इत्यर्थः। स्रुचः=येभ्यः तेषां च्युतविकंकतस्रुचाम्। "विकङ्कतः स्रुवावृक्षः" "स्रुवो भेदाः स्रुचः स्त्रियः" इति चामरः। ऋतौ यजन्तीति ऋत्विजः=याजकास्तेषां ऋत्विजां सम्भ्रमः=आवेगः, भयं वा अभवत्=जातः। "सम्भ्रमस्तु साध्वसेऽपि स्यादि"ति कोषः।

समासः—रक्तस्य बिन्दवस्तैः रक्तबिन्दुभिः। बन्धुजीव इव पृथवस्तैः बन्धुजीवपृथुभिः। अपोढं कर्म यैस्ते अपोढकर्माणस्तेषाम् अपोढकर्मणाम्। च्युताः विकङ्कतस्य स्रुचः येभ्यस्ते, तेषां च्युतविकङ्कतस्रुचाम्।

हिन्दी—और तभी बन्धुजीव दुपहरिया, (लाल फूल वाला छोटा पौधा) के फूल के समान बड़ी-बड़ी खून की बून्दों से दूषित भ्रष्ट हुई यज्ञ की वेदि को देखकर यज्ञ करना छोड़ देने वाले, तथा जिनके खैर के बने स्रुवे (यज्ञ में घी छोड़ने का पात्र) भी हाथ से छूट गये, ऐसे उन यज्ञ करने वालों को भय हो गया। अर्थात् वेदि पर खून देखकर आश्चर्य से भरे ऋषियों ने यज्ञ बन्द कर दिया, और डर के मारे स्रुवा भी हाथ से छूट गया था॥ २५॥

उन्मुखः सपदि लक्ष्मणाग्रजो बाणमाश्रयमुखात्समुद्धरन्।
रक्षसां बलमपश्यदम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम्॥ २६॥

सपदि लक्ष्मणाग्रजो रामो बाणमाश्रयमुखात्तूणीरमुखात्समुद्धरन्। उन्मुख ऊर्ध्वमुखोऽम्बरे। गृध्रपक्षपवनैरीरिताः कम्पिता ध्वजा यस्य तत्तथोक्तम्। रक्षसां दुर्निमित्तसूचनमेतत्। तदुक्तं शकुनार्णवे—'आसन्नमृत्योर्निकटे चरन्ति गृध्रादयो मूर्ध्नि गृहोर्ध्वभागे' इति। रक्षसां बलमपश्यत्॥

अन्वयः—सपदि लक्ष्मणाग्रजः बाणम् आश्रयमुखात् समुद्धरन् उन्मुखः अम्बरे गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम् रक्षसां बलम् अपश्यत्।

व्याख्या—सपदि=झटिति, तत्क्षणमित्यर्थः। अग्रे=प्रथमं जात इति अग्रजः। लक्ष्मणस्य अग्रजः, लक्ष्मणाग्रजः=रामः, बाणं=शरम् आश्रयस्य मुखमिति आश्रयमुखं तस्मात् आश्रयमुखात्=तूणीरात् समुद्धरन्=निष्कासयन् उत्=ऊर्ध्वं मुखं यस्य सः उन्मुखः=ऊर्ध्वाननः सन्, अम्बं=शब्दं रातीति अम्बरं तस्मिन्, अम्बरे=आकाशे गृध्राणां=दाक्षा-

ध्राणां पक्षाः = गरुतस्तेषां पवनः = वायुस्तेन ईरिताः = कम्पिताः ध्वजाः = पताकाः यस्य तत्, तथोक्तम्। "दाक्षाय्यगृध्रौ" "गरुत्पक्षच्छदाः पत्र" मिति चामरः। रक्षसां = राक्षसानां बलं = सेनाम् अपश्यत् = ददर्श।

समासः—लक्ष्मणस्य अग्रजः, लक्ष्मणाग्रजः। आश्रयस्य मुखं तस्मात्, आश्रयमुखात्। गृध्राणां पक्षास्तेषां पवनस्तेन ईरिताः ध्वजा यस्य तत् गृध्रपक्षपवनेरितध्वजम्, तत्।

हिन्दी—उसी समय लक्ष्मण के बड़े भ्राता राम ने तरकस से बाण को निकालते हुये, ऊपर मुँह करके आकाश में राक्षसों की उस सेना को देख लिया, गिद्ध के पंखों के वायु से जिसकी ध्वजाएँ हिल रही थीं।

विशेष—गिद्ध के पंखों को विशेषण देकर कवि ने अशुभ शकुन बताया है कि अब राक्षसों का विनाश निकट है। शीघ्र मरनेवाले के शिर पर या घर के ऊपरी भाग में गिद्ध रहते हैं। ऐसा शकुनार्णव का वचन है ॥ २६ ॥

तत्र यावधिपती मखद्विषां तौ शरव्यमकरोत्स नेतरान्।
किं महोरगविसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते ॥ २७ ॥

स रामस्तत्र रक्षसां बले यौ मखद्विषामधिपती तौ सुबाहुमारीचौ शरव्यं लक्ष्यमकरोत्। 'वेध्यं लक्ष्यं शरव्यं च' इति हलायुधः। इतरान्नाकरोत्। तथाहि। महोरगविसर्पिविक्रमो गरुडो गरुत्मान्राजिलेषु जलव्यालेषु प्रवर्तते किम्। न प्रवर्तते इत्यर्थः। 'अलगर्दो जलव्यालः समौ राजिलडुण्डुभौ' इत्यमरः॥

अन्वयः—सः तत्र यौ मखद्विषाम् अधिपती, तौ शरव्यम् अकरोत्, इतरान् न अकरोत्, तथा हि–महोरगविसर्पिविक्रमः गरुडः राजिलेषु प्रवर्तते किम्।

व्याख्या—सः = रामः, तत्र = राक्षससेनायाम् यौ = प्रसिद्धौ, मखन्ति = गच्छन्ति देवाः यत्र स मखः। मखं = यज्ञं द्विषन्तीति ते, तेषां मखद्विषाम्, अधिपती = स्वामिनौ, मुख्यौ सेनानायकौ तौ = सुबाहुमारीचौ शरवे = हिंसाय हितं शरव्यं, शरान् व्ययतीति वा शरव्यं = लक्ष्म् अकरोत् = कृतवान्। इतरान् = अपरान् न कृतवान्। "लक्षं लक्ष्यं शरव्यम्" इत्यमरः। तथाहि उरसा गच्छन्तीति उरगाः। महान्तश्च ते उरगाः, महोरगाः। महोरगेषु = महासर्पेषु विसर्पी = संचरणशीलः विक्रमः = पराक्रमः यस्य स तथोक्तः। गरुद्भिः = पक्षैः डयते = आकाशे गच्छतीति गरुडः = वैनतेयः "गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः" इत्यमरः। राजिः = रेखा अस्ति, एषां ते राजिलाः = निर्विषद्विमुखाः सर्पास्ते, तेषु राजिलेषु प्रवर्तते किम् = नैव प्रवृत्तो भवतीत्यर्थः। "समौ राजिलडुण्डुभौ" इत्यमरः। पक्षिराट् गरुडः कदापि निर्विषद्विमुखसर्पेषु जलव्यालेषु च न प्रहरति। एवमेव रामोऽपि सेनानायकौ हतवानिति भावः।

समासः—महान्तश्च ते उरगाः महोरगाः, महोरगेषु विसर्पी विक्रमः यस्य स तथोक्तः। मखानां द्विषः, मखद्विषस्तेषां मखद्विषाम्।

हिन्दी—श्रीराम ने राक्षसों की सेना में जो यज्ञ के विघातक, प्रसिद्ध सेनापति थे, उन्हीं दोनों सुबाहु और मारीच को अपने बाणों का निशान बनाया (उन्हीं पर बाण छोड़े)।

दूसरे राक्षसों पर नहीं छोड़े। क्योंकि बड़े-बड़े भयंकर सांपों के ऊपर आक्रमण करने वाला गरुड़ क्या कभी निर्विष दुमुहे सांपों पर, या जल के सांपों पर आक्रमण करता है। अर्थात् कभी नहीं करता है ॥ २७ ॥

सोऽस्त्रमुग्रजवमस्त्रकोविदः संदधे धनुषि वायुदैवतम् ।
तेन शैलगुरुमप्यपातयत्पाण्डुपत्रमिव ताडकासुतम् ॥ २८ ॥

अस्त्रकोविदोऽस्त्रज्ञः स राम उग्रजवमुत्कटजवं वायुदैवतं वायुर्देवता यस्य तद्वायव्यमस्त्रं धनुषि संदधे संहितवान्। कर्तरि लिट्। तेनास्त्रेण शैलवद्गुरुमपि ताडकासुतं मारीचम्। पाण्डुपत्रमिव। परिणतपर्णमिवेत्यर्थः। अपातयत्पातितवान् ॥

अन्वयः—अस्त्रकोविदः सः उग्रजवं वायुदैवतम् अस्त्रं धनुषि संदधे, तेन शैलगुरुम् अपि ताडकासुतं पाण्डुपत्रम् इव अपातयत्।

व्याख्या—कौति, कवते वा धर्मादि, इति कोविदः। कोः = वेदस्य विदः = ज्ञाता, कोविदः। अथवा कवि = वेदे विदा = ज्ञानमस्येति कोविदः। अस्त्रेषु = शस्त्रेषु कोविदः = पण्डितः, इति अस्त्रकोविदः। सः = रामः उग्रः = उत्कटः जवः = रयः यस्य तत्, उग्रजवम् = प्रबलवेगम्। वायुः देवता अस्य तत् वायुदैवतं = वायव्यम् अस्त्रम् = आयुधं, धनुषि = चापे संदधे = संहितवान्, आरोपयामास। तेन = अस्त्रेण, शैलवत् = पर्वत इव गुरुः = दुर्भरस्तं शैलगुरुम् अपि ताडकायाः सुतः = पुत्रस्तं ताडकासुतम् = मारीचम् पाण्डु = परिणतं च तत् पत्रं = पर्णमिति तत्, पाण्डुपत्रम्, परिपक्वपर्णमित्यर्थः। इव = यथा अपातयत् = पातयामास।

समासः—अस्त्रेषु कोविदः, अस्त्रकोविदः। उग्रः जवो यस्य तत् तथोक्तम्, तत्। शैलवत् गुरुस्तं शैलगुरुम्। ताडकायाः सुतः, ताडकासुतस्तं ताडकासुतम्। पाण्डु च तत् पत्रमिति तत् पाण्डुपत्रम्।

हिन्दी—अस्त्रशस्त्रों के पण्डित रामने प्रबल वेग वाले वायव्य (वायुदेवतासंबन्धी) (वायु के समान वेगवाले) बाण को धनुष पर चढ़ा लिया। और उसी बाण से, पर्वत के समान भारी ताड़का के पुत्र मारीच को मारकर सूखे पत्ते की तरह गिरा दिया ॥ २८ ॥

यः सुबाहुरिति राक्षसोऽपरस्तत्र तत्र विससर्प मायया ।
तं क्षुरप्रशकलीकृतं कृती पत्त्रिणां व्यभजदाश्रमाद्बहिः ॥ २९ ॥

सुबाहुरिति योऽपरो राक्षसस्तत्र तत्र मायया शम्बरविद्यया विससर्प सञ्चचार। क्षुरप्रैः शकलीकृतं तं सुबाहुं कृती कुशलो रामः। 'कृती च कुशलः समौ' इत्यमरः। आश्रमाद्बहिः पत्त्रिणां पक्षिणाम्। 'पत्त्रिणौ शरपक्षिणौ' इत्यमरः। व्यभजत्। विभज्य दत्तवानित्यर्थः ॥

अन्वयः—सुबाहुः इति यः अपरः राक्षसः तत्र तत्र मायया विससर्प क्षुरप्रशकलीकृतं तं कृती आश्रमात् बहिः पत्त्रिणां व्यभजत्।

व्याख्या—सुष्ठु दीर्घौ बाहू यस्य स सुबाहुः, इति = सुबाहुनामा यः = प्रसिद्धः अपरः = द्वितीयसेनापतिः राक्षसः = रक्षः। विश्वं माति यस्यां सा माया, मां यातीति वा माया तया

मायया = शम्बरविद्यया "स्यान्माया शाम्बरी" इत्यमरः । तत्र तत्र = इतस्ततः विससर्प = सञ्चचार, क्षुरति = विलिखतीति क्षुर इव भातीति क्षुरप्रः = बाणभेदः । क्षुरप्रैः = बाण-विशेषैः शकलीकृतः = खण्डशः कृतः इति क्षुरप्रशकलीकृतस्तं तथोक्तं, तीक्ष्णबाणैः खण्डं खण्डं कृतमित्यर्थः तं = सुबाहुं । कृतमनेनेति कृती = कुशलः श्रीरामचन्द्रः "कृती कुशलः" इत्यमरः । आश्रमात् = तपोवनात् बहिः = बाह्यम् पत्रिणां = पक्षिणां व्यभजत् = व्यभाक्षीत् , खण्डं खण्डं विभज्य पक्षिभ्यः दत्तवानित्यर्थः । न शकलः अशकलः । अशकलः शकलः संपद्यमानः कृतः शकलीकृतः ।

समासः—क्षुरप्रैः शकलीकृतः क्षुरप्रशकलीकृतस्तं क्षुरप्रशकलीकृतम् ।

हिन्दी—और सुबाहु नामका दूसरा राक्षस, जो अपनी माया (जादुगरी) से इधर उधर फिर रहा था, उछल कूद मचा रहा था, छूरे के समान तेज बाणों से टुकड़े-टुकड़े करके उस राक्षस को "युद्ध करने में" प्रवीण राम ने ऋषि आश्रम के बाहर पक्षियों में बाँट दिया। अर्थात् बाण लगते ही वह टुकड़े-टुकड़े होकर आश्रम से दूर जा गिरा, और उसे तुरन्त पक्षी खा गये ॥ २९ ॥

इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयोः सांयुगीनमभिनन्द्य विक्रमम् ।
ऋत्विजः कुलपतेर्यथाक्रमं वाग्यतस्य निरवर्तयन्क्रियाः ॥ ३० ॥

इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयो राघवयोः । संयुगे रणे साधुः सांयुगीनस्तम् । 'प्रतिजनादिभ्यः खञ्' इति खञ्प्रत्ययः । 'सांयुगीनो रणे साधुः' इत्यमरः । विक्रममभिनन्द्य । ऋत्विजो याज्ञिकाः । वाचि यतो वाग्यतो मौनी तस्य कुलपतेर्मुनिकुलेश्वरस्य क्रियाः । क्रतुक्रिया यथाक्रमं निरवर्तयन्निष्पादितवन्तः ॥

अन्वयः—इति अपास्तमखविघ्नयोः तयोः सांयुगीनं विक्रमम् अभिनन्द्य, ऋत्विजः वाग्यतस्य कुलपतेः क्रियाः यथाक्रमं निरवर्तयन् ।

व्याख्या—इति = पूर्वोक्तप्रकारेण अपास्तः = दूरीकृतः मखस्य = यज्ञस्य विघ्नः = प्रत्यूहः याभ्यां तौ अपास्तमखविघ्नौ, तयोः अपास्तमखविघ्नयोः तयोः = रामलक्ष्मणयोः संयुगे = युद्धे साधुः सांयुगीनस्तं सांयुगीनम् । "सांयुगीनो रणे साधुः" इत्यमरः । विक्रमं = पराक्रमम् अभिनन्द्य = संस्तुत्य, ऋत्विजः = याजकाः वाचि यतः वाग्यतस्तस्य वाग्यतस्य = वाचंयमस्य कुलस्य = मुनिगणस्य पतिः कुलपतिस्तस्य कुलपतेः = विश्वामित्रस्य क्रियाः = यज्ञक्रियाः यथा-क्रमं = क्रममनतिक्रम्य निरवर्तयन् = सम्पादितवन्तः ।

समासः—अपास्तः मखस्य विघ्नः याभ्यां तौ अपास्तमखविघ्नौ । तयोः, अपास्तमखविघ्नयोः । वाचि यतः, वाग्यतस्तस्य वाग्यतस्य । कुलस्य पतिस्तस्य कुलपतेः । क्रममनतिक्रम्य यथाक्रमम् ।

हिन्दी—इस प्रकार यज्ञ के विघ्न को दूर (समाप्त) करने वाले उन दोनों भाई रामलक्ष्मण के युद्ध में प्रदर्शित अपूर्व पराक्रम की प्रशंसा करके यज्ञ करने वाले वैदिकों ने, मौन धारण किये कुलपति विश्वामित्रजी की सारी यज्ञक्रियाओं को विधिपूर्वक सम्पन्न कर दिया ॥ ३० ॥

तौ प्रणामचलकाकपक्षकौ भ्रातराववभृथाप्लुतो मुनिः ।
आशिषामनुपदं समस्पृशद्दर्भपाटिततलेन पाणिना ॥ ३१ ॥

अवभृथे दीक्षान्त आप्लुतः स्नातो मुनिः । 'दीक्षान्तोऽवभृथो यज्ञे' इत्यमरः । **प्रणामेन** चलकाकपक्षकौ चञ्चलचूडौ तौ भ्रातरावाशिषामनुपदमन्वग्दर्भपाटिततलेन कुशक्षतान्तःप्रदेशेन । पवित्रेणेत्यर्थः । पाणिना समस्पृशत्संस्पृष्टवान् । संतोषादिति भावः ॥

अन्वयः—अवभृथाप्लुतः मुनिः प्रणामचलकाकपक्षकौ तौ भ्रातरौ आशिषामनुपदं दर्भपाटिततलेन पाणिना समस्पृशत् ।

व्याख्या—अवक्रियतेऽनेन सोऽवभृथः । अवभृथे = दीक्षान्ते आप्लुतः = स्नातः, इति अवभृथाप्लुतः मुनिः = कौशिकः । प्रणामेन = अभिवादनेन चलौ चञ्चलौ काकपक्षकौ = शिखण्डकौ ययोस्तौ प्रणामचलकाकपक्षकौ, तौ । "बालानां तु शिखा प्रोक्ता काकपक्षः शिखण्डकः" इति हलायुधः । "काकपक्षः शिखण्डकः" इत्यमरः । तौ उभौ भ्रातरौ आशिषाम् = शुभाशीर्वादानाम् , पदस्य पश्चात् अनुपदम् अन्वक् दर्भेण = कुशेन पाटितं = क्षतं तलं = करतलं यस्य स तेन दर्भपाटिततलेन पवित्रेणेत्यर्थः । "तलस्त्वधरे" इति मेदिनी । पाणिना = करेण समस्पृशत् = परस्पर्श, संस्पृष्टवान् सन्तोषादित्यर्थः ।

समासः—अवभृथे आप्लुतः, अवभृथाप्लुतः । प्रणामेन चलौ काकपक्षकौ ययोस्तौ प्रणामचलकाकपक्षकौ, तौ । दर्भेण पाटितः तलः यस्य स दर्भपाटिततलस्तेन दर्भपाटिततलेन । पदस्य पश्चात् अनुपदम् ।

हिन्दी—यज्ञ की समाप्ति पर स्नान किये हुये मुनि विश्वामित्र ने प्रणाम करने से जिनकी शिखा (लटें) हिल रही थी, ऐसे उन दोनों भाई रामलक्ष्मण को शुभाशीर्वाद देने के साथ ही कुशा से कटी छिली हथेली वाले अपने हाथ से स्पर्श किया । अर्थात् प्रसन्न होकर पवित्र हाथ रामलक्ष्मण के शिरपर रखा ।

विशेष—प्रधान बड़े यज्ञ की समाप्ति पर शुद्धि के लिये किया जाने वाला स्नान अवभृथ कहलाता है । इस स्नान के करने पर ही यज्ञ सांगोपांग सम्पन्न होता है । इस स्नान के करने वाले यजमान और सब भक्तगण भी स्नान करके पुण्य के भागी होते हैं । यह शास्त्र का कथन है ॥ ३१ ॥

तं न्यमन्त्रयत संभृतक्रतुर्मैथिलः स मिथिलां व्रजन्वशी ।
राघवावपि निनाय बिभ्रतौ तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलम् ॥ ३२ ॥

संभृतक्रतुः सङ्कल्पितसंभारो मिथिलायां भवो मैथिलो जनकस्तं विश्वामित्रं न्यमन्त्रयताहूतवान् । वशी स मुनिर्मिथिलां जनकनगरीं व्रजंस्तस्य जनकस्य यद्धनुस्तच्छ्रवणजं कुतूहलं बिभ्रतौ राघवावपि निनाय नीतवान् ॥

अन्वयः—संभृतक्रतुः मैथिलः तं न्यमंत्रयत, वशी सः मिथिलां व्रजन् तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलं बिभ्रतौ राघवौ अपि निनाय ।

व्याख्या—संभृतः = संकल्पितः क्रतुः = यागः, स्वयंवरार्थधनुर्यज्ञो येन सः । मिथिलायां भवः मैथिलः = जनकः तं = विश्वामित्रं न्यमन्त्रयत = आमंत्रितवान् वशी = जितेन्द्रियः

सः = मुनिः मिथिलां = जनकपुरीं व्रजन् = गच्छन्, तस्य = जनकस्य यत् धनुः = शिवचापं तस्य श्रवणम् = आकर्णनं तेन जातमिति तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलं = कौतुकम् औत्सुक्यमित्यर्थः। बिभ्रतौ = धारयन्तौ राघवौ = रामलक्ष्मणौ अपि निनाय = निन्ये, सहैव नीतवान्।

समासः—सम्भृतः क्रतुः येन स सम्भृतक्रतुः। तस्य धनुः तद्धनुः, तद्धनुषः श्रवणं तेन जातमिति तद्धनुःश्रवणजम्, तत्।

हिन्दी—"सीता जी के स्वयंवर के लिये" धनुष यज्ञ की तैयारी कर मिथिला के राजा जनक ने, महर्षि विश्वामित्र को निमंत्रित किया। अर्थात् विश्वामित्र जी को बुलाया। और मिथिला नगरी को जाते हुये, जितेन्द्रिय विश्वामित्र जी राजा जनक के धनुष के सुनने से उत्पन्न हुये कुतूहल (उत्सुकता) से भरे (युक्त) उन दोनों राजकुमारों को भी साथ ले गये।

विशेष—राजा जनक ने धनुषयज्ञ में मुनि को बुलाया था। तभी विश्वामित्र जी ने रामलक्ष्मण को धनुष की कथा सुनाई कि यह शिव जी का धनुष है। इसे कोई उठा या झुका नहीं सका है। जो इसे तोड़ेगा, या चढ़ा देगा, उसीसे सीता का विवाह होगा। यह सुनकर इसे देखने की दोनों भाइयों को बड़ी उत्कण्ठा हुई। अतः महर्षि इन दोनों को साथ लेकर जनकपुरी गये थे॥ ३२॥

तैः शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः सायमाश्रमतरुष्वगृह्यत।
येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वासवक्षणकलत्रतां ययौ॥ ३३॥

गताध्वभिस्तैस्त्रिभिः सायं शिवेषु रम्येष्वाश्रमतरुषु वसतिः स्थानमगृह्यत। येष्वाश्रमतरुषु दीर्घतपसो गौतमस्य परिग्रहः पत्नी। 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः। अहल्येति यावत्। वासवस्येन्द्रस्य क्षणकलत्रतां ययौ॥

अन्वयः—गताध्वभिः तैः सायं शिवेषु आश्रमतरुषु वसतिः अगृह्यत, येषु दीर्घतपसः परिग्रहः वासवक्षणकलत्रतां ययौ।

व्याख्या—अत्ति पथिकानां बलं यः सोऽध्वा = मार्गः। गतः = अतिक्रान्तः अध्वा = मार्गः यैस्ते गताध्वानस्तैः गताध्वभिः तैः = त्रिभिः, कौशिकरामलक्ष्मणैः सायं = प्रदोषे रात्रावित्यर्थः, शिवेषु = रम्येषु आश्रमस्य = तपोवनस्य, मठस्येत्यर्थः। तरवः = वृक्षास्तेषु आश्रमतरुषु, वसन्ति जनाः अस्यां सा वसतिः = वासः अगृह्यत = गृहीता, येषु = आश्रमवृक्षेषु दीर्घम् = आयतं, महदित्यर्थः तपः = तपस्या यस्य स दीर्घतपास्तस्य दीर्घतपसः = गौतमस्य परिगृह्यते, परिगृह्णाति वा परिग्रहः = पत्नी = अहल्या "पत्नी परिजनादान-मूलशापाः" इत्यमरः। वासवस्य = इन्द्रस्य क्षणं = किञ्चित्कालं कलत्रं = स्त्री इति वासवक्षणकलत्रं, तस्य भावस्तत्ता, तां वासवक्षणकलत्रतां ययौ = गता।

समासः—गतः अध्वा यैस्ते, तैः गताध्वभिः। आश्रमस्य तरवस्तेषु आश्रमतरुषु। दीर्घं तपो यस्य स दीर्घतपाः, तस्य दीर्घतपसः। कलत्रस्य भावः कलत्रता। वासवस्य क्षणं कलत्रता वासवक्षणकलत्रता, तां तथोक्ताम्।

हिन्दी—"कुछ" मार्ग (दूर) चलनेपर उन तीनों ने सायंकाल सुन्दर आश्रम के उन वृक्षों के तले निवास किया, पड़ाव डाल दिया। जिन सुन्दर वृक्षों के तले महान् तपस्वी

गौतम की पत्नी अहल्या इन्द्र की क्षणभर के लिये पत्नी बन गई थी । स्त्रीपने को प्राप्त हो गई थी ॥ ३३ ॥

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी ।
स्वं वपुः स किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः ॥ ३४ ॥

शिलामयी भर्तृशापाच्छिलात्वं प्राप्ता गौतमवधूरहल्या चारु स्वं वपुश्चिराय पुनः प्रत्यपद्यत प्राप्तवती यत् । स किल्विषच्छिदां पापहारिणाम् । 'पापं किल्विषकल्मषम्' इत्यमरः । रामपादरजसामनुग्रहः किल प्रसादः किलेति श्रूयते ॥

अन्वयः—शिलामयी गौतमवधूः चारु स्वं वपुः चिराय पुनः प्रत्यपद्यत, सः किल्विषच्छिदां रामपादरजसाम् अनुग्रहः किल ।

व्याख्या—शिलायाः विकारः, शिलामयी = पाषाणमयी स्वभर्तृगौतमशापाच्छिलात्वं प्राप्ता गौतमस्य = महर्षेः वधूः = पत्नी, गौतमवधूः अहल्या चारु = अतिसुन्दरं स्वं = निजं वपुः = शरीरं चिराय = बहुकालं पुनः = भूयः श्रीरामपादस्पर्शानन्तरमित्यर्थः, प्रत्यपद्यत = प्राप्तवती, "इति यत्" सः, केलयति = क्रीडयति विषयेषु यत् तत् किल्विषम् । किल्विषं = पापं छिन्दन्ति = नाशयन्तीति किल्विषच्छिदस्तेषां किल्विषच्छिदां = पापापहारिणाम् "पापं किल्विषकल्मषम्" इत्यमरः । रामस्य = दशरथपुत्रस्य, विष्णोरवतारविशेषस्येत्यर्थः, पादौ = चरणौ तयोः रजांसि = धूलयस्तेषां रामपादरजसाम् अनुग्रहः = प्रसादः किलेति श्रूयते । "प्रसादोऽनुग्रहस्वास्थ्यप्रसत्तिषु । काव्यगुणे" इति हैमः ।

समासः—गौतमस्य वधूः, गौतमवधूः । किल्विषाणि छिन्दन्तीति किल्बिषच्छिदस्तेषां किल्बिच्छिदाम् । रामस्य पादौ रामपादौ तयोः रजांसि इति रामपादरजांसि तेषां रामपादरजसाम् ।

हिन्दी—"अपने पति" महर्षि गौतम के शाप से पत्थर की गई हुई अहल्या ने अपने सुन्दर शरीर को बहुत समय के पश्चात् जो फिर से प्राप्त कर लिया था, यह सब, पापों को हरनेवाले श्रीरामजी की चरण धूली का ही प्रसाद (कृपा) था।

विशेष—अहल्या महर्षि गौतम की पत्नी थी। रामायण के अनुसार अहल्या सबसे पहली महिला थी, जिसे ब्रह्मा ने पैदा किया था, और गौतम ऋषि को दे दिया, देवराज इन्द्र ने गौतम का रूपधारण करके उसे सत्पथ से फुसलाया, इस प्रकार उसे धोखा दिया। दूसरी कथा के अनुसार अहल्या इन्द्र को जानती थी, किन्तु इन्द्र प्रेम तथा नम्रता के वशीभूत होकर वह इन्द्र की चाटुकारिता का शिकार बन गई थी। इसके अतिरिक्त एक और कथानुसार—इन्द्र ने अहल्या के रूप में मोहित होकर चन्द्रमा की सहायता प्राप्त की। चन्द्र ने मुर्गा बनकर आधी रात्रि में ही बाँग दे दी। इस बाँग से महर्षि स्नान ध्यान के लिये नदी पर चले गये, इधर इन्द्र गौतम के रूप में उनके स्थान में प्रविष्ट हो गये। जब महर्षि को ज्ञात हुआ तो उन्होंने अहल्या को आश्रम से निकाल दिया और शाप दे दिया कि पत्थर की बन जाओ। इस दशा में तब तक पड़ी रहो जब तक दशरथ के पुत्र राम के चरण का स्पर्श

न हो जाय। इन्द्र को भी शाप दिया था तुम्हारे सारे शरीर में भग हो जायें। इसी अहल्या का भगवान ने उद्धार किया था, और वह पुनः अपने पूर्व रूप में आ गई थी। और उसका पति से मिलन हुआ। अहल्या उन प्रातः स्मरणीय पाँच महासतियों में एक है जिनका प्रातः नाम लेने से महापातक नष्ट हो जाते हैं॥ ३४॥

राघवान्वितमुपस्थितं मुनिं तं निशम्य जनको जनेश्वरः।
अर्थकामसहितं सपर्यया देहबद्धमिव धर्ममभ्यगात्॥ ३५॥

राघवाभ्यामन्वितं युक्तमुपस्थितमागतं तं मुनिं जनको जनेश्वरो निशम्य। अर्थकामाभ्यां सहितं देहबद्धं बद्धदेहम्। मूर्तिमन्तमित्यर्थः। आहिताग्न्यादित्वात्साधुः। धर्ममिव। सपर्ययाभ्यगात्प्रत्युद्गतवान्॥

अन्वयः—जनेश्वरः जनकः राघवान्वितम् उपस्थितं तं मुनिं निशम्य, अर्थकामसहितं देहबद्धं धर्मम् इव सपर्यया अभ्यगात्।

व्याख्या—जनानां = लोकानाम् ईश्वरः = स्वामी, जनेश्वरः = राजा जनयतीति जनकः = विदेहः "जनकः पितृभूपयोः" इति हैमः। राघवश्च राघवश्चेति राघवौ। राघवाभ्यां = रामलक्ष्मणाभ्याम् अन्वितः = युक्तः, तं राघवान्वितं तं मुनिं = विश्वामित्रम्, उपस्थितं = समागतं निशम्य = श्रुत्वा, अर्थश्च कामश्चेति, अर्थकामौ = द्वौ पुरुषार्थौ। ताभ्यां सहितं = युक्तमिति, अर्थकामसहितं बद्धः देहो येन स देहबद्धः, तं देहबद्धं = शरीरधारिणं धर्मं = तृतीयं पुरुषार्थम् इव = यथा समर्पणं सपर्या, तया सपर्यया = पूजया अभ्यगात् = अभिजगाम प्रत्युद्गतवानित्यर्थः।

समासः—राघवश्च राघवश्चेति राघवौ। एकशेषः। ताभ्याम् अन्वितस्तं राघवान्वितम्। जनानामीश्वरः जनेश्वरः। अर्थश्च कामश्चेति, अर्थकामौ। अर्थकामाभ्यां सहितस्तम् अर्थकामसहितम्। बद्धः देहो येन देहबद्धस्तं देहबद्धम्।

हिन्दी—राजा जनक, रामलक्ष्मण के साथ आये हुवे मुनि विश्वामित्र को सुनकर, पूजा सामग्री के साथ (सामग्री लेकर) उनकी अगवानी करने के लिये गये। "उस समय जनक जी को ऐसा प्रतीत हो रहा था", कि—मानो अर्थ और काम (दो पुरुषार्थों) के साथ साक्षात् मूर्तिमान् धर्म आ रहा हो।

विशेष—अर्थ, काम, धर्म, ये तीन पुरुषार्थ हैं मोक्ष चौथा अन्तिम, परमपुरुषार्थ है। इन चारों में से जिसके पास एक भी नहीं है उसका संसार में आना व्यर्थ है। ऐसा शास्त्रकारों का कथन है॥ ३५॥

तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू।
मन्यते स्म पिबतां विलोचनैः पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनः॥ ३६॥

दिवः सुरवर्त्मन आकाशात्। 'द्यौः स्वर्गसुरवर्त्मनोः' इति विश्वः। गां भुवं गतौ 'स्वर्गेषुपशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले। लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौः' इत्यमरः। पुनर्वसू इव तन्नामकन-

क्षत्राधिदेवते इव स्थितौ । तौ राघवौ विलोचनैः पिबताम् । अत्यास्थया पश्यतामित्यर्थः । विदेहनगरी मिथिला तन्निवासिनां मनः कर्तृ पक्ष्मपातं निमेषमपि तद्दर्शनप्रतिबन्धकत्वाद्वञ्चनां विडम्बनां मन्यते स्म मेने । 'लट् स्मे' इति भूतार्थे लट् ॥

अन्वयः—दिवः गां गतौ पुनर्वसू इव स्थितौ तौ लोचनैः पिबतां विदेहनगरीनिवासिनां मनः (कर्तृ) पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मन्यते स्म ।

व्याख्या—दीव्यन्ति, अस्यां सा द्यौः । तस्याः दिवः = आकाशात् गां = पृथिवीं गतौ = प्राप्तौ, अवतीर्णावित्यर्थः पुनर्वसू = एतन्नामनक्षत्रयोः अधिदेवते, इव = यथा तौ राघवौ = रामलक्ष्मणौ (कर्मभूतौ) विशेषेण लोच्यन्ते पदार्थाः यैस्तानि, तैः विलोचनैः = नेत्रैः पिबताम् = अतितृष्णया पश्यतां विगतः देहः = देहसंबन्धो यस्यासौ विदेहः । विदेहस्य = जनकस्य नगरी = मिथिला तत्र निवासिनः तेषां विदेहनगरीनिवासिनां जनानां मनः = चित्तं (कर्तृपदम्) पक्ष्मणां = नेत्रलोम्नां पातः = पतनं, तं पक्ष्मपातम् = निमेषमपि "पक्ष्माक्षिलोम्नि" इत्यमरः । वञ्चनां = विडम्बनां मन्यते स्म = अमंस्त । श्रीरामलक्ष्मणयोः दर्शनं प्रति निमेषस्य प्रतिबन्धकत्वात् तत्पातं विडम्बनं मेने ।

समासः—विदेहस्य नगरी, विदेहनगरी, तस्यां निवासिनस्तेषां विदेहनगरीनिवासिनाम् । पक्ष्मणां पातः पक्ष्मपातस्तम् ।

हिन्दी—आकाश से पृथिवी पर उतरे हुये, दो पुनर्वसु नक्षत्रों के समान सुशोभित, उन राम लक्ष्मण को अपने नेत्रों से पी रहे (बड़ी ही श्रद्धा एवं अनुराग से मगन हो देखने वाले) जनकपुर के निवासियों, के मन ने आँखों की पलकों के गिरने को भी प्रतारणा (धोखा) समझा-माना ।

विशेष—वहाँ के नर नारी श्रीराम लक्ष्मण को ऐसे प्रेमविह्वल होकर देख रहे थे । कि बीच में पलकों का गिरना भी भगवान् के दर्शन में बाधक होने के कारण उन्हें बुरी तरह खटक रहा था । राजा जनक जी बड़े ही आत्मज्ञानी जीवन् मुक्त थे, इसलिये उन्हें विदेह (जिसका शरीर के साथ सम्बन्ध छूट गया हो) कहते थे ।। ३६ ।।

यूपवत्यवसिते क्रियाविधौ कालवित्कुशिकवंशवर्धनः ।
राममिष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयांबभूव सः ॥ ३७ ॥

यूपवति क्रियाविधौ कर्मानुष्ठाने । क्रतावित्यर्थः । अवसिते समाप्ते सति कालविदवसरज्ञः कुशिकवंशवर्धनः स मुनी रामम् । अस्यतेऽनेनेत्यसनम् । इषूणामसनमिष्वसनं चापम् । तस्य दर्शन उत्सुकं मैथिलाय जनकाय कथयांबभूव कथितवान् ॥

अन्वयः—यूपवति क्रियाविधौ अवसिते सति, कालवित् कुशिकवंशवर्धनः सः रामम् इष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयाम्बभूव ।

व्याख्या—यूपः = स्थूणा अस्यास्तीति यूपवान् , तस्मिन् यूपवति = स्थूणावति क्रियायाः = कर्मणः विधिः = अनुष्ठानं तस्मिन् क्रियाविधौ अवसिते = समाप्ते सति कालं वेत्तीति

कालवित् = समयज्ञः कुशिकस्य = राज्ञः वंशः = कुलं तस्य वर्धनः = वर्धयिता, कुशिकवंशवर्धनः सः = मुनिर्विश्वामित्रः, रामम् , इषूणां = बाणानाम् असनमिति इष्वसनं = धनुः तस्य दर्शनम् = अवलोकनम् तत्र उत्सुकः = उत्कण्ठितस्तम् , इष्वसनदर्शनोत्सुकं मिथिलायाः अयमिति मैथिलस्तस्मै मैथिलाय = जनकाय कथयाम्बभूव = कथितवान् ।

समासः—क्रियायाः विधिस्तस्मिन् क्रियाविधौ । कुशिकस्य वंशस्तस्य वर्धनः, कुशिकवंशवर्धनः । इषूणाम् असनमिति, इष्वसनं तस्य दर्शनमिति इष्वसनदर्शनं तस्मिन् उत्सुकस्तम् , इष्वसनदर्शनोत्सुकम् ।

हिन्दी—यूप (धूँटा) वाले यज्ञ के अनुष्ठान के पूर्ण हो जाने पर (यज्ञ के समाप्त होने पर) अवसर के जानने वाले तथा कुशिक राजा के वंश की वृद्धि करने वाले मुनि विश्वामित्र ने राजा जनक से कहा कि रामचन्द्र धनुष को देखने लिये उत्सुक हैं ।

विशेष—यूप यज्ञ की स्थूणा धूँटे का नाम है । यह बाँस या खदिर (खैर) की लकड़ी का बनाया जाता है । और बलि दिया जाने वाला पशु, मेध के समय इसी यूप से बाँधा जाता है ॥ ३७ ॥

तस्य वीक्ष्य ललितं वपुः शिशोः पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः ।
स्वं विचिन्त्य च धनुर्दुरानमं पीडितो दुहितृशुल्कसंस्थया ॥ ३८ ॥

पार्थिवो जनकः । प्रथितवंशे जन्म यस्य तथोक्तस्य । एतेन वरसंपत्तिरुक्ता । शिशोस्तस्य रामस्य ललितं कोमलं वपुर्वीक्ष्य । स्वं स्वकीयं दुरानममानमयितुमशक्यम् । नमेर्ण्यन्तात्खल् । धनुर्विचिन्त्य च दुहितृशुल्कं कन्यामूल्यं जामातृदेयम् । 'शुल्कं घट्टादिदेये स्याज्जामातुर्वन्धकेऽपि च' इति विश्वः । तस्य धनुर्भङ्गरूपस्य संस्थया स्थित्या । 'संस्था स्थितौ शरे नाशे' इति विश्वः । पीडितो बाधितः शिशुना रामेण दुष्करमिति दुःखित इति भावः ॥

अन्वयः—पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः शिशोः तस्य ललितं वपुः वीक्ष्य, स्वं दुरानमं धनुश्च वीक्ष्य दुहितृशुल्कसंस्थया पीडितः ।

व्याख्या—पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः = राजा जनकः प्रथितः = विख्यातः वंशः = कुलमिति प्रथितवंशः । प्रथितवंशे = प्रसिद्धकुले जन्म = उत्पत्तिः यस्य स तस्य प्रथितवंशजन्मनः शिशोः = शावकस्य बालकस्येत्यर्थः । तस्य = रामस्य ललितं = सुकोमलं वपुः = शरीरं वीक्ष्य = दृष्ट्वा दुरानमं = नमयितुमशक्यम् स्वं = स्वकीयं धनुः = चापं च वीक्ष्य दुहितुः = कन्यायाः शुल्कं = मूल्यं, जामातृदेयं धनुर्भंगरूपमित्यर्थः, इति दुहितृशुल्कं तस्य संस्था = स्थितिस्तया दुहितृशुल्कसंस्थया । "शुल्कं घट्टादिदेये स्याज्जामातुर्वन्धकेऽपि च" इति विश्वः । "संस्था स्थितौ शरे नाशे" इति विश्वः । पीडितः = दुःखितः अभूदिति शेषः ।

समासः—प्रथिते वंशे जन्म यस्य तस्य प्रथितवंशजन्मनः । दुःखेन आनममिति दुरानमम् , तत् । दुहितुः शुल्कं, तस्य संस्था, तया दुहितृशुल्कसंस्थया ।

हिन्दी—राजा जनक ने एक ओर तो प्रसिद्ध सूर्य वंश में जन्म लेने वाले बालक *श्रीराम के मनोहर कोमल शरीर को देखा, और दूसरी ओर बड़े-बड़े शूरवीरों से भी न नमने*

(झुकने) वाले अपने कठोर धनुष को विचार कर कन्या के मूल्य की स्थिति मर्यादा से दुःखी हुवे।

विशेष—एक दिन शिवजी के धनुष को जो कि जनकजी के घर में रखा था, सीता जी ने उठाकर दूसरे स्थान पर रख दिया था, क्योंकि उसे कोई उठा नहीं सकता था, अतः जनक जी को बड़ा आश्चर्य हुआ, और तभी जनकजी ने प्रतिज्ञा की थी कि जो इस धनुष को उठाकर इसकी डोरी को चढ़ा देगा, उसी के साथ सीताजी का विवाह करूँगा। इस प्रतिज्ञा के कारण उन्हें पछतावा हो रहा था। क्योंकि ऐसे कठोर धनुष को ये बालक क्या तोड़ेगा। और लड़का सब तरह से सीताजी के योग्य है। यही पश्चात्ताप का कारण है ॥ ३८ ॥

अब्रवीच्च भगवन्मतङ्गजैर्यद्बृहद्भिरपि कर्म दुष्करम्।
तत्र नाहमनुमन्तुमुत्सहे मोघवृत्ति कलभस्य चेष्टितम् ॥ ३९ ॥

अब्रवीच्च। मुनिमिति शेषः। किमिति। हे भगवन्मुने, बृहद्भिर्मतङ्गजैर्महागजैरपि दुष्करं यत्कर्म तत्र कर्मणि कलभस्य बालगजस्य। 'कलभः करिशावकः' इत्यमरः। मोघवृत्ति व्यर्थ-व्यापारं चेष्टितं साहसमनुमन्तुमहं नोत्सहे ॥

अन्वयः—हे भगवन्! बृहद्भिः मतंगजैः अपि दुष्करं यत्कर्म तत्र कलभस्य मोघवृत्ति चेष्टितम् अनुमन्तुम् अहं न उत्सहे, इति जनकः मुनिम् अब्रवीत् च।

व्याख्या—भगं = महात्म्यमस्यास्तीति भगवान् तत्संबुद्धौ हे भगवन्! हे मुने! बृहद्भिः = विशालैः "बृहद् विशालं पृथुलं महत्" इत्यमरः। मतंगात् = ऋषेः जाताः मतंगजास्तैः मतंगजैः = गजैः "मतंगजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी" इत्यमरः। अपि दुष्करं = कर्तुमशक्यम् यत् कर्म = कार्यम्, तत्र = कर्मणि कलभस्य = करिशावकस्य "कलभः करिशावकः" इत्यमरः। मुह्यन्त्यस्यां सा मोघा = निरर्थका वृत्तिः = व्यापारो यस्य तत् मोघ-वृत्ति, "मोघं निरर्थकम्" इत्यमरः। चेष्टितं = साहसम् अनुमन्तुम् = अनुज्ञातुं नोत्सहे। इति = इत्थं जनकः मुनिम् अब्रवीत् = अकथयत्।

समासः—मतंगात् जाताः मतंगजास्तैः मतंगजैः। मोघा वृत्तिः यस्य तत् मोघवृत्ति, तत्।

हिन्दी—और तब राजा जनक ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे भगवन् बड़े-बड़े उन्मत्त हाथी भी जो काम नहीं कर सकते, उस कार्य में हाथी के बच्चे की व्यर्थ व्यापार वाली चेष्टा (उत्साह) का मैं समर्थन नहीं कर सकता हूँ।

विशेष—प्रियदर्शन नामक गन्धर्वों के राजा के लड़के प्रियंवद ने अभिमान में आकर मतंग नामक ऋषि का अपमान कर दिया था, तभी ऋषि ने उसे शाप दिया कि तुम हाथी हो जाओ, अतः मतंग से उत्पन्न मतंगज हुआ ॥ ३९ ॥

ह्रेपिता हि बहवो नरेश्वरास्तेन तात धनुषा धनुर्भृतः।
ज्यानिघातकठिनत्वचो भुजान्स्वान्विधूय धिगिति प्रतस्थिरे ॥ ४० ॥

हे तात, तेन धनुषा बहवो धनुर्भृतो नरेश्वरा ह्रेपिता ह्रियं प्रापिता हि। जिह्रतेर्णान्तोर्ण्य-

न्तात्कर्मणि क्तः । 'अर्तिह्री-'इत्यादिना पुगागमः । ते नरेश्वरा ज्यानिघातैः कठिनत्वचः स्वान्भुजान्धिगिति विधूयावमत्य प्रतस्थिरे प्रस्थिताः ॥

अन्वयः—हे तात ! तेन धनुषा बहवः धनुर्भृतः नरेश्वराः ह्रेपिताः, हि "ते" ज्यानिघातकठिनत्वचः स्वान् भुजान् धिक् इति विधूय प्रतस्थिरे ।

व्याख्या—तनोति = विस्तारयति गोत्रमिति तातः, तत्संबुद्धौ हे तात = हे पूज्य ! तेन = प्रसिद्धेन शैवेन धनुषा = चापेन बहवः = भूरिशः धनूंषि बिभ्रतीति धनुर्भृतः = चापधारिणः, नराणां = मनुष्याणाम् ईश्वराः = ईशाः राजानः, इति नरेश्वराः ह्रेपिताः = लज्जां प्रापिताः । "ते नरेश्वराः" ज्यायाः = मौर्व्याः निघाताः = अभिघाताः, प्रहारा इत्यर्थः । तैः कठिना = कठोरा त्वक् = चर्म येषां ते ज्यानिघातकठिनत्वचः । "मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः" इत्यमरः । "त्वक् स्त्री चर्मणि" इति मेदिनी । स्वान् = निजान् भुजान् = बाहून् धिक्कयतीति धिक् धिक्कारः इति = एवं विधूय = तिरस्कृत्य प्रतस्थिरे-प्रस्थिताः = इतः गता इत्यर्थः ।

समासः—नराणामीश्वराः नरेश्वराः । धनुषां भृतः धनुर्भृतः । ज्यायाः निघाताः, ज्यानिघातास्तैः कठिना त्वक् येषां ते ज्यानिघातकठिनत्वचः ।

हिन्दी—"और" हे तात इस धनुष ने बहुत से धनुर्धारी राजा महाराजाओं को लज्जित, अपमानित, कर दिया है । और वे राजा धनुष की डोरी की रगड़ (आघात) से जिनमें घट्ठे पड़ गये, ऐसी अपनी भुजाओं को धिक्कारते हुये चले गये हैं ॥ ४० ॥

प्रत्युवाच तमृषिर्निशम्यतां सारतोऽयमथवा गिरा कृतम् ।
चाप एव भवतो भविष्यति व्यक्तशक्तिरशनिर्गिराविव ॥ ४१ ॥

ऋषिस्तं प्रत्युवाच । किमिति । अयं रामः सारतो बलेन निशम्यतां श्रूयताम् । अथवा गिरा सारवर्णनया कृतमलम् । गीर्न वक्तव्येत्यर्थः । 'युगपर्याप्तयोः कृतम्' इत्यमरः । अव्ययं चैतत् । 'कृतं निवारणनिषेधयोः' इति गणव्याख्याने । गिरेति करणे तृतीया । निषेधक्रियां प्रति करणत्वात् । किंत्वशनिर्वज्रो गिराविव । चापे धनुष्येव भवतस्तव व्यक्तशक्तिर्दृष्टसारो भविष्यति ॥

अन्वयः—ऋषिः तं प्रति उवाच, अयं सारतः निशम्यताम् अथवा गिरा कृतम्, "किन्तु" अशनिः गिरौ इव चापे एव भवतः व्यक्तशक्तिः भविष्यति ।

व्याख्या—ऋषिः = विश्वामित्रः तं = जनकं प्रति उवाच = प्रत्युक्तवान् । "यत्" अयं = रामः सारेण इति सारतः = बलेन निशम्यताम् = श्रूयताम् । "सारो बले स्थिरांशे च" इत्यमरः । अथवा = यद्वा गिरा = वाण्या, रामबलवर्णनेनेत्यर्थः । कृतम् = अलं व्यर्थमित्यर्थः "कृतं युगेऽलमर्थे स्यद्विहिते हिंसिते त्रिषु" इति मेदिनी । कथनं व्यर्थं प्रत्यक्षमवलोक्यतामित्यर्थः । "किन्तु" अश्नाति, अश्यतेऽनेन वा अशनिः = वज्रः गिरौ = पर्वते इव = यथा धनुषि = चापे एव भवतः = तव जनकस्य व्यक्ता = स्फुटा शक्तिः = सारः यस्य स व्यक्तशक्तिः "व्यक्तः स्फुटमनीषिणोः" इति मेदिनी । दृष्टबलः रामः भविष्यति ।

समासः—व्यक्ता शक्तिः यस्य स व्यक्तशक्तिः ।

हिन्दी—"यह सुन" मुनि विश्वामित्रजी, राजा जनक से बोले कि "हे राजन् !" इस राम को बल से सुनिये "अर्थात् राम का बल मुझ से सुने मैं कहता हूँ।" अथवा वाणी से कहने की आवश्यकता नहीं है। व्यर्थ है। क्योंकि जिस प्रकार वज्र की शक्ति पर्वत पर प्रकट होती है उसी प्रकार धनुष पर ही राम का बल आपको ज्ञात हो जायगा। अर्थात्—वज्र गिरते ही जैसे पर्वत चूर-चूर हो जाता है, वैसे ही राम के धनुष को उठाते ही यह आपका धनुष टुकड़े-टुकड़े हो जायगा, अभी देखिये ॥ ४१ ॥

एवमाप्तवचनात्स पौरुषं काकपक्षकधरेऽपि राघवे ।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ॥ ४२ ॥

एवमाप्तस्य मुनेर्वचनात्स जनकः काकपक्षधरे बालेऽपि राघवे पुरुषस्य कर्म पौरुषं पराक्रमम्। 'हायनान्तयुवादिभ्योऽण्' इति युवादित्वादण् । 'पौरुषं पुरुषस्योक्तं भावे कर्मणि तेजसि' इति विश्वः। त्रिदशगोप इन्द्रगोपकीटः प्रमाणमस्य त्रिदशगोपमात्रः। 'प्रमाणे द्वयसच्–' इत्यादिना मात्रच्प्रत्ययः। ततः स्वार्थे कप्रत्ययः। तस्मिन्कृष्णवर्त्मनि वह्नौ दाहशक्तिमिव। श्रद्दधे विश्वस्तवान् ॥

अन्वयः—एवम् आप्तवचनात् सः काकपक्षकधरे अपि राघवे त्रिदशगोपमात्रके कृष्णवर्त्मनि दाहशक्तिम् इव श्रद्दधे ।

व्याख्या—एवम् = इत्थम् आप्तस्य = यथार्थवक्तुर्मुनेः वचनं = कथनं तस्मात्, आप्तवचनात् सः = जनकः, धरतीति धरः, काकपक्षस्य = शिखायाः धरः, इति काकपक्षधरस्तस्मिन् काकपक्षकधरेऽपि शिशौ, अपि राघवे = रामचन्द्रे पुरुषस्य कर्म पौरुषं तत् पराक्रमं त्रिदशस्य गोपः, त्रिदशगोपः, इन्द्रगोपकीटः प्रमाणमस्येति त्रिदशगोपमात्रः, त्रिदशगोपमात्र एवेति त्रिदशगोपमात्रकस्तस्मिन् त्रिदशगोपमात्रके, कृष्णो धूमो वर्त्मास्य स तस्मिन् कृष्णवर्त्मनि = पावके दाहस्य = दहनस्य शक्तिः = सामर्थ्यं ताम् दाहशक्तिम् इव = यथा श्रद्दधे = विशश्वास, विश्वासं कृतवान्, इति यावत् ।

समासः—आप्तस्य वचनम्, आप्तवचनं तस्मात् आप्तवचनात्। काकस्य पक्ष इव काकपक्षः, काकपक्षकस्य धरस्तस्मिन् काकपक्षकधरे। त्रिदशस्य गोपः, त्रिदशगोपः। त्रिदशगोपः प्रमाणमस्य, त्रिदशगोपमात्रः। त्रिदशगोपमात्र एवेति, तस्मिन् त्रिदशगोपमात्रके। कृष्णं वर्त्म यस्य सः, तस्मिन् कृष्णवर्त्मनि। दाहस्य शक्तिस्तां दाहशक्तिम्।

हिन्दी—यथार्थवादी (विश्वसनीय) विश्वामित्र के कहने से काकपक्ष (शिखा) धारी बच्चे राम में भी जनकजी ने पराक्रम (धनुष उठाने की शक्ति), का विश्वास उसी प्रकार कर लिया, जिस प्रकार कि—इन्द्रगोप कीड़े (बीरबहूटी) के बराबर अग्नि में शक्ति का विश्वास करते हैं। अर्थात् जरासी चिनगारी में जैसे फूँक देने की सामर्थ्य का विश्वास है वैसे ही इस बालक में भी धनुष तोड़ने, की शक्ति का विश्वास जनक को हो गया ॥ ४२ ॥

व्यादिदेश गणशोऽथ पार्श्वगान्कार्मुकाभिहरणाय मैथिलः ।
तैजसस्य धनुषः प्रवृत्तये तोयदानिव सहस्रलोचनः ॥ ४३ ॥

अथ मैथिलः पार्श्वगान्पुरुषान्कार्मुकाभिहरणाय कार्मुकमानेतुम्। 'तुमर्थाच्च–' इति चतुर्थी। सहस्रलोचन इन्द्रस्तैजसस्य तेजोमयस्य धनुषः प्रवृत्तय आविर्भावाय तोयदान्मेघानिव गणान्गणशः। 'संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्' इति शस्प्रत्ययः। व्यादिदेश प्रजिघाय॥

अन्वयः—अथ मैथिलः पार्श्वगान् कार्मुकाभिहरणाय सहस्रलोचनः तैजसस्य धनुषः प्रवृत्तये तोयदान् इव गणशः व्यादिदेश।

व्याख्या—मिथिलायां भवः राजा, मैथिलः = जनकः पार्श्वे = समीपे गच्छन्ति = प्रचलन्तीति पार्श्वगास्तान् पार्श्वगान् पुरुषान् कर्मणे प्रभवतीति कार्मुकं, कार्मुकस्य = धनुषः अभिहरणं = सम्मुखानयनम्, तस्मै कार्मुकाभिहरणाय, कार्मुकमानेतुमित्यर्थः। सहस्रं लोचनानि = नेत्राणि यस्य स सहस्रलोचनः = इन्द्रः, तेजसः विकारः, तैजसः तस्य = तेजोमयस्य धनुषः = इन्द्रचापस्य प्रवृत्तये = आविर्भावाय तोयानि जलानि ददतीति तोयदास्तान् तोयदान् = मेघान् इव = यथा गणान् इति गणशः = समूहान् व्यादिदेश = आदिष्टवान्, अनेकान् पुरुषान् चापमानेतुं प्रेषितवानित्यर्थः।

समासः—कार्मुकस्य अभिहरणमिति, कार्मुकाभिहरणं तस्मै कार्मुकाभिहरणाय। सहस्रं लोचनानि यस्य स सहस्रलोचनः।

हिन्दी—मुनि का उत्तर सुनकर, मिथिलेश जनक ने पार्श्ववर्ती अनेक पुरुषों को धनुष ले आने का आदेश उसी प्रकार दिया, जिस प्रकार कि हजार नेत्र वाले इन्द्र, अपने चमकदार धनुष को प्रकट करने के लिये मेघों के झुण्ड को आज्ञा देता है॥ ४३॥

तत्प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणं वीक्ष्य दाशरथिराददे धनुः।
विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं येन बाणमसृजद् वृषध्वजः॥ ४४॥

दाशरथी रामः प्रसुप्तभुजगेन्द्र इव भीषणं भयंकरं तद्धनुर्वीक्ष्याददे जग्राह। वृषो ध्वजश्चिह्नं यस्य स शिवो येन धनुषा। क्रतुरेव मृगः। विद्रुतं पलायितं क्रतुमृगमनुसरति। ताच्छील्ये णिनिः। तं विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं बाणमसृजन्मुमोच॥

अन्वयः—दाशरथिः प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणं तत् धनुः वीक्ष्य आददे, वृषध्वजः येन विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणं बाणम् असृजत्।

व्याख्या—दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः = रामः, प्रसुप्तः = शयितः, यः भुजगानां = सर्पाणाम् इन्द्रः = स्वामी महासर्प इत्यर्थः। इति प्रसुप्तभुजगेन्द्रः। प्रसुप्तभुजगेन्द्र इव भीषणं = भयंकरमिति प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणम् तत् = धनुः वीक्ष्य = दृष्ट्वा आददे = जग्राह वृषः = वृषभः ध्वजः = चिह्नम्, अस्य स वृषध्वजः = शिवः, येन = धनुषा क्रतुरेव मृगः = हरिणः, इति क्रतुमृगः। विद्रुतः = पलायितः यः क्रतुमृगस्तम् अनुसरति = अनुगच्छतीति विद्रुतक्रतुमृगानुसारी तं तथोक्तम्। बाणं = शरम्, असृजत् = अमुञ्चत् = त्यक्तवानित्यर्थः।

समासः—भुजगानामिन्द्रः भुजगेन्द्रः प्रसुप्तो यः भुजगेन्द्र इति प्रसुप्तभुजगेन्द्रः, प्रसुप्तभुजगेन्द्र इव भीषणं तत्, प्रसुप्तभुजगेन्द्रभीषणम्। वृषः ध्वजः यस्य स वृषध्वजः। क्रतु-

रैव मृगः, क्रतुमृगः। विद्रुतश्चासौ क्रतुमृगः, विद्रुतक्रतुमृगस्तस्य अनुसारी तं विद्रुतक्रतुमृगानुसारिणम्।

हिन्दी—दशरथ जी के पुत्र राम ने, सोये हुए अजगर के समान भयंकर (दीखने वाले) उस धनुष को देखकर उठा लिया। जिस धनुष से शिवजी ने, मृग रूपधारी आगे-आगे भागते हुये यज्ञ (प्रजापति) देवता का पीछा करने वाले बाण को छोड़ा था।

विशेष—एक समय ब्रह्माजी (दश प्रजापतियों में एक) संध्या नाम की अति सुंदरी अपनी कन्या को देख कर, उसपर मोहित हो गये थे। तब यह पिता होकर भी मुझ से रमण करना चाहता है। इस कारण शरम के मारे सन्ध्या ने हरिणी का रूप धारण कर लिया। यह देख ब्रह्मा भी मृग बनकर रमण करने को तैयार हो गये थे। यह सब देखकर भगवान् शंकर ने अपने पिनाक नामक धनुष को तानकर एक बाण छोड़ दिया। इससे ब्रह्मा ने लज्जित एवं पीड़ित होकर मृगशिरा नामक नक्षत्र का रूप धारण कर लिया, और तुरन्त शिवजी का बाण भी आर्द्रा नक्षत्र बनकर मृगशिरा के पीछे आकाश में खड़ा हो गया। तभी से आर्द्रा और मृगशिरा नक्षत्र का सदा सान्निध्य रहता है। अर्थात् मृगशिरा का पीछा आज भी आर्द्रा (शिवबाण) नहीं छोड़ रहा है। ऐसी पुराण की कथा प्रसिद्ध है॥ ४४॥

आततज्यमकरोत्स संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रमीक्षितः।
शैलसारमपि नातियत्नतः पुष्पचापमिव पेशलं स्मरः॥ ४५॥

स रामः संसदा सभया विस्मयेन स्तिमिते नेत्रे यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्तथेक्षितः सन्। शैलस्येव सारो यस्य तच्छैलसारमपि धनुः। स्मरः पेशलं कोमलं पुष्पचापमिव नातियत्नतो नातियत्नात्। नञर्थस्य नशब्दस्य सुप्सुपेति समासः। आततज्यमधिज्यमकरोत्॥

अन्वयः—सः संसदा विस्मयस्तिमितनेत्रं यथा स्यात्तथा ईक्षितः सन् शैलसारम् अपि "धनुः" स्मरः पेशलं पुष्पचापम् इव नातियत्नतः आततज्यम् अकरोत्।

व्याख्या—सः = रामः संसीदन्ति जनाः अस्यां सा संसद् तया संसदा = सभया "सभासमितिसंसदः" इत्यमरः, विस्मयेन = आश्चर्येण स्तिमिते = निश्चले नेत्रे = नयने यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात्तथा ईक्षितः = दृष्टः सन्, प्रचुराः शिलाः सन्त्यत्र सः, शैलः। शैलस्य = पर्वतस्य इव सारः = बलं दार्ढ्यमित्यर्थः। यस्य स तं शैलसारम् अपि तद्धनुः, स्मरः = कन्दर्पः पेशलं = कोमलं पुष्पं चापमिति पुष्पचापं = कुसुमधनुः इव = यथा नातियत्नतः = नातिप्रयासेन आतता = विस्तारिता, आरोपिता ज्या = मौर्वी यस्य तत् आततज्यम् = आरोपितमौर्वीकमित्यर्थः। अकरोत् = कृतवान्।

समासः—विस्मयेन स्तिमिते नेत्रे यस्मिन् कर्मणि तत् विस्मयस्तिमितनेत्रम्, शैलस्य इव सारो यस्य तत्, शैलसारम्। पुष्पं च तत् चापमिति पुष्पचापम्। आतता ज्या यस्मिन् तत् आततज्यम्।

हिन्दी—सभा में बैठे सभी लोगों से आश्चर्य चकित होकर बिना आँख झपकाए (एकटक से) देखे गये उस शिशु राम ने, पर्वत के समान भारी एवं कठोर भी उस शिव

धनुष को उसी प्रकार सरलता से तान दिया, धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी, जिस प्रकार, कामदेव अपने कोमल पुष्पों के धनुष पर सरलतापूर्वक प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ा लेता है ॥४५॥

भज्यमानमतिमात्रकर्षणात्तेन वज्रपरुषस्वनं धनुः ।
भार्गवाय दृढमन्यवे पुनः क्षत्त्रमुद्यतमिव न्यवेदयत् ॥ ४६ ॥

तेन रामेणातिमात्रकर्षणाद्भज्यमानमत एव वज्रपरुषस्वनम् । वज्रमिव परुषः स्वनो यस्य तत् । धनुः कर्तृ । दृढमन्यवे दृढक्रोधाय । 'मन्युः क्रोधे क्रतौ दैन्ये' इति विश्वः । भार्गवाय क्षत्रं क्षत्रकुलं पुनरुद्यतं न्यवेदयदिव ज्ञापयामासेव ॥

अन्वयः—तेन अतिमात्रकर्षणात् भज्यमानम् "अत एव" वज्रपरुषस्वनम् धनुः दृढमन्यवे भार्गवाय क्षत्रं पुनः उद्यतं न्यवेदयत् इव ।

व्याख्या—तेन = रामेण मात्रा = स्तोकम् = अल्पं तामतिक्रान्तमिति अतिमात्रम् । अतिमात्रम् = दृढं कर्षणम् = तस्मात् अतिमात्रकर्षणात् भज्यते इति तत् भज्यमानं = त्रोट्यमानं (त्रुट्यत्) अतएव वज्रम् = कुलिशम् इव परुषः = कठोरः स्वनः = शब्दः यस्य तत् वज्रपरुषस्वनम् धनुः = चापं दृढः = अत्यधिकः मन्युः = क्रोधः यस्य स दृढमन्युः तस्मै दृढमन्यवे = परशुरामाय "मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि" इत्यमरः । क्षतात् = नाशात् त्रायते यत्तत् क्षत्त्रं = क्षत्रियकुलम् पुनः = भूयः उद्यतम् = उद्‌गूर्णम् उज्जृम्भितमित्यर्थः न्यवेदयत् = कथितवत् इव उत्प्रेक्षायाम् ।

समास—मात्रामतिक्रान्तम् अतिमात्रम् । अतिमात्रं च तत् कर्षणं तस्मात् अतिमात्रकर्षणात् । वज्रमिव परुषः स्वनः यस्य तत् वज्रपरुषस्वनम् । दृढः मन्युः यस्य स तस्मै दृढमन्यवे ।

हिन्दी—रामचन्द्र जी के खूब जोर से खींचने (झुकाने) के कारण टूटते हुए, अतएव वज्र के समान घोर गर्जन करने वाले उस धनुष ने बड़े क्रोधी परशुरामजी से मानो निवेदन कर दिया कि क्षत्रिय कुल फिर से शिर उठाने लगा है । अर्थात् धनुष ने गर्जना क्या की, मानों भार्गव से कहा कि फिर क्षत्री प्रबल हो रहे हैं ॥ ४६ ॥

दृष्टसारमथ रुद्रकार्मुके वीर्यशुल्कमभिनन्द्य मैथिलः ।
राघवाय तनयामयोनिजां रूपिणीं श्रियमिव न्यवेदयत् ॥ ४७ ॥

अथ मैथिलो जनको रुद्रकार्मुके दृढः सारः स्थिरांशो यस्य तद्दृष्टसारम् । 'सारो बले स्थिरांशे च' इति विश्वः । वीर्यमेव शुल्कम् । धनुर्भङ्गरूपमित्यर्थः । अभिनन्द्य राघवाय रामायायोनिजां देवयजनसंभवां तनयां सीतां रूपिणीं श्रियमिव साक्षाल्लक्ष्मीमिव न्यवेदयदर्पितवान् । वाचेति शेषः ॥

अन्वयः—अथ मैथिलः रुद्रकार्मुके दृष्टसारं वीर्यशुल्कम् अभिनन्द्य राघवाय अयोनिजां तनयां रूपिणीं श्रियम् इव न्यवेदयत् ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरं चापभङ्गानन्तरमित्यर्थः । मैथिलः = राजा जनकः, रोदयतीति रुद्रः । रुद्रस्य = शिवस्य कार्मुकं = धनुः, तस्मिन् रुद्रकार्मुके दृष्टः = अवलोकितः सारः =

बलं यस्य तत्, दृष्टसारम् वीरे=अक्लीवे साधु वीर्यम्, वीरयति, वीर्यते वा वीर्यं=प्रभावः=तेज एव शुल्कं=मूल्यं, चापभंगरूपमित्यर्थः । अभिनन्द्य=प्रशस्य राघवाय=श्रीरामचन्द्राय योन्याः जाता योनिजा । न योनिजा, इति अयोनिजा, तामयोनिजां=देवयजनसम्भवां तनोति कुलं या सा तनया तां तनयां=सुतां सीतामित्यर्थः रूपमस्या अस्तीति रूपिणी तां रूपिणीं=रूपवतीं श्रियं=लक्ष्मीम् इव=यथा साक्षाल्लक्ष्मीमिवेत्यर्थः न्यवेदयत्=वाण्यार्पितवान् ।

समास—रुद्रस्य कार्मुकमिति रुद्रकार्मुकं तस्मिन् रुद्रकार्मुके । दृष्टः सारः यस्य तत् दृष्टसारम् । वीर्यमेव शुल्कमिति तत् वीर्यशुल्कम् । न योनिजा इति अयोनिजा तामयोनिजाम् ।

हिन्दी—धनुष के टूटने पर राजा जनक ने शिवजी के धनुष (तोड़ने) में देख लिये गये पराक्रम रूपी मूल्य की प्रशंसा करके (अर्थात् रामके पराक्रम की प्रशंसा करके) पृथिवी से उत्पन्न हुई अपनी पुत्री सीताजी को रामचन्द्र के लिये वैसे ही सौंप दिया, मानो साक्षात् लक्ष्मी ही दे दी हो ।

विशेष—राजा जनक ने सन्तानप्राप्ति की अभिलाषा से एक यज्ञ का आरम्भ किया था । उस यज्ञ की तैयारी के समय राजा को हल चलाना पड़ा था । और उसी समय हल चलाते हुए सीता खूद में से प्राप्त हुई थी । हल की फाल से खुदे बने खूद (गहरी रेखा) से प्राप्त होने के कारण उसका सीता नाम पड़ा था । इसी कारण सीता जी "अयोनिजा" पृथिवीपुत्री देवयजनसंभवा कहाती है ॥ ४७ ॥

उत्प्रेक्षार्थं सोपस्कारमाह—

मैथिलः सपदि सत्यसङ्गरो राघवाय तनयामयोनिजाम् ।
संनिधौ द्युतिमतस्तपोनिधेरग्निसाक्षिक इवातिसृष्टवान् ॥ ४८ ॥

सत्यसङ्गरः सत्यप्रतिज्ञः । 'अथ प्रतिज्ञाजिसंविदापत्सु सङ्गरः' इत्यमरः । मैथिलो राघवायायोनिजां तनयां द्युतिमतस्तेजस्विनस्तपोनिधेः कौशिकस्य संनिधौ । अग्निः साक्षी यस्य सोऽग्निसाक्षिकः । 'शेषाद्विभाषा' इति कप्रत्ययः । स इव । समयतिसृष्टवान्दत्तवान् ॥

अन्वयः—सत्यसंगरः मैथिलः राघवाय अयोनिजां तनयां द्युतिमतः तपोनिधेः सन्निधौ अग्निसाक्षिकः इव सपदि अतिसृष्टवान् ।

व्याख्या—सत्यः=तथ्यः संगरः=प्रतिज्ञा यस्य स सत्यसंगरः । "सत्यं कृते च शपथे तथ्ये च त्रिषु तद्वति" इति मेदिनी । संगरणं संगरः, संगीर्यते वा संगरः । मैथिलः=मिथिलानरेशः राघवाय=रामाय अयोनिजां=देवयजनसम्भवां सीतां तनयां=पुत्रीं द्योतनेऽनया इति द्युतिः=शोभा अस्यास्तीति द्युतिमान् तस्य द्युतिमतः=तेजस्विनः इत्यर्थः "शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः" इत्यमरः । तपसां निधिस्तपोनिधिस्तस्य तपोनिधेः=विश्वामित्रस्य संनिधानं संनिधिस्तस्मिन् संनिधौ=समीपे—अंगति=ऊर्ध्वं गच्छतीति अग्निः=वह्निः साक्षी=साक्षात् द्रष्टा यस्य सो अग्निसाक्षिकः इव=यथा समयते अस्मिन् सपदि=तत्क्षणे अतिसृष्टवान्=दत्तवान् । यथाहि लोके

जना अग्निं साक्षीकृत्य वराय कन्यां ददाति तथैव महर्षिविश्वामित्रमग्निं मत्वा तत्समीपे तत्क्षणमेव सीतां परमयोग्यवराय श्रीरामचन्द्राय ददौ जनक इति भावः।

समासः—सत्यः संगरः यस्य स सत्यसंगरः। न योनिजा-अयोनिजा ताम् अयोनिजाम्। तपसां निधिः तपोनिधिः तस्य तपोनिधेः। अग्निः साक्षी यस्य सः अग्निसाक्षिकः।

हिन्दी—सत्य प्रतिज्ञा करने वाले राजा जनक ने, (हल की फाल से खुदी (खूद से) पृथ्वी से निकली हुई अपनी पुत्री सीताजी को तेजस्वी एवं बड़े तपस्वी विश्वामित्र जी के सामने उसी समय (धनुष तोड़ते ही) मानों अग्नि को साक्षी मानकर रामचन्द्र के लिये दे दिया।

विशेष—जनक जी के पूजास्थान में शिव जी का "पिनाक" धनुष रखा था जो कि किसी के उठाए न उठता था। एक दिन सीताजी ने उस स्थान में सफाई करते समय बाएँ हाथ से धनुष को उठाकर वहाँ सफाई कर पुनः रख दिया। जनक जी ने आकर देखा तो पूछने पर ज्ञात हुआ कि सीताजी ने उठाकर साफ किया और फिर यहाँ रख दिया है। तब जनकजी ने प्रतिज्ञा की थी कि जो इस धनुषको तानकर तोड़ेगा उसी के साथ सीताजी का विवाह होगा। यही सत्यसंगर का तात्पर्य है ॥ ४८ ॥

प्राहिणोच्च महितं महाद्युतिः कोसलाधिपतये पुरोधसम्।
भृत्यभावि दुहितुः परिग्रहाद्दिश्यतां कुलमिदं निमेरिति ॥ ४९ ॥

महाद्युतिर्जनको महितं पूजितं पुरोधसं पुरोहितं कोसलाधिपतये दशरथाय प्राहिणोत्प्रहितवांश्च। किमिति। निमिर्नाम जनकानां पूर्वजः कश्चित्। इदं निमेः कुलं दुहितुः सीतायाः परिग्रहात्स्नुषात्वेन स्वीकाराद्धेतोः। भृत्यस्य भावो भृत्यत्वम् सोऽस्यास्तीति भृत्यभावि दिश्यतामनुमन्यतामिति ॥

अन्वयः—महाद्युतिः महितं पुरोधसं कोसलाधिपतये प्राहिणोत् च, निमेः इदं कुलं दुहितुः परिग्रहात् भृत्यभावि दिश्यताम् इति।

व्याख्या—महती = अधिका द्युतिः = कान्तिः यस्य स महाद्युतिः। "शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः" इत्यमरः। जनकः महितं = पूजितं पुरः = अग्रे धीयते इति—पुरोधास्तं पुरोधसं = पुरोहितं "पुरोधास्तु पुरोहितः" इत्यमरः, कोसलस्य = देशविशेषस्य अधिपतिः = स्वामी, राजा, इति—कोसलाधिपतिस्तस्मै कोसलाधिपतये = राज्ञे दशरथायेत्यर्थः, प्राहिणोत् = प्रहितवान्, च, प्रेषितवानित्यर्थः। किमर्थमित्याह—निमेः = जनकानां पूर्वपुरुषस्य इदं कुलं = वंशः दुहितुः = कन्यायाः परिग्रहात् = पुत्रवधूत्वेन स्वीकारात् भ्रियते इति भृत्यः। भृत्यस्य भावः, भृत्यत्वम्। दिश्यताम् = अनुमन्यताम्। सीताया मम पुत्र्याः स्नुषात्वेन स्वीकारात् निमिकुलमनुगृह्यतामित्यर्थः।

हिन्दी—महातेजस्वी राजा जनक ने, "अपने" पूज्य पुरोहितको अयोध्यानरेश दशरथ के पास यह कहलाकर भेजा कि निमिके इस कुलको सीताजी को स्वीकार कर (पुत्रवधू बनाकर) अपना सेवक बना लीजिए।

विशेष—इक्ष्वाकु राजा का पुत्र निमि एक समय अपनी स्त्रियों के साथ द्यूतक्रीड़ा कर रहे थे। उसी समय वशिष्ठजी आ गये, राजाने उन का सत्कार नहीं किया, अतः वशिष्ठजीने राजाको शाप दे दिया, कि तुम्हारा शरीर प्राणहीन हो जाये। तभी राजा ने भी वशिष्ठजी को निष्प्राण होने का शाप दे दिया। दोनों शाप छुड़ाने ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने निमि से कहा कि तुम लोगों के नेत्रों में निवास करो। तब लोगों के विश्राम के निमेष (पलकों का झपकना) हो गया। पहले पलक नहीं गिरते थे। यही निमिका तात्पर्य है। निमि के शरीर को मथने से मिथि राजा उत्पन्न हुये। जिसने मिथिला बसाई। जनने से जनक कहलाये। ये बिना शरीरके थे अतः विदेह कहाते थे—यह मत्स्यपुराण की कथा है ॥ ४९ ॥

अन्विषेष सदृशीं स च स्नुषां प्राप चैनमनुकूलवाग्द्विजः ।
सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम् ॥ ५० ॥

स दशरथश्च सदृशीमनुरूपां स्नुषामन्विषेष। रामविवाहमाचकाङ्क्षेत्यर्थः। अनुकूलवाक्स्नुषासिद्धिरूपानुकूलार्थवादी द्विजो जनकपुरोधाश्चैनं दशरथं प्राप। तथाहि। कल्पवृक्षफलस्य यो धर्मः सद्यः पाकरूपः सोऽस्यास्तीति कल्पवृक्षफलधर्मि। अतः सुकृतां पुण्यकारिणां काङ्क्षितं मनोरथः सद्य एव पच्यते हि। कर्मकर्तरि लट्। स्वयमेव पक्कं भवतीत्यर्थः। 'कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः' इति कर्मवद्भावात् 'भावकर्मणोः' इत्यात्मनेपदम् ॥

अन्वयः—सः च सदृशीं स्नुषाम् अन्विषेष, अनुकूलवाक् द्विजः—च एनं प्राप, हि कल्पवृक्षफलधर्मि "अत एव" सुकृतां कांक्षितं सद्यः एव पच्यते।

व्याख्या—सः = राजा दशरथः समाना इव पश्यतीति सदृशी तां सदृशीं = सदृक्षीम्, अनुरूपामित्यर्थः। स्नौतीति स्नुषा तां स्नुषां = वधूम् "समाः स्नुषाजनीवध्वः" इत्यमरः। पुत्रभार्यामित्यर्थः। अन्विषेष = अभिललाष। अनुकूला = पुत्रविवाहानुरूपा वाक् = वाणी यस्य सः अनुकूलवाक् द्वाभ्यां = जन्मसंस्काराभ्यां जायते, इति द्विजः = ब्राह्मणः, जनकस्य पुरोहित इत्यर्थः। "द्विजः स्यात् ब्राह्मणक्षत्रवैश्यदन्ताण्डजेषु ना" इति मेदिनी। एनं = राजानं दशरथं प्राप = अवाप। हि = तथाहि कल्पस्य = संकल्पितार्थस्य वृक्षस्तस्य फलं तस्य धर्मः = तत्क्षणपाकरूपः, इति कल्पवृक्षफलधर्मः, सोऽस्यास्तीति तत् कल्पवृक्षफलधर्मि सुकृतां = पुण्यवतां कांक्षितम् = अभिलषितं, मनोरथः इत्यर्थः सद्यः = तत्क्षणमेव पच्यते = स्वयमेव पक्कं जायते। अत्र कर्मकर्तरि प्रत्ययः।

समासः—अनुकूला वाक् यस्य सः अनुकूलवाक्। कल्पस्य वृक्षः कल्पवृक्षः, कल्पवृक्षस्य फलमिति कल्पवृक्षफलं तस्य धर्मः कल्पवृक्षफलधर्मः, सोऽस्यास्तीति कल्पवृक्षफलधर्मि।

हिन्दी—राजा दशरथ अपने कुलजाति के योग्य पुत्रवधू-खोज ही रहे थे कि पुत्रवधू की प्राप्ति के अनुरूप सन्देश ले आने वाले जनक जी के पुरोहित शतानन्द दशरथ के पास आ गये। ठीक ही है पुण्यवानों का मनोरथ कल्पवृक्ष के फल के समानधर्म वाला तुरन्त ही स्वयं पकता है। अर्थात् कल्पवृक्ष के समान तुरन्त फल देने वाला होता है।

विशेष—स्वर्ग में एक कल्पवृक्ष है। वह वृक्ष देवताओं के सभी मनोरथों को इच्छा

होते ही पूर्ण कर देता है। संकल्पित मनोरथ को तुरन्त जो पूर्ण करे वह कल्पवृक्ष कहाता है ॥ ५० ॥

तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः शुश्रुवान्वचनमग्रजन्मनः ।
उच्चचाल बलभित्सखो वशी सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः ॥ ५१ ॥

बलभित्सख इन्द्रसहचरो वशी स्वाधीनतावान् । 'वश आयत्ततायां च' इति विश्वः । कल्पितपुरस्क्रियाविधेः कृतपूजाविधेस्तस्याग्रजन्मनो द्विजस्य वचनं जनकेन संदिष्टं शुश्रुवाञ्छ्रुतवान् । शृणोतेः क्वसुः । सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः सन्नुच्चचाल प्रतस्थे ॥

अन्वयः—बलभित्सखः वशी कल्पितपुरस्क्रियाविधेः अग्रजन्मनः वचनं शुश्रुवान् सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः सन् उच्चचाल ।

व्याख्या—बलम् = असुरं भिनत्ति, इति बलभित् = इन्द्रः, तस्य सखा = मित्रमिति बलभित्सखः वशः = अस्यास्तीति वशी = स्वतंत्रतावान् जितेन्द्रियः दशरथः "वश आयत्ततायां च" ति विश्वः । कल्पितः = विहितः पुरस्क्रियायाः = पूजायाः विधिः = विधानं यस्य स तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः । अग्रे जन्म यस्य सः अग्रजन्मा तस्य अग्रजन्मनः = ब्राह्मणस्य, जनकपुरोहितस्य शतानन्दस्य वचनं = जनकसन्देशरूपं शुश्रुवान् = आकर्णितवान् , सैन्यानां = सैनिकानां रेणवः = धूलयः, इति—सैन्यरेणवः सेनाप्रचलनेनोत्थिता इत्यर्थः तैः मुषिताः = आच्छादिताः अर्कस्य = सूर्यस्य दीधितयः = कराः येन सः सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः सन् उच्चचाल = प्रतस्थे रामविवाहार्थं मिथिलां प्रतस्थे इत्यर्थः ।

समासः—बलभिदः सखा, इति बलभित्सखः । अग्रे जन्म यस्य स तस्य अग्रजन्मनः । पुरस्क्रियायाः विधिरिति पुरस्क्रियाविधिः । कल्पितः पुरस्क्रियाविधिः यस्य स तस्य कल्पितपुरस्क्रियाविधेः । सैन्यानां रेणवस्तैः मुषिताः अर्कस्य दीधितयः येन स सैन्यरेणुमुषितार्कदीधितिः ।

हिन्दी—इन्द्र के मित्र, जितेन्द्रिय, राजा दशरथ ने जनकजी के पुरोहित शतानन्द नाम के ब्राह्मण का पूजा-सत्कार किया, और उनका वचन (राम के विवाह के लिये जनकजी का सन्देश) सुनकर अपनी सेना के चलने से उठी धूल से सूर्य की किरणों को ढकते (छिपाते) हुये मिथिला को चल पड़े ॥ ५१ ॥

आससाद मिथिलां स वेष्टयन्पीडितोपवनपादपां बलैः ।
प्रीतिरोधमसहिष्ट सा पुरी स्त्रीव कान्तपरिभोगमायतम् ॥ ५२ ॥

स दशरथो बलैः सैन्यैः पीडितोपवनपादपां मिथिलां वेष्टयन्परिधीकुर्वन् आससाद । सा पुरी । स्त्री युवतिरायतमतिप्रसक्तं कान्तपरिभोगं प्रियसंभोगमिव । प्रीत्या रोधं प्रीतिरोधमसहिष्ट सोढवती । द्वेषरोधं तु न सहत इति भावः ॥

अन्वयः—सः बलैः पीडितोपवनपादपां मिथिलां वेष्टयन् आससाद, सा पुरी स्त्री आयतं कान्तपरिभोगम् इव प्रीतिरोधम् असहिष्ट ।

व्याख्या—सः = राजा दशरथः बलैः = सैन्यैः उपवनानाम् = आरामाणां पादपाः = वृक्षाः, इति उपवनपादपाः। "आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत्" इत्यमरः। पीडिताः = दलिताः भग्ना इत्यर्थः। उपवनपादपाः यस्याः सा तां पीडितोपवनपादपां मिथिलां = मिथिनामराजेन निर्मितां जनकपुरीमित्यर्थः। आससाद = प्राप, सा पुरी = जनकनगरी स्त्री = युवतिः आयतम् = अतिप्रसक्तम् कान्तस्य = प्रियस्य परिभोगं = सम्भोगम् इव = यथा प्रीत्या = प्रेम्णा रोधः = प्रतिरोधः तं प्रीतिरोधं पीडामित्यर्थः असहिष्ट = सहनं कृतवती।

समास—पीडिताः उपवनानां पादपाः यस्याः सा तां पीडितोपवनपादपाम्। प्रीत्या रोधस्तं प्रीतिरोधम्। कान्तस्य परिभोगस्तं कान्तपरिभोगम्।

हिन्दी—वे राजा दशरथ, अपनी सेना से मिथिला नगरी के बगीचों के वृक्षों को रौंदते और चारों ओर से नगरी को घेरते हुये जनकपुरी में पहुँच गये। मिथिला नगरी ने इस प्रेम के घेरे को उसी प्रकार सहन कर लिया, जिस प्रकार युवती स्त्री अपने प्रियतम के कठोर सम्भोग को सहन कर लेती है॥ ५२॥

तौ समेत्य समये स्थितावुभौ भूपती वरुणवासवोपमौ।
कन्यकातनयकौतुकक्रियां स्वप्रभावसदृशीं वितेनतुः॥ ५३॥

समये स्थितावाचारनिष्ठौ। 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः। वरुणवासवावुपमानं ययोस्तौ तथोक्तौ। तावुभौ भूपती जनकदशरथौ समेत्य स्वप्रभावसदृशीमात्ममहिमानुरूपां कन्यकानां सीतादीनां तनयानां रामादीनां च कौतुकक्रियां विवाहोत्सवं वितेनतुर्विस्तृतवन्तौ। तनोतेर्लिट्॥

अन्वयः—समये स्थितौ वरुणवासवोपमौ तौ उभौ भूपती स्वप्रभावसदृशीं कन्यकातनयकौतुकक्रियां वितेनतुः।

व्याख्या—समये = आचारे स्थितौ = वर्तमानौ, आचारनिष्ठौ, इति भावः। व्रियते, वृणोति वा वरुणः = प्रचेताः। वसवः = देवाः, वसूनि = धनानि वा सन्त्यस्य स वासवः। वसोरपत्यं वा वासवः = इन्द्रः। वरुणश्च वासवश्च वरुणवासवौ, तौ उपमा = उपमानं ययोस्तौ वरुणवासवोपमौ तौ = जनकदशरथौ उभौ = द्वौ भूपती = पार्थिवौ समेत्य = मिलित्वा, संबन्धिनौ भूत्वेत्यर्थः। स्वस्य = आत्मनः प्रभावः = महिमा तस्य सदृशी = अनुरूपा तां स्वप्रभावसदृशीं कन्यकानां = सीतादीनां तनयानां = पुत्राणां रामादीनां कौतुकस्य = विवाहस्य क्रिया तां कन्यकातनयकौतुकक्रियां = विवाहोत्सवमित्यर्थः। वितेनतुः = विस्तृतवन्तौ। स्वस्वमहिमानुसारं विस्तारपूर्वकं विवाहोत्सवं कृतवन्तावित्यर्थः। "कौतुकं नर्मणीच्छायामुत्सवे कुतुके मुदि। पारम्पर्यागतख्यातमंगलोद्वाहसूत्रयोरिरौ" ति कोषः।

समासः—वरुणश्च वासवश्चेति वरुणवासवौ, तौ उपमा ययोस्तौ वरुणवासवोपमौ। स्वस्य प्रभावः स्वप्रभावः। स्वप्रभावस्य सदृशी तां स्वप्रभावसदृशीम्। कन्यकाश्च तनयाश्चेति कन्यकातनयास्तेषां कौतुकं तस्य क्रिया तां कन्यकातनयकौतुकक्रियाम्।

हिन्दी—अपने आचार-विचार के पक्के, वरुण और इन्द्र के समान उन प्रतापी दोनों राजाओं ने मिलकर, अपने-अपने वैभव के अनुरूप कन्याओं तथा पुत्रों का विवाह संस्कार विस्तार पूर्वक (बड़े ठाट-बाट से) कर दिया ॥ ५३ ॥

पार्थिवीमुदवहद्रघूद्वहो लक्ष्मणस्तदनुजामथोर्मिलाम् ।
यौ तयोरवरजौ वरौजसौ तौ कुशध्वजसुते सुमध्यमे ॥ ५४ ॥

उद्वहतीत्युद्वहः पचाद्यच् । रघूणामुद्वहो रामः । पृथिव्या अपत्यं स्त्री पार्थिवी । 'तस्यापत्यम्' इत्यणि 'टिड्ढा—' इति ङीप् । तां सीतामुदवहत्परिणीतवान् । अथ लक्ष्मणस्तस्याः सीताया अनुजां जनकस्यौरसीमूर्मिलामुदवहत् । यौ वरौजसौ तयो रामलक्ष्मणयोरवरजावनुजातौ भरत-शत्रुघ्नौ तौ सुमध्यमे कुशध्वजस्य जनकानुजस्य सुते कन्यके माण्डवीं श्रुतकीर्तिं चोदवहताम् । नात्र व्युत्क्रमविवाहदोषो भिन्नोदरत्वात् । तदुक्तम्—'पितृव्यपुत्रे सापत्न्ये परनारीसुतेषु च । विवाहाधानयज्ञादौ परिवेत्ताद्यदूषणम् ॥' इति ॥

अन्वयः—रघूद्वहः पार्थिवीम् उदवहत्, अथ लक्ष्मणः तदनुजाम् ऊर्मिलाम् उदवहत्, यौ वरौजसौ तयोः अवरजौ तौ सुमध्यमे कुशध्वजसुते च उदवहताम् ।

व्याख्या—उद्वहतीति उद्वहः । रघूणाम् उद्वहः = श्रीरामचन्द्रः पृथिव्याः अपत्यं स्त्री पार्थिवी तां पार्थिवीं = पृथिवीपुत्रीं सीताम् उदवहत् = परिणीतवान् । अथ = अनन्तरम् लक्ष्मणः = सौमित्रिः तस्याः = सीतायाः अनुजा = कनिष्ठा तां तदनुजां = जनकस्यौरसीं पुत्रीमित्यर्थः ऊर्मिलाम् = एतन्नाम्नीम् उदवहत् = परिणीतवान् । यौ = प्रसिद्धौ वरं = श्रेष्ठम् ओजः = बलं ययोस्तौ वरौजसौ तयोः = रामलक्ष्मणयोः अवरस्मिन् काले जातौ = उत्पन्नौ अवरजौ, भरतशत्रुघ्नौ तौ सुमध्यमे = मनोरमे कुशध्वजस्य = जनकावरजस्य सुते = पुत्र्यौ, इति कुशध्वजसुते, माण्डवीं श्रुतकीर्तिं च उदवहताम् = परिणीतवन्तौ ।

समासः—रघूणाम् उद्वह इति रघूद्वहः । तस्याः अनुजा तां तदनुजाम् । अवरस्मिन् जातौ, अवरजौ । वरम् ओजः ययोस्तौ वरौजसौ ।

हिन्दी—रघुकुल श्रेष्ठ रामने पृथिवी से उत्पन्न, जनकपुत्री सीता से विवाह किया । और इसके पश्चात् लक्ष्मण ने सीता की छोटी बहन (जनक की औरसी कन्या) ऊर्मिला से, तथा जो अच्छे बलशाली, उनके छोटे भाई भरत शत्रुघ्न थे, उनका विवाह मनोरम (सुन्दरी) जनकजी के छोटे भाई कुशध्वज की कन्या माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति से हुआ ।

विशेष—भरत जी लक्ष्मण से बड़े थे अतः भरतजी का विवाह पहले न करके लक्ष्मणजी के बाद में किया गया है । अतः इसमें परिवेत्ता दोष होने के कारण अनुचित है ऐसा नहीं कह सकते *क्योंकि यहाँ कन्या भिन्न-भिन्न माता से जन्मी थी, ऊर्मिला जनकजी की पुत्री और* माण्डवी कुशध्वज की पुत्री थी इसलिये परिवेत्ता दोष नहीं है ॥ ५४ ॥

ते चतुर्थसहितास्त्रयो बभुः सूनवो नववधूपरिग्रहाः ।
सामदानविधिभेदविग्रहाः सिद्धिमन्त इव तस्य भूपतेः ॥ ५५ ॥

ते चतुर्थसहितास्त्रयः चत्वार इत्यर्थः। वृत्तानुसारादेवमुक्तम्। सूनवो नववधूपरिग्रहाः। सिद्धिमन्तः फलसिद्धियुक्तास्तस्य भूपतेर्दशरथस्य सामदानविधिभेदविग्रहाश्चत्वार उपाया इव बभुः। विधीयत इति विधिः। दानमेव विधिः। विग्रहो दण्डः। सूनूनामुपायैर्वधूनां सिद्धिभिश्चौपम्यमित्यनुसंधेयम्॥

अन्वयः—ते चतुर्थसहिताः त्रयः सूनवः नववधूपरिग्रहाः सिद्धिमन्तः तस्य भूपतेः सामदानविधिभेदविग्रहाः (चत्वारः उपायाः) इव बभुः।

व्याख्या—ते = श्रीरामलक्ष्मणादयः चतुर्णां पूरणः = चतुर्थत्वपूरकोऽवयवः चतुर्थः। चतुर्थेन सहिताः = युक्ताः त्रयः, रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः, चत्वारः, इत्यर्थः सूनवः = पुत्राः नवाः = नूतनाश्च ता वध्वः = स्त्रियः ताः परिग्रहाः = पत्न्यः येषां ते नववधूपरिग्रहाः। परिगृह्यन्ते, इति परिग्रहाः "पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः" इत्यमरः। सिद्धिः = फलसिद्धिः, अस्ति येषां ते सिद्धिमन्तः = फलनिष्पत्तिसहिताः तस्य = दशरथस्य भुवः पतिः भूपतिस्तस्य भूपतेः = राज्ञः विधीयते इति विधिः। दानं = त्यागः एव विधिः = विधानम् इति दानविधिः। "विधिर्ना नियतौ काले विधाने परमेष्ठिनि" इति मेदिनी। साम = सान्त्वप्रयोगः दानविधिः भेदः = उपजापः विग्रहः = दण्डः, एषामितरेतरयोगः सामदानविधिभेदविग्रहाः सामादिचत्वारः उपाया इव = यथा बभुः = शुशुभिरे। चतुर्णां पुत्राणामुपायैः, वधूनां च सिद्धिभिः, औपम्यमित्यनुसंधेयम्।

समासः—चतुर्थेन सहिताः चतुर्थसहिताः। नवाश्च ताः वध्वः नववध्वः। नववध्वः परिग्रहाः येषां ते नववधूपरिग्रहाः। साम च दानविधिश्च भेदश्च विग्रहश्चेत्येषां द्वन्द्वः सामदानविधिभेदविग्रहाः। भुवः पतिः भूपतिस्तस्य भूपतेः।

हिन्दी—वे चौथे के साथ तीन अर्थात् वे चारों राजा के पुत्र नई वधूवाले होकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो उस राजा दशरथ के फलसिद्धि से युक्त साम-दान भेद-दण्ड नामक चार उपाय हों। यहाँ चार पुत्रों का चार उपाय से और चार पत्नियों का सिद्धियों से सादृश्य है। तथा सीधे चार न कहकर "चतुर्थसहितास्त्रयः" इस प्रकार छन्द के अनुरोध से कहा गया है॥ ५५॥

ता नराधिपसुता नृपात्मजैस्ते च ताभिरगमन्कृतार्थताम्।
सोऽभवद्वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसंनिभः॥ ५६॥

ता नराधिपसुता जनककन्यका नृपात्मजैर्दशरथपुत्रैः कृतार्थतां कुलशीलवयोरूपादिसाफल्यमगमन्। ते च ताभिस्तथा। किंच। स वराणां वधूनां च समागमः। प्रत्ययानां प्रकृतीनां च योग इव संनिभातीति संनिभः अभवत्। पचाद्यच्। प्रत्ययाः सनादयो येभ्यो विधीयन्ते ताः प्रकृतयः। यथा प्रकृतिप्रत्यययोः सहैकार्थसाधनत्वं तद्वदत्रापीति भावः॥

अन्वयः—ताः नराधिपसुताः नृपात्मजैः कृतार्थताम् अगमन्, ते च ताभिः "कृतार्थताम् अगमन्" सः वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसंनिभः अभवत्।

व्याख्या—ताः = सीतायाः नराणां = मनुष्याणाम् अधिपः = पालकः राजा जनकः तस्य सुताः = कन्याः, इति नराधिपसुताः नृपस्य राज्ञो दशरथस्य आत्मनः = देहात् जाताः = उत्प-

न्तास्तैः नृपात्मजैः = रामचन्द्रादिभिः, कृतोऽर्थो याभिस्ताः कृतार्थानां सफलानां भावः कृतार्थता तां कृतार्थतां = कुलशीलरूपादिसाफल्यम् अगमन् = प्रापुः । ते च = रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाश्च ताभिः = सीतोर्मिलामाण्डवीश्रुतकीर्तिभिः जनकपुत्रीभिः तथा = कृतार्थताम् अगमन्, इति-संबन्धः सः = प्रसिद्धः वराणां = जामातॄणां वधूनां = नवपरिणीतानां च समागमः = संयोगः, इति वरवधूसमागमः । "वरो जामातरि" इति मेदिनी । सम्यक् निभातीति संनिभः । प्रत्येति = अर्थविषयकं बोधं जनयतीति प्रत्ययः । प्रकरणं प्रकृतिः । प्रत्ययानां = सनादीनां प्रकृतीनां = धातूनां च योगः = संबन्ध इति प्रत्ययप्रकृतियोगस्तेन संनिभः = सदृशः अभवत् = जातः । यथा धातुप्रत्यययोः सहैकार्थसाधनत्वं तथैवात्रापि वरवधूसंयोगः जगत्कल्याणरूपैकार्थसाधकः इति भावः ।

समासः—नराणामधिपस्तस्य सुताः, नराधिपसुताः । नृपस्य आत्मजास्तैः, नृपात्मजैः । कृतः अर्थः यैस्ते कृतार्थास्तेषां भावः कृतार्थता तां कृतार्थताम् । वराणां वधूनां च समागमः, वरवधूसमागमः । प्रत्ययश्च प्रकृतिश्च प्रत्ययप्रकृती तयोः योगस्तेन संनिभः, इति प्रत्ययप्रकृति-योगसंनिभः । यद्वा प्रत्ययप्रकृतियोग इव सम्यक् नितरां भाति = शोभते, इति प्रत्ययप्रकृति-योगसंनिभः ।

हिन्दी—वे राजा जनक की पुत्रियाँ राजा दशरथजी के पुत्रों से (मिलकर) और वे राज-कुमार उन राजकुमारियों से (मिलकर) कृतकृत्य हो गये, अर्थात् अपने-अपने कुल, स्वभाव, तथा अवस्था एवं सौन्दर्य आदि की सफलता को पा गये । और उन कुमार तथा कुमारियों का मिलन (विवाह) ऐसा सार्थक हुआ जैसे धातु (शब्द का मूलरूप, 'भू, पठ्') प्रत्यय (अर्थ ज्ञान करानेवाला सन्, घञ्, अच्) का योग सार्थक होता है ।

विशेष—पच् पठ आदि प्रकृति, ण्वुल्, अक् आदि प्रत्यय, पृथक् रहते हुए, किसी अर्थ को प्रकट करने में असमर्थ होने से निरर्थक से रहते हैं । और वेही दोनों मिलकर पाचकः पाठकः शब्द बनकर पकाने वाला, पढाने वाला, रूप अर्थ के वाचक होने से सार्थक बन जाते हैं । वैसे ही वर वधू का मिलन भी सार्थक हो गया ॥ ५६ ॥

एवमात्तरतिरात्मसंभवांस्तान्निवेश्य चतुरोऽपि तत्र सः ।
अध्वसु त्रिषु विसृष्टमैथिलः स्वां पुरीं दशरथो न्यवर्तत ॥ ५७ ॥

एवमात्तरतिरनुरागवान्स दशरथस्तांश्चतुरोऽप्यात्मसंभवान्पुत्रांस्तत्र मिथिलायां निवेश्य विवाह्य । 'निवेशः शिबिरोद्वाहविन्यासेषु प्रकीर्तितः' इति विश्वः । त्रिष्वध्वसु प्रयाणेषु सत्सु विसृष्टमैथिलः सन् । स्वां पुरीं न्यवर्तत । उद्देशक्रियापेक्षया कर्मत्वं पुर्याः ॥

अन्वयः—एवम् आत्तरतिः सः दशरथः तान् चतुरः अपि आत्मसम्भवान् तत्र निवेश्य त्रिषु अध्वसु सत्सु विसृष्टमैथिलः सन् स्वां पुरीं न्यवर्तत ।

व्याख्या—एवम् = उक्तप्रकारेण विवाहसम्पादनेन आत्ता प्राप्ता, रतिः = अनुरागः सन्तोषः येन सः आत्तरतिः सः = प्रसिद्धः दशरथः = राजा तान् चतुरः = चतुःसंख्यकान् रामादीन् अपि आत्मनः = देहात् सम्भवन्ति = जायन्ते इति आत्मसम्भवास्तान् आत्मसम्भवान् = सुतान्

तत्र = मिथिलायां निवेश्य = विवाह्य "निवेशः सैन्यविन्यासे न्यासे रंगविवाहयोः" इति हैमः। त्रिपु अध्वसु = त्रिसंख्यकप्रयाणेषु सत्सु त्रिविश्रामस्थलेषु व्यतीतेषु सत्स्वित्यर्थः विसृष्टः = प्रेषितः परावर्तित इत्यर्थः मैथिलः = जनकः येन स विसृष्टमैथिलः सन्। स्वां = स्वीयां पुरीम् = अयोध्याम् न्यवर्तत = प्रत्यावर्तत। अयोध्याम्प्रति चचालेत्यर्थः।

समासः—आत्ता रतिर्येन सः आत्तरतिः। आत्मनः सम्भवास्तान् आत्मसम्भवान्। विसृष्टः मैथिलः येन स विसृष्टमैथिलः।

हिन्दी—इस प्रकार प्रेम तथा सन्तोष पूर्ण राजा दशरथ जी, अपने चारों पुत्रों को जनकपुर में विवाहकर, और तीन पड़ावों के बीत जाने पर राजा जनक को विदा करके अपनी नगरी अयोध्या को लौट चले। अर्थात् जनक जी अपने प्रिय समधीको विदा करने के समय तीन रात तक मार्ग में साथ-साथ आये थे, तब दशरथजी ने उन्हें तीसरे पड़ाव से लौटा दिया, और स्वयं अयोध्या की ओर चल दिये ॥ ५७ ॥

तस्य जातु मरुतः प्रतीपगा वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः।
चिक्लिशुर्भृशतया वरूथिनीमुत्तटा इव नदीरयाः स्थलीम् ॥ ५८ ॥

जातु कदाचिद्वर्त्मसु ध्वजा एव तरवस्तान्प्रमथ्नन्ति ये ते ध्वजतरुप्रमाथिनः प्रतीपगाः प्रतिकूलगामिनो मरुतः। उत्तटा नदीरयाः स्थलीमकृत्रिमभूमिमिव। 'जानपदकुण्ड—'इत्यादिना ङीप्। तस्य वरूथिनीं सेनां भृशतया भृशं चिक्लिशुः क्लिश्यन्ति स्म ॥

अन्वयः—जातु वर्त्मसु ध्वजतरुप्रमाथिनः प्रतीपगाः मरुतः, उत्तटाः नदीरयाः स्थलीम् इव, तस्य वरूथिनीं भृशतया चिक्लिशुः।

व्याख्या—जातु = कस्मिंश्चित्काले वर्त्मसु = मार्गेषु ध्वजाः = पताका एव तरवः = वृक्षास्तान् प्रमथ्नन्ति = विलोडयन्ति ये ते ध्वजतरुप्रमाथिनः = मार्गस्थवृक्षभञ्जका इत्यर्थः। प्रतीपं = प्रतिकूलं गच्छन्तीति प्रतीपगाः = सम्मुखागामिनः म्रियन्ते एभिर्विना प्रवृद्धैर्वा ते मरुतः = वायवः उद्गताः तटाः यैस्ते उत्तटाः। उत्क्रान्ताः तटमिति वा उत्तटाः = तीरमतिक्रान्ताः नदीनां = सरितां रयाः = वेगाः स्थलीम् = अकृत्रिमभूमिम् इव = यथा। तस्य = राज्ञो दशरथस्य। व्रियते = आच्छाद्यते रथोऽनेनेति वरूथः। "वरूथो रथगुप्तौ स्यात्" इति मेदिनी। वरूथाः सन्त्यस्यां सा तां वरूथिनीं = सेनां भृशतया = भृशम् = अत्यन्तं चिक्लिशुः = पीडयन्ति स्म।

समासः—ध्वजा एव तरवः, इति ध्वजतरवः, ध्वजतरूणां प्रमाथिनः, तान् ध्वजतरुप्रमाथिनः। तटानि उत्क्रान्ताः उत्तटाः।

हिन्दी—किसी एक दिन मार्ग में पताका रूपी वृक्षों को (फाड़ने तोड़ने वाले) झकझोरने वाले तथा विपरीत (उलटा) चलने वाले वायुओं ने राजा दशरथ की सेना को उसी प्रकार अत्यन्त व्याकुल कर दिया, जैसे कि तट (किनारे) को तोड़कर ऊपर बहने वाली नदी की धारा आसपास की जमीन को डुबो देती है, छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ ५८ ॥

लक्ष्यते स्म तदनन्तरं रविर्बद्धभीमपरिवेषमण्डलः ।
वैनतेयशमितस्य भोगिनो भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः ।। ५९ ।।

तदनन्तरं प्रतीपपवनानन्तरं बद्धं भीमं परिवेषस्य परिवेषमण्डलं यस्य सः । 'परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले' इत्यमरः । रविः वैनतेयशमितस्य गरुडहतस्य भोगिनः सर्पस्य भोगेन कायेन । 'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इत्यमरः । वेष्टितश्च्युतः शिरोभ्रष्टो मणिरिव । लक्ष्यते स्म ॥

अन्वयः—तदनन्तरं बद्धभीमपरिवेषमण्डलः रविः वैनतेयशमितस्य भोगिनः भोगवेष्टितः च्युतः मणिः इव लक्ष्यते स्म ।

व्याख्या—तस्य = प्रतीपपवनस्य अनन्तरं = पश्चात् बद्धं = मूर्तं भीमं = भयंकरं परिवेषस्य = परिधेः मण्डलं = बिम्बं = परिवेशः यस्य स बद्धभीमपरिवेषमण्डलः । "मण्डलं देशबिम्बयोरिति । मण्डलं परिवेशश्च" ति च कोषः । स्यते = सूयते इति रविः = सूर्यः विनतायाः अपत्यं पुमान् वैनतेयः । वैनतेयेन = गरुडेन शमितः = हतः वैनतेयशमितस्तस्य वैनतेयशमितस्य भोगः = फणः अस्यास्तीति भोगी तस्य भोगिनः सर्पस्य भोगेन = कायेन वेष्टितः = वलयितः, भोगवेष्टितः "भोगः फणकाययोः" इत्यमरः । च्युतः = मस्तकात् परिभ्रष्टः मणिः = रत्नम् इव = यथा लक्ष्यते स्म = ददृशे, तत्रत्यजनैरिति शेषः ।

समासः—तस्य अनन्तरं तदनन्तरम् । परिवेषस्य मण्डलमिति परिवेषमण्डलम् । बद्धं भीमं परिवेषमण्डलं यस्य स तथोक्तः । भोगेन वेष्टितः भोगवेष्टितः । वैनतेयेन शमितः वैनतेयशमितस्तस्य वैनतेयशमितस्य ।

हिन्दी—उलटी हवा चलने के पश्चात् भयंकर मण्डल (चारों ओर के घेरे) से घिरा सूर्य, गरुड़ से मारे हुए साँप के मस्तक से गिरे उस मणि के समान (छोटासा) दीखने लगा, जो साँप के शरीर के घेरे में पड़ा हो । अर्थात् सर्प के मरने पर मणि गिर पड़ा, और वह मरा हुआ साप मणि के चारों ओर मण्डलाकार पड़ा हो ।

विशेषः—परिवेष परिधि को कहते हैं जो कभी-कभी सूर्यचन्द्र के चारों ओर मण्डल सा (घेरा) बन जाता है यह उत्पात का सूचक भी होता है । और इससे सूर्यचन्द्र की कान्ति क्षीण हो जाती है । और सूर्य-चन्द्र छोटे से दीखने लगते हैं ॥ ५९ ॥

श्येनपक्षपरिधूसरालकाः सांध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः ।
अङ्गना इव रजस्वला दिशो नो बभूवुरवलोकनक्षमाः ॥ ६० ॥

श्येनपक्षा एव परिधूसरा अलका यासां तास्तथोक्ताः । सांध्यमेघा एव रुधिरार्द्राणि वासांसि यासां तास्तथोक्ताः । रजो धूलिरासामस्तीति रजस्वलाः । 'रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्' इति वलच्प्रत्ययः । दिशः रजस्वला ऋतुमत्योऽङ्गना इव । 'स्याद्रजः पुष्पमार्तवम्' इत्यमरः । अवलोकनक्षमा दर्शनार्हा नो बभूवुः । एकत्राद्दृष्टदोषादपरत्र शास्त्रदोषादिति विवेयम् । अत्र रजोवृष्टिरुत्पात उक्तः ॥

अन्वयः—श्येनपक्षपरिधूसरालकाः सान्ध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः रजस्वलाः दिशः रजस्वलाः अङ्गना इव अवलोकनक्षमाः नो बभूवुः ।

व्याख्या—श्येनस्य = शशादनस्य पत्रिण इत्यर्थः पक्षाः = गरुतः इति श्येनपक्षाः । "शशादनः पत्री श्येनः" इत्यमरः परितः धूनोति चेतः, इति परिधूसरः, परितः धूसं राति इति परि-धूसरः, "ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः" इत्यमरः । श्येनपक्षा एव परिधूसराः = धूसरवर्णाः अलकाः = चूर्णकुन्तलाः यासां ताः श्येनपक्षपरिधूसरालकाः "अलकाश्चूर्णकुन्तलाः" इत्यमरः । सन्ध्यायां भवाः सान्ध्याः, सांध्याः = सायंकालिकाश्च ते मेघाः = वारिवाहाः, इति सान्ध्यमेघाः । सांध्य-मेघा एव रुधिरेण = शोणितेन आर्द्राणि = क्लिन्नानि वासांसि = वस्त्राणि यासां ताः सान्ध्यमेघ-रुधिरार्द्रवाससः । रजः = धूलिरस्ति, आसां ताः रजस्वलाः दिशः = काष्ठाः । रजः = स्त्रीपुष्पमस्ति यासां ताः रजस्वलाः = ऋतुमत्यः सुन्दराणि अंगानि सन्ति यासां ताः अंगनाः = स्त्रियः इव = यथा अवलोकने = दर्शने क्षमाः = योग्याः नो = नहि बभूवुः = जाताः । यथा शास्त्रोक्तदोषात् रजस्वलाः स्त्रियः न दर्शनयोग्याः एवमेव वात्याधूलिवर्षणात् दिशः न दर्शनक्षमा इति भावः । 'स्याद्रजः पुष्पमार्तवमि'त्यमरः ।

समासः—श्येनस्य पक्षा एव परिधूसरा अलका यासां ताः श्येनपक्षपरिधूसरालकाः । सांध्याः मेघा एव रुधिरेण आर्द्राणि वासांसि यासां ताः सांध्यमेघरुधिरार्द्रवाससः । अवलोकने-क्षमाः अवलोकनक्षमाः ।

हिन्दी—बाज पक्षी के पंख रूपी मटमैले घुंघराले केश वाली, और सायंकाल के मेघरूपी खून से भीगे वस्त्रवाली धूली से भरी चारों दिशाएँ उन स्त्रियों के समान देखने योग्य नहीं रहीं, जो कि रूखे तथा मटमैले केश वाली, और रक्त से लाल रंग के कपड़ों वाली मासिक-धर्म के समय देखने योग्य नहीं रहती हैं ।

विशेष—आंधी चलने से धूली दिशाओं में भर गई थीं और उसमें बाज पक्षियों के पंख उड़ रहे थे, तथा कुछ लाल मेघ भी आकाश में भर गये थे, इसलिये सब दिशाएँ देखने लायक न रह गई थीं । और मासिकधर्म के समय स्त्रियाँ शृंगार न करने से रूखे बालों तथा रक्त से लाल वस्त्रवाली हो जाती हैं ऐसी स्थिति में स्त्रियों को देखना भी शास्त्रवर्जित है ॥ ६० ॥

भास्करश्च दिशमध्युवास यां तां श्रिताः प्रतिभयं ववासिरे ।
क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं चोदयन्त्य इव भार्गवं शिवाः ॥ ६१ ॥

भास्करो यां दिशमध्युवास च यस्यां दिश्युषितः, 'उपान्वध्याङ्वसः' इति कर्मत्वम् । तां दिशं श्रिताः शिवा गोमायवः । 'स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्तकाः' इत्यमरः । क्षत्रशोणितेन या पितृक्रिया पितृतर्पणं तत्रोचितं परिचितं भार्गवं चोदयन्त्य इव प्रतिभयं भयंकरं ववासिरे रुरुवुः । 'वासृ शब्दे' इति धातोर्लिट् । 'तिरश्चां वासितं रुतम्' इत्यमरः ॥

अन्वयः—भास्करः च यां दिशम् अध्युवास तां श्रिताः शिवाः क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं भार्गवं चोदयन्त्य इव प्रतिभयं ववासिरे ।

व्याख्या—भाः करोतीति भास्करः = सूर्यः यां दिशं = यस्यां दिशि अध्युवास = उषितवान् तां दिशं = तस्यां दिशि श्रिताः = वर्तमानाः शिवाः = सृगालाः क्षत्राणां = राज्ञां शोणितं = रुधिरं तेन पितॄणां = स्वर्गतानां क्रिया = तर्पणं तत्र उचितः = अभ्यस्तस्तं क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितं भृगोः अपत्यं पुमान् भार्गवस्तं भार्गवं = परशुरामं चोदयन्त्यः = प्रेरयन्त्यः प्रार्थयन्त्य इत्यर्थः इव = यथा प्रतिगतं भयेन प्रतिभयं प्रतिगतं भयमस्मिन्निति वा प्रतिभयं = भीषणं क्रियाविशेषणमिदम् "भीषणं भीष्मं घोरं···भयंकरं प्रतिभयमि" त्यमरः। ववासिरे = रुरुवुः, अनिष्टमव्यक्तञ्च शब्दं चक्रुरित्यर्थः।

समासः—क्षत्राणां शोणितमिति क्षत्रशोणितं तेन पितॄणां क्रिया, इति क्षत्रशोणितपितृक्रिया तस्यामुचितस्तं क्षत्रशोणितपितृक्रियोचितम्। प्रतिगतं भयेन, इति प्रतिभयम्।

हिन्दी—और जिस दिशा में सूर्य निवास कर रहे थे, उस दिशा में रहनेवाले शृगाल और शृगालिनियां भयंकर अनिष्ट रूप से रोने लगीं, मानो वे क्षत्रियों के खून से अपने पिता का तर्पण करने वाले भगवान् परशुराम को पुकार रही हों।

विशेष—परशुराम जी जमदग्नि के पुत्र योद्धा ब्राह्मण, और विष्णु का छठा अवतार थे। महर्षि जमदग्नि के आश्रम से राजा कार्तवीर्य उनकी गौ को जबरन ले गया था। इस अपराध के कारण परशुराम ने राजा का वध किया था। कार्तवीर्य के पुत्रों ने परशुराम की अनुपस्थिति में जमदग्नि का शिर काट दिया था। जब परशुराम ने सुना तो वे बड़े क्रुद्ध हुये, उसी समय सारी क्षत्री जाति के विनाश की प्रतिज्ञा कर कार्तवीर्य के पुत्रों को मारा और २१ बार क्षत्री जाति से पृथिवी को शून्य कर दिया था। यही खून से पितृतर्पण का तात्पर्य है। रामावतार होने पर रामजी से हार कर परशुरामजी महेन्द्र पर्वत पर चले गये थे, सो अब भी वहां हैं॥ ६१॥

तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य शान्तिमधिकृत्य कृत्यवित्।
अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वन्तमित्यलघयत्स तद्व्यथाम्॥ ६२॥

तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं दुर्निमित्तं प्रेक्ष्य कृत्यवित्कार्यज्ञः क्षितेरीश्वरः शान्तिमनर्थनिवृत्ति-मधिकृत्योद्दिश्य गुरुं वसिष्ठमन्वयुङ्क्तापृच्छत्। 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः। स गुरुः स्वन्तं शुभोदर्कं भावीति तस्य राज्ञो व्यथामलघयल्लघूकृतवान्॥

अन्वयः—तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य कृत्यवित् क्षितेः ईश्वरः शान्तिमधिकृत्य गुरुम् अन्वयुंक्त, सः स्वन्तं भावीति तद्व्यथाम् अलघयत्।

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः प्रतीपः = प्रतिकूलः पवनः = वायुः आदिः यत्र तत् तत्प्रतीप-पवनादि वैकृतम् = अशुभसूचकम्, अनिष्टम् प्रेक्ष्य = अवलोक्य कृत्यं = कार्यं वेत्ति = जानातीति कृत्यवित् क्षितेः = पृथिव्याः ईश्वरः = स्वामी, राजा दशरथः, शान्तिम् = अनिष्टशमनम् अधिकृत्य = उद्दिश्य गृणाति उपदिशतीति गुरुः। गिरत्यज्ञानमिति वा गुरुस्तं गुरुं = वशिष्ठम् अन्वयुंक्त = पृष्टवान् "प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च" इत्यमरः। सः = गुरुर्वसिष्ठः सु = शोभनम् अन्तः = उदर्कः यस्य तत् स्वन्तं भविष्यतीति तस्य = दशरथस्य व्यथा = पीडा तां तद्व्यथाम् अलघयत् = लघूकृतवान्।

समासः—सः प्रतीपः पवनः आदिः यत्र तत्, तत्प्रतीपपवनादि । कृत्यस्य वित् कृत्यवित् । सु अन्तः यस्य तत् स्वन्तम् । तस्य व्यथा तां तद्व्यथाम् ।

हिन्दी—उस विपरीत (उलटो) हवा के चलना आदि अशुभ शकुन होते देखकर कार्य के ज्ञाता राजा दशरथ जी ने शान्ति के लिये अपने गुरु वसिष्ठ जी से पूछा कि (इससे बचने का उपाय बताइये) उस गुरुवसिष्ठ ने, इसका परिणाम अच्छा ही होगा यह कर राजा की पीड़ा को कम कर दिया, अर्थात् आप चिन्ता न करें क्योंकि इसका फल अच्छा ही होगा, इस प्रकार राजा को धैर्य धराया ॥ ६२ ॥

तेजसः सपदि राशिरुत्थितः प्रादुरास किल वाहिनीमुखे ।
यः प्रमृज्य नयनानि सैनिकैर्लक्षणीयपुरुषाकृतिश्चिरात् ॥ ६३ ॥

सपद्युत्थितस्तेजसो राशिर्वाहिनीमुखे सेनाग्रे प्रादुरास किल खलु । यः सैनिकैर्नयनानि प्रमृज्य चिराल्लक्षणीया भावनीया पुरुषाकृतिर्यस्य स तथोक्तः । अभूदिति शेषः ॥

अन्वयः—सपदि उत्थितः तेजसः राशिः वाहिनीमुखे प्रादुरास किल, यः सैनिकैः नयनानि प्रमृज्य चिरात् लक्षणीयपुरुषाकृतिः "अभूत्" ।

व्याख्या—संपद्यतेऽस्मिन् सपदि = तत्क्षणे "सद्यः सपदि तत्क्षणे" इत्यमरः । उत्थितः = उत्पन्नः तेजसः = दीप्तेः "तेजः प्रभावे दीप्तौ च" इत्यमरः । राशिः = पुञ्जः, वाहाः = अश्वाः सन्ति यस्यां सा वाहिनी । वाहिन्याः = सेनायाः मुखे = अग्रे प्रादुरास = प्रादुर्बभूव प्रकटो जात इत्यर्थः किल = खलु । यः = तेजःपुञ्जः सेनायां समवेताः सैनिकाः तैः सैनिकैः = सैन्यैः नयनानि = नेत्राणि प्रमृज्य = प्रक्षाल्य चिरात् = चिरेण = बहुकालेनेत्यर्थः । लक्षणीया = दर्शनीया पुरुषस्य = नरस्य आकृतिः = स्वरूपं यस्य स लक्षणीयपुरुषाकृतिः । अभूदिति शेषः ।

समासः—वाहिन्याः मुखमिति वाहिनीमुखं तस्मिन् वाहिनीमुखे । पुरुषस्य आकृतिरिति पुरुषाकृतिः । लक्षणीया पुरुषाकृतिः यस्य स लक्षणीयपुरुषाकृतिः ।

हिन्दी—"और" उसी समय एक तेजपुञ्ज (तेज समूह ढेर) सेना के सामने दिखाई पड़ा । (इससे उनकी आँखे चौन्धियाँ गईं) जो तेज का समूह, सैनिकों ने आँखे मलकर या धोकर देखा तब बहुत देर बाद पुरुष के रूप में देखा गया ॥ ६३ ॥

पित्र्यमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत् ।
यः ससोम इव घर्मदीधितिः सद्विजिह्व इव चन्दनद्रुमः ॥ ६४ ॥

उपवीतं लक्षणं चिह्नं यस्य तम् । पितुरयं पित्र्यः । 'वाय्वृतुपित्रुषसो यत्' इति यत्प्रत्ययः । तमंशम् । धनुषोर्जितम् धनुरूर्जितं । मातुरयं मातृकः । 'ऋतष्ठञ्' इति ठञ्प्रत्ययः । तमंशं च दधद्यो भार्गवः । ससोमश्चन्द्रयुक्तो घर्मदीधितिः सूर्य इव । सद्विजिह्वः ससर्पश्चन्दनद्रुम इव स्थितः ॥

अन्वयः—उपवीतलक्षणं पित्र्यम् अंशं धनुरूर्जितं मातृकं च अंशं दधत् यः ससोमः घर्मदीधितिः इव, सद्विजिह्वः चन्दनद्रुमः इव स्थितः।

व्याख्या—उपवीयते स्म, उपवीतं = यज्ञसूत्रं लक्षणं = चिह्नं यस्य स तम् उपवीतलक्षणं पितुरयं पित्र्यस्तं पित्र्यं = पितृसंबन्धिनम् अंशं = भागम्, धनुषा = चापेन ऊर्जितः = बलवान् दृढः तं धनुरूर्जितं मातुः = जनन्या अयं मातृकस्तं मातृकम् च अंशं दधत् = धारयन् यः = परशुरामः सोमेन सहितः ससोमः = सचन्द्रः, घर्माः = निदाघाः उष्णा इत्यर्थः दीधितयः = किरणाः यस्य स घर्मदीधितिः = सूर्यः इव = यथा "घर्मो निदाघः स्वेदः" इत्यमरः। द्वे जिह्वे = रसने यस्य स द्विजिह्वः। द्विजिह्वेन = सर्पेण सह वर्तते यः स सद्विजिह्वः = सर्पयुक्तः "द्विजिह्वौ सर्पसूचकौ" "रसज्ञा रसना जिह्वा" इति चामरः। चन्दयति = आह्लादयतीति चन्दनः। चन्दनस्य = मलयजस्य द्रुमः = वृक्षः इव = यथा स्थित इति शेषः।

समासः—उपवीतं लक्षणं यस्य स तम् उपवीतलक्षणम्। धनुषा ऊर्जितस्तं धनुरूर्जितम्। सोमेन सहितः ससोमः घर्माः दीधितयो यस्य स घर्मदीधितिः। द्विजिह्वेन सहितः सद्विजिह्वः। चन्दनस्य द्रुम इति चन्दनद्रुमः।

हिन्दी—यज्ञोपवीत (जनेऊ) चिह्नवाले पिता (ब्राह्मण) के अंश को तथा धनुष से शक्तिशाली मजबूत मातापक्षके अंश को धारण किये हुये परशुराम जी ऐसे लग रहे थे मानो, चन्द्रमा के साथ सूर्य खड़े हो और साँप से युक्त चन्दन का वृक्ष खड़ा हो।

विशेष—महर्षि जमदग्नि ब्राह्मण थे, और उनकी धर्मपत्नी रेणुका विदर्भराज की पुत्री क्षत्रिया थी। अतः परशुराम जी में मातापिता दोनों के अंश का महाकवि ने वर्णन किया है। कन्धे पर सुशोभित यज्ञसूत्र पिता के अंश ब्राह्मणत्व को और धनुष धारण से शक्तिशालित्व, एवं दृढ़ता, माता के अंश क्षात्रत्व को प्रकट कर रहा है। इसको कवि ने उपमाद्वय से दर्शाया है ॥ ६४ ॥

येन रोषपरुषात्मनः पितुः शासने स्थितिभिदोऽपि तस्थुषा।
वेपमानजननीशिरश्छिदा प्रागजीयत घृणा ततो मही ॥ ६५ ॥

रोषपरुष आत्मा बुद्धिर्यस्य सः। 'आत्मा जीवो धृतिर्बुद्धिः' इत्यमरः। तस्य रोषपरुषात्मनः स्थितिभिदोऽपि मर्यादालङ्घिनोऽपि पितुः शासने तस्थुषा स्थितेन वेपमानजननीशिरश्छिदा येन प्राग्घृणाऽजीयत। ततोऽनन्तरं मह्यजीयत। मातृहन्तुः क्षत्त्रवधात्कुतो जुगुप्सेति भावः ॥

अन्वयः—रोषपरुषात्मनः स्थितिभिदः अपि पितुः शासने तस्थुषा वेपमानजननीशिरश्छिदा येन प्राक् घृणा अजीयत ततः मही अजीयत।

व्याख्या—रोषेण = क्रोधेन परुषः = रूक्षः, कठोरः आत्मा = बुद्धिः हृदयमित्यर्थः यस्य स तस्य रोषपरुषात्मनः। "आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावः" इत्यमरः। स्थितिं = मर्यादां भिनत्ति = लंघयतीति स्थितिभित् तस्य स्थितिभिदः अपि = समुच्चये पितुः = जनकस्य महर्षिजमदग्नेरित्यर्थः शासने = आज्ञायां तस्थुषा = स्थितेन वेपते असौ वेपमाना = कम्पमाना चासौ जननी = माता, इति वेपमानजननी तस्याः शिरः = मस्तकं छिनत्ति = कर्तयतीति वेपमानजननीशिरश्छित् तेन तथोक्तेन येन = परशुरामेण प्राक् = पूर्वं घृणा = करुणा, जुगुप्सा च अजीयत = जिता ततः = अनन्तरं मही = पृथिवी अजीयत = जिता, परित्यक्तेत्यर्थः। मातुः मस्तकच्छेदिनः *क्षत्रियाणां वधे कुतो जुगुप्सेत्यर्थः।*

समासः—रोषेण परुषः रोषपरुषः, रोषपरुषः आत्मा यस्य स तस्य रोषपरुषात्मनः। स्थितिं भिनत्तीति स्थितिभिद् तस्य स्थितिभिदः। वेपमाना चासौ जननी, वेपमानजननी, तस्याः शिरसः छित्, तेन वेपमानजननीशिरश्छिदा।

हिन्दी—क्रोध से कठोर हृदयवाले, अतएव मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले अपने पिता जी की आज्ञा पालन करने में स्थिर (आज्ञा मानकर) काँपती हुई माता के शिर को काटने वाले परशुराम ने पहले तो घृणा (करुणा और निन्दा) का परित्याग किया, अनन्तर पृथिवी का त्याग कर दिया था। अर्थात् माँ का शिर काटने में दया एवं निन्दा को जीत लिया था, पश्चात् राजाओं को मार कर इक्कीस बार पृथिवी को जीता था।

विशेष—महर्षि जमदग्नि की पत्नी रेणुका जी एक दिन स्नान करने नदी पर गई तो वहां गन्धर्वराज चित्ररथ को अपनी पत्नी के साथ जलक्रीड़ा करते देखा। उस रमणीय दृश्य को देखकर उसके मन में ईर्ष्या जागी और वह दूषित विचारों से कलुषित हो गई। गंगास्नान करने पर भी मनः शुद्धि नहीं हुई, आश्रम में वापिस आई तो सतीत्व की कान्ति से हीन पत्नी को देखकर क्रोध से अपने पुत्रों से इनका शिर काटने को कहा, चार पुत्रों ने तो माँ का शिर काटने में आना कानी की, किन्तु कनिष्ठ पुत्र परशुराम ने अपने फरसे से शिर काट दिया। तब पिता ने प्रसन्न होकर परशुराम से वर माँगने को कहा, तब दयालु परशुराम ने अपनी माता को पुनः जीवित करने को कहा तो पिता ने तुरन्त उन्हें जीवित कर दिया, और इस घटना को भूल जाने का वरदान दे दिया था॥ ६५॥

अक्षबीजवलयेन निर्बभौ दक्षिणश्रवणसंस्थितेन यः।
क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेर्व्याजपूर्वगणनामिवोद्वहन्॥ ६६॥

यो भार्गवो दक्षिणश्रवणे संस्थितेनाक्षबीजवलयेनाक्षमालया। क्षत्रियान्तकरणानां क्षत्रियवधानामेकविंशतेरेकविंशतिसंख्याया व्याजोऽक्षमालारूपः पूर्वो यस्यास्तां गणनामुद्वहन्निव निर्बभौ।

अन्वयः—यः दक्षिणश्रवणसंस्थितेन अक्षबीजवलयेन क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेः व्याजपूर्वगणनाम् उद्वहन् इव निर्बभौ।

व्याख्या—यः = भार्गवः श्रूयतेऽनेन तत् श्रवणम्। दक्षिणं = वामेतरञ्च तत्, श्रवणं = श्रोत्रं, तस्मिन् संस्थितं = धारितं तेन दक्षिणश्रवणसंस्थितेन। अक्षबीजानां = रुद्राक्षाणां वलयं = कुण्डलं तेन अक्षबीजवलयेन = रुद्राक्षनिर्मितकुण्डलेनेत्यर्थः क्षत्रियाणां = राजन्यानाम् अन्तकरणानि = मारणानि तेषाम् एकविंशतिः = एकविंशतिसंख्या तस्याः क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेः, व्यजन्ति = क्षियन्त्यनेनेति व्याजः। व्याजः = रुद्राक्षबीजमालारूपः पूर्वः यस्याः सा। सा चासौ गणना = संख्या ताम् उद्वहन् = धारयन् इव = यथा निर्बभौ = शुशुभे।

समासः—दक्षिणञ्च तत् श्रवणमिति दक्षिणश्रवणं, तत्र संस्थितं तेन दक्षिणश्रवणसंस्थितेन। अक्षाणां बीजानि अक्षबीजानि, तेषां वलयं तेन अक्षबीजवलयेन। क्षतात् त्रायते, इति क्षत्रं, क्षत्रस्य अपत्यानि क्षत्रियाः। क्षत्रियाणाम् अन्तकरणानि, तेषाम् एकविंशतिः, तस्याः क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेः। व्याजः पूर्वो यस्याः सा व्याजपूर्वा सा चासौ गणना तां व्याजपूर्वगणनाम्।

हिन्दी—परशुराम जी दाहिने कान में पहिनी हुई, (इक्कीस) रुद्राक्ष के दानों की माला (कुण्डल) से सुशोभित हो रहे थे। मानो वह माला, क्षत्रियों का इक्कीस बार नाश करने की गणना करने के लिये, इक्कीस दाने की माला पहने हों ॥ ६६ ॥

तं पितुर्वधभवेन मन्युना राजवंशनिधनाय दीक्षितम् ।
बालसूनुरवलोक्य भार्गवं स्वां दशां च विषसाद पार्थिवः ॥ ६७ ॥

पितुर्जमदग्नेर्वधभवेन क्षत्रियकर्तृकवधोद्भवेन मन्युना कोपेन राजवंशानां निधनाय नाशार्थम् । 'निधनं स्यात्कुले नाशे' इति विश्वः । दीक्षितम् । प्रवृत्तमित्यर्थः, तं भार्गवं स्वां दशां चावलोक्य बालाः सूनवो यस्य स पार्थिवो विषसाद । स्वस्यातिदौर्बल्याच्छत्रोश्चातिक्रोधात्कांदिशीकोऽभवदित्यर्थः ॥

अन्वयः—पितुः वधभवेन मन्युना राजवंशनिधनाय दीक्षितं तं, स्वां दशां च अवलोक्य बालसूनुः पार्थिवः विषसाद ।

व्याख्या—पातीति पिता, तस्य पितुः=जनकस्य जमदग्नेरित्यर्थः, वधात्=मारणात् भवतीति वधभवस्तेन वधभवेन मन्युना=क्रोधेन राज्ञां=क्षत्रियाणां वंशः=कुलं तस्य निधनं=नाशः, तस्मै राजवंशनिधनाय दीक्षा संजाता अस्यासौ दीक्षितस्तं दीक्षितं=कृतप्रतिज्ञमित्यर्थः तं=भार्गवं=परशुरामं, स्वां=निजां दशां=निर्बलतां च अवलोक्य=वीक्ष्य विचार्येत्यर्थः बालाः=शिशवः सूनवः=पुत्राः यस्य स बालसूनुः पार्थिवः=राजा दशरथः विषसाद=विषादं प्राप्तवान् । आत्मनोऽतिदुर्बलत्वात् क्षत्रियकुलनाशकपरशुरामस्यातिक्रोधात् दशरथः किंकर्तव्यविमूढो जात इत्यर्थः ।

समासः—वधात् भवः वधभवस्तेन वधभवेन । राज्ञां वंशः तस्य निधनं तस्मै राजवंशनिधनाय । बालाः सूनवो यस्य स बालसूनुः ।

हिन्दी—अपने पिता के एक क्षत्रिय राजा द्वारा मारे जाने से उत्पन्न क्रोध से क्षत्रिय कुल के नाश की प्रतिज्ञा करनेवाले भगवान् भार्गव को देखकर और अपनी कमजोर दशा को देखकर छोटे-छोटे बच्चों के पिता राजा विषाद, चिन्ता को प्राप्त हो गये। अर्थात् किंकर्तव्यमूढ हो गये ॥ ६७ ॥

नाम राम इति तुल्यमात्मजे वर्तमानमहिते च दारुणे ।
हृद्यमस्य भयदायि चाभवद्रत्नजातमिव हारसर्पयोः ॥ ६८ ॥

आत्मजे पुत्रे दारुणे घोरेऽहिते शत्रौ च तुल्यमविशेषेण वर्तमानं राम इति नाम। *हारसर्पयोर्वर्तमानं रत्नजातं रत्नजातिरिव । अस्य दशरथस्य हृद्यं हृदयंगमं भयदायि भयंकरं चाभवत् ॥*

अन्वयः—आत्मजे दारुणे अहिते च तुल्यं वर्तमानं राम इति नाम हारसर्पयोः "वर्तमानं" रत्नजातम् इव अस्य हृद्यं भयदायि च अभवत् ।

व्याख्या—*आत्मनः=देहात् जातः आत्मजस्तस्मिन् आत्मजे=पुत्रे दारयति चित्तमिति दारुणं तस्मिन् दारुणे=भयंकरे न हितमिति अहितं तस्मिन् अहिते=शत्रौ च तुल्यं=समानम्*

अविशेषेणेत्यर्थः वर्तमानं = विद्यमानं रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । राम इति नाम दशरथपुत्र-स्यापि भार्गवस्यापि रामनाम, हारः = मुक्ताहारः सर्पः = भुजंगः चेति हारसर्पौ तयोः हारसर्पयोः वर्तमानं रत्नानां = मणीनां जातं = जातिः, इति रत्नजातम् इव = यथा— "जातिर्जातं च सामान्यमि" त्यमरः । अस्य = दशरथस्य हृदयस्य प्रियं हृद्यम् = अभीप्सितं भयं ददातीति भयदायि भयंकरं च अभवत् = जातम् । स्वपुत्रस्य रामनाम प्रियं जातं भार्गवस्य च रामनाम भयप्रदं जातमित्यर्थः ।

समासः—आत्मनः जातः आत्मजस्तस्मिन् आत्मजे । न हितः अहितस्तस्मिन् अहिते । हारश्च सर्पश्च हारसर्पौ तयोः हारसर्पयोः । रत्नानां जातमिति रत्नजातम् । भयस्य दायि भयदायि ।

हिन्दी—अपने पुत्र में, तथा वीर शत्रु में समान रूप से दोनों का रामनाम, दशरथजी को उसी प्रकार प्रिय भी लगा और दुःखदायी भी । जैसे कि गले में पहने हुवे हार में और सांप में एक सी मणि गले के हार में आनन्ददायी तथा सर्प के मस्तक में वर्तमान मणि भयदायी होती है ॥ ६८ ॥

अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपं सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यतः ।
क्षत्त्रकोपदहनार्चिषं ततः संदधे दृशमुदग्रतारकाम् ॥ ६९ ॥

स भार्गवः । अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपमनवेक्ष्य । यतो यत्र भरताग्रजस्ततस्तत्र । 'इत-राभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति सार्वविभक्तिकस्तसिः । क्षत्त्रे क्षत्त्रकुले विषये यः कोपदहनो रोषाग्निस्त-स्यार्चिषं ज्वालामिव स्थिताम् । 'ज्वालाभासोर्नपुंस्यर्चिः' इत्यमरः । उदग्रा तारका कनीनिका यस्यास्ताम् । 'तारकाक्ष्णः कनीनिका' इत्यमरः । दृशं संदधे ॥

अन्वयः—सः अर्घ्यम् अर्घ्यम् इति वादिनं नृपम् अनवेक्ष्य यतः भरताग्रजः ततः क्षत्त्रको-पदहनार्चिषम् उदग्रतारकां दृशं संदधे ।

व्याख्या—सः = भार्गवः अर्घ्यते = पूज्यतेऽनेनेति अर्घम् = पूजाविधिः । अर्घाय इदमर्घ्यम् अर्घ्यम् इति वादिनम् = अर्घाय जलमर्घाय जलमित्येवं ब्रुवन्तं नृपं = राजानं दशरथम् अनवेक्ष्य = अनवलोक्य यतः = यत्र भरतस्य अग्रजः = ज्येष्ठः रामः इति भरताग्रजः ततः = तत्र तस्मिन् स्थाने इत्यर्थः । क्षत्त्रे = क्षत्रियकुले यः कोपः = क्रोधः स एव दहनः = वह्निस्तस्य अर्चिः इव अर्चि ज्वाला यस्याः सा तां क्षत्त्रकोपदहनार्चिषम् इव स्थिताम् उदग्रा = उद्गताग्रा तारका = कनीनिका यस्याः सा तां तथोक्ताम् । दृशं = दृष्टिं संदधे, कृतवानित्यर्थः । दशरथादीन् सर्वान् जनानुपेक्ष्य रामम्प्रत्येव दृष्टवान् इत्यर्थः ।

समासः—अर्घाय इदमर्घ्यम् । भरतस्य अग्रजः भरताग्रजः । क्षत्त्रे यः कोपः स एव दहनः, इति क्षत्त्रकोपदहनः । तस्य अर्चिरिव अर्चिः यस्याः सा ताम् । उदग्रा तारका यस्याः सा ताम् उदग्रतारकाम् ।

हिन्दी—'महर्षि की पूजा (स्वागत) करने के लिये जल्दी अर्घ्य लाओ अर्घ्य लाओ' आपके लिये यह अर्घ्य (पूजा की सामग्री है) इस प्रकार कहने वाले राजा दशरथ जो

को न देखकर (उपेक्षा कर) के, परशुराम जी ने क्षत्रियकुल के प्रति क्रोधरूपी अग्निज्वाला के समान, टेढ़ी नजर उधर ही घुमाई जिधर श्रीराम थे। अर्थात् राजा की ओर ध्यान न देकर क्रोध से जलती हुई दृष्टि से राम को देखा ॥ ६९ ॥

तेन कार्मुकनिषक्तमुष्टिना राघवो विगतभीः पुरोगतः ।
अङ्गुलीविवरचारिणं शरं कुर्वता निजगदे युयुत्सुना ॥ ७० ॥

कार्मुकनिषक्तमुष्टिना । शरमङ्गुलीविवरचारिणं कुर्वता युयुत्सुना योद्धुमिच्छता। तेन भार्गवेण कर्त्रा । विगतभीर्निर्भीकः सन् । पुरोगतोऽग्रगतो राघवो निजगद उक्तः। कर्मणि लिट् ॥

अन्वय—कार्मुकनिषक्तमुष्टिना शरम् अंगुलिविवरचारिणं कुर्वता युयुत्सुना तेन विगतभीः सन् पुरोगतः राघवः निजगदे ।

व्याख्या—कार्मुके = धनुषि निषक्तः = संलग्नः मुष्टिः यस्य स तेन कार्मुकनिषक्तमुष्टिना शृणाति = मारयत्यनेन इति शरस्तं शरं = बाणम् अंगुलीनां = करशाखानां विवराणि = छिद्राणि तेषु चरति = संचरतीति तम् अंगुलीविवरचारिणं कुर्वता = विदधता योद्धुमिच्छतीति युयुत्सति। युयुत्सतीति युयुत्सुस्तेन युयुत्सुना = योद्धुमिच्छुना तेन = परशुरामेण "कर्त्रा"—विगता = नष्टा भीः = भीतिर्यस्य स विगतभीः = भयरहितः सन् पुरोगतः = संमुखगतः राघवः = रामचन्द्रः निजगदे = उक्तः कथितः इत्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययः ।

समासः—कार्मुके निषक्तः मुष्टिर्येन स तेन कार्मुकनिषक्तमुष्टिना विगता भीर्यस्य स विगतभीः । पुरः गतः पुरोगतः । अंगुलीनां विवराणि, अंगुलीविवराणि तेषु चारी तम् अंगुलीविवरचारिणम् ।

हिन्दी—धनुष को मुट्ठी में पकड़े हुये तथा युद्ध करने की इच्छा से अङ्गुलियों के बीच में बाण फिराते हुये परशुरामजी ने निडर सामने खड़े श्रीराम से कहा ॥ ७० ॥

क्षत्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुशः शमं गतः ।
सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात् ॥ ७१ ॥

क्षत्रजातं क्षत्रजातिर्मेऽपकारेण पितृवधरूपेण वैरि द्वेषि । तत्क्षत्रजातं बहुश एकविंशतिवारान्निहत्य शमं गतोऽस्मि । तथापि सुप्तसर्पो दण्डघट्टनादिव तव विक्रमस्य श्रवादाकर्णनाद्रोषितो रोषं प्रापितोऽस्मि ॥

अन्वयः—क्षत्रजातं अपकारवैरि "आसीत्" तत् बहुशः निहत्य शमं गतः "अस्मि, तथापि" सुप्तसर्पः दण्डघट्टनात् इव तव विक्रमश्रवात् रोषितः अस्मि ।

व्याख्या—क्षतात् = नाशात् त्रायते क्षत्रं, क्षत्राणां = क्षत्रियाणां जातं = समूहः = जातिरित्यर्थः मे = मम भार्गवस्य अपकारेण = पितृवधरूपेण वैरि = द्वेषि शत्रुः इत्यर्थः । आसीत् । तत् = क्षत्रजातं बहून् इति बहुशः = एकविंशतिवारान् निहत्य = मारयित्वा शमं = शान्तिं गतः = प्राप्तः अस्मि अहं परशुरामः । तथापि सुप्तः = शयितश्चासौ सर्पः = भुजंगमः इति सुप्तसर्पः

दण्डेन = लगुडेन घट्टनं चालनमिति दण्डघट्टनं तस्मात् दण्डघट्टनात् दण्डेन ताडनादित्यर्थः। इव = यथा तव = भवतः रामचन्द्रस्य विक्रमस्य = पराक्रमस्य श्रवः = आकर्णनं तस्मात् विक्रमश्रवात् रोषितोऽस्मि कोपं प्रापितोऽस्मि। एकविंशतिवारं क्षत्रियजातिं विनाश्य पितृवधकरजो मे क्रोधः शान्तः किन्त्विदानीं तव पराक्रमं श्रुत्वाहं पुनः रोषं गत इत्यर्थः।

समासः—क्षत्त्राणां जातमिति क्षत्त्रजातम्। अपकारेण वैरि अपकारवैरि। सुप्तश्चासौ सर्प इति सुप्तसर्पः। दण्डेन घट्टनं दण्डघट्टनम्, तस्मात्। विक्रमस्य श्रवः विक्रमश्रवः तस्मात् विक्रमश्रवात्।

हिन्दी—मेरे पिता का वध करने के कारण क्षत्रिय जाति मेरी शत्रु है। उस क्षत्रिय जाति को इक्कीस बार मार कर मैं शान्त हो गया था, किन्तु जैसे डण्डे से मारने (छेड़ने) पर सोता हुआ साँप फुफकार उठता है वैसी ही तुम्हारा पराक्रम सुनने से मैं पुनः क्रोधित हो गया हूँ॥ ७१॥

मैथिलस्य धनुरन्यपार्थिवैस्त्वं किलानमितपूर्वमक्षणोः।
तन्निशम्य भवता समर्थये वीर्यशृङ्गमिव भग्नमात्मनः॥ ७२॥

अन्यैः पार्थिवैः। अनमितपूर्वं पूर्वमनमितम्। सुप्सुपेति समासः। अस्य मैथिलस्य धनुस्त्वमक्षणोः क्षतवान्। किलेति वार्तायाम्। 'वार्तासंभाव्ययोः किल' इत्यमरः। तद्धनुर्भग्नं निशम्याकर्ण्य भवता आत्मनो मम वीर्यमेव शृङ्गं भग्नमिव समर्थये मन्ये॥

अन्वयः—अन्यपार्थिवैः अनमितपूर्वं मैथिलस्य धनुः त्वम् अक्षणोः किल, तत् निशम्य भवता आत्मनः वीर्यशृंगं भग्नम् इव समर्थये।

व्याख्या—अन्ये = इतरे च ते पार्थिवाः = राजानस्तैः अन्यपार्थिवैः। न नमितमिति अनमितं पूर्वं = प्रथमम् अनमितम् = नाभुग्नम् मैथिलस्य = जनकस्य धनुः = चापम् त्वं = रामः अक्षणोः = अभञ्जः = त्रोटितवानित्यर्थः किल = इति वार्तायाम् "वार्तासंभाव्ययोः किल" इत्यमरः। तत् = भग्नं चापं निशम्य = श्रुत्वा भवता = त्वया राघवेन आत्मनः = स्वस्य ममेत्यर्थः। वीर्यमेव = तेज एव शृंगं = शिखरं = प्रभुत्वमित्यर्थः। इति वीर्यशृंगं भग्नं = त्रुटितं, नष्टम् इव = यथा समर्थये = मन्ये अहं परशुराम इति शेषः। 'वीर्यं तेजःप्रभावयोः। शुक्रे शक्तौ चे' ति हैमः।

समासः—अन्ये च ते पार्थिवास्तैः अन्यपार्थिवैः। न नमितमिति अनमितम्, पूर्वम् अनमितमिति अनमितपूर्वम्। वीर्यमेव शृंगमिति वीर्यशृंगं तत् वीर्यशृंगम्।

हिन्दी—दूसरे राजा जिस धनुष को पहले कभी झुका भी न सके थे, राजा जनक के उस धनुष को तुमने तोड़ दिया। यह सुनकर मैं यह मानता हूँ कि तुमने मेरा पराक्रम रूपी सींग ही तोड़ दिया। अर्थात् आज तक मैं सबसे बढ़कर बलशाली माना जाता था, यह मेरा यश तुमने इस धनुष को तोड़कर नष्ट कर दिया॥ ७२॥

अन्यदा जगति राम इत्ययं शब्द उच्चरित एव मामगात्।
व्रीडमावहति मे स संप्रति व्यस्तवृत्तिरुदयोन्मुखे त्वयि॥ ७३॥

अन्यदाऽन्यस्मिन्काले । जगति राम इत्ययं शब्द उच्चरितः सन्मामेवागात् । संप्रति त्वय्युदयोन्मुखे सति व्यस्तवृत्तिर्विपरीतवृत्तिः । अन्यगामीति यावत् । स शब्दो मे व्रीडमावहति लज्जां करोति ॥

अन्वयः—अन्यदा जगति रामः इति अयं शब्दः उच्चरितः सन् माम् एव अगात् सम्प्रति त्वयि उदयोन्मुखे सति व्यस्तवृत्तिः सः मे व्रीडम् आवहति ।

व्याख्या—अन्यस्मिन् काले अन्यदा = इतः पूर्वं गच्छतीति जगत् तस्मिन् जगति = संसारे रमन्तेऽस्मिन्निति रामः । इत्ययं शब्दः = रामशब्दः उच्चरितः = उच्चारणविषयीभूतः सन् मां = भार्गवम् एव अगात् = अगच्छत् । सम्प्रति = इदानीं त्वयि = राघवे उदयाय = उन्नत्यै उन्मुखः = उद्यतः तस्मिन् उदयोन्मुखे सति—उन्नतितत्परे सतीत्यर्थः "उदयः पर्वतोन्नत्योः" इति हैमः । व्यस्ता = विपरीता वृत्तिः = वर्तनं यस्य स व्यस्तवृत्तिः = अन्यवाचक इत्यर्थः । स शब्दः = रामशब्दः मे = मह्यं भार्गवाय व्रीडं = लज्जाम् आवहति = करोति । "मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा" इत्यमरः । घञ्प्रत्यये तु व्रीडः, इत्यपि भवति "व्रीडोऽक्लीबे त्रपा लज्जा" इति च कोषः ।

समास—उदयाय उन्मुखस्तस्मिन् उदयोन्मुखे व्यस्ता । वृत्तिर्यस्य स व्यस्तवृत्तिः ।

हिन्दी—पहले संसार में राम शब्द कहने पर मेरा ही ज्ञान होता था । अर्थात् मुझे ही लोग राम समझते थे । किन्तु अब तुम्हारे बढ़ने पर दूसरे को भी कहने वाला (दशरथ के पुत्र का भी वाचक) राम शब्द मुझे लज्जा कर रहा है । अर्थात् अब राम कहाने में शरम लग रही है ॥ ७३ ॥

बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ ।
धेनुवत्सहरणाच्च हैहयस्त्वं च कीर्तिमपहर्तुमुद्यतः ॥ ७४ ॥

अचले क्रौञ्चादावप्यकुण्ठितमस्त्रं बिभ्रतो मम द्वौ समागसौ तुल्यापराधौ रिपू मतौ । धेनोः पितृहोमधेनोर्वत्सस्य हरणाद्धेतोर्हैहयः कार्तवीर्यश्च । कीर्तिमपहर्तुमुद्यत उद्युक्तस्त्वं च । वत्सहरणे भारतश्लोकः—'प्रमत्तश्चाश्रमात्तस्य होमधेन्वास्ततो वनात् । जहार वत्सं क्रोशन्त्या बभञ्ज च महाद्रुमान् ॥' इति ॥

अन्वयः—अचले अपि अकुण्ठितम् , अस्त्रं बिभ्रतः मम द्वौ समागसौ रिपू मतौ । धेनुवत्सहरणात् हैहयः च कीर्तिम् अपहर्तुम् उद्यतः त्वं च ।

व्याख्या—न चलति = न कम्पते इति अचलस्तस्मिन् अचले = पर्वते अपि कुण्ठा संजातास्येति कुण्ठितं, न कुण्ठितमिति अकुण्ठितम् = अप्रतिहतम् अस्त्रं = शस्त्रं बिभ्रतः = धारयतः, मम = भार्गवस्य द्वौ = द्विसंख्याकौ समे = समाने आगसी = अपराधौ ययोस्तौ समागसौ रिपू = शत्रू मतौ । धेनोः = होमधेन्वाः वत्सः = शकृत्करिस्तस्य हरणम् = अपहरणं तस्मात् धेनुवत्सहरणात् कारणात् "शकृत्करिस्तु वत्सः स्यादि" त्यमरः । हे भक्त हे भक्त इति वदन् गच्छतीति हेहयः = विष्णुः । तस्यायं हैहयः = कार्तवीर्यः । हैहयाः = देशविशेषाः, तद्वासी राजा च हैहयः । सहस्रार्जुन इत्यर्थः । च समुच्चये, कीर्तिम् = यशः अपहर्तुम् = नाशयितुम् उद्यतः = संलग्नः त्वं = दाशरथिश्च मम शत्रू मतौ इति संबन्धः ।

समासः—न चलः अचलस्तस्मिन् अचले। न कुण्ठितमिति अकुण्ठितम् तत्। समम् आगः ययोस्तौ समागसौ। धेनुश्च वत्सश्च धेनुवत्सौ, तयोः हरणं तस्मात् धेनुवत्सहरणात्।

हिन्दी—क्रौंच नामक पर्वत में टकराकर भी कुण्ठित (अटूट) न होने वाले परशु (कुठार) को धारण करने वाले मुझ परशुरामके, एक समान अपराध करनेवाले दो शत्रु हैं, (अर्थात् आजतक मेरे दो ही शत्रु पैदा हुये हैं) मेरे पिताकी होमधेनु और वत्स (बच्छडा) को बलात् छीननेसे हैहय सहस्रार्जुन, और मेरी कीर्ति को हरण करनेके लिये तैयार तुम।

विशेष—एक समय माहिष्मती का राजा कार्तवीर्य महर्षि जमदग्नि के आश्रम में आया, और महर्षि की धेनुको छीनकर (ले गया) जब परशुरामजी बाहर से आए, और यह सुना तो तुरन्त माहिष्मती में जाकर कार्तवीर्यको मार डाला और अपने पिता की यज्ञधेनु ले आए। तब परशुरामजी की अनुपस्थिति में कार्तवीर्य के पुत्रों ने महर्षि जमदग्नि का वध कर दिया था, परशुरामजी ने आकर यह देखा तो परम क्रुद्ध हुए। और कार्तवीर्य के सब पुत्रों को मार डाला। तब इन क्षत्रियों से बैर हो गया, जो कि रामावतार होनेपर शान्त हुआ ॥ ७४ ॥

क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि।
पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः ॥ ७५ ॥

तेन कारणेन। क्रियते येनासौ करणः। क्षत्रियान्तस्य करणोऽपि विक्रमः। त्वय्यजिते। मां नावति न प्रीणाति। तथाहि। पावकस्याग्नेर्महिमा स गण्यते यः कक्षवत्कक्ष इव। 'तत्र तस्येव' इति सप्तम्यर्थे वतिः। सागरेऽपि ज्वलति॥

अन्वयः—तेन क्षत्रियान्तकरः अपि विक्रमः त्वयि अजिते मां न अवति, "तथाहि" पावकस्य महिमा स गण्यते यः कक्षवत् सागरे अपि ज्वलति।

व्याख्या=तेन पूर्वोक्तेन कारणेन क्रियते येन असौ करणः। क्षत्रियाणां=राजन्यानाम् अन्तः=विनाशस्तस्य करणः=साधनमिति क्षत्रियान्तकरणः अपि विक्रमः=मम पराक्रमः त्वयि=राघवे न जितः अजितस्तस्मिन् अजिते=अपराभूते मां=परशुरामं न अवति न प्रीणाति। तथाहि दर्शयति-पुनातीति पावकः, तस्य पावकस्य=वह्नेः महिमा=महत्त्वं सामर्थ्यमित्यर्थः। सः गण्यते=कथ्यते यः=महिमा कक्षे इव इति कक्षवत्=तृणवत् सागरे=समुद्रे अपि ज्वलति=दहति। "कक्षौ तु तृणवीरुधौ" इत्यमरः।

समासः—क्षत्रियाणाम् अन्तस्य करण इति क्षत्रियान्तकरणः। न जितः अजितस्तस्मिन् अजिते। कक्षे इव कक्षवत्।

हिन्दी—इस लिये क्षत्रियों का २१ बार विनाश करने वाला भी मेरा पराक्रम, तुमको बिना जीते मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। क्योंकि अग्नि का प्रताप (तेज) वही कहलाता है जो कि घासफूंस के समान समुद्र में भी जलता है। अर्थात् जैसे फूस में भड़कता है वैसे ही समुद्र में भड़कर जलनेवाला तेज ही अग्नि का तेज है। अतः तुम को जीतना ही मेरा पराक्रम होगा ॥ ७५ ॥

विद्धि चात्तबलमोजसा हरेरैश्वरं धनुरभाजि यत्त्वया ।
खातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम् ॥ ७६ ॥

किञ्च । ऐश्वरं धनुर्हरेर्विष्णोरोजसा बलेनात्तबलं हृतसारं च विद्धि । यद्धनुस्त्वयाऽभाज्यभञ्जि । 'भञ्जेश्च चिणि' इति विभाषया नलोपः । तथाहि नदीरयैः खातमूलमवदारितपादं तटद्रुमं मृदुरप्यनिलः पातयति । ततः शिशुरपि रौद्रं धनुरभाङ्क्षमिति मा गर्वीरिति भावः ॥

अन्वयः—"किञ्च" ऐश्वरं धनुः हरेः ओजसा आत्तबलं विद्धि यत् त्वया अभाजि । तथाहि-नदीरयैः खातमूलं तटद्रुमं मृदुः-अपि अनिलः पातयति ।

व्याख्या—ईश्वरस्य इदम् ऐश्वरं = शैवं धनुः = चापं हरति पापानि इति हरिस्तस्य हरेः = विष्णोः ओजसा = बलेन आत्तं = हृतं बलं = सारो यस्य तत् आत्तबलं च विद्धि = जानीहि । यत् = धनुः त्वया = रामचन्द्रेण बालेनेत्यर्थः अभाजि = भग्नम् = खण्डितमित्यर्थः । तथाहि— नदीनां = तटिनीनाम् । "अथ नदी सरित् । तरंगिणी शैवलिनी तटिनी" इत्यमरः । रयाः = वेगास्तैः नदीरयैः खातम् = अवदारितं मूलं = पादः यस्य स तं खातमूलम् तटस्य = तीरस्य द्रुमः = वृक्षस्तं तटद्रुमं मृदुः = मन्दः अपि अनिलः = वायुः "मृदू चातीक्ष्णकोमलौ" इत्यमरः । पातयति = प्रभ्रंशयति । अतः बालेनापि मया शिवधनुः = अभञ्जि, इति मा गर्वीरिति भावः ।

समासः—आत्तं बलं यस्य तत् आत्तबलम् । खातं मूलं यस्य स तं खातमूलम् । नदीनां रयास्तैः नदीरयैः । तटस्य द्रुमस्तं तटद्रुमम् ।

हिन्दी—और शिवजी के जिस धनुष को तुमने तोड़ा है उस धनुषके सार (कठोरता) को तो, विष्णु की सामर्थ्य ने पहले ही हरण कर लिया है, अर्थात् खोखला कर दिया है । अतः उसे तोड़कर तुम घमण्ड न करो । क्योंकि-नदी के प्रबलवेग से जिसकी जड़ें उखाड़ दी गई हों ऐसे नदी किनारेके वृक्षको तो मन्द (हल्का) वायु भी गिरा देता है ॥ ७६ ॥

तन्मदीयमिदमायुधं ज्यया सङ्गमय्य सशरं विकृष्यताम् ।
तिष्ठतु प्रधनमेवमप्यहं तुल्यबाहुतरसा जितस्त्वया ॥ ७७ ॥

तत्तस्मान्मदीयमिदमायुधं कार्मुकं ज्यया सङ्गमय्य संयोज्य । 'ल्यपि लघुपूर्वात्' इति णेरयादेशः, सशरं यथा तथा त्वया विकृष्यताम् । प्रधनं रणस्तिष्ठतु । प्रधनं तावदास्तामित्यर्थः । 'प्रधनं मारणे रणे' इति विश्वः । एवमपि मद्धनुष्कर्षणेऽप्यहं तुल्यबाहुतरसा समबाहुबलेन । 'तरसी बलरंहसी' इत्यमरः । त्वया जितः ॥

अन्वयः— तत् मदीयम् इदम् आयुधम् ज्यया संगमय्य सशरं "यथास्यात्तथा" विकृष्यताम् । प्रधनं तिष्ठतु एवम् अपि अहं तुल्यबाहुतरसा त्वया जितः ।

व्याख्या—तत् = तस्मात् मम इदं मदीयं = मत्सम्बन्धि इदं = पुरो दृश्यमानम् आयुध्यन्तेनेनेति आयुधम् = शस्त्रम् = कार्मुकमित्यर्थः 'आयुधं तु प्रहरणं शस्त्रमस्त्रमि'त्यमरः । ज्यया धनुर्गुणेन *संगमय्य* = *संमेल्य संयोज्येति यावत् । शरेण सहितं सशरं* = बाणयुक्तं यथा तथा त्वया = राघवेण विकृष्यताम् = आकृष्यताम् = सन्धीयतामित्यर्थः । प्रधनं = युद्धं तिष्ठतु = आस्ताम् । युद्धं तावदास्ताम्, प्रथमं भवान् मम धनुःगुणेन मेलयित्वा बाणसहितं संतनोतु इत्यर्थः ।

"प्रधनं युधि दारणे" इति हैमः। एवमपि = मम धनुष्कर्षणेऽपि-अहं = परशुरामः, तरत्यनेन इति तरः। "तरो जवे बले" इति हैमः। तुल्यं = समानं बाह्वोः = भुजयोः तरः = बलं यस्य स तेन तुल्यबाहुतरसा त्वया = रामचन्द्रेण जितः = पराजितः।

समासः—शरेण सहितं सशरम्। तुल्यं बाह्वोः तरः यस्य स तेन तुल्यबाहुतरसा।

हिन्दी—इस लिये "हे राम!" मेरे इस धनुष पर डोरी चढ़ाकर, बाणसहित खींचो। अर्थात् तान दो। युद्ध अभी रहे। क्योंकि इस प्रकार मेरे धनुष के तानने पर भी, मेरे समान बाहुबलवाले तुम से मैं हार गया, ऐसा मानलूंगा॥ ७७॥

कातरोऽसि यदि वोद्गतार्चिषा तर्जितः परशुधारया मम।
ज्यानिघातकठिनाङ्गुलिर्वृथा बध्यतामभययाचनाञ्जलिः॥ ७८॥

यदि वोद्गतार्चिषोद्गतत्विषा मम परशुधारया तर्जितः कातरोऽसि भीतोऽसि। वृथा ज्यानिघातेन कठिना अङ्गुलयो यस्य स तथोक्तोऽभययाचनाञ्जलिरभयप्रार्थनाञ्जलिर्बध्यताम्। 'तौ युताववञ्जलिः पुमान्' इत्यमरः॥

अन्वयः—यदि वा उद्गतार्चिषा मम परशुधारया तर्जितः कातरः असि वृथा ज्यानिघातकठिनांगुलिः अभययाचनाञ्जलिः बध्यताम्।

व्याख्या—यदि वा = अथवा उद्गता = निर्गता अर्चिः = त्विट् यस्याः सा तया उद्गतार्चिषा प्रादुर्भूतकिरणया, इत्यर्थः। मम = जामदग्न्यस्य = परशुरामस्य परं = शत्रुं शृणाति = हिनस्तीति परशुः = कुठारस्तस्य धारा = तीक्ष्णाग्रम्, तया परशुधारया तर्जितः = भीतः सन् कातरोऽसि = अधीरोऽसि व्याकुलचित्तोऽसीत्यर्थः। "कुठारः स्वधितिः परशुस्तु परश्वधः" 'अधीरे कातरः' इति-चामरः। वृथा = व्यर्थम् ज्यायाः = धनुर्गुणस्य निघातः = अभिघातस्तेन कठिनाः = कठोराः अंगुलयः = करशाखाः यस्य स ज्यानिघातकठिनांगुलिः। अभयस्य = निर्भयस्य याचना = प्रार्थना तस्यै अञ्जलिः = हस्तसम्पुटमिति अभययाचनांजलिः बध्यतां = ग्रथ्यताम्। "अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे" इति मेदिनी।

समासः—उद्गता अर्चिः यस्याः सा तया उद्गतार्चिषा। परशोः धारा परशुधारा तया परशुधारया। ज्यायाः निघातः ज्यानिघातस्तेन कठिनाः अंगुलयो यस्य स ज्यानिघातकठिनांगुलिः। अभयस्य याचनायै अञ्जलिरिति अभययाचनाञ्जलिः।

हिन्दी—अथवा यदि तुम मेरे फरसे की चमकती तेज धार से डर कर घबरा गये हो, तो अपने उन हाथों को जोड़कर अभय की भिक्षा माँगो, जिन हाथों की अंगुलियाँ धनुषकी डोरी की रगड़ से व्यर्थ ही कठोर हो गयी हैं। अर्थात् जिनमें घट्टे पड़ गये हैं॥ ७८॥

एवमुक्तवति भीमदर्शने भार्गवे स्मितविकम्पिताधरः।
तद्धनुर्ग्रहणमेव राघवः प्रत्यपद्यत समर्थमुत्तरम्॥ ७९॥

भीमदर्शने भार्गव एवमुक्तवति राघवः स्मितेन हासेन विकम्पिताधरः सन्। तद्धनुर्ग्रहणमेव समर्थमुचितमुत्तरं प्रत्यपद्यताङ्गीचकार॥

अन्वयः—भीमदर्शने भार्गवे एवम् उक्तवति राघवः स्मितविकम्पिताधरः सन्, तद्धनुर्ग्रहणम् एव समर्थम् उत्तरं प्रत्यपद्यत।

व्याख्या—बिभेत्यस्मादिति भीमं = भयंकरं दर्शनम् = अवलोकनं यस्य स तस्मिन् भीमदर्शने। "घोरं भीमं भयानकम्। भयंकरं प्रतिभयम्" इत्यमरः। भृगोरपत्यं पुमान् भार्गवस्तस्मिन् भार्गवे = परशुरामे, एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण उक्तवति = कथितवति सति। राघवः = श्रीरामचन्द्रः स्मितेन = ईषद्धासेन विकम्पितौ = वेपथुयुक्तौ = किञ्चिच्चलितावित्यर्थः। अधरौ = ओष्ठौ यस्य स विकम्पिताधरः सन् तस्य = प्रख्यातस्य धनुषः = चापस्य ग्रहणं = हस्तेनादानमित्यर्थः। इति तत् तद्धनुर्ग्रहणम् एव = केवलम् समर्थम् = उचितम् उत्तरं = प्रतिवचनं प्रत्यपद्यत = स्वीचकार। न तु मुखेन किंचिदपि उक्तवानित्यर्थः। स्मितलक्षणं यथा = 'ईषद्विकम्पितैर्दन्तैः कटाक्षैः सौष्ठवान्वितैः। अलक्षितद्विजद्वारमुत्तमानां स्मितं भवेत्'' इति।

समासः—भीमं दर्शनं यस्य सः तस्मिन् भीमदर्शने। स्मितेन विकम्पितौ अधरौ यस्य स तथोक्तः। तस्य धनुषः ग्रहणमिति तत् तद्धनुर्ग्रहणम्।

हिन्दी—भयंकर दीखने वाले परशुरामजी के इस प्रकार कहने पर रामचन्द्र जी ने परशुराम के धनुष को ले लेना ही अच्छा योग्य उत्तर माना। मुस्कुराने से राम जी के ओठ जरा-जरा हिल रहे थे। अर्थात् हँसते-हँसते राम ने वाणी से कुछ न कहकर धनुष को हाथ में ले लिया ॥ ७९ ॥

पूर्वजन्मधनुषा समागतः सोऽतिमात्रलघुदर्शनोऽभवत्।
केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः ॥ ८० ॥

पूर्वजन्मनि नारायणावतारे यद्धनुस्तेन समागतः संगतः स रामोऽतिमात्रमत्यन्तं लघुदर्शनः प्रियदर्शनोऽभवत्। तथाहि। नवाम्बुदः केवलो रिक्तोऽपि सुभगः त्रिदशचापेनेन्द्रधनुषा लाञ्छितश्चिह्नितः किं पुनः। सुभग एवेति भावः।

अन्वयः—पूर्वजन्मधनुषा समागतः सः अतिमात्रलघुदर्शनः अभवत्। "तथाहि" नवाम्बुदः केवलः अपि सुभगः, त्रिदशचापलाञ्छितः किं पुनः।

व्याख्या—पूर्वञ्च तत् जन्म पूर्वजन्म, तस्मिन् पूर्वजन्मनि = नारायणावतारे यत् धनुः = चापं तेन पूर्वजन्मधनुषा समागतः = संगतः सः = दाशरथिः रामः मात्रा = स्तोकं तामतिक्रान्तमिति अतिमात्रम् = अत्यधिकं लघु = मनोज्ञं प्रियमित्यर्थः दर्शनम् = अवलोकनं यस्य सः अतिमात्रलघुदर्शनः अभवत् = जातः। "लघुरगुरौ च मनोज्ञे निःसारे वाच्यवत् क्लीबम्।" इति मेदिनी। तथाहि युक्तमेतत्—अम्बूनि = जलानि ददाति इति अम्बुदः। नवः = नूतनश्चासौ अम्बुदः = मेघः नवाम्बुदः केवलः = रिक्तः = जलरहितोऽपि इत्यर्थः सुभगः = सुन्दरः भवति। तिस्रः = जन्मसत्ताविनाशाख्याः दशाः = अवस्थाः यस्य स त्रिदशः = इन्द्रः तस्य चापं = धनुः तेन लाञ्छितः = चिह्नितः = युक्त इत्यर्थः। किम् पुनः = किं कथनम् अर्थात् परमसुन्दर एव भवतीति भावः। चापस्य = वंशविशेषस्य विकारः चापमिति व्युत्पत्तिः।

समासः—पूर्वञ्च तज्जन्म पूर्वजन्म। पूर्वजन्मनि यत् धनुः, तेन पूर्वजन्मधनुषा। मात्रामतिक्रान्तमिति अतिमात्रम्। अतिमात्रं लघु दर्शनं यस्य सः अतिमात्रलघुदर्शनः। नवश्चासौ

अम्बुदः नवाम्बुदः। तिस्रः दशा यस्य स त्रिदशस्तस्य चापं तेन लाञ्छितः इति त्रिदशचाप-लाञ्छितः।

हिन्दी—अपने पिछले जन्म के धनुष से मिले हुये, (धनुष को हाथ में लेकर) श्रीरामचन्द्र जी अतीव सुन्दर लगने लगे। "ठीक ही है—क्योंकि" नया-नया बादल अकेला भी सुन्दर लगता है और फिर इन्द्रधनुष से सुशोभित हो तो उसकी सुन्दरता का क्या कहना है ॥ ८० ॥

तेन भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुकं च बलिनाधिरोपितम् ।
निष्प्रभश्च रिपुरास भूभृतां धूमशेष इव धूमकेतनः ॥ ८१ ॥

बलिना तेन रामेण भूमिनिहितैका कोटिर्यस्य तत् कर्मणे प्रभवतीति कार्मुकं धनुश्च। 'कर्मण उकञ्' इत्युकञ्प्रत्ययः। अधिरोपितम्। भूभृतां रिपुर्भार्गवश्च। धूमशेषो धूमकेतनोऽग्निरिव। निष्प्रभो निस्तेजस्क आस बभूव। आसेति तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययं दीप्त्यर्थकस्यास्ते रूपं वा।

अन्वयः—बलिना तेन भूमिनिहितैककोटि तत् कार्मुकम् अधिरोपितम्, भूभृतां रिपुः च धूमशेषः धूमकेतन इव निष्प्रभः आस।

व्याख्या—बलमस्यास्तीति बली तेन बलिना = शौर्यवता तेन = रामेण कोट्यते अनया सा कोटिः। भूमौ = पृथिव्यां निहिता = स्थापिता एका = केवला कोटिः = अटनी यस्य तत् भूमि-निहितैककोटि। "कोटिरस्याटनी" इत्यमरः। कर्मणे प्रभवति यत् तत् तत् = प्रसिद्धं, तस्य = भार्गवस्य वा कार्मुकं = धनुश्च परशुरामस्य चापमित्यर्थः। अधिरोपितम् = अधिज्यीकृतम्। भुवं बिभ्रति = पालयन्ति इति भूभृतस्तेषां भूभृतां = नृपाणां रिपुः = शत्रुः परशुरामः। "भूभृद्भू-मिधरे नृपे" इत्यमरः। च, धूनोति, धूयते वा स धूमः = शिखिध्वजः–शेषः = अवशिष्टः यस्मिन् स धूमशेषः आर्द्रेन्धनप्रभवमात्रः धूमः = खतमालः केतनं = चिह्नं यस्य स धूमकेतनः = अग्निः इव = यथा निर्गता प्रभा = कान्तिः = तेजः यस्य स निष्प्रभः आस = बभूव–जात इत्यर्थः। धूम-पर्यायाः "भामो मरुद्वाहः खतमालः शिखिध्वजः, अग्निवाहस्तरी" इति त्रिकाण्डशेषः।

समासः—भूमौ निहिता एका कोटिः यस्य तत् भूमिनिहितैककोटि। निर्गता प्रभा यस्य स तथोक्तः। प्रभायाः निष्क्रान्तः इति वा निष्प्रभः। धूमः शेषः यस्मिन् स धूमशेषः। धूमः केतनं यस्य स धूमकेतनः।

हिन्दी—पराक्रमी राम ने, जमीन में रखे एक सिरे (एक छोर) वाले उस धनुषपर डोरी-चढा दी और राजाओं (क्षत्रियों) के शत्रु परशुरामजी उस–अग्नि के समान प्रभाहीन हो गये, जिसमें केवल धूवां भर रह गया हो। अर्थात् धनुषके सिरे को पृथ्वी में रखकर जैसे ही रामने डोरी खींचकर चढाई वैसे ही परशुरामजी निस्तेज हो गये। भगवान् के दूसरे अवतार-होने पर पहले अवतार की कला क्षीण हो जाती है ॥ ८१ ॥

तावुभावपि परस्परस्थितौ वर्धमानपरिहीनतेजसौ ।
पश्यति स्म जनता दिनात्यये पार्वणौ शशिदिवाकराविव ॥ ८२ ॥

परस्परस्थितावन्योन्याभियुक्तौ। वर्धमानं च परिहीनं चेति द्वन्द्वः। वर्धमानपरिहीने तेजसी ययोस्तावुभौ राघवभार्गवावपि। दिनात्यये सायंकाले पर्वणि भवौ पार्वणौ शशिदिवाकराविव। जनता जनसमूहः। 'ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल्' इति तल्प्रत्ययः। पश्यति स्मापश्यत्। अत्र राघवस्य शशिना भार्गवस्य भानुनौपम्यं द्रष्टव्यम्।

अन्वयः—परस्परस्थितौ वर्धमानपरिहीनतेजसौ तौ उभौ अपि दिनात्यये पार्वणौ शशिदिवाकरौ इव जनता पश्यति स्म।

व्याख्या—परस्परम् = अन्योन्यम् स्थितौ = अभियुक्तौ = अभियोक्तुं संनद्धौ इत्यर्थः। वर्धते इति वर्धमानम्। परितो हीयते स्म इति परिहीनम्। वर्धमानं = वर्धिष्णु च परिहीनं = परिक्षीणं चेति वर्धमानपरिहीने। वर्धमानपरिहीने तेजसी = प्रभे ययोस्तौ वर्धमानपरिहीनतेजसौ तौ = प्रसिद्धौ उभौ = द्वौ श्रीरामभार्गवावित्यर्थः। अपि दिनस्य अत्ययः = नाशस्तस्मिन् दिनात्यये = सायंकाले पर्वणि = पूर्णिमायां भवौ पार्वणौ शशी = चन्द्रः दिवाकरः सूर्यश्चेति शशिदिवाकरौ इव = यथा जनानां = लोकानां समूहः जनता = नरसमूहः पश्यति स्म = अपश्यत्। सायं पूर्णिमायां चन्द्रसूर्यसमौ रामभार्गवौ जनता ददर्शेत्यर्थः।

समासः—परस्परं स्थितौ इति परस्परस्थितौ। वर्धमानं च परिहीनञ्चेति वर्धमानपरिहीने, वर्धमानपरिहीने तेजसी ययोस्तौ वर्धमानपरिहीनतेजसौ तौ। दिनस्य अत्ययस्तस्मिन् दिनात्यये। शशी च दिवाकरश्च, शशिदिवाकरौ तौ।

हिन्दी—आमने सामने तैयार खड़े हुये, तथा बढ रहे तेजवाले (राम) नष्ट तेजवाले (परशुराम) इन दोनों राम भार्गव को भी "वहाँ पर स्थित" जनता ने उसी प्रकार देखा जैसे पूर्णिमा के दिन सायंकाल में बढ़ते चन्द्र तथा ढलते हुये सूर्य हों। यहां पर श्रीराम का चन्द्रमा के साथ तथा परशुरामजी का सूर्य के साथ साम्य है ॥ ८२ ॥

तं कृपामृदुरवेक्ष्य भार्गवं राघवः स्खलितवीर्यमात्मनि ।
स्वं च संहितममोघमाशुगं व्याजहार हरसूनुसंनिभः ॥ ८३ ॥

हरसूनुसंनिभः स्कन्दसमः। कृपामृदू राघवः। आत्मनि विषये स्खलितवीर्यं कुण्ठितशक्तिं तं भार्गवं स्वं स्वकीयं संहितममोघमाशुगं बाणं चावेक्ष्य। व्याजहार बभाषे॥

अन्वयः—हरसूनुसंनिभः कृपामृदुः राघवः, आत्मनि स्खलितवीर्यं भार्गवं स्वं संहितम् अमोघम् आशुगं च अवेक्ष्य व्याजहार।

व्याख्या—हरति पापं भक्तानामिति हरः। हरति नाशयति विश्वं वा प्रलये इति हरः = शिवस्तस्य-सूनुः = पुत्रः कार्तिकेयस्तेन सदृशः = तुल्यः, इति हरसूनुसंनिभः। कृपया = करुणया मृदुः = कोमलः इति कृपामृदुः राघवः = रामचन्द्रः आत्मनि = स्वस्मिन् विषये स्खलितं = कुण्ठितं = व्यर्थीभूतं वीर्यं = तेजः यस्य स तं स्खलितवीर्यम् तं = परशुरामं, स्वं स्वकीयं संहितं = आरोपितम्, न मोघः अमोघः तम् अमोघम् = अव्यर्थमित्यर्थः। "अमोघं सफले वाच्यवत्" इति मेदिनी। आशु = शीघ्रं गच्छतीति आशुगस्तम् आशुगं = बाणञ्च अवेक्ष्य = विलोक्य विचार्य, इत्यर्थः। व्याजहार = उक्तवान्। भार्गवं प्रति।

समासः—हरस्य सूनुः हरसूनु स्तेन संनिभः, इति हरसूनुसंनिभः । कृपया मृदुः कृपामृदुः स्खलितं वीर्यं यस्य सः, स्खलितवीर्यस्तं स्खलितवीर्यम् । न मोघः अमोघस्तम् अमोघम् ।

हिन्दी—शिवजी के पुत्र कार्तिकेय के समान पराक्रमी एवं दयालु होने के कारण अति कोमल श्रीराम अपने विषय में (राम के प्रति) सामर्थ्यहीन परशुरामजी को और धनुष पर चढ़े अपने अचूक बाण को देखकर बोले ॥ ८३ ॥

न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्यभिभवत्यपि त्वयि ।
शंस किं गतिमनेन पत्त्रिणा हन्मि लोकमुत ते मखार्जितम् ॥ ८४ ॥

अभिभवत्यपि त्वयि । विप्र इति हेतोः । निर्दयं प्रहर्तुमलं शक्तो नास्मि किंत्वनेन पत्त्रिणा शरेण ते गतिं गमनं हन्मि । उत मखार्जितं लोकं स्वर्गं हन्मि शंस ब्रूहि ॥

अन्वयः—अभिभवति अपि त्वयि विप्रः इति निर्दयं प्रहर्तुम् अलं न अस्मि । किन्तु अनेन पत्त्रिणा ते गतिं हन्मि, उत मखार्जितं लोकं हन्मि शंस ।

व्याख्या—अभिभवति = तिरस्करोतीति अभिभवन् तस्मिन् अभिभवति = तिरस्कारपरे अपिः = निश्चये, त्वयि = भवति भार्गवे विप्रातीति विप्रः, उप्यतेऽत्रेति वा विप्रः = ब्राह्मण इति = हेतोः निर्दयं = कृपारहितं प्रहर्तुं = प्रहारं कर्तुं मारयितुमित्यर्थः अलं = समर्थः नास्मि = न भवामि । किन्तु अनेन = आरोपितेन अमोघेन पत्त्रिणा = बाणेन ते = तव भार्गवस्य गतिं = गमनं हन्मि = नाशयामि उत = अथवा मखैः = यज्ञैः अर्जितः = संचितः प्राप्त इत्यर्थः, इति मखार्जितस्तं मखार्जितं लोकं = स्वर्गं हन्मि, इति त्वं शंस = कथय ।

समासः—निर्गता दया यस्मिन् तत् निर्दयम् । मखैः अर्जितः मखार्जितस्तं मखार्जितम् ।

हिन्दी—मेरा अपकार करने वाले तुम को, ब्राह्मण होने कारण मैं निर्दयता पूर्वक मारने में असमर्थ हूं । अर्थात् ब्राह्मणको नहीं मारूंगा । किन्तु यह बतलाइये कि धनुष पर चढ़े इस सफल बाण से तुम्हारी गति को नष्ट करूं अथवा यज्ञों के द्वारा अर्जन किये हुये स्वर्ग को नष्ट करूं । अर्थात् आप का चलना फिरना रोक दूं या स्वर्ग जाना रोक दूं सो बताइये ॥ ८४ ॥

प्रत्युवाच तमृषिर्न तत्त्वतस्त्वां न वेद्मि पुरुषं पुरातनम् ।
गां गतस्य तव धाम वैष्णवं कोपितो ह्यसि मया दिदृक्षुणा ॥ ८५ ॥

ऋषिर्भार्गवस्तं रामं प्रत्युवाच । किमिति । तत्त्वतः स्वरूपतस्त्वां पुरातनं पुरुषं न वेद्मीति न । किंतु वेद्म्येवेत्यर्थः । किंतु गां गतस्य भुवमवतीर्णस्य तव वैष्णवं धाम तेजो दिदृक्षुणा द्रष्टुमिच्छुना मया कोपितो ह्यसि ॥

अन्वयः—ऋषिः तं प्रत्युवाच, तत्त्वतः त्वां पुरातनं पुरुषं न वेद्मि, इति न । किन्तु गां गतस्य तव वैष्णवं धाम दिदृक्षुणा मया कोपितः हि असि ।

व्याख्या—ऋषति = जानातीति ऋषिः = सत्यवाक् भार्गवः "ऋषयः सत्यवचसः" इत्यमरः । तं = राघवं रामम् प्रत्युवाच = प्रत्युक्तवान् । किमित्याह = तत्त्वेनेति तत्त्वतः = स्वरूपतः "तत्त्वं

परमात्मनि वाद्यभेदे स्वरूपे च" इति हैमः । त्वां = राघवं पुरा भवः पुरातनस्तं पुरातनं = पुराणं पुरुषम् = परमात्मानं न वेद्मि = न जानामि, इति न किन्तुजानाम्येव । किन्तु गां = भुवंगतस्य = प्राप्तस्य अवतीर्णस्येत्यर्थः तव = भवतः रामचन्द्रस्य विष्णोः इदं वैष्णवं = विष्णुसंबन्धि धाम = तेजः द्रष्टुमिच्छति दिदृक्षति दिदृक्षते, तेन = द्रष्टुमिच्छुना मया = भार्गवेण कोपितः = क्रोधितः असि = निश्चयेन वर्तसे । अहं त्वां विष्णुं जानामि, किन्तु अत्रावतीर्णस्य ते प्रभावं ज्ञातुमेवं मया भवान् कोपित इत्यर्थः ।

हिन्दी—"यह सुनकर" ऋषि परशुराम जी, राम से बोले कि साक्षात् पुराण पुरुष आपको मैं नही जानता हूँ । ऐसी बात नहीं है अर्थात् सम्यक् रूप से जानता हूँ । किन्तु भूलोक में अवतार लेकर आए हुये तुम्हारे विष्णु संबन्धी तेज को देखने की इच्छा से मैंने तुम्हें क्रोधित किया है । अर्थात् कितना तेज या अंश लेकर अवतार लिये हो ॥ ८५ ॥

भस्मसात्कृतवतः पितृद्विषः पात्रसाच्च वसुधां ससागराम् ।
आहितो जयविपर्ययोऽपि मे श्लाघ्य एव परमेष्ठिना त्वया ॥ ८६ ॥

पितृद्विषः पितृवैरिणो भस्मसात्कृतवतः कोपेन भस्मीकुर्वतः । 'विभाषा सातिकार्त्स्न्ये' इति सातिप्रत्ययः । ससागरां वसुधां च पात्रसात्पात्राधीनं देयं कृतवतः । 'देये त्रा च' इति चकारात्साति: । कृतकृत्यस्य मे परमेष्ठिना परमपुरुषेण त्वया आहितः कृतो जयविपर्ययः पराजयोऽपि श्लाघ्य आशास्य एव ॥

अन्वयः—पितृद्विषः भस्मसात् कृतवतः ससागरां वसुधां च पात्रसात् कृतवतः मे परमेष्ठिना त्वया आहितः जयविपर्ययः अपि श्लाघ्य एव 'अस्ति' ।

व्याख्या—पितरं = जनकं, जमदग्निं द्विषन्तीति ते, तान् पितृद्विषः मम पितृवैरिणः भस्मसात् कृतवतः = कार्त्स्न्येन सर्वान् शत्रून् भस्मीकृतवतः क्रोधेनेत्यर्थः । सागरैः = समुद्रैः सहिता ससागरा तां ससागरां वसूनि = रत्नानि धारयतीति तां वसुन्धरां = पृथिवीं पात्रस्य अधीनं देयं अकारीति तस्य पात्रसात् कृतवतः = पात्राधीनं विहितवतः । एकविंशतिवारं ब्रह्मणेभ्यो दत्तवतः अतएव कृतकृत्यस्य मे भार्गवस्य परमे व्योमनि चिदाकाशे तिष्ठतीति परमेष्ठी । तेन परमेष्ठिना = परमपुरुषेण त्वया = श्रीरामचन्द्रेण आहितः कृतः जयस्य = विजयस्य विपर्ययः = वैपरीत्यं, पराजयः अपि श्लाघितुं योग्यः श्लाघ्यः = प्रशंसनीय एवेति निश्चयेन ।

समासः—पितुः द्विषः पितृद्विषः तान् पितृद्विषः । सागरैः सहिता ससागरा तां ससागराम् । जयस्य विपर्यय इति जयविपर्ययः ।

हिन्दी—अपने पिता के शत्रुओं को भस्म करने वाले (विनाश करने वाले) और समुद्रपर्यन्त सारी पृथिवी, ब्राह्मणों को दान देने वाले, मुझ परशुराम को परम पुरुष तुम्हारे से की गई हार भी प्रशंसनीय ही है । अर्थात् इक्कीस बार क्षत्रियों को मार कर सारी पृथिवी दान देने से कृतकृत्य हूँ अतः अब परम पुरुष तुमसे हारना भी गौरव की बात है ॥ ८६ ॥

तद्गतिं मतिमतां वरेप्सितां पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे ।
पीडयिष्यति न मां खिलीकृता स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपम् ॥ ८७ ॥

तत्तस्मात्कारणात् हे मतिमतां वर, पुण्यतीर्थगमनायाप्युमिष्टामीप्सितां मे गतिं रक्ष पालय। किंतु खिलीकृता दुर्गमीकृतापि स्वर्गपद्धतिरभोगलोलुपं भोगनिःस्पृहं मां न पीडयिष्यति। अतस्तामेव जहीत्यर्थः॥

अन्वय —तत् हे मतिमतां वर, पुण्यतीर्थगमनाय ईप्सितां मे गतिं रक्ष। "किन्तु" खिलीकृता "अपि" स्वर्गपद्धतिः अभोगलोलुपं मां न पीडयिष्यति।

व्याख्या—तत् = तस्मात् कारणात् मतिः = बुद्धिः अस्ति येषां ते मतिमन्तस्तेषां हे मतिमतां = बुद्धिमतां वर = श्रेष्ठ ! पुण्यानि = पुण्यजनकानि यानि तीर्थानि = प्रयागादीनि, इति पुण्यतीर्थानि तेषु गमनं तस्मै पुण्यतीर्थगमनाय ईप्सिताम् = इष्टां मे = मम गतिं = गमनं गमनशक्तिमित्यर्थः। रक्ष = पालय। किन्तु न खिला अखिला खिला संपद्यमाना, इति खिलीकृता = अवरुद्धा अपि पादाभ्यां हन्यते या सा पद्धतिः। स्वर्गस्य = देवलोकस्य पद्धतिः = मार्गः भोगे = स्वर्गादिसुखे लोलुपः इति भोगलोलुपः न भोगलोलुपः = सुखलोलुपः इति अभोगलोलुपस्तम् अभोगलोलुपं मां = भार्गवं, भोगतृष्णानिःस्पृहं परशुराममित्यर्थः न पीडयिष्यति = न खेदयिष्यति अतः मे स्वर्गपद्धतिं विनाशय, गतिञ्च पालय। गर्हितं लुम्पतीति लोलुपः। "समौ लोलुपलोलुभौ" इत्यमरः।

समासः—पुण्यानि यानि तीर्थानि पुण्यतीर्थानि, तेषु गमनं तस्मै पुण्यतीर्थं गमनाय। स्वर्गस्य पद्धतिः स्वर्गपद्धतिः। भोगे लोलुपः भोगलोलुपः, न भोगलोलुपः अभोगलोलुपस्तम् अभोगलोलुपम्।

हिन्दी—इसलिये हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ रामजी ! पवित्र तीर्थों की यात्रा करने के लिये अभिलषित मेरी गति की रक्षा करो। भोगसुख की इच्छा (लोभ) न करने वाले मुझ त्यागीका स्वर्ग जाना रोक दिया जाने से कुछ भी कष्ट मुझे न होगा। अतः मेरे स्वर्ग को नष्ट कर गति की रक्षा करो ॥ ८७ ॥

प्रत्यपद्यत तथेति राघवः प्राङ्मुखश्च विससर्ज सायकम् ।
भार्गवस्य सुकृतोऽपि सोऽभवत्स्वर्गमार्गपरिघो दुरत्ययः ॥ ८८ ॥

राघवस्तथेति प्रत्यपद्यताङ्गीकृतवान्। प्राङ्मुख इन्द्रदिङ्मुखः सायकं विससर्ज च। स सायकः सुकृतोऽपि साधुकारिणोऽपि। करोतेः क्विप्। भार्गवस्य दुरत्ययो दुरतिक्रमः स्वर्गमार्गस्य परिघः प्रतिबन्धोऽभवत् ॥

अन्वयः—राघवः तथा इति प्रत्यपद्यत, प्राङ्मुखः सन् सायकं विससर्ज, सः सुकृतः अपि भार्गवस्य दुरत्ययः स्वर्गमार्गपरिघ अभवत्।

व्याख्या—राघवः = रामः तथास्तु इति = एवं प्रत्यपद्यत = स्वीकृतवान् प्राक् = पूर्वदिशि मुखम् = आननं यस्य सः प्राङ्मुखः सन् पूर्वाभिमुखो भूत्वेत्यर्थः। स्यति नाशयतीति सायकस्तं सायकं = बाणं विससर्ज = मुमोच। सः = सायकः सुष्ठु करोतीति सुकृत् तस्य सुकृतः = *यज्ञादिशुभकर्मकारिणः भार्गवस्य = परशुरामस्य दुःखेन अत्येतुं शक्यः दुरत्ययः = दुरतिक्रमः* स्वर्गस्य = वैकुण्ठस्य मार्गः = पन्थाः तस्य परिघः = अर्गला प्रतिबन्ध इत्यर्थः। इति स्वर्ग-

मार्गपरिघः। परितो हन्यतेऽनेनेति परिघः। "परिघोऽस्त्रे योगभेदे परिघातेऽर्गलेऽपि च" इति हैमः। अभवत्=जातः।

समासः—प्राक् मुखं यस्य स प्राङ्मुखः। स्वर्गस्य मार्गः स्वर्गमार्गः। स्वर्गमार्गस्य परिघः इति स्वर्गमार्गपरिघः।

हिन्दी—रामचन्द्र ने परशुरामजी की बात मान ली, और पूर्वाभिमुख होकर बाण को छोड़ दिया। वह बाण शुभ कर्म करने वाले भी परशुराम के स्वर्ग जाने के मार्ग का अलंघनीय (न हँटने वाला) लोहे का कील (प्रतिबन्धक) बन गया॥ ८८॥

राघवोऽपि चरणौ तपोनिधेः क्षम्यतामिति वदन्समस्पृशत्।
निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये॥ ८९॥

राघवोऽपि क्षम्यतामिति वदंस्तपोनिधेर्भार्गवस्य चरणौ समस्पृशत्प्रणनाम। तथाहि, तरस्विनां बलवतां तरसा बलेन निर्जितेषु शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये। भवतीति शेषः॥

अन्वयः—राघवः अपि क्षम्यताम् इति वदन् तपोनिधेः चरणौ अस्पृशत्। तरस्विनां तरसा निर्जितेषु शत्रुषु प्रणतिः एव कीर्तये "भवति"।

व्याख्या—राघवः=रामः अपि क्षम्यतां=मृष्यताम् इति=एवं वदन्=कथयन् तपसां=तपस्यानां निधिः=शेवधिस्तस्य तपोनिधेः=भार्गवस्य। नितरां धीयते इति नितरां दधाति=पोषति अनेन वा निधिः। "निधिर्ना शेवधिः" इत्यमरः। चरणौ=पादौ समस्पृशत्=प्रणतवान्, पादौ स्पृष्ट्वा प्रणामं कृतवानित्यर्थः। तथाहि—तरत्यनेनेति तरः "तरो बले जवे" इति हैमः। तरः=बलमस्ति येषां ते तरस्विनः तेषां तरस्विनां शत्रुषु=रिपुषु प्रणतिः=प्रणामः कीर्तये=यशसे भवतीति शेषः।

समासः—तपसां निधिः तपोनिधिस्तस्य तपोनिधेः। नितरां जिताः निर्जितास्तेषु निर्जितेषु।

हिन्दी—"और" राम ने भी "भगवन्" क्षमा करें यह कहते हुये, धर्म-प्राण परशुराम जी के चरणों को स्पर्श किया। अर्थात् चरण छूकर प्रणाम किया। यह ठीक ही है—क्योंकि–पराक्रमियों के "अपने" बल से जीते गये शत्रुओं के प्रति प्रणाम करना एवं नम्रता बरतना अपनी कीर्ति के लिये ही है। अर्थात् शत्रु को बल से जीतकर भी पुनः शत्रुका आदर करना महानता का लक्षण है॥ ८९॥

राजसत्वमवधूय मातृकं पित्र्यमस्मि गमितः शमं यदा।
नन्वनिन्दितफलो मम त्वया निग्रहोऽप्ययमनुग्रहीकृतः॥ ९०॥

मातुरागतं मातृकं राजसत्वं रजोगुणप्रधानत्वमवधूय पितुरागतं पित्र्यं शमं यदा गमितोऽस्मि तदा त्वया ममापेक्षितत्वादनिन्दितमगर्हितं फलं स्वर्गहानिलक्षणं यस्य सोऽयं निग्रहोऽपकारोऽप्यनुग्रहीकृतो ननूपकारीकृतः खलु॥

अन्वयः—मातृकं राजसत्वम् अवधूय पित्र्यं शमं यदा गमितः अस्मि, तदा त्वया अनिन्दितफलः अयं निग्रहः अपि अनुग्रहीकृतः ननु॥

व्याख्या—मान्यते इति माता । माति गर्भोऽस्यां वा माता = जननी । मातुरागतं मातृकं = रेणुकासंबन्धि, रजसा = रजोगुणेन निर्मितं राजसं तस्य भावः कर्म वा राजसत्वं = रजोगुणप्रधानत्वं, परशुरामस्य मातुः रेणुकादेव्याः क्षत्रियत्वात् इति भावः । अवधूय = तिरस्कृत्य पितुः आगतं पित्र्यं = महर्षिजमदग्निसंबन्धिनं शमं = शान्ति यदा = यस्मिन्काले गमितः = प्रापितः अस्मि = भवामि तदा = तस्मिन्काले त्वया = रामचन्द्रेण अनिन्दितम् = अगर्हितं भार्गवेणापेक्षितत्वात् अभीष्टमेवेति भावः फलं = स्वर्गहानिरूपं यस्य सः अनिन्दितफलः अयं = त्वत्कृतः निग्रहः = निरोधः अपकारः इत्यर्थः 'निग्रहस्तु निरोधः स्यादि'त्यमरः । अपि अनुग्रहणमनुग्रहः । न अनुग्रहः अननुग्रहः, अननुग्रहः अनुग्रहः संपद्यमानः कृतः अनुग्रहीकृतः = उपकारीकृतः ननु = खलु, निश्चयेनेत्यर्थः ।

समासः—न निन्दितमिति, अनिन्दितम्, अनिन्दितं फलं यस्य सः अनिन्दितफलः ।

हिन्दी—क्षत्रिय माता से प्राप्त हुए मेरे रजोगुण को दूर करके पिता के सत्त्वगुण से प्राप्त शान्ति को प्राप्त करा दिया अर्थात् क्षात्र धर्म से हटा कर सतोगुणी मात्र कर दिया । यह आप ने मुझे दण्ड देकर भी उपकृत ही किया है । क्योंकि इस दण्ड का परिणाम उत्तम है । अर्थात् स्वर्ग में न जाकर यहाँ तपस्या करना मुझे अभिलषित है ॥ ९ ॥

साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते देवकार्यमुपपादयिष्यतः ।
ऊचिवानिति वचः सलक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजमृषिस्तिरोदधे ॥ ९१ ॥

अहं साधयामि गच्छामि । देवकार्यमुपपादयिष्यतः संपादयिष्यतस्तेऽविघ्नमस्तु विघ्नाभावोऽस्तु । 'अव्ययं विभक्ति—' इत्यादिनार्थाभावेऽव्ययीभावः । सह लक्ष्मणेन सलक्ष्मणस्तम् । 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः । लक्ष्मणाग्रजं राममिति वच ऊचिवानुक्तवान् । ब्रूञः क्वसुः । ऋषिस्तिरोदधेऽन्तर्दधे ॥

अन्वयः—अहं साधयामि देवकार्यम् उपपादयिष्यतः ते अविघ्नम् अस्तु । सलक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजम् इति वचः ऊचिवान् ऋषिः तिरोदधे ।

व्याख्या—अहं = परशुरामः साधयामि = गच्छामि देवानां = सुराणां कार्यं = भूभारहरणं, देवकार्यम् उपपादयिष्यतीति उपपादयिष्यन् तस्य उपपादयिष्यतः = साधयिष्यतः ते = तव रामस्य विघ्नानाम् अभावः अविघ्नम् = अन्तरायाणामभावः, अस्तु = भवतु, इत्याशीर्वचनं रामम्प्रति भार्गवस्येति यावत् । लक्ष्मणेन सह सलक्ष्मणः तं सलक्ष्मणं, लक्ष्मणस्य अग्रजः लक्ष्मणाग्रजस्तं लक्ष्मणाग्रजं = रामम् इति = पूर्वोक्तं वचः = वचनम् ऊचिवान् = उक्तवान् ऋषिः = परशुरामः तिरोदधे = अन्तर्दधे, तिरोहित इत्यर्थः ।

समासः—देवानां कार्यमिति देवकार्यम् तत् । विघ्नानाम् अभावः अविघ्नम् । लक्ष्मणेन सह इति सलक्ष्मणस्तं सलक्ष्मणम् । लक्ष्मणस्य अग्रज इति लक्ष्मणाग्रजस्तं लक्ष्मणाग्रजम् ।

हिन्दी—"अब" मैं जाता हूँ । देवताओं का जो कार्य सिद्ध करना आप चाहते हैं वह बिना विघ्न के पूर्ण हो । राम और लक्ष्मण से इस प्रकार कहकर परशुराम जी अन्तर्धान हो गये ॥

तस्मिन्गते विजयिनं परिरभ्य रामं
स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम् ।

तस्याभवत्क्षणशुचः परितोषलाभः
कक्षाग्निलङ्घिततरोरिव वृष्टिपातः ॥ ९२ ॥

तस्मिन्भार्गवे गते सति। विजयिनं रामं पिता स्नेहात्परिरभ्यालिङ्ग्य पुनर्जातमेवामन्यत। क्षणं शुग्यस्येति विग्रहः, क्षणशुचस्तस्य दशरथस्य परितोषलाभः संतोषप्राप्तिः कक्षाग्निना दावानलेन। 'कक्षः शुष्ककाननवीरुधोः' इति विश्वः। लङ्घितस्याभिहतस्य तरोर्वृष्टिपात इव अभवत्॥

अन्वयः—तस्मिन् गते सति, पिता स्नेहात् विजयिनं रामं परिरभ्य पुनः जातम् एव अमन्यत, क्षणशुचः तस्य परितोषलाभः कक्षाग्निलंघिततरोः वृष्टिपातः इव अभवत्।

व्याख्या—तस्मिन् = परशुरामे गते = अन्तर्हिते सति पिता = जनको दशरथः स्नेहात् = पुत्रप्रेम्णः विजयोऽस्यास्तीति विजयी तं विजयिनं = जयशीलं रामं = राघवं परिरभ्य = आलिंग्य पुनः = भूयः जातम् = उत्पन्नम् एव अमन्यत = मन्यते स्म। क्षणं = मुहूर्तं शुक् = शोकः यस्य स तस्य क्षणशुचः = तस्य राज्ञो दशरथस्य परितोषस्य = सन्तोषस्य लाभः = प्राप्तिः इति परितोषलाभः कक्षस्य = शुष्कारण्यस्य अग्निः = वह्निरिति कक्षाग्निस्तेन लंघितः = अभिहतः ज्वलित इत्यर्थः यः तरुः = वृक्षः तस्य कक्षाग्निलंघिततरोः वृष्टेः = वर्षणस्य पातः = पतनम् इव = यथा अभवत् = अभूत्। यथाहि वर्षणेन दावाग्निः शाम्यति एवमेव भार्गवेऽन्तर्भूते सति दशरथस्य शोकोऽपि शान्त इति भावः।

समासः—क्षणं शुग् यस्य स क्षणशुक् तस्य क्षणशुचः। वृष्टेः पातः वृष्टिपातः। परितोषस्य लाभः परितोषलाभः। कक्षस्य अग्निः कक्षाग्निः तेन लङ्घितः यः तरुः इति कक्षाग्निलङ्घिततरुः तस्य कक्षाग्निलंघिततरोः।

हिन्दी—"आशीर्वाद देकर" परशुराम जी के चले जाने पर दशरथ जी ने प्रेम से विजयी राम का आलिंगन करके यही अनुभव किया कि राम का दूसरा ही जन्म हुआ है। थोड़ी सी देर के दुःखी दशरथ जी को वैसे ही सन्तोष मिला जैसे कि जंगल की आग से जले वृक्ष को वर्षा का जल मिल जाय॥ ९२॥

अथ पथि गमयित्वा क्लृप्तरम्योपकार्ये
कतिचिदवनिपालः शर्वरीः शर्वकल्पः।
पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शनीनां
कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम् ॥ ९३ ॥

अथ। ईषदसमाप्तः शर्वः शर्वकल्पः। 'ईषदसमाप्तौ—' इति कल्पप्प्रत्ययः। अवनिपालः क्लृप्ता रम्य नवा उपकार्या यस्मिन्स तस्मिन्पथि कतिचिच्छर्वरी रात्रीर्गमयित्वा मैथिलीदर्शनीनामङ्गनानां लोचनैः कुवलयानि येषां संजातानि कुवलयिताः 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्' इतीतच्प्रत्ययः। कुवलयिता गवाक्षा यस्यास्तां पुरमयोध्यामविशत्प्रविष्टवान्॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया
व्याख्यया समेतो महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
सीताविवाहवर्णनो नामैकादशः सर्गः ।

अन्वयः—अथ शर्वकल्पः अवनिपालः क्लृप्तरम्योपकार्ये पथि कतिचित् शर्वरीः गमयित्वा मैथिलीदर्शनीनाम् अङ्गनानां लोचनैः कुवलयितगवाक्षां पुरम् अयोध्याम् अविशत् ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् ईषदसमाप्तः शर्वः शर्वकल्पः = शिवकल्पः अवनिं = पृथिवीं पालयति = रक्षतीति अवनिपालः = राजा दशरथः उपक्रियते इति उपकार्या । क्लृप्ताः = रचिताः रम्याः = मनोहराः नवा उपकार्याः = पटगृहाणि यस्मिन् स तस्मिन् क्लृप्तरम्योपकार्ये पथि = मार्गे कतिचित् = कियतीः शृणाति चेष्टाः शर्वरी । ताः शर्वरीः = रात्रीः गमयित्वा = व्यतीत्य मैथिल्याः = सीतायाः दर्शन्यः = अवलोकयित्र्यः तासां मैथिलीदर्शनीनां सीतादर्शनोत्सुकानामित्यर्थः । प्रशस्तानि अङ्गानि यासां ताः तासाम् अङ्गनानां = साकेतसुन्दरीणां लोचनैः = नेत्रैः कोः = पृथिव्याः वलयमिव कुवलयम् । शोभाकरत्वात् । "स्यादुत्पलं कुवलयम्" इत्यमरः । कुवलयानि संजातानि येषां ते कुवलयिताः । कुवलयिताः = उत्पलयिताः गवाक्षाः = वातायनानि यस्याः सा तां कुवलयितगवाक्षाम् । गवाम् अक्षीव गवाक्षः । गावः = जलानि, किरणाः वा अक्षन्ति = व्याप्नुवन्ति, एनमनेन वा गवाक्षः । "वातायनं गवाक्षः" इत्यमरः । एवंभूतां पुरम् = नगरम् योद्धुम् अशक्या, ताम् अयोध्याम् = साकेतम् = रामनगरीमित्यर्थः अविशत् = विवेश प्रविष्ट इत्यर्थः ।

समासः—क्लृप्ताः रम्याः उपकार्याः यस्मिन् तस्मिन् क्लृप्तरम्योपकार्ये । अवनेः पालः अवनिपालः । मैथिल्याः दर्शन्यस्तासां मैथिलीदर्शनीनाम् । कुवलयिताः गवाक्षाः यस्याः सा तां कुवलयितगवाक्षाम् ।

हिन्दी—अनन्तर शिव के समान पृथिवी रक्षक राजा दशरथ बनाये गये हैं नये नये राजशाही खेमें जिसमें ऐसे मार्ग में कुछएक रात बिताकर उस अयोध्या नगरी में पहुँच गये, जहाँ सीताजी को देखने में उत्कण्ठित नगर की सुन्दरी स्त्रियों के लोचनों (आँखें) से झरोखे (खिड़कियाँ) कमलों वाले दीख रहे थे अर्थात् झरोखे खिले कमलों से भरे हुए जान पड़ रहे थे ॥ ९३ ॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां
रघुवंशे महाकाव्ये सीताविवाहवर्णनो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

वन्दामहे सहोद्दण्डदोर्दण्डौ रघुनन्दनौ ।
तेजोनिर्जितमार्तण्डमण्डलौ लोकनन्दनौ ॥

निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान् ।
आसीदासन्ननिर्वाणः प्रदीपार्चिरिवोषसि ॥ १ ॥

स्नेहयति प्रीणयन्ति पुरुषमिति स्नेहाः पचाद्यच् स्निह्यन्ति पुरुषा येष्विति वा स्नेहाः अधिकरणार्थे घञ् । विषयाः शब्दादयस्त एव स्नेहाः निर्विष्टा भुक्ता विषयस्नेहा येन स तथोक्तः। 'निर्वेशो भृतिभोगयोः' इति विश्वः । दशा जीवनावस्था तस्या अन्तं वार्धकमुपेयिवान्स दशरथः । उषसि प्रदीपार्चिरिव दीपज्वालेव । आसन्नं निर्वाणं मोक्षो यस्य स तथोक्त आसीत् । अर्चिःपक्षे तु विषयो देश आश्रयः । भाजनमिति यावत् । 'विषयः स्यादिन्द्रियार्थे देशे जनपदेऽपि च' इति विश्वः । स्नेहस्तैलादिः । 'स्नेहस्तैलादिकरसे द्रवे स्यात्सौहृदेऽपि च' इति विश्वः । दशा वर्तिका । 'दशा वर्ताववस्थायाम्' इति विश्वः । निर्वाणं विनाशः । 'निर्वाणं निर्वृतौ मोक्षे विनाशे गज-मज्जने' इति यादवः ॥

अन्वयः—निर्विष्टविषयस्नेहः दशान्तम् उपेयिवान् सः उषसि प्रदीपार्चिः इव आसन्न-निर्वाणः आसीत् ।

व्याख्या—स्नेहयन्ति = पुरुषं प्रीणयन्तीति स्नेहाः । स्निह्यन्ति पुरुषाः येषु ते स्नेहाः । विसिन्वन्ति = निबध्नन्ति विषयिणं ये ते विषयाः । निर्विष्टाः = समुपभुक्ताः विषयाः = शब्दादय एव स्नेहाः प्रेमाणः येन स निर्विष्टविषयस्नेहः । दशति, दश्यते, इति वा दशा = जीवनावस्था तस्याः अन्तं = वार्धकम् उपेयिवान् = प्राप्तः सः = दशरथः "दशा वर्त्यामवस्थायां वस्त्रान्ते भूम्नि पुंस्त्रियोः" इति रभसः । ओषत्यन्धकारमिति उषः । तस्मिन् उषसि = प्रभाते प्रदीपस्य = दीपस्य अर्चिः = ज्वाला इव = यथा आसन्नं = समीपं निर्वाणं = मोक्षः यस्य सः आसन्ननिर्वाणः । आसीत् = जातः । अर्चिःपक्षे तु निर्विष्टः विषयः = स्वाश्रयः, भाजनं स्नेहः = तैलं यया सा दशा-याः = वर्त्याः अन्तरतम् उपेयुषी । आसन्नं निर्वाणं = विनाशः यस्याः सा एवंभूता अर्चिरिवेति अर्चिःशब्दस्य स्त्रीलिंगत्वात् । नपुंसकलिंगमपीति ।

समासः—निर्विष्टाः विषया एव स्नेहा येन स निर्विष्टविषयस्नेहः । दशायाः अन्तस्तं दशान्तम् । आसन्नं निर्वाणं यस्य स आसन्ननिर्वाणः । प्रदीपस्य अर्चिरिति प्रदीपार्चिः ।

हिन्दी—संसार के सब विषयसुखों का भोग कर चुकने वाले तथा जीवन की अन्तिम अवस्था को प्राप्त हुये राजा दशरथ वैसे ही हो गये, जैसी कि प्रातः काल में उस दीपक की ज्वाला (लौ) हो जाती, जिसका तेल समाप्त हो गया है और जिसकी बत्ती भी समाप्त हो गई है अतः बुझने ही वाली हो ॥ १ ॥

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति ।
कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा ॥ २ ॥

जरा कैकेयीशङ्कयेव पलितस्य केशादिशौक्ल्यस्य छद्मना मिषेण। 'पलितं जरसा शौक्ल्यं केशादौ' इत्यमरः। कर्णमूलं कर्णोपकण्ठमागत्य रामे श्री राज्यलक्ष्मीर्न्यस्यतां निधीयतामिति तमाह। दशरथो वृद्धोऽहमिति विचार्य रामस्य यौवराज्याभिषेकं चकाङ्क्षेत्यर्थः ॥

अन्वयः—जरा कैकेयीशंकया इव पलितच्छद्मना कर्णमूलम् आगत्य रामे श्रीः न्यस्यताम् इति तम् आह।

व्याख्या—जीर्यतेऽनया जरा = विस्रसा "विस्रसा जरा" इत्यमरः कैकयस्यापत्यं स्त्री कैकेयी तस्याः शंका भयमित्यर्थः । तया कैकेयीशंकया इव = यथा पलितस्य = केशशौक्ल्यस्य छद्म = कपटस्तेन पलितच्छद्मना = केशानां शौक्ल्यव्याजेनेत्यर्थः "पलितं जरसा शौक्ल्यं केशादौ" इत्यमरः। कर्णयोः = श्रोत्रयोः मूलम् = अन्तिकमिति कर्णमूलम् आगत्य रामे = रामचन्द्रे श्रीः = राज्यलक्ष्मीः न्यस्यतां = निधीयताम् श्रीरामं यौवराज्ये अभिषिञ्चेत्यर्थः। इति = इत्थं तं = राजानं दशरथम् आह = कथितवती। अहं वृद्धोऽस्मि संवृत्तः इति विचार्य राजा दशरथः स्वज्येष्ठपुत्रस्य रामस्य राज्याभिषेकं कर्तुमिच्छितवान् इति भावः।

समासः—कैकेय्याः शंका तया कैकेयीशंकया। पलितस्य छद्म पलितच्छद्म तेन पलितच्छद्मना। कर्णयोः मूलमिति तत् कर्णमूलम्।

हिन्दी—बुढ़ापा मानों, कैकेयी से शंकित होकर (डरकर) सफेद बालों के बहाने "राजा" के कान के पास आकर यह कह रहा हो कि राम को राज्यलक्ष्मी सौंप दो। अर्थात् राजा ने विचारा कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अतः राम को युवराज बना दूँ ॥ २ ॥

सा पौरान्पौरकान्तस्य रामस्याभ्युदयश्रुतिः ।
प्रत्येकं ह्लादयांचक्रे कुल्येवोद्यानपादपान् ॥ ३ ॥

सा पौरकान्तस्य रामस्याभ्युदयश्रुतिरभिषेकवार्ता। कुल्या कृत्रिमा सरित्। 'कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित्' इत्यमरः। उद्यानपादपानिव पौरान् प्रत्येकं ह्लादयांचक्रे ॥

अन्वयः—सा पौरकान्तस्य रामस्य अभ्युदयश्रुतिः कुल्या उद्यानपादपान् इव पौरान् प्रत्येकं ह्लादयाञ्चक्रे।

व्याख्या—सा = अभिषेकवार्ता पुरे भवाः पौराः । पौराणां = नागरिकाणां कान्तः = मनोरमः, प्रिय इत्यर्थः। इति पौरकान्तस्तस्य पौरकान्तस्य रामस्य = राघवस्य अभ्युदयस्य = अभिषेकरूपस्य श्रुतिः वार्ता, इत्यभिषेकश्रुतिः। श्रूयते या सा श्रुतिः। "श्रुतिः श्रोत्रे तथाम्नाये वार्तायां श्रोत्रकर्मणि" इति विश्वः। कुले प्राणिगणे, कुटुम्बे, दाम्पत्ये वा साधुः कुल्या = जलप्रणालिका "कुल्या नदी कुल्यमस्थि कुल्या वारिप्रणालिका" इति कोषः । उद्यानस्य = आरामस्य राजवाटिकाया इत्यर्थः। पादपाः = वृक्षाः तान् उद्यानपादपान् इव = यथा पौरान् = नागरिकान् प्रत्येकम् = एकैकं प्रति ह्लादयाञ्चक्रे = आह्लादयामास।

समासः—पौराणां कान्तः पौरकान्तस्तस्य पौरकान्तस्य । अभ्युदयस्य श्रुतिः अभ्युदयश्रुतिः । उद्यानस्य पादपाः उद्यानपादपास्तान् उद्यानपादपान् । एकम् एकं प्रति प्रत्येकम् ।

हिन्दी—नगर के निवासियों के प्रिय श्रीराम के राज्याभिषेक के समाचार ने (चर्चाने) प्रत्येक (हरएक) नागरिक को उसी प्रकार आनन्दित प्रसन्न कर दिया, जिस प्रकार जलकी नाली (छोटी सी नहर) बगीचे के हरएक पौधे को आनन्दित कर देती है । अर्थात् नाली जल से सब वृक्षों को सींचकर हरा-भरा कर देती है ॥ ३ ॥

तस्याभिषेकसंभारं कल्पितं क्रूरनिश्चया ।
दूषयामास कैकेयी शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः ॥ ४ ॥

क्रूरनिश्चया कैकेयी तस्य रामस्य कल्पितं संभृतमभिषेकस्य संभारमुपकरणं शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिर्दूषयामास । स्वदुःखमूलेन राजशोकेन प्रतिबबन्धेत्यर्थः ॥

अन्वयः—क्रूरनिश्चया कैकेयी तस्य कल्पितम् अभिषेकसम्भारं शोकोष्णैः पार्थिवाश्रुभिः दूषयामास ।

व्याख्या—क्रूरः=घोरः=नृशंसः निश्चयः=निर्णयः यस्याः सा क्रूरनिश्चया "नृशंसो घातुकः क्रूरः" इत्यमरः । "समौ निर्णयनिश्चयौ" इति चामरः । कैकेयी=भरतमाता तस्य=रामस्य कल्पितं=संभृतम् अभिषेकस्य=राजतिलकस्य सम्भारः=सामग्री उपकरणं तम् अभिषेकसम्भारं शोकेन=शुचा उष्णानि=घर्माणि तैः शोकोष्णैः पार्थिवस्य=राज्ञो दशरथस्य अश्रूणि=नेत्रजलानि तैः पार्थिवाश्रुभिः दशरथरोदनैरित्यर्थः । दूषयामास=दूषितवती स्वकीयदुःखमूलकेन दशरथशोकेन प्रतिबबन्धेत्यर्थः ।

समासः—क्रूरः निश्चयो यस्याः सा क्रूरनिश्चया । अभिषेकस्य सम्भारः अभिषेकसम्भारः तम् अभिषेकसम्भारम् । शोकेन उष्णानि तैः शोकोष्णैः । पार्थिवस्य अश्रूणि तैः पार्थिवाश्रुभिः ।

हिन्दी—कठोर भयंकर, निश्चयवाली कैकेयी ने, तैयार किये हुये रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक (राज्यतिलक) के उत्सव की सामग्री को शोक से गरम गरम राजा के आंसुओं से दूषित कर दिया । अर्थात् अभिषेक के स्थानपर रोना धोना मच गया ॥ ४ ॥

सा किलाश्वासिता चण्डी भर्त्रा तत्संश्रुतौ वरौ ।
उद्ववामेन्द्रसिक्ता भूर्बिलमग्नाविवोरगौ ॥ ५ ॥

चण्ड्यतिकोपना । 'चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः' इत्यमरः । सा किल भर्त्राऽऽश्वासिताऽनुनीता सती तेन भर्त्रा संश्रुतौ प्रतिज्ञातौ वरौ । इन्द्रेण सिक्ताभिवृष्टा भूर्बिले वल्मीकादौ मग्नावुरगाविव उद्ववामोज्जगार ॥

अन्वयः—चण्डी सा किल भर्त्रा आश्वासिता सती तत्संश्रुतौ वरौ इन्द्रसिक्ता भूः बिलमग्नौ उरगौ इव उद्ववाम ।

व्याख्या—चण्डते या सा चण्डी=अतिकोपना सा=प्रसिद्धा कैकेयी किल=ऐतिह्ये बिभर्तीति भर्ता तेन भर्त्रा=दशरथेन आश्वासिता=अनुनीता सती तेन=भर्त्रा संश्रुतौ=प्रति-

ज्ञातौ, स्वीकृतावित्यर्थः। वरौ "तपोभिरिष्यते यस्तु देवेभ्यः स वरो मतः" इति। अभीप्सितावित्यर्थः, इन्द्रेण = देवेन्द्रेण सिक्ता = अभिवृष्टा भूः = पृथिवी बिले = रन्ध्रे, वल्मीकादावित्यर्थः मग्नौ = स्थितौ, इति बिलमग्नौ "बिलं रन्ध्रे गुहायां चे" ति हैमः। उरसा गच्छत इति उरगौ = भुजंगौ इव = यथा उद्ववाम = उज्जगार। कदाचित् पूर्वकाले प्रतिश्रुतौ द्वौ वरौ कैकेयी इदानीं दशरथं याचितवतीत्यर्थः।

समासः—तेन संश्रुतौ तत्संश्रुतौ, तौ। इन्द्रेण सिक्ता, इति इन्द्रसिक्ता। बिले मग्नौ बिलमग्नौ, तौ।

हिन्दी—अत्यन्त कठोर एवं क्रोधीस्वभाव वाली उस कैकेयी को राजा ने मनाया, तो रानी ने पहले किसी समय राजा दशरथ के दिये हुए वे दो वर मांगे, "वे दो वर ऐसे थे" मानो इन्द्र के द्वारा वर्षा से भींगी पृथिवी ने बिल में छिपे दो सांपों को उगल दिया हो ॥ ५ ॥

तयोश्चतुर्दशैकेन रामं प्राव्राजयत्समाः।
द्वितीयेन सुतस्यैच्छद्वैधव्यैकफलां श्रियम् ॥ ६ ॥

सा तयोर्वरयोर्मध्ये एकेन वरेण रामं चतुर्दश समाः संवत्सरान् अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। प्राव्राजयत्प्रावासयत्। द्वितीयेन वरेण सुतस्य भरतस्य वैधव्यैकफलां स्ववैधव्यमात्रफलाम्। न तूपभोगफलामिति भावः। श्रियमैच्छदियेष ॥

अन्वयः—सा तयोः एकेन रामं चतुर्दश समाः प्राव्राजयत्। द्वितीयेन सुतस्य वैधव्यैकफलां श्रियम् ऐच्छत्।

व्याख्या—सा = कैकेयी तयोः = पूर्वप्रतिज्ञातवरयोः मध्ये एकेन = वरेण रामं = रामचन्द्रं चत्वारः दश चेति चतुर्दश समाः = वत्सरान् चतुर्दशवर्षपर्यन्तमित्यर्थः। प्राव्राजयत् = प्रावासयत् वनगमनमकारयत् इत्यर्थः। द्वितीयेन = अपरेण, वरेण सुतस्य = भरतस्य, स्वपुत्रस्येति यावत्। विगतः = नष्टः धवः = पतिर्यस्याः सा विधवा। तस्याः भावः कर्म वा वैधव्यम्। वैधव्यं = स्ववैधव्यम् एकं = केवलं फलं = प्रयोजनं यस्याः सा तां वैधव्यैकफलां श्रियं = राज्यलक्ष्मीं नतु समुपभोगफलामिति भावः। ऐच्छत् = अभिलषति स्म।

समासः—वैधव्यम् एकं फलं यस्याः सा तां वैधव्यैकफलाम्।

हिन्दी—कैकेयी ने उन दो वरों में एक वर से राम को चौदह वर्ष तक बनवास करा दिया और दूसरे से अपने पुत्र भरत के लिये वह राज्य माँगा जिसका कि कैकेयी का विधवा होना ही एक मात्र फल हुआ।

विशेष—श्रीराम बन में गये, और इस दुःख से राजा का स्वर्गवास हो गया। तथा भरत जी ने राज्य नहीं लिया, मात्र रानियां विधवा हो गई ॥ ६ ॥

पित्रा दत्तां रुदन् रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ॥ ७ ॥

रामः प्राक् पित्रा दत्तां महीं रुदन् प्रत्यपद्यताङ्गीचकार। स्वत्यागदुःखादिति भावः। पश्चाद्वनाय गच्छेत्येवंरूपां तदाज्ञां पित्राज्ञां मुदितोऽग्रहीत्। पित्राज्ञाकरणलाभादिति भावः॥

अन्वयः—रामः प्राक् पित्रा दत्तां महीं रुदन् प्रत्यपद्यत, पश्चात् वनाय गच्छ इति तदाज्ञां मुदितः अग्रहीत्।

व्याख्या—रामः = राघवः प्राक् = प्रथमम् पाति=रक्षतीति पिता = जनकस्तेन पित्रा "तातस्तु जनकः पिता" इत्यमरः। दत्तां = अर्पितां महीं = पृथिवीं रुदन् = अश्रूणि मुञ्चन् प्रत्यपद्यत = स्वीचकार। पश्चात् = अनन्तरम् वनाय = दण्डकारण्याय गच्छ व्रज इति = एवंरूपां तस्य = पितुः आज्ञां = अनुशासनं तां तदाज्ञां मुदितः = प्रसन्नः सन् अग्रहीत् = स्वीकृतवान्। पितुरनुशासनस्य पालनरूपलाभाद् वनगमने प्रसन्नता।

समासः—तस्य आज्ञा तदाज्ञा, तां तदाज्ञाम्।

हिन्दी—रामचन्द्र जी ने पहले पिताजी से दी हुई पृथिवी को (राजगद्दी को) आंसू बहाते हुए स्वीकार किया था। और थोड़ी देर बाद वनको चले जाओ, इस प्रकार पिता की आज्ञा को प्रसन्नचित्त होकर स्वीकार किया था॥ ७॥

दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः॥ ८॥

मङ्गलक्षौमे दधतो वल्कले वसानस्याच्छादयतश्च तस्य रामस्य सममेकविधं मुखरागं मुखवर्णं जना विस्मिता ददृशुः। सुखदुःखयोरविकृत इति भावः॥

अन्वयः—मंगलक्षौमे दधतः वल्कले च वसानस्य तस्य समं मुखरागं जनाः विस्मिताः ददृशुः।

व्याख्या—क्षौति, क्षूयते, वा क्षौमम्। क्षुमायाः विकारः क्षौमम्। मंगले = मांगलिके च ते क्षौमे = दुकूले, इति मंगलक्षौमे, कल्याणार्थमुत्सवे परिधातुं योग्ये, कौशेयवस्त्रे इत्यर्थः, दधतः = धारयतः "क्षौमं दुकूलं स्यादि" त्यमरः। वलति = संवृणोतीति बल्कं तत् लातीति वल्कलम्। वल्कले = वृक्षत्वग्वस्त्रे च वसानस्य = आच्छादयतः तस्य = रामस्य समं = तुल्यम्, एकविधमित्यर्थः। मुखस्य = आननस्य रागः = वर्णः इति मुखरागस्तं जनाः = अयोध्यास्थनागरिकाः विस्मिताः = आश्चर्यान्विताः सन्तः ददृशुः = अवलोकयामासुः। राज्यतिलकसुखसंवादश्रवणे तथा चतुर्दशवर्षं यावत् वनवासश्रवणसमये रामस्य मुखे प्रसन्नता विवर्णता वा किंचिदपि न दृष्टा तत्रत्यजनैरिति भावः।

समासः—मंगले च ते क्षौमे मंगलार्थं वा क्षौमे मंगलक्षौमे, ते। मुखस्य रागः मुखरागस्तं मुखरागम्।

हिन्दी—राज्याभिषेक के रेशमी वस्त्र पहनते समय और वन जाने के लिये वल्कल (वृक्ष की छाल के वस्त्र) को धारण करते हुये राम के मुख के वर्ण (मुँह का भाव) को एक समान, आश्चर्यचकित होकर लोगों ने देखा। अर्थात् सुख या दुःख में राम के मुख पर प्रसन्नता अथवा विकार जरा भी परिलक्षित नहीं होता था॥ ८॥

स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद् गुरुमलोपयन् ।
विवेश दण्डकारण्यं प्रत्येकं च सतां मनः ॥ ९ ॥

स रामो गुरुं पितरं सत्याद्वरदानरूपादलोपयन्नभ्रंशयन् । सीतालक्ष्मणयोः सखेति विग्रहः । ताभ्यां सहितः सन् दण्डकारण्यं विवेश । सतां मनश्च प्रत्येकं विवेश । पितृभक्त्या सर्वे सन्तः संतुष्टा इति भावः ॥

अन्वयः—सः सत्यात् गुरुम्, अलोपयन् सीतालक्ष्मणसखः दण्डकारण्यं विवेश, सतां मनश्च प्रत्येकं विवेश ।

व्याख्या—सः = रामः सत्सु साधु सत्यं तस्मात् सत्यात् = तथ्यात् गुरुं = पितरं दशरथम् अलोपयन् = अभ्रंशयन् पितुः सत्यं रक्षयन्नित्यर्थः । सीता च लक्ष्मणश्चेति सीतालक्ष्मणौ, तयोः सखा, इति सीतालक्ष्मणसखः सीतया लक्ष्मणेन च सहितः सन् दण्डकस्य = राजविशेषस्य अरण्यं = वनमिति दण्डकारण्यं दण्डकं च तदरण्यमिति दण्डकारण्यं तत् = जनस्थानम् विवेश अविशत् । सतां = सज्जनानां मनः = चित्तं च प्रत्येकं विवेश ।

समासः—सीता च लक्ष्मणश्चेति सीतालक्ष्मणौ, सीतालक्ष्मणयोः सखा इति सीतालक्ष्मणसखः । दण्डकं च तदरण्यं, तत् दण्डकारण्यम् । न लोपयन् इति अलोपयन् ।

हिन्दी—अपने पिता को सत्य वचन से न हटाते हुए (अर्थात् पिता के वचन की रक्षा करते हुए) राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ केवल दण्डक वन में ही प्रवेश नहीं किया "अपितु इस सत्य व्यवहार से" हर एक सज्जन के मन में भी प्रवेश कर लिया । सबके मन में राम ने घर कर लिया ॥ ९ ॥

राजाऽपि तद्वियोगार्तः स्मृत्वा शापं स्वकर्मजम् ।
शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभममन्यत ॥ १० ॥

तद्वियोगार्तः पुत्रवियोगदुःखितो राजाऽपि स्वकर्मणा मुनिपुत्रवधरूपेण जातः स्वकर्मजस्तं शापं पुत्रशोकजं मरणात्मकं स्मृत्वा शरीरत्यागमात्रेण देहत्यागेनैव शुद्धिलाभं प्रायश्चित्तममन्यत । मृत इत्यर्थः ॥

अन्वयः—तद्वियोगार्तः राजा अपि स्वकर्मजं पापं स्मृत्वा, शरीरत्यागमात्रेण शुद्धिलाभम् अमन्यत ।

व्याख्या—तस्य = रामस्य, प्रियपुत्रस्य वियोगः = विरहस्तेन आर्तः = पीडितः इति तद्वियोगार्तः । राजा = दशरथः अपि स्वस्य = आत्मनः कर्म = मुनिपुत्रश्रवणकुमारवधरूपं तेन जातः उत्पन्नस्तं स्वकर्मजं शापम् = आक्रोशं स्मृत्वा = स्मरणविषयीकृत्य शरीरस्य = स्वदेहस्य त्यागः = पातः इति शरीरत्यागः शरीरत्याग एव इति शरीरत्यागमात्रं तेन शरीरत्यागमात्रेण = देहपातेनैव शुद्धेः = पापात् मुक्तेः लाभः = प्राप्तिस्तं शुद्धिलाभं = प्रायश्चित्तम् अमन्यत = मेने मृत इत्यर्थः ।

समासः—तस्य वियोगस्तद्वियोगस्तेन आर्तः, इति तद्वियोगार्तः। स्वस्य कर्म स्वकर्म, स्वकर्मणः जातस्तं स्वकर्मजम्। शरीरस्य त्यागः शरीरत्यागः, शरीरत्याग एवेति शरीरत्यागमात्रम् तेन। शुद्धेः लाभस्तं शुद्धिलाभम्।

हिन्दी—राम के वियोग (बिछोह) से पीड़ित हुए राजा दशरथ ने अपनी करनी से प्राप्त हुये, (श्रवण कुमार के मारने से उसके अन्धे पिता मुनि से दिये हुए) शाप को स्मरण करके देहत्याग से ही मेरा प्रायश्चित्त होगा, यह माना। अर्थात् पुत्र वियोग में राजा ने शरीर त्याग दिया॥ १०॥

विप्रोषितकुमारं तद्राज्यमस्तमितेश्वरम्।
रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषामामिषतां ययौ॥ ११॥

विप्रोषिता गताः कुमारा यस्मिंस्तत्तथोक्तम्। अस्तमितो मृत ईश्वरो राजा यस्य तत्तथोक्तं तद्राज्यं रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषामामिषतां भोग्यवस्तुतां ययौ। 'आमिषं भोग्यवस्तुनि' इति केशवः॥

अन्वयः—विप्रोषितकुमारम् अस्तमितेश्वरं तद्राज्यं रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां द्विषाम् आमिषतां ययौ।

व्याख्या—विशेषेण प्रोषितः=प्रवासं गतः कुमारः=युवराजः यस्मिन् तत् तथोक्तम्। अस्तं=नाशम् इतः=गतः ईश्वरः=राजा यस्मिन् तत् तथोक्तम् राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् तस्य=दशरथस्य राज्यं=साम्राज्यं, प्रभुसत्तेत्यर्थः इति तत् तद्राज्यम्। रन्ध्यतीति रन्ध्रम् "रन्ध्रं तु दूषणे च्छिद्रे" इति मेदिनी। रन्ध्रस्य=छिद्रस्य अन्वेषणं=गवेषणमिति रन्ध्रान्वेषणं तस्मिन् दक्षाः=चतुराः इति रन्ध्रान्वेषणदक्षास्तेषां रन्ध्रान्वेषणदक्षाणाम् द्विषतां=शत्रूणाम् आमिष्यते=भुज्यते, इति आमिषम्। आमिषस्य भावः आमिषता ताम् आमिषतां=मांसतां, भोग्यवस्तुतामित्यर्थः, ययौ=जगाम। "मांसं पललं क्रव्यमामिषम्" इत्यमरः। आमिषं पुंनपुंसकं, "भोग्यवस्तुनि संभोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि च" इति मेदिनी।

समासः—विशेषेण प्रोषिताः कुमाराः यस्मिन् तत्तथोक्तम्। अस्तमितः ईश्वरः यस्य तत्तथोक्तम्। तस्य राज्यं तद्राज्यम्। रन्ध्रस्य अन्वेषणे दक्षास्तेषां रन्ध्रान्वेषणदक्षाणाम्।

हिन्दी—"दशरथजी के मरने पर" जिसके राजकुमार बाहर वन में चले गये, और राजा स्वर्गवासी हो गये, ऐसा वह दशरथ का राज्य, छिद्रान्वेषी (दोष त्रुटि देखने वाले) शत्रुओं के भोग की वस्तु बन गया। अर्थात् मौके की ताक में बैठे शत्रु राजाओं ने आक्रमण करने की तैयारी कर दी॥ ११॥

अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम्।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः॥ १२॥

अथानाथाः प्रकृतयोऽमात्याः 'प्रकृतिः सहजे योनावमात्ये परमात्मनि' इति विश्वः। मातृबन्धुषु निवासिनं भरतं स्तम्भिताश्रुभिः पितृमरणगुप्त्यर्थमिति भावः। मौलैराप्तैः सचिवैरानाययामासुः आगमयाञ्चक्रुः॥

अन्वयः—अनाथाः प्रकृतयः मातृबन्धुनिवासिनं भरतं स्तम्भिताश्रुभिः मौलैः आनाययामासुः।

व्याख्या—न विद्यते नाथः = स्वामी राजा यासां ताः अनाथाः प्रकृतयः = अमात्याः मंत्रिण इत्यर्थः मातुः = जनन्याः बन्धवः = स्वजनाः, सगोत्रा इति यावत्। तेषु निवसति तच्छीलस्तं मातृबन्धुनिवासिनं = मातुलकुले वर्तमानम् बिभर्तीति भरतः तं भरतं = कैकेयीतनयं स्तम्भितानि = अवरुद्धानि अश्रूणि = नेत्रजलानि यैस्तैः स्तम्भिताश्रुभिः, पितृमृत्युगोपनार्थमिति भावः। मूलम् = आदि विदन्ति मूलात् आगता वा मौलास्तैः मौलैः = कुलक्रमादागतैः सचिवैः आनाययामासुः = आगमयाञ्चक्रुः।

समासः—न विद्यमानः अविद्यमानः नाथः यासां ताः अनाथाः। मातुः बन्धवः मातृबन्धवस्तेषु निवासी तं मातृबन्धुनिवासिनम्। स्तम्भितानि च तानि अश्रूणि तैः स्तम्भिताश्रुभिः।

हिन्दी—अनाथ हुए मंत्रियों तथा प्रजाजनों ने नाना के पास (ननिहाल) में रहनेवाले भरत जी को, उन, कुलपरम्परा से आ रहे विश्वासी मन्त्रियों को भेजकर बुलवा लिया, जिन्होंने राजा की मृत्यु को छिपाने के लिये अपने आँसू रोक रखे थे॥ १२॥

श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं कैकेयीतनयः पितुः।
मातुर्न केवलं स्वस्याः श्रियोऽप्यासीत्पराङ्मुखः॥ १३॥

कैकेयीतनयो भरतः पितुस्तथाविधं स्वमातृमूलं मृत्युं मरणं श्रुत्वा स्वस्या मातुः केवलं मातुरेव पराङ्मुखो न किंतु श्रियोऽपि पराङ्मुख आसीत्।

अन्वयः—कैकेयीतनयः पितुः तथाविधं मृत्युं श्रुत्वा स्वस्याः मातुः केवलं पराङ्मुखः न "किन्तु" श्रियः अपि पराङ्मुखः आसीत्।

व्याख्या—तनोति = विस्तारयति कुलमिति तनयः। कैकेय्याः तनयः = पुत्रः इति कैकेयीतनयः = भरतः पितुः = जनकस्य तेन प्रकारेण तथा। तथा विधा = प्रकारो यस्य स तथाविधस्तं तथाविधं = तत्प्रकारं मृत्युं = मरणं श्रुत्वा = आकर्ण्य स्वस्याः मान्यते = पूज्यते इति माता। माति गर्भोऽस्यां वा सा माता तस्याः मातुः = जनन्याः केवलम् = एव पराञ्चति = अनभिमुखं भवति, इति पराक्। पराक् मुखं यस्य स पराङ्मुखः = विमुखः न आसीत्। अपि तु श्रियः = राज्यलक्ष्म्याः अपि पराङ्मुखः आसीत् = अभवत्, मात्रा सह राज्यमपि भरतेन परित्यक्तमित्यर्थः।

समासः—कैकेय्याः तनयः कैकेयीतनयः। तथा विधा यस्य स तं तथाविधम्। पराक् मुखं यस्य स पराङ्मुखः।

हिन्दी—कैकेयी के पुत्र भरत जी, अपने पिता के इस प्रकार के मरण को (माता के दुराग्रह के कारण) सुनकर अपनी माता से ही नहीं अपि तु राज्यलक्ष्मी से भी विमुख हो गये अर्थात् माँ के साथ ही राज्य का भी परित्याग कर दिया॥ १३॥

ससैन्यश्चान्वगाद्रामं दर्शितानाश्रमालयैः।
तस्य पश्यन्ससौमित्रेरुदश्रुर्वसतिद्रुमान्॥ १४॥

ससैन्यो भरतो राममन्वगाच्च। किं कुर्वन्। आश्रमालयैर्वनवासिभिर्दर्शितानेते रामनिवासा इति कथितान् ससौमित्रेर्लक्ष्मणसहितस्य तस्य रामस्य वसतिद्रुमान्निवासवृक्षान् पश्यन्नुदश्रू रुदन्।

अन्वयः—ससैन्यः "भरत" आश्रमालयैः दर्शितान्, ससौमित्रेः तस्य वसतिद्रुमान्, पश्यन् उदश्रुः सन्, रामम् अन्वगात्।

व्याख्या—सेनायां भवाः सैन्याः। सैन्यैः = सैनिकैः सहितः = युतः ससैन्यः भरतः, आश्राम्यन्त्यत्र, अनेन वा आश्रमः, आ समन्तात् श्रमोऽत्र स्वधर्मसाधनक्लेशात्, इति वा आश्रमः। "आश्रमो ब्रह्मचर्यादौ वानप्रस्थे वने मठे" इति मेदिनी। आश्रमः = वनम् एव आलयः = गृहं येषां ते आश्रमालयास्तैः आश्रमालयैः = अरण्यवासिभिः दर्शितान् = निर्दिष्टान्, एते श्रीरामनिवासाः इति कथितान्, सुमित्रायाः अपत्यं सौमित्रिः सौमित्रिणा लक्ष्मणेन सहितः ससौमित्रिः तस्य ससौमित्रेः तस्य = रामस्य वसन्त्यस्यां सा वसतिः = निवासस्थानं तस्याः द्रुमाः = वृक्षास्तान् वसतिद्रुमान् पश्यन् = अवलोकयन् उद्गतानि अश्रूणि = नेत्रजलानि यस्य स उदश्रुः = रुदन् सन् रामं = रामचन्द्रम् अन्वगात् = पश्चादगच्छत्। स्वज्येष्ठभ्रातरं श्रीराममानेतुं तत्पृष्ठतो गतवानित्यर्थः।

समासः—सैन्यैः सहितः ससैन्यः। आश्रम एव आलयः येषान्ते तैः आश्रमालयैः। सौमित्रिणा सहितः ससौमित्रिस्तस्य ससौमित्रेः। उद्गतानि अश्रूणि यस्य सः उदश्रुः। वसतेः द्रुमाः वसतिद्रुमास्तान् वसतिद्रुमान्।

हिन्दी—सेना के साथ भरतजी, आश्रमों में रहने वाले वनवासियों से दिखाये हुये, रामलक्ष्मण के निवास के वृक्षों को देखते हुये, आँखों में जल भरे हुए (भरत) भगवान् राम के पीछे गये। अर्थात् राम का वनगमन सुनकर भरतजी उन्हें लौटाने को चल पड़े। मार्ग में बनवासियों ने बताया कि इन वृक्षों के नीचे राम ने विश्राम किया था तो उस स्थान को देखकर भरतजी के आँसू बहने लगते थे॥ १४॥

चित्रकूटवनस्थं च कथितस्वर्गतिर्गुरोः।
लक्ष्म्या निमन्त्रयांचक्रे तमनुच्छिष्टसंपदा॥ १५॥

चित्रकूटवनस्थं तं रामं च गुरोः पितुः कथितस्वर्गतिः। कथितपितृमरणः सन्नित्यर्थः। अनुच्छिष्टाननुभूतशिष्टा संपद्गुणोत्कर्षो यस्याः सा। 'संपद्भूतौ गुणोत्कर्षे' इति केशवः। तया लक्ष्म्या करणेन निमन्त्रयांचक्र आहूतवान्॥

अन्वयः—चित्रकूटवनस्थं तं च गुरोः कथितस्वर्गतिः सन् अनुच्छिष्टसम्पदा लक्ष्म्या निमन्त्रयांचक्रे।

व्याख्या—चित्राणि = नानावर्णानि कूटानि = शृंगाणि यस्य स चित्रकूटः। चित्रकूटस्य = रामगिरेः, वनम् = अरण्यं तत्र तिष्ठतीति चित्रकूटवनस्थस्तं चित्रकूटवनस्थं तञ्च = रामं च गुरोः = पितुर्दशरथस्य स्वः = स्वर्गस्तत्र गतिः = गमनमिति स्वर्गतिः। कथिता = प्रकटिता स्वर्गतिः येन स कथितस्वर्गतिः सन् प्रकटितपितृमरण इत्यर्थः। न उच्छिष्टा, अनु-

च्छिष्टा = अनुपभुक्ता सम्पद् गुणोत्कर्षः यस्याः सा तया अनुच्छिष्टसम्पदा "सम्पद् भूतौ गुणोत्कर्षे" इति केशवः। लक्ष्म्या = राज्यश्रिया करणेन निमंत्रयाञ्चक्रे = आह्वयाञ्चकार गृहगमनाय आहूतवान्।

समासः—चित्राणि कूटानि यस्य सः, चित्रकूटस्तस्य वनमिति चित्रकूटवनं तत्र तिष्ठतीति चित्रकूटवनस्थस्तं तथोक्तम्। कथिता स्वर्गतिः येन स कथितस्वर्गतिः। न उच्छिष्टा अनुच्छिष्टा, अनुच्छिष्टा सम्पद् यस्याः सा तया अनुच्छिष्टसम्पदा।

हिन्दी—चित्रकूट नामक पर्वत के बन में रहने वाले राम से पिता के स्वर्गवास को कहकर भरत जी ने "अयोध्या" की उस राज्य लक्ष्मी के लिये आमंत्रित किया जिसको भरत जी ने छुआ भी नहीं था। अर्थात् भरतजी ने राम को कहा कि पिता जी मर गये हैं। अतः आप ही राज्य को सम्भालिये ॥ १५ ॥

स हि प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे।
परिवेत्तारमात्मान मेने स्वीकरणाद्भुवः ॥ १६ ॥

स हि भरतः प्रथमजेऽग्रजे तस्मिन् रामेऽकृतश्रीपरिग्रहे सति स्वयं भुवः स्वीकरणादात्मानं परिवेत्तारं मेने। 'परिवेत्तानुजोऽनूढे ज्येष्ठे दारपरिग्रहात्' इत्यमरः। भूपरिग्रहोऽपि दारपरिग्रहसम इति भावः॥

अन्वयः—सः हि प्रथमजे तस्मिन् अकृतश्रीपरिग्रहे सति "स्वयं" भुवः स्वीकरणात् आत्मानं परिवेत्तारं मेने।

व्याख्या—सः = भरतः हि = निश्चयेन प्रथमं = पूर्वं जातः प्रथमजस्तस्मिन् प्रथमजे = ज्येष्ठे तस्मिन् = रामे श्रियाः = लक्ष्म्याः परिग्रहः इति श्रीपरिग्रहः, अकृतः = न विहितः श्रीपरिग्रहः येन स तस्मिन् अकृतश्रीपरिग्रहे = अस्वीकृतराज्यलक्ष्मीके सति। स्वयम् = आत्मना भरतेनेत्यर्थः भुवः = पृथिव्याः स्वीकरणात् = राज्यस्वीकारात् आत्मानं = स्वं भरतं परिविन्दति = ज्येष्ठं परित्यज्य भार्यां लभते यः स परिवेत्ता तं परिवेत्तारं मेने = अमंस्त। "परिवेत्तानुजेऽनूढे ज्येष्ठे दारपरिग्रहात्" इत्यमरः। अत्र राज्यलक्ष्मीपरिग्रहोऽपि पत्नीपरिग्रहसमान इति भावः।

समासः—प्रथमं जातः प्रथमजस्तस्मिन् प्रथमजे। न कृतः इति अकृतः, अकृतः श्रियः परिग्रहो येन स तस्मिन् अकृतश्रीपरिग्रहे।

हिन्दी—भरतजी ने बड़े भाई रामचन्द्रजी के राज्यलक्ष्मी को अस्वीकार करने पर अपने आप पहले पृथिवी को स्वीकार करने से अपने को 'परिवेत्ता' ही माना।

विशेष—धर्मशास्त्र में ज्येष्ठ भाई के अविवाहित रहने पर, पहले विवाह करने वाले छोटे भाई को परिवेत्ता माना है। यह निषिद्ध एवं निन्दित है और स्त्रीपरिग्रह के समान ही पृथिवी का परिग्रह है। अतः बड़े भाई के रहते छोटा भाई राज्य को स्वीकार नहीं करता है करने से परिवेत्ता निन्दित होता है॥ १६ ॥

तमशक्यमपाक्रष्टुं निदेशात्स्वर्गिणः पितुः।
ययाचे पादुके पश्चात्कर्तुं राज्याधिदेवते ॥ १७ ॥

स्वर्गिणः पितुर्निदेशादपाक्रष्टुं निवर्तयितुमशक्यं तं रामं पश्चाद्राज्याधिदेवते स्वामिन्यौ कर्तुं पादुके ययाचे ॥

अन्वयः—स्वर्गिणः पितुः निदेशात् अपाक्रष्टुम् अशक्यं तम्, पश्चात् राज्याधिदेवते कर्तुं पादुके ययाचे ।

व्याख्या—स्वर्गः अस्यास्ति भोग्यत्वेन स स्वर्गी तस्य स्वर्गिणः = ब्रह्मलोकं गतस्य पितुः = जनकस्य निदेशात् = शासनात् आज्ञया इत्यर्थः "निदेशः शासनं च सः । शिष्टिश्चाज्ञा च" इत्यमरः । अपाक्रष्टुं = निवर्तयितुम् अशक्यं तं = रामं = ज्येष्ठभ्रातरं पश्चात् = तदनु राज्यस्य = अयोध्याराज्यस्य अधिदेवते = प्रधानस्वामिन्यौ कर्तुं = विधातुं पादुके = उपानहौ ययाचे = प्रार्थयामास । "अथ पादुका । पादूरुपानत्स्त्री" इत्यमरः ।

समासः—न शक्यः अशक्यस्तम् अशक्यम् । राज्यस्य अधिदेवते राज्याधिदेवते ते ।

हिन्दी—अपने स्वर्गीय पिता की आज्ञा से जरा भी न हटने वाले (टस से मस न हुये) राम से तब भरतजी ने अयोध्या के राज्य की प्रधानदेवता बनाने के लिये खड़ाऊँ मांगी। अर्थात् आप की चरणपादुका को राजगद्दी पर रखकर मैं राज्य का काम चलाऊँगा। अतः पादुका दे दीजिये । ऐसा भरतजी ने राम से कहा ॥ १७ ॥

स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा भ्रात्रा नैवाविशत्पुरीम् ।
नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक् ॥ १८ ॥

स भरतो भ्रात्रा रामेण तथेत्युक्त्वा विसृष्टः सन् पुरीमयोध्यां नाविशदेव । किंतु नन्दिग्रामगतः संस्तस्य रामस्य राज्यं न्यासमिव निक्षेपमिवाभुनगपालयत् । न तूपभुक्तवानित्यर्थः । अन्यथा 'भुजोऽनवने' इत्यात्मनेपदप्रसङ्गात् भुजेर्लङ् ॥

अन्वयः—सः भ्राता तथा इति उक्त्वा विसृष्टः सन्, पुरीं न एव अविशत् । "किन्तु" नन्दिग्रामगतः सन् तस्य राज्यं न्यासम् इव अभुनक् ।

व्याख्या—सः भरतः भ्राजते इति भ्राता तेन भ्रात्रा = रामेण तथा = एवमस्तु इति = एवम् उक्त्वा = कथयित्वा विसृष्टः = परावर्तितः सन् । पुरीम् = अयोध्यानगरीं नाविशत् = नैव प्रविष्टः किन्तु नन्दनं नन्दिः चासौ ग्रामः इति नन्दिग्रामस्तत्र गतः = प्राप्तः सन्, तस्य = ज्येष्ठभ्रातुः न्यासं = निक्षेपम् इव = यथा अभुनक् = रक्षितवान् न तु स्वयमुपभुक्तवान् । भ्रातुः निक्षेपत्वात् तस्य रक्षणमेव वरं न तूपभोग इति भावः ।

समासः—नन्दिश्चासौ ग्रामः नन्दिग्रामः । नन्दिग्रामे गतः नन्दिग्रामगतः ।

हिन्दी—अच्छा ऐसा ही सही (खड़ाऊँ देकर) यह कहकर बड़े भाई श्रीराम से लौटा दिये जाने पर भरतजी, अयोध्या नगरी में नहीं ही गये । किन्तु नन्दिग्राम में रहकर भाई के राज्य की उसी प्रकार रक्षा की, जैसे कि धरोहर की रक्षा की जाती है ।

विशेष—महाकवि ने भुजधातु से परस्मैपद किया है अतः पालन करना न कि भोग करना, भरतजी का धर्म दिखाया है । यदि राज्य भोग करना होता तो आत्मनेपद का प्रयोग होता ॥ १८ ॥

दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः ।
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत् ॥ १९ ॥

ज्येष्ठे दृढभक्तौ राज्यतृष्णापराङ्मुखो भरत इति पूर्वोक्तानुष्ठानेन मातुः पापस्य प्रायश्चित्तं तदपनोदकं कर्माकरोदिव इत्युत्प्रेक्षा । दृढभक्तिरित्यत्र दृढशब्दस्य 'स्त्रियाः पुंवत्'—इत्यादिना पुंवद्भावो दुर्घटः । 'अप्रियादिषु' इति निषेधात् । भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठात् । अतो दृढं भक्तिरस्येति नपुंसकपूर्वपदो बहुव्रीहिरिति गणव्याख्याने दृढभक्तिरित्येवमादिषु पूर्वपदस्य नपुंसकस्य विवक्षितत्वात्सिद्धमिति समाधेयम् । वृत्तिकारश्च दीर्घनिवृत्तिमात्रपरो दृढभक्तिशब्दो लिङ्गविशेषस्यानुपकारकत्वात् स्त्रीत्वमविवक्षितमेव, तस्मादस्त्रीलिङ्गत्वाद्दृढभक्तिशब्दस्यायं प्रयोग इत्यभिप्रायः। न्यासकारोऽप्येवम् । भोजराजस्तु—कर्मसाधनस्यैव भक्तिशब्दस्य प्रियादिपाठाद्भवानीभक्तिरित्यादौ कर्मसाधनत्वात् पुंवद्भावप्रतिषेधः, दृढभक्तिरित्यादौ भावसाधनत्वात् पुंवद्भावसिद्धिः पूर्वपदस्येत्याह ॥

अन्वयः—ज्येष्ठे दृढभक्तिः राज्यतृष्णापराङ्मुखः भरतः इति मातुः पापस्य प्रायश्चित्तम् अकरोत् इव ।

व्याख्या—अतिशयेन प्रशस्त इति ज्येष्ठस्तस्मिन् ज्येष्ठे = अग्रजे रामे दृढं = स्थिरा = प्रबला भक्तिः = प्रेम यस्य स दृढभक्तिः राज्यस्य तृष्णा = स्पृहा, इति राज्यतृष्णा । तस्याः पराङ्मुखः = विमुखः, इति राज्यतृष्णापराङ्मुखः भरतः इति = इत्थं पूर्वोक्तकारणेन मातुः = कैकेय्याः पापस्य = किल्बिषस्य, दुष्कृतस्येत्यर्थः प्रायस्य = पापस्य चित्तं = विशोधनं यस्मात् स तं 'प्रायः पापं समुद्दिष्टं चित्तं तस्य विशोधनमि'ति स्मरणात् प्रायश्चित्तम् = पापनिष्कृतिमित्यर्थः अकरोदिव = कृतवान् इवेत्युत्प्रेक्षायाम् ।

समासः—दृढं भक्तिर्यस्य स दृढभक्तिः। राज्यस्य तृष्णा राज्यतृष्णा, राज्यतृष्णायाः पराङ्मुख इति राज्यतृष्णापराङ्मुखः । प्रायस्य चित्तं यस्मात् स प्रायश्चित्तस्तं प्रायश्चित्तम् ।

हिन्दी—बड़े भाई में अतिशय भक्ति अनुराग वाले और इसीलिये राज्य करने की इच्छा को ठुकराने वाले भरत जी ने मानो अपनी माता के पाप का प्रायश्चित्त कर डाला हो ।

विशेष—व्याकरण के अनुसार भक्ति शब्द का प्रियादिगण में पाठ है । अतः पुंवद्भाव न होकर दृढाभक्ति प्राप्त है। किन्तु पदसंस्कार पक्ष में दृढ़ शब्द को सामान्यपरक रखकर नपुंसक लिंग मानकर दृढं भक्तिः यस्य समास हो जायगा । भक्ति शब्द के साथ अन्वय करने पर भी नपुंसकत्व रहेगा ॥ १९ ॥

रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्तयन् ।
चचार सानुजः शान्तो वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा ॥ २० ॥

सानुजः शान्तो रामोऽपि वैदेह्या सह वने वन्येन वनभवेन कन्दमूलादिना वर्तयन् वृत्तिं कुर्वञ्जीवन्वृद्धेक्ष्वाकूणां व्रतं वनवासात्मकं युवा यौवनस्थ एव चचार ॥

अन्वयः—सानुजः शान्तः रामः अपि वैदेह्या सह वने वन्येन वर्तयन्, वृद्धेक्ष्वाकुव्रतं युवा "एव" चचार।

व्याख्या—अनुजेन = कनिष्ठभ्रात्रा सहितः सानुजः = सलक्ष्मणः शान्तः = शमान्वितः रामः = दाशरथिः विदेहस्य अपत्यं स्त्री तया वैदेह्या = सीतया सह = साकम् वने = अरण्ये भवं वन्यं तेन वन्येन = वनोद्भवेन, कन्दमूलफलादिना वर्तयन् = वृत्तिं सम्पादयन्। इक्षुम् आकरोति इक्षुरिति शब्दम् अकति वा इक्ष्वाकुः। वृद्धाः = स्थविराश्च ते इक्ष्वाकवः = वैवस्वतमनुपुत्राः, सूर्यवंशोद्भवा इत्यर्थः। इति वृद्धेक्ष्वाकवस्तेषां व्रतं = तपोवनवासरूपं तत् वृद्धेक्ष्वाकुव्रतम्। युवा = तरुणः, तारुण्यस्थ एव चचार = आचरितवान्।

समासः—अनुजेन सहितः सानुजः। वृद्धाश्च ते इक्ष्वाकवः वृद्धेक्ष्वाकवः। वृद्धेक्ष्वाकूणां व्रतं तत् वृद्धेक्ष्वाकुव्रतम्।

हिन्दी—"और इधर" छोटे भाई लक्ष्मण तथा सीताजी के साथ प्रसन्न स्वभाव रामने भी, वन में उत्पन्न कन्द-मूल फल से जीवन निर्वाह करते हुए, युवावस्था (जवानी) में ही उस व्रत का पालन किया, जिस व्रत को सूर्यवंशी राजा वृद्धावस्था में करते थे॥ २०॥

प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः स वनस्पतिम्।
कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किंचिदिव श्रमात्॥ २१॥

स रामः कदाचित् प्रभावेण स्वमहिम्ना स्तम्भिता स्थिरीकृता छाया यस्य तं वनस्पतिमाश्रितः सन्। किंचिदीषच्छ्रमादिव सीताया अङ्के शिश्ये सुष्वाप॥

अन्वयः—सः कदाचित् प्रभावस्तम्भितच्छायं वनस्पतिम् आश्रितः सन् किंचित् श्रमात् इव सीतायाः अंके शिश्ये।

व्याख्या—सः = रामः कदाचित् = कस्मिंश्चित्समये प्रकृष्टो भावः प्रभावः प्रभावेण = स्वमहिम्ना स्तम्भिता = स्थिरीकृता छाया = अनातपो यस्य स तं प्रभावस्तम्भितच्छायं वनस्य पतिः वनस्पतिस्तं वनस्पतिम् = आम्रादिवृक्षम् आश्रितः = समुपविष्टः सन् किंचित् = ईषत् श्रमात् = आयासात्, परिश्रान्तेरित्यर्थः। इव = यथा सीतायाः = जानक्याः अंके = उत्संगे "उत्संगचिह्नयोरङ्कः" इत्यमरः। क्रोडे इत्यर्थः। शिश्ये = अशयिष्ट सुष्वाप इत्यर्थः।

समासः—प्रकृष्टो भावः प्रभावः। प्रभावेण स्तम्भिता छाया यस्य स तं प्रभावस्तम्भितच्छायम्। वनस्य पतिः वनस्पतिः, तम्।

हिन्दी—एक समय रामजी, अपने प्रभाव से स्थिर की गई छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठकर, मानों कुछ थकावट से सीता जी की गोदी में शिर रखकर सो गये॥ २१॥

ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या विददार स्तनौ द्विजः।
प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यमिवाचरन्॥ २२॥

ऐन्द्रिरिन्द्रस्य पुत्रो द्विजः पक्षी काकस्तस्याः सीतायाः स्तनौ। प्रियस्य रामस्योपभोगचिह्नेषु। तत्कृतनखक्षतेष्वित्यर्थः। पुरोभागिनो दोषैकदर्शिनः कर्म पौरोभाग्यम्। 'दोषैक-

दृक् पुरोभागी' इत्यमरः । दुःश्लिष्टदोषवातमाचरन् = कुर्वन्निव नखैर्विददार = विलिलेख । किलेत्यैतिह्ये ॥

अन्वयः—ऐन्द्रिः द्विजः तस्याः स्तनौ, प्रियोपभोगचिह्नेषु पौरोभाग्यम् इव आचरन् नखैः विददार ।

व्याख्या—इन्द्रस्य अपत्यम् ऐन्द्रिः = इन्द्रपुत्रः द्विर्जायते इति द्विजः = पक्षी, काकः तस्याः = वैदेह्याः स्तनौ = कुचौ प्रियस्य = रामचन्द्रस्य उपभोगः = निर्वेशः, नखक्षतरूप इत्यर्थः इति प्रियोपभोगस्तस्य चिह्नानि = क्षतानि तेषु प्रियोपभोगचिह्नेषु रामेण कृतक्षतेष्वित्यर्थः । पुरः = पूर्वं भजते इति पुरोभागी = दोषैकग्राहकः, तस्य कर्म पौरोभाग्यम् = दोषैकदर्शित्वम् इव = यथा आचरन् = कुर्वन् नखैः = करुहैः विददार = विलिलेख विदारितवानित्यर्थः । किल = इति ऐतिह्ये । "निर्वेशो भृतिभोगयोः" 'दोषैकदृक् पुरोभागी' इत्यमरः ।

समासः—प्रियस्य उपभोगः प्रियोपभोगः, प्रियोपभोगस्य चिह्नानि तेषु प्रियोपभोगचिह्नेषु । पुरोभागस्य कर्म पौरोभाग्यम्, तत् ।

हिन्दी—"इसी समय" इन्द्र का पुत्र जयन्त, काक पक्षी बनकर, सीता के स्तनों को, रामचन्द्र जी के भोगने से बने नखों के घावों में, दोष में ही दृष्टि (छिद्रान्वेषीपना) दिखाता हुआ-सा कुरेदने लगा । अर्थात् सीता के स्तनों पर काक चोंच क्या मारने लगा, मानो अपने को छिद्रान्वेषी 'दूसरों के दोष ढूंढ़ने वाला' प्रकट कर रहा है ॥ २२ ॥

तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं रामो रामावबोधितः ।
आत्मानं मुमुचे तस्मादेकनेत्रव्ययेन सः ॥ २३ ॥

रामया सीतयाऽवबोधितो रामस्तस्मिन् काक इषीकास्त्रं काशास्त्रम् । 'इषीका काशमुच्यते' इति हलायुधः । आस्थदस्यति स्म । 'असु क्षेपणे' इति धातोर्लुङ् । 'अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्' इत्यङ्प्रत्ययः । 'अस्यतेस्थुक्' इति थुगागमः । स काक एकनेत्रस्य व्ययेन दानेन तस्मादस्त्रादात्मानं मुमुचे मुक्तवान् । मुचेः कर्तरि लिट् । 'धेनुं मुमोच' (२।१) इतिवत्प्रयोगः ॥

अन्वयः—रामावबोधितः रामः तस्मिन् इषीकास्त्रम् आस्थत् । सः एकनेत्रव्ययेन तस्मात् आत्मानम् मुमुचे ।

व्याख्या—रामया = सीतया अवबोधितः = विज्ञापितः इति रामावबोधितः, सीतया उत्थापित इत्यर्थः । रामः = रामचन्द्रः तस्मिन् = काकरूपिणि जयन्ते, इषीकया = काशेन निर्मितमस्त्रं = बाणः इति तत् इषीकास्त्रं = काशबाणम् "इषीका काशमुच्यते" इति हलायुधः । इषीका काशतृणमिति हेमचन्द्रः । आस्थत् = प्राक्षिपत् । सः = काकः एकं च तन्नेत्रं = चक्षुरिति एकनेत्रम् । एकनेत्रस्य व्ययः = दानं, नाश इत्यर्थः । इति एकनेत्रव्ययस्तेन एकनेत्रव्ययेन = एकाक्षिप्रदानेन तस्मात् इषीकास्त्रात् आत्मानं = स्वं मुमुचे = मुक्तवान् ।

समासः—इषीकया निर्मितमस्त्रमिति तत् इषीकास्त्रम् । रामया अवबोधितः रामावबोधितः । एकञ्च तन्नेत्रमिति एकनेत्रम् , एकनेत्रस्य व्ययः एकनेत्रव्ययस्तेन एकनेत्रव्ययेन ।

हिन्दी—"तुरन्त" सीताजी ने राम को जगाया (नीन्द से उठाया) और राम ने काकरूपी इन्द्रपुत्र पर (काश) सरकण्डे का बाण छोड़ दिया। तब उस कौवे ने अपनी एक आँख देकर, उस बाण से अपने को छुड़ाया। अर्थात् रामने अपने बाण से कौवे की एक आँख फोड़ दी, तभी से काक एकाक्ष कहलाने लगा ॥ २३ ॥

रामस्त्वासन्नदेशत्वाद्भरतागमनं पुनः ।
आशङ्क्योत्सुकसारङ्गां चित्रकूटस्थलीं जहौ ॥ २४ ॥

रामस्त्वासन्नदेशत्वाद्धेतोः पुनर्भरतागमनमाशङ्क्योत्सुकसारङ्गामुत्कण्ठितहरिणां चित्रकूटस्थलीं जहौ तत्याज। आसन्नश्चासौ देशश्चेति विग्रहः ॥

अन्वयः—रामः तु आसन्नदेशत्वात् पुनः भरतागमनम् आशंक्य, उत्सुकसारंगां चित्रकूटस्थलीं जहौ।

व्याख्या—रामः = राघवः तु = च आसन्नः = समीपः चासौ देशः = स्थानमिति आसन्नदेशस्तस्य भावः आसन्नदेशत्वं तस्मात् आसन्नदेशत्वात्, अयोध्यायाः पार्श्वस्थत्वात् इत्यर्थः। पुनः = भूयः भरतस्य आगमनमिति भरतागमनम् आशंक्य = आलक्ष्य सारमंगं येषां ते सारंगाः। सारंगच्छन्तीति वा सारंगाः उत्सुकाः = उत्कण्ठिताः सारङ्गाः मृगाः यस्यां सा ताम् उत्सुकसारंगाम्। चित्राणि कूटानि यस्य स चित्रकूटस्तस्य स्थली = अकृत्रिमा भूमिः तां चित्रकूटस्थलीं जहौ = त्यक्तवान्।

समासः—आसन्नश्चासौ देशः आसन्नदेशस्तस्य भावः आसन्नदेशत्वं तस्मात् आसन्नदेशत्वात्। भरतस्य आगमनमिति भरतागमनम्, तत्। उत्सुकाः सारङ्गाः यस्यां सा ताम् उत्सुकसारंगाम्। चित्राणि कूटानि यस्य स तस्य स्थली, तां चित्रकूटस्थलीम्।

हिन्दी—अयोध्या के पास में ही होने के कारण भरतजी फिर यहाँ आ जायेंगें, ऐसी आशंका (डर) करके रामने उस रमणीय चित्रकूट नामक पर्वत की भूमि को छोड़ दिया, जिसके मृग रामजी के दर्शनों के लिये उत्कण्ठित (लालायित) रहते थे ॥ २४ ॥

प्रययावातिथेयेषु वसन्नृषिकुलेषु सः ।
दक्षिणां दिशमृक्षेषु वार्षिकेष्विव भास्करः ॥ २५ ॥

स रामः अतिथिषु साधून्यातिथेयानि। 'पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्' इति ढञ्प्रत्ययः। तेष्वृषिकुलेष्वृष्याश्रमेषु। 'कुलं कुल्ये गणे देहे गेहे जनपदेऽन्वये' इति हैमः। वर्षासु भवानि वार्षिकाणि। 'वर्षाभ्यष्ठक्' इति ठक्प्रत्ययः। तेष्वृक्षेषु नक्षत्रेषु राशिषु वा भास्कर इव वसन् दक्षिणां दिशं प्रययौ ॥

अन्वयः—सः आतिथेयेषु ऋषिकुलेषु वार्षिकेषु ऋक्षेषु भास्कर इव वसन् दक्षिणां दिशं प्रययौ।

व्याख्या—सः = रामः अतिथिषु = आगन्तुकेषु साधूनि आतिथेयानि तेषु आतिथेयेषु = आगन्तुकहितकरेष्वित्यर्थः। ऋषीणां = मुनीनां कुलानि = आश्रमास्तेषु ऋषिकुलेषु, वर्षासु भवानि वार्षिकाणि तेषु वार्षिकेषु = प्रावृट्कालिकेषु ऋक्षेषु = नक्षत्रेषु "ऋक्षस्तु स्यान्नक्षत्राच्छभल्लयोः" इति हैमः। ऋषति = गच्छतीति ऋक्षः। नक्षत्रे नपुंसकमिति। राशिषु व भास्करः = सूर्यः इव = यथा वसन् = तिष्ठन्नित्यर्थः दक्षिणाम् = अगस्त्यसेवितां दिशं = काष्ठां प्रययौ = जगाम।

समासः—ऋषीणां कुलानि तेषु ऋषिकुलेषु।

हिन्दी—अतिथियों का सत्कार करने वाले ऋषियों के आश्रमों में ठहरते हुए रामचन्द्रजी, उसी प्रकार दक्षिण दिशा की ओर चले गये जैसे वर्षा ऋतु के नक्षत्रों में ठहरता हुआ सूर्य दक्षिण में घूम जाता है। अर्थात् दक्षिणायन में हो जाता है॥ २६॥

बभौ तमनुगच्छन्ती विदेहाधिपतेः सुता।
प्रतिषिद्धापि कैकेय्या लक्ष्मीरिव गुणोन्मुखी॥ २६॥

तं राममनुगच्छन्ती विदेहाधिपतेः सुता सीता कैकेय्या प्रतिषिद्धा निवारितापि गुणोन्मुखी गुणोत्सुका लक्ष्मी राजलक्ष्मीरिव बभौ॥

अन्वयः—तम् अनुगच्छन्ती विदेहाधिपतेः सुता कैकेय्या प्रतिषिद्धा अपि गुणोन्मुखी लक्ष्मीः इव बभौ।

व्याख्या—तं = रामम् अनुगच्छन्ती = पश्चात् व्रजन्ती, यान्ती विगतः देहः = देहसंबन्धो येषां ते विदेहाः। विदेहानां = जनपदविशेषाणाम् अधिपतिः = राजा, इति विदेहाधिपतिस्तस्य विदेहाधिपतेः = जनकस्य सुता = पुत्री सीता कैकेय्या = भरतमात्रा प्रतिषिद्धा = विनिवारिता अपि गुणेषु = दयादाक्षिण्यशौर्यादिषु उन्मुखी = उत्कण्ठिता, इति गुणोन्मुखी = गुणैकपक्षपातिनीत्यर्थः लक्ष्मीः = राज्यलक्ष्मीः इव = यथा बभौ = शुशुभे।

समासः—विदेहानाम् अधिपतिः विदेहाधिपतिस्तस्य विदेहाधिपतेः। गुणेषु उन्मुखी गुणोन्मुखी।

हिन्दी—राम के पीछे-पीछे जाती हुई, महाराजा जनक की पुत्री सीता जी ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानो कैकेयी के रोकने पर भी राम के शौर्य दयादि गुणों से उत्कण्ठित हुई राज्यलक्ष्मी, पीछे-पीछे जा रही हो॥ २६॥

अनसूयातिसृष्टेन पुण्यगन्धेन काननम्।
सा चकाराङ्गरागेण पुष्पोच्चलितषट्पदम्॥ २७॥

सा सीताऽनसूययाऽत्रिभार्ययाऽतिसृष्टेन दत्तेन पुण्यगन्धेनाङ्गरागेण काननं वनं पुष्पेभ्य उच्चलिता निर्गताः षट्पदा यस्मिंस्तत्तथाभूतं चकार॥

अन्वयः—सा अनसूयातिसृष्टेन पुण्यगन्धेन अंगरागेण काननं पुष्पोच्चलितषट्पदं चकार।

व्याख्या—सा = सीता न असूया यत्र अनसूया = कर्दममुनिकन्या, अत्रिमुनिभार्या च। अनसूयया अतिसृष्टः = दत्तः, तेन अनसूयातिसृष्टेन, पुणे साधुः पुण्यः = मनोज्ञः गन्धः = सौरभं

यस्य स तेन पुण्यगन्धेन "पुण्यस्त्रिषु मनोज्ञे स्यात् सुकृतधर्मयोः" इति विश्वः। रज्यतेऽङ्गमलंक्रियतेऽनेनेति अंगरागः। अंगस्य = शरीरस्य रागः = विलेपनं वा अंगरागस्तेन अंगरागेण = सिन्दूरादिलेपनद्रव्येण काननं = वनम्, अत्रेराश्रममित्यर्थः। षट् पदानि येषां ते षट्पदाः। पुष्पेभ्यः = कुसुमेभ्यः उच्चलिताः = निर्गताः षट्पदाः = भ्रमराः यस्मिन् तत् पुष्पोच्चलितषट्पदम् चकार = कृतवती। आश्रमपुष्पाणि परित्यज्य अंगरागाकृष्टाः भ्रमराः जाताः इत्यर्थः।

समासः—अनसूयया अतिसृष्टस्तेन अनसूयातिसृष्टेन। पुण्यः गन्धः यस्य स तेन पुण्यगन्धेन। अंगस्य रागः अंगरागस्तेन अंगरागेण। पुष्पेभ्यः उच्चलिताः षट्पदाः यस्मिन् तत् पुष्पोच्चलितषट्पदम्।

हिन्दी—महासती अनसूया के दिये हुए तथा पवित्र मनोहर गन्ध वाले अंगराग से सीता जी ने उस वन को ऐसा कर दिया कि उस वन के फूलों से उड़कर भौरें सीता की ओर टूट पड़े। अर्थात् वह अंगराग इतना पवित्र और सुगन्धित था कि भौरें फूलों को छोड़कर उसी पर टूट पड़े। और वन के फूल भौरों से शून्य हो गये ॥ २७ ॥

सन्ध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः।
अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दोरिव ग्रहः ॥ २८ ॥

संध्याभ्रकपिशो विराधो नाम राक्षसः। ग्रहो राहुरिन्दोरिव। तस्य रामस्य मार्गमध्वानमावृत्यावरुध्यातिष्ठत् ॥

अन्वयः—सन्ध्याभ्रकपिशः विराधो नाम राक्षसः ग्रहः इन्दोरिव तस्य मार्गम् आवृत्य अतिष्ठत्।

व्याख्या—अपः = जलानि बिभ्रतीति, अभ्राणि। न भ्रश्यन्ति आपः येभ्यस्तानि अभ्राणि, इति वा। कपिः = वर्णविशेषोऽस्यास्तीति कपिशः = श्यावः, कृष्णपीतवर्ण इत्यर्थः। "श्यावः स्यात्कपिशः" इत्यमरः। सन्ध्यायां = सायंकाले यानि अभ्राणि = मेघास्तद्वत् कपिशः इति सन्ध्याभ्रकपिशः विराधो नाम = विराधनामा राक्षसः = रात्रिञ्चरः ग्रहः = राहुः इन्दोः = चन्द्रस्य इव = यथा तस्य रामस्य = रामचन्द्रस्य मार्गम् = पन्थानम् आवृत्य = अवरुध्य अतिष्ठत् = स्थितः।

समासः—सन्ध्यायाम् अभ्रमिति सन्ध्याभ्रम्, तद्वत् कपिशः इति सन्ध्याभ्रकपिशः।

हिन्दी—सायंकाल के बादलों के समान भूरे रंग वाला विराधनाम का राक्षस वैसे ही राम के मार्ग को रोक कर खड़ा हो गया, जैसे राहु चन्द्रमा के मार्ग को रोक लेता है अर्थात् चन्द्रग्रहण के समय ॥ २८ ॥

स जहार तयोर्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः।
नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे ॥ २९ ॥

लोकस्य शोषणः शोषकः स राक्षसस्तयो रामलक्ष्मणयोर्मध्ये मैथिलीम्। नभोनभस्ययोः श्रावणभाद्रपदयोरन्तरे मध्ये वृष्टिमवग्रहो वर्षप्रतिबन्ध इव जहार। 'वृष्टिर्वर्षं तद्विघातेऽवग्राहावग्रहौ समौ' इत्यमरः ॥

अन्वयः—लोकशोषणः सः तयोः मध्ये मैथिलीं नभोनभस्ययोः अन्तरे वृष्टिम् अवग्रहः इव जहार ।

व्याख्या—शोषयतीति शोषणः लोकस्य = संसारस्य शोषणः = शोषकः इति लोकशोषणः सः = विराधनामा राक्षसः तयोः = रामलक्ष्मणयोः मध्ये = अन्तरा मिथिलायां भवा मैथिली तां मैथिलीं = सीताम् विरहिणो नभ्यति, नभ्नाति, नभते वा नभाः । हिंसार्थकणभधातोः असुन्प्रत्यय औणादिकः । नभसि = अभ्रे साधुः नभस्यः । नभाः = श्रावणः नभस्यः = भाद्रपदः अनयोः द्वन्द्वः नभोनभस्यौ तयोः नभोनभस्ययोः अन्तरे = मध्ये वृष्टिम् = वर्षणम् अवग्रहः = वर्षाविघातकः इव = यथा जहार = अपहृतवान् । यथा श्रावणे भाद्रपदे वा मासे कश्चित् दुष्टग्रहः वृष्टिमपहरति तथैव विराधेन सीता अपहृता रामलक्ष्मणयोर्मध्यात् इति भावः ।

समासः—लोकस्य शोषणः लोकशोषणः । नभाश्च नभस्यश्चेति नभोनभस्यौ तयोः नभोनभस्ययोः ।

हिन्दी—संसार को दुःख देने वाले उस विराध राक्षस ने राम और लक्ष्मण के बीच से सीता जी को उसी प्रकार हर लिया जिस प्रकार श्रावण और भाद्रपद महीनों के बीच से कोई दुष्टग्रह वर्षा को ले बीतता है । अर्थात् अवग्राह और अवग्रह नाम के ये दोनों ग्रह श्रावण भाद्रपद के बीच में कभी कभी आकर वर्षा को रोक देते हैं ॥ २९ ॥

तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थौ पुरा दूषयति स्थलीम् ।
गन्धेनाशुचिना चेति वसुधायां निचख्नतुः ॥ ३० ॥

ककुत्स्थस्य गोत्रापत्ये पुमांसौ काकुत्स्थौ रामलक्ष्मणौ तं विराधं विनिष्पिष्य हत्वा । अशुचिनाऽपवित्रेण गन्धेन स्थलीमाश्रमभुवं पुरा दूषयति 'दूषयिष्यती'ति हेतोः । 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इति भविष्यदर्थे लट् । वसुधायां निचख्नतुर्भूमौ खनित्वा निक्षिप्तवन्तौ च ॥

अन्वयः—काकुत्स्थौ तं विनिष्पिष्य अशुचिना गन्धेन स्थलीं पुरा दूषयति इति वसुधायां निचख्नतुः ।

व्याख्या—कं सुखं कावयति = गृहस्थस्य औन्नत्यं मापयतीति ककुत् "ककुद्वत् ककुदं श्रेष्ठे वृषाङ्के राजलक्ष्मणि" इति विश्वः । ककुदि = वृषांगे (वृषरूपधरस्य देवेन्द्रस्यांगे, इत्यर्थः) तिष्ठतीति ककुत्स्थः । ककुत्स्थस्य = पुरञ्जयनाम्नः अपत्ये काकुत्स्थौ = रामलक्ष्मणौ तं = विराधं विनिष्पिष्य = निहत्य न शुचिः अशुचिस्तेन अशुचिना = अपवित्रेण गन्धेन = स्थलीम् = आश्रमभुवं पुरा दूषयति, दूषितमपवित्रं करिष्यति = हेतोः वसुधायां = भूमौ निचख्नतुः पृथिव्यां खनित्वा निक्षिप्तवन्तौ ।

समासः—न शुचिः अशुचिस्तेन अशुचिना । अत्र पुरायोगे भविष्यदर्थे लट्लकारः ।

हिन्दी—ककुत्स्थ उपाधि वाले पुरञ्जय नामक राजा के वंश में उत्पन्न राम लक्ष्मण ने विराध को मारकर इसलिये भूमि में गाड़ दिया, कि इसकी अपवित्र गन्ध से आश्रम की भूमि दूषित हो जायगी ॥ ३० ॥

पञ्चवट्यां ततो रामः शासनात्कुम्भजन्मनः ।
अनपोढस्थितिस्तस्थौ विन्ध्याद्रिः प्रकृताविव ॥ ३१ ॥

ततो रामः कुम्भजन्मनोऽगस्त्यस्य शासनात् । पञ्चानां वटानां समाहारः पञ्चवटी । 'तद्धितार्थ'—इति तत्पुरुषः । 'संख्यापूर्वो द्विगुः' इति द्विगुसंज्ञायाम् 'द्विगोः' इति ङीप् । 'द्विगुरेकवचनम्' इत्येकवचनम् । तस्यां पञ्चवट्याम् । विन्ध्याद्रिः प्रकृतौ वृद्धेः पूर्वावस्थायामिव । अनपोढस्थितिरनतिक्रान्तमर्यादस्तस्थौ ॥

अन्वयः—ततः रामः कुम्भजन्मनः शासनात् पञ्चवट्यां विन्ध्याद्रिः प्रकृतौ इव अनपोढस्थितिः तस्थौ ।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम् रामः = दाशरथिः कं = जलम् उम्भति = पूरयतीति कुम्भः । कुं = भुवं वा उम्भतीति कुम्भः । कुम्भात् = घटात् जन्म = उत्पत्तिर्यस्यासौ तस्य कुम्भजन्मनः = अगस्त्यस्य महर्षेः शासनात् = आदेशात् पञ्चानां = वटानां समाहारः पञ्चवटी तस्यां पञ्चवट्याम् विरुद्धं ध्यायति वि इध्यते वा विन्ध्यः विन्ध्यश्चासौ अद्रिश्चेति विन्ध्याद्रिः = विन्ध्याचलः प्रकृतौ = पूर्वावस्थायाम् इव = यथा न अपोढा अनपोढा = अपरित्यक्ता स्थितिः = मर्यादा येन सःअनपोढस्थितिः तस्थौ = स्थितः निवासं कृतवानित्यर्थः ।

समासः—पञ्चानां वटानां समाहारः पञ्चवटी तस्यां पञ्चवट्याम् । कुम्भात् जन्म यस्य स कुम्भजन्मा तस्य कुम्भजन्मनः । न अपोढा अनपोढा, स्थितिः यस्य सः अनपोढस्थितिः । विन्ध्यश्चासौ अद्रिः विन्ध्याद्रिः ।

हिन्दी—"चित्रकूट से चलकर" रामचन्द्रजी अगस्त्यमुनि की आज्ञा से पञ्चवटी में मर्यादापूर्वक उसी प्रकार रहने लगे, जैसे विन्ध्यपर्वत ऋषि की आज्ञा से अपनी पूर्वावस्था में रहता है । अर्थात् खड़ा न रहकर लेटा ही रहता है ।

विशेष—पाच बटों का समाहार में तद्धितार्थ तत्पुरुष समास है । संख्या पञ्चन् पूर्वक होने से द्विगु संज्ञा है । द्विगोः सूत्र से ङीप् तथा द्विगु समास में एक वचन ही रहता है । पंचवटी में अश्वत्थ (पीपल) पूर्व में, बिल्व उत्तर में थे, बड़ पश्चिम में, आंवला दक्षिण में और अशोक अग्निकोण में रहता है तथा मध्य में वेदी होती है । यह पंचवटी का स्वरूप है ॥३१॥

रावणावरजा तत्र राघवं मदनातुरा ।
अभिपेदे निदाघार्ता व्यालीव मलयद्रुमम् ॥ ३२ ॥

तत्र पञ्चवट्यां मदनातुरा रावणावरजा शूर्पणखा । 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वम् । राघवम् । निदाघार्ता घर्मतप्ता व्याकुला व्याली भुजंगी मलयद्रुमं चन्दनद्रुममिव । अभिपेदे प्राप ॥

अन्वयः—मदनातुरा रावणावरजा राघवम् निदाघार्ता व्याली मलयद्रुमम् इव अभिपेदे ।

व्याख्या—*तत्र = पञ्चवट्यां मदनेन = कामेन आतुरा = पीडिता, इति मदनातुरा* अवरस्मिन् काले जाता अवरजा, रावणस्य अवरजा = अनुजा, इति रावणावरजा = शूर्पणखा,

इत्यर्थः। राघवं = रामं निदाघेन = ग्रीष्मकालेन आर्ता = तप्ता, इति निदाघार्ता = उष्णेन व्याकुला विरुद्धमासमन्तात् अलति, या सा व्याली = भुजंगी "व्यालो दुष्टगजे सर्पे शठे श्वापदसिंहयोः" इति हैमः, चन्दनस्य = मलयजस्य द्रुमः = वृक्षस्तं चन्दनद्रुमम् इव = यथा अभिपेदे = प्राप।

समासः—रावणस्य अवरजा रावणावरजा। मदनेन आतुरा मदनातुरा। निदाघेन आर्ता निदाघार्ता। मलयस्य द्रुमस्तं मलयद्रुमम्।

हिन्दी—वहां पञ्चवटी में, काम से पीड़ित रावण की छोटी बहन शूर्पनखा उसी प्रकार राम के पास जा पहुँची, जैसे कि धूप से पीड़ित घबराई हुई नागिन (सर्पिणी) चन्दन के वृक्ष के पास पहुँचती है॥ ३२॥

सा सीतासंनिधावेव तं वव्रे कथितान्वया।
अत्यारूढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः॥ ३३॥

सा शूर्पणखा सीतासंनिधावेव कथितान्वया कथितस्ववंशा सती तं रामं वव्रे वृतवती। तथाहि अत्यारूढोऽतिप्रवृद्धो नारीणां मनोभवः कामः कालज्ञोऽवसरज्ञो न भवतीत्यकालज्ञो हि॥

अन्वयः—सा सीतासंनिधौ एव कथितान्वया सती तं वव्रे हि अत्यारूढः नारीणां मनोभवः अकालज्ञः। भवति इति शेषः।

व्याख्या—सा = शूर्पणखा संनिधानं संनिधिः। सीतायाः संनिधिः = सामीप्यमिति सीतासंनिधिस्तस्मिन् सीतासंनिधौ। एव कथितः = वर्णितः अन्वयः = स्ववंशः यया सा कथितान्वया सती तं = रामचन्द्रं वव्रे = अवृणोत् पतिरूपेण वृतवतीत्यर्थः। "तथाहि" हि = निश्चयेन अति आरूढः = अतीव प्रवृद्धः नारीणां = स्त्रीणां, मनसि भवतीति मनोभवः = कामः कालं = समयं जानातीति कालज्ञः न कालज्ञ इति अकालज्ञः। भवतीति शेषः। स्त्रीणां कामः अवसरज्ञाता न भवतीत्यर्थः।

समासः—सीतायाः संनिधिः सीतासंनिधिस्तस्मिन् सीतासंनिधौ। कथितः अन्वयो यया सा कथितान्वया। कालस्य ज्ञः कालज्ञः। न कालज्ञः अकालज्ञः।

हिन्दी—अपने कुल का परिचय देकर उस शूर्पणखा ने सीताजी के सामने ही रामचन्द्रजी को (पतिरूपसे) वरण कर लिया। अर्थात् शूर्पणखा ने कहा कि आप मेरे पति हो। ठीक ही है—क्योंकि—अत्यन्त बढ़ी हुई स्त्रियों को कामवासना समय को नहीं जानती। अर्थात् उचित अनुचित का विचार नहीं करती है॥ ३३॥

कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे।
इति रामो वृषस्यन्तीं वृषस्कन्धः शशास ताम्॥ ३४॥

वृषः पुमान्। 'वृषः स्याद्वासवे धर्मे सौरभेये च शुक्रले। पुंराशिभेदयोः शृङ्ग्यां मूषकश्रेष्ठयोरपि' इति विश्वः। वृषं पुरुषमात्मार्थमिच्छतीति वृषस्यन्ती कामुकी। 'वृषस्यन्ती तु

कामुकी' इत्यमरः। 'सुप आत्मनः क्यच्' इति क्यच्प्रत्ययः। 'अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि' इत्यसुगागमः ततो लटः शत्रादेशः। 'उगितश्च' इति ङीप्। श्लोकार्थस्तु—वृषस्कन्धो रामो वृषस्यन्तीं तां राक्षसीम् 'हे बाले, अहं कलत्रवान्, मे कनीयांसं कनिष्ठं भजस्व' इति शशासाज्ञापितवान्॥

अन्वयः—वृषस्कन्धः रामः वृषस्यन्तीं तां हे बाले! अहं कलत्रवान्, मे कनीयांसं भजस्व इति शशास।

व्याख्या—वृषस्य = वृषभस्य स्कन्धः इव स्कन्धः = अंसः यस्य सः वृषस्कन्धः "अंसः स्कन्धे विभागे स्यात्" इति हैमः। सः = रामः वृषं = पुरुषमात्मनः इच्छतीति वृषस्यन्ती 'वृषो धर्मे बलीवर्दे शृंग्यां पुंराशिभेदयोः। श्रेष्ठे' मेदिनी। तां वृषस्यन्तीं = कामुकीं तां = शूर्पणखां हे बाले = हे बालु! "अथ बाला स्याद्बालः" इत्यमरः। अहं = रामः कलत्रं = भार्या अस्ति अस्य स कलत्रवान् = सपत्नीकोऽस्मीत्यर्थः। मे = मम अतिशयितो युवा अल्पो वा कनीयान् तं कनीयांसं = कनिष्ठभ्रातरं भजस्व = सेवस्व, प्रार्थय इत्यर्थः इति = एवं शशास = आज्ञापयामास।

समासः—वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य स वृषस्कन्धः।

हिन्दी—साँड के समान ऊँचे कन्धों वाले राम ने, कामातुर (पति चाहने वाली) उस शूर्पणखा से कहा कि हे कुमारी! मैं तो पत्नी वाला हूँ। "अतः" तू मेरे छोटे भाई से जाकर प्रार्थना कर। अर्थात् मेरा विवाह हो चुका है। भाई कुंवारा है। उसके पास जाओ॥ ३४॥

ज्येष्ठाभिगमनात्पूर्वं तेनाप्यनभिनन्दिता।
साभूद्रामाश्रया भूयो नदीवोभयकूलभाक्॥ ३५॥

पूर्वं ज्येष्ठाभिगमनात्तेन लक्ष्मणेनाप्यनभिनन्दिता नाङ्गीकृता भूयो रामाश्रया सा राक्षसी उभे कूले भजतीत्युभयकूलभाक् नदीवाभूत्। सा हि यातायाताभ्यां पर्यायेण कूलद्वयगामिनी नदीसदृश्यभूदित्यर्थः॥

अन्वयः—पूर्वं ज्येष्ठाभिगमनात् तेन अपि अनभिनन्दिता भूयः रामाश्रया सा उभयकुलभाक् नदी इव अभूत्।

व्याख्या—पूर्वं = प्रथमं ज्येष्ठे = श्रेष्ठे भ्रातरि अभिगमनं = विवाहार्थं प्रार्थना इति ज्येष्ठाभिगमनम् तस्मात् ज्येष्ठाभिगमनात् तेन लक्ष्मणेन अपि न अभिनन्दिता अनभिनन्दिता = अस्वीकृता भूयः = पुनः रामः आश्रयः = पतित्वेनावलम्बः यस्याः सा रामाश्रया सा = राक्षसी उभे = द्वे कूले = तटे भजति = सेवते या सा उभयकूलभाक् नदी = सरित् इव = यथा अभूत् = जाता। सा राक्षसी गमनागमनाभ्यां पर्यायेण तीरद्वयगामिनी नदीसदृशी जाता, इत्यर्थः।

समासः—ज्येष्ठे अभिगमनमिति ज्येष्ठाभिगमनं तस्मात् ज्येष्ठाभिगमनात्। न अभिनन्दिता, अनभिनन्दिता। रामः आश्रयो यस्याः सा रामाश्रया। उभे कूले भजतीति उभयकूलभाक्।

हिन्दी—पहले बड़े भाई के पास (विवाह की इच्छा से) जाने से लक्ष्मण ने भी उसे अस्वीकार कर दिया। तब वह फिर राम जी के पास गई। "इस प्रकार" राम और लक्ष्मण के पास आते जाते उसकी दशा, बारी-बारी से दोनों किनारों से टकराकर बहने वाली नदी के समान हो गई थी। अर्थात् कामान्धा वह मोह में पड़कर दोनों के पास इधर से उधर भटक रही थी ॥ ३५ ॥

संरम्भं मैथिलीहासः क्षणसौम्यां निनाय ताम् ।
निवातस्तिमितां वेलां चन्द्रोदय इवोदधेः ॥ ३६ ॥

मैथिलीहासः क्षणं सौम्यां सौम्याकारां तां राक्षसीम्। निवातेन स्तिमितां निश्चलामुदधेर्वेलामम्बुविकृतिम्। अम्बुपूरमित्यर्थः। 'अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला' इत्यमरः। चन्द्रोदय इव। संरम्भं संक्षोभं निनाय ॥

अन्वयः—मैथिलीहासः क्षणसौम्यां तां, निवातस्तिमिताम् उदधेः वेलां चन्द्रोदयः इव संरम्भं निनाय।

व्याख्या—मैथिल्याः = जानक्याः हासः = हास्यमिति मैथिलीहासः, क्षणं = किंचित्कालं सौम्या = सुन्दराकृतिरिति क्षणसौम्या तां क्षणसौम्यां, न तु सर्वदा स्वभावसुन्दरीमित्यर्थः तां = शूर्पणखाम् निवातेन = गतानिलेन स्तिमिता = निश्चला, तां निवातस्तिमिताम् उदधेः = सागरस्य वेलाम् = तटम् जलविकृतिमित्यर्थः "अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला" इत्यमरः। "निवातो गतानिले" इति चामरः। चन्द्रस्य उदयः चन्द्रोदयः इव = यथा संरम्भं = विक्षोभं प्रचण्डतामित्यर्थः निनाय = अनयत् = नीतवान्।

समासः—मैथिल्याः हासः मैथिलीहासः। क्षणं सौम्या क्षणसौम्या तां क्षणसौम्याम्। निगतः वातो यस्मिन् स निवातः। निवातेन स्तिमिता निवातस्तिमिता तां निवातस्तिमिताम्। चन्द्रस्य उदयः चन्द्रोदयः।

हिन्दी—जैसे वायु के न रहने से शान्त स्थिर समुद्र का तट, चन्द्रमा के निकलने पर उमड़ पड़ता है, उग्र रूप धारण कर लेता है, वैसे ही मिथिलेश पुत्री सीता के हास्य ने, क्षणभर के लिये सुन्दर आकृति वाली, उस घोर राक्षसी शूर्पणखा को क्रोधित कर दिया। अर्थात् सीता को हँसती हुई देखकर बिगड़ पड़ी ॥ ३६ ॥

फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम् ।
मृग्याः परिभवो व्याघ्र्यामित्यवेहि त्वया कृतम् ॥ ३७ ॥

श्लोकद्वयेनान्वयः। अस्योपहासस्य फलं सद्यः संप्रत्येव प्राप्स्यसि। मां पश्य। त्वया कर्त्र्या कृतमुपहासरूपं करणं व्याघ्र्यां विषये मृग्याः कर्त्र्याः परिभव इत्यवेहि ॥

अन्वयः—अस्य उपहासस्य फलं सद्यः प्राप्स्यसि, मां पश्य, त्वयाकृतं व्याघ्र्यां मृग्याः परिभवः इति अवेहि।

व्याख्या—अस्य = त्वत्कृतस्य उपहासस्य = परिहासस्य फलं = परिणामं सद्यः = सपदि प्राप्स्यसि = अवाप्स्यसि । मां = राक्षसीं पश्य = अवलोकय, त्वया = सीतया कर्त्या कृतम् = उपहासकरणं विशेषेण आसमन्तात् जिघ्रतीति व्याघ्री तस्यां व्याघ्र्यां = शार्दूल्यां विषये मृग्याः = हरिण्याः कर्त्र्याः परिभवः = अनादरः इति = एवं त्वमवेहि = विद्धि । मृगीरूपया त्वया व्याघ्रीरूपायाः मम परिभवः कृतोऽस्य फलं नचिरादेव द्रक्ष्यसीत्यर्थः ।

हिन्दी—"बिगड़कर शूर्पणखा बोली" इस हंसी का फल शीघ्र ही पाएगी । अर्थात् भोगेगी । मुझे देख ! तेरे द्वारा किया गया यह उपहास वैसा ही जान रख, जैसा कोई हरिणी बाघिन का अपमान करे । अर्थात् तूने मुझ बाघिन का अपमान किया है । इसका मजा चखा दूँगी ॥ ३७ ॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं भर्तुरङ्के निविशतीं भयात् ।
रूपं शूर्पणखा नाम्नः सदृशं प्रत्यपद्यत ॥ ३८ ॥

भयाद्भर्तुरङ्के निविशतीमालिङ्गन्तीं मैथिलीमित्युक्त्वा शूर्पणखा नाम्नः सदृशम् । शूर्पाकारनखयुक्तमित्यर्थः । रूपमाकारं प्रत्यपद्यत स्वीचकार । अदर्शयदित्यर्थः ॥

अन्वयः—भयात् भर्तुः अंके निविशतीं मैथिलीम् , इति उक्त्वा शूर्पणखा नाम्नः सदृशं रूपं प्रत्यपद्यत ।

व्याख्या—बिभेत्यस्मादिति भयं तस्मात् भयात् = भीतेः = साध्वसादित्यर्थः । भर्तुः = पत्युः = रामचन्द्रस्य अंके उत्सङ्गे क्रोडे इत्यर्थः । निविशतीम् = प्रविशतीम् , आलिंगन्तीमित्यर्थः । मैथिलीं = सीताम् इति = पूर्वश्लोकोक्तम् उक्त्वा = कथयित्वा शूर्प्यतेऽनेनेति शूर्पः, शूर्पयति धान्यादीनि, इति वा शूर्पः । शूर्पाः प्रस्फोटनानीव नखाः = कररुहाः यस्याः सा शूर्पणखा = रावणभगिनी "प्रस्फोटनं शूर्पमस्त्रियामि"त्यमरः । संज्ञायां णत्वमिति । नाम्नः = अभिधानस्य सदृशम् = अनुरूपं रूपम् = आकारम् सूर्पाकारवत् घोरामाकृतिमित्यर्थः प्रत्यपद्यत = प्राप, स्वीचकार । स्वकीयं राक्षसीरूप मदर्शयदित्यर्थः ।

समास—शूर्पा इव नखाः यस्याः सा शूर्पणखा । "पूर्वपदात्संज्ञायामग" इति णत्वम् ।

हिन्दी—डर के मारे अपने पति राम की गोदी में छिपती हुई सीता को (हंसी का फल देख) कहकर शूर्पणखा ने छाज के समान नख वाला, अपने नाम के समान भयंकर रूप दिखाया । अर्थात् बनावटी रूप छोड़कर अपने असली राक्षसी रूप में आ गई ॥ ३८ ॥

लक्ष्मणः प्रथमं श्रुत्वा कोकिलामञ्जुवादिनीम् ।
शिवाघोरस्वनां पश्चाद्बुबुधे विकृतेति ताम् ॥ ३९ ॥

लक्ष्मणः प्रथमं कोकिलावन्मञ्जुवादिनीं पश्चाच्छिवावद्घोरस्वनां तां शूर्पणखां श्रुत्वा । तस्याः स्वनं श्रुत्वेत्यर्थः । सुस्वनः शङ्खः श्रूयत इतिवत्प्रयोगः । विकृता मायाविनीति बुबुधे बुद्धवान् । कर्तरि लिट् ॥

अन्वयः—लक्ष्मणः प्रथमं कोकिलामञ्जुवादिनीं, पश्चात् शिवाघोरस्वनां तां श्रुत्वा विकृता इति बुबुधे ।

व्याख्या—लक्ष्मणः प्रथमं = प्राक् कोकते इति कोकिलः । मञ्ज्यते मञ्जुः । मञ्जु मनोज्ञं वक्तुं शीलमस्याः सा मञ्जुवादिनी । कोकिला = वनप्रिया इव मञ्जुवादिनीं तां कोकिलामञ्जुवादिनीं, पश्चात् = अनन्तरम् शिवः शिवा वा देवता यस्याः सा शिवा = शृगाली । शिवावत् = शृगालीवत् घोरः = भयंकरः स्वनः = शब्दः यस्याः सा तां शिवाघोरस्वनां तां = शूर्पणखां श्रुत्वा = आकर्ण्य शूर्पणखायाः शब्दं श्रुत्वेत्यर्थः । विकृता = बीभत्सा, मायाविनीत्यर्थः इति बुबुधे = ज्ञातवान् ।

समासः—कोकिलावत् मञ्जुवादिनी, तां कोकिलामञ्जुवादिनीम् । शिवावत् घोरः स्वनः यस्याः सा शिवाघोरस्वना तां शिवाघोरस्वनाम् ।

हिन्दी—कोयल के समान मधुर बोलने वाली और फिर सियारिन की तरह भयंकर कठोर बोलने वाली उस शूर्पणखा को सुनकर (अर्थात् उसका स्वर सुनकर) लक्ष्मण ने यह मायाविनी राक्षसी है । यह जान लिया ॥ ३९ ॥

पर्णशालामथ क्षिप्रं विकृष्टासिः प्रविश्य स ।
वैरूप्यपौनरुक्त्येन भीषणां तामयोजयत् ॥ ४० ॥

अथ स लक्ष्मणो विकृष्टासिः कोशोद्धृतखड्गः सन्क्षिप्रं पर्णशालां प्रविश्य । भीषयतीति भीषणाम् । नन्द्यादित्वाल्ल्युट् कर्तरि । तां रक्षसीं वैरूप्यस्य पौनरुक्त्यं द्वैगुण्यं लक्षणया । तेनायोजयद्योजितवान् । स्वभावत एव विकृतां तां कर्णादिच्छेदेन पुनरतिविकृतामकरोदित्यर्थः ॥

अन्वयः—अथ स विकृष्टासिः सन् क्षिप्रं पर्णशालां प्रविश्य, भीषणां तां वैरूप्यपौनरुक्त्येन अयोजयत् ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् सः = लक्ष्मणः विकृष्टा = कोशान्निष्कासिता असिः = खड्गः येन स विकृष्टासिः सन् क्षिपति = प्रेरयतीति क्षिप्रं = शीघ्रम् पर्णानां = पत्राणां शाला = कुटी पर्णैः = निर्मिता शाला पर्णशाला तां पर्णशालाम् शाकपार्थिवादित्वात् समासः, उटजं प्रविश्य = गत्वा "पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । भीषयतीति भीषणा तां भीषणाम् = घोराकृतिम् तां राक्षसीम् विरूपस्य भावः वैरूप्यम् । पुनरुक्तेः भावः पौनरुक्त्यम् वैरूप्यस्य = विरूपतायाः पौनरुक्त्यम् = द्विगुणता, इति वैरूप्यपौनरुक्त्यं तेन वैरूप्यपौनरुक्त्येन अयोजयत् = योजितवान् । कर्णनासिकाच्छेदेन भूयोऽतिविकृतामकरोदित्यर्थः ।

समासः—पर्णैः निर्मिता शाला पर्णशाला तां पर्णशालाम् । विकृष्टा असिर्येन स विकृष्टासिः । वैरूप्यस्य पौनरुक्त्यमिति वैरूप्यपौनरुक्त्यं तेन वैरूप्यपौनरुक्त्येन ।

हिन्दी—इसके बाद लक्ष्मणजी ने तलवार निकालकर और तुरन्त "राम की" पर्णकुटी में घुसकर डरावनी उस राक्षसी को कुरूपपने को द्विगुणता से युक्त कर दी । अर्थात् पहले से ही भयंकर शूर्पणखा के नाक कान काटकर दूनी कुरूपा बना दी ॥ ४० ॥

सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया ।
अङ्कुशाकारयाङ्गुल्या तावतर्जयदम्बरे ॥ ४१ ॥

सा वक्रनखं धारयतीति वक्रनखधारिणी। तया वेणुवत्कर्कशपर्वया। अत एवाङ्कुशस्याकार इवाकारो यस्याः साः तया अङ्गुल्या। तौ राघवावम्बरे व्योम्नि स्थिता। 'अम्बरं व्योम्नि वाससि' इत्यमरः। अतर्जयदभर्त्सयत्। 'तर्ज भर्त्सने' इति धातोश्चौरादिकादनुदात्तेत्त्वादात्मनेपदेन भाव्यम्। तथापि चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकादनुदात्तेत्त्वनिमित्तस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वात्परस्मैपदमूह्यमित्युक्तमाख्यातचन्द्रिकायाम्–'तर्जयते भर्त्सयते तर्जयतीत्यपि च दृश्यते कविषु' इति॥

अन्वयः—सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया अंकुशाकारया अंगुल्या तौ अम्बरे स्थिता सती अतर्जयत्।

व्याख्या—सा = राक्षसी वक्रान् = कुटिलान् नखान् = कररुहान् धारयतीति वक्रनखधारिणी तया वक्रनखधारिण्या वेणुवत् = वंशवत् कर्कशानि = कठोराणि, पर्वाणि = ग्रन्थयः यस्याः सा वेणुकर्कशपर्वा तया वेणुकर्कशपर्वया अत एव अंकुशस्य = सृणेः आकारः इव आकारो यस्याः सा अंकुशाकारा तया अंकुशारया "अंकुशोऽस्त्री सृणिः स्त्रियाम्" इत्यमरः। एवं भूतया अंगुल्या = करशाखया तौ = रामलक्ष्मणौ अम्बरे = आकाशे स्थिता सती अतर्जयत् = अभर्त्सयत् तर्जितवतीत्यर्थः।

समासः—वक्राश्च ते नखाः वक्रनखाः वक्रनखानां धारिणी तया वक्रनखधारिण्या। वेणुवत् कर्कशानि पर्वाणि यस्याः सा तया वेणुकर्कशपर्वया। अंकुशस्य आकार इव आकारः यस्याः सा तया अंकुशाकारया। स च स चेति तौ, तौ इत्येकशेषः।

हिन्दी—"नाक, कान काटनेपर" वह शूर्पणखा उड़कर आकाश में खड़ी होकर अपनी उस अंगुली से राम लक्ष्मण को धमकाने लगी, जिस अंगुली के नख टेढ़े-मेढ़े थे, और बांस की तरह कठोर रूखे पोर (जोड़) थे, तथा जो अंकुश के आकार वाली टेढ़ी मेढ़ी थी ॥ ४१ ॥

प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम्।
रामोपक्रममाचख्यौ रक्षःपरिभवं नवम्॥ ४२ ॥

साऽऽशु जनस्थानं प्राप्य खरादिभ्यो राक्षसेभ्यस्तथाविधं स्वाङ्गच्छेदात्मकम्। उपक्रम्यत इत्युपक्रमः कर्मणि घञ्प्रत्ययः। रामस्य कर्तुरुपक्रमः। रामोपक्रमम्। रामेणादावुपक्रान्तमित्यर्थः। 'उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्' इति क्लीबत्वम्। तन्नवं रक्षसां कर्मभूतानां परिभवमाचख्यौ च॥

अन्वयः—सा आशु जनस्थानं प्राप्य खरादिभ्यः तथाविधं रामोपक्रमं नवं रक्षःपरिभवम् आचख्यौ च।

व्याख्या—सा = राक्षसी आशु = शीघ्रम् "आशुस्तु व्रीहिशीघ्रयोः" इति हैमचन्द्रः। जनस्य स्थानं = भूभागः इति जनस्थानं = दण्डकारण्यम् प्राप्य = गत्वा खं = मुखं, बिलमतिशयेनास्यास्तीति खरः = राक्षसविशेषः रावणभ्राता वैमात्रः। सः आदिः येषां ते खरादयस्तेभ्यः खरादिभ्यः = खरप्रभृतिराक्षसेभ्यः तथा विधा = प्रकारो यस्य स तं तथाविधं = स्वकीयकर्णनासिकाच्छेदरूपम् उप = प्रथमं क्रमणम् उपक्रमः। रामस्य कर्तुः उपक्रमः = आरम्भः इति

रामोपक्रमस्तं रामोपक्रमं=रामकर्तृकप्रारम्भमित्यर्थः । नवं=नूतनं रक्षसां=राक्षसानां परिभवः=अनादरः, तिरस्कारस्तं रक्षःपरिभवम् आचख्यौ=कथयामास, सर्वं कथितवतीत्यर्थः।

समासः—जनस्य स्थानमिति तत् जनस्थानम्। खरः आदिः येषां ते खरादयः तेभ्यः खरादिभ्यः। तथा विधा यस्य स तं तथाविधम्। रामस्य उपक्रमस्तं रामोपक्रमम्। रक्षसां परिभवस्तं रक्षःपरिभवम्।

हिन्दी—उस राक्षसी ने जनस्थान (दण्डकारण्य) में जा कर खर आदि राक्षसों से, उस प्रकार का अपना नाक-कान काटना, सब कह दिया, और "यह भी" कहा कि राम के द्वारा, किया गया यह राक्षसों का पहला तिरस्कार है ॥ ४२ ॥

मुखावयवलूनां तां नैर्ऋता यत्पुरो दधुः ।
रामाभियायिनां तेषां तदेवाभूदमङ्गलम् ॥ ४३ ॥

नैर्ऋता राक्षसाः। 'नैर्ऋतो यातुरक्षसी' इत्यमरः। मुखावयवेषु कर्णादिषु लूनां छिन्नां तां पुरो दधुरग्रे चक्रुरिति यत्तदेव रामाभियायिनां राममभिद्रवतां तेषाममङ्गलमभूत् ॥

अन्वयः—नैर्ऋताः मुखावयवलूनां तां पुरः दधुः इति यत्, तद् एव रामाभियायिनां तेषाम् अमंगलम् अभूत्।

व्याख्या—नियता ऋतिः=घृणा यस्याः सा निर्ऋतिः=अलक्ष्मीः। निर्ऋतेः अपत्यानि नैऋताः=राक्षसाः "नैर्ऋतो यातुरक्षसी" इत्यमरः। मुखस्य अवयवा मुखावयवास्तेषु मुखावयवेषु=कर्णादिषु लूना=छिन्ना, इति मुखावयवलूना तां मुखावयवलूनां तां=शूर्पणखां पुरः=अग्रे दधुः=चक्रुः, इति यत्=तत् पुरःकरणम्, एव=निश्चये रामं=राघवम् अभियान्ति=सम्मुखं द्रवन्तीति रामाभियायिनस्तेषां रामाभियायिनां=रामं योद्धुमभिद्रवतां तेषां=राक्षसानाम् अमंगलम्=अशुभम् अभूत्=जातम्। अंगभंगस्य पुरः सरणं दर्शनं वा अशुभसूचकं भवतीति सर्वप्रसिद्धमेव।

समासः—मुखस्य अवयवा मुखावयवाः, तेषु लूना इति मुखावयवलूना तां मुखावयवलूनाम्। रामस्य अभियायिनः इति रामाभियायिनस्तेषां रामाभियायिनाम्। न मंगलमिति अमंगलम्।

हिन्दी—राक्षसों ने नाक-कान कटी उस शूर्पणखा को जो अपने आगे-आगे किया, यही (नकटी बूची को आगे करना ही) राम के ऊपर चढ़ाई करने वाले, राक्षसों का अपशकुन हो गया। किसी अंगभंग व्यक्ति को किसी कार्य में आगे करना या उसका दर्शन होना बहुत अमंगल माना गया है ॥ ४३ ॥

उदायुधानापततस्तान्दृप्तान्प्रेक्ष्य राघवः ।
निदधे विजयाशंसां चापे सीतां च लक्ष्मणे ॥ ४४ ॥

उदायुधानुद्यतायुधानापतत आगच्छतो दृप्तांस्तान्खरादीन्प्रेक्ष्य राघवश्चापे विजयस्याशंसामाशां लक्ष्मणे सीतां च निदधे। सीतारक्षणे लक्ष्मणं नियुज्य स्वयं युद्धाय संनद्ध इति भावः ॥

अन्वयः—उदायुधान् आपततः दृप्तान् तान् प्रेक्ष्य, राघवः चापे विजयाशंसां लक्ष्मणे सीतां च निदधे।

व्याख्या—उद्=उद्यतं, गृहीतमित्यर्थः आयुधं=शस्त्रं यैस्ते, तान् उदायुधान्, आयुध्यन्तेऽनेनेति आयुधम्। आपतन्तीति आपतन्तस्तान् आपततः=आगच्छतः दृप्तान्=गर्वितान् तान्=खरादीन् राक्षसान् प्रेक्ष्य=अवलोक्य राघवः रामः चपस्य=वंशविशेषस्य विकारश्चापं तस्मिन् चापे=धनुषि विजयस्य=जयस्य आशंसा=आशा तां विजयाशंसां निदधे लक्ष्मणे अनुजे सीतां=वैदेहीं च निदधे=निहितवान्। सीतासंरक्षणार्थं लक्ष्मणं नियुज्य रामः स्वयं योद्धुं सन्नद्धोऽभूदित्यर्थः।

समासः—उद्यतम् आयुधं यैस्ते उदायुधास्तान् उदायुधान्। विजयस्य आशंसा विजयाशंसा तां विजयाशंसाम्।

हिन्दी—अस्त्र-शस्त्र हाथ में उठाए सामने से आते हुए, घमण्डी खरादि राक्षसों को देख कर राम ने अपने धनुष पर विजय की आशा रखी और लक्ष्मण के पास सीता जी को रख दिया अर्थात् लक्ष्मण को सीता की रक्षा के लिये कुटी पर रखकर स्वयं धनुष मात्र लेकर युद्ध के लिये तैयार हो गए॥ ४४॥

एको दाशरथिः कामं यातुधानाः सहस्रशः।
ते तु यावन्त एवाजौ तावांश्च ददृशे स तैः॥ ४५॥

दाशरथी राम एकोऽद्वितीयः। यातुधानाः कामं सहस्रशः सन्तीति शेषः। तैर्यातुधानैस्तु स राम आजौ ते यातुधाना यावन्तो यावत्संख्याका एव तावांस्तावत्संख्याकश्च ददृशे॥

अन्वयः—दाशरथिः एकः यातुधानाः कामं सहस्रशः "सन्ति"। तु तैः सः आजौ ते यावन्तः एव तावान् च ददृशे।

व्याख्या—दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिः=रामः एकः=केवलः, अद्वितीयः। यातूनि=रक्षांसि दधाति=पुष्णन्ति, स्वजातिपोषकत्वात्, इति यातुधानाः=राक्षसाः कामं=यथेष्टं, सहस्रशः=असंख्याः सन्तीति शेषः। तु=किन्तु तैः=राक्षसैः सः=रामः आजौ=युद्धे ते=यातुधानाः, खराद्याः यावन्तः=यावत्संख्यका एव आसन् तावान्=तावत्संख्यकः ददृशे=दृष्टः।

हिन्दी—दशरथ पुत्र राम अकेले थे और राक्षस हजारों थे। किन्तु युद्ध में राक्षसों को जितने ही राक्षस थे उतने ही राम दीख रहे थे। अर्थात् रामजी ऐसे कौशल से लड़ रहे थे कि प्रत्येक राक्षस यह अनुभव कर रहा था कि मुझसे ही लड़ रहे हैं॥ ४५॥

असज्जनेन काकुत्स्थः प्रयुक्तमथ दूषणम्।
न चक्षमे शुभाचारः स दूषणमिवात्मनः॥ ४६॥

अथ शुभाचारो रणे साधुचारी सद्वृत्तश्च स काकुत्स्थोऽसज्जनेन दुर्जनेन रक्षोजनेन च प्रयुक्तं प्रेषितमुच्चारितं च दूषणं दूषणाख्यं राक्षसमात्मनो दूषणं दोषमिव न चक्षमे न सेहे। *प्रतिकर्तुं प्रवृत्त इत्यर्थः॥*

अन्वयः—अथ शुभाचारः सः काकुत्स्थः असज्जनेन प्रयुक्तं दूषणम् आत्मनः दूषणम् इव न चक्षमे ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् शुभः = साधुः आचारः = आचरणं यस्य स शुभाचारः = युद्धे सम्यक्चारी, सद्वृत्तश्च सः प्रसिद्धः ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थः = रामः असं-श्चासौ जनः असज्जनस्तेन असज्जनेन = दुष्टजनेन, राक्षसखरजनेन च प्रयुक्तं = प्रेषितम्, उच्चा-रितञ्च दूषयतीति दूषणस्तं दूषणं = खरस्य सेनापतिं दूषणनामकम् आत्मनः = स्वस्य दूषणं = दोषं, पापम् इव = यथा न चक्षमे = न मर्षितवान् ।

समासः—न सन् असन्, असन् चासौ जनः असज्जनस्तेन असज्जनेन । शुभः आचारः यस्य स शुभाचारः ।

हिन्दी—जिस प्रकार सदाचारी पुरुष, किसी दुर्जन व्यक्ति के द्वारा अपने ऊपर लगाए गए कलंक को नहीं सहन करते, उसी प्रकार रण में कुशल ककुत्स्थवंशी राम ने भी दुष्ट खर के द्वारा भेजे गये सेनापति दूषण को सहन नहीं किया । अर्थात् उसे समाप्त करने में तत्पर हो गये । रावण के भाई खर की सेना का, दूषण नामक राक्षस सेनापति था ॥ ४६ ॥

तं शरैः प्रतिजग्राह खरत्रिशिरसौ च सः ।
क्रमशस्ते पुनस्तस्य चापात्सममिवोद्ययुः ॥ ४७ ॥

स रामस्तं दूषणं खरत्रिशिरसौ च शरैः प्रतिजग्राह प्रतिजहारेत्यर्थः । क्रमशो यथा-क्रमम् । प्रयुक्ता अपीति शेषः । तस्य ते शराः पुनश्चापात्समं युगपदिवोद्ययुः । अतिलघुहस्त इति भावः ॥

अन्वयः—सः तं खरत्रिशिरसौ च शरैः प्रतिजग्राह । क्रमशः "प्रयुक्ताः अपि" तस्य ते पुनः चापात् समम् इव उद्ययुः ।

व्याख्या—सः = रामः तं = दूषणनामकं राक्षसं, त्रीणि शिरांसि = मस्तकानि यस्य स त्रिशिराः । खरश्च त्रिशिराश्चेति खरत्रिशिरसौ = एतन्नामानौ च शरैः = बाणैः प्रतिजग्राह = प्रति-गृहीतवान्, प्रतिजहारेत्यर्थः । क्रमशः = क्रमेण "प्रयुक्ता अपि" इति शेषः । तस्य = रामस्य ते = शराः, तेषु दूषणादिषु प्रक्षिप्ता इत्यर्थः । पुनः चापात् = धनुषः समं = युगपत् इव = यथा उद्ययुः = उद्गताः ।

समासः—त्रीणि शिरांसि यस्य स त्रिशिराः । खरश्च त्रिशिराश्च खरत्रिशिरसौ, तौ ।

हिन्दी—रामने दूषण खर और त्रिशिरा नाम के राक्षसों को अपने बाणों से स्वीकार किया, अर्थात् उनपर बाण छोड़े । यद्यपि राम ने बाण एक-एक करके मारे थे, किन्तु शीघ्रता से छोड़े गए वे बाण ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो धनुष से एक साथ ही निकले हों । तात्पर्य यह है कि राम बहुत ही फुर्ती से बाण चलाते थे ॥ ४७ ॥

तैस्त्रयाणां शितैर्बाणैर्यथापूर्वविशुद्धिभिः ।
आयुर्देहातिगैः पीतं रुधिरं तु पतत्रिभिः ॥ ४८ ॥

देहमतीत्य भित्त्वा गच्छन्तीति देहातिगाः। तैर्यथास्थिता पूर्वविशुद्धिर्येषां तैः। अतिवेगत्वेन देहभेदात्प्रागिव रुधिरलेपरहितैरित्यर्थः। शितैस्तीक्ष्णैस्तैर्बाणैस्त्रयाणां खरादीनामायुः पीतम्। रुधिरं तु पतत्रिभिः पीतम्॥

अन्वयः—देहातिगैः यथापूर्वविशुद्धिभिः शितैः तैः बाणैः त्रयाणाम् आयुः पीतं, रुधिरं तु पतत्रिभिः पीतम्।

व्याख्या—देहं = शरीरम् अतीत्य, विदार्य गच्छन्ति = यान्तीति देहातिगास्तैः देहातिगैः यथास्थिता पूर्वा = प्रथमा विशुद्धिः = रुधिरलेपराहित्यं येषां ते तैः यथापूर्वविशुद्धिभिः, राक्षसानां शरीरविदारणात् पूर्वमिव रुधिरलेपशून्यैः प्रबलवेगवत्त्वादित्यर्थः। शितैः = तीक्ष्णैः तैः = रामप्रेरितैः बाणः शब्दोऽस्ति येषां ते बाणास्तैः बाणैः = शरैः "पृषत्कबाणविशिखाः" इत्यमरः। त्रयाणां = खरदूषणादीनाम् आयुः = जीवितकालः पीतं = विनाशितमित्यर्थः, रुणद्धि, रुध्यते वा रुधिरं = शोणितं तु पतन्तं त्रायते इति पतत्त्रम्। पतत्त्राणि सन्ति येषां ते पतत्त्रिणः तैः पतत्त्रिभिः = पक्षिभिः पीतं = पानं कृतम्।

समासः—यथास्थिता पूर्वा विशुद्धिः येषां ते तैः यथापूर्वविशुद्धिभिः। देहान् अतिगच्छन्तीति देहातिगास्तैः तथोक्तैः।

हिन्दी—शरीरों को छेदकर बाहर निकले, तथा पहले के समान शुद्ध (अर्थात् प्रबल वेग के कारण जिन में खून नहीं लग सका) ऐसे पैने बाणों ने उन तीनों खर दूषण त्रिशिरा की आयु को पी लिया। पश्चात् पक्षियों ने खून पिया। भाव यह है कि बाण तो प्रबल वेग से शरीर को छेदकर प्राण लेकर साफ निकल गये, पीछे खून पक्षियों ने पिया था॥ ४८॥

तस्मिन्रामशरोत्कृत्ते बले महति रक्षसाम्।
उत्थितं ददृशेऽन्यच्च कबन्धेभ्यो न किंचन॥ ४९॥

तस्मिन्रामशरैरुत्कृत्ते छिन्ने महति रक्षसां बले उत्थितमुत्थानक्रियाविशिष्टं प्राणिनां कबन्धेभ्यः शिरोहीनशरीरेभ्यः। 'कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्धकलेवरम्' इत्यमरः। अन्यच्चान्यत्किंचन न ददृशे। कबन्धेभ्य इत्यत्र 'अन्यारात्—' इति पञ्चमी। निःशेषं हतमित्यर्थः॥

अन्वयः—तस्मिन् रामशरोत्कृत्ते महति रक्षसां बले, उत्थितं कबन्धेभ्यः अन्यत् किंचन न ददृशे।

व्याख्या—तस्मिन् = पूर्वोक्ते रामस्य शराः = बाणास्तैः उत्कृत्तं = छिन्नं = विनाशितमित्यर्थः, इति रामशरोत्कृत्तं तस्मिन् रामशरोत्कृत्ते महति = अत्यधिके रक्षसां = खरादीनां बले = सैन्ये उत्थितम् = उत्थानक्रियायुक्तं कं = सुखं बध्यते = छिद्यतेऽस्मात् असौ कबन्धः, केन = वायुना बध्यते इति वा कबन्धः। कबन्धेभ्यः = शिरोहीनदेहेभ्यः राक्षसानामिति शेषः अन्यत् = अतिरिक्तं किंचन न ददृशे = नहि दृष्टम्। सर्वं विनष्टमित्यर्थः।

समासः—रामस्य शराः रामशराः, रामशरैः उत्कृत्तं तस्मिन् रामशरोत्कृत्ते।

हिन्दी—रामचन्द्र जी के बाणों से काटी गई (काटकर समाप्त कर दी गई) राक्षसों की बड़ी भारी उस सेना में नाचते-कूदते हुए धड़ों के सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। अर्थात् सम्पूर्ण सेना मार दी गई। केवल शिरकटे धड़ ही धड़ दीख रहे थे ॥ ४९ ॥

सा बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा सुरद्विषाम् ।
अप्रबोधाय सुष्वाप गृध्रच्छाये वरूथिनी ॥ ५० ॥

सा सुरद्विषां वरूथिनी सेना बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा युद्धं कारयित्वा। गृध्राणां छाया गृध्रच्छायम्। 'छाया बाहुल्ये' इति क्लीबत्वम्। तस्मिन्नप्रबोधायापुनर्बोधाय सुष्वाप। ममारेत्यर्थः। अत्र सुरतश्रान्तकान्तासमाधिर्ध्वन्यते ॥

अन्वयः—सा सुरद्विषां वरूथिनी बाणवर्षिणं रामं योधयित्वा गृध्रच्छाये अप्रबोधाय सुष्वाप।

व्याख्या—सा = पूर्वोक्ता सुरान् = देवान् द्विषन्ति = द्रुह्यन्ति इति सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषाम् = रक्षसां वरूथाः = रथगुप्तयः सन्ति यस्यां सा वरूथिनी = सेना "वरूथो रथगुप्तौ स्यात्" इति मेदिनी। बाणान् = शरान् वर्षति तच्छीलः इति बाणवर्षी तं बाणवर्षिणं = शरवर्षिणं रामं = राघवं योधयित्वा = युद्धं कारयित्वा गृध्राणां = दाक्षाय्याणां छाया = कान्तिरिति गृध्रच्छायं तस्मिन् गृध्रच्छाये "दाक्षाय्यगृध्रौ" इत्यमरः। न प्रबोधः = जागरणमिति अप्रबोधस्तस्मै अप्रबोधाय अपुनर्जागरणाय सुष्वाप = शेते स्म।

समासः—सुराणां द्विषः सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषाम्। न प्रबोधः अप्रबोधस्तस्मै अप्रबोधाय। गृध्राणां छाया गृध्रच्छायं तस्मिन् गृध्रच्छाये।

हिन्दी—वह राक्षसों की सेना बाणबरसाने वाले राम से युद्ध करके गिद्धों के पंखों की छाया में फिर कभी न उठने के लिये सो गई। अर्थात् सदा के लिये सो गई ॥ ५० ॥

राघवास्त्रविदीर्णानां रावणं प्रति रक्षसाम् ।
तेषां शूर्पणखैवैका दुष्प्रवृत्तिहराऽभवत् ॥ ५१ ॥

एका शूर्पवन्नखानि यस्याः सा शूर्पणखा। 'पूर्वपदात्संज्ञायाम्—' इति णत्वम्। 'नखमुखात्संज्ञायाम्' इति ङीप्प्रतिषेधः। सैव रावणं प्रति राघवास्त्रैर्विदीर्णानां हतानां तेषां रक्षसां खरादीनां दुष्प्रवृत्तिं वार्तां हरति प्रापयतीति दुष्प्रवृत्तिहराऽभवत्। 'हरतेरनुद्यमनेऽच्' इत्यच्प्रत्ययः ॥

अन्वयः—एका शूर्पणखा एव रावणं प्रति राघवास्त्रविदीर्णानां तेषां रक्षसाम् दुष्प्रवृत्तिहरा अभवत्।

व्याख्या—एका = अद्वितीया शूर्पवत् नखानि = कररुहाणि यस्याः सा शूर्पणखा = रावणभगिनी एव = मात्रम् रावणं = दशाननं प्रति राघवस्य = रामस्य अस्त्राणि = बाणास्तैः विदीर्णानि = हतानि, इति राघवास्त्रविदीर्णानि तेषां राघवास्त्रविदीर्णानां तेषां रक्षसां = खरदूषणादिराक्षसानां दुष्प्रवृत्तिं = दुर्वार्तां = दुःसमाचारमित्यर्थः हरति = प्रापयतीति दुष्प्रवृत्तिहरा = अशुभसमाचारसूचिका अभवत् = जाता। नान्यः कोऽपि राक्षसस्तत्र जीवितोऽभवदित्यर्थः।

समासः—राघवस्य अस्त्राणि राघवास्त्राणि तैः विदीर्णानि तेषां राघवास्त्रविदीर्णानाम्। शूर्पवत् नखानि यस्याः सा शूर्पणखा। दुष्टा प्रवृत्तिः दुष्प्रवृत्तिः, दुष्प्रवृत्तेः हरा इति दुष्प्रवृत्तिहरा।

हिन्दी—रामचन्द्र जी के अस्त्रों से मारे गए उन खरदूषणादि राक्षसों की मृत्यु के अशुभ समाचार को रावण के पास पहुँचाने वाली एकमात्र शूर्पणखा ही रह गई थी। अर्थात् और सारी सेना रामास्त्र से मर गई थी ॥ ५१ ॥

निग्रहात्स्वसुराप्तानां वधाच्च धनदानुजः।
रामेण निहितं मेने पदं दशसु मूर्धसु ॥ ५२ ॥

स्वसुः शूर्पणखाया निग्रहादङ्गच्छेदादाप्तानां बन्धूनां खरादीनां वधाच्च कारणाद्धनदानुजो रावणो रामेण दशसु मूर्धसु पदं पादं निहितं मेने ॥

अन्वयः—स्वसुः निग्रहात् आप्तानां वधात् च धनदानुजः रामेण दशसु मूर्धसु पदं निहितं मेने।

व्याख्या—सुष्ठु अस्यति, अस्यते वा स्वसा तस्याः स्वसुः = भगिन्याः शूर्पणखायाः निग्रहात् = निरोधात्, कर्णनासिकाच्छेदादित्यर्थः। आप्तानां = हितैषिणां खरादिबन्धूनां वधात् = मारणात् च कारणात् धनं दयते = पालयतीति धनदः = कुबेरः। धनदस्य अनुजः धनदानुजः = कुबेरकनिष्ठभ्राता रावण इत्यर्थः रामेण = राघवेण दशसु = दशसंख्यकेषु मूर्धसु = मस्तकेषु पदं = चरणं निहितं = स्थापितं मेने = अमंस्त।

समासः—धनदस्य अनुजः धनदानुजः।

हिन्दी—बहन शूर्पणखा के नाक कान काटने से तथा अपने हितैषी खर-दूषण आदि बन्धुओं का वध करने के कारण, कुबेर के छोटे भाई रावण ने ऐसा मान लिया, मानो राम ने रावण के दशों शिरों पर पैर रख दिया हो ॥ ५२ ॥

रक्षसा मृगरूपेण वञ्चयित्वा स राघवौ।
जहार सीतां पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः ॥ ५३ ॥

स रावणो मृगरूपेण रक्षसा मारीचेन राघवौ वञ्चयित्वा प्रतार्य पक्षीन्द्रस्य जटायुषः प्रयासेन युद्धरूपेण क्षणं विघ्नितः संजातविघ्नः सन्सीतां जहार ॥

अन्वयः—सः मृगरूपेण रक्षसा राघवौ वञ्चयित्वा पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः सन् सीतां जहार।

व्याख्या—सः = रावणः मृगस्य = काञ्चनहरिणस्य रूपम् इव रूपं यस्य स तेन रक्षसा = मारीचेन राघवश्च राघवश्चेति तौ राघवौ = रामलक्ष्मणौ वञ्चयित्वा = प्रतार्य पक्षिणां = खगानाम् इन्द्रः = स्वामी, इति पक्षीन्द्रः = जटायुः, तस्य प्रयासः = युद्धरूपेण पराक्रमस्तेन क्षणं = किंचित्कालं विघ्नितः = सञ्जातबाधः, इति पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः सन् सीतां = जानकीं जहार = हृतवान्। विघ्नः संजातोऽस्यासौ विघ्नितः।

समासः—मृगस्य रूपम् इव रूपमस्यासौ मृगरूपस्तेन मृगरूपेण। पक्षिणाम् इन्द्रः पक्षीन्द्रः। पक्षीन्द्रस्य प्रयासः पक्षीन्द्रप्रयासः। तेन क्षणं विघ्नितः इति पक्षीन्द्रप्रयासक्षणविघ्नितः।

हिन्दी—स्वर्णमृग का रूप धारण करने वाले (रावण की माया) मारीच के द्वारा राम लक्ष्मण को धोखा देकर पक्षिराज जटायु के प्रयत्न (या पराक्रम) से कुछ देर विघ्न-बाधा करने पर भी (युद्ध करके) रावण ने सीता को हर लिया। चुराकर लंका में ले गया ॥ ५३ ॥

तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपश्यताम्।
प्राणैर्दशरथप्रीतेरनृणं कण्ठवर्तिभिः ॥ ५४ ॥

सीतान्वेषिणौ तौ राघवौ लूनपक्षं रावणेन छिन्नपक्षं कण्ठवर्तिभिः प्राणैर्दशरथप्रीतेर्दशरथ-सख्यस्यानृणमृणविमुक्तं गृध्रं जटायुषमपश्यतां दृष्टवन्तौ। दृशेर्लङि रूपम् ॥

अन्वयः—सीतान्वेषिणौ तौ लूनपक्षं कण्ठवर्तिभिः प्राणैः दशरथप्रीतेः अनृणं गृध्रम् अपश्यताम्।

व्याख्या—सीताम् अन्वेष्टुं शीलं ययोस्तौ सीतान्वेषिणौ = जानकीगवेषणतत्परौ तौ = रामलक्ष्मणौ लूनाः = छिन्नाः पक्षाः = पतत्त्राणि यस्य स लूनपक्षस्तं लूनपक्षम् रावणेनेति शेषः। कण्ठे वर्तन्ते इति कण्ठवर्तिनस्तैः कण्ठवर्तिभिः = कण्ठस्थितैः प्राणन्ति एभिरिति प्राणास्तैः प्राणैः = असुभिः दशरथस्य = राज्ञः प्रीतिः = स्नेहस्तस्याः दशरथप्रीतेः = दशरथमित्रतायाः अविद्यमानं ऋणं = देयं यस्य स तम् अनृणम् = ऋणरहितं गृध्रं = जटायुषम् अपश्यताम् = अवलोकितवन्तौ। रामलक्ष्मणाभ्यां रावणेन छिन्नपक्षः कण्ठगतप्राणः जटायुर्दृष्ट इत्यर्थः।

समासः—लूनाः पक्षाः यस्य स तं लूनपक्षम्। दशरथस्य प्रीतिः, तस्याः दशरथप्रीतेः। अविद्यमानं ऋणं यस्य स तम् अनृणम्।

हिन्दी—सीता को ढूंढने में लगे हुए, राम-लक्ष्मण ने मार्ग में उस जटायु को देखा, जिसके पंख कटे हुए थे तथा जिसने कण्ठ में आए अपने प्राणों से (सीता को चुराकर ले जाने वाले रावण से लड़कर) दशरथजी की मित्रता का ऋण चुका दिया था।

विशेष—श्येनी और अरुण का पुत्र जटायु राजा दशरथ का घनिष्ठ मित्र था। अपहरण कर सीता जी को ले जाते समय सीता का रोना सुनकर जटायु ने रावण से खूब घमासान युद्ध किया। घायल होकर गिर पड़ा। रावण सीता को लेकर भाग गया। वह प्राणान्तक पीड़ा से तड़फते हुए राम लक्ष्मण को सीता का समाचार सुनाकर मर गया था और उसकी अन्त्येष्टि विधिपूर्वक रामजी ने की थी ॥ ५४ ॥

स रावणहृतां ताभ्यां वचसाचष्ट मैथिलीम्।
आत्मनः सुमहत्कर्म व्रणैरावेद्य संस्थितः ॥ ५५ ॥

स जटायू रावणहृतां मैथिलीं ताभ्यां रामलक्ष्मणाभ्याम्। 'क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम्' इति संप्र-दानत्वाच्चतुर्थी। वचसा वाग्वृत्त्याचष्ट। आत्मनः सुमहत्कर्म युद्धरूपं व्रणैरावेद्य संस्थितो मृतः ॥

अन्वयः—सः रावणहृतां मैथिलीं ताभ्यां वचसा आचष्ट, आत्मनः सुमहत्कर्म व्रणैः आवेद्य संस्थितः।

व्याख्या—सः = जटायुः रावणेन = राक्षसराजेन हृता = चोरिता इति रावणहृता तां रावणहृतां मैथिलीं = जानकीं ताभ्यां = रामलक्ष्मणाभ्यां (चतुर्थी विभक्तिः) वचसा = वाण्या आचष्ट = कथयामास। आत्मनः = स्वस्य सुष्ठु महच्च तत्कर्म इति सुमहत्कर्म तत् प्रशंसनीयं योग्यं कार्यं युद्धरूपम् व्रणैः = ईर्मैः आवेद्य निवेद्य = कथयित्वा संस्थितः = मृतः।

समासः—रावणेन हृता रावणहृता तां रावणहृताम्। सुष्ठु च महच्च तत् सुमहत्।

हिन्दी—जटायु ने अपनी वाणी से रामलक्ष्मण को बताया कि सीताजी का अपहरण रावण ने किया और अपने युद्धरूपी अच्छे काम को अपने घावों से ही प्रकट करके मर गया॥ ५५॥

तयोस्तस्मिन्नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः।
पितरीवाग्निसंस्कारात्परा ववृतिरे क्रियाः॥ ५६॥

व्यापत्तिर्मरणम्। नवीभूतः पितृव्यापत्तिशोको ययोस्तौ तयो राघवयोस्तस्मिन्गृध्रे पितरीवाग्निसंस्कारमारभ्य परा उत्तराः क्रिया ववृतिरेऽवर्तन्त। तस्य पितृवदौर्ध्वदैहिकं चक्रतुरित्यर्थः॥

अन्वयः—नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः तयोः तस्मिन् पितरि इव अग्निसंस्कारात् "आरभ्य" पराः क्रियाः ववृतिरे।

व्याख्या—विशेषेण आ समन्तात् पद्यतेऽनयेति व्यापत्तिः। पितुः = दशरथस्य व्यापत्तिः = मृत्युः इति पितृव्यापत्तिः। तस्याः शोकः = शुक्, इति पितृव्यापत्तिशोकः। न नवः अनवः, अनवः नवः संपद्यमानः इति नवीभूतः। नवीभूतः = नूतनः संपद्यमानः पितृव्यापत्तिशोकः ययोस्तौ नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकौ तयोः नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः तयोः = रामलक्ष्मणयोः तस्मिन् = जटायुषि गृध्रे पितरि = जनके दशरथे इव = यथा अग्नौ = वह्नौ संस्कारः = शवदाहः, तस्मात् अग्निसंस्कारात् आरभ्य पराः = उत्तराः क्रियाः = और्ध्वदेहिककर्माणि ववृतिरे = अवर्तन्त। स्वपितृतुल्यमेव जटायुष और्ध्वदेहिकं कृतवन्तौ, इत्यर्थः।

समासः—पितुर्व्यापत्तिः पितृव्यापत्तिः, तस्याः शोकः पितृव्यापत्तिशोकः। नवीभूतः पितृव्यापत्तिशोकः ययोस्तौ तथोक्तौ,:तयोः नवीभूतपितृव्यापत्तिशोकयोः। अग्नौ संस्कारः इति अग्निसंस्कारः, तस्मात् अग्निसंस्कारात्।

हिन्दी—"अपने पिता के मित्र गृध्रराज के मरने पर" फिर से नया हो गया है पिताजी की मृत्यु का शोक जिन को, ऐसे राम-लक्ष्मण ने जटायु की शवदाह से लेकर सारी क्रियाएँ श्राद्धादि अपने पिता के समान कर दी थीं। अर्थात् जिस प्रकार विधि-पूर्वक अपने पिताजी का श्राद्धादि किया था उसी प्रकार पितृतुल्य जटायु का भी किया॥ ५६॥

वधनिर्धूतशापस्य कबन्धस्योपदेशतः।
मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ॥ ५७॥

वधेन रामकृतेन निर्धूतशापस्य देवत्वं गतस्य कबन्धस्य रक्षोविशेषस्योपदेशतो रामस्य समानव्यसने समानापदि। सख्यार्थिनीत्यर्थः। हरौ कपौ सुग्रीवे। 'शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु' इत्यमरः। सख्यं मुमूर्च्छ ववृधे ॥

अन्वयः—वधनिर्धूतशापस्य कबन्धस्य उपदेशतः रामस्य समानव्यसने हरौ सख्यं मुमूर्च्छ।

व्याख्या—वधेन = रामकृतमारणेन निर्धूतः = नष्टः शापः = आक्रोशः। यस्य स वधनिर्धूतशापस्तस्य वधनिर्धूतशापस्य, रामहस्तेन मरणात् शापनिर्मुक्तस्य अत एव दिव्यदेहधारिणः गन्धर्वस्येत्यर्थः। कबन्धस्य = एतन्नामराक्षस्य उपदेशनम् उपदेशः उपदेशादिति उपदेशतः = कथनात्। रामस्य = रामचन्द्रस्य समानं = तुल्यं व्यसनं = विपत्तिः यस्य स तस्मिन् समानव्यसने वानरे, सुग्रीवे "हरिश्चन्द्रार्कवाताश्वशुकभेकयमाहिषु। कपौ सिंहे" इति मेदिनी। समानः ख्यायते जनैरिति सखा। सख्युः भावः कर्म वा सख्यं = मैत्री मुमूर्च्छ = ववृधे प्रवृद्धमित्यर्थः।

समासः—वधेन निर्धूतः शापः यस्य स वधनिर्धूतशापः, तस्य वधनिर्धूतशापस्य। समानं व्यसनं यस्य स समानव्यसनस्तस्मिन् समानव्यसने।

हिन्दी—राम के हाथ से मरने के कारण शाप से मुक्त हुए, कबन्ध के कहने से एकसी विपत्ति वाले, सुग्रीव में राम की मित्रता घनिष्ठ हो गई।

विशेष—कबन्ध नामक राक्षस ने ब्रह्माजी को प्रसन्न करके दीर्घायु का वर प्राप्त किया था। इसी गर्व से उसने इन्द्र पर चढ़ाई की, इन्द्र के वज्र से कबन्ध की मृत्यु तो न हुई। किन्तु उसका सिर गर्दन पेट में चला गया। प्रार्थना करने पर इन्द्र ने उसे योजन तक फैलने वाली भुजा तथा पेट में पैनी जोड़ देदी थी। वह अपने घेरे में आए प्राणियों को खाता था। रामलक्ष्मण भी इसकी चपेट में आ गए थे। तभी रामबाण से मरकर शाप से छूट गया और दिव्य गन्धर्व हो गया था। इसी ने सुग्रीव का पता बताकर मित्रता करने को भी कहा था। महाभारत के अनुसार किसी ऋषि के शाप से विश्वावसु नामक गन्धर्व राक्षस बन गया था। राम दर्शन से शाप छूट गया था ॥ ५७ ॥

स हत्वा वालिनं वीरस्तत्पदे चिरकांक्षिते।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत् ॥ ५८ ॥

वीरः स रामो वालिनं सुग्रीवाग्रजं हत्वा चिरकाङ्क्षिते तत्पदे वालिस्थाने। धातोः स्थान आदेशमिव। आदेशभूतं धात्वन्तरमिवेत्यर्थः। सुग्रीवं संन्यवेशयत्स्थापितवान्। यथा 'अस्तेर्भूः' इत्यस्तिधातोः स्थान आदेशो भूधातुरस्तिकार्यमशेषं समभिधत्ते तद्वदिति भावः। आदेशो नाम शब्दान्तरस्य स्थाने विधीयमानं शब्दान्तरमभिधीयते ॥

अन्वयः—वीरः सः वालिनं हत्वा चिरकांक्षिते तत्पदे धातोः स्थाने आदेशम् इव सुग्रीवं संन्यवेशयत्।

व्याख्या—वीरयतीति वीरः = शूरः सः = रामः बालः = केशः उत्पत्तिस्थानत्वेन विद्यतेऽस्य स बाली तथाहि-'बालेषु पतितं बीजं बाली नाम बभूव ह।' तं वालिनं = वानरराजं हत्वा =

मारयित्वा चिरात्=बहुकालात् कांक्षितम्=अभिलषितं तस्य=वालिनः पदं=स्थानं, राज्यमित्यर्थः। इति तत्पदं तस्मिन् तत्पदे धातोः=अस्त्यादेः स्थाने आदेशम्=आदेशभूतं धात्वन्तरम् इव=यथा "अस्तेर्भूः" इति सूत्रेण अस्तिस्थाने भूरित्यादेशः तथैव वालिस्थानेऽपीति भावः। सुष्ठु ग्रीवा यस्य स सुग्रीवस्तं सुग्रीवं=सुग्रीवनामानं वानरं संन्यवेशयत्=स्थापितवान्। वालिनं निहत्य तद्राज्यं सुग्रीवाय दत्तवान् इति भावः।

समासः—तस्य पदं तत्पदं तस्मिन् तत्पदे। चिरात् कांक्षितं चिरकांक्षितं तस्मिन् चिरकांक्षिते। सुष्ठु ग्रीवा यस्य स सुग्रीवस्तं सुग्रीवम्।

हिन्दी—पराक्रमी राम ने वाली को मारकर बहुत समय से चाहे हुए वाली के राज्यसिंहासन पर उसी प्रकार सुग्रीव को बैठा दिया, जैसे कि व्याकरणशास्त्र में एक धातु के स्थान पर दूसरा धातु शब्द आदेश स्थापनापन्न कर देते हैं।

विशेष—"अस्तेर्भूः" सूत्र से लिट् लुट् लृट् आदि लकारों में अस्ति के स्थान पर भू का आदेश होता है। और उस धातु के कार्य को भू करता है। जैसे स्थानी को हटा कर आदेश होता है, वैसे ही वाली को मार कर सुग्रीव को उसके स्थान पर बैठा दिया, तथा उसने स्थानी (वाली) का सब कार्य (राज्य) किया॥ ५८॥

इतस्ततश्च वैदेहीमन्वेष्टुं भर्तृचोदिताः।
कपयश्चेरुरार्तस्य रामस्येव मनोरथाः॥ ५९॥

वैदेहीमन्वेष्टुं मार्गितुं भर्त्रा सुग्रीवेण चोदिताः प्रयुक्ताः कपयो हनुमत्प्रमुखाः, आर्तस्य विरहातुरस्य रामस्य मनोरथाः कामा इव इतस्ततश्चेरुर्नानादेशेषु बभ्रमुश्च॥

अन्वयः—वैदेहीम् अन्वेष्टुं भर्तृचोदिताः कपयः, आर्तस्य रामस्य मनोरथा इव इतः ततः चेरुः॥

व्याख्या—विदेहस्य अपत्यं स्त्री वैदेही तां वैदेहीं=सीताम् अन्वेष्टुं=गवेषयितुं=मार्गितुं भर्त्रा=स्वामिना सुग्रीवेण चोदिताः=प्रेरिता भर्तृचोदिताः कम्पन्ते इति कपयः=वानराः हनूमत्प्रभृतयः आर्तस्य=सीतावियोगपीडितस्य रामस्य=राघवस्य मनः रथाः इव इति मनोरथाः=कामाः अभिलाषाः, इव=यथा इतस्ततः=अस्मिन्प्रदेशे तस्मिन्प्रदेशे च, सर्वत्रेत्यर्थः। चेरुः=भ्रमन्ति स्म।

समासः—भर्त्रा चोदिताः इति भर्तृचोदिताः। मनः रथाः इवेति मनोरथाः। मनः एव रथः येषु तु इति वा।

हिन्दी—सीताजी को खोजने के लिये, सुग्रीव के भेजे हनुमान् आदि वानर वैसे ही इधर उधर घूम रहे थे जैसे सीताजी के विरह में पीड़ित दुःखित राम का मन सीताजी की खोज में इधर उधर भटकता था॥ ५९॥

प्रवृत्तावुपलब्धायां तस्याः संपातिदर्शनात्।
मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः॥ ६०॥

संपातिर्नाम जटायुषो ज्यायान्भ्राता। तस्य दर्शनात्। तन्मुखादिति भावः। तस्याः सीतायाः प्रवृत्तौ वार्तायाम्। 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः। उपलब्धायां ज्ञातायां सत्याम्। मारुतस्यापत्यं पुमान्मारुतिः हनुमान्सागरम्। ममेत्येतदव्ययं ममतावाचि। तद्रहितो निर्ममो निःस्पृहः संसारमविद्याबन्धनमिव। तीर्णस्ततार। तरतेः कर्तरि क्तः॥

अन्वयः—सम्पातिदर्शनात् तस्याः प्रवृत्तौ उपलब्धाया सत्याम् मारुतिः सागरं निर्ममः संसारम् इव तीर्णः।

व्याख्या—सम्पातेः = अरुणपुत्रस्य, जटायुरग्रजस्य दर्शनम् = अवलोकनं तस्मात् सम्पातिदर्शनात्, सम्पातिकथनात्, इत्यर्थः तस्याः = सीतायाः प्रवृत्तौ = वृत्तान्ते उपलब्धायां = प्राप्तायां सत्यां, सीतासमाचारे ज्ञाते सतीत्यर्थः। म्रियन्तेऽनेन प्रवृद्धेन बिना वा स मरुत् एव मारुतः। मारुतस्यापत्यं पुमान् मारुतिः हनुमान् सागरं = समुद्रम् ममेदमिति ममता निर्गता यस्मात् स निर्ममः = ममेदमिति अभिनिवेशवर्जितः = निस्पृह इत्यर्थः संसारं = जगत् इव = यथा तीर्णः = ततार।

समासः—सम्पातेः दर्शनमिति सम्पातिदर्शनम् तस्मात् सम्पातिदर्शनात्। ममेदमिति ममता निर्गता सा यस्मात् स निर्ममः।

हिन्दी—"मार्ग में" जटायु का बड़ा भाई सम्पाति मिला। उसके मुख से (सागर पार लंका का राजा रावण सीताजी को ले गया) सीता के समाचार, जान लेने पर, वायु-पुत्र हनुमान् जी उसी प्रकार समुद्र को पार कर गये, जैसे ममता-माया रहित पुरुष संसार को पार कर जाता है॥ ६०॥

दृष्टा विचिन्वता तेन लङ्कायां राक्षसीवृता।
जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः॥ ६१॥

लङ्कायां रावणराजधान्यां विचिन्वता मृगयमाणेन तेन मारुतिना राक्षसीभिर्वृता जानकी विषवल्लीभिः परीता परिवृता महौषधिः संजीविनीलतेव दृष्टा॥

अन्वयः—लंकायां विचिन्वता तेन राक्षसीवृता जानकी विषवल्लीभिः परीता महौषधिः इव दृष्टा।

व्याख्या—रमन्तेऽस्यां सा लंका = रावणपुरी। रमुधातोः बाहुलकात् कप्रत्ययः रस्य लत्वं टाप् लंका। तस्यां लंकायां = राक्षसराजनगर्यां विचिन्वता = गवेषयता तेन = मारुतिना हनुमता राक्षसीभिः = निशाचरीभिः वृता = आवृता जानकी = जनकपुत्री विषेण = गरलेन युक्ताः वल्ल्यः = लताः इति विषवल्ल्यस्ताभिः विषवल्लीभिः परीता = परिगता परिवृता महती ओषधिः महौषधिः = संजीवनी इव = यथा दृष्टा = अवलोकिता।

समासः—राक्षसीभिः वृता, राक्षसीवृता। विषेण युक्ताः वल्ल्यस्ताभिः विषवल्लीभिः। महती चासौ ओषधिः महौषधिः।

हिन्दी—रावण की राजधानी लंका में ढूंढते हुए पवनपुत्र ने राक्षसियों से घिरी हुई सीता जी को ऐसी देखी मानो विष (जहर) की लताओं से घिरी हुई संजीवनी लता हो॥ ६१॥

तस्यै भर्तुरभिज्ञानमङ्गुलीयं ददौ कपिः ।
प्रत्युद्गतमिवानुष्णैस्तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः ॥ ६२ ॥

कपिर्हनुमान्भर्तू रामस्य संबन्ध्यभिज्ञानं प्रत्यभिज्ञानसाधकमङ्गुलीयमूर्मिकाम् । 'अङ्गुलीयकमूर्मिका' इत्यमरः । 'जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः' इति छप्रत्ययः । तस्यै जानक्यै ददौ । किंविधमङ्गुलीयम् । अनुष्णैः शीतलैस्तस्या आनन्दाश्रुबिन्दुभिः प्रत्युद्गतमिव स्थितम् । भर्त्रभिज्ञानदर्शनादानन्दबाष्पो जात इत्यर्थः ॥

अन्वयः—कपिः भर्तुः अभिज्ञानम् अंगुलीयं तस्यै ददौ । अनुष्णैः तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः प्रत्युद्गतम् इव ।

व्याख्या—कपिः = मारुतिः भर्तुः = स्वामिनः = रामस्य अभिज्ञायतेऽनेन स तम् अभिज्ञानं चिह्नं रामसंबन्धिचिह्नमित्यर्थः । अंगुल्याः अयं, तत्र भवो वा अंगुलीयस्तम् अंगुलीयम् = ऊर्मिकाम्, अंगुरीयकमित्यर्थः । ददौ = दत्तवान् । किंविधमंगुलीयकमित्याह न उष्णाः अनुष्णास्तैः अनुष्णैः = अघर्मैः शीतलैरित्यर्थः । तस्याः = सीतायाः आनन्दस्य = हर्षस्य अश्रूणि नेत्रजलानि तेषां बिन्दवः = कणास्तैः तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः । प्रत्युद्गतम् = प्रत्युत्थितं, कृतस्वागतम् इव = यथा स्थितम् । रामप्रेषितमुद्रिकादर्शनेन आनन्दाश्रूणि जातानीत्यर्थः ।

समासः—न उष्णाः अनुष्णास्तैः अनुष्णैः । आनन्दस्य अश्रूणि, आनन्दाश्रूणि । तस्याः आनन्दाश्रूणि तदानन्दाश्रूणि तेषां बिन्दवस्तैः तदानन्दाश्रुबिन्दुभिः ।

हिन्दी—हनुमान् ने रामचन्द्रजी का चिह्न अंगूठी सीताजी को दी । "तब सीताजी ने" ठण्डे, अपने आनन्द के आँसुओं के बूंदों से अभ्युत्थान एवं स्वागत किया । अर्थात् राम की अँगूठी पाकर प्रसन्नता से सीताजी की आँखों में आँसू आ गए मानों उन्होंने अँगूठी का स्वागत किया ॥ ६२ ॥

निर्वाप्य प्रियसंदेशैः सीतामक्षवधोद्धतः ।
स ददाह पुरीं लङ्कां क्षणसोढारिनिग्रहः ॥ ६३ ॥

स कपिः प्रियस्य रामस्य संदेशैर्वाचिकैः सीतां निर्वाप्य सुखयित्वा । अक्षस्य रावणकुमारस्य वधेनोद्धतो दृप्तः सन् । क्षणं सोढोऽरेरिन्द्रजितः कर्तुः निग्रहो बन्धो ब्रह्मास्त्रबन्धरूपो येन स तथोक्तः सन् । लङ्कां पुरीं ददाह भस्मीचकार ॥

अन्वयः—सः प्रियसन्देशैः सीतां निर्वाप्य, अक्षवधोद्धतः क्षणसोढारिनिग्रहः सन् लंकां पुरीं ददाह ।

व्याख्या—सः मारुतिः प्रियस्य = रामस्य सन्देशाः = सन्देशवचनानि तैः प्रियसन्देशैः सीतां = जानकीं निर्वाप्य = सुखयित्वा अक्षस्य = अक्षकुमारस्य रावणपुत्रस्येत्यर्थः । वधः = मारणं तेन उद्धतः = गर्वितः, इति अक्षवधोद्धतः सन्, अरेः = मेघनादस्य "कर्तुः" निग्रहः = निरोधः ब्रह्मास्त्रेण बन्धनमित्यर्थः इति अरिनिग्रहः, क्षणं = किंचित्कालं सोढः = मर्षितः अरिनिग्रहः येन स क्षणसोढारिनिग्रहः सन् लङ्कां पुरीं = रावणराजधानीं ददाह = दग्धवान्, भस्मीभूतां कृतवानित्यर्थः ।

समासः—प्रियस्य सन्देशाः प्रियसन्देशास्तैः प्रियसन्देशैः । अक्षस्य वधः अक्षवधस्तेन उद्धतः इति अक्षवधोद्धतः । अरेः निग्रहः अरिनिग्रहः, क्षणं सोढः अरिनिग्रहः येन स क्षणसोढारिनिग्रहः ।

हिन्दी—हनुमान्जी ने रामचन्द्रजी के कुशल समाचार से सीताजी को सुखी करके (सान्त्वना देकर) तथा अक्षकुमार (रावण का पुत्र) को मारने से उत्तेजित गर्वाले होकर और कुछ काल तक शत्रु मेघनाद के द्वारा ब्रह्मास्त्र के बन्धन को सहकर लङ्का को जला दिया ॥ ६३ ॥

प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत्कृती ।
हृदयं स्वयमायातं वैदेह्या इव मूर्तिमत् ॥ ६४ ॥

कृती कृतकृत्यः कपिः स्वयमायातं मूर्तिमद्वैदेह्या हृदयमिव स्थितं तस्या एव प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत् ॥

अन्वयः—कृती स्वयम् आयातं मूर्तिमत् वैदेह्याः हृदयम् इव स्थितं "तस्याः एव" प्रत्यभिज्ञानरत्नं रामाय अदर्शयत् ।

व्याख्या—प्रशस्तं कृतं कर्मास्यासौ कृती । कृतमनेन वा कृती = कुशलः, कृतकृत्यः मारुतिः स्वयम् = आत्मना आयातम् = आगतम् , मूर्तिः = स्वरूपमस्ति अस्य तत् मूर्तिमत् = शरीरधारि वैदेह्याः = सीतायाः हृदयं = चित्तम् इव स्थितं सीताया एव प्रत्यभिज्ञानं = चिह्नभूतं च तद्रत्नं चूडामणिः इति प्रत्यभिज्ञानरत्नं तत् रामाय = राघवाय अदर्शयत् = दर्शितवान् ।

समासः—*प्रत्यभिज्ञानं च तद्रत्नमिति प्रत्यभिज्ञानरत्नम् , तत् ।*

हिन्दी—सीताजी का पता लगाकर लौटे हनुमान्जी ने, सीताजी से मिलने की पहचान के लिये उन्हीं की चूड़ामणि राम को दिखाई । मानो अपने आप चलकर आया साक्षात् सीता का हृदय ही हो—ऐसा आनन्द उसे देखकर राम को हुआ ॥ ६४ ॥

स प्राप हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः ।
अपयोधरसंसर्गां प्रियालिङ्गननिर्वृतिम् ॥ ६५ ॥

हृदये वक्षसि न्यस्तस्य धृतस्य मणेरभिज्ञानरत्नस्य स्पर्शेन निमीलितो मोदितः स रामोऽविद्यमानः पयोधरसंसर्गः स्तनस्पर्शो यस्यास्तां तथाभूतां प्रियाया आलिङ्गनेन या निर्वृतिरानन्दस्तां प्राप ॥

अन्वयः—हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः सः अपयोधरसंसर्गां प्रियालिङ्गननिर्वृतिम् अवाप ।

व्याख्या—हृदये = वक्षस्थले न्यस्तः = निहितः मणिः = प्रत्यभिज्ञानचूडारत्नं, तस्य स्पर्शः = संपर्कः, आलिङ्गनमित्यर्थः, तेन हृदयन्यस्तमणिस्पर्शेन निमीलितः = आनन्देन निमेषरहितः, प्रसन्नः इति हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः सः = रामचन्द्रः धरतः इति धरौ, पयसः = दुग्धस्य धरौ, इति पयोधरौ पयोधरयोः संसर्गः = स्पर्शः, इति पयोधरसंसर्गः । अविद्यमानः पयोधरसंसर्गः यस्याः सा ताम् , अपयोधरसंसर्गाम् । प्रियायाः = प्रियतमायाः आलिङ्गनं = स्पर्शः इति प्रियालिङ्गनं तेन या निर्वृतिः = सुखं तां प्रियालिङ्गननिर्वृतिम् प्राप = अवाप प्राप्तवानित्यर्थः ।

समासः—हृदये न्यस्तः हृदयन्यस्तः हृदयन्यस्तश्चासौ मणिः हृदयन्यस्तमणिः, तस्य स्पर्शस्तेन निमीलितः इति हृदयन्यस्तमणिस्पर्शनिमीलितः। अविद्यमानः पयोधरयोः संसर्गः यस्याः सा ताम् अपयोधरसंसर्गाम्। प्रियायाः आलिंगनमिति प्रियालिंगनं तेन या निर्वृतिस्तां प्रियालिंगननिर्वृतिम् ॥

हिन्दी—वक्षस्थल पर (छाती पर) रखी हुई सीताजी की चूड़ामणि के स्पर्श से आनन्द विभोर हुए रामचन्द्रजी ने स्तनों के स्पर्शरहित सीताजी के आलिंगन सुख को प्राप्त कर लिया। अर्थात् उस मणि को छाती से लगाकर रामजी को ऐसा अनुभव हुआ, मानों सीताजी ही आ मिली हों ॥ ६५ ॥

श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मेने तत्सङ्गमोत्सुकः।
महार्णवपरिक्षेपं लङ्कायाः परिखालघुम् ॥ ६६ ॥

प्रियाया उदन्तं वार्ताम्। 'उदन्तः साधुवार्तयोः' इति विश्वः। श्रुत्वा तस्याः सीतायाः संगम उत्सुको रामो लङ्कायाः संबन्धी यो महार्णव एव परिक्षेपः परिवेषस्तं परिखालघुं दुर्गवेष्टनवत्सुतरं मेने ॥

अन्वयः—प्रियोदन्तं श्रुत्वा तत्संगमोत्सुकः रामः लंकायाः महार्णवपरिक्षेपं परिखालघुम् मेने।

व्याख्या—प्रियायाः = सीतायाः उदन्तः = वार्ता, इति प्रियोदन्तस्तं प्रियोदन्तं "वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्" इत्यमरः। श्रुत्वा = आकर्ण्य हनुमन्मुखादित्यर्थः। उद्गतः अन्तः यस्य स उदन्तः। तस्याः = सीतायाः संगमः = मिलनं तत्र उत्सुकः = उत्कण्ठितः इति तत्संगमोत्सुकः रामः = राघवः लंकायाः = रावणनगर्याः अर्णांसि = जलानि सन्ति यत्र सः अर्णवः = समुद्रः महांश्चासौ अर्णवः महार्णवः। महार्णवः = महासागरः एव परिक्षेपः = परिवेषः, परितो वेष्टनमित्यर्थः। तं महार्णवपरिक्षेपम् परितः खन्यते इति परिखा = खेयं। परिखावत् लघुः = सुतरस्तं परिखालघुं मेने = अमंस्त।

समासः—तस्याः संगमः तत्संगमस्तत्र उत्सुकः इति तत्संगमोत्सुकः। प्रियाया उदन्तः प्रियोदन्तस्तं प्रियोदन्तम्। महांश्चासौ अर्णवः महार्णवः, स एव परिक्षेपस्तं महार्णवपरिक्षेपम्। परिखावत् लघुः परिखालघुस्तं तथोक्तम्।

हिन्दी—सीताजी का सन्देश सुनकर उनसे मिलने के लिए उत्कण्ठित (उतावले) हुए राम ने लंका के चारों ओर महासागर के घेरे को भी एक खाई के समान माना। अर्थात् गहरे चौड़े समुद्र को भी राम ने किले की खाई की तरह लांघने योग्य माना ॥ ६६ ॥

स प्रतस्थेऽरिनाशाय हरिसैन्यैरनुद्रुतः।
न केवलं भुवः पृष्ठे व्योम्नि संबाधवर्तिभिः ॥ ६७ ॥

केवलमेकं भुवः पृष्ठे भूतले न किंतु व्योम्नि च संबाधवर्तिभिः संकटगामिभिर्हरिसैन्यैः कपिबलैरनुद्रुतोऽन्वितः सन्स रामोऽरिनाशाय प्रतस्थे चचाल ॥

अन्वयः—केवलं भुवः पृष्ठे न "किन्तु" व्योम्नि च संबाधवर्तिभिः हरिसैन्यैः अनुद्रुतः सन् सः अरिनाशाय प्रतस्थे ।

व्याख्या—केवलम् = एकं भुवः = पृथिव्याः पृष्ठे = स्थले धरणीतले न किन्तु व्योम्नि = आकाशेऽपि सम्यक् बाधा यत्र स संबाधः । सम्बाधेन = संकीर्णेन वर्तन्ते इति सम्बाधवर्तिनस्तैः सम्बाधवर्तिभिः । सम्बाधं यथा स्यात्तथा वर्तन्ते = गच्छन्ति, इति वा । हरीणां = वानराणां सैन्यानि = सैनिकास्तैः हरिसैन्यैः । हरयः एव सैन्या इति हरिसैन्यास्तैर्वा । अनुद्रुतः = अनुधावितः युक्त इत्यर्थः सन् रामः = राघवः अरीणां = शत्रूणां रक्षसां नाशः = विनाशः = मारणमित्यर्थः तस्मै अरिनाशाय प्रतस्थे = प्रस्थानं कृतवान् ।

समासः—अरीणां नाशः अरिनाशस्तस्मै अरिनाशाय । सम्बाधेन वर्तिनस्तैः सम्बाधवर्तिभिः ।

हिन्दी—जमीन में ही नहीं किन्तु आकाश में भी भीड़ के कारण बड़ी कठिनता से चलने वाली वानरी सेना से युक्त (लैस) होकर रामचन्द्र जी शत्रु का विनाश करने चल पड़े ॥६७॥

निविष्टमुदधेः कूले तं प्रपेदे विभीषणः ।
स्नेहाद्राक्षसलक्ष्म्येव बुद्धिमाविश्य चोदितः ॥ ६८ ॥

उदधेः कूले निविष्टं तं रामम् । विशेषेण भीषयते शत्रूनिति विभीषणो रावणानुजः । राक्षसलक्ष्म्या स्नेहाद् बुद्धिं कर्तव्यताज्ञानमाविश्य चोदितः प्रणोदित इव । प्रपेदे प्राप्तः ॥

अन्वयः—उदधेः कूले निविष्टं तं विभीषणः राक्षसलक्ष्म्या स्नेहात् बुद्धिम् आविश्य चोदित इव प्रपेदे ।

व्याख्या—उदकानि धीयन्तेऽत्रेति उदधिस्तस्य उदधेः = सागरस्य कूले तीरे निविष्टम् = उपविष्टं निवेशितसैन्यमित्यर्थः तं = रामं विशेषेण भीषयते शत्रूनिति विभीषणः = रावणभ्राता राक्षसानां = रावणादीनां लक्ष्मीः = राजश्रीः तया राक्षसलक्ष्म्या स्नेहात् = प्रेम्णः बुध्यते = ज्ञायतेऽनया कर्तव्यमिति सा तां बुद्धिम् मतिम् कर्तव्यताज्ञानमित्यर्थः । आविश्य = प्रविश्य = आस्थायेत्यर्थः चोदितः = नोदितः प्रेरितः इव = यथा प्रपेदे = प्राप । समुद्रतटोपविष्टस्य रामस्य शरणमागतो विभीषण इत्यर्थः ।

समासः—राक्षसानां लक्ष्मीः राक्षसलक्ष्मीः तया राक्षसलक्ष्म्या ।

हिन्दी—समुद्र के किनारे पर पड़ाव डालकर बैठे हुए राम के पास रावण का भाई विभीषण आया । मानो राक्षसों की राजलक्ष्मी ने स्नेहवश उसकी बुद्धि में प्रविष्ट होकर प्रेरित किया हो । अर्थात् राम की शरण में जाने से ही कल्याण है यह समझा दिया गया हो ॥६८॥

तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्राव राघवः ।
काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः ॥ ६९ ॥

राघवस्तस्मै विभीषणाय । 'प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता' इति संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । निशाचरैश्वर्यं राक्षसाधिपत्यं प्रतिशुश्राव प्रतिज्ञातवान् । तथाहि । कालेऽवसरे समारब्धाः प्रक्रान्ता नीतयः फलं बध्नन्ति गृह्णन्ति खलु । जनयन्तीत्यर्थः ॥

अन्वयः—राघवः तस्मै निशाचरैश्वर्यं प्रतिशुश्राव, "तथाहि–" काले समारब्धाः नीतयः फलं बध्नन्ति खलु।

व्याख्या—राघवः = रामचन्द्रः तस्मै = विभीषणाय निशायां = रात्रौ चरन्ति = गच्छन्ति, भक्षयन्ति च इति निशाचराः। निशाचराणां = राक्षसानाम् ऐश्वर्यं = राजलक्ष्मीः, तत् निशाचरैश्वर्यं = लंकाधिपत्यमित्यर्थः। प्रतिशुश्राव = तुभ्यं दास्यामीति प्रतिज्ञातवान्। तथाहि— काले = अवसरे समारब्धाः = प्रक्रान्ताः, कृतारम्भा इत्यर्थः, नीयन्ते = संलभ्यन्ते उपायादयः, ऐहिकामुष्मिकार्थाः वा यासु, आभिर्वा ताः नीतयः = नयाः फलं = सस्यादिकं, लाभं बध्नन्ति = गृह्णन्ति, उत्पादयन्तीत्यर्थः खलु = निश्चयेन।

समासः—निशाचराणाम् ऐश्वर्यमिति निशाचरैश्वर्यं तत् निशाचरैश्वर्यम्। सम्यग् आरब्धाः समारब्धाः।

हिन्दी—रामचन्द्र जी ने विभीषण को राक्षसों का राजा बना देने की प्रतिज्ञा की। अर्थात् लंका का राज्य देना स्वीकार कर लिया। ठीक भी है। अवसर (मौके पर) आरम्भ की हुई (काम में लाई हुई) नीति अवश्य फल देती है ॥ ६९ ॥

स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि।
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः ॥ ७० ॥

स रामो लवणं क्षारमम्भो यस्यासौ लवणाम्भास्तस्मिँल्लवणाब्धौ प्लवगैः प्रयोज्यैः। शार्ङ्गिणो विष्णोः स्वप्नाय शयनाय रसातलात्पातालादुन्मग्नमुत्थितं शेषमिव स्थितम्। सेतुं बन्धयामास ॥

अन्वयः—सः लवणाम्भसि प्लवगैः "प्रयोज्यकर्तृभिः" शार्ङ्गिणः स्वप्नाय रसातलात् उन्मग्नं शेषम् इव सेतुं बन्धयामास।

व्याख्या—सः = रामः प्रयोजककर्ता लवणं = क्षारम् अम्भः = जलं यस्यासौ लवणाम्भाः, तस्मिन् लवणाम्भसि = लवणोदे प्लवेन = प्लुत्या गच्छन्तीति प्लवगास्तैः वानरैः प्रयोज्यकर्तृभिः, शृंगस्य विकारः शार्ङ्गं = धनुरस्यास्तीति शार्ङ्गी तस्य शार्ङ्गिणः विष्णोः स्वप्नाय = स्वापाय "स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेशः" इत्यमरः। रसायाः = पृथिव्याः तलमिति रसातलं तस्मात् रसातलात् = पाताललोकात् उन्मग्नम् = उत्थितं शेषम् = अनन्तम् शेषनागमित्यर्थः इव = यथा स्थितम्। "अनन्तः केशवे शेषे पुमान्" इति कोषः। सीयते = बध्यते इति सेतुस्तं सेतुम् = आलिम् "सेतुरालौ पुमान्" इत्यमरः। बन्धयामास = बन्धयति स्म। प्लवगाः सेतुं बध्नन्ति स्म, तान् रामः प्रेरयति स्म रामः प्लवगैः सेतुं बन्धयति स्म।

समासः—लवणम् अम्भः यस्य स लवणाम्भाः, तस्मिन् लवणाम्भसि। रसायाः तलम् रसातलं तस्मात् रसातलात्।

हिन्दी—रामने खारे समुद्रपर वानरों को लगाकर (प्रेरितकर) पुल बन्धवाया। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों विष्णु को अपने ऊपर सुलाने के लिये पाताल लोक से शेषनाग ही ऊपर आ गये हो ॥ ७० ॥

तेनोत्तीर्य पथा लङ्कां रोधयामास पिङ्गलैः ।
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः ॥ ७१ ॥

रामस्तेन पथा सेतुमार्गेणोत्तीर्य । सागरमिति शेषः । पिङ्गलैः सुवर्णवर्णैरत एव द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव स्थितैर्वानरैर्लङ्कां रोधयामास ।

अन्वयः—रामः तेन पथा उत्तीर्य पिंगलैः "अत एव" द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिः इव स्थितैः वानरैः लंकां रोधयामास ॥

व्याख्या—रामः तेन पथा = सेतुवर्त्मना सागरमुत्तीर्य = समुद्रं तीर्त्वा पिञ्जन्तीति वा पिंगं = वर्णं लान्तीति पिङ्गलास्तैः पिङ्गलैः = पिशङ्गैः सुवर्णवर्णैरित्यर्थः । अत एव द्वितीयम् = अपरम् हेम्नः = सुवर्णस्य प्राकारः = वरणः तं हेमप्राकारं "प्राकारो वरणः सालः" इत्यमरः । सुवर्णप्राचीरमिव कुर्वद्भिः = कुर्वाणैः इव = यथा स्थितैः वने भवं फलादि वानम्, वानं लान्ति = आददतीति वानरास्तैः वानरैः । वा = किंचित् नरा इव वानरास्तैः वानरैः = प्लवङ्गमैः, हनुमन्नलनीलादिभिः लंकां = राक्षसपुरीं रोधयामास = रोधयति स्म ।

समासः—हेम्नः प्राकारः हेम प्राकारस्तं हेमप्राकारम् ॥

हिन्दी—उस पुल के मार्ग से सागर को पार कर के रामजी ने लंका नगरी को वानरों से घेर लिया । सोने के समान वर्ण वाले उन पीले-पीले बन्दरों से घिरी हुई लंका ऐसी दीखती थी "मानो" चारों ओर दूसरी सोने की दीवार खड़ी हो । अर्थात् सोने की लंका की दीवार परकोटा पहले सोने का था ही, और अब दूसरी दीवार सुवर्ण वर्ण के बन्दरों की हो गई थी ॥ ७१ ॥

रणः प्रववृते तत्र भीमः प्लवगरक्षसाम् ।
दिग्विजृम्भितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः ॥ ७२ ॥

तथा लङ्कायां प्लवगानां रक्षसां च भीमो भयंकरो दिग्विजृम्भितं काकुत्स्थपौलस्त्ययो रामरावणयोर्जयघोषणं जयशब्दो यस्मिन्स तथोक्तो रणः प्रववृते प्रवृत्तः । 'अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ' इत्यमरः ॥

अन्वयः—तत्र प्लवगरक्षसां भीमः दिग्विजृम्भितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः रणः प्रववृते ।

व्याख्या—तत्र = लंकायां प्लवगाः = वानराः रक्षांसि = राक्षसाश्च इति प्लवगरक्षांसि, तेषां प्लवगरक्षसाम् भीमः = भयंकरः काकुत्स्थः = रामश्च पौलस्त्यः = रावणश्चेति काकुत्स्थपौलस्त्यौ तयोः काकुत्स्थपौलस्त्ययोः जयः = विजयस्तस्य घोषणं = प्रख्यापनम् इति काकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणम् । दिक्षु = काष्ठासु विजृम्भितं = प्रसृतं व्याप्तं, काकुत्स्थपौलस्त्ययोर्जयघोषणं यत्र स दिग्विजृम्भितकाकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः रणः = युद्धम् "रणः कोणे क्वणे पुंसि समरे पुंनपुंसकम्" इति मेदिनी, प्रववृते = प्रारब्धः ।

समासः—प्लवगाश्च रक्षांसि चेति प्लवगरक्षांसि तेषां प्लवगरक्षसाम् । काकुत्स्थश्च पौलस्त्यश्चेति काकुत्स्थपौलस्त्यौ, दिक्षु विजृम्भितं काकुत्स्थपौलस्त्ययोर्जयस्य घोषणं यस्मिन् स काकुत्स्थपौलस्त्यजयघोषणः ।

हिन्दी—लंका में बन्दरों और राक्षसों का ऐसा भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ कि जिसमें चारों दिशाओं में राम और रावण की जय-जय कार का शब्द व्याप्त हो गया। अर्थात् गूँज उठा ॥ ७२ ॥

पादपाविद्धपरिघः शिलानिष्पिष्टमुद्गरः।
अतिशस्त्रनखन्यासः शैलरुग्णमतंगजः ॥ ७३ ॥

किंविधो रणः। पादपैर्वृक्षैराविद्धा भग्नाः परिघा लोहबद्धकाष्ठानि यस्मिन्स तथोक्तः। 'परिघः परिघातनः' इत्यमरः। शिलाभिर्निष्पिष्टाश्चूर्णिता मुद्गरा अयोघना यस्मिन्स तथोक्तः। 'द्रुघणो मुद्गरघनौ' इत्यमरः। अतिशस्त्राः शस्त्राण्यतिक्रान्ता नखन्यासा यस्मिन्स तथोक्तः। शैले रुग्णा भग्ना मतंगजा यस्मिन्स तथोक्तः ॥

अन्वयः—पादपाविद्धपरिघः शिलानिष्पिष्टमुद्गरः अतिशस्त्रनखन्यासः शैलरुग्णमतंगजः रणः प्रववृते, इति पूर्वेणान्वयः ॥

व्याख्या—परितः हन्यतेऽनेनेति परिघः। पादपैः = वृक्षैः आविद्धाः = भग्नाः परिघाः = परिघातनाः, लौहमुखलगुडाः यस्मिन् स पादपाविद्धपरिघः। शिलाभिः = पाषाणैः निष्पिष्टाः = चूर्णिताः मुद्गराः घनाः = अयोघना इत्यर्थः यस्मिन् स शिलानिष्पिष्टमुद्गरः। "परिघः परिघातनः" इति "द्रुघणो मुद्गरघनौ" इति चामरः। गिरतीति गिरः, मुदः = हर्षस्य गिरः मुद्गरः। शस्त्राणि अतिक्रान्ताः इति अतिशस्त्राः। नखानां = कररुहाणां न्यासाः इति नखन्यासाः। अतिशस्त्राः = शस्त्रेभ्योऽप्यधिकाः नखन्यासाः = नक्षतानि यस्मिन् सः अतिशस्त्रनखन्यासः। शैलैः = महापर्वतैः रुग्णाः = भग्नाः मतंगजाः = मत्तदन्तिनः यस्मिन् स शैलरुग्णमतंगजः रणः प्रववृते इति पूर्वश्लोकेनान्वयः।

समास—पादपैः आविद्धाः परिघाः यस्मिन् स तथोक्तः। शिलाभिः निष्पिष्टाः मुद्गराः यस्मिन् स तथोक्तः। शस्त्राणि अतिक्रान्ताः अतिशस्त्राः। अतिशस्त्राः नखानां न्यासाः यस्मिन् सः अतिशस्त्रनखन्यासः। शैलैः रुग्णाः मतंगजाः यस्मिन् स शैलरुग्णमतंगजः।

हिन्दी—उस युद्ध में कपिसेना ने, पेड़ों से मार-मार कर राक्षसों की लोहे की गदाएं तोड़ दीं और चट्टानें वर्षा कर लोहा लगी मुद्गरें पीस डाली। तथा शस्त्रों के घावों से बढ़कर (भयंकर) बन्दरों के नाखूनों के घाव थे। और पर्वतों से उन्मत्त हाथियों को मार डाला था, ऐसा भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ ७३ ॥

अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम्।
सीतां मायेति शंसन्ती त्रिजटा समजीवयत् ॥ ७४ ॥

अथानन्तरम्। छिद्यत इति छेदः खण्डः। शिर एव छेद इति विग्रहः। रामशिरश्छेदस्य विद्युज्जिह्वाख्यराक्षसमायानिर्मितस्य दर्शनेनोद्भ्रान्तचेतनां गतसंज्ञां सीतां त्रिजटा नाम काचित्सीतापक्षपातिनी राक्षसी मायाकल्पितं न त्वेतत्सत्यमिति शंसन्ती ब्रुवाणा। 'शप्श्यनोर्नित्यम्' इति नित्यं नुमागमः। समजीवयत् ॥

अन्वयः—अथ रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम्, सीतां त्रिजटा माया इति शंसन्ती समजीवयत्।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् छिद्यते इति छेदः । रामस्य शिरः = मस्तकमिति रामशिरः एव छेदः = खण्डः इति रामशिरश्छेदः, तस्य दर्शनम् = अवलोकनं तेन उद्भ्रान्ता = भ्रान्तिमापन्ना चेतना = संज्ञा, ज्ञानमित्यर्थः, यस्याः सा तां रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम्, सीतां = जानकीं जटति = परस्परं संलग्ना भवतीति जटा । जायते = प्रादुर्भवतीति वा जटा । तिस्रः जटाः = शिखाः यस्याः सा त्रिजटा, एतन्नाम्नी सीताहिते रता राक्षसी माया = विद्युज्जिह्वनामकराक्षसनिर्मिता, ऐन्द्रजालिकमिदं शिरश्छेदप्रदर्शनं नतु सत्यमिति शंसन्ती = कथयन्ती समजीवयत् तत्प्राणानरक्षयत् ।

समासः—रामस्य शिर एव छेदः रामशिरश्छेदस्तस्य दर्शनं तेन उद्भ्रान्ता चेतना यस्याः सा तां रामशिरश्छेददर्शनोद्भ्रान्तचेतनाम् । तिस्रः जटाः यस्याः सा त्रिजटा ।

हिन्दी—"युद्धारम्भ होने पर इसी समय" "विद्युज्जिह्व नाम के राक्षस ने माया से" राम का शिर रूपी टुकड़ा (मुण्ड) सीता के सामने रख दिया, उसे देखते ही सीताजी मूर्च्छित हो गई । तभी त्रिजटा नाम की राक्षसी ने यह तो माया का झूठा शिर है कहते हुए सीताजी को जिलाया-बचाया ॥ ७४ ॥

कामं जीवति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम् ।
प्राङ् मत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता ॥ ७५ ॥

सा सीता मे नाथो जीवतीति हेतोः शुचं शोकं कामं विजहौ । किंतु प्राक्पूर्वमस्य नाथस्यान्तं नाशं सत्यं यथार्थं मत्वा जीविता जीवितवत्यस्मीति हेतोर्लज्जिता लज्जावती । कर्तरि क्तः । दुःखादपि दुःसहो लज्जाभर इति भावः ॥

अन्वय—सा मे नाथः जीवति इति शुचं कामं विजहौ । "किन्तु" प्राक् अस्य अन्तं सत्यं मत्वा जीविता अस्मि इति लज्जिता ।

व्याख्या—सा = सीता मे = मम सीतायाः इत्यर्थः नाथः = स्वामी पतिः जीवति = प्राणान् धारयति, इति = हेतोः शुचं = शोकं कामं = यथेष्टं विजहौ = तत्याज । किन्तु प्राक् = पूर्वं, त्रिजटाबोधनात् पूर्वमित्यर्थः । अस्य = नाथस्य पत्युः अन्तं = विनाशं सत्यं = वास्तविकं मत्वा = निश्चित्य जीविता = जीवितवती अस्मि, पतिनाशं श्रुत्वाऽपि पूर्वं नाहं मृता इति हेतोः लज्जा संजातास्याः सा लज्जिता = लज्जावती जाता ।

हिन्दी—मेरे नाथ (पति देव) जीवित हैं यह जानकर सीता ने शोक का तो सर्वथा त्याग कर दिया । किन्तु पहले पति के विनाश को सच मानकर मैं जीवित रही (मर क्यों नहीं गई) यह सोचकर बड़ी लज्जित हुई । भाव यह है कि दुःख तो सहा जा सकता है, किन्तु लज्जा असह्य होती है ॥ ७५ ॥

गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः ।
दाशरथ्योः क्षणक्लेशः स्वप्नवृत्त इवाभवत् ॥ ७६ ॥

गरुडस्ताक्ष्यः तस्यापातेनागमनेन विश्लिष्टं मेघनादस्येन्द्रजितोऽस्त्रेण नागपाशेन बन्धनं यस्मिन्स तथोक्तः। क्षणक्लेशो दाशरथ्यो रामलक्ष्मणयोः स्वप्नवृत्तः स्वप्नावस्थायां भूत इवाभवत्॥

अन्वयः—गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः क्षणक्लेशः दाशरथ्योः स्वप्नवृत्त इव अभवत्।

व्याख्या—गरुद्भिः = पक्षैः डयते = आकाशे गच्छतीति गरुडः। गरुडस्य = वैनतेयस्य आपातः = आगमनं तेन विश्लिष्टं = वियुक्तं पृथग्भूतमित्यर्थः। मेघनादस्य = रावणपुत्रस्य अस्त्रेण = नागपाशेन बन्धनं = उद्दानं यस्मिन् स गरुडापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः। "समे तूद्दानबन्धने" इत्यमरः। क्षणं = किंचित्कालं क्लेशः = कष्टमिति तयोः दाशरथ्योः = राम-लक्ष्मणयोः स्वप्ने = स्वप्नावस्थायां वृत्तः = भूतः इति स्वप्नवृत्त इव = यथा अभवत् = जातः। स्वप्नवत् तद्बन्धनदुःखमपि क्षणिकमेवाभूदित्यर्थः।

समासः—मेघस्य नाद इव नादो यस्य स मेघनादः। मेघनादस्य अस्त्रमिति मेघनादास्त्रं तेन बन्धनमिति मेघनादास्त्रबन्धनम्, गरुडस्य आपातः गरुडापातः, गरुडापातेन विश्लिष्टं मेघ-नादास्त्रबन्धनं यस्मिन् स गरुडपातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः। क्षणं क्लेशः क्षणक्लेशः। स्वप्ने वृत्तः स्वप्नवृत्तः।

हिन्दी—गरुड़ के आजाने से अलग हो गया (टूट गया) है मेघनाद के अस्त्र नाग-पाश का बन्धन जिसमें ऐसा क्षणभर का क्लेश (दुःख) राम लक्ष्मण को स्वप्न के समान लगा। अर्थात् मेघनाद ने राम लक्ष्मण को नागपाश में बाँधा कि तुरन्त गरुड़ के आते ही नाग भागे, और वह क्षण भर का बन्धन उन दोनों को स्वप्न-सा लगा॥ ७६॥

ततो बिभेद पौलस्त्यः शक्त्या वक्षसि लक्ष्मणम्।
रामस्त्वनाहतोऽप्यासीद्विदीर्णहृदयः शुचा॥ ७७॥

ततः पौलस्त्यो रावणिः शक्त्या कासूनामकेनायुधेन। 'कासूसामर्थ्ययोः शक्तिः' इत्यमरः। लक्ष्मणं वक्षसि बिभेद विदारयामास। रामस्त्वनाहतोऽप्यहतोऽपि शुचा शोकेन विदीर्ण-हृदय आसीत्॥

अन्वयः—ततः पौलस्त्यः शक्त्या लक्ष्मणं वक्षसि बिभेद, रामः तु अनाहतः अपि शुचा विदीर्णहृदयः आसीत्।

व्याख्या—ततः = नागपाशक्षयानन्तरम् पुलस्त्येः गोत्रापत्यं पौलस्त्यः = रावणिः = मेघनाद इत्यर्थः। शक्यते जेतुमनया, सा शक्तिस्तया शक्त्या = कासूनामायुधेन "कासूसामर्थ्ययोः शक्तिः" इत्यमरः "स्यात्कासूः शक्त्यायुधेऽपि च" इति च विश्वः। लक्ष्मणं = सौमित्रिं वक्षसि = हृदये, बिभेद = अभिनत् विदीर्णवान् इत्यर्थः। रामः = रामचन्द्रः तु न आहतः अनाहतः = अताडितः अपि शुचा = शोकेन विदीर्णं = भिन्नं हृदयं = चित्तं यस्य स विदीर्णहृदयः अभ-वत् = जातः। अनुजदुःखेन दुःखितोऽभूदित्यर्थः।

समासः—न आहतः अनाहतः। विदीर्णं हृदयं यस्य स विदीर्णहृदयः।

हिन्दी—नागपाश के छूटने पर, रावणपुत्र मेघनाद ने शक्ति बाण से लक्ष्मण के हृदय को वेध दिया। और राम तो बिना मारे ही "लक्ष्मण को देखकर" शोक से विदीर्ण हृदय वाले हो गये। अर्थात् शोक से उनका हृदय फटने लगा ॥ ७७ ॥

स मारुतिसमानीतमहौषधिहतव्यथः ।
लङ्कास्त्रीणां पुनश्चक्रे विलापाचार्यकं शरैः ॥ ७८ ॥

स लक्ष्मणो मारुतिना मरुत्सुतेन हनुमता समानीतया महौषध्या संजीविन्या हतव्यथः सन्पुनः शरैर्लङ्कास्त्रीणां विलापे परिदेवने। 'विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः। आचार्यकमाचार्य-कर्म। 'योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ्' इति वुञ्। चक्रे पुनरपि राक्षसाञ्जघानेति व्यज्यते ॥

अन्वयः—सः मारुतिसमानीतमहौषधिहतव्यथः सन् पुनः शरैः लंकास्त्रीणाम् विलापा-चार्यकं चक्रे।

व्याख्या—महती चासौ ओषधिः महौषधिः। मरुतस्यापत्यं पुमान् मारुतिः। मारुतिना = हनुमता समानीता = आनीता या महौषधिः = संजीविनी तया हता = दूरीभूता नष्टा व्यथा = पीडा यस्य स मारुतिसमानीतमहौषधिहतव्यथः सन् सः = लक्ष्मणः पुनः = भूयः लङ्कायाः = रावणपुर्याः स्त्रियः = राक्षस्यः तासां लङ्कास्त्रीणां विलापे = परिदेवने, रोदने इत्यर्थः। आचा-र्यकम् = आचार्यकर्म, इति विलापाचार्यकं चक्रे = कृतवान्। पुनः राक्षसविनाशकरणेन तासां विलापयिता जातः इत्यर्थः।

समासः—महती चासौ ओषधिरिति महौषधिः। मारुतिना समानीता या महौषधिः तया हता व्यथा यस्य स मारुतिसमानीतमहौषधिहतव्यथः। विलापे आचार्यकं विलापाचार्यकं तद् विलापाचार्यकम्। लङ्कायाः स्त्रियस्तासां लङ्कास्त्रीणाम्।

हिन्दी—हनुमान् जी के द्वारा धौलागिरि से लाई संजीविनी बूटी से पीड़ा के नष्ट होते ही लक्ष्मणजी ने फिर लङ्का की स्त्रियों के रोने-चिल्लाने में आचार्य का काम किया। अर्थात् संजीविनी बूटी पीने पर स्वस्थ हुए लक्ष्मण ने राक्षसों को मार कर उन की विधवाओं को खूब रुलाया ॥ ७८ ॥

स नादं मेघनादस्य धनुश्चेन्द्रायुधप्रभम् ।
मेघस्येव शरत्कालो न किंचित्पर्यशेषयत् ॥ ७९ ॥

स लक्ष्मणः। शरत्कालो मेघस्येव। मेघनादस्येन्द्रजितो नादं सिंहनादम्। अन्यत्र गर्जितं च इन्द्रायुधप्रभं शक्रधनुःप्रभं धनुश्च किंचिदल्पमपि न पर्यशेषयन्नावशेषितवान्। तमवधीदित्यर्थः॥

अन्वयः—सः शरत्कालः मेघस्य इव मेघनादस्य नादम्, इन्द्रायुधप्रभं धनुः च न किंचित् पर्यशेषयत्।

व्याख्या—सः = लक्ष्मणः शरदः = शरदृतोः कालः = समयः इति शरत्कालः मेघस्य = जलधरस्य इव = यथा मेघस्य = घनस्य नादः = गर्जनम् इव नादः यस्य स तस्य मेघनादस्य =

इन्द्रजितः, रावणपुत्रस्य नादं गर्जनम् सिंहनादमित्यर्थः। अन्यत्र मेघपक्षे गर्जितम् च इन्द्रस्य = मघोनः आयुधं = धनुरिति इन्द्रायुधं तस्य प्रभा = कान्तिरिव प्रभा यस्य तत् इन्द्रायुधप्रभं तत् धनुः = मेघनादचापं च किंचित् = अल्पमपि न पर्यशेषयत् = न अवशेषितवान्, लक्ष्मणः मेघनादं तद्धनुश्च विनाशितवानित्यर्थः।

समासः—मेघवत् नादः यस्य स मेघनादस्तस्य मेघनादस्य। इन्द्रस्य आयुधमिति, इन्द्रायुधं तस्य प्रभा इव प्रभा यस्य तत् इन्द्रायुधप्रभम्, तत्। शरदः कालः शरत्कालः।

हिन्दी—जिस प्रकार शरदृतु मेघ के गर्जन तथा सातरङ्ग वाले इन्द्रधनु को समाप्त कर देता है, उसी प्रकार लक्ष्मण ने मेघनाद के सिंहगर्जन को और इन्द्रधनुष के समान चमचमाते उसके धनुष को भी समाप्त कर दिया। अर्थात् उसके धनुष को तोड़ डाला और मेघनाद को मार डाला॥ ७९॥

कुम्भकर्णः कपीन्द्रेण तुल्यावस्थः स्वसुः कृतः।
रुरोध रामं शृङ्गीव टङ्कच्छिन्नमनःशिलः॥ ८०॥

कपीन्द्रेण सुग्रीवेण स्वसुः शूर्पणखायास्तुल्यावस्थो नासाकर्णच्छेदेन सदृशः कृतः कुम्भकर्णष्टङ्केन शिलाभेदकशस्त्रेण छिन्ना मनःशिला रक्तवर्णधातुविशेषो यस्य स तथोक्तः। 'टङ्कः पाषाणदारणः' इति, 'धातुर्मनःशिलाद्यद्रेः' इति चामरः। शृङ्गी शिखरीव। रामं रुरोध॥

अन्वयः—कपीन्द्रेण स्वसुः तुल्यावस्थः कृतः कुम्भकर्णः टंकच्छिन्नमनःशिलः शृंगी इव रामम् रुरोध।

व्याख्या—कपीनां = वानराणाम् इन्द्रः = राजा, कपीन्द्रस्तेन कपीन्द्रेण = सुग्रीवेण सुष्ठु अस्यति या सा स्वसा तस्याः स्वसुः = भगिन्याः शूर्पणखाया इत्यर्थः। तुल्या = नासिकाकर्णकर्तनेन समाना अवस्था = दशा यस्य स तुल्यावस्थः कृतः = विहितः कुम्भौ इव कर्णौ यस्य स कुम्भकर्णः = रावणभ्राता, टङ्केन = पाषाणदारणेन छिन्ना = भिन्ना मनःशिला = रक्तवर्णो धातुविशेषः यस्य स टंकच्छिन्नमनःशिलः, मनःशब्दवाच्या शिला मनःशिला। "टंकः पाषाणदारणः" इत्यमरः। शृंगाणि = शिखराणि सन्ति अस्यासौ शृंगी = पर्वतः इव = यथा रामं = राघवं रुरोध = अवरुद्धवान्।

समासः—कुम्भौ इव कर्णौ यस्य स कुम्भकर्णः। कपीनाम् इन्द्रस्तेन कपीन्द्रेण। तुल्या अवस्था यस्य स तुल्यावस्थः। टङ्केन छिन्ना मनःशिला यस्य स टङ्कच्छिन्नमनःशिलः।

हिन्दी—नाक कान काटकर वानरराज सुग्रीव के द्वारा शूर्पणखा के समान किये गए दशा वाले कुम्भकर्ण ने राम को उस पर्वत की तरह रोक दिया, जिसकी मैनसिल की चट्टाने टांकियों से काट दी गई हैं। अर्थात् मैनसिल की चट्टान काटने से लाल-लाल रङ्ग पर्वत से झरने लगता है, वैसे ही कुम्भकर्ण के नाक कान कटने से रक्त की धारा निकली थी, और पर्वताकार तो वह था ही। इसी दशा में राम के सामने आ खड़ा हुआ था॥ ८०॥

अकाले बोधितो भ्रात्रा प्रियस्वप्नो वृथा भवान्।
रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्रां प्रवेशितः॥ ८१॥

प्रियस्वप्न इष्टनिद्रोऽनुजो भवान्वृथा भ्रात्रा रावणेनाकाले बोधित इतीवासौ कुम्भकर्णो रामेषुभी रामबाणैर्दीर्घनिद्रां मरणं प्रवेशितो गमितः। यथा लोकेष्विष्टवस्तुविनाशदुःखितस्य ततोऽपि भूयिष्ठमुपपाद्यते तद्वदिति भावः ॥

अन्वयः—प्रियस्वप्नः भवान् वृथा भ्रात्रा अकाले बोधितः इति इव असौ रामेषुभिः दीर्घनिद्रां प्रवेशितः।

व्याख्या—प्रियः = इष्टः स्वप्नः = स्वापः, निद्रा यस्य स प्रियस्वप्नः भवान् = कुम्भकर्णः वृथा = निरर्थकं भ्रात्रा = रावणेन न कालः अकालस्तस्मिन् अकाले = असमये बोधितः = उत्थापितः, निद्राया इत्यर्थः। इति = हेतोः इव = यथा असौ = कुम्भकर्णः रामस्य = राघवस्य इषवः = बाणास्तैः रामेषुभिः दीर्घा = आयता = लम्बायमाना चासौ निद्रा = शयनमिति दीर्घनिद्रा तां दीर्घनिद्रां मृत्युमित्यर्थः प्रवेशितः = गमितः प्रापितः।

समासः—प्रियः स्वाप्नः यस्य स प्रियस्वप्नः। न कालः अकालस्तस्मिन् अकाले। रामस्य इषवः रामेषवस्तैः रामेषुभिः। दीर्घा चासौ निद्रा, तां दीर्घनिद्राम्।

हिन्दी—तुम को निद्रा (नींद) प्यारी है और व्यर्थ ही असमय में तुम्हारे भाई रावण ने जगा दिया है मानो इसी कारण कुम्भकर्ण को राम के बाणों ने लम्बी नींद में सुला दिया, अर्थात् सदा के लिये सुला दिया, मार दिया ॥ ८१ ॥

इतराण्यपि रक्षांसि पेतुर्वानरकोटिषु।
रजांसि समरोत्थानि तच्छोणितनदीष्विव ॥ ८२ ॥

इतराणि रक्षांस्यपि वानरकोटिषु। समरोत्थानि रजांसि तेषां रक्षसां शोणितनदीषु रक्तप्रवाहेष्विव पेतुः। निपत्य मृतानीत्यर्थः ॥

अन्वयः—इतराणि रक्षांसि अपि वानरकोटिषु, समरोत्थानि रजांसि तच्छोणितनदीषु इव पेतुः।

व्याख्या—तरणं तरः, एः = कामस्य तरः इतरः। इनाः = कामेन तरन्तीति, इतराणि, इतराणि = अन्यानि रक्षांसि = राक्षसाः "इतरः पामरेऽन्यस्मिन्" इति हेमचन्द्रः। अपि = समुच्चये वानराणां = कपीनां कोट्यः = संख्याभेदास्तासु वानरकोटिषु, कोटिसंख्यकवानरसेनास्वित्यर्थः। समरे = युद्धस्थले उत्थितानि = उद्भूतानि, समरोत्थितानि रजांसि = धूलयः तेषां = राक्षसानां शोणितं = रक्तं तस्य नद्यः = सरितः। प्रवाह इत्यर्थः। तासु तच्छोणितनदीषु इव = यथा पेतुः = निपतितानि। वानरसेनासु निपत्य अन्यानि रक्षांसि मृतानीत्यर्थः।

समासः—वानराणां कोट्यस्तासु वानरकोटिषु। समरे, समरात् वा उत्थानि समरोत्थानि। तेषां शोणितं तच्छोणितं, तच्छोणितस्य नद्यस्तासु तच्छोणितनदीषु।

हिन्दी—और दूसरे राक्षस भी करोड़ों वानरों की सेना में ऐसे गिर रहे थे, मानो राक्षसों के खून की नदियों में समरभूमि से उठी हुई धुली पड़ रही हो। अर्थात् वानरी सेना ने बाकी राक्षसों को मार कर साफ कर दिया जैसे कि युद्ध स्थल से उठी धूल वहीं खून में दबकर समाप्त हो जाती है ॥ ८२ ॥

**निर्ययावथ पौलस्त्यः पुनर्युद्धाय मन्दिरात् ।
अरावणमरामं वा जगदद्येति निश्चितः ॥ ८३ ॥**

अथ पौलस्त्यो रावणः । अद्य जगदरावणं रावणशून्यमरामं रामशून्यं वा भवेदिति निश्चितो निश्चितवान् । कर्तरि क्तः । विजयमरणयोरन्यतरनिश्चियवान्पुनर्युद्धाय मन्दिरान्निर्ययौ निर्जगाम ॥

अन्वयः—अथ पौलस्त्यः अद्य जगत् अरावणम् अरामं वा "भवेत्" इति निश्चितः । पुनः युद्धाय मन्दिरात् निर्ययौ ।

व्याख्या—अथ = कुम्भकर्णमरणानन्तरम् पौलस्त्यः = रावणः अद्य = अत्राह्नि जगत् = संसारः अविद्यमानः रावणः यस्मिन् तत् अरावणम् = रावणेन शून्यम्, अविद्यमानः रामः यस्मिन् तत् अरामं = रामेण रहितं वा = पक्षान्तरे भवेदिति निश्चितः = निश्चितवान् । पुनः = भूयः युद्धाय = युद्धं कर्तुं मन्दिरात् = स्वगृहात् निर्ययौ = निर्गतः ।

समासः—अविद्यमानः रावणः यस्मिन् तत् अरावणम् । अविद्यमानः रामः यस्मिन् तत् अरामम् ।

हिन्दी—कुम्भकर्ण के मरने पर रावण ने आज संसार में रावण रहेगा या राम ही रहेगा यह निश्चय कर लिया । अर्थात् आज जय प्राप्त करूँगा या मर जाऊँगा । यह प्रतिज्ञा करके युद्ध के लिये राजभवन से निकल पड़ा ॥ ८३ ॥

**रामं पदातिमालोक्य लङ्केशं च वरूथिनम् ।
हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरंदरः ॥ ८४ ॥**

पादाभ्यामततीति पदातिः "पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु" इति पदादेशः । तं पादचारिणं रामम् । वरूथो रथगुप्तिः । 'रथगुप्तिर्वरूथो ना' इत्यमरः । अत्र वरूथेन रथो लक्ष्यते । वरूथिनं रथिनं लङ्केशं चालोक्य पुरंदर इन्द्रः । युगं वहन्तीति युग्या रथाश्वाः । 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' इति यत्प्रत्ययः, हरियुग्यं कपिलवर्णाश्वम् । 'शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु' इत्यमरः । रथं तस्मै रामाय प्रजिघाय प्रहितवान् ॥

अन्वयः—पदातिं रामं, वरूथिनं लंकेशं च आलोक्य, पुरन्दरः हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय ।

व्याख्या—पादाभ्याम् अतति = गच्छतीति पदातिः तं पदातिं = पादचारिणं रामं = रामचन्द्रं वरूथः = रथस्य गुप्तिः = आवरणम् । अत्र च वरूथशब्देन लक्षणया रथः गृह्यते । वरूथः = स्यन्दनमस्येति वरूथी तं वरूथिनं = रथिनं लंकायाः ईशः लंकेशस्तं लंकेशं = रावणं च आलोक्य = दृष्ट्वा पुराणि दारयतीति पुरन्दरः = इन्द्रः युगं वहन्तीति युग्याः । हरयः = हरिद्वर्णाः कपिलाः इत्यर्थः, युग्याः = अश्वाः यस्य स तं हरियुग्यं रथं = स्यन्दनं स्वकीयरथमित्यर्थः तस्मै = रामाय प्रजिघाय = प्रेषयामास ।

समासः—लंकायाः ईशः लंकेशस्तं लंकेशम् । हरयः युग्याः यस्य स तं हरियुग्यम् ।

हिन्दी—"इस युद्ध में" रामचन्द्र जी को पैदल और लंका के राजा रावण को रथ पर देखकर इन्द्र ने हरे पीले रंग के घोड़े जुते अपने रथ को राम के लिये भेज दिया ॥ ८४ ॥

तमाधूतध्वजपटं व्योमगङ्गोर्मिवायुभिः ।
देवसूतभुजालम्बी जैत्रमध्यास्त राघवः ॥ ८५ ॥

राघवो व्योमगङ्गोर्मिवायुभिराधूतध्वजपटम् । मार्गवशादिति भावः । जेतैव जैत्रो जयनशीलः । तं जैत्रम् । जेतृशब्दात्तृन्नन्तात् 'प्रज्ञादिभ्यश्च' इति स्वार्थेऽण्प्रत्ययः । तं रथं देवसूतभुजालम्बी मातलिहस्तावलम्बः सन्नध्यास्ताधिष्ठितवान् । आसेर्लङ् ॥

अन्वयः—राघवः व्योमगंगोर्मिवायुभिः आधूतध्वजपटम् जैत्रं तं देवसूतभुजालम्बी सन् अध्यास्त ।

व्याख्या—राघवः = रामः व्योम्नि व्योम्नः वा गंगा, व्योमगंगायाः = मन्दाकिन्याः ऊर्मयः = तरंगाः, तेषां वायवः = पवनास्तैः व्योमगंगोर्मिवायुभिः आसमन्तात् धूताः = कम्पिताः ध्वजानां = पताकानां पटाः = वस्त्राणि यस्य स तम् आधूतध्वजपटं मार्गवशादिति भावः । जयनशीलः जेता, जेता एव जैत्रस्तं जैत्रं (प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण्प्रत्ययः) तं = देवेन्द्ररथम्, देवस्य = इन्द्रस्य सूतः = सारथिः, मातलिरित्यर्थः । देवसूतस्तस्य भुजः = हस्तस्तम् आलम्बते तच्छीलः, देवसूतभुजालम्बी सन्, मातलिहस्तमवलम्ब्येत्यर्थः अध्यास्त = अधिष्ठितवान् ।

समासः—व्योम्नः गंगा व्योमगंगा, व्योमगंगायाः ऊर्मयस्तेषां वायवस्तैः व्योमगंगोर्मिवायुभिः । आधूताः ध्वजानां पटाः यस्य स तम् आधूतध्वजपटम् । देवस्य सूतः देवसूतः । देवसूतस्य भुजः देवसूतभुजः तस्य आलम्बी, इति देवसूतभुजालम्बी ।

हिन्दी—आकाशगंगा की तरंगों के पवन से फड़फड़ाती पताका (झण्डे) वाले, जयशील रथपर रामचन्द्रजी इन्द्र के सारथि मातलि का हाथ पकड़कर चढ गए ॥ ८५ ॥

मातलिस्तस्य माहेन्द्रमामुमोच तनुच्छदम् ।
यत्रोत्पलदलक्लैब्यमस्त्राण्यापुः सुरद्विषाम् ॥ ८६ ॥

मातलिरिन्द्रसारथिर्माहेन्द्रम् । तनुश्छाद्यतेऽनेनेति तनुच्छदो वर्म । 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' इति घः । तं तस्य रामस्यामुमोचासञ्जयामास । तत्र तनुच्छदे सुरद्विषामस्त्राण्युत्पलदलानां यत्क्लैब्यं नपुंसकत्वं निरर्थकत्वं तदापुः ॥

अन्वयः—मातलिः माहेन्द्रं तनुच्छदम् तस्य आमुमोच, यत्र सुरद्विषाम् अस्त्राणि उत्पलदलक्लैब्यम् आपुः ।

व्याख्या—मतलस्यापत्यं मातलिः = इन्द्रस्य सारथिः महेन्द्रस्य अयं माहेन्द्रस्तं माहेन्द्रम् = इन्द्रसंबन्धिनम् । तनुः = शरीरं छाद्यतेऽनेनेति तनुच्छदः तं तनुच्छदं = कवचं तस्य = रामस्य आमुमोच = आसञ्जयामास । यत्र = यस्मिन् तनुच्छदे, द्विषन्तीति द्विषः । सुराणां = देवानां द्विषः = शत्रवस्तेषां सुरद्विषां = रक्षसाम् अस्त्राणि = आयुधानि उत्पलानां = कमलानां दलानि = पत्राणि, इति उत्पलदलानि । उत्पलदलानां यत् क्लैब्यं = नपुंसकत्वम्, अविक्रमं, व्यर्थत्व-मित्यर्थः, तत् उत्पलदलक्लैब्यम् । "नपुंसके क्लीबं वाच्यलिंगमविक्रमे" इति रुद्रः । आपुः = प्राप्तवन्तः । कवचे धारिते सति सर्वाणि खलु राक्षसराजरावणस्य शस्त्राणि निरर्थकत्वं गतानीत्यर्थः ।

समासः—तनुः छाद्यतेऽनेनेति तनुच्छदस्तं तनुच्छदम्। सुराणां द्विषः सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषाम्। उत्पलानां दलानीति उत्पलदलानि, तेषां क्लैब्यमिति उत्पलदलक्लैब्यं, तत् तथोक्तम्।

हिन्दी—मातलि ने इन्द्र का, शरीर को ढकनेवाला वह कवच राम को पहना दिया, जिस कवच पर राक्षसों के अस्त्र शस्त्र कमल के पत्तों के समान व्यर्थ हो रहे थे। अर्थात् कमल के पत्ते या पुष्प की पंखुड़ी इतनी कोमल होती है कि किसी को मारने पर वे स्वयं मुरझा जाती हैं। इसी प्रकार रावण के बाण उस कवच पर लग कर स्वयं नष्ट हो जाते थे। यह भाव है॥ ८६॥

अन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरं चिरात्।
रामरावणयोर्युद्धं चरितार्थमिवाभवत्॥ ८७॥

चिरादन्योन्यदर्शनेन प्राप्तविक्रमावसरं रामरावणयोर्युद्धमायोधनं चरितार्थं सफलमभवदिव। प्राक्पराक्रमावसरदौर्बल्याद्विफलस्याद्य तल्लाभात्साफल्यमुत्प्रेक्ष्यते॥

अन्वयः—चिरात् अन्योऽन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरम् रामरावणयोः युद्धं चरितार्थम् इव अभवत्।

व्याख्या—चिरात् = बहोः कालात् अन्योऽन्यस्य = परस्परस्य दर्शनम् = अवलोकनमिति अन्योन्यदर्शनं तेन प्राप्तः = लब्धः विक्रमस्य = पराक्रमस्य अवसरः = प्रसंगः यस्मिन् तत् अन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरम्। रामश्च रावणश्चेत्यनयोः द्वन्द्वः रामरावणौ तयोः रामरावणयोः युद्धं = रणः चरितः अर्थः यस्य तत् चरितार्थं = सफलम् अभवत् = जातम् इव उत्प्रेक्षायाम्।

समासः—अन्योन्यस्य दर्शनमिति अन्योन्यदर्शनं तेन प्राप्तः विक्रमस्य अवसरः यस्मिन् तत् अन्योन्यदर्शनप्राप्तविक्रमावसरम्। रामश्च रावणश्चेति रामरावणौ तयोः रामरावणयोः।

हिन्दी—बहुत दिनों पर "आज" एक दूसरे को देखने से (आमने सामने आने पर) राम और रावण को अपना अपना पराक्रम दिखाने का मौका इस युद्ध में मिला है। अतः राम-रावण का यह युद्ध मानो सफल हो गया है॥ ८७॥

भुजमूर्धोरुबाहुल्यादेकोऽपि धनदानुजः।
ददृशे ह्ययथापूर्वो मातृवंश इव स्थितः॥ ८८॥

यथाभूतः पूर्वं यथापूर्वः। सुप्सुपेति समासः। यथापूर्वो न भवतीत्ययथापूर्वः। निहतबन्धुत्वाद्रक्षःपरिचारशून्य इत्यर्थः। अत एवैकोऽपि सन् धनदानुजो रावणः। भुजाश्च मूर्धानश्चोरवः पादाश्च भुजमूर्धोरु। प्राण्यङ्गत्वाद्द्वन्द्वैकवद्भावः। तस्य बाहुल्याद्बहुत्वाद्धेतोः। तद्बहुत्वे यादवः—'दशास्यो विंशतिभुजश्चतुष्पान्मातृमन्दिरे' इति। मातृवंशे मातृसंबन्धिनि वर्गे स्थित इव ददृशे दृष्टो हि। 'वंशो वेणौ कुले वर्गे' इति विश्वः। अत्र रावणमातृ रक्षोजातित्वात्तद्वर्गो रक्षोवर्ग इति लभ्यते। अतश्चैकोऽप्यनेकरक्षःपरिवृत इवालक्ष्यतेत्यर्थः॥

अन्वयः—अयथापूर्वः "अत एव" एकः अपि सन् धनदानुजः भुजमूर्धोरुबाहुल्यात् मातृवंशे स्थित इव ददृशे।

व्याख्या—यथाभूतः पूर्वः यथापूर्वः । यथापूर्वः न भवतीति अयथापूर्वः बन्धूनां विनाशात् पूर्ववत् परिचारकरहित इत्यर्थः । अत एव एकः—एकाकी धनं ददातीति धनदः । धनदस्य = कुबेरस्य अनुजः = कनिष्ठभ्राता इति धनदानुजः रावणः । भुज्यते यैस्ते भुजाः = बाहवश्च मूर्धानः = मस्तकाश्च ऊरवः = पादाश्चेति द्वन्द्वः भुजमूर्धोरु । अत्र प्राण्यंगत्वात् द्वन्द्वैकवद्भावः । तस्य बाहुल्यं = बहुत्वमाधिक्यं तस्मात् भुजमूर्धोरुबाहुल्यात् कारणात् मातुः = जनन्याः राक्षस्याः इत्यर्थः । वंशः = वर्गस्तस्मिन् मातृवंशे स्थितः = वर्तमानः इव = यथा ददृशे = दृष्टः हि = निश्चयेन । अतः एकोऽपि रावणः बहुभिः राक्षसैः परिवृत इव पर्यलक्ष्यतेत्यर्थः ।

समासः—यथाभूतः पूर्वः यथापूर्वः । न यथापूर्वः इति अयथापूर्वः । भुजाश्च मूर्धानश्च ऊरवश्चेति भुजमूर्धोरु तस्य बाहुल्यं तस्मात् भुजमूर्धोरुबाहुल्यात् । धनदस्य अनुजः धनदानुजः ।

हिन्दी—भाई-बन्धुओं के मारे जाने के कारण सेवकों से रहित कुबेर का छोटा भाई एकाकी होते हुए भी रावण, अपनी भुजाओं, शिरों तथा पैरों के बाहुल्य के कारण ऐसा मालूम पड़ता था मानों अपनी मां के पक्ष में खड़ा हो। अर्थात् बीस भुजाओं, दश शिरों और चार पैरों के होने से ऐसा दीख रहा था मानों बहुत सारे राक्षसों से घिरा हुआ है। रावण की माता राक्षसजाति की थी, अतः मातृवंश कहा है ॥ ८८ ॥

जेतारं लोकपालानां स्वमुखैरर्चितेश्वरम् ।
रामस्तुलितकैलासमरातिं बह्वमन्यत ॥ ८९ ॥

लोकपालानामिन्द्रादीनां जेतारम् । 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्मणि षष्ठी । स्वमुखैः स्वशिरोभिरर्चितेश्वरं तुलितकैलासमुत्क्षिप्तरुद्राद्रिं तमेवं शौर्यवीर्यसत्त्वसंपन्नं महावीर्यमरातिं शत्रुं रामो गुणग्राहित्वाज्जेतव्योत्कर्षस्य जेतुः स्वोत्कर्षहेतुत्वाच्च बह्वमन्यत । साधु मद्विक्रमस्यायं पर्याप्तो विषय इति बहुमानमकरोदित्यर्थः । बह्विति क्रियाविशेषणम् ॥

अन्वयः—लोकपालानां जेतारम् स्वमुखैः अर्चितेश्वरम् तुलितकैलासम् अरातिं रामः बहु अमन्यत ।

व्याख्या—लोकान् = भुवनानि पालयन्ति = रक्षन्तीति लोकपालास्तेषां लोकपालानाम् = इन्द्रादीनां जेतारं = विजेतारम् स्वस्य = आत्मनः मुखानि = मस्तकानि तैः स्वमुखैः अर्चितः = पूजितः ईश्वरः = शंकरः येन स तम् अर्चितेश्वरम् । के = जले लासः = लसनमस्येति केलासः = स्फटिकः । केलासस्यायं कैलासः । तुलितः = समुत्क्षिप्तः कैलासः = शिवाद्रिः येन स तं तुलितकैलासम् । इत्थंभूतं शौर्यवीर्यसत्त्वसम्पन्नं महाबलशालिनम् अरातिं = शत्रुं रामः = राघवः बहु यथा स्यात्तथा अमन्यत = मानमकरोत् । गुणग्राहित्वात् स्वस्योत्कर्षकारणत्वाच्च मम पराक्रमस्यायं रावणः पर्याप्तो विषय इति हेतोः शौर्यधैर्यसम्पन्नं रावणं रामो बहु मन्यते स्मेत्यर्थः ।

समासः—लोकानां पालाः लोकपालास्तेषां लोकपालानाम् । स्वस्य मुखानि, स्वमुखानि तैः स्वमुखैः । अर्चितः ईश्वरः येन स तम् अर्चितेश्वरम् । तुलितः कैलासः येन स तम्, तुलितकैलासम् ।

हिन्दी—इन्द्र अग्नि आदि आठ दिक्पालों को जीतने वाले, और अपने मस्तक काटकर शिव की पूजा करने वाले, तथा कैलाश पर्वत को उठाने वाले, रावण रूपी शत्रुको (सामने देखकर) राम ने बहुत माना। अर्थात् धीर वीर शूर शत्रु को सामने देखकर रामचन्द्रजी ने इस लिये उसका बहुत मान किया कि मेरे पराक्रम के योग्य अच्छा योद्धा आज ही मिला है ॥ ८९ ॥

तस्य स्फुरति पौलस्त्यः सीतासंगमशंसिनि ।
निचखानाधिकक्रोधः शरं सव्येतरे भुजे ॥ ९० ॥

अधिकक्रोधः पौलस्त्यः स्फुरति स्पन्दमानेऽत एव सीतासंगमशंसिनि तस्य रामस्य सव्य इतरो यस्मात्सव्येतरे दक्षिणे। 'न बहुव्रीहौ' इतीतरशब्दस्य सर्वनामसंज्ञाप्रतिषेधः। भुजे शरं निचखान निखातवान् ॥

अन्वयः—अधिकक्रोधः पौलस्त्यः स्फुरति "अत एव" सीतासंगमशंसिनि तस्य सव्येतरे भुजे शरं निचखान।

व्याख्या—अधिकः = प्रचुरः क्रोधः = कोपः यस्य सः अधिकक्रोधः पौलस्त्यः = रावणः स्फुरति = स्पन्दमाने, अत एव सीतायाः = जानक्याः संगमः = सङ्गः, समागम इत्यर्थः इति सीतासमागमः। तं शंसति, तच्छीलः, इति सीतासंगमशंसी। तस्मिन् सीतासंगमशंसिनि, सीतामिलनसूचके इत्यर्थः। "मेलके संगसंगमौ" इत्यमरः। सव्येतरे = दक्षिणे "वामं शरीरं सव्यं स्यात्" इत्यमरः। भुजे = बाहौ शरं = बाणं निचखान = निखातवान्। "न बहुव्रीहौ" इति बहुव्रीहिसमासे इतरशब्दस्य सर्वनामसंज्ञानिषेधेन नात्र स्मिन्नादेशः ॥

समासः—अधिकः क्रोधो यस्य सः अधिकक्रोधः। सीतायाः संगमः सीतासंगमः, सीता-संगमस्य शंसी, इति सीतासंगमशंसी तस्मिन् सीतासंगमशंसिनि। सव्यः इतरः यस्मात् स सव्येतरस्तस्मिन् सव्येतरे।

हिन्दी—अति क्रुद्ध होकर रावण ने फड़कती हुई राम की उस दाहिनी भुजा में बाण मारा, जो कि "शीघ्र होने वाले" सीताजी के समागम को बतला रहा था।

विशेष—पुरुष का दाहिना अंग फरकना कल्याण का सूचक होता है ॥ ९० ॥

रावणस्यापि रामास्तो भित्त्वा हृदयमाशुगः ।
विवेश भुवमाख्यातुमुरगेभ्य इव प्रियम् ॥ ९१ ॥

रामेणास्तः क्षिप्त आशुगो बाणः। विश्रवसोऽपत्यं पुमान्रावणः। विश्रवःशब्दादपत्येऽर्थेऽण्प्रत्यये सति 'विश्रवसो विश्रवणरवणौ' इति रवणादेशः। तस्य रावणस्यापि हृदयं वक्षो भित्त्वा विदार्य। उरगेभ्यः पातालवासिभ्यः प्रियमाख्यातुमिव भुवं विवेश ॥

अन्वयः—रामास्तः आशुगः रावणस्य अपि हृदयं भित्त्वा उरगेभ्यः प्रियम् आख्यातुम् इव भुवं विवेश।

व्याख्या—रामेण = राघवेण अस्तः = त्यक्तः, प्रक्षिप्तः इति रामास्तः आशु = शीघ्रं गच्छतीति आशुगः = बाणः, विश्रवसोऽपत्यं पुमान् रावणः। विश्रवश्शब्दस्य रवणादेशः।

तस्य रावणस्यापि हृदयं = वक्षस्थलं भित्त्वा = विदीर्य उरसा गच्छन्तीति उरगास्तेभ्यः उरगेभ्यः = सर्पेभ्यः, पातालवासिभ्यः प्रियं = भूभारहरणरूपम् आख्यातुं = कथयितुम् इव = उत्प्रेक्षायाम्, भुवं = पृथिवीं विवेश = प्रविष्टः।

हिन्दी—राम का फेंका हुआ बाण, रावण के भी हृदय (छाती) को फाड़कर जमीन में घुस गया। वह बाण ऐसा लगा, मानों पाताललोक के निवासी साँपों को राक्षसराज रावण के मरने की शुभ सूचना देने गया हो ॥ ९१ ॥

वचसेव तयोर्वाक्यमस्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः।
अन्योन्यजयसंरम्भो ववृधे वादिनोरिव ॥ ९२ ॥

वाक्यं वचसैवास्त्रमस्त्रेण निघ्नतोः प्रतिकुर्वतोस्तयो रामरावणयोः। वादिनोः कथकयोरिव। अन्योन्यविषये जयसंरम्भो ववृधे ॥

अन्वयः—वाक्यं वचसा एव अस्त्रम् अस्त्रेण निघ्नतोः तयोः वादिनोः इव अन्योन्यजयसंरम्भः ववृधे।

व्याख्या—वाक्यं = सुप्तिङ्चयरूपं वचसा = वचनेन "भाषितं वचनं वचः" इत्यमरः। एव अस्त्रम् = आयुधम् अस्त्रेण = शस्त्रेण निघ्नतोः = खण्डयतोः तयोः = रामरावणयोः वदतः तच्छीलौ वादिनौ तयोः वादिनोः = कथकयोः इव = यथा अन्योन्यस्य = परस्परस्य जयः = विजयः, इति *अन्योन्यजयः*। *तदर्थं यः संरम्भः* = क्रोधः, इति *अन्योन्यजयसंरंभः* ववृधे = प्रवृद्धः। स्वस्वविजयार्थं कोपपूर्णौ तौ जातौ इत्यर्थः।

समासः—अन्योन्यस्य जयस्तदर्थं यः संरम्भः इति अन्योन्यजयसंरम्भः।

हिन्दी—वाणी को वाणी से और अस्त्र को अस्त्र से काटते हुए, रण में लड़ने वाले राम और रावण का क्रोध उसी प्रकार बढ़ रहा था, जैसे कि शास्त्रार्थ करने वाले, वादी प्रतिवादियों का आपस में विजयके लिये क्रोध बढ़ता जाता है ॥ ९२ ॥

विक्रमव्यतिहारेण सामान्याभूद् द्वयोरपि।
जयश्रीरन्तरा वेदिर्मत्तवारणयोरिव ॥ ९३ ॥

जयश्रीर्विक्रमस्य व्यतिहारेण पर्यायक्रमेण तयोर्द्वयोरपि। अन्तरा मध्ये। अव्ययमेतत्। वेदिर्वेद्याकारा भित्तिर्मत्तवारणयोरिव। सामान्या साधारणाभूत्। न त्वन्यतरनियतेत्यर्थः। अत्र मत्तवारणयोरित्यत्र द्वयोरित्यत्र च 'अन्तरान्तरेण युक्ते' इति द्वितीया न भवति। अन्तराशब्दस्योक्तरीत्यान्यत्रान्वयात्। मध्ये कामपि भित्तिं कृत्वा गजौ योधयन्तीति प्रसिद्धिः ॥

अन्वयः—जयश्रीः विक्रमव्यतिहारेण द्वयोः अपि अन्तरा, वेदिः मत्तवारणयोः इव सामान्या अभूत्।

व्याख्या—जयस्य = विजयस्य श्रीः = लक्ष्मीरिति जयश्रीः विक्रमस्य = शौर्यस्य व्यतिहारः = विनिमयस्तेन विक्रमव्यतिहारेण द्वयोः = तयोः रामरावणयोः अपि अन्तरा = मध्ये ("परिदानं

विनिमयोः...व्यतिहारः" इति हेमचन्द्रः ।) वेदिः = वेद्याकारा भित्तिः मत्तौ च तौ वारणौ मत्तवारणौ, तयोः मत्तवारणयोः = उन्मत्तगजयोः इव = यथा सामान्या = साधारणा, द्वयोः समाना न तु एकस्य कस्यचित् इत्यर्थः अभूत् = जाता ।

समासः—जयस्य श्रीः जयश्रीः । विक्रमस्य व्यतिहारः विक्रमव्यतिहारस्तेन विक्रमव्यतिहारेण । मत्तौ च तौ वारणौ, मत्तवारणौ, तयोः मत्तवारणयोः ।

हिन्दी—पराक्रम के उलट-पलट, होने के कारण, राम और रावण के बीच में विजयलक्ष्मी की वैसे ही साधारण दशा हो गई, जैसी कि लड़ते हुए दो मतवाले हाथियों के बीच की दीवाल की होती है । अर्थात् कभी राम प्रबल पड़ते तो कभी रावण, अतः जयश्री भी कभी राम की ओर तो कभी रावण की ओर जाती । इस प्रकार किसी एक की ओर न होकर सामान्य रूप से आती-जाती रही ।। ९३ ।।

कृतप्रतिकृतप्रीतैस्तयोर्मुक्तां सुरासुरैः ।
परस्परशरव्राताः पुष्पवृष्टिं न सेहिरे ॥ ९४ ॥

स्वयमस्त्रप्रयोगः कृतं प्रतिकृतं परकृतप्रतीकारस्ताभ्यां प्रीतैः सुरासुरैर्यथासंख्यं तयोः रामरावणयोर्मुक्तां पुष्पवृष्टिम् । द्वयीमिति शेषः । परस्परं शरव्राता न सेहिरे । अहमेवालं किं त्वयेति चान्तराल एवेतरेतरबाणवृष्टिरितरेतरपुष्पवृष्टिमवारयदित्यर्थः ॥

अन्वयः—कृतप्रतिकृतप्रीतैः सुरासुरैः तयोः मुक्तां पुष्पवृष्टिं परस्परशरव्राताः न सेहिरे ।

व्याख्या—कृतं = स्वयमस्त्रप्रयोगः प्रतिकृतं = शत्रुकृतस्य प्रतीकारः, इति कृतप्रतिकृते, ताभ्यां प्रीताः = प्रसन्नास्तैः कृतप्रतिकृतप्रीतैः सुराः = देवाः असुराः = राक्षसास्तैः सुरासुरैः यथाक्रमं तयोः = रामरावणयोः मुक्तां = प्रक्षिप्ताम् । सुरैः रामस्योपरि, राक्षसैश्च रावणस्योपरि पातितामित्यर्थः । पुष्पाणां = कुसुमानां वृष्टिः = वर्षम्, ताम् पुष्पवृष्टिं द्वयीमिति शेषः । शराणां = बाणानां व्राताः = समूहाः इति शरव्राताः । परस्परम् = अन्योन्यं शरव्राताः इति परस्परशरव्राताः न सेहिरे = न सोढवन्तः । रामस्योपरि सुरैः कृता शरवृष्टिः रावणशरैः उपरिष्टात् वारिता रावणस्योपरि राक्षसैः कृतं शरवर्षणं रामशरैः अन्तराले एवावरुद्धमित्यर्थः ।

समासः—कृतं च प्रतिकृतं चेति कृतप्रतिकृते ताभ्यां प्रीतास्तैः कृतप्रतिकृतप्रीतैः । सुराश्च असुराश्च तैः सुरासुरैः । परस्परस्य शराणां व्राताः, इति परस्परशरव्राताः । पुष्पाणां वृष्टिरिति पुष्पवृष्टिस्तां पुष्पवृष्टिम् ।

हिन्दी—राम के बाण चलाने पर या रावण के प्रहार को रोक देने से प्रसन्न हुए देवताओं ने, राम के ऊपर पुष्पवर्षा की थी उस पुष्पवर्षा को रावण के बाण सहन न करते थे । तथा रावण के अस्त्र चलाने या राम के बाणों को रोक देने से प्रसन्न हुए राक्षसों ने रावण के ऊपर जो पुष्पवर्षा की, उसको राम के बाण (भी) सहन न करते थे । अर्थात् परस्पर राम तथा रावण के बाण, उस पुष्पवर्षा को ऊपर ही रोक कर समाप्त कर देते थे । एक दूसरे के ऊपर नहीं पड़ने देते थे । इससे कवि ने बाण चलाने में दोनों का चातुर्य प्रकट किया है ॥९४॥

अयःशङ्कुचितां रक्षः शतघ्नीमथ शत्रवे ।
हृतां वैवस्वतस्येव कूटशाल्मलिमक्षिपत् ॥ ९५ ॥

अथ रक्षो रावणोऽयसः शङ्कुभिः कीलैश्चितां कीर्णां शतघ्नीं लोहकण्टककीलितयष्टिविशेषाम् । 'शतघ्नी तु चतुस्ताला लोहकण्टकसंचिता । यष्टिः' इति केशवः । हृतां विजयलब्धाम् । वैवस्वतस्यान्तकस्य कूटशाल्मलिमिव । शत्रवे राघवायाक्षिपत्क्षिप्तवान् । कूटशाल्मलिरिव कूटशाल्मलिरिति व्युत्पत्त्या वैवस्वतगदाया गौणी संज्ञा । कूटशाल्मलिर्नामैकमूलप्रकृतिः कण्टकी वृक्षविशेषः । 'रोचनः कूटशाल्मलिः' इत्यमरः । तत्सादृश्यं च गदाया अयःशङ्कुचितत्वादनुसंधेयम् ॥

अन्वयः—अथ रक्षः अयःशंकुचितां शतघ्नीं हृतां वैवस्वतस्य, कूटशाल्मलिम् इव शत्रवे अक्षिपत् ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् रक्षः = रावणः अयसः = लोहस्य शंकवः = शल्यानि कीलकानीत्यर्थः, इति अयःशंकवस्तैः चिता = आकीर्णा ताम् अयःशंकुचिताम् । "वा पुंसि शल्यं शंकुर्ना" इत्यमरः । "संख्याकीलकयोः शंकुः" इति च शाश्वतः । शतं हन्तीति शतघ्नी तां शतघ्नीम् = शतमारिणीम् हृतां = यमं विजित्य लब्धां विविधं वस्ते = आच्छादयतीति विवस्वान् । विवः = रश्मिः = अस्यास्तीति वा विवस्वान् । विवस्वतः = सूर्यस्य अपत्यं पुमान् वैवस्वतस्तस्य वैवस्वतस्य = यमराजस्य कूटयतीति कूटा = दाहकर्त्री । कूटा शाल्मलिरिति कूटशाल्मलिः तां कूटशाल्मलिं = यमस्य गदाम् शत्रवे = राघवाय अक्षिपत् = चिक्षेप, प्रक्षिप्तवानित्यर्थः ।

समासः—अयसः शंकवः अयःशंकवः, अयःशंकुभिः चिता अयःशंकुचिता, ताम् अयःशंकुचिताम् । कूटा चासौ शाल्मलिः कूटशाल्मलिस्तां कूटशाल्मलिम् ।

हिन्दी—इसके पश्चात् रावण ने लोहे की कीलों से जड़ी हुई, और सैकड़ों को मारने वाली, तथा यमराज से जीतकर छीनी हुई वह गदा राम के ऊपर चलाई, जो कि सूर्य के पुत्र यमराज की कूटशाल्मली (पापियों को दण्डित करने वाली) नाम की गदा के समान भयङ्कर थी ।

विशेष—अस्त्र की भाँति प्रयुक्त किया जाने वाला शस्त्र शतघ्नी होता है । इसे राकेट भी कह सकते हैं तथा लोहे की कीलें जड़ी बड़ी शिला को भी कहते हैं ॥ ९५ ॥

राघवो रथमप्राप्तां तामाशां च सुरद्विषाम् ।
अर्धचन्द्रमुखैर्बाणैश्चिच्छेद कदलीसुखम् ॥ ९६ ॥

राघवो रथमप्राप्तां तां शतघ्नीं सुरद्विषां रक्षसामाशां विजयतृष्णां च । 'आशा तृष्णादिशोः प्रोक्ता' इति विश्वः । अर्धचन्द्र इव मुखं येषां तैर्बाणैः कदलीवत्सुखं यथा तथा चिच्छेद । अथवा कदल्यामिव सुखमक्लेशो यस्मिन्कर्मणि तदिति विग्रहः ॥

अन्वयः—राघवः रथम् अप्राप्ताम् तां सुरद्विषाम् आशां च अर्धचन्द्रमुखैः बाणैः कदलीसुखं यथा स्यात्तथा चिच्छेद ।

व्याख्या—राघवः=रामचन्द्रः रथं=स्यन्दनं रामस्येति यावत् अप्राप्ताम्=अगताम् तां=शतघ्नीं गदां सुरान्=देवान् द्विषन्ति, इति सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषां=राक्षसानाम् आशां=रामस्य विजयतृष्णां च "आशा ककुभि तृष्णायामि"ति हैमः। अर्धं चन्द्रस्येति अर्धचन्द्रः। अर्धचन्द्रः इव मुखं येषां ते तैः अर्धचन्द्रमुखैः=बालचन्द्राग्रभागैरित्यर्थः बाणैः=शरैः कदल्यामिव सुखमक्लेशः यस्मिन् कर्मणि तत् कदलीसुखं=कदलीवत् अनायासेन यथा तथा चिच्छेद=चकर्त।

समासः—सुराणां द्विषः सुरद्विषस्तेषां सुरद्विषाम्। न प्राप्ता अप्राप्ता ताम् अप्राप्ताम्। चन्द्रस्यार्धमिति अर्धचन्द्रः। अर्धचन्द्र इव मुखं येषां ते तैः अर्धचन्द्रमुखैः। कदलीवत् सुखं यस्मिन् कर्मणि तत्।

हिन्दी—रामचन्द्रजी ने अपने रथ तक पहुँचने के पूर्व ही उस शतघ्नी नाम की गदा को और "साथ ही" राक्षसों की राम को जीतने की तृष्णा को अर्धचन्द्राकार (तिरछी नोंक वाले) बाणों से ऐसी सरलता से काट दिया, जैसे केले को अनायास ही काट डालते हैं ॥९६॥

अमोघं संदधे चास्मै धनुष्येकधनुर्धरः।
ब्राह्ममस्त्रं प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम् ॥ ९७ ॥

एकोऽद्वितीयो धनुर्धरो रामः प्रियायाः शोक एव शल्यं तस्य निष्कर्षणमुद्धारकं यदौषधं तदमोघं ब्राह्मं ब्रह्मदेवताकमस्त्रमभिमन्त्रितं बाणमस्मै रावणाय च। तद्वधार्थमित्यर्थः। धनुषि संदधे॥

अन्वयः—एकधनुर्धरः रामः प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम् अमोघं ब्राह्मम् अस्त्रं धनुषि संदधे।

व्याख्या—धरतीति धरः। धनुषः=चापस्य धरः=धर्ता, धनुर्धरः। एकः=अद्वितीयः धनुर्धरः चापधरः इति एकधनुर्धरः रामः=राघवः प्रियायाः=सीतायाः शोकः=शुक् एव शल्यं=कीलमिति प्रियाशोकशल्यं, तस्य निष्कर्षणं=समुद्धारकं यत् औषधं=भैषज्यं तत् प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम्, न मोघम् अमोघं तत् अमोघम्=सफलं ब्रह्मा देवता अस्य तत् ब्राह्मम् अस्त्रं=शस्त्रं, ब्रह्मदेवताकमंत्रेणाभिमन्त्रितं बाणमित्यर्थः। अस्मै=रावणाय, रावणं हन्तुमित्यर्थः। धनुषि=चापे संदधे=संहितवान्। "मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियामि"त्यमरः।

समासः—एकश्चासौ धनुषः धरः, इति एकधनुर्धरः। न मोघमिति अमोघं तत् अमोघम्। प्रियायाः शोकः प्रियाशोकः। प्रियाशोक एव शल्यमिति प्रियाशोकशल्यं तस्य निष्कर्षणं यत् औषधं, तत् प्रियाशोकशल्यनिष्कर्षणौषधम्।

हिन्दी—संसार में एकमात्र अद्वितीय धनुर्धारी राम ने रावण को मारने के लिये कभी न चूकने वाले ब्रह्मास्त्र को धनुष पर चढ़ाया। बाण क्या था? मानो सीताजी के शोक रूपी काँटों को निकालने के लिये सफल औषधि थी ॥ ९७ ॥

तद्व्योम्नि शतधा भिन्नं ददृशे दीप्तिमन्मुखम्।
वपुर्महोरगस्येव करालफणमण्डलम् ॥ ९८ ॥

व्योम्नि शतधा भिन्नं प्रसृतं दीप्तिमन्ति मुखानि यस्य तद्ब्रह्मास्त्रम्। करालं भीषणं तुङ्गं वा फणमण्डलं यस्य तत्तथोक्तम्। 'करालो दन्तुरे तुङ्गे करालो भीषणेऽपि च' इति विश्वः। महोरगस्य शेषस्य वपुरिव। ददृशे दृष्टम्॥

अन्वयः—व्योम्नि शतधा भिन्नं दीप्तिमन्मुखं तद्, करालफणमण्डलं महोरगस्य वपुः इव ददृशे।

व्याख्या—व्योम्नि = आकाशे शतधा = शतप्रकारं भिन्नं = प्रसृतं दीप्तयः सन्ति येषु तानि दीप्तिमन्ति = द्युतिमन्ति मुखानि = अग्रभागाः यस्य तत् दीप्तिमन्मुखम् तत् = ब्रह्मास्त्रम् करालं = भीषणं, तुंगं वा फणस्य = फणायाः मण्डलं = समूहः यस्य तत् करालफणमण्डलं तत् "करालं दन्तुरे तुंगे भीषणे चाभिधेयवत्" इति मेदिनी। उरसा = वक्षस्थलेन गच्छतीति उरगः। महांश्चासौ उरगः इति महोरगः, तस्य महोरगस्य = शेषनागस्य वपुः = शरीरम् इव = यथा ददृशे = दृष्टम्, तत्रत्यजनैरिति शेषः।

समासः—दीप्तिमन्ति मुखानि यस्य तत् दीप्तिमन्मुखम्। महांश्चासौ उरगः महोरगस्तस्य महोरगस्य। करालं फणानां मण्डलं यस्य तत् करालफणमण्डलम्।

हिन्दी—आकाश में सैकड़ों प्रकार से (रूप में) फैले हुए तथा चमकीले मुख (अग्रभाग = फलक) वाले उस (राम के बाण) ब्रह्मास्त्र को ऐसा लोगों ने देखा मानो भयंकर एवं ऊँचे-ऊँचे फणों के मण्डल को लिये शेषनाग हो॥ ९८॥

तेन मन्त्रप्रयुक्तेन निमेषार्धादपातयत्।
स रावणशिरःपङ्क्तिमज्ञातव्रणवेदनाम्॥ ९९॥

स रामो मन्त्रप्रयुक्तेन तेनास्त्रेणाज्ञातव्रणवेदनामतिशैघ्र्यादननुभूतव्रणदुःखां रावणशिरःपङ्क्तिं निमेषार्धादपातयत्पातयामास॥

अन्वयः—सः मंत्रप्रयुक्तेन तेन अज्ञातव्रणवेदनां रावणशिरः पंक्तिं निमेषार्धात् अपातयत्।

व्याख्या—सः = रामचन्द्रः मंत्रेण = ब्रह्मदेवताकेन प्रयुक्तं = प्रेरितम् इति मंत्रप्रयुक्तम् तेन मंत्रप्रयुक्तेन तेन = ब्रह्मास्त्रेण न ज्ञाता, अज्ञाता। व्रणानां = क्षतानां वेदना = पीडा इति व्रणवेदना, अज्ञाता = अननुभूता व्रणवेदना यया सा ताम् अज्ञातव्रणवेदनाम्, अतिशीघ्रत्वात्, इत्यर्थः। रावणस्य = राक्षसराजस्य शिरांसि = मस्तकानि तेषां पंक्तिः = परम्परा, इति रावण-शिरःपंक्तिस्तां रावणशिरःपंक्तिम् निमेषस्य = क्षणस्य अर्धं तस्मात् निमेषार्धात् = क्षणार्धेने-त्यर्थः अपातयत् = पातयामास। रामः ब्रह्मास्त्रेण क्षणार्धे एव रावणमस्तकानि अच्छिनत् इत्यर्थः।

समासः—मंत्रेण प्रयुक्तं मंत्रप्रयुक्तं तेन मंत्रप्रयुक्तेन। निमेषस्य अर्धं, तस्मात् निमेषार्धात्। रावणस्य शिरांसि रावणशिरांसि, रावणशिरसां पंक्तिः तां रावणशिरःपंक्तिम्। न ज्ञाता अज्ञाता, अज्ञाता व्रणानां वेदना यया सा ताम् अज्ञातव्रणवेदनाम्।

हिन्दी—मंत्र से (मंत्र पढ़कर) चलाए हुए उस ब्रह्मास्त्र से राम ने, रावण के शिरों की पंक्ति को आधे क्षण में ही काटकर गिरा दिया, जिसमें कि शिरों के कटने पर हुए घावों की पीड़ा भी रावण को ज्ञात न हुई॥ ९९॥

बालार्कप्रतिमेवाप्सु वीचिभिन्ना पतिष्यतः ।
रराज रक्षःकायस्य कण्ठच्छेदपरम्परा ॥ १०० ॥

पतिष्यत आसन्नपातस्य रक्षःकायस्य रावणकलेवरस्य छिद्यन्त इति छेदाः खण्डाः । कण्ठानां ये छेदास्तेषां परम्परा पङ्क्तिः । वीचिभिर्भिन्ना नानाकृतास्सु बालार्कस्य प्रतिमा प्रतिबिम्बमिव रराज । अर्कस्य बालविशेषणमारुण्यसिद्धयर्थमिति भावः ।

अन्वयः—पतिष्यतः रक्षःकायस्य कण्ठच्छेदपरम्परा वीचिभिन्ना अप्सु बालार्कप्रतिमा इव रराज ।

व्याख्या—पतिष्यतीति पतिष्यन् तस्य पतिष्यतः = आसन्नपतनस्य, आसन्नमरणस्येत्यर्थः । रक्षसः = रावणस्य कायः = देहस्तस्य रक्षःकायस्य = रावणशरीरस्येत्यर्थः । छिद्यन्ते इति छेदाः । कण्ठानां = गलानां छेदाः = खण्डाः इति कण्ठच्छेदाः । कण्ठच्छेदानां परम्परा = पंक्तिः इति कण्ठच्छेदपरम्परा । वीचिभिः = तरंगैः भिन्ना = भेदिता, इति वीचिभिन्ना, तरंगैः नानाकृता, इत्यर्थः । अप्सु = जलेषु बालः = प्रातःकालिकश्चासौ अर्कः = सूर्यः, इति बालार्कः, बालार्कस्य = रक्तसूर्यस्य प्रतिमा = सदृशी, प्रतिबिम्बम् इव = यथा रराज = शुशुभे ।

समासः—बालश्चासौ अर्कः बालार्कः, बालार्कस्य प्रतिमा इति बालार्कप्रतिमा । रक्षसः कायस्तस्य रक्षःकायस्य । वीचिभिः भिन्ना वीचिभिन्ना । कण्ठानां छेदाः कण्ठच्छेदास्तेषां परम्परा कण्ठच्छेदपरम्परा ।

हिन्दी—मरने वाले राक्षस के शरीर के कटकर गिरते हुए शिरों के टुकड़ों की पंक्ति ऐसी सुन्दर लग रही थी, जैसे कि जल में चंचल तरंगों से अनेक हुए, प्रातः कालीन (लाल) सूर्य का प्रतिबिम्ब शोभा देता है ॥ १०० ॥

मरुतां पश्यतां तस्य शिरांसि पतितान्यपि ।
मनो नातिविशश्वास पुनः संधानशङ्किनाम् ॥ १०१ ॥

पतितानि तस्य रावणस्य शिरांसि पश्यतामपि पुनःसंधानशङ्किनाम् । पूर्वं तथादर्शनादिति भावः । मरुताममराणाम् । 'मरुतौ पवनामरौ' इत्यमरः । मनो नातिविशश्वासातिविश्वासं न प्राप ॥

अन्वयः—पतितानि तस्य शिरांसि पश्यताम् अपि पुनः संधानशंकिनां मरुतां मनः न अतिविशश्वास ।

व्याख्या—पतितानि = भूमौ लुठितानि तस्य = रावणस्य शिरांसि = मस्तकानि पश्यताम् = *अवलोकयताम् अपि पुनः = भूयः सन्धानं = ग्रीवया योजनं शंकन्ते तच्छीलाः, पुनः सन्धान*-शंकिनस्तेषां पुनः सन्धानशंकिनां छिन्नानां रावणशिरसां पुनः कबन्धयोजनशंकावतामित्यर्थः । मरुतां = देवानां मनः = चित्तं न अतिविशश्वास = पूर्णरूपेण विश्वासं न कृतवत् ।

समासः—पुनः सन्धानस्य शंकिनः पुनःसन्धानशंकिनस्तेषां पुनःसन्धानशंकिनाम् ।

हिन्दी—कटकर पृथिवी में पड़े हुए रावण के शिरों को देखते हुए भी, फिर से जुड़ जाने की आशंका करने वाले देवताओं के मन ने पूरा विश्वास नहीं किया। अर्थात् उनके मन में यह डर था कि रावण के शिर फिर से न जुड़ जायें ॥ १०१ ॥

अथ मदगुरुपक्षैर्लोकपालद्विपाना-
मनुगतमलिवृन्दैर्गण्डभित्तीर्विहाय ।
उपनतमणिबन्धे मूर्ध्नि पौलस्त्यशत्रोः
सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षं पपात ॥ १०२ ॥

अथ मदेन गजगण्डसंचारसंक्रान्तेन गुरुपक्षैर्भारायमाणपक्षैरलिवृन्दैर्लोकपालद्विपानामैरावतादीनां गगनवर्तिनां गण्डभित्तीर्विहायानुगतमनुद्रुतं सुरभि सुगन्धि । 'सुरभिश्चम्पके स्वर्णे जातीफलवसन्तयोः । गन्धोपले सौरभेय्यां सल्लकीमातृभेदयोः ॥ सुगन्धौ च मनोज्ञे च वाच्यवत्सुरभि स्मृतम् ॥' इति विश्वः । सुरविमुक्तं पुष्पवर्षमुपनत आसन्नो मणिबन्धो राज्याभिषेकसमये भावी यस्य तस्मिन्पौलस्त्यशत्रोः रामस्य मूर्ध्नि पपात । इदमेव राज्याभिषेकसूचकमिति भावः ॥

अन्वयः—अथ मदगुरुपक्षैः अलिवृन्दैः लोकपालद्विपानां गण्डभित्तीः विहाय अनुगतं सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षम् उपनतमणिबन्धे पौलस्त्यशत्रोः रामस्य मूर्ध्नि पपात ।

व्याख्या—मदेन = मदजलेन, गजगण्डस्थले संचारलग्नेन गुरवः = भारायमाणाः पक्षाः = गरुतः येषान्ते तैः मदगुरुपक्षैः अलीनां = भ्रमराणां वृन्दानि = समूहा स्तैः अलिवृन्दैः । लोकान् पालयन्तीति लोकपालाः । लोकपालानां द्विपाः = हस्तिनः ऐरावतादय इत्यर्थः । तेषां लोकपालद्विपानां आकाशवर्तिनामैरावतादीनामित्यर्थः । गण्डानां = कटानां, गजकपोलानामित्यर्थः । भित्तयः = स्थलानि इति गण्डभित्तयस्ताः गण्डभित्तीः विहाय = परित्यज्य अनुगतम् = अनुद्रुतं सुरभि = सुगन्धि सुरैः = देवैः विमुक्तं = त्यक्तमिति सुरविमुक्तम् । पुष्पाणां = कुसुमानां वर्षं = वृष्टिरिति पुष्पवर्षम्, मणिः बध्यते यत्र स मणिबन्धः । उपनतः = प्राप्तः, आसन्नः मणिबन्धः राजाभिषेकावसरे मुकुटमणिधारणं यस्य स तस्मिन् उपनतमणिबन्धे, पौलस्त्यस्य = रावणस्य शत्रुः = अरिः पौलस्त्यशत्रुस्तस्य पौलस्त्यशत्रोः = रामस्यमूर्ध्नि = मस्तके पपात = अपतत् । रावणमरणानन्तरं देवैः रामस्योपरि पुष्पवर्षणं कृतमित्यर्थः ।

समासः—मदेन गुरवः पक्षाः येषां ते तैः मदगुरुपक्षैः । अलीनां वृन्दानि तैः अलिवृन्दैः । लोकपालानां द्विपाः लोकपालद्विपास्तेषां लोकपालद्विपानाम् । गण्डानां भित्तयस्ताः गण्डभित्तीः । सुरैः विमुक्तमिति सुरविमुक्तम् । पुष्पाणां वर्षमिति पुष्पवर्षम् । पौलस्त्यस्य शत्रु रिति पौलस्त्यशत्रुस्तस्य पौलस्त्यशत्रोः ।

हिन्दी—इसके बाद रावण को मारने वाले रामचन्द्रजी के जिस मस्तक पर राज्याभिषेक के समय रत्न जड़ित मुकुटादि पहनाया जाने वाला है। उस मस्तक पर देवताओं से छोड़ी गई सुगन्धित उन पुष्पों की वर्षा हुई, जिन के पीछे-पीछे मद से भीगे अतः भारी पंखों वाले भौरों के झुण्ड, दिशाओं के हाथी ऐरावतादि के मद बहाने वाले कपोलों को छोड़ कर दौड़ पड़े ॥१०२॥

यन्ता हरेः सपदि संहृतकार्मुकज्य-
माप्टच्छ्य राघवमनुष्ठितदेवकार्यम् ।
नामाङ्करावणशराङ्कितकेतुयष्टि-
मूर्ध्वं रथं हरिसहस्रयुजं निनाय ॥ १०३ ॥

हरेरिन्द्रस्य यन्ता मातलिः सपदि संहृतकार्मुकज्यमनुष्ठितं देवकार्यं रावणवधरूपं येन तं राघवमापृच्छ्य साधु यामीत्यामन्त्र्य । नामाङ्कैर्नामाक्षरचिह्नैः रावणशरैरङ्किता चिह्निता केतुयष्टिर्ध्वजदण्डो यस्य तम् । हरीणां वाजिनां सहस्रेण युज्यत इति हरिसहस्रयुक् । तम् 'यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु । शुकाहिकपिभेकेषु हरिः' इत्युभयत्राप्यमरः । रथमूर्ध्वं निननाय नीतवान् ॥

अन्वयः—हरेः यन्ता सपदि संहृतकार्मुकज्यम् अनुष्ठितदेवकार्यम् राघवम् आपृच्छ्य, नामांकरावणशराङ्कितकेतुयष्टिम् हरिसहस्रयुजं रथम् ऊर्ध्वं निनाय ॥

व्याख्या—हरेः = इन्द्रस्य यन्ता = सारथिः = मातलिः सपदि = तत्क्षणे संहृता = संक्षिप्ता, संकुचिता कार्मुकस्य ज्या = मौर्वी येन स तं संहृतकार्मुकज्यम्, अनुष्ठितं = सम्पादितं देवानाम् = इन्द्रादीनां कार्यं = रक्षोवधरूपं येन स तम् अनुष्ठितदेवकार्यम् राघवं = रामम् आपृच्छ्य = आमंत्र्य नाम्नः अंकानि = अक्षरचिह्नानि येषु ते तैः नामांकैः = नामाक्षरैः रावणस्य शरैः = बाणैः अंकिता = चिह्निता केतोः = पताकायाः यष्टिः = दण्डः यस्य स तं नामांकरावणशरांकितकेतुयष्टिम्, हरीणां = वाजिनाम्, अश्वानां सहस्रेण = सहस्रसंख्यया युज्यन्ते, इति हरिसहस्रयुक् तं हरिसहस्रयुजम् = सहस्रतुरंगयुक्तं रथं = स्यन्दनम्, इन्द्ररथमित्यर्थः । ऊर्ध्वं = स्वर्गम् निनाय = नीतवान् । कार्ये सम्पन्ने सति रामानुज्ञातो मातलिः इन्द्ररथं नीत्वा स्वर्गं ययौ इत्यर्थः ।

समासः—संहृता कार्मुकस्य ज्या येन स तं संहृतकार्मुकज्यम् । देवानां कार्यमिति देवकार्यम्, अनुष्ठितं देवकार्यं येन स तम् अनुष्ठितदेवकार्यम् । नाम्नः अंकानि येषु तैः । नामांकैः रावणस्य शरैः अंकिता केतोः यष्टिः यस्य स तं नामांकरावणशरांकितकेतुयष्टिम् । हरीणां सहस्रयुगिति हरिसहस्रयुक् तं हरिसहस्रयुजम् ॥

हिन्दी—तुरन्त ही धनुष की डोरीको उतार लेने वाले, और देवताओं के कार्य (भूभार हरण) को पूर्ण करने वाले राम से पूछकर (आज्ञा ले कर) इन्द्र का सारथि मातलि, उस रथको ऊपर स्वर्ग में ले गया जिसमें हजार घोड़े जुते हुए थे । और रावण के नाम के अक्षर खुदे हुए रावण के बाणों के निशान रथ की ध्वजा के दण्ड मे लगे थे ॥ १०३ ॥

रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धां प्रगृह्य प्रियां
प्रियसुहृदि विभीषणे संगमय्य श्रियं वैरिणः ।
रविसुतसहितेन तेनानुयातः ससौमित्रिणा
भुजविजितविमानरत्नाधिरूढः प्रतस्थे पुरीम् ॥ १०४ ॥

रघुपतिरपि जातवेदस्यग्नौ विशुद्धां जातशुद्धिं प्रियां सीतां प्रगृह्य स्वीकृत्य । प्रियसुहृदि विभीषणे वैरिणो रावणस्य श्रियं राज्यलक्ष्मीं संगमय्य संगतां कृत्वा । गमेर्ण्यन्ताल्ल्यप्प्रत्ययः । 'मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वः । ल्यपि लघुपूर्वात्' इति णेरयादेशः । रविसुतसहितेन सुग्रीवयुक्तेन

ससौमित्रिणा सलक्ष्मणेन तेन विभीषणेनानुयातोऽनुगतः सन्। विमानं रत्नमिव विमानरत्न-मित्युपमितसमासः। भुजविजितं यद्विमानरत्नं पुष्पकं तदारूढः सन्। पुरीमयोध्यां प्रतस्थे। 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम्। अत्र प्रस्थानक्रियाया अकर्मकत्वेऽपि तदङ्गभूतदेशक्रिया-पेक्षया सकर्मकत्वम्। अस्ति च धातूनां क्रियान्तरोपसर्जनकत्वार्थाभिधायकत्वम्। यथा 'कुसूलात्पचति' इत्यादावादानक्रियागर्भः पाको विधीयत इति ॥१०४॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया
व्याख्यया समेते महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
रावणवधो नाम द्वादशः सर्गः ॥

अन्वयः—रघुपतिः अपि जातवेदोविशुद्धां प्रियां प्रगृह्य, प्रियसुहृदि विभीषणे वैरिणः श्रियं संगमय्य, रविसुतसहितेन ससौमित्रिणा तेन अनुयातः भुजविजितविमानरत्नाधिरूढः सन् पुरीम् प्रतस्थे।

व्याख्या—रघूणां = रघुवंशीयानां पतिः = स्वामी, इति रघुपतिः = रामचन्द्रः अपि विद्यते = लभ्यते इति वेदः, विद्लृ लाभे धातोः असुन्प्रत्यये। जातं वेदः = धनं यस्मात् स जातवेदाः। तस्मिन् जातवेदसि = वह्नौ विशुद्धा = पूता तां जातवेदोविशुद्धाम् प्रियां = सीतां प्रगृह्य = स्वीकृत्य प्रियश्चासौ सुहृत् प्रियसुहृत् तस्मिन् प्रियसुहृदि = प्रियमित्रे विभीषणे वीरस्य भावः कर्म वा वैरम्। वैरमस्यास्तीति वैरी तस्य वैरिणः = शत्रोः रावणस्य श्रियं = राज्यलक्ष्मीं संगमय्य = संगतां कृत्वा, रावणराज्ये विभीषणमभिषिच्येत्यर्थः, रवेः = सूर्यस्य सुतः = पुत्रः रविसुतः। रविसुतेन = सुग्रीवेण सहितः = युक्तस्तेन रविसुतसहितेन सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन सह इति ससौमित्रिस्तेन ससौमित्रिणा तेन = विभीषणेन अनुयातः = अनुगतः सन्, विशिष्टं मानयत्यनेनेति विमानम्। विगतं मानम् = उपमा यस्येति वा विमानं रत्नमिव इति विमानरत्नम्। भुजाभ्यां = बाहुभ्यां विजितं = जितमिति भुजविजितम्, भुजविजितं च तद् विमानरत्नमिति भुजविजितविमानरत्नं तत् अधि-रूढः = आरूढः, इति भुजविजितविमानरत्नाधिरूढः सन् पुरीम् = अयोध्यानगरीं प्रतस्थे = चचाल। लक्ष्मणसुग्रीवविभीषणादिभिः सह रामः पुष्पकेण साकेताय प्रस्थानमकरोदित्यर्थः ॥

समासः—रघूणां पतिः रघुपतिः। जातवेदसि विशुद्धा ताः जातवेदोविशुद्धाम्। प्रियश्चासौ सुहृत्, तस्मिन् प्रियसुहृदि। रविसुतेन सहितस्तेन रविसुतसहितेन। सौमित्रिणा सह ससौमित्रि-स्तेन ससौमित्रिणा। विमानं रत्नमिव विमानरत्नम्। भुजाभ्यां विजितमिति भुजविजितम्। भुजविजितं च तत् विमानरत्नमिति भुजविजितविमानरत्नं तदधिरूढः, तथोक्तः।

हिन्दी—रघुकुल तिलक रामचन्द्रजी ने भी, अग्नि में शुद्ध की गई अपनी प्रिया सीता को स्वीकार करके, और प्रियमित्र विभीषण को रावण का राज्य देकर, सूर्यपुत्र सुग्रीव, लक्ष्मण तथा विभीषण के साथ, अपने भुजबल से जीते हुए पुष्पकविमान में बैठकर अयोध्या की ओर प्रस्थान किया ॥ १०४ ॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां
रघुवंशे महाकाव्ये रावणवधो नाम द्वादशः सर्गः ॥

त्रयोदशः सर्गः

त्रैलोक्यशल्योद्धरणाय सिन्धोश्चकार बन्धं मरणं रिपूणाम् ।
पुण्यप्रणामं भुवनाभिरामं रामं विरामं विपदामुपासे ॥

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

अथ प्रस्थानानन्तरम् । जानातीति ज्ञः । 'इगुपध'–इत्यादिना कप्रत्ययः । गुणानां ज्ञो गुणज्ञः । रत्नाकरादिज्ञत्वैश्वर्यगुणाभिज्ञ इत्यर्थः । स रामाभिधानो हरिर्विष्णुः शब्दो गुणो यस्य तच्छब्दगुणमात्मनः स्वस्य पदं विष्णुपदम् । आकाशमित्यर्थः । 'वियद्विष्णुपदम्' इत्यमरः । 'शब्दगुणकमाकाशम्' इति तार्किकाः । विमानेन पुष्पकेण विगाहमानः सन् । रत्नाकरं वीक्ष्य मिथो रहसि । 'मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि' इत्यमरः । जायां पत्नीं सीताम् इति वक्ष्यमाण-प्रकारेणोवाच । रामस्य हरिरित्यभिधानं निरङ्कुशमहिमद्योतनार्थम् । मिथोग्रहणं गोष्ठीविश्रम्भ-सूचनार्थम् ॥

अन्वयः—अथ गुणज्ञः सः रामाभिधानः हरिः शब्दगुणम् आत्मनः पदं विमानेन विगाहमानः (सन्) रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः जायाम् इति उवाच ।

व्याख्या—अथ = प्रस्थानानन्तरम् जानातीति ज्ञः, गुणानां = समुद्रस्यैश्वर्यादीनां ज्ञः = ज्ञाता, इति गुणज्ञः सः = प्रसिद्धः रामः = रामचन्द्रः अभिधानं = नाम यस्य स रामाभिधानः । अभि-धीयते इति अभिधानम् । "अभिधानं च नामधेयं च नाम च" इत्यमरः । हरति पापानि, इति हरिः = विष्णुः शब्दः = ध्वनिः गुणः यस्य तत् शब्दगुणम् आत्मनः = स्वस्य विष्णोरित्यर्थः पदम् = आस्पदं, स्वरूपं वा विमानेन = व्योमयानेन विगाहते विगाहमानः सन् = प्रविशन् सन् रत्नानां = मण्यादीनाम् आकरः = खनिः तं रत्नाकरं = सागरं वीक्ष्य = विलोक्य मिथः = रहसि अन्योन्यमित्यर्थः । जायतेऽस्यां सा जाया = भार्या तां जायां जानकीमिति = वक्ष्यमाणम् उवाच = उक्तवान् ।

समासः—शब्दः गुणः यस्य तत् , शब्दगुणम् । गुणस्य ज्ञः गुणज्ञः । रामः अभिधानं यस्य स रामाभिधानः । रत्नानाम् आकरस्तं रत्नाकरम् ॥

हिन्दी—लंका से प्रस्थानकर गुणों के ज्ञाता राम नाम वाले विष्णु भगवान् , शब्द गुण वाले आकाश में विमान से चलते हुए (समुद्र को पार करते हुए) रत्नों वाले सागर को देखकर एकान्त में अपनी पत्नी सीताजी से इस प्रकार बोले ।

विशेष—'आत्मनः पदं' कहने का भाव है कि विष्णुपद, आकाश को विष्णुपद, इस

लिये कहा जाता है कि वामनावतार में एक चरण से आकाश को नाप लिया था। हरि कहने का तात्पर्य है कि निरतिशय महिमा सामर्थ्य वाला। एवं मिथः से गोष्ठी विश्वास के योग्य। जाया से, जिसमें पुनः स्वयं पुत्र रूप से उत्पन्न हो वह जाया कहाती है। मनु ने कहा है कि "जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः"। नैयायिक लोग आकाश को शब्द गुण वाला मानते हैं। शब्दगुणकमाकाशमिति ॥ १ ॥

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥ २ ॥

हे वैदेहि सीते, आ मलयान्मलयपर्यन्तम्। 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' इति पञ्चमी। पदद्वयं चैतत्। मत्सेतुना विभक्तं द्विधाकृतम्। अत्यायतसेतुनेत्यर्थः। हर्षाधिक्याच्च मद्ग्रहणम्। फेनिलं फेनवन्तम्। 'फेनादिलच्च' इतीलच्प्रत्ययः। क्षिप्रकारी चायमिति भावः। अम्बुराशिम्। छायापथेन विभक्तं शरत्प्रसन्नमाविष्कृतचारुतारमाकाशमिव पश्य। मम महानयं प्रयासस्त्वदर्थं इति हृदयम्। छायापथो नाम ज्योतिश्चक्रमध्यवर्ती कश्चित्तिरश्चीनोऽवकाशः॥

अन्वयः—हे वैदेहि! आ मलयात् मत्सेतुना विभक्तं फेनिलम् अम्बुराशिम्, छायापथेन विभक्तं शरत्प्रसन्नम् आविष्कृतचारुतारम् आकाशम् इव (त्वं) पश्य।

व्याख्या—विदेहस्य = जनकस्यापत्यं पुत्री वैदेही तस्याः संबुद्धौ हे वैदेहि! मलते = धरति चन्दनादीति मलयस्तस्मात् आ मलयात् = मलयपर्वतपर्यन्तम्, आ इति पृथक् पदं तद्योगे च पंचमी विभक्तिः। सिनोति = बध्नाति जलमिति सेतुः। मम = रामस्य सेतुः = आलिः, इति मत्सेतुस्तेन मत्सेतुना, अतिलम्बायमानसेतुनेत्यर्थः। "सेतुरालौ स्त्रियां पुमान्" इत्यमरः। विभक्तं = द्विधाकृतं, कृतविभागमित्यर्थः फेनाः = अब्धिकफाः सन्त्यस्य स फेनिलस्तं फेनिलम् अम्बूनां राशिः = समूहस्तम् अम्बुराशिं = सागरं छयति = छिनत्ति सूर्यादेः प्रकाशं नाशयतीति छाया। छायायाः = मेघच्छायाया अभ्यन्तरः पन्थाः छायापथस्तेन छायापथेन = तारासमूहमध्यवर्तिना तिर्यगवकाशेन, विभक्तं शरदा = शरदृतुना प्रसन्नं = निर्मलमिति शरत्प्रसन्नम् आविष्कृताः = प्रकटिताः चारुताराः = सुन्दरनक्षत्राणि येन तत् आविष्कृतचारुतारम् आ = समन्तात् काशन्ते सूर्यादयो यत्र तत् आकाशं = गगनम् इव = यथा, तत्सदृशमित्यर्थः। पश्य = अवलोकय। त्वमिति शेषः।

समासः—अम्बूनां राशिः अम्बुराशिस्तम् अम्बुराशिम्। छायायाः पन्थाः छायापथस्तेन छयापथेन। शरदा प्रसन्नं तत् शरत्प्रसन्नम्। आविष्कृताः चार्व्यः ताराः येन तत् आविष्कृतचारुतारम् तत्। मम सेतुः मत्सेतुस्तेन मत्सेतुना।

हिन्दी—हे जनकपुत्री सीते! मलयाचल तक मेरे बनाए हुए पुल से दो भागों में बटे हुए, तथा फेन (झाग) से भरे, निर्मलजल वाले सागर को तुम देखो। यह वैसा ही सुन्दर लग रहा है जैसा कि आकाश गंगा से दो भागों में बटा हुआ, तथा सुन्दर ताराओं से जगमगाता, शरत् ऋतु में निर्मल साफ स्वच्छ आकाश हो।

विशेष—अन्तरिक्ष में तारा नक्षत्र समूह के बीचों बीच तिरछी एक सफेद रेखा बनी रहती है वह छायापथ, आकाशगंगा तथा पितरों का मार्ग कहाता है एवं यह सेतु तुम्हारे लिये किया गया मेरा महान् बड़ा भारी प्रयत्न है। अतः तुम देखो (यह राम ने सीताजी से कहा था) ॥ २ ॥

गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरंगे ।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ॥ ३ ॥

यियक्षोर्यष्टुमिच्छोः । यजेः सन्नन्तादुप्रत्ययः । गुरोः सगरस्य मेध्येऽश्वमेधार्हे तुरंगे हये कपिलेन मुनिना रसातलं पातालं संक्रमिते सति । तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः खनद्भिर्नोऽस्माकं पूर्वैर्वृद्धैः सगरसुतैरयं समुद्रः परिवर्धितः किल । किलेत्यैतिह्ये । अतो नः पूज्य इति भावः । यद्यपि तुरगहर्ता शतक्रतुस्तथापि तस्य कपिलसमीपे दर्शनात्स एवेति तेषां भ्रान्तिः तन्मतेनैव कविना कपिलेनेति निर्दिष्टम् ॥

अन्वयः—यियक्षोः गुरोः मेध्ये तुरंगे कपिलेन रसातलं संक्रमिते सति, तदर्थम् उर्वीम् अवदारयद्भिः नः पूर्वैः अयं परिवर्धितः किल ।

व्याख्या—यष्टुमिच्छति यियक्षति । यियक्षतीति यियक्षुस्तस्य यियक्षोः = यज्ञं कर्तुमभिलषतः गुरोः = पूज्यस्य सगरस्य मेध्ये = पवित्रे अश्वमेधयाग इत्यर्थः । "पूतं पवित्रं मेध्यं च" इत्यमरः । तुरेण = वेगेन गच्छतीति तुरंगस्तस्मिन् तुरंगे = अश्वे कपिं = वर्णं लातीति कपिलस्तेन कपिलेन = महर्षिणा रसः अस्यामस्तीति सा रसा रसायाः = पृथिव्याः तलम् = अधः, इति रसातलं = पातालमित्यर्थः । संक्रमिते = सति तस्मै इदं तदर्थम् = अश्वमेधीयाश्वार्थम् उर्वीं = पृथिवीम् अवदारयद्भिः = खनद्भिः नः = अस्माकं पूर्वैः = पुरातनैः वृद्धैः सगरपुत्रैरित्यर्थः अयं = समुद्रः परिवर्धितः = परितः विस्तारितः किल = इतिहासप्रसिद्धः । अत एवायं सागरः अस्माकं पूज्य इति भावः । यद्यपि अश्वापहारक इन्द्रः न तु कपिलमुनिस्तथापि तुरंगस्य कपिलमुनिसमीपे दर्शनात्, कपिल एवापहर्ता इति सगरपुत्राणां भ्रान्तिस्तदनुसारमेव कविना कपिलेन संक्रमिते, इति वर्णितम् ।

समासः—रसायाः तलमिति रसातलम् तत् । तस्मै इदं तदर्थम् ।

हिन्दी—अश्वमेध यज्ञ करने वाले हमारे पूज्य सगर राजा के पवित्र, अश्वमेधयज्ञ के घोड़े को, जब कपिल मुनि पाताल लोक में ले गये थे, तब उस घोड़े की खोज करने के लिये, पृथिवी को खोदने वाले हमारे पूर्वज सगरजी के पुत्रों ने उस समुद्र को बढ़ाया था। अर्थात् पृथिवी को खोदकर लम्बा चौड़ा विस्तार किया था । अतः यह मेरा पूज्य है ।

विशेष—यद्यपि घोड़े को इन्द्र ने चुराया था किन्तु यज्ञ का वह घोड़ा सगरपुत्रों को कपिल मुनि के आश्रम में मिला था । अतः सगरपुत्रों को यह भ्रम हो गया था कि कपिल ने ही चुराया है । यही मानकर कवि ने कपिल मुनि का नाम लिखा है । इन्द्र ने चुराकर ऋषि के आश्रम में बान्ध दिया था ॥ ३ ॥

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।
अबिन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ॥ ४ ॥

अर्कमरीचयोऽस्मादब्धेः । अपादानात् । गर्भमम्मयं दधति । वृष्ट्यर्थमित्यर्थः । अयमर्थो दशमसर्गे 'ताभिर्गर्भः–' (५८) इत्यत्र स्पष्टीकृतः । अयं लोकोपकारीति भावः । अत्राब्धौ वसूनि धनानि । 'धने रत्ने वसु स्मृतम्' इति विश्वः । विवृद्धिमश्नुवते प्राप्नुवन्ति । संपद्वानित्यर्थः । असावपि इन्धनं दाह्यं यस्य तद्दाहकं वह्निं बिभर्ति । अपकारेऽप्याश्रितं न त्यजतीति भावः । अनेन प्रह्लादनमाह्लादकं ज्योतिश्चन्द्रोऽजनि जनितम् । जनेर्ण्यन्तात्कर्मणि लुङ् । सौम्य इति भावः ॥

अन्वय.—अर्कमरीचयः अस्मात् गर्भं दधति, अत्र वसूनि विवृद्धिम् अश्नुवते, असौ अबिन्धनं वह्निं बिभर्ति, अनेन प्रह्लादनं ज्योतिः अजनि ।

व्याख्या—अर्च्यते = पूज्यते, अर्च्यते = स्तूयते वा इति अर्कः म्रियते तमः = अन्धकारः येषु ते मरीचयः । अर्कस्य = सूर्यस्य मरीचयः = किरणाः, अर्कमरीचयः अस्मात् = समुद्रात् गर्भं = जलमयं दधति = धारयन्ति वर्षणार्थमित्यर्थः । अनेनायं समुद्रः लोकोपकारीति प्रकटितम् । अत्र = अस्मिन् समुद्रे वसूनि = धनानि रत्नानि विवृद्धिं = स्फातिं प्रवर्धनमित्यर्थः "स्फातिर्वृद्धौ" इत्यमरः । अश्नुवते = प्राप्नुवन्ति, रत्नाकरोऽयमित्यर्थः । असौ = सागरः आपः = जलानि इन्धनं = दाह्यं यस्य तम् । अबिन्धनं वह्निं = वडवाग्निं बिभर्ति = धारयति । अपकारेऽपि शरणागतं न त्यजतीत्यर्थः । अनेन = समुद्रेण प्रह्लादनम् = आह्लादकं ज्योतिः = चन्द्रः अजनि = जनितम्, उत्पादितम् । प्रसन्न इति भावः ।

समासः—अर्कस्य मरीचयः अर्कमरीचयः । आपः इन्धनं यस्य सः अबिन्धनस्तम् अबिन्धनम् ।

हिन्दी—हे सीते ! देखो सूर्य की किरणें इसी समुद्र से जलरूपगर्भ को धारण करती हैं । अर्थात् सूर्य अपनी किरणों द्वारा समुद्र से जल खींचता है और पृथिवी में वर्षा करता है । और इसी समुद्र में धन, रत्न, बढ़ते हैं । तथा यह अपने शत्रु वडवानल को भी पालन करता है आश्रय देता है । एवं आनन्ददायक तथा प्रकाश करने वाले चन्द्र को इसी ने पैदा किया है । अर्थात् यह समुद्र बड़ा ही लोकोपकारी, सम्पत्तिवाला, तथा आश्रित का रक्षक एवं सौम्य है ॥ ४ ॥

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥ ५ ॥

तां तामनेकाम् । 'नित्यवीप्सयोः' इति वीप्सायां द्विरुक्तिः । अवस्थामक्षोभाद्यवस्थाम् । विष्णुपक्षे सत्त्वाद्यवस्थाम् । प्रतिपद्यमानं भजमानं महिम्ना दश दिशो व्याप्य स्थितं विष्णोरिवास्य रत्नाकरस्य रूपं स्वरूपमुक्तरीत्या बहुप्रकारत्वाद्व्यापकत्वाच्चेदृक्तयेयत्तया वा प्रकारतः परिमाणतश्चानवधारणीयं दुर्निरूपम् ।

अन्वयः—ताम्-ताम् अवस्थां प्रतिपद्यमानम्, महिम्ना दश दिशः व्याप्य स्थितम्, विष्णोः इव अस्य रूपम् ईदृक्तया इयत्तया वा अनवधारणीयम्।

व्याख्या—ताम्-ताम् = अनेकप्रकाराम् वीप्सायां द्विर्वचनम् अवस्थां = दशाम्, अक्षुब्धत्वस्थैर्यादिकामित्यर्थः। विष्णुपक्षे सत्त्वरजस्तमोरूपां दशां च प्रतिपद्यतेऽसौ प्रतिपद्यमानस्तं प्रतिपद्यमानं = भजमानं महतो भावः महिमा तेन महिम्ना = प्रभावेण, स्थैर्यगाम्भीर्यादिरूपेणेत्यर्थः। दश = दशसंख्याकाः दिशः = काष्ठाः "दिशस्तु ककुभः काष्ठाः" इत्यमरः। व्याप्य = अधिष्ठाय स्थितं विष्णोः = व्यापकस्य भगवतः कृष्णस्य इव = यथा अस्य = सागरस्य रत्नाकरस्य रूपं = स्वरूपं पूर्वोक्तप्रकारेणानेकत्वात् व्यापकत्वाच्च ईदृशो भावः ईदृक्ता तया ईदृक्तया = ईदृक्प्रकारतया इदं परिमाणमस्येति इयत्। इयतो भावः इयत्ता तया इयत्तया = सीमाप्रमाणतया वा अवधारयितुं = निश्चेतुं योग्यम् अवधारणीयं न अवधारणीयमिति अनवधारणीयं = अनिरूपणीयं वर्तते इति शेषः।

समासः—न अवधारणीयमिति अनवधारणीयम्।

हिन्दी—अनेक अवस्थाओं को प्राप्त हुए, अर्थात् अनेक रूपों से अनेक लोकोपकारी कार्य करने वाले तथा अपनी महानता से, प्रभाव से, दशों दिशाओं में फैले हुए, इस समुद्र के रूप को इतना है या ऐसा है, यह निश्चय वैसे ही नहीं किया जा सकता है जैसे कि सत्त्वगुण रजोगुण तथा तमोगुणकी अनेकावस्था को प्राप्त तथा व्यापक विष्णु भगवान् के रूप का, ऐसा है इतना है निश्चय नहीं किया जा सकता॥ ५॥

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते॥ ६॥

युगान्ते कल्पान्त उचिता परिचिता योगाः स्वात्मनिष्ठैव निद्रेव निद्रा यस्य स पुरुषो विष्णुर्लोकान्संहृत्य। नाभ्यां प्ररूढं यदम्बुरुहं पद्मं तदासनेन तन्नाभिकमलाश्रयेण प्रथमेन धात्रा दक्षादीनामपि स्रष्ट्रा पितामहेन संस्तूयमानः सन्। अमुमधिशेते। अमुष्मिञ्छेत इत्यर्थः। कल्पान्तेऽप्यस्तीति भावः।

अन्वयः—युगान्तोचितयोगनिद्रः पुरुषः लोकान् संहृत्य नाभिप्ररूढासनेन प्रथमेन धात्रा संस्तूयमानः सन् अमुम् अधिशेते।

व्याख्या—युगानाम् = कल्पानाम् अन्तः = अवसानमिति युगान्तः। युगान्ते = प्रलयकाले उचिता = परिचिता योगः = समाधिः स्वात्मनिष्ठा एव निद्रा इव निद्रा = शयनं यस्य स युगान्तोचितयोगनिद्रः। पुरति = अग्रे गच्छतीति पुरुषः = विष्णुः लोक्यन्ते इति लोकास्तान् लोकान् = भुवनानि संहृत्य = स्वात्मनि लीनीकृत्य = नह्यते = बध्नातीति नाभिः। अम्बुनि = जले रोहति इति अम्बुरुहम्। नाभ्याम् = उदरावर्ते प्ररूढम् = उत्पन्नं यत् अम्बुरुहं = कमलमिति नाभिप्ररूढाम्बुरुहं तदासनम् = आश्रयः यस्य स तेन नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन प्रथमेन = प्रथमोत्पन्नेन

दधाति इति धाता तेन धात्रा = ब्रह्मणा दक्षादीनामपि जनकेन पितामहेनेत्यर्थः। सम्यक् स्तूयते इति संस्तूयमानः = जेगीयमानः सन् अमुं = समुद्रम् अधिशेते = स्वपिति। अमुष्मिन् सागरे विष्णुः शयनं करोति प्रलयकालेऽपि समुद्रस्तिष्ठतीति भावः।

समासः—युगानामन्तः युगान्तः। युगान्ते उचिता योग एव निद्रा इव निद्रा यस्य स युगान्तोचितयोगनिद्रः। नाभौ प्ररूढं यत् अम्बुरुहमिति नाभिप्ररूढाम्बुरुहं तत् आसनं यस्य स तेन नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन।

हिन्दी—प्रलय काल में परिचित (अभ्यस्त) योग (समाधि) रूपी निद्रा वाले आदि पुरुष विष्णु भगवान्, तीनों लोक का संहार करके (तीनों लोकों को अपनी कुक्षि में इकट्ठा करके) इसी समुद्र में सोते हैं। "और उस समय, इनकी" नाभि से निकले हुए कमल से उत्पन्न होने वाले, तथा दक्षप्रजापति को पैदा करने वाले पितामह ब्रह्माजी इनकी स्तुति करते रहते हैं। अर्थात् यह सागर प्रलयकाल में भी नष्ट नहीं होता है।

विशेष—भगवान विष्णु की नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माजी ने दक्ष प्रजापति को उत्पन्न किया, इसी से इन्हें प्रथम धाता, पितामह कहा है ॥ ६ ॥

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः।
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते ॥ ७ ॥

पक्षच्छिदा गोत्रभिदेन्द्रेण। उभयत्र 'सत्सूद्विष–' इत्यादिना क्विप्। आत्तगन्धा हृतगर्वाः। अभिभूता इत्यर्थः। 'गन्धो गन्धक आमोदे लेशे संबन्धगर्वयोः' इति विश्वः। 'आत्तगन्धोऽभिभूतः स्यात्' इत्यमरः। महीं धारयन्तीति महीध्राः पर्वताः। मूलविभुजादित्वात्कप्रत्ययः। शतं शतं शतशः शरण्यं रक्षणसमर्थमेनं समुद्रम्। परेभ्यः शत्रुभ्य उपप्लविनो भयवन्तो नृपा धर्मोत्तरं धर्मप्रधानं मध्यमं मध्यमभूपालमिव। आश्रयन्ते। 'अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः' इति कामन्दकः। आर्तबन्धुरिति भावः।

अन्वयः—पक्षच्छिदा गोत्रभिदा आत्तगन्धाः महीध्राः शतशः शरण्यम् एनम्, परेभ्य उपप्लविनः नृपाः धर्मोत्तरं मध्यमम् इव आश्रयन्ते।

व्याख्या—पक्षान् = गरुतः = पत्राणि छिनत्ति = कर्तयतीति पक्षच्छिद् तेन पक्षच्छिदा गोत्रान् = पर्वतान् भिनत्तीति गोत्रभित्। तेन गोत्रभिदा = इन्द्रेण "अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचल०" इत्यमरः। आत्तः = हृतः गन्धः = गर्वः येषां ते आत्तगन्धाः = अभिभूताः, "आत्तगन्धोऽभिभूतः स्यात्" इत्यमरः। महीं = पृथिवीं धरन्तीति महीध्राः = पर्वताः शतं शतमिति शतशः = अनेकशः शरणे साधुः शरण्यस्तं शरण्यं = रक्षकम् एनं सागरं परेभ्यः = शत्रुभ्यः उपप्लवः = विघ्नः, भयं वा अस्ति येषान्ते उपप्लविनः नृपाः = भूपालाः धर्मः = सुकृतम् उत्तरः = प्रधानं यस्य स धर्मोत्तरस्तं धर्मोत्तरं = धर्मप्रधानं, न्यायप्रियमित्यर्थः। मध्ये भवः मध्यमस्तं मध्यमम्, शत्रुविजिगीष्वोः मध्यभवमित्यर्थः। राजानमाश्रयन्ते = आश्रिता भवन्ति। इन्द्रेण पर्वतानां पक्षच्छेदनसमये बहवः पर्वता अत्र सागरमाश्रिता अनेन रक्षिताश्चेति शरणागतरक्षकोऽयमिति भावः।

समासः—आत्तः गन्धः येषां ते आत्तगन्धाः । धर्मः उत्तरः यस्य स तं धर्मोत्तरम् ।

हिन्दी—पर्वतों के पंख काटने वाले, इन्द्र ने जिन के अभिमान को नष्ट (चूर-चूर) कर दिया था, ऐसे सैकड़ों भूधरों (पर्वतों) ने शरणागत की रक्षा करने वाले इस समुद्र का वैसे ही आश्रय लिया था जैसे कि शत्रुओं से पीड़ित एवं भयभीत राजा लोग, धर्म प्रधान तटस्थ राजा की शरण लेते हैं । अर्थात् यह सागर पीड़ितों का रक्षक बन्धु भी है ॥ ७ ॥

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ॥ ८ ॥

आदिभवेन पुंसाऽऽदिवराहेण रसातलात्प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः कृतोद्धरणक्रियायाः । विवाहक्रिया च व्यज्यते । भुवो भूदेवतायाः प्रलये प्रवृद्धमस्याब्धेरच्छमम्भो मुहूर्तं वक्त्राभरणं लज्जारक्षणार्थ-मुखावगुण्ठनं बभूव । तदुक्तम्—'उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना' इति ॥

अन्वयः—आदिभवेन पुंसा रसातलात् प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः भुवः प्रलयप्रवृद्धम् अस्य अच्छम् अम्भः मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ।

व्याख्या—आदौ = सर्वप्रथमं भवतीति आदिभवस्तेन आदिभवेन = आदिशूकरेण पुंसा = विष्णुना, वराहरूपिणेत्यर्थः रसायाः = पृथिव्याः तलम् = अधः, तस्मात् रसातलात् = पाताललोकात् उद्वहनस्य = उद्धरणस्य क्रिया = कर्म इति उद्वहनक्रिया । प्रयुक्ता = कृता उद्वहन-क्रिया यस्याः सा तथोक्ता, तस्याः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः कृतविवाहक्रियाया इति व्यञ्जनया लभ्यते । भुवः = पृथिव्याः प्रलीयतेऽत्र प्रलयः । प्रलये = कल्पान्ते प्रवृद्धं = वृद्धिं गतम् यत्तत् प्रलयप्रवृद्धम् अस्य = सागरस्य न च्छयतिदृष्टिमिति अच्छं = स्वच्छं निर्मलम् अम्भः = जलं मुहूर्तं = किंचित्क्षणं वक्त्रस्य = मुखस्य आभरणम् = अवगुण्ठनमिति मुहूर्तवक्त्राभरणं लोकलज्जानिवारणार्थमिति भावः । बभूव = जातम् ।

समासः—रसायाः तलमिति रसातलं तस्मात् रसातलात् । प्रयुक्ता उद्वहनस्य क्रिया यस्याः सा, तस्याः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः । प्रलये प्रवृद्धमिति प्रलयप्रवृद्धम् । मुहूर्तं वक्त्रस्य आभरणमिति मुहूर्तवक्त्राभरणम् ।

हिन्दी—सृष्टि के आरम्भ में आदि पुरुष वराह भगवान्, जब पाताल से पृथिवी का उद्धार करके ऊपर ले आ रहे थे, उस समय प्रलय से बढ़ा हुआ इस समुद्र का निर्मल जल क्षणभर के लिये पृथिवी के मुख का भूषण (घुंघट) हो गया था ।

विशेष—विवाह करके लाई जाती नायिका का घुंघट मुख की शोभा बढ़ाता है । पृथिवी भगवान् की पत्नी है । वे भी उसे पाताल से उद्धार करके मानो विवाह कर लाये तो उस समय स्वच्छ जल ही सुन्दर घुंघट बन गया ॥ ८ ॥

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदक्षः ।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः ॥ ९ ॥

अन्येषां पुंसां सामान्या साधारणा न भवतीत्यनन्यसामान्या कलत्रेषु वृत्तिर्भोगरूपा यस्य स तथोक्तः। इममेवार्थं प्रतिपादयति—तरंग एवाधरस्तस्य दाने समर्पणे दक्षश्चतुरोऽसौ समुद्रो मुखार्पणेषु प्रकृत्या सख्यादिप्रेषणं विना प्रगल्भा धृष्टाः सिन्धूर्नदीः। 'सिन्धुः समुद्रे नद्यां च' इति विश्वः। स्वयं पिबति पाययते च। तरंगाधरमिति शेषः। 'न पादम्याङ्यमा–' इत्यादिना पिबतेर्ण्यन्तान्निरस्य परस्मैपदनिषेधः। 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ–' इत्यादिना सिन्धूनां कर्मत्वम्। दंपत्योर्युगपत्परस्पराधरपानमनन्यसाधारणमिति भावः॥

अन्वयः—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः तरंगाधरदानदक्षः असौ, मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः सिन्धूः स्वयं पिबति, पाययते च।

व्याख्या—अन्येषां सामान्या, अन्यसामान्या, अन्यसामान्या = सर्वसाधारणी न भवतीतिअनन्यसामान्या = सर्वातिशायिनी कलत्रेषु = पत्नीषु वृत्तिः = भोगरूपा यस्य सः अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः। सर्वजनापेक्षया विशिष्टव्यवहारवानित्यर्थः। तरंगः = वीचिः एव अधरः = ओष्ठ इति तरंगाधरस्तस्य दानं = समर्पणं चुम्बनार्थमित्यर्थः। तत्र दक्षः = चतुरः, इति तरंगाधरदानदक्षः असौ = समुद्रः, मुखानाम् = स्वाननानाम् अर्पणानि = दानानि तेषु प्रकृत्या = स्वभावेन प्रगल्भाः = प्रतिभान्विताः ताः। धृष्टा इत्यर्थः। चुम्बनार्थं स्वकीयमुखं दातुं दूतीप्रेषणं विनैव चतुरा इत्यर्थः। "प्रगल्भः प्रतिभान्वितः" इत्यमरः। "भंगस्तरंग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिरि" त्यमरः। स्यन्दन्ते आपः यत्र ताः सिन्धवस्ताः सिन्धूः = नदीः स्वयं = स्वात्मना पिबति = नदीनामधरपानं करोति चुम्बतीत्यर्थः। पाययते = तरंगाधरपानं कुर्वतीः सिन्धूः पातुं प्रेरयति, च = समुच्चये।

समासः—अन्येषां सामान्या न भवतीति अनन्यसामान्या। अनन्यसामान्या कलत्रेषु वृत्तिर्यस्य सोऽनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः। तरंग एवाधरस्तरंगाधरः, तरंगाधरस्य दानं तत्र दक्षः इति तरंगाधरदानदक्षः। मुखानाम् अर्पणानि मुखार्पणानि तेषु मुखार्पणेषु। प्रकृत्या प्रगल्भाः प्रकृतिप्रगल्भास्ताः प्रकृतिप्रगल्भाः।

हिन्दी—"हे सीते! देखो" यह दूसरे पुरुषों की अपेक्षा अपनी स्त्रियों के विषय में भोगरूपी विशेष व्यवहार वाला है। इसलिये कि अपना तरंगरूपी अधर देने में बड़ा ही चतुर यह समुद्र, अपने मुख का अर्पण करने में (चुम्बन देने में) स्वभाव से ही ढीठ नदियों का स्वयं पान करता है और उन्हें भी पान कराता है।

विशेष—नदियाँ जब चुम्बन के लिये अपना मुख इसे सौंपती है तब यह उनका अधर पान करता है और तरंगरूपी अपना अधर उन्हें पान कराता है। अर्थात् दूसरे लोग अपना अधर पान नहीं कराते हैं किन्तु यह अपनी पत्नियों को अपना चुम्बन देता है। यही विशेषता है॥ ९॥

ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान्॥ १०॥

अमी तिमयो मत्स्यविशेषाः। तदुक्तम्—'अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनमायतः' इति।

विवृताननत्वाद्व्यात्तमुखत्वाद्धेतोः आननं विवृत्येत्यर्थः। ससत्त्वं मत्स्यादिप्राणिसहितं नदीमुखाम्भ आदाय संमीलयन्तश्चञ्चूपुटानि संघट्टयन्तः सन्तः सरन्ध्रैः शिरोभिर्जलप्रवाहानूर्ध्वं वितन्वन्ति। जलयन्त्रक्रीडासमाधिर्व्यज्यते ॥

अन्वयः—अमी तिमयः विवृताननत्वात् ससत्त्वं नदीमुखाम्भः आदाय संमीलयन्तः सरन्ध्रैः शिरोभिः जलप्रवाहान् ऊर्ध्वं वितन्वन्ति।

व्याख्या—अमी = पुरोदृश्यमानाः तिम्यन्तीति तिमयः ताम्यन्ति = आकांक्षन्तीति वा तिमयः = मत्स्यविशेषाः। तिमिर्महाकायो मत्स्यः कश्चित् सामुद्रः। तथा च "अस्तिमत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः" इति भरतः। विवृतं = विस्फारितं मुखम् = आननं येषां ते विवृताननाः। तेषां भावस्तत्त्वं तस्मात् विवृताननत्वात्। मुखं विवृत्येत्यर्थः। सत्त्वैः = मत्स्यादिजन्तुभिः सहितं ससत्त्वम् नदीनां = सरितां मुखानि = सागरसरिन्मिलनस्थानि, तेषाम् अम्भः तत् नद्यः = सरितः मुखानि = आननानि इव यस्य सः, नदीमुखः = समुद्रस्तस्य अम्भः = जलमिति नदीमुखाम्भः इत्यपिकष्ट कल्पना आदाय = गृहीत्वा समुद्रजलं पीत्वेत्यर्थः। सम्मीलयन्तः = चञ्चुपुटानि पिदधतः संकोचयन्त इत्यर्थः सन्तः, रमं = क्रीडां धरति, रन्धयतीतिवा रन्ध्रम् रन्ध्रैः = छिद्रैः सहितानि सरन्ध्राणि तैः सरन्ध्रैः "रन्ध्रं तु दूषणे च्छिद्रे" इति विश्वमेदिन्यौ। शिरोभिः = मस्तकैः जलस्य = अम्भसः प्रवाहाः = धाराः जलप्रवाहास्तान् जलप्रवाहान् ऊर्ध्वम् = उपरि, आकाशे वितन्वन्ति = प्रक्षिपन्ति, जलयंत्रक्रीडां कुर्वन्तीत्यर्थः।

समासः—विवृतम् आननं येषां ते विवृताननास्तेषां भावस्तत्वं तस्मात् विवृताननत्वात्। सत्त्वैः सहितं ससत्त्वम्। नद्याः मुखं नदीमुखं तस्य अम्भः तत् नदीमुखाम्भः। रन्ध्रैः सहितानि सरन्ध्राणि तैः सरन्ध्रैः। जलस्य प्रवाहास्तान् जलप्रवाहान्।

हिन्दी—"और देखो" ये सौ योजन लम्बे मगरमच्छ (ह्वेलमछली) मुखों के खुला होने के कारण, मछलियों के सहित समुद्र के जल को पीकर मुख को बन्द कर लेते हैं। "और फिर" अपने छेद वाले शिरों से जल की धाराएँ ऊपर आकाश की ओर छोड़ रहे हैं।

विशेष—तिमि एक विशालकाय ह्वेलमछली होती है। छोटे मोटे जीवों को लिये दिये वह पानी पीकर मुख बंद कर लेती है तो उसके मस्तक में छिद्र होने के कारण फुहारे की तरह पानी निकलने लगता है। यह सब मुँह के खुला होने तथा बन्द करने से स्वयं हो जाता है। अतः समाधि अलंकार है ॥ १० ॥

मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान्।
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम् ॥ ११ ॥

सहसोत्पतद्भिर्मातंगनक्रैर्मातंगाकारैर्ग्राहैर्द्विधा भिन्नान्समुद्रफेनान्पश्य। फेना एषां जलमातंगनक्राणां कपोलेषु संसर्पितया संसर्पणेन हेतुना कर्णेषु क्षणं चामरत्वं व्रजन्ति ॥

अन्वयः—सहसोत्पतद्भिः मातंगनक्रैः द्विधा भिन्नान् समुद्रफेनान् पश्य ये एषां कपोलसंसर्पितया कर्णक्षणचामरत्वं व्रजन्ति।

व्याख्या—सहसा = अतर्कितं = झटितीत्यर्थः उत्पतन्तः = उद्गच्छन्तस्तैः सहसोत्पतद्भिः "अतर्किते तु सहसा" इत्यमरः । मातंगाः = मातंगाकाराः नक्राः = कुम्भीरास्तैः मातंगनक्रैः । न क्रामति दूरस्थमिति नक्रः, ग्राह इत्यर्थः 'नक्रो यादसि' इति हैमः । 'नक्रस्तु कुम्भीरः' इत्यमरश्च । द्विधा भिन्नान् = खण्डशः कृतान् चन्द्रोदयात् आपः सम्यक् उन्दन्ति = क्लिद्यन्ति यत्र स समुद्रः, मुद्रया = मर्यादया सह वर्तमानः, इति वा समुद्रः । समुद्रस्य फेनाः = डिण्डीरास्तान् समुद्रफेनान् "डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः" इत्यमरः । हे सीते त्वं पश्य = अवलोकय ये = फेनाः एषां = गजाकारनक्राणां कं = सुखंपोलन्तीति कपोलास्तेषु कपोलेषु = गण्डस्थलेषु संसर्पितुं = प्रसर्तुं शीलं येषां ते कपोलसंसर्पिणः, तेषां भावस्तत्ता तया कपोलसंसर्पितया = गण्डस्थलेषु संसर्पणेन कारणेनेत्यर्थः । चामरस्य भावः चामरत्वम् । कर्णेषु = श्रोत्रेषु क्षणं = मुहूर्तं "यावत्" चामरत्वं = वालव्यजनत्वं व्रजन्ति = गच्छन्ति, प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । 'चामरा चामरं वालव्यजनं रोमगुच्छकमि'ति रभसः ।

समासः—सहसा उत्पतन्तस्तैः सहसोत्पतद्भिः । मातंगानाम् आकार इव आकारः येषान्ते मातंगाकाराः, मातंगाकाराश्च ते नक्राः इति मातंगनक्रास्तैः मातंगनक्रैः, शाकपार्थिवादित्वात् आकारपदस्य लोपः । समुद्रस्य फेनास्तान् समुद्रफेनान् । कपोलेषु संसर्पिणः कपोलसंसर्पिणः, तेषां भावस्तत्ता तया कपोलसंसर्पितया । कर्णेषु क्षणं चामराः कर्णक्षणचामरास्तेषां भावस्तत्वं कर्णक्षणचामरत्वम् , तत् ।

हिन्दी—हे सीते ! जल के हाथी के आकार वाले इन मगर मच्छों के अचानक उछलने (जल के भीतर से उठने) से फट गए (टुकड़े टुकड़े हो गए) समुद्र के झागों को तो देखो । जो कि इन मगरमच्छों के गालों पर लग जाने के कारण इनके कानों पर क्षणभर के लिये चामर से लग रहे हैं ॥ ११ ॥

वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः ।
सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः ॥ १२ ॥

वेलानिलाय । वेलानिलं पातुमित्यर्थः । 'क्रियार्थोपपद—' इत्यादिना चतुर्थी । प्रसृता निर्गता महोर्मीणां विस्फूर्जथुरुद्रेकः । 'ट्वितोऽथुच्' इत्यथुच्प्रत्ययः । तस्मान्निर्विशेषा दुर्ग्रहभेदा एते भुजंगाः सूर्यांशुसंपर्केण समृद्धरागैः प्रवृद्धकान्तिभिः फणस्थैर्मणिभिर्व्यज्यन्त उन्नीयन्ते ॥

अन्वयः—वेलानिलाय प्रसृताः महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः एते भुजंगाः सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैः फणस्थैः मणिभिः व्यज्यन्ते ।

व्याख्या—वेलायाः = सागरतटस्य अनिलः = वायुस्तस्मै वेलानिलाय = सागरतटस्य पवनं पातुमित्यर्थः प्रसृताः = निर्गताः जलात् बहिरागता इत्यर्थः । ऋच्छन्ति = गच्छन्तीति ऊर्मयः । महान्तः = दीर्घाश्च ते ऊर्मयः = तरंगाः, इति महोर्मयः, महोर्मीणां = महातरंगाणां विस्फूर्जथुः = उद्रेकः,इति महोर्मिविस्फूर्जथुः,तस्मात् निर्गतः विशेषः = भेदः येषां ते महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः, महातरंगेभ्योऽशक्यभेदग्रहा इत्यर्थः "भंगस्तरंग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिः" इत्यमरः । एते = पुरोवर्तिनः भुजेन = कौटिल्येन गच्छन्तीति भुजंगाः = महासर्पाः सूर्यस्य = भास्करस्य अंशवः =

किरणास्तेषां सम्पर्कः = संसर्गस्तेन समृद्धः = प्रवृद्धः रागः = कान्तिः येषां ते तैः सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैः, फणेषु तिष्ठन्तीति फणस्थास्तैः फणस्थैः "स्फटायां तु फणा द्वयोः" इत्यमरः। सर्पशिरस्थैरित्यर्थः। मणिभिः = रत्नैः "रत्नं मणिर्द्वयोः" इत्यमरः। व्यज्यन्ते = व्यक्ता भवन्ति, ज्ञायन्ते।

समासः—वेलायाः अनिलस्तस्मै वेलानिलाय (वेलानिलं पातुमिति "क्रियार्थोपपद" इत्यादिना चतुर्थी)। महान्तश्च ते ऊर्मयः महोर्मयः। महोर्मीणां विस्फूर्जथुः, तस्मात् निर्गतः विशेषः येषां ते महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः। सूर्यस्य अंशवः सूर्यांशवस्तेषां संपर्कस्तेन समृद्धः रागः येषां ते तैः सूर्यांशुसपर्कसमृद्धरागैः।

हिन्दी—सागर तट का वायु पीने के लिये, जल से बाहर निकले हुए, जो बड़ी तरंगों के उठने के समान दीख रहे हैं ये सांप हैं, जो कि सूर्य की किरणों के लगने से चमकने वाली, अपनी शिर की मणियों से पहचाने जा रहे हैं।

विशेष—सांप वायु खाता है। अतः सागर के बड़े-बड़े सांप वायु पीने के लिये तट पर पड़े हैं, जो कि तरंगों से लग रहे हैं। किन्तु जब सूर्यकिरणों से इनकी मस्तकमणियां चमकती हैं तो सांप मालुम पड़ते हैं॥ १२॥

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम्॥ १३॥

तवाधरस्पर्धिषु। अधरसदृशेष्वित्यर्थः। विद्रुमेषु प्रवालेषु सहसोर्मिवेगात्पर्यस्तं प्रोत्क्षिप्तमूर्ध्वाङ्कुरैर्विद्रुमप्ररोहैः प्रोतमुखं स्यूतवदनमेतच्छङ्खानां यूथं वृन्दं कथंचित्क्लेशादपक्रामति। विलम्ब्यापसरतीत्यर्थः॥

अन्वयः—तव अधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु सहसा ऊर्मिवेगात् पर्यस्तम् ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखं शंखयूथं कथंचित् क्लेशात् अपक्रामति।

व्याख्या—तव = भवत्याः, सीतायाः इत्यर्थः। अधरम् = ओष्ठं स्पर्धितुं शीलं येषां ते अधरस्पर्धिनस्तेषु अधरस्पर्धिषु सीताधरसदृशेषु, इत्यर्थः। विशिष्टाः द्रुमाः विद्रुमाः, विशिष्टेऽद्रौ भवा वा विद्रुमास्तेषु विद्रुमेषु = प्रवालेषु "अथ विद्रुमः पुंसि प्रवालं पुंनपुंसकमि"त्यमरः। सहसा = झटिति ऊर्मीणां = तरंगाणां वेगः = जवस्तस्मात् ऊर्मिवेगात् पर्यस्तं = प्रोत्क्षिप्तम् ऊर्ध्वाङ्कुरैः = प्रवालप्ररोहैः प्रोतं = स्यूतं मुखम् = आननं यस्य तत् ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखम्, एतत् = पुरोवर्ति शं = सुखं खनति = जनयतीति शंखः शंखानां = कम्बूनां यूथं = वृन्दमिति शंखयूथम् कथंचित् = केनापि प्रकारेण क्लेशात् = कष्टात् अपक्रामति = अपगच्छति विलम्बेनापसरतीत्यर्थः।

समासः—अधरस्य स्पर्धिनः, अधरस्पर्धिनस्तेषु अधरस्पर्धिषु। ऊर्मीणां वेगः, तस्मात् ऊर्मिवेगात्। ऊर्ध्वांकुरैः प्रोतं मुखं यस्य तत् ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखम्। शंखानां यूथमिति शंखयूथम्।

हिन्दी—हे सीते! देखो तुम्हारे होठ से होड करने वाले, अर्थात् तुम्हारे अधर के समान लाल लाल मूँगों के ऊपर लहरों के वेग से अचानक फेंके गए, तथा मूँगों के अंकुरों

से जिनके मुख विन्ध गए हैं, ऐसा ये जीवित शंखों कह झुण्ड किसी प्रकार कष्ट पाकर देर करके इधर-उधर जा पारहा है ॥ १३ ॥

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद्भ्रमता घनेन ।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥ १४ ॥

पयांसि पातुं प्रवृत्त एव प्रवृत्तमात्रो न तु पीतवांस्तेनावर्तवेगात्। 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः। भ्रमता घनेनायं समुद्रो भूयः पुनरपि गिरिणा मन्दरेण प्रमथ्यमान इव भूयिष्ठमत्यन्तमाभाति ॥

अन्वयः—पयांसि पातुं प्रवृत्तमात्रेण आवर्तवेगात् भ्रमता घनेन अयं समुद्रः भूयः गिरिणा प्रमथ्यमानः इव भूयिष्ठम् आभाति।

व्याख्या—पयांसि = जलानि पातुम् = आदातुं प्रवृत्त एव प्रवृत्तमात्रः, तेन प्रवृत्तमात्रेण न तु पीतवता इति भावः। आवर्तनम् आवर्तस्तस्य वेगस्तस्मात् आवर्तवेगात् = जलभ्रमणजवात् "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः" इत्यमरः। भ्रमता = भ्रमणं कुर्वता, अनवस्थितेनेत्यर्थः। घनेन = मेघेन अयं = पुरो दृश्यमानः सागरः भूयः = पुनरपि गिरिणा = मन्दराचलेन प्रमथ्यतेऽसौ प्रमथ्यमानः = आलोड्यमानः इव = यथा अतिशयेन बहु भूयिष्ठम् = अत्यधिकम् आभाति = शोभते।

समासः—प्रवृत्त एव प्रवृत्तमात्रः तेन प्रवृत्तमात्रेण। आवर्तस्य वेगः आवर्तवेगस्तस्मात् आवर्तवेगात्।

हिन्दी—"यह देखो" जल पीने के लिये (सागर में) आये, और भंवरों के प्रबल वेग से (उनके साथ २) चक्कर काटते हुये, बादल से यह समुद्र ऐसा जान पड रहा है मानों मन्दराचल से फिर दुबारा मथा जा रहा हो ॥ १४ ॥

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा ॥ १५ ॥

अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेर्दूरात्तन्व्यणुत्वेनावभासमाना तमालतालीवनराजिभिर्नीला वेला तीरभूमिर्धारानिबद्धा चक्राश्रिता कलङ्करेखा मालिन्यरेखेव। आभाति। 'मालिन्यरेखां तु कलङ्कमाहुः' इति दण्डी ॥

अन्वयः—अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेः दूरात् तन्वी तमालतालीवनराजिनीला वेला धारानिबद्धा कलंकरेखा इव आभाति।

व्याख्या—अयसः = लोहस्य चक्रं इति अयश्चक्रं तेन निभः = तुल्यं तस्य अयश्चक्रनिभस्य लवणं = क्षारम् अम्बु = जलमिति लवणाम्बु तस्य राशिः = समूहः इति लवणाम्बुराशिस्तस्य लवणाम्बुराशेः = लवणसमुद्रस्येत्यर्थः। दुःखेनेयते तत् दूरं तस्मात् दूरात् = विप्रकृष्टात् तन्वी = कृशा = सूक्ष्मेत्यर्थः। तमालानां = तापिच्छानां तालीनां = तृणवृक्षविशेषाणां वनानि = अरण्यानि तेषां राजिः = पंक्तिः तया तद्वन्नीला = श्यामा, इति तमालतालीवनराजिनीला, वेला = सागरतट-

भूमिः धारायां = चक्रे निबद्धा = आश्रिता कलंकस्य = मालिन्यस्य रेखा = लेखा, इति कलंकरेखा इव = यथा आभाति = शोभते ।

समासः—अयसः चक्रमिति अयश्चक्रं तेन सदृशः, तस्य अयश्चक्रनिभस्य । लवणं च तदम्बु लवणाम्बु तस्य राशिस्तस्य लवणाम्बुराशेः । तमालानां तालीनां च वनानि तमालतालीवनानि तेषां राजिः, तया नीला, इति तमालतालीवनराजिनीला । धारायां निबद्धा धारानिबद्धा । कलंकस्य रेखा कलंकरेखा ।

हिन्दी—दूर होने के कारण पतला लोहे के पहिये के समान खारे समुद्रका तट (किनारा) और तमाल तथा ताड़ के वनों की पंक्ति से काला, ऐसा जान पड़ रहा है मानों पहिये की धार पर काली रेखा (मोर्चा जंग लगा) हो ।

विशेष—तमाल, एक वृक्ष का नाम है । इसकी छाल काली होती है । ताल ताड़ का वृक्ष । यह दोनों समुद्र तट पर खूब होते हैं । अतः सागर तट काला है । तथा अधिक ऊपर से पतला दीख पड़ता है । अतः पहिये में लगे गोलाकार पतले लोहे की तरह है ।। १५ ॥

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायताक्षि ।
मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेत्तीव बिम्बाधरबद्धतृष्णम् ॥ १६ ॥

हे आयताक्षि ! 'वेला स्यात्तीरनीरयोः' इति विश्वः । वेलानिलः केतकरेणुभिस्त आननं संभावयति । किमर्थमित्यपेक्षायामुत्प्रेक्षते—बिम्बाधरे बद्धतृष्णं मां मण्डनेनाभरणक्रियया कालहानिर्विलम्बस्तस्या अक्षममसहमानम् । कर्मणि षष्ठी । कालहानिमसहमानं वेत्ति किम् । नो चेत्कथं संभावयेदित्यर्थः ॥

अन्वयः—हे आयताक्षि ! वेलानिलः केतकरेणुभिः ते आननं सम्भावयति, बिम्बाधरबद्धतृष्णं मां मण्डनकालहानेः अक्षमं वेत्ति इव ।

व्याख्या—आयम्यते स्म, आयतते वा आयतम् । आयते = दीर्घे अक्षिणी = नेत्रे यस्याः सा आयताक्षी तस्याः संबुद्धौ हे आयताक्षि = हे सुलोचने ! "दीर्घमायतम्" इत्यमरः । वेलायाः = समुद्रतीरस्य अनिलः = वायुः, केतकस्य = सूचीपुष्पस्य केतक्या इत्यर्थः, रेणवः धूलयः = परागास्तैः केतकरेणुभिः ते = तव सीतायाः आननं = मुखं सम्भावयति = अलंकरोतीत्यर्थः । किमर्थं संभावयतीत्यपेक्षायामुत्प्रेक्ष्यते—बिम्बं = बिम्बिकाफलमिव यः अधरः = ओष्ठः, तस्मिन् बिम्बाधरे बद्धा तृष्णा = अभिलाषो यस्य स तं बिम्बाधरबद्धतृष्णं मां = रामम् मण्डनेन = अलंकरणक्रियया या कालस्य = समयस्य हानिः = व्ययस्तस्याः मण्डनकालहानेः, सीतायाः मुखचुम्बने विलम्बस्येत्यर्थः । न क्षमः = समर्थस्तम्, अक्षमं वेत्ति जानाति इव = किम् । अन्यथा परागेण तव मुखं कथमलंकरोतीत्यर्थः ।

समासः—आयते अक्षिणी यस्याः सा तस्याः संबुद्धौ हे आयताक्षि ! । वेलायाः अनिलः वेलानिलः । केतकस्य रेणवः केतकरेणवस्तैः केतकरेणुभिः । बिम्बमिव अधरः बिम्बाधरस्तस्मिन्

बद्धा तृष्णा यस्य स तं बिम्बाधरबद्धतृष्णम्। मण्डनेन कालस्य हानिरिति मण्डनकालहानि-स्तस्याः मण्डनकालहानेः। न क्षमः अक्षमस्तम् अक्षमम्।

हिन्दी—हे विशाललोचने सीते! सागर तट का वायु, केवड़े के पराग (पुष्परेणु) से तुम्हारे मुख को अलंकृत कर रहा है। "मानो इसने मुझे जान लिया है कि–" तुम्हारे अधर पान का लोभी (उतावला) मैं शृंगार करने में लगने वाले विलम्ब को सहन नहीं कर सकता॥ १६॥

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः।
प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम्॥ १७॥

एते वयं सैकतेषु भिन्नाभिः स्फुटिताभिः शुक्तिभिः पर्यस्तानि परितः क्षिप्तानि मुक्तानां पटलानि यस्मिंस्तत्तथोक्तं फलैरावर्जिता आनमिताः पूगमाला यस्मिंस्तत्पयोधेः कूलं विमानवेगान्मुहूर्तेन प्राप्ताः॥

अन्वयः—एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं, फलावर्जितपूगमालं पयोधेः कूलं विमानवेगात् मुहूर्तेन प्राप्ताः।

व्याख्या—एते वयं = पुष्पकविमाने समुपविष्टाः रामादयः सिकताः सन्ति येषु तानि सैकतानि तेषु सैकतेषु = बालुकामयतटेषु भिन्नाः = स्फुटिताः शुक्तयः = मुक्तास्फोटाः, ताभिः पर्यस्तानि = सर्वतः क्षिप्तानि मुक्तानां = रत्नविशेषाणां पटलानि = समूहाः यस्मिन् तत् सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं "मुक्तास्फोटः स्त्रियां शुक्तिः" इत्यमरः। पवते, पुनाति वा पूगः। फलैः = पूगफलैः आवर्जिताः = आनमिताः पूगानां = क्रमुकाणां मालाः श्रेणयः यस्मिन् तत् फलावर्जितपूगमालं "घोण्टा तु क्रमुकः पूगः" इत्यमरः। पयोधेः = समुद्रस्य कूलं = तीरं विमानस्य = व्योमयानस्य वेगः = जवस्तस्मात् विमानवेगात् मुहूर्तेन = द्वादशक्षणेन प्राप्ताः = आगताः।

समासः—भिन्नाश्च ताः शुक्तयः भिन्नशुक्तयः। सैकतेषु भिन्नशुक्तिभिः पर्यस्तानि मुक्तानां पटलानि यस्मिन् तत्तथोक्तम्। पूगानां मालाः पूगमालाः, फलैः आवर्जिताः पूगमालाः यस्मिन् तत् फलावर्जितपूगमालम्। विमानस्य वेगः विमानवेगस्तस्मात् विमानवेगात्।

हिन्दी—"हे सीते देखो" हम सब, विमान के वेग से चलने के कारण क्षणभर में ही सागर के इस किनारे पर आ पहुचे हैं। जहाँ कि बालू पर फूटी हुई सीपों से निकले मोती बिखरे पड़े हैं और फलों के भार से सुपारी के वृक्षों की श्रेणी झुकी हुई है॥ १७॥

कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम्।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः॥ १८॥

'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः। करभ इवोरू यस्याः सा करभोरूः। 'ऊरूत्तरपदादौपम्ये' इत्यूङ्। तस्याः संबुद्धिर्हे करभोरु। मृगवत्प्रेक्षत इति विग्रहः, हे मृगप्रेक्षिणि, तावत्पश्चान्मार्गे लङ्घिताध्वनि दृष्टिपातं कुरुष्व। एषा सकानना भूमिर्विदूरीभवतः समुद्रान्निष्पतति निष्क्रामतीव। विदूरशब्दाद्विशेष्यनिघ्नाच्च्विः॥

अन्वयः—हे करभोरु, हे मृगप्रेक्षिणि ! तावत् पश्चात् मार्गे दृष्टिपातं कुरुष्व। एषा सकानना भूमिः विदूरीभवतः समुद्रात् निष्पतति इव।

व्याख्या—करे भातीति करभः = मणिबन्धादारभ्य कनिष्ठापर्यन्तं करस्य बहिर्भागः स इव ऊरू यस्याः सा करभोरुः तस्याः संबुद्धौ हे करभोरु = हे सुजङ्घे ! मृगवत् प्रेक्षते या सा मृगप्रेक्षिणी तस्याः संबुद्धौ हे मृगप्रेक्षिणि = हे कुरंगाक्षि ! तावत् = पूर्वं किंचित् पश्चात् = पृष्ठतः मार्गे = अध्वनि लंघितमार्गे इत्यर्थः। दृष्टेः = नेत्रस्य पातः = प्रक्षेपस्तं दृष्टिपातं, पृष्ठतो मार्गेऽवलोकनमित्यर्थः। कुरुष्व = कुरु। एषा = पुरोदृश्यमाना काननयति = दीपयति स्मरादि तत् काननम्। कं = जलम् अननं = जीवनमस्येति वा काननम्। काननेन = वनेन सहिता सकानना भूमिः = पृथिवी "अटव्यरण्यं काननं विपिनं गहनं वन" मित्यमरः। विशेषेण दूरं विदूरं न विदूरम् अविदूरम् ; अविदूरं विदूरं भवतीति विदूरीभवन् तस्मात् विदूरीभवतः = विप्रकृष्टीभवतः समुद्रात् = सागरात् निष्पतति = निष्क्रामति इव = यथा आभातीत्यर्थः।

समासः—करभः इव ऊरू यस्याः सा, तस्याः संबुद्धौ हे करभोरु। दृष्टेः पातस्तं दृष्टिपातम्। काननेन सहिता सकानना।

हिन्दी—हे सुन्दर जांघोंवाली मृगनयनी सीते ! पहले जरा पीछे छूटे हुये मार्ग में तो देखो। वनसहित यह तट की भूमि ऐसी दीख रही है मानो दूर हटते हुए समुद्र से अभी निकल रही है।

विशेष—करभोरु–मणिवन्ध (कलाई) से लेकर कनिष्ठिका अंगुली तक हथेली के बाहरी भाग को करभ कहते हैं। और हाथी के सूंड़ को भी करभ कहते हैं। अर्थात् करभ के समान उतार चढाव वाली या हाथी के सूंड के समान जांघोवाली, अर्थात् सुन्दर जांध वाली ॥ १८ ॥

क्वचित्पथा संचरते सुराणां,क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥ १९ ॥

हे देवि, विमानं पुष्पकं मे मनसोऽभिलाषो यथाविधस्तथा प्रवर्तते पश्य। क्वचित्सुराणां पथा संचरते। क्वचिद्घनानां क्वचित्पततां पक्षिणां च पथा संचरते। 'समस्तृतीयायुक्तात्' इ'पूर्वोचरतेरात्मनेपदम् ॥

अन्वयः—हे सीते ! विमानं मे मनस अभिलाषः यथाविधः तथा प्रवर्तते, त्वं पश्य। क्वचित् सुराणां पथा संचरते, क्वचित् घनानां, क्वचित् पततां च यथा संचरते।

व्याख्या—हे सीते ! विशिष्टं मानयन्त्यनेन, इति विमानं = पुष्पकं मे = मम रामचन्द्रस्य मन्यतेऽनेन तन्मनस्तस्य मनसः = चित्तस्य अभिलाषः = इच्छा यथा = यादृशः विधा = प्रकारो यस्य स यथाविधः तथा = तेन प्रकारेण प्रवर्तते = प्रचलित इति त्वं = सीता पश्य = अवलोकय। तथाहि प्रकारं दर्शयति क्वचित् = कुत्रचित् सुराणां = देवानां पथा = मार्गेण संचरते = गच्छति,

क्वचित् घनानां = मेघानां पथा संचरते, क्वचित् पततां = पतत्रिणां पक्षिणां च पथा संचरते, सर्वमार्गेण सर्वविधिना च ममेच्छानुसारं प्रचलतीत्यर्थः ॥

समासः—यथा विधा यस्य स यथाविधः ॥

हिन्दी—हे सीते, यह पुष्पक विमान, मेरे मन की इच्छानुसार जैसे मैं चाहता हूँ वैसे ही चलता है। तुम देखो, कभी तो देवताओं के मार्ग से चलता है और कभी बादलों के मार्ग से चलता है तथा कभी पक्षियों के मार्ग से चलता है ॥ १९ ॥

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते ॥ २० ॥

महेन्द्रद्विपदानगन्धिरैरावतमदगन्धिः । त्रिभिर्मार्गैर्गच्छतीति त्रिमार्गगा गङ्गा । 'तद्धितार्थ–' इत्यादिनोत्तरपदसमासः । तस्या वीचीनां विमर्देन संपर्केण शीतोऽसावाकाशवायुर्दिनयौवनोत्था-न्मध्याह्नसंभवांस्ते मुखे स्वेदलवानाचामति हरति । अनेन सुरपथसंचारो दर्शितः ॥

अन्वयः—महेन्द्रद्विपदानगन्धिः त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः असौ आकाशवायुः दिन-यौवनोत्थान् ते मुखे स्वेदलवान् आचामति ।

व्याख्या—महांश्चासौ इन्द्रश्च महेन्द्रः = महैश्वर्यशालीत्यर्थः । महेन्द्रस्य = देवेन्द्रस्य द्विपः = ऐरावतस्तस्य दानं = मदजलं तस्य गन्धः = परिमलः अस्ति यस्यासौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिः । त्रीन् मार्गान् गच्छतीति त्रिमार्गगा, त्रयाणां मार्गाणां समाहारः त्रिमार्गं तेन गच्छतीति वा त्रिमार्गगा । त्रिमार्गगायाः = गंगायाः वीचयः = तरंगास्तेषां विमर्दः = संपर्कः तेन शीतः = शीतलः, इति त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः "भंगस्तरंग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिः" इत्यमरः । अत्र ऊर्मिः वीचिः वास्त्रियामिति । असौ = अनुभूयमानः आकाशस्य = अम्बरस्य वायुः = पवनः दिनस्य = दिवसस्य यौवनं = मध्याह्नः तेन उत्थाः = उत्पन्नाः संभवास्तान् दिनयौवनोत्थान् ते = तव मुखे = आनने स्वेदस्य = घर्मस्य लवाः = कणाः, बिन्दवस्तान् स्वेदलवान् "घर्मो निदाघः स्वेदः स्यात्" इत्यमरः । आचामति = परिहरति प्रोञ्छतीत्यर्थः । अनेन देवमार्गसंचारो व्यज्यते ।

समासः—महांश्चासौ इन्द्रः महेन्द्रः । महेन्द्रस्य द्विपः, महेन्द्रद्विपस्तस्य दानं तस्य गन्धः, इति महेन्द्रद्विपदानगन्धः, सोऽस्यास्तीति महेन्द्रद्विपदानगन्धिः । त्रयाणां मार्गाणां समाहार-स्त्रिमार्गं तेन गच्छतीति त्रिमार्गगा तस्याः वीचयस्तेषां विमर्दस्तेन शीतः इति त्रिमार्गगावीचि-विमर्दशीतः । आकाशस्य वायुरिति आकाशवायुः । दिनस्य यौवनं दिनयौवनम्, तेन उत्थाः तान् दिनयौवनोत्थान् । स्वेदस्य लवास्तान् स्वेदलवान् ।

हिन्दी—इन्द्र के हाथी ऐरावत के मदजल की सुगन्धि वाला, तथा गंगा (आकाश-गंगा) की लहरों के छूने से शीतल यह आकाश का वायु हे सीते, तुम्हारे मुखपर दोपहर की गर्मी से उत्पन्न (आए हुए) पसीने की बूँदों को पी रहा है। अर्थात् पोंछ रहा है।

विशेष—त्रिमार्गगा—तीन मार्गों–आकाश, मृत्युलोक तथा पाताललोक में जाने वाले तीन स्रोतों से बहने वाली गंगाजी। महाभारत में लिखा है कि "क्षितौ तारयते मर्त्यान्ना-गांस्तारयतेऽप्यधः। दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता" ॥ २० ॥

करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या ।
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते ॥ २१ ॥

हे चण्डि कोपने । 'चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः' इत्यमरः । कुतूहलिन्या विनोदार्थिन्या त्वया कर्त्र्या वातायने गवाक्षे लम्बितेनावस्रंसितेन करेण स्पृष्ट उद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते द्वितीयमाभरणं वलयमामुञ्चतीवार्पयतीव । चण्डीत्यनेन कोपनशीलत्वाद्भीतः क्षिप्रं त्वां मुञ्चति मेघ इति व्यज्यते ॥

अन्वयः—हे चण्डि ! कुतूहलिन्या त्वया वातायनलम्बितेन करेण स्पृष्टः उद्भिन्नविद्युद्-वलयः घनः ते द्वितीयम् आभरणम् आमुञ्चति इव ।

व्याख्या—हे चण्डि = अतिकोपने ! कुतू = चर्ममयं स्नेहपात्रं हलति = लिखतीति कुतूहलं तदस्याः अस्तीति कुतूहलिनी तया कुतूहलिन्या = विनोदार्थिन्या, कौतुकवत्या त्वया = सीतया (कर्त्र्या) ईयतेऽनेनेति अयनं मार्गः वातस्य = वायोः अयनमिति वातायनं = गवाक्षः । वातायने लम्बितः = अवस्रंसितः तेन वातायनलम्बितेन करेण = हस्तेन स्पृष्टः = जातस्पर्शः उद्भिन्नं = प्रकटं = विकासितं विद्युत् = सौदामिनी एव वलयं = कंकणं येन स उद्भिन्नविद्युद्वलयः घनः = मेघः ते = तव द्वितीयम् = अपरं, विद्युद्रूपमित्यर्थः आभरणं = वलयम् आमुञ्चति = अर्पयति इवः = उत्प्रेक्षायाम् । "वलयः कण्ठरोगे ना कंकणे पुंनपुंसकमि"ति मेदिनी ॥

समासः—वातस्य अयनं वातायनं, वातायने लम्बितः वातायनलम्बितस्तेन वातायनलम्बितेन । उद्भिन्नं विद्युत् एव वलयं यस्य स उद्भिन्नविद्युद्वलयः ।

हिन्दी—हे क्रोधी स्वभाव वाली, खिलवाड़ से तुम, विमान की खिड़की से बाहर लटकते हुए हाथ से जब बादल को छू लेती हो तो वह बादल "तुम्हारे हाथ के चारों ओर" बिजली चमका देता है । उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो बादल तुम्हारे हाथ में दूसरा कंकण (सोने का जेवर) पहना रहा है ।

विशेष—सीताजी को चण्डि संबोधन करने का भाव यह है कि–हे सीते ! तुम्हें क्रोधी जानकर मेघ, भय से तुम्हारा हाथ तुरन्त छोड़ देगा ॥ २१ ॥

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि ।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि ॥ २२ ॥

अमी चीरभृतस्तापसा जनस्थानमपोढविघ्नमपास्तविघ्नं मत्वा ज्ञात्वा समारब्धा नवा उटजाः पर्णशाला येषु तानि । 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । चिरोज्झितानि । राक्षसभयादित्यर्थः । आश्रममण्डलान्याश्रमविभागान्यथास्वं स्वं स्वमनतिक्रम्याध्यासतेऽधितिष्ठन्ति ॥

अन्वयः—अमी चीरभृतः जनस्थानम् अपोढविघ्नं मत्वा, समारब्धनवोटजानि चिरोज्झितानि आश्रममण्डलानि यथास्वम् अध्यासते ।

व्याख्या—अमी = पुरः पृथिव्यां दृश्यमानाः चीराणि बिभ्रतीति चीरभृतः तपस्विनः जनानां स्थानं जनस्थानं = दण्डकारण्यैकभागम् अपोढाः = दूरीभूताः, नष्टाः विघ्नाः = अन्तरायाः तपोविध्वंसका राक्षसा इत्यर्थः, यस्मात् तत् अपोढविघ्नं मत्वा = विज्ञाय, उटैः = तृणपर्णादिभिः जायन्ते, इति उटजाः । समारब्धाः = कृतारम्भाः नवा = नूतनाः उटजाः = पर्णशालाः येषु तानि समारब्धनवोटजानि, "मुनीनां तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियामि"त्यमरः । चिरं = दीर्घकालं यावत् उज्झितानि = त्यक्तानि, इति चिरोज्झितानि । आश्रमस्य = तपोवनस्य मण्डलानि = विभागास्तानि आश्रममण्डलानि, स्वं स्वम् अनतिक्रम्येति यथास्वं = यथायथम् = यद्वत् आत्मीयं तत्तदित्यर्थः । अध्यासते = अधितिष्ठन्ति ।

समासः—चीराणि बिभ्रतीति चीरभृतः । जनानां स्थानमिति जनस्थानम् । अपोढाः विघ्नाः यस्मात् तत् अपोढविघ्नम् । समारब्धाः नवाः उटजा येषु तानि समारब्धनवोटजानि, तानि । चिरम् उज्झितानि चिरोज्झितानि, तानि । आश्रमस्य मण्डलानि तानि आश्रममण्डलानि । स्वं स्वमनतिक्रम्य यथास्वम् ।

हिन्दी—"हे सीते ! नीचे देखो" ये वल्कलधारी तपस्वीजन, दण्डकारण्य के तपोवन को (राक्षसों के मारे जाने से) विघ्नरहित जानकर बहुत दिनों से छोड़े हुए अपने आश्रम के उन-उन भागों में निवास कर रहे हैं । जिनमें नई-नई पर्णकुटियाँ बनाई जा रही हैं ॥ २२ ॥

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥ २३ ॥

सा पूर्वानुभूता स्थल्येषा । दृश्यत इत्यर्थः । यत्र स्थल्यां त्वां विचिन्वतान्विष्यता मया । त्वच्चरणारविन्देन यो विश्लेषो वियोगस्तेन यद्दुःखं तस्मादिव बद्धमौनं निःशब्दम् । उर्व्यां भ्रष्टमेकं नूपुरं मञ्जीरः । 'मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । अदृश्यत दृष्टम् । हेतूत्प्रेक्षा ।

अन्वयः—सा स्थली एषा, यत्र त्वां विचिन्वता मया त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात् इव बद्धमौनम् ऊर्व्यां भ्रष्टम् एकं नूपुरम् अदृश्यत ।

व्याख्या—सा पूर्वमनुभूता स्थली = स्थलम् एषा पुरः दृश्यते, इत्यर्थः । यत्र = स्थल्यां त्वां = सीतां विचिन्वता = अन्विष्यता = मार्गमाणेनेत्यर्थः । मया = रामेण, अरं = शीघ्रं लिप्सां विन्दतीति अरविन्दम् । अराकाराणि पत्त्राणि विन्दतीति वा अरविन्दम् । तव = सीतायाः चरणः = पादः अरविन्दं = कमलम् इव, इति त्वच्चरणारविन्दम् । त्वच्चरणारविन्देन यो विश्लेषः = वियोगः तेन यत् दुःखं = कष्टं तस्मात् त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात् इव = यथा, मुनेः भावः कर्म वा मौनम् । बद्धं = धृतं मौनम् = अभाषणं येन तत् बद्धमौनम् ऊर्व्यां = पृथिव्यां भ्रष्टं = पतितम् एकम् = असहायं, नुवनं, नूयते वा नुः, नुनि पुरतीति = नूपुरं = मञ्जीरम् "मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियामि"त्यमरः । अदृश्यत = अवलोकितम् । अ [illegible]
दुःखरूपो गुणः हेतुत्वेनोत्प्रेक्षितः ।

समासः—तव चरणः त्वच्चरणः अरविन्दम् इवेति त्वच्चरणारविन्दं, तेन विश्लेषः, इति त्वच्चरणारविन्दविश्लेषः तेन यत् दुःखं तस्मात् त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात्। बद्धं मौनं येन तत् बद्धमौनम्।

हिन्दी—हे सीते! देखो, यह वही स्थान है जहाँ पर तुम्हें ढूँढते हुए, मैंने जमीन पर पड़े हुए, तुम्हारे एक नूपुर (पाजेब घुंघरु) को देखा था। वह ऐसा लग रहा था, मानो तुम्हारे चरण-कमल के वियोग से उत्पन्न दुःख के कारण उसने मौन धारण कर लिया हो।

विशेष—इस पद्य में दुःखरूप गुण, हेतु रूप से उत्प्रेक्षित है। इस लिये कि—अचेतन नूपुर में वास्तविक दुःख नहीं हो सकता॥ २३॥

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः॥ २४॥

हे भीरु भयशीले। 'ऊङुतः' इत्यूङ्। ततो नदीत्वात्संबुद्धौ ह्रस्वः। त्वं रक्षसा रावणेन यतो येन मार्गेण। सार्वविभक्तिकस्तसिः। अपनीतापहृता तं मार्गं वागिन्द्रियाभावाद्वक्तुमशक्नुवत्य एता लता वीरुध आवर्जिता नमिताः पल्लवाः पाणिस्थानीया याभिस्ताभिः शाखाभिः स्वावयवभूताभिः कृपया मेऽदर्शयन्। हस्तचेष्टयाऽसूचयन्नित्यर्थः। 'शाखा वृक्षान्तरे भुजे' इति विश्वः। लतादीनामपि ज्ञानमस्त्येव। तदुक्तं मनुना—'अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख समन्विताः' इति॥

अन्वयः—हे भीरु! त्वं रक्षसा यतः अपनीता तं मार्गं वक्तुम् अशक्नुवत्यः एताः लताः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः कृपया मे अदर्शयन्।

व्याख्या—हे भीरु = भयशीले! त्वं = सीता रक्षसा = रावणेन यतः = येन मार्गेण नीता = अपहृता तं = पन्थानं वक्तुं = कथयितुम् अशक्नुवत्यः = असमर्थाः लतानामचेतनत्वेन वागिन्द्रियाभावादित्यर्थः। एताः = पुरो दृश्यमानाः लताः = व्रतत्यः आवर्जिताः = नमिताः पल्लवाः = किसलयाः याभिस्ताः आवर्जितपल्लवास्ताभिः आवर्जित पल्लवाभिः = पल्लवरूपहस्ताभिरित्यर्थः। शाखाभिः = स्वावयवभूताभिः द्रुमांशैरित्यर्थः। कृपया = अनुकम्पया मे = मह्यम् अदर्शयन् = असूचयन् मार्गस्य कथनेऽसमर्थाः लताः पल्लवरूपहस्तचेष्टया तव मार्गं सूचितवत्यः। तासामपि ज्ञानमस्त्येवेत्यर्थः॥

समासः—आवर्जिताः पल्लवाः याभिस्ताः आवर्जितपल्लवाः, ताभिः आवर्जितपल्लवाभिः।

हिन्दी—हे भयशीले सीते! तुम्हें रावण जिस मार्ग से चुराकर ले गया था उस मार्ग को वाणी (जबान) न होने के कारण बताने में असमर्थ इन लताओं ने अपनी पत्तों वाली शाखाओं को उधर झुकाकर वह रास्ता कृपाकर मुझे दिखा दिया था। अर्थात् लता बोलने में असमर्थ थी, किन्तु उन्हें ज्ञान था अतः अपनी शाखारूपी हाथ की चेष्टा से उस मार्ग का इशारा कृपा करके कर ही दिया था॥ २४॥

मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम् ।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि ॥ २५ ॥

दर्भाङ्कुरेषु भक्ष्येषु निर्व्यपेक्षा निःस्पृहा मृगाङ्गनाश्चोत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयन्त्यः प्रवर्तयन्त्यः सत्यस्तवागतिज्ञं गत्यनभिज्ञं मां समबोधयन् । दृष्टिचेष्टया त्वद्गतिमवबोधयन्नित्यर्थः ॥

अन्वयः—दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षाः मृग्यः उत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयन्त्यः तव अगतिज्ञं माम् समबोधयन् ॥

व्याख्या—दर्भाणां = कुशानाम् अंकुराः = अभिनवोद्भिदः, इति दर्भांकुराः विशिष्टा अपेक्षा, व्यपेक्षा, निर्गता व्यपेक्षा यासां ताः निर्व्यपेक्षाः । दर्भांकुरेषु = भक्षणीयेषु निर्व्यपेक्षाः = स्पृहाशून्याः, इति दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षाः मृग्यन्ते व्याधैः यास्ताः मृग्यः = हरिण्यः उत् = ऊर्ध्वं पक्ष्मणां = नेत्ररोमाणां राजी = पंक्तिः येषां तानि उत्पक्ष्मराजीनि विशेषेण लोक्यते = दृश्यते यैस्तानि विलोचनानि = नेत्राणि दक्षिणस्यां = अवाच्यां दिशि = काष्ठायां व्यापारयन्त्यः = प्रवर्तयन्त्यः सत्यः तस्मिन् दिग्भागे नेत्राणि प्रक्षिपन्त्यः इत्यर्थः तव = भवत्याः सीतायाः गतिं जानातीति गतिज्ञः, न गतिज्ञः इति अगतिज्ञस्तम् अगतिज्ञम् = गमनमार्गज्ञानरहितम् मां = रामं समबोधयन् = अज्ञापयन् । नेत्रचेष्टया तव गमनमार्गमबोधयन्नित्यर्थः ।

समासः—दर्भाणामङ्कुराः दर्भांकुरास्तेषु निर्गता व्यपेक्षा यासां ताः दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षाः । न गतिज्ञः अगतिज्ञस्तम् अगतिज्ञम् । उत् पक्ष्मणां राजी येषां तानि, उत्पक्ष्मराजीनि ।

हिन्दी—कुशा के नए-नए खाने योग्य अंकुरों (कोंपलों) में निस्पृह होकर (खाने की अभिलाषा छोड़कर), हरिणियों ने भी उठी हुई पलकों वाले, अपने नेत्रों को दक्षिण दिशा की ओर करके, तुम्हारी गति को न जाननेवाले मुझे तुम्हारे मार्ग का ज्ञान कराया था ॥ २५ ॥

एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥ २६ ॥

माल्यवतो नाम गिरेरम्बरलेख्यभ्रङ्कषं, शृङ्गमेतत्पुरस्तादग्र आविर्भवति । यत्र शृङ्गे घनैर्मेघैर्नवं पयो मया त्वद्विप्रयोगेण यदश्रु तच्च समं युगपद्विसृष्टम् । मेघदर्शनाद्वर्षतुल्यमश्रु विमुक्तमिति भावः॥

अन्वयः—माल्यवतः गिरेः अम्बरलेखि शृंगम् एतत् पुरस्तात् आविर्भवति । यत्र घनैः नवं पयः मया त्वद्विप्रयोगाश्रु च समं विसृष्टम् ।

व्याख्या—माल्याकारता अस्यास्तीति माल्यवान् तस्य माल्यवतः एतन्नामकस्य गिरेः = पर्वतस्य अम्बं = शब्दं रातीत्यम्बरम् = आकाशं लिखतीति तत् अम्बरलेखि = गगनचुम्बि शृंगं = शिखरम् एतत् पुरस्तात् = अग्रे आविर्भवति = प्रकटं भवति दृश्यत इत्यर्थः । यत्र = माल्यवच्छिखरे घनैः = मेघैः नवं = नूतनं पयः = जलं मया = त्वद्वियोगिना रामेण तव = सीतायाः विप्रयोगः = विरहः इति त्वद्विप्रयोगस्तेन यदश्रु = नेत्रजलं तत् त्वद्विप्रयोगाश्रु च समं = युगपत् = एककालमित्यर्थः । विसृष्टं = त्यक्तं मुक्तमित्यर्थः । मेघदर्शनेन मम वर्षासममश्रुवर्षणं जातमिति ।

समासः—तव विप्रयोगः त्वद्विप्रयोगस्तेन यदश्रु त्वद्विप्रयोगाश्रु ।

हिन्दी—यह देखो सामने माल्यवान् नामक पर्वत का आकाश को छूने वाला शिखर (ऊँची चोटी) दिखाई दे रहा है । जहाँ पर बादलों ने नया जल और मैंने तुम्हारे वियोग (बिछोह) से निकले आँसू एक साथ छोड़े थे । अर्थात् बरसते बादलों को देखकर तुम्हारी याद करके मैं खूब रोया था ॥ २६ ॥

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्गतकेसरं च ।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे ॥२७॥

यस्मिञ्छृङ्गे धाराभिर्वर्षधाराहतानां पल्वलानां गन्धश्च । अर्धोद्गतकेसरं कादम्बं नीपकुसुमं च स्निग्धा मधुराः शिखिनां बर्हिणाम्; 'शिखिनौ वह्निबर्हिणौ' इत्यमरः । केकाश्च । त्वया विना मेऽसह्यानि बभूवुः । 'नपुंसकमनपुंसकेन–' इति नपुंसकैकशेषः ॥

अन्वयः—यस्मिन् धाराहतपल्वलानां गन्धः, अर्धोद्गतकेसरं कादम्बं च स्निग्धाः शिखिनां केकाः च त्वया विना मे असह्यानि बभूवुः ।

व्याख्या—यस्मिन् = माल्यवतः शिखरे धाराभिः = वृष्टिधाराभिः आहतानि = ताडितानि यानि पल्वलानि = अल्पसरांसि तेषां धाराहतपल्वलानां, वर्षाधारापातास्पदानामल्पसरसामित्यर्थः । 'पल्वलं चाल्पसरः' इत्यमरः, गन्धः = आमोदः । अर्धम् उद्गतमिति अर्धोद्गतम् । अर्धोद्गतं = किंचिद्विकसितं केसरं = किञ्जल्कं यस्य तत् अर्धोद्गतकेसरं कथते = दर्शनात् विरहिणां चित्तवैकल्यं जायतेऽनेन स कदम्बः = नीपः । कदम्बस्येदं कादम्बं = कदम्बपुष्पञ्च स्निग्धाः = मधुराः शिखाः सन्ति येषां ते शिखिनस्तेषां शिखिनां = मयूराणां केकाः = वाण्यः च त्वया = सीतया विना मे = मह्यम् सोढुं योग्यानि सह्यानि । न सह्यानि असह्यानि = सोढुमशक्यानि बभूवुः = जातानि । सह्यञ्च सह्यश्च सह्याश्चेत्यत्र "नपुंसकमनपुंसकेन०" इति सूत्रेण अक्लीबेन सहोक्तौ क्लीबं वा शिष्यते, इति नपुंसकैकशेषः ।

समासः—धाराभिः आहतानि यानि पल्वलानि तेषां धाराहतपल्वलानाम् । अर्धमुद्गतमिति अर्धोद्गतम् । अर्धोद्गतं केसरं यस्य तत् अर्धोद्गतकेसरम् । न सह्यानि असह्यानि ।

हिन्दी—और जिस माल्यवान् की चोटी पर वर्षा की धारा से प्रहत अर्थात् भीगी तलैयों की गन्ध और अधखिले कदम के पुष्प (फूल) तथा मधुर प्यारी मयूरों की वाणी, ये सब हे प्रिये ! तुम्हारे बिना मुझे असह्य हो गये थे ॥ २७ ॥

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम् ।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्घनगर्जितानि ॥ २८ ॥

किंच हे भीरु, यत्र शृङ्गे पूर्वानुभूतं कम्पोत्तरं कम्पप्रधानं तवोपगूढमुपगूहनं स्मरता मया गुहाविसारीणि घनगर्जितानि कथंचिदतिवाहितानि । स्मारकत्वेनोद्दीपकत्वात्क्लेशेन गमितानीत्यर्थः ॥

अन्वयः—हे भीरु ! यत्र पूर्वानुभूतम् कम्पोत्तरं तव उपगूढम् स्मरता मया गुहाविसारीणि घनगर्जितानि कथंचित् अतिवाहितानि ।

व्याख्या—हे भीरु = भयशीले ! यत्र = शृंगे पूर्वमनुभूतः पूर्वानुभूतस्तं पूर्वानुभूतम् = पूर्वोपभुक्तम् कम्पः = प्रकम्पनम् उत्तरः = प्रधानं यस्मिन् तत् कम्पोत्तरं तव = सीतायाः उपगूढम् = आलिंगनम् स्मरता = ध्यायता मया = रामेण गुहायां = कन्दरायां विसर्तुं = प्रसर्तुं शीलं येषां तानि गुहाविसारीणि गुहासु प्रतिध्वनितानीत्यर्थः । घनानां = मेघानां गर्जितानि = स्तनितानि, इति घनगर्जितानि "स्तनित गर्जितं मेघनिर्घोषः" इत्यमरः, कथञ्चित् = महता कष्टेन अतिवाहितानि = गमितानि । कामोद्दीपकत्वेन तव विरहे तानि अतीव दुःखेन यापितानीत्यर्थः ।

समास—पूर्वमनुभूतं पूर्वानुभूतं तत् पूर्वानुभूतम् । कम्पः उत्तरः यस्मिन् तत् कम्पोत्तरम् तत् । गुहासु विसारीणि गुहाविसारीणि । घनानां गर्जितानि घनगर्जितानि ।

हिन्दी—हे भीरु ! इसी पर्वत की चोटी पर, मेघों की गर्जना सुनकर भय से तुम काँपती हुई मुझसे लिपट जाती थी । उस आलिंगन सुख का स्मरण करते हुए, मैंने गुफा में प्रतिध्वनित होकर (गूँजकर) फैली हुई मेघों की गर्जना (गड़गड़ाहट) को बड़े कष्ट से बिताया था । अर्थात् तुम्हारे वियोग में मेघगर्जन सुनकर तुम्हारा स्मरण मुझे बड़ा कष्ट देता था ॥ २८ ॥

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः ।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ॥ २९ ॥

यत्र शृङ्गे विभिन्नकोशैर्विकसितकुड्मलैर्नवकन्दलैः कन्दलीपुष्पैररुणवर्णैरासारेण धारासंपातेन । 'धारासंपात आसारः' इत्यमरः । सिक्तायाः क्षितेर्बाष्पस्य धूमवर्णस्य योगाद्धेतोर्विडम्ब्यमानानुक्रियमाणा ते विवाहधूमेनारुणा लोचनश्रीः । सादृश्यात्स्मर्यमाणेति शेषः । मामक्षिणोदपीडयत् ॥

अन्वयः—यत्र विभिन्नकोशैः नवकन्दलैः आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात् विडम्ब्यमाना ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः माम् अक्षिणोत् ।

व्याख्या—यत्र = शिखरे विभिन्नः = विकसितः कोशः = कुड्मलः येषां तानि तैः विभिन्नकोशैः नवानि = नूतनानि यानि कन्दलानि = कन्दलीपुष्पाणि तैः नवकन्दलैः, रक्तवर्णैरित्यर्थः । "कोशोऽस्त्री कुड्मले" इत्यमरः । आसारेण = धारासंपातेन सिक्ता = क्लिन्ना, आर्द्रीकृतेत्यर्थः । या क्षितिः = पृथिवी, तस्याः बाष्पम् = ऊष्मा, धूमवर्गः तस्य योगः = सम्पर्कस्तस्मात् आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात् "धारासंपात आसारः, बाष्पमूष्माश्रु" इत्यमरः । हेतोः विडम्ब्यतेऽसौ विडम्ब्यमाना = अनुक्रियमाणा ते = तव सीतायाः विवाहस्य = विवाहसंबन्धिहोमस्य धूमः विवाहधूमस्तेन अरुणा = रक्ता लोचनयोः = नेत्रयोः श्रीः = शोभा इति विवाहधूमारुणलोचनश्रीः कर्त्री मां = रामम् अक्षिणोत् = अपीडयत् । विवाहकालिकीं तव नेत्रयोः धूमेनोत्पन्नां रक्ततां स्मृत्वा भृशं दुःखितोऽभवमिति भावः ॥

समासः—विभिन्नाः कोशाः येषां तानि तैः विभिन्नकोशैः । नवानि कन्दलानि नवकन्दलानि तैः नवकन्दलैः । आसारेण सिक्ता या क्षितिस्तस्याः बाष्पम् तस्य योगः तस्मात् आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगात् । विवाहस्य धूमः विवाहधूमस्तेन अरुणा या लोचनयोः श्रीः, इति विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ।

हिन्दी—मुसलाधार वर्षा से भीगी हुई, पृथिवी से निकले भाप के संयोग से, भूमिकदली की खिली (कुकुरमुत्ते के खिले फूल) कलियों से अनुकरण की गई (ऐसी) विवाह के समय हवन का धुवाँ लगने से लाल २ तुम्हारे नेत्रों की शोभा ने मुझे बड़ी पीड़ा दी थी । अर्थात् पृथिवी की भांप से खिले भूमि कदली के कुछ २ लाल फूलों को देखकर विवाह के समय धूएँ से लाल लाल तुम्हारी आँखों की शोभा मुझे स्मरण हो आई थी, तब मुझे बड़ा दुःख हुआ था इसी शिखर पर ॥ २९ ॥

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥ ३० ॥

उपान्तवानीरवनोपगूढानि पार्श्ववञ्जुलवनच्छन्नान्यालक्ष्या ईषद्दृश्याः पारिप्लवाश्चंचलाः सारसाः येषु तान्यमूनि पम्पासलिलानि पम्पासरोजलानि दूरादवतीर्णा मे दृष्टिरत एव खेदात्पिबतीव । न विहातुमुत्सहत इत्यर्थः ॥

अन्वयः—उपान्तवानीरवनोपगूढानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि अमूनि पम्पासलिलानि दूरावतीर्णा मे दृष्टिः अत एव खेदात् पिबति इव ।

व्याख्या—उपान्ते = पार्श्वे वानीराणां = वञ्जुलानां वनानि = अरण्यानि तैः उपगूढानि = आच्छन्नानि, इति उपान्तवानीरवनोपगूढानि (वां शुष्कम् आसमन्तात् नीरमस्य स वानीरः) । आलक्ष्याः = ईषद्दृश्याः पारिप्लवाः = चञ्चलाः सारसाः = हंसाः येषु तानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि । "पारिप्लवश्चाकुले स्याच्चंचले च" इति मेदिनी । अमूनि = पुरोवर्तीनि पाति = रक्षति महार्यादीन्, इति पम्पा । पम्पायाः = पम्पानामकसरोवरस्य सलिलानि = जलानि, इति पम्पासलिलानि दूरात् = अत्युन्नतात् अवतीर्णा = गता दूरावतीर्णा मे = रामस्य दृष्टिः = नेत्रम् अत एव खेदात् पिबति इव = यथा, अतितृष्णया पश्यतीव । त्यक्तुं नोत्सहते इति भावः ।

समासः—उपान्तयोः यानि वानीराणां वनानि उपान्तवानीरवनानि तैः उपगूढानि, इति उपान्तवानीरवनोपगूढानि तानि । आलक्ष्याः पारिप्लवाः सारसाः येषु तानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि, तानि । पम्पायाः सलिलानि पम्पासलिलानि तानि । दूरात् अवतीर्णा दूरावतीर्णा ।

हिन्दी—तटों (किनारों) पर खड़े बेंत के वनों से ढँके हुए, अतएव जरा-जरा दीख पड़ रहे हैं चञ्चल हंस जिनमें, ऐसे इन पम्पा नामक सरोवर के जलों को मेरी दृष्टि दूरसे पड़ने के कारण मानो खेद से उन्हें पी रही है । अर्थात् इन्हें देखता ही रहूँ ऐसा मेरा मन कर रहा है ॥ ३० ॥

अत्राविमुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि ।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ॥ ३१ ॥

अत्र पम्पासरस्यन्योन्यस्मै दत्तोत्पलकेसराण्यवियुक्तानि रथाङ्गनाम्नां द्वन्द्वानि चक्रवाकमिथुनानि ते तव दूरान्तरवर्तिना दूरदेशवर्तिना मया हे प्रिये, सस्पृहं साभिलाषमीक्षितानि । तदानीं त्वामस्मार्षमित्यर्थः ॥

अन्वयः—अत्र अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि अवियुक्तानि रथांगनाम्नां द्वन्द्वानि, ते दूरान्तरवर्तिना मया हे प्रिये ! सस्पृहम् ईक्षितानि ।

व्याख्या—अत्र = पम्पायाम् सरसि अन्योन्यस्मै = परस्परस्मै दत्तानि = अर्पितानि उत्पलानां = कमलानां केसराणि = किञ्जल्कानि यैस्तानि अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि 'किंजल्कः केसरोऽस्त्रियामि'त्यमरः । न वियुक्तानि अवियुक्तानि = सदा सहचारीणि रथस्य अंगं रथांगं, रथांगस्य = चक्रस्य नाम = आह्वयो येषां ते रथांगनामानः = चक्रवाकाः । रथांगनाम्न्यश्च रथांगनामानश्चेति रथांगनामानः "पुमान् स्त्रिया" इत्येकशेषः । तेषां रथांगनाम्नां = चक्रवाकानां द्वन्द्वानि = मिथुनानि "स्त्रीपुंसौ मिथुनं द्वन्द्वम्" इत्यमरः । अन्तं राति = ददातीति अन्तरम् । दूरं च तदन्तरमिति दूरान्तरं दूरान्तरे = दूरदेशे वर्तते इति दूरान्तरवर्ती तेन दूरान्तरवर्तिना = दूरदेशस्थितेनेत्यर्थः, मया = रामेण हे प्रिये = हे सीते ! स्पृहया = अभिलाषया सहितं सस्पृहम् ईक्षितानि = अवलोकितानि । तस्मिन्नवसरे त्वामस्मार्षमित्यर्थः ।

समासः—उत्पलानां केसराणि उत्पलकेसराणि, अन्योन्यस्मै दत्तानि उत्पलकेसराणि यैस्तानि, अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि । न वियुक्तानि अवियुक्तानि । स्पृहया सहितमिति सस्पृहम् । रथांगनाम्न्यश्च रथांगनामानश्चेति रथांगनामानः, तेषां रथांगनाम्नामित्येकशेषः ।

हिन्दी—इस पम्पा नामक सरोवर में एक-दूसरे को प्रेमपूर्वक कमल की केसर देने वाले, तथा सदा साथ रहने वाले चकवा-चकवी के जोड़ों को, हे प्रिये ! तुमसे दूर रहने के कारण मैंने प्रबल कामना लालसा, से देखा था । अर्थात् मैं विचारता था कि तुम मेरे पास होती तो मैं भी ऐसे ही करता ॥ ३१ ॥

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम् ।
त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः ॥ ३२ ॥

किञ्च स्तनवदभिरामाभ्यां स्तबकाभ्यामभिनम्रां तन्वीमिमां तटाशोकस्य लतां शाखामतस्त्वत्प्राप्तिबुध्या त्वमेव प्राप्तेति भ्रान्त्या परिरब्धुमालिङ्गितुं कामो यस्य सोऽहं सौमित्रिणा लक्ष्मणेन साश्रुर्निषिद्धः । नेयं सीतेति निवारितः । परिरब्धुकाम इत्यत्र 'तुं काममनसोरपि' इति वचनान्मकारलोपः ॥

अन्वयः—स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम् तन्वीम् इमां तटाशोकलतां त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः साश्रुः अहं सौमित्रिणा निषिद्धः ।

व्याख्या—स्तनवत् = कुचवत् अभिरामौ = मनोहरौ यौ स्तबकौ = पुष्पगुच्छौ ताभ्याम् अभिनम्रा = विनता, तां स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम्। "पुष्पादिस्तबके गुच्छ" इति रन्तिदेवः। तन्वीं = कृशां सुकुमारीमित्यर्थः। इमाम् = पुरोवर्तिनीम् तटस्य = तीरस्य अशोकः = वञ्जुलः तस्य लता = शाखा तां तटाशोकलताम् तत्र = सीतायाः प्राप्तिः = अवाप्तिः, इति त्वत्प्राप्तिस्तस्याः बुद्धिः = ज्ञानम्, भ्रमात्मकमित्यर्थः। तया त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या त्वमेव मिलितेति भ्रमेण परिरब्धुम् = आलिंगितुं कामः = इच्छा यस्य स परिरब्धुकामःअश्रुभिः = अस्रैः सहितः साश्रुः = अश्रुपूर्णनेत्रः = अहं = रामः सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन निषिद्धः = निवारितः। नेयं सीता किन्तु लतेयमिति निवारित इत्यर्थः। "वञ्जुलोऽशोके" इत्यमरः।

समासः—स्तनवत् अभिरामौ यौ स्तबकौ ताभ्याम् अभिनम्रा तां स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम्। तटस्य अशोकः तटाशोकस्तस्य लता तां तटाशोकलताम्। तत्र प्राप्तिस्त्वत्प्राप्तिस्तस्याः बुद्धिस्तया त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या। परिरब्धुं कामः यस्य स परिरब्धुकामः।

हिन्दी—कुचों के समान सुन्दर फूलों के गुच्छों (गुलदस्तों) से आगे को झुकी हुई, इस पतली, तीर के अशोक की लता को (ही) तुम्हारे मिल जाने की बुद्धि से (भ्रम से) मैं उसे आलिंगन करना चाहता था, किन्तु इसी बीच लक्ष्मण ने रोते हुए मुझे रोक दिया था। अर्थात् इस लता को देखकर ऐसा लगा कि मानों तुम ही खड़ी हो, अतः आलिंगन करना ही चाहता था कि 'यह सीता नहीं है' लता है, कहकर लक्ष्मण ने मुझे रोक दिया था। यह सब तुम्हारे प्रेम में विह्वल होने के कारण था॥ ३२॥

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम्॥ ३३॥

विमानस्यान्तरेष्ववकाशेषु लम्बन्ते यास्तासां काञ्चनकिङ्किणीनां स्वनं श्रुत्वा स्वयूथशब्दभ्रमात्खमाकाशमुत्पतन्त्योऽमूर्गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वां प्रत्युद्व्रजन्तीव॥

अन्वयः—विमानान्तरलम्बिनीनां काञ्चनकिंकिणीनां स्वनं श्रुत्वा, खम् उत्पतन्त्यः गोदावरीसारसपंक्तयः त्वां प्रत्युद्व्रजन्ति इव।

व्याख्या—विमानस्य = पुष्पकस्य अन्तराणि = अवकाशभागाः तेषु लम्बिन्यः = दोलायमानाः यास्ताः विमानान्तरलम्बिन्यः, तासां विमानान्तरलम्बिनीनाम्। काञ्चनस्य = सुवर्णस्य किंकिण्यः = क्षुद्रघण्टिकास्तासां काञ्चनकिंकिणीनाम् स्वनं = शब्दं श्रुत्वा = आकर्ण्य सारसयूथशब्दभ्रमात् खम् = आकाशम् उत्पतन्त्यः = उद्गच्छन्त्यः गां = जलं, स्वर्गं वा ददातीति गोदा = नदी। गोदासु वरा = श्रेष्ठा इति गोदावरी, सरसि भवाः सारसाः। गोदावर्याः सारसाः = पुष्कराह्वयाः पक्षिविशेषाः तेषां पंक्तयः = श्रेणयः, गोदावरीसारसपंक्तयः त्वां = सीतां प्रति = सम्मुखे उद्व्रजन्ति = उद्गच्छन्ति इव = यथा। तव संमानार्थमित्यर्थः॥

समासः—विमानस्य अन्तराणि विमानान्तराणि तेषु लम्बिन्यः तासां विमानान्तरलम्बि-

नीनाम् । काञ्चनस्य किंकिण्यः काञ्चनकिंकिण्यस्तासां काञ्चनकिंकिणीनाम् । गोदावर्य्याः सारसानां पंक्तयः इति गोदावरीसारसपंक्तयः ॥

हिन्दी—हे सीते ! देखो । विमान के झरोखों (खिड़कियों) में लटक रही सोने की छोटी-छोटी घण्टियों के शब्द (झनझन) को सुनकर (ये भी सारस बोल रहे हैं इस भ्रम से) आकाश में उड़ती हुई, गोदावरी नदी के सारस पक्षियों की पांतें मानों तुम्हारी अगवानी करने आ रही हैं ॥ ३३ ॥

एषा त्वया पेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता ।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे ॥ ३४ ॥

पेशलमध्ययापि । भाराक्षमयापीत्यर्थः । त्वया घटाम्बुभिः संवर्धिता बालचूता यस्याः सा । उन्मुखा अस्मदभिमुखास्त्वत्संवर्धिता एव कृष्णसारा यस्याः सा चिराद्दृष्टैषा पञ्चवटी मे मन आनन्दयत्याह्लादयति । पञ्चवटीशब्दः पूर्वमेव व्याख्यातः ॥

अन्वयः—पेशलमध्यया अपि त्वया घटाम्बुसंवर्धितबालचूता उन्मुखकृष्णसारा चिरात् दृष्टा पंचवटी मे मनः आनन्दयति ।

व्याख्या—पेशं लातीति पेशलः मध्ये शरीरस्य भवः मध्यः, मां = शोभां धत्ते, इति वा मध्यः । पेशलः = सुकुमारः चारुः च मध्यः = शरीरमध्यभागः यस्याः सा तया पेशलमध्यया अपि भारोत्थापनेऽसमर्थयापीत्यर्थः । त्वया = सीतया घटस्य अम्बूनि घटाम्बूनि । घटाम्बुभिः = कलशजलैः जलेन प्रपूर्य त्वयानीतैरित्यर्थः संवर्धिताः = वृद्धिं नीताः बालचूताः = बालरसालाः यस्याः सा घटाम्बुसंवर्धितबालचूता । चूष्यन्ते इति चूताः । बालाः = अंकुराश्च ते चूताः बालचूताः । कृष्णेन साराः = शबलाः कृष्णसाराः । उन्मुखाः = ऊर्ध्वाननाः अस्मदभिमुखा इत्यर्थः । कृष्णसाराः = मृगाः यस्याः सा उन्मुखकृष्णसारा चिरात् = बहोः कालात् दृष्टा = अवलोकिता एषा = पुरोवर्तिनी पञ्चानां वटानां = वटवृक्षाणां समाहारः पंचवटी = दण्डकारण्ये भागः । मे = मम रामस्य मनः = चित्तम् आनन्दयति = आह्लादितं करोति ।

समासः—पेशलः मध्यः यस्याः सा तया पेशलमध्यया । घटस्य अम्बुभिः संवर्धिताः बालचूताः यस्याः सा घटाम्बुसंवर्धितबालचूता । उत् मुखं येषां ते उन्मुखाः । उन्मुखाःकृष्णसाराः यस्याः सा उन्मुखकृष्णसारा । पञ्चानां वटानां समाहारः पंचवटी ।

हिन्दी—बहुत दिनों पर देखी यह पंचवटी मेरे मन को आह्लादित कर रही है । "जहाँपर" तुमने पतली सुकुमार कमरवाली होकर भी घड़ों से जल देकर छोटे-छोटे आम के पौधों को बड़ा किया था, और जिसके चितकबरे मृग ऊपर मुख उठाकर हमारी ओर देख रहे हैं ॥ ३४ ॥

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरंगवातेन विनीतखेदः ।
रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः ॥ ३५ ॥

अत्र पञ्चवट्याम् । गोदा गोदावरी । तस्याः समीपेऽनुगोदम् । 'अनुर्यत्समया' इत्यव्ययीभावः । मृगयाया निवृत्तस्तरङ्गवातेन विनीतखेदो रहो रहसि । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा सन्नहं वानीरगृहेषु सुप्तः स्मरामि । वाक्यार्थः कर्म । सुप्त इति यत्तत्स्मरामीत्यर्थः ॥

अन्वयः—अत्र अनुगोदं मृगयानिवृत्तः तरंगवातेन विनीतखेदः रहः त्वदुत्संगनिषण्णमूर्धा सन् अहं वानीरगृहेषु सुप्तः स्मरामि।

व्याख्या—अत्र = पंचवट्यां गोदायाः = गोदावर्याः समीपे अनुगोदम् = गोदावरीनदीसमीपे मृग्यन्ते पशवः यस्यां सा मृगया मृगयायाः = आखेटात् निवृत्तः = परावृत्तः, इति मृगयानिवृत्तः, मृगयां कृत्वा परावृत्त इत्यर्थः । तरंगाणां = गोदावरीवीचीनां वातः = वायुस्तेन तरंगवातेन विनीतः = दूरीकृतः खेदः = श्रान्तिः, पीडा यस्य स विनीतखेदः रहः = रहसि = एकान्ते, इत्यर्थः । तव = भवत्याः सीतायाः उत्संगे = क्रोडे निषण्णः = स्थापितः मूर्धा = मस्तकं येन स त्वदुत्संगनिषण्णमूर्धा सन् अहं = रामः वा = शुष्कम् आ समन्तात् नीरं येषां ते वानीराः । वानीराणां = वेतसानां गृहाणि = कुञ्जास्तेषु वानीरगृहेषु सुप्तः = शयितः स्मरामि = चिन्तायामि । अत्र स्मरणस्य कर्म वाक्यार्थः, सुप्त इति यत्तत्स्मरामीत्यर्थः ।

समासः—गोदायाः समीपे अनुगोदम् । मृगयायाः निवृत्तः मृगयानिवृत्तः । तरंगाणां वातस्तरंगवातस्तेन तरंगवातेन । विनीतः खेदो यस्य स विनीतखेदः । तव अंकं त्वदंकम्, त्वदंके निषण्णः मूर्धा यस्य स त्वदंकनिषण्णमूर्धा । वानीराणां गृहाणि तेषु वानीरगृहेषु ।

हिन्दी—यहाँ पंचवटी में, गोदावरी नदी के किनारे पर एकान्त में शिकार से लौटकर बेंत के कुञ्जों में (लताघरों में) तुम्हारी गोद में शिर रखकर मैं सोता था। और नदी की तरंगों का शीतल वायु मेरी थकावट को दूर करता था। उन सब बातों को स्मरण कर कर रहा हूँ ॥ ३५ ॥

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ॥ ३६ ॥

यो मुनिर्भ्रूभेदमात्रेण भ्रूभङ्गमात्रेणैव नहुषं राजानं मघोनः पदादिन्द्रत्वात्प्रभ्रंशयांचकार प्रभ्रंशयति स्म । आविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोः कलुषजलप्रसादहेतोस्तस्य मुनेरगस्त्यस्य । अगस्त्योदये शरदि जलं प्रसीदतीत्युक्तं प्राक् । भूमौ भवो भौमः स्थानपरिग्रह आश्रमोऽयम् । दृश्यत इति शेषः । भौम इत्यनेन दिव्योऽप्यस्तीत्युक्तम् । परिगृह्यत इति परिग्रहः । स्थानमेव परिग्रह इति विग्रहः ॥

अन्वयः—यः भ्रूभेदमात्रेण नहुषं मघोनः पदात् प्रभ्रंशयां चकार आविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोः तस्य मुनेः भौमः स्थानपरिग्रहः अयम् । अस्तीति शेषः ।

व्याख्या—*भ्रुवः = भ्रुकुट्याः भेदः = भंगः,* कौटिल्यमित्यर्थः इति भ्रूभेदः । भ्रूभेद एवेति भ्रूभेदमात्रं तेन भ्रूभेदमात्रेण, भ्रुकुटिकौटिल्यमात्रेणेत्यर्थः । यः = अगस्त्यमहर्षिः

नहुषम् = ययातेः पितरम्, मह्यते = पूज्यते, इति मघवा तस्य मघोनः = इन्द्रस्य पदात् = स्थानात्, इन्द्रत्वादित्यर्थः। प्रभ्रंशयाञ्चकार = पातयामास। आविलं = कलुषं, मलिनञ्च तदम्भः = जलं, तस्य परिशुद्धिः = प्रसादः, नैर्मल्यं तस्याः हेतुः = कारणं तस्य आविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोः, शरदि अगस्त्यनाम्नो नक्षत्रस्योदये आविलं जलं निर्मलं भवतीति प्रसिद्धिः। "कलुषोऽनच्छ आविलः इत्यमरः। तस्य = प्रसिद्धस्य मुनेः = अगस्त्यस्य भूमौ = पृथिव्यां भवः भौमः = परिगृह्यते इति परिग्रहः। स्थानमेव परिग्रहः इति स्थानपरिग्रहः = आश्रमः अयं = पुरोवर्ती अवलोक्यते इति शेषः। भौमः इति कथनेन ज्ञायते यत् दिव्योऽपि मुनेः आश्रमोऽस्तीति।

समासः—भ्रुवः भेदः भ्रूभेदः। भ्रूभेद एव भ्रूभेदमात्रं तेन भ्रूभेदमात्रेण। आविलञ्च तदम्भः आविलाम्भस्तस्य परिशुद्धिस्तस्याः हेतुस्तस्य आविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोः। स्थानमेव परिग्रहः इति स्थानपरिग्रहः।

हिन्दी—जिस मुनि ने केवल भ्रकुटि टेढ़ी करके (किंचित् क्रोध से) राजा नहुष को इन्द्र के पद से नीचे गिरा दिया था, और जो मुनि वर्षा से मटमैले जल की स्वच्छता का कारण है, यह सामने उसी अगस्त्यमुनि का पृथिवी पर आश्रम दीख रहा है॥

विशेष—चन्द्रवंशी राजा नहुष बड़ा ही बलवान्, बुद्धिमान् था। वह ययाति का पिता, और आयुस् का पुत्र था। वृत्रासुर को मारने से इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी थी। जब उसका प्रायश्चित्त करने इन्द्र एक सरोवर में जा छिपा तो, नहुष को इन्द्रासन पर बैठा दिया। तब इन्द्राणी के प्रेम को पाने के लिये सप्तर्षियों को पालकी में जोतकर इन्द्रभवन को चला, मार्ग में ऋषियों से सर्प-सर्प (शीघ्र चलो) कहा तभी अगस्त्य मुनि ने साँप बन जाने का शाप देकर स्वर्ग से पृथिवी पर गिरा दिया था। फिर युधिष्ठिर ने इसका उद्धार किया था। अगस्त्योदय होने पर शरदृतु में जल स्वच्छ हो जाता है॥ ३६॥

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम्।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा॥३७॥

अनिन्द्यकीर्तेस्तस्यागस्त्यस्याक्रान्तविमानमार्गम्। हविर्गन्धोऽस्यास्तीति हविर्गन्धि त्रेताग्निरग्नित्रयम्। 'अग्नित्रयमिदं त्रेता' इत्यमरः। पृषोदरादित्वादेत्वम्। त्रेताग्नेर्धूमाग्रमिदं घ्रात्वाघ्राय रजसो गुणाद्विमुक्तो मे ममात्मान्तःकरणं लघिमानं लघुत्वगुणं समश्नुते प्राप्नोति॥

अन्वयः—अनिन्द्यकीर्तेः तस्य आक्रान्तविमानमार्गं हविर्गन्धि त्रेताग्निधूमाग्रम् इदं घ्रात्वा रजोविमुक्तः मे आत्मा लघिमानं समश्नुते।

व्याख्या—न निंद्या अनिन्द्या = प्रशंसनीया कीर्तिः = यशो यस्य सः अनिंद्यकीर्तिस्तस्य अनिंद्यकीर्तेः = धवलयशस इत्यर्थः। तस्य = अगस्त्यस्य आक्रान्तः = व्याप्तः विमानस्य = पुष्पकस्य मार्गः = पन्थाः येन तत् आक्रान्तविमानमार्गम्, हविषः = घृतस्य गन्धः = सुरभिः अस्यास्तीति तत् हविर्गन्धि "घृतमाज्यं हविः सर्पिः" इत्यमरः। त्रायन्ते इति त्राः = आहुतयः,ताभिः इता त्रेता। त्रीन् भेदान् एति = प्राप्नोतीति त्रेता, त्रित्वमिता वा त्रेता। त्रेता एव अग्निः = वह्निरिति

त्रेताग्निः । धूमस्य अग्रमिति धूमाग्रम् । त्रेताग्नेः = दक्षिणगार्हपत्याहवनीयरूपस्य, अग्नित्रयस्य धूमाग्रम्, इदमेतत् आघ्राय = घ्रात्वा रजसः = रजोगुणात् विमुक्तः = रहितः मे = मम रामस्य आत्मा = अन्तःकरणं लघोः भावः लघिमा तं लघिमानं लघुत्वं, लघुत्वगुणं समश्नुते = प्राप्नोति, नैर्मल्यं शन्तिञ्च प्राप्नोतीत्यर्थः ।

समासः—अनिन्द्या कीर्तिः यस्य स तस्य अनिन्द्यकीर्तेः । त्रेता एवाग्निः त्रेताग्निः, त्रेताग्नेः धूमस्य अग्रमिति त्रेताग्निधूमाग्रम् । आक्रान्तः विमानस्य मार्गः येन तत् आक्रान्तविमानमार्गम्, तत् रजसः विमुक्तः रजोविमुक्तः । हविषः गन्धः अस्यातीति हविर्गन्धि ।

हिन्दी—प्रशंसनीय यश वाले, प्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि की तीनों अग्नियों (दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय नामक) से उठे हुए, विमान के मार्ग (आकाश) में फैले, तथा घी की सुगन्ध वाले धुएँ को सूँघकर रजोगुण से शून्य मेरा आत्मा हल्केपन का अनुभव कर रहा है। अर्थात् पवित्र धूम के स्पर्श से पवित्र होकर परमसुखशान्ति का अनुभव कर रहा हूँ ॥ ३७ ॥

एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ।
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम् ॥ ३८ ॥

हे मानिनि, शातकर्णेर्मुनेः संबन्धि पञ्चाप्सरो नाम पञ्चाप्सर इति प्रसिद्धम् । पञ्चाप्सरसो यस्मिन्निति विग्रहः । पर्यन्तेषु वनानि यस्य तत्पर्यन्तवनमेतद्विहारवारि क्रीडासरो विदूरात् । मेघानामन्तरे मध्य आलक्ष्यमीषद्दृश्यम् । 'आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ' इत्यमरः । इन्दुबिम्बमिव । आभाति ॥

अन्वयः—हे मानिनि ! शातकर्णेः मुनेः पञ्चाप्सरो नाम, पर्यन्तवनं एतत् विहारवारि विदूरात् मेघान्तरालक्ष्यम् इन्दुबिम्बम् इव आयाति ।

व्याख्या—मानः अस्याः अस्तीति मानिनी तस्याः संबुद्धिः हे मानिनि = हे कान्ते ! शातकर्णेः = एतन्नामकस्य मुनेः = महर्षेः अद्भ्य : सरन्तीति अप्सरसः । पञ्च = पञ्चसंख्यकाः अप्सरसः = देवांगनाः यस्मिन् इति पञ्चाप्सरो नाम = प्रसिद्धं पर्यन्तेषु = परिसरेषु, प्रान्तभागेष्वित्यर्थः वनानि = विपिनानि यस्य तत् पर्यन्तवनम् एतत् = पुरोवर्ति विहारार्थं = विहारयोग्यं वारि = जलं यस्मिन् तत् विहारवारि = क्रीडासरः विदूरात् = विप्रकृष्टात् मेघानां = घनानाम् अन्तरे = मध्ये आ = ईषत् लक्ष्यं = दृश्यं यत्तत् मेघान्तरालक्ष्यम् इन्दोः = चन्द्रस्य बिम्बं = मण्डलम् इव = यथा आभाति = शोभते ।

समासः—पञ्च अप्सरसः यस्मिन् तत् पञ्चाप्सरः । विहारस्य वारि यस्मिन् तत् विहारवारि । पर्यन्तेषु वनानि = यस्य तत् पर्यन्तवनम् । मेघानाम् अन्तरे आलक्ष्यमिति मेघान्तरालक्ष्यम् । इन्दोः बिम्बमिति इन्दुबिम्बम् ।

हिन्दी—हे प्रिये ! शातकर्णि ऋषि का पञ्चाप्सर नाम का (पांच अप्सराएँ जिसमें हैं) क्रीडासर (*मनोरञ्जन का तालाब*) है । *यह चारों ओर से घोर जंगलों से घिरा हुआ होने*

से तथा दूर से ऐसा जान पड़ रहा है मानों मेघों के बीच से जरा-जरा दीखता हुआ चन्द्रबिम्ब हो। शातकर्णि = सुन्दर कन्धों वाला अथवा पैने कानों वाला, यह अर्थ है ॥ ३८ ॥

पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोना ।
समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् ॥ ३९ ॥

पुरा पूर्वस्मिन्काले दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिस्तन्मात्राहारो मृगैः सार्धं सह चरन्स ऋषिः समाधेस्तपसो भीतेन मघोनेन्द्रेण पञ्चानामप्सरसां यौवनम्। 'तद्धितार्थ–' इत्यादिनोत्तरपदसमासः। तदेव कूटबन्धं कपटयन्त्रमुपनीतः। 'उन्माथः कूटयन्त्रं स्यात्' इत्यमरः। किलेत्यैतिह्ये। मृगसाहचर्यान्मृगवदेव बद्ध इति भावः॥

अन्वयः—पुरा दर्भांकुरमात्रवृत्तिः मृगैः सार्धं चरन् सः ऋषिः, समाधिभीतेन मघोना पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् उपनीतः किल।

व्याख्या—पुरा = पूर्वस्मिन् काले दर्भस्य = कुशस्य अंकुराः = अभिनवोद्भिदः दर्भांकुरा एव दर्भांकुरमात्रं, दर्भांकुरमात्रं वृत्तिः = आहारः यस्य स दर्भांकुरमात्रवृत्तिः, मृगैः = हरिणैः सार्धं = सह चरन् = गच्छन्, भक्षयंश्च सः = ऋषिः, शातकर्णिः सम्यगाधीयतेऽस्मिन् मनः जनैरिति समाधिः। समाधेः = तपसः भीतः = त्रस्तः इति समाधिभीतस्तेन समाधिभीतेन मघोना = देवेन्द्रेण पञ्च च ताः अप्सरसः इति पञ्चाप्सरसः। पञ्चाप्सरसां = पञ्चदेवांगनानां यौवनं = तारुण्यं, तदेव कूटबन्धं = कपटयंत्र, तत् पञ्चाप्सरोयौवनकूटयंत्रम् उपनीतः = प्रापितः किल = इति ऐतिह्यम्।

समासः—दर्भस्य अंकुराः दर्भांकुराः। दर्भांकुरा एव दर्भांकुरमात्रं, दर्भांकुरमात्रं वृत्तिः यस्य स दर्भांकुरमात्रवृत्तिः। समाधेः भीतः समाधिभीतस्तेन समाधिभीतेन। पञ्चानाम् अप्सरसां यौवनमिति पञ्चाप्सरोयौवनं तदेव कूटबन्धः तम् पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम्।

हिन्दी—पहले किसी समय ये महर्षि हरिणों के साथ चलते-फिरते कुशा के अंकुरों को ही खाते थे। तब इनकी समाधि तपस्या से डरे इन्द्र ने "एक साथ" पाँच अप्सराओं के यौवनरूपी जाल में इन्हें फँसा दिया था। अर्थात् पाँच जवान अप्सराएँ भेजकर इन्द्र ने इनकी तपस्या भंग कर दी थी ॥ ३९ ॥

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसंगीतमृदङ्गघोषः ।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥ ४० ॥

अन्तर्हितसौधभाजो जलान्तर्गतप्रासादगतस्य तस्य शातकर्णेरयं प्रसक्तः संततः संगीतमृदङ्गघोषो वियद्गतः सन्पुष्पकस्य चन्द्रशाला शिरोगृहाणि। 'चन्द्रशाला शिरोगृहम्' इति हलायुधः। क्षणं प्रतिश्रुद्भिः प्रतिध्वानैर्मुखरा ध्वनन्तीः करोति। 'स्त्री प्रतिश्रुत्प्रतिध्वाने' इत्यमरः॥

अन्वयः—अन्तर्हितसौधभाजः तस्य अयं प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषः वियद्गतः सन् पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति।

व्याख्या—अन्तर्हितः = जलमध्यगतः यः सौधः = प्रासादः इति अन्तर्हितसौधस्तं भजतीति अन्तर्हितसौधभाक् तस्य अन्तर्हितसौधभाजः। सुधा लेपोऽस्यास्तीति सौधः। तस्य = मुनेः शातकर्णेः अयं = श्रवणपथमागतः। मृत् अंगमस्य सः मृतात् = वेष्टनात् जातः, मुरं = वेष्टनं जातमस्येति वा। मृदंगः "मृदंगा मुरजाः" इत्यमरः। संगीतं = नृत्यगीतवाद्यं मृदंगः = मुरजश्चेति तयोः घोषः = ध्वनिः इति संगीतमृदंगघोषः। प्रसक्तः = संततः, व्याप्तः यः संगीतमृदंगघोषः, इति प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषः वियति = आकाशे गतः = प्राप्तः वियद्गतः सन् चन्द्र इव शालते = शोभते, इति चन्द्रशाला = शिरोगृहम्, उच्चस्थानस्थितत्वात् तथात्वमित्यर्थः। पुष्पकस्य = व्योमयानस्य चन्द्रशालाः इति पुष्पकचन्द्रशालाः "चन्द्रशाला शिरोगृहमि"ति हैमः। क्षणं = मुहूर्तं प्रतिश्रुद्भिः = प्रतिध्वानैः मुखराः = ध्वनन्तीः करोति = विदधाति। प्रति = प्रथमशब्दं लक्ष्यीकृत्य श्रूयते इति प्रतिश्रुत्। "स्त्री प्रतिश्रुत्प्रतिध्वाने" इत्यमरः।

समासः—अन्तर्हितः सौधः, अन्तर्हितसौधः। तं भजतति अन्तर्हितसौधभाक् तस्य अन्तर्हितसौधभाजः। संगीतश्च मृदंगश्च संगीतमृदंगौ, तयोः घोषः इति संगीतमृदंगघोषः, प्रसक्तः यः संगीतमृदंगघोषः प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषः। वियति गतः वियद्गतः। पुष्पकस्य चन्द्रशालाः इति पुष्पकचन्द्रशालाः, ताः। प्रतिश्रुद्भिः मुखराः प्रतिश्रुन्मुखराः, ताः।

हिन्दी—जल के भीतर बने भवन में रहने वाले, शातकर्णि ऋषि, के निरन्तर हो रहे नाच-गाने और मृदंग की यह झनकार है (सुन पड़ रही है), जो कि आकाश में पुष्पक विमान की छतरी को प्रतिध्वनि से मुखरित कर रही है। अर्थात् ऋषि के भवन में हो रही संगीत की ध्वनि विमान से टकरा कर गूँज रही है ॥ ४० ॥

हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः ॥ ४१ ॥

नाम्ना सुतीक्ष्णः सुतीक्ष्णनामा चरितेन दान्तः सौम्योऽसावपरस्तपस्वी। एधवता मिन्धनवताम्। 'काष्ठं दार्विन्धनं त्वेधः' इत्यमरः। चतुर्णां हविर्भुजामग्नीनां मध्ये। ललाटं तपतीति ललाटंतपः सूर्यः। 'असूर्यललाटयोर्दृशितपोः' इति खश्प्रत्ययः। 'अरुर्द्विषत्–' इत्यादिना मुमागमः। ललाटंतपः सप्तसप्तिः सप्ताश्वः सूर्यो यस्य स तथोक्तः सन्। तपस्यति। 'कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः' इति क्यङ्। 'तपसः परस्मैपदं च' इति वक्तव्यम् ॥

अन्वयः—नाम्ना सुतीक्ष्णः चरितेन दान्तः असौ अपरः तपस्वी, एधवताम् चतुर्णां हविर्भुजां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः तपस्यति।

व्याख्या—नम्यतेऽभिधीयतेऽर्थोऽनेनेति नाम। तेन नाम्ना = नामधेयेन सुतीक्ष्णः = सुतीक्ष्णनामा, कठोरस्वभावोऽपीत्यर्थः चरितेन = चारित्रेण दान्तः = तपः क्लेशसहः, सौम्य इत्यर्थः असौ = दृश्यमानः अपरः = द्वितीयः तपस्वी = तापसः "तपस्वी तापसः पारिकांक्षी" इत्यमरः। एधः = इन्धनमस्ति येषां ते एधवन्तस्तेषाम् एधवताम् चतुर्णां = चतुःसंख्यकानां हवींषि भुञ्जते इति हविर्भुजस्तेषां हविर्भुजाम् = वह्नीनां मध्ये = अन्तरे सप्त सप्तयः = अश्वाः यस्य स सप्तसप्तिः।

ललाटं = भालं तपतीति ललाटंतपः । ललाटंतपः = मस्तकस्य तमा सप्तसप्तिः = सूर्यः यस्य स ललाटंतपसप्तसप्तिः सन् तपस्यति = तपश्चरति ।

समासः—ललाटंतपः सप्तसप्तिः यस्य स ललाटंतपसप्तसप्तिः ।

हिन्दी—लकड़ियों से युक्त (प्रज्वलित) चार अग्नियों के बीच में मस्तकपर सूर्य की किरणों से तपते हुए जो तपस्वी तपस्या कर रहे हैं। ये नाम से तो सुतीक्ष्ण (अति तीखे व कठोर) हैं किन्तु चरित्र (आचरण एवं स्वभाव) से बड़े सहनशील तथा सौम्य हैं ॥

विशेष—चारों ओर से चार धुनी जलाकर तथा ऊपर जेठ-वैशाख के सूर्य की धूप से पञ्चाग्नि तपते हुए तपस्या करते हैं। उन्हें पञ्चाग्नितपा कहते हैं ॥ ४१ ॥

अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसंदर्शितमेखलानि ।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि ॥ ४२ ॥

जनितेन्द्रशङ्कम् । तपसेति शेषः । अमुं सुतीक्ष्णं सहासं प्रहितानीक्षणानि दृष्टयो येषु तानि । व्याजेन केनचिन्मिषेण । 'पुंस्यर्धोऽर्धं समेंऽशके' इति विश्वः । अर्धमीषत्संदर्शिता मेखला येषु तानि सुराङ्गनानामिन्द्रप्रेषितानां विभ्रमा विलासा एव चेष्टितानि विकर्तुं स्खलयितु-मलं समर्थानि न । बभूवुरिति शेषः ॥

अन्वयः—जनितेन्द्रशंकम् अमुम् सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि सुरांग-नाविभ्रमचेष्टितानि विकर्तुम् अलं न 'बभूवुः' ।

व्याख्या—जनिता = उत्पादिता इन्द्रस्य = देवेन्द्रस्य शंका = त्रासः येन स तं जनितेन्द्र-शंकम् । तपसा मे देवेन्द्रासनमयं जेष्यतीति त्रासयुक्तमिन्द्रं कृतवानित्यर्थः । अमुं = सुतीक्ष्ण-नामानं मुनिं हासेन सहितं सहासं, सहासं = हास्यपूर्वकं प्रहितानि = प्रेरितानि, क्षिप्तानि ईक्षणानि = दृष्टयः येषु तानि सहासप्रहितेक्षणानि । व्याजेन = केनापि मिषेण अर्धम् = ईषत् सम्यक् दर्शिता = प्रकटिता मेखला = कांची नितम्बः इत्यर्थः = येषु तानि व्याजार्धसन्दर्शित-मेखलानि । मखं = गतिं लातीति मेखला । मां = लक्ष्मीं खलतीति वा मेखला । "मेखलाऽद्रि-नितम्बे स्याद्रशना खड्गबन्धयोः" इति हैमः । सुराणां = देवानाम् अंगनाः = अप्सरसः इन्द्रेण तपोविघ्नकरणाय प्रेषिता इत्यर्थः । तासां विभ्रमाः = यौवने शृंगारजा विकारा एव चेष्टितानि = अंगभंगिमादिक्रियाः, इति सुरांगनाविभ्रमचेष्टितानि विकर्तुं = स्खलयितुं तपसो विघ्नं कर्तुमित्यर्थः । अलं = समर्थानि न । जातानीति शेषः ।

समासः—जनिता इन्द्रस्य शंका येन स तं जनितेन्द्रशंकम् । सहासं प्रहितानि ईक्षणानि येषु तानि सहासप्रहितेक्षणानि । व्याजेन अर्धं सन्दर्शिताः मेखलाः येषु तानि व्याजार्धसंदर्शित-मेखलानि । सुराणाम् अंगनाः सुरांगनास्तासां विभ्रमा एव चेष्टितानि, इति सुरांगनावि-भ्रमचेष्टितानि ।

हिन्दी—इन्द्र के मन में भय पैदा कर देने वाले इस सुतीक्ष्ण मुनि को, इन्द्र के द्वारा

भेजी गई अप्सराओं की वे शृंगारचेष्टाएँ (हाव, भाव, चटक, मटक) भी, तपस्या से डिगाने के लिए समर्थ न हो सकी थीं, जिनमें हँसकर तिरछी नजर चलाई गई थी, तथा नाच-गाने के बहाने से अपनी करधनी जरा-जरा दिखा दी थी। अर्थात् नितम्ब और जाँघें उघाड़ कर दिखा दी थीं ॥ ४२ ॥

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम् ।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते ॥ ४३ ॥

ऊर्ध्वबाहुरेष सुतीक्ष्णोऽक्षमालैव वलयं यस्य तं मृगाणां कण्डूयितारम । कुशा एव सूचयस्ता लुनातीति कुशसूचिलावस्तम् । 'कर्मण्यण्' इत्यण् । 'एभिर्विशेषणैर्जपशीलत्वं भूतदया कर्मक्षमत्वं च द्योत्यते । सव्यादितरं दक्षिणं भुजं मे मम सभाजने संमाननिमित्ते । 'निमित्तात्कर्मयोगे' इति सप्तमी । इतः प्राध्वं प्रवृतानुकूलबन्धं प्रयुङ्क्ते । 'आनुकूल्यार्थकं प्राध्वम्' इत्यमरः । अव्ययं चैतत् ॥

अन्वयः—ऊर्ध्वबाहुः एषः अक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम् सव्येतरं भुजं मे सभाजने इतः प्राध्वं प्रयुङ्क्ते ।

व्याख्या—ऊर्ध्वम् = उपरि बाहू = भुजौ यस्य सः ऊर्ध्वबाहुः एषः = सुतीक्ष्णः, माति = मानहेतुर्भवतीति मां = शोभां लातीति वा माला । अक्षाणां = रुद्राक्षाणां माला = माल्यमिति अक्षमाला । अक्षमाला एव वलयः = कङ्कणं यस्य स तम् अक्षमालावलयम् , मृग्यन्ते = अन्विष्यन्ते व्याधैस्ते मृगाः । मृगाणां = हरिणानां कण्डूयितारं = विघर्षकं कुशाः = दर्भाः एव सूचयः = व्यधन्यः, ताः लुनाति = छिनत्ति इति कुशसूचिलावस्तं कुशसूचिलावं "स्त्रीसूचिर्नृत्यभेदे व्यधनी शिरव्ययोरपि" इति रत्नकोषः । सव्यात् इतरस्तं, सव्येतरं = दक्षिणं भुजं = बाहुं मे = मम रामस्य सभाजने = सम्माने स्वागतकरणायेत्यर्थः । इतः = मत्संमुखे प्रगतः अध्वानं प्राध्वस्तं प्राध्वम् = प्रवृतानुकूलबन्धं प्रयुङ्क्ते = प्रेरियति । "आनुकूल्यार्थकं प्राध्वम्" इत्यमरः ।

समासः—ऊर्ध्वं बाहू यस्य सः ऊर्ध्वबाहुः । अक्षाणां माला एव वलयः यस्य स तम् अक्षमालावलयम् । कुशाः एव सूचयस्तासां लावस्तं कुशसूचिलावम् । सव्यात् इतरः सव्येतरस्तं सव्येतरम् । प्रगतः अध्वानमिति प्राध्वस्तं प्राध्वम् ।

हिन्दी—देखो ! ऊपर को हाथ उठाए हुए यह सुतीक्ष्ण मुनि (अर्थात् मुझे देखकर) अपने उस दाहिने हाथ को अपनी अनुकूलता के साथ रुचिपूर्वक मेरे संमान मे इधर मेरी ओर उठा रहे हैं । जिस हाथ में रुद्राक्ष की माला का कड़ा पहने हैं और जिससे मृगों को सहलाते, तथा कुशारूपी सुइयाँ काँटे उखाड़ते हैं । अर्थात् दाहिना हाथ उठाकर मेरा स्वागत कर रहे हैं ॥ ४३ ॥

वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किंचित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्रार्चिषि संनिधत्ते ॥ ४४ ॥

एष सुतीक्ष्णः। वाचं यच्छतीति वाचंयमो मौनव्रती। 'वाचि यमो व्रते' इति खच्प्रत्ययः। 'वाचंयमपुरंदरौ च' इति मुम्। तस्य भावस्तत्त्वान्मम प्रणतिं किंचिन्मूर्ध्नः कम्पेन प्रतिगृह्य विमानेन व्यवधानं तिरोधानं तस्मान्मुक्ताम्। 'अपेतापोढमुक्तपतित–' इत्यादिना पञ्चमीसमासः। दृष्टिं पुनः सहस्रार्चिषि सूर्ये संनिधत्ते। सम्यग्धत्ते इत्यर्थः। अन्यथाकर्मकत्वप्रसङ्गात्॥

अन्वयः—एषः वाचंयमत्वात् मम प्रणतिं किंचित् मूर्ध्नः कम्पेन प्रतिगृह्य, विमानव्यवधानमुक्तां दृष्टिं पुनः सहस्रार्चिषि संनिधत्ते।

व्याख्या—एषः = सुतीक्ष्णः वाचं = वाणीं यच्छति = नियमयतीति वाचंयमः। वाचंयमस्य भावः वाचंयमत्वं तस्मात् वाचंयमत्वात् = मौनव्रतित्वात् मम = रामचन्द्रस्य प्रणतिं = नमस्कारं मत्कर्तृकं प्रणाममित्यर्थः। किंचित् = ईषत् मुह्यति अस्मिन् आहते सति स मूर्धा तस्य मूर्ध्नः = मस्तकस्य कम्पनेन = चालनेन प्रतिगृह्य = स्वीकृत्य, विमानेन = पुष्पकेन व्यवधानं = अन्तर्धानम्, आच्छादनं तेन मुक्ता = त्यक्ता इति विमानव्यवधानमुक्ता तां विमानव्यवधानमुक्ताम् दृष्टिं = नेत्रं पुनः = भूयः सहस्रम् अनन्तानि अर्चींषि = भासः यस्य स तस्मिन् सहस्रार्चिषि = सूर्ये संनिधत्ते = सम्यक् निदधाति। "अन्तर्धा व्यवधा पुंसि... अच्छादनानि च" इत्यमरः।

समासः—विमानेन व्यवधानमिति विमानव्यवधानं तेन मुक्ता तां विमानव्यवधानमुक्ताम्। सहस्रम् अर्चींषि यस्य स सहस्रार्चिः तस्मिन् सहस्रार्चिषि।

हिन्दी—ये सुतीक्ष्ण मुनि, मौनव्रत वाले होने के कारण शिर को जरा झुका कर मेरे प्रणाम को स्वीकार करके, विमान के बीच में आ जाने से इनकी दृष्टि जो सूर्य से ओझल हो गई थी उसे (विमान के हट जाने से) फिर सूर्य में लगा रहे हैं॥ ४४॥

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः।
चिराय सन्तर्प्य समिद्भिरग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्॥ ४५॥

शरणे रक्षणे साधु शरण्यम्। पावयतीति पावनम्। अदो दृश्यमानं तपोवनमाहिताग्नेः शरभङ्गनाम्नो मुनेः संबन्धि। यः शरभङ्गश्चिराय चिरमग्निं समिद्भिः संतर्प्य तर्पयित्वा ततो मन्त्रैः पूतां शुद्धां तनुमप्यहौषीद्धुतवान्। जुहोतेर्लुङ्॥

अन्वयः—शरण्यं पावनम् अदः तपोवनम् आहिताग्नेः शरभंगनाम्नः, यः चिराय अग्निं समिद्भिः सन्तर्प्य मंत्रपूतां तनुम् अपि अहौषीत्।

व्याख्या—शरणे = रक्षणे साधु शरण्यं = आश्रयस्थानम् पावयतीति पावनम् = पवित्रकरम् अदः = पुरोऽवलोक्यमानं तपसः = तपस्यायाः वनम् = अरण्यम्, आश्रम इत्यर्थः। इति तपोवनम् आहितः = स्थापितः अग्निः = वह्निः येन सः आहिताग्निस्तस्य आहिताग्नेः = अग्निहोत्रिणः शरभंग इति नाम यस्य स शरभंगनामा तस्य शरभंगनाम्नः ऋषेः संबन्धि अस्तीति शेषः। यः = शरभंगः चिराय = बहुकालपर्यन्तम् अग्निं = वह्निं समिध्यतेऽनया समित् ताभिः समि-

ग्निः=यज्ञीयकाष्ठैः सन्तर्प्य=तर्पयित्वा ततः मंत्रैः=वेदमंत्रैः पूता=शुद्धा, पवित्रा तां मंत्रपूतां तनुम्=शरीरम् अपि अहौषीत्=हुतवान्। आहुतिरूपेण स्वशरीरमपि वह्नौ प्रक्षिप्तवानित्यर्थः।

समासः—शरभंग इति नाम यस्य स तस्य शरभंगनाम्नः। तपसः वनं तपोवनम्। आहितः अग्निः येन स तस्य आहिताग्नेः। मंत्रैः पूता मंत्रपूता तां मंत्रपूताम्।

हिन्दी—"यह सामने" शरणागतों की रक्षा करने वाला और पवित्र करने वाला तपोवन अग्निहोत्री शरभंग मुनिका है। जिस मुनि ने बहुत समय तक अग्नि को समिधाओं से तृप्त करके अन्त में मंत्रों से पवित्र अपने शरीर को भी अग्नि में हवन कर दिया था॥ ४५॥

छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ॥ ४६ ॥

अधुनास्मिन्काले तस्य शरभङ्गस्य संबन्धिन्यतिथीनां सपर्यातिथिपूजा। 'पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणाः समाः' इत्यमरः। छायाभिर्विनीतोऽपनीतोऽध्वपरिश्रमो यैस्तेषु भूयिष्ठानि बहुतमानि संभाव्यानि श्लाघ्यानि फलानि येषां तेष्वमीषु पादपेष्वाश्रमवृक्षेषु सुपुत्रेष्विव स्थिता। तत्पुत्रैरिव पादपैरनुष्ठीयत इत्यर्थः॥

अन्वयः—अधुना तस्य अतिथीनां सपर्या छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु अमीषु पादपेषु सुपुत्रेषु इव स्थिता।

व्याख्या—अस्मिन् काले अधुना—सम्प्रति तस्य=महर्षेः शरभंगस्य अतन्ति=गच्छन्तीति अतिथयस्तेषाम् अतिथीनाम्=आगन्तुकानाम् "आगन्तुरावेशिक आगन्तुरतिथिर्ना गृहागते" इत्यमरः। सपर्या=पूजा, सपर्यतेऽनया सा सपर्या। सपर पूजायां कण्वादिः। छायाभिः=अनातपैः विनीतः=दूरीकृतः अध्वनः=मार्गस्य परिश्रमः=खेदः यैस्ते, तेषु छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु। अतिशयेन बहूनि भूयिष्ठानि, भूयिष्ठानि=प्रभूतानि संभाव्यानि प्रशंसनीयानि फलानि=द्राक्षाम्रादीनि येषां ते तेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु अमीषु=पुरो दृश्यमानेषु पादैः पिबन्तीति पादपास्तेषु पादपेषु=आश्रमवृक्षेषु सुपुत्रेषु=सदात्मजेषु इव=यथा स्थिता=वर्तते। यथा सत्पुत्राः पितुः कार्यं सम्पादयन्ति एवमेव एभिः शरभंगाश्रमस्य वृक्षैः अतिथिपूजानुष्ठीयते इत्यर्थः।

समासः—छायाभिः विनीतः अध्वनः परिश्रमः यैस्ते, तेषु छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु। भूयिष्ठानि संभाव्यानि फलानि येषां ते तेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु। सु=समीचीनाः पुत्राः सुपुत्रास्तेषु।

हिन्दी—इस समय शरभंग ऋषि के आश्रम में आने वाले अतिथियों की सेवा पूजा, अपनी छाया से पथिकों की थकावट को दूर करने वाले, तथा खूब बड़े ही मधुर फलवाले, इस आश्रम के वृक्ष उसी प्रकार कर रहे हैं जिस प्रकार सुपुत्र अपने पिता के धर्म का पालन

करते हैं। अर्थात् मुनि की अनुपस्थिति में उनके पुत्र की तरह ये आश्रम के वृक्ष, छाया और जलों से अतिथियों का सत्कार करते हैं ॥ ४६ ॥

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ॥ ४७ ॥

धारा निर्झरधाराः। यद्वा धारया सातत्येन स्वनोद्गारिदर्येव मुखं यस्य सः। शृङ्गं शिखरं विषाणं च। तस्याग्रेऽम्बुद एव वप्रपङ्को वप्रक्रीडासक्तपङ्को यस्य सः। असौ चित्रकूटो हे बन्धुरगात्रि उन्नतानताङ्गि। 'बन्धुरं तून्नतानतम्' इत्यमरः। दृप्तः ककुद्मान्वृषभ इव मे चक्षुर्बध्नात्यनन्यासक्तं करोति ॥

अन्वयः—धारास्वनोद्गारिदरीमुखः शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंकः असौ चित्रकूटः हे बन्धुरगात्रि ! दृप्तः ककुद्मान् इव मे चक्षुः बध्नाति।

व्याख्या—धारायाः = निर्झरधारायाः स्वनः = शब्दस्तम् उद्गारितुं शीलं यस्याः सा धारास्वनोद्गारिणी। धारास्वनोद्गारिणी या दरी = कन्दरा सैव मुखम् = आननं यस्य स धारास्वनोद्गारिदरीमुखः। शृंगस्य = शिखरस्य, विषाणस्य वा अग्रे लग्नः = संयुक्तः यः अम्बुदः = मेघ, स एव वप्रपंकः = मृत्तिकास्तूपक्रीडासंलग्नपंकः यस्य सः, इति शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंकः असौ = पुरोवर्ती, चित्राणि = नानाविधानि, सुन्दराणि कूटानि = शिखराणि यस्य स चित्रकूटः = एतन्नामा पर्वत "कूटोऽस्त्री शिखरं शृंगम्" इत्यमरः। बन्धुरं = मनोहरं गात्रं = शरीरं यस्याः सा बन्धुरगात्री। तस्याः संबुद्धौ हे बन्धुरगात्रि ! "बन्धूरबन्धुरौ रम्ये नम्रे हंसे तु बन्धुरः" इति विश्वः। दृप्तः = गर्वितः, कं = सुखं कौति, इति ककुद् = वृषांसः अस्ति अस्यासौ ककुद्मान् = वृषभ इव = यथा मे = मम रामस्य चक्षुः = दृष्टिम् बध्नाति = स्वस्मिन्नासक्तं करोति, अतिमनोहरत्वादिति भावः।

समासः—धारायाः स्वनः, धारया = सातत्येन वा स्वनः धारास्वनः, धारास्वनस्य उद्गारिणी या दरी इति धारास्वनोद्गारिदरी, सा एव मुखं यस्य स धारास्वनोद्गारिदरीमुखः। शृंगस्य अग्रं शृंगाग्रं, तस्मिन् लग्नः यः अम्बुदः, इति शृंगाग्रलग्नाम्बुदः एव वप्रे पंकः यस्य स शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंकः। चित्राः कूटाः यस्य स चित्रकूटः। बन्धुरं गात्रं यस्याः सा तस्याः संबुद्धौ हे बन्धुरगात्रि !।

हिन्दी—हे सुन्दरशरीरवाली सीते, यह सुन्दर शिखर वाला चित्र कूट पर्वत, मस्त सांड के समान, मेरी दृष्टि को अपनी ओर खींच रहा है। अर्थात् बड़ा सुहावना लग रहा है। मानों इस की गुफा ही इसका मुख है। इससे निकले झरने के प्रवाह का शब्द ही सांड की गर्जना है। इसकी चोटी का ऊपरी भाग ही इस के सींग हैं। और उस पर छाये हुए बादल ही मानो वप्रक्रीड़ा का कीचड़ है।

विशेष—इस पद्य में चित्रकूट को किसी नदी तटपर मस्ती में खेलते हुए सांड की

उपमा दी है। सांड गर्जता है। मिट्टी अपने ऊपर गिराता है। पर्वत भी गुहा रूपी मुखसे जल धारा-से गर्जता है एवं काले-काले मेघरूपी कीचड़ भी शिखररूपी सींगों पर लगा है॥ ४७॥

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः॥ ४८॥

प्रसन्नो निर्मलः स्तिमितो निःस्पन्दः प्रवाहो यस्याः सा विदूरस्यान्तरस्य मध्यवर्त्यवकाशस्य भावात्तन्वी दूरदेशवर्तित्वात्तनुत्वेनावभासमाना मन्दाकिनी नाम काचिच्चित्रकूटनिकटगैषा सरिन्नगोपकण्ठे। भूमेः कण्ठगता मुक्तावलीव भाति। अत्र नगस्य शिरस्त्वं तदुपकण्ठस्य कण्ठत्वं च गम्यते॥

अन्वयः—प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा विदूरान्तरभावतन्वी मन्दाकिनी नाम एषा सरित् नगोपकण्ठे भूमेः कण्ठगता मुक्तावली इव भाति।

व्याख्या—प्रसन्नः = अच्छः = निर्मलः स्तिमितः = निःस्पन्दः शब्दशून्यो मन्दगतिरित्यर्थः। प्रवाहः = प्रवृत्तिः, अविच्छेदेन गतिरित्यर्थः, यस्याः सा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा, विदूरं = विप्रकृष्टञ्च तदन्तरम् = मध्यवर्त्यवकाशः, इति विदूरान्तरं तस्य भावः = सत्ता तस्मात् तन्वी = कृशत्वेन प्रतीयमाना इति विदूरान्तरभावतन्वी, सुदूरस्थत्वात् तनुत्वेन भासमानेत्यर्थः। 'भावः सत्तास्वभावः' इत्यमरः। मन्दम् अकितुं = कुटिलं गन्तुं शीलमस्याः सा मन्दाकिनी नाम सरित् = नदी गंगा उपगतः कण्ठमिति उपकण्ठम्। उपगतः कण्ठः = सामीप्यमस्येति वा उपकण्ठम् नगस्य = पर्वतस्य उपकण्ठमिति नगोपकण्ठं तस्मिन् नगोपकण्ठे = चित्रकूटपर्वतसमीपे भूमेः = पृथिव्याः कण्ठे = ग्रीवायां गता = प्राप्ता, कण्ठगता मुक्तानां = मौक्तिकानाम् आवली = दीर्घा पंक्तिरिति मुक्तावली इव = यथा भाति = शोभते। अत्र चित्रकूटपर्वतस्य शिरस्त्वं तत्समीपस्य कण्ठत्वं गम्यते।

समासः = प्रसन्नः स्तिमितः प्रवाहो यस्याः सा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा। विदूरञ्च तदन्तरमिति विदूरान्तरं, विदूरान्तरस्यभावः, विदूरान्तरभाव स्तस्मात् तन्वी इति विदूरान्तरभावतन्वी। नगस्य उपकण्ठं नगोपकण्ठं तस्मिन् नगोपकण्ठे। कण्ठं गता कण्ठगता। मुक्तानाम् आवली मुक्तावली।

हिन्दी—निर्मल जलवाली, धीरे-धीरे बहती हुई, एवं दूर होने के कारण पतली दीख रही, यह मन्दाकिनी नाम की गंगा, चित्रकूट पर्वत के समीप (सटकर) बहती हुई ऐसी सुशोभित हो रही है मानो पृथिवी के गले में मोतियों की लम्बी सी माला है।

विशेष—मन्दाकिनी "अक कुटिलायां गतौ" से णिनि प्रत्यय होकर बनता है। मन्द-मन्द टेढ़ी मेढ़ी चलने के स्वभाव वाली मन्दाकिनी। यहाँ पर पृथिवी नायिका है। चित्रकूट का शिर तथा पर्वतसमीप उसका कण्ठ हुआ और लम्बी पतली निर्मल जलवाली धीरे-धीरे चुपचाप चलती मन्दाकिनी मुक्तावली हुई। यह भाव प्रकट होता है॥ ४८॥

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।
यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्ते॥ ४९॥

गिरेः समीपेऽनुगिरम्। 'गिरेश्च सेनकस्य' इति समासान्तष्टच्प्रत्ययः। सुजातः स तमालोऽयं दृश्यते। यस्य तमालस्य। शोभनो गन्धो यस्य तत्सुगन्धि। 'गन्धस्य–' इत्यादिनेकारः समासान्तः। प्रवालं पल्लवमादाय मया ते यवाङ्कुरवदापाण्डौ कपोले शोभी शोभते यः सोऽवतंसः परिकल्पितः॥

अन्वयः—अनुगिरम् सुजातः "सः" तमालः अयम् "दृश्यते" यस्य सुगन्धि प्रवालम् आदाय, मया ते यवांकुरापाण्डुकपोलशोभी अवतंसः परिकल्पितः।

व्याख्या—गिरेः = पर्वतस्य समीपे, अनुगिरम् सुष्ठु जातः सुजातः = सुन्दरः प्रिय इत्यर्थः। ताम्यतीति तमालः = तापिच्छवृक्षः प्रसिद्धः, अयं = पुरो दृश्यते। यस्य = तमालस्य सु = शोभनः गन्धः = आमोदः यस्य तत् सुगन्धि = सुरभि, प्रवालं = किसलयं आदाय = गृहीत्वा मया = रामचन्द्रेण ते = तव-सीतायाः, यवस्य = धान्यविशेषस्य अंकुरः = नवोद्भिद् इति यवाङ्कुरः। यवाङ्कुरवत् आपाण्डुः = केतकीधूलीसन्निभः कपोलः = गण्डः तस्मिन् शोभते = शालते यः स यवांकुरापाण्डुकपोलशोभी "पाण्डुस्तु पीतभागार्धः केतकीधूलिसन्निभः" इति शब्दार्णवः। अवतंसः = कर्णभूषणं परिकल्पितः = कृतः। यस्य तमालवृक्षस्य पल्लवमादाय मया ते कर्णाभरणं पूर्वं कृतं सोऽयं प्रियस्तमालः दृश्यते इत्यर्थः।

समासः—गिरेः समीपे अनुगिरम्। सुष्ठु जातः सुजातः। शोभनः गन्धः यस्य तत् सुगन्धि। यवस्य अंकुरः यवांकुरः। यवांकुरवत् आपाण्डुः इति यवांकुरापाण्डुः, यवांकुरापाण्डुः यः कपोलः इति यवांकुरापाण्डुकपोलस्तस्मिन् शोभी इति यवांकुरापाण्डुकपोलशोभी।

हिन्दी—पर्वत के पास ही सुन्दर प्रिय जो तमाल का पेड़ दीख रहा है। यह वही है जिसके सुगन्धवाले कोमल पत्ते लेकर मैंने तुम्हारे लिये कर्णाभरण (कर्णफूल) बनाया था, जो कि तुम्हारे जौ के अंकुर के समान पीले गालों पर लटकता हुआ बड़ा सुन्दर लग रहा था॥ ४९॥

अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिवृक्षम्।
वनं तपःसाधनमेतदत्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्॥ ५०॥

अनिग्रहत्रासा दण्डभयरहिता अपि विनीताः सत्त्वा जन्तवो यस्मिंस्तत्। अपुष्पलिङ्गात्पुष्परूपनिमित्तं विनैव फलबन्धिनः फलग्राहिणो वृक्षा यस्मिंस्तत्। अत एवाविष्कृतोदग्रतरप्रभावमत्रेर्मुनेस्तपसः साधनं वनमेतत्॥

अन्वयः—अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम्, अपुष्पलिंगात् फलबन्धिवृक्षम् "अत एव" आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् अत्रेः मुनेः तपःसाधनम् एतत् वनम्।

व्याख्या—निग्रहात् = दण्डात् त्रासः = भयं येषान्ते निग्रहत्रासाः। न निग्रहत्रासाः अनिग्रहत्रासाः। अनिग्रहत्रासाः अपि विनीताः नम्राः हिंसापरस्परद्वेषशून्या इत्यर्थः। सत्त्वाः = प्राणिनः यस्मिन् तत् अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम्। पुष्पं = कुसुमं लिंगं = निमित्तं तत् पुष्पलिंगं, न तत् अपुष्पलिंगं तस्मात् अपुष्पलिंगात्, पुष्परूपकारणं विनैव, फलानि = आम्रफलादीनि अनुब-

घ्नन्तीति फलानुबन्धिनः = फलग्राहिणः वृक्षाः = पादपाः यस्मिन् तत् फलबन्धिवृक्षं, वनेऽस्मिन् पुष्पोद्गममनपेक्ष्यैव फलवन्तो वृक्षाः सन्तीत्यर्थः। अत एव भवत्यनेन भावः, प्रकृष्टो भावः प्रभावः उद्गतम् अग्रं यस्य सः उदग्रः, अतिशयेन उदग्रः इति उदग्रतरः। आविष्कृतः = प्रकटीकृतः उदग्रतरः = प्रवृद्धः प्रभावः = महिमा, सामर्थ्यं यत्र तत् आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्। अस्ति स्म एकगण्डूषेणैव सर्वमेव गंगाजलं पीतवान् यः सः अत्रिस्तस्य अत्रेः = ब्रह्मणो मानसपुत्रस्य मुनेः तपसः = तपस्यायाः साध्यते कर्म निष्पाद्यतेऽनेनेति साधनम् = कारणम् वनं = काननम् एतत् = पुरः। अस्तीति शेषः।

समासः—निग्रहात् त्रास येषां ते निग्रहत्रासाः न निग्रहत्रासाः अनिग्रहत्रासाः, अनिग्रहत्रासाः विनीताः सत्त्वाः यस्मिन् तत् अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम्। पुष्पं च तत् लिंगमिति पुष्पलिंगम्, न पुष्पलिंगमिति अपुष्पलिंगम्, तस्मात् अपुष्पलिंगात्। फलबन्धिनः वृक्षाः यस्मिन् तत् फलबन्धिवृक्षम्। आविष्कृतः उदग्रतरः प्रभावः यस्य तत् आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्। तपसः साधनमिति तपःसाधनम्।

हिन्दी—मारपीट या धमकाए बिना ही सिंहादि हिंसक जीव भी जहाँ के बड़े सीधे हैं तथा बिना फूलों के ही फलों से लदे वृक्षों वाला, इसीलिये अपने उत्तम प्रभाव को प्रगट करने वाला अत्रिमहर्षि की तपस्या का साधन यह वन है ॥ ५० ॥

अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्।
प्रवर्तयामास किलानसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम् ॥ ५१ ॥

अत्र वनेऽनसूयात्रिपत्नी। सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः। 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' इति तत्पुरुषसमासः। तेषां हस्तैरुद्धृतानि हेमपद्मानि यस्यास्तां त्र्यम्बकमौलिमालां हरशिरःस्रजं त्रिस्रोतसं भागीरथीं तपोधनानामृषीणामभिषेकाय स्नानाय प्रवर्तयामास प्रवाहयामास। किलेत्यैतिह्ये ॥

अन्वयः—अत्र अनुसूया सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्मां त्र्यम्बकमौलिमालां त्रिस्रोतसं तपोधनानाम् अभिषेकाय प्रवर्तयामास किल।

व्याख्या—अत्र = आश्रमवने अनुसूया = अत्रिपत्नी सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः सप्तर्षीणां = मरीच्यंगिरादीनां हस्तैः = करैः उद्धृतानि = त्रोटितानि हेम्नः = सुवर्णस्य पद्मानि = कमलानि यस्याः सा तां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्। त्रीणि अम्बकानि = नयनानि यस्य सः। "अम्बकं नयनं दृष्टिः" इति हलायुधः। त्रयाणां लोकानाम् अम्बकः = पिता। त्रीन् वेदान् अम्बते = शब्दायते। त्रिषु लोकेषु कालेषु वा अम्बः = शब्दो वेदलक्षणः यस्य सः इति वा, त्रयः अकारोकारमकाराः अम्बाः = शब्दाः वाचकाः यस्येति वा त्र्यम्बकः। त्र्यम्बकस्य = शिवस्य मौलिः = चूडा शिरः इत्यर्थः। इति त्र्यम्बकमौलिः तस्य माला = स्रक् तां त्र्यम्बकमौलिमालां त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा त्रिस्रोताः = तां त्रिस्रोतसं = गंगां, तपः = तपस्या एव धनं = वित्तं येषां ते तेषां तपोधनानां = मुनीनां तपस्विनाम् अभिषेकाय = स्नानाय प्रवर्तयामास = प्रवाहयाञ्चकार किल = इति ऐतिह्ये। एवं जनाः कथयन्तीत्यर्थः।

समासः—सप्त च ऋषयः सप्तर्षयः, तेषां हस्ताः, तैः उद्धृतानि हेम्नः पद्मानि यस्याः सा तां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्। त्रीणि अम्बकानि यस्य स त्र्यम्बकः, तस्य मौलिरिति त्र्यम्बकमौलिः, त्र्यम्बकमौलेः माला, तां त्र्यम्बकमौलिमालाम्। त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा त्रिस्रोताः, तां त्रिस्रोतसम्। तपः एव धनं येषां ते तपोधनास्तेषां तपोधनानाम्।

हिन्दी—महर्षि अत्रि की धर्मपत्नी सती अनुसूया ने इस वन में तीन प्रवाह (तीन मार्गों से बहने) वाली उस गंगा जी को तपस्वी ऋषियों के स्नान करने के लिये बहाया था, जिसमें मरीचि आदि सप्तर्षिगण अपने हाथों से सोने के कमल तोड़ते थे, और जो शिव जी के जटाजूट की माला है। अर्थात् शिर पर माला के समान सुन्दर लग रही है। यह बात लोग परम्परा से कहते आ रहे हैं ॥ ५१ ॥

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाममी समध्यासितवेदिमध्याः।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ॥ ५२ ॥

वीरासनैर्जपसाधनैः। ध्यानं जुषन्ते सेवन्त इति ध्यानजुषः तेषां तैरुपविश्य ध्यायतामृषीणां संबन्धिनः समध्यासितवेदिमध्याः। इदं वीरासनस्थानीयम्। अमी शाखिनोऽपि निवाते निष्कम्पतया योगाधिरूढा इव ध्यानभाज इव विभान्ति। ध्यायन्तोऽपि निश्चलाङ्गा भवन्ति। वीरासने वसिष्ठः—'एकपादमथैकस्मिन्विन्यस्योरुणि संस्थितम्। इतरस्मिंस्तथा चान्यं वीरासनमुदाहृतम्॥' इति॥

अन्वयः—वीरासनैः ध्यानजुषां ऋषीणां समध्यासितवेदिमध्याः अमी शाखिनः अपि निवातनिष्कम्पतया योगाधिरूढाः इव विभान्ति।

व्याख्या—वीरयन्तीति वीराः। विशेषेण ईरयन्ति = दूरीकुर्वन्ति शत्रून् इति वीराः। वीराणां = साधकानाम् आसनानि = पीठानि, आसनबन्धविशेषाः। तैः वीरासनैः ध्यानम् = आत्मचिन्तनं जुषन्ते = सेवन्ते, इति ध्यानजुषस्तेषां ध्यानजुषां = समाधिसेविनामित्यर्थः ऋषन्ति = जानन्तीति ऋषयस्तेषां ऋषीणां = मंत्रद्रष्टृणां वीरासनैरुपविश्य ध्यायतां ऋषीणां संबन्धिनः। वेदिः = परिष्कृता भूमिस्तस्याः मध्यः = अन्तरमिति वेदिमध्यः, अध्यासितः = अधिष्ठितः वेदिमध्यः यैस्ते अध्यासितवेदिमध्याः अमी = पुरोवर्तिनः शाखाः सन्ति येषां ते शाखिनः = वृक्षाः अपि निवाते = वायुशून्यप्रदेशे निष्कम्पाः = स्थिराः, तेषां भावस्तत्ता तया निवातनिष्कम्पतया योगं = विषयनिवृत्तिं, यमादिकं वा अधिरूढाः = प्राप्ताः इति योगाधिरूढाः इव = यथा, ध्यानमग्ना इवेत्यर्थः विभान्ति = शोभन्ते।

समासः—वीराणाम् आसनानि तैः वीरासनैः। समध्यासितः वेदिमध्यः यैस्ते समध्यासितवेदिमध्याः। निवाते निष्कम्पः निवातनिष्कम्पः, तस्य भावस्तत्ता तया निवातनिष्कम्पतया। योगम् अधिरूढाः योगाधिरूढाः। ध्यानस्य जुषः, तेषाम्।

हिन्दी—वीरासन से बैठकर ध्यान लगाने वाले, ऋषियों के संबन्धी (अर्थात् जिनके

नीचे ऋषि बैठे हैं वे) ये वृक्ष भी, "आश्रम के वृक्षों के नीचे" वेदी पर बीच में बैठे हुए, तथा वायु न चलने के कारण स्थिर खड़े ऐसे सुन्दर लग रहे हैं मानो ये भी योग समाधि में बैठे हैं।

विशेष—वाम पाद को दाहिनी जंघा पर, एवं दक्षिण पाद को वाम जंघा पर रखकर बैठना, वीरासन है। इससे मन और इन्द्रियों को वश में किया जाता है तथा साधकों को सिद्धिप्रद है। ऐसा योगशास्त्र में वर्णन है ॥ ५२ ॥

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति ॥ ५३ ॥

त्वया पुरस्तात्पूर्वं य उपयाचितः प्रार्थितः। तथा च रामायणे—'न्यग्रोधं तमुपस्थाय वैदेही वाक्यमब्रवीद्। नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पालयेन्मे व्रतं पतिः॥' इति। श्याम इति प्रतीतः स वटोऽयं फलितः सन् सपद्मरागो गारुडानां मणीनां मरकतानां राशिरिव विभाति॥

अन्वयः—त्वया पुरस्तात् उपयाचितः श्यामः इति प्रतीतः सः वटः अयं फलितः सन् सपद्मरागः गारुडानां मणीनां राशिः इव विभाति।

व्याख्या—त्वया = सीतया पूर्वस्मिन् इति पुरस्तात् = पूर्वं वनगमनकाले उपयाचितः = प्रार्थितः, हे वटवृक्ष ! मे व्रतं पतिः पालयेत् इत्येवं प्रार्थित इत्यर्थः। श्यामते मनोऽस्मात् श्यामः इति नाम्ना प्रतीतः = विश्रुतः प्रसिद्ध इत्यर्थः। "श्यामोऽम्बुदे शितौ, हरिते प्रयाग-बटे" इति हैमः। सोऽयं वटः = न्यग्रोधः प्रयागस्थवटवृक्षः। फलितः = फलयुक्तः सन् पद्ममिव रागो यस्य स पद्मरागः। पद्मरागेण = शोणरत्नेन सह वर्तमानः सपद्मरागः गरुडस्य इमे गारुडा-स्तेषां गारुडानां = गारुत्मतानां मणीनां = हरिन्मणीनां राशिः = समूहः इव = यथा विभाति = शोभते। "शोणरत्नं लोहितकः पद्मरागः" इत्यमरः।

समासः—पद्ममिव रागो यस्य स पद्मरागः। पद्मरागेण सह वर्तमानः सपद्मरागः।

हिन्दी—हे सीते ! वनवास को जाते समय, तुमने जिससे प्रार्थना की थी, श्याम बट के नाम से प्रसिद्ध यह वही वटवृक्ष है। वह "इस समय" फलों से (लाल-लाल फलों से) लदा हुआ होकर यह ऐसा लग रहा है मानो पन्नों के ढेर में लालमणि भरी हो।

विशेष—प्रयाग का अक्षयवट श्यामवट है। सीता जी ने इसके पास जाकर प्रार्थना की थी हम अपना व्रत पालन कर सकुशल लौट आवें ॥ ५३ ॥

क्वचित्–इत्यादिभिश्चतुर्भिः श्लोकैः प्रयागे गङ्गायमुनासंगमं वर्णयति—

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥ ५४ ॥

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥ ५५ ॥

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ॥ ५६ ॥

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥ ५७ ॥

हे अनवद्याङ्गि, यमुनातरङ्गैर्भिन्नप्रवाहा व्यामिश्रौघा गङ्गा जाह्नवी विभाति। त्वं पश्य। केव । क्वचित्प्रदेशे प्रभया लिम्पन्ति संनिहितमिति प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैरनुविद्धा । सह-गुम्फिता मुक्तामयी यष्टिरिव हारावलिरिव विभाति। अन्यत्र प्रदेश इन्दीवरैर्नीलोत्पलैरुत्खचि-तान्तरा । सहग्रथिता सितपङ्कजानां पुण्डरीकाणां मालेव। विभातीति सर्वत्र संबन्धः । क्वचित्कादम्बसंसर्गवती नीलहंससंसृष्टा प्रियं मानसं नाम सरो येषां तेषां खगानां राजहंसानां पङ्क्तिरिव। 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः' इत्यमरः। अन्यत्र कालागुरुणा दत्तपत्रा रचितमकरिकापत्रा भुवश्चन्दनकल्पिता भक्तिरिव। क्वचिच्छायासु विलीनैः स्थितैस्तमोभिः शबलीकृता कर्बुरीकृता चान्द्रमसी प्रभा चन्द्रिकेव। अन्यत्र रन्ध्रेष्वालक्ष्यनभःप्रदेशा शुभ्रा शरदभ्रलेखा शरन्मेघपङ्क्तिरिव। क्वचित्कृष्णोरगभूषणा भस्माङ्गरागेश्वरस्य तनुरिव विभाति। शेषो व्याख्यातः। कलापकम् ॥

अन्वयः—हे अनवद्यांगि ! यमुनातरंगैः भिन्नप्रवाहा गंगा, क्वचित् प्रभालेपिभिः इन्द्रनीलैः अनुविद्धा मुक्तामयी यष्टिः इव विभाति, अन्यत्र इन्दीवरैः उत्खचितान्तरा सितपंकजानां माला इव (विभाति) क्वचित् कादम्बसंसर्गवती प्रियमानसानां खगानां पंक्तिः इव (विभाति) अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भुवः चन्दनकल्पिता भक्तिः इव (विभाति) क्वचित् *छायाविलीनैः तमोभिः शबलीकृता चान्द्रमसी प्रभा इव (विभाति) अन्यत्र रन्ध्रेषु आलक्ष्यनभःप्रदेशा* शुभ्रा शरदभ्रलेखा इव (विभाति) क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणा भस्मांगरागा ईश्वरस्य तनुः इव विभाति इति त्वं पश्य ।

क्वचिदित्यादि श्लोकचतुष्टयात्मकेन कलापकेन गंगायमुनासंगमं वर्णयति—

व्याख्या—अवत्यस्मात् आत्मानम् अवद्यं न अवद्यं निद्यमिति अनवद्यम्। अनवद्यम् = अनिन्द्यम् , अतिसुन्दरम् अंगं = शरीरं यस्याः सा अनवद्यांगी तस्याः संबुद्धौ हे अनवद्यांगि ! सीते यमुनायाः = कालिन्द्याः तरंगाः = ऊर्मयः, तैः यमुनातरंगैः भिन्नः = मिश्रितः प्रवाहः यस्याः सा भिन्नप्रवाहा गच्छतीति गंगा = भागीरथी क्वचित् = कुत्रचित् स्थाने प्रभया = कान्त्या लिम्पन्ति = आच्छादयन्ति, इति प्रभालेपिनस्तैः प्रभालेपिभिः इन्दतीति इन्द्रः, इन्द्रवत् नीलास्तैः इन्द्रनीलैः = मरकतमणिभिः अनुविद्धा = सह गुम्फिता मुक्ताः प्रचुराः मुक्तामयी = मौक्तिकप्रचुरा यष्टिः = हारावलिः इव = यथा विभाति = शोभते। अन्यत्र = अन्यस्मिन् प्रदेशे, इन्दतीति = इन्दी = लक्ष्मीस्तस्याः वरमिष्टमिति इन्दीवरम् । इन्दीवरैः = नीलकमलैः उत्ख-चितं = गुम्फितम् अन्तरं मध्यो यस्याः सा उत्खचितान्तरा = नीलकमलैः सह ग्रथितेत्यर्थः ।

सितानि च तानि पंकजानि इति सितपंकाजानि तेषां सितपङ्कजानां = पुण्डरीकाणां माला = पुष्पस्रक् इव विभाति ।

क्वचित् = अन्यत्र स्थले कदम्बे = समूहे भवाः कादम्बाः, कादम्बानां नीलवर्णकलहंसानां संसर्गः = सम्पर्कः अस्ति यस्याः सा कादम्बसंसर्गवती प्रियम् = इष्टं मानसं = सरोवरः येषां ते तेषां प्रियमानसानां खे = आकाशे गच्छन्तीति खगास्तेषां, खगानां = राजहंसानां पंक्तिः श्रेणिरिव विभाति ।

अन्यत्र = अन्यस्मिन् प्रदेशे कालञ्च तदगुरु चेति कालागुरु । कालागुरुणा = अगुरुणा दत्तं = कृतं = रचितं पत्रं = मकरिकापत्रं यस्यां सा कालागुरुदत्तपत्रा भुवः = पृथिव्याः चन्दनेन = मलयजेन कल्पिता = कृता, निर्मिता, इति चन्दनकल्पिता, भक्तिः = तिलकादिरचना इव विभाति ।

क्वचित् = प्रदेशे छायासु = आतपाभावेषु विलीनानि = निलीय स्थितानि तैः छायाविलीनैः तमोभिः = अन्धकारैः न शबला अशबला, अशबला शबला संपद्यमाना इति शबलीकृता = कर्बुरीकृता चन्द्रमसः इयं चान्द्रमसी = ऐन्दवी प्रभा = चन्द्रिका इव विभाति । अन्यत्र = अन्यस्मिन् स्थाने रन्ध्रेषु = छिद्रेषु आ = ईषत् लक्ष्याः = दृश्याः नभसः = आकाशस्य प्रदेशाः = भागाः यस्यां सा आलक्ष्यनभःप्रदेशा शुभ्रा = श्वेता शरदः = शरदृतोः अभ्राणि = मेघाः तेषां लेखा = रेखा पंक्तिः इव विभाति । अपो बिभ्रतीति अभ्राणि, न भ्रश्यन्ति आपः येभ्यस्तानि वा अभ्राणि ।

क्वचिच्च उरसा गच्छतीति उरगः कृष्णः = श्यामश्चासौ उरगः = सर्पः इति कृष्णोरगः भूषणम् = आभरणं यस्याः सा कृष्णोरगभूषणा भस्म = भूतिः अंगस्य = शरीरस्य रागः = विलेपनं यस्याः सा भस्मांगरागा ईशितुं शीलमस्येति ईश्वरस्तस्य ईश्वरस्य = शिवस्य तनुः = शरीरम् इव विभाति इति = दर्शनीयं त्वं = जानकि पश्य = अवलोकय इति सर्वत्र संबन्धः ।

समासः—इन्द्रवत् नीलास्तैः इन्द्रनीलैः । सितानि तानि पंकजानि सितपंकजानि तेषां सितापंकजानाम् । इन्द्याः वराणि तैः इन्दीवरैः उत्खचितमन्तरं यस्याः सा उत्खचितान्तरा । प्रियं मानसं येषां ते प्रियमानसास्तेषां प्रियमानसानाम् । कादम्बानां संसर्गः कादम्बसंसर्गः सोऽस्यास्तीति कादम्बसंसर्गवती । कालञ्च तदगुरु कालागुरु तेन दत्तं पत्रं यस्याः सा कालागुरुदत्तपत्रा । चन्दनेन कल्पिता चन्दनकल्पिता । छायासु विलीनानि तैः छायाविलीनैः । शरदः अभ्राणि शरदभ्राणि तेषां लेखा शरदभ्रलेखा । आ लक्ष्याः नभसः प्रदेशाः यस्याः सा आलक्ष्यनभःप्रदेशा । कृष्णश्चासौ उरगः कृष्णोरगः । कृष्णोरगः भूषणं यस्याः सा कृष्णोरगभूषणा । भस्म अंगस्य रागो यस्याः सा भस्मांगरागा । यमुनायाः तरंगाः यमुनातरंगास्तैः यमुनातरंगैः । भिन्नः प्रवाहः यस्याः सा भिन्नप्रवाहा । न अवद्यमिति अनवद्यम्, अनवद्यम् अंगं यस्याः सा अनवद्यांगी तत्संबुद्धौ हे अनवद्यांगि ।

हिन्दी—हे सुन्दर शरीरवाली सीते ! यमुना की नीली तरंगों से मिली हुई, श्वेत तरंगों वाली गंगाजी सुशोभित हो रही है । यह तुम देखो । कहीं पर तो अपनी नीली कान्ति

से पास वाले को पोतनेवाली (नीला बना देने वाली) इन्द्रनील (मरकतमणि) से गुंथी हुई, मोतियों की माला की तरह सुन्दर लग रही है। और कहीं पर नीले कमलों से बीच-बीच में गुंथी हुई, सुफेद कमलों की माला सी लग रही है॥ ५४॥

कहीं पर समूह में रहने वाले (श्याम हंस, बत्तख) हंसों से मिली, मानसरोवर के प्रेमी, राजहंसों (सुफेद) की पांत के समान सुन्दर लग रही है। कहीं पर श्वेत चन्दन से चीती गई, तथा बीच-बीच में काले अगर से चीती (बनाई) गई पृथिवी को शृंगार रचना सी लग रही है॥ ५५॥

कहीं पर "वृक्षों के नीचे" छाया में छिपे अन्धकार से चितकबरी की गई चान्द की चान्दनी सी लग रही है। अर्थात् वृक्ष के नीचे की चान्दनी सी, जिस पर पत्तों की छाया बीच-बीच पड़ रही है। कहीं पर शरद् ऋतु के बादलों की उजली पंक्ति के समान लग रही है, जिस में पत्तों के बीच में जरा-जरा नीला आकाश दीख रहा हो॥ ५६॥

और कहीं पर शिवजी के उस शरीर की तरह दीख रही है जिस पर भस्मरूपी अंगराग लगा है (भस्मपोत रखी है) और काले-काले सांपों के भूषण पहने हुए हैं॥ ५७॥

विशेष—यहां पर प्रयाग में गंगा यमुना के संगम का वर्णन कवि ने यमुनाजल को नीला तथा गंगाजल को सुफेद मानकर किया है।

समुद्रपत्न्योर्जलसंनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः॥ ५८॥

अत्र समुद्रपत्न्योर्गङ्गायमुनयोर्जलसंनिपाते संगमेऽभिषेकात्स्नानात्पूतात्मनां तनुत्यजां शुद्धात्मनां पुंसां तत्त्वावबोधेन तत्त्वज्ञानेन विनापि प्रारब्धशरीरत्यागानन्तरं भूयः पुनः शरीरबन्धः शरीरयोगो नास्ति किल। अन्यत्र ज्ञानादेव मुक्तिः। अत्र तु स्नानादेव मुक्तिरित्यर्थः॥

अन्वयः—अत्र समुद्रपत्न्योः जलसन्निपाते अभिषेकात् पूतात्मनां तनुत्यजां तत्त्वावबोधेन विना अपि भूयः शरीरबन्धः नास्ति किल।

व्याख्या—अत्र = अस्मिन् समीचीनाः उद्राः = जलचरविशेषाः यस्मिन्, मुद्रया = मर्यादया सह वर्तते, इति वा समुद्रः। समुद्रस्य = सागरस्य पत्न्यौ = स्त्रियौ इति समुद्रपत्न्यौ तयोः समुद्रपत्न्योः = गंगायमुनयोः जलयोः = प्रवाहयोः सन्निपातः = संगमस्तस्मिन् जलसन्निपाते अभिषेकात् = स्नानात् पूतः = शुद्धः आत्मा = चित्तं येषां ते पूतात्मानस्तेषां पूतात्मनां तनुं = शरीरं त्यजन्तीति तनुत्यजस्तेषां तनुत्यजां = देहत्यागिनां मनुष्याणां तननं तत् तदस्यास्तीति तत्त्वम्। तनोति सर्वमिदमिति तत् = ब्रह्म तस्य भावस्तत्त्वं, तत्त्वस्य अवबोधः = ज्ञानं तेन तत्त्वावबोधेनविनापि = ब्रह्मज्ञानं विनापि भूयः = पुनः प्रारब्धदेहत्यागानन्तरमित्यर्थः शरीरेण = देहेन बन्धः = संबन्धः योगः, इति शरीरबन्धः नास्ति = न भवति। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिरिति श्रुतेः सर्वत्रान्यत्र आत्मैक्यज्ञानादेव मुक्तिः, गंगायमुनासंगमे तु स्नानमात्रेणैव मुक्तिरिति भावः।

समासः—समुद्रस्य पत्न्यौ समुद्रपत्न्यौ तयोः समुद्रपत्न्योः। जलयोः सन्निपातस्तस्मिन्

जलसन्निपाते । पूतः आत्मा येषां ते पूतात्मानस्तेषां पूतात्मनाम् । तनूनां त्यजस्तेषां तनुत्यजाम् । तत्त्वस्य अवबोधस्तत्त्वावबोधस्तेन तत्त्वावबोधेन । शरीरस्य बन्धः शरीरबन्धः ।

हिन्दी—समुद्र की दो पत्नियों (गंगा यमुना) के संगम में स्नान करने से, पवित्र मन वाले पुरुष तत्त्वज्ञानी न होने पर भी वर्तमान शरीर छूट जाने पर शरीर के बन्धन से छूट जाते हैं। अर्थात् अन्यत्र सब स्थानों में ज्ञान से ही मुक्ति होती है किन्तु यहां संगम में स्नान करने मात्र से मुक्ति मिल जाती है । पुनः शरीर धारण नहीं करना पड़ता है ॥ ५८ ॥

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय ।
जटासु बद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः कैकेयि कामाः फलितास्तवेति ॥ ५९ ॥

निषादाधिपतेर्गुहस्य तत्पुरमिदम् । यस्मिन्पुरे मया मौलिमणिं विहाय जटासु बद्धासु रचितासु सतीषु सुमन्त्रः 'हे कैकेयि, तव कामा मनोरथाः फलिताः सफला जाताः' इत्यरुदत् । 'रुदिर् अश्रुविमोचने' इति धातोर्लुङ् ॥

अन्वयः—निषादाधिपतेः तत् पुरम् इदं, यस्मिन् मया मौलिमणिं विहाय, जटासु बद्धासु 'सतीषु' सुमंत्रः हे कैकेयि तव कामाः फलिताः इति अरुदत् ।

व्याख्या—निषीदति पापं येषु ते निषादाः । निषादानां = चाण्डालादीनाम् अधिपतिः स्वामी तस्य निषादाधिपतेः = गुहस्य तत् = पूर्वदृष्टं प्रसिद्धं पुरं = नगरम् इदं = पुरोवर्ति अस्ति । यस्मिन् = पुरे मया = रामेण मूलस्यादूरे भवः मौलिस्तस्य मणिः = रत्नमिति मौलि-मणिस्तं मौलिमणिं, मुकुटरत्नमित्यर्थः । विहाय = त्यक्त्वा जटासु = सटासु बद्धासु = संयतासु सतीषु सुमंत्रः = राज्ञो दशरथस्य मंत्री, सारथिश्च, कैकेयस्य राज्ञोऽपत्यम् स्त्री कैकेयी, तत्संबुद्धौ हे कैकेयि ! तव = भवत्याः काम्यन्ते इति कामाः = मनोरथाः सफलाः = सफलीभूताः, इति कथयित्वा अरुदत् = अश्रूणि त्यक्तवान् ।

समासः—अधिकं पातीति अधिपतिः । निषादानाम् अधिपतिः निषादाधिपतिः तस्य निषादाधिपतेः । मौलेः मणिः मौलिमणिस्तं मौलिमणिम् ।

हिन्दी—निषादों के राजा गुह का यह सामने प्रसिद्ध नगर शृंगवेर पुर है, जिस नगर में मैंने अपने मुकुटरत्न को त्यागकर (उतारकर) जटा बान्धी थी, और जटा के बान्धते ही, 'हे कैकेयी ! तुम्हारी कामना (इच्छा) सफल हो गई' यह कह कर सुमंत्र रोने लगे थे ॥ ५९ ॥

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः ।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ॥ ६० ॥

पुण्यजनाङ्गनानां यक्षस्त्रीणां पयोधरैः स्तनैर्निर्विष्ट उपभुक्तो हेमाम्बुजरेणुर्यस्य तत् । तत्र ताः क्रीडन्तीति व्यज्यते । ब्रह्मण इदं ब्राह्मम् । 'नस्तद्धिते' इति टिलोपः । ब्राह्म सरो मानसाख्यं यस्याः सरय्वाः । बुद्धेर्महत्तत्त्वस्याव्यक्तं प्रधानमिव कारणम् । आप्तस्य वाच आप्तवाचो वेदाः । यद्वा *बहुव्रीहिणा मुनयः । उदाहरन्ति प्रचक्षते ॥*

अन्वयः—पुण्यजनांगनानां पयोधरैः निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु ब्राह्मं सरः यस्याः बुद्धेः अव्यक्तम् इव कारणम् आप्तवाचः उदाहरन्ति ।

व्याख्या—पुण्यं = सुकृतम् आश्रिताः जनाः, पुण्यजनाः । पुण्यजनानां = यक्षाणाम् अंगनाः = स्त्रियस्तासां पुण्यजनांगनानां धरन्ती धराः, पयसां = दुग्धानां धराः पयोधरास्तैः पयोधरैः = स्तनैः निर्विष्टः = उपभुक्तः हेम्नः = सुवर्णस्य अम्बुजं = कमलं तस्य रेणुः = धूलिः यस्य तत् निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु तस्मिन् सरसि यक्षांगनाः जलक्रीडां कुर्वन्तीति व्यज्यते । ब्रह्मणः इदं ब्राह्मं सरः = ब्रह्मसंबन्धि मानससरोवराख्यं यस्याः = सरय्वाः नद्याः, बुद्धेः = महत्तत्वस्य न व्यज्यते स्म इति अव्यक्तम् = प्रकृतिः इव = यथा कारणम् = उत्पत्तिस्थानम् आप्ता = विश्वस्ता वाक् = शब्दः, वाणी येषां ते आप्तवाचः = वेदाः, मुनयो वा । उदाहरन्ति = कथयन्ति ।

समासः—*पुण्यमाश्रिताः जनाः पुण्यजनास्तेषाम् अंगना इति तासां पुण्यजनांगनानाम् । पयसः धराः पयोधरास्तैः पयोधरैः । हेम्नः अम्बुजं हेमाम्बुजं, तस्य रेणुरिति हेमाम्बुजरेणुः, निर्विष्टः हेमाम्बुजरेणुः यस्य तत् निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु । आप्ता वाक् येषां ते आप्तवाचः । आप्तस्य वाचः आप्तवाचः, इति वा । न व्यक्तमिति अव्यक्तम् ।*

हिन्दी—यक्षों की स्त्रियों के स्तनों ने जिस सरोवर के सुनहरे कमलों के पराग (धूलि) का उपभोग किया है । उसी ब्रह्मा जी के मानसरोवर को सत्यवक्ता, ऋषिलोग, सरयू नदी का कारण वैसे ही बताते हैं जैसे बुद्धि का कारण प्रधान को बताते हैं । अर्थात् इसी सरोवर से सरयू नदी निकलती है ॥ ६० ॥

जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम् ।
तुरंगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ॥ ६१ ॥

यूपः संस्कृतः पशुबन्धनार्हो दारुविशेषः । तीरनिखातयूपा या सरयूस्तुरंगमेधा अश्वमेधास्तेष्ववभृथार्थमेवावतीर्णैरवरूढैरिक्ष्वाकुभिरिक्ष्वाकुगोत्रापत्यैर्नृपैः पूर्वैः । तद्राजत्वादणो लुक् । पुण्यतरीकृतान्यतिशयेन पुण्यानि कृतानि जलान्ययोध्यां राजधानीं नगरीमनु समीपे तया लक्षितयेत्यर्थः । अनुशब्दस्य 'लक्षणेत्थंभूत–' इत्यादिना कर्मप्रवचनीयत्वात्तद्योगे द्वितीया । वहति प्रापयति ॥

अन्वयः—तीरनिखातयूपा या तुरंगमेधावभृथावतीर्णैः इक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि जलानि अयोध्यां राजधानीम् अनुवहति ।

व्याख्या—यूयते = युज्यतेऽस्मिन्निति यूपः = संस्कृतः पशुबन्धनयोग्यः यागस्तम्भः । तीरे = तटे निखाताः = स्थापिताः यूपाः = यागस्तम्भाः, जयस्तम्भाश्च यस्याः सा तीरनिखातयूपा सरयूः = नदी तुरेण त्वरया वा गच्छन्तीति तुरंगाः । तुरंगाः = अश्वाः मेध्यन्ते = हिंस्यन्ते यत्र ते तुरंगमेधाः = अश्वमेधयज्ञास्तेषु अवभृथाय = यज्ञान्तस्नानाय अवतीर्णाः = अवरूढास्तैः तुरंगमेधावभृथावतीर्णैः, इक्षुमाकरोति, इक्षु इति शब्दमकरोतीति वा इक्ष्वाकुः = वैवस्वतमनुपुत्रः तस्य गोत्रे जाताः इक्ष्वाकवस्तैः इक्ष्वाकुभिः = इक्ष्वाकुवंशोत्पन्नैः अस्मत्पूर्वजैः, अतिशयेन पुण्यानि, इति पुण्यतराणि, न पुण्यतराणीति अपुण्यतराणि, तानि पुण्यतराणि कृतानीति पुण्यतरी-

कृतानि = अतीव पवित्राणि कृतानि जलानि योद्‌धुम् अशक्या अयोध्या = साकेतं ताम् अयोध्यां, धीयतेऽस्यामिति धानी, राज्ञां धानी = नगरी, राजधानी तां राजधानीम् अनु = समीपे वहति = प्रापयति ।

समासः—तीरे निखाताः यूपाः यस्याः सा तीरनिखातयूपा । राज्ञां धानी राजधानी तां राजधानीम् । तुरंगमेधेषु अवभृथाय अवतीर्णास्तैः तुरंगमेधावभृथावतीर्णैः । अपुण्यतराणि पुण्यतराणि कृतानि इति पुण्यतरीकृतानि ।

हिन्दी—जिसके किनारों पर यज्ञों के खम्भे गड़े हैं वह सरयू नदी, अयोध्या नामक राजधानी के पास से (सटकर) वह रही है, जिसके जलों को अश्वमेधयज्ञों की समाप्ति पर यज्ञान्त स्नान करने वाले इक्ष्वाकु के वंश के मेरे पूर्वज राजाओं ने अत्यन्त पवित्र किया है ॥ ६१ ॥

यां सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् ।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे संभावयत्युत्तरकोसलानाम् ॥ ६२ ॥

यां सरयूं मे मानसं कर्तृ सैकतं पुलिनम् तदेवोत्सङ्गः तत्र यत्सुखं तत्रोचितानां प्राज्यैः प्रभूतैः पयोभिरम्बुभिः क्षीरैश्च । 'पयः क्षीरं पयोऽम्बु च' इत्यमरः, परिवर्धितानां पुष्टानामुत्तरकोसलानामुत्तरकोसलेश्वराणां सामान्यधात्रीं साधारणमातरमिव संभावयति । 'धात्री जनन्यामलकी वसुमत्युपमातृषु' इति विश्वः ॥

अन्वयः—यां मे मानसं सैकतोत्संगसुखोचितानाम् प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् उत्तरकोसलानां सामान्यधात्रीम् इव सम्भावयति ।

व्याख्या—यां = सरयूं मे = मम मानसं = मनः । कर्तृपदमिदम् । सिकताः सन्ति यस्य तत् सैकतं = सिकतामयं पुलिनम् एव उत्संगः = अंकः तस्मिन् यत् सुखम् = आनन्दस्तत्र उचिताः = अभ्यस्तास्तेषां सैकतोत्संगसुखोचितानाम् प्राज्यैः = प्रचुरैः अत्यधिकैरित्यर्थः । पयोभिः = जलैः परितः वर्धिताः सर्वथा पोषितास्तेषां परिवर्धितानाम् उत्तरे स्थिताः कोसलाः उत्तरकोसलास्तेषाम् उत्तरकोसलानाम् = उत्तरकोसलेश्वराणां मानेन सह समानं, समानस्य भावः सामान्यम् , सामान्या = सर्वेषामेकरूपा चासौ धात्री = जननी चेति सामान्यधात्री तां सामान्यधात्रीम् इव = यथा सम्भावयति = सम्मानयति । "धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु" मेदिनी ।

समासः—सैकतमेव उत्संगः सैकतोत्संगः, सैकतोत्संगे यद् सुखं तस्मिन् उचितास्तेषां सैकतोत्संगसुखोचितानाम् । परितः वर्धितास्तेषां परिवर्धितानाम् । उत्तरे स्थिताः कोसलाः उत्तरकोसलास्तेषाम् उत्तरकोसलानाम् । सामान्या चासौ धात्री सामान्यधात्री तां सामान्यधात्रीम् ।

हिन्दी—*मेरा मन इस नदी का बड़ा सम्मान करता है । क्योंकि इसके बालुकामय* किनारे की गोद में खेलने के अभ्यासी तथा इसके मधुर जलों को पीकर परिपुष्ट हुए, उत्तर कोसल के (मेरे पूर्वजों की) राजाओं की यह साधारण मां है । अर्थात् सबको एक समान धाय है ॥ ६२ ॥

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरंगहस्तैरुपगूहतीव ॥ ६३ ॥

मदीया जननी कौसल्येव मान्येन पूज्येन तेन राज्ञा दशरथेन वियुक्ता सेयं सरयूर्दूरे वसन्तम् । प्रोष्यागच्छन्तमित्यर्थः । मां पुत्रभूतं शिशिरानिलैस्तरंगैरेव हस्तैरुपगूहतीवालिङ्गतीव ॥

अन्वयः—मदीया जननी इव मान्येन तेन राज्ञा वियुक्ता सा इयं सरयूः दूरे वसन्तं मां शिशिरानिलैः तरंगहस्तैः उपगूहति इव ।

व्याख्या—मम = रामस्य इयं मदीया जनयतीति जननी = माता कौसल्या इव = यथा मान्येन = पूजनीयेन तेन = प्रसिद्धेन राज्ञा दशरथेन वियुक्ता = त्यक्ता सा = प्रसिद्धा पूज्या इयं = दृश्यमाना सरयूः = नदी दूरे = विप्रकृष्टे वसन्तं = निवसन्तं, वनवासात् प्रत्यागच्छन्तमित्यर्थः मां = पुत्रभूतं रामचन्द्रं शिशिरः = शीतलः अनिलः = वायुः येषां ते तैः शिशिरानिलैः तरंगाः = ऊर्मयः एव हस्ताः = कराः तैः तरंगहस्तैः उपगूहति = आलिंगति, इव = यथा ।

समासः—शिशिरः अनिलः येषां ते शिशिरानिलास्तैः शिशिरानिलैः । तरंगा एव हस्ताः, इति तरंगहस्तास्तैः तरंगहस्तैः ।

हिन्दी—माननीय महाराजा दशरथ से बिछुड़ी हुई, मेरी माता कौसल्या के समान यह सरयू नदी, दूर वनवास से लौटे हुए मुझे ठण्डी वायु वाले अपने तरंगरूपी हाथों से मानों आलिंगन कर रही है ॥ ६३ ॥

विरक्तसंध्याकपिशं पुरस्ताद्यतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते ।
शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः ॥ ६४ ॥

विरक्तातिरक्ता या संध्या तद्वत्कपिशं ताम्रवर्णम् । पृथिव्या इदं पार्थिवम् । रजो धूलिः पुरस्तादग्रे यतो यस्मात्कारणादुज्जिहीत उद्गच्छति । तस्मात् । हनुरस्यास्तीति हनूमान् । 'शरादीनां च' इति दीर्घः । तेन कथिता प्रवृत्तिरस्मदागमनवार्ता यस्मै स भरतः ससैन्यः सन्मां प्रत्युद्गत इति शङ्के तर्कयामि । 'शङ्का भयवितर्कयोः' इति शब्दार्णवे । अत्र यत्तदोर्नित्यसंबन्धात्तच्छब्दलाभः ॥

अन्वयः—विरक्तसन्ध्याकपिशं पार्थिवं रजः पुरस्तात् यतः उज्जिहीते, "ततः" हनूमत्कथितप्रवृत्तिः भरतः ससैन्यः सन् मां प्रत्युद्गतः, इति अहं शंके ।

व्याख्या—कपिः = वर्णविशेषोऽस्यास्तीति कपिशः । कपिः = मर्कटः, तद्वर्णत्वात् वा कपिशः । सम्यग्ध्यायन्ति परमात्मानं यस्यां सा सन्ध्या विशेषेण रक्ता = लोहिता या संध्या = संध्याकालः तद्वत् कपिशं = ताम्रवर्णमिति विरक्तसन्ध्याकपिशं, पृथिव्याः इदं पार्थिवं = भौमं रजः = धूलिः पुरस्तात् = अग्रे यतः = यस्मात्कारणात् उज्जिहीते = उद्गच्छति, आकाशं व्याप्नोतीत्यर्थः । ततः कारणात् हन्ति कठिनद्रव्यादिकमिति हनुः । हनुरस्यास्तीति हनूमान् । हनूमता = पवनात्मजेन कथिता = निवेदिता प्रवृत्तिः = रामागमनवृत्तान्तः यस्मै स हनूमत्कथित-

प्रवृत्तिः भरतः = कैकेयीपुत्रः सेनायां समवेताः सैन्या स्तैः सह वर्तते इति ससैन्यः = सैनिकैः सहितः सन् मां = रामं प्रत्युद्गतः = संभावयितुं समागतः इत्यहं शंके = तर्कयामि, इति शेषः ।

समासः—विशेषेण रक्ता, विरक्ता, विरक्ता चासौ संध्या, विरक्तसंध्या, विरक्तसन्ध्यावत् कपिशमिति विरक्तसन्ध्याकपिशम् । हनूमता कथिता प्रवृत्तिः यस्मै स हनूमत्कथितप्रवृत्तिः । सैन्यैः सहितः ससैन्यः ।

हिन्दी—लाल सन्ध्या के समान भूरे सुनहरे रंग की धूली पृथिवी से जो सामने उठ रही है, इससे मालूम होता है कि हनूमान जी से हमारे आने का समाचार जानकर सेना सहित भरत मेरा स्वागत करने आ रहा है ॥ ६४ ॥

अद्धा श्रियं पालितसंगराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः ।
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन्संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे ॥ ६५ ॥

किंच । साधुः सज्जनः स भरतः । 'साधुर्वार्धुषिके चारौ सज्जने चापि वाच्यवत्' इति विश्वः । पालितसंगराय पालितपितृप्रतिज्ञाय मे मह्यमनघामदोषां भोगाभावादनुच्छिष्टां किंतु संरक्षितां श्रियम् । मृधे युद्धे खरादीन्हत्वा निवृत्ताय मे लक्ष्मणो संरक्षितामनघां त्वामिव प्रत्यर्पयिष्यत्यद्धा सत्यम् । 'तत्त्वे त्वद्धाञ्जसा द्वयम्' इत्यमरः ॥

अन्वयः—साधुः सः पालितसंगराय मे अनघां संरक्षितां श्रियं, मृधे खरादीन् हत्वा निवृत्ताय मे लक्ष्मणः त्वाम् इव प्रत्यर्पयिष्यति इति अद्धा ।

व्याख्या—किंच साध्नोति धर्मं, परकार्यं वा स साधुः = सज्जनः आर्यः सः = महाकुलीनः भरतः पालितः = संरक्षितः संगरः = पितुराज्ञा येन स तस्मै पालितसंगराय मे = मह्यं रामाय नास्ति अघं = पापं यस्याः सा ताम् अनघां = निष्कलंकां, भोगराहित्येनानुच्छिष्टां किन्तु सम्यग् रक्षिता तां संरक्षितां = सम्यक्पालितां श्रियं = राज्यलक्ष्मीं मर्धनं मृधं तस्मिन् मृधे = युद्धे खरः आदिः येषां ते खरादयस्तान् खरादीन् = खरदूषणप्रभृतीन् राक्षसान् हत्वा = मारयित्वा निवृत्ताय = प्रत्यागताय मे = रामचन्द्राय लक्ष्मणः = सौमित्रिः संरक्षितामनघां त्वां = सीताम् इव = यथा प्रत्यर्पयिष्यति = प्रदास्यति, इति अतं = सततगमनं धयति, दधाति वा अद्धा = सत्यम् ।

समासः—पालितः संगरः येन स तस्मै पालितसंगराय । नास्ति अघं यस्याः सा अनघा ताम् अनघाम् । सम्यक् रक्षिता तां संरक्षिताम् । खरः आदिः येषां ते तान् खरादीन् ।

हिन्दी—सज्जन आर्य भरत, पिता की आज्ञा का पालन करने वाले, वनवास से लौटे हुवे मुझे, निर्दोष एवं सुरक्षित राज्यलक्ष्मी को उसी प्रकार लौटा देगा। सौंप देगा। जिस प्रकार खरदूषण आदि हजारों राक्षसों को युद्ध में मारकर लौट आने पर लक्ष्मण ने सुरक्षित सीता मुझे सौंप दी थी।

विशेष—अनघा से तात्पर्य यह है कि भरत जी ने राज्य लक्ष्मी का उपभोग नहीं किया था। लक्ष्मण जी की तरह केवल रक्षामात्र की थी, अतः निर्दोष कहा है ॥ ६५ ॥

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः ।
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति ॥ ६६ ॥

असौ पदातिः पादचारी चीरवासा वल्कलवसनो भरतः पश्चात्पृष्ठभागेऽवस्थापिता वाहिनी सेना येन स तथोक्तः सन् । 'नद्यृतश्च' इति कप् । गुरुं वसिष्ठं पुरस्कृत्य वृद्धैरमात्यैः सहार्घ्यपाणिः सन्मामभ्युपैति ॥

अन्वयः—असौ पदातिः चीरवासा भरतः पश्चात् अवस्थापितवाहिनीकः सन् गुरुं पुरस्कृत्य वृद्धैः अमात्यैः सह अर्घ्यपाणिः सन् माम् अभ्युपैति ।

व्याख्या—पादाभ्याम् अतति = गच्छतीति पदातिः = पदगः पादचारीत्यर्थः । चीयते इति चीरं = चीवरं वासः = वस्त्रं यस्य स चीरवासाः = वल्कलधारीत्यर्थः । भरतः = मेऽनुजः वाहाः सन्त्यस्यां सा वाहिनी । पश्चात् = पृष्ठे अवस्थापिता = कृता वाहिनी = सेना येन स पश्चादवस्थापितवाहिनीकः सन् गृणाति धर्मादि गिरति, अज्ञानं वा गुरुः । तं गुरुं = वसिष्ठं पुरः = अग्रे कृत्वा इति पुरस्कृत्य वृद्धैः = स्थविरैः अमा = सह, समीपे वा भवाः अमात्यास्तैः अमात्यैः = मंत्रिभिः सह = सार्धम् अर्घायेदम् अर्घ्यम् । अर्घ्यम् = उपहारः पाणौ = हस्ते यस्य सः अर्घ्यपाणिः सन् , उपहारभूतं वस्तु हस्ते धृत्वा इत्यर्थः मां = रामम् अभ्युपैति = आगच्छति ।

समासः—चीरं वासः यस्य स चीरवासाः । पश्चात् अवस्थापिता वाहिनी येन स पश्चादवस्थापितवाहिनीकः । पुरः कृत्वा, इति पुरस्कृत्य । अर्घ्यं पाणौ यस्य सः अर्घ्यपाणिः ।

हिन्दी—"यह देखो" वल्कल धारण किये नंगे पैर चलता हुआ, और हाथ में पूजा की सामग्री लिये, सेना को पीछे करके, तथा गुरु वसिष्ठजी को आगे करके भरत, बूढ़े मंत्रियों के साथ मेरे समीप आ रहा है ॥ ६६ ॥

पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यंकगतामभोक्ता ।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम् ॥ ६७ ॥

यो भरतः पित्रा विसृष्टां दत्तामङ्कमुत्सङ्गं च गतामपि । यां श्रियं युवापि मदपेक्षया मद्भक्त्या भोक्ता सन् । तृन्नन्तत्वात् 'न लोक-' इति षष्ठीनिषेधः । इयन्ति वर्षाण्येतावतो वत्सरान् । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । तया श्रिया सह । स्त्रियेति च गम्यते । उग्रं दुश्चरमासिधारं नाम व्रतमभ्यस्यतीव वर्तयतीव । 'युवा युवत्या सार्धं यन्मुग्धभर्तृवदाचरेत् । अन्तर्निवृत्तसङ्गः स्यादसिधारव्रतं हि तत् ॥' इति यादवः । इदं चासिधाराचंक्रमणतुल्यत्वादासिधारव्रतमित्युक्तम् ॥

अन्वयः—यः पित्रा विसृष्टाम् अंकगतां यां श्रियं युवा अपि मदपेक्षया अभोक्ता सन् इयन्ति वर्षाणि तया सह उग्रम् आसिधारं व्रतम् अभ्यस्यति इव ।

व्याख्या—यः = भरतः पाति = रक्षतीति पिता तेन पित्रा = जनकेन राज्ञा दशरथेन "तातस्तु जनकः पिता" इत्यमरः । विसृष्टां = दत्ताम् अंके = उत्संगे, क्रोडे गता = प्राप्ता ताम् यां अंकगताम् अपि श्रियं = राज्यलक्ष्मीं युवापि = तरुणः अपि मम = रामस्य, ज्येष्ठभ्रातुः अपेक्षा =

भक्तिस्तया मदपेक्षया न भोक्ता, अभोक्ता सन् = अननुभवन् सन् इयन्ति = एतावन्ति वर्षाणि = वत्सरान् , चतुर्दशवर्षपर्यन्तमित्यर्थः । तया = श्रिया, स्त्रिया चेत्यपि व्यज्यते । सह = साकम् उग्रं = कठोरं दुष्करमित्यर्थः असनीति असिः = खड्गः, तस्य धारा इव यत् तत् असिधारं = खड्गधारं नाम व्रतम् = अनुष्ठानम् अभ्यस्यति = वर्तयति इव = यथा । युवत्या सह शयानोऽपि युवा भोगरहितः इव भरतः चतुर्दशवर्षं यावत् स्वायत्तां राजलक्ष्मीमननुभवन् आसीदिति अत्यन्तमेव दुष्करं व्रतं कृतवानित्यर्थः । तदुक्तम् 'यत्रैकशयनस्थापि प्रमदा नोपभुज्यते । असिधाराव्रतं नाम वदन्ति मुनि पुंगवाः' ॥

समासः—अंकम् गता ताम् अंकगताम् । मम अपेक्षा तया मदपेक्षया । न भोक्ता अभोक्ता । असेः धारा असिधारा सेव यत् तत् असिधारम् ।

हिन्दी—भरत ने पिता की दी हुई, तथा अपने हाथ में रहती हुई भी राजलक्ष्मी का सामर्थ्य रहते भी मेरी भक्ति के कारण उपभोग नहीं किया, यह उसी प्रकार चौदह वर्ष तक तलवार की धार पर चलने के समान कठोर (इन्द्रियों को वश में रखने का) व्रत का पालन किया है । जिस प्रकार कि युवा पुरुष, कन्या के पिता की दी हुई एवं गोद में बैठी सुन्दर स्त्री का भोग न करके कठोर इन्द्रियनिग्रह करता है ।

विशेष—एक आसन पर अपने साथ बैठने सोने वाली स्त्री का जो युवा पुरुष भोग नहीं करता वह तलवार की धार पर चलना नामक व्रत, श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है ॥ ६७ ॥

एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीया-
मिच्छां विमानमधिदेवतया विदित्वा ।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभि-
रुद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतानुगाभिः ॥ ६८ ॥

दाशरथौ रामे एतावदुक्तवति सति विमानं पुष्पकं कर्तृ तदीयां रामसंबन्धिनीमिच्छामधिदेवतया मिषेण विदित्वा । तत्प्रेरितं सदित्यर्थः । सविस्मयाभिर्भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः प्रजाभिरुद्वीक्षितं सज्ज्योतिष्पथादाकाशादवततार ॥

अन्वयः—दाशरथौ एतावत् उक्तवति सति विमानं (कर्तृ) तदीयाम् इच्छाम् अधिदेवतया विदित्वा सविस्मयाभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः उद्वीक्षितं सत् ज्योतिष्पथात् अवततार ।

व्याख्या—दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिस्तस्मिन् दाशरथौ = श्रीरामचन्द्रे एतत्परिमाणमस्य तत् एतावत् = "वैदेहि पश्य" इत्यारभ्य पित्रा विसृष्टामित्यन्तं त्रयोदशसर्गस्थवर्णनम् उक्तवति = कथितवति सति विमानं = पुष्पकयानं कर्तृपदमिदम् तस्य = रामस्य इयं तदीया तां तदीयाम् इच्छाम् = अभिलाषाम् , देव एव देवता, अधिका देवता अधिदेवता तया अधिदेवतया = प्रधानतया रामेच्छा एव मुख्येति विदित्वा = ज्ञात्वा, *रामचन्द्रेच्छया प्रेरितं सदित्यर्थः । विस्मयेन = आश्चर्येण युक्ताः सविस्मयास्ताभिः सविस्मयाभिः भरतम् अनुगच्छन्ति = अनुयान्तीति* भरतानुगास्ताभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः = प्रजाभिः उत् = ऊर्ध्वम् वीक्षितं = दृष्टमिति उद्वीक्षितं

सत् ज्योतिषां=नक्षत्राणां पन्थाः=मार्गः तस्मात् ज्योतिष्पथात्=आकाशादित्यर्थः । अवाततार=भूमौ, अवतीर्णम् ।

समासः—अधिका देवता अधिदेवता तया अधिदेवतया । ज्योतिषां पन्थाः ज्योतिष्पथः तस्मात् ज्योतिष्पथात् । विस्मयेन सह वर्तमानाः सविस्मयास्ताभिः सविस्मयाभिः । भरतस्य अनुगाः भरतानुगास्ताभिः भरतानुगाभिः ।

हिन्दी—दशरथपुत्र राम के इतना कह चुकने पर (इस प्रकार पूर्वोक्तवर्णन करने पर) और राम की इच्छा को ही प्रधान रूप से जानकर (चलने व रुकने में राम की इच्छा ही प्रेरक थी) पुष्पक विमान आकाश से नीचे उतर आया। उस समय भरत जी के पीछे-पीछे चलने वाली जनता आश्चर्य में भरकर विमान को देख रही थी ॥ ६८ ॥

तस्मात्पुरःसरबिभीषणदर्शितेन
सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः ।
यानादवातरददूरमहीतलेन
मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः ॥ ६९ ॥

रामः सेवायां विचक्षणः कुशलो हरीश्वरः सुग्रीवस्तेन दत्तो हस्तो हस्तावलम्बो यस्य तादृशः सन् । स्थलज्ञत्वात्पुरःसरो विभीषणस्तेन दर्शितेनादूरमासन्नं महीतलं यस्य तेन भङ्गिभिर्विच्छित्तिभी रचितस्फटिकेन बद्धस्फटिकेन सोपानपर्वणा मार्गेण तस्माद्यानात्पुष्पकादवातरदवतीर्णवान् । तरतेर्लङ् ॥

अन्वयः—रामः सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः सन् पुरःसरविभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेन भंगिरचितस्फटिकेन मार्गेण तस्मात् यानात् अवातरत् ।

व्याख्या—विचष्टे इति विचक्षणः । हरीणां=वानराणामीश्वरः=स्वामी हरीश्वरः सेवायां=परिचर्यायां, परचित्तानुवर्तने इत्यर्थः । विचक्षणः=पण्डितः यो हरीश्वरः=वानरराजः सुग्रीवः तेन दत्तः=अवलम्बनाय प्रसारितः हस्तः=करः यस्य स सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः सन्, रामः पुरः=अग्रे सरति=गच्छतीति पुरःसरः । विशेषेण भीषयतीति विभीषणः । पुरःसरः=अग्रगः यः विभीषणस्तेन दर्शितः=प्रदर्शितस्तेन पुरःसरविभीषणदर्शितेन, न दूरमिति अदूरं=समीपं मह्याः=पृथिव्याः तलं यस्य स तेन अदूरमहीतलेन, स्फटिकः=स्वनामप्रसिद्धः मणिः । भंगिभिः=रचनाप्रकारविशेषैः, चमत्कारपूर्वकमित्यर्थः रचिताः=खचिताः स्फटिकाः=मणयः यस्मिन् स तेन भंगिरचितस्फटिकेन, कौशलपूर्वकबद्धमणिसोपानेनेत्यर्थः । मार्गेण तस्मात् यानात्=प्रसिद्धपुष्पकात् अवातरत्=अवतीर्णवान् । सुग्रीवहस्तमवलम्ब्य रामः विभीषणदर्शितस्फटिकसोपानमार्गेण पुष्पकादवतीर्णवानित्यर्थः ।

समासः—सेवायां विचक्षणः सेवाविचक्षणः । हरीणामीश्वरः हरीश्वरः । सेवाविचक्षणश्चासौ हरीश्वरः इति सेवाविचक्षणहरीश्वरः, तेन दत्तः हस्तः यस्य स तथोक्तः ।

पुरःसरः यः विभीषणः इति पुरःसरविभीषणस्तेन दर्शितस्तेन पुरःसरविभीषणदर्शितेन । मध्यास्तं महीतलम् । अदूरं महीतलं यस्य स तेन अदूरमहीतलेन । भंगिभिः रचिताः स्फटिकाः यस्मिन् स तेन भंगिरचितस्फटिकेन ।

हिन्दी--सेवा करने में चतुर सुग्रीव के हाथ का सहारा लेकर रामजी, आगे आगे चलने वाले विभीषण से दिखाए (बताए) गए तथा कला एवं सुन्दरतापूर्वक जिसमें स्फटिक की मणि जड़ी हुई थी ऐसे सीढ़ियों के रास्ते उस विमान से उतरे। वे सीढियाँ भूमि तक लगी थीं ॥ ६९ ॥

इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य
सभ्रातरं भरतमर्घ्यपरिग्रहान्ते ।
पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ
तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके ॥ ७० ॥

प्रयतः स राम इक्ष्वाकुवंशगुरवे वसिष्ठाय प्रणम्य नमस्कृत्यार्घ्यस्य परिग्रहः स्वीकारस्तस्यान्ते पर्यश्रुः परिगतानन्दबाष्पः सन् भ्रातरं भरतमस्वजदालिङ्गत्। तस्मिन् रामे भक्त्यापोढः परिहृतः पितृराज्यमहाभिषेको येन तस्मिन्मूर्धन्युपजघ्रौ च। 'घ्रा गन्धोपादाने' लिटि रूपम् ॥

अन्वयः—प्रयतः सः इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रणम्य, अर्घ्यपरिग्रहान्ते पर्यश्रुः सन् भ्रातरं भरतम् अस्वजत्, तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके मूर्धनि उपजघ्रौ च ॥

व्याख्या—प्रयतः = आत्मसंयमी जितेन्द्रियः इत्यर्थः । सः = रामः इक्ष्वाकोः = वैवस्वतमनुपुत्रस्य वंशः = कुलं तस्य गुरुः = पुरोहितस्तस्मै इक्ष्वाकुवंशगुरवे = वसिष्ठाय प्रणम्य = नत्वा अर्घ्यस्य = अर्घार्थजलस्य परिग्रहः = स्वीकारस्तस्य अन्तः = अवसानं तस्मिन् अर्घ्यपरिग्रहान्ते परिगतानि अश्रूणि = आनन्दाश्रूणि यस्य स पर्यश्रुः सन् भ्राजते इति भ्राता तं भ्रातरं भरतं, भरतनामानमनुजम् अस्वजत् = आलिंगत् । तस्मिन् = रामे भक्तिः = अनुरागः तया अपोढः = परिहृतः पितुः = जनकस्य राज्ये = राजकर्मणि महाभिषेकः = अधिकारप्राप्त्यर्थं जलस्नानम् येन सः तस्मिन् तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके मूर्धनि = मस्तके उपजघ्रौ = जिघ्रति स्म ।

समासः—इक्ष्वाकोः वंशः इक्ष्वाकुवंशस्तस्य गुरुस्तस्मै इक्ष्वाकुवंशगुरवे । अर्घ्यस्य परिग्रहः अर्घ्यपरिग्रहस्तस्य अन्तस्तस्मिन् अर्घ्यपरिग्रहान्ते । परिगतानि अश्रूणि यस्य स पर्यश्रुः । महांश्चासौ अभिषेकः महाभिषेकः । पितुः राज्यमिति पितृराज्यं, तस्मिन् भक्तिस्तद्भक्तिः, तद्भक्त्या अपोढः पितृराज्ये महाभिषेकः येन सः तस्मिन् तथोक्ते ।

हिन्दी—बड़े संयमी नम्र राम ने वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के कुलगुरु वसिष्ठजी को प्रणाम करके फिर अर्घजल स्वीकार करने के अनन्तर आँखों में आँसू भरकर भाई भरत का आलिंगन किया। (गले लगाया) फिर भरतजी के उस मस्तक को सूंघा, जिसने राम की भक्ति के कारण पिता के राज्य के अभिषेक राज्यतिलक को त्याग दिया था ॥ ७० ॥

श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियांश्च
प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान् ।
अन्वग्रहीत्प्रणमतः शुभदृष्टिपातै-
र्वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा ॥ ७१ ॥

श्मश्रूणां मुखरोम्णां प्रवृद्धया संस्काराभावादभिवृद्धया जनिताननेषु विक्रिया विकृतिर्येषां तानत एव प्ररोहैः शाखावलम्बिभिरधोमुखैर्मूलैर्जटिलाञ्जटावतः प्लक्षान्न्यग्रोधानिव स्थितान् । प्रणमतो मन्त्रिवृद्धांश्च शुभैः कृपार्द्रैर्दृष्टिपातैर्वार्तस्यानुयोगेन कुशलप्रश्नेन मधुराक्षरया वाचा चान्वग्रहीदनुगृहीतवान् ॥

अन्वयः—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान् , प्ररोहजटिलान् प्लक्षान् इव प्रणमतः मंत्रि-वृद्धान् च शुभदृष्टिपातैः वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा च अन्वग्रहीत् ।

व्याख्या—श्म = मुखं श्रयन्ति, श्मनि = मुखे श्रूयन्ते वा श्मश्रूणि । श्मश्रूणां = मुखलोम्नां प्रकर्षेण वृद्धिः = कर्तनाभावात् वर्द्धनं तया जनिता = प्रादुर्भूता आननेषु = मुखेषु विक्रिया = विकृतिः, वैरूप्यमित्यर्थः । येषां ते तान् श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान् । प्ररोहैः = अंकुरैः, शाखोत्पन्नैरधोमुखैर्मूलैरित्यर्थः, जटिलाः = जटावन्तस्तान् प्ररोहजटिलान् प्रक्षरन्ति, प्लक्ष्यन्ते = भक्ष्यन्ते, प्लक्षाः । प्लक्षन्ति = अधो गच्छन्तीति वा प्लक्षास्तान् प्लक्षान् = वटवृक्षान् इव = यथा प्रणमतः = प्रणामं कुर्वतः मंत्रिषु = अमात्येषु वृद्धाः श्रेष्ठास्तान् मंत्रिवृद्धान् च शु = पूजितं भान्तीति शुभास्तैः शुभैः = कल्याणैः, दयार्द्रैरित्यर्थः । दृष्टेः = ईक्षणस्य पातैः = अवलोकनैः वार्तस्य = निरामयस्य अनुयोगः = प्रश्नः, इति वार्तानुयोगः, वार्तानुयोगे मधुराणि = प्रेमार्द्राणि अक्षराणि यस्यां सा तया वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा = वाण्या च अन्वग्रहीत् = अनुगृहीतवान् ।

समासः—श्मश्रूणां प्रकर्षेण वृद्धिः, तया जनिता आननेषु विक्रिया येषां ते तान् तथोक्तान् । प्ररोहैः जटिलास्तान् प्ररोहजटिलान् । मंत्रिषु वृद्धाः मंत्रिवृद्धास्तान् मंत्रिवृद्धान् । दृष्टेः पाताः दृष्टिपाताः, शुभाश्च ते दृष्टिपाताः शुभदृष्टिपातास्तैः शुभदृष्टिपातैः । वार्तस्य अनुयोगः वार्तानुयोगः वार्तानुयोगे मधुराणि अक्षराणि यस्यां सा तया वार्तानुयोगमधुराक्षरया ।

हिन्दी—मूँछ-दाढ़ी बढ़ जाने के कारण विकृत (बदले हुए से) मुखवाले और प्रणाम करते हुए, उन बूढ़े मंत्रियों से मिले, जो कि ऐसे दीख रहे थे मानों, नीचे को लटकती जटा वाले बड़ के वृक्ष हों तथा कृपापूर्ण दृष्टि से देखकर बड़ी मधुर वाणी से कुशल समाचार पूछा ॥७१॥

दुर्जातबन्धुरयमृक्षहरीश्वरो मे
पौलस्त्य एष समरेषु पुरःप्रहर्ता ।
इत्यादृतेन कथितौ रघुनन्दनेन
व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे ॥ ७२ ॥

अयं मे दुर्जातबन्धुरापद्बन्धुः । 'दुर्जातं व्यसनं प्रोक्तम्' इति विश्वः । ऋक्षहरीश्वरः सुग्रीवः । एष समरेषु पुरःप्रहर्ता पौलस्त्यो विभीषणः । इत्यादृतेनादरवता । कर्तरि क्तः ।

रघूणां नन्दनेन रामेण कथिताउभौ विभीषणसुग्रीवौ लक्ष्मणमनुजमपिव्युत्क्रम्यालिङ्गनादिभिः संभाव्य भरतो ववन्दे ॥

अन्वयः—अयं मे दुर्जातबन्धुः ऋक्षहरीश्वरः, एषः समरेषु पुरः प्रहर्ता पौलस्त्यः, 'अस्ति' इति आदृतेन रघुनन्दनेन कथितौ उभौ लक्ष्मणं व्युत्क्रम्य भरतः ववन्दे ।

व्याख्या—अयं = पुरोवर्ती मे = रामस्य दुर् = दुष्टं यथा तथा जातमिति दुर्जातं, दुर्जाते = व्यसने, संकटे बन्धुः = मित्रमिति दुर्जातबन्धुः "दुर्जातं व्यसनमि"ति त्रिकाण्डशेषः । ऋक्षणोति = हन्तीति ऋक्षः । ऋक्षाः = भल्लूकाश्च हरयः = वानराश्चेति ऋक्षहरयस्तेषामीश्वरः = राजा, इति ऋक्षहरीश्वरः = सुग्रीवः अस्तीति शेषः । एषः अपरः समरेषु = युद्धेषु पुरः = अग्रे प्रहर्ता = प्रहारस्य कर्ता पुलस्तेः गोत्रापत्यं पुमान् पौलस्त्यः = विभीषणः अस्ति । इति = इत्थम् आदृतेन = आदरवता रघूणां नन्दनस्तेन रघुनन्दनेन = रामचन्द्रेण कथितौ = परिचायितौ, प्रदर्शितौ इत्यर्थः । उभौ = विभीषणसुग्रीवौ लक्ष्मणं = सौमित्रिं, भ्रातरमपि व्युत्क्रम्य = परित्यज्य, अपरिष्वज्य भरतः ववन्दे = प्रणनाम । अनुजमपि परित्यज्य व्यसनबन्धुत्वात् प्रथमं विभीषणसुग्रीवौ सम्भावयामास ।

समासः—दुर्जाते बन्धुरिति दुर्जातबन्धुः । ऋक्षाणां हरीणां च, ईश्वरः ऋक्षहरीश्वरः । रघूणां नन्दनः रघुनन्दनस्तेन रघुनन्दनेन ।

हिन्दी—भगवान् राम भरतजी से विभीषणादि का परिचय कराते हैं। ये मेरे कष्ट के समय के मित्र बन्दर-भालुओं के राजा सुग्रीव हैं और यह युद्ध में आगे बढ़कर शत्रु पर प्रहार करने वाला पुलस्त्यऋषि के कुल में उत्पन्न विभीषण है । इस प्रकार आदरपूर्वक रघुकुल को आनन्द देने वाले राम के बताए हुवे (परिचय दिये हुए) सुग्रीव और विभीषण को भरत ने लक्ष्मण को छोड़कर प्रथम ही प्रणाम किया ।

विशेष—श्रीराम के विपत्तिकाल में काम आने वाले विभीषण एवं सुग्रीव का भाई की अपेक्षा प्रथम नमस्कार करके विशेष आदर सूचित किया ॥ ७२ ॥

सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैन-
मुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग ।
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन
क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुरःस्थलेन ॥ ७३ ॥

तदनु सुग्रीवादिवन्दनानन्तरं स भरतः । सौमित्रिणा संससृजे संगतः । 'सृज विसर्गे' दैवादिकात्कर्तरि लिट् । नम्रशिरसं प्रणतमेनं सौमित्रिमुत्थाप्य भृशं गाढमालिलिङ्ग च । किं कुर्वन् । रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणैः कर्कशेनास्य सौमित्रेरुरःस्थलेन भुजमध्यं स्वकीयं क्लिश्यन्निव पीडयन्निव । क्लिश्नातिरयं सकर्मकः । 'क्लिश्नाति भुवनत्रयम्' इति दर्शनात् । ननु रामायणे—'ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परंतपः । अभिवाद्य ततः प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥' इति भरतस्य

कानिष्ठ्यं प्रतीयते । किमर्थं ज्यैष्ठ्यमत्रलक्ष्म्यानार्जवेन श्लोको व्याख्यातः । सत्यम् । किंतु रामायण-श्लोकार्थटीकाकृतोक्तः श्रूयताम्—'ततो लक्ष्मणमासाद्य–' इत्यादिश्लोक आसादनं लक्ष्मणवैदेह्योः । अभिवादनं तु वैदेह्या एव । अन्यथा पूर्वोक्तं भरतस्य ज्यैष्ठ्यं विरुद्धयेतेति ॥

अन्वयः—तदनु सः सौमित्रिणा संसृजे, नम्रशिरसम् एनम् उत्थाप्य, रूढेन्द्रजित्प्रहरण-कर्कशेन अस्य उरस्थलेन भुजमध्यं क्लिश्यन् इव भृशम् आलिलिंग ।

व्याख्या—तस्मात् = सुग्रीवादिवन्दनात् अनु = पश्चात्, तदनु सः = भरतः सुमित्रायाः अपत्यं पुमान् सौमित्रिः, तेन सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन संसृजे = संगतः, मिलित इत्यर्थः । नम्रं = नतं शिरः = मस्तकं यस्य स तं नम्रशिरसम् एनं = लक्ष्मणम् उत्थाप्य = बाहुभ्यामुपरि कृत्वा इन्द्रजितः = मेघनादस्य प्रहरणानि = प्रहाराः तेषां व्रणाः = क्षतानि, इति इन्द्रजित्प्रहरणव्रणाः रूढाः = प्रादुर्भूताः संलग्ना इत्यर्थः । ये इन्द्रजित्प्रहरणव्रणास्ते रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणास्तैः कर्कशं = कठिनं तेन रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन, अस्य = लक्ष्मणस्य उरसः स्थलमिति उरस्थलं तेन उरस्थलेन = वक्षस्थलेन भुजयोः मध्यः भुजमध्यः = तं भुजान्तरं स्वकीयं क्लिश्यन् = परिपीडयन् इव = यथा भृशम् = अत्यन्तम् = गाढम् आलिलिंग = परिषस्वजे, आलिंगितवानित्यर्थः ।

समासः—नम्रं शिरः यस्य स तं नम्रशिरसम् । इन्द्रजितः प्रहरणानि, इन्द्रजित्प्रहरणानि, तेषां व्रणाः इन्द्रजित्प्रहरणव्रणाः रूढाः ये इन्द्रजित्प्रहरणव्रणा स्तैः कर्कशं तेन रूढेन्द्रजित्प्र-हरणव्रणकर्कशेन । उरसः स्थलं तेन उरस्थलेन भुजयोः मध्यः भुजमध्यस्तं भुजमध्यम् ।

हिन्दी—सुग्रीव विभीषण को नमस्कार करने के अनन्तर भरतजी लक्ष्मण से मिले, और प्रणाम करने के लिये नत मस्तक वाले लक्ष्मण को उठाकर मेघनाद (रावणपुत्र) के अस्त्र प्रहार से लगे घावों के कारण कठोर हुए लक्ष्मण के वक्षस्थल से अपनी छाती को पीड़ित सी करते हुए भरत ने खूब गाढ़ आलिंगन किया ॥ ७३ ॥

रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं
कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान् ।
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः
शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते ॥ ७४ ॥

तदानीं हरिचमूपतयो रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा गजेन्द्रानारुरुहुः । बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु वर्षत्सु तेषु गजेन्द्रेषु ते कपियूथनाथाः शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरेऽनुबभूवुः ॥

अन्वयः—तदानीम् हरिचमूपतयः रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा गजेन्द्रान् आरुरुहुः । बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु तेषु ते शैलाधिरोहणसुखानि उपलेभिरे ।

व्याख्या—तस्मिन् काले तदानीं = तदा चमति शत्रूनिति चमूः । हरीणां = वानराणां चम्वः = सेनाः पृतनास्तासां पतयः = स्वामिनः, इति हरिचमूपतयः रामस्य आज्ञा = आदेशस्तया रामाज्ञया मनुष्याणां = नराणां वपुः = शरीरं, तत् मनुष्यवपुः कृत्वा = विधाय, स्ववानरादिस्वरूपं

परित्यज्य मनुष्याकृतिं कृत्वेत्यर्थः । गजानां=हस्तिनाम् इन्द्रास्तान् गजेन्द्रान्=महागजान् आरुरुहुः=अधिष्ठितवन्तः । बहुप्रकारं बहुधा=अनेकप्रकारेण मदस्य=दानस्य वारि=जलं तस्य धाराः=संपाताः, इति मदवारिधाराः ताः मदजलवृष्टिरित्यर्थः । "मदो दानम्" इत्यमरः । क्षरत्सु=वर्षत्सु तेषु=गजेन्द्रेषु ते=वानरसेनापतयः शैलानां=पर्वतानाम् अधिरोहणम्=आरोहणं तत्र यानि सुखानि=आनन्दाः, इति शैलाधिरोहणसुखानि, तानि उपलेभिरे=प्राप्तवन्तः । मदजलवर्षणं कुर्वतः=गजान् आरोहन्तो वानराः निर्झरवतां पर्वतानामारोहणसुखमनुभूतवन्त इत्यर्थः ।

समासः—रामस्य आज्ञा तया रामाज्ञया । हरीणां चमूः हरिचमूस्तस्याः पतयः हरिचमूपतयः । मनुष्याणां वपुः मनुष्यवपुः तत् मनुष्यवपुः । गजानामिन्द्रास्तान् गजेन्द्रान् । मदस्य वारि मदवारि तस्य धाराः ताः मदवारिधाराः । शैलानाम् अधिरोहणं शैलाधिरोहणं तस्मिन् सुखानि तानि शैलाधिरोहणसुखानि ।

हिन्दी—उस समय रामचन्द्रजी की आज्ञा से बन्दर-भालुओं के सेनापति, मनुष्यों का शरीर धारण करके उन हाथियों पर चढ़ गये । और अनेक प्रकार से मदजल की धारा बहाने वाले हाथियों पर चढ़ते समय वानरों ने झरनों वाले पर्वतों पर चढ़ने के सुखों को प्राप्त किया ।।७४।।

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां
भेजे रथान्दशरथप्रभवानुशिष्टः ।
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयै-
र्न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः ।। ७५ ।।

सानुप्लवः सानुगः । 'अभिसारस्त्वनुसरः सहायोऽनुप्लवोऽनुगः ।' इति यादवः । क्षणदाचराणां प्रभुर्विभीषणोऽपि प्रभवत्यस्मादिति प्रभवो जनकः । दशरथः प्रभवो यस्य स दशरथप्रभवो रामः । तेनानुशिष्ट आज्ञप्तः सन् रथान्भेजे । तानेव विशिनष्टि—ये रथा मायाविकल्परचितैः संकल्पविशेषनिर्मितैरपि तदीयैर्विभीषणीयैः स्यन्दनै रथैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभास्तुलिता समीकृता कृत्रिमा क्रियया निर्वृत्ता भक्तीनां शोभा येषां ते तथोक्ता न भवन्ति । तेऽपि तत्साम्यं न लभन्त इत्यर्थः । कृत्रिमेत्यत्र 'ड्वितः क्त्रिः' इति क्त्रिप्रत्ययः । 'क्त्रेर्मम्नित्यम्' इति ममागमः ।।

अन्वयः—सानुप्लवः क्षणदाचराणां प्रभुः अपि दशरथप्रभवानुशिष्टः सन् रथान् भेजे, ये मायाविकल्परचितैः अपि तदीयैः स्यन्दनैः तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न भवन्तीति शेषः ।

व्याख्या—अनु=पश्चात् प्लवते=गच्छतीति अनुप्लवः । अनुप्लवेन=अनुगेन सह सानुप्लवः=सहचरसहितः "अनुप्लवः सहायश्चानुचरोऽभिसरः" इत्यमरः । क्षणम्=उत्सवं निर्व्यापारस्थितिं वा ददाति इति क्षणदाः । क्षणदासु=रात्रिषु चरन्तीति क्षणदाचरास्तेषां क्षणदाचराणां=निशाचराणाम् प्रभुः=स्वामी, विभीषणोऽपि, प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः । दशरथः प्रभवः=जनकः यस्य स दशरथप्रभवः=रामः तेन अनुशिष्टः=आज्ञप्तः, इति दशरथप्रभवानुशिष्टः=रामाज्ञप्तः सन् रथान्=स्यन्दनान् भेजे=सिषेवे । रथानेव विशिनष्टि—ये=रथाः

मायायाः विकल्पाः=कपटयुक्तयः, संकल्पविशेषा इत्यर्थः, इति मायाविकल्पास्तैः रचिताः=निर्मिताः तैः मायाविकल्परचितैः अपि तस्य=विभीषणस्य इमे तदीयास्तैः तदीयैः स्यन्दनैः=रथैः क्रियया निर्वृत्ता कृत्रिमा तुलिता=तुलनां नीता, उपमिता कृत्रिमा=अस्वाभाविकी कल्पिता भक्तीनाम्=अलंकृतीनां शोभा=सौन्दर्यं येषां ते तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न भवन्तीति शेषः।

समासः—अनुप्लवेन सह वर्तते इति सानुप्लवः। दशरथः प्रभवः यस्य स दशरथप्रभवः, तेन अनुशिष्टः, इति दशरथप्रभवानुशिष्टः। मायाया विकल्पाः मायाविकल्पास्तैः रचितास्तैः मायाविकल्परचितैः। भक्तीनां शोभा भक्तिशोभा। तुलिता कृत्रिमा भक्तिशोभा येषां ते तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः।

हिन्दी—राक्षसों का राजा विभीषण भी अपने साथियों के साथ दशरथपुत्र राम की आज्ञा पाकर रथों में बैठ गए। मनुष्यों के बनाए हुए जिन रथों की शोभा की बराबरी राक्षसों की माया से बनाए हुए, भी विभीषण के रथ नहीं कर सके थे। अर्थात् मनुष्य निर्मित इन रथों की सुन्दरता विभीषण के रथों से कहीं अधिक थी॥ ७५॥

भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताक-
मध्यास्त कामगति सावरजो विमानम्।
दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्य-
स्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम्॥ ७६॥

ततो रघुपतिः सावरजो भरतलक्ष्मणसहितः सन् विलसत्पताकं कामेनेच्छानुसारेण गतिर्यस्य तद्विमानं भूयः पुनरपि। बुधबृहस्पतिभ्यां योगेन दृश्यो दर्शनीयस्तारापतिश्चन्द्रो दोषाभवं दोषातनम्। 'सायंचिरंप्राह्णे—' इत्यादिना दोषाशब्दादव्ययाट्ट्युप्रत्ययः। तरलविद्युच्चलत्तडिदभ्रवृन्दमिव। अध्यास्ताधिष्ठितवान्॥

अन्वयः—ततः रघुपतिः सावरजः विलसत्पताकं कामगति विमानं भूयः बुधबृहस्पतियोगदृश्यः तारापतिः दोषातनं तरलविद्युत् अभ्रवृन्दम् इव अध्यास्त।

व्याख्या—ततः=सर्वेषां रथारोहणानन्तरम् रघूणां पतिः रघुपतिः=रामः अवरस्मिन् काले जाताः अवरजाः, तैः सह सावरजः=अनुजैः सहितः सन् विलसन्त्यः=शोभमानाः पताकाः=ध्वजाः यस्मिन् तत् विलसत्पताकं कामेन=इच्छानुसारेण गतिः=गमनं यस्य तत् कामगति विमानं=पुष्पकम् भूयः=पुनरपि बृहतां=देवानां पतिः बृहस्पतिः=सुराचार्यः। बुध्यते इति बुधः=सौम्यश्च बृहस्पतिः=देवगुरुश्चेति बुधबृहस्पती ताभ्यां योगः=सम्बन्धः, इति बुधबृहस्पतियोगः, तेन दृश्यः=दर्शनीयः, इति बुधबृहस्पतियोगदृश्यः, ताराणां=नक्षत्राणां पतिः=स्वामी तारापतिः=चन्द्रः दोषा=रात्रौ भवं दोषातनं तरलाः=चञ्चलाः विद्युतः=तडितः यस्मिन् तत् तरलविद्युत्, अभ्राणां=मेघानां, वृन्दं=समूहस्तत् अभ्रवृन्दम् इव=यथा अध्यास्त=आरुरोह, अधिष्ठितवान्।

समासः—रघूणां पतिः रघुपतिः। अवरजैः सह सावरजः। विलसन्त्यः पताकाः यस्मिन् तत् विलसत्पताकं तत्। कामेन गतिः यस्य तत् कामगति। बुधश्च बृहस्पतिश्चेति बुधबृहस्पती ताभ्यां योगः, बुधबृहस्पतियोगस्तेन दृश्यः इति बुधबृहस्पतियोगदृश्यः। ताराणां पतिः तारापतिः। तरला विद्युत् यस्मिन् तत् तरलविद्युत् तत्। अभ्राणां वृन्दं तत्।

हिन्दी—विभीषणादि के रथ में बैठ जाने पर रघुपति रामजी भी, भरत लक्ष्मण के साथ, ध्वजाओं से सजे हुए, तथा इच्छानुसार चलने वाले पुष्पक विमान पर फिर से उसी प्रकार चढ़ गए जैसे कि बुध और बृहस्पति के साथ से विशेष सुन्दर (देखने योग्य) चन्द्रमा संन्ध्या समय रात में चञ्चल बिजली वाले मेघों के झुण्ड पर बैठता है। अर्थात् जिनमें बिजली चमकती हो ऐसे बादलों पर बैठता है ॥ ७६ ॥

तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वीं
वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः।
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रा-
त्प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरतो ववन्दे ॥ ७७ ॥

तत्र विमाने। जगतामीश्वरेणादिवराहेण प्रलयादुर्वीमिव। वर्षात्ययेन शरदागमेनाभ्रघनान्मेघसंघातादिन्दो रुचं चन्द्रिकामिव। रामेण दशकण्ठ एव कृच्छ्रं संकटं तस्मात्प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं संतोषवतीं मैथिलसुतां सीतां भरतो ववन्दे।

अन्वयः—तत्र जगताम् ईश्वरेण प्रलयात् उर्वीम् इव, वर्षात्ययेन अभ्रघनात् इन्दोः रुचम् इव, रामेण दशकण्ठकृच्छ्रात् प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं मैथिलसुतां भरतः ववन्दे।

व्याख्या—तत्र=तस्मिन् पुष्पकविमाने गच्छन्तीति जगन्ति, तेषां जगतां=भुवनानाम् ईश्वरेण=स्वामिना=आदिवराहावतारेणेत्यर्थः प्रलीयतेऽत्र भूतानीति प्रलयस्तस्मात् प्रलयात्=संवर्तात् उर्वीं=पृथिवीम् इव=यथा वर्षायाः=वृष्टेः अत्ययः=समाप्तिः तेन वर्षात्ययेन=शरदृतोरागमनेन अभ्राणां=मेघानां घनं=समूहस्तस्मात् अभ्रघनात् "संघे मुस्ते घनम्" इति हैमः। इन्दोः=चन्द्रस्य रुचम्=प्रभां चन्द्रिकामित्यर्थः। इव=यथा रामेण=रामचन्द्रेण दश=दशसंख्यकाः कण्ठाः=गलाः यस्य स दशकण्ठः=रावणः एव कृच्छ्रं=कष्टं, व्यसनं तस्मात् दशकण्ठकृच्छ्रात्, रावणरूपव्यसनादित्यर्थः। प्रत्युद्धृतां=कृतोद्धारां धृतिः=धैर्यमस्याः अस्तीति धृतिमती तां धृतिमतीं मैथिलस्य=राज्ञो जनकस्य सुता=पुत्री तां मैथिलसुतां=जानकीं भरतः ववन्दे=प्रणनाम, अवन्दत्।

समासः—वर्षायाः अत्ययस्तेन वर्षात्ययेन। अभ्राणां घनं तस्मात् अभ्रघनात्। मैथिलस्य सुता तां मैथिलसुताम्। दश कण्ठाः यस्य स दशकण्ठः, दशकण्ठः एव कृच्छ्रं तस्मात् दशकण्ठकृच्छ्रात्।

हिन्दी—जिस प्रकार जगत् के नाथ वराहावतार विष्णु ने प्रलय से पृथिवी का उद्धार किया था, और वर्षा ऋतु की समाप्ति होने पर शरदृतु बादलों के समूह से चन्द्रमा की

कान्ति (चाँदनी) को बचाती है उसी प्रकार रामचन्द्र ने दश शिरवाले रावण रूपी सकट से उद्धार की गई, धैर्यवाली (सन्तोषी) जनकनन्दिनी सीताजी को भरत ने विमान में प्रणाम किया ॥ ७७ ॥

लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं त-
द्वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः ।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधो-
रन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य ॥ ७८ ॥

लङ्केश्वरस्य रावणस्य प्रणतीनां भङ्गेन निरासेन दृढव्रतमखण्डितपातिव्रत्यमत एव वन्द्यं जनकात्मजायाश्चरणयोर्युगं ज्येष्ठानुवृत्त्या जटिलं जटायुक्तं साधोः सज्जनस्यास्य भरतस्य शिरश्चेत्युभयं समेत्य मिलित्वान्योन्यस्य पावनं शोधकमभूत् ॥

अन्वयः—लंकेश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतं वन्द्यं तत् जनकात्मजायाः चरणयोः युगं, ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं साधोः अस्य शिरः च उभयं समेत्य अन्योन्यपावनम् अभूत् ।

व्याख्या—लाक्यते = आस्वाद्यते सुखमस्यां सा, रमन्तेऽस्यां वा सा लंका, (बाहुल्कात् कप्रत्ययः रस्य लत्वश्च) लंकायाः = रक्षःपुर्याः ईश्वरः = स्वामी, रावणः, इति लंकेश्वरस्तस्य प्रणतयः = प्रणामाः, प्रणामप्रार्थना इत्यर्थः । तासां भंगः = तिरस्कारस्तेन दृढम् = अखण्डितं व्रतं = पतिव्रतारूपं यस्य तत् लंकेश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतम्, अत एव वन्द्यं = वन्दनीयं पूज्यं तत् = प्रसिद्धं जनकस्य = विदेहस्य आत्मजा = पुत्री, तस्याः जनकात्मजायाः = सीतायाः चरणयोः = पादयोः युगं = द्वयम् अनुगम्य वर्तनं = चित्तानुराधनम् अनुवृत्तिः । ज्येष्ठस्य = ज्येष्ठभ्रातुः रामस्य अनुवृत्तिः = भक्तिस्तया ज्येष्ठानुवृत्त्या जटा अस्ति अस्य तत् जटिलं = प्रवृद्धश्मश्रु साधोः = सज्जनस्य अस्य = भरतस्य शिरः = मस्तकञ्च, इति उभयं = द्वयं समेत्य = संगत्य अन्योन्यस्य = परस्परस्य पावनं = शोधकमिति अन्योन्यपावनम् अभूत् = जातम् ।

समासः—लंकायाः ईश्वरः लंकेश्वरः, लंकेश्वरस्य प्रणतयः लंकेश्वरप्रणतयः, लंकेश्वरप्रणतीनां भंगेन दृढं व्रतं यस्य तत् लंकेश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतम् । जनकस्य आत्मजा जनकात्मजा, तस्याः जनकात्मजायाः । ज्येष्ठस्य अनुवृत्तिः, ज्येष्ठानुवृत्तिस्तया ज्येष्ठानुवृत्त्या जटिलमिति ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम् । अन्योन्यस्य पावनमिति अन्योऽन्यपावनम् ।

हिन्दी—रावण की प्रणय-प्रार्थना को अस्वीकार करने से दृढ़, स्थिर व्रत वाले, अत एव वन्दना के योग्य, जनकपुत्री सीताजी के दोनों चरण, तथा बड़े भाई की भक्ति के कारण बढ़ी हुई जटावाला, सज्जन भरतजी का मस्तक, ये दोनों मिलकर आपस में एक ने दूसरे को पवित्र कर दिया । अर्थात् सीताजी के पवित्र चरण से भरतजी का मस्तक, और रामभक्ति से जटाधारी भरत के शिर से सीता चरण, पवित्र हो गया, अर्थात् भरत ने सीताजी के चरणों में माथा रखकर प्रणाम किया ॥ ७८ ॥

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा
काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण ।
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः
साकेतोपवनमुदारमध्युवास ॥ ७९ ॥

आर्यः पूज्यः काकुत्स्थो रामः प्रकृतयः प्रजाः पुरःसर्यो यस्य तेन स्तिमितजवेन मन्दवेगेन पुष्पकेण । क्रोशोऽध्वपरिमाणविशेषः । क्रोशार्धं क्रोशैकदेशं गत्वा शत्रुघ्नेन प्रतिविहिताः सज्जिता उपकार्याः पटभवनानि यस्मिंस्तदुदारं महत्साकेतस्यायोध्याया उपवनमध्युवासाधितस्थौ । 'साकेतः स्यादयोध्यायां कोसलानन्दिनी तथा' इति यादवः ॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया
व्याख्यया समेतो महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
दण्डकाप्रत्यागमनो नाम त्रयोदशः सर्गः ।

अन्वयः—आर्यः काकुत्स्थः प्रकृतिपुरःसरेण स्तिमितजवेन पुष्पकेण क्रोशार्धं गत्वा शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम् उदारं साकेतोपवनम् अध्युवास ।

व्याख्या—आर्यः = कुलीनः, पूज्यः इत्यर्थः, 'महाकुलकुलीनार्यसभ्यः' इत्यमरः । ककुदि = वृषांसे तिष्ठतीति ककुत्स्थः, ककुत्स्थस्यापत्यं पुमान् काकुत्स्थः = रामः, पुरः = अग्रे सरन्ति = गच्छन्तीति यास्ताः पुरःसर्यः, प्रकृतयः = जनाः पुरःसर्यः = अग्रगामिन्यः यस्य तत् तेन प्रकृतिपुरःसरेण स्तिमितः = मन्दः जवः = वेगः यस्य तत् तेन स्तिमितजवेन, पुष्पकेण = विमानेन क्रोशस्य = मार्गपरिमाणविशेषस्य अर्धः = खण्डः, इति क्रोशार्धस्तं क्रोशार्धं गत्वा, शत्रून् हन्तीति शत्रुघ्नः, शत्रुघ्नेन = लक्ष्मणानुजेन प्रतिविहिताः = सज्जीकृताः उपकार्याः = पटनिर्मितराजभवनानि यस्मिन् तत् शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यं तत् । उदारं = विशालं सुन्दरञ्च, आकितपते इति आकेतः, आकेतेन सहितः साकेतस्तस्य साकेतस्य = अयोध्यानगरस्य उपवनम् = आरामः, साकेतोपवनं तत् । अध्युवास = अधिष्ठितवान् तत्रोषितवानित्यर्थः । 'आरामः स्यादुपवनमि'त्यमरः । 'साकेतमयोध्यानगरमि'ति शब्दरत्नावली ।

समासः—क्रोशस्य अर्धं क्रोशार्धम् तत् । प्रकृतयः पुरःसर्यः यस्य तत्तेन प्रकृतिपुरःसरेण । स्तिमितः जवः यस्य तत्तेन स्तिमितजवेन । शत्रुघ्नेन प्रतिविहिताः उपकार्याः यस्मिन् तत्, शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यं तत् । साकेतस्य उपवनं साकेतोपवनम्, तत् ।

हिन्दी—जिसके आगे-आगे प्रजा चल रही थी, और जिसका वेग (चाल) मन्द धीमा कर दिया था, ऐसे पुष्पकविमान से श्रेष्ठ पूज्य रामचन्द्रने आधा कोश चलकर अयोध्या नगरी के उस विशाल एवं सुन्दर उपवन (बगीचे) में निवास किया, जिसमें शत्रुघ्नजी ने शाही खेमे पहले से ही सजा रखे थे ॥ ७९ ॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे
महाकाव्ये दण्डकाप्रत्यागमनो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥

चतुर्दशः सर्गः

संजीवनं मैथिलकन्यकायाः सौन्दर्यसर्वस्वमहानिधानम् ।
शशाङ्कपङ्केरुहयोः समानं रामस्य वन्दे रमणीयमास्यम् ॥

भर्तुः प्रणाशादथ शोचनीयं दशान्तरं तत्र समं प्रपन्ने ।
अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ ॥ १ ॥

अथोपवनाधिष्ठानानन्तरं दाशरथी रामलक्ष्मणौ । उपघ्नतरोराश्रयवृक्षस्य । 'उपघ्न आश्रये' इति निपातः । तस्य छेदाद्व्रतत्यौ लते इव । 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः । भर्तुर्दशरथस्य प्रणाशाच्छोचनीयं दशान्तरमवस्थान्तरम् । 'अवस्थायां वस्त्रान्ते स्याद्दशापि' इति विश्वः । प्रपन्ने प्राप्ते जनन्यौ कौसल्यासुमित्रे तत्र साकेतोपवने समं युगपदपश्यताम् । दृशेः कर्तरि लङ् ॥

अन्वयः—अथ दाशरथी उपघ्नतरोः छेदात् व्रतत्यौ इव भर्तुः प्रणाशात् शोचनीयं दशान्तरं प्रपन्ने जनन्यौ तत्र समम् अपश्यताम् ।

व्याख्या—अथ = साकेतोपवनाधिष्ठानानन्तरम् दशरथस्य राज्ञः अपत्यं पुमांसौ दाशरथी = रामलक्ष्मणौ उपहन्यते इति उपघ्नः = समीपाश्रयः "स्यादुपघ्नोऽन्तिकाश्रये" इत्यमरः । उपघ्नश्चासौ तरुः = वृक्षस्तस्य उपघ्नतरोः छेदात् = कर्तनात् व्रतत्यौ लते इव = यथा "वल्ली तु व्रततिर्लता" इत्यमरः । बिभर्तीति भर्ता तस्य भर्तुः = स्वामिनः दशरथस्य प्रणाशात् = मरणात् शोचितुं योग्यं शोचनीयं = शोच्यम् अन्या दशा दशान्तरम् = अवस्थान्तरम्, वैधव्येन मालिन्यमित्यर्थः । प्रपन्ने = गते जनन्यौ = मातरौ कौसल्यासुमित्रे तत्र = उपवने समं = युगपत्, एकस्मिन्नेव काले इत्यर्थः । अपश्यताम् = अदर्शताम्, इत्यर्थः ।

समासः—उपघ्नश्चासौ तरुः उपघ्नतरुस्तस्य उपघ्नतरोः । अन्या दशा दशान्तरम् तत् ।

हिन्दी—अयोध्या के उपवन में, पहुँचकर राम लक्ष्मण ने, अपने आश्रय के वृक्ष के, कट जाने, से (जिस वृक्ष पर लता चढ़ी हो) मुरझाई हुई लताओं के समान स्वामी (पति) के मर जाने से उदासी में मलीन मुरझाई हुई अपनी माता कौसल्या तथा सुमित्रा को एक साथ देखा ॥

उभावुभाभ्यां प्रणतौ हतारी यथाक्रमं विक्रमशोभिनौ तौ ।
विस्पष्टमस्त्रान्धतया न दृष्टौ ज्ञातौ सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् ॥ २ ॥

यथाक्रमं स्वस्वमातृपूर्वकं प्रणतौ नमस्कृतवन्तौ हतारी हतशत्रुकौ विक्रमशोभिनौ तावुभौ रामलक्ष्मणावुभाभ्यां मातृभ्यामस्रैरश्रुभिरन्धतया हेतुना । 'अस्रमश्रु च शोणितम्' इति यादवः । विस्पष्टं न दृष्टौ किंतु सुतस्पर्शेन यत्सुखं तस्योपलम्भादनुभवाज्ज्ञातौ ॥

अन्वयः—यथाक्रमं प्रणतौ हतारी विक्रमशोभिनौ तौ उभौ उभाभ्याम् अस्रान्धतया विस्पष्टं न दृष्टौ (किन्तु) सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् ज्ञातौ ।

व्याख्या—क्रममनतिक्रम्य यथाक्रमं = क्रमानुरूपं स्वां स्वां मातरमित्यर्थः । प्रणतौ = कृतप्रणामौ हताः = मारिताः अरयः = शत्रवो याभ्यां तौ हतारी विक्रमेण = पराक्रमेण शोभेते = शालेते इति तौ विक्रशोभिनौ तौ = प्रसिद्धौ उभौ रामलक्ष्मणौ, उभाभ्यां = मातृभ्यां कौसल्य-सुमित्राभ्याम् अस्रैः = अश्रुभिः अन्धे = दृष्टिहीने, इति अस्रान्धे, तयोः भावस्तत्ता तया अस्रान्धतया विस्पष्टं सुस्पष्टं न दृष्टौ = नावलोकितौ, किन्तु सुतयोः = पुत्रयोः स्पर्शः, इति सुतस्पर्शस्तेन, यत् सुखम् = आनन्दस्तस्य उपलम्भः = प्राप्तिः, अनुभवस्तस्मात् सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् ज्ञातौ = विज्ञातौ ।

समासः—हताः अरयः याभ्यां तौ हतारी । क्रममनतिक्रम्य यथाक्रमम् । विशेषेण स्पष्टमिति विस्पष्टम् । अस्रैः अन्धे, अस्रान्धे, तयोः भावः तत्ता तया अस्रान्धतया । सुतस्य स्पर्शः सुतस्पर्शः तेन यत्सुखं तस्य उपलम्भस्तस्मात् सुतस्पर्शसुखोपलम्भात् । विक्रमेण शोभिनौ विक्रमशोभिनौ ।

हिन्दी—शत्रुओं को मारने वाले पराक्रम से शोभायमान, और उचितरूप से (पहले राम ने तब लक्ष्मण ने) अपनी माता कौसल्या और सुमित्रा को प्रणाम करने वाले उन दोनों राम लक्ष्मण को, आँखों में आँसू भर जाने के कारण दोनों माताओं ने स्पष्ट रूप से न देखा । किन्तु पुत्रों के स्पर्श (छूने) से जो परम सुख हुआ, उसकी अनुभूति से अपने पुत्रों को पहचाना ।

विशेष—चौदह वर्ष बाद पुत्रों को पाकर करुणा प्रेमावेग से वैधव्य के दुःखावेग से दोनों माताओं के नेत्र आँसुओं से भर गये थे, अतः नेत्रों से न देख सकीं, किन्तु स्पर्शसुखानुभव से पहचान लिया कि राम लक्ष्मण ही हैं ॥ २ ॥

आनन्दजः शोकजमश्रु बाष्पस्तयोरशीतं शिशिरो बिभेद ।
गङ्गासरय्वोर्जलमुष्णतप्तं हिमाद्रिनिस्यन्द इवावतीर्णः ॥ ३ ॥

तयोर्मात्रोरानन्दजः शिशिरो बाष्पः शोकजमशीतमुष्णमश्रु । उष्णतप्तं ग्रीष्मतप्तं गङ्गासरय्वोर्जलं कर्म अवतीर्णो हिमाद्रेर्निस्यन्दो निर्झर इव । बिभेद । आनन्देन शोकस्तिरस्कृत इत्यर्थः ॥

अन्वयः—तयोः आनन्दजः शिशिरः बाष्पः शोकजम् अशीतम् अश्रु, उष्णतप्तम् गंगासरय्वोः जलम् अवतीर्णः हिमाद्रिनिस्यन्दः इव बिभेद ।

व्याख्या—तयोः = मात्रोः = कौसल्यासुमित्रयोः आनन्दात् = सुखात् जातः = उत्पन्नः इति आनन्दजः शशति = गच्छति, वृक्षादिशोभा यस्मात् स शिशिरः = हिमः = शीतलः बाष्पः = अश्रु शोकात् जातं शोकजं = दुःखोत्पन्नम् न शीतमिति अशीतं तत् अशीतम् = उष्णम् अश्रु = अस्रम् कर्म, उष्णेन = घर्मेण, ग्रीष्मेण तप्तमिति उष्णतप्तम् गंगा = भागीरथी च सरयूः = अयोध्यान्तिकवाहिनी चेति गंगासरय्वौ तयोः गंगासरय्वोः जलम् कर्म, अवतीर्णः = भूमौ आगतः हन्ति ऊष्मा-

णमिति हिमं, हिमप्रधानोऽद्रिः, हिमाद्रिः = हिमालयः, हिमाद्रेः निस्यन्दः = वारिप्रवाहः, इति हिमाद्रिनिस्यन्दः इव = यथा बिभेद = बिभिदे । पुत्रागमानन्देन शोको निवारितः ।

समासः—आनन्दात् जातः आनन्दजः । शोकात् जातं शोकजम् उष्णेन तप्तमिति उष्णतप्तम् , तत् । गंगा च सरयूश्चेति गंगासरय्वौ, तयोः गंगासरय्वोः । हिमप्रधानोऽद्रिः हिमाद्रिस्तस्य निस्यन्दः इति हिमाद्रिनिस्यन्दः ।

हिन्दी—कौसल्या और सुमित्रा के (आँख से बहे) आनन्द से उत्पन्न शीतल आंसुओं ने दुःख के गरम आँसुओं को उसी प्रकार ठण्डा कर दिया, जिस प्रकार कि गरमी से तपे हुए गंगा और सरयू नदी के जल को, हिमालय से बहकर आया शीतल (बर्फीला) जल ठण्डा कर देता है ॥ ३ ॥

ते पुत्रयोर्नैर्ऋतशस्त्रमार्गानार्द्रानिवाङ्गे सदयं स्पृशन्त्यौ ।
अपीप्सितं क्षत्त्रकुलाङ्गनानां न वीरसूशब्दमकामयेताम् ॥ ४ ॥

ते मातरौ पुत्रयोरङ्गे शरीरे नैर्ऋतशस्त्राणां राक्षसशस्त्राणां मार्गान्व्रणानार्द्रान्सरसानिव सदयं स्पृशन्त्यौ क्षत्त्रकुलाङ्गनानामीप्सितमिष्टमपि वीरसूर्वीरमातेति शब्दं नाकामयेताम् । वीरप्रसवो दुःखहेतुरिति भावः ॥

अन्वयः—ते पुत्रयोः अंगे नैर्ऋतशस्त्रमार्गान् आर्द्रान् सदयं स्पृशन्त्यौ क्षत्रकुलांगनानाम् ईप्सितम् अपि वीरसूशब्दं न अकामयेताम् ।

व्याख्या—सा च सा च ते = कौसल्यासुमित्रे, मातरौ पुत्रश्च पुत्रश्च पुत्रौ तयोः पुत्रयोः = रामलक्ष्मणयोः अंगे = शरीरे, नियता ऋतिः = घृणा यस्यां सा निर्ऋतिः, "ऋतिर्गतौ घृणायांच स्पर्धायां च शुभेऽपि च" इति रभसः । निर्ऋतेः = नारकीयायाः अलक्ष्म्याः अपत्यानि नैर्ऋताः = राक्षसाः तेषां शस्त्राणि = अस्त्राणि तेषां मार्गाः = व्रणास्तान् नैर्ऋतशस्त्रमार्गान् आर्द्रान् = सरसान् इव = यथा सद्यः संलग्नान् इवेत्यर्थः । दयया सह सदयं = सकृपं यथा तथा स्पृशन्त्यौ = संस्पर्शनं कुर्वन्त्यौ क्षत्राणां = क्षत्रियाणां कुलं = वंशः तस्य अंगनाः = वध्वस्तासां क्षत्रकुलांगनानाम् = क्षत्रियकुलोत्पन्नस्त्रीणाम् ईप्सितम् = अभीष्टमपि वीरं सूते इति वीरसूः = वीरमाता इति शब्दः = नाम तं वीरसूशब्दम् । "वीरमाता तु वीरसूः" इत्यमरः । न अकामयेतां न ऐच्छताम् , यतोऽयं दुःखहेतुरित्यर्थः ।

समासः—नैर्ऋतानाम् शस्त्राणि तेषां मार्गास्तान् नैर्ऋतशस्त्रमार्गान् । दयया सहितमिति सदयम् । क्षत्राणां कुलानि क्षत्रकुलानि, तेषाम् अंगनास्तासां क्षत्रकुलाङ्गनानाम् । वीरसूः इति शब्दस्तं वीरसूशब्दम् ।

हिन्दी—कौसल्या और सुमित्रा अपने पुत्रों के शरीर पर "लगे हुए" राक्षसों के शस्त्रों के घाव चिह्नों को बड़ी दयापूर्वक इस प्रकार स्पर्श करती हुई, मानों ताजे घाव हों, क्षत्री कुल की स्त्रियों को अभीष्ट भी वीरजननी इस शब्द की अनिच्छा की, अर्थात्

पुत्रों के कष्ट और विछोह के दुःख का अनुभव कर वीरपुत्र की माता होना उन्हें अच्छा नहीं लगा ॥ ४ ॥

क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती ।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे ॥ ५ ॥

आवहतीत्यावहा । भर्तुः क्लेशावहा क्लेशकारिणी । अत एवालक्षणाहं सीतेति स्वं नामोदीरयन्ती स्वर्गः प्रतिष्ठास्पदं यस्य तस्य स्वर्गस्थितस्य गुरोः श्वशुरस्य महिष्यौ श्वश्र्वौ वधूः स्नुषा । 'वधूः स्नुषा वधूर्जाया' इत्यमरः । अभक्तिभेदेन ववन्दे । स्वर्गप्रतिष्ठस्येत्यनेन श्वश्रूवैधव्यदर्शनदुःखं सूचितम् ॥

अन्वयः—भर्तुः क्लेशावहा अतः एव अलक्षणा अहं सीता इति स्वं नाम उदीरयन्ती स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोः महिष्यौ वधूः अभक्तिभेदेन ववन्दे ।

व्याख्या—बिभर्तीति भर्ता तस्य भर्तुः = पत्युः, रामस्य आवहतीति आवहा क्लेशानां = दुःखानाम् आवहा = कारिणी, इति क्लेशावहा, पत्युः कष्टकारिणीत्यर्थः, अतः एव लक्षयति भाग्यादिसूचकं शुभाशुभमिति लक्षणम् । नास्ति लक्षणं यस्याः सा अलक्षणा अहं सीता = अहं जानकी इति = इत्थं स्वं = स्वकीयं नाम उदीरयन्ती = उच्चारयन्ती स्वर्गः = देवलोकः प्रतिष्ठा = आस्पदं यस्य स स्वर्गप्रतिष्ठः तस्य स्वर्गप्रतिष्ठस्य स्वर्गगतस्य गुरोः = पूज्यस्य श्वशुरस्य महते = पूज्यते इति महिषी । महिषी च महिषी चेति महिष्यौ = राजपत्न्यौ, श्वश्र्वौ वधूः = स्नुषा, सीता भजनं भक्तिः, तस्याः भेदः = तारतम्यमिति भक्तिभेदः नभक्तिभेद इति अभक्तिभेदस्तेन अभक्तिभेदेन, समानरूपेणेत्यर्थः । ववन्दे = प्रणनाम ।

समासः—क्लेशानाम् आवहा क्लेशावहा । न लक्षणं यस्याः सा अलक्षणा । स्वर्गः प्रतिष्ठा यस्य स तस्य स्वर्गप्रतिष्ठस्य । भक्तेर्भेदः भक्तिभेदः, न भक्तिभेदस्तेन अभक्तिभेदेन ।

हिन्दी—पति के कष्ट को बढ़ाने वाली कुलक्षणा मैं सीता हूँ—इस प्रकार अपना नाम कहती हुई, "सीताजी ने" स्वर्गवासी ससुर दशरथजी की दोनों रानियों को 'चरण छूकर' समान (एकसी) भक्ति से प्रणाम किया । स्वर्गवासी कहने का तात्पर्य यह है सास के वैधव्य को देखने से सीताजी बड़ी ही दुःखी हैं ॥ ५ ॥

उत्तिष्ठ वत्से ननु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्ता शुचिना तवैव ।
कृच्छ्रं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या ॥ ६ ॥

ननु 'वत्से, उत्तिष्ठ । असौ सानुजो भर्ता तवैव शुचिना वृत्तेन महत्कृच्छ्रं दुःखं तीर्णस्तीर्णवान्' इति प्रियार्हां तां वधूं प्रियमप्यमिथ्या सत्यं ते श्वश्र्वावूचतुः । उभयं दुर्वचमिति भावः ॥

अन्वयः—ननु वत्से ! उत्तिष्ठ असौ सानुजः भर्ता तव एव शुचिना वृत्तेन महत् कृच्छ्रं *तीर्णः इति प्रियार्हां तां प्रियम् अपि अमिथ्या ते ऊचतुः ।*

व्याख्या—ननु वत्से = अयि पुत्रि ! उत्तिष्ठ = उत्थिता भव असौ = रामः अनुजेन = लक्ष्मणेन सहितः सानुजः भर्ता = तव स्वामी तव = भवत्या एव शुचिना = शुद्धेन, पवित्रेण वृत्तेन = चरित्रेण, पातिव्रत्येनेत्यर्थः महत् = अत्यधिकं कृच्छ्रं = कष्टं, दुःखं तीर्णः = तीर्णवान्, इति = इत्थं प्रियं = हृद्यमर्हतीति प्रियार्हा तां प्रियार्हाम् प्रेमव्यवहारयोग्यमित्यर्थः । तां = सीतां प्रियमपि = मनोहरमपि न मिथ्या अमिथ्या = अमृषा, सत्यं ते = कौसल्यासुमित्रे, श्वश्र्वौ ऊचतुः = उक्तवत्यौ ।

समासः—अनुजेन सहितः सानुजः । प्रियस्य अर्हा तां प्रियार्हाम् । न मिथ्या अमिथ्या ।

हिन्दी—हे बेटी उठो ! यह तुम्हारे पति राम छोटे भाई के सहित तेरे ही शुद्ध पवित्र पातिव्रत्य के प्रताप से इस बड़े संकट से पार हुए हैं । प्यार के योग्य सीता से ऐसी प्रिय तथा सत्य बात, कौसल्या और सुमित्रा ने कही ॥ ६ ॥

अथाभिषेकं रघुवंशकेतोः प्रारब्धमानन्दजलैर्जनन्योः ।
निर्वर्तयामासुरमात्यवृद्धास्तीर्थाहृतैः काञ्चनकुम्भतोयैः ॥ ७ ॥

अथ जनन्योरानन्दजलैरानन्दबाष्पैः प्रारब्धं प्रक्रान्तं रघुवंशकेतो रामस्याभिषेकममात्यवृद्धास्तीर्थेभ्यो गङ्गाप्रमुखेभ्य आहृतैरानीतैः काञ्चनकुम्भतोयैर्निर्वर्तयामासुर्निष्पादयामासुः ॥

अन्वयः—अथ जनन्योः आनन्दजलैः प्रारब्धं रघुवंशकेतोः अभिषेकम् अमात्यवृद्धा तीर्थाहृतैः काञ्चनकुम्भतोयैः निर्वर्तयामासुः ।

व्याख्या—अथ = प्रणामाद्यनन्तरम् जनयति या सा जननी । जननी च जननी चेति जनन्यौ तयोः जनन्योः = मात्रोः = आनन्दात् = हर्षात् जातानि जलानि = अश्रूणि आनन्दजलानि: तैः आनन्दजलैः, आनन्दस्य जलानि, इति वा तैः । प्रारब्धं = प्रक्रान्तं रघूणां वंशः रघुवंशस्तस्य रघुवंशस्य = रघुकुलस्य केतुः = ध्वजः, तस्य रघुवंशकेतोः = रामस्य "गृहभेदे ध्वजे केतुः" इत्यमरः । अभिषिच्यते इति अभिषेकस्तम् अभिषेकं = स्नानम् अमात्येषु = मंत्रिषु ये वृद्धाः = वयसा ज्ञानेन च विशिष्टाः इति अमात्यवृद्धाः तीर्थेभ्यः = काशीप्रयागादिभ्यः आहृतानि = आनीतानि तैः तीर्थाहृतैः काञ्चते = दीप्यते काञ्चनं, काञ्चनस्य = सुवर्णस्य कुम्भाः = कलशास्तेषां तोयानि = जलानि तैः काञ्चनकुम्भतोयैः, सुवर्णकलशाहृतजलैरित्यर्थः = निर्वर्तयामासुः = सम्पादयामासुः । वृद्धाः रामस्य राज्याभिषेकं पवित्रतीर्थजलैः कृतवन्तः, इत्यर्थः ।

समासः—रघूणां वंशस्य केतुस्तस्य रघुवंशकेतोः । आनन्दस्य जलानि तैः आनन्दजलैः । अमात्येषु वृद्धाः अमात्यवृद्धाः । तीर्थेभ्यः आहृतानि तैः तीर्थाहृतैः । काञ्चनस्य कुम्भाः काञ्चनकुम्भास्तेषां तोयानि तैः काञ्चनकुम्भतोयैः ।

हिन्दी—इसके बाद माताओं की आँखों में आनन्द से आए हुए आँसुओं से आरम्भ हुए रघुकुल तिलक राम के राज्याभिषेक को पवित्र तीर्थस्थान से, सोने के घड़ों में भरकर लाए हुए जल से बूढ़े मंत्रियों ने सम्पन्न (पूरा) किया ॥ ७ ॥

सरित्समुद्रान्सरसीश्च गत्वा रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि।
तस्यापतन्मूर्ध्नि जलानि जिष्णोर्विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः ॥ ८ ॥

रक्षःकपीन्द्रैः सरितो गङ्गाद्याः समुद्रान्पूर्वादीन्सरसीर्मानसादींश्च गत्वा । उपपादितान्युपनीतानि जलानि जिष्णोर्जयशीलस्य । 'ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः' इति ग्स्नुप्रत्ययः । तस्य रामस्य मूर्ध्नि । विन्ध्यस्य विन्ध्याद्रेर्मूर्ध्नि मेघप्रभवा आप इव अपतन् ॥

अन्वयः—रक्षःकपीन्द्रैः सरित्समुद्रान् सरसीः च गत्वा उपपादितानि जलानि, जिष्णोः तस्य मूर्ध्नि विन्ध्यस्य मूर्ध्नि मेघप्रभवाः आपः इव अपतन् ।

व्याख्या—रक्षांसि = राक्षसाः च कपयः = वानराश्चेति रक्षःकपयः । रक्षःकपीनाम् इन्द्राः = स्वामिनस्तैः रक्षःकपीन्द्रैः सरितः = गंगाद्याः नद्यः समुद्राः = सागराश्चेति सरित्समुद्रास्तान् सरित्समुद्रान् गत्वा = प्राप्य स्रियन्ते इति सरस्यस्ताः सरसीः = मानसरोवरादींश्च गत्वा उपपादितानि = समीपमानीतानि जलानि = तोयानि जयति तच्छीलः जिष्णुस्तस्य जिष्णोः = जयशीलस्य तस्य = रामस्य मुह्यति जनोऽस्मिन्नाहते सति मूर्धा तस्मिन् मूर्ध्नि = मस्तके वि इध्यते, विरुद्धं ध्यायतीति वा विन्ध्यः विन्ध्यस्य = पर्वतविशेषस्य मूर्ध्नि मेघेभ्यः प्रभवन्तीति मेघप्रभवाः, मेघेभ्यः प्रभवः = उत्पत्तिः यासां ताः मेघप्रभवा इति वा । मेघोत्पन्नाः आपः = जलानि इव = यथा अपतन् = पेतुः ।

समासः—रक्षसां कपीनाञ्च इन्द्रास्तैः रक्षःकपीन्द्रैः । मेघाः प्रभवाः यासां ताः मेघप्रभवाः । सरितश्च समुद्राश्च सरित्समुद्रास्तान् सरित्समुद्रान् ।

हिन्दी—राक्षसों और वानरों के नायकों ने नदी तथा समुद्रों और मानसरोवर जाकर जो जल वहाँ से लाकर दिया था, वह पवित्र जल विजयी राम के शिर पर उसी प्रकार बरस रहा था, जिस प्रकार विन्ध्याचल के शिखर पर बादलों का बरसाया हुआ जल गिरता है ॥ ८ ॥

तपस्विवेषक्रिययापि तावद्यः प्रेक्षणीयः सुतरां बभूव ।
राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा तस्योदितासीत्पुनरुक्तदोषा ॥ ९ ॥

यो रामस्तपस्विवेषक्रिययापि तपस्विवेषरचनयापि सुतरामत्यन्तं प्रेक्षणीयस्तावद्दर्शनीय एव बभूव । तस्य राजेन्द्रनेपथ्यविधानेन राजवेषरचनयोदिता या शोभा सा पुनरुक्तं नाम दोषो यस्याः सा पुनरुक्तदोषा द्विगुणासीत् ॥

अन्वयः—यः तपस्विवेषक्रियया अपि सुतरां प्रेक्षणीयः बभूव तस्य उदिता, राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा पुनरुक्तदोषा आसीत् ।

व्याख्या—यः = रामः तपः अस्ति येषां ते तपस्विनः । तपस्विनां = तापसानां वेषः = आकल्पः, नेपथ्यं तस्य क्रिया = करणं रचना तया तपस्विवेषक्रियया अपि सुतराम् = अत्यन्तं प्रेक्षितुं योग्यः प्रेक्षणीयः = दर्शनीयः तावत् = एव बभूव = आसीत् तस्य = रामस्य उदिता = उत्पन्ना 'या' राज्ञां = भूपालानाम् इन्द्रः = ईश्वरः, इति राजेन्द्रः, राजेन्द्रस्य नेपथ्यं = वेषः तस्य विधानं = रचना तेन या शोभा = कान्तिः, इति राजेन्द्रनेपथ्यविधानशोभा सा, पुनः = पुनर्वारं =

भूयः उक्तं = कथनमिति पुनरुक्तं = पुनर्वचनम् पुनरुक्तं कथितपदत्वं नाम दोषः = दूषणं यस्याः सा पुनरुक्तदोषा आसीत् = अभूत् । रामः तपस्विवेषेऽपि अतीव सुन्दरः आसीत् राजोचित-परिधानेन तु ततोऽप्यधिकं तस्य सौन्दर्यं जातमित्यर्थः ।

समासः—तपस्विनां वेषः, तपस्विवेषः, तस्य क्रिया तया तपस्विवेषक्रियया । राज्ञामिन्द्रः, राजेन्द्रः, राजेन्द्रस्य नेपथ्यमिति राजेन्द्रनेपथ्यं तस्य विधानं तेन या शोभा इति राजेन्द्रनेपथ्य-विधानशोभा । पुनः उक्तं पुनरुक्तं दोषो यस्याः सा पुनरुक्तदोषा ।

हिन्दी—श्रीराम तपस्वियों का वेष धारण करने पर भी अत्यन्त, सुन्दर थे । तथा इस समय (राजतिलक के समय) राजराजेश्वर के वस्त्र-भूषण के धारण करने से बड़ी-बढ़ी उनकी शोभा पुनरुक्त नामक दोष के समान ही रही । अर्थात् राजसी ठाट-बाट में पहले से दुगुने सुन्दर लग रहे थे ॥ ९ ॥

स मौलरक्षोहरिभिः ससैन्यस्तूर्यस्वनानन्दितपौरवर्गः ।
विवेश सौधोद्गतलाजवर्षामुत्तोरणामन्वयराजधानीम् ॥ १० ॥

स रामः ससैन्यस्तूर्यस्वनैरानन्दितपौरवर्गः सन् । मूले भवा मौला मन्त्रिवृद्धास्तै रक्षोभि-र्हरिभिश्च सह सौधेभ्य उद्गतलाजवर्षामुत्तोरणामन्वयराजधानीमयोध्यां विवेश प्रविष्टवान् ॥

अन्वयः—सः ससैन्यः तूर्यस्वनानन्दितपौरवर्गः सन् मौलरक्षोहरिभिः सह सौधोद्गतलाज-वर्षाम् उत्तोरणाम् अन्वयराजधानीम् विवेश ।

व्याख्या—सः = रामः सेनायां समवेताः सैन्याः, सैन्यैः सहितः ससैन्यः पुरेभवाः पौराः, पौराणां = नागरिकाणां वर्गः = समूहः इति पौरवर्गः । तूर्यन्ते = ताड्यन्ते इति तूर्याः । तूर्याणां = वाद्यानां स्वनाः = शब्दास्तैः आनन्दितः = सुखितः, रञ्जितः पौरवर्गः येन स तूर्यस्व-नानन्दितपौरवर्गः सन्, मूलं वेत्ति, मूलादागतो वा मौलः = वंशक्रमागतमंत्री । मौलाश्च रक्षांसि = विभीषणादयश्च हरयः = हनुमदादयश्च इति मौलरक्षोहरयस्तैः मौलरक्षोहरिभिः सह = साकम्, सुधालेपो येषामस्ति ते सौधाः = राजसदनानि तेभ्यः उद्गता = पतिता लाजानां = भ्रष्टधान्यानां वर्षा = वृष्टिः यस्यां सा तां सौधोद्गतलाजवर्षाम् तुतुरति = त्वरया बहिर्गच्छन्त्ये-नेति तोरणः । उत् = ऊर्ध्वम् = उन्नताः = तोरणाः = बहिर्द्वाराणि यस्यां सा ताम् उत्तोरणाम् । "तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्" इत्यमरः । धीयतेऽस्यां सा धानी, राज्ञां = भूपालानां धानी = नगरी, इति राजधानी । अन्वयस्य = रघुकुलस्य राजधानी ताम् अन्वयराजधानीम् = अयोध्याम् विवेश = प्रविष्टवान् ।

समासः—सैन्यैः सहितः ससैन्यः । तूर्याणां स्वनास्तैः आनन्दिताः पौराणां वर्गः येन स तूर्यस्वनानन्दितपौरवर्गः । मौलाश्च रक्षांसि च हरयश्चेति मौलरक्षोहरयस्तैः मौलरक्षोहरिभिः । सौधेभ्यः उद्गता लाजानां वर्षा यस्यां सा तां सौधोद्गतलाजवर्षाम् । उत् = उन्नताः तोरणाः यस्यां सा ताम् उत्तोरणाम् । राज्ञां धानी राजधानी, अन्वयस्य राजधानी, ताम् अन्वय राजधानीम् ।

हिन्दी—सेना सहित राम ने तुरही आदि बाजों से नागरिक लोगों को आनन्द विभोर करते हुए, बूढ़े पुराने मंत्रियों, राक्षसों, और वानरों, के साथ रघुवंश के राजाओं की उस राजधानी अयोध्या में प्रवेश किया, जो सब ओर बन्दरवारों से सजी थी, और जिसके चूने से पुते भवनों से धान का लावा बरस रहा था ॥ १० ॥

सौमित्रिणा सावरजेन मन्दमाधूतबालव्यजनो रथस्थः ।
धृतातपत्रो भरतेन साक्षादुपायसंघात इव प्रवृद्धः ॥ ११ ॥

सावरजेन शत्रुघ्नयुक्तेन सौमित्रिणा लक्ष्मणेन मन्दमाधूते बालव्यजने चामरे यस्य स रथस्थो भरतेन धृतातपत्र एवं चतुर्व्यूहो रामः प्रवृद्धः साक्षादुपायानां सामादीनां संघातः समष्टिरिव । विवेशेति पूर्वेण संबन्धः ॥

अन्वयः—सावरजेन सौमित्रिणा मन्दम् आधूतबालव्यजनः रथस्थः, भरतेन धृतातपत्रः प्रवृद्धः साक्षात् उपायसंघात इव, राजधानीं विवेश ।

व्याख्या—अवरस्मिन् काले जातः अवरजः, अवरजेन = अनुजेन, शत्रुघ्नेन सहितः सावरजस्तेन सावरजेन सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन मन्दं = शनैः । व्यजन्त्यनेन इति व्यजनम् बालस्य = चमरीपुच्छस्य व्यजनं = रोमगुच्छकमिति बालव्यजनम्, बालेन वा निर्मितं व्यजनं बालव्यजनम् । आधूते = ईषच्चालिते बालव्यजने यस्य सः आधूतबालव्यजनः "चामरं बालव्यजनं रोमगुच्छकम्" इति कोषः । रथे तिष्ठतीति रथस्थः = स्यन्दनस्थः भरतेन = कैकेयीपुत्रेण आतपात् त्रायते, इति आतपत्रं धृतं = धारितम् आतपत्रं = श्वेतच्छत्रं यस्य स धृतातपत्रः प्रवृद्धः = प्रकर्षेण वृद्धिंगतः साक्षात् = प्रत्यक्षतः उपायानां = सामादिचतुर्णां संघातः = समूहः इति उपायसंघात इव = यथा राजधानीं विवेश, इति पूर्वेणान्वयः ।

समासः—अवरजेन सहितः सावरजः तेन सावरजेन । आधूते बालव्यजने यस्य सः आधूतबालव्यजनः । धृतम् आतपत्रं यस्य स धृतातपत्रः । उपायानां संघातः उपायसंघातः ।

हिन्दी—लक्ष्मण और शत्रुघ्न, रथ पर बैठे हुए, राम के ऊपर धीरे-धीरे चमर डुला रहे थे और भरतजी छत्र लिये हुए थे । इस प्रकार चारों भाई अयोध्या में प्रविष्ट हुए मानो साक्षात् साम दान दण्ड और भेद नामक चारों उपायों के समूह इकट्ठा हों ॥ ११ ॥

प्रासादकालागुरुधूमराजिस्तस्याः पुरो वायुवशेन भिन्ना ।
वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन मुक्ता स्वयं वेणिरिवाबभासे ॥ १२ ॥

वायुवशेन भिन्ना प्रासादे यः कालागुरुधूमस्तस्य राजी रेखा । वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन रामेण स्वयं मुक्ता तस्याः पुरः पुर्या वेणिरिव । आबभासे । पुरोऽपि पतिव्रतासमाधिरुक्तः । 'न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न वेणीं च प्रमोचयेत्' इति हारीतः ॥

अन्वयः—वायुवशेन भिन्ना कालागुरुधूमराजिः वनात् निवृत्तेन रघूत्तमेन स्वयं मुक्ता तस्याः वेणिः इव आबभासे ।

व्याख्या—वायोः = पवनस्य वशः = अधीनस्तेन वायुवशेन, वायुनेत्यर्थः भिन्ना = विस्तारिता कालञ्च तदगुरु कालागुरु। कालागुरुणः = कृष्णचन्दनविशेषस्य धूमः, इति कालागुरुधूमः प्रसीदति मनः अस्मिन् स प्रासादः "प्रासादो देवभूभुजाम्" इत्यमरः प्रासादे = राजभवने यः कालागुरुधूमः, इति प्रासादकालागुरुधूमस्तस्य राजिः लेखाः = पंक्तिः इति प्रासादकालागुरुधूमराजिः। वनात् = अरण्यात् वनवासादित्यर्थः निवृत्तेन = परावृत्तेन रघूणाम् उत्तमस्तेन रघूत्तमेन = रघुश्रेष्ठेन, रामेण स्वयम् = आत्मना मुक्ता = विस्रंसिता तस्याः = अयोध्यायाः पुरः = नगर्याः वेणिः = प्रवेणी, केशबन्ध इत्यर्थः। इव = यथा आबभासे = शुशुभे। अत्रायोध्यानगर्याः पतिव्रतात्वं सूचितमित्यर्थः।

समासः—वायोः वशः वायुवशस्तेन वायुवशेन। कालम् अगुरु कालागुरु तस्य धूमः, इति कालागुरुधूमः, प्रासादे यः कालागुरुधूमः तस्य राजिरिति प्रासादकालागुरुधूमराजिः। रघूणाम् उत्तमस्तेन रघूत्तमेन।

हिन्दी—वायु से "आकाश में" फैलाई गई जो राजभवन के ऊपर काले अगर के धूएँ की रेखा थी, वह ऐसी सुन्दर लग रही थी, मानो वनवास से लौटकर रघुवंशियों में श्रेष्ठ राम ने अपने हाथ से अयोध्या नगरी का जूड़ा (चोटी) खोल दिया हो।

विशेष—धर्मशास्त्रानुसार प्रोषितभर्तृका को न तो शृंगार करना चाहिये और न चोटी जूड़ा ही खोलना चाहिये। अयोध्यापति राम भी वनवास में थे। अतः चौदह वर्ष बाद राम के आने पर ही शृंगार, सजावट, तथा वेणीमोक्ष का वर्णन महाकवि ने किया है॥ १२॥

श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेषां कर्णीरथस्थां रघुवीरपत्नीम्।
प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः॥ १३॥

श्वश्रूजनैरनुष्ठितचारुवेषां कृतसौम्यनेपथ्याम्। 'आकल्पवेषौ नेपथ्यम्' इत्यमरः। कर्णीरथः स्त्रीयोग्योऽल्परथः। 'कर्णीरथः प्रवहणं डयनं रथगर्भके' इति यादवः। तत्रस्थां रघुवीरपत्नीं सीतां साकेतनार्यः प्रासादवातायनेषु दृश्यबन्धैर्लक्ष्यपुटैरञ्जलिभिः प्रणेमुः॥

अन्वयः—श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेषां कर्णीरथस्थां रघुवीरपत्नीम् साकेतनार्यः प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः अञ्जलिभिः प्रणेमुः।

व्याख्या—श्वशुरस्य पत्नी श्वश्रूः = पत्युः माता। श्वश्र्वः एव जनाः श्वश्रूजनाः। श्वश्रूजनैः = राममातृभिः अनुष्ठितः = कृतः, रचितः चारुः = सुन्दरः वेषः नेपथ्यं यस्याः सा तां श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेषाम् "आकल्पवेषौ नेपथ्यम्" इत्यमरः। श्रवणक्रियोपचारात् कर्णः। कर्णोऽस्यास्तीति कर्णी। कर्णी चासौ रथश्च कर्णीरथः, शब्दमात्रेण रथः नतु वास्तवेन। अथवा कर्णः = स्कन्धः सामीप्यात् अस्यास्ति वाहकत्वेन स्कन्धवाह्यः रथः, इति कर्णीरथः तत्र तिष्ठतीति कर्णीरथस्था तां कर्णीरथस्थां = मनुष्यस्कन्धवाह्ययानोपविष्टाम् रघूणां वीरः रघुवीरः, रघुवीरस्य = रामस्य पत्नी = सीता तां रघुवीरपत्नीं साकेतस्य = अयोध्यानगरस्य नार्यः = स्त्रियः इति साकेतनार्यः = अयोध्यानिवासिन्य इत्यर्थः, ईयतेऽनेन तत् अयनं वातस्य = वायोः अयनं = मार्गः, इति वातायनम्। प्रासादानां = राजभवनानां वातायनानि = गवाक्षाः, इति प्रासादवातायनानि, तेषु

दृश्याः = द्रष्टुं योग्याः बन्धाः = अञ्जलिपुटाः येषां तैः प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः अञ्जलिभिः = करसंपुटैः "अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे कुडवेऽपि च" इति मेदिनी। प्रणेमुः = प्रणामं चक्रुः। भवनवातायनस्थिता एव नार्यः मनुष्यवाह्ययानस्थितां सीताम् हस्तौ सम्पुटीकृत्य प्रणामं चक्रुरित्यर्थः।

समासः—श्वश्रूजनैः अनुष्ठितः चारुः वेषः यस्याः सा तां श्वश्रूजनानुष्ठितचारुवेषाम्। रघूणां वीरः रघुवीरस्तस्य पत्नी तां रघुवीरपत्नीम्। साकेतस्य नार्यः साकेतनार्यः। प्रासादानां वातायनानि प्रासादवातायनानि, तेषु दृश्याः बन्धाः येषां ते तैः प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः।

हिन्दी—सास कौसल्या और सुमित्रा से वस्त्रालंकार से अच्छी प्रकार सजाई गई, तथा पालकी में बैठी हुई, रघुवीर श्रीराम की पत्नी सीता को अयोध्या की नारियों ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया, (जिनका हाथ जोड़ना) भवनों के झरोखों से दीख पड़ रहा था॥ १३॥

स्फुरत्प्रभामण्डलमानसूयं सा बिभ्रती शाश्वतमङ्गरागम्।
रराज शुद्धेति पुनः स्वपुर्यै संदर्शिता वह्निगतेव भर्त्रा॥ १४॥

स्फुरत्प्रभामण्डलमानसूयमनसूयया दत्तं शाश्वतं सदातनमङ्गरागं बिभ्रती सा सीता भर्त्रा स्वपुर्यै शुद्धेति संदर्शिता पुनर्वह्निगतेव रराज॥

अन्वयः—स्फुरत्प्रभामण्डलम् आनुसूयं शाश्वतम् अंगरागं बिभ्रती सा भर्त्रा स्वपुर्यै शुद्धा इति सन्दर्शिता पुनः वह्निगता इव रराज।

व्याख्या—प्रभायाः = कान्तेः मण्डलं = समूहः इति प्रभामण्डलम्। स्फुरत् = देदीप्यमानं प्रभामण्डलं यस्य स तं स्फुरत्प्रभामण्डलम् अनसूयायाः अयम् आनुसूयः तम्, अत्रिमहर्षेः पत्न्या दत्तम् शश्वत् भवः शाश्वतः तं सदातनम् अंगस्य = शरीरस्य रागः = विलेपनद्रव्यम्, तम् अंगरागम् = बिभ्रती = धारयन्ती सा = सीता बिभर्तीति भर्ता तेन भर्त्रा = रामेण स्वस्य पुरी स्वपुरी तस्यै स्वपुर्यै = अयोध्यायै, साकेतनागरिकेभ्य इत्यर्थः। शुद्धा = पवित्रा इति सन्दर्शिता = लोकप्रत्यक्षीकृता पुनः = भूयः, इदानीमेवेत्यर्थः वह्नौ = अग्नौ गता = प्रविष्टा, इति वह्निगता इव = यथा रराज = शुशुभे।

समासः—प्रभायाः मण्डलं प्रभामण्डलं, स्फुरत् प्रभामण्डलं यस्य स तं स्फुरत्प्रभामण्डलम्। अंगस्य रागः अंगरागस्तम् अंगरागम्। स्वस्य पुरी स्वपुरी तस्यै स्वपुर्यै। वह्नौ गता वह्निगता।

हिन्दी—चमकदार कान्तिवाला तथा कभी न मिटने वाले सती अनसूया के दिये हुए, सुगन्धित लेप (उबटन) को धारण किये (लगाए) हुए 'सीता जी पवित्र हैं' अपनी प्रजा साकेत निवासियों को इस प्रकार दिखाई गई ऐसी सुशोभित लग रही थी मानो राम ने फिर से उन्हें अग्नि में प्रवेश कराया हो॥ १४॥

वेश्मानि रामः परिबर्हवन्ति विश्राण्य सौहार्दनिधिः सुहृद्भ्यः।
बाष्पायमाणो बलिमन्निकेतमालेख्यशेषस्य पितुर्विवेश॥ १५॥

सुहृदो भावः सौहार्दं सौजन्यम्। 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य–' इत्युभयपदवृद्धिः। सौहार्दनिधी रामः सुहृद्भ्यः सुग्रीवादिभ्यः परिबर्हवन्त्युपकरणवन्ति वेश्मानि विश्राण्य दत्त्वा। आलेख्यशेषस्य चित्रमात्रशेषस्य पितुर्बलिमत्पूजायुक्तं निकेतं गृहं बाष्पायमाणः बाष्पमुद्गमन्विवेश। 'बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने' क्यङ्प्रत्ययः॥

अन्वयः—सौहार्दनिधिः रामः सुहृद्भ्यः परिबर्हवन्ति वेश्मानि विश्राण्य आलेख्यशेषस्य पितुः बलिमत् निकेतं बाष्पायमाणः सन् विवेश।

व्याख्या—शोभनं हृदयं यस्य स, सुहृदो भावः सौहार्दं, सौहार्दस्य = सौजन्यस्य निधिः = आकरः इति सौहार्दनिधिः रामः = दाशरथिः सुहृद्भ्यः = मित्रेभ्यः, सुग्रीवविभीषणादिभ्यः इत्यर्थः। परिबर्ह्यते, परिवर्ध्यते वा परिबर्हः = राजार्हवस्तु अस्ति येषु तानि परिबर्हवन्ति = राजयोग्योपकरणवन्ति "परिबर्हस्तु राजार्हवस्तुन्यपि परिच्छदे" इति विश्वः। विशन्ति = प्रविशन्ति जनाः येषु तानि वेश्मानि = गृहाणि विश्राण्य = दत्त्वा आलेख्यं = चित्रं शेषम् = अवशिष्टं यस्य स तस्य आलेख्यशेषस्य मृतस्येत्यर्थः पितुः = जनकस्य बलिः = पूजा अस्ति यस्य तत् बलिमत् निकेतं = गृहं बाष्पम् उद्वमति बाष्पायते, बाष्पायते इति बाष्पायमाणः = अश्रूणि मुञ्चन् सन् विवेश = प्रविष्टः।

समासः—सौहार्दस्य निधिरिति सौहार्दनिधिः। आलेख्यं शेषं यस्य स तस्य आलेख्यशेषस्य।

हिन्दी—सौजन्य (सज्जनता) की खान राम ने, अपने मित्र सुग्रीव विभीषण को राजयोग्य सारी सामग्री से सजे हुए भवनों में ठहराकर, फिर चित्र (तस्वीर) मात्र ही जिसका अवशेष है ऐसे अपने पिता के पूजा युक्त घर में आँसू गिराते हुए प्रवेश किया॥ १५॥

कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद् गुरुर्नः।
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं तवेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः॥ १६॥

तत्र निकेतने कृताञ्जलिः सन्रामः। हे अम्ब, नो गुरुः पिता स्वर्गः फलं यस्य तस्मात्सत्यान्नाभ्रश्यत न भ्रष्टवानिति यदभ्रंशनं तच्चिन्त्यमानं विचार्यमाणं तव सुकृतम्। इत्येवं प्रकारेण भरतस्य मातुः कैकेय्या लज्जां जहारापानयत्। राज्ञां प्रतिज्ञापरिपालनं स्वर्गसाधनमित्यर्थः। भरतग्रहणं तदपेक्षयापि कैकेय्यनुसरणद्योतनार्थम्॥

अन्वयः—तत्र कृताञ्जलिः सन् हे अम्ब! नः गुरुः स्वर्गफलात् सत्यात् न अभ्रश्यत यत् तत् चिन्त्यमानं तव सुकृतम् इति भरतस्य मातुः लज्जां जहार।

व्याख्या—तत्र = तस्मिन् पितुः गृहे कृतः = विहितः, बद्धः अञ्जलिः = करसम्पुटः येन स कृताञ्जलिः सन् रामः हे अम्ब = हे मातः! नः = अस्माकं गुरुः = पिता सुष्ठु अर्ज्यत इति स्वर्गः। स्वर्गः = देवलोकः फलं यस्य तत् स्वर्गफलं तस्मात् स्वर्गफलात् सति साधु सत्यं तस्मात् सत्यात् = तथ्यात् न अभ्रश्यत = न पतितः इति यत् = अभ्रंशनं तत् चिन्त्यते इति चिन्त्यमानं =

विचार्यमाणं तव = भवत्याः सुकृतं = पुण्यम्, इति = एवं प्रकारेण भरतस्य मातुः = कैकेय्याः = लज्जां = व्रीडां जहार = अपहृतवान् दूरीचकार।

समासः—कृतः अञ्जलिः येन स कृताञ्जलिः। स्वर्गः फलं यस्य तत् तस्मात् स्वर्गफलात्।

हिन्दी—उस भवन में (जहाँ कैकेयी लज्जित सी बैठी थी) जाकर, हाथ जोड़कर राम ने हे माँ, हमारे पिता जी, स्वर्गफल वाले सत्य से जो नहीं डिगे, इसको यदि विचार करते हैं तो यह तुम्हारे ही पुण्य का प्रभाव है। इस प्रकार भरत जी की माँ की लज्जा को दूर कर दिया।

विशेष—कैकेयी यदि अपना वरदान न माँगती तो राजा अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर पाते और प्रतिज्ञा भ्रष्ट होने से स्वर्ग भी न मिलता। अतः पिता के स्वर्ग का साधन, प्रतिज्ञा का पालन है॥ १६॥

तथैव सुग्रीवविभीषणादीनुपाचरत्कृत्रिमसंविधाभिः।
संकल्पमात्रोदितसिद्धयस्ते क्रान्ता यथा चेतसि विस्मयेन॥ १७॥

सुग्रीवविभीषणादीन्। संविधीयन्त इति संविधा भोग्यवस्तूनि। कृत्रिमसंविधाभिस्तथा तेन प्रकारेणैवोपाचरत्। यथा संकल्पमात्रेणेच्छामात्रेणोदितसिद्धयस्ते सुग्रीवादयश्चेतसि विस्मयेन क्रान्ता आक्रान्ताः॥

अन्वयः—सुग्रीवविभीषणादीन् कृत्रिमसंविधाभिः तथा एव उपाचरत्, यथा संकल्पमात्रोदितसिद्धयः ते चेतसि विस्मयेन क्रान्ताः।

व्याख्या—सुग्रीवश्च विभीषणश्च, सुग्रीवविभीषणौ, तौ आदी येषां ते सुग्रीवविभीषणादयस्तान् सुग्रीवविभीषणादीन् = सुहृद् वर्गान् संविधीयन्ते इति संविधाः। क्रियया निवृत्ताः कृत्रिमाः = कल्पिताश्च ताः संविधाः = भोग्यवस्तूनि, ताभिः कृत्रिमसंविधाभिः, तत्कालकल्पितपदार्थैरित्यर्थः। तथैव = तेनैव प्रकारेण उपाचरत् = सम्मानसेवां कृतवान्, यथा = येन प्रकारेण *संकल्पनं संकल्पः = इदं कर्तव्यम्, इदं कुर्यामिति मनसः व्यापारः एवेति संकल्पमात्रं तेन संकल्प*मात्रेण = इच्छामात्रेण उदिता = उत्पन्ना सिद्धिः = इष्टपदार्थः येषां ते संकल्पमात्रोदितसिद्धयः ते = सुग्रीवादयः चेतसि = मनसि विस्मयेन = आश्चर्येण "विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं चित्रमपि" इत्यमरः, क्रान्ताः आक्रान्ताः। आश्चर्यचकिताः जातास्ते तत्रत्यस्वाभिलषितां सुखसामग्रीं प्राप्य दृष्ट्वा चेत्यर्थः।

समासः—सुग्रीवश्च विभीषणश्चेति सुग्रीवविभीषणौ, तौ आदी येषां ते तान् सुग्रीवविभीषणादीन्। कृत्रिमाश्च ताः संविधास्ताभिः कृत्रिमसंविधाभिः। संकल्प एवेति संकल्पमात्रं, संकल्पमात्रेण उदिता सिद्धिः येषां ते संकल्पमात्रोदितसिद्धयः।

हिन्दी—"अयोध्या में आकर" राम ने सुग्रीव विभीषण आदि मित्रों का, काल्पनिक नई-नई अनेक प्रकार की भोग्य वस्तुओं से ऐसा स्वागत-सत्कार किया कि वे सब मन में आश्चर्यचकित हो गये। *क्योंकि संकल्प-मात्र से उनकी अभिलषित वस्तु तुरन्त प्राप्त हो जाती थी। अर्थात्* किसी भी वस्तु के लिये कहने या माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी॥ १७॥

सभाजनायोपगतान्स दिव्यान्मुनीन्पुरस्कृत्य हतस्य शत्रोः ।
शुश्राव तेभ्यः प्रभवादि वृत्तं स्वविक्रमे गौरवमादधानम् ॥ १८ ॥

स रामः सभाजनायाभिनन्दनायोपगतान्दिवि भवान्मुनीनगस्त्यादीन्पुरस्कृत्य हतस्य शत्रो रावणस्य प्रभवादि जन्मादिकं स्वविक्रमे गौरवमुत्कर्षमादधानं वृत्तं तेभ्यो मुनिभ्यः शुश्राव श्रुतवान् । विजितोत्कर्षाज्जेतुरुत्कर्ष इत्यर्थः ॥

अन्वयः—सः सभाजनाय उपागतान् दिव्यान् मुनीन् पुरस्कृत्य हतस्य शत्रोः प्रभवादि स्वविक्रमे गौरवम् आदधानं वृत्तं तेभ्यः शुश्राव ।

व्याख्या—सः = रामः सभाजनाय = अभिनन्दनाय, धन्यवादादिप्रदानायेत्यर्थः उपागतान् अयोध्यायां समागतान् दिवि भवाः दिव्यास्तान् दिव्यान् = स्वर्गीयान् मन्तारो मुनयस्तान् मुनीन् = अगस्त्यादीन् पुरस्कृत्य = सम्मान्य, सत्कारादिना पूजयित्वा हतस्य = मृतस्य शत्रोः = रावणस्य प्रभवः = जन्म आदिर्यस्मिन् तत् प्रभवादि स्वस्य = रामस्य विक्रमः = शौर्यं तस्मिन् स्वविक्रमे गुरोर्भावः गौरवम् = उत्कर्षम् आदधानम् = वर्धकं वृत्तं = जातम्, इतिहासं तेभ्यः = मुनिभ्यः शुश्राव = श्रुतवान् । विजितस्य शत्रोरुत्कर्षवर्णनेन विजेतुः स्वस्योत्कर्षः भवतीत्यर्थः ।

समासः—प्रभवः आदिः यस्मिन् तत् प्रभवादि । स्वस्य विक्रमः स्वविक्रमस्तस्मिन् स्वविक्रमे । पुरः कृत्वा पुरस्कृत्य ।

हिन्दी—"और तब" राम ने, अभिनन्दन करने (बधाई देने) के लिये आए हुए स्वर्गीय अगस्त्यादि मुनियों का स्वागत-सत्कार करके, मारे हुए अपने शत्रु रावण का जन्म से लेकर मरण पर्यन्त इतिहास उन मुनियों से सुना, जो इतिहास राम के पराक्रम को बढ़ाने वाला था ॥१८॥

प्रतिप्रयातेषु तपोधनेषु सुखादविज्ञातगतार्धमासान् ।
सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान्रक्षःकपीन्द्रान्विससर्ज रामः ॥ १९ ॥

तपोधनेषु मुनिषु प्रतिप्रयातेषु प्रतिनिवृत्य गतेषु सत्सु सुखादविज्ञात एव गतोऽर्धमासो येषांताननन्तरं सीतायाः स्वहस्तेनोपहृता दत्ताग्र्यपूजोत्तमसंभावना येभ्यस्तान् । एतेन सौहार्दातिशय उक्तः । रक्षःकपीन्द्रान्रामो विससर्ज विसृष्टवान् ॥

अन्वयः—तपोधनेषु प्रयातेषु सत्सु सुखात् अविज्ञातगतार्धमासान् सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान् रक्षःकपीन्द्रान् रामः विससर्ज ।

व्याख्या—तपः = तपस्या एव धनं = वित्तं येषां ते, तेषु तपोधनेषु = मुनिषु प्रयातेषु = प्रतिनिवृत्तेषु सत्सु शोभनानि खानि = इन्द्रियाणि, अनेन तत्सुखं तस्मात् सुखात् = कल्याणात् न विज्ञातः अविज्ञातः = ज्ञानस्याविषयीभूतः गतः = व्यतीतः अर्धमासः = पञ्चदशदिनात्मकपक्षः येषां ते तान् अविज्ञातगतार्धमासान्, अनन्तरं सीतायाः = जानक्याः स्वहस्तेन = निजकरेण उपहृता = दत्ता अग्र्या = श्रेष्ठा पूजा = सपर्या येभ्यस्ते तान् सीतास्वहस्ताग्र्यपूजान् = कृतसम्भावनान्, इत्यर्थः । कपीनां = वानराणाम् इन्द्राः = स्वामिनः, इति कपीन्द्राः । रक्षांसि = कपीन्द्राश्च

ते तान् रक्षःकपीन्द्रान् रक्षांसि कपयश्च ते रक्षःकपयस्तेषामिन्द्राः तान्, रक्षःकपीन्द्रान् (इति वा) सुग्रीवविभीषणादीन् रामः = राघवः विससर्ज = विसृष्टवान् । मुनिगमनानन्तरं सुहृदोऽपि सत्कृत्य स्वकीयां स्वकीयां राजधानीं प्रति प्रेषयामास इत्यर्थः ।

समासः = तपः एव धनं येषां ते तेषु तपोधनेषु । न त्रिज्ञातः गतः अर्धमासः येषां ते तान् अविज्ञातगतार्धमासान् । सीतायाः स्वस्य हस्तेन उपहृता अर्घ्या पूजा येभ्यस्तान् सीतास्वहस्तोपहृतार्घ्यपूजान् । रक्षांसि कपयश्चेति रक्षःकपयस्तेषाम् इन्द्रास्तान् रक्षःकपीन्द्रान् ।

हिन्दी—तपस्वियों के लौट जाने पर राम ने, राक्षसों और वानरों के उन राजाओं को विदा कर दिया, जो अयोध्या में सुख से रहते हुए, यह भी न जान सके कि आधा महीना बीत गया। और जिन्हें सीताजी ने स्वयं अपने हाथ से उत्तम सत्कार प्रदान किया था ॥ १९ ॥

तच्चात्मचिन्तासुलभं विमान हृतं सुरारेः सह जीवितेन ।
कैलासनाथोद्वहनाय भूयः पुष्पं दिवः पुष्पकमन्वमंस्त ॥ २० ॥

तच्चात्मचिन्तासुलभं स्वेच्छामात्रलभ्यं सुरारे रावणस्य जीवितेन सह हृतं दिवः पुष्पं पुष्पवदाभरणभूतं पुष्पकं विमानं भूयः पुनरपि कैलासनाथस्य कुबेरस्योद्वहनायान्वमंस्तानुज्ञातवान् । मन्यतेर्लुङ् । भूयोग्रहणेन पूर्वमप्येतत्कौबेरमेवेति सूच्यते ॥

अन्वयः—तत् आत्मचिन्तासुलभं सुरारेः जीवितेन सह हृतं दिवः पुष्पं पुष्पकं, भूयः कैलाशनाथोद्वहनाय अमंस्त ।

व्याख्या—तत् = प्रसिद्धम् आत्मना = स्वेन चिन्ता = ध्यानं, विचारः इति आत्मचिन्ता, आत्मचिन्तया = स्वविचारमात्रेण सुलभं = सुखेन प्राप्यमिति आत्मचिन्तासुलभं सुराणाम् अरिः सुरारिः तस्य सुरारेः = रावणस्य जीवितेन = प्राणेन, सह हृतम् = प्राप्तम् दिवः = स्वर्गस्य पुष्पं = कुसुमं, पुष्पमिवालंकारभूतमित्यर्थः । पुष्पकं = विमानं भूयः = पुनः अपि, के = जले लासः = लसनमस्येति कैलासः, कैलासस्य = स्फटिकस्य अयमिति कैलासः केलीनां समूहः कैलं, कैलेन आस्यतेऽत्रासौ वा कैलासः, कैलासस्य = पर्वतविशेषस्य नाथः स्वामी कुबेरस्तस्य उद्वहनं = प्रापणं, यानं तस्मै कैलासनाथोद्वहनाय, कुबेरसमीपगमनायेत्यर्थः । अमंस्त = अनुज्ञातवान् । भूयः कथनेन पूर्वमपि पुष्पकं कुबेरस्यैवासीत्, इति सूच्यते ।

समासः—आत्मनः चिन्ता, आत्मचिन्ता तया सुलभं तत् आत्मचिन्तासुलभम् । सुराणाम् अरिः सुरारिस्तस्य सुरारेः । कैलासस्य नाथः कैलासनाथः, तस्य उद्वहनं तस्मै कैलासनाथोद्वहनाय।

हिन्दी—*राम ने, स्वर्ग के पुष्प के समान (स्वर्ग के भूषण) उस पुष्पक विमान फिर से* कैलास के राजा कुबेर की सवारी के लिये (उसके पास जाने की) आज्ञा दे दी। जो कि मन में विचार आते ही उनकी सेवा के लिये आ जाता था। और जिसे राम ने रावण को मार कर हरण (प्राप्त) किया था। पहले भी विमान कुबेर का था, अब फिर उसी के पास भेज दिया ॥ २० ॥

पितुर्नियोगाद्वनवासमेवं निस्तीर्य रामः प्रतिपन्नराज्यः ।
धर्मार्थकामेषु समां प्रपेदे यथा तथैवावरजेषु वृत्तिम् ॥ २१ ॥

राम एवं पितुर्नियोगाच्छासनाद्वनवासं निस्तीर्यानन्तरं प्रतिपन्नराज्यः प्राप्तराज्यः सन् । धर्मार्थकामेषु यथा तथैवावरजेष्वनुजेषु समां वृत्तिं प्रपेदे । अवैषम्येण व्यवहृतवानित्यर्थः ॥

अन्वयः—रामः एवं पितुः नियोगात् वनवासं निस्तीर्य प्रतिपन्नराज्यः सन् यथा धर्मार्थकामेषु तथा एव अवरजेषु समां वृत्तिं प्रपेदे ।

व्याख्या—रामः एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण पितुः = जनकस्य, दशरथस्य नियोगात् = शासनात्, आज्ञयेत्यर्थः, वने = अरण्ये वासः = निवासस्तं वनवासं निस्तीर्य = तीर्त्वा, समाप्येत्यर्थः । प्रतिपन्नं = प्राप्तं राज्यं = साम्राज्यं, प्रभुसत्ता येन स प्रतिपन्नराज्यः सन् यथा = येन प्रकारेण धर्मश्च अर्थश्च कामश्च, एषां द्वन्द्वः धर्मार्थकामाः, तेषु धर्मार्थकामेषु = त्रिषु पुरुषार्थेषु तथैव = तेनैव प्रकारेण अवरेषु कालेषु जाताः अवरजास्तेषु अवरजेषु = अनुजेषु समां = समानाम्, एकरूपां वृत्तिं = व्यवहारं प्रपेदे = प्राप, सर्वेष्वपि एकरूपेण व्यवहृतवानित्यर्थः ।

समासः—वने वासः वनवासस्तं वनवासम् । प्रतिपन्नं राज्यं येन स प्रतिपन्नराज्यः । धर्मश्च अर्थश्च कामश्च, इत्येषामितरेतरयोगः धर्मार्थकामास्तेषु धर्मार्थकामेषु ।

हिन्दी—इस प्रकार पिता की आज्ञा से वन में निवास के चौदह वर्ष बिताकर तथा पुनः राज्य को प्राप्त करके राम ने जैसे धर्म, अर्थ और काम के विषय में एकसा व्यवहार किया। ठीक उसी प्रकार अपने छोटे भाइयों के साथ भी बिना भेदभाव के एकसा प्रेम-व्यवहार किया ॥२१॥

सर्वासु मातृष्वपि वत्सलत्वात्स निर्विशेषप्रतिपत्तिरासीत् ।
षडाननापीतपयोधरासु नेता चमूनामिव कृत्तिकासु ॥ २२ ॥

स रामो वत्सलत्वात्स्निग्धत्वात् । न तु लोकप्रतीत्यर्थम् । 'स्निग्धस्तु वत्सलः' इत्यमरः । सर्वासु मातृष्वपि निर्विशेषप्रतिपत्तिस्तुल्यसत्कार आसीत् । कथमिव । चमूनां नेता षण्मुखः षड्भिराननैरापीताः पयोधराः स्तनाः यासां तासु कृत्तिकास्विव ॥

अन्वयः—सः वत्सलत्वात् सर्वासु मातृषु अपि निर्विशेषप्रतिपत्तिः आसीत्, चमूनां नेता षडाननापीतपयोधरासु कृत्तिकासु इव ।

व्याख्या—सः = रामः वत्से = पुत्रादिस्नेहपात्रेऽभिलाषोऽस्यास्तीति वत्सलः, वत्सलस्य भावः वत्सलत्वं तस्मात् वत्सलत्वात् = स्निग्धत्वात् "स्निग्धस्तु वत्सलः" इत्यमरः । सर्वासु = तिसृषु मातृषु = कौसल्यादिष्वपि निर्गता विशेषा = विशिष्टा प्रतिपत्तिः = ज्ञानं, व्यवहारः यस्मात् स निर्विशेषप्रतिपत्तिः, इयं मे जननी, इयं विमाता इत्यादिपक्षपातशून्य इत्यर्थः । आसीत् = अभूत् । कथमिव इत्याह—चमूनां = सेनानां नेता = नायकः सेनानीः कार्तिकेयः, धरन्तीति धराः पयसां = दुग्धानां धराः पयोधराः । षड्भिः = षट्संख्याकैः आननैः = मुखैः पीताः पयोधराः = स्तनाः यासां

ताः, तासु षडाननापीतपयोधरासु कृन्तन्ति उग्रत्वात् कृत्तिकाः तासु कृत्तिकासु = बहुलासु इव = यथा कार्तिकेयेन देवैः प्रेषितानां षण्णां कृत्तिकानां स्तनेभ्य षड्भिः मुखैः समानरूपेण दुग्धं पीतम् तथैव रामेणापि तिसृष्वपि मातृषु भक्त्या प्रेम्णा समानो व्यवहारः कृतः ।

समासः—निर्गता विशेषा प्रतिपत्तिः यस्मात् स निर्विशेषप्रतिपत्तिः । षड्भिः आननैः आपीताः पयोधराः यासां ताः, तासु षडाननापीतपयोधरासु ।

हिन्दी—रामचन्द्र, अतिस्नेहशील होने के कारण तीनों माताओं के प्रति समानरूप से उसी प्रकार प्रेम, भक्ति, श्रद्धा का व्यवहार करते थे, जैसे कि सेनानायक कार्तिकेय, ने अपने छः मुखों से छः कृत्तिकाओं का स्तनपानकर समान प्रेम प्रकट किया था।

विशेष—कृत्तिका तीसरा नक्षत्र, छः तारों का समूह है। ये छः तारे छः अप्सराओं का रूप धारण कर के युद्ध में देवताओं के सेनापति कार्तिकेय की धाय बनकर आए थे। कार्तिकेय ने भी अपने छः मुख बनाकर छओं का एक साथ स्तनपान किया था। ऐसा इतिहास है ॥२२॥

तेनार्थवाँल्लोभपराङ्मुखेन तेन घ्नता विघ्नभयं क्रियावान् ।
तेनास लोकः पितृमान्विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री ॥ २३ ॥

लोको लोभपराङ्मुखेन वदान्येन तेन रामेणार्थवान्धनिक आस बभूव । तिङन्तप्रतिरूपकमव्ययमेतत् । विघ्नेभ्यो भयं घ्नता नुदता तेन क्रियावाननुष्ठानवानास । विनेत्रा नियामकेन तेन पितृमानास । पितृवन्नियच्छतीत्यर्थः । शोकमपनुदतीति शोकापनुदो दुःखस्य हर्ता तेन । 'तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः' इति कप्रत्ययः । तेन पुत्री पुत्रवानास । पुत्रवदानन्दयतीत्यर्थः ॥

अन्वयः—लोकः लोभपराङ्मुखेन तेन अर्थवान् आस, विघ्नभयं घ्नता तेन क्रियावान्, विनेत्रा तेन पितृमान्, शोकापनुदेन तेन एव पुत्री आस।

व्याख्या—लोक्यते इति लोकः = जनः, पराञ्चति = अनभिमुखो भवति, इति पराङ्मुखः । लोभात् = लालसायाः पराङ्मुखः = विमुखः इति लोभपराङ्मुखस्तेन लोभपराङ्मुखेन लोभरहितेनेत्यर्थः । तेन = रामेण अर्थः अस्यास्तीति अर्थवान् = धनवान् आस = बभूव, विघ्नेभ्यः = अन्तरायेभ्यः भयं = भीतिः, तत् विघ्नभयं घ्नता = निवारयता तेन लोकः क्रिया अस्त्यस्येति क्रियावान् = अनुष्ठानवान्, विशेषेण नयति = प्रापयतीति विनेता तेन विनेत्रा पथिप्रदर्शकेन, शासकेनेत्यर्थः । तेन = रामेण पितास्ति यस्य स पितृमान् आस, पितृवन्नियंत्रयतीत्यर्थः । शोकं = शुचम् अपनुदति = निवारयति, हरतीति शोकापनुदः तेन शोकापनुदेन तेन = रामेण एव लोकः पुत्री = पुत्रवान् आस । पुत्रवत् रामः सर्वान् आनन्दयतीत्यर्थः ।

समासः—लोभात् पराङ्मुखः लोभपराङ्मुखस्तेन लोभपराङ्मुखेन । विघ्नेभ्यः भयमिति तत् विघ्नभयम् । शोकस्य अपनुदः शोकापनुदस्तेन शोकापनुदेन ।

हिन्दी—राम के लोभ-लालच से विमुख (रहित) होने से प्रजा धनवान् थी। विघ्नों का नाश करने वाले राम के कारण ही प्रजा अपने यज्ञादि अनुष्ठान करती थी। तथा सबको

ठीक मार्गपर चलाने के कारण वे सब के पिता थे। और रामचन्द्रजी सब के दुःखों का निवारण करते थे, अतः प्रजा उन्हीं से अपने को पुत्रवान् समझती थी।

विशेष—राम लोभी नहीं थे। अतः कर नहीं लगाते थे, अतः प्रजा खूब धनी थी। पुत्र के समान सब के दुःखों को मिटाते थे और पिता के समान सब को सन्मार्ग में लगाते थे; और राम के कारण सब अपने-अपने कर्म निर्भय होकर करते थे॥ २३॥

स पौरकार्याणि समीक्ष्य काले रेमे विदेहाधिपतेर्दुहित्रा।
उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं कृत्वोपभोगोत्सुकयेव लक्ष्म्या॥ २४॥

स रामः कालेऽवसरे पौराणां कार्याणि प्रयोजनानि समीक्ष्य विदेहाधिपतेर्दुहित्रा सीतया। उपभोगोत्सुकयात एव तदीयं सीतासंबन्धि चारु वपुः कृत्वा स्थितया लक्ष्म्येव। उपस्थितः संगतः सन् रेमे। 'उपस्थानं तु संगतिः' इति यादवः॥

अन्वयः—सः काले पौरकार्याणि समीक्ष्य विदेहाधिपतेः दुहित्रा उपभोगोत्सुकया "अत एव" तदीयं चारु वपुः कृत्वा "स्थितया" लक्ष्म्या इव उपस्थितः सन् रेमे।

व्याख्या—सः = रामः कालयति सर्वमिति कालस्तस्मिन् काले = समये पुरे भवाः पौराः पौराणां = नागरिकाणां कार्याणि = प्रयोजनानि, तानि पौरकार्याणि समीक्ष्य = सम्यक्प्रकारेण निरीक्ष्य विदेहानां = जनपदानाम् अधिपतिः = राजा, इति विदेहाधिपतिस्तस्य विदेहाधिपतेः = जनकस्य दुहित्रा = पुत्र्या सीतया उपभोजनमुपभोगः, उपभोगे = निर्वेशे रतिसुखे, इत्यर्थः समुत्सुका = उत्कण्ठिता, तया उपभोगसमुत्सुकया "निर्वेश उपभोगः स्यात्" इत्यमरः। अत एव तस्या इदं तदीयं = सीतासंबन्धि चारु = सुन्दरं वपुः = शरीरं कृत्वा विधाय स्थितया राज्यश्रिया इव = यथा उप = समीपे तिष्ठति स्म, इति उपस्थितः। उपस्थितः, संमिलितः सन् रेमे = चिक्रीड। "उपस्थानं तु संगतिः" इति यादवः।

समासः—पौराणां कार्याणि पौरकार्याणि, तानि पौरकार्याणि। विदेहानाम् अधिपतिः विदेहाधिपतिस्तस्य विदेहाधिपतेः। उपभोगे समुत्सुका, इति उपभोगसमुत्सुका तया।

हिन्दी—रामचन्द्र, समय पर नागरिकों (प्रजा) के कार्य को देखभालकर, विदेहराज जनक की पुत्री सीता के साथ मिलकर रमण करते थे। "सीताजी ऐसी लगती थीं" मानो भोग करने के लिये उत्कण्ठित (बड़ी इच्छा वाली) और इसीलिये सीताजी का सुन्दर शरीर बनाकर आई राज्यलक्ष्मी हो॥ २४॥

तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु।
प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु संचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन्॥ २५॥

चित्रवत्सु वनवासवृत्तान्तालेख्यवत्सु सद्मसु यथाप्रार्थितं यथेष्टमिन्द्रियार्थानिन्द्रियविषयाञ्शब्दादीनासेदुषोः प्राप्तवतोस्तयोः सीतारामयोर्दण्डकेषु दण्डकारण्येषु प्राप्तानि दुःखान्यपि विरहविलापान्वेषणादीनि संचिन्त्यमानानि स्मर्यमाणानि सुखान्यभूवन्। स्मारकं तु चित्रदर्शनमिति द्रष्टव्यम्॥

अन्वयः—चित्रवत्सु सद्मसु यथाप्रार्थितम् इन्द्रियार्थान् आसेदुषोः तयोः दण्डकेषु प्राप्तानि दुःखानि अपि संचिन्त्यमानानि सुखानि अभूवन् ।

व्याख्या—चित्रयन्तीति चित्राणि = आलेख्यानि सन्ति येषु तानि चित्रवन्ति तेषु चित्रवत्सु = वनवासवृत्तान्तचित्रितेषु सीदन्ति येषु तानि सद्मानि तेषु सद्मसु = मन्दिरेषु "सद्म स्यान्मन्दिरे नीरे" इति मेदिनी । प्रार्थितमनतिक्रम्य यथाप्रार्थितं = यथाभिलाषम् इन्द्रस्य = आत्मनः लिङ्गानि इन्द्रियाणि = चक्षुरादीनि । अर्थ्यन्ते इति अर्थाः = शब्दादिविषयाः । इन्द्रियाणाम् अर्थाः इन्द्रियार्थास्तान् इन्द्रियार्थान् आसेदुषोः = प्राप्तवतोः तयोः = सीतारामयोः दण्डकेषु = जनस्थानेषु, दण्डकवनेष्वित्यर्थः । प्राप्तानि = अनुभूतानि दुःखानि = कष्टानि, सीतावियोगविलापान्वेषणादीनि अपिः = समुच्चये संचिन्त्यमानानि = स्मर्यमाणानि चित्रदर्शनेनेत्यर्थः । सुखानि = सुखकराणि अभूवन् = जातानि । तदानीन्तनानि दुःखानि इदानीं स्मर्यमाणानि सुखकराणि जातानीत्यर्थः ।

समासः—इन्द्रियाणाम् अर्थाः इन्द्रियार्थाःतान् इन्द्रियार्थान्, प्रार्थितमनतिक्रम्य यथाप्रार्थितम् ।

हिन्दी—वनवास के समय के चित्रों से सजे हुए भवनों में अपनी इच्छानुसार इन्द्रियों के शब्दादि विषयों को प्राप्त करने वाले (इच्छानुसार विलास करने वाले) उन दोनों सीता और राम को दण्डक वन में मिले दुःख भी, "इस समय" (चित्र देखने से) स्मरण करने पर सुखकर हो गये थे ॥ २५ ॥

अथाधिकस्निग्धविलोचनेन मुखेन सीता शरपाण्डुरेण ।
आनन्दयित्री परिणेतुरासीदनक्षरव्यञ्जितदोहदेन ॥ २६ ॥

अथ सीताधिकस्निग्धविलोचनेनात्यन्तमसृणलोचनेन शरवत्तृणविशेषवत्पाण्डुरेणात एवानक्षरभवाग्व्यापारं यथा भवति तथा व्यञ्जितं दोहदं गर्भो येन तेन मुखेन परिणेतुः पत्युरानन्दयित्र्यासीत् ॥

अन्वयः—अथ सीता अधिकस्निग्धविलोचनेन शरपाण्डुरेण अनक्षरव्यञ्जितदोहदेन मुखेन परिणेतुः आनन्दयित्री आसीत् ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् सीता = जानकी, अधिकम् = अत्यन्तं स्निग्धे = मसृणे विलोचने = नेत्रे यस्मिन् तत् तेन अधिकस्निग्धविलोचनेन शरवत् = काशवत् पाण्डुरं = पाण्डु तेन शरपाण्डुरेण पीतवर्णवता । अतएव न अक्षरम् अकारादिवर्णः यस्मिन् कर्मणि तत् अनक्षरं वाग्व्यवहारहीनं यथा स्यात्तथा व्यञ्जितं = प्रकटितं दोहदं गर्भः येन तत्तेन अनक्षरव्यञ्जितदोहदेन, अकथनेनैव प्रकाशितगर्भलक्षणेनेत्यर्थः मुखेन = आननेन परिणेतुः = पत्युः, रामस्य आनन्दं करोति आनन्दयति । आनन्दयतीति आनन्दयित्री सुखकर्त्री आसीत् अभूत् ।

समासः—अधिकं स्निग्धे विलोचने यस्मिन् तत् तेन अधिकस्निग्धविलोचनेन । शरवत् पाण्डुरमिति शरपाण्डुरं तेन शरपाण्डुरेण । न अक्षरं यस्मिन् कर्मणि तत् अनक्षरम्, अनक्षरं यथा स्यात्तथा व्यञ्जितं दोहदं येन तत् तेन अनक्षरव्यञ्जितदोहदेन ।

हिन्दी—इसके पश्चात् चमकते सुन्दर नेत्र वाले और पके सरपत के समान पीले, अतएव विना कहे ही गर्भ के लक्षण (चिह्न) को प्रकट करने वाले मुख से सीता जो अपने पति राम को आनन्दित करने वाली हो गई थीं। अर्थात् आँखों की चमक तथा मुख का पीलापन देखकर राम, सीता को गर्भवती जानकर बड़े प्रसन्न हो गए ॥ २६ ॥

तामङ्कमारोप्य कृशाङ्गयष्टिं वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम् ।
विलज्जमानां रहसि प्रतीतः पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम् ॥ २७ ॥

प्रतीतो गर्भज्ञानवान्। रमयतीति रमणः। प्रियां कृशाङ्गयष्टिं वर्णान्तरेण नीलिम्नाक्रान्तपयोधराग्रां विलज्जमानां तां रामां रहस्यङ्कमारोप्याभिलाषं मनोरथं पप्रच्छ। एतच्च—'दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात्' इति शास्त्रात्। न तु लौल्यादित्यनुसंधेयम् ॥

अन्वयः—प्रतीतः रमणः प्रियां कृशांगयष्टिं वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्रां विलज्जमानां तां रामाम् रहसि अङ्कम् आरोप्य अभिलाषं पप्रच्छ ।

व्याख्या—प्रत्येकमगात्, प्रतीयते स्म इति प्रतीतः, गत्यर्थात् कर्तरि कर्मणि वा क्तः। गर्भचिह्नज्ञानवान् रमयतीति रमणः = पतिः प्रियां = वल्लभां कृशा = दुर्बला अंगयष्टिः = शरीरयष्टिः यस्याः सा तां कृशांगयष्टिम्, अन्यः वर्णः वर्णान्तरम्, वर्णान्तरेण = नीलिम्ना आक्रान्तं = व्याप्तं पयोधरयोः = कुचयोः अग्रं = चूचुकं यस्याः सा तां वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम्। विलज्जते या सा विलज्जमाना तां विलज्जमानां तां रमयति, रम्यतेऽस्यां वा सा रामा तां रामां = रमणीं सीताम् रह्यते इति रहः, रमन्तेऽत्रेति वा रहः "देशेऽह च" इत्यसुन् होऽन्तादेशश्च। तस्मिन् रहसि = एकान्ते अंकं = क्रोडम् आरोप्य = संस्थाप्य अभिलाषं = मनोरथं, तदिच्छामित्यर्थः पप्रच्छ = पृच्छति स्म ।

समासः—अंगस्य यष्टिः, अंगमेव यष्टिरिति वा अंगयष्टिः। कृशा अंगयष्टिः यस्याः सा कृशांगयष्टिः ताम् कृशांगयष्टिम्। पयसां धरौ पयोधरौ, अन्यः वर्णः वर्णान्तरम्, वर्णान्तरेण आक्रान्तं पयोधरयोः अग्रं यस्याः सा तां वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम् ।

हिन्दी—सीता जी गर्भवती हैं। ऐसा जानकर राम ने दुर्बल शरीर वाली, तथा श्याम वर्ण से युक्त स्तन के अग्रभाग (चूचुक) वाली, लज्जावती अपनी प्रिया उस आनन्ददायिनी सीता को एकान्त स्थान में गोद में बैठाकर सीता के मनोरथों को पूछते थे। अर्थात् तुम्हारी क्या इच्छा है—ऐसा बराबर पूछते थे ॥ २७ ॥

सा दष्टनीवारबलीनि हिंस्रैः संबद्धवैखानसकन्यकानि ।
इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं भागीरथीतीरतपोवनानि ॥ २८ ॥

सा सीता। हिंस्रैर्दष्टा नीवारा एव बलयो येषु तानि। तिर्यग्भिक्षुकादिदानं बलिः। संबद्धाः कृतसंबन्धाः कृतसख्या वैखानसानां कन्यका येषु तानि कुशवन्ति भागीरथीतीरतपोवनानि भूयः पुनरपि गन्तुमियेषाभिललाष ॥

अन्वयः—सा हिंस्रैः दष्टनीवारबलीनि संबद्धवैखानसकन्यकानि कुशवन्ति भागीरथीतीरतपोवनानि भूयः गन्तुम् इयेष ।

व्याख्या—सा = सीता हिंस्रैः = घातुकैः, सिंहादिभिः दष्टाः = भक्षिताः नीवाराः = तृणधान्यानि एव बलयः = उपहाराः येषु तानि दष्टनीवारबलीनि, विखनसं = ब्रह्माणं वेत्ति तपसा इति वैखानसः = वानप्रस्थः संबद्धाः = संपादितसंबन्धाः वैखानसानां कन्यकाः = कुमार्यः येषु तानि, संबद्धवैखानसकन्यकानि, कुशाः = दर्भाः सन्ति येषु तानि कुशवन्ति, कुशनिर्मितपर्णशालावन्तीत्यर्थः । भं = ज्योतिष्कमण्डलं गीः = वाङ्मयं तत्र रथः इन्द्रियाणि रथ इवास्य स भगीरथः, भगीरथस्य इयं भागीरथी । भागीरथ्याः = गंगायाः तीरं = तटं, तत्र यानि तपसः वनानि = अरण्यानि, आश्रमा इत्यर्थः, इति भागीरथीतीरतपोवनानि तानि भूयः = पुनः गन्तुं = यातुम् इयेष = इच्छतिस्म ।

समासः—नीवारा एव बलयः नीवारबलयः, दष्टाः नीवारबलयः येषु तानि दष्टनीवारबलीनि तानि । संबद्धाः वैखानसानां कन्यकाः येषु तानि संबद्धवैखानसकन्यकानि तानि । भागीरथ्याः तीरं भागीरथीतीरं तत्र यानि तपोवनानि तानि भागीरथीतीरतपोवनानि ।

हिन्दी—"रामचन्द्रजी के पूछने पर" सीता जी ने गंगा जी के तीर पर बसे उन तपोवनों में फिर से एक बार जाने की इच्छा की जिनमें सिंहादि हिंसक प्राणी, पूजा बलि के नीवार (जंगली चावल) खाते हैं। अर्थात् मांस न खाकर घास खाते हैं, और जिनमें सीता जी की सखी बनी हुई वानप्रस्थों की कन्याएँ रहती हैं। और जिनमें कुशा की पर्णकुटियाँ बनी हैं ॥ २८ ॥

तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्रवीरस्तदीप्सितं पार्श्वचरानुयातः ।
आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादमभ्रंलिहमारुरोह ॥ २९ ॥

रघुप्रवीरो रामस्तस्यै सीतायै तत्पूर्वोक्तमीप्सितं मनोरथं प्रतिश्रुत्य 'प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता' इति चतुर्थी । पार्श्वचरैस्तत्कालोचितै रनुयातः सन्मुदितां तामयोध्यामालोकयिष्यन् । अभ्रं लेढीत्यभ्रंलिहमभ्रंकषं प्रासादमारुरोह । 'वहाभ्रे लिहः' इति खश्प्रत्ययः । 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इति मुमागमः ॥

अन्वयः—रघुप्रवीरः तस्यै तत् ईप्सितं प्रतिश्रुत्य पार्श्वचरानुयातः सन् मुदिताम् अयोध्याम् आलोकयिष्यन् अभ्रंलिहं प्रासादम् आरुरोह ।

व्याख्या—प्रकृष्टः वीरः प्रवीरः, रघुषु = रघुवंशीयेषु प्रवीरः = उत्तमः, श्रेष्ठः यः स रघुप्रवीरः = रामचन्द्रः तस्यै = सीतायै तत् = पूर्वोक्तं तपोवनगमनेच्छारूपम्, ईप्सितं = मनोरथं प्रतिश्रुत्य = प्रतिज्ञाय, स्वीकृत्येत्यर्थः । पार्श्वे चरन्तीति पार्श्वचरास्तैः पार्श्वचरैः = तत्कालोचितसेवकैः अनुयातः = अनुगतः सन् मुदितां = प्रसन्नां तां = प्रसिद्धाम् अयोध्यां = साकेतम् आलोकयिष्यन् = समन्तात्पश्यन् (द्रष्टुं) अभ्रम् = व्योम लेढीति अभ्रंलिहम् = गगनस्पर्शिनं प्रासादं = राजभवनम् आरुरोह = आरूढवान् राजभवनोपरि गत इत्यर्थः ।

समासः—प्रकृष्टः वीरः प्रवीरः, रघुषु प्रवीरः, रघुप्रवीरः। पार्श्वचरैः अनुयातः, पार्श्वचरानुयातः।

हिन्दी—रघुकुल में श्रेष्ठ पूज्य रामचन्द्र जी, सीता जी के तपोवन जाने की इच्छा रूपी मनोरथ को स्वीकार करके अपने सेवकों के साथ, सुन्दर अयोध्या की छटा को देखते हुए आकाश को छूने वाले अपने महल के ऊपर (छत पर) चढ़ गये ॥ २९ ॥

ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्विगाह्यमानां सरयूं च नौभिः।
विलासिभिश्चाध्युषितानि पौरैः पुरोपकण्ठोपवनानि रेमे ॥ ३० ॥

स रामः। ऋद्धाः समृद्धा आपणाः पण्यभूमयो यस्मिंस्तं राजपथम्। नौभिः समुद्रवाहिनीभिर्विगाह्यमानां सरयूं च। पौरैर्विलासिभिरध्युषितानि पुरोपकण्ठोपवनानि च पश्यन्रेमे। विलासिन्यश्च विलासिनश्च विलासिनः। 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः॥

अन्वयः—सः ऋद्धापणं राजपथं, नौभिः विगाह्यमानां सरयूं च, पौरैः विलासिभिः अध्युषितानि पुरोपकण्ठवनानि पश्यन् रेमे।

व्याख्या—सः = रामः आ = समन्तात् पणायन्तेऽत्र, पणन्तेऽत्र वा आपणः। ऋद्धाः = सम्पन्नाः = समृद्धिशालिनः आपणाः = हट्टा यस्मिन् स तम् ऋद्धापणं राज्ञां पन्थाः राजपथस्तं राजपथं = राजमार्गं, नुयन्ते नयन्ति पारमिति नावस्ताभिः नौभिः "स्त्रियां नौस्तरणिस्तरिः" इत्यमरः। नौकाभिः, समुद्रवाहिनीभिरित्यर्थः। विगाह्यते इति विगाह्यमाना तां विगाह्यमानाम् = आलोड्यमानां सरयूं = नदीं च पुरे भवाः पौरा स्तैः पौरैः = नागरिकैः विलासिन्यश्च विलासिनश्च विलासिनस्तै विलासिभिः = विलसनशीलैः अध्युषितानि = अधिष्ठितानि, सेवितानीत्यर्थः पुरस्य = नगरस्य उपकण्ठं = समीपमिति पुरोपकण्ठं, पुरोपकण्ठे = नगरसमीपे यानि उपवनानि = आरामाः, तानि पुरोपकण्ठोपवनानि च पश्यन् = अवलोकयन् रेमे = चिक्रीड। एतत्सर्वं विलोक्य रामः प्रसन्नोऽभूदित्यर्थः।

समासः—ऋद्धाः आपणाः यस्मिन् स तं ऋद्धापणम्। राज्ञां पन्थास्तं राजपथम्। उपगतः कण्ठमिति उपकण्ठम् पुरस्य उपकण्ठमिति पुरोपकण्ठं तस्मिन् यानि उपवनानि, पुरोपकण्ठोपवनानि तानि।

हिन्दी—"राजभवन पर चढ़कर" श्रीरामचन्द्र जी, धनधान्य भरे राजमार्ग (बाजार) को, तथा नौका व बजरों से अवगाहन की जा रही सरयू नदी को, और अयोध्या के आस-पास के उद्यानों में विहार करने वाले नगर के शैलानी जनों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥

स किंवदन्तीं वदतां पुरोगः स्ववृत्तमुद्दिश्य विशुद्धवृत्तः।
सर्पाधिराजोरुभुजोऽपसर्पं पप्रच्छ भद्रं विजितारिभद्रः ॥ ३१ ॥

वदतां वाग्मिनां पुरोगः श्रेष्ठो विशुद्धवृत्तः। सर्पाधिराजः शेषस्तद्वदुरू भुजौ यस्य स विजितारिभद्रो विजितारिश्रेष्ठः स रामः स्ववृत्तमुद्दिश्य भद्रं भद्रनामकमपसर्पं चरं किंवदन्तीं जनवादं पप्रच्छ। 'अपसर्पश्चरः स्पशः' इति, 'किंवदन्ती जनश्रुतिः' इति चामरः॥

अन्वयः—वदतां पुरोगः विशुद्धवृत्तः सर्पाधिराजोरुभुजः विजितारिभद्रः सः स्ववृत्तम् उद्दिश्य भद्रम् अपसर्पं किंवदन्तीं पप्रच्छ ।

व्याख्या—वदन्तीति वदन्तः तेषां वदतां = वक्तॄणां पुरः गच्छतीति पुरोगः = श्रेष्ठः, विशेषेण शुद्धं = निर्मलं वृत्तं = चरित्रं यस्य स विशुद्धवृत्तः, सर्पाणां = भुजंगानाम् अधिराजः = शेषः इति सर्पाधिराजः, तद्वत् उरू = विशालौ भुजौ = बाहू यस्य स सर्पाधिराजोरुभुजः सर्पाधिराज इव उरू भुजौ च यस्य स इति वा ऊरुः जङ्घायां ऊरुः विशालः विशाले च । विजितः = पराजितः अरिषु = शत्रुषु भद्रः = श्रेष्ठः, रावण इत्यर्थः, येन स विजितारिभद्रः सः = रामः स्वस्य = निजस्य वृत्तं = चरित्रं स्ववृत्तं तत् उद्दिश्य = लक्षयित्वा भद्रं = भद्रनामानम् अपसर्पति = गूढं चरतीति अपसर्पस्तम् अपसर्पं = गुप्तपुरुषं किंवदन्तीं = जनश्रुतिं प्रपच्छ = पृष्टवान् । "किंवदन्ती" जनश्रुतिः "प्रणिधिरपसर्पश्चरः स्पशः" इत्यमरौ ।

समासः—विशुद्धं वृत्तं यस्य स विशुद्धवृत्तः । सर्पाणामधिराजः सर्पाधिराजः, सर्पाधिराज इव ऊरू भुजौ यस्य स सर्पाधिराजोरुभुजः । अरिषु भद्रः अरिभद्रः जितः अरिभद्रः येन स जितारिभद्रः । कुत्सिता वदन्ती किंवदन्ती तां किंवदन्तीम् ।

हिन्दी—"अयोध्या की छटा देखकर" वक्ताओं में श्रेष्ठ, विशुद्ध चरित्र, अर्थात् सदाचारी, तथा शेषनाग के समान विशाल (बड़ी-बड़ी) भुजा वाले, एवं प्रबल शत्रु को जीतने वाले राम ने अपने भद्रमुख नामक गुप्तचर से अपने संबन्ध में जनता के द्वारा की गई निन्दा भी पूछी । अर्थात् क्या प्रजा मेरी कुछ निन्दा भी करती है—यह पूछा ।

विशेष—इस पद्य में 'सर्पाधिराजोरू' में ऊरू, = जांघ तथा उरु = विशाल, दोनों अर्थ होते हैं किन्तु लम्बी भुजा तो ठीक लगती है । लम्बी जंघा ठीक नहीं है अब विशाल भुजा ही उचित है ॥ ३१ ॥

निर्बन्धपृष्टः स जगाद सर्वं स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम् ।
अन्यत्र रक्षोभवनोषितायाः परिग्रहान्मानवदेव देव्याः ॥ ३२ ॥

निर्बन्धेनाग्रहेण पृष्टः सोऽपसर्पो जगाद । किमिति । हे मानवदेव, रक्षोभवन उषिताया देव्याः सीतायाः परिग्रहात्स्वीकारादन्यत्रेतरांशे । तं वर्जयित्वेत्यर्थः । त्वदीयं सर्वंचरितं पौराः स्तुवन्ति ॥

अन्वयः—निर्बन्धपृष्टः सः जगाद, हे मानवदेव ! रक्षोभवनोषितायाः देव्याः परिग्रहात् अन्यत्र त्वदीयं सर्वं चरितं पौराः स्तुवन्ति ।

व्याख्या—निर्बन्धेन = परमाग्रहेण पृष्टः = जिज्ञासितः, इति निर्बन्धपृष्टः सः = गुप्तचरः भद्रः जगाद = उक्तवान् मनोः इमे मानवाः मानवानां = मनुष्याणां देवः = राजा तत्संबुद्धौ हे मानवदेव ! "राजा भट्टारको देवः" इत्यमरः । रक्षसः = रावणस्य भवनं = गृहं तस्मिन् *उषिता = कृतनिवासा,* तस्याः रक्षोभवनोषितायाः *देव्याः = सीतायाः* परिग्रहात् = स्वीकारात् *अन्यत्र* = अन्यस्मिन् विषये सीतायाः स्वीकरणं विहायेत्यर्थः । तत इदं त्वदीयं = भवदीयं सर्वं =

सम्पूर्णं चरितं = चरित्रं पुरे भवाः पौराः = नागरिकाः स्तुवन्ति = प्रशंसन्ति। केवलं रावणगृहे स्थितायाः सीतायाः स्वीकरणं न प्रशंसन्ति, इत्यर्थः।

समासः—निर्बन्धेन पृष्टः, निर्बन्धपृष्टः। मानवानां देवः मानवदेवस्तत्संबुद्धौ हे मानवदेव ! रक्षसः भवनमिति रक्षोभवनं तत्र उषिता, तस्याः रक्षोभवनोषितायाः।

हिन्दी—"पहले तो वह गुप्तचर चुप रहा" किन्तु आग्रहपूर्वक पूछा गया तो वह बोला, हे मानव देव ! (नररत्न) रावण के घर में रहने वाली सीतादेवी के पुनः स्वीकार को छोड़ कर, और आप के सारे चरित्र की नागरिक प्रशंसा करते हैं। अर्थात् रावण के घर में रहने के कारण, सीता जी को स्वीकार करना अच्छा नहीं मानते। शेष सब प्रशंसनीय है ॥ ३२ ॥

कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहतं कीर्तिविपर्ययेण।
अयोघनेनाय इवाभितप्तं वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे ॥ ३३ ॥

एवं किल कलत्रनिन्दया गुरुणा दुर्वहेण कीर्तिविपर्ययेणापकीर्त्याभ्याहतं वैदेहिबन्धोर्वैदेही-वल्लभस्य। 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' इति ह्रस्वः। कालिदास इतिवत्। हृदयम्। अयोघने-नाभितप्तं संतप्तमय इव विदद्रे विदीर्णम्। कर्तरि लिट् ॥

अन्वयः—एवं किल कलत्रनिन्दागुरुणा कीर्तिविपर्ययेण अभ्याहतं वैदेहिबन्धोः हृदयम् अयोघनेन अभितप्तं अय इव विदद्रे।

व्याख्या—एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण किल = मिथ्यया कड्यते = शिष्यते इति कलत्रं, कलं त्रायते इति वा कलत्रम्। "कलत्रं श्रोणिभार्ययोः" इत्यमरः। कलत्रस्य = पत्न्याः निन्दा = अपवादः, कलत्रनिन्दा, तया गुरुः = दुर्वहः तेन कलत्रनिन्दागुरुणा कीर्तेः = यशसः विपर्ययः = वैपरीत्यं तेन कीर्तिविपर्ययेण = दुर्यशसा, अपवादेनेत्यर्थः। अभ्याहतं = सर्वतस्ताडितं विदेहस्य = जनकस्य राज्ञः इयं पुत्री वैदेही, वैदेह्याः = सीतायाः बन्धुः = स्वजनस्तस्य वैदेहिबन्धोः = जानकी-वल्लभस्य हृदयं = चित्तम्, अयांसि = लौहानि हन्यन्ते = ताड्यन्तेऽनेनेति अयोघनं तेन अयोघ-नेन = लौहकूटेन अभितप्तं = सन्तप्तम् अयः = लौहम् इव = यथा विदद्रे = विदीर्णम्।

समासः—कलत्रस्य निन्दा कलत्रनिन्दा तया गुरुस्तेन कलत्रनिन्दागुरुणा। कीर्तेः विप-र्ययस्तेन कीर्तिविपर्ययेण। वैदेह्याः बन्धुस्तस्य वैदेहिबन्धोः।

हिन्दी—इस प्रकार अपनी पत्नी की झूठी निन्दा से, असह्य अपयश (कलंक) से आहत (पीड़ित) जानकीवल्लभ राम का हृदय वैसे ही फट गया है जैसे कि हथौड़े की चोट से तपा हुआ लोहा फट जाता है ॥ ३३ ॥

किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत संत्यजामि।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृत्तिः ॥ ३४ ॥

आत्मनो निर्वादोऽपवाद एव कथा ताम् । किमापेक्षे । उत अदोषां साध्वीं जायां संत्यजामि ? उभयत्रापि प्रश्ने लट् । इत्येकपक्षाश्रयेऽन्यतरपक्षपरिग्रहे विक्लवत्वादपरिच्छेत्तृत्वात्स रामो दोलेव चला चित्तवृत्तिर्यस्य स द्यासीत् ॥

अन्वयः—आत्मनिर्वादकथां किम् उपेक्षे, उत अदोषां जायाम् सन्त्यजामि, इति एकपक्षाश्रयविक्लवत्वात् सः दोलाचलचित्तवृत्तिः आसीत् ।

व्याख्या—आत्मनः = स्वस्य निर्वादः = निन्दा एव कथा = वार्ता, इति आत्मनिर्वादकथाताम् आत्मनिर्वादकथां किमितिप्रश्ने, उपेक्षे = उपेक्षांकुर्वे उत: = अथवा नदोषः यस्यां सा अदोषा ताम् अदोषां = सतीं साध्वीमित्यर्थः । जायतेऽस्यां सा जाया तां जायां = भार्यां सन्त्यजामि = परित्यजामि, इति = एवम् एकश्चासौ पक्षः = अन्यतरवर्गः, तस्य आश्रयः = परिग्रहः स्वीकरणं तस्मिन् विक्लवः = विह्वलः, इति एकपक्षाश्रयविक्लवः, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् एकपक्षाश्रयविक्लवत्वात्, निन्दाया उपेक्षणे सीतापरित्यागे वा किंकर्तव्यविमूढत्वादित्यर्थः सः = रामः दोलयति, दोल्यते वा दोला = प्रेङ्खा इव चला = चञ्चला चित्तस्य = मनसः वृत्तिः = व्यापारो यस्य स दोलाचलचित्त वृत्तिः "दोला प्रेङ्खादिका स्त्रिया" इत्यमरः । आसीत् = अभूत् ।

समासः—आत्मनः निर्वादः आत्मनिर्वादः, आत्मनिर्वाद एव कथाताम् आत्मनिर्वादकथाम् । न दोषः यस्यां सा ताम् अदोषाम् । एक श्चासौ पक्षः एकपक्षः, एकपक्षस्य आश्रयः, तस्मिन् विक्लवः, इति एकपक्षाश्रयविक्लवस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् एकपक्षाश्रयविक्लवत्वात् । दोलाइव चला चित्तस्य वृत्तिर्यस्य स दोलाचलाचित्तवृत्तिः ।

हिन्दी—अपनी निन्दा रूपी कथा को अनसुनी कर जाऊँ । अथवा निर्दोष सती पत्नी सीता को सदा के लिये त्याग दूँ, इस प्रकार एक पक्ष (बात) के मानने में असमर्थ होने के कारण राम उसी प्रकार डावाँडोल चित्त वाले हो गये, जैसे कि पलना या हिण्डोला चंचल रहता है ॥ ३४ ॥

निश्चित्य चानन्यनिवृत्ति वाच्यं त्यागेन पत्न्याः परिमार्ष्टुमैच्छत् ।
अपि स्वदेहात्किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः ॥ ३५ ॥

किंच । वाच्यमपवादम्, नास्त्यन्येन त्यागातिरिक्तोपायेन निवृत्तिर्यस्य तदनन्यनिवृत्ति निश्चित्य पत्न्यास्त्यागेन परिमार्ष्टुं परिहर्तुमैच्छत् । तथाहि । यशोधनानां पुंसां स्वदेहादपि यशो गरीयो गुरुतरम् । इन्द्रियार्थात्स्रक्चन्दनवनितादेरिन्द्रियविषयाद्गरीय इति किमुत वक्तव्यम् । 'पञ्चमी विभक्ते' इत्युभयत्रापि पञ्चमी । सीता चेन्द्रियार्थ एव ॥

अन्वयः—वाच्यम् अनन्यवृत्ति निश्चित्य, पत्न्याः त्यागेन परिमार्ष्टुम् ऐच्छत् । हि यशोधनानां स्वदेहात् अपि यशः गरीयः इन्द्रियार्थात् किम् उत ।

व्याख्या—उच्यते इति तत् वाच्यम् = निन्दा न विद्यतेऽन्येन = त्यागातिरिक्तेन उपायेन निवृत्तिः = परिमार्जनं यस्य तत् अनन्यनिवृत्ति, इति निश्चित्य = सर्वथामत्वा पत्न्याः = सीतायाः

त्यागेन परिमार्ष्टुं = परिहर्तुं परिक्षालापितुमित्यर्थः । ऐच्छत् = इच्छितवान् । हि = तथाहि यशः = कीर्तिरेव धनं = वित्तं येषां ते तेषां यशोधनानाम् जनानां स्वस्य देहः = शरीरं तस्मात् स्वदेहादपि यशः = कीर्तिः गरीयः = गुरुतरम् विद्यते, इन्द्रियाणां = चक्षुरादीनाम् अर्थः = विषयः स्रक्चन्दनादिस्तस्मात् इन्द्रियार्थात् गरीयः इति किमुत, अत्र किं वक्तव्यं, सीता इन्द्रियार्थः एव अतस्तस्या = परित्याग एव वाच्यपरिमार्जनमित्यर्थः ।

समासः—नास्ति अन्येन निवृत्तिः यस्य तत् अनन्य निवृत्ति तत् । स्वस्य देह स्तस्मात् स्वदेहात् । यशः एव धनं येषां ते तेषां यशोधनानाम् । इन्द्रियाणाम् अर्थः इन्द्रियार्थ स्तस्मात् इन्द्रियार्थात् ।

हिन्दी—किन्तु राम ने देखा कि इस निन्दा को निवारण करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है । अतः पत्नी को त्याग करके इस कलंक का परिमार्जन करने की इच्छा की क्योंकि यशस्वियों को अपने शरीर से भी यश ही अधिक प्रिय होता है । फिर स्त्री आदि भोग्य वस्तुओं का त्यागना कौन बड़ी बात है । सीता भी भोग्य पदार्थ ही है ॥ ३५ ॥

स संनिपात्यावरजान्हतौजास्तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान् ।
कौलीनमात्माश्रयमाचचक्षे तेभ्यः पुनश्चेदमुवाच वाक्यम् ॥ ३६ ॥

हतौजा निस्तेजस्कः स रामस्तस्य रामस्य विक्रियाया दर्शनेन लुप्तहर्षानवरजान्संनिपात्य संगमय्यात्माश्रयं स्वविषयकं कौलीनं निन्दां तेभ्य आचचक्षे । पुनरिदं वाक्यमुवाच च ॥

अन्वयः—हतौजाः सः तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान् अवरजान् सन्निपात्य आत्माश्रयं कौलीनं तेभ्यः आचचक्षे, पुनः च इदं वाक्यम् उवाच ।

व्याख्या—हतं = नष्टम् ओजः = तेजः यस्य स हतौजाः सः = रामः तस्य = रामस्य विक्रिया = विकृतिः, मालिन्यमिति तद्विक्रिया, तस्याः दर्शनम् = अवलोकनं तेन लुप्तः = नष्टः हर्षः = प्रसन्नता येषां ते तान् तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान् । "परिणामो विकारो द्वे समे विकृति-विक्रिये" इत्यमरः । अवरस्मिन्काले जाताः अवरजास्तान् अवरजान् = अनुजान्, भरतादीन् सन्निपात्य = संगमय्य आत्मा = स्वयं रामः आश्रयः = विषयो यस्य तत् आत्माश्रयं तत् । कुलस्यापत्यं कुलीनः, कुलीनस्य भावः कर्म वा कौलीनं = लोकापवादं "स्यात्कौलीनं लोकवादे" इत्यमरः । तेभ्यः = अनुजेभ्यः आचचक्षे = कथयामास, पुनः = भूयः इदं = वक्ष्यमाणं वाक्यं = वचनम् उवाच = उक्तवान्, प्रथमं जनेषु प्रसिद्धं लोकापवादं भ्रातृभ्यः श्रावयित्वा पुनरिदमुक्तवानित्यर्थः ।

समासः—हतम् ओजः यस्य स हतौजाः । विक्रियायाः दर्शनं विक्रियादर्शनं, तस्य विक्रियादर्शनेन लुप्तः हर्षः येषां ते तान् तद्विक्रियादर्शनलुप्तहर्षान् । आत्मा आश्रयो यस्य तत् आत्माश्रयं तत् आत्माश्रयम् ।

हिन्दी—नष्ट कान्ति वाले (उदास) राम ने, अपने उन छोटे भाइयों को बुलाकर अपने विषय में उठी निन्दा उन्हें बताई । और फिर इस प्रकार बोले । जो भाई राम की उदासी को देखकर अपनी प्रसन्नता खो चुके थे । अर्थात् राम को देखते ही सन्न हो गये थे ॥ ३६ ॥

राजर्षिवंशस्य रविप्रसूतेरुपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम् ।
मत्तः सदाचारशुचेः कलङ्कः पयोदवातादिव दर्पणस्य ॥ ३७ ॥

रवेः प्रसूतिर्जन्म यस्य तस्य राजर्षिवंशस्य सदाचारशुचेः सद्वृत्ताच्छुद्धान्मत्तो मत्सकाशात् । दर्पणस्य पयोदवातादिव । अम्भःकणादित्यर्थः । कीदृशोऽयं कलङ्क उपस्थितः प्राप्तः पश्यत ॥

अन्वयः—रविप्रसूतेः राजर्षिवंशस्य सदाचारशुचेः मत्तः (सकाशात्) दर्पणस्य पयोदवातात् इव कीदृशः अयं कलङ्कः उपस्थितः (इति) पश्यत ।

व्याख्या—रवेः = सूर्यात् प्रसूतिः = उत्पत्तिः, जन्मयस्य स तस्य रविप्रसूतेः राज्ञां राजसुवा ऋषयः इव राजर्षयः, राजर्षीणां = राजश्रेष्ठानां वंशः = कुलं तस्य राजर्षिवंशस्य, मनुवंशस्येत्यर्थः सदाचारेण = सद्वृत्तेन शुचिः = शुद्ध इति सदाचारशुचिः तस्मात् सदाचारशुचेः मत्तः = मत्सकाशात् दर्पणस्य = आदर्शस्य पयांसि ददतीति पयोदाः = मेघास्तेषां वातः = बाष्पमिश्रितः पवनस्तस्मात् पयोदवातात् इव = यथा क इव दृश्यतेऽसौ, कस्य इव वा दर्शनमस्य कीदृशः = किम्प्रकारः अयं कलयतीति कल्, कल् चासौ अंकश्चेति कलंकः = अपवादः उपस्थितः = प्राप्तः, इति यूयं पश्यत = अवलोकयत ।

समासः—रवेः = प्रसूतिर्यस्य स, तस्य रविप्रसूतेः । राज्ञां ऋषयः इव इति राजर्षयः, राजर्षीणां वंशस्तस्य राजर्षिवंशस्य । सश्चासौ आचारः सदाचारः, सदाचारेण शुचिस्तस्मात् सदाचारशुचेः । पयोदानां वातः पयोदवात स्तस्मात् पयोदवातात् । कल् चासौ अंकः कलङ्कः ।

हिन्दी—सदाचारी होने के कारण मैं शुद्ध निष्कलंक हूँ फिर भी मेरे कारण सूर्यवंशी राजर्षियों के कुल में यह कलंक उसी प्रकार लगा है । जैसे कि वर्षाती वायु से (भाप पड़ने से) स्वच्छ दर्पण (आयना) धुँधला हो जाता है ॥ ३७ ॥

पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरङ्गेष्विव तैलबिन्दुम् ।
सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकं स्थाणुमिव द्विपेन्द्रः ॥ ३८ ॥

सोऽहम् । अपां तरङ्गेषु तैलबिन्दुमिव पौरेषु बहुलीभवन्तं प्रसरन्तम् । स एव पूर्वो यस्य स तं । तत्पूर्वमवर्णमपवादम् । 'अवर्णाक्षेपनिर्वादपरीवादापवादवत्' इत्यमरः । द्विपेन्द्रः । आलानमेवालानिकम् । विनयादित्वात्स्वार्थे ठक् । अथवालानं बन्धनं प्रयोजनमस्येत्यालानिकम् । 'प्रयोजनम्' इति ठक् । स्थाणुं स्तम्भमिव । चूतवृक्ष इतिवत्सामान्यविशेषभावादपौनरुक्त्यं द्रष्टव्यम् । सोढुं नेशे न शक्नोमि ॥

अन्वयः—सः अहम् अपां तरंगेषु तैलबिन्दुम् इव पौरेषु बहुलीभवन्तं तत्पूर्वम् अवर्णं द्विपेन्द्रः आलानिकं स्थाणुम् इव सोढुं न ईशे ।

व्याख्या—सोऽहम् = एवंभूतो रामः अपां = जलानां तरंगेषु = वीचिषु तिलस्य, तत्सदृश-स्यवाविकार स्नैलम् तस्य तैलस्य = स्नेहस्य बिन्दुः = पृषतः, इति तैलबिन्दुः इव = यथा पुरे भवाः पौरास्तेषु पौरेषु = नागरिकेषु न बहुलः अबहुलः अबहुलः बहुलः भवन् बहुलीभवन तं बहुली-

भवन्तं = प्रसरन्तं सः एव पूर्वः = प्रथमः यस्य स तं तत्पूर्वम्, वर्ण्यते इति वर्णः = प्रशंसा तद्विरुद्धः अवर्णस्तम् अवर्ण = निन्दां "अवर्णाक्षेपनिर्वादपरीवादापवादवत्" इत्यमरः। द्वाभ्यां = मुख शुण्डाभ्यां पिबन्तीति द्विपास्तेषाम् इन्द्रः इति द्विपेन्द्रः = गजेन्द्रः, आलीयते = संश्लिष्यतेऽत्र आलानं = बन्धनस्तम्भः, आलानमेव आलानिकं = गजबन्धनस्तम्भम्। "आलानंबन्धस्तम्भः" इत्यमरः। तिष्ठतीति स्थाणुः तं स्थाणुं = शङ्कुम् "स्थाणुर्वा ध्रुवः शंकु"रित्यमरः। इव = यथा सोढुं = सहनंकर्तुं न ईशे = न शक्नोमि।

समासः—तैलस्य बिन्दुस्तैलबिन्दुस्तं तैलबिन्दुम्। द्विपानामिन्द्रः द्विपेन्द्रः। सः पूर्वः यस्य स तं तत्पूर्वम्। न वर्णः अवर्णस्तम् अवर्णम्।

हिन्दी—जल की तरंगों के ऊपर जैसे तेल की बूँद, बड़ी तेजी से फैल जाती है। वैसे ही नागरिकों में (घर घर) तेजी से फैलती हुई, इस सर्वप्रथम अपवाद (झूठी निन्दा) को निष्कलंक मैं उसी प्रकार सहन करना नहीं चाहता हूँ। जिस प्रकार गजेन्द्र, अपने बन्धन के खूँटे को सहन करना नहीं चाहता है ॥ ३८ ॥

तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तावुपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः।
त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव ॥ ३९ ॥

तस्यावर्णस्यापनोदाय फलप्रवृत्तावपत्योत्पत्तावुपस्थितायां सत्यामपि निर्व्यपेक्षो निःस्पृहः सन्। वैदेहसुताम्। पुरस्तात्पूर्वं पितुराज्ञया समुद्रनेमिं समुद्रो नेमिरिव नेमिर्यस्याः सा भूमिः तामिव। त्यक्ष्यामि॥

अन्वयः—तस्य अपनोदाय फलप्रवृत्तौ उपस्थितायाम् अपि निर्व्यपेक्षः सन् वैदेहसुतां पुरस्तात् पितुः आज्ञया समुद्रनेमिम् इव त्यक्ष्यामि।

व्याख्या—तस्य = सर्वप्रथमापवादस्य अपनोदाय = दूरीकरणाय विनाशायेत्यर्थः। फलस्य = पुत्ररूपस्य प्रवृत्तिः = उत्पत्तिः तस्यां फलप्रवृत्तौ उपस्थितायां = प्राप्तायां सत्यामपिनिर्गता विशेषा अपेक्षा यस्य स निर्व्यपेक्षः = निस्पृहः सन् विदेहानांराजा वैदेहः। वैदेहस्य = राज्ञो जनकस्य सुता = पुत्री तां वैदेहसुतां = सीतामित्यर्थः। पुरस्तात् = पूर्वं पितुः = स्वजनकस्य दशरथस्य-आज्ञया = आदेशेन चन्द्रोदयात् आपः सम्यगुन्दन्ति = क्लिद्यन्ति यत्र स समुद्रः। समुन्दयन्तीति समुद्रः = सागरः नेमिः = परिधिः इव नेमिः यस्याः सा तां समुद्रनेमिं = पृथिवीम् इव = यथा त्यक्ष्यामि, पृथिवीं इव जानकीं परित्यक्ष्यामि, इत्यर्थः।

समासः—फलस्य प्रवृत्तिः फलप्रवृत्तिः तस्यां फलप्रवृत्तौ निर्गता विशिष्टा अपेक्षा यस्य स निर्व्यपेक्षः। वैदेहस्य सुता वैदेहसुता तां वैदेहसुताम्। समुद्रः नेमिः इव नेमिः यस्याः सा तां समुद्रनेमिम्।

हिन्दी—इसलिये उस कलंक को मिटाने के लिये सीता के पुत्र रूप फल की प्राप्ति के अवसर पर भी अपनी विशेष आशा का त्याग करके भी मैं उसी प्रकार जानकी को त्याग दूँगा, जिस प्रकार पहले पिता जी की आज्ञा से समुद्रपर्यन्त पृथिवी का त्याग कर दिया था ॥ ३९ ॥

ननु सर्वथा साध्वी न त्याज्येत्यत्राह—

अवैमि चैनामनघेति किंतु लोकापवादो बलवान्मतो मे ।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥ ४० ॥

एनां सीतामनघा साध्वीति चावैमि । किंतु मे मम लोकापवादो बलवान्मतः । कुतः । हि यस्मात्प्रजाभिर्भूमेश्छाया प्रतिबिम्बं शुद्धिमतो निर्मलस्य शशिनो मलत्वेन कलङ्कत्वेनारोपिता । अतो लोकापवाद एव बलवानित्यर्थः ॥

अन्वयः—एनाम् अनघा इति च अवैमि, किन्तु मे लोकापवादः बलवान् मतः हि प्रजाभिः भूमेः छाया शुद्धिमतः शशिनः मलत्वेन आरोपिता ।

व्याख्या—ननु सीता सर्वथा सती साध्वीति न त्यज्यतामित्याह एनां = जानकीम् अहम् अंघते = गच्छति दानादिना अघः । न अघः यस्यां सा अनघा = अकलंका साध्वी, इति च अहं रामः अवैमि = वेद्मि किन्तुः अनघत्वेन ज्ञातत्वेऽपि मे = मम लोकेषु = जनेषु अपवादः = निन्दा इति लोकापवादः । बलवान् = प्रबलः मतः । हि = यतः प्रजाभिः = लोकैः जनैरित्यर्थः । भूमेः = पृथिव्याः छाया = कान्तिः शुद्धिरस्यास्तीति शुद्धिमान् तस्य शुद्धिमतः = निर्मलस्य शशः अस्यास्तीति शशी तस्य शशिनः = चन्द्रस्य मलत्वेन = कलंकत्वेन आरोपिता = स्थापिता, वर्णितेत्यर्थः । अतः मम मते लोकापवादः प्रबल इत्यर्थः ।

समासः—न अघः यस्यां सा अनघा । लोकेषु अपवादः लोकापवादः ।

हिन्दी—सीता जी निर्दोष हैं इस बात को मैं जानता हूँ । किन्तु फिर भी मेरी दृष्टि में लोकनिन्दा बड़ी भारी है । देखो, लोगों ने पृथिवी की छाया को निर्मल चन्द्रमा का कलंक मान लिया है । अर्थात् झूठे कलंक को लोग सत्य मानते हैं । अतः लोकापवाद ही सत्य एवं प्रबल है ॥ ४० ॥

रक्षोवधान्तो न च मे प्रयासो व्यर्थः स वैरप्रतिमोचनाय ।
अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः ॥ ४१ ॥

किंच । मे रक्षोवधान्तः प्रयासो व्यर्थो न । किंतु स वैरप्रतिमोचनाय वैरशोधनाय । तथाहि अमर्षणोऽसहनो द्विजिह्वः सर्पः पदा पादेन स्पृशन्तं पुरुषं शोणितकाङ्क्षया दशति किम् । किंतु वैरनिर्यातनायेत्यर्थः ॥

अन्वयः—मे रक्षोवधान्तः प्रयासः व्यर्थः न च, "किन्तु" सः वैरप्रतिमोचनाय "तथाहि" अमर्षणः द्विजिह्वः पदा स्पृशन्तं शोणितकांक्षया दशतिकिम् ।

व्याख्या—रक्षसः = रावणस्य वधः = मारणम् अन्तः = अवसानं यस्य स रक्षोवधान्तः प्रकर्षेण यसनं प्रयासः = उद्योगः व्यर्थः = निरर्थकः न = नहि । किन्तु सः = प्रयासः वैरस्य = *विरोधस्य प्रतिमोचनं = शोधनं तस्मै वैरप्रतिमोचनाय "वैरं विरोधो विद्वेषः"* इत्यमरः आसीदिति शेषः । तथाहि न मर्षणः अमर्षणः = असहनशीलः द्वे जिह्वे यस्य स द्विजिह्वः = सर्पः

"द्विजिह्वौसर्पसूचकौ" इत्यमरः। पदा=पादेन, चरणेन स्पृशन्तं=श्लिष्यन्तं जनं शोणितस्य=रुधिरस्य कांक्षा=अभिलाषा, तया शोणितकांक्षया, रुधिरभक्षणेच्छया, इत्यर्थः। दशति=दंशति किम्? इति प्रश्नः। रुधिरेच्छया न दंशति किन्तु वैरनिर्यातनायैव दंशति। एवं मयापि वैरशोधनायैवरावणवधः कृतः इत्यर्थः।

समासः—रक्षसः वधः रक्षोवधः, स एव अन्तो यस्य सः। वैरस्य प्रतिमोचनमिति वैरप्रतिमोचनं तस्मै वैरप्रतिमोचनाय। न मर्षणः अमर्षणः। शोणितस्य कांक्षा तया शोणितकांक्षया। द्वे जिह्वे यस्य स द्विजिह्वः।

हिन्दी—"सीता को त्यागने पर भी" रावण के विनाश करने तक का मेरा प्रयत्न व्यर्थ नहीं जायगा। क्योंकि रावण को मारना तो बदला लेने के लिये था। देखो! क्रोध में भरा साँप पैर से छूने वाले पुरुष को क्या खून के लोभ से काटता है? नहीं, किन्तु बदला लेने के लिये ही डँसता है॥ ४१॥

तदेष सर्गः करुणार्द्रचित्तैर्न मे भवद्भिः प्रतिषेधनीयः।
यद्यर्थिता निर्हृतवाच्यशल्यान्प्राणान्मया धारयितुं चिरं वः॥ ४२॥

तत्तस्मादेष मे सर्गो निश्चयः। 'सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु' इत्यमरः। करुणार्द्रचित्तैर्भवद्भिर्न प्रतिषेधनीयः। निर्हृतं वाच्यमेव शल्यं येषां तान् प्राणान्मया चिरं धारयितुं धारणं कारयितुं वो युष्माकमर्थितार्थित्वमिच्छा यदि। अस्तीति शेषः॥

अन्वयः—तत् एषः मे सर्गः करुणार्द्रचित्तैः भवद्भिः न प्रतिषेधनीयः निर्हृतवाच्यशल्यान् प्राणान् मया चिरं धारयितुं वः अर्थिता यदि अस्ति।

व्याख्या—तत्=तस्मात् कारणात् एषः=सीतापरित्यागरूपः मे=रामस्य सृज्यते इति सर्गः=निश्चयः "सर्गः स्वभाव निर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु" इत्यमरः। करुणया=कृपया आर्द्रं=क्लिन्नं चित्तं=हृदयं येषां ते तैः करुणार्द्रचित्तैः "करुणा तु कृपायां स्यात्" इति हैमः। "आर्द्रं सार्द्रं तुक्लिन्नम्" इत्यमरः। भवद्भिः=भरतादिभिः भ्रातृभिः न प्रतिषेधनीयः=न प्रतिषेधितव्यः, नहि निवारणीयः इत्यर्थः। निर्हृतं=दूरीकृतम्, अपनीतं वाच्यं=निन्दा एव शल्यं=शंकुः येषां ते तान् निर्हृतवाच्यशल्यान् प्राणान्=जीवनमित्यर्थः मया=रामेण चिरं=धारयितुं=धारणं कारयितुं वः=युष्माकं भ्रातृणाम् अर्थिनां भावः अर्थिता=अभिलाषा यदि=चेदस्तीतिशेषः।

समासः—करुणया आर्द्रं चित्तं येषां ते तैः करुणार्द्रचित्तैः निर्हृतं वाच्यमेव शल्यं येषां ते तान् निर्हृतवाच्यशल्यान्।

हिन्दी—इसलिये, यदि निन्दारूपी काँटे (कील) को मेरे हृदय से निकालकर मुझे जीवित रखने की आपकी इच्छा हो तो, मेरे इस निश्चय (सीता का त्याग) को करुणापूर्ण हृदय वाले आप लोग निषेध न करें। अर्थात् निन्दा होने से मैं जीवित नहीं रहूँगा, सीता को छोड़ने पर निन्दा मिट जायगी। अतः इससे मुझे न रोकें॥ ४२॥

इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम् ।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा ॥ ४३ ॥

इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां विषये नितान्तरूक्षाभिनिवेशमतिक्रूराग्रहमीशं स्वामिनं तेषु भ्रातृषु मध्ये कश्चनापि निषेद्धुं निवारयितुमनुमोदितुं प्रवर्तयितुं वा शक्तो नासीत् । पक्षद्वयस्यापि प्रबलत्वादित्यर्थः ॥

अन्वय—इति उक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशम् ईशं तेषु भ्रातृषु मध्ये कश्चन अपि निषेद्धुम् अनुमोदितुं वा न शक्तः आसीत् ।

व्याख्या—इति = इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण उक्तवन्तं = कथयन्तं जनकस्य = विदेहस्य आत्मजा = पुत्री जनकात्मजा तस्यां जनकात्मजायां विषये नितान्तम् = अत्यन्तं रूक्षः = क्रूरः कठोरः अभिनिवेशः = आग्रहः, दृढसंकल्पः यस्य स तं नितान्तरूक्षाभिनिवेशम् ईशं = ईश्वरं स्वामिनं रामं, तेषु भ्रातृषु = भरतादिसहोदरेषु मध्ये कश्चनापि = कोऽपि जनः निषेद्धुं = निवारयितुम् अनुमोदितुं = समर्थयितुं वा न शक्तः = न समर्थः आसीत् = जातः ।

समासः—जनकस्य आत्मजा, जनकात्मजा तस्यां जनकात्मजायाम् । नितान्तं रूक्षः अभिनिवेशः यस्य स तं नितान्तरूक्षाभिनिवेशम् ।

हिन्दी—इस प्रकार कहते हुए, सीता जी के विषय में अत्यन्त कठोर दृढ़निश्चय वाले राम को, उन भाइयों में से कोई भी रोकने में या समर्थन करने में ही समर्थ हो न सका ॥४३॥

स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्वजन्मा विलोक्य लोकत्रयगीतकीर्तिः ।
सौम्येति चाभाष्य यथार्थभाषी स्थितं निदेशे पृथगादिदेश ॥ ४४ ॥

लोकत्रयगीतकीर्तिर्यथार्थभाषी लक्ष्मणपूर्वजन्मा लक्ष्मणाग्रजः स रामो निदेशे स्थितमाज्ञाकारिणं लक्ष्मणं विलोक्य 'हे सौम्य, सुभग' इत्याभाष्य च पृथग्भरतशत्रुघ्नाभ्यां विनाकृत्यादिदेशाज्ञापयामास ॥

अन्वयः—लोकत्रयगीतकीर्तिः यथार्थभाषी लक्ष्मणपूर्वजन्मा सः निदेशेस्थितं लक्ष्मणं विलोक्य हे सौम्य ! इति आभाष्य च पृथग् आदिदेश ।

व्याख्या—लोकानां त्रयामिति लोकत्रयं, लोकत्रये = भुवनत्रये गीता = गानं नीता कीर्तिः = यशः यस्य स लोकत्रयगीतकीर्तिः अर्थमनतिक्रम्य यथार्थं = सत्यं भाषते तच्छीलः *यथार्थभाषी लक्ष्मणात् पूर्वं जन्म यस्य स लक्ष्मणपूर्वजन्मा = लक्ष्मणाग्रजः रामः निदेशे = आज्ञायां स्थितं = वर्तमानं आज्ञाकारिणमित्यर्थः ।* लक्ष्मणं = सौमित्रिं विलोक्य = दृष्ट्वा सोमइव सोमः, सोम एव सौम्यः, तत्संबुद्धौ हे सौम्य = हे सुन्दर ! इति = इत्थम् आभाष्य = कथयित्वा च पृथक् = भरतशत्रुघ्नौ वर्जयित्वा आदिदेश = आज्ञापितवान् ।

समासः—लोकानां त्रयमिति लोकत्रयं, लोकत्रये गीता कीर्तिः यस्य स लोकत्रयगीतकीर्तिः । लक्ष्मणात् पूर्वस्मिन् काले जन्म यस्य स लक्ष्मणपूर्वजन्मा ।

हिन्दी—तीनों लोकों में जिनका यशोगान हो रहा है। तथा यथार्थ (सत्य) कहने वाले, लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने आज्ञाकारी लक्ष्मण को देखकर, हे सुन्दर लक्ष्मण यह कहकर भरत शत्रुघ्न से अलग ले जाकर आज्ञा दी ॥ ४४ ॥

प्रजावती दोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव ।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम् ॥ ४५ ॥

दोहदो गर्भिणीमनोरथः। तच्छंसिनी ते प्रजावती भ्रातृजाया। 'प्रजावती भ्रातृजाया' इत्यमरः। तपोवनेषु स्पृहयालुरेव सस्पृहेव। 'स्पृहिगृहि–' इत्यादिनालुच्प्रत्ययः। स त्वं रथी सन्। तद्व्यपदेशेन दोहदमिषेण नेयां नेतव्यामेनां सीतां वाल्मीकेः पदं स्थानं प्रापय्य गमयित्वा। 'विभाषापः' इत्ययादेशः। त्यज ॥

अन्वयः—दोहदशंसिनी ते प्रजावती तपोवनेषु स्पृहयालुः एव, सः त्वं रथी सन् तद्व्यपदेशनेयाम् एनां वाल्मीकिपदं प्रापय्य त्यज।

व्याख्या—दोहम् = आकर्षं ददतीति दोहदं = गर्भिण्यभिलाषः तच्छंसते या सा दोहदशंसिनी ते = तव लक्ष्मणस्य प्रजा = सन्तानः अस्त्यस्याः सा प्रजावती = भ्रातृजाया "प्रजावती भ्रातृजाया" इत्यमरः। तपसां = तपस्विनां वनानि = अरण्यानि तपोवनानि तेषु तपोवनेषु = आश्रयेषु स्पृहा = अभिलाषा अस्त्यस्याः सा स्पृहयालुः एवास्ति। अतः स त्वं = आज्ञाकारी लक्ष्मणः रथः = स्यन्दनोऽस्यास्तीति रथी = रथिकः सन् "रथीस्यन्दनारोहः" इत्यमरः। तस्य = गर्भिणीमनोरथस्य व्यपदेशः = व्याजः, कपटः, इति तद्व्यपदेश स्तेन नेया = नेतव्या तां तद्व्यपदेशनेयाम् एनां = जानकीं वलन्ते प्राणिनोऽत्र वल्मीकः "अलीकादयश्चेति" उणादिसूत्रेणनिपातनात्साधुः। वल्मीकः = उपीकानिर्मितमृत्तिकास्तूपः, उत्पत्तिकारणत्वेनास्ति अस्य स वाल्मीकिः। वाल्मीकेः = मुनेः पदं = स्थानमिति तत् वाल्मीकिपदं प्रापय्य = नयित्वा त्यज = विसृज।

समासः—दोहदस्य शंसिनी दोहदशंसिनी। तपसां वनानि तेषु तपोवनेषु। तस्य व्यपदेश स्तद्व्यपदेश स्तेन नेयां तद्व्यपदेशनेया तां तद्व्यपदेशनेयाम्। वाल्मीकेः पदमिति वाल्मीकिपदं तत् वाल्मीकिपदम्।

हिन्दी—गर्भिणी के मनोरथ को प्रकट करने वाली तुम्हारी भाभी तपोवन में जाने के लिये प्रबल इच्छा वाली है ही। इसलिये तुम रथ पर बैठा कर तपोवन दिखाने के बहाने सीता को वाल्मीकि ऋषि के आश्रम ले जाकर छोड़ दो ॥ ४५ ॥

स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण पितुर्नियोगात्प्रहृतं द्विषद्वत् ।
प्रत्यग्रहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ॥ ४६ ॥

पितुर्जमदग्नेर्नियोगाच्छासनाद्भार्गवेण जामदग्न्येन कर्त्रा। 'न लोक–' इत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधः। मातरि द्विषतीव द्विषद्वत्। 'तत्र तस्येव' इति वतिप्रत्ययः। प्रहृतं प्रहारं शुश्रुवाञ्छ्रु-

तवान्। 'भाषायां सदवसश्रुवः' इति कसुप्रत्ययः। स लक्ष्मणस्तदग्रजशासनं प्रत्यग्रहीत्। हि यस्माद्गुरूणामाज्ञाऽविचारणीया ॥

अन्वयः—पितुः नियोगात् भार्गवेणमातरि द्विषद्वत् प्रहृतंशुश्रुवान् सः तत् अग्रजशासनं प्रत्यग्रहीत्, हि—गुरूणाम् आज्ञा अविचारणीया।

व्याख्या—पितुः = जनकस्य जमदग्नेः नियोगात् = शासनात् भृगोः अपत्यं पुमान् भार्गवस्तेन भार्गवेण = परशुरामेण कर्त्रा मातरि = रेणुकायां द्विषति इव द्विषद्वत् = शत्रुवत् प्रहृतं = प्रहारं कुठारेण कण्ठच्छेदनामित्यर्थः शुश्रुवान् = आकर्णितवान् सः = लक्ष्मणः तत् = सीतापरित्याग-रूपम् अग्रजस्य = ज्येष्ठभ्रातुः शासनम् = आज्ञापनमिति अग्रजेशासनं तत् प्रत्यग्रहीत = स्वीचकार। हि = यस्मात् गुरूणां = पूज्यानाम् आज्ञा = निदेशः न विचारणीया अविचारणीया = अचिन्तनीया। तत्कर्तव्यतायां विचारयितुं न योग्येत्यर्थः।

समासः—अग्रे जातः इत्यग्रजः। अग्रजस्य शासनमिति अग्रजशासनं तत्। न विचारणीया इति अविचारणीया।

हिन्दी—पिता की आज्ञा से परशुराम जी ने अपनी माँ को कुठार से शत्रु के समान मार डाला था, यह लक्ष्मण ने सुन रखा था। इसलिये पिता के समान बड़े भाई की उस आज्ञा को लक्ष्मण ने स्वीकार कर लिया था। ठीक ही है, बड़ों की आज्ञा विचार के योग्य नहीं है। अर्थात् बड़ों की आज्ञा को बिना विचारे शिरोधार्य करना चाहिये ॥ ४६ ॥

अथानुकूलश्रवणप्रतीतामत्रस्नुभिर्युक्तधुरं तुरंगैः।
रथं सुमन्त्रप्रतिपन्नरश्मिमारोप्य वैदेहसुतां प्रतस्थे ॥ ४७ ॥

अथासौ लक्ष्मणः। अनुकूलश्रवणेन प्रतीतामिष्टाकर्णनेन तुष्टां वैदेहसुतामत्रस्नुभिरभी-रुभिर्गर्भिणीवहनयोग्यैः। 'त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः' इति क्नुप्रत्ययः। तुरंगैर्युक्तधुरं सुमन्त्रेण प्रतिपन्नरश्मिं गृहीतप्रग्रहं रथमारोप्य प्रतस्थे ॥

अन्वयः—अथ असौ अनुकूलश्रवणप्रतीतां वैदेहसुताम् अत्रस्नुभिः तुरङ्गैः युक्तधुरं सुमंत्र प्रतिपन्नरश्मिं रथम् आरोप्य प्रतस्थे।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् असौ लक्ष्मणः अनुकूलस्य = अभिलषितस्य, इष्टस्येत्यर्थः श्रवणम् = आकर्णनं तेन प्रतीता = प्रसन्ना, ताम् अनुकूलश्रवणप्रतीतां वैदेहस्य = राज्ञो जनकस्य सुता = पुत्री तां वैदेहसुताम्, त्रस्यन्तीति त्रस्नवः, न त्रस्नवः अत्रस्नवस्तैः अत्रस्नुभिः = अभीरुकैः, भयरहितैरित्यर्थः तुरेण = त्वरया गच्छन्तीति तुरंगा अश्वैः तुरंगैः = अश्वैः, गर्भवतीवह-नयोग्यैरित्यर्थः युक्ता = संलग्ना धुः = यानमुखं यस्य स तं युक्तधुरं सुमन्त्रेण = दशरथस्य मन्त्रिणा, सारथिना च प्रतिपन्नाः = प्रगृहीताः रश्मयः = प्रग्रहाः यस्य स तं सुमंत्रप्रतिपन्न-रश्मिम् रथं = स्यन्दनम् आरोप्य = उपवेश्य प्रतस्थेः = चचाल।

समासः—अनुकूलस्य श्रवणमिति अनुकूलश्रवणम्, अनुकूलश्रवणेन प्रतीता ताम् अनुकूल-

श्रवणप्रतीताम्। वैदेहस्यसुता तां वैदेहसुताम्। युक्ता धूः यस्य स तं युक्तधुरम्। सुमंत्रेण प्रतिपन्नाः रश्मयो यस्य स तं सुमंत्रप्रतिपन्नरश्मिम्।

हिन्दी—इसके बाद, अपनी इच्छानुसार बात को सुनकर प्रसन्न हुई, जनकनन्दिनी सीता को लक्ष्मण जी उस रथ में बैठाकर चल पड़े। जिसे कि दशरथ के मंत्री एवं सारथी सुमंत्र हाँक रहे थे। तथा जिसमें गर्भिणी को ले चलने योग्य सरल घोड़े जुते हुए थे। अतः हिच-कोले नहीं लग सकते थे॥ ४७॥

सा नीयमाना रुचिरान्प्रदेशान्प्रियंकरो मे प्रिय इत्यनन्दत्।
नाबुद्ध कल्पद्रुमतां विहाय जातं तमात्मन्यसिपत्रवृक्षम्॥ ४८॥

सा सीता रुचिरान्प्रदेशान्नीयमाना प्राप्यमाणा सती मे मम प्रियः प्रियं करोतीति प्रियंकरः प्रियकारीत्यनन्दत्। 'क्षेमप्रियमद्रेऽण्च' इति चकारात्खच्प्रत्ययः। तं प्रियमात्मनि विषये कल्पद्रुमतां विहायासिपत्रवृक्षं जातं नाबुद्ध नाज्ञासीत्। बुध्यतेर्लुङ्। असिपत्रः खड्गाकारदलः कोऽप्यपूर्वो वृक्षविशेषः। 'असिपत्रो भवेत्कोषाकारे च नरकान्तरे' इति विश्वः। आसन्नघातुक इति भावः॥

अन्वयः—सा रुचिरान् प्रदेशान् नीयमाना सती मे प्रियः प्रियंकरः इति अनन्दत्। तम् आत्मनि कल्पद्रुमतां विहाय असिपत्रवृक्षं जातं न अबुद्ध।

व्याख्या—सा = सीता रोचन्ते इति रुचिरास्तान् रुचिरान् = मनोरमान्, सुन्दरानित्यर्थः। प्रदेशान् = स्थानविशेषान् नीयतेऽसौ नीयमाना = प्राप्यमाणा सती मे = मम सीतायाः प्रियः = पतिः "धवः प्रियः पति भर्ता" इत्यमरः। प्रियम् = अभिमतं करोतीति प्रियंकरः इति = एवम् अनन्दत् = आनन्दितवती। तं = प्रियपतिम् आत्मनि = स्वविषये कल्पस्य = संकल्पितार्थस्य द्रुमः = वृक्षः इति कल्पद्रुमः, तस्य भावः कल्पद्रुता तां कल्पद्रुमतां विहाय = त्यक्त्वा असतीति असिः = खड्गः, कृपाणः। असिरिव तीक्ष्णं पत्रं यस्य सः असिपत्रः। असिपत्रश्चासौ वृक्षः = खड्गदलाकारः द्रुमविशेषः तम् असिपत्रवृक्षं जातं = भूतं न अबुद्ध = न अज्ञासीत्।

समासः—असिरिव पत्रं यस्य सः असिपत्रः। असिपत्रश्चासौ वृक्षस्तम् असिपत्रवृक्षम्। कल्पस्य द्रुमः कल्पद्रुमस्तस्य भावस्तत्ता तां कल्पद्रुमताम्।

हिन्दी—सुन्दर रमणीय प्रदेशों को ले जाई जाती सीता जी यह विचार कर बड़ी प्रसन्न हुई कि मेरे प्राणप्रिय राम मेरे मन की बात सदा पूरी करते हैं। किन्तु सीता ने यह नहीं जाना कि वे प्रिय पति इस समय मनोरथों को पूरा करने वाले कल्पवृक्षपने को छोड़कर तलवार के समान पत्तों वाले वृक्ष के समान घातक हो गये हैं॥ ४८॥

जुगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्सव्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा।
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखमत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन॥ ४९॥

पथि लक्ष्मणो यद्दुःखं तस्याः सीताया जुगूह प्रतिसंहृतवांस्तद्गुरु भावि भविष्यद्दुःखमत्यन्तलुप्त

प्रियदर्शनं यस्य तेन स्फुरता सव्येतरेण दक्षिणेनाक्ष्णास्यै सीताया आख्यातम्। स्त्रीणां दक्षिणाक्षिस्फुरणं दुर्निमित्तमाहुः ॥

अन्वयः—पथि लक्ष्मणः यत् तस्याः जुगूह, तत् गुरू भावि दुःखम् अत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन स्फुरता सव्येतरेण अक्ष्णा अस्यै आख्यातम्।

व्याख्या—पथि = मार्गे लक्ष्मणः = सौमित्रिः यत् = दुःखं जुगूह = अगूहीत् । तत् गुरु = महद्भयंकरं भावि = भविष्यत् दुःखं = कष्टम् अन्तस्य अत्ययः, अत्यन्तं = भृशं, जीवनपर्यन्तमित्यर्थः लुप्तम् = नष्टं प्रियस्य = धवस्य दर्शनम् = अवलोकनं यस्य तत् तेन अत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन सव्यादितरत् सव्येतरत्तेन सव्येतरेण = दक्षिणेन "वामं शरीरं तु सव्यंस्यात्" इत्यमरः। अक्ष्णा = नेत्रेण अस्यै = सीतायै आख्यातं = कथितम्, सूचितमित्यर्थः । स्त्रीणां दक्षिणांगस्फुरणमशुभसूचकं भवतीति शास्त्रात्।

समासः—अत्यन्तं लुप्तं प्रियस्य दर्शनं यस्य तत् तेन अत्यन्तलुप्तप्रियदर्शनेन। सव्यादितरत् तेन सव्येतरेण।

हिन्दी—मार्ग में लक्ष्मण ने जिस बात को सीता से छिपाया था। भारी तथा तुरन्त आने वाले उस महाकष्ट को फरकते हुए, उस दाहिने नेत्र ने सीता जी को सूचित कर दिया। जिस नेत्र से सदा के लिये प्रिय (राम) का दर्शन छूट गया है। स्त्रियों के दाहिने अंग का फरकना ज्योतिष में अशुभ माना है ॥ ४९ ॥

सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा।
राज्ञः शिवं सावरजस्य भूयादित्याशशंसे करणैरबाह्यैः ॥ ५० ॥

सा सीता दुर्निमित्तेन दक्षिणाक्षिस्फुरणरूपेणोपगतात्प्राप्ताद्विषादाद्दुःखात्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा सती सावरजस्य सानुजस्य राज्ञो रामस्य शिवं भूयादित्यबाह्यैः करणैरन्तःकरणैराशशंसे। शंसतेरपेक्षायामात्मनेपदमिष्यते। करणैरिति बहुवचनं क्रियावृत्त्यभिप्रायम्। पुनः पुनराशशंसेत्यर्थः॥

अन्वयः—सा दुर्निमित्तोपगमात् विषादात् सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा सती सावरजस्य राज्ञः शिवं भूयात्, इति अबाह्यैः करणैः अशशंसे।

व्याख्या—सा = सीता दुष्टमशुभं च तन्निमित्तं = दक्षिणाक्षिस्फुरणं तेन उपगमः = प्राप्तस्तस्मात् दुर्निमित्तोपगमात् विषादात् = अवसादात् खिन्नतयेत्यर्थः। सद्यः = तत्क्षणे मुखमरविन्दम् इव इति मुखारविन्दम्, परिम्लानं = क्लान्तं = विषण्णं मुखारविन्दं = मुखकमलं यस्या सा परिम्लानमुखारविन्दा सती, अवरस्मिन् काले जाताः अवरजाः = अनुजाः तैः सहितः सावरजस्तस्य सावरजस्य राज्ञः = रामचन्द्रस्य शिवं = कल्याणं भूयात् = भवतु इति इत्थम् बहिर्भवानि बाह्यानि, न बाह्यानि अबाह्यानि तैः अबाह्यैः करणैः = अन्तःकरणैः आशंशसे = पुनः पुनः प्रार्थयामासेत्यर्थः।

समासः—दुष्टञ्च तन्निमित्तमिति दुर्निमितं तेन उपगमस्तस्मात् दुर्निमित्तोपगमात्। मुख

मरविन्दमिव मुखारविन्दम्, परिम्लानं मुखारविन्दं यस्याः सा परिम्लानमुखारविन्दा । अवरजैः सहितः सावरजस्तस्य सावरजस्य । न बाह्यानि अबाह्यानि तैः अबाह्यैः ।

हिन्दी—अपशकुन से हुई खिन्नता (दुःख) से तुरन्त मुरझाए मुखवाली सीता जी, छोटे भाइयों के सहित राजा राम का कल्याण हो । इस प्रकार अपने अन्तःकरण से बारबार मनाने लगी ।

विशेषः—अन्तःकरण एक है । किन्तु महाकवि ने अबाह्यैः करणैः (भीतरी इन्द्रियों) से बहुवचन कहा है । इसका तात्पर्य बार-बार कल्याण की कामना से है ॥ ५० ॥

गुरोर्नियोगाद्वनितां वनान्ते साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन् ।
आवार्यतेवोत्थितवीचिहस्तैर्जह्नोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात् ॥ ५१ ॥

गुरोर्ज्येष्ठस्य नियोगात्साध्वीं वनिताम् । अत्याज्यामित्यर्थः । वनान्ते विहास्यंस्त्यक्ष्यन्सुमित्रातनयो लक्ष्मणः पुरस्तादग्रे *स्थितया जह्नोर्दुहित्रा जाह्नव्योत्थितैर्वीचिहस्तैरवार्यतेव अकार्यं मा* कुर्वित्यवार्यतेव । इत्युत्प्रेक्षा ॥

अन्वयः—गुरोः नियोगात् साध्वीं वनितां वनान्ते विहास्यन् सुमित्रातनयः पुरस्तात् स्थितया जह्नोः दुहित्रा उत्थितवीचिहस्तैः अवार्यत इव ।

व्याख्या—गुरोः = ज्येष्ठस्य भ्रातुः नियोगात् = निदेशात् आज्ञयेत्यर्थः । साध्नोति परकार्यं, परलोकं वा साध्वी तां साध्वीं = पतिव्रतां वनितां = महिलाम्, अत्याज्यामित्यर्थः । वनस्य अन्तः = मध्यस्तस्मिन् वनान्ते विहास्यन् = त्यक्तुं इच्छन् सुमित्रायाः तनयः = पुत्रः इति सुमित्रातनयः = लक्ष्मणः पुरस्तात् = अग्रे स्थितया = वर्तमानया जह्नोः = राजर्षेः दुहित्रा = पुत्र्या उत्थिताः = उद्गताः वीचयः = तरंगाः हस्ताः = कराः इव, इति उत्थितवीचिहस्तास्तैः उत्थितवीचिहस्तैः अवार्यत इव = वार्यतेस्म इवेत्युत्प्रेक्षायाम् ।

समासः—सुमित्रायाः तनयः सुमित्रातनयः । वीचयः हस्ता इवेति वीचिहस्ताः उत्थिताश्च ते वीचिहस्ताः उत्थितवीचिहस्ताः तैः उत्थितवीचिहस्तैः ।

हिन्दी—बड़े भाई की आज्ञा से पतिव्रता अबला (अतः न त्यागने योग्य) को वन में छोड़ने के लिये जाते हुवे सुमित्रानन्दन लक्ष्मण को सामने से बहती हुई जह्नु राजा की लड़की (गंगाजी) मानो ऊपर को उठे हुए अपने तरंग रूपी हाथों से रोक रही थी । अर्थात् मार्ग में गंगा जो पड़ती थीं, और उसमें तरंगें उठ रहीं थीं । इसे देखकर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो गंगा जी तरंग रूपी हाथों से लक्ष्मण को रोकती हैं कि सीता जी सती हैं । अतः ये त्यागने के योग्य नहीं हैं ॥ ५१ ॥

रथात्स यन्त्रा निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य ।
गङ्गां निषादाहृतनौविशेषस्ततार संधामिव सत्यसंधः ॥ ५२ ॥

सत्यसंधः सत्यप्रतिज्ञः स लक्ष्मणो यन्त्रा सारथिना निगृहीतवाहाद्बद्धाश्वाद्रथाद्भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्यावरोप्य निषादेन किरातेनाहृतनौविशेष आनीतदृढनौकः सन्। गङ्गां भागीरथीम्। संधां प्रतिज्ञामिव ततार। 'संधा प्रतिज्ञा मर्यादा' इत्यमरः॥

अन्वयः—सत्यसन्धः सः यंत्रा निगृहीतवाहात् रथात् तां भ्रातृजायां पुलिने अवतार्य निषादाहृतनौविशेषः सन् गंगां सन्धाम् इव ततार।

व्याख्या—सत्या सन्धा = प्रतिज्ञा यस्य स सत्यसन्धः सः = लक्ष्मणः यंत्रा = सारथिना निगृहीताः = नियंत्रिताः वाहाः = अश्वाः यस्य स तस्मात् निगृहीतवाहात् रथात् = स्यन्दनात् तां = सीतां भ्रातुः जाया भ्रातृजाया तां भ्रातृजायां = प्रजावतीं "प्रजावती भ्रातृजाया" इत्यमरः। पुलिने = तटे अवतार्य = भूमौ, आरोप्य निषीदति पापमस्मिन्निति निषादः, निषादेन = किरातेन धीवरेणेत्यर्थः। आहृतः = आनीतः नौविशेषः = दृढनौका यस्य स निषादाहृतनौविशेषः सन् गंगां = भागीरथीं सन्धां = प्रतिज्ञाम् इव = यथा ततार = अतारीत् "सन्धा प्रतिज्ञा मर्यादा" इत्यमरः।

समासः—सत्या सन्धा यस्य स सत्यसन्धः। निगृहीताः वाहाः यस्य स तस्मात् निगृहीतवाहात्। भ्रातुः जाया भ्रातृजाया तां भ्रातृजायाम्। निषादेन आहृतः नौविशेषः यस्य स निषादाहृतनौविशेषः।

हिन्दी—सत्य प्रतिज्ञा वाले लक्ष्मण जी, सारथी सुमंत्र के घोड़ों की लगाम खींचने से रुके रथ से अपनी भाभी को रेतीले तट पर उतार कर "फिर" मल्लाह से लाई हुई अच्छी मजबूत नाव से सीता के साथ गंगाजी तथा अपनी प्रतिज्ञा के भी पार हो गये। अर्थात् सीता को वन में छोड़ आवो, इस राम की आज्ञा का पालन करना रूपी प्रतिज्ञा के भी पार हो गये। पूरा कर दिया॥ ५२॥

अथ व्यवस्थापितवाक्कथंचित्सौमित्रिरन्तर्गतबाष्पकण्ठः।
औत्पातिकं मेघ इवाश्मवर्षं महीपतेः शासनमुज्जगार॥ ५३॥

अथ कथंचिद्व्यवस्थापिता प्रकृतिमापादिता वाग्येन सः। अन्तर्गतबाष्पः कण्ठो यस्य सः। कण्ठस्तम्भिताश्रुरित्यर्थः। सौमित्रिर्महीपतेः शासनम्। मेघ उत्पाते भवमौत्पातिकमश्मवर्षं शिलावर्षमिव। उज्जगारोद्गीर्णवान्। दारुणत्वेनावाच्यत्वादुज्जगारेत्युक्तम्॥

अन्वयः—अथ कथंचित् व्यवस्थितवाक् अन्तर्गतबाष्पकण्ठः सौमित्रिः, महीपतेः शासनं मेघः औत्पातिकम् अश्मवर्षम् इव उज्जगार।

व्याख्या—अथ = गंगापारगमनानन्तरम् कथंचित् = महता कष्टेन व्यवस्थापिता = *स्वाभाविकरूपमापादिता वाक् = वाणी येन स व्यवस्थापितवाक् अन्तर्गतानि = बाष्पाणि = अश्रूणि यस्य सः अन्तर्गतबाष्पः। अन्तर्गतबाष्पः = अश्रुव्याप्तः कण्ठः = गलः यस्य सः अन्तर्गतबाष्पकण्ठः "बाष्पमूष्माश्रु" "कण्ठो गलः" इति चामरः। सुमित्रायाः = अपत्यं पुमान् सौमित्रिः =* लक्ष्मणः मह्याः = पृथिव्याः पतिः = स्वामी तस्य महीपतेः = राज्ञो रामचन्द्रस्य शासनम् = आज्ञां

मेघः = पयोदः उत्पतति, उत्पतनं वा उत्पातः। उत्पाते भवम् औत्पातिकम् = औपसर्गिकं, शुभाशुभसूचकं महाभूतविकारमित्यर्थः। अश्मनाम् = उपलानां वर्षं = वृष्टिम् इव = यथा उज्जगार = उद्गीर्णवान् भयंकरत्वेनाकथनीयत्वात्, उज्जगारेति कथनम्। "वर्षस्तुसमाद्गीपांशुवृष्टिषु" इतिहैमः।

समासः—व्यवस्थापिता वाक् येन स व्यवस्थितवाक्। अन्तर्गतानि बाष्पाणि यस्मिन् सः अन्तर्गतबाष्पः अन्तर्गतबाष्पः कण्ठः यस्य सः अन्तर्गतबाष्पकण्ठः। अश्मनां वर्षस्तम् अश्मवर्षम्। मह्याः पतिः महीपतिः तस्य महीपतेः।

हिन्दी—गंगापार उतरने के पश्चात्, किसी प्रकार अपनी वाणी को स्वाभाविक करके एवं भीतर ही भीतर उमड़े हुए आँसुओं से रुँधे कण्ठ वाले सुमित्रापुत्र लक्ष्मण ने राजाराम की आज्ञा को उसी प्रकार उगल दिया जैसे मेघ भयंकर ओलों की वर्षा कर रहा हो। अर्थात् राम की कठोर आज्ञा सीता जी को सुना दी ॥ ५३ ॥

ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम ॥ ५४ ॥

ततः अभिषङ्गः पराभवः। 'अभिषङ्गः पराभवे' इत्यमरः। स एवानिलस्तेन विप्रविद्धा अभिहता। प्रभ्रश्यमानानि पतन्त्याभरणान्येव प्रसूनानि यस्याः सा सीता लतेव। सहसा स्वमूर्तिलाभस्य स्वशरीरलाभस्य स्वोत्पत्तेः प्रकृतिं कारणं धरित्रीं जगाम। भूमौ पपातेत्यर्थः। स्त्रीणामापदि मातैव शरणमिति भावः॥

अन्वयः—ततः अभिषंगानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना सीता लता इव सहसा स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं जगाम।

व्याख्या—ततः = रामाज्ञाश्रवणानन्तरम् अभिषञ्जनमभिषंगः = पराभवः पतिपरित्यागरूप इत्यर्थः। एव अनिलः = वायुस्तेन विप्रविद्धा = अभिहता, इति अभिषंगानिलविप्रविद्धा, "अभिषंगः पराभवे" इत्यमरः। आभरणानि = आभूषणानि एव प्रसूनानि = कुसुमानि, इति आभरणप्रसूनानि, प्रकर्षेण भ्रश्यमानानि = परितः पतन्ति आभरणप्रसूनानि, यस्याः सा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना सीता = जनकात्मजा लता = वल्लरी इव = यथा सहसा = झटिति स्वस्य = निजस्य मूर्तिः = शरीरं तस्याः लाभः = उत्पत्तिः, इति स्वमूर्तिलाभस्तस्य प्रकृतिः = कारणं तां स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरति विश्वं या सा धरित्री तां धरित्रीं = पृथिवीं जगाम = गता। पतिपरित्यागरूपपराभवश्रवणसमनन्तरं भूमौ पपातेत्यर्थः। आपत्काले स्त्रीणां जननी एव शरणमिति तात्पर्यम्।

समासः—अभिषंगः एव अनिलः, अभिषंगानिलस्तेन विप्रविद्धा इति अभिषंगानिलविप्रविद्धा। आभरणानि एव प्रसूनानि, इति आभरणप्रसूनानि, प्रभ्रश्यमानानि आभरणप्रसूनानि यस्याः सा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना। स्वस्य मूर्तिः स्वमूर्तिः, स्वमूर्तेः लाभः स्वमूर्तिलाभः, स्वमूर्तिलाभस्य प्रकृतिस्तां स्वमूर्तिलाभप्रकृतिम्।

हिन्दी—राजा की आज्ञा सुनते ही, पति के परित्यागरूपी कठोर वायु से प्रताडित (अपमानित तथा सूखी हुई) तथा जिसके आभूषणरूपी फूल गिर गए, ऐसी सीता तुरन्त उस लता के समान अपनी जननी पृथिवी पर गिर पड़ी, जो लता गरम वायु के थपेड़ों से मुरझा गई है। उसके फूल और लता भी जमीन में गिर जाती हैं ॥ ५४ ॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात्पतिरार्यवृत्तः ।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत् ॥ ५५ ॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवः। महाकुलप्रसूतिरित्यर्थः। आर्यवृत्तः साधुचरितः पतिर्भर्ता त्वामकस्मादकारणात्कथं त्यजेत्। असंभावितमित्यर्थः। इति संशयितेव संदिहानेव तावत्। त्यागहेतुज्ञानावधेः प्रागित्यर्थः। जननी क्षितिस्तस्यै सीतायै प्रवेशम्। आत्मनीति शेषः। न ददौ ॥

अन्वयः—इक्ष्वाकुवंशप्रभवः आर्यवृत्तः पतिः त्वाम् अकस्मात् कथं त्यजेत् इति संशयिता इव तावत् जननी क्षितिः तस्यै प्रवेशं न ददौ।

व्याख्या—इक्षुमाकरोति, छिकायां जातम् इक्षु इति शब्दमकरोति वा इक्ष्वाकुः। इक्ष्वाकोः = मनुपुत्रस्य वंशः = कुलम् प्रभवः = कारणं यस्य सः इक्ष्वाकुवंशप्रभवः आर्य = श्रेष्ठं वृत्तं = चरितं यस्य सः आर्यवृत्तः पतिः = स्वामी त्वां = सीताम् अकस्मात् = अतर्कितम्, अकारणमित्यर्थः। कथं = केन प्रकारेण त्यजेत् = त्यक्तुं शक्नुयात्, सर्वथा असंभावितमित्यर्थः। इति हेतोः संशयिता = संशयमापन्ना इव = यथा जननी = माता "जनयित्री प्रसूर्माता जननी" इत्यमरः। तावत् = प्रथमम् त्यागकारणज्ञानकालपर्यन्तमित्यर्थः। क्षितिः = पृथिवी तस्यै = सीतायै प्रवेशम् = स्वात्मनिलयं न ददौ = न अदात्, न दत्तवतीत्यर्थः।

समासः—इक्ष्वाकोः वंशः प्रभवः यस्य सः इक्ष्वाकुवंशप्रभवः। आर्यं वृत्तं यस्य सः आर्यवृत्तः।

हिन्दी—महाराज इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न तथा श्रेष्ठ आचरण वाले पति राम बिना कारण अचानक सीता को कैसे छोड़ सकते हैं। मानो इस दुविधा में पड़ी माता पृथिवी ने सीता को अपनी गोद में पहले ही प्रविष्ट नहीं किया ॥ ५५ ॥

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः ।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः ॥ ५६ ॥

लुप्तसंज्ञा नष्टचेतना मूर्च्छिता सा दुःखं न विवेद। प्रत्यागतासुर्लब्धसंज्ञा सत्यन्तः समतप्यत। दुःखेनादह्यतेत्यर्थः। तपेः कर्मणि लङ्। कर्मकर्तरीति केचित्। तन्न। 'तपस्तपःकर्मकस्यैव' इति यङ्नियमात्। तस्याः सीतायाः सुमित्रात्मजयत्नलब्धः प्रबोधो मोहात्कष्टतरोऽतिदुःखदोऽभूत्। दुःखवेदनासंभवादिति भावः ॥

अन्वयः—लुप्तसंज्ञा सा दुःखं न विवेद, प्रत्यागतासुः सती अन्तः समतप्यत, तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धः प्रबोधः मोहात् कष्टतरः अभूत्।

व्याख्या—लुप्ता = नष्टा संज्ञा = चेतना यस्याः सा लुप्तसंज्ञा सा = सीता दुःखं = कष्टं न विवेद = न ज्ञातवती मूर्च्छितत्वादित्यर्थः। "संज्ञा स्याच्चेतना" इत्यमरः। अस्यन्ते, अस्यन्ति वा असवः। प्रत्यागताः = पुनरागताः प्रतिनिवृत्ताः असवः = प्राणाः यस्याः सा प्रत्यागतासुः = प्राप्तचेतना सती अन्तः = मनसि समतप्यत = अदह्यत, अन्तःकरणेऽतीव दुःखिताभूदित्यर्थः। तस्याः = सीतायाः सुमित्रायाः = दशरथराजपत्न्याः तनयः = पुत्रः तस्य यत्नः = प्रयासः तेन लब्धः = प्राप्तः, इति सुमित्रात्मजयत्नलब्धः प्रकर्षेण बोधः प्रबोधः = ज्ञानम् मोहनं मोहः = मूर्च्छा तस्मात् मोहात् "मूर्च्छा तु कश्मलं मोहः" इत्यमरः। अतिशयेन कष्टः = कष्टप्रदः इति कष्टतरः = अतिशयेन दुःखप्रदः अभूत् = जातः, मूर्च्छावस्थापेक्षया चेतनावस्था अतीव दुःखप्रदा जातेत्यर्थः।

समास:—लुप्ता संज्ञा यस्याः सा लुप्तसंज्ञा। प्रत्यागताः असवो यस्याः सा प्रत्यागतासुः। सुमित्रायाः आत्मजः सुमित्रात्मजः सुमित्रात्मजस्य यत्नः सुमित्रात्मजयत्नस्तेन लब्धः, इति सुमित्रात्मजयत्नलब्धः।

हिन्दी—चेतना के नष्ट होने से (मूर्च्छा आ जाने से) सीता ने दुःख को नहीं जाना। किन्तु प्राणों के पुनः लौट आने (मूर्च्छा दूर होने) से वह सीता मन में बड़ी ही दुःखित हुई। सुमित्रानन्दन लक्ष्मण के प्रयत्न (जलसिंचनादि) से आया सीता का ज्ञान, मूर्च्छा (बेहोशी) की अपेक्षा अत्यन्त दुःखप्रद हो गया॥ ५६॥

न चावदद्भर्तुरवर्णमार्या निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि।
आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजं पुनः पुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द॥ ५७॥

आर्या साध्वी सा सीता वृजिनादृत एनसो विनापि। 'कलुषं वृजिनैनोऽघम्' इत्यमरः। 'अन्यारादितरर्ते–' इत्यादिना पञ्चमी। निराकरिष्णोर्निरासकस्य। 'अलंकृञ्–' इत्यादिनेष्णुच्प्रत्ययः। भर्तुरवर्णमपवादं न चावदन्नैवावादीत्। किंतु स्थिरदुःखभाजमत एव दुष्कृतिनमात्मानं पुनः पुनर्निनिन्द॥

अन्वयः—आर्या वृजिनात् ऋते अपि निराकरिष्णोः भर्तुः अवर्णं न अवदत् "किन्तु" स्थिरदुःखभाजम् "अतएव" दुष्कृतिनम् आत्मानम् एव पुनः पुनः निनिन्द।

व्याख्या—आर्या = सती, साध्वी सा सीता वृज्यते इति वृजिनं तस्मात् वृजिनात् = कल्मषात्, पापादित्यर्थः। "वृजिनं कल्मषे क्लीबं, केशे नाकुटिले त्रिषु" इति मेदिनी। ऋते = विनापि निराकरिष्णोः = निरासकस्य, निराकर्तुं शीलस्य भर्तुः = स्वामिनः, पत्युः अवर्णं = निन्दां न अवदत् = नोक्तवती। किन्तु स्थिरं = चिरस्थायिदुःखं भजतीति स्थिरदुःखभाक् तं स्थिरदुःखभाजम् = बहुकालपर्यन्तकष्टसेविनम् अतएव दुष्टं कृतं = पापम् अस्यास्तीति दुष्कृती तं दुष्कृतिनम् आत्मानं = स्वं पुनः पुनः = भूयो भूयः निनिन्द = निन्दितवती, नतु स्वामिनं प्रति किमपि उक्तवतीत्यर्थः।

समासः—स्थिरं च तद्दुःखमिति स्थिरदुःखं तद् भजते, इति स्थिरदुःखभाक् तं स्थिरदुःखभाजम्। न वर्णः अवर्णस्तम् अवर्णम्।

हिन्दी—साध्वी सीता ने विना पाप (अपराध) के भी त्याग करने के स्वभाव वाले पति की निन्दा नहीं की। अर्थात् पति के प्रति एक भी शब्द नहीं कहा। किन्तु स्थिर (सदा) दुःखको भोगने वाले अतः पापी अपने आत्मा की ही बार-बार निन्दा की ॥ ५७ ॥

आश्वास्य रामावरजः सतीं तामाख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः ।
निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं देवि क्षमस्वेति बभूव नम्रः ॥ ५८ ॥

रामावरजो लक्ष्मणः सतीं साध्वीं तामाश्वास्य। आख्यात उपदिष्टो वाल्मीकेर्निकेतस्याश्रमस्य मार्गो येन स तथोक्तः सन्। निघ्नस्य पराधीनस्य। 'अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः। मे भर्तृनिदेशेन स्वाम्यनुज्ञया हेतुना यद्रौक्ष्यं पारुष्यं तद्धे देवि, क्षमस्व इति नम्रः प्रणतो बभूव ॥

अन्वयः—रामावरजः सतीं ताम् आश्वास्य आख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः सन् निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं हे देवि ! क्षमस्व इति नम्रः बभूव।

व्याख्या—रामात् अवरजः रामावरजः = लक्ष्मणः सतीं = साध्वीं ताम् = सीताम् आश्वास्य = समाश्वासनं कृत्वा निकेत्यतेऽस्मिन्निति निकेतम्। आख्यातः = कथितः वाल्मीकेः = महर्षेः निकेतस्य = आश्रमस्य मार्गः = पन्थाः येन सः आख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः सन् निहन्यते = निगृह्यते इति निघ्नः, तस्य निघ्नस्य = परतंत्रस्य "अधीनो निघ्न आयत्तोऽस्वच्छन्दः" इत्यमरः। मे = मम लक्ष्मणस्य भर्तुः = स्वामिनः निदेशः = शासनं भर्तृनिदेशः, रूक्षस्य भावः रौक्ष्यम्। भर्तृनिदेशेन, कारणेन, यत् रौक्ष्यं = पारुष्यं कठोरता तत् भर्तृनिदेशरौक्ष्यं हे देवि ! हे पूज्ये ! क्षमस्व = सहस्व, ममापराधः क्षन्तव्यः इत्यर्थः। इति = एवमुक्त्वा नम्रः = विनीतः प्रणत इत्यर्थः। बभूव = जातः।

समासः—रामात् अवरजः रामावरजः। वाल्मीकेः निकेतः वाल्मीकिनिकेतः, वाल्मीकिनिकेतस्य मार्गः वाल्मीकिनिकेतमार्गः आख्यातः वाल्मीकिनिकेतमार्गः येन सः आख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः। भर्तुः निदेशः, भर्तृनिदेशः भर्तृनिदेशेन यत् रौक्ष्यं तत् भर्तृनिदेशरौक्ष्यम्।

हिन्दी—राम के छोटे भाई लक्ष्मण ने सती साध्वी सीता को सान्त्वना देकर (समझाकर) तथा महर्षिवाल्मीकि के आश्रम का मार्ग बताकर कहा कि हे देवी ! मैं पराधीन हूँ। इसलिये स्वामी (महाराज राम) की आज्ञा से मैंने जो कठोर व्यवहार किया है उसे क्षमा करें। यह कह के नम्र हो गये। अर्थात् सीता के चरणों में प्रणत हो गये ॥ ५८ ॥

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव ।
बिडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम् ॥ ५९ ॥

सीता तं लक्ष्मणमुत्थाप्य वाक्यं जगाद। किमिति। हे सौम्य साधो, ते प्रीतास्मि। चिराय चिरं जीव। यद्यस्मात्। बिडौजसेन्द्रेण विष्णुरुपेन्द्र इव अग्रजेन ज्येष्ठेन भ्रात्रा त्वमित्थं परवान्परतन्त्रोऽसि ॥

अन्वयः—सीता तम् उत्थाप्य वाक्यं जगाद, हे *सौम्य ! ते प्रीता अस्मि चिराय जीव।* यत् बिडौजसा विष्णुः इव अग्रजेन भ्रात्रा त्वम् इत्थं परवान् असि।

व्याख्या—सीता = जानकी तं = लक्ष्मणम् उत्थाप्य उच्यते इति वाक्यं = वचनार्हं जगाद = उक्तवती। हे सौम्य! = हे सज्जन! ते = तुभ्यं प्रीता = प्रसन्ना अस्मि चिराय = चिरकालं जीव = प्राणान् धारय, यत् = यस्मात् कारणात् विडतीति विडं = भेदकम् ओजोबलं यस्य सः विट्सु = मनुष्येषु, प्रजासु वा ओजोऽस्येति विडौजास्तेन विडौजसा = इन्द्रेण वेवेष्टि = व्याप्नोतीति विष्णुः = इन्द्रावरजः, उपेन्द्रः इव = यथा अग्रे = प्रथमं जात इति अग्रजस्तेन अग्रजेन = ज्येष्ठ-भ्रात्रा त्वं = लक्ष्मणः इत्थम् = एवं परः = स्वामी अस्यास्तीति परवान् = परतंत्रः "परतंत्रः पराधीनः परवान्नाथवानपि" इत्यमरः। असि = भवसि। त्वं हि ज्येष्ठभ्रात्रधीनः अतो न तेऽपराधः, इत्यर्थः।

समासः—विडम् ओजोऽस्य स विडौजास्तेन विडौजसा।

हिन्दी—सीता जी लक्ष्मण को उठाकर बोलीं कि हे सज्जन! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम चीरंजीव रहो। इसलिये कि जिस प्रकार इन्द्र से विष्णु पराधीन है उसी प्रकार तुम भी बड़े भाई से पराधीन हो। अर्थात् जैसे विष्णु इन्द्र की आज्ञा मानते हैं वैसे ही तुम भी बड़े भाई राम की आज्ञा पालन करते हो ॥ ५९ ॥

श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः।
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं सूनोरनुध्यायत चेतसेति ॥ ६० ॥

सर्वं श्वश्रूजनमनुक्रमेण प्रापितमत्प्रणामः सन्। मत्प्रणाममुक्त्वेत्यर्थः। विज्ञापय। किमिति। निषिच्यत इति निषेकः। मयि वर्तमानं सूनोर्भवत्पुत्रस्य प्रजानिषेकं गर्भं चेतसानुध्यायत शिवमस्त्विति चिन्तयतेति ॥

अन्वयः—सर्वं श्वश्रूजनम् अनुक्रमेण प्रापितमत्प्रणामः सन् विज्ञापय, मयि वर्तमानं सूनोः प्रजानिषेकं चेतसा अनुध्यायत इति।

व्याख्या—सर्वम् = सम्पूर्णं कौशल्यासुमित्राकैकेयीः इत्यर्थः। श्वशुरस्य स्त्री श्वश्रूः श्वश्रूश्चासौ जनः श्वश्रूजनस्तं श्वश्रूजनम् = पतिप्रसूजनम् अनुक्रमणमिति अनुक्रमस्तेन अनुक्रमेण = पर्यायेण मम प्रणामः मत्प्रणामः। प्रापितः = कथितः मत्प्रणामः = सीताकृतनमस्कारः येन स प्रापित-मत्प्रणामः सन् मम प्रणाममुक्त्वेत्यर्थः त्वं विज्ञापय = प्रार्थय। किमित्याह—मयि = सीतायां, मम कुक्षौ इत्यर्थः वर्तमानं = स्थितं सूनोः = त्वत्पुत्रस्य निषिच्यते = प्रक्षिप्यते इति निषेकः, प्रजार्थं = सन्तानार्थं निषेकः = गर्भस्तं प्रजानिषेकं चेतसा = मनसा अनुध्यायत = कल्याणम-स्त्विति चिन्तयतेति।

समासः—प्रापितः मम प्रणामो येन स प्रापितमत्प्रणामः। प्रजार्थं निषेकस्तं प्रजानिषेकम्। श्वश्रूश्चासौ जनः श्वश्रूजनः तं श्वश्रूजनम्।

हिन्दी—तुम घर जाकर, सभी सासों (कौशल्या, सुमित्रा कैकेयी) से क्रम से मेरा प्रणाम कह कर उनसे निवेदन करना कि—मेरी कुक्षि में आपके पुत्र का तेज (गर्भ) है। आप हृदय से उसके कल्याण की कामना करें ॥ ६० ॥

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥ ६१ ॥

स राजा त्वया मद्वचनात्-मद्वचनमिति कृत्वा । ल्यब्लोपे पञ्चमी । वाच्यो वक्तव्यः । किमित्यत आह—'वह्नौ' इत्यादिभिः सप्तभिः श्लोकैः । अक्ष्णोः समीपे समक्षम् । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः सामीप्यार्थे वा । 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' इति समासान्तष्टच्प्रत्ययः । समक्षमग्रे वह्नौ विशुद्धामपि मां लोकवादस्य मिथ्यापवादस्य श्रवणाद्धेतोरहासीरत्याक्षीरिति यत्तच्छ्रुतस्य प्रख्यातस्य कुलस्य सदृशं किम् । किं त्वसदृशमित्यर्थः, यद्वा श्रुतस्य श्रवणस्य कुलस्य चेति योजना । कामचार्यसीति भावः ॥

अन्वयः—सः राजा त्वया मद्वचनात् वाच्यः, समक्षं वह्नौ विशुद्धाम् अपि माम् लोकवाद-श्रवणात् अहासीः "इति यत्" तत् श्रुतस्य कुलस्य सदृशं किम् ।

व्याख्या—सः = प्रसिद्धः राजा = नृपः उच्यते इति वचनम् । मम = सीतायाः वचनं = वचः इति मद्वचनं तस्मात् मद्वचनात् मम-वचनमिति कृत्वा । वाच्यः = कथनीयः । किमित्याह-सप्तभिः श्लोकैः । अक्ष्णोः = नेत्रयोः समीपे, समक्षम् = अग्रे वह्नौ = पावके विशुद्धां = निर्मलां, निष्कलंकाम् अपि माम् = सीताम् लोकानां = जनानां वादः = मिथ्यापवादः, तस्य श्रवणम् = आकर्णनं तस्मात् लोकवादश्रवणात्, मिथ्यानिन्दाश्रवणेन हेतुनेत्यर्थः । अहासीः = अत्याक्षीः, इति यत् = प्रत्याख्यानरूपम्, तत् श्रुतस्य = शास्त्राध्ययनस्य किं सदृशं कुलस्य = प्रख्यातसूर्यवंशस्य सदृशं किम् इति प्रश्ने, किन्तु कस्यापि न सदृशमित्यर्थः ।

समासः—मम वचनमिति मद्वचनं तस्मात् मद्वचनात् । अक्ष्णोः समीपं समक्षम् । लोकानाम् वादः लोकवादः, लोकवादस्य श्रवणं तस्मात् लोकवादश्रवणात् ।

हिन्दी—और उस राजा से जाकर तुम मेरा वचन कहना । अर्थात् मेरी ओर से कहना कि अपनी आँखों के सामने अग्नि में शुद्ध निष्कलंक पाकर भी मुझे केवल लोगों के झूठे अपवाद के सुनने के कारण तुमने जो छोड़ दिया है सो यह क्या शास्त्रानुसार है या प्रसिद्ध सूर्यकुल के अनुसार है ? ॥ ६१ ॥

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥ ६२ ॥

अथवा कल्याणबुद्धेः सुधियस्तव कर्तुः मयि विषयेऽयं त्यागो न कामचार इच्छया करणं न शङ्कनीयः । कामचारशङ्कापि न क्रियत इत्यर्थः । किंतु ममैव जन्मान्तरपातकानामप्रसह्यो विपच्यत इति विपाकः फलित एव विस्फूर्जथुरशनिनिर्घोषः । 'स्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषः' इत्यमरः ॥

अन्वयः—*अथवा कल्याणबुद्धेः तव मयि अयं कामचारः न शंकनीयः "किन्तु" मम एव* जन्मान्तरपातकानाम् अप्रसह्यः विपाकविस्फूर्जथुः ।

व्याख्या—अथवा = पक्षान्तरे कल्यं = नीरुजत्वमाणयति, कल्ये = प्रातःकाले अव्यते, इति कल्याणा कल्याणा = शिवा बुद्धिः = धीः यस्य स तस्य कल्याणबुद्धेः तव = रामस्य कर्तुः मयि = सीताविषये अयं = त्यागः कामेन = स्वेच्छया चर्य्यते, इति कामचारः = स्वेच्छाचारिता न शंकनीयः, स्वेच्छाचारिताशंकापि न कार्या, इत्यर्थः। किन्तु मम = सीतायाः एव अन्यानि जन्मानि जन्मान्तराणि, जन्मान्तरेषु पातकाः = पापानि तेषां जन्मान्तरपातकानां = पूर्वजन्मकृत-पापानाम् प्रकर्षेण सोढुं योग्य प्रसह्यः न प्रसह्यः अप्रसह्यः = सोढुमशक्यः विपच्यते इति विपाकः। विशेषेण स्फूर्जनमिति विस्फूर्जथुः। विपाकः = फलम् एव विस्फूर्जथुः = वज्रनिर्घोषः, अशनिशब्दः इत्यर्थः। इति विपाकविस्फूर्जथुः अस्तीति शेषः। "विस्फूर्जथुर्वज्रनिर्घोषः" इत्यमरः।

समास—कल्याणा बुद्धिर्यस्य स कल्याणबुद्धिस्तस्य कल्याणबुद्धेः। कल्याणे बुद्धिर्यस्य तस्येति वा। अन्यत् जन्म जन्मान्तरम्, जन्मान्तरे पातकाः जन्मान्तरपातकास्तेषां जन्मान्तर-पातकानाम्। विपाक एव विस्फूर्जथुरिति विपाकविस्फूर्जथुः। कामेन चारः कामचारः।

हिन्दी—अथवा सब का कल्याण करने वाले आपका मेरे प्रति यह मनमाना व्यवहार है। ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। किन्तु (आपने जो मेरा त्याग किया है) यह सब मेरे ही पूर्व जन्म में किये हुए पापों का असह्य फल रूपी वज्रपात है॥ ६२॥

उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः।
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोषात्सोढास्मि न त्वद्भवने वसन्ती॥ ६३॥

पूर्वमुपस्थितां प्राप्तां लक्ष्मीमपास्य मया सार्धं वनं प्रपन्नोऽसि प्राप्तोऽसि। तत्तस्मात्तया लक्ष्म्यातिरोषात्त्वद्भवन आस्पदं प्रतिष्ठाम्। 'आस्पदं प्रतिष्ठायाम्' इति निपातः। प्राप्य वसन्त्यहं सोढा नास्मि॥

अन्वयः—पूर्वम् उपस्थितां लक्ष्मीम् अपास्य मया सार्धं वनं प्रपन्नः असि तत् तया अति-रोषात् त्वद्भवने आस्पदं प्राप्य वसन्ती अहं सोढा न अस्मि।

व्याख्या—पूर्वं = वनगमनात् प्रथमम् उपस्थितां = प्राप्तां लक्षयति = पश्यति नीतिज्ञमिति लक्ष्मीः तां लक्ष्मीं = राज्यलक्ष्मीम् अपास्य = परित्यज्य मया = सीतया सार्धं = साकं वनं = दण्ड-कारण्यं प्रपन्नः = प्राप्तः असि, वनं गतोऽसीत्यर्थः। तत् = तस्मात्कारणात् तया = लक्ष्म्या अति-शयितः रोषः = क्रोधः अतिरोषस्तस्मात् अतिरोषात् = अतिकोपात् तव = रामस्य भवनं = गृहं तस्मिन् त्वद्भवने आपद्यतेऽस्मिन्निति आस्पदं = प्रतिष्ठां प्राप्य = अवाप्य वसन्ती = निवसन्ती अहं सोढा = मर्षिता न = नहि अस्मि।

समासः—अतिशयितः रोषः अतिरोषस्तस्मात् अतिरोषात्। तव भवनमिति त्वद्भवनं तस्मिन् त्वद्भवने।

हिन्दी—पहले आई हुई जिस लक्ष्मी को छोड़कर तुम मेरे साथ दण्डक वन में चले गये थे। इसलिये वह लक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर प्रतिष्ठापूर्वक, आपके भवन में रहती हुई मुझ को सहन न कर सकी। मुझे ऐसा जान पड़ता है॥ ६३॥

निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् ।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने ।। ६४ ।।

निशाचरैरुपप्लुताः पीडिता भर्तारो यासां ता निशाचरोपप्लुतभर्तृकाः । 'नद्यृतश्च' इति कप्प्रत्ययः । तासां तपस्विनीनां भवतः प्रसादादनुग्रहाच्छरण्या शरणसमर्था भूत्वा । अद्य त्वयि दीप्यमाने प्रकाशमाने सत्येव शरणार्थमन्यं तपस्विनं कथं प्रपत्स्ये प्राप्स्यामि ॥

अन्वयः—निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् शरण्या भूत्वा, अद्य त्वयि दीप्यमाने सति शरणार्थम् अन्यं कथं प्रपत्स्ये ।

व्याख्या—निशासु चरन्तीति निशाचराः, निशाचरैः = राक्षसैः उपप्लुताः = पीडिताः भर्तारः = स्वामिनः यासां ताः निशाचरोपप्लुतभर्तृकास्तासां निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपोऽस्ति यासां ताः तपस्विन्यस्तासां तपस्विनीनां = तापसीनाम् भवतः = तव रामस्य प्रसादात् = अनुग्रहात् शरणे साध्वी शरण्या = रक्षणसमर्था भूत्वा, अद्य त्वयि = भवति रामचन्द्रे दीप्यतेऽसौ दीप्यमानस्तस्मिन् दीप्यमाने = प्रकाशमाने सत्येव शरणायेदं शरणार्थं = रक्षार्थम् अन्यं = तापसं कथं = केन प्रकारेण प्रपत्स्ये = यास्यामि, प्राप्स्यामीत्यर्थः । त्वयि समर्थतरे चक्रवर्तिनि देदीप्यमाने अन्यस्य तपस्विनः शरणे गमनमतीव लज्जास्पदमिति भावः ।

समासः—निशाचरैः उपप्लुताः भर्तारः यासां ताः निशाचरोपप्लुतास्तासां निशाचरोपप्लुतानाम् । शरणायेदं शरणार्थम् ।

हिन्दी—"वनवास के समय" जिनके पतियों को राक्षसों ने सता रखा था, उन तपस्विनियों को आपकी कृपा से शरण देने वाली होकर, (उन्हें आश्रय देकर) आज तुम्हारे जैसे तेजस्वी सम्राट् के रहते हुए, भला मैं किसी दूसरे तपस्वी की शरण में कैसे जा सकूँगी, अर्थात् दूसरे की आश्रिता होकर कैसे रहूँगी ॥ ६४ ॥

किंवा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ।। ६५ ।।

किंवाऽथवा तव संबन्धिनात्यन्तेन पुनःप्राप्तिरहितेन वियोगेन मोघे निष्फलेऽस्मिन्हतजीविते तुच्छजीविते उपेक्षां कुर्यां कुर्यामेव । रक्षणीयं रक्षणार्हमन्तर्गतं कुक्षिस्थं त्वदीयं तेजः शुक्रं गर्भरूपम् । 'शुक्रं तेजोरेतसी च बीजवीर्येन्द्रियाणि च' इत्यमरः । मे ममान्तरायो विघ्नो न स्याद्यदि ॥

अन्वयः—किंवा तव अत्यन्तवियोगमोघे अस्मिन् हतजीविते उपेक्षां कुर्याम् एव यदि रक्षणीयम् अन्तर्गतं त्वदीयं तेजः मे अन्तरायः न स्यात् ।

व्याख्या—किंवा = अथवा तव = भवतः रामस्य अत्यन्तः = पुनर्मिलनरहितश्चासौ वियोगः = विच्छेदः, तेन मोघं = निरर्थकं तस्मिन् अत्यन्तवियोगमोघे "मोघं निरर्थकम्" इत्यमरः । अस्मिन् = मल्लक्षणे हतं = तुच्छञ्च तत् जीवितं = जीवनं तस्मिन् हतजीविते उपे-

क्षाम् = औदासीन्यं त्यागमित्यर्थः। कुर्याम् = करवाणि एव = निश्चये । यदि = चेत् रक्षितुं योग्यं रक्षणीयं = पालनीयम् अन्तः = मध्ये, कुक्षौ गतं = प्राप्तं = वर्तमानमिति अन्तर्गतम् = कुक्षिस्थम् तवेदं त्वदीयं = त्वत्संबन्धि तेजः = वीर्यं, गर्भरूपम् "शुक्रं तेजो रेतसी च बीजवीर्येन्द्रियाणि च" इत्यमरः। मे = मम अन्तः = मध्ये, अन्तरस्य = व्यवधानस्य वा अयनमिति अन्तरायः = विघ्नः "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः" इत्यमरः। न स्यात् = न भवेत्, तदावश्यं शरीरत्यागं कुर्यामित्यर्थः ।

समासः—अत्यन्तश्चासौ वियोगः अत्यन्तवियोगः, अत्यन्तवियोगेन मोघं, तस्मिन् अत्यन्तवियोगमोघे। हतञ्च तज्जीवितमिति हतजीवितं तस्मिन् हतजीविते। अन्तः गतमिति अन्तर्गतम्। तवेदं त्वदीयम्।

हिन्दी—अथवा आपके इस सदा के लिये हुवे वियोग के कारण व्यर्थ अतएव तुच्छ जीवन की मैं उपेक्षा ही कर देती। अर्थात् शरीर त्याग देती, यदि रक्षा के योग्य मेरी कुक्षी में वर्तमान तुम्हारा तेज (गर्भ) बाधक न होता ॥ ६५ ॥

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥ ६६ ॥

साहं प्रसूतेरूर्ध्वं सूर्यनिविष्टदृष्टिः सती तथाविधं तपश्चरितुं यतिष्ये। यथा भूयस्तेन तपसा मे मम जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता स्याः विप्रयोगश्च न स्यात्॥

अन्वयः—सा अहम् प्रसूतेः ऊर्ध्वं सूर्यनिविष्टदृष्टिः सती तथाविधं तपः चरितुं यतिष्ये, यथा भूयः मे जननान्तरे अपि त्वमेव भर्ता स्याः, विप्रयोगः च न स्यात्।

व्याख्या—सा = त्वया परित्यक्ता (त्वद्वियुक्ता) अहं = सीता प्रसवनं प्रसूतिः तस्याः प्रसूतेः = प्रसवस्य ऊर्ध्वं = पश्चात् सूर्ये = भानौ निविष्टा = संस्थिता, स्थिरीकृता, दृष्टिः = नेत्रं यस्याः सा सूर्यनिविष्टदृष्टिः सती तथाविधं तपः = तपस्यां चरितुं = कर्तुं यतिष्ये = प्रयत्नं करिष्ये यथा = येन प्रकारेण भूयः = पुनः मे = मम अन्यत् जननं जननान्तरं तस्मिन् जननान्तरे = अन्यस्मिन् जन्मनि अपि त्वमेव = राम एव भर्ता = पतिः स्याः = भवेः विप्रयोगः = विप्रलम्भः, वियोग इत्यर्थः। च न स्यात् = न भवेत् "विप्रयोगो विप्रलम्भः" इत्यमरः।

समासः—सूर्ये निविष्टा दृष्टिः यस्याः सा सूर्यनिविष्टदृष्टिः। अन्यत् जननं जननान्तरं तस्मिन् जननान्तरे।

हिन्दी—पति से परित्यक्ता मैं पुत्रोत्पत्ति के बाद सूर्य में दृष्टि लगाकर ऐसी तपस्या करने का प्रयत्न करूँगी, जिससे कि फिर अगले जन्म में भी तुम ही मेरे पति हो, और वियोग कभी न हो ॥ ६६ ॥

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ॥ ६७ ॥

वर्णानां ब्राह्मणादीनामाश्रमाणां ब्रह्मचर्यादीनां च पालनं यत्स एव नृपस्य धर्मो मनुना प्रणीत उक्तः। अतः कारणादेवं त्वया निर्वासिता निष्कासिताप्यहं तपस्विभिः सामान्यं साधारणं यथा भवति तथावेक्षणीया। कलत्रदृष्ट्यभावेऽपि वर्णाश्रमदृष्टिः सीतायां कर्तव्येत्यर्थः॥

अन्वयः—वर्णाश्रमपालनं यत् स एव नृपस्य धर्मः मनुना प्रणीतः। अतः एवं त्वया निर्वासिता अपि अहं तपस्विसामान्यम् "यथा स्यात्" तथा अवेक्षणीया।

व्याख्या—वर्ण्यन्ते इति वर्णाः = ब्राह्मणादयः। आश्राम्यन्त्यत्र, अनेन वा आश्रमः, आ = समन्तात् श्रमः, स्वधर्मसाधनक्लेशात् यत्र सः आश्रमः। वर्णानां = ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्राणाम् आश्रमाणां = ब्रह्मचर्यादीनां च पालनं = रक्षणमिति वर्णाश्रमपालनं यत्, सः एव नृपस्य = राज्ञः धरति लोकान्, ध्रियते वा जनैरिति धर्मः = सुवृत्तम् कर्तव्यमित्यर्थः। मनुना = मनुस्मृतिनामकधर्मग्रन्थप्रणेत्रा, सूर्यपुत्रेण प्रणीतः = कथितः अतः = अस्मात् कारणात् एवं = लोकापवादेन त्वया = रामेण निर्वासिता = निष्कासिता अपि अहं = सीता तपोऽस्त्येषां ते तपस्विनः। तपस्विभिः = तापसैः सामान्यं = साधारणं यथा स्यात् तथा अवेक्षणीया = द्रष्टव्या। पत्नीदृष्ट्यभावेऽपि वर्णाश्रमदृष्टिः मयि कर्तव्येत्यर्थः, राजधर्मत्वात्।

समासः—वर्णाश्च आश्रमाश्चेति वर्णाश्रमाः, वर्णाश्रमाणां पालनमिति वर्णाश्रमपालनम्। तपस्विभिः सामान्यमिति तपस्विसामान्यम्।

हिन्दी—वर्ण तथा आश्रमों की रक्षा करना ही राजा का धर्म, मनु ने कहा है। इस लिये केवल झूठी निन्दा के सुनने पर निकाल दी गई भी मुझे अन्य तपस्वियों के समान संभालते रहना। अर्थात् तपस्विनी तथा प्रजा समझकर ही मेरी रक्षा करना॥ ६७॥

तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः॥ ६८॥

तथेति तस्याः सीताया वाचं प्रतिगृह्याङ्गीकृत्य रामानुजे लक्ष्मणे दृष्टिपथं व्यतीतेऽतिक्रान्ते सति सा सीता व्यसनातिभाराद्दुःखातिरेकान्मुक्तकण्ठं यथा स्यात्तथा। वाग्वृत्त्येत्यर्थः। विग्ना भीता कुररीवोत्क्रोशीव। 'उत्क्रोशकुररौ समौ' इत्यमरः। भूयो भूयिष्ठं चक्रन्द चुक्रोश॥

अन्वयः—तथा इति तस्याः वाचं प्रतिगृह्य रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते सति सा व्यसनातिभारात् मुक्तकण्ठं "यथा स्यात्तथा" विग्ना कुररी इव भूयः चक्रन्द।

व्याख्या—तथेति = एवं करिष्यामि, इति तस्याः = सीतायाः वाचं = वचनं कथनमित्यर्थः प्रतिगृह्य = स्वीकृत्य रामस्य अनुजः = कनिष्ठः रामानुजस्तस्मिन् रामानुजे = लक्ष्मणे दृष्टेः = नेत्रस्य पन्थाः = मार्गस्तं दृष्टिपथं व्यतीते = अतिक्रान्ते सति लक्ष्मणे प्रतिनिवृत्ते सतीत्यर्थः। सा = सीता व्यसनस्य = दुःखस्य अतिभारः = अतिरेकः, आधिक्यमित्यर्थः इति व्यसनातिभारस्तस्मात् व्यसनातिभारात् मुक्तः = शिथिलीकृतः, अनियंत्रितः कण्ठः = गलः यस्मिन् कर्मणि तत् मुक्तकण्ठं यथा स्यात्तथा विग्ना = संतप्ता, भीता इत्यर्थः, कुररी = क्रौञ्ची इव यथा भूयः = भूयिष्ठं चक्रन्द = रुरोद।

समासः—व्यसनस्य अतिभारः व्यसनातिभारस्तस्मात् व्यसनातिभारात्। रामस्य अनुजस्तस्मिन् रामानुजे। दृष्टेः पन्थास्तं दृष्टिपथम्। मुक्तः कण्ठः यस्मिन् कर्मणि तत् मुक्तकण्ठम्।

हिन्दी—यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा कि मैं सब कह दूँगा। ऐसा स्वीकार करके राम के छोटे भाई लक्ष्मण के दृष्टि से ओझल होते ही सीताजी, भारी विपत्ति (दुःख) के भार से डरी हुई कुररी (जलमुर्गी बगुला) की भाँति गला फाड़-फाड़ कर (धाड़ मार कर) रोने लगीं॥ ६८॥

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥ ६९॥

मयूरा नृत्यं विजहुस्त्यक्तवन्तः। वृक्षाः कुसुमानि। हरिण्य उपात्तान्दर्भान्। इत्थं तस्याः सीतायाः समदुःखभावं प्रपन्ने तुल्यदुःखत्वं प्राप्ते वनेऽप्यत्यन्तं रुदितमासीत्। तथा रामगेहेऽपीत्यपिशब्दार्थः॥

अन्वयः—मयूराः नृत्यं विजहुः, वृक्षाः कुसुमानि, हरिण्यः उपात्तान् दर्भान् विजहुः। इत्थम् तस्याः समदुःखभावं प्रपन्ने वने अपि अत्यन्तं रुदितम् आसीत्।

व्याख्या—मयां रुवन्तीति मयूराः = बर्हिणः नृत्यं = नर्तनं विजहुः = तत्यजुः, त्यक्तवन्त इत्यर्थः। वृक्षाः पादपाः कुसुमानि = पुष्पाणि विजहुः। हरन्ति मनांसि लोकानामिति हरिणाः तेषां स्त्रियः हरिण्यः = मृग्यः उपात्तान् = प्राप्तान् मुखे गृहीतानित्यर्थः। दर्भान् = कुशान् घासानिति यावत्। विजहुः = तत्यजुः। इत्थम् = एवं प्रकारेण तस्याः = सीतायाः दुःखस्य = कष्टस्य भावः = स्थितिः, अवस्था, इति दुःखभावः, समः = समानश्चासौ दुःखभावः = व्यसनावस्था तं समदुःखभावं प्रपन्ने = प्राप्ते वने = कानने अपि अत्यन्तम् = अत्यधिकं रुदितं = क्रन्दितं, रोदनमित्यर्थः। "क्रन्दितं रुदितं क्रुष्टमित्यमरः"। आसीत् = अभवत्। अपिशब्दात् अयोध्यायां राजभवनेऽपि रोदनं जातमित्यर्थः।

समासः—दुःखस्य भावः दुःखभावः, समश्चासौ दुःखभावः, समदुःखभावस्तं समदुःखभावम्।

हिन्दी—सीता जी का रोना सुनकर, मोरों ने नाचना छोड़ दिया। और वृक्षों ने पुष्प गिरा दिये। (फूलरूपी आंसू बहा दिये) तथा हरिणियों ने मुँह में (खाने को) ली हुई घास को गिरा दिया। इस प्रकार सीता के समान दुःख को प्राप्त हुए उस वन में भी अत्यन्त रुदन होने लगा। अर्थात् सीता के दुःख से दुःखी सम्पूर्ण जंगल रोने लगा। अपि शब्द से अयोध्या में भी ऐसा ही रोना मचा था॥ ६९॥

तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥ ७०॥

कुशेध्माहरणाय यातः कविर्वाल्मीकी रुदितानुसारी संस्तां सीतामभ्यगच्छत्। अभिगमनं च दयालुतयेत्याह—निषादेति। निषादेन व्याधेन विद्धस्याण्डजस्य क्रौञ्चस्य दर्शनेनोत्थ उत्पन्नो

यस्य शोकः श्लोकत्वमापद्यत । श्लोकरूपेणावोचदित्यर्थः । स च श्लोकः पठ्यते—'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥' इति । तिरश्चामपि दुःखं न सेहे । किमुतान्येषामिति भावः ॥

अन्वयः—कुशेध्माहरणाय यातः कविः रुदितानुसारी सन् ताम् अभ्यगच्छत् । निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः यस्य शोकः श्लोकत्वम् आपद्यत ।

व्याख्या—कौ = पृथिव्यां शेरते इति कुशाः । इध्यतेऽग्निः एभिरिति = इध्मानि । कुशानां = दर्भाणाम् इध्मानाम् = इन्धनानां च आहरणम् = आनयनं तस्मै कुशेध्माहरणाय यातः = प्राप्तः कविः = काव्यकरः, वाल्मीकिरित्यर्थः । "कविर्वाल्मीकिकाव्ययोः । सूरौ काव्यकरे पुंसि" इति मेदिनी । रुदितं = क्रन्दनं, रोदनम् अनुसर्तुं शीलमस्येति रुदितानुसारी सन् रोदनमनुसरन् ताम् = सीताम् अभ्यगच्छत् = आयातः । रोदनं श्रुत्वा परमदयालुतया सीतापार्श्वमागत इत्यर्थः । तस्य दयालुतामेव दर्शयति अण्डे जातः अण्डजः = पक्षी, क्रौञ्चः । निषादेन = व्याधेन विद्धः = ताडितः, मारितः, इत्यर्थः इति निषादविद्धः । निषादविद्धश्चासौ अण्डजः क्रौञ्चः पक्षिविशेषः, तस्य दर्शनम् = अवलोकनं तेन उत्थः = उत्पन्नः जात इति निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः यस्य = कवेः वाल्मीकेः शोकः = सन्तापः दुःखजन्यक्रोध इत्यर्थः । श्लोकभावः श्लोकत्वं = पद्यत्वम् आपद्यत = अजायत निषादविद्धं क्रौञ्चपक्षिणं दृष्ट्वा करुणापूर्णहृदयस्य महर्षेः मुखात् "मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः" इत्यादिश्लोकः स्वतो निर्गतः । इति पक्षिणामपि यो दुःखं न सेहे किमुत मनुष्याणामिति भावः ।

समासः—कुशाश्च इध्मानि च तेषाम् आहरणमिति कुशेध्माहरणं तस्मै कुशेध्माहरणाय । रुदितस्य अनुसारी, रुदितानुसारी । निषादेन विद्धः यः अण्डजः इति निषादविद्धाण्डजस्तस्य दर्शनं तेन उत्थः, इति निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः ।

हिन्दी—कुश और इन्धन (लकड़ी) लेने के लिये आश्रम से निकले वाल्मीकि मुनि, सीता के रोने का अनुसरण करते हुए, सीता जी के पास आ गये । "वे मुनि इतने कृपालु थे कि" व्याध के द्वारा मारे गये क्रौञ्चपक्षी को देखने से उत्पन्न उनका शोक (सन्ताप) श्लोक बन गया । अर्थात् मारे हुए पक्षी को देखकर मुनि को बड़ा सन्ताप हुआ, इससे उनके मुख से संसार का प्रथम श्लोक 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।' इत्यादि निकल पड़ा । जिसको पक्षियों पर इतनी करुणा है भला वे मनुष्य के रुदन को कैसे सहते ॥ ७० ॥

तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य सीता विलापाद्विरता ववन्दे ।
तस्यै मुनिर्दोहदलिङ्गदर्शी दाश्वान्सुपुत्राशिषमित्युवाच ॥ ७१ ॥

सीता विलापाद्विरता सती नेत्रावरणं दृष्टिप्रतिबन्धकमश्रु प्रमृज्य तं मुनिं ववन्दे । दोहदलिङ्गदर्शी गर्भचिह्नदर्शी मुनिस्तस्यै सीतायै सुपुत्राशिषं तत्प्राप्तिहेतुभूतां दाश्वान्दत्तवानिति वक्ष्यमाणप्रकारेणोवाच । 'दाश्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च' इति क्वस्वन्तो निपातः ॥

अन्वयः—सीता विलापात् विरता सती, नेत्रावरणम् अश्रु प्रमृज्य तं ववन्दे। दोहदलिंग-दर्शी मुनिः तस्यै सुपुत्राशिषं दाश्वान् इति उवाच।

व्याख्या—सीता = जनकात्मजा विलपनं विलापस्तस्मात् विलापात् परिदेवनात् "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः। रोदनादित्यर्थः। विरता = विश्रान्ता सती नेत्रयोः = चक्षुषोः आवरणम् = आच्छादकमिति नेत्रावरणं तत्, दृष्टिप्रतिबन्धकमित्यर्थः। अश्रु = नेत्रजलं प्रमृज्य = प्रोञ्छ्य तं = वाल्मीकिं मुनिं ववन्दे = प्रणनाम, अभिवादनं चकार। दोहम् = आकर्षं ददातीति दोहदं, दोहदस्य = गर्भस्य लिंगं = चिह्नं पश्यतीति दोहदलिंगदर्शी = गर्भलक्षणज्ञ इत्यर्थः। मुनिः = महर्षिवाल्मीकिः तस्यै = सीतायै सुष्ठु = सुन्दरभाग्यशाली पुत्रः = आत्मजः इति सुपुत्रः, तदर्थम् आशीः = शुभाशंसनं तां सुपुत्राशिषं, सुपुत्रस्ते भूयादित्यादिरूपामित्यर्थः दाश्वान् = दत्तवान् इति वक्ष्यमाणप्रकारेण उवाच = जगाद।

समासः—नेत्रयोः आवरणमिति नेत्रावरणं तत्। दोहदस्य लिंगमिति दोहदलिंगम् तस्य दर्शी दोहदलिंगदर्शी। सुष्ठु पुत्रः सुपुत्रः तस्याशीस्तां सुपुत्राशिषम्।

हिन्दी—रोने से विरत हुई सीता ने आँखों के आवरण (ढकने वाला) आँसुओं को पोंछ कर महर्षि वाल्मीकि को प्रणाम किया। तथा गर्भ के लक्षण को देख कर मुनि ने सीता को 'अच्छे सुन्दर वीर पुत्र वाली हो' यह आशीर्वाद दिया और इस प्रकार बोले ॥ ७१ ॥

जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि पितुर्निकेतम् ॥ ७२ ॥

त्वां मिथ्यापवादेन क्षुभितेन भर्त्रा विसृष्टां त्यक्तां प्रणिधानतः समाधिदृष्ट्या जाने। हे वैदेहि, विषयान्तरस्थं देशान्तरस्थं पितुर्जनकस्यैव निकेतं गृहं प्राप्तासि। तत्तस्मान्मा व्यथिष्ठा मा शोचीः। व्यथेर्लुङ्। 'न माङ्योगे' इत्यडागमप्रतिषेधः। भर्त्रोपेक्षितानां पितृगृहवास एवोचित इति भावः॥

अन्वयः—त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा विसृष्टां प्रणिधानतः जाने, हे वैदेहि! विषयान्त-रस्थं पितुः निकेतं प्राप्तासि तत् मा व्यथिष्ठाः।

व्याख्या—त्वां—सीतां मिथ्या = मृषा अपवादः = निन्दा, तेन मिथ्यापवादेन "मृषा मिथ्या वितथे" इत्यमरः। क्षुभितः = संचलितः भीत इत्यर्थः इति मिथ्यापवादक्षुभितस्तेन मिथ्या-पवादक्षुभितेन भर्त्रा = पत्या, रामेण विसृष्टां = परित्यक्तां प्रणिधीयतेऽनेनेति प्रणिधानं प्रणिधाने-नेति प्रणिधानतः = समाधिना "सार्वविभक्तिकस्तसिल्। अहं वाल्मीकिः जाने = वेद्मि। हे वैदेहि! हे जानकि! अन्यो विषयः विषयान्तरम्। विषयान्तरे = देशान्तरे तिष्ठतीति विषयान्तर-स्थस्तं विषयान्तरस्थं पितुः = जनकस्यैव निकेतति = निवसति अस्मिन्निति निकेतः तं निकेतं = गृहं प्राप्ता = आगता असि = विद्यसे, तत् = तस्मात् मा व्यथिष्ठाः = मा शोचीः, पितृगृहे एव स्थित-त्वात्। स्वामिना उपेक्षितानां कन्यानां पितृ गेहनिवास एव शास्त्र संमतः।

समासः—मिथ्या अपवादः मिथ्यापवादः, मिथ्यापवादेन क्षुभित इति मिथ्यापवादक्षुभित-स्तेन मिथ्यापवादक्षुभितेन ।

हिन्दी—"हे बेटी !" तुम को झूठी लोकनिन्दा के भय से तुम्हारे पति राम ने त्याग दिया है। यह मैं समाधि से जानता हूँ। हे जानकी ! दूर देश में स्थित, अपने पिता के ही घर में पहुँच गई हो। इसलिये तुम दुःखी मत हो। किसी प्रकार भी शोक-चिन्ता न करो ॥ ७२ ॥

उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि ।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे ॥ ७३ ॥

उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि । रावणादिकण्टकोद्धरणेन सर्वलोकोपकारिण्यपीत्यर्थः । सत्य-प्रतिज्ञे सत्यसंधेऽपि अविकत्थनेऽनात्मश्लाघिन्यपि । इत्थं स्नेहपात्रेऽपि त्वां प्रत्यकस्मादकारणा-त्कलुषप्रवृत्तौ गर्हितव्यापारे भरताग्रजे मे मन्युः कोपोऽस्त्येव । सर्वगुणाच्छादकोऽयं दोष इत्यर्थः । सीतानुनयार्थोऽयं रामोपालम्भः ॥

अन्वयः—उत्खातलोकत्रयकण्टके अपि सत्यप्रतिज्ञे अपि अविकत्थने अपि त्वां प्रति अकस्मात् कलुषप्रवृत्तौ भरताग्रजे मे मन्युः अस्ति एव ।

व्याख्या:—लोकानां त्रयमिति लोकत्रयम् । उत्खातः = उद्धृतः लोकत्रयस्य = भुवनत्रयस्य कण्टकः = कीलकं, क्षुद्रशत्रुरित्यर्थः । येन सः उत्खातलोकत्रयकण्टकस्तस्मिन् उत्खातलोकत्रय-कण्टके अपि, लोककल्याणकर्तर्यपीत्यर्थः । "कण्टकः क्षुद्रशत्रौ च" इति विश्वः । सत्या प्रतिज्ञा = सन्धा यस्य स तस्मिन् सत्यप्रतिज्ञे अपि विकत्थ्यते इति विकत्थनं = मिथ्याश्लाघा न विकत्थनः अविकत्थनस्तस्मिन् अविकत्थनेऽपि आत्मश्लाघाशून्येऽपि, एवं स्नेहभाजनेऽपि त्वां = सीतां प्रति अकस्मात् = अतर्कितम् अकारणात् कलुषा = गर्हिता प्रवृत्तिः = व्यापारः यस्य स तस्मिन् कलुषप्रवृत्तौ भरतस्य अग्रजः भरताग्रजः तस्मिन् भरताग्रजे = रामचन्द्रे मे = मम वाल्मीकेः मन्युः = क्रोधः अस्ति = वर्तते एवेति निश्चयेन । अयं दोषः सर्वगुणविनाशक इत्यर्थः ।

समासः—लोकानां त्रयमिति लोकत्रयम् । उत्खातः लोकत्रयस्य कण्टको येन सः उत्खात-लोकत्रयकण्टकः तस्मिन् तथोक्ते । सत्या प्रतिज्ञा यस्य स तस्मिन् सत्यप्रतिज्ञे । न विकत्थनः अविकत्थनस्तस्मिन् अविकत्थने । कलुषा प्रवृत्तिर्यस्य स तस्मिन् कलुषप्रवृत्तौ । भरतस्य अग्रजस्तस्मिन् भरताग्रजे ।

हिन्दी—तीनों लोकों के शत्रु रावणादि राक्षसों को उखाड़ फेंकने वाले, अर्थात् लोक-कल्याणकारी और सत्य प्रतिज्ञावाले तथा अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करने वाले भी, अर्थात् इन कारणों से मेरे स्नेही होते हुए भी, किन्तु अकारण तुम्हारा त्याग जैसा निन्दनीय व्यवहार करने वाले राम के ऊपर मेरा क्रोध है ही ।

विशेष—इस प्रकार राम को उलाहना देने से सीताजी को सान्त्वना देना है ॥ ७३ ॥

तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे सतां भवोच्छेदकरः पिता ते ।
धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां किं तन्न येनासि ममानुकम्प्या ॥ ७४ ॥

उरुकीर्तिस्तव श्वशुरो दशरथो मे सखा। ते पिता जनकः सतां विदुषां भवोच्छेदकरो ज्ञानोपदेशादिना संसारदुःखध्वंसकारी। त्वं पतिदेवतानां पतिव्रतानां धुर्यग्रे स्थिता। येन निमित्तेन ममानुकम्प्यानुग्राह्या नासि तत्किम्। न किंचिदित्यर्थः।

अन्वयः—*उरुकीर्तिः तव श्वशुरः मे सखा। ते पिता सतां भवोच्छेदकरः। त्वं पतिदेवतानां धुरि स्थिता, येन मम अनुकम्प्या न असि तत् किम्।*

व्याख्या—उर्वी—महती, विश्रुता कीर्तिः=यशो यस्य सः उरुकीर्तिः तव=सीतायाः शु=आश्चर्ये पूजायां वा। शु=आशु अश्नुते अश्यते व श्वशुरः=रामपिता दशरथः मे=मम समानं ख्यायते जनैरिति सखा=मित्रम्। ते=तव पिता=जनकः सतां=सज्जनानां भवस्य=संसारस्य उच्छेदं=नाशं करोतीति भवोच्छेदकरः, मोक्षोपयोगिज्ञानोपदेशेन संसारे जन्ममरणदुःखध्वंसकारकः इत्यर्थः। त्वं=स्वयं सीता, पतिः=भर्ता एव देवता=देवः ईश्वरः यासां ताः पतिदेवता स्तासां पतिदेवतानां=पतिव्रतानां धुरि=अग्रे स्थिता=वर्तमाना अग्रगण्या इत्यर्थः। येन=कारणेन मम=वाल्मीकेः अनुकम्पयितुं योग्या अनुकम्प्या=अनुग्राह्या न असि=न भवसि तत् किम्—अननुकम्प्ये न किंचिदपि कारणमुत्पश्यामीत्यर्थः।

समासः—उर्वी कीर्तिः यस्य सः उरुकीर्तिः। भवस्य उच्छेदः भवोच्छेदः, भवोच्छदस्य करः भवोच्छेदकरः। पतिरेव देवता यासां ता स्तासां पतिदेवतानाम्।

हिन्दी—विख्यात यशस्वी तुम्हारे श्वशुर दशरथजी मेरे मित्र थे। और तुम्हारे पिता जनकजी संसार के जन्म-मरण रूपी दुःख से सज्जनों को छुड़ाने वाले हैं। याने ज्ञान का उपदेश देकर विद्वानों को जन्म-मरण से छुड़ाते हैं। और तुम स्वयं भी पतिव्रताओं में अग्रगण्य, श्रेष्ठ हो। अतः तुम मेरी कृपा के योग्य नहीं हो क्या। अर्थात् तुम में ऐसा कोई दोष नहीं है। अतः मेरे अनुग्रह के योग्य हो॥ ७४॥

तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन्।
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते ॥ ७५ ॥

तपस्विसंसर्गेण विनीतसत्त्वे शान्तजन्तुकेऽस्मिंस्तपोवने वीतभया निर्भीका वस। ततोऽस्मिन्वनेऽनघप्रसूतेः सुखप्रसूतेस्तेऽपत्यसंस्कारमयो जातकर्मादिरूपो विधिरनुष्ठानं भविष्यति॥

अन्वयः—तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे अस्मिन् तपोवने वीतभया त्वं वस। इतः अनघप्रसूतेः ते अपत्यसंस्कारमयः विधिः भविष्यति।

व्याख्या—तपस्विनां=तापसानां, महर्षीणां संसर्गः=सम्बन्धः इति तपस्विसंसर्गः तपस्विसंसर्गेण विनीताः=नम्राः, शान्ताः सत्त्वाः=प्राणिनः जीवा इत्यर्थः यस्मिन् तत् तस्मिन् तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे अस्मिन् तपसां=तपस्यानां वनं=काननं तस्मिन् तपोवने, ममाश्रमे

इत्यर्थः । वीतं = नष्टं भयं = भीतिः यस्याः सा वीतभया = निर्भया सती वस = निवासं कुरु । इतः = अस्मिन्तपोवने नास्ति अघं यस्याः सा अनघा । अनघा = निष्पापा, अव्यसना च प्रसूतिः = ...तिः यस्याः सा तस्याः अनघप्रसूतेः ते = सीताया अपत्यस्य = शिशोः संस्कारः = जातकर्मादिः ...न्मयः = तद्रूपः, इति अपत्यसंस्कारमयः विधानं विधिः = अनुष्ठानं भविष्यति = सम्पत्स्यते ।

समासः—तपस्विनां संसर्गः तपस्विसंसर्गः, तपस्विसंसर्गेण विनीताः सत्त्वाः यस्मिन् तत्, तस्मिन् तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे । तपसां वनं तपोवनं तस्मिन् तपोवने । वीतं भयं यस्याः सा वीतभया । न अघं यस्याः सा अनघा, अनघा प्रसूतिर्यस्याः तस्याः अनघप्रसूतेः । अपत्यस्य संस्कारः अपत्यसंस्कारः ।

हिन्दी—तपस्वियों के साथ रहने से सीधे-साधे जीव-जन्तु वाले इस तपोवन में तुम निर्भय होकर निवास करो । सुखपूर्वक, निष्कलंक सन्तानवाली तुम्हारे पुत्र का जातकर्मादि संस्कार यहीं सब हो जायेगा ॥ ७५ ॥

अशून्यतीरां मुनिसंनिवेशैस्तमोपहन्त्रीं तमसां वगाह्य ।
तत्सैकतोत्सङ्गबलिक्रियाभिः संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः ॥ ७६ ॥

संनिविशन्ते येष्विति संनिवेशा उटजाः । अधिकरणार्थे घञ्प्रत्ययः । मुनीनां संनिवेशैरुटजैर-शून्यतीरां पूर्णतीरां तमसः शोकस्य पापस्य चापहन्त्रीम् । 'तमस्तु क्लीबे पापे नरकशोकयोः' इति कोशः । तमसां नदीं वगाह्य तत्र स्नात्वा । बलिक्रियापेक्षया पूर्वकालता । तस्याः सैकतोत्सङ्गेषु बलिक्रियाभिरिष्टदेवतापूजाविधिभिस्ते मनसः प्रसादः संपत्स्यते भविष्यति ॥

अन्वयः—मुनिसन्निवेशैः अशून्यतीरां तमोपहन्त्रीं तमसां वगाह्य, तत्सैकतोत्संगबलि-क्रियाभिः ते मनसः प्रसादः सम्पत्स्यते ।

व्याख्या—सन्निविसन्ते येषु ते सन्निवेशाः । मुनीनां = महर्षीणां सन्निवेशाः = पर्णशालाः तैः मुनिसंनिवेशैः न शून्यमिति अशून्यम् । अशून्यं = मुनिपूर्णं तीरं = तटं यस्याः सा ताम् अशून्य-तीरां तमसः = शोकस्य, पापस्य च उपहन्त्री = विनाशनी तां तमोपहन्त्रीम् "तमो ध्वान्ते गुणे शोके क्लीबं वा" इति मेदिनी । तम इव जलमस्याः सा तमसा = एतन्नाम्नी नदी तां तमसां वगाह्य = अवगाह्य, तस्यां स्नात्वा, इत्यर्थः । सिकताः सन्ति येषु तानि सैकतानि । सैकतानि = वालुकामयानिचयानि उत्संगानि = क्रोडानि इति सैकतोत्संगानि, तस्याः = तमसायाः सैकतोत्सं-गानि इति तत्सैकतोत्संगानि तेषु बलीनां = देवतोपहाराणां क्रियाः = अनुष्ठानानि ताभिः तत्सैकतो-त्संगबलिक्रियाभिः = स्वेष्टदेवपूजाभिरित्यर्थः ते = तव मनसः = चित्तस्य प्रसादः = प्रसन्नता सम्पत्स्यते = भविष्यति । "प्रसादस्तु प्रसन्नता" इत्यमरः ।

समासः—मुनीनां सन्निवेशाः मुनिसन्निवेशास्तैः मुनिसंनिवेशैः । अशून्यं तीरं यस्याः सा ताम् अशून्यतीराम् । तमसः उपहन्त्री तां तमोपहन्त्रीम् । तस्याः सैकतानि यानि उत्संगानि इति तत्सैकतोत्संगानि तेषु बलीनां क्रियाः ताभिः तत्सैकतोत्संगबलिक्रियाभिः ।

हिन्दी—ऋषि मुनियों की पर्णशालाओं से सुशोभित (भरे हुए) तीरवाली तथा शोक व पापनाशनी मिटाने वाली तमसा नदी में स्नान करके फिर उसके रेतीले तट पर अपने इष्टदेव की पूजा करने से तुम्हारा मन प्रसन्न रहेगा ॥ ७६ ॥

पुष्पं फलं चार्तवमाहरन्त्यो बीजं च बालेयमकृष्टरोहि ।
विनोदयिष्यन्ति नवाभिषङ्गामुदारवाचो मुनिकन्यकास्त्वाम् ॥ ७७ ॥

ऋतुरस्य प्राप्त आर्तवम् । स्वकालप्राप्तमित्यर्थः । पुष्पं फलं च । अकृष्टरोह्यकृष्टक्षेत्रोत्थम् । अकृष्टपच्यमित्यर्थः । बलये हितं बालेयं पूजायोग्यम् । 'छदिरुपधिबलेर्ढञ्' इति ढञ्प्रत्ययः । बीजं नीवारादि धान्यं चाहरन्त्य उदारवाचः प्रगल्भगिरो मुनिकन्यका नवाभिषङ्गां नूतनदुःखां त्वां विनोदयिष्यन्ति ॥

अन्वयः—आर्तवं पुष्पं फलं च अकृष्टरोहि बालेयं बीजं च आहरन्त्यः, उदारवाचः मुनिकन्यकाः नवाभिषंगां त्वां विनोदयिष्यन्ति ।

व्याख्या—ऋतुरस्य प्राप्तः आर्तवं = ऋतुकालोद्भवं पुष्पं = कुसुमम् फलम् = आम्रसस्यादिकं च न कृष्टम् अकृष्टम् , अकृष्टे = असीत्ये रोहति = प्रादुर्भवति तच्छीलमिति अकृष्टरोहि = अकृष्टक्षेत्रोत्पन्नं बलये हितं बालेयं = पूजायोग्यं, बीजं = नीवारादि धान्यञ्च आहरन्त्यः = आनयन्त्यः उदाराः = उत्कृष्टाः, प्रगल्भाः वाचः = वाण्यः यासां ताः उदारवाचः ह्रस्वाः कन्याः कन्यकाः, मुनीनां = तापसानां कन्यकाः = बालिकाः इति मुनिकन्यकाः नवः = नूतनः, अभिषंगः = दुःखं मिथ्यापवादेन परित्यागरूप इत्यर्थः, यस्याः सा तां नवाभिषंगां त्वां = सीतां विनोदयिष्यन्ति = ते मनोरञ्जनं करिष्यन्ति ।

समासः—नवः अभिषंगः यस्याः सा तां नवाभिषङ्गाम् । उदाराः वाचः यासां ता उदारवाचः । मुनीनां कन्यकाः मुनिकन्यकाः ।

हिन्दी—ऋतु काल में उत्पन्न हुए फल फूल, तथा बिना जुते खेत में उत्पन्न, बलि पूजा के योग्य, जंगली चावल ले आने वाली, तथा खूब मीठी-मीठी बातें बनाने वाली, मुनियों की कन्यायें, नए दुःख वाली तुम्हारा मन बहलायेंगी । अर्थात् उन बच्चियों की मीठी बातें सुनकर तुम अपना दुःख भूल जाओगी ॥ ७७ ॥

पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः ।
असंशयं प्राक्तनयोपपत्तेः स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम् ॥ ७८ ॥

स्वबलानुरूपैः स्वशक्त्यनुसारिभिः पयसामम्भसां घटैः स्तन्यैरिति च ध्वन्यते आश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती त्वं तनयोपपत्तेः प्राक्पूर्वमसंशयं यथा तथा । स्तनं धयति पिबतीति स्तनंधयः शिशुः । 'नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः' इति खश्प्रत्ययः । 'अरुर्द्विषत्–' इत्यादिना मुमागमः । तस्मिन्या प्रीतिस्तामवाप्स्यसि । ततः परं सुलभ एव विनोद इति भावः ॥

अन्वयः—स्वबलानुरूपैः पयोघटैः आश्रमबालवृक्षान् संवर्धयन्ती त्वं तनयोपपत्तेः प्राक् असंशयं "यथा स्यात्तथा" स्तनन्धयप्रीतिम् अवाप्स्यसि ।

व्याख्या—स्वस्य = आत्मनः बलं = सामर्थ्यं तस्य अनुरूपाः = सदृशाः तुल्यास्तैः स्वबलानुरूपैः पयसां = जलानां घटाः = कलशास्तैः पयोघटैः = जलपूर्णकलशैरित्यर्थः। बालाः = ह्रस्वाश्च ते वृक्षाः पादपाः इति बालवृक्षाः, आश्रमस्य = तापसवनस्य बालवृक्षाः इति आश्रमबालवृक्षास्तान् आश्रमबालवृक्षान् संवर्धयन्ती = पोषयन्ती त्वं = सीता तनयस्य = पुत्रस्य उपपत्तिः = उत्पत्तिः, जन्म इत्यर्थः, इति तनयोपपत्तिस्तस्याः तनयोपपत्तेः प्राक् = प्रथमम् न विद्यते संशयः = सन्देहो यस्मिन् तत् असंशयं यथा स्यात्तथा स्तनौ = कुचौ धयति = पिबतीति स्तनंधयः, स्तनन्धये = शिशौ या प्रीतिः = स्नेहस्तां स्तनन्धयप्रीतिम् अवाप्स्यसि = प्राप्स्यसि। पुत्रोत्पत्त्यनन्तरं तु सुलभ एव ते विनोद इति भावः।

समासः—स्वस्य बलं स्वबलं, स्वबलस्य अनुरूपास्तैः स्वबलानुरूपैः। पयसां घटाः पयोघटास्तैः पयोघटैः। बालाश्च ते वृक्षाः, बालवृक्षाः आश्रमस्य बालवृक्षाः इति आश्रमबालवृक्षास्तान् आश्रमबालवृक्षान्। तनयस्य उपपत्तिस्तस्याः स्तनयोपपत्तेः। स्तनन्धये प्रीति रति स्तनन्धयप्रीतिस्तां स्तनन्धयप्रीतिम्।

हिन्दी—अपनी शक्ति के अनुसार (जो तुम उठा सको) जल से भरे घड़ों से आश्रम के छोटे-छोटे वृक्षों को तुम सींचो। इस प्रकार तुम पुत्र के उत्पन्न होने के पहले निश्चय ही, दुधमुहे बच्चों की प्रीति को प्राप्त कर लोगी। अर्थात् दूध पीते बच्चों से प्यार करना सीख लोगी। और फिर तो तुम बच्चों में ही रम जाओगी ॥ ७८ ॥

अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं तां वाल्मीकिरादाय दयार्द्रचेताः।
सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वं स्वमाश्रमं शान्तमृगं निनाय ॥ ७९ ॥

दयार्द्रचेता वाल्मीकिः। अनुग्रहं प्रत्यभिनन्दतीति तथोक्तां तां सीतामादाय सायं मृगैरध्यासितवेदिपार्श्वमधिष्ठितवेदिप्रान्तं शान्तमृगं स्वमाश्रमं निनाय ॥

अन्वयः—दयार्द्रचेताः वाल्मीकिः अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीं ताम् आदाय, सायं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वं शान्तमृगं स्वम् आश्रमं निनाय।

व्याख्या—दयया = करुणया आर्द्रं = क्लिन्नं चेतः = चित्तं यस्य स दयार्द्रचेताः वाल्मीकिः = मुनिः अनुग्रहणमनुग्रहः। अनुग्रहं = दयाम् उपकारं प्रत्यभिनन्दति = सहर्षं स्वीकरोति इति अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनी ताम् अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीम् तां = सीताम् आदाय = गृहीत्वा सायं = सन्ध्याकाले, स्पृश्यते इति पार्श्वं, पर्शूनां समूहः पार्श्वमिति वा। "पार्श्वमन्तिके" इति हैमः। मृगैः = हरिणैः अध्यासितम् = अधिष्ठितं वेदीनां = परिष्कृतभूमीनां, यज्ञवेदीनामित्यर्थः। पार्श्वम् = प्रान्तभागः यस्मिन् स तं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वम्। शान्ताः = नम्रीभूताः मृगाः = हरिणाः, सिंहादयश्च यत्र स तं शान्तमृगं स्वं = स्वकीयम् आश्राम्यन्ति यत्र सः आश्रमः। आसमन्तात् श्रमो यत्र स्वधर्मसाधनक्लेशात् सः आश्रमस्तम् आश्रमं = तापसवनं निनाय = नीतवान्।

समासः—दयया आर्द्रं चेतो यस्य स दयार्द्रचेताः। अनुग्रहस्य प्रत्यभिनन्दिनी ताम् अनुग्रहप्रत्यभिनन्दिनीम्। वेदीनां पार्श्वमिति वेदिपार्श्वम्, मृगैः अध्यासितं वेदिपार्श्वं यस्मिन् स तं मृगाध्यासितवेदिपार्श्वम्। शान्ताः मृगाः यस्मिन् स शान्तमृगस्तं शान्तमृगम्।

हिन्दी—मुनि की कृपा तथा उपकार की प्रशंसा (सराहना) करने वाली उस सीताजी को साथ लेकर परमकरुणामय वाल्मीकि ऋषि, अपने आश्रम में पहुँच गये। जहाँ कि शाम के समय मृग वेदी के आस-पास बैठे हैं। और मृग सिंह आदि जीव भी शान्त चुपचाप बैठे हैं॥ ७९॥

तामर्पयामास च शोकदीनां तदागमप्रीतिषु तापसीषु।
निर्विष्टसारां पितृभिर्हिमांशोरन्त्यां कलां दर्श इवौषधीषु॥ ८०॥

शोकदीनां तां सीतां तस्याः सीताया आगमेन प्रीतिर्यासां तासु तापसीषु। पितृभिरग्निष्वात्तादिभिर्निर्विष्टसारां भुक्तसारां हिमांशोरन्त्यामवशिष्टां कलां दर्शोऽमावास्याकाल ओषधीष्विव। अर्पयामास च। अत्र पराशरः—'पिबन्ति विमलं सोमं विशिष्टा तस्य या कला। सुधामृतमयीं पुण्यां तामिन्दोः पितरो मुने॥' इति। व्यासश्च—'अमायां तु सदा सोम ओषधीः प्रतिपद्यते' इति।

अन्वयः—शोकदीनां तां तदागमप्रीतिषु तापसीषु पितृभिः निर्विष्टसारां हिमांशोः अन्त्यां कलां दर्शः औषधिषु इव अर्पयामास।

व्याख्या—शोकेन = मन्युना दीना = विषण्णा, इति शोकदीना तां शोकदीनाम् तां = सीतां "मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियाम्" इत्यमरः। तस्याः = सीतायाः आगमः = प्राप्तिः, आगमनमित्यर्थः, इति तदागमस्तेन प्रीतिः = प्रसन्नता यासां ताः, तासु तदागमप्रीतिषु सीतागमनेन प्रसन्नास्वित्यर्थः। तापसीषु = तपस्विनीषु पितृभिः = परलोकगतैः अग्निष्वात्तादिभिः निर्विष्टः = भुक्तः सारः = सारभागः यस्याः सा तां निर्विष्टसारां हिमाः = शिशिराः अंशवः = किरणाः यस्य स तस्य हिमांशोः = चन्द्रस्य अन्ते भवा अन्त्या ताम् अन्त्याम् = अवशिष्टां कलां = षोडशांशभागं दर्शः = अमावस्याकालः ओषः = प्लोषः दीप्तिर्वा धीयन्ते यत्र औषधयः, तासु ओषधीषु = वनस्पतिषु इव = यथा अर्पयामास = समर्पयामास।

समासः = शोकेन दीना शोकदीना तां शोकदीनाम्। तस्याः आगमः तदागमः, तदागमेन प्रीतिः यासां ताः तासु तदागमप्रीतिषु। निर्विष्टः सारः यस्याः सा तां निर्विष्टसाराम्। हिमाः अंशवो यस्य स तस्य हिमांशोः।

हिन्दी—"वाल्मीकि जी ने" शोक से व्याकुल सीता को, सीता के आगमन से प्रसन्न हुई तपस्विनियों के हाथ उसी प्रकार सौंप दिया जैसे अमावस्या काल जड़ी बूटी लता वृक्षों को चन्द्रमा की वह तत्त्वरहित अन्तिम कला सौंप देता है। जिस के सार भाग (अमृत) को पितर खींच लेते हैं॥ ८०॥

ता इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः ।
तस्यै सपर्यानुपदं दिनान्ते निवासहेतोरुटजं वितेरुः ॥ ८१ ॥

तास्तापस्यस्तस्यै सीतायै सपर्यानुपदं पूजानन्तरं दिनान्ते सायंकाले निवास एव हेतुस्तस्य निवासहेतोः । निवासार्थमित्यर्थः । 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी । 'इङ्गुदी तापसतरुः' इत्यमरः । इङ्गुदीस्नेहेन कृतप्रदीपमन्तरास्तीर्णं मेध्यं शुद्धमजिनमेव तल्पं शय्या यस्मिंस्तमुटजं पर्णशालां वितेरुर्ददुः ॥

अन्वयः—ताः तस्यै सपर्यानुपदं दिनान्ते निवासहेतोः इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीपम् अन्तः आस्तीर्णमेध्याजिनतल्पम् उटजं वितेरुः ।

व्याख्या—ताः = तपस्विन्यः तस्यै = सीतायै पदस्य पश्चात् अनुपदं, सपर्यायाः = पूजायाः अनुपदम् = अनन्तरमिति सपर्यानुपदं दिनस्य = दिवसस्य अन्तः = अवसानं तस्मिन् दिनान्ते, सायंकाले, इत्यर्थः । निवासः = आवासः एव हेतुः = कारणं तस्य निवासहेतोः, विश्रामार्थमित्यर्थः । इङ्गम् = अद्भुतं द्यति = अवखण्डयतीति इंगुदी = तापसतरुः, इंगुद्याः स्नेहः = तैलमिति इंगुदीस्नेहः, इंगुदीस्नेहेन कृतः = विहितः प्रज्वालित इत्यर्थः, दीपः = प्रदीपः यस्मिन् स तम् इङ्गुदीस्नेहकृतप्रदीपम् । अन्तः = मध्ये आस्तीर्णम् = आच्छादितं मेध्यं = पवित्रम् अजिनं = मृगचर्म एव तल्पं = शय्या यस्मिन् स तम् आस्तीर्णमेध्याजिनतल्पम् उटात् = तृणपर्णादेः जातः इति उटजस्तम् उटजं = पर्णशालां "मुनीनां तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । वितेरुः = ददुः ।

समासः—पदस्य पश्चात् अनुपदम् , सपर्यायाः अनुपदमिति सपर्यानुपदम् । दिनस्य अन्तः दिनान्तस्तस्मिन् दिनान्ते । निवासः एव हेतुस्तस्य निवासहेतोः । इंगुद्याः स्नेहः इंगुदीस्नेहः, इंगुदीस्नेहेन कृतः प्रदीपः यस्मिन् स तम् इंगुदीस्नेहकृतप्रदीपम् । आस्तीर्णं मेध्यम् अजिनम् एव तल्पं यस्मिन् स तम् आस्तीर्णमेध्याजिनतल्पम् ।

हिन्दी—पूजा के पश्चात् उन तपस्विनियों ने सायं काल में निवास के लिये (रहने को) सीताजी को एक घास फूस पत्तों की बनी कुटिया दी, जिस कुटी में हिंगोट के तेल से दीपक जलाया गया था, जिसमें मृगछाला रूप पलंग बिछा था । अर्थात् मृगचर्म बिछी थी ॥ ८१ ॥

तत्राभिषेकप्रयता वसन्ती प्रयुक्तपूजा विधिनातिथिभ्यः ।
वन्येन सा वल्कलिनी शरीरं पत्युः प्रजासंततये बभार ॥ ८२ ॥

तत्राश्रमेऽभिषेकेण स्नानेन प्रयता नियता वसन्ती विधिना शास्त्रेणातिथिभ्यः प्रयुक्तपूजा कृतसत्कारा वल्कलिनी सा सीता पत्युः प्रजासंततये संतानाविच्छेदहेतोः । वन्येन कन्दमूलादिना शरीरं बभार पुपोष ॥

अन्वयः—तत्र अभिषेकप्रयता वसन्ती विधिना अतिथिभ्यः प्रयुक्तपूजा वल्कलिनी सा पत्युः प्रजासन्ततये वन्येन शरीरं बभार ।

व्याख्या—तत्र = वाल्मीकेः आश्रमे अभिषिच्यते इति अभिषेकः, अभिषेकेण = स्नानेन प्रयता = नियता इति अभिषेकप्रयता, प्रतिदिनंनियमेन स्नानवतीत्यर्थः । वसन्ती = निवसन्ती विधिना = शास्त्रानुसारेण अतन्ति = निरन्तरं गच्छन्तीति अतिथयस्तेभ्यः अतिथिभ्यः = गृहगतेभ्य प्रयुक्ता = विहिता पूजा = सत्कारः यया सा प्रयुक्तपूजा वल्कलं = वृक्षत्वक् अस्याः अस्तीति वल्कलिनी, वृक्षत्वक्निर्मितवस्त्रधारिणीत्यर्थः सा = सीता पत्युः = भर्तुः, रामस्य प्रजायाः = सन्तानस्य सन्तन्यते = विस्तार्यते गोत्रपरम्परा यत्र सा, सन्ततिः = अविच्छेदः, अविच्छिन्नपरम्परा इति यावत् इति प्रजासन्ततिस्तस्यै प्रजासन्ततये "सन्ततिः स्यात्पंक्तौ गोत्रे पारम्पर्ये च पुत्रपौत्राणाम्" इति मेदिनी । सन्तानहेतोरित्यर्थः वने भवं वन्यं तेन वन्येन = कन्दमूलफलादिना शरीरं = स्वदेहं बभार = धारयामास, पुष्णाति स्म च ।

समासः—अभिषेकेण प्रयता, अभिषेकप्रयता । प्रयुक्ता पूजा यया सा प्रयुक्तपूजा । प्रजायाः सन्ततिः प्रजासन्ततिस्तस्यै प्रजासन्ततये ।

हिन्दी—उस आश्रम में निवास करती (रहती) हुई सीताजी नियमपूर्वक स्नान करती तथा शास्त्र में बताई गई विधि से अभ्यागतों का सत्कार करती, पत्रं वृक्षों की छाल का वस्त्र पहनती और केवल पति की वंशपरम्परा की रक्षा के लिये कन्दमूल फल से अपने शरीर की रक्षा करती थी । अर्थात् वन में स्वतः पैदा हुए कन्दमूलफल खाकर ही गर्भस्थ शिशु की रक्षार्थ शरीर धारण कर रही थी ॥ ८२ ॥

अपि प्रभुः सानुशयोऽधुना स्यात्किमुत्सुकः शक्रजितोऽपि हन्ता ।
शशंस सीतापरिदेवनान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय ॥ ८३ ॥

प्रभू राजाधुनापि सानुशयः सानुतापः स्यात्किम् । इति काकुः । उत्सुकः । शक्रजित इन्द्रजितो हन्ता लक्ष्मणोऽपि सीतापरिदेवनान्तं सीताविलापान्तमनुष्ठितं शासनमग्रजाय शशंस ॥

अन्वयः—प्रभुः अधुना अपि सानुशयः स्यात् किम् , इति काकुः । उत्सुकः शक्रजितः हन्ता अपि सीतापरिदेवनान्तम् अनुष्ठितं शासनम् अग्रजाय शशंस ।

व्याख्या—प्रभवति = अनुग्रहादिकरणे समर्थो भवतीति प्रभुः = स्वामी, राजा अस्मिन् काले अधुना = सम्प्रति अपि अनुशयनमनुशयः अनुशेतेऽनेन वा अनुशयः । अनुशयेन = पश्चात्तापेन सहितः सानुशयः स्यात् = भवेत् किम् , इति काकुः । इति उत्सुकः = उत्कण्ठितः शक्रम् = इन्द्रं जयतीति शक्रजित् तस्य शक्रजितः = मेघनादस्य रावणपुत्रस्य हन्ता = मारकः लक्ष्मणोऽपि सीतायाः परिदेवनं = विलापः इति सीतापरिदेवनं तस्य अन्तः = अवसानं मर्यादा, इति तं सीतापरिदेवनान्तं, सीताकृतविलापपर्यन्तमित्यर्थः । "अन्तः स्वरूपे निकटे प्रान्ते निश्चयनाशयोः" इति हैमः । अनुष्ठितं = सम्पादितं शासनम् = आज्ञाम् अग्रे = प्रथमं पूर्वकाले जातः = उत्पन्नस्तस्मै अग्रजाय = ज्येष्ठभ्रात्रे रामाय शशंस = निवेदयामास ।

समासः—अनुशयेन सहितः सानुशयः । शक्रस्य जित् इति शक्रजित् तस्य शक्रजितः । सीतायाः परिदेवनमिति सीतापरिदेवनं तस्य अन्तस्तं सीतापरिदेवनान्तम् ।

हिन्दी—राजा राम अब भी पछताते हैं क्या ? यह जानने के लिये उत्सुक, इन्द्रजित् मेघनाद को मारने वाले लक्ष्मण ने भी अयोध्या पहुँचकर सीता ने रो-रो कर जो सन्देश दिया था, वहाँ तक सब बड़े भाई राम से कह दिया कि प्रभु की आज्ञा का पालन किया ॥ ८३ ॥

बभूव रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः ।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः ॥ ८४ ॥

सहसा सपदि सबाष्पो रामः । तुषारवर्षी सहस्यचन्द्र इव बभूव । अत्यश्रुतया तुषारवर्षिणा पौषचन्द्रेण तुल्योऽभूत् । 'पौषे तैषसहस्यौ द्वौ' इत्यमरः । युक्तं चैतदित्याह—कौलीनाल्लोकापवादाद्भीतेन तेन रामेण वैदेहसुता सीता गृहान्निरस्ता । मनस्तो मनसश्चित्तान्न निरस्ता । पञ्चम्यास्तसिल् ॥

अन्वयः—सहसा सबाष्पः रामः तुषारवर्षी सहस्यचन्द्र इव बभूव । कौलीनभीतेन तेन वैदेहसुता गृहात् निरस्ता, मनस्तः न निरस्ता ।

व्याख्या—सहसा = झटिति, लक्ष्मणवाक्यश्रवणसमनन्तरमेवेत्यर्थः । बाष्पैः = अश्रुभिः सह वर्तमानः सबाष्पः रामः = दाशरथिः तुषारं = हिमं वर्षति तच्छीलः इति तुषारवर्षी, सहसि = बले साधुः सहस्यः = पौषमासः तस्य चन्द्रः = इन्दुः इति सहस्यचन्द्रः इव = यथा बभूव = जातः, अत्यधिकाश्रुपातनेन तुषारवर्षिणा पौषमासचन्द्रेण समानोऽभूत् । "पौषे तैषसहस्यौ द्वौ" इत्यमरः । उचितञ्चैतत् कुलीनस्य भावः कर्म वा कौलीनं, कौलीनात् = लोकापवादात् भीतः = त्रस्तस्तेन कौलीनभीतेन तेन = रामेण वैदेहस्य = जनकस्य सुता = पुत्री, इति वैदेहसुता = जानकी गृहात् = भवनात् निरस्ता = संत्यक्ता, मनसः इति मनस्तः = मनसः, चित्तात् न = नहि निरस्ता = निष्कासिता । लोकनिन्दाभीतेन रामेण सीता गृहात् निष्कासिता, हृदयात्तु नैवेति अश्रुवर्षणं युक्तमेवेत्यर्थः ।

समासः—बाष्पैः सहितः सबाष्पः । तुषारस्य वर्षी तुषारवर्षी । सहस्यस्य चन्द्रः सहस्यचन्द्रः । कौलीनात् भीतः कौलीनभीतस्तेन कौलीनभीतेन । वैदेहस्य सुता, इति वैदेहसुता ।

हिन्दी—लक्ष्मण से सीता का सन्देश सुनते ही आँसुओं से भरे राम, पाला, ओस बर्षाने वाले पौषमास के चन्द्रमा के समान आँसू बहाने लगे । ठीक ही है । क्योंकि लोकनिन्दा के डर से राम ने सीता को घर से निकाला था । किन्तु हृदय से नहीं निकाला था । अतः सीता का सन्देश सुनकर उनका आँसू बहाना उचित ही है ॥ ८४ ॥

निगृह्य शोकं स्वयमेव धीमान्वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः ।
स भ्रातृसाधारणभोगमृद्धं राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास ॥ ८५ ॥

धीमान्वर्णानामाश्रमाणां चावेक्षणेऽनुसंधाने जागरूकोऽप्रमत्तः । 'जागर्तेरूकः' इत्यूकप्रत्ययः । रजोरिक्तमना रजोगुणशून्यचेताः स रामः स्वयमेव शोकं निगृह्य निरुध्य भ्रातृभिः साधारणभोगम् । शरीरस्थितिमात्रोपयुक्तमित्यर्थः । ऋद्धं राज्यं शशास ॥

अन्वयः—धीमान् वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः रजोरिक्तमनाः सः स्वयम् एव शोकं निगृह्य भ्रातृसाधारणभोगं ऋद्धं राज्यं शशास।

व्याख्या—धीः = बुद्धिरस्यास्तीति धीमान् = बुद्धिमान् वर्णाः = ब्राह्मणादयः आश्रमाः = ब्रह्मचर्यादयश्चेति वर्णाश्रमास्तेषाम् अवेक्षणम् = अवलोकनम्, अनुसन्धानमित्यर्थः। तस्मिन् जागरूकः = जागरणशीलः, अप्रमत्तः इति वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः रजसा = रजोगुणेन रिक्तं = शून्यं मनः = चित्तं यस्य स रजोरिक्तमनाः सः = रामः स्वयम् = आत्मना एव शोकं = शुचं निगृह्य = निरुध्य साधारणः = सामान्यः भोगः = सुखादिः, इति साधारणभोगः। भ्रातृभिः = अनुजैः साधारणभोगः = शरीरस्थितिमात्रोपयुक्तः यस्मिन् तत् भ्रातृसाधारणभोगं तत्, ऋद्धं = समृद्धं राज्यं = राष्ट्रं शशास = शासितवान् पालयामास।

समासः—वर्णाश्च आश्रमाश्च वर्णाश्रमास्तेषाम् अवेक्षणं तस्मिन् जागरूकः इति वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः। रजसा रिक्तं मनः यस्य स रजोरिक्तमनाः। भ्रातृभिः साधारणः भोगः यस्मिन् तत् भ्रातृसाधारणभोगम्।

हिन्दी—वर्णाश्रम धर्म की देखभाल (रक्षा) करने में सावधान और जिनके मन में रजोगुण विकार नहीं है ऐसे राम ने स्वयं सांसारिक शोक मोह को रोक कर (त्यागकर) अपने भाइयों के साथ समानरूप से समृद्धिशाली राज्य का भोग और शासन किया ॥ ८५ ॥

तामेकभार्यां परिवादभीरोः साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य।
वक्षस्यसंघट्टसुखं वसन्ती रेजे सपत्नीरहितेव लक्ष्मीः ॥ ८६ ॥

परिवादभीरोर्निन्दाभीरोरत एवैकभार्यामपि साध्वीमपि तां सीतां त्यक्तवतो नृपस्य वक्षस्यसंघट्टसुखमसंभाव्यसुखं वसन्ती लक्ष्मीः सपत्नीरहितेव रेजे दिदीपे। तस्य स्त्र्यन्तरपरिग्रहो नाभूदिति भावः॥

अन्वयः—परिवादभीरोः एकभार्याम् अपि साध्वीम् अपि तां त्यक्तवतः नृपस्य वक्षसि असंघट्टसुखं वसन्ती लक्ष्मीः सपत्नीरहिता इव रेजे।

व्याख्या—परिवादात् = लोकापवादात्, निन्दायाः इत्यर्थः। भीरुः = भयशीलस्तस्य परिवादभीरोः अत एव एका = अद्वितीया चासौ भार्या = पत्नी ताम् एकभार्यामपि साध्वीम् = पतिव्रतामपि तां = सीतां त्यक्तवतः = विसृष्टवतः नृपस्य = राज्ञो रामचन्द्रस्य वक्षसि = हृदये नास्ति संघट्टः = स्पर्धा यस्मिन् तत् असंघट्टं तच्च तत्सुखं यस्मिन् तत् यथा स्यात्तथा कल्पनातीतसुखमित्यर्थः वसन्ती = निवसन्ती लक्ष्मीः = श्रीदेवी समानः पतिः यस्याः सा सपत्नी, सपत्न्या रहिता = शून्या इति सपत्नीरहिता इव = यथा रेजे = शुशुभे।

समासः—परिवादात् भीरुः इति परिवादभीरुस्तस्य परिवादभीरोः। न संघट्टः यस्मिन् तत् असंघट्टं सुखं यस्मिन् कर्मणि तत् असंघट्टसुखम्। सपत्न्या रहिता इति सपत्नीरहिता।

हिन्दी—झूठी लोकनिन्दा से डरने वाले, और इसीलिये एकमात्रपत्नी, पतिव्रता सीता का त्याग करने वाले राजा राम के हृदय में बिना किसी स्पर्धा के (बेरोकटोक) सुखपूर्वक निवास करती हुई राजलक्ष्मी ही मानों बिना सौत के दीप्त हो (चमक) उठी हो, ऐसी प्रतीत हो रही थी। अर्थात् राम ने दूसरा विवाह नहीं किया था ॥ ८६ ॥

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार ।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ॥ ८७ ॥

दशमुखरिपू रामः सीतां हित्वा त्यक्त्वान्यां स्त्रियं नोपयेमे न परिणीतवानिति यत् । 'उपायमः स्वकरणे' इत्यात्मनेपदम् । किंच । तस्याः सीताया एव प्रतिकृतेः प्रतिमाया हिरण्मय्याः सखा प्रतिकृतिसखः सन्क्रतूनाजहाराहृतवानिति यत्तेन श्रवणविषयप्रापिणा श्रोत्रदेशगामिना भर्तुर्वृत्तान्तेन वार्तया हेतुना सा सीता दुर्वारं दुर्निरोधं परित्यागेन यद्दुःखं तत्कथमपि विषेहे विसोढवती ॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया
व्याख्यया समेतो महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
सीतापरित्यागो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥

अन्वयः—दशमुखरिपुः सीतां हित्वा अन्यां न उपयेमे, इति यत्, किंच तस्याः एव प्रतिकृतिसखः सन् क्रतून आजहार इति यत् तेन श्रवणविषयप्रापिणा भर्तुः वृत्तान्तेन सा दुर्वारं परित्यागदुःखं कथम् अपि विषेहे ।

व्याख्या—दश मुखानि = आननानि यस्य स दशमुखस्तस्य दशमुखस्य = रावणस्य रिपुः = शत्रुरिति दशमुखरिपुः = रामः सीतां = जानकीं हित्वा = त्यक्त्वा अन्याम् = अपरां स्त्रियं न उपयेमे = न परिणीतवान् , न स्वीचकारेत्यर्थः । इति यत्, किंच तस्याः = सीतायाः एव प्रकृष्टा कृतिः प्रतिकृतिः । प्रतिकृतेः = प्रतिमायाः = सुवर्णमय्याः सखा इति प्रतिकृतिसखः सन् यज्ञे सौवर्णीं सीतायाः मूर्तिं पत्नीस्थाने कृत्वेत्यर्थः । क्रतून् = अश्वमेधयज्ञान् आजहार = कृतवान् इति यत् तेन कारणेन श्रवणयोः = श्रोत्रयोः विषयं = देशं प्रापी = गामी इति श्रवणविषय-प्रापी तेन श्रोत्रविषयप्रापिणा, श्रुतेनेत्यर्थः । भर्तुः = स्वामिनः वृत्तान्तेन = वार्तया सा = सीता दुर्वारम् = असह्यम् परित्यागेन = गृहान्निष्कासनेन यत् दुःखं = क्लेशस्तत् परित्यागदुःखं कथमपि = केनापि प्रकारेण विषेहे = विसोढवती ।

समासः—दश मुखानि यस्य स दशमुखः, दशमुखस्य रिपुरिति दशमुखरिपुः । प्रकृष्टा कृतिः प्रतिकृतिः, प्रतिकृतेः सखा प्रतिकृतिसखः । श्रवणयोः विषयः श्रवणविषयः, श्रवणविषयं प्राप्नोतिः तेन श्रवणविषयप्रापिणा । परित्यागेन यत् दुःखं तत् परित्यागदुःखम् ।

हिन्दी—रावण के शत्रु राम ने सीता को छोड़कर, दूसरी स्त्री को स्वीकार नहीं किया । अर्थात् विवाह नहीं किया । किन्तु अश्वमेध यज्ञ में सीता की ही सुवर्ण की प्रतिमा को सह-चारिणी बनाकर यज्ञों को किया है । यह सब बातें जब सीता के कानों में पहुँची तो उसने परित्याग से जो असह्य दुःख हुआ था उसे किसी प्रकार सह लिया । अर्थात् मेरे पति देव मुझको हृदय से प्रेम करते हैं, मुझे भूले नहीं यह उक्त बातों से जानकर सीता परित्याग के दुःख भूल सी गई ॥ ८७ ॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां
रघुवंशे महाकाव्ये सीतापरित्यागो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥

पञ्चदशः सर्गः

[1]आरण्यकं गृहस्थानं श्वशुरौ पद्रजःकणाः ।
स्वयमौद्वाहिकं गेहं तस्मै रामाय ते नमः ॥

कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम् ।
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम् ॥ १ ॥

कृतसीतापरित्यागः स पृथिवीपालो रामो रत्नाकर एव मेखला यस्यास्ताम् । सार्णवामित्यर्थः । केवलाम् । एकामित्यर्थः । पृथिवीमेव बुभुजे भुक्तवान् । न तु पार्थिवीमित्यर्थः । सापि रत्नखचितमेखला । पृथिव्याः कान्तासमाधिर्व्यज्यते । रामस्य स्त्र्यन्तरपरिग्रहो नास्तीति श्लोकाभिप्रायः ॥

अन्वयः—कृतसीतापरित्यागः सः पृथिवीपालः रत्नाकरमेखलां केवलां पृथिवीम् एव बुभुजे ।

व्याख्या—कृतः = विहितः सीतायाः = जानक्याः परित्यागः = गृहान्निरसनं येन स कृतसीतापरित्यागः सः = प्रसिद्धः पृथिवीं = महीं पालयति = रक्षतीति पृथिवीपालः = राजा रत्नानामाकरः रत्नाकरः = समुद्रः एव मेखला = रशना यस्याः सा तां रत्नाकरमेखलां, (मेखं = गतिं लातीति मेखला) ससमुद्रामित्यर्थः । केवलाम् = एकाम् पृथिवीं = धरणीम् एव बुभुजे = भुक्तवान्, न तु पार्थिवीं पृथिवीसंबन्धिनीमपरां स्त्रियं भुक्तवानित्यर्थः ।

समासः—कृतः सीतायाः परित्यागो येन स कृतसीतापरित्यागः । रत्नानामाकरः इति रत्नाकरः एव मेखला यस्याः सा रत्नाकरमेखला तां रत्नाकरमेखलाम् । पृथिव्याः पालः पृथिवीपालः ।

हिन्दी—सीता का परित्याग करके पृथिवी का पालन (रक्षा) करने वाले राजा राम ने समुद्रसहित एकमात्र पृथिवी को ही भोगा था । अर्थात् किसी दूसरी पार्थिवशरीर वाली स्त्री से विवाह नहीं किया ॥ १ ॥

---

१ एतत्पद्यप्रणयनावसरे मल्लिनाथस्वान्ते प्रभोरहल्योद्धारलीलाविर्बभूवेत्यनुमीयते । तथा च—आरण्यकमरण्यं यस्य गृहस्थानमासीत् । यस्य पद्रजःकणाः पादपांसवः श्वशुरावभूताम् शिलाभूताहल्याया मानवीत्वसंपादनेन गौतमाय दानाद्रामपादरजःकणानां श्वाशुर्यं सुवचम् । एतादृशगौतमाहल्यासंयोगलक्षणे पुनरुद्वाहे औद्वाहिकं गेहं विवाहमण्डपवेद्यादि च यः स्वयमेव बभूव । दृष्टं च शास्त्रे चिरपातित्योन्मुक्तस्य पुनरुपनयनोद्वाहादि । तस्मै रामाय नमोऽस्त्विति कथंचिल्लापनीयमिदं पद्यम् । यद्यपि 'यद्रजःकणाः' इति पाठः सर्वत्रोपलभ्यते तथाप्यत्र यत्तदोर्दूरान्वयेन दुरूहत्वादस्माभिः 'पद्रजःकणाः' इत्ययमेव पाठ आदृतोऽस्ति ।

लवणेन विलुप्तेज्यास्तामिस्रेण तमभ्ययुः।
मुनयो यमुनाभाजः शरण्यं शरणार्थिनः ॥ २ ॥

लवणेन लवणाख्येन तामिस्रेण तमिस्राचारिणा। रक्षसेत्यर्थः। विलुप्तेज्या लुप्तयागक्रिया अत एव शरणार्थिनो यमुनाभाजो यमुनातीरवासिनो मुनयः शरण्यं शरणार्हं रक्षणसमर्थं तं रामं रक्षितारमभ्ययुः प्राप्ताः। यातेर्लङ् ॥

अन्वयः—लवणेन तामिस्रेण विलुप्तेज्याः शरणार्थिनः यमुनाभाजः मुनयः शरण्यं तम् अभ्ययुः।

व्याख्या—लुनातीति लवणः = तेन लवणेन लवणासुरेण, 'लवण' राक्षसे रसे इति हैमः। तमो बहुलमस्ति अस्यां सा तमिस्रा = कृष्णपक्षरात्रिः। तमिस्रासु चरतीति तामिस्रः तेन तामिस्रेण = रात्रिंचरेण, विलुप्ताः = विनाशिताः = ईज्याः = यज्ञादिक्रियाः येषां ते विलुप्तेज्याः, अतएव शरणं = रक्षा एव अर्थः = प्रयोजनं येषां ते शरणार्थिनः यमुनां = यमुनातीरं भजन्ति = सेवन्ते इति यमुनाभाजः, यमुनातीरनिवासिनः, इत्यर्थः। मुनयः = तपस्विनः शरणे साधुः शरण्यस्तं शरण्यं = रक्षकं तं = रामम् अभ्ययुः = सम्प्राप्ताः। लवणासुरेण पीडिताः तपस्विनः रक्षितारं रामं प्राप्ता इत्यर्थः।

समासः—विलुप्ता इज्या येषां ते विलुप्तेज्याः। शरणमेव अर्थः येषान्ते शरणार्थिनः।

हिन्दी—एक समय यमुना तट (किनारे) पर रहने वाले, और लवणासुर नाम के राक्षस ने जिनकी यज्ञादि क्रियाएँ नष्ट कर दी थीं, इसीलिये रक्षा चाहने वाले, तपस्वी शरणागतवत्सल राम के पास आए ॥ २ ॥

अवेक्ष्य रामं ते तस्मिन्न प्रजह्रुः स्वतेजसा।
त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम् ॥ ३ ॥

ते मुनयो राममवेक्ष्य। रक्षितारमिति शेषः। तस्मिंल्लवणे स्वतेजसा शापरूपेण न प्रजह्रुः। तथाहि। त्रायते इति त्राणं रक्षकम्। कर्तरि ल्युट्। तदभावे शाप एवास्त्रं येषां ते शापास्त्राः सन्तस्तपसो व्ययं कुर्वन्ति। शापदानात्तपसो व्यय इति प्रसिद्धेः ॥

अन्वयः—ते रामम् अवेक्ष्य, तस्मिन् स्वतेजसा न प्रजह्रुः। हि त्राणाभावे शापास्त्राः सन्तः तपसो व्ययं कुर्वन्ति।

व्याख्या—ते मुनयः रामं रक्षाकर्तारम् अवेक्ष्य = विलोक्य, ज्ञात्वेत्यर्थः तस्मिन् = लवणासुरे स्वं = स्वकीयं तेजः = तपःप्रभावः, इति स्वतेजः तेन स्वतेजसा न प्रजह्रुः = प्रहारं न कृतवन्तः। हि = यतः त्रायते इति त्राणम्। त्राणस्य = रक्षकस्य अभावः = असत्ता तस्मिन् त्राणाभावे शपनं शापः = आक्रोशः, अशुभं भूयादित्येवंरूपः एव अस्त्रं = शस्त्रं येषान्ते शापास्त्राः सन्तः तपसः = तपस्यायाः व्ययं = क्षयम्, अपगममित्यर्थः। कुर्वन्ति = विदधति। शापप्रदानेन तपसः क्षयो भवतीति हेतो रक्षकाभावे एव शपन्ति, इति भावः।

समासः—स्वस्य तेजः स्वतेजस्तेन स्वतेजसा । त्राणस्य अभावः त्राणाभावस्तस्मिन् त्राणाभावे । शापः एव अस्त्रं येषान्ते शापास्त्राः ।

हिन्दी—उन मुनियों ने राम को अपना रक्षक जानकर, उस लवणासुर को अपने शाप-रूपी तेज से नहीं मारा। यह उचित ही है। क्योंकि रक्षा करने वाले (राजा) के न रहने पर ही, शाप से नष्ट, भस्म कर देना रूपी अस्त्र छोड़कर तपोबल को खर्च करते हैं। अर्थात् रक्षक न होने पर ही मुनि, शाप रूपी अस्त्र छोड़ते हैं। शाप देने से तपोबल नष्ट होता है ॥ ३ ॥

प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् ।
धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः ॥ ४ ॥

काकुत्स्थो रामस्तेभ्यो मुनिभ्यो विघ्नप्रतिक्रियां लवणवधरूपां प्रतिशुश्राव प्रतिजज्ञे। तथाहि। भुवि शार्ङ्गिणो विष्णोः प्रवृत्ती रामरूपेणावतरणं धर्मसंरक्षणमेवार्थः प्रयोजनं यस्याः सा तथैव ॥

अन्वयः—काकुत्स्थः तेभ्यः विघ्नप्रतिक्रियां प्रतिशुश्राव। हि भुवि शार्ङ्गिणः प्रवृत्तिः धर्मसंरक्षणार्था एव। भवतीति शेषः।

व्याख्या—ककुदि तिष्ठतीति ककुत्स्थः ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमानिति काकुत्स्थः = रामः तेभ्यः = मुनिभ्यः विघ्नस्य = यज्ञविघातकस्य लवणासुरस्येत्यर्थः। प्रतिक्रिया = दूरीकरणं वधक्रिया तां प्रतिक्रियां, लवणासुरस्य वधमित्यर्थः। प्रतिशुश्राव = प्रतिजज्ञे, प्रतिश्रुतमित्यर्थः। हि यतः-भुवि = पृथिव्याम् शृंगस्य विकारः शार्ङ्गं = धनुरस्यास्तीति शार्ङ्गी तस्य शार्ङ्गिणः = नारायणस्य प्रवृत्तिः = अवतरणं, रामरूपेण संसारे आगमनमित्यर्थः। धर्मस्य संरक्षणं = पालनमेव अर्थः = प्रयोजनं यस्याः सा धर्मसंरक्षणार्था एव भवतीति शेषः।

समासः—विघ्नस्य प्रतिक्रिया विघ्नप्रतिक्रिया तां विघ्नप्रतिक्रियाम्। धर्मस्य संरक्षणं धर्म-संरक्षणं, धर्मसंरक्षणमेव अर्थः यस्याः सा धर्मसंरक्षणार्था।

हिन्दी—ककुत्स्थ वंशी राम ने उन मुनियों के विघ्न को दूर करने (लवणासुरवध) की प्रतिज्ञा की। ठीक ही है—पृथिवी में विष्णु का रामरूप से अवतार लेना केवल धर्मरक्षा के लिये ही है ॥ ४ ॥

ते रामाय वधोपायमाचख्युर्विबुधद्विषः ।
दुर्जयो लवणः शूली विशूलः प्रार्थ्यतामिति ॥ ५ ॥

ते मुनयो रामाय विबुधद्विषः सुरारेर्लवणस्य वधोपायमाचख्युः। लुनातीति लवणः। नन्द्यादित्वाल्ल्युः। तत्रैव निपातनाण्णत्वम्। लवणः शूली शूलवान्दुर्जयोऽजय्यः। किन्तु विशूलः शूलरहितः प्रार्थ्यतामभिगम्यताम्। 'याच्ञायामभियाने च प्रार्थना कथ्यते बुधैः' इति केशवः ॥

अन्वयः—ते रामाय विबुधद्विषः वधोपायम् आचख्युः। लवणः शूली दुर्जयः किन्तु विशूलः प्रार्थ्यताम् , इति।

व्याख्या—ते = मुनयः रामाय = राघवाय विशिष्टः बुधः = ज्ञानं येषां ते विबुधाः विशेषेण बुध्यन्ते इति वा विबुधाः। विबुधानां = देवानां द्विट् = शत्रुस्तस्य विबुधद्विषः = लवणासुरस्य वधस्य = मारणस्य उपायः = युक्तिः तं वधोपायम् आचख्युः = कथयामासुः। लुनातीति लवणः = एतन्नामासुरः शूलम् = आयुधविशेषः अस्यास्तीति शूली = शूलवान् दुःखेन जयः इति, दुर्जयः = अजय्यः, जेतुमशक्यः, किन्तु विगतः शूलः यस्य सः विशूलः = शूलरहितः प्रार्थ्यताम् = अभिगम्यताम्। "याच्ञायामभियाने च प्रार्थना कथ्यते बुधैः" इति केशवः। अतः यदा स शूलरहितः स्यात्तदा योद्धव्यः इत्यर्थः।

समासः—वधस्य उपायः वधोपायस्तं वधोपायम्। विबुधानां द्विट् , तस्य विबुधद्विषः। विगतः शूलो यस्य स विशूलः।

हिन्दी—उन मुनियों ने देवताओं के शत्रु लवणासुर के मारने का उपाय राम को बता दिया कि वह असुर यदि भाला हाथ में लिये रहेगा तो उसे जीतना बड़ा कठिन है। अतः जब वह शूल से रहित हो तब उस पर आक्रमण करना ॥ ५ ॥

आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥ ६ ॥

अथ तेषां मुनीनां क्षेमाय क्षेमकरणाय राघवो रामः शत्रुघ्नमादिदेश। **अत्रोत्प्रेक्षते**—अस्य शत्रुघ्नस्य नामारिनिग्रहाच्छत्रुहननाद्धेतोः। यथाभूतोऽर्थो यस्य तद्यथार्थं करिष्यन्निव। शत्रुहन्तीति शत्रुघ्नः। 'अमनुष्यकर्तृके च' इति चकारात्कृतघ्नशत्रुघ्नादयः सिद्धा इति दुर्गसिंहः। पाणिनीयेऽपि बहुलग्रहणाद्यथेष्टसिद्धिः 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति ॥

अन्वयः—अथ तेषां क्षेमाय राघवः शत्रुघ्नम् अस्य नाम अरिनिग्रहात् हेतोः यथार्थं करिष्यन् इव आदिदेश।

व्याख्या—अथ = मुनिवाक्यश्रवणानन्तरम् तेषां मुनीनां = तपस्विनां क्षेमाय = कल्याणकरणाय राघवः = रामः शत्रून् हन्तीति शत्रुघ्नस्तं शत्रुघ्नं = लक्ष्मणानुजम् , तस्य = शत्रुघ्नस्य अरेः = शत्रोः निग्रहः = दमनं, मारणमित्यर्थः, इति अरिनिग्रहस्तस्मात् अरिनिग्रहात् हेतोः यथा = यथाभूतः, सत्यः अर्थः = अभिधेयः यस्य तत् यथार्थं तत् करिष्यन् = विधास्यन् इव = उत्प्रेक्षायाम् आदिदेश = आदिष्टवान्।

समासः—यथा भूतः अर्थः यस्य तत् यथार्थं तत्।

हिन्दी—मुनियों की बात सुनने के पश्चात् राम ने उन तपस्वियों के कल्याण के लिये शत्रुघ्न को आज्ञा दी मानों शत्रुघ्न के हाथों शत्रु का वध कराकर इसके नाम को यथार्थ, सत्य कराना चाहते हों। अतः शत्रुघ्न को ही आदेश दिया गया ॥ ६ ॥

रामस्य स्वयमप्रयाणे हेतुमाह—

यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परंतपः ।
अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः ॥ ७ ॥

हि यस्मात् । परान्छत्रुन्तापयतीति परंतपः । 'द्विषत्परयोस्तापेः' इति खच्प्रत्ययः । 'खचि ह्रस्वः' । इति ह्रस्वः । रघूणां मध्ये यः कश्चनैकः । अपवादो विशेषशास्त्रमुत्सर्गं सामान्यशास्त्रमिव । परं शत्रुं व्यावर्तयितुं बाधितुमीश्वरः समर्थः अतः शत्रुघ्नमेवादिदेशेति पूर्वेणान्वयः ॥

अन्वयः—हि परन्तपः रघूणाम् यः कश्चनः एकः अपवादः उत्सर्गम् इव परं व्यावर्तयितुम् ईश्वरः इति शत्रुघ्नमादिदेश ।

व्याख्या—हि = यस्मात् परान् = शत्रून् तापयतीति परन्तपः = रघूणां मध्ये = रघुवंशीयानां मध्ये यः कश्चन = यः कोपि एकः = केवलः अपवादः = बाधकः,—विशेषशास्त्रम् उत्सर्गं = सामान्यशास्त्रम् इव = यथा परं = शत्रुं व्यावर्तयितुं = बाधितुं, हन्तुमित्यर्थः ईश्वरः = समर्थः । अतः लवणासुरं हन्तुं शत्रुघ्नमेव आदिष्टवानित्यर्थः । अतो रामः स्वयं न गतः । इति पूर्वेणान्वयः ।

हिन्दी—शत्रुओं का दमन करने वाला, रघुवंशियों में कोई भी एक व्यक्ति उसी प्रकार शत्रु का बाध (वध) करने में समर्थ है । जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र में अपवाद (बाधक) सूत्र उत्सर्ग (सामान्य) सूत्र को बाध लेता है । और सामान्य विधि (मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि) को जैसे विशेष विधि (अग्निष्टोमीयं पशुमालभेत) से बाध होता है । इसीलिये शत्रुघ्न को ही भेजा गया, और स्वयं रामजी नहीं गये ॥ ७ ॥

अग्रजेन प्रयुक्ताशीस्ततो दाशरथी रथी ।
ययौ वनस्थलीः पश्यन्पुष्पिताः सुरभीरभीः ॥ ८ ॥

ततोऽग्रजेन रामेण प्रयुक्ताशीर्वादो रथी रथिकोऽभीर्निर्भीको दाशरथिः पुष्पाणि संजातानि यासां ताः पुष्पिताः सुरभीरामोदमाना वनस्थलीः पश्यन्ययौ ॥

अन्वयः—ततः अग्रजेन प्रयुक्ताशीः रथी अभीः दाशरथिः, पुष्पिताः सुरभीः वनस्थलीः पश्यन् ययौ ।

व्याख्या—ततः = आदेशानन्तरम् अग्रे जातः अग्रजस्तेन अग्रजेन = ज्येष्ठेन रामेण प्रयुक्ताः = कृताः दत्ता इत्यर्थः आशीः = शुभाशंसा यस्मै स प्रयुक्ताशीः रथोऽस्यास्तीति रथी = रथवान् न विद्यते भीः = भीतिः यस्य सोऽभीः = निर्भीकः दशरथस्य राज्ञोऽपत्यं पुमान् दाशरथिः = शत्रुघ्नः पुष्पाणि संजातानि यासां ताः पुष्पिताः = कुसुमिताः सुष्ठुः रभन्ते यासु ताः सुरभयस्ताः सुरभीः = आमोदमानाः वनानाम् = काननानां स्थल्यः = अकृत्रिमा भूमयस्ताः वनस्थलीः पश्यन् = अवलोकयन् ययौ = अगाम ।

समासः—प्रयुक्ता आशीः यस्मै स प्रयुक्ताशीः । न भीः यस्य सः अभीः । वनानां स्थल्य स्ताः वनस्थलीः ।

हिन्दी—आज्ञा मिलने के बाद बड़े भाई का आशीर्वाद मानकर तथा रथ पर चढ़कर राजा दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न निर्भय होकर उस वनस्थली (जंगल की भूमि) को देखते हुए चल पड़े, जो कि खिले फूलों वाली तथा खूब सुगन्धित थी ॥ ८ ॥

रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थसिद्धये ।
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत् ॥ ९ ॥

रामादेशादनुगता सेना तस्य शत्रुघ्नस्य । अध्ययनमर्थोऽभिधेयो यस्य तस्य । धातोः 'इङ् अध्ययने' इत्यस्य धातोः पश्चादधिरध्युपसर्ग इव । अर्थसिद्धये प्रयोजनसाधनायेत्येकत्र । अन्यत्राभिधेयसाधनाय अभवत् । 'अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु' इत्यमरः । यथा 'इङिकावध्युपसर्गं न व्यभिचरतः' इति न्यायेनाध्युपसर्गः स्वयमेवार्थसाधकस्य धातोः संनिधिमात्रेणोपकरोति सेनापि तस्य तद्वदिति भावः ॥

अन्वयः—रामादेशात् अनुगता सेना तस्य, अध्ययनार्थस्य धातोः पश्चात् अधिः इव अर्थसिद्धये अभवत् ।

व्याख्या—रामस्य = रामचन्द्रस्य राज्ञः आदेशः = आज्ञा इति रामादेशस्तस्मात् रामादेशात् अनु = पश्चात् गता = याता इति अनुगता = अनुगामिनी सेना = वाहिनी तस्य = शत्रुघ्नस्य अध्ययनं = पठनम् अर्थः = अभिधेयः यस्य सः अध्ययनार्थस्तस्य अध्ययनार्थस्य धातोः = "इङ् अध्ययने" इति धातोः पश्चात् अधिः अध्युपसर्ग इव = यथा अर्थस्य = प्रयोजनस्य सिद्धिः = साफल्यं तस्यै अर्थसिद्धये, धातुपक्षे च अर्थस्य = अभिधेयस्य सिद्धिस्तस्यै अर्थसिद्धये अभवत् = अभूत् । यथा इङ् अध्ययने इक् स्मरणे चेति द्वौ धातू अध्युपसर्गं विना न प्रयोगार्हौ, इति स्वयमेवार्थसाधकस्य धातोः सान्निध्यमात्रेणोपकरोति एवमेव सेनापि शत्रुघ्नस्य अनुगमनमात्रेणोपकरोति, वस्तुतः कार्यं तु शत्रुघ्नः स्वयमेव सम्पादयतीति भावः ।

समासः—रामस्य आदेशः रामादेशस्तस्मात् रामादेशात् । अर्थस्य सिद्धिः अर्थसिद्धिः तस्यै अर्थसिद्धये । अध्ययनम् अर्थः यस्य स तस्य अध्ययनार्थस्य ।

हिन्दी—श्रीराम की आज्ञा से शत्रुघ्न के पीछे जाती हुई सेना उसी प्रकार व्यर्थ थी जैसे कि अध्ययन (पढ़ना) अर्थ वाले इङ् धातु के पीछे लगा हुआ अधि उपसर्ग व्यर्थ होता है । इसलिये कि इङ् धातु का ही अध्ययन अर्थ है । इसी प्रकार शत्रुघ्न एकाकी ही जीतने वाला है । सेना का पीछे रहना मात्र कार्य है ॥ ९ ॥

आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः स गच्छंस्तपतां वरः ।
विरराज रथप्रष्ठैर्वालखिल्यैरिवांशुमान् ॥ १० ॥

रथप्रष्ठै रथाग्रगामिभिः । 'प्रष्ठोऽग्रगामिनि' इति निपातः । मुनिभिः पूर्वोक्तैरादिष्टवर्त्मा निर्दिष्टमार्गो गच्छंस्तपतां देदीप्यमानानां मध्ये वरः श्रेष्ठः स शत्रुघ्नः वालखिल्यैर्मुनिभिरंशुमान्सूर्य इव विरराज । तेऽपि रथप्रष्ठा इत्यनुसंधेयम् ॥

अन्वयः—रथपुष्ठैः मुनिभिः आदिष्टवर्त्मा गच्छन् तपतां मध्ये वरः सः वालखिल्यैः अंशुमान् इव रराज।

व्याख्या—प्रतिष्ठन्ते = अग्रतो गच्छन्तीति प्रतिष्ठाः। रथस्य = स्यन्दनस्य प्रतिष्ठाः = अग्रगामिनः तैः रथप्रष्ठैः मुनिभिः आदिष्टं = प्रदर्शितं वर्त्म = मार्गः यस्य सः आदिष्टवर्त्मा गच्छन् = व्रजन् तपतां = देदीप्यमानानां मध्ये = अन्तरा वरः = श्रेष्ठः सः = शत्रुघ्नः वालखिल्यैः = अंगुष्ठमात्रैः दिव्यैः ऋषिभिः अंशवः सन्ति अस्यासौ अंशुमान् = सूर्यः इव = यथा रराज = शुशुभे। मुनयोऽपि रथप्रष्ठा इत्यनुसन्धेयम्।

समासः—आदिष्टं वर्त्म यस्य सः आदिष्टवर्त्मा। रथस्यप्रष्ठाः इति रथप्रष्ठास्तैः रथप्रष्ठैः।

हिन्दी—रथ के आगे चलने वाले मुनियों ने जिसे रास्ता बता दिया, तथा मार्ग में चलते हुए, और देदीप्यमान (तेजस्वी) उन मुनियों के बीच में शत्रुघ्न ऐसे सुशोभित हो रहे थे। जैसे सूर्य के रथ के आगे-आगे चलने वाले वालखिल्य ऋषियों से सूर्य सुशोभित होते हैं। ये मुनि भी रथ में बैठकर आगे चल रहे थे।

विशेष—ब्रह्मा जी के रोम से उत्पन्न हुए, अँगूठे के समान आकार वाले साठ हजार वालखिल्य ऋषि हैं। जो कि रथ पर चढ़कर सूर्य के आगे मार्ग दिखाते हुए चलते हैं ॥ १० ॥

तस्य मार्गवशादेका बभूव वसतिर्यतः।
रथस्वनोत्कण्ठमृगे वाल्मीकीये तपोवने ॥ ११ ॥

यतो गच्छतः। इण्धातोः शतृप्रत्ययः। तस्य शत्रुघ्नस्य मार्गवशाद्रथस्वन उत्कण्ठा उद्ग्रीवा मृगा यस्मिंस्तस्मिन्वाल्मीकीये वाल्मीकिसंबन्धिनि। 'वृद्धाच्छः' इति छप्रत्ययः। तपोवन एकावसती रात्रिर्बभूव। तत्रैकां रात्रिमुषित इत्यर्थः। 'वसती रात्रिवेश्मनोः' इत्यमरः॥

अन्वयः—यतः तस्य मार्गवशात् रथस्वनोत्कण्ठमृगे वाल्मीकीये तपोवने एका वसतिः बभूव।

व्याख्या—एति = गच्छतीति यन् तस्य यतः = गच्छतः तस्य = शत्रुघ्नस्य मार्गस्य = अध्वनः वशः = अधीनः, तस्मात् मार्गवशात् = मार्गस्य = कारणादित्यर्थः। रथस्य = स्यन्दनस्य स्वनः = शब्दः इति रथस्वनस्तस्मिन् उत्कण्ठाः = ऊर्ध्वग्रीवाः मृगाः = हरिणाः यस्मिन् तत्, तस्मिन् रथस्वनोत्कण्ठमृगे, उत् = ऊर्ध्वं कण्ठः येषां ते उत्कण्ठाः। वाल्मीकेः इदं वाल्मीकीयं तस्मिन् वाल्मीकीये = वाल्मीकिमुनिसम्बन्धिनि तपसो वनमिति तपोवनं तस्मिन् तपोवने = आश्रमे एका = केवला वसन्ति जीवाः अस्यां सा वसतिः = रात्रिः "वसती रात्रिवेश्मनोः" इत्यमरः। महर्षिवाल्मीकेः आश्रमे एकां रात्रिमुषितवानित्यर्थः।

समासः—मार्गस्य वशः मार्गवशस्तस्मात् मार्गवशात्। उत् = ऊर्ध्वं कण्ठः येषां ते उत्कण्ठाः। रथस्य स्वनः रथस्वनः रथस्वने उत्कण्ठाः मृगाः यस्मिन् तत्, तस्मिन् रथस्वनोत्कण्ठमृगे। तपसः वनमिति तपोवनं तस्मिन् तपोवने।

हिन्दी—जाते हुए शत्रुघ्न ने मार्ग में पड़ने के कारण, वाल्मीकि मुनि के उस तपोवन में एक रात निवास किया, जिसमें रथ के शब्द को सुनकर ऊपर गर्दन उठाये मृग देख रहे थे ॥ ११ ॥

तमृषिः पूजयामास कुमारं क्लान्तवाहनम् ।
तपःप्रभावसिद्धाभिर्विशेषप्रतिपत्तिभिः ॥ १२ ॥

क्लान्तवाहनं श्रान्तयुग्यं तं कुमारं शत्रुघ्नमृषिर्वाल्मीकिस्तपःप्रभावसिद्धाभिर्विशेषप्रतिपत्तिभिरुत्कृष्टसंभावनाभिः पूजयामास ॥

अन्वयः—क्लान्तवाहनं तं कुमारं ऋषिः तपःप्रभावसिद्धाभिः विशेषप्रतिपत्तिभिः पूजयामास ।

व्याख्या—वाहयन्तीति वाहनानि, क्लान्तानि = श्रान्तानि वाहनानि = अश्वाः यस्य स तं क्लान्तवाहनं तं = प्रसिद्धं कुमारं शत्रुघ्नं ऋषति = जानाति सर्वमिति ऋषिः = वाल्मीकिः तपसः = तपश्चर्यायाः प्रभावः = प्रतापः, तेन सिद्धाः = निष्पन्नास्ताभिः तपःप्रभावसिद्धाभिः विशेषाः = उत्कृष्टाः राजकुमारयोग्याः इत्यर्थः प्रतिपत्तयः = सम्भावनाः आसनशयनान्नपानाद्या इत्यर्थः ताभिः विशेषप्रतिपत्तिभिः पूजयामास = अर्चयामास । उत्कृष्टसामग्रीभिः सत्कारं कृतवानित्यर्थः ।

समासः—क्लान्तानि वाहनानि यस्य स तं क्लान्तवाहनम् । तपसः प्रभावः तपःप्रभावः । तपःप्रभावेण सिद्धास्ताभिः तपःप्रभावसिद्धाभिः । विशेषाश्च ताः प्रतिपत्तयः विशेषप्रतिपत्तयस्ताभिः विशेषप्रतिपत्तिभिः ।

हिन्दी—जिसके घोड़े थक गये थे, ऐसे उस राजकुमार शत्रुघ्न का, महर्षि वाल्मीकि जी ने अपनी तपस्या के प्रभाव से बड़ा ही विशिष्ट राजकुमार के योग्य सत्कार किया ॥ १२ ॥

तस्यामेवास्य यामिन्यामन्तर्वत्नी प्रजावती ।
सुतावसूत संपन्नौ कोशदण्डाविव क्षितिः ॥ १३ ॥

तस्यामेव यामिन्यां रात्रावस्य शत्रुघ्नस्य । अन्तरस्या अस्तीत्यन्तर्वत्नीगर्भिणी । 'अन्तर्वत्नी च गर्भिणी' इत्यमरः । 'अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्' इति ङीप्नुगागमश्च । प्रजावती भ्रातृजाया सीता । क्षितिः संपन्नौ समग्रौ कोशदण्डाविव सुतावसूत ॥

अन्वयः—तस्याम् एव यामिन्याम् अस्य अन्तर्वत्नी प्रजावती, क्षितिः सम्पन्नौ कोशदण्डौ इव सुतौ असूत ।

व्याख्या—तस्याम् एव = यस्यां रात्रौ श्रान्तत्वात् वसतिं कृतवान् इत्यर्थः भयहेतुत्वात् निन्दिताः यामाः = प्रहराः यस्याः सा यामिनी निन्दायामिनि प्रत्ययः । तस्यां यामिन्यां = रात्रौ अस्य = शत्रुघ्नस्य अन्तरस्ति गर्भः यस्यां सा अन्तर्वत्नी = गर्भिणी प्रजास्या अस्तीति प्रजावती = भ्रातृजाया—सीता इत्यर्थः क्षितिः = पृथिवी सम्पन्नौ = सम्पूर्णौ कोशः = अर्थश्च दण्डः दमश्च चतुर्थोपायः, इति कोशदण्डौ इव = यथा सुतौ = पुत्रौ कुशलवौ, इत्यर्थः असूत = जनयामास ।

समासः—कोशश्च दण्डश्चेति कोशदण्डौ ।

हिन्दी—और उसी रात्रि में शत्रुघ्न की गर्भवती भाभी सीता ने उसी प्रकार तेजस्वी दो पुत्रों को जन्म दिया। जैसे कि पृथिवी (राजा के लिये) धन और दण्ड (सेना) उत्पन्न करती है ॥ १३ ॥

संतानश्रवणाद्भ्रातुः सौमित्रिः सौमनस्यवान् ।
प्राञ्जलिर्मुनिमामन्त्र्य प्रातर्युक्तरथो ययौ ॥ १४ ॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य संतानश्रवणाद्धेतोः सौमनस्यवान्प्रीतिमान्सौमित्रिः शत्रुघ्नः प्रातर्युक्तरथः सज्जरथः सन् । प्राञ्जलिः कृताञ्जलिर्मुनिमामन्त्र्यापृच्छ्य ययौ ॥

अन्वयः—भ्रातुः सन्तानश्रवणात् सौमनस्यवान् सौमित्रिः प्रातः युक्तरथः सन् प्राञ्जलिः मुनिम् आमंत्र्य ययौ ।

व्याख्या—भ्राजते इति भ्राता तस्य भ्रातुः = ज्येष्ठस्य रामस्य सन्तानस्य = सन्ततेः श्रवणम् = आकर्णनमिति सन्तानश्रवणं तस्मात् सन्तानश्रवणात्, पुत्रोत्पत्तिश्रवणाद्धेतोः सुष्ठु मनः यस्य स सुमनाः, सुमनसः भावः कर्म वा सौमनस्यं, सौमनस्यं = प्रसन्नता अस्यास्तीति सौमनस्यवान् = प्रसन्नचित्तवान् सुमित्रायाः अपत्यं सौमित्रिः = सुमित्रापुत्रः शत्रुघ्नः प्रातः = प्रभाते युक्तः = सज्जीकृतः रथः = स्पन्दनो यस्य स युक्तरथः सन् प्रकृष्टोऽञ्जलिर्यस्य स प्राञ्जलिः = बद्धाञ्जलिः मुनिं = महर्षिम् आमन्त्र्य = आपृच्छ्य ययौ = जगाम। स्वकार्यसम्पादनाय गतः इत्यर्थः ।

समासः—सन्तानस्य श्रवणमिति सन्तानश्रवणं तस्मात् सन्तानश्रवणात् । प्रकृष्टः अञ्जलिर्यस्य स प्राञ्जलिः । युक्तः रथो यस्य स युक्तरथः ।

हिन्दी—बड़े भाई की पुत्रोत्पत्ति सुनकर सुमित्रानन्दन शत्रुघ्न बड़े प्रसन्न हुए। और प्रातःकाल हाथ जोड़कर मुनि वाल्मीकि से पूछकर (आज्ञा लेकर) रथ में बैठ चल पड़े। अर्थात् लवणासुर को मारने को चल दिये ॥ १४ ॥

स च प्राप मधूपघ्नं कुम्भीनस्याश्च कुक्षिजः ।
वनात्करमिवादाय सत्त्वराशिमुपस्थितः ॥ १५ ॥

स शत्रुघ्नश्च मधूपघ्नं नाम लवणपुरं प्राप । कुम्भीनसी नाम रावणस्वसा । तस्याः कुक्षिजः पुत्रो लवणश्च वनात्करं बलिमिव सत्त्वानां प्राणिनां राशिमादायोपस्थितः प्राप्तः ॥

अन्वयः—स च मधूपघ्नं प्राप कुम्भीनस्याः कुक्षिजः च वनात् करम् इव सत्त्वराशिम् आदाय उपस्थितः ।

व्याख्या—स च = शत्रुघ्नश्च मधोः = तन्नाम्नः दैत्यस्य उपघ्नः = आश्रय स्तं मधूपघ्नं = पुरं = मथुरामित्यर्थः । प्राप = आगतः । कुम्भीव नसा = नासा यस्याः सा कुम्भीनसी तस्याः कुम्भीनस्याः = रावणभगिन्याः कुक्षौ जातः = उत्पन्नः कुक्षिजः = पुत्रः लवणासुरश्च वनात् =

अरण्यात् करं=बलिम् इव=यथा सत्त्वानां=जन्तूनां राशिम्=समूहम् आदाय=गृहीत्वा उपस्थितः=आगतः ।

समासः—मधोः उपघ्नः मधूपघ्नस्तं मधूपघ्नम् । सत्त्वानांराशिः तां ।

हिन्दी—"इधर तो" वह शत्रुघ्न मधूपघ्न (मथुरा) नगर में पहुँचे, और उधर रावण की बहन कुम्भीनसी का पुत्र लवणासुर भी जंगल से ढेर सारे प्राणियों (पशुओं) को मारकर इस प्रकार लेकर उपस्थित हुआ मानों भेंट लेकर आया हो ।

विशेषः—कुम्भी (घड़िया) के जैसी नाक वाली, रावण की बहन का नाम कुम्भीनसी था । उसका लड़का लवण था । मधु नामक दैत्य का उपघ्न=आश्रय,=स्थान, मथुरा नगरी ॥ १५ ॥

धूमधूम्रो वसागन्धी ज्वालाबभ्रुशिरोरुहः ।
क्रव्याद्गणपरीवारश्चिताग्निरिव जंगमः ॥ १६ ॥

किंभूतो लवणः । धूम इव धूम्रः कृष्णलोहितवर्णः । 'धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते' इत्यमरः । वसागन्धो हृन्मेदोगन्धः । सोऽस्यास्तीति वसागन्धी । 'हृन्मेदस्तु वपा वसा' इत्यमरः । ज्वाला इव बभ्रवः पिशङ्गाः शिरोरुहाः केशा यस्य स तथोक्तः । 'त्रिपुले नकुले त्रिष्णौ बभ्रुः स्यात्पिङ्गले त्रिषु' इत्यमरः । क्रव्यं मांसमदन्तीति क्रव्यादो राक्षसाः । तेषां गण एव परीवारो यस्य स तथोक्तः । अत एव जंगमश्चरिष्णुश्चिताग्निरिव स्थितः । कृशानुपक्षे धूमैर्धूम्रवर्णः । ज्वाला एव शिरोरुहाः । क्रव्यादो गृधादयः इत्यनुसंधेयम् ॥

अन्वयः—"किंभूतः लवणः ? इत्याह"—धूमधूम्रः वसागन्धी ज्वालाबभ्रुशिरोरुहः क्रव्याद्-गणपरीवारः अत एव जंगमः चिताग्निः इव स्थितः ।

व्याख्या—धूनोति, धूयते वा धूमः=शिखिध्वजः='आर्द्रेन्धनप्रभवः' इत्यर्थः स इव धूम्रः=धूमलः, कृष्णरक्तवर्णः इति धूमधूम्रः । "भम्भोमरुद्वाहः खतमालः शिखिध्वजः, अग्नि-वाहस्तरी । इति कोशः "धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते" इति चामरः । वसायाः=वपायाः गन्धः=सुरभिः इति वसागन्धः, वसागन्धः अस्यास्ति स वसागन्धी "मेदस्तु वसा वपा" इत्यमरः । शुद्धमांसस्नेहगन्धवानित्यर्थः । ज्वाला=अर्चिः इव बभ्रवः=पिशंगाः शिरोरुहाः=केशाः यस्य स ज्वालाबभ्रुशिरोरुहः, क्रव्यम्=आममांसम् अदन्तीति क्रव्यादः=राक्षसाः तेषांगणः=समूह एव परीवारः=परिजनः यस्य स क्रव्याद्गणपरीवारः अतएव गच्छतीति जंगमः=संचरिष्णुः चितायाः=चित्यायाः अग्निः=वह्निः इव=यथा स्थितः स लवणासुरः समुपस्थितः इत्यर्थः" चिता चित्या चितिः स्त्रियामित्यमरः । चिताग्निपक्षे-धूमैः धूम्रवर्णा, ज्वाला एव तस्य केशाः, वसागन्धी, मांसभक्षका गृध्रकुक्कुरादयः चिताग्नेः परितः गच्छन्ति, तैः परीवारवान् इत्यनुसंधेयम् ।

समासः—धूम इव धूम्र इति धूमधूम्रः । वसायाः गन्धः वसा गन्धः, सोऽस्यास्तीति वसागन्धी । ज्वालाया इव बभ्रवः शिरोरुहाः यस्य स ज्वालाबभ्रुशिरोरुहः । क्रव्यादां गणः

क्रव्याद्गणः, क्रव्याद्गण एव परीवारः यस्य स क्रव्याद्गणपरीवारः। चितायाः अग्निः इति चिताग्निः।

हिन्दी—*धूएँ के समान काले रंग का, तथा चर्बी की गन्ध वाला,* और अग्नि की लपटों के समान भूरे रंग के बालों वाला, तथा कच्चा मांस खानेवाले राक्षस ही उसके परिजन थे। अर्थात् ये ही उसके साथ चल रहे थे, अत एव वह उस चलती-फिरती चिता की आग के समान लग रहा था, जो धूएँ के कारण धुँधली तथा चर्बी की गन्ध वाली एवं धूएँ के वर्णवाली लपटें ही जिसके केश हों तथा गीध, कुत्ते आदि कच्चा मांस खानेवाले पशु-पक्षी जिसके चारो ओर चल रहे हों ॥ १६ ॥

अपशूलं तमासाद्य लवणं लक्ष्मणानुजः।
रुरोध संमुखीनो हि जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् ॥ १७ ॥

लक्ष्मणानुजः शत्रुघ्नोऽपशूलं शूलरहितं तं लवणमासाद्य रुरोध। तथाहि। रन्ध्रप्रहारिणं रन्ध्रप्रहरणशीलानाम्। अपशूलतैवात्र रन्ध्रम्। जयः संमुखीनो हि। संमुखस्य दर्शनो हि। 'यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः' इति खप्रत्ययः। अधिकारलक्षणार्थस्तु दुर्लभ एव ॥

अन्वयः—लक्ष्मणानुजः अपशूलं तम् लवणम् आसाद्य रुरोध, हि रन्ध्रप्रहारिणां जयः सम्मुखीनः भवतीति शेषः।

व्याख्या—लक्ष्मणस्य अनुजः = कनिष्ठभ्राता, इति लक्ष्मणानुजः = शत्रुघ्नः अपगतं शूलं = मुसलम् = आयुधमित्यर्थः। यस्य स तम् अपगतशूलं, गृहस्थितायुधमित्यर्थः। "अस्त्रीशूलं रुगायुधम्" इत्यमरः। तं लवणं = लवणासुरम् आसाद्य = प्राप्य रुरोध = अवरुद्धवान्। हि = यतः रन्ध्रं = शूलरहितं, शक्तिहीनमित्यर्थः प्रहर्तुं = मारयितुं शीलं येषां ते रन्ध्रप्रहारिणस्तेषां रन्ध्रप्रहारिणां जयः = विजयः सर्वस्य मुखस्य दर्शनः संमुखीनः = अभिमुखपाती भवत्येव।

समासः—अपगतः शूलः यस्य स तम् अपगतशूलम्। लक्ष्मणस्य अनुजः लक्ष्मणानुजः।

हिन्दी—लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न ने इस प्रकार उस लवणासुर को पाकर (शूल से रहित देखकर) घेर लिया। ठीक ही है—शक्तिहीन शत्रुओं पर प्रहार करने वालों के सामने विजय खड़ी रहती है। अर्थात् ऐसे अवसर पर मारनेवाले की जीत निश्चित होती है ॥ १७ ॥

नातिपर्याप्तमालक्ष्य मत्कुक्षेरद्य भोजनम्।
दिष्टया त्वमसि मे धात्रा भीतेनेवोपपादितः ॥ १८ ॥
इति संतर्ज्य शत्रुघ्नं राक्षसस्तज्जिघांसया।
प्रांशुमुत्पाटयास मुस्तास्तम्बमिव द्रुमम् ॥ १९ ॥

युग्मम्। राक्षसो लवणः। अद्य मत्कुक्षेः। भुज्यत इति भोजनम्। भोजनम्। भोज्यं मृगादिकं नातिपर्याप्तमनतिसमग्रमालक्ष्य दृष्ट्वा भीतेनेव धात्रा दिष्टया भाग्येन मे त्वमुपपादितः

कल्पितोऽसि इति शत्रुघ्नं संतर्ज्य तस्य शत्रुघ्नस्य जिघांसया हन्तुमिच्छया प्रांशुमुन्नतं द्रुमम्। मुस्तास्तम्बमिव अक्लेशेनोत्पाटयामास ॥

अन्वयः—युग्मम्। राक्षसः अद्य मत्कुक्षेः, भोजनं नातिपर्याप्तम् आलक्ष्य, भीतेन इव धात्रा दिष्ट्या मे त्वम् उपपादितः "असि" इति शत्रुघ्नं संतर्ज्य, तज्जिघांसया प्रांशुं द्रुमं मुस्तास्तम्बम् इव उत्पाटयामास।

व्याख्या—युग्मं द्वयोरेकस्यां क्रियायामन्वयात्। राक्षसः = लवणासुरः अद्य = अस्मिन्दिने कुष्यते = निष्कास्यते मलोऽस्मात् स कुक्षिः मम = लवणस्य कुक्षिः = उदरः, इतिमत्कुक्षिस्तस्य मत्कुक्षेः भुज्यते भोजनम् = भोज्यं मृगादिकम् अतिपर्याप्तं न भवतीति नातिपर्याप्तं = नात्यलं ममोदरपूरणाय न पर्याप्तमित्यर्थः, इति आलक्ष्य = दृष्ट्वा भीतेन = भययुक्तेन इव = यथा उत्प्रेक्षायाम्। विधात्रा = ब्रह्मणा दिष्ट्या = मम भाग्येन मे = मह्यं त्वम् = शत्रुघ्नः उपपादितः = कल्पितः, प्रेषित इत्यर्थः। असि इति = एवं प्रकारेण शत्रुघ्नं = लक्ष्मणानुजं सन्तर्ज्य = भर्त्सयित्वा हन्तुमिच्छा जिघांसा, तस्य = शत्रुघ्नस्य जिघांसा = मारणेच्छा तया तज्जिघांसया प्रांशुम् = अत्युन्नतं द्रुमं = वृक्षं मुस्तयतीति मुस्ता। मुस्तायाः = मुस्तकस्य स्तम्बः = गुल्मः, इति मुस्तास्तम्बस्तं मुस्तास्तम्बम् इव = यथा उत्पाटयामास = विदीर्णवान्, सरलतया अनायासेनोत्पाटितवानित्यर्थः। "कुरुविन्दो मेघनामा मुस्ता मुस्तकमस्त्रियाम् "स्तम्बगुल्मौ" इतिचामरः।

समासः—न अतिपर्याप्तमिति नातिपर्याप्तम्। मम कुक्षिरिति मत्कुक्षिस्तस्य मत्कुक्षेः। तस्य जिघांसा तज्जिघांसा तया तज्जिघांसया। मुस्तायाः स्तम्बः तं मुस्तास्तम्बम्।

हिन्दी—"शत्रुघ्न को देखकर" लवणासुर कहता कि—आज मेरी उदरपूर्ति के लिये मृग आदि भोजन-पदार्थ पर्याप्त नहीं हैं। कम है। यह देखकर ब्रह्मा ने मानो डर कर भाग्य से तुम्हें भेज दिया है ॥ १८ ॥ इस प्रकार शत्रुघ्न को डरा-धमका कर और उसे मारने की इच्छा से एक बड़े भारी पेड़ को ऐसे (सरलता से अनायास) उखाड़ लिया, जैसे मोथा के डण्ठलों को उखाड़ लिया जाता है।

विशेष—मुस्ता—मोथा एक प्रकार की कोमल घास, इसी का विशेष नागरमोथा है ॥ १९ ॥

सौमित्रेर्निशितैर्बाणैरन्तरा शकलीकृतः।
गात्रं पुष्परजः प्राप न शाखी नैर्ऋतेरितः ॥ २० ॥

नैर्ऋतेरितो रक्षःप्रेरितः शाख्यन्तरा मध्ये निशितैर्बाणैः शकलीकृतः सन्सौमित्रेः शत्रुघ्नस्य गात्रं न प्राप किंतु पुष्परजः प्राप ॥

अन्वयः—नैर्ऋतेरितः शाखी अन्तरा निशितैः बाणैः शकलीकृतः सन् सौमित्रेः गात्रं न प्राप "किन्तु" पुष्परजः प्राप।

व्याख्या—नियता ऋतिः = घृणा यस्याः सा, निर्गता ऋतेः = शुभात् इतिवा निर्ऋतिः = अलक्ष्मीः, तस्याः अपत्यं पुमान् नैर्ऋतः, तेन ईरितः = प्रेरितः, इति नैर्ऋतेरितः = लवणासुरप्रेरित

इत्यर्थः। शाखाः सन्त्यस्य असौ शाखी = वृक्षः अन्तरा = मध्ये निशितैः = तीक्ष्णैः बाणैः न शकलम् अशकलम्, अशकलं शकलं सम्पद्यमानः इति शकलीकृतः = खण्डशः कृतः सन् सुमित्रायाः अपत्यं पुमान् सौमित्रिस्तस्य सौमित्रेः = शत्रुघ्नस्य गात्रं = शरीरं न प्राप = न प्राप्तः किन्तु पुष्पाणां = कुसुमानां रजः = परागः पुष्परजः प्राप = अवाप।

समासः—पुष्पाणां रजः पुष्परजः। नैर्ऋतेन ईरितः नैर्ऋतेरितः।

हिन्दी—निर्ऋति (राक्षसी) के लड़के लवणासुर का फेंका हुआ वृक्ष बीच में ही पैने बाणों से टुकड़े-टुकड़े होकर खतम हो गया, और शत्रुघ्न के शरीर तक नहीं पहुँचा। किन्तु उस वृक्ष के फूलों को पराग ही शत्रुघ्न के शरीर तक पहुँच पाई ॥ २० ॥

विनाशात्तस्य वृक्षस्य रक्षस्तस्मै महोपलम्।
प्रजिघाय कृतान्तस्य मुष्टिं पृथगिव स्थितम् ॥ २१ ॥

रक्षो लवणस्तस्य वृक्षस्य विनाशाद्धेतोः। महोपलं महान्तं पाषाणम्। पृथक्स्थितं कृतान्तस्य यमस्य मुष्टिमिव। मुष्टिशब्दो द्विलिङ्गः। तस्मै शत्रुघ्नाय प्रजिघाय प्रहितवान् ॥

अन्वयः—रक्षः तस्य वृक्षस्य विनाशात् महोपलं पृथक् स्थितं कृतान्तस्य मुष्टिम् इव तस्मै प्रजिघाय।

व्याख्या—रक्षः = राक्षसः = लवणासुरः तस्य = उन्नतस्य वृक्षस्य = पादपस्य विनाशात् = खण्डशः करणात् हेतोः, उप लातीति उपलः = पाषाणः, पलतीति पलः, ओः = शम्भोः पलः = बोधकः इति वा उपलः। महाश्चासौ उपलः महोपलस्तं महोपलं = विशालं पाषाणं पृथक् स्थितं = यमादन्यत्रवर्तमानं कृतः अन्तः = विनाशो येन स कृतान्तस्तस्य कृतान्तस्य = यमस्य मुष्टिम् = संग्राहम् इव = यथा "मुष्टिबन्धः संग्राहः" इत्यमरः। तस्मै = शत्रुघ्नाय प्रजिघाय = प्रहितवान्।

समासः—महाश्चासौ उपलः महोपल स्तं महोपलम्। कृतः अन्तो येन स कृतान्तस्तस्य कृतान्तस्य। विशेषेण नाशः विनाशः।

हिन्दी—उस बड़े भारी वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट होने के कारण लवणासुर ने एक भारी चट्टान शत्रुघ्न के ऊपर ऐसी फेंकी मानो वह शरीर से अलग हुआ यमराज का घूँसा ही हो ॥ २१ ॥

ऐन्द्रमस्त्रमुपादाय शत्रुघ्नेन स ताडितः।
सिकतात्वादपि परां प्रपेदे परमाणुताम् ॥ २२ ॥

स महोपलः शत्रुघ्नेनैन्द्रमिन्द्रदेवताकमस्त्रमुपादाय ताडितोऽभिहतः सन्। सिकतात्वात्सिकताभावादपि परां परमाणुतां प्रपेदे। यतोऽणुर्नास्ति स परमाणुरित्याहुः ॥

अन्वयः—सः शत्रुघ्नेन ऐन्द्रम् अस्त्रम् उपादाय ताडितः सन् सिकतात्वाद् अपि परां परणुतांप्रपेदे।

व्याख्या—सः = महान् पाषाणः शत्रून् हन्तीति शत्रुघ्नस्तेन शत्रुघ्नेन इन्द्रः देवता अस्य तत् ऐन्द्रं = इन्द्रदेवतासंबन्धि अस्त्रं = शास्त्रम् उपादाय = गृहीत्वा ताडितः = मारितः सन् सिकतानां = वालुकानां भावः सिकतात्वं तस्मात् सिकतात्वात् = वालुकात्वात् अपि पराम् = अधिकां यस्मात् अणुर्नास्ति स परमाणुः तस्य भावः परमाणुता तां परमाणुतां = परमाणुत्वं प्रपेदे = प्राप।

हिन्दी—लवणासुर के द्वारा फेंकी गई वह चट्टान (शिला) शत्रुघ्न ने अपने इन्द्र देवता वाले अस्त्र से मार कर ऐसी चूर्ण-चूर्ण कर दी कि वह बालू से अधिक परमाणु पने को प्राप्त हो गई। अर्थात् जिससे कोई छोटा न हो वह परमाणु होता है। शत्रुघ्न ने भी उसे परमाणु के समान कण-कण बना दिया ॥ २२ ॥

तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षिणं दोर्निशाचरः।
एकताल इवोत्पातपवनप्रेरितो गिरिः ॥ २३ ॥

निशाचरो राक्षसो दक्षिणं दोः। 'ककुद्दोषणी' इति भगवतो भाष्यकारस्य प्रयोगाद्दोपशब्दस्य नपुंसकत्वं द्रष्टव्यम्। 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' इति पुंलिङ्गसाहचर्यात्पुंस्त्वं च। तथा च प्रयोगः— 'दोषं तस्य तथाविधस्य भजतः' इति। सव्येतरं बाहुमुद्यम्य एकस्तालस्तदाख्यवृक्षो यस्मिन्स एकतालः। उत्पातपवनेन प्रेरितो गिरिरिव। तं शत्रुघ्नमुपाद्रवदभिद्रुतः॥

अन्वयः—निशाचरः दक्षिणं दोः उद्यम्य एकतालः उत्पातपवनेरितः गिरिः इव तम् उपाद्रवत्।

व्याख्या—निशासु चरतीति निशाचरः = राक्षसो लवणः दक्षिणं = सव्येतरं दोः = भुजम् उद्यम्य = उत्थाप्य एकः तालः = तृणराजः, तालवृक्ष इत्यर्थः यस्मिन् सः एकतालः "तृण-राजाह्वय स्तालः" इत्यमरः। उत्पातः = प्रचण्डश्चासौ पवनः = वायुः, इति उत्पातपवनः, अशुभसूचकपवन इति वा, तेन प्रेरितः = प्रचोदितः प्रक्षिप्तः इत्यर्थः। इति उत्पातपवनप्रेरितः गिरिः = पर्वतः इव यथा तं = शत्रुघ्नम् उपाद्रवत् = अभिद्रुतः। लम्बायमानं दीर्घं बाहुमुद्यम्य शत्रुघ्नं हन्तुमभिदुद्रावेत्यर्थः।

समासः—एकः तालः यस्मिन् सः एकतालः। उत्पातश्चासौ पवनः उत्पातपवनस्तेन प्रेरितः इति उत्पातपवनप्रेरितः।

हिन्दी—"यह देख" वह राक्षस अपने दाहिने हाथ को ऊपर उठा कर शत्रुघ्न की ओर ऐसा झपटा, मानो प्रचण्डवायु (बवण्डर) से उड़ाया हुआ वह पहाड़ हो जिसकी चोटी पर केवल एक ताड़ का पेड़ खड़ा हो। लवणासुर ने अपना एक ही हाथ ऊपर उठाया था। अतः कवि ने भी एक ताड़ वाला पर्वत कहा है ॥ २३ ॥

कार्ष्णेन पत्रिणा शत्रुः स भिन्नहृदयः पतन्।
आनिनाय भुवः कम्पं जहाराश्रमवासिनाम् ॥ २४ ॥

सः शत्रुर्लवणः। कार्ष्णेन वैष्णवेन पत्त्रिणा बाणेन। उक्तं च रामायणे—'एवमेष प्रजनितो विष्णोस्तेजोमयः शरः' इति। 'विष्णुर्नारायणः कृष्णः' इत्यमरः। भिन्नहृदयः पतन्भुवः कम्पमानिनायानीतवान्। देहभारादित्यर्थः। आश्रमवासिनां कम्पं जहार। तन्नाशादकुतोभया बभूवुरित्यर्थः॥

अन्वयः—सः शत्रुः कार्ष्णेन पत्त्रिणा भिन्नहृदयः पतन् भुवः कम्पम् आनिनाय, आश्रमवासिनां कम्पं जहार।

व्याख्या—सः = लवणासुरः शत्रुः = वैरी कृष्णस्य = विष्णोः अयमिति कार्ष्णस्तेन कार्ष्णेन = वैष्णवेन पत्राणि = पक्षाः सन्त्यस्य स पत्त्री तेन पत्त्रिणा = बाणेन "विष्णु र्नारायणः कृष्णः" इत्यमरः। भिन्नं = विदीर्णं हृदयं = वक्षः यस्य स भिन्नहृदयः पतन् भूमौ इत्यर्थः भुवः = पृथिव्याः कम्पं = वेपथुम् आनिनाय = आनीतवान्। स्वशरीरभारात् भुवं चकम्पे इत्यर्थः। "अथ वेपथुः कम्पः" इत्यमरः। आश्रमे वसन्ति तच्छीलाः इति आश्रमवासिनस्तेषाम् आश्रमवासिनां = तपस्विनां कम्पं = भयजनितं जहार = अपहृतवान्। लवणासुरविनाशेन तपस्विनो निर्भयाः संजाता इत्यर्थः।

समासः—भिन्नं हृदयं यस्य स भिन्नहृदयः। आश्रमस्यवासिनः आश्रमवासिनस्तेषाम् आश्रमवासिनाम्।

हिन्दी—विष्णु के तेज से निर्मित शत्रुघ्न के बाण से लवणासुर का हृदय फट गया। तब जमीन पर गिरते हुए उस राक्षस ने पृथिवी को कँपा दिया। अर्थात् उसके गिरने से जमीन हिल उठी। और आश्रम के निवासियों के कंप (भय) को भगा दिया। अर्थात् तपस्विजन अब निर्भय होकर रहने लगे।

विशेष—रामायण में लिखा है कि यह बाण विष्णु के तेज से बना था। और विष्णु कृष्ण एक ही है। अतः कार्ष्णेन कहा है॥ २४॥

वयसां पङ्क्तयः पेतुर्हतस्योपरि विद्विषः।
तत्प्रतिद्वन्द्विनो मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमवृष्टयः॥ २५॥

हतस्य। विद्वेष्टीति विद्विट् तस्य विद्विषो राक्षसस्योपरि वयसां पक्षिणां पङ्क्तयः पेतुः। तत्प्रतिद्वन्द्विनः शत्रुघ्नस्य मूर्ध्नि तु दिव्याः कुसुमवृष्टयः पेतुः॥

अन्वयः—हतस्य विद्विषः उपरि वयसां पङ्क्तयः पेतुः, तत्प्रतिद्वन्द्विनः मूर्ध्नि दिव्याः कुसुमवृष्टयः पेतुः।

व्याख्या—हतस्य = मृतस्य विशेषेण द्वेष्टीति विद्विट् तस्य विद्विषः = शत्रोः लवणासुरस्य उपरि = उपरिष्टात् वयसां = पक्षिणां पंक्तयः = श्रेणयः समूहाइत्यर्थः। पेतुः = निपेतुः। "वयः पक्षिणि बाल्यादौ यौवने च नपुंसकम्" इत्यमरः। द्वन्द्वः = द्वेषोऽस्यास्तीति द्वन्द्वी, प्रतिरूपो द्वन्द्वी प्रतिद्वन्द्वी, तस्य = लवणस्य प्रतिद्वन्द्वी = शत्रुस्तस्य तत्प्रतिद्वन्द्विनः = शत्रुघ्नस्य मूर्ध्नि = मस्तके दिवि भवाः दिव्याः = स्वर्गीयाः कुसुमानां = पुष्पाणां वृष्टयः = वर्षणानि पेतुः = पतिताः।

समासः—प्रतिरूपो द्वन्द्वी प्रतिद्वन्द्वी, तस्य प्रतिद्वन्द्वी तत्प्रतिद्वन्द्वी तस्य तत्प्रतिद्वन्द्विनः। कुसुमानां वृष्टयः कुसुमवृष्टयः।

हिन्दी—मरे हुए उस राक्षस के ऊपर गिद्ध, कौआ आदि पक्षी टूट पड़े, अर्थात् उसका मांस खाने के लिये। और उसके प्रति पक्षी शत्रुघ्न के मस्तक पर स्वर्ग से पुष्पों की वर्षा होने लगी॥ २५॥

स हत्वा लवणं वीरस्तदा मेने महौजसः।
भ्रातुः सोदर्यमात्मानमिन्द्रजिद्वधशोभिनः॥ २६॥

स वीरः शत्रुघ्नो लवणं हत्वा तदात्मानं महौजसो महाबलस्येन्द्रजिद्वधेन शोभिनो भ्रातुर्लक्ष्मणस्य समानोदरे शयितं सोदर्यमेकोदरं मेने। 'सोदराद्यः' इति यप्रत्ययः॥

अन्वयः—सः वीरः लवणं हत्वा तदा आत्मानम् महौजसः, इन्द्रजिद्वधशोभिनः भ्रातुः सौदर्यं मेने।

व्याख्या—सः=लवणासुरघातकः वीरयतीतिवीरः=शूर "वीरः शूरोविक्रान्तः" इत्यमरः। लवणं=राक्षसं हत्वा=विनाश्य तदा=तस्मिन्काले आत्मानं=स्वं महत्=प्रभूतम् ओजो=बलं यस्य स तस्य महौजसः इन्द्रं जयतीति इन्द्रजित्। इन्द्रजितः=मेघनादस्य वधः=मारणं तेन शोभते=शालते, तच्छीलः इन्द्रजिद्वधशोभी तस्य इन्द्रजिद्वधशोभिनः भ्रातुः=लक्ष्मणस्य समाने=तुल्ये उदरे=कुक्षौ शयितः, इतिसौदर्यस्तं सौदर्यं=समानोदर्यं मेने=अमंस्त।

समासः—महत् ओजो यस्य स महौजास्तस्य महौजसः। इन्द्रजितः वधः, इन्द्रजिद्वधस्तेन शोभी इति इन्द्रजिद्वधशोभी तस्य इन्द्रजिद्वधशोभिनः। समाने उदरे शयितः सोदर्यस्तं सौदर्यम्।

हिन्दी—उस पराक्रमी शत्रुघ्न ने लवणासुर को मार कर, तब अपने को, इन्द्रविजयी मेघनाद को मारने से शोभायमान लक्ष्मण का सहोदर भाई माना॥ २६॥

तस्य संस्तूयमानस्य चरितार्थैस्तपस्विभिः।
शुशुभे विक्रमोदग्रं व्रीडयावनतं शिरः॥ २७॥

चरितार्थैः कृतार्थैः कृतकार्यैस्तपस्विभिः संस्तूयमानस्य तस्य शत्रुघ्नस्य विक्रमेणोदग्रमुन्नतं व्रीडया लज्जयावनतं नम्रं शिरः शुशुभे। विक्रान्तस्य लज्जैव भूषणमिति भावः॥

अन्वयः—चरितार्थैः तपस्विभिः संस्तूयमानस्य तस्य विक्रमोदग्रं व्रीडया अवनतं शिरः शुशुभे।

व्याख्या—चरितः=सम्पादितः, कृतः अर्थः=प्रयोजनं, कार्यं येषान्ते तैः चरितार्थैः तपः अस्ति येषां ते तैः तपस्विभिः=तापसैः, आश्रमवासिभिरित्यर्थः। संस्तूयते इति संस्तूयमानस्तस्य संस्तूयमानस्य=प्रशंस्यमानस्य तस्य=शत्रुघ्नस्य विक्रमेण=पराक्रमेण, शौर्येणेत्यर्थः उदग्रम्=उन्नतं, व्रीडया=लज्जया च अवनतं=विनम्रं शिरः=मस्तकं शुशुभे=दिदीपे।

समासः—चरितः अर्थः येषान्ते स्तैः चरितार्थैः। विक्रमेण उदग्रमिति विक्रमोदग्रम्।

हिन्दी—जिनका कार्य पूरा हो गया है। ऐसे तपस्विजनों से स्तुति (बड़ाई) किये जा रहे शत्रुघ्न का शिर, वीरता का कार्य करने से ऊँचा, और लज्जाशील नम्र (झुका) होकर सुशोभित हुआ। पराक्रम का लज्जा, नम्रता ही भूषण है ॥ २७ ॥

उपकूलं स कालिन्द्याः पुरीं पौरुषभूषणः।
निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मधुरां मधुराकृतिः ॥ २८ ॥

पौरुषभूषणः। अर्थेषु विषयेषु निर्ममो निःस्पृहः। मधुराकृतिः सौम्यरूपः स शत्रुघ्नः कालिन्द्या यमुनाया उपकूलं कूले। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। मधुरां नाम पुरीं निर्ममे निर्मितवान् ॥

अन्वयः—पौरुषभूषणः अर्थेषु निर्ममः मधुराकृतिः सः कालिन्द्याः उपकूलं मधुरां पुरीं निर्ममे।

व्याख्या—पुरुषस्य भावः कर्म वा पौरुषः=पुरुषभावः, उद्योगः एव भूषणम्=अलंकारः यस्य स पौरुषभूषणः अर्थेषु=विषयेषु निर्गतं मम, इत्याकारं ज्ञानं यस्मात् स निर्ममः= निस्पृहः "षष्ठ्यर्थवृत्तिः अस्मच्छब्दार्थः ममेत्यव्ययः। मधुरा=मनोहरा आकृतिः=स्वरूपं यस्य स मधुराकृतिः सः=शत्रुघ्नः कलिन्दस्य इयं कालिन्दी तस्याः कालिन्द्याः=यमुनायाः कूले इति उपकूलं=तटे मधुरां=एतन्नाम्नीं मथुरामित्यर्थः। पुरीं=नगरीं निर्ममे=निर्मितवान्।

समासः—पौरुषः भूषणं यस्य स पौरुषभूषणः। मधुरा आकृतिः यस्य स मधुराकृतिः। कूले इति, उपकूलम्। निर्गतं मम यस्मात् स निर्ममः।

हिन्दी—पराक्रम भूषण वाले, ममता से रहित, तथा जितेन्द्रिय, सौम्य सुन्दर शत्रुघ्न ने यमुना के किनारे पर मधुरा नाम की नगरी का निर्माण किया, बसाई ॥ २८ ॥

या सौराज्यप्रकाशाभिर्बभौ पौरविभूतिभिः।
स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वेवोपनिवेशिता ॥ २९ ॥

या पूः। शत्रुघ्नः सोभनो राजा यस्याः पुरः सा सुराज्ञी सुराज्ञ्या भावः सौराज्यम्। तेन प्रकाशमानाभिः पौराणां विभूतिभिरैश्वर्यैः स्वर्गस्याभिष्यन्दोऽतिरिक्तजनः तस्य वमनमाहरणं कृत्वोपनिवेशितोपस्थापितेव बभौ। अत्र कौटिल्यः–'भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशप्रवाहेण स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत्' इति ॥

अन्वयः—या सौराज्यप्रकाशाभिः पौरविभूतिभिः स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वा उपनिवेशिता इव बभौ।

व्याख्या—या=मधुरा नगरी सु=शोभनः=शत्रुघ्नः राजा=नृपः यस्याः सा सुराज्ञी, सुराज्ञ्याः भावः सौराज्यं सौराज्येन प्रकाशाः=प्रकाशमानाः, देदीप्यमानाः ताभिः सौराज्य-प्रकाशाभिः, पुरे भवाः पौराः, पौराणां=नागरिकाणां विभूतयः=ऐश्वर्याणि ताभिः पौरविभूतिभिः, सुष्ठु अर्ज्यते इति स्वर्गः, स्वर्गस्य=देवलोकस्य अभिष्यन्दः=आधिक्यम्, अतिरिक्तजनः, इति

स्वर्गाभिष्यन्दः, स्वर्गविशेषतः प्रवृद्धः जनः इत्यर्थः। स्वर्गाभिष्यन्दस्य वमनम्=आहरणम् आनयनमित्यर्थः। कृत्वा=विधाय उपनिवेशिता=स्थापिता इव=यथा बभौ=शुशुभे। स्वर्गे प्रवृद्धान् जनान् आदाय नगरीयं शत्रुघ्नेन निर्मिता इव शुशुभे इत्यर्थः।

समासः—सुष्ठु राजा यस्याः सा सुराज्ञी, तस्याः भावः सौराज्यम्, सौराज्येन प्रकाशाः, ताभिः सौराज्यप्रकाशाभिः। पौराणां विभूतयः पौरविभूतयस्ताभिः पौरविभूतिभिः। स्वर्गस्य अभिष्यन्दः स्वर्गाभिष्यन्दः, स्वर्गाभिष्यन्दस्य वमनमिति तत् स्वर्गाभिष्यन्दवमनम्।

हिन्दी—अच्छा सुयोग्य राजा होने के कारण, देदीप्यमान (चमकते सुविख्यात) नागरिकों के ऐश्वर्य से वह नगरी ऐसी ज्ञात हो रही थी। मानो स्वर्ग को बढ़ी हुई जनसंख्या को लाकर यह नगरी बसाई है। अर्थात् शत्रुघ्न के राजा होने पर वहाँ के लोग बड़े सुखी, ऐश्वर्यशाली थे।

विशेष—कौटिल्य शास्त्र में लिखा है कि पहले अथवा अभी नई बढ़ी हुई जनसंख्या को दूसरे देश प्रान्त में अथवा अपने देश में अन्यत्र बसा देवे राजा ॥ २९ ॥

तत्र सौधगतः पश्यन्यमुनां चक्रवाकिनीम्।
हेमभक्तिमतीं भूमेः प्रवेणीमिव पिप्रिये ॥ ३० ॥

तत्र मधुरायां सौधगतो हर्म्यारूढः स चक्रवाकिनीं चक्रवाकवतीं यमुनाम्। हेमभक्तिमतीं सुवर्णरचनावतीं भूमेः प्रवेणीं वेणिमिव। 'वेणिः प्रवेणी' इत्यमरः। पश्यन्पिप्रिये प्रीतः। 'प्रीङ् प्रीणने' इति धातोर्दैवादिकाल्लिट् ॥

अन्वयः—तत्र सौधगतः सः चक्रवाकिनीं यमुनाम् हेमभक्तिमतीम् भूमेः प्रवेणीम् इव पश्यन् पिप्रिये।

व्याख्या—तत्र=नवनिर्मितमधुरायां सुधा लेपोऽस्यास्तीति सौधः। सौधे=राजसदने गतः=आरूढः इति सौधगतः सः=शत्रुघ्नः चक्रशब्देन उच्यते इति चक्रवाकः। चक्रवाकश्च चक्रवाकी चेति चक्रवाकौ स्तः अस्यां सा चक्रवाकिनी तां चक्रवाकिनीम्=रथांगनामवतीम्, यमुनां=कालिन्दीं हेम्नः=सुवर्णस्य भक्तिः=रचना इति हेमभक्तिः, सा अस्याः अस्तीति हेमभक्तिमती तां हेमभक्तिमतीं भूमेः=पृथिव्याः प्रकृष्टा वेणी प्रवेणी तां प्रवेणीं=वेणीम् इव=यथा पश्यन्=अवलोकयन् पिप्रिये=प्रीतः, प्रसन्नोऽभूदित्यर्थः। "वेणी सेतुप्रवाहयोः। देवताडे केशबन्धे" इति हैमः।

समासः—सौधे गतः सौधगतः। हेम्नः भक्तिमती हेमभक्तिमती तां हेमभक्तिमतीम्। प्रकृष्टा वेणी प्रवेणी तां प्रवेणीम्।

हिन्दी—राजभवन के ऊपर चढ़कर नीले जलवाली उस यमुना को देखते हुए शत्रुघ्न बड़े प्रसन्न हुए। जिसमें चकवा-चकवी कल्लोल कर रहे थे। वह यमुना ऐसी लग रही थी मानो सुवर्ण के फूलों से गूँथी गई पृथिवी की चोटी हो ॥ ३० ॥

संप्रति रामसंतानवृत्तान्तमाह—

सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत् ।
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि ॥ ३१ ॥

दशरथस्य जनकस्य च सखा मन्त्रकृन्मन्त्रद्रष्टा स वाल्मीकिरपि । 'सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः' इति क्विप् । उभयोर्दशरथजनकयोः प्रीत्या स्नेहेन मैथिलेयौ मैथिलीपुत्रौ यथाविधि यथाशास्त्रं संचस्कार संस्कृतवान् । जातकर्मादिभिरिति शेषः ॥

अन्वयः—दशरथस्य जनकस्य च सखा मंत्रकृत् "सः अपि" उभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथा विधि संचस्कार ।

व्याख्या—दशसु दिक्षु गतः रथो यस्य स दशरथस्तस्य दशरथस्य = अयोध्याधिपतेः जनयतीति जनकस्तस्य जनकस्य = मिथिलाधिपतेः विदेहस्य च समानः ख्यायते जनैरिति सखा = मित्रम् मंत्रं करोतीति मंत्रकृत् = मंत्रद्रष्टा स वाल्मीकिरपि उभयोः = दशरथजनकयोः प्रीतिः = स्नेहस्तया उभयप्रीत्या = द्वयोःप्रेम्णा मैथिल्याः = सीतायाः इमौ मैथिलेयौ = सीतासुतौ विधिमनतिक्रम्य यथाविधि = शास्त्रानुसारं संचस्कार = संस्कृतवान् सीतापुत्रयोः जातकर्मादिसंस्कारं कृतवान् इत्यर्थः ।

समासः—दशसु दिक्षु गतः रथः यस्य स दशरथस्तस्य दशरथस्य । उभयोः प्रीतिः उभयप्रीतिस्तया उभयप्रीत्या । विधिमनतिक्रम्य यथाविधि । मंत्रस्य कृत् इति मंत्रकृत् ।

हिन्दी—महाराजा दशरथ तथा राजा जनक जी के मित्र एवं मंत्रद्रष्टा वाल्मीकि ऋषि ने दोनों के स्नेहवश सीता जी के पुत्रों का शास्त्रानुसार जातकर्म संस्कार कर दिया ॥ ३१ ॥

स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया ।
कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः ॥ ३२ ॥

स कविर्वाल्मीकिः कुशैर्दर्भैर्लवैर्गोपुच्छलोमभिः । 'लवो लवणकिञ्जल्कपक्ष्मगोपुच्छलोमसु' इति वैजयन्ती । उन्मृष्टो गर्भक्लेदो गर्भोपद्रवो ययोस्तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ मैथिलेयौ तेषां कुशानां च लवानां चाख्यया नामतो नाम्ना यथासंख्यं कुशलवावेव चकार किल । कुशोन्मृष्टः कुशः । लवोन्मृष्टो लवः ॥

अन्वयः—सः कविः कुशलवोन्मृष्टक्लेदौ तौ तदाख्यया नामतः कुशलवौ एव चकार किल ।

व्याख्या—स कविः = वाल्मीकिः कुशैः = दर्भैः लवैः = गोपुच्छलोमभिः उन्मृष्टः = निवारितः यः गर्भस्य = दोहदस्य क्लेदः = दुःखम् , उपद्रवः ययो स्तौ, कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तौ = मैथिलेयौ, तेषां = कुशानां, लवानां च आख्या = नाम, इति तदाख्या तया तदाख्यया नाम्ना इति नामतः = नाम्ना क्रमशः कु = पापं श्यति = नाशयति विहितराजधर्मानुष्ठानेनेति कुशः = रामसुतः च लवश्चेति कुशलवौ एव चकार किल = कृतवान् । यस्य जन्मसमये कुशैः उपद्रवः उन्मृष्टः तस्य कुशः, यस्य च लवैः दुःखं दूरीकृतं तस्य लवः, नाम कृतमित्यर्थः । "लवः कालभिदिच्छिदि । विलासे रामजे लेशे तथा किञ्जल्कपक्ष्मणोः गोपुच्छलोमस्वपि च" इति हैमः ।

समासः—कुशाश्च लवाश्च कुशलवाः। गर्भस्य क्लेदः गर्भक्लेदः। कुशलवैः उन्मृष्टः गर्भक्लेदो ययो स्तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ। तेषाम् आख्या तदाख्या तया तदाख्यया। कुशश्च लवश्चेति कुशलवौ।

हिन्दी—उन कवि वाल्मीकि जी ने, "बच्चों के जन्मकाल में" कुशा से (कुश के जन्म समय) गौ की पूँछ के बालों से (लव के जन्म समय) सीता जी की प्रसव पीड़ा को दूर किया था। अतः कुशा और लव=गोपुच्छवाल के नाम से उन दोनों बालकों का (बड़े का लव, छोटे का कुश ही) नाम किया, नाम रख दिया ॥ ३२ ॥

साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम् ॥ ३३ ॥

किंचिदुत्क्रान्तशैशवावतिक्रान्तबाल्यौ तौ साङ्गं च वेदमध्याप्य कवीनां प्रथमपद्धतिम्। कविताबीजमित्यर्थः। स्वकृतिं काव्यं रामायणाख्यं गापयामास। गापयतेर्लिट्। शब्दकर्मत्वात् 'गतिबुद्धि–' इत्यादिना द्विकर्मकत्वम् ॥

अन्वयः—किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ "तौ" साङ्गं वेदम् अध्याप्य, कविप्रथमपद्धतिं स्वकृतिं गापयामास।

व्याख्या—किञ्चित्=पञ्चवर्षात्मकम् उत्क्रान्तम्=अतिक्रान्तं व्यतीतमित्यर्थः शैशवं=बाल्यं ययोस्तौ, किञ्चिदुत्क्रान्तशैशवौ तौ। तौ=कुशलवौ अंगैः=व्याकरणादिभिः सहितः सांगस्तं साङ्गं=षडंगयुक्तम् वेत्ति=जानाति सर्वं लोकः येन स वेदः तं वेदं=त्रयीम् अध्याप्य=पाठयित्वा, सांगवेदं ग्राहयित्वेत्यर्थः। कवीनां=काव्यकर्तॄणां प्रथमा=अपूर्वा या पद्धतिः=सरणिस्तां कविप्रथमपद्धतिं कविताबीजमित्यर्थः स्वस्य=वाल्मीकेः कृतिः=रचना तां स्वकृतिम् रामायणनामधेयमादिकाव्यमित्यर्थः। गापयामास=गानं कारयामास।

समासः—किंचिदुत्क्रान्तं शैशवं ययोस्तौ किञ्चिदुत्क्रान्तशैशवौ तौ। स्वस्य कृतिः स्वकृतिस्तां स्वकृतिम्। कवीनां प्रथमा पद्धतिः कविप्रथमपद्धति स्तां कविप्रथमपद्धतिम्। अंगैः सहितः सांगस्तं साङ्गम्।

हिन्दी—कुछ बचपन काल बीत जाने पर उन दोनों लव-कुश को वाल्मीकि मुनि ने छहों अंगों के साथ वेद पढ़ाकर अपनी कृति (वाल्मीकि की रचना) उस आदिकाव्य रामायण को गवाया। अर्थात् रामायण का गाना सिखाया। जो रामायण कवियों को दिखाया गया पहला मार्ग है ॥ ३३ ॥

रामस्य मधुरं वृत्तं गायन्तौ मातुरग्रतः।
तद्वियोगव्यथां किंचिच्छिथिलीचक्रतुः सुतौ ॥ ३४ ॥

तौ सुतौ रामस्य वृत्तं मातुरग्रतो मधुरं गायन्तौ तद्वियोगव्यथां रामविरहवेदनां किंचिच्छिथिलीचक्रतुः ॥

अन्वयः—तौ सुतौ रामस्य वृत्तं मातुः अग्रतः मधुरं गायन्तौ, तद्वियोगव्यथां किञ्चिच्छिथिलीचक्रतुः ।

व्याख्या—तौ = कुशलवौ सुतौ = पुत्रौ रामस्य = रामचन्द्रस्य वृत्तं = चरितं, कथां मान्यते = पूज्यते या सा माता = जननी, तस्याः मातुः = सीतायाः अग्रतः = अग्रे मधु = माधुर्यमस्यास्तीति मधुरं तत् मधुरं = अतिप्रियं गायन्तौ = गानं कुर्वन्तौ तस्य = रामस्य वियोगः = विरहः इति तद्वियोगः तेन या व्यथा = वेदना = दुःखमित्यर्थः तां तद्वियोगव्यथां किंचित् = ईषत् न शिथिला, अशिथिला, अशिथिलां शिथिलां कृतवन्तौ इति किंचिच्छिथिलीचक्रतुः = किंचिल्लघूकृतवन्तौ ।

समासः—तस्य वियोगः तद्वियोगः तेन या व्यथा तां तद्वियोगव्यथाम् ।

हिन्दी—उन दोनों पुत्रों (बालकों) ने अपनी पूज्य माँ के सामने रामचन्द्र की मधुर मनोहारिणी कथा, गाकर राम के विरह से उत्पन्न सीता के दुःख को कुछ शान्त कर दिया । कम कर दिया ॥ ३४ ॥

> **इतरेऽपि रघोर्वंश्यास्त्रयस्त्रेताग्नितेजसः ।**
> **तद्योगात्पतिवत्नीषु पत्नीष्वासन्द्विसूनवः ॥ ३५ ॥**

रघोर्वंश्या वंशे भवाः । त्रेतेत्यग्नयस्त्रेताग्नयः तेषां तेज इव तेजो येषां ते त्रेताग्नितेजसः । इतरे रामादन्ये त्रयो भरतादयोऽपि तद्योगात्तेषां योगाद्भरतादिसंबन्धात्पतिवत्नीषु भर्तृमतीषु जीवत्पतिकासु । ख्यातिमतीष्वित्यर्थः । 'पतिवत्नी सभर्तृका' इत्यमरः । 'अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्' इति ङीप्प्रत्ययो नुगागमश्च । पत्नीषु द्विसूनव आसन् । द्वौ द्वौ सूनू येषां ते द्विसूनव इति विग्रहः । क्वचित्संख्याशब्दस्य वृत्तिविषये वीप्सार्थत्वं सप्तपर्णादिवत् ॥

अन्वयः—रघोः वंश्याः त्रेताग्नितेजसः इतरे त्रयः तद्योगात् पतिवत्नीषु पत्नीषु द्विसूनवः आसन् ।

व्याख्या—रघोः = दिलीपसूनोः वंशे = कुले भवाः = उत्पन्नाः इति वंश्याः त्रीन् भेदान् एति = प्राप्नोतीति त्रेता, त्रित्वमिता = गता वा त्रेता त्रेता इत्यग्नयः इति त्रेताग्नयः । त्रेताग्नीनां = दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयानां तेजः इव तेजः = प्रतापः येषां ते त्रेताग्नितेजसः इतरे = रामादपरे त्रयः = भरतलक्ष्मण शत्रुघ्नाः अपि समुच्चये तेषां = त्रयाणां योगात् = सम्बन्धात् पतिः अस्ति यासां ता पतिवत्न्यः तासु पतिवत्नीषु = सभर्तृकासु "पतिवत्नी सभर्तृका" इत्यमरः । जीवत्पतिकासु प्रसिद्धासु, इत्यर्थः । पत्नीषु = भार्यासु द्वौ द्वौ सूनू = पुत्रौ येषां ते द्विसूनवः आसन् = अभूवन् । प्रत्येकं भ्रातुः सकाशात् द्वौ द्वौ पुत्रौ उत्पन्नौ, इत्यर्थः ।

समासः—त्रेता इति अग्नयः त्रेताग्नयः, त्रेताग्नीनां तेजः इव तेजः येषां ते त्रेताग्नितेजसः । तेषां योगः तस्मात् तद्योगात् । द्वौ द्वौ सूनू येषां ते द्विसूनवः ।

हिन्दी—महाराज रघु के वंश में उत्पन्न, दक्षिणापत्य, गार्हपत्य, आहवनीय इन तीन अग्नियों के समान तेजस्वी, राम से अन्य भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न भी अपनी-अपनी पत्नियों के संबंध से सब दो-दो पुत्र वाले थे अर्थात् इन तीनों को भी दो-दो पुत्र हुए थे ॥ ३५ ॥

शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः सुबाहौ च बहुश्रुते ।
मधुराविदिशे सून्वोर्निदधे पूर्वजोत्सुकः ॥ ३६ ॥

पूर्वजोत्सुको ज्येष्ठप्रियः शत्रुघ्नो बहुश्रुते शत्रुघातिनि सुबाहौ च तन्नामकयोः सून्वोर्मधुरा च विदिशा च ते नगर्यौ निदधे । निधाय गत इत्यर्थः ॥

अन्वयः—पूर्वजोत्सुकः शत्रुघ्नः बहुश्रुते शत्रुघातिनि सुबाहौ च सून्वोः मधुराविदिशे निदधे ।

व्याख्या—पूर्वस्मिन् काले जाताः पूर्वजाः, पूर्वजेषु = रामभरतलक्ष्मणेषु उत्सुकः = उत्कण्ठितः इति पूर्वजोत्सुकः, ज्येष्ठदर्शनोत्कण्ठित इत्यर्थः । शत्रुन् हन्तीति शत्रुघ्नः = लक्ष्मणानुजः बहु = प्रचुरं श्रुतं = शास्त्रं यस्य स तस्मिन् बहुश्रुते, बहुज्ञे, इत्यर्थः शत्रून् घातयतीति शत्रुघाती तस्मिन् शत्रुघातिनि = शत्रुविनाशके, इत्यर्थः । सु = सुन्दरौ बाहू = भुजौ यस्य स तस्मिन् सुबाहौ च, शत्रुघातिसुबाहुनामकयोः सून्वोः = पुत्रयोः मधुरा च विदिशा च मधुराविदिशे = एतन्नामकनगर्यौ निदधे = दत्तवान् । शत्रुघातिनामके पुत्रे मधुरां निधाय, सुबाहुनामके च पुत्रे विदिशां निधाय शत्रुघ्नः रथमास्थाय रामं द्रष्टुं गत इत्यर्थः ।

समासः—पूर्वजे उत्सुकः पूर्वजोत्सुकः । मधुरा च विदिशा चेति मधुराविदिशे । बहु श्रुतं यस्य स बहुश्रुतः, तस्मिन् बहुश्रुते ।

हिन्दी—अपने बड़े भाइयों के दर्शन के लिये उत्कण्ठित (उतावले) शत्रुघ्न ने, शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् शत्रुघाती और सुबाहु नामक पुत्रों को मधुरा और विदिशा सौंप दी । अर्थात् शत्रुघाती को मधुरा का राज्य और सुबाहु को विदिशा का राज्य देकर बड़े भाइयों से मिलने चले गये ॥ ३६ ॥

भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात् ।
मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगमाश्रमम् ॥ ३७ ॥

स शत्रुघ्नो मैथिलीतनययोः कुशलवयोरुद्गीतेन निःस्पन्दमृगं गीतप्रियतया निश्चलहरिणं वाल्मीकेराश्रमम् । भूयः पुनरपि तपोव्ययः संविधानकरणार्थं तपोहानिर्मा भूदिति हेतोः अत्यगात् । अतिक्रम्य गत इत्यर्थः ॥

अन्वयः—सः मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगम् वाल्मीकेः आश्रमं भूयः तपोव्ययः मा भूत् इति अत्यगात् ।

व्याख्या—सः = शत्रुघ्नः मैथिल्याः = सीतायाः तनयौ = कुशलवौ, इति मैथिलीतनयौ तयोः उद्गीतं = रामायणगानं तेन निःस्पन्दाः = निश्चलाः गीतप्रियत्वादित्यर्थः । मृगाः = हरिणाः

यस्मिन् स तं मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगम् वाल्मीकेः = महर्षेः आश्रमं = तपोवनम् भूयः = पुनरपि तपसां = तपस्यानां व्ययः = हानिः इति तपोव्ययः। मम संविधानसम्पादनार्थम् तपसो हानिः मा भूत् = न भवतु इति = हेतोः अत्यगात् = अतिक्रम्यगतवान्।

समासः—मैथिल्याः तनयौ मैथिलीतनयौः तयोः उद्गीतमिति मैथिलीतनयोद्गीतं तेन निःस्पन्दाः मृगाः यस्मिन् स तं मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगम्। तपसां व्ययः तपोव्ययः।

हिन्दी—शत्रुघ्न जी, सीता जी के पुत्र लव कुश के गीत सुनने से निश्चल हरिण वाले वाल्मीकि जी के आश्रम को छोड़कर अयोध्या गये। इसलिये कि "आश्रम में मेरे जाने पर" मेरे सत्कारार्थ महर्षि अपनी सिद्धि के प्रभाव से सामग्री जुटायेंगे अतः व्यर्थ ही तप की हानि होगी ॥ ३७ ॥

वशी विवेश चायोध्यां रथ्यासंस्कारशोभिनीम्।
लवणस्य वधात्पौरैरीक्षितोऽत्यन्तगौरवम् ॥ ३८ ॥

वशी स लवणस्य वधाद्धेतोः पौरैः पौरजनैरत्यन्तं गौरवं यस्मिन्कर्मणि तत्तथेक्षितः सन्। रथ्यासंस्कारैस्तोरणादिभिः शोभते या तामयोध्यां विवेश च ॥

अन्वयः—वशी लवणस्य वधात् पौरैः अत्यन्तगौरवं यथास्यात्तथा ईक्षितः सन् रथ्यासंस्कारशोभिनीम् अयोध्यां च विवेश।

व्याख्या—वशोऽस्यास्तीति वशी = जितेन्द्रियः शत्रुघ्नः लवणस्य = राक्षसस्य वधात् = मरणात् हेतोः पुरे भवाः पौराः तैः पौरैः = नागरिकजनैः अत्यन्तम् = अधिकं गौरवं = सम्मानं यस्मिन् कर्मणि तत् अत्यन्तगौरवम् यथास्यात्तथा ईक्षितः = दृष्टः सन् रथं वहतीति रथ्या, रथ्यायाः = प्रतोल्याः संस्कारः, संमार्जनतोरणादिभिः परिस्कारः, तेन शोभते = शालते या सा रथ्यासंस्कारशोभिनी तां रथ्यासंस्कारशोभिनीम् अयोध्यां = साकेतं विवेश = प्रविष्टः च।

समासः—रथ्यायाः संस्कारः रथ्यासंस्कारस्तेन शोभिनी तां रथ्यासंस्कारशोभिनीम्। अत्यन्तं गौरवं यस्मिन् कर्मणि तत् अत्यन्तगौरवम्।

हिन्दी—"और वहाँ से चलकर" जितेन्द्रिय शत्रुघ्न, नागरिक जनों से बड़े ही संमानपूर्वक देखे जाते होकर उस अयोध्या नगरी में पहुँच गये। जिसकी गलियों को सफाई तथा बन्दरवार बाँध कर खूब सजाया गया था, इसलिये कि वे लवणासुर को मारकर लौटे थे। विजयीवीर का स्वागत-संमान बड़े उत्साह से मनाते ही हैं ॥ ३८ ॥

स ददर्श सभामध्ये सभासद्भिरुपस्थितम्।
रामं सीतापरित्यागादसामान्यपतिं भुवः ॥ ३९ ॥

स शत्रुघ्नः सभामध्ये सभासद्भिः सभ्यैरुपस्थितं सेवितं सीतापरित्यागाद्भुवोऽसामान्यपतिमसाधारणपतिं रामं ददर्श ॥

अन्वयः—सः सभामध्ये सभासद्भिः उपस्थितं सीतापरित्यागात् भुवः असामान्यपतिं रामं ददर्श ।

व्याख्या—सः = शत्रुघ्नः सह भान्ति अस्यां सा सभा, समानाः भान्ति सर्वेऽस्यां वा सा सभा । सभायाः = संसदः मध्यम् = अन्तरं तस्मिन् सभामध्ये सभायां सीदन्ति ये ते सभासदः तैः सभासद्भिः = सभ्यैः उपस्थितं = सेवितं सीतायाः = जानक्याः परित्यागः = वने विसर्जनं तस्मात् सीतापरित्यागात् भुवः = पृथिव्याः समानस्य भावः कर्म वा सामान्यम् । न सामान्यः असामान्यः असामान्यश्चासौ पतिः = स्वामी इति असामान्यपतिः तम् असामान्यपतिं रामं = रामचन्द्रं ददर्श = अवलोकयामास ।

समासः—सभायाः मध्यं तस्मिन् सभामध्ये । सीतायाः परित्यागः सीतापरित्याग स्तस्मात् सीतापरित्यागात् । न सामान्यः असामान्यः, असामान्यश्चासौ पतिः असामान्यपतिः तम् असामान्यपतिम् ।

हिन्दी—राज्यसभा में विराजमान, सभासदों से सेवित, और सीता जी को छोड़ देने से एकमात्र पृथिवी स्वामी, (पति) श्रीराम को शत्रुघ्न ने देखा ॥ ३९ ॥

तमभ्यनन्दत्प्रणतं लवणान्तकमग्रजः ।
कालनेमिवधात्प्रीतस्तुराषाडिव शार्ङ्गिणम् ॥ ४० ॥

अग्रजो रामो लवणस्यान्तकं हन्तारं प्रणतं तं शत्रुघ्नम् । कालनेमिर्नाम राक्षसः तस्य वधात्प्रीतः । तुरां वेगं सहत इति तुराषाडिन्द्रः । 'छन्दसि सहः' इति ण्विः । यद्वा सहतेर्णिचि कृते साहयतेः क्विप् । 'अन्येषामपि दृश्यते' इति पूर्वपदस्य दीर्घः । 'सहेः साडः सः' इति षत्वम् । शार्ङ्गिणमुपेन्द्रमिव । अभ्यनन्दत् ॥

अन्वयः—अग्रजः लवणान्तकं प्रणतं तं कालनेमिवधात् प्रीतः तुराषाड् शार्ङ्गिणम् इव अभ्यनन्दत् ।

व्याख्या—अग्रे = प्रथमं जातः = उत्पन्नः सः अग्रजः = रामः लवणस्य = लवणासुरस्य अन्तकः = विनाशकः = हन्ता इति लवणान्तकस्तं लवणान्तकं प्रणतं = प्रणामं कुर्वन्तं तं = शत्रुघ्नम् कालस्येव नेमिरस्ति अस्य स कालनेमिः तस्य वधः = मारणं तस्मात् कालनेमिवधात् = एतन्नामकराक्षसवधकरणात् प्रीतः = प्रसन्नः । तुतोति इति तुरः, तुरं = वेगवन्तं साहयति = अभिभवतीति तुराषाड् = इन्द्रः शृंगस्य विकारः शार्ङ्गं = धनुः अस्ति अस्य स शार्ङ्गी तं शार्ङ्गिणं = विष्णुम् इव = यथा अभ्यनन्दत् = अभिनन्दितवान् ।

समासः—अग्रे जातः अग्रजः । लवणस्य अन्तकः लवणान्तकस्तं लवणान्तकम् । कालस्य इवास्ति नेमिर्यस्य स कालनेमिः, तस्य वधस्तस्मात् कालनेमिवधात् ।

हिन्दी—जिस प्रकार कालनेमि नाम के राक्षस को मारने से प्रसन्न होकर इन्द्र ने अपने छोटे भाई सींग के बने धनुष वाले विष्णु का अभिनन्दन किया था । उसी प्रकार लवणासुर

को मारने वाले, तथा झुककर प्रणाम करने वाले अपने अनुज शत्रुघ्न की प्रशंसा प्रसन्न होकर राम ने की।

विशेष—कालनेमि नाम का राक्षस सौ हाथ वाला था। इसे विष्णु ने मारा था। और कालनेमि रावण का चाचा दूसरा था इसे हनुमान् जी ने मारा था ॥ ४० ॥

स पृष्टः सर्वतो वार्तमाख्यद्राज्ञे न संततिम्।
प्रत्यर्पयिष्यतः काले कवेराद्यस्य शासनात् ॥ ४१ ॥

स शत्रुघ्नः पृष्टः सन्। सर्वतो वार्तं कुशलं राज्ञे रामायाख्यदाख्यातवान्। चक्षिङो लुङ्। 'चक्षिङः ख्याञ्' इति ख्याञादेशः। 'अस्यतिवक्ति-' इत्यङ्। 'आतो लोप इटि च' इत्याकार-लोपः। ख्यातेर्वा लुङ्। संततिं कुशलवोत्पत्तिं नाख्यत्। कुतः। कालेऽवसरे प्रत्यर्पयिष्यत आद्यस्य कवेर्वाल्मीकेः शासनात् ॥

अन्वयः—सः पृष्टः सन् सर्वतः वार्तं राज्ञे आख्यत्, सन्ततिं न आख्यत्, "यतः" काले प्रत्यर्पयिष्यतः आद्यस्य कवेः शासनात्।

व्याख्या—सः = शत्रुघ्नः पृष्टः = नियोजितः सन् सर्वतः = सर्वस्मिन् कार्ये वार्तं = कुशलं राज्ञे = रामचन्द्राय आख्यत् = अकथयत्, सन्ततिं = पुत्रोत्पत्तिं न आख्यत् = न कथितवान्। यतः काले = अवसरे प्राप्ते सति प्रत्यर्पयितुमिच्छति प्रत्यर्पयिष्यति, प्रत्यर्पयिष्यतीति प्रत्यर्पयिष्यन् तस्य प्रत्यर्पयिष्यतः = प्रत्यर्पयितुमिच्छतः आदौ भवः आद्यस्तस्य आद्यस्य = प्रथमस्य कवेः = कवयितुः वाल्मीकेः शासनात् = आदेशात्। शत्रुघ्नेन पुत्रोत्पत्तिः न कथिता इत्यर्थः।

हिन्दी—रामचन्द्र जी के पूछने पर शत्रुघ्न ने सब कुछ कुशल है। यह राजा से कह दिया। किन्तु लव कुश का जन्म नहीं बताया। इसलिये कि समय आने पर स्वयं पुत्रों को राम को सौंप देंगे यह आदि कवि वाल्मीकि का आदेश था। अतः उसने नहीं कहा ॥ ४१ ॥

अथ जानपदो विप्रः शिशुमप्राप्तयौवनम्।
अवतार्याङ्कशय्यास्थं द्वारि चक्रन्द भूपतेः ॥ ४२ ॥

अथ जनपदे भवो जानपदो विप्रः। कश्चिदिति शेषः। अप्राप्तयौवनं शिशुम्। मृतमिति शेषः। भूपते रामस्य द्वार्यङ्कशय्यास्थं यथा तथावतार्याङ्कस्थत्वेनैवावरोप्य चक्रन्द चुक्रोश ॥

अन्वयः—अथ जानपदः विप्रः अप्राप्तयौवनं शिशुं भूपतेः द्वारि अंकशय्यास्थं "यथा तथा" अवतार्य चक्रन्द।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् जनः = लोकः पदं = वस्तु यत्र स जनपदः जनपदे भवः जानपदः विप्रः = कश्चित् ब्राह्मणः यूनो भावः यौवनम् न प्राप्तं = नागतं यौवनं = तारुण्यं यस्य स तम् अप्राप्तयौवनं शिशुं = बालकं, मृतमिति शेषः भुवः = पृथिव्याः पतिः = स्वामी तस्य भूपतेः = रामस्य द्वारि = द्वारदेशे अंकः = उत्संग एव शय्या = तल्पमिति अंकशय्या तत्र तिष्ठतीति अंकशय्यास्थ स्तम् अंकशय्यास्थम् यथातथा अवतार्य = अवरोप्य चक्रन्द = चुक्रोश।

समासः—न प्राप्तं यौवनं यस्य स तम् अप्राप्तयौवनम्। अंक एव शय्या इति अंकशय्या, अंकशय्यायां तिष्ठति तम् अंकशय्यास्थं भुवः पतिः भूपतिः तस्य भूपतेः।

हिन्दी—इसके बाद एक दिन, साम्राज्य का रहने वाला एक ब्राह्मण, जो अभी जवान नहीं हुआ था ऐसे मरे हुए बालक को राजा के द्वार पर गोदरूपी खाट से उतार कर फूट-फूटकर रोने लगा॥ ४२॥

शोचनीयासि वसुधे या त्वं दशरथाच्च्युता।
रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात्कष्टतरं गता॥ ४३॥

हे वसुधे, दशरथाच्च्युता या त्वं रामहस्तमनुप्राप्य कष्टात्कष्टतरं गता सती शोचनीयासि॥
अन्वयः—हे वसुधे! दशरथात् च्युता या त्वं रामहस्तम् अनुप्राप्य कष्टात् कष्टतरं गता सती शोचनीयासि।

व्याख्या—वसूनि = धनानि दधातीति वसुधा, तस्याः संबुद्धौ हे वसुधे = हे वसुन्धरे। दशरथात् = रामपितुः च्युता = भ्रष्टा या त्वं = या भवती रामस्य हस्तः = बाहुः इति रामहस्त स्तं रामहस्तम् अनुप्राप्य = अवाप्य कष्टात् = कृच्छ्रात् अतिशयेन कष्टः = दुःखमिति कष्टतरस्तं कष्टतरं गता = प्राप्ता सती शोचयितुं योग्या शोचनीया = शोच्या असि जाता।

समासः—रामस्य हस्तः रामहस्त स्तं रामहस्तम्।

हिन्दी—"वह ब्राह्मण कहता है कि"– हे वसुन्धरे! दशरथ से हीन (उनके बाद) राम के हाथ में आकर (राम के राजा होने पर) कष्ट से अधिक घोर कष्ट में पड़ गई हो अतः तुम शोचनीय दशा को प्राप्त हो गई हो॥ ४३॥

श्रुत्वा तस्य शुचो हेतुं गोप्ता जिह्राय राघवः।
न ह्यकालभवो मृत्युरिक्ष्वाकुपदमस्पृशत्॥ ४४॥

गोप्ता रक्षको राघवस्तस्य विप्रस्य शुचः शोकस्य हेतुं पुत्रमरणरूपं श्रुत्वा जिह्राय लज्जितः! कुतः। हि यस्मादकालभवो मृत्युरिक्ष्वाकूणां पदं राष्ट्रं नास्पृशत्। वृद्धे जीवति यवीयान्न म्रियत इत्यर्थः॥

अन्वयः—गोप्ता राघवः तस्य शुचः हेतुं श्रुत्वा जिह्राय, हि अकालभवः मृत्युः इक्ष्वाकुपदं न अस्पृशत्।

व्याख्या—गोपायतीति गोप्ता = पालकः राघवः = रामः तस्य = ब्राह्मणस्य शुचः = शोकस्य हेतुं = कारणं, पुत्रमरणरूपं श्रुत्वा = आकर्ण्य जिह्राय = लज्जितोऽभूत्। हि = यतः अकाले = असमये भवः = जातः इति अकालभवः मृत्युः = मरणम् इक्ष्वाकूणाम् = इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां पदं = राष्ट्रं न अस्पृशत् = न स्पर्शितवान्। इक्ष्वाकुराज्ये पितरि जीवति सति पुत्रमरणं, तथा वृद्धे जीवति यूनो मरणं न भवतीत्यर्थः।

समासः—न कालः अकालः, अकाले भवः अकालभवः ।

हिन्दी—प्रजा के रक्षक रामचन्द्र जी, उस ब्राह्मण के शोक (दुःख) के हेतु को (पुत्र का मरना) सुनकर बड़े लज्जित हुए । क्योंकि इक्ष्वाकु के वंश के राजाओं के राज्य में अकाल मृत्यु किसी को नहीं छू पाता था । अर्थात् किसी को भी अकाल मृत्यु नहीं होती थी ॥ ४४ ॥

स मुहूर्तं क्षमस्वेति द्विजमाश्वास्य दुःखितम् ।
यानं सस्मार कौबेरं वैवस्वतजिगीषया ॥ ४५ ॥

स रामो दुःखितं द्विजं मुहूर्तं क्षमस्वेत्याश्वास्य वैवस्वतस्यान्तकस्यापि जिगीषया जेतुमिच्छया कौबेरं यानं पुष्पकं सस्मार ॥

अन्वयः—सः दुःखितं द्विजं मुहूर्तं क्षमस्व इति आश्वास्य वैवस्वतजिगीषया कौबेरं यानं सस्मार ।

व्याख्या—सः = राघवः दुःखमस्यास्तीति दुःखित स्तं दुःखितं = शोकमग्नं द्वाभ्यां = जन्मसंस्काराभ्यां जायते इति द्विजस्तं द्विजं = विप्रं मुहूर्तं = किञ्चित्कालं क्षमस्व = सहस्व इति = एवम् आश्वास्य = धैर्यं प्रदाय विविधं वस्ते = आच्छादयतीति विवः = रश्मिः अस्यास्तीति विवस्वान् । विवस्वतोऽपत्यं पुमान् वैवस्वतः । जेतुमिच्छा जिगीषा । वैवस्वतस्य = यमस्य जिगीषा = जेतुमिच्छा तया वैवस्वतजिगीषया कुत्सितं बेरं = शरीरमस्येति कुबेरः । कुबेरस्य = धनाधिपस्य इदं कौबेरं यानं = पुष्पकं सस्मार = स्मरति स्म ।

समासः—वैवस्वतस्य जिगीषा वैवस्वतजिगीषा तया वैवस्वतजिगीषया ।

हिन्दी—राम ने उस दुःखी ब्राह्मण को यह आश्वासन देकर कि—क्षमा करें, कुछ काल तक प्रतीक्षा करें । सूर्य पुत्र यमराज को भी जीतने की इच्छा से कुबेर के पुष्पक विमान को स्मरण किया ॥ ४५ ॥

आत्तशस्त्रस्तदध्यास्य प्रस्थितः स रघूद्वहः ।
उच्चचार पुरस्तस्य गूढरूपा सरस्वती ॥ ॥ ४६ ॥

स रघूद्वहो राम आत्तशस्त्रः सन् । तत्पुष्पकमध्यास्य प्रस्थितः । अथ तस्य पुरो गूढरूपा सरस्वत्यशरीरा वागुच्चचारोद्बभूव ॥

अन्वयः—सः रघूद्वहः आत्तशस्त्रः सन् तत् अध्यास्य प्रस्थितः । तस्य पुरः गूढरूपा सरस्वती उच्चचार ।

व्याख्या—सः = प्रसिद्धः उद्वहति = ऊर्ध्वं नयति पितॄन् इति उद्वहः । रघूणां = रघुकुलोद्भवानाम् उद्वहः = रक्षादिभारधारकः श्रीरामः आत्तं = गृहीतं शस्त्रम् = आयुधं येन सः आत्तशस्त्रः सन् तत् = कौबेरं पुष्पकम् अध्यास्य = अधिष्ठाय प्रस्थितः = यमजयाय प्रचलितः । अथ = प्रस्थानकाले तस्य = रामस्य पुरः = अग्रे गूढं = गुप्तं, प्रच्छन्नं रूपं यस्याः सा गूढरूपा = अशरीरिणी सरस्वती = वाक् उच्चचार = उद्गता । आकाशवाणी बभूवेत्यर्थः ।

समासः—रघूणां रघुषु वा उद्वहः रघूद्वहः। आत्तानि शस्त्राणि येन सः आत्तशस्त्रः। गूढं रूपं यस्याः सा गूढरूपा।

हिन्दी—रघु के कुल को चलाने वाले श्रीराम अस्त्र-शस्त्र लेकर तथा उस पुष्पक विमान पर चढ़कर जब चले तब राम के सामने वह वाणी उच्चरित हुई जिसका शरीर गुप्त था। अर्थात् चलते ही उनके सामने आकाशवाणी हुई ॥ ४६ ॥

राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते ।
तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती ॥ ४७ ॥

हे राजन्, ते प्रजासु कश्चिदपचारो वर्णधर्मव्यतिकरः प्रवर्तते। तमपचारमन्विष्य प्रशमयेः। ततः कृती कृतकृत्यो भवितासि भविष्यसि ॥

अन्वयः—हे राजन् ते प्रजासु कश्चित् अपचारः प्रवर्तते, तम् अन्विष्य प्रशमयेः ततः कृती भवितासि।

व्याख्या—राजते = प्रकाशते इति राजा तत्संबुद्धौ हे राजन् = हे भूपाल! ते = तव प्रजासु = जनेषु कश्चित् = कोऽपि अपचारः = अपराधः, दोषः, वर्णधर्मव्यतिकरः इत्यर्थः प्रवर्तते = विद्यते, तम् = अपचारम् अन्विष्य = मार्गयित्वा प्रशमयेः = निवारयेः, चेत् ततः = तदा त्वं कृतमस्यास्तीति कृती = कृतकार्यः भवितासि = भविष्यसि।

हिन्दी—हे राजन् आपकी प्रजाओं में कोई अपराध है। अर्थात् वर्ण धर्म के विरुद्ध आचरण हो रहा है। अतः उसे खोजकर दूर करें। तो तब आपका कार्य सफल होगा। आप कृतकार्य होंगे ॥ ४७ ॥

इत्याप्तवचनाद्रामो विनेष्यन्वर्णविक्रियाम् ।
दिशः पपात पत्त्रेण वेगनिष्कम्पकेतुना ॥ ४८ ॥

इत्याप्तवचनाद्रामो वर्णविक्रियां वर्णापचारं विनेष्यन्नपनेष्यन्वेगेन निष्कम्पकेतुना पत्त्रेण वाहनेन पुष्पकेण। 'पत्त्रं वाहनपक्षयोः' इत्यमरः। दिशः पपात धावति स्म ॥

अन्वयः—इति आप्तवचनात् रामः वर्णविक्रियां विनेष्यन् वेगनिष्कम्पकेतुना पत्त्रेण दिश पपात।

व्याख्या—इति = एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आप्तस्य = प्रत्यायितस्य विश्वसनीयस्येत्यर्थः वचनं = वाक्यं तस्मात् आप्तवचनात् "आप्तः प्रत्यायितस्त्रिषु" इत्यमरः। रामः = राघवः वर्णस्य = वर्णाश्रमधर्मस्य विक्रिया = अपचारः, विरुद्धाचरणमित्यर्थः। इतिवर्णविक्रिया तां वर्णविक्रियां विनेष्यन् = अपनेष्यन्, निवारयिष्यन्, वेगेन = जवेन "हेतुना" निष्कम्पः = कम्परहितः केतुः = ध्वजा यस्य तत्तेन वेगनिष्कम्पकेतुना पत्त्रेण = पुष्पकविमानेन "पत्रं तु वाहने पर्णे स्यात्" इति मेदिनी। दिशः = काष्ठाः पपात = धावति स्म।

समासः—आप्तस्य वचनमाप्तवचनं तस्मात् आप्तवचनात्। वर्णस्य विक्रिया वर्णविक्रिया तां वर्णविक्रियाम्। वेगेन निष्कम्पः केतुः यस्य तत् वेगनिष्कम्पकेतु, तेन वेगनिष्कम्पकेतुना।

हिन्दी—इस प्रकार के विश्वसनीय वचन को सुनकर, वर्ण धर्म के विरुद्ध आचरण को दूर करने की इच्छा वाले राम जी, वेग से चलने के कारण कम्पनरहित (सीधी निश्चल) ध्वजा वाले पुष्पक विमान से सब दिशाओं में घूमने लगे । अर्थात् अपराधी व्यक्ति को देखने के लिये सर्वत्र चक्कर लगाने लगे ॥ ४८ ॥

> **अथ धूमाभिताम्राक्षं वृक्षशाखावलम्बिनम् ।**
> **ददर्श कंचिदैक्ष्वाकस्तपस्यन्तमधोमुखम् ॥ ४९ ॥**

अथेक्ष्वाकुवंशप्रभव ऐक्ष्वाको रामः । 'कोपधादण्' इत्यणि कृते 'दाण्डिनायन–' इत्यादिनो-कारलोपनिपातः । धूमेन पीयमानेनाभिताम्राक्षं वृक्षशाखावलम्बिनमधोमुखं तपस्यन्तं तपश्चरन्तं कंचित्पुरुषं ददर्श ॥

अन्वयः—अथ ऐक्ष्वाकः धूमाभिताम्राक्षं वृक्षशाखावलम्बिनम् अधोमुखं तपस्यन्तं कश्चित् ददर्श ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् इक्ष्वाकोरयमिति ऐक्ष्वाकः = इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः रामः धूमेन = आर्द्रेन्धनभवेन, पीयमानेन अभिताम्रे = ताम्रवर्णे अक्षिणी = नेत्रे यस्य स धूमाभिताम्राक्षस्तं धूमाभिताम्राक्षं वृक्षस्य = पादपस्य शाखा = वृक्षावयवः इति वृक्षशाखा, तस्याम् अवलम्बी = अवलम्बमानः इति तं वृक्षशाखावलम्बिनम् । शाखति = गगनं व्याप्नोतीति शाखा । अधः = नीचैः मुखम् = आननं यस्य स तम् अधोमुखम्, तपस्यन्तं = तपस्यां कुर्वन्तं कश्चित् = कमपि पुरुषं ददर्श = अवलोकयामास । वृक्षशाखायां पादौ बध्वा, अधस्तात् भूमौ आर्द्रेन्धनैरग्निं कृत्वा धूमं पिबन् तपस्यन्तं जनं ददर्शेत्यर्थः ।

समासः—धूमेन अभिताम्रे अक्षिणी यस्य स तं धूमाभिताम्राक्षम् । वृक्षस्य शाखायाम् अवलम्बी तं वृक्षशाखावलम्बिनम् । अधः मुखं यस्य स तम् अधोमुखम् ।

हिन्दी—अनन्तर "दिशाओं में घूमते हुए" इक्ष्वाकुवंशीय राम ने एक वृक्ष की डाल में उलटा लटका हुआ, तथा नीचे जलती आग के धुएँ को पी-पीकर तपस्या करते हुए एक पुरुष को देखा तथा धुआँ पीने से उसकी आँखें लाल हो गई थीं ॥ ४९ ॥

> **पृष्टनामान्वयो राज्ञा स किलाचष्ट धूमपः ।**
> **आत्मानं शम्बुकं नाम शूद्रं सुरपदार्थिनम् ॥ ५० ॥**

राज्ञा नाम चान्वयश्च तौ पृष्टौ नामान्वयौ यस्य स तथोक्तः । धूमं पिबतीति धूमपः । 'सुपि' इति योगविभागात्कप्रत्ययः । स पुरुष आत्मानं सुरपदार्थिनं स्वर्गार्थिनम् । अनेन प्रयोजनमपि पृष्ट इति ज्ञेयम् । शम्बुकं नाम शूद्रमाचष्ट बभाषे किल ॥

अन्वयः—राज्ञा पृष्टनामान्वयः धूमपः सः आत्मानं सुरपदार्थिनं शम्बुकं नाम शूद्रम् आचष्ट किल ।

व्याख्या—राज्ञा = रामचन्द्रेण नाम च अन्वयश्चेति नामान्वयौ, पृष्टौ = जीप्सितौ नामान्वयौ = नामवंशौ यस्य स पृष्टनामान्वयः । धूमं पिबति इति धूमपः = धूमपायी सः = पुरुषः आत्मानं = स्वं सुराणां = देवानां पदं = स्थानम् अर्थते = प्रार्थयतीति सुरपदार्थी तं सुरपदार्थिनं, स्वर्गाभिलाषिणं शम्बुकं नाम, शम्बुकनामानं शोचतीति शूद्र स्तं शूद्रं = वृषलम्, अन्त्यवर्णमित्यर्थः । आचष्ट = आख्यातवान् किल = प्रसिद्धौ ।

समासः—नाम च अन्वयश्चेति नामान्वयौ, पृष्टौ नामान्वयौ यस्य स पृष्टनामान्वयः । सुराणां पदं सुरपदं, सुरपदस्य अर्थी इति सुरपदार्थी तं सुरपदार्थिनम् ।

हिन्दी—राजा राम ने जब उस पुरुष का नाम और कुल पूछा तो धूम पीने वाले उस पुरुष ने अपने को स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा वाला शम्बूक नामक शूद्र बताया ॥ ५० ॥

तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानां तमघावहम् ।
शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य नियन्ता शस्त्रमाददे ॥ ५१ ॥

तपस्यनधिकारित्वात्प्रजानामघावहं दुःखावहं तं शूद्रं शीर्षच्छेद्यम् । 'शीर्षच्छेदाद्यच्च' इति यत्प्रत्ययः । परिच्छिद्य निश्चित्य नियन्ता रक्षको रामः शस्त्रमाददे जग्राह ॥

अन्वयः—तपसि अनधिकारित्वात् प्रजानाम् अघावहं तं शीर्षच्छेद्यं परिच्छिद्य, नियन्ता शस्त्रम् आददे ।

व्याख्या—तपसि = तपश्चरणे न अधिकारी = अधिकारवान्निति अनधिकारी, अनधिकारिणो भावः कर्म वा अनधिकारित्वं तस्मात् अनधिकारित्वात्, तपश्चरणानर्हत्वादित्यर्थः । प्रजानां = लोकानाम् अघं = दुःखम् आवहति, इति अघावहः = दुःखकरमित्यर्थः । तम् अघावहं तं = शूद्रं शीर्षस्य = शिरसः छेदं = कर्तनम् अर्हतीति शीर्षच्छेद्यस्तं शीर्षच्छेद्यं = वध्यं परिच्छिद्य = निश्चित्य "वध्यः शीर्षच्छेद्यः इमौ समौ" इत्यमरः । नियन्ता = प्रजारक्षकः रामः शस्त्रम् = आयुधम् आददे = गृहीतवान् । शूद्रवधाय खड्गं जग्राहेत्यर्थः ।

हिन्दी—तपस्या करने का अधिकारी न होने के कारण प्रजा में दुःख-पाप फैलाने वाले उस शूद्र को शिर काटने के योग्य निश्चय करके प्रजापालक राम ने अस्त्र उठा लिया ॥ ५१ ॥

स तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टकिञ्जल्कमिव पङ्कजम् ।
ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु कण्ठनालादपातयत् ॥ ५२ ॥

स रामो ज्योतिष्कणैः स्फुलिङ्गैराहतानि दग्धानि श्मश्रूणि यस्य तत्तस्य वक्त्रम् । हिमक्लिष्टकिञ्जल्कं पङ्कजमिव । कण्ठ एव नालं तस्मादपातयत् ॥

अन्वयः—सः ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टकिञ्जल्कम् पंकजम् इव कण्ठनालात् अपातयत् ।

व्याख्या—सः = रामः ज्योतिषः = अग्नेः कणाः = स्फुलिंगाः इति ज्योतिष्कणा स्तैः आहतानि = दग्धानि श्मश्रूणि = पुंमुखरोमाणि यस्य तत् ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु तस्य शम्बुकस्य वक्त्रं = मुखमिति तद्वक्त्रम् हिमेन = तुषारेण क्लिष्टानि = क्लिशितानि किञ्जल्कानि = केसराणि यस्य तत् हिमक्लिष्टकिञ्जल्कम् । "किंजल्कः केसरोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । पंकात् जातं पङ्कजं तत्, = कमलम् इव = यथा कण्ठः = गलः एव नालं = पद्मदण्डः इति कण्ठनालं तस्मात् कण्ठनालात् अपातयत् = पातयामास, अच्छिनत् ।

समासः—ज्योतिषः कणाः ज्योतिष्कणाः, ज्योतिष्कणैः आहतानि श्मश्रूणि यस्य तत् ज्योतिष्कणाहतश्मश्रु तत् । तस्य वक्त्रं तद्वक्त्रं तत् । हिमेन क्लिष्टाः किंजल्काः यस्य तत् हिमहतकिंजल्कं तत् । कण्ठ एव नालं तस्मात् कण्ठनालात् ।

हिन्दी—और श्री राम ने अग्नि की चिनगारियों से झुलसी दाढ़ी वाले उस शम्बुक के शिर को, उस कमल की तरह कण्ठ रूपी नाल से (गले से) काटकर गिरा दिया । पाले से जिसकी केसर जल गई हो और कमलनाल से अलग कर दिया हो ॥ ५२ ॥

कृतदण्डः स्वयं राज्ञा लेभे शूद्रः सतां गतिम् ।
तपसा दुश्चरेणापि न स्वमार्गविलङ्घिना ॥ ५३ ॥

शूद्रः शम्बुको राज्ञा स्वयं कृतदण्डः कृतशिक्षः सन् । सतां गतिं लेभे । दुश्चरेणापि स्वमार्गविलङ्घिना । अनधिकारदुष्टेनेत्यर्थः । तपसा न लेभे । अत्र मनुः—'राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥' इति ॥

अन्वयः—शूद्रः राज्ञा स्वयं कृतदण्डः सन् सतां गतिं लेभे दुश्चरेण अपि स्वमार्गलंघिना तपसा न लेभे ।

व्याख्या—शूद्रः = वृषलः, शम्बुकः राज्ञा = रामेण स्वयं = स्वहस्तेन कृतः = विहितः, दत्त इत्यर्थः । दण्डः = वधः यस्य स कृतदण्डः सन् सतां = सज्जनानां गतिं = सद्गतिं, स्वर्गमित्यर्थः । लेभे = प्राप, दुश्चरेण = अतिकठोरेण अपि स्वस्य मार्गः स्वमार्गः । स्वमार्गं लंघते तच्छीलः स्वमार्गलंघी, तेन स्वमार्गलङ्घिना = अनधिकारदूषितेनेत्यर्थः तपसा = तपस्यया न लेभे ।

समासः—कृतः दण्डः यस्य स कृतदण्डः । स्वस्य मार्गः स्वमार्गः । स्वमार्गस्य लंघी, स्वमार्गलंघी तेन स्वमार्गलंघिना ।

हिन्दी—स्वयं राजा राम से दण्डित होकर (वधरूप दण्ड पाकर) वह शूद्र सद्गति को प्राप्त हुआ । जो वह अपने वर्ण धर्म का उल्लंघन कर घोर तप से भी नहीं प्राप्त कर सकता था ॥ ५३ ॥

रघुनाथोऽप्यगस्त्येन मार्गसंदर्शितात्मना ।
महौजसा संयुयुजे शरत्काल इवेन्दुना ॥ ५४ ॥

रघुनाथोऽपि मार्गसंदर्शितात्मना महौजसाऽगस्त्येन। इन्दुना शरत्काल इव। संयुयुजे संगतः। इन्दावपि विशेषणं योज्यम्। रघुनाथेत्यत्र क्षुभ्नादित्वाण्णत्वाभावः॥

अन्वयः—रघुनाथः अपि मार्गसन्दर्शितात्मना महौजसा अगस्त्येन, मार्गसन्दर्शितात्मना इन्दुना शरत्कालः इव संयुयुजे।

व्याख्या—रघूणां = रघुवंशीयानां नाथः = स्वामी इति रघुनाथः = रामचन्द्रः अपि मार्गे = पथि सन्दर्शितः = प्रकटितः = दृष्टो वा आत्मा = स्वरूपं यस्य स तेन मार्गसन्दर्शितात्मना महत् = प्रचुरम् ओजः = तेजः यस्य स तेन महौजसा अगं = विन्ध्यपर्वतं स्त्यायति = स्तभ्नोति, इति अगस्त्यस्तेन अगस्त्येन = कुम्भसम्भवेन मुनिना "अगस्त्यः कुम्भसंभवः" इत्यमरः। मार्ग-सन्दर्शितात्मना, इन्दुना = चन्द्रेण शरदः = शरदृतोः कालः समयः इति शरत्कालः इव = यथा संयुयुजे = संगतः, मिलितः इत्यर्थः। प्रत्यावर्तनकाले मार्गस्थिताश्रमे अगस्त्यमुनिना संगतः इत्यर्थः।

समासः—रघूणां नाथ रघुनाथः। मार्गे सन्दर्शितः आत्मा यस्य येन वा मार्गसन्दर्शितात्मा, तेन मार्गसन्दर्शितात्मना। महत् ओजो यस्य स तेन महौजसा। शरदः कालः शरत्कालः।

हिन्दी—और इधर रघुनाथ श्रीराम भी मार्ग में दीखे महा तेजस्वी अगस्त्य मुनि से उसी प्रकार मिले, जैसे मार्ग में आए हुए चन्द्रमा से शरद्ऋतु मिलता है॥ ५४॥

कुम्भयोनिरलंकारं तस्मै दिव्यपरिग्रहम्।
ददौ दत्तं समुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्क्रयम्॥ ५५॥

कुम्भयोनिरगस्त्यः पीतेन समुद्रेणात्मनिष्क्रयमिवात्ममोचनमूल्यमिव दत्तम्। अत एव परि-गृह्यत इति व्युत्पत्त्या दिव्यपरिग्रहः। दिव्यानां परिग्राह्य इत्यर्थः। तमलंकारं तस्मै रामाय ददौ॥

अन्वयः—कुम्भयोनिः पीतेन समुद्रेण आत्मनिष्क्रयम् इव दत्तम् "अतएव" दिव्यपरिग्रहम् अलंकारं तस्मै ददौ।

व्याख्या—कुम्भः = कलशः योनिः = उत्पत्तिस्थानमस्य स कुम्भयोनिः = अगस्त्यः पीतेन = पानविषयीकृतेन समीचीनाः उद्राः = जलचर विशेषाः यस्मिन् सः, सह मुद्रया = मर्यादया वर्तते इति वा समुद्रः = सागरः तेन समुद्रेण आत्मनः = स्वस्य निष्क्रयम् = मोचनमूल्यमिति आत्म-निष्क्रयम् इव = यथा दत्तं = प्रदत्तम्, अत एव परिगृह्यते इति परिग्रहः। दिव्यानां = स्वर्गी-याणां = देवानां परिग्रहः = धारणयोग्य स्तं दिव्यपरिग्रहम् अलंक्रियतेऽनेन सः अलंकारस्तम् अलंकारम् = आभरणं तस्मै = रामाय ददौ = दत्तवान्।

समासः—कुम्भः योनिः यस्य स कुम्भयोनिः। दिव्यानां परिग्रहः दिव्यपरिग्रह स्तं दिव्य-परिग्रहम्। आत्मनः निष्क्रयः आत्मनिष्क्रयस्तम् आत्मनिष्क्रयम्।

हिन्दी—अगस्त्य मुनि ने, देवताओं के धारण करने योग्य वे सुन्दर आभूषण (जेवर)

राम जी को दिए। जो भूषण अगस्त्यमुनि को, पीकर छोड़े गये समुद्र ने अपने को छुड़ाने के बदले में दिये थे ॥ ५५ ॥

तं दधन्मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण बाहुना ।
पश्चान्निववृते रामः प्राक्परासुर्द्विजात्मजः ॥ ५६ ॥

मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण बाहुना तमलंकारं दधद्रामः पश्चान्निववृते निवृत्तः। परासुर्मृतो द्विजात्मजः प्राग्रामात्पूर्वं निववृते ॥

अन्वयः—मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण बाहुना तं दधन् रामः पश्चात् निववृते, परासुः द्विजात्मजःप्राक् निववृते ।

व्याख्या—मैथिल्याः = जानक्याः कण्ठः = गलः, इति मैथिलीकण्ठः तस्मात् निर्गतः = रहितः, शून्यः व्यापारः = आलिंगनरूपः यस्य स तेन मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण बाहुना = भुजेन तम् = अगस्त्यदत्तालंकारं दधन् = धारयन् रामः = राघवः पश्चात् निववृते = निवृत्तः, अयोध्यामागत इत्यर्थः। परागताः = नष्टाः असवः = प्राणाः यस्य स परासुः = मृतः द्विजस्य = ब्राह्मणस्य आत्मजः = पुत्रः द्विजात्मजः प्राक् = पूर्वं, रामागमनात्प्रथमम् निववृते = आगतः जीवितोऽभूदित्यर्थः।

समासः—मैथिल्याः कण्ठः मैथिलीकण्ठः, मैथिलीकण्ठात् निर्गतः व्यापारः यस्य स तेन मैथिलीकण्ठनिर्व्यापारेण। परागताः असवो यस्य स परासुः। द्विजस्य आत्मजः द्विजात्मजः।

हिन्दी—"सीता जी के वन में चले जाने से" सीता जी के कण्ठ के आलिंगन से रहित, अपने बाहु (हाथ) में अगस्त्य जी के दिये उस अलंकार को पहिने हुए राम तो पीछे अयोध्या में लौटे। और मरा हुआ वह ब्राह्मण बालक उनसे पहले ही लौट आया। अर्थात् राम के आने से पहले ही जी उठा ॥ ५६ ॥

तस्य पूर्वोदितां निन्दां द्विजः पुत्रसमागतः ।
स्तुत्या निर्वर्तयामास त्रातुर्वैवस्वतादपि ॥ ५७ ॥

पुत्रसमागतः पुत्रेण संगतो द्विजो वैवस्वतादन्तकादपि त्रातू रक्षकस्य। 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इत्यपादानात्पञ्चमी। तस्य रामस्य पूर्वोदितां पूर्वोक्तां निन्दां स्तुत्या निर्वर्तयामास ॥

अन्वयः—पुत्रसमागतः द्विजः वैवस्वतात् अपि त्रातुः तस्य पूर्वोदितां निन्दां स्तुत्या निवर्तयामास ।

व्याख्या—पुत्रेण = आत्मजेन समागतः = संगतः, मिलितः इत्यर्थः इति पुत्रसमागतः द्विजः = ब्राह्मणः (विवस्वतः पुत्रः वैवस्वतः तस्मात् वैवस्वतात् = यमात् अपि त्रायते इति त्राता तस्य त्रातुः = रक्षकस्य तस्य = रामचन्द्रस्य) पूर्वं = प्रथमं पुत्रमरणकाले उदिता = कथिता तां पूर्वोदितां निन्दां = परीवादं स्तुत्या = स्तोत्रेण "स्तवः स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः" इत्यमरः। निवर्तयामास = निवारयामास, प्रक्षालितवानित्यर्थः।

समासः—पुत्रेण समागतः पुत्रसमागतः । पूर्वम् उदिता इति पूर्वोदिता तां पूर्वोदिताम् ।

हिन्दी—पुत्र के मिल जाने पर (जीवित होते ही) ब्राह्मण ने, यमराज से भी रक्षा करने वाले उस राम की पहले (पुत्र के मरने पर) की गई निन्दा को स्तुति से धो दिया। अर्थात् पुत्र के जी उठने पर ब्राह्मण ने राम की बड़ी स्तुति, प्रशंसा की ॥ ५७ ॥

तमध्वराय मुक्ताश्वं रक्षःकपिनरेश्वराः ।
मेघाः सस्यमिवाम्भोभिरभ्यवर्षन्नुपायनैः ॥ ५८ ॥

अध्वरायाश्वमेधाय मुक्ताश्वं तं रामं रक्षःकपिनरेश्वराः सुग्रीवविभीषणादयो राजानश्च मेघा अम्भोभिः सस्यमिव उपायनैरभ्यवर्षन् ॥

अन्वयः—अध्वराय मुक्ताश्वं तं रक्षःकपिनरेश्वराः, मेघाः अम्भोभिः सस्यम् इव उपायनैः अभ्यवर्षन् ।

व्याख्या—न ध्वरति, अध्वानं रातीति वा अध्वरस्तस्मै अध्वराय = अश्वमेधयज्ञाय मुक्तः = त्यक्तः अश्वः = तुरगः येन स तं मुक्ताश्वं तं = रामचन्द्रं, रक्षांसि = राक्षसाः = कपयः = वानराश्चनराः = मनुष्याश्चेति रक्षःकपिनराः तेषाम् ईश्वराः इति रक्षःकपिनरेश्वराः = सुग्रीवविभीषणादयः भूपालाश्च मेघाः = अम्भोदाः अम्भोभिः = जलैः सस्यं = धान्यम् इव = यथा उपायनैः = उपहारैः अभ्यवर्षन् = अभिवर्षितवन्तः । मेघाः यथा जलैः सस्येषु वृष्टिं कुर्वन्ति, एवं सर्वे भूपालाः रामाय उपायनरूपेण धनवर्षणमकुर्वन् इत्यर्थः । धनानि दत्तवन्तः ।

समासः—मुक्तः अश्वः येन स तं मुक्ताश्वम् । रक्षांसिच कपयश्चनराश्चेति रक्षःकपिनराः, तेषामीश्वराः, रक्षःकपिनरेश्वराः ।

हिन्दी—अश्वमेध यज्ञ करने के लिये, यज्ञ के घोड़े को (दिग्विजय के लिये) छोड़ने वाले राम के सामने सुग्रीव, विभीषण और राजाओं ने उसी प्रकार "भेंट देकर" धन की वर्षा की, जिस प्रकार मेघ धान के खेतों में जल बर्षाते हैं ॥ ५८ ॥

दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनमभिजग्मुर्महर्षयः ।
न भौमान्येव धिष्ण्यानि हित्वा ज्योतिर्मयान्यपि ॥ ५९ ॥

निमन्त्रिता आहूता महर्षयश्च भूम्याः संबन्धीनि भौमानि धिष्ण्यानि स्थानान्येव न । 'धिष्ण्यं स्थाने गृहे भेऽग्नौ' इत्यमरः । किंतु ज्योतिर्मयानि नक्षत्ररूपाणि धिष्ण्यान्यपि हित्वा दिग्भ्य एनं राममभिजग्मुः ॥

अन्वयः—निमंत्रिताः महर्षयः च भौमानि धिष्ण्यानि एव न "किन्तु" ज्योतिर्मयानि अपि धिष्ण्यानि हित्वा दिग्भ्यः एनम् अभिजग्मुः ।

व्याख्या—निमंत्रिताः = आहूताः महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयः = परमर्षयः च भूमेः = पृथिव्याः इमानि भौमानि = पार्थिवानि धिष्ण्यानि = स्थानानि, गृहाणि एव न = नहि, किन्तु

ज्योतिः प्रचुराणि ज्योतिर्मयानि, नक्षत्रमयानि अपि धिष्ण्यानि = स्वस्थानानि हित्वा = त्यक्त्वा दिग्भ्यः = काष्ठाभ्यः, सर्वदिग्भ्यः इत्यर्थः। एनं = रामम् अभिजग्मुः = समागताः। "धिष्ण्यं स्थाने गृहेभेऽग्नौ" इत्यमरः।

समासः—महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयः।

हिन्दी—"राम ने सब लोकों के ऋषियों को आमंत्रित किया था "अतः" यज्ञ में आमंत्रित किये गये (बुलाए गए) महर्षिगण केवल पृथ्वीलोक के अपने आश्रम घर छोड़कर नहीं आए थे। अपितु सप्तर्षिमण्डल के दिव्य प्रकाशमय स्थान को भी छोड़ कर राम के अश्वमेध यज्ञ में आए थे ॥ ५९ ॥

उपशल्यनिविष्टैस्तैश्चतुर्द्वारमुखी बभौ।
अयोध्या सृष्टलोकेव सद्यः पैतामही तनुः ॥ ६० ॥

चत्वारि द्वाराण्येव मुखानि यस्याः सा चतुर्द्वारमुख्ययोध्या। उपशल्येषु ग्रामान्तेषु निविष्टैः। 'ग्रामान्त उपशल्यं स्यात्' इत्यमरः। तैर्महर्षिभिः। सद्यः सृष्टलोका पितामहस्येयं पैतामही तनूर्मूर्तिरिव बभौ ॥

अन्वयः—चतुर्द्वारमुखी अयोध्या उपशल्यनिविष्टैः तैः, सद्यः सृष्टलोका पैतामही तनुः इव बभौ।

व्याख्या—चत्वारि = चतुःसंख्यकानि द्वाराणि = प्रवेशमार्गाः एव मुखानि आननानि यस्याः सा चतुर्द्वारमुखी अयोध्या = साकेतनगरी शल्यमुपगतः उपशल्यम्। उपशल्येषु = ग्रामान्तेषु निविष्टाः = स्थिताः, तैः उपशल्यनिविष्टैः = उपनगरस्थितैरित्यर्थः। "ग्रामान्त उपशल्यं स्यात्" इत्यमरः। तैः = महर्षिभिः समाने अहनि सद्यः = सपदि सृष्टाः = उत्पादिताः लोकाः = जनाः यया सा सृष्टलोका लोकपितॄणां मरीच्यादीनाम्, अर्यमादीनां वा पिता, पितामहः, पितामहस्य इयं पैतामही = ब्राह्मी तनुः = शरीरम्, मूर्तिः इव = यथा बभौ = शुशुभे।

समासः—शल्यमुपगतानि उपशल्यानि। उपशल्येषु निविष्टास्तैः उपशल्यनिविष्टैः। चत्वारि द्वाराणि एव मुखानि यस्याः सा चतुर्द्वारमुखी। सृष्टाः लोका यया सा सृष्टलोका।

हिन्दी—अयोध्या के उपनगरों तथा आसपास के गाँवों में ठहरे हुए महर्षियों से (जब वे नगर में प्रवेश करने लगे। चार द्वार रूपी मुखवाली अयोध्या नगरी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो तुरन्त सृष्टि करने वाले पितामह (ब्रह्मा) की चार मुख वाली मूर्ति हो ॥ ६० ॥

श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्वंशवासिनः।
अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जाया हिरण्मयी ॥ ६१ ॥

वैदेह्यास्त्यागोऽपि श्लाघ्यो वर्ण्य एव। कुतः। यस्मात्। प्राग्वंशः प्राचीनस्थूणो यज्ञशाला-विशेषः तद्वासिनः। नास्त्यन्या जाया यस्य तस्यानन्यजानेः। 'जायाया निङ्' इति समासान्तो

ङिब्रादेशः। पत्यू रामस्य हिरण्मयी सौवर्णी। 'दाण्डिनायन–' इत्यादिसूत्रेण निपातः। सा निजैव जाया पत्न्यासीत्। कविवाक्यमेतत् ॥

अन्वयः—वैदेह्याः त्यागः अपि श्लाघ्यः एव, 'कुतः' यस्मात् प्राग्वंशवासिनः अनन्यजानेः पत्युः हिरण्मयी सा एव जाया आसीत्।

व्याख्या—विदेहस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री वैदेही = सीता तस्याः वैदेह्याः त्यागः = वने विसर्जनम् अपि श्लाघयितुं योग्यः श्लाघ्यः = वर्णनयोग्यः एव = निश्चयेन कुतः यस्मात् = कारणात् प्राग्वंशे = हविःशालापूर्वभागस्थितगेहे वसति, इति प्राग्वंशवासी तस्य प्राग्वंशवासिनः "प्राग्वंशः प्राग्हविर्गेहात्" इत्यमरः। न विद्यते अन्या जाया = पत्नी यस्य स तस्य अनन्यजानेः पत्युः = रामस्य हिरण्यस्य विकारः हिरण्मयी = सौवर्णी, सा एव = सौवर्णी एव, सुवर्णनिर्मिता सीता प्रतिकृतिरेवेत्यर्थः। जाया = पत्नी आसीत् = जाता। न तु यज्ञे अपरा पत्नी इत्यर्थः। सपत्नीकस्यैव यज्ञाधिकारात्। इयं महाकवेरुक्तिः।

समासः—प्राग्वंशे वासी प्राग्वंशवासी तस्य प्राग्वंशवासिनः। नास्ति अन्या जाया यस्य स तस्य अनन्यजानेः।

हिन्दी—सीता जी का त्यागना भी प्रशंसा के योग्य ही है। इसलिये कि पूर्व दिशा की ओर यजमान के परिवार तथा मित्रों के बैठने के योग्य स्थान में निवास करने वाले, तथा दूसरी पत्नी न करने वाले (दूसरा विवाह न करने वाले) पति राम की सोने की बनी सीता जी की मूर्ति ही पत्नी थी।

विशेष—यज्ञ में यजमान को सपत्नीक होना चाहिये। अतः सीता जी की सोने की मूर्ति बनाकर यज्ञ में साथ बैठाई थी। राम जी त्यागने पर भी सीता को ही पत्नी मानते हैं। यह बात परम श्लाघनीय है। प्राग्वंश–का अर्थ है हवि शाला के पूर्व दिशा में बना स्थान जिसमें यजमान के परिवार वाले, तथा मित्र बैठते हैं। दूसरा अर्थ, पुराने खम्भेवाली यज्ञशाला, इसमें निवास करनेवाले रामचन्द्र जी थे यज्ञ के समय ॥ ६१ ॥

विधेरधिकसंभारस्ततः प्रववृते मखः।
आसन्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः ॥ ६२ ॥

ततो विधेः शास्त्रादधिकसंभारोऽतिरिच्यमानपरिकरो मखः प्रववृते प्रवृत्तः। यत्र मखे। विहन्यन्त एभिरिति विघ्नाः प्रत्यूहाः। मखे यज्ञे। 'घञर्थे कविधानम्' इति कः। क्रियाविघ्ना अनुष्ठानविघातका राक्षसा एव रक्षिणो रक्षका आसन्॥

अन्वयः—ततः विधेः अधिकसंभारः मखः प्रववृते। यत्र क्रियाविघ्नाः राक्षसाः एव रक्षिणः आसन्।

व्याख्या—ततः = अनन्तरं विधानं विधिः तस्मात्विधेः = शास्त्रात् अधिकः = अतिरिच्यमानः, विशेष इत्यर्थः सम्भारः = यज्ञोपकरणं, सामग्रीतियावत् यस्मिन् सः अधिकसम्भारः

मखन्ति देवाः यत्र अनेन वा स मखः = यज्ञः प्रववृते = प्रवृत्तः । प्रारम्भोऽभूदित्यर्थः यत्र = यस्मिन् यज्ञे विशेषेण हन्यन्ते क्रियाः एभिरिति विघ्नाः = अन्तरायाः । क्रियायाः = अनुष्ठानस्य विघ्नाः इति क्रियाविघ्नाः यज्ञविघातकाः राक्षसाः = रक्षांसि एव = निश्चये रक्षिणः = रक्षकाः आसन् = अभवन् । पूर्वं ये यज्ञानुष्ठानविघातका आसन् रामस्याश्वमेधयज्ञे ते एव रक्षका अभवन्निति वैशिष्ट्यमत्र ।

समासः—अधिकः संभारः यस्मिन् सः अधिकसम्भारः । क्रियायाः विघ्नाः क्रियाविघ्नाः ।

हिन्दी—इसके बाद वह यज्ञ प्रारम्भ हुआ, जिसमें शास्त्रानुसार सामग्री से भी अधिक सामग्री एकत्रित हो गई थी । और यज्ञ-क्रिया में विघ्न करने वाले राक्षस ही इसमें रक्षा कर रहे थे । यह विशेषता थी राम के यज्ञ में ॥ ६२ ॥

अथ प्राचेतसोपज्ञं रामायणमितस्ततः ।
मैथिलेयौ कुशलवौ जगतुर्गुरुचोदितौ ॥ ६३ ॥

अथ मैथिलेयौ । मैथिलीतनयौ 'स्त्रीभ्यो ढक्' । कुशलवौ गुरुणा वाल्मीकिना चोदितौ प्रेरितौ सन्तौ । प्राचेतसो वाल्मीकिः । उपज्ञायत इत्युपज्ञा । 'आतश्चोपसर्गे'इति कर्मण्यङ्प्रत्ययः । प्राचेतसस्योपज्ञा प्राचेतसोपज्ञम् । प्राचेतसेनादौ ज्ञातमित्यर्थः । 'उपज्ञा ज्ञानमाद्यं स्यात्' इत्यमरः । 'उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्' इति नपुंसकत्वम् । अय्यते ज्ञायतेऽनेनेत्ययनम् । रामस्यायनं चरितं रामायणं रामायणाख्यं काव्यम् । 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वम् । उत्तरायणमितिवत् । इतस्ततो जगतुः । गायतेर्लिट् ॥

अन्वयः—अथ मैथिलेयौ कुशलवौ गुरुचोदितौ सन्तौ, प्राचेतसोपज्ञं रामायणम् इतः ततः जगतुः ।

व्याख्या—अथ = यज्ञारम्भानन्तरम् मैथिल्याः अपत्यौ मैथिलेयौ = सीतापुत्रौ कुशश्च लवश्चेति कुशलवौ = एतन्नामकौ गुरुणा = महर्षिवाल्मीकिना चोदितौ = प्रेरितौ, इति गुरुचोदितौ सन्तौ उपज्ञायते इति उपज्ञा "उपज्ञा ज्ञानमाद्यम्" इत्यमरः । प्रचेतसः गोत्रापत्यं पुमान् प्राचेतसः । प्राचेतसस्य = वाल्मीकेः उपज्ञा = उपदेशं विनाद्यं ज्ञानमिति प्राचेतसोपज्ञम्, अय्यते = ज्ञायतेऽनेनेति अयनम् । रामस्य = रामचन्द्रस्य अयनं = चरितमिति रामायणम् = आदिमहाकाव्यम् इतस्ततः = यत्रतत्र जगतुः ।

समासः—प्राचेतसस्य उपज्ञा इति प्राचेतसोपज्ञम् । रामस्य अयनमिति तत् रामायणम् । कुशश्च लवश्चेति कुशलवौ ।

हिन्दी—इसके पश्चात् मिथिलेश पुत्री सीता जी के पुत्र लव और गुरु वाल्मीकि मुनि की आज्ञा पाकर प्रचेतस के गोत्र में उत्पन्न वाल्मीकि जी की प्रथम रचना आदिमहाकाव्य रामायण को गाते हुए इधर-उधर घूमने लगे ॥ ६३ ॥

वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किंनरस्वनौ ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम् ॥ ६४ ॥

रामस्य वृत्तं वर्ण्यम् । वस्त्विति शेषः । वाल्मीकेः कृतिः काव्यम् । गेयमिति शेषः । तौ कुशलवौ किंनरस्वनौ किंनरकण्ठौ गायकौ । पुनरिति शेषः । अत एव तत्किं येन निमित्तेन तौ शृण्वतां मनो हर्तुमलं शक्तौ न स्याताम् । सर्वं सरसमित्यर्थः ॥

अन्वयः—रामस्य वृत्तं वाल्मीकेः कृतिः "गेयमितिशेषः" तौ किन्नरस्वरौ "गायकौ" तत् किं येन "तौ" शृण्वतां मनो हर्तुम् अलं न स्याताम् ।

व्याख्या—रामस्य = रामचन्द्रस्य वृत्तं = वर्णनीयं वस्त्विति शेषः । वाल्मीकेः = महर्षेरादि-कवेः कृतिः = काव्यं गेयमिति शेषः, तौ = प्रसिद्धौ कुशलवौ = बालकौ अश्वमुखत्वात् कुत्सिताः नराः किंनराः । किंनराणां = गन्धर्वाणां स्वरः इव = स्वरः = शब्दः ययो स्तौ किंनरस्वरौ = गन्धर्व इव मधुरगायकौ, इत्यर्थः । अतः एव तत् किं वस्तु, अवशिष्टमस्ति येन कारणेन तौ = कुशलवौ शृण्वताम् = आकर्णयतां श्रोतॄणामित्यर्थः । मनः = चित्तं हर्तुं = वशीकर्तुम् अलं = समर्थौ न स्यातां = नभवेताम् । अर्थात् सर्वं सरसं मनोहारि च वर्तते इत्यर्थः ।

समासः—कुत्सिताः नराः किंनराः । किंनराणां स्वरः इव स्वरः ययोः तौ किंनरस्वरौ ।

हिन्दी—प्रथम तो राम का चरित्र (सुन्दर पवित्रमनोहारी) दूसरे महर्षि वाल्मीकि जी की रचना (अभूतपूर्व आदि महाकाव्य) और फिर गन्धर्वों के समान मधुर स्वर वाले लवकुश उसके गाने वाले । इसलिये अब इसमें कमी क्या थी । जिससे सुनने वालों के मन को हरने (मुग्ध करने) में वे समर्थ न होते । अर्थात् सुन्दर मनोहर कथा को किंनर कण्ठ से गाने के कारण सब सुनकर मुग्ध हो गये । क्योंकि यहाँ सभी कुछ सुन्दर सरस था ॥ ६४ ॥

रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम् ।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली ॥ ६५ ॥

ते जानन्तीति तज्ज्ञाः । तैस्तज्ज्ञैरभिज्ञैर्निवेदितं तयोः कुशलवयो रूपे आकारे गीते च माधुर्यं रामणीयकं सानुजो रामः कुतूहली सानन्दः सन्यथासंख्यं ददर्श शुश्राव च ॥

अन्वयः—तज्ज्ञैः निवेदितं तयोः रूपे गीते च माधुर्यम्, सानुजः रामः कुतूहली सन् ददर्श, शुश्राव च ।

व्याख्या—ते जानन्ति इति तज्ज्ञास्तैः तज्ज्ञैः = कुशलैः, निपुणैः जनैः निवेदितं = विज्ञापितं तयोः = कुशलवयोः रूपे = आकृतौ गीते = गाने "गीतं गानमिमे समे" इत्यमरः । मधु = माधुर्यं राति, अस्ति अत्र वा मधुरं तस्य भावः कर्म वा माधुर्यं = रामणीयकम्, अनुजैः = भ्रातृभिः सह सानुजः = सभ्रातृकः रामः = दाशरथिः कुतूहलमस्यास्तीति कुतूहली = कौतुकी सन् सोत्कण्ठः सन्नित्यर्थः । यथासंख्यं ददर्श = दृष्टवान्, शुश्राव = अश्रौषीत् च ।

समासः—अनुजैः सह वर्तमानः सानुजः ।

हिन्दी—जानकार कुशल लोगों ने, लव तथा कुश का सुन्दर मनोहर रूप, तथा गाने की मिठास राम जी से निवेदन किया। अर्थात् उनको बताई। तब अपने भाइयों के साथ राम ने आश्चर्य के साथ लव-कुश के रूप एवं गाने की मधुरता को देखा और सुना ॥ ६५ ॥]

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली ॥ ६६ ॥

तयोर्गीतश्रवणे एकाग्रासक्ताश्रुमुखी । आनन्दादिति भावः । संसत्सभा । प्रातर्हिमनिष्यन्दिनी निर्वाता वातरहिता वनस्थलीव । बभौ शुशुभे । आनन्दपारवश्यान्निष्पन्दमास्त इत्यर्थः ॥

अन्वयः—तद्गीतश्रवणैकाग्रा अश्रुमुखी संसद् प्रातः हिमनिष्यन्दिनी निर्वाता वनस्थली इव बभौ ।

व्याख्या—तयोः = लवकुशयोः गीतं = गानं तस्य श्रवणम् = आकर्णनम् इति तद्गीतश्रवणं, तद्गीतश्रवणे एकाग्रा = एकताना, इति तद्गीतश्रवणैकाग्रा । एकम्, एकस्मिन् अग्रमस्याः सा एकाग्रा। एकतानोऽनन्यवृत्तिरेकाग्रैकायनावपीत्यमरः । अश्रूणि = अस्रपूर्णानि मुखानि यस्यां सा अश्रुमुखी आनन्दातिरेकादिति भावः । संसीदन्त्यस्यां सा संसद् = सभा, प्रातः = प्रातःकाले हिमं = तुषारं नितरां स्यन्दते = प्रस्रवति तच्छीला हिमनिष्यन्दिनी निर्गतः वातः यस्याः सा निर्वाता = वायुरहिता वनस्य = अरण्यस्य स्थली = अकृत्रिमा भूमिः इति वनस्थली = कानन-स्थलम् इव = यथा बभौ = शुशुभे । राज्यसभा आनन्दाश्चर्यमग्नत्वात् निष्पन्दासंजाता, इत्यर्थः ।

समासः—तयोः गीतं तद्गीतं तस्य श्रवणं तस्मिन् एकाग्रा इति तद्गीतश्रवणैकाग्रा । अश्रूणि मुखानि यस्याः सा अश्रुमुखा । हिमस्य निष्यन्दिनी इति हिमनिष्यन्दिनी । निर्गतः वातः यस्याः सा निर्वाता । वनस्य स्थली वनस्थली ।

हिन्दी—लव कुश के गीत को सुनने में ध्यानमग्न तथा "सीता के स्मरण से" जिसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। ऐसी वह सारी सभा, प्रातःकाल की उस वनस्थली के समान सुन्दर दीख रही थी जिसके स्थिर खड़े वृक्षों से ओस की बूँदें टपटप गिर रही हों ॥ ६६ ॥

वयोवेषविसंवादि रामस्य च तयोस्तदा ।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकम्पं व्यतिष्ठत ॥ ६७ ॥

जनता जनानां समूहः । 'ग्रामजनबन्धुसहायेभ्यस्तल्' इति तल्प्रत्ययः । वयोवेषाभ्यामेव विसंवादि विलक्षणं तदा तयोः कुशलवयो रामस्य च सादृश्यं प्रेक्ष्य । नास्त्यक्षिकम्पं यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा । नञर्थस्य नशब्दस्य बहुव्रीहिः । व्यतिष्ठतातिष्ठत् । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मने-पदम् । विस्मयादनिमिषमद्राक्षीदित्यर्थः ॥

अन्वयः—जनता वयोवेषविसम्वादि तदा तयोः रामस्य च सादृश्यं प्रेक्ष्य नाक्षिकम्पं यथास्यात्तथा व्यतिष्ठत ।

व्याख्या—जनानां समूहः जनता = लोकसमूहः वयः = आयुः वेषः = नेपथ्यं, च प्रसाधानमित्यर्थः। इति वयोवेषः (एकत्रराजवेषः अन्यत्र ब्रह्मचारिवेष इत्यर्थः। विरुद्धं सम्यक् वदति तच्छीलमिति विसम्वादि) वयोवेषाभ्यां विसम्वादि = विरुद्धमिति वयोवेषविसम्वादि तदा = तस्मिन् समये तयोः = कुशलवयोः रामस्य = रामचन्द्रस्य च सदृशस्य भावः कर्म वा सादृश्यं = सारूप्यं प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा अक्षिणां = नेत्राणां कम्पः = चलनमिति अक्षिकम्पः, नास्ति अक्षिकम्पः यस्मिन् कर्मणि तत् नाक्षिकम्पं यथास्यात्तथा व्यतिष्ठत = अतिष्ठत्। आश्चर्यान्निर्निमेषमद्राक्षीदित्यर्थः।

समासः—वयश्च वेषश्चेति वयोवेषौ, वयोवेषाभ्यां विसम्वादि इति वयोवेषविसम्वादि। अक्षिणां कम्पः अक्षिकम्पः। नास्ति अक्षिकम्पः यस्मिन् कर्मणि तत् नाक्षिकम्पम्।

हिन्दी—जनता (राजसभा में एकत्रित प्रजासमूह) उस समय लव-कुश और राम के सादृश्य (रूपरंग, आकृति सब एक-सा) को देखकर बिना पलक गिराए एकटक देखती रह गई। भेद केवल इतना था कि वे दोनों बालक तथा ब्रह्मचारी आश्रमवासी थे, और राम जी युवा एवं राजसी वेषभूषा में थे। अवस्था और वेष से ही वे विलक्षण भिन्न थे॥ ६७॥

उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा॥ ६८॥

लोको जन उभयोः कुमारयोः प्रावीण्येन नैपुण्येन तथा न विसिष्मिये न विस्मितवान्यथा नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया नैःस्पृह्येण विसिष्मिये॥

अन्वयः—लोकः उभयोः प्रावीण्येन तथा न विसिष्मिये, यथा नृपते प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया विसिष्मये।

व्याख्या—लोक्यते इति लोकः = जनः। "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः। उभयोः = लवकुशयोः, बालकयोः प्रवीणस्य भावः कर्म वा प्रावीण्यं तेन प्रावीण्येन = गीतिनैपुण्येन तथा = तेन प्रकारेण न विसिष्मिये = विस्मयं न प्राप, यथा = येन प्रकारेण नृणां = मनुष्याणां पतिः = राजा इति नृपतिः = रामस्तस्य नृपतेः प्रीत्या = प्रेम्णा दानानि = विश्राणनानि, वितरणानि तेषु प्रीतिदानेषु वीता = विगता स्पृहा = अभिलाषा ययोस्तौ वीतस्पृहौतयोः भावस्तत्ता वीतस्पृहता तया वीतस्पृहतया, इच्छाराहित्येन इत्यर्थः विसिष्मिये = आश्चर्यमवाप। रामेण सप्रेम यत् ताभ्यां प्रदत्तं तत् परावर्तितम् न स्वीकृतमित्यर्थः।

समासः—प्रीत्या दानानि तेषु प्रीतिदानेषु। वीता स्पृहा ययो स्तौ वीतस्पृहौ तयोः भावस्तत्ता तयावीतस्पृहतया। नृणां पतिः नृपतिः।

हिन्दी—जनता उन दोनों के गाने के कौशल से उतनी विस्मय को प्राप्त नहीं हुई। "जैसी कि इस बात पर हुई कि" राजा राम ने प्रेम से जो दान दिया था, उसमें वे निस्पृह रहे। अर्थात् सब दान उन्होंने लौटा दिया। इससे बड़ा ही आश्चर्य हुआ॥ ६८॥

गेये को नु विनेता वां कस्य चेयं कृतिः कवेः ।
इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिमशंसताम् ॥ ६९ ॥

गेये गीते को नु वां युवयोर्विनेता शिक्षकः । नुशब्दः प्रश्ने । 'नु पृच्छायां वितर्के च' *इत्यमरः । इयं च कस्य कवेः कृतिरिति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ कुशलवौ वाल्मीकिमशंसतामुक्तवन्तौ ।* विनेतारं कविं चेत्यर्थः । 'गेये केन विनीतौ वाम्' इति पाठे वामिति युष्मदर्थप्रतिपादकमव्ययं द्रष्टव्यम् । तथा चायमर्थः—केन पुंसा वां युवां गेये गीतविषये विनीतौ शिक्षितौ । कर्मणि निष्ठाप्रत्ययः ॥

अन्वयः—गेये कः नु वां विनेता इयं च कस्य कवेः कृतिः इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ तौ वाल्मीकिम् अशंसताम् ।

व्याख्या—गातुं योग्यं गेयं तस्मिन् गेये = गाने कः = जनः नु = इति प्रश्ने वां = युवयोः विनेता = शिक्षकः, "अस्ति" "नु प्रश्ने पृच्छायां वितर्के च" इत्यमरः । इयं = युष्मद्भ्यां गीता कस्य कवते, कौति वा कविस्तस्य कवेः = कवयितुः कृतिः = रचना "विद्यते" इति = एवं राज्ञा = रामेण स्वयम् = आत्मना पृष्टौ तौ = कुशलवौ वाल्मीकिं = प्राचेतसं मुनिम् अशंसताम् = अकथयताम् । वाल्मीकि मुनिः आवां शिक्षक इति कथितवन्तावित्यर्थः ।

हिन्दी—राजा राम ने स्वयं उनसे पूछा कि गाने में कौन तुम्हारे शिक्षक हैं । तथा यह किस कवि की रचचा है । इस प्रकार पूछे जाने पर उन्होंने वाल्मीकि मुनि को शिक्षक गुरु बताया ॥ ६९ ॥

अथ सावरजो रामः प्राचेतसमुपेयिवान् ।
ऊरीकृत्यात्मनो देहं राज्यमस्मै न्यवेदयत् ॥ ७० ॥

अथ सावरजो रामः प्राचेतसं वाल्मीकिमुपेयिवान्प्राप्तः सन् । देहमात्मानं ऊरीकृत्य । आत्मानं स्थापयित्वेत्यर्थः । आत्मनः राज्यमस्मै प्राचेतसाय न्यवेदयत्समर्पितवान् ॥

अन्वयः—अथ सावरजः रामः प्राचेतसम् उपेयीवान् सन् देहम् ऊरीकृत्य, आत्मनः राज्यम् अस्मै न्यवेदयत् ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् अवरस्मिन् काले जाताः अवरजाः । अवरजैः = अनुजैः भरतादिभिः सहितः सावरजः रामः = रामचन्द्रः प्रचेतसः गोत्रापत्यं पुमान् प्राचेतस स्तं प्राचेतसं = वाल्मीकिम् उपेयीवान् = प्राप्तः सन् देहम् = आत्मानम् ऊरीकृत्य = स्वीकृत्य स्वं स्थापयित्वेत्यर्थः । आत्मनः = स्वस्य राज्यं = राष्ट्रम् अस्मै = प्राचेतसाय, मुनये वाल्मीकये इत्यर्थः । न्यवेदयत् = अर्पयत् । आत्मानं परिवर्ज्य सर्वं राज्यं मुनये समर्पितवानित्यर्थः ।

समासः—अवरजैः सहितः सावरजः ।

हिन्दी—इसके पश्चात् अपने छोटे भाइयों के साथ रामजी ने वाल्मीकि मुनि के पास पहुँच कर अपने को छोड़ कर अपना सारा राज्य मुनि को समर्पण कर दिया ॥ ७० ॥

स तावाख्याय रामाय मैथिलेयौ तदात्मजौ ।
कविः कारुणिको वव्रे सीतायाः संपरिग्रहम् ॥ ७१ ॥

करुणा प्रयोजनमस्य कारुणिको दयालुः । 'प्रयोजनम्' इति ठञ् । 'स्याद्दयालुः कारुणिकः' इत्यमरः । स कवी रामाय तौ मैथिलेयौ तदात्मजौ रामसुतावाख्याय सीतायाः संपरिग्रहं स्वीकारं वव्रे ययाचे ॥

अन्वयः—कारुणिकः सः कविः, रामाय तौ मैथिलेयौ तदात्मजौ आख्याय सीतायाः सम्परिग्रहं वव्रे ।

व्याख्या—करुणा शीलमस्य इति कारुणिकः = दयालुः "शीलम् ४-४-६१" इति ठक् मल्लिनाथमहोदयेन तु प्रयोजने ठञ् कृतः किन्तु, शीले यश्चमत्कार स्तन्न प्रयोजने भासते । "स्याद्दयालुः कारुणिकः" इत्यमरः । सः कविः = वाल्मीकिः रामाय = राघवेन्द्राय तौ = कुमारौ मैथिल्याः अपत्ये पुमांसौ मैथिलेयौ = सीतापुत्रौ तस्य = रामस्य आत्मजौ = सुतौ, इति तदात्मजौ = रामसुतौ आख्याय = कथयित्वा सीतायाः = जानक्याः सम्यक् परिग्रहः सम्परिग्रहस्तं सम्परिग्रहं = स्वीकारं वव्रे = याचितवान् ।

समासः—तस्य आत्मजौ इति तदात्मजौ तौ । सम्यक् परिग्रहः सम्परिग्रहस्तं सम्परिग्रहम् ।

हिन्दी—परम दयालु आदि कवि वाल्मीकि मुनि ने, राम से वे दोनों कुमार सीता के गर्भ से उत्पन्न राम के पुत्र हैं कहकर, सीता के स्वीकार की याचना की । अर्थात् ये दोनों आपके आत्मज हैं अब आप सीता को स्वीकार करें ॥ ७१ ॥

तात शुद्धा समक्षं नः स्नुषा ते जातवेदसि ।
दौरात्म्याद्रक्षसस्तां तु नात्रत्याः श्रद्दधुः प्रजाः ॥ ७२ ॥

हे तात, ते स्नुषा सीता नोऽस्माकमक्ष्णोः समीपं समक्षम् । 'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः' इति समासान्तष्टच् । जातवेदसि वह्नौ शुद्धा । नास्माकमविश्वास इत्यर्थः । किंतु रक्षसो रावणस्य दौरात्म्यादत्रत्याः प्रजास्तां न श्रद्दधुर्न विशश्वसुः ॥

अन्वयः—हे तात ! ते स्नुषा नः समक्षं जातवेदसि शुद्धा "किन्तु" रक्षसः दौरात्म्याद् अत्रत्याः प्रजाः न श्रद्धधुः ।

व्याख्या—तनोति = विस्तारयति कुलमिति तातः, तत्संबुद्धौ हे तात ! = हे पूज्य ! ते = तव, वाल्मीकेः स्नौति, इति स्नुषा = पुत्रवधूः, नः = अस्माकम् अक्ष्णोः समीपमिति समक्षं = सन्निधौ जातं वेदः = धनं यस्मात् सः, जातवेदाः तस्मिन् जातवेदसि = अग्नौ शुद्धा = पवित्रा, अकलङ्का, इत्यर्थः । नात्रास्माकं किंचिदविश्वासलेशोऽपीत्यर्थः । तु = किन्तु रक्षसः = रावणस्य दुष्टः आत्मा यस्य स दुरात्मा, दुरात्मनो भावः कर्म वा दौरात्म्यं तस्माद् दौरात्म्यात् = दुर्भावनया अत्र = अयोध्यायां भवाः अत्रत्याः प्रजाः = जनाः तां = शुद्धिं न श्रद्दधुः = विशश्वसुः, लोकाः न विश्वसन्ति, अस्माकं तु पूर्णविश्वासः एवास्तीति भावः ।

समासः—अक्ष्णोः समीपम् समक्षम्, अव्ययीभावः। जातं वेदोयस्मात् स जातवेदास्तस्मिन् जातवेदसि।

हिन्दी—"श्रीराम जी कहते हैं।" हे पूज्य ! आप की पुत्रवधू सीता हमारी आँखों के सामने अग्नि में पवित्र निकली थी। रावण की दुष्टता से (जो वह उठाकर ले गया था) यहाँ की प्रजा अग्निपरीक्षा की शुद्धि का विश्वास नहीं करती ॥ ७२ ॥

ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया ॥ ७३ ॥

मैथिली स्वचारित्रमुद्दिश्य ताः प्रजाः प्रत्याययतु विश्वासयतु। विश्वासस्य बुद्धिरूपत्वात् 'णौ गमिरबोधने' इति इणो गम्यादेशो नास्ति। ततोऽनन्तरं पुत्रवतीमेनां सीतां त्वदाज्ञया प्रतिपत्स्ये स्वीकरिष्ये ॥

अन्वयः—मैथिली स्वचारित्रम् उद्दिश्य ताः प्रत्याययतु ततः पुत्रवतीम् एनां त्वदाज्ञया प्रतिपत्स्ये।

व्याख्या—मैथिलस्य राज्ञोऽपत्यं पुत्री मैथिली=सीता चरित्रमेव चारित्रम्। स्वस्य=निजस्य चारित्रं=पातिव्रात्यं=सतीत्वमित्यर्थः। इति स्वचारित्रं तत् उद्दिश्य=उल्लक्ष्य ताः=अत्रत्याः प्रजाः प्रत्याययतु=विश्वासयतु, विश्वासमुत्पादयत्वित्यर्थः। ततः=अनन्तरम् पुत्रौ विद्येते यस्याः सा पुत्रवती तां पुत्रवतीम्=ससुताम् एनां=मैथिलीं तव=भवतो वाल्मीकेः आज्ञा=आदेशस्तयात्वदाज्ञया प्रतिपत्स्ये=स्वीकरिष्ये।

समासः—स्वस्य चारित्रमिति स्वचारित्रं तत् स्वचारित्रम्। तव आज्ञा त्वदाज्ञा तया त्वदाज्ञया।

हिन्दी—अतः मिथिलेश कुमारी सीता अपने चरित्र (चालचलन, सतीत्व) की शुद्धता को प्रमाणित कर यहाँ की प्रजा को विश्वास दिलावें। तब मैं आपकी आज्ञा से पुत्रों सहित इन्हें स्वीकार कर लूँगा ॥ ७३ ॥

इति प्रतिश्रुते राज्ञा जानकीमाश्रमान्मुनिः।
शिष्यैरानाययामास स्वसिद्धिं नियमैरिव ॥ ७४ ॥

राज्ञेति प्रतिश्रुते प्रतिज्ञाते सति मुनिराश्रमाज्जानकीं शिष्यैः प्रयोज्यैः स्वसिद्धिं स्वार्थसिद्धिं नियमैस्तपोभिरिव। आनाययामास ॥

अन्वयः—राज्ञा इति प्रतिश्रुते सति, मुनिः आश्रमात् जानकीं शिष्यैः स्वसिद्धिम् नियमैः इव आनयामास।

व्याख्या—राज्ञा=रामचन्द्रेण इति=पूर्वोक्तप्रकारेण प्रतिश्रुते=स्वीकृते सति प्रतिज्ञाते सतीत्यर्थः। मन्ता=वेदशास्त्रार्थतत्त्वावगन्ता मुनिः=वाल्मीकिः आश्राम्यन्ति अत्र, अनेन वा

आश्रमः। आसमन्तात् श्रमो यत्र स्वधर्मसाधनक्लेशाद्वा आश्रमस्तस्मात् आश्रमात्=तपोवनात् जनकस्य राज्ञोऽपत्यं पुत्री जानकी तां जानकीं=सीतां। स्वस्य सिद्धिः स्वसिद्धिः तां स्वसिद्धिं= स्वार्थसिद्धिम् नियमैः=तपोभिः इव=यथा आनयामास=आह्वयामास। शिष्यन्ते इति शिष्यास्तैः शिष्यैः=छात्रैः।

समासः—स्वस्य सिद्धिः स्वसिद्धि स्तां स्वसिद्धिम्।

हिन्दी—इस प्रकार राजा राम के स्वीकार कर लेने पर वाल्मीकि मुनि ने अपने शिष्यों को भेजकर आश्रम से सीता जी को इस प्रकार बुलवाया, मानों अपने यमनियमादि तपस्या के द्वारा अपनी सिद्धि को बुला रहे हों॥ ७४॥

अन्येद्युरथ काकुत्स्थः संनिपात्य पुरौकसः।
कविमाह्वाययामास प्रस्तुतप्रतिपत्तये॥ ७५॥

अथ काकुत्स्थो रामः। अन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि प्रस्तुतप्रतिपत्तये प्रकृतकार्यानुसंधानाय पुरौकसः पौरान्संनिपात्य मेलयित्वा, कविं वाल्मीकिमाह्वाययामासाकारयामास॥

अन्वयः—अथ काकुत्स्थः अन्येद्युः प्रस्तुतप्रतिपत्तये पुरौकसः सन्निपात्य कविम् आह्वयामास।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् ककुत्स्थस्यापत्यं पुमान् काकुत्स्थः=रामः अन्यस्मिन् अहनि अन्येद्युः=अन्यदिने प्रस्तुतस्य=प्रकृतकार्यस्य प्रतिपत्तिः=प्रमाणानुसन्धानं, तस्यै प्रस्तुतप्रतिपत्तये पुरं=नगरम् ओकः=स्थानं येषां ते पुरौकसस्तान् पुरौकसः=नागरिकान् जनान् संनिपात्य=मेलयित्वा सर्वान्नेकत्रीकृत्येत्यर्थः। कविं=वाल्मीकिं मुनिम् आह्वयामास=आकारयामास।

समासः—पुरम् ओकः येषां ते पुरौकसस्तान् पुरौकसः। प्रस्तुतस्य प्रतिपत्तिः प्रस्तुतप्रतिपत्तिः तस्यै प्रस्तुतप्रतिपत्तये।

हिन्दी—इसके बाद दूसरे दिन राम ने इस प्रकृत कार्य में (सीता के संबंध में किंवदन्ती को झूठी सिद्ध करने में) प्रमाण जानने के लिये अयोध्यावासी प्रजाजनों को इकट्ठा करके वाल्मीकि जी को बुलवाया॥ ७५॥

स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया।
ऋचेवोदर्चिषं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः॥ ७६॥

अथ। स्वर उदात्तादिः। संस्कारः शब्दशुद्धिः तद्वत्या ऋचा सावित्र्योदर्चिषं सूर्यमिव पुत्राभ्यामुपलक्षितया सीतया करणेनोदर्चिषं राममसौ मुनिरुपस्थित उपतस्थे॥

अन्वयः—अथ स्वरसंस्कारवत्या ऋचा उदर्चिषं सूर्यम् इव पुत्राभ्याम् उपलक्षितया सीतया उदर्चिषं रामम् असौ मुनिः उपस्थितः।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम् स्वरः=उदात्तादिश्च संस्कारः=व्याकरणशुद्धिश्च इति

स्वरसंस्कारौ, तौ अस्तः अस्याः सा स्वरसंस्कारवती, तया स्वर संस्कारवत्या ऋच्यन्ते=स्तूयन्ते देवाः अनया सा ऋक् तया ऋचा=सावित्र्या ऋग्वेदमंत्रेणेत्यर्थः। उद्गता अर्चिः=ज्योतिः, प्रकाशः यस्मात् स तम् उदर्चिषं सूर्यं=दिवाकरम् इव=यथा पुत्राभ्यां=सुताभ्यामुपलक्षितया सीतया=जानक्या करणेन उदर्चिषं=स्वदीप्त्याप्रकाशमानं रामम्=राघवं राजानम् असौ मुनिः=महर्षिः वाल्मीकिः उपस्थितः=सदसि समागतः।

समासः—स्वरश्च संस्कारश्चेति स्वरसंस्कारौ, तौ अस्तः अस्याः सा तया स्वरसंस्कारवत्या। उद्गता अर्चिः यस्मात् सः उदर्चिस्तम् उदर्चिषम्।

हिन्दी—महर्षि वाल्मीकि, अपने दोनों पुत्रों से युक्त सीता जी को साथ लेकर तेज से प्रकाशन राम के सामने उपस्थित हुए। लव कुश के साथ राम के पास जाती हुई सीता जी ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानों उदात्तादि स्वर तथा व्याकरण के संस्कार से युक्त गायत्री, चमचमाते सूर्य के पास जा रही हो॥ ७६॥

काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा।
अन्वमीयत शुद्धेति शान्तेन वपुषैव सा॥ ७७॥

कषायेण रक्तं काषायम्। 'तेन रक्तं रागात्' इत्यण्। तेन परिवीतेन संवृतेन स्वपदार्पितचक्षुषा शान्तेन प्रसन्नेन वपुषैव सा सीता शुद्धा साध्वीत्यन्वमीयतानुमिता॥

अन्वयः—काषायपरिवीतेन स्वपदार्पितचक्षुषा शान्तेन वपुषा एव सा शुद्धा इति अन्वमीयत।

व्याख्या—कषायेन रागवस्तुना रक्तमिति काषायम्, काषायेन=ईषद्रक्तेन परिवीतं=संवीतम्, आच्छादितमित्यर्थः, यत्तेन काषायपरिवीतेन। स्वस्य=सीतायाः पदौ=चरणौ, इति स्वपदौ, स्वपदयोः अर्पिते=स्थापिते चक्षुषी=नेत्रे येन तत्तेन स्वपदार्पितचक्षुषा शान्तेन=प्रसन्नेन वपुषा=शरीरेण एव=निश्चये सा=सीता शुद्धा=पवित्रा, साध्वी, इति अन्वमीयत=अनुमिता। गत्यादि चेष्टयैव ज्ञाता इयं सतीतिभावः।

समासः—काषायेन परिवीतं तेन काषायपरिवीतेन। स्वस्यपदौ स्वपदौ, स्वपदयोः अर्पिते चक्षुषी येन तत्तेन स्वपदार्पितचक्षुषा।

हिन्दी—लालरंग का या गेरुवा वस्त्र पहने तथा अपने पैरों पर दृष्टि डाले हुए, ऐसे शान्त प्रसन्न, अपने शरीर से ही सीता जी सती साध्वी जान पड़ती थीं। अर्थात् चेष्टा से ही सती दीख रही थीं॥ ७७॥

जनास्तदालोकपथात्प्रतिसंहृतचक्षुषः।
तस्थुस्तेऽवाङ्मुखाः सर्वे फलिता इव शालयः॥ ७८॥

तस्याः सीतायाः कर्मण आलोकपथाद्दर्शनमार्गात्प्रतिसंहृतचक्षुषो निवर्तितदृष्टयः सर्वे जनाः। फलिताः शालय इव। अवाङ्मुखा अवनतमुखास्तस्थुः॥

अन्वयः—तदालोकपथात् प्रतिसंहृतचक्षुषः सर्वे जनाः फलिताः शालयः इव अवाङ्मुखाः तस्थुः।

व्याख्या—तस्याः = सीतायाः आलोकः = दर्शनं, तस्य पन्थाः = मार्गः इति तदालोकपथस्तस्मात् तदालोकपथात्, सीताकर्मकदर्शनमार्गादित्यर्थः प्रतिसंहृतानि = निवर्तितानि चक्षूंषि = नेत्राणि यैस्ते प्रतिसंहृतचक्षुषः सर्वे = अखिलाः जनाः = अयोध्यावासिनो नराः फलानि संजातानि येषु ते फलिताः = फलयुक्ताः शाल्यन्ते = आप्लाव्यन्ते इति शालयः = कलमाद्याः इव = यथा अवाञ्चति = अधोमुखो भवतीति अवाङ् = अधः मुखानि = आननानि येषां ते अवाङ्मुखाः शालयः फलेनाधोमुखाः, अयोध्यावासिनस्तु लज्जया अधोमुखाः सन्तः तस्थुः = स्थिताः।

समासः—तस्याः आलोकस्तदालोकः, तदालोकस्य पन्था स्तस्मात् तदालोकपथात्। प्रतिसंहृतानि चक्षूंषि यैस्ते प्रतिसंहृतचक्षुषः। अवाङ् मुखं येषां ते अवाङ्मुखाः।

हिन्दी—सीता जी के दीखने के मार्ग से दृष्टि (आँखों) को हटाकर सारे अयोध्यावासी जन उसी प्रकार नीचे मुख किये खड़े रहे। जैसे पके हुए धान झुक जाते हैं। अर्थात् इन सती साध्वी पर हमने झूठा कलंक लगाया था, इस लज्जा के मारे गर्दन न उठा सके ॥ ७८ ॥

तां दृष्टिविषये भर्तुर्मुनिरास्थितविष्टरः।
कुरु निःसंशयं वत्से स्ववृत्ते लोकमित्यशात् ॥ ७९ ॥

आस्थितविष्टरोऽधिष्ठितासनो मुनिः। हे वत्से, भर्तुर्दृष्टिविषये समक्षं स्ववृत्ते स्वचरिते विषये लोकं निःसंशयं कुरु। इति तां सीतामशाच्छासित स्म।

अन्वयः—आस्थितविष्टरः मुनिः हे वत्से ! भर्तुः दृष्टिविषये स्ववृत्ते लोकं निःसंशयं कुरु इति ताम् अशात्।

व्याख्या—विस्तीर्यते इति विष्टरः। आस्थितः = अधिष्ठितः, स्वीकृत इत्यर्थः विष्टरः = आसनं येन सः आस्थितविष्टरः "विष्टरो विटपी दर्भमुष्टिः पीठाद्यमासनम्" इत्यमरः। मुनिः = वाल्मीकिः हे वत्से = हे पुत्रि ! बिभर्ति इति भर्ता तस्य भर्तुः = पत्युः दृष्टेः = नेत्रस्य विषयः = गोचरः, तस्मिन् दृष्टिविषये = समक्षं स्वस्य = आत्मनः वृत्तं = चरित्रं तस्मिन् स्ववृत्ते = स्वकीयचरित्रविषये इत्यर्थः। लोकं = पुरजनं निष्क्रान्तः संशयः = सन्देहः भ्रान्तिः यस्य स तं निःसंशयं कुरु = विधेहि। इति = एवं तां = सीताम् अशात् = शासितस्म।

समासः—आस्थितः विष्टरो येन सः आस्थितविष्टरः। निर्गतः संशयो यस्य स तं निःसंशयम्। दृष्टेः विषयः दृष्टिविषयस्तस्मिन् दृष्टिविषये। स्वस्य वृत्तं तस्मिन् स्ववृत्ते।

हिन्दी—आसन पर बैठे हुए मुनि वाल्मीकि जी ने सीता को आज्ञा दी कि हे पुत्री ! पति के सामने, अपने चरित्र (सतीत्व) के विषय में अयोध्या के लोगों को सन्देह रहित कर दो। अर्थात् तुम्हारे चरित्र के विषय में लोगों के मन में बैठे झूठे सन्देह को मिटा दो ॥ ७९ ॥

अथ वाल्मीकिशिष्येण पुण्यमावर्जितं पयः ।
आचम्योदीरयामास सीता सत्यां सरस्वतीम् ॥ ८० ॥

अथ वाल्मीकिशिष्येणावर्जितं दत्तं पुण्यं पय आचम्य सीता सत्यां सरस्वतीं वाचमुदीरयामासोच्चारयामास ॥

अन्वयः—अथ वाल्मीकिशिष्येण आवर्जितं पुण्यं पयः आचम्य, सीता सत्यां सरस्वतीम् उदीरयामास ।

व्याख्या—अथ = मुनिकथनान्तरम् वाल्मीकेः = महर्षेः शिष्यः = छात्रः इति वाल्मीकिशिष्य स्तेन वाल्मीकिशिष्येण आवर्जितं = दत्तं पुणतीति पुणः, पुणं = शुभंकर्म अर्हति, तत्र साधुर्वा पुण्यं = पवित्रं पयः = जलम् आचम्य = उपस्पृश्य, पीत्वेत्यर्थः । सीता = जानकी सति साध्वीति सत्या तां सत्यां = तथ्यां "सत्यं तथ्यमृतं सम्यग्" इत्यमरः । सरतीति सरः । सरः = ज्ञानमस्ति अस्याः सा सरस्वती तां सरस्वतीं = वाणीम् उदीरयामास = अवदत् = उक्तवतीत्यर्थः ।

समासः—वाल्मीकेः शिष्यः, वाल्मीकिशिष्यः, तेन वाल्मीकिशिष्येण ।

हिन्दी—मुनि की आज्ञा के पश्चात् महर्षि वाल्मीकि जी के शिष्य के द्वारा दिये गए पवित्र जल का आचमन करके सीता जी ने सत्य वचन कहा ॥ ८० ॥

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे ।
तथा विश्वंभरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि ॥ ८१ ॥

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ विषये मे व्यभिचारः स्खालित्यं न यथा नास्ति यदि तथा तर्हि । विश्वं बिभर्तीति विश्वंभरा भूमिः । 'संज्ञायां भृतृ–' इत्यादिना खच्प्रत्ययः । 'अरुर्द्विषत्–' इत्यादिना मुमागमः । हे विश्वंभरे देवि, मामन्तर्धातुं गर्भे वासयितुमर्हसि ॥

अन्वयः—वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ मे व्यभिचारः न यथा, तथा हे विश्वम्भरे देवि ! माम् अन्तर्धातुम् अर्हसि ।

व्याख्या—वाक् = वचनं च मनः = चित्तं च कर्म = कार्यञ्चेति वाङ्मनःकर्माणि तैः वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ = भर्तरि विषये मे = मम सीतायाः व्यभिचारः = कुत्सिताचरणं, स्खलनमित्यर्थः न यथा = नास्तिचेत् तथा = तर्हि विश्वं = संसारं बिभर्ति = धारयतीति विश्वंभरा = पृथिवी, तस्याः संबुद्धौ हे विश्वम्भरे ! देवि ! मातः ! माम् = सीताम् अन्तर्धातुं = तिरोधातुम् अर्हसि = योग्यासि । स्वगर्भे वासयितुं योग्यासि इत्यर्थः ।

समासः—वाक् च मनश्च कर्म चेति वाङ्मनः कर्माणि तैः वाङ्मनः कर्मभिः ।

हिन्दी—मन वचन कर्म से किसी प्रकार भी यदि मैंने अपने पति के प्रति विश्वासघात (पातिव्रत्य भंग) न किया हो, तो हे पृथिवी माता ! तुम मुझ सीता को अपनी गोद में छिपा लो ॥ ८१ ॥

एवमुक्ते तया साध्व्या रन्ध्रात्सद्योभवाद्भुवः ।
शातह्रदमिव ज्योतिः प्रभामण्डलमुद्ययौ ॥ ८२ ॥

साध्व्या पतिव्रतया तया सीतयैवमुक्ते सति सद्योभवाद्भुवो रन्ध्राच्छातह्रदं वैद्युतं ज्योतिरिव प्रभामण्डलमुद्ययौ ॥

अन्वयः—साध्व्या तया एवम् उक्ते सति सद्यः भवात् भुवः रन्ध्रात् शातह्रदं ज्योतिः इव प्रभामण्डलम् उद्ययौ ।

व्याख्या—साध्नोति परकार्यं, परलोकं वा सा साध्वी, तया साध्व्या = पतिव्रतया तया = जानक्या, एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण उक्ते = कथिते सति सद्यः = तत्क्षणे भवति = प्रकटतीति सद्योभवस्तस्मात् सद्योभवात् भुवः = पृथिव्याः रन्ध्रात् = च्छिद्रात् शतंह्रदाः = अव्यक्ताः शब्दाः यस्याः सा शतह्रदा, शतंह्रदाः आर्चींसि, अगाधजलाशयाः वा सन्त्यस्याः सा शतह्रदा । शतह्रदायाः इदं शातह्रदं = वैद्युतं, विद्युत्संबन्धि ज्योतिः = इरंमदः, अग्निरित्यर्थः । इव = यथा "मेघज्योतिरिरंमदः" इत्यमरः । प्रभायाः = कान्तेः मण्डलं = समूहः, इति प्रभामण्डलं = तेजःपुञ्जः उद्ययौ = उद्गतः ।

समासः—सद्यः भवः सद्योभवस्तस्मात् सद्योभवात् । शतंह्रदाः यस्याः सा शतह्रदा, तस्याः इदं शातह्रदम् । प्रभायाः मण्डलमिति प्रभामण्डलम् ।

हिन्दी—सती साध्वी सीता के इस प्रकार कहते ही उसी क्षण बने पृथिवी के छिद्र से बिजली की चमक के समान एक तेजपुञ्ज (ज्योतिः) ऊपर निकल आई । अर्थात् सीता के कहते ही जमीन फटी, और उससे ज्योति निकली ॥ ८२ ॥

तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी ।
समुद्ररशना साक्षात्प्रादुरासीद्वसुंधरा ॥ ८३ ॥

तत्र प्रभामण्डले नागफणोत्क्षिप्ते सिंहासने निषेदुष्यासीना समुद्ररशना समुद्रमेखला साक्षात् । वसूनि धारयतीति वसुंधरा भूमिः । 'खचि ह्रस्वः' इति ह्रस्वः । प्रादुरासीत् ।

अन्वयः—तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी समुद्ररशना साक्षात् वसुन्धरा प्रादुरासीत् ।

व्याख्या—तत्र = प्रभामण्डले नगे भवाः नागाः । न गच्छन्तीति अगाः, न अगाः नागाः । नागानां = काद्रवेयाणां फणाः = स्फटाः, भोगाः, इति नागफणाः, नागफणाभिः उत्क्षिप्तम् = ऊपरिधारितम्, उत्थापितमित्यर्थः । यत् सिंहासनं = सिंहाकारमासनं तत्र निषेदुषी = आसीना, उपविष्टा, इति नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी, फणशब्दः स्त्रियांपुंल्लिंगे च । "स्फटायांफणा द्वयोः" इत्यमरः । समुद्रः = सागरः रशना = मेखला यस्याः सा समुद्ररशना, सह अक्षेण साक्षः, साक्षमतति, इति साक्षात् = प्रत्यक्षं वसूनि = धनानि धारयतीति वसुन्धरा = पृथिवी प्रादुरासीत् = प्रादुर्बभूव ।

समासः—नागानां फणाः, नागफणाः, नागफणैः उत्क्षिप्तं यत् सिंहासनं तत्र निषेदुषी, इति नागफणोत्क्षिप्तसिंहासननिषेदुषी । समुद्रः रशना यस्याः सा समुद्ररशना ।

हिन्दी—उस कान्तिपुञ्ज से शेषनाग के फणों के ऊपर रखे हुए सिंहासन पर बैठी हुई, तथा समुद्र की तगड़ी पहने, साक्षात् धनों को धारण करने वाली, पृथिवी माता, प्रगट हो गई ॥ ८३ ॥

सा सीतामङ्कमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम् ।
मा मेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात् ॥ ८४ ॥

सा वसुंधरा भर्तरि प्रणिहितेक्षणां दत्तदृष्टिं सीतामङ्कमारोप्य तस्मिन्भर्तरि रामे मामेति मा हरेति व्याहरति वदत्येव । व्याहरन्तमनादृत्येत्यर्थः । 'षष्ठी चानादरे' इति सप्तमी । पातालमभ्यगात् ॥

अन्वयः—सा भर्तृप्रहितेक्षणां सीताम् अंकम् आरोप्य, तस्मिन् मा मा इति व्याहरति एव पातालम् अभ्यगात् ।

व्याख्या—सा = विश्वम्भरा भर्तरि = रामे प्रणिहिते = दत्ते, स्थापिते ईक्षणे = नेत्रे यया सा भर्तृप्रणिहितेक्षणा तां भर्तृप्रणिहितेक्षणाम् सीतां = स्वपुत्रीं जानकीम् अंकं = क्रोडम्, उत्संग-मित्यर्थः । आरोप्य = संस्थाप्य, तस्मिन् = भर्तरि = रामे मा मा = न न, इति = एवं व्याहरति = कथयति एव पतन्ति यत्र पापात् तत् पातालं = नागलोकम् अभ्यगात् = अभ्यगच्छत् । मा मा नय, इति कथयन्तं = राममनादृत्य पातालं गतेत्यर्थः ।

समासः—भर्तरि प्रणिहिते ईक्षणे यया सा भर्तृप्रणिहितेक्षणा तां भर्तृप्रणिहितेक्षणाम् ।

हिन्दी—वह पृथिवी माता उस सीता जी को गोद में बैठाकर पाताल लोक में चली गई । जो सीता राम को एकटक देख रही थी तथा राम कहते ही रहे कि ऐसा मत करो, ऐसा मत करो ॥ ८४ ॥

धरायां तस्य संरम्भं सीताप्रत्यर्पणैषिणः ।
गुरुर्विधिबलापेक्षी शमयामास धन्विनः ॥ ८५ ॥

सीताप्रत्यर्पणमिच्छतीति तथोक्तस्य धन्विन आत्तधनुषस्तस्य रामस्य धरायां विषये संरम्भं विधिबलापेक्षी दैवशक्तिदर्शी गुरुर्ब्रह्मा शमयामास । अवश्यंभावी विधिरिति भावः ॥

अन्वयः—सीताप्रत्यर्पणैषिणः धन्विनः तस्य धरायां "विषये" संरम्भं विधिबलापेक्षी गुरुः शमयामास ।

व्याख्या—अर्पणं प्रति प्रत्यर्पणं, सीतायाः = जानक्याः प्रत्यर्पणं = परावर्तनमिति सीता-प्रत्यर्पणं, तदिच्छति = अभिलषतीति सीताप्रत्यर्पणैषी तस्य सीताप्रत्यर्पणैषिणः, धन्वाऽस्यास्तीति धन्वी तस्य धन्विनः = धनुष्मतः "धन्वा तु मरुदेशे न क्लीबं चापे स्थलेऽपिच" इति मेदिनी ।

तस्य = रामस्य धरायां = विश्वम्भरायां विषये संरम्भं = क्रोधं विधेः = दैवस्य बलं = सामर्थ्यम् अपेक्षते तच्छीलः विधिबलापेक्षी = दैवविधानदर्शीत्यर्थः। गुरुः = वसिष्ठः, वाल्मीकिश्चशमयामास = शमयाञ्चक्रे, विधेः अवश्यं भावित्वात् रामक्रोधं निवारयामासेत्यर्थः।

समासः—अर्पणंप्रति प्रत्यर्पणं, सीतायाः प्रत्यर्पणमिति, सीताप्रत्यर्पणं तस्य ऐषी, सीताप्रत्यर्पणैषी तस्य सीताप्रत्यर्पणैषिणः। विधेः बलमिति विधिबलं, विधिबलस्य अपेक्षी इति विधिबलापेक्षी।

हिन्दी—सीता जी के लौटा लेने की इच्छावाले अत एव धनुष उठाए हुए, राम के पृथिवी के ऊपर क्रोध को, विधि का विधान ही बलवान् है इसको देखने जानने वाले वशिष्ठ जी एवं वाल्मीकि जी ने शान्त किया। अर्थात् होनहार ऐसी है कहकर पृथिवी से सीता को, मारकर ले आने के राम के क्रोध को शान्त किया॥ ८५॥

ऋषीन्विसृज्य यज्ञान्ते सुहृदश्च पुरस्कृतान्।
रामः सीतागतं स्नेहं निदधे तदपत्ययोः॥ ८६॥

रामो यज्ञान्ते पुरस्कृतान्पूजितानृषीन्सुहृदश्च विसृज्य सीतागतं स्नेहं तदपत्ययोः कुशलवयोर्निदधे॥

अन्वयः—रामः यज्ञान्ते पुरस्कृतान् ऋषीन्, सुहृदश्च विसृज्य, सीतागतं स्नेहं तदपत्ययोः निदधे।

व्याख्या—रामः = रामचन्द्रः यज्ञस्य = अश्वमेधस्य अन्तः = समाप्तिः, तस्मिन् यज्ञान्ते पुरः अकारिषत इति पुरस्कृतास्तान् पुरस्कृतान् = पूजितान् "पुरस्कृतः पूजिते" इत्यमरः। ऋषीन् = वाल्मीक्यादीन् सुहृदः = मित्राणि विभीषणादीन् च विसृज्य = स्वगृहान् प्रेष्य सीतायां गतं सीतागतं = सीताविषयकं स्नेहं = प्रेम तस्याः = सीतायाः अपत्ये = पुत्रौ तयोः तदपत्ययोः निदधे = निहितवान्। यावत्प्रेम सीतायामासीत् तावत्तदपत्ययोः कृतवानित्यर्थः।

समासः—सीतायां गतमिति सीतागतम्। तस्याः अपत्ये तदपत्ये तयोः तदपत्ययोः।

हिन्दी—अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति होने पर राम ने, ऋषि और मित्रों को सत्कारपूर्वक विदा करके सीता के प्रति उनका जितना प्रेम था उतना ही प्रेम वे सीता के पुत्र लव कुश को करते थे॥ ८६॥

युधाजितश्च संदेशात्स देशं सिन्धुनामकम्।
ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः॥ ८७॥

किंच। भृतप्रजः स रामो युधाजितो भरतमातुलस्य संदेशात्सिन्धुनामकं देशं दत्तप्रभावाय दत्तैश्वर्याय। रामेणेति शेषः। भरताय ददौ॥

अन्वयः—"किंच" भृतप्रजः सः युधाजितः सन्देशात् सिन्धुनामकं देशं दत्तप्रभावाय भरताय ददौ।

व्याख्या—भृता = पोषिता = पालिता प्रजा = लोकः येन स भृतप्रजः रामः = राघवः युधां = युद्धं जयतीति युधाजित् तस्य युधाजितः = भरतमातुलस्य सन्देशात् = वाचिकात्, कथनादित्यर्थः। स्यन्दन्ते आपोऽत्र स सिन्धुः नाम यस्य स सिन्धुनामकस्तं सिन्धुनामकं केकयदेशमित्यर्थः। देशं = राष्ट्रं दत्तः = वितीर्णं प्रभावः = सामर्थ्यं "रामेण" यस्मै स तस्मै दत्तप्रभावाय भरताय = कैकेयीपुत्राय ददौ = दत्तवान्।

समासः—सिन्धुःनाम यस्य स सिन्धुनामकस्तं सिन्धुनामकम्। दत्तः प्रभावः यस्मै स तस्मै दत्तप्रभावाय। भृता प्रजा येन स भृतप्रजः।

हिन्दी—प्रजा का पालन करने वाले राम ने, भरत के मामा युधाजित् के कहने से, सिन्धु नामक देश (केकय) प्रभावशाली भरत को दे दिया। अर्थात् भरत जी को मामा का राज्य मिला ॥ ८७ ॥

भरतस्तत्र गन्धर्वान्युधि निर्जित्य केवलम्।
आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम् ॥ ८८ ॥

तत्र सिन्धुदेशे भरतोऽपि युधि गन्धर्वान्निर्जित्य केवलमेकमातोद्यं वीणाम्। 'ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम्। वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्। चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम् ॥' इत्यमरः। ग्राहयामास। आयुधं समत्याजयत्याजितवान्। ग्रहित्यज्योर्ण्यन्तयोर्द्विकर्मकत्वं नित्यमित्यनुसंधेयम् ॥

अन्वयः—तत्र भरतः युधि गन्धर्वान् निर्जित्य केवलम्, आतोद्यं ग्राहयामास, आयुधं समत्याजयन्।

व्याख्या—तत्र = सिन्धुनामके देशे बिभर्ति लोकान्, स्वांगं वा भरतः = रामानुजः अपि युधि = संग्रामे गन्धम् = सौरभम् अर्वन्तीति गन्धर्वास्तान् गन्धर्वान् = किन्नरान् निर्जित्य = विजित्य केवलम् = एकम् आसमन्तात् तुद्यते = ताड्यते इति आतोद्यम् = वाद्यंत्रं = वीणामित्यर्थः। "चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम्" इत्यमरः। ग्राहयामास = स्वीकारयामास आयुधं = शस्त्रं समत्याजयत् = त्याजितवान्। ग्रहित्यज्योर्ण्यन्तयोः नित्यद्विकर्मकत्वेन गन्धर्वान्, आतोद्यमिति च कर्मद्वयम्।

हिन्दी—वहाँ सिन्धु प्रदेश में भरत ने भी युद्धस्थल में गन्धर्वों को परास्त करके, उनके हाथों में वीणा तो पकड़ा दी, और शस्त्रास्त्र छुड़वा दिया ॥ ८८ ॥

स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्योस्तदाख्ययोः।
अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात्पुनः ॥ ८९ ॥

स भरतः। अभिषेकार्हौ तक्षपुष्कलौ नाम पुत्रौ तदाख्ययोः। तक्षपुष्कलाख्ययोरित्यर्थः। पुष्कलं पुष्कलावत्यां तक्षं तक्षशिलायामिति राजधान्योर्नगर्योरभिषिच्य पुना रामान्तिकमगात् ॥

अन्वयः—सः अभिषेकार्हौ तक्षपुष्कलौ नाम पुत्रौ तदाख्ययोः राजधान्योः अभिषिच्य पुनः रामान्तिकम् अगात्।

व्याख्या—सः = भरतः अभिषेकं = राज्यतिलकम् अर्हतः, इति अभिषेकार्हौ पुष्यति = पुष्टिं गच्छतीति पुष्कलः। तक्षः = एतन्नामा पुष्कलः = एतन्नामकश्चेति तक्षपुष्कलौ नाम पुत्रौ = आत्मजौ, तौ = तक्षपुष्कलौ आख्ये = नामनी ययोस्तयोः तदाख्ययोः = तक्षशिलापुष्कलावत्योः राज्ञां धान्यौ राजधान्यौ तयोः राजधान्योः = राजनगर्योः अभिषिच्य = राजतिलकं कृत्वा, तक्षं तक्षशिलायां, पुष्कलं च पुष्कलावत्यां राजतिलकंविधायेत्यर्थः। तथाचोक्तं वाल्मीकीये रामायणे, "तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलंपुष्कलावते" इति। रामस्य = ज्येष्ठभ्रातुः अन्तिकं = समीपम् अगात् = आजगाम।

समासः—तक्षश्च पुष्कलश्चेति तक्षपुष्कलौ तौ। अभिषेकस्य अर्हौ, इति अभिषेकार्हौ। तौ आख्ये ययोस्ते तदाख्ये तयोः तदाख्ययोः रामस्य अन्तिकमिति रामान्तिकम्।

हिन्दी—भरत जी, राजतिलक करने योग्य तक्ष तथा पुष्कल नामक अपने पुत्रों को, उन्हीं के नामवाली राजधानी में अभिषेक करके (राजा बनाकर) फिर राम जी के पास आ गये। अर्थात् तक्षको तक्षशिला का और पुष्कल को पुष्कलावती का राजा बनाया था ॥ ८९ ॥

अङ्गदं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसंभवौ ।
शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ ॥ ९० ॥

लक्ष्मणोऽपि रघुनाथस्य रामस्य शासनादङ्गदं चन्द्रकेतुं च तदाख्यावात्मसंभवौ पुत्रौ। कारापथो नाम देशः। तस्येश्वरौ चक्रे ॥

अन्वयः—लक्ष्मणः अपि रघुनाथस्य शासनात् अंगदं चन्द्रकेतुं च आत्मसंभवौ कारापथेश्वरौ चक्रे।

व्याख्या—लक्ष्मीरस्यास्तीति लक्ष्मणः = रामानुजः अपि रघूणां = रघुवंशीयानां नाथः = स्वामी इति रघुनाथस्तस्य रघुनाथस्य रामस्य शासनात् = आदेशात् अंगं = शरीरं दयते, दायति, द्यति वा अंगदः = लक्ष्मणपुत्रः तम् अंगदं चन्द्रकेतुं = चन्द्रकेतुनामकं च आत्मनः = स्वस्मात् सम्भवतः इति आत्मसम्भवौ = आत्मजौ कारापथस्य = देशविशेषस्य ईश्वरौ = स्वामिनौ [तौ कारापथेश्वरौ चक्रे = कृतवान्।

समासः—रघूणां नाथः रघुनाथस्तस्य रघुनाथस्य। चन्द्रः केतुरस्य स तं चन्द्रकेतुम्। आत्मनः संभवौ तौ आत्मसम्भवौ। कारापथस्य ईश्वरौ, तौ कारापथेश्वरौ।

हिन्दी—और लक्ष्मण ने भी राम की आज्ञा से अंगद तथा चन्द्रकेतु नामक अपने पुत्रों को कारापथ का राजा बना दिया ॥ ९० ॥

इत्यारोपितपुत्रास्ते जननीनां जनेश्वराः ।
भर्तृलोकप्रपन्नानां निवापान्विदधुः क्रमात् ॥ ९१ ॥

इत्यारोपितपुत्रास्ते जनेश्वरा रामादयो भर्तृलोकप्रपन्नानां स्वर्यातानां जननीनां क्रमान्निवापान्श्राद्धादीन्विदधुश्चक्रुः ॥

अन्वयः—इति आरोपितपुत्राः ते जनेश्वराः भर्तृलोकप्रपन्नानां जननीनां क्रमात् । निवापान् विदधुः ।

व्याख्या—इति = एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आरोपिताः = तत्तत्राज्येस्थापिताः पुत्राः = आत्मजाः यैस्ते आरोपितपुत्राः ते = रामचन्द्रादयः जनानां = लोकानाम् ईश्वराः = राजानः, इति जनेश्वराः, भर्तृणां = स्वर्गतस्वामिनां लोकं = पितृलोकं प्रपन्नाः = गतास्तासां भर्तृलोकप्रपन्नानां = स्वर्ग-गतानां जनयन्तीति जनन्यस्तासां जननीनां = मातृणां क्रमात् = क्रमशः न्युप्यते, निवपनं वा निवापः । तान् निवापान् = पितृदानानि, श्राद्धादीनित्यर्थः । विदधुः = विहितवन्तः ।

समासः—आरोपिताः पुत्राः यैः स्ते आरोपितपुत्राः । जनानाम् ईश्वराः इति जनेश्वराः । भर्तृणां लोकः भर्तृलोकः । तं प्रपन्नाः इति भर्तृलोकप्रपन्ना स्तासां भर्तृलोकप्रपन्नानाम् ।

हिन्दी—इस प्रकार अपने पुत्रों को उस-उस प्रदेश का राजा बनाकर उन सब राम आदि जननायकों ने, पितृलोक में गई हुई । अर्थात् स्वर्गीय अपनी माताओं के श्राद्ध में दान दिया । श्राद्ध आदि किया ॥ ९१ ॥

उपेत्य मुनिवेषोऽथ कालः प्रोवाच राघवम् ।
रहःसंवादिनौ पश्येदावां यस्तं त्यजेरिति ॥ ९२ ॥

अथ कालोऽन्तको मुनिवेषः सन्नुपेत्य राघवं प्रोवाच । किमित्याह—रहस्येकान्ते संवा दिनौ संभाषिणावावां यः पश्येत् । रहस्यभङ्गं कुर्यादित्यर्थः तं त्यजेरिति ॥

अन्वयः—अथ कालः मुनिवेषः सन् उपेत्य, राघवं प्रोवाच "किमित्याह" रहत्रादिनौ आवां यः पश्येत् तं त्वं त्यजेः इति ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् कलयति, आयुरिति कालवर्णत्वाद्वा कालः = यमः मुनेः = तपस्विनः वेषः इव वेषः = परिधानं यस्य स मुनिवेषः सन् उपेत्य = रामसमीपमागत्य प्रोवाच = उक्तवान् । किमित्याह रहसि = विजने संवदतः, इति रहःसंवादिनौ, एकान्ते वार्तालापं कुर्वन्तौ, तौ, आवां = रामयमौ यः = जनः पश्येत् = अवलोकयेत्, रहस्यं भेदं कुर्यादित्यर्थः । तं = जनं त्वं त्यजेः = तस्य त्यागं कुर्याः इति ।

समासः—मुनेः वेष इव वेषो यस्य स मुनिवेषः । रहसि संवादिनौ, रहःसंवादिनौ तौ रहःसंवादिनौ ।

हिन्दी—पुत्रों की राज्यादि व्यवस्था होने पर एक दिन मुनि का वेष धारण कर यमराज, राम जी के पास आकर बोला "कि मैं एकान्त में बात करना चाहता हूँ" और एकान्त में बातें करते हुए हम दोनों को जो कोई बीच में आकर देखेगा, उसे आप त्याग देंगे ॥ ९२ ॥

तथेति प्रतिपन्नाय विवृतात्मा नृपाय सः ।
आचख्यौ दिवमध्यास्व शासनात्परमेष्ठिनः ॥ ९३ ॥

स कालस्तथेति प्रतिपन्नाय नृपाय रामाय विधृतात्मा प्रकाशितनिजस्वरूपः सन् । परमेष्ठिनो ब्रह्मणः शासनाद्दिवमध्यास्वेत्याचख्यौ ॥

अन्वयः—सः तथा इति प्रतिपन्नाय नृपाय विवृतात्मा सन् परमेष्ठिनः शासनात् दिवम् अध्यास्व इति आचख्यौ ।

व्याख्या—सः = कालः तथा = एवमस्तु इति = एवं प्रतिपन्नाय = प्रतिस्वीकृतवते नृपाय = राज्ञे, रामाय विवृतः = प्रकटितः, प्रकाशितः आत्मा = स्वरूपं येन स विवृतात्मा सन् परमे = व्योमनि, चिदाकाशे, ब्रह्मपदे वा तिष्ठतीति परमेष्ठी तस्य परमेष्ठिनः = ब्रह्मणः प्रजापतेः, शासनात् = आदेशात् दिवं = स्वर्गम् अध्यास्व = अध्यारोहस्व इति आचख्यौ = कथयामास, उक्तवानित्यर्थः ।

समासः—विवृतः आत्मा येन स विवृतात्मा ।

हिन्दी—एवम् अस्तु, अच्छा तुम्हारी बात स्वीकार है । यह राम के कहने पर यमराज ने अपना स्वरूप प्रकट कर दिया, और कहा कि ब्रह्मा की आज्ञा से आप स्वर्ग (वैकुण्ठ) में चलकर विराजें ॥ ९३ ॥

विद्वानपि तयोर्द्वाःस्थः समयं लक्ष्मणोऽभिनत् ।
भीतो दुर्वाससः शापाद्रामसंदर्शनार्थिनः ॥ ९४ ॥

द्वाःस्थो द्वारि नियुक्तो लक्ष्मणो विद्वानपि पूर्वश्लोकोक्तं जानन्नपि रामसंदर्शनार्थिनो दुर्वाससो मुनेः शापाद्भीतः सन् । तयोः कालरामयोः समयं संवादमभिनद्बिभेद ॥

अन्वयः—द्वाःस्थः लक्ष्मणः विद्वान् अपि रामसन्दर्शनार्थिनः, दुर्वाससः शापात् भीतः सन् तयोः समयम् अभिनत् ।

व्याख्या—द्वारि तिष्ठतीति द्वाःस्थः = द्वारिनियुक्तः लक्ष्मणः = सौमित्रिः वेत्ति = जानातीति विद्वान् = पूर्वश्लोकोक्तज्ञाता अपि रामस्य सन्दर्शनम् = अवलोकनमिति रामसन्दर्शनम् । रामसन्दर्शनस्य अर्थी = अभिलाषी, इति रामसन्दर्शनार्थी तस्य रामसन्दर्शनार्थिनः दु दुष्टं निगूढमित्यर्थः वासः इव धर्मावरणत्वं यस्य स दुर्वासाः तस्य दुर्वाससः = कुशारणेः, प्रसिद्धमुनेरित्यर्थः । शापात् = अभिशापात् भीतः = भयाक्रान्तः सन् तयोः = रामयमयोः । समयं = संवादम् अभिनत् = बिभेद । तयोः रहस्यभंगंकृतवान् ।

समासः—रामस्य सन्दर्शनमिति रामसन्दर्शनम्, रामसन्दर्शनस्य अर्थी, रामसन्दर्शनार्थी । तस्य रामसन्दर्शनार्थिनः । दुर्वासः, इव दुर्वासाः, तस्य दुर्वाससः ।

हिन्दी—"काल और राम के वार्तालाप के बीच ही दुर्वासा आ गये" और दरवाजे पर बैठे लक्ष्मण ने काल और राम की उक्त प्रतिज्ञा को जानकर भी, राम के दर्शन की इच्छा वाले (क्रोधी) महर्षि दुर्वासा के शाप से डर कर उन दोनों के शर्त, नियम को तोड़ दिया । अर्थात् बीच में ही जाकर सूचना दी कि दुर्वासा ऋषि आये हैं ॥ ९४ ॥

स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित् ।
चकाराऽवितथां भ्रातुः प्रतिज्ञां पूर्वजन्मनः ॥ ९५ ॥

योगविद्योगमार्गवेदी स लक्ष्मणः सरयूतीरं गत्वा देहत्यागेन पूर्वजन्मनो भ्रातुः प्रतिज्ञामवितथां सत्यां चकार ॥

अन्वयः—योगवित् सः सरयूतीरं गत्वा देहत्यागेन पूर्वजन्मनः भ्रातुः प्रतिज्ञाम् अवितथां चकार ।

व्याख्या—योगं = चित्तवृत्तिनिरोधं ध्यानमित्यर्थः । वेत्ति = जानातीति योगवित् सः = लक्ष्मणः सरय्वाः = नद्याः तीरं = तटमिति सरयूतीरम् गत्वा = प्राप्य देहस्य = स्वशरीरस्य त्यागः = विसर्गस्तेन देहत्यागेन पूर्वं = प्रथमं जन्म = उत्पत्तिर्यस्य स पूर्वजन्मा तस्य पूर्वजन्मनः = ज्येष्ठस्य भ्रातुः = रामस्य विगतं सत्यं यस्याः सा वितथा, न वितथा इति अवितथा ताम् अवितथां = सत्यां चकार = कृतवान् । स्वदेहं परित्यज्य रामवियुक्तः अभूदित्यर्थः ।

समासः—सरय्वाः तीरम् सरयूतीरं तत् सरयूतीरम् । देहस्य त्यागः देहत्यागस्तेन देहत्यागेन । न वितथा अवितथा ताम् अवितथाम् । पूर्वं जन्म यस्य स पूर्वजन्मा तस्य पूर्वजन्मनः । योगस्य वित् ।

हिन्दी—योग समाधि को जानने वाले लक्ष्मण ने सरयू नदी के किनारे पर जाकर योगमार्ग से अपने शरीर को त्याग कर बड़े भाई की प्रतिज्ञा को सत्य कर दिया ॥ ९५ ॥

तस्मिन्नात्मचतुर्भागे प्राङ्नाकमधितस्थुषि ।
राघवः शिथिलं तस्थौ भुवि धर्मस्त्रिपादिव ॥ ९६ ॥

चतुर्थो भागश्चतुर्भागः संख्याशब्दस्य वृत्तिविषये पूरणार्थत्वं शतांशवत् । आत्मचतुर्भागे तस्मिँल्लक्ष्मणे प्राङ्नाकमधितस्थुषि पूर्वं स्वर्गं जग्मुषि सति राघवो रामः । भुवि त्रिपाद्धर्म इव शिथिलं तस्थौ । पादविकलो हि शिथिलं तिष्ठतीति भावः । त्रेतायां धर्मस्त्रिपादित्याहुः । पादश्चतुर्थांशः अङ्घ्रिश्च ध्वन्यते । 'पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः' इत्यमरः । त्रयः पादा यस्यासौ त्रिपात् । 'संख्यासुपूर्वस्य' इत्यकारलोपः समासान्तः ॥

अन्वयः—आत्मचतुर्भागे तस्मिन् प्राक् नाकम् अधितस्थुषि सति राघवः भुवि त्रिपात् धर्मः इव शिथिलं तस्थौ ।

व्याख्या—आत्मनस्य = स्वस्य विष्णोरित्यर्थः, चतुर्थः भागः = अंशः इति आत्मचतुर्भागः, तस्मिन् आत्मचतुर्भागे । संख्यावाचकशब्दस्य वृत्तिविषये पूर्णार्थत्वं शतांशवत् । रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नरूपैरात्मानं चतुर्धाविभज्य अवतीर्णस्य विष्णोः लक्ष्मणः, एकोऽंशः, इत्यर्थः । तस्मिन् = लक्ष्मणे प्राक् = पूर्वं न कं = सुखम्, अकं = दुःखं न यत्र तत् नाकं = स्वर्गम् अधितस्थुषि = जग्मुषि सति राघवः = रामचन्द्रः भुवि = पृथिव्यां त्रयो पादाः = चरणाः यस्य स

त्रिपात् धरति विश्वमिति धर्मः = सुकृतं, पुण्यमित्यर्थः इव = यथा शिथिलं = दुर्बलमित्यर्थः तस्थौ = स्थितः। खञ्जो हि शिथिलं तिष्ठति। "पादो बुध्ने तुरीयांशे शैलप्रत्यन्तपर्वते। चरणे च" इति मेदिनी।

समासः—आत्मनः चतुर्थः भागः इति आत्मचतुर्भागस्तस्मिन् आत्मचतुर्भागे। न अकं यत्र तत् नाकम्। त्रयो पादाः यस्य स त्रिपात्।

हिन्दी—अपने चतुर्थांश (चौथा भाग, चार भुजाओं में एक भुजा) लक्ष्मण के स्वर्ग में चले जाने पर श्रीराम जी उसी प्रकार शिथिल (ठण्डे कमजोर) पड़ गये। जैसे पृथिवी पर तीन पैर वाला (त्रेता युग में) धर्म शिथिल हो जाता है ॥ ९६ ॥

स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागाङ्कुशं कुशम्।
शरावत्यां सतां सूक्तैर्जनिताश्रुलवं लवम् ॥ ९७ ॥
उदक्प्रतस्थे स्थिरधीः सानुजोऽग्निपुरःसरः।
अन्वितः पतिवात्सल्याद्गृहवर्जमयोध्यया ॥ ९८ ॥

युग्मम्। स्थिरधीः स रामः। रिपव एव नागा गजास्तेषामङ्कुशं निवारकं कुशं कुशावत्यां पुर्यां निवेश्य स्थापयित्वा। सूक्तैः समीचीनवचनैः सतां जनिता अश्रुलवा अश्रुलेशा येन तं लवं लवाख्यं पुत्रम्। 'लवो लेशे विलासे च छेदने रामनन्दने' इति विश्वः। शरावत्यां पुर्याम्। 'शरादीनां च' इति शरकुशशब्दयोर्दीर्घः। निवेश्य। सानुजोऽग्निपुरःसरः सन्। पत्यौ भर्तरि वात्सल्यादनुरागात्। गृहान्वर्जयित्वा गृहवर्जम्। 'द्वितीयायां च' इति णमुल्। अयं क्वचिद्-परीप्साभावमपीष्यते। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इत्येकाचः शेषतया व्याख्यातत्वात्। परीप्सा त्वरा। अयोध्ययान्वितोऽनुगत उदक्प्रतस्थे ॥

अन्वयः—स्थिरधीः सः रिपुनागांकुशं कुशं कुशावत्यां निवेश्य, सूक्तैः सतां जनिताश्रुलवं लवं शरावत्यां निवेश्य, सानुजः अग्निपुरःसर सन् पतिवात्सल्यात् गृहवर्जम् अयोध्यया अन्वितः उदक् प्रतस्थे। युग्मम्।

व्याख्या—स्थिरा = निश्चला धीः = बुद्धिः यस्य स स्थिरधीः सः = रामः नगे = पर्वते भवाः नागाः। रिपवः = शत्रवः एव नागाः = हस्तिनः इति रिपुनागाः, रिपुनागानाम् अंकुशः = सृणिः, निवारकमित्यर्थः। तं रिपुनागांकुशम् कुशं = कुशनामानं पुत्रं कुशाः सन्ति अस्यां सा कुशावती तस्यां कुशावत्यां = नगर्यां निवेश्य = संस्थाप्य, सु = सुन्दराणि उक्तानि = वचनानि तैः सुक्तैः = मधुरवचोभिः सतां = सज्जनानां जनिताः = उत्पादिताः अश्रूणां = नेत्रजलानां लवाः = कणाः बिन्दवः येन स जनिताश्रुलवस्तं जनिताश्रुलवं लवं = लवनामकं कनिष्ठपुत्रं शराः = तृण-विशेषाः सन्त्यस्यां सा शरावती तस्यां शरावत्यां पुर्यां च निवेश्य, अनुजैः = भरतादिभिः सहितः सानुजः अग्निः = वह्निः गार्हपत्याग्निरित्यर्थः। पुरःसरः = अग्रगामी यस्य सः अग्निपुरःसरः सन् पत्यौ = भर्तरि रामे यत् वात्सल्यम् = अनुरागस्तस्मात् पतिवात्सल्यात् गृहान् = वेश्मानि वर्ज-

यित्वा गृहवर्जं "णमुल्। अयोध्यया = साकेतेन अन्वितः = युक्तः, अनुयातः उदक् = उत्तरस्यां दिशि प्रतस्थे = चचाल।

समासः—रिपवः एव नागाः, इति रिपुनागास्तेषाम् अंकुशः इति रिपुनागांकुशस्तं रिपुनागांकुशम्। सु उक्तानि तैः सूक्तैः। जनिताः अश्रुलवाः येन स तं जनिताश्रुलवम्। स्थिरा धीः यस्य स स्थिरधीः। अनुजैः सह सानुजः। पत्यौ वात्सल्यमिति पतिवात्सल्यं तस्मात् पतिवात्सल्यात्। अग्निः पुरःसरः यस्य सः अग्निपुरःसरः।

हिन्दी—निश्चित बुद्धि वाले (पक्के इरादे के) राम ने शत्रुरूपी हाथियों के लिये अंकुश के समान (अर्थात् शत्रुरूपी हाथी को अपने वश में करने वाले) कुश को कुशावती में रखकर और अपने सुन्दर मधुर वचनों से सज्जनों की आँखों में आँसू पैदा कर देने वाले (अर्थात् मधुर वचनों से वश में कर लेने वाले लव को शरावती में रखकर (वहाँ-वहाँ का राज्य देकर) अपने के साथ अग्निहोत्र की अग्नि को आगे करके रामजी उत्तर की ओर चल पड़े। तथा राजाराम के प्रति अनुराग होने के कारण अपने-अपने घरों को छोड़ कर सारे अयोध्यावासी भी राम के पीछे-पीछे चल पड़े ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

जगृहुस्तस्य चित्तज्ञाः पदवीं हरिराक्षसाः ।
कदम्बमुकुलस्थूलैरभिवृष्टां प्रजाश्रुभिः ॥ ९९ ॥

चित्तज्ञा हरिराक्षसाः कदम्बमुकुलस्थूलैः प्रजाश्रुभिरभिवृष्टां तस्य रामस्य पदवीं मार्गं जगृहुः। तेऽप्यनुजग्मुरित्यर्थः ॥

अन्वयः—चित्तज्ञाः हरिराक्षसाः कदम्बमुकुलस्थूलैः प्रजाश्रुभिः अभिवृष्टां तस्य पदवीम् जगृहुः।

व्याख्या—चित्तं = मनः जानन्ति = विदन्तीति चित्तज्ञाः, रामस्य मानसिकभावविदः इत्यर्थः। हरयः = वानराः सुग्रीवादयश्च राक्षसाः = विभीषणादयश्चेति हरिराक्षसाः कदति = हिनस्ति विरहिणः कदम्बः। मुञ्चन्ति = त्यजंति कलिकात्वमिति मुकुलाः। कदम्बस्य = नीपस्य मुकुलाः = कुड्मला स्तद्वत् स्थूलानि = पीवराणि, इति कदम्बमुकुलस्थूलानि तैः कदम्बमुकुलस्थूलैः, प्रजानां = जनानाम् अश्रूणि = नेत्रजलानि तैः प्रजाश्रुभिः अभितः = सर्वतः वृष्टा = आर्द्रीकृता ताम् अभिवृष्टां तस्य = रामस्य पद्यतेऽनया सा तां पदवीं = मार्गम् जगृहुः = गृहीवन्तः। वानरराक्षसा अपि तमनुययुः।

समासः—हरयश्च राक्षसाश्चेति हरिराक्षसाः। कदम्बस्य मुकुलाः कदम्बमुकुला स्तद्वत् स्थूलानि तैः कदम्बमुकुलस्थूलैः। प्रजानाम् अश्रूणि तैः प्रजाश्रुभिः।

हिन्दी—रामचन्द्र जी के मन की बात जानने वाले बन्दर तथा राक्षसों ने भी उनके उस मार्ग को ग्रहण किया, जो कि कदम्ब की कली के समान मोटे-मोटे प्रजा के आँसुओं से भिंगा था। अर्थात् अयोध्यावासियों की तरह बन्दर राक्षस भी राम के पीछे चल पड़े ॥ ९९ ॥

उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना ।
चक्रे त्रिदिवनिश्रेणिः सरयूरनुयायिनाम् ॥ १०० ॥

उपस्थितं प्राप्तं विमानं यस्य तेन । भक्ताननुकम्पत इति भक्तानुकम्पिना । तेन रामेणानुयायिनां सरयूस्त्रिदिवनिश्रेणिः स्वर्गाधिरोहणी चक्रे । 'निश्रेणिस्त्वधिरोहणी' इत्यमरः ॥

अन्वयः—उपस्थितविमानेन भक्तानुकम्पिना तेन अनुयायिनां सरयूः त्रिदिवनिश्रेणिः चक्रे ।

व्याख्या—उपस्थितं = समागतं विमानं = पुष्पकयानं यस्य स तेन उपस्थितविमानेन भज्यन्ते स्म इति भक्ताः = सेवकाः = तत्पराः तान् अनुकम्पते इति भक्तानुकम्पी तेन भक्तानुकम्पिना = भक्तवत्सलेनेत्यर्थः । तेन = रामेण अनु = पश्चात् यान्ति = गच्छन्तीति, अनुयायिनस्तेषाम् अनुयायिनाम् = अनुगामिनाम् सरयूः = नदी अयोध्यान्तिकवाहिनीत्यर्थः । तिसृष्वपि अवस्थासु, त्रयो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः वा दीव्यन्ति यत्र, इति त्रिदिवः = स्वर्गः तस्य निश्रेणिः = अधिरोहिणी इति त्रिदिवनिश्रेणिः नियता = निश्चिता श्रेणिः = पंक्तिः यत्रेति निश्रेणिः । "निश्रेणिस्त्वधिरोहिणी" इत्यमरः । चक्रे = कृता ।

समासः—उपस्थितं विमानं यस्य स तेन उपस्थितविमानेन । भक्तानाम् अनुकम्पी भक्तानुकम्पी तेन भक्तानुकम्पिना । त्रिदिवस्य निश्रेणिरिति त्रिदिवनिश्रेणिः ।

हिन्दी—"जब राम चले तो उस समय उनको ले जाने के लिये" पुष्पक विमान आ गया, तब भक्तों पर कृपा करने वाले राम ने सरयू नदी को, पीछे आनेवाले अयोध्यावासियों के लिये स्वर्ग की सीढ़ी बना दिया । अर्थात् सरयू में स्नान करके सब स्वर्ग में चले गये ॥१००॥

यद्गोप्रतरकल्पोऽभूत्संमर्दस्तत्र मज्जताम् ।
अतस्तदाख्यया तीर्थं पावनं भुवि पप्रथे ॥ १०१ ॥

यद्यस्मात्तत्र सरय्वां मज्जतां संमर्दः गोप्रतरो गोप्रतरणम् । तत्कल्पोऽभूत् । अतस्तदाख्यया गोप्रतराख्यया पावनं शोधकं तीर्थं भुवि पप्रथे ॥

अन्वयः—यत् तत्र मज्जतां संमर्दः गोप्रतरकल्पः अभूत् । अतः तदाख्यया पावनं तीर्थं भुवि पप्रथे ।

व्याख्या—यत् = यस्मात् तत्र = सरयूनद्यां मज्जतां = स्नानं कुर्वताम् संमृद्यतेऽत्र स संमर्दः = अन्योन्यसंघर्षः गवां = धेनूनां प्रतरः = प्रतरणं तत्कल्पः = तत्सदृशः इति गोप्रतरकल्पः अभूत् = जातः, अतः = अस्मात्कारणात् तस्य = गोप्रतरस्य आख्या = नाम तया तदाख्यया = गोप्रतरनाम्ना पावनं = शोधकं तीर्थं = पवित्रस्थानं क्षेत्रं भुवि = पृथिव्यां पप्रथे = प्रसिद्धमभूत् ।

समासः—गवां प्रतरः गोप्रतरः, गोप्रतरेण कल्पः, गोप्रतरकल्पः । तस्य आख्या, तदाख्या, तया तदाख्यया ।

हिन्दी—सरयू में स्नान करने वालों की ऐसी भीड़ हुई, जैसी कि गउवों को पार (किसी नदी से) कराते समय होती है। वह भीड़-गोप्रतरण के समान थी इसी कारण उस पवित्र तीर्थ का नाम ही गोप्रतर संसार में प्रसिद्ध हो गया ॥ १०१ ॥

स विभूर्विबुधांशेषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु ।
त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गान्तरमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

विभुः प्रभुः स रामो विबुधानामंशेषु सुग्रीवादिषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु सत्सु त्रिदशीभूता देवभुवनं गता ये पौरास्तेषां नूतनसुराणां स्वर्गान्तरमकल्पयत् ॥

अन्वयः—विभुः सः विबुधांशेषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु सत्सु त्रिदशीभूतपौराणां स्वर्गान्तरम् अकल्पयत् ।

व्याख्या—विभुः = प्रभुः, वस्तुतत्त्वावधारणसमर्थः, इत्यर्थः । सः = रामः विशिष्टः बुधः येषां ते विबुधाः, विशेषेण बुध्यन्ते इति वा विबुधाः, विबुधानां = सुराणाम् अंशाः = कलारूपाः, तेषु विबुधांशेषु = सुग्रीवादिषु प्रतिपन्नाः = स्वीकृताः आत्मनः = स्वस्य, देवरूपस्येत्यर्थः, मूर्तयः = स्वरूपाणि यैस्ते तेषुप्रतिपन्नात्ममूर्तिषु सत्सु, तिस्रः दशाः येषां ते त्रिदशाः । न त्रिदशाः अत्रिदशाः । अत्रिदशाः त्रिदशाः = देवाः संपद्यमानाः इति त्रिदशीभूताः । पुरे भवाः पौराः । त्रिदशीभूताः येपौराः = अयोध्यावासिनः इति त्रिदशीभूतपौरास्तेषांत्रिदशीभूतपौराणां = सरयू-नद्यां स्नात्वा नूतनदेवत्वमाप्तानां साकेतनिवासिनामित्यर्थः । अन्यः स्वर्गः स्वर्गान्तरस्तं-स्वर्गान्तरम् = अन्यसुरलोकम् अकल्पयत् = कल्पितवान् ।

समासः—विबुधानाम् अंशाः विबुधांशास्तेषु विबुधांशेषु प्रतिपन्नाः आत्मनः मूर्तयः यैः स्ते, तेषु प्रतिपन्नात्ममूर्तिषु । त्रिदशीभूताश्च ये पौराः त्रिदशीभूतपौरा स्तेषां त्रिदशीभूतपौराणाम् । अन्यः स्वर्गः स्वर्गान्तरः तं स्वर्गान्तरम् ।

हिन्दी—परमेश्वर राम ने, देवताओं के अंश से उत्पन्न सुग्रीवादि बन्दर एवं भालु आदि के अपने-अपने स्वरूप (पूर्व देव शरीर) में आ जाने पर और जो अब नए देवता बने अयोध्या-वासियों के लिये एक दूसरा स्वर्ग बना दिया। अर्थात् स्वर्गमें स्थान की कमी पड़ गई थी, सबके एक साथ आने पर अतः राम ने दूसरा नया स्वर्ग इनके लिये बना दिया ॥ १०२ ॥

निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां
विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत्सर्वलोकप्रतिष्ठाम् ।
लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा
कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च ॥ १०३ ॥

विष्वक्सेनो विष्णुरेवं सुराणां दशमुखशिरश्छेदकार्यं निर्वर्त्य निष्पाद्य । लङ्कानाथं विभीषणं पवनतनयं हनुमन्तं चोभयं कीर्तिस्तम्भद्वयमिव । दक्षिणे गिरौ त्रिकूटे चोत्तरे गिरौ हिमवति च स्थापयित्वा । सर्वलोकप्रतिष्ठां सर्वलोकाश्रयभूतां स्वतनुं स्वमूर्तिमविशत् ॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया
व्याख्यया समेतो महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
श्रीरामस्वर्गारोहणो नाम पंचदशः सर्गः ॥

अन्वयः—विष्वक्सेनः एवं सुराणां दशमुखशिरश्छेदकार्यं निर्वर्त्य, लंकानाथं पवनतनयं च उभयं कीर्तिस्तम्भद्वयम् इव दक्षिणे गिरौ च उत्तरे गिरौ च स्थापयित्वा सर्वलोकप्रतिष्ठां स्वतनुम् अविशत् ॥

व्याख्या—विषुशब्दः निपातः, नानार्थवाची, विषु = नाना अंचति, या सा विषूची सेना यस्य स विष्वक्सेनः = जनार्दनः, रामः एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण सुराणां = देवानां दश मुखानि = आननानियस्य स दशमुखः = रावणस्तस्य शिरसां = मस्तकानां छेदः = कर्तनम् एव कार्यं = प्रयोजनमिति दशमुखशिरश्छेदकार्यं तत् निर्वर्त्य = सम्पाद्य, कृत्वा इत्यर्थः। लाक्यते सुखमस्यां सा लंका = राक्षसपुरी तस्याः नाथः = स्वामी, इति लंकानाथस्तं लंकानाथं = विभीषणमित्यर्थः। पुनातीति पवनः। पवनस्य = वायोः तनयः = पुत्र स्तं पवनतनयं हनुमन्तमित्यर्थः। च उभयं स्तम्भयोः = यूपयोः द्वयमिति स्तम्भद्वयं कीर्तेः = यशसः स्तम्भद्वयमिति कीर्तिस्तम्भद्वयं द्वौ कीर्तिस्तम्भौ, इत्यर्थः। इव = यथा दक्षिणे गिरौ = पर्वते, त्रिकूटे च, उत्तरे गिरौ हिमालये च च स्थापयित्वा = संस्थाप्य सर्वे च ते लोकाः सर्वलोकाः, सर्वलोकानां = सर्वभुवनानां प्रतिष्ठा = आश्रयभूता तां सर्वलोकप्रतिष्ठां स्वस्य = निजस्य तनुः = मूर्तिः तां स्वतनुं = विराड्शरीरम् अविशत् = प्रविवेश। विराट्रूपोऽभवदित्यर्थः।

समासः—दश मुखानि यस्य स दशमुखः, दशमुखस्य शिरांसि इति दशमुखशिरांसि, तेषां छेदः एव कार्यं, तत् दशमुखशिरश्छेदकार्यम्। विषूची सेना यस्य स विष्वक्सेनः। स्वस्य तनुः स्वतनुस्तां स्वतनुम्। सर्वेषां लोकानां प्रतिष्ठा तां सर्वलोकप्रतिष्ठाम्। लंकायाः नाथः लंकानाथस्तं लंकानाथम्। पवनस्य तनयः पवनतनयस्तं पवनतनयम्। कीर्तेः स्तम्भौ कीर्तिस्तम्भौ, कीर्तिस्तम्भयोः द्वयमिति कीर्तिस्तम्भद्वयं तत्।

हिन्दी—इस प्रकार भगवान् विष्णु ने रावण के शिरों का काटनारूपी देवताओं के कार्य को पूर्ण करके, (रावण का वध करके) और अपनी कीर्ति के दो स्तम्भों के समान, दक्षिण में त्रिकूट पर्वत पर लंका के राजा विभीषण को तथा उत्तर में हिमालय पर्वत पर पवन पुत्र हनुमानजी को स्थापित करके सम्पूर्ण भुवनों का आश्रय (विश्रामस्थल) अपने विराट शरीर में प्रवेश कर गये अर्थात् लीन होकर विराट् रूप हो गये ॥ १०३ ॥

इति श्री शांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां
रघुवंशे महाकाव्ये श्रीरामस्वर्गारोहणो नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

वृन्दारका यस्य भवन्ति भृङ्गा मन्दाकिनी यन्मकरन्दबिन्दुः ।
तवारविन्दाक्ष पदारविन्दं वन्दे चतुर्वर्गचतुष्पदं तत् ॥

अथेतरे सप्त रघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च ।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि ॥ १ ॥

अथ रामनिर्वाणानन्तरमितरे लवादयः सप्त रघुप्रवीराः पुरः पूर्वं जन्म यस्य तस्य भावस्तत्ता तया । गुणैश्च ज्येष्ठं कुशं रत्नविशेषभाजं तत्तच्छ्रेष्ठवस्तुभागिनं चक्रुः । तदुक्तम्—'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते' इति । तथाहि । सुभ्रातॄणां भावः सौभ्रात्रम् । 'हायनान्त—' इत्यादिना युवादित्वादण्प्रत्ययः । एषां कुशलवादीनां कुलानुसारि वंशानुगतं हि ॥

अन्वयः—अथ इतरे सप्त रघुप्रवीराः पूर्वजन्मतया गुणैश्च ज्येष्ठं कुशं रत्नविशेषभाजं चक्रुः, हि सौभ्रात्रम् एषां कुलानुसारि आसीत् ।

व्याख्या—अथ = रामस्य स्वर्गारोहणानन्तरम् इतरे = लवादयः सप्त = सप्तसंख्यकाः प्रकृष्टाः वीराः प्रवीराः रघुषु = रघुवंशीयेषु प्रवीराः = श्रेष्ठशूराः, इति रघुप्रवीराः पुरः = प्रथमं जन्म = उत्पत्तिः यस्य स पुरोजन्मा, पुरोजन्मनः भावः पुरोजन्मता तया पुरोजन्मतया, पूर्वोत्पन्नत्वेनेत्यर्थः । तथा गुणैः = दयादाक्षिण्यशौर्यादिभिश्च ज्येष्ठं = श्रेष्ठम् अतिप्रशस्तमित्यर्थः । कुशं = कुशनामकं भ्रातरम् रत्नानां = तत्तच्छ्रेष्ठवस्तूनां विशेषम् = उत्कृष्टं भजतीति रत्नविशेषभाक् तं रत्नविशेषभाजं चक्रुः = कृतवन्तः । हि = यतः सु = शोभनाः भ्रातरः सुभ्रातरः सुभ्रातॄणां भावः सौभ्रात्रं = भ्रातृवात्सल्यम् एषां = कुशलवादीनां कुलस्य = वंशस्य अनुसारि = अनुगतमिति कुलानुसारि, भ्रातृवात्सल्यमेषां कुलक्रमागतमित्यर्थः । आसीदिति शेषः ।

समासः—रघुषु प्रवीराः इति रघुप्रवीराः । पुरः जन्म यस्य स पुरोजन्मा, तस्य भावस्तत्ता तया पुरोजन्मतया । रत्नेषु विशेषः, रत्नविशेषः, रत्नविशेषस्य भाक् इति रत्नविशेषभाक्, तं रत्नविशेषभाजम् । कुलस्य अनुसारि, इति कुलानुसारि ।

हिन्दी—रामचन्द्रजी के स्वधाम चले जाने पर रघुकुल में श्रेष्ठ शूर, वीर दूसरे सातों (लव, तक्ष, पुष्कल, सुबाहु, बहुश्रुत, अंगद और चन्द्रकेतु) भाईयों ने सब में बड़ा होने के कारण तथा गुणों से भी सर्वश्रेष्ठ होने के कारण कुश को संसार की सभी श्रेष्ठ वस्तु वाला कर दिया, (अर्थात् सब श्रेष्ठ रत्नादिवस्तु कुश को दे दी) ठीक ही है भ्रातृवात्सल्य (भाइयों में प्रेम श्रद्धा रखना) तो इनके कुल के अनुकूल है । यह परम्परा इनके कुल में सदा रहती है ॥ १ ॥

ते सेतुवार्तागजबन्धमुख्यैरभ्युच्छ्रिताः कर्मभिरप्यवन्ध्यैः ।
अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां समुद्रा इव न व्यतीयुः ॥ २ ॥

सेतुर्जलबन्धः । वार्ता कृषिगोरक्षणादिः । 'वार्ता कृष्याद्युदन्तयोः' इति विश्वः । गजबन्ध आकरेभ्यो गजग्रहणम् । ते मुख्यं प्रधानं येषां तैरवन्ध्यैः सफलैः कर्मभिरभ्युच्छ्रिताः । अतिसमर्था अपीत्यर्थः । ते कुशादयः । प्रविभज्यन्त इति प्रविभागाः । अन्योन्यदेशप्रविभागानां या सीमा ताम् । वेलां समुद्रा इव । न व्यतीयुर्नातिचक्रमुः । अत्र कामन्दकः—'कृषिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनम् । खन्याकरधनादानं शून्यानां च निवेशनम् ॥ अष्टवर्गमिमं साधुः स्वयं वृद्धोऽपि वर्धयेत् ॥' इति ॥

अन्वयः—सेतुवार्तागजबन्धमुख्यैः अवन्ध्यैः कर्मभिः अभ्युच्छ्रिताः ते अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां समुद्राः इव न व्यतीयुः ।

व्याख्या—बध्यतेऽरिभिर्न्निति बन्धः । गजस्य = हस्तिनः बन्धः = आलिः इति गजबन्धः । सेतुः = जलबन्धश्च वार्ता = कृषिगोरक्षादिश्च गजबन्धः = आकरात् गजग्रहणञ्चेति सेतुवार्तागजबन्धाः, मुख्यं = प्रधानं येषां ते सेतुवार्तागजबन्धमुख्या स्तैः सेतुवार्तागजबन्धमुख्यैः न वन्ध्याः अवन्ध्यास्तैः अवन्ध्यैः = सफलैः कर्मभिः = कार्यैः उच्छ्रिताः = उन्नताः प्रवृद्धाः, अतीवसमर्था अपि ते = कुशादयो भ्रातरः प्रविभज्यन्ते, इति प्रविभागाः, अन्योन्यस्य = परस्परस्य देशाः = प्रदेशाः–राज्यमित्यर्थः । तेषां प्रविभागाः = अंशाः तेषां सीमा = वेला ताम् अन्योन्यदेशप्रविभागसीमां वेलां = तटं मर्यादामित्यर्थः । समुद्राः = सागराः इव न व्यतीयुः = नातिचक्रमुः । "वेला काले च सीमायामब्धेः कूलविकारयोः ।" इति मेदिनी ।

समासः—सेतुश्चवार्ता च गजबन्धश्चेति सेतुवार्तागजबन्धाः, ते मुख्यं येषां ते तैः सेतुवार्ता गजबन्धमुख्यैः । अन्योन्यस्य देशः अन्योन्यदेशस्तस्य प्रविभागा इति अन्योन्यदेशप्रविभागास्तेषां सीमा ताम् अन्योन्यदेशप्रविभागसीमाम् । न वन्ध्याः अवन्ध्या स्तैः अवन्ध्यैः ।

हिन्दी—नदियों के पुल बाँधना, खेती, गोरक्षा, व्यापार करना और हाथियों को पकड़ना (जंगलों में से बाँधकर लाना) आदि प्रधान कामों में वे आठों भाई बड़े ही चतुर थे (समर्थ थे) फिर भी जैसे समुद्र अपनी वेला तट का अतिक्रमण नहीं करता, वैसे ही उन्होंने आपस में एक-दूसरे के राज्य की सीमा का उल्लंघन नहीं किया ॥ २ ॥

चतुर्भुजांशप्रभवः स तेषां दानप्रवृत्तेरनुपारतानाम् ।
सुरद्विपानामिव सामयोनिर्भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः ॥ ३ ॥

चतुर्भुजो विष्णुः । तस्यांशा रामादयः । ते प्रभवाः कारणानि यस्य स तथोक्तः । दानं त्यागो मदश्च । 'दानं गजमदे त्यागे' इति विश्वः । प्रवृत्तिर्व्यापारः प्रवाहश्च । दानप्रवृत्तेरनुपारतानां तेषां कुशलवादीनां स वंशः । सामयोनिः सामवेदप्रभवो दानप्रवृत्तेरनुपारतानां सुरद्विपानां दिग्गजानां वंश इव अष्टधा भिन्नः सन् । विप्रससार विस्तृतोऽभूत् । सामयोनिरित्यत्र

पालकाप्यः—'सूर्यस्याण्डकपाले द्वे समानीय प्रजापतिः। हस्ताभ्यां परिगृह्याथ सप्त सामान्यगायत। गायतो ब्रह्मणस्तस्मात्समुत्पेतुर्मतङ्गजाः॥' इति॥

अन्वयः—चतुर्भुजांशप्रभवः दानप्रवृत्तेः अनुपारतानां तेषां सः सामयोनिः सुरद्विपानाम् वंशः इव अष्टधा भिन्नः सन् विप्रससार।

व्याख्या—चत्वारो भुजाः यस्य स चतुर्भुजः, भुंक्ते, भुनक्ति वा भुजः चतुर्णां = धर्मार्थकाममोक्षाणा भुजः चतुर्भुजः इति वा। चतुर्भुजस्य = विष्णोः अंशाः = रामादयः, इति चतुर्भुजांशाः, चतुर्भुजांशाः प्रभवाः = कारणानि, जनकाः, यस्य स चतुर्भुजांशप्रभवः दीयते यत्तत् दानं, दानस्य = त्यागस्य, मदजलस्य प्रवृत्तिः = व्यापारः, प्रवाहश्च इति दानप्रवृत्तिः तस्याः दानप्रवृत्तेः न उपारताः = न विश्रान्ताः इति अनुपारतास्तेषाम् अनुपारतानां, सदादानकरणे प्रवृत्तानां, मदप्रस्राविणां च गजपक्षे। तेषां = कुशलवादीनां सः = वंशः, स्यति पापमिति साम = सामवेदः योनिः = कारणं यस्य स सामयोनिः, दानप्रवृत्तेरनुपारतानां, मदस्राविणामित्यर्थः। सुराणां = देवानां द्विपाः = गजास्तेषां सुरद्विपानां = दिग्गजानां वंशः = कुलम् इव = यथा अष्टभिः प्रकारैः अष्टधा, भिन्नः = पृथग्भूतः सन् विप्रससार = विस्तृतो जातः।

समासः—चत्वारः भुजाः यस्य स चतुर्भुजस्तस्य अंशाः प्रभवाः यस्य स चतुर्भुजांशप्रभवः। दानस्य प्रवृत्तिः तस्या दानप्रवृत्तेः। न उपारताः अनुपारतास्तेषाम् अनुपारतानाम्। सुराणां द्विपाः सुरद्विपा स्तेषां सुरद्विपानाम्। सामयोनिः यस्य स सामयोनिः।

हिन्दी—विष्णु के अंश रामादि से उत्पन्न, और दान देने वाले, उन कुशलव आदि का कुल, उसी प्रकार आठ कुलों में बँटकर फैल गया। जिस प्रकार मद बरसाने वाले, मदोन्मत्त दिग्गजों का कुल, जो कि सामवेद से उत्पन्न हुआ था, आठ प्रकार से विभक्त होकर फैल गया था। प्रजापति ने सूर्य के दो अण्डकपाल हाथ में लेकर सात साम का गान किया। तब गाते हुए ब्रह्मा से मतंगज उत्पन्न हुए। और वे आठ भागों में बट गये ऐसा पालकाप्य का मत है। अतः सामयोनि कहा है॥ ३॥

अथार्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे शय्यागृहे सुप्तजने प्रबुद्धः।
कुशः प्रवासस्थकलत्रवेषामदृष्टपूर्वां वनितामपश्यत्॥ ४॥

अथ। अर्धं रात्रेरर्धरात्रः। 'अर्धं नपुंसकम्' इत्येकदेशसमासः। 'अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः' इति समासान्तोऽच्प्रत्ययः। 'रात्राह्नाहाः पुंसि' इति नियमात्पुंस्त्वम्। अर्धरात्रे निशीथे स्तिमितप्रदीपे सुप्तजने शय्यागृहे प्रबुद्धः। न तु सुप्तः। कुशः प्रवासस्थकलत्रवेषां प्रोषितभर्तृकावेषाम्। अदृष्टा पूर्वमित्यदृष्टपूर्वा ताम्। सुप्सुपेति समासः। वनितामपश्यत्॥

अन्वयः—अथ अर्धरात्रे स्तिमितप्रदीपे सुप्तजने शय्यागृहे प्रबुद्धः कुशः प्रवासस्थकलत्रवेषाम् अदृष्टपूर्वां वनिताम् अपश्यत्।

व्याख्या—अत्र = अनन्तरम् अर्धं रात्रेः अर्धरात्रः तस्मिन् अर्धरात्रे = निशीथे "अर्धरात्र-निशीथौ द्वौ" इत्यमरः। रात्रिमध्ये, इत्यर्थः। स्तिमिताः = स्थिराः, शान्ताः प्रदीपाः = दीपाः यस्मिन् तस्मिन् स्तिमितप्रदीपे सुप्ताः = निद्रांगताः जनाः = परिजनाः यस्मिन् तस्मिन् सुप्तजने शय्यतेऽत्र सा शय्या, शय्यायाः = शयनीयस्य गृहं = सद्म तस्मिन् शय्यागृहे प्रकर्षेण बुद्धः प्रबुद्धः = जागृतः नतु सुप्तः कुशः = रामपुत्रः प्रवासेतिष्ठतीति प्रवासस्थः, प्रवासस्थस्य = परदेश-स्थितस्य कलत्रं = भार्या इति प्रवासस्थकलत्रं तस्य वेषः इव वेषः = नेपथ्यं यस्याः सा तां प्रवासस्थकलत्रवेषां पूर्वं न दृष्टा, इति अदृष्टपूर्वा ताम् अदृष्टपूर्वाम् = पूर्वं कदाप्यनवलोकितां वनितां = महिलाम् अपश्यत् = दृष्टवान्। प्रोषितभर्तृकावेषधारिणीं स्त्रियमवलोकितवानित्यर्थः।

समासः—रात्रेः अर्धमिति अर्धरात्रस्तस्मिन् अर्धरात्रे। स्तिमिताः प्रदीपाः यस्मिन् तस्मिन् स्तिमितप्रदीपे। सुप्ताः जनाः यस्मिन् तस्मिन् सुप्तजने। शय्यायाः गृहं तस्मिन् शय्यागृहे। प्रवासस्थस्य कलत्रं, प्रवासकलत्रं तस्य वेषः इव वेषः यस्याः सा तां प्रवासस्थकलत्रवेषाम्। पूर्वं दृष्टा दृष्टपूर्वा, न दृष्टपूर्वा अदृष्टपूर्वा ताम् अदृष्टपूर्वाम्।

हिन्दी—एक दिन आधी रात के समय, परिवार के सब लोग सो रहे थे तथा दीपक टिमटिमा रहे थे, ऐसे शयनकक्ष (सोने के घर) में महाराज कुश जाग रहे थे तभी उन्होंने प्रोषित भर्तृका (जिसका पति परदेश में कार्यवश गया हो) के वेष में, पहले कभी न देखी हुई स्त्री को देखा ॥ ४ ॥

सा साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः स्थित्वा पुरस्तात्पुरुहूतभासः।
जेतुः परेषां जयशब्दपूर्वं तस्याञ्जलिं बन्धुमतो बबन्ध ॥ ५ ॥

सा वनिता साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः सज्जनसाधारणराज्यश्रियः पुरुहूतभास इन्द्रतेजसः परेषां शत्रूणां जेतुर्बन्धुमतस्तस्य कुशस्य पुरस्तात्स्थित्वा जयशब्दः पूर्वं यथा तथाञ्जलि बबन्ध ॥

अन्वयः—सा साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः पुरुहूतभासः परेषां जेतुः बन्धुमतः तस्य पुरस्थात् जयशब्दपूर्वं यथास्यात्तथा अञ्जलिं बबन्ध।

व्याख्या—सा = वनिता पार्थिवस्य = राज्ञः कुशस्य ऋद्धिः = समृद्धिः, राज्यश्रीः इति पार्थिवर्द्धिः, साधूनां = सज्जनानां साधारणां = सामान्यजनानां च (कृते) पार्थिवर्द्धिः यस्य स तस्य साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः, पुरु = प्रचुरं हूतम् = आह्वानं यज्ञेषु यस्य सः, पुरूणि हूतानि = नामानि यस्य वा पुरुहूतः, तस्य भाः इव भाः = दीप्तिः यस्य स तस्य पुरुहूतभासः परेषां = शत्रूणां जेतुः = विजेतुः, बन्धवः = बान्धवाः, सगोत्राः सन्त्यस्य बन्धुमान् तस्य बन्धुमतः तस्य = कुशस्य पुरस्थात् = अग्रेस्थित्वा = संस्थाय जयः इति शब्दः = जयोच्चारणं पूर्वं = प्रथमंयस्मिन्कर्मणि तत् जयशब्दपूर्वं यथास्यात्तथा अञ्जलिं = हस्तसंपुटम् बबन्ध।

समासः—साधूनां सारणानाञ्च पार्थिवर्द्धिः यस्य स तस्य साधुसाधारणपार्थिवर्द्धेः। पुरूणि हुतानि यस्य स पुरुहूतः, पुरूहूतस्य भाः इव भाः यस्य स तस्य पुरूहूतभासः। जय इति शब्दः पूर्वं यस्मिन् कर्मणि तत् जयशब्दपूर्वम्।

हिन्दी—सज्जन और साधारण प्रजा के लिये जिन की राज्यसम्पत्ति है तथा इन्द्र के समान तेजस्वी और शत्रुओं को जीतनेवाले तथा बन्धुबान्धव वाले, ऐसे महाराज कुश के सामने जयजयकार करती हुई वह स्त्री हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। अर्थात् महाराज को जय हो कहकर हाथ जोड़ लिये ॥ ५ ॥

अथानपोढार्गलमप्यगारं छायामिवादर्शतलं प्रविष्टाम् ।
सविस्मयो दाशरथेस्तनूजः प्रोवाच पूर्वार्धविसृष्टतल्पः ॥ ६ ॥

अथ सविस्मयः पूर्वार्धेन शरीरपूर्वभागेन विसृष्टतल्पस्त्यक्तशय्यो दाशरथेस्तनूजः कुशः। अनपोढार्गलमनुद्घाटितविष्कम्भमपि। 'तद्विष्कम्भोऽर्गलं न ना' इत्यमरः। अगारम्। आदर्शतलं छायामिव प्रविष्टां तां वनितां प्रोवाचावदत् ॥

अन्वयः—अथ सविस्मयः पूर्वार्धविसृष्टतल्पः दाशरथेः तनूजः अनपोढार्गलम् अपि अगारम् आदर्शतलं छायाम् इव प्रविष्टां प्रोवाच।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् विस्मयेन = आश्चर्येण सहितः इति सविस्मयः पूर्वं च तदर्धमिति पूर्वार्धं, तेन पूर्वार्धेन = कायस्य पूर्वभागेन विसृष्टं = त्यक्तं तल्पं = शय्या येन स पूर्वार्धविसृष्टतल्पः दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिस्तस्य दाशरथेः = रामस्य तन्वाः जातः तनूजः = पुत्रः कुशः न अपोढा अनपोढा = अनुद्घाटिता अर्गला = कपाटविष्कम्भः यस्य तत् अनपोढार्गलम् तत्, "तद्विष्कम्भोऽर्गलं न ना" इत्यमरः। अपि, अगारं = गृहम् आदृश्यते रूपमत्र सः आदर्शः, आदर्शस्य = दर्पणस्य तलं = स्वरूपमिति आदर्शतलं छायां = कान्तिम् इव = यथाप्रविष्टां = कृतप्रवेशां तां = वनितां प्रोवाच = उक्तवान्।

समासः—विस्मयेन सहितः सविस्मयः। पूर्वं तदर्धमिति पूर्वार्धं, पूर्वार्धेन विसृष्टं तल्पं येन स पूर्वार्धविसृष्टतल्पः। न अपोढा अनपोढा, अनपोढा अर्गला यस्यतत् अनपोढार्गलम् तत्। आदर्शस्य तलमिति आदर्शतलम्।

हिन्दी—इसके पश्चात् आश्चर्यचकित तथा शरीर के ऊपरी भाग से पलंग को छोड़नेवाले (अर्थात् धड़ से ऊपर उठे हुए) दशरथात्मज श्री राम के पुत्र कुश, दर्पण (शीशे) में मुख के प्रतिबिम्ब के समान उस घर में भीतर आई हुई उस महिला से बोले, जिसके किवाड़ (पल्ले) अन्दर से बन्द थे। यही आश्चर्य का कारण था ॥ ६ ॥

लब्धान्तरा सावरणेऽपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥ ७ ॥
का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते ।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ॥ ८ ॥

शुभम्। सावरणेऽपि गेहे लब्धान्तरा लब्धावकाशा। त्वमिति शेषः। योगप्रभावश्च ते न लक्ष्यते। मृणालिनी हैमं हिमकृतमुपरागमुपद्रवमिव। अनिर्वृतानां दुःखितानामाकारं बिभर्षि च।

नहि योगिनां दुःखमस्तीति भावः । किञ्च । हे शुभे, त्वं का । कस्य वा परिग्रहः पत्नी । ते तव मदभ्यागमे कारणं वा किम् । वशिनां जितेन्द्रियाणां रघूणां मनः परस्त्रीषु विषये विमुखा प्रवृत्तिर्यस्य तत्तथाभूतं मत्वाचक्ष्व ॥

अन्वयः—सावरणे अपि गेहे लब्धान्तरा "त्वम्" योगप्रभावश्च ते न लक्ष्यते, मृणालिनी हैमम् उपरागम् इव अनिर्वृतानाम् आकारं च बिभर्षि, ॥७॥ हे शुभे! त्वं का कस्य वा परिग्रहः ते मदभ्यागमे कारणं वा किम्, वशिनां रघूणां मनः परस्त्री विमुखप्रवृत्ति मत्वा आचक्ष्व ॥ युग्मम् ॥

व्याख्या—आवरणेन = आच्छादनेन, कपाटादिना, इत्यर्थः सहितमिति सावरणं तस्मिन् सावरणे = कपाटेनावृतेऽपि गेहे = भवने लब्धः = प्राप्तः अन्तरः = अवकाशः, प्रवेश इत्यर्थः यया सा लब्धान्तरा त्वमिति शेषः योगस्य = योगविद्यायाः प्रभावः = प्रतापः इति योगप्रभावः च ते = तव न लक्ष्यते = नदृश्यते, "यतः" मृणालानि सन्ति यस्याः सा मृणालिनी = पद्मिनी हिमस्यायमिति हैमस्तं हैमं = प्रालेयम् उपरागम् = उपद्रवम् इव = यथा न निर्वृताः अनिर्वृता-स्तेषाम् अनिर्वृतानां = दुःखितानाम् आकारं = स्वरूपं बिभर्षि = धारयसि । नहि योगवतां किमपि दुःखं भवतीति भावः । किञ्च शोभते या सा शुभा, शु = पूजितं भातीति वा शुभा तस्याः संबुद्धौ हे शुभे = शोभने ! त्वं = भवती का = किन्नामधेया कस्य वा = पुरुषस्य परिगृह्यते, परि-गृह्णाति वा परिग्रहः = पत्नी, ते = तव अभ्यागमनम् अभ्यागमः, मम = कुशस्य अभ्यागमे = अन्ति-के, पार्श्वे कारणं = प्रयोजनमिति मदभ्यागमकारणं वा = अथवाकिम् "अभ्यागमः समरेऽन्तिके" इति हैमः । वशिनां = जितेन्द्रियाणां रघुवंशीयानां मनः = चित्तं परेषाम् = अन्यजनानां स्त्रियः = पत्न्यः इति परस्त्रियः, तासु विमुखा = विरुद्धा प्रवृत्तिः = प्रवर्तनं यस्य तत् परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति तत् मत्वा = ज्ञात्वा आचक्ष्व = कथय ।

समासः—लब्धः अन्तरः यया सा लब्धान्तरा । आवरणेनसहितं सावरणं तस्मिन् साव-रणे । योगस्य प्रभावः योगप्रभावः । न निर्वृताः अनिर्वृता स्तेषाम् अनिर्वृतानाम् । मम अभ्यागमः मदभ्यागमः, मदभ्यागमे कारणमिति मदभ्यागमकारणम् । परेषां स्त्रियः, परस्त्रियः, परस्त्रीषु विमुखा प्रवृत्तिः यस्य तत् परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति तत् ।

हिन्दी—तुम हमारे बन्द धर में घुस आई हो, तुम्हारे मुख पर योग का प्रभाव नहीं दीखता है । अर्थात् योगिनी भी नहीं हो । क्योंकि पाला पड़ने से मुरझाई पीडित पद्मिनी के समान दुःखी लोगों के जैसे चेहरे को धारण किये हुई हो । अर्थात् दुःखित एवं मलिन मुखवाली दीख पड़ रही हो और योगियों को दुःख नहीं होता है । अतः हे भद्रे ! तुम कौन हो और तुम किसकी पत्नी हो (तुम्हारा पति कौन है) तथा मेरे पास (रात के एकान्त में) आने का प्रयोजन क्या है । जितेन्द्रिय हम रघुवंशियों का मन दूसरे की स्त्रियों के विषय में विरुद्ध व्यवहार वाला होता है । अर्थात् परस्त्री से दूर ही रहता है । यह बात समझकर बोलो, आने का कारण बताओ ॥ ७ । ८ ॥

तमब्रवीत्सा गुरुणानवद्या या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन ।
तस्याः पुरः संप्रति वीतनाथां जानीहि राजन्नधिदेवतां माम् ॥ ९ ॥

सा वनिता तं कुशमब्रवीत्। अनवद्याऽदोषा या पूः स्वपदोन्मुखेन विष्णुपदोन्मुखेन गुरुणा त्वत्पित्रा नीतपौरा हे राजन्, मां संप्रति वीतनाथामनाथां तस्याः पुरो नगर्या अयोध्याया अधिदेवतां जानीहि ॥

अन्वयः—सा तम् अब्रवीत्, अनवद्या या स्वपदोन्मुखेन गुरुणा नीतपौरा, हे राजन्! मां संप्रति वीतनाथां तस्याः पुरः अधिदेवतां जानीहि ।

व्याख्या—सा = वनिता तं = राजानं कुशम् अब्रवीत् = उक्तवती न अवद्या अनवद्या = निर्दोषा या = पूः, नगरी स्वस्य पदं स्वपदं = विष्णुपदं तस्मिन् "गन्तुम्" उन्मुखः = उत्सुकस्तेन स्वपदोन्मुखेन = वैकुण्ठं गमनोत्सुकेन गुरुणा = तव पित्रा रामेण नीताः = प्रापिताः पौराः = नागरिकाः यस्याः सा नीतपौरा, हे राजन् = भूपाल! मां = वनितां सम्प्रति = साम्प्रतम् वीतः = गतः नाथः = स्वामी यस्याः सा तां वीतनाथाम् = अनाथां तस्याः = अयोध्यायाः पुरः = नगर्याः अधिदेवताम् = अधिष्ठात्रीं जानीहि = विद्धि ।

समासः—न अवद्या अनवद्या । नीताः पौराः यस्याः सा नीतपौरा । स्वस्य पदं स्वपदं तत्र उन्मुखः स्वपदोन्मुख स्तेन स्वपदोन्मुखेन । वीतः नाथः यस्याः सा तां वीतनाथाम् ।

हिन्दी—वह महिला बोली कि–हे राजन्! मुझे इस समय उस अयोध्यापुरी की अनाथ अधिष्ठात्री देवता (प्रधान देवी) जानो, जो कि निर्दोष है, पवित्र है। और अपने वैकुण्ठ धाम जाने के लिये उत्सुक तुम्हारे पिता राम, जिस नगरी के निवासियों को अपने साथ ले गये ॥ ९ ॥

वस्वौकसारामभिभूय साहं सौराज्यबद्धोत्सवया विभूत्या ।
समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम् ॥ १० ॥

साहं सौराज्येन राजन्वत्तया हेतुना बद्धोत्सवया विभूत्या। वस्वौकसाराऽलकापुरी। 'अलकापुरी वस्वौकसारा स्यात्' इति कोशः। अथवा मानसोत्तरशैलशिखरवर्तिनी शक्रनगरी। 'वस्वौकसारा शक्रस्य' इति विष्णुपुराणात्। तामभिभूय तिरस्कृत्य समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति करुणामवस्थां दीनां दशां प्रपन्ना प्राप्ता ॥

अन्वयः—सा अहं सौराज्यबद्धोत्सवया विभूत्या वस्वौकसाराम् अभिभूय समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति करुणाम् अवस्थां प्रपन्ना ।

व्याख्या—सा अहम् = अयोध्याधिष्ठात्री, सुष्ठु = पूजितः राजा सुराजा, सुराज्ञः भावः कर्म वा सौराज्यं, सौराज्येन = सुनृपतया "हेतुना" बद्धः उत्सवः = आनन्दः यया सा सौराज्य-बद्धोत्सवा तया सौराज्यबद्धोत्सवया विभूत्या = ऐश्वर्येण, वसूनाम् = देवानाम् ओकस्य =

आश्रयस्य सारः यत्र सा तां वस्वौकसाराम् "ओकः आश्रयमात्रे मन्दिरे च नपुंसकम्" इति मेदिनी। अलकापुरी वस्वौकसारास्यादिति च कोषः। विष्णुपुराणात् अमरावत्यपि वस्वौकसारा। अलकाम् = कुबेरपुरीम्, अमरावतीं च अभिभूय = तिरस्कृत्य, परित्यज्येत्यर्थः। समग्रा = सम्पूर्णा शक्तिः = सामर्थ्यं यस्मिन् स समग्रशक्ति स्तस्मिन्समग्रशक्तौ त्वयि = भवति, कुशे सूर्यः वंशः सूर्यवंशः सूर्यवंशे भवस्तस्मिन्, सूर्यवंश्ये = सवितृकुलोत्पन्ने सति = विद्यमाने करुणां = दीनाम् अवस्थां = दशां, दयनीयस्थितिम् प्रपन्ना = प्राप्ता। गता।

समासः—सौराज्येन बद्धः उत्सवः यस्याः सा तया सौराज्यबद्धोत्सवया। वसूनाम् ओकः वस्वौकः, वस्वौकस्य सारः यस्यां सा तां वस्वौकसाराम्। समग्रा शक्तिः यस्मिन् स समग्रशक्तिस्तस्मिन् समग्रशक्तौ, सूर्यस्य वंशः सूर्यवंशः तत्र भवस्तस्मिन् सूर्यवंश्ये।

हिन्दी—"पहले अयोध्या नगरीमें" अच्छे राजा होने के कारण आनन्दपूर्ण ऐश्वर्य के कारण देवों के ऐश्वर्य वाली अलका या अमरावती (कुबेर की नगरी या इन्द्रपुरी) का तिरस्कार करके मैं अब, सर्वशक्तिशाली सूर्यवंशी तुम्हारे जैसे राजा के रहते इस दीन-हीन दशा को प्राप्त हो गई हूँ। अर्थात् योग्य राजाओं के कारण पहले मैं अमरावती से भी श्रेष्ठ थी किन्तु अब मैं इस दशा में हूँ॥ १०॥

विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेशः पर्यस्तशाल. प्रभुणा विना मे।
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्यं दिनान्तमुग्रानिलभिन्नमेघम्॥ ११॥

तल्पान्यट्टालिकाः। 'तल्पं शय्याट्टदारेषु' इत्यमरः। अट्टानि गृहभेदाः। 'अट्टं भक्त च शुष्के च क्षौमेऽत्यर्थं गृहान्तरे' इति विश्वः। विशीर्णानि तल्पानामट्टानां च शतानि यस्य स तथोक्तः। 'विशीर्णकल्पाट्टशतो निवेशः' इति वा पाठः। अट्टाः क्षौमाः। 'स्यादट्टः क्षौममस्त्रियाम्' इत्यमरः। ईषदसमाप्तं विशीर्णानि विशीर्णकल्पान्यट्टशतानि यस्य स तथोक्तः। पर्यस्तशालः स्रस्तप्राकारः। 'प्राकारो वरणः शालः' इत्यमरः। प्रभुणा स्वामिना विनैवंभूतो मे निवेशो निवेशनम्। अस्तनिमग्नसूर्यमस्ताद्रिलीनार्कमुग्रानिलेन भिन्नमेघं दिनान्तं विडम्बयत्यनुकरोति॥

अन्वयः—विशीर्णतल्पाट्टशतः पर्यस्तशालः प्रभुणा विना मे निवेशः अस्तनिम्नसूर्यम् उग्रानिलभिन्नमेघं दिनान्तं विडम्बयति।

व्याख्या—विशीर्णानि = भग्नानि तल्पानाम् = अट्टालिकानाम् अट्टानां = गृहभेदानां च शतानि = असंख्यानि यस्य स विशीर्णतल्पाट्टशतः, पर्यस्तः = स्रस्तः, भग्नीभूतः शालः = प्राकारः यस्य स पर्यस्तशालः, प्रकर्षेण भवतीति प्रभुः तेन प्रभुणा = स्वामिना, रामेण विना = रहित इत्यर्थः। मे = मम निविशन्ते जनाः अत्र निवेशः = निवासभूमिः अस्ते = अस्ताचले निमग्नः = लीनः सूर्यः = रविः यस्य स तम् अस्तनिमग्नसूर्यम् उग्रः = प्रबलश्चासौ अनिलः = वायुः इति उग्रानिलस्तेन उग्रानिलेन भिन्नाः = विदीर्णाः मेघाः पयोदाः यस्य स तम् उग्रानिलभिन्नमेघम् दिनस्य = दिवसस्य अन्तः = अवसानं तं दिनान्तं विडम्बयति = अनुकरोति। धनजनशून्या, जीर्णशीर्णभवना च अयोध्या जाताधुना, इतिभावः।

समासः—तल्पानाम् अट्टानां च शतानि, इति तल्पाट्टशतानि, विशीर्णानि तल्पाट्टशतानि यस्य स विशीर्णतल्पाट्टशतः। पर्यस्तः शालः यस्य स पर्यस्तशालः। अस्ते निमग्नः सूर्यः यस्य स तम् अस्तनिमग्नसूर्यम्। उग्रश्चासौ अनिलः उग्रानिलः, उग्रानिलेन भिन्नाः मेघाः यस्मिन् तम् उग्रानिलभिन्नमेघम्। दिनस्य अन्तस्तं दिनान्तम्।

हिन्दी—प्रभु भगवान् राम के बिना मेरी निवास भूमि अयोध्या के सैकड़ों घर और अट्टालिकायें टूट ढह गई हैं, और नगरी के चारों ओर का परकोटा गिर गया है। अतः वह ऐसी लग रही है जैसा कि वह सायंकाल दीखता है जिसका सूर्य अस्ताचल में छिप गया है और वायु के प्रबलवेग से मेघ इधर-उधर छितरा गये हैं ॥ ११ ॥

निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः स वाह्यते राजपथः शिवाभिः ॥ १२ ॥

निशासु भास्वन्ति दीप्तिमन्ति कलान्यव्यक्तमधुराणि नूपुराणि यासां तासामभिसारिकाणाम्। 'कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका' इत्यमरः। यो राजपथः। संचरन्त्यनेनेति संचरः। संचारसाधनमभूत्। 'गोचरसंचर–' इत्यादिना घप्रत्ययान्तो निपातः। नदत्सु मुखेषु या उल्कास्ताभिर्विचितामिषाभिरन्विष्टमांसाभिः शिवाभिः क्रोष्ट्रीभिः स राजपथो वाह्यते गम्यते। वहेरन्यो वह्धातुरस्तीत्युपदेशः॥

अन्वयः—निशासु भास्वत्कलनूपुराणाम् अभिसारिकाणां यः संचरः अभूत् "सम्प्रति" नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः शिवाभिः सः राजपथः वाह्यते।

व्याख्या—नितरां श्यति = तनूकरोति व्यापारान् सा निशा, तासु निशासु = रात्रिषु नुवनं, नूयते वा नूः, नुवि पुरन्तीति नूपुराः। भास्वन्ति = दीप्तिमन्ति कलानि = अव्यक्तमधुराणि च नूपुराणि = मञ्जीराः यासां ताः तासां भास्वत्कलनूपुराणाम् "मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। अभिसरन्तीति, अभिसारिकास्तासाम् अभिसारिकाणां = पतीच्छया संकेतस्थानं गच्छन्तीनाम् "कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका" इत्यमरः। यः = राजपथः संचरन्त्यनेन संचरः = संचरणसाधनम् अभूत् = आसीत्, (यः पूर्वमेवं भूतः आसीत् स मार्गः इदानीम्) नदत्सु = अव्यक्तशब्दं कुर्वाणेषु मुखेषु = आननेषु या उल्काः = तेजःपुञ्जाः, अग्निशिखा स्ताभिः विचितम् = अन्विष्टम् आमिषं = मांसं याभिस्ताः, ताभिः नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः, ओषतीति उल्का, उषदाहे, धातोः "शुकवल्कोल्का" इति साधुः। शिवः शिवा वा देवता अस्याः अस्तीति शिवा, शकुनावेदकत्वात्। शिवाभिः = शृगालीभिः सः = प्रसिद्धः राज्ञां पन्थाः राजपथः = राजमार्गः वाह्यते = गम्यते।

समासः—भास्वन्ति कलानि च नूपुराणि यासां ताः भास्वत्कलनूपुरास्तासां भास्वत्कलनूपुराणाम्। नदन्ति यानि मुखानि, इति नदन्मुखानि, नदन्मुखेषु या उल्काः ताभिः विचितम् आमिषं याभि स्ताभिः नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः। राज्ञां पन्थाः राजपथः।

हिन्दी—"पहले" रातों में चमचमाते तथा झनझनाते (मधुर अव्यक्त ध्वनि करते) नूपुर (बिछवों) वाली अभिसारिकाओं के संचरण का जो मार्ग था, "वहाँ पर अब" वे सियारिनें घूम-फिर रही हैं जिनके चिल्लाते मुख से आग की लपट निकलती, और उसी के प्रकाश में वे माँस ढूँढती हैं ॥ १२ ॥

आस्फालितं यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत् ।
वन्यैरिदानीं महिषैस्तदम्भः शृङ्गाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम् ॥ १३ ॥

यदम्भः प्रमदाकराग्रैरास्फालितं ताडितं सत् । जलक्रीडास्विति शेषः । मृदङ्गानां यो धीरध्वनिस्तमन्वगच्छदन्वकरोत् । तद्दीर्घिकाणामम्भ इदानीं वन्यैर्महिषैः कर्तृभिः शृङ्गैर्विषाणैराहतं सत्क्रोशति । न तु मृदङ्गध्वनिमनुकरोतीत्यर्थः ॥

अन्वयः—यत् प्रमदाकराग्रैः आस्फालितं सत् मृदंगधीरध्वनिम् अन्वगच्छत्, तत् दीर्घिकाणाम् अम्भः इदानीम् वन्यैः महिषैः शृंगाहतंसत् क्रोशति ।

व्याख्या—यत् = अम्भः प्रमदः = हर्षः अस्ति यासां ताः प्रमदाः, प्रमदानां = कामिनीनां कराग्राणि = हस्ताग्राणितैः प्रमदाकराग्रैः आस्फालितं = ताडितं सत् जलकेलिसमये इति शेषः । मृद्यन्ते इति मृदंगा, मृत् अंगम् एषामस्ति, इति वा मृदंगाः । धीरः = गम्भीरश्चासौ ध्वनिः = शब्दः इति धीरध्वनिः । मृदंगानां = मुरजानां धीरध्वनिरिति मृदंगधीरध्वनिस्तं मृदंगधीरध्वनिम् "मृदंगा मुरजाः" इत्यमरः । अन्वगच्छत् = अन्वकरोत्, तत् = स्फालितम् दीर्घा एव दीर्घिकास्तासां दीर्घिकाणां = वापीनाम् अम्भः = जलम् इदानीं = सम्प्रति वने भवाः वन्यास्तैः वन्यैः = आरण्यकैः महिषैः = सैरिभैः कर्तृभिः शृंगैः = विषाणैः आहतं = स्फालितमिति शृंगाहतं सत् क्रोशति = कर्णकटु नदति । अर्थात् मुरजशब्दं नानुकरोतीत्यर्थः ।

समासः—प्रमदानां कराग्राणि, तैः प्रमदाकराग्रैः । मृदंगानां धीरश्चासौ ध्वनिः इति मृदंगधीरध्वनि स्तं मृदंगधीरध्वनिम् । शृंगैः आहतमिति शृंगाहतम् ।

हिन्दी—पहले जो बावलियों का जल "जलक्रीड़ा के समय" सुन्दरियों के हाथों से आहत होकर मृ ंग की गम्भीर ध्वनि का अनुकरण करता था, अर्थात् मृदंग की तरह मधुर ध्वनि करता था । वही बावलियों का जल आजकल जंगली भैंसों के सींगों से चोट खाकर बड़ी कर्णकटु ध्वनि करता है । अर्थात् जहाँ सुन्दरियाँ जलक्रीड़ा करती थीं वहाँ अब जंगली भैंसे लोटते हैं ॥ १३ ॥

वृक्षेशया यष्टिनिवासभङ्गान्मृदङ्गशब्दापगमादलास्याः ।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम् ॥ १४ ॥

यष्टिरेव निवासः स्थानं तस्य भङ्गात् । वृक्षे शेरत इति वृक्षेशयाः । 'अधिकरणे शेतेः' इत्यच्प्रत्ययः । 'शयवासवासिष्वकालात्' इत्यलुक्सप्तम्याः । मृदङ्गशब्दानामपगमादभावादलास्या नृत्यशून्याः । दवोऽरण्यवह्निः । 'दवदावौ वनारण्यवह्नी' इत्यमरः । तस्योल्काभिः स्फुलिङ्गैर्हतेभ्यः शेषाणि बर्हाणि येषां ते क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वं वनमयूरत्वं प्राप्ताः ॥

अन्वयः—यष्टिनिवासभंगात् वृक्षेशयाः मृदंगशब्दापगमात् अलास्याः दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूराः वनबर्हिणत्वं प्राप्ताः।

व्याख्या—यष्टिः = लगुडः एव निवासः = स्थानमिति यष्टिनिवासस्तस्य भंगः = नाशस्तस्मात् यष्टिनिवासभङ्गात् वृक्षे = पादपे शेरते = स्वपन्तीति वृक्षेशयाः मृदंगानां = मुरजानां शब्दः = ध्वनिस्तस्य अपगमः = अभावः इति मृदंगशब्दापगमस्तस्मात् मृदंगशब्दापगमात्, न = नास्ति लास्यं = नृत्यं येषां ते अलास्याः = नृत्यशून्याः दवस्य = वनवह्नेः उल्काः = स्फुलिंगाः ताभिः हताः = दग्धास्तेभ्यः शेषाणि = अवशिष्टानि बर्हाणि = पिच्छानि, शिखण्डाः येषां ते दवोल्काहत-शेषबर्हाः क्रीडार्थं मयूराः क्रीडामयूराः = केलिबर्हिणः वनस्य = अरण्यस्य बर्हिणः = मयूराः तेषां भावः वनबर्हिणत्वं, तत् प्राप्ताः = गताः।

समासः—यष्टिः एव निवासः यष्टिनिवासस्तस्य भंगस्तस्मात् यष्टिनिवासभंगात्। मृदंगस्य शब्दस्तस्य अपगमस्तस्मात् मृदंगशब्दापगमात्। न विद्यते लास्यं येषां ते अलास्याः। दवस्य उल्काः दवोल्काः, ताभिः हतास्तेभ्यः शेषाणि बर्हाणि येषां ते दवोल्काहतशेषबर्हाः। क्रीडार्थं मयूराः क्रीडामयूराः। वनस्य बर्हिणः वनबर्हिणः, तेषां भावस्तत्त्वं वनबर्हिणत्वम्।

हिन्दी—पालतू मोर आदि पक्षियों के बैठने के लिये लोग घरों में स्थान-स्थान पर डण्डे व लकड़ी के टुकड़े बाँधे रहते थे, वहीं इनके घर थे। अब यष्टि रूपी अपने घर के नष्ट हो जाने से वृक्षों पर बैठने, सोने वाले, और (नगर में) मृदंग की ध्वनि के बन्द हो जाने से न नाचने वाले घरों के मोर उन जंगली मोरों के समान हो गये हैं। जो कि जंगल की आग के स्फुलिंगों से जली हुई आधी पूँछ वाले हैं। अर्थात् जिनकी जलकर थोड़ी-सी ही बची पूँछ रह गई है, वैसे ये घर के मोर अब हो गये हैं ॥ १४ ॥

सोपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान्सरागान्।
सद्यो हतन्यङ्कुभिरस्रदिग्धं व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे ॥ १५ ॥

किञ्च। येषु सोपानमार्गेषु रामा रमण्यः सरागाँल्लाक्षारसार्द्रांश्चरणान्निक्षिप्तवत्यः, तेषु मे मम मार्गेषु सद्यो हतन्यङ्कुभिर्मारितमृगैर्व्याघ्रैरस्रदिग्धं रुधिरलिप्तं पदं निधीयते ॥

अन्वयः—येषु सोपानमार्गेषु रामाः सरागान् चरणान् निक्षिप्तवत्यः तेषु मे (मार्गेषु) सद्यः हतन्यंकुभिः व्याघ्रैः अस्रदिग्धं पदं निधीयते।

व्याख्या—येषु सह = विद्यमानः उप = उपरि आनः = गमनं येषु तानि सोपानानि तेषां मार्गाः = पन्थानस्तेषु सोपानमार्गेषु = आरोहणमार्गेषु "स्यादारोहणं सोपानम्" इत्यमरः। रामाः = रमण्यः रागेण = लाक्षारसेन सहिताः सरागास्तान् सरागान् चरणान् = पादान् निक्षिप्त-वत्यः = निचिक्षिपुः, स्थापितवत्यः इत्यर्थः। सम्प्रति तेषु = प्रसिद्धेषु मे = मम सोपानमार्गेषु, नितरामञ्चन्तीति न्यंकवः। सद्यः = तत्क्षणं हताः = मारिताः न्यंकवः = हरिणाः यैस्ते तैः हतन्यं-कुभिः वि = विशेषेण आ = समन्तात् जिघ्रन्ति इति व्याघ्रास्तैः व्याघ्रैः = सिंहैः अस्रेण = शोणितेन

दिग्धं = लिप्तमिति अस्रदिग्धं पदं = चरणः निधीयते = स्थाप्यते। यत्र पुरा रमण्यः संचरन्ति स्म तत्र सम्प्रति व्याघ्राः भ्रमन्तीत्यर्थः।

समासः—सोपानानां मार्गास्तेषु सोपानमार्गेषु। रागेण सहिताः सरागास्तान् सरागान्। हताः न्यंकवः यैस्ते तैः हतन्यंकुभिः। अस्रेण दिग्धमिति अस्रदिग्धम्।

हिन्दी—"और पहले नगर की" जिन सीढ़ियों के मार्ग में सुन्दरियाँ महावर से रँगे हुए अपने चरण रखती थीं अर्थात् पैर रखती चलती थीं, अब उन्हीं मेरे रास्तों, सड़कों पर, तुरन्त मृगों को मारने वाले बाघ खून से सने (भींगे) पैर रखते हैं ॥ १५ ॥

चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृणालभङ्गाः।
नखाङ्कुशाघातविभिन्नकुम्भाः संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति ॥ १६ ॥

पद्मवनमवतीर्णाः प्रविष्टाः। तथा लिखिता इत्यर्थः। करेणुभिः करिणीभिः। चित्रगताभिरेव। 'करेणुरिभ्यां स्त्री नेभे' इत्यमरः। दत्तमृणालभङ्गाश्चित्रद्विपा आलेख्यमातङ्गाः। नखा एवाङ्कुशाः तेषामाघातैर्विभिन्नकुम्भाः सन्तः संरब्धसिंहप्रहृतं कुपितसिंहप्रहारं वहन्ति ॥

अन्वयः—पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिः दत्तमृणालभंगाः चित्रद्विपाः, नखांकुशाघातविभिन्नकुम्भाः सन्तः संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति।

व्याख्या—पद्मानां = कमलानां वनं = काननमिति पद्मवनं, पद्मवनम् अवतीर्णाः = प्रविष्टाः इति पद्मवनावतीर्णाः, कमलवनगतत्वेन चित्रे लिखिताः इत्यर्थः। करेणुभिः = करिणीभिः, चित्रेलिखिताभिरेवेत्यर्थः दत्ताः = भक्षणाय प्रदत्ताः मृणालानां = बिसानां भंगाः = खण्डाः येभ्यस्ते दत्तमृणालभंगाः चित्रे = आलेख्ये अर्पिता द्विपाः = गजाः इति चित्रद्विपाः, नखाः = कररुहाः एव अंकुशाः = सृणयः इति नखांकुशाः, नखांकुशानाम् आघाताः = मारणानि तैः विभिन्नाः = विदीर्णाः, स्फुटिताः कुम्भाः = मस्तकाः येषां ते नखांकुशाघातविभिन्नकुम्भाः सन्तः संरब्धाः = कुपिताः विक्षुब्धाः च ते सिंहाः = केसरिणः इति संरब्धसिंहाः तेषां प्रहृतः = प्रहारस्तं संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति = धारयन्ति।

समासः—पद्मानां वनमिति पद्मवनं तत्र अवतीर्णाः इति पद्मवनावतीर्णाः। मृणालानां भंगाः मृणालभंगाः, दत्ताः मृणालभंगाः येभ्यस्ते दत्तमृणालभंगाः। चित्रे (लिखिताः) द्विपाः चित्रद्विपाः। नखाः एव अंकुशाः नखांकुशाः, नखांकुशानाम् आघाताः नखांकुशाघातास्तैः विभिन्नाः कुम्भाः येषां ते नखांकुशाघातविभिन्नकुम्भाः। संरब्धाश्च ते सिंहाः संरब्धसिंहास्तेषां प्रहृतं, संरब्धसिंहप्रहृतम्।

हिन्दी—"नगरी के भवनों की दीवारों पर जिन चित्रों में ऐसा दिखाया गया कि" कमलों के वन में घुसे हुए (कमल वाले तालाब में) हथिनियाँ अपने सूँड से जिन्हें कमलनाल के टुकड़े दे रही हैं, ऐसे चित्रों में लिखे हुए हाथी, सिंह के नखरूपी अंकुश के लगने से फूटे मस्तक वाले होकर क्रोधी सिंह के प्रहार को धारण किये हुए हैं। अर्थात् दीवारों पर लिखे

हाथी को सच्चा समझकर अब वहाँ घूमने वाले सिंह ने उसमें पंजा मारा और वह चित्र टूटा-फूटा पड़ा है ॥ १६ ॥

स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम् ।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति सङ्गान्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्विमुक्ताः ॥ १७ ॥

उत्क्रान्तवर्णक्रमा विशीर्णवर्णविन्यासास्ताश्च धूसराश्च यास्तासां स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानां स्त्रीप्रतिकृतीनां दारुमयीणां फणिभिर्विमुक्ता निर्मोकाः कञ्चुका एव पट्टाः । 'समौ कञ्चुकनिर्मोकौ' इत्यमरः । सङ्गात्सक्तत्वात्स्तनोत्तरीयाणि स्तनाच्छादनवस्त्राणि भवन्ति ॥

अन्वयः—उत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम् स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानाम्, फणिभिः विमुक्ताः निर्मोकपट्टाः संगात् स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति ।

व्याख्या—उत्क्रान्तः = विशीर्णः नष्ट इत्यर्थः वर्णानां = रागाणां, नीलपीतादीनामित्यर्थः क्रमः = विन्यासः यासु ताः उत्क्रान्तवर्णक्रमाः, उत्क्रान्तवर्णक्रमाश्च ताः धूसराः = ईषत्पाण्डुवर्णाः तासाम् उत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम् "ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः" इत्यमरः । स्तम्भेषु = यूपेषु योषति, जुष्यते वा योषित् । योषितां = स्त्रीणां प्रतियातनाः = प्रतिमास्तासां योषित्प्रतियातनानाम् दारुमयीणामित्यर्थः फणा अस्ति येषां ते फणिनस्तैः फणिभिः = सर्पैः विमुक्ताः = परित्यक्ताः निश्चयेन मुच्यन्ते इति निर्मोकाः = कञ्चुकाः सर्पत्वच इत्यर्थः "समौ कञ्चुकनिर्मोकौ" इत्यमरः । एव पट्टाः = वस्त्राणि, इति निर्मोकपट्टाः, संगात् = संसक्तत्वात् स्तनानां = कुचानाम् उत्तरीयाणि = आच्छादनवस्त्राणि भवन्ति = जायन्ते ।

समासः—उत्क्रान्तः वर्णस्य क्रमः यासां ताः उत्क्रान्तवर्णक्रमाः ताश्च ताः धूसरास्तासाम् उत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम् । योषितां प्रतियातनाः, तासां योषित्प्रतियातनानाम् । निर्मोकाः एव पट्टाः इति निर्मोकपट्टाः । स्तनानाम् उत्तरीयाणि स्तनोत्तरीयाणि ।

हिन्दी—रंगों के उड़ जाने (खराब होने) से धूसरित (भद्दे रंग की) हो गई हुई, चन्दन के खम्भों पर बनी स्त्रियों की मूर्तियों में, साँपों से छोड़ी गई केंचुली रूपी वस्त्र के सट जाने से स्तनों को ढँकने के उत्तरीय (दुपट्टे) हो रहे हैं । अर्थात् आजकल नगरी में, खम्भों पर जो स्त्रीमूर्तियाँ बनी हैं वे भद्दे रंग की हो गई हैं और साँप की केंचुली जो उन पर चिपक गई है ऐसी प्रतीत हो रही है मानो स्तन ढँकने की चुन्नी हो ॥ १७ ॥

कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाङ्कुरेषु ।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः ॥ १८ ॥

कालान्तरेण कालभेदवशेन श्यामसुधेषु मलिनचूर्णेष्वितस्ततो रूढतृणाङ्कुरेषु हर्म्येषु गृहेषु नक्तं रात्रौ मुक्तागुणानां शुद्धिरिव शुद्धिः स्वाच्छ्यं येषां तादृशा अपि । ततः पूर्वं ये मूर्च्छन्ति स्म त एव चन्द्रपादाश्चन्द्ररश्मयः । 'पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः' इत्यमरः । न मूर्च्छन्ति । न प्रतिफलन्तीत्यर्थः ॥

अन्वयः—कालान्तरश्यामसुधेषु इतस्ततः रूढतृणांकुरेषु हर्म्येषु नक्तं मुक्तागुणशुद्धयः अपि ते एव चन्द्रपादाः न मूर्च्छन्ति ।

व्याख्या—कालस्य = समयस्य अन्तरं = भेदः इति कालान्तरं तेन श्यामा = मलिना सुधा = चूर्णलेपः, येषु तानि तेषु कालान्तरश्यामसुधेषु, इतस्ततः = यत्र तत्र रूढाः = उत्पन्नाः तृणानां = घासानाम् अंकुराः = अभिनवोद्भिदः येषु तानि तेषु रूढतृणांकुरेषु हरन्ति मनांसीति-हर्म्याणि तेषु हर्म्येषु = धनिकभवनेषु नक्तं = रात्रौ मुक्तानां = मौक्तिकानां गुणाः = मालाः इति मुक्तागुणाः, मुक्तागुणानां शुद्धिः = नैर्मल्यम् इव शुद्धिः = स्वच्छता येषां ते मुक्तागुणशुद्धयः अपि ततः पूर्वं ये मूर्च्छन्ति स्म ते एव = प्रसिद्धा एव चन्द्रस्य = इन्दोः पादाः = रश्मयः, किरणा-इत्यर्थः, इति चन्द्रपादाः न मूर्च्छन्ति = न प्रसरन्ति ।

समासः—कालान्तरेण श्यामा सुधा येषु तानि, तेषु कालान्तरश्यामसुधेषु । रूढाः तृणा-नाम् अंकुराः येषु तानि रूढतृणांकुराणि तेषु रूढतृणांकुरेषु । मुक्तानां गुणाः मुक्तागुणाः, मुक्ता-गुणानां शुद्धिः इव शुद्धिः येषां ते मुक्तागुणशुद्धयः ।

हिन्दी—समयके अन्तर से (इन दिनों सूने होने से) जिनका चूना काला पड़ गया है तथा इधर उधर घास जम गई है, ऐसे अयोध्या के महलों में रात के समय, अब से पहले जहाँ मोतियों की माला (झालर) चमचमाती थी, वहाँ अब मोती की माला के समान सुफेद चाँद की किरणें भी नहीं चमकती हैं। अर्थात् भवनों में पुता चूना काला पड़ गया है उसपर चाँदनी क्या चमकेगी ॥ १८ ॥

आवर्ज्य शाखाः सदयं च यासां पुष्पाण्युपात्तानि विलासिनीभिः ।
वन्यैः पुलिन्दैरिव वानरैस्ताः क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः ॥ १९ ॥

किंच । विलासिनीभिः सदयं शाखा लतावयवानावर्ज्यानमय्य यासां लतानां पुष्पाण्युपात्तानि गृहीतानि ता मदीया उद्यानलताः वन्यैः पुलिन्दैर्म्लेच्छविशेषैरिव वानरैः । उभयैरपीत्यर्थः । क्लिश्यन्ते पीड्यन्ते । क्लिश्नातेः कर्मणि लट् । 'भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः' इत्यमरः ॥

अन्वयः—किंच विलासिनीभिः सदयं शाखाः आवर्ज्य यासां पुष्पाणि उपात्तानि ताः एव मदीयाः उद्यानलताः वन्यैः पुलिन्दैः इव वानरैः क्लिश्यन्ते ।

व्याख्या—किंच । विलासाः = हावभावाः सन्ति यासु ताः विलासिन्यः ताभिः विला-सिनीभिः = कामिनीभिः, सुन्दरीभिरित्यर्थः । दयया सहितं सदयं = कृपापूर्वकं शाख्यन्ते वृक्षाः याभिस्ताः शाखाः ताः = द्रुमांशान् आवर्ज्य = आनमय्य यासां = लतानां पुष्पाणि = कुसुमानि-उपात्तानि = गृहीतानि, त्रोटितानि, ताः एव = मम इमाः मदीयाः मत्संबन्धिन्यः उद्यानानाम् = आरामाणां लताः = वल्लर्यः, इति उद्यानलताः वने भवाः वन्यास्तैः वन्यैः = जांगलिकैः पुलिन्दैः = किरातैः इव = यथा वने भवं = फलादि वानम् राति इति वानरः, वा = किंचित् नरः इति वा वानरः । वानरैः = कपिभिः क्लिश्यन्ते = पीड्यन्ते । "किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातय" इत्यमरः ।

समासः—उद्यानानां लताः उद्यानलताः। दयया सहितमिति सदयम्।

हिन्दी—"और" पहले नगर की शौकीन सुन्दरी नारियाँ दयापूर्वक धीरे से टहनी या लताओं को झुकाकर जिन लताओं के फूलों को तोड़ती थीं, वही मेरी प्रिय लताएँ, अब जंगली भीलों के समान बन्दरों के द्वारा नोची-तोड़ी जा रही हैं। अर्थात् जैसे जंगली लोग लता वृक्ष को निर्दयी होकर नष्ट करते हैं वैसे ही मेरी लताओं को अब बन्दर नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं॥१९॥

रात्रावनाविष्कृतदीपभासः कान्तामुखश्रीवियुता दिवापि।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः॥ २०॥

रात्रावनाविष्कृतदीपभासः। दीपप्रभाशून्या इत्यर्थः। दिवापि दिवसेऽपि कान्तामुखानां श्रिया कान्त्या वियुता रहिता विच्छिन्नो नष्टो धूमप्रसरो येषां ते गवाक्षाः कृमितन्तुजालैर्लूतातन्तुवितानैस्तिरस्क्रियन्ते छाद्यन्ते॥

अन्वयः—रात्रौ अनाविष्कृतदीपभासः दिवा अपि कान्तामुखश्रीवियुता विच्छिन्नधूमप्रसराः गवाक्षाः कृमितन्तुजालैः तिरस्क्रियन्ते।

व्याख्या—राति = ददाति सुखं या सा रात्रिस्तस्यां रात्रौ = निशायाम् न आविष्कृता अनाविष्कृता = अप्रकटीकृता दीपानां = दीपकानां भाः = दीप्तिः, प्रकाशः इत्यर्थः यैस्ते अनाविष्कृतदीपभासः = प्रदीपप्रकाशरहिता इत्यर्थः। दिवापि = दिनेऽपि कान्तानां = सुन्दरीणां मुखानि = आननानि, तेषां श्रीः = कान्तिः, शोभा इति कान्तामुखश्रीः, कान्तामुखश्रिया वियुताः = रहिताः, इति ते कांतमुखश्रीवियुताः विच्छिन्नः = नष्टः (जनशून्यत्वादित्यर्थः) धूमस्य प्रसरः = निर्गमनं येषां ते विच्छिन्नधूमप्रसराः गवामक्षीणि इव गवाक्षाः, गावः = जलानि, किरणा वा अक्षन्ति = व्याप्नुवन्ति राभिस्ते गवाक्षाः = वातायनानि "वातायनं गवाक्षः" इत्यमरः। कृमिभिः = ऊर्णनाभैः निर्मिताः तन्तवः = सूत्राणि इति कृमितन्तवस्तेषां जालानि = आनायास्तैः कृमितन्तुजालैः, लूतानिर्मितसूत्रवितानैः तिरस्क्रियन्ते = आच्छाद्यन्ते॥

समासः—कान्तानां मुखानि कान्तामुखानि, तेषां श्रीः तया वियुताः इति कान्तामुखश्रीवियुताः। न आविष्कृता अनाविष्कृता, अनाविष्कृता दीपानां भाः यैस्ते अनाविष्कृतदीपभासः। विच्छिन्नः धूमस्य प्रसरः येषु ते विच्छिन्नधूमप्रसराः। कृमिभिः निर्मिताः तन्तवः कृमितन्तवः तेषां जालानि तैः कृमितन्तुजालैः।

हिन्दी—"और आजकल मेरी नगरी के" रोशनदान खिड़कियाँ मकड़ी के जालों से ढके पड़े हैं और उन झरोखों से रात में दीपकों का प्रकाश (रोशनी) नहीं निकलती है। और न उनमें दिन में भी सुन्दरियों के मुख की छवि ही दिखाई देती है। तथा धूप के धूएँ का निकलना भी उनसे नहीं दीखता है। अर्थात् पहले ये सब कुछ था अब जनशून्य होने से कुछ नहीं रहा॥ २०॥

बलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति ।
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि दूये सरयूजलानि ॥ २१ ॥

'बलिः पूजोपहारः स्यात्' इति शाश्वतः। बलिक्रियावर्जितानि सैकतानि येषां तानि । स्नानीयानि स्नानसाधनानि चूर्णादीनि । 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति करणेऽनीयप्रत्ययः। स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति सरयूजलानि शून्यानि रिक्तान्युपान्तेषु वानीरगृहाणि येषां तानि च दृष्ट्वा दूये परितप्ये ॥

अन्वयः—बलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयसंसर्गम् अनाप्नुवन्ति, सरयूजलानि, शून्यानि उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा (अहं) दूये ।

व्याख्या—बलीनां = पूजोपहाराणां क्रिया = करणं तया वर्जितानि = रहितानि सैकतानि = सिकतामयानि येषां तानि बलिक्रियावर्जितसैकतानि "सैकतं सिकतामयम्" इत्यमरः । स्नान्ति एभिः स्नानीयानि = स्नानोपयुक्तानि चूर्णादीनि, तेषां संसर्गः = सम्पर्कस्तं स्नानीयसंसर्गम् अनाप्नुवन्ति = अप्राप्नुवन्ति सरय्वाः = नद्याः जलानि = सलिलानि, इति सरयूजलानि, शून्यानि = रिक्तानि, वानीराणां = वेतसानां गृहाणि = सद्मानि, वानीरगृहाणि, उपान्तेषु = प्रान्तभागेषु वानीरगृहाणि येषां तानि उपान्तवानीरगृहाणि च दृष्ट्वा = अवलोक्य अहं दूये = परितप्ये ।

समासः—बलीनां क्रिया बलिक्रिया, तया वर्जितानि सैकतानि येषां तानि बलिक्रियावर्जितसैकतानि । स्नानीयानां संसर्गः स्नानीयसंसर्गस्तं स्नानीयसंसर्गम् । उपान्तेषु वानीराणां गृहाणि येषां तानि, उपान्तवानीरगृहाणि । सरय्वाः जलानि सरयूजलानि तानि ।

हिन्दी—सरयूनदी के उन जलों को देखकर मैं संतप्त हो रही हूँ जिनके बालुवाले तट (घाट) देवताओं को दी जानेवाली, बलि (पूजा भेंट) की क्रियाओं से रहित हैं (उनमें अब भेंट पूजा नहीं होती है) और नहाने के चूर्ण (अंगराग) के साथ उनका सम्पर्क भी अब नहीं होता है । तथा किनारे, किनारे पर बने बेतों के घर भी अब सूने पड़े हैं ॥ २१ ॥

तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य मामभ्युपैतुं कुलराजधानीम् ।
हित्वा तनुं कारणमानुषीं तां यथा गुरुस्ते परमात्ममूर्तिम् ॥ २२ ॥

तत्तस्मादिमां वसतिं कुशावतीं विसृज्य कुलराजधानीमयोध्यां मामभ्युपैतुमर्हसि । कथमिव । ते गुरुः पिता रामस्तां प्रसिद्धां कारणवशान्मानुषीं तनुं मानुषमूर्तिं हित्वा परमात्ममूर्तिं यथा विष्णुमूर्तिमिव ॥

अन्वयः—तत् इमां वसतिं विसृज्य कुलराजधानीं तां माम् अभ्युपैतुम् अर्हसि, कथमिव— ते गुरुः तां कारणमानुषीं तनुं हित्वा परमात्ममूर्तिम् यथा ।

व्याख्या—तत् = तस्मात् इमां वसतिं = कुशावतीं नगरीं विसृज्य = परित्यज्य राज्ञा धीयतेऽस्यामिति राजधानी कुलस्य = वंशस्य राजधानी तां कुलराजधानीं = प्रधाननगरीं तां =

प्रसिद्धामयोध्यां माम् अभ्युपैतुं = प्राप्तुम् अर्हसि = योग्योसि । कथमित्येत्याह–ते = तव गुरुः = पिता रामः तां = प्रसिद्धां कारणात् = भूभारहरणरूपात् मानुषी = मानवी तां कारणमानुषीं तनुं = शरीरं = रामरूपामित्यर्थः हित्वा = त्यक्त्वा परमश्चासौ आत्मा परमात्मा, परमात्मनः = परमेश्वरस्य मूर्तिः = स्वरूपं तां परमात्ममूर्तिं यथा = इव, विष्णुमूर्तिमिवेत्यर्थः ।

समासः—राज्ञां धानी राजधानी, कुलस्य राजधानी, तां कुलराजधानीम् । कारणात् मानुषी तां कारणमानुषीम् । परमश्चासौ आत्मा परमात्मा, तस्य मूर्तिः तां परमात्ममूर्तिम् ।

हिन्दी—इसलिये जिस प्रकार तुम्हारे पिता राम ने भूभार हरण करने के लिये मनुष्य शरीर धारण किया, और उस शरीर को छोड़कर परमात्मा के स्वरूप (विष्णुरूप) को प्राप्त किया, उसी प्रकार तुम भी इस कुशावती को त्याग कर अपने कुल की राजधानी मुझ अयोध्या में आने के योग्य हो । अर्थात् तुम्हें अयोध्या में आकर रहना चाहिये ॥ २२ ॥

तथेति तस्याः प्रणयं प्रतीतः प्रत्यग्रहीत्प्राग्रहरो रघूणाम् ।
पूरप्यभिव्यक्तमुखप्रसादा शरीरबन्धेन तिरोबभूव ॥ २३ ॥

रघूणां प्राग्रहरः कुशस्तस्याः पुरः प्रणयं याच्ञां प्रतीतो हृष्टः संस्तथेति प्रत्यग्रहीत्स्वीकृतवान् पूः पुराधिदेवताप्यभिव्यक्तमुखप्रसादा सती । इष्टलाभादिति भावः । शरीरबन्धेन शरीरयोगेन करणेन तिरोबभूवान्तर्दधे । मानवं रूपं विहाय दैवं रूपमग्रहीदित्यर्थः ॥

अन्वयः—रघूणां प्राग्रहरः तस्याः प्रणयं प्रतीतः सन् तथा इति प्रत्यग्रहीत्, पूः अपि अभिव्यक्तमुखप्रसादा सती शरीरबन्धेन तिरोबभूव ।

व्याख्या—रघूणां = रघुकुलोद्भवानां प्राग्रे हरतीति प्राग्रहरः = श्रेष्ठः कुशः तस्याः = पुरः अयोध्यायाः प्रणयं = प्रश्रयं, सप्रेमप्रार्थनामित्यर्थः । "प्रश्रयप्रणयौ समौ" इत्यमरः । प्रतीतः = प्रसन्नः सन् तथा = तथास्तु, इति = एवं प्रत्यग्रहीत् = स्वीचकार, पूः = नगराधिदेवता अपि अभिव्यक्तः = प्रकटीकृतः मुखस्य = आननस्य प्रसादः = प्रसन्नता नैर्मल्यम् यया सा अभिव्यक्तमुखप्रसादा सती "प्रसादस्तु प्रसन्नता" इत्यमरः । मनोरथसिद्धेरिति भावः । शरीरस्य = देहस्य बन्धः = योगस्तेन शरीरबन्धेन करणेन तिरोबभूव = अन्तर्दधे । मनुष्यशरीरं त्यक्त्वा दैवीं तनुमग्रहीदित्यर्थः ।

समास—अभिव्यक्तः मुखस्य प्रसादो यया सा अभिव्यक्तमुखप्रसादा । शरीरस्य बन्धः शरीरबन्धस्तेन शरीरबन्धेन ।

हिन्दी—रघुवंशीयों में श्रेष्ठ राजा कुश ने प्रसन्न होकर उस अयोध्या नगरी की प्रार्थना को एवमस्तु कहकर स्वीकार (कर ली) और वह अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी भी अपनी प्रसन्नता को प्रकट कर, मानवरूप को छोड़, दैवीरूप धारण कर छिप गई ॥ २३ ॥

तदद्भुतं संसदि रात्रिवृत्तं प्रातर्द्विजेभ्यो नृपतिः शशंस ।
श्रुत्वा त एनं कुलराजधान्याः साक्षात्पतित्वे वृतमभ्यनन्दन् ॥ २४ ॥

नृपतिः कुशस्तदद्भुतं रात्रिवृत्तं रात्रिवृत्तान्तं प्रातः संसदि सभायां द्विजेभ्यः शशंस। ते द्विजाः श्रुत्वैनं कुलराजधान्याः साक्षात्स्वयमेव पतित्वे विषये वृतमभ्यनन्दन्। पतित्वेन वृतोऽसीत्यपूजयन्। आशीभिरिति शेषः। अत्र गार्ग्यः—'दृष्ट्वा स्वप्नं शोभनं नैव सुप्यात्पश्चाद्दृष्टो यः स पाकं विधत्ते। शंसेदिष्टं तत्र साधुर्द्विजेभ्यस्ते चाशीभिः प्रीणयेयुर्नरेन्द्रम्॥' इदमपि स्वप्नतुल्यमिति भावः॥

अन्वयः—नृपतिः तदद्भुतं रात्रिवृत्तं प्रातः संसदि द्विजेभ्यः शशंस, ते श्रुत्वा एनं कुलराजधान्याः साक्षात् पतित्वे वृतम् अभ्यनन्दन्।

व्याख्या—नॄन्=जनान् पाति=रक्षतीति नृपतिः=राजा कुशः, अत्=आश्चर्येऽव्ययं तस्य भवनम् अद्भुतं तत्=पूर्वोक्तम् अद्भुतम्=विचित्रं रात्रौ=निशायां वृत्तं=जातमिति रात्रिवृत्तं प्रातः=प्रातः समये समथन्ति जनाः अस्यां सा संसत् तस्यां संसदि=सभायाम् द्विजेभ्यः=ब्राह्मणेभ्यः शशंस=उक्तवान् ते=द्विजाः श्रुत्वा=आकर्ण्य एनं=कुश कुलस्य=रघुवंशस्य राजधानी=प्रधाननगरी, इति कुलराजधानी तस्याः कुलराजधान्याः साक्षात्=स्वयमेव पत्युः=स्वामिनः भावः कर्म वा पतित्वं तस्मिन् पतित्वे=स्वामित्वविषये वृतम्=आहूतम् अभ्यनन्दन्=अभिनन्दन्ति स्म। राजधान्या स्वयमेव वृतोऽसि राज्यकर्तृत्वेनेति अपूजयन्नित्यर्थः।

समासः—राज्ञां धानी राजधानी, कुलस्य राजधानी कुलराजधानी तस्याः कुलराजधान्याः। रात्रौ वृत्तमिति रात्रिवृत्तम् तत्।

हिन्दी—राजा कुश ने उस, रात्रि में हुए विचित्र वृत्तान्त को प्रातः काल सभा में ब्राह्मणों को कहा (सुनाया)। वे इस समाचार को सुनकर कि राजा कुश को कुल की राजधानी की अधिष्ठात्री देवी ने स्वयमेव आकर अपना राजा चुना है, इसका अभिनन्दन किया॥ २४॥

कुशावतीं श्रोत्रियसात्स कृत्वा यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः।
अनुद्रुतो वायुरिवाभ्रवृन्दैः सैन्यैरयोध्याभिमुखः प्रतस्थे॥ २५॥

स कुशः कुशावतीं श्रोत्रियेषु छान्दसेष्वधीनां श्रोत्रियसात्। 'तदधीनवचने' इति सातिप्रत्ययः। 'श्रोत्रियंश्छन्दोधीते' इति निपातः। 'श्रोत्रियच्छान्दसौ समौ' इत्यमरः। कृत्वा यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः सान्तःपुरः सन्। वायुरभ्रवृन्दैरिव। सैन्यैरनुद्रुतोऽनुगतः सन्नयोध्याभिमुखः प्रतस्थे॥

अन्वयः—सः कुशावतीं श्रोत्रियसात् कृत्वा यात्रानुकूले अहनि सावरोधः सन् वायुः अभ्रवृन्दैः इव सैन्यैः अनुद्रुतः सन् अयोध्याभिमुखः प्रतस्थे।

व्याख्या—सः=राजा कुशः कुशावतीं=स्वकीयराजधानीं छन्दोऽधीयते इति श्रोत्रियाः=छान्दसाः तेषु श्रोत्रियेषु अधीनां कृत्वा इति श्रोत्रियसात् कृत्वा=विधाय यात्रायाः=गमनस्य अनुकूलः=उपयुक्तः इति यात्रानुकूलस्तस्मिन् यात्रानुकूले=शोभनमुहूर्तयुक्ते अहनि=दिने अवरुध्यन्तेऽत्रेति अवरोधः, अवरोधेन=अन्तःपुरेण सहितः सावरोधः सन् वायुः=पवनः

अभ्राणां = मेघानां वृन्दानि = समूहास्तैः अभ्रवृन्दैः इव = यथा सेनायां समवेताः सैन्यास्तैः सैन्यैः = सैनिकैः अनुद्रुतः = अनुगतः सन् अयोध्यायाः = कुलराजधान्याः अभिमुखः = संमुखः इति अयोध्याभिमुखः प्रतस्थे = चचाल, अयोध्यां ययौ, इत्यर्थः ।

समासः—यात्रायाः अनुकूलः यात्रानुकूलस्तस्मिन् यात्रानुकूले । अवरोधेन सहितः सावरोधः । अभ्राणां वृन्दानि तैः अभ्रवृन्दैः । अयोध्यायाः अभिमुखः, इति अयोध्याभिमुखः ।

हिन्दी—राजा कुश, कुशावती को वैदिक ब्राह्मणों को सौंप कर (अर्थात् ब्राह्मणों को देकर) यात्रा के योग्य शुभ दिन में अपने अन्तःपुर के (रानियों का समुदाय) साथ अयोध्या की ओर चल पड़ा, उस समय, सेना उनके पीछे पीछे ऐसे चल रही थी जैसे वायु के पीछे पीछे बादलों का झुण्ड चलता है ॥ २५ ॥

सा केतुमालोपवना बृहद्भिर्विहारशैलानुगतेव नागैः ।
सेना रथोदारगृहा प्रयाणे तस्याभवज्जंगमराजधानी ॥ २६ ॥

केतुमाला एवोपवनानि यस्याः सा बृहद्भिर्नागैर्गजैर्विहारशैलैः क्रीडाशैलैरनुगतेव स्थिता । रथा एवोदारगृहा यस्याः सा सा सेना तस्य कुशस्य प्रयाणे जंगमराजधानी संचारिणी नगरीवाभवद् बभूव ॥

अन्वयः—केतुमालोपवना बृहद्भिः नागैः विहारशैलानुगता इव 'स्थिता' रथोदारगता सा सेना तस्य प्रयाणे जंगमराजधानी अभवत् ।

व्याख्या—केतूनां = ध्वजानां मालाः = पंक्तयः एव उपवनानि = उद्यानानि यस्याः सा केतुमालोपवना बृहद्भिः = विशालैः नगे भवाः नागास्तैः नागैः = गजैः विहाराय विहारार्थं = क्रीडार्थं वा शैलाः = पर्वताः, इति विहारशैलास्तैः अनुगता = अनुयाता युक्ता इत्यर्थः । इति विहारशैलानुगता इव = यथा स्थिता, रथाः = स्यन्दना एव उदाराः = उत्कृष्टाः, उन्नताः गृहाः = भवनानि यस्याः सा रथोदारगृहा सा = कुशानुगता सेना = सैन्यं वाहिनी, इत्यर्थः । तस्य = कुशस्य प्रयाणे = गमने कुटिलं गच्छतीति जंगमा = संचारिणी चासौ राजधानी = नगरी, इति जंगमराजधानी इव = यथा अभवत् = जाता ।

समासः—केतूनां माला एव उपवनानि यस्याः सा केतुमालोपवना, विहारार्थं शैलाः विहारशैलास्तैः अनुगता, इति विहारशैलानुगता । रथा एव उदाराः गृहाः यस्याः सा रथोदारगृहा । जंगमा चासौ राजधानी इति जंगमराजधानी ।

हिन्दी—राजा कुश की यात्रा के समय वह सेना, चलती फिरती राजधानी के समान लग रही थी । इसलिये कि-झण्डों की लाइन ही उसके उपवन (बगीचे) थे, तथा विशाल हाथियों से क्रीडा के पर्वतों से अनुगत थी, अर्थात् हाथी रूप पर्वतवाली और रथ ही उस जंगमनगरी के उत्कृष्ट भवन थे ॥ २६ ॥

तेनातपत्रामलमण्डलेन प्रस्थापितः पूर्वनिवासभूमिम् ।
बभौ बलौघः शशिनोदितेन वेलामुदन्वानिव नीयमानः ॥ २७ ॥

आतपत्रमेवामलं मण्डलं बिम्बं यस्य तेन तेन कुशेन पूर्वनिवासभूमिमयोध्यां प्रति प्रस्थापितो बलौघः। आतपत्रवदमलमण्डलेनोदितेन शशिना वेलां नीयमानः प्राप्यमाणः। उदकमस्यास्तीत्युदन्वान् उदधिरिव बभौ। 'उदन्वानुदधौ च' इति निपातनात्साधुः॥

अन्वयः—आतपत्रामलमण्डलेन तेन पूर्वनिवासभूमिं 'प्रति' प्रस्थापितः बलौघः उदितेन शशिना वेलां नीयमानः उदन्वान् इव बभौ।

व्याख्या—आतपात् = घर्मात् त्रायते इति आतपत्रं = छत्रम् एव अमलं = विशुद्धं मण्डलं = बिम्बं यस्य स तेन आतपत्रामलमण्डलेन तेन = राज्ञा कुशेन निवासस्य भूमिरिति निवासभूमिः, पूर्वेषां = रघुवंशीयानां निवासभूमिः = राजधानी तां पूर्वनिवासभूमिम्, अयोध्यां प्रति प्रस्थापितः = प्रेषितः बलस्य = सेनायाः ओघः = समूहः, इति बलौघः, आतपत्रवत् = श्वेतच्छत्रवत् अमलं = निर्मलं मण्डलं यस्य स तेन तथोक्तेन उदितेन = उदयं गतेन शशिना = चन्द्रेण वेलां = सागरतटं नीयतेऽसौ नीयमानः = प्राप्यमाणः उदकं = जलमस्यास्तीति उदन्वान् = समुद्रः इव = यथा बभौ = शुशुभे।

समासः—आतपत्रमेव अमलं मण्डलं यस्य स तेन आतपत्रामलमण्डलेन। चन्द्रपक्षे—आतपत्रवत् अमलं मण्डलं यस्य स तेन तथोक्तेन। पूर्वेषां निवासस्य भूमिरिति पूर्वनिवासभूमिस्तां पूर्वनिवासभूमिम्। बलस्य ओघः बलौघः।

हिन्दी—श्वेतछत्ररूपी स्वच्छ मण्डल वाले (सुफेदछत्रधारी) कुश के द्वारा अपने पूर्वजों की राजधानी अयोध्या की ओर ले जाई जाती वह सेना उसी प्रकार सुशोभित हो रही थी, जैसे कि श्वेतच्छत्र के समान निर्मल बिम्बवाले उदय हुआ चन्द्रमा, सागर को किनारे की ओर खींच ले जाता है॥ २७॥

तस्य प्रयातस्य वरूथिनीनां पीडामपर्याप्तवतीव सोढुम्।
वसुंधरा विष्णुपदं द्वितीयमध्यारुरोहेव रजश्छलेन॥ २८॥

प्रयातस्य प्रस्थितस्य तस्य कुशस्य वरूथिनीनां सेनानां कर्त्रीणाम्। 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति कर्तरि षष्ठी। पीडां सोढुमपर्याप्तवतीवाशक्तेव वसुंधरा रजश्छलेन द्वितीयं विष्णुपदमाकाशमध्यारुरोहेव। इत्युत्प्रेक्षा॥

अन्वयः—प्रयातस्य तस्य वरूथिनीनां पीडां सोढुम् अपर्याप्तवती इव वसुन्धरा रजश्छलेन द्वितीयं विष्णुपदम् अध्यारुरोह इव।

व्याख्या—प्रयातस्य = प्रचलितस्य तस्य = कुशस्य व्रियते रथो येन स वरूथः = रथावरणम् "वरूथो रथगुप्तिर्या" इत्यमरः। वरूथाः = रथावरणानि सन्ति यासु ताः वरूथिन्यस्तासां वरूथिनीनां = सेनानां (कर्त्रीणां) पीडां = व्यथां दुःखमिति यावत् सोढुं = सहनं कर्तुम् अपर्याप्तवती = असमर्था इव = यथा वसूनि = रत्नानि दधातीति वसुन्धरा = पृथिवी, रजसः = परागस्य छलं = व्याजस्तेन रजश्छलेन धूलीव्याजेन द्वाभ्यां पूर्णम् द्वितीयं तत् द्वितीयं विष्णोः पदं = स्थानमिति विष्णुपदम् = आकाशम् अध्यारुरोह = अधिरूढा इवेत्युत्प्रेक्षायाम्।

समासः—न पर्याप्तवती अपर्याप्तवती। विष्णोः पदमिति विष्णुपदं तत्। रजसः छलमिति रजश्छलम् तेन रजश्छलेन।

हिन्दी—चलते हुए राजा कुश की सेनाओं की पीड़ा (भार के दुःख) को सहन करने में असमर्थ हुई सी पृथिवी, मानो धूली के बहाने विष्णु के दूसरे पद (आकाश) में चढ़ गई। विष्णु का एक स्थान क्षीरसागर है और दूसरा स्थान आकाश है। दोनों विष्णुपद कहे जाते हैं॥ २८॥

उद्यच्छमाना गमनाय पश्चात्पुरो निवेशे पथि च व्रजन्ती।
सा यत्र सेना ददृशे नृपस्य तत्रैव सामग्र्यमतिं चकार॥ २९॥

पश्चात्कुशावत्याः सकाशाद्गमनाय प्रयाणाय तथा पुरोऽग्रे निवेशे निमित्ते। निवेष्टु चेत्यर्थः। उद्यच्छमानोद्योगं कुर्वती। 'समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे' इत्यस्य सकर्मकाधिकारत्वादात्मनेपदम्। पथि च व्रजन्ती नृपस्य कुशस्य सा सेना यत्र पश्चात्पुरो मध्ये वा ददृशे तत्रैव सामग्र्यमतिं कृत्स्नताबुद्धिं चकार। अपरिमिता तस्य सेनेत्यर्थः॥

अन्वयः—पश्चात् गमनाय पुरः निवेशे उद्यच्छमाना, पथि च व्रजन्ती नृपस्य सा सेना यत्र ददृशे तत्र एव सामग्र्यमतिं चकार।

व्याख्या—पश्चात् = कुशावत्याः नगर्याः सकाशात् गमनाय = प्रयाणाय प्रयातुमित्यर्थः। तथा = अन्यत्र पुरः = अग्रे निविशन्तेऽत्रेति निवेशः = तस्मिन् निवेशे = शिविरे, तात्कालिकसैन्य-वसतौ इत्यर्थः "निवेशः शिविरः शण्ढे" इत्यमरः। उद्यच्छमाना = उद्योगं कुर्वती, पथि = मार्गे च व्रजन्ती = चलन्ती नृपस्य = राज्ञः कुशस्य सा = विशाला सेना यत्र = यस्मिम् पश्चात्, पुरो मध्ये वा ददृशे = दृष्टा तत्रैव = तस्मिन्नेव स्थाने समग्रस्य भावः कर्म वा सामग्र्यं, सामग्र्यस्य = पूर्णतायाः मतिः = बुद्धिस्तां सामग्र्यमतिं चकार = कृतवती, कुशस्य अपरिमिता सेना आसी-दित्यर्थः।

हिन्दी—पहले = कुशावती से चलती हुई तथा आगे पड़ाव डालने के लिये उद्योग करती हुई और मार्ग में चलती हुई, राजा कुश की वह विशाल सेना जहाँ भी देखी गई, वहीं पर पूरी सेना जान पड़ती थी। अर्थात् कुश की सेना अपार थी, अतः जहाँ जो टुकड़ी दीखती थी वहीं पर पूरी सेना मालूम पड़ती थी॥ २९॥

तस्य द्विपानां मदवारिसेकात्खुराभिघाताच्च तुरंगमाणाम्।
रेणुः प्रपेदे पथि पङ्कभावं पङ्कोऽपि रेणुत्वमियाय नेतुः॥ ३०॥

नेतुस्तस्य कुशस्य द्विपानां मदवारिभिः सेकात्तुरंगमाणां खुराभिघाताच्च यथासंख्यं पथि रेणू रजः पङ्कभावं पङ्कतां प्रपेदे पङ्कोऽपि रेणुत्वमियाय। तस्य तावदस्तीत्यर्थः॥

अन्वयः—नेतुः तस्य द्विपानां मदवारिसेकात् तुरंगमाणां खुराभिघातात् च पथि रेणुः पङ्कभावं प्रपेदे पंकः अपि रेणुत्वम् इयाय।

व्याख्या—नयतीति नेता तस्य नेतुः = नायकस्य तस्य = कुशस्य द्वाभ्यां = मुखशुण्डाभ्यां पिबन्तीति द्विपाः = गजास्तेषां द्विपानां मदस्य = कटस्य वारि = जलं तेन मदवारिणा सेकः = सेचनमिति मदवारिसेकस्तस्मात् मदवारिसेकात् तुरेण = वेगेन गच्छन्तीति तुरंगमास्तेषां तुरंगमाणाम् = अश्वानाम् खुराणां = शफानाम् अभिघातः = ताडनं तस्मात् खुराभिघातात् च = समुच्चये, पथि = मार्गे रेणुः = धूलिः पंकस्य भावस्तं पंकभावं = कर्दमत्वं प्रपेदे = प्राप्ता पंकः = कर्दमः अपि रेणुत्वं = धूलिभावम् इयाय = गतः । "रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः" इत्यमरः ।

समासः—मदस्य वारि मदवारि, मदवारिणा सेकस्तस्मात् मदवारिसेकात् । खुराणाम् अभिघातस्तस्मात् खुराभिघातात् । पंकस्य भावस्तं पंकभावम् ।

हिन्दी—राजा कुश के हाथियों के मद जल से भींगने से रास्ते की धूली कीचड़ बन गई । और घोड़ों के खुरों की चोट (टाप) से कीचड़ भी धूली बन गया । हाथी और घोड़ों के आधिक्य से ऐसा हुआ ॥ ३० ॥

मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना ।
चकार रेवेव महाविरावा बद्धप्रतिश्रुन्ति गुहामुखानि ॥ ३१ ॥

वैन्ध्येषु विन्ध्यसंबन्धिषु कटकान्तरेषु नितम्बावकाशेषु । 'कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः' इत्यमरः । मार्गैषिणी मार्गावलोकिनी । अत एव बहुधा विभिन्ना । महाविरावा दीर्घशब्दा सा सेना । रेवेव नर्मदेव । 'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका' इत्यमरः । गुहामुखानि बद्धप्रतिश्रुन्ति प्रतिध्वानवन्ति चकाराकरोत् ॥

अन्वयः—वैन्ध्येषु कटकान्तरेषु मार्गैषिणी "अत एव" बहुधा विभिन्ना महारावा सा सेना रेवा इव गुहामुखानि बद्धप्रतिश्रुन्ति चकार ।

व्याख्या—विरुद्धं ध्यायति वि इध्यते वा विन्ध्यः विन्ध्ये भवाः वैन्ध्यास्तेषु वैन्ध्येषु = विन्ध्यपर्वतसम्बन्धिषु कटकानाम् = अद्रिनितम्बानां, पर्वतमध्यभागानामित्यर्थः । अन्तराणि = अवकाशास्तेषु कटकान्तरेषु मार्गं = पन्थानम् इच्छति तच्छीला मार्गैषिणी = मार्गावलोकिनी, मार्गान्वेषिणीत्यर्थः । अत एव बहुधा = अनेकधा विभिन्ना = विभक्ता महान् = दीर्घः विरावः = शब्दः यस्याः सा महाविरावा सा सेना = वाहिनी रेवा = नर्मदा इव = यथा गुह्यते याभिस्ताः गुहाः गुहानां = गह्वराणां मुखानि = अग्रभागाः इति गुहामुखानि तानि, प्रति = प्रथमशब्दं लक्ष्यीकृत्य श्रूयते इति प्रतिश्रुत् = प्रतिध्वनिः । बद्धा प्रतिश्रुत् येषु तानि बद्धप्रतिश्रुन्ति तानि, चकार = कृतवती।

समासः—मार्गस्य एषिणी मार्गैषिणी । कटकानां अन्तराणि तेषु कटकान्तरेषु । महान् विरावः यस्याः सा महाविरावा । गुहानां मुखानि, तानि गुहामुखानि । बद्धा प्रतिश्रुत् येषु तानि बद्धप्रतिश्रुन्ति, तानि ।

हिन्दी—मार्ग की खोज में लगी वह सेना, विन्ध्यपर्वत की घाटियों में अनेक टुकड़ियों में बँटी हुई, तथा नर्मदा नदी के समान गम्भीर गर्जन करती हुई चल रही थी, तब उस पर्वत की गुफाओं को प्रतिध्वनित कर दिया था । अर्थात् गूँजा दिया था ॥ ३१ ॥

स धातुभेदारुणयाननेमिः प्रभुः प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः ।
व्यलङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि ।। ३२ ।।

धातूनां गैरिकादीनां भेदेनारुणा याननेमी रथचक्रधारा यस्य । प्रयाणे ये ध्वनयः क्ष्वेड-हेषादयः तन्मिश्राणि तूर्याणि यस्यैवंविधः स प्रभुः कुशः । पुलिन्दैः किरातैरुपपादितानि समर्पिता-न्युपायनानि पश्यन् । विन्ध्यं व्यलङ्घयत् ॥

अन्वयः—धातुभेदारुणयाननेमिः प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः सः प्रभुः पुलिन्दैः उपपादितानि उपायनानि पश्यन् विन्ध्यं व्यलंघयत् ।

व्याख्या—धातूनां = गैरिकादीनां भेदेन = पेषणेन अरुणा = आरक्ता यानस्य = रथस्य नेमिः = चक्रधारा यस्य स धातुभेदारुणयाननेमिः, प्रयाणे = गमने ये ध्वनयः = क्ष्वेडहेषादयः इति प्रयाणध्वनयस्तैः मिश्राणि = मिलितानि तूर्याणि = मुरजादीनि यस्य स प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः, सः = कुशः प्रभुः = स्वामी राजा पुलिन्दैः = किरातैः उपाय्यन्ते इति तानि उपपादितानि = आनीय समर्पितानि उपायनानि = उपहारान् पश्यन् = अवलोकयन् विन्ध्यं = विन्ध्यनामानं पर्वतं व्यलंघयत् = उल्लंघितवान् ।

समासः—यानस्य नेमिः याननेमिः, धातूनां भेदः धातुभेदः तेन अरुणा याननेमिः, यस्य स धातुभेदारुणयाननेमिः, प्रयाणे ये ध्वनयः तैः मिश्राणि तूर्याणि यस्य स प्रयाणध्वनिमिश्रतूर्यः ।

हिन्दी—सेना के पहियों से पिसे, गेरू आदि धातुओं की धूल से जिसके रथ के पहिये लाल हो गये हैं और चलती हुई सेना के होहल्ले से जिसकी तुरही आदि की ध्वनि मिल गई थी, अर्थात् सेना के शब्द से बाजों के शब्द दब गये थे, ऐसे राजा कुश विन्ध्यवासी भिल्लों की भेंट की सामग्री को देखते हुए, विन्ध्याचल को लाँघ गये (पार कर गये) ॥ ३२ ॥

तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात्प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गङ्गाम् ।
अयत्नबालव्यजनीबभूवुर्हंसा नभोलङ्घनलोलपक्षाः ॥ ३३ ॥

तदीये वैन्ध्ये तीर्थेऽवतारे गजा एव सेतुस्तस्य बन्धाद्धेतोः प्रतीपगां पश्चिमवाहिनीं गङ्गा-मुत्तरतोऽस्य कुशस्य नभोलङ्घनेन लोलपक्षा हंसा अयत्नेन बालव्यजनीबभूवुश्चामराण्यभूवन् । अभूततद्भावे च्विः ॥

अन्वयः—तदीये तीर्थे गजसेतुबन्धात् प्रतीपगां गंगाम् उत्तरतः अस्य नभोलङ्घनलोलपक्षाः हंसाः अयत्नबालव्यजनीबभूवुः ।

व्याख्या—तस्य = विन्ध्यस्य अयं तदीयस्तस्मिन् तदीये = वैन्ध्ये तीर्थे = अवतारे गजाः = नागाः एव सेतुः = आलिः, इति गजसेतुस्तस्य बन्धः निर्माणं तस्मात् गजसेतुबन्धात् प्रतीपं = विरुद्धं गच्छतीति प्रतीपगा तां प्रतीपगां = पश्चिमवाहिनीं गंगां = भागीरथीम् उत्तरतः = परतीरं गच्छतः अस्य = राज्ञः कुशस्य नभसि = आकाशे लंघनं = गमनं तेन नभोलङ्घनेन लोलाः = चञ्चलाः पक्षाः = गरुतः येषां ते नभोलंघनलोलपक्षाः, हंसाः = मानसौकसः, न बालव्यजनमिति

अबालव्यजनम् अयत्नेन = अनायासेन अबालव्यजनानि बालव्यजनानि = रोमगुच्छकानि समपद्यन्त इति बालव्यजनीबभूवुः = चामराणि सञ्जातानि, इत्यर्थः । पद्येऽस्मिन् श्रीविश्वनाथकविराजेन 'अस्थानस्थपदत्वदोषः' प्रकटितः । तन्न युक्तम्, अत्राहि तदीयपदेन विन्ध्यस्य ग्रहणं नतु गंगायाः। विन्ध्यस्य प्रकृतत्वात् । अतो निर्दुष्टं पद्यमिदमिति ।

समासः—गजाः एव सेतुः गजसेतुः, तस्य बन्धस्तस्मात् गजसेतुबन्धात् । नभसि लंघनमिति नभोलंघनं, तेन लोलाः पक्षा येषां ते नभोलंघनलोलपक्षाः । अयत्नेन अबालव्यजनानि, बालव्यजनानि संजातानीति अयत्नबालव्यजनीबभूवुः ।

हिन्दी—विन्ध्याचल के घाट पर उल्टी बहती हुई गंगा पर हाथियों का पुल बान्धकर उससे गंगा को पार करने वाले इस राजा कुश के बिना प्रयत्न किये ही वे हंस चामर बन गये, जिनके कि आकाश में उड़ने से पंख हिल रहे थे । अर्थात् इधर-उधर हिलते हुए वे सफेद पंख ही चामर के समान थे । इस पद्य में साहित्यदर्पणकार ने अस्थानस्थपदता दोष दिया है सो ठीक नहीं, क्षतः तत्पद से विन्ध्य का ग्रहण है ॥ ३३ ॥

स पूर्वजानां कपिलेन रोषाद्भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम् ।
सुराऽलयप्राप्तिनिमित्तमम्भस्त्रैस्रोतसं नौलुलितं ववन्दे ॥ ३४ ॥

स कुशः कपिलेन मुनिना रोषाद्भस्मावशेषीकृता विग्रहा देहा येषां तेषां पूर्वजानां वृद्धानां सगराणां सुरालयस्य स्वर्गस्य प्राप्तौ निमित्तं नौभिर्लुलितं क्षुभितम् । त्रिस्रोतस इदं त्रैस्रोतसं गाङ्गमम्भो ववन्दे ॥

अन्वयः—सः कपिलेन रोषात् भस्मावशेषीकृतविग्रहाणां पूर्वजानाम् सुरालयप्राप्तिनिमित्तं नौलुलितं त्रैस्रोतसम् अम्भः ववन्दे ।

व्याख्या—सः = राजा कुशः कपिलेन = मुनिना रोषात् = क्रोधात् भस्म = भूतिः अवशेषम् = अवशिष्टं येषां ते भस्मावशेषाः न भस्मावशेषाः अभस्मावशेषाः संपद्यमानाः भस्मावशेषीकृताः विग्रहाः = देहाः येषां ते तेषां भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम् पूर्वस्मिन् काले जाताः पूर्वजास्तेषां पूर्वजानां = वृद्धानाम्, सागराणां सुरालयस्य = स्वर्गस्य प्राप्तिः = अवाप्तिः, तस्यां निमित्तं = कारणं तत् सुरालयप्राप्तिनिमित्तं नौभिः = नौकाभिः लुलितं = क्षुभितं = प्रकम्पितं तत् नौलुलितं, त्रीणि स्रोतांसि यस्याः त्रिस्रोताः, त्रिस्रोतसः = भागीरथ्याः इदं त्रैस्रोतसं तत् अम्भः = जलं, गंगाजलं, गंगामित्यर्थः ववन्दे = प्रणनाम ।

समासः—भस्मावशेषीकृताः विग्रहाः येषां ते तेषां भस्मावशेषीकृतविग्रहाणाम् । पूर्वं जाताः पूर्वजास्तेषां पूर्वजानाम् । सुराणाम् आलयः सुरालयः, सुरालयस्य प्राप्तिः, तस्यां निमित्तं तत् सुरालयप्राप्तिनिमित्तम् । नौभिः लुलितं, तत् नौलुलितम् ।

हिन्दी—राजा कुशने, कपिलमुनि ने क्रोध से जिनके शरीरों को भस्म कर दिया था, उन अपने पूर्वजों (सगर के ६० हजार पुत्रों) की स्वर्ग की प्राप्ति का कारण (स्वर्ग में पहुँचाने वाली) तीन स्रोतों वाली गंगा जी के जल को प्रणाम किया ॥ ३४ ॥

इत्यध्वनः कैश्चिदहोभिरन्ते कूलं समासाद्य कुशः सरय्वाः ।
वेदिप्रतिष्ठान्विततध्वराणां यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम् ॥ ३५ ॥

इति कैश्चिदहोभिरध्वनोऽन्तेऽवसाने कुशः सरय्वाः कूलं समासाद्य विततध्वराणां विस्तृतमखानां रघूणाम् । वेदिः प्रतिष्ठास्पदं येषां तान् । यूपान्यज्ञियपशुबन्धनस्तम्भाञ्छतशोऽपश्यत् ॥

अन्वयः—इति कैश्चित् अहोभिः अध्वनः अन्ते, कुशः सरय्वाः कूलं समासाद्य, विततध्वराणां रघूणां वेदिप्रतिष्ठान् शतशः यूपान् अपश्यत् ।

व्याख्या—इति = इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण कैश्चित् = कतिपयोभिः अहोभिः = दिनैः अध्वनः = मार्गस्य अन्ते = अवसाने, अतिक्रान्ते सति इत्यर्थः । कुशः = राजा सरय्वाः = एतन्नामकनद्याः कूलं = तटं समासाद्य = प्राप्य वितताः = विस्तृता अध्वराः = यज्ञाः = मखाः यैस्ते तेषां विततध्वराणाम् रघूणां = रघुवंशीयानां विद्यते = शोधनेन ज्ञायते, विचार्यते, प्राप्यते वा वेदिः = परिष्कृता भूमिः प्रतिष्ठा = आस्पदं, स्थानं येषां ते तान् वेदिप्रतिष्ठान् शतशः = शतसंख्याकान्, असंख्यान् यूपान् = स्तम्भान् अपश्यत् = अवलोकयामास ।

समासः—वेदिः प्रतिष्ठा येषां ते तान् वेदिप्रतिष्ठान् । वितताः अध्वराः यैस्ते तेषां विततध्वराणाम् ।

हिन्दी—इस प्रकार कुछ दिनों में रास्ता समाप्त करके राजा कुश ने सरयू नदी के किनारे पर पहुँच कर बड़े-बड़े यज्ञों को सम्पन्न करने वाले रघुवंशियों के गाड़े हुए वेदियों पर सैकड़ों यज्ञस्तम्भ देखे ॥ ३५ ॥

आधूय शाखाः कुसुमद्रुमाणां स्पृष्ट्वा च शीतान्सरयूतरङ्गान् ।
तं क्लान्तसैन्यं कुलराजधान्याः प्रत्युज्जगामोपवनान्तवायुः ॥ ३६ ॥

कुलराजधान्या उपवनान्तवायुः कुसुमद्रुमाणां शाखा आधूयेषद्धूत्वा । सुरभिर्मन्दश्चेत्यर्थः । शीतान्सरयूतरङ्गांश्च स्पृष्ट्वा । अनेन शैत्योक्तिः । क्लान्तसैन्यं तं कुशं प्रत्युज्जगाम ॥

अन्वयः—कुलराजधान्याः उपवनान्तवायुः कुसुमद्रुमाणां शाखाः आधूय शीतान् सरयूतरंगान् स्पृष्ट्वा क्लान्तसैन्यं तं प्रत्युज्जगाम ।

व्याख्या—कुलस्य = वंशस्य राजधानी = प्रधाननगरी इति कुलराजधानी तस्याः कुलराजधान्याः, उपवनानाम् = आरामाणाम् अन्तः = मध्यस्तस्य वायुः = पवनः, इति उपवनान्तवायुः, कुसुमानि = पुष्पाणि प्रधानानि येषु ते कुसुमप्रधानाः कुसुमप्रधानाश्च ते द्रुमाः = वृक्षाः इति कुसुमद्रुमाः, शाकपार्थिवादित्वात् उत्तरपदलोपः । तेषां कुसुमद्रुमाणां शाखाः = लताः "समे शाखालते" इत्यमरः । आधूय = किंचित् प्रकम्प्य, अनेन सुरभित्वं मन्दत्वं व्यज्यते । शीतान् = शीतलान् सरय्वाः = सरयूनद्याः तरंगाः = ऊर्मयः, तान् सरयूतरंगान् स्पृष्ट्वा = उपस्पृश्य, आलिंग्येत्यर्थः । अनेन शीतलत्वोक्तिः । क्लान्तं = म्लानं सैन्यं = सेना यस्य स तं क्लान्तसैन्यं तं = राजानं कुशं प्रत्युज्जगाम = प्रत्यद्गतः, राज्ञः स्वागतार्थं वायुः सम्मुखमागत इत्यर्थः ।

समासः—कुसुमप्रधानाः द्रुमाः, कुसुमद्रुमास्तेषां कुसुमद्रुमाणाम्। सरय्वाः तरंगास्तान् सरयूतरंगान्। क्लान्तं सैन्यं यस्य स तं क्लान्तसैन्यम्। कुलस्य राजधानी कुलराजधानी तस्याः कुलराजधान्याः। उपवनानाम् अन्तः, तस्य वायुः उपवनान्तवायुः।

हिन्दी—अपने कुल की परम्परागत राजधानी अयोध्या के उपवनों के बीच से निकले वायु ने, फूलों से लदी हुई डालियों को जरा हिलाकर, और सरयू की शीतल तरंगों का स्पर्श करके, सेना सहित थके हुए राजा कुश का सामने से अभिनन्दन किया, अर्थात् शीतल मन्द सुगन्ध वायु ने उनके श्रम को दूर किया ॥ ३६ ॥

अथोपशल्ये रिपुमग्नशल्यस्तस्याः पुरः पौरसखः स राजा।
कुलध्वजस्तानि चलध्वजानि निवेशयामास बली बलानि ॥ ३७ ॥

अथ रिपुषु मग्नं शल्यं शङ्कुः शरो वा यस्य सः। 'शल्यं शङ्कौ शरे वंशे' इति विश्वः। पौराणां सखा पौरसखः कुलस्य ध्वजश्चिह्नभूतो बली स राजा चलाश्चलन्तो वा ध्वजा येषां तानि तानि बलानि सैन्यानि तस्याः पुरः पुर्या उपशल्ये ग्रामान्ते। 'ग्रामान्त उपशल्यं स्यात्' इत्यमरः। निवेशयामास ॥

अन्वयः—अथ रिपुमग्नशल्यः पौरसखः कुलध्वजः बली सः, चलध्वजानि तानि बलानि तस्याः पुरः उपशल्ये निवेशयामास।

व्याख्या—अथ = अनन्तरं रिपुषु = शत्रुषु मग्नं = लीनं शल्यं = शंकुः, सायकं वा यस्य सः, रिपुमग्नशल्यः "वा पुंसि शल्यं शंकु र्ना" इत्यमरः। "क्ष्वेडाशंकुशरे शल्यं ना" इति च कोषः। पुरे भवाः पौराः, पौराणां = नागरिकाणां सखा = मित्रमिति पौरसखः कुलस्य = रघुवंशस्य ध्वजः = चिह्नभूतः, इति कुलध्वजः बलमस्यास्तीति बली = बलवान् सः, राजा, कुशः चलाः = चंचला दोधूयमानाः ध्वजाः = पताकाः येषां तानि चलध्वजानि तानि बलानि = सैन्यानि, सैनिकानित्यर्थः। तस्याः पुरः = नगर्याः, अयोध्यायाः शल्यम् उपगतः, उपशल्यम् = ग्रामान्ते, उपकण्ठमित्यर्थः। "उपकण्ठोपशल्ये द्वे" इति त्रिकाण्डशेषः। "ग्रामान्त उपशल्यं स्यादि"त्यमरः। निवेशयामास = स्थापयमास।

समासः—रिपुषु मग्नं शल्यं यस्य स रिपुमग्नशल्यः। पौराणां सखा, इति पौरसखः। कुलस्य ध्वजः इति कुलध्वजः। चलाः ध्वजाः येषां तानि चलध्वजानि तानि। शल्यमुपगतः इति उपशल्यम्।

हिन्दी—और वहाँ पहुँचने पर शत्रुओं के ऊपर बाण गाड़ने वाले, (शत्रुओं के संहारक) नागरिकों के मित्र, (पालक) तथा अपने कुल को चमकानेवाले बलवान् उस राजा कुश ने, फहराती ध्वजा वाले अपने सैनिकों को उस नगर अयोध्या के आस-पास के स्थानों पर ठहरा दिया। अर्थात् नगर के बाहर ही पड़ाव डाल दिया ॥ ३७ ॥

तां शिल्पिसंघाः प्रभुणा नियुक्तास्तथागतां संभृतसाधनत्वात्।
पुरं नवीचक्रुरपां विसर्गान्मेघा निदाघग्लपितामिवोर्वीम् ॥ ३८ ॥

प्रभुणा नियुक्ताः शिल्पिनां तक्षादीनां संघाः संभृतसाधनत्वान्मिलितोपकरणत्वात्तां तथागताम्। शून्यामित्यर्थः। पुरमयोध्याम्। मेघा अपां विसर्गाज्जलसेकान्निदाघग्लपितां ग्रीष्मतप्तामुर्वीमिव। नवीचक्रुः परिपूरयांचक्रुः॥

अन्वयः—प्रभुणा नियुक्ताः शिल्पिसंघाः सम्भृतसाधनत्वात् तां तथागतां पुरं मेघाः अपां विसर्गात् निदाघग्लपिताम् उर्वीम् इव नवीचक्रुः।

व्याख्या—प्रकर्षेण भवतीति प्रभुः तेन प्रभुणा = स्वामिना कुशेन नियुक्ताः = आदिष्टाः शिल्पमस्ति येषां ते शिल्पिनः, शिल्पिनां = कलाविदां, तक्षादीनामित्यर्थः संघाः = समूहाः, इति शिल्पिसंघाः सम्भृतानि = संगृहीतानि साधनानि = उपकरणानि यैस्ते, तेषां भावस्तत्वं तस्मात् सम्भृतसाधनत्वात् तां तथागतां = जनवियुक्तां शून्यामित्यर्थः। पुरम् = अयोध्यां मेघाः = पयोदाः अपां = जलानां विसर्गात् = त्यागात्, वर्षणादित्यर्थः। निदाघेन = ग्रीष्मेण ग्लपिता = तप्ता तां निदाघग्लपिताम् उर्वीं = पृथिवीम् इव = यथा नवीचक्रुः = नूतनां कृतवन्तः, परिष्कृतां सुशोभिताञ्च कृतवन्तः इत्यर्थः।

समासः—शिल्पिनां संघाः शिल्पिसंघाः। निदाघेन ग्लपिता निदाघग्लपिता तां निदाघग्लपिताम्। संभृतानि साधनानि यैस्ते संभृतसाधनाः तेषां भावस्तत्वं तस्मात् संभृतसाधनत्वात्।

हिन्दी—जिस प्रकार बादल जल बर्षाकर गरमी से तपी सूखी धरती को हरी भरी बना देते हैं, उसी प्रकार राजा कुश के द्वारा लगाए गए कारीगरों के समूह ने सब सामग्री से पूर्ण होने के कारण, उस सूनी उजाड़ पड़ी अयोध्या को सजाकर नई बना दिया॥ ३८॥

ततः सपर्यां सपशूपहारां पुरः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः।
उपोषितैर्वास्तुविधानविद्भिर्निर्वर्तयामास रघुप्रवीरः॥ ३९॥

ततो रघुप्रवीरः कुशः प्रतिमा देवताप्रतिकृतयः। अर्च्या इत्यर्थः। परार्ध्यप्रतिमागृहायाः प्रशस्तदेवतायतनायाः पुर उपोषितैर्वास्तुविधानविद्भिः प्रयोज्यैः पशूपहारैः सहितां सपशूपहारां सपर्यां निर्वर्तयामास कारयामास। अत्र ण्यन्ताण्णिच्पुनरित्यनुसंधेयम्। अन्यथा वृतेरकर्मकस्य करोत्यर्थत्वे कारयत्यर्थाभावप्रसङ्गात्। भवितव्यं वृतेरण्यन्तकर्त्रा प्रयोज्यत्वेन तन्निर्देशात्प्रयोगान्तरस्यापेक्षितत्वात्॥

अन्वयः—ततः रघुप्रवीरः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः पुरः उपोषितैः वास्तुविधानविद्भिः सपशूपहारां सपर्यां निर्वर्तयामास।

व्याख्या—ततः = नगरपरिष्करणानन्तरम् रघुषु = रघुकुलेषु प्रवीरः = श्रेष्ठः, इति रघुप्रवीरः = कुशः परस्मिन्नर्थे भवाः परार्ध्याः। परार्ध्यानां = प्रशस्तानां, श्रेष्ठानामित्यर्थः। प्रतिमानां = मूर्तीनां गृहाः = मन्दिराणि यस्यां सा तस्याः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः पुरः = अयोध्यायाः उपोषितैः = कृतोपवासैः वसन्त्यत्र वास्तुः। वास्तूनां = भवनानां विधानं = निर्माणं विदन्ति = जानन्तीति वास्तुविधानविदः तैः वास्तुविधानविद्भिः, वास्तुकर्मज्ञैर्वा प्रयोज्यैः पशूनां = छागा-

दीनाम् उपहाराः = बलयः इति पशूपहाराः तैः सहिता = युक्ता तां सपशूपहारां सपर्यां = पूजां निर्वर्तयामास = कारयामास ।

समासः—रघुषु प्रवीरः रघुप्रवीरः । प्रतिमानां गृहाः प्रतिमागृहाः, परार्ध्याः प्रतिमागृहाः यस्यां सा परार्ध्यप्रतिमागृहास्तस्याः परार्ध्यप्रतिमागृहायाः । वास्तूनां विधानानि इति वास्तुविधानानि तेषां विदः तैः वास्तुविधानविद्भिः । पशूनामुपहाराः पशूपहाराः, पशूपहारैः सहिता तां सपशूपहाराम् ।

हिन्दी—नगर की मरम्मती और सफाई हो जाने पर, व्रत उपवास करने वाले तथा भवन निर्माण के जानकारों (या वास्तुयश के विद्वानों) के द्वारा रघुओं में श्रेष्ठ राजा कुश ने श्रेष्ठ प्रतिमाओं के घरों वाली (या सुन्दर मन्दिरों वाली) अयोध्या नगरी की पशु बलिदान सहित सविधि पूजा कराई ॥ ३९ ॥

तस्याः स राजोपपदं निशान्तं कामीव कान्ताहृदयं प्रविश्य ।
यथार्हमन्यैरनुजीविलोकं संभावयामास यथाप्रधानम् ॥ ४० ॥

स कुशस्तस्याः पुरः संबन्धि राजोपपदं राजशब्दपूर्वं निशान्तम् । राजभवनमित्यर्थः । 'निशान्तं भवनोषसोः' इति विश्वः । कामी कान्ताहृदयमिव प्रविश्य । अन्यैर्निशान्तैरनुजीविलोकममात्यादिकं यथाप्रधानं मान्यानुसारेण । यथार्हं यथोचितम् । तत्तदुचितगृहैरित्यर्थः । संभावयामास ॥

अन्वयः—सः तस्याः राजोपपदं निशान्तं कामी कान्ताहृदयम् इव प्रविश्य अन्यैः अनुजीविलोकं यथाप्रधानं यथार्हं सम्भावयामास ।

व्याख्या—सः = कुशः तस्याः = पुरः, अयोध्यायाः पदस्य समीपम् उपपदं राजन्निति शब्दः उपपदं = समीपं यस्य तत् राजोपपदं तत् = राजशब्दपूर्वं, निशायां = रात्रौ अस्यतेस्म = गम्यतेस्म, इति निशान्तं = भवनम्, राजभवनमित्यर्थः । "निशान्तं सदनं वस्त्यमगारं मन्दिरं पुरम्" इति वाचस्पतिः । कामी = प्रेमी स्त्रैण इत्यर्थः कान्तायाः = प्रियायाः हृदयं = चित्तम् इव = यथा प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा अन्यैः = अपरैः, भवनैः, अनुजीवन्तीति अनुजीविनः, तेषां लोकः = समुदायः, इति अनुजीविलोकस्तम् अनुजीविलोकम् = अमात्यादिकम् प्रधानमनतिक्रम्य यथाप्रधानं = मान्यानुसारेण यथार्हं = यथायोग्यं तत्तद्योग्यभवनैरित्यर्थः । सम्भावयामास = सम्भावितवान् ।

समासः—पदस्य समीपम् उपपदम्, पदमुपगतो वा उपपदम् । राजन् इति उपपदं यस्य तत् राजोपपदम् । कान्तायाः हृदयमिति कान्ताहृदयं तत् । अनुजीविनां लोकस्तम् अनुजीविलोकम् । प्रधानमनतिक्रम्य यथाप्रधानम् ।

हिन्दी—जिस प्रकार कामी पुरुष कामिनी स्त्री के हृदय में घुस जाता है, उसी प्रकार राजा कुश ने उस अयोध्यानगरी के राजभवन में प्रवेश करके,और दूसरे भवनों से अपने अनुयायी मंत्री आदि लोगों का ठीक योग्यतानुसार सत्कार कर दिया । अर्थात् जो जिसके योग्य था वह घर उनको दे दिया ॥ ४० ॥

सा मन्दुरासंश्रयिभिस्तुरंगैः शालाविधिस्तम्भगतैश्च नागैः ।
पूराबभासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी ॥ ४१ ॥

विपणिस्थानि पण्यानि क्रयविक्रयार्हवस्तूनि यस्याः सा । 'विपणिः पण्यवीथिका' इत्यमरः । सा पूरयोध्या मन्दुरासंश्रयिभिरश्वशालासंश्रयणशीलैः । 'वाजिशाला तु मन्दुरा' इत्यमरः । 'जिदृक्षि–' इत्यादिनेनिप्रत्ययः । तुरंगैरश्वैः । शालासु गृहेषु ये विधिना स्थापिताः स्तम्भास्तान्गतैः प्राप्तैर्नागैश्च । सर्वाङ्गेषु नद्धान्याभरणानि यस्याः सा नारीव । आबभासे ॥

अन्वयः—विपणिस्थपण्या सा पूः मन्दुरासंश्रयिभिः तुरंगैः, शालाविधिस्तम्भगतैः नागैः सर्वांगनद्धाभरणा नारी इव आबभासे ।

व्याख्या—विपणन्तेऽत्र विपणिः, विपणौ = पण्यवीथिकायां तिष्ठन्ति इति विपणिस्थानि पण्यानि = क्रयविक्रययोग्यवस्तूनि यस्याः सा विपणिस्थपण्या सा = प्रसिद्धा **पूः** = नगरी अयोध्या मन्दन्तेऽत्र मन्दुरा, मन्दुरां = वाजिशालां संश्रयन्ते तच्छीलाः मन्दुरासंश्रयिणः तैः मन्दुरासंश्रयिभिः, अश्वशालास्थितैरित्यर्थः । तुरंगैः = अश्वैः विधिना = विधानेन स्थापिताः स्तम्भाः = यूपाः, विधिस्तम्भाः । शालासु = गजगृहेषु ये विधिस्तम्भाः, इति शालाविधिस्तम्भाः, तान् गताः = प्राप्ताः, तत्र बद्धा इत्यर्थः, तैः शालाविधिस्तम्भगतैः, नागैः = हस्तिभिश्च सर्वाणि च तानि अंगानि सर्वांगानि, सर्वांगेषु = अखिलावयवेषु नद्धानि = धारितानि, आभरणानि = भूषणानि यस्याः सा सर्वांगनद्धाभरणा नारी = स्त्री इव = यथा आबभासे = समन्तात् शुशुभे ।

समासः—मन्दुरायां संश्रयिणस्तैः मन्दुरासंश्रयिभिः । विधिना स्थापिताः स्तम्भाः, विधिस्तम्भाः शालासु ये विधिस्तम्भास्तत्र गतास्तैः शालाविधिस्तम्भगतैः । विपणिस्थानि पण्यानि यस्याः सा विपणिस्थपण्या । सर्वेषु अंगेषु नद्धानि आभरणानि यस्याः सा सर्वांगनद्धाभरणा ।

हिन्दी—जिसके बाजारों में खरीद बिक्री को वस्तुएँ सजाकर रखी हैं ऐसी वह अयोध्या नगरी, घुड़शाला में बन्धे घोड़ों से, तथा हाथियों की शालाओं में विधि से गाड़े गये खूटों में बन्धे हाथियों से ऐसी सुन्दरी लग रही थी मानों सारे शरीर में आभूषण पहने हुई कोई स्त्री हो ॥ ४१ ॥

वसन्स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेयः स्पृहयांबभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ॥ ४२ ॥

स मैथिलेयः कुशः पुराणशोभां पूर्वशोभामधिरोपितायां तस्यां रघूणां वसतावयोध्यायां वसन् । दिवो भर्त्रे देवेन्द्राय तथाऽलकेश्वराय कुबेरायापि न स्पृहयांबभूव । तावपि न गणयामासेत्यर्थः । 'स्पृहेरीप्सितः' इति संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । एतेनायोध्याया अन्यनगरातिशायित्वं गम्यते ॥

अन्वयः—सः मैथिलेयः पुराणशोभाम् अधिरोपितायां तस्यां रघूणां वसतौ वसन् दिवः भर्त्रे "तथा" अलकेश्वराय अपि न स्पृहयांबभूव ।

व्याख्या—सः = प्रसिद्धः मैथिल्याः अपत्यं पुमान् मैथिलेयः = कुशः पुराणा = प्राचीना,

चासौ शोभा = कान्तिः, इति पुराणशोभा तां पुराणशोभाम् ;अधिरोपितायां = कृतायां तस्यां वसन्त्यत्रेति वसतिः तस्यां वसतौ = अयोध्यायां वसन् = निवासं कुर्वन् दिवः = स्वर्गस्य भर्त्रे = इन्द्राय तथा अलति = भूषयतीति अलका तस्याः ईश्वरः = कुबेरः तस्मै अलकेश्वराय अपि न स्पृहयाम्बभूव = न स्पृहयाञ्चकार । इन्द्रं कुबेरञ्चापि न गणयामासेत्यर्थः ।

समासः—पुराणा चासौ शोभा पुराणशोभा तां पुराणशोभाम् । अलकाया ईश्वरः अलकेश्वरस्तस्मै अलकेश्वराय ।

हिन्दी—मिथिलेशकुमारी के पुत्र कुश ने, अपनी पुरानी शोभा एवं ऐश्वर्य वैभव को प्राप्त हुई, उस अपने पूर्वजों की राजधानी अयोध्या में रहते हुए, स्वर्ग के राजा इन्द्र, तथा अलका पुरी के राजा कुबेर की भी स्पृहा को छोड़ दिया। अर्थात् इन्द्र बनने एवं कुबेर बनने की भी इच्छा नहीं रखी ॥ ४२ ॥

कुशस्य कुमुद्वतीसंगमं प्रस्तौति—

अथास्य रत्नग्रथितोत्तरीयमेकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम् ।
निःश्वासहार्यांशुकमाजगाम घर्मः प्रियावेषमिवोपदेष्टुम् ॥ ४३ ॥

अथास्य कुशस्य । रत्नैर्मुक्तामणिभिर्ग्रथितान्युत्तरीयाणि यस्मिंस्तम् । एकान्तमत्यन्तं पाण्ड्वोः स्तनयोर्लम्बिनो हारा यस्मिंस्तम् । निःश्वासहार्याण्यतिसूक्ष्माण्यंशुकानि यत्र तम् । एवं शीतलप्रायं प्रियाया वेषं नेपथ्यमुपदेष्टुमिव घर्मो ग्रीष्म आजगाम ॥

अन्वयः—अथ अस्य रत्नग्रथितोत्तरीयम् एकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम् निश्वासहार्यांशुकम् प्रियावेषम् उपदेष्टुम् इव घर्मः आजगाम ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् अस्य = राज्ञः कुशस्य रत्नैः = मुक्ताहीरकमणिभिः ग्रथितानि = गुम्फितानि उत्तरीयाणि = संव्यानानि, उपरिधार्यवस्त्राणीत्यर्थः । यस्मिन् स तम् रत्नग्रथितोत्तरीयम्, संव्यानमुत्तरीयमित्यर्थः, एकान्तम् = अत्यन्तं पाण्डू = धवलौ यौ स्तनौ = कुचौ तयोः लम्बिनः = लम्बमानाः हाराः = मौक्तिकमालाः यस्मिन् स तम् एकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम्, निश्वासैः = श्वासप्रश्वासैः आहार्याणि = आहर्तुं योग्यानि अतिसूक्ष्माणीत्यर्थः, अंशुकानि = वस्त्राणि यस्मिन् स तं निश्वासहार्यांशुकम्, अतिशीतलम्, प्रियायाः = कान्तायाः वेषः = नेपथ्यं तं प्रियावेषम् उपदेष्टुं = कथयितुं स्मारयितुमित्यर्थः । इव = यथा घर्मः = ग्रीष्मः आजगाम = सम्प्राप्तः ।

समासः—रत्नैः ग्रथितानि उत्तरीयाणि यस्मिन् स तं रत्नग्रथितोत्तरीयम् । एकान्तं पाण्डू च तौ स्तनौ एकान्तपाण्डुस्तनौ, तयोः लम्बिनः हाराः यत्र स तम् एकान्तपाण्डुस्तनलम्बिहारम् । निश्वासैः हार्याणि अंशुकानि यस्मिन् स तं निश्वासहार्यांशुकम् । प्रियायाः वेषस्तं प्रियावेषम् ।

हिन्दी—अयोध्या के फिर से सुसम्पन्न होते ही ग्रीष्म ऋतु आ गया, जिसने आते ही मानों राजा कुश को उस प्रिया के वेष-भूषा का स्मरण करा दिया, जिसकी चुनरी में हीरा-

मोती आदि रत्न जड़े हों, तथा खूब गोरे स्तनों पर मोतियों के हार लटक रहे हों, और जिसका महीन कपड़ा सांस से उड़ रहा हो। अर्थात् सांस से उड़ने वाले सूक्ष्मवस्त्र पहने हुई वह प्रिया हो॥ ४३ ॥

अगस्त्यचिह्नादयनात्समीपं दिगुत्तरा भास्वति संनिवृत्ते ।
आनन्दशीतामिव बाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं ससर्ज ॥ ४४ ॥

अगस्त्यः चिह्नं यस्य तस्मादयनान्मार्गाद्दक्षिणायनाद्भास्वति समीपं संनिवृत्ते सति। उत्तरा दिक्। आनन्दशीतां बाष्पवृष्टिमिव। हैमवतीं हिमवत्संबन्धिनीं हिमस्रुतिं हिमनिष्यन्दं ससर्ज। अत्र प्रोषितप्रियासमागमसमाधिर्गम्यते ॥

अन्वयः—अगस्त्यचिह्नात् अयनात् भास्वति समीपं सन्निवृत्ते सति, उत्तरा दिक् आनन्दशीतां बाष्पवृष्टिम् इव हैमवतीं हिमस्रुतिं ससर्ज।

व्याख्या—अगं=विन्ध्यं स्त्यायति=स्तभ्नोति, इति अगस्त्यः=कुम्भसंभवः चिह्नं=लक्ष्म यस्य तत् तस्मात् अगस्त्यचिह्नात् अयनात्=मार्गात्, दक्षिणायनादित्यर्थः। भासः सन्त्यस्य असौ भास्वान् तस्मिन् भास्वति=सूर्ये समीपं=सन्निकटे सन्निवृत्ते=परावृत्ते सति उत्=ऊर्ध्वं तरन्ति यस्यां सा उत्तरा=उदीची दिक्=दिशा आनन्देन=हर्षेण शीता=शीतला ताम् आनन्दशीतां बाष्पाणाम्=अश्रूणां वृष्टिः=वर्षणं तां बाष्पवृष्टिम् इव=यथा हिमवतः इयं हैमवती तां हैमवतीं=हिमालयसंबन्धिनीं हिमस्य=तुषारस्य स्रुतिः=क्षरणं तां हिमस्रुतिं ससर्ज=विसृष्टवती।

समासः—अगस्त्यः चिह्नं यस्य तत्, तस्मात् अगस्त्यचिह्नात्। आनन्देन शीता ताम् आनन्दशीताम्। बाष्पाणां वृष्टिस्तां बाष्पवृष्टिम्। हिमस्य स्रुतिस्तां हिमस्रुतिम्।

हिन्दी—गर्मी में जो बरफ बहने लगा, वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो, अगस्त्यमुनि से चिह्नित मार्ग से (दक्षिण दिशा से) भगवान् भास्कर के अपने पास लौट आने पर उत्तर दिशा ने आनन्द से शीतल आसुओं की वर्षा के समान हिमालय से बरफ को बहा दिया हो। यहाँ प्रोषितभर्तृका के समागम की अभिव्यक्ति हो रही है॥ ४४ ॥

प्रवृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी ।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम् ॥ ४५ ॥

अतिमात्रं प्रवृद्धतापो दिवसः। अत्यर्थमेवानल्पं तन्वी कृशा क्षणदा चेत्येतावुभौ। विरोधक्रियया प्रणयकलहादिना विरोधाचरणेन विभिन्नौ सानुशयौ सानुतापौ जायापती दंपती इव आस्ताम्। तयोरपि तापकार्श्यसंभवात्तत्सदृशावभूतामित्यर्थः॥

अन्वयः—अतिमात्रं प्रवृद्धतापः दिवसः अत्यर्थम् एव तन्वी क्षणदा च इति उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ सानुशयौ जायापती इव आस्ताम्।

व्याख्या—अतिक्रान्तं वेलां मर्यादां वा, इति अतिमात्रम् = अत्यधिकं प्रवृद्धः = वृद्धिं गतः तापः = संतापो यस्य स प्रवृद्धतापः दिवसः = वासरः "दिवसवासरौ" इत्यमरः। अर्थं = विषयं, अतिक्रान्तमिति अत्यर्थम् एव = अधिकमेव तन्वी = क्षीणा = कृशा, इत्यर्थः। क्षणम् = उत्सवं, निर्व्यापारस्थितिं वा ददातीति क्षणदा = रात्रिः च इति = एतौ उभौ = द्वौ विरोधस्य क्रिया तया विरोधक्रियया = प्रणयकलहादिविरुद्धाचरणेन विभिन्नौ = पृथक् भूतौ अनुशयनम् अनुशयः, अनुशयेन = अनुतापेन सहितौ सानुशयौ "अथानुशयो दीर्घद्वेषानुतापयोः" इत्यमरः। जाया च पतिश्चेति जायापती = भार्यापती इव = यथा आस्ताम् = अभूताम्।

समासः—प्रवृद्धः तापः यस्य स प्रवृद्धतापः। विरोधस्य क्रिया विरोधक्रिया तया विरोधक्रियया। अनुशयेन सहितौ सानुशयौ। जाया च पतिश्चेति जायापती।

हिन्दी—अत्यन्त सन्ताप वाला (गरमी से तपा, कष्ट देने वाला) दिन तथा एकदम छोटी रात ये दोनों उन पश्चात्तापभरे (पछताते हुए) पति पत्नी के समान हो गए (दीखने लगे) जो कि आपस में प्रणय कलह करके अलग-अलग हो गये हों ॥ ४५ ॥

दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात्सोपानपर्वाणि विमुञ्चदम्भः।
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां नारीनितम्बद्वयसं बभूव ॥ ४६ ॥

दिने दिने प्रतिदिनं शैवलवन्त्यधस्ताद्यानि सोपानानां पर्वाणि भङ्गयस्तानि विमुञ्चत्। अत एवोद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणामम्भः। नारीनितम्बः प्रमाणमस्य नारीनितम्बद्वयसं बभूव। विहारयोग्यमभूदित्यर्थः। 'प्रमाणे द्वयसच्–' इति द्वयसच्प्रत्ययः॥

अन्वयः—दिने दिने शैवलवन्ति अधस्तात् सोपानपर्वाणि विमुञ्चत् अत एव उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणाम् अम्भः नारीनितम्बद्वयसं बभूव।

व्याख्या—दिने दिने = प्रतिदिनम् जले शेते तिष्ठतीति शैवलम्, शैवलमस्ति येषां तानि शैवलवन्ति = शैवालवन्ति अधस्तात् = अधोभागे यानि सोपानानाम् = आरोहणानाम् पर्वाणि = भंग्यः तानि सोपानपर्वाणि विमुञ्चत् = त्यजत् अत एव उत् = उपरि आगतं दण्डं = कमलनालं यस्य तत् उद्दण्डं च पद्मं = कमलं यस्मिन् तत् उद्दण्डपद्मं गृहस्य = भवनस्य दीर्घिकाः = वाप्यस्तासां गृहदीर्घिकाणाम् अम्भः = जलम् नार्याः = स्त्रियाः नितम्बः = स्त्रीकटीपश्चाद्भागः इति नारीनितम्बः प्रमाणमस्ति अस्य तत् नारीनितम्बद्वयसं बभूव = जातम्, स्त्रीणां विहारयोग्यं जातमित्यर्थः।

समासः—सोपानानां पर्वाणि सोपानपर्वाणि तानि सोपानपर्वाणि। उद्दण्डं पद्मं यस्मिन् तत् उद्दण्डपद्मम्। गृहस्य दीर्घिकाः तासां गृहदीर्घिकाणाम्। नार्याः नितम्बः प्रमाणमस्य तत् नारीनितम्बद्वयसम्।

हिन्दी—"ग्रीष्म ऋतु के कारण" प्रतिदिन (रोज-रोज) काई लगे सीढ़ियों के डण्डों को छोड़ता हुआ (कम होता हुआ) और इसीलिये कमल की नाल जिसमें ऊपर निकल आई है

(जल सूखने से) ऐसा, घर की बावलियों का जल, स्त्रियों की कमर तक ही (गहरा) रह गया। अर्थात् बावलियों का जल स्त्रियों के विहार के लायक हो गया, गहरा नहीं रहा ॥ ४६ ॥

वनेषु सायंतनमल्लिकानां विजृम्भणोद्गन्धिषु कुड्मलेषु ।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदः सशब्दं संख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार ॥ ४७ ॥

वनेषु विजृम्भणेन विकासेनोद्गन्धिषूत्कटसौरभेषु । 'गन्धस्य–' इत्यादिना समासान्त इकारादेशः । सायंतनमल्लिकानां कुड्मलेषु सशब्दं यथा तथा प्रत्येकमेकैकस्मिन्निक्षिप्तपदः । मकरन्दलोभादित्यर्थः । भ्रमर एषां कुड्मलानां संख्यां गणनां चकारेव ॥

अन्वयः—वनेषु विजृम्भणोद्गन्धिषु सायंतनमल्लिकानां कुड्मलेषु सशब्दं प्रत्येकनिक्षिप्तपदः भ्रमरः एषां संख्यां चकार इव ।

व्याख्या—वनेषु = काननेषु विजृम्भणेन = विकासेन उद्गन्धः = उत्कटसौरभं येषां ते तेषु विजृम्भणोद्गन्धिषु सायं भवाः सायंतन्यः = सायंकालिकाश्च ताः मल्लिकाः = तृणशून्यानि तासां सायंतनमल्लिकानाम् "तृणशून्यं तु मल्लिका, भूपदीशीतभीरुश्चेति" अमरः । कुड्मलेषु = मुकुलेषु शब्देन सहितं सशब्दं = सगुञ्जनं यथा स्यात्तथा प्रत्येकम् = एकैकस्मिन् निक्षिप्तं = स्थापितं पदं = चरणः येन स प्रत्येकनिक्षिप्तपदः, पुष्परसलोभादित्यर्थः भ्रमरः = द्विरेफः एषां = कुड्मलानां संख्यां = गणनां चकार = कृतवान् । इव = इति उत्प्रेक्षायाम् ।

समासः—विजृम्भणेन उत्कटः गन्धः येषां ते तेषु विजृम्भणोद्गन्धिषु । सायंतन्यश्च ताः मल्लिकाः, सायंतनमल्लिकास्तासां सायंतनमल्लिकानाम् । एकस्मिन् एकस्मिन् इति प्रत्येकं निक्षिप्तं पदं येन स प्रत्येकनिक्षिप्तपदः ।

हिन्दी—वनों में सायंकाल में खिलने से खूब तेज सुगन्धि वाली चमेली की कलियों में गुञ्जन करता हुआ, भौंरा, हर एक कली पर पैर रखकर मानो कलियों की गिनती करने लगा ॥ ४७ ॥

स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षताङ्के भूयिष्ठसंदष्टशिखं कपोले ।
च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीषपुष्पं सहसा पपात ॥ ४८ ॥

स्वेदानुविद्धमार्द्रं नूतनं नखक्षतमङ्को यस्य तस्मिन्कामिनीनां कपोले भूयिष्ठमत्यर्थं संदष्टशिखं विश्लिष्टकेसरम् । अत एव कर्णाच्च्युतमपि शिरीषपुष्पं सहसा न पपात ॥

अन्वयः—स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षतांके कामिनीनां कपोले भूयिष्ठसंदष्टशिखं (अत एव) कर्णात् च्युतम् अपि शिरीषपुष्पं सहसा न पपात ।

व्याख्या—स्वेदैः = घर्मोदकैः अनुविद्धं = संबद्धं, व्याप्तमित्यर्थः, आर्द्रं = क्लिन्नं नखक्षतं = कररुहविद्धम् अंकः यस्य स तस्मिन् स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षतांके भूयान् कामो यासां ताः तासां कामिनीनाम् = सुन्दरीणां कपोले = गण्डस्थले भूयिष्ठम् = अत्यन्तं संदष्टा = संश्लिष्टा शिखा =

केसरः यस्य तत् भूयिष्ठसंदष्टशिखम् अत एव कर्णात् = श्रोत्रात् च्युतं = पतितमपि शृणाति = झटिति म्लायतीति शिरीषः, शिरीषस्य = कपीतनस्य पुष्पं = कुसुममिति शिरीषपुष्पम् "शिरीषस्तु कपीतनः, भण्डिलोऽपि" इत्यमरः । सहसा = झटिति न पपात = न अपतत् ।

समासः—नखानां क्षतमिति नखक्षतम्, स्वेदैः अनुविद्धम् आर्द्रं नखक्षतम् अंकः यस्य तस्मिन् स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षतांके। भूयिष्ठं संदष्टा शिखा यस्य तत् भूयिष्ठसंदष्टशिखम्। शिरीषस्य पुष्पमिति शिरीषपुष्पम्।

हिन्दी—पसीने की बूंदों से भरे (व्याप्त) ताजे नखक्षतों से युक्त सुन्दरियों के कपोल (गाल) पर जिसके केसर खूब चिपक गये हैं, ऐसा शिरीष का फूल कान पर से गिर जाने पर भी तुरन्त जमीन में नहीं गिरता था ॥ ४८ ॥

यन्त्रप्रवाहैः शिशिरैः परीतान्रसेन धौतान्मलयोद्भवस्य ।
शिलाविशेषानधिशय्य निन्युर्धारागृहेष्वातपमृद्धिमन्तः ॥ ४९ ॥

ऋद्धिमन्तो धनिका धारागृहेषु यन्त्रधारागृहेषु शिशिरैर्यन्त्रप्रवाहैर्यन्त्रसंचारितसलिलपूरैः परीतान्व्याप्तान्मलयोद्भवस्य रसेन चन्दनोदकेन धौतान्क्षालिताञ्छिलाविशेषान्मणिमयासनान्यधिशय्य तेषु शयित्वाऽऽतपं निन्युरातपपरिहारं चक्रुः ॥

अन्वयः—ऋद्धिमन्तः धारागृहेषु शिशिरैः यंत्रप्रवाहैः परीतान् मलयोद्भवस्य रसेन धौतान् शिलाविशेषान् अधिशय्य आतपं निन्युः ।

व्याख्या—ऋद्धिः = समृद्धिरस्ति येषां ते ऋद्धिमन्तः = धनवन्तः धारायाः = यंत्रधारायाः गृहाणि = भवनानि तेषु धारागृहेषु शिशिरैः = शीतलैः यंत्रैः प्रवहन्ति = संचरन्तीति यंत्रप्रवाहास्तैः यंत्रप्रवाहैः, यंत्रेण संचारितैः जलपूरैः परीतान् = व्याप्तान् मलते = धरति चन्दनादिकमिति मलयः = चन्दनाद्रिस्तस्मात् उद्भवतीति मलयोद्भवस्तस्य मलयोद्भवस्य रसेन = चन्दनोदकेन धौतान् = क्षालितान् शिलासु विशेषास्तान् शिलाविशेषान् = मणिमयपीठानि अधिशय्य = शयित्वा आतपं = घर्मं निन्युः = आतपनिवारणं चक्रुरित्यर्थः ।

समासः—धाराणां गृहाणि तेषु धारागृहेषु। शिलानां विशेषास्तान् शिलाविशेषान्। यंत्राणां प्रवाहास्तैः यंत्रप्रवाहैः। मलयात् उद्भवस्तस्य मलयोद्भवस्य।

हिन्दी—समृद्धि वाले (धनी) लोग, फौवारों से सुसज्जित घरों में, उन संगमरमर की विशिष्ट शिलाओं (चौकी) पर सोकर गरमी को बिताते थे, जो कि ठण्डे ठण्डे फौवारों से घिरी हुई थीं, और चन्दन के जल से धुली हुई थीं ॥ ४९ ॥

स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु ।
कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे बलमङ्गनानाम् ॥ ५० ॥

वसन्तस्यात्ययः सहकारिणोऽत्ययेनातिक्रमेण मन्दवीर्योऽतिदुर्बलः कामः स्नानार्द्राश्च ते मुक्ताश्च। धूपसंचारणार्थमित्यर्थः। तेषु। अनुधूपवासं धूपवासानन्तरं विन्यस्ताः सायंतनमल्लिका येषु तेषु। अङ्गनानां केशेषु बलं लेभे। तैरुद्दीपित इत्यर्थः ॥

अन्वयः—वसन्तात्ययमन्दवीर्यः कामः स्नानार्द्रमुक्तेषु अनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु अंगनानां केशेषु बलं लेभे ।

व्याख्या—वसन्त्यत्र मदनोत्सवाः इति वसन्तः। वसन्तस्य = पुष्पसमयस्य, कामसहकारिणः इत्यर्थः। अत्ययः = अतिक्रमः, इति वसन्तात्ययस्तेन मन्दं = शिथिलं वीर्यं = बलं यस्य स वसन्तात्ययमन्दवीर्यः कामः = मदनः स्नानेन = आप्लवेन आर्द्राः = क्लिन्नाश्च ते मुक्ताः = धूप-सञ्चरणार्थं बन्धरहिताश्च, धूपयतीति धूपः, धूपस्य वासः धूपवासः धूपवासस्य = सुगन्धसंचारणस्य पश्चात् अनुधूपवासं = धूपसञ्चारणानन्तरम् विन्यस्ताः = निक्षिप्ताः, संबद्धाः सायंतन्यः = सायंभवाः मल्लिकाः येषु ते तेषु विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु अंगनानां = कामिनीनां केशेषु = कचेषु बलं = पराक्रमं लेभे = प्राप। सुधूपितैः असंयतैः केशैः उद्दीपितः इत्यर्थः।

समासः—स्नानेन आर्द्राश्च ते मुक्ताश्च, तेषु स्नानार्द्रमुक्तेषु। धूपवासस्य पश्चात् इति अनुधूपवासम्। विन्यस्ताः सायन्तन्यो मल्लिकाः येषु ते तेषु। वसन्तस्य अत्ययः वसन्तात्ययस्तेन मन्दं वीर्यं यस्य स वसन्तात्ययमन्दवीर्यः।

हिन्दी—"अपने सहकारी" वसन्त के बीत जाने के कारण मन्द पड़े कामदेव ने सुन्दरियों के उन केशों में 'जाकर' बल (सामर्थ्य) पा लिया, जो कि स्नान करने से गीले और खुले हुए थे, और उनमें धूप से सुगन्धित करने के पश्चात् साम को खिलने वाली चमेली के फूल गुंथे हुए थे। अर्थात् सुन्दरियों के सुवासित एवं फूलों से भरे केशों को देखकर कामोद्दीपन होता था ॥ ५० ॥

आपिञ्जरा बद्धरजःकणत्वान्मञ्जर्युदारा शुशुभेऽर्जुनस्य ।
दग्ध्वापि देहं गिरिशेन रोषात्खण्डीकृता ज्येव मनोभवस्य ॥ ५१ ॥

बद्धरजःकणत्वाद् व्याप्तरजःकणत्वादापिञ्जरोदारा द्राघीयस्यर्जुनस्य ककुभवृक्षस्य। 'इन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः' इत्यमरः। मञ्जरी। देहं दग्ध्वापि रोषाद्गिरिशेन गिरिरस्त्यस्य निवासत्वेन गिरिशस्तेन। लोमादित्वाच्छप्रत्ययः। गिरौ शेत इति विग्रहे तु 'गिरौ शेतेर्डः' इत्यस्य छन्दसि विधानाल्लोके प्रयोगानुपपत्तिः स्यात्। तस्मात्पूर्वोक्तमेव विग्रहवाक्यं न्याय्यम्। खण्डीकृता मनोभवस्य ज्या मौर्वीव। शुशुभे ॥

अन्वयः—बद्धरजःकणत्वात् आपिञ्जरा उदारा अर्जुनस्य मञ्जरी देहं दग्ध्वा अपि रोषात् गिरिशेन खण्डीकृता मनोभवस्य ज्या इव शुशुभे।

व्याख्या—बद्धाः = व्याप्ताः रजसः = परागस्य कणाः = लवाः यस्यां सा बद्धरजःकणा, तस्याः भावः बद्धरजःकणत्वं तस्मात् बद्धरजःकणत्वात् आपिञ्जरा = ईषत्पीतवर्णा उदारा = महती अर्जुनस्य = ककुभवृक्षस्य मञ्जरी = वल्लरी देहं = शरीरं कामस्येत्यर्थः दग्ध्वा = दहनं कृत्वापि रोषात् = क्रोधात् गिरिः = हिमालयः अस्ति अस्य निवासत्वेनासौ गिरिशस्तेन गिरिशेन = शिवेन न खण्डा अखंडा अखण्डा खण्डा संपद्यमाना खण्डीकृता = शकलीकृता मनसा भवतीति मनोभवस्तस्य मनोभवस्य = कामदेवस्य ज्या = मौर्वी इव = यथा शुशुभे = शोभतेस्म।

समासः—बद्धाः रजसः कणाः यस्यां सा बद्धरजःकणा तस्याः भावस्तत्वं तस्मात् बद्धरजः-कणत्वात् ।

हिन्दी—पराग से भरी हुई होने से कुछ पीली-पीली अर्जुन वृक्ष की बड़ी मञ्जरी (कोंपल, या बौर) ऐसी सुन्दर लगती थी, मानो कामदेव के शरीर को भस्म करने के पश्चात् शिवजी के द्वारा तोड़ी गई कामदेव के धनुष की डोरी हो ॥ ५१ ॥

मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गं पुराणसीधुं नवपाटलं च ।
संबध्नता कामिजनेषु दोषाः सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टाः ॥ ५२ ॥

मनोज्ञगन्धमिति सर्वत्र संबध्यते । सहकारभङ्गं चूतपल्लवखण्डम् । पुराणं वासितं शेरतेऽनेनेति शीधुः पक्वेक्षुरसप्रकृतिकः सुराविशेषस्तम् । 'शीङो धुक्' इत्युणादिसूत्रेण 'शीङ् स्वप्ने' इत्यस्माद्धातोर्धुक्प्रत्ययः । 'पक्वैरिक्षुरसैरसौ शीधुः पक्वरसः शिवः' इति यादवः । नवं पाटलायाः पुष्पं पाटलं च संबध्नता संघट्टयता निदाघावधिना ग्रीष्मकालेन । 'अवधिस्त्ववधाने स्यात्सीम्नि काले बिलेऽपि च' इति विश्वः । कामिजनेषु विषये सर्वे दोषास्तापादयः प्रमृष्टाः परिहृताः ॥

अन्वयः—मनोज्ञगन्धं सहकारभंगं, पुराणशीधुं नवपाटलं च सम्बध्नता निदाघावधिना कामिजनेषु सर्वे दोषाः प्रमृष्टाः ।

व्याख्या—मनसा जानातीति मनोज्ञः=मनोहरः गन्धः=सुरभिः यस्य स तं मनोज्ञगन्धं, सहकारयति=मेलयति द्वन्द्वमिति सहकारः, सहकारस्य=आम्रपल्लवस्य भंगः=खण्डस्तं सहकारभंगम्, मनोज्ञगन्धं शेरतेऽनेनेति शीधुः, पुराणश्चासौ शीधुः=इक्षुरसस्य सुराविशेषस्तं पुराणशीधुम्, मनोज्ञगन्धं, पाटलायाः पुष्पं पाटलं नवं=नूतनञ्च तत्पाटलमिति नवपाटलं तत् कृष्णवृन्तायाः पुष्पम् च संबध्नता=संघट्टयता निदाघस्य=ग्रीष्मस्य अवधिः=समयः, ऋतुरित्यर्थः, तेन निदाघावधिना "अवधिस्त्ववधाने स्यात् सीम्नि काले बिले पुमान्" इति मेदिनी । कामिजनेषु=विलासिजनेषु विषये सर्वे=सम्पूर्णाः दोषाः=तापादयः प्रमृष्टाः=परिहृताः । सर्वथा दूरीकृता इत्यर्थः ।

समासः—मनोज्ञः गन्धः यस्य स तं मनोज्ञगन्धम् । सहकारस्य भंगस्तं सहकारभङ्गम् । पुराणश्चासौ शीधुश्च तं पुराणशीधुम् । नवञ्च तत्पाटलं तत् नवपाटलम् । निदाघस्य अवधिस्तेन निदाघावधिना ।

हिन्दी—मनोहर गन्धवाले आम के कोंपल या बौर तथा अच्छी सुवासित ईख के रस की मदिरा, और नये पाटल के पुष्प (लाल लोध्र के फूल) इन सबको एक साथ लाकर ग्रीष्म ऋतु ने कामी पुरुषों के सब कष्ट दूर कर दिए ॥ ५२ ॥

जनस्य तस्मिन्समये विगाढे बभूवतुर्द्वौ सविशेषकान्तौ ।
तापापनोदक्षमपादसेवौ स चोदयस्थौ नृपतिः शशी च ॥ ५३ ॥

तस्मिन्समये ग्रीष्मे विगाढे कठिने सति जनस्य द्वौ सविशेषं सातिशयं यथा तथा कान्तौ बभूवतुः। कौ द्वौ। तापापनोदे क्षमा योग्या पादयोरङ्घ्र्योः पादानां रश्मीनां च सेवा ययोस्तावुदयस्थावभ्युदयस्थौ स च नृपतिः शशी च॥

अन्वयः—तस्मिन् समये विगाढे सति जनस्य द्वौ सविशेषकान्तौ बभूवतुः तापापनोदक्षमपादसेवौ उदयस्थौ स च नृपतिः शशी च।

व्याख्या—तस्मिन् समये = निदाघर्तौ विगाढे = कठोरे, सोढुमशक्ये सतीत्यर्थः। जनस्य = लोकस्य द्वौ विशेषेण सहितं सविशेषं = सातिशयं यथा तथा कान्तौ = मनोहरौ, प्रियौ, इत्यर्थः बभूवतुः = जातौ, कौ तौ द्वौ, इत्याह—तापस्य = सन्तापस्य अपनोदः = दूरीकरणं तस्मिन् क्षमा = समर्था पादयोः = चरणयोः (शशिपक्षे) पादानां = किरणानां सेवा = सेवनं ययोस्तौ तापापनोदक्षमपादसेवौ उदये = अभ्युदये तिष्ठतः इति उदयस्थौ सः = कुशश्च नृपतिः = राजा शशी = चन्द्रश्च। राजा धनदानेन चन्द्रः शीतलताप्रदानेन च द्वौ अपि लोकस्य प्रियौ आस्तामित्यर्थः।

समासः—सविशेषं कान्तौ, इति सविशेषकान्तौ। तापस्य अपनोदः तापापनोदः, तापापनोदे क्षमा पादयोः, पादानां च सेवा ययोः तौ तापापनोदक्षमपादसेवौ।

हिन्दी—उस कठोर गरमी के समय में दो ही प्रजा के विशेष रूप से प्रिय हुए, एक तो सेवा से प्रसन्न होकर दारिद्र्य आदि सन्ताप को दूर करने में समर्थ राजा कुश, और दूसरे शीतल किरणों से गर्मी के ताप को दूर करने वाले चन्द्र॥ ५३॥

अथोर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे सरय्वाः।
विहर्तुमिच्छा वनितासखस्य तस्याम्भसि ग्रीष्मसुखे बभूव॥ ५४॥

अथोर्मिषु लोलाः सतृष्णा उन्मदा राजहंसा यस्मिंस्तस्मिन्। 'लोलश्चलसतृष्णयोः' इत्यमरः। रोधोलतापुष्पाणां वहे प्रापके। पचाद्यच्। ग्रीष्मेषु सुखे सुखकरे सरय्वा अम्भसि पयसि तस्य कुशस्य वनितासखस्य। वनिताभिः सहेत्यर्थः। विहर्तुमिच्छा बभूव॥

अन्वयः—अथ ऊर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधोलतापुष्पवहे ग्रीष्मसुखे सरय्वाः अम्भसि तस्य वनितासखस्य विहर्तुम् इच्छा बभूव।

व्याख्या—अथ = अनन्तरं कदाचित् उद्गतः मदः = हर्षः येषां ते उन्मदाः, ऊर्मिषु = जलतरंगेषु लोलाः = सतृष्णाः उन्मदाः राजहंसाः = कलहंसाः यस्मिन् तत्, तस्मिन् ऊर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधसि = तीरे याः लताः = वल्लर्यस्तासां पुष्पाणि = कुसुमानि, इति रोधोलतापुष्पाणि, रोधोलतापुष्पाणां वहम् = प्रापकं तस्मिन् रोधोलतापुष्पवहे ग्रीष्मे = निदाघे सुखं = सुखकरं तस्मिन् ग्रीष्मसुखे, सरय्वाः = सरयूनामनद्याः अम्भसि = जले तस्य = कुशस्य वनिताः = स्त्रियः सखायः = मित्राणि, सहाया इत्यर्थः यस्य स तस्य वनितासखस्य, वनिताभिः सह इत्यर्थः। विहर्तुं = जलविहारं कर्तुमित्यर्थः। इच्छा = अभिलाषः बभूव = अभूत्।

समासः—ऊर्मिषु लोलाः उन्मदाः राजहंसाः यस्मिन् तस्मिन् ऊर्मिलोलोन्मदराजहंसे रोधसि लतास्तासां पुष्पाणि तेषां वहस्तस्मिन् रोधोलतापुष्पवहे। ग्रीष्मे सुखं तस्मिन् ग्रीष्मसुखे। वनिता सखा यस्य स तस्य वनितसखस्य।

हिन्दी—इसके पश्चात् एक दिन, राजा कुश की अपनी स्त्रियों के साथ, सरयू के उस जल में विहार करने की इच्छा हुई, जिसमें लहरों पर चञ्चल तथा मतवाले बने राजहंस हैं और जो तट पर खड़ी लताओं के फूलों को बहा रहा है और गरमी में सुखप्रद है ॥ ५४ ॥

स तीरभूमौ विहितोपकार्यामानायिभिस्तामपकृष्टनक्राम् ।
विगाहितुं श्रीमहिमानुरूपं प्रचक्रमे चक्रधरप्रभावः ॥ ५५ ॥

चक्रधरप्रभावो विष्णुतेजाः स कुशस्तीरभूमौ विहितोपकार्या यस्यास्ताम्। आनायो जालमेषामस्तीत्यानायिनो जालिकाः। 'जालमानायः' इति निपातः। 'आनायः पुंसि जालं स्यात्' इत्यमरः। तैरपकृष्टनक्रामपनीतग्राहां तां सरयूं श्रीमहिम्नोः संपत्प्रभावयोरनुरूपं योग्यं यथा तथा विगाहितुं प्रचक्रमे। अत्र कामन्दकः—'परितापिषु वासरेषु पश्यंस्तटलेखास्थितमाप्तसैन्यचक्रम्। सुविशोधितनक्रमीनजालं व्यवगाहेत जलं सुहृत्समेतः॥' इति॥

अन्वयः—चक्रधरप्रभावः सः तीरभूमौ विहितोपकार्याम् आनायिभिः अपकृष्टनक्राम् तां श्रीमहिमानुरूपं "यथा स्यात्तथा" विगाहितुं प्रचक्रमे।

व्याख्या—धरतीति धरः, चक्रस्य=सुदर्शनस्य धरः=धर्ता, इति चक्रधरः=विष्णुस्तस्य प्रभावः=तेज इव प्रभावो यस्य स चक्रधरप्रभावः, 'चक्रं सुदर्शनः' इत्यमरः। सः=कुशः तीरस्य=तटस्य भूमिः=स्थानं तस्यां तीरभूमौ विहिता=निर्मिता उपकार्या=उपकारिका यस्यां सा तां विहितोपकार्याम्, विहितराजगृहामित्यर्थः। आनयन्ति मत्स्यान् अनेनेति आनायः=जालमेषामस्तीति आनायिनस्तैः आनायिभिः=जालिकैः अपकृष्टाः=अपनीताः दूरीकृता इत्यर्थः नक्राः=ग्राहाः यस्याः सा ताम् अपकृष्टनक्रां तां=सरयूं श्रीः=सम्पत् च महिमा=प्रभावश्चेति श्रीमहिमानौ तयोः श्रीमहिम्नोः अनुरूपं=योग्यं यथा स्यात्तथा विगाहितुं=विलोडितुं, स्नातुमित्यर्थः। प्रचक्रमे=प्रवृत्तः।

समासः—चक्रधरस्य प्रभाव इव प्रभावो यस्य स चक्रधरप्रभावः। तीरस्य भूमिस्तस्यां तीरभूमौ। विहिता उपकार्या यस्याः सा तां विहितोपकार्याम्। अपकृष्टाः नक्राः यस्याः सा ताम् अपकृष्टनक्राम्। श्रीश्च महिमा च श्रीमहिमानौ तयोः अनुरूपं यथा तथा।

हिन्दी—"जल विहार का निश्चय करके" सुदर्शन चक्रधारी विष्णु के समान प्रभावशाली राजा कुश, सरयू के जल में, अपनी सम्पत्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार विहार करने के लिये चल पड़े, सरयू के तट पर तम्बू डेरे तान दिये, और मल्लाहों ने जाल बिछाकर मगरमच्छ आदि जीव जन्तु सरयू में से निकाल डाले, जिससे कि निर्भय होकर विहार करें ॥ ५५ ॥

सा तीरसोपानपथावतारादन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः ।
सनूपुरक्षोभपदाभिरासीदुद्विग्नहंसा सरिदङ्गनाभिः ॥ ५६ ॥

सा सरित्सरयूस्तीरसोपानपथेनावतारादन्योन्यं केयूरविघट्टिनीभिः संनद्धाङ्गदसंघर्षिणीभिः सनूपुरक्षोभाणि सनूपुरस्खलनानि पदानि यासां ताभिरङ्गनाभिर्हेतुभिरुद्विग्नहंसा भीतहंसाऽऽसीत् ॥

अन्वयः—सा सरित् तीरसोपानपथावतारात् अन्योऽन्यकेयूरविघट्टनीभिः सनूपुरक्षोभपदाभिः अंगनाभिः उद्विग्नहंसा आसीत् ।

व्याख्या—सा = प्रसिद्धा सरित् = सरयूः = नदी सह = विद्यमानः उप = उपरि आतः = गमनं येन तत् सोपानम् । सोपानानाम् = आरोहणानां पन्थाः = मार्गः, इति सोपानपथः, तीरस्य = तटस्य सोपानपथस्तेन तीरसोपानपथेन अवतारः = अवतरणं तस्मात् तीरसोपानपथावतारात् अवतरणादित्यर्थः । के = बाहुशिरसि यौतीति केयूरम् । अन्योन्यं = परस्परं केयूराणि = अंगदानि विघट्टयितुं = संघर्षितुं शीलं यासां ताः, ताभिः अन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः, नूपुराणां = मञ्जीराणां क्षोभः = संचलनमिति नूपुरक्षोभः, नूपुरक्षोभेण सहितानि पदानि = चरणानि यासां ताः ताभिः सनूपुरक्षोभपदाभिः । अंगनाभिः = सुन्दरीभिः (हेतुभिः) उद्विग्नाः = भीताः हंसाः = श्वेतगरुतः यस्याः सा उद्विग्नहंसा आसीत् = जाता ।

समासः—सोपानानां पन्थाः सोपानपथः, तीरस्य सोपानपथः तीरसोपानपथस्तेन अवतरणं तस्मात् तीरसोपानपथावतारात् । अन्योन्यं केयूराणां विघट्टिन्यस्ताभिः अन्योन्यकेयूरविघट्टिनीभिः । नूपुराणां क्षोभः नूपुरक्षोभः, तेन सह वर्तमानानि पदानि यासां ताभिः सनूपुरक्षोभपदाभिः । उद्विग्नाः हंसाः यस्यां सा उद्विग्नहंसा ।

हिन्दी—तीरे की सीढ़ियों के मार्ग से जल में उतरने के कारण जिनके बाजूबन्द आपस में रगड़ खाकर शब्द करने लगे, तथा उन पैरों की बिछुवे झनकार उठे, ऐसी कुश की रानियों के कारण सरयू नदी के हंस चञ्चल हो गये ॥ ५६ ॥

परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां तासां नृपो मज्जनरागदर्शी ।
नौसंश्रयः पार्श्वगतां किरातीमुपात्तबालव्यजनां बभाषे ॥ ५७ ॥

नौसंश्रयः परस्परमभ्युक्षणे सेचने तत्पराणामासक्तानां तासां स्त्रीणां मज्जने रागोऽभिलाषस्तद्दर्शी नृपः पार्श्वगतामुपात्तबालव्यजनां गृहीतचामरां किरातीं चामरग्राहिणीं बभाषे । 'किरातस्तु द्रुमान्तरे । स्त्रियां चामरवाहिन्यां मत्स्यजात्यन्तरे द्वयोः ॥' इति केशवः ॥

अन्वयः—नौसंश्रयः परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां तासां मज्जनरागदर्शी नृपः पार्श्वगताम् उपात्तबालव्यजनां किरातीं बभाषे ।

व्याख्या—नौः = नौका संश्रयः = आश्रयः यस्य स नौसंश्रयः = नौकायामुपविष्ट इत्यर्थः । परस्परम् = अन्योन्यं यदभ्युक्षणं = सेचनं मार्जनं तस्मिन् तत्पराः = संलग्नास्तासां परस्पराभ्युक्षणतत्पराणां, परस्परस्योपरि जलप्रक्षेपणे आसक्तानामित्यर्थः । तासां = नृपांगनानां मज्जने = उन्मज्जने = स्नाने रागः = अभिलाषः, तं द्रष्टुं शीलमस्य स मज्जनरागदर्शी नृपः = राजा कुशः पार्श्वे = निजसमीपे गता = प्राप्ता स्थिता तां पार्श्वगताम्, उपात्तं = गृहीतं बालव्यजनं चामरं = ययासा ताम् उपात्तबालव्यजनां किरातीं = चामरग्राहिणीं बभाषे = उक्तवान् ।

समासः—नौः संश्रयः यस्य स नौसंश्रयः। रागस्य दर्शी रागदर्शी, मज्जने रागदर्शी मज्जनरागदर्शी। परस्परं यदभ्युक्षणमिति परस्पराभ्युक्षणं तस्मिन् परास्तासां परस्पराभ्युक्षणतत्पराणाम्। पार्श्वे गता तां पार्श्वगताम्। उपात्तं बालव्यजनं यया सा ताम्।

हिन्दी—आपस में (एक दूसरी के ऊपर) जल के छींटे देने में तत्पर (मस्त) उन रानियों की जल क्रीड़ा (जल विहार) के प्रेम को देखकर नौका में बैठे राजा कुश, पास में खड़ी चमर डुलाने वाली किराती से कहने लगे॥ ५७॥

पश्यावरोधैः शतशो मदीयैर्विगाह्यमानो गलिताङ्गरागैः।
सन्ध्योदयः साभ्र इवैष वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः॥ ५८॥

गलिताङ्गरागैर्मदीयैः शतशोऽवरोधैर्विगाह्यमानो विलोड्यमान एष सरयूप्रवाहः। साभ्रः समेघः संध्योदयः संध्याविर्भाव इव। अनेकं नानाविधं वर्णं रक्तपीतादिकं पुष्यति पश्य। वाक्यार्थः कर्म॥

अन्वयः—गलितांगरागैः मदीयैः शतशः अवरोधैः विगाह्यमानः एषः सरयूप्रवाहः, साभ्रः सन्ध्योदय इव अनेकं वर्णं पुष्यति (इति) पश्य।

व्याख्या—गलितः = च्युतः, क्षालितः अंगस्य = शरीरस्य रागः = कुंकुमादिः येषां ते तैः गलितांगरागैः मम इमे मदीयास्तैः मदीयैः = मत्संबन्धिभिः शतशः = बहुभिरित्यर्थः अवरोधैः = राजदारैः "अवरोधः राजदारा" इति मेदिनी। विगाह्यते इति विगाह्यमानः = आलोड्यमानः एषः = पुरोदृश्यमानः सरय्वाः = एतन्नामनद्याः प्रवाहः = वेगः इति सरयूप्रवाहः "वेगः प्रवाहजवयोः" इत्यमरः। अभ्रैः = मेघैः सहितः साभ्रः = मेघयुक्तः। सम्यक् ध्यायन्त्यस्यां सन्ध्या, तस्याः उदयः = आविर्भावः इति सन्ध्योदयः इव = यथा अनेकं = नानाविधं वर्णं = रक्तपीतादिकं पुष्यति = पुष्टं करोति इति त्वं पश्य = अवलोकय।

समासः—गलितः अंगस्य रागः येषां ते तैः गलितांगरागैः। सन्ध्यायाः उदयः सन्ध्योदयः। अभ्रैः सह वर्तमानः साभ्रः। सरय्वाः प्रवाहः सरयूप्रवाहः।

हिन्दी—जिनके शरीर में लगा केसर कस्तूरी चन्दनादि अंगराग धुल गया, ऐसी मेरे रनवास की सैंकड़ों रानियों के अवगाहन (जल में पैठकर स्नान करने) से सरयू नदी की धारा ऐसी रंगविरंगी शोभा प्राप्त कर रही है, मानो मेघों से घिरी सन्ध्या आ गई है। यह तुम देखो॥ ५८॥

विलुप्तमन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं नौलुलिताभिरद्भिः।
तद्बध्नतीभिर्मदरागशोभां विलोचनेषु प्रतिमुक्तमासाम्॥ ५९॥

नौलुलिताभिर्नौक्षुभिताभिरद्भिरन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं कज्जलं विलुप्तं हृतं तदञ्जनं विलोचनेषु नयनेषु मदेन या रागशोभा तां बध्नतीभिर्घटयन्तीभिरद्भिरासां प्रतिमुक्तं प्रत्यर्पितम्। प्रतिनिधिदानमपि तत्कार्यकारित्वात्प्रत्यर्पणमेवेति भावः॥

अन्वयः—नौलुलिताभिः अद्भिः अन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं विलुप्तम् तदञ्जनं विलोचनेषु मदरागशोभां बध्नतीभिः अद्भिः आसां प्रतिमुक्तम्।

व्याख्या—नावा = नौकया लुलिताः = क्षुभिताः सञ्चालिता इत्यर्थः। ताभिः नौलुलिताभिः अद्भिः = जलैः अन्तः = अभ्यन्तरे पुरं = गृहमिति अन्तःपुरम्, अन्तःपुरस्य = शुद्धान्तस्य सुन्दर्यः = स्त्रियस्तासाम् अन्तःपुरसुन्दरीणाम् यत् अञ्जनं = कज्जलं विलुप्तं = हृतं तत् = अञ्जनं विलोचनेषु = नेत्रेषु मदेन = मद्येन यो रागः = रक्तिमा तस्य शोभा = कान्तिः तां मदरागशोभां बध्नतीभिः = घटयन्तीभिः अद्भिः = जलैः आसां = सुन्दरीणां प्रतिमुक्तं = प्रत्यर्पितम्।

समासः—अन्तःपुरस्य सुन्दर्यः तासाम् अन्तःपुरसुन्दरीणाम्। नावा लुलितास्ताभिः नौलुलिताभिः। मदेन यः रागः मदरागस्तेन या शोभा तां मदरागशोभाम्।

हिन्दी—नावों से टकराने से हिलते उछलते जल से (नाव के चलने से उठती तरंगों से) अन्तःपुर की सुन्दरियों की आँखों का जो काजल धुल गया था, उसके बदले में इनकी आँखों में मदपान के समय की लालिमा की शोभा को बढ़ाने वाले जल ने फिर उसे लौटा दिया। अर्थात् काजल की जगह लाली भर दी ॥ ५९ ॥

एता गुरुश्रोणिपयोधरत्वादात्मानमुद्वोढुमशक्नुवत्यः ।
गाढाङ्गदैर्बाहुभिरप्सु बालाः क्लेशोत्तरं रागवशात्प्लवन्ते ॥ ६० ॥

गुरु दुर्वहं श्रोणिपयोधरं यस्यात्मन इति विग्रहः। गुरुश्रोणिपयोधरत्वादात्मानं शरीरमुद्वोढुमशक्नुवत्य एता बाला गाढाङ्गदैः श्लिष्टाङ्गदैर्बाहुभिः क्लेशोत्तरं दुःखप्रायं यथा तथा रागवशात्क्रीडाभिनिवेशपारतन्त्र्यात्प्लवन्ते तरन्ति ॥

अन्वयः—गुरुश्रोणिपयोधरत्वात् आत्मानम् उद्वोढुम् अशक्नुवत्यः एताः बालाः गाढांगदैः बाहुभिः अप्सु क्लेशोत्तरं यथा स्यात्तथा रागवशात् प्लवन्ते ।

व्याख्या—श्रोणयः = कट्यश्च पयोधराः = स्तनाश्चेति द्वन्द्वः श्रोणिपयोधरम्, गुरु = महत्, दुःखेन वोढुं शक्यमित्यर्थः, श्रोणिपयोधरं यस्य सः, तस्य भावः गुरुश्रोणिपयोधरत्वं तस्मात् गुरुश्रोणिपयोधरत्वात् आत्मानं = स्वशरीरम् उद्वोढुं = धारयितुं, वहनं कर्तुमित्यर्थः अशक्नुवत्यः = असमर्थाः एताः = पुरोदृश्यमानाः बालाः = तरुण्यः गाढानि = श्लिष्टानि दृढानि इत्यर्थः, अंगदानि = केयूराणि येषां ते तैः गाढांगदैः बाहुभिः = भुजैः अप्सु = जलेषु क्लेशः = दुःखम् उत्तरम् = प्रायः यस्मिन् कर्मणि तत् क्लेशोत्तरं यथा स्यात्तथा रागस्य = जलक्रीडाभिलाषस्य वशः = अभिनिवेशः = पारतन्त्र्यमित्यर्थः, तस्मात् रागवशात् प्लवन्ते = तरन्ति। असामर्थ्येऽपि जलविहाराभिनिवेशात् एतास्तरन्तीत्यर्थः।

समासः—श्रोणयश्च पयोधराश्चेति श्रोणिपयोधरम्। प्राण्यंगत्वादेकवद्भावः। गुरु श्रोणिपयोधरं यस्य स, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् गुरुश्रोणिपयोधरत्वात्। न शक्नुवत्यः अशक्नुवत्यः। गाढानि अंगदानि येषां ते तैः गाढाङ्गदैः। रागस्य वशस्तस्मात् रागवशात्। क्लेशः उत्तरं यस्मिन् कर्मणि तत्।

हिन्दी—भारी-भारी नितम्बों और स्तनों के कारण अपने शरीर को धारण करने में (तैरते हुये सम्भालने में) असमर्थ ये युवती रानियाँ, मोटे-मोटे बाजुबन्दों वाली भुजाओं से जल में बहुत कठिनता से तैर रही हैं। अर्थात् जलक्रीड़ा में संमिलित होने के कारण ही तैर रही हैं। अन्यथा ये तैरने में असमर्थ हैं ॥ ६० ॥

अमी शिरीषप्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनो वारिविहारिणीनाम् ।
पारिप्लवाः स्रोतसि निम्नगायाः शैवाललोलांश्छलयन्ति मीनान् ॥ ६१ ॥

वारिविहारिणीनामासां प्रभ्रंशिनो भ्रष्टा निम्नगायाः स्रोतसि पारिप्लवाश्चञ्चलाः। 'चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे' इत्यमरः। अमी शिरीषप्रसवा एवावतंसाः कर्णभूषाः शैवाललोलाञ्जल-नीलीप्रियान्। 'जलनीली तु शैवालम्' इत्यमरः। मीनांश्छलयन्ति प्रादुर्भावयन्ति। शैवाल-प्रियत्वाच्छिरीषेषु शैवालभ्रमात्प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः ॥

अन्वयः—वारिविहारिणीनाम् "आसाम्" प्रभ्रंशिनः निम्नगायाः स्रोतसि पारिप्लवाः अमी शिरीषप्रसवावतंसाः शैवाललोलान् मीनान् छलयन्ति।

व्याख्या—वारिणि = जले विहर्तुं = विहारं कर्तुं शीलं यासां ताः वारिविहारिण्यस्तासां वारिविहारिणीनाम् आसामन्तःपुरसुन्दरीणाम् प्रभ्रंशिनः = भ्रष्टाः = च्युताः इत्यर्थः, निम्नं गच्छतीति निम्नगा तस्याः निम्नगायाः = नद्याः स्रोतसि = प्रवाहे परिप्लवन्ते इति पारिप्लवाः = चञ्चलाः अमी = पुरोवर्तिनः शिरीषेभ्यः = भण्डिलेभ्यः, शिरीषपुष्पेभ्य इत्यर्थः। प्रभवन्तीति शिरीषप्रभवाः, ते एव अवंसाः = कर्णभूषणानि, इति शिरीषप्रभवावतंसाः शैवालेषु = जलनीलीषु लोलाः = उत्कण्ठिताः प्रियत्वात् ग्रहीतुमित्यर्थः, इति शैवाललोलास्तान् शैवाललोलान् मीनान् = मत्स्यान् छलयन्ति = वञ्चयन्ति। शैवालमिति मत्वा अत्तुं मीनाः शिरीषपुष्पेषु शैवा-लाघ्रात् प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः।

समासः—वारिणि विहारिण्यः वारिविहारिण्यस्तासां वारिविहारिणीनाम्। शिरीषप्रसवा एव अवतंसाः इति शिरीषप्रसवावतंसाः। शैवालेषु लोलास्तान् शैवाललोलान्।

हिन्दी—जल विहार करने वाली इन रानियों के कानों से टूट कर गिरे हुए एवं नदी के जल में तैर रहे ये शिरीष के पुष्प के बने कर्णफूल, सेवार को खाने के लिये उत्सुक मछलियों को छल रहे हैं। अर्थात् तैरते फूलों को देखकर मछली सेवार के भ्रम से इन्हें खाने को झपट रही हैं ॥ ६१ ॥

आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु ।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते न छिदुरोऽपि हारः ॥ ६२ ॥

जलस्यास्फालने तत्पराणामासक्तानामासां स्त्रीणां मुक्ताफलस्पर्धिषु मौक्तिकानुकारिषु पयो-धरेषु स्तनेषूत्सर्पन्त्युत्पतन्ति ये तेषु शीकरेषु शीकराणां मध्ये शीर्यमाणो गलन्हारोऽत एव छिदुरः

स्वयं छिन्नोऽपि न संलक्ष्यते । 'विदिभिदिच्छिदेः कुरच्' इति कुरच्प्रत्ययः । शीकरसंसर्गाच्छिन्न इति न ज्ञायत इति भावः ॥

अन्वयः—जलास्फालनतत्पराणाम् आसाम् मुक्ताफलस्पर्धिषु पयोधरोत्सर्पिषु शीकरेषु "मध्ये" शीर्यमाणः छिदुरः अपि हारः न संलक्ष्यते ।

व्याख्या—जलस्य आस्फालनं = ताडनं तत्र तत्पराः = आसक्तास्तासां जलास्फालनतत्पराणाम् आसाम् = अन्तःपुरसुन्दरीणाम् मुक्तानां = मुक्तालतानां फलानि = मौक्तिकानि, इति मुक्ताफलानि तेषां स्पर्धिनः = अनुकारिणस्तेषु मुक्ताफलस्पर्धिषु तदनुकारिष्वित्यर्थः । पयोधरेषु = कुचेषु उत्सर्पन्ति = उत्पतन्ति ये ते पयोधरोत्सर्पिणः, तेषु पयोधरोत्सर्पिषु । शीकरेषु = अम्बुकणेषु "शीकरोऽम्बुकणः" इत्यमरः । अम्बुकणानां मध्ये इत्यर्थः । शीर्यतेऽसौ शीर्यमाणः = त्रुट्यमानः अतः एव छिदुरः = स्वतः छिन्नः अपि न संलक्ष्यते = न ज्ञायते, जलबिन्दुसंसर्गात् त्रुटितोऽपि न ज्ञायते इत्यर्थः ।

समासः—जलस्य आस्फालनं तस्मिन् तत्परास्तासाम् जलास्फालनतत्पराणाम्, मुक्तानां फलानि मुक्ताफलानि तेषां स्पर्धिनस्तेषु मुक्ताफलस्पर्धिषु । पयसां धराः पयोधराः, पयोधरेषु उत्सर्पिणस्तेषु पयोधरोत्सर्पिषु ।

हिन्दी—और हे किराती देखो—जल को उछालने (जलक्रीड़ा) में मग्न इन रानियों को यह भी ज्ञान नहीं है कि मोतियों के समान और इनके स्तनों पर फैले हुए जल बिन्दुओं के बीच में गिरता हुआ हमारा हार स्वयं टूट गया है । अर्थात् स्तनों पर फैली जलबूंदों को मोती समझ कर टूटे हार का इन्हें ज्ञान नहीं है ॥ ६२ ॥

आवर्तशोभा नतनाभिकान्तेर्भङ्गो भ्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम् ।
जातानि रूपावयवोपमानान्यदूरवर्तीनि विलासिनीनाम् ॥ ६३ ॥

विलासिनीनां विलसनशीलानां स्त्रीणाम् । 'वौ कषलसकत्थस्रम्भः' इति घिनुण्प्रत्ययः । रूपावयवानामुपमेयानां यान्युपमानानि लोकप्रसिद्धानि तान्यदूरवर्तीन्यन्तिकगतानि जातानि । कस्य किमुपमानमित्यत्राह—नतनाभिकान्तेर्निम्ननाभिशोभाया आवर्तशोभा । 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः । भ्रुवां भङ्गस्तरङ्गः । स्तनानां द्वन्द्वचराश्चक्रवाकाः । उपमानमिति सर्वत्र संबध्यते ॥

अन्वयः—विलासिनीनां रूपावयवोपमानानि अदूरवर्तीनि जातानि, नतनाभिकान्तेः आवर्तशोभा, भ्रुवां भंगः स्तनानां द्वन्द्वचराः ।

व्याख्या—विलसनं विलासः, विलासः = शृंगारादिचेष्टा अस्त्यासां ताः विलासिन्यस्तासां विलासिनीनां = क्रीडासक्तानामन्तःपुरसुन्दरीणां रूपाणाम् अवयवाः = अंगानि तेषाम् रूपावयवानाम् = उपमेयानामित्यर्थः यानि उपमानानि = उपमाः तानि रूपावयवोपमानानि यानि लोके प्रसिद्धानि तानि न दूरवर्तीनि, इति अदूरवर्तीनि = समीपस्थानि जातानि = बभूवुः, कस्य रूपस्य किमुपमानमेतदेव स्पष्टयति—नता = निम्ना = गभीरा चासौ नाभिः = जठरमध्यगं बिलं, इति नत-

नाभिः, तस्याः कान्तिः = शोभा, तस्याः नतनाभिकान्तेः, आवर्तस्य = जलभ्रमस्य शोभा = कान्तिरिति आवर्तशोभा गभीरनाभिसदृशः अम्भसां भ्रम इत्यर्थः। "प्राण्यंगे द्वयोरि"ति मेदिनी। भ्रुवां = नेत्रोपरिभागस्थरोमराजीनां भंगः = तरंगः स्तनानां = कुचानां द्वन्द्वीभूय चरन्तीति द्वन्द्वचराः = चक्रवाकाः, उपमानमिति सर्वेषु सम्बध्यते।

समासः—रूपाणाम् अवयवाः रूपावयवास्तेषां उपमानानीति रूपावयवोपमानानि। नतश्चासौ नाभिः नतनाभिस्तस्य कान्तिस्तस्याः नतनाभिकान्तेः। आवर्तस्य शोभा आवर्तशोभा। न दूरवर्तीनि इति अदूरवर्तीनि।

हिन्दी—और देखो ! इन सुन्दर स्त्रियों के अंगों के सदृश (उपमान) जो वस्तु प्रसिद्ध हैं वे सब इनके पास ही आ गई हैं, जैसे—इनकी गहरी नाभी की कान्ति के समान जल का भँवर है और भौहों के समान जल की तरंगे हैं। तथा जोड़े से रहने वाले चकवा चकवी इनके स्तनों के समान हैं। ये सब इनके आस-पास ही घूम रहे हैं॥ ६३॥

तीरस्थलीबर्हिभिरुत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैरभिनन्द्यमानम्।
श्रोत्रेषु संमूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्गवाद्यम्॥ ६४॥

उत्कलापैरुन्नबर्हैः प्रस्निग्धा मधुराः केका येषां तैस्तीरस्थलीषु स्थितैर्बर्हिभिर्मयूरैरभिनन्द्यमानं रक्तं श्राव्यं गीतानुगं गीतानुसार्यासां स्त्रीणां संबन्धि वार्येव मृदङ्गस्तस्य वाद्यं वाद्यध्वनिः श्रोत्रेषु संमूर्च्छति व्याप्नोति॥

अन्वयः—उत्कलापैः प्रस्निग्धकेकैः तीरस्थलीबर्हिभिः अभिनन्द्यमानम् रक्तम् गीतानुरागम् आसां वारिमृदंगवाद्यं श्रोत्रेषु संमूर्च्छति।

व्याख्या—उत् = ऊर्ध्वम्, उच्चैः कलापः = बर्हं येषां ते तैः उत्कलापैः प्रकर्षेण स्निग्धाः = मधुराः केकाः = मयूरवाचः येषां ते तैः प्रस्निग्धकेकैः "केका वाणी मयूरस्य" इत्यमरः। तीरस्य = तटस्य स्थलीषु = भूमिषु स्थिताः ये बर्हिणः = मयूरास्तैः तीरस्थलीबर्हिभिः अभिनन्द्यते इति अभिनन्द्यमानम् = प्रशस्यमानम् रक्तं = श्राव्यम् गीतं = गानमनुगच्छतीति गीतानुगं = गीतानुसारि आसाम् = अन्तःपुरसुन्दरीणाम् संबन्धि वारि = जलमेव मृदंगः = मुरजः तस्य वाद्यं = वाद्यध्वनिरिति वारिमृदंगवाद्यम् श्रोत्रेषु = कर्णेषु संमूर्च्छति = व्याप्नोति।

समासः—उत् कलापः येषां ते तैः उत्कलापैः। प्रस्निग्धाः केकाः येषान्ते तैः प्रस्निग्धकेकैः। तीरस्य स्थली तीरस्थली तत्र स्थिताः ये बर्हिणस्तैः तीरस्थलीबर्हिभिः। गीतस्य अनुगं गीतानुगम्। वारि एव मृदंगः वारिमृदंगस्तस्य वाद्यमिति वारिमृदंगवाद्यम्।

हिन्दी—देखो ! ऊपर को पूंछ उठाये हुए, मधुरवाणीवाले, तथा सरयू के तट की जमीन में खड़े इन मोरों से अभिनन्दन किया गया, और गाने के समान कर्णप्रिय, जलरूपी मृदंग की ध्वनि कानों में भर रही है। अर्थात्—गीत गा कर मृदंग बजाने के समान जो ये सुन्दरियाँ

थपकी दे देकर जल ठोक रही हैं, उसे सुनकर मोर प्रसन्न होकर बोल कर इनका अभिनन्दन कर रहे हैं ॥ ६४ ॥

संदष्टवस्त्रेष्वबलानितम्बेष्विन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः ।
अमी जलापूरितसूत्रमार्गा मौनं भजन्ते रशनाकलापाः ॥ ६५ ॥

संदष्टवस्त्रेषु जलसेकात्संश्लिष्टांशुकेष्वबलानां नितम्बेष्वधिकरणेष्विन्दुप्रकाशेन ज्योत्स्नयान्तरितान्यावृतानि यान्युडूनि नक्षत्राणि तत्तुल्याः । मुक्तामयत्वादिति भावः । अमी जलापूरितसूत्रमार्गाः । निश्चला इत्यर्थः । रशना एव कलापा भूषाः । 'कलापो भूषणे बर्हे' इत्यमरः । मौनम् । निःशब्दतामित्यर्थः । भजन्ते ॥

अन्वयः—सन्दष्टवस्त्रेषु अबलानितम्बेषु इन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः अमी जलापूरितसूत्रमार्गाः, रशनाकलापाः मौनं भजन्ते ।

व्याख्या—सन्दष्टानि = जलसेकात् संश्लिष्टानि वस्त्राणि = अंशुकानि येषु ते तेषु सन्दष्टवस्त्रेषु अबलानाम् = अन्तःपुरस्त्रीणां नितम्ब्यन्ते, निभृतं तम्यन्ते कामुकैरिति वा नितम्बास्तेषु नितम्बेषु = स्त्रीकटीपश्चाद्भागेषु इन्दोः = चन्द्रस्य प्रकाशः = ज्योत्स्ना, तेन अन्तरितानि = आच्छादितानि यानि उडूनि = नक्षत्राणि इति इन्दुप्रकाशान्तरितोडूनि तेषां तुल्याः = समानाः इति इन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः अमी = पुरो वर्तमानाः, सूत्राणां = तन्तूनां मार्गाः = छिद्राणीत्यर्थः, इति सूत्रमार्गाः, जलेन = सलिलेन आ = समन्तात् पूरिताः = व्याप्ताः सूत्रमार्गाः येषां ते जलापूरितसूत्रमार्गाः निश्चला इत्यर्थः । रशना = मेखला एव कलापाः = भूषणानि, इति रशनाकलापाः मुनेः भावः कर्म वा मौनं तत् मौनम् = अभाषणं भजन्ते = सेवन्ते, मौना भवन्तीत्यर्थः । "कलापो भूषणे बर्हे," 'मौनमभाषणमि'ति चामरः ।

समासः—सन्दष्टानि वस्त्राणि येषु ते तेषु सन्दष्टवस्त्रेषु । इन्दोः प्रकाशः इन्दुप्रकाशस्तेन अन्तरितानि यानि उडूनि तेषां तुल्याः इति ते इन्दुप्रकाशान्तरितोडुतुल्याः । जलेन आपूरिताः सूत्राणां मार्गः येषां ते जलापूरितसूत्रमार्गाः । रशना एव कलापाः रशनाकलापाः । अबलानां नितम्बास्तेषु ।

हिन्दी—और देखो ! रानियों के नितम्बों पर भींगे हुए स्वच्छ वस्त्रों के चिपक जाने से चान्द की चान्दनी से ढके हुए तारों के समान ही दीख रहे, तथा जल से भरे हुए हैं डोरे जिनके ऐसे ये इनकी तगडियों के मोती घुँघरु 'हिलने पर' भी मौन हो रहे हैं । अर्थात् तगड़ी के घुंघरु सुफेद साड़ी के भींग कर चिपकने से चान्दनी से ढकें तारों के जैसे हो रहे हैं और उछल कूद मचाने पर भी पानी भर जाने से बज भी नहीं रहे हैं ॥ ६५ ॥

एताः करोत्पीडितवारिधारा दर्पात्सखीभिर्वदनेषु सिक्ताः ।
वक्रेतराग्रैरलकैस्तरुण्यश्चूर्णारुणान्वारिलवान्वमन्ति ॥ ६६ ॥

दर्पात्सखीजनं प्रति करैरुत्पीडिता उत्सारिता वारिधारा याभिस्ताः स्वयमपि पुनस्तथैव सखीभिर्वदनेषु सिक्ता एतास्तरुण्यो वक्रेतराग्रैर्जलसेकादृज्वग्रैरलकैः करणैश्चूर्णैः कुङ्कुमादिभिररुणान्वारिलवानुदकबिन्दून्वमन्ति वर्षन्ति ॥

अन्वयः—दर्पात् करोत्पीडितवारिधाराः, सखीभिः वदनेषु सिक्ताः एताः तरुण्यः, वक्रेतराग्रैः अलकैः चूर्णारुणान् वारिलवान् वमन्ति ।

व्याख्या—दर्पात् = अहंकारात् सखीजनं प्रति करैः = हस्तैः उत्पीडिता = उत्क्षिप्ता वारिणः = जलस्य धारा याभिस्ताः करोत्पीडितवारिधाराः पुनस्तथैव सखीभिः = वयस्याभिः "आली सखी वयस्या च" इत्यमरः । वदनेषु = मुखेषु सिक्ताः = अभ्युक्षिप्ताः, जलेनार्द्रीकृता इत्यर्थः, एताः = जलक्रीडारताः तरुण्यः = युवत्यः वक्रेभ्यः = कुटिलेभ्यः इतराणि = सरलानि अग्राणि = अग्रभागाः येषां ते तैः वक्रेतराग्रैः जलसेकेन ऋजुभिरित्यर्थः । अलकैः = चूर्णकुन्तलैः चूर्णैः = कुङ्कुमादिभिः अरुणाः = रक्तास्तान् चूर्णारुणान् वारिणः = जलस्य लवाः = बिन्दवः तान् वारिलवान्, रक्तजलबिन्दूनित्यर्थः । वमन्ति = वर्षन्ति ।

समासः—करैः उत्पीडिता वारिधाराः याभिस्ताः इति करोत्पीडितवारिधाराः । वक्रेभ्यः इतराणि वक्रेतराणि वक्रेतराणि अग्राणि येषां ते तैः वक्रेतराग्रैः । चूर्णैः अरुणाः तान् चूर्णारुणान् । वारिणः लवास्तान् वारिलवान् ।

हिन्दी—अहंकार से "अपनी सखियों पर" हाथों से जल की धार उछालने वाली, "और फिर" सखियों द्वारा मुखों पर भिगोई गयीं ये युवतियाँ, (अर्थात् रानियाँ) पानी से भींगने के कारण सीधे मुँह पर लटक रहे केशों से रोली सिन्दूर से लाल रंग की जलबून्दे गिरा रही हैं ॥ ६६ ॥

उद्बन्धकेशश्च्युतपत्त्रलेखो विश्लेषिमुक्ताफलपत्रवेष्टः ।
मनोज्ञ एव प्रमदामुखानामम्भोविहाराकुलितोऽपि वेषः ॥ ६७ ॥

उद्बन्धा उद्भ्रष्टाः केशा यस्मिन्सः । च्युतपत्त्रलेखः क्षतपत्त्ररचनः । विश्लेषिणो विस्रंसिनो मुक्ताफलपत्रवेष्टा मुक्तामयताटङ्का यस्मिन्सः । एवमम्भोविहाराकुलितोऽपि प्रमदामुखानां वेषो नेपथ्यं मनोज्ञ एव । 'रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति' इति भावः ॥

अन्वयः—उद्बन्धकेशः च्युतपत्त्रलेखः विश्लेषितमुक्ताफलपत्रवेष्टः अम्भोविहाराकुलितः अपि प्रमदामुखानां वेषः मनोज्ञः एव ।

व्याख्या—उद्बन्धाः = उद्भ्रष्टाः केशाः = कचाः यस्मिन् स उद्बन्धकेशः, पत्राकारा लेखा पत्रलेखा = कपोलस्तनादिषु केसरादिनिर्मिततिलकविशेषः इत्यर्थः । च्युता = नष्टा पत्रलेखा यस्मिन् स च्युतपत्रलेखः । विश्लेषिणः = विस्रंसनशीलाः, पृथग्भूता इत्यर्थः । मुक्ताफलानां = मौक्तिकानां पत्रवेष्टाः = ताटंकाः, कर्णभूषणविशेषा इत्यर्थः । यस्मिन् स विश्लेषिमुक्ताफलपत्रवेष्टः, अम्भसि = जले विहारः = क्रीडा तेन आकुलितः = विक्षुब्धः, प्रक्षालित इत्यर्थः । इति अम्भोविहाराकुलितः अपि प्रमदानां = मानिनीनां मुखानि = आननानि तेषां प्रमदामुखानां वेषः = नेपथ्यं,

प्रसाधनमित्यर्थः। "आकल्पवेषो नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्" इत्यमरः। मनोज्ञः = मनोरमः एव विद्यते। सुन्दराकृतीनां विकारोऽपि शोभां तनोति इति भावः।

समासः—उद्गतबन्धाः केशाः यस्मिन् सः उद्बन्धकेशः। च्युता पत्राकारा लेखा यस्मिन् स च्युतपत्रलेखः। मुक्ताफलानां पत्रवेष्टाः मुक्ताफलपत्रवेष्टाः, विश्लेषिणः मुक्ताफलपत्रवेष्टा यस्मिन् स विश्लेषिमुक्ताफलपत्रवेष्टः। प्रमदानां मुखानि तेषां प्रमदामुखानाम्। अम्भसि विहारः अम्भोविहारस्तेन आकुलितः अम्भोविहाराकुलितः।

हिन्दी—जल में विहार (खेल-कूद) करने के कारण यद्यपि इन सुन्दरियों के केशों का बंधन खुल गया है, मुखों की चित्रकारी मिट सी गई है (खराब हो गई) और मोतियों के कर्णभूषण भी कानों से निकल गए हैं फिर भी इनका वेष मनोहर ही है। (ठीक ही है सुन्दर आकृति वालों का विकार भी शोभा को बढ़ाता है) ॥ ६७ ॥

स नौविमानादवतीर्य रेमे विलोलहारः सह ताभिरप्सु।
स्कन्धावलग्नोद्धृतपद्मिनीकः करेणुभिर्वन्य इव द्विपेन्द्रः ॥ ६८ ॥

स कुशो नौर्विमानमिव नौविमानम्। उपमितसमासः। तस्मादवतीर्य विलोलहारः संस्ताभिः स्त्रीभिः सह करेणुभिः सह स्कन्धावलग्नोद्धृतपद्मिन्युत्पाटितनलिनी यस्य स तथोक्तः सन्। 'नद्यृतश्च' इति कप्प्रत्ययः। वन्यो द्विपेन्द्र इव। अप्सु रेमे ॥

अन्वयः—सः नौविमानात् अवतीर्य विलोलहारः सन् ताभिः सह करेणुभिः सह स्कन्धावलग्नोद्धृतपद्मिनीकः वन्यः द्विपेन्द्रः इव अप्सु रेमे।

व्याख्या—सः = राजा कुशः नौः = तरणिः, नौका विमानं = व्योमयानमिव इति नौविमानम् तस्मात् नौविमानात् अवतीर्य = जलेऽवतरणं कृत्वा विलोलः = चञ्चलः हारः = मुक्तावली यस्य स विलोलहारः सन् "हारो मुक्तावली" इत्यमरः। ताभिः = अन्तःपुरसुन्दरीभिः सह = साकं के = जले रेणुरासां तास्ताभिः करेणुभिः = हस्तिनीभिः सह स्कन्धे = अंसे अवलग्ना = संलग्ना-उद्धृता = उत्पाटिता पद्मिनी = कमलिनी यस्य सः स्कन्धावलग्नोद्धृतपद्मिनीकः वने भवः वन्यः = आरण्यकः द्वाभ्यां = मुखशुण्डाभ्यां पिबन्तीति द्विपास्तेषाम् इन्द्रः = स्वामी द्विपेन्द्रः = गजेन्द्रः इव = यथा अप्सु = जलेषु रेमे = चिक्रीड जलविहारं कृतवानित्यर्थः।

समासः—नौः विमानमिवेति नौविमानं तस्मात् नौविमानात्। विलोलः हारः यस्य स विलोलहारः। द्विपानामिन्द्रः द्विपेन्द्रः। स्कन्धे अवलग्ना, उद्धृता पद्मिनी यस्य स स्कन्धावलग्नोद्धृतपद्मिनीकः।

हिन्दी—"इस प्रकार किराती से कह कर" लटकते चञ्चलहार वाले राजा कुश, नावरूपी विमान से उतर कर (जल में आकर) उन रानियों के साथ वैसे ही जलक्रीडा करने लगे, जैसे उखाड़ी हुई कमलनियों को कन्धे पर लटका कर वन का हाथी हथिनियों के साथ जल-क्रीडा करता है ॥ ६८ ॥

ततो नृपेणानुगताः स्त्रियस्ता भ्राजिष्णुना सातिशयं विरेजुः ।
प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोन्मयूखम् ॥ ६९ ॥

ततो भ्राजिष्णुना प्रकाशनशीलेन । 'भुवश्च' इति चकारादिष्णुच् । नृपेणानुगताः संगतास्ताः स्त्रियः सातिशयं यथा तथा विरेजुः । प्रागेव इन्द्रनीलयोगात्पूर्वमेव । केवला अपीत्यर्थः । मुक्ता मणयो नयनाभिरामाः । उन्मयूखमिन्द्रनीलं प्राप्य किमुत । अभिरामा इति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ॥

अन्वयः—ततः भ्राजिष्णुना नृपेण अनुगताः ताः स्त्रियः सातिशयं विरेजुः, प्राक् एव मुक्ताः नयनाभिरामाः उन्मयूखम् इन्द्रनीलं प्राप्य किमुत ।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम् भ्राजते तच्छीलः भ्राजिष्णुस्तेन भ्राजिष्णुना = दीप्तिमता नृपेण = राज्ञा कुशेन अनुगच्छन्तीति अनुगताः = संगताः, मिलिता इत्यर्थः । ताः = पूर्वोक्ताः स्त्रियः = तरुण्यः अतिशयेन सहितं सातिशयं = साधिक्यं यथा स्यात्तथा विरेजुः = शुशुभिरे, प्राक् प्रथमम् एव = इन्द्रनीलमणिसंयोगात् पूर्वमेवेत्यर्थः । मुक्ताः = मौक्तिकमणयः अभिरमते मनो यासु ताः अभिरामाः नयनयोः = नेत्रयोः अभिरामाः = मनोहराः इति नयनाभिरामाः, उत् = ऊर्ध्वं मयूखाः = किरणाः यस्य स उन्मयूखस्तम् उन्मयूखम् = प्रकाशमानं दीप्तिमन्तमित्यर्थः । इन्द्रस्य नीलः = मणिस्तम् इन्द्रनीलं प्राप्य = संगत्य किमुत नयनाभिरामाः । मुक्तानां स्वत एव मनोहरता वर्तते, नीलमणिसंयोगे किमु वक्तव्यमित्यर्थः ।

समासः—अतिशयेन सहितं सातिशयम् । नयनयोः अभिरामाः नयनाभिरामाः । उद्गताः मयूखाः यस्मिन् स तम् उन्मयूखम् । इन्द्रस्य नीलस्तम् इन्द्रनीलम् ।

हिन्दी—इसके पश्चात् कान्तिमान् सुन्दर उस राजा कुश के साथ मिलकर जलविहार करती हुई वे रानियाँ पहले से भी अधिक सुशोभित हुईं । क्योंकि मोती अकेला ही सुन्दर होता है, और फिर यदि चमचमाती इन्द्रनीलमणि (नीलम) के साथ गूँथा हो तो क्या कहना है । अर्थात् नीलम् के साथ गूँथने से मोती बहुत ही सुन्दर लगता है । वैसे ही कुश के साथ रानियाँ भी अधिक सुन्दर लगने लगीं ॥ ६९ ॥

वर्णोदकैः काञ्चनशृङ्गमुक्तैस्तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन् ।
तथागतः सोऽतितरां बभासे सधातुनिष्यन्द इवाद्रिराजः ॥ ७० ॥

तं कुशमायताक्ष्यः काञ्चनस्य शृङ्गैर्मुक्तानि तैर्वर्णोदकैः कुङ्कुमादिवर्णद्रव्यसहितोदकैः प्रणयात्स्नेहादसिञ्चन् । तथागतस्तथा स्थितः । वर्णोदकसिक्त इत्यर्थः । स कुशः सधातुनिष्यन्दो गैरिकद्रव्ययुक्तोऽद्रिराज इव । अतितरां बभासेऽत्यर्थं चकासे ॥

अन्वयः—तम् आयताक्ष्यः ताः काञ्चनशृंगमुक्तैः वर्णोदकैः प्रणयात् असिञ्चन् तथागतः सः सधातुनिष्यन्दः अद्रिराजः इव अतितराम् बभासे ।

व्याख्या—तं = राजानं कुशम् आयतानि = दीर्घाणि, विशालानीत्यर्थः अक्षीणि = लोच-

नानि यासां ताः आयताक्ष्यः ताः अन्तःपुरसुन्दर्यः काञ्चते = दीप्यते इति काञ्चनं काञ्चनस्य = सुवर्णस्य शृंगाणि = शिखराणि, काञ्चनशृंगाणि तैः मुक्तानि = त्यक्तानि प्रक्षिप्तानीत्यर्थः, तैः काञ्चनशृंगमुक्तैः वर्णैः = कुंकुमकेसरादिभिः मिलितानि यानि उदकानि = जलानि तैः वर्णोदकैः शाकपार्थिवादित्वात् समासः। प्रणयात् = स्नेहात् असिञ्चन् = सिञ्चन्ति स्म। तथा = तं प्रकारं गतः = प्राप्तः इति तथागतः = कुंकुमकेसरमिश्रितजलेन सिक्तः इत्यर्थः। सः = कुशः धातूनां = गैरिकादिद्रव्याणां निष्यन्दः = स्रावः क्षरणं तेन सह वर्तमानः सधातुनिष्यन्दः = गैरिकक्षरणयुक्त इत्यर्थः अद्रीणां = पर्वतानां राजा अद्रिराजः = हिमालय इव = यथा अतितराम् = अतिशयेन बभासे = दिदीपे।

समासः—आयतानि अक्षीणि यासां ताः आयताक्ष्यः। काञ्चनस्य शृंगाणि तैः मुक्तानि तैः काञ्चनशृंगमुक्तैः। वर्णैः मिश्रितानि उदकानि तैः वर्णोदकैः। अद्रीणां राजा अद्रिराजः। धातूनां निष्यन्देन सहितः सधातुनिष्यन्दः।

हिन्दी—बड़ी बड़ी आँखों वाली उन रानियों ने केसर कुंकुमादि मिले जल से (पिच-कारियों से) राजा कुश को भिगो दिया। भींगे हुए रंगविरंगे महाराज कुश उसी प्रकार अत्यधिक सुन्दर लग रहे थे जैसे कि—सोने के शिखरों से गिरते हुए अनेक रंग के जल से गेरू आदि द्रव्यों से युक्त पर्वत राज हिमालय हों। अर्थात् जिसके ऊँचे-ऊँचे गेरू आदि के झरने बहते हो ऐसे हिमालय के समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ७० ॥

तेनावरोधप्रमदासखेन विगाहमानेन सरिद्वरां ताम्।
आकाशगङ्गारतिरप्सरोभिर्वृतो मरुत्वाननुयातलीलः ॥ ७१ ॥

अवरोधप्रमदासखेनान्तःपुरसुन्दरीसहचरेण तां सरिद्वरां सरयूं विगाह्मानेन तेन कुशेना-काशगङ्गायां रतिः क्रीडा यस्य सोऽप्सरोभिर्वृत आवृतो मरुत्वानिन्द्रोऽनुयातलीलोऽनुकृतश्रीः। अभूदिति शेषः। इन्द्रमनुकृतवानित्यर्थः॥

अन्वयः—अवरोधप्रमदासखेन तां सरिद्वरां विगाहमानेन तेन, आकाशगंगारतिः अप्सरोभिः वृतः मरुत्वान् अनुयातलीलः।

व्याख्या—अवरोधस्य = अन्तःपुरस्य प्रमदाः = स्त्रियः इति अवरोधप्रमदाः तासां सखा = मित्रं तेन अवरोधप्रमदासखेन तां = प्रसिद्धां सरित्सु = नदीषु वरा = श्रेष्ठा तां सरिद्वरां = सरयूं विगाहतेऽसौ विगाहमानस्तेन विगाहमानेन = तेन राज्ञा कुशेन आकाशे = वियति गंगा = नदी इति आकाशगंगा = मन्दाकिनी तस्यां रतिः = क्रीडा यस्य स आकाशगंगारतिः, अद्भ्यः सरन्तीति अप्सरसस्ताभिः अप्सरोभिः = स्वर्वेश्याभिः वृतः = आवृतः, मरुतः सन्ति अस्यासौ मरुत्वान् = इन्द्रः अनुयाता = अनुकृता लीला = श्रीः येन स अनुयातलीलः अभूदिति शेषः। अप्सरोभिः सह मन्दाकिन्यां विहरन्तमिन्द्रमनुकरोदित्यर्थः।

समासः—अवरोधस्य प्रमदास्तासां सखा तेन अवरोधसखेन। सरित्सु वरा तां सरिद्वराम्।

आकाशे आकाशस्य वा गंगा आकाशगंगा, तस्यां रतिर्यस्य सः आकाशगंगारतिः। अनुयाता लीला येन सोऽनुयातलीलः।

हिन्दी—उन अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ नदियों में श्रेष्ठ सरयू में जल विहार करते हुए राजा कुश ने, अप्सराओं के साथ आकाशगंगा में जलक्रीड़ा करने वाले इन्द्र की लीला का अनुकरण किया। अर्थात् रानियों से घिरे कुश अप्सराओं से घिरे इन्द्र के समान दीख रहे थे॥ ७१ ॥

यत्कुम्भयोनेरधिगम्य रामः कुशाय राज्येन समं दिदेश।
तदस्य जैत्राभरणं विहर्तुरज्ञातपातं सलिले ममज्ज॥ ७२॥

यदाभरणं रामः कुम्भयोनेरगस्त्यादधिगम्य प्राप्य कुशाय राज्येन समं दिदेश ददौ। राज्य-सममूल्यमित्यर्थः। सलिले विहर्तुः क्रीडितुरस्य कुशस्य तज्जैत्राभरणं जयशीलमाभरणमज्ञातपातं सन्ममज्ज बुब्रोड॥

अन्वयः—यत् रामः कुम्भयोनेः अधिगम्य कुशाय राज्येन समं दिदेश, सलिले विहर्तुः अस्य तत् जैत्राभरणम् अज्ञातपातं सत् ममज्ज।

व्याख्या—यत्=आभरणं रामः=दाशरथिः कुम्भः=कलशः योनिः=उत्पत्तिस्थानम् अस्य स तस्मात् कुम्भयोनेः=अगस्त्यात् अधिगम्य=प्राप्य कुशाय=कुशनाम्ने स्वपुत्राय राज्ञो भावः कर्म व राज्यम्=तेन राज्येन=राष्ट्रेण, प्रभुसत्तया समं=साकं दिदेश=दत्तवान्। सलिले=जले सरयूनद्यामित्यर्थः। विहर्तुः=विहारं कर्तुः अस्य=कुशस्य तत्=पित्रा दत्तं जयति तच्छीलं जैत्रं=विजयशीलञ्च तदाभरणमिति जैत्राभरणं=विजयशीलं भूषणम् अज्ञातः=न लक्षितः पातः=पतनं यस्य तत् अज्ञातपातं सत् ममज्ज=बुब्रोड, सलिले न्यमज्जदित्यर्थः।

समासः—कुम्भः योनिरस्येति स कुम्भयोनिः तस्मात् कुम्भयोनेः। जैत्रञ्च तदाभरणमिति जैत्राभरणम्। अज्ञातः पातो यस्य तत् अज्ञातपातम्।

हिन्दी—जो सदा जितानेवाला आभूषण रामने अगस्त्यमुनि से प्राप्त किया था, वह आभूषण रामने राज्य के साथ ही कुश को दे दिया था। जल बिहार करते समय वह जयशील आभरण जल में गिर पड़ा, जिसका गिरना ज्ञात न हुआ॥ ७२॥

स्नात्वा यथाकाममसौ सदारस्तीरोपकार्यां गतमात्र एव।
दिव्येन शून्यं वलयेन बाहुमपोढनेपथ्यविधिर्ददर्श॥ ७३॥

असौ कुशः सदारः सन्यथाकामं यथेच्छं स्नात्वा विगाह्य। तीरे योपकार्या पूर्वोक्ता तां गतमात्रो गत एवापोढनेपथ्यविधिरकृतप्रसाधन एव दिव्येन वलयेन शून्यं बाहुं ददर्श॥

अन्वयः—असौ सदारः यथाकामं स्नात्वा तीरोपकार्यां गतमात्र एव अपोढनेपथ्यविधिः (सन्) दिव्येन वलयेन शून्यं बाहुं ददर्श।

व्याख्या—असौ = राजा कुशः दारैः = अन्तःपुरसुन्दरीभिः सहितः सदारः सन् कामम् = इच्छामनतिक्रम्य यथाकामं = यथेष्टं स्नात्वा = जलविहारं कृत्वा तीरे = तटे या उपकार्या = उपकारिका तां तीरोपकार्यां = तटे निर्मितपटगृहं गत एवेति गतमात्रः = प्राप्तमात्र एव अपोढः = निरस्तः, अकृत इत्यर्थः नेपथ्यस्य = वेषस्य विधिः = विधानं, धारणमिति यावत् , येन सः अपोढनेपथ्यविधिः एव (अपपूर्वात् वह प्रापणे, धातोः क्तप्रत्यये अपोढः) दिवि भवं दिव्यं तेन दिव्येन = अलौकिकेन वलयेन = कङ्कणेन, अगस्त्यदत्ताभरणेनेत्यर्थः। शून्यं = रिक्तं बाहुं = भुजं ददर्श = दृष्टवान् ।

समासः—दारैः सहितः सदारः। काममनतिक्रम्य यथाकामम् । तीरे उपकार्या तां तीरोपकार्याम् । गत एवेति गतमात्रः। अपोढः नेपथ्यस्य विधिर्येन स अपोढनेपथ्यविधिः।

हिन्दी—वह राजा कुश रानियों के साथ इच्छानुसार जलविहार करके, तीर पर बने कपड़े के राजमहल में ज्यों ही पहुँचा, कि वस्त्र आभूषण पहनने के पहले ही उसने दिव्य आभूषण से खाली अपनी भुजा को देखा ॥ ७३ ॥

जयश्रियः संवननं यतस्तदामुक्तपूर्वं गुरुणा च यस्मात् ।
सेहेऽस्य न भ्रंशमतो न लोभात्स तुल्यपुष्पाभरणो हि धीरः ॥ ७४ ॥

यतः कारणात्तदाभरणं जयश्रियः संवननं वशीकरणम् । 'वशक्रिया संवननम्' इत्यमरः। यस्माच्च गुरुणा पित्रा आमुक्तपूर्वं पूर्वमामुक्तम् । धृतमित्यर्थः। सुप्सुपेति समासः। अतो हेतोरस्याभरणस्य भ्रंशं नाशं न सेहे। लोभान्न। कुतः। हि यस्माद्धीरो विद्वान्स कुशस्तुल्यानि पुष्पाण्याभरणानि च यस्य सः। पुष्पेष्विवाभरणेषु धृतेषु निर्माल्यबुद्धिं करोतीत्यर्थः ॥

अन्वयः—यतः तत् जयश्रियः संवननं, यस्मात् च गुरुणा आमुक्तपूर्वम् , अतः अस्य भ्रंशं न सेहे लोभात् न, सहि-धीरः तुल्यपुष्पाभरणः (आसीत्)।

व्याख्या—यतः = यस्मात्कारणात् तत् = भूषणं जयस्य = विजयस्य श्रीः = लक्ष्मीः तस्याः जयश्रियः संवननं = वशीकरणं 'वशक्रिया संवननमि'त्यमरः। यस्मात् = कारणाच्च गुरुणा = पित्रा रामचन्द्रेण पूर्वं = प्रथमम् आमुक्तं = पिनद्धमिति तत् आमुक्तपूर्वं पूर्वधृतमित्यर्थः। अतः = हेतोः अस्य = दिव्याभरणस्य भ्रंशं = पातं न सेहे = न सोढवान् । लोभात् = अतितृष्णया न = नहि। कस्मात्-इत्याह-हिस धीरः = विद्वान् सन् कुशः तुल्यानि = समानानि पुष्पाणि = कुसुमानि आभरणानि = भूषणानि च यस्य स तुल्यपुष्पाभरणः अर्थात् तस्य कृते यथा पुष्पाणि तथैव आभरणानि, निर्माल्यसदृशानीत्यर्थः।

समासः—जयस्य श्रीः जयश्रीः तस्या जयश्रियः। पूर्वमामुक्तम् इति आमुक्तपूर्वम् । तुल्यानि पुष्पाणि आभरणानि च यस्य स तुल्यपुष्पाभरणः।

हिन्दी—वह आभरण विजयलक्ष्मी का वशीकरण करने वाला था, पिता जी का धारण किया हुआ था, इस कारण कुश उस भूषण के नाश (गिरकर खो जाने) को सहन न कर सका। न कि

लोभ के कारण, क्योंकि विद्वान कुश, पुष्प और आभूषण को एक समान समझता था। अर्थात् दोनों को वह निर्माल्यवत् समझता था। क्योंकि वह लोभी नहीं था॥ ७४॥

ततः समाज्ञापयदाशु सर्वानानायिनस्तद्विचये नदीष्णान्।
वन्ध्यश्रमास्ते सरयूं विगाह्य तमूचुरम्लानमुखप्रसादाः॥ ७५॥

ततः नद्यां स्नान्ति कौशलेनेति नदीष्णास्तान्। 'सुपि' इति योगविभागात्कप्रत्ययः। 'निनदीभ्यां स्नातेः कौशले' इति षत्वम्। सर्वानानायिनो जालिकांस्तस्याभरणस्य विचयेऽन्वेषणे निमित्त आशु समाज्ञापयदादिदेश। त आनायिनः सरयूं विगाह्य विलोड्य वन्ध्यश्रमा विफलप्रयासास्तथापि तद्गतिं ज्ञात्वाऽम्लानमुखप्रसादाः सश्रीकमुखाः सन्तस्तं कुशमूचुः॥

अन्वयः—ततः नदीष्णान् सर्वान् आनायिनः तद्विचये आशु समाज्ञापयत्, ते सरयूं विगाह्य वन्ध्यश्रमाः (अपि) अम्लानमुखप्रसादाः तम् ऊचुः।

व्याख्या—ततः = अनन्तरम् नद्यां = तरंगिण्यां स्नान्ति = अवगाहन्ते कौशलेनेति ते तान् नदीष्णान् सर्वान् = अखिलान् नयनं नायः आसमन्तात् नायोऽनेनेति आनायः, आनयन्ति मत्स्यान् अनेनेति वा आनायः। आनायः अस्ति येषां ते आनायिनः तान् जालिकान् तस्य = आभरणस्य विचयः = अन्वेषणं तस्मिन् तद्विचये, आभरणस्यान्वेषणे, इत्यर्थः। आशु = शीघ्रं समाज्ञापयत् = आदिदेश। ते = सर्वे आनायिनः सरयूं = नदीं विगाह्य = आलोड्य, तत्रान्विष्येत्यर्थः। वन्ध्यः = विफलः श्रमः = प्रयासः येषां ते वन्ध्यश्रमाः तथापि तत्प्राप्तिस्थानं ज्ञात्वा अम्लानः = श्रीयुक्तः मुखस्य आननस्य प्रसादः = स्वच्छता, शान्तिर्येषां ते अम्लानमुखप्रसादाः सन्तः तं = राजानं कुशम् ऊचुः = उक्तवन्तः।

समासः—वन्ध्यः श्रमः येषां ते वन्ध्यश्रमाः। तस्य विचयस्तस्मिन् तद्विचये। अम्लानं यत् मुखं तस्य प्रसादः येषां ते अम्लानमुखप्रसादाः।

हिन्दी—इसके बाद बड़े कुशल गोताखोर सारे मल्लाहों को उस आभूषण के खोज डालने की तुरन्त आज्ञा दी। और वे सरयू नदी में खूब गोता लगाकर (अच्छी प्रकार ढूँढ़कर) बेकार परिश्रम वाले होकर भी उस आभूषण के स्थान को जान कर ने प्रसन्न मुख होकर राजा कुश से बोले॥ ७५॥

कृतः प्रयत्नो न च देव लब्धं मग्नं पयस्याभरणोत्तमं ते।
नागेन लौल्यात्कुमुदेन नूनमुपात्तमन्तर्ह्रदवासिना तत्॥ ७६॥

हे देव, प्रयत्नः कृतः। पयसि मग्नं त आभरणोत्तमं न च लब्धम्। किंतु तदाभरणमन्तर्ह्रदवासिना कुमुदेन कुमुदाख्येन नागेन पन्नगेन लौल्याल्लोभादुपात्तं गृहीतम्। नूनमिति वितर्के॥

अन्वयः—हे देव! प्रयत्नः कृतः पयसि मग्नं ते आभरणोत्तमं न च लब्धम्, किन्तु, तत् अन्तर्ह्रदवासिना कुमुदेन नागेन लौल्यात् उपात्तं नूनम्।

व्याख्या—हे देव = हे राजन् ! प्रकृष्टो यत्नः प्रयत्नः = प्रयासः, चेष्टा कृतः = अनुष्ठितः पयसि = जले मग्नं = लीनं, बुडितमित्यर्थः ते तव आभरणेषु = भूषणेषु उत्तमं = श्रेष्ठं न च = नहि लब्धं = प्राप्तम् । किन्तु तत् = आभरणम् ह्रदस्य = गभीरजलविवरस्य अन्तः = मध्ये इति अन्तर्ह्रदं, तत्र वसति तच्छीलस्तेन अन्तर्ह्रदवासिना कुमुदेन = एतन्नामकेन नागेन = सर्पेण लोलस्य भावः कर्म वा लौल्यं तस्मात् लौल्यात् = लोभात् उपात्तं गृहीतं नूनमिति वितर्के ।

समासः—आभरणेषु उत्तममिति आभरणोत्तमम् । ह्रदस्य अन्तरिति अन्तर्ह्रदं तत्र वासी तेन अन्तर्ह्रदवासिना ।

हिन्दी—हे महाराज ! बहुत परिश्रम किया, "किन्तु" जल में गिरा (डूबा) हुआ आप का वह सर्वश्रेष्ठ आभरण नहीं मिला । किन्तु "हम ऐसा सोचते हैं कि—" जल के गहरे विवर में रहने वाले कुमुद नामक नाग (सांप) ने उस आभरण को लोभ से ले लिया है ॥ ७६ ॥

ततः स कृत्वा धनुराततज्यं धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षः ।
गारुत्मतं तीरगतस्तरस्वी भुजंगनाशाय समाददेऽस्त्रम् ॥ ७७ ॥

ततो धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षस्तरस्वी बलवान्स कुशस्तीरगतः सन्धनुराततज्यमधिज्यं कृत्वा भुजंगस्य कुमुदस्य नाशाय गारुत्मतं गरुत्मद्देवताकमस्त्रं समाददे ॥

अन्वयः—ततः धनुर्धरः कोपविलोहिताक्षः तरस्वी सः तीरगतः 'सन्' धनुः आततज्यं कृत्वा भुजंगनाशाय गारुत्मतम् अस्त्रं समाददे ।

व्याख्या—ततः = जालिकवचनश्रवणानन्तरम् धरतीति धरः, धनुषः धरः धनुर्धरः = चापधारी कोपेन = क्रोधेन विशेषेण लोहिते = रक्ते अक्षिणी = नेत्रे यस्य स कोपविलोहिताक्षः तरः = वेगः अस्यास्तीति तरस्वी = शूरः "तरस्वी शूरवेगयोः" इति मेदिनी । सः = कुशः तीरं = तटं गतः प्राप्तः इति तीरगतः सन् धनुः = चापम् आतता = विस्तारिता, आरोपिता ज्या = मौर्वी यस्मिन् तत् आततेज्यं कृत्वा = विधाय भुजाभ्यां गच्छतीति भुजंगस्तस्य = भुजंगस्य = कुमुदनागस्य नाशः = मारणं तस्मै भुजंगनाशाय गरुतः = पक्षाः सन्त्यस्यासौ गरुत्मान् = गरुडः देवतास्य तत् गारुत्मतम् = गारुडम् अस्त्रं = शस्त्रं समाददे = गृहीतवान् ।

समासः—आतता ज्या यस्मिन् तत् आततज्यं तत् । कोपेन विलोहिते अक्षिणी यस्य स कोपविलोहिताक्षः । तीरं गतस्तीरगतः । भुजंगस्य नाशस्तस्मै भुजंगनाशाय ।

हिन्दी—गोताखोरों के वचन सुनकर, धनुर्धारी, क्रोध के कारण लाल-लाल आँख वाले बलवान् राजा कुश ने तट पर खड़े होकर और धनुष पर डोरी चढ़ाकर कुमुद नामक नाग को मारने के लिये, गरुड़ देवता वाले बाण को ले लिया अर्थात् धनुष पर बाण चढ़ा लिया ॥ ७७ ॥

तस्मिन्ह्रदः संहितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरङ्गहस्तः ।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास ॥ ७८ ॥

तस्मिन्नस्त्रे संहितमात्रे सत्येव ह्रदः क्षोभाद्धेतोः समाविद्धाः संघट्टितास्तरङ्गा एव हस्ता यस्य स रोधांसि निघ्नन्पातयन् । अवपाते गजग्रहणगर्ते मग्नः पतितः । 'अवपातस्तु हस्त्यर्थे गर्तश्छन्नस्तृणादिना' इति यादवः । वन्यः करीव परुषं घोरं ररास दध्वान ॥

अन्वयः—तस्मिन् संहितमात्रे एव ह्रदः क्षोभात् समाविद्धतरंगहस्तः रोधांसि निघ्नन् अवपातमग्नः वन्यः करी इव परुषं ररास ।

व्याख्या—तस्मिन् = गारुत्मतास्त्रे संहितम् एवेति संहितमात्रं तस्मिन् संहितमात्रे = सज्जीकृते सत्येव ह्रदः = अगाधजलः क्षोभात् = सञ्चलनात् कारणात् समाविद्धाः = संताडिताः तरंगाः = वीचयः एव हस्ताः = कराः यस्य स समाविद्धतरंगहस्तः रोधांसि = तटानि निघ्नन् = विनाशयन्, पातयन्नित्यर्थः । अवपाते = हस्तिग्रहणार्थं तृणादिच्छन्नगर्ते मग्नः = पतित इति अवपातमग्नः । "अवपातस्तु हस्त्यर्थे गर्तच्छन्नस्तृणादिना" इति यादवः । वन्यः = आरण्यकः करी = गजः इव = यथा परुषं = भयंकरम् ररास = जगर्ज ।

समासः—संहितम् एव संहितमात्रम् तस्मिन् संहितमात्रे । समाविद्धाः तरंगा एव हस्ताः यस्य स समाविद्धतरंगहस्तः । अवपाते मग्नः अवपातमग्नः ।

हिन्दी—उस अस्त्र के धनुष पर चढ़ाते ही वह अगाध जल, खलबलाने के कारण अपने तरंगरूपी हाथ जोड़े हुए, तटों (किनारों) को गिराता हुआ इस प्रकार भयंकर गर्जने लगा, जैसे कि—गड्ढे में गिरा हुआ जंगली हाथी चिग्घाड़ता है ॥ ७८ ॥

तस्मात्समुद्रादिव मथ्यमानादुद्वृत्तनक्रात्सहसोन्ममज्ज ।
लक्ष्म्येव सार्धं सुरराजवृक्षः कन्यां पुरस्कृत्य भुजंगराजः ॥ ७९ ॥

मथ्यमानात्समुद्रादिव । उद्वृत्तनक्रात्क्षुभितग्राहात्तस्माद्ध्रदात् । लक्ष्म्या सार्धं सुरराजस्येन्द्रस्य वृक्षः पारिजात इव । कन्यां पुरस्कृत्य भुजंगराजः कुमुदः सहसोन्ममज्ज ॥

अन्वयः—मथ्यमानात् समुद्रात् इव उद्वृत्तनक्रात् तस्मात् लक्ष्म्या सार्धं सुरराजवृक्षः इव कन्यां पुरस्कृत्य भुजंगराजः सहसा उन्ममज्ज ।

व्याख्या—मथ्यतेऽसौ मथ्यमानः तस्मात् मथ्यमानात् = आलोड्यमानात् समुद्रात् = सागरात् इव = यथा उद्वृत्ताः = क्षुभिताः नक्राः = ग्राहाः यस्य स तस्मात् उद्वृत्तनक्रात् । तस्मात् = ह्रदात् लक्ष्म्या = श्रिया सार्धं = साकं सुराणां = देवानां राजा = स्वामी, इति सुरराजः = इन्द्रः तस्य वृक्षः = पारिजातः इति सुरराजवृक्षः इव = यथा कन्यां = कुमारीं निजभगिनीमित्यर्थः पुरः = अग्रे कृत्वा इति पुरस्कृत्य भुजंगानां = सर्पाणां राजा इति भुजंगराजः = कुमुदनामा पन्नगः सहसा = झटिति उन्ममज्ज = जलात् बहिरागतः इत्यर्थः ।

समासः—उद्वृत्ताः नक्राः यस्मिन् स तस्मात् उद्वृत्तनक्रात् । सुराणां राजा सुरराजः, सुरराजस्य वृक्षः सुरराजवृक्षः । भुजंगानां राजा भुजंगराजः ।

हिन्दी—मथन किए गये समुद्र से लक्ष्मी के साथ जैसे देवराज इन्द्र का वृक्ष पारिजात (कल्प वृक्ष) एकाएक ऊपर निकल आया था, उसी प्रकार मथन से जिसके मगरमच्छ आदि जलजन्तु घबरा गए थे, ऐसे उस सरयू नदी के गहरे जल से अपनी बहन को आगे करके वह नागराज कुमुद जल से बाहर झटपट निकल आया ॥ ७९ ॥

विभूषणप्रत्युपहारहस्तमुपस्थितं वीक्ष्य विशां पतिस्तम् ।
सौपर्णमस्त्रं प्रतिसंजहार प्रह्वेष्वनिर्बन्धरुषो हि सन्तः ॥ ८० ॥

विशां पतिर्मनुजपतिः कुशः। 'द्वौ विशौ वैश्यमनुजौ' इत्यमरः। विभूषणं प्रत्युपहरति प्रत्यर्पयतीति विभूषणप्रत्युपहारः। कर्मण्यण्। विभूषणप्रत्युपहारो हस्तो यस्य तम्। उपस्थितं प्राप्तं तं कुमुदं वीक्ष्य सौपर्णं गारुत्मतमस्त्रं प्रतिसंजहार। तथाहि। सन्तः प्रह्वेषु नम्रेष्वनिर्बन्धरुषोऽनियतकोपा हि ॥

अन्वयः—विशाम्पतिः विभूषणप्रत्युपहारहस्तम् उपस्थितं तं वीक्ष्य, सौपर्णम् अस्त्रं प्रतिसंजहार। हि सन्तः प्रह्वेषु अनिर्बन्धरुषः, भवन्ति।

व्याख्या—विशां = मनुष्याणां पतिः = स्वामी कुशः = रामपुत्रः "विट् स्मृतो वैश्यमनुजप्रवेशेषु मनीषिभिरि'ति मेदिनी। विभूषणम् = अलौकिकमाभरणं प्रत्युपहरति = प्रत्यर्पयति यः स विभूषणप्रत्युपहारः, विभूषणप्रत्युपहारः हस्तः = करः यस्य स विभूषणप्रत्युपहारहस्तस्तं विभूषणप्रत्युपहारहस्तम् उपस्थितं = समीपागतं तं = कुमुदनामानं नागं वीक्ष्य = अवलोक्य कनकमयत्वात्। सुवर्णवर्णत्वाद्वा शोभते पर्णे = पक्षौ यस्य स सुपर्णः, सुपर्णस्येदं सौपर्णं = गारुत्मतम् अस्त्रं = बाणं प्रतिसञ्जहार = उपसंहृतवान्। हि—यतः सन्तः = सज्जनाः प्रह्वेषु = नम्रीभूतेषु न निर्बन्धः = न आग्रहः यस्यां सा अनिर्बन्धा = दुराग्रहहीना रुट् = कोपः येषां ते अनिर्बन्धरुषः भवन्तीति शेषः।

समासः—विभूषणस्य प्रत्युपहारः हस्ते यस्य स तं विभूषणप्रत्युपहारहस्तम्। अनिर्बन्धा रुट् येषां ते अनिर्बन्धरुषः।

हिन्दी—दिव्य आभूषण रूपी प्रत्युपहार (बदले की भेंट) को हाथ में लेकर उपस्थित हुए उस नाग को देखकर राजा कुश ने गारुड अस्त्र को उतार लिया (धनुष की डोरी से उतार कर तरकश में रख लिया)। यह उचित ही किया। क्योंकि सज्जन लोग नम्र होकर आये हुए लोगों के प्रति अनियत क्रोध वाले होते हैं। अर्थात् क्रोध का त्याग कर देते हैं ॥८०॥

त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्रभावात्कुशं द्विषामङ्कुशमस्त्रविद्वान् ।
मानोन्नतेनाप्यभिवन्द्य मूर्ध्ना मूर्धाभिषिक्तं कुमुदो बभाषे ॥ ८१ ॥

अस्त्रं विद्वानस्त्रविद्वान्। 'न लोक—' इत्यादिना षष्ठीसमासनिषेधः। 'द्वितीया श्रित—' इत्यत्र गम्यादीनामुपसंख्यानाद् द्वितीयेति योगविभागाद्वा समासः। गारुडास्त्रमहिमाभिज्ञ इत्यर्थः।

कुमुदः। त्रयो लोकास्त्रैलोक्यम्। चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्प्रत्ययः। त्रैलोक्यनाथो रामः प्रभवो जनको यस्य तम्। अत एव प्रभावाद् द्विषामङ्कुशं निवारकं मूर्धाभिषिक्तं राजानं कुशं मानोन्नतेनापि मूर्ध्नाभिवन्द्य प्रणम्य बभाषे॥

अन्वयः—अस्त्रविद्वान् कुमुदः त्रैलोक्यनाथप्रभवम् 'अतएव' प्रभावात् द्विषाम् अंकुशं मूर्धाभिषिक्तं कुशं मानोन्नतेन अपि मूर्ध्ना अभिवन्द्य बभाषे।

व्याख्या—वेत्ति = जानातीति विद्वान्, अस्त्रं = गारुडास्त्रं विद्वानिति अस्त्रविद्वान् गारुडास्त्रप्रभावज्ञ इत्यर्थः। कुमुदः = नागः, त्रयो लोकास्त्रैलोक्यं, त्रैलोक्यस्य = भुवनत्रयस्य नाथः = स्वामी इति त्रैलोक्यनाथः = रामः प्रभवः = जनकः पिता यस्य स तं त्रैलोक्यनाथप्रभवम् अतः एव प्रभावात् = प्रतापात् द्विषन्तीति द्विषस्तेषां द्विषां = शत्रूणाम् अंकुशं = निवारकं मूर्ध्नि = मस्तके अभिषिच्यते, राज्यतिलकसमये यः स मूर्धाभिषिक्तस्तं मूर्धाभिषिक्तं = राजानं कुशं = रामपुत्रम् मानेन = गर्वेण उन्नतः इति मानोन्नतस्तेन मानोन्नतेन अपि मुह्यति यस्मिन्नाहते सति स मूर्धा तेन मूर्ध्ना = मस्तकेन अभिवन्द्य = प्रणम्य अभिवन्दनं कृत्वा इत्यर्थः। बभाषे = उक्तवान्।

समासः—त्रैलोक्यस्य नाथस्त्रैलोक्यनाथः, त्रैलोक्यनाथः प्रभवः यस्य स तं त्रैलोक्यनाथप्रभवम्। अस्त्रं विद्वानिति अस्त्रविद्वान्। (अत्र न लोकेति षष्ठीसमासस्य निषेधेन गम्यादीनामुपसंख्यानमिति समासः।) मानेन उन्नतस्तेन मानोन्नतेन।

हिन्दी—त्रिलोकी के नाथ राम के पुत्र, एवं प्रभाव से शत्रुओं के अंकुश (अर्थात् अंकुश के समान पीड़ा देनेवाले) महाराज कुश को, घमण्ड से ऊँचे भी अपने मस्तक से प्रणाम करके गारुड अस्त्र के प्रभाव को जानने वाला कुमुद नाग बोला॥ ८१॥

अवैमि कार्यान्तरमानुषस्य विष्णोः सुताख्यामपरां तनुं त्वाम्।
सोऽहं कथं नाम तवाचरेयमाराधनीयस्य धृतेर्विघातम्॥ ८२॥

त्वाम्। ओदनान्तरस्तण्डुल इतिवत्कार्यान्तरः कार्यार्थः। 'स्थानात्मीयान्यतादर्थ्यरन्ध्रान्तर्येषु चान्तरम्' इति शाश्वतः। स चासौ मानुषश्चेति तस्य विष्णो रामस्य सुताख्यां पुत्रसंज्ञामपरां तनुं मूर्तिमवैमि। 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतिरित्यर्थः। स जानन्नहमाराधनीयस्योपास्यस्य तव धृतेः प्रीतेः। 'धृ प्रीतौ' इति धातोः स्त्रियां क्तिन्। विघातं कथं नामाचरेयम्। असंभावितमित्यर्थः॥

अन्वयः—त्वां कार्यान्तरमानुषस्य विष्णोः सुताख्याम् अपरां तनुम् अवैमि। सः अहं आराधनीयस्य तव धृतेः विघातं कथं नाम आचरेयम्।

व्याख्या—त्वां = भवन्तम् अन्यत् कार्यं यस्य कार्यान्तरः = प्रयोजनार्थश्चासौ मानुषः = नरश्चेति कार्यान्तरमानुषस्तस्य कार्यान्तरमानुषस्य, भूभारहरणरूपप्रयोजनार्थधृतमनुजावतारस्येत्यर्थः। विष्णोः = रामस्य सुतः = पुत्रः इति आख्या = संज्ञा यस्याः सा तां सुताख्याम् अपराम् = अन्यां तनुं = मूर्तिम् अवैमि = जानामि। "आत्मा वै पुत्रनामासि" इति श्रुतिवचनात्।

सः = एवं ज्ञातवान् अहं = कुमुदः आराधयितुं योग्यः आराधनीयस्तस्य आराधनीयस्य = उपासनीयस्य, तव = भवतः कुशस्य धृतेः = तुष्टेः प्रीतेः। "धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु" इति विश्वः। विघातं = विघ्नं बाधमित्यर्थः कथं नाम = केन प्रकारेण सम्भाव्यमाचरेयम् = कुर्याम्। सर्वथा असंभाव्यमित्यर्थः।

समासः—कार्यान्तरश्चासौ मानुषश्चेति कार्यान्तरमानुषः तस्य कार्यान्तरमानुषस्य। सुतः आख्या यस्याः सा तां सुताख्याम्।

हिन्दी—राक्षसों के विनाशरूपी कार्य के लिये मनुष्य का शरीर धारण करने वाले, विष्णु के ही पुत्र नामक दूसरे शरीर तुमको मैं जानता हूँ। (अर्थात् विष्णु के अवतार राम के पुत्र हैं यह मैं जानता हूँ) यह सब जानने वाला मैं पूजनीय आपकी प्रसन्नता का विघात (विनाश, रोक) कैसे कर सकता हूँ। अर्थात् आप से वैर करना सर्वथा असंभव है॥ ८२॥

कराभिघातोत्थितकन्दुकेयमालोक्य बालातिकुतूहलेन।
ह्रदात्पतज्ज्योतिरिवान्तरिक्षादादत्त जैत्राभरणं त्वदीयम्॥ ८३॥

कराभिघातोत्थित ऊर्ध्वं गतः कन्दुको यस्याः सा। कन्दुकार्थमूर्ध्वं पश्यन्तीत्यर्थः। इयं बालातिकुतूहलेनात्यन्तकौतुकेनान्तरिक्षाज्ज्योतिर्नक्षत्रमिव। 'ज्योतिर्भद्योतदृष्टिषु' इत्यमरः। ह्रदात्पतत्त्वदीयं जैत्राभरणमालोक्यादत्तागृह्णात्॥

अन्वयः—कराभिघातोत्थितकन्दुका इयं बाला अतिवेगेन अन्तरिक्षात् ज्योतिः इव ह्रदात् पतत् त्वदीयं जैत्राभरणम् आलोक्य आदत्त।

व्याख्या—करेण = हस्तेन यः अभिघातः = ताडनं तेन उत्थितः = ऊर्ध्वगतः कन्दुकः = गेन्दुकः यस्याः सा कराभिघातोत्थितकन्दुका इयं = पुरोवर्तिनी बाला = कुमारी कुतूहलमतिक्रान्तम् अतिकुतूहलं तेन अतिकुतूहलेन = अतीवौत्सुक्येन अन्तरिक्षात् = आकाशात् ज्योतिः = नक्षत्रम् इव यथा ह्रदात् = सरयूजलात् पतत् = अधोगच्छत् तत्र इदं त्वदीयं = भवदीयम् जैत्रं = जयशीलं च तत् आभरणं भूषणमिति जैत्राभरणम् आलोक्य = दृष्ट्वा आदत्त = गृहीतवती। कन्दुकार्थमूर्ध्वं पश्यन्त्यानया पतदिदमाभरणं दृष्ट्वा गृहीतमिति न मे दोष इत्यर्थः।

समासः—करेण अभिघातः कराभिघातः, तेन उत्थितः कन्दुकः यस्याः सा कराभिघातोत्थितकन्दुका। जैत्रञ्च तदाभरणमिति जैत्राभरणं तत्।

हिन्दी—गेन्द खेलते समय हाथ से मारने से ऊपर को उछल गई थी गेन्द जिसकी ऐसी इस मेरी बहन ने बड़ी उत्सुकता से आकाश से गिरते हुए तारे के समान, अगाध जल से नीचे गिरते हुये तथा जिताने वाले आप के आभूषण को देखकर तुरन्त पकड़ लिया॥८३॥

तदेतदाजानुविलम्बिना ते ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन।
भुजेन रक्षापरिघेण भूमेरुपैतु योगं पुनरंसलेन॥ ८४॥

तदेतदाभरणमाजानुविलम्बिना दीर्घेण । ज्याघातेन या रेखा रेखाकारा ग्रन्थयस्तासां किणं चिह्नं तदेव लाञ्छनं यस्य तेन । भूमे रक्षायाः परिघेण रक्षार्गलेन । 'परिघो योगभेदास्त्रमुद्गरेऽर्गलघातयोः' इत्यमरः । अंसलेन बलवता ते भुजेन पुनर्योगं संगतिमुपैतु । एतैर्विशेषणैर्महाभाग्यशौर्यधुरंधरत्वबलवत्त्वादि गम्यते ॥

अन्वयः—तत् एतत् आजानुलाम्बिना ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन भूमेः रक्षापरिघेण ते अंसलेन भुजेन पुनः योगम् उपैतु ।

व्याख्या—तत् = प्रसिद्धम् एतत् = आभरणम् जायते इति जानु जानु = ऊरुपर्व-ऊरुजंघयोरूर्ध्वभागम् इत्यर्थः । अभिव्याप्य इति आजानु = जानुपर्यन्तं लम्बते इति आजानुलम्बी तेन-आजानुलम्बिना दीर्घेणेत्यर्थः । ज्यायाः = मौर्व्याः आघातः = प्रहारः तेन याः रेखाः = रेखाकाराः ग्रन्थयः इति ज्याघातरेखास्तासां किणं चिह्नं तदेव लाञ्छनं = लक्ष्म यस्य स तेन ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन भूमेः = पृथिव्याः रक्षायाः = पालनस्य परिघः = अर्गला तेन रक्षापरिघेण ते = तव कुशस्य अंसः = बलमस्यास्तीति अंसलस्तेन अंसलेन भुजेन = बाहुना पुनः = भूयः योगं = संयोगम् ऊपैतु = प्राप्नोतु, तव भुजेनैव संगच्छताम् इत्यर्थः ।

समासः—आजानु लम्बी तेन आजानुलाम्बिना । ज्यायाः आघातस्तेन याः रेखास्तासां किणं तदेव लाञ्छनं, यस्य स तेन ज्याघातरेखाकिणलाञ्छनेन । रक्षायाः परिघस्तेन रक्षापरिघेन ।

हिन्दी—वह प्रसिद्ध जिताने वाला आभूषण यह है इसे लीजिये । यह फिर आपकी बलवान भुजा से ही संयुक्त रहे । अर्थात् आप ही हाथ में इसे फिर पहने । जो आप की भुजा घुटने तक लम्बी, तथा धनुष की डोरी की रगड़ से जिसमें घट्ठों के निशान हैं और पृथिवी की रक्षा की अर्गला (जंजीर) हैं । रक्षा में लोहे की अर्गला के समान मजबूत है ॥ ८४ ॥

इमां स्वसारं च यवीयसीं मे कुमुद्वतीं नार्हसि नानुमन्तुम् ।
आत्मापराधं नुदतीं चिराय शुश्रूषया पार्थिव पादयोस्ते ॥ ८५ ॥

किंच । हे पार्थिव, ते तव पादयोश्चिराय शुश्रूषया परिचर्यया । 'शुश्रूषा श्रोतुमिच्छायां परिचर्याप्रदानयोः' इति विश्वः । आत्मापराधमाभरणग्रहणरूपं नुदतीम् । परिजिहीर्षन्तीमित्यर्थः । 'आशंसायां भूतवच्च' इति चकराद्वर्तमानार्थे शतृप्रत्ययः । 'आच्छीनद्योर्नुम्' इत्यस्य वैकल्पिकत्वान्नुमभावः । इमां मे यवीयसीं कनिष्ठां स्वसारं भगिनीं कुमुद्वतीमनुमन्तुं नार्हसीति न । अर्हस्येवेत्यर्थः ॥

अन्वयः—हे पार्थिव ! ते पादयोः चिराय शुश्रूषया आत्मापराधं नुदतीम् इमां मे यवीयसीं स्वसारं कुमुद्वतीम् न अनुमन्तुं न अर्हसि ।

व्याख्या—पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवस्तत्संबुद्धौ हे पार्थिव = हे राजन् ! ते = तव पादयोः = चरणयोः चिराय = चिरकालपर्यन्तं शुश्रूषणं शुश्रूषा तया शुश्रूषया = परिचर्यया-सेवया, इत्यर्थः ।

"शुश्रूषा परिचर्याप्युपासना" इत्यमरः। आत्मनः = स्वस्य अपराधः = आगः, इति तम् आत्मापराधं दिव्याभरणग्रहणरूपमित्यर्थः, नुदतीं = परिजिहीर्षन्तीम् इमां = पुरस्थाम् मे = मम नागस्य यवीयसी = कनिष्ठाम् अनुजामित्यर्थः। सुष्ठु अस्यति अस्यते या स्वसा तां स्वसारं = भगिनीम् कुमुदान्यस्याः सन्तीति कुमुद्वती तां कुमुद्वतीम् = एतन्नाम्नीम् अनुमन्तुं = स्वीकर्तुं न अर्हसि न = न योग्योसि इति न, किन्तु अर्हस्येवेत्यर्थः।

समासः—आत्मनः अपराधः आत्मापराधस्तम्, आत्मापराधम्।

हिन्दी—हे राजन्! आपके चरणों की जीवन भर सेवा करके अपने अपराध (आपके कंकण को ले लेना रूप) को मिटाने की इच्छावाली इस मेरी छोटी बहन कुमुद्वती को स्वीकृत करने के लिये क्या आप योग्य नहीं हैं! अवश्य योग्य हैं। अतः इसे पत्नीरूप से स्वीकार करें॥८५॥

इत्यूचिवानुपहृताभरणः क्षितीशं
श्लाघ्यो भवान्स्वजन इत्यनुभाषितारम्।
संयोजयां विधिवदास समेतबन्धुः
कन्यामयेन कुमुदः कुलभूषणेन॥ ८६॥

इति पूर्वश्लोकोक्तमूचिवानुक्तवान्। ब्रुवः क्वसुः। उपहृताभरणः प्रत्यर्पिताभरणः कुमुदः। हे कुमुद, भवाञ्श्लाघ्यः स्वजनो बन्धुः इत्यमनुभाषितारमनुवक्तारं क्षितीशं कुशं समेतबन्धुर्युक्तबन्धुः सन्कन्यामयेन कन्यारूपेण कुलयोर्भूषणेन विधिवत्संयोजयामास। न केवलं तदीयमेव किन्तु स्वकीयमपि भूषणं तस्मै दत्तवानिति ध्वनिः। आम्प्रत्ययानुप्रयोगयोर्व्यवधानं तु प्रागेव समाहितम्॥

अन्वयः—इति ऊचिवान् उपहृताभरणः कुमुदः हे कुमुद! भवान् श्लाघ्यः स्वजनः इति अनुभाषितारं क्षितीशं, समेतबन्धुः सन् कन्यामयेन कुलभूषणेन विधिवत् संयोजयामास।

व्याख्या—इति = इत्थं पूर्वश्लोकोक्तप्रकारेण ऊचिवान् = उक्तवान् उपहृतम् = उपहाररूपेण प्रत्यर्पितम् आभरणम् = आभूषणं येन सः उपहृताभरणः कुमुदः = नागः। हे कुमुद! भवान् = श्रीमान् श्लाघ्यः = श्लाघयितुं योग्यः, प्रशंसनीयः स्वस्य = आत्मनः जनः = बान्धवः इति स्वजनः कुशस्य मे बन्धुः भवानित्यर्थः। इति = एवम् अनुभाषितारम् अनुवक्तारं क्षितेः = पृथिव्याः ईशः = स्वामी तं क्षितीशं = राजानं समेतः = सम्प्राप्तः बन्धुः = कुटुम्बः यस्य स समेतबन्धुः सन् परिजनसहित इत्यर्थः। कन्या प्रचुरं = प्रधानमिति कन्यामयं तेन कन्यामयेन = कुमारीरूपेणेत्यर्थः कुलयोः = वंशयोः भूषणम् = अलंकारस्तेन कुलभूषणेन विधिना तुल्यं विधिवत् = शास्त्रानुसारं संयोजयामास = सम्मेलयामास, विधिपूर्वकं विवाहं कारयामासेत्यर्थः।

समासः—उपहृतम् आभरणं येन स उपहृताभरणः। क्षितेः ईशः क्षितीशस्तं क्षितीशम्। समेतः बन्धुः यस्य स समेतबन्धुः। कुलयोः भूषणं तेन कुलभूषणेन।

हिन्दी—इस प्रकार कहकर कुमुद ने वह अलौकिक आभूषण कुश को अर्पित कर दिया। तब राजा ने कहा कि "हे कुमुद ! आप आदरणीय मेरे बन्धु (संबन्धी) हैं।" यह कहने वाले राजा कुश को, कुमुद ने अपने कुटुम्बियों को बुलाकर कन्यारूपी कुलभूषण से विधिपूर्वक मिला दिया। विवाह करा दिया। अर्थात् कुमुद ने राजा का ही वह भूषण मात्र नहीं दिया, किन्तु अपना भूषण भी उन्हें दे दिया ॥८६॥

तस्याः स्पृष्टे मनुजपतिना साहचर्याय हस्ते
माङ्गल्योर्णावलयिनि पुरः पावकस्योच्छिखस्य ।
दिव्यस्तूर्यध्वनिरुदचरद् व्यश्नुवानो दिगन्तान्
गन्धोदग्रं तदनु ववृषुः पुष्पमाश्चर्यमेघाः ॥८७॥

मनुजपतिना कुशेन साहचर्याय सहधर्माचरणायेत्यर्थः। माङ्गल्या मङ्गले साधुर्योर्णा मेषादिलोम। 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यात्' इत्यमरः। अत्र लक्षणया तन्निर्मितं सूत्रमुच्यते। तया वलयिनि वलयवति तस्याः कुमुद्वत्या हस्ते पाणावुच्छिखस्योदर्चिषः पावकस्य पुरोऽग्रे स्पृष्टे गृहीते सति दिगन्तान्व्यश्नुवानो व्याप्नुवन्दिव्यस्तूर्यध्वनिरुदचरदुत्थितः। तदन्वाश्चर्या अद्भुता मेघा गन्धेनोदग्रमुत्कटं पुष्पं पुष्पाणि। जात्यभिप्रायेणैकवचनम्। ववृषुः। आश्चर्यशब्दस्य 'रौद्रं तूग्रममी त्रिषु। चतुर्दश' इत्यमरवचनात्त्रिलिङ्गत्वम् ॥

अन्वयः—मनुजपतिना साहचर्याय मांगल्योर्णावलयिनि तस्याः हस्ते उच्छिखस्य पावकस्य पुरः स्पृष्टे सति दिगन्तान् व्यश्नुवानः दिव्यः तूर्यध्वनिः उदचरत्। तदनु आश्चर्यमेघाः गन्धोदग्रं पुष्पं ववृषुः।

व्याख्या—मनोः जाताः मनुजाः=मनुष्यास्तेषां पतिः=रक्षकस्तेन मनुजपतिना=राज्ञा कुशेन सह=साकं चरतीति सहचरस्तस्य भावः कर्म वा साहचर्यं तस्मै साहचर्याय=सहधर्मादिचरणाय मंगले=कल्याणे साध्वी मांगल्या या ऊर्णा=मेषादिलोम इति मांगल्योर्णा लक्षणया ऊर्णानिर्मितं सूत्रमित्यर्थः। मांगल्योर्णया वलयी=कङ्कणवान् तस्मिन् मांगल्योर्णावलयिनि=मांगलिकोर्णानिर्मितसूत्रधारिणि, तस्याः=कुमुद्वत्याः हस्ते=करे उद्गताः शिखाः=ज्वालाः यस्मिन् स तस्य उच्छिखस्य पावकस्य=अग्नेः पुरः=अग्रे स्पृष्टे=गृहीते सति दिशां=काष्ठानाम् अन्ताः=अवसानानि तान् दिगन्तान्=दिगन्तरालानीत्यर्थः व्यश्नुवानः=व्याप्नुवन् दिवि भवः दिव्यः=स्वर्गीयः तूर्याणां=मुरजादीनां ध्वनिः=शब्दः इति तूर्यध्वनिः उदचरत्=उत्थितः। तस्य=तूर्यध्वनेः अनु=पश्चात् तदनु आश्चर्याः=अद्भुताः च ते मेघाः=घनाः इति आश्चर्यमेघाः गन्धेन=सुरभिणा उदग्रम्=उत्कटमिति गन्धोदग्रं पुष्पं जात्यभिप्रायेणैकवचनं, तेन सुरभीणि पुष्पाणि, ववृषुः=वर्षन्तिस्म।

समासः—मनोः जाताः मनुजास्तेषां पतिस्तेन मनुजपतिना। मांगल्या चासौ ऊर्णा, मांगल्योर्णा, तया वलयी, तस्मिन् मांगल्योर्णावलयिनि। उद्गताः शिखाः यस्मिन् स तस्य

उच्छिखस्य । दिशाम् अन्तास्तान् दिगन्तान् । तूर्याणां ध्वनिः तूर्यध्वनिः । आश्चर्याश्च ते मेघाः आश्चर्यमेघाः । गन्धेन उदग्रमिति गन्धोदग्रं तत् । तस्य अनु तदनु ।

हिन्दी—मनुष्यों के राजा कुश ने जब अपनी सहधर्मिणी (पत्नी) बनाने के लिये प्रज्वलित अग्नि के सामने, मांगलिक ऊनी कंगन बन्धा हुआ उस कुमुद्वती का हाथ पकड़ा, उसी समय स्वर्गीय मुरजादि बाजों की ध्वनि, सारी दिशाओं को व्याप्त करती हुई उठीं। अर्थात् दिशाएँ गूँज उठीं। और इसके बाद विचित्र प्रकार के बादलों ने खूब सुगन्धित पुष्पों की वर्षा की ॥ ८७ ॥

इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथिलेयं
लब्ध्वा बन्धुं तमपि च कुशः पञ्चमं तक्षकस्य ।
एकः शङ्कां पितृवधरिपोरत्यजद्वैनतेया-
च्छान्तव्यालामवनिमपरः पौरकान्तः शशास ॥ ८८ ॥

इत्थं नागाः कुमुदः । त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम् । 'तद्धितार्थ–' इत्यादिना तत्पुरुषः । 'अदन्तद्विगुत्वेऽपि पात्राद्यदन्तत्वान्नपुंसकत्वम्' । 'पात्राद्यदन्तैरनेकार्थो द्विगुर्लक्ष्यानुसारतः' इत्यमरः । तस्य गुरू रामः । तस्यौरसं धर्मपत्नीजं पुत्रम् । 'औरसो धर्मपत्नीजः' इति याज्ञवल्क्यः । मैथिलेयं कुशं बन्धुं लब्ध्वा कुशोऽपि च तक्षकस्य पञ्चमं पुत्रं तं कुमुदं बन्धुं लब्ध्वा एकस्तयोरन्यतरः कुमुदः पितृवधेन रिपोर्वैनतेयाद्गरुडात् । गुरुणा वैष्णवांशेन कुशेन त्याजितक्रौर्यादिति भावः । शङ्कां भयमत्यजत् । अपरः कुशः शान्तव्यालां कुमुदाज्ञया वीतसर्पभयामवनिमत एव पौरकान्तः पौरप्रियः सञ्छशास ॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया
समेते कहाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
कुमुद्वतीपरिणयो नाम षोडशः सर्गः ॥

अन्वयः—इत्थं नागः त्रिभुवनगुरोः औरसं मैथिलेयं बन्धुं लब्ध्वा कुशः अपि च तक्षकस्य पञ्चमं पुत्रं तं "बन्धुं लब्ध्वा" एकः पितृवधरिपोः वैनतेयात् शंकाम् अत्यजत्, अपरः शान्तव्यालाम् अवनिम् पौरकान्तः सन् शशास ।

व्याख्या—इत्थं = पूर्वप्रकारेण नागः = कुमुदः त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं, त्रिभुवनस्य गुरुः = रामचन्द्रः, इति त्रिभुवनगुरुः, तस्य त्रिभुवनगुरोः, उरसा निर्मितः औरसः = धर्मपत्नीजस्तम्, औरसं पुत्रम् । मैथिल्याः पुत्रः मैथिलेयस्तं मैथिलेयं कुशं = रामपुत्रं बन्धुं = संबन्धिनं लब्ध्वा = प्राप्य, कुशोऽपि च तक्षतीति तक्षकस्तस्य तक्षकस्य = नागस्य पञ्चमं पुत्रं तं = कुमुदं बन्धुं लब्ध्वा = प्राप्य, एकः = कुमुदः पितुः = जनकस्य वधः = मारणं तेन रिपुः = शत्रुः तस्मात् पितृवधरिपोः विनतायाः अपत्यं पुमान्, तस्मात् वैनतेयात् = गरुडात् शंकां =

भयम् अत्यजत् = त्यक्तवान् । अपरः = कुशः शान्ताः = शमिताः व्यालाः = सर्पाः यस्यां सा तां शान्तव्यालां = सर्पभीतिशून्यामित्यर्थः । "शान्तः शमिते" इत्यमरः । अवनिं = पृथिवीम् अत एव पौराणां = नागरिकाणां कान्तः = प्रियः इति पौरकान्तः सन् शशास = शासितवान् । पालयामासेत्यर्थः ।

समासः—त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं, त्रिभुवनस्य गुरुः तस्य त्रिभुवनगुरोः । पितुः वधः पितृवधस्तेन रिपुस्तस्य पितृवधरिपोः । शान्ताः व्यालाः यस्यां सा तां शान्तव्यालाम् । पौराणां कान्तः पौरकान्तः ।

हिन्दी—इस प्रकार तीनों लोकों के नाथ राम के एवं मैथिली (सीता जी) के पुत्र राजा कुश को अपना बन्धु (समधी) बनाकर नागराज कुमुद ने, पिता को मार डालने के कारण शत्रु गरुड़ से डरना छोड़ दिया। और राजा कुश भी, तक्षक नाग के पाँचवें पुत्र कुमुद को अपना बन्धु बनाकर, इसी लिये जिसमें साँपों का उपद्रव शान्त हो गया है ऐसी पृथिवी पर लोकप्रिय होकर शासन करने लगे ।

विशेषः—विष्णु के अवतार राम के पुत्र कुश जब कुमुद के संबन्धी हो गए तो विष्णु के वाहन ने साँपों से वैर त्याग दिया, और नागों ने भी बन्धु के नाते कुश की प्रजा से वैर करना छोड़ दिया ॥ ८८ ॥

इति श्रीशांकरिश्रीधरादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये कुमुद्वतीपरिणयो नाम षोडशः सर्गः ॥

सप्तदशः सर्गः

नमो रामपदाम्भोजं रेणवो यत्र संततम् ।
कुर्वन्ति कुमुदप्रीतिमरण्यगृहमेधिनः ॥

अतिथिं नाम काकुत्स्थात्पुत्रं प्राप कुमुद्वती ।
पश्चिमाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना ॥ १ ॥

कुमुद्वती काकुत्स्थात्कुशादतिथिं नाम पुत्रम् । चेतना बुद्धिः पश्चिमादन्तिमाद्यामिन्या रात्रेर्यामात्प्रहरात् । 'द्वौ यामप्रहरौ समौ' इत्यमरः । प्रसादं वैशद्यमिव । प्राप । ब्राह्मे मुहूर्ते सर्वेषां बुद्धिवैशद्यं भवतीति प्रसिद्धिः ॥

श्रीरामभद्राय नमः ।

अन्वयः—कुमुद्वती काकुत्स्थात् अतिथिं नाम पुत्रं, चेतना पश्चिमात् यामिनीयामात् प्रसादम् इव प्राप ।

व्याख्या—कुमुदानि सन्त्यस्याः सा कुमुद्वती = एतन्नाम्नी, कुमुदनागस्य भगिनी कं = सुखं कौति = सूचयतीति ककुद्, ककुदि = वृषस्कन्धे तिष्ठतीति ककुत्स्थः । ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थस्तस्मात् काकुत्स्थात् = कुशात्, अतति = गच्छतीति अतिथिस्तम् अतिथिं नाम पुत्रं = सुतम् "अतिथिः कुशपुत्रे स्यात्पुमानागन्तुकेऽपि च" इति विश्वमेदिन्यौ । चेतना = बुद्धिः पश्चात् भवं पश्चिमं तस्मात् पश्चिमात् = अन्त्यात् भयहेतुत्वात् निन्दिताः यामाः सन्ति यस्याः सा यामिनी = रात्रिः तस्याः यामः प्रहरस्तस्मात् यामिनीयामात् "द्वौ यामप्रहरौ समौ" इत्यमरः । प्रसादं = वैशद्यम् इव = यथा प्राप = अवाप । ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धेः नैर्मल्यं भवतीति प्रसिद्धिः ।

समासः—यामिन्याः यामः यामिनीयामस्तस्मात् यामिनीयामात् ।

हिन्दी—कुमुद्वती ने ककुत्स्थ वंशी कुश से अतिथि नाम के पुत्र को उसी प्रकार प्राप्त किया था, जिस प्रकार रात्रि के अन्तिम प्रहर (ब्राह्म मुहूर्त) में बुद्धि निर्मलता स्वच्छता को प्राप्त करती है । ब्राह्म मुहूर्त में बुद्धि स्वच्छ रहती है ॥ १ ॥

स पितुः पितृमान्वंशं मातुश्चानुपमद्युतिः ।
अपुनात्सवितेवोभौ मार्गावुत्तरदक्षिणौ ॥ २ ॥

पितृमान् । प्रशंसार्थे मतुप् । सुशिक्षित इत्यर्थः । अनुपमद्युतिः सवितुश्चेदं विशेषणम् । सोऽतिथिः पितुः कुशस्य मातुः कुमुद्वत्याश्च वंशम् । सवितोत्तरदक्षिणावुभौ मार्गाविव । अपुनात्पवित्रीकृतवान् ॥

अन्वयः—पितृमान् अनुपमद्युतिः सः पितुः मातुः च वंशं सविता उत्तरदक्षिणौ उभौ मार्गौ इव अपुनात् ।

व्याख्या—प्रशस्तः पिता अस्ति अस्यासौ पितृमान् प्रशंसार्थे मतुब् प्रत्ययः सुशिक्षितः गुणीत्यर्थः । अनुपमा = अतुलनीया सर्वश्रेष्ठा द्युतिः = कान्तिः यस्य स अनुपमद्युतिः सः = अतिथिः, पितुः = जनकस्य = कुशस्य, मातुः = जनन्याः = कुमुद्वत्याश्च वंशं = कुलम्, सुवति = लोकान् कर्मणि प्रेरयतीति सविता = सूर्यः उत्तरश्च दक्षिणश्चेति उत्तरदक्षिणौ उभौ = द्वौ मार्गौ = पन्थानौ, उत्तरायणदक्षिणायनरूपौ इत्यर्थः । इव = यथा अपुनात् = पवित्रीकृतवान् । यथा सूर्यः उत्तरदिशं दक्षिणदिशं च पवित्रयति प्रकाशयति च, एवमतिथिरपि पितृकुलं मातृकुलं च पूतं प्रकाशितञ्चाकरोदीत्यर्थः ।

समासः—न विद्यते उपमा यस्याः सा अनुपमा, अनुपमा द्युतिः यस्य सः अनुपमद्युतिः । उत्तरश्च दक्षिणश्चेति उत्तरदक्षिणौ, तौ ।

हिन्दी—जिस प्रकार परमतेजस्वी सूर्य, उत्तर और दक्षिण दोनो मार्गों (छः मास उत्तर दिशा में और छः दक्षिण दिशा में उत्तरायण, दक्षिणायन होकर) को पवित्र एवं प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार अच्छे उत्तम पिता वाले, अतुलप्रतापी सुशिक्षित होकर अतिथि ने भी माता एवं पिता के दोनों (सूर्यवंश तथा नागवंश) को पवित्र और प्रकाशित कर दिया ॥२॥

तमादौ कुलविद्यानामर्थमर्थविदां वरः ।
पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिमग्राहयत्पिता ॥ ३ ॥

अर्थाञ्छब्दार्थान्दानसंग्रहादिक्रियाप्रयोजनानि च विदन्तीत्यर्थविदः । तेषां वरः श्रेष्ठः पिता कुशस्तमतिथिमादौ प्रथमं कुलविद्यानामान्वीक्षिकीत्रयीवार्तादण्डनीतीनामर्थमभिधेयमग्राहयदबोधयत् । पश्चात्पार्थिवकन्यानां पाणिमग्राहयत्स्वीकारितवान् । उदवाहयदित्यर्थः । ग्रहेर्ण्यन्तस्य सर्वत्र द्विकर्मकत्वमस्तीत्युक्तं प्राक् ॥

अन्वयः—अर्थविदां वरः पिता तम् आदौ कुलविद्यानाम् अर्थम् अग्राहयत् । पश्चात् पार्थिवकन्यानां पाणिम् अग्राहयत् ।

व्याख्या—अर्थान् = शब्दार्थान् विदन्ति जानन्ति ये ते अर्थविदः तेषाम् अर्थविदां वरः = श्रेष्ठः पातीति पिता = राजा कुशः तम् = अतिथिनामानं पुत्रम् आदौ = पूर्वं कुलस्य = रघुवंशस्य विद्याः आन्वीक्षिकीत्रयीवार्ताद्याः, तासां कुलविद्यानाम् अर्थम् = अभिधेयम् अग्राहयत् = अपाठयत् , सर्वविद्यानां ज्ञानमकारयदित्यर्थः । पश्चात् = अनन्तरं पृथिव्याः ईश्वराः पार्थिवाः = भूपालास्तेषां कन्याः = कुमार्यस्तासां पार्थिवकन्यानां पाणिं = करम् अग्राहयत् = स्वीकारितवान् , विवाहमकारयदित्यर्थः ।

समासः—अर्थान् विदन्तीति अर्थविदस्तेषाम् अर्थविदाम् । कुलस्य विद्याः कुलविद्यास्तासां कुलविद्यानाम् । पार्थिवानां कन्यास्तासां पार्थिवकन्यानाम् ।

हिन्दी—शब्दों के अर्थों को और दान, संग्रह आदि क्रियाओं के प्रयोजन को जानने वालों में श्रेष्ठ राजा कुश ने अपने पुत्र अतिथि को पहले तो अपने कुल की आन्वीक्षिकी आदि

राजनीति विद्याओं को पढ़ाया। और फिर राजकुमरियों का हाथ पकड़ाया, अर्थात् विवाह करा दिया ॥ ३ ॥

जात्यस्तेनाभिजातेन शूरः शौर्यवता कुशः ।
अमन्यतैकमात्मानमनेकं वशिना वशी ॥ ४ ॥

जातौ भवो जात्यः कुलीनः शूरो वशी कुशोऽभिजातेन कुलीनेन। 'अभिजातः कुलीनः स्यात्' इत्यमरः। शौर्यवता वशिना तेनातिथिना करणेन एकमात्मानम्। एको न भवतीत्यनेकस्तम्। अमन्यत। सर्वगुणसामग्र्यादात्मजमात्मन एव रूपान्तरममंस्तेत्यर्थः ॥

अन्वयः—जात्यः शूरः वशी कुशः अभिजातेन शौर्यवता तेन एकम् आत्मानम् अनेकम् अमन्यत ।

व्याख्या—जातौ भवः जात्यः = कुलीनः शूरयतीति शूरः = विक्रान्तः "शूरो वीरश्च विक्रान्त" इत्यमरः। वशी = जितेन्द्रियः कुशः = रामपुत्रः अभिजायते स्म इति अभिजातस्तेन अभिजातेन = कुलीनेन "अभिजातस्तु कुलजे बुधे" इत्यमरः। शूरस्य भावः शौर्यम्, शौर्यमस्यास्तीति शौर्यवान् तेन शौर्यवता = पराक्रमवता वशिना = जितेन्द्रियेण तेन = अतिथिना एकम् = अद्वितीयम् आत्मानं = स्वम् न एकः अनेकस्तम् अनेकम् अमन्यत = अमंस्त । सर्वगुणपूर्णत्वेनात्मजमात्मन एव रूपान्तरममन्यतेत्यर्थः ।

हिन्दी—श्रेष्ठ कुलोत्पन्न शूरवीर और जितेन्द्रिय राजा कुशने कुलीन पराक्रमी और जितेन्द्रिय उस अतिथि के द्वारा एकाकी (अकेला) भी अपने को अनेक माना। अर्थात् अपने सारे गुण अतिथि में होने से उसे अपना ही दूसरा रूप माना ॥४॥

स कुलोचितमिन्द्रस्य साहायकमुपेयिवान् ।
जघान समरे दैत्यं दुर्जयं तेन चावधि ॥ ५ ॥

स कुशः कुलोचितं कुलाभ्यस्तमिन्द्रस्य साहायकं सहकारित्वम् । 'योपधात्–' इत्यादिना वुञ्। उपेयिवान्प्राप्तः सन्समरे नामतोऽर्थतश्च दुर्जयं दैत्यं जघानावधीत् । तेन दैत्येनावधि हतश्च। 'लुङि च' इति हनो वधादेशः ॥

अन्वयः—सः कुलोचितम् इन्द्रस्य साहायकम् उपेयिवान् सन् समरे दुर्जयं दैत्यं जघान, तेन अवधि च ।

व्याख्या—सः = कुशः कुलस्य = स्ववंशस्य उचितं = योग्यम् अभ्यस्तम् इति कुलोचितम् तत्, इन्द्रस्य = देवेन्द्रस्य साहायकं = सहकारित्वम् उपेयिवान् = प्राप्तः सन् समरे = युद्धे दुःखेन जेतुं = योग्यः दुर्जयस्तं दुर्जयं = नामतः, अर्थतश्च दुर्जयमित्यर्थः । दैत्यं = राक्षसं जघान = अवधीत्, तेन = दुर्जयेन दैत्येन अवधि = हतश्च ।

समासः—कुलस्य कुले वा उचितमिति तत् कुलोचितम्। दुःखेन जयः दुर्जयस्तं दुर्जयम्।

हिन्दी—अपने वंश की परम्परा के अनुसार कुश भी इन्द्र का सहायक होकर युद्ध में गया था। और युद्ध में बड़े बलशाली दुर्जय नाम के दैत्यको मारा था। और उस दैत्य ने कुश को भी मार दिया। अर्थात् दैत्य को मार कर स्वयं भी वीरगति पाई ॥ ५ ॥

तं स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती।
अन्वगात्कुमुदानन्दं शशाङ्कमिव कौमुदी ॥ ६ ॥

कुमुदस्य नाम नागराजस्य स्वसा कुमुद्वती कुशपत्नी कुमुदानन्दं शशाङ्कं कौमुदी ज्योत्स्नेव। तं कुशमन्वगात्। कुशस्तु। कुः पृथ्वी तस्या मुत्प्रीतिः सैवानन्दो यस्येति कुमुदानन्दः। परानन्देन स्वयमानन्दतीत्यर्थः ॥

अन्वयः—कुमुदस्य नागराजस्य स्वसा कुमुद्वती, कुमुदानन्दं शशांकम् कौमुदी इव तम् अन्वगात्।

व्याख्या—कुमुदस्य = एतन्नामकस्य नागानां = सर्पाणां राजा = स्वामी नागराजस्तस्य नागराजस्य स्वसा = भगिनी कुमुदानि सन्त्यस्याः सा कुमुद्वती = एतन्नाम्नी कौ मोदन्ते इति कुमुदानि, कुमुदानां = कैरवाणां-सितपद्मानामित्यर्थः। आनन्दः = सुखं तं कुमुदानन्दं शशः अङ्को यस्य स शशांकस्तं शशाङ्कम् = चन्द्रं कुमुदानामियम् कौमुदी = चन्द्रिका इव = यथा तं = कुशम् अन्वगात् = अन्वगच्छत्। कुमुद्वती कुशमरणानन्तरं सती अभूदित्यर्थः।

समासः—नागानां राजा नागराजस्तस्य नागराजस्य कुमुददानाम् आनन्द स्तं कुमुदानन्दम्। कुः = पृथिवी तस्याः मुत् = प्रीतिः सा एव आनन्दो यस्य स तं कुमुदानन्दमिति कुशपक्षे। शशः अङ्को यस्य स तं शशाङ्कम्।

हिन्दी—नागराज की बहन कुमुद्वती, पृथिवी को आनन्द देने वाले कुश के साथ, उसी प्रकार सती हो गई, जिस प्रकार सुफेद कमलों को खिलाने वाले शशांक (चन्द्र) के अस्त हो जाने के साथ ही उसकी चान्दनी भी अस्त हो जाती है ॥ ६ ॥

तयोर्दिवस्पतेरासीदेकः सिंहासनार्धभाक्।
द्वितीयापि सखी शच्याः पारिजातांशभागिनी ॥ ७ ॥

तयोः कुशकुमुद्वत्योर्मध्ये एकः कुशो दिवस्पतेरिन्द्रस्य सिंहासनार्धं सिंहासनैकदेशः तद्भागासीत्। द्वितीया कुमुद्वती शच्या इन्द्राण्याः पारिजातांशस्य भागिनी ग्राहिणी। 'संपृच-' इत्यादिना भजेर्घिनुण्प्रत्ययः। सख्यासीत्। कस्कादित्वाद्दिवस्पतिः साधुः ॥

अन्वयः—तयोः एकः दिवस्पतेः सिंहासनार्धभाक् आसीत्, द्वितीया अपि शच्याः पारिजातांशभागिनी सखी आसीत्।

व्याख्या—स च सा च तौ तयोः = कुशकुमुद्वत्योः मध्ये एकः = कुशः दिवः = स्वर्गस्य पतिः = स्वामीति दिवस्पतिः, तस्य दिवस्पतेः = इन्द्रस्य शापकत्वादलुक्। सिंहाकारमासनं सिंहा-

सर्न सिंह इव वा आसनमिति सिंहासनम्, तस्य, अर्धम् = एकदेशं भजति = अधितिष्ठतीति सिंहासनार्धभाक् आसीत् = अभूत्। द्वितीया = कुमुद्वती शच्याः = इन्द्राण्याः पारिणः = समुद्रात् जातः पारिजातः = कल्पवृक्षः तस्य अंशः = भागः खण्ड इत्यर्थः। तस्य भागिनी = हारिणी इति पारिजातांशभागिनी समान ख्यायते जनैरिति सखी = आली आसीत्।

समासः—दिव पतिः दिवस्पतिस्तस्य दिवस्पतेः। सिंहाकारमासनमिति सिंहासनं तस्य अर्धमिति सिंहासनार्धम् सिंहासनार्धस्य भाक्, इति सिंहासनार्धभाक्। पारिणः जातः पारिजातः, पारिजातस्य अंशस्तस्य भागिनी इति पारिजातांशभागिनी।

हिन्दी—उन दोनों में से (स्वर्ग में जाकर) कुश तो इन्द्र के सिंहासन के आधे भाग का लेने वाला हो गया। और दूसरी कुमुद्वती इन्द्राणी की सहेली बनकर पारिजात-कल्पवृक्ष का आधा भाग ले लिया अर्थात् कुश तो इन्द्र के साथ और कुमुद्वती इन्द्राणी के साथ एक आसन पर जा बैठे ॥७॥

तदात्मसंभवं राज्ये मन्त्रिवृद्धाः समादधुः।
स्मरन्तः पश्चिमामाज्ञां भर्तुः संग्रामयायिनः ॥ ८ ॥

सङ्ग्रामयायिनः सङ्ग्रामं यास्यतः। आवश्यकार्थे णिनिः। 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः' इति षष्ठीनिषेधः। भर्तुः स्वामिनः कुशस्य पश्चिमामन्तिमामाज्ञां विपर्यये पुत्रोऽभिषेक्तव्य इत्येवंरूपां स्मरन्तो मन्त्रिवृद्धास्तदात्मसंभवमतिथिं राज्ये समादधुर्निदधुः ॥

अन्वयः—संग्रामयायिनः भर्तुः पश्चिमाम् आज्ञां स्मरन्तः मंत्रिवृद्धाः तदात्मसंभवं राज्ये समादधुः।

व्याख्या—संग्रामम् अवश्यं यास्यतीति संग्रामयायी तस्य संग्रामयायिनः = युद्धयलं यास्यतः भर्तुः = स्वामिनः कुशस्य पश्चाद् भवा पश्चिमा तां पश्चिमाम् = अन्त्याम् आज्ञाम् = आदेशम्—यदि मे युद्धे वीरगतिः स्यात्तदा पुत्रो मेऽभिषेचनीय इत्येवंरूपामित्यर्थः। स्मरन्तः = स्मरणं कुर्वन्तः मंत्रिषु = अमात्येषु वृद्धाः = स्थविराः इति मंत्रिवृद्धाः तस्य = कुशस्य आत्मनः = शरीरात् सम्भवः = उत्पत्तिर्यस्य स तं तदात्मसम्भवम् = अतिथिं राज्ये = राजकर्मणि, शासने निदधुः, राज्ये अतिथिमभिषिक्तवन्त इत्यर्थः।

समासः—तस्य आत्मा तदात्मा तदात्मनः सम्भवो यस्य स तं तदात्मसम्भवम्। मंत्रिषु वृद्धाः मंत्रिवृद्धाः। संग्रामं यास्यतीति तस्य संग्रामयायिनः।

हिन्दी—संग्राम में जाने वाले कुश ने अन्तिम आज्ञा दी थी, "कि यदि मैं लौट न सकूँ तो मेरे पुत्र को गद्दी देना" इसको स्मरण करके वृद्धमंत्रियों ने कुश के पुत्र अतिथि को राजा बना दिया ॥ ८ ॥

ते तस्य कल्पयामासुरभिषेकाय शिल्पिभिः।
विमानं नवमुद्वेदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥

ते मन्त्रिणस्तस्यातिथेरभिषेकाय शिल्पिभिरुद्वेदिमुन्नतवेदिकं चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितं चतुर्षु स्तम्भेषु प्रतिष्ठितं नवं विमानं मण्डपं कल्पयामासुः कारयामासुः ॥

अन्वयः—ते तस्य अभिषेकाय शिल्पिभिः उद्वेदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम् नवं विमानं कल्पयामासुः ।

व्याख्या—ते = वृद्धमंत्रिणः तस्य = कुशपुत्रस्यातिथेः अभिषेकाय = राज्यतिलकाय सिंहासनारोहणायेत्यर्थः । शिल्पमेषामस्तीति शिल्पिनः तैः शिल्पिभिः = कलाप्रवीणैः उन्नता वेदिः = परिष्कृता भूमिः यत्र तत् उद्वेदि नवं = नूतनं विगतं मानम् = उपमा यस्य तत् विमानं = मण्डपं चत्वारः स्तम्भाः = यूपाः इति चतुःस्तम्भाः चतुस्तम्भेषु प्रतिष्ठितं = तेषु सम्यग् वर्तमानम् कल्पयामासुः = विधापयामासुः ।

समासः—उन्नता वेदिः यत्र तत् उद्वेदि । विगतं मानं यस्य तत् विमानम् । चत्वारः स्तम्भाः चतुःस्तम्भाः, तेषु प्रतिष्ठितमिति चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम् तत् ।

हिन्दी—उन पुराने वृद्ध मंत्रियों ने अतिथि को राजतिलक करने के लिये चतुर कलाकारों से, चार खम्भों पर स्थित और ऊँची वेदि (चबूतरे) वाला नया मण्डप बनवाया ॥ ९ ॥

तत्रैनं हेमकुम्भेषु सम्भृतैस्तीर्थवारिभिः ।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम् ॥ १० ॥

तत्र विमाने भद्रपीठे पीठविशेष उपवेशितमेनमतिथिं हेमकुम्भेषु संभृतैः संगृहीतैस्तीर्थवारिभिः करणैः प्रकृतयो मन्त्रिण उपतस्थुः ॥

अन्वयः—तत्र भद्रपीठोपवेशितम् एनं हेमकुम्भेषु सम्भृतैः तीर्थवारिभिः प्रकृतयः उपतस्थुः ।

व्याख्या—तत्र = नूतने मण्डपे भद्रं च तत् पीठम् = आसनं तस्मिन् उपवेशितः = उपविष्टस्तं भद्रपीठोपवेशितम् = नृपासनोपविष्टम् एनम् = अतिथिम् हेम्नः = सुवर्णस्य कुम्भाः = कलशास्तेषु हेमकुम्भेषु = सुवर्णनिर्मितकलशेष्वित्यर्थः । संभृतैः = संगृहीतैः तीर्थानां = काशीप्रयागादीनां वारीणि = जलानि तैः तीर्थवारिभिः = पवित्रसलिलैरित्यर्थः । प्रकृतयः = अमात्यादयः उपतस्थुः = अभिषेकं चक्रुरित्यर्थः ।

समासः—हेम्नः कुम्भाः हेमकुम्भास्तेषु हेमकुम्भेषु । तीर्थस्य वारीणि तैः तीर्थवारिभिः । भद्रं च तत् पीठमिति भद्रपीठं तत्र उपवेशितस्तं भद्रपीठोपवेशितम् ।

हिन्दी—उस मण्डप में राजसिंहासन पर बैठे हुए, राजा अतिथि का सोने के कलशों (घड़ों) में भरे हुए, पुण्य तीर्थ के जल से मंत्री एवं प्रजा ने अभिषेक किया ॥ १० ॥

नदद्भिः स्निग्धगम्भीरं तूर्यैराहतपुष्करैः ।
अन्वमीयत कल्याणं तस्याविच्छिन्नसंतति ॥ ११ ॥

आहतं पुष्करं मुखं येषां तैः । 'पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखेऽपि च' इत्यमरः । स्निग्धं

मधुरं गम्भीरं च नदद्भिस्तूर्यैस्तस्यातिथेरविच्छिन्नसंततयविच्छिन्नपारम्पर्यं कल्याणं भावि शुभमन्वमीयतानुमितम् ॥

अन्वयः—आहतपुष्करैः स्निग्धगम्भीरं नदद्भिः तूर्यैः तस्य अविच्छिन्नसन्तति कल्याणम् अन्वमीयत ।

व्याख्या—आहतम् = ताडितं पुष्करं = वाद्यभाण्डमुखं येषां ते तैः आहतपुष्करैः "पुष्करं तूर्यवक्त्रे च काण्डे खड्गफलेऽपि चेति" विश्वः । स्निग्धं = मधुरं गम्भीरं = गभीरं चेति स्निग्धगम्भीरं नदद्भिः = ध्वनद्भिः तूर्यैः = वाद्यविशेषैः तस्य = राज्ञोऽतिथेः अविच्छिन्ना = अत्रुटिता संततिः = परम्परा यस्मिन् , तत् अविच्छिन्नसन्तति कल्याणं = भद्रं शुभमिति अन्वमीयत = अनुमितम् । मधुरगम्भीरध्वनिं कुर्वद्भिः मञ्जीरैः तस्य भाविशुभं सूचितमित्यर्थः ।

समासः—स्निग्धं गम्भीरं च यथा स्यात् स्निग्धगम्भीरम् । आहतं पुष्करं येषां ते तैः आहतपुष्करैः । अविच्छिन्ना सन्ततिः यत्र अविच्छिन्नसन्तति ।

हिन्दी—थाप पड़ने पर मृदंग तथा फूँकने पर तुरही आदि मधुर और गम्भीर ध्वनि करने वाले (बजने वाले) बाजों के द्वारा उस राजा अतिथि के उस भावि कल्याण का अनुमान किया गया, जिसकी परम्परा सर्वदा चलती रहेगी । अर्थात् राजा का सदा ही कल्याण होता रहेगा ॥ ११ ॥

दूर्वायवाङ्कुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान् ।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान्स भेजे नीराजनाविधीन् ॥ १२ ॥

सोऽतिथिः । दूर्वाश्च यवाङ्कुराश्च प्लक्षत्वचश्चाभिन्नपुटा बालपल्लवाश्चोत्तराणि प्रधानानि येषु तान् । अभिन्नपुटानि मधूकपुष्पाणीति केचित् । कमलानीत्यन्ये । ज्ञातिषु ये वृद्धास्तैः प्रयुक्तान्नीराजनाविधीन्भेजे ॥

अन्वयः—सः दूर्वायवांकुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान् ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान् नीराजनाविधीन् भेजे ।

व्याख्या—सः = अतिथिः राजा अभिन्नानि = संश्लिष्टानि पुटानि = पत्राणि येषान्ते अभिन्नपुटाः । दूर्वाः = अनन्ताश्च यवानाम् = धान्यानाम् अंकुराः = अभिनवोद्भिदः च प्लक्षाणां = वटवृक्षाणां त्वचः = वल्कलानि च अभिन्नपुटाः = बालपल्लवाश्च उत्तराणि = प्रधानानि येषु ते तान् दुर्वायवांकुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान् ज्ञतिषु = जातिषु वृद्धाः = ज्ञानवृद्धाः, वयोवृद्धाश्च ते तैः ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान् = विहितान् नितरां राजनं यत्र सा नीराजना । नीरस्य = शान्त्युदकस्य अजनं = प्रक्षेपो वा यत्र सा नीराजना । नीराजनायाः = दीपप्रज्वलनादिरूपपञ्चप्रकारायाः विधिः = विधानमिति नीराजनाविधिः, बहुवचने तान् नीराजनाविधीन् भेजे = सिषेवे स्वीकृतवान् ।

समासः—दूर्वाश्च यवानामंकुराश्च प्लक्षाणां त्वचश्च अभिन्नपुटाश्च उत्तराणि येषु ते तान्

दूर्वांकुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान्, ज्ञातिषु वृद्धास्तैः ज्ञातिवृद्धैः । नीराजनायाः विषयस्तान् नीराजनाविधीन् ।

हिन्दी—दूब जौ के अंकुर और बड़ की छाल तथा नए नए (अविकसित पत्ते) पल्लवों से युक्त, और जाति के बड़े बूढ़ों के द्वारा की गई आरती पूजा को राजा अतिथि ने स्वीकार किया ॥ १२ ॥

पुरोहितपुरोगास्तं जिष्णुं जैत्रैरथर्वभिः ।
उपचक्रमिरे पूर्वमभिषेक्तुं द्विजातयः ॥ १३ ॥

पुरोहितपुरोगाः पुरोहितप्रमुखा द्विजातयो ब्राह्मणा जिष्णुं जयशीलं तमतिथिं जैत्रैर्जयशीलै-रथर्वभिर्मन्त्रविशेषैः करणैः पूर्वमभिषेक्तुमुपचक्रमिरे ॥

अन्वयः—पुरोहितपुरोगाः द्विजातयः जिष्णुं तं जैत्रैः अथर्वभिः पूर्वम् अभिषेक्तुम् उपचक्रमिरे ।

व्याख्या—पुरः = अग्रे धर्मकार्येषु गच्छन्तीति पुरोगाः, पुरः धीयन्ते इति पुरोहिताः । पुरोहिताः = पुरोधसः पुरोगाः = अग्रगामिनः येषां ते पुरोहितपुरोगाः द्वे जाती = जन्मनी येषां ते द्विजातयः = ब्राह्मणाः जिष्णुं = जयशीलं तं = राजानमतिथिं जैत्रैः = जयशीलैः अथर्वभिः = अथर्ववेदमंत्रैः करणैः पूर्वं = प्रथमम् अभिषेक्तुम् = अभिषेकं कर्तुम् उपचक्रमिरे = उपचक्रमुः ।

समासः—पुरोहिताः पुरोगाः येषां ते पुरोहितपुरोगाः । द्वे जाती येषां ते द्विजातयः ।

हिन्दी—पुरोहित को आगे करके ब्राह्मणों ने विजयशील राजा अतिथि का विजय देनेवाले अथर्ववेद के मंत्रों से पहले अभिषेक आरम्भ किया ॥ १३ ॥

तस्यौघमहती मूर्ध्नि निपतन्ती व्यरोचत ।
सशब्दमभिषेकश्रीर्गङ्गेव त्रिपुरद्विषः ॥ १४ ॥

तस्यातिथेर्मूर्ध्नि सशब्दं निपतन्त्योघमहती महाप्रवाहा । अभिषिच्यतेऽनेनेत्यभिषेको जलम् स एव श्रीः । यद्वा तस्य श्रीः समृद्धिस्त्रिपुरद्विषः शिवस्य मूर्ध्नि निपतन्ती गङ्गेव व्यरोचत । त्रयाणां पुराणां द्वेष्टीति विग्रहः ॥

अन्वयः—तस्य मूर्ध्नि सशब्दं निपतन्ती ओघमहती अभिषेकश्रीः = त्रिपुरद्विषः "मूर्ध्नि-निपतन्ती" गंगा इव व्यरोचत ।

व्याख्या—तस्य = अतिथेः मूर्ध्नि = मस्तके शब्देन सहितं सशब्दं = सध्वनि नितरां-पतन्ती निपतन्ती = स्खलन्ती आ उह्यतेऽनेनेति ओघः = जलप्रवाहः, ओघेन महती ओघमहती = महाप्रवाहा अभिषेकस्य = जलस्य या श्रीः = शोभा, इति अभिषेकश्रीः अभिषेकजलशोभेत्यर्थः । त्रयाणां पुराणां = नगराणां द्वेष्टीति त्रिपुरद्विट् तस्य त्रिपुरद्विषः = शिवस्य मूर्ध्नि पतन्ती गंगा = भागीरथी इव = यथा व्यरोचत = शुशुभे।

समासः—शब्देन सहितं सशब्दम्। ओघेन महती ओघमहती। अभिषेकस्य श्रीरिति अभिषेकश्रीः। त्रयाणां पुराणां द्विट्, इति त्रिपुरद्विट् तस्य त्रिपुरद्विषः।

हिन्दी—राजा अतिथि के शिर पर झर झर करके गिरती हुई, तथा अधिक जलप्रवाह वाली अभिषेक के जल की शोभा ऐसी लग रही थी, मानो त्रिपुरारि शिव जी के मस्तक पर गंगा जी की धारा गिर रही हो ॥ १४ ॥

स्तूयमानः क्षणे तस्मिन्नलक्ष्यत स वन्दिभिः।
प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारङ्गैरभिनन्दितः॥ १५॥

तस्मिन्क्षणेऽभिषेककाले वन्दिभिः स्तूयमानः सोऽतिथिः प्रवृद्धः प्रवृद्धवान्। कर्तरि क्तः। अत एव सारङ्गैश्चातकैरभिनन्दितः पर्जन्यो मेघ इव। अलक्ष्यत ॥

अन्वयः—तस्मिन् क्षणे वन्दिभिः स्तूयमानः सः प्रवृद्धः "अत एव" सारंगैः अभिनन्दितः पर्जन्यः इव अलक्ष्यत।

व्याख्या—तस्मिन् क्षणे = उक्ताभिषेकसमये वन्दिभिः = स्तुतिपाठकैः स्तूयतेऽसौ स्तूयमानः = गीयमानः सः = अतिथिः प्रकर्षेण वृद्धः प्रवृद्धः = प्रवृद्धवान् अत एव सारम् अंगं येषां ते तैः सारंगैः, सारं गच्छन्तीति वा सारंगास्तैः सारंगैः = चातकैः अभिनन्दितः = प्रशंसितः पर्जन्यः = मेघः इव = यथा अलक्ष्यत = अदृश्यत।

हिन्दी—अभिषेक के समय भाट चारण लोगों से यशोगान किया गया वह राजा अतिथि खूब श्रीसम्पन्न होकर ऐसा लग रहा था, जैसा कि चातक पक्षियों से अभिनन्दन किया गया बादल हो ॥ १५ ॥

तस्य सन्मन्त्रपूताभिः स्नानमद्भिः प्रतीच्छतः।
ववृधे वैद्युतस्याग्नेर्वृष्टिसेकादिव द्युतिः॥ १६॥

सन्मन्त्रैः पूताभिः शुद्धाभिरद्भिः स्नानं प्रतीच्छतः कुर्वतस्तस्य वृष्टिसेकात्। विद्युतोऽयं वैद्युतस्तस्याबिन्धनस्याग्नेरिव द्युतिर्ववृधे ॥

अन्वयः—सन्मंत्रपूताभिः अद्भिः स्नानं प्रतीच्छतः तस्य वृष्टिसेकात् वैद्युतस्य अग्नेः इव द्युतिः ववृधे।

व्याख्या—सन्तश्च ते मंत्राः सन्मंत्रास्तैः सन्मंत्रैः = पुण्यमंत्रैः पूताः = पवित्राः = शुद्धाः ताभिः सन्मंत्रपूताभिः अद्भिः = जलैः स्नानम् = आप्लावम् "आप्लावः आप्लवः स्नानम्" इत्यमरः। प्रतीच्छतीति प्रतीच्छन् तस्य प्रतीच्छतः = कुर्वतः तस्य = अतिथेः वृष्टेः = वर्षणस्य सेकः = जलं तस्मात् वृष्टिसेकात् विशेषेण द्योतते इति विद्युत्, विद्युतः अयं वैद्युतस्तस्य वैद्युतस्य = अबिन्धनस्य, तडित्संबन्धिनः अग्नेः = पावकस्य इव = यथा द्युतिः = दीप्तिः ववृधे = प्रवृद्धा।

समासः—सन्तश्च ते मंत्राः सन्मंत्रास्तैः पूतास्ताभिः सन्मंत्रपूताभिः। वृष्टेः सेकस्तस्मात् वृष्टिसेकात्।

हिन्दी—अच्छे उत्तम मंत्रों से पवित्र हुए जलों से स्नान करते समय राजा अतिथि की कान्ति (तेज), उसी प्रकार बढ़ गया जैसे कि वर्षा के जल से बिजली की दीप्ति (चमक) बढ़ जाती है ॥ १६ ॥

स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु।
यावतैषां समाप्येरन्यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः ॥ १७ ॥

सोऽतिथिरभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो गृहस्थेभ्यस्तावत्तावत्परिमाणं वसु धनं ददौ। यावता वसुनैषां स्नातकानां पर्याप्तदक्षिणाः समग्रदक्षिणा यज्ञाः समाप्येरन्। तावद्दादित्यन्वयः॥

अन्वयः—सः अभिषेकान्ते स्नातकेभ्यः तावत् वसु ददौ, यावता एषां पर्याप्तदक्षिणाः यज्ञाः समाप्येरन्।

व्याख्या—सः = अतिथिः अभिषेकस्य = राजतिलकस्य अन्तः = अवसानं सम्पन्नता तस्मिन् स्नान्ति स्म इति स्नातकास्तेभ्यः = गृहस्थेभ्यः तावत् = तावत्परिमाणं वसु = धनं ददौ = दत्तवान् यावता = यत्परिमाणेन एषां = स्नातकगृहस्थानां पर्याप्ता = यथेप्सिता दक्षिणा = देयद्रव्यं येषु ते पर्याप्तदक्षिणाः इज्यन्ते इति यज्ञाः = यागाः समाप्येरन् = सम्पन्ना भवेयुः। तावद्दक्षिणां दत्तवानित्यर्थः।

समासः—अभिषेकस्य अन्तस्तस्मिन् अभिषेकान्ते। पर्याप्ता दक्षिणा येषु ते पर्याप्तदक्षिणाः।

हिन्दी—अभिषेक (राजतिलक) के पश्चात् राजा अतिथि ने स्नातक, यज्ञादि करने वाले, गृहस्थब्राह्मणों को उतना धन दिया कि जितने धन से खूब भरपूर दक्षिणा देकर अपना यज्ञ सम्पन्न कर सके॥ १७॥

ते प्रीतमनसस्तस्मै यामाशिषमुदैरयन्।
सा तस्य कर्मनिर्वृत्तैर्दूरं पश्चात्कृता फलैः ॥ १८ ॥

प्रीतमनसस्ते स्नातकास्तस्मा अतिथये यामाशिषमुदैरयन्व्याहरन्साशीस्तस्यातिथेः कर्मनिर्वृत्तैः पूर्वपुण्यनिष्पन्नैः फलैः साम्राज्यादिभिर्दूरं दूरतः पश्चात्कृता। स्वफलदानस्य तदानीमनवकाशात्कालान्तरोद्वीक्षणं न चकारेत्यर्थः॥

अन्वयः—प्रीतमनसः ते तस्मै याम् आशिषम् उदैरयन् सा तस्य कर्मनिर्वृत्तैः फलैः दूरं पश्चात् कृता।

व्याख्या—प्रीतं = प्रमुदितं = प्रसन्नं मनः चित्तं येषां ते प्रीतमनसः ते = स्नातकाः ब्राह्मणाः तस्मै = राज्ञे, अतिथये याम् आशिषम् = आशीर्वादम् उदैरयन् = व्याहरन् दत्तवन्त इत्यर्थः। सा = आशीः तस्य = राज्ञः अतिथेः कर्मभिः = पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैः निर्वृत्तानि = निष्प-

त्तानि तैः कर्मनिर्वृत्तैः फलैः = साम्राज्योपभोगादिभिः दूरं = दूरतः पश्चात् = कालान्तरभाविनी कृता = विहिता । तदाशीर्वचनफलं तु कालान्तरे जन्मान्तरे वा भविष्यतीत्यर्थः ।

समासः—प्रीतानि मनांसि येषां ते प्रीतमनसः । कर्मभिः निर्वृत्तानि तैः कर्मनिर्वृत्तैः ।

हिन्दी—प्रसन्न मन वाले उन स्नातक ब्राह्मणों ने राजा अतिथि को जो आशीर्वाद दिया, उस आशीर्वाद को, राजा के पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य कर्म के फल ने दूर पीछे कर दिया । अर्थात् इनके आशीर्वाद को फलीभूत होने के लिए बहुत दिन देखने पड़े । क्योंकि अपने पूर्व-पूर्व पुण्यों का राज्यादि फल तो भोग ही रहा है । इसके बाद ही आशीर्वाद का फल होगा ।।१८।।

बन्धच्छेदं स बद्धानां वधार्हाणामवध्यताम् ।
धुर्याणां च धुरो मोक्षमदोहं चादिशद्गवाम् ॥ १९ ॥

सोऽतिथिर्बद्धानां बन्धच्छेदं वधार्हाणामवध्यताम् । धुरं वहन्तीति धुर्या बलीवर्दादयस्तेषां धुरो भारस्य मोक्षं गवामदोहं वत्सानां पानार्थं दोहनिवृत्तिं चादिशदादिदेश ॥

अन्वयः—सः बद्धानां बन्धच्छेदं वधार्हाणाम् अवध्यतां धुर्याणां धुरः मोक्षं गवाम् अदोहं च आदिशत् ।

व्याख्या—सः = अतिथिः बध्यन्ते स्म इति बद्धास्तेषां बद्धानां = सितानां बन्धस्य = बन्धनस्य छेदः = मोचनं तं बन्धच्छेदं कारागारात् मोचनमित्यर्थः वधः = मारणम् अर्हन्तीति वधार्हास्तेषां वधार्हाणां = वधयोग्यानाम्, *वध्यस्य भावः वध्यता न वध्यता अवध्यता ताम्* अवध्यताम् = अवध्यत्वं, धुरं वहन्तीति धुर्यास्तेषां धुर्याणां = बलीवर्दानां धुरः = भारस्य मोक्षं = मोचनं गवां = धेनूनाम् दोहनं दोहः न दोहः अदोहस्तम् अदोहम् = दोहननिवृत्तिं च वत्सपानार्थमित्यर्थः आदिशत् = आदिष्टवान् । उक्तानि सर्वाणि कार्याणि राज्यारोहणोत्सवे कृतवानित्यर्थः ।

समासः—बन्धस्य छेदः बन्धच्छेदस्तम् । न वध्यता अवध्यता ताम् । न दोहः अदोहस्तम् अदोहम् ।

हिन्दी—"अपने राजतिलक की प्रसन्नता में" राजा अतिथि ने कैदियों को जेल से छोड़ देने, और प्राणदण्ड पाने वालों को न मारने का आदेश दे दिया । और बैल आदि पशुओं को बोझा न ढोने का (अर्थात् उनके कन्धे से जूआ उतार देने का) और गय्याओं को न दूहने का भी आदेश दे दिया । अर्थात् बछड़ों को यथेच्छ दूध पीने दिया ॥ १९ ॥

क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य पञ्जरस्थाः शुकादयः ।
लब्धमोक्षास्तदादेशाद्यथेष्टगतयोऽभवन् ॥ २० ॥

पञ्जरस्थाः शुकादयोऽस्यातिथेः क्रीडापतत्रिणोऽपि । किमुतान्य इत्यपिशब्दार्थः । तदादेशात्तस्यातिथेः शासनाल्लब्धमोक्षाः सन्तो यथेष्टं गतिर्येषां ते स्वेच्छाचारिणोऽभवन् ॥

अन्वयः—पञ्जरस्थाः शुकादयः अस्य क्रीडापतत्त्रिणः अपि तदादेशात् लब्धमोक्षाः सन्तः यथेष्टगतयः अभवन्।

व्याख्या—पञ्जरस्थाः = शलाकानिर्मितबन्धनगृहस्थाः शुकः = कीरः आदिः येषां ते शुकादयः अस्य = राज्ञः अतिथेः क्रीडार्थं = लीलार्थं पतत्त्रिणः = पक्षिणः इति क्रीडापतत्त्रिणः अपि-किमुतान्ये जीवा इत्यपिशब्दार्थः। तस्य = राज्ञः अतिथेः आदेशः = आज्ञा इति तदादेशस्तस्मात् तदादेशात् लब्धः = प्राप्तः मोक्षः = पञ्जरान्मोचनं यैस्ते लब्धमोक्षाः सन्तः इष्टमनतिक्रम्येति यथेष्टम् = इच्छानुसारं गतिः = गमनं येषां ते यथेष्टगतयः अभवन् = जाताः।

समासः—क्रीडार्थं पतत्त्रिणः क्रीडापतत्त्रिणः। शुकः आदिर्येषां ते शुकादयः। लब्धः मोक्षः यैस्ते लब्धमोक्षाः। तस्य आदेशस्तस्मात्। यथेष्टं गतिर्येषां ते यथेष्टगतयः।

हिन्दी—राजा अतिथि की आज्ञा से पिंजरे में बन्द किए हुए, और राजा के मनोविनोद के लिये पाले हुए, सुग्गे आदि पक्षी भी छोड़ दिये गये, जो कि अपनी इच्छानुसार मनमाने उड़ने लगे॥ २०॥

ततः कक्ष्यान्तरन्यस्तं गजदन्तासनं शुचि।
सोत्तरच्छदमध्यास्त नेपथ्यग्रहणाय सः॥ २१॥

ततः सोऽतिथिर्नेपथ्यग्रहणाय प्रसाधनस्वीकाराय। कक्ष्यान्तरं हर्म्याङ्गणविशेषः। 'कक्ष्या प्रकोष्ठे हर्म्यादेः' इत्यमरः। तत्र न्यस्तं स्थापितं शुचि निर्मलं सोत्तरच्छदमास्तरणसहितं गजदन्तस्यासनं पीठमध्यास्त। तत्रोपविष्ट इत्यर्थः॥

अन्वयः—ततः सः नेपथ्यग्रहणाय कक्ष्यान्तरन्यस्तं शुचि सोत्तरच्छदं गजदन्तासनम् अध्यास्त।

व्याख्या—ततः = अनन्तरं सः = राजा अतिथिः नेपथ्यस्य = प्रसाधनस्य ग्रहणं = स्वीकरणं तत्तदंगेषु धारणमित्यर्थः। तस्मै नेपथ्यग्रहणाय अन्या = अपरा कक्ष्या = हर्म्यादेः प्रकोष्ठः, इति कक्ष्यान्तरं = प्रकोष्ठान्तरं तत्र न्यस्तं = स्थापितमिति कक्ष्यान्तरन्यस्तम् शुचि = शुद्धम् स्वच्छम्, उत्तराश्चासौ छदश्च उत्तरच्छदस्तम् = आस्तरणं तेन सहितमिति सोत्तरच्छदं गजानां = हस्तिनां दन्ताः = रदास्तैः निर्मितमासनं = पीठमिति गजदन्तासनम् अध्यास्त = अधितष्ठौ। हस्तिदन्तनिर्मितासने उपविष्ट इत्यर्थः। "कक्ष्या प्रकोष्ठे हर्म्यादेः" "रदनाः दशना दन्ता रदाः" इति चामरः।

अन्वयः—अन्या कक्ष्या कक्ष्यान्तरं तत्र न्यस्तमिति कक्ष्यान्तरन्यस्तं तत्। नेपथ्यस्य ग्रहणमिति तस्मै नेपथ्यग्रहणाय। उत्तरश्चासौ छदश्च उत्तरच्छदः तेन सहितमिति सोत्तरच्छदं तत्। गजानां दन्तैः कृतमासनं गजदन्तासनम्, तत्।

हिन्दी—इसके पश्चात् राजा अतिथि वस्त्र और आभूषण (राजसी ठाटबाट) धारण करने

के लिये, हाथी दान्त के बने हुए स्वच्छ पवित्र सिंहासन (या चौकी) पर जा बैठे, जो कि महल के भीतरी कमरे में रखा हुआ था और उसके ऊपर चादर बिछी हुई थी ॥ २१ ॥

तं धूपाश्यानकेशान्तं तोयनिर्णिक्तपाणयः ।
आकल्पसाधनैस्तैस्तैरुपसेदुः प्रसाधकाः ॥ २२ ॥

तोयेन निर्णिक्तपाणयः क्षालितहस्ताः प्रसाधका अलंकर्तारो धूपेन गन्धद्रव्यधूपेनाश्यानकेशान्तं शोषितकेशपाशान्तं तमतिथिं तैस्तैराकल्पस्य नेपथ्यस्य साधनैर्गन्धमाल्यादिभिरुपसेदुरुपतस्थुः । अलंचक्रुरित्यर्थः ॥

अन्वयः—तोयनिर्णिक्तपाणयः प्रसाधकाः धूपाश्यानकेशान्तं तं तैः तैः आकल्पसाधनैः उपसेदुः ।

व्याख्या—तौति इति तोयं तुः सौत्र आवरणार्थः, तस्मादुणादिः यः प्रत्ययः । तोयेन = जलेन निर्णिक्तौ = प्रक्षालितौ पाणी = हस्तौ यैस्ते तोयनिर्णिक्तपाणयः प्रकर्षेण साध्नुवन्ति = अलंकुर्वन्तीति प्रसाधकाः = अलङ्कर्तारः सेवकाः धूपेन = अगुरुधूपेन आश्यानः = शोषितः केशानां = कचानाम् अन्तः = अग्रभागः यस्य स तं धूपाश्यानकेशान्तम् तम् = अतिथिम् तैः तैः = प्रसिद्धैः आकल्पस्य = नेपथ्यस्य साधनानि = वस्त्राभरणसुरभिमाल्यादीनि तैः आकल्पसाधनैः उपसेदुः = उपतस्थुः = प्रसाधयाञ्चक्रुरित्यर्थः ।

समासः—तोयेन निर्णिक्ताः पाणयः यैस्ते तोयनिर्णिक्तपाणयः । आकल्पस्य साधनानि तैः आकल्पसाधनैः । केशानाम् अन्तः केशान्तः, धूपेन आश्यानः केशान्तः यस्य स तं धूपाश्यानकेशान्तम् । प्रकर्षेण साधकाः प्रसाधकाः ।

हिन्दी—जल से जिन्होंने हाथ धो लिये हैं, ऐसे शृंगार करने वालों ने, धूप से सुगन्धित सुखाये गये केश (बाल) वाले राजा अतिथि को उन उन शृंगार सामग्रियों (वस्त्र भूषण पुष्पमालादि) से सजा दिया । अर्थात् राजोचित वस्त्र भूषणादि पहनाकर तैयार कर दिया ॥ २२ ॥

तेऽस्य मुक्तागुणोन्नद्धं मौलिमन्तर्गतस्रजम् ।
प्रत्यूपुः पद्मरागेण प्रभामण्डलशोभिना ॥ २३ ॥

ते प्रसाधका मुक्तागुणेन मौक्तिकसरेणोन्नद्धमुद्बद्धमन्तर्गतस्रजमस्यातिथेर्मौलिं धम्मिल्लं प्रभामण्डलशोभिना पद्मरागेण माणिक्येन प्रत्यूपुः प्रत्युप्तं चक्रुः ॥

अन्वयः—ते मुक्तागुणोन्नद्धम् अन्तर्गतस्रजम् अस्य मौलिं प्रभामण्डलशोभिना पद्मरागेण प्रत्यूपुः ।

व्याख्या—ते = प्रसिद्धाः प्रसाधकाः मुक्तानां = मौक्तिकानां गुणः = सरः हार इत्यर्थः, इति मुक्तागुणस्तेन मुक्तागुणेन = मौक्तिकहारेण उन्नद्धं = ग्रथितं, बद्धमिति मुक्तागुणोन्नद्धम्, अन्तर्गता = अन्तर्बद्धा स्रक् = पुष्पमाला यस्मिन् स तम् अन्तर्गतस्रजम् अस्य = राज्ञोऽतिथेः मौलिम् =

धम्मिल्लम्, प्रभायाः = कान्तेः मण्डलं = समूहस्तेन शोभते = शालते तच्छीलस्तेन प्रभामण्डल-शोभिना पद्ममिव रागोऽस्य स पद्मरागस्तेन पद्मरागेण = लोहितकेन माणिक्येनेत्यर्थः "शोणरत्नं लौहितकः पद्मरागः" इत्यमरः। प्रत्यूपुः = जटितम् चक्रुः।

समासः—मुक्तानां गुणस्तेन मुक्तागुणेन उन्नद्धस्तं मुक्तागुणोन्नद्धम्। अन्तर्गता स्रक् यस्मिन् स तम् अन्तर्गतस्रजम्। प्रभायाः मण्डलं प्रभामण्डलं तेन शोभी तेन प्रभामण्डल-शोभिना। पद्ममिव रागः यस्य स तेन पद्मरागेण।

हिन्दी—मोतियों की लड़ी से गूथे हुए,और फूलों की माला से सजाये गये राजा अतिथि के मस्तक पर उन श्रृंगारियों ने वह माणिक्य (लालमणि) पहना दिया, जिसकी कांन्ति का सभूह (तेज चमक) चारों तरफ फैल रहा था॥ २३॥

चन्दनेनाङ्गरागं च मृगनाभिसुगन्धिना।
समापय्य ततश्चक्रुः पत्रं विन्यस्तरोचनम्॥ २४॥

किञ्च। मृगनाभ्या कस्तूरिकया सुगन्धिना चन्दनेनाङ्गरागमङ्गविलेपनं समापय्य समाप्य ततोऽनन्तरं विन्यस्ता रोचना गोरोचना यस्मिंस्तत्पत्रं पत्ररचनं चक्रुः॥

अन्वयः—च मृगनाभिसुगन्धिना चन्दनेन अङ्गरागं समापय्य ततः विन्यस्तरोचनं पत्रं चक्रुः।

व्याख्या—च = किञ्च मृगस्य = हरिणस्य नाभिः = अङ्गविशेषः इति मृगनाभिः, मृगनाभ्या = कस्तूरिकया सुगन्धि = सुरभि तेन मृगनाभिसुगन्धिना चन्दयति = आल्हादयतीति चन्दनं = मलयजं तेन चन्दनेन अंगस्य = देहस्य रागः = विलेपनं तम् अंगरागं समापय्य = परिसमाप्य ततः = अनन्तरम् विशेषेण न्यस्ता = कृता रोचना = गोपित्तं यस्मिन् तत्, विन्यस्त-रोचनं-पत्रं = रचनां चक्रुः = कृतवन्तः, मुखे गोरोचनया पत्ररचनां कृतवन्तः इत्यर्थः।

समासः—मृगस्य नाभिः मृगनाभिः तया शोभनः गन्धः अस्य तत् तेन मृगनाभिसुगन्धिना। अंगस्य रागस्तम् अङ्गरागम्। विन्यस्ता रोचना यस्मिन् तत् विन्यस्तरोचनम्।

हिन्दी—और कस्तूरी की सुगन्धी मिले चन्दन से राजा के शरीर में उबटन का लेप लगाकर गोरोचन (गोलोचन) से मुखपर पत्ररचना की। अर्थात् केसरिया रंग की फूलपत्ती राजा के मुख पर बनाई॥ २४॥

आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान्।
आसीदतिशयप्रेक्ष्यः स राज्यश्रीवधूवरः॥ २५॥

आमुक्ताभरण आसञ्जिताभरणः। स्रजोऽस्य सन्तीति स्रग्वी। 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' इति विनिप्रत्ययः। हंसाश्चिह्नमस्येति हंसचिह्नं यद्दुकूलं तद्वान्। अत्र बहुव्रीहिणैवार्थसिद्धेर्मतुबानर्थक्येऽपि सर्वधनीत्यादिवत्कर्मधारयादपि मत्वर्थीयं प्रत्ययमिच्छन्ति। एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम्।

राज्यश्रीरेव वधूर्नवोढा तस्या वरो वोढा। 'वधूः स्नुषा नवोढा स्त्री वरो जामातृषिङ्गयोः' इति विश्वः। सोऽतिथिरतिशयेन प्रेक्ष्यो दर्शनीय आसीत्। वरोऽप्येवंविशेषणः॥

अन्वयः—आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान् राज्यश्रीवधूवरः सः अतिशयप्रेक्ष्यः आसीत्।

व्याख्या—आमुक्तानि = आसञ्जितानि-धारितानीत्यर्थः, आभरणानि = भूषणानि येन सः आमुक्ताभरणः स्रजः = पुष्पमालाः सन्त्यस्य स स्रग्वी, हंसाः = श्वेतगरुतः चिह्नमस्य तत् हंसचिह्नं हंसचिह्नं यत् दुकूलं = पट्टवस्त्रमस्यास्तीति हंसचिह्नदुकूलवान् राज्यस्य श्रीरिति राज्यश्रीः = राज्यलक्ष्मीः एव वधूः = नवोढा, इति राज्यश्रीवधूः तस्याः वरः = वोढा वरणकर्ता, इत्यर्थः। इति राज्यश्रीवधूवरः सः = राजातिथिः अतिशयेन = विशेषेण प्रेक्षितुं योग्यः अतिशयप्रेक्ष्यः = अतीव-दर्शनीयः आसीत् = जातः। वरोऽपि आमुक्ताभरणः, हंसचिह्नदुकूलवान्, अतिशयप्रेषणीयो भवतीति।

समासः—आमुक्तानि आभरणानि येन सः आमुक्ताभरणः। हंसाः चिह्नमस्येति हंसचिह्नं, दुकूलमस्ति अस्य स हंसचिह्नदुकूलवान्। अतिशयेन प्रेक्ष्यः अतिशयप्रेक्ष्यः। राज्यस्य श्रीरिति राज्यश्रीः सा एव वधूरिति राज्यश्रीवधूः तस्याः वरः, इति राज्यश्रीवधूवरः।

हिन्दी—जेवर पहने हुए, और पुष्पमाला पहने तथा हंसचित्र छपे दुपट्टे को ओढ़े हुए वह राजा अतिथि ऐसे अत्यन्त दर्शनीय (अतिसुन्दर) दीख पड़ रहे थे, मानो राज्यलक्ष्मी रूपी बहू के वर (दुलहा) हों।

विशेष—यहाँ पर 'हंसचिह्नं दुकूलमस्येति' बहुव्रीहिसमास करके इष्ट अर्थ बन जाता है। अतः मतुप्प्रत्यय व्यर्थ है ऐसी शंका नहीं करना, क्योंकि 'सर्वधनी' की तरह कर्मधारयसमास करके भी मतुप् प्रत्यय करते हैं॥ २५॥

नेपथ्यदर्शिनश्छाया तस्यादर्शे हिरण्मये।
विरराजोदिते सूर्ये मेरौ कल्पतरोरिव॥ २६॥

हिरण्मये सौवर्णे आदर्शे दर्पणे नेपथ्यदर्शिनो वेषं पश्यतस्तस्यातिथेश्छाया प्रतिबिम्बम्। उदिते सूर्ये दर्पणकल्पे मेरौ यः कल्पतरुस्तस्य छायेव विरराज। तस्य सूर्यसंक्रान्तबिम्बस्य संभवान्मेराविव्युक्तम्॥

अन्वयः—हिरण्मये आदर्शे नेपथ्यदर्शिनः तस्य छाया उदिते सूर्ये मेरौ कल्पतरोः छाया इव रराज।

व्याख्या—हिनोति, हीयते वा हिरण्यं = सुवर्णं तस्य विकारो हिरण्मयं तस्मिन् हिरण्मये = सौवर्णे 'दाण्डिनायन०' इत्यादिसूत्रेण निपातनात् साधुः। आदृश्यते रूपं यत्र सः आदर्शः = दर्पणः तस्मिन् आदर्शे नेपथ्यं = वेषं प्रसाधनं पश्यति तच्छीलः नेपथ्यदर्शी, तस्य नेपथ्यदर्शिनः =

स्वश्रृङ्गारं पश्यतः तस्य = राज्ञोऽतिथेः छाया = प्रतिबिम्बम्, कर्त्री, उदिते = उत्पन्ने, उदयं गते सुवति लोकं कर्मणि प्रेरयतीति सूर्यस्तस्मिन् सूर्ये = आदित्ये दर्पणकल्पे मिनोति ज्योतींषि, उच्चत्वात्, इति मेरुः तस्मिन् मेरौ = सुमेरुपर्वते कल्पस्य = संकल्पितार्थस्य तरुः = वृक्षस्तस्य कल्पतरोः छाया = प्रतिबिम्बम् इव = यथा विरराज = विशेषेण शुशुभे ।

समासः—नेपथ्यस्य दर्शी तस्य नेपथ्यदर्शिनः । कल्पस्य तरुः कल्पतरुस्तस्य कल्पतरोः ।

हिन्दी—सोने के चोखटे (फ्रेम) में लगे शीशे में अपनी वेष रचना (श्रृंगार की सजावट) देखने वाले राजा अतिथि (अर्थात् देखते समय) का प्रतिबिम्ब ऐसा लग रहा था, मानो सूर्योदय के समय सुमेरु पर्वत पर कल्पवृक्ष की छाया पड़ रही हो ॥ २६ ॥

स राजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्तिभिः ।
ययावुदीरितालोकः सुधर्मानवमां सभाम् ॥ २७ ॥

सोऽतिथी राजककुदानि राजचिह्नानि छत्रचामरादीनि । 'प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । तेषु व्यग्राः पाणयो येषां तैः पार्श्ववर्तिभिर्जनैरुदीरितालोक उच्चारितजयशब्दः । 'आलोको जयशब्दः स्यात्' इति हलायुधः । सुधर्माया देवसभाया अनवमामन्यूनां सभामास्थानीं ययौ । 'स्यात्सुधर्मा देवसभा' इत्यमरः ॥

अन्वयः—सः राजककुदव्यग्रपाणिभिः पार्श्ववर्तिभिः उदीरितालोकशब्दः सुधर्मानवमाम् सभाम् ययौ ।

व्याख्या—कं = सुखं कौतीति ककुदम् । राज्ञां = भूपालनां ककुदानि = चिह्नानि छत्रचामरादीनि, इति राजककुदानि, तेषु व्यग्राः = संलग्नाः पाणयः = हस्ताः येषां ते तैः राजककुदव्यग्रपाणिभिः "ककुत् ककुदं श्रेष्ठे वृषांगे राजलक्ष्मणि" इति विश्वः । पार्श्वे = समीपे वर्तन्ते तच्छीलाः पार्श्ववर्तिनस्तैः पार्श्ववर्तिभिः जनैः उदीरितः = उच्चारितः आलोकः = जयशब्दः यस्य सः उदीरितालोकः "आलोको जयशब्दः स्यात्" इति कोशः । सु = शोभनः धर्मः यस्यां सा सुधर्मा (डाप्-प्रत्ययान्तः) अवति आत्मानमस्मात् अवमः = अधमः न अवमा अनवमा सुधर्मायाः = देवसभायाः अनवमा = अन्यूना तां सुधर्मानवमां देवसभातुल्यामित्यर्थः । सह भान्ति यस्या सा सभा तां सभाम् = शालां ययौ = जगाम ।

समासः—राज्ञां ककुदाः राजककुदास्तेषु व्यग्राः पाणयः येषां ते तैः राजककुदव्यग्रपाणिभिः । पार्श्वे वर्तिनस्तैः पार्श्ववर्तिभिः । उदीरितः आलोकः यस्य सः उदीरितालोकः । सुधर्मायाः न अवमा = ताम् सुधर्मानवमाम् ।

हिन्दी—"तब वेष धारणकर" राजा अतिथि अपनी उस सभा में चल गये, जो कि सुधर्मा नाम की देवताओं की सभा से किसी प्रकार कम नहीं थी । और राजाओं के चिह्न छत्र चामर हाथ में लिये सेवक लोग उनकी जय-जय बोल रहे थे । अर्थात् अतिथि की जयकार कर रहे थे ॥ २७ ॥

वितानसहितं तत्र भेजे पैतृकमासनम् ।
चूडामणिभिरुद्घृष्टपादपीठं महीक्षिताम् ॥२८॥

तत्र सभायां वितानेनोल्लोचेन सहितम् । 'अस्त्री वितानमुल्लोचः' इत्यमरः । महीक्षितां राज्ञां चूडामणिभिः शिरोरत्नैरुद्घृष्टमुल्लिखितं पादपीठं यस्य तत् । पितुरिदं पैतृकम् । 'ऋतष्ठञ्' इति ठञ्प्रत्ययः । आसनं सिंहासनं भेजे ॥

अन्वयः—तत्र वितानसहितं महीक्षितां चूडामणिभिः उद्घृष्टपादपीठम् पैतृकम् आसनं भेजे।

व्याख्या—तत्र = सभायाम् वितन्यते इति वितानः वितानेन = उल्लोचेन सहितं = युक्तमिति तत् वितानसहितम् । मही मह्यां वा क्षियन्तीति महीक्षितस्तेषां महीक्षितां = भूपालानाम् चूडायाः मणयः चूडामणयस्तैः चूडामणिभिः = शिरोरत्नैः "चूडामणिः शिरोरत्नम्" इत्यमरः । उद्घृष्टम् = उल्लिखितं पादानां = चरणानां पीठम् = आसनं यस्य तत् उद्घृष्टपादपीठम्, पितुरिदं पैतृकं पितृसंबन्धि आसनं = सिंहासनं भेजे = तत्रोपविष्ट इत्यर्थः ।

समासः—वितानेन सहितमिति वितानसहितं तत् । चूडायाः मणयः चूडामणयस्तैः चूडामणिभिः । पादानां पीठमिति पादपीठम् तत् । मह्याः क्षितः महीक्षितस्तेषां महीक्षिताम् ।

हिन्दी—उस सभा में चंदोवा लगे हुए (शामयाने के नीचे) राजाओं की मुकुट-मणियों की रगड़ से (प्रणाम करते समय) जिसका पावदान घिस गया था, ऐसे अपने पूर्वजों के सिंहासन पर अतिथि बैठ गये ॥ २८ ॥

शुशुभे तेन चाक्रान्तं मङ्गलायतनं महत् ।
श्रीवत्सलक्षणं वक्षः कौस्तुभेनेव कैशवम् ॥२९॥

तेन चाक्रान्तम् । श्रीवत्सो नाम चिह्नविशेषः । तल्लक्षणं श्रीवत्सरूपम् । 'श्रीवत्सनन्द्यावर्तादिविच्छेदा बहवो द्वयोः' इति सज्जनः । महदधिकं मङ्गलायतनं मङ्गलगृहसभारूपम् । कौस्तुभेन मणिनाक्रान्तं श्रीवत्सलक्षणम् । केशवस्येदं कैशवं वक्ष इव शुशुभे ॥

अन्वयः—तेन च आक्रान्तं श्रीवत्सलक्षणं महत् मंगलायतनम् कौस्तुभेन "आक्रान्तं श्रीवत्सलक्षणं" कैशवम् वक्षः इव शुशुभे ।

व्याख्या—तेन = कारणेन, अतिथ्युपवेशनेनेत्यर्थः च आक्रान्तम् = अधिष्ठितम् श्रीयुक्तः वत्सः = महत्त्वलक्षणश्वेतरोमावर्तविशेषः दुर्वाससः पादाघातरूपः रेखाविशेषो वा लक्षणं चिह्नं यस्य तत् श्रीवत्सलक्षणम्, (श्रीवत्सनामगृहविशेषलक्षणं राजपक्षे) । महत् = अधिकम् मंगलस्य = शुभस्य आयतनं = गृहमिति मंगलायतनम् । कुं = पृथिवीं स्तुभ्नाति = व्याप्नोतीति कुस्तुभः = समुद्रः तत्र भवः कौस्तुभः, कुं स्तोभते इति कुस्तुभः = विष्णुः तस्यायं कौस्तुभः इति वा । कौस्तुभेन = मणिना आक्रान्तं श्रीवत्सलक्षणं प्रशस्ताः केशाः सन्त्यस्येति केशवः । कश्च ईशश्च

केशौ = पुत्रपौत्रौ स्तः अस्येति, केशवः । केशवस्य = विष्णोः इदं कैशवं वक्षः = उरस्थलम् इव = यथा शुशुभे = अशोभत ।

समासः—श्रिया युक्तो वत्सः श्रीवत्सः लक्षणं यस्य तत् श्रीवत्सलक्षणम् । मंगलस्य आयतनमिति मंगलायतनम् ।

हिन्दी—राजा अतिथि के बैठने से श्रीवत्स नामक चिह्नवाला तथा विशाल शुभ वह सभा भवन उसी प्रकार चमक उठा, जैसे कि कौस्तुभमणि से युक्त और दुर्वासा ऋषि के चरण के आघात से बने श्रीवत्स के चिह्न वाला विष्णु का वक्षस्थल चमक उठता है । दुर्वासा ऋषि के पादप्रहार से बना रेखाओं का चिह्न, और सुफेद रोम के बने आवर्त (भौंरी) को श्रीवत्स कहते हैं ॥ २९ ॥

बभौ भूयः कुमारत्वादाधिराज्यमवाप्य सः ।
रेखाभावादुपारूढः सामग्र्यमिव चन्द्रमाः ॥ ३० ॥

सोऽतिथिः कुमारत्वाद्बाल्याद् भूयो यौवराज्यमवाप्यैवानन्तरम् । अधिराजस्य भाव आधिराज्यं महाराज्यमवाप्य । रेखाभावादर्धेन्दुत्वमवाप्यैव सामग्र्यमुपारूढः पूर्णतां गतश्चन्द्रमा इव बभौ इति व्याख्यानम् । तदपि यौवराज्याभावनिश्चये ज्याय एव ॥

अन्वयः—सः कुमारत्वात् भूयः आधिराज्यम् अवाप्य, रेखाभावात् सामग्र्यम् उपारूढः चन्द्रमा इव बभौ ।

व्याख्या—सः = अतिथिः कुमारयति = क्रीडतीति कुमारः । कुमारस्य भावः कुमारत्वं तस्मात् कुमारत्वात् = बालभावात् भूयः = पुनः भृशमित्यर्थः । अधिको राजा अधिराजस्तस्य भावः कर्म वा आधिराज्यं = महाराज्यम् अवाप्य = प्राप्य । कुमारावस्थानन्तरं युवा वयस्को भवति तदा युवराजो भवति, अर्थात् वयस्को यौवराज्येऽभिषिच्यते, किन्तु अतिथिस्तु यौवराज्यमप्राप्यैव महाराजत्वं प्राप्तवानित्यर्थः । अत्र मल्लिनाथव्याख्याख्याने यौवराज्यमवाप्यैवेति न सम्यक्पाठः । किन्तु अनवाप्येति मे प्रतिभातीति । एतदेव स्पष्टयति कविः स्वयम् रेखायाः = प्रथमकलायाः भावस्तस्मात् रेखाभावात् = रेखारूपात्, अर्धेन्दुत्वमप्राप्यैवेत्यर्थः । समग्रस्य भावः सामग्र्यं तत् = पूर्णचन्द्रत्वं गतः = प्राप्तः चन्द्रमाः इव = यथा बभौ = शुशुभे ।

समासः—अधिको राजा अधिराजः तस्य भावः आधिराज्यम्, तत् । रेखायाः भावस्तस्मात् रेखाभावात् ।

हिन्दी—वह अतिथि कुमार अवस्था के पश्चात् तुरन्त महाराजा हो गया । यानें उसे युवराज होने का अवसर पिता के मरने के कारण नहीं मिला । महाराज बन कर वह उसी प्रकार सुशोभित हुआ, जैसे कि—एक कला (रेखामात्र दूज का) चन्द्र, आधा हुए बिना ही (अष्टमी का हुए बिना ही) पूर्णता को प्राप्त हो गया हो । अर्थात्—एक कला का होकर तुरन्त सोलह कला का (पूर्णिमा) का हो गया हो ॥ ३० ॥

प्रसन्नमुखरागं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् ।
मूर्तिमन्तममन्यन्त विश्वासमनुजीविनः ॥ ३१ ॥

प्रसन्नो मुखरागो मुखकान्तिर्यस्य तं स्मितपूर्वं यथा तथाभिभाषिणमाभाषणशीलं तमतिथिमनुजीविनो मूर्तिमन्तं विग्रहवन्तं विश्वासं विस्रम्भममन्यन्त । 'समौ विस्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः ॥

अन्वयः—प्रसन्नमुखरागं स्मितपूर्वाभिभाषिणं तम् अनुजीविनः मूर्तिमन्तं विश्वासम् अमन्यन्त ।

व्याख्या—मुखस्य रागः = कान्तिरिति मुखरागः, प्रसन्नः = निर्मलः स्वच्छः देदीप्यमान इत्यर्थः मुखरागः = आननकान्तिर्यस्य स तं प्रसन्नमुखरागम् स्मितम् = ईषद्धास्यं पूर्वं = प्रथमं यस्मिन्कर्मणि तत् स्मितपूर्वं यथा स्यात्तथा अभिभाषते तच्छीलः स्मितपूर्वाभिभाषी तम् स्मितपूर्वाभिभाषिणम् तम् = राजानमतिथिम् , अनु = पश्चात् जीवन्तीति अनुजीविनः = अनुचराः सेवका इत्यर्थः । मूर्तिरस्यास्तीति मूर्तिमान् तं मूर्तिमन्तं = शरीरवन्तं विश्वसनं विश्वासस्तं विश्वासं = विस्रम्भम् अमन्यन्त = स्वीकुर्वन्ति स्म । "समौ विस्रम्भविश्वासौ" इत्यमरः ।

समासः—मुखस्य रागः मुखरागः, प्रसन्नः मुखरागो यस्य स तं प्रसन्नमुखरागम् । स्मितपूर्वं यथा स्यात्तथा अभिभाषी तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् ।

हिन्दी—प्रसन्न चेहरेवाले (खिले चेहरे वाले) मुसकराकर बोलने वाले, उस राजा अतिथि को उनके सेवक साक्षात् मूर्तिमान् विश्वास मानते थे । अर्थात् राजा को वे विश्वास का मूर्तिमान रूप मानते थे ॥ ३१ ॥

स पुरं पुरुहूतश्रीः कल्पद्रुमनिभध्वजाम् ।
क्रममाणश्चकार द्यां नागेनैरावतौजसा ॥ ३२ ॥

पुरुहूतश्रीः सोऽतिथिः कल्पद्रुमाणां निभाः समाना ध्वजा यस्यास्तां पुरमयोध्यामैरावतस्य ओज इवौजो बलं यस्य तेन नागेन कुञ्जरेण क्रममाणश्चरन् । 'अनुपसर्गाद्वा' इति वैकल्पिकमात्मनेपदम् । द्यां चकार । स्वर्गलोकसदृशीं चकारेत्यर्थः । 'द्यौः स्वर्गसुरवर्त्मनोः' इति विश्वः ॥

अन्वयः—पुरुहूतश्रीः सः कल्पद्रुमनिभध्वजाम् पुरम् ऐरावतौजसा नागेन क्रममाणः द्यां चकार ।

व्याख्या—पुरु = प्रचुरं हूतम् = आह्वानं यज्ञेषु यस्य स पुरुहूतः । पुरूणि हूतानि = नामानि यस्य स इति वा पुरुहूतः = इन्द्रस्तस्य श्रीरिव श्रीः यस्य स पुरुहूतश्री सः = अतिथिः कल्पस्य = संकल्पितार्थस्य द्रुमः = वृक्षस्तस्य निभाः = समानाः ध्वजाः = पताकाः यस्याः सा तां कल्पद्रुमनिभध्वजाम् पुरम् = अयोध्याम् इराः = उदकानि सन्त्यस्य इरावान् । इरावति = समुद्रे भवः ऐरावतः, तस्य ओजः इव ओजो बलं यस्य स तेन ऐरावतौजसा नागेन = गजेन क्रममाणः = चरन् , गच्छन्नित्यर्थः द्यां = स्वर्गम् = अमरावतीमित्यर्थः चकार = कृतवान् ।

समासः—पुरुहूतस्य श्रीरिव श्रीः यस्य स पुरुहूतश्रीः। कल्पस्य द्रुमः कल्पद्रुमस्तस्य निभाः ध्वजाः यस्यां सा तां कल्पद्रुमनिभध्वजाम्। ऐरावतस्य इव ओजो यस्य स तेन ऐरावतौजसा।

हिन्दी—इन्द्र के समान सम्पत्तिशाली, राजा अतिथि, ऐरावत (इन्द्र के हाथी) के समान बलवान् अपने हाथी पर बैठकर जब कल्पवृक्ष के समान ध्वजा (झण्डों) वाली अयोध्या में घूमने निकलते थे, तो वह नगरी अमरावती जैसी लगती थी। अर्थात् स्वर्गपुरी में मानो इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर घूम रहा हो ऐसा जान पड़ता था॥ ३२॥

तस्यैकस्योच्छ्रितं छत्रं मूर्ध्नि तेनामलत्विषा।
पूर्वराजवियोगौष्म्यं कृत्स्नस्य जगतो हृतम्॥ ३३॥

तस्यैकस्य मूर्ध्नि छत्रमुच्छ्रितमुन्नमितम्। अमलत्विषा तेन छत्रेण कृत्स्नस्य जगतः पूर्वराजस्य कुशस्य वियोगेन यदौष्म्यं संतापस्तद्धृतं नाशितम्। अत्र छत्रोन्नमनसंतापहरणलक्षणयोः कारणकार्ययोर्भिन्नदेशत्वादसंगतिरलंकारः। तदुक्तम्—'कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वे सत्यसंगतिः' इति॥

अन्वयः—तस्य एकस्य मूर्ध्नि छत्रम् उच्छ्रितम्, अमलत्विषा तेन कृत्स्नस्य जगतः पूर्वराजवियोगौष्म्यं हृतम्।

व्याख्या—तस्य = राज्ञोऽतिथेः एकस्य = केवलस्य मूर्ध्नि = मस्तके छादयत्यनेनेति छत्रम् = आतपत्रम् "छत्रं त्वातपत्रम्" इत्यमरः। उच्छ्रितम् = उन्नमितम्। अमलाः शुभ्रा त्विट् = कान्तिः यस्य तत् तेन अमलत्विषा तेन = छत्रेण कृत्स्नस्य = अखिलस्य जगतः = संसारस्य पूर्वश्चासौ राजा पूर्वराजस्तस्य पूर्वराजस्य = स्वपूर्ववर्तिराजस्येत्यर्थः कुशस्य वियोगः = अभावस्तेन यत्-औष्म्यं = सन्तापः तत् पूर्वराजवियोगौष्म्यं हृतम् = निवारितम् दूरीकृतमित्यर्थः।

समासः—अमला त्विट् यस्य तत्तेन अमलत्विषा। पूर्वश्चासौ राजा पूर्वराजः पूर्वराजस्य वियोगः पूर्वराजवियोगस्तेन यत् औष्म्यं तत् पूर्वराजवियोगौष्म्यम्।

हिन्दी—यद्यपि केवल राजा अतिथि के ही शिरपर छत्र (राजच्छत्र) लगा हुआ था। किन्तु चमकते उस सुफेद छत्र ने सारे संसार के उस सन्ताप को दूर कर दिया, जो कि पूर्ववर्ती राजा कुश के वियोग से उत्पन्न हुआ था। अर्थात् अतिथि ने राजगद्दी पर बैठते ही अपने उत्तम व्यवहार से प्रजा के कष्ट को दूर कर दिया।

विशेष—इस श्लोक में छत्र लगाना और सन्तापहरण रूप, कारण व कार्य के अलग-अलग देश में होने से 'असंगति' अलंकार है॥ ३३॥

धूमादग्नेः शिखाः पश्चादुदयादंशवो रवेः।
सोऽतीत्य तेजसां वृत्तिं सममेवोत्थितो गुणैः॥३४॥

अग्नेर्धूमात्पश्चात्। अनन्तरमित्यर्थः। शिखा ज्वालाः। रवेरुदयात्पश्चादनन्तरमंशवः।

उत्तिष्ठन्त इति शेषः। सोऽतिथिस्तेजसामग्न्यादीनां वृत्तिं स्वभावमतीत्य गुणैः समं सहैवोत्थित उदितः। अपूर्वमिदमित्यर्थः॥

अन्वयः—अग्नेः धूमात् पश्चात् शिखा, रवेः उदयात् पश्चात् अंशवः "उत्तिष्ठन्ते" सः तेजसां वृत्तिम् अतीत्य गुणैः समम् एव उत्थितः।

व्याख्या—अग्नेः वह्नेः धूनोति, धूयते वा धूमः = आर्द्रेन्धनप्रभवः भस्मः तस्मात् धूमात् पश्चात् = अनन्तरम् शिखा = ज्वाला, उत्तिष्ठन्ते, रवेः = सूर्यस्य उदयात् = प्राकट्यात् पश्चात् = अनन्तरम् अंशवः = किरणाः उत्तिष्ठन्ते इति शेषः। "किन्तु" सः = राजा अतिथिः तेजसां = अग्न्यादीनां वृत्तिं = वर्त्तनं स्वभावमित्यर्थः। अतीत्य = अतिक्रम्य गुणैः = शौर्य्यादिभिः, दयादाक्षिण्यादिभिश्च समं = साकम् एव उत्थितः = उदतिष्ठत्। इदं खलु अभूतपूर्वं जातमित्यर्थः।

हिन्दी—अग्नि से धूआँ निकलने बाद लपट निकलती है। और सूर्य से उदय होने के पश्चात् उसकी किरणे निकलती हैं, परन्तु महाराज अतिथि इन तेजस्वियों के स्वभाव-नियम को उलटकर अपने गुणों के साथ ही उठ गये। अर्थात् राजा बनने के साथ ही साथ उनके गुण भी प्रकट हो गये। यह विचित्रता थी राजा में॥ ३४॥

तं प्रीतिविशदैर्नेत्रैरन्वयुः पौरयोषितः॥
शरत्प्रसन्नैर्ज्योतिर्भिर्विभावर्य इव ध्रुवम्॥ ३५॥

पौरयोषितः प्रीत्या विशदैः प्रसन्नैर्नेत्रैः करणैस्तमतिथिमन्वयुरनुजग्मुः सदृष्टिप्रसारमद्राक्षुरित्यर्थः। कथमिव। शरदि प्रसन्नैर्ज्योतिर्भिर्नक्षत्रैर्विभावर्यो रात्रयो ध्रुवमिव। ध्रुवपाशबद्धत्वात्ताराचक्रस्येत्यर्थः॥

अन्वयः—पौरयोषितः प्रीतिविशदैः नेत्रैः तं, शरत्प्रसन्नैः ज्योतिर्भिः विभावर्यः ध्रुवम् इव अन्वयुः।

व्याख्या—पुरे भवाः पौराः, पौराश्च ताः योषितः पौरयोषितः = नागरिकसुन्दर्यः प्रीत्या = स्नेहेन विशदानि = निर्मलानि तैः प्रीतिविशदैः = प्रसन्नैरित्यर्थः नेत्रैः = लोचनैः तम् = अतिथिम् शरदि = शरदृतौ प्रसन्नानि = विशदानि तैः शरत्प्रसन्नैः ज्योतिर्भिः नक्षत्रैः विभान्ति नक्षत्रादिभिः याः ताः विभावर्यः = रात्रयः ध्रुवं = ध्रुवनामानं नक्षत्रविशेषम् इव = यथा अन्वयुः = अनुजग्मुः। यथा सर्वाणि नक्षत्राणि ध्रुवस्य सर्वतः परिभ्रमन्ति, एवम् अयोध्यारमण्यः राजानमतिथिं सदृष्टिप्रसारमद्राक्षुरित्यर्थः।

समासः—प्रीत्या विशदानि तैः प्रीतिविशदैः। पौराश्च ताः योषितः, पौराणां वा योषितः पौरयोषितः। शरदि प्रसन्नानि तैः शरत्प्रसन्नैः।

हिन्दी—जिस प्रकार शरदृतु के निर्मल स्वच्छ तारों से रात्रियां ध्रुव नक्षत्र के चारों ओर

घूमती रहती हैं। वैसे ही नगर की स्त्रियों की प्रेमभरी आँखें राजा अतिथि के पीछे गईं। अर्थात् नगर की स्त्रियों ने प्रेमभरी आँखों से राजा को देखा ॥ ३५ ॥

अयोध्यादेवताश्चैनं प्रशस्तायतनार्चिताः ।
अनुदध्युरनुध्येयं सांनिध्यैः प्रतिमागतैः ॥३६॥

प्रशस्तेष्वायतनेष्वालयेष्वर्चिता अयोध्यादेवताश्चानुध्येयमनुग्राह्यमेनमतिथिं प्रतिमागतैरर्चासंक्रान्तैः सांनिध्यैः संनिधानैरनुदध्युरनुजगृहुः । 'अनुध्यानमनुग्रहः' इत्युत्पलमालायाम् । तदनुग्रहबुद्धया संनिदधुरित्यर्थः ॥

अन्वयः—प्रशस्तायतनार्चिताः अयोध्यादेवताः अनुध्येयम् एनम् प्रतिमागतैः सान्निध्यैः अनुदध्युः ।

व्याख्या—प्रशस्तानि = मनोहराणि विशालानि यानि आयतनानि = मन्दिराणि तेषु अर्चिताः = पूजिताः, इति प्रशस्तायतनार्चिताः अयोध्यायाः = स्वराजधान्याः देवताः = देवाः सूर्यादयः इति अयोध्यादेवताः अनुध्यातुं योग्यः अनुध्येयस्तम् अनुध्येयम् = अनुग्राह्यम् एनं = राजानम्-अतिथिं प्रतिमासु = मूर्तिषु, मन्दिरस्थदेवविग्रहेष्वित्यर्थः आगतानि = आक्रान्तानि गतानि = संक्रान्तानि वा तैः प्रतिमागतैः सान्निध्यैः = संन्निधिकरणैः = सामीप्यैरित्यर्थः अनुदध्युः = अनुग्रहं कृतवन्तः । पूजावसरे मन्दिरस्थदेवप्रतिमासु तदनुग्रहेच्छया सन्निधिं चक्रुरित्यर्थः ।

समासः—अयोध्यायाः देवता अयोध्यादेवताः । प्रशस्तानि तानि आयतनानीति प्रशस्तायतनानि तेषु अर्चिताः प्रशस्तायतनार्चिताः । प्रतिमासु गतानि तैः प्रतिमागतैः ।

हिन्दी—अयोध्या नगरी के विशाल एवं श्रेष्ठ मन्दिरों में जिन देवताओं की पूजा की गई, उन देवताओं ने अपनी मूर्तियों में आकर (बैठकर) अनुग्रह (कृपा) करने के योग्य राजा अतिथि के ऊपर कृपा की ॥ ३६ ॥

यावन्नाश्यायते वेदिरभिषेकजलाप्लुता ।
तावदेवास्य वेलान्तं प्रतापः प्राप दुःसहः ॥३७॥

अभिषेकजलैराप्लुता सिक्ता वेदिरभिषेकवेदिर्यावन्नाश्यायते न शुष्यति । कर्तरि लट् । तावदेवास्य राज्ञो दुःसहः प्रतापो वेलान्तं वेलापर्यन्तं प्राप ॥

अन्वयः—अभिषेकजलाप्लुता वेदिः यावत् न आश्यायते, तावत् एव अस्य दुःसहः प्रतापः वेलान्तं प्राप ।

व्याख्या—अभिषेकस्य = राज्याभिषेकस्य जलानि = अम्भांसि तैः आप्लुता = क्लिन्ना सिक्ता, इति अभिषेकजलाप्लुता, वेदिः = अभिषेकवेदिः, परिष्कृता भूमिः यावत् यावता कालेन न आश्यायते = न शुष्यति तावत् = तावता कालेन अस्य = राज्ञो अतिथेः दुःखेन सह्यते इति

दुःसहः = दुःखेन सोढुं शक्यः प्रतापयत्ययेननेति प्रतापः = तेजः वेलायाः = समुद्रतटस्य अन्तः = प्रान्तस्तं वेलान्तं = सागरतटपर्यंतमित्यर्थः । प्राप = गतः ।

समासः—अभिषेकस्य जलानि अभिषेकजलानि तैः आप्लुता इति अभिषेकजलाप्लुता । वेलायाः अन्तस्तं वेलान्तम् ।

हिन्दी—जब तक अभिषेक के जल से भीगी हुई वेदी सूखने भी न पाई थी कि तब तक राजा का दुःसह प्रताप समुद्र के किनारों तक पहुँच गया । अर्थात् अतिशीघ्र अतिथि का प्रभाव जम गया, समुद्रान्त पृथ्वी के सबने उसका लोहा मान लिया ।। ३७ ।।

वसिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सायकास्तस्य धन्विनः ।
किं तत्साध्यं यदुभये साधयेयुर्न सगताः ॥३८॥

गुरोर्वसिष्ठस्य मन्त्राः धन्विनस्तस्यातिथेः सायकाः । इत्युभये संगताः सन्तो यत्साध्यं न साधयेयुस्तत्तादृक्साध्यं किम् । न किञ्चिदित्यर्थः । तेषामसाध्यं नास्तीति भावः ॥

अन्वयः—गुरोः वसिष्ठस्य मंत्राः धन्विनः तस्य सायकाः उभये संगताः सन्तः यत् साध्यं न साधयेयुः तत् किम् ।

व्याख्या—गृणाति धर्मादिकं,गिरत्यज्ञानं वा गुरुस्तस्य गुरोः = उपदेशकस्य वसिष्ठस्य = महर्षेः कुलगुरोरित्यर्थः मंत्राः = देवादिसाधकाः, वेदमंत्राः धनुरस्यास्तीति धन्वी तस्य धन्विनः = चाप-धारिणः तस्य = अतिथेः स्यन्ति = नाशं कुर्वन्तीति सायकाः = बाणाः इति उभये संगताः = मिलिताः सन्तः यत् = वस्तु-कार्यं वा साध्यं = साधनीयं न साधयेयुः = न सम्पादयेयुः तत् = तादृक् साध्यं किम् न किमप्यस्तीति भावः । तेषां कृते असाध्यं नाम न किंचिदिति भावः ।

हिन्दी—गुरु वसिष्ठ जी के मन्त्र और धनुर्धारी राजा अतिथि के बाण, ये दोनों मिलकर जिस काम को न कर सके, ऐसा कौन सा कार्य है अर्थात् इन दोनों का असाध्य कुछ भी नहीं था ॥ ३८ ॥

स धर्मस्थसखः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयम् ।
ददर्श संशयच्छेद्यान्व्यवहारानतन्द्रितः ॥३९॥

धर्मे तिष्ठन्तीति धर्मस्थाः सभ्याः । 'राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः' इत्युक्तलक्षणाः । तेषां सखा धर्मस्थसखः । तत्सहित इत्यर्थः । अतन्द्रितोऽनलसः स नृपः शश्वत् अन्वहमित्यर्थः । अर्थिनां साध्यार्थवतां प्रत्यर्थिनां तद्विरोधिनां च संशयच्छेद्यान्संशयाद्धेतोश्छेद्यान्प-रिच्छेद्यान् । संदिग्धत्वादवश्यनिर्णेयानित्यर्थः । व्यवहारानृणादानादिविवादान्स्वयं ददर्शानुसंदधौ । न तु प्राड्विवाकमेव नियुक्तवानित्यर्थः । अत्र याज्ञवल्क्यः-'व्यवहारान्नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सह' इति ॥

अन्वयः—धर्मस्थसखः अतन्द्रितः सः शश्वत् अर्थिप्रत्यर्थिनां संशयच्छेद्यान् व्यवहारान् स्वयं ददर्श ।

व्याख्या—धर्मे = सत्ये, न्याये च तिष्ठन्तीति धर्मस्थाः । धर्मस्थानां = सभ्यानां सखा = मित्रमिति धर्मस्थसखः तैर्युक्तः इत्यर्थः । तन्द्रा संजातास्यासौ तन्द्रितः = आलस्ययुक्तः, न तन्द्रितः अतन्द्रितः = अनलसः सः = राजातिथिः शश्वत् = निरन्तरं प्रतिदिनमित्यर्थः । अर्थः = साध्योऽर्थः येषामस्ति ते अर्थिनः । प्रत्यर्थः = तद्विरोधः येषामस्ति ते प्रत्यर्थिनः । अर्थिनश्च प्रत्यर्थिनश्च ते तेषाम् अर्थिप्रत्यर्थिनां संशयात् = संदिग्धत्वात् कारणात्छेद्याः = निर्णेतुं योग्यास्तान् संशयच्छेद्यान् व्यवहारान् = विवादान् स्वयम् = आत्मनैव ददर्श = पश्यति स्म । न तु प्राड्विवाकादिद्वारा कारयामासेत्यर्थः ।

समासः—धर्मस्थानां सखा इति धर्मस्थसखः । अर्थिनश्च प्रत्यर्थिनश्चेति द्वन्द्वः तेषाम् अर्थिप्रत्यर्थिनाम् । न तन्द्रितः अतन्द्रितः । संशयात् हेतोः छेद्यास्तान् संशयच्छेद्यान् ।

हिन्दी—धार्मिकों के मित्र, आलस्यको छोड़कर राजा अतिथि वादी और प्रतिवादियों के संशय के कारण निर्णय के योग्य व्यवहारों को स्वयं देखता था । अर्थात् धार्मिक विद्वानों के साथ बैठकर पेचीदे मुकदमों का फैसला स्वयं करता था, केवल जजों पर नहीं छोड़ता था ॥ ३९ ॥

ततः परमभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः ।
युयोज पाकाभिमुखैर्भृत्यान्विज्ञापनाफलैः ॥४०॥

ततः परं व्यवहारदर्शनानन्तरं भृत्याननुजीविनः । अभिव्यक्तं मुखप्रसादादिलिङ्गैः स्फुटीभूतं यत्सौमनस्यं स्वामिनः प्रसन्नत्वं तेन निवेदितैः सूचितैः पाकाभिमुखैः सिद्ध्युन्मुखैः विज्ञापनानां विज्ञप्तीनां फलैः प्रेप्सितार्थैर्युयोज योजयामास । अत्र बृहस्पतिः—'नियुक्तः कर्मनिष्पत्तौ विज्ञप्तौ च यदृच्छया । भृत्यान्धनैर्मानयंस्तु नतोऽप्यक्षोभ्यतां व्रजेत् ॥' इति । कविश्च वक्ष्यति—'अक्षोभ्यः' (१७।४४) इति । अत्र सौमनस्यफलयोजनादिभिर्नृपस्य क्षत्रसमाधिर्वर्ण्यत इत्यनुसंधेयम् ॥

अन्वयः—ततः परम् भृत्यान् अभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः पाकाभिमुखैः विज्ञापनाफलैः युयोज ।

व्याख्या—ततः परम् = विवादनिर्णयानन्तरम् भृत्यान् = सेवकान् अभिव्यक्तं = प्रकटीभूतं, मुखस्य प्रसादादिचिह्नैः स्फुटीकृतमित्यर्थः । यत् सौमनस्यं = अन्तःकरणस्य नैर्मल्यं, स्वामिनः प्रसन्नता इति यावत् । इति अभिव्यक्तसौमनस्यं तेन निवेदितानि = सूचितानि तैः अभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः । पच्यते = परिणम्यतेऽनेनेति पाकः = परिणतिः । पाकस्य = फलोन्मुखस्य सिद्धेरित्यर्थः अभिमुखानि = उन्मुखानि तत्पराणीत्यर्थः तैः पाकाभिमुखैः विज्ञापनानां = विज्ञप्तीनां फलानि = अभिलषितार्थाः तैः विज्ञापनाफलैः युयोज = योजयामास ।

समासः—अभिव्यक्तञ्च तत् सौमनस्यमिति अभिव्यक्तसौमनस्यं तेन निवेदितानि तैः अभिव्यक्तसौमनस्यनिवेदितैः । पाकस्य अभिमुखानि तैः पाकाभिमुखैः । विज्ञापनानां फलानि तैः विज्ञापनाफलैः ।

हिन्दी—मामला मुकदमे का फैसला करने का बाद, स्पष्ट प्रसन्नता से जाने गए (अनुमान

किए गए) और फल देने में तत्पर प्रार्थना के अभिलषित पदार्थ (मनोरथ) से सेवकों को संयुक्त कर देता था। अर्थात् जैसे वृक्ष को फला हुआ देखकर लोग अनुमान कर लेते हैं कि इससे इतने फल मिलेंगे। वैसे ही राजा अतिथि की प्रसन्नता को देखकर उनके सेवक जान लेते थे कि हमको इतना फल मिलेगा। यहाँ वृक्ष समाधि व्यंग्य है ॥ ४० ॥

प्रज स्तद्गुरुणा नद्यो नभसेव विवर्धिताः ।
तस्मिंस्तु भूयसीं वृद्धिं नभस्ये ता इवाययुः ॥ ४१ ॥

प्रजास्तस्यातिथेर्गुरुणा पित्रा कुशेन। नभसा श्रावणमासेन नद्य इव विवर्धिताः। तस्मिन्नतिथौ तु नभस्ये भाद्रपदे मासे ता इव नद्य इव भूयसीं वृद्धिमभ्युदयमाययुः। प्रजापोषणेन पितरमतिशयितवानित्यर्थः ॥

अन्वयः—प्रजाः तद्गुरुणा नभसा नद्यः इव विवर्धिताः, तस्मिन् तु नभस्ये ताः इव भूयसीं वृद्धिम् आययुः।

व्याख्या—प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः = जनाः तस्य = अतिथेः गुरुः = पिता = कुशः इति तद्गुरुः तेन तद्गुरुणा विरहिणो नभ्यति, नभ्नाति, नभते, इति वा नभाः = श्रावणः तेन नभसा = श्रावणमासेन नद्यः = सरितः इव = यथा विवर्धिताः = पूरिताः, तस्मिन् = अतिथौ राजनि तु नह्यते मेघैः, न बभस्तीति वा नभाः = अभ्रम् तत्र साधुः नभस्यः = भाद्रपदः तस्मिन् नभस्ये = भाद्रपदमासे "नभो व्योम्नि नभा मेघे श्रावणे च" इति विश्वः। "स्युर्नभस्यः प्रौष्ठपद-भाद्रभाद्रपदाः" इत्यमरः। ताः = नद्यः इव भूयसीम् = अत्यधिकां वृद्धिम् = उन्नतिम् = अभ्युदयम् आययुः = सम्प्राप्ताः। प्रजापालनरक्षणं तु अतिथिः स्वपितुरपेक्षयाधिक्येन कृतवानित्यर्थः।

समासः—तस्य गुरुः तद्गुरुस्तेन तद्गुरुणा।

हिन्दी—राजा कुश ने प्रजा को उसी प्रकार बढ़ाया था, जैसे श्रावणमास से नदी भर पूर बढ़ जाती हैं। और राजा अतिथि के समय तो प्रजा भाद्रपदमास की नदी के समान और अधिक अभ्युदय को प्राप्त हो गई। अर्थात् प्रजा का कल्याण करने में, अतिथि अपने पिता से भी बढ़ गया था ॥ ४१ ॥

यदुवाच न तन्मिथ्या यद्ददौ न जहार तत् ।
सोऽभूद्भग्नव्रतः शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयन् ॥ ४२ ॥

सोऽतिथिर्यद्वाक्यं दानत्राणादिविषयमुवाच तन्न मिथ्यानृतं नाभूत्। यद्वस्तु ददौ तन्न जहार न पुनराददे। किंतु शत्रूनुद्धृत्योत्खाय प्रतिरोपयन्पुनः स्थापयन्भग्नव्रतो भग्ननियमोऽभूत् ॥

अन्वयः—सः यत् उवाच तत् न मिथ्या, यत् ददौ तत् न जहार, "किन्तु" शत्रून् उद्धृत्य प्रतिरोपयन् भग्नव्रतः अभूत्।

व्याख्या—सः = राजा अतिथिः यत् = वचनं, भवते इदं दास्यामि, भवन्तं रक्षयिष्यामीत्यादिवाक्यमित्यर्थः। उवाच = उक्तवान्, तत् = वचनं मिथ्या = असत्यं न = नहि जातमिति।

यत् = वस्तु यस्मै जनाय ददौ = दत्तवान् तत् = दत्तं वस्तु न जहार = न जग्राह। इति तस्य व्रतमासीत्। किन्तु शत्रून् = अरीन् उद्धृत्य = उत्खाय प्रतिरोपयन् = पुनः तद्राज्ये स्थापयन् व्रजन्ति = गच्छन्ति स्वर्गमनेनेति व्रतः। भग्नः = नष्टः व्रतः = नियमः यस्य स भग्नव्रतः अभूत् = जातः। शत्रूणामुत्खातप्रतिरोपणे एव तस्य नियमो भग्नः, नत्वन्यस्मिन् विषये, इत्यर्थः।

हिन्दी—राजा अतिथि जो बात कहते थे, वह मिथ्या नहीं होती थी। अर्थात् जो कहा उसे पूरा किया। और जो वस्तु दे दी, उसे फिर वे नहीं लेते थे। ऐसा राजा का नियम था। किन्तु शत्रुओं को उखाड़ कर उन्हें फिर उनके स्थान पर बैठाने के समय उनका यह नियम टूट जाता था। अर्थात् नियमभंग केवल यहीं होता था, और किसी भी विषय में नहीं॥ ४२॥

वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम्।
तानि तस्मिन्समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः॥ ४३॥

वयोरूपविभूतीनां यौवनसौन्दर्यैश्वर्याणां मध्य एकैकं मदकारणं मदहेतुः। तानि मदकारणानि तस्मिन्राज्ञि समस्तानि मिलितानीति शेषः। तथापि तस्यातिथेर्मनो नोत्सिषिचे न जगर्व। सिञ्चतेः स्वरितेत्त्वादात्मनेपदम्। अत्र वयोरूपादीनां गर्वहेतुत्वान्मदस्य च मदिराकार्यत्वेनातत्कारकत्वान्मदशब्देन गर्वो लक्ष्यत इत्याहुः। उक्तंच—'ऐश्वर्यरूपतारुण्यकुलविद्याबलैरपि। इष्टलाभादिना ह्येषामवज्ञा गर्व ईरितः॥ मदस्त्वानन्दसंमोहः संभेदो मदिराकृतः॥' इति। अत एव कविनापि 'उत्सिषिचे' इत्युक्तम्। न तु 'उन्ममाद' इति॥

अन्वयः—वयोरूपविभूतीनाम् एकैकं मदकारणम्, तानि तस्मिन् समस्तानि "मिलितानि सन्ति तथापि" तस्य मनः न उत्सिषिचे।

व्याख्या—वयः = यौवनं रूपं = सौन्दर्यं विभूतिः = ऐश्वर्यञ्चेतेषां द्वन्द्वः वयोरूपविभूतयस्तासां वयोरूपविभूतीनां मध्ये एकैकं = प्रत्येकं मदस्य = गर्वस्य हेतुः = कारणमिति मदहेतुः भवतीति शेषः। तानि = यौवनसौन्दर्यैश्वर्याणि मदकारणानि तस्मिन् = राजनि, अतिथौ समस्तानि मिलितानि सन्ति यद्यपि, तथापि तस्य = अतिथेः मनः = चित्तं, मानसं न = नहि उत्सिषिचे = गर्वितं बभूव। गर्वकारणसत्त्वेऽपि अतिथेः मनसि न गर्वलेशः, इत्यर्थः।

समासः—वयश्च रूपञ्च विभूतिश्चेति वयोरूपविभूतयस्तासां वयोरूपविभूतीनाम्। मदस्य कारणमिति मदकारणम्।

हिन्दी—जवानी सुन्दरता और ऐश्वर्य (सम्पत्ति) इनमें से एक-एक भी वस्तु घमण्ड का (अहंकार का) कारण होती है। अर्थात् इनमें एक भी जिस व्यक्ति में रहेगी उसे घमण्ड हो जाता है। किन्तु अतिथि में ये सभी कारण एकत्र थे। तो भी उसके मन में घमण्ड न था।

विशेष—यहाँ पर यौवन सौन्दर्य तथा सम्पत्ति को गर्व का कारण होने से और मद (नशा) को मदिरा का कार्य होने से मद शब्द का लक्षणा से गर्व अर्थ है। इसीलिये कवि ने उत्सिषिचे कहा है न कि उन्ममाद॥ ४३॥

इत्थं जनितरागासु प्रकृतिष्वनुवासरम् ।
अक्षोभ्य. स नवोऽप्यासीद्दृढमूल इव द्रुमः ॥ ४४ ॥

इत्थमनुवासरमन्वहं प्रकृतिषु प्रजासु जनितरागासु सतीषु स राजा नवोऽपि । दृढमूलो द्रुम इव । अक्षोभ्योऽप्रधृष्य आसीत् ॥

अन्वयः—इत्थम् अनुवासरं प्रकृतिषु जनितानुरागासु "सतीषु" सः नवः अपि दृढमूलः द्रुमः इव अक्षोभ्यः आसीत् ।

व्याख्या—इत्थम् = अनेन प्रकारेण वासरे वासरे, इति अनुवासरम् = प्रतिदिनम् प्रकृष्टं कुर्वन्ति राज्यं ताः प्रकृतयस्तासु प्रकृतिषु = प्रजासु जनितः = उत्पन्नः अनुरागः = प्रीतिः यासु ताः, तासु जनितानुरागासु सतीषु सः = राजा अतिथिः नवः = नूतनः अपि दृढं = प्रगाढं मूलं = बुध्नः यस्य स दृढमूलः द्रुमः = वृक्ष इव = यथा "दृढं स्थूले नितान्ते च प्रगाढे बलवत्यपि" इति मेदिनी । न क्षोभ्यः अक्षोभ्यः = अचलः = स्थिरः, अधृष्य इत्यर्थः । आसीत् = अभूत् ।

समासः—जनितः अनुरागः यासु ताः तासु जनितानुरागासु । वासरे वासरे अनु, इति अनुवासरम् । दृढं मूलं यस्य स दृढमूलः । न क्षोभ्यः अक्षोभ्यः ।

हिन्दी—इस प्रकार प्रतिदिन (रोज-रोज) राजा के प्रति प्रजा का प्रेम उत्पन्न होने से नया राजा भी मजबूत जड़ वाले वृक्ष की तरह स्थिर हो गया । प्रजा की भक्ति एवं अनुराग ही राजा की स्थिरता योग्यता का कारण है । यह अभिप्राय कवि का है ॥ ४४ ॥

अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्चते यतः ।
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान्षट् पूर्वमजयद्रिपून् ॥ ४५ ॥

यतो बाह्याः शत्रवः प्रतिनृपा अनित्याः । द्विषन्ति स्निह्यन्ति चेत्यर्थः । किंच ते बाह्या विप्रकृष्टा दूरस्थाश्च । अतः सोऽभ्यन्तरानन्तर्वर्तिनो नित्यान्षड्रिपून्कामक्रोधादीन्पूर्वमजयत् । अन्तःशत्रुजये बाह्या अपि न दुर्जया इति भावः ॥

अन्वयः—यतः बाह्याः शत्रवः अनित्याः विप्रकृष्टाः च, अतः सः अभ्यन्तरान् नित्यान् षट् रिपून् पूर्वम् अजयत् ।

व्याख्या—यतः = यस्मात्कारणात् बहिर्भवाः बाह्याः = अशरीरस्थाः, असहजा इत्यर्थः । शत्रवः = रिपवः न नित्याः अनित्याः = अशाश्वताः कदाचित् कार्यवशात् द्विषन्ति, स्निह्यन्ति चेत्यर्थः । 'शाश्वतस्तु ध्रुवो नित्यसदातनसनातनाः । इत्यमरः । किंच ते = बाह्याः शत्रवः विप्रकृष्यंतेस्म इति विप्रकृष्टाः = दूरस्थाः । अतः = अस्मात्कारणात् सः = राजा अतिथिः, अभिगतम् अन्तरं येषां ते अभ्यन्तरास्तान् अभ्यन्तरान् = शरीरस्थान् नित्यान् = शाश्वतान् मोक्षपर्यन्तस्थायिन इत्यर्थः, षट् षट्संख्यकान् कामक्रोधमोहादीन् रिपून् पूर्वं = प्रथमम् अजयत् = जितवान् । अन्तःशत्रुषु निर्जितेषु बाह्याः शत्रवः अकिंचित्करा इत्यर्थः ।

हिन्दी—क्योंकि बाहरी शत्रु सदा नहीं होते हैं और वे दूर रहते हैं। इसलिये राजा अतिथि ने अपने ही शरीर के भीतर सदा रहने वाले छः शत्रु (काम क्रोध लोभ मद मोह मत्सर) ओं को पहले जीत लिया ॥ ४५ ॥

प्रसादाभिमुखे तस्मिंश्चपलापि स्वभावतः ।
निकषे हेमरेखेव श्रीरासीदनपायिनी ॥ ४६ ॥

स्वभावतश्चपला चञ्चलापि श्रीः प्रसादाभिमुखे तस्मिन्नृपे । निकषे निकषोपले हेमरेखेव । अनपायिनी स्थिरासीत् ॥

अन्वयः—स्वभावतः चपला अपि श्रीः प्रसादाभिमुखे तस्मिन् निकषे हेमरेखा इव अनपायिनी आसीत् ।

व्याख्या—स्वो भावः स्वभावः, स्वभावात् स्वभावतः = प्रकृत्या चपला = चञ्चला अपि श्रीः = राज्यलक्ष्मीः मुखमाभिगतः अभिमुखः, प्रसादस्य = प्रसन्नतायाः अभिमुखः तस्मिन् प्रसादाभिमुखे = प्रसन्नमुखे, इत्यर्थः । प्रसादे अनुग्रहे अभिमुखः = प्रवणः तस्मिन्निति वा तस्मिन् = राशि = अतिथौ निकषे = सुवर्णपरीक्षणपाषाणे हेम्नः = सुवर्णस्य रेखा = लेखा इति हेमरेखा इव यथा = न विद्यते अपायः = विनाशो यस्याः सा अनपायिनी = स्थिरा-अचपला आसीत् = जाता ।

समासः—प्रसादस्य अभिमुखः प्रसादाभिमुखस्तस्मिन् प्रसादाभिमुखे । हेम्नः रेखा हेमरेखा । न अपायो यस्याः सा अनपायिनी ।

हिन्दी—प्रकृति से चंचल भी राज्यलक्ष्मी प्रसन्नमुख वाले या अनुग्रह करने में लगे उस राजा अतिथि के पास आकर उसी प्रकार स्थिर हो गई जैसे कसौटी के पत्थर पर सुवर्ण की रेखा (लकीर) अमिट हो जाती है ॥ ४६ ॥

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ।
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः ॥ ४७ ॥

केवला शौर्यवर्जिता नीतिः कातर्यं भीरुत्वम् । शौर्यं केवलमित्यनुषञ्जनीयम् । केवलं नीतिरहितं शौर्यं श्वापदचेष्टितम् । व्याघ्रादिचेष्टाप्रायमित्यर्थः । 'व्याघ्रादयो वनचराः पशवः श्वापदा मताः' इति हलायुधः । अतो हेतोः सोऽतिथिः समेताभ्यां संगताभ्यामुभाभ्यां नीतिशौर्याभ्यां सिद्धिं जयप्राप्तिमन्वियेष गवेषितवान् ॥

अन्वयः—केवला नीतिः कातर्यम् , केवलं शौर्यं श्वापदचेष्टितम् "मतम्" अतः स समेताभ्याम् उभाभ्यां सिद्धिम् अन्वियेष ॥

व्याख्या—केवला = एका पराक्रमशून्या नीयन्ते = उन्नीयन्ते कर्तव्यार्थाः अनया सा नीतिः = नयः ईषत्तरतीति कातरः तस्य भावः कातर्यम् = भीरुत्वम् उच्यते नीतिकारैरिति शेषः ।

केवलम् = एकमात्रं शूरस्य भावः शौर्यं = शूरत्वं च शुन इव आपद् येभ्यस्ते श्वापदाः शुनः इव पदानि वा येषां ते श्वापदा व्याघ्रादयः तेषां चेष्टितम् = चेष्टाप्रायम्। "व्याघ्रादयो वनचराः पशवः श्वापदा मताः" इति हलायुधः। अतः अस्माद्धेतोः सः = राजा अतिथिः समेताभ्यां = मिलिताभ्याम् उभाभ्यां = द्वाभ्याम् सिद्धिं = सफलतां, विजयप्राप्तिमित्यर्थः। अन्विवेष = गवेषयामास।

समासः—शुन इव आपद् येभ्यस्ते श्वापदाः। शुन इव पदानि येषां ते वा श्वापदास्तेषां चेष्टितमिति श्वापदचेष्टितम्। सम्यक् इते समेते ताभ्यां समेताभ्याम्।

हिन्दी—एकमात्र कूटनीति से काम करना कायरता है और केवल शूरता (मार काट कर जीतना) पशुओं का स्वभाव है। इसलिये राजा अतिथि ने राजनीति तथा पराक्रम दोनों से "समयानुसार" विजय प्राप्ति की खोज की। विजय प्राप्त की॥ ४७॥

न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः।
अदृष्टमभवत्किंचिद्व्यभ्रस्येव विवस्वतः॥ ४८॥

न्यस्ताः सर्वतः प्रहिताः प्रणिधयश्चरा एव दीधितयो रश्मयो यस्य तस्य। 'प्रणिधिः प्रार्थने चरे' इति शाश्वतः। तस्य राज्ञः। व्यभ्रस्य निर्मेघस्य विवस्वतः सूर्यस्येव। मण्डले स्वविषये किंचिदल्पमप्यदृष्टमज्ञातं नाभवन्नासीत्। स चारचक्षुषा सर्वमपश्यदित्यर्थः॥

अन्वय—न्यस्तप्रणिधिदीधितेः तस्य राज्ञः मण्डले व्यभ्रस्य विवस्वतः इव किंचित् अदृष्टं न अभवत्।

व्याख्या—न्यस्ताः सर्वत्र प्रेषिताः प्रणिधयः = गुप्तचराः एव दीधितयः = रश्मयः यस्य स तस्य न्यस्तप्रणिधिदीधितेः। प्रकर्षेण निधीयते ज्ञेयं येषु ते प्रणिधयः। तस्य = प्रसिद्धस्य राज्ञः = अतिथेः मण्डले = राष्ट्रे = स्वदेशे, इत्यर्थः। अपः बिभर्ति, अभ्रति = गच्छतीति वा अभ्रम्। विगतानि अभ्राणि = मेघाः यस्य स तस्य व्यभ्रस्य = मेघरहितस्य विविधं वस्ते = आच्छादयतीति विवः = रश्मिः अस्यास्तीति विवस्वान् तस्य विवस्वतः = सूर्यस्य मण्डले = परिवेषे, स्वविषये इत्यर्थः। इव = यथा किंचित् = ईषदपि न दृष्टम् अदृष्टम् = अज्ञातम्, अनवलोकितम् न आसीत् = नाभवत्। चारचक्षुषः राजानः सर्वं पश्यन्तीत्यर्थः।

समासः—न्यस्ताः प्रणिधयः एव दीधितयो येन स तस्य न्यस्तप्रणिधिदीधितेः। विगतानि अभ्राणि यस्य तस्य व्यभ्रस्य। न दृष्टम् अदृष्टम्।

हिन्दी—जिस प्रकार बादल रहित आकाश में सूर्य किरणों के फैल जाने से कुछ भी छिपा नहीं रहता है, उसी प्रकार राजा ने अपने गुप्तचरों को सब जगह भेज रखा था। अतः पूरे देश में कुछ भी अज्ञात नहीं था। अर्थात् सर्वत्र नियुक्त गुप्तचरों के द्वारा राजा सब कुछ जान लेता था॥ ४८॥

रात्रिंदिवविभागेषु यदादिष्टं महीक्षिताम् ।
तत्सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः ॥ ४९ ॥

रात्रौ च दिवा च रात्रिंदिवम् । 'अचतुर-' इत्यादिनाधिकरणार्थे द्वन्द्वेऽच्प्रत्ययान्तो निपातः अव्ययान्तत्वादव्ययत्वम् । अत्र षष्ठ्यर्थलक्षणया रात्रिंदिवमिति । अहोरात्रयोरित्यर्थः । तयोर्विभागा अंशाः प्रहरादयः । तेषु महीक्षितां राज्ञां यदादिष्टमिदमस्मिन्काले कर्तव्यमिति मन्वादिभिरुपदिष्टं तत्स राजा विकल्पपराङ्मुखः संशयरहितः सन् । नियोगेन निश्चयेन सिषेवे । अनुष्ठितवानित्यर्थः । अत्र कौटिल्यः—'कार्याणां नियोगविकल्पसमुच्चया भवन्ति । अनेनैवोपायेन नान्येनेति नियोगः । अनेन वाऽन्येन वेति विकल्पः । अनेन चेति समुच्चयः' इति ॥

अन्वयः—रात्रिंदिवविभागेषु महीक्षितां यत् आदिष्टम् तत् सः विकल्पपराङ्मुखः सन् नियोगेन सिषेवे ।

व्याख्या—रात्रौ च दिवा च रात्रिंदिवं, रात्रिंदिवम् = अहोरात्रयोः विभागाः = अंशाः-यामादयः तेषु रात्रिंदिवविभागेषु महीं = पृथिवीं क्षियन्ति, मह्यां वा क्षियन्तीति महीक्षितस्तेषां महीक्षिताम् = राज्ञां यत् = कर्तव्यम् आदिष्टम् = अस्मिन्काले इदं कर्तव्यमिदं वा न कर्तव्यमिति-नीतिशास्त्रकारैरुपदिष्टं तत् = सर्वं सः = राजा अतिथिः विकल्पेन = संशयेन पराङ्मुखः = रहितः इति विकल्पपराङ्मुखः सन् नियुज्यते इति नियोगस्तेन नियोगेन = निश्चयेन सिषेवे = सेवितवान् = अनुष्ठितवानित्यर्थः ।

समासः—रात्रौ च दिवा च रात्रिंदिवम्, तस्य: विभागास्तेषु रात्रिंदिवविभागेषु । विकल्पेन, विकल्पे वा पराङ्मुखः विकल्पपराङ्मुखः ।

हिन्दी—दिन में तथा रात में किस समय कौनसा कार्य करना इस प्रकार मन्वादि शास्त्रकारों ने राजाओं के जो कर्तव्य बताए हैं, राजा अतिथि ने निःसन्देह होकर दृढ़ता से उन आदेशों का पालन किया ॥ ४९ ॥

मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः ।
स जातु सेव्यमानोऽपि गुप्तद्वारो न सूच्यते ॥ ५० ॥

तस्य राज्ञः प्रतिदिनं मन्त्रिभिः सह मन्त्रो विचारो बभूव । स मन्त्रः सेव्यमानोऽप्यन्वहमावर्त्यमानोऽपि जातु कदाचिदपि न सूच्यते न प्रकाश्यते । तत्र हेतुर्गुप्तद्वार इति संवृतेङ्गिताकारादिज्ञानमार्ग इत्यर्थः ॥

अन्वयः—तस्य प्रतिदिनं मंत्रिभिः सह मन्त्रः बभूव सः सेव्यमानः अपि जातु न सूच्यते "यतो हि" सः गुप्तद्वारः ।

व्याख्याः—तस्य = राज्ञः अतिथेः दिने दिने इति प्रतिदिनं = प्रत्यहं मन्त्रिभिः = सचिवैः सह = साकं मन्त्र्यते इति मन्त्रः = गुप्तविचारः बभूव = जातः । सः = मन्त्रः सेव्यते इति

सेव्यमानः = प्रत्यहमावर्त्यमानः अपि जातु = कदाचित् अपि न सूच्यते = नहि प्रकाश्यते। यतो हि सः = मन्त्रः गुप्तं = संवृतं सुरक्षितमावृतमित्यर्थः द्वारम् = इंगिताकारादिमार्गः यस्य स गुप्तद्वारः आसीदिति शेषः।

समासः—दिने दिने प्रतिदिनम्। गुप्तं द्वारं यस्य स गुप्तद्वारः।

हिन्दी—उस राजा अतिथि का रोज-रोज, अपने मंत्रियों के साथ गुप्तविचार (मंत्रणा) होता था। किन्तु वह विचार प्रतिदिन व्यवहार में आते हुए भी कभी भी प्रगट नहीं होता था। क्योंकि उसके चेष्टा आकारादि प्रकट होने के मार्ग (रास्ते) गुप्त रहते थे ॥ ५० ॥

परेषु स्वेषु च क्षिप्तैरविज्ञातपरस्परैः।
सोऽपसर्पैर्जजागार यथाकालं स्वपन्नपि ॥ ५१ ॥

यथाकालमुक्तकालानतिक्रमेण स्वपन्नपि सोऽतिथिः परेषु शत्रुषु स्वेषु स्वकीयेषु च। मन्त्र्यादितीर्थेष्विति शेषः। क्षिप्तैः प्रहितैरविज्ञाताः परस्परं येषां तैः। अन्योन्याविज्ञातैरित्यर्थः। अपसर्पैश्चरैः। 'अपसर्पश्चरः स्पश' इत्यमरः। जजागार बुद्धवान्। चारमुखेन सर्वमज्ञासीदित्यर्थः। अत्र कामन्दकः—'चारान्विचारयेत्तीर्थेष्वात्मनश्च परस्य च। पाषण्ड्यादीनविज्ञातानन्योन्यमितरैरपि ॥' इति ॥

अन्वयः—यथाकालं स्वपन् अपि सः परेषु स्वेषु च क्षिप्तैः अविज्ञातपरस्परैः अपसर्पैः जजागार।

व्याख्या—कालमनतिक्रम्य यथाकालं = समयस्यानतिक्रमणेन स्वपन् = शयानः अपि सः = अतिथिः परेषु = शत्रुषु स्वेषु = आत्मीयेषु च क्षिप्तैः = प्रहितैः अविज्ञाताः = न ज्ञाताः परस्परं = अन्योन्यं येषां ते तैः अविज्ञातपरस्परैः, अन्योन्यं न जानद्भिरित्यर्थः। अपसर्पन्तीति अपसर्पाः तैः अपसर्पैः = चरैः "यथार्हवर्णः प्रणिधिरपसर्पश्चरः स्पशः" इत्यमरः। जजागार = जागर्तिस्म, प्रबुद्धवानित्यर्थः।

समासः—कालमनतिक्रम्य यथाकालम्। न विज्ञाताः अविज्ञाताः परस्परं येषां ते तैः अविज्ञातपरस्परैः।

हिन्दी—राजा अतिथि ने अपने कर्मचारियों तथा शत्रुओं में ऐसे गुप्तचर लगा रखे थे, जो कि आपस में एक दूसरे को भी नहीं जान पाते थे। ऐसे गुप्तचरों के द्वारा वह समयानुसार सोते हुए भी जागता था। अर्थात् गुप्तचरों के जरिये वह सबके समाचार जान लेते थे ॥ ५१ ॥

दुर्गाणि दुर्ग्रहाण्यासंस्तस्य रोद्धुरपि द्विषाम्।
नहि सिंहो गजास्कन्दी भयाद्गिरिगुहाशयः ॥ ५२ ॥

द्विषां रोद्धु रोधकस्यापि। न तु स्वयं रोध्यस्येत्यर्थः। तस्य राज्ञो दुर्ग्रहाणि परैर्दुर्धर्षाणि महीदुर्गादीन्यासन्। न च निर्भीकस्य किं दुर्गैरिति वाच्यमित्यर्थान्तरन्यासमुखेनाह—नहीति। गजानास्कन्दति हिनस्तीति गजास्कन्दी सिंहो भयाद्धेतोः। गिरिगुहासु शेत इति गिरिगुहाशयो

नहि किंतु स्वभावत एवेति शेषः। 'अधिकरणे शेतेः' इत्यच्प्रत्ययः। अत्र मनुः—'धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा। नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥' इति ॥

अन्वयः—द्विषां रोद्धुः अपि तस्य दुर्ग्रहाणि दुर्गाणि आसन्, हि गजास्कन्दी सिंहः भयात् गिरिगुहाशयः न, "किन्तु स्वभावात्"।

व्याख्या—द्विषन्तीति द्विषः तेषां द्विषां=शत्रूणां रोद्धुः=रोधकस्यापि न तु स्वयं रोध्यस्येत्यर्थः तस्य=अतिथेः दुःखेन ग्रहीतुं शक्यानि दुर्ग्रहाणि=शत्रुभिः धर्षितुमशक्यानि अजेयानीत्यर्थः। दुःखेन गच्छन्त्यत्र तानि दुर्गाणि=कोट्टानि "पुरं दुर्गमधिष्ठानं कोट्टोऽस्त्री राजधान्यपि" इति जटाधरः। आसन्=विद्यन्तेस्म, ननु शूरस्याभीरोः दुर्गैः किं कार्यमित्याह हि=यतः गजान्=नागान् आस्कन्दति=हिनस्तीति गजास्कन्दी सिंहः=मृगेन्द्रः भयात्=भीतेः कारणात् गिरीणां=पर्वतानां गुहाः=बिलानि तासु शेते=स्वपिति इति गिरिगुहाशयः न=नहि, किन्तु स्वभावादेवेति शेषः।

समासः—गजानाम् आस्कन्दी, इति गजास्कन्दी। दुःखेन ग्रहाणि दुर्ग्रहाणि। गिरीणां गुहाः गिरिगुहास्तासु शयः गिरिगुहाशयः।

हिन्दी—शत्रुओं को रोकने वाले राजा अतिथि के बहुत से बड़े मजबूत किले थे। अर्थात् यद्यपि वे युद्ध में ही शत्रुओं को घेर कर परास्त कर देते थे, फिर भी राजधानी के चारों ओर किले बनवा रखे थे। यह ठीक भी है क्योंकि—हाथियों को मारने वाला सिंह, पर्वत की गुफाओं में हाथियों के भय से नहीं सोता है। किन्तु सिंह का ऐसा स्वभाव ही है ॥ ५२ ॥

भव्यमुख्याः समारम्भाः प्रत्यवेक्ष्या निरत्ययाः ।
गर्भशालिसधर्माणस्तस्य गूढं विपेचिरे ॥ ५३ ॥

भव्यमुख्याः कल्याणप्रधानाः। न तु विपरीताः। प्रत्यवेक्ष्या एतावत्कृतमेतावत्कर्तव्यमित्यनुसंधानेन विचारणीयाः। अत एव निरत्यया निर्बाधा गर्भेऽभ्यन्तरे पच्यन्ते ये शालयस्तेषां सधर्माणः। अतिनिगूढा इत्यर्थः। 'धर्मादनिच्केवलात्' इत्यनिच्प्रत्ययः समासान्तः। तस्य राज्ञः समारभ्यन्त इति समारम्भाः कर्माणि गूढमप्रकाशं विपेचिरे। फलिता इत्यर्थः। 'फलानुमेयाः प्रारम्भाः' इति भावः ॥

अन्वयः—भव्यमुख्याः प्रत्यवेक्ष्याः अत एव निरत्ययाः, गर्भशालिसधर्माणः तस्य समारम्भाः गूढं विपेचिरे।

व्याख्या—भवतीति भव्यं=कल्याणं मुख्यं=प्रधानं येषु ते भव्यमुख्याः, भव्याद्विपरीता नेत्यर्थः। प्रत्यवेक्षितुं=एतावत्कृतमेतावत्करणीयमिति विचारयितुं योग्याः प्रत्यवेक्ष्याः, अत एव निर्गतः अत्ययः=बाधा येभ्यस्ते निरत्ययाः, समानः धर्मः येषां ते सधर्माणः, गर्भे=अभ्यन्तरे पच्यन्ते ये शालयः=कलमाद्यास्तेषां सधर्माणः=अतिनिगूढा इत्यर्थः गर्भशालिसधर्माणः, यथा शालयः गर्भे गूढा एवं पच्यन्ते तथैवास्य राज्ञः प्रारम्भाः अपि फलानुमेया एवेत्यर्थः। तस्य=राज्ञः

अतिथेः सम्यगारभ्यन्त इति समारम्भाः = कर्माणि गूढम् = अप्रकाशं यथा स्यात्तथा विपेचिरे = फलितवन्तः। तस्य प्रारम्भाः फलानुमेया एव भवन्तीति भावः।

समासः—भव्यं मुख्यं येषां ते भव्यमुख्याः। निर्गताः अत्ययेभ्य इति निरत्ययाः। समानो धर्मो येषां ते सधर्माणः। गर्भशालिनां सधर्माणः ये ते गर्भशालिसधर्माणः।

हिन्दी—राजा अतिथि के सभी काम कल्याणकारी होते थे, और राजा सभी कामों को पहले विचार लेते थे, इसी लिये वे काम विघ्नबाधा रहित होते थे। जिस प्रकार धान का दाना "बाल के" भीतर ही भीतर पक जाता है उसी प्रकार राजा के काम भी चुपचाप आरम्भ होकर पूरा होने के बाद ही प्रकट होते थे ॥ ५३ ॥

अपथेन प्रववृते न जातूपचितोऽपि सः।
वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानं लवणाम्भसः ॥ ५४ ॥

सोऽतिथिरुपचितोऽपि वृद्धिं गतोऽपि सन्। जातु कदाचिदप्यपथेन कुमार्गेण न प्रववृते न प्रवृत्तः। मर्यादां न जहावित्यर्थः। तथाहि। लवणाम्भसो लवणसागरस्य वृद्धौ पूरोत्पीडे सत्यां नदीमुखेनैव नदीप्रवेशमार्गेणैव प्रस्थानं निःसरणम्। न त्वन्यथेत्यर्थः।

अन्वयः—सः उपचितः अपि सन् जातु अपथेन न प्रववृते, हि लवणाम्भसः वृद्धौ नदीमुखेन एव प्रस्थानम्।

व्याख्या—सः = राजा, अतिथिः उपचीयते स्म इति उपचितः = वृद्धिप्राप्तः अपि सन् जातु = कदाचिदपि न पन्थाः अपथं तेन अपथेन = कुमार्गेण न प्रववृते = नहि प्रवृत्तः। मर्यादां न लंघितवानित्यर्थः। तथाहि—लवणम् अम्भो यस्य स तस्य लवणाम्भसः = लवणसमुद्रस्य वृद्धौ = पूरोत्पीडे सत्यां नद्याः = सरितः मुखं = प्रवेशमार्गस्तेन नदीमुखेनेव प्रस्थानं निःसारणम् = बहिरागमनं न त्वन्यमार्गेणेत्यर्थः।

समासः—नद्याः मुखं नदीमुखं तेन नदीमुखेन। लवणम् अम्भः यस्य स तस्य लवणाम्भसः। न पन्थाः अपथं तेन अपथेन।

हिन्दी—वह राजा अतिथि, समृद्धिशाली होकर भी कभी भी कुमार्ग (बुरे रास्ते) से नहीं चले। ठीक भी है क्योंकि ज्वार के समय जब सागर बढ़ता है तो नदियों के मार्ग से ही बढ़ता है। अर्थात् किसी दूसरे मार्ग से नहीं बढ़ता है ॥ ५४ ॥

कामं प्रकृतिवैराग्यं सद्यः शमयितुं क्षमः।
यस्य कार्यः प्रतीकारः स तन्नैवोदपादयत् ॥ ५५ ॥

प्रकृतिवैराग्यं प्रजाविरागम्। दैवादुत्पन्नमिति शेषः। सद्यः कामं सम्यक्शमयितुं प्रतिकर्तुं क्षमः शक्तः स राजा यस्य प्रकृतिवैराग्यस्य प्रतीकारः कार्यः कर्तव्यः। अनर्थहेतुत्वादित्यर्थः। तद्वैराग्यं नोदपादयत्। उत्पन्नप्रतीकारादनुत्पादनं वरमिति भावः। अत्र कौटिल्यः—'क्षीणाः

प्रकृतयो लोभं लुब्धा यान्ति विरागताम्। विरक्ता यान्त्यमित्रं वा भर्तारं घ्नन्ति वा स्वयम् ॥' तस्मात्प्रकृतीनां विरागकारणानि नोत्पादयेदित्यर्थः ॥

अन्वयः—प्रकृतिवैराग्यं "दैवादुत्पन्नम्" सद्यः कामं शमयितुं शक्तः सः, यस्य प्रतीकारः कार्यः तत् न एव उदपादयत्।

व्याख्या—विरागस्य भावः वैराग्यं, प्रकृतिषु = प्रजासु वैराग्यं = विरतिः = विरोधस्तत् प्रकृतिवैराग्यं दैवात् यदि उत्पन्नं जातमिति शेषः। सद्यः = सपदि कामं = यथेष्टम् सम्यग् शमयितुं = निवारयितुं शक्तः = समर्थः सः = राजा अतिथिः यस्य = प्रजाविरागस्य प्रतीकारः = शोधनं कार्यः = कर्तव्यः अनर्थहेतुत्वाद् दूरीकरणीय इत्यर्थः। तत् = प्रकृतिषु वैराग्यं नैव उदपादयत् = उत्पादयति स्म। उत्पन्नस्य वैराग्यस्य प्रतीकारापेक्षयानुत्पादनमेव सम्यगिति भावः।

समासः—प्रकृतिषु प्रकृतीनां वा वैराग्यमिति प्रकृतिवैराग्यम्, तत्।

हिन्दी—यदि दैववश प्रजा में असन्तोष हो तो, उसे तुरन्त दूर करने (शान्त करने) के लिये वह समर्थ था, किन्तु राजा अतिथि ने प्रजा में कोई ऐसा असन्तोष उत्पन्न ही नहीं होने दिया, जिसका कि प्रतीकार करना पड़े ॥ ५५ ॥

शक्येष्वेवाभवद्यात्रा तस्य शक्तिमतः सतः।
समीरणसहायोऽपि नाम्भःप्रार्थी दवानलः ॥ ५६ ॥

शक्तिमतः शक्तिसंपन्नस्यापि सतस्तस्य राज्ञः शक्येषु शक्तिविषयेषु स्वस्माद्धीनबलेष्वेव विषये यात्रा दण्डयात्रा अभवत्। न तु समधिकेष्वित्यर्थः। तथाहि। समीरणसहायोऽपि दवानलोऽम्भःप्रार्थी जलान्वेषी न। दग्धुमिति शेषः। किंतु तृणकाष्ठादिकमेवान्विष्यतीत्यर्थः। अत्र कौटिल्यः— 'समज्यायोभ्यां संदधीत हीनेन विगृह्णीयात्' इति ॥

अन्वयः—शक्तिमतः सतः तस्य शक्येषु एव यात्रा अभवत्, समीरणसहायः अपि दवानलः अम्भःप्रार्थी न "दग्धुमिति" शेषः।

व्याख्या—शक्तिरस्यास्तीति शक्तिमान् तस्य शक्तिमतः = सामर्थ्यसम्पन्नस्यापि सतः तस्य = राज्ञः अतिथेः शक्येषु = सामर्थ्यविषयेषु–स्वस्मात् न्यूनबलेषु एव यात्रा = विजययात्रा, अभवत् = अभूत्, न तु प्रबलेषु इत्यर्थः। तथाहि सम्यक् ईते = गच्छति, ईरयति = प्रेरयतीति वा समीरणः = पवनः सहायः = सहायको यस्य स समीरणसहायः अपि दवस्य = वनस्य अनलः = अग्निः, इति दवानलः अम्भः = जलं प्रार्थयते तच्छीलः अम्भःप्रार्थी = जलान्वेषी न = नहि दग्धुमिति शेषः।

समासः—समीरणः सहायो यस्य स समीरणसहायः। दवस्य अनलः दवानलः। अम्भसः प्रार्थी अम्भःप्रार्थी।

हिन्दी—राजा अतिथि शक्तिशाली होकर भी शक्य सम्भव अपने से कमजोर पर चढ़ाई

करते थे, अधिक बलवान पर नहीं। ठीक भी है क्योंकि वायु के साथ में (सहायक) होने पर भी वन में लगी आग जल को नहीं ढूँढती है। अर्थात् जल को नहीं जलाती है।

विशेष—इस श्लोक का हिन्दी अनुवाद कुछ सज्जनों ने "अधिक बलवान् पर अतिथि चढ़ाई करते थे कमजोर पर नहीं" ऐसा शक्येषु—का अर्थ लिखा है किन्तु यह मल्लिनाथ की टीका तथा नीति के विरुद्ध है। कौटिल्य ने लिखा है कि समान बलवाले तथा अधिक बलवाले राजा से सन्धि करे और हीनबल पर चढ़ाई करे। अतः हमने इसी के अनुसार लिखा है। कवि का भाव भी यही प्रतीत होता है ॥ ५६ ॥

न धर्ममर्थकामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ।
नार्थं कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ॥ ५७ ॥

स राजार्थकामाभ्यां धर्मं न बबाधे न नाशितवान्। तेन धर्मेण च तावर्थकामौ न। अर्थं कामेन कामं वार्थेन न बबाधे। एकत्रैवासक्तो नाभूदित्यर्थः। किंतु त्रिषु धर्मार्थकामेषु सदृशस्तुल्य-वृत्तिः। अभूदित्यर्थः ॥

अन्वयः—सः अर्थकामाभ्यां धर्मं न बबाधे, तेन च तौ न "बबाधे" अर्थं कामेन, कामं वा अर्थेन न बबाधे, किन्तु त्रिषु सदृशः।

व्याख्या—सः=राजा अतिथिः अर्थ्यते=प्रार्थ्यते इति अर्थः=द्रव्यं विषयो वा। कमनं कामः=अभिलाषः। अर्थश्च कामश्चेति अर्थकामौ ताभ्याम् अर्थकामाभ्यां धर्मं=पुण्यं न बबाधे= न विनाशितवान्। तेन=धर्मेण च तौ=अर्थकामौ न नाशितवान्, कामेन=धर्मविरुद्धेन अभिलाषेण अर्थं न बाधितवान् तथा अर्थेन=अधिकलोभेन कामं वा न पीडितवान्। तत्र तत्रैव नासक्तवानित्यर्थः। किन्तु त्रिषु=धर्मार्थकामेषु समानः इव पश्यतीति सदृशः=समानवृत्तिः अभूदित्यर्थः।

समासः—अर्थश्च कामश्चेति अर्थकामौ ताभ्याम्, अर्थकामाभ्याम्।

हिन्दी—राजा अतिथि ने अर्थ और काम के लिये धर्म को नहीं छोड़ा, तथा धर्म से (रात दिन धर्म में ही लीन होकर) अर्थ और काम का भी त्याग नहीं किया। और अर्थ के पीछे काम को तथा काम के पीछे अर्थ को भी नहीं छोड़ा। अर्थात् किसी एक में ही आसक्त नहीं हुआ। किन्तु धर्म अर्थ काम इन तीनों में एक समान व्यवहार करता था ॥ ५७ ॥

हीनान्यनुपकर्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्वते।
तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितान्यतः ॥ ५८ ॥

मित्राणि हीनान्यतिक्षीणानि चेदनुपकर्तॄण्यनुपकारीणि। प्रवृद्धान्यतिसमृद्धानि चेद्विकुर्वते विरुद्धं चेष्टन्ते। अपकुर्वत इत्यर्थः। 'अकर्मकाच्च' इत्यात्मनेपदम्। अतः कारणात्तेन राज्ञा मित्राणि सुहृदः। 'मित्रं सुहृदि मित्रोऽर्के' इति विश्वः। मध्यमशक्तीनि नातिक्षीणोच्छ्रितानि यथा तथा स्थापितानि ॥

अन्वयः—मित्राणि हीनानि अनुपकर्तॄणि, प्रवृद्धानि विकुर्वते, अतः तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितानि।

व्याख्या—मेद्यन्तीति = स्निह्यन्तीति मित्राणि = सखायः हीनानि = क्षीणानि अतिदुर्बलानीत्यर्थः उपकुर्वन्तीति उपकर्तॄणि, न उपकर्तॄणि यानि तानि अनुपकर्तॄणि = अनुपकारीणि जायन्ते इत्यर्थः। प्रवृद्धानि = समृद्धानि = सर्वथा समृद्धिमन्ति चेद् विकुर्वते = विरुद्धं कुर्वन्ति, अपकारं कुर्वन्तीत्यर्थः। अतः = अस्माद्धेतोः तेन = राज्ञा अतिथिना मित्राणि = सुहृदः मध्यमा = नातिक्षीणा नाप्यधिका शक्तिः = सामर्थ्यं येषां तानि मध्यमशक्तीनि स्थापितानि = कृतानीत्यर्थः।

समासः—मध्यमा शक्तिः येषां तानि मध्यमशक्तीनि। न उपकर्तॄणि, इति अनुपकर्तॄणि।

हिन्दी—यदि निकृष्ट अपने से छोटे नीच मित्र होते हैं तो कुछ न कुछ अपकार कर देंगे। और यदि अपने से बड़े धनी मित्र होंगे तो कुछ बाधा खड़ी करेंगे। इसलिये राजा अतिथि ने मध्यम शक्ति वाले ही मित्र बनाए थे। अर्थात् न तो अति धनी और न नीच थे, ऐसे ही उनके मित्र थे ॥ ५८ ॥

'शक्येष्वेवाभवद्यात्रा' (१७।५६) इत्यादिनोक्तमर्थं सोपस्कारमाह—

परात्मनोः परिच्छिद्य शक्त्यादीनां बलाबलम्।
ययावेभिर्बलिष्ठश्चेत्परस्मादास्त सोऽन्यथा ॥ ५९ ॥

सोऽतिथिः परात्मनोः शत्रोरात्मनश्च शक्त्यादीनां शक्तिदेशकालादीनां बलाबलं न्यूनाधिकभावं परिच्छिद्य निश्चित्य। एभिः शक्त्यादिभिः परस्माच्छत्रोर्बलिष्ठः स्वयमतिशयेन बलवांश्चेत्। बलशब्दान्मतुबन्तादिष्ठन्प्रत्ययः। 'विन्मतोर्लुक्' इति मतुपो लुक्। ययौ यात्रां चक्रे। अन्यथा बलिष्ठश्चेदास्तातिष्ठत्। न ययावित्यर्थः। अत्र मनुः—'यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम्। परस्य विपरीतं चेत्तदा यायादरीन्प्रति ॥ यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च। तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ॥' इति ॥

अन्वयः—सः परात्मनोः शक्त्यादीनां बलाबलं परिच्छिद्य, एभिः परस्मात् बलिष्ठः चेत् ययौ, अन्यथा चेत् आस्त।

व्याख्या—सः = राजा परः = शत्रुश्च आत्मा = स्वं चेति परात्मानौ तयोः परात्मनोः शक्तिः आदिर्येषां ते शक्त्यादयः तेषां शक्त्यादीनाम् = शक्तिदेशकालादीनां बलं = सामर्थ्यम् अबलं = सामर्थ्याभावश्चेति बलाबलं न्यूनाधिकभावं, स्वस्याधिकबलत्वं परस्य हीनबलत्वं चेत्यर्थः। परिच्छिद्य = विनिश्चित्य, एभिः = शक्त्यादिभिः परस्मात् = शत्रोः सकाशात् अतिशयेन बलवान् इति बलिष्ठः = अतिबलशाली चेत् = यदि ययौ = यात्रां कृतवान्। अन्यथा = विपरीतः अबलिष्ठः, तदा आस्त = अतिष्ठत्, दण्डयात्रां न कृतवानित्यर्थः।

समासः—परश्च आत्मा च परात्मानौ तयोः परात्मनोः। बलञ्च अबलञ्चेति बलाबलम्। शक्तिः आदि येषां ते शक्त्यादयः, तेषां शक्त्यादीनाम्।

हिन्दी—राजा अतिथि, शत्रु की तथा अपनी शक्ति सामर्थ्य सेना आदि के बलाबल (अधिकता न्यूनता) की परीक्षा करके (निश्चय करके) ही अपनी शक्ति के शत्रु से अधिक होने पर (अपना बल अत्यधिक होने पर) यात्रा शत्रु पर चढ़ाई करते थे। इसके विपरीत शत्रु बल अधिक, अपना कम होने पर चुपचाप बैठे रहते थे ॥ ५९ ॥

कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसंग्रहः।
अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते ॥ ६० ॥

कोशेनार्थचयेनाश्रयणीयत्वं भजनीयत्वम्। भवतीति शेषः। इति हेतोस्तस्य राज्ञः कर्तुः अर्थसंग्रहः। न तु लोभादित्यर्थः। तथाहि अम्बु गर्भे यस्य सोऽम्बुगर्भः। जीवनस्य जलस्य मूतः पुटबन्धो जीमूतो मेघः। 'मूङ् बन्धने'। पृषोदरादित्वात्साधुः। चातकैरभिनन्द्यते सेव्यते। अत्र कामन्दकः—'धर्महेतोस्तथार्थाय भृत्यानां रक्षणाय च। आपदर्थं च संरक्ष्यः कोशो धर्मवता सदा ॥' इति ॥

अन्वयः—कोशेन आश्रयणीयत्वं भवतीति शेषः, इति तस्य अर्थसंग्रहः (भवति) हि अम्बुगर्भः जीमूतः चातकैः अभिनन्द्यते।

व्याख्या—कोशेन = हेमरूप्यचयेन आश्रयितुं योग्यम् आश्रयणीयं तस्य भावः आश्रयणीयत्वं = सेवनीयत्वं भवतीति शेषः। इति = अस्माद्धेतोः तस्य = राज्ञः अतिथेः अर्थस्य = द्रव्यस्य हेमरूप्यात्मकस्य संग्रहः = संचयः समाहरणम् न तु लोभादिना, इत्यर्थः। तथाहि—अम्बु = जलं गर्भे = अभ्यन्तरे यस्य सः अम्बुगर्भः, जीवनं = जलं मूतं = बद्धमनेन, स जीमूतः, ज्यानं जीः, जिया = वयोहान्या मूतः = बद्धः इति वा जीमूतः = मेघः चतन्ते = याचंते जलमिति चातकास्तैः चातकैः = सारंगैः-पक्षिविशेषैरित्यर्थः अभिनन्द्यते = सेव्यते।

समासः—अर्थस्य संग्रहः अर्थसंग्रहः। अम्बु गर्भे यस्य सः अम्बुगर्भः। जिया मूतः जीमूतः।

हिन्दी—खजाने से एक तो सम्मान रहता है और धनवान् आश्रयदाता बनता है। अतः राजा अतिथि के पास धन का संग्रह था। लोभादिके कारण वे धन नहीं बटोरते थे। ठीक भी है—चातक उन्हीं मेघों का अभिनन्दन (स्वागत) करते हैं जिनमें जल भरा रहता है। अर्थात् खाली को कोई नहीं पूछता है ॥ ६० ॥

परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु।
आवृणोदात्मनो रन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन्रिपून् ॥ ६१ ॥

स राजा परेषां कर्माणि सेतुवार्तादीन्यपहन्तीति परकर्मापहः सन्। 'अन्येष्वपि दृश्यते' इत्यपिशब्दसामर्थ्याड्डन्तेर्डप्रत्ययः। स्वेषु कर्मसूद्यत उद्युक्तोऽभूत्। किंच। रिपून्रन्ध्रेषु प्रहरन्नात्मनो रन्ध्रं व्यसनादिकमावृणोत्संवृतवान्। अत्र मनुः—'नास्य च्छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु। गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥' इति ॥

अन्वयः—सः परकर्मापहः सन् स्वेषु कर्मसु उद्यतः अभूत्। किञ्च, रिपून् रन्ध्रेषु प्रहरन् आत्मनः रन्ध्रम् आवृणोत्।

व्याख्या—सः अतिथिः परेषां = शत्रूणां कर्माणि = सेतुकृष्यादीनि अपहन्ति = विनाशयतीति परकर्मापहः सन् स्वेषु = स्वकीयेषु कर्मसु उद्युक्तः = संलग्नः, संरक्षणतत्परः अभूत् = आसीत् किञ्च रिपून् = अमित्रान्, रन्धयतीति रन्ध्रं = छिद्रम्। रन्ध्रेषु = छिद्रेषु दूषणेषु च। 'रन्ध्रं तु दूषणे छिद्रे' इति विश्वमेदिन्यौ। प्रहरन् = प्रहारं कुर्वन्, आत्मनः = स्वस्य रन्ध्रं = छिद्रं व्यसनादिकमित्यर्थः। आवृणोत् = आच्छादयामास, संवृतवानिति।

समासः—परेषां कर्माणि परकर्माणि, तेषाम् अपहः इति परकर्मापहः।

हिन्दी—राजा अतिथि, शत्रुओं के कार्य पुल उद्योग खेती आदि को नष्ट करके, और अपने कार्यों में परिश्रमपूर्वक लग गये। और वे शत्रुओं की त्रुटियों (पर गलती आदि दोष पर) प्रहार करते हुए, अपने दोषों को छिपाते रहते थे। अर्थात् शत्रु की गलती से लाभ उठाकर उसे हानि पहुँचाए रहते थे। और अपने खूब सावधान हो जाते॥ ६१॥

पित्रा संवर्धितो नित्यं कृतास्त्रः सांपरायिकः।
तस्य दण्डवतो दण्डः स्वदेहान्न व्यशिष्यत॥ ६२॥

दण्डो दमः सैन्यं वा तद्वतो दण्डवतो दण्डसंपन्नस्य तस्य राज्ञः पित्रा कुशेन नित्यं संवर्धितः पुष्टः कृतास्त्रः शिक्षितास्त्रः। संपरायो युद्धम्। 'युद्धायत्योः संपरायः' इत्यमरः। तमर्हतीति सांपरायिकः। 'तदर्हति' इति ठक्प्रत्ययः। दण्डः सैन्यम्। 'दण्डो यमे मानभेदे लगुडे दमसैन्ययोः' इति विश्वः। स्वदेहान्न व्यशिष्यत नाभिद्यत। स्वदेहेऽपि विशेषणानि योज्यानि। मूलबलं स्वदेहमिवारक्षदित्यर्थः।

अन्वयः—दण्डवतः तस्य पित्रा नित्यं संवर्धितः कृतास्त्रः सांपरायिकः दण्डः स्वदेहात् न व्यशिष्यत।

व्याख्या—दण्डयतीति दण्डः = दण्डयति अनेन वा दण्डः = दमः सैन्यमस्ति अस्येति दण्डवान् तस्य दण्डवतः = सैन्यसम्पन्नस्य "दण्डो दमे सैन्ये च" इति कोषः, तस्य = राज्ञः अतिथेः पित्रा = कुशेन नित्यं = निरंतरं, नियमेन भवं नित्यं = सततम्। संवर्धितः = वृद्धिं नीतः कृतानि = शिक्षितानि अस्त्राणि येन स कृतास्त्रः, सम्परायणं सम्परायः सम्परायं = युद्धमर्हतीति साम्परायिकः दण्डः = सैन्यम्। "युद्धायत्योः सम्परायः" इत्यमरः। स्वस्य = आत्मनः राज्ञः देहः = शरीरं तस्मात् स्वदेहात् न = नहि व्यशिष्यत = अभिद्यत। स्वसेनां स्वशरीराद्भिन्नां न गणयामास।

समासः—सम्यक् वर्धितः संवर्धितः। स्वस्य देहस्तस्मात्।

हिन्दी—राजा कुश के प्रयत्न से निरन्तर बढ़ी हुई तथा शस्त्रास्त्र चलाने में सुशिक्षित और युद्ध करने में समर्थ सेना से सम्पन्न वह राजा अतिथि, अपनी उक्त सेना को अपने से भिन्न नहीं मानता था। अर्थात् अपने शरीर के समान ही सेना को मानता था, उसी प्रकार उसका रक्षण-पोषण करता था॥ ६२॥

सर्पस्येव शिरोरत्नं नास्य शक्तित्रयं परः ।
स चकर्ष परस्मात्तदयस्कान्त इवायसम् ॥ ६३ ॥

सर्पस्य शिरोरत्नमिव अस्य राज्ञः शक्तित्रयं परः शत्रुर्न चकर्ष । स तु परस्माच्छत्रोस्तच्छक्तित्रयम् । अयस्कान्तो मणिविशेष आयसं लोहविकारमिव चकर्ष ।

अन्वयः—सर्पस्य शिरोरत्नम् इव अस्य शक्तित्रयं परः न चकर्ष, सः तु परस्मात् तत् अयस्कान्तः आयसम् इव चकर्ष ।

व्याख्या—सर्पस्य = भुजंगमस्य शिरसि धार्यं रत्नं शिरोरत्नं = मस्तकमणिः, तत् शिरोरत्नम् इव = यथा अस्य = राज्ञः अतिथेः शक्तीनां त्रयमिति शक्तित्रयं = प्रभुशक्तिमन्त्रोत्साहशक्तिरूपं परः = शत्रुः न चकर्ष = नाकृष्टवान् । सः = अतिथिस्तु परस्मात् = शत्रोः सकाशात् तत् = शक्तित्रयम् अयस्सु अयसां मध्ये कान्तः = रमणीयः, अयस्कान्तः = सन्निधिमात्रेण लोहापकर्षकः चुम्बकलोहः इत्यर्थः । आयसं = लोहविकारम् इव चकर्ष ।

समासः—शिरसि धार्यं रत्नं शिरोरत्नम् तत् । शक्तीनां त्रयमिति शक्तित्रयम् तत् । अयस्सु अयसां वा मध्ये कान्तः अयस्कान्तः ।

हिन्दी—जिस प्रकार सर्प के मस्तक की मणि को कोई नहीं ले सकता, उसी प्रकार कोई शत्रु राजा अतिथि की प्रभावशक्ति, मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति इन तीनों शक्तियों को न खींच सका । (न ले सका) किन्तु लोहे को चुम्बक के समान, अतिथि ने अपने शत्रुओं की उन तीनों शक्तियों को अपने पास खींच लिया ॥ ६३ ॥

वापीष्विव स्रवन्तीषु वनेषूपवनेष्विव ।
सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चेरुर्वेश्मस्विवाद्रिषु ॥ ६४ ॥

स्रवन्तीषु नदीषु । वापीषु दीर्घिकास्विव । 'वापी तु दीर्घिका' इत्यमरः । वनेष्वरण्येषूपवनेष्वारामेष्विव । 'आरामः स्यादुपवनम्' इत्यमरः । अद्रिषु स्वकीयेषु वेश्मस्विव सार्था वणिक्प्रभृतयः स्वैरं स्वेच्छया चेरुश्चरन्ति स्म ।

अन्वयः—स्रवन्तीषु वापीषु इव, वनेषु उपवनेषु इव, अद्रिषु स्वकीयेषु वेश्मसु इव सार्थाः स्वैरं चेरुः ।

व्याख्या—स्रवन्तीति स्रवन्त्यस्तासु स्रवन्तीषु = स्रोतस्वतीषु नदीषु उप्यन्ते पद्मादीनि यासु ताः वाप्यस्तासु वापीषु = दीर्घिकासु इव = यथा "वापी तु दीर्घिका" इत्यमरः । वनेषु = अरण्येषु उपगतानि वनानीति उपवनानि तेषु उपवनेषु = आरामेषु इव = यथा "आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत्" इत्यमरः । अद्रिषु = पर्वतेषु स्वकीयेषु = आत्मनीनेषु वेश्मसु = भवनेषु इव सार्थाः = संघाताः, वणिक्समूहादयो वा, "सार्थो वणिक्समूहे स्यादपि संघातमात्रके" इति मेदिनी । स्वेन = स्वातंत्र्येण ईर्तें, ईरति वा स्वैरं = स्वच्छन्दं चेरुः = चरन्ति, भ्रमन्ति स्म ।

हिन्दी—"राजा अतिथि के राज्य में" व्यापारी एवं घुमक्कड़ों की टोलियाँ निर्भय स्वच्छन्द

होकर, नदियों में घर की बावलियों के समान तथा वनों में अपने बगीचों के समान और पर्वतों में अपने घरों के समान व्यापार करते घूमते थे। अर्थात् इन सब दुर्गम स्थानों में भी सुखपूर्वक घूमते थे ॥ ६४ ॥

तपो रक्षन्स विघ्नेभ्यस्तस्करेभ्यश्च संपदः ।
यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंशभाक् ॥ ६५ ॥

विघ्नेभ्यस्तपो रक्षन् । तस्करेभ्यः संपदश्च रक्षन्। स राजाश्रमैर्ब्रह्मचर्यादिभिर्वर्णैरपि ब्राह्मणादिभिश्च यथास्वं स्वमनतिक्रम्य षडंशभाक्चक्रे। यथाक्रममाश्रमैस्तपसो वर्णैः संपदां च षष्ठांशभाक्कृत इत्यर्थः। षष्ठोऽशः षडंशः। संख्याशब्दस्य वृत्तिविषये पूरणार्थत्वमुक्तं प्राक् ॥

अन्वयः—विघ्नेभ्यः तपः रक्षन्, तस्करेभ्यः सम्पदः च रक्षन्, सः आश्रमैः वर्णैः च यथास्वं षडंशभाक् चक्रे।

व्याख्या—विघ्नेभ्यः = अन्तरायेभ्यः "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः" इत्यमरः। तपः = तपस्यां रक्षन् = गोपयन्, तत् कुर्वन्ति इति तस्करास्तेभ्यः, तस्करेभ्यः = चौरेभ्यः सम्पदः = धनानि च रक्षन् सः = राजा अतिथिः आश्राम्यन्ति यत्र अनेनेति आ = समन्तात् श्रमः स्वधर्म-साधनक्लेशा यत्र वासः आश्रमः। आश्रमैः = ब्रह्मचर्यादिभिः वर्णैः = ब्राह्मणादिभिः च स्वमनतिक्रम्य यथास्वं षष्ठोंऽशः षडंशस्तं भजतीति षडंशभाक् = षडंशसेवी चक्रे = कृतः, आश्रमैः तपसः षडंशभाक् ब्राह्मणादिवर्णैश्च सम्पदां षष्ठांशभाक् कृतः स राजेत्यर्थः।

हिन्दी—विघ्नों से तपस्वियों के तप की रक्षा करने वाले, एवं चोरों से जनता की सम्पदा की रक्षा करने वाले उस राजा अतिथि को क्रमशः आश्रमवासियों ने अपने तप का, और ब्राह्मणादि चारों वर्ण के लोगों ने अपनी सम्पत्ति का, छठा भाग दिया ॥ ६५ ॥

खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः सस्यं वनैर्गजान् ।
दिदेश वेतनं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः ॥ ६६ ॥

भूर्भूमिस्तस्मै राज्ञे रक्षासदृशं रक्षणानुरूपमेव वेतनं भृतिं दिदेश ददौ। कथम्। खनिभिराकरैः। 'खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्' इत्यमरः। रत्नं माणिक्यादिकं सुषुवेऽजीजनत्। क्षेत्रैः सस्यम्। वनैर्गजान्हस्तिनः सुषुवे ॥

अन्वयः—खनिभिः रत्नं सुषुवे, क्षेत्रैः सस्यं सुषुवे, वनैः गजान् सुषुवे, 'इति' भूः तस्मै रक्षासदृशम् एव वेतनं दिदेश।

व्याख्या—खन्यन्ते इति खनयस्ताभिः खनिभिः = आकरैः "खनिः स्त्रियामाकरः" इत्यमरः। रत्नाद्युत्पत्तिस्थानैरित्यर्थः। रत्नं = हीरकादिकं सुषुवे = उत्पादयामास, क्षेत्रैः = केदारैः "वप्रः केदारः क्षेत्रं" इत्यमरः। सस्यं = धान्यं सुषुवे, वनैः = विपिनैः गजान् = नागान्, अजीजनत् इति-एवं प्रकारेण भूः = पृथिवी तस्मै = राज्ञेऽतिथये रक्षायाः = पालनस्य सदृशम् = अनुरूपमेव वेतनं = भृतिं दिदेश = दत्तवती।

समासः—रक्षायाः सदृशमिति रक्षासदृशं तत् रक्षासदृशम्।

हिन्दी—खानों से हीरे माणिक्यादि और खेतों से अन्नादि, तथा वनों से हाथी पैदा 'खूब करके' पृथिवी ने भी राजा को जैसी उसने रक्षा की वैसा वेतन दिया अर्थात् अतिथि का राज्य सर्वसुख सम्पन्न, धनधान्य सम्पन्न था ॥ ६६ ॥

स गुणानां बलानां च षण्णां षण्मुखविक्रमः।
बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु वस्तुषु ॥ ६७ ॥

षण्मुखविक्रमः स राजा षण्णां गुणानां संधिविग्रहादीनां बलानां मूलभृत्यादीनां च साधनीयेषु वस्तुषु साध्येष्वर्थेषु विनियोगं जानातीति। विनियोगस्य ज्ञ इति वा विनियोगज्ञः। कर्मविवक्षायामुपपदसमासः। 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः। शेषविवक्षायां षष्ठीसमासः। 'इगुपध—' इत्यादिना कप्रत्ययः। बभूव। 'इदमत्र प्रयोक्तव्यम्' इत्याद्यज्ञासीदित्यर्थः।

अन्वयः—षण्मुखविक्रमः सः षण्णां गुणानां षण्णां बलानां च साधनीयेषु वस्तुषु विनियोगज्ञः बभूव।

व्याख्या—षट् = षट्संख्यकानि मुखानि = आननानि यस्य स षण्मुखः षण्मुखस्य = कार्तिकेयस्य इव विक्रमः = पराक्रमो यस्य स षण्मुखविक्रमः सः = राजा अतिथिः षण्णां = षट्संख्यकानां गुण्यन्ते इति गुणाः तेषां गुणानां = सन्धिविग्रहयानादीनां, षण्णां बलानां = मूलभृत्यसुहृद्वर्गशत्र्वादीनां च साधयितुं योग्यानि साधनीयानि तेषु साधनीयेषु = साध्येषु वस्तुषु = प्रयोजनेषु विनियुज्यते इति विनियोगस्तं जानातीति विनियोगज्ञः = कर्तव्यविधिज्ञः बभूव = जातः। अस्मिन् कार्ये समये वा इदं कर्तव्यं प्रयोक्तव्यमित्यादिज्ञानवान् आसीदित्यर्थः।

समासः—षट् मुखानि यस्य स षण्मुखः, तस्य विक्रम इव विक्रमो यस्य स षण्मुखविक्रमः। विनियोगस्य ज्ञः विनियोगज्ञः।

हिन्दी—कार्तिकेय के समान पराक्रम (बल) वाले राजा अतिथि, छः प्रकार के (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव,) गुणों के, और मूल, भृत्य, सुहृद्वर्ग, शत्रु, आटविक, बल, इन छः प्रकार की सेनाओं के प्रयोग उपयोग, किस समय कहाँ किस प्रयोजन में करना है—यह सब जानते थे ॥ ६७ ॥

इति क्रमात्प्रयुञ्जानो राजनीतिं चतुर्विधाम्।
आतीर्थादप्रतीघातं स तस्याः फलमानशे ॥ ६८ ॥

इति चतुर्विधाम्। सामाद्युपायैरिति शेषः। राजनीतिं दण्डनीतिं क्रमात्सामादिक्रमादेव प्रयुञ्जानः स राजा आतीर्थान्मन्त्र्याद्यष्टादशात्मकतीर्थपर्यन्तम्। 'योनौ जलावतारे च मन्त्र्याद्यष्टादशस्वपि। पुण्यक्षेत्रे तथा पात्रे तीर्थं स्यात्' इति हलायुधः। तस्या नीतेः फलमप्रतीघातमप्रतिबन्धं यथा तथा आनशे प्राप्तवान्। मन्त्र्यादिषु यमुद्दिश्य य उपायः प्रयुज्यते स तस्य फलतीत्यर्थः ॥

अन्वयः—इति चतुर्विधां राजनीतिं क्रमात् प्रयुञ्जानः सः आतीर्थात् तस्याः फलम् अप्रतिघातं यथा स्यात्तथा आनशे।

व्याख्या—इति = इत्थम् चतस्रः विधाः = प्रकारा यस्याः सा तां चतुर्विधां = सामदानाद्युपायरूपां राज्ञां = भूपालानां नीतिः = नयस्तां राजनीतिं = दण्डनीतिं क्रमात् = क्रमशः प्रयुञ्जानः = प्रयोगं कुर्वन् सः = अतिथिः आ तीर्थात् = मंत्रिपुरोहिताद्यष्टादशमहाभारतोक्ततीर्थपर्यन्तम् तस्याः = नीतेः फलं = परिणामम् नास्ति प्रतीघातः = प्रतिबन्धः यस्मिन् कर्मणि तत् अप्रतीघातं यथा स्यात्तथा आनशे = प्रापत् प्राप्तवानित्यर्थः । मंत्रिपुरोहितादिषु यदुद्देशेन यः उपायः प्रयुज्यते स उपायस्तस्य फलतीत्यर्थः।

समासः—राज्ञां नीतिरिति राजनीतिस्तां राजनीतिम्। चतस्रः विधाः यस्याः सा तां चतुर्विधाम्। नास्ति प्रतीघातो यस्मिन् कर्मणि अप्रतीघातम्।

हिन्दी—इस प्रकार साम दान दण्ड भेद इन उपायों से राजनीति को प्रयोग में लेते हुए (चारों प्रकार की नीति को चलाते हुए), राजा अतिथि ने उस राजनीति के फल को महाभारत में वर्णित मंत्रिपुरोहितादि अट्ठारहों तक निर्विघ्न प्राप्त कर लिया। अर्थात् मंत्री आदि में जिस फल का उद्देश्य कर के जिस उपाय का भी प्रयोग किया वह सफल ही रहा ॥ ६८ ॥

कूटयुद्धविधिज्ञेऽपि तस्मिन्सन्मार्गयोधिनि।
भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी ॥ ६९ ॥

कूटयुद्धविधिज्ञेऽपि कपटयुद्धप्रकाराभिज्ञेऽपि सन्मार्गेण योधिनि धर्मयोद्धरि तस्मिन्नतिथौ वीरगामिनी जयश्रीरभिसारिकावृत्तिं भेजे। 'कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका' इत्यमरः। जयश्रीस्तमन्विष्यागच्छदित्यर्थः ॥

अन्वयः—कूटयुद्धविधिज्ञे अपि सन्मार्गयोधिनि तस्मिन् वीरगामिनी जयश्रीः अभिसारिकावृत्तिं भेजे।

व्याख्या—कूटं = मायिकं = कपटपूर्णमित्यर्थः, च तत् युद्धं = संग्रामः तस्य विधिः = प्रकारस्तं जानाति = वेत्तीति कूटयुद्धविधिज्ञस्तस्मिन् कूटयुद्धविधिज्ञे अपि सन्मार्गेण = धर्मेण योधी = योद्धा तस्मिन् सन्मार्गयोधिनि तस्मिन् = अतिथौ वीरं = योद्धारं-भटं गच्छति = यातीति वीरगामिनी जयस्य श्रीः = लक्ष्मीरिति जयश्रीः अभिसरति = संकेतस्थानं, (सुरतार्थं) यातीति अभिचारिका = अभिसारिणी तस्याः वृत्तिः = व्यवहारस्ताम् अभिसारिकावृत्तिं भेजे = सिषेवे। जयश्रीः धर्मयोधिनं वीरं स्वयमन्विष्य तत्पार्श्वे स्वयमागच्छतीत्यर्थः।

समासः—कूटं च तत् युद्धं कूटयुद्धं, कूटयुद्धस्य विधिः कूटयुद्धविधिः, तस्य ज्ञः इति कूटयुद्धविधिज्ञः, तस्मिन् तथोक्ते। सन्मार्गेण योधी तस्मिन् सन्मार्गयोधिनि। जयस्य श्रीरिति जयश्रीः। अभिसारिकाणां वृत्तिस्ताम् अभिसारिकावृत्तिम्। वीरं गामिनीति वीरगामिनी।

हिन्दी—छल कपट युद्ध के प्रकार को जानते हुए भी धर्मपूर्वक युद्ध करने वाले राजा

अतिथि के पास, वीरों के साथ रहनेवाली (वीरों की पक्षपातिनी) विजयलक्ष्मी अभिसारिका के समान स्वयं पहुँच जाती थी ॥ ६९ ॥

प्रायः प्रतापभग्नत्वादरीणां तस्य दुर्लभः ।
रणो गन्धद्विपस्येव गन्धभिन्नान्यदन्तिनः ॥ ७० ॥

अरीणां सर्वेषामपि प्रतापेनातितेजसैव भग्नत्वात्तस्य राज्ञः । गन्धेन मदगन्धेनैव भिन्ना भग्ना अन्ये दन्तिनो येन तस्य गन्धद्विपस्येव । प्रायः प्रायेण रणो दुर्लभः । खलर्थयोगेऽपि शेषविवक्षायां षष्ठीमिच्छन्तीत्युक्तम् ॥

अन्वयः—अरीणां प्रतापभग्नत्वात् तस्य गन्धभिन्नान्यदन्तिनः गन्धद्विपस्य इव प्रायः रणः दुर्लभः । आसीदिति शेषः ।

व्याख्या—अरीणां = शत्रूणां सर्वेषामपि भग्नस्य भावः भग्नत्वम् प्रतापस्य = तेजसः भग्नत्वं = नाशः तस्मात् प्रतापभग्नत्वात् प्रतापेन = अतिथेः अतितेजसा भग्नत्वात् = राज्ञां गर्वस्य नष्टत्वाद्वा । तस्य = राज्ञः अतिथेः गन्धेन = मदस्यामोदेन एव भिन्नाः = भग्नाः अन्ये = अपरे दन्तिनः = गजाः येन स तस्य गन्धभिन्नान्यदन्तिनः, द्वाभ्यां = मुखशुण्डाभ्यां पिबतीति द्विपः, गन्धप्रधानः द्विपः गन्धद्विपस्तस्य गन्धद्विपस्य = मदयुक्तगजस्य इव = यथा प्रायः = प्रायशः रणः = संग्रामः दुर्लभः = दुष्प्राप्यः । आसीदिति शेषः ।

समासः—प्रतापेन भग्नत्वं प्रतापभग्नत्वं तस्मात् प्रतापभग्नत्वात् प्रतापस्य भग्नत्वात् प्रतापभग्नत्वात् वा । गन्धः प्रधानः यस्य स गन्धप्रधानः स चासौ द्विपस्तस्य गन्धद्विपस्य । अन्ये च ते दन्तिनः अन्यदन्तिनः, गन्धेन भिन्नाः अन्यदन्तिनः येन स तस्य गन्धभिन्नान्यदन्तिनः ।

हिन्दी—जिस प्रकार मद की गन्धवाले हाथी की गन्ध से ही हारकर भागे, बिना गन्ध वाले हाथी, मदगन्धवाले हाथी से नहीं भिड़ सकते हैं, उसी प्रकार राजा अतिथि के तेज से ही सारे शत्रुओं का प्रभाव नष्ट हो जाने के कारण प्रायः अतिथि का किसी से युद्ध ही नहीं होता था ॥ ७० ॥

प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः ।
स तु तत्समवृद्धिश्च न चाभूत्ताविव क्षयी ॥ ७१ ॥

प्रवृद्धौ सत्यां चन्द्रो हीयते । समुद्रोऽपि तथाविधश्चन्द्रवदेव प्रवृद्धौ हीयते । 'प्रवृद्धः' इति वा पाठः स राजा तु ताभ्यां चन्द्रसमुद्राभ्यां समा वृद्धिर्यस्य स तत्समवृद्धिश्चाभूत् । तौ चन्द्रसमुद्राविव क्षयी । 'जिदृक्षि–' इत्यादिनेनिप्रत्ययः । नाभूत् ॥

अन्वयः—प्रवृद्धौ चन्द्रः हीयते समुद्रः अपि तथाविधः हीयते । सः तु तत्समवृद्धिः अभूत् । तौ इव क्षयी न अभूत् ।

व्याख्या—प्रकर्षेण वृद्धिः प्रवृद्धिः तस्यां प्रवृद्धौ सत्यां, चन्दति = आह्लादयतीति चन्द्रः =

चन्द्रमा हीयते=क्षीणो भवति, समुद्रः=सागरः अपि तथा=चन्द्रवत् विधा प्रकारो यस्य स तथाविधः, प्रवृद्धौ हीयते=क्षीणः भवतीत्यर्थः। तु=किन्तु सः=राजा अतिथिः ताभ्यां= शशिसागराभ्यां समा=तुल्या वृद्धिः=वर्धनं यस्य स तत्समवृद्धिः च अभूत्=जातः। स च स च तौ=चन्द्रसमुद्रौ इव=यथा क्षयः=नाशोऽस्यास्तीति क्षयी=क्षयवान् न अभूत्=न जातः। शशिसागरयोः पूर्वं वृद्धिः पश्चात् क्षयः किन्तु अस्मिन् राजनि तु वृद्धिरेव जाता न क्षयः, इति भावः।

समासः—प्रकृष्टा वृद्धिः प्रवृद्धिस्तस्यां प्रवृद्धौ। ताभ्यां समा वृद्धिर्यस्य स तत्समवृद्धिः। तथा विधा यस्य स तथाविधः।

हिन्दी—पूर्ण होनेपर चन्द्रमा घटने लगता है और समुद्र भी उसी प्रकार बढ़कर घटता है। किन्तु यह राजा अतिथि चन्द्र, सागर के समान बढ़ने वाला तो है। लेकिन शशी और सागर के समान घटता नहीं था, क्षयवान नहीं होता था ॥ ७१ ॥

सन्तस्तस्याभिगमनादत्यर्थं महतः कृशाः।
उदधेरिव जीमूताः प्रापुर्दातृत्वमर्थिनः ॥ ७२ ॥

अत्यर्थं कृशा दरिद्रा अत एवार्थिनो याचनशीलाः सन्तो विद्वांसो महतस्तस्य राज्ञोऽभिगमनात्। उदधेरभिगमनाज्जीमूता इव दातृत्वं प्रापुः। अर्थिषु दानभोगपर्याप्तं धनं प्रयच्छतीत्यर्थः।

अन्वयः—अत्यर्थं कृशाः अर्थिनः सन्तः महतः तस्य अभिगमनात् उदधेः अभिगमनात् जीमूताः इव दातृत्वं प्रापुः।

व्याख्या—अर्थः=निवृत्तिः, विषयो वा, तमतिक्रान्तम् अत्यर्थं=अतिमात्रम्-अत्यन्तमित्यर्थः। कृशाः=क्षीणाः, धनहीना इत्यर्थः। अतएव अर्थोऽसंनिहितो येषामस्ति ते अर्थिनः= याचकाः "अर्थी पुमान् याचके स्यात् सेवके च" इति मेदिनी। सन्तः=विद्वांसः महतः= विशालस्य तस्य=राज्ञः अभिगमनात्=समक्षं गमनात्, उदकानि धीयन्तेऽत्र सः उदधिः तस्य उदधेः=समुद्रस्य अभिगमनात् जीवनं=जलं मूतं=बद्धमेभिस्ते जीमूताः=मेघाः इव=यथा दातृणां=भावः दातृत्वं=दानशीलत्वं दानशौण्डत्वं प्रापुः=प्राप्तवन्तः। याचकेषु दानभोगपर्याप्तं धनं ददातीत्यर्थः।

हिन्दी—जिस प्रकार समुद्र के पास जाने से मेघ "इतना जल प्राप्त कर लेते हैं" कि वे मेघ सब को जल देने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं; उसी प्रकार अत्यन्त गरीब निर्धन अतएव माँगने वाले विद्वान् भी महान् राजा अतिथि के पास जाने पर इतना धन प्राप्त कर लेते हैं कि वे स्वयं भोगने तथा दूसरों को दान देने योग्य हो जाते हैं ॥ ७२ ॥

स्तूयमानः स जिह्राय स्तुत्यमेव समाचरन्।
तथापि ववृधे तस्य तत्कारिद्वेषिणो यशः ॥ ७३ ॥

स राजा स्तुत्यं स्तोत्रार्हमेव यत्तदेव समाचरन्नतः एव स्तूयमानः सन् । जिह्राय ललज्ज । तथापि ह्रीणत्वेऽपि तत्कारिणः स्तोत्रकारिणो द्वेष्टीति तत्कारिद्वेषिणस्तस्य राज्ञो यशो ववृधे । 'गुणाढ्यस्य सतः पुंसः स्तुतौ लज्जैव भूषणम्' इति भावः ।

अन्वयः—सः स्तुत्यम् एव समाचरन् अतः एव स्तूयमानः सन् जिह्राय, तथापि तत्कारिद्वेषिणः तस्य यशः ववृधे ।

व्याख्या—सः = राजा अतिथिः स्तोतुं योग्यं स्तुत्यं = प्रशंसनीयम् एव यत्कार्यं तदेव समाचरन् = सम्यक् कुर्वन् स्तूयमानः = प्रशस्यमानः जिह्राय = लज्जितवान् , तथापि = लज्जितत्वेऽपि तत् = स्तोत्रं कुर्वन्ति तच्छीलाः तत्कारिणः = प्रशंसाकारिणस्तान् द्वेष्टीति तत्कारिद्वेषी तस्य तत्कारिद्वेषिणः तस्य = अतिथेः यशः = कीर्तिः ववृधे = प्रवृद्धम् । यशोधनस्य नरस्य प्रशंसायां सत्यां लज्जैव भूषणं भवतीत्यर्थः ।

समासः—तत्कारिणां द्वेषीति तत्कारिद्वेषी तस्य तत्कारिद्वेषिणः ।

हिन्दी—अतिथि राजा, सदा प्रशंसनीय कार्य करते थे और जब कोई उनकी प्रशंसा करता तो वे लजा जाते थे । अर्थात् बड़े संकोच का अनुभव करते । और लज्जित होकर प्रशंसा करने वाले से नाराज होने वाले उस राजा का यश खूब बढ़ता गया ॥ ७३ ॥

दुरितं दर्शनेन घ्नंस्तत्त्वार्थेन नुदंस्तमः ।
प्रजाः स्वतन्त्रयांचक्रे शश्वत्सूर्य इवोदितः ॥ ७४ ॥

स राजा । उदितः सूर्य इव । दर्शनेन दुरितं घ्नन्निवर्तयन् । तथा च स्मर्यते—'अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः । दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात्पश्येत नित्यशः ॥' इति । तत्त्वस्य वस्तुतत्त्वस्यार्थेन समर्थनेन च तमोऽज्ञानं ध्वान्तं च नुदञ्शश्वत्प्रजाः स्वतन्त्रयांचक्रे स्वाधीनाश्चकार ॥

अन्वयः—सः उदितः सूर्यः इव दर्शनेन दुरितं निघ्नन् , तत्त्वार्थेन तमः नुदन् शश्वत् प्रजाः स्वतन्त्रयाञ्चक्रे ।

व्याख्या—सः राजा अतिथिः उदितः = उदयं गतः वृद्धिं प्राप्तश्च सुवति = लोकान् कर्मणि प्रेरयतीति सूर्यः = भास्करः इव = यथा दर्शनेन = अवलोकनेन । दुष्टमितं गमनमनेनेति, दुरितं = पापं घ्नन् = नाशयन् , तत्वस्य = वस्तुनः अर्थः = समर्थनं प्रकाशनं तेन तत्त्वार्थेन तमः = अज्ञानम् , अन्धकारं च नुदन् = प्रेरयन् , निवारयन् शश्वत् = निरन्तरं प्रजाः = जनान् स्वतन्त्रयांचक्रे = स्वतन्त्रयामास, स्वाधीनाः कृतवान् ।

समासः—तत्त्वस्य अर्थः तत्त्वार्थस्तेन तत्त्वार्थेन ।

हिन्दी—निकलता हुआ सूर्य दर्शन से (देखने से) पाप को दूर करता है । और वस्तु के तत्त्व (स्वरूप) को प्रकाश कर अन्धकार को भगाता है । जैसे, वैसे ही राजा भी देखने से

पाप को दूर करता है और ठीक पदार्थ का समर्थन करके अज्ञान को मिटाता है। अतः राजा ने निरंतर प्रजाओं को सर्वथा स्वतन्त्र कर दिया था ॥ ७४ ॥

इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेंऽशवः ।
गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम् ॥ ७५ ॥

इन्दोरंशवः पद्मेऽगतयः । प्रवेशरहिता इत्यर्थः । सूर्यस्यांशवः कुमुदेऽगतयः । गुणिनस्तस्य गुणास्तु विपक्षे शत्रावप्यन्तरमवकाशं लेभिरे प्रापुः ।

अन्वयः—इन्दोः अंशवः पद्मे अगतयः, सूर्यस्य च अंशवः कुमुदे अगतयः, गुणिनः तस्य गुणाः विपक्षे अपि अन्तरं लेभिरे ।

व्याख्या—उनत्तीति इन्दुः इन्दोः = चन्द्रस्य अंशवः = किरणाः पद्मे = कमले नास्ति गतिः = प्रवेशः येषां ते अगतयः प्रवेशशून्याः तस्य इत्यर्थः । सूर्यस्य = भानोश्च अंशवः कौ = पृथिव्यां मोदते इति कुमुदं तस्मिन् कुमुदे = कैरवे सितोत्पले इत्यर्थः । अगतयः न प्रविशन्तीत्यर्थः । किन्तु गुणाः = दयादाक्षिण्यशौर्यादयः सन्त्यस्यासौ गुणी तस्य गुणिनः = गुणवतः तस्य = अतिथेः गुणाः विपक्षे = शत्रौ अपि अन्तरम् = अवकाशं लेभिरे = प्रापुः ।

समासः—न गतिः येषान्ते अगतयः ।

हिन्दी—चन्द्रमा की किरणे कमल में नहीं जातीं, और सूर्य की किरणें सुफेद उत्पल में नहीं जाती, किन्तु गुणी उस राजा अतिथि के गुणों ने तो शत्रुओं में भी स्थान प्राप्त कर लिया था। अर्थात् शत्रु भी उसके गुणों का आदर करते थे ॥ ७५ ॥

पराभिसंधानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितम् ।
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्यमेव बभूव तत् ॥ ७६ ॥

अश्वमेधाय जिगीषोरस्य विचेष्टितं दिग्विजयरूपं यद्यपि पराभिसंधानपरं शत्रुवञ्चनप्रधानं तथापि तद्धर्म्यं धर्मादनपेतमेव । 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत्प्रत्ययः । बभूव । 'मन्त्रप्रभावोत्साहशक्तिभिः परान्संदध्यात्' इति कौटिल्यः ॥

अन्वयः—अश्वमेधाय जिगीषोः अस्य चेष्टितं यद्यपि पराभिसंधानपरं तथापि तत् धर्म्यम् एव बभूव ।

व्याख्या—अश्वो मेध्यते = हिंस्यतेऽत्रासौ अश्वमेधः तस्मै अश्वमेधाय = यज्ञविशेषाय—अश्वमेधं यज्ञं कर्तुमित्यर्थः । जेतुमिच्छति जिगीषति, जिगीषतीति जिगीषुः तस्य जिगीषोः = विजेतुमिच्छोः अस्य = राज्ञः अतिथेः विशेषेण चेष्टितं विचेष्टितं = दिग्विजयरूपं यद्यपि परेषां = शत्रूणाम् अभिसन्धानं = प्रतारणमिति पराभिसन्धानं = परं = प्रधानं = मुख्यं यस्मिन् तत् पराभिसन्धानपरम् आसीत् , तथापि तत् = विचेष्टितं धर्मादनपेतं धर्म्यं = धर्मयुक्तम् एव बभूव = अभूत् । तथा चोक्तं कौटिल्येन "मंत्रप्रभावोत्साहशक्तिभिः परान्सन्दध्यात्" इति ।

समासः—परेषामभिसन्धानं परं यस्मिन् तत् पराभिसन्धानपरम्।

हिन्दी—अश्वमेध यज्ञ करने के लिये, जीतने की इच्छा वाले राजा अतिथि की दिग्विजय यात्रा, यद्यपि शत्रुओं को जैसे भी हो जीतना ही उसका मुख्य काम था। परन्तु फिर भी वह यात्रा धर्मयुक्त ही थी। अर्थात् अधर्म नहीं किया ॥ ७६ ॥

एवमुद्यन्प्रभावेण शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना ।

वृषेव देवो देवानां राज्ञां राजा बभूव सः ॥ ७७ ॥

एवं शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना शास्त्रोपदिष्टमार्गेण प्रभावेण कोशदण्डजेन तेजसा। 'स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' इत्यमरः। उद्यन्नुद्युञ्जानः। वृषा वासवो देवानां देवो देवदेव इव राज्ञां राजा राजराजो बभूव ॥

अन्वयः—एवं शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना प्रभावेण उद्यन् सः वृषा देवानाम् देवः इव राज्ञां राजा बभूव।

व्याख्या—एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण शास्त्रेषु = मन्वादिनीतिशास्त्रेषु निर्दिष्टं = बोधितमुपदिष्टं वर्त्म = मार्गो यस्य स शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मा तेन शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना भवत्यनेन भावः, प्रकृष्टो भावः प्रभावस्तेन प्रभावेण = कोशदण्डजेन प्रतापेन उद्यन् = युञ्जानः उद्यमं कुर्वन्नित्यर्थः सः = राजा अतिथिः वर्षतीति वृषा = वासवः इन्द्रः दीव्यन्तीति देवास्तेषां देवानां = त्रिदशानां देवः = स्वामी देवदेवः, इत्यर्थः। इव = यथा राज्ञां = भूपालानां राजा = शासकः राजेन्द्रः इत्यर्थः, *बभूव = जातः।*

***समासः**—शास्त्रेषु निर्दिष्टं वर्त्म यस्य स शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मा तेन शास्त्रनिर्दिष्टवर्त्मना।*

हिन्दी—इस प्रकार शास्त्र में बताए गए प्रकार से कोश दण्ड से उत्पन्न प्रभाव से (अर्थात् धर्म नीति के अनुसार चलने से) उद्योग (व्यवहार) करने से राजा अतिथि वैसे ही राज-राजा (राजेन्द्र) बन गए जैसे इन्द्र देवताओं का देव (देवेन्द्र) बना है ॥ ७७ ॥

पञ्चमं लोकपालानामूचुः साधर्म्ययोगतः ।

भूतानां महतां षष्ठमष्टमं कुलभूभृताम् ॥ ७८ ॥

तम् राजानमिति शेषः। साधर्म्ययोगतो यथाक्रमं लोकसंरक्षणपरोपकारभूधारणरूपसमान-धर्मत्वबलाल्लोकपालानामिन्द्रादीनां चतुर्णां पञ्चममूचुः। महतां भूतानां पृथिव्यादीनां पञ्चानां षष्ठमूचुः। कुलभूभृतां कुलाचलानां महेन्द्रमलयादीनां सप्तानामष्टममूचुः ॥

अन्वयः—"तं राजानमिति शेषः" साधर्म्ययोगतः लोकपालानां पञ्चमम् ऊचुः, महतां भूतानां षष्ठं, कुलभूभृतां च अष्टमम् ऊचुः।

व्याख्या—"तं राजानं जनाः" समानः धर्मः = लोकरक्षणं परोपकारः भूधारणरूपं च येषां ते सधर्माणः तेषां भावः साधर्म्यं तस्य योगः = संबन्धः, इति साधर्म्ययोगस्तस्मात् इति साधर्म्य-

योगतः लोकान् = भुवनानि पालयन्ति = रक्षन्तीति लोकपालास्तेषां लोकपालानाम् = इन्द्रवरुणादीनां पञ्चानां पूरणः पञ्चमस्तं पञ्चमं = पञ्चत्वसंख्यापूरकम् ऊचुः = कथयामासुः, चतुर्णां लोकपालानां मध्येऽतिथिं पञ्चमं कथयन्ति स्म जनाः इत्यर्थः। महतां भूतानां = पृथिव्यादिमहाभूतनां पंचानां षण्णाम् पूरणः षष्ठस्तं षष्ठं = षट्संख्यापूरकम् ऊचुः। एवम् भुवं = पृथिवीं बिभ्रतीति भूभृतः। कौ = पृथिव्यां लीयन्ते कुलाः = कुलसंज्ञकाश्च ते भूभृतः = महेन्द्रमलयसह्यादयः तेषां कुलभूभृताम् अष्टानां पूरण अष्टमः तम् अष्टमम् = अष्टसंख्यापूरकम् ऊचुः। सप्त कुलपर्वताः सन्ति, तेषामेनमतिथिम् अष्टममूचुरित्यर्थः।

समासः—लोकानां पालाः लोकपालास्तेषां लोकपालानाम्। कुलाश्च ते भूभृतस्तेषां कुलभूभृताम्। समानः धर्मः येषां ते सधर्माणस्तेषां भावः साधर्म्यं तेन योगः साधर्म्ययोगस्तस्मादिति साधर्म्ययोगतः।

हिन्दी—उस राजा अतिथि को, इन्द्रादियों के साथ एक-से धर्म के संबन्ध होने के कारण लोग, पांचवा लोकपाल, और छठा महाभूत, तथा आठवां कुलपर्वत कहने लगे थे। अर्थात् लोक की रक्षा करने से पांचवा लोकपाल, और परोपकार करने से छठा महाभूत, तथा पृथिवी को धारण करने से आठवां कुल पर्वत कहने लगे थे।

विशेष—चार लोकपाल इन्द्रादि, पांच महाभूत पृथिवी जलाकाशादि, और सातकुलपर्वत, महेन्द्रः, मलयः, सह्यः, शुक्तिमान्, ऋक्षमान, विन्ध्यः, पारियात्र, होते हैं॥ ७८॥

दूरापवर्जितच्छत्रैस्तस्याज्ञां शासनार्पिताम्।
दधुः शिरोभिर्भूपाला देवाः पौरंदरीमिव॥ ७९॥

भूपालाः शासनेषु पत्रेष्वर्पितामुपन्यस्तां तस्य राज्ञः आज्ञाम्। देवाः पौरंदरीमैन्द्रीमाज्ञामिव। दूरापवर्जितच्छत्रैर्दूरात्परिहृतातपत्रैः शिरोभिर्दधुः॥

अन्वयः—भूपालाः शासनार्पितां तस्य आज्ञां, देवाः पौरन्दरीम् इव दूरापवर्जितच्छत्रैः शिरोभिः दधुः।

व्याख्या—भुवं = पृथिवीं पालयन्ति = रक्षन्तीति भूपालाः = राजानः शासनेषु = आज्ञापत्रेषु अर्पिता = दत्ता तां शासनार्पितां तस्य = राज्ञः अतिथेः आज्ञाम् = आदेशं दीव्यन्तीति देवाः = अमराः पुराणि दारयतीति पुरन्दरः = इन्द्रः, पुरन्दरस्य इयं पौरन्दरी तां पौरन्दरीम् = ऐन्द्रीम् आज्ञाम् इव = यथा दूरात् = असमीपात् अपवर्जितानि = त्यक्तानि अपहृतानि छत्राणि = आतपत्त्राणि यैस्तानि तैः दूरापवर्जितच्छत्रैः शिरोभिः = मस्तकैः दधुः = धारयामासुः, वहन्ति स्मेत्यर्थः।

समासः—शासनेषु अर्पिता शासनार्पिता तां शासनार्पिताम्। दूरे अपवर्जितानि छत्राणि यैस्तानि दूरापवर्जितच्छत्राणि तैः दूरापवर्जितच्छत्रैः। भुवः पालाः भूपालाः।

हिन्दी—जिस तरह सारे देवता इन्द्र की आज्ञा को शिरोधार्य (भक्ति प्रेम से मानना)

करते हैं, उसी प्रकार सारे राजा लोग भी, राजा अतिथि की पत्रों द्वारा दी हुई आज्ञा को अपने उन मस्तकों से धारण करते थे, जिन मस्तकों से पहले से ही छत्र उतार दिये जाते थे ॥७९॥

ऋत्विजः स तथानर्च दक्षिणाभिर्महाक्रतौ ।

यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च ॥ ८० ॥

स राजा महाक्रतावश्वमेधे ऋत्विजो याजकान्दक्षिणाभिस्तथानर्चार्चयामास । अर्चतेर्भौवादिकाल्लिट् । यथास्य राज्ञो धनदस्य च नाम साधारणीभूतमेकीभूतम् । उभयोरपि धनदसंज्ञा यथा स्यात्तथेत्यर्थः ॥

अन्वयः—सः महाक्रतौ ऋत्विजः दक्षिणाभिः तथा आनर्च यथा अस्य धनदस्य च नाम साधारणीभूतम् ।

व्याख्या—सः=राजा अतिथिः करोति, क्रियते वा क्रतुः=यज्ञः । महांश्चासौ क्रतुः क्रतुः महाक्रतुः तस्मिन् महाक्रतौ=अश्वमेधे यज्ञे ऋतौ याजयन्तीति ऋत्विजस्तान् ऋत्विजः= याजकान् दक्षिणाभिः=कर्मणः सांगतासिद्ध्यर्थं देयद्रव्यैः तथा=तेन प्रकारेण आनर्च=पूजयामास, यथा=येन प्रकारेण अस्य=राज्ञोऽतिथेः धनानि=द्रव्याणि ददातीति धनदस्तस्य धनदस्य=कुबेरस्य नाम=आख्या न साधारणमिति असाधारणम् । असाधारणं साधारणं सम्पद्यमानं साधारणीभूतम्=एकीभूतं, द्वयोः अतिथिकुबेरयोः धनदातृत्वेन धनदः, इत्येकं नाम प्रसिद्धमभूदित्यर्थः ।

समासः—महांश्चासौ क्रतुः महाक्रतुस्तस्मिन् महाक्रतौ । न साधारणम् असाधारणम्, असाधारणं साधारणं संपद्यमानमिति साधारणीभूतम् ।

हिन्दी—अश्वमेध यज्ञ में यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को राजा अतिथि ने दक्षिणा से इतना पूजा (उनको दक्षिणा दी) कि 'तब से' राजा और कुबेरका एक ही नाम (धनद) हो गया । अर्थात् अधिक धन देने कारण राजा को कुबेर कहने लगे ॥ ८० ॥

इन्द्राद् वृष्टिर्नियमितगदोद्रेकवृत्तिर्यमोऽभू-

द्यादोनाथः शिवजलपथः कर्मणे नौचराणाम् ।

पूर्वापेक्षी तदनु विदधे कोषवृद्धिं कुबेर-

स्तस्मिन्दण्डोपनतचरितं भेजिरे लोकपालाः ॥ ८१ ॥

इन्द्राद्वृष्टिरभूत् । यमो नियमिता निवारिता गदस्य रोगस्योद्रेक एव वृत्तिर्येन सोऽभूत् । यादोनाथो वरुणो नौचराणां नाविकानां कर्मणे संचाराय शिवजलपथः सुचरजलमार्गोऽभूत् । तदनु पूर्वापेक्षी रघुरामादिमहिमाभिज्ञः कुबेरः कोषवृद्धिं विदधे । इत्थं लोकपालास्तस्मिन्राज्ञि विषये दण्डोपनतस्य शरणागतस्य चरितं वृत्तिं भेजिरे । 'दुर्बलो बलवत्सेवी विरुद्धाच्छङ्कितादिभिः । वर्तेत दण्डोपनतो भर्तर्येवमवस्थितः ॥' इति कौटिल्यः ॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया समेते महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये अतिथिवर्णनो नाम सप्तदशः सर्गः ।

अन्वयः—इन्द्रात् वृष्टिः अभूत्, यमः नियमितगदोद्रेकवृत्तिः अभूत्, यादोनाथः नौचराणां कर्मणे शिवजलपथः अभूत्, तदनु पूर्वापेक्षी कुबेरः कोषवृद्धिं विदधे, इत्थं लोकपालाः तस्मिन् दण्डोपनतचरितं भेजिरे।

व्याख्या—इन्दतीति इन्द्रस्तस्मात् इन्द्रात् = शक्रात् वृष्टिः = वर्षम् अभूत् = जाता। यमयति लोकान् इति यमः = यमराजः नियमिता = निवारिता गदस्य = रोगस्य उद्रेकः = वृद्धिरेव वृत्तिः = व्यापारो येन स नियमितगदोद्रेकवृत्तिः अभूत्। यादसां = जलजन्तूनां नाथः = स्वामी इति यादोनाथः = वरुणः "यादांसि जलजन्तवः" इत्यमरः। नौभिः = नौकाभिः चरन्तीति नौचरास्तेषां नौचराणां = नाविकानां कर्मणे = सञ्चाराय जलस्य पन्थाः = मार्गः इति जलपथः शिवः = सुचरः जलपथः यस्य स शिवजलपथः अभूत्। तस्य अनु = पश्चात् तदनु पूर्वान् = रघुरामादीन् अपेक्षते इति पूर्वापेक्षी = रामादिसामर्थ्यवित् कुम्बति धनमिति कुबेरः कुत्सितं बेरं = शरीरमस्येति वा कुबेरः = धनाधिपः कोषस्य वृद्धिरिति कोषवृद्धिस्तां कोषवृद्धिम् = धनवृद्धिं विदधे = कृतवान्। इत्थम् = अनेकप्रकारेण लोकान् पालयन्तीति लोकपालाः = इन्द्रवरुणादयः तस्मिन् = अतिथौ विषये दण्डेन = दमेन उपनतः = शरणागतस्तस्य चरितं = वृत्तिं व्यवहारमिति दण्डोपनतचरितं भेजिरे = सेवितवन्तः।

समासः—नियमिता गदस्य उद्रेक एव वृत्तिः येन स नियमितगदोद्रेकवृत्तिः। यादसां नाथः यादोनाथः। शिवः जलस्य पन्थाः यस्य स शिवजलपथः। पूर्वेषाम् अपेक्षीति पूर्वापेक्षी। कोषस्य वृद्धिः तां कोषवृद्धिम्। लोकानां पालाः लोकपालाः। दण्डेन उपनताः दण्डोपनताः दण्डोपनतानां चरितमिति तत् दण्डोपनतचरितम्।

हिन्दी—राजा अतिथि के राज्य में इन्द्र ने वर्षा की और यमराज, रोगों की बढ़ने की वृत्ति प्रसार या व्यापार को रोकने वाला हुआ, अर्थात् रोग का बढ़ना रोक दिया। तथा वरुण ने भी नाव से चलने वालों के आने जाने के जल मार्ग को अच्छा बना दिया। अर्थात् नदियों के जल को नौकाओं से निर्विघ्न पार करने योग्य बना दिया था। और रघु तथा रामचन्द्रादि की महिमा को जानने वाले कुबेर ने भी अतिथि के खजाने को भरपूर कर दिया। इस प्रकार राजा अतिथि के प्रति इन्द्रादि लोकपालों ने उसके डर के मारे शरणागतों के समान आचरण करके उसकी सेवा की॥ ८१॥

इति श्रीशंकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां
रघुवंशे महाकाव्ये अतिथिवर्णनो नाम सप्तदशः सर्गः॥

अष्टादशः सर्गः

यत्पादपांसुसंपर्कादहल्यासीदपांसुला ।
कारुण्यसिन्धवे तस्मै नमो वैदेहिबन्धवे ॥

स नैषधस्यार्थपतेः सुतायामुत्पादयामास निषिद्धशत्रुः ।
अनूनसारं निषधान्नगेन्द्रात्पुत्रं यमाहुर्निषधाख्यमेव ॥ १ ॥

निषिद्धशत्रुर्निवारितरिपुः सोऽतिथिर्नैषधस्य निषधदेशाधीश्वरस्यार्थपते राज्ञः सुतायां निषधान्निषधाख्यान्नगेन्द्रात्पर्वतादनूनसारमन्यूनबलं पुत्रमुत्पादयामास । यं पुत्रं निषधाख्यं निषधनामकमेवाहुः ॥

अन्वयः—निषिद्धशत्रुः सः नैषधस्य अर्थपतेः सुतायां निषधात् नगेन्द्रात् अनूनसारं पुत्रम् उत्पादयामास यं निषधाख्यम् एव आहुः ।

व्याख्या—निषिद्धाः = निवारिताः विजिताः इत्यर्थः शत्रवः = रिपवः येन स निषिद्धशत्रुः सः = अतिथिः निषीदतीति निषधः = कठिनः, देशश्च, "निषधः कठिने देशे तद्राजे पर्वतान्तरे" इति विश्वमेदिन्यौ । निषधस्य = देशस्य राजा नैषधः तस्य नैषधस्य = निषधदेशाधिपस्य राज्ञः अर्थानां पतिः अर्थपतिस्तस्य अर्थपतेः = एतन्नामकस्य सुतायां = पुत्र्यां निषधात् = एतन्नामकात् नगानाम् = पर्वतानाम् इन्द्रः = श्रेष्ठस्तस्मात् नगेन्द्रात् = पर्वतात् ऊनयतीति ऊनः न ऊनः इति अनूनः = अन्यूनः सारः = बलं यस्य सः अनूनसारस्तम् अनूनसारं पुत्रं = सुतम् उत्पादयामास = जनयामास । यं = पुत्रं निषधः आख्या = नाम यस्य स निषधाख्यस्तं निषधाख्यम् = निषधनामानम् एव आहुः = कथयन्तिस्म लोका इति शेषः ।

समासः—अर्थानां पतिः अर्थपतिस्तस्य अर्थपतेः । निषिद्धाः शत्रवो येन स निषिद्धशत्रुः । अनूनः सारः यस्य स तम् अनूनसारम् । नगानाम् इन्द्रः नगेन्द्रस्तस्मात् । निषधः आख्या यस्य स तं निषधाख्यम् ।

हिन्दी—शत्रुओं को जीतनेवाले राजा अतिथि ने निषध देश के राजा अर्थपति की पुत्री में (पुत्री से) निषध नामक पर्वत के समान बलशाली पुत्र को पैदा किया । और उस पुत्र का नाम निषध ही कहते हैं । अर्थात् पुत्र का नाम भी निषध ही रखा ॥ १ ॥

तेनोरुवीर्येण पिता प्रजायै कल्पिष्यमाणेन ननन्द यूना ।
सुवृष्टियोगादिव जीवलोकः सस्येन संपत्तिफलोन्मुखेन ॥ २ ॥

उरुवीर्येणातिपराक्रमेणात एव प्रजायै लोकरक्षणार्थं कल्पिष्यमाणेन तेन यूना निषधेन पितातिथिः सुवृष्टियोगात्संपत्तिफलोन्मुखेन सस्येन जीवलोक इव । ननन्द जहर्ष ॥

अन्वयः—उरुवीर्येण अत एव प्रजायै कल्पिष्यमाणेन तेन यूना पिता सुवृष्टियोगात् सम्पत्तिफलोन्मुखेन सस्येन जीवलोक इव ननन्द ।

व्याख्या—उरु = अतिशयं वीर्यं = शक्तिः, पराक्रमो यस्य स तेन उरुवीर्येण अत एव प्रजार्थे = लोकरक्षार्थे कल्पिष्यते इति कल्पिष्यमाणस्तेन कल्पिष्यमाणेन = समर्थेन भविष्यता तेन = युवराजेन यूना = तरुणेन-निषधेन पातीति पिता राजा अतिथिः, सुवृष्टेः = सुवर्षणस्य योगः = सम्प्राप्तिस्तस्मात् सुवृष्टियोगात् सम्पत्तेः धान्यादिरूपसम्पदः फलोन्मुखं = परिपाकोन्मुखं यत्तत्तेन सम्पत्तिफलोन्मुखेन सस्येन = फलेन जीवानां = प्राणिनां लोकः = वर्गः समूहः इति जीवलोकः इव = यथा ननन्द = जहर्ष अतिप्रसन्नो जातः इत्यर्थः।

समासः—उरु वीर्यं यस्य स तेन उरुवीर्येण। सु शोभना वृष्टिः सुवृष्टिस्तस्याः योगस्तस्मात् सुवृष्टियोगात्। जीवानां लोकः जीवलोकः। सम्पत्तीनां फलं तत्र उन्मुखं यत्तत्तेन सम्पत्तिफलोन्मुखेन।

हिन्दी—विशाल पराक्रमशाली अतएव आगे चलकर प्रजा की रक्षा करने में समर्थ उस जवान निषध पुत्र से राजा अतिथि उसी प्रकार प्रसन्न हुए, जैसे अच्छी वर्षा होने से फल देने को तैयार (पकने को तैयार) धान को देखकर सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं। अर्थात् अच्छी वर्षा से अच्छी खेती को देखकर प्रसन्न होते हैं॥ २॥

शब्दादि निर्विश्य सुखं चिराय तस्मिन्प्रतिष्ठापितराजशब्दः।
कौमुद्वतेयः कुमुदावदातैर्द्यामर्जितां कर्मभिरारुरोह॥ ३॥

कुमुद्वत्या अपत्यं पुमान्कौमुद्वतेयोऽतिथिः शब्दादि शब्दस्पर्शादि सुखं सुखसाधनं विषयवर्गं निर्विश्योपभुज्य चिराय तस्मिन्निषधाख्ये पुत्रे प्रतिष्ठापितराजशब्दो दत्तराज्यः सन्। कुमुदावदातैर्निर्मलैः कर्मभिरश्वमेधादिभिरर्जितां संपादितां द्यां स्वर्गमारुरोह॥

अन्वयः—कौमुद्वतेयः शब्दादि सुखं निर्विश्य, चिराय तस्मिन् प्रतिष्ठापितराजशब्दः सन् कुमुदावदातैः कर्मभिः अर्जितां द्याम् आरुरोह।

व्याख्या—कौः पृथिव्यां मोदन्ते इति कुमुदानि = कैरवाणि सन्त्यस्याः सा कुमुद्वती। कुमुद्वत्या अपत्यं पुमान् कौमुद्वतेयः = कुमुद्वतीपुत्रोऽतिथिः शब्दादि = शब्दादिविषयजन्यं सुखम् = आनन्दम् निर्विश्य = उपभुज्य अनुभूय चिराय = बहुकालम् तस्मिन् = निषधनामके, पुत्रे प्रतिष्ठापितः = प्रदत्तः राजशब्दः = राज्यं येन स प्रतिष्ठापितराजशब्दः, सन् अवदायतेस्म इति अवदातः = धवलः "अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः" इत्यमरः। कुमुदानि = श्वेतकमलानि इव अवदातानि = निर्मलानि यानि तैः कुमुदावदातैः कर्मभिः = क्रियाभिः पुण्यैरित्यर्थः अर्जितां = सम्पादितां द्यां = दिवं-स्वर्गम् आरुरोह = आरूढवान्, स्वर्गं गत इत्यर्थः।

समासः—कुमुदानि इव अवदातानि तैः कुमुदावदातैः। राजा इति शब्दः राजशब्दः प्रतिष्ठापितः राजशब्दः येन स प्रतिष्ठापितराजशब्दः। शब्दः आदिः यस्य तत् शब्दादि।

हिन्दी—कुमुद्वती महारानी के पुत्र राजा अतिथि ने बहुत दिनों तक शब्द स्पर्श आदि विषयों के सुख को भोग करके तथा अपने पुत्र निषध को राज्य देकर (अच्छी प्रकार उसे

राजा बनाकर) सुफेद कमलों के समान अपने उज्ज्वल पुण्य से प्राप्त किए हुए स्वर्ग को प्राप्त कर लिया । अर्थात् स्वर्ग में पधार गया ॥ ३ ॥

पौत्रः कुशस्यापि कुशेशयाक्षः ससागरां सागरधीरचेताः ।
एकातपत्रां भुवमेकवीरः पुरार्गलादीर्घभुजो बुभोज ॥ ४ ॥

कुशेशयाक्षः शतपत्रलोचनः । 'शतपत्रं कुशेशयम्' इत्यमरः । सागरधीरचेताः समुद्रगम्भीरचित्त एकवीरोऽसहायशूरः पुरस्यार्गला कपाटविष्कम्भः । 'तद्विष्कम्भोऽर्गलं न ना' इत्यमरः । तद्वद्दीर्घभुजः कुशस्य पौत्रो निषधोऽपि ससागरामेकातपत्रां भुवं बुभोज पालयामास । 'भुजोऽनवने' इत्युक्तेः परस्मैपदम् ।

अन्वयः—कुशेशयाक्षः सागरधीरचेताः एकवीरः पुरार्गलादीर्घभुजः कुशस्य पौत्रः अपि ससागराम् एकातपत्रां भुवं बुभोज ।

व्याख्या—कुशे = जले शेरते इति कुशेशयानि = कमलानि इव अक्षिणी = नेत्रे यस्य स कुशेशयाक्षः = शतपत्रनेत्रः "सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयमि"त्यमरः । सगरस्य राज्ञोऽपत्यं सागरः । न गरः अगरः, अगरेण = अमृतेन सह, मणिना वा सह सागरः = समुद्रः इव धीरं = गम्भीरं चेतः = चित्तं मनः यस्य स सागरधीरचेताः एकः = अद्वितीयश्चासौ वीरः = शूरः इति एकवीरः = अद्वितीयभटः पुरस्य = नगरस्य अर्गला = कपाटविष्कम्भ इव दीर्घौ = आयतौ विशालौ इत्यर्थः । भुजौ = बाहू यस्य स पुरार्गलादीर्घभुजः कुशस्य = राज्ञः रामपुत्रस्य पौत्रः = पुत्रस्य पुत्रः निषधनामा अपि सागरेण सहिता ससागरा तां ससागरां = ससमुद्राम् एकं आतपत्रं छत्रं = यस्याः सा ताम् एकातपत्राम् भुवं = पृथिवीं बुभोज = पालयामास ।

समासः—कुशेशयमिव अक्षिणी यस्य स कुशेशयाक्षः । सागरेण सहिता ससागरा तां ससागराम् । सागर इव धीरं चेतो यस्य स सागरधीरचेताः । एकम् आतपत्रं यस्याः सा ताम् एकातपत्राम् । एकश्चासौ वीरः एकवीरः । पुरस्य अर्गला पुरार्गला, तद्वत् दीर्घौ भुजौ यस्य स पुरार्गलदीर्घभुजः ।

हिन्दी—कमल के समान सुन्दर नेत्रवाले और समुद्र के समान गम्भीर हृदय वाले तथा नगर के प्रधान द्वार के मूसल (आगल किल्ली) के समान विशाल भुजा वाले अद्वितीय वीर-कुश के पौत्र (पोते) निषध ने भी समुद्रपर्यन्त एकच्छत्र होकर पृथिवी का पालन किया । अर्थात् एकच्छत्र होकर समग्र पृथिवी का राज्य किया ॥ ४ ॥

तस्यानलौजास्तनयस्तदन्ते वंशश्रियं प्राप नलाभिधानः ।
यो नड्वलानीव गजः परेषां बलान्यमृद्नान्नलिनाभवक्त्रः ॥ ५ ॥

अनलौजा नलाभिधानो नलाख्यस्तस्य निषधस्य तनयस्तस्य निषधस्यान्तेऽवसाने वंशश्रियं राज्यलक्ष्मीं प्राप । नलिनाभवक्त्रो यो नलः । गजो नड्वलानि नडप्रायस्थलानीव । 'नडशादाड्ड्वलच्' इति ड्वलच्प्रत्ययः । परेषां बलान्यमृद्नान्ममर्द ॥

अन्वयः—अनलौजाः नलाभिधानः तस्य तनयः तदन्ते वंशश्रियं प्राप, नलिनाभवक्त्रः यः गजः नड्वलानि इव परेषां बलानि अमृद्नात् ।

व्याख्या—अनलः = अग्निरिव ओजः = तेजः यस्य सः अनलौजाः नल इति अभिधानं = नाम यस्य स नलाभिधानः = नलनामकः तस्य = निषधस्य तनयः = पुत्रः तस्य = निषधस्य अन्ते = अवसाने तदन्ते वंशस्य = कुलस्य श्रीः = राज्यलक्ष्मीः तां वंशश्रियं = रघुकुलराज्यलक्ष्मीमित्यर्थः प्राप = अवाप । नलिनस्य = कमलस्य आभा इव आभा = कान्तिः यस्य तत् नलिनाभं वक्त्रं = मुखं यस्य स नलिनाभवक्त्रः यः = नलः गजः = हस्ती नडाः सन्ति येषु तानि नड्वलानि = नडबहुलस्थानानि इव = यथा परेषां = शत्रूणां बलानि = सैन्यानि अमृद्नात् = मर्दितवान् ।

समासः—अनलः इव ओजो यस्य सः अनलौजाः । तस्य अन्तस्तदन्तस्तस्मिन् तदन्ते । नल इति अभिधानं यस्य सः नलाभिधानः । वंशस्य श्रीः तां वंशश्रियम् । नलिनस्य आभेव आभा यस्य तत् नलिनाभं तत् वक्त्रं यस्य स नलिनाभवक्त्रः ।

हिन्दी—राजा निषध के पश्चात् अग्नि के समान तेजस्वी नल नामक निषध के पुत्र ने अपने कुल की राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया । जो कि कमल के समान सुन्दर मुख वाला था । और राजा नल ने शत्रुसेना का उसी प्रकार मर्दन किया, जिस प्रकार हाथी सरकण्डों के वन या समूह को तोड़ देता है, नष्ट भ्रष्ट कर डालता है ॥ ५ ॥

नभश्चरैर्गीतयशाः स लेभे नभस्तलश्यामतनुं तनूजम् ।
ख्यातं नभःशब्दमयेन नाम्ना कान्तं नभोमासमिव प्रजानाम् ॥ ६ ॥

नभश्चरैर्गन्धर्वादिर्गीतयशाः स नलो नभस्तलश्यामतनुं नभःशब्दमयेन नाम्ना ख्यातम् । नभःशब्दसंज्ञकमित्यर्थः । नभोमासमिव श्रावणमासमिव । प्रजानां कान्तं प्रियं तनूजं पुत्रं लेभे ॥

अन्वयः—नभश्चरैः गीतयशाः सः नभस्तलश्यामतनुं नभःशब्दमयेन नाम्ना ख्यातं नभोमासम् इव प्रजानां कान्तं तनूजं लेभे ।

व्याख्या—नभसि = आकाशे चरन्ति = गच्छन्तीति नभश्चरास्तैः नभश्चरैः = गन्धर्वादिभिः गीतं = कीर्तितं यशः = कीर्तिर्यस्य गीतयशाः सः = राजा नलः नभसः = आकाशस्य तलं = स्वरूपमिति नभस्तलं, तद्वत् श्यामा = कृष्णा तनुः = शरीरं यस्य स नभस्तलश्यामतनुस्तं नभस्तलश्यामतनुम् । "अधस्वरूपयोरस्त्री तलम्" इत्यमरः । नभ इति शब्दः नभःशब्दः स एव यस्मिन् तत् तेन नभःशब्दमयेन = नभःशब्दरूपेण नाम्ना अभिधानेन ख्यातं = प्रसिद्धं, नभःशब्दनामकमित्यर्थः । विरहिणो नभ्यति, नभ्नाति, नभते वा नभाः = श्रावणः स चासौ मासः नभोमासस्तं नभोमासं = श्रावणमासम् इव = यथा प्रजानां = लोकानां कान्तं = प्रियं तन्वाः = शरीरात् जातः = उत्पन्नः इति तनूजस्तं तनूजं = पुत्रं लेभे = प्राप्तवान् ।

समासः—गीतं यशः यस्य स गीतयशाः । नभसस्तलं नभस्तलं, तद्वत् श्यामा तनुः यस्य स तं नभस्तलश्यामतनुम् । नभाः चासौ मासः नभोमासस्तं नभोमासम् । नभः इति शब्दः नभःशब्दः, नभःशब्द एवेति नभःशब्दमयं तेन नभःशब्दमयेन ।

हिन्दी—आकाश में गन्धर्व जिसका यश गाते थे ऐसे यशस्वी नल राजा ने आकाश के समान सांवले शरीर वाले, नभ नाम के पुत्र को प्राप्त किया। अर्थात् नल को नभ पुत्र हुआ, जो कि प्रजा को वैसा ही प्यारा था, जैसे कि श्रावण का मास ॥ ७ ॥

तस्मै विसृज्योत्तरकोसलानां धर्मोत्तरस्तत्प्रभवे प्रभुत्वम् ।
मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध ॥ ७ ॥

धर्मोत्तरो धर्मप्रधानः स नलः प्रभवे समर्थाय तस्मै नभसे तदुत्तरकोसलानां प्रभुत्वमाधिपत्यं विसृज्य दत्त्वा जरसा जरयोपदिष्टम्। वार्धके चिकीर्षितमित्यर्थः। मृगैरजर्यं तैः सह संगतम्। 'अजर्यं संगतम्' इति निपातः। पुनरदेहबन्धाय पुनर्देहसंबन्धनिवृत्तये बबन्ध। मोक्षार्थं वनं गत इत्यर्थः। अदेहबन्धायेत्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि नञ्समास इष्यते।

अन्वयः—धर्मोत्तरः प्रभवे तस्मै तत् उत्तरकोसलानां प्रभुत्वं विसृज्य जरसा उपदिष्टं मृगैः अजर्य्यम् पुनः अदेहबन्धाय बबन्ध।

व्याख्या—धर्मः = निःश्रेयसरूपः उत्तरः = प्रधानः यस्य स धर्मोत्तरः = निःश्रेयसमुख्यः सः = नलः प्रकर्षेण भवतीति प्रभुः तस्मै प्रभवे = समर्थाय तस्मै = नभोनामकपुत्राय तत् = प्रसिद्धम् कौ = पृथिव्याम् सलन्तीति कोसलाः उत्तरे च ते कोसलाः = जनपदाः तेषाम् उत्तरकोसलानां प्रभोः भावः कर्म वा प्रभुत्वं = स्वामित्वं विसृज्य = दत्त्वा जरसा = जरया वार्धक्येन उपदिष्टं = शिक्षितं वृद्धत्वे चिकीर्षितमित्यर्थः। मृगैः = हरिणैः सह न जीर्यतीति अजर्यं = संगतं सौहार्दं पुनः = भूयः देहस्य = शरीरस्य बन्धः = संबन्धः इति देहबन्धः, न देहबन्धः इति अदेहबन्धस्तस्मै अदेह-बन्धाय = शरीरसंबन्धनिवृत्तये अपवर्गायेत्यर्थः बबन्ध। मोक्षार्थं वनं गत इत्यर्थः।

समासः—उत्तरे च ते कोसलाः उत्तरकोसलास्तेषाम् उत्तरकोसलानाम्। धर्म उत्तरः यस्य सः धर्मोत्तरः। देहस्य बन्धः देहबन्धः, न देहबन्धः अदेहबन्धस्तस्मै अदेहबन्धाय।

हिन्दी—धर्मात्मा धर्मप्राण राजा नल ने राज्य चलाने में समर्थ उस अपने पुत्र नभ को उत्तरकोसल (अयोध्याप्रान्त) का राज्य देकर, बुढ़ौती (वृद्धावस्था) के द्वारा बताई गई मृगों के साथ संबंध (साथ रहना) पुनः शरीर न धारण करने लिये बान्ध लिया। अर्थात् मुक्ति को सिद्ध करने के लिये समदर्शी हो, आश्रम में चले गये ॥ ७ ॥

तेन द्विपानामिव पुण्डरीको राज्ञामजय्योऽजनि पुण्डरीकः ।
शान्ते पितर्याहृतपुण्डरीका यं पुण्डरीकाक्षमिव श्रिता श्रीः ॥ ८ ॥

तेन नभसा। द्विपानां पुण्डरीको दिग्गजविशेष इव। राज्ञामजय्यो जेतुमशक्यः। 'क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे' इति निपातनात्साधुः। पुण्डरीकः पुण्डरीकाख्यः पुत्रोऽजनि जनितः। पितरि शान्ते स्वर्गते सति। आहृतपुण्डरीका गृहीतश्वेतपद्मा श्रीर्यं पुण्डरीकं पुण्डरीकाक्षं विष्णुमिव श्रिता॥

अन्वयः—तेन द्विपानां पुण्डरीक इव राज्ञाम् अजय्यः पुण्डरीकः अजनि। पितरि शान्ते सति आहृतपुण्डरीका श्रीः यं पुण्डरीकाक्षम् इव श्रिता।

व्याख्या—तेन नलपुत्रेण नभसा द्वाभ्यां = मुखशुण्डाभ्यां पिबन्तीति द्विपास्तेषां द्विपानां = गजानां पुण्डयति = भूषयतीति पुण्डरीकः = वह्निदिग्गजः इव = यथा यथा इन्द्रस्य ऐरावतः, तथैव अग्नेः पुण्डरीकवर्णत्वात् पुण्डरीको दिग्गजः इति। राज्ञां भूपालानां जेतुं शक्यः जय्यः न जय्यः अजय्यः = जेतुमशक्यः पुण्डरीकः = पुण्डरीकनामा पुत्रः अजनि = उदपादि, जनितः। पितरि = जनके = नभसि शान्ते = उपरते, स्वर्गं गते सति आहृतानि = गृहीतानि पुण्डरीकाणि = सिताम्भोजानि, श्वेतकमलानीत्यर्थः। यया सा आहृतपुण्डरीका श्रीः = राज्यलक्ष्मीः यं = पुण्डरीकनामकं पुण्डरीकं = श्वेतकमलमिव अक्षिणी = नेत्रे यस्य सः, पुण्डरीकं = लोकात्मकम् अश्नति = व्याप्नोतीति वा पुण्डरीकाक्षस्तं पुण्डरीकाक्षं = भगवन्तं विष्णुम् इव = यथा श्रिता = आश्रिता।

समासः—न जय्यः अजय्यः। आहृतानि पुण्डरीकाणि यया स आहृतपुण्डरीका। पुण्डरीकमिव अक्षिणी यस्य स तं पुण्डरीकाक्षम्।

हिन्दी—हाथियों में जैसे पुण्डरीक नामक (अग्नि दिक्पाल का हाथी) दिग्गज श्रेष्ठ तथा अजेय है, वैसा ही राजाओं में अजेय श्रेष्ठ पुत्र, राजा नभ ने पैदा किया था। पिता के स्वर्ग में चले जाने पर, श्वेतकमलधारिणी लक्ष्मी ने जिस पुण्डरीक को कमलनयन विष्णु के समान स्वीकार किया। अर्थात् लक्ष्मी ने पुण्डरीकको विष्णु मान कर वरण कर लिया॥ ८॥

स क्षेमधन्वानममोघधन्वा पुत्रं प्रजाक्षेमविधानदक्षम्।
क्ष्मां लम्भयित्वा क्षमयोपपन्नं वने तपः क्षान्ततरश्चचार॥ ९॥

अमोघं धनुर्यस्य सोऽमोघधन्वा। 'धनुषश्च' इत्यनङादेशः समासान्तः। स पुण्डरीकः प्रजानां क्षेमविधाने दक्षं क्षमयोपपन्नं क्षान्तियुक्तं क्षेमं धनुर्यस्य तं क्षेमधन्वानं नाम पुत्रम्। 'वा संज्ञायाम्' इत्यनङादेशः। क्ष्मां लम्भयित्वा प्रापय्य लभेर्गत्यर्थत्वाद् द्विकर्मकत्वम्। क्षान्ततरोऽत्यन्तसहिष्णुः सन्वने तपश्चचार॥

अन्वयः—अमोघधन्वा सः प्रजाक्षेमविधानदक्षं क्षमया उपपन्नं क्षेमधन्वानं पुत्रं क्ष्मां लम्भयित्वा क्षान्ततरः सन् वने तपः चचार।

व्याख्या—मुह्यन्त्यस्मिन्निति मोघं "मोघं निरर्थकम्" इत्यमरः। न मोघमिति अमोघं = सफलं धनुः = चापं यस्य सः अमोघधन्वा सः = पुण्डरीकः प्रजानां = जनानां क्षेमं = कल्याणं तस्य विधानं = करणमिति प्रजाक्षेमविधानं तस्मिन् दक्षः = चतुरः समर्थस्तं प्रजाक्षेमविधानदक्षम् क्षमया = क्षान्त्या उपपन्नं = युक्तम्, क्षयत्यशुभमिति क्षेमं = शिवं = कल्याणप्रदमित्यर्थः धनुः = चापं यस्य स तं क्षेमधन्वानं = क्षेमधन्वनामकं पुत्रं = सुतं क्ष्मां = पृथिवीं लम्भयित्वा = प्रापय्य अतिशयेन क्षान्तः = शान्तः इति क्षान्ततरः, अतीव सहनशीलः सन् वने = अरण्ये, तपोवने इत्यर्थः। तपः = तपस्यां चचार = कृतवान्।

समासः—अमोघं धनुर्यस्य सः अमोघधन्वा। प्रजानां क्षेमं प्रजाक्षेमं तस्य विधानमिति प्रजाक्षेमविधानं तत्र दक्षस्तं प्रजाक्षेमविधानदक्षम्। क्षेमं धनुर्यस्य स तं क्षेमधन्वानम्।

हिन्दी—सफल धनुर्धारी उस पुण्डरीक ने, प्रजाओं का कल्याण करने में चतुर समर्थ तथा शान्त स्वभाव वाले क्षेमधन्वा नामक अपने पुत्र को पृथिवी (राज्य) दे कर स्वयं अतीव सहनशील होकर तप करने के लिये तपोवन चले गए ॥ ९ ॥

अनीकिनीनां समरेऽग्रयायी तस्यापि देवप्रतिमः सुतोऽभूत् ।
व्यश्रूयतानीकपदावसानं देवादि नाम त्रिदिवेऽपि यस्य ॥ १० ॥

तस्य क्षेमधन्वनोऽपि समरेऽनीकिनीनां चमूनामग्रयायी देवप्रतिम इन्द्रादिकल्पः सुतोऽभूत् । अनीकपदावसानमनीकशब्दान्तं देवादि देवशब्दपूर्वं यस्य नाम देवानीक इति नामधेयं त्रिदिवे स्वर्गेऽपि व्यश्रूयत विश्रुतम् ॥

अन्वयः—तस्य अपि समरे अनीकिनीनाम् अग्रयायी देवप्रतिमः सुतः अभूत् । अनीकपदावसानं देवादि यस्य नाम त्रिदिवे अपि व्यश्रूयत ।

व्याख्या—तस्य = क्षेमधन्वनः अपि समरे = युद्धस्थले अनीकं = रणोऽस्ति प्रयोजनत्वेन यासां ताः अनीकिन्यः तासाम् अनीकिनीनां = सेनानाम् अग्रे = पुरः यातीति अग्रयायी = पुरःसरः प्रतिमातीति प्रतिमः । देवानाम् = इन्द्रादीनां प्रतिमः = तुल्यः इति देवप्रतिमः सुतः = पुत्रः अभूत् = जातः । अनीकं पदम् अवसाने = अन्ते यस्य तत् अनीकपदावसानं देवः आदिर्यस्य तत् देवादि, देवपूर्वम् अनीकान्तं यस्य = सुतस्य नाम = आख्या संज्ञा देवानीकः इति नाम तिसृषु अवस्थासु, त्रयः = ब्रह्मविष्णुरुद्रा वा दीव्यन्त्यत्र त्रिदिवः, तस्मिन् त्रिदिवेऽपि = स्वर्गेऽपि व्यश्रूयत = विशेषेण श्रुतम् ।

समासः—देवानां प्रतिमः देवप्रतिमः । अनीकमिति पदम् अवसाने यस्य तत् अनीकपदावसानम् देवः आदिर्यस्य तत् देवादि ।

हिन्दी—उस क्षेमधन्वा को भी, युद्ध में सेना के आगे आगे चलने वाला, तथा देवेन्द्र के समान (बलशाली) पुत्र उत्पन्न हुआ । जिसका कि–देव प्रथम और अनीक अन्त में अर्थात् देवानीक नाम स्वर्ग में भी विशेष रूप से सुना जाता था । स्वर्ग में भी प्रसिद्ध था ॥ १० ॥

पिता समाराधनतत्परेण पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन ।
पुत्रस्तथैवात्मजवत्सलेन स तेन पित्रा पितृमान्बभूव ॥ ११ ॥

स पिता क्षेमधन्वा समाराधनतत्परेण शुश्रूषापरेण तेन पुत्रेण यथैव पुत्री बभूव तथैव स पुत्रो देवानीक आत्मजवत्सलेन तेन पित्रा पितृमान्बभूव । लोके पितृत्वपुत्रत्वयोः फलमनयोरेवासीदित्यर्थः ॥

अन्वयः—सः पिता समाराधनतत्परेण तेन पुत्रेण यथा एव पुत्री बभूव, तथैव स पुत्रः आत्मजवत्सलेन तेन पित्रा पितृमान् बभूव ।

व्याख्या—सः = प्रसिद्धः पाति = रक्षतीति पिता = जनकः क्षेमधन्वा सम्यग् आराधनं

समाराधनं समाराधने = सेवायां तत्परः = संलग्नः तेन समाराधनतत्परेण = शुश्रूषासंलग्नेनेत्यर्थः । तेन पुत्रेण = देवानीकेन यथा = यादृशः एव पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः । पुत्रोऽस्यास्तीति पुत्री = पुत्रवान् बभूव = जातः । तथा = तादृशः एव सः पुत्रः = देवानीकः आत्मनः = देहात् जातः आत्मजः । आत्मजः = पुत्रः वत्सलः = स्निग्धः यस्य स तेन आत्मजवत्सलेन तेन पित्रा = क्षेमधन्वना पिता अस्ति यस्य स पितृमान् जनकवान् बभूव = जातः । अनयोरेव पितृत्वं पुत्रत्वं च सफलमासीदित्यर्थः । यथा पुत्रः पितृभक्तः, तथैव पितापि पुत्रवात्सल्यमूर्तिरिति भावः ।

हिन्दी—जिस प्रकार सेवा शुश्रूषा में सदा तत्पर पितृभक्त देवानीक पुत्र को पाकर क्षेमधन्वा पुत्रवान् हुआ, उसी प्रकार अपने पुत्र से प्यार करने वाले उस क्षेमधन्वा पिता को पाकर देवानीक भी पितावाला हुआ था। अर्थात् इन दोनों पिता पुत्र में ही पितापना और पुत्रपना सम्पूर्ण रूप से सफल हुआ ॥ ११ ॥

पूर्वस्तयोरात्मसमे चिरोढामात्मोद्भवे वर्णचतुष्टयस्य ।
धुरं निधायैकनिधिर्गुणानां जगाम यज्वा यजमानलोकम् ॥ १२ ॥

गुणानामेकनिधिर्यज्वा विधिवदिष्टवांस्तयोः पितृपुत्रयोर्मध्ये पूर्वः पिता क्षेमधन्वात्मसमे स्वतुल्य आत्मोद्भवे पुत्रे देवानीके चिरोढां चिरधृतां वर्णचतुष्टयस्य धुरं रक्षाभारं निधाय यजमानलोकं यष्टृलोकं नाकं जगाम ॥

अन्वयः—गुणानां एकनिधिः यज्वा तयोः पूर्वः आत्मसमे आत्मोद्भवे चिरोढां वर्णचतुष्टयस्य धुरं निधाय यजमानलोकं जगाम ।

व्याख्या—गुणानां = दयादाक्षिण्यशौर्यादीनाम् एकः = अद्वितीयश्चासौ निधिः = शेवधिः इति एकनिधिः = मुख्याकरः इति यावत् । यजतेस्म इति यज्वा = विधिनेष्टवान् तयोः = पितृपुत्रयोः मध्ये पूर्वः = प्रथमः पिता क्षेमधन्वा आत्मनः = स्वस्य समः = तुल्यः तस्मिन् आत्मसमे आत्मनः = स्वस्मात् उद्भवति = जायते इति आत्मोद्भवस्तस्मिन् आत्मोद्भवे = सुते चिरं = बहुकालम् ऊढा = धृता तां चिरोढां चत्वारोऽवयवाः यस्य तत् चतुष्टयं, वर्णानां = ब्राह्मणादीनां चतुष्टयमिति वर्णचतुष्टयं तस्य वर्णचतुष्टयस्य धुरं = भारं प्रजारक्षणपालनरूपमित्यर्थः निधाय = दत्त्वा यजते इति यजमानः । यजमानस्य = यष्टुः लोकः = भुवनमिति तं यजमानलोकं = स्वर्गलोकं जगाम = गतवान् ।

समासः—आत्मनः समः आत्मसमस्तस्मिन् आत्मसमे । आत्मनः उद्भवः आत्मोद्भवस्तस्मिन् आत्मोद्भवे । वर्णानां चतुष्टयं तस्य वर्णचतुष्टयस्य । एकश्चासौ निधिः एकनिधिः ।

हिन्दी—गुणों की खान, विधिपूर्वक यज्ञ करने वाला, दोनों (पितापुत्र) में पहला (क्षेमधन्वा), अपने ही समान योग्य समर्थ अपने पुत्र पर चारों वर्णों की रक्षा पालन का भार जिसे वह बहुत दिनों से ढो रहा था, सौंप कर यज्ञ करने वालों के लोक स्वर्ग में चला गया ॥ १२ ॥

वशी सुतस्तस्य वशंवदत्वात्स्वेषामिवासीद् द्विषतामपीष्टः ।
सकृद्विविग्नानपि हि प्रयुक्तं माधुर्यमीष्टे हरिणान्ग्रहीतुम् ॥ १३ ॥

तस्य देवानीकस्य वशी समर्थः सुतोऽहीनगुनामेति वक्ष्यमाणनामकः । वशं वशकरं मधुरं वदतीति वशंवदः । 'प्रियवशे वदः खच्' इति खच्प्रत्ययः । तस्य भावस्तत्त्वम् । तस्मादिष्टवादित्वात्स्वेषामिव द्विषतामपीष्टः प्रिय आसीत् । अर्थादेवानीकनिर्धारणं लभ्यते । तथाहि । प्रयुक्तमुच्चारितं माधुर्यं सकृदेकवारं विविग्नान्भीतानपि हरिणान् ग्रहीतुमीष्टे शक्नोति ॥

अन्वयः—तस्य वशी सुतः वशंवदत्वात् स्वेषाम् इव द्विषताम् अपि इष्टः आसीत् । हि प्रयुक्तं माधुर्यं सकृत् विविग्नान् हरिणान् अपि ग्रहीतुम् ईष्टे ।

व्याख्या—तस्य = अनीकस्य वशः अस्यास्तीति वशी = जितेन्द्रियः, समर्थः सुतः = पुत्रः वशं = वशकरं–मधुरं वदतीति वशंवदः, तस्य भावः वशंवदत्वं तस्मात् वशंवदत्वात् = मधुरप्रियवादित्वादित्यर्थः स्वेषां = स्वजनानाम् इव = यथा द्विषन्तीति द्विषतस्तेषां द्विषतां = शत्रूणाम् अपि इष्टः = प्रियः आसीत् = अभूत् । हि = तथाहि प्रयुक्तम् = उच्चारितं मधुरस्य भावः कर्म वा माधुर्यं = मधुरं सकृत् = एकवारम् "सकृत् सहैकवारयोः" इत्यजयः । विविग्नान् = भीतान् अपि किमुत अन्यान् । हरन्ति मनांसि ह्रियन्ते गीतेन वा हरिणास्तान् हरिणान् = मृगान् अपि ग्रहीतुं = वशीकर्तुम् ईष्टे = शक्नोति ।

हिन्दी—देवानीक का जितेन्द्रिय समर्थ पुत्र (अहीनगु नाम वाला) मधुरभाषी होने के कारण शत्रुओं को भी उतना ही प्रिय था, जितना कि अपने मित्रों को प्रिय था । ठीक ही है क्योंकि बोला गया मधुर वचन एकबार तो डरे हुए मृगों को भी वश में कर लेता है ॥१३॥

अहीनगुर्नाम स गां समग्रामहीनबाहुद्रविणः शशास ।
यो हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वाद्युवाप्यनर्थैर्व्यसनैर्विहीनः ॥ १४ ॥

अहीनबाहुद्रविणः समग्रभुजपराक्रमः । 'द्रविणं काञ्चनं वित्तं द्रविणं च पराक्रमः' इति विश्वः । हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वान्नीचसंसर्गविमुखत्वाद्धेतोर्युवाप्यनर्थैरनर्थकरैर्व्यसनैः पानद्यूतादिभिर्विहीनो रहितो योऽहीनगुर्नाम स पूर्वोक्तो देवानीकसुतः समग्रां सर्वां गां भुवं शशास ॥

अन्वयः—अहीनबाहुद्रविणः हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वात् युवा अपि अनर्थैः व्यसनैः विहीनः यः अहीनगुः नाम सः समग्रां गां शशास ।

व्याख्या—बाहुः = भुजः द्रविणं = धनं पराक्रमश्चेति बाहुद्रविणे । अहीने = शक्तिसम्पन्ने बाहुद्रविणे यस्य सः अहीनबाहुद्रविणः बलवद्बाहुसंपन्नः पराक्रमसम्पन्नः काञ्चनयुक्तश्चेत्यर्थः । हीनानां = निकृष्टानां संसर्गः = संबन्धस्तस्मात् पराङ्मुखः = विमुखः इति हीनसंसर्गपराङ्मुखः, तस्य भावस्तत्वं तस्मात् हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वात् युवा = तरुणः अपि न अर्थः = प्रयोजनं येषां तानि अनर्थानि तैः अनर्थैः = अनर्थकरैः व्यसनैः = मदिरापानद्यूतादिभिः विहीनः = रहितः

यः=न हीनः=न निन्द्यः इति अहीनः, अहीनम्=अनिन्द्यं=प्रशंसनीयमित्यर्थः गच्छतीति अहीनगुः=एवन्नाम आसीत्, सः=पूर्वोक्तः देवानीकपुत्रः समग्रां=सम्पूर्णां गां=पृथिवीं शशास=पालयामास।

समासः—न हीने अहीने बाहुद्रविणे च यस्य सः अहीनबाहुद्रविणः। हीनानां संसर्गः हीनसंसर्गस्तस्मात् पराङ्मुखत्वं तस्मात् हीनसंसर्गपराङ्मुखत्वात्। न अर्थः येषां तानि अनर्थानि, तैः अनर्थैः।

हिन्दी—शक्तिशाली भुजा वाला और अच्छे धन एवं पराक्रमवाला अहीनगु नामक देवानीक का पुत्र था, जो कि सदा नीच लोगों के संबन्ध से दूर रहता था, और जो भी अनर्थकारी मदिरापान जुआ खेलना आदि दुर्व्यसन थे इनसे जवानी में ही दूर रहकर वह सारे भूमण्डल पर शासन करता था॥ १४॥

गुरोः स चानन्तरमन्तरज्ञः पुंसां पुमानाद्य इवावतीर्णः।
उपक्रमैरस्खलितैश्चतुर्भिश्चतुर्दिगीशश्चतुरो बभूव॥ १५॥

पुंसामन्तरज्ञो विशेषज्ञश्चतुरो निपुणः सोऽहीनगुश्च गुरोः पितुरनन्तरम्। अवतीर्णो भुवं प्राप्त आद्यः पुमान्विष्णुरिव। अस्खलितैरप्रतिहतैश्चतुर्भिरुपक्रमैः सामाद्युपायैः। 'सामादिभिरुपक्रमैः' इति मनुः। चतुर्दिगीशश्चतसृणां दिशामीशो बभूव॥

अन्वयः—पुंसाम् अन्तरज्ञः चतुरः सः गुरोः अनन्तरम् अवतीर्णः आद्यः पुमान् इव अस्खलितैः चतुर्भिः उपक्रमैः चतुर्दिगीशः बभूव।

व्याख्या—पुंसां=नराणाम् अन्तरम्=अभ्यन्तरं जानाति=वेत्तीति अन्तरज्ञः=विज्ञः इत्यर्थः। चतुरः=दक्षः सर्वकर्मकुशल इत्यर्थः, सः=देवानीकपुत्रोऽहीनगुः, गुरोः=पितुः अनन्तरं=पश्चात् अवतीर्णः=गृहीतावतारः आदौ भव आद्यः पुमान्=पुराणपुरुषः विष्णुः इव=यथा न स्खलिताः=न प्रतिहताः, इति अस्खलितास्तैः अस्खलितैः चतुर्भिः=चतुःसंख्याकैः उपक्रम्यन्ते इति उपक्रमास्तैः उपक्रमैः=सामदानाद्युपायैः चतसृणां दिशां=काष्ठानाम् ईशः=स्वामीति चतुर्दिगीशः बभूव=जातः।

समासः—अन्तरस्य ज्ञः अन्तरज्ञः, न स्खलिताः अस्खलितास्तैः अस्खलितैः, चतस्रश्च ताः दिशः चतुर्दिशस्तासाम् ईशः इति चतुर्दिगीशः।

हिन्दी—मनुष्यों के मन की बाते जानने वाला, तथा कार्य करने में कुशल (चतुर) वह अहीनगु, पिता के बाद राजा होकर सफलता पूर्वक उन साम दान दण्ड भेदरूपी चारों उपायों से, अवतार लेनेवाले आदि पुरुष विष्णु की तरह चारों दिशाओं का स्वामी हो गया। जो उपाय कभी व्यर्थ नहीं हुये थे॥ १५॥

तस्मिन्प्रयाते परलोकयात्रां जेतर्यरीणां तनयं तदीयम्।
उच्चैःशिरस्त्वाज्जितपारियात्रं लक्ष्मीः सिषेवे किल पारियात्रम्॥ १६॥

अरीणां जेतरि तस्मिन्नहीनगौ परलोकयात्रां प्रयाते प्राप्ते सति। उच्चैःशिरस्त्वादुन्नतशिरस्कत्वाज्जितः पारियात्रः कुलशैलविशेषो येन तं पारियात्रं पारियात्राख्यं तदीयं तनयं लक्ष्मी राज्यलक्ष्मीः सिषेवे किल ।।

अन्वयः—अरीणां जेतरि तस्मिन् परलोकयात्रां प्रयाते सति उच्चैःशिरस्त्वात् जितपारियात्रं पारियात्रं तदीयं तनयं लक्ष्मीः सिषेवे किल।

व्याख्या—इयर्ति = विरोधं गच्छतीति अरिः। अरीणां = शत्रूणां जयतीति जेता तस्मिन् जेतरि = विजयिनि तस्मिन् = अहीनगौ राजनि परश्चासौ लोकः परलोकः, परलोकस्य = स्वर्गलोकस्य यात्रा = गमनमिति परलोकयात्रा तां परलोकयात्रां प्रयाते = प्राप्ते सति उच्चैः = उन्नतं शिरः = मस्तकं यस्य सः उच्चैःशिरास्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् उच्चैःशिरस्त्वात् परितः = सर्वतः यात्रया = गमनेन दृश्यते स पारियात्रः। जितः पारियात्रः = एतन्नामा कुलपर्वतः येन स जितपारियात्रस्तं जितपारियात्रं तस्य = अहीनगोः अयं तदीयस्तं तदीयं तनयं = पुत्रं पारियात्रम् = एतन्नामानं लक्ष्मीः = राज्यलक्ष्मीः सिषेवे = सेवितवती किलेतिह्ये।

समासः—परलोकस्य यात्रा, परलोकयात्रा तां परलोकयात्राम्। उच्चैः शिरः यस्य सः उच्चैःशिराः तस्य भावस्तत्त्वम् तस्मात् उच्चैःशिरस्त्वात्। जितः पारियात्रो येन स जितपारियात्रस्तं जितपारियात्रम्।

हिन्दी—शत्रुओं के विजेता राजा अहीनगु के स्वर्ग चले जाने पर, राज्यलक्ष्मी, अहीनगु के पुत्र उस पारियात्र नामक राजा की सेवा करने लगी, जिसने कि अपने मस्तक की ऊँचाई से पारियात्र नामक कुलपर्वत को जीत लिया था।। १६।।

तस्याभवत्सूनुरुदारशीलः शिलः शिलापट्टविशालवक्षाः।
जितारिपक्षोऽपि शिलीमुखैर्यः शालीनतामव्रजदीड्यमानः॥ १७॥

तस्य पारियात्रस्योदारशीलो महावृत्तः। 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः। शिलापट्टविशालवक्षाः शिलः शिलाख्यः सूनुरभवत्। यः सूनुः शिलीमुखैर्बाणैः। 'अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमरः। जितारिपक्षोऽपीड्यमानः स्तूयमानः सन्। शालीनतामधृष्टतां लज्जामव्रजदगच्छत्। 'स्यादधृष्टे तु शालीनः' इत्यमरः। 'शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः' इति निपातः।।

अन्वयः—तस्य उदारशीलः शिलापट्टविशालवक्षाः शिलः सूनुः अभवत्। यः, शिलीमुखैः जितारिपक्षः अपि, ईड्यमानः सन् शालीनताम् अव्रजत्।

व्याख्या—तस्य = राज्ञः पारियात्रस्य उदारं = प्रशस्तं शीलं = वृत्तं स्वभावश्च यस्य सः उदारशीलः "शीलं स्वभावे सद्वृत्ते" इत्यमरः। शिलायाः = पाषाणस्य पट्टः इति शिलापट्टः, शिलापट्टः = शिलासनम् इव विशालं = पृथुलं वक्षः = वक्षस्थलं यस्य स शिलापट्टविशालवक्षाः शिलः = शिलनामा सूनुः = पुत्रः अभवत् = जातः। यः = सूनुः शिली = शल्यं मुखे = आनने

येषान्ते शिलीमुखास्तैः शिलीमुखैः=बाणैः जितः=विजितः अरीणां=शत्रूणां पक्षः=वर्गः येन स जितारिपक्षः अपि ईड्यते असौ ईड्यमानः=स्तूयमानः सन् शालाप्रवेशमर्हतीति शालीनः=सलज्जः। तस्य भावः शालीनता तां शालीनताम्=अधृष्टतां सलज्जतामित्यर्थः अव्रजद्=अगच्छत्।

समासः—उदारं शीलं यस्य सः उदारशीलः। शिलापट्टवत् विशालं वक्षो यस्य स शिलापट्टविशालवक्षाः। जितः अरीणां पक्षः येन स जितारिपक्षः। शिली मुखेषु येषां ते शिलीमुखास्तैः शिलीमुखैः।

हिन्दी—उस राजा पारियात्र को बड़ा ही शीलवान् उदार एवं चट्टान के समान विशाल (चौड़ी) छाती वाला शिल नामक पुत्र हुआ, जिसने कि पैने बाणों से शत्रुपक्ष को जीत लिया था, फिर भी अपनी प्रशंसा होने पर लज्जित रहता था॥ १७॥

तमात्मसंपन्नमनिन्दितात्मा कृत्वा युवानं युवराजमेव।
सुखानि सोऽभुङ्क्त सुखोपरोधि वृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम्॥ १८॥

अनिन्दितात्माऽगर्हितस्वभावः स पारियात्र आत्मसंपन्नं बुद्धिसंपन्नम्। 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च' इत्युभयत्राप्यमरः। युवानं तं शिलं युवराजं कृत्वैव सुखान्यभुङ्क्त। न त्वकृत्वेत्येवकारार्थः। किमर्थं युवराजशब्दकरणमित्याशङ्क्यान्यथा सुखोपभोगो दुर्लभ इत्याह—सुखोपरोधीति। हि यस्माद्राज्ञां वृत्तं प्रजापालनादिरूपं सुखोपरोधि बहुलत्वात्सुखप्रतिबन्धकम्। अत एवोपरुद्धवृत्तम्। कारादिबद्धसदृशमित्यर्थः। उपरुद्धस्य स्वयमूढभारस्य च सुखं नास्तीति भावः।

अन्वयः—अनिन्दितात्मा सः आत्मसम्पन्नं युवानं तं युवराजं कृत्वा एव सुखानि अभुङ्क्त। हि राज्ञां वृत्तं सुखोपरोधि उपरुद्धवृत्तम्।

व्याख्या—न निन्दितः इति अनिन्दितः, अनिन्दितः=अविगर्हितः आत्मा=स्वभावो यस्य सः अनिन्दितात्मा, शुद्धाचरण इत्यर्थः सः=पारियात्रः आत्मना=स्वभावेन-बुद्ध्या वा सम्पन्नः=युक्तस्तम् आत्मसम्पन्नम् "आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्मवर्ष्म च" इत्यमरः। युवानं=तरुणं तं=शिलनामकं पुत्रं युवा चासौ राजा च युवराजस्तं युवराजं=युवराजशब्दभाजं-राजयोग्यकार्यकारिणमित्यर्थः कृत्वा=विधायैव सुखानि=आनन्दान् अभुङ्क्त=बुभुजे। पुत्रं युवराजमकृत्वा सुखोपभोगः सर्वथा दुर्लभ एवेत्याह-हि=यस्मात् कारणात् राज्ञां=भूपालानां वृत्तं प्रजापालनरूपं सुखमुपरुणद्धि तच्छीलमिति सुखोपरोधि=आनन्दप्रतिबन्धकम्, अत एव उपरुद्धं=प्रतिबद्धं च वृत्तं यस्य तत् उपरुद्धवृत्तमस्ति, इति शेषः। प्रजापालनभारसंलग्नस्य कदापि सुखं न भवतीति भावः।

समासः—अनिन्दितः आत्मा यस्य सः अनिन्दितात्मा। आत्मना संपन्नः आत्मसम्पन्नस्तम् आत्मसम्पन्नम्। युवा चासौ राजा युवराजस्तं युवराजम्। सुखस्य उपरोधि सुखोपरोधि। उपरुद्धम् वृत्तं यस्य तद् उपरुद्धवृत्तम्।

हिन्दी—पवित्र चरित्र वाले राजा पारियात्र ने बुद्धि एवं सदाचार वाले अपने जवान बेटे शिल को युवराज बनाकर ही सुखों का उपभोग किया (बिना युवराज बनाए नहीं) इसलिये कि राजाओं का प्रजा की देख रेख करना अधिक काम होने के कारण सुख के उपभोग का प्रतिबन्धक होता है। अर्थात् जब राजा स्वयं राज्य के काम-काज को सम्भालेगा तो उसे सुख कैसे होगा ॥ १८ ॥

तं रागबन्धिष्ववितृप्तमेव भोगेषु सौभाग्यविशेषभोग्यम् ।
विलासिनीनामरतिक्षमापि जरा वृथा मत्सरिणी जहार ॥ १९ ॥

रागं बध्नन्तीति रागबन्धिनः । रागप्रवर्तका इत्यर्थः । तेषु भोगेषु विषयेष्ववितृप्तमेव सन्तम् । किंच विलासिनीनां भोक्त्रीणां सौभाग्यविशेषेण सौन्दर्यातिशयेन हेतुना भोग्यं भोगार्हम् । 'चजोः कु घिण्यतोः' इति कुत्वम् । तं पारियात्रं रतिक्षमा न भवतीत्यरतिक्षमापि अत एव वृथा मत्सरिणी । रतिक्षमासु विलासिनीष्वित्यर्थः । जरा जहार वशीचकार ॥

अन्वयः—रागबन्धिषु भोगेषु अवितृप्तम् एव किंच विलासिनीनां सौभाग्यविशेषभोग्यं तम् अरतिक्षमा अपि 'अत एव' वृथा मत्सरिणी जरा जहार ।

व्याख्या—रागम् = अनुरागं बध्नन्ति = वर्धयन्तीति रागबन्धिनस्तेषु रागबन्धिषु = अनुरागप्रवर्तकेष्वित्यर्थः । भोगेषु = विषयजसुखेषु न वितृप्तः अवितृप्तस्तम् अवितृप्तम् = असन्तुष्टम् एव सन्तं किञ्च विलासोऽस्ति यासां ताः विलासिन्यस्तासां विलासिनीनां = भोक्त्रीणां सुभगस्य भावः कर्म वा सौभाग्यं सौभाग्यस्य = सौन्दर्यस्य विशेषः = अतिशयस्तेन भोग्यः = भोक्तुं योग्यः तं सौभाग्यविशेषभोग्यं तं = पारियात्रं राजानं रतौ = सम्भोगे क्षमा = समर्था इति रतिक्षमा, सा न भवतीति अरतिक्षमा = सम्भोगसुखानर्हा अपि अत एव माद्यति परदुःखे इति मत्सरः अस्याः अस्तीति मत्सरिणी = अन्यशुभद्वेषवती सम्भोगयोग्यासु विलासिनीष्वित्यर्थः । जीर्यतेऽनया सा जरा = विस्रसा "विस्रसा जरा" इत्यमरः । वृद्धावस्था, इत्यर्थः जहार = वशीचकार ।

समासः—रागस्य बन्धिनस्तेषु रागबन्धिषु । सौभाग्यस्य विशेषः सौभाग्यविशेषस्तेन भोग्य-स्तं सौभाग्यविशेषभोग्यम् । रतौ क्षमा रतिक्षमा न रतिक्षमा अरतिक्षमा ।

हिन्दी—अनुरागों (भोगतृष्णा) को बढ़ानेवाले, विषयभोग में जिसका मन अभी तृप्त ही न हुआ था, तथा अति सुन्दर होने कारण सुन्दरियों के भोगने के योग्य उस राजा पारियात्र को, उस वृद्धावस्था ने अपने वश में कर लिया (आ घेरा), जो कि स्वयं वृद्धावस्था (नायिका) सम्भोग करने में असमर्थ होती हुई भी व्यर्थ में दूसरों से ईर्ष्या करती है ॥ १९ ॥

उन्नाभ इत्युद्गतनामधेयस्तस्यायथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः ।
सुतोऽभवत्पङ्कजनाभकल्पः कृत्स्नस्य नाभिर्नृपमण्डलस्य ॥ २० ॥

तस्य शिलाख्यस्योन्नाभ इत्युद्गतनामधेयः प्रसिद्धनामायथार्थं यथा तथोन्नतं नाभिरन्ध्रं यस्य सः । गम्भीरनाभिरित्यर्थः । तदुक्तम्—'स्वरः सत्त्वं च नाभिश्च गाम्भीर्यं त्रिषु शस्यते' । पङ्क-

जनाभकल्पो विष्णुसदृशः कृत्स्नस्य नृपमण्डलस्य नाभिः प्रधानम्। 'नाभिः प्रधाने कस्तूरीमदेऽपि क्वचिदीरितः' इति विश्वः। सुतोऽभवत्। 'अच्प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः' इत्यत्राजिति योगविभागादुन्नाभपद्मनाभादयः सिद्धाः॥

अन्वयः—तस्य उन्नाभ इति उद्गतनामधेयः आयथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः पङ्कजनाभकल्पः कृत्स्नस्य नृपमण्डलस्य नाभिः सुतः अभवत्।

व्याख्या—तस्य = राज्ञः शिलनामकस्य उन्नता आभा = कान्तिः तेजो यस्य सः उन्नाभः। उन्नतः = गभीरः नाभिर्यस्य सः उन्नाभः, इति उद्गतं = प्रसिद्धं नामधेयम् = नाम यस्य सः इत्युद्गतनामधेयः, नाभेः = प्राण्यंगविशेषस्य रन्ध्रं = छिद्रमिति नाभिरन्ध्रम् अन्वर्थं यथा तथा अर्थमनतिक्रम्य यथार्थं आ = समन्तात् यथार्थमिति आयथार्थं = उन्नतं = गम्भीरं नाभिरन्ध्रं यस्य स आयथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः सर्वतः गम्भीरनाभिरन्ध्र इत्यर्थः पंकात् जातं पंकजं = पद्मं नाभौ यस्य स पंकजनाभः, पंकजनाभेन कल्पः = सदृशः इति पङ्कजनाभकल्पः = विष्णुसमानः कृत्स्नस्य = समग्रस्य = नृपाणां = भूपालानां मण्डलं = द्वादशराजकं तस्य नृपमण्डलस्य नाभिः = प्रधानम्। "नाभिर्मुख्यनृपे चक्रमध्यक्षत्रिययोः पुमान्। द्वयोः प्राणिप्रतीके स्यात् स्त्रियां कस्तूरिकामदे" इति मेदिनी। सुतः = पुत्रः अभवत् = अभूत्।

समासः—उन्नतः नाभिर्यस्य सः उन्नाभः। उन्नता आभा यस्य सः इति वा उन्नाभः। उद्गतं नामधेयं यस्य स उद्गतनामधेयः। आयथार्थम् उन्नतं नाभेः रन्ध्रं यस्य स आयथार्थोन्नतनाभिरन्ध्रः। पङ्कजं नाभौ यस्य स पंकजनाभस्तेन ईषद् न्यूनः इति पंकजनाभकल्पः। नृपाणां मण्डलं तस्य नृपमण्डलस्य।

हिन्दी—उन्नाभ, यह प्रसिद्ध नाम वाला, और यथार्थ से गहरी नाभि वाला, पद्मनाभ-विष्णु के समान तथा सारे भूमण्डल के राजाओं में प्रधान, ऐसा पुत्र शिल राजा को हुआ। अर्थात्—उन्नाभ = गहरीनाभि वाला, जैसा नाम था, यह यथार्थ का भाव है॥ २०॥

ततः परं वज्रधरप्रभावस्तदात्मजः संयति वज्रघोषः।
बभूव वज्राकरभूषणायाः पतिः पृथिव्याः किल वज्रणाभः॥ २१॥

ततः परं वज्रधरप्रभाव इन्द्रतेजाः संयति संग्रामे वज्रघोषोऽशनितुल्यध्वनिर्वज्रणाभो नाम तस्योन्नाभस्यात्मजो वज्राणां हीरकाणामाकराः खनय एव भूषणानि यस्यास्तस्याः पृथिव्याः पतिर्बभूव किल खलु। 'वज्रं त्वस्त्री कुलिशशस्त्रयोः। मणिवेधे रत्नभेदेऽप्यशनावासनान्तरे॥' इति केशवः॥

अन्वयः—ततः परम् वज्रधरप्रभावः संयति वज्रघोषः तदात्मजः वज्रणाभः वज्राकरभूषणायाः पृथिव्याः पतिः बभूव किल।

व्याख्या—ततः परम् = उन्नाभानन्तरम् धरतीति धरः, वज्रस्य = अशनेः धरः = धारकः इति वज्रधरः = इन्द्रः, तद्वत् प्रभावः = प्रतापो यस्य स वज्रधरप्रभावः = इन्द्रसमानतेजस्वीत्यर्थः। संयति = युद्धे वज्रवत् = अशनिवत् घोषः = ध्वनिर्यस्य स वज्रघोषः तस्य = उन्नाभस्य

आत्मजः = पुत्रः इति तदात्मजः वज्रं = कुलिशमिव नाभिर्यस्य स वज्रणाभः = एतन्नामा वज्राणां = हीरकाणाम् आकराः = खनयः = उत्पत्तिस्थानानि एव भूषणानि = आभरणानि यस्याः सा वज्राकरभूषणा तस्याः वज्राकरभूषणायाः पृथिव्याः = धरित्र्याः पतिः = स्वामी, राजा बभूव = जातः किल = खलु। "वज्रं दम्भोलौ हीरकेऽप्यस्त्री" इति कोषः।

समासः—वज्रस्य धरः वज्रधरस्तस्य प्रभावः इव प्रभावो यस्य स वज्रधरप्रभावः। तस्य आत्मजः तदात्मजः। वज्र इव घोषो यस्य स वज्रघोषः। वज्राणामाकराः एव भूषणानि यस्याः सा तस्याः वज्राकरभूषणायाः। वज्र इव नाभिः यस्य स वज्रणाभः।

हिन्दी—राजा उन्नाभ के पश्चात् उनका पुत्र वज्रणाभ, हीरों की खान रूपी भूषणवाली पृथिवी का राजा हुआ। जो कि वज्रधारी इन्द्र के समान प्रभाव वाला और युद्ध में वज्र के समान गरजने वाला बिजली की कड़क के समान गर्जन करने वाला था॥ २१॥

तस्मिन्गते द्यां सुकृतोपलब्धां तत्संभवं शङ्खणमर्णवान्ता।
उत्खातशत्रुं वसुधोपतस्थे रत्नोपहारैरुदितैः खनिभ्यः॥ २२॥

तस्मिन्वज्रणाभे सुकृतोपलब्धां सुधर्मार्जितां द्यां स्वर्गं गते सति। उत्खातशत्रुमुद्धृतशत्रुं शङ्खणं नाम तत्संभवं तदात्मजमर्णवान्ता वसुधा खनिभ्य आकरेभ्य उदितैरुत्पन्नै रत्नोपहारैरुत्कृष्ट-वस्तुसमर्पणैरुपतस्थे सिषेवे। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते" इति भरतविश्वौ।

अन्वयः—तस्मिन् सुकृतोपलब्धां द्यां गते सति उत्खातशत्रुं शङ्खणम् तत्सम्भवं अर्णवान्ता वसुधा खनिभ्यः उदितैः रत्नोपहारैः उपतस्थे।

व्याख्या—तस्मिन् = वज्रणाभे सुकृतैः = पुण्यैः उपलब्धा = अर्जिता प्राप्ता तां सुकृतोपलब्धां द्यां = स्वर्गलोकं गते = प्राप्ते सति उत्खाताः = उत्पाटिताः = उद्धृताः शत्रवः = अरयो येन सः उत्खातशत्रुस्तम् उत्खातशत्रुं शङ्खणं = शंखणनामानं तस्मात् = वज्रणाभात् = सम्भवः = उत्पन्नस्तं तत्संभवम् = वज्रणाभपुत्रम् अर्णवः = समुद्रः अन्तः अवसानं यस्याः सा अर्णवान्ता = सागरा-वसाना वसूनि धारयतीति वसुधा = पृथिवी खनिभ्यः = आकरेभ्यः उदितैः = उत्पन्नैः रत्नानां = हीरकाद्युत्कृष्टवस्तूनाम् उपहाराः = समर्पणानि तैः रत्नोपहारैः उपतस्थे = सिषेवे, समुपस्थिते-त्यर्थः। स राजाभूदित्यर्थः।

समासः—सुकृतैः उपलब्धा सुकृतोपलब्धा तां सुकृतोपलब्धाम्। तस्मात् सम्भवस्तं तत्स-म्भवम्। उत्खाताः शत्रवो येन स तम् उत्खातशत्रुम्। रत्नानामुपहारास्तैः।

हिन्दी—राजा वज्रणाभ के अपने शुभकर्म (पुण्य) से अर्जन (प्राप्त) किये स्वर्गलोक में चले जाने पर शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले उनके शंखण नामक पुत्र को समुद्रपर्यन्त (सारी) पृथिवी खान से निकले रत्नादि श्रेष्ठ वस्तुओं के उपहार (भेंट) लेकर उपस्थित हुई। अर्थात् उसने रत्नपूर्ण सारी पृथिवी का शासन किया॥ २२॥

तस्यावसाने हरिदश्वधामा पित्र्यं प्रपेदे पदमश्विरूपः ।
वेलातटेषूषितसैनिकाश्वं पुराविदो यं व्युषिताश्वमाहुः ॥ २३ ॥

तस्य शङ्खणस्यावसानेऽन्ते हरिदश्वधामा सूर्यतेजाः । अश्विनोरिव रूपमस्येत्यश्विरूपोऽतिसुन्दरः । तत्पुत्र इति शेषः । पित्र्यमिति संबन्धिपदसामर्थ्यात् । पित्र्यं पदं प्रपेदे । वेलातटेषूषिता निविष्टाः सैनिका अश्वाश्च यस्य तम् । अन्वर्थनामानमित्यर्थः । यं पुत्रं पुराविदो वृद्धा व्युषिताश्वमाहुः ।

अन्वयः—तस्य अवसाने हरिदश्वधामा अश्विरूपः "तत्पुत्रः" पित्र्यं पदं प्रपेदे । वेलातटेषु उषितसैनिकाश्वं यं पुराविदः व्युषिताश्वम् आहुः ।

व्याख्या—तस्य=राज्ञः शंखणस्य अवसाने=अन्ते, शंखणे मृते सतीत्यर्थः । हरितः= हरिद्वर्णाः अश्वाः यस्य स हरिदश्वः, तस्य धाम इव धाम=तेजो यस्य स हरिदश्वधामा= सूर्यकान्तिः प्रशस्ताः अश्वाः सन्ति ययोः अश्विन्यां जातौ वा, अश्वः जनकत्वेनास्ति ययोर्वा अश्विनौ=स्ववैद्यौ, तयोः रूपमस्ति यस्य सः अश्विरूपः=अश्विनीकुमारवत् सुन्दरः इत्यर्थः । शंखणपुत्रः, पितुरिदं पित्र्यं=पितृसम्बन्धि तत् पदं=स्थानं राज्यासनमित्यर्थः । प्रपेदे=प्राप वेलायाः सागरतटस्य तटानि=तीराणि तेषु वेलातटेषु उषिताः=निविष्टाः सैनिकाः=सैन्यानि अश्वाः=तुरगाश्च यस्य स तम् उषितसैनिकाश्वम् । अन्वर्थनामकमित्यर्थः । यं=पुत्रं पुरा= पुराणं विदन्ति=जानन्ति ते पुराविदः इतिहासज्ञाः विशेषेण उषिताः अश्वाः यस्य स व्युषिताश्वस्तं व्युषिताश्वं=व्युषिताश्वनामानम् आहुः=जगदुः ।

समासः—हरितः अश्वाः यस्य स हरिदश्वः तद्वत् धाम यस्य स हरिदश्वधामा । अश्विनोः इव रूपमस्य सः अश्विरूपः । वेलायाः तटानि तेषु वेलातटेषु उषिताः सैनिकाः अश्वाश्च यस्य स तम् उषितसैनिकाश्वम् । पुरा विदन्तीति पुराविदः ।

हिन्दी—राजा शंखण के स्वर्ग जाने पर सूर्य के समान तेजस्वी और अश्विनीकुमार के समान अतिसुन्दर उनके पुत्र ने पिता के राज्यासन को प्राप्त किया । जिसने विजय-यात्रा पूरी करके सागर के तटों पर अपने सैनिक और घोड़ों को विश्राम कराया था, अतः इतिहास के ज्ञाताओं ने उसका ठीक नाम व्युषिताश्व कहा था । व्युषिताश्व नाम रखा था ॥ २३ ॥

आराध्य विश्वेश्वरमीश्वरेण तेन क्षितेर्विश्वसहो विजज्ञे ।
पातुं सहो विश्वसखः समग्रां विश्वंभरामात्मजमूर्तिरात्मा ॥ २४ ॥

तेन क्षितेरीश्वरेण व्युषिताश्वेन विश्वेश्वरं काशीपतिमाराध्योपास्य विश्वसहो नाम विश्वसखः समग्रां सर्वां विश्वंभरां भुवं पातुं रक्षितुं सहः क्षमः । पचाद्यच् । आत्मजमूर्तिः पुत्ररूप्यात्मा स्वयमेव । 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेः । विजज्ञे सुषुवे । विपूर्वो जनिर्गर्भविमोचने वर्तते । यथाह भगवान्पाणिनिः—'समां समां विजायते' इति ।

अन्वयः—तेन क्षितेः ईश्वरेण विश्वेश्वरम् आराध्य विश्वसहः विश्वसखः समग्रां विश्वम्भरां पातुं सहः आत्ममूर्तिः आत्मा विजज्ञे ।

व्याख्या—तेन = प्रसिद्धेन क्षितेः = पृथिव्याः ईश्वरेण = स्वामिना व्युषिताश्वेन विश्वस्य ईश्वरः तं विश्वेश्वरं = विश्वनाथं = वाराणसीपतिम् आराध्य = उपास्य सहते इति सहः विश्वस्य सहः विश्वसहः नाम समानं ख्यायते जनैरिति सखा, विश्वस्य = जगतः सखा = मित्रमिति विश्वसखः समग्राम् = अखिलां विश्वं = संसारं बिभर्ति = धारयति पालयति चेति विश्वंभरा तां विश्वम्भरां वसुन्धरां पातुं = रक्षितुं सहः क्षमः समर्थः । आत्मनः = स्वदेहात् जातः आत्मजः = पुत्रः एव मूर्तिः = स्वरूपं यस्य सः आत्मजमूर्तिः = पुत्ररूपी = अतति = सततं गच्छतीति आत्मा = स्वयम् एव विजज्ञे = जातः । उत्पन्नः इत्यर्थः । "आत्मा वै जायते पुत्रः आत्मा वै पुत्रनामासी"ति श्रुतेः ।

समासः—विश्वस्य ईश्वरः विश्वेश्वरस्तं विश्वेश्वरम् । विश्वस्य सखा विश्वसखः । विश्वस्य सहः विश्वसहः । विश्वस्य भरा विश्वम्भरा तां विश्वम्भराम् । आत्मज एव मूर्तिः यस्य सः आत्मजमूर्तिः ।

हिन्दी—उस पृथिवी पति राजा व्युषिताश्व ने, काशी के राजा भगवान् विश्वेश्वर की आराधना करके विश्वसह (विश्व को सहन कर सकने वाला) नाम का पुत्र रूपी (पुत्र रूप से) अपने आप को पैदा किया। जो कि संसार का मित्र (प्रिय) और सारी पृथिवी का शासन करने के लिये समर्थ था। अर्थात् व्युषिताश्व ने विश्वनाथ की कृपा से विश्वसह पुत्र पाया, और वह भूमण्डल का शासक हुआ ॥ २४ ॥

अंशे हिरण्याक्षरिपोः स जाते हिरण्यनाभे तनये नयज्ञः ।
द्विषामसह्यः सुतरां तरूणां हिरण्यरेता इव सानिलोऽभूत् ॥ २५ ॥

नयज्ञो नीतिज्ञः स विश्वसहः । हिरण्याक्षरिपोर्विष्णोरंशे हिरण्यनाभे नाभितनये जाते सति । तरूणां सानिलो हिरण्यरेता हुतभुगिव द्विषां सुतरामसह्योऽभूत् ॥

अन्वयः—नयज्ञः सः हिरण्याक्षरिपोः अंशे हिरण्यनाभे तनये जाते सति तरूणां सानिलः हिरण्यरेता इव द्विषां सुतराम् असह्यः अभूत् ।

व्याख्या—नयं = नीतिं जानातीति नयज्ञः = नीतिवित् सः = विश्वसहः, हिनोति, हीयते वा हिरण्यं = सुवर्णं, हिरण्यवत् पीते अक्षिणी यस्य स हिरण्याक्षः = दैत्यविशेषः हिरण्यकशिपुभ्राता तस्य रिपुः = संहारकः = विष्णुस्तस्य हिरण्याक्षरिपोः अंशे = हिरण्यं नाभौ यस्य स हिरण्यनाभस्तस्मिन् हिरण्यनाभे = एतन्नाम्नि तनये = पुत्रे = विश्वसहसुते, इत्यर्थः । जाते = उत्पन्ने सति तरूणां = वृक्षाणां अनिलेन = वायुना सहितः सानिलः हिरण्यं रेतोऽस्यासौ हिरण्यरेताः = अग्निः इव = यथा द्विषां = शत्रूणां सोढुं योग्यः सह्यः न सह्यः असह्यः = सोढुमशक्यः अभूत् ।

समासः—हिरण्यवत् अक्षिणी यस्य स हिरण्याक्षः, हिरण्याक्षस्य रिपुस्तस्य हिरण्याक्षरिपोः । हिरण्यं नाभौ यस्य स तस्मिन् हिरण्यनाभे । हिरण्यं रेतो यस्य स हिरण्यरेताः । अनिलेन सहितः सानिलः । न सह्यः असह्यः ।

हिन्दी—नीतिशास्त्र के वेत्ता उस विश्वसह राजा को हिरण्याक्ष का संहार करने वाले विष्णु के अंश (अंशावतार) हिरण्यनाभ नामक पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर राजा विश्वसह शत्रुओं के लिये उसी प्रकार असह्य हो गये (भयंकर हो गये) जिस प्रकार वायु को सहायक पा कर वनवृक्षों के लिये अग्नि भयंकर हो उठता है ॥ २५ ॥

पिता पितॄणामनृणस्तमन्ते वयस्यनन्तानि सुखानि लिप्सुः ।
राजानमाजानुविलम्बिबाहुं कृत्वा कृती वल्कलवान्बभूव ॥ २६ ॥

पितॄणामनृणः । निवृत्तपितृऋण इत्यर्थः । 'प्रजया पितृभ्यः' इति श्रुतेः । अत एव कृती । कृतकृत्य इत्यर्थः । पिता विश्वसहोऽन्ते वयसि वार्धकेऽनन्तान्यविनाशानि सुखानि लिप्सुः । मुमुक्षुरित्यर्थः । आजानुविलम्बिबाहुं दीर्घबाहुम् । भाग्यसंपन्नमिति भावः । तं हिरण्यनाभं राजानं कृत्वा वल्कलवान्बभूव । वनं गत इत्यर्थः ॥

अन्वयः—पितॄणाम् अनृणः "अतएव" कृती पिता अन्ते वयसि अनन्तानि, सुखानि लिप्सुः आजानुविलम्बिबाहुं तं राजानं कृत्वा वल्कलवान् बभूव ।

व्याख्या—पितॄणां = पितृलोकगतानाम् नास्ति ऋणं = पुत्रानुत्पादनरूपं यस्य सः अनृणः = मुक्तपितृऋण इत्यर्थः । अत एव कृतमनेनेति कृती = कृतकृत्यः पिता = विश्वसहः अन्ते = अन्तिमे वयसि = अवस्थायां वार्द्धक्ये न अन्तः = विनाशः येषां तानि अनन्तानि सुखानि लिप्सुः = लब्धुमिच्छुः मुमुक्षुरित्यर्थः । जानुनी अभिव्याप्य आजानु = जानुपर्यन्तं विलम्बिनौ = दीर्घौ बाहू = भुजौ यस्य स तम् आजानुविलम्बिबाहुं भाग्यवन्तमित्यर्थः । तं = हिरण्यनाभं राजानं = भूपालं कृत्वा = विधाय, राजसिंहासनेऽभिषिच्येत्यर्थः । वल्कलानि = वृक्षत्वचः सन्त्यस्येति वल्कलवान् = वल्कलधारी बभूव = जातः । वल्कलं परिधाय तपोवनं गत इत्यर्थः ।

समासः—जानुनी अभिव्याप्य आजानु विलम्बिनौ बाहू यस्य सः आजानुविलम्बिबाहुस्तम् आजानुविलम्बिबाहुम् । न ऋणं यस्य सः अनृणः । न अन्तः येषां तानि अनन्तानि ।

हिन्दी—अब राजा विश्वसह पितरों के ऋण से उद्धार पा गये (उऋण हो गये) अत एव कृतकृत्य थे । (संसार में कुछ कर्तव्य शेष न था) अतः वह पिता अन्तिम अवस्था बुढ़ौती में कभी न नष्ट होनेवाले सुखों को प्राप्त करने के इच्छुक (मोक्षप्राप्ति की इच्छा से) हो अपने उस पुत्र को राजा बनाकर स्वयं वल्कल पहने हुए तपोवन चले गये, जिसके हाथ घुटनों तक लम्बे थे ॥ २६ ॥

कौसल्य इत्युत्तरकोसलानां पत्युः पतङ्गान्वयभूषणस्य ।
तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभून्नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः ॥ २७ ॥

उत्तरकोसलानां पत्युः पतङ्गान्वयभूषणस्य सूर्यवंशाभरणस्य सोमसुतः सोमं सुतवतः । यज्वन इत्यर्थः । 'सोमे सुञः' इति क्विप् । तस्य हिरण्यनाभस्य । द्वितीयः सोमश्चन्द्र इव । नेत्रोत्सवो नयनानन्दकरः कौसल्य इति प्रसिद्ध औरसो धर्मपत्नीजः सुतोऽभूत् ॥

अन्वयः—उत्तरकोसलानां पत्युः पतंगान्वयभूषणस्य सोमसुतः तस्य द्वितीयः सोमः इव नेत्रोत्सवः कौसल्य इति औरसः सुतः अभूत् ।

व्याख्या—उत्तरे च ते कोसलाः उत्तरकोसलास्तेषाम् उत्तरकोसलानाम् = अयोध्याप्रदेशानां पत्युः = स्वामिनः राज्ञः पतति = आकाशे गच्छतीति पतंगः । पतंगस्य = सूर्यस्य अन्वयः = वंशस्तस्य भूषणम् = आभरणं तस्य पतंगान्वयभूषणस्य "पतंगः पक्षिसूर्ययोः" इत्यमरः । सोमं सुतवानिति सोमसुत् तस्य सोमसुतः = यज्वनः तस्य = हिरण्यनाभस्य द्वितीयः = अपरः सोमः = चन्द्रः इव = यथा उत्सुवतीति उत्सवः । नेत्राणाम् = चक्षुषाम् उत्सवः = आनन्दप्रदः इति नेत्रोत्सवः कौ = पृथिव्यां सलति = उत्कर्षं गच्छतीति कौसलः = जनपदविशेषः तस्यायं कौसल्यः = इति नाम्ना प्रसिद्धः, उरसा निर्मितः स्वस्मात् स्वपाणिगृहीत्यां जनितः औरसः सुतः = पुत्रः अभूत् = जातः ।

समासः—उत्तरे च ते कोसलाः उत्तरकोसलास्तेषाम् उत्तरकोसलानाम् । पतंगस्यान्वयः पतंगान्वयस्तस्य भूषणं तस्य पतंगान्वयभूषणस्य । नेत्राणाम् उत्सवः नेत्रोत्सवः ।

हिन्दी—उत्तर कोसल के अधिपति (शासक) और सूर्यवंश के भूषण, सोमयाग करने वाले, उस राजा हिरण्यनाभ को कौसल्य नामक औरस पुत्र हुआ, जो कि सबके नेत्रों को आनन्द देने वाला ऐसा था मानो दूसरा चन्द्रमा हो ॥ २७ ॥

यशोभिराब्रह्मसभं प्रकाशः स ब्रह्मभूयं गतिमाजगाम ।
ब्रह्मिष्ठमाधाय निजेऽधिकारे ब्रह्मिष्ठमेव स्वतनुप्रसूतम् ॥ २८ ॥

आ ब्रह्मसभाया आब्रह्मसभं ब्रह्मसदनपर्यन्तम् । अभिविधावव्ययीभावः । यशोभिः प्रकाशः प्रसिद्धः स कौशल्योऽतिशयेन ब्रह्मवन्तं ब्रह्मिष्ठम् । ब्रह्मविदमित्यर्थः ब्रह्मशब्दान्मतुबन्तादिष्ठन्प्रत्यये 'विन्मतोर्लुक्' इति मतुपो लुक् । 'नस्तद्धिते' इति टिलोपः । ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मिष्ठाख्यं स्वतनुप्रसूतं स्वात्मजमेव निजे स्वकीयेऽधिकारे प्रजापालनकृत्य आधाय निधाय । ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वं तदेव गतिस्तामाजगाम । मुक्तोऽभूदित्यर्थः । 'स्याद्ब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वम्' इत्यमरः । भुवो भावे क्यप् ॥

अन्वयः—आब्रह्मसभं यशोभिः प्रकाशः सः ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मिष्ठम् स्वतनुप्रसूतम् एव निजे अधिकारे आधाय, ब्रह्मभूयं गतिम् आजगाम ।

व्याख्या—ब्रह्मणः सभा ब्रह्मसभम्, ब्रह्मसभम् आ इति आब्रह्मसभम् = आब्रह्मसदनम्, ब्रह्मलोकपर्यन्तमित्यर्थः । यशोभिः = कीर्तिभिः प्रकाशः = प्रसिद्धः सः = कौसल्यः ब्रह्म अस्ति अस्यासौ ब्रह्मवान् = ब्रह्मज्ञानी, अतिशयेन ब्रह्मवान् इति ब्रह्मिष्ठस्तं ब्रह्मिष्ठं = ब्रह्मविदम् ब्रह्मिष्ठं = ब्रह्मिष्ठनामानं स्वा चासौ तनुः इति स्वतनुः स्वतनोः = स्वदेहात् प्रसूतः = उत्पन्नस्तं स्वतनुप्रसूतं = स्वतनयमेव निजे = स्वकीये अधिकारे = प्रजाशासने रक्षणरूपे आधाय = संस्थाप्य, नियुज्येत्यर्थः । ब्रह्मणो भावः ब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वं तदेव गतिः = प्राप्तिस्तां मोक्षमित्यर्थः आजगाम = प्राप्तः । मोक्षं प्राप इत्यर्थः ।

समासः—ब्रह्मणः सभा ब्रह्मसभम् । आ ब्रह्मसभम् इति आब्रह्मसभम् । स्वा चासौ तनुरिति स्वतनुः, स्वतनोः सकाशात् प्रसूतस्तं स्वतनुप्रसूतम् ।

हिन्दी—ब्रह्मा की सभा तक (ब्रह्मलोक तक) जो अपनी कीर्ति से प्रसिद्ध था ऐसे राजा कौसल्य ने ब्रह्मवेत्ता और अपने शरीर से उत्पन्न ब्रह्मिष्ठ नामक अपने पुत्र को अपने राज्य में नियुक्त (राजतिलक) करके स्वयं ब्रह्मत्व को प्राप्त (मुक्त) हो गये ॥ २८ ॥

तस्मिन्कुलापीडनिभे विपीडं सम्यङ्महीं शासति शासनाङ्काम् ।
प्रजाश्चिरं सुप्रजसि प्रजेशे ननन्दुरानन्दजलाविलाक्ष्यः ॥ २९ ॥

कुलापीडनिभे कुलशेखरतुल्ये । "वैकक्षकं तु तत् । यत्तिर्यक् क्षिप्तमुरसि शिखास्वापीडशेखरौ ॥" इत्यमरः । सुप्रजसि सत्संतानवति । 'नित्यमसिच्प्रजामेधयोः' इत्यसिच्प्रत्ययः । तस्मिन्प्रजेशे प्रजेश्वरे ब्रह्मिष्ठे शासनाङ्कां शासनचिह्नां महीं विपीडं निर्बाधं यथा तथा सम्यक्शासति सति । आनन्दजलाविलाक्ष्य आनन्दबाष्पाकुलनेत्राः प्रजाश्चिरं ननन्दुः ॥

अन्वयः—कुलापीडनिभे सुप्रजसि तस्मिन् प्रजेशे शासनांकां महीं विपीडं "यथा स्यात्तथा" सम्यक् शासति सति आनन्दजलाविलाक्ष्यः प्रजाः चिरं ननन्दुः ।

व्याख्या—आपीडेन = निभः आपीडनिभः कुलस्य = वंशस्य आपीडनिभः इति कुलापीडनिभः तस्मिन् कुलापीडनिभे = वंशमुकुटमणिरूपे इत्यर्थः । सु = सती, योग्या प्रजा = पुत्रः यस्य स तस्मिन् सुप्रजसि = श्रेष्ठपुत्रवति तस्मिन् = ब्रह्मिष्ठे प्रजानां = जनानाम् ईशः = ईश्वरः राजा तस्मिन् प्रजेशे शासनं = पत्र राज्यम् अंकः = चिह्नं यस्याः सा तां शासनांकां, महीं = पृथिवीं विगता = निर्गता पीडा = बाधा यस्मिन् कर्मणि तत् विपीडं यथा स्यात्तथा शासति सति = पालयति सति आनन्दस्य = प्रहर्षस्य जलं = बाष्पं तेन आकुले = व्याप्ते अक्षिणी = नेत्रे यासां ताः आनन्दजलाविलाक्ष्यः = प्रहर्षजबाष्पपूरितनयनाः इत्यर्थः । प्रजाः = जनाः चिरं = बहुकालं ननन्दुः जहर्षुः । आनन्दं प्रापुरित्यर्थः ।

समासः—कुलस्य आपीडेन निभस्तस्मिन् कुलापीडनिभे । विगता पीडा यस्मिन् कर्मणि तत् विपीडम् । शासनस्य अंकः यस्याः सा तां शासनांकाम् । सु प्रजा यस्य स तस्मिन् सुप्रजसि । प्रजानामीशस्तस्मिन् प्रजेशे । आनन्दस्य जलमिति आनन्दजलं, तेन आविलानि अक्षीणि यासां ताः आनन्दजलाविलाक्ष्यः ।

हिन्दी—रघुके कुल के मुकुटमणि के समान सुन्दर सज्जन पुत्र वाले वह राजा ब्रह्मिष्ठ जब राज्य चिह्न से विभूषित पृथिवी का अच्छी प्रकार निष्कण्टक राज कर रहे थे, उस समय प्रजा बहुत काल तक सुख भोग रही थी और प्रजा की आँखें आनन्द के आंसुओं से भरी रहती थीं । अर्थात् इस समय प्रजा पूर्णसन्तुष्ट और सर्वथा प्रसन्न थी ॥ २९ ॥

पात्रीकृतात्मा गुरुसेवनेन स्पष्टाकृतिः पत्त्ररथेन्द्रकेतोः ।
तं पुत्रिणां पुष्करपत्रनेत्रः पुत्रः समारोपयदग्रसंख्याम् ॥ ३० ॥

गुरुसेवनेन पित्रादिशुश्रूषया पात्रीकृतात्मा योग्यीकृतात्मा। 'योग्यभाजनयोः पात्रम्' इत्यमरः। पत्त्ररथेन्द्रकेतोर्गरुडध्वजस्य स्पष्टाकृतिः स्पष्टवपुः। तत्समरूप इत्यर्थः। 'आकृतिः कथिता रूपे सामान्यवपुषोरपि' इति विश्वः। पुष्करपत्रनेत्रः पद्मदलाक्षः पुत्रः पुत्राख्यो राजा। यद्वा पुत्रशब्द आवर्तनीयः। पुत्रः पुत्राख्यः पुत्रः सुतः। तं ब्रह्मिष्ठं पुत्रिणामग्रसंख्यां समारोपयत् अग्रगण्यं चकारेत्यर्थः॥

अन्वयः—गुरुसेवनेन पात्रीकृतात्मा पत्त्ररथेन्द्रकेतोः स्पष्टाकृतिः पुष्करपत्रनेत्रः पुत्रः 'पुत्रः' तं पुत्रिणाम् अग्रसंख्यां समारोपयत्।

व्याख्या—गुरोः = पितुः सेवनं = शुश्रूषा तेन गुरुसेवनेन न पात्रमिति अपात्रम् अपात्रं पात्रं संपद्यमानः कृतः इति पात्रीकृतः = सुयोग्यीकृतः आत्मा येन स पात्रीकृतात्मा 'योग्यभाजनयोः पात्रमि'त्यमरः। पत्त्रं = पतत्रं रथ इव येषां ते पत्त्ररथाः। पत्त्ररथानां = पक्षिणाम् इन्द्रः = राजा इति पत्त्ररथेन्द्रः = गरुडः केतौ = ध्वजायां यस्य स तस्य पत्त्ररथेन्द्रकेतोः = गरुडध्वजस्य विष्णोः स्पष्टा = स्फुटा आकृतिः = स्वरूपं यस्य स स्पष्टाकृतिः विष्णुस्वरूपः इत्यर्थः। पुष्कं = वारि रातीति, पुष्णातीति वा पुष्करं = पद्मं पत्रं = दलं तद्वत् नेत्रे = लोचने यस्य स पुष्करपत्रनेत्रः पुत्रः = पुत्रनामा पुन्नामनरकात् त्रायते इति पुत्रः = सुतः तं = ब्रह्मिष्ठं पुत्राः सन्ति येषां ते पुत्रिणः तेषां पुत्रिणां = पुत्रवतां मध्ये अग्रे = प्रथमे भवा संख्या अग्रसंख्या ताम् अग्रसंख्यां समारोपयत् आरोपितवान् सर्वेषु पुत्रवत्सु अग्रगण्यं कृतवानित्यर्थः।

समासः—गुरूणां सेवनं तेन गुरुसेवनेन। पत्त्रं रथः इव येषां ते पत्त्ररथास्तेषाम् इन्द्रः, पत्त्ररथेन्द्रः, स केतौ यस्य स तस्य पत्त्ररथेन्द्रकेतोः। स्पष्टा आकृतिः यस्य स स्पष्टाकृतिः। पुष्करस्य पत्रं पुष्करपत्रं तद्वद् नेत्रे यस्य स पुष्करपत्रनेत्रः। पात्रीकृतः आत्मा येन स पात्रीकृतात्मा।

हिन्दी—पिता आदि गुरुजनों की सेवा करके अपने को सुपात्र योग्य बनाने वाला, और गरुडांकित पताका वाले विष्णु के समान सुन्दर तथा पद्मदल के समान नेत्र वाले (कमललोचन उस पुत्रनामक, पुत्र ने अपने पिता ब्रह्मिष्ठ को सारे पुत्रवानों में अग्रगण्य बना दिया ॥ ३० ॥

वंशस्थितिं वंशकरेण तेन संभाव्य भावी स सखा मघोनः ।
उपस्पृशन्स्पर्शनिवृत्तलौल्यस्त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप ॥ ३१ ॥

स्पृश्यन्त इति स्पर्शा विषयाः। तेभ्यो निवृत्तलौल्यो निवृत्ततृष्णः। अत एव मघोन इन्द्रस्य सखा मित्त्रं भावी भविष्यन्। स्वर्गं जिगमिषुरित्यर्थः। स ब्रह्मिष्ठो वंशकरेण वंशप्रवर्तकेन तेन पुत्रेण वंशस्थितिं कुलप्रतिष्ठां संभाव्य संपाद्य त्रिषु पुष्करेषु तीर्थविशेषेषु। 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' इति समासः। उपस्पृशन्स्नानं कुर्वंस्त्रिदशत्वं देवभूयमाप॥

अन्वयः—स्पर्शनिवृत्तलौल्यः 'अतएव' मघोनः सखा भावी सः वंशकरेण तेन वंशस्थितिं संभाव्य त्रिपुष्करेषु उपस्पृशन् त्रिदशत्वम् अवाप।

व्याख्या—स्पृश्यन्ते इति स्पर्शाः, स्पर्शेभ्यः = विषयेभ्यः निवृत्तं = परावृत्तं लौल्यं = तृष्णा = अभिलाषः यस्य स स्पर्शनिवृत्तलौल्यः अत एव मह्यते = पूज्यते इति मघवा तस्य मघोनः = इन्द्रस्य सखा = मित्रं भावी = भविष्यन् स्वर्गं गन्तुमिच्छुः सः = ब्रह्मिष्ठः करोतीति करः वंशस्य = कुलस्य करः = कर्ता, प्रवर्तकस्तेन वंशकरेण तेन = पुत्रनामकेन सुतेन वंशस्य = कुलस्य स्थितिः = प्रतिष्ठा तां वंशस्थितिं सम्भाव्य = सम्भाव्य, अयं कुलं सम्यक् रक्षयिष्यन् वर्धयिष्यतीति मत्वा इत्यर्थः। त्रयश्च ते पुष्कराः त्रिपुष्करास्तेषु त्रिपुष्करेषु = त्रिधास्थितेषु ब्राह्मतीर्थेषु उपस्पृशन् = स्नानं कुर्वन् तृतीया = यौवनाख्या सदा दशा येषां ते त्रिदशाः, त्रीन् तापान् दशन्तीति वा त्रिदशास्तेषां भावः त्रिदशत्वं = देवत्वम् अवाप = प्राप देवत्वं गत इत्यर्थः।

समासः—वंशस्य स्थितिः वंशस्थितिस्तां वंशस्थितिम्। वंशस्य करः वंशकरस्तेन वंशकरेण। स्पर्शेभ्यः निवृत्तं लौल्यं यस्य स स्पर्शनिवृत्तलौल्यः।

हिन्दी—विषय वासनाओं की तृष्णा से दूर रहकर इन्द्र के होने वाले मित्र राजा ब्रह्मिष्ठ ने वंश को बढ़ाने तथा चलाने वाले अपने उस पुत्र नामक पुत्र से वंश की प्रतिष्ठा की सम्भावना मानकर अर्थात् यह कुल की मर्यादा रखकर इज्जत बढ़ायेगा यह जानकर तीनों ब्राह्मतीर्थों में स्नान करके देवत्व को प्राप्त हो गये। अर्थात् स्वर्ग में चले गये ॥ ३१ ॥

तस्य प्रभानिर्जितपुष्परागं पौष्यां तिथौ पुष्यमसूत पत्नी।
तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां पुष्टिं जनाः पुष्य इव द्वितीये ॥ ३२ ॥

तस्य पुत्राख्यस्य पत्नी पौष्यां पुष्यनक्षत्रयुक्तायां पौर्णमास्यां तिथौ। 'पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी' इत्यमरः। 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यण्प्रत्ययः 'टिड्ढाणञ्–' इत्यादिना ङीप्। प्रभया निर्जितः पुष्परागो मणिविशेषो येन तं पुष्यं पुष्याख्यमसूत। द्वितीये पुष्ये पुष्यनक्षत्र इव तस्मिन्नुदिते सति जनाः समग्रां पुष्टिं वृद्धिमपुष्यन् ॥

अन्वयः—तस्य पत्नी पौष्यां तिथौ प्रभानिर्जितपुष्परागं पुष्यम् असूत, द्वितीये पुष्ये इव तस्मिन् उदिते सति जनाः समग्रां पुष्टिम् अपुष्यन्।

व्याख्या—तस्य = पुत्रनाम्नः राज्ञः पत्नी = महिषी पुष्यनक्षत्रेण युक्तः कालोऽस्त्यस्याः सा पौषी तस्यां पौष्यां तिथौ = पौर्णमास्यां तिथौ पुष्पस्य इव रागः = वर्णः यस्य स पुष्परागः। प्रभया = स्वकान्त्या निर्जितः = पराजितः पुष्परागः = पद्मरागः = मणिविशेषः येन स तं प्रभानिर्जितपुष्परागं पुष्यं = पुष्यनामकं सुतम् असूत = जनयामास। द्वितीये = अपरस्मिन् पुष्ये = नक्षत्रे इव = यथा तस्मिन् = राजनि उदिते = उत्पन्ने सति जनाः = लोकाः समग्रां = सकलां पुष्टिं = पोषणं वृद्धिम् अपुष्यन् = पुपुषुः।

समासः—पुष्पस्य इव रागः यस्य स पुष्परागः, निर्जितः पुष्परागो येन स तं निर्जित-पुष्परागम् ।

हिन्दी—राजा 'पुत्र' की पत्नी (रानी) ने पुष्यनक्षत्र वाली पौषमास की पूर्णिमा तिथि के दिन, अपनी कान्ति से पद्मरागमणि की कान्ति को जीतने वाला (पद्मराग से भी सुन्दर) पुष्यनामक पुत्र पैदा किया । दूसरे पुष्य नक्षत्र के समान उसका जन्म होने पर प्रजा ने सभी प्रकार की उन्नति को प्राप्त किया । अर्थात् धनधान्य से प्रजा परिपूर्ण हो गई ॥ ३२ ॥

महीं महेच्छः परिकीर्य सूनौ मनीषिणे जैमिनयेऽर्पितात्मा ।
तस्मात्सयोगादधिगम्य योगमजन्मनेऽकल्पत जन्मभीरुः ॥ ३३ ॥

महेच्छो महाशयः । 'महेच्छस्तु महाशयः' इत्यमरः । जन्मभीरुः संसारभीरुः स पुत्रः सूनौ महीं परिकीर्य विसृज्य मनीषिणे ब्रह्मविद्याविदुषे जैमिनये मुनयेऽर्पितात्मा । शिष्यभूतः सन्नित्यर्थः। संयोगाद्योगिनस्तस्माज्जैमिनेर्योगं योगविद्यामधिगम्याजन्मने जन्मनिवृत्तये मोक्षायाकल्पत समपद्यत। क्लृपेः संपद्यमाने चतुर्थी वक्तव्या । मुक्त इत्यर्थः ।

अन्वयः—महेच्छः जन्मभीरुः सूनौ महीं प्रकीर्य मनीषिणे जैमिनये अर्पितात्मा 'सन्' सयोगात् तस्मात् योगम् अधिगम्य अजन्मने अकल्पत ।

व्याख्या—महती=विशाला इच्छा=अभिलाषः यस्य स महेच्छः=महाशयः "महेच्छस्तु महाशयः" इत्यमरः । जन्मनः=संसारात् भीरुः=भयशीलः इति जन्मभीरुः सः=पुत्रनामको राजा सूनौ=पुत्रे मह्यते=पूज्यते इति मही तां महीं=पृथिवीं राज्यमित्यर्थः । परिकीर्य= विसृज्य=दत्वा मनसः ईषा मनीषा शकन्ध्वादित्वात् साधुः । मनीषास्यास्तीति मनीषी तस्मै मनीषिणे=अध्यात्मविद्याविदुषे जैमिनये=जैमिनिमहर्षये अर्पितः=समर्पितः=आत्मा=स्वं येन सः अर्पितात्मा=शिष्यभूतः इत्यर्थः । सन् योगेन=योगविद्यया सहितः सयोगस्तस्मात् सयोगात्=महायोगिनः सकाशात् योगं=योगविद्याम् अधिगम्य=अधीत्य न जन्म=उत्पत्तिः इति अजन्म तस्मै अजन्मने=अपवर्गाय अकल्पत=समपद्यत मुक्तोऽभवदित्यर्थः ।

समासः—महती इच्छा यस्य स महेच्छः । अर्पितः आत्मा येन सः अर्पितात्मा । योगेन सहितः सयोगस्तस्मात् सयोगात् । जन्मनः भीरुः जन्मभीरुः । न जन्म अजन्म तस्मै अजन्मने ।

हिन्दी—उदार आशय वाले (महान्) संसार में पुनः जन्म से डरने वाले राजा पुत्र ने अपने पुत्र पुष्य को राज्य देकर स्वयं आत्मज्ञानी महर्षि जैमिनि के शिष्य बनकर और उनसे योग सीखकर आवागमन से छूट गये अर्थात् योगाभ्यास करके मुक्त हो गये ॥ ३३ ॥

ततः परं तत्प्रभवः प्रपेदे ध्रुवोपमेयो ध्रुवसंधिरुर्वीम् ।
यस्मिन्नभूज्ज्यायसि सत्यसंधे संधिर्ध्रुवः संनमतामरीणाम् ॥ ३४ ॥

ततः परं स पुष्यः प्रभवः कारणं यस्य स तत्प्रभवः। तदात्मज इत्यर्थः। ध्रुवेणौत्तानपादिनोपमेयः। 'ध्रुव औत्तानपदिः स्यात्' इत्यमरः। ध्रुवसंधिरुर्वीं प्रपेदे। ज्यायसि श्रेष्ठे सत्यसंधे सत्यप्रतिज्ञे यस्मिन्ध्रुवसंधौ संनमताम्। अनुद्धतानामित्यर्थः। अरीणां संधिर्ध्रुवः स्थिरोऽभूत्। ततः सार्थकनामेत्यर्थः।

अन्वयः—ततः परं तत्प्रभवः ध्रुवोपमेयः ध्रुवसन्धिः उर्वीं प्रपेदे। ज्यायसि सत्यसन्धे यस्मिन् संनमताम् अरीणां सन्धिः ध्रुवः अभूत्।

व्याख्या—ततः पुष्यनामकात् राज्ञः परम् = अनन्तरं सः = पुष्यः प्रभवः = कारणं यस्य स तत्प्रभवः = तत्पुत्रः ध्रुवति = स्थिरो भवति स ध्रुवः = उत्तानपादस्य पुत्रः। तेन उपमेयः = उपमातुं योग्यः, तुल्यः ध्रुवोपमेयः। 'ध्रुव औत्तानपादिः स्यात्' इत्यमरः। ध्रुवः = स्थिरः सन्धिः सन्धानं यस्य स ध्रुवसन्धिः = एतन्नामा उर्वीं = पृथिवीं प्रपेदे = प्राप। अतिशयेन वृद्धः प्रशस्यो वा ज्यायान् तस्मिन् ज्यायसि = प्रशस्ते श्रेष्ठे इत्यर्थः। सत्या = तथ्या सन्धा = प्रतिज्ञा यस्य स तस्मिन् सत्यसन्धे यस्मिन् = ध्रुवसन्धिनामके संनमतां = सम्यक् नम्रीभूतानाम् अरीणां = शत्रूणां सन्धानं सन्धिः = संश्लेषः ध्रुवः = स्थिरः अभूत् = अभवत्। अतः तस्य नामापि सार्थकं जातमित्यर्थः।

समासः—सः प्रभवः यस्य स तत्प्रभवः। ध्रुवेण उपमेयः ध्रुवोपमेयः। ध्रुवः सन्धिर्यस्य स ध्रुवसन्धिः। सत्या सन्धा यस्य स तस्मिन् सत्यसन्धे।

हिन्दी—राजा पुष्य के पश्चात् ध्रुव के समान अडिग (स्थिर) पुष्य के पुत्र ध्रुवसन्धि नामक राजा ने, पृथिवी को प्राप्त किया। (राजा बना) अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सत्य प्रतिज्ञा वाले जिस ध्रुवसन्धि के प्रति (डर कर या प्रभाव में आकर) विनम्र (शरण में आये) हुये शत्रुओं की सन्धि स्थिर पक्की होती थी॥ ३४॥

सुते शिशावेव सुदर्शनाख्ये दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने सः।
मृगायताक्षो मृगयाविहारी सिंहादवापद्विपदं नृसिंहः॥ ३५॥

मृगायताक्षो नृसिंहः पुरुषश्रेष्ठः स ध्रुवसंधिर्दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने प्रतिपच्चन्द्रनिभे सुदर्शनाख्ये सुते शिशौ सत्येव मृगयाविहारी सन्सिंहाद्विपदं मरणमवापत्। व्यसनासक्तिरनर्थावहेति भावः।

अन्वयः—मृगायताक्षः नृसिंहः सः दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने सुते शिशौ सति एव, मृगयाविहारी सन् सिंहात् विपदम् अवाप।

व्याख्या—मृगस्य = हरिणस्य इव आयते = दीर्घे अक्षिणी = नेत्रे यस्य स मृगायताक्षः नृषु सिंहः इवेति नृसिंहः = नरश्रेष्ठः सः = ध्रुवसन्धिः दर्शस्य = अमावस्यायाः अत्ययः = अवसानम् = समाप्तिः, इति दर्शात्ययस्तस्मिन् इन्दुः = चन्द्रः इव प्रियं = मधुरं दर्शनम् = अवलोकनं यस्य स तस्मिन् दर्शात्ययेन्दुदर्शने सुष्ठु दर्शनं यस्य स सुदर्शनः। सुदर्शनः आख्या यस्य स तस्मिन्

सुदर्शनाख्ये=सुदर्शननामके सुते=पुत्रे शिशौ=बालके सति एव मृग्यन्ते यत्र सा मृगया, मृगयया=आखेटेन विहर्तुं=क्रीडितुं शीलमस्येति मृगयाविहारी सन् सिंहात्=मृगेन्द्रात् विपदं मृत्युम् अवाप=प्राप। मृगयादिव्यसनेष्वासक्तिरनर्थकारिणी भवतीति भावः।

समासः—सुष्ठु दर्शनं यस्य स सुदर्शनः, सुदर्शनः आख्या यस्य स तस्मिन् सुदर्शनाख्ये। दर्शस्य अत्ययस्तस्मिन् यः इन्दुस्तद्वत् प्रियं दर्शनं यस्य स तस्मिन् दर्शात्ययेन्दुप्रियदर्शने। मृगस्येव आयते अक्षिणी यस्य स मृगायताक्षः। मृगयायाः विहारी मृगयाविहारी। नृषु सिंह इवनृसिंहः।

हिन्दी—मृग (हरिण) के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाला मनुष्यों में सिंह के समान बलशाली व श्रेष्ठ और शिकार खेलने के शौकीन राजा ध्रुवसन्धि (शिकार के समय) सिंह से मृत्यु को प्राप्त हुआ। सिंह ने उसे मार दिया। जब कि अमावस्या के बाद प्रतिपदा के चन्द्रमा जैसा सुन्दर लगने वाला, सुदर्शन का पुत्र बच्चा ही था। व्यसनों से विनाश ही होता है॥३५॥

स्वर्गामिनस्तस्य तमैकमत्यादमात्यवर्गः कुलतन्तुमेकम्।
अनाथदीनाः प्रकृतीरवेक्ष्य साकेतनाथं विधिवच्चकार॥ ३६॥

स्वर्गामिनः स्वर्यातस्य तस्य ध्रुवसंधेरमात्यवर्गः। अनाथा नाथहीना अत एव दीनाः शोच्याः प्रकृतीः प्रजा अवेक्ष्य। कुलतन्तुं कुलावलम्बनमेकमद्वितीयं तं सुदर्शनमैकमत्याद्विधिवत्साकेतनाथमयोध्याधीश्वरं चकार॥

अन्वयः—स्वर्गामिनः तस्य अमात्यवर्गः अनाथदीनाः प्रकृतीः अवेक्ष्य, कुलतन्तुम् एकं तम् ऐकमत्यात् विधिवत् साकेतनाथं चकार।

व्याख्या—स्वरति=अप्राप्त्या उपतापयतीति स्वः=स्वर्गवाचकऽव्ययः। स्वः=स्वर्गं गच्छतीति स्वर्गामी तस्य स्वर्गामिनः=स्वर्गं प्राप्तस्य तस्य=ध्रुवसन्धेः अमात्यानां=मंत्रिणां वर्गः=समूहः इति अमात्यवर्गः न नाथः यासां ताः अनाथाः=नाथरहिताः अतः एव दीनाः=दुर्गताः भीता इत्यर्थः। इति अनाथदीनाः प्रकृतीः=प्रजाः अवेक्ष्य=अवलोक्य कुलस्य=वंशस्य तन्तुः विस्तारकः, आलम्बनमित्यर्थः। इति कुलतन्तुस्तं कुलतन्तुम् एकं=केवलमद्वितीयं तं=सुदर्शननामानम् एका=संमिलिता मतिः=बुद्धिः, विचारो येषां ते एकमतयस्तेषां भावः ऐकमत्यं तस्मात् ऐकमत्यात् विधिना तुल्यं विधिवत्=शास्त्रानुसारम्, साकेतस्य=अयोध्यानगरस्य नाथः=स्वामी, राजा तं साकेतनाथं चकार=कृतवान्। सर्वे मन्त्रिणः एकीभूय सुदर्शनम् अयोध्येश्वरं चक्रुरित्यर्थः।

समासः—अमात्यानां वर्गः अमात्यवर्गः। कुलस्य तन्तुरिति कुलतन्तुस्तं कुलतन्तुम्। साकेतस्य नाथस्तं साकेतनाथम्। न नाथो यासां ताः अनाथाः, अनाथाश्च ताः दीनाः इति अनाथदीनाः ताः। एका मतिर्येषां ते एकमतयस्तेषां भावः, तस्मात् ऐकमत्यात्।

हिन्दी—स्वर्गीय उस राजा ध्रुवसन्धि के मंत्रिमण्डल ने, "राजा के न रहने से" दीन दुःखी प्रजा को देख कर सब की सम्मति से कुल के एकमात्र आधार (इकलौते) उस सुदर्शन को विधिपूर्वक अयोध्या का राजा बना दिया ॥ ३६ ॥

नवेन्दुना तन्नभसोपमेयं शावैकसिंहेन च काननेन ।
रघोः कुलं कुड्मलपुष्करेण तोयेन चाप्रौढनरेन्द्रमासीत् ॥ ३७ ॥

अप्रौढनरेन्द्रं तद्रघोः कुलं नवेन्दुना बालचन्द्रेण नभसा व्योम्ना। शावः शिशुरेकः सिंहो यस्मिन् । 'पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । तेन काननेन च । कुड्मलं कुड्मलावस्थं पुष्करं पङ्कजं यस्मिंस्तेन तोयेन चोपमेयमुपमातुमर्हमासीत्। नवेन्द्वाद्युपमानेन तस्य वर्धिष्णुताशौर्यश्रीमत्त्वानि सूचितानि ॥

अन्वयः—अप्रौढनरेन्द्रं तत् रघोः कुलं नवेन्दुना नभसा शावैकसिंहेन काननेन च कुड्मलपुष्करेण तोयेन च उपमेयम् आसीत् ।

व्याख्या—प्रौह्यते स्म इति प्रौढः, न प्रौढः इति अप्रौढः = बालकः नराणां = मनुष्याणाम् इन्द्रः = स्वामी यस्मिन् तत् अप्रौढनरेन्द्रं तत् = प्रसिद्ध रघोः = दिलीपसूनोः कुलं = वंशः नवः = नूतनः, बालः इन्दुः = चन्द्रः यस्मिन् तत्तेन इति नवेन्दुना, शव्यते इति शावः = शिशुः एकः = अद्वितीयः सिंहः = केसरी यस्मिन् तत्तेन शावैकसिंहेन काननेन = अरण्येन च कुड्मलं = मुकुलं, कलिकावस्थमित्यर्थः । पुष्करं = कमलं यस्मिन् तत्तेन कुड्मलपुष्करेण तोयेन = जलेन च उपमातुं योग्यम् उपमेयम् = उपमातुमर्हम् आसीत् = अभूत् । बालचन्द्राद्युपमानेनास्य राज्ञः वर्धिष्णुताशूरताश्रीमत्त्वानि सूचितानि ।

समासः—न प्रौढः अप्रौढः, नराणामिन्द्रः नरेन्द्रः अप्रौढः नरेन्द्रः यस्मिन् तत् अप्रौढनरेन्द्रम् । शावः एकः सिंहः यस्मिन् तत्तेन शावैकसिंहेन । नवः इन्दुः यस्मिन् तत्तेन नवेन्दुना । कुड्मलं पुष्करं यस्मिन् तत्तेन कुड्मलपुष्करेण ।

हिन्दी—बालक राजा वाला वह प्रसिद्ध रघु का कुल, उस आकाश के समान था, जिसमें नया एक कला का चन्द्रमा है । तथा उस वन के समान था, जिसमें एक बच्चा ही सिंह है । और उस जल (तालाब) के समान सुन्दर था जिसमें कमल की कलियाँ निकली हैं । अर्थात् जैसे ये सब बढ़ने वाले शौर्यसम्पन्न, तथा सुश्री वाले होते हैं, वैसे ही यह बालक राजा वर्धिष्णु, शूर वीर और श्रीमान् होगा ॥ ३७ ॥

लोकेन भावी पितुरेव तुल्यः संभावितो मौलिपरिग्रहात्सः ।
दृष्टो हि वृण्वन्कलभप्रमाणोऽप्याशाः पुरोवातमवाप्य मेघः ॥ ३८ ॥

स बालो मौलिपरिग्रहात्किरीटस्वीकाराद्धेतोः पितुस्तुल्यः पितृसरूप एव भावी भविष्यति लोकेन जनेन संभावितस्तर्कितः । तथाहि । कलभप्रमाणः कलभमात्रोऽपि मेघः पुरोवातमवाप्याशा दिशो वृण्वन्गच्छन्दृष्टो हि ॥

अन्वयः—सः मौलिपरिग्रहात् पितुः तुल्यः एव भावी, "इति" लोकेन संभावितः। हि–कलभप्रमाणः अपि मेघः पुरोवातम् अवाप्य आशाः वृण्वन् दृष्टः।

व्याख्या—सः = बालः सुदर्शनः मौलेः = मुकुटस्य परिग्रहः = स्वीकारः धारणमित्यर्थः। इति मौलिपरिग्रहस्तस्मात् मौलिपरिग्रहात् पितुः = जनकस्य ध्रुवसन्धेरित्यर्थः। तुल्यः = सदृशः पितृसरूप इत्यर्थः। एव = निश्चयेन भावी = भविष्यति। इति लोकेन = जनेन संभावितः = तर्कितः, अनुमितः। हि = तथाहि दर्शयति कलयति, कलते वा कलः, कलं भाषते इति कलभः = करिशावकः प्रमाणम् = इयत्तास्यासौ कलभप्रमाणः, स्वल्पमात्रोऽपि मेघः = वारिदः पुरः = समक्षं वातः = पवनः इति पुरोवातस्तं पुरोवातम् अवाप्य = प्राप्य आशाः = दिशः वृण्वन् = व्याप्नुवन् दृष्टः जनैरिति शेषः।

समासः—मौलेः परिग्रहः इति मौलिपरिग्रहस्तस्मात् मौलिपरिग्रहात्। कलभः प्रमाणमस्येति कलभप्रमाणः।

हिन्दी—उस बालक सुदर्शन के मुकुट धारण करने से ही, प्रजा ने अनुमान कर लिया कि बालक अपने पिता के समान ही प्रभावशाली होगा। ठीक भी है। क्योंकि हाथी के बच्चे के समान छोटा सा भी बादल का टुकड़ा सामने पूर्वा वायु के सहारे दिशाओं में फैलता हुआ देखा जाता है॥ ३८॥

तं राजवीथ्यामधिहस्ति यान्तमाधोरणालम्बितमग्र्यवेशम्।
षड्वर्षदेशीयमपि प्रभुत्वात्प्रैक्षन्त पौराः पितृगौरवेण॥ ३९॥

राजवीथ्यां राजमार्गेऽधिहस्ति हस्तिनि। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। यान्तं गच्छन्तम्। हस्तिनमारुह्य गच्छन्तमित्यर्थः। आधोरणालम्बितं शिशुत्वात्सादिना गृहीतमग्र्यवेशमुदारनेपथ्यं षड्वर्षाणि भूतः षड्वर्षः। 'तद्धितार्थ–' इत्यादिना समासः। 'तमधीष्टो भृतो भूतो भावी' इत्यधिकारे 'चित्तवति नित्यम्' इति तद्धितस्य लुक्। ईषदसमाप्तः षड्वर्षः षड्वर्षदेशीयः। 'ईषदसमाप्तौ–' इत्यादिना देशीयप्रत्ययः। तं षड्वर्षदेशीयमपि बालमपि तं सुदर्शनं पौराः प्रभुत्वात्पितृगौरवेण प्रैक्षन्त। पितरि यादृग्गौरवं तादृशेनैव ददृशुरित्यर्थः॥

अन्वयः—राजवीथ्याम् अधिहस्ति यान्तम् आधोरणालम्बितम् अग्र्यवेशम् षड्वर्षदेशीयम् अपि तं पौराः प्रभुत्वात् पितृगौरवेण प्रैक्षन्त।

व्याख्या—विध्यतेऽनया वीथी राज्ञां वीथी राजवीथी तस्यां राजवीथ्यां = राजमार्गे "वीथी पंक्तौ गृहांगे च रूपकान्तारवर्त्मनोः" इति मेदिनी। हस्तिनि = गजे इति अधिहस्ति = गजोपरि यान्तं = गच्छन्तं गजमारुह्य यान्तमित्यर्थः। आधोरयन्ति = हस्तिगतिचातुर्यं जानन्तीति आधोरणाः। आधोरणैः = हस्तिपकैः आलम्बितः = गृहीतस्तम् आधोरणालम्बितम् बालत्वात् अग्र्यः = श्रेष्ठः वेशः = नेपथ्यं यस्य तम् अग्र्यवेशम् = उत्कृष्टवेशभूषाधारिणमित्यर्थः षड्वर्षाणि भूतः षड्वर्षः = षड्वत्सरः। ईषदसमाप्तः षड्वर्षः षड्वर्षदेशीयः तं षड्वर्षदेशीयम् = षड्वर्षीयबालमपि

तं = सुदर्शनं पुरे भवाः पौराः = नागरिकाः जनाः प्रभोः भावः प्रभुत्वं तस्मात् प्रभुत्वात् = स्वामित्वात् पातीति पिता, पितुः गौरवमिति पितृगौरवं तेन पितृगौरवेण = पितृसम्मानेन,–पितृवदादरेणेत्यर्थः। प्रैक्षन्त = ददृशुः। जनके यादृशः आदरो भवति, तादृक्सम्मानेन दृष्टवन्त इत्यर्थः।

समासः—राज्ञां वीथी राजवीथी तस्यां राजवीथ्याम्। हस्तिनि इति अधिहस्ति। आधोरणेन आलम्बितस्तम् आधोरणालम्बितम्। अग्र्यः वेशः यस्य स तम् अग्र्यवेशम्। पितुः गौरवं तेन पितृगौरवेण। षट् वर्षाणि भूतः षड्वर्षः, ईषदसमाप्तः षड्वर्षः इति षड्वर्षदेशीयस्तं षड्वर्षदेशीयम्।

हिन्दी—हाथी पर बैठा हुआ, और जिसको कि पीलवान् ने सहारा दे रखा था, (पकड़ रखा था) राजसी वेष भूषा वाला वह छः वर्ष का छोटा सा राजा जब राजमार्ग में जाता था तो उसको, नागरिक प्रजाजन, उसके पिता के समान आदर से देखते थे। अर्थात् बालक होने पर भी प्रभु होने के नाते बड़े राजा के समान ही उसका आदर करते थे ॥ ३९ ॥

कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय।
तेजोमहिम्ना पुनरावृतात्मा तद् व्याप चामीकरपिञ्जरेण ॥ ४० ॥

स सुदर्शनः पैतृकस्य सिंहासनस्य कामं सम्यक्प्रतिपूरणाय नाकल्पत। बालत्वाद्व्याप्तुं न पर्याप्त इत्यर्थः। चामीकरपिञ्जरेण कनकगौरेण तेजोमहिम्ना पुनस्तेजःसंपदा त्वावृतात्मा विस्तारितदेहः संस्तत्सिंहासनं व्याप व्याप्तवान् ॥

अन्वयः—सः पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय न अकल्पत, चामीकरपिञ्जरेण तेजोमहिम्ना पुनः आवृतात्मा सन् तत् व्याप।

व्याख्या—सः सुदर्शनः पितुः आगतं पैतृकं तस्य पैतृकस्य = पितृसम्बन्धिनः सिंहाकारमासनं 'सिंहासनं, सिंह इव वासनमिति सिंहासनं सिंहचिन्हितं वासनं तस्य सिंहासनस्य = नृपासनस्य कामं = सम्यक् प्रतिपूरणाय = प्रतिपूरयितुं = व्याप्तुं न अकल्पत = न पर्याप्तः, न समर्थः शिशुत्वादित्यर्थः। किन्तु चमीकरे = आकरे भवं चामीकरं चमनं चामी चामीं करोतीति। चामीकरं = सुवर्णम् इव पिञ्जरः = पीतवर्णस्तेन चामीकरपिञ्जरेण तेजसः = प्रतापस्य महिमा = प्रभावः–सम्पदित्यर्थः। इति तेजोमहिमा तेन तेजोमहिम्ना पुनः = तु आवृतः = व्याप्तः आत्मा = देहः यस्य सः आवृतात्मा = विस्तारितशरीरः सन् तत् = सिंहासनं व्याप = व्याप्तवान्। स्वतेजसा सर्वं सिंहासनमाच्छादितवानित्यर्थः।

समासः—सिंह इव आसनमिति सिंहासनम् सिंहचिन्हितं वासनं सिंहासनम्। तेजसो महिमा तेन तेजोमहिम्ना। आवृतः आत्मा येन सः आवृतात्मा। चामीकरम् इव पिञ्जरस्तेन चामीकरपिंजरेण।

हिन्दी—पिता के सिंहासन पर बैठते समय का वर्णन है कि वह बालक राजा सुदर्शन, यद्यपि अपने पिता के सिंहासन को पूरा छेंकने में पर्याप्त समर्थ नहीं था। बच्चा होने से पूरे पर नहीं बैठ पाता था। तो भी सोने के रंग वाले अपने तेज से फैला हुआ सा होकर उस पूरे सिंहासनको छेंक लेता था। व्याप्त कर लेता था ॥ ४० ॥

तस्मादधः किंचिदिवावतीर्णावसंस्पृशन्तौ तपनीयपीठम् ।
सालक्तकौ भूपतयः प्रसिद्धैर्ववन्दिरे मौलिभिरस्य पादौ ॥ ४१ ॥

तस्मात्सिंहासनादपादानादधोऽधोदेशं प्रति किंचिदिवावतीर्णावीषल्लम्बौ तपनीयपीठं काञ्चनपीठमसंस्पृशन्तावल्पकत्वादव्याप्तौ सालक्तकौ लाक्षारसावसिक्तावस्य सुदर्शनस्य पादौ भूपतयः प्रसिद्धैरुन्नतैर्मौलिभिर्मुकुटैर्ववन्दिरे प्रणेमुः ॥

अन्वयः—तस्मात् अधः किंचिदिव अवतीर्णौ तपनीयपीठम् असंस्पृशन्तौ, सालक्तकौ अस्य पादौ भूपतयः प्रसिद्धैः मौलिभिः ववन्दिरे ।

व्याख्या—तस्मात्=सिंहासनात् अपादानात्, अधः=निम्नदेशं प्रति किंच चित् च अनयोः समाहारः किंचित्=अल्पम् इव=यथा अवतीर्णौ=लम्बमानौ तप्यतेऽनेन इति तपनीयं, तपनीयस्य=सुवर्णस्य पीठम्=आसनं पादपीठमित्यर्थः । तपनीयपीठम् असंस्पृशन्तौ=अश्लिष्यन्तौ स्पर्शमकुर्वन्तावित्यर्थः । अल्पकत्वात् । अलक्तकेन=लाक्षारागेण सहितौ=लिप्तौ, इति सालक्तकौ, अस्य=सुदर्शनस्य पादौ=चरणौ भुवः पतयः भूपतयः=राजानः प्रसिद्धैः=भूषितैः "प्रसिद्धौ ख्यातभूषितौ" इत्यमरः । मौलिभिः=किरीटैः ववन्दिरे=प्रणेमुः प्रणामं कृतवन्तः इत्यर्थः ।

समासः—न संस्पृशन्तौ, इति असंस्पृशन्तौ, तौ । तपनीयस्य पीठमिति तपनीयपीठम् तत् । अलक्तकेन, सहितौ सालक्तकौ ।

हिन्दी—उस सिंहासन से नीचे की ओर जरा से लटकते हुए तथा सोने के बने पाँवदान तक न पहुँचने वाले (पाँवदान को न छू रहे) महावर से रंगे हुए, राजा बालक सुदर्शन के चरणों की वन्दना (प्रणाम) भूपालों ने अपने प्रसिद्ध सजे सजाये मुकुटों से की । अर्थात् पैरों पर शिर रख कर प्रणाम किया ॥ ४१ ॥

मणौ महानील इति प्रभावादल्पप्रमाणेऽपि यथा न मिथ्या ।
शब्दो महाराज इति प्रतीतस्तथैव तस्मिन्युयुजेऽर्भकेऽपि ॥ ४२ ॥

अल्पप्रमाणेऽपि मणाविन्द्रनीले प्रभावात्तेजिष्ठत्वाद्धेतोर्महानील इति शब्दो यथा मिथ्या निरर्थको न तथैवार्भके शिशावपि तस्मिन्सुदर्शने प्रतीतः प्रसिद्धो महाराज इति शब्दो न मिथ्या युयुजे ॥

अन्वयः—अल्पप्रमाणे अपि मणौ प्रभावात् महानीलः इति शब्दः यथा मिथ्या न, तथा एव अर्भके अपि तस्मिन् प्रतीतः महाराजः इति शब्दः न मिथ्या युयुजे ।

व्याख्या—अल्पं=स्वल्पम्=ईषत् प्रमाणम्=इयत्ता यस्य स तस्मिन् अल्पप्रमाणे अपि मणौ=इन्द्रनीले प्रकृष्टो भावः=कान्तिः इति प्रभावस्तस्मात् प्रभावात्=तेजोविशेषात् कान्तिमत्त्वादित्यर्थः महांश्चासौ नीलः महानीलः=सिंहलद्वीपसंभवेन्द्रनीलोपलः इति महानीलः इति शब्दः यथा मिथ्या=असत्यः, निरर्थकः न भवतीति शेषः । तथैव=तेनैव प्रकारेण अर्भते=वृद्धिं प्राप्नुते इति अर्भकः तस्मिन् अर्भके=शिशौ अपि तस्मिन्=सुदर्शने प्रतीतः=प्रसिद्धः

महांश्चासौ राजा चेति महाराजः महान् सन् राजते, इति वा महाराजः = प्रभावविशेषवान्, इति शब्दः न मिथ्या = नासत्यः युयुजे = युक्तः।

समासः—अल्पं प्रमाणं यस्य स तस्मिन् अल्पप्रमाणे। महांश्चासौ नीलः महानीलः। महांश्चासौ राजा च महाराजः।

हिन्दी—जिस प्रकार छोटी सी नीलमणि भी चमकदार (पानीदार) होने के कारण 'महानील' उसका वाचक शब्द निरर्थक नहीं होता है उसी प्रकार छोटा बालक होते हुए भी सुदर्शन के विषय में प्रसिद्ध महाराज शब्द ठीक लगता था। अर्थात् अति तेजस्वी होने के कारण महाराज शब्द भी उसमें सार्थक था ॥ ४२ ॥

पर्यन्तसंचारितचामरस्य कपोललोलोभयकाकपक्षात्।
तस्याननादुच्चरितो विवादश्चस्खाल वेलास्वपि नार्णवानाम् ॥ ४३ ॥

पर्यन्तयोः पार्श्वयोः संचारिते चामरे यस्य तस्य बालस्य संबन्धिनः कपोलयोर्लोलावुभौ काकपक्षौ यस्य तस्मादाननादुच्चरितो विवादो वचनमर्णवानां वेलास्वपि न चस्खाल। शिशोरपि तस्याशाभङ्गो नासीदित्यर्थः। चपलसंसर्गेऽपि महान्तो न चलन्तीति ध्वनिः। उभयकाकपक्षादित्यत्र 'वृत्तिविषये उभयपुत्र इतिवदुभशब्दस्थान उभयशब्दप्रयोगः' इत्युक्तं प्राक् ॥

अन्वयः—पर्यन्तसञ्चारितचामरस्य तस्य कपोललोलोभयकाकपक्षात् आननात् उच्चरितः विवादः अर्णवानां वेलासु अपि न चस्खाल।

व्याख्या—परिगतौ अन्तमिति पर्यन्तौ, पर्यन्तयोः = पार्श्वयोः संचारिते = चालिते चामरे = बालव्यजने यस्य स तस्य पर्यन्तसञ्चारितचामरस्य तस्य = शिशोः-सुदर्शनस्य कं = सुखं पोलतः कपोलौ, कपोलयोः = गण्डस्थलयोः लोलौ = चञ्चलौ उभौ = द्वौ काकपक्षौ = शिखण्डकौ यस्य तत्, तस्मात् कपोललोलोभयकाकपक्षात्। 'गण्डौ कपोलौ' 'काकपक्षः शिखण्डकः' इत्यमरः। आननात् = मुखात् उच्चरितः = भाषितः, उद्गत इत्यर्थः विवादः = आदेशः, वचनमित्यर्थः। अर्णांसि = जलानि सन्ति येषु ते अर्णवाः = समुद्रास्तेषाम् अर्णवानां वेलासु = समुद्रतटेषु अपि न चस्खाल = नास्खलत्। बालस्य तस्य राज्ञः आशाभंगः नाभवदित्यर्थः। चञ्चलानां संसर्गेऽपि मनस्विनः न विचलन्तीति ध्वनिः। लोलोभयकाकपक्षादित्यत्र, उभयपुत्रइतिवत् वृत्तिविषये उभशब्दस्थाने उभयशब्दस्य प्रयोगः।

समासः—पर्यन्तयोः संचारिते चामरे यस्य स तस्य पर्यन्तसंचारितचामरस्य। कपोलयोः लोलौ काकपक्षौ यस्य तत्तस्मात् कपोललोलोभयकाकपक्षात्।

हिन्दी—बाल राजा सुदर्शन के दोनों (दाएँ बाएँ) ओर चमर डुलाये जाते थे। और इसके उस मुख से निकली आज्ञा का समुद्रों के तटों पर भी स्खलन नहीं होता था। अर्थात् सागर तट तक इसकी आज्ञा का पालन होता था। जिस मुख पर कि दोनों गालों पर (कन-

पटियों पर) लम्बे-लम्बे बाल लटक रहे थे। अर्थात् बालक होने पर भी इसकी आज्ञा का सभी पालन करते थे ॥ ४३ ॥

निर्वृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे न्यस्तं ललाटे तिलकं दधानः ।
तेनैव शून्यान्यरिसुन्दरीणां मुखानि स स्मेरमुखश्चकार ॥ ४४ ॥

निर्वृत्ता जम्बूनदपट्टशोभा यस्य तस्मिन्कृतकनकपट्टशोभे ललाटे न्यस्तं तिलकं दधानः स्मेरमुखः स्मितमुखः स राजारिसुन्दरीणां मुखानि तेनैव तिलकेनैव शून्यानि चकार। अखिलमपि शत्रुवर्गमवधीदिति भावः ॥

अन्वयः—निवृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे ललाटे न्यस्तं तिलकं दधानः, स्मेरमुखः सः अरिसुन्दरीणां मुखानि तेन एव शून्यानि चकार।

व्याख्या—जम्बूरसस्य नद्यां भवं जाम्बूनदं, जाम्बूनदस्य = सुवर्णस्य पट्टं = किरीटं, तस्य शोभा = कान्तिः इति जाम्बूनदपट्टशोभा, निवृत्ता = सम्पन्ना-कृता जाम्बूनदपट्टशोभा यस्य स तस्मिन् निवृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे ललं = विलासमीप्सां वा अटतीति ललाटं तस्मिन् ललाटे = भाले न्यस्तं = विहितं-कृतमित्यर्थः। तिलकं = विशेषकं दधानः = धारयन् स्मेरं = विकसितम् = ईषद्धास्यान्वितमित्यर्थः। मुखम् = आननं यस्य स स्मेरमुखः सः = राजा सुदर्शनः अरीणां = शत्रूणां सुन्दर्यः = कामिन्यस्तासाम् अरिसुन्दरीणां मुखानि = आननानि तेन = तिलकेन एव शून्यानि = रहितानि चकार = कृतवान्। सर्वानपि शत्रून् स हतवानित्यर्थः।

समासः—जाम्बूनदस्य पट्टमिति जाम्बूनदपट्टं तस्य शोभा इति जाम्बूनदपट्टशोभा, निवृत्ता जाम्बूनदपट्टशोभा यस्य तत्तस्मिन् निवृत्तजाम्बूनदपट्टशोभे। अरीणां सुन्दर्यस्तासाम् अरिसुन्दरीणाम्। स्मेरं मुखं यस्य स स्मेरमुखः।

हिन्दी—सोने के पट्ट (मुकुट) से जिसकी शोभा की गई थी, ऐसे मस्तक पर लगे तिलक को धारण किये हुए तथा हंसमुख उस राजा सुदर्शन ने शत्रुओं की स्त्रियों के मुखों को तिलक मुस्कुराहट से शून्य कर दिया। अर्थात् युद्ध में शत्रुओं को मार कर उनकी स्त्रियों के तिलक एवं हँसना छुड़ा दिया ॥ ४४ ॥

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः खेदं स यायादपि भूषणेन ।
नितान्तगुर्वीमपि सोऽनुभावाद्धुरं धरित्र्या बिभरांबभूव ॥ ४५ ॥

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः कोमलाङ्ग इत्यर्थः। अत एव स राजा भूषणेनापि खेदं श्रमं यायाद्गच्छेत्। एवंभूतः स नितान्तगुर्वीमपि धरित्र्या धुरं भुवो भारमनुभावात्सामर्थ्याद्बिभरांबभूव बभार। 'भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च' इति विकल्पादाम्प्रत्ययः ॥

अन्वयः—शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः सः भूषणेन अपि खेदं यायात्। सः नितान्तगुर्वीम् अपि धरित्र्याः धुरम् अनुभावात् बिभराम्बभूव।

व्याख्या—सुष्ठु कुमार्यते, काम्यते वा इति सुकुमारं = कोमलं, तस्य भावः सौकुमार्यम्। शिरीषस्य = भण्डिलस्य पुष्पाणि = कुसुमानि, इति शिरीषपुष्पाणि, तेभ्यः अधिकं सौकुमार्यं यस्य

स शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः अतिकोमलांग इत्यर्थः। अत एव सः = राजा सुदर्शनः भूषणेन = अलंकारेण अपि खेदं = श्रमं यायात् = गच्छेत्। एवं भूतोऽपि सः = राजा नितान्तम् = अत्यन्तं गुर्वी = महती तां नितान्तगुर्वीम् अपि धरित्र्याः = पृथिव्याः धुरं = भारम् अनुभावयतीति अनुभावस्तस्मात् अनुभावात् = प्रभावात्-सामर्थ्यादित्यर्थः। बिभराम्बभूव = बभार, धारयामास।

समासः—शिरीषस्य पुष्पाणीति शिरीषपुष्पाणि, शिरीषपुष्पेभ्यः अधिकं सौकुमार्यं यस्य स शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः। नितान्ता गुर्वी इति नितान्तगुर्वी तां नितान्तगुर्वीम्।

हिन्दी—शिरीष के फूलों से भी अधिक सुकुमार (कोमल) वह राजा था। इसी लिये आभूषण पहनने में भी वह थक जाता था। किन्तु 'इतना कोमल होने पर भी' उसने अपनी सामर्थ्य एवं प्रभाव से पृथिवी के गुरु भार को धारण कर रखा था। संभाल लिया था ॥४५॥

न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कात्स्न्येंन गृह्णाति लिपिं न यावत्।
सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात्फलान्युपायुङ्क्त स दण्डनीतेः ॥ ४६ ॥

अक्षरभूमिकायामक्षरलेखनस्थले न्यस्ताक्षरां रचिताक्षरपङ्क्तिरेखान्यासां लिपिं पञ्चाशद्वर्णात्मिकां मातृकां कात्स्न्येंन यावन्न गृह्णाति स सुदर्शनस्तावच्छ्रुतवृद्धयोगाद्विद्यावृद्धसंसर्गात्सर्वाणि दण्डनीतेर्दण्डशास्त्रस्य फलान्युपायुक्तान्यभूत्। प्रागेव बद्धफलस्य तस्य पश्चादभ्यस्यमानं शास्त्रं संवादार्थमिवाभवदित्यर्थः॥

अन्वयः—अक्षरभूमिकायां न्यस्ताक्षरां लिपिं कात्स्न्येंन यावत् न गृह्णाति, तावत् श्रुतवृद्धयोगात् सर्वाणि दण्डनीतेः फलानि उपायुंक्त।

व्याख्या—अक्षराणाम् = अकारादिहकारान्तानां भूमिका = लेखनपट्टिका तस्याम् अक्षरभूमिकायाम् न्यस्तानि = रचितानि = लिखितानीत्यर्थः अक्षराणि = अकारादिवर्णाः यस्याः सा तां न्यस्ताक्षरां लिपिं = वर्णमालां पञ्चाशदक्षरात्मिकां मातृकामित्यर्थः। कृत्स्नस्य = समग्रस्य भावः कात्स्न्यं तेन कात्स्न्येंन = निःशेषतया यावत् = यावत्कालं न गृह्णाति = न शिक्षते, न जानातीत्यर्थः। सः = सुदर्शनः तावत् = तावता कालेन श्रुतवृद्धानां = शास्त्रवृद्धानां नीतिज्ञानामित्यर्थः योगः = संसर्गः = सम्पर्कस्तस्मात् श्रुतवृद्धयोगात् सर्वाणि = अखिलानि दम्यतेऽनेनेति दण्डः = दमः। दण्डः नीयते = बोध्यतेऽनया सा दण्डनीतिः दण्डं नयति = दण्ड्यान् प्रति प्रापयति इति वा दण्डनीतिस्तस्याः दण्डनीतेः = दण्डविधायकशास्त्रस्य फलानि = उपायान् उपायुङ्क्त = प्रयुक्तवान्।

समासः—न्यस्तानि अक्षराणि यस्याः सा तां न्यस्ताक्षराम्। अक्षराणां भूमिका, अक्षरभूमिका तस्याम्, अक्षरभूमिकायाम्। श्रुतेन वृद्धानां योगः श्रुतवृद्धयोगस्तस्मात्।

हिन्दी—अक्षर लिखने की पटिया पर जिसके अक्षर लिखे गये थे, उस लिपि (वर्णमाला) को अभी पूर्ण रूप से (पूरी तरह) वह सुदर्शन सीख भी न पाया था, कि इतने में ही वह विद्वानों के संसर्ग से दण्डनीति एवं राजनीति के सारे उपायों का प्रयोग करना सीख गया। अर्थात् पढ़ने से पूर्व ही वह शास्त्रज्ञों के साथ से राजनीति का ज्ञाता प्रयोक्ता हो गया ॥४६॥

उरस्यपर्याप्तनिवेशभागा प्रौढीभविष्यन्तमुदीक्षमाणा ।
संजातलज्जेव तमातपत्रच्छायाच्छलेनोपजुगूह लक्ष्मीः ॥ ४७ ॥

उरस्यपर्याप्तो निवेशभागो निवासावकाशो यस्याः सा अत एव प्रौढीभविष्यन्तं वर्धिष्यमाणमुदीक्षमाणा प्रौढवपुष्मान्भविष्यतीति प्रतीक्षमाणा लक्ष्मीः संजातलज्जेव साक्षादालिङ्गितुं लज्जितेव तं सुदर्शनमातपत्रच्छायाच्छलेनोपजुगूहालिलिङ्ग । छत्रच्छाया लक्ष्मीरूपेति प्रसिद्धिः । प्रौढाङ्गनायाः प्रौढपुरुषालाभे लज्जा भवतीति ध्वनिः ॥

अन्वयः—उरसि अपर्याप्तनिवेशभागा 'अत एव' प्रौढीभविष्यन्तम् उदीक्षमाणा लक्ष्मीः संजातलज्जा इव तम् आतपत्रच्छायाच्छलेन उपजुगूह ।

व्याख्या—उरसि = वक्षस्थले अपर्याप्तः = अयथेष्टः-अप्रकामः निवेशस्य = निवासस्य भागः = अवकाशः–स्थानमित्यर्थः । यस्याः सा अपर्याप्तनिवेशभागा अत एव न प्रौढः = न प्रवृद्धः इति अप्रौढः । अप्रौढः प्रौढः भविष्यतीति प्रौढीभविष्यन्, तं प्रौढीभविष्यन्तम् उदीक्षते इति उदीक्षमाणा = प्रतीक्षमाणा लक्ष्मीः = राज्यलक्ष्मीः संजाता = उत्पन्ना लज्जा = ह्रीः यस्याः सा संजातलज्जा इव = यथा साक्षात् आलिंगितुं लज्जिता इवेत्यर्थः । त = राजानं सुदर्शनम्, आतपात् त्रायते इति आतपत्रं = छत्रं तस्य छाया = आतपाभावः, तस्याः छलं = कपटं तेन आतपत्रच्छायाच्छलेन उपजुगूह = आलिंगितवती । छत्रच्छाया लक्ष्मीस्वरूपिणी भवतीति प्रसिद्धम् । प्रौढस्त्रियाः प्रौढमनुष्यालाभे लज्जा भवतीति भावः ।

समासः—अपर्याप्तः निवेशस्य भागः यस्याः सा अपर्याप्तनिवेशभागा । संजाता लज्जा यस्याः सा संजातलज्जा । आतपत्रस्य छाया आतपत्रच्छाया, तस्याः छलमिति आतपत्रच्छायाच्छलं तेन, आतपत्रच्छायाच्छलेन ।

हिन्दी—राजा सुदर्शन के हृदय में जिसके बैठने के लिए पूरा स्थान नहीं है, (बालक होने के कारण) इसीलए उसके युवा (जवान) होने की प्रतीक्षा करती हुई अर्थात् यह जवान पुरुष होगा तब आलिंगन सुख भोगूँगी, इस आशा में बैठी राज्यलक्ष्मी आलिंगन करने के लिये मानो बड़ी लजाती हुई, उस सुदर्शन का, सुफेद छत्र की छाया के बहाने आलिंगन करती थी । अर्थात् छत्र की छाया लक्ष्मी रूपी है । और युवती स्त्री युवा पुरुष के अभाव में छोटे पति के साथ लज्जा करती है ॥ ४७ ॥

अनश्नुवानेन युगोपमानमबद्धमौर्वीकिणलाञ्छनेन ।
अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि चासीद्रक्षावती तस्य भुजेन भूमिः ॥ ४८ ॥

युगोपमानं युगसादृश्यमनश्नुवानेनाप्राप्नुवता । अबद्धं मौर्वीकिणो ज्याघातग्रन्थिरेव लाञ्छनं यस्य तेन । अस्पृष्टः खड्गत्सरुः खड्गमुष्टिर्येन तेन । 'त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यात्' इत्यमरः । एवंविधेनापि च तस्य सुदर्शनस्य भुजेन भूमी रक्षावत्यासीत् । शिशोरपि तस्य तेजस्तादृगित्यर्थः ॥

अन्वयः—युगोपमानम् अनश्नुवानेन अबद्धमौर्वीकिणलाञ्छनेन अस्पृष्टखड्गत्सरुणापि च तस्य भुजेन भूमिः रक्षावती आसीत्।

व्याख्या—युगस्य = रथाङ्गस्य उपमानं = सादृश्यमिति युगोपमानम् न अश्नुवानः अनश्नुवानस्तेन अनश्नुवानेन = अप्राप्नुवता, मूर्वाया: विकारः मौर्वी, मौर्व्याः = ज्यायाः किणः = व्रणजचिह्नमिति मौर्वीकिणः, अबद्धं न जातं मौर्वीकिण एव लाञ्छनं = चिह्नं यस्य स तेन अबद्धमौर्वीकिणलाञ्छनेन खड्गस्य = कृपाणस्य त्सरुः = मुष्टिरिति खड्गत्सरुः, न स्पृष्टः इति अस्पृष्टः = अगृहीतः खड्गत्सरुः येन स तेन अस्पृष्टखड्गत्सरुणा, एवंविधेनापि च तस्य = बालकसुदर्शनस्य भुजेन = बाहुना भूमिः = पृथिवी, रक्षा = सुरक्षणमस्या अस्तीति रक्षावती = अभिभावकवती, राजन्वतीत्यर्थः आसीत् = अभूत्। बालस्यापि तस्य सुदर्शनस्य तादृशः प्रभावः आसीदित्यर्थः।

समासः—युगस्य उपमानमिति तत् युगोपमानम्। न बद्धमिति अबद्धम् मौर्व्याः किणः मौर्वीकिणः स एव लाञ्छनमिति मौर्वीकिणलाञ्छनः अबद्धं मौर्वीकिणलञ्छनं यस्य स तेन तथोक्तेन। न स्पृष्टः खड्गस्य, त्सरुर्येन स तेन अस्पृष्टखड्गत्सरुणा। न अश्नुवानः अनश्नुवानः, तेन अनश्नुवानेन।

हिन्दी—पृथिवी, बालराजा सुदर्शन की उस भुजा से 'भलीभाँति' रक्षावाली थी, जो भुजा अभी जुए के समान मोटी एवं लम्बी नहीं हो पाई थी। और जिसमें धनुष की डोरी की रगड़ का निशान भी नहीं बना था। तथा जिसने अभी तलवार की मूँठ भी नहीं छुई थी। अर्थात् बच्चा होनेपर भी उसका ऐसा प्रभाव था कि सर्वत्र सुख शान्ति थी ॥ ४८ ॥

न केवलं गच्छति तस्य काले ययुः शरीरावयवा विवृद्धिम्।
वंश्या गुणाः खल्वपि लोककान्ताः प्रारम्भसूक्ष्माः प्रथिमानमापुः ॥ ४९ ॥

काले गच्छति सति तस्य केवलं शरीरावयवा एव विवृद्धिं प्रसारं न ययुः। किन्तु वंशे भवा वंश्या लोककान्ता जनप्रियाः प्रारम्भ आदौ सूक्ष्मास्तस्य गुणाः शौर्यौदार्यादयोऽपि प्रथिमानं पृथुत्वमापुः खलु ॥

अन्वयः—काले गच्छति सति तस्य केवलं शरीरावयवाः एव विवृद्धिं न आपुः किन्तु वंश्याः लोककान्ताः प्रारम्भसूक्ष्माः तस्य गुणाः अपि प्रथिमानम् आपुः खलु।

व्याख्या—काले = समये गच्छति = याति सति तस्य = सुदर्शनस्य केवलं शरीरस्य = देहस्य अवयवाः = हस्तपादादयः, इति शरीरावयवाः एव विवृद्धिं = प्रसारं-विस्तारं न ययुः = न जग्मुः। किन्तु वंशे = कुले भवाः = जाताः वंश्याः, लोकानां = जनानां कान्ताः = प्रियाः इति लोककान्ताः प्रारम्भे = आदौ सूक्ष्माः = अल्पाः इति प्रारम्भसूक्ष्माः तस्य = सुदर्शनस्य गुणाः = शौर्यादयः-दयादाक्षिण्यौदार्यादयश्चापि। पृथोर्भावः प्रथिमा तं प्रथिमानं = पृथुत्वम् आपुः = प्रापुः खलु = निश्चये। अवयवैः सह गुणाः अपि प्रवृद्धा इत्यर्थः।

हिन्दी—कुछ समय बीतने पर सुदर्शन के केवल शरीर के अंग-प्रत्यंग ही नहीं बढ़े किन्तु

उसके कुलपरम्परा के वे गुण भी खूब बढ़ गये, जो सर्वजन के प्रिय थे तथा जो आरम्भ (शुरू) में थोड़े एवं स्वल्प थे ॥ ४९ ॥

स पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरन्निवाक्लेशकरो गुरूणाम्।
तिस्रस्त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं जग्राह विद्याः प्रकृतीश्च पित्र्याः ॥ ५० ॥

स सुदर्शनः पूर्वस्मिञ्जन्मान्तरे जन्मविशेषे दृष्टपाराः स्मरन्निव गुरूणामक्लेशकरः सन्। त्रयाणां धर्मार्थकामानां वर्गस्त्रिवर्गः। तस्याधिगमस्य प्राप्तेर्मूलं तिस्रो विद्यास्त्रयीवार्तादण्डनीतीः पित्र्याः पितृसंबन्धिनीः प्रकृतीः प्रजाश्च जग्राह स्वायत्तीचकार। अत्र कौटिल्यः—'धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयानयौ दण्डनीत्याम्' इति। अत्र दण्डनीतिर्नयद्वारा काममूलमिति द्रष्टव्यम्। आन्वीक्षिक्या अनुपादानं त्रय्यन्तर्भावपक्षमाश्रित्य। यथाह कामन्दकः—'त्रयीवार्तादण्डनीतिस्तिस्रो विद्या मनोर्मताः। त्रय्या एव विभागोऽयं येन सान्वीक्षिकी मता ॥' इति ॥

अन्वयः—सः पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः स्मरन् इव गुरूणाम् अक्लेशकरः सन् त्रिवर्गाधिगमस्य मूलं तिस्रः विद्याः पित्र्याः प्रकृतीः च जग्राह।

व्याख्या—सः = राजा सुदर्शनः अन्यत् जन्म जन्मान्तरं, पूर्वस्मिन् जन्मान्तरे = अतीते जन्मनि दृष्टं = ज्ञातं पारम् = अन्तं यासां ताः इति पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः ताः स्मरन् = स्मरणं कुर्वन् इव = यथा अत एव गुरूणाम् = आचार्याणाम् क्लेशं = पाठनरूपं करोतीति क्लेशकरः न क्लेशकरः = कष्टप्रदः इति अक्लेशकरः सन् त्रयाणां = धर्मार्थकामानां वर्गः = समूहः इति त्रिवर्गस्तस्य त्रिवर्गस्य अधिगमः = प्राप्तिः, तस्य त्रिवर्गाधिगमस्य मूलम् = आद्यं = प्रथमम् तिस्रः = त्रिसंख्याकाः वेत्ति तत्त्वसाक्षात्कारं करोति राजनीतिं जानाति याभिस्ताः विद्याः = त्रयीवार्तादण्डनीतीः कौटिल्योक्ताः पितुः आगताः पित्र्याः ताः पित्र्याः = पितुः संबन्धिनीः प्रकृतीः = प्रजाः च जग्राह = वशीकृतवान्। सर्वोऽपि अमात्यादिप्रकृतिवर्गः तद्वशे आसीदित्यर्थः।

समासः—अन्यत् जन्म जन्मान्तरं पूर्वं च तज्जन्मान्तरमिति पूर्वजन्मान्तरं तस्मिन् दृष्टं पारं यासां ताः पूर्वजन्मान्तरदृष्टपाराः ताः। न क्लेशकरः इति अक्लेशकरः। त्रयाणां वर्गः त्रिवर्गस्तस्य अधिगमस्तस्य त्रिवर्गाधिगमस्य।

हिन्दी—पूर्वजन्म में जिन विद्याओं में वह पारंगत था, मानों उन सब विद्याओं को स्मरण करके अत एव गुरुजनों को कष्ट न (पढ़ाने का) देनेवाला राजा सुदर्शन ने, धर्म अर्थ काम (त्रिवर्ग) की प्राप्ति का प्रथम साधन तीनों विद्याओं (त्रयी वार्ता दण्डनीति) को, और पितृपरम्परा से प्राप्त प्रजा को अपने अधीन कर लिया। अर्थात् अनायास ही सब विद्याओं में पारंगत हो गया, और सारी प्रजा को प्रेम से अपने वश में कर लिया ॥ ५० ॥

व्यूह्य स्थितः किंचिदिवोत्तरार्धमुन्नद्धचूडोऽञ्चितसव्यजानुः।
आकर्णमाकृष्टसबाणधन्वा व्यरोचतास्त्रेषु विनीयमानः ॥ ५१ ॥

अस्त्रेषु धनुर्विद्यायां विनीयमानः शिक्ष्यमाणोऽत एवोत्तरार्धं पूर्वकायं किंचिदिव व्यूह्य विस्तार्य स्थितः। उन्नद्धचूड ऊर्ध्वमुत्कृष्य बद्धकेशः। अञ्चितमाकुञ्चितं सव्यं जानु यस्य स आकर्णमाकृष्टं सबाणं धनुर्धन्वं वा येन स तथोक्तः सन्व्यरोचताशोभत ॥

अन्वयः—अस्त्रेषु विनीयमानः अतः एव उत्तरार्धं किंचित् इव व्यूह्य स्थितः उन्नद्धचूडः अञ्चितसव्यजानुः आकर्णम् आकृष्टबाणधन्वा सन् व्यरोचत।

व्याख्या—अस्त्रेषु = आयुधेषु–धनुर्विद्यायामित्यर्थः। विनीयते इति विनीयमानः = शिक्ष्यमाणः अतः एव उत्तरं च तदर्धमिति उत्तरार्धं तत् = पूर्वकायं किंचित् = स्वल्पम् इव व्यूह्य = प्रसार्य स्थितः = तिष्ठन्, उत् = ऊर्ध्वमुत्कृष्य नद्धा = बद्धा चूडा = शिखा = केशाः येन सः उन्नद्धचूडः। अञ्चितम् = आकुञ्चितं सव्यं = वामं जानु = ऊरुपर्व येन सः अञ्चितसव्यजानुः आलीढाख्यासनविशेषेण स्थित इत्यर्थः। "वामं सव्यं शरीरं स्यात्" "जानूरुपर्वाष्ठीवदस्त्रियामिति" चामरः। कर्णं = श्रोत्रमभिव्याप्य इति आकर्णं = कर्णपर्यन्तम्। बाणेन सहितं सबाणं = सशरम्। आकृष्टं = संधानितं सबाणं = सशरं धनुः = चापं येन सः आकृष्टसबाणधन्वा सन् व्यरोचत = अशोभत।

समासः—उत्तरञ्च तदर्धमिति तत् उत्तरार्धम्। उत् नद्धा चूडा येन सः उन्नद्धचूडः। अञ्चितं सव्यं जानु येन सः अञ्चितसव्यजानुः। आकृष्टं सबाणं धनुर्येन सः आकृष्टसबाणधन्वा।

हिन्दी—धनुर्विद्या (अस्त्र शस्त्र चलाने) की शिक्षा लेते समय बालक सुदर्शन अपने शरीर के ऊपरी भाग (सीने) को तानकर खड़ा हुआ, तथा केशों (चोटी) को ऊपर को खींचकर बाँधे हुए, और बाएँ घुटने को झुकाये (मोड़े) हुए (अर्थात् आलीढ, वीरासन से खड़ा हुआ) और बाण चढ़ाकर धनुष की डोरी को कान तक खींचे हुए, बड़ा ही सुन्दर लगता था ॥ ५१ ॥

अथ मधु वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं
मनसिजतरुपुष्पं रागबन्धप्रवालम्।
अकृतकविधि सर्वाङ्गीणमाकल्पजातं
विलसितपदमाद्यं यौवनं स प्रपेदे ॥ ५२ ॥

अथ स सुदर्शनो वनितानां नेत्रैर्निर्वेशनीयं भोग्यम्। नेत्रपेयमित्यर्थः। 'निर्वेशो भृतिभोगयोः' इत्यमरः। मधु क्षौद्रम्। रागबन्धोऽनुरागसंतान एव प्रवालः पल्लवो यस्य तत्। मनसिज एव तरुस्तस्य पुष्पं पुष्पभूतम्। अकृतकविध्यकृत्रिमसंपादनम्। सर्वाङ्गं व्याप्नोतीति सर्वाङ्गीणम्। 'तत्सर्वादेः–' इत्यादिना खप्रत्ययः। आकल्पजातमाभरणसमूहभूतम्। आद्यं विलसितपदं विलासस्थानं यौवनं प्रपेदे। विशिष्टमधुपुष्पाकल्पजातविलासपदत्वेन यौवनस्य चतुर्धाकरणात्सविशेषणमालारूपकमेतत् ॥

अन्वयः—अथ सः वनितानां नेत्रनिर्वेशनीयं मधु, रागबन्धप्रवालं मनसिजतरुपुष्पम्, अकृतकविधि सर्वाङ्गीणम् आकल्पजातम् आद्यं विलसितपदं यौवनं प्रपेदे।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम् सः = राजा सुदर्शनः वनितानां = महिलानाम् निर्वेष्टुं योग्यं निर्वेशनीयं, नेत्रैः = चक्षुर्भिः निर्वेशनीयं = भोग्यमिति नेत्रनिर्वेशनीयं = भोग्यमिति नेत्रनिर्वेशनीयं तत्। "निर्वेशस्तु पुमान् भोगे केतने मूर्च्छनेऽपि चेति" मेदिनी। मधु = क्षौद्रम्, मधुतुल्यं मधुरं, दर्शनीयमित्यर्थः। रागस्य = अनुरागस्य बन्धः = सन्तानः–परम्परा, एव प्रवालः = पल्लवः यस्य तत् रागबन्धप्रवालं, मनसि जातः इति मनसिजः = कामदेवः एव तरुः = वृक्षः तस्य पुष्पं = कुसुमभूतं तत् मनसिजतरुपुष्पम्, न कृतकः अकृतकः = स्वाभाविकः विधिः = सम्पादनं करणमित्यर्थः। यस्य तत् अकृतकविधि, सर्वाणि तानि अंगानीति सर्वाङ्गानि व्याप्नोतीति सर्वाङ्गीणं = सर्वाङ्गव्यापकम्, आकल्प्यन्ते, आकल्पयन्ति वा आकल्पाः। आकल्पानां = प्रसाधनानां, भूषणानाञ्चेत्यर्थः। जातं = समूहभूतमिति आकल्पजातम्–"जातं व्यक्तौघजन्मसु" इति आदौ भवम् आद्यं = प्राथमिकं बिलसितानां = विलासानां पदं = स्थानमिति विलसितपदं यूनोभावः यौवनं = तारुण्यं = युवावस्थामित्यर्थः प्रपेदे = प्राप।

समासः—नेत्रैः निर्वेशनीयमिति नेत्रनिर्वेशनीयम्। रागस्य बन्धः एव प्रवालः यस्य तत् रागबन्धप्रवालम्। मनसिज एव तरुः इति मनसिजतरुस्तस्य पुष्पमिति मनसिजतरुपुष्पम्। न कृतकः अकृतकः विधिर्यस्य तत् अकृतकविधि। आकल्पानां जातमिति आकल्पजातम्। विलसितानां पदमिति विलसितपदम्, तत्।

हिन्दी—इसके पश्चात् राजा सुदर्शन, उस युवावस्था को प्राप्त हो गया याने कि जवान हो गया, जो कि स्त्रियों के नेत्रों से भोगने योग्य मधु है रुचिकर सुख देनेवाला है। अनुराग समूह या परम्परा रूपी नया पल्लव के समान है। और कामरूपी वृक्ष का पुष्पस्वरूप हैं। और पूरे शरीर में व्याप्त होने वाली स्वाभाविक शोभा है। तथा मनोरञ्जन रंगरंगेली, अनुरागादि विलास का पहला स्थान है। और जो कि भूषणादि सजावट का समूहभूत है ॥ ५२ ॥

प्रतिकृतिरचनाभ्यो दूतिसंदर्शिताभ्यः
समधिकतररूपाः शुद्धसंतानकामैः।
अधिविविदुरमात्यैराहृतास्तस्य यूनः
प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ राजकन्याः ॥ ५३ ॥

दूतिभिः कन्यापरीक्षणार्थं प्रेषिताभिः संदर्शिताभ्यो दूतिसंदर्शिताभ्यः प्रतिकृतीनां तूलिकादिलिखितकन्याप्रतिमानां रचनाभ्यो विन्यासेभ्यः। 'पञ्चमी विभक्ते' इति पञ्चमी। समधिकतररूपाः। चित्रनिर्माणादपि रमणीयनिर्माणा इत्यर्थः। शुद्धसंतानकामैरमात्यैराहृता आनीता राजकन्याः यूनस्तस्य सुदर्शनस्य संबन्धिन्यौ प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ श्रीश्च भूश्च ते अधिविविदुरधिविन्ने चक्रुः। आत्मना सपत्नीभावं चक्रुरित्यर्थः। 'कृतसापत्निकाध्यूढाधिविन्ना' इत्यमरः ॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया
व्याख्यया समेते महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये
वंशानुक्रमो नामाष्टादशः सर्गः।

अन्वयः—दूतिसन्दर्शिताभ्यः प्रकृतिरचनाभ्यः समधिकतररूपाः शुद्धसन्तानकामैः अमात्यैः आहृताः राजकन्याः यूनः तस्य प्रथमपरिगृहीते श्रीभुवौ अधिविविदुः ।

व्याख्या—दूतिभिः = संचारिकाभिः = कन्यापरीक्षार्थं प्रहिताभिरित्यर्थः । सम्यक् दर्शिताः = प्रतिज्ञापिताः इति दूतिसन्दर्शितास्ताभ्यः दूतिसन्दर्शिताभ्यः "दूतीसंचारिके समे" इत्यमरः । प्रकृष्टाः कृतयः प्रतिकृतयस्तासां प्रतिकृतीनां = तूलिकादिलिखितचित्राणां रचनाभ्यः = विन्यासेभ्यः, निर्माणेभ्य इत्यर्थः । अतिशयेन समधिकमिति समधिकतरं रूपं यासां ताः समधिकतररूपाः चित्ररचनायाः अपि अधिकरमणीया इत्यर्थः । शुद्धं = निर्दोषं सन्तानं = सन्ततिं कामयन्ते = इच्छन्तीति शुद्धसन्तानकामास्तैः शुद्धसन्तानकामैः अमात्यैः = मन्त्रिभिः आहृताः = समानीताः राज्ञां = भूपालानां कन्याः = कुमार्यस्ताः राजकन्याः यूनः = तरुणस्य तस्य = सुदर्शनस्य सम्बन्धिन्यौ प्रथमं = पूर्वमेव परिगृहीते = स्वीकृते, इति प्रथमपरिगृहीते श्रीः = राज्यलक्ष्मीश्च भूः = पृथिवी चेति श्रीभुवौ अधिविविदुः = अधिविन्ने चक्रुः । श्रीभुवौ सपत्न्यौ कृते कन्याभिः इत्यर्थः ।

समासः—दूतिभिः सम्यक् दर्शितास्ताभ्यः दूतिसन्दर्शिताभ्यः । प्रतिकृतीनां रचनास्ताभ्यः प्रतिकृतिरचनाभ्यः । समधिकतरं रूपं यासां ताः समधिकतररूपाः । शुद्धस्य सन्तानस्य कामः येषान्ते शुद्धसन्तानकामास्तैः शुद्धसन्तानकामैः । राज्ञां कन्या राजकन्याः । प्रथमं परिगृहीते प्रथमपरिगृहीते, ते । श्रीश्च भूश्च ते श्रीभुवौ ।

हिन्दी—कन्याओं को देखने जानने के लिये भेजी गई दूतियों के द्वारा अच्छी प्रकार 'चित्र लाकर' दिखाई गईं, तथा उन चित्रों से भी अधिक रूपवती और 'राजकुल में' शुद्ध सन्तान की कामना करने वाले मंत्रिगण जिन्हें ले आये थे, उन राजकन्याओं ने उस नवयुवक सुदर्शन की पहले ही स्वीकृत राजलक्ष्मी तथा पृथिवी को अधिविन्ना बना दिया । अर्थात् इन दोनों को सौत बना दिया ।

विशेष—जिस स्त्री के रहते हुए पति दूसरा विवाह कर ले वह स्त्री अधिविन्ना (सौतवाली) कहाती हैं ॥ ५३ ॥

इति श्रीशांकरिधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये वंशानुक्रमो नामाष्टादशः सर्गः ॥

एकोनविंशः सर्गः ।

मनसो मम संसारबन्धमुच्छेत्तुमिच्छतः ।
रामचन्द्रपदाम्भोजयुगलं निगडायताम् ॥

अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम् ।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी ॥ १ ॥

श्रुतवतां श्रुतसंपन्नानामपश्चिमः प्रथमो वशी जितेन्द्रियो राघवः सुदर्शनः पश्चिमे वयसि वार्धके स्वे पदे स्थानेऽग्नितेजसं तनयमग्निवर्णमभिषिच्य नैमिषं नैमिषारण्यं शिश्रिये श्रितवान् ॥

अन्वयः—श्रुतवताम् अपश्चिमः वशी राघवः पश्चिमे वयसि स्वे पदे, अग्नितेजसं तनयम् अग्निवर्णम् अभिषिच्य नैमिषं शिश्रिये ।

व्याख्या—श्रुतं = शास्त्रमस्ति येषां ते श्रुतवन्तस्तेषां श्रुतवतां = विदुषाम् न पश्चिमः = सान्तिमः इति अपश्चिमः = प्रथमः वशोऽस्यास्तीति वशी = जितेन्द्रियः राघवः = राजा सुदर्शनः पश्चिमे = अन्तिमे वार्धक्ये वयसि = अवस्थायां स्वे पदे = निजस्थाने-स्वीयराज्यासने-इत्यर्थः अग्निः = वह्निरिव तेजः = प्रतापो यस्य स तम् अग्नितेजसम् तनयं = पुत्रम् अग्ने इव वर्णः यस्य स तम् अग्निवर्णम् = अग्निवर्णनामकम् अभिषिच्य = राज्याभिषेकं कृत्वा निमिषान्तरमात्रेण निहत-भासुरं बलं यत्र तत् नैमिषं = नैमिषारण्यक्षेत्रं = शिश्रिये श्रितवान् । तपसे नैमिषारण्यं गत इत्यर्थः ।

समासः—न पश्चिमः अपश्चिमः । अग्नेरिव वर्णः यस्य सः अग्निवर्णः अग्निना तुल्यं तेजो यस्य सः अग्नितेजास्तम् अग्नितेजसम् ।

हिन्दी—विद्वानों में प्रथम (श्रेष्ठ) जितेन्द्रिय, रघु के कुल में उत्पन्न राजा सुदर्शन, वृद्धावस्था के आनेपर (बुढ़ौती में) अपने स्थान पर अग्नि के समान तेजस्वी अपने पुत्र अग्नि-वर्ण को राजतिलक करके स्वयं नैमिषारण्य क्षेत्र में चले गये ॥ १ ॥

तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः ।
सौधवासमुटजेन विस्मृतः संचिकाय फलनिःस्पृहस्तपः ॥ २ ॥

तत्र-नैमिषे तीर्थसलिलेन दीर्घिका विहारवापीरन्तरितभूमिभिः कुशैस्तल्पं शय्यामुटजेन पर्ण-शालया सौधवासं विस्मृतो विस्मृतवान्सः । कर्तरि क्तः । फले स्वर्गादिफले निःस्पृहस्तपः संचि-काय संचितवान् ॥

अन्वयः—तत्र सलिलेन दीर्घिकाः, अन्तरितभूमिभिः कुशैः तल्पम्, उटजेन सौधवासं विस्मृतः सः फलनिःस्पृहः तपः संचिकाय ।

व्याख्या—तत्र = नैमिषारण्यतीर्थे तीर्थस्य = पवित्रक्षेत्रस्य सलिलं = जलं तेन तीर्थसलिलेन दीर्घा एव दीर्घिकाः = वापीः, अन्तरिता = आच्छादिता भूमिः = पृथिवी यैस्तैः अन्तरितभूमिभिः कुशैः = दर्भैः तल्पं = शय्याम् उटेभ्यः = तृणपर्णादिभ्यः जातः उटजस्तेन उटजेन = पर्णशालया सौधे = राजभवने वासः = निवासस्तं सौधवासं विस्मृतः = विस्मृतवान् सः = राजा सुदर्शनः फले = स्वर्गादिफले निःस्पृहः = निरभिलाषः इति फलनिःस्पृहः तपः = पुण्यं संचिकाय = संचितवान् ।

समासः—तीर्थस्य सलिलं तीर्थसलिलं तेन तीर्थसलिलेन । अन्तरिता भूमिः यैस्तैः अन्तरितभूमिभिः । निर्गता स्पृहा यस्य स निःस्पृहः, फले निःस्पृहः इति फलनिःस्पृहः । सौधे वासः सौधवासस्तं सौधवासम् ।

हिन्दी—नैमिषारण्य में सुदर्शन, तीर्थ के जल से राजभवन की बावलियों को, और जमीन पर बिछाई गई कुशाओं से पलंग को, तथा घास फूस की बनी कुटिया से राजमहल को भूलकर और स्वर्गादि फल की इच्छा को त्यागकर तप करने लग गये । अर्थात् तपोवन की सामग्री के आगे राजभवन की सामग्री को भुलाकर मोक्ष साधन में जुट गये ॥ २ ॥

लब्धपालनविधौ न तत्सुतः खेदमाप गुरुणा हि मेदिनी ।
भोक्तुमेव भुजनिर्जितद्विषा न प्रसाधयितुमस्य कल्पिता ॥ ३ ॥

तत्सुतः सुदर्शनपुत्रोऽग्निवर्णो लब्धपालनविधौ लब्धस्य राज्यस्य पालनकर्मणि खेदं नाप । अक्लेशेनापालयदित्यर्थः । कुतः । हि यस्माद्भुजनिर्जितद्विषा गुरुणा पित्रा मेदिन्यस्याग्निवर्णस्य भोक्तुमेव कल्पिता । प्रसाधयितुं न । प्रसाधनं कण्टकशोधनम् । अलंकृतिर्ध्वन्यते । तथा च यथालंकृता युवतिः केवलमुपभुज्यते तद्वदिति भावः ॥

अन्वयः—तत्सुतः लब्धपालनविधौ खेदं न आप हि–भुजनिर्जितद्विषा गुरुणा मेदिनी अस्य भोक्तुम् एव कल्पिता, न प्रसाधयितुम् ।

व्याख्या—तस्य = सुदर्शनस्य सुतः = आत्मजः, तत्सुतः = अग्निवर्णः लब्धस्य = प्राप्तस्य-राज्यस्य पालनं = रक्षणं तस्य विधिः = विधानं तस्मिन् लब्धपालनविधौ = रक्षाकर्मणीत्यर्थः । खेदं = श्रमं न आप = न प्राप्तवान् । हि = यस्मात् कारणात् भुजाभ्यां = बाहुभ्यां निर्जिताः = पराजिताः द्विषः = शत्रवो येन स तेन भुजनिर्जितद्विषा गुरुणा = पित्रा-सुदर्शनेन मेदिनी = वसुन्धरा अस्य = अग्निवर्णस्य भोक्तुम् = उपभोगं कर्तुम् एव कल्पिता = संरचिता प्रसाधयितुं = कण्टकान् शोधयितुं न = नहि । एवं च यथा—प्रसाधिताभरणादिना तरुणी केवलमुपभुज्यते तद्वदिति भावः ।

समासः—लब्धस्य पालनमिति लब्धपालनं तस्य विधिस्तस्मिन् लब्धपालनविधौ । भुजाभ्यां निर्जिताः द्विषः येन स तेन भुजनिर्जितद्विषा ।

हिन्दी—राजा सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण को, पिता से प्राप्त राज्य के पालन रक्षण करने

में किसी प्रकार का भी कष्ट (कठिनता) नहीं उठाना पड़ा। क्योंकि अपने बाहुबल से शत्रुओं को परास्त करनेवाले पिता सुदर्शन ने पृथिवी को निष्कण्टक बनाकर केवल अग्निवर्ण को भोग भोगने के लिये ही राज्य दिया था, न कि शत्रुओं को मार कर सजाने के लिए ॥ ३ ॥

सोऽधिकारमभिकः कुलोचितं काश्चन स्वयमवर्तयत्समाः।
संनिवेश्य सचिवेष्वतः परं स्त्रीविधेयनवयौवनोऽभवत् ॥ ४ ॥

अभिकः कामुकः 'अनुकामिकाभीकः कमिता' इति निपातः। 'कम्रः कामयिताभीकः कमनः कामनोऽभिकः' इत्यमरः। सोऽग्निवर्णः कुलोचितमधिकारं प्रजापालनं काश्चन समाः कतिचिद्वत्सरान्स्वयमवर्तयदकरोत्। अतः परं सचिवेषु संनिवेश्य निधाय स्त्रीविधेयं स्त्र्यधीनं नवं यौवनं यस्य सोऽभवत्। स्त्र्यासक्तोऽभूदित्यर्थः॥

अन्वयः—अभिकः सः कुलोचितम् अधिकारं काश्चन समाः स्वयम् अवर्तयत् अतः परं सचिवेषु सन्निवेश्य स्त्रीविधेयनवयौवनः अभवत्।

व्याख्या—अभिकामयते इति अभिकः = कामी सः = अग्निवर्णः कुले = रघुवंशे उचितम् योग्यमिति कुलोचितं, कुलस्य वा उचितमिति कुलोचितं, कुलक्रमागतमित्यर्थः अधिकारं = प्रजापालरूपं काश्चन समन्ति = विकलयन्ति भावान्, इति समा स्ताः। समाः—संवत्सरान् स्वयम् = आत्मना अवर्तयत् = कृतवान्। अतः परं = अनन्तरं सचिवेषु = अमात्येषु संनिवेश्य = निधाय राज्यभारं समर्प्य स्त्रीणां = कामिनीनां विधेयं = वश्यम् अधीनं नवं = नूतनं यौवनं = तारुण्यं यस्य स स्त्रीविधेयनवयौवनः = स्त्रैण इत्यर्थः। अभवत् = अभूत् जातः।

समासः—स्त्रीणां विधेयं नवं यौवनं यस्य स स्त्रीविधेयनवयौवनः। कुले—कुलस्य वा उचित इति कुलोचितः, तम्।

हिन्दी—"पिता से निरंकुश, निर्विघ्नराज्य मिलने से" कामी राजा अग्निवर्ण ने कुछ वर्षों तक तो स्वयं अपने कुलोचित प्रजा का पालन-रक्षण किया। और इसके पश्चात् मंत्रियों के ऊपर राज्यभार सौंपकर अपनी नई जवानी को स्त्रियों के अधीन कर दिया। अर्थात् स्त्रैण एवं विलासी होकर रंगरंगेलियों में ही मस्त हो गया ॥ ४ ॥

कामिनीसहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदङ्गनादिषु।
ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिरुत्तरः पूर्वमुत्सवमपोहदुत्सवः ॥ ५ ॥

कामिनीसहचरस्य कामिनस्तस्य मृदङ्गनादिषु मृदङ्गनादवत्सु वेश्मस्वधिकर्द्धिः पूर्वस्मादधिकसंभार उत्तर उत्सवः। ऋद्धिमन्तं साधनसंपन्नं पूर्वमुत्सवमपोहदपानुदत्। उत्तरमुत्तरमधिका तस्योत्सवपरम्परा वृत्तेत्यर्थः॥

अन्वयः—कामिनीसहचरस्य कामिनः तस्य मृदंगनादिषु वेश्मसु अधिकर्द्धिः उत्तरः उत्सवः ऋद्धिमन्तं पूर्वम् उत्सवम् अपोहत्।

व्याख्या—भूयान् कामः आसामस्तीति कामिन्यः। कामिनीभिः = अंगनाभिः सह चरतीति कामिनीसहचरः भूयान् कामोऽस्यास्तीति कामी तस्य कामिनः = कामुकस्य तस्य = अग्निवर्णस्य मृद्यते, इति मृदंगः मृत् अंगमस्येति वा मृदंगः = मुरजः तस्य नादः = घोषः अस्ति येषु तानि तेषु मृदंगनादिषु = मुरजघोषवत्सु वेश्मसु = भवनेषु अधिका = प्रचुरा ऋद्धिः = समृद्धिः सम्भारः यस्मिन् सः अधिकर्द्धिः उत्तरः = उत्तरस्मिन् काले भवः उत्सवः = उद्धवः-क्षणः ऋद्धिः समृद्धिरस्ति यस्य स तम् ऋद्धिमन्तं = साधनसम्पन्नं पूर्वम्-प्रथमम् उत्सवं = क्षणम् अपोहत् = अपानुदत् अधश्चकार। पूर्वस्मात् उत्तरोत्तरः उत्सव अधिकानन्दकरो जातः।

समासः—कामिनीनां सहचरः इति कामिनीसहचरः। अधिका ऋद्धिः यस्य सः अधिकर्द्धिः। मृदंगानां नादः मृदंगनादः सोऽस्ति येषु तानि तेषु मृदंगनादिषु।

हिन्दी—सुन्दरियों के साथी कामी उस राजा अग्निवर्ण के उन भवनों में, जिनमें निरन्तर मृदंग बजती रहती थी, विशिष्ट तैयारी वाले उत्सव (नाच-गाना-बजानारूप) ने बड़े-बड़े साधन वाले पहले के उत्सवों को फीका कर दिया। अर्थात् एक से एक बढ़कर उत्सव होते थे ॥ ५ ॥

इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षमः सोढुमेकमपि स क्षणान्तरम्।
अन्तरेव विहरन्दिवानिशं न व्यपैक्षत समुत्सुकाः प्रजाः ॥ ६ ॥

इन्द्रियार्थपरिशून्यं शब्दादिविषयरहितमेकमपि क्षणान्तरं क्षणभेदं सोढुमक्षमोऽशक्तः सोऽग्निवर्णो दिवानिशमन्तरेव विहरन्समुत्सुका दर्शनाकाङ्क्षिणीः प्रजा न व्यपैक्षत नापेक्षितवान् ॥

अन्वयः—इन्द्रियार्थपरिशून्यम् एकम् अपि क्षणान्तरं सोढुम् अक्षमः सः दिवानिशम् अन्तः एव विहरन् समुत्सुकाः प्रजाः न व्यपेक्षत।

व्याख्या—इन्द्रियाणां = चक्षुरादीनां अर्थाः = विषयाः, शब्दादयः इन्द्रियार्थास्तैः परिशून्यं = रहितमिति, इन्द्रियार्थपरिशून्यम् एकमपि अन्यः क्षणः क्षणान्तरं तत् क्षणान्तरं = निमेषम् सोढुं = सहनं कर्तुम् न क्षमः अक्षमः = असमर्थः सः = अग्निवर्णः दिवा च निशा च दिवानिशम् = रात्रिन्दिवम् अन्तः = अन्तपुरे एव विहरन् = विहारं कुर्वन् सम्यगुत्सुका = दर्शनार्थमुत्कण्ठिताः = दर्शनाभिलाषिणीः इत्यर्थः। प्रजाः = जनान् न व्यपैक्षत = नापेक्षितवान्। दर्शनमपि न दत्तवानित्यर्थः।

समासः—इन्द्रियाणाम् अर्थाः इन्द्रियार्थास्तैः परिशून्यम् इन्द्रियार्थपरिशून्यम् तत्। न क्षमः अक्षमः। दिवा च निशा च दिवानिशम्। अन्यः क्षणः क्षणान्तरम् तत्।

हिन्दी—राजा अग्निवर्ण इतना विलासी था कि—भोगविलास से रहित एक क्षण भी वह नहीं रह सकता था। इसलिये दिन रात रानियों के महल में ही विहार करता था। और

उनके दर्शन चाहने वाली प्रजा की उपेक्षा करता था। अर्थात् प्रजा को दर्शन नहीं देता था ॥ ६ ॥

गौरवाद्यदपि जातु मन्त्रिणां दर्शनं प्रकृतिकाङ्क्षितं ददौ ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम् ॥ ७ ॥

जातु कदाचिन्मन्त्रिणां गौरवाद् गुरुत्वाद्धेतोः। मन्त्रिवचनानुरोधादित्यर्थः। प्रकृतिभिः प्रजाभिः काङ्क्षितं यदपि दर्शनं ददौ तदपि गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन चरणमात्रेण कल्पितं संपादितम्। न तु मुखावलोकनप्रदानेनेत्यर्थः ॥

अन्वयः—जातु मन्त्रिणां गौरवात् प्रकृतिकांक्षितं यदपि दर्शनं ददौ, तद् गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम्।

व्याख्या—जातु = कदाचित् मन्त्रिणां = सचिवानां गुरोर्भावः गौरवम् तस्मात् गौरवात् = आदरात् हेतोः, अमात्यकथनादरादित्यर्थः। प्रकृतिभिः = प्रजाभिः कांक्षितम् = अभिलषितमिति प्रकृतिकांक्षितं यदपि = यद्यपि दर्शनं ददौ = दत्तवान् तद् अपि गवामक्षीव इति गवाक्षः, गावः = जालानि, किरणाः वा अक्षन्ति = व्याप्नुवन्ति एनम् अनेन वा गवाक्षः = वातायनं, गवाक्षस्य विवरं = छिद्रं तत्र अवलम्बते इति गवाक्षविवरावलम्बी तेन गवाक्षविवरावलम्बिना = वातायनच्छिद्रे लम्बमानेन केवलेन = एकाकिना चरणेन पादेन कल्पितं = सम्पादितम्। कोमलेन उत्पलसदृशेन चरणेनैव दर्शनं सम्पादितं न तु मुखारविन्ददर्शनप्रदानेनेत्यर्थः।

समासः—प्रकृतिभिः कांक्षितमिति प्रकृतिकांक्षितम्, तत्। गवाक्षस्य विवरमिति गवाक्षविवरम्, गवाक्षविवरे अवलम्बी, तेन गवाक्षविवरावलम्बिना।

हिन्दी—राजा अग्निवर्ण यदि कभी मंत्रियों के अनुरोध करने पर उनके आदरवश प्रजाजनों से अभिलषित दर्शन देता था तो केवल झरोखे से बाहर लटकते हुए पैर से दर्शन देता था। अर्थात् खिड़की से पैर लटका कर चरण का दर्शन कराता था, मुख का दर्शन कभी भी प्रजा को नहीं होता था ॥ ७ ॥

तं कृतप्रणतयोऽनुजीविनः कोमलात्मनखरागरूषितम् ।
भेजिरे नवदिवाकरातपस्पृष्टपङ्कजतुलाधिरोहणम् ॥ ८ ॥

कोमलेन मृदुलेनात्मनखानां रागेणारुण्येन रूषितं छुरितम्। अत एव नवदिवाकरातपेन स्पृष्टं व्याप्तं यत्पङ्कजं तस्य तुलां साम्यतामधिरोहति प्राप्नोतीति तुलाधिरोहणम्। तं चरणमनुजीविनः कृतप्रणतयः कृतनमस्काराः सन्तो भेजिरे सिषेविरे ॥

अन्वयः—कोमलात्मनखरागरूषितम् 'अत एव' नवदिवाकरातपस्पृष्टपंकजतुलाधिरोहणम् तम् अनुजीविनः कृतप्रणतयः सन्तः भेजिरे।

व्याख्या—आत्मनः = स्वस्य नखाः = कररुहाः, इति आत्मनखाः, तेषां रागः = लोहितवर्णः,

इति आत्मनखरागः, कोमलः = मृदुलः य आत्मनखरागः तेन रूषितं = मण्डितम् अलंकृत-मित्यर्थः, इति कोमलात्मनखरागरूषितम्। अत एव दिवा करोतीति दिवाकरः। नवः = नूतनः प्रातःकालिकः इत्यर्थः। यः दिवाकरः = सूर्यस्तस्य आतपः = प्रकाशः, तेज इत्यर्थः। तेन स्पृष्टं = व्याप्तं यत् पंकजं = कमलं तस्य तुला = साम्यमिति नवदिवाकरातपस्पृष्टपंकजतुला तस्याः अधिरोहणं = प्रापणमिति नवदिवाकरातपस्पृष्टपंकजतुलाधिरोहणं तं = चरणं = पादमनुजीवन्तीति अनुजीविनः = अनुयायिनः कृता = विहिता प्रणतिः = नमस्कारो यैस्ते कृतप्रणतयः सन्तः भेजिरे = सेवितवन्तः।

समासः—कृता प्रणतिः यैस्ते कृतप्रणतयः। आत्मनः नखास्तेषां रागः इति आत्मनखरागः, कोमलश्चासौ आत्मनखराग इति कोमलात्मनखरागस्तेन रूषितस्तं कोमलात्मनखरागरूषितम्। नवः यः दिवाकरः इति नवदिवाकरस्तस्य आतपस्तेन स्पृष्टं यत् पंकजमिति नवदिवाकरातपस्पृष्टपंकजं तस्य तुलामधिरोहतीति नवदिवाकरातपस्पृष्टपंकजतुलाधिरोहणम्, तम्।

हिन्दी—राज्य के कर्मचारी, राजा अग्निवर्ण के नखों के लाल रंग से सुशोभित (मिला, भीगा हुआ) उस चरण को प्रणाम करके सेवा करते थे, जो चरण प्रातः कालीन सूर्य के लाल लाल तेज (प्रकाश) भरे कमल के समान सुन्दर था ॥ ८ ॥

यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाश्च दीर्घिकाः।
गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः स व्यगाहत विगाढमन्मथः ॥ ९ ॥

विगाढमन्मथः प्रौढमदनः सोऽग्निवर्णो यौवनेन हेतुनोन्नतानां विलासिनीस्तनानां क्षोभेणाघातेन लोलानि चञ्चलानि कमलानि यासां ताः। तदम्बुभिस्तासां दीर्घिकाणामम्बुभिर्गूढान्यन्तरितानि मोहनगृहाणि सुरतभवनानि यासु ताश्च दीर्घिका व्यगाहत। स्त्रीभिः सह दीर्घिकासु विजहारेत्यर्थः॥

अन्वयः—विगाढमन्मथः सः यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाः, तदम्बुभिः गूढ-मोहनगृहाः दीर्घिकाः व्यगाहत।

व्याख्या—मननं मत् = चेतना, मथतीति मथः, मतः मथः मन्मथः विशेषेण गाढः = प्रगाढः, अत्यधिकः मन्मथः = कामः यस्य सः विगाढमन्मथः। सः = अग्निवर्णः विलासिनीनां = कामिनीनां स्तनाः = कुचाः इति विलासिनीस्तनाः, यौवनेन = तारुण्येन उन्नताः = उदग्रा इति यौवनोन्नताः, यौवनोन्नताश्च ते विलासिनीस्तनाः, इति यौवनोन्नतविलासिनीस्तनाः तेषां क्षोभः = सञ्चलनम्-आघातस्तेन लोलानि = चञ्चलानि कमलानि = पद्मानि यासां ताः यौवनोन्नतविला-सिनीस्तनक्षोभलोलकमलाः, तासां = दीर्घिकाणाम् अम्बूनि = जलानि तैः, तदम्बुभिः गूढानि = गुप्तानि, अन्तरितानि मोहनस्य = सुरतस्य गृहाणि = भवनानि यासु ताः गूढमोहनगृहाः दीर्घिकाः = वापीः व्यगाहत = व्यलोडयत्। कामिनीभिः सह वापीषु जलक्रीडां कृतवानित्यर्थः।

समासः—विगाढः मन्मथो यस्य स विगाढमन्मथः। यौवनेन उन्नता विलासिनीनां ये स्तनाः तेषां क्षोभस्तेन लोलानि कमलानि यासां ताः यौवनोन्नतविलासिनीस्तनक्षोभलोलकमलाः, ताः।

तासाम् अम्बूनि तदम्बूनि, तैः। मोहनस्य गृहाणीति मोहनगृहाणि, गूढानि मोहनगृहाणि यासु ताः गूढमोहनगृहाः, ताः तथोक्ताः।

हिन्दी—प्रचण्डकामी (अत्यन्त कामी) वह राजा अग्निवर्ण, सुन्दरियों के साथ उन बावलियों में विहार करता रहता था, जिनमें बावलियों के जल से छिपे सम्भोग घर बने हुए थे। अर्थात् जल के अन्दर घर बने थे। तथा जिनमें जवानी के कारण ऊँचे उठे हुए स्तनों के टकराने से कमल हिल रहे थे ॥ ९ ॥

तत्र सेकहृतलोचनाञ्जनैर्धौतरागपरिपाटलाधरैः।
अङ्गनास्तमधिकं व्यलोभयन्नर्पितप्रकृतकान्तिभिर्मुखैः ॥ १० ॥

तत्र दीर्घिकास्वङ्गनाः सेकेन हृतं लोचनाञ्जनं नेत्रकज्जलं येषां तैः। रज्यतेऽनेनेति रागो रागद्रव्यं लाक्षादि। रागस्य परिपाटलोऽङ्गगुणः। 'गुणे शुक्लादयः पुंसि' इत्यमरः। धौतो रागपरिपाटलो येषां ते तथोक्ता अधरा येषां तैः। निवृत्तसांक्रमिकरागैरित्यर्थः। अत एवार्पितप्रकृतकान्तिभिः। अभिव्यञ्जितस्वाभाविकरागैरित्यर्थः। एवंभूतैर्मुखैस्तमग्निवर्णमधिकं व्यलोभयन्प्रलोभितवत्यः॥

अन्वयः—तत्र अंगनाः सेकहृतलोचनाञ्जनैः धौतरागपरिपाटलाधरैः 'अत एव' अर्पितप्रकृतकान्तिभिः मुखैः तम् अधिकं व्यलोभयन्।

व्याख्या—तत्र = तासु वापीषु प्रशस्तानि अंगानि यासां ताः अंगनाः = कामिन्यः सेकेन = जलसेचनेन हृतं = धौतं नेत्राणां = लोचनानाम् अञ्जनं = कज्जलं येषां तानि तैः सेकहृतलोचनाञ्जनैः रज्यतेऽनेनेति रागः = रागद्रव्यम्। रागस्य = लाक्षादिरागस्य परिपाटलः = रक्तपीतवर्णः इति रागपरिपाटलः। धौतः = प्रक्षालितः रागपरिपाटलः येषां ते धौतरागपरिपाटलाः। धौतरागपरिपाटलाः अधराः = ओष्ठाः येषां तानि तैः धौतरागपरिपाटलाधरैः अत एव अर्पिता = प्रकटिता-व्यञ्जिता प्रकृता = स्वाभाविकी कान्तिः = रागः यैस्तानि तैः अर्पितप्रकृतकान्तिभिः एवंभूतैः मुखैः = आननैः तम् = राजानम् अग्निवर्णम् अधिकं = भृशं व्यलोभयन् = प्रलोभितवत्यः-मोहितवत्यः।

समासः—सेकेन हृतं लोचनानाम् अञ्जनं येषां तैः सेकहृतलोचनाञ्जनैः। रागस्य परिपाटलः रागपरिपाटलः, धौतः रागपरिपाटलः येषां ते धौतरागपरिपाटलाः तथाभूताः अधराः येषां तानि तैः धौतरागपरिपाटलाधरैः। अर्पिता प्रकृता कान्तिः यैस्तानि तैः अर्पितप्रकृतकान्तिभिः।

हिन्दी—'उन बावलियों में जलविहार करते समय,' जल से धुल गया है काजल जिनका तथा जिनके अधरों (ओठों) पर लगा लाल रंग भी धुल गया, अत एव अपने स्वाभाविक सौन्दर्य को व्यक्त करने वाले अपने मुखारविन्दों से उन सुन्दरियों ने उस राजा अग्निवर्ण को और अधिक मोहित कर लिया था ॥ १० ॥

घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः पानभूमिरचनाः प्रियासखः।
अभ्यपद्यत स वासितासखः पुष्पिताः कमलिनीरिव द्विपः ॥ ११ ॥

प्रियासखः सोऽग्निवर्णो घ्राणकान्तेन घ्राणतर्पणेन मधुगन्धेन कर्षिणीर्मनोहारिणीः। रच्यन्त इति रचनाः। पानभूमय एव रचनाः। रचिताः पानभूमय इत्यर्थः। वासितासखः करिणीसहचरः। 'वासिता स्त्रीकरिण्योश्च' इत्यमरः। द्विपः पुष्पिताः कमलिनीरिव अभ्यपद्यताभिगतः॥

अन्वयः—प्रियासखः सः घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः पानभूमिरचनाः वासितासखः द्विपः पुष्पिताः कमलिनीः इव अभ्यपद्यत।

व्याख्या—प्रीणन्तीति प्रियाः, प्रियाणां = सुन्दरीणां सखा = सुहृदिति प्रियासखः सः = अग्निवर्णः घ्राणाय = घ्राणेन्द्रियाय, कान्तः = तर्पणः सुखकर इत्यर्थः यः मधुगन्धः = मधुरसुरभिस्तेन कर्षिण्यः = मनोहारिण्यः ताः घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः। रच्यन्ते इति रचनाः, पानस्य = सुरापानस्य भूमयः = शालाः एव रचनाः = निर्माणानि-संरचनाः इति पानभूमिरचनास्ता पानभूमिरचनाः, वासयति = निवासयति, सेवां करोतीति वा वासिता। वासितायाः = करिण्याः सखा इति वासितासखः = हस्तिनीसहचरः द्वाभ्यां = मुखशुण्डाभ्यां पिबतीति द्विपः = हस्ती पुष्पाणि सञ्जातानि यासां ताः पुष्पिताः = कुसुमिताः कमलिनीः इव = यथा अभ्यपद्यत = अभ्यगमत् अभिगत इत्यर्थः।

समासः—प्रियाणां सखा इति प्रियासखः। घ्राणाय कान्तः घ्राणकान्तस्तेन मधुगन्धस्तेन कर्षिण्यस्ताः घ्राणकान्तमधुगन्धकर्षिणीः। पानस्य भूमयः पानभूमयस्ताः एव रचनास्ताः पानभूमिरचनाः। वासितानां सखा इति वासितासखः।

हिन्दी—राजा अग्निवर्ण नासिका को तृप्त करने वाली मधुर सुगन्धी से अपनी ओर खींचने वाली सुन्दर बनी मधुपानशाला में सुन्दरियों के साथ उसी प्रकार प्रविष्ट हुआ, जिस प्रकार खिले फूल वाली कमलिनी वाले तालाब में हथिनियों के साथ हाथी घुस जाता है॥११॥

सातिरेकमदकारणं रहस्तेन दत्तमभिलेषुरङ्गनाः।
ताभिरप्युपहृतं मुखासवं सोऽपिबद् बकुलतुल्यदोहदः॥ १२॥

अङ्गना रहो रहसि सातिरेकस्य सातिशयस्य मदस्य कारणं तेनाग्निवर्णेन दत्तं मुखासवमभिलेषुः। बकुलेन तुल्यदोहदस्तुल्याभिलाषः। 'अथ दोहदम्। इच्छा काङ्क्षा स्पृहेहा तृट्' इत्यमरः। बकुलद्रुमस्याङ्गनामद्यार्थित्वात्तुल्याभिलाषत्वम्। सोऽपि ताभिरङ्गनाभिरुपहृतं दत्तं मुखासवमपिबत्॥

अन्वयः—अंगनाः रहः सातिरेकमदकारणं तेन दत्तं मुखासवम् अभिलेषुः, बकुलतुल्यदोहदः सः अपि ताभिः उपहृतम् मुखासवम् अपिबत्।

व्याख्या—अंगनाः = सुन्दर्यः रह्यते, रमन्तेऽत्र वा रहः = एकान्ते अतिरेकेण सहितः सातिरेकः = सातिशयश्चासौ मदः = उन्मादः इति सातिरेकमदस्तस्य कारणमिति सातिरेकमदकारणं तत्। तेन = राज्ञा अग्निवर्णेन दत्तं = प्रदत्तं मद्यं = मैरेयम् अभिलेषुः = अभिलषितवत्यः। दोहम् = आकर्षं ददातीति दोहदम्। बकुलस्य = केसरस्य तुल्यं = समानं दोहदम् = अभिलाषः यस्य स बकुलदोहदः सः = राजा अग्निवर्णः ताभिः = अंगनाभिः उपहृतं = दत्तम् आसूयते

इति आसवः, मुखस्य = आननस्य आसवः = मद्यमिति मुखासवस्तं मुखासवं = मुखनिर्गतं मद्यम् अपिबत् = पीतवान् ।

समासः—अतिरेकेण सहितः सातिरेकः, सातिरेकश्चासौ मदः सातिरेकमदः, तस्य कारणमिति सातिरेकमदकारणम् तत् । मुखस्य आसवस्तं मुखासवम् । बकुलेन तुल्यं दोहदमस्य स बकुलतुल्यदोहदः ।

हिन्दी—उन सुन्दरियों ने एकान्त में, खूब कामोद्दीपक (मदकारी) तथा अग्निवर्ण की दी हुई मुख की जूठी शराब की प्रेमपूर्वक चाह की थी। अर्थात् बड़े प्रेम से पी थी। तथा मौलसरी के वृक्ष के समान अभिलाषा वाला अग्निवर्ण भी उन सुन्दरियों से दी हुई उनके मुख की जूठी मदिरा को पीता था ॥ १२ ॥

अङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे ।
वल्लकी च हृदयंगमस्वना वल्गुवागपि च वामलोचना ॥ १३ ॥

अङ्कपरिवर्तनोचिते उत्सङ्गविहारार्हे उभे तस्याग्निवर्णस्याङ्कमशून्यतां पूर्णतां निन्यतुः । के उभे । हृदयंगमस्वना मनोहरध्वनिर्वल्लकी वीणा च । वल्गुवाङ्मधुरभाषिणी वामलोचना कामिन्यपि च । हृदयं गच्छतीति हृदयंगमः । खच्प्रकरणे गमेः सुप्युपसंख्यानात्खच्प्रत्ययः । अङ्काधिरोपितयोर्वीणावामाक्ष्योर्वाद्यगीताभ्यामरंस्तेत्यर्थः ॥

अन्वयः—अङ्कपरिवर्तनोचिते उभे तस्य अङ्कम् अशून्यतां निन्यतुः 'के उभे' हृदयंगमस्वना वल्लकी च वल्गुवाग् वामलोचना अपि च ।

व्याख्या—अंके = क्रोडे = उत्संगे परिवर्तनं = विहरणम् उपवेशनमित्यर्थः इति अंकपरिवर्तनं तत्र उचिते—योग्ये इति अंकपरिर्तनोचिते उभे = द्वे तस्य = अग्निवर्णस्य अंकम् = उत्संगम् न शून्यमिति अशून्यं तस्य भावः अशून्यता ताम् अशून्यताम् = पूर्णतां निन्यतुः = निन्यावेचक्रतुरित्यर्थः के उभे इत्याह हृदयं = चित्तं गच्छति = प्रविशतीति हृदयंगमः, हृदयंगमः = मनोहारी स्वनः = ध्वनिर्यस्याः सा हृदयंगमस्वना वल्लते इति वल्लकी = वीणा च वल्गुः = मधुरा वाक् = वाणी यस्याः सा वल्गुवाक् = मधुरभाषिणी वामे = सुन्दरे लोचने = नेत्रे यस्याः सा वामलोचना = सुनयनी मृगाक्षीत्यर्थः । सुन्दरी अपि च । जघनदेशोपनिवेशितया वीणया कामिन्या च वाद्यसंगीताभ्यामरमतेत्यर्थः ।

समासः—अंके परिवर्तनमिति अंकपरिवर्तनम्, तत्र उचिते अंकपरिवर्तनोचिते । न शून्यता अशून्यता ताम् अशून्यताम् । हृदयंगमः स्वनः यस्याः सा हृदयंगमस्वना । वल्गु वाक् यस्याः सा वल्गुवाक् । वामे लोचने यस्याः सा वामलोचना ।

हिन्दी—गोद में बैठने के योग्य उन दोनों ने राजा अग्निवर्ण की गोद सदा भरी रखी । अर्थात् ये दोनों उसके अगल बगल में सदा रहती थीं । हृदय को छूने वाले स्वर वाली वीणा (मधुर स्वर वाली) और मधुरभाषिणी, सुन्दर नेत्रवाली कामिनी । अर्थात् ये दो ही उसे सदा घेरे रहती थीं ॥ १३ ॥

स स्वयं प्रहतपुष्करः कृती लोलमाल्यवलयो हरन्मनः ।
नर्तकीरभिनयातिलङ्घिनीः पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयत् ॥ १४ ॥

कृती कुशलः स्वयं प्रहतपुष्करो वादितवाद्यमुखो लोलानि माल्यानि वलयानि च यस्य स तथोक्तो मनो हरन् नर्तकीनामिति शेषः । सोऽग्निवर्णोऽभिनयातिलङ्घिनीः । अभिनयेषु स्खलन्तीरित्यर्थः । नर्तकीर्विलासिनीः । 'शिल्पिनि ष्वुन्' इति ष्वुन्प्रत्ययः । 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीष् । 'नर्तकीलासिके समे' इत्यमरः । गुरुषु नाट्याचार्येषु पार्श्ववर्तिषु समीपस्थेषु सत्स्वेवालज्जयल्लज्जामगमयत् ॥

अन्वयः—कृती स्वयं प्रहतपुष्करः लोलमाल्यवलयः मनः हरन् सः, अभिनयातिलंघिनीः नर्तकीः गुरुषु पार्श्ववर्तिषु सत्सु अलज्जयत् ।

व्याख्या—कृतमनेनेति कृती = योग्यः—पण्डितः "कृती पण्डिते योग्ये" इति हैमः । स्वयं = स्वेन पुष्णाति, पुष्यते पुष्करं, प्रहतं = वादितं पुष्करं = तूर्यवक्त्रं येन स प्रहतपुष्करः = ताडितवाद्यमुख इत्यर्थः । "पुष्करं तूर्यवक्त्रे च काण्डे खड्गफलेऽपि च" इति विश्वः । लोलानि = चञ्चलानि माल्यानि = पुष्पमालाः वलयानि = कंकणानि च यस्य स लोलमाल्यवलयः, मनः = चित्तं हरन्, नर्तकीनां चित्तं वशीकुर्वन्, इत्यर्थः । सः = अग्निवर्णः, अतिलंघितुं शीलं यासां ताः अतिलंघिन्यः । अभिनयेषु = भावादिव्यञ्जकेषु अतिलंघिनीः = स्खलन्तीः, इति अभिनयातिलंघिनीः नृत्यन्ति, गात्रविक्षेपं कुर्वन्तीति नर्तक्यस्ताः नर्तकीः = लासिकाः विलसिनीः गुरुषु = नाट्यशिक्षकेषु पार्श्वे = समीपे वर्तन्ते तच्छीलाः पार्श्ववर्तिनस्तेषु पार्श्ववर्तिषु समीपस्थेषु सत्सु एवेत्यर्थः । अलज्जयत् = लज्जाम् अगमयत् ।

समासः—प्रहतं पुष्करं येन स प्रहतपुष्करः । लोलानि माल्यानि वलयानि च यस्य स लोलमाल्यवलयः । अभिनयेषु अतिलंघिन्यस्ताः अभिनयातिलंघिनीः । पार्श्वे वर्तिनस्तेषु पार्श्ववर्तिषु ।

हिन्दी—'नर्तकियों के नाचने के समय' राजा अग्निवर्ण स्वयं बाजा मृदंग और तबला बजाता था । उस समय उसके गले की माला और हाथ का कंकण हिलने लगते थे, तो नाचने वालियों के मन का हरण करने वाला वह राजा, अभिनय में (नाचने में) अतिक्रमण (भूल) करने वाली नर्तकियों को उनके उस्तादों के सामने ही लज्जित कर देता था । अर्थात् बाजा बजाते समय राजा इतना सुन्दर लगता था कि उसे देख नाचने वाली अपना मन उसे देकर नाचने में गलती कर बैठती थी, अतः गुरु के सामने लजा जाती थी ॥ १४ ॥

चारु नृत्यविगमे च तन्मुखं स्वेदभिन्नतिलकं परिश्रमात् ।
प्रेमदत्तवदनानिलः पिबन्नत्यजीवदमरालकेश्वरौ ॥ १५ ॥

किंच । चारु सुन्दरं नृत्यविगमे लास्यावसाने परिश्रमान्नर्तनप्रयासात्स्वेदेन भिन्नतिलकं विशीर्णतिलकं तन्मुखं नर्तकीमुखं प्रेम्णा दत्तवदनानिलः प्रवर्तितमुखमारुतः पिबन् । अमराणा-

मलकायाश्चेश्वराविन्द्रकुबेरावत्यजीवदतिक्रम्याजीवत् । ततोऽप्युत्कृष्टजीवित आसीदित्यर्थः । इन्द्रादेरपि दुर्लभमीदृशं सौभाग्यमिति भावः ॥

अन्वयः—चारु नृत्यविगमे च परिश्रमात् स्वेदभिन्नतिलकं तन्मुखं प्रेमदत्तवदनानिलः पिबन् अमरालकेश्वरौ अत्यजीवत् ।

व्याख्या—च = किञ्च चरति चित्ते, इति चारु = सुन्दरं नृत्यस्य = लास्यस्य विगमः = अवसानमिति नृत्यविगमस्तस्मिन् नृत्यविगमे परितः श्रमः तस्मात् परिश्रमात् = परिखेदात् स्विद्यतेऽनेनांगमिति स्वेदः, तेन स्वेदेन = घर्मेण = प्रस्वेदेन भिन्नं = विशीर्णं तिलकं = विशेषकं यस्य तत् स्वेदभिन्नतिलकम् तस्याः = नर्तक्याः मुखम् = आननमिति तन्मुखम् प्रेम्णा = स्नेहभावेन दत्तः = प्रवर्तितः = कृतः मुखेन = आननेन अनिलः = वायुः येन स प्रेमदत्तमुखानिलः अग्निवर्णः पिबन् = चुम्बन् ईश्वरश्च ईश्वरश्चेति ईश्वरौ, अमराणां = देवानाम् अलकायाः = पुर्याश्च ईश्वरौ = इन्द्रकुबेरौ, इति अमरालकेश्वरौ तौ, अत्यजीवत् = अतिलंघ्याजीवत्, ताभ्यामप्युत्कृष्टजीवित आसीदित्यर्थः । इन्द्रकुबेराभ्यामपि अतिशयितमग्निवर्णस्य सौभाग्यमिति तात्पर्यम् ।

समासः—नृत्यस्य विगमस्तस्मिन् नृत्यविगमे । तस्याः मुखमिति तन्मुखम्, तत् । स्वेदेन भिन्नं तिलकं यस्य तत् स्वेदभिन्नतिलकम्, तत् । प्रेम्णा दत्तः वदनेन अनिलो येन स प्रेमदत्तवदनानिलः । अमराणाम् अलकायाश्च ईश्वरौ, अमरालकेश्वरौ, तौ ।

हिन्दी—और नाच के समाप्त होने पर परिश्रम के कारण पसीने से जिसका तिलक फैल गया था (बिगड़ गया था) ऐसे उस नर्तकी के सुन्दर मुख को प्रेम से फूँक मारकर चूमते हुए राजा अग्निवर्ण देवताओं के राजा इन्द्र, और अलका पुरी के स्वामी कुबेर से भी अधिक सौभाग्यशाली हो गया था ॥ १५ ॥

तस्य सावरणदृष्टसंधयः काम्यवस्तुषु नवेषु सङ्गिनः ।
वल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे सामिभुक्तविषयाः समागमाः ॥ १६ ॥

उपसृत्यान्यत्र गत्वा नवेषु नूतनेषु काम्यवस्तुषु शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु सङ्गिन आसक्तिमतः सतस्तस्य सावरणाः प्रच्छन्ना दृष्टाः प्रकाशाश्च संधयः साधनानि येषु ते समागमाः संगमा वल्लभाभिः प्रेयसीभिः सामिभुक्तविषया अर्धोपभुक्तेन्द्रियार्थाश्चक्रिरे ॥ यथेत्थं भुक्तश्चेत्तर्ह्ययं निःस्पृहः सन्नस्मत्समीपं नायास्यतीति भावः । अत्र गोनर्दीयः—'संधिर्द्विविधः । सावरणः प्रकाशश्च । सावरणो भिक्षुक्यादिना । प्रकाशः स्वयमुपेत्य केनापि' इति । 'इतः स्वयमुपसृत्य विशेषार्थं तत्र स्थितोऽनुपजापं स्वयं संधेयः' इति वात्स्यायनः । अन्यत्र गतं कथंचित्संधाय पुनरुपगमायार्धोपभोगेनानिवृत्ततृष्णं चक्रुरित्यर्थः ॥

अन्वयः—उपसृत्य नवेषु काम्यवस्तुषु संगिनः 'सतः' तस्य सावरणदृष्टसन्धयः समागमाः वल्लभाभिः सामिभुक्तविषयाः चक्रिरे ।

व्याख्या—उपसृत्य = अन्यत्र गत्वा नवेषु = नूतनेषु काम्यानि = अभिलषितानि—शब्दादिविषयाः इत्यर्थः यानि वस्तूनि = इन्द्रियार्थास्तेषु काम्यवस्तुषु संगः = आसक्तिरस्यास्तीति

संगी तस्य संगिनः = आसक्तिमतः सतः तस्य = अग्निवर्णस्य आवरणैः सहिताः सावरणाः = गुप्ताः प्रच्छन्नाः दृष्टाः = प्रकाशाः—प्रत्यक्षाश्च संधयः = साधनानि येषु ते सावरणदृष्टसन्धयः समागमाः = संगमाः राज्ञा सह रत्यर्थमित्यर्थः । वल्लभाभिः = दयिताभिः—प्रेयसीभिरित्यर्थः सामयतीति सामि = अर्धाः = अपूर्णाः भुक्ताः = उपभोगं नीताः विषयाः = इन्द्रियार्थाः येषु ते सामिभुक्तविषयाः चक्रिरे = कृताः । यथेच्छं कृतसम्भोगश्चेदयं परितृप्तः सन् अस्मत्समीपं पुनर्नागमिष्यतीति सामिसम्भोगेनानिवृत्ततृष्णमेव चक्रुरिति भावः ।

समासः—आवरणैः सहिताः सावरणाः । सावरणाः दृष्टाश्च सन्धयः येषु ते सावरणदृष्टसन्धयः । काम्यानि च तानि वस्तूनि तेषु काम्यवस्तुषु । सामि भुक्ताः विषयाः येषु ते सामिभुक्तविषयाः ।

हिन्दी—दूसरियों के पास जाकर, नई नई उपभोग की सामग्रियों को चाहने वाले उस अग्निवर्ण के उन समागमों (सम्भोगों) को उनकी प्रेयसी सुन्दरियाँ आधे सम्भोग वाला ही कर रखती थीं । अर्थात् सम्भोग के पूरा हुए बिना बीच में ही छोड़ देती थीं । जिस समागम के साधन (सामग्री) छिपे तौर से या प्रत्यक्ष होते थे । अर्थात् यदि राजा सम्भोग से तृप्त हो जाएगा तो फिर हमको छोड़ देगा अतः सम्भोग को वे अपूर्ण ही रखती थीं ॥ १६ ॥

अङ्गुलीकिसलयाग्रतर्जनं भ्रूविभङ्गकुटिलं च वीक्षितम् ।
मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः ॥ १७ ॥

सोऽग्निवर्णः प्रणयिनीः प्रेयसीर्वञ्चयन्नन्यत्र गच्छन्नङ्गुल्यः किसलयानि तेषामग्राणि तैस्तर्जनं भर्त्सनं भ्रूविभङ्गेन भ्रूभेदेन कुटिलं वक्रं वीक्षितं वीक्षणं चासकृन्मेखलाभिर्बन्धनं चावाप । अपराधिनो दण्ड्या इति भावः ॥

अन्वयः—सः प्रणयिनीः वञ्चयन् अंगुलीकिसलयाग्रतर्जनम्, भ्रूविभंगकुटिलं वीक्षितं च असकृत् मेखलाभिः बन्धनं च अवाप ।

व्याख्या—सः = अग्निवर्णः प्रणयः = प्रेम अस्ति यासां ताः प्रणयिन्यः ताः प्रणयिनीः = प्रियतमाः वञ्चयन् = प्रतारयन् धूर्ततां कुर्वन्नित्यर्थः । अंगन्ति इति अंगुल्यः, अंगुं = पाणिपादमवयवं लान्तीति वा । अंगुल्यः = करशाखाः किसलयानि = पल्लवानि, इव अंगुलीकिसलयानि तेषाम् अग्राणि = अग्रभागाः तैः तर्जनं = भर्त्सनं तदिति अंगुलीकिसलयाग्रतर्जनं, भ्रूणां = नेत्रोपरिभागस्थरोमराजीनां विभंगः = भेदस्तेन कुटिलं = वक्रमिति भ्रूविभंगकुटिलं विशेषेण ईक्षितमिति वीक्षितं = दर्शनम् च असकृत् = भूयो भूयः मखं = गतिं लान्तीति मेखलास्तभिः । मेखलाभिः = रशनाभिः बन्धनं = प्रसितिं च 'बन्धनं प्रसितिश्चारः' इत्यमरः । अवाप = प्राप्तवान् । कृतापराधाः जनाः दण्डनीया एव भवन्तीति भावः ।

समासः—अंगुल्यः किसलयानीव अंगुलीकिसलयानि तेषाम् अग्राणि तैः तर्जनं तत् अंगुलीकिसलयाग्रतर्जनम् । भ्रूणां विभंगः भ्रूविभंगस्तेन कुटिलमिति भ्रूविभंगकुटिलम्, तत् । न सकृत असकृत् । विशेषेण विशिष्टं वा ईक्षितमिति वीक्षितम्, तत् ।

हिन्दी—जब कभी राजा अग्निवर्ण अपनी प्रियतमाओं को धोखा (चकमा) देकर किसी दूसरी के पास चला जाता था। तो किसलय के समान अपनी अंगुलियों पोरवों से धमकाती (डराती) थी। तो कभी टेढ़ी (तिरछी) भौंहे करके देखती थी। और कभी अपनी तगड़ीयों बान्ध देती थी। इस प्रकार वह दण्ड पाता था॥ १७॥

तेन दूतिविदितं निषेदुषा पृष्ठतः सुरतवाररात्रिषु।
शुश्रुवे प्रियजनस्य कातरं विप्रलम्भपरिशङ्किनो वचः॥ १८॥

सुरतस्य वारो वासरः तस्य रात्रिषु दूतीनां विदितं यथा तथा पृष्ठतः प्रियजनस्य पश्चाद्भागे निषेदुषा तेनाग्निवर्णेन विप्रलम्भपरिशङ्किनो विरहशङ्किनः। प्रियश्चासौ जनश्च प्रियजनः। तस्य कातरं वचः प्रियानयनेन मां पाहीत्येवमादि दीनवचनं शुश्रुवे॥

अन्वयः—सुरतवाररात्रिषु दूतिविदितं यथा तथा, पृष्ठतः निषेदुषा तेन विप्रलम्भपरिशङ्किनः प्रियजनस्य कातरं वचः शुश्रुवे।

व्याख्या—सुष्ठु रतं यत्र तत् सुरतं। सुरतस्य=सम्भोगस्य वारः=वासरः तस्य रात्रयः= निशाः तासु सुरतवाररात्रिषु, दूयन्ते याभिः ताः दूत्यः तासां दूतीनां=संचारिकाणां विदितं= ज्ञातमिति दूतिविदितम् यथा तथा पृष्ठतः=प्रियजनस्य पश्चाद्भागे निषेदुषा=उपविष्टेन तेन= अग्निवर्णेन विप्रलब्धिर्धारिति विप्रलम्भः, विप्रलम्भं=विप्रयोगं=विरहमित्यर्थः। परिशंकते इति विप्रलम्भपरिशंकी तस्य विप्रलम्भपरिशंकिनः प्रियश्चासौ जनः प्रियजनस्तस्य प्रियजनस्य=प्रेमि- जनस्य ईषत्तरतीति तत् कातरम्=अधीरं वचः=वचनं शुश्रुवे=श्रुतम्।

समासः—दूतीनां विदितं यथा तथा। सुरतस्य वारः सुरतवारः तस्य रात्रयस्तासु सुरतवाररात्रिषु। प्रियश्चासौ जनः प्रियजनः तस्य प्रियजनस्य। विप्रलम्भस्य परिशंकी तस्य विप्रलम्भपरिशंकिनः।

हिन्दी—जिस दिन की रात में (पारीवाली रात में) जिस स्त्री से सम्भोग करना होता था, तो वह पहले दूती से सब बातें बता देता, और फिर उसी प्रेमी के पीछे छिपकर बैठा हुआ वह राजा उस प्रियजन स्त्री (सम्भोग की पारीवाली) के दुःख पूर्ण दीन वचन सुनता था। अर्थात् दूती से राजा के न आने की बात सुनकर वह स्त्री दूती से बुलाने मनाने की प्रार्थना करती तो उसे सुन कर राजा प्रसन्न होता था॥ १८॥

लौल्यमेत्य गृहिणीपरिग्रहान्नर्तकीष्वसुलभासु तद्वपुः।
वर्तते स्म स कथंचिदालिखन्नङ्गुलीक्षरणसन्नवर्तिकः॥ १९॥

गृहिणीपरिग्रहाद्राज्ञीभिः समागमाद्धेतोर्नर्तकीषु वेश्यास्वसुलाभासु दुर्लभासु सतीषु लौल्य- मौत्सुक्यमेत्य प्राप्य। अङ्गुल्योः क्षरणेन स्वेदनेन सन्नवर्तिको विगलितशलाकः सोऽग्निवर्णस्तासां नर्तकीनां वपुस्तद्वपुरालिखन्कथंचिद्वर्तते स्मावर्तत॥

अन्वयः—गृहिणीपरिग्रहात् नर्तकीषु असुलभासु सतीषु लौल्यम् एत्य अंगुलीक्षरणसन्न-वर्तिकः सः तद्वपुः आलिखन् कथंचित् वर्तते स्म ।

व्याख्या—गृहमस्ति यासां ताः गृहिण्यः, गृहिणीभिः = भार्याभिः = राज्ञीभिः परिगृहीतः = अवरुद्धः = समागमस्तस्मात् गृहिणीपरिग्रहात् हेतोः नृत्यन्तीति नर्तक्यस्तासु नर्तकीषु = लासिकासु = 'नर्तकीलासिके समे' इत्यमरः । वेश्यासु न सुलभाः असुलभाः तासु असुलभासु = दुर्लभासु सतीषु लोलस्य भावः कर्म वा लौल्यं = चाञ्चल्यम् = औत्सुक्यमित्यर्थः । एत्य = प्राप्य अंगुल्योः = करशाखयोः क्षरणं = स्वेदस्तेन सन्ना = खिन्ना = श्रान्ता वर्तिका = शलाका यस्य स अंगुलीक्षरणसन्नवर्तिकः सः = राजा अग्निवर्णः तासां = नर्तकीनां वपुः = शरीरं तत् तद्वपुः उल्लिखन् चित्रितं कुर्वन् = चित्रनिर्माणं कुर्वन्नित्यर्थः । कथंचित् = केनापि प्रकारेण वर्तते स्म = अवर्तत ।

समासः—गृहिणीभिः परिग्रहः गृहिणीपरिग्रहस्तस्मात् गृहिणीपरिग्रहात् । न सुलभाः असुलभास्तासु असुलभासु । अंगुल्योः क्षरणमिति अंगुलीक्षरणं तेन सन्ना वर्तिका यस्य सः अंगुलीक्षरणसन्नवर्तिकः ।

हिन्दी—महारानियों के द्वारा रोक लिये जाने के कारण नर्तकी वेश्याओं के न मिलने पर वह चंचल (विरह से दुःखी) हो जाता था । (तब उत्सुकता मिटाने के लिये वह उनका चित्र बनाने लगता तब) अंगुलि में पसीना आने से तूलिका (ब्रुश) खसक जाती थी राजा के हाथ से तब उस समय बड़ी कठिनता से वह चित्र बनाता था । अर्थात् विरह विनोद के लिये राजा नर्तकी का चित्र बनाने लगता किन्तु सात्विक भाव के कारण (वेश्याओं की याद से) अंगुलियों में पसीना आने से तूलिका फिसल जाती थी ॥ १९ ॥

प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरादायताच्च मदनान्महीक्षितम् ।
निन्युरुत्सवविधिच्छलेन तं देव्य उज्झितरुषः कृतार्थताम् ॥ २० ॥

प्रेम्णा स्वविषयेण प्रियस्यानुरागेण हेतुना गर्विते विपक्षे सपत्नजने मत्सराद्वैरादायतात्प्रवृद्धा-न्मदनाच्च हेतोर्देव्यो राज्ञ्य उज्झितरुषस्त्यक्तरोषाः सत्यस्तं महीक्षितमुत्सवविधिच्छलेन महोत्सव-कर्मव्याजेन । कृतोऽर्थः प्रयोजनं येन स कृतार्थः तस्य भावस्तत्तां निन्युः । मदनमहोत्सवव्या-जान्नीतेन तेन स्वमनोरथं कारयामासुरित्यर्थः ॥

अन्वयः—प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरात् आयतात् मदनात् च उज्झितरुषः देव्यः तं महीक्षितं उत्सवविधिच्छलेन कृतार्थतां निन्युः ।

व्याख्या—प्रेम्णा = स्नेहेन, स्वविषयकप्रियानुरागेण हेतुनेत्यर्थः, गर्वितः = संजातगर्वः यः विपक्षः = सपत्नीजनः, इति प्रेमगर्वितसपत्नीजनस्तत्र मत्सरः = वैरं तस्मात् प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरात् आयम्यतेस्म, आयतते वा आयतम् तस्मात् आयतात् = दीर्घात्-प्रवृद्धात् मदनात् = कामात्-मन्मथात् च कारणात् दीव्यन्तीति देव्यः = पट्टाभिषिक्ताः महिष्यः उज्झिता = परित्यक्ता रुट् = क्रोधः याभिः ताः उज्झितरुषः सत्यः तं = राजानम् महीं क्षियति मह्यां क्षियति वा महीक्षित् तं

महाक्षित=भूपालम् उत्सवस्य=महस्य=महोत्सवस्येत्यर्थः। विधिः=अनुष्ठानं तस्य छलं=व्याजस्तेन उत्सवविधिच्छलेन कृतः=सम्पादितः अर्थः=प्रयोजनं येन स कृतार्थस्तस्य भावस्तत्ता तां कृतार्थतां=सफलतां निन्युः=प्रापयामासुः। कस्मादपि उत्सवव्याजात् राज्ञा स्वकीयाभिलाषं कारयामासुरित्यर्थः।

समासः—प्रेम्णा गर्वितः प्रेमगर्वितः स चासौ विपक्षस्तेन मत्सरः इति प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरस्तस्मात् प्रेमगर्वितविपक्षमत्सरात्। उज्झिता रुट् याभिस्ताः उज्झितरुषः। उत्सवस्य विधिस्तस्य छलं तेन उत्सवविधिच्छलेन।

हिन्दी—'जब राजा किसी रानी से प्रेम करता तो' वह रानी प्रिय के प्यार के कारण बड़ी गर्वीली हो जाती थी। यह देखकर उसकी सौतें जल जाती थीं। तो उस जलने (सौत की डाह) से तथा कामातुर (कामपीड़ित) होने से वे रानियाँ क्रोध का परित्याग करके किसी उत्सव के काम के बहानें से राजा को अपने पास बुलाकर स्वयं कृतकार्य होती थीं। अर्थात् अपनी कामवासना की तृप्ति करती (सम्भोग कराकर) कृतार्थता को प्राप्त होती थीं॥ २०॥

प्रातरेत्य परिभोगशोभिना दर्शनेन कृतखण्डनव्यथाः।
प्राञ्जलिः प्रणयिनीः प्रसादयन्सोऽदुनोत्प्रणयमन्थरः पुनः॥ २१॥

सोऽग्निवर्णः प्रातरेत्यागत्य परिभोगशोभिना दर्शनेन हेतुना। दृशेर्ण्यन्ताल्ल्युट्। कृता खण्डनव्यथा यासां तास्तथोक्ताः। खण्डिता इत्यर्थः। तदुक्तम्—'ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता' इति। प्रणयिनीः प्राञ्जलिः प्रसादयंस्तथापि प्रणयमन्थरः प्रणयेन नर्तकीगतेन मन्थरोऽलसः तत्र शिथिलप्रयत्नः सन्नित्यर्थः पुनरदुनोत्पर्यतापयत्॥

अन्वयः—सः प्रातः एत्य परिभोगशोभिना दर्शनेन कृतखण्डनव्यथाः प्रणयिनीः प्राञ्जलिः प्रसादयन् तथापि प्रणयमन्थरः पुनः अदुनोत्।

व्याख्या—सः=राजाग्निवर्णः प्रातः=सूर्योदयकाले एत्य=आगत्य नर्तकीनां समीपमागत्येत्यर्थः। परिभोगेन=सम्भोगेन शोभते तच्छीलः परिभोगशोभी तेन परिभोगशोभिना दर्शनेन=अवलोकनेन–सम्भोगचिह्नशोभिदर्शनेनेत्यर्थः। खण्डनस्य=ईर्ष्याकषायस्य व्यथा=पीडा, इति खण्डनव्यथा, कृता=विहिता खण्डनव्यथा यासां ताः कृतखण्डनव्यथाः 'पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसम्भोगचिह्नितः। सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता।' इत्युक्तलक्षणाः इत्यर्थः। प्रणयिनीः=प्रेयसीः प्रबद्धः अंजलिर्येन सः प्राञ्जलिः=बद्धाञ्जलिः प्रसादयन्=सम्मानयन् तथापि=तदपि प्रणयेन=नर्तकीगतप्रेम्णा मन्थरः=अलसः=मन्दः इति प्रणयमन्थरः=मन्दप्रयासः इत्यर्थः सन् पुनरदुनोत्=भूयः पर्यतापयत्।

समासः—परिभोगेन शोभि इति परिभोगशोभि तेन परिभोगशोभिना। कृता खण्डनस्य व्यथा यासां ताः कृतखण्डनव्यथाः ताः तथोक्ताः। प्रणयेन मन्थरः प्रणयमन्थरः। प्रबद्धः अञ्जलिर्येन सः।

हिन्दी—रात में बाहर दूसरी स्त्री के साथ सम्भोग करके राजा अग्निवर्ण प्रातः काल आकर (लौटकर) सम्भोग वाले सुन्दर वेषभूषा को देखने के कारण (उसे देखकर) खण्डिता की पीड़ा वाली अपनी प्रेमिकाओं को हाथ जोड़कर यद्यपि प्रसन्न कर लेता था। फिर भी रात की कमजोरी के कारण उन प्रेमिकाओं के साथ मन्द ढीला-ढाला पड़ जाने के कारण वे बड़ी दुःखी हो जाती थीं। उनकी इच्छा पूरी न कर पाता अतः वे व्याकुल हो उठती थीं।

विशेष—दूसरी से सम्भोग करके आने वाले अपने प्रेमी को देखकर स्त्री ईर्ष्या से कड़वी हो जाती है। वही खण्डिता कही जाती है ॥ २१ ॥

स्वप्नकीर्तितविपक्षमङ्गनाः प्रत्यभैत्सुरवदन्त्य एव तम्।
प्रच्छदान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलयैर्विवर्तनैः ॥ २२ ॥

स्वप्ने कीर्तितो विपक्षः सपत्नजनो येन तं तमग्निवर्णम्। अवदन्त्य एव। त्वया गोत्रस्खलनं कृतमित्यनुपालम्भमाना एव। प्रच्छदस्यास्तरणपटस्यान्ते मध्ये गलिता अश्रुबिन्दवो येषु तैः क्रोधेन भिन्नानि भग्नानि वलयानि येषु तैर्विवर्तनैः पराग्विलम्बनैः प्रत्यभैत्सुः प्रतिचक्रुः। तिरश्चक्रुरित्यर्थः ॥

अन्वयः—स्वप्नकीर्तितविपक्षं तम् अवदन्त्यः एव अङ्गनाः प्रच्छदान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधभिन्नवलयैः विवर्तनैः प्रत्यभैत्सुः।

व्याख्या—स्वप्ने=स्वप्नदर्शने-कीर्तितः=उच्चारितः विपक्षः=सपत्नीजनः येन स तं स्वप्नकीर्तितविपक्षम् तम्=अग्निवर्णम् न वदन्त्यः=न ब्रुवन्त्य इति अवदन्त्यः=तेन सह सम्भाषणं न कुर्वन्त्य इत्यर्थः एव प्रशस्तानि अङ्गानि यासां ताः अङ्गनाः=स्त्रियः प्रच्छदति, प्रच्छद्यते वा प्रच्छदः, प्रच्छदस्य=आस्तरणवस्त्रस्य अन्तः=मध्यः तत्र गलिताः=पतिताः अश्रूणाम्=अस्राणां बिन्दवः=कणाः येषु तैः प्रच्छदान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः क्रोधेन=कोपेन भिन्नानि=त्रुटितानि वलयानि=कङ्कणानि येषु तैः विवर्तनैः=पार्श्वपरिवर्तनैः प्रत्यभैत्सुः=प्रतीकारं चक्रुः=तिरश्चक्रुरित्यर्थः।

समासः—स्वप्ने कीर्तितः विपक्षो येन स तं स्वप्नकीर्तितविपक्षम्। न वदन्त्यः अवदन्त्यः। प्रच्छदस्य अन्तस्तत्र गलिताः अश्रूणां बिन्दवो येषु तैः प्रच्छदान्तगलिताश्रुबिन्दुभिः। क्रोधेन भिन्नानि वलयानि येषु तैः क्रोधभिन्नवलयैः।

हिन्दी—रात में सोते समय किसी सौत का नाम लेकर बड़बड़ाने वाले राजा अग्निवर्ण से बिना बोले ही उनकी स्त्रियाँ इस प्रकार करवट बदलकर मुँह फेरकर उसका तिरस्कार करती थीं, जिसमें कि पलंग पर बिछी चादर आँसुओं से भींग जाती और क्रोध के मारे उनके कंकण टूट जाते थे। अर्थात् सौतेली डाह से रूठकर करवट बदल कर रो रोकर आफत कर डालती थीं ॥ २२ ॥

क्लृप्तपुष्पशयनाँल्लतागृहानेत्य दूतिकृतमार्गदर्शनः।
अन्वभूत्परिजनाङ्गनारतं सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम् ॥ २३ ॥

सोऽग्निवर्णो दूतिभिः कृतमार्गदर्शनः सन् । क्लृप्तपुष्पशयनाँल्लतागृहानेत्यावरोधादन्तःपुर-जनाद्भयेन यो वेपथुः कम्पस्तदुत्तरं तत्प्रधानं यथा तथा परिजनाङ्गनारतं दासीरतमन्वभूत् । परि-जनश्चासावङ्गना चेति विग्रहः । अत्र ङीबन्तस्यापि दूतीशब्दस्य छन्दोभङ्गभयाद्ध्रस्वत्वं कृतम् । 'अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं त्यजेद्गिराम्' इत्युपदेशात् ॥

अन्वयः—सः दूतिकृतमार्गदर्शनः सन् क्लृप्तपुष्पशयनान् लतागृहान् एत्य, अवरोधभय-वेपथूत्तरम् 'यथा स्यात्तथा' परिजनांगनारतम् अन्वभूत् ।

व्याख्या—सः=अग्निवर्णः दूतिभिः=सञ्चारिकाभिः कृतं=विहितं मार्गस्य=अध्वनः दर्शनम्=अवलोकनं येन स दूतिकृतमार्गदर्शनः सन् क्लृप्तानि=निर्मितानि पुष्पाणां=कुसु-मानां शयनानि=शय्याः येषु ते तान् क्लृप्तपुष्पशयनान् लताभिः निर्मिताः गृहाः इति लता-गृहाः=लताकुञ्जास्तान् लतागृहान् एत्य=आगत्य अवरुध्यते इति अवरोधः=अन्तःपुरम् तस्मात् भयं=भीतिरिति अवरोधभयं तेन यो वेपथुः=कम्पः, इति अवरोधभयवेपथुः, सः उत्तरं= प्रधानं यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात्तथा परिजनश्चासौ अङ्गना च इति परिजनांगना तस्याः रतं=सम्भोगः इति परिजनांगनारतं तत्, अन्वभूत्-दासीभिः सह सम्भोगं कृतवानित्यर्थः ।

समासः—दूतिभिः कृतं मार्गस्य दर्शनं येन स दूतिकृतमार्गदर्शनः । क्लृप्तानि पुष्पाणां शय-नानि येषु ते तान् क्लृप्तपुष्पशयनान् । लताभिः निर्मिताः गृहाः लतागृहास्तान् लतागृहान् । परि-जनश्चासौ अङ्गना चेति परिजनांगना तस्या रतमिति परिजनांगनारतं तत् । अवरोधात् भयमिति अवरोधभयं तेन यो वेपथुरिति अवरोधवेपथुः, सः उत्तरं यस्मिन् कर्मणि तत् अवरोधभयवेपथूत्तरम् ।

हिन्दी—जब कभी राजा अग्निवर्ण दासी के द्वारा मार्ग दिखाये जानेपर, फूलों की बनी शय्या वाले लता घरों (कुञ्जों) में जाकर (ये दासी महारानी से न कह दें इस डर से) रानियों के भय से थर-थर काँपते हुए, दासी के साथ सम्भोग करता था । अर्थात् दासी से सम्भोग करके उसे प्रसन्न करते थे । यतः वे शिकायत न करें ।

विशेष—दूती दीर्घ होता है । किन्तु यहाँ छन्द न बिगड़े अतः ह्रस्व माना है । प्राचीनों का कथन है कि माष को मष पढ़ लेना किन्तु छन्द नहीं बिगड़ने पावे इति ॥ २३ ॥

नाम वल्लभजनस्य ते मया प्राप्य भाग्यमपि तस्य काङ्क्ष्यते ।
लोलुपं ननु मनो ममेति तं गोत्रविस्खलितमूचुरङ्गनाः ॥ २४ ॥

मया ते वल्लभजनस्य प्रियजनस्य नाम प्राप्य तन्नाम्नाह्वानं लब्ध्वा तस्य त्वद्वल्लभजनस्य यद्भाग्यम् । तत्परिहासकारणमिति शेषः । तदपि काङ्क्ष्यते । ननु बत मम मनो लोलुपं गृध्नु । इत्यनेन प्रकारेण गोत्रे नाम्नि विस्खलितं स्खलितवन्तं तमग्निवर्णमूचुः । 'गोत्रं नाम्नि कुले-ऽचले' इति यादवः । तन्नामलाभे सति तद्भाग्यमपि काङ्क्षिणो मम । अहो तृष्णेति सोल्लुण्ठ-मुपालम्भन्तेत्यर्थः ॥

अन्वयः—मया ते वल्लभजनस्य नाम प्राप्य, तस्य भाग्यम् अपि काङ्क्ष्यते । ननु लोलुपं मम मनः इति अङ्गनाः गोत्रविस्खलितं तम् ऊचुः ।

व्याख्या—मया = तव पत्न्या ते = तव महाराजस्य वल्लभः = प्रियश्चासौ जनः, तस्य वल्लभजनस्य = ते प्रीतिपात्रस्य नाम = अभिधेयं प्राप्य = लब्ध्वा = ज्ञात्वेत्यर्थः । तस्य = तव प्रियजनस्य भज्यते यत् तत् भाग्यं = भागधेयं = शुभाशुभं कर्म इत्यर्थः । काङ्क्ष्यते = अभिलष्यते । यत् भाग्यं तत्परिहासकारणं तदपि काङ्क्ष्यते इति । ननु = बत गर्हितं लुम्पतीति लोलुपं = लोलुभम् अतिलुब्धमित्यर्थः । "समौ लोलुपलोलुभौ" इत्यमरः । मम = तव पत्न्याः मनः = चित्तमिति = इत्यनेन प्रकारेण अङ्गनाः = स्त्रियः गोत्रे = नाम्नि विस्खलितः = स्खलितस्तं गोत्रविस्खलितं = अन्यनामोच्चारणे स्खलितवन्तमित्यर्थः तम् = अग्निवर्णम् ऊचुः = जगदुः । तन्नामनि ज्ञाते सति तत्सौभाग्यमपि काङ्क्षिण्याः मे तृष्णेत्यहो, इति व्यंग्योक्तिपूर्वकमुपालभन्तेत्यर्थः ।

समासः—वल्लभश्चासौ जनः वल्लभजनस्तस्य वल्लभजनस्य । गोत्रे विस्खलितः गोत्रविस्खलितस्तं गोत्रविस्खलितम् ।

हिन्दी—"किसी समय राजा भूल से दूसरी किसी प्रेमिका का नाम लेता, तो वे स्त्रियाँ कहतीं कि—मैंने आप के प्रिय जन (प्रेमिका) का नाम (आप के कहने से) जानकर उसका जो सौभाग्य है उसे हम चाहते हैं । अर्थात् वह धन्य है । किन्तु खेद है कि अतिलोभी मेरा मन आप को नहीं छोड़ सकता है इस प्रकार भूल से सपत्नी का नाम लेने वाले उस अग्निवर्ण को स्त्रियों ने उलाहना दिया । अर्थात् उसका तिरस्कार किया ॥ २४ ॥

चूर्णबभ्रु लुलितस्रगाकुलं छिन्नमेखलमलक्तकाङ्कितम् ।
उत्थितस्य शयनं विलासिनस्तस्य विभ्रमरतान्यपावृणोत् ॥ २५ ॥

चूर्णबभ्रु चूर्णैर्व्यानतकरणैरधोमुखावस्थितायाः स्त्रियाश्चिकुरगलितैः कुङ्कुमादिभिर्बभ्रु पिङ्गलम् । 'बभ्रु स्यात्पिङ्गले त्रिषु' इत्यमरः । लुलितस्रगाकुलं करिपदाख्यबन्धे स्त्रिया भूमिगतमस्तकतया पतिताभिर्लुलितस्रग्भिराकुलम् । छिन्नमेखलं हरिविक्रमकरणैः स्त्रिया उच्छ्रितैकचरणत्वाद्दलितमेखलम् । अलक्तकाङ्कितं धैनुकबन्धे भूतलनिहितकान्ताचरणत्वाल्लाक्षारागरूषितं शयनं कर्तृ । उत्थितस्य । शयनादिति भावः । विलासिनस्तस्याग्निवर्णस्य विभ्रमरतानि लीलारतानि । सुरतबन्धविशेषानित्यर्थः । अपावृणोत्स्फुटीचकार । व्यानतादीनां लक्षणं रतिरहस्ये—'व्यानतं रतमिदं प्रिया यदि स्यादधोमुखचतुष्पदाकृतिः । तत्कटिं समधिरुह्य वल्लभः स्याद्वृषादिपशुसंस्थितस्थितिः ॥ भूगतस्तनभुजास्यमस्तकामुन्नतस्फिचमधोमुखीं स्त्रियम् । क्रामति स्वकरकृष्टमेहने वल्लभे करिपदं तदुच्यते ॥ योषिदेकचरणे समुत्थिते जायते हि हरिविक्रमाह्वयः । न्यस्तहस्तयुगला निजे पदे योषिदेति कटिरूढवल्लभा । अग्रतो यदि शनैरधोमुखी धैनुकं वृषवदुन्नते प्रिये ॥' इति ॥

अन्वयः—चूर्णबभ्रु लुलितस्रगाकुलं छिन्नमेखलम्, अलक्तकांकितम्, शयनम् (कर्तृपदम्) उत्थितस्य विलासिनः तस्य विभ्रमरतानि अपावृणोत् ।

व्याख्या—चूर्ण्यन्ते इति चूर्णानि । चूर्णैः = क्षोदैः बभ्रु = पिंगलवर्णम्, चूर्णबभ्रु सम्भोगकाले व्यानतनामकासनेऽधोमुखस्थितायाः स्त्रियाः केशपाशपतितकुंकुमेन पिंगलमित्यर्थः । लुलि-

ताभिः = म्लानाभिः, इतस्ततः पतिताभिर्वा स्रग्भिः = पुष्पमालाभिः आकुलं = व्याप्तमिति लुलित-स्रगाकुलम्, करिपदनामकासने, इत्यर्थः। छिन्ना = त्रुटिता मेखला = काञ्चीगुणः यस्मिन् तत् छिन्नमेखलम्, हरिविक्रमनामकासने इत्यर्थः, अलक्तः एव अलक्तकः अलक्तकेन = लाक्षारागेण अंकितं = शोभितमिति अलक्तकांकितम्, धेनुकासने नायिकायाः अधोमुखीत्वादित्यर्थः। एवंभूतं शयनीयं कर्तृपदमिदम्, उत्थितस्य = शयनादुत्थितस्येत्यर्थः। विलासिनः = विलसनशीलस्य तस्य = राज्ञोऽग्निवर्णस्य विभ्रमस्य = लीलायाः रतानि = सुरतानि, इति विभ्रमरतानि तानि विभ्रमरतानि सम्भोगस्य आसनविशेषानित्यर्थः। अपावृणोत् = प्रकटीचकार। प्रातःकाले शय्या-वलोकनेनेदं स्पष्टं जातं यदनेन एभिरासनैः संम्भोगः कृत इत्यर्थः।

समासः—चूर्णैः बभ्रु चूर्णबभ्रु। लुलिताश्च ताः स्रजः लुलितस्रजस्ताभिः आकुलमिति तत् लुलितस्रगाकुलम्। छिन्ना मेखला यस्मिन् तत् छिन्नमेखलम्। अलक्तकेन अंकितमिति अलक्तकांकितम्। विभ्रमस्य रतानि, तानि विभ्रमरतानि।

हिन्दी—प्रातःकाल, राजा अग्निवर्ण जब सोकर उठता था, तो वह पलंग, (कर्ता) शौकीन राजा अग्निवर्ण के सम्भोग के 'कामशास्त्रोक्त' उन आसनों को साफ-साफ प्रकट कर देता था, जो कि व्यानत नामक बन्ध से रत के कारण केसरादि के चूर्ण से पीला हुआ रहता था। और जिस पर करिपदासन से रति करने के कारण टूटी मसली (म्लान) माला पड़ी रहती थी। तथा हरिविक्रम आसन से जिस पर करधनी टूटी पड़ी रहती थी। और धेनुक आसन से सम्भोग के कारण महावर से शोभित, पैर के निशान रहते थे।

विशेष—महाकवि ने इस पद्य में सम्भोग के व्यानत १ करिपद २ हरिविक्रम ३ धेनुक ४ इन चार आसनों से सम्भोग का वर्णन किया है॥ २५॥

स स्वयं चरणरागमादधे योषितां न च तथा समाहितः।
लोभ्यमाननयनः श्लथांशुकैर्मेखलागुणपदैर्नितम्बिभिः॥ २६॥

सोऽग्निवर्णः स्वयमेव योषितां चरणयो रागं लाक्षारसमादधेऽर्पयामास। किंच। श्लथांशुकैः प्रियाङ्गस्पर्शादिति भावः। नितम्बिभिर्नितम्बवद्भिर्मेखलागुणपदैर्जघनैः। 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः क्लीबे तु जघनं पुरः' इत्यमरः। लोभ्यमाननयन आकृष्यमाणदृष्टिः सन्। तथा समाहितोऽवहितो नादधे यथा सम्यग्रागरचना स्यादिति भावः॥

अन्वयः—सः स्वयं योषितां चरणरागम् आदधे, श्लथांशुकैः नितम्बिभिः मेखलागुणपदैः लोभ्यमाननयनः सन् तथा समाहितः च न आदधे।

व्याख्या—सः = राजा अग्निवर्णः स्वयं = स्वेनैव योषितां = स्त्रीणां चरणयोः = पादयोः रागः = लाक्षारसः इति चरणरागस्तं चरणरागम् आदधे = अर्पयामास, स्वहस्तेनैव लाक्षारसेन तच्चरणौ रंजितवानित्यर्थः। किञ्च श्लथानि = शिथिलानि-प्रियांगस्पर्शात्-स्वस्थानात् स्रस्तानी-त्यर्थः, अंशुकानि = वस्त्राणि येभ्यस्तानि तैः श्लथांशुकैः नितम्बाः स्त्रीकट्याः पृष्ठभागाः सन्ति

येषु तैः नितम्बिभिः = नितम्बवद्भिः मेखलायाः = रशनायाः गुणः = सूत्रं तस्य पदानि = स्थानानि तैः मेखलागुणपदैः = जघनस्थलैः लोभ्यमाने आकृष्यमाणे नयने = नेत्रे यस्य स लोभ्यमाननयनः, आकृष्टदृष्टिः सन्नित्यर्थः। तथा = तेन प्रकारेण समाधीयते स्म समाहितः = अवहितः—सावधानः इत्यर्थः न आदधे = न रचनां कृतवान् यथा सम्यक् प्रकारेण रागरचना भवेदिति भावः।

समासः—चरणयोः रागः चरणरागस्तं चरणरागम्। श्लथानि अंशुकानि येषां तैः श्लथांशुकैः। मेखलायाः गुणः मेखलागुणस्तस्य पदानि तैः मेखलागुणपदैः। लोभ्यमाने नयने यस्य स लोभ्यमाननयनः।

हिन्दी—राजा अग्निवर्ण जब कभी अपने हाथों से स्त्रियों के पैरों पर महावर लगाने लगता था उस समय वह करधनी की लड़ी के स्थान (जांघ) को देखकर ऐसा मोहित (कामासक्त) हो जाता था कि महावर भी ठीक से न लगा पाता था। जो कि वस्त्रों के सरक जाने से नितम्बों के साथ दीख जाते थे ॥ २६ ॥

चुम्बने विपरिवर्तिताधरं हस्तरोधि रशनाविघट्टने ।
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम् ॥ २७ ॥

चुम्बने प्रवृत्ते सति विपरिवर्तिताधरं परिहृतोष्ठम्। रशनाविघट्टने ग्रन्थिविस्रंसने प्रसक्ते सति हस्तं रुणद्धि वारयतीति हस्तरोधि। इत्थं सर्वतः सर्वत्र विघ्नितेच्छं प्रतिहतमनोरथमपि वधूनां रतं सुरतं तस्याग्निवर्णस्य मन्मथेन्धनं कामोद्दीपनमभूत् ॥

अन्वयः—चुम्बने विपरिवर्तिताधरं रशनाविघट्टने हस्तरोधि 'इति' सर्वतः विघ्नितेच्छम् अपि वधूरतं तस्य मन्मथेन्धनम् अभूत्।

व्याख्या—चुम्बने = मुखसंयोगे प्रवृत्ते सति विपरिवर्तितः = विमुखीकृतः परिहृत इत्यर्थः। अधरः = ओष्ठो यस्मिन् तत् विपरिवर्तिताधरम् रशनायाः = मेखलायाः विघट्टनं = विस्रंसनं यस्मिन् तत् तस्मिन् रशनाविघट्टने प्रसक्ते सति हस्तं = राज्ञः करं रुणद्धि = निवारयतीति हस्तरोधि इत्थं सर्वस्मिन्निति सर्वतः = सर्वत्र विघ्निता = प्रतिहता इच्छा = अभिलाषः यस्मिन् तत् विघ्नितेच्छम् अपि वधूनां = स्त्रीणां रतं = सुरतं = सम्भोगः इत्यर्थः इति वधूरतं तस्य = अग्निवर्णस्य मननं यत् = चेतना मतः मथः = विलोडनमिति मन्मथः। इन्धेऽग्निरनेन इति इन्धनम्। मन्मथस्य = कामस्य इन्धनम् = उद्दीपनमिति मन्मथेन्धनम् अभूत् = जातम्। स्त्रीभिः यत्किमपि तस्मिन् कृतं तत्सर्वं राज्ञः स्मरोद्दीपकमभवदिति भावः।

समासः—विपरिवर्तितः अधरः यस्मिन् तत् विपरिवर्तिताधरम्। रशनायाः विघट्टनम् यस्मिन् तत् रशनाविघट्टनम्। हस्तस्य रोधि यत् तत् हस्तरोधि। विघ्निता इच्छा यस्मिन् तत् विघ्नितेच्छम्। मतः मथः मन्मथः, मन्मथस्य इन्धनमिति मन्मथेन्धनम्। वधूनां रतमिति वधूरतम्।

हिन्दी—राजा अग्निवर्ण सम्भोग के समय, जब स्त्रियों का अधर पान (ओठ चूमना) करने लगता था, तो वे स्त्रियां ओठ को हटा लेती थीं। (मुँह फिरा लेतीं) तगड़ी खोलते

समय हाथ पकड़ लेती थीं। अर्थात् (नीवी, साड़ी की गांठ खोलते समय) इस प्रकार सम्भोग के समय राजा की इच्छाओं की सब तरफ में बाधा होने पर भी उसका काम और बढ़ जाता था। चुम्बन के ये स्थान हैं यथा—'मुखे स्तने ललाटे च कण्ठे च नेत्रयोरपि। गण्डे (कपोल) च कर्णयोश्चैव कक्षोरुभगमूर्द्धसु' ॥ २७ ॥

दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीर्नर्मपूर्वमनुपृष्ठसंस्थितः।
छायया स्मितमनोज्ञया वधूर्ह्रीनिमीलितमुखीश्चकार सः ॥ २८ ॥

सोऽग्निवर्णो दर्पणेषु परिभोगदर्शिनोः संभोगचिह्नानि पश्यन्तीर्वधूर्नर्म पूर्वं परिहासपूर्वमनुपृष्ठं तासां पृष्ठभागे संस्थितः सन्। स्मितेन मनोज्ञया छायया दर्पणगतेन स्वप्रतिबिम्बेन ह्रीनिमीलितमुखीर्लज्जावनतमुखीश्चकार। तमागतं दृष्ट्वा लज्जिता इत्यर्थः।

अन्वयः—सः दर्पणेषु परिभोगदर्शिनीः वधूः नर्मपूर्वम् अनुपृष्ठसंस्थितः सन् स्मितमनोज्ञया छायया ह्रीनिमीलितमुखीः चकार।

व्याख्या—सः अग्निवर्णः दर्पयन्ति = हर्षयन्ति, मोहयन्ति वा दर्पणास्तेषु दर्पणेषु = आदर्शेषु परिभोगं = सम्भोगचिह्नं पश्यन्ति = अवलोकयन्तीति परिभोगदर्शिन्यस्ताः परिभोगदर्शिनीः वधूः = स्त्रीः नर्म = परिहासः पूर्वं यस्मिन् तत् नर्मपूर्वं यथा तथा पृष्ठस्य पश्चात् अनुपृष्ठं = स्त्रीणां पृष्ठभागे संस्थितः = वर्तमानः सः अनुपृष्ठसंस्थितः सन् स्मितेन = हास्येन मनोज्ञा = मनोहरा इति स्मितमनोज्ञा तया स्मितमनोज्ञया छायया = प्रतिबिम्बेन = दर्पणगतस्वप्रतिबिम्बेनेत्यर्थः। ह्रिया = लज्जया निमीलितानि = अवनतानि = नम्रीभूतानीत्यर्थः। मुखानि आननानि यासां ताः ह्रीनिमीलितमुख्यस्ताः ह्रीनिमीलितमुखीः चकार = कृतवान्। एवं भूतमग्निवर्णं दृष्ट्वा लज्जया अधोमुख्यः जाताः इत्यर्थः।

समासः—परिभोगान् पश्यन्तीति परिभोगदर्शिन्यः, ताः। नर्म पूर्वं यस्मिन् तत् नर्मपूर्वम्। पृष्ठस्य पश्चात् अनुपृष्ठं संस्थितः इति अनुपृष्ठसंस्थितः। स्मितेन मनोज्ञा, तया स्मितमनोज्ञया। ह्रिया निमीलितानि मुखानि यासां ताः ह्रीनिमीलितमुख्यस्ताः ह्रीनिमीलितमुखीः।

हिन्दी—जब स्त्रियाँ शीशों में (सामने खड़ी होकर) अपने सम्भोग के चिह्नों को (नखक्षत व दन्तक्षत) देखती थीं तो, उनकी पीठ के पीछे चुपचाप खड़े होकर हँसते हुए वह राजा मुसकुराने से सुन्दर अपनी छाया अर्थात् सामने शीशे में पड़े अपने हँसते हुए प्रतिबिम्ब से, उन स्त्रियों को लज्जा से नीचे की ओर मुखवाली कर देता था। अर्थात् इस अवस्था में राजा को देख कर वे शरमा जाती थीं ॥ २८ ॥

कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनं न्यस्तपादतलमग्रपादयोः।
प्रार्थयन्त शयनोत्थितं प्रियास्तं निशात्ययविसर्गचुम्बनम् ॥ २९ ॥

प्रियाः शयनादुत्थितं तमग्निवर्णं कण्ठसक्तं कण्ठार्पितं मृदु बाहुबन्धनं यस्मिंस्तत्। अग्र-

पादयोः स्वकीययोर्न्यस्ते पादतले यस्मिंस्तत् । निशात्यये विसर्गो विसृज्य गमनं तत्र यच्चुम्बनं तत्प्रार्थयन्त । 'दुह्याच्–' इत्यादिना द्विकर्मकत्वम् । अत्र गोनर्दीयः—'रतावसाने यदि चुम्बनादि प्रयुज्य यायान्मदनोऽस्य वासः' इति ॥

अन्वयः—प्रियाः शयनोत्थितं कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनम् अग्रपादयोः न्यस्तपादतलं निशात्ययविसर्गचुम्बनं प्रार्थयन्त ।

व्याख्या—प्रीणन्तीति प्रियाः = वल्लभाः शयनात् = शय्यायाः उत्थितः = इति शयनोत्थितस्तं शयनोत्थितं–निद्रां विहाय पर्यंकादुत्थितमित्यर्थः । तम् = राजानम्–अग्निवर्णं बाहुभ्यां = भुजाभ्यां बन्धनं = वेष्टनमिति बाहुबन्धनं मृदु = कोमलं च तद् बाहुबन्धनमिति मृदुबाहुबन्धनं कण्ठे = गले सक्तम् = अर्पितं मृदुबाहुबन्धनं यस्मिन् तत् कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनम्, अग्रौ = श्रेष्ठौ पादौ = चरणौ इति अग्रपादौ तयोः अग्रपादयोः–स्वीयचरणयोः न्यस्ते = स्थापिते पादयोः = चरणयोः तले यस्मिन् तत् न्यस्तपादतलम् = स्थापितचरणाधोभागम् । नितरां श्यति = तनूकरोति व्यापारान् इति निशा निशायाः = रात्रेः अत्ययः = अन्तः, निशात्ययः तस्मिन् विसर्गः = त्यागः प्रियाः परित्यज्य गमनमित्यर्थः । तत्र निशात्ययविसर्गे यत् चुम्बनं = मुखसंयोगः इति निशात्ययविसर्गचुम्बनं तत् प्रार्थयन्त = प्रार्थयन्ति स्म । चौरादिकार्थधातोः लङः रूपमिदम् प्रार्थयन्त इति ।

समासः—शयनात् उत्थितस्तं शयनोत्थितम् । अग्रौ च तौ पादौ अग्रपादौ तयोः अग्रपादयोः । न्यस्ते पादयोः तले यस्मिन् तत् न्यस्तपादतलम् । बाहुभ्यां बन्धनमिति बाहुबन्धनम् मृदु च तत् बाहुबन्धनमिति मृदुबाहुबन्धनम्, कण्ठे सक्तं मृदुबाहुबन्धनं यस्मिन् तत् कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनम्, तत् । निशायाः अत्ययः निशात्ययः, तत्र विसर्गः इति निशात्ययविसर्गः, तत्र यत् चुम्बनमिति, तत् निशात्ययविसर्गचुम्बनम् ।

हिन्दी—प्रातःकाल (जाते समय) पलंग से उठे, राजा अग्निवर्ण से उनकी स्त्रियाँ प्रार्थना करती थीं, कि गले में कोमल बाहुपाश डाले हुए, और अपने पैर के पंजों पर पैर के तलवे रखकर रात की समाप्ति (बीत जाने) पर बाहर जाते समय चुम्बन देते हुए बिदाई लेता जाये तो ठीक है ॥ २९ ॥

प्रेक्ष्य दर्पणतलस्थमात्मनो राजवेषमतिशक्रशोभिनम् ।
पिप्रिये न स तथा यथा युवा व्यक्तलक्ष्म परिभोगमण्डनम् ॥ ३० ॥

युवा सोऽग्निवर्णोऽतिशक्रं यथा तथा शोभमानमतिशक्रशोभिनं दर्पणतलस्थं दर्पणसंक्रान्तमात्मनो राजवेषं प्रेक्ष्य तथा न पिप्रिये न तुतोष यथा व्यक्तलक्ष्म प्रकटचिह्नं परिभोगमण्डनं प्रेक्ष्य पिप्रिये ॥

अन्वयः—युवा सः अतिशक्रशोभिनं दर्पणतलस्थम् आत्मनः राजवेषम् प्रेक्ष्य तथा न पिप्रिये, यथा व्यक्तलक्ष्म परिभोगमण्डनं प्रेक्ष्य पिप्रिये ।

व्याख्या—युवा = तरुणः सः = अग्निवर्णः शक्नोतीति शक्रः, शक्रमतिक्रम्येति अतिशक्रं शोभते तच्छीलः अतिशक्रशोभी तं अतिशक्रशोभिनं शक्रादपि अधिकशोभावन्तमित्यर्थः। दर्पणस्य = आदर्शस्य तले तिष्ठतीति दर्पणतलस्थस्तं दर्पणतलस्थं दर्पणे संक्रान्तप्रतिबिम्बम् आत्मनः = स्वस्य राज्ञः वेषः = नेपथ्यमिति राजवेषस्तं राजवेषं प्रेक्ष्य = अवलोक्य तथा = तेन प्रकारेण न पिप्रिये = न प्रीतोऽभूत्, यथा = येन प्रकारेण लक्ष्यतेऽनेनेति लक्ष्म, व्यक्तानि = स्पष्टानि लक्ष्माणि = चिह्नानि यस्य तत् व्यक्तलक्ष्म, परिभोगस्य = सम्भोगस्य मण्डनं = भूषणं शोभा, इति परिभोगमण्डनं तत् प्रेक्ष्य = अवलोक्य पिप्रिये = प्रसन्नो जातः। अतीव कामी सः आसीदित्यर्थः।

समासः—शक्रमतिक्रम्य शोभी, इति अतिशक्रशोभी तम् अतिशक्रशोभिनम्। राज्ञः वेषस्तं राजवेषम्। दर्पणस्य तलस्थः इति दर्पणतलस्थस्तं दर्पणतलस्थम्। व्यक्तानि लक्ष्माणि यस्य तत् व्यक्तलक्ष्म। परिभोगस्य मण्डनमिति तत् परिभोगमण्डनम्।

हिन्दी—नवयुवक वह राजा अग्निवर्ण, इन्द्र के वस्त्रों से भी अधिक सुन्दर अपनी राजसी वेष भूषा को शीशे में देखकर वैसा प्रसन्न नहीं होता था, जैसा कि स्पष्ट चिह्नों वाले सम्भोग के भूषण को देखकर प्रसन्न होता था। अर्थात् अपने शरीर तथा वस्त्रों पर सम्भोग के स्पष्ट निशान देखकर वह बहुत प्रसन्न होता था, कामी होने के कारण ॥ ३० ॥

मित्रकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितं तमनवस्थितं प्रियाः ।
विद्म हे शठ पलायनच्छलान्यञ्जसेति रुरुधुः कचग्रहैः ॥ ३१ ॥

मित्रकृत्यं सुहृत्कार्यमपदिश्य व्याजीकृत्य पार्श्वतः प्रस्थितमन्यतो गन्तुमुद्युक्तमनवस्थितमवस्थातुमक्षमं तमग्निवर्णं प्रियाः, हे शठ हे गूढविप्रियकारिन्। 'गूढविप्रियकृच्छठः' इति दशरूपके। तव पलायनस्य छलान्यञ्जसा तत्त्वतः। 'तत्त्वे त्वद्धाञ्जसा द्वयम्' इत्यमरः। विद्म जानीम। 'विदो लटो वा' इति वैकल्पिको मादेशः। इति। उक्त्वेति शेषः। कचग्रहैः केशाकर्षणै रुरुधुः। अत्र गोनर्दीयः—'ऋतुस्नाताभिगमने मित्रकार्ये तथापदि। त्रिष्वेतेषु प्रियतमः क्षन्तव्यो वारगम्यया ॥' इति। विरक्तलक्षणप्रस्तावे वात्स्यायनः—'मित्रकृत्यं चापदिश्यान्यत्र शेते' इति ॥

अन्वयः—मित्रकृत्यम् अपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितम् अनवस्थितं तं प्रियाः, हे शठ ! पलायनच्छलानि अञ्जसा विद्म इति (उक्त्वा) कचग्रहैः रुरुधुः।

व्याख्या—मित्राणां = सुहृदां कृत्यं = कार्यमिति मित्रकृत्यम् अपदिश्य = व्यपदिश्य–सुहृदां कार्यमस्ति इति व्याजेनेत्यर्थः। पार्श्वात् इति पार्श्वतः = समीपतः प्रस्थितं = यान्तम्-अन्यत्र यातुं तत्परमित्यर्थः। न अवस्थितः अनवस्थितस्तम् अनवस्थितम् = स्थातुमसमर्थम् तम् = अग्निवर्णम्, प्रियाः = प्रणयिन्यः शठतीति शठः तत्सम्बुद्धौ हे शठ = हे धूर्त ! तव पलायनस्य = अन्यत्र गमनस्य छलानि = व्याजान्, इति पलायनच्छलानि अञ्जसा = तत्त्वतः विद्म = जानीम वयमिति शेषः।

इति = एवमुक्त्वा कचानां = केशानां ग्रहाः = आकर्षणानि तैः कचग्रहैः = केशान् गृहीत्वा रुरुधुः = वारयामासुः ।

समासः—मित्राणां कृत्यमिति मित्रकृत्यम् तत् । न अवस्थितः अनवस्थितः तम् अनवस्थितम् । पलायनस्य छलानि पलायनच्छलानि तानि । कचानां ग्रहाः कचग्रहास्तैः कचग्रहैः ।

हिन्दी—"जब कभी रानियों से ऊबकर किसी प्रेमिका के पास जाने की राजा की इच्छा होती तो" मित्र के कार्य का बहाना करके रानी के पास से उठकर किसी दूसरी प्रेमिका के पास जाने को तैयार तथा रुकने में असमर्थ राजा अग्निवर्ण से उसकी रानियाँ, हे धूर्त ! तुम्हारे मित्र के पास जाने के बहाने को हम भली प्रकार जानती हैं। यह कहकर और बाल पकड़ कर रोकती थीं ॥ ३१ ॥

तस्य निर्दयरतिश्रमालसाः कण्ठसूत्रमपदिश्य योषितः ।
अध्यशेरत बृहद्भुजान्तरं पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम् ॥ ३२ ॥

निर्दयरतिश्रमेणालसा निश्चेष्टा योषितः कण्ठसूत्रमालिङ्गनविशेषमपदिश्य व्याजीकृत्य पीवरस्तनाभ्यां विलुप्तचन्दनं प्रमृष्टाङ्गरागं तस्याग्निवर्णस्य बृहद्भुजान्तरमध्यशेरत वक्षःस्थले शेरते स्म । कण्ठसूत्रलक्षणं तु—'यत्कुर्वते वक्षसि वल्लभस्य स्तनाभिघातं निबिडोपगूहात् । परिश्रमार्थं शनकैर्विदग्धास्तत्कण्ठसूत्रं प्रवदन्ति सन्तः ॥' इदमेव रतिरहस्ये स्तनालिङ्गनमित्युक्तम् । तथा च—'उरसि कमितुरुच्चैरादिशन्ती वराङ्गी स्तनयुगमुपधत्ते यत्स्तनालिङ्गनं तत्' इति ॥

अन्वयः—निर्दयरतिश्रमालसाः योषितः कण्ठसूत्रम् अपदिश्य पीवरस्तनविलुप्तचन्दनं तस्य बृहद्भुजान्तरम् अध्यशेरत ।

व्याख्या—निर्गता दया यस्यां सा निर्दया, निर्दया = निर्दयपूर्विका या रतिः = सम्भोगः तया तत्र वा यः श्रमः = खेदस्तेन अलसाः = मन्दाः आलस्यवत्यः इति निर्दयरतिश्रमालसाः योषितः = स्त्रियः कण्ठस्य सूत्रं, कण्ठे वा सूत्रमिति कण्ठसूत्रम् = आलिंगनासनविशेषम् अपदिश्य = व्याजीकृत्य कण्ठसूत्रस्य लक्षणं यथा—'यत्कुर्वते वक्षसि वल्लभस्य स्तनाभिघातं निबिडोपगूहात् । परिश्रमार्थं शनकैर्विदग्धास्तत्कण्ठसूत्रं प्रवदन्ति सन्तः ॥' इदमेव च स्तनालिंगनासनमिति रतिरहस्ये । पीवरौ = स्थूलौ च तौ स्तनौ = कुचौ ताभ्यां विलुप्तं = प्रमृष्टं चन्दनम् = अंगरागो यस्य तत् पीवरस्तनविलुप्तचन्दनमिति तत् । तस्य = राज्ञोऽग्निवर्णस्य भुजयोः = बाह्वोः अन्तरं = मध्यमिति भुजान्तरं, बृहत् = विशालं च तत् भुजान्तरमिति बृहद्भुजान्तरं तत्। वक्षस्थले, इत्यर्थः । अध्यशेरत = स्वपन्ति स्म ।

समासः—निर्दया रतिः, निर्दयरतिः तत्र यः श्रमस्तेन अलसाः निर्दयरतिश्रमालसाः । पीवरौ च तौ स्तनौ पीवरस्तनौ, ताभ्यां विलुप्तं चन्दनं यत्र तत् पीवरस्तनविलुप्तचन्दनम् तत् । बृहच्च तत् भुजयोः अन्तरमिति बृहद्भुजान्तरं तत् बृहद्भुजान्तरम् ।

हिन्दी—"राजा अग्निवर्ण के जब कभी" निर्दयता पूर्वक सम्भोग से हुई थकावट से आलस्य में भरी स्त्रियाँ कण्ठ सूत्र के बहाने (स्तनालिंगन नामक प्रकार से) मोटे-मोटे स्तनों

से राजा की छाती के चन्दन को पोछती हुई उसकी विशाल भुजाओं (वक्षस्थल) में सो जाती थी। अर्थात् चतुर नायिका गाढालिंगन करके अपने प्रिय के वक्षस्थल पर स्तनों से आघात करती हैं तो उसे कण्ठसूत्रासन कहते हैं। यहाँ यही वर्णन है ॥ ३२ ॥

संगमाय निशि गूढचारिणं चारदूतिकथितं पुरोगताः ।
वञ्चयिष्यसि कुतस्तमोवृतः कामुकेति चकृषुस्तमङ्गनाः ॥ ३३ ॥

संगमाय सुरतार्थं निशि गूढमज्ञातं चरतीष्टगृहं प्रति गच्छतीति गूढचारी। तं चारदूतिकथितम्। चरन्तीति चारा गूढचारिण्यः। 'ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः' इति णः प्रत्ययः। चाराश्च ता दूत्यश्च चारदूत्यः। ताभिः कथितं निवेदितं तमग्निवर्णमङ्गनाः पुरोऽग्रे गताः। अवरुद्धमार्गाः सत्य इत्यर्थः। हे कामुक, तमसा वृतो गूढः सन्कुतो वञ्चयिष्यसीति उपालभ्येति शेषः। चकृषुः। स्ववासं निन्युरित्यर्थः ॥

अन्वयः—संगमाय निशि गूढचारिणं चारदूतिकथितं तम् अंगनाः पुरोगताः 'सत्यः' हे कामुक ! तमोवृतः सन् कुतः वञ्चयिष्यसि इति चकृषुः।

व्याख्या—संगमनं समागमस्तस्मै संगमाय = संगाय = सम्भोगायेत्यर्थः। तनूकरोति व्यापारान् इति निट् तस्यां निशि = रात्रौ गूढं = गुप्तम् = अज्ञातं चरति = प्रेयसीं प्रति गच्छतीति गूढचारी तं गूढचारिणं चरन्तीति चाराः = गूढचारिण्यः। चाराश्च ताः दूतयः = संचारिकाः इति ताभिः चारदूतिभिः कथितः = निवेदितस्तं चारदूतिकथितं तम् = अग्निवर्णम् अंगनाः = स्त्रियः पुरः = अग्रे गताः = याताः इति पुरोगताः सत्यः मार्गमवरुध्य स्थिताः सत्यः इत्यर्थः। कामयते इति कामुकस्तत्संबुद्धौ हे कामुक ! हे कामन ! तमसा = अन्धकारेण वृतः = गूढः इति तमोवृतः सन् कुतः = कथं, केन प्रकारेण वञ्चयिष्यसि = प्रतारयिष्यसि इति = इत्थमुपालभ्य चकृषुः = निजावासं नीतवत्यः।

समासः—चाराश्च ताः दूतयः चारदूतयः, ताभिः कथितस्तं चारदूतिकथितम्। पुरः गताः पुरोगताः। तमसा वृतः इति तमोवृतः।

हिन्दी—रात में सम्भोग करने के लिये छिपकर चुपचाप बाहर जाने वाले, तथा रानियों की गुप्तचर दूतियों से बताये गये (कि राजा छिपकर बाहर जा रहा है) उस राजा को रास्ता रोक कर खड़ी हुई रानियाँ, अरे कामी, अन्धकार में छिपकर हमें चकमा कैसे दे सकते हो, यह कर खींचतीं थीं। अर्थात् हाथ पकड़ कर खींचते हुए अपने महल में ले जाती थीं ॥ ३३ ॥

योषितामुडुपतेरिवार्चिषां स्पर्शनिर्वृतिमसाववाप्नुवन् ।
आरुरोह कुमुदाकरोपमां रात्रिजागरपरो दिवाशयः ॥ ३४ ॥

उडुपतेरिन्दोरर्चिषां भासामिव। 'ज्वाला भासो नपुंस्यर्चिः' इत्यमरः। योषितां स्पर्शनिर्वृतिं स्पर्शसुखमवाप्नुवन्। किंच। रात्रिषु जागरपरः दिवा दिवसेषु शेते स्वपितीति दिवाशयः। 'अधिकरणे शेतेः' इत्यच्प्रत्ययः। असावग्निवर्णः कुमुदाकरस्योपमां साम्यमारुरोह प्राप ॥

अन्वयः—उडुपतेः अर्चिषाम् इव योषितां स्पर्शनिर्वृतिम् अवाप्नुवन् , 'किंच' रात्रिजागरपरः दिवाशयः असौ कुमुदाकरोपमाम् आरुरोह ।

व्याख्या—अवतीतिः ऊः, डयतेः डुः उ च तत् डुः च उडुः उ = रोषोन्वितपूर्वकमुच्यते इतिवा उडुः उडूनां = नक्षत्राणां पतिः = स्वामीति उडुपतिस्तस्य उडुपतेः = चन्द्रस्य अर्चिषां = भासां कान्तीनामित्यर्थः, इव यथा = योषितां = स्त्रीणां स्पर्शस्य = आलिंगनस्य निर्वृतिः = सुखमिति स्पर्शनिर्वृतिस्तां स्पर्शनिर्वृतिम् अवाप्नुवन् = अनुभवन् । किंच जागरे = जागरणे परः इति जागरपरः = जागरणशीलः, रात्रिषु = निशासु जागरपरः इति रात्रिजागरपरः दिवा = दिनेषु शेते = स्वपितीति दिवाशयः असौ = राजा अग्निवर्णः कौ = भूमौ मोदन्ते, इति कुमुदानि = श्वेतकमलानि, तेषाम् आकरः = उत्पत्तिस्थानम् आवास इत्यर्थः । इति कुमुदाकरः = तडागस्तस्य उपमा = सादृश्यं तां कुमुदाकरोपमाम् आरुरोह = प्राप्तवान् ।

समासः—उडूनां पतिः उडुपतिस्तस्य उडुपतेः । स्पर्शस्य, स्पर्शेन वा निर्वृतिः स्पर्शनिर्वृतिस्तां स्पर्शनिर्वृतिम् । कुमुदानाम् आकरः कुमुदाकरस्तस्य उपमा, तां कुमुदाकरोपमाम् । रात्रौ जागरस्तत्र परः, इति रात्रिजागरपरः ।

हिन्दी—चाँद की किरणों के समान, स्त्रियों के स्पर्श जन्य सुख का अनुभव करता हुआ वह राजा अग्निवर्ण रातों में जागता था और दिन में सोता था । अतः वह उस तालाब की समानता को प्राप्त हो रहा था जिसमें रात में कुमुदपुष्प खिले रहते हैं और दिन में न खिलने से सोता है ॥ ३४ ॥

वेणुना दशनपीडिताधरा वीणया नखपदाङ्कितोरवः ।
शिल्पकार्य उभयेन वेजितास्तं विजिह्मनयना व्यलोभयन् ॥ ३५ ॥

दशनैः पीडिताधरा दष्टोष्ठाः । नखपदैर्नखक्षतैरङ्कितोरवश्चिह्नितोत्सङ्गाः । व्रणिताधरोरुत्वाद-क्षमा इत्यर्थः । तथापि वेणुना वीणया चेत्युभयेन । अधरोरुपीडाकारिणेत्यर्थः । वेजिताः पीडिताः शिल्पं वेणुवीणावाद्यादिकं कुर्वन्तीति शिल्पकार्यो गायिकाः । 'कर्मण्यण्' इत्यण् । 'टिड्ढाणञ्–' इत्यादिना ङीप् । तं विजिह्मनयनाः कुटिलदृष्टयः सत्यः । स्वं चेष्टितं जानन्नपि वृथा नः पीडयतीति साभिप्रायं पश्यन्त्य इत्यर्थः । व्यलोभयन् । तथाविधालोकनमपि तस्याकर्षकमेवाभूदिति भावः ॥

अन्वयः—दशनपीडिताधराः नखपदाङ्कितोरवः 'तथापि' वेणुना वीणया च उभयेन वेजिताः शिल्पकार्यः तं विजिह्मनयनाः 'सत्यः' व्यलोभयन् ।

व्याख्या—दशनैः = दन्तैः पीडितः = दष्टः अधरः = ओष्ठः यासां ताः दशनपीडिताधराः, नखानां = कररुहाणां पदानि = क्षतानि इति नखपदानि तैः अंकिताः = चिह्निताः ऊरवः = सक्थीनि उत्संगाः इत्यर्थः । यासां ताः नखपदांकितोरवः, वेणतीति वेणुः अजतीति व वेणुः तेन वेणुना = कीचकेन वंशेन, वेति = जायते स्वरोऽस्याः सा वीणा तया वीणया = वल्लक्या च उभयेन = ओष्ठजघनकष्टदायिना द्वयेन वेजिताः = पीडिताः, दुःखिताः इत्यर्थः । शिल्पं = संगीतकादिकं कुर्वन्तीति शिल्पकार्यः = गायिकाः तम् = अग्निवर्णं विजिह्मानि = कुटिलानि

नयनानि = नेत्राणि यासां ताः विजिह्मनयनाः = कुटिलाक्ष्यः सत्यः व्यलोभयन् = आकृष्टवत्यः। दन्तनखक्षतादिकां स्वां चेष्टां जानन्नपि राजा वृथा नः पीडयति इति सेर्ष्यं पश्यन्त्यस्ताः तस्य आकर्षिका एव जाता इत्यर्थः।

समासः—दशनैः पीडिताः अधराः यासां ताः दशनपीडिताधराः। नखानां पदानि नखपदानि तैः अंकिताः ऊरवः यासां ताः नखपदांकितोरवः। विजिह्मानि नयनानि यासां ताः विजिह्मनयनाः।

हिन्दी—बाँसुरी और वीणा इन दोनों से पीडित (बजाने में दुःख पा रही) वे गायिका, उस राजा को कष्ट के कारण कुटिल नजर से देखती हुई भी मोहित कर लेती थीं। क्योंकि उनके ओठ दान्त से काटने से (चुम्बन के समय) दूख रहे थे। और उनकी जांघें नखों के क्षत से घाव वाली थीं। अतः ओठ से बांसुरी तथा जांघपर रखकर वीणा बजाने में पीड़ा होती थी ॥ ३५ ॥

अङ्गसत्त्ववचनाश्रयं मिथः स्त्रीषु नृत्यमुपधाय दर्शयन्।
स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः संजघर्ष सह मित्रसंनिधौ ॥ ३६ ॥

अङ्गं हस्तादि। सत्त्वमन्तःकरणम्। वचनं गेयं चाश्रयः कारणं यस्य तदङ्गसत्त्ववचनाश्रयम्। आङ्गिकसात्विकवाचिकरूपेण त्रिविधमित्यर्थः। यथाह भरतः—'सामान्याभिनयो नाम ज्ञेयो वागङ्गसत्त्वजः' इति नृत्यमभिनयं मिथो रहसि स्त्रीषु नर्तकीषूपधाय निधाय दर्शयन्। स मित्रसंनिधौ सहचरसमक्षं प्रयोगेऽभिनये निपुणैः कृतिभिः प्रयोक्तृभिरभिनयार्थप्रकाशकैर्नाट्याचार्यैः सह संजघर्ष संघर्षं कृतवान्। संघर्षः पराभिभवेच्छा।

अन्वयः—अंगसत्त्ववचनाश्रयं नृत्यं मिथः स्त्रीषु उपधाय दर्शयन् सः मित्रसंनिधौ प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः सह संजघर्ष।

व्याख्या—अंगं = करचरणादि सत्त्वम् = अन्तःकरणं वचनं = वाक्यं गानं च आश्रयः कारणं यस्य स तत् अंगसत्त्ववचनाश्रयम् शारीरिकं मानसिकं वाचिकं चेति त्रिविधमित्यर्थः। नृत्यं = नर्तनम्-अभिनयं मिथः = रहसि-अन्योन्यमित्यर्थः। स्त्रीषु = नर्तकीषु उपधाय = निधाय दर्शयन् = प्रदर्शयन् मित्रेभ्य इत्यर्थः सः = मित्राणां = सुहृदां संनिधिः = समीपमिति मित्रसंनिधिस्तस्मिन् इति मित्रसंनिधौ प्रयोगे = अभिनये निपुणाः = कुशलास्तैः प्रयोगनिपुणैः = अभिनयकरणे चतुरैरित्यर्थः। प्रयोक्तृभिः = अभिनयकर्तृभिः = नाट्याचार्यैरित्यर्थः सह = साकं संजघर्ष = संघर्षं कृतवान्, नाट्याचार्यान् पराभवितुमैच्छत्।

समासः—अङ्गं च सत्त्वं च वचनं चेति अङ्गसत्त्ववचनानि आश्रयः यस्य तत् अङ्गसत्त्ववचनाश्रयम्, तत्। प्रयोगे निपुणास्तैः प्रयोगनिपुणैः। मित्राणां संनिधिस्तस्मिन् मित्रसंनिधौ।

हिन्दी—वह राजा अग्निवर्ण जब एकान्त में शारीरिक, मानसिक और वाचिक अभिनय, स्त्रियों को बताकर सिखाकर, अपने मित्रों के सामने दिखाता था। उस समय वह अभिनय करने में बड़े निपुण नाट्य शास्त्र के आचार्यों के साथ संघर्ष (शास्त्रार्थ) करता था। अर्थात् उनको भी पराजित करना चाहता था ॥ ३६ ॥

इतः प्रभृति कृत्रिमाद्रिषु विरचितविहारप्रकारमाह–

अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजसाङ्गरागिणः ।
प्रावृषि प्रमदबर्हिणेष्वभूत्कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः ॥ ३७ ॥

प्रावृष्यंसलम्बिन्यः कुटजानामर्जुनानां ककुभानां च स्रजो यस्य तस्य । नीपानां कदम्बकुसुमानां रजसाङ्गरागिणोऽङ्गरागवतस्तस्याग्निवर्णस्य प्रमदबर्हिणेषून्मत्तमयूरेषु कृत्रिमाद्रिषु विहार एव विभ्रमो विलासोऽभूदभवत् ।

अन्वयः—प्रावृषि अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजः नीपरजसांगरागिणः तस्य प्रमदबर्हिणेषु कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः अभूत् ।

व्याख्या—वर्षणं वृट्, प्रकृष्टा वृट् अत्र सा प्रावृट् तस्यां प्रावृषि = वर्षासु कूटे = शृंगे जायन्ते स्म कुटजाः । अंसे = स्कन्धे लम्बिन्यः = लम्बमानाः कुटजानां = गिरिमल्लिकानाम् अर्जुनानां = ककुभानां च स्रजः = मालाः यस्य स तस्य अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजः नयन्ति, नीयन्ते वा नीपाः प प्रत्ययः, बाहुलकात् गुणाभावः । नीपानां = कदम्बानां रजः = परागस्तेन नीपरजसा अङ्गस्य = शरीरस्य रागः = वर्णकः इति अङ्गरागः, सोऽस्यास्तीति अङ्गरागी तस्य अङ्गरागिणः = अङ्गरागवतः तस्य = अग्निवर्णस्य प्रमदाः = उन्मदाः उन्मत्ताः बर्हिणाः = मयूराः येषु ते तेषु प्रमदबर्हिणेषु, उन्मत्तमयूरवत्सु कृत्रिमाः = क्रियया निर्वृत्ताः = निर्मिताः च ते अद्रयः = पर्वताः तेषु कृत्रिमाद्रिषु विहरणं विहारः । विहार एव विभ्रमः = विलासः इति विहारविभ्रमः अभूत् = जातः ।

समासः—कुटजानाम्—अर्जुनानां च स्रजः इति कुटजार्जुनस्रजः, अंसे लम्बिन्यः कुटजार्जुनस्रजो यस्य स तस्य अंसलम्बिकुटजार्जुनस्रजः । नीपानां रजः नीपरजस्तेन नीपरजसा । अङ्गस्य रागः अङ्गरागः सोऽस्यास्तीति अङ्गरागी तस्य अङ्गरागिणः । प्रमदाः बर्हिणा येषु ते तेषु प्रमदबर्हिणेषु । कृत्रिमाश्च ते अद्रयस्तेषु कृत्रिमाद्रिषु । विहार एव विभ्रमः विहारविभ्रमः ।

हिन्दी—वर्षा ऋतु में कुरैया और अर्जुन के फूलों की माला कन्धे पर लटकाए हुए, तथा कदम्ब के फूल की पराग (पाउडर) का अङ्गराग लगाए हुए, उस राजा अग्निवर्ण का उन बनावटी पर्वतों पर (क्रीडा पर्वतों पर) विहार होता था, जिन पर मतवाले मोर भरे हैं ॥३७॥

विग्रहाच्च शयने पराङ्मुखीर्नानुनेतुमबलाः स तत्वरे ।
आचकांक्ष घनशब्दविक्लवास्ता विवृत्य विशतीर्भुजान्तरम् ॥ ३८ ॥

प्रावृषीत्यनुषज्यते । सोऽग्निवर्णो विग्रहात्प्रणयकलहाच्छयने पराङ्मुखीरबला अनुनेतुं न तत्वरे त्वरितवान् । किंतु घनशब्देन घनगर्जितेन विक्लवाश्चकिता अत एव विवृत्य स्वयमेवाभिमुखीभूय भुजान्तरं विशतीः प्रविशन्तीः । 'आच्छीनद्योर्नुम्' इति नुम्विकल्पः । अबला आचकांक्ष । स्वयंग्रहादेव सांमुख्यमैच्छदित्यर्थः ॥

अन्वयः—'प्रावृषि' सः विग्रहात् शयने पराङ्मुखीः अबलाः अनुनेतुं न तत्वरे । किन्तु घनशब्दविक्लवाः विवृत्य भुजान्तरं विशतीः ताः आचकांक्ष ।

व्याख्या—प्रावृषि इत्यनुषञ्जनीयम् सः = राजा अग्निवर्णः विविधं सुखादि गृह्णाति, विविधैः व्याध्यादिभिर्वा गृह्यते, विरुद्धं गृह्णातीति वा विग्रहस्तस्मात् विग्रहात् = प्रणयकलहात् "समरान्नीकरणाः कलहविग्रहौ" इत्यमरः। शयने = पर्यङ्के पराञ्चति = अनभिमुखं भवतीति पराक्। पराक् मुखम् = आननं यासां ताः पराङ्मुख्यस्ताः पराङ्मुखीः = मुखं परावृत्य सुप्ताः इत्यर्थः। अबलाः। मानिनीः प्रेयसीः अनुनेतुम् = अनुकूलयितुं = स्वाभिमुखीकर्तुमित्यर्थः। न तत्वरे = न त्वरयाञ्चकार। किन्तु घनानां = मेघानां शब्दः = गर्जितं तेन विक्लवाः = भीरूः = चकिताः इति घनशब्दविक्लवाः अत एव विवृत्य = आत्मनैव अभिमुखीभूय भुजयोः = बाह्वोः अन्तरं = मध्यमिति भुजान्तरं विशतीः = प्रविशन्तीः ताः = अबलाः आचकांक्ष = आकांक्षितवान्। अबलाभिः स्वयमेव सम्मुखत्वमैच्छदित्यर्थः।

समासः—पराक् मुखं यासां ताः पराङ्मुख्यः, ताः पराङ्मुखीः। न बलं यासां ताः अबलाः। घनानां शब्दः घनशब्दः तेन विक्लवास्ताः घनशब्दविक्लवाः। भुजयोः अन्तरमिति भुजान्तरम् तत्।

हिन्दी—अपने प्रेमी से झगड़ा होने के कारण पलंग पर मुँह फेरकर सोती हुई स्त्रियों को राजा अग्निवर्ण मनाने की जल्दी नहीं करता था। किन्तु यही चाहता था कि मेघों की गर्जना सुनकर डरी हुई वे स्त्रियाँ स्वयं ही मेरी भुजाओं में घुस जायें। अर्थात् स्वयं ये मेरी छाती से लिपट जायें॥ ३८॥

कार्तिकीषु सवितानहर्म्यभाग्यामिनीषु ललिताङ्गनासखः।
अन्वभुङ्क्त सुरतश्रमापहां मेघमुक्तविशदां स चन्द्रिकाम्॥ ३९॥

कार्तिकस्येमाः कार्तिक्यः। 'तस्येदम्' इत्यण्। तासु यामिनीषु निशासु। शरद्रात्रिष्वित्यर्थः। सवितानान्युपरिवस्त्रावृतानि हर्म्याणि भजतीति सवितानहर्म्यभाक्। भजेर्ण्विप्रत्ययः। हिमवारणार्थं सवितानमुक्तम्। ललिताङ्गनासखः सोऽग्निवर्णः सुरतश्रमापहां मेघमुक्ता चासौ विशदा च ताम्। बहुलग्रहणात्सविशेषणसमासः। चन्द्रिकामन्वभुङ्क्त॥

अन्वयः—कार्तिकीषु यामिनीषु सवितानहर्म्यभाक् ललितांगनासखः सः सुरतश्रमापहां मेघमुक्तविशदां चन्द्रिकाम् अन्वभुङ्क्त।

व्याख्या—कृत्तिकानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी कार्तिकी अस्त्यस्मिन्निति कार्तिकः। कार्तिकस्य इमाः कार्तिक्यस्तासु कार्तिकीषु = कार्तिकमाससंबन्धिनीषु भयजनकत्वात् निन्दिताः यामाः = प्रहराः सन्ति यासां ताः यामिन्यस्तासु यामिनीषु = रात्रिषु, शारदीयनिशासु, इत्यर्थः। वितन्यते इति वितानम् = उल्लोचस्तेन सहितानि सवितानानि = उपरिवस्त्राच्छादितानि यानि हर्म्याणि = भवनानि तानि भजति = सेवते इति सवितानहर्म्यभाक्, तापनिवारणार्थं सविताने-त्युक्तिः। ललिताः = मनोहराश्च ताः अङ्गनाः = स्त्रियः इति ललितांगनास्तासां सखा = मित्रमिति ललितसखः सः = राजा अग्निवर्णः सुरतस्य = सम्भोगस्य श्रमः = खेदः इति सुरतश्रमः, तम् अपहन्ति = दूरीकरोतीति तां सुरतश्रमापहां मेघैः = घनैः मुक्ता = त्यक्ता इति मेघमुक्ता, सा चासौ विशदा = स्वच्छा–निर्मला चेति तां मेघमुक्तविशदां चन्द्रोऽस्या अस्तीति चन्द्रिका तां चन्द्रिकां = ज्योत्स्नाम् अन्वभुङ्क्त = बुभुजे।

समासः—वितानैः सहितानि सवितानानि, सवितानानि यानि, हर्म्याणि इति सवितानहर्म्याणि तेषां भाक् इति सवितानहर्म्यभाक्। ललिताश्च ता अङ्गनाः ललितांगनास्तासां सखा, इति ललितांगनासखः। सुर तस्य श्रमः सुरतश्रमः तस्य अपहा तां सुरतश्रमापहां, मेघैः मुक्ता मेघमुक्ता चासौ विशदा च तां मेघमुक्तविशदाम्।

हिन्दी—कार्तिक मास की रातों (शरद ऋतु) में शामियाना लगे (टँगे) हुए राजमहल की छतों पर रहने वाला तथा सुन्दर रमणियों के साथ वह राजा अग्निवर्ण, सम्भोग की थकावट को दूर करनेवाली और मेघों के हट जाने से साफ स्वच्छ निर्मल, चाँदनी का आनन्द लेता था ॥ ३९ ॥

सैकतं च सरयूं विवृण्वतीं श्रोणिबिम्बमिव हंसमेखलम्।
स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सौधजालविवरैर्व्यलोकयत् ॥ ४० ॥

किंच। हंसा एव मेखला यस्य तत्सैकतं पुलिनं श्रोणिबिम्बमिव। विवृण्वतीम्। अत एव स्वप्रियाविलसितान्यनुकरोतीति तद्विधां सरयूम्। सौधस्य जालानि गवाक्षाः त एव विवराणि तैर्व्यलोकयत् ॥

अन्वयः—हंसमेखलं सैकतं श्रोणिबिम्बम् इव विवृण्वतीम् 'अत एव' स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सरयूं सौधजालविवरैः व्यलोकयत्।

व्याख्या—हंसाः = मानसौकसः एव मेखला = काञ्चीगुणः यस्य तत् हंसमेखलम्। सिकताः सन्त्यस्मिन्निति सैकतं = सिकतामयं पुलिनं श्रोणेः = कटेः बिम्बः = मण्डलमिति श्रोणिबिम्बस्तं श्रोणिबिम्बम् = नितम्बमण्डलम् इव = यथा विवृण्वतीं = प्रकटयन्तीम्, अत एव स्वस्य = राज्ञः प्रियाः = सुन्दर्यः, इति स्वप्रियास्तासां विलसितानि = विभ्रमाः, इति स्वप्रियाविलसितानि, तान्यनुकरोति = विडम्बयतीति तां स्वप्रियविलासितानुकारिणीम् सरयूं = नदीं सुधालेपोऽस्ति यस्य स सौधः सौधस्य = राजभवनस्य जालानि = गवाक्षा एव विवराणि = छिद्राणि इति सौधजालविवराणि तैः सौधजालविवरैः व्यलोकयत् = ददर्श।

समासः—हंसा एव मेखला यस्य तत् हंसमेखलम्। श्रोणेः बिम्बः श्रोणिबिम्बस्तं श्रोणिबिम्बम्। स्वस्य प्रियाः स्वप्रियास्तासां विलसितानि, तेषाम् अनुकारिणी तां स्वप्रियाविलसितानुकारिणीम्। सौधस्य जालानि, तेषां विवराणि तैः सौधजालविवरैः।

हिन्दी—'और शरद ऋतु में ही' हंसों की पंक्तिरूपी मेखला (तगड़ी) वाले तट (किनारे) को 'नायिका के' नितम्बमण्डल के समान नग्न दिखाती हुई इसी लिये, राजा की सुन्दरियों का अनुकरण करने वाली सरयू नदी को, राजमहल के झरोखें (खिड़की) से राजा देखा करता था ॥ ४० ॥

मर्मरैरगुरुधूपगन्धिभिर्व्यक्तहेमरशनैस्तमेकतः।
जहुराग्रथनमोक्षलोलुपं हैमनैर्निवसनैः सुमध्यमाः ॥ ४१ ॥

मर्मरैः संस्कारविशेषाच्छब्दायमानैः। 'अथ मर्मरः। स्तनिते वस्त्रपर्णानाम्' इत्यमरः। अगुरुधूपगन्धिभिर्व्यक्तहेमरशनैर्लौल्याल्लक्ष्यमाणकनकमेखलागुणैर्हैमनैर्हेमन्ते भवैः। 'सर्वत्राण्च तलोपश्च' इति हेमन्तशब्दादण्प्रत्ययस्तलोपश्च। निवसनैरंशुकैः सुमध्यमाः स्त्रिय एकतो नितम्बैकदेश आग्रथनमोक्षयोर्नीवीबन्धविस्रंसनयोर्लोलुपमासक्तं तं जहुराचकृषुः॥

अन्वयः—मर्मरैः अगुरुधूपगन्धिभिः व्यक्तहेमरशनैः हैमनैः निवसनैः, सुमध्यमाः एकतः आग्रथनमोक्षलोलुपम् तं जहुः।

व्याख्या—मर्मरन्तीति मर्मरास्तैः मर्मरैः = मर्मरेतिशब्दायमानैः, न गुरुः यस्मात् अगुरु, धूपयति रोगान् दोषानिति धूपम्, अगुरुणः = अगुरुचन्दनस्य धूपं = सुगन्धद्रव्योत्थधूमः तस्य गन्धः = सुरभिरस्ति येषु तानि अगुरुधूपगन्धीनि तैः अगुरुधूपगन्धिभिः हेम्नः = सुवर्णस्य रशनाः = मेखलाः इति हेमरशनाः, व्यक्ताः = संलक्ष्यमाणाः हेमरशनाः येषु तैः व्यक्तहेमरशनैः हिनोति = वर्धयतिबलमिति हेमन्तः हेमन्ते। मार्गशीर्षपौषौ भवानि हैमनानि तैः हैमनैः = हेमन्तर्तुभवैः निवसनैः = अंशुकैः वस्त्रैरित्यर्थः। बाल्ययौवनयोर्मध्ये भवाः, मध्यमाः सुष्ठु मध्यमाः सुमध्यमाः = सुन्दर्यः, सुमध्यमः = मध्यदेशःकटिः, यासां ताः सुमध्यमाः इति वा। एकतः = नितम्बैकदेशे आग्रथनं = नीवीबन्धः च मोक्षः = नीवीविस्रंसनं चेति आग्रथनमोक्षौ तयोः आग्रथनमोक्षयोः लोलुपः = अतिलुब्धस्तम् आग्रथनमोक्षलोलुपं तम् = अग्निवर्णं जहुः = आकृष्टवत्यः।

समासः—अगुरुणः धूपस्य गन्धः येषु तानि तैः अगुरुधूपगन्धिभिः। व्यक्ताः हेम्नः रशनाः येषु तानि तैः व्यक्तहेमरशनैः। सु मध्यमः यासां ताः सुमध्यमाः। आग्रथनं च मोक्षश्च आग्रथनमोक्षौ तयोः लोलुपस्तम् आग्रथनमोक्षलोलुपम्।

हिन्दी—अगर धूपबत्ती की सुगन्धवाले (अगर की धूप से सुवासित) और जिनसे सोने की तगड़ी (करधनी) स्पष्ट दीख पड़ती है, ऐसे सरसराहट (फड़फड़) करते हुए हेमन्त ऋतु में पहनने के लायक वस्त्रों से वे पतली कमरवाली किशोरियां, नीवी को बान्धने और खोलने में अत्यन्त उत्कण्ठा वाले उस अग्निवर्ण को मोहित कर लिया करती थीं॥ ४१॥

अर्पितस्तिमितदीपदृष्टयो गर्भवेश्मसु निवातकुक्षिषु।
तस्य सर्वसुरतान्तरक्षमाः साक्षितां शिशिररात्रयो ययुः॥ ४२॥

निवाता वातरहिताः कुक्षयोऽभ्यन्तराणि येषां तेषु गर्भवेश्मसु गृहान्तर्गृहेष्वर्पिता दत्ताः स्तिमिता निवातत्वान्निश्चला दीपा एव दृष्टयो याभिस्ताः। अत्रानिमिषदृष्टित्वं च गम्यते। सर्वसुरतान्तरक्षमास्तापस्वेदापनोदनत्वाद्दीर्घकालत्वाच्च सर्वेषां सुरतान्तराणां सुरतभेदानां क्षमाः क्रियार्हाः शिशिररात्रयस्तस्याग्निवर्णस्य साक्षितां ययुः। विविक्तकालदेशत्वाद्यथेच्छं विजहारेत्यर्थः।

अन्वयः—निवातकुक्षिषु गर्भवेश्मसु अर्पितस्तिमितदीपदृष्टयः सर्वसुरतान्तरक्षमाः शिशिररात्रयः तस्य साक्षितां ययुः।

व्याख्या—निवृत्तः वातः यस्मात् स निवातः। कुष्यते = निष्काष्यते येभ्यस्ते कुक्षयः निवाताः = वातरहिताः कुक्षयः = अभ्यन्तरभागाः येषां तेषु निवातकुक्षिषु गर्भे = गृहमध्ये यानि

वेश्मानि = गृहाणि तेषु गर्भवेश्मसु अर्पिताः = दत्ताः स्तिमिताः = पवनाभावेन निष्कम्पाः दीपाः = प्रदीपाः एव दृष्टयः = नेत्राणि याभिरताः निवातस्तिमितदीपदृष्टयः, अत्र दृष्टीनामनिमिषत्वं व्यज्यते। अन्यानि सुरतानि सुरतान्तराणि, सर्वाणि च तानि सुरतान्तराणि, इति सर्वसुरतान्तराणि, सर्वसुरतान्तराणां = सर्वसम्भोगभेदानां क्षमाः = योग्याः क्रियासमर्था इत्यर्थः। इति सर्वसुरतान्तरक्षमाः, स्वेदनिवारकत्वात्, दीर्घरात्रित्वाच्चेति भावः। शशन्ति = धावन्ति यस्मिन् पथिकाः स शिशिरः। शिशिरस्य = माघफाल्गुनमासीयर्तोः रात्रयः = निशाः इति शिशिररात्रयः, तस्य = अग्निवर्णस्य साक्षिणो भावः साक्षिता तां साक्षितां = साक्षित्वं ययुः = प्रापुः। तासां रात्रीणां सम्भोगक्षमत्वात् दीर्घत्वाच्च यथेच्छं विजहारेत्यर्थः।

समासः—निवाताः कुक्षयो येषु तानि तेषु निवातकुक्षिषु। गर्भे वेश्मानीति तेषु गर्भवेश्मसु। अर्पिताः स्तिमिताः दीपाः एव दृष्टयः याभिरताः अर्पितस्तिमितदीपदृष्टयः। सर्वेषां सुरतान्तराणां क्षमाः सर्वसुरतान्तरक्षमाः। शिशिरस्य रात्रयः शिशिररात्रयः।

हिन्दी—सर्व प्रकार की सम्भोगक्रीड़ा करने के योग्य शिशिर ऋतु की बड़ी-बड़ी लम्बी रातों में राजा अग्निवर्ण, महलों के वायुरहित गर्भ गृहों में (भीतरी कमरों में) विहार करता था। वे शिशिर ऋतु की रातें ही, निश्चल दीप रूपी आँखों से देखने वाली, (अर्थात् एक टक देखती हुई) उसकी साक्षी रहती थीं। अर्थात् लम्बी रातों में तथा खूब एकान्त में वह मनमाना विहार करता था ॥ ४२ ॥

दक्षिणेन पवनेन संभृतं प्रेक्ष्य चूतकुसुमं सपल्लवम्।
अन्वनैषुरवधूतविग्रहास्तं दुरुत्सहवियोगमङ्गनाः ॥ ४३ ॥

अङ्गना दक्षिणेन पवनेन मलयानिलेन संभृतं जनितं सपल्लवं चूतकुसुमं प्रेक्ष्यावधूतविग्रहास्त्यक्तविरोधाः सत्यो दुरुत्सहवियोगं दुःसहविरहं तमन्वनैषुः। तद्विरहमसहमानाः स्वयमेवानुनीतवत्य इत्यर्थः ॥

अन्वयः—अंगनाः दक्षिणेन पवनेन सम्भृतं सपल्लवं चूतकुसुमं प्रेक्ष्य, अवधूतविग्रहाः 'सत्यः' दुरुत्सहवियोगं तम् अन्वनैषुः।

व्याख्या—प्रशस्तानि अंगानि यासां ताः अङ्गनाः = स्त्रियः दक्षिणेन = दक्षिणदिग्भवेन पुनातीति पवनस्तेन पवनेन = वायुना = मलयमरुता, इत्यर्थः। संभृतं = जनितं पल्लवैः = किसलयैः सहितमिति सपल्लवं चूष्यन्ते स्म इति चूताः, च्योतन्ति रसमिति वा चूताः, चूतानां = रसालानाम्—आम्राणामित्यर्थः कुसुमं = पुष्पमिति चूतकुसुमं तत् प्रेक्ष्य = अवलोक्य, अवधूतः = तिरस्कृतः परित्यक्तः इत्यर्थः। विग्रहः = विरोधः-प्रणयकलहः याभिरताः अवधूतविग्रहाः सत्यः दुःखेन उत्सहः दुरुत्सहः = सोढुमशक्यः वियोगः = विरहः यस्य स तम् दुरुत्सहवियोगं तम् = अग्निवर्णम् अन्वनैषुः = अनुनीतवत्यः। अग्निवर्णस्य स्वप्रियस्य वियोगमसहमानाः ताः स्त्रियः स्वत एवानुनयं कृत्वा तं प्रसन्नयन्ति स्मेति भावः।

समासः—चूतानां कुसुममिति चूतकुसुमं तत्। पल्लवैः सहितमिति सपल्लवम् तत्। अवधूतः विग्रहः याभिस्ताः अवधूतविग्रहाः। दुःखेन उत्सहः वियोगः यस्य स तं दुरुत्सहवियोगम्।

हिन्दी—"और वसन्त में" दक्षिणी वायु (मलयगिरि के पवन) से उत्पन्न कोंपल (कोमल लाल रंगवाले) पत्तों के साथ आमों के पुष्प (बौर) को देखकर राजा की प्रेमिकाओं ने रूठने को त्यागकर उसे स्वयं मना लिया। क्योंकि–राजा का वियोग उन्हें बड़ा ही कष्टदायक था। अतः मान छोड़कर विरह व्याकुल वे स्वयं उसके पास चली जाती थीं॥ ४३॥

ताः स्वमङ्कमधिरोप्य दोलया प्रेङ्खयन्परिजनापविद्धया।
मुक्तरज्जु निबिडं भयच्छलात्कण्ठबन्धनमवाप बाहुभिः॥ ४४॥

ता अङ्गनाः स्वमङ्कं स्वकीयमुत्सङ्गमधिरोप्य परिजनेनापविद्धया संप्रेषितया दोलया मुक्तरज्जु त्यक्तदोलासूत्रं यथा तथा प्रेङ्खयंश्चालयन्भयच्छलात्पतनभयमिषाद् बाहुभिरङ्गनाभुजैर्निबिडं कण्ठबन्धनमवाप प्राप। स्वयंग्रहाश्लेषसुखमन्वभूदित्यर्थः॥

अन्वयः—ताः स्वम् अङ्कम् अधिरोप्य परिजनापविद्धया दोलया मुक्तरज्जु 'यथा तथा' प्रेंखयन् भयच्छलात् बाहुभिः निबिडं कण्ठबन्धनम् अवाप।

व्याख्या—ताः = प्रेयसीः अङ्गनाः स्वं = स्वकीयम् अङ्कम् = उत्संगम् अधिरोप्य = सन्निवेश्य परिजनेन = दासीवर्गेण अपविद्धा = चालिता इति तया परिजनापविद्धया—दासीजनसम्प्रेषितया दोलयतीति दोला तया दोलया = प्रेंखया मुक्ता = त्यक्ता रज्जुः = दोलागुणः यस्मिन् कर्मणि तत् मुक्तरज्जु यथा स्यात्तथा प्रेंखयन् = सञ्चालयन् भयस्य = भीतेः पतनात् भयस्येत्यर्थः। छलं = व्याजः तस्मात् भयच्छलात् बाहुभिः = भुजैः नितरां विडति = संहन्यते, इति निबिडं = दृढं कण्ठे = गले बन्धनमिति कण्ठबन्धनं = कण्ठे आलिंगनपाशमित्यर्थः अवाप = प्राप। अङ्गनाभिः स्वयंग्रहाश्लेषानन्दम् अन्वभवदित्यर्थः।

समासः–परिजनेन अपविद्धा तया परिजनापविद्धया। मुक्ता रज्जुः, यस्मिन् कर्मणि तत् मुक्तरज्जु। भयस्य छलं तस्मात् भयच्छलात्। कण्ठे बन्धनमिति कण्ठबन्धनम्, तत्।

हिन्दी—उन स्त्रियों को अपनी गोद में बैठाकर, सेवकों के द्वारा झुलाये गये झूले से, झूलते हुए राजा ने ऐसा झटका दिया कि झूले की रस्सी को छोड़कर गिर पड़ने के डर से (स्त्रियों की) भुजाओं के दृढ़ कण्ठबन्धन को पा लिया। अर्थात् स्त्रियों ने उसके गले में भुजाएँ डालकर आलिंगन पाश में बाँध लिया॥ ४४॥

तं पयोधरनिषिक्तचन्दनैर्मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः।
ग्रीष्मवेषविधिभिः सिषेविरे श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः प्रियाः॥ ४५॥

प्रियाः पयोधरेषु स्तनेषु निषिक्तमुक्षितं चन्दनं येषु तैः। मौक्तिकैर्ग्रथितानि प्रोतानि चारुभूषणानि येषु तैः। मुक्ताप्रायाभरणैरित्यर्थः। श्रोणिलम्बिन्यो मणिमेखला मरकतादिमणियुक्तकटिसूत्राणि येषु तादृशैर्ग्रीष्मवेषविधिभिरुष्णकालोचितनेपथ्यविधानैः। शीतलोपायैरित्यर्थः। तमग्निवर्णं सिषेविरे॥

अन्वयः—प्रियाः पयोधरनिषिक्तचन्दनैः मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः ग्रीष्मवेषविधिभिः तं सिषेविरे।

व्याख्या—प्रियाः = प्रेयस्यः अङ्गनाः धरन्तीति धराः, पयसां = दुग्धानां धराः इति पयोधराः, पयोधरेषु = स्तनेषु निषिक्तम् = उक्षितं = संलिप्तं चन्दनं = मलयजं येषु ते तैः पयोधरनिषिक्तचन्दनैः, मौक्तिकैः = मुक्ताभिः ग्रथितानि = गुम्फितानि चारूणि = मनोहराणि भूषणानि = आभरणानि येषु ते तैः मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः श्रोणिषु = कटिषु नितम्बेषु इत्यर्थः। लम्बिन्यः = लम्बमानाः मणिभिः खचिताः मेखलाः मणिमेखलाः = काञ्चीगुणाः = कटिसूत्राणीत्यर्थः येषु ते तैः श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः। ग्रसन्ते रसान् इति ग्रीष्माः ग्रीष्माणां = ग्रीष्मकालेषु वेषाः = नेपथ्यानि तेषांविधयः = विधानानि = उपायाः इत्यर्थः तैः ग्रीष्मवेषविधिभिः तम् = अग्निवर्णं सिषेविरे = सेवितवत्यः।

समासः—पयोधरेषु निषिक्तं चन्दनं येषु ते तैः पयोधरनिषिक्तचन्दनैः। मौक्तिकैः ग्रथितानि चारूणि भूषणानि येषु ते तैः मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः। मणिभिः खचिताः मेखलाः मणिमेखलाः श्रोणिषु लम्बिन्यः मणिमेखलाः येषु तैः श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः। ग्रीष्मस्य वेषास्तेषां विधयस्तैः ग्रीष्मवेषविधिभिः।

हिन्दी—ग्रीष्म काल में स्त्रियाँ राजा अग्निवर्ण के साथ विहार करके गरमी के योग्य वेष-भूषा की विधि से उसकी सेवा करती थीं। उस विधि में स्तनों पर चन्दन का लेप तथा अङ्ग में मोती जड़े सुन्दर शीतल आभूषण और नितम्बों पर मणियों की तगड़ी (करधनी) लटकती रहती थी ॥ ४५ ॥

यत्स लग्नसहकारमासवं रक्तपाटलसमागमं पपौ।
तेन तस्य मधुनिर्गमात्कृशश्चित्तयोनिरभवत्पुनर्नवः ॥ ४६ ॥

सोऽग्निवर्णो लग्नः सहकारश्चूतपल्लवो यस्मिंस्तं रक्तपाटलस्य पाटलकुसुमस्य समागमो यस्य तमासवं मद्यं पपौ। इति यत्तेनासवदानेन मधुनिर्गमाद्वसन्तापगमात्कृशो मन्दवीर्यस्तस्य चित्तयोनिः कामः पुनर्नवः प्रबलोऽभवत् ॥

अन्वयः—सः लग्नसहकारं रक्तपाटलसमागमम् आसवं पपौ यत् तेन मधुनिर्गमात् कृशः तस्य चित्तयोनिः पुनर्नवः अभवत्।

व्याख्या—सः = राजा अग्निवर्णः सहकारयति = मेलयति द्वन्द्वमिति सहकारः लग्नः = संलग्नः संयुक्त इत्यर्थः। सहकारः = आम्रपल्लवः यस्मिन् स तम् लग्नसहकारम् रक्तश्चासौ पाटलः = रक्तपुष्पमिति रक्तपाटलः रक्तपाटलस्य समागमः = संसर्गः यस्य स तं रक्तपाटलसमागमम् आसूयते, इति आसवस्तम् आसवं = मैरेयं मद्यम् पपौ = पीतवान्, इति यत् तेन = मद्यपानेन मधोः = वसन्तस्य निर्गमः = अपगमः–समाप्तिरित्यर्थः इति मधुनिर्गमस्तस्मात् मधुनिर्गमात् कृशः = क्षीणः क्षीणवीर्यः इत्यर्थः। चित्तं = मनः योनिः = कारणं यस्य स चित्तयोनिः, कामः पुनः = भूयः नवः = नूतनः-प्रबलः इति पुनर्नवः अभवत् = जातः। सहचरवसन्तापगमात् क्षीणः मन्मथः मद्यपानात् पुनः प्रबलो जात इत्यर्थः।

समासः—लग्नः सहकारः यस्मिन स तं लग्नसहकारम्। रक्तश्चासौ पाटलः रक्तपाटलः, तस्य समागमः यस्य स तं रक्तपाटलसमागमम्। मधोः निर्गमस्तस्मात् मधुनिर्गमात्। चित्तं योनि यस्य स चित्तयोनिः।

हिन्दी—राजा अग्निवर्ण, ने आम के नए पल्लव कोमल पत्ते और लाल गुलाब के फूल (या पाढर के अथवा लोध्र के फूल) जिसमें पड़े थे, ऐसी मीरा देश की बनी अंगूरी शराब जो पी, तो उसके पीने से वसन्त ऋतु बीत जाने से कमजोर पड़ा हुआ उसका काम (सम्भोग शक्ति) फिर से भड़क उठा ॥ ४६ ॥

एवमिन्द्रियसुखानि निर्विशन्नन्यकार्यविमुखः स पार्थिवः ।
आत्मलक्षणनिवेदितानृतूनत्यवाहयदनङ्गवाहितः ॥ ४७ ॥

एवमनङ्गवाहितः कामप्रेरितोऽन्यकार्यविमुखः स पार्थिव इन्द्रियाणां सुखानि सुखकराणि शब्दादीनि निर्विशन्ननुभवन्नात्मनो लक्षणैः कुटजलग्धारणादिचिह्नैर्निवेदितान्। अयमृतुरिदानीं वर्तत इति ज्ञापितान्। ऋतून्वर्षादीनत्यवाहयदगमयत्।

अन्वयः—एवम् अनंगवाहितः अन्यकार्यविमुखः सः पार्थिवः इन्द्रियसुखानि निर्विशन् आत्मलक्षणनिवेदितान् ऋतून् अत्यवाहयत्।

व्याख्या—एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण नास्ति अङ्गं = शरीरमस्येति, न अङ्गं = ज्ञानमस्माद्वेति अनंगः अनंगेन = मनोभवेन वाहितः = प्रेरितः इति अनंगवाहितः अन्यानि = सम्भोगातिरिक्तानि च यानि कार्याणि = राज्यकार्याणि इति अन्यकार्याणि, तेभ्यः विमुखः = पराङ्मुखः इति अन्यकार्यविमुखः सः = अग्निवर्णः पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः = राजा इन्द्रस्य = आत्मनः लिंगानि = चिह्नानि, इति इन्द्रियाणि, इन्द्रियाणां = चक्षुरादीनां सुखानि = सुखकराणि = रूपरसादीनि, इति इन्द्रियसुखानि, भोगानित्यर्थः। निर्विशन् = अनुभवन् आत्मनः = स्वस्य लिंगानि = चिह्नानि = तत्तदृतूद्भवपुष्पमालादिचिह्नानीत्यर्थः तैः निवेदिताः = विज्ञापितास्तान् आत्मलक्षणनिवेदितान् ऋतून् = वर्षादीन् षट् अत्यवाहयत् = अत्यक्रामयत्, अतिवाहितवानित्यर्थः।

समासः—इन्द्रियाणां सुखानीति इन्द्रियसुखानि तानि। अनंगेन वाहितः अनंगवाहितः। अन्येभ्यः कार्येभ्यः विमुखः अन्यकार्यविमुखः। आत्मनः लक्षणानि तैः निवेदितास्तान् आत्मलक्षणनिवेदितान्।

हिन्दी—इस प्रकार वह कामी राजा काम के वशीभूत अन्य राजपाट के कार्यों को छोड़कर इन्द्रियों के सुखों का अनुभव (आनन्द) लेता हुआ अपने चिह्नों से बताई गई ऋतुओं का अतिक्रमण कर गया। अर्थात् सम्भोग के लिए वह प्रत्येक ऋतु में उस उस ऋतु के अनुकूल पुष्पमालादि से श्रृंगार करता था। अतः उन्हीं चिह्नों से उसे ऋतु ज्ञान होता था ॥ ४७ ॥

तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः ।
आमयस्तु रतिरागसंभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत् ॥ ४८ ॥

प्रमत्तं व्यसनासक्तमपि तं नृपं प्रभावतोऽन्यपार्थिवा आक्रमितुमभिभवितुं न शेकुर्न शक्ताः। रतिरागसंभव आमयो व्याधिस्तु। क्षयरोग इत्यर्थः। दक्षस्य दक्षप्रजापतेः शापश्चन्द्रमिव। अक्षिणोदकर्शयत्। शापोऽपि रतिरागसंभव इति। अत्र दक्षः किलान्याः स्वकन्या उपेक्ष्य रोहिण्यामेव रममाणं राजानं सोमं शशाप। स शापस्त्वाद्यापि क्षयरूपेण तं क्षिणोतीत्युपाख्यायते॥

अन्वयः—प्रमत्तम् अपि तं प्रभावतः अन्यपार्थिवाः आक्रमितुं न शेकुः रतिरागसम्भवः आमयः तु दक्षशापः चन्द्रम् इव अक्षिणोत्।

व्याख्या—प्रकर्षेण मत्तः प्रमत्तस्तं प्रमत्तम् = विषयासक्तम् अपि तं = राजानं भवत्यनेनेति भावः प्रकृष्टो भावः प्रभावः प्रभावात् इति प्रभावतः = प्रतापादित्यर्थः अन्ये च ते पार्थिवाः = भूपालाः इति अन्यपार्थिवाः आक्रमितुम् = तिरस्कर्तुम्, अभिभवितुं न शेकुः = न समर्थाः अभूवन्। किन्तु रतौ = सम्भोगे रागः = प्रेम = प्रणयोन्मादः इति रतिरागः तस्मात् सम्भवः = उत्पत्तिः यस्य स रतिरागसम्भवः, आमम् = अपक्वमलं यान्त्यनेनेति आमयः = रोगः क्षयरोग इत्यर्थः। तु दक्षस्य = प्रजापतेः शापः = अभिशापः इति दक्षशापः चन्द्रं = शशिनम् इव = यथा अक्षिणोत् = अक्षेणीत्। दक्षस्य शापोऽपि चन्द्रम्प्रति रतिरागसम्भव एवेति।

समासः—अन्ये च ते पार्थिवाः अन्यपार्थिवाः। रतौ रागः रतिरागस्तस्मात् सम्भवो यस्य स रतिरागसम्भवः। दक्षस्य शापः दक्षशापः। प्रकर्षेण मत्तस्तं प्रमत्तम्।

हिन्दी—विषयों में सर्वदा लिप्त होते हुए भी, उसके प्रभाव के कारण दूसरे राजा अग्निवर्ण के ऊपर आक्रमण करने में समर्थ नहीं हो सके। किन्तु जिस प्रकार दक्षप्रजापति के शाप ने चन्द्रमा को क्षीण कर दिया था उसी प्रकार अतिभोगविलास से उत्पन्न रोग ने उसे क्षीण कर दिया। अर्थात् उसे क्षय रोग हो गया।

विशेष—दक्षकन्याएँ चन्द्रमा से विवाही गई थीं। चन्द्रमा रोहिणी से ही सदा प्रेम तथा सम्भोग करता था। और अन्यकन्याओं की उपेक्षा करता था। अतः क्रुद्ध होकर दक्ष ने शाप दे दिया था। इससे चन्द्र को क्षयरोग हो गया था। वह अब भी चन्द्र को क्षीण करता है॥ ४८॥

दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते॥ ४९॥

भिषजां वैद्यानामनाश्रवो वचसि न स्थितः। 'वचने स्थित आश्रवः' इत्यमरः। अविधेय इत्यर्थः। स दृष्टदोषमपि। रोगजननादिति शेषः। तत्सङ्गस्य वस्तु सङ्गवस्तु स्त्रीमद्यादिकं सङ्गजनकं वस्तु नात्यजत्। तथाहि। इन्द्रियगणः स्वादुभिर्विषयैर्हृतस्तु हृतश्चेत्ततस्तेभ्यो विषयेभ्यो दुःखं कृच्छ्रेण निवार्यते। यदि वार्येतेति शेषः। दुस्त्यजाः खलु विषया इत्यर्थः॥

अन्वयः—भिषजाम् अनाश्रवः सः दृष्टदोषम् अपि तत् संगवस्तु न अत्यजत् इन्द्रियगणः स्वादुभिः विषयैः हृतः तु ततः दुःखं निवार्यते।

व्याख्या—भिषज्यन्ति = रोगं जयन्तीति भिषजस्तेषां भिषजां = वैद्यानाम् आश्रृणोति, आश्रवः = वचने स्थितः, न आश्रवः अनाश्रवः = वचने न स्थितः, अविधेय इत्यर्थः । सः = राजा अग्निवर्णः, दृष्टः = अवलोकितः ज्ञात इत्यर्थः । दोषः = वातपित्तकफजन्यो रोगः यस्मिन् तत्-दृष्टदोषं = रोगादिजनकमित्यर्थः । तत् = स्त्रीमद्यादिकं संगस्य = संसर्गस्य वस्तु, इति संगवस्तु तत्, स्त्रीमद्यादिकं संगजनकं वस्तु न अत्यजत् = न त्यक्तवान् । तथाहि इन्द्रियाणां = चक्षुरादीनां गणः = समूहः इति इन्द्रियगणः, स्वदन्ते इतिस्वादूनितैः । स्वादुभिः = इष्टैः मनोज्ञैः "इष्टमधुरौ स्वादू" इत्यमरः । "स्वादु इष्टमनोज्ञयोः" इति च मेदिनी । विसिन्वन्ति = निबध्नन्ति, इन्द्रियाणीति विषयाः = रूपरसादयस्तैः विषयैः हृतः = आकृष्टः तु विषयाकृष्टचित्त इत्यर्थः । चेततः ततः = विषयेभ्यः दुःखं = कष्टेन निवार्यते = निवारयितुं शक्यते यदि निवार्येत, अन्यथा तु दुस्त्यजाः भोगाः खलु इति भावः ।

समासः—दृष्टः दोषः यस्मिन् तत् दृष्टदोषं तत् । संगस्य वस्तु संगवस्तु, तत् । इन्द्रियाणां गण इति इन्द्रियगणः ।

हिन्दी—वैद्यों की बात को न मानने वाले उस अग्निवर्ण ने, कामवासना को उत्तेजित करने वाली उस वस्तु को नहीं छोड़ा । जिसके कि अनर्थकारी दोषों को वह जानता था । ठीक ही है । क्योंकि शुरू में अच्छे लगने वाले विषय भोगों से आकृष्ट हुई इन्द्रियों को उनसे रोकना कठिन हो जाता है । अर्थात् एक बार विषय सुखों में फँसकर फिर उससे निकलना बहुत कठिन है ॥ ४९ ॥

तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना ।
राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम् ॥ ५० ॥

तस्य राज्ञः पाण्डुवदना । अल्पभूषणा परिमिताभरणा सावलम्बं दासादिहस्तावलम्बसहितं गमनं यस्यां सा सावलम्बगमना । मृदुस्वना हीनस्वरा । राज्ञः सोमस्य यक्ष्मा राजयक्ष्मा क्षयरोगः तेन या परिहानिः क्षीणावस्था सा । कामयते विषयानिच्छति कामयानः कमेर्णिङन्ताच्छानच् । 'अनित्यमागमशासनम्' इति मुमागमाभावः । एतदेवाभिप्रेत्योक्तं वामनेनापि—'कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्च' इति । तस्य समवस्थया कामुकावस्थया तुलां साम्यमाययौ प्राप । कालकृतो विशेषोऽवस्था । 'विशेषः कालिकावस्था' इत्यमरः ।

अन्वयः—तस्य पाण्डुवदना अल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना, राजयक्ष्मपरिहानिः कामयानसमवस्थया तुलाम् आययौ ।

व्याख्या—तस्य = राज्ञोऽग्निवर्णस्य वदन्त्यनेनेति वदनं = मुखं, मुखोपलक्षितत्वात् शरीर-मपि वदनमिति । पाण्डु = पीतं वदनं = शरीरं यस्यां सा पाण्डुवदना अल्पानि = परिमितानि भूषणानि = आभरणानि यस्यां सा अल्पभूषणा अवलम्बेन = अवष्टम्भेन सहितमिति सावलम्बम् = परिजनहस्तादिसहितं गमनं = चलनं यस्यां सा सावलम्बगमना मृदुः = मन्दः क्षीणः स्वनः = स्वरः यस्यां सा मृदुस्वना राज्ञः = सोमस्य यक्ष्मा = क्षयरोगः इति राजयक्ष्मा, तेन या परि-

हानिः = कृशावस्था सा राजयक्ष्मपरिहानिः सा कामयते = विषयानिच्छतीति कामयानः, कामयानस्य = विषयाभिलाषिणः समा = तुल्या या अवस्था = दशा-कालिकी दशा तया कामयानसमवस्थया तुलां = सादृश्यम् आययौ = माप। कामपीडितस्येव तस्यावस्था जाता।

समासः—पाण्डु वदनं यस्यां सा पाण्डुवदना। अल्पानि भूषणानि यस्यां सा अल्पभूषणा। सावलम्बं गमनं यस्यां सा सावलम्बगमना। मृदुः स्वनः यस्यां सा मृदुस्वना। राज्ञः यक्ष्मा राजयक्ष्मा, तेन या परितः हानिरिति सा राजयक्ष्मपरिहानिः। कामयानस्य समा या अवस्था सा कामयानसमवस्था तया कामयानसमवस्थया।

हिन्दी—राजा अग्निवर्ण की क्षयरोग से जो क्षीणावस्था हुई, वह विरह से पीड़ित कामिजनों के समान जान पड़ती थी। जिसमें कि राजा का शरीर पीला पड़ गया था। और कमजोरी से मामूली भूषण 'शरीरपर' रह गये थे। तथा दास दासियों का हाथ पकड़कर चलता था। और वाणी मन्द (धीमी) पड़ गई थी॥ ५०॥

व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पङ्कशेषमिव घर्मपल्वलम्।
राज्ञि तत्कुलमभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिव दीपभाजनम्॥ ५१॥

राज्ञि क्षयातुरे सति तत्कुलं रघुकुलं पश्चिमकलायां स्थित इन्दुर्यस्मिंस्तत्कलावशिष्टेन्दु व्योम वा व्योमेव। वाशब्द इवार्थे। यथाह दण्डी—'इववद्वायथाशब्दौ' इति। पङ्कशेषं घर्मपल्वलमिव। वामनार्चिरल्पशिखं दीपपात्रमिवाभूत्॥

अन्वयः—राज्ञि क्षयातुरे सति तत्कुलं पश्चिमकलास्थितेन्दु व्योम वा, पङ्कशेषं घर्मपल्वलम् इव, वामनार्चिः दीपभाजनम् इव अभूत्।

व्याख्या—राज्ञि = भूपालेऽग्निवर्णे क्षयेण = राजयक्ष्मणा आतुरः = पीडितः इति तस्मिन् क्षयातुरे = क्षयरोगग्रस्ते सति तस्य = राज्ञः कुलं = वंशःइति तत् तत्कुलम् पश्चात् भवा पश्चिमा = अन्त्या चासौ कला = अंशः, इति पश्चिमकला, तस्यां स्थितः = वर्तमानः चन्द्रः = इन्दुः यस्मिन् तत् पश्चिमकलास्थितेन्दु व्योम = अन्तरिक्षम् वा = इव अत्र इवार्थे वाशब्दः। पंकः = कर्दमः शेषः = अवशिष्टः यस्मिन् तत् पंकशेषं घर्मस्य = ग्रीष्मस्य पल्वलम् = अल्पसरः,इति घर्मपल्वलम् = स्वल्पजलाशयम्, इव = यथा वामना = अल्पा = क्षीणा अर्चिः = शिखा यस्य तत् वामनार्चिः दीपस्य = प्रदीपस्य भाजनं = पात्रमिति दीपभाजनम् इव = यथा अभूत् = जातम्।

समासः—पश्चिमा चासौ कला पश्चिमकला, पश्चिमकलायां स्थितः इन्दुर्यस्मिन् तत् पश्चिमकलास्थितेन्दु। पंकः शेषः यस्मिन् तत् पंकशेषम्। घर्मस्य पल्वलमिति घर्मपल्वलम्। क्षयेण आतुरः क्षयातुरस्तस्मिन् क्षयातुरे। तस्य कुलमिति तत्कुलम्। वामना अर्चिः यस्य तत् वामनार्चिः। दीपस्य भाजनमिति दीपभाजनम्।

हिन्दी—राजा अग्निवर्ण के क्षयरोग से पीड़ित होनेपर उनका सूर्यकुल ठीक वैसा हो गया, जैसा कि अन्तिम कला के चन्द्रमा से युक्त आकाश हो अर्थात् मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के

चन्द्र वाला आकाश हो। और जैसा कि मात्र कीचड़ जिसमें रह गया है ऐसा ग्रीष्मऋतु का छोटा सा तालाब हो। तथा जरासी (हल्की सी) लौ वाला दीपक हो ॥५१ ॥

वाढमेष दिवसेषु पार्थिवः कर्म साधयति पुत्रजन्मने ।
इत्यदर्शितरुजोऽस्य मन्त्रिणः शश्वदूचुरघशङ्किनीः प्रजा ॥ ५२ ॥

वाढं सत्यमेष पार्थिवो दिवसेषु पुत्रजन्मने पुत्रोदयार्थं कर्म जपादिकं साधयति। इत्येवमदर्शितरुजो निगूहितरोगाः सन्तोऽस्य राज्ञो मन्त्रिणोऽघशङ्किनोर्व्यसनशङ्किनीः प्रजाः शश्वदूचुः ॥

अन्वयः—वाढम् एषः पार्थिवः दिवसेषु पुत्रजन्मने कर्म साधयति, इति अदर्शितरुजः सन्तः अस्य मंत्रिणः अघशंकिनीः प्रजाः शश्वत् ऊचुः।

व्याख्या—उह्यतेस्म इति वाढं = दृढं–सत्यमित्यर्थः एषः = अयं पार्थिवः = राजाग्निवर्णः दिवसेषु = एषु दिनेषु पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते यस्मात् ततः पुत्रः, पुत्रस्य = सुतस्य जन्म = उत्पत्तिरिति पुत्रजन्म तस्मै पुत्रजन्मने-पुत्रोत्पादनार्थं कर्म = अनुष्ठानं = जपादिकं साधयति = सन्तः अस्य = राज्ञः करोति, इति = एवं प्रकारेण अदर्शिता = अप्रकटिता रुक् रोगः = महाव्याधिः यैस्ते अदर्शितरुजः मंत्रिणः = सचिवाः, अङ्कते = गच्छति दानादिना यत् तत्। अध्यते वा अघम् अघं = पापं क्षयरोगमित्यर्थः शंकन्ते तच्छीलाः, इति अघशंकिन्यस्ताः अघशंकिनीः प्रजाः = जनान् शश्वत् = अभीक्ष्णं = बारं बारम् ऊचुः = कथयन्ति स्म।

समास—पुत्रस्य जन्म पुत्रजन्म तस्मै पुत्रजन्मने। अदर्शिता रुग् यैस्ते अदर्शितरुजः। अघं शङ्कन्ते इति अघशंकिन्यस्ताः अघशंकिनीः।

हिन्दी—यह सत्य है कि आजकल राजा अग्निवर्ण पुत्र की उत्पत्ति की इच्छा से अनुष्ठान जपादि कर रहा है। (इसलिये दुबला हो गया है)। यह कह कर रोग को न प्रकट कर मन्त्री लोग राजा के भयंकर रोग की आशंका करने वाली प्रजा को बार बार समझाते थे ॥ ५२ ॥

स त्वनेकवनितासखोऽपि सन्पावनीमनवलोक्य संततिम् ।
वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं न प्रदीप इव वायुमत्यगात् ॥ ५३ ॥

स त्वग्निवर्णोऽनेकवनितासखः सन्नपि। पावनीं पित्रर्णमोचनीं संततिमनवलोक्य। पुत्रमनवाप्येत्यर्थः। वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं रोगम्। प्रदीपो वायुमिव। नात्यगान्नातिचक्राम। ममारेत्यर्थः।

अन्वयः—सः तु अनेकवनितासखः सन् अपि पावनीं सन्ततिम् अनवलोक्य, वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं प्रदीपः वायुम् इव न अत्यगात्।

व्याख्या—सः = अग्निवर्णस्तु अनेकाः = भूयस्यश्च ताः वनिताः = स्त्रियः इति अनेकवनितास्तासां सखा = मित्रमिति अनेकवनितासखः = बहुपत्नीकः सन्नपि पाव्यतेऽनया पावनी तां पावनीं = पित्रर्णमोचनीं सन्ततिं = पुत्रम् अनवलोक्य = अनवाप्य वैद्यानां = चिकित्सकानां यत्नं = प्रयासं, परिभवति = तिरस्करोतीति वैद्ययत्नपरिभावी तं वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं = क्षयरोगं प्रदीपः = दीपकः वायुं = वातम् इव = यथा न = नहि अत्यगात् = अतिचक्राम। मृतः इत्यर्थः।

समासः—अनेकाश्च ताः वनितास्तासां सखा इति अनेकवनितासखः। वैद्यानां यत्नस्तस्य परिभावीति वैद्ययत्नपरिभावी, तं वैद्ययत्नपरिभाविनम्।

हिन्दी—किन्तु राजा अग्निवर्ण अनेक रानियों के होते हुए भी पितरों के ऋण से मुक्त कराने वाली सन्तान को बिना देखे ही वैद्यों के प्रयास को व्यर्थ करनेवाले रोग का उसी प्रकार उल्लंघन न कर सके (रोग को न जीत सके) जैसे दीपक वायु को नहीं अतिक्रमण कर सकता है। अर्थात् वैद्य रोग को शान्त न कर सके, और राजा पुत्र का मुख देखे बिना ही स्वर्ग चले गये॥ ५३॥

तं गृहोपवन एव संगताः पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा।
रोगशान्तिमपदिश्य मन्त्रिणः संभृते शिखिनि गूढमादधुः॥ ५४॥

पश्चिमक्रतुविदान्त्येष्टिविधिज्ञेन पुरोधसा संगताः समेता मन्त्रिणो गृहोपवन एव गृहाराम एव। 'आरामः स्यादुपवनम्' इत्यमरः। रोगशान्तिमपदिश्य शान्तिकर्म व्यपदिश्य तमग्निवर्णं संभृते समिद्धे शिखिन्यग्नौ गूढमप्रकाशमादधुर्निदधुः॥

अन्वयः—पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा संगताः मन्त्रिणः गृहोपवने एव रोगशान्तिम् अपदिश्य तं सम्भृते शिखिनि गूढम् आदधुः।

व्याख्या—करोति, क्रियते वा क्रतुः पश्चिमः = अन्तिमश्चासौ क्रतुः = यागः इति पश्चिमक्रतुः = अन्त्येष्टिः तं वेत्ति = जानातीति पश्चिमक्रतुवित् तेन पश्चिमक्रतुविदा = अन्त्येष्टिविधिज्ञेनेत्यर्थः। पुरः = अग्रे धीयते सर्वकार्येष्विति पुरोधाः = तेन पुरोधसा = पुरोहितेन संगताः = मिलिताः मन्त्रिणः = अमात्याः गृहस्य = भवनस्य उपवनम् = आरामः तस्मिन् गृहोपवने एव नत्वन्यत्र रोगस्य = व्याधेः शान्तिः = शमनकर्म ता. रोगशान्तिम् अपदिश्य = व्याजीकृत्य तम् = अग्निवर्णं सम्भृते = प्रज्वलिते शिखा अस्यास्तीति शिखी तस्मिन् शिखिनि = अग्नौ गूढं = गुप्तम् अप्रकाशम् आदधुः = निदधुः, गूढं अग्निसंस्कारं कृतवन्त इत्यर्थः।

समासः—पश्चिमश्चासौ क्रतुरिति पश्चिमक्रतुः तस्य वित्, तेन पश्चिमक्रतुविदा। रोगस्य शान्तिः तां रोगशान्तिम्। गृहस्य उपवनमिति गृहोपवनं तस्मिन् गृहोपवने।

हिन्दी—अन्तिम संस्कार (अन्त्येष्टि क्रिया) की विधि के ज्ञाता पुरोहित से मिलकर मंत्रियों ने महल के बगीचे में ही, रोग की शान्ति करने का बहाना करके राजा अग्निवर्ण (के शव) को चुपचाप किसी को बिना बताये प्रज्वलित अग्नि में रख दिया अर्थात् अग्निसंस्कार कर दिया॥ ५४॥

तैः कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैराशु तस्य सहधर्मचारिणी।
साधुदृष्टशुभगर्भलक्षणा प्रत्यपद्यत नराधिपश्रियम्॥ ५५॥

आशु शीघ्रं कृतः प्रकृतिमुख्यानां पौरजनप्रधानानां संग्रहः संनिपातनं यैस्तादृशैस्तैर्मन्त्रिभिः

साधु निपुणं दृष्टशुभगर्भलक्षणा परीक्षितशुभगर्भचिह्ना तस्याग्निवर्णस्य सहधर्मचारिणी नराधिपश्रियं प्रत्यपद्यत राजलक्ष्मीं प्राप ॥

अन्वयः—आशु कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैः तैः साधु दृष्टशुभगर्भलक्षणा तस्य सहधर्मचारिणी नराधिपश्रियं प्रत्यपद्यत ।

व्याख्या—आशु = शीघ्रं प्रकृतिषु = नागरिकजनेषु मुख्याः = प्रधानाः इति प्रकृतिमुख्याः । कृतः = सम्पादितः प्रकृतिमुख्यानां संग्रहः = संग्रहणं—सन्निपातनं यैस्तैः कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैः, तैः = अमात्यैः साधु = सम्यक्—निपुणं गर्भस्य = भ्रूणस्य लक्षणं = चिह्नमिति गर्भलक्षणं, दृष्टं = परीक्ष्य ज्ञातं शुभं = शिवं मंगलकारकं गर्भलक्षणं यस्याः सा दृष्टशुभगर्भलक्षणा तस्य = अग्निवर्णस्य सह = साकं धर्मं = दाम्पत्यधर्मं चरति तच्छीला इति सहधर्मचारिणी = धर्मपत्नी नराणाम् अधिपः नराधिपः, नराधिपस्य = राज्ञोऽग्निवर्णस्य श्रीः = राज्यलक्ष्मीः तां नराधिपश्रियं प्रत्यपद्यत = प्राप्तवती ।

समासः—कृतः प्रकृतिषु मुख्यानां संग्रहो यैस्ते तैः कृतप्रकृतिमुख्यसंग्रहैः । दृष्टं शुभस्य गर्भस्य लक्षणं यस्याः सा दृष्टशुभगर्भलक्षणा । सहधर्मस्य चारिणी इति सहधर्मचारिणी । नराणाम् अधिपस्य श्रीः, तां नराधिपश्रियम् ।

हिन्दी—मंत्रियों ने तुरत ही नागरिकों के प्रधानों को इकट्ठा किया और इन्होंने जिस रानी में अच्छी प्रकार परीक्षा करके जान लिया कि इसमें गर्भ के लक्षण दीख रहे हैं, उसी को राजा की लक्ष्मी सौंप दी । अर्थात् राजा की गर्भवती धर्मपत्नी को राज्यासन पर बैठा दिया ॥ ५५ ॥

तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोका-
दुष्णैर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः
निर्वापितः कनककुम्भमुखोज्झितेन
वंशाभिषेकविधिना शिशिरेण गर्भः ॥ ५६ ॥

तथाविधया नरेन्द्रविपत्त्या यः शोकस्तस्मादुष्णैर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तस्तस्या गर्भः कनककुम्भानां मुखैर्धारैरुज्झितेन शिशिरेण शीतलेन वंशाभिषेकविधिना लक्षणयाभिषेकजलेन निर्वापित आप्यायितः ॥

अन्वय—तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोकात् उष्णैः विलोचनजलैः प्रथमाभितप्तः तस्या गर्भः, कनककुम्भमुखोज्झितेन शिशिरेण वंशाभिषेकविधिना निर्वापितः ।

व्याख्या—नराणाम् इन्द्रः = स्वामीति नरेन्द्रः नरेन्द्रस्य = राज्ञः अग्निवर्णस्य विपत्तिः = मृत्युः इति नरेन्द्रविपत्तिः तथाविधा पूर्वोक्तप्रकारेण दुःखदा या नरेन्द्रविपत्तिः = = राजमृत्युः, तथा यः शोकः = शुक्, इति तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोकस्तस्मात् उष्णैः = घर्मैः विशेषेण लोच्यते एभिस्तानि विलोचनानि, विलोचनानां = नेत्राणां जलानि = अस्राणि तैः विलोचनजलैः, प्रथमम् = पूर्वम् अभितप्तः = सन्तप्तः तस्याः = सहधर्मचारिण्याः अग्निवर्णस्य पत्न्याः इत्यर्थः । गर्भः = उदरस्थजीवः कनति = दीप्यते इति कनकं कनकस्य = सुवर्णस्य कुम्भाः = कलशाः

तेषां मुखानि = आननानि तैः उज्झितः = त्यक्तः तेन कनककुम्भमुखोज्झितेन शिशिरेण = शीतलेन वंशस्य = कुलपरम्परानुसारेण सम्पन्नस्य अभिषेकस्य विधिः = विधानं तेन वंशभिषेकविधिना अभिषेकजलेनेत्यर्थः । निर्वापितः = आप्यायितः । शीतलीकृत इत्यर्थः ।

समासः—तथाविधा स या नरेन्द्रस्य विपत्तिः, इति तथाविधनरेन्द्रविपत्तिस्तया शोकस्तस्मात् तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोकात् । विलोचनानां जलानि तैः विलोचनजलैः । प्रथमम् अभितप्तः प्रथमाभितप्तः । कनकस्य कुम्भाः कनककुम्भास्तेषां मुखानि तैः उज्झितस्तेन कनककुम्भमुखोज्झितेन । वंशस्य अभिषेकस्तस्य विधिस्तेन वंशाभिषेकविधिना ।

हिन्दी—इस प्रकार की दुःखद राजा की मृत्यु के शोक से (रोने के कारण) गरम हुए नेत्रों के जल से (आँसुओं से) पहले खूब तपा (गरम हुआ) उस महारानी का गर्भ, 'फिर' कुल की परम्परा के अनुसार होने वाले अभिषेक के समय सोने के घड़ों के मुखों से छोड़े हुये शीतल जल से (वह गर्भ) शीतल हो गया ॥ ५६ ॥

तं भावार्थं प्रसवसमयाकाङ्क्षिणीनां प्रजाना-
मन्तर्गूढं क्षितिरिव नभोबीजमुष्टिं दधाना ।
मौलैः सार्धं स्थविरसचिवैर्हेमसिंहासनस्था
राज्ञी राज्यं विधिवदशिषद्भर्तुरव्याहताज्ञा ॥ ५७ ॥

प्रसवो गर्भमोचनम् । फलं च विवक्षितम् । 'स्यादुत्पादे फले पुष्पे प्रसवो गर्भमोचने' इत्यमरः, तस्य यः समयस्तदाकाङ्क्षिणीनां प्रजानां भावार्थं भावाय । भूतय इत्यर्थः । 'भावो लीलाक्रियाचेष्टाभूत्यभिप्रायजन्तुषु' इति यादवः । क्षितिरन्तर्गूढं नभोबीजमुष्टिमिव । श्रावणमासुप्तं बीजमुष्टिं यथा धत्ते तद्वदित्यर्थः । मुष्टिशब्दो द्विलिङ्गः । 'अक्लीबौ मुष्टिमुस्तकौ' इति यादवः । अन्तर्गूढमन्तर्गतं तं गर्भं दधाना हेमसिंहासनस्थाऽव्याहताज्ञा राज्ञी मौलैर्मूले भवैर्मूलादागतैर्वा । आप्तैरित्यर्थः । स्थविरसचिवैर्वृद्धामात्यैः सार्धं भर्तू राज्यं विधिवद्विध्यर्हम् । यथाशास्त्रमित्यर्थः । अर्हार्थे वतिप्रत्ययः । अशिषच्छास्ति स्म । 'सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च' इति च्लेरङ् । 'शास इदङ्हलोः' इतीकारः ॥

इति महामहोपाध्यायकोलाचलमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीविनीसमाख्यया व्याख्यया
समेतो महाकविश्रीकालिदासकृतौ रघुवंशे महाकाव्ये अग्निवर्णशृङ्गारो
नामैकोनविंशः सर्गः ॥

अन्वयः—प्रसवसमयाकाङ्क्षिणीनां प्रजानां भावार्थं क्षितिः अन्तर्गूढं नभोबीजमुष्टिम् इव अन्तर्गूढं तं दधाना, अव्याहताज्ञा राज्ञी हेमसिंहासनस्था मौलैः स्थविरसचिवैः सार्धं भर्तुः राज्यं विधिवत् अशिषत् ।

व्याख्या—प्रसवस्य = गर्भमोचनस्य, फलस्य च समयः = कालस्तम् आकांक्षन्ति तच्छीलाः प्रसवसमयाकाङ्क्षिण्यस्तासां प्रसवसमयाकाङ्क्षिणीनां "प्रसवो गर्भमोचने । उत्पादे स्यादपत्येऽपि फलेऽपि कुसुमेऽपि च" इति मेदिनी । प्रजानां = प्रकृतीनां-जनानामित्यर्थः । भावयति, भवनं

वा भावः भावायेदं भावार्थम् विभूतये = कल्याणार्थमित्यर्थः। 'भावः सत्तास्वभावाभिप्रायचेष्टात्मजन्मसु। क्रियालीलापदार्थेषु विभूतिबन्धुजन्तुषु।' इति मेदिनी। क्षितिः = पृथिवी अन्तः = अभ्यन्तरे = भूमौ गूढं = गुप्तमिति अन्तर्गूढं-भूमौ निक्षिप्तमित्यर्थः। विशिष्टा ई = लक्ष्मीर्जायतेऽस्मादितिबीजम्। विर्य = संवृतं जायते जनयति, वजति वा बीजम् बीजस्य मुष्टिरिति बीजमुष्टिः = अङ्कुरकारणमुष्टिः। नभसि = श्रावणमासे उप्तः बीजमुष्टिरिति तं नभोबीजमुष्टिम् इव = यथा अन्तः = कुक्षौ गूढः = गुप्तः, इति अन्तर्गूढस्तम् अन्तर्गूढं-तं गर्भं दधाना = धारयन्ती, सिंहाकारमासनं = पीठम्, हेम्नः = सुवर्णस्य सिंहासनमिति हेमसिंहासनं तत्र तिष्ठतीति-सा हेमसिंहासनस्था न व्याहता = न अवरुद्धा आज्ञा = शासनं यस्याः सा अव्याहताज्ञा राज्ञी = राजपत्नी मूले भवाः, मूलात् आगताः वा मौलास्तैः मौलैः = हितैषिभिः आप्तैरित्यर्थः। तिष्ठन्तीति स्थविराः = वृद्धाश्च ते सचिवाः = अमात्यास्तैः स्थविरसचिवैः सार्धं = साकं भर्तुः = स्वामिनः-अग्निवर्णस्य राज्यं = राष्ट्रं विधिना तुल्यं विधिवत् = शास्त्रानुसारम् अशिषत् = शासितवती।

समासः—प्रसवस्य समयः प्रसवसमयः प्रसवसमयस्य काङ्क्षिण्यस्तासां प्रसवसमयकाङ्क्षिणीनाम्। बीजस्य मुष्टिः बीजमुष्टिस्तम्। स्थविराश्च ते सचिवास्तैः स्थविरसचिवैः। हेम्नः सिंहासनं तत्रस्था इति हेमसिंहासनस्था। न व्याहता आज्ञा यस्याः सा अव्याहताज्ञा।

हिन्दी—अन्न रूप फल को चाहनेवाली जनता के कल्याण के लिये जैसे श्रावण में बोये हुए मुट्ठीभर बीज को पृथिवी छिपाए रहती है, उसी प्रकार पुत्रोत्पत्ति की आशा लगाये बैठी प्रजा के कल्याण के लिये अपनी कुक्षि में गर्भ को धारण किये हुये महारानी ने बाधा रहित निर्बाध आज्ञा होकर तथा सोने के सिंहासनपर बैठो परम्परा से आये वृद्धमंत्रियों के साथ विधिपूर्वक अपने पति के राज्य का शासन किया पालन-रक्षण किया ॥५७॥

इति श्रीशांकरिश्रीधारादत्तशास्त्रिमिश्रविरचितायां "छात्रोपयोगिनी" व्याख्यायां रघुवंशे महाकाव्ये अग्निवर्णशृङ्गारो नामैकोनविंशः सर्गः ॥ शुभम्भूयात् ॥

व्याख्यातुः परिचयः

मण्डले मयराष्ट्राख्ये वर्तमाने तु 'मेरठे'।
'वारणावत' सान्निध्ये 'दाहा' ग्रामः पुरातनः ॥१॥
तत्र द्विजकुलतिलकः सीतारामः स वत्सवंशमणिः।
तत्तनयो विदितनयो नाम्ना श्रीशिवसहाय इति ॥२॥
वेदादिशास्त्रवेदी समजनि जनवृन्दमाननीयगुणः।
तस्मादुदितः कुशलः शंकरदत्तः सतां मान्यः ॥३॥
तत्पुत्रः शास्त्ररुचि धारादत्ताऽभिधो विदितः।
श्रीबालबोधमिश्रात् काशीनाथाच्च लब्धविद्योऽभूत् ॥४॥
साहित्यवेदान्तकृतप्रयत्नः काश्यामथाचार्यपदांकितः सन्।
अध्यापने सस्पृहमानसोऽयं वृत्यर्थमन्वेषणतत्परोऽभूत् ॥५॥
गिरिजापतिगतचित्तः परोपकृतिसक्तमानसो नित्यम्।
प्रथितभिवानीजन्मा तुहिनगिरौ 'कुसियाङ्गे' बद्धरुचिः ॥६॥
गोयनकावंशाम्बुधिचन्द्रः श्रीलालनामविख्यातः।
तत्पत्नी धर्मपरा प्रथिता सरवत्यभिख्यया लोके ॥७॥
पुत्रस्तयोश्च जातो भक्तः शास्त्रेषु कृष्णगोपालः।
तेषामनुरोधवशात्काश्यां विद्यालये चिरं विमले ॥८॥
स्थिरकर्मात्र तदीये धारादत्तो वसामि शास्त्रपरः।
छात्रोपकारहेतोरध्ययनाध्यापनादिकं तन्वम् ॥९॥
विश्वनाथसहितः पुत्रोऽन्यश्चाश्विनीपदभाक्।
कृष्णामञ्जुसुते द्वे तेषामुपलालनं रचयन् ॥१०॥
श्रीकालिदासविरचितरघुवंशाख्यप्रसिद्धकाव्यस्य।
व्याख्यामरचयमेतां तया प्रसन्नोऽस्तु शैलजाकान्तः ॥११॥

⊙

रघुवंशश्लोकानुक्रमणिका

रघुवंशश्लोकानुक्रमणिका

	सर्गे	श्लोकः
अ		
अकरोत्स तदौर्ध्वदेहि	८	२६
अकरोदचिरेश्वरः क्षितौ	८	२०
अकार्यचिन्तासमकाल	६	३९
अकाले बोधितो भ्रात्रा	१२	८१
अक्षबीजवलयेन नि	११	६६
अगस्त्यचिह्नादयनात्स	१६	४४
अग्निवर्णमभिषिच्य	१९	१
अग्रजेन प्रयुक्ताशीस्त	१५	८
अङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिते	१९	१३
अङ्गदं चन्द्रकेतुं च	१५	९०
अङ्गसत्त्ववचनाश्रयं	१९	३६
अङ्गुलीकिसलयाग्रतर्ज	१९	१७
अचिराद्यज्वभिर्भागं	१०	४५
अजयदेकरथेन स	९	१०
अजस्य गृह्णतो जन्म	१०	२४
अजिताधिगमाय मन्त्रि	८	१७
अजिनदण्डभृतं कुश	९	२१
अतिथिं नाम काकुत्स्थात्	१७	१
अतिप्रबन्धप्रहितास्त्र	३	५८
अतिष्ठत्प्रत्ययापेक्ष	१०	३
अतोऽयमश्वः कपिलानु	३	५०
अत्रानुगोदं मृगयानि	१३	३५
अत्राभिषेकाय तपोध	१३	५१
अत्रावियुक्तानि रथाङ्ग	१३	३१
अथ काश्चिदजव्यपेक्ष	८	२४
अथ जातु रुरोर्गृहीत	९	७२
अथ जानपदो विप्रः	१५	४२
अथ तं सवनाय दीक्षि	८	७५
अथ तस्य कथंचिदङ्क	८	७१
अथ तस्य विवाहकौतु	८	१
अथ तस्य विशांपत्यु	१०	५०
अथ तेन दशाहतः	८	७३
अथ धूमाभिताम्राक्षं	१५	४९
अथ नभस्य इव त्रिद	९	५४
अथ नयनसमुत्थं	२	७५
अथ पथि गमयित्वा	११	९३
अथ प्रजानामधिपः	२	१
अथ प्रदोषे दोषज्ञः	१	९३
अथ प्रभावोपनतैः	५	५२
अथ प्राचेतसोपज्ञं	१५	६३
अथ मदगुरुपक्षैर्लोक	१२	१०२
अथ मधुवनितानां	१८	५२
अथ यथासुखमार्तव	९	४८
अथ यन्तारमादिश्य	१	५४
अथ रामशिरश्छेद	१२	७४
अथ रोधसि दक्षिणोदधेः	८	३३
अथवा कृतवाग्द्वारे	१	४
अथवा मम भाग्यविप्लवा	८	४७
अथवा मृदु वस्तु हिंसि	८	४५
अथ वाल्मीकिशिष्येण	१५	८०

	सर्गे	श्लोकः
अथ विधिमवसाय्य	५	७६
अथ वीक्ष्य रघुः प्रतिष्ठि	८	१०
अथ वेलासमासन्न	१०	३५
अथ व्यवस्थापितवाक्	१४	५३
अथ समाववृते कुसु	९	२४
अथ स विषयव्यावृत्ता	३	७०
अथ सावरजो रामः प्रा	१५	७०
अथ स्तुते बन्दिभिरन्व	६	८
अथाग्र्यमहिषी राज्ञः	१०	६६
अथाङ्गदाश्लिष्टभुजं	६	५३
अथाङ्गराजादवतार्य	६	३०
अथात्मनः शब्दगुणं	१३	१
अथाथर्वनिधेस्तस्य	१	५९
अथाधिकस्निग्धविलोचने	१४	२६
अथाधिशिश्ये प्रयतः	५	२८
अथानपोढार्गलमध्यगा	१६	६
अथानाथाः प्रकृतयो	१२	१२
अथानुकूलश्रवणप्र	१४	४७
अथान्धकारं गिरि	२	४६
अथाभिषेकं रघुवंश	१४	७
अथाभ्यर्च्य विधातारं	१	३५
अथार्धरात्रे स्तिमितप्र	१६	४
अथास्य गोदानविधेर	३	३३
अथास्य रत्नग्रथितोत्त	१६	४३
अथेतरे सप्त रघुप्रवी	१६	१
अथेप्सितं भर्तुरुप	३	१
अथेश्वरेण क्रथकैशि	५	३९
अथैकधेनोरपरा	२	४९
अथोपनीतं विधिवद्वि	३	२९
अथोपयन्त्रा सदृशेन	७	१
अथोपरिष्टाद्भ्रमरै	५	४३
अथोपशल्ये रिपुमग्नशल्य	१६	३७
अथोरगाख्यस्य पुरस्य	६	५९
अथोर्मिलोलोन्मदराज	१६	५४
अथोष्ट्रवामीशतवा	५	३२
अदः शरण्यं शरभङ्गना	१३	४५
अदूरवर्तिनीं सिद्धिं	१	८७
अद्धा श्रियं पालितसंग	१३	६५
अधिकं शुशुभे शुभंयु	८	६
अधिगतं विधिवद्यद	९	२
अध्यास्य चाम्भःपृषतो	६	५१
अनम्राणां समुद्धर्तुं	४	३५
अनयत्प्रभुशक्तिसंप	८	१९
अनवाप्तमवाप्तव्यं	१०	३१
अनश्नुवानेन युगोपमा	१८	४८
अनसूयातिसृष्टेन पुण्य	१२	२७
अनाकृष्टस्य विषयै	१	२३
अनिग्रहत्रासविनीत	१३	५०
अनित्याः शत्रवो बाह्या	१७	४५
अनीकिनीनां समरेऽग्र	१८	१०
अनुग्रहप्रत्यभिनन्दि	१४	७९
अनुभवन्नवदोलमृ	९	४६
अनुभूय वसिष्ठसंभृतैः	८	३
अनेन कथिता राज्ञो	१०	५३
अनेन चेदिच्छसि गृह्य	६	२४
अनेन पर्यासयताश्रु	६	२८

	सर्ग	श्लोकः
अनेन पाणौ विधिवद्द	६	६३
अनेन यूना सह पार्थिव	६	३५
अनेन सार्धं विहराम्बु	६	५७
अन्यदा जगति राम	११	७३
अन्येद्युरथ काकुत्स्थः	१५	७५
अन्येद्युरात्मानुचर	२	२६
अन्योन्यदर्शनप्राप्तवि	१२	८७
अन्योन्यसूतोन्मथनाद	७	५२
अन्विय्येष सदृशीं स च	११	५०
अपतुषारतया विश	९	३९
अपयेन प्रवृत्ते न जातूप	१७	५४
अपनीतशिरस्त्राणाः	४	६४
अपशूलं तमासाद्य	१५	१७
अपशोकमनाः कुटुम्बि	८	८६
अपि तुरगसमीपादु	९	६७
अपि प्रभुः सानुशयोऽनु	१४	८३
अपि प्रसन्नेन मह	५	१०
अप्यग्रणीर्मन्त्रकृता	५	४
अप्यर्धमार्गे परबाण	७	४५
अब्रवीच्च भगवन्मतंग	११	३९
अभिनवान्परिचेतु	९	३३
अभिभूय विभूतिमार्त	८	३६
अभ्यभूयत वाहानां	४	५६
अभ्यासनिगृहीतेन	१०	२३
अभ्युत्थिताग्निपिशुनै	१	५३
अमदयन्मधुगन्धस	९	४२
अमंस्त चानेन परार्ध्य	३	२७
अमी जनस्थानमपोढ	१३	२२
अमी शिरीषप्रसवावतंस	१६	६१
अमुं पुरः पश्यसि देव	२	३६
अमुं सहासप्रहितेक्ष	१३	४२
अमूर्विमानान्तरलम्बि	१३	३३
अमेयो मितलोकस्त्व	१०	१८
अमोघं संदधे चास्मै	१२	९७
अमोच्यमश्वं यदि मन्य	३	६५
अयं सुजातोऽनुगिरं	१३	४९
अयःशङ्कुचितां रक्षः	१२	९५
अयोध्यादेवताश्चैनं प्रश	१७	३६
अरिष्टशय्यां परितो	३	१५
अरुणरागनिषेधिभि	९	४३
अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं	११	६९
अर्चिता तस्य कौसल्या	१०	५५
अर्धाञ्चिता सत्वरमुत्थि	७	१०
अर्पितस्तिमितदीपद	१९	४२
अलं महीपाल तव	२	३४
अलं ह्रिया मां प्रति	५	५८
अलिभिरञ्जनबिन्दुम	९	४१
अवकाशं किलोदन्वा	४	५८
अवगच्छति मूढचेत	८	८८
अवजानासि मां यस्मा	१	७७
अवनिमेकरथेन व	९	११
अवन्तिनाथोऽयमुदग्र	६	६२
अवभृथप्रयतो निय	९	२२
अवाकिरन्वयोवृद्धा	४	२७
अवेक्ष्य रामं ते तस्मि	१५	३
अवैमि कार्यान्तरमानु	१६	८२

	सर्ग	श्लोकः
अवैमि चैनामनघेति	१४	४०
अशून्यतीरां मुनिसंनि	१४	७६
अंशे हिरण्याक्षरिपोः स	१८	२५
अंसलम्बिकुटजार्जुन	१९	३७
असकृदेकरथेन त	९	२३
असङ्गमद्रिष्वपि सार	३	६३
असज्जनेन काकुत्स्थः प्र	१२	४६
असमाप्तविधिर्यतो	८	७६
असह्यपीडं भगवन्न	१	७१
असह्यविक्रमः सह्यं	४	५२
असौ कुमारस्तमजोऽनु	६	७८
असौ पुरस्कृत्य गुरुं	१३	६६
असौ महाकालनिकेत	६	३४
असौ महेन्द्रद्विपदान	१३	२०
असौ महेन्द्रादिसमान	६	५४
असौ शरण्यः शरणोन्मु	६	२१
अस्त्रं हरादाप्तवता	६	६२
अस्य प्रमाणेषु समग्र	६	३३
अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घ	६	४३
अहमेव मतो महीप	८	८
अहीनगुर्नाम स गां सम	१८	१४
आ		
आकारसदृशप्रज्ञः	१	१५
आकीर्णमृषिपत्नीना	१	५०
आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततो	६	१५
आततज्यमकरोत्स	११	४५
आतपात्ययसंक्षिप्त	१	५२
आत्तशस्त्रस्तदध्यास्य	१५	४६
आदिदेशाथ शत्रुघ्नं	१५	६
आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः	१५	१०
आधारबन्धप्रमुखैः	५	६
आधूय शाखाः कुसुम	१६	३६
आधोरणानां गजसं	७	४६
आनन्दजः शोकजमश्रु	१४	३
आपादपद्मप्रणताः	४	३७
आपिञ्जरा बद्धरजः	१६	५१
आपीनभारोद्वहन	२	१८
आमुक्ताभरणः स्रग्वी	१७	२५
आयोधने कृष्णगतिं स	६	४२
आराध्य विश्वेश्वरमीश्व	१८	२४
आरूढमद्रीनुदधीन्वि	६	७७
आलोकमार्गं सहसा	७	६
आवर्ज्य शाखाः सदयं	१६	१९
आवर्तशोभा नतनाभि	१६	६३
आवृण्वतो लोचनमार्ग	७	४२
आशास्यमन्यत्पुनरु	५	३४
आश्वास्य रामावरजः स	१४	५८
आससाद मिथिलां स	११	५२
आससाद मुनिरात्मन	११	२३
आसां जलास्फालनतत्प	१६	६२
आसारसिक्तक्षितिबाष्प	१३	२९
आसीद्वरः कण्टकितप्र	७	२२
आस्फालितं यत्प्रमदाक	१६	१३
आस्वादवद्भिः कवलैः	२	५
इ		
इक्षुच्छायनिषादिन्यः	४	२०
इक्ष्वाकुवंशगुरवे	१३	७०

	सर्गे	श्लोकः
इक्ष्वाकुवंशप्रभवः	१४	५५
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो	५	५५
इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं	६	७१
इतः परानर्भकहार्य	७	६७
इतराण्यपि रक्षांसि	१२	८२
इतरेऽपि रघोर्वंश्यास्त्र	१५	३५
इतस्ततश्च वैदेहीम	१२	५९
इति क्रमात्प्रयुञ्जानो	१७	६८
इति क्षितीशो नवतिं न	३	६९
इति जित्वा दिशो जिष्णु	४	८५
इति प्रगल्भं पुरुषा	२	४१
इति प्रगल्भं रघुणा स	३	४७
इति प्रतिश्रुते राज्ञा	१५	७४
इति प्रसादयामासुस्ते	१०	३३
इति वादिन एवास्या	१	८२
इति विज्ञापितो राज्ञा	१	७१
इति विरचितवाग्भिः	५	७५
इति विस्मृतान्यकरणीय	९	६९
इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु	८	२३
इति शिरसि स वामं	७	७०
इति संतर्ज्य शत्रुघ्नं	१५	१९
इति स्वसुर्भोजकुलप्र	७	२९
इत्थं क्षितीशेन वशी	२	६७
इत्थं गते गतघृणः	९	८१
इत्थं जनितरागासु	१७	४४
इत्थं द्विजेन द्विजराज	५	२३
इत्थं नागस्त्रिभुवनगु	१६	८८
इत्थं प्रयुज्याशिषम	५	३५
इत्थं व्रतं धारयतः	२	२५
इत्यध्वनः कैश्चिदहोभि	१६	३५
इत्यपास्तमखविघ्नयो	११	३०
इत्यर्घ्यपात्रानुमित	५	१२
इत्याप्तवचनाद्रामो	१५	४८
इत्या प्रसादादस्यास्त्वं	१	९१
इत्यारोपितपुत्रास्ते	१५	९१
इत्युक्तवन्तं जनकात्म	१४	४३
इत्युक्त्वा मैथिलीं भर्तुं	१२	३८
इत्युद्गताः पौरवधू	७	१६
इत्यूचिवानुपहृताभरणः	१६	८६
इदमुच्छ्वसितालकं	८	५५
इन्दीवरश्यामतनु	८	६५
इन्दोरगतयः पद्मे	१७	७५
इन्द्राद्वृष्टिर्नियमितगदो	१७	८१
इन्द्रियार्थपरिशून्यम	१९	६
इमां तटाशोकलतां च	१३	३२
इमां स्वसारं च यवीय	१६	८५
इयमप्रतिबोधशायि	८	५८
ईप्सितं तदवज्ञाना	१	७९
उ		
उत्खातलोकत्रयकण्टके	१४	७३
उत्तस्थुषः सपदि पल्व	९	५९
उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृता	२	६१
उत्तिष्ठ वत्से ननु सानु	१४	६
उत्थापितः संयति रेणु	७	३९
उदक्प्रतस्थे स्थिरधीः	१५	९८
उदधेरिव रत्नानि	१०	३०

	सर्गे	श्लोकः
उदयमस्तमयं च	९	९
उदये मदवाच्यमुज्झ	८	८४
उदायुधानापततस्ता	१२	४४
उद्बन्धकेशश्च्युतपत्र	१६	६७
उद्यच्छमाना गमनाय	१६	२९
उद्यतैकभुजयष्टिमा	११	१७
उन्नाभ इत्युद्गतनाम	१८	२०
उन्मुखः सपदि लक्ष्मणा	११	२६
उपकूलं स कालिन्द्याः पु	१५	२८
उपगतोऽपि च मण्डल	९	१५
उपचितावयवा शुचि	९	४४
उपपन्नं ननु शिवं	१	६०
उपययौ तनुतां मधु	९	३८
उपशल्यनिविष्टैस्तैश्च	१५	६०
उपस्थितविमानेन से	१५	१००
उपस्थितां पूर्वमपास्य	१४	६३
उपहितं शिशिरादग	९	३१
उपात्तविद्यं विधिव	५	३८
उपान्तयोर्निष्कुषितं वि	७	५०
उपान्तवानीरवनोप	१३	३०
उपेत्य मुनिवेषोऽथ कालः	१५	९२
उपेत्य सा दोहददुःख	३	६
उभयमेव वदन्ति	९	३
उभयोरपि पार्श्ववर्ति	८	३९
उभयोर्न तथा लोकः	१५	६८
उभावुभाभ्यां प्रणतौ	१४	२
उमावृषाङ्कौ शरज	३	२३
उरस्यपर्याप्तनिवेश	१८	४७
उवाच धात्र्या प्रथमोदि	३	२५
उषसि स गजयूथक	९	७१
ऋ		
ऋत्विजः स तथानर्च दक्षि	१७	८०
ऋद्धापणं राजपथं स	१४	३०
ऋषिदेवगणस्वधाभु	८	३०
ऋषीन्विसृज्य यज्ञान्ते	१५	८६
ऋष्यशृङ्गादयस्तस्य	१०	४
ए		
एकातपत्रं जगतः	२	४७
एको दाशरथिः कामं या	१२	४५
एतद्गिरेर्माल्यवतः	१३	२६
एतन्मुनेर्मानिनि शात	१३	३८
एताः करोत्पीडितवारि	१६	६६
एता गुरुश्रोणिपयोधर	१६	६०
एतावदुक्तवति दाश	१३	६८
एतावदुक्त्वा प्रतिया	५	१८
एतावदुक्त्वा विरते	२	५१
एते वयं सैकतभिन्न	१३	१७
एवं तयोक्ते तमवेक्ष्य	६	२५
एवं तयोरध्वनि	५	६०
एवमाप्तरतिरात्मसं	११	५७
एवमाप्तवचनात्स	११	४२
एवमिन्द्रियसुखानि	१९	४७
एवमुक्तवति भीमदर्शने	११	७९
एवमुक्ते तया साध्व्या	१५	८२
एवमुद्यन्प्रभावेण शास्त्र	१७	७७
एषा त्वया पेशलमध्यया	१३	३४

	सर्गः	श्लोकः
एषा प्रसन्नस्तिमित	१३	४८
एषोऽक्षमालावलयं	१३	४३
ऐ		
ऐन्द्रमस्त्रमुपादाय	१५	२२
ऐन्द्रिः किल नखैस्तस्या	१२	२२
ऐरावतास्फालनविश्ल	६	७३
क		
कण्ठसक्तमृदुबाहु	१९	२९
कण्डूयमानेन कटं	२	३७
कथं नु शक्योऽनुनयो	२	५४
कराभिघातोत्थितकन्दु	१६	८३
करेण वातायनलम्बि	१३	२१
कलत्रनिन्दागुरुणा	१४	३३
कलत्रवन्तमात्मान	१	३२
कलत्रवाहनं बाले कनी	१२	३४
कलमन्यभृतासु भाषितं	८	५९
कल्याणबुद्धेरथवा	१४	६२
कश्चित्कराभ्यामुपगूढ	६	१३
कश्चिद्द्विषत्खड्गहृतो	७	५१
कश्चिद्यथाभागमवस्थि	६	१९
कातरोऽसि यदि वोद्गता	११	७८
कातर्यं केवला नीतिः	१७	४७
का त्वं शुभे कस्य परिग्र	१६	८
काप्यभिख्या तयोरासी	१	४६
कामं कर्णान्तविश्रान्ते	४	१३
कामं जीवति मे नाथ	१२	७५
कामं न सोऽकल्पत पैतृ	१८	४०
कामं नृपाः सन्तु सहस्र	६	२२
कामं प्रकृतिवैराग्यं स	१७	५५
कामरूपेश्वरस्तस्य	४	८४
कामिनीसहचरस्य कामि	१९	५
काम्बोजाः समरे सोढुं	४	६९
कायेन वाचा मनसा	५	५
कार्तिकीषु सवितानह	१९	३९
कार्येषु चैककार्यत्वा	१०	४०
कार्ष्णेन पत्रिणा शत्रुः स	१५	२४
कालान्तरश्यामसुधेषु	१६	१८
काषायपरिवीतेन	१५	७७
किंतु वध्वां तवैत	१	६५
किमत्र चित्रं यदि का	५	३३
किमप्यहिंस्यस्तव	२	५७
किमात्मनिर्वादकथामु	१४	३४
किंवा तवात्यन्तवियोग	१४	६५
कुमारभृत्याकुशलैरनु	३	१२
कुमाराः कृतसंस्कारा	१०	७८
कुम्भकर्णः कपीन्द्रेण	१२	८०
कुम्भपूरणभवः पटु	९	७३
कुम्भयोनिरलंकारं	१२	५५
कुरुष्व तावत्करभो	१३	१८
कुलेन कान्त्या वयसा न	६	७९
कुशावती श्रोत्रियसात्स	१६	२५
कुशेशयाताम्रतलेन	६	१८
कुसुमं कृतदोहदस्त्व	८	६२
कुसुमजन्म ततो नव	९	२६
कुसुममेव न केवल	९	२८
कुसुमान्यपि गात्रसंग	८	४४

	सर्गे	श्लोकः		सर्गे	श्लोकः
कुसुमैर्ग्रथितामपार्थि	८	३४	क्वचित्खगानां प्रियमान	१३	५५
कुसुमोत्खचितान्वलीभृ	८	५३	क्वचित्पथा संचरते	१३	१९
कूटयुद्धविधिज्ञेऽपि न	१७	६९	क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी	१३	५६
कृच्छ्रलब्धमपि लब्ध	११	२	क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्र	१३	५४
कृतदण्डः स्वयं राज्ञा	१५	५३	क्व सूर्यप्रभवो वंशः	१	२
कृतप्रतिकृतप्रीतैस्तयो	१२	९४	क्षणमात्रसखीं सुजात	८	३७
कृतः प्रयत्नो न च देव	१६	७६	क्षतात्किल त्रायत	२	५३
कृतवत्यसि नावधीरणां	८	४८	क्षत्रजातमपकारवैरि	११	७१
कृतसीतापरित्यागः स	१५	१	क्षत्रियान्तकरणोऽपि	११	७५
कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब	१४	१६	क्षितिरिन्दुमती च भामिनी	८	२८
कृताभिषेकैर्दिव्यायां	१०	६३	**ख**		
कृशानुरपधूमत्वा	१०	७४	खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः	१७	६६
क्लृप्तपुष्पशयनाँल्लता	१९	२३	खर्जूरीस्कन्धनद्धानां	४	५७
केवलं स्मरणेनैव	१०	२९	**ग**		
कैकेय्यास्तनयो जज्ञे	१०	७०	गन्धश्च धाराहतपल्वल	१३	२७
कैलासगौरं वृष	२	३५	गरुडापातविश्लिष्टमेघ	१२	७६
कोशेनाश्रयणीयत्वमि	१७	६०	गर्भं दधत्यर्कमरीचयो	१३	४
कौशिकेन स किल क्षिती	११	१	गुणवत्सुतरोपितश्रियः	८	११
कौसल्य इत्युत्तरकोस	१८	२७	गुणैराराधयामासु	१०	८५
क्रतुषु तेन विसर्जित	९	२०	गुप्तं ददृशुरात्मानं	१०	६०
क्रथकैशिकवंशसंभ	८	८२	गुरोर्नियोगाद्वनितां	१४	५१
क्रमेण निस्तीर्य च	३	७	गुरोर्यियक्षोः कपिलेन	१३	३
क्रियानिमित्तेष्वपि	५	७	गुरोः स चानन्तरमन्त	१८	१५
क्रियाप्रबन्धादयमध्व	६	२३	गुरोः सदारस्य निपी	२	२३
क्रीडापतत्रिणोऽप्यस्य	१७	२०	गुर्वर्थमर्थी श्रुतपार	५	२४
क्रोशार्धंप्रकृतिपुरःसरेण	१३	७९	गृहिणी सचिवः सखी मिथः	८	६७
क्लेशावहा भर्तुरलक्ष	१४	५	गृहीतप्रतिमुक्तस्य	४	४३
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव	१३	५७	गेये को नु विनेता वा	१५	६९

	सर्गः	श्लोकः
गौरवाद्यदपि जातु	१९	७
ग्रथितमौलिरसौ वन	९	५१
ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु	१	४४
घ		
घ्राणकान्तमधुगन्ध	१९	११
च		
चकम्पे तीर्णलौहित्ये	४	८१
चतुर्भुजांशप्रभवः स	१६	३
चतुर्वर्गफलं ज्ञानं	१०	२२
चन्दनेनाङ्गरागं च मृग	१७	२४
चमरान्परितः प्रवर्ति	९	६६
चरणयोर्नखरागस	९	१३
चरतः किल दुश्चरं	८	७९
चारुनृत्यविगमे च	१९	१५
चित्रकूटवनस्थं च कथि	१२	१५
चित्रद्विपाः पद्मवनाव	१६	१६
चुम्बने विपरिवर्तिता	१९	२७
चूर्णबभ्रु लुलितस्रगा	१९	२५
छ		
छायामण्डललक्ष्येण	४	५
छायाविनीताध्वपरिश्र	१३	४६
ज		
जगाद चैनामयमङ्ग	६	२७
जगृहुस्तस्य चित्तज्ञाः	१५	९९
जनपदे न गदः पद	९	४
जनस्य तस्मिन्समये वि	१६	५३
जनस्य साकेतनिवा	५	३१
जनाय शुद्धान्तचरा	३	१६
जनास्तदालोकपथात्प्र	१५	७८
जयश्रियः संवननं	१६	७४
जलानि वा तीरनिखात	१३	६१
जहार चान्येन मयूर	३	५६
जातः कुले तस्य किलोरु	६	७४
जात्यस्तेनाभिजातेन	१७	४
जाने विसृष्टां प्रणिधान	१४	७२
जाने वो रक्षसाक्रान्ता	१०	३८
जालान्तरप्रेषितदृष्टि	७	९
जिगमिषुर्धनदाध्युषि	९	२५
जुगूह तस्याः पथि	१४	४९
जुगोपात्मानमत्र	१	२१
जेतारं लोकपालानां	१२	८९
ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ	१	२२
ज्याघातरेखे सुभुजो	६	५५
ज्यानिनादमथ गृह्णती	११	१५
ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन	६	४०
ज्येष्ठाभिगमनात्पूर्वं ते	१२	३५
त		
तं रागबन्धिष्ववितृप्तमे	१८	१९
तं राजवीथ्यामधिहस्ति	१८	३९
तं वाहनादवनतोत्त	९	६०
तं विनिष्पिष्य काकुत्स्थौ	१२	३०
तं विस्मितं धेनुरुवाच	२	६२
तं वेधा विदधे नूनं	१	२९
तं शरैः प्रतिजग्राह खर	१२	४७
तं श्लाघ्यसंबन्धमसौ	५	४०
तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति	१	१०
तं कर्णभूषणनिपी	५	६५

	सर्गे	श्लोकः
तं कर्णमूलमागत्य रामे	१२	२
तं कृतप्रणतयोऽनुजीवि	१९	८
तं कृपामृदुरवेक्ष्य	११	८३
तं गृहोपवन एव संग	१९	५४
तथात्मचिन्तासुलभं वि	१४	२०
तथोदितश्च तमनु	९	७७
ततः कक्ष्यान्तरन्यस्तं	१७	२१
ततः परं वज्रधरप्रभाव	१८	२१
ततः परं तत्प्रभवः	१८	३४
ततः परं तेन मखाय	३	३९
ततः परं दुःप्रसहं	६	३१
ततः परमभिव्यक्त	१७	४०
ततः प्रकोष्ठे हरिचन्द	३	५९
ततः प्रजानां चिरमात्म	३	३५
ततः प्रतस्थे कौबेरीं	४	६६
ततः प्रहस्यापभयः	३	५१
ततः प्रियोपात्तरसेऽधरो	७	६३
ततः स कृत्वा धनुरात	१६	७७
ततः सपर्यां सपशूपहां	१६	३९
ततः समाज्ञापयदाशु	१६	७५
ततः समानीय स मानि	२	६४
ततः सुनन्दावचना	६	८०
ततस्तदालोकनतत्प	७	५
ततो गौरीगुरुं शैल	४	७१
ततो धनुष्कर्षणमूढ	७	६२
ततो निषङ्गादसमग्र	३	६४
ततो नृपाणां श्रुतवृत्त	६	२०
ततो नृपेणानुगताः स्त्रिय	१६	६९

	सर्गे	श्लोकः
ततो बिभेद पौलस्त्यः	१२	७७
ततोऽभिषङ्गानिलविप्र	१४	५४
ततो मृगेन्द्रस्य मृगे	२	३०
ततो यथावद्विहिता	५	१९
ततोऽवतीर्याशु करेणु	७	१७
ततो वेलातटेनैव	४	४४
तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै	१	४७
तत्प्रतीपपवनादिवैक्ल	११	६२
तत्प्रसुप्तभुजगेन्द्रभी	११	४४
तत्प्रार्थितं जवनवाजि	९	५६
तत्र जन्यं रघोर्घोरं	४	७७
तत्र तीर्थसलिलेन	१९	२
तत्र दीक्षितमृषिं ररक्ष	११	२४
तत्र नागफणोत्क्षिप्तसिं	१५	८३
तत्र यावधिपती मख	११	२७
तत्र सेकहृतलोचनाञ्जनै	१९	१०
तत्र सौधगतः पश्यन्न्य	१५	३०
तत्र स्वयंवरसमा	५	६४
तत्र हूणावरोधानां	४	६८
तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं	४	८०
तत्राभिषेकप्रयता	१४	८२
तत्रार्चितो भोजपतेः	७	२०
तत्रेश्वरेण जगतां	१३	७७
तत्रैनं हेमकुम्भेषु	१७	१०
तथा गतायां परिहास	६	८२
तथापि शस्त्रव्यवहार	३	६२
तथेति कामं प्रतिशुश्रुवा	३	६७
तथेति गामुक्तवते	२	५९

	सर्गे	श्लोकः		सर्गे	श्लोकः
तथेति तस्याः प्रणयं	१६	२३	तं तस्थिवांसं नगरोप	५	६१
तथेति तस्याः प्रतिगृह्य	१४	६८	तं दधन्मैथिलीकण्ठनि	१५	५६
तथेति तस्यावितथं	५	२६	तं धूपाश्यानकेशान्तं	१७	२२
तथेति प्रतिजग्राह	१	९२	तन्मदीयमिदमायुधं	११	७७
तथेति प्रतिपन्नाय	१५	९३	तं न्यमन्त्रयत संभृत	११	३२
तथेत्युपस्पृश्य पयः	५	५९	तपस्यानधिकारित्वात्प्र	१५	५१
तथैव सुग्रीवविभीष	१४	१७	तपस्विवेषक्रिययापि	१४	९
तदङ्गनिस्यन्दजलेन	३	४१	तपस्विसंसर्गविनीत	१४	७५
तदङ्गमग्र्यं मघवन्म	३	४६	तपोरक्षन्स विघ्नेभ्यस्त	१७	६५
तदञ्जनक्लेदसमाकु	७	२७	तमङ्कमारोप्य शरीर	३	२६
तदद्भुतं संसदि रात्रि	१६	२४	तमध्वराय मुक्ताश्वं	१५	५८
तदपोहितुमर्हसि प्रिये	८	५४	तमध्वरे विश्वजिति	५	१
तदन्यतस्तावदन	५	१७	तमपहाय ककुत्स्थकुलो	९	१६
तदन्वये शुद्धिमति	१	१२	तमब्रवीत्सा गुरुणा नव	१६	९
तदर्हसीमां वसतिं	१६	२२	तमभ्यनन्दत्प्रथमं प्र	३	६८
तदलं तदपायचिन्त	८	८३	तमभ्यनन्दत्प्रणतं स	१५	४०
तदात्मसंभवं राज्ये	१७	८	तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं	८	१२
तदाननं मृत्सुरभि	३	३	तमर्चयित्वा विधि	५	३
तदाप्रभृत्येव वन	२	३८	तमलभन्त पतिं पति	९	१७
तदीयमाक्रन्दितमा	२	२८	तमशक्यमपाक्रष्टुं नि	१२	१७
तदेतदाजानुविलम्बि	१६	८४	तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य	१४	७१
तदेष सर्गः करुणार्द्र	१४	४२	तमातिथ्यक्रियाशान्त	१	५८
तद्गतिं मतिमतां वरे	११	८७	तमात्मसंपन्नमनिन्दि	१८	१८
तद्गीतश्रवणैकाग्रा	१५	६६	तदादौ कुलविद्यानाम	१७	३
तद्रक्ष कल्याणपरं	२	५०	तमाधूतध्वजपटं व्यो	१२	८५
तद्योम्नि शतधा भिन्नं	१२	९८	तमापतन्तं नृपते	५	५०
तनुत्यजां वर्मभृतां	७	४८	तमार्यगृह्यं निगृहीत	२	३३
तनुलताविनिवेशित	९	५२	तमाहितौत्सुक्यमद	२	७३

	सर्गे	श्लोकः
तमीशः कामरूपाणा	४	८३
तमुद्वहन्तं पथि भोज	७	३५
तमुपाद्रवदुद्यम्य दक्षि	१५	२३
तमृषिः पूजयामास	१५	१२
तं पयोधरनिषिक्तच	१९	४५
तं पितुर्वधभवेन म	११	६७
तं प्रमत्तमपि न प्रभाव	१९	४८
तं प्राप्य सर्वावयवान	६	६९
तं प्रीतिविशदैर्नेत्रैरन्व	१७	३५
तं भावार्थं प्रसवसमया	१९	५७
तं भूपतिर्भासुरहे	५	३०
तया स्रजा मङ्गलपुष्प	६	८४
तया हीनं विधातर्मां	१	७०
तयोर्दिवस्पतेरासीदेकः	१७	७
तयोरपाङ्गप्रतिसारि	७	२३
तयोरुपान्तस्थितसिद्ध	३	५७
तयोर्जगृहतुः पादा	१	५७
तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रि	१४	२५
तयोश्चतुर्दशैकेन	१२	६
तयोस्तस्मिन्नवीभूत	१२	५६
तद्वल्गुना युगपदु	५	६८
तव निःश्वसितानुकारि	८	६४
तव मन्त्रकृतो मन्त्रै	१	६१
तवार्हतो नाभिगमे	५	११
तवाधरस्पर्धिषु विद्रु	१३	१३
तवोरुकीर्तिः श्वशुरः	१४	७४
तस्मात्पुरःसरविभीष	१३	६९
तस्मात्समुद्रादिव मध्य	१६	७९
तस्मादधः किंचिदिवाव	१८	४१
तस्मिन्कुलापीडनिभे	१८	२९
तस्मिन्क्षणे पालयितुः	२	६०
तस्मिन्गते द्यां सुकृतो	१८	२२
तस्मिन्गते विजयिनं	११	९२
तस्मिन्नभिद्योतितबन्धु	६	३६
तस्मिन्नवसरे देवाः	१०	५
तस्मिन्नात्मचतुर्भागे	१५	९६
तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रं	१२	२३
तस्मिन्प्रयाते परलोक	१८	१६
तस्मिन्रामशरोत्कृत्ते	१२	४९
तस्मिन्समावेशितचित्त	६	७०
तस्मिन्ह्रदः संहितमात्र	१६	७८
तस्मिन्विधानातिशये	६	११
तस्मै कुशलसंप्रश्न	१०	३४
तस्मै निशाचरैश्वर्यं	१२	६९
तस्मै विसृज्योत्तरकोस	१८	७
तस्मै सभ्याः सभार्याय	१	५५
तस्मै सम्यग्घुतो वह्नि	४	२५
तस्य कर्कशविहारसं	९	६८
तस्य कल्पितपुरस्क्रिया	११	५१
तस्य जातु मरुतः प्रती	११	५८
तस्य दाक्षिण्यरूढेन	१	३१
तस्य द्विपानां मदवारि	१६	३०
तस्य निर्दयरतिश्रमाल	१९	३२
तस्य पाण्डुवदनाल्पभू	१९	५०
तस्य पूर्वोदितां निन्दां	१५	५७
तस्य प्रभानिर्जितपुष्प	१७	३२

	सर्गे	श्लोकः		सर्गे	श्लोकः
तस्य प्रयातस्य वरूथि	१६	२८	तस्यावसाने हरिदश्वधा	१८	२३
तस्य प्रसह्य हृदयं कि	८	९३	तस्याः स रक्षार्थमनल्प	७	३६
तस्य मार्गवशादेका	१५	११	तस्याः स राज्योपपदं	१६	४०
तस्य संवृतमन्त्रस्य	१	२०	तस्यास्तथाविधनरेन्द्र	१९	५६
तस्य सन्मन्त्रपूताभिः	१७	१६	तस्याः स्पृष्टे मनुजपति	१६	८७
तस्य संस्तूयमानस्य च	१५	२७	तस्यैकनागस्य कपोल	५	४७
तस्य सावरणदृष्टसंधयः	१९	१६	तस्यैकस्योच्छ्रितं छत्रं	१७	३३
तस्य स्तनप्रणयिभिर्मु	९	५५	तस्यै प्रतिश्रुत्य रघुप्र	१४	२९
तस्य स्फुरति पौलस्त्यः	१२	९०	तस्यै भर्तुरभिज्ञानमङ्गु	१२	६२
तस्य वीक्ष्य ललितं वपुः	११	३८	तस्योत्सृष्टनिवासेषु	४	७६
तस्यां रघोः सूनुरुपस्थि	६	६८	तस्योदये चतुर्मूर्तेः	१०	७३
तस्याः खुरन्यासपवित्र	२	२	तस्योपकार्यारचितो	५	४१
तस्याधिकारपुरुषैः	५	६३	तस्यौघमहती मूर्ध्नि	१७	१४
तस्यानलौजास्तनयस्त	१८	५	तं स्वसा नागराज्यस्य	१७	६
तस्यानीकैर्विसर्पद्भि	४	५३	तां शिल्पिसंघाः प्रभुणा	१६	३८
तस्यान्मुच्ये यथा तात	१	७२	तां सैव वेत्रग्रहणे	६	२६
तस्यान्वये भूपतिरेष	६	४१	ता इङ्गुदीस्नेहकृतप्र	१४	८१
तस्यापनोदाय फलप्र	१४	३९	तात शुद्धा समक्षं नः स्नुषा	१५	७२
तस्यापरेष्वपि मृगेषु	९	५८	ता नराधिपसुता नृपा	११	५६
तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः	२	६८	तां तामवस्थां प्रतिपद्य	१३	५
तस्याः प्रतिद्वन्द्विभवाद्वि	७	६८	तां दृष्टिविषये भर्तुर्मु	१५	७९
तस्याः प्रकामं प्रियदर्शी	६	४४	तां देवतापित्रतिथि	२	१६
तस्याभवत्सूनुरुदार	१८	१७	तान्हत्वा गजकुलबद्ध	९	
तस्याभिषेकसंभारं	१२	४	तां प्रत्यभिव्यक्तमनोर	६	१२
तस्यामात्मानुरूपा	१	३३	ताभ्यस्तथाविधान्स्वप्ना	१०	६४
तस्यामेवास्य यामिन्यामन्त	१५	१३	ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै	१०	५८
तस्यायमन्तर्हितसौधभा	१३	४०	ताममृतस्तामरसान्त	६	३७
तस्यालमेषा क्षुधितस्य	२	३९	तामङ्कमारोप्य कृशाङ्ग	१४	२७

	सर्गं	श्लोकः
तामन्तिकन्यस्तबलि	२	२४
तामभ्यगच्छद्रुदितानु	१४	७०
तामर्पयामास च शोक	१४	८०
तामेकभार्यां परिवाद	१४	८६
तां पुण्यदर्शनां दृष्ट्वा	१	८६
ताम्बूलीनां दलैस्तत्र	४	४२
ताम्बूलवल्लीपरिणद्ध	६	६४
ताम्रपर्णीसमेतस्य	४	५०
ताम्रोदरेषु पतितं	५	७०
ता राघवं दृष्टिभिरापि	७	१२
तावत्प्रकीर्णाभिनवोप	७	४
तावुभावपि परस्पर	११	८२
तासां मुखैरासवगन्ध	७	११
तासु श्रिया राजपरम्प	६	५
ताः स्वचारित्रमुद्दिश्य	१५	७३
ताः स्वमङ्कमधिरोप्य दो	१९	४४
तिस्रस्त्रिलोकप्रथितेन	७	३३
तीरस्थली बर्हिभिरुत्क	१६	६४
तीर्थे तदीये गजसेतुब	१६	३३
तीर्थे तोयव्यतिकरभ	८	९५
तीव्रवेगधुतमार्गवृ	११	१६
ते चतुर्थसहितास्त्रयो	११	५५
ते च प्रापुरुदन्वन्तं	१०	६
तेजसः सपदि राशिरु	११	६३
ते तस्य कल्पयामा	१७	९
तेन कार्मुकनिषक्तमु	११	७०
तेन दूतिविदितं निषे	१९	१८
तेन द्विपानामिव पुण्ड	१८	८
तेन भूमिनिहितैकको	११	८१
तेन मन्त्रप्रयुक्तेन नि	१२	९९
तेनातपत्रामलमण्डले	१६	२७
तेनाभिघातरभसस्य	९	६१
तेनावरोधप्रमदास	१६	७१
तेनार्थवाँल्लोभपराङ्मु	१४	२३
तेनावतीर्य तुरगात्प्र	९	७६
तेनाष्टौ परिगमिताः	८	९२
तेनोत्तीर्य पथा लङ्कां	११	७१
तेनोरुवीर्येण पिता प्रजायै	१८	२
ते पुत्रयोर्नैर्ऋतशस्त्र	१४	४
ते प्रजानां प्रजानाथा	१०	८३
ते प्रीतमनसस्तस्मै या	१७	१८
ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे	१०	५६
ते रामाय वधोपायमा	१५	५
ते रेखाध्वजकुलिशा	४	८८
ते सेतुवार्तागजबन्धमु	१६	२
तेऽस्य मुक्तागुणोन्नद्धं	१७	२३
तेषां सदश्वभूयिष्ठा	४	७०
तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं	१०	८२
तेषां महार्हासनसंस्थि	६	६
तैः कृतप्रकृतिमुख्यसं	१९	५५
तैस्त्रयाणां शितैर्बाणैर्य	१२	४८
तैः शिवेषु वसतिर्गता	११	३३
तौ दंपती बहु विलप्य	९	७८
तौ निदेशकरणोद्यतौ	११	४
तौ पितुर्नयनजेन वारि	११	५
तौ प्रणामचलकाकपक्ष	११	३१

	सर्ग	श्लोकः
तौ बलातिबलयोः प्रभा	११	९
तौ समेत्य समये स्थिता	११	५३
तौ सरांसि रसवद्भिर	११	११
तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं	१२	५४
तौ सुकेतुसुतया खिली	११	१४
तौ स्नातकैर्बन्धुमता च	७	२८
तौ विदेहनगरीनिवासि	११	३६
त्यजत मानमलं बत	९	४७
त्यागाय संभृतार्थानां	१	७
त्याजितः फलमुत्खातै	४	३३
त्रस्तेन तार्क्ष्यात्किल कालिये	६	४९
त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य	८	६०
त्रिलोकनाथेन सदा म	३	४५
त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्य	१३	३७
त्रैलोक्यनाथप्रभवं प्र	१६	८१
त्वं रक्षसा भीरु यतोऽप	१३	२४
त्वचं स मेध्यां परिधाय	३	३१
त्वया पुरस्तादुपयाचि	१३	५३
त्वय्येवं चिन्त्यमानस्य	१	६४
त्वय्यावेशितचित्तानां	१०	२७
द		
दक्षिणेन पवनेन सं	१९	४३
दधतो मङ्गलक्षौमे वसा	१२	८
दयितां यदि तावदन्व	८	५०
दर्पणेषु परिभोगदर्शि	१९	२८
दशदिगन्तजिता रघु	९	५
दशरश्मिशतोपमद्यु	८	२९
दशाननकिरीटेभ्य	१०	७५

	सर्ग	श्लोकः
दिग्भ्यो निमन्त्रिताश्चैनम	१५	५९
दिने दिने शैवलवन्त्य	१६	४६
दिनेषु गच्छत्सु नितान्त	३	८
दिलीपसूनोः स बृह	३	५४
दिलीपानन्तरं राज्ये	४	२
दिवं मरुत्वानिव भो	३	४
दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः	३	१४
दिशि मन्दायते तेजो	४	४९
दिष्टान्तमाप्स्यति भवान	९	७९
दीर्घेष्वमी नियमिताः	५	७३
दुकूलवासाः स वधूस	७	१९
दुदोह गां स यज्ञाय	१	२६
दुरितं दर्शनेन घ्नंस्त	१७	७४
दुरितैरपि कर्तुमात्म	८	२
दुर्गाणि दुर्ग्रहाण्यासंस्त	१७	५२
दुर्जातबन्धुरयमृक्ष	१३	७२
दूरादयश्चक्रनिभस्य	१३	१५
दूरापवर्जितच्छत्रैस्तस्या	१७	७९
दूर्वायवाङ्कुरप्लक्षत्व	१७	१२
दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे	१२	१९
दृष्टदोषमपि तन्न	१९	४९
दृष्टसारमथ रुद्रका	११	४७
दृष्टा विचिन्वता तेन	१२	६१
दैत्यस्त्रीगण्डलेखानां	१०	१२
द्विषां विषह्य काकुत्स्थ	४	४१
द्वेष्योऽपि संमतः शिष्ट	१	२८

	सर्गे	श्लोकः
ध		
धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्र	२	११
धरायां तस्य संरम्भं	१५	८५
धर्मलोपभयाद्राज्ञी	१	७६
धातारं तपसा प्रीतं	१०	४३
धारास्वनोद्गारिदरीमु	१३	४७
धियः समग्रैः स गुणैरु	३	३०
धूमधूम्रो वसागन्धी	१५	१६
धूमादग्नेः शिखाः पश्चादु	१७	३४
धृतिरस्तमिता रतिश्यु	८	६६
ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते	८	४९
ध्वजपटं मदनस्य धनु	९	४५
न		
न किलानुययुस्तस्य	१	२७
न कृपणा प्रभवत्यपि	९	८
न केवलं गच्छति तस्य	१८	४९
न खरो न च भूयसा	८	९
न चावदद्भर्तुरवर्णं	१४	५७
न चोपलेभे पूर्वेषा	१०	२
न तस्य मण्डले राज्ञो	१७	४८
नदत्सु तूर्येष्वविभाव्य	७	३८
नदद्भिः स्निग्धगम्भीरं	१७	११
न धर्ममर्थकामाभ्यां ब	१७	५७
न नवः प्रभुरा फलोदया	८	२२
न पृथग्जनवच्छुचो व	८	९०
न प्रसेहे स रुद्धार्क	४	८२
न प्रहर्तुमलमस्मि निर्द	११	८४
नभश्चरैर्गीतयशाः स छे	१८	६
न मृगयाभिरतिर्न दु	९	७
न मेहिया शंसति कि	३	५
नमो विश्वसृजे पूर्वं	१०	१६
नयगुणोपचितामिव	९	२७
नयविद्भिर्नवे राज्ञि	४	१०
नरेन्द्रमूलायतनाद	३	३६
नवपल्लवसंस्तरेऽपि	८	५७
नवेन्दुना तन्नभसोपमे	१८	३७
न संयतस्तस्य बभूव	३	२०
नातिपर्याप्तमालक्ष्य म	१५	१८
नाभिप्ररूढाम्बुरुहास	१३	६
नाम राम इति तुल्यम	११	६८
नाम वल्लभजनस्य ते	१९	२४
नाम्भसां कमलशोभिनां	११	१२
निगृह्य शोकं स्वयमेव	१४	८५
निग्रहात्स्वसुराप्तानां व	१२	५२
निचिस्य चानन्यनिवृत्ति	१४	३५
नितम्बगुर्वी गुरुणा	७	२५
निद्रावशेन भवता	५	६७
निधानगर्भामिव सा	३	९
नियुज्य तं होमतुरंग	३	३८
निर्घातोग्रैः कुञ्जलीनाञ्जि	९	६४
निर्दिष्टां कुलपतिना स	१	९५
निर्दोषमभवत्सर्वं	१०	७२
निर्बन्धपृष्टः स जगाद	१४	३२
निर्बन्धसंजातरुषा	५	२१
निर्ययावथ पौलस्त्यः पु	१२	८३
निर्वर्त्यते यैर्नियमा	५	८

	सर्गे	श्लोकः
निर्वर्त्यैवं दशमुखशि	१५	१०३
निर्वाप्य प्रियसंदेशैः	१२	६३
निर्विष्टविषयस्नेहः स	१२	१
निर्वृत्तजाम्बूनदपट्ट	१८	४४
निवृष्टलघुभिर्मेघै	४	१५
निवर्त्य राजा दयितां	२	३
निववृते स महार्णव	९	१४
निवातपद्मस्तिमिते	३	१७
निविष्टमुदधेः कूले तं	१२	६८
निवेश्य वामं भुजमास	६	१६
निशम्य देवानुचर	२	५२
निशाचरोपप्लुतभर्तृका	१४	६४
निशासु भास्वत्कलनूपु	१६	१२
निःशेषविक्षालितधा	५	४४
निसर्गभिन्नास्पदमेक	६	२९
नीपान्वयः पार्थिव एष	६	४६
नीवारपाकादि कडंग	५	९
नूनं मत्तः परं वंश्याः	१	६६
नृत्यं मयूराः कुसुमानि	१४	६९
नृपतिः प्रकृतीरवेक्षि	८	१८
नृपतेः प्रतिषिद्धमेव	९	७४
नृपतेर्व्यजनादिभिस्त	८	४०
नृपं तमावर्तमनोज्ञ	६	५२
नृपस्य वर्णाश्रमपाल	१४	६७
नेत्रव्रजाः पौरजनस्य	६	७
नेपथ्यदर्शिनश्छाया त	१७	२६
नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रव	११	२१
न्यस्ताक्षरामक्षरभूमि	१८	४६
प		
पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्त	१३	७
पञ्चमं लोकपालानामूचुः	१७	७८
पञ्चवट्यां ततो रामः	१२	३१
पञ्चानामपि भूतानां	४	११
पणबन्धमुखान्गुणान	८	२१
पतिरङ्कनिषण्णाय	८	४२
पत्तिः पदातिं रथिनं	७	३७
पयोघटैराश्रमबाल	१४	७८
पयोधरैः पुण्यजनाङ्ग	१३	६०
परकर्मापहः सोऽभूद	१७	६१
परस्पराक्षिसादृश्य	१	४०
परस्पराभ्युक्षणतत्प	१६	५७
परस्पराविरुद्धास्ते	१०	८०
परस्परेण क्षतयोः	७	५३
परस्परेण विज्ञात	४	७९
परस्परेण स्पृहणीय	७	१४
परात्मनोः परिच्छिद्य	१७	५९
पराभिसंधानपरं यद्य	१७	७६
परार्घ्यवर्णास्तरणोप	६	४
परिकल्पितसांनिध्या	४	६
परिचयं चललक्ष्य	९	४९
परेण भग्नेऽपि	७	५५
परेषु स्वेषु च क्षिप्तैर	१७	५१
पर्णशालामथ क्षिप्रं	१२	४०
पर्यन्तसंचारितचा	१८	४३
पवनस्यानुकूलत्वा	१	४२

	सर्गे	श्लोकः
पश्चावरोधैः शतशो	१६	५८
पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्ब	६	६०
पात्रीकृतात्मा गुरुसेव	१८	३०
पादपाविद्धपरिघः	१२	७३
पारसीकांस्ततो जेतु	४	६०
पार्थिवीमुदवहद्रघु	११	५४
पिता पितॄणामनृणस्तम	१८	२६
पिता समाराधनतत्परे	१८	११
पितुः प्रयत्नात्स समग्र	३	२२
पितुरनन्तरमुत्तर	९	१
पितुर्नियोगाद्वनवास	१४	२१
पित्रा दत्तां रुदन्रामः	१२	७
पित्रा विसृष्टां मदपेक्ष	१३	६७
पित्रा संवर्धितो नित्यं	१७	६२
पित्र्यमंशमुपवीतल	११	६४
पुण्डरीकातपत्रस्तं	४	१७
पुत्रजन्मप्रवेश्यानां	१०	७६
पुत्रो रघुस्तस्य पदं	६	७६
पुरंदरश्रीः पुरमु	२	७४
पुरं निषादाधिपते	१३	५९
पुरस्कृता वर्त्मनि	२	२०
पुराणस्य कवेस्तस्य	१०	३६
पुरा शक्रमुपस्थाय	१	७५
पुरा स दर्भाङ्कुरमात्र	१३	३९
पुरुषस्य पदेष्वजन्म	८	७८
पुरुषायुषजीविन्यो	१	६३
पुरुहूतध्वजस्येव	४	३
पुरुहूतप्रभृतयः	१०	४९
पुरोपकण्ठोपवना	६	९
पुरोहितपुरोगास्तं जिष्णुं	१७	१३
पुष्पं फलं चार्तवमाह	१४	७७
पूर्वजन्मधनुषा समा	११	८०
पूर्वं प्रहर्ता न जघान	७	४७
पूर्ववृत्तकथितैः पुरा	११	१०
पूर्वस्तयोरात्मसमे	१८	१२
पूर्वानुभूतं स्मरता च	१३	२८
पृक्तस्तुषारैर्गिरिनि	२	१३
पृथिवीं शासतस्तस्य	१०	१
पृष्ठनामान्वयो राज्ञा स	१५	५०
पौत्रः कुशस्यापि कुशेश	१८	४
पौरस्त्यानेवमाक्रामं	४	३४
पौरेषु सोऽहं बहुलीभव	१४	३८
प्रजानामेव भूत्यर्थं	१	१८
प्रजानां विनयाधा	१	२४
प्रजावती दोहदशंसि	१४	४५
प्रजास्तद्गुरुणा नद्यो	१७	४१
प्रणिपत्य सुरास्तस्मै	१०	१५
प्रतापोऽग्रे ततः शब्दः	४	३०
प्रतिकृतिरचनाभ्यो	१८	५३
प्रतिजग्राह कालिङ्गस्त	४	४०
प्रतिप्रयातेषु तपोध	१४	१९
प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्ते	१५	४
प्रतियोजयितव्यवल्ल	८	४१
प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो	१०	२८
प्रत्यपद्यत चिराय	११	३४
प्रत्यपद्यत तथेति	११	८८

	सर्गे	श्लोकः
प्रत्यब्रवीच्चैनमिषु	२	४२
प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामा	१२	६४
प्रत्युवाच तमृषिर्न त	११	८५
प्रत्युवाच तमृषिर्निश	११	४१
प्रथमपरिगतार्थस्तं	७	७१
प्रथममन्यभृताभिरु	९	३४
प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृ	७	२४
प्रदक्षिणीकृत्य पय	२	२१
प्रदक्षिणीकृत्य हुतं	२	७१
प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं	१०	९
प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं	१०	१०
प्रभावस्तम्भितच्छायमा	१२	२१
प्रमदामनुसंस्थितः	८	७२
प्रमन्यवः प्रागपि कोस	७	३४
प्रमुदितवरपक्षमेक	६	८६
प्रययावातिथेयेषु	१२	२५
प्रलोभिताप्याकृतिलोभ	६	५८
प्रवृत्तमात्रेण पयांसि	१३	१४
प्रवृत्तावुपलब्धायां	१२	६०
प्रवृद्धतापो दिवसोऽति	१६	४५
प्रवृद्धौ हीयते चन्द्रः स	१७	७१
प्रवेश्य चैनं पुरम	५	६२
प्रशमस्थितपूर्वपार्थि	८	१५
प्रसन्नमुखरागं तं स्मित	१७	३१
प्रसवैः सप्तपर्णानां	४	२३
प्रससादोदयादम्भः	४	२१
प्रसादसुमुखे तस्मिंश्च	४	१८
प्रसादाभिमुखे तस्मिंश्च	१७	४६
प्रसाधिकालम्बितमग्र	७	७
प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः	१	८९
प्रहारमूर्च्छापगमे	७	४४
प्राजापत्योपनीतं	१०	५२
प्रातः प्रयाणाभिमुखाय	५	२९
प्रातरेत्य परिभोगशोभि	१९	२१
प्रातर्यथोक्तव्रतपा	२	७०
प्राप्तानुगः सपदि शास	९	८२
प्राप्य चाशु जनस्थानं	१२	४२
प्रायः प्रतापभग्नत्वाद	१७	७०
प्रायो विषाणपरिमोक्ष	९	६२
प्रासादकालागुरुधूम	१४	१२
प्राह्णिणोच्च महितं महा	११	४९
प्रियतमाभिरसौ तिमु	९	१८
प्रियंवदात्प्राप्तमसौ	७	६१
प्रियानुरागस्य मनः स	३	१०
प्रेक्ष्य दर्पणतलस्थ ना	१९	३०
प्रेमगर्वितविपक्षमत्स	१९	२०
फलमस्योपहासस्य	१२	३७
ब		
बन्धच्छेदं स बद्धानां	१७	१९
बभूव रामः सहसा स	१४	८४
बभौ तमनुगच्छन्ती वि	१२	२६
बभौ भूयः कुमारत्वादा	१७	३०
बभौ सदशनज्योत्स्ना	१०	३७
बलमार्तभयोपशान्त	८	३१
बलिक्रियावर्जितसैकता	१६	२१
बलैरध्युषितस्तस्य	४	४६
बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः	१०	२६

	सर्गे	श्लोकः
बाढमेष दिवसेषु	१९	५२
बाणभिन्नहृदया निपे	११	१९
बालार्कप्रतिमेवाप्सु	१२	१००
बाहुप्रतिष्टम्भविवृ	२	३२
बाहुभिर्विटपाकारै	१०	११
बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकु	११	७४
बिभ्रत्या कौस्तुभन्यासं	१०	६२
ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य	५	३६
भ		
भक्तिः प्रतीक्ष्येषु कुलो	५	१४
भक्त्या गुरौ मय्यनुक	२	६३
भगवन्परवानयं जनः	८	८१
भज्यमानमतिमात्रक	११	४६
भयोत्सृष्टविभूषाणां	४	५४
भरतस्तत्र गन्धर्वान्यु	१५	८८
भर्तापि तावत्क्रथकैशि	७	३२
भर्तुः प्रणाशादथ शोच	१४	१
भल्लापवर्जितैस्तेषां	४	६३
भवति विरलभक्ति	५	७४
भवानपीदं परवा	२	५६
भव्यमुख्याः समारम्भाः	१७	५३
भस्मसात्कृतवतः पितृ	११	८६
भास्करश्च दिशमध्युवा	११	६१
भीमकान्तैर्नृपगुणैः	१	१६
भुजमूर्धोरुबाहुल्यादे	१२	८८
भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी	१	८४
भूतानुकम्पा तव	२	४८
भूयस्ततो रघुपतिर्वि	१३	७६
भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वा	१५	३७
भूर्जेषु मर्मरीभूताः	४	७३
भोगिभोगासनासीनं	१०	७
भोगिवेष्टनमार्गेषु	४	४८
भ्रमरैः कुसुमानुसारि	८	३५
भ्रूभेदमात्रेण पदान्म	१३	३६
म		
मखांशभाजां प्रथमो	३	४४
मणौ महानील इति प्रभा	१८	४२
मतङ्गशापादवलेप	५	५३
मत्तेभरदनोत्कीर्ण	४	५९
मत्परं दुर्लभं मत्वा	१	६६
मत्स्यध्वजा वायुवशाद्वि	७	४०
मदिराक्षि मदाननार्पि	८	६८
मदोदग्राः ककुद्मन्तः	४	२२
मनसापि न विप्रियं मया	८	५२
मनुप्रभृतिभिर्मान्यै	४	७
मनुष्यवाह्यं चतुरस्र	६	१०
मनोभिरामाः शृण्वन्तो	१	३९
मनोज्ञगन्धं सहकार	१६	५२
मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य	१७	५०
मन्दः कवियशःप्रार्थी	१	३
मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन	४	९
मयि तस्य सुवृत्त वर्त	८	७७
मरणं प्रकृतिः शरीरिणां	८	८७
मरुतां पश्यतां तस्य	१४	१०१
मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्स	२	१०
मरुपृष्ठान्युदम्भांसि	४	३१

	सर्गे	श्लोकः
मर्मरैरगुरुधूपगन्धि	१९	४१
महार्हसिंहासनसंस्थितो	७	१८
महिमानं यदुत्कीर्त्य	१०	३२
महीं महेच्छः परिकीर्य	१८	३३
महेन्द्रमास्थाय महोक्ष	६	७२
महोक्षतां वत्सतरः	३	३२
मातंगनक्रैः सहसोत्प	१३	११
मातलिस्तस्य माहेन्द्रमा	१२	८६
मातृवर्गचरणस्पृशौ	११	७
मान्यः स मे स्थावर	२	४४
मा भूदाश्रमपीडेति	१	३७
मार्गैषिणी सा कटकान्त	१६	३१
मित्रकृत्यमपदिश्य	१९	३१
मिथुनं परिकल्पितं त्वया	८	६१
मुक्तशेषविरोधेन	१०	१३
मुखार्पणेषु प्रकृतिप्र	१३	९
मुखावयवलूनां तां नै	१२	४३
मुरलामारुतोद्धूत	४	५५
मृगवनोपगमक्षम	९	५०
मृगयश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्य	१३	२५
मैथिलः सपदि सत्यसं	११	४८
मैथिलस्य धनुरन्यपा	११	७२
मोक्ष्यध्वे स्वर्गबन्दीनां	१०	४७
य		
यः कश्चन रघूणां हि	१५	७
यश्चकार विवरं शिला	११	१८
यतिपार्थिवलिङ्गधारि	८	१६
यत्कुम्भयोनेरधिगम्य	१६	७२
यत्र लमसहकारमा	१९	४६
यथा च वृत्तान्तमिमं स	३	६६
यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः	४	१२
यथाविधिहुताग्नीनां	१	६
यदात्थ राजन्यकुमार तं	३	४८
यदुवाच न तन्मिथ्या	१७	४२
यद्रोप्रतरकल्पोऽभूत्सं	१५	१०१
यन्ता हरेः सपदि संहृ	१२	१०३
यत्रप्रवाहैः शिशिरैः	१६	४९
यमात्मनः सद्मनि संनि	६	५६
यवनीमुखपद्मानां	४	६१
यशोभिराब्रह्मसमं	१८	२८
यः सुबाहुरिति राक्षसो	११	२९
यस्मिन्महीं शासति वाणि	६	७५
यस्यात्मगेहे नयनाभि	६	४७
यस्यावरोधस्तनचन्द	६	४८
यां सैकतोत्सङ्गसुखोचि	१३	६२
यासौ राज्यप्रकाशाभिर्व	१५	२९
यावत्प्रतापनिधिरा	५	७१
यावदादिशति पार्थिव	११	३
यावन्नाश्यायते वेदिरभि	१७	३७
युधाजितश्च संदेशात्स	१५	८७
युवा युगव्यायतबाहु	३	३४
यूपवत्यवसिते क्रिया	११	३७
येन रोषपरुषात्मनः	११	६५
योगनिद्रान्तविशदैः	१०	१४

	सर्गे	श्लोकः
योषितामुडुपतेरिवा	१९	३४
यौवनोन्नतविलासिनी	१९	९
र		
रक्षसा मृगरूपेण व	१२	५३
रक्षोवधान्तो न च मे प्र	१४	४१
रघुनाथोऽप्यगस्त्येन	१५	५४
रघुपतिरपि जातवे	१२	१०४
रघुमेव निवृत्तयौव	८	५
रघुरश्रुमुखस्य तस्य	८	१३
रघुर्भृशं वक्षसि तेन	३	६१
रघुवंशप्रदीपेन	१०	६८
रघूणामन्वयं वक्ष्ये	१	९
रघोरवष्टम्भमयेन	३	५३
रजःकणैः खुरोद्धूतैः	१	८५
रजोभिः स्यन्दनोद्धूतै	४	२९
रणः प्रववृते तत्र भीमः	१२	७२
रतिस्मरौ नूनमिमाव	७	१५
रतेर्गृहीतानुनयेन	६	२
रथाङ्गनाम्नोरिव भाव	३	२४
रथास्स यन्त्रा निगृहीत	१४	५२
रथी निषङ्गी कवची	७	५६
रथो रथाङ्गध्वनिना	७	४१
रसातलादादिभवेन	१३	८
रसान्तराण्येकरसं	१०	१७
राघवान्वितमुपस्थितं	११	३५
राघवास्त्रविदीर्णानां	१२	५१
राघवोऽपि चरणौ तपो	११	८९
राघवो रथमप्राप्तां ना	१२	९६

	सर्गे	श्लोकः
राजन्प्रजासु ते कश्चिद	१५	४७
राजर्षिवंशस्य रविप्रसू	१४	३७
राजसत्वमवधूय मातृ	११	९०
रामापि तद्वियोगार्तः	१२	१०
राज्ञावनाविष्कृतदीपभा	१६	२०
रात्रिंदिवविभागेषु	१७	४९
रात्रिर्गता मतिमतां	५	६६
राम इत्यभिरामेण	१०	६७
रामं पदातिमालोक्य	१२	८४
राममन्मथशरेण ता	११	२०
रामस्त्वासन्नदेशत्वाद्भ	१२	२४
रामस्य मधुरं वृत्तं	१५	३४
रामाज्ञया हरिचमूपत	१३	७४
रामादेशादनुगता सेना	१५	९
रामोऽपि सह वैदेह्या	१२	२०
रावणस्यापि रामास्तो	१२	९१
रावणावग्रहक्लान्त	१०	४८
रावणावरजा तत्र राघ	१२	३२
रुदता कुत एव सा	८	८५
रूपं तदोजस्वि तदे	५	३७
रूपे शीले च माधुर्ये	१५	६५
रेखामात्रमपि	१	१७
ल		
लक्ष्मणः प्रथमं श्रुत्वा को	१२	३९
लक्ष्मणानुचरमेव	११	६
लक्ष्यते स्म तदनन्तरं	११	५९
लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य	९	५७
लङ्केश्वरप्रणतिभङ्ग	१३	७८

	सर्गे	श्लोकः
लताप्रतानोद्ग्रथितैः	२	८
लब्धपालनविधौ न	१९	३
लब्धप्रशमनस्वस्थ	४	१४
लब्धान्तरा सावरणेऽपि	१६	७
ललाटोदयमाभुग्नं	१	८३
ललितविभ्रमबन्धवि	९	३६
लवणेन विलुप्तेज्यास्ता	१५	२
लिङ्गैर्मुदः संवृतविक्रि	७	३०
लोकान्तरसुखं पुण्यं	१	६९
लोकेन भावी पितुरेव	१८	३८
लौल्यमेत्य गृहिणी परि	१९	१९
व		
वज्रांशुत्थाय तरसा	४	३६
वचसैव तयोर्वाक्यम	१२	९२
वत्सस्य होमार्थविधे	२	६६
वत्सोत्सुकापि स्तिमि	२	२२
वधनिर्धूतशापस्य	१२	५७
वधूर्भक्तिमती चैना	१	९०
वनान्तराद्रुपावृत्तैः	१	४९
वनेषु सायंतनमल्लि	१६	४७
वन्यवृत्तिरिमां शश्व	१	८८
वपुषा करणोज्झितेन	८	३८
वयसां पङ्क्तयः पेतुर्ह	१५	२५
वयोरूपविभूतीनामे	१७	४३
वयोवेषविसंवादिरा	१५	६७
वर्णोदकैः काञ्चनशृङ्ग	१६	७०
वंशस्थितिं वंशकरेण	१८	३१
वसिष्ठधेनोरनुया	२	१९
वसिष्ठमन्त्रोक्षणजा	५	२७
वशी विवेश चायोध्यां	१५	३८
वशी सुतस्तस्य वशंव	१८	१३
वसन्स तस्यां वसतौ	१६	४२
वसिष्ठस्य गुरोर्मन्त्राः सा	१७	३८
वसौकसारामभिभूय	१६	१०
वागर्थाविव संपृक्तौ	१	१
वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ	१५	८१
वाचयमत्वात्प्रणतिं	१३	४४
वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स	१४	६१
वापीष्विव स्रवन्तीषु	१७	६४
वामनाश्रमपदं ततः	११	२२
वामेतरस्तस्य करः	२	३१
वार्षिकं संजहारेन्द्रो	४	१६
विक्रमव्यतिहारेण सामा	१२	९३
विग्रहाच्च शयने पराङ्मु	१९	३८
वितानसहितं तत्र भेजे	१७	२८
विधितं तप्यमानं च	१०	३९
विद्धि चात्तबलमोजसा	११	७६
विद्वानपि तयोर्द्वास्थः	१५	९४
विधेरधिकसंभारस्ततः	१५	६२
विधेः सायन्तनस्यान्ते	१	५६
विनयन्ते स्म तद्योधा	४	६५
विनाशात्तस्य वृक्षस्य	१५	२१
विनीताध्वश्रमांस्त	४	६७
विन्ध्यस्य संस्तम्भयिताम	६	६१
विप्रोषितकुमारं तद्राज्य	१२	११
विभक्तात्मा विभुस्तासा	१०	६५

	सर्गे	श्लोकः
विभवेऽपि सति त्वया	६	६९
विभावसुः सारथिनेव	३	३७
विभूषणप्रत्युपहारहृ	१६	८०
विरक्तसंध्याकपिशं	१३	६४
विरचिता मधुनोपव	९	२९
विलपन्निति कोसलाधि	८	७०
विललाप स बाष्पगद्ग	८	४३
विलासिनीविभ्रमदन्त	६	१७
विलुप्तमन्तःपुरसुन्द	१६	५९
विलोचनं दक्षिणमञ्ज	७	८
विशश्रमुर्नमेरूणां	४	७४
विशीर्णतल्पाट्टशतो नि	१६	११
विषादलुप्तप्रतिपत्ति	३	४०
विसृष्टपार्श्वानुचरस्य	२	९
विस्रस्तमंसादपरो वि	६	१४
वीक्ष्य वेदिमथ रक्तवि	११	२५
वीचिलोलभुजयोस्तयो	११	८
वीरासनैर्ध्यानजुषामृ	१३	५२
वृक्षेशयायष्टिनिवासभ	१६	१४
वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः	१५	६४
वृन्ताच्छ्लथं हरति	५	६९
वेणुना दशनपीडिताध	१९	३५
वेलानिलः केतकरेणु	१३	१६
वेलानिलाय प्रसृताभु	१३	१२
वेश्मानि रामः परिबर्ह	१४	१५
वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कु	६	३
वैदेहि पश्यामलयाद्वि	१३	२
वैमानिकाः पुण्यकृत	१०	४६

	सर्गे	श्लोकः
वैवस्वतो मनुर्नाम	१	११
व्याघ्रानभीरभिमुखोत्प	९	६३
व्यादिदेश गणशोऽथ	११	४३
व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः	१	१३
व्यूहावुभौ तावितरेत	७	५४
व्यूह्य स्थितः किंचिदिवोत्त	१८	५१
व्योमपश्चिमकला स्थिते	१९	५१
व्रणगुरुप्रमदाधर	९	३२
व्रताय तेनानुचरेण	२	४
श		
शक्येष्वेवाभवद्यात्रा	१७	५६
शङ्खस्वनाभिज्ञतया	७	६४
शतैस्तमक्ष्णामनिमेष	३	४३
शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः	१५	३६
शब्दादि निर्विश्य सुखं	१८	३
शब्दादीन्विषयान्भोक्तुं	१०	२५
शमितपक्षबलः शत	९	१२
शय्यागतेन रामेण	१०	६९
शय्यां जहत्युभयप	५	७२
शरीरमात्रेण नरेन्द्र	५	१५
शरीरसादादसमग्र	३	२
शरैरुत्सवसंकेता	४	७८
शशंस तुल्यसत्त्वानां	४	७९
शशाम वृष्ट्यापि वि	२	१४
शशिनमुपगतेयं कौ	६	८५
शशिनं पुनरेति शर्वरी	८	५६
शापोऽप्यदृष्टतनयान	९	८०
शिरीषपुष्पाधिकसौकु	१८	४५

	सर्ग	श्लोकः
शिलीमुखोत्कृत्तशिरः	७	४९
शुशुभिरे स्मितचारु	९	३७
शुशुभे तेन चाक्रान्तं	१७	२९
शैलोपमः शैवलम	५	४६
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां	१	८
शोचनीयासि वसुधे या	१५	४३
श्मश्रुप्रवृद्धिजनिता न	१३	७१
श्येनपक्षपरिधूसरा	११	६०
श्रियः पद्मनिषण्णायाः	१०	८
श्रुतदेहविसर्जनः	८	२५
श्रुतस्य यायादयमन्त	३	२१
श्रुतिमुखभ्रमरस्वन	९	३५
श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं	१२	१३
श्रुत्वा तस्य शुचो हेतुं गो	१५	४४
श्रुत्वा रामः प्रियोदन्तं मे	१२	६६
श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भि	१	४१
श्रोत्राभिराममध्वनि	२	७२
श्लाघ्यस्त्यागोऽपि वै	१५	६१
श्वगणिवागुरिकैः प्रथ	९	५३
श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण	१४	६०
श्वश्रूजनानुष्ठितचारु	१४	१३

स

	सर्ग	श्लोकः
स एवमुक्त्वा मघवन्त	३	५२
स कदाचिदवेक्षित	८	३२
स किंवदन्तीं वदतां	१४	३१
स किल संयुगमूर्ध्नि स	९	१९
स किलाश्रममन्त्यमाश्रि	८	१४
स कीचकैर्मारुतपूर्ण	२	१२
स कुलोचितमिन्द्रस्य सा	१७	५
स क्षेमधन्वानममोघ	१८	९
सखा दशरथस्यापि	१५	३१
स गत्वा सरयूतीरं देहत्या	१५	९५
स गुणानां बलानां च	१७	६७
स गुप्तमूलप्रत्यन्तः	४	२६
संगमाय निशि गूढचारि	१९	३३
सङ्ग्रामनिर्विष्टसहस्र	६	३८
सङ्ग्रामस्तुमुलस्तस्य	४	६२
स चतुर्धा बभौ व्यस्तः	१०	८४
स च प्राप मधूपघ्नं कुम्भी	१५	१५
स चानुनीतः प्रणते	५	५४
स चापकोटी निहितैक	७	६६
स चापमुत्सृज्य विवृद्ध	३	६०
संचारपूतानि दिगन्त	२	१५
संचारिणी दीपशिखेव	६	६७
स च्छिन्नबन्धद्रुतयु	५	४९
स च्छिन्नमूलः क्षतजेन	७	४३
स जहार तयोर्मध्ये	१२	२९
स जातकर्मण्यखिले	३	१८
स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ	१५	८९
स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञ	६	१
स तथेति विनेतुरुदा	८	९१
स तद्वक्त्रं हिमक्लिष्टकि	[illegible]५	५२
स तपःप्रतिबन्धमन्यु	८	८०
संतानकमयी वृष्टि	१०	७७
संतानकामाय तथे	२	६५

	सर्गे	श्लोकः		सर्गे	श्लोकः
संतानश्रवणाद्भ्रातुः सौमि	१९	१४	स नौ विमानादवतीर्य	१६	६८
संतानार्थाय विधये	१	३४	सन्तस्तस्याभिगमनाद्	१७	७२
स तावदभिषेकान्ते	१७	१७	स न्यस्तचिह्नामपि	२	७
स तावाख्याय रामाय	१५	७१	स परार्ध्यगतेरशोच्य	८	२७
स तीरभूमौ विहितोप	१६	५५	स पल्वलोत्तीर्णवराह	२	१७
स तीर्त्वा कपिशां सैन्यै	४	३८	स पाटलायां गवि	२	२९
स तेजो वैष्णवं पत्न्यो	१०	५४	स पितुः पितृमान्वंशमा	१७	२
स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भ	१५	३२	स पुरं पुरुहूतश्रीः कल्प	१७	३२
सन्नान्ते सचिवसखः	४	८७	स पूर्वजन्मान्तरदृष्ट	१८	५०
सत्यामपि तपःसिद्धौ	१	९४	स पूर्वजानां कपिलेन	१६	३४
स त्वं निवर्तस्व विहाय	२	४०	स पूर्वतः पर्वतपक्षशा	३	४२
स त्वनेकवनितासखो	१९	५३	स पृष्टः सर्वतो वार्तमा	१५	४१
स त्वं प्रशस्ते महिते	५	२५	स पौरकार्याणि समीक्ष्य	१४	२४
स त्वं मदीयेन शरीर	२	४५	सप्तच्छदक्षीरकटु	५	४८
संदष्टवस्त्रेष्वबलानि	१६	६५	सप्तसामोपगीतं त्वां	१०	२१
स दक्षिणं तूणमुखेन	७	५७	स प्रतस्थेऽरिनाशाय	१२	६७
स ददर्श सभामध्ये स	१५	३९	स प्रतापं महेन्द्रस्य	४	३९
सदयं बुभुजे महाभु	८	७	स प्राप हृदयन्यस्तमणि	१२	६५
स दुष्प्रापयशाः प्राप	१	४८	स बभूव दुरासदः	८	४
स धर्मस्थ सखः शश्वद्	१७	३९	संबन्धमाभाषणपूर्व	२	५८
स धातुभेदारुणयानने	१६	३२	सभाजनायोपगतान्स	१४	१८
संध्याभ्रकपिशस्तस्य वि	१२	२८	संभाव्य भर्तारममुं	६	५०
स नन्दिनीस्तन्यमनि	२	६९	संमोचितः सत्त्ववता	५	५६
स नर्मदारोधसि	५	४२	संमोहनं नाम सखे	५	५७
स नादं मेघनादस्य	१२	७९	सम्यग्विनीतमथ वर्म	८	९४
स निर्विश्य यथाकामं	४	५१	समतया वसुवृष्टिवि	९	६
स निवेश्य कुशावत्यां	१५	९७	समदुःखसुखः सखीज	८	६५
स नैषधस्यार्थपतेः सुता	१८	१			

	सर्गे	श्लोकः		सर्गे	श्लोकः
सममापन्नसत्त्वास्ता	१०	५९	स ललितकुसुमप्रवाल	९	७०
सममेव समाक्रान्तं	४	४	स विभुर्विबुधांशेषु	१५	१०२
समानेऽपि हि सौभ्रात्रे	१०	८१	स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा	५	५१
समाप्तविद्येन मया	५	२०	स विवेश पुरीं तया	८	७४
स मारुतिसमानीतमहौ	१२	७८	स विश्वजितमाजह्रे	४	८६
समुद्रपत्न्योर्जलसंनि	१३	५८	स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा	१२	१८
स मुहूर्तं क्षमस्वेति	१५	४५	स वृत्तचूलश्चलकाक	३	२८
स मृण्मये वीतहिर	५	२	स वेलावप्रवलया	१	३०
स मौलरक्षोहरिभिः स	१४	१०	स शापो न त्वया राज	१	७८
स ययौ प्रथमं प्राचीं	४	२८	स शुश्रुवान्मातरि भार्ग	१४	४६
संरम्भं मैथिलीहासः	१५	३६	सशोणितैस्तेन शिलीमु	७	३५
सरलासक्तमातङ्ग	४	७५	ससञ्जरश्वक्षुण्णानां	४	४७
सरसीष्वरविन्दानां	१	४३	स संनिपात्यावरजान्ह	१४	३६
स राजककुदव्यग्रपाणि	१७	२७	स सत्त्वमादाय नदीमु	१३	१०
स राजलोकः कृतपर्व	७	३१	स सीतालक्ष्मणसखः स	१२	९
स राज्यं गुरुणा दत्तं	४	१	स सेतुं बन्धयामास	१२	७०
स रावणहृतां ताभ्यां	१२	५५	स सेनां महतीं कर्षन्पू	४	३२
सरितः कुर्वती गाधाः	४	२४	स सैन्यपरिभोगेण	४	४५
सरित्समुद्रान्सरसीश्च	१४	८	ससैन्यश्चान्वगाद्रामं	१२	१४
संरुद्धचेष्टस्य मृगे	२	४३	स स्वयं चरणरागमा	१९	२६
सरोषदष्टाधिकलोहि	७	५८	स स्वयं प्रहतपुष्करः	१९	१४
सर्पस्येव शिरोरत्नं ना	१७	६३	संहारविक्षेपलघु	५	४५
सर्वज्ञस्त्वमविज्ञात	१०	२०	स हत्वा कवणं वीरस्त	१५	२६
सर्वत्र नो वार्तमवेहि	५	१३	स हत्वा वालिनं वीरस्त	१२	५८
सर्वातिरिक्तसारेण	१	१४	स हि प्रथमजे तस्मिन्न	१२	१६
सर्वासु मातृष्वपि वत्स	१४	२२	स हि सर्वस्य लोकस्य	४	८
सर्वैर्बलाङ्गैर्द्विरदप्र	७	५९	सा किलाश्वासिता चण्डी	१२	५
स लक्ष्मणं लक्ष्मणपूर्व	१४	४४	सा केतुमालोपवना	१६	२६

	सर्गः	श्लोकः
साङ्गं च वेदमध्याप्य किं	१५	१३
सा चूर्णगौरं रघुनन्दन	६	८३
सातिरेकमदकारणं	१९	१२
सा तीरसोपानपथाव	१६	५६
सा दुष्टनीवारबलीनि	१४	२८
सा दुर्निमित्तोपगताद्वि	१४	५०
सा दुष्प्रधर्षा मनसा	२	२७
साधयाम्यहमविघ्न	११	९१
सांनिध्ययोगात्किल तत्र	७	३
सानीयमाना रुचिरान्प्र	१४	४८
सानुप्लवः प्रभुरपि	१३	७५
सा पौरान्पौरकान्तस्य	१२	३
सा बाणवर्षिणं रामं यो	१२	५०
सा मंदुरा संश्रयिभिस्तु	१६	४१
सा यूनि तस्मिन्नभिलाष	६	८१
सा लुप्तसंज्ञा न विवेद	१४	५६
सा वक्रनखधारिण्या	१२	४१
सा शूरसेनाधिपतिं सु	६	४५
सा साधुसाधारणपार्थिव	१६	५
सा सीतामङ्कमारोप्य	१५	८४
सा सीतासंनिधावेव तं	१२	३३
साहं तपः सूर्यनिविष्ट	१४	६६
सा हि प्रणयवत्यासी	१०	५७
सीता तमुत्थाप्य जगाद	१४	५९
सीतां हित्वा दशमुखरि	१४	८७
सुखश्रवा मङ्गलतूर्य	३	१९
सुतां तदीयां सुरभेः	१	८१
सुते शिशावेव सुदर्शना	१८	२५

	सर्गः	श्लोकः
सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ	१०	७१
सुरगज इव दन्तैर्भ	१०	८६
सुरतश्रमसंभृतो	८	५१
सुरेन्द्रमात्राश्रितगर्भ	३	११
सुवदनावदनासव	९	३०
सेकान्ते मुनिकन्याभिः	१	५१
सेनानिवेशान्पृथिवीक्षि	७	२
सेनापरिच्छदस्तस्य	१	१९
सेयं मदीया जननीव	१३	६३
सेयं स्वदेहार्पणनि	२	५५
सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः	१	३८
सैकतं च सरयूं विवृ	१९	४०
सैषा स्थली यत्र विचिन्व	१३	२३
सोऽधिकारमभिकः	१९	४
सोऽपश्यत्प्रणिधानेन	१	७४
सोपानमार्गेषु च येषु	१६	१५
सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथः प	७	६०
सोऽस्त्रमुग्रजवमस्त्रको	११	२८
सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा	१०	४४
सोऽहं सपर्याविधिभा	५	२२
सोऽहमाजन्मशुद्धा	१	५
सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा	१	६८
सौमित्रिणा तदनु संस	१२	७३
सौमित्रिणा सावरजेन	१४	११
सौमित्रेर्निशितैर्बाणैर	१५	२०
स्तम्भेषु योषित्प्रतिया	१६	१७
स्तूयमानः क्षणे तस्मि	१७	१५
स्तूयमानः स जिह्माय स्तु	१७	७३

	सर्गे	श्लोकः
स्थाणुदग्धवपुषस्तपो	११	१३
स्थाने भवानेकनरा	५	१६
स्थाने वृता भूपतिभिः	७	१३
स्थितः स्थितामुच्चलितः	२	६
स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्या	१	१५
स्नात्वा यथाकाममसौ	१६	७३
स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूप	१६	५०
स्निग्धगम्भीरनिर्घोष	१	३६
स्फुरत्प्रभामण्डलभानु	१४	१४
स्मरतेव सशब्दनूपु	८	६३
स्रगियं यदि जीवितापहा	८	४६
स्रष्टुर्वरातिसर्गात्तु	१०	४२
स्वप्रकीर्तितविपक्षमङ्गनाः	१९	२२
स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्रा	१५	७६
स्वर्गाभिनस्तस्य तमै	१८	३६
स्वशरीरशरीरिणाव	८	८९
स्वसुर्विदर्भाधिपतेस्त	६	६६
स्वाभाविकं विनीतत्वं	१०	७९
स्वासिधारापरिहृतः	१०	४१
स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्ष	१६	४८

ह	सर्गे	श्लोकः
हंसश्रेणीषु तारासु	४	१९
हरिर्यथैकः पुरुषोत्त	३	४९
हरेः कुमारोऽपि कुमार	३	५५
हविर्भुजामेधवतां च	१३	४१
हविरावर्जिते होत	१	६२
हविःशमीपल्लवलाज	७	२६
हविषे दीर्घसत्रस्य	१	८०
हस्तेन हस्तं परिगृह्य	७	२१
हा तातेति क्रन्दितमाक	९	७५
हीनान्यनुपकर्तृणि	१७	५८
हुतहुताशनदीप्तिव	९	४०
हृष्टापि सा ह्रीविजिता	७	६९
हृदयस्थमनासन्न	१०	१९
हेमपक्षप्रभाजालं	१०	६१
हेमपत्रागतं दोर्भ्यामा	१०	५१
हैयंगवीनमादाय	१	४५
ह्रेपिता हि बहवो नरे	११	४०

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

(मूल पाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका, भूमिका, नोट्स एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री सहित)

अभिज्ञानशाकुन्तलम् (सम्पूर्ण)
—सुबोधचन्द्र पन्त (स०) ३०; (अ०) २०

अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थाङ्क)
—जगदीशलाल शास्त्री १.२५

अभिषेक-नाटकम्—भासकृत—मोहनदेव पंत १०

अमरुशतक—व्या० अर्जुन वर्मदेव १६

उत्तररामचरित—आनन्दस्वरूप स० ५०; अ० ३५

कादम्बरी—मोहनदेव पन्त
(पूर्वार्द्ध) (सजिल्द) ७०; (अजिल्द) ५०
(उत्तरार्द्ध) (सजिल्द) ५५; (अजिल्द) ३५

किरातार्जुनीयम्—४ सर्ग
—सं० जनार्दन शास्त्री पाण्डेय १४

कुमारसंभव महाकाव्य : १–५
—जगदीशलाल शास्त्री ७

चारुदत्तम् (भास)—रामायण द्विवेदी ६

दशकुमारचरित (सम्पूर्ण)—सुबोधचन्द्र पन्त एवं विश्वनाथ झा १५

दूतघटोत्कच (भास)—व्या० रमाशंकर त्रिपाठी २

दूतवाक्य (भास)—व्या० रमाशंकर त्रिपाठी २.५०

नीतिशतक—जनार्दन शास्त्री ८

प्रतिमानाटक—श्रीधरानन्द शास्त्री १५

प्रसन्नराघवम्—रमाशंकर त्रिपाठी १५

भट्टिकाव्य : १–४ "जयमंगला" हिन्दी व्याख्या
—रामअवध पाण्डेय ८

भट्टिकाव्य : ५–८ "जयमंगला" हिन्दी व्याख्या
—राम गोविन्द शुक्ल ७

रत्नावली नाटिका—रमाशंकर त्रिपाठी ४

रत्नावली नाटिका—बी० एन० पाण्डेय १४

वेणीसंहारम्—रमाशंकर त्रिपाठी ८

शिशुपालवध (सम्पूर्ण)
—जनार्दन शास्त्री पाण्डेय १६.५०

सौन्दरनन्द महाकाव्य—अश्वघोष
—सूर्यनारायण चौधरी ३६

हर्षचरित (सम्पूर्ण)—मोहनदेव पन्त १६५

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास

मेघदूत : एक अनुचिन्तन

श्रीरञ्जन सूरिदेव

यह लेखक के 'मेघदूत' पर लिखे गये स्फुट लेखों का संकलन है। कालिदास की इस विलक्षण कृति ने सदा ही रसिकों को आकृष्ट किया है। दूतकाव्य की तो एक अभिनव परम्परा ही इससे आरम्भ होती है। आधुनिक काल में भी इसके अनेकानेक अनुवाद हुए हैं और संस्करण मुद्रित होते रहते हैं। प्रस्तुत संस्करण अनेक के बीच भी उल्लेख्य सिद्ध होगा। सामान्य रूप से कालिदास एवं विशेष रूप से उनकी इस कृति के संबंध में अद्यावधि प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों ने जो कुछ लिखा है उसे यदि एकत्र देखना हो तो इस संस्करण से यह संभव हो जाएगा। प्राचीन टीकाओं, पाश्चात्य विद्वानों के विचार तथा कवि और उसकी कृति के विषय में अपने अध्ययन-अनुसन्धान के बल पर श्रीरञ्जनजी ने 'मेघदूत' का पार्यन्तिक संस्करण प्रस्तुत करने में सफलता पाई है। पूर्वार्ध में कालिदास के समय तथा उनकी काव्यकला एवं 'मेघदूत'-विषयक अनेकानेक समस्याओं पर योग्यता से प्रकाशन डाला गया है।

रु० ४५

विक्रमोर्वशीयम्

व्याख्याकार : रामाभिलाष त्रिपाठी

'विक्रमोर्वशीयम्' में महाकवि कालिदास ने यौवन की उद्दाम वासना से उत्पन्न कामुक पुरुष को प्रेमिका के विरह में एकदम पागल बना देने वाले प्रेम का निरूपण किया है। कालिदास ने एतद्द्वारा एक वैदिक प्रेमाख्यान को—ऋग्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण में वर्णित पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रेमकथा को—कमनीय नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है।

इसका प्रस्तुत संस्करण छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। ऊपर मूलपाठ तथा नीचे अन्वय, शब्दार्थ, हिन्दी अर्थ, संस्कृत व्याख्या तथा टिप्पणी देकर उपयोगी बनाने का भरसक प्रयास किया गया है। टिप्पणी में व्याकरण-संबंधी बातों का स्पष्टीकरण, अलंकार एवं छंदों का विवरण दिया गया है। एक विस्तृत भूमिका में कवि एवं कृति से संबंधित सभी आवश्यक विषयों पर विचार किया गया है। परिशिष्ट में श्लोकानुक्रमणी तथा सुभाषितों का संकलन है।

रु० १५

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास